CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

6.5

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीवर्द्धमानाय नमः ।

सिद्धान्ताचार्य पं० कैलाशचन्द्रजी शास्त्री
प्राचार्य, श्री स्याद्वाद महाविद्यालय, वाराणसी
सादर भेंट

भाग १४ ।

जैनहितैषी ।

अक्टूबर १९१९ ।

विषय-सूची ।

१ प्रारंभिक निवेदन १
२ वैधव्य और विधवा-विवाह ३
४ महावीरकी वाणी ४
५ जैनाचार्योंका शासन-भेद ५
६ सेठीजीका छुटकारा १५
७ दुष्प्राप्य और अलभ्य जैनग्रन्थ १७
८ ऐतिहासिक जैन व्यक्तियाँ २०
९ समाज-संगठन २२
१० विविध विषय (१ माणिकचन्द ग्रन्थमाला, २ अन्तर्जातीय विवाह-विधान, ३ ब्र० भगवानदीनजीको जेल, ४ बाबू दयाचन्दजी और उनका पत्र, ५ कुरीति निवारिणी अग्रवालजैनसभा, ६ जैनहितैषीका सम्पादन) ... २८

आवश्यकता ।

१ हमें कुछ महीनोंकेलिये एक ऐसे कनड़ी भाषा जाननेवाले विद्वानकी आवश्यकता है जिसकी दूसरी भाषा हिन्दी, संस्कृत अथवा अंग्रेजी हो और जो इन भाषाओंमेंसे किसी भाषामें कनड़ी भाषाका अभिप्राय प्रकट कर सकता हो । वेतन योग्यतानुसार दिया जायगा । जो महाशय आना चाहें उन्हें, अपनी योग्यता आदिका परिचय देते हुए, हमसे शीघ्र हिन्दी आदिमें पत्रव्यवहार करना चाहिये ।

२ सम्पादक जैनहितैषीको एक सुयोग्य हिन्दी और संस्कृत जाननेवाले क्लार्ककी ज़रूरत है । वेतन योग्यतानुसार दिया जायगा । जो भाई आना चाहें उन्हें, अपनी योग्यता आदिका परिचय देते हुए, सम्पादक 'जैनहितैषी' सरसावा जि० सहारनपुरके पतेपर पत्रव्यवहार करना चाहिये ।

सम्पादक ।

सम्पादक, बाबू जुगलकिशोर मुख्तार ।

मुंबई वैभव प्रेस.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रार्थनायें।

१ जैनहितैषी किसी स्वार्थबुद्धिसे प्रेरित होकर निजी लाभके लिए नहीं निकाला जाता है। इसके लिए जो समय, शक्ति और धनका व्यय किया जाता है वह केवल निष्पक्ष और ऊँचे विचारोंके प्रचारके लिए। अतः इसकी उन्नतिमें हमारे प्रत्येक पाठकको सहायता देनी चाहिए।

२ जिन महाशयोंको इसका कोई लेख अच्छा मालूम हो उन्हें चाहिए कि उस लेखको वे जितने मित्रोंको पढ़कर सुना सकें अवश्य सुना दिया करें।

३ यदि कोई लेख अच्छा न मालूम हो अथवा विरुद्ध मालूम हो तो केवल उसीके कारण लेखक या सम्पादकसे द्वेष भाव धारण न करनेके लिए सविनय निवेदन है।

४ लेख भेजनेके लिए सभी सम्प्रदायके लेखकोंको आमंत्रण है। —सम्पादक।

नियमावली।

१ जैनहितैषीका वार्षिक मूल्य २) दो रुपया पेशगी है।

२ ग्राहक वर्षके आरंभसे किये जाते हैं और बीचमें ७ वें अंकसे। आधे वर्षका मूल्य १।)

३ प्रत्येक अंकका मूल्य तीन आने।

४ लेख, बदलेके पत्र, समालोचनार्थ पुस्तकें आदि "बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तार, सरसावा (सहारनपुर)" के पास भेजना चाहिए। सिर्फ प्रबन्ध और मूल्य आदि सम्बन्धी पत्रव्यवहार इस पतेसे किया जायः—

मैनेजर, जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई।

ग्राहकोंको आवश्यक सूचनायें।

१ दो वर्ष पहले जैनहितैषीके जो सज्जन ग्राहक थे, उन सब सज्जनोंको यह अंक भेजा जाता है। जो महाशय इस अंकको रख लेंगे और हमें किसी प्रकारकी सूचना नहीं देंगे, उनका नाम इस वर्षके ग्राहकोंमें लिख लिया जायगा और आगामी तीसरा या चौथा अंक वी० पी० से भेज दिया जायगा।

२ जो महाशय ग्राहक न रहना चाहें उन्हें इस अंकके पहुँचते ही एक कार्डसे सूचित कर देना चाहिए, या इसी अंकको वापस कर देना चाहिए।

३ जिन महाशयोंके पते ठिकाने बदल गये हों उन्हें नये पतोंकी सूचना दे देनी चाहिए।

४ जिन सज्जनोंको हितैषीसे प्रेम हो, उन्हें इसी समय एक एक दो दो नये ग्राहक बनानेका प्रयत्न करनेकी कृपा करनी चाहिए, जिससे आगेके अंक यथेष्ट संख्यामें छपाये जा सकें।

५ वी० पी० के द्वारा रुपये वसूल करनेमें बड़ी झंझटें हैं, इसलिए जो महाशय मनीआर्डर द्वारा रुपये भेज देनेकी कृपा करेंगे, वे हमपर बड़ा उपकार करेंगे। इससे हमें भी सुभीता होगा, और ग्राहकोंको भी। अकसर वी० पी० का रुपया हमें बहुत देरसे मिलता है और तब तक हम ग्राहकोंको नया अंक नहीं भेज सकते हैं। —मैनेजर।

नये जैनग्रन्थ।

१ उत्तरपुराण। आचार्य गुणभद्रकृत मूल और पं० लालारामजीकृत भाषानुवादसहित। मू० १०)

२ त्रैलोक्यसार। मूल और पं० टोडरमलजी कृत भाषावचनिका सहित। मू० ५)

३ क्रियाकोश। पं० दौलतरामजीकृत छन्दोबद्ध ग्रन्थ। मू० २॥)

४ समयसार। आचार्य अमृतचन्द्रकृत आत्मख्याति टीका, तात्पर्यवृत्ति और भाषाटीकासहित निर्णयसागरका छपा हुआ। मूल्य ४॥)

५ तीस चौबीसीपाठ। कविवर वृन्दावनजी कृत। मू० २)

६ जैनसिद्धान्तप्रवेशिका। स्वर्गीय पं० गोपालदासजी कृत। मू० ।≈)

मैनेजर, जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई।

बिनामूल्य।

निम्नलिखित पुस्तकें सम्पादक 'जैनहितैषी' के पाससे बिना मूल्य मिलती हैं। जिन भाईयोंको जिस पुस्तककी आवश्यकता हो उन्हें डाक खर्चके लिये आधआनेका टिकट भेजकर उसे सरसावा जि० सहारनपुरसे मँगा लेनी चाहिये। १ विवाहका उद्देश्य, २ अनित्य भावना, ३ मेरी भावना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिद्धान्ताचार्य पं. ... जी शास्त्री
प्राचार्य, श्री स्याद्वाद महाविद्यालय, वाराणसी
द्वारा भेंट

हितं मनोहारि च दुर्लभः वचः ।

चौदहवाँ भाग । अंक १

जैनहितैषी ।

अक्टूबर १९१९
कार्तिक २४४६

न हो पक्षपाती बतावे सुमार्ग, डरे ना किसीसे कहे सत्यवाणी ।
बने है विनोदी भले आशयोंसे, सभी जैनियोंका हितैषी हितैषी ॥

प्रारंभिक निवेदन ।

फरवरी सन् १९१८ में मैंने जैनहितैषीके र्यसे छुट्टी ली थी । उस समय यह नहीं चा था कि 'हितैषी' को बिलकुल बन्द ना पड़ेगा । मुझे आशा थी कि मेरे मित्र बू जुगलकिशोरजी—जो कि जैनहितैषीके ान लेखक हैं और जैनहितैषीको सदासे प्रेमकी दृष्टिसे देखते हैं—इस कार्यको स्वीकार र लेगें । परन्तु 'यच्चिन्तितं तदिह दूरतरं याति ।' उसी समय एकाएक उक्त बाबू हबकी गृहिणी अपनी कुछ ही दिनोंकी दुग्ध-ष्य कन्याको छोड़कर स्वर्गवासिनी हो गई । ह एक बड़ी भारी विपत्ति थी, इससे बाबू हबका हृदय टूट गया और वे उस समय नहितैषीकी सेवा करनेके लिए तैयार न सके ।

धीरे धीरे एक वर्ष भी बीत गया । मेरा र्तव्य था कि फरवरी १९१९ के लगभग मैं अपने कार्यको यथापूर्व करने लगता । परन्तु उस एक वर्षके विश्रामने भी न तो मुझे यथेष्ट मानसिक स्वास्थ्य प्रदान किया और न शारीरिक । बल्कि शारीरिक स्वास्थ्य तो और भी बिगड़ता गया और अन्तमें गत अप्रैलमें एकाएक मेरा पुराना वायुरोग उठ खड़ा हुआ । इसके विकट आक्रमणने प्राणोंका संशय उपस्थित कर दिया और कोई चार महीने तक खाटसे भी न उठने दिया ।

इस समय मैं उक्त रोगसे मुक्त हो गया हूँ; परन्तु वह अपनी जगहपर एक और प्रतिनिधि—उदररोग—छोड़ गया है । तीन महीनेसे इसका उपाय हो रहा है; परन्तु अभी तक कुछ भी लाभ नहीं हुआ है और यही कारण है जो आज पौने दो वर्षके लगभग बीत जानेपर भी मैं हितैषीकी सेवा करनेके लिए तैयार नहीं हूँ ।

परन्तु 'हितैषी' का बन्द रहना अब असह्य हो गया है । इस समय उसकी आवश्यकता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और भी अधिक स्पष्टरूपसे प्रतीत होने लगी है। हितैषीके प्रेमी और शुभचिन्तक पाठक भी उसके अदर्शनसे व्याकुल हैं। उनके आग्रह और उलहनोंसे भरे हुए पत्र इस बातके निदर्शन हैं कि हितैषीको वे हृदयसे चाहते हैं और उसे जैन-समाजके कल्याणका एक प्रधान अंग समझते हैं।

अतः अब मैंने उचित समझा कि एक बार फिर बाबू जुगलकिशोरजीसे प्रार्थना की जाय। पाठक यह जान कर प्रसन्न होंगे कि बाबू साहबने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली है और अब वे ही आपके इस प्रेमपात्र पत्रका आनरेरी तौरपर सम्पादन किया करेंगे।

बाबू जुगलकिशोरजी जैनसमाजके सुपरिचित लेखक हैं। वे कई वर्षतक बड़ी योग्यताके साथ 'जैनगजटका' का सम्पादन कर चुके हैं। उनके सम्पादकत्वमें 'जैनगजट' चमक उठा था। जैनहितैषीमें भी पिछले कई वर्षोंसे आप बराबर लिखते रहे हैं। इस कारण हमारे पाठक आपकी योग्यतासे भली भाँति परिचित हैं। आप बड़े ही विचारशील लेखक हैं। आपकी कलमसे कोई कच्ची बात नहीं निकलती। जो लिखते हैं, वह सप्रमाण और सुनिश्चित। आपका अध्ययन और अध्यवसाय बहुत बढ़ा चढ़ा है। गत पाँच वर्षोंसे आपने 'मुख्तारी' का कार्य छोड़ दिया है। निःस्वार्थ भावसे निरन्तर अध्ययन और मनन ही इस समय आपका नित्यका व्यवसाय है। जैनहितैषीका सौभाग्य है कि वह ऐसे सुयोग्य सम्पादकके हाथमें जा रहा है। आपके सम्पादकत्वमें वह अवश्य ही उन्नति करेगा और अपनी पूर्वसम्पादित कीर्तिको और भी वर्द्धित करता रहेगा।

यहाँ मैं अपने प्यारे पाठकोंकी जानकारीके लिए यह भी निवेदन कर देना उचित समझता हूँ कि जैनहितैषीसे मैं अपना सम्बन्ध बिल्कुल ही नहीं छोड़ रहा हूँ। अपने जीतेजी मैं इसे छोड़ भी नहीं सकता। छोड़नेकी कल्पनामात्रसे मुझे दुःख होता है। मैं आपको शब्दोंद्वारा नहीं समझा सकता कि 'हितैषी' मेरी कितनी प्यारी चीज है। मैंने अपने सारे विश्रामको, अवकाशको, सुखको और सर्वस्वको लगाकर इसका लालन-पालन किया है। इसके एक एक पृष्ठमें मेरी जीवनी शक्तिके अंश लगे हुए हैं। अतः इस अस्वस्थावस्थामें भी मुझसे इसकी जो कुछ सेवा बन सकेगी, करता ही रहूँगा। प्रत्येक अंकमें कमसे कम एक लेख तो अवश्य ही लिखनेका प्रयत्न करूँगा।

इसके प्रबन्धका और घाटे आदिका सब भार यथापूर्व जैन-ग्रन्थरत्नाकर-कार्यालयके ऊपर ही रहेगा। इस विषयमें ग्राहकोंको उसीसे पत्रव्यवहार करना चाहिए। लेख, समालोचनार्थ पुस्तकें और बदलेके पत्र आदि 'बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तार, सम्पादक जैनहितैषी, पो० सरसावा (सहारनपुर)" के ठिकानपर भेजने चाहिए।

इस बार पत्रका मूल्य तीन रुपयेके स्थानमें दो रुपया कर दिया गया है और पृष्ठसंख्या फिलहाल ३२ रहेगी।

अन्तमें हम अपने प्रेमी पाठकोंसे यह आशा रखते हुए इस निवेदनको समाप्त करते हैं कि वे इस पर पूर्वके समान ही स्नेहदृष्टि रक्खेंगे और इसकी ग्राहकसंख्या बढ़ानेमें तथा इसके विचारोंके प्रचारमें अधिकाधिक प्रयत्नशील रहेंगे। यह बात हमारे किसी भी हितैषीको न भूल जानी चाहिए कि जैनहितैषीके लिए जो कुछ श्रम, समय और धन लगाया जाता है, वह किसी स्वार्थसाधनाके लिए नहीं, किन्तु अच्छे और ऊँचे विचारोंके प्रचारके लिए तथा जैनधर्मका वास्तविक स्वरूप जनसाधारणके समक्ष उपस्थित करनेके लिए ही लगाया जाता है और हमारा यह प्रयत्न ग्राहकों और पाठकोंकी सहायता सहयोगितासे ही सफल हो सकता है।

कार्तिक वदी २
सं० १९७६ } नाथूराम प्रेमी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वैधव्य और विधवाविवाह।

देशभक्त महात्मा गाँधीने नवजीवनके छट्ठे अंकमें 'विधवानो बलापो' नामका एक छोटासा परन्तु महत्त्वपूर्ण लेख प्रकाशित किया है। इस लेखसे पाठक जान सकेंगे कि आर्य सभ्यताको सम्मानकी दृष्टिसे देखने और माननेवाले विचारशील पुरुषोंके वैधव्य और विधवाविवाहके सम्बन्धमें क्या विचार हैं।

सूरतकी ११ बालविधवाओंने—जो वणिक जातिकी हैं और वैष्णवधर्मको मानती हैं—अभी हाल ही महात्मा गाँधीजीके पास दो प्रार्थनापत्र भेजे हैं; उन्हींको लक्ष्य करके महात्माजीने अपने विचार प्रकट किये हैं।

इन ग्यारह विधवाओंमेंसे तीन पढ़ी लिखी हैं—और शेष अक्षरशून्य हैं। जातिमें ये बड़ी बुरी नजरसे देखी जाती हैं; 'भक्षिणी' कहलाती है,और अधम पुरुषोंके आश्रयमें रहती हैं। सूरतमें बणिकोंकी ४१ जातियाँ हैं और उनमें बालविधवाओंकी संख्या ७०० के लगभग है! धर्म क्या चीज है, यह उनमेंसे कोई भी नहीं जानता। दुखिनी विधवायें लिखती हैं:—"हम विधवा-धर्मको समझती हैं; परन्तु इस धर्मकी रक्षा की जा सके हमें ऐसे साधन उपलब्ध नहीं हैं। हमें किसी आश्रममें रखकर अच्छी शिक्षा दी जाय और सेवाधर्म सिखलाया जाय तो हम अपने धर्मकी रक्षा करनेके लिए तैयार हैं। पर यदि ऐसा न हो तो हमारे सामने इतने अधिक प्रलोभन रहते हैं कि हमको पति-संगकी आवश्यकता है। × × × जिस समय ज्ञानमार्ग मन्द पड़ा था, उस समय वल्लभाचार्यने भक्तिमार्गका प्रचार किया था। देशकालके अनुसार रूढ़ियोंमें फेरफार होते हैं, तदनुसार ही हमारे—विधवाओंके—विषयमें भी होना चाहिए।" इसी प्रकारकी और भी अनेक बातें लिखी हैं। पर सारांश सब बातोंका ऊपरके वाक्योंमें आ चुका है।

अब इस पर महात्माजीका जो कुछ वक्तव्य है, उसे और सुन लीजिए—

"विधवाओंका प्रश्न हिन्दुओंके लिए कोई छोटा मोटा प्रश्न नहीं है। शायद ही कोई ऐसा हिन्दू कुटुम्ब हो जिसके सिरपर विधवाओंकी जवाबदारी न हो। सुधारकोंने इस प्रश्नका एकदेशीय उत्तर दे दिया है। उनका कथन है कि बस पुनर्विवाह कर देना ही विधवाओंके दुःख दूर कर देनेका उपाय है। परन्तु मुझे यह विचार बहुत भयंकर जान पड़ता है। वैधव्यके भीतर मुझे कोई बड़ा रहस्य छुपा दिखलाई देता है। वैधव्यका उपयोग भी बहुत बड़ा है। यदि पुरुष भी एक स्त्रीके मर जानेपर पुनर्विवाहका विचार न करते, तो बहुत अच्छा होता। परन्तु इस प्रकारका आन्दोलन कहीं भी, थोड़ासा भी, होता नजर नहीं आता। पर ऐसे विचारसे अथवा इस विचारके अमलमें आ जानेसे भी बालविधवाओंके विलाप कैसे बन्द हो जायँगे? हजारों पुरुष भी यदि स्त्रियोंके मर जानेपर स्वेच्छापूर्वक पुनर्विवाह न करें तो इससे जिन्हें बलात्कारपूर्वक वैधव्य भोगना पड़ता है, उन बेचारी विधवाओंको क्या लाभ होगा? उनके लिए आप कौनसा मार्ग बतलाते हैं? विधवाको पुनर्विवाह करनेसे हठपूर्वक रोकना, क्या यह कोई धर्म है? विधवाओंको ऐसी स्थितिमें पहुँचाये बिना जिसमें कि वे अपने वैधव्यको शोभित कर सकें, क्या उनसे पवित्रताकी आशा रक्खी जा सकती है?

इन सब समस्याओंकी मीमांसा शीघ्र नहीं हो सकती। प्रत्येक पक्षमें कुछ न कुछ सत्य अवश्य है। परन्तु मैं वादविवादके मैदानमें न आकर नीचे लिखे हुए निर्णय हिन्दू संसारके समक्ष रख देना चाहता हूँ:—

१ वैधव्यको भंग करनेका प्रयत्न धर्मको हानि पहुँचानेवाला है।

२ विवाह धार्मिकक्रिया है। प्रेम एक ही वार विवाह कर सकता है।

३ विधवा पूज्य है। उसका तिरस्कार करना पाप है। पवित्र विधवाका दर्शन शुभ शकुन है। उसे अपशकुन गिनना पाप है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४ यदि विवाह धार्मिकक्रिया है और वह केवल पवित्र प्रेमका चिह्न गिना जाता है, तो बेजोड़ विवाहको और बालविवाहको पाप ही समझना चाहिए। यदि पचास वर्षकी उम्रमें नौ वर्षकी किसी लड़कीको ब्याहनेमें कोई रुकावट न हो और ऐसे ब्याह करनेवालेको जातिसे बाहर न किया जाता हो, तो उसी लड़कीको, विधवा हो जाने पर पुनर्विवाह करनेसे रोकना अथवा पुनर्विवाह कर लेनेसे उसे जातिच्युत करना या और किसी रीतिसे दण्डित करना, यह भी पाप ही गिना जायगा।

धर्मके पालनमें बलात्कारको अवकाश ही नहीं है। अतः सूरतकी बालविधवाओंके विषयमें वैष्णवोंको और दूसरे हिन्दू कुटुम्बोंको मैं तो यही सम्मति देता हूँ कि तुम कोई ऐसी तजवीज सोचो और उसे अमलमें लाओ जिससे कि विधवाओंका मन और शरीर अच्छे कामोंसे लगा रहे। ऐसा करनेपर भी जो सर्वथा बालविधवायें हैं, उन्हें विवाहके लिए न ललचाना यह जितना आवश्यक है उतना ही आवश्यक यह भी है कि यदि उन्हें विवाह करना हो तो उनके मार्गमें किसी प्रकारका विघ्न उपस्थित न किया जाय। **वैधव्य (विधवाका ब्रह्मचर्य) पालना यह पुण्यकर्म है, परन्तु विधवा-विवाह सर्वथा पापकर्म तो कभी नहीं हो सकता।** यदि हमारी जातियाँ वर्णाश्रम धर्मको शोभित करना चाहती हों, उसको लोप न होने देना चाहती हों तो उन्हें अपनेमें प्रचलित हुई, अनेक कुव्यवस्थाओंको—कुरीतियोंको दूर करना पड़ेगा और अपनेमें उत्पन्न होनेवाले प्रत्येक प्रश्नका निर्णय धार्मिकदृष्टिसे करना होगा। मैं विधवाओंसे कहता हूँ कि तुम अपने वैधव्यको पवित्र मानकर उसको सुशोभित करती रहो। हिन्दू-संसारमें ऐसे अनेक उदाहरण पड़े हैं। साथ ही जातियोंसे कहता हूँ कि यदि बालविधवायें पुनर्विवाह करना चाहें तो न उनका तिरस्कार करो और न उन्हें जातिसे बाहर करो।"

आशा है कि हमारे समाजके विद्वान महात्मा गाँधीके विचारों पर शान्तिपूर्वक विचार करनेकी कृपा करेंगे। —**नाथूराम प्रेमी।**

महावीरकी वाणी।

(सोहनी।)

अखिल-जग-तारनको जल-यान।
प्रकटी, वीर, तुम्हारी वाणी,
जगमें सुधा समान॥ १॥

अनेकान्तमय, स्यात्पद-लांछित,
नीति-न्यायकी खान।
सब कुवादका मूल नाश कर,
फैलाती सत ज्ञान॥ २॥

नित्य-अनित्य-अनेक-एक-
इत्यादिक वादि महान।
नतमस्तक हो जाते संमुख,
छोड़ सकल अभिमान॥ ३॥

जीव-अजीवतत्त्व निर्णयकर,
करती संशय-हान।
साम्यभावरस चखते हैं जो,
करते इसका पान॥ ४॥

ऊँच, नीच औ लघु-सुदीर्घका,
भेद न कर भगवान।
सबके हितकी चिन्ता करती,
सब पर दृष्टि समान॥ ५॥

अन्धी श्रद्धाका विरोध कर,
हरती सब अज्ञान।
युक्ति-वादका पाठ पढ़ाकर,
कर देती सज्ञान॥ ६॥

ईश न जगकर्ता, फलदाता,
स्वयं सृष्टि-निर्माण।
निज उत्थान-पतन निज करमें,
करती यों सुविधान॥ ७॥

हृदय बनाती उच्च, सिखाकर,
धर्म सुदया-प्रधान।
जो नित समझ आदरें इसको,
वे 'युग-वीर' महान॥ ८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैनाचार्योंका शासन-भेद ।

कुछ समय हुआ जब हमने 'जैनतीर्थंकरोंका शासनभेद' नामका एक लेख लिखा था, जो अगस्त सन् १९१६ के जैनहितैषीमें प्रकाशित हुआ है । इस लेखमें श्रीवट्टकेराचार्यप्रणीत 'मूलाचार' ग्रंथके आधारपर यह प्रदर्शित और सिद्ध किया गया था कि, **समस्त जैन तीर्थंकरोंका शासन एक ही प्रकारका नहीं रहा है। बल्कि समयकी आवश्यकतानुसार—लोक स्थितिको देखते हुए—उसमें कुछ न कुछ परिवर्तन जरूर होता रहा है** । और इस लिये जिन लोगोंका ऐसा ख़याल है कि जैन तीर्थंकरोंके उपदेशमें रंचमात्र भी भेद या परिवर्तन नहीं होता—जो वचनवर्गणा एक तीर्थंकरके मुखसे खिरती है वही, जँची तुली, दूसरे तीर्थंकरके मुँहसे निकलती है, उसमें जरा भी फेरफार नहीं होता—यह खयाल निर्मूल जान पड़ता है । साथ ही, मूलगुण उत्तर गुणोंकी प्ररूपणाके कुछ रहस्यका दिग्दर्शन कराते हुए, यह भी बतलाया था कि **सर्व समयोंके मूल गुण कभी एक प्रकारके नहीं हो सकते** । किसी समयके शिष्य संक्षेपप्रिय होते हैं और किसी समयके विस्तार रुचिवाले । कभी लोगोंमें ऋजु जडताका अधिक संचार होता है, कभी वक्र जडताका और कभी इन दोनोंसे अतीत अवस्था होती है । किसी समयके मनुष्य स्थिरचित्त, दृढबुद्धि और बलवान् होते हैं और किसी समयके चलचित्त, विस्मरणशील और निर्बल । कभी लोकमें मूढ़ता बढ़ती है और कभी उसका ह्रास होता है । इस लिये **जिस समय जैसी जैसी प्रकृति और योग्यताके शिष्योंकी—उपदेशपात्रोंकी—बहुलता होती है, उस समय उस वक्तकी जनताको लक्ष्य करके तीर्थंकरोंका उसके उपयोगी वैसा ही उपदेश तथा वैसा ही व्रतनियमादिकका विधान होता है** । उसीके अनुसार मूलगुणोंमें भी हेरफेर हुआ करता है ।

आज हम अन्तिम तीर्थंकर श्रीमहावीरस्वामीके पश्चात् होनेवाले जैनाचार्योंके परस्पर शासन-भेदको दिखलाना चाहते हैं । यह परस्परका शासनभेद दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही संप्रदायोंमें पाया जाता है । अतः हम, इस लेखमें, दिगम्बराचार्योंके शासन-भेदको प्रकट करते हुए श्वेताम्बराचार्योंके शासनभेदको भी यथाशक्ति दिखलानेकी चेष्टा करेंगे । इस शासन-भेदको प्रदर्शित करनेमें हमारा अभिप्राय केवल इतना ही है कि **जैनियोंको वस्तु—स्थितिका यथार्थ परिज्ञान हो जाय,** वे अपने वर्तमान आगमकी वास्तविक स्थिति और उसके यथार्थ स्वरूपको भले प्रकार समझने लगें और इस तरहसे प्रबुद्ध होकर अपना वास्तविक हितसाधन करनेमें समर्थ हो सकें । साथ ही, भेद-विषयोंके सामने आनेपर विद्वानोंद्वारा उनके कारणोंका गहरा अनुसंधान हो सके और फिर इस अनुसंधान-द्वारा तत्तत्कालीन सामाजिक तथा देशिक परिस्थितियोंका बहुत कुछ पता चलकर ऐतिहासिक क्षेत्रपर एक अच्छा प्रकाश पड़ सके । हमारे जैनी भाई, आमतौरपर, अभीतक यह समझे हुए हैं कि हिन्दू धर्मके आचार्योंमें ही परस्पर मत-भेद था । इसीसे उनके श्रुति-स्मृति आदि ग्रंथ विभिन्न पाये जाते हैं । जैनाचार्य इस मतभेदसे रहित थे । **उन्होंने जो कुछ कहा है वह सब सर्वज्ञोदित अथवा महावीर भगवानकी दिव्यध्वनि द्वारा उपदेशित ही कहा है** । और इस लिये, उन सबका एक ही शासन और एक ही मत था । परन्तु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Sarayu Trust/eGangotri

यह सब समझना उनकी भूल है। जैनाचार्योंमें भी बराबर मत-भेद होता आया है। यह दूसरी बात है कि उसकी मात्रा, अपेक्षाकृत, कुछ कम रही हो, परन्तु मतभेद रहा जरूर है। मत-भेदका होना सर्वथा ही कोई बुरी बात भी नहीं है जिसे घृणाकी दृष्टिसे देखा जाय। सदुद्देश्य और सदाशयको लिये हुए मत-भेद बहुत ही उन्नतिजनक होता है और उसे धर्म तथा समाजकी जीवनी शक्ति और प्रगतिशीलताका द्योतक समझना चाहिये। जब, थोड़े ही काल × बाद, महावीर भगवानको श्री पार्श्वनाथ तीर्थंकरके शासनसे अपने शासनमें, समयानुसार, कुछ विभिन्नताएँ करनी पड़ीं; जैसा कि श्री मूलाचार ग्रंथसे प्रकट है, तब दोढाई हजार वर्षके इस लम्बे चौड़े समयके भीतर, देश—कालकी आवश्यकताओं आदिके अनुसार, यदि जैनाचार्योंके शासनमें परस्पर कुछ भेद होगया है—वीर भगवानके शासनसे भी उनके शासनमें कुछ विभिन्नता आगई है—तो इसमें कुछ भी आश्चर्यकी बात अथवा अप्राकृतिकता नहीं है। जैनाचार्य देश-कालकी परिस्थितियोंके शासनसे बाहर नहीं हो सकते। * इन्हीं सब बातोंपर प्रकाश डालनेके लिये यह जैनाचार्योंके शासन-भेदको प्रदर्शित करनेका प्रयत्न किया जाता है।

यहाँपर हम इतना और भी प्रकट कर देना जरूरी समझते हैं कि जैनतीर्थंकरोंके विभिन्न शासनमें परस्पर उद्देश्यभेद नहीं होता। समस्त जैनतीर्थंकरोंका वही मुख्यतया एक उद्देश्य **'आत्मासे कर्ममलको दूर करके उसे शुद्ध, सुखी, निर्दोष और स्वाधीन बनाना'** होता है। दूसरे शब्दोंमें यों कह सकते हैं कि संसारी जीवोंको संसार-रोग दूर करनेके मार्ग पर लगाना ही जैनतीर्थंकरोंके जीवनका प्रधान उद्देश्य होता है। एक रोगको दूर करनेके लिये जिस प्रकार अनेक ओषधियाँ होती हैं और वे अनेक प्रकारसे व्यवहारमें लाई जाती हैं; रोगशान्तिके लिये उनमेंसे जिस वक्त जिस जिस ओषधिको जिस जिस विधिसे देनेकी जरूरत होती है वह उस वक्त उसी विधिसे दी जाती है—इसमें न कुछ विरोध होता है और न कुछ बाधा ही आती है, उसी प्रकार संसाररोग या कर्मरोगको दूरकरनेके भी अनेक साधन और उपाय होते हैं और जिनका अनेक प्रकारसे प्रयोग किया जाता है; उनमेंसे तीर्थंकर देव अपनी अपनी समयकी स्थितिके अनुसार जिस जिस उपायका जिस जिस रीतिसे प्रयोग करना उचित समझते हैं उसका उसी रीतिसे प्रयोग करते हैं। उनके इस प्रयोगमें किसी प्रकारका विरोध या बाधा उपस्थित होनेकी संभावना नहीं हो सकती। परन्तु जैनाचार्योंके सम्बन्धमें--उनके विभिन्न शासनके विषयमें--ऐसा कोई नियम नहीं हो सकता; वह परस्पर विरुद्ध, बाधित और उद्देश्य-भेदको लिये हुए भी हो सकता है। क्योंकि जैनाचार्य तीर्थकरों अथवा इतर केवल ज्ञानियोंके समान ज्ञानादिककी चरम सीमाको पहुँचे हुए नहीं होते। उनका ज्ञान परिमित, पराधीन और परिवर्तनशील होता है। अज्ञान और कषायका भी उनके उदय पाया जाता है। वे राग-द्वेषसे सर्वथा रहित नहीं होते। साथ ही, उन्हें आगमज्ञानकी जो कुछ प्राप्ति होती है वह सब गुरुपरम्परासे होती है। गुरुपरम्परामें केवलियोंके

× सिर्फ अढ़ाई सौ वर्षके बाद ही; क्योंकि पार्श्वनाथसे महावीरका अवतार इतने ही वर्षोंके बाद कहा जाता है। * इन्द्रनन्दिने अपने 'नीतिसार' ग्रंथमें, यह प्रकट करते हुए कि पंचम कालमें महावीर भगवानका शासन इस भरतक्षेत्रमें नानासंघोंसे आकुल (पीडित) हो गया है, खेदके साथ लिखा है कि 'विचित्राः कालशक्तयः' अर्थात्—कालकी शक्तियाँ बड़ी ही विचित्र हैं। उनका शासन सभी पर होता है; कोई उससे बच नहीं सकता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पश्चात् जितने भी आचार्य हुए हैं वे सब क्षायोपशमिक ज्ञानके धारक हुए हैं—सबोंका बुद्धिवैभव समान नहीं था, उनके ज्ञानमें बहुत तरतमता पाई जाती थी—इस लिये वे सभी आगम ज्ञानको अपने मति-विभवानुरूप ही ग्रहण करते आए हैं। धारणाशक्ति और स्मृतिज्ञान भी सबोंका बराबर नहीं था, बल्कि उसमें उत्तरोत्तर कमीका उल्लेख पाया जाता है, इसलिए उन्होंने स्वकीय गुरुओंसे जो कुछ आगमज्ञान प्राप्त किया उसे ज्योंका त्योंही अपने शिष्यादिकोंके प्रति प्रतिपादन कर दिया, ऐसा कोई नियम नहीं हो सकता। यह भी नहीं कहा जा सकता कि, जो उपदेश अनेक अज्ञानवासित और कषायानुरंजित हृदयोंमेंसे होकर प्रतिकूल परिस्थितियोंकी कड़ी धूपमें बाहर आता है वह ज्योंका त्यों ही बना रहता है, उसमें भिन्न प्रकारके गंध-वर्णके संसर्गकी संभावना ही नहीं हो सकती, अथवा वह बाह्य परिस्थितियोंके तापसे उत्तप्त ही नहीं होता। ऐसी हालत होते हुए आचार्योंके शासनमें—उनके वर्तमान ग्रंथोंमें—यदि कहीं परस्पर विरोध, बाधा और असमीचीनताका भी दर्शन होता है तो इसमें कुछ भी आश्चर्यकी बात नहीं है।

आश्चर्यकी बात तब होगी यदि कोई विद्वान् इस बातके कहनेका साहस करे कि संपूर्ण जैनाचार्योंने—जिनमें भट्टारक लोग भी शामिल हैं—जो कुछ भी, विरुद्धाविरुद्धरूपसे, कथन किया है वह सब महावीर भगवान्के द्वारा ही प्रतिपादित हुआ है। वास्तवमें महावीर भगवानके द्वारा इन सब विभिन्न मतोंका प्रतिपादन होना नहीं बनता। संभव है कि उन्होंने इनमेंसे किसी एक मतका प्रतिपादन किया हो, अथवा यह भी संभव है कि उन्हें इन विभिन्नमतोंमेंसे किसी भी मतके प्रतिपादन करनेकी जरूरत ही पैदा न हुई हो, और ये सब विभिन्न कल्पनाएँ आचार्योंके मस्तिष्कोंसे ही उत्पन्न हुई हों। कुछ भी हो, आचार्योंके मस्तकोंसे देशकालानुसार नवीन कल्पनाओंका उत्पन्न होना भी कोई बुरी बात नहीं है, यदि वे कल्पनाएँ जैनधर्मके मूल सिद्धान्तोंके विरुद्ध न हों। ऐसी कल्पनाएँ कभी कभी बहुत ही कार्यसाधक और उपयोगी सिद्ध होती हैं। परन्तु देखना यह है कि ऐसी विभिन्न कल्पनाओं अथवा विभिन्न शासनोंकी हालतमें हमारा क्या कर्तव्य है। हमारा कर्तव्य है कि हम साम्प्रदायिक मोह, व्यक्तिगत मोह तथा पक्षपातको छोड़कर अपनी बुद्धिसे उनकी जाँच करें और जाँच करने पर उनमेंसे जो कल्पना तथा मत हमें युक्ति-प्रमाणसे सिद्ध, जैनसिद्धान्तोंके अविरुद्ध और साथ ही समयानुसार उपयोगी प्रतीत हो उसको ग्रहण करें, **शेषका सादर परित्याग किया जाय**। यदि हमारी सदसद्विवेकवती बुद्धिमें, देशकालकी वर्त्तमान स्थितियोंके अनुसार, किसी ऐसी कल्पना तथा मतमें कुछ अविरुद्ध परिवर्तन करनेकी जरूरत हो **तो उसे उक्त परिवर्तनके साथ स्वीकार करें**। और यदि एकसे अधिक मत तथा कल्पनाएँ हमें युक्तियुक्त, अविरुद्ध और उपयोगी प्रतीत हों तो उनमेंसे चाहे जिसको ग्रहण करें और चाहे जिसपर आचरण करें। परन्तु इन सभी अवस्थाओंमें परित्यक्त, अपरिवर्तित और अनाचरित मत तथा कल्पनाके धारकोंके साथ हमें किसी प्रकारका द्वेष रखने या उन्हें घृणाकी दृष्टिसे देखनेकी जरूरत नहीं है। बन सके तो उन्हें प्रेमपूर्वक समझाना और यथार्थ वस्तुस्थितिका ज्ञान कराना चाहिये। व्यर्थके साम्प्रदायिक मोह, व्यक्तिगत मोह और पक्षपातके वशीभूत होकर वादविवादके झंडे खड़े करना, आपसमें बैर-विरोध बढ़ाना, एक दूसरेको घृणाकी दृष्टिसे देखना और इस तरह पर अपनी सामाजिक तथा आत्मिक शक्तिको निर्बल बनाकर उन्नतिमें बाधक होना और साथ ही अनेक विपत्तियोंको जन्म देनेका कारण बनना कदापि ठीक नहीं है। ऐसे ही सदाशयोंको लेकर यह जैनाचार्योंके शासन-भेदको दिखलानेका यत्न किया जाता है:—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१–अष्टमूलगुण ।

जैनधर्ममें जिस प्रकार मुनियोंके लिये मूलगुणों और उत्तरगुणोंका विधान किया गया है उसी तरहपर श्रावकों–जैनगृहस्थोंके लिये भी मूलोत्तरगुणोंका विधान पाया जाता है। मूलगुणोंसे अभिप्राय उन व्रतनियमादिकसे है जिनका अनुष्ठान सबसे पहले किया जाता है और जिनके अनुष्ठान पर ही उत्तरगुणोंका अथवा दूसरे व्रतनियमादिकका अनुष्ठान अवलम्बित होता है । दूसरे शब्दोंमें यों कहना चाहिये कि जिसप्रकार मूलके होते ही वृक्षके शाखा, पत्र, पुष्प और फलादिकका उद्भव हो सकता है उसी प्रकार मूलगुणोंका आचरण होते ही उत्तरगुणोंका आचरण यथेष्ट बन सकता है। श्रावकोंके लिये वे मूलगुण आठ रक्खे गये हैं; परंतु इन आठ मूलगुणोंके प्रतिपादन करनेमें आचार्योंके परस्पर मत-भेद है। उसी मत-भेदको यहाँपर, सबसे पहले, दिखलाया जाता है:–

१ श्रीसमन्तभद्राचार्य, अपने 'रत्नकरंडश्रावकाचार'में, इन गुणोंका प्रतिपादन इस प्रकारसे करते हैं—

"मद्यमांसमधुत्यागैः सहाणुव्रतपंचकम् ।
अष्टौ मूलगुणानाहुर्गृहिणां श्रमणोत्तमाः ॥

अर्थात्—मद्य, मांस और मधुके त्याग सहित पंच अणुव्रतोंके पालनको श्रमणोत्तम गृहस्थोंके अष्ट मूलगूण कहते हैं । पंच अणुव्रतोंसे अभिप्राय स्थूल हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह नामके पंच पापोंसे विरक्त होनेका है । इन व्रतोंके कथनके अनन्तर ही आचार्य महोदयने उक्त पद्य दिया है ।

२ 'आदिपुराण'के प्रणेता श्रीजिनसेनाचार्य समन्तभद्रके इस उपर्युक्त कथनमें कुछ परिवर्तन करते हैं । अर्थात्, वे 'मधुत्याग' को मूलगुणोंमें न मानकर उसके स्थानमें 'द्यूत-त्याग' को एक जुदा मूलगुण बतलाते हैं और शेष गुणोंका, समन्तभद्रके समान ही, ज्योंका त्यों प्रतिपादन करते हैं । यथा:—

"हिंसासत्यस्तेयादब्रह्मपरिग्रहाच्च बादरभेदात् ।
द्यूतान्मांसान्मद्याद्विरतिर्गृहिणोऽष्ट सन्त्यमी मूलगुणाः ॥

नहीं मालूम जिनसेनाचार्यने 'मधुत्याग' को मूलगुणोंसे निकाल कर उसके स्थानमें 'द्यूतत्याग' को क्यों प्रविष्ट किया है । संभव है कि दक्षिण देशकी, जहाँ आचार्य महाराजका निवास था, उस समय ऐसी ही परिस्थिति हो जिसके कारण उन्हें ऐसा करनेके लिये बाध्य होना पड़ा हो– वहाँ द्यूतका अधिक प्रचार हो और उससे जनताकी हानि देखकर ही ऐसा नियम बनानेकी जरूरत पड़ी हो–अथवा सातों व्यसनोंका मूलगुणोंमें समावेश कर देनेकी इच्छासे ही यह परिवर्त्तन स्वीकार किया गया हो । और 'मधुविरति'को इस वजहसे निकालना पड़ा हो कि उसके रखनेसे फिर मूलगुणोंकी प्रसिद्ध 'अष्ट' संख्यामें बाधा आती थी। अथवा उसके निकालनेकी कोई दूसरी ही वजह हो । कुछ भी हो, दूसरे किसी भी प्रधानाचार्यने, जिसने अष्ट मूलगुणोंका प्रतिपादन किया है, 'मधुविरति' को मूलगुण माननेसे इनकार नहीं किया और न 'द्यूतविरति' को मूलगुणोंमें शामिल किया है ।

३ 'यशस्तिलक' के कर्ता श्रीसोमदेवसूरि मद्य, मांस और मधुके त्यागरूप समन्तभद्रके तीन मूलगुणोंको तो स्वीकार करते हैं परंतु पंचाणुव्रतोंको मूलगुण नहीं मानते, उनके स्थानमें पंच

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उदुम्बर फलोंके (प्लक्ष, न्यग्रोध, पिप्पलादि) के त्यागका विधान करते हैं और लिखते हैं कि आगममें गृहस्थोंके ये आठ मूलगुण कहे हैं। यथाः—

" मद्यमांसमधुत्यागाः सहोदुम्बरपंचकैः।
अष्टावेते गृहस्थानामुक्ता मूलगुणाः श्रुते ॥

'पंचाध्यायी' के कर्ता आचार्यमहोदयका भी यही मत है। और वे यहाँ तक लिखते हैं कि बिना इन आठ मूलगुणोंके नामका भी श्रावक नहीं होता। यथाः—

मद्यमांसमधुत्यागी त्यक्तोदुम्बरपंचकः।
नामतः श्रावकः क्षान्तो नान्यथापि तथा गृही ॥ २-७२६ ॥

पुरुषार्थसिद्ध्युपायके निर्माता श्री**अमृतचंद्र**सूरि भी इसी मतके पोषक हैं। यद्यपि उन्होंने अपने ग्रंथमें, अहिंसा व्रतका वर्णन करते हुए इनका विधान किया है और इन्हें स्पष्टरूपसे 'मूल गुण' ऐसी संज्ञा नहीं दी है, तोभी 'हिंसाके त्यागकी इच्छा रखनेवालोंको पहले ही इन मद्य-मांसादिकको छोड़ना चाहिये,' 'इन आठ पापके ठिकानोंको त्याग कर ही शुद्धबुद्धिजन जिनधर्मकी देशनाके पात्र होते हैं;' इन वचनोंसे अष्ट मूलगुणका ही साफ़ आशय पाया जाता है। यथाः—

मद्यं मांसं क्षौद्रं पंचोदुम्बरफलानि यत्नेन।
हिंसाव्युपरतकामैर्मोक्तव्यानि प्रथममेव ॥ ६१ ॥
अष्टावनिष्टदुस्तरदुरितायतनान्यमूनि परिवर्ज्य।
जिनधर्मदेशनाया भवंति पात्राणि शुद्धधियः ॥ ७४ ॥

उपर्युक्त तीनों ग्रंथोंके अवतरणोंसे यह बिलकुल स्पष्ट है कि इनके कर्ता आचार्योंने 'पंच अणुव्रतों' के स्थानमें 'पंच उदुम्बर फलोंके त्याग' का विधान किया है और इसलिये इन आचार्योंका शासन समन्तभद्र और जिनसेन दोनोंके शासनसे एकदम विभिन्न जान पड़ता है। कहाँ पंचाणुव्रत और कहाँ पंचोदुम्बर फलोंका त्याग! दोनोंमें ज़मीन आसमानका सा अन्तर पाया जाता है। वस्तुतः विचार किया जाय तो पंच उदुम्बर फलोंका त्याग मांसके त्यागमें ही आ जाता है; क्योंकि इन फलोंमें चलते फिरते त्रसजीवोंका समूह साक्षात् भी दिखलाई देता है, इनके भक्षणसे मांसभक्षणका स्पष्ट दोष लगता है, इसीसे इनके भक्षणका निषेध किया जाता है। और इस लिये जो मांसभक्षणके त्यागी हैं वे प्रायः कभी इनका सेवन नहीं कर सकते। ऐसी हालतमें—मांस-त्याग नामका एक मूलगुण होते हुए भी—पंच उदुम्बर फलोंके त्यागको, जिनमें परस्पर ऐसा कोई विशेष भेद नहीं है, पाँच अलग अलग मूलगुण करार देना और साथ ही पंचाणुव्रतोंको मूलगुणोंसे निकाल डालना एक बड़ी ही विलक्षण बात मालूम होती है। इस प्रकारका परिवर्तन कोई साधारण परिवर्तन नहीं होता। यह परिवर्तन कुछ विशेष अर्थ रखता है। इसके द्वारा मूलगुणोंका विषय बहुत ही हलका किया गया है और इस तरहपर उन्हें अधिक व्यापक बनाकर उनके क्षेत्रकी सीमाको बढ़ाया गया है। बात असिलमें यह मालूम होती है कि मूल और उत्तर गुणोंका विधान व्रतियोंके वास्ते था। अहिंसादिक पंचव्रतोंका जो सर्वदेश (पूर्णतया) पालन करते हैं वे महाव्रती अथवा मुनि यति आदिक कहलाते हैं और जो उनका एकदेश (स्थूल रूपसे) पालन करते हैं उन्हें देश-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्रती, श्रावक अथवा देशयति कहा जाता है। जब महाव्रतियोंके २९ मूलगुणोंमें अहिंसादिक पंच महाव्रतोंका वर्णन किया गया है तब देशव्रतियोंके मूलगुणोंमें पंचाणुव्रतोंका विधान होना स्वाभाविक ही है और इसलिये समन्तभद्रने पंच अणुव्रतोंको लिये हुए श्रावकोंके अष्टमूलगुणोंका जो प्रतिपादन किया है वह युक्तियुक्त ही प्रतीत होता है। परंतु बादमें ऐसा जान पड़ता है कि जैन गृहस्थोंको परस्परके इस व्यवहारमें कि 'आप श्रावक हैं,' और 'आप श्रावक नहीं हैं' कुछ भारी असमंजसता प्रतीत हुई है। और इस असमंजसताको दूर करनेके लिये अथवा देशकालकी परिस्थितियोंके अनुसार सभी जैनियोंको एक श्रावकीय झंडेके तले लाने आदिके लिये जैनाचार्योंको इस बातकी जरूरत पड़ी है कि मूलगुणोंमें कुछ फेरफार किया जाय और ऐसे मूलगुण स्थिर किये जायँ जो व्रतियों और अव्रतियों दोनोंके लिये साधारण हों। वे मूलगुण मद्य, मांस और मधुके त्यागरूप तीन हो सकते थे, परंतु चूँकि पहलेसे मूलगुणोंकी संख्या आठ रूढ़ थी, इस लिये उस संख्याको ज्योंका त्यों कायम रखनेके लिये उक्त तीनों मूलगुणोंमें पंचोदुम्बर फलोंके त्यागकी योजना की गई है और इस तरह पर इन सर्वसाधारण मूलगुणोंकी सृष्टि हुई जान पड़ती है। ये मूलगुण व्रतियों और अव्रतियों दोनोंके लिये साधारण हैं, इसका स्पष्टीकरण पंचाध्यायीके निम्न पद्यसे भले प्रकार हो जाता है:—

"तत्र मूलगुणाश्चाष्टौ गृहिणां व्रतधारिणां।
क्वचिदव्रतिनां साक्षात् सर्वसाधारणा इमे ॥ २-७२३ ॥

परंतु यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि समन्तभद्रद्वारा प्रतिपादित मूलगुणोंका व्यवहार अव्रतियोंके लिये नहीं हो सकता, वे व्रतियोंको ही लक्ष्य करके लिखे गये हैं, यही दोनोंमें परस्पर भेद है। अस्तु; इस प्रकार सर्व साधारण मूलगुणोंकी सृष्टि होनेपर यद्यपि इन गुणोंके धारक अव्रती भी श्रावकों तथा देशव्रतियोंमें परिगणित होते हैं–सोमदेवने, यशस्तिलकमें, उन्हें साफ तौरसे 'देशयति' लिखा है–तो भी वास्तवमें उन्हें नामके ही श्रावक (नामतः श्रावकः) अथवा देशयति समझना चाहिये, जैसा कि ऊपर उद्धृत किये हुए पंचाध्यायीके पद्य नं० ७२६ से प्रकट है। असिल श्रावक तो वही हैं जो पंच अणुव्रतोंका पालन करते हैं।

४ 'उपासकाचार' के कर्ता श्री**अमितगति** आचार्य सोमदेवादि आचार्योंके उपर्युक्त मूलगुणोंमें कुछ वृद्धि करते हैं। अर्थात्, वे 'रात्रिभोजन-त्याग' नामके एक गुणका, साथमें और विधान करते हैं। यथा:—

'मद्यमांसमधुरात्रिभोजन-क्षीरवृक्षफलवर्जनं त्रिधा।
कुर्वते व्रतजिघृक्षया बुधास्तत्र पुष्यति निषेविते व्रतं ॥ ५-१ ॥

अमितगतिके इस कथनसे मूलगुण आठके स्थानमें नौ हो जाते हैं। और यदि 'क्षीर-वृक्षफलवर्जन' को, एक ही मूलगुण माना जाय तो मूलगुणोंकी संख्या फिर पाँच ही रह जाती है। शायद इसी खयालसे आचार्यने अपने ग्रंथमें मूलगुणोंकी कोई संख्या निर्दिष्ट नहीं की। सिर्फ अन्तमें इतना ही लिख दिया है कि '**आदावेते स्फुटमिह गुणा निर्मला धारणीयाः।**' अर्थात् सबसे पहले ये निर्मल गुण धारण करने चाहियें। इस 'रात्रिभोजन-त्याग' के विषयमें आचार्योंका बहुत कुछ मत-भेद है, जिसे हम किसी दूसरे ही शीर्षकके नीचे दिखलायँगे और इस लिये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यहाँपर उसको छोड़ा जाता है। यहाँ सिर्फ इतना ही समझना चाहिये कि इन आचार्य महाशयका शासन इस विषयमें, दूसरे आचार्योंके शासनसे भिन्न है।

५ पं० आशाधरजीने अपने 'सागारधर्मामृत' में यद्यपि उन्हीं अष्टमूलगुणोंका 'स्वमत' रूपसे उल्लेख किया है जिनका सोमदेव आचार्यने प्रतिपादन किया है, और साथ ही समन्तभद्र तथा जिनसेनाचार्योंके मतोंको 'परमत' रूपसे सूचित किया है, तो भी उनका इस विषयमें कोई निश्चित एकमत मालूम नहीं होता। उन्होंने प्रायः सभीको अपनाया और सभी पर अपना हाथ रक्खा है। वे उपर्युक्त (स्वमतरूपसे प्रतिपादित) मूलगुणोंके नाम और उनकी संख्याका निर्देश करते हुए भी टीकामें लिखते हैं कि 'च' शब्दसे नवनीत, रात्रिभोजन, अगालित पानी आदिका भी त्याग करना चाहिये और इससे उक्त 'अष्ट' की संख्यामें बाधा आती है, इसकी कुछ परवाह नहीं करते। परन्तु कुछ भी सही, पं० आशाधरजीने, अपने उक्त ग्रंथमें, किसी शास्त्रके आधारपर, जिसका नाम नहीं दिया, एक दूसरे प्रकारके मूलगुणोंका भी उल्लेख किया है जिन्हें हम यहाँ पर उद्धृत करते हैं:—

मद्यपलमधुनिशासनपंचफलीविरति पंचकाप्तनुती।
जीवदयाजलगालनमिति च क्वचिदष्टमूलगुणाः॥

मालूम नहीं मूल गुणोंका यह कथन कौनसे आचार्यके मतानुसार लिखा गया है और उनका अथवा उनके ग्रंथका नाम, समंतभद्रादिके नामके सदृश, क्यों सूचित नहीं किया गया। परंतु इसे छोड़िये, ऊपरके इस पद्यद्वारा जिन मूलगुणोंका उल्लेख किया गया है उनमेंसे शुरूके पाँच मूलगुण तो वही हैं जो ऊपर 'अमितगति' आचार्यके कथनमें दिखलाये गये हैं। हाँ, उनमें इतनी बात नोट किये जानेकी जरूर है कि यहाँ पर पंच उदुम्बरफलोंके समुदायको स्पष्टरूपसे 'पंचफली' शब्द-द्वारा एक मूलगुण माना गया है और इसलिये इससे हमारे उस कथनकी कि, **इन पाँचों उदुम्बरफलोंमें परस्पर ऐसा कोई विशेष भेद नहीं है कि जिससे इनके त्यागको अलग अलग मूलगुण करार दिया जाय,** बहुत कुछ पुष्टि होती है। बाकी रहे तीन गुण आप्तनुति, जीवदया और जलगालन, ये तीनों यहाँ विशेषरूपसे वर्णन किये गये हैं। इनमें आप्तनुतिसे अभिप्राय परमात्माकी स्तुति अथवा देववंदनाका है। परंतु 'जीवदया' शब्दसे कौनसा क्रिया-विशेष अभिमत है यह कुछ समझमें नहीं आया; वैसे तो मूलगुणोंका यह सारा ही कथन प्रायः जीवदयाकी प्रधानताको लिये हुए है, फिर 'जीवदया' नामका अलग मूलगुण रखनेसे कौनसे आचरण विशेषका ग्रहण किया जाय, यह बात अभी जानने योग्य है। संभव है कि इससे अहिंसाणुव्रतका, अभिप्राय हो। परंतु कुछ भी हो, इतना जरूर कहना पड़ेगा कि यह मत दूसरे आचार्योंके मतोंसे विभिन्न है। पं० आशाधरजीने भी, इस मतका उल्लेख करते हुए, एक प्रतिज्ञावाक्यद्वारा इसे दूसरे आचार्योंके मतोंसे विभिन्न बतलाया है। वह वाक्य इस प्रकार है:—

"अथ प्रतिपाद्यानुरोधाद्धर्माचार्याणां सूत्राविरोधेन देशनानानात्वोपलंभाद्भंग्यन्तरेणाष्टमूलगुणानुद्देष्टुमाह।"

इस वाक्यसे यह भी स्पष्ट है कि प्रतिपाद्योंके अनुरोधसे—अर्थात्, जिस समय जैसे जैसे शिष्यों—उपदेशपात्रों—की बहुलता होती है उस समय उनकी आवश्यकताओं और परिस्थितियोंको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Sarayu Trust/eGangotri

लक्ष्य करके-धर्माचार्योंका उपदेश—उनका शासन—भिन्न हुआ करता है। और, इस लिये, इससे हमारे उस कथनका बहुत कुछ समर्थन होता है जिसे हमने इस लेखके शुरूमें प्रकट किया है। साथ ही, उक्त वाक्यसे यह भी ध्वनित होता है कि धर्माचार्योंकी वह भिन्न देशना सूत्रोंसे-सिद्धान्त वाक्योंसे- अविरुद्ध होनी चाहिये। तभी वह ग्राह्य हो सकती है, अन्यथा नहीं। यह बिलकुल सत्य है। हमारी रायमें मूल गुणोंका जो कुछ शासन-भेद ऊपर प्रकट किया गया है उसमें परस्पर सिद्धान्तभेद नहीं है—जैन सिद्धान्तोंसे कोई विरोध नहीं आता—और न इन भिन्न शासनोंमें जैनाचार्योंका परस्पर कोई उद्देश्यभेद ही पाया जाता है। सबोंका उद्देश्य क्रमशः सावद्यकर्मोंको त्याग करानेका मालूम होता है। हाँ, दृष्टिभेद, अपेक्षाभेद, विषयभेद, संख्याभेद और प्रतिपाद्योंकी स्थिति आदिका भेद जरूर है जिसके कारण उक्त शासनोंको भिन्न जरूर मानना पड़ेगा। और इस लिये यह कभी नहीं कहा जा सकता कि महावीर भगवानने ही इन सब भिन्न शासनोंका विधान किया था। उनकी वाणीमें ही ये सब मत इसी रूपसे प्रकट हुए थे—ऐसा मानना और समझना नितान्त भूल होगा। वास्तवमें ये सब शासन पापरोगकी शांतिके नुसखे (Preseriptions) हैं—ओषधिकल्प हैं—जिन्हें आचार्योंने अपने अपने देशों तथा समयोंके शिष्योंकी प्रकृति और योग्यता आदिके अनुसार तय्यार किया है। और इस लिये सर्व देशों, सर्व समयों और सर्व प्रकारकी प्रकृतिके व्यक्तियोंके लिये अमुक एक ही नुसखा उपयोगी होगा, ऐसा हठ करनेकी जरूरत नहीं है। जिस समय और जिस प्रकारकी प्रकृति आदिके व्यक्तियोंके लिये जैसे ओषधिकल्पोंकी जरूरत होती है, बुद्धिमान वैद्य, उस समय और उस प्रकारकी प्रकृति आदिके व्यक्तियोंके लिये वैसे ही ओषधिकल्पोंका प्रयोग किया करते हैं। अनेक नये नये ओषधिकल्प गढ़े जाते हैं, पुरानोंमें फेर-फार किया जाता है और ऐसा करनेमें कुछ भी आपत्ति नहीं होती, यदि वे सब रोगशांतिके विरुद्ध न हों। इसी तरह पर देशकालानुसार किये हुए आचार्योंके उपर्युक्त भिन्न शासनोंमें भी कोई, आपत्ति नहीं की जा सकती। क्यों कि वे सब जैन सिद्धान्तोंसे अविरुद्ध हैं। हाँ, आपेक्षिक दृष्टिसे उन्हें प्रशस्त—अप्रशस्त, सुगम—दुर्गम, अल्पफलसाधक—बहुफलसाधक इत्यादिक जरूर कहा जा सकता है, और इस प्रकारका भेद आचार्योंकी योग्यता और उनके तत्तत्कालीन विचारों पर निर्भर है। अस्तु, इसी सिद्धान्ताविरोधकी दृष्टिसे यदि आज कोई महात्मा वर्त्तमान देश कालकी स्थितियोंको लक्ष्यमें रखकर उपर्युक्त मूल गुणोंमे भी कुछ फेरफार करना चाहे और उदाहरणके तौर पर **१ मांसविरति, २ मद्यविरति, ३ पंचेंद्रियघातविरति, ४ हस्तमैथुनविरति, ५ शास्त्राध्ययन, ६ आप्तस्तवन, ७ आलोकितपानभोजन** और **८ स्ववचनपालन** नामके अष्ट मूल गुण स्थापित करे तो वह खुशीसे ऐसा कर सकता है, उसमें कोई आपत्ति किये जानेकी जरूरत नहीं है, और न यह कहा जा सकता है कि उसका ऐसा विधान जिनेन्द्र देवकी आज्ञाके विरुद्ध है अथवा महावीर भगवानके शासनसे बाहर है; क्योंकि उक्त प्रकारका विधान जैन सिद्धान्तोंके विरुद्ध नहीं है। और जो विधान जैनसिद्धान्तोंके विरुद्ध नहीं होता वह सब महावीर भगवानके अनुकूल है। उसे प्रकारान्तरसे जैनसिद्धान्तोंकी व्याख्या अथवा उनका व्यावहारिकरूप समझना चाहिये और इस दृष्टिसे उसे महावीर भगवानका शासन भी कह सकते हैं। परंतु भिन्न शासनोंकी हालतमें **महावीर भगवानने यही कहा, ऐसा ही कहा, इसी क्रमसे कहा, इत्यादिक मानना मिथ्या होगा**

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और उसे प्रायः मिथ्या दर्शन समझना चाहिये। अतः उससे बचकर यथार्थ वस्तुस्थितिको जानने और उसपर ध्यान रखनेकी कोशिश करनी चाहिये। इसीमें श्रेय और इसीमें सर्वका कल्याण है।

यह तो हुई दिगम्बर जैनाचार्योंके शासन-भेदकी बात, अब श्वेताम्बराचार्योंके शासन-भेदको लीजिये। श्वेताम्बर ग्रंथोंके देखनेसे मालूम होता है कि उन्होंने इस प्रकारके मूल गुणोंका कोई विधान नहीं किया और इसलिये, इस विषयमें, उनका शासनभेद भी कुछ दिखलाया नहीं जा सकता। श्वेताम्बरग्रन्थोंमें मद्यमांसादिकके त्यागरूप उक्त मूल गुणोंका प्रायः सारा कथन 'भोगोपभोगपरिमाण' नामके दूसरे गुणव्रतमें पाया जाता है। जैसा कि श्री हेमचंद्राचार्यप्रणीत 'योगशास्त्र' के निम्न वाक्योंसे प्रकट हैः—

मद्यं मांसं नवनीतं मधूदुम्बरपंचकम्।
अनंतकायमज्ञातफलं रात्रौ च भोजनं॥ ३-६॥
आमगोरससंपृक्तं द्विदलं पुष्पितोदनं।
दध्यहद्वितीयातीतं कुथितान्नं विवर्जयेत्॥ ७॥

परंतु 'श्रावकप्रज्ञप्ति' नामके मूल ग्रन्थमें, जो उमास्वाति आचार्यका बनाया हुआ कहा जाता है, ऐसा कोई कथन नहीं है। अर्थात् उसके कर्ता आचार्य महाशयने 'भोगोपभोगपरिमाण' नामके गुणव्रतमें उक्त मद्यमांसादिकके त्यागका कोई विधान नहीं किया। हाँ, टीकाकारने उक्त गुणव्रतधारी श्रावकके लिये निरवद्य (निर्दोष) आहारका विधान जरूर किया है। साथ ही '**वृद्ध-संप्रदाय**' रूपसे कुछ प्राकृत गद्य भी उद्धृत किया है जिसमें उक्त व्रतीके मद्य मांसादिक और पंचोदुम्बरादिकके त्यागकी सूचना पाई जाती है। परंतु 'वृद्धसंप्रदायसे' अभिप्राय कौनसे संप्रदाय विशेषसे है यह कुछ मालूम नहीं हुआ। श्रावक धर्मके प्रतिपादन विषयमें, श्वेताम्बर-सम्प्रदायका सबसे प्राचीन ग्रंथ '**उवासग दसाओ**' (उपासक-दशा) सूत्र है, जिसे 'उपासकाध्ययन' तथा द्वादशांग वाणीका '**सप्तम अंग**' भी कहते हैं और जो महावीर भगवानके साक्षात् शिष्य '**सुधर्मास्वामी**' गणधरका बनाया हुआ कहा जाता है। इस ग्रंथमें भी, उक्त गुणव्रतका कथनकरते हुए, मद्य मांसादिकके त्यागका स्पष्ट रूपसे कोई विधान नहीं किया गया। श्रावक-धर्मविषयक इस सर्वप्रधान ग्रन्थमें कथाओंको छोड़कर, श्रावकीय बारह व्रतोंके प्रायः अतीचारोंका ही वर्णन पाया जाता है, व्रतोंके स्वरूपादिकका और कुछ भी विशेष वर्णन नहीं है। दूसरे शब्दोंमें यों कहना चाहिये कि इस ग्रंथमें श्रावक धर्मका पूरा विधिविधान नहीं है। इसीसे शायद श्रावक प्रज्ञप्तिके टीकाकार श्री **हरिभद्रसूरिने**, श्रावकोंके लिये निरवद्य आहारादिकका विधान करते हुए, यह सूचित किया है कि सूत्रमें (उपासक दशामें) देशविरतीके सम्बंधमें नियमित रूपसे 'इदमेव, इदमेव' ऐसा कोई कथन नहीं है, क्यों कि वहाँ सिर्फ अतिचारोंका उल्लेख किया गया है। इस लिये देशविरातिकी विधि विचित्र है और उसे अपनी बुद्धिसे पूरा करना चाहिये। हरिभद्रसूरिके वे वाक्य इस प्रकार हैंः—

'विचित्रत्वाच्च देशविरतेश्चित्रोऽत्रापवादः इत्यत एवेदमेवेदमेवेति वा सूत्रे न नियमितमतिचाराभिधानाच्च विचित्रस्तद्विधिः स्वधियावसेय इति।'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन वाक्योंसे यह भी स्पष्ट है कि श्वेताम्बर सम्प्रदायमें 'उपासकदशा' सूत्रसे बाहर श्रावक धर्मका जो कुछ भी विशेष कथन पाया जाता है वह सब पीछेसे आचार्योंद्वारा अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार निर्धारित तथा पल्लवित किया हुआ कथन है। और इस लिये उसे भी सिद्धान्ता-विरोधकी दृष्टिसे ही ग्रहण करना चाहिये और उसी दृष्टिसे उसमें भी देश-कालानुसार यथोचित फेरफार किया जा सकता है। यहाँपर यह बात बड़ी ही विचित्र मालूम होती है कि श्वेताम्बर आचार्योंने, मद्यमांसादिकके त्यागका यदि विधान किया भी है तो वह दूसरे गुणव्रतमें जाकर किया है। और इस लिये इससे पहली अवस्थाओंवाले श्रावकों--अहिंसादिक अणुव्रतोंके पालने वालों--अथवा व्यावहारिक दृष्टिसे जैनीमात्रके लिये उनके सेवनका कोई निषेध नहीं है। ऐसा क्यों किया गया ? क्यों श्रावकमात्र अथवा जैनगृहस्थमात्रके लिये मद्यमांसादिकके त्यागका नियम नहीं रक्खा गया ? और उनके त्यागको मूलगुण नहीं बताया गया ? जब सकलविरतियोंके लिये मूलोत्तर गुणोंकी व्यवस्था है तब देशविरतियोंके लिये वह क्यों नहीं रक्खी गई ? क्यों ऐसा कमसे कम आचरण निर्दिष्ट नहीं किया गया जिसका पालन करना सबके लिये--जैनीमात्रके लिये--जरूरी हो और जिसके पालनके विना कोई जैनी' अथवा 'महावीर भगवानका उपासक' ही न कहला सकता हो। ये सब बातें ऐसी हैं जिनपर विचार किये जानेकी जरूरत है। संभव है कि ऐसा करनेमें श्वेताम्बर आचार्योंका कुछ उद्देश्य-भेद हो। बन्धनोंको ढीला रखकर, बौद्धोंके सदृश समाजवृद्धिका उनका आशय हो। परन्तु कुछ भी हो, इस विषयमें, निश्चित रूपसे, अभी हम कुछ कह नहीं सकते। अवसर मिलनेपर इस सम्बंधमें अपने विशेष विचार फिर प्रकट किये जावेंगे। सरसावा। विजय दशमी, सं० १९७६।

सेठीजीका छुटकारा।

वर्षपर वर्ष बीतगये, जर्मनीका घोर युद्ध भी समाप्त हो गया, संधिपत्रपर हस्ताक्षर हो गये, और युद्ध-विजयकी ख़ुशीमें न मालूम कितने कैदी भी छोड़ दिये गये; परंतु तो भी श्रीयुत सेठी अर्जुनलालजीका छुटकारा--एक ऐसे धर्मप्राण व्यक्तिका छुटकारा--जिसके विरुद्ध किसी भी अपराधको प्रमाणित करनेके लिये आजतक किसीका साहस नहीं हुआ-अभी तक होनेमें नहीं आया, यह जानकर किसे खेद न होगा! सभ्य राष्ट्रों और सभ्य शासकोंकी यह एक ख़ास नीति कही जाती है कि वे किसी अपराधीके छूट जानेको इतना दूषित और खेदकर नहीं समझते जितना कि किसी निरपराधीके दंडित हो ज़ानेको समझते हैं। अर्थात् उनकी दृष्टिमें किसी निरपराधीको दंड किया जाना सख्त अपराध है। परंतु खेदके साथ कहना पड़ता है कि सेठीजीके विषयमें शासकोंने इस नीतिको बिलकुल ही भुला दिया है। उनके पास न्याय-भिक्षाके लिये स्थान स्थानसे सैंकड़ों प्रार्थना पत्र और तार तक भेजे गये परंतु तो भी उन्हें न्याय-भिक्षाका देना इष्ट नहीं हुआ और इस लिये उन्होंने किसीकी एक भी न सुनकर बिना कोर्टमें कोई अभियोग चलाये और बिना इस बातके कि अभियुक्तको अपनी जवाबदेही तथा सफाईका मौका दिया जाय सेठीजीको अब-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain, Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तक जेलमें डाल रक्खा है। ऐसी हालतमें जनताके हृदयमें इस प्रकारके खयालका उत्पन्न होना कुछ भी अस्वाभाविक नहीं है कि सेठीजी बिना किसी अपराधके ही अन्यायपूर्वक जेलमें डाले गये हैं। उनके विरुद्ध किसी अपराधके लिये यदि जरा भी आधार होता–तिल धरनेको भी जगह होती-तो राईका पर्वत बना देनेवाली पुलिस जरूर ही उन्हें कोर्टमें घसीटती और जिसतिस प्रकारसे भी दंडित कराकर अपने आपको और शासन-विभागको इस भारी कलंकसे मुक्त करती। परंतु ऐसा नहीं हो सका और इसलिये सेठीजीकी निष्कलंकताका और भी दृढताके साथ खयाल होता है। बहुत संभव है कि यह सब करतूत किसी ऐसे प्रधान गुप्तचरकी हो जो सेठीजीसे आन्तरिक द्वेष रखता हो अथवा आन्तरिक द्वेष रखनेवाले किसी व्यक्तिके प्रभावसे अभिभूत (जेर असर) और उसके द्वारा अतिशय प्रेरित हो और इसलिये उसने अपनी तथा अपने मित्रकी तुच्छातितुच्छ वासनाआको पूरा करनेके लिये, प्रधान अधिकारियोंके हृदयपर काल्पनिक विभीषिकाओंका गहरा रंग जमाकर यह सब घृणित नाटक खेला हो। और इसीसे शासकोंकी दृष्टिमें कुछ ऐसा विकार समाया हो कि जिसके कारण एक सरस्वती-सेवक, दुबलापतला, निःशस्त्र, अनुद्धत और अकिंचन व्यक्ति भी उन्हें भयंकर प्रतीत होता है और इसलिये, जैसे बने वैसे उसे बाँध रखना ही वे अपनी तथा प्रजाकी रक्षाका एक मात्र उपाय समझते हैं। कुछ भी हो, भले ही इस विषयमें कुछ लोग जयपुर राज्यको दोष देवें, शासकोंकी खता बतलावें, पुलिस विभागको बुरा भला कहें और बृटिश राज्यके कुछ उच्चाधिकारियोंको भी अपराधी ठहरावें, परंतु हमारी रायमें वस्तुतः इनमेंसे किसीका भी कोई दोष नहीं है। **यह सब अपराध जैन-समाजका है।** यदि जैन-समाज सुव्यवस्थित और बलाढ्य होता, उसमें जीवनी शक्तिका संचार पाया जाता, तो सेठीजी आज नहीं, वर्षों पहले—गिरिफ्तार होनेके बाद ही–कभीके छूट गये होते। परंतु जैन-समाज आज एक अत्यंत निर्बल और अव्यवस्थित समाज है। उसके अधिकांश व्यक्ति महा-संकीर्ण हृदय, परस्परके वैर-विरोध, ईर्षा द्वेषोंसे परिपूर्ण, भाईभाईके उत्कर्षको न देखसकनेवाले, उनकी क्षतिमें खुशियाँ मनानेवाले, अपने ही आनंदमें मस्त, 'दूसरा पिटता है तो अपनेको क्या' ऐसी नीतिके धारक, संसारकी प्रगति और परिस्थितिसे सर्वथा अनभिज्ञ, महा अदूरदर्शी, स्वार्थी, अकर्मण्य, आत्माभिमानसे रहित, कुरीतियोंसे जर्जरित, मतासहिष्णुतासे पीडित, अज्ञानतासे व्याप्त और प्रायः सर्व प्रकारके नैतिक तथा आत्मिक बलसे शून्य हैं। ऐसी अव्यवस्थित और निर्बलावस्थामें यदि जैन समाज पर इस प्रकारकी आपत्तियाँ आवें, तो इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है। निर्बलोंपर राजा और प्रजा दोनोंका अत्याचार हुआ करता है। किसीने ठीक कहा है–" तीन सतावें निबलको राजा, पातिक रोग।" अभी तो जैन समाजके लिये इस प्रकारकी आपत्तियोंका यह केवल सूत्रपात हुआ है। प्रधान अधिकारियों द्वारा समाजकी आन्तरिक परीक्षा की गई है। यदि जैन जन अब भी अपनी सामाजिक परिस्थितिको सुधारने, उसे सुसंगठित और बलाढ्य बनानेका अथवा दूसरे शब्दोंमें यों कहिये कि, उसमें जीवनी शक्तिके संचार करनेका शीघ्र कोई महान् यत्न नहीं करेंगे तो इसमें संदेह नहीं कि आगामी उन्हें घोरसे घोर विपत्तियों तथा कष्टोंका सामना करना होगा। और आश्चर्य नहीं कि इन भावी संकटोंमें पड़कर संसारसे फिर उनकी सत्ता ही उठ जाय। अतः जैनियोंको सेठीजीके इस एक उदाहरणसे उनके साथ जो अन्यायपूर्ण वर्ताव किया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गया है उससे—एक अच्छी खासी शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये और बहुत सावधान होकर सामाजिक परिस्थितिके सुधार द्वारा अपनेको बलाढ्य बनानेके यत्नमें लग जाना चाहिये, जिससे आगामी संकटोंसे उनकी रक्षा हो और वे चिरकाल तक संसारमें अपनी सत्ताको स्थिर रख सकें।

अन्तमें हमें यह जानकर और सूचित करते हुए बहुत प्रसन्नता होती है कि सेठीजी वस्तुतः बन्धनमें नहीं हैं। उनके शरीरको भले ही कोई बंधनमें डाल रक्खे परंतु उनका आत्मा स्वतंत्र है। वह वर्षोंकी जेलके बाद भी अपने पथसे च्युत और अपने लक्ष्यसे भ्रष्ट नहीं हुआ। यही वजह है कि उन्होंने अन्यायपूर्ण और अपमानजनक खास शर्तोंपर जेलसे छूटनेके लिये साफ़ इनकार कर दिया है। वे महान् आत्मा हैं, शरीरको अपना नहीं मानते और न इस प्रकारके शारीरिक बन्धनसे अपना कुछ विशेष अलाभ समझते हैं। अलाभ है तो जैनसमाजका और हानि पहुँची तो जैनसमाजको, क्यों कि सेठीजी एक समाजसेवक व्यक्ति हैं, उन्होंने आजतक जो कुछ किया है वह सब जैनसमाजके हितके लिये ही किया है। अपने इस शारीरिक बंधनके कारण वे समाजकी यथेष्ट सेवा करनेसे वंचित हो गये और इसलिये, उससे जैन समाजको ही महती हानि उठानी पड़ी है। परंतु यदि हमारे जैनी भाई सेठीजीके इस बन्धनसे ही कुछ सबक सीख जायँ और अपने समाजकी आन्तरिक दशाको सुधारकर उसे बलाढ्य बनानेकी ओर लग जायँ तो यह कुछ कम लाभकी बात न होगी। इसीसे संपूर्ण क्षतिकी पूर्ति हो जायगी। सेठीजीका आत्मा भी इससे अपनेको कृतकृत्य समझेगा और अपने समाजसेवाके उद्देश्यको सफल मानेगा। आशा है कि हमारे भाई सेठीजीके छुटकारेके लिये अब व्यर्थकी प्रार्थना और दीनता न करके छुटकारेके वास्तविक उपायकी ओर लगेंगे, अर्थात् अपने समाजको पूरी तौरसे सुव्यवस्थित और बलाढ्य बनानेकी कोशिश करेंगे।

यदि दुःख धर्मके कारण होता है तो उसका आदर करना चाहिए, यदि दुर्भाग्यसे होता है तो उसपर करुणा करनी चाहिए, यदि पापसे होता है तो उसका अनादर नहीं करना चाहिए; कारण कि जिस पाप या अपराधसे यह दुःख होता है उसके लिये यही काफ़ी दण्ड है। उस आदमीकी कोई प्रशंसा नहीं की जा सकती जो अपराधीको उस समय झिड़कता घुड़कता है जब वह जल्लादके हाथमें होता है। —जानसन।

* * * *

तुम्हारा जीवन चाहे कितना ही छोटा और नीचा क्यों न हो तुम्हें चाहिये कि उसका स्वागत करो और उसे आनन्दपूर्वक व्यतीत करो। उससे दूर मत हटो, उसे बुरा मत समझो और उसकी निन्दा मत करो। वह इतना बुरा नहीं है जितने तुम हो। जब तुम बहुत धनी होते हो, तब यह बहुत निर्धन मालूम होता है। दोष ढूँढ़ने वाले स्वर्गमें भी न मानेंगे। वे वहाँ भी दोष निकालते ही रहेंगे। अपने जीवनसे प्रेम करो, चाहे वह कितना ही तुच्छ हो। गरीबसे गरीब घरमें भी तुम्हें कुछ घंटे आनंददायक मिलेंगे। प्रकृतिकी सुन्दरतासे अमीर गरीब दोनों एकसा लाभ और आनन्द उठा सकते हैं। सूर्यास्तकी सुन्दरता जैसी गरीबोंके झोंपड़ोंमें मालूम होती है वैसी ही अमीरोंके महलोंमें मालूम होती है। संतोषी आदमीको झोंपडीमें भी वैसा ही आनंद मिलता है जैसा महलोंमें।

—थारो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दुष्प्राप्य और अलभ्य जैनग्रन्थ ।

जैनग्रन्थोंको, खासकर प्राचीन जैनग्रंथोंको, यदि जैनधर्मका प्राण और जैनियोंका जीवन कहा जाय तो इसमें कुछ भी अत्युक्ति न होगी। वास्तवमें जैनधर्मका सारा आधार इन्हीं ग्रंथोंपर अवलम्बित है और जैनियोंका संपूर्ण इतिहास भी इन्हीं ग्रन्थोंमें इतस्ततः पड़ा हुआ है, जिसके संकलित होनेकी बहुत बड़ी जरूरत है । यदि हम इतना भी नहीं जानते कि हमारे पूर्वज कौन कौन हुए हैं, कब हुए हैं, कहाँ हुए हैं और उन्होंने क्या क्या कृत्य किये हैं—हमारे हितके लिये किन किन ग्रंथोंकी रचना की है—तो यह हमारे लिये बड़ी ही लज्जा और शर्मकी बात है। हमारा खास कर्त्तव्य, इस समय, यही होना चाहिये कि हम अपने प्राचीन साहित्यकी सँभाल करें, उसे काल कोठरियोंसे निकालकर प्रकाशमें लावें, जो जो ग्रंथ अलभ्य और दुष्प्राप्य हो रहे हैं अथवा जिनका नाम भी सुननेमें नहीं आता उन सबकी खोज लगाएँ, उन्हें चिरस्थायी बनानेका यत्न करें और विद्वानोंके लिये उनकी प्राप्तिका मार्ग सुगम बनाएँ। ऐसा होनेपर जैनियोंका एक क्रमबद्ध इतिहास तय्यार होनेमें बहुत कुछ सहायता मिलेगी; हमें अपने पूर्वजोंका और तत्तत्कालीन वस्तुस्थितिका यथार्थ हाल मालूम होगा और इस तरहपर अनेक भ्रमोंको दूर होने और बहुतसी गुत्थियोंके सुलझानेका भी अवसर प्राप्त होगा। अतः प्रमादको छोड़कर अब हम लोगोंको इस ओर विशेष सावधान होनेकी जरूरत है। हम अपने ही प्रमादसे सैकड़ों ग्रंथरत्नोंको नष्ट तथा नष्टप्राय कर चुके हैं—चूहों और दीमकों आदिका भोज्य बना चुके हैं—और इससे जैनधर्म तथा समाजको जो कुछ क्षति पहुँची है उसकी अब पूर्ति नहीं हो सकती। परंतु जो भूल हुई सो हुई अब, आगेको और भूल न होनी चाहिये। हमें प्राचीन जैनग्रंथोंकी रक्षाको अपने धर्म और समाजकी रक्षा समझकर उन ग्रंथोंकी खोज और उनके उद्धारका शीघ्र यत्न करना चाहिये। एक प्राचीन ग्रंथका उद्धार सैकड़ों मुनियोंको भोजन देने अथवा बहुतसे जैनमंदिर बनवानेसे कुछ कम नहीं है । अस्तु।

अब हम यहाँपर क्रमशः उन अलभ्य, दुष्प्राप्य और अश्रुतपूर्व जैन ग्रंथोंके नाम, कुछ परिचय-सहित, प्रकट करेंगे जो आम तौरपर नहीं पाए जाते—खास खास भंडारोंमें ही मौजूद हैं—अथवा शास्त्रादिकोंमें जिनका उल्लेख मिलता है परंतु यह मालूम नहीं कि वे किस भंडारमें मौजूद हैं। ऐसे नामोंके प्रकट होनेपर हमारे भाईयोंको चाहिये कि वे अपने यहाँके शास्त्रभंडारोंमें, और यदि हो सके तो दूसरी जगहोंके भंडारोंमें भी, उन ग्रंथोंकी तलाश (खोज) करें। और यदि किसी भाईको किसी भंडारसे ऐसे किसी ग्रंथकी उपलब्धि हो जाय तो उन्हें चाहिये कि वे उक्त ग्रंथका १ नाम, २ ग्रंथकर्ताका नाम, ३ ग्रंथकी भाषा, ४ ग्रंथकी लिपि, ५ ग्रंथके बनने तथा ६ लिखे जानेका संवत् और यह कि वह ७ किस चीज-पर लिखा हुआ है, इन सात बातोंसे, अथवा इन बातोंमेंसे जिन जिन बातोंको वे सहज हीमें मालूम कर सकें सिर्फ उन्हींसे, हमें शीघ्र सूचित करें। साथ ही, कुछ भाइयोंको उन ग्रंथोंकी प्रतियाँ कराकर अथवा उन्हें प्रकाशित कराकर उनका उद्धार करना चाहिये जिनके विषयमें यह प्रकट किया जाय कि वे अमुक अमुक भंडारमें मौजूद हैं। इसके सिवाय जिन ग्रंथोंके विषयमें यह जाहिर किया जाय कि उनके अस्तित्व-स्थानका कुछ पता नहीं है उनकी तलाशके लिये कुछ धर्मोपकारी भाई-योंको पारितोषिक भी नियत करना चाहिये जिससे कि तलाशका काम कुछ अधिक विल-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चस्पीके साथ प्रारंभ हो और तलाश करनेवाले साधारण व्यक्तियोंको उनके परिश्रमका फल मिल सके। जो विद्वान् लोग अपने स्वाध्यायादिकके द्वारा मालूम हुए ऐसे कुछ अलभ्य, दुष्प्राप्य और अश्रुतपूर्व ग्रंथोंके नामादिकसे हमें सूचित करेंगे हम उनके बहुत आभारी होंगे और उनके भेजे हुए नामादिकको यथासंभव जैनहितैषीमें प्रकट करते रहेंगे।

१ प्रवचन-तिलक।

पं० वामदेव कृत 'भावसंग्रह' ग्रन्थमें '**प्रवचन-तिलक**' नामके एक ग्रंथका उल्लेख पाया जाता है जिससे मालूम होता है कि इस नामका भी कोई जैनग्रन्थ है जो प्राकृत भाषामें है। परन्तु यह ग्रंथ कौनसे आचार्यका बनाया हुआ है और कब बना है, यह अभी तक मालूम नहीं हुआ। यह भी मालूम नहीं हुआ कि ग्रंथ कहाँके भंडारमें मौजूद है। श्वेताम्बरोंकी 'जैन-ग्रन्थावली' नामकी बृहत्सूचीमें, जैनसिद्धान्त-भवन आराकी सूचीमें, और भी अनेक भंडारोंकी सूचियोंमें इस ग्रंथका कहीं कुछ नाम व पता नहीं है। पं० वामदेवजीने, अपने उक्त ग्रंथमें, 'उक्तं च प्रवचनतिलके' इस वाक्यके साथ, इस ग्रंथकी निम्नलिखित गाथा उद्धृत की है:—

" अविरयसम्मादिट्ठी णियमिय वेलादियं ण कुव्वंतो।
पडि पडि दिणमिगवारं सो झायदिमप्पगं सुद्धं॥"

गाथाके विषय और ग्रंथके नाम परसे मालूम होता है कि यह ग्रंथ कोई महत्त्वका ग्रंथ है और साथ ही प्राचीन भी जान पड़ता है। अतः इस ग्रंथकी शीघ्र खोज होनी चाहिये।

२ जीवसिद्धि।

श्रीजिनसेनाचार्यप्रणीत हरिवंशपुराणके एक पद्यसे मालूम होता है कि 'युक्त्यनुशासनके कर्ता स्वामी समन्तभद्राचार्यने '**जीवसिद्धि**' नामका भी कोई ग्रंथ बनाया है। वह पद्य इस प्रकार है:—

जीवसिद्धिविधायीह कृतयुक्त्यनुशासनम्।
वचः समन्तभद्रस्य वीरस्येव विजृम्भते॥ ३०॥

यह ग्रंथ कौनसे भंडारमें मौजूद है, इसका भी अभीतक कहींसे कुछ पता नहीं चला। ग्रंथका विषय उसके नामसे प्रकट है और वह एक बड़ा ही उपयोगी विषय है। समन्तभद्रस्वामीके ग्रंथ असाधारण महत्त्वको लिये हुए होते हैं, जैसा कि ऊपरके पद्यसे भी प्रकट है। उनके वचनोंको, जिनमें 'जीवसिद्धि' नामके ग्रंथका भी उल्लेख किया गया है, महावीर भगवानके वचनोंके तुल्य बतलाया गया है और इससे पाठक स्वयं समझ सकते हैं कि 'जीवसिद्धि' नामका ग्रंथ कितने महत्त्वका होगा। ऐसे ग्रंथके शीघ्र उद्धार होनेकी बहुत बड़ी जरूरत है। इसकी तलाश और खोजके लिए कुछ पारितोषिक भी नियत होना चाहिए। समन्तभद्रस्वामीके मूलग्रंथ प्रायः आकारमें छोटे होते हैं। संभव है कि यह ग्रंथ अन्य ग्रंथोंके साथ किसी प्राचीन गुटकेमें लिखा हुआ हो; इस लिये तलाश करनेवालोंको प्रत्येक गुटकेके सभी ग्रंथोंको अच्छी तरहसे जाँच कर लेना चाहिये; क्योंकि बहुधा देखा गया है कि गुटकों पर उनके सभी ग्रंथोंकी सूची लगी हुई नहीं होती और कभी कभी भंडारी लोग सिर्फ एक आध ग्रंथका ही नाम उसपर लिख देते हैं जिससे तलाश करनेवालोंको भ्रम होजानेकी संभावना है। इसीसे गुटकोंकी अच्छी तरहसे जाँच करनेके लिये लिखा गया है।

३ प्राकृत व्याकरण।

'जैन-ग्रंथावलीसे' मालूम होता है कि समन्तभद्रका बनाया हुआ एक '**प्राकृत व्याकरण**' भी है जिसकी श्लोकसंख्या १२०० है। उक्त ग्रंथावलीमें इस ग्रंथका उल्लेख रायल एशियाटिक सोसाइटीकी रिपोर्टके आधार पर किया गया है और वहीं पर उसका अस्तित्व बतलाया गया है। नहीं मालूम, यह ग्रंथ उन्हीं समन्तभद्र-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वामीका बनाया हुआ है जो कि 'युक्त्यनुशासन' आदिके कर्त्ता हैं अथवा उक्त नामके किसी दूसरे ही विद्वानका बनाया हुआ है। समन्तभद्र-स्वामीका कोई व्याकरण ग्रंथ होना जरूर चाहिये। कहा भी जाता है कि श्रीपूज्यपाद स्वामीने अपने जैनेन्द्र व्याकरणमें उनके मतका उल्लेख किया है, परन्तु वह उल्लेख अभीतक हमारे देखनेमें नहीं आया। इस विषयमें रायल एशियाटिक सोसाइटीकी उक्त रिपोर्टको (जिस पर कोई नंबर नहीं है) अच्छी तरहसे देखकर विशेष हाल मालूम करनेकी जरूरत है। साथ ही यह भी जाननेकी जरूरत है कि यह ग्रंथ किस किस जगहके भंडारमें मौजूद है। जो विद्वान भाई रायल एशियाटिक सोसाइटीकी रिपोर्ट परसे हमें इस ग्रंथके विषयमें कुछ विशेष हालसे सूचित करेंगे अथवा इस ग्रंथको ही हमारे पास देखनेके लिये भिजवानेकी कृपा करेंगे हम उनके बहुत आभारी होंगे।

४ अमृताशीति।

'नियमसार' ग्रंथकी **पद्मप्रभमलधारिदेव** विरचित टीकामें, अनेक स्थानोंपर, उक्त ग्रंथका नामोल्लेख मिलता है। टीकाकारने इस ग्रंथके अनेक पद्योंको 'उक्तं च' रूपसे उद्धृत किया है, जिनमेंसे एक पद्य इस प्रकार है:—

" गिरिगहनगुहारण्यान्यशून्यप्रदेश-
स्थितिकरण-निरोधध्यानतीर्थोपसेवा-
पठनयजनहोमैर्ब्रह्मणो नास्ति सिद्धिः
मृगय तदपरं त्वं भो ! प्रकारं स्वसारं ॥ "

पद्योंपरसे मालूम होता है कि यह ग्रंथ संस्कृत भाषामें है और एक अच्छा ग्रंथ है; परंतु कौनसे आचार्यका बनाया हुआ है, यह अभीतक मालूम नहीं हुआ। संभव है कि यह ग्रंथ अमृतचंद्र आचार्यका बनाया हुआ हो और इसमें ८० पद्योंका समुदाय होनेसे इसका नाम 'अमृताशीति' रक्खा गया हो। अथवा ८० पद्योंमें अमृततत्त्वका (आत्मतत्त्वका) कथन होनेसे ही इसका यह नामकरण किया गया हो। कुछ भी हो, ग्रंथ खोज किये जाने और प्रकाशित किये जानेके योग्य है। जैनसिद्धान्त भवन आराकी सूचीमें एक संस्कृत ग्रंथ '**अमृताशीति**' नामसे नं० ३४ पर दर्ज है जिसके कर्त्ताका नाम वहाँ '**योगीन्द्रदेव**' और पत्रसंख्या ११ दी है। बहुत संभव है कि यह ग्रंथ वही 'अमृताशीति' हो और प्रेस आदिकी असावधानीके कारण उक्त प्रकारसे कुछ अशुद्ध छप गया हो। यदि यह सच है तो 'अमृताशीति' के कर्त्ता 'योगीन्द्रदेव' को ही समझना चाहिये और ऐसी हालतमें आराके भंडारसे इस ग्रंथकी प्रति कराकर मँगानी चाहिये। वहाँ यह ग्रंथ कनड़ी लिपिमें मौजूद है। आशा है कि भवनके मंत्री साहब मूल ग्रंथको निकलवाकर इस विषयका स्पष्टीकरण करेंगे।

५ श्रुतबन्धु।

इस ग्रंथका भी उल्लेख नियमसारकी उक्त टीकामें, एक जगह पर, पाया जाता है। टीकाकारने 'तथाचोक्तं श्रुतबन्धौ' इस वाक्यके साथ उसका निम्नलिखित पद्य उद्धृत किया है जिससे ग्रंथकी भाषा आदिका कुछ पता चलता है:—

" जयति विजयदोषोऽमर्त्यमर्त्येन्द्रमौलि-
प्रविसदुरुमालाभ्यर्चितांघ्रिर्जिनेन्द्रः।
त्रिजगदजगती यस्येदृशौ व्यश्नुवाते,
सममिव विषमेष्वन्योन्यवृत्तिं निषेद्धुम् ॥ "

इस ग्रंथके कर्ताका भी कोई पता नहीं चला और न यह ही मालम हुआ कि यह ग्रंथ कहाँके भंडारमें मौजूद है। अतः इसकी भी तलाश और उद्धारका यत्न होना चाहिये। (क्रमशः)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऐतिहासिक जैन व्यक्तियाँ ।

अर्थात्—

जैनाचार्य, दूसरे जैन विद्वान, उनके पोषक, प्रधान श्रावक और जैन राजादिक ।

किसी भी इतिहासके क्रमबद्ध तय्यार करनेके लिये सबसे पहले इस बातकी बहुत बड़ी जरूरत होती है कि उसके व्यक्तियोंका खंडशः इतिहास एकत्र किया जाय । जब व्यक्तियोंका इतिहास खंडशः एकत्र होजाता है तब उस पूरे इतिहासके क्रमबद्ध तय्यार होनेमें कुछ भी देर नहीं लगती–फिर तो उस खंडशः इतिहासको तरतीब देने और यथास्थान चस्पाँ करने (लगादेने) की ही जरूरत बाकी रह जाती है । और जबतक व्यक्तियोंका खंडशः इतिहास पूरी तौरपर एकत्र नहीं होता तब तक किसी भी देश, धर्म अथवा समाजका इतिहास समुचित रीतिसे बनकर तय्यार नहीं हो सकता । अतः जैनधर्म और जैनसमाजका क्रमबद्ध इतिहास तय्यार करनेके लिये इस बातकी बहुत बड़ी जरूरत है कि जैनके ऐतिहासिक व्यक्तियोंकी खोज की जाय और उनके इतिहासका–उनके जीवनकी प्रधान घटनाओंका–पता लगाया जाय । इसी अभिप्रायसे यहाँपर उसका एक विभाग खोला जाता है । जिन जिन भाइयोंको स्वाध्यायादि करते समय, कहींसे भी ऐतिहासिक जैन व्यक्तियोंका–जैन आचार्यों, दूसरे जैन विद्वानों, उनके पोषकों, प्रधान श्रावकों और जैन राजादिकोंका पता चले और जो कुछ हाल उनके विषयमें मालूम हो उसे वे तुरंत हमारे पास भेजनेकी कृपा करें, जिससे हम उसे प्रकाशित कर देवें । और प्रकाशित होनेपर उसकी त्रुटियाँ दूर होकर वह संपूर्ण बन सके । परन्तु इतना ध्यान रखना चाहिये कि हमारा अभिप्राय अभी महावीर स्वामीसे या ज्यादहसे ज्यादह पार्श्वनाथ भगवानसे अबतकका इतिहास तय्यार करनेका है । और इस लिये इसी समयके भीतरके ऐतिहासिक व्यक्तियोंके समाचार हमारे पास आने चाहियें । हाँ, यदि इस समयसे पूर्वके बने हुए जैन तथा जैनेतर ग्रंथोंमें जैन व्यक्तियोंका कुछ उल्लेख पाया जाय तो वह भी पूरे पते सहित आना चाहिये । अब हम अपनी याददाश्त (स्मृतिपत्र) परसे इस सिलसिलेको शुरू करते हैं और विद्वानोंसे प्रार्थना करते हैं कि यदि उन्हें हमारे द्वारा प्रकाशित समाचारोंके अनुकूल तथा प्रतिकूल कोई सामग्री कहींसे प्राप्त हो अथवा किसी व्यक्तिके विषयमें उन्हें कोई विशेष हाल मालूम हो, तो वे हमको तुरंत उससे सूचित करें और इस तरहपर एक क्रमबद्ध इतिहासके तय्यार होनेमें सहायक बनें, जिसकी इस समय बहुत बड़ी जरूरत है और जिसके बिना जैनियोंकी प्रगति और उन्नति बहुत कुछ रुकी हुई है:—

१ वीरभद्र ।

‘ वीरभद्र ’ नामके एक आचार्य विक्रमकी ११ वीं शताब्दीमें हो गये हैं, जिन्होंने संवत् १०७८ में ‘ आराधना-पताका ’ नामके एक ग्रंथकी रचना की है जो प्राकृत भाषामें है और जिसकी गाथा संख्या ९९० है । इस ग्रंथके मंगलाचरणकी और निर्माण-समयकी सूचक गाथाएँ क्रमशः इस प्रकार हैं:—

“ नियसुचरियगुणमाहप्पदिप्पसुररायरिद्धिवित्थारो ।
जयइ सुररायपूइय गुणमाहप्पो महावीरो ॥ १ ॥
“ विक्कमनिवकालाओ अट्टत्तरिमे समासहस्संमि ।
एसा सव्वंगिद्दिआ गहिया गाहाहिं सरलाहिं ॥९८८॥

इस ग्रंथकी प्रशस्तिमें आचार्यने अपने गण, गच्छ तथा गुरु आदिका कोई नामोल्लेख नहीं किया, इससे अभी तक यह निश्चय नहीं हुआ कि ये आचार्य दिगम्बर सम्प्रदायके थे या श्वेताम्बर । एक श्वेताम्बर विद्वान् द्वारा हमको ऐसा मालूम हुआ था कि ‘ आराधना-पताका ’

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के कर्ता 'वीरभद्र' दिगम्बराचार्य हैं। संभव है कि यह सत्य हो, परंतु किस आधार पर ऐसा माना जाय, इसका अभीतक ठीक निर्णय नहीं हुआ। श्वेताम्बर कान्फरन्स द्वारा प्रकाशित 'जैनग्रंथावली' में इन आचार्यके विषयमें लिखा है कि 'वीरभद्रसम्बंधी विशेष इतिहास मिला नहीं।' इसके सिवाय उक्त ग्रंथावलीमें 'वीरभद्र' नामके दो आचार्योंका और भी उल्लेख किया गया है। एक 'चतुःशरण' (अपरनाम कुशलानुबंधिअध्ययन) नामके श्वेताम्बर ग्रंथके कर्ता 'वीरभद्रगणि,' जिनके विषयमें उक्त ग्रंथके टीकाकारने लिखा है कि वे महावीर भगवानके शिष्य थे; और दूसरे 'कंदर्पचूडामणि' के कर्ता वीरभद्र, जिन्हें पिटर्सन साहबने अपनी रिपोर्टमें वाघेला वंशमें उत्पन्न हुआ प्रकट किया है और जिन्होंने अपना उक्त ग्रंथ संवत् १६३३ में बनाकर समाप्त किया है। इनसे यह तो स्पष्ट है कि 'आराधनापताका'-का कर्ता दूसरे दोनों 'वीरभद्र' नामके आचार्योंसे पृथक् है। परंतु उनके सम्प्रदायादिका विशेष हाल मालूम होनेकी अभी जरूरत है। साथ ही यह भी मालूम होनेकी जरूरत है कि उन्होंने और कौन कौनसे ग्रंथोंकी रचना की है। 'दिगम्बरजैनग्रन्थकर्ता और उनके ग्रंथ' नामकी सूचीमें 'वीरभद्र' के ग्रंथोंमें सिर्फ 'माघमालिनी काव्य' का ही उल्लेख मिलता है। नहीं मालूम इस काव्यके कर्ता कोई चौथे 'वीरभद्र' हैं या उपर्युक्त तीनोंमेंसे कोई एक हैं। अतः इस विषयमें विशेष अनुसंधान होनेकी जरूरत है। 'आराधना-पताका' ग्रंथ पाटण, खंबात, भावनगर और अहमदाबादके भंडारोंमें तथा दक्कन कालिज पूनाकी लायब्रेरीमें भी मौजूद है। इसे साद्यंत देख जाने पर इस बातका पता जरूर चल सकता है कि ग्रंथकर्ता महाशय कौनसे सम्प्रदायके आचार्य थे। आशा है कि इस विषयको स्पष्ट करने तथा उक्त 'वीरभद्र' आचार्यका विशेष इतिहास मालूम करनेके लिये कोई विद्वान् महाशय यत्न करेंगे।

२ सकलभूषण।

'सकलभूषण' नामके एक दिगम्बर विद्वान् विक्रमकी १७ वीं शताब्दीके शुरूमें हो गये हैं। ये सकलकीर्ति भट्टारकके वंशपरम्परामें होनेवाले शुभचंद्र भट्टारकके शिष्य और सुमतिकीर्ति भट्टारकके गुरुभाई थे। इन्होंने विक्रम संवत् १६२७ में '**उपदेश-रत्नमाला**' नामके एक ग्रंथकी संस्कृतमें रचना की है, जिसके १८ परिच्छेद हैं। ग्रंथकी प्रशस्तिमें आप अपनेको सूरिः (आचार्य) लिखते हैं और यह प्रकट करते हैं कि 'श्रीनेमिचंद्राचार्यादि यतियोंके आग्रहसे और वर्धमानटोला आदिकी प्रार्थनासे मैंने यह ग्रंथ बनाया है'। यथाः—

श्रीनेमिचंद्राचार्यादियतीनामाग्रहात्कृतः।
सद्वर्धमानटोलादिप्रार्थनातो मयैषकः॥ ३५॥
सप्तविंशत्यधिके षोडशशतवत्सरे सुविक्रमतः।
श्रावणमासे शुक्लपक्षे षष्ठ्यां कृतो ग्रंथः॥ ३६॥

इससे मालूम होता है कि सकलभूषणके समयमें भी '**नेमिचंद्राचार्य**' नामके कोई यति थे। उपदेशरत्नमालाकी श्लोकसंख्या एक ग्रंथकी प्रशस्तिके अनुसार ३३८३ और दूसरीके अनुसार ३०८१ होती है। दोनों प्रतियोंमें संख्यासूचक पद्यका पूर्वार्ध इस प्रकारसे बदला हुआ है:—

"सहस्रत्रितयं चैव त्रिशतं त्र्यशीतिसंयुतम्"
"सहस्रत्रितयं चैव तथैकाशीतिसंयुतम्।"

नहीं मालूम इस परिवर्तनका क्या कारण है और दोनोंमेंसे कौनसी संख्या सही है। आपके बनाये हुए इस ग्रंथका नाम 'षट्कर्मोपदेश-रत्नमाला' भी प्रसिद्ध है; क्योंकि इसमें गृहस्थके षट्कर्मोंका उपदेश दिया गया है। इस ग्रंथके सिवाय सकलभूषणजीने और भी कोई ग्रंथ बनाया है या कि नहीं, इसका अभीतक कुछ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पता नहीं चला, और न दूसरी ही कोई बातें अभीतक आपके विषयमें मालूम हुई हैं।

३ जयकीर्ति और रामकीर्ति।

चालुक्य कुमारपाल राजाके चित्तौड़गढ़ सम्बंधी शिलालेखमें, जो विक्रम संवत् १२०७ का लिखा हुआ है, 'जयकीर्ति' और 'रामकीर्ति' नामके दो दिगम्बर आचार्योंका उल्लेख पाया जाता है। यथाः—

(पंक्ति२८) "श्रीज [य] कीर्तिशिष्येण दिगंव–
(व) रगणेशिना।
प्रशस्तिरीदृशी चक्रे...श्रीरामकीर्तिना॥
संवत् १२०७ सूत्रधा......"

इससे मालूम होता है कि वि० संवत् १२०७ में 'जयकीर्ति' के शिष्य 'रामकीर्ति' नामके कोई दिगम्बर आचार्य हुए है और उन्होंने चित्तौड़गढ़की यह प्रशस्ति लिखी है जिसकी २८ वीं पंक्ति ऊपर उद्धृत की गई है। यह शिलालेख एपिग्रेफिका इण्डिकाकी २ री जिल्दमें प्रकाशित हुआ है। उक्त 'जयकीर्ति' और 'रामकीर्ति' के विषयमें दिगम्बर साहित्यसे अभी कुछ विशेष हाल मालूम नहीं हुआ। विद्वानोंको खोज करनी चाहिये।

४ मेघसेन और विमलसेन।

किशनगढ़की रियासतमें, रूपनगरसे पश्चिमकी ओर लगभग डेढ़ मीलके फासले पर, तीन खड़ी हुई जैन देवलियाँ हैं, जिनमेंसे पहली देवलीपर नीचे लिखा हुआ एक शिलालेख है:–

१ "संवत १०१८ ज्येष्ठ सुदि १२
२ श्रीमेघसेनाचार्यस्य त-
३ स्य शिष्य। श्रीविमल-
४ सेनपंडितेन राधनां
५ राधयित्वा दिवं गतः।
६ तस्येयं निषिधिका॥"

यही शिलालेख नीचे फिर दोहराया गया है। ऊपर एक तीर्थकरकी मूर्ति और नीचे सर्पका आकार है।

इससे मालूम होता है कि **श्रीमेघसेन** आचार्यके शिष्य पंडित **विमलसेन**का (अथवा मेघसेनका ही) ज्येष्ठ सुदि १२ संवत् १०१८ को समाधिपूर्वक देहान्त हुआ है और उन्हींकी यादगारमें यह निषधिका बनाई गई है। परंतु मेघसेन कौनसे संघ, गण अथवा गच्छके आचार्य थे और गुरु शिष्य दोनोंने क्या क्या विशेष कार्य किये थे, इसका अभीतक कहींसे कुछ पता नहीं चला। अतः इनके विषयमें भी अनुसंधान होनेकी जरूरत है। (क्रमशः)

समाज-संगठन।

समाजका सुव्यवस्थित, बलाढ्य और वृद्धिंगत होना समाज-संगठन कहलाता है। प्राचीन आचार्योंने विवाहका विधान करके उसके द्वारा संतानोत्पादन करनेको जो गृहस्थका एक खास धर्म बतलाया है उसका मुख्य उद्देश्य समाज-संगठन है। क्योंकि समाज व्यक्तियोंका बनता है—व्यक्तियोंके समुदायका नाम ही समाज है—और व्यक्तियोंका समुदाय तभी बढ़ता है और तभी उसके द्वारा समाजकी पुष्टि होकर धर्मकर्मादिक संतति अविच्छिन्न रह सकती है जब कि विवाहद्वारा योग्य संतान उत्पन्न की जाय। इसलिए विवाहद्वारा सन्तानोत्पादन करना और उसे योग्य बनाना—उसमें सुव्यवस्था और बल लाना—यह समाज-संगठनका मुख्य अंग है।

अब देखना यह है कि विवाह द्वारा संतान उत्पन्न करके **समाज-संगठनकी जरूरत क्यों पैदा होती है?** जरूरत इस लिए होती है कि यह जीवन एक प्रकारका **युद्ध** है—लौकिक और पारलौकिक या अन्तरंग और बहिरंग दोनों ही दृष्टियोंसे इसे युद्ध समझना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चाहिए—और यह संसार युद्धक्षेत्र है। युद्धमें जिस प्रकार अनेक शक्तियोंका मुकाबला करनेके लिए सैन्यसंगठनकी जरूरत होती है उसी प्रकार जीवन-युद्धमें अनेक आपदाओंसे पार पानेके लिए समाज-संगठनकी आवश्यकता है। हम चारों ओरसे इस संसारमें इतनी आपत्तियों द्वारा घिरे हुए हैं कि यदि हमारे पास उनसे बचनेका कोई साधन नहीं है तो हम एक दिन क्या, घड़ीभर भी जीवित नहीं रह सकते। बाह्य जगतपर दृष्टि डालनेसे मालूम होता है कि एक शक्ति बड़ी सरगर्मीके साथ दूसरी शक्तिपर अपना स्वत्व (स्वामित्व) और प्राबल्य स्थापित करना चाहती है, अपने स्वार्थके सामने दूसरीको बिलकुल तुच्छ और नाचीज समझती है, चैतन्य होते हुए भी उससे जड़ जैसा व्यवहार करती है और यदि अवसर मिले तो उसे कुचल डालती है—हड़प कर जाती है। रातदिन प्रायः इस प्रकारकी घटनायें देखनेमें आती हैं। निर्बलोंपर खूब अत्याचार होता है। न्यायालय खुले हुए हैं, परन्तु वे सब उनके लिए व्यर्थ हैं। उनकी कोई सुनाई नहीं होती। इसी लिए कि, उनका कोई रक्षक या सहायक नहीं है, उनमें कौटुम्बिक बल नहीं है, जिस समाजके वे अंग हैं वह सुव्यवस्थित नहीं है, पैसा उनके पास नहीं है, उन्हें कोई साक्षी उपलब्ध नहीं होता-कोई गवाह मयस्सर नहीं आता। जो लोग प्रत्यक्ष उनपर होते हुए अत्याचारोंको देखते हैं वे भी अत्याचारीके भयसे या अपने स्वार्थमें कुछ बाधा पड़नेके भयसे बेचारे गरीबोंकी कोई मदद नहीं करते, उन्हें 'न्याय-भिक्षा' दिलानेमें समर्थ नहीं होते। और इस तरह बेचारे पारिवारिक और सामाजिक-शक्ति-विहीनोंको रातदिन चुपचाप घोर संकट और दुःख सहन करने पड़ते हैं। संसारमें अविवेक और स्वार्थकी मात्रा इतनी बढ़ी हुई है कि उसके आगे पापका भय कोई चीज नहीं है। पापके भयसे बहुत ही कम अपराधोंकी रोक होती है। ऐसे बहुत ही कम लोग निकलेंगे जो पापके भयसे अपराध न करते हों। जो हैं उन्हें सच्चे धर्मात्मा समझना चाहिए। बाकी अधिकांश लोग ऐसे ही मिलेंगे जो लोकभयसे, राज्यभयसे या परशक्तिके भयसे पापाचरण करते हुए डरते हैं। अन्यथा, उन्हें पापसे कोई घृणा नहीं है, वे सब जब मौका मिलता है तबही उसे कर बैठते हैं। ऐसे हालतमें **समूह बनाकर रहनेकी बहुत बड़ी जरूरत है**। समूहमें बहुत बड़ी शक्ति होती है। छोटे छोटे तिनकों और कच्चे सूतके धागोंका कुछ भी बल नहीं है, उन्हें हर कोई तोड़ मरोड़ सकता है। परन्तु जब वे मिलकर एक मोटे रस्सेका रूप धारण कर लेते हैं तब बड़े बड़े मस्त हाथी भी उनसे बाँधे जा सकते हैं। चीटियाँ आकारमें कितनी छोटी छोटी होती हैं, परन्तु वे अपनी समूहशक्तिसे एक साँपको मार लेती हैं। जिनकी समूहशक्ति बढ़ी हुई होती है उनपर एकाएक कोई आक्रमण नहीं कर सकता, हरएकको उनपर अत्याचार करने या उनके स्वार्थमें बाधा डालनेका साहस नहीं होता, उनके स्वत्वों और अधिकारोंकी बहुत कुछ रक्षा होती है। विपरीत इसके, जिनमें समूहशक्ति नहीं होती वे निर्बल कहलाते हैं और निर्बलोंपर प्रायः राजा और प्रजा सभीके अत्याचार हुआ करते हैं। छोटी छोटी मछलियाँ संख्यामें अधिक होनेपर भी अपनेमें समूहशक्ति नहीं रखतीं, इस लिए बड़ी बड़ी मछलियाँ या मच्छ उन्हें खा जाते हैं। मधुमक्खियाँ (शहदकी मक्खियाँ) अपनेमें कुछ समूह-शक्ति रखती हैं, इससे हरएकको उनके छत्तेके पासतक जानेका साहस नहीं होता। साधारण मक्खियोंमें वह शक्ति नहीं है, इस लिए उन्हें हर कोई मार गिराता है। इससे केवल व्यक्तियोंकी संख्याके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अधिक होनेका नाम '**समूह**' या '**समूह-शक्ति**' नहीं है। बल्कि **उनका मिलकर एक प्राण और एक उद्देश्य हो जाना ही समूह या समूह-शक्ति कहलाता है।** एक कुटुम्बके किसी व्यक्तिपर जब कोई अत्याचार करता है तो उस कुटुम्बके सभी लोगोंको एकदम जोश आ जाता है और वे उस अत्याचारीको उसके अत्याचारका फल चखानेके लिए तैयार हो जाते हैं, इसीको **एकप्राण होना** कहते हैं। इसी तरहपर जब कुटुम्बका कोई मनुष्य कुटुम्बके उद्देश्यके विरुद्ध प्रवर्त्तता है, अन्याय मार्गपर चलता है तो उससे भी कुटुम्बके लोगोंके हृदय पर चोट लगती है। और वे, शरीरके किसी अंगमें उत्पन्न हुए विकारके समान, उसका प्रतिशोध करनेके लिए तय्यार हो जाते हैं; इसको भी **एकप्राण होना** कहते हैं। साथ ही यह सब उनके **एक उद्देश्य** होनेको भी सूचित करता है। इस प्रकार **एक प्राण और एक उद्देश्य होकर जितनी ही अधिक व्यक्तियाँ मिलकर एक साथ काम करती हैं उतनी ही अधिक, विघ्नबाधाओंसे सुरक्षित रह कर, वे शीघ्र सफलमनोरथ होती हैं।** यही समाज-संगठनका मुख्य उद्देश्य है और इसी खास उद्देश्यको लेकर संसारमें विवाहकी सृष्टि की गई है। इसमें पूरा '**रक्षातत्त्व**' भरा हुआ है। एक विवाह होनेपर दोनों पक्षकी कितनी शक्तियाँ परस्पर मिलती हैं, एक दूसरेके सुखदुःखमें कितनी सहानुभूति बढ़ती है और कितनी समवेदना प्रकट होती है इसका अनुभव वे सब लोग भले प्रकार कर सकते हैं जो एक सुव्यवस्थित कुटुंबमें रहते हों। युद्धमें दो राज-शक्तियोंके परस्पर मिलनेसे—एक सूत्रमें बँधनेसे—जिस प्रकार आनंद मनाया जाता है उसी प्रकार विवाहमें वर और वधू दोनों पक्षकी शक्तियोंके मिलापसे आनंदका पार नहीं रहता। इस सम्मिलित शक्तिसे जीवन-युद्ध अनेक अंशोंमें सुगम हो जाता है। विवाहके द्वारा कुटुम्बोंकी रचना होती है और कुटुम्बोंसे **समाज** बनता है। कुटुम्बोंके संगठित और सुव्यवस्थित होनेपर समाज सहजहीमें संगठित और सुव्यवस्थित हो जाता है। और **समाज**के संगठित और सुव्यवस्थित होनेपर उन सब लौकिक और धार्मिक स्वत्वोंकी—अधिकारोंकी—पूर्णतया रक्षा होती है जिनकी रक्षा प्रत्येक व्यक्ति या कुटुम्ब **अलग अलग नहीं कर सकता**। दूसरे शब्दोंमें यों कहना चाहिए कि सब कुटुम्ब समाज-शरीरके अंग हैं। एक भी अंगकी व्यवस्था बिगड़ जाने पर जिस प्रकार शरीरके काममें बाधा पड़ जाती है उसी प्रकार किसी भी कुटुम्बकी व्यवस्था बिगड़ जानेपर समाजके काममें हानि पहुँचती है। और जिस प्रकार सब अंगोंके ठीक होनेपर शरीर स्वस्थ और नीरोग होकर भले प्रकार सब कार्योंका सम्पादन करनेमें समर्थ हो सकता है, उसी प्रकार समाज भी सब कुटुम्बोंकी व्यवस्था ठीक होनेपर यथेष्ट रीतिसे धर्म कर्म आदिकी व्यवस्था कर सकता है और प्रत्येक कुटुम्ब तथा व्यक्तिके स्वत्वोंकी रक्षा और उसकी आवश्यकताओंकी पूर्तिका समुचित प्रबंध कर सकता है इससे कहना होगा कि **समाजका संगठन कुटुम्बोंके संगठनपर अवलम्बित है।** और कुटुम्बके संगठनका भार कुटुम्बके प्रधान व्यक्तियोंपर—**गृहिणी** और **गृहपतिपर** होता है। इसलिए समाज-संगठनका सारा भार प्रायः उन स्त्रीपुरुषोंपर है जो विवाहित हैं अथवा विवाहके लिये प्रस्तुत हैं। उन्हें अपनी जिम्मेदारियोंको खूब समझ लेना चाहिए। **उनके द्वारा कोई भी ऐसा काम न होना चाहिए जिससे समाज-संगठनमें बाधा पड़ती हो।** साथ ही उन्हें यह भी जान लेना चाहिए कि जबतक परिस्थिति नहीं सुधरेगी—वातावरण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ठीक नहीं होगा, तबतक हम अपनी स्थितिको भी जैसा चाहिए वैसा नहीं सुधार सकते। इस लिए समाज-संगठनके अभिप्रायसे—वायुमंडलको सुधारनेकी दृष्टिसे—उन्हें अपने कुटुम्बके सुव्यवस्थित करनेमें कोई भी बात उठा न रखनी चाहिए। इस प्रकारके प्रयत्नसे सब कुटुम्बोंके सुव्यवस्थित हो जानेपर जो स्वच्छ वायु-धारा बहेगी वह सभीके लिए स्वास्थ्यप्रद होगी और उसमें रहकर सभी लोग अपना कल्याण कर सकेंगे।

प्रत्येक कुटुम्बको **सुव्यवस्थित** बनानेके लिए उसके प्रधान पुरुषोंको इन बातोंपर ध्यान रखनेकी खास जरूरत है:—

(१) स्वयं सदाचारसे रहना और अपने कुटुम्बियों तथा आश्रितोंको सदाचारके मार्गपर लगाना। ऐसा कोई काम न करना जिसका समाजपर बुरा असर पड़े।

(२) अपने बुद्धि-बल, शरीर-बल और धन-बलको बराबर बढ़ाते रहना और सदा प्रसन्न-चित्त रहनेकी चेष्टा करना।

(३) सबके दुखसुखका पूरा खयाल रखना, सबको परस्पर प्रेम तथा विश्वास करना सिखलाना और दुखियोंका दुःख दूर करनेका यत्न करना। साथ ही, किसीपर अत्याचार न करना और दूसरोंके द्वारा होते हुए अत्याचारोंको यथाशक्ति रोकना।

(४) वीर्यका दुरुपयोग न करके प्रायः संतानके लिए ही मैथुन करना। किसी व्यसनमें न फँसना और जितेन्द्रिय रहना।

(५) स्वयं कुसंगतिसे बचना और अपने परिवारके लोगोंको बचाते रहना। साथ ही, अपनी संतानका कभी बाल्यावस्थामें विवाह न करना।

(६) संतानकी तथा अन्य कुटुम्बियोंकी शिक्षाका समुचित प्रबंध करना, उन्हें धर्मके मार्गपर लगाना और ऐसी शिक्षा देना जिससे वे परावलम्बी न बनकर प्रायः स्वावलम्बी बनें और देश, धर्म तथा समाजके लिये उपयोगी सिद्ध हों।

(७) कुटुम्बभरमें एकता, सत्यता, समुदारता, दयालुता, गुणग्राहकता, आत्मनिर्भरता और सहनशीलता आदि गुणोंका प्रचार करना। साथ ही ईर्षा, द्वेष और अदेखसका भाव आदि अवगुणोंको हटाना।

(८) रूढ़ियोंके दास न बनकर कुरीतियोंको दूर करना और जो कुछ युक्ति तथा प्रमाणसे समुचित और हितरूप जँचे उसीके अनुसार चलना।

(९) धर्मप्रचार और समाजके उत्थानकी बराबर चिन्ता रखना और धार्मिक कार्योंमें सदैव योग तथा सहायता देते रहना।

(१०) मितव्ययी (किफायतशीर) बनना, परन्तु कृपण नहीं होना।

प्रत्येक स्त्री-पुरुषको इन दस बातोंको अपना **कर्त्तव्य-कर्म** बना लेना चाहिए, अपने समस्त आचार-व्यवहारका **सूत्र** समझना चाहिए, और विवाहके गठजोड़ेके समय इसकी भी **गाँठ** बाँध लेनी चाहिए।

यह तो हुआ बाह्य जगतकी दृष्टिसे विचार। अब अंतरंग जगतपर दृष्टि डालिए। अंतरंग जगतपर दृष्टि डालनेसे मालूम होता है कि, यह जीवात्मा अनादिकालसे मिथ्यात्व, राग, द्वेष, मोह, काम, क्रोध, मान, मद, माया, लोभ, हास्य, शोक, भय, जुगुप्सा, अज्ञान, अदर्शन, अंतराय और वेदनी आदि सैकड़ों और हजारों कर्मशत्रुओंसे घिरा हुआ है, जिन सबने इसे बन्धनमें डालकर पराधीन बना रक्खा है और इसकी अनंत शक्तियोंका घात कर रक्खा है। इसी लिए यह आत्मा अपने स्वभावसे च्युत होकर विभाव परिणतिरूप परिणम रहा है और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनेक योनियोंमें परिभ्रमण करता हुआ नाना-प्रकारके दुःख और कष्टोंको भोग रहा है। इसका मुख्य और प्रधान उद्देश्य है—**'बन्धनसे छूटकर स्वाधीनता प्राप्त करना'**। परन्तु बन्धनसे छूटना आसान काम नहीं है। एक राष्ट्र जब दूसरे राष्ट्रकी परतंत्रतासे अलग होना चाहता है—स्वाधीन बननेकी इच्छा रखता है—तब उसे रातदिन इस विषयमें प्रयत्नशील रहनेकी जरूरत होती है। बड़े बड़े उपायोंकी योजना करनी पड़ती है। घोर संकट सहन करने होते हैं, बंधनोंमें पड़ना होता है, हानियाँ उठानी पड़ती हैं, अपने स्वार्थकी बलि देनी होती है और बहुतसे ऐसे काम भी करने पड़ते हैं जिनका करना उसे इष्ट नहीं होता और न वे उसके उद्देश्य ही होते हैं; परन्तु बिना उनके किये उसे अपने उद्देश्यमें सफलता प्राप्त नहीं हो सकती और इस लिए वह उन्हें लाचारीकी दृष्टिसे करता है। साथ हीं वह अपने लक्ष्यसे कभी भ्रष्ट नहीं होता और न दूसरे राष्ट्रकी मोह-मायामें फँसता है। तब कहीं वह वर्षोंके बाद परतंत्रताकी बेड़ीसे छूटकर स्वतंत्रताकी शीतल छायामें निवास करता है। इसी तरह पर उस आत्माको भी, जो कर्मके बंधनसे छूटना चाहता है, अपनी उद्देश्य-सिद्धिके लिए बड़े बड़े प्रयोग करने होते हैं और नाना प्रकारके कष्ट उठाने पड़ते हैं। उसे बन्धमुक्त होनेके लिए बन्धनमें भी पड़ना होता है, कर्मसे छूटनेके लिए कर्म भी करना पड़ता है, हानिसे बचनेके लिए हानि भी उठानी पड़ती है, पापसे सुरक्षित रहनेके लिए पाप भी करना होता है और शत्रुओंसे पिण्ड छुड़ानेके लिए शत्रुओंका आश्रय भी लेना पड़ता है। परन्तु इन सब अवस्थाओंमें होकर जाता हुआ मुमुक्षु आत्मा अपने लक्ष्यसे कभी भ्रष्ट नहीं होता—पुद्गलके (प्रकृतिके) मोहजालमें कभी नहीं फँसता। वह कभी बन्धको मुक्ति, कर्मको कर्माभाव, हानिको लाभ, पापको धर्म और शत्रुको मित्र स्वीकार नहीं करता और न कभी इन बन्धादिक अवस्थाओंको इष्ट समझता हुआ उनमें तल्लीन होता है। बल्कि उसका प्रेम इन सब अवस्थाओंसे सिर्फ कार्यार्थी होता है। कार्यार्थी प्रेम कार्यकी हदतक रहता है। कार्यकी समाप्ति पर उसकी भी समाप्ति हो जाती है। इसलिए वह अपने किसी इष्ट-प्रयोजनकी साधनाके निमित्त लाचारीसे इन बन्धादिक अवस्थाओंसे क्षणिक प्रेम रखता हुआ भी बराबर निर्बंध, निष्कर्म, निर्हानि, निष्पाप और निःशत्रु होनेकी चेष्टा करता रहता है। इस विषयमें उसका यह सिद्धान्त होता है।

> उपकाराद्गृहीतेन शत्रुणा शत्रुमुद्धरेत् ।
> पादलग्नं करस्थेन कण्टकेनेव कण्टकम् ॥

अर्थात्—हाथमें काँटा लेकर जिस प्रकार पैरका काँटा निकाला जाता है उसी प्रकार उपकार तथा प्रेमादिकसे एक शत्रुको अपना बनाकर उसके द्वारा दूसरे शत्रुको निर्मूल करना चाहिए। अभिप्राय यह कि पैरमें लगे हुए काँटेको निकालनेके लिए पैरमें दूसरा काँटा चुभानेकी जरूरत होती है और उस दूसरे काँटेको आदरके साथ हाथमें ग्रहण करते हैं। परन्तु वह दूसरा काँटा वास्तवमें इष्ट नहीं होता, कालान्तरमें वह भी पैरमें चुभ सकता है—और न उसका चुभाना ही इष्ट होता है—क्यों कि उससे भी तकलीफ जरूर होती है—फिर भी उस अधिक पीड़ा पहुँचानेवाले पैरके काँटेको निकालनेके लिए यह सब कुछ किया जाता है और कार्य हो चुकनेपर वह दूसरा काँटा भी हाथसे डाल दिया जाता है। इसी सिद्धान्तपर मुमुक्षु आत्माको बराबर चलना होता है। उसका जानबूझकर किसी बन्धनमें पड़ना, कोई पापका काम करना और किसी शत्रुकी शरणमें जाना दूसरे अधिक कठोर बन्धनसे बचने, घोर पापोंसे सुरक्षित रहने और प्रबल शत्रुओंसे पिंड छुड़ानेके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अभिप्रायसे ही होता है । यद्यपि उसे संपूर्ण कर्मशत्रुओंका विजय करना इष्ट होता है; परन्तु साथ ही वह अपनी शक्तिको भी देखता है और इस बातको समझता है कि यदि समस्त शत्रुओंको एकदम चैलेंज दे दिया जाय—सबका एक साथ विरोध करके उन्हें युद्धके लिए ललकारा जाय—तो उसे कदापि सफलता प्राप्त नहीं हो सकती। इस लिए वह बराबर अपनी शक्तिको बढ़ानेका उद्योग करता रहता है । जबतक उसका बल नहीं बढ़ता तबतक वह अपनी तरफसे आक्रमण नहीं करता, केवल शत्रुओंके आक्रमणकी रोक करता है, कभी कभी उसे टेम्पेरेरी (अल्पकालिक) संधियाँ भी करनी पड़ती हैं और जब जिस विषयमें उसका बल बढ़ जाता है तब उसी विषयके शत्रुसे लड़नेके लिए तैयार हो जाता है और उसे नियमसे परास्त कर देता है । इस तरह वह संपूर्ण कर्मोंके बन्धनसे छूटकर मुक्त हो जाता है । गृहस्थाश्रम भी कर्मबन्धनसे छूटनेके प्रयोगोंमेंसे एक प्रयोग है और स्त्रीपुरुष दोनों मुमुक्षु हैं—कर्मबन्धनसे छूटनेके इच्छुक हैं—इस लिए उन्हें भी अपने लक्ष्यसे भ्रष्ट होकर गृहस्थाश्रमकी बंधादिक अवस्थाओंको अपना स्वरूप न समझ लेना चाहिए, उन्हें सर्वथा इष्ट मानकर उनमें लवलीन न हो जाना चाहिए । बंधको मुक्ति, कर्मको कर्माभाव, हानिको लाभ, पापको धर्म और शत्रुको मित्र न मान लेना चाहिए । ऐसा मान लेनेसे फिर कर्मका बंधन न छूट सकेगा । अंतरंग दृष्टिसे उनका भी प्रेम इन सब अवस्थाओंसे **कार्यार्थी** होना चाहिए और उन्हें बराबर निर्बंध, निष्कर्म, निर्हानि, निष्कषाय और निःशत्रु होनेकी चेष्टा करते रहना चाहिए । साथ ही उनका भी वही '**कण्टकोन्मूलन**' सिद्धान्त होना चाहिए और उन्हें बड़ी सावधानीके साथ उसपर चलना चाहिए । उनका जानबूझ कर गृहस्थीके बंधनाम पड़ना, आरंभादिक पापोंमें फँसना और कामादिक शत्रुओंका शरण लेना भी नरक-निगोद-तिर्यंचादिकके कठोर बंधनोंसे बचने, संकल्प तथा अशुभरागादिजनित घोर पापोंसे सुरक्षित रहने और अज्ञान-मिथ्यात्वादि प्रबल शत्रुओंसे पिंड छुड़ानेके अभिप्रायसे ही होना चाहिए । उन्हें अपने पूर्ण ब्रह्मचर्यादि धर्मोंपर लक्ष्य रखते हुए समस्त कर्मशत्रुओंको जीतनेका उद्देश्य रखना चाहिए और उसके लिए बराबर अपना आत्म-बल बढ़ाते रहना चाहिए । आत्माका बल शुभकर्मोंसे बढ़ता है और अशुभ कर्मोंसे घटता है । इस लिए गृहस्थाश्रममें उन्हें अशुभ कर्मोंका त्याग करके बराबर शुभ कर्मोंका अनुष्ठान करते रहना चाहिए । गृहस्थाश्रममें गृहस्थ-धर्मद्वारा आत्माका बल बहुत कुछ बढ़ाया जा सकता है । इसी लिए आचार्योंने इस गृहस्थाश्रमकी सृष्टि की है । शुभ कर्मोंके द्वारा आत्म-बल बढ़ जानेपर गृहस्थोंको, प्रेमपूर्वक ग्रहण किये हुए हाथके काँटेके समान, गृहस्थाश्रमका भी त्याग कर देना चाहिए और फिर उन्हें **वानप्रस्थ या सन्यस्त** (मुनि) आश्रम धारण करना चाहिए और इस प्रकार कर्मोंका बल घटाते हुए अन्तके आश्रम द्वारा उन्हें सर्वथा निर्मूल करके बंधनसे छूट जाना चाहिए । परन्तु इन समस्त आश्रमोंके धर्मका पूरी तौरसे पालन तब ही हो सकता है **जब समाजका संगठन अच्छा हो** । बिना समाज-संगठनके कोई भी काम यथेष्ट रीतिसे नहीं हो सकता । बाह्यसाधन न होनेसे सब विचार हृदयके हृदयमें ही विलीन हो जाते हैं, बंध-मोक्षकी सारी कथनी ग्रंथोंमें ही रक्खी रह जाती है और अमली सूरत कुछ भी बन नहीं पड़ती । **जैनियोंका सामाजिक संगठन बिगड़ जानेसे ही अफसोस ! आज वस्तुतः मुनिधर्म उठ गया और इसीसे जैनियोंकी प्रगति रुक गई ।** मुनि—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

योंका धर्म प्रायः गृहस्थोंके आश्रय होता है। इसीलिए पद्मनन्दि आदि आचार्योंने '**गृहस्था धर्महेतवः**', '**श्रावका मूलकारणम्**' इत्यादि वाक्यों द्वारा गृहस्थोंको 'धर्मका हेतु' और 'मुनिधर्मका मूल कारण' बतलाया है। परन्तु गृहस्थाश्रमकी व्यवस्था ठीक न होनेसे समाजके अव्यवस्थित और निर्बल होनेसे यह सब कुछ भी नहीं हो सकता। इसलिए **अंतरंग और बहिरंग दोनों दृष्टियोंसे समाज-संगठनकी बहुत बड़ी जरूरत है**। विवाह भी इसी उद्देश्यको लेकर होना चाहिए और उसको पूरा करनेके लिए प्रत्येक स्त्रीपुरुषको उन **दस कर्तव्योंका** पूरी तौरसे पालन करना चाहिए जो कुटुम्बोंको सुव्यवस्थित बनानेके लिए बतलाये गये हैं और जिनपर समाजका संगठन अवलम्बित है। ×

× मेरी लिखी हुई 'विवाहका उद्देश्य' नामकी पुस्तकसे कुछ परिवर्तनके साथ उद्धृत। —सम्पादक।

विविध विषय।

१—माणिकचंद दि० जैन-ग्रन्थमाला।

यह ग्रंथमाला बम्बईके सुप्रसिद्ध सेठ स्वर्गीय माणिकचंदजी हीराचंद जे० पी० की यादगारमें—उनके उन अनेक उपकारोंके स्मरणमें जो उन्होंने जैन समाजकी साथ किये हैं—चारपाँच सालसे निकलती है। यद्यपि इसकी आर्थिक दशा शुरूसे ही बहुत कुछ शोचनीय रही है तो भी एक सुयोग्य मंत्रीके सदुद्योग और प्रयत्न द्वारा इसने अब तक जो कुछ काम किया है वह कुछ कम संतोषजनक नहीं है। सब मिलाकर, इस ग्रंथमालाकी १४ जिल्दोंमें आजतक तीस ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं। इनमेंसे सागारधर्मामृत, श्रुतावतार और द्वात्रिंशतिकाको छोड़कर शेष २७ ग्रंथ ऐसे हैं जो सबसे पहले इस ग्रंथमालाके द्वारा ही प्रकाशित हुए हैं और इसलिये यही कहना चाहिये कि संस्कृत प्राकृतके इन २७ ग्रंथोंका इस ग्रंथमालाके द्वारा उद्धार हुआ है। इन ग्रंथोंमें कई ग्रंथ टीकासहित निकले हैं और कई—पात्रकेसरी स्तोत्र, तत्त्वानुशासन जैसे—ऐसे अपूर्व प्रकाशित हुए हैं जिनके दर्शन होने मुशकिल थे और जो खास खास भंडारोंमें ही अपना आसन जमाए हुए जीर्णावस्थाको प्राप्त हो रहे थे। इस तरह पर इस ग्रंथमालाके द्वारा जैनसमाजका बहुत कुछ उपकार हुआ है। परंतु फिर भी हम इतना जरूर कहेंगे कि दिगम्बर जैनियोंकी इस एक मात्र सार्वजनिक (पंचायती) ग्रंथमालाके द्वारा जितना कार्य होना चाहिये था वह अभी तक नहीं हुआ और इस न होनेका प्रधान कारण अर्थाभाव है। परंतु इस अर्थाभावसे किसीको यह न समझ लेना चाहिये कि दिगम्बर जैनियोंमें धनकी अथवा उदारताकी कुछ कमी है। धनकी कोई कमी नहीं है। दिगम्बर सम्प्रदायमें बहुतसे कोट्याधिपति और लक्षाधिपति विद्यमान हैं। खुद इस ग्रंथमालाकी प्रबंधकारिणी कमेटीमें ही धनकुबेर रायबहादुर सर सेठ हुकमचंदजी, रायबहादुर सेठ कल्याणमलजी, रायबहादुर सेठ कस्तूरचंदजी और सेठ गुरुमुखराय सुखानंदजी आदि ऐसे धनाढ्य महाशय शामिल हैं जिनके इशारे मात्र पर धनके ढेरके ढेर लग सकते हैं। उदारताकी भी कोई कमी नहीं पाई जाती। प्रतिवर्ष पूजा-प्रतिष्ठा और मेलों-ठेलों आदिमें दिगम्बर जैनियोंका लाखों रुपया खर्च होता है। हमारे उक्त धनाढ्य महाशयोंने भी कई लाख रुपया धर्मके नाम पर खर्च किया है। तब फिर कमी किस बातकी, जिसके कारण संस्थाको अर्थ कष्ट भोगना पड़ता है ? कमी है ग्रंथप्रकाशनके महत्त्वको न समझनेकी और इस लिये, उस ओर विशेष रुचि न होनेकी। हमारे अधिकांश भाई खासकर धनाढ्यलोग अभी तक इस बातको भूले हुए हैं कि, संसारमें जैनधर्मकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतिष्ठा–उनके धर्मकी स्थिति–इन प्राचीन जैन-ग्रंथोंके आधार पर ही अवलम्बित है और इस लिये उनकी रक्षा करना, वे किसी तरहसे नष्ट न होने पावें, इस बातकी सावधानी रखना, यह हमारा परमधर्म और सबसे प्रथम कर्तव्य कर्म है। उन्हें यह भी खबर नहीं है कि, हमारी इस असावधानी और नासमझीके कारण कितने ग्रंथ-रत्न सर्वथा नष्ट हो चुके हैं—संसारसे अपनी सत्ता उठा चुके हैं—और उनके साथ ही हमारा कितना तत्त्वज्ञान और कितना इतिहास चला गया है। साथ ही, वे यह भी नहीं जानते कि कितने ग्रंथ भंडारोंमें जीर्ण शीर्ण अवस्थाको प्राप्त हो रहे हैं—चूहों तथा दीमकोंका भोज्य बन रहे हैं, कितने ग्रन्थाकी सिर्फ एक एक दो दो प्रतियाँ ही संसारमें अवशिष्ट रह गई हैं और वे भी प्रायः मरणासन्न हैं और कितने ग्रंथोंके सिर्फ नाम सुनाई देते हैं परन्तु उनका दर्शन तक नहीं होता। इसके सिवाय उन्हें इस बातकी भी कोई चिन्ता नहीं है कि इस तरह पर उनका इतिहास अस्तव्यस्त हो रहा है—इधर उधर पड़ा हुआ है, उसके संकलित होनेकी जरूरत है, अथवा अनेक विषयोंमें जो उलझने पड़ी हुई हैं उनके सुलझनेका मार्ग बन्द है, उसे खोलनेके लिये इस बातकी आवश्यकता है कि प्राचीन सभी ग्रंथोंको प्रकाशित करा कर उनकी प्राप्तिको सुगम किया जाय। ऐसी हालतमें उक्त ग्रंथमाला जैसी उपयोगी संस्थाको, चाहे वह किसीकी यादगारमें ही क्यों न स्थापित हो, यदि अर्थ-कष्ट झेलना पड़े और उसकी वजहसे वह अपने कार्यको यथेष्ट रीतिसे न चला सके तो इसमें कुछ भी आश्चर्यकी बात नहीं है।

हमारे भाइयोंको यह बात खूब ध्यानमें रख लेनी चाहिये कि अब वह जमाना गया, जब अनेक मुनिमहाराजोंकी प्रेरणा और धनी-धर्मात्माओंकी सहायतासे ग्रंथोंकी नकलें होकर जगह जगहके भण्डारोंमें पहुँचाई जाया करती थीं और इसतरह पर उनकी रक्षा हुआ करती थीं। अब जमाना मुद्रणकलाके प्रचारका है। लोगोंको छपे हुए ग्रंथोंके पढ़ने पढ़ानेमें बहुत सुभीता मालूम होता है—हस्तलिखित ग्रंथोंके पठन–पाठनमें उन्हें अड़चन जान पड़ती है–सर्वसाधारणकी रुचि हस्तलिखित ग्रंथोंसे उठती जाती है और इसीलिए ग्रंथोंका लिखना लिखाना अब प्रायः बंद हो गया है। साथ ही, जो हस्त-लिखित ग्रंथ मौजूद हैं उनकी देखरेख और रक्षा आदिके प्रयत्न भी प्रायः ढीले पड़ते जाते हैं। समय आनेवाला है जब कि हस्तलिखित ग्रंथ देखनेको भी नहीं मिलेंगे। कालचक्रकी ऐसी दशामें हमारे जितने ग्रंथ भी प्रकाशित होनेसे रह जायँगे उनके प्राणोंका संकट ही समझिये। उन्हें या तो चूहे और दीमक अपने उदरस्थ करेंगे और या वे वैसे ही गल-सड़कर नष्ट भ्रष्ट हो जायँगे। फिर यदि हम लाखों और करोड़ों रुपये खर्च करके भी उनकी प्राप्ति करना चाहेंगे तो वह न हो सकेगी। इस तरह पर न मालूम हम अपने कितने ग्रंथरत्नोंसे हाथ धो बैठेंगे। इस लिये हमारे भाइयोंको ग्रंथोंको प्रकाशित कराकर उनके उद्धार करनेकी ओर सबसे प्रथम और सबसे अधिक ध्यान देनेकी जरूरत है।

इस दिशामें काम करनेके लिये आप लोगोंकी उक्त ग्रंथमाला नामकी संस्था खुली हुई है। उसे हरप्रकारकी सहायता दीजिये, उत्तमोत्तम प्राचीन ग्रंथोंको भंडारोंसे खोजकर उसके पास भिजवाइये, उसके द्वारा मुद्रित और लागतके मूल्यपर बेचे जानेवाले ग्रंथोंको खरीदकर उनका प्रचार कीजिये-उन्हें मंदिरों तथा पुस्तकालयोंमें विराजमान कराइये-और ऐसा यत्न कीजिये कि जिससे उक्त संस्थाको जरा भी अर्थ कष्ट न उठाना पड़े और वह फिर खुले हाथों आपकी यथेष्ट सेवा कर सके।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्तमें हम अपने पाठकोंपर इतना और प्रकट किये देते हैं कि हालमें उक्त संस्थाके मंत्री साहबका हमारे पास एक पत्र आया है जिससे मालूम होता है कि शुरूमें इस ग्रंथमालाके लिये जो लगभग चार हजार रुपयेका फंड एकत्र हुआ था वह सब उपर्युक्त ३० ग्रंथोंके प्रकाशित करनेमें समाप्त हो चुका था और इसलिये ११ जून सन १९१९ को शिमलामें जिनवाणीसेवक श्रीयुत ला० **उम्मेदसिंह मुसद्दीलालजी** अमृतसरवालोंकी प्रेरणासे एक नया फंड खोला गया है और जिसके लिये ब्रह्मचारी शीतल प्रसादजीने यह तजवीज किया है कि वह कमसे कम दसहजार रुपयेका ज़रूर होना चाहिये और उसमें कोई भी रकम १०१) रु० से कमकी न लिखी जानी चाहिये, चाहे इस १०१) की रकमको दो चार सज्जन एकत्र मिलकर ही लिखें। इस फंडमें अभीतक कुल पाँच हजार रुपयेके करीब चंदा हुआ है, शेषकी पूर्ति हमारे भाईयोंको शीघ्र करनी चाहिये। हमें उक्त पत्रसे यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई कि श्रीयुत ला० उम्मेदसिंह मुसद्दीलालजीने, जो कि कोई बहुत बड़े प्रसिद्ध धनाढ्य व्यक्ति नहीं हैं, स्वयं इस फंडमें १००१) रु० प्रदान किया है। अर्थात्, आपने इस ग्रंथमालाके लिए दानवीर सर सेठ हुकमचंदजीके बराबरका चंदा दिया है; और इस तरहपर ग्रंथमालाके साथ अपना हार्दिक प्रेम प्रदर्शित करते हुए, अपनी सच्ची श्रुतभक्तिको सर्व साधारणपर प्रकट किया है। वास्तवमें लाला साहब हमेशासे जिनवाणीके सच्चे भक्त और सेवक रहे हैं। आप जैनग्रंथोंके प्रचारमें बड़े ही दत्तचित्त रहते हैं—अनेक पुस्तकालयों, सभा-सोसाइटियों और जैन अजैन विद्वानोंको बराबर ग्रंथोंकी सहायता दिया करते हैं। आपका जीवन बड़ा ही परोपकारमय है। हमारे भाइयोंको आप जैसे जिनवाणी भक्तोंका अनुकरण करना चाहिये।

२–अन्तर्जातीय विवाह-विधान।

सहयोगी 'दिगम्बर जैन' लिखता है कि कोल्हापुर राज्यने यह नियम पास किया है कि जैनियों और विविध हिन्दू जातियोंका परस्पर विवाहसम्बन्ध विधि-विहित समझा जायगा। यह समाचार उन लोगोंके लिये बहुत ही चिन्ताजनक होगा जो अन्तर्जातीय विवाहोंके कट्टर विरोधी हैं और जिन्हें अनेक शास्त्रप्रमाणोंके मौजूद होते हुए भी, जैनियों जैनियोंकी भिन्न जातियोंमें भी परस्पर विवाहका होना विधिविहित मालूम नहीं होता। जान पड़ता है, जब लोग आपसमें नहीं सुलझते तो, अब राज्योंको प्रजाकी हित-दृष्टिसे स्वयं ही ऐसे मामलोंमें हस्तक्षेप करनेकी जरूरत पैदा हो गई है। ऐसी हालतमें हमारे जैनी भाइयोंको सावधान होना चाहिये और उन्हें पहलेहीसे अपने विवाहविधानोंमें देशकालानुसार ऐसा अविरुद्ध परिवर्त्तन स्वीकार कर लेना चाहिये जिसके स्वीकार न करनेकी हालतमें उन्हें फिर किसी ऐसे विधिविधानके माननेके लिये बाध्य होना पड़े जो उन्हें सर्वथा ही इष्ट न हो।

३–ब्र० भगवानदीनजीको जेल।

समाजमें यह खबर बड़े ही दुःखके साथ सुनी जाती है कि श्रीऋषभब्रह्मचर्याश्रम हस्तिनापुरके संस्थापक और उसके भूतपूर्व अधिष्ठाता श्रीयुत ब्रह्मचारी भगवानदीनजीको करनाल जिलेके किसी मजिस्ट्रेटकी अदालतसे छह महीनेकी जेलकी सजा दी गई है। यह सजा क्यों दी गई? कहा जाता है कि भगवानदीनजीने पानीपतमें कोई व्याख्यान दिया था जिसके कुछ वाक्योंसे शासकोंको राजद्रोहकी गंध आई है। उसीके उपलक्षमें यह दंडविधान किया गया है। हम नहीं कह सकते कि यह दंडविधान कहाँतक सही है। परन्तु जहाँतक हमने पत्रोंमें उन आपत्तिजनक वाक्योंको पढ़ा है, हमें तो उनपरसे (यदि वे सत्य भी हों) स्वप्नमें भी राजद्रोहका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खयाल तक पैदा नहीं होता। हमारी रायमें इस प्रकारके कृत्यों द्वारा व्यर्थ ही एक शान्तिप्रिय समाजको अशान्त बनानेकी चेष्टा की जाती है। राजनैतिक दृष्टिसे भी इस प्रकारकी चेष्टाएँ कभी अच्छी नहीं कही जा सकतीं। अस्तु; उक्त सजाके विरुद्ध अपील दाखिल हो गया है। अदालत अपीलसे सफलताकी बहुत कुछ आशा की जाती है। अपीलके फैसलेतक अदालतसे ब्र० भगवानदीनजीको मूर्तिदर्शन और अपने घरका भोजन-वस्त्रादि व्यवहारमें लानेकी सब आज्ञा पूर्ववत् मिल गई है, यह संतोषकी बात है। अन्तमें हम अपने भाइयोंसे इतना जरूर कहेंगे कि यह सब आपके सामाजिक संगठनके ठीक न होने-उसके सुव्यवस्थित और बलाढ्य न होनेहीका नतीजा है जो इस प्रकारकी दुर्घटनाएँ देखनेमें आती हैं। अन्यथा, भगवानदीनजीके जिस प्रकारके वाक्योंको आपत्तिजनक ठहराया गया है उस प्रकारके वाक्य सैकड़ों व्याख्यानोंमें सुने जाते और पत्रों तथा पुस्तकोंमें पढ़े जाते हैं; परंतु उन पर प्रायः कुछ भी आपत्ति नहीं की जाती है। अतः हमारे भाइयोंको शीघ्र ही अपने सामाजिक संगठनको ठीक करनेकी जीजानसे कोशिश करनी चाहिये, जिससे फिर इस प्रकारकी व्यर्थकी दुर्घटनाएँ देखनेमें न आएँ। इसीमें उनकी रक्षा और इसीमें उनका कल्याण है।

४—बा० दयाचंदजी और उनका पत्र।

हमें अपने पाठकोंपर यह प्रकट करते हुए दुःख होता है कि श्रीयुत बाबू दयाचंदजी गोयलीय-जोकि जैनसमाजमें एक बड़े ही परोपकारी ग्रेज्युएट विद्वान् थे, हिन्दीके सुलेखक थे, जिन्होंने हिन्दीमें दसों उपयोगी पुस्तकें लिखीं और जो जैनहितैषीमें भी बराबर कुछ न कुछ लिखा करते थे—आज इस संसारमें नहीं हैं। कुछ दिन हुए वे हम लोगोंको शोकाकुल छोड़कर स्वयं स्वर्ग सिधार गये हैं। आपका जीवन बड़ा ही सेवामय था। बचपनसे ही आपकी वृत्ति समाज और देशसेवाकी ओर विशेष रही है। आपके व्याख्यानोंमें श्रोताओंको बड़ा ही आनंद आता था। दयाप्रचारके विभागको अपने हाथोंमें लेकर आपने उसके कामको बड़ी ही योग्यताके साथ सम्पादन किया था। अभी आपकी अवस्था बहुत थोड़ी थी—लगभग ३० सालके होगी—इस अल्पावस्थामें आपके इस आकस्मिक वियोगसे समाज और देशको जो क्षति पहुँची है वह अकथनीय है और उसकी शीघ्र पूर्ति होना मुशकिल है। विशेष दुःखकी बात यह है कि आपने अपने प्रतिनिधि रूपसे एक पुत्र छोड़ा था परंतु वह भी कुछ दिनोंके बाद कालका ग्रास बन गया! हम आपकी दुखिया धर्मपत्नी तथा अन्य कुटुम्बीजनोंके दुःखमें समवेदना प्रकट करते हैं और यह भावना करते हैं कि उन सबोंको धैर्यकी प्राप्ति हो।

अन्तमें हम अपने पाठकोंपर इतना और प्रकट किये देते हैं कि उक्त बाबू साहब बड़ी ही निर्भीकताके साथ 'जाति-प्रबोधक' नामका एक मासिकपत्र निकाला करते थे। आपके देहान्तके बादसे इस पत्रका निकलना बंद हो गया था। परंतु बाबू साहबके कुछ मित्र मास्टर चेतनदासजी अदि बराबर इस बातकी कोशिशमें रहे कि उक्त पत्र बाबूसाहबकी यादगारमें जरूर निकलता रहना चाहिये। कुछ महीनोंतक उन लोगोंको इसमें सफलता नहीं हो सकी। अब सुना जाता है कि उक्त पत्र बा० विश्वम्भरदासजी गार्गीयके संपादकत्वमें निकलना शुरू हो गया है और उसका प्रथम अंक निकल चुका है। हम आशा करते हैं कि यह पत्र बाबू साहबकी रीति-नीतिका रक्षा करते हुए चला जायगा।

५—कुरीतिनिवारिणी अग्रवाल जैनसभा।

हालमें कुछ अर्सेसे उक्त नामकी एक सभा स्थापित हुई है जिसके मंत्री बा० रतनलालजी बी. एस. सी., एल. एल. बी. वकील नगीना जि०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बिजनौर हैं और उन्हींके पास उसका दफ्तर है। यह सभा अग्रवाल जैनजातिके प्रतिष्ठित और अग्रेसर धनाढ्य महाशयोंके द्वारा स्थापित हुई है और इसने फिलहाल १७ ज़िलोंमें (बिजनौर, मुरादाबाद, मेरठ, बुलंदशहर, मुजफ्फ़रनगर, सहारनपुर, देहरादून, देहली, करनाल, हिसार, रोहतक, जालंधर, अम्बाला, फीरोजपुर, रावलपिंडी, गुडगाँवाँ और लाहोरमें), जिनमें कि रीतिरिवाज प्रायः समान हैं, कुरीतियोंके दूर करनेका बीड़ा उठाया है। बादमें आवश्यकतानुसार यह अपने क्षेत्रको विस्तृत करेगी। हमारे पास इस सभाका जो विज्ञापन आया है उससे मालूम होता है कि मुरादाबाद, बुलंदशहर, जालंधर और रावलपिंडीको छोड़कर शेष १३ ज़िलोंके कुल ३० महाशय अभीतक इस सभाके सभासद हुए हैं और ये सब ही प्रतिष्ठित तथा अपने अपने शहरोंके अग्रसेर पुरुष है। यदि वे सब लोग सच्चे दिलसे अपने कर्तव्यका पालन करनेके लिये जी जानसे कोशिश करेंगे तो इसमें संदेह नहीं कि अग्रवाल जातिसे बहुत शीघ्र ही कुरीतियाँ दूर हो जायँगीं। हमारे धनाढ्य महाशयोंको भी अब कुरीतियोंको दूर करनेकी शादी और गमीके अवसरोंपर जो व्यर्थ खर्च होता है उसको मेटनेकी चिन्ता पैदा हुई है, यह बहुत ही शुभ शकुन है। हम इस सभाका हृदयसे अभिनंदन करते हैं और भावना करते हैं कि इसको शीघ्र ही अपने उद्देश्योंमें सफलताकी प्राप्ति हो। इसके विषयमें, विशेष हालसे हम अपने पाठकोंको फिर सूचित करेंगे।

६–जैनहितैषीका सम्पादन।

अब तक जैनहितैषीका संपादन श्रीयुत पं० नाथूरामजी प्रेमीके द्वारा बड़ी योग्यताके साथ होता रहा है। और यह सब इन्हींके-सम्पादनकौशलका नतीजा है जो जैनहितैषी, अपने नामको सार्थक करता हुआ, जैन समाजमें एक उच्च कोटिका हिन्दी पत्र बना हुआ है और इतना प्रिय हो रहा है कि आज उसका इतने दिनोंतक बन्द रहना लोगोंको असह्य हो उठा है। परन्तु, जैसा कि इस पत्रमें अन्यत्र प्रकाशित 'प्रारंभिक निवेदन' नामकी प्रेमीजीकी विज्ञप्तिसे प्रकट है, अब इस पत्रका संपादन भार इसी अंकसे मेरे ऊपर रक्खा गया है। यद्यपि मैं, कई कारणोंसे, अभी इस गुरुतर भारको अपने ऊपर लेना नहीं चाहता था–भारको उठानेके लिये पूरी तोरपर समर्थ भी नहीं था–तो भी मित्रवर प्रेमीजीके अतिशय आग्रहके कारण–उपायान्तर न होनेसे उनकी सदिच्छाका व्याघात न हो और उस व्याघातसे समाजको और भी कुछ अधिक समय तक इस पत्रके वियोगका दुःख सहन करना न पड़े, इस ख़यालसे–ओर साथ ही, दूसरे मित्रोंकी प्रेरणा तथा कुछ समयकी ज़रूरतोंको ध्यानमें रखकर मुझे इस भारको अपने सिरपर लेनेके लिये विवश होना पड़ा है। मैं कहाँतक इस भारको उठा सकूँगा और कहाँतक जैनहितैषीकी चिरपालित कीर्तिको सुरक्षित रख सकूँगा, इस विषयमें मैं अभी एक शब्द भी कहनेके लिये तय्यार नहीं हूँ और न कुछ कह ही सकता हूँ। यह सब मेरे स्वास्थ्य तथा विज्ञ पाठकोंकी सहायता, सहकारिता और उत्साहवृद्धि आदिपर अवलम्बित है। परन्तु, बहुत नम्रताके साथ, इतना जरूर कहूँगा कि मैं, अपनी शक्ति ओर योग्यता अनुसार, अपने पाठकोंकी सेवा करने और जैनहितैषीको उन्नत तथा सार्थक बनानेमें कोई बात उठा नहीं रक्खूँगा। आशा है कि मेरे इन संकल्पों तथा विचारोंको पूरा करानेके लिये पाठक हर प्रकारसे मेरी मदद करेंगे। और साथ ही, इस बातकी पूरी कोशिश रक्खेंगे कि जैनहितैषीके विचार, यथावत रूपसे, सब भाईयोंके कानोंतक बराबर पहुँचते रहें और उन्हें पढ़नेको मिलते रहें।

पाठकोंको यह जानकर विशेष हर्ष होगा कि प्रेमीजी अपना सम्बंध इस पत्रसे सर्वथा ही अलग नहीं कर रहे हैं और न वे कर ही सकते हैं। वे बदस्तूर इस पत्रके 'प्रकाशक' और मालिक रहेंगे–उन्हींकी देखरेखमें यह पत्र निकलेगा–और साथ ही, उन्होंने प्रत्येक अंकके लिये कमसे कम एक लेख, यथासंभव, देनेका वादा भी किया है।

सरसावा जि० सहारनपुर
कार्तिक शुक्ल २ सं० १९७६ } विनीत—
जुगलकिशोर, मुख्तार।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हमारे सर्वोपयोगी ग्रन्थ।

३५ चन्द्रगुप्त—द्विजेन्द्रबाबूका हिन्दूराजत्व-कालीन ऐतिहासिक नाटक। मौर्यवंशी सम्राट् चन्द्रगुप्तका नाम कौन नहीं जानता। उन्हींके ऐतिहासिक चरित्रको लेकर-जो पुराणों, ग्रीक ग्रन्थों और दूसरे साधनोंसे जाना गया है—यह नाटक रचा गया है। यह विश्वप्रेम, देशप्रेम और पितृप्रेमके अपूर्व और उदार भावोंसे भरा हुआ है। इसमें ग्रीक-नरेश सेल्यूकसकी बेटी और चन्द्रगुप्तकी रानी हेलेनके अनिन्द्य सुन्दर चरित्रको पढ़कर पाठक मुग्ध हो जायँगे। वह विश्वप्रेमकी साक्षात् प्रतिमा है। उसने दिखला दिया है कि विश्वप्रेमके लिए अपनेको किस तरह बलि किया जाता है। इसमें चाणक्य भी एक अपूर्व रूपसे उपस्थित किया गया है। चाणक्यका ऐसा विलक्षण चित्र अबतक किसी भी कवि-चित्रकारने चित्रित नहीं किया है। मूल्य १≈) जिल्ददारका १॥)

३६ सीता—द्विजेन्द्र बाबूका पौराणिक नाटक। सीताके चरित्रचित्रणमें कविने एक अपूर्वता ला दी है और रामायणकी घटनाओंका अपलाप किये बिना सीताका आदर्शचरित्र आजकलकी दृष्टिसे जितना ऊँचा किया जा सकता था उतना ऊँचा कर दिया है। इस विषयमें अनेक समालोचकोंके मतसे द्विजेन्द्र बाबू महर्षि वाल्मीकि और कविशिरोमणि भवभूतिसे भी अधिक सफलकाम हुए हैं। रामायणको पढ़कर सीतादेवीके ऊपर कविके हृदयमें जो असीम भक्ति और करुणा उत्पन्न हुई है, वही इस नाटकमें प्रकट की गई है। 'काव्यकला' की दृष्टिसे भी यह उच्चश्रेणीका नाटक है। मूल्य नौ आने। जिल्ददारका ॥≶)

३७ छाया-दर्शन—मरनेके बाद जीव कहाँ जाता है, उसकी क्या अवस्था होती है, वह लोगोंको किसप्रकार छायारूप धारण करके दर्शन देता है, बातचीत करता है और सुख दुःख पहुँचाता है, इत्यादि चिरन्तन जटिल प्रश्नों पर यत्किंचित प्रकाश डालनेके लिए यह अपूर्व ग्रन्थ लिखा गया है। पाश्चात्य देशोंमें परलोकगत आत्माओंके सम्बन्धमें अबतक जो जो विचार और आविष्कार हुए हैं, ग्रन्थके प्रारंभमें उनका एक विस्तृत इतिहास दिया है और उसमें इस विषयकी सत्यताको सिद्ध किया है। फिर एक विस्तृत भूमिकामें छाया-दर्शन-तत्त्व पर आर्य ऋषियोंकी साक्षीपूर्वक विचार किया है और इस शरीरके छूट जाने पर भी सूक्ष्मशरीरी आत्माका अस्तित्व रहता है, इसका प्रतिपादन किया है। इसके बाद ऐसी १२-१३ घटनाओंको कहानीके रूपमें लिखा है, जो बहुत ही आश्चर्यजनक और कुतूहलवर्धक हैं तथा जिनके सत्य होनेके विषयमें बड़े बड़े विद्वानों, वैज्ञानिकों और न्यायाधीशोंकी साक्षियाँ हैं। ये घटनायें गल्पोंके ढंगपर लिखी गई हैं, इस कारण इनके पढ़नेमें उपन्यासों जैसा आनन्द आता है। हिन्दीमें इस विषयका यह पहला ही ग्रन्थ है। जो लोग भूतप्रेतोंके अस्तित्वके सम्बन्धमें जिज्ञासु हैं, उन्हें यह ग्रन्थ एकवार अवश्य पढ़ जाना चाहिए। मूल्य सवा रुपया। सजिल्दका १॥≈)

३८ राजा और प्रजा। जगत्प्रसिद्ध लेखक डॉ० सर रवीन्द्रनाथ टागौरके बहुत ही महत्त्वपूर्ण राजनीतिक निबन्ध। इनमें राजा और प्रजाके पारस्परिक सम्बन्धको राजनीतिक और धार्मिक आदि दृष्टियोंसे बहुत दूरदर्शिता और गंभीरताके साथ स्पष्ट किया है। रवीन्द्रबाबूके ग्रन्थकी अधिक प्रशंसा करनेकी आवश्यकता नहीं। मू० सादीका १) और सजिल्दका १।≈)

३९ गोबर-गणेश-संहिता। यह एक व्यंगपूर्ण मनोरंजक ग्रंथ है। चौबेके चिट्ठेके ढँगका है। इसे चिदानन्द चौबेके भाई श्रीगोबरगणेश देव शर्माने अपने विलक्षण बुद्धिचातुर्यसे लिखा है। इससे आपका केवल मनोरंजन ही नही होगा, किन्तु आपके सोचने समझनेकी सैकड़ों बातें इसमें मिलेंगी। हिन्दीमें इस ढंगका यह अद्वितीय ग्रन्थ होगा। मू० सादीका ॥-)सजिल्दका ॥।-)

---

१ प्राकृतिक चिकित्सा। इसमें सब प्रकारके रोग होनेके कारण और उनके बिना कौड़ी पैसेके प्राकृतिक उपाय बतलाये गये हैं। ठंडे पानीके टबमें कटि-स्नान करना, मेहन-स्नान करना; बफारा (वाष्पस्नान) लेना, कोयलोंकी आँचसे पसीना लेना, धूप-स्नान करना, स्वच्छ जलको अधिक परिमाणमें पीना, लम्बी साँसें लेना, व्यायाम तथा प्राणायाम करना, स्वच्छ वायुका सेवन करना, आदि आदि उपायोंको बड़े अच्छे ढंगसे इसमें बतलाया है। प्रत्येक गृहस्थके घरमें रहने योग्य पुस्तक है। मू० ।≈)

२ कर्नल सुरेश विश्वास। सुरेश विश्वास एक बंगाली थे। ये लुटपनमें बड़े ही खिलाड़ी, उपद्रवी, उद्धत और अवाध्य लड़के थे। पढ़ने लिखनेकी ओर इनकी जरा भी रुचि नहीं थी। ये घरसे भागकर यूरोप अमेरिका आदि देशोंमें वर्षों घूमते रहे और केवल स्वावलम्बनके बलसे उन्नति करते करते ब्राजिल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देशकी सेनाके प्रतिष्ठित सेनापति हो गये। इतना ही नहीं ये इंग्लिश, फ्रेंच, पुर्तगीज आदि अनेक भाषाओंके और डाक्टरी ज्योतिष, प्राणिशास्त्र आदि अनेक विज्ञानोंके धुरन्धर पण्डित होगये। इस पुस्तकमें उन्हींका शिक्षाप्रद जीवनचरित है। मू० ॥)

३ **अस्तोदय और स्वावलम्बन**—अर्थात् गिरना, उठना और अपने पैरों खड़े होना। इसे 'सेमुएल स्माइल्स' के 'सेल्फ-हेल्प' का स्वतन्त्र प्रतिबिम्ब समझना चाहिए। 'सेल्फ-हेल्प' या स्वावलम्बनका एक पाठ भी इसमें नहीं लिया गया है फिर भी यह 'स्वावलम्बन' है और स्वावलम्बनसे बढ़ कर है। सारा ग्रन्थ देशी उदाहरणों, देशी भावों और देशी साहित्यके उद्धरणोंसे भरपूर है। प्रारम्भमें 'विद्यार्थियोंको सम्बोधन' नामक एक बहुत प्रभावशाली निबंध है जिसमें भारतवर्षकी महिमा भारतकी उन्नतिकी प्रेरणा, विद्यार्थियोंके कर्तव्य, विद्याकी सफलता आदिके सम्बंधमें जीवनप्रद उपदेश दिया गया है। आगे अस्त और उदय अर्थात् गिरना और उठना कितना स्वाभाविक है, सृष्टिका कैसा अनिवार्य नियम है, यह बतलाकर उसमें दुःख सुख न माननेकी शिक्षा दी गई है और दूसरे भागमें स्वाश्रय अर्थात् स्वावलम्बनकी महिमा तथा उसकी आवश्यकताका प्रतिपादन किया गया है। प्रत्येक बालक और युवाके नित्य स्वाध्याय करनेकी चीज है। स्कूलमें यह पाठ्य ग्रन्थ बनाये जाने योग्य है। मू० १≈) सजिल्दका १।

४ **देव-दूत**—सरस्वतीके प्रसिद्ध कवि-लेखक पं० रामचरित उपाध्यायका नाम हिंदी पाठकोंसे छिपा हुआ नहीं है। यह खण्डकाव्य उन्हींका रचा हुआ जो देशभक्तिके भावोंसे लबालब भरा है। बिलकुल नई कल्पना है। एक देशभक्त स्वर्गमें जाकर उत्पन्न हुआ है। वहाँ उसे अपनी जन्मभूमि भारतवर्ष याद आई है। उससे व्याकुल होकर वह एक देवको अपना दूत बनाता है और उसके द्वारा सन्देश भेजता है। दूतके सम्मुख वह भारतकी जो महत्ता, पूज्यता, श्रेष्ठता, प्रतिपादन करता है, उससे हृदय गद्गद हो आता है। छपाई सुन्दर कागज बढ़िया। मूल्य ।≈)

५ **विधवाकर्तव्य**। एक बहुत ही अनुभवी विद्वानने इस पुस्तकको लिखा है। जैनियों और हिन्दुओंके प्रत्येक धर्म और पन्थकी विधवाओंका कल्याण करनेकी इच्छासे यह लिखी गई है। इससे विधवाओंके असह्य दुःख कम हो जायँगे, वे घरमें शान्ति रखनेकी बालबच्चोंकी सेवा करनेकी, अच्छी शिक्षा देनेकी, समाज-सेवा करनेकी, दीन दुखियोंको सहायता पहुँचानेकी इस तरह अनेक प्रकारकी शिक्षायें पावेंगी और उनका निरर्थक जीवन समाज और देशके अर्थ लगने लगेगा। इसके उपदेश प्रत्येक विधवाके कानों तक पहुँचने चाहिए। सधवायें भी इससे बहुत लाभ उठा सकती हैं। मूल्य ॥)

६ **भारत-रमणी**—द्विजेन्द्र बाबूका यह सामाजिक नाटक है। बाल्यविवाह प्रौढ़विवाह, मनमाना दहेज लेनेकी प्रथा, स्त्रीशिक्षा, विदेशयात्रा आदि अनेक सामाजिक प्रश्नोंके सम्बन्धमें इसमें बड़ी ही मार्मिक और तात्विक बातें कही गई हैं। रचनासौन्दर्यके विषयमें तो कहना ही क्या है। मूल्य ॥≈)

देश-दर्शनका नया संस्करण।

अबकी बार मूल्य ३) की जगह २।) कर दिया गया है और सादी पुस्तकका मूल्य और भी कम अर्थात् १॥) है। इस ग्रंथका अधिकाधिक प्रचार हो, इसी लिए यह मूल्य घटाया गया है। चित्र पहलेकी अपेक्षा दूने हैं, छपाई और बायंडिंग भी सुन्दर है। ग्राहकोंको इसके प्रचारका प्रयत्न करना चाहिए।

आत्मोद्धार, आँखकी किरकिरी, मेवाड़-पतन स्वावलम्बन, बंकिमनिबन्धावली, और दुर्गादास नाटकके नये संस्करण हो चुके हैं। जिन सज्जनोंके पास न हों, वे मँगा लेवें।

मैनेजर—**हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,**
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई।

बम्बईका माल—सब तरहका हमसे मँगाइए।—
"नन्हेंलाल हेमचन्द्र जैन—चन्दाबाडी,
पो० गिरगाँव, बम्बई।"

Printed by Chintaman Sakharam Deo[le] at the Bombay Vaibhav Press, Servants of India Socity's Building, [Sandh]urst Road, Girgaon, Bombay.

Publshed by Nathuram Premi, Pr[oprie]tor, Jain-Granth-Ratnakar Karyalaya, Hira[bag], Bombay.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीवर्द्धमानाय नमः ।

भाग १४ ।

जैनहितैषी ।

अंक २-३ ।

नवम्बर, दिसम्बर १९१९ ।

विषय-सूची ।

१ जैनाचार्यों का शासन-भेद ३३
२ वर-सम्बोधन (कविता) ४३
३ दुष्प्राप्य और अलभ्य जैनग्रन्थ ४४
४ गोत्र-विचार ४६
५ सिद्धसेन दिवाकर और स्वामी समन्तभद्र ५२
६ सेठ हुकमचन्दजीपर अनुचित आक्षेप ५७
७ नीच और अछूत (कविता) ६१
८ विविध विषय (१ विचार बदल गया, २ नई ईजाद, ३ नवीन सोसायटीकी स्थापना, ४ स्वजन और सज्जन-वियोग, ५ अछूतोंको उत्थानका अवसर, ६ स्त्रियोंका सौभाग्य, ७ एक शिक्षित जैनीका मुसलमान होना, ८ हिन्दू और जैनोंकी संख्या, ९ स्त्री-समाजमें आत्म-हत्या, १० माणिकचन्द-ग्रन्थमाला, ११ सोधियाजीका स्वर्गवास) ६१
९ जैन समाजके पण्डित ६८
१० आराधना-पताका और वीरभद्र ७६
११ पुस्तक-परिचय ७९
१२ स्वदेशीमें स्वराज्य ८३
१३ जैनसमाजकी उन्नति क्यों रुकी हुई है ? ८४
१४ समाचार-संग्रह ९२
१५ ऐतिहासिक जैन व्यक्तियाँ ९५

सम्पादक, बाबू जुगलकिशोर मुख्तार ।

मुंबई वैभव प्रेस.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रार्थनायें ।

१ जैनहितैषी किसी स्वार्थबुद्धिसे प्रेरित होकर निजी लाभके लिए नहीं निकाला जाता है। इसके लिए जो समय, शक्ति और धनका व्यय किया जाता है वह केवल निष्पक्ष और ऊँचे विचारोंके प्रचारके लिए। अतः इसकी उन्नतिमें हमारे प्रत्येक पाठकको सहायता देनी चाहिए।

२ जिन महाशयोंको इसका कोई लेख अच्छा मालूम हो उन्हें चाहिए कि उस लेखको वे जितने मित्रोंको पढ़कर सुना सकें अवश्य सुना दिया करें।

३ यदि कोई लेख अच्छा न मालूम हो अथवा विरुद्ध मालूम हो तो केवल उसीके कारण लेखक या सम्पादकसे द्वेषभाव धारण न करनेके लिए सविनय निवेदन है।

४ लेख भेजनेके लिए सभी सम्प्रदायके लेखकोंको आमंत्रण है। —सम्पादक।

नियमावली।

१ जैनहितैषीका वार्षिक मूल्य २) दो रुपया पेशगी है।

२ ग्राहक वर्षके आरंभसे किये जाते हैं और बीचमें ७ वें अंकसे। आधे वर्षका मूल्य १।)

३ प्रत्येक अंकका मूल्य तीन आने।

४ लेख, बदलेके पत्र, समालोचनार्थ पुस्तकें आदि "**बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तार, सरसावा (सहारनपुर)**" के पास भेजना चाहिए। सिर्फ प्रबन्ध और मूल्य आदि सम्बन्धी पत्रव्यवहार इस पतेसे किया जायः—

मैनेजर, **जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,**
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई।

नये जैनग्रन्थ।

१ उत्तरपुराण। आचार्य गुणभद्रकृत मूल और पं० लालारामजीकृत भाषानुवादसहित। मू० १०)

२ त्रैलोक्यसार। मूल और पं० टोडरमलजीकृत भाषावचनिका सहित। मू० ५)

३ क्रियाकोश। पं० दौलतरामजीकृत छन्दोबद्ध ग्रन्थ। मू० २॥)

४ समयसार। आचार्य अमृतचन्द्रकृत आत्मख्याति टीका, तात्पर्यवृत्ति और भाषाटीकासहित। निर्णयसागरका छपा हुआ। मूल्य ४॥)

५ तीस चौवीसीपाठ। कविवर वृन्दावनजी कृत। मू० २)

६ जैनसिद्धान्तप्रवेशिका। स्वर्गीय पं० गोपालदासजी कृत। मू० ।≈)

मैनेजर, **जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,**
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई।

बिनामूल्य।

निम्नलिखित पुस्तकें सम्पादक 'जैनहितैषी' के पाससे विना मूल्य मिलती हैं। जिन भाइयोंको जिस पुस्तककी आवश्यकता हो उन्हें डाक खर्चके लिये आधआनेका टिकट भेजकर उसे सरसावा जि० सहारनपुरसे मँगा लेनी चाहिये। १ विवाहका उद्देश्य, २ अनित्य भावना, ३ मेरी भावना।

ग्राहकोंसे आवश्यक प्रार्थना।

१ हितैषीके प्रेमी ग्राहकोंसे प्रार्थना है कि वे इस वर्षका मूल्य दो रुपया इस अंकको पाते ही मनीआर्डरसे भेज देवें, वी० पी० की राह न देखें। जो सज्जन म० आ० से रुपये भेज देंगे, वे हमारे ऊपर बड़ी भारी कृपा करेंगे—हमें अनेक झंझटोंसे बचावेंगे।

२ जो महाशय ग्राहक न रहना चाहें वे एक कार्डसे सूचना दे देवें और मिले हुए अंक वापस कर देवें।

३ जिन सज्जनोंको पते बदल गये हों, उन्हें नये पतोंकी सूचना दे देनी चाहिए।

—मैनेजर।

देरीका कारण।

जैनहितैषीका पुराना डिक्लेरेशन रद्द हो गया था, इस लिए नया डिक्लेरेशन लेना पड़ा और यह बहुत कुछ प्रयत्न करने पर भी ता० ३ जनवरीके पहले न मिल सका, इसी कारण इतना विलम्ब हुआ और इसीसे दो अंक एक साथ निकाले गये।

—मैनेजर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
सिद्धान्ता[illegible] पं. कैला[illegible] जी शास्त्री
प्राचार्य, श्री स्याद्वाद महाविद्यालय, वाराणसी
द्वारा भेंट
४८३२

हितं मनोहारि च दुर्लभः वचः ।

चौदहवाँ भाग । अंक २

जैनहितैषी

नवम्बर १९१९ मार्गशीर्ष २४४६

न हो पक्षपाती बतावे सुमार्ग, डरे ना किसीसे कहे सत्यवाणी ।
बने है विनोदी भले आशयोंसे, सभी जैनियोंका हितैषी हितैषी ॥

जैनाचार्योंका शासनभेद ।

[द्वितीय लेख ।]

अणुव्रत और रात्रिभोजनविरति ।

जैनधर्ममें, हिंसादिक पापोंकी देशतः निवृत्ति (स्थूलरूपसे त्याग) का नाम ' अणुव्रत ' और उसकी प्रायः सर्वतः निवृत्तिका नाम महाव्रत है । व्रतोंकी ये अणु और महत् संज्ञायें परस्पर आपेक्षिक हैं । वास्तवमें सर्वसावद्ययोगकी निवृत्तिको व्रत कहते हैं । वह निवृत्ति एकदेश होनेसे अणुव्रत और सर्वदेश होनेसे महाव्रत कहलाती है । गृहस्थ लोग समस्त सावद्ययोगका—हिंसाकर्मोंका—पूरी तौरसे त्याग नहीं कर सकते इस लिये उनके लिये आचार्योंने अणुरूपसे कुछ व्रतोंका विधान किया है, जिनकी संख्या और विषय-संबंधमें कुछ आचार्योंके परस्पर मत-भेद है । उसी मत-भेदको स्थूलरूपसे दिखलानेका आज यत्न किया जाता है। साथ ही, रात्रिभोजनविरतिके सम्बन्धमें जो आचार्योंका शासनभेद है उसे भी कुछ दिखलानेकी चेष्टा की जायगी:—

श्रीसमन्तभद्राचार्यने रत्नकरंडश्रावकाचारमें, कुन्दकुन्द मुनिराजने चारित्रपाहुड़में, उमास्वाति मुनीन्द्रने तत्त्वार्थसूत्रमें, सोमदेवसूरिने यशस्तिलकमें, वसुनन्दीने श्रावकाचारमें, अमितगतिने उपासकाचारमें और श्वेताम्बराचार्य श्रीहेमचंद्रने योगशास्त्रमें अणुव्रतोंकी संख्या पाँच दी है जिनके नाम प्रायः इस प्रकार हैं:—

१ अहिंसा, २ सत्य, ३ अचौर्य, ४ ब्रह्मचर्य ५ परिग्रहपरिमाण । ये पाँचों व्रत अपने प्रतिपक्षी स्थूल हिंसादिक पापोंसे विरतिरूप वर्णन किये गये हैं । यह दूसरी बात है कि किसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किसी ग्रंथमें इनका दूसरे पर्यायनामोंसे उल्लेख किया गया है, परंतु नामविषयक आशय सबका एक है, इसमें कोई विप्रतिपत्ति नहीं है। श्वेताम्बरोंके 'उपासकदशा' में भी इन्हींका उल्लेख है और उनका 'श्रावकप्रज्ञप्ति' नामका ग्रंथ भी इन्हींका विधान करता है। इन व्रतोंकी संख्याके विषयमें श्रीकुंदकुन्दाचार्य लिखते हैं कि 'पंचेवणुव्वयाइं' (पंचैव अणुव्रतानि); अर्थात्, अणुव्रत पाँच ही हैं। वसुनन्दी आचार्य भी अपने श्रावकाचारमें यही वाक्य देते हैं। सोमदेवने इसका संस्कृतानुवाद दिया है और श्रावकप्रज्ञप्तिमें भी यही (पंचेवणुव्वयाइं) वाक्य ज्योंका त्यों पाया जाता है। श्रावकप्रज्ञप्तिके टीकाकार श्रीहरिभद्रसूरि इस वाक्यपर लिखते हैं—

'पंचेति संख्या। एवकारोऽवधारणे। पंचैव न चत्वारि षड्वा।'

अर्थात्—पाँचकी संख्याके साथ 'एव' शब्द अवधारण अर्थमें है जिसका आशय यह है कि अणुव्रत पाँच ही हैं, चार अथवा छह नहीं हैं।

इस तरह पर बहुतसे आचार्योंने अणुव्रतोंकी संख्या सिर्फ पाँच दी है और उक्त पाँचों ही व्रतोंको अणुव्रत रूपसे वर्णन किया है। परंतु समाजमें कुछ ऐसे आचार्य तथा विद्वान् भी हो गये हैं जिन्होंने उक्त पाँच व्रतोंको ही अणुव्रत रूपसे स्वीकार नहीं किया, बल्कि 'रात्रिभोजनविरति' नामके एक छठे अणुव्रतका भी विधान किया है। जैसा कि नीचे लिखे कुछ प्रमाणोंसे प्रकट है:—

क—'अस्य (अणुव्रतस्य) पंचधात्वं बहुमतादिष्यते क्वचित्तु रात्र्यभोजनमपि अणुव्रतमुच्यते। तथा भवति।'

—सागारधर्म टीका।

इन वाक्यों द्वारा पं० आशाधरजीने, जो १३ वीं शताब्दीके विद्वान् हैं, यह सूचित किया है कि अणुव्रतोंकी यह 'पंच' संख्या बहुमतकी अपेक्षासे है। कुछ आचार्योंके मतसे 'रात्रिभोजनविरति' भी एक अणुव्रत है, सो वह अणुव्रत ठीक ही है।

ख—व्रतत्राणाय कर्तव्यं रात्रिभोजनवर्जनम्।
सर्वथान्नान्निवृत्तेस्तत्प्रोक्तं षष्ठमणुव्रतम्॥ ५-७०॥

—आचारसारः।

यह वाक्य श्रीवीरनन्दी आचार्यका है जो आजसे आठसौ वर्ष पहले, विक्रमकी १२ वीं शताब्दीमें, हो गये हैं। इसमें कहा गया है कि (मुनिको) अहिंसादिक व्रतोंकी रक्षाके लिये सर्वथा रात्रिभोजनका त्याग करना चाहिये और अन्नकी निवृत्तिसे वह रात्रिभोजनका त्याग छठा अणुव्रत कहा जाता है, अथवा कहा गया है।

ग—'रात्रावन्नपानखाद्यलेह्येभ्यश्चतुर्भ्यः सत्त्वानुकंपया विरमणं रात्रिभोजनविरमणं षष्ठमणुव्रतम्।'
'वधादसत्याच्चौर्याच्चकामाद्ग्रंथान्निवर्त्तनम्।
पंचधाणुव्रतं राज्यभुक्तिः षष्ठमणुव्रतम्॥'

—चारित्रसारः।

ये वचन श्रीनेमिचंद्र सिद्धान्तचक्रवर्तीके शिष्य चामुण्डरायके हैं जो आजसे लगभग एक हजार वर्ष पहले, विक्रमकी ११ वीं शताब्दीके शुरूमें हो गये हैं। इन वचनोंद्वारा स्पष्टरूपसे यह बतलाया गया है कि रात्रिभोजनत्यागको छठा अणुव्रत कहते हैं और यह उन पंच प्रकारके अणुव्रतोंसे भिन्न है जो हिंसाविरति आदि नामोंसे कहे गये हैं। यहाँपर इतना विशेष और है कि वीरनन्दी आचार्यने तो अन्नसे निवृत्त होनेको छठा अणुव्रत बतलाया है परंतु चामुंडराय अन्न, पान, खाद्य और लेह्य, ऐसे चारों प्रकारके आहारके त्यागको छठा अणुव्रत प्रतिपादन करते हैं। दोनों विद्वानोंके कथनोंमें यह परस्पर भेद क्यों? इसमें जरूर कोई गुप्त रहस्य जान पड़ता है। जब महाव्रती मुनियोंको भी रात्रिभोजनके त्यागका व्रतोंसे पृथक्रूप उपदेश दिया गया है और उनसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भोजनका सर्वथा त्याग—चारों प्रकारके आहारका त्याग—कराया गया है तब अणुव्रती गृहस्थोंको खासकर व्रतप्रतिमाधारी श्रावकोंको,—इस विषयमें उनके बिलकुल समकक्ष रखना—उनसे भी बराबरका त्याग कराना—कहाँतक न्याय्य है, और इससे अणुव्रत और महाव्रतके त्यागमें परस्पर कुछ विशेषता रहती है या कि नहीं, यह बात हृदयमें जरूर खटकती है ।

प्रायः ऐसा मालूम होता है कि जिन विद्वानोंने श्रावककी छठी प्रतिमाको दिवामैथुनत्यागरूपसे वर्णन किया है—रात्रिभोजनत्यागरूपसे नहीं—उन्होंने दूसरी व्रतप्रतिमामें या उससे भी पहले रात्रिभोजनका सर्वथा त्याग करा दिया है । और जिन्होंने छठी प्रतिमाको रात्रिभोजनत्यागरूपसे प्रतिपादन किया है उन विद्वानोंने या तो रात्रिभोजनत्यागका उससे पहले अपने ग्रंथमें उपदेश ही नहीं दिया और या उसका कुछ मोटे रूपसे त्याग कराया है । यहाँ पर दोनोंके कुछ उदाहरण पाठकोंके सामने रक्खे जाते हैं जिससे रात्रिभोजनत्याग विषयमें आचार्योंका मत-भेद और भी स्पष्टताके साथ उन्हें व्यक्त हो जायः—

१ वसुनन्दी आचार्यने, अपने श्रावकाचारमें, छठी प्रतिमा 'दिवामैथुनत्याग' (दिनमें मैथुन नहीं करना) करार दी है और रात्रिभोजनका त्याग आप पहली प्रतिमावालेके वास्ते आवश्यक ठहराते हैं । आपने लिखा है कि रात्रिभोजनका करनेवाला ११ प्रतिमाओंमेंसे पहिली प्रतिमाका धारक भी नहीं हो सकता । यथाः—

एयादसेसु पढगं विजदो णिसिभोयणं कुणं तस्स ।
ठाणं ण ठाइ तम्हा णिसिभुत्तं परिहरे णियमा ॥३१४॥

२ अमितगति आचार्यने भी अपने उपासकाचारमें, छठी प्रतिमाको 'दिवामैथुनत्याग' वर्णन किया है और वे रात्रिभोजनत्यागका विधान व्रतोंके उपदेशसे भी पहले करते हैं, जिससे मालूम होता है कि वे पाक्षिक तथा दर्शनिक श्रावकके लिये उसका नियम करते हैं; जैसा कि पहले अष्टमूलगुणसंबंधी लेखमें प्रकट किया गया है ।

३ पं० वामदेव भी अपने 'भावसंग्रह' ग्रंथमें दर्शनिक अर्थात् पहली प्रतिमाधारक श्रावकके लिये रात्रिभोजनका त्याग आवश्यक बतलाते हैं—

'दर्शनिकः प्रकुर्वीत रात्रिभोजनवर्जनम् ।'

४ पं० आशाधरजीका भी मत छठी प्रतिमाके विषयमें 'दिवामैथुनत्याग' का है । उन्होंने अपने सागारधर्मामृतमें रात्रिभोजनके त्यागका विधान पाक्षिक श्रावकसे प्रारंभ किया है और उसे क्रमसे बढ़ाया है । पाक्षिक श्रावकसे सामान्यतया भोजनका—अन्नका—त्याग कराकर दर्शनिक श्रावकके त्यागमें कुछ विशेषता की है—उसके लिये दिनके प्रथम मुहूर्त्त और अन्तिम मुहूर्त्तमें भी भोजनका निषेध किया है, और साथ ही, रोगनिवृत्ति तथा स्वास्थ्यरक्षाके लिये रात्रिको जल-फल-घृत-दुग्धादिकका सेवन भी दूषित ठहराया है—और अन्तमें फिर व्रतिक श्रावकसे चारों प्रकारके भोजनका सदाके लिये त्याग कराकर इस रात्रिभोजनके कथनको पूरा किया है ।

५ श्रीचामुंडराय भी इसी प्रकारके विद्वानोंमें हुए हैं । उन्होंने भी चारित्रसारमें छठी प्रतिमा 'दिवामैथुनत्याग' स्थापित की है । और इसीलिये वे दूसरी प्रतिमामें ही पूरी तौरसे रात्रिभोजनके त्यागका विधान करते हैं । उनके वे विधिवाक्य ऊपर उद्धृत किये गये हैं ।

ये तो हुए प्रथम प्रकारके विद्वानोंके उदाहरण अब दूसरी प्रकारके विद्वानोंके भी कुछ उदाहरण, लीजियेः—

६ श्रीसमन्तभद्राचार्यने, रत्नकरंडमें 'रात्रिभोजनविरति' को छठी प्रतिमा बतलाया है,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और उससे पहले ग्रंथभरमें कहीं भी रात्रिभोजनके त्यागका विधान नहीं किया है। वे चारों प्रकारके आहारका इसी प्रतिमामें त्याग कराते हैं। यथाः—

अन्नं पानं खाद्यं लेह्यं नाश्नाति यो विभावर्याम्।
स च रात्रिभुक्तिविरतः सत्वेष्वनुकम्पमानमनाः॥

७ ब्रह्मनेमिदत्तने भी अपने 'धर्मोपदेश पीयूष-वर्ष' नामके श्रावकाचारमें, समन्तभद्रके सदृश 'रात्रिभोजनविरति'को ही छठी प्रतिमा करार दिया है और उसी तरहपर चारों प्रकारके आहारका उसमें त्याग कराया है। यथाः—

अन्नं पानं तथा खाद्यं लेह्यं रात्रौ हि सर्वदा।
नैव भुंक्ते पवित्रात्मा स षष्ठः श्रावको मतः॥

परंतु नेमिदत्तने इससे पहले भी अपने ग्रंथमें रात्रिभोजनका कुछ त्याग कराया है। लिखा है कि रात्रिमें यदि सामान्यतया जल ताम्बूल और औषधका ग्रहण करते हो तो करो परन्तु फलादिकको ग्रहण करना नहीं चाहिये और इसके समर्थनमें एक प्राकृत वाक्य भी दिया है। यथाः—

"सामान्यतो निशायां च जलं ताम्बूलमौषधं।
गृह्णन्ति चेव गृह्णंतु नैव ग्राह्यं फलादिकं॥
यदुक्तं। तम्बोलो सहु जलमुइवि, जो अंथविए सूरि।
भोग्गासणि फल अहिलसइ ते किउ दंसणु दूरि॥"

वीरनन्दी आचार्यका श्रावकाचार-विषयक कोई ग्रंथ हमें उपलब्ध नहीं हुआ। परन्तु चूँकि आपने, रात्रिभोजनके त्यागमें सिर्फ अन्नकी निवृत्तिसे ही छठे अणुव्रतका होना सूचित किया है इसलिये आप इस द्वितीयवर्गके ही विद्वान् मालूम होते हैं और संभवतः यही वजह है कि आपके और चामुंडरायके छठे अणुव्रतके स्वरूपकथनमें परस्पर भेद पाया जाता है। यदि ऐसा नहीं है, अर्थात् वीरनन्दी प्रथम वर्गके विद्वानोंमें शामिल हैं तो कहना होगा कि आपके उपर्युल्लिखित पद्यमें 'अन्नात्' पद उपलक्षण है और इसलिये उसकी निवृत्तिसे छठे अणुव्रतमें रात्रिके समय अन्न, पान, खाद्यादिके सभी प्रकारके आहारका त्याग कराया गया है। ऐसी हालतमें फिर महाव्रत और अणुव्रतके त्यागमें कोई विशेषता नहीं रहेगी। परंतु विशेषता रहो अथवा मत रहो, और वीरनन्दी प्रथम वर्गके विद्वान् हों अथवा दूसरे वर्गके, पर इसमें सन्देह नहीं कि ऊपरके इन सब अवतरणोंसे रात्रिभोजनविषयक आचार्योंका शासनभेद बहुत कुछ व्यक्त हो जाता है और साथ ही छठी प्रतिमाका नाम और स्वरूपसंबन्धी कुछ मतभेद भी पाठकोंके सामने आ जाता है। अस्तु।

अब हम फिर अपने उसी छठे अणुव्रतपर आते हैं, और देखते हैं कि उसका कथन कितना पुराना है—

घ—विक्रमकी १० वीं शताब्दीके विद्वान् श्रीदेवसेन आचार्य, अपने 'दर्शनसार' नामक ग्रंथमें, कुमारसेन नामके एक मुनिके द्वारा विक्रमराजाकी मृत्युसे ७५३ वर्षबाद काष्ठासंघकी उत्पत्तिका वर्णन करते हुए, लिखते हैं कि कुमारसेनने छठे अणुव्रतका (छट्ठं च अणुव्वदं नाम) विधान किया है। इससे मालूम होता है कि रात्रिभोजनत्याग नामका छठा अणुव्रत आजसे बारहसौ वर्षसे भी अधिक समय पहले माना जाता था। परंतु इस कथनसे किसीको यह नहीं समझ लेना चाहिये कि कुमारसेन नामके आचार्यने ही इस अणुव्रतकी ईजाद की है—उन्होंने ही सबसे पहले इसका उपदेश दिया है। ऐसा नहीं है। उनसे पहले भी कुछ आचार्यों द्वारा यह अणुव्रत माना जाता था; जैसा कि, इस लेखमें, इसके बाद ही दिखलाया जायगा और इसलिये कुमारसेनके द्वारा इस व्रतके विधानका सिर्फ इतना ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आशय लेना चाहिये कि उन्होंने इसे अपने सिद्धान्तोंमें स्वीकार किया था।

ङ—श्रीपूज्यपाद स्वामीने, अपने 'सर्वार्थसिद्धि' नामक ग्रंथके सातवें अध्यायमें, प्रथम सूत्रकी व्याख्या करते हुए, 'रात्रिभोजनविरमण' नामके छठे अणुव्रतका उल्लेख इस प्रकारसे किया है:—

"ननु च षष्ठमणुव्रतमस्ति रात्रिभोजनविरमणं तदिहोपसंख्यातव्यं । न । भावनास्वन्तर्भावात् । अहिंसाव्रतभावनाहि वक्ष्यंते । तत्र आलोकितपानभोजन भावना कार्येति ।"

इससे मालूम होता है कि श्रीपूज्यपादके समयमें, जिनका अस्तित्वकाल विक्रमकी छठी शताब्दीका पूर्वार्ध* माना जाता है, रात्रिभोजनविरमण नामका छठा अणुव्रत प्रचलित था।

परन्तु चूँकि उमास्वाति आचार्यने तत्त्वार्थसूत्रमें इस छठे अणुव्रतका विधान नहीं किया इसलिये, आचार्य पूज्यपादने अपने ग्रंथमें इसका एक विकल्प उठाकर—अर्थात्, यह प्रश्न खड़ा करके कि 'जब रात्रिभोजनविरमण नामका छठा अणुव्रत भी है तब यहाँ व्रतोंके प्रतिपादक इस सूत्रमें उसका भी संमेलन और परिगणन होना चाहिये था? उत्तरमें बतलाया है कि, इस व्रतका अहिंसाव्रतकी 'आलोकितपानभोजन' नामकी भावनामें अंतर्भाव है इसलिये यहाँ पृथक् रूपसे कहने और गिननेकी जरूरत नहीं हुई। और इस तरहपर उक्त प्रश्नके उत्तरकी भरपाई करके सूत्रकी अनुपपत्ति अथवा त्रुटिका परिहार किया है। यद्यपि इस कथनसे आचार्यमहोदयका छठे अणुव्रतके विषयमें कोई विरुद्ध मत मालूम नहीं होता—बल्कि कथनशैलीसे उनकी इस विषयमें प्रायः अनुकूलता ही पाई जाती है—तो भी प्रायः मूलग्रंथके अनुरोधादिसे उस समय उन्होंने उक्त प्रकारका उत्तर देना ही उचित समझा ऐसा जान पड़ता है। अकलंकदेवने भी, अपने राजवार्तिकमें पूज्यपादके वाक्योंका प्रायः अनुसरण और उद्धरण करते हुए, रात्रिभोजनविरतिको छठा अणुव्रत प्रकट किया है (तदपि षष्ठमणुव्रतं) और उसके विषयमें वे ही विकल्प उठाकर उसे आलोकितपानभोजन नामकी भावनामें अंतर्भूत किया है *। साथ ही, आलोकितपानभोजनमें प्रदीपादिके विकल्पोंको उठाकर और नानारंभदोषादिकके द्वारा उनका समाधान करके कुछ विशेष कथन भी किया है। परन्तु वस्तुतः रात्रिभोजनविरति नामके छठे अणुव्रतका आलोकितपानभोजन नामकी भावनामें अंतर्भाव होता है या कि नहीं, यह बात अभी विचारणीय है। और इसके लिये सबसे पहले हमें अहिंसाणुव्रतका स्वरूप देखना चाहिये। अर्थात्, यह मालूम करना चाहिये कि अहिंसाणुव्रतके धारकके वास्ते कितनी और किसप्रकारकी हिंसाके त्यागका विधान किया गया है। यदि अहिंसा अणुव्रतके स्वरूपमें—अहिंसा महाव्रतके स्वरूपमें नहीं—रात्रिभोजनका त्याग नियमसे आजाता है तब तो उसकी भावनामें भी उसका समावेश हो सकता है और यदि मूल अहिंसाअणुव्रतके स्वरूपमें ही रात्रिभोजनका त्याग नहीं बनता—लाजमी नहीं आता—तब फिर उसकी भावनामें

---

* देवसेनाचार्यने 'दर्शनसार' ग्रंथमें लिखा है कि श्रीपूज्यपादके शिष्य वज्रनन्दीके द्वारा वि० सं० ५२६ में द्राविडसंघकी उत्पत्ति हुई है। प्रोफेसर के० बी० पाठकने किसी कनड़ी ग्रंथके आधारपर मालूम किया है कि पूज्यपाद स्वामी दुर्विनीत राजाके समयमें हुए हैं। दुर्विनीत राजा उनका शिष्य था, जिसने वि० सं० ५३५ से ५७०तक राज्य किया है। इससे पूज्यपादका उक्त समय प्रायः ठीक मालूम होता है।

* स्यान्मतमिह रात्रिभोजनविरत्युपसंख्यानं कर्तव्यं तदपि षष्ठमणुव्रतमिति । तन्न । किं कारणं भावनान्तर्भावात् । —राजवार्तिकम् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही उसका समावेश कैसे हो सकता है। क्योंकि भावनाएँ व्रतोंकी स्थिरताके लिये कही गई हैं। जो बात मूलमें ही नहीं उसकी फिर स्थिरता ही क्या की जा सकती है? अतः सबसे पहले हमें अहिंसाणुव्रतके स्वरूपको सामने रखना चाहिये और तब उसपरसे विचार करना चाहिये कि उसकी आलोकितपानभोजन (देखकर खाना-पीना) नामकी भावनामें रात्रिभोजनविरतिका अंतर्भाव होता है या कि नहीं। अहिंसाणुव्रतका स्वरूप श्रीसमंतभद्राचार्यने इसप्रकार बतलाया है—

संकल्पात्कृतकारितमननाद्योगत्रयस्य चरसत्वान्।
न हिनस्ति यत्तदाहुः स्थूलवधाद्विरमणं निपुणाः॥

इस स्वरूपमें अणुव्रतीके लिये स्थूलरूपसे त्रसजीवोंकी सिर्फ संकल्पी हिंसाके त्यागका विधान किया गया है। आरंभी * और विरोधी हिंसाका वह प्रायः त्यागी नहीं होता। श्रीहेमचंद्राचार्य भी, अपने योगशास्त्रमें, 'निरागस्त्रसजंतूनां हिंसां संकल्पतस्त्यजेत्,' इस वाक्यके द्वारा संकल्पसे निरपराधी त्रस जीवोंकी हिंसाके त्यागका विधान करते हैं। रात्रिभोजनमें दिनकी अपेक्षा हिंसाकी अधिक संभावना जरूर है परन्तु वह उक्त संकल्पी हिंसा नहीं होती जिसके त्यागका व्रती श्रावकके लिये नियम किया गया है और इसलिये अहिंसाणुव्रतकी प्रतिज्ञामें रात्रिभोजनका त्याग नहीं आता। उसके लिये जुदा नियमादिक करनेकी जरूरत होती है। इसी लिये गृहस्थोंको रात्रिभोजनके त्यागका पृथक् उपदेश दिया गया है। कुछ आचार्योंने अहिंसाणुव्रतके बाद, कुछने पाँचों अणुव्रतोंके बाद, कुछने भोगोपभोगपरिमाण नामके गुणव्रतमें और कुछने अणुव्रतोंके कथनसे भी पहले इसका वर्णन किया है। और अनेक आचार्योंने स्पष्ट तौरपर इसे छठा अणुव्रत ही करार दिया है जैसा कि ऊपर दिखलाया गया है। अतः यह एक पृथक् व्रत जान पड़ता है और उक्त आलोकितपानभोजन नामकी भावनामें इसका अन्तर्भाव नहीं होता। हाँ, महाव्रतियोंके त्यागकी दृष्टिसे, जिसमें सब प्रकारकी हिंसाको छोड़ा जाता है, और गोचरीके भी कुछ विशेष नियम हैं, आलोकितपानभोजन नामकी भावनामें रात्रिभोजनके त्यागका समावेश जरूर हो सकता है। और संभवतः इसीपर लक्ष्य रखते हुए श्रीपूज्यपाद और अकलंकदेवने अपने अपने ग्रंथोंमें उक्त प्रकारके उत्तरका विधान किया जान पड़ता है। ऐसा मालूम होता है कि विकल्पको उठाकर उसका उत्तर देते समय उनकी दृष्टि अहिंसाणुव्रतके स्वरूपपर नहीं पहुँची—उनके सामने उस समय अहिंसा महाव्रतके स्वरूपका नकशा और मुनियोंके चरित्रका चित्र ही रहा है, और इस लिये, उन्होंने उसीके ध्यानमें रात्रिभोजनविरमण नामके छठे अणुव्रतको अहिंसाव्रतकी आलोकितपानभोजन नामकी भावनामें अंतर्भूत कर दिया है। हमारा यह खयाल और भी दृढ होता है जब हम राजवार्तिकमें उन विशेष विकल्पोंके उत्तर प्रत्युत्तरोंको देखते हैं जो आलोकितपानभोजनके सम्बंधमें उठाए गये हैं वे सब मुनियोंसे ही सम्बंध रखते हैं। जैसे कि, दीपादिकके प्रकाशमें देख भालकर रात्रिको भोजनपानकरनेमें जो आरंभ दोष होता है उसे यदि परकृतप्रदीपादिसे हटाया जाय तो फिर भोजनके वास्ते मुनियोंका रात्रिको विहारादिक नहीं बन सकता; क्योंकि आचारशास्त्रका ऐसा उपदेश है—

'ज्ञानादित्यस्वेंद्रियप्रकाशपरीक्षितमार्गेण युगमात्रपूर्वापेक्षी देशकाले पर्यट्य यतिः भिक्षां शुद्धामुपादीयते इत्याचारोपदेशः।'

---

* गृहवाससेवनरतो मंदकषायप्रवर्तितारंभः।
आरंभजां स हिंसां शक्नोति न रक्षितुं नियतम्॥
—अमितगतिः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचारशास्त्रकी यह विधि रात्रिको नहीं बन सकती। अतः परकृत प्रदीपादिके कारण आरंभदोष न होते हुए भी, विहारादिक न बन सकनेसे, मुनियोंके रात्रिको भोजन नहीं बनता। इसी तरहपर आगे और भी, दिनको भोजन लाकर उसे रात्रिको खाने आदिके विकल्प उठाए गये हैं और उनका फिर मुनियोंके सम्बन्धमें परिहार किया गया है, जिन सबसे यह बिलकुल स्पष्ट हो जाता है कि मुनिधर्मको लक्ष्य करके ही रात्रिभोजनविरमणका आलोकितपानभोजन नामकी भावनामें अन्तर्भाव किया गया है; श्रावकधर्म अथवा उक्त छठे अणुव्रतको लक्ष्य करके नहीं। वास्तवमें अहिंसादिक व्रतोंकी पाँच पाँच भावनाएँ भी प्रायः मुनियोंको—महाव्रतियोंको—लक्ष्य करके ही कही गई हैं; जैसा कि शास्त्रोंमें दिये हुए ईर्यासमिति, भैक्ष्यशुद्धि, शून्यागारावास आदि उनके नामों तथा स्वरूपसे प्रकट है और जिनके विषयमें यहाँ विशेष लिखनेकी जरूरत नहीं है। महाव्रतोंकी अस्थिरतामें मुनियोंके एक भी उत्तरगुण नहीं बन सकता, अतः व्रतोंकी स्थिरता संपादन करनेके लिये ही मुनियोंके वास्ते इन सब भावनाओंका खास तौरसे विधान किया गया है, जैसा कि श्लोकवार्तिकमें श्रीविद्यानंद स्वामीके निम्न वाक्यसे प्रकट है—

> तत्स्थैर्यार्थं विधातव्या भावनाः पंच पंच तु।
> तदस्थैर्ये यतीनां हि संभाव्यो नोत्तरो गुणः ॥

अणुव्रती श्रावकके लिये इन भावनाओंमेंसे आलोकितपानभोजन नामकी भावनाका प्रायः इतना ही आशय हो सकता है कि, मोटे रूपसे अच्छी तरह देख भालकर भोजनपान किया जाय—वैसे ही बिना देखे भाले अन्धेरे आदिमें अनापशनाप भोजन न किया जाय। इससे अधिक, रात्रिभोजनके त्यागका अर्थ उससे नहीं लिया जा सकता। उसके लिये जुदा प्रतिज्ञा करनी होती है। यह भावना है, इसे व्रत अथवा प्रतिज्ञा नहीं कह सकते। व्रत कहते हैं अभिसंधिकृत नियमको—अर्थात्, यह काम मुझे करना है अथवा यह काम मैं नहीं करूँगा, इस प्रकारके नियमको और भावना नाम है पुनः पुनः चिन्तवनका। आलोकितपानभोजन नामकी भावनामें इस प्रकारका चिन्तवन किया जाता है कि 'मेरे अहिंसा व्रतकी शुद्धिके लिये देख भालकर भोजन हुआ करे।' इससे पाठक समझ सकते हैं कि यह चिन्तवन कहाँ तक उस रात्रिभोजनविरति नामके व्रत अथवा अणुव्रतकी कोटिमें आता है, जिसमें इस प्रकारका नियम किया जाता है कि मैं रात्रिको अमुक अमुक प्रकारके आहारका सेवन नहीं करूँगा। अस्तु; यहाँ हम अपने पाठकों पर इतना और प्रकट किये देते हैं कि श्रीविद्यानंदस्वामीने, अपने श्लोकवार्तिकके इसी प्रकरणमें, छठे अणुव्रतका उल्लेख नहीं किया है; बल्कि रात्रिभोजनविरतिको अहिंसादिक पाँचों व्रतोंके अनन्तर ही अस्तित्व रखनेवाला एक पृथक् व्रत सूचित करते हुए उसे उक्त प्रकारके प्रश्नों तथा विकल्पोंके साथ, आलोकितपानभोजन नामकी भावनामें अंतर्भूत किया है। जैसा कि उनके निम्न वाक्योंसे प्रकट है:—

> " ननु पंचसु व्रतेष्वनंतर्भावादिह रात्रिभोजनविरत्युपसंख्यामिति चेन्न, भावनान्तर्भावात्। तत्रानिर्देशाद्युक्तोऽन्तर्भाव इति चेन्न, आलोकितपानभोजनस्य वचनात्। "

इससे मालूम होता है कि विद्यानंद स्वामीकी दृष्टि श्रीपूज्यपाद और अकलंकदेवकी उस सदोष उक्ति पर पहुँची है, जिसके द्वारा उन्होंने उक्त छठे अणुव्रतको आलोकितपानभोजन नामकी भावनामें अंतर्भूत किया था; और इस लिये उन्होंने उसका उपर्युक्त प्रकारसे संशोधन करके कथनके पूर्वापर संबंधको एक प्रकारसे ठीक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किया है । वास्तवमें वार्तिककारोंका काम भी प्रायः यही होता है । वे अपनी समझ और शक्तिके अनुसार उक्त, अनुक्त और दुरुक्त तीनों प्रकारके अर्थोंकी चिन्ता विचारणा और अभिव्यक्ति किया करते हैं । उक्तार्थोंमें जो उपयोगी और ठीक होते हैं उनका संग्रह करते हैं, शेषको छोड़ते हैं; अनुक्तार्थोंको अपनी ओरसे मिलाते हैं और दुरुक्तार्थोंका संशोधन करते हैं—जैसा कि श्रीहेमचंद्राचार्य प्रतिपादित 'वार्तिक' के निम्न लक्षणसे प्रकट है:—

उक्तानुक्तदुरुक्तार्थचिन्ताकारि तु वार्तिकम् ।

अकलंकदेव भी वार्तिककार हुए हैं । उन्होंने भी अपने राजवार्तिकमें ऐसा किया है । परन्तु उनकी दृष्टि पूज्यपादकी उक्त सदोष उक्ति पर नहीं पहुँची ऐसा मालूम होता है । अथवा कुछ पहुँची भी है, यदि उनके 'तदपि षष्ठमणुव्रतं' इस वाक्यका 'वह (रात्रिभोजनविरति) भी छठा अणुव्रत है' ऐसा अर्थ न करके 'वह छठा अणुव्रत भी है' यह अर्थ किया जाय । ऐसी हालतमें कहा जायगा कि उन्होंने पूज्यपादकी उस दुरुक्तिका सिर्फ आंशिक संशोधन किया है । क्योंकि छठे अणुव्रतका उल्लेख करके उन्होंने फिर आलोकितपानभोजन नामकी भावनामें उसकी उसी तरह सिद्धि नहीं की जिस तरह कि महाव्रतियोंकी दृष्टिसे रात्रिभोजनविरति नामके व्रतकी की है । और महाव्रतियोंकी दृष्टिसे जो आरंभदोषादिक हेतु प्रयुक्त किये गये हैं उनकी अणुव्रती गृहस्थोंके सम्बधमें अनुपपत्ति है—वे उनके नहीं बनते—इसलिये उनसे उक्त विषयकी कोई सिद्धि नहीं होती । हमारी रायमें श्रावकोंके छठे अणुव्रतकी, आलोकितपानभोजन नामकी भावनामें कोई सिद्धि नहीं बनती जैसा कि ऊपर कुछ विशेष रूपसे दिखलाया गया है ।

इस संपूर्णकथनसे यह बात भले प्रकार समझमें आसकती है कि 'रात्रिभोजनविरति' नामका व्रत एक स्वतंत्रव्रत है । उसके धारण और पालनका उपदेश मुनि और श्रावक दोनोंको दिया जाता है—दोनोंसे उसका नियम कराया जाता है—वह अणुव्रतरूप भी है और महाव्रतरूप भी । महाव्रतोंमें भले ही उसकी गणना न हो—वह छठे अणुव्रतके सदृश छठा महाव्रत न माना जाता हो—और चाहे मुनियोंके मूलगुणोंमें भी उसका नाम न हो परंतु इसमें संदेह नहीं कि उसका अस्तित्व पंचमहाव्रतोंके अनन्तर ही माना जाता है और उनके साथ ही मूलगुणोंके तौरपर उसके अनुष्ठानका पृथक् रूपसे विधान किया जाता है, जैसा कि इस लेखके शुरूमें उद्धृत किये हुए आचारसारके वाक्य और मूलाचारके निम्नवाक्यसे भी प्रकट है:—

'तेसिं चेव वदाणं रक्खट्ठं रादिभोयणविरत्ती ।'

ऐसी हालतमें रात्रिभोजनविरतिको यदि छट्ठा महाव्रत मान लिया जाय अथवा महाव्रत न मानकर उसके द्वारा मुनियोंके मूलगुणोंमें एककी वृद्धि की जाय—वे २८ के स्थानमें २९ स्वीकार किये जायँ—तो इसमें जैनधर्मके मूल सिद्धान्तोंसे कोई विरोध नहीं आता । मूलोत्तर गुण हमेशा एक ही प्रकारके और एकही संख्यामें नहीं रहा करते । वे समयकी आवश्यकताओं, देशकालकी परिस्थितियों और प्रतिपाद्यों (शिष्यों) की योग्यता आदिके अनुसार बराबर बदला करते हैं—उनमें फेरफारकी जरूरत हुआ करती है । महावीर भगवानसे पहले अजितनाथ तीर्थंकरपर्यंत व्रत एक था; क्योंकि बाईस तीर्थंकरोंने 'सामायिक' चारित्रका उपदेश दिया है, छेदोपस्थापना चारित्रका नहीं । छेदोपस्थापनाका उपदेश श्रीऋषभदेव और महावीर भगवानने दिया है; जैसा कि श्रीवट्टकेराचार्यके निम्न वाक्यसे प्रकट है:—

'बावीसं तित्थयरा सामाइयं संजमं उवदिसंति ।
छेदोवट्ठावणियं पुन भयवं उसहो य वीरोय ॥७-३२॥

—मूलाचार ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सामायिक चारित्रकी अपेक्षा व्रत एक होता है, जिसे अहिंसाव्रत अथवा सर्वसावद्यत्याग व्रत कहना चाहिये । वही व्रत छेदोपस्थापना चारित्रकी अपेक्षा पंच प्रकारका—अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, और अपरिग्रह रूपसे वर्णन किया गया है, जैसा कि श्रीपूज्यपाद स्वामीके निम्न वाक्यसे प्रकट है:—

'सर्वसावद्यनिवृत्तिलक्षणसामायिकापेक्षया एकं व्रतं, तदेव छेदोपस्थापनापेक्षया पंचविधमिहोच्यते ।'

—सर्वार्थसिद्धि ।

इससे स्पष्ट है कि जब महावीर भगवानसे पहले अजितनाथ तीर्थंकरपर्यंत व्रतोंमें सत्य व्रतादिककी कल्पना नहीं थी, अविभक्तरूपसे एक अहिंसाव्रत माना जाता था—सिर्फ अहिंसाको धर्म और हिंसाको पाप गिना जाता था—तब उस वक्त मुनियोंके ये अट्ठाईस मूल गुण भी नहीं थे और न श्रावकोंके वर्तमान बारह व्रत बन सकते हैं—उनकी संख्या भी कुछ और ही थी । यह सब भेदकल्पना महावीर भगवानके समयसे हुई है । संभव है कि महावीर भगवानको अपने समयमें मुनियोंको रात्रिभोजनके त्यागकी पृथक्रूपसे उपदेश देनेकी जरूरत न पड़ी हो, उस वक्त आलोकितपान-भोजन नामकी भावना आदिसे ही काम चल जाता हो और यह जरूरत पीछेके कुछ आचार्योंको द्वादशवर्षीय दुष्कालके समयसे पैदा हुई हो जब कि बहुतसे मुनि रात्रिको भोजन करने लगे थे और शायद 'परकृतप्रदीप' और 'दिवानीत' आदि हेतुओंसे अपने पक्षका समर्थन किया करते थे । और इस लिये दूरदर्शी आचार्योंने उस वक्त मुनियोंके लिये महाव्रतोंके साथ—उनके अनन्तर ही—रात्रिभोजनविरतिका एक पृथक् व्रतरूपसे विधान करना आवश्यक समझा । वही विधान अबतक चला आता है । ऐसी ही हालत छठे अणुव्रतकी जान पड़ती है । उसे भी किसी समयके आचार्योंने जरूरी समझ कर उसका विधान किया है । परन्तु इन सब विधि-विधानोंका जैनसिद्धान्तों अथवा महावीर भगवानके शासनके साथ कोई विरोध नहीं है—सबका आशय और उद्देश्य सावद्य कर्मोंको छुड़ानेका है—यह नहीं कहा जा सकता कि अमुक आचार्यने छठे अणुव्रतका विधान करके अथवा मुनियोंके लिये पृथक्रूपसे एक नये व्रतकी ईजाद करके महावीर भगवानकी आज्ञाका उल्लंघन किया अथवा उन्मार्ग फैलाया है । ऐसा कहना भूल होगा । महावीर भगवानने सावद्यकर्मोंके त्यागका एक नुसखा (ओषधिकल्प) बतलाया था, जो उस समय उनके शिष्योंकी प्रकृतिके बहुत अनुकूल था । उनके इस बतलानेका यह आशय नहीं था कि दूसरे समयोंमें—शिष्योंकी प्रकृति बदलने पर भी उसमें कुछ फेरफार न किया जाय । इसीलिये उसमें अविरोधदृष्टिसे फेरफार किया गया है और अब भी उसी दृष्टिसे किया जा सकता है । आज यदि कोई महात्मा, वर्तमान देशकालकी परिस्थितियों और आवश्यकताओंके अनुसार अणुव्रतोंकी संख्यामें एक नये व्रतकी वृद्धि करना चाहे, अर्थात् (उदाहरणके तौर पर) '**स्वदेशवस्तुव्यवहार**' नामका सातवाँ अणुव्रत स्थापित करे तो वह खुशीसे ऐसा कर सकता है । उसमें भी कोई आपत्ति किये जानेकी जरूरत नहीं है । क्योंकि अहिंसा-

---

१ भोजन हम दीपकके प्रकाशमें, अच्छी तरहसे देख भालकर करते हैं और दीपकको दूसरेने स्वयं जलाया है इसलिये हमें उसका आरंभादिक दोष भी नहीं लगता ।

२ भोजनके लिये रात्रिको विहार करने आदिका जो दोष आता था सो ठीक, परन्तु हम दिनमें विधिपूर्वक गोचरीके द्वारा भोजन ले आते हैं और रात्रिको परकृत प्रदीपके प्रकाशमें अच्छी तरह देख भालकर खा लेते हैं, इसलिये हमें कोई दोष नहीं लगता ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किया है । वास्तवमें वार्तिककारोंका काम भी प्राय: यही होता है । वे अपनी समझ और शक्तिके अनुसार उक्त, अनुक्त और दुरुक्त तीनों प्रकारके अर्थोंकी चिन्ता विचारणा और अभिव्यक्ति किया करते हैं । उक्तार्थोंमें जो उपयोगी और ठीक होते हैं उनका संग्रह करते हैं, शेषको छोड़ते हैं; अनुक्तार्थोंको अपनी ओरसे मिलाते हैं और दुरुक्तार्थोंका संशोधन करते हैं–जैसा कि श्रीहेमचंद्राचार्य प्रतिपादित 'वार्तिक' के निम्न लक्षणसे प्रकट है:—

उक्तानुक्तदुरुक्तार्थचिन्ताकारि तु वार्तिकम् ।

अकलंकदेव भी वार्तिककार हुए हैं । उन्होंने भी अपने राजवार्तिकमें ऐसा किया है । परन्तु उनकी दृष्टि पूज्यपादकी उक्त सदोष उक्ति पर नहीं पहुँची ऐसा मालूम होता है । अथवा कुछ पहुँची भी है, यदि उनके 'तदपि षष्ठमणुव्रतं' इस वाक्यका 'वह (रात्रिभोजनाविरति) भी छठा अणुव्रत है' ऐसा अर्थ न करके 'वह छठा अणुव्रत भी है' यह अर्थ किया जाय । ऐसी हालतमें कहा जायगा कि उन्होंने पूज्यपादकी उस दुरुक्तिका सिर्फ आंशिक संशोधन किया है । क्योंकि छठे अणुव्रतका उल्लेख करके उन्होंने फिर आलोकितपानभोजन नामकी भावनामें उसकी उसी तरह सिद्धि नहीं की जिस तरह कि महाव्रतियोंकी दृष्टिसे रात्रिभोजनविरति नामके व्रतकी की है । और महाव्रतियोंकी दृष्टिसे जो आरंभदोषादिक हेतु प्रयुक्त किये गये हैं उनकी अणुव्रती गृहस्थोंके सम्बधमें अनुपपत्ति है–वे उनके नहीं बनते–इसलिये उनसे उक्त विषयकी कोई सिद्धि नहीं होती । हमारी रायमें श्रावकोंके छठे अणुव्रतकी, आलोकितपानभोजन नामकी भावनामें कोई सिद्धि नहीं बनती जैसा कि ऊपर कुछ विशेष रूपसे दिखलाया गया है ।

इस संपूर्णकथनसे यह बात भले प्रकार समझमें आसकती है कि 'रात्रिभोजनविरति' नामका व्रत एक स्वतंत्रव्रत है । उसके धारण और पालनका उपदेश मुनि और श्रावक दोनोंको दिया जाता है–दोनोंसे उसका नियम कराया जाता है–वह अणुव्रतरूप भी है और महाव्रतरूप भी । महाव्रतोंमें भले ही उसकी गणना न हो–वह छठे अणुव्रतके सदृश छठा महाव्रत न माना जाता हो–और चाहे मुनियोंके मूलगुणोंमें भी उसका नाम न हो परंतु इसमें संदेह नहीं कि उसका अस्तित्व पंचमहाव्रतोंके अनन्तर ही माना जाता है और उनके साथ ही मूलगुणोंके तौरपर उसके अनुष्ठानका पृथक् रूपसे विधान किया जाता है, जैसा कि इस लेखके शुरूमें उद्धृत किये हुए आचारसारके वाक्य और मूलाचारके निम्नवाक्यसे भी प्रकट है:—

'तेसिं चेव वदाणं रक्खट्ठं रादिभोयणविरत्ती ।'

ऐसी हालतमें रात्रिभोजनविरतिको यदि छट्ठा महाव्रत मान लिया जाय अथवा महाव्रत न मानकर उसके द्वारा मुनियोंके मूलगुणोंमें एककी वृद्धि की जाय–वे २८ के स्थानमें २९ स्वीकार किये जायँ–तो इसमें जैनधर्मके मूल सिद्धान्तोंसे कोई विरोध नहीं आता । मूलोत्तर गुण हमेशा एक ही प्रकारके और एकही संख्यामें नहीं रहा करते । वे समयकी आवश्यकताओं, देशकालकी परिस्थितियों और प्रतिपाद्यों (शिष्यों) की योग्यता आदिके अनुसार बराबर बदला करते हैं–उनमें फेरफारकी जरूरत हुआ करती है । महावीर भगवानसे पहले अजितनाथ तीर्थंकरपर्यंत व्रत एक था; क्योंकि बाईस तीर्थंकरोंने 'सामायिक' चारित्रका उपदेश दिया है, छेदोपस्थापना चारित्रका नहीं । छेदोपस्थापनाका उपदेश श्रीऋषभदेव और महावीर भगवानने दिया है; जैसा कि श्रीवट्टकेराचार्यके निम्न वाक्यसे प्रकट है:—

'बावीसं तित्थयरा सामाइयं संजमं उवदिसंति ।
छेदोवट्ठावणियं पुन भयवं उसहो य वीरोय ॥७-३२॥

—मूलाचार ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सामायिक चारित्रकी अपेक्षा व्रत एक होता है, जिसे अहिंसाव्रत अथवा सर्वसावद्यत्याग व्रत कहना चाहिये । वही व्रत छेदोपस्थापना चारित्रकी अपेक्षा पंच प्रकारका—अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, और अपरिग्रह रूपसे वर्णन किया गया है, जैसा कि श्रीपूज्यपाद स्वामीके निम्न वाक्यसे प्रकट है:—

'सर्वसावद्यनिवृत्तिलक्षणसामायिकापेक्षया एकं व्रतं, तदेव छेदोपस्थापनापेक्षया पंचविधमिहोच्यते ।'

—सर्वार्थसिद्धि ।

इससे स्पष्ट है कि जब महावीर भगवानसे पहले अजितनाथ तीर्थंकरपर्यंत व्रतोंमें सत्य व्रतादिककी कल्पना नहीं थी, अविभक्तरूपसे एक अहिंसाव्रत माना जाता था—सिर्फ अहिंसाको धर्म और हिंसाको पाप गिना जाता था—तब उस वक्त मुनियोंके ये अट्ठाईस मूल गुण भी नहीं थे और न श्रावकोंके वर्तमान बारह व्रत बन सकते हैं—उनकी संख्या भी कुछ और ही थी । यह सब भेदकल्पना महावीर भगवानके समयसे हुई है । संभव है कि महावीर भगवानको अपने समयमें मुनियोंको रात्रिभोजनके त्यागकी पृथकरूपसे उपदेश देनेकी जरूरत न पड़ी हो, उस वक्त आलोकितपान-भोजन नामकी भावना आदिसे ही काम चल जाता हो और यह जरूरत पीछेके कुछ आचार्योंको द्वादशवर्षीय दुष्कालके समयसे पैदा हुई हो जब कि बहुतसे मुनि रात्रिको भोजन करने लगे थे और शायद 'परंकृतप्रदीप' और 'दिवॉनीत' आदि हेतुओंसे अपने पक्षका समर्थन किया करते थे । और इस लिये दूरदर्शी आचार्योंने उस वक्त मुनियोंके लिये महाव्रतोंके साथ—उनके अनन्तर ही—रात्रिभोजनविरतिका एक पृथक् व्रतरूपसे विधान करना आवश्यक समझा । वही विधान अबतक चला आता है । ऐसी ही हालत छठे अणुव्रतकी जान पड़ती है । उसे भी किसी समयके आचार्योंने जरूरी समझ कर उसका विधान किया है । परन्तु इन सब विधि-विधानोंका जैनसिद्धान्तों अथवा महावीर भगवानके शासनके साथ कोई विरोध नहीं है—सबका आशय और उद्देश्य सावद्य कर्मोंको छुड़ानेका है—यह नहीं कहा जा सकता कि अमुक आचार्यने छठे अणुव्रतका विधान करके अथवा मुनियोंके लिये पृथकरूपसे एक नये व्रतकी ईजाद करके महावीर भगवानकी आज्ञाका उल्लंघन किया अथवा उन्मार्ग फैलाया है । ऐसा कहना भूल होगा । महावीर भगवानने सावद्यकर्मोंके त्यागका एक नुसखा (ओषधिकल्प) बतलाया था, जो उस समय उनके शिष्योंकी प्रकृतिके बहुत अनुकूल था । उनके इस बतलानेका यह आशय नहीं था कि दूसरे समयोंमें—शिष्योंकी प्रकृति बदलने पर भी उसमें कुछ फेरफार न किया जाय । इसीलिये उसमें अविरोधदृष्टिसे फेरफार किया गया है और अब भी उसी दृष्टिसे किया जा सकता है । आज यदि कोई महात्मा, वर्तमान देशकालकी परिस्थितियों और आवश्यकताओंके अनुसार अणुव्रतोंकी संख्यामें एक नये व्रतकी वृद्धि करना चाहे, अर्थात् (उदाहरणके तौर पर) **'स्वदेशवस्तुव्यवहार'** नामका सातवाँ अणुव्रत स्थापित करे तो वह खुशीसे ऐसा कर सकता है । उसमें भी कोई आपत्ति किये जानेकी जरूरत नहीं है । क्योंकि अहिंसा-

---

१ भोजन हम दीपकके प्रकाशमें, अच्छी तरहसे देख भालकर करते हैं और दीपकको दूसरेने स्वयं जलाया है इसलिये हमें उसका आरंभादिक दोष भी नहीं लगता ।

२ भोजनके लिये रात्रिको विहार करने आदिका जा दोष आता था सो ठीक, परन्तु हम दिनमें विधिपूर्वक गोचरीके द्वारा भोजन ले आते हैं और रात्रिको परकृत प्रदीपके प्रकाशमें अच्छी तरह देख भालकर खा लेते हैं, इसलिये हमें कोई दोष नहीं लगता ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्रतकी रक्षाके लिये ('अहिंसाव्रतरक्षार्थ—' सोमदेवः) अथवा पाँचों व्रतोंकी रक्षाके लिये ('तेसिंचेव वदाणं रक्खट्ठं) जिस प्रकार 'रात्रिभोजनविरति' का विधान किया गया है उसी प्रकार अपरिग्रह—परिमितपरिग्रह—व्रतकी रक्षाके लिये अथवा अहिंसादिक पाँचों ही व्रतोंकी रक्षाके लिये 'स्वदेशवस्तुव्यवहार' नामका व्रत बहुत ही उपयोगी जान पड़ता है । आजकल इसकी बड़ी जरूरत भी है—विदेशी वस्तुओंके प्रबल प्रचारके कारण मनुष्योंका नाकों दम है, उनमें इतनी जरूरतें बढ़ गई हैं और इतनी विलासप्रियता छागई है कि उन सबके चक्करमें पड़कर उन्हें धर्मकर्मकी प्रायः कुछ भी नहीं सूझती । और इसलिये धर्मकर्मका सब विधि विधान पुस्तकोंमें ही रक्खा रह जाता है—उन्हें अपनी कृत्रिम आवश्यकताओंको पूरा करनेसे ही फुर्सत नहीं मिलती । इन सब आपत्तियोंसे बचनेके लिये 'स्वदेशवस्तुव्यवहार' नामका व्रत एक अमोघशस्त्रका काम देगा । ऐसे महान् उपयोगी व्रतका विधान कभी महावीर भगवानके शासनके विरुद्ध नहीं हो सकता और न वह जैनसिद्धान्तोंके ही विरुद्ध कहा जा सकता है । अस्तु ।

यहाँ, श्वेताम्बर आचार्योंकी दृष्टिसे हम, इस समय, सिर्फ इतना और बतलाना चाहते हैं कि उन्होंने रात्रिभोजनविरतिको छठा अणुव्रत तो नहीं माना, परंतु साधुके २७ मूलगुणोंमें उसे पंचमहाव्रतोंके बाद छठा व्रत जरूर माना है । श्रावकोंके लिये श्रीहेमचंद्राचार्यने रात्रिभोजनके त्यागका विधान भोगोपभोगपरिमाण नामके दूसरे गुणव्रतमें किया है । परंतु श्रावकप्रज्ञप्तिके कर्ता महाशयका उक्त गुणव्रतमें वैसा कोई विधान नहीं है । उसके टीकाकार श्रीहरिभद्रसूरि भी वहाँ रात्रिभोजनके त्यागका कोई उल्लेख नहीं करते । उन्होंने 'वृद्धसम्प्रदाय' रूपसे जो प्राकृत गद्य अपनी टीकामें उद्धृत किया है उसमें भी रात्रिभोजनके त्यागकी कोई विधि नहीं है । श्वेताम्बरसंप्रदायका मुख्य ग्रंथ उपासकदशांगसूत्र भी इस विषयमें मौन है—वह उक्त गुणव्रतका वर्णन करते हुए रात्रिभोजनके त्यागका कुछ भी उल्लेख नहीं करता । इन सब बातोंसे ऐसा मालूम होता है कि उनके यहाँ भोगोपभोगपरिमाण नामके गुणव्रतमें रात्रिभोजनके त्यागका कोई खास नियम नहीं है । अन्यथा, श्रावकप्रज्ञप्तिके कर्ता या कमसे कम उसके टीकाकार उसका वहाँ उल्लेख जरूर करते । संभव है कि इस विषयमें उक्त सम्प्रदायके आचार्योंमें और भी मतभेद हो जो अभीतक हमें मालूम नहीं हुआ । मालूम होनेपर सूचित किया जायगा ।

इस तरह आचार्योंके शासनभेद-द्वारसे यह अणुव्रतोंकी संख्या आदिका कुछ विवेचन किया गया है । अणुव्रतोंका स्वरूप-विषयक विशेष भेद फिर किसी आगामी संख्यामें, स्वतंत्र शीर्षकके नीचे, दिखलाया जायगा ।

सरसावा । मार्गशीर्ष शुक्ल ३ सं० १९७६ ।

यदि आप किसी अच्छे विद्वानसे कोई नवीन लेख लिखाना चाहते हैं तो पहले आप किसी तरहपर, उसके पूर्व-प्रकाशित लेखोंके विषयमें अपनी रुचिका परिचय दीजिये । अर्थात्—यह दिखलाइये कि आपके हृदयमें उनके लिये कितनी जगह है, आप उन्हें कितना पसंद करते हैं और किस तरहपर आपने उनके प्रचार आदिका यत्न किया है अथवा करनेको तय्यार हैं । पूर्ण परिचय मिलनेपर वह विद्वान् अपने अवकाशानुसार जरूर आपको अपना लेख देनेका यत्न करेगा । विना उक्त प्रकारका परिचय दिये केवल लेखाभावादिकके कारण प्रार्थनामात्रसे अच्छे विद्वानोंके लेख नहीं मिल सकते । उनके लिये आशा करना भूल है ।

—खंड-विचार ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर-सम्बोधन ।

(द्रुतविलम्बित ।)

(१)

वर बने, वर, हो तुम आज क्या ?
प्रबल उत्सुक हो उस अर्थ या ?
सँभलना जिस मार्ग चले अभी,
फिसलना जिससे नहिं हो कभी ॥

(२)

कठिन-दुर्गम मार्ग गृहस्थका ।
निबलके बसका, न अस्वस्थका ।
न करमें यदि दीपक ज्ञानका,
गमन क्यों कर हो अनजानका ॥

(३)

मनन पूर्व करो इस बातका,
विहित क्या शुभ लक्ष्य विवाहका ।
तदनु[1] शक्ति लखो निज कायकी,
हृदयकी, धनकी, व्यवसायकी ॥

(४)

यदि तुम्हें अनुकूल जँचें सभी,
कर विवाह, गृहस्थ बनो तभी ।
सतत यत्न करो उसके लिये
दृढप्रतिज्ञ बने जिसके लिये ॥

(५)

निबल-मूर्ख न सन्तति जन्म दो,
प्रकृतिके प्रतिकूल न कर्म हो ।
दुरुपयोग न हो निज शक्तिका,
सदुपयोग रहे अनुरक्तिका ॥

(६)

न कुल-देश-कलंक बनो कभी,
न यश-कीर्ति कलंकित हो कभी ।
समयके अनुकूल प्रवृत्ति हो,
पठन-पाठनसे न विरक्ति हो ॥

(७)

सुदृढ धैर्य कभी नहिं भंग हो,
अलसता न रहे, न कुसंग हो ।
बन उदार समुद्यम-लीन हो,
जगतके हितसे न विहीन हो ॥

(८)

अटल लक्ष्य रहे इनमें सदा,
'युग-प्रताप' न चालित हो कदा ।
धरमकी—धनकी नहिं हान हो,
सफल यों स्वगृहस्थ-विधान हो ॥

---

१ उसके बाद ।

---

१ श्रद्धादृष्टि केवल गुणोंको ग्रहण करती तथा दोषोंमें भी गुणोंकी कल्पना किया करती है । **२ अश्रद्धादृष्टि** केवल दोषोंको ग्रहण करती और गुणोंमें दोषोंका उद्भावन किया करती है । **३ परीक्षादृष्टि** गुणों और दोषोंमें विवेक करके गुणोंका ग्रहण और दोषोंका परित्याग करना उचित समझती है; यही इन तीनों दृष्टियोंमें परस्पर भेद है ।

× × × ×

१—निन्दित, कुत्सित, और जघन्य आचरणोंका स्वेच्छापूर्वक आचरण करते हुए भी लज्जित न होना 'बेशरमी' कहलाता है । निर्लज्जता और बेहयाई भी उसीके नामान्तर है ।

२—निन्दित, कुत्सित और जघन्य आचरणोंमें वे सब आचरण दाखिल हैं जिनका अनुष्ठान सत्यता, धर्म और लोकहितके विरुद्ध है—जिनके द्वारा पबलिकको धोखा दिया जाता है, विश्वासघात किया जाता है—अथवा जिनके करनेसे धर्मादिक सत्कार्योंमें बाधा उपस्थित होती है, जो अपने पदके अयोग्य तथा विरुद्ध हैं और जिनसे यह मनुष्य पतनकी ओर चला जाता है । साथ ही, अपने उदाहरणसे, दूसरोंको भी पतनकी ओर खींचता है । ऐसे आचरणोंको स्वाधीनतापूर्वक करके लज्जित न होनेवाले मनुष्योंको 'बेशरम' समझना चाहिये ।

× × × ×

जिसके द्वारा मानव-समाजमें, स्त्रीपुरुषोंको परस्पर कामक्रीडाका द्रव्यायपेक्षारहित, स्वतंत्र और खुला अधिकार प्राप्त होता है उस सम्बंध-विशेषको 'विवाह' कहते हैं । —खंडविचार ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दुष्प्राप्य और अलभ्य जैनग्रन्थ ।

६ माघनन्दिश्रावकाचार ।

जैनसिद्धान्तभवन आराकी सूचीसे मालूम होता है कि 'माघनन्दिश्रावकाचार' नामका भी कोई ग्रंथ है । यह ग्रंथ प्राकृतभाषामें है, और इसकी श्लोकसंख्याका प्रमाण ४६२२ दिया है । इसके रचयिताका नाम 'माघनन्दी' आचार्य है । जैनसमाजमें 'माघनन्दी' नामके एक बहुत बड़े आचार्य कुन्दकुन्दाचार्यसे भी पहले हो गये हैं । यदि यह ग्रंथ सचमुच उन्हींका बनाया हुआ है तब तो इसे बड़े ही महत्त्वका समझना चाहिये । श्रावकाचारपर ऐसे प्राचीन और इतने विस्तृत ग्रंथकी बहुत बड़ी जरूरत है । ऐसे प्राचीन ग्रंथोंके प्रकाशमें आनेसे समाजका बहुत कुछ उपकार हो सकता है और अनेक विषयोंपर अच्छा प्रकाश पड़ सकता है । यह ग्रंथ उक्त भवनमें कनड़ी लिपिमें ताड़पत्रोंके ऊपर लिखा हुआ मौजूद है । दूसरे प्रसिद्ध भंडारोंकी सूचियोंमें इस नामके ग्रंथका अस्तित्व देखनेमें नहीं आया । हाँ, श्रीयुत पं० नाथूरामजी प्रेमीने, जयपुरादिकके अनेक भंडारोंकी सूचियोंपरसे, जो 'दिगम्बरजैनग्रंथकर्ता और उनके ग्रंथ' नामकी एक बृहत्सूची जैनहितैषीके छठे भागमें प्रकाशित की थी, उसमें माघनन्दि (भट्टारक) के नामके साथ एक 'श्रावकाचार' का उल्लेख जरूर पाया जाता है । परंतु वहाँ उसकी भाषा संस्कृत-युक्त कर्णाटकी प्रकट की है, और यहाँ भवनके उक्त ग्रंथकी भाषा प्राकृत लिखी है । इससे दोनों ग्रंथ भिन्न जान पड़ते हैं । संभव है कि दोनों ग्रंथ एक ही हों और उनपरसे भाषाके निश्चय करनेवालोंमेंसे किसीको भ्रम हुआ हो । अतः जरूरत इस बातकी है कि भवनके उक्त ग्रंथकी फिरसे जाँच की जाय और उसकी भाषा आदिके विषयमें विशेष हाल प्रकट किया जाय । साथ ही, दूसरे स्थानोंके भाई खासकर दाक्षिण देश और जयपुरादिकके भाई भी अपने अपने यहाँके भंडारोंमें इस ग्रंथकी खोज करें और यदि उन्हें अपने भंडारोंमें इस नामके ग्रंथका कुछ पता मिले तो वे हमें उससे सूचित करें । आशा है कि भवनके मंत्री साहब कृपया मूलग्रंथको निकलवा कर उक्त विषयकी जाँच करेंगे और उसके नतीजेसे हमें शीघ्र सूचित करेंगे । साथ ही, भवनमें ऐसा प्रबंध करेंगे कि, जिससे भाइयोंको कनड़ी लिपिके ग्रंथोंकी कापियाँ देवनागरी अक्षरोंमें प्राप्त हो सकें, जिससे वे उन कापियों परसे स्वयं किसी विषयका कुछ निर्णय कर सकें अथवा ग्रंथोंका उद्धार और प्रचार कर सकें । यही भवनका एक खास कर्तव्य है और इसीके द्वारा सवसाधारणको कुछ विशेष लाभ पहुँचाया जा सकता है ।

७ प्रमाणलक्षण ।

मैसूर राज्यकी ओरिएंटल लायब्रेरीमें प्रमाणलक्षण नामका एक संस्कृत ग्रंथ है जो अकलंकदेवका बनाया हुआ है । यह ग्रंथ उक्त लायब्रेरीकी हस्तलिखित संस्कृत ग्रंथोंकी सूचीके प्रथम भागमें नं० $\frac{५३१}{१६०}$ पर दर्ज है । अकलंकदेवके प्रायः सभी ग्रंथ बहुत महत्त्वको लिए हुए होते हैं, खासकर प्रमाणविषयमें तो उनकी बहुत ही प्रसिद्धि है । ये न्यायमें एक अद्वितीय विद्वान् होगये हैं । कहा भी जाता है कि 'प्रमाणमकलंकस्य—अर्थात्, अकलंक देवका प्रमाण *। बहुत संभव है कि इस वाक्यमें 'प्रमाण' शब्दसे उनके इसी ग्रंथका उल्लेख किया गया हो । यदि ऐसा है तो यह ग्रंथ और भी अधिक

* प्रमाणमकलंकस्य पूज्यपादस्य लक्षणं । धनंजयकवेः काव्यं रत्नत्रयमकटंकम् ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महत्त्वका है और इस लिये इसके शीघ्र उद्धार होनेकी बहुत बड़ी जरूरत है । अकलंकदेवके इस ग्रंथका अभीतक कहीं नाम सुननेमें नहीं आता था और न दूसरे किसी प्रसिद्ध भंडारकी सूचीमें यह नाम देखा गया । हालमें जैनसिद्धान्त भवन आराकी जो सूची प्रकाशित हुई है उसमें इस नामका एक संस्कृत ग्रंथ नं० ५२२ पर जरूर दर्ज है, परंतु वहाँ उसके कर्ताका कोई नाम प्रकट नहीं किया, सिर्फ पत्रोंकी संख्या ५५ दी है और उसे कनड़ी लिपिमें ताड़पत्रों पर लिखा हुआ प्रकट किया है । बहुत संभव है कि भवनका यह ग्रंथ भी अकलंकदेवका ही बनाया हुआ वही ग्रंथ हो जो मैसूरकी लायब्रेरीमें मौजूद है । अतः भवनके मंत्री साहबको इसकी जाँच करनी चाहिये और यदि जाँचसे उन्हें यह ग्रंथ अकलंकदेवका ही बनाया हुआ मालूम हो तो उसकी देवनगारी अक्षरोंमें कापी करनेका शीघ्र प्रबंध करना चाहिये । अन्तमें हम अपने मैसूरके भाइयोंसे प्रार्थना करते हैं कि वे अपने यहाँकी लायब्रेरीसे उक्त ग्रंथकी कापी कराकर उसे माणिकचंद्रजैनग्रंथमालाके मंत्री साहबके पास बम्बई भिजवा देवें, अथवा हमारे पास भिजवानेकी कृपा करें जिससे उसका शीघ्र उद्धार और प्रचार हो सके । यदि उक्त ग्रंथकी प्रेसकापी भिजवा सकें तो और भी अच्छा है । उजरत दी जायगी ।

८ सप्तपंचाशदास्राविक ।

'सप्तपंचाशदास्राविक' नामका यह ग्रंथ भी अश्रुतपूर्व जान पड़ता है—किसी भंडारमें अथवा भंडारकी किसी सूचीमें हमारे देखने और सुननेमें नहीं आया—परंतु मैसूर राज्यकी उक्त लायब्रेरीमें मौजूद है और उसकी उसी सूचीमें नं० ५४२/१८८ पर दर्ज है । यह ग्रंथ नेमिचंद्राचार्यका बनाया हुआ है, इसकी भाषा प्राकृत है और इसके साथमें कर्णाटकी टीका भी लगी हुई है । ग्रंथके नामपरसे ऐसा मालूम होता है कि इसमें ५७ आस्रवोंका विस्तारके साथ वर्णन किया गया है । अतः ग्रंथ महत्त्वका जान पड़ता है और शीघ्र उद्धार किये जानेके योग्य है । बहुत संभव है कि इसके कर्ता वे ही नेमिचंद्राचार्य हों जिन्होंने 'गोम्मटसार' नामके सुप्रसिद्ध ग्रंथकी रचना की है, अथवा यह 'द्रव्यसंग्रह' के कर्ता दूसरे नेमिचंद्राचार्यका बनाया हुआ होगा । दोनों ही आचार्योंके ग्रंथ देखने और प्रचार किये जानेके योग्य हैं । हमारे मैसूरके भाइयोंको सबसे पहले इसके मूल प्राकृत भागकी कापी करानी चाहिये । यह भाग अधिक नहीं होगा ।

९ जैनगोत्रनिर्णय ।

यह ग्रंथ भी मैसूरकी लायब्रेरीमें पाया जाता है और लायब्रेरीकी उक्त सूचीमें नं० ५२१/८१६ पर दर्ज है । परंतु यह मालूम नहीं हुआ कि कौनसे आचार्य तथा विद्वानका बनाया हुआ है । सूचीमें इसकी पत्रसंख्या ३० दी है । संभव है कि यह ग्रंथ और किसी भंडारमें भी मौजूद हो परंतु अन्यत्र कहीं हमारे देखने सुननेमें नहीं आया । आजकल समाजमें गोत्रसम्बन्धी प्रश्न उठा हुआ है । अतः ऐसे ग्रंथोंके और भी शीघ्रताके साथ प्रकाशमें आनेकी जरूरत है । आशा है कि मैसूरके कोई विद्वान् भाई लायब्रेरीसे इस ग्रंथको निकलवाकर इसके कर्ता आदि संबंधी विशेष हालोंसे हमें शीघ्र सूचित करनेकी कृपा करेंगे; और इस तरह पर पुरानी बातोंकी खोज लगाकर एक सार्वजनिक हितके काममें हमारे सहायक बनेंगे ।

१० मार्गप्रकाश ।

श्रीपद्मप्रभ मलधारिदेवने अपनी नियमसार ग्रंथकी टीकामें, अनेक स्थानोंपर 'मार्गप्रकाश' नामके एक संस्कृत ग्रंथका उल्लेख किया है और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

' उक्तं च मार्गप्रकाशे ' इत्यादि वाक्योंके साथ उसके अनेक पद्योंको उद्धृत किया है, जिनमेंसे एक पद्य नमूनेके तौरपर इस प्रकार है:—

कालाभावे न भावानां परिणामस्तदंतरात् ।
न द्रव्यं नापि पर्यायः सर्वाभावः प्रसज्यते ॥

पद्योंपरसे मालूम होता है कि यह ग्रंथ एक महत्त्वका ग्रंथ है और इसमें विशेषतया जैनधर्मके तत्त्वोंका वर्णन करके जैनमार्गको अथवा मोक्षोपायको प्रकाशित करनेके लिये अच्छा यत्न किया गया है। परंतु अभी तक यह मालूम नहीं हुआ कि यह ग्रंथ कौनसे आचार्यका बनाया हुआ है, कब बना है और कहाँके भंडारमें मौजूद है । इन सब बातोंकी खोज होकर ग्रंथके उद्धार किये जानेकी जरूरत है। हमारे भाइयोंको इसके लिये अपने अपने यहाँके भंडारोंको टटोलना चाहिये । पद्मप्रभ मलधारिदेवका निवासस्थान अधिकतर कहाँ पर रहा है, यदि इस बातका हमारे किसी विद्वान् भाईको पता हो तो उस स्थानके भंडारोंको खोजनेसे, शीघ्र सफलताकी बहुत कुछ आशा की जाती है। (क्रमशः)

गोत्र-विचार ।

संतानक्रमसे चले आए जीवोंके आचरण विशेषका नाम गोत्र है । वह आचरण ऊँचा और नीचा ऐसा दो प्रकारका होनेसे गोत्रके भी सिर्फ दो भेद हैं, एक उच्च गोत्र और दूसरा नीच गोत्र; ऐसा गोम्मटसारमें श्रीनेमिचंद्र सिद्धान्तचक्रवर्तिद्वारा जैनसिद्धान्त बतलाया गया है। जैनसिद्धान्तमें, अष्ट कर्मोंके अंतर्गत गोत्र नामका एक पृथक् कर्म माना गया है उसीका यह उक्त आचार्यप्रतिपादित लक्षण अथवा स्वरूप है । परन्तु जैनियोंमें आजकल गोत्रविषयक, जिस प्रकारका व्यवहार पाया जाता है वह इस सिद्धान्तप्रतिपादित गोत्र-कथनसे बहुत कुछ विलक्षण मालूम होता है। जैनियोंके गोत्रोंकी संख्या भी सैकड़ोंपर पहुँची हुई है । उनकी ८४ जातियोंमें प्रायः सभी जातियाँ कुछ न कुछ संख्याप्रमाण गोत्रोंको लिये हुए हैं। परंतु उन सब गोत्रोंमें ' उच्च ' और ' नीच ' नामके कोई गोत्र नहीं हैं; और न किसी गोत्रके भाई ऊँच अथवा नीच समझे जाते हैं। अनेक गोत्र केवल ऋषियोंके नामपर उनका उपदेश माननेके कारण, अनेक गोत्र केवल नगरग्रामादिकोंके नाम पर उनमें निवास करनेके कारण और बहुतसे गोत्र केवल व्यापार-पेशा अथवा शिल्पकर्मके नामोंपर उनके कुछ समय करते रहनेके कारण, पड़े हैं। और भी अनेक कारणोंसे कुछ गोत्रोंका नामकरण हुआ जान पड़ता है और इन सब गोत्रोंकी वह सब स्थिति बदल जाने पर भी अभी तक उनके वही नाम चले जाते हैं—समान आचरण होते हुए भी जैनियोंके गोत्रोंमें परस्पर विभिन्नता पाई जाती है। अतः जैनियोंके लिये गोत्रसम्बन्धी प्रश्न एक बड़ा ही जटिल प्रश्न है और इस लिये उस पर विचार चलनेकी जरूरत है। कुछ दिन हुए ' सत्योदय ' में ' शूद्रमुक्ति ' शीर्षक एक लेख निकला था, जिसमें गोम्मटसारप्रतिपादित गोत्रकर्मके स्वरूप पर कुछ विशेष विचार प्रकट किये गये हैं। हम उन विचारोंको—लेखके केवल उतने ही अंशको—अपने पाठकोंके विचारार्थ यहाँ उद्धृत करते हैं। आशा है कि हमारे विज्ञ पाठक एक विद्वान्के इन विचारोंपर सविशेष रूपसे विचार करनेकी कृपा करेंगे और साथ ही इस गोत्र विषयपर हमें अपने विशेष विचारोंसे सूचित करनेकी भी उदारता दिखलाएँगे:—

गोम्मटसारमें ' गोत्रकर्म्म ' के कार्य दर्शानेके लिये निम्नलिखित गाथा है:—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संताणकमेणागय जीवायरणस्स गोदमिदि सण्णा।
उच्चं णीचं चरणं उच्चं णीचं हवे गोदं॥
—कर्म्मकाण्ड १३।

सन्तानक्रमेणागतजीवाचरणस्य गोत्रमिति संज्ञा।
उच्चं नीचं चरणं उच्चैर्नीचैर्भवेत् गोत्रम्॥ १३॥

अर्थ—सन्तानक्रम अर्थात् कुलकी परिपाटीके क्रमसे चला आया, जो जीवका आचरण उसकी गोत्रसंज्ञा है। उस कुलपरम्परामें ऊँचा आचरण हो तो उसे उच्च गोत्र कहते हैं, जो नीचा आचरण हो तो वह नीचगोत्र कहा जाता है।

गोत्रके इस लक्षणपर गौर करते हैं तो यह लक्षण सदोष मालूम होता है, और ऐसा प्रकट होता है कि कर्म्मभूमिके मनुष्योंकी विशेष व्यवस्थापर लक्ष्य रखकर सामाजिक व्यवहार-दृष्टिसे इसकी रचना हुई है। गोत्रकर्म्म अष्टमूल प्रकृतियोंमेंसे है और इसका उदय चतुर्गतिके जीवोंमें कहा गया है। नारकी और तिर्यञ्चोंके नीचगोत्रकी, देवोंके उच्चगोत्रकी और मनुष्योंके उच्च और नीच दोनों गोत्रोंकी सम्भावना सिद्धान्तमें कही है। देव वा नारकीका उपपाद जन्म होता है, वे किसीकी सन्तान नहीं होते और न कोई उनका नियत आचरण है। गाथोक्त गोत्रका लक्षण इन दोनों गतियोंमें किसी तरहसे भी लागू नहीं होता। इसी तरह एकेन्द्रियादि सम्मूर्छन जीवोंमें भी यह लक्षण व्यापक नहीं। इसके अलावा आचरण शब्द भी मनुष्योंहीके व्यवहारका अर्थ-वाची है और मनुष्योंहीकी अपेक्षासे उक्त लक्षणमें उपयुक्त हुआ है। आचरणके साथ उच्चत्व और नीचत्वकी योजना भी मानवापेक्षित ही है। पाठकोंको विदित होगा कि अमीर, गरीब; दुखिया, सुखिया; नीच, ऊँच; सभ्य, असभ्य; पण्डित, मूर्ख इत्यादि द्वन्द हैं और ये द्वन्द ऐसे दो परस्परविरोधी गुणोंके द्योतक हैं जिनका अस्तित्व निरपेक्ष नहीं किन्तु अन्योन्याश्रित है। अतएव मनुष्यगतिको छोड़कर शेष तीन गतियोंमें जो गोत्रका एक एक प्रकार माना गया है वह अपने प्रतिपक्षीके सत्वका सूचक और अभिलाषी है। यदि देवोंमें नीच गोत्रका, और नारकी तथा तिर्यञ्चोंमें उच्चगोत्रका सम्भव नहीं है तो इन गतियोंमें गोत्रका सर्वथा ही अभाव मानना पड़ेगा, क्योंकि द्वन्द्वगर्भित एक प्रतिपक्षी गुणका स्वतन्त्र सद्भाव किसी तरहसे भी सिद्ध नहीं होता। उक्त गतियोंमें गोत्रके दो प्रकारोंमेंसे एक विशेषकी नियामकता कहनेका यह अर्थ होता है कि, इन गतियोंके जीव अपने अपने लोकसमुदायमें समानाचरणी हैं, उनमें भेदभाव नहीं; और जब भेदभाव नहीं तो उनको उच्च या नीच किसकी अपेक्षासे कहा जाय, वे खुद तो आपसमें न किसीको नीच समझते हैं न उच्च; उनमें नीच और उच्चका खयाल होना ही असम्भव है। इसी खयालसे भोग-भूमियोंके भी उच्चगोत्र ही कहा गया है। इससे स्पष्ट है कि गोत्रका लक्षण मनुष्योंकी व्यवहार-व्यवस्थाके अनुसार बनाया गया है, और जिस जिस गतिके जीवोंको मनुष्योंने जैसा समझा अथवा उनके व्यवहारकी जैसी जैसी कल्पना की, उसीके अनुसार उन गतियोंमें उच्च वा नीच गोत्रकी सम्भावना मानी गई है। चतुर्गतिके जीवोंमें बन्धोदयसत्वको प्राप्त होनेवाले गोत्रकर्म्म तथा उसके कार्यस्वरूप गोत्रका लक्षण और उदय जिस प्रकारसे प्रत्यक्ष ज्ञाता दृष्टा सर्वज्ञने कहा हो वह इस गाथासे प्रकट नहीं होता। इस लक्षणके मुताबिक गोत्रकर्म्मका उदय मनुष्योंहीमें मिलेगा और अन्य गतियोंके जीवोंके आठ कर्म्मोंकी जगह सातहीका उदय मानना पड़ेगा।

जैनसिद्धान्तियोंमें गोत्र और गोत्र कर्म्मके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषयमें जो प्रचलित मत है वह मनुष्याहाक व्यवहारों तथा कल्पनाओंसे बना है; इसके विशेष प्रमाणमें निम्नलिखित ऊहापोहकी बातें पाठकोंके स्वयं विचारार्थ उपस्थित करते हैं।

१—भवन-वासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक, इस प्रकारसे देवोंके चार निकाय जैन-धर्म्ममें कहे हैं। इन चारों प्रकारके देवोंमें इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश, पारिषद, आत्मरक्ष, लोक-पाल, अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्विषिक, ऐसे दश भेद होते हैं। इनमेंसे जो देव घोड़ा, रथ, हाथी, गन्धर्व और नर्त्तकीके रूपोंको धारण करते हैं वे अनीक हैं; जो हाथी, घोड़ा, बाहन बनकर इन्द्रकी सेवा करते हैं वे आभियोग्य कहलाते हैं; और जो इन्द्रादिक देवोंके सन्मानदिकके अनधिकारी, इन्द्रपुरीसे बाहर रहनेवाले तथा अन्य देवोंसे दूर खड़े रहनेवाले (जैसे अस्पर्श शूद्र) हैं वे किल्विषक देव हैं। यहाँ अपने आप यह प्रश्न होता है कि किल्विषक जातिके देवोंको अन्य प्रकारके देव अपनी अपेक्षा नीच समझते हैं कि नहीं, यदि नीच नहीं समझते तो किल्विषिकोंको अमरावतीसे बाहर दूर क्यों रहना पड़ता है और वे अस्पर्श क्यों हैं। एवं अनीक तथा आभियोग्यके आचरण शेष सात प्रकारके देवोंकी दृष्टिमें उच्च हैं वा नीच। देवोंके दश प्रकारके भेद और उनके उक्त प्रकारके व्यवहारोंसे तो साफ प्रकट है कि उनमें नीच और उच्च दोनोंही प्रकारके आचरणवाले जीव होते हैं, फिर जैनसिद्धान्तियोंने देवगतिमें नीच गोत्रका उदय क्यों नहीं कहा? पाठक विचारें।

२—इसमें कुछ विशेष कहनेकी जरूरत नहीं कि असुर, राक्षस, भूत, पिशाचादि देवोंके आचरण महान् घृणित और नीच माने गये हैं और वे वैमानिक देवोंकी समानता नहीं कर सकते। यदि गोत्रके उच्चत्व नीचत्वमें जीवका आचरण मूल कारण है तो वैमानिकोंकी अपेक्षा व्यन्तरादिका गोत्र अवश्य नीच होना चाहिये। देवमात्रको उच्चगोत्री कहना जैनसिद्धान्तियोंके गोत्रके लक्षणसे विरुद्ध पड़ता है।

३—पशुओंमें सिंह, गज, जम्बुक, भेड़, कुक्कुर आदिके आचरणोंमें प्रत्यक्ष भेद है। वीरता, साहस वगैरह गुणोंमें सिंहको मनुष्योंने आदर्श माना है। किसी दूसरेकी मारी हुई शिकार और उच्छिष्टको सिंह कभी नहीं खाता और न अपने वारसे पीछे रहे हुए पशुपर दुबारा आक्रमण करता है। जैनाचार्योंने १०० इन्द्रोंकी संख्यामें सिंहको इन्द्र कहा है, यथा—"भवणालय चालीसा बिंतर देवाण होंति बत्तीसा। कप्पामर चउबीसा चन्दो सूरो णरो तिरओ।" इसका क्या कारण है कि आचरणोंमें भेद होते हुए भी तिर्यञ्चमात्रको समानरूपसे नीचगोत्री कहा गया।

४—नारकियोंमें ऐसे जीव भी होते हैं जिनके तीर्थङ्कर नाम कर्म्मका बन्ध होता है। क्या वे जीव भी अन्य नारकियोंकी तरह नीचाचरणी ही होते हैं? सर्व नारकी जीवोंका समान नीचाचरणी और नीचगोत्री होना समझमें नहीं आता।

५—कुभोग-भूमिके मनुष्य नानाप्रकारकी कुत्सित आकृतियोंके होते हैं और सुभोग-भूमिकी अपेक्षा यह भी कहा जायगा कि वे कुभोगके भोगी हैं। क्या कुभोगभूमि और सुभोग-भूमिके जीवोंके आचरणोंमें फर्क नहीं होता? यदि होता है तो फिर अखिलभोग-भूमि-भव उच्चगोत्री ही क्यों कहे गये?

इन सब बातोंपर विचार करनेसे यही मालूम होता है कि गोत्रकर्म्मके विषयमें जैनोंका जो सिद्धान्त है वह केवल मनुष्योंका, और मनुष्योंमें भी भारतवासियोंका व्यवहार-मत है। भारतीय लोग सब प्रकारके देवी देवताओंकी उपासना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करते हैं; भूत, पिशाच, यक्ष, राक्षस, कोई भी हो सबके देवालय भारतमें मौजूद हैं, सबके स्तोत्रपाठ संस्कृत भाषामें हैं और उनके भक्त अपने अपने उपास्योंका कीर्तन करते हैं। इसलिये जैनोंने देवमात्रको उच्चगोत्री कहा है। क्योंकि वे मनुष्योंसे उच्च और शक्तिशाली एवं अनेक इष्टा-निष्टके करनेमें समर्थ माने गये हैं। पशु और नारकियोंको कोई मनुष्य अपनेसे अच्छा नहीं समझता, न उनके गुणावगुणपर विचार करता है, इसलिये मनुष्योंके साधारण खयालके मुताबिक तिर्यञ्च और नरकगतिमें एकान्त नीचगोत्रका उदय बताया गया। यदि चतुर्गतिके जीवोंके आचरण और व्यवहारोंको दृष्टिमें रखकर गोत्रके लक्षण तथा उदय-व्यवस्थाका वर्णन होता तो उसमें 'सन्तानक्रमेणागय' पदकी योजना कभी नहीं होती, और न देव, नारकी तथा तिर्यञ्चगतिमें एकान्तरूपसे एक ही प्रकारके गोत्रका उदय कहा जाता।

गोत्रके लक्षणकी उपर्युक्त आलोचना करके हमने यह दिखला दिया है कि यह लक्षण मनुष्योंकी व्यवहार-स्थितिके अनुसार बनाया गया है। इस लक्षणसे निम्नलिखित बातें और निकलती हैं:—

(१) जीवका वही आचरण गोत्र कहा जायगा जो कुलपरिपाटीसे चला आता हो, अर्थात्–जो आचरण कुलकी परिपाटीके मुआफिक न होगा उसकी गोत्रसंज्ञा नहीं है और वह गोत्रकर्म्मके उदयसे नहीं किन्तु किसी दूसरे ही कर्म्मके उदयसे माना जायगा।

(२) हरएक आचरणके लिये कुल विशेषका नियत होना जरूरी है और हरएक कुलके लिये किसी विशेष आचरणका।

परन्तु, जैनधर्म्ममें मानव-समाजके विकासका जो वर्णन है वह कुछ और ही बात कहता है; उसको यदि सही मानते हैं तो यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि भरतक्षेत्रमें एक समय ऐसा था जब मनुष्योंमें न तो कोई कुल थे और न उनकी परिपाटीके कोई आचरण थे, इसलिये उस समयके जीवोंके गोत्रकर्म्मका उदय भी नहीं था।

वर्तमान अवसर्पिणीके प्राथमिक तीन आरोंमें भोग-भूमिकी रचना थी; भोगभूमियोंमें कुल नहीं होते, कुलकरोंका जन्म तीसरे कालके अखीरमें होता है। इस प्रकार कुलोंके अभावमें भोग-भूमियोंके आचरणोंकी गोत्रसंज्ञा नहीं कही जायगी। यदि ऐसा कहा जाय कि समस्त भोग-भूमियोंका एक ही कुल था और उनके आचरण समान थे इसलिये भोग-भूमिजोंके गोत्रका सद्भाव था, तो आगे कुलकरों, तीसरे कालके अन्तके भोग-भूमियों तथा कर्म्मभूमिके आदिके मनुष्योंमें गोत्रका अभाव स्वयमेव सिद्ध होता है; क्योंकि इनके आचरण इनके पूर्वजोंसे सर्वथा भिन्न और विरुद्ध थे। इसको हम नीचे स्पष्ट करते हैं।

भोग-भूमिया मनुष्य न खेती करते थे, न मकान बनाते थे, और न भोजन-वस्तु पकाते थे; वे अपनी सब आवश्यकताएँ कल्प-वृक्षोंसे पूरी करते थे। इसीलिये उनमें असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, सेवा और शिल्पके कर्म-व्यापार भी नहीं थे। उनको आपसमें किसीसे कुछ सरोकार नहीं था, अपने अपने युगलके साथ अपनी कल्प-तरु-वाटिकामें सुखभोग करते थे। अतएव न कोई उनका समाज था और न कोई सामाजिक बन्धन। उनमें विवाह-संस्कार नहीं होता था; एक ही माताके उदरसे नरमादाका युगल उत्पन्न होता था, जब यौवनवन्त होते थे तब दोनों बहिन और भाई स्त्रीपुरुषका सम्बन्ध कर लेते थे। युगलके पैदा होते ही उनके मातापिताका देहान्त हो जाता था। इसप्रकार युगल मनुष्योंकी समान जीवन-स्थिति उस समय तक जारी रही जबतक कि कल्पवृक्षोंकी कमी न हुई। तीसरे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आरेके अखीरमें कल्पवृक्षोंकी न्यूनतासे लोगोंने अपने अपने वृक्षोंका ममत्व कर लिया और कई युगल वृक्षोंके लिये आपसमें क्लेश करने लगे। तत्पश्चात् परस्परके झगड़े निपटानेके लिये उन युगलियोंने अपनेमेंसे एक युगलको न्यायाधीश बनाया जो पहिला कुलकर हुआ और उसीके वंशज आगेको न्यायाधीश तथा दण्डनीति-विधायक होते रहे। इन्हीं कुलकरोंकी सन्तान श्रीऋषभदेव तीर्थंकर हुए जिन्होंने षट्कर्मकी शिक्षा दी; उनके उपदेशसे प्रथम पाँच कारीगर बने:—१ कुम्भकार, २ लोहार, ३ चित्रकार, ४ वस्त्र बुननेवाले, ५ नापित अर्थात् नाई। ऋषभदेवने ही विवाहविधि चलाई और सगे बहिन भाईमें स्त्री-भर्तारका सम्बन्ध होना बन्द किया।

इस कथनके मुआफिक जिस जिस भोग-भूमियाने अपनी सहोदराको छोड़कर दूसरी स्त्रीसे विवाह किया, अथवा ऋषभदेवजीकी शिक्षा पाकर कुम्हार, लोहार आदिके कामको किया, उसका आचरण उसके माता पिताके आचरणोंसे बिल्कुल ही विपरीत और निराला था; अर्थात् उसका आचरण अपने कुलकी परिपाटीके अनुसार नहीं था, इसलिये वह गोत्र-कर्म्मके उदयसे नहीं किन्तु किसी अन्य ही कर्म्मोदयका फल था। अतएव कर्म्म-भूमिकी आदिमें जो मनुष्योंके-आचरण थे उनकी गोत्रसंज्ञा नहीं कही जा सकती और उस समयके सब लोग गोत्र-कर्म्मोदय-रहित थे। आठ कर्म्मोंकी जगह उनके सातहीका उदय था। गोत्र-कर्म्मका उदय उनकी सन्तानके माना जायगा जिन्होंने अपने आचरण माता पितासे प्राप्त किये और उन्हींका पालन किया। यदि उस समय किसी नाईके लड़केने खेतीका काम किया और नापितके कार्यको न सीखा तो उसका भी आचरण 'सन्तानक्रमागत' न होनेसे गोत्रसंज्ञक न होगा, उसके भी गोत्रकर्म्माभाव ही कहा जायगा। ऐसे सन्तान-क्रमरहित आचरणोंके लिये कर्म्म-तत्त्व-ज्ञानमें कौनसा विशेष कर्म्म है सो ज्ञानी पाठक खुद विचारें; अष्ट कर्म्मके उपरान्त तो कोई कर्म्म नहीं कहा गया और इन मूलोत्तर प्रकृतियोंको इनके लक्षणानुसार उक्त सन्तान-क्रम-राहित आचरणोंके कारण कह सकते नहीं।

'सन्तानक्रमागत' पदपर एक शङ्का यह और होती है कि जिस भोग-भूमियाकी सन्तानने ऋषभदेवजीकी शिक्षानुसार अपने पूर्वजोंके आचरणको छोड़कर नवीन आचरण ग्रहण कर लिये, उसके पुत्रका आचरण पिताके अनुकूल होनेपर 'सन्तानक्रमागत' कहा जायगा कि नहीं; अर्थात् एक ही पीढ़ीके आचरणको 'सन्तानक्रमागत' कहेंगे या नहीं। मूलतः प्रश्न यह है कि कितनी पीढ़ीका आचरण 'सन्तानक्रमागत' कहा जा सकता है। इसका ब्यौरा किसी ग्रन्थमें देखनेमें नहीं आया।

अब जरा आचरणकी उच्चता नीचतापर विचार कीजिये। आचरण शब्दसे असलियतमें आचार्योंका क्या अभिप्राय है सो साफ साफ कहीं नहीं खोला गया। यदि 'आचरण' शब्दसे हिंसा, झूठ, चोरी, सप्त-व्यसन आदिमें प्रवृत्ति अथवा निवृत्तिसे मतलब है तब तो गोत्रके उक्त लक्षणानुसार ऐसा मानना पड़ेगा कि दो तरहके कुल यानी वंशक्रम होते हैं, एक वे जिनमें हिंसादि आचरण वंशपरम्परासे नियत रूपसे कभी हुए ही नहीं, अतएव उनमें उत्पन्न हुए जीव उच्चगोत्री कहलाते हैं; दूसरे वे कुल जिनमें हिंसादि आचरण नियत रूपसे परम्परासे होते आये हैं, इसलिये उनमें जन्म लेनेवाले जीव नीचगोत्री होते हैं।

चतुर्गतिके जीवोंका विचार न करके मनुष्योंका ही विचार करें तो ऐसे उच्चाचरणी नीचाचरणी नियत कुलोंका कर्म्म-भूमिके आदिमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्वथा अभाव था। भोग-भूमियोंमें तो ऐसे नियत कुल थे ही नहीं; अतः नियत कुलोंके अभावमें युगादिमें सब मनुष्य गोत्र तथा गोत्रकर्म्म रहित थे। जैनग्रन्थोंमें इस बातका ब्यौरा कहीं भी नहीं है कि अमुक अमुक कुल तो हमेशाके लिये उच्चाचरणी हैं और अमुक अमुक नीचाचरणी। तदुपरान्त, युगान्तरोंतक उन कुलोंमें निरन्तर एक ही प्रकारका आचरण रहे इसकी गारण्टी क्या ? किसी भी कुलमें एक ही तरहका आचरण निरन्तर बना रहेगा ऐसा मानना प्रकृति और कर्म्मसिद्धान्तके प्रतिकूल है, प्रत्यक्षसे बाध्य है। किसी जीवके आचरण उसके पिता या पूर्वजोंके अनुसार अवश्यमेव हों ही हों, ऐसा मानना एकान्त हठ है।

यदि आचार्योंका यह अभिप्राय हो कि उक्त हिंसादि आचरणोंमें प्रवृत्ति और निवृत्ति जीविकाके षट्कर्म्म तथा पेशोंसे नियोजित है; कई पेशे और कर्म तो ऐसे हैं जिनके करनेवाले नीचाचरणी नहीं होते और कई ऐसे हैं जिनको करनेसे जीव नीचाचरणी हो ही जाता है अथवा नीचाचरणी ही उस पेशेको करता है, उच्चारणी नहीं। प्रयोजन यह हुआ कि कई पेशोंके साथ उच्चाचरणका अविनाभावी सम्बन्ध है और कतिपयके साथ नीचाचरण का। इसमें, कई अनिवार्य्य शंकाएँ पैदा होती हैं। चतुर्गतिके जीवोंकी अपेक्षा तो यह सर्वथा असम्भव है। मनुष्योंकी अपेक्षा लीजिये—

(क) भोग-भूमियोंके कोई पेशे वा जीविकाकर्म्म नहीं थे अतः वे सब नीचाचरणी तथा गोत्रकर्म्मरहित कहे जायँगे। यह प्रचलित गोत्रोदय मतसे विरुद्ध पड़ता है।

(ख) षट्कर्म्म और पेशोंका उपदेश आदि तीर्थंकरने दिया था और उन्होंने ही कारीगरी तथा शिल्पके कार्य्य सिखाये थे, अन्नादिका अग्निमें पकाना भी उन्होंने ही सिखाया। वे अवधिज्ञानी और मोक्ष-मार्गके आदि विधाता थे; यदि उच्चाचरणी और नीचाचरणी दो प्रकारके पेशे वास्तवमें होते तो वे नीचाचरणके पेशोंको कभी नहीं सिखाते और न किसीको उनके व्यापारका आदेश करते, जान बूझकर वे जीवोंको पापमें न डालते, प्रत्युत सबको ही उच्चाचरणी पेशोंकी शिक्षा देते। जीविका कर्म्म और पेशोंके साथ उच्चाचरण और नीचाचरणके सम्बन्धकी योजनासे भगवान् ऋषभदेवपर बड़ा भारी दूषण आता है। इससे यही कहना पड़ेगा कि या तो उच्चाचरण और नीचाचरणका सम्बन्ध पेशोंसे है नहीं, और यदि है तो षट्कर्म्म और भिन्न भिन्न शिल्पके कार्योंकी शिक्षा ऋषभदेवजीने नहीं दी किन्तु प्रकृतिविकासके नियमनुसार शनैः शनै जनताकी जरूरतोंसे कभी कुछ और कभी कुछ, ऐसे नये नये आविष्कार होते रहे जैसे आजकल होते हैं। ऋषभदेवजीका चलाया हुआ कोई भी पेशा नीचाचरणका नहीं हो सकता, तदनुसार कुम्हार, जुलाहा, लोहार, नाई सब उच्चगोत्री हैं, पेशेकी अपेक्षा ये लोग नीचाचरणी नहीं, अथवा यों कहिये कि कुम्हार आदिके पेशे ऋषभदेवजीने नीचाचरण या नीचाचरणके कारण नहीं समझे और न ऐसा किसीको प्रकट किया। तदनुसार जीविका कर्म्मकी अपेक्षासे ऋषभदेवजीकी दृष्टिमें न कोई उच्चगोत्र था, न नीच। पाठक विचार करें कि ऐसी अवस्थामें उच्च और नीच आचरणोंके नियत कुलोंका सर्वथा अभाव है कि नहीं; फिर गोत्र और गोत्रकर्म्मकी क्या बात रही।

(ग) जैनधर्म्ममें प्रथमानुयोगके अनुसार जिन कुलोंमें क्षात्रकर्म्म होता है वे उच्चगोत्र कहे जायँगे। इसका यह अभिप्राय होता है कि जिन कुलोंमें परिपाटीसे क्षात्र-कर्म्म होता है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उनमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंके आचरण नियमतः उच्च ही होने चाहियें, तभी आचरण और जीविका-कर्ममें अविनाभावी सम्बन्ध माना जा सकता है। परन्तु कथापुराणोंमें इसके विपरीत हजारों उदाहरण मिलते हैं। रावण क्षत्रियकुलोत्पन्न तीन खण्डका राजा था, उसने सीता परस्त्रीका हरण किया जिसके कारण लाखों जीवोंका रणमें खून हुआ। युधिष्ठिरादि पाण्डव और कौरव क्षत्रियोद्भव थे, उन्होंने जूआ खेला और व्यसनको यहाँ तक निभाया कि द्रौपदी स्त्रीको भी दावमें लगाकर हार बैठे। पाठक, जरा विचारिये कि क्या ये आचरण उच्च थे। हमने ये उदाहरण दिग्दर्शन मात्रको लिख दिये हैं; वरना (अन्यथा) पुराणोंमें अगणित मिसालें (उदाहरण) मौजूद हैं जिनसे विदित होगा कि क्षत्रियोंमें ही अधिकतर नीचाचरणी हुए हैं। ऐसी अवस्थामें पेशेके साथ आचरणोंका स्थिर सम्बन्ध कैसे माना जा सकता है।

उपर्युक्त बातोंसे यह साफ हो जाता है कि लोकमें न तो ऐसे कोई कुल ही हैं जिनके लिये यह कहा जा सके कि उनमें उच्च या नीचाचरण हमेशाके लिये परिपाटीसे चला आता है, और न जीविका कर्म्म या पेशोंके कुलोंसे आचरणोंका अविनाभावी सम्बन्ध सिद्ध होता है।

अतः गोमट्टसारमें जो गोत्रका लक्षण है और जैनसिद्धान्तियोंने गोत्रकर्म्मोदय-व्यवस्था जैसी मानी है, ये सब प्रकृति-विकासके विरुद्ध हैं; ये सार्वकालिक और चतुर्गतिके जीवों पर दृष्टि रखकर नहीं बनाये गये, किन्तु भारतवासियोंके व्यवहार और खयालोंके अनुसार इनकी कल्पना हुई है। अमुक प्रकारके कुल जैसे ब्राह्मणादि, नियमसे उच्चाचरणी ही होते आये हैं और होते रहेंगे, इनमें उत्पन्न हुए जीवोंको उच्च ही मानना एवं इनसे इतर कुल जैसे कुम्भकार आदि शिल्पकार तथा नापित प्रभृति सेवाकर्मी नीचचरणी हैं, इनको सदा सर्वदाके लिये नीच ही मानना, नीचता उच्चता जन्मसे है, गुण स्वभावसे नहीं; एक कुल जातिका कर्म्म दूसरे कुल जातिवाला न करे, इत्यादि धारणाएँ भारतमें ही हजारों वर्षोंसे अचल रूपसे चली आरही हैं। इन्हीं वंशपरम्परागत धारणाओं और व्यवहारोंके मुताबिक जैनाचार्योंने गोत्र-कर्म्मका लक्षण रचा है।

सिद्धसेन दिवाकर और स्वामी समन्तभद्र।

[लेखक-श्रीयुत मुनि जिनविजयजी।]

जैनधर्मके प्रमाणशास्त्रके मूल प्रतिष्ठापक आचार्य सिद्धसेन दिवाकर और आप्तकी मीमांसा-द्वारा स्याद्वाद (अनेकान्तवाद) का समर्थन करनेवाले स्वामी समन्तभद्र—दोनों जैनधर्मके महान् प्रभावक और समर्थ संरक्षक महात्मा हैं। इन दोनों महापुरुषोंकी कृतियोंके देखनेसे, इनके स्वभाव और प्रभावमें एक सविशेष समानता प्रतीत होती है। दोनोंहीने परमात्मा महावीरके सूक्ष्म सिद्धान्तोंका उत्तम स्थिरीकरण किया और भविष्यमें होनेवाले प्रतिपक्षियोंके कर्कश तर्कप्रहारसे जैनदर्शनको अक्षुण्ण रखनेके लिये अमोघशक्तिशाली प्रमाण शास्त्रका सुदृढ संकलन किया।

इन्हीं दोनों महावादियों द्वारा सुप्रतिष्ठित जैनतर्ककी मूल भित्तियों पर मल्लवादी, अजितयशा, हरिभद्र, अकलंक, विद्यानन्द, माणिक्यनान्दि, प्रभाचन्द्र, अमृतचन्द्र, अनन्तवीर्य, अभयदेव, शान्तिसूरि, जिनेश्वर, वादी देवसूरि, हेमचन्द्रसूरि, मल्लिषेण, गुणरत्न, धर्मभूषण और यशोविजय आदि समर्थ जैन नैयायिकोंने बड़े बड़े तर्कग्रन्थोंके विशाल और दुर्गम दुर्गोंको निर्माण कर जैनधर्मके तात्त्विक साम्राज्यको इतर वादीरूप परचक्रके लिये अजेय बनाया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हमें अभी तक यह पूर्णतया निश्चित ज्ञात नहीं हुआ है कि ये दोनों महापुरुष कब और किस संप्रदायमें हुए हैं; परंतु पूर्वपरंपरासे जो मान्यता चली आ रही है उसके आशयानुसार यह कह सकते हैं कि सिद्धसेनदिवाकर तो श्वेताम्बरसंप्रदायमें, विक्रमराजाके समयमें हुए और स्वामी समन्तभद्र दिगम्बरसंप्रदायमें विक्रमकी दूसरी शताब्दीमें हुए।

दन्तकथाके कथनानुसार सिद्धसेन विक्रम राजाके—जिसके नामसे भारतवर्षका सुप्रसिद्ध संवत् चलता है—गुरु थे। ऐतिहासिकोंने भी इस कथनमें कुछ तथ्य स्वीकार किया है और 'ज्योतिर्विदाभरणके'

धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंह-शङ्कु—
वेतालभट्टघटखर्परकालिदासाः।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां
रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य ॥

इस श्लोकमें क्षपणक नामसे जिस व्यक्तिको विक्रमराजाकी सभाके नौरत्नोंमेंसे एक रत्न बतलाया है वह सिद्धसेन दिवाकर ही होना चाहिए, ऐसा अनुमान किया गया है*। यहाँ पर हमें इस कथनकी ऐतिहासिक सत्यासत्यताका विचार नहीं करना है, इस लिये इस विषयमें हम अपना कुछ भी अभिप्राय प्रकट करना नहीं चाहते। हमारे इस लेखका उद्देश केवल सिद्धसेन और समन्तभद्रकी परस्पर कुछ तुलना और उनके सामर्थ्यके बारेमें किञ्चित् वक्तव्य प्रकट करना है।

उपलब्ध जैनवाङ्मयका सूक्ष्मताके साथ निरीक्षण करनेसे पता लगता है कि सिद्धसेनसे पहले जैनदर्शनमें तर्कशास्त्रविषयक कोई स्वतंत्र सिद्धान्त प्रचलित नहीं था। उनके पूर्वमें प्रमाणशास्त्रविषयक बातें केवल आगमग्रन्थोंहीमें अस्पष्ट रूपसे संकलित थीं और उस समयतक उन बातोंका कुछ अधिक प्रयोजन भी नहीं था। सिद्धसेनसूरिके पहलेका जमाना तर्कप्रधान नहीं था किन्तु आगमप्रधान था। आप्तपुरुषका कथन मात्र ही तब तक सर्वथा शिरोधार्य समझा जाता था। जैनधर्मके सहचर ब्राह्मण और बौद्धधर्मोंकी भी यही अवस्था थी। परन्तु, महर्षि गौतमके 'न्यायसूत्र' के संकलनके बाद धीरे धीरे तर्कका जोर बढ़ने लगा और जुदा जुदा दर्शनोंके विचारोंका समर्थन करनेके लिये स्वतंत्र सिद्धान्तोंकी रचना होने लगी। लगभग उसी समयमें भगवान् गौतमबुद्धका साम्यवाद और मध्यममार्ग ब्राह्मणोंके कर्मजालसे संत्रस्त हुए साधारण लोगोंमें अधिक आदर पाने लगा था और थोड़े ही समयमें उसने सम्राट्के सिंहासन तकको भी अपना अनुयायी बना लेनेकी महत्ता प्राप्त कर ली थी।

इस प्रकार बौद्धधर्मके बढ़ते जाते प्रभावको देखकर कुछ मनस्वी ब्राह्मणोंने बुद्धदेवके सरल और सीधे सादे वचनोंको युक्तिशून्य और प्राकृतजनप्रिय मात्र बतलानेके उद्योगका आरंभ किया। महर्षि गौतम उन्हीं मनस्वी ब्राह्मणोंके नेता थे। बुद्धिमान् भिक्षुओं (बौद्ध श्रमणों) को जब इस उद्योगके रहस्यका पता लग गया तब उन्होंने भी अपने आप्तके नामधारी गौतममुनिके तर्कजालके फंदेमें न फँसनेकी सावधानीका रास्ता ढूँढ़ना शुरू किया। केवल, लोकहितकी दृष्टिसे, प्रचलित लोकभाषामें, आबाल-गोपालको बोध करनेके लिये रचे गये पाली पिटकोंके पारायणसे भिक्षुकगणको जब तार्किक ब्राह्मणोंके तर्कप्रपञ्चका समाधान करनेमें समर्थ होते न देखा तब आर्य नागार्जुननामक प्रतिभाशाली महाश्रमणने शून्यवादकी स्थापनाके लिये गूढविचारगर्भित मध्यमावतारका

* देखो, डा० सतीशचन्द्र विद्याभूषणलिखित न्यायावतारकी भूमिका तथा 'मध्यकालीन भारतीय न्यायशास्त्रका इतिहास।'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रणयन किया। जिस तर्कपद्धतिसे ब्राह्मण विद्वान् श्रमणोंके सरल विचारोंपर कठिन कटाक्ष किया करते थे, श्रमण विद्वान् भी अब उसी पद्धतिसे अपने 'मायावाद' के अदृश्य बाण ब्राह्मणोंके ऊपर चलाने लगे। इस प्रकार ब्राह्मण और बौद्ध विद्वानोंमें तर्कशास्त्रीय युद्ध बढ़ता गया, और शनैः शनैः श्रमणसमूह इस विषयमें अधिकाधिक उन्नति प्राप्त करता गया। उसमें आचार्य दिग्नाग आदि बड़े बड़े न्यायविद् श्रमण उत्पन्न हुए और उन्होंने शाक्यसूनु भगवान् बुद्धके प्राकृत-जनप्रिय सरल सिद्धान्तोंको विद्वानोंके लिये भी साधारणतः दुर्गम तथा गूढ़ बना दिया और उनकी गुत्थी सुलझानेके लिये अपने प्रतिपक्षियोंको चिरकाल तक विवश किया।

ब्राह्मणों और श्रमणोंके बीचमें होनेवाले इस वाग्युद्धकी शब्दध्वनि निर्जनवनोंमें घूमनेवाले जैन निर्ग्रन्थोंके कानोंतक भी जा पहुँची। ध्यान-मग्न निर्ग्रन्थ इस ध्वनिके मतलबको समझनेका प्रयत्न कर ही रहे थे कि इतनेमें स्वयं ज्ञातपुत्र भगवान् महावीरके 'मोक्षमार्ग' का उपहास सूचित करनेवाले शब्द भी उन्हें अस्फुट रीतिसे सुनाई देने लगे। इस स्थितिका विचार कर, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावके ज्ञाता 'क्षपणक' (जैन श्रमण या निर्ग्रन्थ) भी अपनी 'शासनरक्षा' का उपाय सोचने लगे। बौद्ध श्रमण 'शून्यवाद' के सिद्धान्तको जिस तर्कपद्धतिद्वारा प्रबल और व्यवस्थित बनाते हुए बुद्धदेवके शासनको स्थिर बनाते जा रहे थे उसी पद्धतिका आश्रय लेकर, निर्ग्रन्थ क्षपणकोंने भी 'स्याद्वाद' के सिद्धान्तको समथ और सुस्थित बनाकर महावीरदेवके शासनको अचल बनानेका निश्चय किया। उन्होंने सोचा कि पाली पिटकोंके पारायण मात्रसे जिस प्रकार बौद्ध श्रमण अपने शासनका संरक्षण करनेमें समर्थ नहीं हुए, उसी प्रकार प्राकृत आगमोंके प्रवचन मात्रसे जैन निर्ग्रन्थोंका 'मोक्षमार्ग' भी अब निर्भय नहीं रह सकता, इस लिये तर्कप्रधान प्रकरणग्रंथोंका प्रणयन करना अत्यावश्यक है।।

इन्हीं निर्ग्रन्थोंमेंसे, सबसे प्रथम आचार्य उमास्वाति (मी) ने तत्त्वार्थाधिगम सूत्रकी रचना कर समग्र जैनतत्त्वोंको एकत्र संगृहीत किया। अपने जीवनमें वे इस कार्यको पूर्ण करके पिछले प्रतिभाशाली क्षपणकोंके लिये ऐसी सूचना कर गये कि इन संगृहीत जैनतत्त्वोंके अर्थ प्रमाण-और नयके द्वारा निश्चित करने चाहिएँ (प्रमाण नयैरधिगमः)। 'मोक्षशास्त्र' के रचयिता महर्षिकी इस अर्थपूर्ण सूचनाके महत्त्वको समझ कर जिन पिछले महामति क्षपणकोंने इस दिशामें प्रयत्न करना शुरू किया और प्रमाण और नयकी व्यवस्था करनेके लिये नवीन शास्त्ररचना करनी शुरू की, सिद्धसेन दिवाकर उन्हीं सबके प्रधान अग्रणी हैं। उन्होंने ही सबसे पहले 'न्यायावतार' नामक तर्कप्रकरणकी रचना कर 'जैन-प्रमाण' का पाया स्थिर किया और 'सम्मति-प्रकरण' नामक महातर्कग्रन्थका प्रणयन कर 'नयवाद' का मूल दृढ किया।

सिद्धसेन दिवाकरकी कृतियोंके अवलोकनसे मालूम पड़ता है कि वे बड़े स्पष्टभाषी और स्वतंत्र विचारके उपासक थे। प्रकृतिसे वे बड़े तेजस्वी थे और प्रतिभासे 'श्रुतकेवली' थे। उनकी कृतियोंमें जो स्वतंत्र विचारकी झलक दिखाई दे रही है वह अन्य किसीकी भी कृतिमें नहीं। स्वयं उनके ग्रन्थोंके देखनेसे; तथा पिछले ग्रंथकारोंने उनके विषयमें जो उल्लेख किये हैं उनके पढ़नेसे ज्ञात होता है कि, जैनधर्मके कितने एक परंपरागत विचारोंसे सिद्धसेनके विचार भिन्न थे। पूर्वकालीन तथा समकालीन अन्यान्य जैनविद्वानोंके विचारोंमें और सिद्धसेनसूरिके विचारोंमें परस्पर बहुत कुछ उल्लेखयोग्य मतभेद था। दिवाकरजी साक्षात् जैनसूत्रोंके—जैना-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गमोंके—कथनको भी अपनी तर्कबुद्धिकी कसौटीपर कसकर तदनुकूल उसका अर्थ किया करते थे । केवल पूर्वपरंपरासे चले आने अथवा पूर्वाचार्योंको स्वीकृत होनेहीके कारण वे किसी सिद्धान्तको शिरोधार्य नहीं कर लेते थे । युक्तियुक्त बातहीको वे स्वीकार किया करते थे, चाहे वह पूर्वाचार्योंको सम्मत हो या न हो ।

जिस तरह वर्तमानमें बहुधा देखा जाता है कि कोई भी स्वतंत्र विचारक किसी भी पूर्वपरंपरासे चली आती हुई बातमें कुछ 'ननु नच' करता है या उसके प्रतिकूल कुछ अर्थ या अभिप्राय प्रदर्शित करता है तो झट बहुतसे गतानुगतिक और लकीरके फकीर बने हुए पण्डितम्मन्य महाशय एकदम चिल्ला उठते हैं कि, यह बात तो शास्त्र-विरुद्ध है, यह अभिप्राय तो परंपरासे प्रचलित अभिप्रायसे प्रतिकूल है; उसीतरह शायद दिवाकरजीके जमानेमें भी चलता रहा होगा । उनके कितने ही उद्गारोंसे मालूम पड़ता है कि, जब कभी वे कोई पूर्वपरंपरासे अथवा पूर्वाचार्योंके मतसे भिन्नार्थक विचार प्रदर्शित करते होंगे तब बहुतसे पुराणप्रिय पण्डित उनके नवीन विचारका प्रतिषेध करते हुए यही दलील देते होंगे कि—" महाराज ! आपके विचार तो पूर्वाचार्योंके विचारसे विरुद्ध जाते हैं; क्या आप पूर्वपुरुषोंसे अधिक ज्ञानवान् हैं, जो उनके कथनमें शंका उपस्थित करते हैं ? क्या आपके जैसी शंका उनको नहीं करनी आती थी ? " इत्यादि । ऐसे ही 'मृतरूढगौरव' प्रिय पण्डितोंका मुख मुद्रित करनेके लिये दिवाकरजीने एक द्वात्रिंशिकामें * बड़ी ही मार्मिकताके साथ अपने हृदयका जोश प्रकट करते हुए निम्नश्लोक कहा है—

* बत्तीस पद्योंका जो एक प्रकरण होता है उसे द्वात्रिंशिका कहते हैं । कहा जाता है कि सिद्धसेन दिवाकरने ३२–३२ पद्योंवाली ऐसी ३२ द्वात्रिंशिकायें बनाई थीं। प्रसिद्ध ग्रंथ 'न्यायावतार' भी इन्हीं द्वात्रिंशद्–द्वात्रिंशिकाओंमेंसे एक द्वात्रिंशिकारूप है । वर्तमानमें ये सब ३२ द्वात्रिंशिकायें उपलब्ध नहीं होतीं । 'न्यायावतार' सहित कुल २१ द्वात्रिंशिकायें हीं मिलती हैं । भावनगरकी 'जैनधर्मप्रसारक सभा' ने 'सिद्धसेन ग्रन्थमाला' के नामसे इन द्वात्रिंशिकाओं और 'सम्मतिप्रकरण' को मूल रूपमें छपवा कर प्रकट कर दिया है। सिद्धसेनसूरिकी ये द्वात्रिंशिकायें बहुत ही गूढ और गभीरार्थक हैं। इनको ऊपर ऊपरसे हमने कई बार पढ़कर देखा परंतु सबका आशय स्पष्ट रीतिसे बहुत कम समझमें आता है । अफसोस तो इस बातका है कि जैनधर्ममें हजारों ही बड़े बड़े ग्रंथकार और टीकाकार हो गये हैं, परंतु किसीने भी इन द्वात्रिंशिकायोंका अर्थ स्फुट करनेके लिये 'शब्दार्थमात्र प्रकाशिका' व्याख्या भी लिखी हो ऐसा ज्ञात नहीं होता । इसका कारण हमारी समझमें नहीं आता । इन द्वात्रिंशिकाओंकी अपूर्वार्थता और कर्ताकी महत्ताका खयाल करते हैं तब तो यह विचार आता है कि इनके ऊपर अनेक वार्तिक और बड़े बड़े व्याख्यान लिखे जाने चाहिएँ थे । और, 'न्यायावतार' के ऊपर ऐसे अनेक वार्तिक और व्याख्यान लिखे भी गये हैं । फिर नहीं मालूम, क्यों इन सबके लिये ऐसा नहीं किया गया । शायद अतिगूढार्थक होनेहीके कारण इनका रहस्य प्रकट करनेके लिये किसीकी हिम्मत न चली हो। योग्य और बहुश्रुत विद्वानोंके प्रति हमारा निवेदन है कि वे इनका अर्थ स्फुट करनेके लिये अवश्य परिश्रम करें । इन कृतियोंमें बहुत ही अपूर्व विचार भरे हुए हैं । हमारे विचारसे जैनसाहित्य भरमें ऐसी अपूर्व कृतियाँ नहीं हैं ।

सुप्रसिद्ध आचार्य हेमचंद्रने 'अन्ययोगव्यवच्छेद' और 'अयोगव्यवच्छेद' नामकी दो द्वात्रिंशिकायें बनाई हैं (जिनमेंसे एकके ऊपर मल्लिषेणसूरिने 'स्याद्वादमंजरी' नामक विद्वत्प्रिय उत्तम व्याख्या लिखी है), वे इन्हींकी अनुकरण हैं । स्वयं हेमचंद्रसूरिने अपनी प्रथम द्वात्रिंशिकाके प्रारंभहीमें सिद्धसेनसूरिकी कृतियोंका महत्त्व बतलाते हुए लिखा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जनोऽयमन्यस्य मृतः पुरातनः
पुरातनैरेव समो भविष्यति ।
पुरातनेष्वित्यनवस्थितेषु कः
पुरातनोक्तान्यपरीक्ष्य रोचयेत् ॥

इसका भावार्थ यह है । दिवाकरजी पुरातनप्रियोंको उद्दिष्ट करके कहते हैं कि, पुरातन पुरातन क्या पुकारा करते हो, यह (मैं) जन भी मरनेबाद, कुछ काल अनन्तर पुरातन हो जायगा और फिर अन्य पुरातनोंहीके समान इसकी भी गणना होने लगेगी । अर्थात् मरे बाद सब ही पुरातन माने जाते हैं । भला, ऐसी अनवस्थित पुरातनताके कारण कौन बुद्धिमान् मनुष्य किसी प्रकारकी परीक्षा किये विना, आँख मूँद कर, केवल पुरातनोंके नामहीसे चाहे जिस सिद्धान्तका स्वीकार कर लेगा ! ×

इसी तरह एक जगह और भी दिवाकरजीने पुराणप्रियोंके प्रति इस प्रकार स्पष्ट कहा है:—

'यदेव किञ्चिद्विषमप्रकल्पितं
पुरातनैरुक्तमिति प्रशस्यते ।
विनिश्चिताऽप्यद्यमनुष्यवाक्कृति-
र्न पाठ्यते (?) स्मृतिमोह एव सः ॥'

अर्थात् पुरातनोंने चाहे अयुक्त भी कहा हो तौ भी उनके कथनकी तो प्रशंसा ही करते रहना और आजकलके—वर्तमानकालीन—मनुष्योंकी युक्तिद्वारा सुनिश्चित विचारवाली भी वाणी—कृति—को पढ़ना तक नहीं, इसका नाम केवल मुग्ध मनुष्योंका स्मृतिमोह है; अन्य कुछ भी नहीं !

उनके ऐसे ही और भी अनेक चुभनेवाले उद्गार यत्र तत्र दृष्टिगोचर होते हैं । मालूम पड़ता है कि दिवाकरजीके ऐसे कोरे परंतु युक्तियुक्त जबावोंको सुन कर उनके विरोधी निरुत्तरित होकर मन ही मनमें खूब चिढ़ते रहते होंगे, और जिस तरह आजकलके पुराणप्रिय मनुष्य, जब स्वतंत्र विचारवाले किसी बुद्धिमान् विचारकके विचारोंका समाधान नहीं कर सकते तब अपने भक्तोंके सामने अपनी प्रतिष्ठा कायम रखनेके लिये, नवीन विचारोंपर नास्तिकताका आरोप करके उनकी उपेक्षा करने करानेका नाट्य करते-कराते दिखाई देते हैं उसी तरह, उस पुराने जमानेमें भी यही हाल चलता रहा होगा । और इसी लिये शायद दिवाकरजीने निम्नलिखित मर्मवचन बड़े मजाकके साथ कहा होगा ।—

'परेद्यु (?) जातस्य किलाद्य युक्तिमत्
पुरातनानां किल दोषवद्वचः ।

है कि—'क सिद्धसेनस्तुतयो महार्था अशिक्षितालापकला क चैषा' अर्थात्—सिद्धसेनसूरिकी बनाई हुई महान् अर्थवाली स्तुतियाँ कहाँ और अशिक्षित मनुष्यके आलाप जैसी मेरी यह रचना कहाँ ? इसी कथनसे ज्ञात हो जायगा कि सिद्धसेनसूरिकी ये स्तुतियाँ कैसी महत्त्ववाली हैं । (इनको बहुतसी द्वात्रिंशिकाओंमें मुख्य कर अर्हन् महावीरकी अनेक प्रकारसे स्तवना की गई है, इस लिये इनको स्तुतियाँ कहते हैं, और अतएव बहुतसी जगह 'आह च स्तुतिकारः' ऐसा उल्लेख सिद्धसेनसूरिके लिये किया गया है ।

× सिद्धसेनसूरिका यह उद्गार, उनके समकालीन और सहवासी महाकवि कालिदासके, मालविकाग्निमित्रमेंके—

'पुराणमित्येव न साधु सर्वं
न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम् ।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते
मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः ।

इस उद्गारके साथ कितनी अर्थसमता रखता है ! महाकवि कालिदास और सिद्धसेनदिवाकर दोनों महाराज वीरविक्रमादित्यकी राजसभाके उज्ज्वलरत्न थे । मालूम पड़ता है दोनोंकी अलौकिक प्रतिभा और लोकोत्तर कृतियोंने उस समयके पुराणप्रिय पण्डितोंको ईर्ष्यालुहृदयी बना दिये होंगे, और अतएव वे सर्वसाधारणमें पुरातनताके बहाने इनके गौरवमें न्यूनता लानेकी व्यर्थ चेष्टायें किया करते होंगे और ऐसे ही ईर्ष्यादग्धविदग्धोंको मौनव्रत दिलानेके लिये इन समर्थ पुरुषोंको ये उद्गार निकालने पड़े होंगे ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्रिमेव जाल्मः कृत इत्युपेक्षितुं
प्रपञ्चनायास्य जनस्य सेत्स्यति ॥ '

अर्थात्—' कलके जन्मे हुएके वचन तो आज युक्तिमत् बताये जाते हैं और पुरातन पुरुषोंके दोषवाले माने जाते हैं ! अफसोस, इससे अधिक और क्या मूर्खपना हो सकता है ? ऐसे बोलनेवाले जालिम मनुष्योंकी तो उपेक्षा ही करनी चाहिये । उनके सुधारनेके लिये और कोई दूसरा उपाय नहीं है । ' इस प्रकारके उद्गार निकाल कर ' उपेक्षा करनेका ' ढोंग रचनेवाले पुराणप्रेमियोंको दिवाकरजी कहते हैं कि बड़ी खुशीकी बात है–इस उपेक्षासे हमको तो लाभ ही होगा । क्यों कि हमारे विचारोंका प्रतिरोध करनेवाला कोई न निकलनेसे उनका तो और खूब प्रसार ही होगा !

आशा है विज्ञ पाठक दिवाकरजीके इन उद्गारोंको पढ़ कर उनकी विचारस्वतंत्रता और तर्कप्रवणताका बहुत कुछ अनुमान कर सकेंगे । ऐसे स्वतंत्र और निर्भीक उद्गार जैनसाहित्यमें तो क्या समग्र संस्कृतसाहित्यमें भी मिलने मुश्किल हैं । (अपूर्ण)

सेठ हुकमचंदजीपर अनुचित आक्षेप ।

इन्दौरके सुप्रसिद्ध धनकुबेर ' रायबहादुर सर सेठ हुकमचंदजी ' के नामसे हमारे सभी पाठक परिचित हैं । हालमें, कुछ महीने हुए, सेठजीने अपनी मौजूदा धर्मपत्नीकी असाध्या रुग्णावस्थाके कारण अपना एक दूसरा विवाह कराया था और इस विवाहके समय आपने ढाई लाख रुपयेका शुभ दान दिया था । विवाह समयके इस दान-समाचारको ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीने अपने ' जैनमित्रमें ' निम्न प्रकारसे प्रकट किया था:—

" इंदौरके सर सेठ हुकमचंदजीने अपने विवाहके समय वह एक लाख रुपै जो अपनी प्रथम धर्मपत्नी श्रीमती कंचनबाईके आरोग्य हो जानेके उपलक्षमें चांदीकी प्रतिमा बनवानेके लिये कहे थे, सो जैन विधवाओं और जैन असमर्थोंके लिये देने कहे हैं; और डेढ़ लाख रुपये एक अस्पताल खोलनेके लिये दिये हैं ।—"

इस समाचारको लेकर और इसे ज्योंका त्यों अपने पत्रमें उद्धृत करके, सहयोगी ' सत्यवादीके ' विज्ञ संपादक पं० खूबचंदजीने, सत्यवादीके अंक नं० ८–९ में, सेठजीपर एक बहुत ही अनुचित तथा मिथ्या आक्षेप किया है और उन्हें बहुत कुछ उलटी सीधी सुनाई हैं । यहाँपर उसीका स्पष्टीकरण करनेके लिये कुछ पंक्तियाँ लिखी जाती हैं ।—

उक्त विवाहसे कुछ समय पहले—डेढ़ वर्षसे भी अधिक समय पहले—सेठजीने ऐसा वचन निकाला था अथवा इस प्रकारकी कोई प्रतिज्ञा की थी कि, यदि हमारी धर्मपत्नी श्रीमती कंचनबाई डेढ़ वर्षके भीतर नीरोग हो जायगी तो हम एकलाख रुपये भर चाँदीकी तीन प्रतिमाएँ बनवाकर स्थापित कराएँगे । इससे पाठक समझ सकते हैं कि सेठजीको अपनी धर्मपत्नी कितनी प्यारी है और वे उसके लिये कहाँतक धनका बलिदान करनेके लिये तय्यार हैं । अस्तु । यह समाचार उस समय अनेक पत्रोंद्वारा प्रकाशित हुआ था । ' दिगम्बर जैन ' ने अपने अंक नं० ९–१० में लिखा था:—

" ...और अपनी पत्नी सौ० श्री कंचनबाईकी तबीयत डेढ़ वर्षमें अच्छी हो जायगी तो १००००) भर चांदीसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीजीकी तीन प्रतिमा बनवाकर ऊपरकी वेदीमें विराजमान करनेकी प्रतिज्ञा ली है।"

जैन हितैषीने अपने अंक नं० ७ में सूचित किया थाः—

"इन्दौरके धनकुबेर सेठ हुकमचंदजीने प्रकट किया है कि यदि मेरी धर्मपत्नी डेढ़ वर्षके भीतर नीरोग हो जायँगी तो मैं एक लाख रुपये भर चाँदीकी तीन प्रतिमायें बनवाकर विराजमान कराऊँगा।..."

(अन्य पत्रोंकी फाइलें इस समय हमारे सामने मौजूद नहीं हैं) । इस समाचारके निकलनेपर बड़े बड़े पंडितों तथा अनुष्ठानकर्ताओंने जिनेंद्र भगवान् और शासनदेवताओंसे बहुत कुछ विनय, अनुनय और प्रार्थनाएँ कीं परन्तु फल कुछ नहीं निकला। भगवान् तो 'वीतराग' ठहरे, शासनदेवताओंने भी किसीकी एक नहीं सुनी । संभव है कि वर्तमान देशकालानुसार चाँदीकी प्रतिमाओंका बनाया जाना उन्हें इष्ट ही न हुआ हो अथवा सेठानीजीको नीरोग बनाना उनकी सामर्थ्यसे बाहरका काम हो। कुछ भी हो, एक एक दिन करके डेढ़ वर्ष बीत गया और सेठानीजी बीमारकी बीमार ही बनी रहीं। जब इस अन्तके उपाय द्वारा भी सेठानीजी नीरोग नहीं हो सकीं तब सेठजीकी आशाओंपर पानी फिर गया। ऐसी हालतमें उनकी चिन्ताओंका उत्तरोत्तर बढ़ना स्वाभाविक था। नहीं मालूम उनके हृदयमें क्या क्या विचार उत्पन्न हुए होंगे और कैसा ऊहापोहात्मक नाटक उपस्थित हुआ होगा । अन्तमें, ऐसा मालूम होता है कि, जब उन्होंने अपनी स्त्रीको सदाकी रोगल (रुग्ना)—असाध्य रोगल—देखा, उसे त्रिवर्गके योग्य नहीं पाया और अपने लिये त्रिवर्गके—धर्म, अर्थ, कामके—अविरोधरूपसे अथवा समानरूपसे संसाधनकी ज़रूरत समझी तब उन्होंने स्वयं, अथवा अपनी स्त्रीकी भी सम्मतिसे, अपने दूसरे विवाहका निश्चय कर लिया और उसे कर डाला। यहाँ, हमारे इन शब्दोंसे, किसीको यह न समझ लेना चाहिये कि हम सेठजीके इस विवाहको 'उचित' प्रतिपादन कर रहे हैं। वह उचित हो या अनुचित, यहाँ पर उसके विचारका अवसर नहीं है । उसके औचित्य और अनौचित्य पर विचार प्रकट करनेकी अगर ज़रूरत होगी और हमें अवकाश मिलेगा तो उस पर एक विस्तृत स्वतंत्र लेख लिखा जायगा। इस समय हमें सिर्फ इतना ही बतलाना है कि इस विवाहके अवसर पर सेठजीने एक अस्पतालके लिये डेढ़ लाख रुपयेका दान करते हुए, अपनी उदारतासे वह एक लाख रुपया भी जैन विधवाओं तथा जैन असमर्थोंकी सहायतार्थ दे डाला जिसे उन्होंने शर्तिया तौर पर प्रतिमाओंके लिये निकालनेका विचार किया था और शर्त पूरी न होनेके कारण जिसकी अब प्रतिमाएँ कोई अधिकारिणी अथवा हक़दार नहीं रही थीं और न किसी देवताका ही उसपर कुछ आधिपत्य हो सकता था । सेठजीकी इस उदारता और उनके इस समयोचित दानकी जितनी भी प्रशंसा की जाती और जितनी भी कृतज्ञता उनके इस कृत्यपर प्रकट की जाती वह सब थोड़ी थी। परंतु कृतज्ञता प्रदर्शित करना और कुछ अहसान मानना तो दूर रहा, सहयोगी 'सत्यवादी' के सुयोग्य संपादक महाशयने, 'वचनका मूल्य' शीर्षक एक नोट लिखकर, सेठजी पर उलटा अपना कोप प्रगट किया है। ऐसा मालूम होता है कि संपादक महोदयकी अभीष्ट चाँदीकी प्रतिमाओंके बननेका सुयोग नष्ट होजाने और उस द्रव्यके दूसरे लोकोपकारी कार्योंमें दे दिये जानेके कारण उनके हृदय-स्रोतसे एकदम कषाय-जोश उबल उठा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और उनके दिमागी थर्मामेटरका पारा इतना ऊँचा चढ़ गया है कि उसमें उन्हें सत्य-असत्य, योग्य अयोग्य और उचित अनुचितका कुछ भी भान नहीं रहा। उन्होंने सेठजीको वचनभंगका अपराधी ठहराया है, उनके इस कृत्यको धनमदका कार्य सूचित किया है और साथ ही उनके उस पूर्वसंकल्पित शर्तिया द्रव्यको निर्माल्यद्रव्य और देवद्रव्य बतलाकर उसको फिरसे दानमें परिणत करनेके लिये सेठजीको अनधिकारी प्रकट किया है। और यदि वे ऐसा करते हैं तो उन्हें जैनविधवाओं आदिको देवद्रव्य अथवा निर्माल्यद्रव्यका खिलानेवाला और इसलिये उनका अहितकर्ता भी सूचित किया है। इस तरहपर सम्पादक महाशयने अपने हृदयके बहुत कुछ उद्गार प्रकट किये हैं और उनके द्वारा सेठजीकी कीर्तिको कलंकित करने और उन्हें डरानेका भरसक यत्न किया है। हमें इन पिछली बहुतसी बातोंपर लम्बा जानेकी जरूरत नहीं है। इससमय हमको सिर्फ वचनभंगवाली बातपर ही विशेष ध्यान देनेकी जरूरत है, अन्य सब बातें प्रायः उसीके आश्रित हैं। हमें देखना चाहिये कि सेठजीपर इस विषयमें वचनभंगका इलजाम (दोषारोप) कैसे लगाया जा सकता है। ऊपर जो कुछ घटनाएँ प्रकट की गईं और उनके समाचार उद्धृत किये गये हैं उनपरसे किसी भी पाठकके हृदयमें कभी यह खयाल पैदा नहीं हो सकता कि सेठजीने वचनभंगका कोई कार्य किया है। परंतु 'सत्यवादी' के सम्पादक महाशय जैनमित्रके विवाह-समयके दानसम्बन्धी उपर्युल्लिखित समाचारको अपने नोटमें उद्धृत करते हुए उस पर लिखते हैं:—

"देखिये पाठक! जिससमय सेठजीकी धर्मपत्नी श्रीमती कंचनबाईजी रोगग्रसित थीं उस वक्त सेठजीने किसी औसरपर सरे पंचोंके बीच, श्रीजीके सन्मुख, मंदिरजीमें यह अभिवचन दिया था कि यदि मेरी पत्नी आगामी दिसम्बर १९१८ तक **जीवित रहेगी** तो मैं एक लक्ष रुपै भर चांदीकी श्रीजिनेंन्द्र भगवानकी प्रतिमाजी बनवाकर विराजमान कराऊँगा। यह समाचार समाजके प्रायः सभी पत्रोंमें हर्षरूपमें प्रकट किया गया था और इससे सेठजीने अपनेको जिनेंद्रभक्त कहलानेका सिक्का जैनसमाजपर पूर्णरूपसे अंकित कर दिखाया था। परंतु खेद है कि वही सेठजी आज अपने उस आदर्श वचनकी अवज्ञा करनेको तयार हुए हैं। आप अपने दान किये अनुसार उस एक लक्ष रुपैको जिनप्रतिमा बनवानेमें न लगाकर उसे जैनविधवाओं और असमर्थोंको सहायता देनेमें खर्च करना चाहते हैं।"

सम्पादक 'सत्यवादी' के इस कथनमें सेठजीके वचनको जिस रूपसे प्रदर्शित किया गया है उसमें, अन्य सब बातोंको छोड़कर, हमारा ध्यान सबसे पहले 'जीवित रहेगी' इन शब्दोंपर जाता है। ये शब्द सम्पादकजीकी निजकी ईजाद मालूम होते हैं। समाजके पत्रोंमें, जिनकी आपने ऊपर दुहाई दी है, उक्त शब्दोंका कहीं नामोनिशान—दर्शनतक—नहीं है; जैसा कि 'दिगम्बरजैन' और 'जैनहितैषी' के ऊपर उद्धृत किये हुए वाक्योंसे प्रकट है। जैनमित्रका भी आशय, उसके उपर्युल्लिखित समाचारसे, इन्हीं दोनों पत्रोंके अनुकूल पाया जाता है। इन पत्रोंमें 'अच्छी हो जायगी,' 'नीरोग हो जायगी,' इन शब्दोंका व्यवहार किया गया है। इन शब्दों और 'जीवित रहेगी' शब्दोंमें ज़मीन आसमानकासा अन्तर है—दिनरात जैसा भेद है—उससे सेठजीके वचनका आशय बिलकुल ही बदल जाता है और वह प्रायः एक अप्राकृतिक वचन जैसा बन जाता है। सम्पादक महाशय पंडितजीने 'नीरोग हो जायगी'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इत्यादि शब्दोंके स्थानमें 'जीवित रहेगी' इन शब्दोंको बदलकर बहुत ही अन्याय, अत्याचार और सर्वसाधारणको धोखेमें डालनेका काम किया है। उनके इस घृणित कृत्यकी जितनी भी निन्दा की जाय वह थोड़ी है। अफसोस! उन्होंने खुद जैनमित्रके जिस समाचारके आधारपर यह नोट लिखा है उस समाचारमें भी धर्मपत्नीके 'आरोग्य हो जाने' की बात कही गई है 'जीवित रहने' की नहीं। यदि इस समाचारका कोई अंश असत्य था, तो पंडितजीको उसका सप्रमाण प्रतिवाद करना चाहिये था। परन्तु ऐसा नहीं किया गया। उलटा, चुपकेसे, पाठकोंकी आँखोंमें धूल डालते हुए, सेठजीके वचनको इस ढंगसे बदलकर रख दिया है, जिससे उनपर आक्षेप करनेका अवसर मिले और लोगोंके हृदयोंसे सेठजीकी प्रतिष्ठा उठ जाय। हम पूछते हैं, क्या इसीका नाम 'सत्यवादिता' और इसीका नाम 'पांडित्य' है? अथवा क्या इसीको 'सम्पादकीय कला' कहते? और क्या इसे 'कूटलेखकता नहीं कहेंगे? क्या हमारे पंडित महाशय इसी रेतकी निःसार नीव पर अपने आक्षेपोंकी भित्ति (दीवार) को खड़ा करना चाहते थे? और क्या उन्होंने इसी बिरते पर—इसी छलकपटके आधार पर—सेठजीपर वचनभंगका महादोषारोपण करनेका साहस किया है? शोक! शतशोक!! हमें अफसोस है कि जो लोग, इस प्रकारसे, स्वयं अपने शब्दोंका—अपने वचनोंका—कुछ भी मूल्य नहीं रखते वे दूसरोंके—प्रतिष्ठित पुरुषोंके—'वचनका मूल्य' जाँचने और उसे कहनेका दुःसाहस करनेके लिये तय्यार होते हैं! विद्वानोंके लिये इस प्रकारकी बातें—ऐसी मिथ्या और अनुचित चेष्टाएँ—बड़ी ही लज्जास्पद और हास्यजनक होती हैं। विद्वानोंको चाहिये कि वे जो कुछ लिखें वह सब सत्य और बहुत ही जँचा तुला हो। उनकी लेखनीसे यथासंभव कोई भी बात निराधार और अप्रामाणिक नहीं निकलनी चाहिये। उन्हें दूसरोंकी कारवाईयोंपर नेकनीयतीसे टीका-टिप्पण करनेका अधिकार जरूर है। परन्तु वे उन कार्रवाइयोंका असली रूप पब्लिक पर प्रकट करते हुए ही ऐसा कर सकते हैं—उनका नकली और स्वमनःकल्पित-रूप सामने रखकर उन्हें वैसा करनेका कोई अधिकार नहीं है। और न उससे उनकी नेकनीयतीही पाई जा सकती है।

सम्पादक 'सत्यवादी' जीने इतना ही नहीं किया, बल्कि उन्होंने सेठजीके वचनसे तीन प्रतिमाओंकी बातको भी साफ उड़ाया है। जान पड़ता है आपको उतने वजनकी सिर्फ एक प्रतिमाका बनाया जाना ही अभीष्ट था और इसीसे आपने 'चाँदीकी सवा इकतीस मन वजनवाली प्रतिमा—न भूतो न भविष्यति' इत्यादि वाक्योंद्वारा उसे आगे पुष्ट भी किया है। आगे चलकर आपने कुछ और भी गोलमाल किया है और कुछ ऐसी ही ऊटपटाँग बातें लिखी हैं जिन सबको हम यहाँपर छोड़ते हैं और इससमय सिर्फ इतना ही लिखना काफी समझते हैं।

आशा है कि सम्पादक महाशय इस नोटपरसे कुछ शिक्षा ग्रहण करेंगे और अपनी भूलको समझेंगे। साथ ही, अपने इस कृत्यसे, उन्होंने सेठजीकी जो कुछ मानहानि की है और उन्हें जो कुछ मानसिक कष्ट पहुँचाया है उस सबके लिये सेठ साहबसे क्षमाप्रार्थी होकर अपने अपराधका प्रायश्चित्त करेंगे। इसीमें उनका सौजन्य और इसीमें उनका महत्त्व होगा। इत्यलम्।

ता० २६-१०-१९।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नीच और अछूत ।

(ले०—भगवन्त गणपति गोइलीय ।)

(१)

नालीके मैले पानीसे मैं बोला हहराय;
हौले बह रे नीच कहीं तू मुझपर उचट न जाय ।
'भला महाशय !' कह पानीने भरी एक मुसकान;
बहता चला गया गातासा एक मनोहर गान ।

(२)

एक दिवस मैं गया नहाने किसी नदीके तीर ।
ज्यों ही जल अञ्जलिमें लेकर मलने लगा शरीर ।
त्योंही जल बोला मैं ही हूँ उस नालीका नीर;
लज्जित हुआ, काठ मारासा मेरा सकल शरीर ।

(३)

दँतुअन तोड़ी मुँहमें डाली वह बोली मुसुकाय;
ओह महाशय ! बड़ी हुई मैं नालीका जल पाय ।
फिर क्यों मुझ अछूतको मुँहमें, देते हो महाराज !
सुनकर उसके बोल हुई हा ! मुझको भारी लाज ।

(४)

खानेको बैठा भोजनमें ज्योंही डाला हाथ;
त्योंही भोजन बोल उठा चट विकट हँसीके साथ ।—
नालीका जल हम सबने था किया एक दिन पान;
अतः नीच हम सभी हुए फिर क्यों खाते श्रीमान ।

(५)

एक दिवस नभमें अभ्रोंकी देखी खूब जमात;
जिससे फड़क उठा हर्षित हो मेरा सारा गात ।
मैं यों गाने लगा कि, आओ अहो ! सुहृद् घनवृन्द;
बरसो, शस्य बढ़ाओ, जिससे हो हमको आनन्द ।

(६)

वे बोले, हे बन्धु 'सभी हम हैं अछूत औ नीच;
क्यों कि पनालीके जलकण भी हैं हम सबके बीच ।
कहीं अछूतोंमें ही जाकर बरसेंगे जी खोल,
उनके शस्य बढ़ेंगे, होगा उनको हर्ष अतोल ।

(७)

मैं बोला, मैं भूला था, तब नहीं मुझे था ज्ञान;
नीच ऊँच भाई भाई हैं भारतकी सन्तान ।
होगा दोनों बिना न दोनोंका कुछ भी निस्तार;
अब न करूँगा उनसे कोई कभी बुरा व्यवहार ।

(८)

वे बोले यह सुमति आपकी करे हिन्दका त्राण;
उनके हिन्दू रहनेमें है भारतका कल्याण ।
उनका अब न निरादर करना, बनना भ्रात, उदार,
भेदभाव मत रखना उनसे करना मनसे प्यार !

विविध विषय ।

१–विचार बदलगया ।

यह बात हमारे किसी भी पाठकसे छिपी नहीं है कि इन्दौरके सुप्रसिद्ध धनकुबेर रायबहादुर सर सेठ हुकमचंदजीने अपनी धर्मपत्नीके डेढ़ वर्षके भीतर नीरोग हो जानेकी शर्तपर एक लाख रुपयेकी चाँदीकी तीन प्रतिमाएँ बनवानेका संकल्प करके उसे बाहर निकाला था । परन्तु दुर्दैवसे डेढ़ वर्षके भीतर तो क्या अभीतक भी उनकी स्त्रीको नीरोगताकी प्राप्ति नहीं हुई और इस लिये सेठसाहबके उक्त संकल्पको पूरा होनेका–अथवा चाँदीकी प्रतिमाओंको बननेका–अवसर नहीं मिल सका । सेठजीने यह समझकर कि धर्ममें लगाया हुआ धन सदा ही शुभ होता है, अपना वह एक लाखरुपया, जिसे उन्होंने शर्त पूरी होनेपर चाँदीकी प्रतिमाओंके बनवानेमें खर्च करनेका विचार किया था, एक दूसरे ही धर्मकार्यमें अर्थात्, जैन असमर्थोंकी सहायतार्थ, दे डाला । इसपर हमारे कुछ प्रतिमाप्रेमी महाशय, जिन्हें चाँदीकी प्रतिमाओंके दर्शन–पूजनमें ही सातिशय पुण्यकी प्राप्ति मालूम होती है और जो उनके द्वारा इन्दौर शहरको एक आतिशय क्षेत्र बनानेकी धुनमें लगे हुए हैं, विकल हो उठे हैं । उनका, जिस तिस प्रकारसे, यही कहना है कि, यद्यपि सेठजीकी स्त्रीको नीरोगताकी प्राप्ति नहीं हो सकी तो भी सेठ साहबको अपने विचारानुसार चाँदीकी प्रतिमाएँ ज़रूर बनवा देना चाहिये था । उनके लिये एक लाख रुपया कोई चीज़ नहीं है । यदि वे उन एक लाख रुपयोंको दूसरे धर्मकार्यमें दे चुके हैं तो कोई हर्ज नहीं, उन्हें अब दूसरे एक लाख रुपयोंसे चाँदीकी प्रतिमाएँ बनवा देना चाहिये । यह भी धर्मका कार्य है । ऐसा करनेसे जैनधर्मकी विशेष प्रभावना होगी और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सेठजीका 'वह संकल्प भी पूरा हुआ ठहरेगा' * । यद्यपि, इस विषयमें, हम यह माननेके लिये तय्यार नहीं हैं कि चाँदीकी प्रतिमाओंसे जैनधर्मकी कोई विशेष प्रभावना होती है, और न इस बातसे ही सहमत हैं कि जो संकल्प पूरा नहीं हुआ उसे ख्वाहमख्वाह भी पूरा हुआ ठहराकर पबलिकमें एक प्रकारका मिथ्या भाव पैदा किया जाय, तो भी हम इतना जरूर कहेंगे कि प्रतिमाओंका बनवाना एक प्रकारका धर्मकार्य अवश्य है यदि (बशर्ते कि) वह देशकालकी स्थितिको देखते हुए शुद्ध और सच्चे धार्मिकभावोंसे प्रेरित होकर किया जाय। साथ ही, यह बात भी माननेके लिये तय्यार हैं कि उक्त सेठजीके लिये एक लाख रुपया कोई चीज नहीं है। वे एक लाख रुपयेकी तीन नहीं लाख लाख रुपयेकी तीन प्रतिमाएँ भी बनवा सकते थे और अब बनवा सकते हैं। परन्तु फिर भी उन्होंने जो उनको नहीं बनवाया और न बनवानेका इरादा रखते हैं, इसमें कोई गुप्त रहस्य जरूर है। जिसे हम यहाँ अपने पाठकोंपर प्रकट कर देना उचित समझते हैं और वह यह है कि, सेठजीका विचार अब इस विषयमें बदल गया है। वे जैनसमाज तथा देशकालकी वर्तमान परिस्थितियोंके अनुसार अब चाँदीकी प्रतिमाओंका बनाया जाना उचित नहीं समझते। पिछले दिनों कलकत्तेके कोलूटोलास्ट्रीटवाले जैनमंदिरमें प्रतिमाओं पर जो उपद्रव हुआ है, उससे सेठजीके चित्त पर बहुत असर पड़ा है और वहाँका वह दृश्य उनके विचारपरिवर्तनमें बहुत कुछ सहायक बना है; जैसा कि उनके निम्नपत्रसे प्रकट है, जो कि उन्होंने ३ नवम्बरको बम्बई पं० नाथूरामजीके पास, उनके पत्रके उत्तरमें, भेजा है—

"श्रीयुत सज्जन भाई नाथूरामजी प्रेमी, जुहारु।

आपका पत्र आया जिसके उत्तरमें लिखनेमें आता है कि मेरी धर्मपत्नी बीमार थी तब मैंने यह संकल्प करके कहा था कि १८ *महिनेमें यह आरोग्य हो जावेगी तो १ लाख रुपयेकी चाँदीकी प्रतिमा बनवा दूँगा। मेरी धर्मपत्नी अभीतक बीमार रहती है तथापि यह समझकर कि धर्ममें लगाया धन सदा ही शुभ है हमने वह १ लाख रुपया परोपकारमें लगानेका नक्की किया। चूंकि कलकत्तेका प्रतिमाजीवाला दृश्य कोलूटोला स्ट्रीटका साम्हने रखकर कि जब इस निकृष्ट कालमें पाषाणकी प्रतिमातकके लोग विरोधी हैं तो भला चांदीकी प्रतिमाकी कहाँतक रक्षा की जा सकती है बल्कि बड़ी प्रतिमाएँ कीमती धातुकी बनाना एक प्रकार जान पूछ कर इस कालमें अपने धर्मके आविनय होनेवाले शत्रु पैदा करना है, ऐसा ध्यानमें आनेसे १ लाख रुपया विधवा और असहाय लोगोंके परोपकारमें खर्च करना ऐसा हमने निश्चय करा और उस माफिक कार्य भी चालू कर दिया। अब इस परसे समाज जो चाहे सो लिखे या कहे—हमारी समाज इस समय पक्षपातके सूत्रपातसे बँधी है जो चाहे ले दौड़े। हमें तो १ लाख रुपया परोपकारमें खर्च करना था, जिसमें विशेष लाभ हमें दीख पड़ा और समाजकी और देशकालकी परिस्थितिसे ठीक जँचा उसही रास्तेसे खर्च कर देना निश्चय किया है सो आपको मालूम रहे—और सब कुशल है काम काज लिखिये।"

आपका दास—

द० हुकमचंद"

* यह अन्तिम वाक्य खास पं० खूबचंदजीका है जो 'सत्यवादी' के संपादक हैं। इससे स्पष्ट ध्वनित है कि सेठजीका वह संकल्प पूरा तो नहीं हुआ, परन्तु पंडितजी उसे इस तरह पर 'पूरा हुआ' ठहराना चाहते हैं।

* उस पत्रमें गलतीसे १२ महिने लिखे गये थे बादको दूसरे पत्रद्वारा गलतीकी सूचना मिलने पर यहाँ उसका सुधार किया गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हम सेठजीके इस विचारपरिवर्तनका अभिनंदन करते हुए उन्हें हृदयसे धन्यवाद देते हैं। निःसन्देह आजकलकी परिस्थितियों और जैन-समाजकी मौजूदा हालतको देखते हुए ऐसी चाँदीकी प्रतिमाओंका बनवाना कभी ठीक नहीं हो सकता। जो लोग चाँदीकी प्रतिमाको सातिशय पुण्यजनक समझते हैं और उसे भव-भवके पातक दूर करनेवाली मानते हैं,*यह सब उनकी भूल है। उन्होंने प्रतिमापूजनके रहस्यको नहीं समझा, और न वर्तमान देशकालकी परिस्थितियोंका परिशीलन ही किया है। हमारी रायमें आजकल ऐसी बहुमूल्य प्रतिमाओंके तय्यार करानेमें जो धन खर्च होता है वह समाज-हितके लिये दूसरे समयोपयोगी कार्योंमें व्यय होना चाहिये। सेठजीने ऐसा ही किया है और इसलिये उससे उनकी दूरदर्शिता और समयज्ञताका अच्छा परिचय मिलता है।

२—नई ईजाद।

अभीतक आम तौरपर यह मान्यता चली आती है कि जहाँ कहीं किसी प्रतिमाके निमित्तसे देवकृत कोई अतिशय या चमत्कार देखनेमें आता है वहाँके उस क्षेत्रको 'अतिशय क्षेत्र' कहते हैं। परंतु हालमें हमारे सहयोगी 'सत्यवादी' के विज्ञ संपादक महाशयने एक नई ईजाद कर डाली है, जिसके अनुसार अब किसी क्षेत्रको अतिशय क्षेत्रका सौभाग्य प्राप्त करने अथवा उक्त पदवीसे विभूषित होनेके लिये देवकृत किसी अतिशयकी अथवा यों कहिये कि देवोंका मुँह ताकनेकी कोई जरूरत नहीं रही; अब केवल चाँदीकी एक बड़ीसी प्रतिमा (यदि वह सवा इकतीस मनकी हो तो और भी अच्छा) विराजमान कर देनेसे ही वह काम निकल जायगा। चाहे उस प्रतिमाको भले ही कोई उठा ले जाय अथवा उसे खंडखंड तथा विकृत कर डाले परंतु तो भी वह प्रतिमा अतिशयवती और उसके कारण वह क्षेत्र अतिशय क्षेत्र बना रहेगा, उसमें जरा भी फरक नहीं आएगा। इस नूतन आविष्कारके उपलक्षमें संपादक 'सत्यवादी' को जितना भी धन्यवाद दिया जाय वह थोड़ा है। जिन जिन भाइयोंकी इच्छा अपने नगर-ग्रामोंको अतिशयक्षेत्र बनानेकी हो और जो दूरदेशान्तरोंके यात्रियोंका अपने यहाँ बराबर आवागमन देखना चाहते हैं उन्हें चाहिये कि वे संपादकमहोदयके इस नवाविष्कारके अनुसार शीघ्र ही चाँदीकी एक बड़ीसी प्रतिमा अपने यहाँ स्थापित कर लेवें; बस इतनेसे ही उनका नगर या ग्राम एक खासा और पक्का अतिशयक्षेत्र बन जायगा और वहाँ दूरदूरके यात्रिगण स्वयमेव ही आने लगेंगे! हमें अफसोस है कि रायबहादुर सर सेठ हुकमचंदजीने सम्पादक महाशयकी इस नई ईजादके अनुसार अपने इन्दौर शहरको अतिशयक्षेत्र बनाना पसंद नहीं किया। देखिये, दूसरे स्थानोंके भाई भी इस नई ईजादसे कुछ लाभ उठाना पसंद करते हैं या नहीं।

३—एक नवीन सोसायटीकी स्थापना।

गत तारीख ५–६–७ नवम्बरको पूना शहरमें ओरियंटल कान्फरेन्सका जलसा था, जिसमें देशके प्रायः सभी मार्गोंसे अच्छे अच्छे विद्वान् पधारे थे। इस अवसर पर श्रीयुत मुनिजिनविजय और कुमार देवेंद्रप्रसादजी, आरा आदि कुछ सज्जनोंके प्रयत्नसे एक नवीन जैन-

* जैसा कि पं० खूबचंदजी संपादक सत्यवादीके निम्नवाक्यसे भी प्रकट है—"भव्यजनोंके इस सातिशय पुण्यजनक प्रतिमाके दर्शनोंसे भवभवके पातक दूर होंगे।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सोसायटीकी स्थापना हुई है, जिसका नाम है 'दि जैन रिसर्च सोसायटी ' (The Jain research sceiety); अर्थात्–पुरानी बातोंकी शोध खोज लगानेवाली सभा । इस सोसायटीके मंत्री श्रीयुक्त सेठ मनसुखलाल रवजीभाई मेहता (सद्गत श्रीमद्राजचंद्रजीके भ्राता) और कुमार देवेंद्रप्रसादजी आरा चुने गये हैं। सोसायटीका मुख्य उद्देश्य एक त्रैमासिक पत्र निकालनेका है, जिसका नाम जैन ऐंटिकेरी (Gati antiguary) या जैन पुरातत्त्व होगा, और जिसमें शिलालेख, ताम्रपत्र, ग्रन्थ-प्रशस्ति, पट्टावली, प्रबन्ध और सिक्के आदि सब प्रकारका ऐतिहासिक जैनसाहित्य रहेगा चाहे वह कर्णाटक, तामिल और तेलगु आदि किसी भी भाषामें क्यों न उपलब्ध हो । साथ ही, इस बातका ख़ास ख़याल रक्खा जायगा कि उसमें दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदायोंका साहित्य समान भाव और समान परिमाणसे प्रकाशित होता रहे । इस पत्रके हिन्दी भागका सम्पादन मुनि जिनविजयजी और अँग्रेजी भागका संपादन कुमार देवेंद्रप्रसादजी करेंगे । पत्रके खर्चके लिये फिलहाल १ हजार रुपये कुमार देवेंद्रप्रसादजीने, १ हजार सेठ मनसुखलालजीने, १ हजार रुपये हीरा लालजी शाहने, ५००) रु० अमरचंदजी भाईने, और ५००) रु० केशवलालजी भाईने देना किया है। और भी कुछ चंदा हुआ है और यथेष्ट चंदा हो जानेकी दृढ आशा है। शायद फाल्गुणकी पूर्णिमातक इस पत्रका प्रथम अंक निकल जायगा । ये सब समाचार हमें मुनि जिनविजय और कुमार देवेंद्रप्रसादजीके पत्रोंसे मालूम करके अत्यंत हर्षकी प्राप्ति हुई है । निःसन्देह ऐसी एक जैन सोसायटीके स्थापित होने और उसके द्वारा ऐसे एक ऐतिहासिक पत्र-की योजना होनेकी बहुत बड़ी जरूरत थी । आशा है कि मुनि जिनविजय और कुमार देवेंद्रप्रसादजी जैसे उद्योगी और विद्वान् पुरुषों द्वारा यह संस्था शीघ्र ही फले फूलेगी और अपने प्रयत्नों द्वारा जैनियोंकी संपूर्ण ऐतिहासिक साम-ग्रीको पब्लिकके सामने लानेके लिये समर्थ होगी । हम इस संस्थाकी हरप्रकारसे उन्नति चाहते हुए उसके शीघ्र सफल होनेकी हृदयसे भावना करते हैं ।

इस अंकके साथ उक्त सोसायटीका आवेदन-पत्र रवाना किया जाता है । पाठकोंको उसे खास तौरसे पढ़ना चाहिये ।

४–स्वजन और सज्जनवियोग ।

हमें अपने पाठकोंपर यह प्रकट करते हुए बहुत दुःख होता है कि हमारे पूज्य श्वसुर श्रीयुत मुन्शी होशयारसिंहजी, जैन रईस तीतरों जि० सहारनपुर, आज इस संसारमें नहीं हैं । उनका गत २२ नवम्बरको रामपुरके स्टेश-नपर एकाएक देहान्त हो गया है । आप बड़े ही सज्जन, धर्मात्मा, मृदुस्वभावी और सरल प्रकृतिके मनुष्य थे । आपको झगड़ा टंटा कभी पसंद नहीं हुआ । आप अपना जीवन बड़ी ही सादगी और शांतिके साथ व्यतीत किया करते थे । लगभग ३० वर्ष तक आपने नहरके महक-मेमें नौकरी की है–शरिश्तेदारके पद पर रहे हैं– और अब उसी पदसे प्रायः १० वर्ष हुए आप पेंशन पाते थे । परोपकारकी तरफ आपकी परिणति हमेशासे रही है । वर्षोंसे आप हरसाल एक जैनतिथि पत्र छपवाकर उसे बाँटा करते थे, जैनअनाथालयादिकको बराबर कुछ न कुछ सहायता भेजा करते थे और अपने पास अनेक ऐसी ओषधियाँ तय्यार कराकर रक्खा करते थे जो सर्वसाधारणको बिना मूल्य वितरण हुआ करती थीं । यद्यपि आपकी अवस्था ७० वर्षके करीब थी तो भी आप बड़े ही परिश्रमशील और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुरुषार्थी थे—घंटोंतक बराबर काम किया करते थे और मीलों तक पैदल भी चल लेते थे। आपने अपने तीर्थोंकी कई कई बार यात्राएँ की हैं—एक बार आप मूडबिद्री तक और दूसरी बार जैनबिद्री तक हो आए हैं। पिछली बार, चार पाँच वर्ष हुए, आप हमारे संग ही सकुटुम्ब जैनबिद्री तककी यात्राको गये थे। पूजन और स्वाध्यायसे आपको अच्छा प्रेम था। यद्यपि आप हिन्दी लिखने पढ़नेके बहुत कम अभ्यासी थे तो भी आपने हमसे अनेक पुस्तकोंको मँगाकर उनका स्वाध्याय किया है। आपमें मोहकी मात्रा कम थी इसी लिये शायद आप अक्सर रूखी प्रकृतिके व्यक्ति समझे जाते थे। आपकी मृत्यु भी अच्छे धर्मात्माओं जैसी, बल्कि यों कहिये कि योगियों जैसी हुई है। उसमें आपको जरा भी कष्ट उठाना नहीं पड़ा और न मोहके कारण, आपका आत्मा इधर उधर भटका है। आप रामपुरके स्टेशनसे अपने घरको तीतरों जाते थे, शहरमें भोजन करके रेल्वे स्टेशनपर आए थे और टिकट भी ले लिया था। दो चार दिनसे साधारण ज्वरादिकके कारण कुछ अवस्थ जरूर थे परन्तु रेलके आने तक आप बराबर अपने साथियोंके साथ बैठे हुए इधर उधरकी बातें करते रहे। रेलके आते ही साथीजन उनके पाससे जरा हटकर कोई अच्छासा दर्जा उनके बिठलानेको तलाश करने लगे कि इतनेमें ही उनका प्राणपखेरू उड़ गया और वे ज्योंके त्यों समाधिस्थसे बैठे रह गये! संसारकी हालत भी बड़ी ही विचित्र है! पानीके बुलबुलेको विलय होते कुछ देर लगती है, परंतु इस जीवात्माको शरीरके छोड़नेमें कुछ भी देर नहीं लगती। जो मनुष्य अभी हँसी खुशीकी बातें कर रहा था, जिसे अपनी मृत्युका सौ सौ कोसका गुमान नहीं था और जिसको सुखपूर्वक बिठलानेके लिये एक अच्छेसे दर्जेकी तलाश की जा रही थी उसका एकदम 'बोलता' निकल गया और अब उसीको काठके ढेरपर लिटाने और चितामें भस्म कर देनेकी तयारी होने लगी! इससे अधिक संसारकी असारता और क्षणभंगुरता और क्या होगी! हमें मुन्शीजीके इस आकस्मिक वियोगका बहुत अफसोस है।

५—अछूतोंको उत्थानका अवसर।

कोल्हापुरके महाराजासाहबने, जिन्होंने पहले अपने राज्यमें यह नियम पास किया था कि जैनियों और विविध हिन्दू जातियोंका परस्परका विवाहसंबंध विधिविहित समझा जायगा, अब यह आज्ञा निकाली है कि अछूतोंके साथ अच्छा बर्ताव किया जाय, जो ऐसा नहीं करेगा उसे दंड दिया जायगा। इसे कहते हैं दीनोंका रक्षण, जो क्षत्रियोंका खास धर्म है। इस आज्ञाको पाकर निःसन्देह, कोल्हापुर राज्यके अछूतोंको अपने उत्थानका अच्छा अवसर मिलेगा। और आश्चर्य नहीं कि जो दूसरे राज्योंमें भी इस आज्ञाका अनुकरण शीघ्रताके साथ होने लगे।

६—स्त्रियोंका सौभाग्य।

झालरापाटनके महाराजने अपनी रियासतमें स्त्रियोंको वोट देनेका अर्थात्, राज्यकार्योंमें सम्मति प्रकाश करनेका—अधिकार दे दिया है। यह वहाँकी स्त्रियोंके लिये बड़े ही सौभाग्यकी बात है; क्योंकि जिस अधिकारप्राप्तिके लिये विलायतकी स्त्रियाँ वर्षोंतक झगड़ती रहीं और उन्होंने बहुत कुछ कष्ट उठाए वह अधिकार उन्हें सहज़हीमें एक योग्य महाराजाके आधिपत्यके कारण प्राप्त हो गया है।

नोट—आगेके विविध विषय सम्पादकके नहीं किन्तु प्रकाशकके लिखे हुए हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७–एक शिक्षित जैनीका मुसलमान होना।

यह समाचार बड़े आश्चर्यके साथ पढ़ा जायगा कि लाहौरके सुप्रसिद्ध जैनग्रन्थप्रकाशक बाबू ज्ञानचन्दजीके बेटेने—जिनका नाम इस समय हम भूलते हैं—मुसलमानधर्मकी, संभवतः अहमदिया या कादियानी सम्प्रदायकी, दीक्षा ले ली है। आप अभी हाल ही विलायतसे बैरिस्टरी पास करके बम्बई आये थे और यहाँसे कादियान जि० गुरुदासपुर (पंजाब) गये हैं। कादियान उक्त सम्प्रदायका पवित्र स्थान समझा जाता है। यहाँ बम्बईमें बैरिस्टर साहबकी पत्नी अपने भाइयोंके साथ आई थीं और चाहती थी कि अपने पतिसे जाकर मिलूँ; परन्तु भाइयोंने उसे मिलने नहीं दिया और कह दिया कि वे अभी आये ही नहीं हैं; उन्होंने बैरिस्टरसाहबसे भी कह दिया कि हमारी बहिन नहीं आई है! जिससमय बहिनको मालूम हुआ कि भाइयोंने मुझसे झूठमूठ कह दिया है, उस समय बैरिस्टर साहब कादियानको रवाना हो चुके थे! एक शिक्षित जैनीका इस तरह धर्मान्तर करना समाजके लिए बहुत ही सोचनेविचारनेका प्रश्न है।

८–हिन्दू और जैनोंकी संख्या कम हो रही है।

नीचे लिखी सूचीसे मालूम होगा कि हिन्दू और जैनोंकी संख्या किस प्रकार कम हो रही है और मुसलमान ईसाई तथा सिक्खोंकी संख्या किस प्रकार बढ़ रही है। संख्यायें प्रति दसहजारके हिसाबसे दी गई हैं।

सन्	१८८१	१८९१	१९०१	१९११
हिन्दू	७४३२	७२३१	७०३४	६९३१
सिक्ख	७३	६७	७५	९६
जैन	४८	४९	४५	४०
मुस०	१९७४	१९९६	२११२	२११६
ईसाई	७३	७९	९९	१२४

अर्थात् पिछले तीस वर्षोंमें सैकड़े पीछे १६$\frac{२}{३}$ जैनी कम हो गये हैं। हमारा विश्वास है कि १९२१ की मनुष्यगणनामें यह कमी और भी भयंकर रूपसे बढ़ी हुई दिखलाई देगी। देखें, समाजके कर्णधार कबतक इस जीवन–मरणके प्रश्नको उपेक्षाकी दृष्टिसे देखते हैं।

९–स्त्रीसमाजमें आत्महत्या।

बंगला प्रवासीके सुयोग्य सम्पादकने सन् १९१५ की सरकारी रिपोर्टसे संख्यायें देकर प्रकट किया है कि इस देशमें आत्महत्यायें अन्य देशोंकी अपेक्षा बहुत अधिक होती हैं और उनमें भी स्त्रियोंमें तो यह रोग और भी भयंकर रूपसे बढ़ रहा है। नीचे कुछ प्रदेशोंके आत्मघाती स्त्रीपुरुषोंकी संख्या देखिए:—

	कुलजनसंख्या	आत्मघाती	
		पुरुष	नारी
मध्यप्रदेश और बरार	१,३९,१६,३०८	४४१	५२३
बिहार उड़ीसा	३,४४,९०,०३४	६०५	११०५
आगरा अयोध्या	४,६८,२०,५५६	६६४	१७९९
बंगाल	४,५३,२९,२८७	१४५२	२०१८

सर्वत्र ही पुरुषोंकी अपेक्षा आत्मघातिनी स्त्रियोंकी संख्या अधिक है। मध्यप्रदेश-बरारमें वह लगभग सवाई, बिहार उड़ीसामें लगभग दूनी, यू० पी० में ढाई गुनीसे अधिक और बंगालमें डेढ़ गुनीसे कुछ कम है। मनुष्यको प्राण सबसे अधिक प्यारे हैं। बिना असह्य कष्टके कोई सहज ही प्राण नहीं देना चाहता। देशकी अधिक आत्महत्या इस बातका निश्चित प्रमाण है कि हमारे कष्ट अन्य देशोंकी अपेक्षा बहुत बढ़े हुए हैं और उसमें भी हमारी स्त्रियाँ बहुत ही अधिक दुःखिनी हैं। यह निश्चय है कि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हमारी सामाजिक व्यवस्थायें और रूढ़ियाँ स्त्री-जातिके लिए सबसे अधिक कष्टप्रद हैं, और इसी कारण वे सबसे अधिक आत्महत्या करती हैं। उनके गुह्य और गूँगे कष्ट उन्हें आत्मरक्षा-का इससे अच्छा और सरल दूसरा उपाय नहीं बतला सकते। एक तो स्त्रियोंकी संख्या हमारे यहाँ यों ही कम है और फिर उनमें आत्महत्या-की वृद्धि हो रही है। समाजके कर्णधार इस प्रश्नपर भी विचार करनेकी कृपा करें।

१०–माणिकचन्द्र-ग्रन्थमाला।

पाठक यह जानकर प्रसन्न होंगे कि माणिक-चन्द्र-दिगम्बर-जैन-ग्रन्थमालाके लिए जो दस हजार रुपयेका नया चन्दा करनेका विचार हुआ था और जिसका प्रारम्भ जिनवाणीके परम भक्त लाला उम्मेदसिंह मुसद्दीलालजीने एक हजार रुपये देकर किया था वह लगभग पूर्ण हो गया है। दस हजार रुपयेकी रकमें भरी जा चुकी हैं और दाता महाशय अपनी अपनी रकमें भेज रहे हैं। इस कार्यमें सबसे अधिक परिश्रम जैनमित्र-सम्पादक श्रीयुत शीतलप्रसादजी ब्रह्मचारीजीने किया है और इसका सारा श्रेय उन्हींको मिलना चाहिए। जब तक चन्दा पूरा नहीं हुआ तब तक ब्रह्म-चारीजीने चैन नहीं ली—वे जी जानसे इस कार्यके पीछे पड़ गये थे। इस विषयमें उनकी जितनी प्रशंसा की जाय उतनी थोड़ी है। हम उनके प्रति हृदयसे कृतज्ञता प्रकाश करते हैं।

यह कार्य इतना बड़ा है और प्रकाशित करने योग्य ग्रन्थोंकी संख्या इतनी अधिक है कि उसके लिए यह दस पन्द्रह हजार रुपयोंकी रकम बिलकुल ही नगण्य है। जब तक इस कामके लिए दो चार लाख रुपयोंका फण्ड न हो तब तक जैनसाहित्यका सन्तोषयोग्य प्रकाशन नहीं हो सकता और न तब तक जैनसाहित्यके अध्ययन और मननका क्षेत्र ही विशेष विद्वा-नोंके लिए तैयार हो सकता है। पर जबतक हमारे धनियोंका ध्यान इस ओर इतना आकर्षित नहीं हुआ है, वे अपने धनका इतने अच्छे कार्योंमें सदुपयोग करना नहीं सीखे हैं तबतक हमें इस दस पन्द्रह हजार रुपयेके फण्ड पर ही सन्तोष करना चाहिए और इसके द्वारा जितने ग्रन्थोंका उद्धार हो सके करना चाहिए।

ग्रन्थमालामें अबतक १४ ग्रन्थ छप चुके हैं। स्वामी समन्तभद्रकृत **युक्त्यनुशासन** विद्यानन्दकृत संस्कृतटीकासहित, और देव-सेनसूरिकृत **नयचक्र** (प्राकृत और संस्कृत-च्छायासहित) ये दो ग्रन्थ छप रहे हैं। आ-चार्य वट्टकेरकृत **मूलाचार** (संस्कृतटीका-सहित) की प्रेस-कापी तैयार हो चुकी है। इनके सिवाय **नीतिवाक्यामृत** सटीक, **न्याय-कुमुदचन्द्रोदय, न्यायविनिश्चयालंकार, त्रैलोक्यप्रज्ञप्ति**, आदि ग्रन्थोंके छपानेका प्रबन्ध किया जा रहा है। इन ग्रन्थोंकी शुद्ध और प्राचीन प्रतियोंकी आवश्यकता है। जो सज्जन इस विषयमें हमारी सहायता करेंगे उनके हम बड़े ही कृतज्ञ होंगे।

११–सोधियाजीका स्वर्गवास।

बड़े ही शोककी बात है कि जैनसमाजके सुपरि-चित, श्रद्धेय मास्टर दरयावसिंहजी सोधियाका गत पौष वदी ४ गुरुवारको स्वर्गवास हो गया। गत पाँच छह महीनोंसे आप संग्रहिणी रोगसे पीड़ित थे और इसी कठिन रोगने आपकी जीवन-लीला समाप्त कर दी। सोधियाजी सारे जैनसमाजमें अपने ढंगके एक ही विद्वान् थे। संस्कृतज्ञ न होने पर भी आपने जैन-साहित्यका विशाल अध्ययन किया था और उसके फलसे आप बीसों संस्कृतज्ञोंको जैनधर्म पढ़ानेकी योग्यता रखते थे। आपने 'श्रावकधर्मसंग्रह' नामक एक सरल और सुसंकलित ग्रन्थकी रचना की थी। आप बड़े ही निर्भीक और स्पष्टवक्ता थे। स्पष्ट कहनेमें तो एक ही थे। जैनसमाजकी आपने बहुत सेवा की थी। आपके बड़े भाई श्रीयुक्त सोधिया नाथूरामजी और सुयोग्य पुत्र बाबू खूबचन्दजी सोधिया बी. ए. एल. टी. के इस मार्मिक दुःखमें हम हार्दिक समवेदना प्रकट करते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैनसमाजके पण्डित।

गत पचीस तीस वर्षोंमें जैनसमाजने जो शिक्षासम्बन्धी आन्दोलन किया है और उसके फलसे जो संस्थायें स्थापित हुई हैं उन्होंने बाबुओंकी अपेक्षा पण्डित ही अधिक तैयार किये हैं और समाजकी सबसे अधिक शक्ति और सम्पत्ति पण्डितोंके लिए ही खर्च हुई है। यद्यपि संस्कृतकी अपेक्षा अँगरेजी शिक्षाकी वृद्धि हमारे यहाँ कम नहीं हुई है, बाबुओंकी अपेक्षा पण्डित कुछ अधिक संख्यामें तैयार नहीं हुए हैं, परन्तु बाबुओंकी शिक्षाके खर्चका अधिकांश बोझा उनके मातापिताओं या संरक्षकोंने ही उठाया है जब कि पण्डितोंका प्रायः सारा खर्च समाजने धार्मिक भावसे प्रेरित होकर अपनी जेबसे दिया है। यही कारण है जो समाज बाबुओंकी अपेक्षा पण्डितोंसे कुछ विशेष आशा रखता है। समाजका बहुत बड़ा भाग पण्डितोंको ही अपनी डगमगाती हुई नैयाका पार लगानेवाला समझता है।

यह पण्डितोंकी वृद्धि दिगम्बर समाजमें ही अधिक हुई है, श्वेताम्बरोंमें नहीं। एक तो श्वेताम्बर समाजको पण्डितोंकी आवश्यकता उतनी तीव्रताके साथ अनुभूत नहीं हुई, क्यों कि उसमें उपदेश देनेवाले साधुसम्प्रदायका अस्तित्व बना हुआ है—साधुओंकी संख्या वहाँपर हजारोंके ऊपर बनी हुई है, दूसरे उसके साधु महात्मा नहीं चाहते कि श्रावक लोग विद्वान् बनकर उनके एकहत्थी निरंकुश शासनमें किसी प्रकारका हस्तक्षेप करनेका दुःस्साहस करना सीखें। यही कारण है कि साधारण शिक्षाका यथेष्ट प्रचार होनेपर भी श्वेताम्बर समाजमें गृहस्थ पण्डित दश पाँच ही कठिनाईसे मिलेंगे। परन्तु दिगम्बर समाजमें साधुसम्प्रदायका अभाव हो गया है, इस लिये इसे ही सबसे अधिक आवश्यकता इस बातकी हुई कि धर्मशास्त्रोंके जाननेवाले विद्वान् तैयार किये जायँ।

दिगम्बर सम्प्रदायमें भी बीसपंथियोंकी अपेक्षा तेरहपन्थियोंने इस आवश्यकताका अनुभव विशेषरूपसे किया। क्यों कि ये लोग बहुत पहलेसे—लगभग ३०० वर्ष पहलेसे—इटलीके पोपोंके प्रतिरूप भट्टारकोंके शासनका जूआँ अपने कन्धोंपरसे उतार चुके थे और गृहस्थोंको ही धर्मशास्त्रज्ञ बनानेकी प्रथाका सूत्रपात कर चुके थे। इसमें उन्हें सफलता भी हुई थी। पण्डितवर्य टोडरमल्ल, बनारसीदास, भगवतीदास आदि गृहस्थ पण्डित उनके हृदयमें गंभीर श्रद्धाका बीज बो चुके थे। यही कारण है जो इस समय दिगम्बर सम्प्रदायके जितने पण्डित हैं, प्रायः वे सभी तेरहपन्थी कुलोंमें उत्पन्न हुए हैं। बीसपन्थियोंका अधिकांश भाग अब भी भट्टारकों और उनके सहवर्ती अज्ञानके पंजेमें फँसा हुआ है; यद्यपि उनकी दशा भी बहुत तेजीके साथ बदल रही है।

इस समय मेरे अनुमानसे दिगम्बर सम्प्रदायमें संस्कृतज्ञ पण्डितोंकी संख्या एक सौसे कम न होगी और आशा है कि आगे यह बराबर बढ़ती रहेगी। इस समय जितने विद्यालय और पाठशालायें हैं उनसे अधिक नहीं तो प्रतिवर्ष १५-२० पण्डित अवश्य तैयार हो जाते हैं।

जिन प्रान्तोंमें बीसपंथी सम्प्रदाय है वहाँ भी कई विद्यामन्दिर खुल गये हैं—उनमें भी थोड़े बहुत पण्डित तैयार होने लगे हैं और आशा है कि कुछ समयमें इनकी संख्या भी सन्तोषजनक हो जायगी। जो लोग बीसपंथी हैं और थोड़ी बहुत शिक्षा पा गये हैं, वे भी अब भट्टारकोंसे बागी होकर उनके चंगुलसे निकल भागना चाहते हैं और इसके लिए उन्हें यही आवश्यक मालूम होता है कि भट्टारकोंको सर्वथा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'अर्द्धचन्द्र' देनेके पहले श्रावकोंमें ही कुछ धर्मशास्त्रज्ञ बना लिये जायँ।

हमारे दिगम्बर सम्प्रदायकी शिक्षा संस्थाओंमें शुरूसे ही एक बड़ी भारी भूल जड़ पकड़ गई है ओर आश्चर्यकी बात है कि अभीतक उसकी ओर किसीका भी ध्यान नहीं गया है। हम लोग यह समझ बैठे हैं कि हिन्दुओंके समान हमारी भी धार्मिक भाषा संस्कृत है और इस कारण हम संस्कृतको ही सबसे अधिक महत्त्व देने लगे हैं। पर वास्तवमें हमारी भाषा संस्कृत नहीं किंतु मागधी या प्राकृत है। हमारा प्राचीनसे प्राचीन साहित्य प्राकृतमें है और जैनधर्मके वास्तविक तत्त्वोंका ज्ञान प्राप्त करनेके लिए आज भी हमें उसके अध्ययन अध्यापनकी बहुत बड़ी आवश्यकता है। हमारा संस्कृत साहित्य बहुत पीछेका है और उसका बहुत बड़ा भाग उन प्राचीन ग्रन्थोंका अनुवाद या भाषान्तर ही है। प्राचीनता और मौलिकताकी दृष्टिसे वह उसकी बराबरी नहीं कर सकता। संस्कृत साहित्यकी रचना हमारे यहाँ उस समय प्रारम्भ हुई जान पड़ती है जब प्राकृत बोलचालकी भाषा नहीं रही थी, उसका स्थान अपभ्रंश आदि दूसरी भाषाओंने ले लिया होगा और उसके समझनेके लिए दूसरी भाषाओंकी सहायताकी आवश्यकता पड़ने लगी होगी। अजैन विद्वानोंको समझानेके लिए और उनके साथ वाद-विवाद करनेके लिए भी कुछ आचार्योंको संस्कृतमें लिखनेकी आवश्यकता प्रतीत हुई होगी। परन्तु वास्तवमें हमारी भाषा प्राकृत ही है और जैनधर्मके सर्वसाधारणमें चारित्रके प्रचार करनेके उदार सिद्धान्तके अनुसार, धर्मग्रन्थोंके लिए प्राकृत—बोलचालकी भाषा—ही उपयुक्त हो सकती है। एक आचार्यने इसे स्वीकार भी किया हैः—

बाल-स्त्री-वृद्ध मूर्खाणां नृणां चारित्रकांक्षिणाम्।
हिताय पूर्वसूरिभिः सिद्धान्तं प्राकृतं कृतम्॥

श्वेताम्बरसम्प्रदायमें तो एक साधुको—संभवतः हरिभद्रसूरिको—इस अपराधमें दण्ड दिये जानेकी कथा प्रसिद्ध है कि उन्होंने अपना पाण्डित्य प्रकट करनेके लिए प्राकृतको छोड़कर एक संस्कृत ग्रन्थकी रचना कर डाली थी! उनके गुरुके मतसे ग्रन्थरचना केवल सर्वसाधारणके लाभके लिए ही की जानी चाहिए।

हम देखते हैं कि हमारे श्वेताम्बरसम्प्रदायमें प्राकृतको अब भी संस्कृतकी अपेक्षा अधिक महत्त्व दिया जाता है, इस कारण उनमें इस समय भी पचासों साधु प्राकृतके जाननेवाले मौजूद हैं और उनकी ओरसे सरकारी यूनीवर्सिटियोंमें प्राकृतको स्थान दिलानेके लिए आन्दोलन किया जा रहा है; परन्तु हमारे समाजमें प्राकृतके ज्ञानका प्रायः अभाव हो रहा है। इतने बड़े पण्डित समाजमें एक भी पण्डित ऐसा नहीं है जो प्राकृतका अच्छा विद्वान् कहा जा सके, या जिसे प्राकृत व्याकरणका और प्राकृत साहित्यका ज्ञान हो। हमारी शिक्षा संस्थाओंको यह भूल शीघ्र ही सुधारनी चाहिए और पठनक्रममें प्राकृतको खास स्थान दिया जाना चाहिए। इसके बिना ये पण्डित संस्कृतके पण्डित हो जाने पर भी जैनधर्मके वास्तविक पण्डित नहीं कहे जा सकते।

इस प्राकृत-ज्ञानके अभावसे प्राकृतके सैकड़ों हजारों प्राकृत ग्रन्थ भण्डारोंमें जीर्ण शीर्ण हो रहे हैं। न उन्हें कोई पढ़ता है, और न वे प्रकाशमें ही लाये जा सकते हैं। जबतक उनके सम्पादन और संशोधन करनेवाले न मिलें तबतक वे प्रकाशित भी कैसे हों?

यह एक आश्चर्यकी बात है कि नई 'पौध' के जितने पण्डित हैं, प्रायः वे सब ही उत्पन्न तो ऐसे घरोंमें हुए हैं, जिनमें कुलक्रमसे तेरहपन्थ या भट्टारक-विरोधी पन्थ चला आया है; परन्तु उनपर प्रभाव है बहुत कुछ भट्टारका-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नुयायी विचारोंका । यद्यपि अपने पूर्वसंस्कार-वश वे भट्टारक महाराजोंकी सेवा-पूजा नहीं करते हैं और न उनकी आज्ञा ही मानते हैं; परन्तु उनके साहित्यकी—जिसमें अनेक संहितायें, अनेक त्रिवर्णाचार और अनेक प्रतिष्ठापाठ आदि ग्रन्थ हैं—वकालत करनेके लिए निरन्तर कटिवद्ध रहते हैं । यद्यपि हमें यह विश्वास है कि चाहे जितना प्रयत्न करनेपर भी अब परमोदार जैनधर्मके स्वरूपको एक अनुदार, विकृत और मूढ़ताओंसे पूर्ण साँचेमें ढालनेवाला उक्त साहित्य अधिक समय तक नहीं टिकेगा—भट्टारकोंके साथ ही साथ उसको भी 'अर्द्धचन्द्र' मिलना अनिवार्य है; परन्तु अभी कुछ समय तक पण्डितदल अपनी शक्तिका सदुपयोग इस पुण्यकार्यमें अवश्य करेगा और तब तक करता रहेगा जब तक उसमें स्वयं सोचने-विचारनेकी—अध्ययन अन्वेषण करनेकी शक्ति उत्पन्न नहीं हुई है । हमारा विश्वास है कि नये पण्डितदलके ये भट्टारकी विचार उनके स्वयंकृत अध्ययनके नहीं, किन्तु एक दो ऐसे विद्वानोंके प्रभावके फल हैं, जिनका उनके हृदयपर बहुत अधिक प्रभाव है और जिनके विरुद्ध जानेके नैतिक साहसका उनमें अभाव है । पर यह अवस्था हमेशा नहीं रह सकती ।

संस्कृतज्ञ पण्डितोंके विषयमें इन दिनों कुछ लोगोंको बहुत निराशा होने लगी है; परन्तु जब हम देखते हैं कि एक तो नई 'पौध' के पण्डितोंमेंसे चार छह ही ऐसे हैं, जिनकी अवस्था ३० को पार कर गई है—शेष सब २० और ३० वर्षके बीचके अपरिपक्वबुद्धि हैं, दूसरे उनकी शिक्षाप्रणाली बहुत ही अनुदार है, तब निराश होनेका कोई कारण नहीं मालूम होता । ज्यों ज्यों इनकी उम्र बढ़ेगी, संसारकी गतिका ज्ञान होगा, अनुदारता और कट्टरता कम होगी और ये स्वयं सोचना-विचारना सीखेंगे, त्यों त्यों इनके विचारोंमें परिवर्तन होगा और ये समाजकी मानसिक और बौद्धिक उन्नतिमें सहायक बनेंगे ।

जो लोग इन पण्डितोत्पादिनी संस्थाओंके विरोधी हैं और इनके लिए धन खर्च करना बुरा समझते हैं, हमारी समझमें वे भूल करते हैं । वे यह नहीं जानते कि जैनधर्मकी रक्षाके लिए जैनसिद्धान्तोंके ज्ञानकी खास आवश्यकता है और इस विषयका परिपक्व और गंभीर ज्ञान संस्कृत और प्राकृत आदि प्राचीन भाषाओंके जाने बिना नहीं हो सकता । इस लिए इन भाषाओंके अध्ययन अध्यापनके साधन जितने अधिक सुलभ किये जा सकें उतने किये जाने चाहिए और इसके लिए समाज जितना अधिक धन खर्च करे, उतनी ही उसकी शोभा है । विरोध केवल इन संस्थाओंकी शिक्षाप्रणाली आदिका किया जाना चाहिए ।

इस समयके पण्डितोंके विषयमें किसी तरहकी राय कायम करनेके पहले हमें उनकी परिस्थितियोंपर भी एक नजर डाल लेना चाहिए ।

जीविका । समाजने पण्डित तो तैयार कर लिये हैं; परन्तु उनकी जीविकाका कोई क्षेत्र तैयार नहीं हुआ है । पाठशालाओं और विद्यालयोंकी अध्यापकी, उपदेशकी, आदि दो एक धर्मसम्बन्धी काम ही उनके लिए रजिस्टर्ड हो गये हैं—अध्ययन समाप्त करते ही यह पराधीनवृत्ति उनके आगे मुँह फाड़कर खड़ी हो जाती है । केवल जैन पण्डितोंका ही नहीं, संस्कृतके अजैन पण्डितोंका भी लगभग यही हाल है; परन्तु जैनेतर पण्डितोंके आगे जीविकाका प्रश्न उतने कठोर और उग्र रूपसे खड़ा नहीं होता है, जितना कि जैन पण्डितोंके आगे होता है । क्योंकि हिन्दूधर्मने ब्राह्मणोंको एक खास स्थान दे रक्खा है और हिन्दू गृहस्थोंके लिए ब्राह्मण पण्डित एक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आवश्यक चीज है। पूजापाठ, क्रियाकाण्ड आदि प्रत्येक कार्यमें उन्हें उसकी आवश्यकता होती है। अतः किसी प्रकारकी नौकरी आदिकी झंझटमें न पड़कर भी ब्राह्मण पण्डित यजमानोंके आसरे अपना जीवन-निर्वाह सुख-स्वच्छन्दता-पूर्वक कर सकता है। परन्तु जैनधर्मकी प्रकृति इस पुरोहिताईके अनुकूल नहीं है। जैनधर्मके उपासक स्वयं पूजापाठ करते, स्वयं शास्त्र-स्वाधाय करते, और स्वयं ही व्रत उपवास आदि करके अपना कल्याण कर सकते हैं। अपने और भगवानके बीचमें सम्बन्ध स्थापित करनेके लिए उन्हें किसी तीसरे 'दलाल' की विशेष आवश्यकता नहीं जान पड़ती और तेरहपन्थके प्रभावने तो—जो इस समय प्रायः सर्वत्र व्याप्त है—इस आवश्यकताको और भी बिलकुल कम कर दिया है। ऐसी दशामें पण्डितोंके लिए अध्यापकी उपदेशकी आदिके सिवाय और कोई जीविकाका क्षेत्र नहीं है। एक तो निर्ग्रन्थ मुनियोंको और उनके अभावमें त्यागी ब्रह्मचारियोंको छोड़कर इतर गृहस्थोंको पूज्य माननेका हमारे समाजको अभ्यास ही नहीं है और यदि कोई माने भी, तो ये गृहस्थ पण्डित भी, (दोचार प्रतिष्ठाचार्योंको छोड़कर,) उस धातुसे नहीं बने हैं, जो निःसंकोच होकर सम्मानके साथ साथ दान-दक्षिणाको भी ग्रहण कर सके। इनकी वैश्य-प्रकृति इस ओर जानेमें स्वयं ही कुण्ठित होती है। अभिप्राय यह कि ये पण्डितजन विद्वान् होने पर भी ब्राह्मण नहीं बन सकते और इस कारण जीविकाकी चिन्तासे बराबर घिरे रहते हैं। लाचार इन्हें अध्यापकी आदिकी सेवा-वृत्ति ग्रहण करनी पड़ती है और यह इनके विचार-विकासमें बहुत बड़ी बाधा डालती है। अपने आश्रयदाताओंकी संकुचित विचारसीमाके बाहर जानेका ये बहुत ही कम साहस कर सकते हैं।

जैनियोंकी प्रायः सभी जातियाँ व्यापार-प्रधान हैं और व्यापार करनेवाले लोग अपने व्यवसायके कार्योंमें इतने अधिक तन्मय रहते हैं कि समाज और धर्मसम्बन्धी दुरूह समस्याओंके हल करनेका न तो उन्हें समय ही रहता है और न उनका अध्ययन मनन ही इतना होता है कि वे इन बातोंको समझ सकें। वे बड़े श्रद्धालु होते हैं, सच्चरित्र होते हैं, दानशील होते हैं, पर साथ ही अन्धविश्वासमें भी उनकी बराबरी कोई नहीं कर सकता। वे सदासे चली हुई रूढ़ियोंके एकनिष्ठ सेवक होते हैं——अपनी गतिमें किसी तरहका परिवर्तन करना उन्हें जरा भी पसन्द नहीं आता। ऐसे लोगोंपर उन पण्डित-जनोंका प्रभाव नहीं पड़ सकता जो स्वयं उनके आश्रित होकर रहते हैं। निरपेक्ष लोग ही अपने चरित्रके प्रभावसे उनकी गतिको बदल सकते हैं।

एक और दुःख है। जितने पण्डित हैं वे प्रायः निर्धन कुटुम्बोंके हैं। समाजकी छात्रवृत्तियोंके आश्रयसे ही वे विद्वान् हुए हैं। यह बात अब एक कहावतसी बन गई है कि संस्कृतका अध्ययन निर्धन ही किया करते हैं। जो लोग संस्कृतके बड़े भारी पक्षपाती हैं वे भी अपने लड़कों या कुटुम्बियोंको संस्कृत न पढ़ाकर दूसरी अर्थ-करी विद्यायें पढ़ाया करते हैं। इसका उपदेश तो वे दूसरोंको ही दिया करते हैं। इस विषयके बीसों उदाहरण हमारे सामने मौजूद हैं। ऐसी अवस्थामें—निर्धन कुटुम्बोंमें परवरिश पानेके कारण—पण्डितोंको यदि धन कुछ विशेष महत्त्वका दिखलाई दे, तो यह सर्वथा स्वाभाविक है। उन्हें अपने आश्रयदाताओंको असन्तुष्ट न करने और अपनी जीविका बनाये रखनेकी विशेष चिन्ता रखनी पड़ती है और इसलिए उनमें स्वाधीन विचारोंको प्रकट करनेका नैतिक साहस उत्पन्न नहीं होने पाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हम यह जानते हैं कि जैनपण्डित विद्यालयोंसे निकलकर ख़ाली नहीं बैठे रहते, उन्हें अच्छे वेतनों पर अध्यापकी आदिके कार्य मिल जाते हैं, हम यह भी मानते हैं कि जो लोग केवल नौकरीके लिए पढ़ना चाहते हैं उनके लिए अँगरेजीकी अपेक्षा संस्कृत पढ़ना अनेक अंशोंमें विशेष लाभदायक है। हिन्दीकी पढ़ाई समाप्त करके जो लड़का आठ वर्षोंमें (लगभग हजार रुपयोंके खर्चसे) मैट्रिक पास करके कठिनाईसे ३०–३५ रु० मासिककी नौकरी पाता है, वही आठ वर्षोंमें, बल्कि इससे भी कम समयमें, शास्त्री, काव्यतीर्थ, न्यायतीर्थ आदि होकर ६०–७० रुपये मासिककी अध्यापकी प्राप्त कर सकता है। यह भी सच है कि जैनसमाजमें अभी पण्डितोंकी बहुत जरूरत है, हमारे विद्यालय जितने पण्डित तैयार कर सकते हैं, उनसे अधिकके निर्वाहयोग्य नई नई संस्थायें भी खुलती जाती हैं। परन्तु प्रश्न यह है कि पण्डितोंकी जीविकाका यह प्रबन्ध उनके बुद्धिविकासके लिए योग्य है या नहीं और इससे जैनसमाजका वह उद्देश्य सिद्ध होता है या नहीं जिसके लिए वह अपनी शक्ति और सम्पत्तिको खुले हाथों खर्च करता है।

शिक्षाप्रणाली। पण्डितोंकी शिक्षाप्रणाली बहुत ही विलक्षण है। उनके पाठ्य ग्रन्थोंकी सूची देखनेसे यही मालूम होता है कि मानों इस युगसे उनका बहुत ही कम सम्बन्ध है और मानों उन्हें इस समयसे हजारों वर्ष पहलेके संसारमें काम करनेके लिए तैयार किया जा रहा है। न्याय, व्याकरण, काव्य और धर्मशास्त्र पढ़ लिये कि बस उनकी शिक्षाकी हद हो गई। गणित, इतिहास, विज्ञान, भूगोल, खगोल, समाज-शास्त्र, अर्थ-शास्त्र, आदि आवश्यक विषयोंकी उन्हें गन्ध भी नहीं लगने पाती और वे धुरन्धर पण्डित बन बैठते हैं। ये विषय उनके पाठ्य ग्रन्थोंमें भरती भी नहीं हो सकते। क्यों कि किसी भी विद्वानमें यह शक्ति नहीं जो इन पाठशालाओंके कर्ता धर्ताओंको यह सिद्ध करके समझा दे कि उक्त सब विषय जैनधर्मसे अविरोधी हैं और जब तक ये विषय अविरोधी न करार दिये जायँ तब तक अभागे जैनविद्यार्थियोंको इनके पढ़नेका अधिकार ही कैसे प्राप्त हो सकता है ? भूगोल और खगोल जैसे विज्ञान––जो जैनधर्ममें माने हुए भूगोल-खगोलसे ३६ का नाता रखते हैं––पढ़ाये जावें, यह तो बन ही कैसे सकता है, हमारी यूनीवर्सिटियोंके (हमारी एक नहीं कई यूनीवर्सिटियाँ––परीक्षालय––हैं !) चान्सलर या रजिस्ट्रार व्याकरण, वैद्यक, ज्योतिष जैसे विषय भी तब पढ़ाना चाहते हैं जब वे जैनाचार्योंके––नहीं नहीं विशुद्ध दिगम्बर जैनाचार्योंके––बनाये हुए हों ! ऐसी दशामें यदि इन पण्डितोंमें कट्टरता और संसारके विविध विषयों सम्बन्धी घोर अज्ञानता बनी रहे तो इसमें आश्चर्य ही क्या हो सकता है ?

इस शिक्षाप्रणालीके दोषसे और तो क्या पण्डितोंको अच्छी तरह हिन्दीका भी ज्ञान नहीं होने पाता है। हिन्दी उन्हें पढ़ाई ही नहीं जाती। दूसरोंके लिखे हुए हिन्दी ग्रन्थ तो बे पढ़ नहीं सकते और जैन लेखकोंके लिखे हुए अच्छे हिन्दी ग्रन्थ बहुत ही कम हैं। इतने बड़े पण्डित-समाजमें अच्छी हिन्दी लिखनेवाले शायद ही दो चार पण्डित निकलें। अपने हृदयके भावोंको सरल और सुबोध भाषामें प्रकट करना इन्हें आता ही नहीं।

अध्यापकीका कार्य भी ये अच्छी तरहसे नहीं कर सकते हैं। क्योंकि पढ़ानेकी कला या शिक्षाविज्ञानसे ये बिलकुल अपरिचित रहते हैं। देहातकी पाठशालाओंमें इनसे बड़ा लाभ होता यदि ये 'पढ़ाना' भी जानते होते।

अध्ययन और मनन। शिक्षाप्रणालीकी कमीकी पूर्ति एक उपायसे हो सकती है और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वह है पाठ्य ग्रन्थोंके अतिरिक्त बाहरी साहित्यका विशाल अध्ययन । पर हम देखते है कि जैन पण्डितोंमें इसका भी प्रायः अभाव है । एक तो उन्हें अपनी छात्रावस्थामें इस बातका शौक ही पैदा नहीं होने पाता—उनकी शिक्षा पठन-पाठनको उनके जीवनके साथ संलग्न नहीं कर सकती और दूसरे बाहरी ग्रन्थोंको वे रुचिपूर्वक पढ़ नहीं सकते । उनके छोटेसे साहित्य-कूपके बाहर उनकी समझमें किसी विशाल साहित्य-सागरके अस्तित्वका सम्भव ही नहीं, अथवा यदि है भी तो उसमें संसारको डुबानेवाले मिथ्यात्व-क्षारके सिवाय और कुछ भी नहीं है । फिर भला वे उसकी खोज-खबर क्यों रखने लगे !

एक बात और है । विशारद, शास्त्री, तीर्थ आदि पदवियाँ पण्डितोंको अभिमानिनी बना देती हैं । वे यह नहीं समझते कि केवल इन पदवियोंसे ही कोई विद्वान् नहीं हो जाता । इनसे विद्वान् होनेकी योग्यता भर हो जाती है । अर्थात् ये पदवीधर यदि परीक्षा दे चुकनेके बाद अध्ययन और मननमें सतत प्रवृत्त रहें तो संभव है कि वे कुछ समयमें विद्वान् हो जायँ । पर हम देखते हैं कि पण्डितगण अपनी पदवियोंके अभिमानके बोझेके मारे अध्ययन और मननका बोझा उठानेकी शक्ति ही खो बैठते हैं । पढ़ाईके ग्रन्थ समाप्त किये और कहीं नौकरी तलाश कर ली, बस आगे और योग्यता बढ़ानेके द्वारका ताला बन्द । वे जानते ही नहीं कि अध्ययन और मनन किसे कहते हैं और उसका कितना महत्त्व है । उनके सामने संस्कृत प्राकृत और अपभ्रंशका विशाल साहित्य-भाण्डार पड़ा हुआ है और उसमें अपरिमित ज्ञानराशि छुपी हुई है, परन्तु उन्हें उसको खोज निकालनेकी इच्छा ही नहीं होती । उनमें उस अतृप्त ज्ञानलिप्साका उदय ही नहीं होता जो विद्वानोंको बुढापेतक भी चैन नहीं लेने देती है ।

जैनसमाजमें ऐसे विद्वानोंका प्रायः अभाव है जो जैनधर्मके मर्मज्ञ कहे जा सकें—जिन्होंने जैनधर्मका हृदय जान लिया हो । प्रचलित जैनग्रन्थोंको ऊपरा ऊपरी पढ़ लेनेसे या पढ़कर परीक्षा दे लेनेसे वह हृदय नहीं जाना जा सकता । इसके लिए बड़े ही गहरे अध्ययनकी, मननकी और परिश्रमकी आवश्यकता है । प्रत्येक विषयपर तुलनात्मक पद्धतिसे और क्रमविकासपद्धतिसे विचार होना चाहिए । समय समय पर बाह्य परिस्थितियोंके कारण धर्मविचारोंमें अनेक परिवर्तन हो जाया करते हैं, यह बात निरन्तर ध्यानमें रखनी चाहिए । पुराने और नये तमाम ग्रन्थोंको एक ही दृष्टिसे पढ़ना और उनमें जो परस्पर भेद हों उन्हें 'अपेक्षाभेद' कहकर उड़ा देना, या 'दोनोंका अभिप्राय एक ही हो जाता है' यह कहकर लीपालीपी कर देनेसे मर्म नहीं समझा जा सकता । प्रत्येक ग्रन्थ और उसके रचयिता पर समयकी आवश्यकताओंका और परिस्थितियोंका प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता, यह बात हमेशा दृष्टिके सामने रहनी चाहिए । सम्प्रदाय—संघ—गण—गच्छ—पन्थादिका मोह और कषाय आदि भी ऐसे विचार-भेदोंमें कारण होते हैं । जैनधर्मका मर्म वह जान सकेगा जो दिगम्बर, श्वेताम्बर, यापनीय आदि समस्त लुप्त अलुप्त संघोंके सिद्धान्तोंको और उनके अन्तरको अच्छी तरह हृदयंगम कर लेगा; साथ ही जैनधर्मके सहचारी बौद्ध वैदिक आदि धर्मोंके साहित्य और इतिहासको समझनेका भी प्रयत्न करेगा । यह स्पष्ट है कि ये सब बातें बिना गहरे अध्ययन, मनन और अध्यवसायके नहीं हो सकती हैं और ये उनके लिए सुलभ नहीं हैं जिन्हें यह विश्वास है कि हम सब जान चुके हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रन्थोंकी दुर्लभता । दिगम्बर सम्प्रदायका साहित्य—विशेष करके प्राचीन साहित्य—अभीतक बहुत ही कम प्रकाशित हुआ है । श्वेताम्बर सम्प्रदायके जितने ग्रन्थ छप चुके हैं, उनसे शायद बीसवें भाग भी दिगम्बरग्रन्थ नहीं छपे हैं और न इसके लिए जैसा चाहिए वैसा कोई प्रयत्न भी इस सम्प्रदायकी ओरसे किया जा रहा है । जहाँ अन्यान्य कार्योंमें यह समाज प्रतिवर्ष लाखों रुपये फूँक देता है, वहाँ इस सर्व-प्रधान धर्मकार्यमें वर्ष भरमें चार छह हजार रुपये भी इससे खर्च नहीं होते हैं ! यह एक बड़ा भारी दुःख है और इस दुःखको वे लोग बड़ी ही तीव्रतासे अनुभव करते हैं जिन्हें जैनसाहित्य-के अध्ययन और अन्वेषणका व्यसन लग गया है । गरज यह कि हमारे पण्डित महाशयोंके लिए अप्रकाशित साहित्यके देखनेके कोई साधन नहीं हैं और इस कारण उनका ज्ञान एक सीमासे बाहर नहीं जाने पाता है । जो ग्रन्थ छप भी गये हैं, वे भी उन्हें एक तरहसे दुर्लभ रहते हैं । क्यों कि पैसोंसे उन्हें इतना कम मोह नहीं होता कि अपनी कमाईमेंसे वे सब ग्रन्थोंको खरीदकर रखना आवश्यक समझें और उनके निवासस्थानोंमें ऐसे पुस्तकालय या सरस्वती-भवन भी नहीं रहते जिनमें उक्त सब ग्रन्थोंका संग्रह किया गया हो ।

ये सब परिस्थितियाँ हैं जो पण्डितोंको वास्तविक पण्डित नहीं बनने देती हैं और यही कारण है जो बहुतसे लोगोंको उनकी ओरसे निराश किया करती हैं । परिस्थितियोंके सुधरनेसे—जिनका सुधारना बहुत कुछ समाजके हाथमें है—पण्डितसंस्था बहुत ही कल्याणकारिणी सिद्ध हो सकती है ।

हम अपने वक्तव्यको समाप्त करनेके पहले वर्तमान पण्डितोंकी कुछ ऐसी विशेषताओंका उल्लेख कर देना चाहते हैं, जो उनमें अधिकताके साथ पाई जाती हैं और जिनका समाजके हानिलाभसे बहुत कुछ सम्बन्ध है ।

१ पण्डितोंकी सबसे बड़ी विशेषता उनकी कट्टरता है । वे अपनी ही कहे जायँगे दूसरोंकी एक न सुनेंगे । सुननेका प्रयत्न भी न करेंगे । उनकी समझमें जो संस्कृतका पण्डित नहीं है वह ऐसी बात कह ही नहीं सकता जो उनके सुननेयोग्य हो । वे युक्तियोंको अपने विचारोंका गुलाम बनानेके प्रयत्नमें रहते हैं, युक्तियोंका गुलाम अपने मतको नहीं बनाना चाहते । उनका न्यायशास्त्र उन्हें सत्यकी खोज करनेका यही मार्ग बतलाता है ! यदि केवल कट्टरता होती,तो भी खैर थी; परन्तु यहाँ तो साथ ही असहिष्णुता भी है । जो उनके विचारोंका अनुयायी नहीं उससे उन्हें अतिशय घृणा हो जाती है और वे उसके साथ समाजका कोई भी कार्य नहीं कर सकते । इससे समाजकी बड़ी हानि हो रही है । पण्डित और बाबूदलकी यह पारस्परिक घृणा दिन पर दिन बढ़ती जाती है। बाबूदलमें भी इस घृणाकी प्रतिक्रिया शुरू हो गई है और वे भी अब पण्डितोंके साथ काम करनेके लिए तैयार नहीं होते ।

२ पण्डितोंके हृदयमें उन लोगोंकी विद्याबुद्धिका कोई आदर नहीं, जो संस्कृत नहीं जानते । उनकी समझमें जो संस्कृत नहीं जानता उसके लिए ज्ञानमन्दिरमें प्रवेश करनेका मार्ग मानों एकदम बन्द है ! अँगरेजी जाननेवालोंकी तो वे क्या कदर करेंगे, उन विद्वानोंको भी वे कुछ नहीं समझते जिन्होंने भाषाग्रन्थोंके द्वारा जैनधर्मके पचासों ग्रन्थोंका दिनरात अध्ययन और मनन किया है । भाषा अब भी उनकी नजरमें हिन्दुओंकी ‘ रण्डा ’ से बढ़कर आदरकी चीज नहीं । वे संस्कृतको संसारकी अन्यान्य भाषाओंके समान ज्ञानका एक साधन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं किन्तु साक्षात् ज्ञानरूप ही मानते हैं। " यन्नेहास्ति न तत्क्वचित् । "

३ पण्डितोंकी 'साहस' की कोई सीमा नहीं। चाहे जिस विषयका खण्डन मण्डन करना वे अपने बाँयें हाथका खेल समझते हैं। उन्हें यह सोचने-समझनेकी जरूरत नहीं मालूम होती कि हम उस विषयको जानते भी हैं या नहीं। यदि वे न्यायशास्त्र जानते हैं तो बस काफी है, और कुछ जाननेकी उन्हें जरूरत नहीं। न्यायशास्त्र उनकी समझमें ऐसा अमोघ-शस्त्र है कि उसके वारसे कोई भी विज्ञान और कोई भी सिद्धान्त, टुकड़े टुकड़े हुए बिना नहीं रह सकता। उनका न्यायशास्त्र उन्हें यह न्याय्य आज्ञा कभी नहीं देता कि जिस सिद्धान्तको हम नहीं जानते हैं खण्डन करनेके पहले उसे एक बार अच्छी तरहसे अध्ययन तो कर लें। खण्डन मण्डन और शास्त्रार्थमें दूसरोंको परास्त करनेका शौक पण्डितोंमें बेतरह बढ़ा हुआ है। इस बीसवीं शताब्दिमें भी वे इसी विद्याके द्वारा अपने धर्मको जगद्विजयी बना देनेके स्वप्न देखते हैं! मानों भगवान् महावीरने समस्त धर्मोंके विद्वानोंको शास्त्रार्थमें परास्त करके ही जैनधर्मको देशव्यापी बनाया था!

४ आलस्य और प्रमादकी पण्डितदल पर विशेष कृपा देखी जाती है। उन्हें अवकाशकी कमी नहीं रहती; परन्तु फिर भी उनसे काम नहीं होता। समय पर किसी कामको कर देना तो उन्हें आता ही नहीं। उनकी इस प्रमादी प्रकृतिको आप जब चाहे तब, और जहाँ चाहे तहाँ, प्रत्यक्ष कर सकते हैं। शास्त्रीय सभा खास पण्डितोंकी सभा है; पर उसमें भी देखिए कितना काम होता है! सत्यवादी पण्डितदलका खास पत्र है, पर वह भी देखिए साल भरमें कितने बार निकलता है और उसके सम्पादनमें कितना परिश्रम किया जाता है! यदि इतने उदाहरणोंसे आपको सन्तोष न हो, तो अपने परिक्षालयके मंत्रियोंसे पूछ लीजिए। वे आपको बतलावेंगे कि कितने पत्रों और रजिस्टर्ड पत्रोंको हजम कर जानेके बाद पण्डित लोग प्रश्नपत्र और जाँच करके उत्तरपत्र भेजा करते हैं!

५ हमारे समाजमें पण्डित लोग साधुओंके स्थानापन्न हैं, इस लिए उनमें साधुओंका यह गुण विशेषताके साथ पाया जाता है कि वे अक्सर एक जगह नहीं टिकते। आज यहाँ हैं तो कल वहाँ, और उसके बाद कहीं तीसरी जगह। जहाँ कहींसे जी उकताया कि 'पण्डितकी आवश्यकता' शीर्षक विज्ञापनोंको टटोलना शुरू कर दिया! संस्कृतके विद्यार्थी भी इस विषयमें 'ट्रेण्ड' रहते हैं। वे भी जरा जरासी बातोंपर अपनी पाठशालायें बदला करते हैं। इस अस्थिरतासे पण्डितोंके प्रति जो सर्वसाधारणकी श्रद्धा है उसमें बड़ा धक्का लगता है और संस्थाओंको भी बहुत हानि सहनी पड़ती है।

यह हम जानते हैं कि हमारे पण्डित मित्र इस लेखको पढ़कर प्रसन्न नहीं होंगे—उनके कृपाप्रसादकी वृष्टिके थोड़े बहुत छींटे भी हमारे ऊपर अवश्य पड़ेंगे। फिर भी हमें इसकी परवा नहीं। हमारी समझमें इस पर विचार करनेसे समाजका बहुत कुछ उपकार हो सकता है और यही कारण है जो हम इसमें अनेक अप्रिय सत्य कहनेके लिए विवश हुए हैं।

अन्तमें यह कह देना भी आवश्यक प्रतीत होता है कि यह लेख पण्डितोंके अधिक भागपर दृष्टि रखकर लिखा गया है। कोई महाशय यह न समझ बैठें कि हम सभी पण्डितोंको 'सब धान बाईस पसेरी' के हिसाबसे तौलते हैं।
पौष सुदी ४, सं० १९७६।

विनीत—नाथूराम प्रेमी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आराधनापताका और वीरभद्र ।

[ले०-श्रीयुत मुनि पुण्यविजयजी, पालीताना।]

गत कार्तिकमासके 'जैनहितैषी' में ऐतिहासिक जैनव्यक्तियाँ' शीर्षक लेखके अंतर्गत, 'वीरभद्र' का उल्लेख करते हुए, 'आराधनापताका' के विषयमें लेखक महाशयने लिखा है कि-"एक श्वेतांबर विद्वान् द्वारा हमको ऐसा मालूम हुआ था कि 'आराधनापताका' के कर्त्ता 'वीरभद्र' दिगंबराचार्य हैं।" अस्तु, जिन श्वेतांबर विद्वद्वर्यने 'वीरभद्र' को दिगंबराचार्य बताया वह किस आधारसे, इस बातको तो वे ही जान सकते हैं; परंतु मुझे इस ग्रंथका साद्यंत निरीक्षण करनेसे ऐसा मालूम हुआ है कि इसके कर्त्ता आचार्य श्वेतांबर ही हैं। अतः मैं इसी विषयके प्रमाणोंको क्रमशः नीचे उद्धृत करता हूँ। आशा है कि पाठक उनपर विचार करेंगे।

'आराधना-पताका' में परिक्रमविधि, २ गणसंक्रमण, ३ ममत्वव्युच्छेद और ४ समाधिलाभ, ये चार द्वार मुख्य हैं।

प्रस्तुत ग्रंथकारने ५१ वीं गाथामें उल्लेख किया है कि—

"आराहणाविहिं पुण भत्तपरिण्णाइ वण्णिमो पुव्वं ।
ओसण्णं स च्चेव उ सेसाण वि वण्णणा होइ ॥"

अर्थात्—आराधना-विधिको हमने पहले 'भक्तपरिज्ञा' प्रकीर्णकमें वर्णन किया है, वही विधि सर्वत्र समझनी चाहिये। इससे स्पष्ट मालूम होता है कि 'भक्तपरिज्ञा' और प्रकृत ग्रंथ, (आराधना-पताका) दोनोंके कर्त्ता महाशय एक ही हैं।

५४ वीं गाथामें लिखा है कि—

"भत्तपरिण्णामरणं भणियं सपरक्कमस्स सवियारं ।
तस्साराहणमिणमो भणंति कमसो चउद्दारं ॥"

अर्थात्—सविचार-भक्तपरिज्ञामरण शक्तिवाले (स्वस्थ शरीरवाले) को होता है। अतः उसकी आराधनाको चार द्वारोंसे कहते हैं।

'भक्तपरिज्ञा' की दसवीं गाथा इसप्रकार है—

"अपरक्कमस्स काले अपहुप्पं तंमि जं तमवियारं ।
तमहं भत्तपरिण्णं जहापरिण्णं भणिस्सामि ॥"

इसमें लिखा है कि अस्वस्थ शरीरवालेको जो परिज्ञा होती है उसे अविचार-भक्तपरिज्ञा कहते हैं। उस अविचार-भक्तपरिज्ञाको मैं यथावस्थित (?) रूपसे कहूँगा।

मतलब यह हुआ कि, भक्तपरिज्ञा दो प्रकारकी है, एक अविचार और दूसरी सविचार। अविचार-प्रतिज्ञाका वर्णन 'भक्तपरिज्ञा' ग्रंथमें और सविचार-परिज्ञाका कथन प्रस्तुत ग्रंथमें किया गया है। और इससे इन दोनों ग्रंथोंका पारस्परिक संबंध भी पाया जाता है।

परिक्रमविधि-द्वारांतर्गत लिंगद्वारकी ६४ वीं गाथामें लिखा है कि—

"उवही पुण थेराणं चोद्दसहा * सुत्तनिद्दिट्ठो ॥"

अर्थात्—स्थविर कल्पियोंके लिये सूत्रमें चौदह प्रकारके उपधिका विधान किया है। यह स्थविरकल्प और चौदह प्रकारके उपधिका विधान दिगंबराचार्यके आराधना-ग्रंथमें नहीं हो सकता।

'आचेलक्कुद्देसिअ' आदि जो दश प्रकारका कल्प है उसमेंसे प्रथम ही 'आचेलक्य (नग्नत्व)' कल्पकी जो व्याख्या ग्रंथकी ७० वीं

---

* चौदह प्रकारके उपधिका वर्णन निम्नलिखित गाथाओंमें है।

पत्तं १ पत्ताबंधो २ पायट्ठवणं ३ च पायकेसरिया ४।
पडलाइं ५ रयत्ताणं ६ च गोच्छओ ७ पायनिज्जोगो ॥
तिन्नेव य पच्छागा १० रयहरणं ११ चेव होइ मुहपत्ती १२।
एसो दुबालसविहो उवही जिणकप्पियाणं तु ॥
एए चैव दुवालस मत्तग १३ अइरेग चोलपट्टो १४ य।
एसो चउद्दसविहो उवही पुण थेरकप्पंमि ॥

ओघनिर्युक्ति—गाथा ६६८-६९-७०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गाथामें दी है उसका अस्तित्व दिगंबराचार्य्यके ग्रंथमें नहीं बन सकता। वह गाथा इसप्रकार है—

"जुण्णेहिं खंडिएहिय असव्वतणुणउएहिं (?) मइलेहिं। चेलेहिं सचेल च्चिय अचेलगा हुंति मुणिवसभा॥"

इसमें लिखा है कि 'जीर्ण खंडित... और मलिन वस्त्रोंके धारण करने पर भी साधुलोक अचेलक (नग्न) कहलाते हैं।

प्रस्तुत 'आराधनापताका'में 'भक्तपरिज्ञा' ग्रंथकी १७० गाथाओंमेंसे ११४ गाथाएँ ज्योंकी त्यों उठाकर रक्खी गई हैं। अनेक गाथायें पिंडनिर्युक्तिकी, अनेक आवश्यक निर्युक्ति की, कितनी ही आवश्यककी हारिभद्रीय टीकामें प्रमाणरूपसे दी हुई और कितनी ही आवश्यकान्तर्गत पारिष्ठापनिका निर्युक्ति की, इस प्रकार बहुतसी गाथाएँ इसमें दूसरे ग्रंथोंसे संग्रह की गई हैं। अतः इस ग्रंथको 'संग्रह-ग्रंथ' कहना कुछ भी अनुचित न होगा।

८९४ नम्बरकी गाथामें लिखा है कि—

"एयं पच्चक्खाणं सवियारं वण्णियं सवित्थारं। इत्तो भत्तपरिण्णं लेसेण भणामि अवियारं॥"

अर्थात्—यह सविचारप्रत्याख्यान (परिज्ञा) विस्तारपूर्वक कथन किया गया, अब अविचार-परिज्ञाका संक्षेपसे ('भक्तपरिज्ञा' ग्रंथमें विस्तारसे वर्णन होनेके कारण) करता हूँ। इसके बाद दश गाथाओंमें उसका वर्णन दिया गया है।

अंतमें इंगिणी-मरण और पादोपगमनका भी वर्णन संक्षेपसे किया है।

मैं समझता हूँ, इस संपूर्ण कथनसे पाठकोंको इस बातका जरूर निश्चय होगया होगा कि यह 'आराधना-पताका' ग्रंथ श्वेतांबराचार्यनिर्मित है, दिगंबराचार्यकृत नहीं।

उक्त लेखमें आगे चलकर, लेखक महाशयने यह भी प्रकट किया है कि—"इसके सिवाय जैनग्रंथावलीमें 'वीरभद्र' नामके दो आचार्योंका और भी उल्लेख किया गया है। एक 'चतुःशरण' नामके श्वेतांबरग्रंथके कर्त्ता 'वीरभद्रगणि' जिनके विषयें उक्त ग्रंथके टीकाकारने लिखा है कि वे महावीर भगवान्के शिष्य थे..."

यद्यपि 'जैनग्रंथावली'में 'चतुःशरण' के कर्त्ता 'वीरभद्रगणि' को टीकाकारके कथनानुसार महावीर परमात्माका शिष्य लिखा है परंतु 'चतुःशरण' 'भक्तपरिज्ञा' और 'आराधनापताका' के कर्तृनाम-गर्भ-पद्योंके निरीक्षणसे तीनों ही ग्रंथोंके कर्त्ता प्रायः एक ही व्यक्ति जान पड़ते हैं। यथा:—

"इय जीवपमायमहारिवीरभद्दंतमेयमज्झयणं।"

—चतुःशरण।

"इय जोईसरजिणवीरभणियाणुसरिणीमिणमो।"

—भक्तपरिज्ञा।

"इय विसयवइरिजिणवीरभद्दमाराहणं पसाहेसु।"

"इय सुंदराइं जिणवीरभद्दभणियाइं पवयणाहिंतो।"

—आराधनापताका।

चतुःशरणके टीकाकारने चतुःशरणके कर्त्ता 'वीरभद्रगणि' को जो महावीर भगवान्का शिष्य बतलाया है, वह केवल गतानुगतिक किंवदंती पर अवलम्बित है, जो अभीतक चतुःशरण, भक्तपरिज्ञा आदिके बारेमें बदस्तूर चली आती है। इससे अधिक 'वीरभद्र' संबंधी विशेष हाल मालूम नहीं हुआ। वीरभद्रके इस 'आराधना-पताका' ग्रंथके निरीक्षणके समय एक दूसरा 'आराधना-पताका' ग्रंथ और उपलब्ध हुआ और उसकी दो कापियाँ मिलीं। अतः पाठकोंके परिज्ञानार्थ यहाँ उसका भी कुछ परिचय दे दिया जाता है—

यह दूसरा 'आराधना-पताका' ग्रंथ प्राकृत, कर्त्ताके नामसे विरहित, द्वात्रिंशद्द्वारात्मक और गाथाप्रमाण ९९३ को लिये हुए है। इसके मंगलाचरणकी और अंत्यकी गाथायें क्रमशः ये हैं—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"पणमिरनमिरनरिंदवंदियं वंदिउं महावीरं ।
भीमभवन्नवगहणं पज्जंताराहणं एयं ॥ १ ॥
बत्तीसादारेहिं भणिहिइ खवगस्स उत्तमट्ठविही । "
"आराहणापडायं एयं जो सम्ममायरइ धन्नो ।
सो लहइ सुद्धसद्धो तिलोयचंदुज्जलं किंत्तिं ॥ ९३० ॥"

यह ग्रंथ भी श्वेतांबरीय है; क्यों कि इसके सुकृतानुमोदन द्वारमें ३१७ वीं गाथा इस प्रकार है—

"कालि य सुयस्स गुणणं अंगाणंग-सुयजोगवहणं जं ।
अणहिय-अहीणकरणं पडिलेहावस्सयाईणं ॥ "

अर्थात्—काल (जिस वक्त कालिकादि श्रुत पढ़नेका समय बताया है वह) में श्रुतका अध्ययन किया हो, अंगश्रुत (द्वादशांग) अनंगश्रुत (उपांगादि) का योग वहन (विधानविशेष) किया हो, और प्रतिलेखना—आवश्यकादिक यथावस्थित किया हो उसका अनुमोदन करता हूँ ।

इससे स्पष्ट है* कि यह ग्रंथ भी दिगंबराचार्य विरचित नहीं; क्यों कि द्वादशांगी और उपांगश्रुत दिगंबराचार्य-संमत न होनेसे उनके यहाँ इनका योगवहन 'शशशृंग' समान है ।

आगे चल कर ८०५ वीं गाथामें "दशपूर्वी वज्रस्वामीने पर्वतके शिखर पर ५०० साधुओंके साथ भक्तपरिज्ञाको धारण किया था," ऐसा उल्लेख है । यह वज्रस्वामी भी दिगंबरसंमत नहीं हैं ।

यह 'आराधना-पताका' ग्रंथ तेरहवीं शताब्दीके अनन्तरका है; क्यों कि इसमें 'आशातना-दोष-प्रतिक्रमण' द्वारान्तर्गत गुरुकी तेतीस आशातनासंबंधी "पुरओ पक्खासन्ने" आदि तीन गाथाएँ 'देवेन्द्रसूरि' कृत 'गुरुवंदनभाष्य' की हैं, और ये देवेंद्रसूरि तेरहवीं शताब्दीमें हुए हैं ।

अंतमें 'आराधना-पताका' की पुस्तकें इकट्ठी कर देने वाले मुनिवर्य श्रीजसविजयजीका उपकार मानता हुआ मैं इस लेखको यहीं समाप्त करता हूँ ।

संपादकीय नोट—हम लेखक महाशयके इस परिश्रमके लिये, जो उन्होंने हमारी प्रार्थना और सूचना पर ध्यान देकर यह लेख लिखकर भेजनेमें किया है, उनके बहुत आभारी हैं । दूसरे विद्वानोंको भी चाहिये कि वे ऐतिहासिक बातोंके अनुसंधानमें इसी प्रकारसे उद्यमी और प्रयत्नशील रहकर कुछ न कुछ सहायता प्रदान किया करें । मुनिजीके इस लेखसे निम्न बातें प्रकट होती हैं—

१—वि० सं० १०७८ में 'आराधना-पताका' को बनाकर समाप्त करनेवाले 'वीरभद्र' श्वेताम्बराचार्य थे, दिगम्बर नहीं ।

२—'चतुःशरण' और 'भक्तपरिज्ञा' नामक ग्रंथोंके कर्त्ता भी उक्त वीरभद्र ही हैं ।

३—चतुःशरण और भक्तपरिज्ञाके विषयमें, श्वेताम्बरोंके यहाँ, जो यह मान्यता चली आती है, कि वे महावीर भगवानके शिष्य 'वीरभद्र गणि' के बनाये हुए हैं, वह गलत है । उसे मात्र किंवदंती और गतानुगातिकता समझनी चाहिये । उसीके अनुसार चतुःशरणके कर्ता आचार्य महाशयको भी भ्रम हुआ है ।

४—यह आराधनापताका एक संग्रहग्रंथ है ।

५—इस ग्रंथसे भिन्न एक दूसरा भी 'आराधनापताका' नामका ग्रंथ प्राकृतभाषामें है, जिसके बनानेवालेका कोई नाम प्रकट नहीं है । परंतु यह भी श्वेताम्बरीय है, और १३ वीं शताब्दीके बादका बना हुआ है ।

जिस किसी विद्वान् महाशयको इनमेंसे किसी बातपर कुछ आपत्ति हो अथवा कुछ विशेष हाल मालूम हो उन्हें शीघ्र उसे सप्रमाण प्रकट कर-

---

* हमारी रायमें उक्त पद्यसे ऐसा कुछ भी स्पष्ट नहीं है और न यही कहा जा सकता है कि अंग और उपांगश्रुत दिगम्बराचार्य-सम्मत नहीं हैं ।
—संपादक ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नेकी कृपा करनी चाहिये। उक्त वीरभद्रका इतिहास बहुत कुछ अंधेरेमें जान पड़ता है। अत: उसे खोज निकालनेकी कोशिश होनी चाहिये। हम लेखक महाशयसे इतना और जानना चाहते हैं कि आराधनापताकामें भक्त-परिज्ञा ग्रंथकी जो केवल ५६ गाथाएँ उद्धृत करनेसे छोड़ी गई हैं क्या उन्हींमें 'अविचार-भक्तपरिज्ञा' का विस्तारके साथ वर्णन किया गया है, और क्या इस ग्रंथमें दिगम्बरोंके 'भगवती आराधना' ग्रंथकी गाथाओंका भी संग्रह पाया जाता है।

पुस्तक-परिचय।

१ जातिप्रबोधक—मासिकपत्र। सम्पादक और प्रकाशक बा० विश्वंभरदासजी गार्गीय, सदर बाजार—झाँसी। मूल्य, १।) रु० वार्षिक।

यह वही बाबू दयाचंद्रजीका मासिकपत्र है, जिसका उल्लेख हमने बाबूसाहबके नामके साथ जैनहितैषीके प्रथमांकमें किया था। इस पत्रका तीसरा अंक हमारे सामने उपस्थित है। पत्रका आकार-विस्तार और रंग-ढंग आदि सब बातें बदस्तूर जान पड़ती हैं। सम्पादकजीने लिखा है—

"जबतक उनका (दयाचंदजीका) यह पत्र जीवित रहेगा उन्हींके उद्देशोंका प्रचार करेगा।"

इससे पत्रकी नीति बहुत कुछ स्पष्ट होजाती है। इस अंकमें बाबू दयाचंद्रजीका चित्र और चरित्र दोनों दर्शनीय हैं। बाबू साहबके चरित्रसे अनेक युवक बहुत कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। हमें 'पं० माणिकचंदजीके नाम प्रेरित पत्र' को पढ़कर खेद हुआ।

२ पुस्तकोद्धार फंड-रिपोर्ट—'सेठ देवचंद लालभाइ जैनपुस्तकोद्धार फंड' नामकी जो श्वेताम्बर संस्था है उसीकी यह संवत् १९७४ की सामान्य रिपोर्ट है। रिपोर्टसे मालूम होता है कि यह संस्था सन् १९०९ में एक लाख रुपयेकी पूँजीसे स्थापित हुई थी। इसका मूलधन सुरक्षित रक्खा जाता है और व्याज (सूद) की आमदनीसे हरसाल अनेक श्वेताम्बर जैनपुस्तकें तथा निबंधादिक छपाकर उन्हें लागतसे आधी कीमतपर बेचा जाता है। संवत् १९७४ में इस संस्थाके द्वारा सिर्फ छह—अंक प्रकाशित हुए हैं, जिनमें धर्मसंग्रहणी (उत्तरार्ध), आनंदकाव्यमहोदधि (मौ० ६ ठा), पिंडनिर्युक्ति, धर्मसंग्रह (उत्तरार्ध), उपमितिकथा (पूर्वार्ध) और दशवैकालिक सूत्र नामके छह ग्रंथोंका उद्धार हुआ है। इन छहों ग्रंथोंकी छपाई आदिमें कुल खर्च ८९७७ रु० १५ आ० ९ पाई उठा है। इस वर्ष संस्थाको २६६१ रु० १४ आ० की आमदनी पुस्तकोंकी विक्रीसे और ३८०६ रु० १० आनेकी आमदनी सूदसे हुई। शेष खर्च पिछले सालकी सूदकी बकायासे किया गया है जो ४१०९ रु० २ आ० २ पाई थी। इस वर्ष संस्थाकी तरफसे ४८१ ग्रंथ अनेक साधुओं, श्रावकों, भंडारों, लायब्रेरियों और यूनिवर्सिटियोंको भेट दिये गये हैं। यदि पिछले सालोंमें भेट दिये हुए ग्रंथोंकी संख्याको जोड़ा जाय तो भेटके कुल ग्रंथोंकी संख्या ६१९८ होती है। इस तरह पर इस संस्थाके द्वारा श्वेताम्बर साहित्यका बहुत कुछ उद्धार और प्रचार हो रहा है। संस्थाका हिसाब बाकायदा रक्खा जाता है। अनेक ट्रस्टियोंकी देखरेखमें काम होता है और उन्हींकी सहीसे यह सामान्य रिपोर्ट प्रकाशित हुई है। इस वर्ष संस्थाके द्वारा एक प्राकृत कोशके छपानेका भी काम किसी मुनिमहाराजकी देखरेखमें प्रारंभ हुआ है, जिसके लिये दो गृहस्थोंने २५०१ रु० प्रदान किया है। मालूम नहीं यह प्राकृतकोश कोई पुराना है अथवा नया संकलित किया गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३ जीर्णोद्धाररिपोर्ट—यह ईडरगढ़के श्वेताम्बरीय बावन जिनालयसम्बंधी जीर्णोद्धार खातेकी रिपोर्ट है। मंदिरमें जीर्णोद्धार (मरम्मत) संबंधी क्या क्या काम किया गया है और कितना बाकी है, यह सब संक्षेपसे, इसमें दिखलाया गया है। साथमें जीर्णोद्धारका एक नकशा और जीर्णोद्धारके बाद मंदिरके दृश्यसूचक चार सुन्दर फोटो भी लगाए गये हैं। जीर्णोद्धारका यह काम संवत् १९६८ से प्रारंभ हुआ था और अब द्रव्याभावके कारण बंद किया गया है। कुल आमदनी, इस खातेमें, ८३१४३ रु० ८ आ० ३ पाई हुई और खर्च १०६४८५ रु० १२ आ० ४ पाई हुआ। अतः तेईस हजार तीनसौ बावन रुपये तीन आने एक पाई इस खातेके जिम्मे देनदारी है। और बकाया मरम्मतके लिये तीस हजार रुपयेकी और जरूरत प्रगट की गई है। रिपोर्टसे मालूम होता है कि यह मंदिर बहुत पुराना है और पहले कई बार इसकी मरम्मत हो चुकी है। जिन जिन भाईयोंने अथवा संस्थाओंने इस जीर्णोद्धारके काममें आर्थिक सहायता प्रदान की है उनकी तफसील ग्रामवार और नामवार इस रिपोर्टके साथमें लगी हुई है। अनेक मंदिरोंके भंडारोंसे भी इसमें सहायता दी गई है। बम्बईके मन्दिरोंसे ही १० हजारसे ऊपर रकम दी गई है। यदि देनदारीकी रकम भी मंदिरोंके भंडारोंसे ही पूरी की जाय तो अच्छा है। रिपोर्टके अन्तमें ईडरका कुछ संक्षिप्त इतिहास भी, अनेक ग्रंथोंके आधारपर, दिया गया है जो पढ़ने योग्य है। और इससे रिपोर्टमें एक प्रकारकी विशेषता आगई है। उक्त इतिहास परसे मालूम होता है कि ईडर अथवा ईडरगढ़को संस्कृतादि ग्रंथोंमें इयद्दर, ईलादुर्ग, इलादुर्ग और ईडरगिरि लिखा है।

४ अग्रवालबन्धु—मासिकपत्र। संपादक और प्रकाशक, बाबू परमेश्वरी सहायजी अग्रवाल, बी. ए. एल. एल. बी., बेलनगंज आगरा। मूल्य २) रु० वार्षिक।

यह पत्र दोढाई महीनेसे निकलना शुरू हुआ है। इसका दूसरा अंक हमारे सामने है। अग्रवाल जातिकी सेवा करना इसका मुख्य उद्देश है। हम चाहते हैं कि यह पत्र अपने उद्देश्यको सफल करनेमें शीघ्र समर्थ हो। अभी इसकी स्थिति बहुत साधारण जान पड़ती है। इस अंकमें 'हमारे गोत्र' शीर्षक एक छोटासा सम्पादकीय लेख है, जो विना किसी आधार प्रमाणके लिखा गया है और बहुत कुछ अप्राकृतिक मालूम होता है। ऐसे लेखोंको बहुत सावधानी और प्रामाणिकताके साथ लिखना चाहिये। केवल दूसरोंकी मान्यताको भूल कह देनेसे ही काम नहीं चल सकता।

५ अनगार-धर्मामृत, सटीक—माणिकचंद दि० जैनग्रन्थमालाका १४ वाँ पुष्प। पृष्ठसंख्या, ७०० के करीब। मूल्य, लिखा नहीं। मिलनेका पता, पं० नाथूरामजी प्रेमी, मंत्री मा० जै० ग्रंथमाला, हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई।

यह ग्रंथ जैनियोंके सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० आशाधरजीका बनाया हुआ यत्याचारविषयक एक संस्कृत ग्रंथ है। इसके साथमें स्वयं ग्रंथकर्ताकी ही बनाई हुई संस्कृत टीका भी लगी हुई है। टीकासहित कुल ग्रंथकी श्लोकसंख्या १२२०० है। यह वि० संवत् १३०० में बनकर समाप्त हुआ है। पं० आशाधरजीके प्रायः सभी ग्रंथ अच्छे, विद्वत्तापूर्ण और साहित्यकी दृष्टिसे विशेष महत्त्वको लिये हुए होते हैं। इस ग्रंथकी टीकामें प्रचुरताके साथ दूसरे ग्रंथोंके पद्य 'उक्तं च' रूपसे पाये जाते हैं परंतु उनके सम्बंधमें ग्रंथपरसे यह बहुत ही कम मालूम होता है कि वे कौनसे ग्रंथोंके पद्य हैं। अच्छा होता यदि इस ग्रंथके संपादनमें इतना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिश्रम और किया जाता कि जिससे फुट-नोटों द्वारा यह प्रकट करनेमें आ जाता कि ये 'उक्तंच' पद्य अमुक अमुक ग्रंथोंके पद्य हैं और वहाँसे यहाँ उद्धृत किये गये हैं। यदि इतना नहीं बन सकता था तो कमसे कम इन पद्योंकी एक जुदी अनुक्रमणिका साथमें जरूर लगनी चाहिए थी, जिससे अनुसंधान करनेवालोंको दूसरे आचार्यों और उनके ग्रंथोंका समयनिर्णयादि करनेमें कुछ सहायता मिलती। इस ग्रंथके साथमें मूल श्लोकोंकी भी कोई अनुक्रमणिका नहीं है। परंतु उसके सम्बंधमें मंत्री साहबने हमें यह सूचित किया है कि वह छपनेके लिये दे रक्खी है, छपकर आनेपर भेजी जायगी। अतः यह संतोषकी बात है। यह ग्रंथ विद्वानोंके पढ़ने योग्य और पुस्तकालयों, पबलिक लायब्रेरियों तथा जैन-मंदिरोंके शास्त्रभंडारोंमें संग्रह किये जानेके योग्य है।

६ समुचित शिक्षा प्रथमभाग—प्रकाशक, श्रीआत्मानंद-जैन-ट्रेक्टसोसायटी अम्बाला शहर। मूल्य, एक आना।

यह ब्रह्मचर्यपर हिन्दीमें एक छोटासा ट्रेक्ट है। इसमें शारीरिक बलकी सर्वोपरि आवश्यकता दिखलाते हुए उसकी प्राप्ति और वृद्धिके लिये ब्रह्मचर्यके पालनका उपदेश दिया गया है। साथ ही ब्रह्मचर्यके विघातक कुछ कारणोंका दिग्दर्शन भी कराया गया है। ट्रेक्टके अन्तमें लिखा है कि—'एक लेखके आधारपर।' परंतु कहाँके अथवा किसके लिखे हुए लेखके आधारपर यह ट्रेक्ट लिखा गया है और किसने इसको लिखा है, इन सब बातोंका कहीं कोई उल्लेख नहीं है, जो होना चाहिये था। इस प्रकारका संकोच और अनुदार व्यवहार अच्छा नहीं कहला सकता। पुस्तकमें प्रश्न तथा खेदादिक प्रकाशक चिह्नोंका बहुत कुछ दुरुपयोग पाया जाता है। कुछ अशुद्धियें भी रह गई हैं। प्रकाशकोंको ऐसी बातों पर विशेष ध्यान रखना चाहिये, जिससे व्यर्थ ही पुस्तकका महत्त्व न घटने पाए।

७ सत्योदय—मासिकपत्र। संपादक और प्रकाशक, वैद्य चंद्रसेनजी जैन, इटावा। मूल्य, १॥) रु० वार्षिक।

यह पत्र प्रायः दोसालसे जारी है। स्वतंत्र विचारोंका प्रचार करना इसका मुख्य उद्देश्य है। पहले यह समाजके चिरपरिचित बाबू सूरजभानजी वकीलके लेखोंसे ही प्रायः भरपूर रहा करता था, परंतु अब इसमें दूसरे विद्वानोंके भी कुछ अच्छे लेख निकलने लगे हैं। और यह पत्रके भविष्यके लिये एक प्रकारका शुभ चिह्न है। इस समय इस मासिकका १० वाँ अंक हमारे सामने उपस्थित है। पत्रभरमें संपादकीय कोई लेख अथवा नोट नहीं है जिसका प्रत्येक अंकमें होना जरूरी है। इस अंकमें 'सत्यार्थियोंके कर्तव्य' शीर्षक लेख खास तौरसे पढ़ने और विचार किये जानेके योग्य है। इस लेख पर किसी लेखकका नाम नहीं है। यदि लेखक महाशयको, किसी कारणवश, अपना नाम प्रकट करने जैसी सत्यार्थ बातके लिये भी कुछ संकोच था तो संपादक महाशयको चाहिये था कि वे लेखके नीचे कोई उपनाम या सांकेतिक शब्द रख देते, जिससे यह लेख कमसे कम सम्पादकीय लेख तो न समझा जाता। क्यों कि जहाँतक हम समझते हैं यह लेख संपादक महाशयका नहीं है और न हो सकता है। इसी तरह 'कृष्णकन्हैयाका बालपन' नामका लेख भी लेखकके नामसे शून्य है, जो बा० सूरजभानजीका लिखा हुआ मालूम होता है। और इससे छपाईकी असावधानताका पता चलता है। निःसन्देह पत्रकी छपाईका ढंग अच्छा नहीं है—विरामादिक चिह्नों पर भी अच्छा ध्यान नहीं दिया जाता—अनेक लेखोंमें कभी कभी श्लोकों-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

-को छोड़कर इस बातका पता चलना बहुत मुशकिल हो जाता है कि उनका कौनसा और कितना भाग उद्धृत है और कितना अनुद्धृत। पत्रमें कागज बहुत घटिया लगाया जाता है। हमारी रायमें जिस पत्रमें अक्सर विद्वानोंके लेख छपते हों और जिसकी फायलको रखनेकी जरूरत हुआ करे उसमें ऐसा कमजोर और रद्दी पेपर नहीं लगना चाहिये जो पाँच सात बारके इधर उधर उलटने पलटनेमें ही टूट टाट जाय। हम इस पत्रको उन्नतावस्थामें देखना चाहते हैं। आशा है कि नये सालसे यह पत्र अपनी संपूर्ण त्रुटियोंको दूर करता हुआ एक अच्छे उन्नतरूपमें दर्शन देना प्रारंभ करेगा। नये सालसे इसने अपने ग्राहकोंको 'नकली और असली धर्मात्मा' नामका एक दोसौ पृष्ठका नया सामाजिक उपन्यास भी उपहारमें देनेका विचार किया है। यह उपन्यास बाबू सूरजभानजी वकीलका लिखा हुआ है।

८ बिजली—मासिकपत्र। सम्पादक, पं० उदयनारायण बाजपेयी। मूल्य, २) रु० वार्षिक। मिलनेका पता, मैनेजर 'बिजली' जनरल प्रेस, इटावा।

इस मासिकका ८ वाँ अंक हमारे सामने उपस्थित है। पत्र अपने ढंगका अच्छा मालूम होता है। इस अंकमें 'आइतसिंहकी भारत-यात्रा' और 'हिन्दुस्तानकी सामुद्रिक शक्ति' नामके दो लेख पढ़ने योग्य हैं। 'महाकवि फिर दौसी' वाला लेख बहुत अशुद्ध छपा जान पड़ता है। पत्रोंमें विद्वानोंके लेखोंको बहुत सावधानीके साथ शुद्ध छापनेकी ज़रूरत है। लेखोंके अशुद्ध छपनेके कारण कभी कभी उन्हें बहुत कष्टबोध हुआ करता है।

९ स्वार्थ—मासिक पत्र। संपादक, अध्यापक जीवनशंकर याज्ञिक, एम. ए. एल एल. बी.। मूल्य, ४) रु० वार्षिक। मिलनेका पता, व्यवस्थापक 'स्वार्थ' ज्ञानमंडलकार्यालय, काशी।

यह पत्र अभी हालमें, कार्तिक माससे, निकलना शुरू हुआ है। इसका पहला ही अंक हमारे सामने उपस्थित है। पत्रके विषय हैं अर्थशास्त्र समाजशास्त्र, राजनीति और इतिहास। दूसरे शब्दोंमें यों कहना चाहिये कि अपने देश और जाति (nation) का स्वार्थ क्या है, किस प्रकारसे उसकी सिद्धि, रक्षा और वृद्धि हो सकती है, इन सब बातोंको बतलाना—उनपर प्रकाश डालना ही इस पत्रका मुख्य उद्देश्य है। इस अंकमें स्वार्थ, धनका बटवारा, भारतके आर्थिक इतिहासका दिग्दर्शन, शकरका व्यापार, अंकशास्त्रकी प्रस्तावना और प्रजावाद आदि विषयोंपर छह विद्वानोंके लेख हैं। प्रायः सभी लेख अच्छे, महत्त्वको लिये हुए, पढ़ने और विचार किये जानेके योग्य हैं। 'स्वार्थ' शीर्षक सम्पादकीय लेख बहुत कुछ गंभीर, अर्थपूर्ण और संक्षेपमें अनेक विषयोंका दिग्दर्शन करानेवाला हैं। इससे पत्रकी रीति—नीति और जरूरतका सब कुछ पता चल जाता है। दूसरे लेखोंमें 'धनका बटवारा,' 'शकरका व्यापार' और 'प्रजावाद' नामके लेख खास तौरसे पढ़े जानेके योग्य हैं। पत्रका कागज और छपाई सफाई सब उत्तम है। यह पत्र हिन्दी संसारमें अपने ढंगका एक पहला ही उच्चकोटिका पत्र है, जिसकी देशको बड़ी जरूरत थी। हम हृदयसे इस पत्रका अभिनंदन करते हुए प्रत्येक हिन्दी-भाषाभाषी विचारशील पाठकसे अनुरोध करते हैं कि वे जरूर इस पत्रको अपनाएँ, इसके ग्राहक बनकर संपादक तथा प्रकाशकोंके उत्साहको बढाएँ और इस तरह भारतके हितसाधनमें—स्वदेशके कल्याणमें एक प्रकारसे सहायक बनें। यह पत्र प्रत्येक विद्यालय, पुस्तकालय और छात्रालयमें मँगाये जानेके योग्य है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वदेशीमें स्वराज्य ।

(लेखक—महात्मा गाँधी ।)

जिस रिफार्म बिलकी चर्चा इतने दिनोंसे हो रही थी वह अब कानून बननेवाला है। अब पुरानी व्यवस्थापिका सभाकी जगह नयी व्यवस्थापिका सभा बननेवाली है। वायसरायने वचन दिया है कि मैं नयी स्कीमके अनुसार कार्य कर इसकी सफलताकी पूरी चेष्टा करूँगा। अबतक मैंने जाइण्ट कमिटीकी रिपोर्टपर अपना मत नहीं प्रकट किया, कारण मेरा इससे विशेष अनुराग नहीं है। उस चीजपर फूलना नहीं चाहिये जाँच पड़तालके बाद जिसके विषयमें मालूम हो कि जनताका उपकार नहीं होगा। रिफार्म स्कीमसे लोगोंको पूरा पूरा लाभ उठाना चाहिये और वायसरायके कथनानुसार इसकी सफलताकी चेष्टा करनी चाहिये। यह सभी स्वीकार करते हैं कि वर्तमान बिल पहले बिलसे अच्छा है।

पर असली सुधार जिसकी आवश्यकता भारतको इस समय है वह स्वदेशी है। सबसे पहला प्रश्न जो हमारे सामने है वह यह नहीं कि देशका शासन कैसे हो, पर यह है कि हम अपना पेट कैसे भरें और लज्जारक्षा कैसे हो। १९१८ में कपड़ा खरीदनेके लिये भारतने ६० करोड़ रुपया बाहर भेजा। यदि हम बाहरसे इसी प्रकार इतनी रकमका कपड़ा खरीदते रहे तो अपने यहाँके कपड़ा बुननेवालों और सूत कातनेवालोंको इस रकमसे वंचित रखते हैं, और उन्हें किसी प्रकारका काम नहीं देते। यह आश्चर्यकी बात नहीं है कि भारतकी दशांश जनताको केवल आधपेट भोजन मिले और बाकी लोगोंमें अधिकांशको भरपेट कभी न मिले। जिनके आँख है वे देख सकते हैं कि मध्यश्रेणीके लोगोंको पेटभर भोजन और बालकोंको दूध नहीं मिलता है। रिफार्म स्कीम, चाहे वह कितनी ही उदार क्यों न हो, भोजन वस्त्रके आवश्यक प्रश्नको हल करनेमें असमर्थ है। पर स्वदेशी अभी इसको हल कर सकता है।

पंजाबने यह दिखला दिया है कि यह प्रश्न अच्छी तरहसे हल हो सकता है। ईश्वरको धन्यवाद है कि पंजाबकी महिलाएँ सूत कातने और बुननेका काम भूली नहीं हैं। छोटी बड़ी सभी सूत कातना जानती हैं। इन्होंने गुजराती स्त्रियोंकी तरह अपने चर्खे जला नहीं डाले हैं। मुझे उनका काता सूतका गोला देखकर बड़ा ही आनन्द हुआ। ये कहती हैं कि कातनेके लिये हमें समय मिल जाता है। इनका यह भी कहना है कि वह 'खादर' जो काते हुए सूतसे तैयार किया जाता है मशीनके सूतसे अच्छा होता है। हमारे पुरखे थोड़े परिश्रमसे अच्छा कपड़ा तैयार करते थे और आरामसे पहनते थे और उन्हें विदेशी चीज लेनी नहीं पड़ती थी।

यदि हम समयपर नहीं जगे तो यह साधारण कला भी लुप्त हो जायगी। पंजाबको देखकर ऐसा अनुमान होता है। कारण यहाँ भी इसका लोप होता जा रहा है। हर साल हाथसे काते हुए सूतकी कमी होती जाती है। इससे यह समझना चाहिये कि हमारी दरिद्रता बढ़ती जाती है और हम अधिक आलसी होते जाते हैं। जिन स्त्रियोंने सूत कातनेका काम छोड़ दिया है वे अपने समयको सिवा गप्प लड़ानेके और किसी अच्छे काममें नहीं बितातीं। इस बुराईको दूर करनेके लिये एक बातकी आवश्यकता है। यदि प्रत्येक शिक्षित भारतवासी अपना कर्तव्य समझे तो उसको चाहिये कि अपने यहाँकी स्त्रियोंके सामने एक एक चर्खा रख दे और सूत कातनेकी सुविधाएँ कर दे। प्रतिदिन लाखों गज सूत तैयार हो सकता है। और यदि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रत्येक शिक्षित भारतीय इस सूतके बने हुए कपड़ोंको पहने तो वह सचमुच भारतके गृह-शिल्पकी सहायता करेगा।

गृहशिल्पके विना भारतीय किसानका नाश अवश्यम्भावी है। फसलसे वह अपना गुजारा नहीं कर सकता। उसे दूसरे उद्योगधन्धोंकी जरूरत भी है। सूत कातनेका धन्धा आसान, सस्ता और सबसे अच्छा है।

मैं जानता हूँ कि ऐसा करना मानसिक विचारोंमें क्रान्ति लाना है। और यह क्रान्ति है इसी लिये मैं कहता हूँ कि स्वराज्यका रास्ता स्वदेशीसे ही है। वह राष्ट्र जो हर साल ६० करोड रुपये बचा कर अपने यहाँके सूत बुनने और कातनेवालोंको देगा; अवश्य वह उद्योग और संगठनकी शक्ति प्राप्त कर लेगा और अपनी उन्नतिके लिये सब कुछ कर सकेगा।

बड़े बड़े स्वप्न देखनेवाले सुधारक कहते हैं कि उस समय तक अपेक्षा करो जबतक उत्तरदायित्वपूर्ण शासनाधिकार प्राप्त न हो ले और फिर हम भारतके उद्योगधन्धोंकी रक्षा अपनी स्त्रियोंके सूत कातने और बुननेवालोंके सूत बिने बिना ही कर लेंगे। विचारशील लोगोंने ऐसा कहा भी है।

मैं दृढतापूर्वक कहता हूँ कि इस उक्तिमें दो दोष हैं। पहला—भारत संरक्षात्मक करके लिये ठहर नहीं सकता और उस संरक्षणसे कपड़ेकी दर कम नहीं होगी। दूसरे—केवल संरक्षणसे भूखों मरनेवाले लाखों मनुष्योंका उपकार नहीं होता। उनकी सहायता सूत कातनेके कामसे ही हो सकती है। इस प्रकार चाहे हमें संरक्षात्मक कर लगानेका अधिकार प्राप्त हो वा नहीं, हमें सूत कातने और हाथसे बुननेके कामको पुनर्जीवित करना पड़ेगा।

जब लड़ाई हो रही थी उस समय इङ्गलैण्ड और अमेरिकाके सभी लोग जहाज बनानेके काममें लगाये गये थे और इन्होंने आश्चर्यजनक रूपसे जहाज तैयार किये। यदि मैं कुछ कर सकता तो मैं प्रत्येक भारतीयको सूत कातना और कपड़ा बुनना सिखाता और उनसे रोज निश्चित समय तक यह काम लेता। मैं स्कूल और कालेजोंसे ही श्रीगणेश करता, कारण ये सुसंगठित संस्थाएँ हैं।

मिलोंकी अधिकतासे भी यह प्रश्न हल नहीं होता। ये बहुत समयमें कपड़ोंकी माँग पूरी कर सकेंगी और इसके अतिरिक्त ६० करोड़ रुपयेमें सब हमें नहीं मिल सकता। इनसे धन और मजूर एकत्र हो सकते हैं जिनसे और भी अधिक बुराई होगी। *

—" यङ्ग इण्डिया "

जैनसमाजकी उन्नति क्यों रुकी हुई है ?

(लेखक—श्रीयुत 'रजनीकान्त'।)

जैनधर्म और जैनोंका प्राचीन इतिहास सचमुच बड़ा गौरवशाली है। यह प्रायः सभी मानेंगे कि भारतके बौद्धिक और नैतिक विचारोंके विकाशमें जैनसमाजका बड़ा भारी हाथ रहा है। परन्तु पिछली कुछ शताब्दियोंसे उसकी गति बिल्कुल रुकी हुई है। उसके अंग—प्रत्यंगोंको लकवा मार गया है और यदि उसकी दवा शीघ्र न की जायगी तो इसमें सन्देह नहीं कि उसका इस रोगसे मुक्त होना दुःसाध्य हो जायगा। इतना ही नहीं, उसका भविष्य जीवन बड़े खतरेमें पड़ जायगा। हममेंसे ऐसे बहुत भाई हैं जो यह माननेके लिए तैयार नहीं हैं। उनका यह खयाल है कि जैनोंकी उन्नति दिन प्रतिदिन ज्यादह होती

* भारतमित्रसे उद्धृत।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाती है । पर ऐसे लोग उन्नतिका अर्थ नहीं समझते, अथवा उन्होंने उसपर अच्छी तरह विचार करनेका कष्ट नहीं उठाया है । रथ-मेलों, मंदिर–प्रतिष्ठाओं, सभा–सुसाइटियों और पाठशालाओंमें लाखों रुपया खर्च होनेसे यह न समझ बैठना चाहिये कि जैनोंमें जागृति हो गई है और वे अब अपने कर्त्तव्योंको समझने लगे हैं । हम यह नहीं कहते कि सारे समाजका ही उपर्युक्त खयाल है । परन्तु यदि कुछ थोड़े व्यक्तियोंको छोड़कर बाकीके विषयमें उक्त अनुमान करें तो हम नहीं समझते कि हमारा वह अनुमान गलत होगा । अच्छा तो आइए, आज हम यह देखें कि समाजकी यथार्थ उन्नतिके मार्गमें कौनसी बाधाएँ हैं ।

१–शिक्षाकी कमी । हममेंसे यह हर कोई मानेगा कि उन्नतिकी जड़ शिक्षा है । उसका मुख्य उद्देश हमारी मानसिक, शारीरिक और नैतिक शक्तियोंका विकाश करना है । जिस शिक्षासे हमारा हृदय उदार, और मन विचार-शील नहीं बनता वह 'शिक्षाके' उचित अर्थमें शिक्षा नहीं है । ऐसी अवस्थामें किसी जातिके लोग नव्वे क्या सैकड़ा प्रति सैकड़ा भी क्यों न लिख पढ़ लें वे शिक्षित नहीं कहला सकते हैं । उन्हें हम पढ़े-लिखे कह सकते हैं, परन्तु शिक्षित नहीं । अत एव जब हम किसी जाति या समाजको शिक्षामें आगे बढ़ा हुआ बतलाते हैं तब हमें पहले यह अच्छी तरह देख लेना चाहिए कि उसके औसत सदस्योंकी दशा मानसिक, शारीरिक और नैतिक दृष्टिसे कैसी है । अन्यथा, हमारा कथन बड़ी भारी गलतीको लिये हुए होगा, और उससे समाज व्यर्थ ही धोखेमें पड़ेगा ।

हमें खेदके साथ कहना पड़ता है कि हमारा जैनसमाज आजकल शिक्षांमें बहुत पिछड़ा हुआ है । हम लोग शिक्षासम्बंधमें उसकी दशा उन्नत समझनेके भ्रममें इस लिए पड़े हुए हैं कि हम प्रत्येक जैन-पत्रमें पाठशालाओंके लिए धन-वृष्टिके समाचार पढ़ा करते हैं और उन्हींपरसे समाजमें शिक्षोन्नतिके मनमाने अनुमान किया करते हैं । समाजमें कई पाठशालाएँ पहलेसे स्थापित हैं और कई हालमें स्थापित हुई हैं । जो अभी अभी स्थापित हुई हैं उनके विषयमें हम कुछ कहना नहीं चाहते, पर उनके विषयमें जरूर कहेंगे जो वर्षोंसे चली आ रही हैं । इन पाठशालाओंसे निकले हुए विद्यार्थी धार्मिक विषयको छोड़कर अन्य विषयोंमें बहुधा शून्य हुआ करते हैं । उन्हें समयकी परख नहीं होती । देश-विदेशमें क्या हो रहा है, इससे वे अज्ञात रहते हैं । इसीलिये वे यह नहीं जानते कि हमारा समाज जिसके हम आवश्यक अंग हैं संसारके आगे है अथवा पीछे । धार्मिक शिक्षाकी ही बात लीजिये । इन पाठशालाओंसे निकले हुए विद्यार्थी प्रायः यह समझा करते हैं कि अब हम अपने धर्म्मके प्रकाण्ड पण्डित हो गये हैं । पर सच पूछा जाय तो यह सब उनकी सिर्फ कल्पना ही कल्पना होती है । वे वस्तुतः अहिंसा, सत्य, दया, क्षमा आदि धर्म-तत्त्वोंके यथार्थ आशयसे प्रायः अपरिचित रहते हैं । वे धार्मिक ग्रन्थोंमें दी हुई सिद्धान्तोंकी परिभाषाएँ जरूर रट लेते हैं पर उनका भाव नहीं समझते । अथवा यों कहिए कि वे उन सिद्धान्तोंका रहस्य समझे बिना ही उन्हें भोजनकी तरह निगल जाते हैं और जब उन सिद्धान्तोंका मतलब समझानेको कहा जाता है तब उन रटी हुई परिभाषाओंको उगल देते हैं । वे अपने तौर पर उन्हें सरल और स्पष्ट भाषामें समझा नहीं सकते । यही कारण है कि हम, अपने समाजके पण्डितों द्वारा जैनधर्म्मपर लिखे गये ऐसे, नये, सुबोध तथा वर्त्तमान आवश्यकताओंको पूरे करनेवाले ग्रन्थोंका अभाव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देखते हैं । इन सब दोषोंकी मूल जड़ हमारी उन पाठशालाओंकी शिक्षा-प्रणाली है जो हमारे समाजमें दिन प्रति दिन बरसाती कीड़ोंकी तरह पैदा होती जा रही हैं और जिनके लिए हम प्रतिवर्ष लाखों रुपया खर्च कर रहे हैं ।

हमारे इस सब कथनका यह मतलब नहीं है कि हम मुरेना, काशी, मथुरा आदि जगहोंकी पाठशालाओंको तोड़नेके पक्षमें है । ऐसा समझना लेखकपर अन्याय करना होगा । पर हम यह कहते हैं कि इन पाठशालाओंमें धर्म्म-शिक्षाके साथ अन्य- विषयोंकी शिक्षा भी दी जानी चाहिए तथा वहाँकी शिक्षा-प्रणाली कुछ फेरफारके साथ आधुनिक ढंगपर होनी चाहिए । हमारा यह ख़याल है कि यदि हम अपनी समाजके बालकोंको धर्मके साथ इतिहास, भूगोल, विज्ञान, कलाकौशल्य आदि विषयोंका भी ज्ञान देवें तो हमारे बालक भविष्यमें समाजकी और अधिक सेवा कर सकेंगे । इस प्रकारकी उदार-शिक्षा (Liberal education) देनेसे उनके मस्तिष्ककी सारी शक्तियाँ विकसित होंगी, उनका हृदय उदार होगा और वे ऊँची धार्मिक शिक्षा ग्रहण करनेके लिए अधिक तैयार होंगे । इतिहासका अध्ययन उन्हें यह बतलायगा कि हमारे देश तथा धर्म्मका अधःपतन कैसे हुआ और जो जातियाँ निरी जंगली थीं वे इस वैभवशाली दशाको कैसे प्राप्त हुई । विज्ञानसे उन्हें यह लाभ होगा कि हमारे धर्म्म और विज्ञानके सिद्धान्तोंमें कौनसा अन्तर है और हम किस तरह अपने धर्मके सिद्धान्तोंको वैज्ञानिक ढंगपर दुनियाँके सामने रख सकते हैं । भूगोलसे उन्हें देश-विदेशोंकी प्राकृतिक अवस्था, उपज, कल-कारखाने आदि बातोंका ज्ञान होगा । भूगोलकी शिक्षा जैनसमाजके लिए अत्यन्त आवश्यक है । क्योंकि उसका प्रधान व्यवसाय व्यापार करना है । भूगोलसे उनकी कूप-मंडूक-वृत्ति जाती रहेगी और उसकी जगह उदारभावको स्थान मिलेगा । इस प्रकार उसका विदेशोंसे व्यापार करनेका उत्साह बढ़ेगा ।

यह तो उन पाठशालाओंके सम्बन्धमें हुआ, जिनका प्रधान उद्देश्य धर्मशिक्षा देना है । पर क्या हम लौकिक शिक्षाकी भी अवहेलना कर सकते हैं ? कभी नहीं । हमारे लिए लौकिक शिक्षा उतनी ही आवश्यक है, जितनी धर्म्म-शिक्षा। हमारे समाजके लिए न केवल धर्मके रक्षक चाहिये किन्तु हमारे राजनैतिक हक्कोंके भी । आज राजनीतिके मैदानमें खूब युद्ध हो रहे हैं। पर जैनसमाज दूर खड़ा खड़ा तमाशा देख रहा है । इसका परिणाम सोच लीजिए । खैर, अभी कोई हानि नहीं हुई । हमें शीघ्र ही लौकिक शिक्षाके केन्द्र खोलना चाहिए । दो चार हाईस्कूलोंसे कुछ नहीं होता । हमें कालेज ही नहीं बल्कि विश्व-वियालयकी ज़रूरत है । पर हम देखते हैं कि जैन धनिकों और विद्वानोंका इस ओर ध्यान जाता ही नहीं । वे अपने बालकोंको पाश्चिमात्य ज्ञान-विज्ञानसे शून्य रखना चाहते हैं । वे समझते हैं कि पाश्चिमात्य राजनीति, विज्ञान, कला-कौशल और अर्थशास्त्रोंसे हमें और हमारे देशके लिए कोई लाभ नहीं । पर हमें अब इन संकुचित विचारोंको छोड़ना होगा । इसका परिणाम भारतने खूब देखा ।

ऊपर जो कुछ कहा जा चुका है उससे यह स्पष्ट है कि वर्त्तमान पाठशालाओंसे हमारी शिक्षाकी आवश्यकताएँ पूरी नहीं हो सकतीं । उससे यह भी मालूम होगा कि हमारा धन शिक्षाकी उचित दिशामें नहीं लगाया जारहा है । **यह बड़े दुःखकी बात है कि जिन जैनोंका धन सारे भारतवासियोंकी मानसिक और नैतिक प्रगतिके लिए लगाया जाना चाहिये था उसका वे खुद अ-**

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पनी प्रगतिके लिए भी उचित उपयोग नहीं करते। अतएव इस बातकी बड़ी भारी आवश्यकता है कि हमारी पाठशालाओंकी शिक्षा–प्रणालीमें परिवर्त्तन होना चाहिए तथा बड़ी बड़ी जगहोंमें कालेज और एक विश्वविद्यालय स्थापित होना चाहिये। **इससे हमारे धनवानोंका दान सार्थक होगा और वे अन्य समाजोंको अपना मुँह दिखा सकेंगे।** जो जैन संसारमें अपनी धनिकताके लिए सदासे प्रसिद्ध हैं, जिनमें अब भी कई करोड़पति मौजूद हैं उनके लिए और विशेषकर उनके लक्ष्मी-पुत्रोंके लिए यह बड़े लज्जाकी बात है कि जैनसंसार विश्व-विद्यालय क्या कालेजसे भी खाली रहे। अच्छा अब हम शिक्षाके प्रश्नको यहीं छोड़कर और दूसरे कारणको ढूँढ़ें, जिनसे हम जैनोंकी प्रगति रुकी हुई है।

२–विचार-स्वातन्त्र्यकी कमी। जैनसमाजको जीवित रखनेके लिए उसे विचार-स्वातन्त्र्य देना बड़ा जरूरी है। संसार परिवर्त्तन-शील है। आज जो हमारी जरूरतें हैं वे हजार अथवा ड़ेढ़ हजार वर्ष पहले न थीं। संसारकी गति बड़ी तेजीपर है। धर्म और समाजको जीवित रखनेके लिए हमें भी उसका साथ देना होगा। यह तभी हो सकता है जब हमारे समाजको विचार करनेकी पूरी स्वाधीनता मिल जाय और वह समयकी माँगें पूरी करनेके लिए तयार हो। पर हम देखते हैं कि आज सारे समाजपर अंध-विश्वास छाया हुआ है और वह प्राचीन विचारोंसे बिल्कुल जकड़ा हुआ है। वह अपनी समस्याओंको हल करनेके लिए उन्हीं युक्तियोंको लगाना चाहता है जिन्हें वह कई सौ वर्ष पहले लगाता रहा; और यही कारण है कि उसके सारे उन्नतिके प्रयत्न निष्फल हो रहे हैं।

विचार-स्वाधीनताकी कमी साधारण मनुष्योंमें हो तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं। पर हम अपने समाजके उन लोगोंमें भी देखते हैं जो समाजके नेता होनेका दावा करते हैं अथवा जिन्हें समाजके सर्वसाधारण लोग अपना हितकर समझते हैं। यह जैनोंके लिए बड़े दुर्भाग्यकी बात है। विचार-स्वाधीनताके बढ़नेसे कोई हानि न होगी। उससे समाजमें फूट फैलनेका खयाल स्वप्नमें भी न लाना चाहिए। फूट, मत्सर, द्वेष, हृदयकी संकुचितताके परिणाम हैं, विचार-स्वाधीनताके नहीं। विचार-स्वाधीनतासे हमें धर्म जानेका भी डर न करना चाहिए। क्योंकि धर्म कोई भौतिक वस्तु नहीं और विचार-स्वाधीनता कोई सागर नहीं, जिसमें वह डूब जाती हो। धर्म और विचार-स्वाधीनतामें यथार्थमें कोई विरोध नहीं है। यदि हम जैनधर्मका गहरा अध्ययन करें तो हमें यह मालूम होगा कि हमारे तीर्थंकरों और आचार्योंके मत भी समयके अनुसार बदलते गये हैं। संसारमें केवल दया, क्षमा, सत्य ऐसे ही कुल मूलतत्त्व हैं जो सदासे सर्वमान्य रहे हैं। बाकी सब तत्त्वोंकी कल्पनाएँ बदलती रही हैं और उनके विषयमें भिन्न भिन्न लोगोंके भिन्न भिन्न मत रहे हैं। ऐसा होना दुर्निवार हैं, क्योंकि मनुष्य स्वभावसे ही प्रगति-प्रेमी और अस्थिर प्रकृतिका प्राणी है। अतएव जैनसमाजके नेताओंको धर्मके चले जानेका कोई भय न करना चाहिए। **उनपर समाजने अपने हितके लिए जो विश्वास रक्खा है उसका घात करना उनके लिए उचित नहीं।** उन्हें अपनी जिम्मेदारीका खयाल रखना चाहिए और धर्म और समाजकी उन्नतिके लिए बेधड़क नये विचारोंको—विपरीत विचारोंको-प्रकाशित करना चाहिए।

हम विचार-स्वाधीनताका कितना निरादर करते हैं यह बात हमें जैनपत्रोंके पढ़नेसे विदित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हो जायगी। दो चार जैन-पत्रोंको छोड़कर और किसी भी पत्रको उठाकर पढ़िए, उनमें विचारोंकी नवीनता बिल्कुल नहीं दिखाई देवेगी। यह बात नहीं कि जैनोंमें अच्छे और विचारशील लेखकोंकी कमी है किन्तु उन्हें जैनपत्र-सम्पादक पूछते नहीं। जैनपत्रोंके सम्पादक विचार-स्वाधीनतासे बेतरह बिगड़े हुए हैं और हमें यह जानना चाहिए कि प्रायः विचारशील लेखक स्वतन्त्र विचारोंके प्रेमी होते हैं। इसी कारण जैनसमाजके पत्र-सम्पादक ऐसे लेखकोंके लेखोंको धर्मविरुद्ध बतलाकर उन्हें अपने पत्रोंमें प्रकाशित करनेसे इन्कार करते हैं; और फिर अपने बेढंगे, असार और संकुचित भाव-पूर्ण लेखोंसे अपने पत्रकी प्रतिष्ठा सभ्य और शिक्षित संसारमें खो बैठते हैं। हमारे इस कथनसे यह अभिप्राय नहीं है कि जैनसमाजके सारे पत्र इसी श्रेणीके हैं किन्तु दरअसलमें बहुतसे ऐसे ही हैं।

एक मनुष्य ऐसा है जो दूसरोंके विचारोंका तिरस्कार कर उन्हें सुननेसे इन्कार करता है और दूसरा मनुष्य ऐसा है जो दूसरोंके विचारोंको आदरकी दृष्टिसे देख उन्हें ध्यानपूर्वक सुनता है। वह समझता है कि बहुत संभव है कि मेरे विचार ग़लत हों और दूसरोंके ठीक हों, इस लिए दूसरोंके विचारोंको सुननेमें कोई हानि नहीं है, बल्कि अपना लाभ ही है। इन दो मनुष्योंमें कौन चतुर है?

कहनेकी जरूरत नहीं कि दूसरा। इसलिए **प्रत्येकका धर्म है और इसमें उसीकी भलाई है कि वह खुद दूसरोंके प्रतिकूल विचारोंको सुने और उनकी अपनी विचारोंसे तुलना करे। ऐसा करनेसे हमारे समाजकी खोई हुई बुद्धि फिरसे आजायगी, हम तीर्थंकरोंके सच्चे अनुयायी कहला सकेंगे और हमारे स्वतन्त्र विचारोंका रुका हुआ प्रवाह फिरसे बहने लगेगा।**

विचार-स्वाधीनतासे क्या लाभ हो सकते हैं, यह बात हमें इंग्लैंडसे सीखनी चाहिए। संसारमें आज उसका आसन कितना ऊँचा है, यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं। उसने कई धुरंधर तत्त्ववेत्ताओं और राजनीतिज्ञोंको पैदा किया है, क्योंकि वह स्वतन्त्र विचार करनेवालोंका आश्रयदाता रहा है। फ्रान्स जैसे देशोंसे जब लूथर के विचार रखनेवाले लोग भगाये गये तब उनका स्वागत करनेवाला इंग्लैण्ड ही था। उसका इतिहास कुछ नहीं किन्तु स्वाधीन विचारोंका इतिहास है।

अतएव समाजोन्नतिके लिए यह बड़ी भारी जरूरत है कि हम विरुद्ध विचारोंका भी आदर करना सीखें। कोई अध्यापक किसी शिक्षा-संस्थामें अपने विद्यार्थियोंको स्वतन्त्र विचार करनेके लिए उत्तेजन देता हो तो उसे जैनधर्म-विरुद्ध आचरण करनेका लाँछन लगाकर शिक्षा संस्थासे अलग कर देना समाजको बड़ी भारी हानि पहुँचाना है। और फिर, स्वतन्त्र विचार करनेका प्रत्येक मनुष्यको अधिकार है। वह एक जन्मसिद्ध हक्क है और उस हक्कको छीनना बुद्धिके विकाशमें बाधा डालना, अतएव पाप करना है। अतएव हम समाजसे सविनय प्रार्थना करते हैं कि वह खुद अपनी अक्लसे काम काम लेना सीखे और अपनी सन्तानोंको स्वतन्त्र विचारके वातावरणमें विचरण करने दे। जिसप्रकार बहुतसे जलाशयोंका पानी प्रबाहरूपमें न बहनेसे अपनी उपयोगिता नष्ट कर बैठता है उसीप्रकार विचार-परिवर्तनके न होनेसे समाजके बुद्धिकी उपयोगिता मारी जायगी।

३-स्वार्थत्यागियोंकी कमी। हमारी उन्नतिके रुकनेका एक कारण यह भी है कि हम लोगोंमें स्वार्थत्यागी नहीं हैं, और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो थोड़े बहुत हैं वे समाज, धर्म अथवा देशके कार्योंसे उदासीन रहते हैं। नहीं मालूम कि स्वार्थत्यागसे उनका क्या अभिप्राय है। यदि स्वार्थत्यागसे उनका अभिप्राय घरबार छोड़कर समाजके लिए भारस्वरूप होना है तो मुझे उनके विषयमें कुछ नहीं कहना है। जो स्वार्थ-त्याग समाज, धर्म, अथवा देशके हितके लिए नहीं किया गया हो वह स्वार्थत्याग स्वार्थत्याग नहीं है। स्वार्थ-त्याग सीखना हो तो बौद्धधर्मसे सीखो, जिसके अनुयायियोंने उसका प्रकाश दूर दूर तक फैलाया। अथवा खुद भगवान महावीर-के जीवन-चरितसे सीखो जिन्होंने अपना सारा जीवन सत्य, दया, और विश्वप्रेमका सन्देश भारतके घर घर पहुँचानेमें लगा वि[illegible]न्नतिके कार्य उन्हीं महात्माओंसे हो सकते[illegible]अकलंक और निकलंकके समान धर्मकी वेदीपर जीवनका बलिदान देनेके लिए तयार हों, जिनमें अदम्य उत्साह हो, जिनका चारित्र्य निष्कलंक हो और जिनकी मूर्तिके दर्शनमात्रसे दूसरोंके हृदयमें उत्साहका दीपक जल उठता हो। जबतक ऐसे कर्म्मवीर पैदा न होंगे तबतक किसी समाज, धर्म अथवा देशकी उन्नतिकी कल्पना करना बिल्कुल असम्भव है।

किसी निश्चित उद्देश्यसे स्वार्थ-त्याग होना चाहिए। किन्तु हमारी समाजके स्वार्थ-त्यागी बेपेंदीके लोटे हैं। उनके जीवनका कोई एक उद्देश्य नहीं होता। वे आज यदि किसी महा-विद्यालय अथवा ब्रह्मचर्य्याश्रमके अधिष्ठाता हैं तो कुछ समय बाद आप उन्हें उस पदसे अलग दूसरे पद पर विराजित देखेंगे। परिणाम यह होता है कि इन बेपेंदीके लोटोंसे समाजको नुकसान पहुँचता है। अधिष्ठाताओंके परिवर्तनसे संस्थाओंकी कार्यशैली निरन्तर बदला करती है। सब काम अधूरे रह जाते हैं। संस्थाओंकी ओर जिन लोगोंका विशेष ध्यान रहता है उनका उक्त संस्थाओं परसे विश्वास उठ जाता है। अत एव समाजके स्वार्थत्यागियोंका एक बड़ा कर्त्तव्य यह है कि वे स्वार्थत्याग करनेके पहले यह निश्चय कर लें कि मैं समाज, धर्म अथवा देशके लिए कौनसा कार्य करूँगा। वे यह याद रक्खें कि आजकल मनुष्य अपने छोटेसे जीवनमें सभी कार्योंमें सफलता प्राप्त नहीं कर सकता है। उसे अपनी सारी शक्ति किसी एक उद्देश्य-की पूर्तिके लिए खर्च करना पड़ती है।

जैनसमाजको अब शीघ्र ही इस बातमें सचेत होना चाहिए और जो महाशय स्वार्थ-त्यागके योग्य हों उन्हें यह अवसर हाथसे न जाने देना चाहिए। यह अवसर बड़े महत्त्वका है। अब नहीं तो कभी नहीं।

४-संघशक्तिका अभाव। हमारी उन्न-तिका बाधक संघशक्तिका अभाव भी है। हममेंसे अब भी संकुचित भाव निकले नहीं हैं। साम्प्र-दायिक भेद-भाव दिनोदिन बढ़ते जाते हैं। यही कारण है कि हम आपसमें अपने झगड़े तय नहीं कर सकते और वर्षोंसे मुक़द्दमेबाजीमें लाखों रुपया स्वाहा कर रहे हैं। तीर्थोंके झगड़े इस कथनको पुष्ट करते हैं।

जो धन शिक्षणप्रसारमें, प्राचीन ग्रन्थोंके उद्धारमें, समाज-जागृतिमें, अथवा और किसी पवित्रकार्यमें लगाया जाना चाहिए था वह आज वैमनस्य बढ़ानेमें और वीर-संघकी शक्ति नष्ट करनेमें लगाया जा रहा है। उचित तो यह है कि हम तीनों सम्प्रदायके कुछ नेताओंकी कमेटी नियत करें और उनके जिम्मे फैसले तथा प्रब-न्धका कार्य-भार सौंप दें। यदि इसमें साम्प्र-दायिक नेताओंके पक्षपातकी आशंका हो तो देशके तथा समग्र जैनसमाजके कुछ नेताओंकी एक कमेटी नियत की जाय। ऐसा करनेसे जैन-समाजके धनका भारी दुरुपयोग बच जायगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हम ऐसा करनेके लिए सारी समाजके नेताओंसे विशेषकर श्वेताम्बर संप्रदायके नेताओंसे अनुरोध करते हैं।

हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि हमारी संख्या केवल साढ़े बारह लाख ही है। आजकल संसारमें ऐसे युद्ध चल रहे हैं कि हम जैसी छोटी छोटी जातियोंका गुजारा होना मुश्किल है। हम आजतक अपने धर्मके तत्त्वोंके बल जीते आये हैं, संख्याके बल नहीं। पर अब हमें अपनी संख्याका भी विशेष ध्यान रखना होगा। हम यहाँ संख्या-वृद्धिका प्रश्न नहीं छेड़ना चाहते, किन्तु इतना ही कहना चाहते हैं कि हमारी परिस्थिति बड़ी नाज़ुक है और हमें अपने सारे समाजकी शक्तिको एकत्र करना चाहिए। अँगरेजीमें एक कहावत है कि जिसका अर्थ यह है कि यदि हम मिलकर रहें तो हम संसारमें अपना अस्तित्व कायम रख सकेंगे और यदि हम बँट जायँ तो हमारा अस्तित्व संसारसे उठ जायगा। यदि हमें जैनधर्म और जैन कौमको संसारमें कायम रखना इष्ट है तो हमारी भलाई इसीमें है कि हम सारे साम्प्रदायिक भेद-भावोंको दूर कर, अपनेको भगवान् महावीरकी सन्तान समझ, परस्पर गले मिलें।

हम जैसे ईर्ष्या, द्वेष, फूटके कारण बँटे हुए हैं वैसे और कौन लोग बँटे होंगे? हममेंसे तीर्थंकरोंको विश्व-प्रेमका भाव इतना उठ गया है कि हम कठिनसे कठिन मौकेपर भी अपनी उन्नतिके लिए एक नहीं हो सकते। जब हमारे देशमें भारत-मन्त्रीका आगमन हुआ था, तब सारे धर्म और सारे जातियोंके नेताओंने अपनी अपनी माँगें उनके आगे रक्खीं। पर केवल हम ही थे जिन्होंने एक होकर अपनी माँगोंपर जोर नहीं दिया। बा० अजितप्रसादजीने अपने श्वेताम्बर बन्धुओंको मिलकर काम करनेके लिए बहुत समझाया पर जैनसमाजका यह दुर्भाग्य और श्वेताम्बर सम्प्रदायके नेताओंका यह दुराग्रह है जो उन्होंने ऐसा करनेसे इन्कार किया। उचित तो यह था कि सारे सम्प्रदायके नेता प्रेमपूर्वक गले मिलते और मि० मान्टेगुके सामने अपने अधिकार खूब जोरसे रखते। पर साम्प्रदायिक मोह बड़ा प्रबल है।

अतएव अब हमें इस उदाहरणसे शिक्षा लेनी चाहिए और एक होकर काम करना चाहिए। साम्प्रदायिक भेद-भावके कारण हम दूसरोंकी दृष्टिमें गिरे हुए हैं। हमें चाहिए कि हम एक दूसरे सम्प्रदायके मन्दिरोंमें जावें, सभी संप्रदायके ग्रन्थोंका पठन-पाठन करें, और प्रत्येक सम्प्रदायकी सभाओंमें भाग लेवें। ऐसा करनेसे हमारी बँटी हुई संघशक्ति फिर एकत्र हो जायगी। हम प्रत्येक सम्प्रदायके ग्रन्थोंका कमसे कम नाम तो जानेंगे और हमारा हृदय उदार होगा। हमारे किसी भी सामाजिक तथा धार्मिक काममें साम्प्रदायिक भावोंकी गन्ध न आनी चाहिए।

५—संगठनका अभाव। संघ-शक्तिके अभावके साथ हममें संगठन-शक्तिका भी अभाव है। यही कारण है कि हमारी संस्थाएँ बहुत दिन तक नहीं ठहर पातीं। यदि बहुत दिनतक ठहरीं भी तो वे समाजके लिए कार्य नहीं कर जातीं। हमें यह लिखते दुःख होता है कि हमें अभी यह नहीं मालूम कि कौन आदमी किस पदके योग्य है और कौन आदमी समाजकी भलाईका जियादह ख़याल रखता है। जिन्होंने जर्मन-साम्राज्यकी उन्नतिका इतिहास पढ़ा होगा उन्हें यह मालूम होगा कि उसकी उन्नतिका यह भी एक कारण है कि वे संस्थाओंका कार्य चलानेके लिए योग्य पुरुषोंके चुननेमें बड़ी चतुराईसे काम लेते हैं। इतना ही नहीं, दुनिया एक स्वरसे कहती है कि उनकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संगठन-शक्ति सब राष्ट्रोंकी अपेक्षा अच्छी है। सचमुच जो व्यक्ति जिस कार्यके लिए योग्य नहीं है उसे वह कार्य देना छोटे बालकके हाथ तलवार देनेके बराबर है। अतएव संस्थाओंके पदाधिकारी चुननेमें धानिक, बाबू अथवा पंडित लोगोंका कुछ भी भेद न रक्खा जाय। संस्थाओंकी बागडोर उन्हींके हाँथ दी जाय जिन्हें अपनी जिम्मेदारीका खयाल हो, जो अनुभवी और जिसका हृदय उदार हो। सौ जातीय अव्यवस्थित संस्थाओंकी अपेक्षा एक व्यवस्थित संस्था कई दर्जे अच्छी है।

हमें यह लिखते दुःख होता है कि जैनसमाजमें कोई ऐसी सभा नहीं है जो सारे जैनोंकी प्रतिनिधि संस्था कही जा सके। नामके लिए पोलिटिकल जैन कान्फरन्स और भारत जैन महामण्डल ये दो सभाएँ हैं। पर जहाँतक हमारा खयाल है इनके सञ्चालक तीनों सम्प्रदायके नहीं हैं और न इनका संगठन ही ठीक है। इन सभाओंके सदस्योंकी संख्या बहुत थोड़ी है और वे प्रायः दिगम्बर सम्प्रदायमेंसे हैं। यह भी नहीं जान पड़ता कि उन्होंने कौनसे कार्य हाथमें लिये हैं। सचमुच पहले श्रीयुत बाबू दयाचन्द्रजीके उत्साहसे जीव-दयाके प्रचारका काम अच्छी तरह चलता रहा। अब भी जैन गजट नामका एक छोटासा अँगरेजी पत्र उसकी ओरसे निकलता हैं। पर उसकी ग्राहकसंख्या बहुत ही थोड़ी जान पड़ती है और बा० अजितप्रसादजीने स्वार्थत्यागके साथ उसका भी कुछ दिन तक त्याग कर दिया था।

बड़े आश्चर्यकी बात है कि समाजमें क्या दस बीस ग्रैज्युएट तथा पंडित नहीं हैं जो सभासञ्चालनके कार्योंमें शौक रखते हों। इन्हीं दो सभाओंका पुनरुद्धार कर उन्हें समाजकी सच्ची प्रतिनिधि संस्थाएँ कर दिखाना कोई बड़ी बात नहीं है। जरूरत है केवल सच्चे कार्य्यकर्त्ताओंकी। जैनोंमें आज उपजातियोंकी बहुतसी सभाएँ वर्तमान हैं। इन सभाओंको उपर्युक्त बड़ी सभाओंके मातहत किया जाय और उनकी कार्यकारिणी समितिमें छोटी छोटी सभाओंके उचित संख्यामें प्रतिनिधि रक्खे जायँ। भारतजैनमहामण्डलके जिम्मे धर्मप्रचार, शिक्षाप्रचार और समाज-सुधारके कार्य दिये जायँ और पोलिटिकलकान्फरन्स जैनोंके राजनैतिक हकोंकी रक्षा करे। ऐसा संगठन करनेसे जैनसमाजकी खासी दो प्रतिनिधि संस्थाएँ बन सकती हैं। ये ही हमारी पार्लमेण्टें होंगी। ये ही दो संस्थाएँ हमारे साम्प्रदायिक झगड़ोंका निपटारा कर सकेंगी, कालेज विद्यालय खोल सकेंगी और विदेशोंमें धर्मप्रचार कर सकेंगी। संक्षेपमें ऐसी संस्थाओंसे हमारी बहुतसी सामाजिक अड़चने दूर हो जायँगी। हम इस सूचनाकी ओर मि० जुगमन्दिरलालजी, मि० मकनजी जूठा, मि० वाडीलाल, ब्र० शीतलप्रसाद, बा० अजितप्रसाद, सर हुकमचन्दजी, पं० धन्नालालजी आदि जैनसमाजके प्रमुख व्यक्तियोंका ध्यान आकर्षित करते हैं।

इन बाधाओंके सिवा और बहुतसी बाधाएँ हैं जिनके दूर किये बिना हमारी उन्नतिका मार्ग निष्कंटक नहीं हो सकता। लेख बहुत बढ़ जानेके भयसे हमने यहाँ केवळ चार मुख्य बाधाओंकी चर्चा की है। यदि बन सका तो हम आगे और बाधाओंकी भी चर्चा करेंगे जिनके कारण जैनधर्म और जैनसमाजकी प्रगति रुकी हुई है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समाचार-संग्रह ।

अधिवेशन—१ अलवर स्टेटमें अलवर स्टेशनसे १० कोसके फासलेपर बड़ोदा एक अच्छा कस्बा है। यहाँ माहसुदी १३ से फाल्गुणवदी २ तक रथोत्सवका मेला होनेवाला है। इसी अवसर पर राजपूताना प्रान्तिक दि० जैनसभाका अधिवेशन भी होगा। सवारी आदिका सब प्रबंध किया गया है। २ बम्बईकी दिगम्बर-जैन-प्रान्तिक सभाका अधिवेशन इस साल पावागढ़में माहसुदी १२ को होना निश्चित हुआ है। ३ परवार-महासभाका द्वितीय अधिवेशन अकलतरा जि० बिलासपुरके रथोत्सवके समय फाल्गुण सुदी ३ को किये जानेका प्रबन्ध हो रहा है।

दस्सा-बीसाओंमें विवाह—हालमें मार्गशीर्ष शुक्ल १४ को, बम्बईके सुप्रसिद्ध सेठ माणिकचंदजी जे. पी. के भतीजे और सेठ नवलचंदजी जौहरीके पुत्र रत्नचंद्रका विवाह शोलापुरके सेठ श्रीयुत हेमचंद अमीचंदजीकी पुत्रीके साथ हुआ है। इस सम्बंधमें वरपक्ष बीसाहूमड़ और कन्यापक्ष दस्साहूमड़ है। ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी, इस प्रकारके विवाह-सम्बंधको उचित तथा निर्दोष ठहराते और उसके प्रचारपर अपनी अनुमति प्रकट करते हुए, दूसरी जातियोंको भी वैसा करनेकी प्रेरणा करते हैं। आपके कुछ वाक्य इस प्रकार हैं—

"अब दोनों प्रकारके हूमड़ोंको परस्पर सम्बंध करनेमें संकोच न करना चाहिये। इसी तरह अन्य जातियोंको भी विचारना चाहिये।"

"अधिक क्षेत्रमें पुत्र पुत्रीकी खोज अच्छी होती है इसीलिये इस अंतर्जातीय सम्बंधपर बुद्धिमानोंको लक्ष देनेकी जरूरत है।

"जिस बातमें कोई दोष नहीं हो उसको प्रचारमें लानेके लिये साहस करना ही बुद्धिमत्ता है।"

जाति-बाहर—सहयोगी जैनमित्र अपने ११ दिसम्बरके अंकमे लिखता है कि, "सोनकच्छमें एक दलालने किसी सेठका एक स्त्रीके रहते दूसरा विवाह करा दिया, इस कारण उसे गत ३ तारीखको दि० जैनप्रान्तिक सभा कोटाने बहुसम्मतिसे जाति-बाहर कर दिया।" परंतु यह मालूम नहीं हुआ कि, यदि उक्त सभाकी दृष्टिमें एक स्त्रीके रहते हुए दूसरा विवाह करना अपराध है तो उसने उक्त सेठसाहबको, जो कि मूल अपराधी हैं, क्या दंड दिया है। और ऐसी दशामें सभाका यह बहिष्कार और तिरस्कार कहीं अपने उन पूर्वजोंके प्रति तो प्रारंभ नहीं हो जायगा जिन्होंने एक स्त्रीके रहते हुए दोचार-दसबीस नहीं, सैकड़ों और हजारोंकी संख्यामें विवाह कर डाले थे। क्या सभा उन विवाहोंके अस्तित्वको स्वीकार नहीं करती अथवा उन्हें अब उपयोगी नहीं समझती? और क्या उक्त सभाने पहले बहुविवाहविषयक कोई प्रस्ताव पास किया था, जिसके अनुकूल यह दंडविधान किया गया है? हम इस विषयमें कुछ विशेष हाल और सभाका विचार जानना चाहते हैं। आशा है कि सभाके मंत्री अथवा दूसरे कोई महाशय हमें उससे सूचित करनेकी कृपा करेंगे।

उत्साहवृद्धि—गत १५ नवम्बरको पूना शहरमें २२ आदमियोंकी एक दौड़ हुई थी, जिसमें बेलगामके वकील साहब श्रीयुत चौगलेके पुत्र फडेप्पा दरेप्पा चौगले नामके एक जैन विद्यार्थी महाशय सबसे आगे रहे। आपने २७ मीलकी दौड़को २ घंटे ४९ मिनट और ५८॥ सेकंडमें पूरा किया था! इस विजयकी खुशीमें ७ दिसम्बरको बेलगाममें एक सभा हुई, जिसके अध्यक्ष थे रा० जीवराज मोतीचंदजी गाँधी बी. ए. एलएल. बी. वकील। सभामें प्रोफेसर लट्टेका व्याख्यान हुआ, और उक्त विद्यार्थी महाशयको, उनकी उत्साहवृद्धिके लिये, मानपत्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथा सुवर्णपदकके साथ 'पवनंजय' की पदवी प्रदान की गई। बम्बईके सेठ माणिकचंद पानाचंदजी जौहरीकी तरफसे एक चाँदीका कटोरा भी इस विद्यार्थीको भेट किया गया है। कहा जाता है कि मि० मौन्टफर्ड साहब कमिशनरने बेलजियममें जो दौड़ होनेवाली है उसमें उक्त विद्यार्थीको भेजनेके लिये सिफारिश की है। हमें एक जैन विद्यार्थीके सम्बन्धमें ये सब समाचार मालूम करके बहुत खुशी हुई। दूसरे विद्यार्थियोंको भी अपनी शारीरिक शक्तियोंको बढ़ानेका इसी प्रकारसे कोई यत्न करना चाहिये। J.M.

स्वार्थत्याग—सहयोगी जैनप्रदीपसे मालूम हुआ कि श्रीयुत मिस्टर छेदीलालजी एम. ए. बैरिस्टर ऐट लाने सिर्फ ७५ रुपये मासिक पर गुरुकुलमें अर्थशास्त्रकी प्रोफेसरी स्वीकार की है। यह है सच्चा स्वार्थत्याग। हमारे जैनविद्वानोंको भी इससे कुछ सबक सीखना चाहिये।

अपील खारिज—खेद है कि ब्र० भगवानदीनजीकी सजाके विरुद्ध जो अपील किया गया था वह खारिज हो गया है। अपील खारिज होने पर निगरानी (Revision) दाखिल की गई है, जिसका नतीजा अभीतक मालूम नहीं हुआ।

नई पत्नीका देहान्त—अफसोस है कि रायबहादुर सर सेठ हुकमचंदजीकी नवविवाहिता पत्नीका देहान्त हो गया। मालूम होता है कि बेचारीके भाग्यमें राजघरानेका कुछ भी सुखभोग नहीं था।

एक भक्तकी भक्ति—सेठ चम्पालालजी सुसारीवाले 'जैसवाल जैन' में लिखते हैं कि—

"इस बातके माननेके लिये प्रायः सभी जैन विद्वान् और साधारण सज्जन तय्यार होंगे कि लश्करनिवासी सिद्धान्तरत्न, व्याख्यानवाचस्पति, ज्ञानसागर श्रीमान् पं० लक्ष्मीचंदजीके समान मेधावी बुद्धिवाला और जैनशास्त्रोंका सबसे अधिक अध्ययन कर चुकनेवाला कोई पंडित इस समय विद्यमान नहीं है।" नहीं मालूम सेठ साहबके इस दावे और घोषणाको स्वीकार करनेके लिये कौन कौन विद्वान् और पंडितजन तय्यार हैं। हमारी रायमें तो यह सब एक भक्तकी भक्तिका नमूना है, दावा अथवा घोषणा कुछ भी नहीं।

आश्रमकी कार्रवाई—गत कार्तिक मासके अन्तमें ऋषभब्रह्मचर्याश्रम हस्तिनापुरकी वार्षिक मीटिंग हो चुकी। हालमें इस मीटिंगकी कार्रवाईकी एक नकल हमारे पास आई है, जिससे मालूम होता है कि इस वर्ष १०० छात्रोंके लिये २१५२०) रुपयेका बजट पास किया गया है। ला० गेंदनलालजीके इस्तीफा न देने अथवा नई रुखसत न लेने पर भी पं० मक्खनलालजी, जो उनकी जगहपर रुखसतकालके लिये उप-अधिष्ठाता नियत किये गये थे, बदस्तूर उपअधिष्ठाता कायम रक्खे गये और उनकी सहायताके लिये दो और सहायक नियत किये गये हैं; एक ब्र० ज्ञानानंदजी जिनकी बाबत यह मालूम नहीं हुआ कि वे किसी प्रस्तावके द्वारा सभासद भी चुन गये हैं या कि नहीं, और दूसरे बाबा भगीरथजी वर्णी। इन दोनोंने सिर्फ चार महीनेके लिये आश्रममें ठहरनेका वचन दिया है! कमेटीने ला० गेंदनलालजीके आश्रममें रहनेकी अत्यन्त आवश्यकता समझकर उनसे उसके लिये प्रार्थना की है और उन्हें आश्रमका पेट्रन नियत किया है, जिनके और उप-अधिष्ठाताके कर्तव्योंका विभाजन अधिष्ठाताजी मंत्री साहबकी सलाहपूर्वक करेंगे। इस कार्रवाईसे यह बिलकुल स्पष्ट हो जाता है कि कमेटीने ला० गेंदनलालजीसे बिना कुछ पूछे ही उन्हें इस तरह पर उपअधिष्ठाताके पदसे अलग किया है। हमारी रायमें आश्रमकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह कार्रवाई ठीक नहीं हुई । कमसे कम उन्हें अपने पद पर वापिस आने और अपना काम सँभालनेके लिये पूछना जरूर चाहिये था, अथवा प्रस्तावमें ऐसे ही आशयकी कोई शर्त रखनी चाहिये थी जो नहीं रक्खी गई । और यदि उन्हें किसी तरह भी उपअधिष्ठाताके पद पर रखना मंजूर नहीं था तो एक प्रस्ताव द्वारा बाकायदा हेतुपुरस्सर उनका पृथक्करण होना चाहिये था । अस्तु; आश्रमकी एक अंतरंग व्यवस्थापक सभा भी नियत की गई है, जिसमें निम्नलिखित ५ महाशय शामिल हैं––

१ बा० भगीरथजी, २ ब्र० ज्ञानानंदजी, ३ बा० शिवप्रसादजी बी. ए., ला० गेंदनलालजी, ५ पं० मक्खनलालजी ।

इनमेंसे पहले दो सदस्य चार महीनेके लिये ही आश्रममें रहेंगे और गेंदनलालजीके वहाँ रहनेमें अभी संदेह है, इसलिये यह व्यवस्थापक सभा प्रायः चार महीनेके लिये ही समझनी चाहिये । अन्तके एक प्रस्तावद्वारा उपअधिष्ठाताको (अधिष्ठाताको नहीं) यह अधिकार दिया गया है कि वह चाहे जिस व्यक्तिको प्रबन्धकर्ता अथवा मैनेजर नियत करे और विद्यालयके सिवाय जितने कार्यविभागोंको उसे सौंपना उचित समझे, सौंपे । इस प्रस्तावकी मौजूदगीमें पैट्रनके कर्तव्योंका पृथक् रूपसे स्थापन अधिष्ठाता और मंत्रीके लिए एक बड़ा ही कठिन कार्य होगा । समझमें नहीं आता कि उपअधिष्ठाताके अधिकारों और कर्तव्योंके बाहर पैट्रन वहाँ रहकर और कौन कौनसे कार्योंको स्वतंत्र रीतिसे कर सकेगा । हमारी रायमें तो इस समय, इस कार्रवाईसे, आश्रमको प्रायः उप अधिष्ठाताके ही हाथोंमें समझना चाहिये । उन्हींकी कृपापर इसका उत्थान और पतन निर्भर है ।

पचहत्तर हजारका दान ।

हमारे पाठक सागरनिवासी श्रीयुक्त मोदी धर्मचन्द्जीके नामसे परिचित होंगे । परवारजातिमें आप एक अच्छे विचारशील और उदारचित्त धनी हैं । गत वर्ष आपने एक औषधालय खोलनेके लिए २५०००) रुपये दान किये ही थे कि अभी ७५०००) रु० की एक और भारी रकम देकर अपनी दानशीलताका परिचय दिया है । इस दानका मूल्य कितना अधिक है, इसका अनुभव वे लोग विशेषताके साथ कर सकेंगे, जो परवार जातिकी अवस्था और स्वभावसे परिचित हैं । यह वह जाति है जो यद्यपि धार्मिक कार्योंमें सब जातियोंसे अधिक धन खर्च करनेवाली है; परन्तु उसकी समझमें मन्दिर बनवाने और मेले प्रतिष्ठायें करानेके सिवाय और कोई धर्म ही नहीं है । उसका सारा दानधन इन्हीं अनावश्यक और चार दिनके तमाशोंमें खर्च हुआ करता है । यह वह जाति है जिसके सैकड़ों हजारों निर्धन और अनाथ कुटुम्बोंके पालन-पोषणका, जीविका-निर्वाहका कोई ठिकाना नहीं है, फिर भी जिसके निर्दय धनी प्रतिवर्ष कमसे कम एक लाख रुपये रथप्रतिष्ठाओंमें और चढ़ाऊपरीके कामोंमें खर्च किये बिना नहीं रहते ! यह वह जाति है जिसके मुखिया जबलपुरकी एक धनी विधवाकी जायदादको, उस जायदादके हकदारोंकी इच्छाके विरुद्ध, इन्हीं मन्दिर-प्रतिष्ठाओंके तमाशोंमें, मुकद्दमेबाजी करके भी, पानीकी तरह बहादेनेके लिए कटिबद्ध हैं ! और ऐसी अवस्थामें जब कि यदि वे चाहें तो विधवाके सम्बन्धी बड़ी खुशीसे उस जायदादको किसी विद्यासंस्था या अन्य किसी आवश्यक धर्मसंस्थामें, लगा देनेमें कोई उजर न करें । ऐसी परवारजातिमें जन्म लेकर भी मोदी धर्मचन्द्जीने अपने धनका व्यय 'सिंघई' की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महान् पदवी प्राप्त करनेमें नहीं करना चाहा, यह सचमुच ही आश्चर्यकी बात है। हम आपके इस दानका हृदयसे अभिनन्दन करते हैं और चाहते हैं कि इसके द्वारा कोई ऐसी संस्थाका जन्म हो जो निर्धन परवारजातिका वास्तविक कल्याण करनेमें सहायक बने।

हमारे एक मित्र लिखते हैं कि मोदीजीने इस [illegible]-धनकी लिखा-पढ़ी कर दी है और वे समा[illegible]के अनुभवी विद्वानोंसे सम्मति चाहते हैं कि इसका व्यय किस कार्यमें किया जाय। आपकी इच्छा है कि यह रकम किसी बहुत ही अच्छे कार्यमें खर्च की जाय। आगामी अंकमें हम इस विषयमें अपनी सम्मति प्रकट करेंगे। अन्य भाइयोंको मोदीजीके पास अपनी सम्मतियाँ भेजनी चाहिए।

—नाथूराम प्रेमी।

ऐतिहासिक जैन व्यक्तियाँ।

अर्थात्—

जैनाचार्य, दूसरे जैन विद्वान्, उनके पोषक, प्रधान श्रावक और जैन राजादिक।

५ रत्नचन्द्रादिक।

'रत्नचंद्र' नामके एक विद्वान् विक्रमकी १७ वीं शताब्दीमें होगये हैं। आपने 'सुभौम-चक्रवर्तिचरित्र' नामका एक संस्कृत ग्रंथ वि० सं० १६८३ में भाद्रपद शुक्ल पंचमी गुरुवारके दिन बनाकर समाप्त किया है जैसा कि उसके निम्न पद्यसे प्रकट है।—

संवते षोडशाख्याते त्र्यशीतिवत्सरांकिते।
मासि भाद्रपदे श्वेतपंचम्यां गुरुवारके॥

इस ग्रंथकी प्रशस्ति आदिसे मालूम होता है कि, **रत्नचंद्र** बागड़ देशके अन्तर्गत सागपत्तन नगरके एक भट्टारक थे जो **जिनचंद्र** भट्टारकके पट्टाधीश **सकलचंद्र** भट्टारकके पट्टपर प्रतिष्ठित हुए थे और जिन्हें **भीमादिक**के बुलानेपर **हेमकीर्ति** (भट्टारक) ने वहाँ आकर उक्त पट्टपर स्थापित किया था। आप जातिसे हूमड वैश्य थे, पिताका नाम आपके 'मही' और माताका नाम 'चंपा' था। आपने जगन्मल्लके पुत्र **जयकीर्ति** आचार्य, **कमलकीर्तिसूरि** और कान्हाके पुत्र कल्याणादिक तथा भोगिदासके साथ श्रीसम्मेदाचलकी यात्रा की थी। शायद उसी समय पाटलीपुत्र (पटना) के पार्श्वनाथ चैत्यालयमें आपका उक्त ग्रंथ पूरा हुआ था। यह ग्रन्थ सागपत्तननगरनिवासी सेठ **हेमराजने** बनवाया था, जो कि जातिसे खंडेलवाल और गोत्रसे पट्टणि थे। और जिनकी माताका नाम 'रेखा' स्त्रीका नाम 'हमीरदे' और पुत्रका नाम 'मंगल' था। पिताका नाम ठीक मालूम नहीं हो सका। परन्तु इस विषयका ग्रंथमें एक पद जरूर है जिसका अन्तिम भाग नांद्गाँववाली प्रतिमें कुछ अस्पष्ट हो रहा है और वह इस प्रकार है—

'हीराख्यभ्रातृजाल्हिजः।'

यदि यह पद इसी प्रकार है तो कहना होगा कि उक्त सेठ साहब 'हीराके भतीजे आल्हिके पुत्र थे। अस्तु; यह ग्रंथ सेठ साहबने बनवाया अतः उन्हींके नामांकित किया गया है। संधियोंमें बराबर उसका उल्लेख पाया जाता है। प्राकृत ग्रंथ तय्यार करनेके लिये रत्नचंद्रको जिस जिस सामग्रीकी जरूरत थी उस संपूर्णकी सहायता सेठ कैसी (केसिराज) के पुत्र **तेजपाल** नामके एक खंडेलवाल विद्वानने, जो सोमण्य गोत्रके थे, उन्हें प्रदान की थी बल्कि ग्रंथ परसे हमारा ऐसा अनुमान होता है कि बुध तेजपालने रत्नचंद्रको सिर्फ सामग्रीकी ही सहायता प्रदान की थी, बल्कि पद्यरचनोंमें भी वे उनके बहुत कुछ सहायक हुए थे। संभव है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कि ग्रंथका बहु भाग उन्हींके द्वारा रचा अथवा संकलित किया गया हो। एक नमूना देखिये—

खंडेलवालान्वयभूषणाप्तो
रेखांगजः पट्टणिगोत्रभानुः।
श्रीहेमराजो जयताद्विशेशः
श्रीतेजपालाख्यबुधाशिषात्र ॥ १-१२२ ॥

इस पद्यमें 'तेजपाल' नामक पंडितके आशीर्वादसे हेमराज जयवंत प्रवर्तो' ऐसा कहा गया है, और इससे यह पद्य स्वयं तेजपालका ही रचा हुआ मालूम होता है, रत्नचंद्रका नहीं। तेजपाल और हेमराज दोनों भट्टारक **सुरेंद्रकीर्तिके** शिष्य थे और उन्हींकी आम्नायको मानते थे। ये भट्टारक **प्रभाचंद्रके** पट्टपर प्रतिष्ठित होनेवाले मुनि **चंद्रकीर्तिके** पट्टधर बतलाये गये हैं। ग्रंथकी संधियोंमें तेजपाल विबुधका नाम भी बराबर दिया गया है। नमूनेके लिये पहली संधि इस प्रकार है——

"इति श्रीसुभौमचक्रवर्तिचरित्रे सूरिश्रीसकलचंद्रानुचरभट्टारकश्रीरत्नचंद्रविरचिते विबुधश्रीतेजपालसाहाय्यसापेक्षे श्रीखंडेलवालान्वयपट्टणिगोत्रांवरादित्यश्रेष्ठिश्रीहेमराजनामांकिते सुभौमगर्भावतारवर्णनो नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥"

ग्रंथमें रत्नचंद्रके पूर्व पट्टधरोंमें जिनचंद्रसे पहले गुणचंद्र, गुणचंद्रसे पहले यशःकीर्ति और उनसे भी पहले रत्नकीर्तिका नाम दिया है। इसके सिवाय क्षत्रियवंशज चौहाण **कृष्णदास** और उनके **राजसिंह** व **अमर** (सिंह) नामके दो पुत्रोंका भी नामोल्लेख किया गया है। साथ ही उस समय सलेमशाह (जहाँगीर) बादशाहके राज्यशासनको भी सूचित किया है। इस तरह रत्नचंद्रके उक्त ग्रंथसे अनेक ऐतिहासिक व्यक्तियों और बातोंका पता चलता है। मालूम नहीं आपने और भी कोई ग्रंथ बनाया है या कि नहीं।

६ गुणचंद्र।

गुणचंद्र नामके भी एक विद्वान् विक्रमकी १७ वीं शताब्दीमें हो गये हैं। इन्होंने अनंतव्रतोद्यापन अथवा अनन्तनाथपूजा नामकी एक पुस्तक वि० सं० १६३० में बनाई है। यह पुस्तक वाग्वर (वागड़) देशके अंतर्गत शाकमार्ग (सागबाड़ा) नामके नगरमें हुंबड (हूमड) जातीय 'हर्ष' नामके वणिककी प्रेरणासे बनाई गई है। और इसमें ग्रंथकर्ताने अपनेको रत्नकीर्तिके दीक्षित यशःकीर्तिका शिष्य बतलाया है। यथाः—

संवत् षोडशत्रिंशतैष्यपलके पक्षेवदाते तिथौ,
पक्षत्यां गुरुवासरे पुराजिनेट् श्रीशाकमार्गे पुरे।
श्रीमद्धुंबडवंशपद्मसविता हर्षाख्यदुर्गी वणिक्,
सोयं कारितवाननंताजिनसत्पूजां वरे वाग्वरे ॥ २ ॥
श्रीरत्नकीर्तिभगवज्जगतांवरेण्य—
श्चारित्ररत्ननिवहस्य बभार भारम्।
तद्दीक्षितो यतिवरो यशकीर्तिकीर्ति—
चारित्ररांजितजनोद्वहितासुकीर्तिः ॥ ४ ॥
तच्छिष्यो गुणचंद्रसूरिरभवच्चारित्रचेतोहर—
स्तेनेदं वरपूजनं जिनवरानंतस्य युक्त्याऽरचि।

ऊपरके इस संपूर्ण कथनसे पाया जाता है कि ये गुणचंद्र भी भट्टारक थे और वही भट्टारक थे जिनका उल्लेख रत्नचंद्रने अपने पूर्व पट्टधरोंमें किया है। रत्नचंद्रने इनकी स्तुतिमें लिखा है——

वादित्वस्य परं सीमा गमकस्य परं पदं।
कवित्वादेः परं धाम गुणचंद्रस्तदन्वये ॥

—सुभौमचक्रवर्तिचरित्र।

नहीं मालूम इस स्तुतिमें कितना सत्यांश है। अन्यथा, इसके आधार पर तो आप बहुत बड़े विद्वान् होने चाहिये। आपके बनाये हुए दूसरे किसी ग्रंथका नाम अभी तक हमें मालूम नहीं हुआ। यदि दूसरे किसी भाईको मालूम हो तो उन्हें प्रगट करना चाहिये। साथ ही यह भी भी मालूम होनेकी जरूरत है कि आपने अपने जीवनमें और क्या क्या कार्य किये हैं।

(क्रमशः।)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हमारे सर्वोपयोगी ग्रन्थ ।

सीता—द्विजेन्द्र बाबूका पौराणिक नाटक । सीताके चरित्रचित्रणमें कविने एक अपूर्वता ला दी है और रामायणकी घटनाओंका अपलाप किये बिना सीताका आदर्शचरित्र आजकलकी दृष्टिसे जितना ऊँचा किया जा सकता था उतना ऊँचा कर दिया है । इस विषयमें अनेक समालोचकोंके मतसे द्विजेन्द्र बाबू महर्षि वाल्मीकि और [illegible] शिरोमणि भवभूतिसे भी अधिक सफलकाम हुए हैं । रामायणको पढ़कर सीता-देवीके ऊपर कविके हृदयमें जो असीम भक्ति और करुणा उत्पन्न हुई है, वही इस नाटकमें प्रकट की गई है । 'काव्यकला' की दृष्टिसे भी यह उच्चश्रेणीका नाटक है । मूल्य नौ आने । जिल्ददारका ॥।≶)

राजा और प्रजा। जगत्प्रसिद्ध लेखक डॉ० सर रवीन्द्रनाथ टैगौरके बहुत ही महत्त्वपूर्ण राजनीतिक निबन्ध । इनमें राजा और प्रजाके पारस्परिक सम्बन्धको राजनीतिक और धार्मिक आदि दृष्टियोंसे बहुत दूरदर्शिता और गंभीरताके साथ स्पष्ट किया है। रवीन्द्रबाबूके ग्रन्थकी अधिक प्रशंसा करनेकी आवश्यकता नहीं। मू० सादीका १) और सजिल्दका १।≠)

गोबर-गणेश-संहिता । यह एक व्यंगपूर्ण मनोरंजक ग्रंथ है । चौबेके चिट्ठेके ढँगका है । इसे चि[illegible]नन्द चौबेके भाई श्रीगोबरगणेश देव शर्माने अपने वि[illegible]क्षण बुद्धिचातुर्यसे लिखा है । इससे आपका केवल मन[illegible]रंजन ही नहीं होगा, किन्तु आपके सोचने समझनेकी सैकड़ों बातें इसमें मिलेंगी । हिन्दीमें इस ढंगका यह अद्वितीय ग्रन्थ होगा। मू० सादीका ॥≁)सजिल्दका ॥।≁)

प्राकृतिक चिकित्सा । इसमें सब प्रकारके रोग होनेके कारण और उनके बिना कौड़ी पैसेके प्राकृतिक उपाय बतलाये गये हैं । ठंडे पानीके टबमें कटि-स्नान करना, मेहन-स्नान करना, बफारा (वाष्प स्नान)लेना, कोयलोंकी आँचसे पसीना लेना, धूप-स्नान करना, स्वच्छ जलको अधिक परिमाणमें पीना, लम्बी साँसें लेना, व्यायाम तथा प्राणायाम करना, स्वच्छ वायुका सेवन करना, आदि आदि उपायोंको बड़े अच्छे ढंगसे इसमें बतलाया है । प्रत्येक गृहस्थके घरमें रहने योग्य पुस्तक है। मू० ।≠)

कर्नल सुरेश विश्वास। सुरेश विश्वास एक बंगाली थे । ये छुटपनमें बड़े ही खिलाड़ी, उपद्रवी, उद्धत और अवाध्य लड़के थे। पढ़ने लिखनेकी ओर इनकी जरा भी रुचि नहीं थी। ये घरसे भागकर यूरोप अमेरिका आदि देशोंमें वर्षों घूमते रहे और केवल स्वावलम्बनके बलसे उन्नति करते करते ब्राजिल देशकी सेनाके प्रतिष्ठित सेनापति हो गये। इतना ही नहीं ये इंगिलश, फ्रेंच, पुर्तगीज आदि अनेक भाषाओंके और डाक्टरी ज्योतिष, प्राणिशास्त्र आदि अनेक विज्ञानोंके धुरन्धर पण्डित होगये। इस पुस्तकमें उन्हींका शिक्षाप्रद जीवनचरित है। मू० ॥)

विधवा कर्तव्य । एक बहुत ही अनुभवी विद्वानने इस पुस्तकको लिखा है। जैनियों और हिन्दुओंके प्रत्येक धर्म और पन्थकी विधवाओंका कल्याण करनेकी इच्छासे यह लिखी गई है। इससे विधवाओंके असह्य दुःख कम हो जायँगे, वे घरमें शान्ति रखनेकी, बालबच्चोंकी सेवा करनेकी, अच्छी शिक्षा देनेकी, समाज-सेवा करनेकी, दीन दुखियोंको सहायता पहुँचानेकी इस तरह अनेक प्रकारकी शिक्षायें पावेंगी और उनका निरर्थक जीवन समाज और देशके अर्थ लगने लगेगा । इसके उपदेश प्रत्येक विधवाके कानों तक पहुँचने चाहिए । सधवायें भी इससे बहुत लाभ उठा सकती हैं । मूल्य ॥)

भारत-रमणी—द्विजेन्द्र बाबूका यह सामाजिक नाटक है। बाल्यविवाह, प्रौढ़विवाह, मनमाना दहेज लेनेकी प्रथा, स्त्रीशिक्षा, विदेशयात्रा आदि अनेक सामाजिक प्रश्नोंके सम्बन्धमें इसमें बड़ी ही मार्मिक और तात्विक बातें कही गई हैं। रचनासौन्दर्यके विषयमें तो कहना ही क्या है। मूल्य ॥।≠)

देश-दर्शनका नया संस्करण ।

अबकी बार मूल्य ३) की जगह २।) कर दिया गया है और सादी पुस्तकका मूल्य और भी कम अर्थात् १॥।) है । इस ग्रंथका अधिकाधिक प्रचार हो, इसी लिए यह मूल्य घटाया गया है । चित्र पहलेकी अपेक्षा दूने हैं, छपाई और बायंडिंग भी सुन्दर है। ग्राहकोंको इसके प्रचारका प्रयत्न करना चाहिए।

आत्मोद्धार, आँखकी किरकिरी, मेवाड़-पतन, स्वावलम्बन, बंकिमनिबन्धावली, छत्रसाल और दुर्गादास नाटकके नये संस्करण हो चुके हैं । जिन सज्जनोंके पास न हों, वे मँगा लेवें ।

मैनेजर—**हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,**
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साम्यवाद ।

युरोपकी वर्तमान अशान्तिका स्वरूप समझनेके लिए अपूर्व ग्रन्थ । इसमें भगवान् महावीर और बुद्धदेवके समयके प्राचीन साम्यवादसे लेकर अबतकके व्यापारसघवाद, श्रमजीविसंघवाद, अराजकतावाद, सोशियालिज्म, बोल्शेविज्म, आदि भिन्न भिन्न प्रकारके साम्यवादोंका स्वरूप, उनके सिद्धान्त, उनका और उनके उत्पादक विद्वानोंका इतिहास, रूसकी भयंकर राज्यक्रान्ति आदि सभी बातोंको विस्तारपूर्वक लिखा है । इस विषयके सभी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों और समाचारोंको पढ़ करके यह ग्रन्थ लिखा गया है । जो लोग यह समझना चाहते हैं कि संसारमें आगे किस प्रकारके राज्य स्थापित होंगे और वर्तमानके अमीरों और गरीबोंके युद्धका परिणाम क्या होगा, उन्हें यह ग्रन्थ अवश्य पढ़ना चाहिए । पृष्ठ संख्या ५००, मू० ३)

सुगम-चिकित्सा । खाने पीनेके नियमोंका विधिपूर्वक पालन करनेसे कैसे कैसे रोग आराम हो जाते हैं, यह बात इस अपूर्व ग्रन्थके पढ़नेसे मालूम होगी और निरोग रहनेके उपाय सूझ पड़ेंगे । मूल्य दो आना ।

मूलाचार । आचार्य बट्टकेरका सुप्रसिद्ध ग्रन्थ । मूल प्राकृत, संस्कृतच्छाया और भाषाटीका सहित बहुत सुन्दरताके साथ हाल ही छपकर तैयार हुआ है । मूल्य लागत मात्र अर्थात् तीन रुपया ।

जैनग्रन्थ-उद्धारक कार्यालयके तमाम ग्रन्थ ।

हमने खरीद लिये हैं, इस लिए जिन भाइयोंको चाहिए वे हमसे मँगानेकी कृपा करेः——

१ ऋषिमण्डल मंत्र कल्प (मंत्र, पूजा और साधन-विधिसहित) । दूसरी बारका छपा हुआ । मू० ॥)

२ प्रतिष्ठासारोद्धार पं० आशाधर कृत । संस्कृत और भाषाविधिसहित । मू० १।) और सजिल्दका २)

३ महावीरपुराण । सकलकीर्तिभट्टारकके संस्कृतग्रन्थका हिन्दी अनुवाद । मू० १॥) और १॥।)

४ आलोचनापाठ भाषा, अर्थसहित मूल्य -)॥

मैनेजर, जैन-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, हीराबाग पो० गिरगाँव, बम्बई ।

बम्बईका माल ।

बम्बईका सब तरहका माल—कपड़ा, किराना, स्टेशनरी, पीतल ताँबा, दवाइयाँ, तेल, साबुन आदि—हमसे मँगाइए । माल दस जगह जाँच करके बहुत सावधानी और ईमानदारीके साथ भेजा जाता है । चौथाई रुपयेके लगभग पेशगी भेजना चाहिये । एकबार व्यवहार करके देखिए ।

नन्हेंलाल हेमचन्द जैन,
कमीशन एजेण्ट, चन्दाबाड़ी,
पो० गिरगाँव, बम्बई ।

सत्योदय ।

मासिकपत्र । अग्रिम वार्षिक मूल्य, १॥) रु० । इसके मुख्य लेखक बा० सूरजभानुजी वकील—देवबन्द हैं । और भी बहुतसे नामी नामी लेखकोंके लेख इसमें रहते हैं । यदि आप जैनधर्मके सम्बधमें नवीन विचारोंके सुननेके इच्छुक हैं और खरी बात सुनना चाहते हैं तो इस पत्रके अवश्यमेव शीघ्र ग्राहक हूजिये ।

मैनेजर, "सत्योदय" इटावा. U. P.

Printed by Chintaman Sakharam Deole, at the Bombay Vaibhav Press, Servants of India Socity's Building, Sandhurst Road, Girgaon, Bombay.

Publshed by Nathuram Premi, Proprietor, Jain-Granth-Ratnakar Karyalaya, Hirabag, Bombay.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीवर्द्धमानाय नमः ।

भाग १४ । अंक ४-५ ।

जैनहितैषी ।

माघ, फाल्गुन १९७६ । जनवरी, फरवरी १९२० ।

विषय-सूची ।

पृष्ठ संख्या ।

१	वनवासियों और चैत्यवासियोंके सम्प्रदाय	९७
२	गन्धहस्ति महाभाष्यकी खोज	१०८
३	ऐतिहासिक जैन व्यक्तियाँ	११८
४	विचित्र व्याह (कविता)	१२२
५	दुष्प्राप्य और अलभ्य जैनग्रन्थ	१२७
६	धनिक-सम्बोधन (कविता)	१३०
७	सिद्धसेन दिवाकर और स्वामी समन्तभद्र ...	१३१
८	जैनधर्म अनीश्वरवादी है	१३५
९	लिखितका मुद्रितसे मीलान	१३९
१०	विविध प्रसंग (१ प्राचीन पुस्तकोंका मूल्य, २ ईश्वरके विषयमें बोलशेविकोंकी राय, ३ धर्म-प्रचारके सम्बन्धमें गाँधीजीके विचार, ४ बीस करोड़का दान, ५ पारसी जातिकी दानशीलता, ६ एक और बड़ा भारी दान, ७ जैनोंकी दान-शीलता, ८ परवारजातिकी दुरवस्था, ९ माणिचन्द-ग्रन्थमाला, १० सेठीजीका छुटकारा).	१४१
११	होलीकी बची खुची गुलाल	१४८
१२	त्रुवल्लुव नायनार त्रुकुरल	१५०

१५-३-१९२० ।

सम्पादक, बाबू जुगलकिशोर मुख्तार ।

मुंबई वैभव प्रेस.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रार्थनायें ।

१ जैनहितैषी किसी स्वार्थबुद्धिसे प्रेरित होकर निजी लाभके लिए नहीं निकाला जाता है। इसके लिए जो समय, शक्ति और धनका व्यय किया जाता है वह केवल निष्पक्ष और ऊँचे विचारोंके प्रचारके लिए। अतः इसकी उन्नतिमें हमारे प्रत्येक पाठकको सहायता देनी चाहिए।

२ जिन महाशयोंको इसका कोई लेख अच्छा मालूम हो उन्हें चाहिए कि उस लेखको वे जितने मित्रोंको पढ़कर सुना सकें अवश्य सुना दिया करें।

३ यदि कोई लेख अच्छा न मालूम हो अथवा विरुद्ध मालूम हो तो केवल उसीके कारण लेखक या सम्पादकसे द्वेषभाव धारण न करनेके लिए सविनय निवेदन है।

४ लेख भेजनेके लिए सभी सम्प्रदायके लेखकोंको आमंत्रण है। —सम्पादक।

नियमावली ।

१ जैनहितैषीका वार्षिक मूल्य २) दो रुपया पेशगी है।

२ ग्राहक वर्षके आरंभसे किये जाते हैं और बीचमें ७ वें अंकसे। आधे वर्षका मूल्य १।)

३ प्रत्येक अंकका मूल्य तीन आने।

४ लेख, बदलेके पत्र, समालोचनार्थ पुस्तकें आदि "**बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तार, सरसावा (सहारनपुर)**" के पास भेजना चाहिए। सिर्फ प्रबन्ध और मूल्य आदि सम्बन्धी पत्रव्यवहार इस पतेसे किया जायः—

मैनेजर, **जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,**
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई।

नये जैनग्रन्थ ।

१ उत्तरपुराण । आचार्य गुणभद्रकृत मूल और पं० लालारामजीकृत भाषानुवादसहित। मू० १०)

२ त्रैलोक्यसार । मूल और पं० टोडरमलजी-कृत भाषावचनिका सहित। मू० ५)

३ क्रियाकोश । पं० दौलतरामजीकृत छन्दो-बद्ध ग्रन्थ। मू० २॥)

४ समयसार । आचार्य अमृतचन्द्रकृत आत्म-ख्याति टीका, तात्पर्यवृत्ति और भाषाटीकासहित। निर्णयसागरका छपा हुआ। मूल्य ४॥)

५ तीस चौवीसीपाठ । कविवर वृन्दावनजी कृत। मू० २)

६ जैनसिद्धान्तप्रवेशिका । स्वर्गीय पं० गोपालदासजी कृत। मू० ।≈)

मैनेजर, **जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,**
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई।

आवश्यक सूचनायें ।

१ बम्बईके प्रेसोंमें कंपोजीटरोंका अकाल पड़ रहा है। इस लिए अब यहाँ छपाईका कोई भी काम समय पर नहीं हो सकता। बड़ी मुश्किलसे यह डबल अंक तैयार कराया जा सका है। आगेके अंक भी समय पर निकल सकेंगे या नहीं, इसमें सन्देह है।

२ हितैषीके सम्पादक बाबू जुगलकिशोरजी बीचमें बहुत ही बीमार हो गये थे, इस कारण भी कुछ विलम्ब हो गया है। बाबू साहबका स्वास्थ्य अब सुधर रहा है। बढ़ी हुई कमजोरीके दूर होनेमें अभी समय लगेगा।

३ छपाईमें अधिक विलम्ब होते देख, इस युग्म अंकमें एक फार्म या आठ पेज कम छपाये जा सके हैं। आगे यह कमी पूरी कर दी जायगी।

४ कामकी ज्यादतीके कारण यह अंक भी वी० पी० से नहीं भेजा जा सका। ग्राहक महाशयोंसे सविनय प्रार्थना है कि वे म० आ० से दो रुपया भेजकर हमारे ऊपर कृपा करें, जिससे हमें वी० पी० भेजनेकी दिक्कतसे छुट्टी मिले। हमारी कठिनाइयों पर ग्राहकोंको ध्यान देना चाहिए।

५ जिन महाशयोंके पास शुरूसे अंक भेजे जा रहे हैं, उन्हें हम इस वर्षका ग्राहक समझ रहे हैं, म० आ० न आने पर आगेका अंक उन सबके पास वी० पी० से भेजा जायगा। अब भी जो सज्जन ग्राहक न रहना चाहते हों वे हमें एक कार्डसे सूचना दे देवें, अथवा मिले हुए पाँचों अंक वापस कर देवें।

—प्रकाशक।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः ।

चौदहवाँ भाग । अंक १

जैनहितैषी ।

जनवरी १९१० माघ २४४६

न हो पक्षपाती बतावे सुमार्ग, डरे ना किसीसे कहे सत्यवाणी ।
बने है विनोदी भले आशयोंसे, सभी जैनियोंका हितैषी हितैषी ॥

वनवासियों और चैत्यवासियोंके सम्प्रदाय ।

अर्थात्

तेरहपन्थ और बीसपन्थ ।

पण्डितैर्भ्रष्टचारित्रैर्बठरैश्च तपोधनैः ।
शासनं जिनचन्द्रस्य निर्मलं मलिनीकृतम् ॥

संसारमें जितने धर्म या सम्प्रदाय हैं, उनमें स्थापित होनेके समयसे लेकर अब तक, अनेक पन्थ, शाखा, उपशाखारूप भेद हो गये हैं और नये नये होते जाते हैं । ऐसा एक भी धर्म नहीं है जिसमें एकाधिक भेद या पन्थ न हों ।

ये भेद या पन्थ अनेक कारणोंसे होते हैं । उनमें सबसे मुख्य कारण देश-कालकी परिस्थितियाँ हैं । प्रत्येक धर्मके उपासकोंमें दो प्रकारकी प्रकृतियाँ पाई जाती हैं । एक प्रकृति तो ऐसी होती है जो अपने धर्मके विचारों या आचारोंके विषयमें जरा भी टससे मस नहीं होना चाहती– उन्हींको जोरके साथ पकड़े रहती है और दूसरी प्रकृति देश और कालकी बदली हुई परिस्थितियों और आवश्यकताओंके अनुसार मूल आचार-विचारोंमें थोड़ा बहुत परिवर्तन कर लेनेमें हानि नहीं समझती । बस इन्हीं दोनों प्रकृतियोंकी खींच-तान और रगड़-झगड़से एक नया सम्प्रदाय या पन्थ खड़ा हो जाता है और उसके झण्डेके नीचे दूसरी प्रकृतिके हजारों मनुष्य आकर उसकी जड़ जमा देते हैं ।

पर आगे चलकर यह नया पन्थ भी अविभक्त नहीं रहने पाता ; सौ दो सौ वर्षोंमें फिर नई परिस्थितियों और आवश्यकताओंके कारण उसमें भी और एक नया भेद जन्म ले लेता है। इस तरह बराबर नये नये सम्प्रदाय और पन्थ जन्म लेते रहते हैं और मूल धर्मको अनेक भागोंमें विभक्त करनेका श्रेय प्राप्त किया करते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस भेदवृद्धिके साथ साथ धर्मके मूल सिद्धान्तोंका भी क्रम क्रमसे रूपान्तर होता रहता है। पहली और दूसरी, दोनों ही प्रकृतिके लोग, आपसकी खींच-तानमें उनको अपने अपने पक्षके अनुसार बनानेमें लगे रहते हैं और इस कारण उनमें कुछ न कुछ विकृति आये बिना नहीं रहती। पुराना साहित्य जीर्ण शीर्ण दुर्लभ या अलभ्य होता रहता है, उसके स्थानमें नया साहित्य बनता रहता है और नया पुरानेका अनुधावन करनेवाला होने पर भी कुछ न कुछ विकृत अवश्य होता जाता है। इस तरह जब हजारों वर्ष बीत जाते हैं, तब कुछ विद्वान् ऐसे भी होते हैं, जो इस विकृत रूपको संशोधित करनेकी आवश्यकता समझते हैं और धर्मकी मूल प्रकृतिका अध्ययन करके तथा प्राचीन ग्रन्थोंको प्राप्त करके उनके सहारे धर्मके उसी प्राचीन स्वरूपको फिरसे प्रकट करनेका प्रयत्न करते हैं; परन्तु उसे सर्वसाधारण गतानुगतिक नहीं मानते और इस कारण जो लोग उन्हें मानने लगते हैं उनका फिर एक जुदा सम्प्रदाय बन जाता है। इस तरहके प्रयत्न बार बार हुआ करते हैं और प्रत्येक बार वे सिवाय इसके कि एक नये सम्प्रदायकी नीव डाल जावें, सबको अपना अनुयायी नहीं बना सकते।

इस प्रकारके प्रयत्नोंसे सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि प्रायः प्रत्येक धर्मके अनुयायी अपने धर्मके मूल और प्राचीन सिद्धान्तोंसे बहुत दूर नहीं भटकने पाते—उनके करीब करीब ही बने रहते हैं। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि इस प्रकारके प्रयत्नोंसे उत्पन्न हुआ कोई सम्प्रदाय अपने धर्मके मूल स्वरूपको जैसेके तैसे रूपमें पा जाता हो। बीचका हजारों वर्षोंका लम्बा समय, मूल धर्मप्रवर्तकोंकी आज्ञाओं या उपदेशोंकी वास्तविक रूपमें और यथेष्ट संख्यामें अप्राप्ति, मूल उपदेशोंकी भाषामें अर्थभेद होनेकी संभावना, और प्रयत्नकर्ताओंका भ्रान्ति-प्रमादपूर्ण ज्ञान आदि अनेक कारण ऐसे हैं जो मूलस्वरूपको प्राप्त करनेमें बड़े भारी बाधक हैं।

बहुतसे पन्थों या भेदोंकी सृष्टि धर्मगुरुओंके आपसके रागद्वेषसे और क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कषायोंसे भी हुआ करती है। बहुतसे पन्थोंका इतिहास देखनेसे मालूम होता है कि वे बहुत जरा जरासे मतभेदके कारण जुदा जुदा हो गये हैं। यदि उनके प्रवर्तक 'समझौते' की ओर जरा भी झुकते तो जुदा होनेकी आवश्यकता ही न पड़ती। पर कषाय-क्षेत्रोंतक 'समझौते' की पहुँच नहीं।

बहुतसे पन्थोंका जन्म अपने समयके किसी प्रभावशाली धर्मके आक्रमणसे अपने धर्मको डगमगाते देख, उसमें उस धर्मके अनुकूल परिवर्तन और संशोधन आदि करनेके कारण भी हुआ है। कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जिन्हें अपने बुद्धि-वैभवसे अपने धर्ममें अनेक दोष मालूम होते हैं और वे उसे छोड़कर अन्य धर्म ग्रहण करनेकी अपेक्षा उसको ही संस्कृत करना अच्छा समझते हैं और इस तरह उनका वह संस्कार किया हुआ धर्म एक नये पंथमें परिणत हो जाता है।

इस तरह अनेक कारणोंसे विविध पन्थों और सम्प्रदायोंकी उत्पत्ति हुआ करती है और धर्मोंकी 'बेल' बढ़ती रहती है।

बहुतसे पन्थ क्षणजन्मा भी होते हैं। उत्पन्न हुए, कुछ बढ़े, और फलने-फूलनेके पहले ही मुरझाकर नष्ट हो गये। ऐसे पन्थोंके नाम तक लोग भूल जाते हैं। किसी किसी प्राचीन पुस्तकके पत्र अवश्य ही उनकी स्मृति बनाये रखते हैं। न जाने ऐसे कितने सम्प्रदाय अबतक इस पृथ्वीपर जन्म लेकर नामशेष हो चुके हैं।

संसारमें साम्य और मैत्रीभावके परम प्रचारक जैनधर्ममें भी अब तक अनेक सम्प्रदाय और पन्थोंकी सृष्टि हो चुकी है, जिनमेंसे बहु-

Ganesh-Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तोंका अस्तित्व तो अब तक बना हुआ है और बहुतसे कालके गालमें समा चुके हैं।

जैनधर्म अबसे लगभग दो हजार वर्ष पहले दिगम्बर और श्वेताम्बर इन दो मुख्य शाखाओं में विभक्त हो चुका है और ये दोनों ही शाखायें अपनी अनेकानेक प्रशाखाओंको लिये हुए अभी-तक अपने अस्तित्वकी रक्षा कर रही हैं।

ये दोनों शाखायें जिन अनेक पन्थों और गण गच्छ आदिमें विभक्त हैं उनके उल्लेखकी यहाँ आवश्यकता नहीं मालूम होती। हम इस लेखमें केवल ऐसे दो पन्थभेदोंकी चर्चा करना चाहते हैं जो दोनों ही शाखाओंमें बहुत समयसे चले आ रहे हैं और जिनका हम मठवासी और वनवासी नामोंसे उल्लेख करेंगे।

श्वेताम्बरोंमें इस समय जो 'जति' या 'श्रीपूज्य' कहलाते हैं वे मठवासी या चैत्यवासी पन्थके हैं और जो 'संवेगी' या 'मुनि' कहलाते हैं वे वनवासी या वसतिकावासी साधुओंके पन्थके हैं।

इसी तरह दिगम्बरोंके 'भट्टारक' मठवासी पन्थके हैं और दिगम्बर'मुनि' जिनका प्रायः अभाव हो चुका है वनवासी-पन्थके हैं। वनवासी पन्थके उपासक अपनेको 'तेरह-पन्थी' और भट्टारकोंके उपासक अपनेको 'बीस-पन्थी' कहते हैं। ये तेरह-पन्थ और बीसपन्थ नाम चाहे जिस कारणसे पड़े हों; परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि ये पुराने वनवासी और मठवासी भेदोंके ही नामान्तर हैं।

दिगम्बर और श्वेताम्बर, दोनों ही शाखाओंके साधु अपनेको 'निर्ग्रन्थ' साधु कहते हैं। यद्यपि श्वेताम्बर धर्ममें साधुओंको वस्त्र पहननेकी आज्ञा दी गई है; परन्तु दिगम्बरोंके समान उनके भी आचारशास्त्रोंमें कहा है कि साधुओंको बस्तीसे बाहर उद्यानों या वसतिकाओंमें रहना चाहिए, अनुद्दिष्ट भोजन करना चाहिए, धर्मोपकरणोंको छोड़कर सब प्रकारके परिग्रहोंसे दूर रहना चाहिए, और शान्तिभावसे ध्यान, अध्ययन, उपदेश आदि करते हुए जीवन बिताना चाहिए।

शुरू शुरूमें दोनों ही शाखाओंके साधुओंमें चरित्रकी यह दृढता पाई जाती थी; परन्तु ज्यों ज्यों समय बीतता गया और दूर दूरतक इनका प्रचार होता गया त्यों त्यों चरित्र शिथिल होता गया और दोनों ही शाखाओंमें इस प्रकारके शिथिलचरित्र साधुओंका प्राबल्य बढ़ता गया और इसके फलस्वरूप दोनों शाखाओंमें एक एक नये पन्थकी जड़ जमती गई।

श्वेताम्बर ग्रन्थोंमें इस शिथिलाचारी पन्थके सम्बन्धमें अनेक उल्लेख मिलते हैं जिनसे इसका टूटा फूटा इतिहास तैयार किया जा सकता है।

श्रीजिनवल्लभसूरिके **संघपट्टक** नामक ग्रन्थकी भूमिकासे मालूम होता है कि वीरनिर्वाण संवत् ८५० के लगभग कुछ श्वेताम्बर साधुओंने उग्र विहार छोड़कर चैत्यवासका या मन्दिरोंमें रहनेका प्रारंभ कर दिया था। धीरे धीरे इन लोगोंकी संख्या बढ़ती गई और कोई १५० वर्षोंमें ये लोग बहुत प्रबल हो गये। इसी समय इन्होंने 'निगम' नामके कुछ ग्रन्थ रचे और उनके विषयमें यह प्रसिद्ध किया कि ये 'दृष्टिवाद' नामक बारहवें अंगके खण्ड या अंश हैं। इन ग्रन्थोंमें यह प्रतिपादन किया गया है कि वर्तमान कालके साधुओंको चैत्योंमें रहना उचित है और उन्हें पुस्तकादिके लिए यथायोग्य आवश्यक द्रव्य भी संग्रह करके रखना चाहिए। इसके बाद ये वसतिकावासियोंकी निन्दा करने लगे और अपनी शक्ति बढ़ाने लगे। श्रावकोंमें विशेष बुद्धि नहीं थी, वे इस समय जैसे भोले भक्त हैं पहले भी वैसे ही थे; इस कारण वे उक्त शिथिलाचारियोंको ही अ न परम गुरु समझने लगे। धीरे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धीरे 'निर्ग्रन्थ मार्ग' विरलप्राय हो गया। प्राचीन ग्रन्थोंपर हड़ताल फेर दी गई और उनकी जगह कपोलकल्पित ग्रन्थ रचे जाने लगे।

मामला आगे बढ़ा। विक्रम संवत् ८०२ में जिस समय चापोत्कट (चावड़ा) वंशी राजा वनराजने 'अणहिलपुर-पाटण' बसाया, उस समय उनके गुरु शीलगुणसूरिने–जो कि चैत्यवासी थे–उनसे यह आज्ञा जारी करा दी कि इस नगरमें चैत्यवासी साधुओंको छोड़कर दूसरे वसतिवासी साधुओंको आनेकी मनाई है। इस आज्ञाको रद्द करानेके लिए वि० सं० १०८४ में जिनेश्वरसूरि और बुद्धिसागरसूरि नामके दो वसतिकावासी आचार्योंने राजा दुर्लभदेवकी सभामें चैत्यवासी साधुओंके साथ शास्त्रार्थ किया और उसमें उन्हें अच्छी तरह पराजित किया। इसके बाद पाटणमें वसतिवासियोंका आवागमन शुरू हो गया।

मारवाड़में चैत्यवासियोंकी शक्ति बहुत बढ़ गई थी। उसे तोड़नेके लिए सबसे अधिक प्रयत्न उक्त जिनेश्वरसूरिके शिष्य जिनवल्लभसूरिने किया। इन्होंने संघपट्टक नामका एक छोटासा ग्रन्थ—जिसमें केवल ४० पद्य हैं—बनाकर बड़ा काम किया। इस ग्रन्थमें चैत्यवासियोंके शिथिलाचारका और उनकी सूत्रविरुद्ध प्रवृत्तिका बड़ा ही मार्मिक और स्पष्ट चित्र खींचा गया है।

चित्तौड़के श्रावकोंने आपके उपदेशसे प्रतिबुद्ध होकर महावीर भगवानका एक मन्दिर बनवाकर उसके गर्भगृहके द्वारके एक स्तंभपर 'संघपट्टक' के ४० पद्य और दूसरे स्तंभपर 'धर्मशिक्षा' के ४४ पद्य खुदवा दिये, जो आजतक उनकी कीर्तिको प्रकाशितकर रहे हैं। इस मन्दिरके छज्जे पर भी कुछ श्लोक खुदे हुए हैं जिनमेंसे एक यहाँपर उद्धृत किया जाता है:—

अत्रोत्सूत्रजनक्रमो न च न च स्नात्रं रजन्यां सदा,
साधूनां ममताश्रयो न च न च स्त्रीणां प्रवेशो निशि।
जाति-ज्ञातिकदाग्रहो न च न च श्राद्धेषु ताम्बूलमि(?)—
त्याज्ञात्रेयमनिश्रिते विधिकृते श्रीवीरचैत्यालये ॥ १ ॥

अर्थात् यहाँ पर सूत्रविरुद्ध चलनेवालोंको अर्थात् चैत्यवासियोंको आनेकी मनाई है, कभी रात्रिको स्नात्र (अभिषेक ?) न किया जायगा, साधु न ठहर सकेंगे, रात्रिको स्त्रियाँ प्रवेश न कर सकेंगी, और जातिपाँतिके लड़ाई झगड़े यहाँ न होंगे।

एक और श्लोकका अभिप्राय यह है कि यहाँ किसीको भी वन्दनादिका निषेध नहीं है, शास्त्राज्ञाको माननेवाले इसके अधिकारी हैं और इस मन्दिरकी देख-रेख, आमद-खर्च और रक्षाका प्रबन्ध तीन चतुर श्रावक करेंगे।

इन श्लोकोंमें चैत्यवासी साधुओंके द्वारा मन्दिरोंमें होनेवाले शिथिलाचारोंकी स्पष्ट झलक पाई जाती है।

जिनवल्लभसूरिका यह प्रयत्न बहुत ही अच्छा था; परन्तु फिर भी वह चैत्यवासियोंको असह्य हुआ। वे पाँच सौ लट्ठबाजोंको साथ लेकर चित्तौड़ पर चढ़ आये! परन्तु तत्कालीन राणा साहबने उन्हें इस अपकृत्यसे रोक दिया।

परन्तु इस धमकीसे और उछलकूदसे जिनवल्लभसूरि डरे नहीं, उन्होंने अपना प्रचारकार्य और भी जोरोंके साथ शुरू किया और उसमें उन्हें बहुत कुछ सफलता भी मिली।

जिनवल्लभसूरिके बाद जिनदत्तसूरि और जिनपतिसूरिने भी इसी दिशामें अपना प्रयत्न जारी रक्खा। जिनपतिसूरिने 'संघपट्टक' पर एक तीन हजार श्लोक प्रमाण टीकाकी रचना की और उसका खूब प्रचार किया[1]।

---

१ संघपट्टक मूल, संस्कृतच्छाया और गुजराती टीकासहित छप चुका है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिनपतिसूरिके नेमिचन्द्र भंडारी नामके विद्वान् गृहस्थ शिष्यने 'षष्ठिशतक' नामका प्राकृत ग्रन्थकी रचना की, जिसकी कि टीका स्वर्गीय पं० भागचन्द्रजी 'उपदेशसिद्धान्त-रत्नमाला' के नामसे लिख गये हैं। इस ग्रन्थमें भी चैत्य-वासियोंके आचरणका खण्डन किया गया है। इसके बाद जिनपतिसूरिके शिष्य जिनदत्तसूरिने भी एक ग्रन्थकी रचना की और उसमें चैत्यवा-सियोंके मन्दिरोंको सर्वथा अनायतन सिद्ध कर दिया।

इधर गुजरातमें भी मुनिचन्द्रसूरि और मुनिसुन्दरसूरि आदि आचार्योंने चैत्यवासियोंके विरुद्ध आन्दोलन शुरू करके उन्हें हतप्रभ कर दिया।

इस तरह वि० संवत् १०८४ के लगभग जो विधिबद्ध आन्दोलन शुरू किया गया था वह १५ वीं शताब्दिके अन्तमें जाकर सफल हुआ।

यही श्वेताम्बरशाखाके चैत्यवासियों और वनवासियोंका इतिहास है।

अब हमें दिगम्बर सम्प्रदायकी ओर आना चाहिए। यद्यपि हमारे यहाँ इस विषयका कोई लिखित इतिहास नहीं है; फिर भी हमारा वि-श्वास है कि यदि हम अपने उपलब्ध साहि-त्यका तुलनात्मक दृष्टिसे अध्ययन करेंगे और प्राचीन तथा नवीन ग्रन्थोंकी बारीकीसे छानबीन करेंगे तो हमें भी अपने मुनिमार्गकी शिथिल-ताका एक क्रमबद्ध इतिहास तैयार करनेमें अवश्य सफलता होगी।

दिगम्बर शाखाके साधुओंमें उक्त शिथि-लाचारकी प्रवृत्ति कबसे हुई और वह प्रवृत्ति एक संघके रूपमें किस समय परिणत हुई, इसका निश्चित उत्तर देना कठिन है; परंतु ऐसा जान पड़ता है कि श्वेताम्बरोंमें चैत्यवासियोंका जोर बढ़ चुकने पर, संभव है कि उन्हींकी देखादेखी, उनसे कुछ पीछे, हमारे यहाँ भी इसका प्रवेश हो गया होगा।

विक्रमकी आठवीं शताब्दिके बादके कुछ ग्रन्थोंमें इस प्रकारके उल्लेख मिलते हैं जिनमें इस बातका आभास मिलता है कि उस समय दिगम्बर मुनियोंके चरित्रमें शिथिलता आ गई थी, वे ग्रामोंमें या ग्रामोंके समीप रहने लगे थे और पूर्वकालके मुनियोंके साथ उनकी समता नहीं हो सकती थे, वे उनकी छाया मात्र समझे जाने लगे थे।

भगवद्गुणभद्राचार्य विक्रम संवत् ८५५ के लगभग अपने आत्मानुशासनमें लिखते हैं:—

इतस्ततश्च त्रस्यन्तो विभावर्यां यथा मृगाः।
वनाद्विशन्त्युपग्रामं कलौ कष्टं तपस्विनः॥

अर्थात्—जिस तरह रातको मृगगण वनमें इधर उधरसे त्रास पाकर गाँवके पास आ रहते हैं उसी प्रकार खेद है कि कलिकालमें तपस्वी मुनि भी ग्रामोंकी सीमामें आ घुसते हैं।

एक और श्लोकमें वे कहते हैं कि मुनियोंमें साधुचरित्र या सदाचारी उत्कृष्ट मणियोंके समान बहुत ही थोड़े रह गये हैं।—"तपस्तेषु श्रीमन्मणय इव जाताः प्रविरलाः।"

विक्रम संवत् १०१६ में यशस्तिलक काव्य-के कर्त्ता पण्डित सोमदेव कहते हैं:—

काले कलौ चले चित्ते देहे चान्नादिकीटके।
एतच्चित्रं यदद्यापि जिनरूपधरा नराः॥

पुनश्च—

यथा पूज्यं जिनेन्द्राणां रूपं लेपादिनिर्मितम्।
तथा पूर्वमुनिच्छाया पूज्या सम्प्रतिसंयताः॥

अर्थात्—कलिकाल, चलचित्त और देहके अन्नका कीड़ा बन जानेपर भी, यह आश्चर्य है जो इस समय भी जिनरूप (नग्नरूप) धारण करनेवाले मुनियोंका अस्तित्व है।

जिस तरह तीर्थकरोंकी लेपादिसे बनाई हुई

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतिमायें पूज्य होती हैं उसी तरह पूर्वकालके मुनियोंकी छायारूप ये वर्तमानके मुनि भी पूज्य हैं।

गुणभद्रस्वामीसे कोई डेढ़सौ वर्ष बादके ये वचन हैं। इतने समयमें शिथिलता और भी अधिक बढ़ गई होगी और वह इन वचनोंमें भी खूब स्पष्टतासे झलकती है।

परन्तु इन वचनोंसे यह निश्चय नहीं होता कि उक्त शिथिलचरित्र मुनियोंका चैत्यवासी श्वेताम्बरोंके समान कोई पृथक् दल ही बन गया था। बहुत सम्भव है कि उस समय तक शक्तिहीनता, अज्ञानता और देशकी बिगड़ी हुई परिस्थितियोंके कारण ही वे अपने चरित्रमें शिथिल हो गये हों, परन्तु उस शिथिलताको अच्छा न समझते हों—उसका प्रतिपादन न करते हों।

किन्तु यह अवस्था बहुत समय तक नहीं रही होगी। ऐसे शिथिलचरित्रोंकी संख्याका विस्तार होनेपर सौ दो सौ वर्षोंमें ही उनका दल बन गया होगा और उसके कुछ प्रमाण हमें विक्रमकी तेरहवीं शताब्दिके ग्रन्थोंमें मिलते हैं। उनसे यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि तेरहवीं शताब्दिके पहले ग्यारहवीं या बारहवीं शताब्दिमें तो अवश्य ही हमारे यहाँ चैत्यवासी साधुओंकी संस्था स्थापित हो गई थी।

पण्डितप्रवर आशाधरने अपने अनगार धर्मामृतके दूसरे अध्यायमें इन चैत्यवासी दिगम्बर साधुओंका जिक्र किया है।

यथाः—

" मुद्रां सांव्यवहारिकीं त्रिजगतीवन्द्यामपोद्यार्हतीं,
वामां केचिदहंयवो व्यवहरन्त्यन्ये बहिस्तां श्रिताः।
लोकं भूतवदाविशन्त्यवशिनस्तच्छायया चापरे,
म्लेच्छन्तीह तकैस्त्रिधा परिचयं पुंदेवमोहैस्त्यज ॥९६॥

टीका। इहक्षेत्रे सम्प्रति काले केचित्तापसादयो व्यवहरन्ति प्रवृत्तिनिवृत्तिविषयां कुर्वन्ति। कां, मुद्रां व्रतचिह्नम्। किं विशिष्टाम्, वामां विपरीतां जटाधारणभस्मोद्धूलनादिरूपाम्। किं विशिष्टाः सन्तः, अहंयवोऽहंकारिणः। किं कृत्वा, अपोद्य अपवादविषयां कृत्वा निषिद्ध्येत्यर्थः। काम्, मुद्राम्। किंविशिष्टाम्, आर्हतीं जैनीमाचेलक्यादिलिङ्गलक्षणाम्। पुनः किंविशिष्टाम्, त्रिजगतीवन्द्यां जगत्त्रयनमस्याम्। पुनरपि किंविशिष्टाम्, सांव्यवहारिकीं समीचीनप्रवृत्तिनिवृत्तिप्रयोजनाम्। पक्षे, टंकादिनाणकाकृतिं समीचीनामपोद्य मिथ्यारूपां क्षुद्रां व्यवहरन्तीति व्याख्येयं। अन्ये पुनर्द्रव्यजिनलिङ्गधारिणो मुनिमानिनोऽवशिनोऽजितेन्द्रियाः सन्तस्तां तथाभूतामार्हतीं मुद्रां बहिःशरीरे न मनसि श्रिताः प्रपन्ना आविशन्ति संक्रामंति विचेष्टयन्तीत्यर्थः। कम्, लोकं धर्मकामं जनम्। किंवत्, भूतवद्ग्रहैस्तुल्यम्। अपरे पुनर्द्रव्यजिनलिङ्गधारिणो मठपतयो म्लेच्छन्ति म्लेच्छा इवाचरन्ति। लोकशास्त्रविरुद्धमाचारं चरन्तीत्यर्थः। कया, तच्छायया आर्हतगतप्रतिरूपेण। तथा च पठन्ति—

पण्डितैर्भ्रष्टचारित्रैर्वठरैश्च तपोधनैः।
शासनं जिनचन्द्रस्य निर्मलं मलिनीकृतम् ॥

भोः सम्यक्त्वाराधक त्यज मुञ्चत्वम्। कम्, त्रिधा परिचयं मनसानुमोदनं वाचा कीर्तनम् कायेन संसर्गं च। कैः सह, तकैः कुत्सितैस्तैस्त्रितयैः। किं विशिष्टैः, पुंदेहमोहैः पुरुषाकारमिथ्यात्वैः। तदुक्तम्—

कापथे पथि दुःखानां कापथस्थेप्यसम्मतिः।
असम्पृक्तिरनुत्कीर्तिरमूढादृष्टिरुच्यते ॥

बाह्या अप्याहुः—

पाखण्डिनो विकर्मस्थान् वैडालव्रतिकान् शठान्।
हेतुकान् बकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् ॥ "

उक्त अवतरणमें सम्यक्त्वके आराधकको तीन प्रकारके मिथ्यातियोंके साथ मन वचन कायसे परिचय न रखनेका उपदेश दिया है। पहले प्रकारके मिथ्याती जैनधर्मसे विपरीत मुद्राके धारण करनेवाले तापस आदि हैं, दूसरे प्रकारके मिथ्याती वे द्रव्यजिनलिङ्गधारी हैं, जो अपनेको मुनि कहते हैं और बाहरसे आर्हती मुद्रा अर्थात् दिगम्बर मुद्राको भी धारण करते हैं; परन्तु अन्तरंगमें अवशी हैं—इन्द्रियोंको नहीं जीतते हैं, और तीसरे प्रकारके मिथ्याती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मठोंके स्वामी द्रव्यजिनालिङ्गधारी अर्थात् मठाधीश दिगम्बर मुनि हैं ।

इनके विषयमें ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं कि वे म्लेच्छोंके समान लोक और शास्त्रसे विरुद्ध आचरण करनेवाले हैं । 'तच्छायया आर्हतगतिप्रतिरूपेण' पद देकर वे इस बातको भी स्पष्ट कर देते हैं कि वे वस्त्रधारी भट्टारक नहीं, किन्तु अर्हन्त भगवानके समान दिगम्बर मुद्रा धारण करनेवाले हैं ।

टीकामें जो पहला श्लोक उद्धृत किया गया है, वह बड़े ही महत्त्वका है । उसका अभिप्राय यह है कि जिनभगवानके निर्मल शासनको भ्रष्टचरित्र पण्डितों और बठर मुनियोंने मलीन कर दिया है । इसके भीतर वह 'आह' छुपी हुई है जो जिनधर्मके सच्चे स्वरूपको समझनेवालोंके हृदयोंमें उसकी दुर्दशा देखकर उठा करती है ।

अनगारधर्मामृतकी टीका विक्रम संवत् १३०० में लिखी गई है और उन्होंने जो श्लोक उद्धृत किया है वह उनसे भी पहलेके किसी विद्वानकी रचना है । इससे यह बात निश्चयपूर्वक कही जा सकती है कि विक्रम संवत् १३०० के बहुत पहले मठपतियोंकी संस्था स्थापित हो चुकी थी और वह इतनी विस्तृत हो गई थी, कि उसके कारण जैनधर्म मलिन हो गया था ।

विक्रम संवत् १२९४ में श्रीमहेन्द्रसूरि नामके एक श्वेताम्बराचार्यने 'शतपदी' नामका एक ग्रन्थ लिखा है, उसमें 'दिगम्बर-मत-विचार' नामका एक अध्याय है । उसमें दिगम्बर सम्प्रदायके तत्कालीन साधुओंको लक्ष्य करके जो कुछ लिखा है उससे भी पण्डित आशाधरके वचनोंकी पुष्टि होती है । महेन्द्रसूरिके कथनानुसार उस समयके दिगम्बर साधु मठोंमें मन्दिरोंमें रहते थे, आर्यिकायें भी वहाँ रहती थीं, वे कभी कभी उनसे भोजन भी बनवा लेते थे, स्त्रियोंसे चरणप्रक्षालन कराते थे, सचित्र पुष्प, पत्र, घी, दूध, जल, केसर आदिसे चरणोंका पूजन, स्नपन और लेपन कराते थे, सोने चाँदी आदिसे चरण पुजवाते थे, सदैव एक स्थानमें रहते थे, शीतकालमें अँगीठीका सहारा लेते थे, पयालके बिछौनेपर सोते थे और तैलकी मालिश कराते थे, तरह तरहकी ओषधियाँ पास रखते थे, ज्योतिष, वैद्यक, मंत्रवाद, धातुवाद आदिके प्रयोग करते थे, पालकियों पर चढ़ते थे, कपड़ेके जूते पहनते थे, पीतल ताँबा आदि धातुओंके कमण्डलु रखते थे, चटाई और लज्जा निवारण करनेके लिए वस्त्र रखते थे जो कभी कभी पहना जाता था और जिसे धोबीसे धुलाते तथा रँगाते भी थे । पुस्तक-पुस्तिका-कपरिका-स्थपनिका-पुस्तकपट्ट-योगपट्ट-आसनपट्ट-तृणपटी आदि और भी अनेक प्रकारकी चीजें रखते थे* ।

इस प्रकारके आचरणोंको लक्ष्य करके ही शायद पं० आशाधरने उन्हें म्लेच्छोंके समान आचरण करनेवाला लिखा है । शतपदीकी रचना भी अनगारधर्मामृतसे केवल ६ वर्ष पहले हुई थी ।

श्रुतसागरसूरि नामके एक भट्टारक विक्रमकी सोलहवीं शताब्दिमें हो गये हैं । उन्होंने षट्पाहुड़की संस्कृत टीकामें लिखा है कि—"कलौ किल म्लेच्छादयो नग्नं दृष्ट्वा उपद्रवं यतीनां कुर्वन्ति, तेन मण्डपदुर्गे श्रीवसन्तकीर्तिना स्वामिना चर्यादिबेलायां तट्टीसादरादिकेन शरीरमाच्छाद्य चर्यादिकं कृत्वा पुनस्तन्मुञ्चति इत्युपदेशः कृतः संयमिनां, इत्यपवादवेषः ।"

अर्थात् "कलिकालमें म्लेच्छ (मुसलमान) आदि यतियोंको नग्न देखकर उपद्रव करते हैं, इस कारण मण्डपदुर्ग (मांडू) में श्रीवसन्त-

* देखो, जैनहितैषी भाग ७, अंक ९ में शतपदीके विस्तृत अवतरण और उनका अनुवाद ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कीर्ति स्वामीने ऐसा उपदेश दिया कि संयमी-मुनियोंको चर्या आदिके समय (आहारको जाते वक्त) चटाई, टाट आदिसे शरीरको ढक लेना चाहिए और फिर चटाई आदि छोड़ देना चाहिए। यह अपवाद वेष है*। चित्तौरकी गद्दीके भट्टारकोंकी नामावलीमें वसन्तकीर्तिका नाम आता है। वे संवत् १२६४ में हुए हैं और संभवतः श्रुतसागरने× इन्हीं वसन्त-कीर्तिको अपवाद वेषका प्रचारक बतलाया है। इससे भी पं० आशाधरके इस कथनकी पुष्टि होती है कि उस समय १३ वीं शताब्दिमें, भ्रष्टचारित्र द्रव्यजिनलिङ्गधारी मुनि थे और उन्होंने जिनशासनको मलिन कर डाला था।

* देखो, जैनहितैषी भाग १३, अंक ८, पृष्ठ ३६८।

× इन्हीं श्रुतसागरसूरिने अपनी तत्त्वार्थसूत्रकी टीकामें इस बातको स्वीकार किया है कि द्रव्यलिंगी साधु शीतकालमें कंबलादिक ले लेते हैं और दूसरे समयमें त्याग देते हैं:—

" लिङ्गं द्विभेदं द्रव्यभावलिंगभेदात्। तत्र भाव-लिङ्गिनः पञ्चप्रकारा अपि निर्ग्रन्था भवन्ति। द्रव्य-लिङ्गिनः असमर्था महर्षयः शीतकालादौ कम्बलादिकं गृहीत्वा न प्रक्षालयन्ते न सीव्यन्ति न प्रयत्नादिकं कुर्वन्ति अपरकाले परिहरंतीति भगवत्याराधना-प्रोक्ताभिप्रायेण कुशीलापेक्षया वक्तव्यम्। " ('संयम-श्रुतप्रतिसेवनादि ' सूत्रकी टीका।)

परमात्मप्रकाशकी टीकामें उसके टीकाकार ब्रह्म-देव भी शक्तिके अभावमें साधुको तृणमय प्रावरणादिक अर्थात् घासका उत्तरीय वस्त्र आदिको रखनेकी, परन्तु उस पर ममत्व न रखनेकी, इजाजत देते हैं:—

" परमोपेक्षा संयमाभावे तु वीतरागशुद्धात्मानु-भूतिभावसंयमरक्षणार्थं विशिष्टसंहननादिशक्त्यभावे सति यद्यपि तपःपर्यायशरीरसहकारिभूतमन्नपान-संयमशौचज्ञानोपकरणतृणमयप्रावरणादिकं किमपि गृह्णाति तथापि ममत्वं न करोति॥ "

(परमात्मप्रकाशटीका, गाथा २१६, पृष्ठ २३२)

ये ब्रह्मदेवजी भी १६ वीं शताब्दिके लगभग हुए हैं।

यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि पं० आशाधरने शिथिलाचारी मुनियोंको चैत्यवासी या मठवासी न लिख कर ' मठपति ' लिखा है और उनके आचरणको ' लोकशास्त्रविरुद्ध ' बतलाया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि वे वनोंको छोड़कर मठोंमें केवल रहते ही नहीं थे किन्तु भट्टारकोंके समान मठोंका आधिपत्य भी करते थे। शतपदीके आक्षेपोंसे भी यही ध्वनित होता है।

अनगारधर्मामृतटीका वि० सं० १३०० में समाप्त हुई है और शतपदी १२९४ में। शतपदी यद्यपि १२९४ में बनी है; परन्तु वह धर्मघोष-सूरिकृत प्राकृत शतपदीका संस्कृत अनुवाद है जो कि सं० १२६३ की बनी हुई है। अर्थात् १२६३ से भी पहले दिगम्बर मुनियोंके आचरण उस तरहके हो गये थे जिस तरहके कि शत-पदीके आक्षेपोंसे मालूम होते हैं। चित्तौरके भट्टारक वसन्तकीर्तिका भी यही समय है।

इस तरहके शिथिलाचारोंकी प्रवृत्ति एकदम नहीं हो जाती, उनके प्रचलित होनेमें और मान्य होनेमें सैकड़ों वर्ष लग जाते हैं। यदि हम यह मान लें कि इस प्रवृत्तिके प्रचलित होनेमें सवा सौ डेढ़ सौ वर्ष लगे होंगे तो कहना होगा कि विक्रमकी बारहवीं शताब्दिके प्रारंभमें बहुतसे दिगम्बर मुनि मठवासी हो गये होंगे और इस रूपमें उनकी मानता भी होने लगी होगी।

इन मठपतियोंकी अवस्थाके पहले दिगम्बर मुनि एक अवस्थामेंसे और भी गुजर चुके होंगे, अर्थात् मठोंके स्वामी बननेके पहले केवल मठों या मन्दिरोंमें रहते होंगे। उस समय वे पूर्ण नग्नावस्थामें रहते होंगे, परिग्रह भी उनके पास थोड़ा होगा; परन्तु वनोंमें उनसे न रहा जाता होगा और उग्र चर्याका भी उनसे पालन न होता होगा। इसी अवस्थाके प्रारंभकी झलक हमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्मानुशासनकी संवत् ८५५ की उस उक्तिसे मिलती है जिसमें उन्होंने मुनियोंकी उपमा डरपोक मृगोंसे दी है और उसके आगेकी अवस्थाकी झलक सं० १०१६ के यशस्तिलककी उस उक्तिसे मिलती है जिसमें उन्होंने उस समयके मुनियोंको पूर्वकालके मुनियोंकी छाया बतलाया है।

अर्थात् मौटे हिसाबसे यह कहा जा सकता है कि विक्रमकी ग्यारहवीं शताब्दिमें दिगम्बर मुनि मन्दिर-मठवासी हो गये थे और बारहवीं शताब्दिमें उन्होंने मठपति बननेका प्रारंभ कर दिया था।

परन्तु इससे दृढतापूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि बारहवीं या तेरहवीं शताब्दिके बाद शुद्धाचारी दिगम्बर मुनियोंका अभाव ही हो गया था, अथवा सारा जैन जनसमुदाय शिथिलाचारियोंका ही शासन मानने लगा था। यद्यपि कालके प्रभावसे तथा देशकी राजनीतिके और सामाजिक परिस्थितियोंके परिवर्तनके कारण दिगम्बर मुनियोंकी विरलता भगवद्गुणभद्रके समयसे ही लक्षित होने लगी थी और तेरहवीं शताब्दिके लगभग तो वह और भी बढ़ गई होगी; परन्तु शुद्ध शास्त्रोक्त आचारोंके पालनेवाले मुनि भी यत्र तत्र अवश्य दिखलाई देते होंगे और उनके उपासकोंकी भी कमी न रहा होगी।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, इन मठवासी और मठपतियोंका जो मार्ग प्रचलित हुआ था, वही आगे चलकर 'बीसपन्थ' कहलाया और जिन लोगोंने उसे नहीं माना, तथा जो वनवासी साधुओंको ही पूज्य या गुरु मानते रहे, उनका मार्ग 'तेरहपन्थ' के नामसे प्रकट किया जाने लगा।

इस बातकी खोज और छानबीन होनेकी बहुत बड़ी आवश्यकता है कि तेरहपन्थ और बीसपन्थ नामसे उक्त मार्ग क्यों प्रसिद्ध किये गये और इन नामोंका मूल क्या है। इस विषयमें जो कई प्रवाद और किंवदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं, हमारी समझके अनुसार उनमें कोई तथ्य नहीं है और उनसे इनकी असलियत पर कुछ भी प्रकाश नहीं पड़ता है।

हमारे खयालमें ये दोनों नाम बहुत प्राचीन नहीं हैं, डेढ़ सौ दो सौ वर्षसे पहलेके साहित्यमें इनका उल्लेख नहीं मिलता। बहुत संभव है कि श्वेताम्बर शाखाके 'तेरापन्थी' (ढूंढक) सम्प्रदायके साथ समानता करते हुए वे लोग इन्हें 'तेरापन्थी' कहने लगे हों जो भट्टारकोंको अपना गुरु मानते थे तथा इनसे द्वेष रखते थे और धीरे धीरे उनका दिया हुआ यह कच्चा 'टाइटिल' पक्का हो गया हो; साथ ही वे स्वयं इनसे बड़े 'बीसपन्थी' कहलाने लगे हों।

तीनसौ चारसौ वर्षके पिछले भाषाके ग्रन्थों और भट्टारकोंके बनाये हुए संस्कृत ग्रंथोंकी जाँच करनेसे तेरह और बीसपन्थके इतिहासकी अनेक बातोंका पता लग सकता है।

यह निश्चय है कि जिस समय मठवासियोंका मार्ग प्रारंभ हुआ होगा, उसी समय उनके विरोधी भी खड़े हो गये होंगे, परन्तु ऐसा मालूम होता है कि उन विरोधियोंके दलबद्ध होनेमें और अपना स्वतंत्र पंथ बना लेनेमें बहुत समय लग गया होगा। आश्चर्य नहीं, जो इस दलके इतने शक्तिशाली होनेमें कि वह शिथिलाचारियोंका निर्भय होकर विरोध करे, २००-३०० वर्ष भी लग गये हों।

अभी तक कोई ऐसा प्रमाण नहीं मिला है, जिससे एक जुदे दल या पन्थके रूपमें इस भट्टारक-विरोधी मार्गका अस्तित्व विक्रमकी सत्रहवीं शताब्दिके पहले माना जाय। संभव है कि खोज करनेसे इसके पहले भी इसके अस्तित्वका पता चल जाय, परन्तु अभी तक तो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हमारा विश्वास है कि इस दलके मुख्य प्रवर्तक समयसार नाटक आदि ग्रन्थोंके सुप्रसिद्ध लेखक और कवि प० बनारसीदासजी थे।

श्वेताम्बराचार्य महोपाध्याय मेघविजयगणिने वि० संवत् १७०० के लगभग आगरेमें रहकर 'युक्तिप्रबोध' नामका एक प्राकृत ग्रन्थ स्वोपज्ञ संस्कृतटीकासहित बनाया था। यह ग्रन्थ प० बनारसीदासके मतका खण्डन करनेके ही उद्देश्यसे बनाया गया है—'**वोच्छं सुयणहितत्थं बाणारसियस्स मयभेयं।**' इसमें जगह जगह इस मतको 'बाणारसीय' या 'बनारसीदासका मत' कहकर उल्लेख किया है। इससे मालूम होता है मेघविजयजीके समय तक यह तेरहपंथके नामसे प्रसिद्ध नहीं हुआ था।

बाणारसीयमतका स्वरूप प्रकट करते हुए युक्तिप्रबोधके कर्ता लिखते हैं:—

तम्मा दिगंवराणं एए भट्टारगा वि ना पुज्जा।
तिलतुसमित्तो जेसिं परिग्गहो णेव ते गुरुणो ॥१६॥

अर्थात्—इस मतके अनुसार दिगम्बरोंके भट्टारकोंको भी नहीं पूजना चाहिए। जिनके तिलतुषमात्र भी परिग्रह हो वे गुरु नहीं हो सकते।

जिणपडिमाणं भूसण-मल्लारुहणाइ अंगपरियरणं।
बाणारसिओ वारइ दिगम्बरस्सागमाणाए ॥ १७॥

अर्थात्—जिन प्रतिमाओंको भूषण पहनाना, मालायें आरोहण करना, केसर लगाना आदि बातोंका बाणारसीमतवालोंने निषेध किया।

सिरिविक्कमनरनाहागएहिं सोलससएहिं वासेहिं।
असि उत्तरेहिं जायं बाणारसिअस्स मयमेयं ॥ १८॥

अर्थात्—विक्रम संवत १६८० में यह बनारसीदासका मत उत्पन्न हुआ।

अह तम्मिहु कालगए कुँअरपालेण तम्मयं धरियं।
जाउंतो बहुमण्णो गुरुव्व तेसिं स सव्वेसिं ॥ १९॥

अर्थात्—काल बीतने पर कुँवरपालने उस मतको धारण किया और तब वह सबका गुरुके समान बहुमान्य हो गया।

बनारसीविलासमें कँवरपालकी बहुतसी रचनाओंका संग्रह है। ये बनारसीदासजीके मित्रोंमेंसे थे। मेघविजयजीके कथनसे मालूम होता है कि बनारसीदासका उत्तराधिकारित्व इन्हींको प्राप्त हुआ था। आश्चर्य नहीं, जो कँवरपाल मेघविजयजीके समयमें वर्तमान हों।

पं० बनारसीदासजीकी मृत्यु सं० १६९८ के बाद किसी समय हुई है।

पं० बखतरायने अपने बुद्धिविलास नामक ग्रन्थमें लिखा है कि तेरहपंथकी उत्पत्ति वि० सं० १६८३ में हुई। यह और मेघविजयजीका बतलाया हुआ समय लगभग एक ही है। अर्थात् पं० बखतरामजीका बतलाया हुआ समय भी पं० बनारसीदासजीको ही तेरहपन्थका प्रवर्तक माननेके लिए बाध्य करता है।

आगरेमें इस पन्थका उदय हुआ था, इसी कारण आगरा और उसके समीपके जयपुर आदि नगरोंमें ही इसका विशेष प्रचार हुआ और प्रायः इन्हीं दोनों नगरोंके विद्वानोंकी रचनाओंसे यह पन्थ देशव्यापी हुआ है। इसके सिवाय तेरहपन्थका अभीतक ऐसा कोई ग्रन्थ नहीं मिला है जो सं० १६८० के पहलेका हो। इससे भी मालूम होता है कि बनारसीदास ही इसके मुख्य प्रवर्तक थे और उन्हींके 'बाणारसीय मत' को पीछेसे किसी समय यह तेरहपंथ नाम प्राप्त हो गया है।

पं० बनारसीदासजीके मुख्य प्रवर्तक होनेपर भी उनके पहलेके दिगम्बरी विद्वानोंमें मठवासियोंके विरुद्ध विचार रहे होंगे। यह संभव है कि उन्होंने इस दिशामें थोड़ा बहुत प्रयत्न भी किया

---

१ पं० बनारसीदासजी अपने समयके बड़े भारी सुधारक थे। उन्होंने और किन किन बातोंका निषेध किया था, उन्हें हम एक स्वतंत्र लेखमें प्रकट करेंगे।— —लेखक।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हो—आश्चर्य नहीं जो खोज करनेसे बनारसीदासजीके पहलेके ग्रन्थोंमें इन विचारोंका उल्लेख भी मिल जाय; परन्तु जान पड़ता है कि उन्हें विशेष सफलता नहीं मिली और पं० बनारसीदासजीके एक प्रतिभाशाली विद्वान् होनेके कारण वे ही इस मतके प्रवर्तक होनेका श्रेय प्राप्त कर सके।

तेरहपन्थ और बीसपन्थकी मानताओंमें जितने भी भेद हैं या बतलाये जाते हैं, उन सबका मूल, मठवासियों या भट्टारकोंके शिथिलाचारके सिवाय और कुछ भी नहीं है। यह विषय बिलकुल निर्विवाद है। अतः यह बात दृढ़तापूर्वक कही जा सकती है कि पुराने मठवासियोंके मार्गका ही नाम बीसपन्थ और उनके विरोधी वनवासियों या शुद्धाम्नायियोंके मार्गका नाम तेरहपन्थ है।

यद्यपि अभी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता परन्तु ऐसा मालूम होता है कि पूर्वोक्त ग्यारहवीं बारहवीं शताब्दिके भी पहले दिगम्बर शाखामें मठवासियोंके ढंगके और भी कई बार कई पन्थ जन्म ले चुके हैं, जिनके शिथिलाचारका निषेध उक्त शताब्दियोंसे भी पहलेके ग्रन्थोंमें पाया जाता है।

ऐसे कई पन्थोंकी उत्पत्ति आदिका विवरण वि० सं० ९९० में लिखे हुए 'दर्शनसार' में मिलता है। ये पन्थ चार हैं—१ यापनीय, २ काष्ठासंघ, ३ माथुरसंघ, और द्रविड़संघ। इनमेंसे यापनीयसंघ तो दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों शाखाओंका एक मिश्रित मार्ग था; परन्तु शेष तीन शुद्ध दिगम्बरी थे। फिर भी वे 'जैनाभास' बतलाये गये हैं।

इन तीनों संघोंका जो स्वरूप दर्शनसारमें दिया है उससे और इनके उपलब्ध ग्रन्थोंसे तो यह बात समझमें ही नहीं आती है कि ये सब जैनाभास क्यों बतलाये गये। पिच्छी बिलकुल ही न रखना, या मोरपंखोंके बदले गायके पूँछके बालोंकी पिच्छी रखना, खड़े होनेके बदले बैठकर भोजन करना, अथवा सूखे चनोंको प्रासुक मानना, ये सब बातें इतनी संगीन नहीं थीं कि इनके कारण ये सब 'जैनाभास' करार दिये जाते। पुन्नाटसंघी या द्रविड़संघी जिनसेनाचार्यके हरिवंशपुराणको हम निरन्तर पढ़ते हैं, माथुरसंघी अमितगति आचार्यके श्रावकाचार, धर्मपरीक्षा, सुभाषितरत्नसन्दोह आदि कई ग्रन्थोंका हमारे यहाँ खासा प्रचार है, काष्ठसंघके भी प्रद्युम्नचरित आदि कई ग्रन्थ हमारे यहाँ पढ़े जाते हैं। परन्तु इनसे यह नहीं मालूम होता कि इनमें दिगम्बरसम्प्रदायसे विरुद्ध जैनाभासत्वका प्रचार किया गया है। तब इनके प्रवर्तकोंको देवसेनसूरिने महा पापी, मिथ्याती क्यों बतलाया है?

हमारा अनुमान है कि इनके साथमें मूलसंघका वही नाता था जो तेरहपन्थका बीसपन्थके साथ है। अर्थात् ये सब उस समयके शिथिलाचारी थे और मूलसंघ शुद्धाम्नायी 'मूलसंघ' का 'मूल' शब्द हमारे उक्त अनुमानको और भी अधिक पुष्ट करता है। यह शब्द बतलाता है कि मूलसंघी अपनेको भगवान् महावीरके मूलमार्गका अनुसरण करनेवाला समझते थे और काष्ठासंघी आदिको शिथिलाचारी।

ऐसा जान पड़ता है कि इन संघोंके साथ मूलसंघका सिद्धान्त-भेद तो विशेष नहीं था, जैसा कि तेरहपंथियोंका बीसपंथियोंके साथ नहीं है, परन्तु इन संघोंके साधुओंमें शिथिलाचार बढ़ गया होगा, अर्थात् ये लोग मठवासी और परिग्रहधारी आदि हो गये होंगे और इसी लिए ये जैनाभास करार दिये गये थे।

देवसेनसूरिने द्राविडसंघके उत्पादक वज्रनन्दिके विषयमें लिखा है कि—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कच्छं खेत्तं वसहिं वाणिज्जं कारिऊण जीवंतो ।
ण्हंतो सीयलनीरे पावं पउरं स संचेदि ॥ २७ ॥

अर्थात् उसने कछार, खेत, वसतिका और वाणिज्य आदि करके जीवननिर्वाह करते हुए और शीतलजलमें स्नान करते हुए प्रचुर पापका संग्रह किया।

इससे भी यही झलकता है कि द्रविडसंघी साधु वसतियों या मठोंमें रहते होंगे और उन मठोंको दानमें मिली हुई जमीनसे धन संग्रह करके मठोंका प्रबन्ध आदि करते होंगे।

हरिवंश-पुराणके कर्त्ता जिनसेन भी द्रविड़-संघी थे। उन्होंने अपना यह ग्रन्थ वर्द्धमान-पुरके 'नन्नराज-वसति' नामक पार्श्व-जिनालयमें रह कर लिखा था। इससे भी मालूम होता है कि इस संघके साधु मन्दिरोंमें रहने लगे थे। वादिराजसूरि भी द्रविडसंघके थे। उनके गुरु मतिसागरकी आज्ञानुसार जो एक दानपत्र लिखा गया था, उससे भी मालूम होता है कि इस संघके मुनि भूमि आदिका प्रबन्ध करते थे। पार्श्वनाथचरितमें वादिराजसूरिने अपने गुरुको 'सिंहपुरैकमुख्य' लिखा है और न्यायविनिश्चयालंकारमें स्वयं अपनेको भी 'सिंहपुरेश्वर' अर्थात् सिंहपुरका स्वामी बतलाया है।

एपिग्राफिका कर्नाटिकाकी दूसरी जिल्दमें जो १४८ वाँ शिलालेख छपा है, उससे मालूम हाता है कि गंगवंशी सत्यवाक् कोङ्गणिवर्माके समयमें एक पुरुषने श्रीकुमारसेन भट्टारकको जिनेन्द्रभवनके लिए एक ग्राम दिया है। यह शिलालेख नवीं शताब्दिका लिखा हुआ है। संभवतः ये कुमारसेन भट्टारक द्रविड़संघके या काष्ठासंघके होंगे।

हमारा विश्वास है कि खोज करनेसे इस तरहके और भी अनेक प्रमाण मिल सकेंगे जिससे द्रविड़ संघ आदिके मुनियोंका मठवासी होना अच्छी तरह सिद्ध हो सकेगा।

यदि यह बात प्रमाणित की जासकी कि पूर्वोक्त तीनों संघोंके आचार्य चैत्यवासी या मठवासी थे, तो फिर यह निश्चय हो जायगा कि दिगम्बर शाखामें भी शिथिलचारी संघोंका प्रारंभ लगभग उसी समय या उससे कुछ पीछे हो गया होगा जिस समय कि श्वेताम्बरोंमें चैत्यवासियोंका हुआ था और तब हमें सबसे पहले मठपति या मठवासी पूर्वोक्त काष्ठासंघ द्रविड़संघ माथुरसंघ आदिके साधुओंको मानना होगा।

जिन मूलसंघियोंने उक्त सब संघोंको 'जैनाभास' कहकर अलग कर दिया था, और जो मूल निर्ग्रन्थाचारके पालनमें जरा भी त्रुटि होना पसन्द नहीं करते थे, समय बदलने पर उन्हीं मूलसंघियोंके चरित्रकी भी मजबूत दीवारें शिथिलाचारने तोड़ डालीं और उसने उनमें भी बड़ी शानके साथ प्रवेश किया जिसके फल हम वर्तमान भट्टारकोंके रूपमें देख रहे हैं!

मूलसंघके चरित्रकी रक्षा करनेवाले तेरहपन्थमें यदि इस समय मुनिमार्ग जारी होता, तो एक बार फिर भी वह दिन आता, जब इस पन्थके साधु भी शिथिलाचारके शिकार हो जाते और मूल जैनधर्मके भक्तोंको उनके विरोधमें एक नये पन्थको जन्म देना पड़ता! प्रवृत्तिपूर्ण संसारकी यही प्रकृति है; निवृत्तिमार्गके पथिकोंके आगे प्रलोभनोंका जाल बिछाये बिना उससे नहीं रहा जाता।

फाल्गुन वदी १०
सं० १९७६वि०। —नाथूराम प्रेमी।

---

१ देखो, जैनसिद्धान्तभास्कर भाग १ किरण २-३, पृष्ठ ६।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गंधहस्तिमहाभाष्यकी खोज और आप्तमीमांसा (देवागम) की स्वतंत्रता ।

कहा जाता है कि भगवान् श्रीसमन्तभद्राचार्यने तत्त्वार्थसूत्र पर 'गंधहस्ति महाभाष्य' नामके एक महान् ग्रंथकी रचना की थी, जिसकी श्लोकसंख्याका परिमाण ८४ हजार है। यह ग्रंथ भारतके किसी भी प्रसिद्ध भंडारमें नहीं पाया जाता। विद्वानोंकी इच्छा इस ग्रंथराजको देखनेके लिये बड़ी ही प्रबल है। बम्बईके सुप्रसिद्ध सेठ श्रीमान् माणिकचंद हीराचंदजी जे० पी० ने इस ग्रंथरत्नका दर्शन मात्र करानेवालेके वास्ते ५००) रुपयेका नकद पारितोषिक भी निकाला था। परंतु खेद है कि कोई भी उनकी इस इच्छाको पूरा नहीं कर सका और वे अपनी इस महती इच्छाको हृदयमें रक्खे हुए ही इस संसारसे कूच कर गये। निःसन्देह जैनाचार्योंमें स्वामी समन्तभद्रका आसन बहुत ही ऊँचा है। वे एक बड़े ही अपूर्व और अद्वितीय प्रतिभाशाली आचार्य हो गये हैं। उनका शासन महावीर भगवान्के शासनके तुल्य समझा जाता है और उनकी आप्तमीमांसादिक कृतियोंको देखकर बड़े बड़े वादी विद्वान् चकित होते हैं। ऐसी हालतमें आचार्य महाराजकी इस महती कृतिके लिये जिसका मंगलाचरण ही आप्तमीमांसा (देवागम) कहा जाता है, यदि विद्वान् लोग उत्कंठित और लालायित हों तो इसमें कुछ भी, आश्चर्य और अस्वाभाविकता नहीं है। और यही कारण है कि अभी तक इस ग्रंथरत्नकी खोजका प्रयत्न जारी है और अब विदेशोंमें भी उसकी तलाश की जा रही है। हालमें कुछ समाचार-पत्रों द्वारा यह प्रकट हुआ था कि पूना लायब्रेरीकी किसी सूची परसे आस्ट्रिया देशके एक नगरकी लायब्रेरीमें उक्त ग्रंथके अस्तित्वका पता चलता है। साथ ही, उसकी कापी करनेके लिये दो एक विद्वानोंको वहाँ भेजने और खर्चके लिये कुछ चंदा एकत्र करनेका प्रस्ताव भी उपस्थित किया गया था। हम नहीं कह सकते कि ग्रंथके अस्तित्वका यह समाचार कहाँ तक सत्य है और इस बातका यथोचित निर्णय करनेके लिये अभी तक क्या क्या प्रयत्न किया गया है। परंतु इतना जरूर कहेंगे कि बहुतसे भंडारोंकी सूचियाँ अनेक स्थानों पर भ्रमपूर्ण पाई जाती हैं। पूना लायब्रेरीकी ही सूचीमें सिद्धसेन दिवाकरके नामसे 'वादिगजगंधहस्तिन' नामके एक महान् ग्रंथका उल्लेख मिलता है जो यथार्थ नहीं है। वहाँ इस नामका कोई ग्रंथ नहीं। यह नाम किसी दूसरे ही ग्रंथके स्थान पर गलतीसे दर्ज हो गया है। ऐसी हालतमें केवल सूचीके आधार पर आस्ट्रिया जैसे सदूरदेशकी यात्राके लिये कुछ विद्वानोंका निकलना और भारी खर्च उठाना युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता। बेहतर तरीका, इसके लिये, यह हो सकता है कि वहाँके किसी प्रसिद्ध फोटोग्राफरके द्वारा उक्त ग्रंथके आद्यंतके १०-२० पत्रोंका फोटो पहले मँगाया जाय और उन परसे यदि यह निर्णय हो जाय कि वास्तवमें यह ग्रंथ वही महा भाष्य ग्रंथ है तो फिर उसके शेष पत्रोंका भी फोटो आदि मँगा लिया जाय। अस्तु; ग्रंथके वहाँ अस्तित्व विषयमें अभी तक हमारा कोई विश्वास नहीं है। आस्ट्रियाके एक प्रसिद्ध नगरकी प्रसिद्ध लायब्रेरीमें उक्त ग्रंथ मौजूद हो और हर्मन जैकोबी जैसे खोजी विद्वानोंको उसका पता तक न लगे, यह बात कुछ समझमें नहीं आती। हमें इस ग्रंथके विषयमें यह बात भी बहुत खटकती है कि 'आप्तमीमांसा' अर्थात्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'देवागम' शास्त्रको, जो कुल ११४ श्लोक-परिमाण है, इसका मंगलाचरण बतलाया जाता है। देवागम भारतके प्रायः सभी प्रसिद्ध भंडारोंमें पाया जाता है। उस पर अनेक टीका, टिप्पण और भाष्य भी उपलब्ध हैं। अकलंकदेवकी 'अष्टशती' और विद्यानंद स्वामीकी 'अष्टसहस्री' उसीके भाष्य और महाभाष्य हैं। जिस ग्रंथका मंगलाचरण ही इतने महत्त्वको लिये हुए हो वह शेष संपूर्ण ग्रंथ कितना महत्त्वशाली होगा और विद्वानोंने उसका कितना अधिक संग्रह किया होगा, इसके बतलानेकी जरूरत नहीं है। विज्ञ पाठक सहजहीमें इसका अनुमान कर सकते हैं। परंतु तो भी ऐसे महान् ग्रंथका भारतके किसी भंडारमें अस्तित्व न होना, उसके शेष अंशोंपर टीका-टिप्पणका मिलना तो दूर रहा उनके नामोंकी कहीं चर्चातक न होना, यह सब कुछ कम आश्चर्यमें डालनेवाली बातें नहीं हैं। और इनपरसे तरह तरहके विकल्प उत्पन्न होते हैं। यह खयाल पैदा होता है कि क्या समन्तभद्रने 'गंधहस्तिमहाभाष्य' नामका कोई ग्रन्थ बनाया ही नहीं और उनकी आप्तमीमांसा (देवागम) एक स्वतंत्र ग्रंथ है? यदि बनाया तो क्या वह पूरा न हो सका और आप्तमीमांसा तक ही बनकर रह गया? यदि पूरा हो गया था तो क्या फिर बन कर समाप्त होते ही किसी कारण विशेषसे वह नष्ट हो गया? यदि नष्ट नहीं हुआ तो क्या फिर प्रचलित सिद्धान्तोंके विरुद्ध उसमें कुछ ऐसी बातें थी जिनके कारण बादके आचार्यों खासकर भट्टारकोंको उसे लुप्त करनेकी जरूरत पड़ी अथवा बादको उसके नष्ट होजानेका कोई दूसरा ही कारण है? इन सब विकल्पोंको छोड़कर अभी तक हमें यह भी मालूम नहीं हुआ कि १ समन्तभद्रने 'गंधहस्तिमहाभाष्य' नामका कोई ग्रंथ बनाया है, २ वह उमास्वातिके तत्त्वार्थसूत्रका भाष्य है, ३ उसकी श्लोकसंख्या ८४ हजार है और 'देवागम' स्तोत्र उसका आदिम मंगलाचरण है; इन सब बातोंकी उपलब्धि कहाँसे होती है—कौनसे प्राचीन आचार्यके किस ग्रंथसे इन सब बातोंका पता चलता है? यह दूसरी बात है कि आजकलके अच्छे अच्छे विद्वान्—न सिर्फ जैनविद्वान् बल्कि सतीशचंद्र विद्याभूषण, भारती जैसे अजैन विद्वान् भी—अपने अपने ग्रंथों तथा लेखोंमें इन सब बातोंका उल्लेख करते हुए देखे जाते हैं। परंतु ये सब उल्लेख एक दूसरेकी देखादेखी हैं, परीक्षासे उनका कोई सम्बन्ध नहीं और न वे जाँच तोल कर लिखे गये हैं। इसी प्रकारके कुछ उल्लेख पिछले भाषापंडितोंके भी पाये जाते है। इन सब आधुनिक उल्लेखोंसे इस विषयका कोई ठीक निर्णय नहीं हो सकता। और न हम उन्हें ऐसी हालतमें बिना किसी हेतुके प्रमाणकोटिमें रख सकते हैं। हमारी रायमें इन सब बातोंके निर्णयार्थ—विकल्पोंके समाधानार्थ—अंतरंग खोजकी बहुत बड़ी जरूरत है। हमें सबसे पहले—विदेशोंमें जानेसे भी पहले—अपने घरके साहित्यको गहरा टटोलना होगा; तब कहीं हम यथार्थ निर्णय पर पहुँच सकेंगे। अस्तु।

इस विषयमें हमने आजतक जो कुछ खोज की है और उसके द्वारा हमें जो कुछ मालूम हो सका है उसे हम अपने पाठकोंके विचारार्थ और यथार्थ निर्णयकी सहायतार्थ नीचे प्रकट करते हैं:—

१—उमास्वातिके तत्त्वार्थसूत्रपर सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक और श्रुतसागरी नामकी जो टीकाएँ उपलब्ध हैं उनमें, जहाँ तक हमारे देखनेमें आया कहीं भी 'गंधहस्ति महाभाष्य' का नामोल्लेख नहीं है और न इसी बातका कोई उल्लेख पाया जाता है कि समन्तभद्रने उक्त तत्त्वार्थसूत्रपर कोई भाष्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिखा है। समन्तभद्रका अस्तित्वकाल इन सब टीकाओंके बननेसे पहले माना जाता है। यदि इन टीकाओंके रचयिता पूज्यपाद, अकलंकदेव, विद्यानन्द और श्रुतसागरके समयोंमें समन्तभद्रका उसी सूत्रपर ऐसा कोई महत्त्वशाली भाष्य विद्यमान होता तो उक्त टीकाकार किसी न किसी रूपमें इस बातको सूचित जरूर करते, ऐसा हृदय कहता है। परंतु उनके टीकाग्रंथोंसे ऐसी कोई सूचना नहीं पाई जाती। प्रत्युत, श्रुतसागर सूरिने अपने अध्ययन-विषयक अथवा टीकाके आधार-विषयक जिन प्रधान ग्रन्थोंका उल्लेख अपनी टीकाकी संधियोंमें किया है उनमें साफ तौरसे श्लोकवार्तिक और सर्वार्थसिद्धिका ही नाम पाया जाता है, गंधहस्ति महाभाष्यका नहीं। यदि ऐसा महान् ग्रंथ उन्हें उपलब्ध होता तो कोई वजह नहीं थी कि वे उसका भी साथमें नामोल्लेख न करते।

२—आप्तमीमांसा (देवागम) पर, जिसे गंधहस्तिमहाभाष्यका मंगलाचरण कहा जाता है, इस समय तीन संस्कृत टीकाएँ उपलब्ध हैं। एक 'वसुनन्दिवृत्ति,' दूसरी, 'अष्टशती' और तीसरी 'अष्टसहस्री'। इनमेंसे किसी भी टीकामें गंधहस्ति महाभाष्यका कोई नाम नहीं है, और न यही कहीं सूचित किया है कि यह आप्तमीमांसा ग्रंथ गंधहस्ति महाभाष्यका मंगलाचरण अथवा उसका प्राथमिक अंश है। किसी दूसरे ग्रंथका एक अंश होनेकी हालतमें ऐसी सूचनाका किया जाना बहुत कुछ स्वाभाविक था।

३—श्रीइन्द्रनन्दि आचार्यके बनाये हुए 'श्रुतावतार' ग्रंथमें भी समन्तभद्रके साथ, जहाँ कर्मप्राभृतपर उनकी ४८ हजार श्लोकपरिमाण एक सुंदर संस्कृतटीकाका उल्लेख किया गया है वहाँ, गंधहस्ति महाभाष्यका कोई नाम नहीं है। बल्कि इतना प्रकट किया गया है कि वे दूसरे सिद्धान्त ग्रन्थ (कषाय प्राभृत) पर टीका लिखना चाहते थे परंतु उनके एक सधर्मी साधुने द्रव्यादिशुद्धिकर प्रयत्नोंके अभावसे उन्हें वैसा करनेसे रोक दिया। बहुत संभव है कि इसके बाद उनके द्वारा कोई बड़ा ग्रंथ न लिखा गया हो।

४—श्रवणबेल्गुलके जितने शिलालेखोंमें समंतभद्रका नाम आया है उनमेंसे किसीमें भी आचार्य महोदयके नामके साथ 'गंधहस्ति महाभाष्य' का उल्लेख नहीं है। और न यही लिखा मिलता है कि उन्होंने तत्त्वार्थसूत्र पर कोई टीका लिखी है। हाँ, उनके शिष्य शिवकोटि आचार्यके सम्बंधमें इतना कथन जरूर पाया जाता है कि उन्होंने तत्त्वार्थसूत्रको अलंकृत किया, अर्थात् उसपर टीका लिखी। (देखो शि० लेख नं० १०५)

५—ब्रह्मनेमिदत्तने आराधना कथाकोशमें समन्तभद्रकी एक कथा दी है परंतु उसमें उनके किसी भी गंधहस्तिमहाभाष्यके नामकी कोई उपलब्धि नहीं होती।

६—संस्कृत प्राकृतके और भी बहुतसे उपलब्ध ग्रंथ जो देखनेमें आये और जिनमें किसी न किसी रूपसे समन्तभद्रका स्मरण किया गया है उनमें भी हमें स्पष्टरूपसे कहीं गंधहस्ति महाभाष्यका नाम नहीं मिला। और दूसरे अनेक विद्वानोंसे जो इस विषयमें दर्याफ्त किया गया तो यही उत्तर मिला कि गंधहस्ति महाभाष्यका नाम किसी प्राचीन ग्रंथमें हमारे देखनेमें नहीं आया, अथवा हमें कुछ याद नहीं है।

७—ग्रंथके नाममें 'महाभाष्य' शब्दसे यह सूचित होता है कि इस ग्रंथसे पहले भी तत्त्वार्थसूत्रपर कोई भाष्य विद्यमान था जिसकी अपेक्षा इसे 'महाभाष्य' संज्ञा दी गई है। परंतु दिगम्बर साहित्यसे इस बातका कहीं कोई पता नहीं चलता कि समन्तभद्रसे पहले भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तत्त्वार्थसूत्र पर कोई भाष्य विद्यमान था। रही श्वेताम्बर साहित्यकी बात, सो श्वेताम्बर भाई इस बातको मानते ही हैं कि उनका मौजूदा 'तत्त्वार्थाधिगम भाष्य' स्वयं उमास्वातिका बनाया हुआ है। परंतु उनकी इस मान्यताको स्वीकार करनेके लिये अभी हम तय्यार नहीं हैं। उनका वह ग्रंथ अभी विवादग्रस्त है। उसके विषयमें हमें बहुत कुछ कहने सुननेकी जरूरत है। इस पर यदि यह कहा जाय कि बादको बने हुए भाष्योंकी अपेक्षा बहुत बड़ा होनेके कारण उसे पीछेसे महाभाष्य संज्ञा दी गई है तो यह मानना पड़ेगा कि उसका असली नाम 'गंधहस्ति भाष्य' अथवा 'गंधहस्ति' ऐसा कुछ था।

८—ऊपर जिन ग्रंथादिकोंका उल्लेख किया गया है उनमें कहीं यह भी जिकर नहीं है कि समन्तभद्रने ८४ हजार श्लोकपरिमाणका कोई ग्रंथ रचा है और इस लिये गंधहस्ति महाभाष्यका जो परिमाण ८४ हजार कहा जाता है उसकी इस संख्याकी भी किसी प्राचीन साहित्यसे उपलब्धि नहीं होती।

९—जब उमास्वातिके तत्त्वार्थसूत्रपर ८४ हजार श्लोकपरिमाण एक महत्त्वशाली भाष्य पहलेसे मौजूद था तब यह बात समझमें नहीं आती कि सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक और श्लोकवार्तिकके बननेकी ज़रूरत ही क्यों पैदा हुई। यदि यह कहा जाय कि ये ग्रंथ गंधहस्ति महाभाष्यका सार लेकर संक्षेपरुचिवाले शिष्योंके वास्ते बनाये गये हैं तो यह बात भी कुछ बनती हुई मालूम नहीं होती; क्यों कि ऐसी हालतमें श्रीपूज्यपाद, अकलंकदेव और विद्यानंद स्वामी अपने अपने ग्रंथोंमें इस प्रकारका कोई उल्लेख जरूर करते जैसा कि आम तौर पर दूसरे आचार्योंने किया है, जिन्होंने अपने ग्रंथोंको दूसरे ग्रंथोंके आधारपर अथवा उनका सार लेकर बनाया है। परंतु चूँ कि इनमें ऐसा कोई उल्लेख नहीं है, इस लिये ये सर्वार्थसिद्धि आदि ग्रंथ गंधहस्तिमहाभाष्यके आधार पर अथवा उसका सार लेकर बनाये गये हैं ऐसा माननेको जी नहीं चाहता। इसके सिवाय अकलंकदेव और विद्यानंदके भाष्य वार्तिकके ढंगसे लिखे गये हैं। वे 'वार्तिक' कहलाते भी हैं। और वार्तिकोंमें उक्त, अनुक्त, दुरुक्त, तीनों प्रकारके अर्थोंकी विचारणा और अभिव्यक्ति हुआ करती है, जिससे उनका परिमाण पहले भाष्योंसे प्रायः कुछ बढ़ जाता है। जैसे कि सर्वार्थसिद्धिसे राजवार्तिकका और राजवार्तिकसे श्लोकवार्तिकका परिमाण बढ़ा हुआ है। ऐसी हालतमें यदि समन्तभद्रका ८४ हजार श्लोक संख्यावाला भाष्य पहलेसे मौजूद था तो अकलंकदेव और विद्यानंदके वार्तिकोंका परिमाण उससे जरूर कुछ बढ़ जाना चाहिये था। परंतु बढ़ना तो दूर रहा, वह उलटा उससे कई गुणा घट रहा है। दोनों वार्तिकोंकी श्लोकसंख्याका परिमाण क्रमशः १६ और २० हजारसे अधिक नहीं, ऐसी हालतमें कमसे कम अकलंकदेव और विद्यानंदके समयमें गंधहस्ति महाभाष्यका अस्तित्व स्वीकार करनेके लिये तो और भी हृदय तय्यार नहीं होता।

१०—जिस आप्तमीमांसा (देवागम स्तोत्र) को गंधहस्ति महाभाष्यका मंगलाचरण बतलाया जाता है उसकी अन्तिम कारिका इस प्रकार है—

इतीयमाप्तमीमांसा विहिता हितमिच्छतां।
सम्यग्मिथ्योपदेशार्थविशेषप्रतिपत्तये ॥

यह कारिका जिस ढंग और जिस शैलीसे लिखी गई है और इसमें जो कुछ कथन किया गया है उससे आप्तमीमांसाके एक बिलकुल स्वतंत्र ग्रन्थ होनेकी बहुत ज्यादह संभावना पाई जाती है। इस कारिकाको देते हुए वसुनन्दी आचार्य अपनी टीकामें इसे 'शास्त्रार्थोपसंहारकारिका' लिखते हैं, साथ ही इस कारिकाकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

टीकाके अन्तमें ग्रंथकर्ता भी समंतभद्रका नाम 'कृतकृत्यः निर्व्यूढतत्त्वप्रतिज्ञः' इत्यादि विशेषणोंके साथ देते हैं, जिससे मालूम होता है कि इस कारिकाके साथ ग्रन्थकी समाप्ति हो गई, ग्रंथके अन्तर्गत किसी खास विषयकी नहीं। विद्यानंदस्वामी, अष्टसहस्रीमें, इस कारिकाके द्वारा 'प्रारब्धनिर्वहण'–(प्रारंभ किये हुए कार्यकी परिसमाप्ति) आदिको सूचित करते हुए टीकामें लिखते हैं—

"इति देवागमाख्ये स्वोक्तपरिच्छेदे शास्त्रे...।
अत्र शास्त्रपरिसमाप्तौ"......

इन शब्दोंसे भी प्रायः यही ध्वनित होता है कि देवागमशास्त्र जो कि आप्तमीमांसाके शुरूमें 'देवागम' शब्द होनेसे उसीका दूसरा नाम है, एक स्वतंत्र ग्रंथ है और उसकी समाप्ति इस कारिकाके साथ ही हो जाती है। अतः वह किसी दूसरे ग्रंथका आदिम अंश अथवा मंगलाचरण मालूम नहीं होता।

११—अकलंकदेव अपनी अष्टशतीके आरंभमें लिखते हैं—

"येनाचार्यसमन्तभद्रयतिना तस्मै नमः संततं।
कृत्वा विव्रियते स्तवो भगवता देवागमस्तत्कृतिः"॥२॥

वसुनन्दी आचार्य अपनी देवागमवृत्तिके अन्तमें सूचित करते हैं "श्रीसमंतभद्राचार्यस्य... देवागमाख्यायाः कृते सक्षेपभूतं विवरणं कृतं....।"

कर्णाटकदेशस्थ हुमचा जि० शिमोगाके एक शिलालेखमें निम्न आशयका उल्लेख* मिलता है:—

"अकलंकने समंतभद्रके देवागमपर भाष्य लिखा। आप्तमीमांसा ग्रंथको समझाकर बतलानेवाले विद्यानंदिको नमोस्तु।"

इन सब अवतरणोंसे भी प्रायः यही पाया जाता है कि समन्तभद्रका 'देवागम' उनकी एक पृथक् कृति अथवा स्वतंत्र ग्रंथ है।

* देखो जैनहितैषी भाग ९, अंक ९, पृष्ठ ४४५।

१२—श्रीशुभचंद्राचार्यविरचित पांडवपुराणका एक पद्य इस प्रकार है:—

"समन्तभद्रो भद्रार्थो भातु भारतभूषणः।
देवागमेन येनात्र व्यक्तो देवागमः कृतः"॥ १५॥

इस पद्यके द्वारा ग्रंथकर्ता महाशय, स्वामी समन्तभद्रका 'भारतभूषण' आदि विशेषणोंके साथ स्मरण करते हुए, प्रकट करते हैं कि उन्होंने अपने देवागम (शास्त्र) के द्वारा—(गंधहस्तिमहाभाष्य अथवा तत्त्वार्थसूत्रकी टीकाके द्वारा नहीं) जिनेंद्रदेवके आगम (जैनागम) को संसारमें व्यक्त कर दिया है। इससे देवागमकी स्वतंत्रता और भी स्पष्ट शब्दोंमें उद्घोषित होती है और यह पाया जाता है कि संसारमें समन्तभद्रकी विशेष प्रसिद्धिका कारण भी उनका 'देवागम' ग्रंथ ही हुआ है। यदि यह देवागम कोई पृथक् ग्रंथ न होकर गंधहस्ति महाभाष्यका ही एक अंश–उसका केवल मंगलाचरण–होता तो कोई वजह नहीं थी कि उस महान् ग्रंथका कहीं नामोल्लेख न करके उसके केवल एक छोटेसे अंशका ही उल्लेख किया जाता। उस संपूर्ण ग्रंथके द्वारा तो और भी अधिकताके साथ जैनागम व्यक्त हुआ होगा फिर उसका नाम क्यों नहीं? और क्यों आम तौरपर देवागम अथवा आप्तमीमांसाका ही नामोल्लेख पाया जाता है? जरूर इसमें कुछ रहस्य है और वह कमसे कम देवागमकी स्वतंत्रताका समर्थक जान पड़ता है।

१३—श्रीविद्यानंदस्वामीने 'युक्त्यनुशासन' ग्रंथकी टीका लिखते हुए सबसे पहले उसकी उत्थानिकारूपसे यह वाक्य दिया है—

"श्रीसमन्तभद्रस्वामिभिराप्तमीमांसायामन्ययोगव्यवच्छेदात् व्यवस्थापितेन भगवता श्रीमतार्हतान्त्यतीर्थंकरपरमदेवेन मां परीक्ष्य किं चिकीर्षवो भवन्त इति ते पृष्टा इव प्राहुः।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसके बाद मूल ग्रंथका प्रथम पद्य उद्धृत किया है जो इस प्रकार है:—

" कीर्त्या महत्या भुवि वर्द्धमानं
त्वां वर्द्धमानं स्तुतिगोचरत्वं
निनीषवः स्मो वयमद्य वीरं.
विशीर्णदोषाशयपाशबन्धं ॥ १ ॥

अथास्मिन् काले परीक्षावसानसमये । "

विद्यानंदाचार्यके इस संपूर्णकथनसे मालूम होता है कि स्वामि समन्तभद्रने आप्तमीमांसा (देवागम) के अनन्तर ही—उक्त ग्रंथद्वारा अर्हन्तदेवकी परीक्षाके बाद ही—'युक्त्यनुशासन' ग्रंथकी रचना की है । यदि 'देवागम' को गंधहस्तिमहाभाष्यका एक अंग और उसका आदिम भाग माना जाय तो युक्त्यनुशासनको भी उक्त महाभाष्यका तदनन्तर अंग कहना होगा। परंतु ऐसा नहीं कहा जाता । युक्त्यनुशासन समन्तभद्रका, महावीर भगवानकी स्तुतिको लिये हुए हितान्वेषणका उपाय प्रतिपादक एक स्वतंत्र ग्रंथ माना जाता है। नीचेके कुछ पद्यों और उनकी कथनशैलीसे भी प्रायः ऐसा ही आशय ध्वनित होता है:—

" नरागान्नः स्तोत्रं भवति भवपाशच्छिदिमुनौ,
न चान्येषु द्वेषादपगुणकथाभ्यासखलता ।
किमुन्यायान्यायप्रकृतगुणदोषज्ञमनसां,
हितान्वेषोपायस्तव गुणकथासंगगदितः" ॥ ६४ ॥

—युक्त्यनुशासन ।

" श्रीमद्वीरजिनेश्वरामलगुणस्तोत्रं परीक्षेक्षणैः
साक्षात्स्वामिसमंतभद्रगुरुभिस्तत्त्वं समीक्ष्याखिलं ।
प्रोक्तं युक्त्यनुशासनं विजयिभिः स्याद्वादमार्गानुगै-
र्विद्यानंदबुधैरलंकृतमिदं श्रीसत्यवाक्याधिपैः ॥"

—टी० विद्यानन्दस्वामी ।

" जीवसिद्धिविधायीह कृतयुक्त्यनुशासनं ।
वचः समन्तभद्रस्य वीरस्येव विजृंभते ॥ "

—हरिवंशे जिनसेनः ।

ऐसी हालतमें 'देवागम' को भी युक्त्यनुशासनके सदृश गंधहस्तिमहाभाष्यका कोई अंग न मान कर एक स्वतंत्र ग्रंथ कहना चाहिये ।

१४—श्रीधर्मभूषणयतिविरचित 'न्यायदीपिका' में, सर्वज्ञकी सिद्धि करते हुए, आप्तमीमांसाका एक पद्य निम्न प्रकारसे उद्धृत किया हुआ मिलता है:—

" तदुक्तं स्वामिभिर्महाभाष्यस्यादावाप्तमीमांसाप्रस्तावे—
सूक्ष्मान्तरितदूरार्थाः........ । "

इससे मालूम होता है कि स्वामी समन्तभद्र-प्रणीत 'महाभाष्य' की आदिमें आप्तमीमांसा नामका एक प्रस्ताव है। और सिर्फ यही एक उल्लेख है जो अभी तक हमें इस विषयमें प्राप्त हो सका है और जिससे प्रचलित प्रवादको कुछ आश्वासन मिलता है । यद्यपि इस उल्लेखमें 'गंधहस्ति महाभाष्य' ऐसा स्पष्ट नाम नहीं है, न इस 'महाभाष्य' को उमास्वातिके तत्त्वार्थ-सूत्रका भाष्य प्रकट किया है, न यह ही सूचित किया है कि उसकी ग्रंथसंख्या ८४ हजार श्लोक परिमाण है, और इसलिये संभव है कि यह महाभाष्य समन्तभद्रका उपर्युल्लिखित, ४८ हजार श्लोक संख्याको लिये हुए, 'कर्म-प्राभृत' सिद्धान्तवाला भाष्य हो अथवा कोई दूसरा ही भाष्य हो। और उसमें आचार्य महोदयने आवश्यकतानुसार, अपने आप्तमीमांसा ग्रंथको भी बतौर एक प्रस्तावके शामिल कर दिया हो, तो भी धर्मभूषणके इस उल्लेखसे प्रकृत गंधहस्ति महाभाष्यका आशय जरूर निकाला जा सकता है। परंतु जब हम इस उल्लेखको ऊपर दिये हुए संपूर्ण अनुसंधानोंकी रोशनीमें पढ़ते हैं और साथ ही, इस बातको ध्यानमें रखते हैं कि धर्मभूषणजी विक्रमकी १५ वीं शताब्दीके विद्वान् हैं, तो ऐसा मालूम होता है कि यह उल्लेख उस वक्तके प्रचलित प्रवाद,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोकोक्ति अथवा दंतकथाओंके आधर पर ही किया गया है। वास्तविक तथ्यसे इसका प्रायः कोई सम्बंध नहीं। और न यह मानने अथवा कहनेका कोई कारण है कि धर्मभूषणजीने गंधहस्तिमहाभाष्यको स्वयं देखकर ही ऐसा उल्लेख किया है। यदि ऐसा होता तो खास गंधहस्तिमहाभाष्यका भी कोई महत्त्वपूर्ण उल्लेख राजवार्तिकादि ग्रंथोंके स्थानोंमें अथवा उनके साथ जरूर पाया जाता। परंतु ऐसा नहीं है, न्यायदीपिकामें दूसरी जगह भी आप्तमीमांसाका ही उल्लेख किया गया है। वहाँ ऊपरके सदृश महाभाष्यादि शब्दोंका प्रयोग भी नहीं है, बल्कि बहुत सीधे सादे शब्दोंमें 'तदुक्तमाप्तमीमांसायां स्वामिसमंतभद्राचार्यैः' ऐसा कहा गया है। धर्मभूषणजीके समयसे अबतक ऐसा कोई महान् विप्लव भी उपस्थित नहीं हुआ कि जिससे गंधहस्ति महाभाष्य जैसे ग्रंथका एकदम लोप होना मान लिया जाय। और यदि ऐसा मान भी लिया जाय तो उनसे पहले प्राचीन साहित्यमें उसके उल्लेख न होनेका कारण क्या है, इसका संतोषजनक उत्तर कुछ भी मालूम नहीं होता, और इस लिये हमारी रायमें धर्मभूषणजीका उपर्युक्त उल्लेख प्रचलित प्रवाद पर ही अवलम्बित है। प्रचलित प्रवाद पर अक्सर उल्लेख हुआ करते हैं और वे बहुतसे ग्रंथोंमें पाये जाते हैं। आजकल भी, जब कि गंधहस्तिमहाभाष्यका कहीं पता नहीं और यह भी निश्चय नहीं कि किसी समय उसका अस्तित्व भी था या कि नहीं, बहुतसे अच्छे अच्छे विद्वान् अपने लेखों तथा ग्रंथोंमें गंधहस्ति महाभाष्यका उल्लेख परिचित अथवा निश्चित ग्रंथके तौर पर करते हैं, उसे तत्त्वार्थसूत्रकी टीका बतलाते हैं और उसके श्लोकोंकी संख्याका परिमाण तक देते हैं। यह सब प्रचलित प्रवादका ही नतीजा है। कभी कभी इस प्रचलित प्रवादकी धुनमें अर्थका अनर्थ भी हो जाता है, जिसका एक उदाहरण हम अपने पाठकोंके सामने नीचे रखते हैं—

उक्त न्यायदीपिकामें एक स्थानपर ये वाक्य दिये हैं:—

तद्विपरीतलक्षणो हि संशयः । यद्राजवार्तिकम् " अनेकार्थानिश्चिता पर्युदासात्मकः संशयः, तद्विपरीतोऽवग्रहः " इति । भाष्यं च " संशयो हि निर्णयविरोधी नत्ववग्रहः " इति ।

पं० खूबचंदजीने, न्यायदीपिकापर लिखी हुई अपनी भाषाटीकामें, इन वाक्योंका अनुवाद देते हुए, 'भाष्य' शब्दसे 'गंधहस्तिमहाभाष्य' का अर्थ सूचित किया है— अर्थात्, सर्वसाधारण पर यह प्रकट किया है कि 'संशयो हि निर्णयविरोधी नत्वग्रहः' यह वाक्य गंधहस्तिमहाभाष्यका एक वाक्य है। टीकाके संशोधनकर्ता पं० वंशीधरजी शास्त्रीने भी उनकी इस बातको पास कर दिया है—अर्थात्, पुस्तकपर अपने द्वारा संशोधन किये जानेकी मुहर लगाकर इस बातकी रजिस्टरी कर दी है कि उक्त वाक्य गंधहस्तिमहाभाष्यका ही वाक्य है। परंतु वास्तवमें ऐसा नहीं है। यह वाक्य राजवार्तिक भाष्यका वाक्य है। राजवार्तिकमें 'अवग्रहेहावायधारणा' इस सूत्रपर जो १० वाँ वार्तिक दिया है उसीके भाष्यका यह एक वाक्य है ×। इस वाक्यसे पहले जो वाक्य, 'यद्राजवार्तिकं' शब्दोंके साथ, न्यायदीपिकाकी ऊपरकी पंक्तियोंमें उद्धृत पाया जाता है वह उक्त सूत्रका ९ वाँ वार्तिक है। दूसरे शब्दोंमें यों समझना चाहिये कि ग्रंथकर्ताने पहले राजवार्तिक भाष्यका एक वार्तिक और फिर एक वार्तिकका भाष्यांश उद्धृत किया था, जिसको हमारे दोनों पंडित महाशयोंने नहीं समझा और न समझनेकी कोशिश की। उनके सामने मूल ग्रंथमें

× देखो राजवार्तिक, सनातनग्रंथमाला कलकत्तेका छपा हुआ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'गंधहस्ति महाभाष्य' ऐसा कोई नाम नहीं था और यह हम बखूबी जानते हैं कि उन्होंने गंधहस्ति महाभाष्यका कभी दर्शन तक नहीं किया, जो उस परसे जाँच करके ही ऐसे अर्थका किया जाना किसी प्रकारसे संभव समझ लिया जाता, तो भी उन्होंने 'भाष्य' का अर्थ 'गंधहस्ति महाभाष्य' करके एक विद्वानके वाक्यको दूसरे विद्वानका बतला दिया। यह प्रचलित प्रवादकी धुन नहीं तो और क्या है? इसी तरह एक दूसरी जगह भी 'तद्भाष्यं' पदका अर्थ—"ऐसा ही गंधहस्ति महाभाष्यमें भी कहा है—" किया गया है। इस उदाहरणसे पाठक स्वयं समझ सकते हैं कि प्रचलित प्रवादकी धुनमें कितना अर्थका अनर्थ हो जाया करता है और उसके द्वारा उत्तरोत्तर संसारमें कितना भ्रम तथा मिथ्याभाव फैल जाना संभव है। शास्त्रोंमें प्रचलित प्रवादोंसे अभिभूत ऐसे ही कुछ महाशयोंकी कृपासे अथवा अनेक दन्तकथाओंके किसी न किसी रूपमें लिपिबद्ध हो जानेके कारण ही बहुतसे ऐतिहासिक तत्त्व आजकल चक्करमें पड़े हुए हैं। और इस लिये प्रायः उन सबकी जाँच अनेक मार्गों और अनेक पहलुओंसे होनी चाहिये। हरएक बातकी असलियतको खोज-निकालनेके लिये गहरे अनुसंधानकी जरूरत है। तभी कुछ यथार्थ निर्णय हो सकता है।

१५—ऊपर श्रुतावतारके आधार पर यह प्रकट किया गया है कि समंतभद्रने 'कर्मप्राभृत' सिद्धान्त पर ४८ हजार श्लोक परिमाण एक सुन्दर संस्कृतटीका लिखी थी। यह टीका 'चूडामणि' नामकी एक कनडी टीकाके बाद, प्रायः उसे देखकर, लिखी गई है। चूडामणिकी श्लोकसंख्याका परिमाण ८४ हजार दिया है और वह उस कर्मप्राभृत तथा साथ ही, कषायप्राभृत नामके दोनों सिद्धान्तों पर लिखी गई थी। भट्टाकलंकदेवने, अपने कर्णाटक शब्दानुशासनमें, इस चूडामणिटीकाको 'तत्त्वार्थ महाशास्त्रकी व्याख्या' ('तत्त्वार्थमहाशास्त्रव्याख्यानस्य* चूडामण्यभिधानस्य महाशास्त्रस्य...उपलभ्यमानत्वात्'।) लिखा है, जिसका आशय यह होता है कि कर्मप्राभृतादि ग्रंथ भी तत्त्वार्थशास्त्र कहलाते हैं और इसलिये कर्मप्राभृत पर लिखी हुई समंतभद्रकी उक्त टीका भी तत्त्वार्थमहाशास्त्रकी टीका कहलाती होगी। चूँकि उमास्वातिका तत्त्वार्थसूत्र भी 'तत्त्वार्थशास्त्र' अथवा 'तत्त्वार्थमहाशास्त्र' कहलाता है, इसलिये संभव है कि इस नामसाम्यकी वजहसे 'कर्मप्राभृत' के टीकाकार श्रीसमंतभद्रस्वामी किसी समय उमास्वातिके तत्त्वार्थसूत्रके टीकाकार समझ लिये गये हों और इसी गलतीके कारण पीछेसे अनेक प्रकारकी कल्पनाएँ उत्पन्न हो कर उनका वर्तमानरूप बन गया हो। यह भी संभव है, कि प्रबल और प्रखर तार्किक विद्वान् होनेके कारण 'गंधहस्ति' यह समंतभद्रका उपनाम अथवा विरुद रहा हो और उसके कारण ही उनकी उक्त सिद्धांतटीकाका नाम गंधहस्तिमहाभाष्य प्रसिद्ध हो गया हो अथवा उनके शिष्य शिवकोटिने जो तत्त्वार्थसूत्रकी टीका लिखी है उसी परसे इस विषयमें उनके नामकी प्रसिद्धि हो गई हो। कुछ भी हो, यथार्थ वस्तुस्थितिको खोज निकालनेकी बहुत बड़ी जरूरत है, जिसके लिये विद्वानोंको प्रयत्न करना चाहिये। अस्तु।

गंधहस्तिमहाभाष्य और आप्तमीमांसाके सम्बन्धमें हम अपने इन अनुसंधानों और विचारोंको विद्वानोंके सामने रखते हुए उनसे अत्यंत नम्रताके साथ निवेदन करते हैं कि वे इन पर बड़ी शांतिके साथ गहरा विचार करनेकी कृपा

* यहाँ ग्रंथका परिमाण ९६ हजार श्लोक दिया है जिसकी बाबत राइस साहबने, अपनी 'इंस्क्रिपशंस-एट् श्रवणबेलगोल' नामक पुस्तकमें, लिखा है कि इसमें १२ हजार श्लोक ग्रंथके संक्षिप्तसार अथवा सूचीके शामिल हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करें और उसके बाद हमें अपने विचारोंसे सूचित करके कृतार्थ बनाएँ। यदि हमारा कोई अनुसंधान अथवा विचार उन्हें ठीक प्रतीत न हो तो हमें युक्तिपूर्वक उससे सूचित किया जाय। साथ ही, जिन विद्वानोंको किसी प्राचीन साहित्यसे गंधहस्तिमहाभाष्यके नामादिक चारों बातोंमेंसे किसी भी बातकी कुछ उपलब्धि हुई हो, वे हम पर उसके प्रकट करनेकी उदारता दिखलाएँ, जिससे हम अपने विचारोंमें यथोचित फेरफार करनेके लिये समर्थ हो सकें, अथवा उसकी सहायतासे किसी दूसरे नवीन अनुसंधानको प्रस्तुत कर सकें। आशा है, जैनहितैषीके विज्ञ पाठक हमारे इस समुचित निवेदन पर ध्यान देनेकी अवश्य कृपा करेंगे, और इस तरह एक ऐतिहासिक तत्त्वके निर्णय करनेमें सहोद्योगिताका परिचय देंगे।

अन्तमें हम अपने पाठकों पर इतना और प्रकट किये देते हैं कि इस लेखका कुछ भाग लिखे जानेके बाद हमें अपने मित्र श्रीयुत मुनि जिनविजयजी आदिके द्वारा यह मालूम करके बहुत अफसोस हुआ कि दक्कन कालिज पूना लायब्रेरीकी किसी सूचीके आधार पर एक पंडित महाशयने, समाजके पत्रोंमें, जो इस प्रकारका समाचार प्रकाशित कराया था कि, गंधहस्ति महाभाष्य आस्ट्रिया देशके अमुक नगरकी लायब्रेरीमें मौजूद है और इसलिये वहाँ जाकर उसकी कापी लानेके लिये कुछ विद्वानोंकी योजना होनी चाहिये, वह बिलकुल उनका भ्रम और बेसमझीका परिणाम था। उन्हें सूची देखना ही नहीं आया। सूचीमें, जो किसी रिपोर्टके अन्तर्गत है, आस्ट्रियाके विद्वान् डाक्टर बूल्हरने कुछ ऐसे प्रसिद्ध जैनग्रंथोंके नाम उनके कर्ताओंके नाम सहित प्रकट किये थे जो उपलब्ध हैं, तथा जो उपलब्ध नहीं हैं किन्तु उनके नाम सुने जाते हैं। समंतभद्रका 'गंधहस्तिमहाभाष्य' भी अनुपलब्ध ग्रंथोंमें था जिसका नाम सुनकर ही उन्होंने उसे अपनी सूचीमें दाखिल किया था। उसके सम्बंधमें यह कहीं प्रकट नहीं किया गया कि वह अमुक लायब्रेरीमें मौजूद है। पंडितजीने इस सूचीमें गंधहस्तिमहाभाष्यका नाम देख कर ही, बिना कुछ सोचे समझे, आस्ट्रिया देशके एक नगरकी लायब्रेरीमें उसके अस्तित्वका निश्चय कर दिया और उसे सर्व साधारण पर प्रकट कर दिया! यह कितनी भूलकी बात है! हमें अपने पंडितजीकी इस कार्रवाई पर बहुत खेद होता है जिसके कारण समाजको व्यर्थ ही एक प्रकारके चक्करमें पड़ने और चंदा एकत्र करने-कराने आदिका कष्ट उठाना पड़ा। आशा है पंडितजी, जिनका नाम यहाँ देनेकी हम कोई जरूरत नहीं समझते, आगामीसे ऐसी मोटी भूल न करनेका ध्यान रक्खेंगे।

सरसावा, ता० १९-१-२०

किसी नियम या सिद्धान्तके तौर पर विधवा-विवाह कोई अच्छी चीज़ नहीं है। और न यह बात पसंद किये जानेके योग्य है कि उसे ख्वामख्वाह उत्तेजन दिया जाय। बन सके तो खुशीसे पूर्ण ब्रह्मचर्यका पालन होना चाहिये परंतु जो लोग (स्त्री या पुरुष) पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन करनेके लिये असमर्थ हैं, गुप्त व्यभिचार करते हैं और इस तरह भ्रूणहत्या, बालहत्यादि अनेक दुष्कर्मों तथा पापोंको जन्म देते हैं उनकी अपेक्षा वे लोग अच्छे जरूर हैं जो इन पापोंसे बचनेके लिये पुनर्विवाह करके बैठ जाते हैं और सुखपूर्वक अपनी गृहस्थी चलाते हैं। ऐसे लोगोंकी इस प्रवृत्तिमें व्यर्थकी रुकावटें पैदा करना भी अच्छा नहीं है।

—खंडविचार।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऐतिहासिक जैनव्यक्तियाँ

अर्थात्–

जैनाचार्य, दूसरे जैन विद्वान्, उनके पोषक, प्रधान श्रावक और जैन राजादिक।

७ श्रीचन्द्र, श्रीनन्दी और सागरसेन।

'श्रीचंद्र' नामके मुनिने धाराधीश महाराजा भोजके समयमें 'पुराणसार' नामका एक संस्कृत ग्रंथ बनाया है, जिसकी श्लोकसंख्या 'दिगम्बर-जैनग्रंथकर्ता और उनके ग्रंथ' नामक सूचीके अनुसार २१०० है। इस ग्रंथकी प्रशस्ति और रचना संवत् इस प्रकार है:—

"धारायां पुरि भोजदेवनृपते राज्ये जयात्युच्चकैः
श्रीमत्सागरसेनतो यतिपतेर्ज्ञात्वा पुराणं महत्।
मुक्त्यर्थं भवभीतिभीतजगतां श्रीनन्दिशिष्यो बुधो
कुर्वे चारुपुराणसारममलं श्रीचन्द्रनामा मुनिः॥ १॥
श्रीविक्रमादित्यसंवत्सरे यज्ञशून्य (सप्तत्य ?) धिकवर्षसहस्रे पुराणसाराभिधानः समाप्तः।"

इससे मालूम होता है कि श्रीचंद्रमुनि 'श्रीनन्दी'के शिष्य थे और उन्होंने 'सागरसेन' नामके यतिपतिसे महापुराणको पढ़कर अथवा समझकर अपना यह ग्रंथ, उसके संक्षेपरूपमें, लिखा है और संभवतः इसे धारानगरीमें ही बनाकर समाप्त किया है। समाप्तिका संवत् जो ऊपर दिया है वह लेखकाशुद्धिके कारण कुछ अस्पष्ट मालूम होता है। संभव है कि यह 'सप्तत्यधिकवर्षसहस्रे' ऐसा पाठ हो जिसका अर्थ १०७० संवत् होता है। परंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि यह ग्रंथ विक्रमकी ११ वीं शताब्दीका बना हुआ है और इस लिये उक्त तीनों विद्वानोंका अस्तित्वसमय भी विक्रमकी ११ वीं शताब्दी समझना चाहिये। श्रीचंद्राचार्यने और कौन कौनसे ग्रंथोंकी रचना की है, इसका अभी तक हमें कोई ठीक निश्चय नहीं हुआ। हाँ, 'दिगम्बरजैनग्रन्थकर्ता और उनके ग्रंथ' नामक सूचीमें 'श्रीचंद्र'के नामके साथ १ श्रावकाचाररत्नकरंड (प्राकृतश्लोक ४४००), २ सम्यक्त्वरत्नकरंड (प्राकृत), ३ पद्मपुराणकी पंजिका-टीका, ४ श्रावकाचार (सप्तव्यसननिरोधात्मक) और ५ पंचकल्याणकपूजा, ये ग्रंथ और दिये हैं। हम नहीं कह सकते कि ये सब ग्रंथ उक्त श्रीचंद्रमुनिके बनाये हुए हैं अथवा किसी दूसरे श्रीचंद्रके। ग्रंथोंके देखने पर इस बातका निश्चय हो सकता है। जिन विद्वानोंको उक्त पांचों ग्रंथोंमेंसे किसी ग्रंथके देखनेका अवसर मिला हो उन्हें यथार्थ बातसे सूचित करना चाहिये। उक्त सूचीमें एक स्थानपर फुटनोटद्वारा, यह भी सूचित किया गया है कि 'एक श्रीचंद्राचार्य वि० स० १२४१ में हुए हैं।' मालूम नहीं वे श्रीचंद्र कौनसे आचार्यके शिष्य थे और उनके इस नाम तथा समयकी उपलब्धि कहाँसे हुई है। आशा है, सूचीके लेखक महाशय इसका स्पष्टीकरण करनेकी कृपा करेंगे।

सागरसेन मुनिके विषयमें अभी तक हमें कोई विशेष हाल मालूम नहीं हुआ। सिर्फ उक्त सूचीमें उन्हें 'सैद्धान्तिक' लिखा है और उनके बनाये हुए ग्रन्थोंमें 'लघु त्रिलोकसार' नामके एक प्राकृत ग्रंथका उल्लेख किया है। वे किनके शिष्य थे, किनके गुरु थे और उन्होंने क्या क्या कार्य किये हैं, उनका यह सब इतिहास अभी अंधेरेमें है, जिसकी विद्वानोंको खोज लगानी चाहिये। श्रीचंद्रके गुरु **श्रीनन्दीके** विषयमें भी अभीतक हमें कुछ विशेष हाल मालूम नहीं हो सका। इनका इतिहास भी अंधकाराछन्न है। हाँ, वसुनन्दी श्रावकाचारके देखनेसे इतना जरूर मालूम होता है कि वसुनन्दीकी गुरुपरम्परामें एक 'श्रीनन्दी' नामके आचार्य भी हो गये हैं, जिनके शिष्य 'नयनन्दी' और प्रशिष्य 'नेमिचंद्र' थे। इन-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीनंदीकी प्रशंसामें उक्त श्रावकाचारमें ये वाक्य दिये हैं—

" आसी ससमयपरसमयविदू सिरिकुंदकुंदसंताणे ।
भव्वयणकुमयवणासिसिरयरो सिरिणंदिणामेण ॥
कित्ती जस्सेंदुसुब्भा सयलभुवणमज्झे जहेत्थं भमित्ता,
णिच्चं सा सज्जणाणं हियवयणसोए णिवासं करेइ ॥
जो सिद्धंतंबुरासिं सुणयतरणिमासेज्ज लीलावतिण्णो,
वण्णेउं को समत्थो सयलगुणगणं सेवियंतो वि लोए ॥"

इनसे मालूम होता है कि ये 'श्रीनन्दी' बड़े ही विद्वान् और एक अच्छे प्रतिष्ठित आचार्य हुए हैं । इनका समय भी विक्रमकी प्रायः ११ वीं शताब्दी पाया जाता है । बहुत संभव है कि ये श्रीनंदी और उक्त श्रीचंद्रके गुरु श्रीनंदी दोनों एक ही व्यक्ति हों । इसके सिवाय एक 'श्रीनन्दी' प्रायश्चित्तसमुच्चयके टीकाकार भी हैं । ये 'श्रीनंदि गुरु' भी कहलाते हैं । उपर्युल्लिखित सूचीमें इन्हें सिर्फ 'नन्दिगुरु' ही लिखा है । अस्तु; इस विषयमें, प्रायश्चित्त समुच्चयकी टीकाके प्रशस्तिसंज्ञक अन्तिम वाक्य इस प्रकार है !—

" यः श्रीगुरूपदेशेन प्रायश्चित्तस्य संग्रहः ।
दासेन श्रीगुरोर्दब्धो भव्याशयविशुद्धये ॥ १ ॥
तस्यैषा नूदिता वृत्तिः श्रीनंदिगुरुणा हि सा ।
विरुद्धं यदभूदत्र तत्क्षाम्यतु सरस्वती ॥ २ ॥
प्रवरगुरुगिरीन्द्रप्रोद्गता वृत्तिरेषा,
सकलमलकलंकक्षालिनी सज्जनानां ।
सुरसरिदिव शश्वत्सेव्यमाना द्विजेंद्रैः
प्रभवतु जननूना यावदाचन्द्रतारम् ॥ ३ ॥ "

१ **अर्थात्**—श्रीकुंदकुंदकी आम्नायमें 'श्रीनन्दी' नामका आचार्य स्वमत और परमतका जाननेवाला तथा भक्तजनरूपी कुमुदवनको प्रफुल्लित करनेके लिये चंद्रमाके समान हुआ । जिसकी चंद्रमाके समान निर्मल कीर्ति सर्व जगत्में भले प्रकार फैलकर सज्जन पुरुषोंके हृदय, वचन और कानोंमें सदा निवास करती थी और जो उत्तम नयरूपी नौकामें बैठकर सिद्धान्तसमुद्रको लीलामात्रसे पार कर गया था उस श्रीनन्दीके सकलगुणगणका वर्णन करनेके लिये लोकमें कौन समर्थ हो सकता है ?

इनसे मालूम होता है कि टीकाकारका नाम 'श्रीनंदिगुरु' है । यदि इस पदमें 'श्री' को विशेषण मान लिया जाय तो वह 'नंदिगुरु' और 'गुरु' को विशेषण मान लेनेसे 'श्रीनन्दी' रह जाता है । हमारी रायमें असिल नाम 'श्रीनन्दी' मालूम होता है और 'गुरु' यह वंशपरंपराकी कोई उपाधि जान पड़ती है । कुछ भी सही, ये श्रीनंदिगुरु श्रीचंद्रके गुरु श्रीनन्दी अथवा नयनंदीके गुरु श्रीनन्दीसे भिन्न हैं, या उन्हींमेंसे कोई एक हैं, ये बातें विद्वानोंके निर्णय करनेके योग्य हैं । आशा है, हमारे विद्वान भाई इन आचार्योंका विशेष इतिहास खोज निकालनेकी कोशिश करेंगे ।

८ कुमारनन्दी और कुमारसेन ।

जैनसमाजमें 'कुमारनन्दी' नामके एक बहुत बड़े विद्वान् आचार्य हो गये हैं । प्रमाणपरीक्षा, पत्रपरीक्षा, श्लोकवार्तिक और न्यायदीपिका आदि ग्रंथोंमें उनके वाक्योंका उल्लेख पाया जाता है । उनके वाक्य 'तथा चाभ्यधायि कुमारनन्दिभट्टारकैः,' 'तदुक्तं कुमारनन्दिभट्टारकैः,' इत्यादिक उल्लेखवाक्योंके साथ उद्धृत पाये जाते हैं । इन उल्लेखवाक्योंमें आचार्य महोदयके नामके साथ 'भट्टारक' शब्दका प्रयोग देखकर किसीको यह न समझ लेना चाहिये कि वे आजकलके गद्दीनशीन भट्टारकों जैसे भट्टारक होंगे । ऐसा नहीं है । उस समय 'भट्टारक' शब्द प्रायः एक बहुत बड़े प्रतिष्ठित पूज्य और माननीय विद्वानके लिये प्रयुक्त होता था । कुमारनन्दीके नामके साथ यह महत्त्वसूचक शब्द लगा रहनेसे उनका एक बहुत बड़ा प्रतिष्ठित विद्वान् होना पाया जाता है । जिसे विद्यानंदस्वामी जैसे एक उद्भट विद्वान् 'भट्टारक' शब्दके साथ याद करें वह कितना प्रभावशाली विद्वान् होगा, इसे पाठक स्वयं समझ सकते हैं । अस्तु; कुमार-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नंदी एक बड़े भारी नैय्यायिक विद्वान् थे, वादन्यायमें उनकी योग्यता बहुत बढ़ी चढ़ी थी। विद्यानंदस्वामीने उन्हें 'वादन्यायविचक्षण' लिखा है; यथाः—

'कुमारनन्दिनश्चाहुर्वादन्यायविचक्षणाः।"

—श्लोकवार्तिक।

आपने 'वादन्याय' नामका एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ भी रचा है जिसके कुछ पद्योंको हमने, उक्त ग्रंथका परिचय देते हुए, इसी अंकमें अन्यत्र उद्धृत किया है। नहीं मालूम, आपने और कौन कौनसे ग्रंथोंकी रचना की है। 'दिगम्बरजैनग्रंथकर्ता और उनके ग्रंथ,' नामकी सूचीमें आपके नामके साथ सिर्फ दो ग्रंथोंका उल्लेख पाया जाता है; एक 'न्यायविजय' और दूसरा 'भूपालचतुर्विंशतिका स्तवन।' इनमें न्यायविजय संभवतः वही 'वादन्याय' नामका ग्रंथ मालूम होता है जिसका ऊपर जिकर किया गया है। या तो यह उसीका नामान्तर है और या सूचीमें कुछ गलतीके साथ दर्ज हुआ है और यदि यह बिलकुल एक अलग ग्रंथ है तो बड़ी खुशीकी बात है, तब इसकी भी खोज होनी चाहिये। दूसरा ग्रंथ भूपाल कविका बनाया हुआ है। वह सूचीमें कुमारनन्दीके साथ बिलकुल भूलसे दर्ज किया गया जान पड़ता है। श्रीविद्यानंदस्वामीने अपने 'अष्टसहस्री' ग्रंथके अन्तमें '**कुमारसेनोक्तिवर्धमानार्था**' यह अष्टसहस्रीका एक विशेषण दिया है, जिसका यह अर्थ होता है कि अष्टसहस्री कुमारसेनकी उक्तियोंसे वृद्धिको प्राप्त हुई है। अर्थात्, अष्टसहस्रीमें कुमारसेनकी उक्तियोंका प्रचुरताके साथ संग्रह किया गया है और इससे उसके शरीरकी बहुत कुछ वृद्धि हुई है। यद्यपि कुमारसेन नामके मुनिका एक उल्लेख जिनसेनने हरिवंशपुराणमें × और दूसरा श्रवणबेलगोलके 'मल्लिषेणप्रशस्ति' नामक शिलालेखमें * पाया जाता है, तो भी विद्यानंद स्वामीने जिन कुमारसेनकी उक्तियोंसे अष्टसहस्रीकी अंगवृद्धि होना लिखा है वे जहाँतक हम समझते हैं, कुमारनन्दी भट्टारकके सिवाय दूसरे कोई नहीं हैं। क्योंकि विद्यानंदने अपने ग्रंथोंमें अनेक स्थानोंपर कुमारनंदि भट्टारककी उक्तियोंको स्पष्ट तौरसे उद्धृत किया है, प्रत्युत इसके कुमारसेनकी उक्तियोंका इस प्रकारका कोई उद्धरण और उल्लेख उनके ग्रंथोंमें हमारे देखनेमें नहीं आया। यदि विद्यानंदस्वामीकी दृष्टिमें कुमारसेनका कोई ऐसा महत्त्वपूर्ण ग्रंथ होता जिसका अधिकांश भाग अष्टसहस्रीका अंग तक बननेकी योग्यता रखता था तो कोई वजह नहीं थी कि वह उसका उल्लेख अपने दूसरे किसी ग्रंथमें न करते। हमारे खयालमें ऐसा मालूम होता है कि विद्यानंद स्वामीने कुमारनंदि भट्टारकके वादन्यायादि ग्रंथोंसे बहुत कुछ अंश बिना किसी नामादिकके उद्धृत करके उसे अष्टसहस्रीका एक अविभक्त अंग बनाया है और अन्तमें अष्टसहस्रीके उक्त विशेषणके द्वारा उसे सूचित कर दिया है। संभव है कि इस विशेषण पदमें लेखकोंकी भूलसे '**कुमारनंद्योक्ति**' के स्थानमें '**कुमारसेनोक्ति**' लिखा गया हो अथवा यह भी हो सकता है कि 'कुमारसेन' कुमारनन्दिका ही नामान्तर हो। यदि कुमारनन्दिका 'वादन्यायादि' नामका कोई महान् ग्रंथ उपलब्ध हो जाय तो उसपरसे अष्टसहस्रीका मीलान करनेपर इस विषयका बहुत कुछ निर्णय हो सकता है। अस्तु। अब हमें यह जाननेकी जरू-

× अकूपारं यशो लोके प्रभाचन्दोदयोज्वलम्।
गुरोः कुमारसेनस्य विचरत्यजितात्मकम्॥ ३८॥

—हरिवंशपुराण।

*उदेत्य सम्यग्दिशि दक्षिणस्यां कुमारसेनोमुनिरस्तमाप।
तत्रैव चित्रं जगदेकभानोस्तिष्ठत्यसौ तस्य तथा प्रकाशः॥

—शिलालेख नं० ५४।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रत है कि ये कुमारनन्दी आचार्य कब हुए हैं, कहाँपर उनका निवास था, वे किनके शिष्य और उनके कौन कौन शिष्य हुए हैं। साथ ही यह भी मालूम करनेकी ज़रूरत है कि उन्होंने और क्या क्या विशेष कार्य किये हैं। इन सब बातोंके संबंधमें अभी हम विशद रूपसे कुछ भी नहीं कह सकते। ये सब बातें गहरे अंधकारमें छिपी हुई हैं। हाँ, आचार्य महोदयके अस्तित्व-समयकी बाबत इतना जरूर कह सकते हैं कि वे विद्यानंद स्वामीसे पहलेके, अर्थात् विक्रमकी प्रायः ८ वीं शताब्दीसे पहलेके, विद्वान् हैं। कितने पहलेके इसका अभीतक कोई निश्चय नहीं। पंचास्तिकायके टीकाकार श्रीजयसेन-सूरिने अपनी उक्त टीकाके शुरूमें कुंदकुंदाचार्यको श्रीकुमारनंदीका शिष्य प्रकट किया है। यथाः—

" अथ श्रीकुमारनन्दिसिद्धान्तिदेवशिष्यैः...श्रीमत्कुंदकुंदाचार्यदेवैः पद्मनन्द्याद्यपराभिधेयैः...विरचिते पंचास्तिकायप्राभृतशास्त्रे...... । "

इससे कुमारनंदीका समय विक्रमकी प्रायः दूसरी तीसरी शताब्दी तक पहुँच जाता है। परंतु जयसेनसूरिके इस कथनका समर्थन दूसरे किसी भी प्रमाणसे नहीं होता। स्वयं प्रवचन-सार और समयसार नामके प्राभृतोंकी टीकाओंमें भी उन्होंने ऐसा सूचित नहीं किया। उनके भी रचयिता वही कुंदकुंदाचार्य थे। फिर पंचास्तिकायकी टीकामें ही यह विशेषता क्यों? कुछ समझमें नहीं आता। श्रवणबेलगोलके शिला-लेखोंमें भी, जहाँ अनेक स्थानों पर कुंदकुंदका नाम आया है वहाँ कहीं भी उन्हें कुमारनंदीका शिष्य प्रकट नहीं किया। बल्कि उनका नाम आमतौर पर भद्रबाहु और चंद्रगुप्तके बाद दिया है। और भी किसी ग्रंथमें उक्त प्रकारका उल्लेख नहीं पाया जाता। ' बल्कि बोधपाहुड़में स्वयं कुन्दकुंदाचार्यके निम्न वाक्योंसे कुछ ऐसा ध्वनित होता है कि वे भद्रबाहुके शिष्य थे या उनसे कोई निकट सम्बंध रखते थे:—

" सद्दवियारो हूओ भासासुत्तेसु जं जिणे कहियं।
सो तह कहियं णायं सीसेण य भद्दबाहुस्स॥ ६१॥
बारसअंगवियाणं चउदसपुव्वंगविउलविच्छरणं।
सुयणाणि भद्दबाहू गमयगुरू भयवओ जयउ॥६२॥

ऐसी हालतमें जयसेनसूरिका, कुन्दकुन्दके गुरुविषयमें, उपर्युक्त कथन स्वीकार करनेके लिये हृदय तय्यार नहीं होता। आशा है कुमार-नंदीके इतिहासविषयमें हमारे विद्वान् भाई कुछ विशेष अनुसंधान करनेकी कृपा करेंगे।

(क्रमशः।)

संसारमें प्रायः दंभ पुजता है। दंभी मनुष्योंकी बहुधा पूछ होती है और वे आम तौर पर योग्य व्यक्ति समझे जाते हैं। प्रत्युत इसको जो लोग सरल स्वभावी, निष्कपट व्यवहार करनेवाले और सत्यवक्ता होते हैं उनपर प्रायः अनेक प्रकारकी विपत्तियाँ आया करती हैं और उन्हें तरह तरहके कष्ट सहन करने होते हैं। ऐसे लोगोंके उदाहरण भी पृथ्वी भरके प्रायः सभी देशोंके इतिहासोंमें पाये जाते हैं। परंतु यह देखकर सच्चे धर्मात्माओं और सत्य प्रेमियोंको अपने कर्तव्य पथसे विचलित नहीं होना चाहिये। उन्हें इस बातसे कोई प्रेम नहीं रखना चाहिये कि लोग हमारी पूछ करें अथवा हमारा यशोगान करें और न इस बातकी कोई परवाह ही करनी चाहिये कि दूसरे लोग हमारे विषयमें क्या कहते हैं। उन्हें आपत्तियोंसे न डरकर और अपनी मान बड़ाईकी दलदलमें न फँसकर बराबर सत्यके मैदानमें डटे रहना चाहिये। एक दिन आयगा जब उनके सत्यकी परीक्षा हो जायगी और संसार उन्हें ऊँचे आसनपर बिठलायगा।

—खंडविचार।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विचित्र ब्याह ।

[भाग १३ अंक १२ से आगे ।]

(ले०, पं० रामचरित उपाध्याय ।)

अष्टम सर्ग ।

सौ रुपये फिर रूपचन्दने लिये सुशीलासे आके,
वह भी लगा तयारी करने सुता-ब्याहकी घर जाके ।
वहाँ सुशीलाने भी सुतके सुखद ब्याहको ठान दिया,
अपने सम्बन्धी स्वजनोंको पत्र भेज आह्वान किया ॥ १ ॥
विविध भाँतिकी देख तयारी, हरिसेवक क्यों चुप रहता !
क्यों न हनिकारक कामोंको तज देनेको वह कहता ।
बोला मासे ब्याह करो मा, मेरा हर्षसमेत सही,
किन्तु नाँच या आतशवाजीका है कुछ भी काम नहीं ॥ २ ॥
आतशवाजी छोड़ द्रव्यमें सचमुच आग लगाना है ।
माता ! बुधसमाजके आगे बुद्धि-हीन कहलाना है ।
इसी लिए आतशवाजीका लेना नहीं कभी तुम नाम,
यदि रुपये हों तो फिर उनसे करना जगउपकारक काम ॥ ३ ॥
इसी प्रकार नाँचका भी तुम, नाम न लेना भूल कभी,
जान बूझ कर जननि ! धर्म पर, नहीं डालना धूल कभी ।
वेश्याओंको धन देनेसे हो जाता है बड़ा अनर्थ,
सोच समझ कर करो ब्याहको, तुम रुपये फेंको मत व्यर्थ ॥ ४ ॥
दुराचारियोंको यदि धन दे, दुराचार तो बढ़ता है,
खलके साथीके सिर पर भी पाप दौड़कर चढ़ता है ।
पापी धन पा क्योंकि और भी घोर पापको करता है,
वह जगके अपवादोंसे फिर मनमें तनिक न डरता है ॥ ५ ॥
पापीके सुख देख दुखी जन पाप सीखने लगते हैं,
प्रथम पनप कर यदपि अन्तमें, स्वयं झीखने लगते हैं ।
क्योंकि एककी देखादेखी दूजा भी करता है काम
इसी लिए ही बुरे कर्मके सज्जन कभी न लेते नाम ॥ ६ ॥
प्रायः वेश्यायें करती हैं मद्य मांसका सेवन भी,
और दुराचारी होते हैं प्रायः उनके परिजन भी ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

फिर उनको धन दे कर अघको मनों मोल ले लेना है,
या हत्याभागी अपनेको स्वयं सिद्ध कर देना है ॥ ७ ॥
वेश्याओंके हावभावसें चित्त विकृत हो जाता है,
उनके सम्मेलनसे नरका पुण्य-पुञ्ज खो जाता है ।
इस कारण कुछ काम नहीं है वेश्याओंका कभी कहीं,
अघ-सीढ़ी पर चढ़कर कोई, छू सकता है स्वर्ग नहीं ॥ ८ ॥
शुभ विवाहके समय सुहागिन स्त्रियाँ बुलाई जाती हैं,
ज्ञाति बन्धुकी विधवायें भी वहाँ न आने पाती हैं ।
फिर रण्डाओंको नचवाना उसी व्याहमें भला नहीं,
जान बूझकर सिर पर लाना कभी चाहिए बला नहीं ॥ ९ ॥
हरिसेवक ! पर बात तुम्हारी, ठीक नहीं है क्यों मानूँ !
जो होता है कार्य सदासे उसको अनुचित क्यों जानूँ ?
जो न सहारा गायक पावें गानशास्त्र तो उठ जावे,
नृत्य गान हो नहीं जहाँ पर वह क्यों उत्सव कहलावे ॥ १० ॥
ऐसा कौन देश है जिसमें नृत्यगानका है न प्रचार,
भारतहींने सबसे पहले किया नृत्यका आविष्कार ।
क्या कारण बोलो, हम क्यों फिर नृत्य गानसे घृणा करें ?
अत्युत्तम विद्याकी हत्या करनेसे कैसे न डरें ? ॥ ११ ॥
हाँ, आतशबाजी सचमुच ही बड़े अनर्थोंकी है मूल,
उसके लिए द्रव्यको स्वाहा, कर देना नितान्त है भूल ।
तेरे ब्याहसमयमें उसको कभी नहीं छुटने दूँगी,
अपने हाथों अपनी आँखें, कभी नहीं फुटने दूँगी ॥ १२ ॥
गानवाद्यका और नृत्यका रखना है यदि इष्ट तुम्हें,
तो क्या गायक नहीं मिलेंगे सच्चरित्र या शिष्ट तुम्हें ।
किसी भाँति पर वेश्याओंका नाच कराना ठीक नहीं,
बुरे कर्म करके इस जगमें नाम कमाना ठीक नहीं ॥ १३ ॥
बुरे कर्म जो होते होवें उन्हें छोड़ देना है नीति,
अच्छे भी यदि नये कर्म हों तो क्या उनमें करे न प्रीति ?
शास्त्र-विहित जो साधुकर्म है उसे सनातन कहते हैं,
चाहे कुछ हो निन्द्यकार्यसे सुजन दूर ही रहते हैं ॥ १४ ॥
यदि जननी ! तुमको करना है समयोचित सुमङ्गलाचार,
तो गुरु-गुणि-विज्ञोंका करिए, तन, मन, धनसे शिष्टाचार ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो सुपात्रको अर्पण होवे कहलाता है दान वही,
करता है जो काम समझकर, पाता है सम्मान वही ॥ १५ ॥
कहा सुशीलाने वैसा ही—होगा, कहते हो जैसा,
अच्छे मन्त्र ग्रहण करनेमें, बेटा ! मीन मेष कैसा ?
मुनि-पद्धतिसे ब्याह तुम्हारा—होगा, होगा नाँच नहीं,
चाहे स्तुति हो, या निन्दा हो, किन्तु साँचको आँच नहीं ॥ १६ ॥
सुन माताके वचन मनोहर हरिसेवक अति मग्न हुआ,
उसके आज्ञापालनमें वह, तन, मनसे संलग्न हुआ।
इसी बीचमें रूपचन्द फिर, आकर बोला बड़े सप्रेम,
कहिए बाबू हरिसेवकजी, है तो सब कुछ कुशल क्षेम ? ॥ १७ ॥
कुशल प्रश्नके बाद तुरत ही उसने कहा लाजको छोड़,
दौड़ा मैं आता हूँ भैया, अपने सभी काजको छोड़।
सौरुपये फिर मुझे दीजिए अब चलता है काम नहीं,
धिग् जीवन है उस मानवका, जिसके पल्ले दाम नहीं ॥ १८ ॥
तुरत सुशीलाने लाकरके रुपयोंको दे दिया उसे।
राम राम कह किसी व्योंतसे, विदा वहाँसे किया उसे,
फूले अँग न समाया वह भी, रुपयोंको पाकरके मूढ़,
उसमें ज्ञान रहे फिर कैसे, जिस पर हुआ लोभ आरूढ़ ॥ १९ ॥
रूपचन्दके हट जाने पर भाईबन्द लगे आने,
प्रेम-युक्तिसे सब बरातको लगे मनोहर सजवाने।
बाजे बजने लगे मोदप्रद सुन्दरियोंने गान किया,
चहल पहल मच गई द्वारपर, सबने सबका मान किया ॥ २० ॥
हरिसेवकके विशद शीश पर, मौर बड़ी छवि देता था,
मनो चन्द्रमा मुकुट दिये है, सबके मन हर लेता था।
कहीं सुशीलाके पग भू पर, उछल उछल कर पड़ते थे
वन्दीजन मङ्गल-पद्योंको, कहीं उच्चस्वर पढ़ते थे ॥ २१ ॥
हुआ शुभाचार समाप्त रीतिसे,
बड़े समुत्साह सुनीति प्रीतिसे।
समा वहाँका स्थिर हो सका नहीं,
सहर्ष बारात चली तुरन्त ही ॥ २२ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नवाँ सर्ग ।

रूपचन्द है मग्न बड़ा, सुता-ब्याहमें लग्न बड़ा ।
कब आवेगी घर बारात, उसके मुँहमें थी यह बात ॥ १ ॥
दोसौ अब मिल जावेंगे, व्योम-कमल खिल जावेंगे ।
इसी ध्यानमें व्यस्त रहा, नहीं पापसे त्रस्त रहा ॥ २ ॥
लक्ष्मीकी मा रोती थी, दृग-जलसे तन धोती थी ।
उसे चैनका नाम नहीं, तनिक कहीं विश्राम नहीं ॥ ३ ॥
कन्या बिकती है मेरी, क्या है दुर्मतिने घेरी ।
सोच रही थी पड़ी पड़ी, चिन्ता उरमें रही बड़ी ॥ ४ ॥
लक्ष्मीको तो ज्ञान न था, क्या होता है ध्यान न था ।
रहती थी सखियोंके संग, गान वाद्य सुन भरी उमंग ॥ ५ ॥
इसी बीचमें फैली बात, देखो वह आई बारात ।
हाथी घोड़े हैं जैसे, कभी न देखे थे वैसे ॥ ६ ॥
घरवालोंकी अगवानी, वरवालोंने भी मानी ।
तुरत सभी शुभ समय विचार, रूपचन्दके पहुँचे द्वार ॥ ७ ॥
हुई द्वार-पूजा सानन्द, किये गये सब बाजे बन्द ।
जनवासे बैठी वारात, दिन डूबा, हो आई रात ॥ ८ ॥
रूपचन्द भी गया वहीं, हरिसेवकसे बात कही ।
दो सो लेकर तुरत भगा, पूरा उसका भाग्य जगा ॥ ९ ॥
स्त्रीको रूपये देता था, मनो पाप-फल लेता था ।
पर लोलुप वह हुई नहीं, जाकर बैठी अलग कहीं ॥ १० ॥
मण्डपमें अब वर आया, वधुओंने मंगल गाया ।
सबमें छाया नव उत्साह, क्रमसे होने लगा विवाह ॥ ११ ॥
रूपचन्दको व्यापा पाप, चढ़ बैठा तृष्णाका ताप ।
कैसे रुपये और मिलें, सिकता-थलमें कमल खिलें ॥ १२ ॥
शुरू हुई ज्यों सप्तपदी, रूपचन्दसे हुई बदी ।
पेट पकड़ वह गिरा कराह, भरने लगा आह पर आह ॥ १३ ॥
मेरे उरमें पीड़ा है, पर न किसीको व्रीडा है,
कर दो मुझको अलग कहीं, जी सकता हूँ हाय नहीं ॥ १४ ॥
मेरे दुखको शीघ्र हरो, दवा-दानकी युक्ति करो ।
समयोचित है काम यही, जी सकता हूँ हाय नहीं ॥ १५ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मेरा क्या संयोग हुआ, मुझे भयंकर रोग हुआ।
हा ! बे-ब्याही सुता रही, जी सकता हूँ हाय नहीं ॥ १६ ॥
ब्याह–कर्मको उठा धरो, मेरे अन्तिम कर्म करो।
कर पर जमता नहीं दही, जी सकता हूँ हाय नहीं ॥ १७ ॥
क्या सबसे बतलाऊँगा, कैसे मुख दिखलाऊँगा।
क्यों कट जाती नहीं मही, जी सकता हूँ हाय नहीं ॥ १८ ॥
वर मन ही मन दंग हुआ, ब्याह-मनोरथ भंग हुआ।
रूपचन्दकी देख दशा, हेतु समझ, वह खूब हँसा ॥ १९ ॥
जब कारणका बोध हुआ, सबके मनमें क्रोध हुआ।
सबके आसन डोल उठे, सभी वेगसे बोल उठे ॥ २० ॥
रूपचन्द ! नखरे छोड़ो, नहीं धर्मसे मुख मोड़ो।
उठो, सुताका करो विवाह, निन्दित है अधर्मकी चाह ॥ २१ ॥
जाति-च्युत हो जाओगे, जी कर मृतक कहाओगे।
कभी पाप क्या फला कहीं ? कर्म–भोग क्या टला कहीं ? ॥ २२ ॥
पाँचों सौ रुपये लाओ, धर्म-दण्डसे बँच जाओ।
हरिसेवकको देवो फेर, रूपचन्द ! अब करो न देर ॥ २३ ॥
चाहे जातिच्युत करिए, चाहे मम सरवस हरिए।
कैसे रुपये, कैसा ब्याह, आह आह मरता हूँ आह ॥ २४ ॥
उसकी स्त्रीने रुपये सब, फेंक दिये आँगनमें तब।
रूपचन्द लख उठ बैठा, बहुत मनी मनमें ऐंठा ॥ २५ ॥
रुपया सबकी सम्मतिसे, और न्यायकी सम्मतिसे।
हरिसेवकको दिया गया, कर्म-धर्मका किया गया ॥ २६ ॥
रूपचन्द तब त्रस्त हुआ, कुछ कुछ धर्म-ग्रस्त हुआ।
धीरे बोला, बोलो मंत्र, कन्या दूँ निपटे षड्यंत्र ॥ २७ ॥
राम राम कह काम हुआ, रूपचन्द बदनाम हुआ।
हरिसेवकका व्याह हुआ, सबमें शुभ उत्साह हुआ ॥ २८ ॥
वर जोड़ी कन्या वरकी, सुखद रहे अपने घरकी।
सबने यह आशीस दिया, जनवासे प्रस्थान किया ॥ २९ ॥

मिट नहीं सकता विधिका लिखा,
पर इसे सुनता जन कौन है ?।
श्रवण-हीन मनो जग होगया,
थकित हो अथवा वह मौन है ॥ ३० ॥

समाप्त।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दुष्प्राप्य और अलभ्य जैनग्रंथ।

११ राद्धान्त।

श्रीचामुंडराय (रणरंगसिंह), अपने 'चारित्रसार' नामक ग्रंथके अन्तमें, एक पद्य इस प्रकारसे देते हैं:—

"तत्त्वार्थराद्धान्तमहापुराणे-
ष्वाचारशास्त्रेषु च विस्तरोक्तम्।
आख्यात्समासादनुयोगवेदी
चारित्रसारं रणरंगसिंहः॥"

इस पद्यसे मालूम होता है कि 'राद्धान्त' नामका भी कोई जैनग्रंथ है जिसे ११ वीं शताब्दीके विद्वान् चामुंडरायने अवलोकन किया था, और न सिर्फ अवलोकन ही किया था बल्कि उन्होंने चारित्रविषयक उसका कुछ सार भी खींचकर अपने उक्त ग्रंथमें रक्खा है। यह ग्रंथ किस भाषामें रचा गया है, इस बातका यद्यपि ऊपरके पद्यसे कोई पता नहीं चलता तो भी श्रीवीरनन्दीके 'आचारसार' ग्रंथमें इसका एक पद्य 'उक्तं च राद्धान्ते' इस वाक्यके साथ उद्धृत पाया जाता है, जिससे ग्रंथका भाषासम्बंधी विषय बहुत कुछ स्पष्ट हो जाता है। वह पद्य इस प्रकार है:—

स्वयं ह्यहिंसा स्वयमेव हिंसनं
न तत्पराधीनमिह द्वयं भवेत्।
प्रमादहीनोऽत्र भवत्यहिंसकः
प्रमादयुक्तस्तु सदैव हिंसकः॥

इससे मालूम होता है कि ग्रंथकी भाषा संस्कृत है, वह एक सिद्धान्तप्रतिपादक ग्रंथ है और उसकी प्रतिपादनशैली उसके महत्त्वशाली होनेका प्रमाण दे रही है। मालूम नहीं, यह ग्रंथ कौनसे आचार्यका बनाया हुआ है, कब बना है, कितने श्लोकपरिमाण इसकी संख्या है और इस समय यह किस जगहके भंडारमें मौजूद है। अनेक भंडारोंकी सूचियाँ देखने पर भी हमें उनमें इसके अस्तित्वका पता नहीं चला। यह ग्रंथ दाक्षिणदेशके किसी भंडारमें जरूर होगा। अतः विद्वानोंको इस ग्रंथरत्नकी उधर शीघ्र खोज करनी चाहिये।

१२ सिद्धान्तसार।

श्रीजयशेखरसूरिविरचित 'षड्दर्शनसमुच्चय' नामक एक श्वेताम्बर ग्रंथके निम्न वाक्योंसे मालूम होता है कि 'सिद्धान्तसार' नामका भी कोई दि० जैनग्रंथ है और वह बड़ा ही कर्कश तर्कग्रंथ है।

स्याद्वादविद्याविद्योतात्प्रायः साधर्मिका अमी।
परमष्टसहस्री या न्यायकैरवचंद्रमाः॥ २८॥
सिद्धान्तसार इत्याद्यास्तर्काः परमकर्कशाः।
तेषां जयश्रीदानाय प्रगल्भंते पदे पदे॥ २९॥

मालूम नहीं यह ग्रंथ भी कौनसे आचार्यका बनाया हुआ है और कब बना है। हाँ, इतना जरूर है कि यह ग्रंथ राजशेखरसूरिके अस्तित्व-समयसे, अर्थात् वि० संवत् १४०५ से पहलेका बना हुआ है। राजशेखरके अतिरिक्त और किस किस विद्वानने इस ग्रंथका उल्लेख किया है और आजकल कहाँ कहाँके भंडारोंमें यह ग्रंथ पाया जाता है, ये सब बातें विद्वानोंके खोज करने योग्य हैं। 'सिद्धान्तसार' नामके और भी कुछ ग्रंथ जान पड़ते हैं, जिनमें एक ग्रंथ जिनचन्द्रसूरिका बनाया हुआ है, जिसका मंगलाचरण इस प्रकार है:—

जीवगुणठाण सण्णा पज्जति पाणमग्गणाणवुणे।
सिद्धान्तसारमिणमो भणामि सिद्धे णमंसित्ता॥ १॥

यह ग्रंथ प्राकृत भाषाका है और इसकी गाथाओंकी कुल संख्या ७७ है, ऐसा हमें सेठ माणिकचंदजी जे०पी०बम्बईके 'प्रशस्तिसंग्रह' नामके रजिस्टरसे मालूम हुआ है। ऊपर उद्धृतकी हुई इसकी मंगलाचरण और प्रतिज्ञा-विषयक गाथासे जान पड़ता है कि यह तर्क-ग्रंथ नहीं है और इस लिए यह उस 'सिद्धान्त-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सार' ग्रंथसे भिन्न जान पड़ता है जिसका उल्लेख राजशेखरसूरिने अपने ग्रंथमें किया है। इस ग्रंथके कर्ता कौनसे जिनचंद्रसूरि हैं और उन्होंने कब इस ग्रंथको बनाया है, यह भी अभी तक हमको मालूम नहीं हुआ। एक जिनचंद्र श्री-कुंदकुंदाचार्यके समकालीन कहे जाते हैं। यदि यह उन्हींका ग्रंथ है तो विशेष महत्त्वका और अच्छा प्राचीन ग्रंथ होगा और इसे शीघ्र माणिकचंद-ग्रंथमाला द्वारा प्रकाशित कर देना चाहिये। आरा सिद्धान्तभवनकी सूचीमें इस नामके तीन ग्रन्थोंका उल्लेख पाया जाता है। एकको 'जिनेंद्रदेवाचार्य' का बनाया हुआ लिखा है और उसकी श्लोकसंख्या ८० दी है, ग्रंथकी भाषा आदिका साथमें कोई उल्लेख नहीं। संभव है कि यह ग्रंथ वही जिनचंद्रसूरिका बनाया हुआ प्राकृत ग्रंथ हो जिसके मंगलाचरण-का ऊपर उल्लेख किया गया है और उसके ग्रंथकर्ताका नाम सूचीमें देते हुए कुछ भूल हुई हो। इसका निर्णय सिद्धान्तभवनके मंत्री साह-बको प्रगट करना चाहिये। दूसरा ग्रंथ भट्टारक सकलकीर्तिका बनाया हुआ प्रकट किया है। परंतु तब उसका नाम 'सिद्धान्तसार' न होकर 'सिद्धान्तसारदीपक' होना चाहिये। क्योंकि सकलकीर्तिके ग्रंथका प्रायः यही नाम है। ऐसे ही एक 'सिद्धान्तसारसंग्रह' नामका ग्रंथ 'नरेन्द्रसेन' आचार्यका बनाया हुआ है, परंतु हमें खालिस '**सिद्धान्तसार**' नाम देखना है। अस्तु; इस नामके तीसरे ग्रंथपर, उक्त सूचीमें, ग्रंथकर्ताका कोई नाम ही नहीं दिया जिससे कुछ निश्चय किया जाता। सिर्फ इतना सूचित किया है कि ग्रंथकी भाषा संस्कृत, पत्रसंख्या १४२ और लिपि कनड़ी है। और साथ ही यह प्रगट किया है कि वह कागज पर लिखा हुआ है। इससे इतना तो मालूम हो जाता है कि यह ग्रंथ जिनचंद्रके उक्त प्राकृत ग्रंथसे भिन्न है। परंतु सकलकीर्तिके 'सिद्धा-न्तसारदीपक' और नरेंद्रसेनके 'सिद्धान्तसार-संग्रह' से भी भिन्न है या कि नहीं, ऐसा कुछ भी मालूम नहीं होता। संभव है कि यह इन दोनोंमेंसे ही कोई ग्रंथ हो और सूचीमें भूलसे केवल 'सिद्धान्तसार' ऐसा नाम लिखा गया हो, अथवा यह भी संभव है कि यह वही तर्क-ग्रंथ हो जिसका राजशेखर सूरिने उल्लेख किया है। अतः भवनके मंत्री साहबको इसका भी निर्णय प्रकट करना चाहिये। हमें अफसोस है कि सिद्धान्तभवनकी सूची इतनी असावधानी और लापरवाहीसे तय्यार की गई मालूम होती है कि उस पर एकदम कोई विश्वास नहीं किया जा सकता और इस लिये हमको बारबार मंत्री साहबको तकलीफ देनेकी जरूरत पड़ती है। हमने हितैषीके पहले अंकोंमें भी उनसे कुछ दर्याफ्त किया था जिसके उत्तरका कष्ट उठाने-की अभी तक उन्होंने कोई कृपा नहीं की। हम आशा करते हैं कि मंत्री साहब अब अवश्य अपने पदके कर्तव्य पर आरूढ़ होंगे और उनकी सूचीपरसे जो जो भ्रम उत्पन्न होते हैं उन्हें पूर्ण उद्योगके साथ दूर करनेकी चेष्टा करेंगे। अथवा यों कहिये कि समाजको अपना साहित्यविषयक इतिहास तय्यार करने और जैनग्रंथोंका उद्धार करनेके लिये भवनसे जो कुछ सहायता मिल सकती है उसके देनेके लिये वे तय्यार रहेंगे। भवनमें, अधिक नहीं तो दो तीन सालके लिये, एक ऐसे कनड़ी जाननेवाले विद्वानकी मुस्तकिल तौरसे रखनेकी जरूरत है जो कनड़ी लिपि अथवा कनड़ी भाषाके ग्रंथोंपरसे, उन्हें देखकर आवश्यक सूचनाएँ दे सके और फुर्सतके वक्तमें बराबर उनका संग्रह करता रहे। साथ ही एक दो ऐसे लेखकोंके भी रक्खे जानेकी जरूरत है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो कनड़ी आदि लिपियों परसे देवनागरी अक्षरोंमें ग्रंथोंकी कापियाँ किया करें और जिनके द्वारा बाहरसे आई हुई ग्रंथोंकी माँगको बराबर पूरा किया जाय । ऐसा करने पर ही भवन समाजके लिये कुछ विशेष उपयोगी हो सकेगा और तभी वह समाजकी सहानुभूतिको भी अपनी ओर आकर्षित कर सकेगा । अन्यथा, वह भी समाजके दूसरे अनेक अंधकाराच्छन्न भंडारोंके तुल्य होगा और उनसे अधिक उसे कोई महत्त्व नहीं दिया जाय । आशा है, भवनके मंत्रीसाहब हमारी इस समयोचित सूचना पर अवश्य ध्यान देनेकी कृपा करेंगे ।

१३ जल्पनिर्णय ।

श्लोकवार्तिकमें विद्यानंद स्वामीके एक उल्लेखसे पाया जाता है कि ' जल्पनिर्णय ' नामका भी कोई जैनग्रंथ है, जिसे ' श्रीदत्त ' नामके एक महान् विद्वानाचार्यने बनाया था । वह उल्लेख इस प्रकार है:—

" पूर्वाचार्योऽपि भगवानमुमेव द्विविधं जल्पमावेदितवानित्याह—
द्विप्रकारं जगौ जल्पं तत्त्वप्रातिभगोचरम् ।
त्रिषष्टेर्वादिनां जेता श्रीदत्तो जल्पनिर्णये ॥ "

यह ग्रंथ बिलकुल अश्रुतपूर्व जान पड़ता है—किसी भी प्रसिद्ध भंडारकी सूचीमें हमारे देखने अथवा सुननेमें नहीं आया । विद्यानंद जैसे प्रतिभाशाली विद्वान् इस ग्रंथके कर्ताको ' पूर्वाचार्य ' और ' भगवान् ' शब्दोंके साथ स्मरण करते हैं और साथ ही उन्हें ६३ वादियोंको जीतनेवाला प्रकट करते हैं, इससे प्रकृत ग्रंथ कितना प्रभावशाली और महत्त्वको लिये हुए होगा, इसका सहज ही अनुमान हो सकता है । नहीं मालूम यह न्यायविषयक ग्रंथ कबका बना हुआ है और इस वक्त कहाँके भंडारमें आसन जमाये हुए है । हमारे भाईयोंको अपने अपने भंडारोंमें इसकी तलाश करनी चाहिये । यदि कोई महाशय इस पर पारितोषिक निकालें तो और भी अच्छा है । विद्यानंद स्वामीके द्वारा उपर्युक्त उल्लेखके होनेसे यह ग्रंथ विक्रमकी ९ वीं शताब्दीसे पहलेका बना हुआ है, इसके कहनेमें हमें कोई संकोच नहीं होता । परंतु कितने पहलेका बना हुआ है, यह बात अभी विचाराधीन है । श्लोकवार्तिकसे पहले बने हुए किसी ग्रंथमें यदि हमारे किसी विद्वान् महाशयको इस ग्रंथका नामोल्लेख देखनेमें आया हो तो वे कृपा कर हमें उससे सूचित कर अनुगृहीत करें ।

१४ वादन्याय ।

श्रीविद्यानंदस्वामीके ' पत्रपरीक्षा ' नामक ग्रंथसे मालूम होता है कि ' वादन्याय ' नामका भी कोई जैन ग्रंथ हैं और वह श्रीकुमारनन्दि आचार्यका बनाया हुआ है । पत्रपरीक्षामें इस ग्रंथके तीन पद्य निम्न प्रकारसे उद्धृत किये गये हैं:— " तथैव हि कुमारनंदिभट्टारकैरपि स्ववादन्याये निगादितत्वात्तदाह—

प्रतिपाद्यानुरोधेन प्रयोगेषु पुनर्यथा ।
प्रतिज्ञा प्रोच्यते तज्ज्ञैस्तथोदाहरणादिकम् ॥ १ ॥
न चैवं साधनस्यैकलक्षणत्वं विरुध्यते ।
हेतुलक्षणतापायादन्यांशस्य तथोदितं ॥ २ ॥
अन्यथानुपपत्त्येकलक्षणं लिंगमंग्यते ।
प्रयोगपरिपाटी तु प्रतिपाद्यानुरोधतः ॥ " ३ ॥

इन पद्योंसे पाया जाता है कि ' वादन्याय ' नामका ग्रंथ एक बड़ा ही महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है । यह ग्रंथ भी नवीं शताब्दीसे पहलेका बनाहुआ है । परंतु कितने पहलेका, यह, अभी निश्चित नहीं हुआ और न यही मालूम हो सका है कि ग्रंथ किस जगहके भंडारमें मौजूद है । अभी तक किसी भी भंडारकी सूचीमें हमें इस ग्रंथका नाम नहीं मिला । अफसोस ! हम जैनियोंके प्रमादसे कैसे कैसे ग्रंथरत्न लुप्तप्राय हो रहे हैं, जिनके अन्वेषणका समाजकी, ओरसे कुछ भी प्रयत्न जारी नहीं है, फिर भी हम लोग, अपनेको जिनवाणी-भक्त समझते हैं, यह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कितनी लज्जा और शरमकी बात है। हमारे भाईयोंको ऐसे ऐसे ग्रंथरत्नोंकी तलाश और उनके उद्धारमें लग जाना चाहिये। जहाँ अन्य सैकड़ों गृहकार्य करते हैं वहाँ ऐसे धर्मकार्यों-में भी कुछ थोड़ा बहुत योग जरूर देना चाहिये, इसे भी अपने जीवनका एक लक्ष्य बनाना चाहिये। आशा है हमारे भाई इस ग्रंथको भी अपने भंडारोंमें जरूर टटोलेंगे। उन्हें अपने अपने भंडा-रोंकी परिश्रम करके एक एक अच्छी विस्तृत सूची तय्यार कर लेनी चाहिये जिससे फिर बार बार किसी भी ग्रंथका पता लगानेके लिये उन्हें सारे भंडार टटोलना न पड़ा करें। **जिन भाई-योंको सूचीके लिये बाकायदा अच्छे फार्मोंकी जरूरत हो वे हमसे मँगा सकते हैं।** हमारी रायमें इस ग्रंथ पर भी तलाशके लिये परितोषिक नियत होने की जरूरत है।

१५ महाविद्योद्धार (श्रीकल्प-कौस्तुभ)।

'महाविद्योद्धार' अथवा 'श्रीकल्पकौस्तुभ' नामका यह ग्रन्थ मैसूर राज्यकी ओरियंटल लायब्रेरीमें मौजूद है और उसकी हस्तलिखित संस्कृत ग्रंथोंकी सूचीके द्वितीयभागमें नं० ७२९ पर दर्ज है। इसकी पत्रसंख्या १९ दी है और इसे आन्ध्राक्षरों (तेलगू) में लिखा हुआ प्रकट किया है। परंतु अभी तक यह मालूम नहीं हुआ कि यह ग्रंथ कौनसे आचार्यका बनाया हुआ है, कब बना है और इसका विषय क्या है। नाम परसे यह कोई अच्छा और अश्रुतपूर्व ग्रंथ मालूम होता है। आशा है कि मैसूरके कोई विद्वान् भाई, उक्त लायब्रेरीसे इस ग्रंथको निकलवाकर, इसके सम्बंधमें हमें कुछ विशेष हालातसे सूचित करनेकी कृपा करेंगे और दूसरे भाई भी अपने अपने यहाँके भंडारोंमें इसकी खोज लगाएँगे। (क्रमशः)

धनिक-सम्बोधन।

(१)

भारतके धनिको ! किस धुनमें
पड़े हुए हो तुम बेकार ?
अपने हितकी खबर नहीं,
या नहीं समझते जग-व्यवहार ?
अंधकार कितना स्वदेशमें
छाया देखो आँख उघार,
बिलबिलाट करते हैं कितने,
सहते निशदिन कष्ट अपार !

(२)

कितने वस्त्रहीन फिरते हैं,
क्षुत्पीडित हैं कितने हाय !
धर्म-कर्म सब बेच दिया है
कितनोंने होकर असहाय !!
जो भारत था गुरु देशोंका,
महामान्य, सत्कर्म-प्रधान,
गौरवहीन हुआ वह, बनकर
पराधीन, सहता अपमान।

(३)

क्या यह दशा देख भारतकी,
तुम्हें न आता सोच-विचार ?
देखा करो इसी विध क्या तुम
पड़े पड़े दुख-पारावार !
धनिक हुए जिसके धनसे क्या
योग्य न पूछो उसकी बात !
गोद पले जिसकी क्या उसपर
देखोगे होते उत्पात !!

(४)

भारतवर्ष तुम्हारा तुम हो
भारतके सत्पुत्र उदार,
फिर क्यों देश-विपत्ति न हरते
करते इसका बेड़ा पार ?
पश्चिमके धनिकोंको देखो
करते हैं वे क्या दिनरात,
और करो जापानदेशके
धनिकों पर कुछ दृष्टि-निपात॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(५)

लेकर उनसे सबक स्वधनका
करो देश-उन्नति-हित त्याग,
दो प्रोत्साहन उन्हें जिन्हें है
देशोन्नतिसे कुछ अनुराग।

शिल्पकला-विज्ञान सीखने
युवकोंको भेजो परदेश,
कला-कारखाने खुलवाकर,
मेटो सब जनताके क्लेश॥

(६)

कार्यकुशल विद्वानोंसे रख
प्रेम, समझ उनका व्यवहार,
उनके द्वारा करो देशमें
बहु उपयोगी कार्य-प्रसार।

भारत-हित संस्थाएँ खोलो
ग्राम ग्राममें कर सुविचार,
करो सुलभ साधन वे जिनसे
उन्नत हो अपना व्यापार॥

(७)

चक्करमें विलासप्रियताके
फँस, मत भूलो अपना देश,
प्रचुर विदेशी व्यवहारोंसे
करो न अपना देश विदेश,

लोकदिखावेके कामोंमें होन'
न दो निज शक्ति-विनाश,
व्यर्थव्ययोंको छोड़, लगो तुम
भारतका करने सुविकाश॥

(८)

वैर विरोध, पक्षपातादिक,
ईर्षा, घृणा, सकल दुखकार
रह न सकें भारतमें ऐसा यत्न
करो तुम बन समुदार।

शिक्षाका विस्तार करो यों
रहे न अनपढ़ कोई शेष,
सब पढ़ लिखकर चतुर बनें औ'
समझें हित-अनहित सविशेष॥

(९)

करें देश-उत्थान सभी मिल,
फिर स्वराज्य मिलना क्या दूर?
पैदा हों 'युग-वीर' देशमें,
तब क्यों रहे दशा दुख पूर?

प्रबल उठे उन्नति-तरंग तब,
देखें सब भारत—उत्कर्ष,
धुल जावे सब दोष-कालिमा,
सुखपूर्वक दिन कटें सहर्ष॥

सिद्धसेन दिवाकर और स्वामी समन्तभद्र।

[लेखक, श्रीयुत मुनि जिनविजयजी।]

(२)

सिद्धसेन दिवाकरका एक सिद्धांत जैनागमोंके रूढ़-अभिप्रायसे बहुत ही भिन्न है और वह जैन—(श्वेताम्बर) साहित्यमें बहुत प्रसिद्ध और बहु-विवेचित है। यह सिद्धांत केवलज्ञान और केवलदर्शनके स्वरूपसे सम्बन्ध रखता है। इसका पूरा परिचय करानेके लिए यह स्थान उपयुक्त नहीं है, फिर भी हम यहाँ संक्षेपसे सूचनमात्र कर देना चाहते हैं।

श्वेताम्बर संप्रदायमें जो सिद्धान्त ग्रंथ—सूत्रग्रन्थ विद्यमान हैं उनमें, लिखा है कि केवली (सर्वज्ञ) को केवलज्ञान और केवलदर्शन ये दोनों युगपत् अर्थात् एक साथ नहीं होते परंतु क्रमशः—एक बार केवलज्ञान औ एक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बार केवलदर्शन, इस प्रकार बारी बारीसे होते हैं। अर्थात् एक क्षण (जैन पारिभाषिक शब्द समय) में केवलज्ञान रहता है और दूसरे क्षणमें केवलदर्शन। इसी तरह प्रतिक्षण क्रमशः केवलज्ञान और केवलदर्शनस्वरूप केवलीका उपयोग परिवर्तित हुआ करता है। सिद्धसेन सूरिको यह विचार सम्मत नहीं है। वे इस विचारमें युक्तिसंगतता नहीं समझते। तर्क और युक्तिसे वे इस मान्यताको अयुक्त सिद्ध करते हैं। उनके विचारसे केवलीको केवलज्ञान और केवलदर्शन दोनों युगपत्—एक ही साथ होना युक्तिसंगत है। और वास्तवमें, अन्तमें वे फिर इन दोनोंमें परस्पर कोई भेद ही नहीं मानते—दोनोंको एक ही बतलाते हैं। इस विचारका उन्होंने अपने 'सम्मतिप्रकरण' में खूब ऊहापोह किया है। सिद्धसेनजीके इस विचार-भेदके कारण, उस समयके सिद्धान्तग्रन्थपाठी और आगमभक्तिप्रवण आचार्यगण उनको 'तर्कम्मन्य' आदि कटाक्षपूर्ण विशेषणोंसे अलंकृत करके, उनके प्रति अपना सामान्य अनादर-भाव प्रकट किया करते थे। सिद्धसेनके बाद सिद्धान्तग्रन्थपाठी आचार्योंमें जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण नामके एक बहुत समर्थ प्रतिभावान् आचार्य हुए हैं। इन्होंने जैनसूत्रोंके विस्खलित रहस्यको संकलित करनेके लिये 'विशेषावश्यक-भाष्य' * नामक महान् ग्रन्थकी रचना की है। इस भाष्यमें क्षमाश्रमणजीने दिवाकरजीके उक्त विचार-भेदका खूब ही खण्डन किया है और दिवाकरजीको आगमविरुद्धभाषी बतलाकर उनके सिद्धान्तको अमान्य ठहराया है। तत्त्वार्थसूत्र-की बृहद्व्याख्या × लिखनेवाले दिवाकरजीही-के नामधारी सिद्धसेन गणिने भी '**एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः।१-३१।**' सूत्रकी व्याख्यामें, दिवाकरजीके विचारभेद पर अनेक वाग्बाण चलाये हैं। उनके कुछ वाक्य देखिए—

" यद्यपि केचित् **पण्डितम्मन्याः** सूत्राण्यन्यथाकारमर्थमाचक्षते **तर्कबलानुविद्धबुद्धयो** वारंवारेणोपयोगो नास्ति, तत्तु न प्रमाणयामः। यत आम्नाये भूयांसि सूत्राणि वारंवारेणोपयोगं प्रतिपादयन्ति। "

ये जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण और सिद्धसेनगणि आदि दिवाकरजीके विचार-भेदमें केवल आगम-प्रामाण्यकी दलीलके सिवा और कुछ नहीं कह सके। युक्तिसे वे भी दिवाकरजीके विचारके कायल होते थे, परंतु अन्तमें यही कहकर छूट जाते थे कि युक्ति और तर्कसे चाहे जो सिद्ध होता हो परंतु आगमलिखित उल्लेखोंके विरुद्ध विचारको हम कभी आदर नहीं दे सकते। 'स्वमनीषिका सिद्धान्तविरोधिनी न प्रमाणम्, इत्यभ्युपेयते।' 'न चान्यथा जिनवचनं कर्तुं शक्यते सुविदुषापीति।'

मालूम पड़ता है, इस प्रकारकी तर्कप्रियताके कारण ही पिछले जैनसाहित्यमें दिवाकरजी 'तार्किक' नामसे प्रसिद्ध रहे हैं।

बहुतसे पाठक यह नहीं जानते होंगे कि श्वेताम्बर आचार्योंके इस विशिष्ट मतभेदके बारेमें दिगम्बर आचार्योंका क्या मत है। उनके लिए हम यहाँ पर यह कह देना चाहते

* यह भाष्य, मलधारी आचार्य हेमचंद्रविरचित बृहद्व्याख्याके साथ काशीकी 'यशोविजय-ग्रंथमाला' में मुद्रित हुआ है।

× श्वेताम्बर संप्रदायमें तत्त्वार्थसूत्र पर यही एक प्रसिद्ध और प्रौढ टीका है। यह टीका भाष्यके ऊपर लिखी गई है। ऐतिहासिक दृष्टिसे, तत्त्वार्थसूत्र-की दिगम्बर-श्वेताम्बरकी अन्य सब टीकाओंसे इस टीकाका महत्त्व अधिक है। आगे हम-इस विषयमें कुछ विस्तारके साथ लिखनेकी इच्छा रखते हैं। —लेखक।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कि दिगम्बराचार्योंको दिवाकरजीहीका मत मान्य है। दिगम्बर ग्रन्थोंमें सर्वत्र ही केवलज्ञानीको ज्ञान और दर्शन दोनों युगपत् लिखे हुए हैं। उनमें श्वेताम्बर आगमोंके अनुसार 'जुगवं दो णत्थि उवओगा' अर्थात् एक साथ दो उपयोग नहीं होते—यह विचार कहीं देखनेमें नहीं आता। इतना ही नहीं, बल्कि तत्त्वार्थराज-वार्तिकमें भट्ट अकलंकदेवने 'केवलिश्रुतसङ्घधर्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य।' ६-१३। इस सूत्रकी व्याख्यामें

'पिण्डाभ्यवहारजीविनः, केवलदशानिर्हरणाः, अलाबुपात्रपरिग्रहाः, कालभेदवृत्तज्ञानदर्शनाः, केवलिन इत्यादिवचनं केवलिष्ववर्णवादः।'

ऐसा लिख कर केवलीको कवलाहार माननेके समान इस 'क्रमोपयोगवाद' को भी, केवलज्ञानीके अवर्णवाद-स्वरूप बतलाकर दर्शनमोहकर्मके बन्धका कारण बतलाया है! अकलंक देवके इस कथनके विरुद्ध श्वेताम्बर विद्वान् सिद्धसेन गणिने भी इसी सूत्रकी व्याख्यामें—

'दिगम्बरत्वाद्विगतत्रपाः, **क्रमोपयोगभाजः**, समवसरणभूमावप्कायभूम्यारम्भानुमोदिनः सर्वोपायनिपुणा अप्यतिदुष्करदुरपचरमार्गोपदेशिनः; इत्याद्यवर्णोद्भासनम्।'

इस प्रकार लिख कर केवलज्ञानीको क्रमशः ज्ञान दर्शन होनेवाले मत (विचार) में युक्तिरहितता मानने या प्रतिपादन करनेवालोंके विचारको दर्शन मोहकर्मके बन्धका कारण बतलाया है!!

सिद्धसेनसूरिके विषयमें एक यह भी किम्वदन्ती प्रचलित है कि, इन्होंने एक बार श्रमण-संघके सामने यह विचार प्रदर्शित किया था कि, "जैनागम प्राकृत भाषामें है, इस लिये विद्वानोंका उनके प्रति विशेष आदर नहीं होता—विदग्धगण उन्हें ग्रामीण भाषाके ग्रन्थ समझकर, उनका अवलोकन नहीं करते—इस लिये यदि श्रमणगण अनुमति दें तो मैं उन्हें संस्कृत भाषामें परिवर्तित कर देना चाहता हूँ।" यह सुनते ही श्रमण-संघ एकदम चौंक उठा और 'मिच्छामि दुक्कडं' का उच्चारण करता हुआ, इनसे कहने लगा कि, "महाराज! इस अकर्तव्य विचारको अपने हृदयमें स्थान देकर आपने तीर्थंकर, गणधर और जिन-प्रवचनकी महती 'आशातना' (अवज्ञा) की है। ऐसा कलुषित विचार करनेके और श्रमण संघके सामने ऐसे उद्गार निकालनेके कारण, जैनशास्त्रानुसार आप 'संघबाह्य' के भूर्दण्डकी शिक्षा पानेके अधिकारी हुए हैं।" दिवाकरजी संघके इस कथनको सुनकर चकित हो गये; और मेरे एक सरल विचारसे भी संघको इतनी अप्रीति हुई, इस लिये बहुत ही दुखी हुए। संघसे तुरन्त उन्होंने क्षमा-प्रार्थना की और जो कुछ प्रायश्चित्त दिया जाने योग्य हो उसे देनेकी विज्ञप्ति की। कहा जाता है कि संघने उन्हें शास्त्रानुसार बारह वर्षतक 'बहिष्कृत' रूपमें रहनेका 'पाराञ्चित' नामक प्रायश्चित्त दिया, जिसे दिवाकरजीने सादर स्वीकार कर संघाज्ञाका पालन किया। प्रायश्चित्तकी मर्यादा पूर्ण हो जाने पर संघने उनको फिर अपनेमें शामिल कर लिया। इस किम्बदन्तीमें हमारी समझमें कुछ न कुछ ऐतिहासिक सत्य अवश्य है। ऊपर जो हमने थोड़ासा इनके विचार-स्वातंत्र्य और स्पष्ट-भाषित्वका परिचय दिया है, उससे यह जाना जा सकता है कि, यदि जैनागमोंके सम्बन्धमें इन्होंने ऐसी कोई बात श्रमण-संघके सामने प्रदर्शित की हो, अथवा कृतिरूपसे उपस्थित कर दी हो कि जिससे पुराणप्रिय और आगमप्रवण श्रमण-वर्गको असंतोष हुआ हो, तो, कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Sarayu Trust/eGangotri

तत्कालीन श्रमणसंघमें अथवा कुछ काल तक पीछे भी आगमाभ्यासी सैद्धान्तिकोंमें सिद्धसेनसूरिके प्रति अनादरभाव अल्परूपमें भले ही जागृत रहा हो; परंतु, परवादियोंके किये जानेवाले प्रचण्ड आक्रमणोंसे, जैनशासनकी रक्षा करनेके लिये प्रमाण और नयवादके प्रबल युक्तिपूर्ण सिद्धान्तोंकी स्थापनारूप जिस दुर्गमदुर्गके मूलको वे दृढ बना गये हैं उसके कारण उनके अनुगामी और पश्चाद्वर्ती सब हीं समर्थ जैनविद्वानोंने उनका बड़े गौरवके साथ स्मरण किया है। सुप्रसिद्ध तार्किक आचार्य मल्लवादीने सम्मति-प्रकरणकी टीका[1] लिखकर उनके प्रति अपनी उत्तम भक्ति प्रकट की है। जैनधर्मके अनन्यसाधारण तत्त्वज्ञ हरिभद्रसूरिने तो उन्हें 'साक्षात् श्रुतकेवली' लिखकर उनका अनुपम आदर किया है। तत्पश्चात् महात्मा सिद्धर्षिने 'न्यायावतार' की व्याख्या[3] लिखकर, तर्कपञ्चानन अभयदेवसूरिने 'सम्मतिप्रकरण' की २५ हजार श्लोक-परिमित विस्तृत और प्रौढ टीका[1] बनाकर, शान्त्याचार्य और जिनेश्वरसूरिने 'न्यायावतार' के सटीक वार्तिक[2-3] रचकर, सिद्धसेनसूरिके जैनतर्कशास्त्रविषयक सूत्रधारत्वका सगौरव समर्थन किया है। प्रचण्डतार्किक वादी देवसूरिने उन्हें अपना मार्गदर्शक बतलाया है;[4] और आचार्य हेमचंद्रने उनकी कृतियोंके सामने अपनी विद्वन्मनोरञ्जक कृतियोंको भी 'अशिक्षितालापकला' बतलाया है।

(अपूर्ण।)

---

१ यह टीका अब कहीं उपलब्ध नहीं है। ४-५ सौ वर्ष पहलेकी बनाई हुई एक ग्रन्थसूचिका हमारे पास है उसमें इस टीकाका नाम लिखा हुआ है।

२ देखो, 'पञ्चवस्तु' ग्रन्थकी निम्न लिखित गाथायें—

भण्णइ एगंतेण (णं) अम्हाण कम्मवाय (यो) नो इट्ठो।
णो सहाववाओ सुअकेवलिणा ज (जो) भणिअं॥
आयरियसिद्धसेणेण सम्मईए पइट्ठिअ-जसेण।
दूसमणिसा-दिवागर-कप्पत्तणओ तदक्खेण॥
—डेकनकालेजसंगृहीत हस्तलिखित पुस्तक पृ० १३१।

३ यह व्याख्या पाटणकी 'हेमचंद्राचार्यजैन सभा' की ओरसे छपकर प्रकाशित हुई है। इस व्याख्याके ऊपर राजशेखरसूरिका बनाया हुआ संक्षिप्त टिप्पणक भी है।

१ इस टीकाका थोड़ासा प्रारंभिक भाग काशीकी यशोविजय 'जैनग्रंथमाला' में प्रकाशित हुआ है। संपूर्ण ग्रंथ अभीतक नहीं छपा।

२-३ जिनेश्वरसूरिके वार्तिकका नाम 'प्रमालक्षण' है और वह केवल न्यायावतार सूत्रके आदिम श्लोकका विस्तार स्वरूप है। इस ग्रन्थके विषयमें विशेष जाननेके लिये देखो जैन हितैषी भाग १३ अंक ९-१० में मुद्रित हमारा 'प्रमालक्षण' शीर्षक लेख। यह ग्रंथ अहमदाबादके सेठ मनसुखभाई भगुभाईने छपवाकर प्रकट किया है। शान्त्याचार्यका वार्तिक भी जिनेश्वरसूरिके वार्तिककी तरह न्यायावतारके प्रथम श्लोकहीकी व्याख्या है। इसका नाम 'प्रमाणप्रमेयकलिका' है। यह काशीके 'पंडित' पत्रमें पं० विठ्ठलशास्त्री द्वारा संशोधित होकर प्रकाशित हुआ है; परंतु बहुत ही अशुद्ध छपा है।

४ देखो, 'स्याद्वादरत्नाकर' के प्रारंभमें निम्नलिखित श्लोक—

श्रीसिद्धसेन-हरिभद्रमुखाः प्रसिद्धा-
स्तेसूरयो मयि भवन्तु कृतप्रसादाः।
येषां विमृश्य सततं विविधान् निबन्धान्—
शास्त्रं चिकीर्षति तनुप्रतिभोऽपि मादृक्॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैनधर्म अनीश्वरवादी है।

संसारमें सबसे अधिक संख्या ईश्वरवादियोंकी है। वर्तमान दृष्ट संसारके लगभग ढाई अरब मनुष्योंमें ऐसे ही लोग अधिक हैं जो इस सृष्टिका कर्ता हर्ता विधाता एक अदृश्य शक्ति-विशेषको मानते हैं और वही ईश्वर, खुदा, या गाड आदि नामोंसे अभिहित होता है। हिन्दू, ईराणी, यहूदी, ईसाई आदि सभी धर्म ईश्वरके उपासक हैं और इन्हींके अनुयायियोंकी संख्या सबसे अधिक है। जीते-जागते बचे-खुचे धर्मोंमें जैन और बौद्ध ये दो ही धर्म ऐसे हैं जो वास्तवमें अनीश्वरवादी हैं, अर्थात् किसी ईश्वरविशेषके अस्तित्वको स्वीकार नहीं करते हैं। और इस भारतवर्षमें तो केवल जैनधर्म ही अनीश्वरवादकी थोड़ी बहुत रक्षा कर रहा है। बौद्धधर्म यहाँ बहुत थोड़ा—नाममात्रको—है; जो कुछ है यहाँसे बाहर चीन, जापान, श्याम आदि देशोंमें है।

जैन और बौद्ध धर्म इस अनीश्वरवादके कारण 'नास्तिक' भी कहलाते हैं। यद्यपि बहुतसे विद्वानोंके मतसे जो लोग परलोकको नहीं मानते हैं, या आत्माके अस्तित्वको नहीं मानते हैं, वे ही 'नास्तिक' कहे जाने चाहिएँ और इस दृष्टिसे जैनधर्म इस नास्तिकतासे मुक्त हो जाता है, परन्तु नास्तिकताका प्रचलित अर्थ ईश्वरका न मानना ही है। सर्वसाधारण लोग इस शब्दको इसी अर्थमें व्यवहृत करते हैं, इस कारण यह कहना असंगत नहीं कि जैनधर्म अनीश्वरवादी भी है और नास्तिक भी है।

परन्तु आजकलके जैनधर्मानुयायी अपनेको 'नास्तिक' नहीं कहलाना चाहते। इसे वे एक अपमानजनक शब्द समझते हैं और इस कारण उनके व्याख्यानों और लेखोंमें इस विषयका अकसर प्रतिवाद देखा जाता है। वे बड़ी बड़ी युक्तियाँ देकर सिद्ध किया करते हैं कि जैनधर्म नास्तिक नहीं है—वह परम आस्तिक है। कुछ समय पहले तो इस विषयकी चर्चा और भी जोरों पर थी। परन्तु हमारी समझमें यदि लोग 'नास्तिक' कहनेसे ईश्वरको न माननेवाला ही समझते हैं, अथवा 'नास्तिको वेदनिन्दकः' इस वाक्यके अनुसार वेदोंको न माननेवाले 'नास्तिक' पदवाच्य हैं, तो 'नास्तिक' कहनेसे हमें चिढ़नेकी आवश्यकता नहीं है, वरन् इसे उसी प्रकार अपना गौरव बढ़ानेवाला समझना चाहिए जिस तरह हम अपने अन्य 'स्याद्वाद' आदि मुख्य सिद्धान्तोंको समझते हैं।

बहुतसे जैनधर्मानुयायियोंको 'नास्तिक' के समान 'अनीश्वरवादी' बनना भी नापसन्द है। वे इस कलङ्क (?) के टीकेको भी अपने मस्तकमें नहीं लगाये रखना चाहते। इस टीकेको पोंछ डालनेका—कमसे कम फीका कर डालनेका—प्रयत्न हम अभी ही नहीं, बहुत समयसे कर रहे हैं। इस प्रयत्नमें थोड़ी बहुत सफलता भी हुई है। सर्वसाधारण लोग यह समझने लगे हैं कि जैनी भी ईश्वरको मानते हैं और अपने मन्दिरोंमें हमारे ही समान उसकी मूर्तियाँ भी स्थापित करके पूजते हैं, सिर्फ इतना अन्तर है कि वे अपने ईश्वरको महावीर, पार्श्वनाथ, नेमिनाथ जिनदेव आदि नामोंसे पुकारते हैं। परन्तु वास्तवमें जैनधर्म अनीश्वरवादी है और यह उसकी अस्थिमज्जागत प्रकृति है। वह न छुपायेसे छुप सकती है और न बदलनेसे बदली जा सकती है। जब तक जैनधर्म और जैनविज्ञानका आमूल परिवर्तन न कर दिया जाय, तब तक उसमेंसे अनीश्वरवाद पृथक् नहीं किया जा सकता।

जिन्होंने संसारके विविध धर्मोंके इतिहासका अध्ययन किया है वे जानते हैं कि प्रत्येक धर्म पर उसके पड़ौसी धर्मोंका, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष किसी न किसी रूपमें, कुछ न कुछ प्रभाव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अवश्य पड़ा करता है और जिस धर्मके अनुयायियोंकी संख्या कम हो जाती है अथवा जिसका प्रचार कम हो जाता है, उस पर तो दूसरे बलवान् और देशव्यापक धर्मोंका प्रभाव बहुत ही अधिक पड़ता है। बिना उनके प्रभावोंसे प्रभावान्वित हुए वह रह ही नहीं सकता। जिस समय बौद्ध और जैनधर्मका प्रभाव देशव्यापी हो रहा था, उनके अहिंसामूलक उपदेशोंके प्रति जनसाधारणका बहुत ही अधिक झुकाव हो रहा था, उस समय हिन्दूधर्म पर इन दोनों ही धर्मोंका बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा था और उसका फल यह हुआ था कि हिन्दूधर्ममेंसे 'वैदिक हिंसा' की विधियाँ निकाल दी गई या परिवर्तित कर दी गई और दूसरी सैकड़ों बातोंमें संशोधन परिवर्तन किया गया। इस विषयमें किसी किसी विद्वानकी तो यहाँ तक सम्मति है कि वर्तमान हिन्दूधर्म प्राचीन हिन्दूधर्मका मूल स्वरूप नहीं किन्तु संस्कृत (संस्कार किया हुआ) स्वरूप है और उसके अंग प्रत्यंगोंमें बौद्ध-जैनधर्मोंके प्रभावके चिह्न सुस्पष्टरूपसे दृष्टिगोचर होते हैं। इसी प्रकार जब जैनधर्मका ह्रास हुआ, और हिन्दूधर्मका प्रभाव फिर बढ़ा, तब स्वयं उसे हिन्दूधर्मके प्रभावसे प्रभावान्वित होना पड़ा। २०-२५ करोड़ हिन्दुओंके बीचमें १०-१५ लाख जैनधर्मानुयायी रहें और उन पर उनका प्रभाव न पड़े, यह संभव नहीं। जैनधर्मने जिस प्रकार हिन्दूधर्मको कुछ दिया था, उसी प्रकार उससे कुछ लिया भी।

हिन्दूधर्मसे या ब्राह्मणधर्मसे हमने क्या क्या लिया है, इसका विवेचन किसी अन्य लेखमें किया जा सकेगा; यहाँ केवल अनीश्वरवादका प्रसंग है, अतएव इसके सम्बन्धमें इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि हिन्दूधर्मके प्रभावसे हमने अपने अनीश्वरवाद पर ऐसा मुलम्मा चढ़ा दिया है, कि वह साधारणदृष्टिसे देखनेवालोंको ईश्वरवाद जैसा ही प्रतीत होता है। केवल विशेषज्ञ ही यह जान सकते हैं कि जैनधर्ममें वस्तुतः ईश्वरके लिए कोई स्थान नहीं है।

ईश्वर शब्दके वास्तविक अर्थ हैं—ऐश्वर्यशाली, वैभवशाली, शक्तिशाली, स्वामी, अधिकारी, कर्तृत्ववान् आदि। इहलोकमें जो दर्जा स्वतंत्र सम्राट या महाराजका है, वही परलोकमें ईश्वर या परमेश्वरका है। परन्तु जैनधर्म इहलोक या परलोकमें इस प्रकारके किसी सत्ताधीशको माननेसे सर्वथा इंकार करता है। उसका ईश्वर किसी साम्राज्यका स्वेच्छाचारी शासक तो क्या होगा, किसी रिपब्लिक (प्रजातंत्र देश) का प्रेसीडेण्ट भी नहीं है, यहाँतक कि रूसकी सोवियट-सरकारका प्रधान भी नहीं है। वह एक ईश्वरको भी तो नहीं मानता है। उसके यहाँ यदि ईश्वर है तो वह एक नहीं, लाखों करोड़ों असंख्य अनन्तकी संख्यामें है। अर्थात् जैनमतानुसार इतने ईश्वर हैं कि उनकी गिनती नहीं हो सकती और आगे भी वे बराबर इसी अनन्त संख्यामें अनन्त कालतक होते रहेंगे। क्योंकि जैनसिद्धान्तके अनुसार प्रत्येक आत्मा अपनी अपनी स्वतंत्र सत्ताको लिए हुए मुक्त हो सकता है। आजतक ऐसे अनन्त आत्मा मुक्त हो चुके हैं और आगे भी होंगे। ये मुक्त जीव ही जैनधर्मके ईश्वर हैं। इन्हींमेंसे कुछ मुक्तात्माओंको—जिन्होंने मुक्त होनेके पहले संसारको मुक्तिका मार्ग बतलाया था—जैनधर्म तीर्थंकर मानता है।

जैनधर्मके ये मुक्तात्मा या ईश्वर संसारसे कोई सम्बन्ध नहीं रखते। न सृष्टिसंचालनकार्यमें उनका कोई हाथ है, न वे किसीका भला बुरा कर सकते हैं, न किसी पर कभी प्रसन्न होते हैं और न अप्रसन्न, न उनके पास कोई ऐसी सांसारिक वस्तु है जिस हम ऐश्वर्य, वैभव या

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अधिकारके नामसे पुकार सकें । न वे किसीका न्याय करते हैं, और न किसीके अपराधोंकी जाँच । जैनसिद्धान्तके अनुसार सृष्टि स्वयं-सिद्ध है, जीव अपने अपने कर्मोंके अनुसार स्वयं ही सुखदुःख पाते हैं, ऐसी दशामें मुक्तात्मा-ईश्वरोंको इन सब झंझटोंमें पड़नेकी जरूरत भी नहीं है ।

गरज यह कि जैनधर्ममें माने हुए मुक्तात्मा-ओंका उस ईश्वरत्वसे कोई सम्बन्ध नहीं है जिसे कि सर्वसाधारण लोग संसारके कर्ता हर्ता विधाता ईश्वरमें कल्पना किया करते हैं । उस ईश्वरत्वका तो उल्टा जैनधर्मके तर्क-ग्रन्थोंमें खूब जोरोंके साथ खण्डन किया गया है और इस तरहकी प्रबल युक्तियोंके साथ किया गया है कि उसे पढ़कर बड़ेसे बड़े ईश्वरवादियोंकी भी श्रद्धा डगमगाने लगती है । उक्त ग्रन्थोंके अध्ययनसे यह बात अच्छी तरह समझमें आ जाती है कि जैनधर्म वास्तवमें अनीश्वरवादी ही है—वह ईश्वरवादी नहीं कहा जा सकता ।

इस ईश्वरके न माननेका जैनधर्मके मूल सिद्धान्तोंसे इतना घनिष्ट और अविच्छिन्न सम्बन्ध है कि यदि यह निकाल दिया जाय, और दूसरे धर्मोंके समान एक सृष्टिकर्ता ईश्वर मान लिया जाय, तो जैन-विज्ञानकी सारी ही इमारत धराशायी हो जाय । ऐसी दशामें जैनधर्ममेंसे ' अनीश्वरवाद ' का सर्वथा अलग किया जाना तो असंभव था, अधिकसे अधिक उसका गहरा रंग कुछ फीका किया जा सकता था और अन्य ईश्वरवादियोंके प्रभावने यही किया । हमने अपने मूल अनीश्वरवादको सिद्धान्त ग्रन्थोंमें तो सुरक्षित रक्खा, परन्तु उसके बाहरीरूपमें यथासाध्य परिवर्तन कर डाला ।

एक बात और है । सर्वसाधारण लोग गहरी सैद्धान्तिक बातोंको नहीं समझते । धर्मके असली तत्त्वोंसे वे प्रायः अनभिज्ञ रहते हैं। तत्त्वोंके समझने समझानेका भार बहुश्रुत धर्म-गुरुओंपर ही प्रायः न्यस्त रहता है । वे स्वयं तो धर्मकी ऊपरी बातोंको—क्रियाकाण्ड आदि-को—ही धर्म समझते और मानते हैं । ऐसी दशामें यह संभव नहीं कि जैनधर्मके सर्व-साधारण उपासक—वे उपासक कि जिनके आसपास उनसे सैकड़ों गुणे ईश्वरको मानने पूजनेवाले अजैन रहते थे—बिना ईश्वरके रह जाते । जैनधर्ममें चाहे ईश्वर हो या न हो, पर उनका काम ईश्वरके बिना कैसे चलता ? अत एव उनके लिए अनीश्वरवादी होते हुए भी जैनधर्मने ईश्वरवादको उतना स्थान दे दिया जितना कि मूलसिद्धान्तोंकी रक्षा करते हुए दिया जा सकता था ।

इसमें सन्देह नहीं कि जैनधर्ममें मूर्तिपूजा बहुत प्राचीन समयसे प्रचलित है; परन्तु वह इस रूपमें नहीं थी जिसमें कि इस समय दिख-लाई देती है । मूर्तियोंका पंचामृत अभिषेक, उनका आह्वान, स्थापन, सन्निधीकरण, अष्ट द्रव्यसे पूजन, विसर्जन, अरहंतसिद्ध अरहंत सिद्धका जाप, मूर्तियोंकी प्रतिष्ठाके विधि विधान, आदि क्रियाओं पर हिन्दूधर्मके क्रिया-काण्डका और ईश्वरवादका रंग चढ़ा हुआ दिखलाई देता है । हमारे स्तोत्रों और स्तवनों पर तो कहीं कहीं यह रंग इतना गहरा है कि वे नाममात्रके परिवर्तनसे ईश्वरवादियोंके स्तोत्रोंकी पंक्तिमें निर्भय होकर रक्खे जा सकते हैं । पिछले जैनसाहित्यमें तो कहीं कहीं भक्तिगंगा ऐसी तेजीसे बही है कि उसके प्रवा-हमें बेचारे अनीश्वरवादके अस्तित्वकी कल्पना भी नहीं होती । एक जैनकवि कहते हैं:—

" स्वामी जैसे बने तैसे तारो,
मेरी करनी कछु न विचारो । "

यह ईश्वरबाद नहीं तो और क्या है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पौराणिक लेखकोंने इस विषयकी ओर और भी अधिक ध्यान दिया है। उन्होंने अपनी कवि-सुलभ कल्पनाओंसे जैनधर्मके उपासकोंके लिए प्रायः वे सभी मानतायें सुलभ कर देनेका प्रयत्न किया है जो अन्य ईश्वरवादियोंमें प्रचलित हैं। वे कहते हैं कि भगवान् ऋषभदेव सृष्टि-कर्ता ब्रह्मा है, क्योंकि उन्होंने चौथे कालकी आदिमें जीवननिर्वाहकी शिक्षा दी थी, उन्होंने ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्णोंको उत्पन्न किया था, उनके मुखसे चतुरनुयोग रूप चार वेद उत्पन्न हुए, वे सृष्टिके रक्षक थे, इसलिए विष्णु कहलाये, विष्णुके समान उनके भी सहस्र नाम हैं, वे कल्याणके करनेवाले हैं अतएव शंकर भी हैं। इस प्रकारकी और भी सैकड़ों बातें हैं।

और जैनधर्मके वर्तमान अनुयायियोंपर तो ईश्वरवादका रंग बे तरह चढ़ा हुआ है। उनमें १०० में से लगभग ९५ मनुष्य ऐसे होंगे जो औरोंके समान जिन भगवानको ही सुख दुःख देनेवाले समझते हैं, उन्हींका नाम जपा करते हैं, उन्हींकी सौगन्ध खाते हैं, और कहते हैं कि हमारा अमुक काम सिद्ध हो जायगा, तो हम भगवानका अमुक उत्सव करेंगे, शिखरजी गिरनारजीकी यात्रा करेंगे, अथवा मन्दिर बनवा देंगे। गरज यह कि ये लोग पूरे ईश्वरवादी बन रहे हैं। अन्तर केवल यही है कि इनके भगवान् श्रीकृष्ण, रामचन्द्र, शिव आदि न होकर ऋषभदेव, पार्श्वनाथ आदि हैं। यह सब हमारे पड़ौसके धर्मोंका प्रभाव नहीं तो और क्या है ?

गरज यह कि वर्तमान जैनधर्मपर जो कुछ 'ईश्वरवाद' की छाया दिखलाई देती है, वह स्वयं उसकी वस्तु नहीं है; किन्तु दूसरोंके प्रभावसे उत्पन्न हुई है। वास्तवमें जैनधर्म अनीश्वरवादी है और धर्मोंके इतिहासमें यही उसकी सबसे बड़ी विशेषता तथा महत्ता है। गतानुगतिकताके प्रवाहमें न बहकर, युक्ति और प्रमाणोंसे असिद्ध ईश्वरको माननेसे स्पष्ट इंकार कर देना, कोई साधारण बात नहीं है। हमें अपने इस अनीश्वरवाद या नास्तिकत्वको छुपानेकी आवश्यकता नहीं है। बल्कि अब तो इसके प्रकाशित और प्रचार करनेके लिए बहुत ही अनुकूल समय आ गया है।

संसारमेंसे ईश्वरके अवतार, अंश या उनके प्रतिनिधिस्वरूप राजाओंकी सत्ता उठ रही है। उनके स्वेच्छाचारी शासनका बहुत कुछ अन्त हो चुका है और हो रहा है। अब यह कोई नहीं मानता कि राजा लोगोंको ईश्वरके घरसे किसी पर शासन करनेका या अत्याचार करनेका परवाना मिला हुआ है। अब तो यही सिद्धान्त जगद्विजयी हो रहा है कि प्रत्येक जाति स्वराज्य प्राप्त करनेकी अधिकारिणी है और प्रत्येक मनुष्य अपने घरका राजा है। इसी तरह अब इस सिद्धान्तके विश्वविजयी होनेका समय आ रहा है कि संसारमें गतानुगतिकतासे, बिना किसी युक्तिप्रमाणके मान लिये गये ईश्वरका वास्तविक अस्तित्व नहीं है। मनुष्य सब तरहसे स्वतंत्र है। अपने सुख दुःखोंका वह आप ही कर्ता है और उनसे मुक्त होनेकी शक्ति वह स्वयं ही रखता है। इस समय संसारमें इस तरहकी भावनायें जोरोंपर हैं और अनेक सोशियालिस्टों तथा बोल्शेविकोंने तो स्पष्टतः घोषणा कर दी है कि जब तक ईश्वरके विश्वासका लोप नहीं होता तब तक संसारसे गुलामी या दासता नहीं उठ सकती। जैनधर्मके अनुयायियोंको भी इस बड़े भारी आन्दोलनके भागीदार बनकर अपने पुराने सिद्धान्तकी गरिमा प्रकट करना चाहिए।

—अनीश्वरवादी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिखितका मुद्रितसे मीलान।

श्रीमान् सेठ माणिकचंद हीराचदजी जे० पी० बम्बईके पुस्तकालयमें वसुनन्दि-उपासकाध्ययन (वसुनन्दिश्रावकाचार) की एक पुरानी हस्त-लिखित प्रति है जो अपनी आकृतिसे लगभग तीनसौ वर्षकी लिखी हुई मालूम होती है। इस प्रतिका हमने वसुनन्दि श्रावकाचारकी उस मुद्रित प्रतिके साथ जो मीलान किया जिसे बाबू सूरजभानजी वकील देववंदने, एक दूसरी मराठी अनुवादवाली मुद्रित प्रतिपरसे, संवत् १९६६ में छपाकर प्रकाशित किया था तो दोनोंमें परस्पर कुछ महत्त्वको लिये हुए भेद पाया गया, जिसे हम पाठकोंके अवलोकनार्थ नीचे प्रकट करते हैं:—

१—मुद्रित प्रतिमें 'अइथूलथूलथूलं' नामकी १८ वीं गाथा अधिक है। लिखितमें इसका अस्तित्व नहीं।

२—मुद्रित प्रतिकी २२ वीं गाथाका पूर्वार्ध लिखितप्रतिमें कुछ भिन्न दिया है। दोनों इस प्रकार हैं:—

'गोणसमयस्स एए कारणभूया जिणेहिं णिद्दिट्ठा—' २१॥
—लिखित।

'एदे कारणभूदा निच्छपरूवा जिणेहिं णिदिट्ठा ॥ २२॥'
—मुद्रित।

३—हस्तलिखितप्रतिमें 'ताणपवेसो......(' णाणपवेसो' गाथा नं० ३८) इत्यादि गाथा नं० ३७ के बाद 'उक्तं च' रूपसे यह गाथा दी है जो छपी हुई प्रतिमें नहीं है—

'अण्णाणं पविसंता दिंता ओगासमस्यमस्सेसिं।
मिल्लंताविय निच्चं सगसगभावं णविं चयंति ॥३८॥'

४—छपी हुई प्रतिकी 'संवेओ णिव्वेओ' इत्यादि गाथा नं० ४९ का उत्तरार्ध लिखितप्र-तिसे एकदम विभिन्न है, यथा—

मु०—वच्छल्लं अणुकंपा अट्ठगुणा हुंति सुम्मत्ते ॥
लि०—पूयां अ वस्यंजननं अरुहाईणं पयत्तेण ॥

१ स्तुति, ऐसा टिप्पणीमें दिया है।

५—लिखित प्रतिमें 'इच्छाइगुणा' नामकी गाथा नं० ५० के बाद यह वाक्य दिया है—

"अतो गाथाषट्कं भावसंग्रहग्रंथात्।"

इससे मालूम होता है कि अगली छह गाथाएँ 'भावसंग्रह' ग्रंथसे उद्धृत की हुई हैं। कौनसे भावसंग्रहसे उद्धृत की गई हैं यह पुस्त-कानुपलब्धिके कारण अभी तक मालूम नहीं हो सका। परंतु मुद्रित प्रतिमें यह वाक्य न होनेसे वे गाथाएँ अभी तक वसुनन्दी आचार्य-की ही समझी जाती हैं।

६—लिखित प्रतिमें 'रयणप्पसक्कर' इत्यादि गाथानं० १७२ के बाद निम्न गाथा अधिक दी है—

" पढमाए पुढवीए वाससहस्साइं दहजहण्णाऊ।
समयम्मि वण्णिया सायरोवमं होइ उक्किसं॥१७३॥

७—मुदित प्रतिकी गाथा नं० २०४ से पहले 'इय जो' ये शब्द लिखित प्रतिमें अधिक हैं और इनको मिलाकर पढ़नेसे छपी हुई प्रतिकी गाथा ठीक हो जाती है।

८—छपी हुई प्रतिकी गाथा नं० २३७ के 'आवस्ससच्छाइ' पदके स्थानमें लिखित प्रतिमें 'आगमसच्छाइ' पद दिया है। और नम्बर गाथाका गलतीसे वही रक्खा है।

९—मुदित प्रतिमें गाथा नं० ३६७ के बाद जो नीचेकी आधी गाथा दी है वह लिखित प्रतिमें नहीं है—

" काऊण अट्ठ एयं तराणि रइयरणगेसु चत्तारि।"

१०—मुदित प्रतिमें गाथा नं० ३७३ का पूर्वार्ध नहीं दिया। लिखितमें उसका पूर्वार्ध वह दिया है जो ऊपर नं० ९ में गाथा नं० ३६७ के बाद अधिक बतलाया है। मालूम होता है कि यह छापेमें कम्पोजको विभाजित करनेवा-लोंकी भूल हुई है। अन्यथा उसका हिन्दी अनुवाद यथास्थान दिया गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

११-मुदित प्रतिमें 'सम्मत्तणाणदंसण...' नामकी गाथा नं० ५३७ से आगे जो 'मोहक्खयेण...' तथा 'सुहमं च णाणकम्मं' नामकी दो गाथाएँ दी हैं वे लिखित प्रतिमें नहीं हैं।

इस संपूर्ण प्रदर्शनसे हमारा अभिप्राय यह प्रकट करनेका नहीं है कि अमुक लेखक अथवा प्रकाशकने जानबूझकर कोई भूल की है और न यथार्थ अयथार्थका निर्णय करना ही इस लेखका कोई उद्देश्य है। बल्कि इसके द्वारा हम सिर्फ यह जतलाना चाहते हैं कि जैनग्रन्थोंके प्रकाशित करनेमें जितनी सावधानीसे काम लेना चाहिये उतनी सावधानीसे वह नहीं लिया जाता और न उनके प्रकाशयोग्य संस्करणोंके तय्यार करनेमें उतना परिश्रम किया जाता है जितना कि किया जाना चाहिये। बहुधा चलता काम देखनेमें आता है जिसके हमारे पास अनेक उदाहरण मौजूद हैं। राजवार्तिक जैसे महान् ग्रंथ भी जिनके बारबार छपनेकी जल्दी कोई आशा नहीं की जा सकती, बहुत कुछ अशुद्ध छपे हैं। ग्रंथोंके अशुद्ध छपनेकी हालतमें कभी कभी यथार्थ वस्तुस्थितिके मालूम करने अथवा किसी ऐतिहासिक तत्त्वकी खोज लगानेमें बहुत बड़ी असुविधा उत्पन्न होती है। दूसरी एक बड़ी हानि यह भी है कि छपे ग्रंथोंके अधिक प्रचारसे जब कालांतरमें हस्तलिखित ग्रंथों अथवा उनकी प्राचीन प्रतियोंका लोप जायगा तब उस समय अशुद्धियोंको ठीक करने अथवा यथार्थ वस्तुस्थितिको निर्णय करनेका साधन ही एक प्रकारसे नहीं रहेगा और उससे अनेक वाधाएँ उपस्थित होंगी। अतः जैन ग्रंथोंको, अनेक प्राचीन प्रतियोंपरसे मीलान करके, उन प्रतियोंमें जिन जिन बातोंका परस्पर भेद हो उसे फुट नोटों द्वारा सूचित करके और यह दिखलाकर कि कहाँ कहाँकी कौनकौनसी प्रतिपरसे ग्रंथका संपादन और सशोधन किया गया है, बड़ी सावधानीके साथ शुद्ध और साफ छापना चाहिये। और जहाँतक बन सके प्रस्तावना, विषयसूची, श्लोकानुक्रमणिका और परिशिष्ट आदिके द्वारा उनके संस्करणोंको उपयोगी बनानेका अच्छा यत्न करना चाहिये। * आशाहै कि जैनग्रंथोंके संपादक और प्रकाशक महाशय हमारी इस समयोचित सूचनापर अवश्य ध्यान देंगे और इस बातकी पर्वाह नहीं करेंगे कि ऐसा करनेमें हमें कुछ विशेष अर्थव्यय और समयव्यय करना होगा, वह तो करना ही चाहिये।

विना मूल्य।

हमारे यहांसे जो पुस्तकें विना मूल्य भेजी जाती थीं उनमेंसे 'अनित्य भावना' और 'विवाहका उद्देश्य' ये दो पुस्तकें समाप्त हो गई हैं। हम चाहते थे कि बम्बईसे इनकी कुछ और कापियाँ मँगाकर भेजनेका काम बराबर जारी रक्खें परंतु प्रेमीजीके पत्रसे मालूम हुआ कि वहाँ उनके कार्यालयमें इनकी कोई भी कापी नहीं रही। अतः अब हमारे भाइयोंको इनके लिये पत्र भेजनेका कष्ट नहीं उठाना चाहिए। हाँ, 'मेरी भावना' नामकी पुस्तक बराबर विना मूल्य भेजी जाती है। जिन्हें अपने तथा अपने इष्टमित्रादिकोंके लिये उसकी दो दो चार चार कापियोंकी जरूरत हो वे डाक खर्चके लिये आध आनेका टिकट भेजकर हमसे मँगा सकते हैं।

—संपादक।

---

* वसुनन्दिश्रावकाचारका प्रकृत संस्करण इन सब बातोंसे शून्य है और इसलिये उसका एक अच्छा उपयोगी नवीन संस्करण छपनेकी जरूरत है।

संपादक।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain, Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विविध प्रसङ्ग ।

(लेखक—श्रीयुत नाथूराम प्रेमी ।)

१ प्राचीन पुस्तकोंका मूल्य ।

प्राचीनताके हम सबसे बड़े भक्त हैं । उसके पीछे हम सदा ही पागल बने रहते हैं । जो कुछ ज्ञान-विज्ञान, विद्या-बुद्धि, धर्म-कर्म, शौर्य-वीर्य था, सो सब प्राचीनकालमें ही था । हमारी समझमें प्राचीनता ही सर्वश्रेष्ठताकी कसौटी है । परंतु उस परमोत्कृष्ट प्राचीनताकी इस मौखिम महिमा—या बातूनी पूजा-अर्चाके सिवाय हम और क्या सेवा-प्रतिष्ठा करते हैं, यह समझमें ही नहीं आता । पहले प्राचीन ग्रन्थों या शास्त्रोंको ही ले लीजिए । कहिए, हम लोग उनकी क्या इज्जत करते हैं ? वे भण्डारोंमें पड़े पड़े सड़ रहे हैं, दीमक और चूहे उनकी सेवा कर रहे हैं और परिणमन-शील काल उन्हें धीरे धीरे अपने विशाल उदर-देशमें डालकर नाम शेष कर रहा है । यही हमारी प्राचीन भक्ति और प्राचीनताकी पूजा है ! अब जरा उधर पाश्चात्य देशोंकी ओर देखिए । हमारी समझमें वे कोरे वर्तमान और भविष्यत्के पुजारी हैं, उनकी समझमें ज्ञान—विज्ञान आदि-की उन्नति प्राचीनकालकी अपेक्षा इस समय और इस समयकी अपेक्षा आगामी कालमें अधि-काधिक होनेवाली है । प्राचीनता उनकी दृष्टिमें एक कौतुककी, प्रदर्शिनीमें रखनेकी और संसा-रकी उन्नतिका एक क्रमबद्ध इतिहास तैयार करनेकी सामग्रीकी अपेक्षा और कोई विशेष महत्त्व नहीं रखती; फिर भी प्राचीन चीजोंको वे कितना बहुमूल्य समझते हैं, यह जानकर आश्चर्य होता है । एक समाचार पत्र (The Literary Digest) से मालूम हुआ कि अभी एक बहुत ही मामूली नाटककी एक प्रतिको एक अमेरिकन धनीने ३० ००० रुपया देकर खरीद किया है । इस पुस्तककी विशेषता यह है कि अँगरेजीमें यह सबसे पहले छपा हुआ नाटक है ! मुद्रित साहित्यके इतिहासमें यह एक बहुमूल्य 'चीज' होगी और इसके पास रखनेका सम्मान उक्त अमेरिकनको मिलेगा । (Book of Hours) नामकी एक मध्ययुगकी पुस्तक ११८०० पौण्डमें बेची गई है ! प्रसिद्ध यूनानी पण्डित अरस्तू (अरिस्टाटल) की एक सम्पूर्ण ग्रन्था-वली जो सन् १४८३ में रची गई थी २९०० पौण्डमें बिकी है । इस पुस्तकके कवर पेजपर अरस्तूका एक सुन्दर चित्र है । सन् १३३६ से १३४२ के बीचमें लिखी हुई नावेरकी रानी द्वितीय 'जेनीका जीवनकाल' नामक एक और पुस्तक ११८०० पौण्डमें बिकी है । इसमें छोटे छोटे ७५ चित्र हैं । दिग्विजयी बादशाह तैमूरलंगके पौत्रको भेटमें देनेके लिए सन् १४१० में समरकन्द्में जो पुस्तक लिखी गई थी, वह ५००० पौण्डमें बिकी है । उसमें ईराणके चित्र-कारोंके कई उत्तमोत्तम चित्र हैं । प्राचीन चित्रोंके संग्रह करनेका भी यूरोपके धनियोंको बड़ा भारी शौक है । अभी कुछ ही महिने पहले सर जोशुआ रेनाल्डका चित्रित किया हुआ एक चित्र वेस्ट मिनिस्टरके ड्यूकने ५२००० पौण्डमें खरीदा है !

क्या हमारे समाजके धनी भी अपनी प्राचीन-तापूजक प्रकृतिको कभी इस रूपमें सार्थक करेंगे ? क्या प्राचीन विद्वानों और आचार्योंके जीर्णशीर्ण ग्रन्थोंको संग्रह करनेकी ओर भी कभी उनका हृदय आकर्षित होगा ? इस समय यदि वे चाहें तो लाख पचास हजार रुपयोंमें ही हजारों दुर्लभ्य ग्रन्थोंका संग्रह कर सकते हैं और अपने पूर्वजोंकी अगणित कृतियोको सदाके लिए नष्ट होनेसे बचा सकते हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२ ईश्वरके विषयमें बोलशेविकोंकी राय।

समाचारपत्रोंके पाठक रूसकी जारशाही सत्ताको उलट-पलट देनेवाले बोलशेविकोंको जानते होंगे। इस समय संसारके साम्यवादियोंमें यही अग्रगण्य हैं। ऊँच नीच, धनी निर्धनी, राजा प्रजा, आदिकी सामाजिक विषमताओंको मिटादेनेवाले इनके सिद्धान्त जगत्प्रसिद्ध हो चुके हैं; परन्तु इनके धार्मिक विचारोंसे बहुत ही कम लोग परिचित हैं। हम यहाँपर उनके केवल ईश्वरसम्बन्धी विचारोंको उद्धृत करते हैं, जो एक प्रसिद्ध बोलशेविकके लिखे हुए हैं। वह कहता है—"मनुष्य जिन बातोंको बिलकुल नहीं जानता उनके जाननेका प्रयत्न अपनी खूब जानी हुई बातोंसे ही करता है। कूपमण्डूककी तरह वह समुद्रकी विशालताका माप कुएँके व्याससे ही करता है। मनुष्य समझता है कि अन्य चीजें भी वैसी ही होंगी जैसी कि वे चीजें जिन्हें वह रात दिन देखता सुनता रहता है। कहते हैं कि एक लड़कीका पालनपोषण एक ऐसे स्थानपर हुआ था, जहाँ मुर्गियोंका व्यवसाय होता था। वहाँ उसे रातदिन अंडोंसे ही काम पड़ता था। अतः अंडे सदैव उसकी आँखोंके सामने नाचा करते थे। एक बार जब उसने तारोंसे भरा हुआ आकाश देखा तब वह कहने लगी कि समस्त आसमानमें अंडे फैले हुए हैं। इसी प्रकार जब मनुष्योंने देखा कि संसारमें कुछ मनुष्योंका काम आज्ञा देना है और कुछका आज्ञा पालन करना, तब उन्होंने सोचा कि कदाचित् समस्त संसारका संगठन भी इसी प्रकार हुआ है। कोई शक्ति ऐसी भी अवश्य होगी जो सारे संसार पर हुकूमत करती है। इसी शक्तिकी कल्पनासे ईश्वरकी उन्नति हुई। संसारमें जो अधिकारी कुटुम्बका मुखिया या राजा हुकूमत करता था वह सबसे अधिक बुद्धिमान्, बलवान् और धनवान् होता था, इस लिए ईश्वर भी सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान और लक्ष्मीपति माना गया। कमसे कम रूसी भाषामें तो ईश्वर (Bog) शब्दकी उत्पत्ति उसी मूलसे हुई है जिससे धनिक (Bogate) की। ईश्वरमें विश्वास करना गुलामीमें विश्वास करना है। ईश्वरकी स्तुति 'प्रभु' कहकर की जाती है। प्रभु किसे कहते हैं? जो स्वामी है और गुलाम नहीं। निस्सन्देह हम ईश्वरप्रार्थनामें कहते भी हैं कि 'हे ईश्वर हम तेरे दास हैं।' इसके आतिरिक्त सर्वाजित, अखिलेश, इत्यादि विशेषण भी इसी बातके द्योतक हैं कि सबल विजयी धनियोंकी प्रभुतासे ही ईश्वरकी प्रभुताकी कल्पना उत्पन्न हुई है।" बोल्शेविकोंके इन विचारोंसे मालूम होता है कि वे ईश्वरको नहीं मानते और ईश्वरको साम्यवादके सिद्धान्तोंका घातक समझते हैं।

हमारा अनुमान है कि भारतके जैन बौद्ध आदि धर्म भी यहाँके प्राचीन साम्यवादी हैं; उन्होंने भी पूर्ण साम्य स्थापित करनेके लिए सृष्टिकी रचना, रक्षा और प्रलय करनेवाले किसी ईश्वरके आस्तित्वको स्वीकार नहीं किया है। जिस तरह उन्होंने सामाजिक विषमताजनित अत्याचारोंको दूर करनेके लिए ऊँच-नीच द्विज-शूद्र आदि भेदोंका विरोध किया था—ब्राह्मणोंकी प्रबल सत्ताको क्षीण किया था, उसी तरह धार्मिक गुलामीसे मुक्त करनेके लिए अनीश्वरवादका भी प्रचार किया था। कुछ ऐसे भी प्रमाण मिले हैं जिससे मालूम होता है कि इन धर्मोंने उस समय राजाओं या शासकोंके अनियंत्रित शासनको नष्ट करनेका भी प्रयत्न किया था और इसके लिए उस समय कई प्रजातंत्र स्थापित हुए थे जिन्हें कि 'गणतंत्र'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहते थे । कुछ विद्वानोंने पता लगाया है कि स्वयं भगवान् महावीरके पिता एक गणतंत्रके ठाकुर या प्रेसीडेण्ट थे ।

ऐसा जान पड़ता है कि सोशियालिज्म या बोल्शेविज्म आदि सिद्धान्त पुराने जैन बौद्ध आदि सिद्धान्तोंके ही वर्तमान देशकालानुरूप अवतार हैं—उन्हींके रूपान्तर हैं।

३ धर्मप्रचारके सम्बन्धमें गाँधीजीके विचार।

अहमदाबाद-आर्यसमाजके वार्षिक महोत्सवमें ता० १२ जनवरीको महात्मा गाँधीने एक छोटासा परन्तु महत्त्वपूर्ण व्याख्यान दिया था। उसमें आर्यसमाजके सम्बन्धमें कई बातें बड़े मार्केकी कही थीं। नीचे उनका सारांश दिया जाता है:—

" आर्यसमाजके आधुनिक आन्दोलनमें मुझे दो बड़ी भारी त्रुटियाँ खास तौरसे मालूम हुई हैं। एक तो **असहिष्णुता** जिसे अँगरेजीमें 'इनटोलरेशन' कहते हैं। मैं यह नहीं कहता कि यह दोष केवल आर्यसमाजमें ही है, परन्तु इतना तो सच है कि वर्तमान पवन-प्रवाहमें आर्यसमाज सबसे अधिक बहा जा रहा है।

जिस धर्मप्रचारमें असहिष्णुताका प्रभाव है, वह सच्चा धर्मप्रचार नहीं है और वह बहुत समय तक टिक भी नहीं सकता। जिस गतिसे सर्वसाधारण प्रजाको किसी प्रकारकी हानि होती हो, उस गतिको रोकना ही धर्मका कार्य है। मैं नहीं जानता कि असहिष्णुतासे कभी किसीको लाभ हुआ है। असहिष्णुतापूर्ण धर्मप्रचार मिशनरियोंका अनुकरण होकर मिशनरी-स्वरूपमें बदल जाता है और धर्मका कार्य केवल 'प्रचार करना' हो जाता है। प्रचारका यह ढंग मुसलमानों और क्रिश्चियनोंमें है और आर्यसमाजने उन्हींसे इसे ग्रहण किया है। इसीसे उनमें असहिष्णुताका प्रवेश हुआ है।

सर ओयफ्रेड लायलने अपनी एक पुस्तकमें लिखा है कि धर्मका फैलाव ऐसे चुपचाप ढँगसे होना चाहिए जिसे लोग जान भी न पावें। दूसरे सम्प्रदायोंके समान आर्यसमाजने भी हालमें एक सम्प्रदायका रूप धारण कर लिया है। यदि कोई पूछे कि जिसे लोग जान भी न सकें ऐसे चुपचाप धर्मप्रचार कैसे हो सकता है? तो इसका उत्तर प्रकृतिसे मिलेगा।

प्रकृतिकी लीला देखिए। एक वृक्षके विषयमें विचार कीजिए। क्या आप देख सकते हैं कि वह किस प्रकार बढ़ता है? आप अपने शरीरके अवयवोंका विकास बिना किसी प्रकारकी उछल कूदके भी अनुभव कर सकते हैं। इसी तरह धर्मका विकास भी अनुभव किया जा सकता है।

शुद्ध धर्ममें असहिष्णुताको स्थान नहीं है। उसमें जो गुण हैं वे दूसरोंमें नहीं हैं। हिंसा और मारकाटसे हिन्दू धर्म निराला है—सुरक्षित है। दूसरे धर्म ऐसे नहीं रहे। यह धर्मद्वेषसे जुदा है। हिन्दूधर्ममें भी समशेरें चली हैं और लड़ाई-झगड़े हुए हैं; परन्तु दूसरे धर्मोंमें तलवारोंकी उपयोगिताकी हद हो गई है।

आर्यसमाजकी दूसरी कमी **जिह्वापर अधिकार न रखना** है। आजकल तलवारकी अपेक्षा जीभका उपयोग विशेष होता है और वह ऐसा होता है कि तलवारके घावसे भी अधिक कसकता है। यह बात मैंने समाजके उपदेशोंमें अनेक बार देखी है कि समाजी भाई जीभ पर काबू नहीं रखते। यह बात सबको समझ लेनी चाहिए कि हम सत्यको कभी अस्वीकार नहीं कर सकते।

ऋषिमुनियोंके स्वभावका विचार कीजिए और उनके स्वभावका अध्ययन कीजिए। आपको मालूम होगा कि वे केवल शान्तिसे,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दृढ़तासे और सात्विक भावसे उपदेश देते थे। कभी कभी वे कटुवचन भी सुनाते थे, परन्तु उनमें भी प्रियता और सत्यता रहती थी। समाजी भाइयोंको क्रिश्चियनोंकी प्रचारपद्धति छोड़ देना चाहिए। वह अनुकरणीय नहीं है।"

महात्मा गाँधीके उक्त विचारोंसे हमारे जैन-धर्मप्रचारक पण्डितगण भी बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं। समाजके समान हमारे यहाँ भी असहिष्णुता और कटु तिक्त वाक्यप्रहार, ये दोनों दोष बढ़े हुए हैं। इनसे धर्मप्रचार तो नहीं होता, उलटा धर्मद्वेष बढ़ता है। धर्मप्रचारकी वही पद्धति सर्वश्रेष्ठ है; जिसे प्राचीन समयके धर्मोपदेष्टा काममें लाते थे और जिसके विषयमें गाँधीजी इशारा करते हैं। शास्त्रार्थोंसे और तीक्ष्ण वाग्वाणोंसे लोग चुप हो सकते हैं, हार मान सकते हैं; परन्तु इससे वे विजयी विद्वानके धर्मको स्वीकार नहीं कर सकते और न उन्हें उस धर्मसे प्रेम ही हो सकता है। क्योंकि प्रेमका विशेष सम्बन्ध हृदयसे है, केवल बुद्धिसे नहीं। अतः उसके उत्पन्न करनेके लिए आघातसे नहीं किन्तु आकर्षणसे काम लेना चाहिए।

४ बीस करोड़का महान् दान।

अमेरिकाके लोग जैसे धनी हैं वैसे दानी भी हैं। ज्ञान और विज्ञानकी उन्नतिके लिए अमेरिकाके धनियोंने जितने बड़े बड़े दान किये हैं, संसारके किसी भी देशमें वैसे दान नहीं किये गये। करोड़ों रुपयोंका एकमुश्त दान करनेवाले वहाँ सैकड़ों धनी हो गये हैं और इस समय भी हैं। अभी हाल ही वहाँके सुप्रसिद्ध धनकुवेर मि० राकफेलरने विद्या-शिक्षाके लिए एक साथ बीस करोड़ रुपयोंका दान किया है। जिस देशमें इतने बड़े बड़े दान होते हैं, वहाँ यदि ज्ञान-विज्ञानकी असमान्य उन्नति दिखलाई दे, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है। वहाँके लोगोंको विद्याबुद्धिमें, कला कौशल्यमें, व्यवसाय वाणिज्यमें और सभ्यता शिष्टतामें संसारके शिरोभूषण बनना ही चाहिए। "किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या।"

५ पारसी जातिकी दानशीलता।

भारतवर्षमें पारसियोंकी जनसंख्या एक लाखसे कुछ ही अधिक है; परन्तु वह बड़ी ही धनसम्पन्न जाति है, साथही बड़ी ही दानशीला भी है। समयोपयोगी सार्वजनिक कार्योंमें उसके बराबर दान इस देशकी किसी भी जातिके धनियोंने नहीं किया है। कुछ समय पहले इस जातिके एक धनी मि० एन० एम्० वाडियाने समस्त भारतवासियोंके कल्याणार्थ अनेक हितकर कार्योंके लिए एक करोड़ पचास लाख रुपयेका दान किया था। इतना बड़ा दान इस देशमें वर्तमान समयमें और किसीने भी नहीं किया है। इस दान-द्रव्यसे अनेक शुभकार्य हो रहे हैं। इसी वाडिया वंशकी एक जेरबाई नाम्नी महिलाने अभी हाल ही पचास लाख रुपयोंका एकमुश्त दान किया है। यह धन पारसी जातिके दरिद्र और मध्यमश्रेणीके लोगोंकी सहायतामें खर्च किया जायगा। निस्सन्देह स्त्रीजातिके लिए यह दान बड़े ही गौरवकी बात है। विख्यात धनी सर जमसेदजीताताने कुछ वर्ष पहले वैज्ञानिक शिक्षाके लिए जो तीस लाख रुपयेका दान किया था और जिससे बंगलोरमें एक विशाल विज्ञान-शिक्षालय खुला हुआ है, उसे पाठक भूले न होंगे। तातावंशने पटनाके प्राचीन खंडहर खोदनेके लिए, पूनेके भाण्डारकर इन्स्टिट्यूटमें एक भवन बनवा देनेके लिए, तथा और भी अनेक उपयोगी कामोंमें अनेक दान किये हैं। बम्बईका जमसेदजी जीजीभाई नामका विशाल हास्पिटल, जे० जे० आर्ट स्कूल, आदि और भी अनेक संस्थायें पारसियोंकी दानशील-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ताका परिचय दे रही हैं । पारसियोंकी इस दानशीलता और सार्वजनिक सेवावृत्तिने ही उन्हें इस देशकी एक गण्य मान्य जाति बना रक्खा है ।

६ एक और बड़ा भारी दान ।

कलकत्तेके सुप्रसिद्ध वकील सर रासविहारी घोषका नाम जैनहितैषीके पाठक अवश्य जानते होंगे । उन्होंने कुछ वर्ष पहले कलकत्ता-विश्व-विद्यालयको एक वैज्ञानिक कालेज खोलनेके लिए दस लाख रुपयेकी रकम प्रदान की थी । उक्त कालेज खुल चुका है और उससे देशका बड़ा भारी उपकार हो रहा है । अब आपने उक्त विश्वविद्यालयको ही ग्यारह लाख रुपये देनेका और भी संकल्प किया है । इससे फलित-रसाय-नकी शिक्षा देने और शिल्पवस्तुयें बनाना सिखानेकी व्यवस्था की जायगी । उपयोगिताकी दृष्टिसे यह दान बहुत ही महत्त्वका है । इससे देशका बहुत कल्याण होगा । फलित-विज्ञानकी शिक्षाकी इस समय देशको बड़ी भारी आवश्य-कता है । यदि देशमें इस शिक्षाका प्रचार होता, तो युद्धकालमें हमारे देशके व्यवसायी इस तरह हाथ पर हाथ रक्खे हुए न बैठे रहते ।

७ जैनोंकी दानशीलता ।

यह तो हुई मिथ्यातियोंके दानकी बातें, अब आइए पाठक, आपको जैनोंकी दानशीलता-के कुछ समाचार सुनावें । पिछले महीनेमें हमारे यहाँ रथप्रतिष्ठाओंकी खूब धूम रही । एक रथप्रतिष्ठा सागर जिलेके ' हरदी ' नामक ग्राममें हुई थी । उसमें लगभग २० हजार भाई एकत्र हुए थे । जो लोग वहाँ गये थे, उनका अनुमान है कि इस रथमें पचास हजार रुपयोंसे कम खर्च न हुआ होगा । जिन धनी महाशयने यह प्रतिष्ठा कराई थी, कोई ८–१० वर्ष पहले वे एक ऐसी ही प्रतिष्ठा और भी करा चुके थे । उस बार वे ' सिंघई ' बने थे अबकी बार जैनधर्मके शुभचिन्तकोंने उन्हें 'सवाई सिंघई'केपदसे विभूषित कर दिया । इसके बाद दो रथ प्रतिष्ठायें एक ही साथ जबल-पुरमें हुईं और वे और भी अधिक ठाठसे हुईं । इनमें भी हमारी समझमें ५०–६० हजारसे कम रुपयोंका श्राद्ध न हुआ होगा । इनके बाद तीसरी रथप्रतिष्ठा अकलतरा जि० विलासपुरमें हुई । संभव है; इसमें उतना रुपया खर्च न हुआ होगा । क्यों कि उस ओर जैनोंकी संख्या कम है और रथोंमें सबसे अधिक खर्च ' भोजन-प्रसाद'में ही लगता है । तो भी इस महँगाई-के जमानेमें २०–२५ हजारसे क्या कम खर्च हुआ होगा । गरज यह कि पिछले एक ही मही-नेमें अकेली परवार जतिके जैनोंने लगभग सवालाख रुपयेका दान कर डाला । बतलाइए, यह दानशीलता क्या मामूली है ? हमारी जैन जाति इस प्रकारके दान करनेमें निरन्तर तत्पर रहती है । प्रतिवर्ष सैकड़ों नये नये मन्दिर बन-वाना, पचासों वेदीप्रतिष्ठायें और बीसों रथ-प्रतिष्ठायें या विम्बप्रतिष्ठायें करना इसी दान-शीला जातिका काम है । और नहीं तो इन सब कामोंमें वह प्रतिवर्ष अधिक नहीं तो ६–७ लाख रुपये अवश्य खर्च कर देती होगी । बत-लाइए, और कौन जाति इस विषयमें उनकी बराबरी कर सकती है ।

८ परवार जातिकी दुरवस्था ।

अब जरा दूसरी ओरकी अवस्था देखिए । जिस परवार जातिके धनिकोंने एक महीनेमें लाख सवा लाख रुपये खर्च कर डाला है, उसकी दुरवस्था सुनकर हृदय काँप उठता है ?

कुछ समय पहले एक जैनसंस्थाके उपदेशक महाशय बुन्देलखण्ड और बघेलखण्डकी ओर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दौरा करके आये थे। उनके द्वारा मालूम हुआ कि उक्त प्रान्तोंकी रियासतोंमें परवार जातिके लोगोंकी दुरवस्थाका वर्णन नहीं हो सकता। वे बेचारे पढ़ेंगे लिखेंगे तो कहाँसे, (पढ़ाने लिखानेके वहाँ साधारण सुभीते भी नहीं है,) पेट भर भोजन पाना भी उनके भाग्यमें नहीं है। न वहाँ कोई व्यापारका क्षेत्र है और न उनके पास पूँजी ही है कि उससे वे कोई रोजगार कर सकें। बंजी और मेहनत मजदूरी करके ही वे किसी तरह अपना जीवन धारण कर रहे हैं। उनकी दुर्दशा देखकर पत्थर भी पसीज उठता है। अन्यत्रके परवारोंमें भी इतनी नहीं, तो भी कम निर्धनता नहीं है। कुछ शहरों और खास खास स्थानोंको छोड़कर इस जातिका अधिकांश ग्रामोंमें रहता है और वह निर्धनताके समुद्रमें ही डूबा हुआ है। इसी कारण इसमें शिक्षितों–विशेष करके उच्च श्रेणीके शिक्षितों–की संख्या बहुत ही कम–प्रायः नहींके ही बराबर–है। यह अवस्था देखकर प्रश्न उठता है कि क्या इस जातिके धनियोंके–इन रथप्रतिष्ठाओंमें लाखों रुपये खर्च कर डालनेवालोंके—हृदय नहीं है? दयामय धर्मके उपासक होकर भी क्या ये उक्त गरीबोंपर दया करना अपना कर्तव्य नहीं समझते? इतनी विवेक बुद्धि इनमें कब जाग्रत होगी जब ये अपने भाइयों की, निर्धनों और अनाथोंकी सहायता करना अपना पहला धर्म समझेंगे? इन सब बातोंपर विचार करते हुए उन पण्डितों और जातिके पंचों पर बड़ी ही विरक्ति उत्पन्न होती है जो इन अविवेकियोंको, इस समयके लिए सर्वथा निरर्थक, इन रथप्रतिष्ठाओं जैसे कामोंमें धन खर्च करनेके लिए उत्साहित तथा प्रेरित किया करते हैं और उन्हें सिंघई, सवाई सिंघई आदिकी पदवियोंसे सम्मानित करते हैं। अब उपदेशकों और पण्डितोंको अपने उपदेशोंका रुख बदलना चाहिए। जब तक वे इनका सर्वथा निषेध न करेंगे, और डंकेकी चोट इनका विरोध करके दूसरे उपयोगी कामोंमें दान करनेका प्रतिपादन न करेंगे, तब तक ये गतानुगतिक भेड़िया धसान लोग माननेके नहीं। उनमें इतनी सूक्ष्म बुद्धि नहीं कि वे आपके शुभास्रवोंके तारतम्यको समझ सकें। जब तक उनके सामने यह कहा जाता रहेगा कि "यद्यपि ये भी पुण्यबन्धके कारण हैं, स्वर्गमोक्षके दाता हैं," तबतक वे इसके आगेकी यह बात समझनेवाले नहीं कि "परन्तु इस समय विद्याकी बहुत बड़ी आवश्यकता है, अतएव इसीके प्रचारके लिए दान करना चाहिए।" वे 'यद्यपि' और 'परन्तु' से जकड़ी हुई बातोंको नहीं समझते। उनसे तो साफ साफ कहा जाना चाहिए।

९ माणिकचन्द्र दि० जैन-ग्रन्थमाला।

यह जानकर पाठक प्रसन्न होंगे कि अब माणिकचन्द्र-ग्रन्थमालाके कामके लिए एक स्थायी विद्वान्, पं० पन्नालालजी सोनीकी नियुक्ति कर ली गई है, इस लिए अब ग्रन्थप्रकाशनका कार्य पहलेकी अपेक्षा अधिकतासे होने लगेगा और संशोधन तथा सम्पादनके कार्यमें भी विशेष उन्नति होगी। ग्रन्थमालाकी प्रबन्धकारिणी कमेटीने नीचे लिखे आठ नवीन ग्रन्थोंको प्रकाशित करनेकी अनुमति दे दी है:—

१ न्यायकुमुदचन्द्रोदय। (संस्कृत) आचार्य प्रभाचन्द्रकृत।

२ न्यायविनिश्चयालंकार। (संस्कृत) आचार्य वादिराजकृत।

३ त्रैलोक्यप्रज्ञप्ति। प्राकृत। यतिवृषभाचार्यकृत।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४ षटपाहुड़ । श्रीकुन्दकुन्दाचार्यकृत मूल प्राकृत और श्रुतसागरसूरिकृत संस्कृतटीका ।

५ मूलाचार । आचार्य वट्टकेरकृत मूल प्राकृत और आचार्य वसुनन्दिकृत संस्कृत आचारवृत्ति ।

६ भाव-संग्रह । श्रीदेवसेनसूरिकृत प्राकृत और पं० वामदेवकृत संस्कृत भावसंग्रह ।

७ नीतिवाक्यामृत । पं० सोमदेवकृत मूल और एक अज्ञातनामा विद्वानकृत संस्कृतटीका ।

८ रत्नकरण्डश्रावकाचार । मूल और प्रभाचन्द्र भट्टारककृत टीकासहित ।

इनमेंसे कई ग्रन्थोंकी कापियाँ हो रही हैं । इन सभी ग्रन्थोंकी प्राचीन प्रतियोंकी बहुत आवश्यकता है । प्रत्येक ग्रन्थकी जब तक कई कई प्रतियाँ न हों तबतक संशोधन और सम्पादन अच्छा नहीं हो सकता । इस लिए पाठकोंसे प्रार्थना है कि वे इनमेंसे जो जो ग्रन्थ जहाँ जहाँ हो, उनको भेजने और भिजवानेकी कृपा करें । ग्रन्थ सब सावधानीसे रक्खे जावेंगे और काम हो जानेपर सुरक्षित लौटा दिये जावेंगे । उनके आने जानेका खर्च भी संस्थासे दिया जायगा ।

इन ग्रन्थोंके अतिरिक्त और भी कहीं कोई प्रकाशित करने योग्य ग्रन्थ हों तो पाठकोंको उनकी सूचना भी हमें देते रहना चाहिए ।

ग्रन्थमालाके लिए जो दस हजारका नया चन्दा लिखा गया है, उसमेंसे अभी पाँच हजारके लगभग ही वसूल हुआ है । जिन महाशयोंके यहाँसे अभी तक चन्दा नहीं आया है उन्हें अब शीघ्र ही भेज देना चाहिए ।

ग्रन्थमालाका काम इतना बड़ा है और इतने ग्रन्थ प्रकाशित करनेके लिए पड़े हुए हैं कि इसके लिए जितनी सहायता मिल सके उतनी अपेक्षित है । धर्मात्माओं और दानियोंका लक्ष्य इसकी ओर निरन्तर रहना चाहिए ।

१० सेठीजीका छुटकारा ।

समाचारपत्रोंके पाठक यह समाचार कभीके पढ़ चुके होंगे कि आखिर सरकारने सुप्रसिद्ध पं० अर्जुनलालजी सेठी बी० ए० को छोड़ दिया और बिना किसी शर्तके छोड़ दिया । अर्थात् जैसा कि पहले सुना गया था कि वे जयपुर न जा सकेंगे, व्याख्यान न दे सकेंगे, शिक्षकका काम न कर सकेंगे, आदि शर्तोंपर छोड़े जानेवाले हैं, सो बात अब न रही । अब वे अपनी इच्छानुसार चाहे जो कार्य कर सकेंगे और चाहे जहाँ जा सकेंगे । किसी तरहकी कैद उनके लिए न रहेगी । सम्राट्की राजकीय घोषणाके अनुसार उन्हें यह मुक्ति मिली है, अतएव इस तरहकी आशा की भी गई थी कि अब वे बिना किसी शर्तके ही छोड़े जावेंगे । सरकारके इस कार्यके लिए हम उसे किसी प्रकारका धन्यवाद नहीं दे सकते, क्योंकि उसने राजकीय घोषणाके उपलक्ष्यमें केवल अपनी एक भूलका संशोधन भर किया है । सेठीजीके साथ बिना किसी अपराधके वह जो अन्याय कर रही थी, उस अन्यायको ही उसने इस अवसर पर इतने समयके बाद, दूर किया है । यह बात दूसरी है कि हममेंसे बहुतसे लोग अपने एक निरापराधी भाईको, ५–६ वर्षके लम्बे वियोगके बाद पाकर, और उससे प्रसन्न होकर, सरकारकी इस भूलसंशोधनको भी मोहवश उसकी कृपा समझ लेवें ।

सेठीजी बहुत समयके बाद, अगणित कष्ट सहन करके, हमसे मिले हैं । हम उनका हृदयसे स्वागत करते हैं और उन्हें विश्वास दिलाते हैं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कि जैनसमाजकी जो कुछ अवस्था है, उसके अनुसार उसने उनके लिए, जो कुछ वह कर सकता था, किया है। यह बात दूसरी है कि उसकी शक्ति बहुत थोड़ी है, उसकी आवाज बहुत बलन्द नहीं है; राजनीतिक क्षेत्रमें उसकी पैठ भी बहुत ही कम है; फिर भी उसने जो कुछ किया है उसका मूल्य है। वह अपने किये पर संतुष्ट नहीं है, यदि वह इससे अधिक कर सकता, तो अपना सौभाग्य समझता, जो कुछ वह नहीं कर सका है उसके लिए उसे दुःख भी है। परन्तु यह निश्चय है कि उसने इस कार्यमें अपनी शक्तिको छुपाया नहीं है। आपके लिए उसके हृदयमें बड़ा मान है। समाजके बच्चे बच्चेकी जीभ पर आपका नाम है। हजारों युवक आपको हृदयसे चाहते हैं और उनका विश्वास है कि आपको पाकर जैनसमाज उन्नतिके मार्गमें फिर तेजीसे कदम बढ़ायगा।

देशको आपसे बड़ी बड़ी आशायें हैं। अब आप वह काम कर सकेंगे, जिसके करनेकी शक्ति इस समय जैनसमाजकी किसी भी व्यक्तिमें नहीं है। आपने छःवर्षतक कठिन तपस्या की है। अब उसकी सिद्धिका समय है। आपका नाम इस समय देशव्यापी है। आपके द्वारा जैनसमाज सामाजिक, धार्मिक, और राजनीतिक आदि सभी क्षेत्रोंमें आशातीत प्रगति कर सकता है।

राजकीय घोषणाके अनुसार महात्मा भगवानदीनजी भी छोड़ दिये गये हैं। हम अपने इस बन्धुका भी सादर स्वागत करते हैं।

होलीकी बची-खुची गुलाल।

नये सम्पादकजी, इतनी बडी होली हो ली, पर तुमने एक बार भी अपने इस बड़े बूढ़े शास्त्रीको याद नहीं किया। तुम्हारे ये ढंग अच्छे नहीं। और नहीं तो कमसे कम तीज-त्योहारको तो अपने गुरुजनोंकी पूछताँछ कर लिया करो। दूसरी शिकायत मुझे तुम्हारी तबीयतके बारेमें है। इस तरहकी रूक्ष और नीरस तबीयत लेकर सम्पादकी की जा सकती है, यह मुझे आज ही मालूम हुआ। बिना भंग छाने और प्रेमकी तीन अलापे, समझमें ही नहीं आता कि तुम्हारी कलम कैसे चला करती है। यहाँ तो जब तक भंग भगवतीकी आराधना नहीं कर लेता, लिखनेकी तो कौन कहे, अच्छी तरह बोल भी नहीं सकता हूँ। और भैया, यदि तुम्हारे पत्रमें महीने भरमें दो चार भी हँसी मजाककी चुलबुली बातें न रहेंगी तो उसे पढ़ेगा ही कौन ? लोग ऐसे मूर्ख नहीं हो गये हैं जो गाँठके पैसे खर्च करके तुम्हारी ये पुराने जमानेकी मगज चाट जानेवाली बातें पढ़नेके लिए पत्र खरीदें। मेरा तो तुम्हारे पत्रके हैडिंग देखकर ही सिर भिन्ना उठता है। यदि सतजुग होता तो इस समय मैं तुम्हें शाप दिये विना नहीं छोड़ता। यदि तुम्हें इस बड़े बूढ़ेके अनुभवोंसे लाभ उठाना है तो सुनो, इस पागलपनको छोड़ दो और कुछ मतलबकी बातें लिखनेका अभ्यास करो। कोरे इतिहासके पीछे पड़कर अपना और दूसरोंका मस्तक खाली करनेकी आदत छोड़ दो।

लो, इस समय मैं गहरी छानकर आया हूँ। इस समयकी एक एक बात लाख लाख रुपयेकी होगी। यदि चाहो तो नोट करते जाओ, मौका मिलनेपर प्रकाशित कर देना।

* * * *

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हाँ लिख चलो । पंचमकालमें सच्ची बात कहना पाप है । उसे कोई सुनना भी नहीं चाहता । " मिले जुले पंचोंमें रहिए, प्राण जायँ साँची ना कहिए । " जबसे इस शरीरने खरी सुनाना शुरू किया है तबसे इसे कोई ' टका सेर ' भी नहीं पूछता । " खरो कहैया दाढ़ी जार । " यह बिलकुल सच है । मेरे ' शास्त्री ' होनेके विषयमें किसीको तिलतुष मात्र भी सन्देह नहीं है । फिर भी सिवनीकी ' शास्त्रीयपरिषत् ' का मेरे पास निमंत्रणपत्र भी नहीं आया । यद्यपि मुझे बुलानेमें आर्थिक दृष्टिसे उन्हें कोई हानि नहीं थी; क्योंकि मैं उनपर ' ट्रावलिंग ' खर्चका बिल नहीं भेजता । परन्तु शास्त्रीय दृष्टिसे मेरी खरी बातें उनके सारे गुड़को गोबर बना देतीं । मैं शास्त्री लोगोंसे यह कहे बिना कभी न रहता कि " तुम लोग अव्वल दर्जेके आलसी निष्कर्मा और बुद्धू हो, तुमसे क्या होने जानेवाला है । क्यों व्यर्थ ही उछल उछल कर बड़बड़ाते हो ? " इससे बेचारोंको चुल्लू भर पानीमें डूब मरना पड़ता । मैंने यदि परिषत्को सुशोभित किया होता, तो जिस समय पं० बंशीधरजी शास्त्रीको ' जैनसिद्धान्त ' का सम्पादकत्व भेट किया जा रहा था उस समय कहता कि ' जैनसिद्धान्त ' मासिकके बदले वार्षिक निकाला जाय । क्योंकि जब पं० खूबचन्दजी वर्ष भरमें सत्यवादीके दो तीन अंक ही मुश्किलसे निकाल पाते हैं, तब उनके बड़े भाई पं० बंशीधरजी निश्चय वर्षमें ही एक निकाल सकेंगे और इसीमें उनकी वयोज्येष्ठताकी शोभा है । मासिक साप्ताहिक पत्र निकालना मजूरोंका काम है, शास्त्रियोंका नहीं ।

* * *

पारसालकी परवार-महासभामें परवार भाई पूड़ियोंके लिए लड़ मरे थे । इस नये युगकी वह सबसे पहली सभा थी जिसमें पेट-पूजाके सम्बन्धमें इतनी गहरी छनी । सभापति महाशयने बहुत गम खाई, जो ब्राह्मणोंके हाथकी पूड़ियाँ खानेवालोंको जातिसे खारिज नहीं कर दिया । न जाने कहाँसे बीचमें ही एक त्यागी महाशय आ कूदे, और उन्होंने पूड़ियोंके प्रस्तावको भिक्षामें माँग लिया ! मुझे उनकी पूड़ी-प्रियता पर बड़ी दया आई । बेचारे त्यागी हो गये; फिर भी पूड़ी-मोहको न त्याग सके ।

* * *

इस पूड़ी-प्रस्तावके प्रधान पृष्ठपोषक जबलपुरवाले थे । वे लोग हलवाईके यहाँके खारे सेव खाना तो जायज समझते हैं, पर पूड़ियाँ खाना नाजायज ! इस पर कोई सुधारक पूछ बैठा कि जब बेसनके खारे सेव खाये जाते हैं तब आटेकी पूड़ी खानेमें क्या बुराई है ? मुझे बड़ा अफसोस हुआ कि जबलपुरियोंसे इसका कोई माकूल जवाब देते न बना । यदि उनका शास्त्रीय बुद्धिसे जरा भी परिचय होता तो कह देते कि जब चना और गेहूँ दो जुदा जुदा अन्न हैं तब उनके खानेके विचारमें भेद होना स्वाभाविक है । ब्राह्मणके हाथके स्पर्शसे चनेमें एक ऐसा रासायनिक असर आ जाता है कि उससे उसमें वह दोष नहीं रहता । यदि दोनों अन्नोंको एक सा मानोगे, तो फिर पुरुषोंके समान स्त्रियोंको भी दूसरा ब्याह करना जायज मानना पड़ेगा । क्योंकि स्त्री भी तो मनुष्य ही है !

* * *

मालूम नहीं, अभीकी जबलपुरकी परवार-सभामें पूड़ियोंका प्रश्न क्यों नहीं उठाया गया । पेट-पूजाके प्रश्नको हल किये बिना दूसरे कामोंमें हाथ डालनेके लिए बढ़ना निरी मूर्खता है । " सर्वारम्भास्तण्डुला प्रस्थमूलाः । " जान पड़ता है, सुधारकोंका जादू सभापति महाशय पर चल गया । आश्चर्य नहीं जो इन चलते पुर्जोंने पूड़ियोंके प्रश्नको दबा देनेकी रिश्वत लेकर ही उन्हें फिरसे सभापति बनाना स्वीकार किया हो । रामटेकमें ऐसे तो लक्षण दिखते थे कि न सिंघईजी फिर कभी सभापति बननेका नाम लेंगे और न लोग उन्हें सभापति बनावेंगे ही ।

* * *

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परवार-महासभाने एक प्रस्ताव वृद्धविवाहके रोकनेके लिए पास किया है। प्राय सभी जातीय सभाओंमें यह प्रस्ताव किया जाता है और उन पर बड़े बड़े जोरोंके व्याख्यान दिये जाते हैं। परन्तु सारे कुँओंमें ऐसी भाँग पड़ गई है कि कोई भी मस्तकको जरा ठिकाने लाकर यह नहीं सोचता कि इन प्रस्तावोंसे बूढ़े लोग ब्याहके मोहको कैसे छोड़ देंगे ? यदि श्रीगड़बड़ानन्द शास्त्रीकी ही यह इच्छा हो कि मुझे इस बुढ़ापेमें भी नई दुलहियाके नखरे देखना है, तो उसे रोकनेवाले तुम कौन ? यदि बिरादरी दण्ड देगी तो बन्दा समझेगा कि नई दुलहियाके बापको जब दो हजार दिये हैं, तब बिरादरी भी हजार पाँच सौ पानेकी हकदार है। दोकी जगह तीन हजार लगे। और बुढ़ापेमें ब्याह कोई कंगाल तो करता नहीं है, जो बिरादरीके दण्डकी परवाह करे। धनी और मुखिया ही इसके अधिकारी हैं। ऐसे कई जातीय सभाओंके सभापतियोंके ही नाम गिनाये जा सकते हैं जिन्होंने स्वयं इस प्रस्तावको पास किया है और फिर स्त्रीके मरते ही नया ब्याह कर डाला है। वृद्ध विवाहके रोकनेका यदि कोई उपाय है तो यही कि लड़कियाँ ब्याहके समय तक इतनी सज्ञान बना दी जायँ, वे अपने हित अहितको इतना समझने लगें कि बूढ़ोंसे ब्याह होनेका मौका आने पर साफ इन्कार कर बैठें और बूढ़ोंसे साफ साफ कह देवें कि अपनी पोतीके बराबर लड़कीके साथ शादी करनेमें तुम्हें शर्म आनी चाहिए। यदि जी नहीं मानता है, तो किसी अपनी ही उमरकी बुढ़ियाको देख लो। बस, बूढ़ोंकी अकल ठिकाने आ जायगी। इसके सिवाय जिनका एक बार ब्याह हो चुका है, उनको दोबारा कन्याके साथ ब्याह करनेका अधिकार ही नहीं रहना चाहिए। यदि वे ब्याह करना चाहें तो किसी विधवाके साथ करें। पर ये खरी बातें हैं। इन्हें न कोई सुनना चाहता है और न मानना।

—श्रीगड़बड़ानन्द शास्त्री।

(त्रुवल्लुव नायनार त्रुकुरल।

(लेखक—स्वर्गीय बाबू दयाचन्दजी गोयलीय बी० ए०।)

[जैनहितैषीमें तामिल भाषाके सुप्रसिद्ध महाकवि वल्लुवर और उनके अमरकाव्य 'कुरल' का कई बार उल्लेख किया जा चुका है। यह विक्रम संवत् १०० के लगभग रचा गया था। इसके कर्त्ताका धर्म क्या था, इस विषयमें मतभेद है; परन्तु अधिकांश विद्वानोंने यही निर्णय किया है कि वल्लुवर जैनधर्मके अनुयायी थे। तामिल भाषाभाषियोंमें इस काव्यका अत्यन्त आदर है। उसके पाठको ब्राह्मण और ब्राह्मणेतर सभी गीताके पाठके समान पुनीत मानते हैं। इसकी पूजा तक की जाती है। मद्रास यूनीवर्सिटीका यह एक पाठ्य ग्रन्थ है। यूरोपकी कई भाषाओंमें इसके अनुवाद हो चुके हैं। अँगरेजीमें भी इसके दो तीन अनुवाद हैं। कोई तीन चार वर्ष पहले हमारी इच्छा हुई कि इस अपूर्व काव्यका हिन्दी अनुवाद भी कराया जाय। तदनुसार स्वर्गीय बाबू दयाचन्दजी बी० ए० ने इस काव्यका अनुवाद करना शुरू कर दिया। जहाँतक हम जानते हैं, बाबू साहबने तीन चतुर्थांशसे अधिक अनुवाद तैयार कर लिया था और वे एक तामिल विद्वानकी सहायतासे उसका संशोधन कर रहे थे कि अचानक ही उनका स्वर्गवास हो गया। उन्होंने अपने एक पत्रमें मुझे लिखा था कि "ड० पोपका अँगरेजी अनुवाद बहुत ही भ्रमपूर्ण है, इस लिए मैंने एक मद्रासी विद्वानका किया हुआ दूसरा अंगरेजी अनुवाद मँगा लिया है; साथ ही मुझे यहाँ एक तामिल विद्वानसे परिचय हो गया है जो मूल कुरलके अच्छे जानकार हैं। अब मैंने इन दोनों साधनोंकी सहायतासे अपने अनुवादका संशोधन करना आरंभ कर दिया है। काम धीरे धीरे होगा, परन्तु अच्छा होगा।" खेद है कि बाबू साहबकी यह इच्छा पूर्ण न हो सकी और हमारा मनोरथ भी मनका मनहीम रह गया।

बाबू साहबके स्वर्गवासके बाद जब मैंने उक्त अनुवादकी खोजकी तो मालूम हुआ कि उसका बहुतसा अंश नहीं मिलता। न जाने कोई उनके यहाँसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसे उड़ा ले गया अथवा उन्होंने ही उसे किसीके पास संशोधन आदिके लिए भेजा था। मूल पुस्तकोंका भी कोई पता नहीं चला। हमारे पास जो अनुवाद आया है, वह प्रारंभसे लेकर ७५ नं० के पद्य तक और फिर ३८१ से लेकर ८९९ तकके पद्योंका है। बीच बीचमेंके भी कई पद्य छूटे हुए हैं। पूर्ण पुस्तकमें २६६० पद्य हैं। अर्थात् बाबू साहबका यह अनुवाद एक चतुर्थांशके लगभग है। अस्तु। जो कुछ बच रहा है उसे ही गनीमत समझकर हम इसे धीरे धीरे जैनहितैषीके पाठकोंकी भेट कर देना चाहते हैं। इसे प्रकाशित करते हुए हमारे सामने यह भावना रहेगी कि स्व० बाबू साहब अब भी अपने प्यारे जैनहितैषीके लिए कुछ न कुछ लिखा करते हैं और इससे हमें बहुत ही सन्तोष होगा।

हम प्रयत्न कर रहे हैं कि इस काव्यका शेष अनुवाद भी किसी विद्वानसे लिखा लिया जाय और वह पुस्तकाकार प्रकाशित हो। —नाथूराम प्रेमी।]

पहला सर्ग।

१—स्तुति।

१—जैसे प्रत्येक वर्णमालाका प्रथम अक्षर 'अ' होता है उसी प्रकार संसारकी प्रत्येक वस्तुका आदि ईश्वर है।

२—जिस मनुष्यमें ईश्वर-भक्ति नहीं है, उसकी विद्या कला व्यर्थ है।

३—जिस मनुष्यमें ईश्वर-भक्ति है उसकी निश्चयसे मुक्ति होगी।

४—जो मनुष्य रागद्वेषरहित ईश्वरकी भक्ति उपासना करेगा, उसे जीवनमें कुछ भी कष्ट नहीं होगा।

५—जो मनुष्य ईश्वरकी कृपादृष्टिका अभिलाषी रहता है वह अज्ञानजनित शुभाशुभ कर्मोंके परिणामसे मुक्त होगा, अर्थात् उसे ज्ञानकी प्राप्ति हो जायगी और ज्ञानकी प्राप्ति होनेसे वह जन्म मरणके दुःखोंसे छूटकर निर्वाण पद प्राप्त कर लेगा।

६—जो मनुष्य उस परमात्माके पदका अनुकरण करता है कि जिसने पाँचों इन्द्रियोंका निग्रह कर लिया है वह सदा अजर अमर रहेगा।

७—जो मनुष्य परब्रह्म परमात्माके चरणारविन्दको नमस्कार नहीं करता है, उसके दुःखोंका कभी अंत नहीं होगा।

८—जब तक मनुष्य दयानिधि परमात्माके चरण-कमलकी वंदना नहीं करता तब तक धन धान्यादिक संसारिक पदार्थोंसे उसकी लालसा नहीं जाती।

९—जो मनुष्य अपना मस्तक अष्टगुणालंकृत परमात्माके चरण कमल पर नहीं झुकाता है वह उन नेत्रोंके सदृश है कि जिनमें स्वयं अपने आपको देखनेकी शक्ति नहीं है।

१०—केवल वे ही मनुष्य जन्म-मरणके समुद्रसे पार होते हैं कि जो ईश्वरके चरणकी शरण लेते हैं।

२—जलवृष्टिकी महिमा।

१—संसारमें प्राणियोंका जीवन सामयिक जलवृष्टि पर निर्भर है, इसी कारण जलवृष्टि उनके लिये अमृतके तुल्य है।

२—जलवृष्टि द्वारा मनुष्यको प्रत्येक स्वादिष्ट पदार्थकी प्राप्ति होती है और जल स्वयमेव उसके भोजनका एक मुख्य अंग है।

३-४—यदि जलवृष्टि न हो तो सम्पूर्ण पृथिवीमें यद्यपि वह समुद्रसे वेष्टित है, दुष्काल फैल जायगा और किसान लोग जमीनको जोतना छोड़ देंगे।

५—जलसे ही पृथिवीको हानि पहुँचती है और जलसे ही फिर पृथिवीकी रक्षा होती है और जिनको हानि पहुँची थी उन्हें लाभ होता है।

६—यदि जलवृष्टि न हो तो हरी घासका एक तिनका भी कहीं नहीं उग सकता।

७—यदि सूर्य समुद्रके जलको सोखता रहे, परंतु वह फिर वृष्टिके रूपमें समुद्रमें न आवे तो अगाध समुद्रका जल भी कम हो जायगा।

८—यदि जलवृष्टि न हो तो न पृथिवी पर यज्ञ हों, न भोज्य हों, न दान हो, न धन हो और न धर्म हो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३—मुनियोंकी महिमा।

२१—शास्त्रोंमें उन महापुरुषोंकी बड़ी महिमा लिखी है जिन्होंने संसारिक वस्तुओंका सर्वथा त्याग कर दिया है और जो मुनिजीवनका विधिपूर्वक पालन करते हैं।

२२—जिस प्रकार मृतक मनुष्योंकी गणना करना असम्भव है उसी प्रकार मुनियोंकी महिमाका वर्णन करना मनुष्यकी शक्तिसे बाहर है।

२३—जिन महात्माओंने इस संसारको तुच्छ नाशवान् और असार समझकर सांसारिक सुखोंका त्याग कर दिया है और मुनिमार्गको ग्रहण कर लिया है उनका महत्त्व इस लोकमें सर्वोच्च है।

२४—जो महानुभाव अपनी इन्द्रियोंको उसी प्रकार अपने वशमें कर लेते हैं जिस प्रकार अकुंश हाथीको वशमें करता है वे स्वर्गभूमिके लिये उत्तम बीज हैं।

२५—जिस योद्धाने अपनी पाँचों इन्द्रियोंको निग्रह कर लिया है उसके बलके स्वयं देवाधिदेव साथी हैं।

२६—महापुरुष ही कठिन कार्योंको कर सकते हैं; नीच पुरुषोंसे कठिन कार्य नहीं हो सकते। (कठिन कार्योंसे यहाँ पर तात्पर्य यम, नियम, साधन, प्राणायाम इत्यादिसे है।)

२७—जो मनुष्य स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र इन पाचों इन्द्रियोंके विषयको भली भाँति समझता है और समझकर उनको अपने वशमें रखता है, संसार उसके अधीन हो जाता है।

२८—ऋषियोंके वाक्योंसे उनका महत्त्व प्रकट होता है।

२९—जिन महर्षियोंने संसारको सर्वथा त्याग दिया है उनका क्रोध इतना तीव्र होता है कि वे स्वयमेव क्षणमात्रके लिये भी उसे रोक नहीं सकते।

३०—उसी मनुष्यको ब्राह्मण कहना चाहिए जो ब्राह्मणके कार्य करता है। ब्राह्मणका कार्य जीव मात्रके प्रति दयाका व्यवहार करना है।

४—धर्मकी महिमा।

३१—जब धर्मसे इस लोक, परलोक दोनोंका सुख साम्राज्य मिल जाता है तब धर्मसे बढ़कर मनुष्यके लिये कौन वस्तु है।

३२—धर्मसे बढ़कर कोई लाभ नहीं है और धर्मकी विस्मृतिसे बढ़कर कोई हानि नहीं है।

३३—जिस प्रकार हो सके और जहाँ कहीं हो सके मनुष्यको निरंतर यथाशक्ति धर्मकार्य करने चाहिएँ।

३४—अपने हृदयको शुद्ध और निर्दोष बनाओ, इसीका नाम वास्तवमें धर्म है। इसके अतिरिक्त और सब केवल आडम्बर है।

३५—लोभ, द्वेष, क्रोध और दुर्वचन इन चार बातोंका त्याग करके मनुष्यको धर्म करना चाहिए।

३६—अपने मनमें कभी यह बात मत सोचो कि मरते समय धर्म कर लेंगे, अभी क्या जल्दी है; किंतु अभीसे धर्म करना प्रारम्भ कर दो। एक क्षणका भी विलम्ब न करो। क्यों कि मरते समय धर्म ही तुम्हारा एक मात्र सहायक और साथी होगा।

३७—धर्मका फल वाणिद्वारा प्रकट नहीं किया जा सकता। इसका ज्ञान तुम्हें पालकीमें बैठे हुए मनुष्य और पालकीको अपने कंधे पर रखकर दौड़कर लेजानेवाले मनुष्योंके देखनेसे भली भाँति हो सकता है।

३८—यदि तुम अपने जीवनमें निरंतर धर्मकार्य करो और एक दिन भी व्यर्थ नष्ट न करो तो तुम पुनरागमनके झंझटसे मुक्त हो जाओगे।

३९—अपनी स्त्रीके साथ रमण करनेमें ही सुख है। अन्यके साथ रमण करना दुःख और नाशका कारण है।

४०—मनुष्यको केवल धर्मकार्य करना चाहिए और अधर्मसे बचना चाहिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हिन्दीके नये और अपूर्व ग्रन्थ।

सिंहल विजय।

सुप्रसिद्ध नाटककार द्विजेन्द्रलाल रायका यह सबसे सबसे अन्तिम नाटक है। बहुत पुराने समयमें बंगालके एक राजकुमारने सिंहल या लंकाको जाकर जीता था और वहाँ बौद्ध धर्मका प्रचार किया था। इसी ऐतिहासिक कथानकको लेकर इस अपूर्व नाटककी रचना की गई है। पितृ-प्रेम, पुत्र-प्रेम, पति-प्रेम और बन्धु-प्रेमके इसमें अपूर्व चित्र खींचे गये हैं। रामायणमें केवल एक कैकेयी है, परन्तु इसमें आपको दो कैकेयीओं या विमाताओंके दर्शन होंगे। वहाँ केवल एक ही पत्नीभक्त पिता है; परन्तु यहाँ पत्नीभक्त पिताके सिवाय एक विपिता भी है। इसकी नायिका लीला और प्रतिनायिका कुवेणीका चरित्रचित्रण कविकी एक अपूर्व सृष्टि है। इन दोनोंके चरित्र प्रतिदानकी इच्छा न रखनेवाले निःस्वार्थ प्रेम और प्रतिदानके लिए व्याकुल वासनाविह्वल प्रेमके दो सजीव चित्र हैं। मेवाड़-पतनके समान यह भी विश्वप्रेम और देशभक्तिके भावोंसे भरा हुआ है। सुरुचिपूर्ण हास-परिहासकी भी इसमें कमी नहीं है। एक वार पढ़ना शुरू करके फिर आप इसे सहजहीमें न छोड़ सकेंगे। स्टेज पर भी यह सफलतापूर्वक खेला जाता है। द्विजेन्द्र बाबूका यह सबसे बड़ा नाटक है। अभी हालही छपकर तैयार हुआ है। मूल्य १≈), सजिल्दका १॥)

प्राकृतिक चिकित्सा। इसमें सब प्रकारके रोग होनेके कारण और उनके बिना कौड़ी पैसेके प्राकृतिक उपाय बतलाये गये हैं। ठंडे पानीके टबमें कटि-स्नान करना, मेहन-स्नान करना, बफारा (वाष्प स्नान) लेना, कोयलोंकी आँचसे पसीना लेना, धूप-स्नान करना, स्वच्छ जलको अधिक परिमाणमें पीना, लम्बी साँस लेना, व्यायाम तथा प्राणायाम करना, स्वच्छ वायुका सेवन करना, आदि आदि उपायोंको बड़े अच्छे ढँगसे इसमें बतलाया है। प्रत्येक गृहस्थके घरमें रहने योग्य पुस्तक है। मू० ।≈)

कर्नल सुरेश विश्वास। सुरेश विश्वास एक बंगाली थे। ये छुटपनमें बड़े ही खिलाड़ी, उपद्रवी, उद्धत और अवाध्य लड़के थे। पढ़ने लिखनेकी ओर इनकी जरा भी रुचि नहीं थी। ये घरसे भागकर यूरोप अमेरिका आदि देशोंमें वर्षों घूमते रहे और केवल स्वावलम्बनके बलसे उन्नति करते करते ब्राजिल देशकी सेनाके प्रतिष्ठित सेनापति हो गये। इतना ही नहीं ये इंग्लिश, फ्रेंच, पुर्तगीज आदि अनेक भाषाओंके और डाक्टरी ज्योतिष, प्राणिशास्त्र आदि अनेक विज्ञानोंके धुरन्धर पण्डित होगये। इस पुस्तकमें उन्हींका शिक्षाप्रद जीवनचरित है। मू० ॥)

विधवा कर्तव्य। एक बहुत ही अनुभवी विद्वानने इस पुस्तकको लिखा है। जैनियों और हिन्दुओंके प्रत्येक धर्म और पन्थकी विधवाओंका कल्याण करनेकी इच्छासे यह लिखी गई है। इससे विधवाओंके असह्य दुःख कम हो जायँगे, वे घरमें शान्ति रखनेकी, बालबच्चोंकी सेवा करनेकी, अच्छी शिक्षा देनेकी, समाज-सेवा करनेकी, दीन दुखियोंको सहायता पहुँचानेकी इस तरह अनेक प्रकारकी शिक्षायें पावेंगी और उनका निरर्थक जीवन समाज और देशके अर्थ लगने लगेगा। इसके उपदेश प्रत्येक विधवाके कानों तक पहुँचने चाहिए। सधवायें भी इससे बहुत लाभ उठा सकती हैं। मूल्य ॥)

देश-दर्शन।

अबकी बार मूल्य ३) की जगह २।) कर दिया गया है और सादी पुस्तकका मूल्य और भी कम अर्थात् १॥।) है। इस ग्रंथका अधिकाधिक प्रचार हो, इसी लिए यह मूल्य घटाया गया है। चित्र पहलेकी अपेक्षा दूने हैं, छपाई और बायंडिंग भी सुन्दर है। ग्राहकोंको इसके प्रचारका प्रयत्न करना चाहिए।

देश-दर्शनमें देशकी शोचनीय अवस्थाका रोमांचकारी दर्शन कराया है। इसके दरिद्रता और दुर्भिक्ष सम्बन्धी प्रकरण पढ़नेसे हृदय दहल जाता है। इस देशका दूसरे देशवालोंके साथ व्यापार, रोग, मृत्यु, उम्र, शिक्षा, आर्थिक अवस्था आदि सभी बातोंमें संख्यायें देकर मिलान किया है। विवाह-संस्कारका प्रकरण बड़े ही महत्त्वका है। उसमें विवाहका वैदिक कालसे अबतकका इतिहास दिया है और बतलाया है कि इस विषयमें देशका कितना पतन हो गया है। भारतके शहरोंकी स्वास्थ्यनाशिनी नारकीय दशा, वेश्याओंकी वृद्धि, लोगोंके नैतिक चरित्रका अधःपात, किसानोंकी कष्टदायक अवस्था, मजदूरोंकी मुसीबतें आदि विषयोंका भी अच्छा दिग्दर्शन कराया है। हिन्दीमें अपने ढंगकी एक ही पुस्तक है। माल्थसके सिद्धान्तोंको भारतपर अच्छी तरह घटाया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust Gangotri

साम्यवाद ।

युरोपकी वर्तमान अशान्तिका स्वरूप समझनेके लिए अपूर्व ग्रन्थ । इसमें भगवान् महावीर और बुद्धदेवके समयके प्राचीन साम्यवादसे लेकर अबतकके व्यापारसंघवाद, श्रमजीविसंघवाद, अराजकतावाद, सोशियालिज्म, बोल्शेविज्म, आदि भिन्न भिन्न प्रकारके साम्यवादोंका स्वरूप, उनके सिद्धान्त, उनका और उनके उत्पादक विद्वानोंका इतिहास, रूसकी भयंकर राज्यक्रान्ति आदि सभी बातोंको विस्तारपूर्वक लिखा है । इस विषयके सभी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों और समाचारोंको पढ़ करके यह ग्रन्थ लिखा गया है । जो लोग यह समझना चाहते हैं कि संसारमें आगे किस प्रकारके राज्य स्थापित होंगे और वर्तमानके अमीरों और गरीबोंके युद्धका परिणाम क्या होगा, उन्हें यह ग्रन्थ अवश्य पढ़ना चाहिए । पृष्ठ संख्या ५००, मू० २)

सुगम-चिकित्सा । खाने पीनेके नियमोंका विधिपूर्वक पालन करनेसे कैसे कैसे रोग आराम हो जाते हैं, यह बात इस अपूर्व पुस्तकके पढ़नेसे मालूम होगी और निरोग रहनेके उपाय सूझ पड़ेंगे । मूल्य दो आना ।

मूलाचार । आचार्य वट्टकेरका सुप्रसिद्ध ग्रन्थ । मूल प्राकृत, संस्कृतच्छाया और भाषाटीका सहित बहुत सुन्दरताके साथ हाल ही छपकर तैयार हुआ है । मूल्य लागत मात्र अर्थात् तीन रुपया ।

पाण्डव पुराण ।

श्रीशुभचन्द्राचार्यकृत संस्कृत ग्रन्थका पं० घनश्यामदासजी न्यायतीर्थकृत नवीन हिन्दी भाषानुवाद । वचनिकामें यह ग्रन्थ पहले पहल छपा है । इसे जैनोंका महाभारत समझना चाहिए । मूल्य साढ़े पाँच रुपये ।

हमारे यहाँ सब जगहके छपे हुए जैनग्रन्थ मिलते हैं ।

जैनग्रन्थ-उद्धारक कार्यालयके तमाम ग्रन्थ ।

हमने खरीद लिये हैं, इस लिए जिन भाइयोंको चाहिए वे हमसे मँगानेकी कृपा करें:--

१ ऋषिमण्डल मंत्र कल्प (मंत्र, पूजा और साधन-विधिसहित) । दूसरी बारका छपा हुआ । मू० ॥)

२ प्रतिष्ठासारोद्धार पं० आशाधर कृत । संस्कृत और भाषाविधिसहित । इसकी सहायतासे वेदीप्रतिष्ठा बिम्बप्रतिष्ठा आदि सब काम कराये जा सकते हैं । मू० १।।) और सजिल्दका २)

३ महावीरपुराण । भगवान् महावीर तीर्थकरका जीवन चरित । सकलकीर्तिभट्टारकके संस्कृतग्रन्थका पं० मनोहरलालजीकृत हिन्दी अनुवाद । मू० १॥) और १।।)

४ आलोचनापाठ भाषा, अर्थसहित । मूल्य -)॥

मैनेजर, जैन-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाव, बम्बई ।

बम्बईका माल ।

बम्बईका सब तरहका माल--कपड़ा, किराना, स्टेशनरी, पीतल ताँबा, दवाइयाँ, तेल, साबुन आदि--हमसे मँगाइए । माल दस जगह जाँच करके बहुत सावधानी और ईमानदारीके साथ भेजा जाता है । चौथाई रुपयेके लगभग पेशगी भेजना चाहिये । एकबार व्यवहार करके देखिए ।

नन्हेंलाल हेमचन्द जैन, कमीशन एजेण्ट,
चन्दाबाड़ी, पो० गिरगाँव, बम्बई ।

Printed by Chintaman Sakharam Deole, at the Bombay Vaibhav Press, Servants of India Socity's Building, Sandhurst Road, Girgaon, Bombay.

Publshed by Nathuram Premi, Proprietor, Jain-Granth-Ratnakar Karyalaya, Hirabag, Bombay.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीवर्द्धमानाय नमः ।

भाग १४ ।

जैनहितैषी ।

अंक ६ ।

चैत्र १९७६ । मार्च १९२० ।

विषय-सूची ।

पृष्ठ संख्या ।

१ सिद्धसेन दिवाकर और स्वामी समन्तभद्र ... १५३
२ दुष्प्राप्य और अलभ्य जैनग्रन्थ १६२
३ जैनजातिका सुधार १६६
४ हृदयकी तान (कविता) १६९
५ श्रीमती सरलादेवीका भाषण १७०
६ गड़बड़ानन्दिनी गवेषणायें १७५
७ विविध प्रसंग (१ महावीर स्वामीकी सच्ची-जयन्ती, २ उपवास और प्रार्थना, ३ धर्मके डूब जानेका भय, ४ स्वतंत्र विचारोंसे घृणा, ५ परमात्माकी पहिचान, ६ सहयोगीका भ्रम, ७ सेठीजी और जैनसमाज, ८ जैनों और अजैनोंका दान, ९ पुनर्विवाहदीक्षा, १० देशके लिये शुभचिह्न, ११ विधवा-विवाह, १२ एक प्रशंसनीय दान, १३ खंडेलवाल और हूमड़का विवाह-संबंध,) १७७
८ प्यारा भारतदेश (कविता) १८३
९ उत्थान (कविता) १८४

२३-६-१९२० ।

सम्पादक, बाबू जुगलकिशोर मुख्तार ।

मुंबई वैभव प्रेस.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रार्थनायें।

१ जैनहितैषी किसी स्वार्थबुद्धिसे प्रेरित होकर निजी लाभके लिए नहीं निकाला जाता है। इसके लिए जो समय, शक्ति और धनका व्यय किया जाता है वह केवल निष्पक्ष और ऊँचे विचारोंके प्रचारके लिए। अतः इसकी उन्नतिमें हमारे प्रत्येक पाठकको सहायता देनी चाहिए।

२ जिन महाशयोंको इसका कोई लेख अच्छा मालूम हो उन्हें चाहिए कि उस लेखको वे जितने मित्रोंको पढ़कर सुना सकें अवश्य सुना दिया करें।

३ यदि कोई लेख अच्छा न मालूम हो अथवा विरुद्ध मालूम हो तो केवल उसीके कारण लेखक या सम्पादकसे द्वेषभाव धारण न करनेके लिए सविनय निवेदन है।

४ लेख भेजनेके लिए सभी सम्प्रदायके लेखकोंको आमंत्रण है। —सम्पादक।

नियमावली।

१ जैनहितैषीका वार्षिक मूल्य २) दो रुपया पेशगी है।

२ ग्राहक वर्षके आरंभसे किये जाते हैं और बीचमें ७ वें अंकसे। आधे वर्षका मूल्य १।)

३ प्रत्येक अंकका मूल्य तीन आने।

४ लेख, बदलेके पत्र, समालोचनार्थ पुस्तकें आदि "**बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तार, सरसावा (सहारनपुर)**" के पास भेजना चाहिए। सिर्फ प्रबन्ध और मूल्य आदि सम्बन्धी पत्रव्यवहार इस पतेसे किया जायः—

मैनेजर, **जैन ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,**
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई।

नये जैनग्रन्थ।

१ उत्तरपुराण। आचार्य गुणभद्रकृत मूल और पं० लालारामजीकृत भाषानुवादसहित। मू० १०)

२ त्रैलोक्यसार। मूल और पं० टोडरमलजीकृत भाषावचनिका सहित। मू० ५॥)

३ क्रियाकोश। पं० दौलतरामजीकृत छन्दोबद्ध ग्रन्थ। मू० २॥)

४ समयसार। आचार्य अमृतचन्द्रकृत आत्मख्याति टीका, तात्पर्यवृत्ति और भाषाटीकासहित। निर्णयसागरका छपा हुआ। मूल्य ४॥)

५ तीस चौवीसीपाठ। कविवर वृन्दावनजी कृत। मू० २)

६ जैनसिद्धान्तप्रवेशिका। स्वर्गीय पं० गोपालदासजी कृत। मू० ।≈)

मैनेजर, **जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,**
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई।

जरूरत।

वनिता-विद्यालयके लिये हमें एक ऐसी अध्यापिकाकी जरूरत है जो कि वयकी प्रौढ़ा, समयानुसार धर्मज्ञ और जीवविचार नवतत्वादिककी ज्ञाता हो। वेतन योग्यतानुसार दिया जायगा। निर्वाहके लायक उचित स्थानका प्रबंध भी कर दिया जायगा। पत्र-व्यवहार निम्नलिखित पतेसे होना चाहिये। जो भाई हमें ऐसी अध्यापिकाका पता बतलाएँगे उनके हम बहुत आभारी होंगे।

जयलाभ मुनि
व्यवस्थापक वनिता-विद्यालय,
सदरबाजार जैनमंदिर, रायपुर सी. पी.

विलम्बका कारण।

गत फरवरी मासमें मुझ पर एकाएक इन्फ्लुएँजा और निमोनियाका आक्रमण हो जानेसे मैं प्रायः डेढ़ महीने तक बहुत ज्यादह बीमार रहा हूँ। इस बीमारीमें निर्बलताके अत्यधिक बढ़ जानेके कारण समय पर हितैषीका संपादन नहीं हो सका। इसी लिये यह अंक विलम्बसे पाठकोंकी सेवामें पहुँच रहा है। अप्रेल और मईके अंक भी अब यथाशक्य शीघ्र पाठकोंकी सेवामें पहुँचेगे, ऐसी आशा की जाती है। मेरी बीमारीके कारण हितैषीके पाठकोंको प्रतीक्षाजन्य जो कुछ कष्ट उठाना पड़ा है उसका मुझे दुःख है।

सरसावा
ता० १२-५-२०

जुगलकिशोर
मुख्तार।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिद्धान्ताचार्य पं. ... जी शास्त्री
...चार्य, श्री स्याद्वाद महाविद्यालय, वाराणसी
द्वारा भेंट

हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः ।

चौदहवाँ भाग । अंक ७

जैनहितैषी ।

फरवरी १९२०
फाल्गुन २४४६

न हो पक्षपाती बतावे सुमार्ग, डरे ना किसीसे कहे सत्यवाणी ।
बने है विनोदी भले आशयोंसे, सभी जैनियोंका हितैषी हितैषी ॥

सिद्धसेन दिवाकर और स्वामी समन्तभद्र ।

(लेखक-श्रीयुत मुनि जिनविजयजी ।)

(३)

जिस तरह, श्वेताम्बर संप्रदायके प्रसिद्ध आचार्योंने सिद्धसेन दिवाकरकी प्रशंसा की है उसी तरह दिगम्बर संप्रदायके सूरिवरोंने भी उनके विषयमें स्तुतिपरक उद्गार प्रकट कर, समुचित गौरव किया है ।

हरिवंशपुराणके कर्ता महाकवि जिनसेनसूरिने अपने पुराण-रूप महाकाव्यकी प्रस्तावनामें समन्तभद्रादि बड़े बड़े प्रभावक आचार्योंका स्मरणीय उल्लेख करते हुए सिद्धसेनसूरिका भी—उनकी सूक्तियोंकी प्रशंसा द्वारा—सादर स्मरण किया है । यथा—

जगत्प्रसिद्धबोधस्य वृषभस्येव निस्तुषाः ।
बोधयन्ति सतां बुद्धिं सिद्धसेनस्य सूक्तयः ॥

इसी तरह आदिपुराणके कर्ता महाकवि जिनसेनाचार्य (द्वितीय) ने भी अपने महापुराणके प्रारंभमें निम्नलिखित श्लोक द्वारा सिद्धसेन सूरिके पाण्डित्यकी प्रभुताका उल्लेख कर उनके प्रति अपना आदर-भाव प्रकाशित किया है—

प्रवादिकरियूथानां केशरी नयकेशरः ।
सिद्धसेनकविर्जीयाद् विकल्पनखराङ्कुरः ॥

भट्ट अकलंकदेवके ग्रन्थोंमें भी सिद्धसेन सूरिके वचन प्रमाणतया उद्धृत किये हुए दिखाई देते हैं[1] । इससे उनकी प्रामाणिकताका यह पद्य और भी अनेकानेक ग्रंथकारों द्वारा यत्र तत्र उद्धृत किया हुआ दृष्टिगोचर होता है । इस पद्यके विचार सिद्धसेनसूरिके मौलिक विचार हैं ।

१ तत्त्वार्थ राजवार्तिकके ८ वें अध्यायके १ म सूत्रके १७ वें वार्तिकमें, सिद्धसेनसूरिका, प्रथम द्वात्रिंशिकान्तर्गत निम्नलिखित सुप्रसिद्ध पद्य उद्धृत किया हुआ है—

सुनिश्चितं नः परतन्त्रयुक्तिषु
स्फुरन्ति याः काश्चन सूक्तिसंपदः ।
तवैव ताः पूर्वमहार्णवोत्थिता
जगत्प्रमाणं जिनवाक्यविप्रुषः ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूरा परिचय मिल जाता है और जैन धर्मके दोनों संप्रदायोंमें उनकी प्रतिष्ठा एकरूपसे स्वीकृत की गई है यह स्पष्ट जाना जा सकता है।

लक्ष्मीभद्र नामक दिगम्बर विद्वानके बनाये हुए 'एकान्त खण्डन' नामक ग्रन्थमें

अनेकान्तलक्ष्मीविलासाऽऽवासाः सिद्धसेनाचार्या असिद्धिं प्रत्यपादयन्,

'असिद्धं सिद्धसेनस्य........'

'नित्याद्येकान्तहेतोर्बुधततिमहितः सिद्धसेनो ह्यसिद्धम्।'

इत्यादि प्रकारके उल्लेखों द्वारा, सिद्धसेनसूरिका समन्तभद्रादिक आचार्योंके साथ हेतुके स्वरूप-विषयक विचार-विरोधका आदरयुक्त वर्णन किया हुआ है, और इस प्रकार समन्तभद्रादिकके समान ही उनकी प्रामाणिकता स्वीकृत की गई है[1]।

सिद्धसेनसूरिके बारेमें लिखे गये उपर्युक्त विचारोंके अवलोकनसे विज्ञ पाठक जान सकेंगे कि जैनधर्मके समर्थक आचार्योंमें उनका कितना ऊँचा आसन है और पिछले लेखकों द्वारा वे कितने सत्कृत हुए हैं।

स्वामी समन्तभद्र।

अब हम कुछ बातें सिद्धसेनसूरिहीके समानासनासीन स्वामी समन्तभद्रके बारेमें निवेदन करना चाहते हैं।

श्वेताम्बर साहित्यमें जो स्थान सिद्धसेन दिवाकरको मिला है वही स्थान दिगम्बर साहित्यमें स्वामी समन्तभद्रको प्राप्त है। श्वेताम्बर संप्रदायके तर्कशास्त्र-विषयक साहित्य पर जितना प्रभाव सिद्धसेनसूरिकी कृतियोंका पड़ा है, उतना ही प्रभाव दिगम्बर संप्रदायके तद्विषयक वाङ्मय पर स्वामी समन्तभद्रकी कृतियोंका पड़ा है। जिस तरह श्वेताम्बर साहित्यमें सिद्धसेनके पूर्वकालीन कोई स्वतंत्र तर्क-विषयक ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है, वैसे ही दिगम्बर साहित्यमें समन्तभद्रके पूर्वका वैसा कोई ग्रंथ नहीं है। श्वेताम्बर संप्रदायमें संस्कृत भाषाके पद्यात्मक प्रौढ ग्रंथोंके प्रथम प्रणेता जैसे सिद्धसेन हैं, वैसे ही दिगम्बर संप्रदायमें समन्तभद्र हैं। इन दोनों विद्वानोंके पहले, दोनों संप्रदायोंमें संस्कृत भाषाका विशेष अभ्यास और आदर नहीं था। तब तक जैन श्रमणोंमें प्राकृत भाषाहीका प्रभुत्व था। श्रमणोंके अभ्यासके विषय भी बहुत नहीं थे। जिस तरह, वर्तमानमें श्वेताम्बर संप्रदायकी स्थानकवासी (ढूँढिया) नामक शाखाके साधुओंमें बहुधा देखा जाता है कि उनमें केवल मूल-सूत्रोंका पाठ कंठस्थ कर लेने और सारे दिन बैठे बैठे वह पाठ मात्र पढ़ते-वाँचते रहनेके सिवा, न कोई सूत्रोंके अर्थका विशेष विचार किया जाता है और न कोई व्याकरण, काव्य कोषादिका अभ्यास किया जाता है; उसी तरह शायद उस पुराने जमानेके भी बहुतसे श्रमणोंका हाल रहा होगा। सम्मतितर्कके अन्तमें, सिद्धसेनसूरिने—

'तम्हा अहिगयसुत्तेण अत्थसंपायणम्मि जइ अव्वं।'

इत्यादि प्रकारका जो उल्लेख किया है और सूत्र (मूलपाठ) के साथ अर्थसंपादन करनेमें भी यतियोंको यत्न करना चाहिए, ऐसा जो उपदेश दिया है, उससे हमारे इस विचारकी पुष्टि होती है। अर्थ-परिज्ञान और व्याकरण, काव्य, कोष, आदिक सर्वसाधारण विषयोंका ज्ञान प्राप्त किये बिना मनुष्यको न तत्त्वबोध हो सकता है और न वह दूसरोंको करा सकता है। सर्वसाधारण परिज्ञानके उक्त सब साधन भारतवर्षमें प्राचीन कालसे एक मात्र संस्कृत भाषा-

---

१ इस विचार-विरोधके स्पष्टीकरणके लिये किसी अगले अंकमें हम एक स्वतंत्र लेख लिखना चाहते हैं। यहाँ पर सूचन मात्र कर दिया गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हीमें उपलब्ध होते हैं। वर्तमानमें अंगरेजाका तरह प्राचीनकालमें संस्कृत ही विद्वानोंके व्यवहारकी मुख्य भाषा थी। इस लिये जैनश्रमणोंको बहुज्ञ और विशिष्ट विद्वान् बनानेके लिये संस्कृत भाषाके अध्ययन-अध्यापनकी, आवश्यकता थी। यह आवश्यकता तब ही पूरी हो सकती थी जब उत्तम और प्रौढ विचारके ग्रंथ इस भाषामें बनाये जाते और उनके सीखनेकी श्रमणोंको खास जरूरत मालूम देती। इस लिये सिद्धसेन दिवाकरने संस्कृतहीमें अपने प्रौढ और गंभीर विचार लिपिबद्ध करने शुरू किये। परंतु, जैन श्रमणोंमें संस्कृतका नया ही प्रवेश था, इस लिये, जैसे वर्तमानमें अंगरेजी भाषाके देशी विद्वानोंको अपने विशिष्ट विचार अंगरेजीहीमें व्यक्त करना अधिक पसंद होने पर भी, स्वदेशनिवासी सर्वसाधारण जनसमूहको, अपने विचारोंका परिचय करानेके लिये मातृभाषामें भी कुछ थोड़ा-बहुत लिखना पड़ता है; वैसे ही शायद सिद्धसेनसूरिको, (यहाँ पर सिद्धसेनको लक्ष्य कर यह कथन लिख रहे हैं, इसलिये प्रधानतः उनका ही जिकर करना पड़ता है, परंतु यह बात इस प्रकारके अन्य विद्वानोंके लिये भी समझ लेनी चाहिए) संस्कृत भाषाहीमें लिखना विशेष प्रिय होने पर भी, सभी श्रमणोंको अपने मौलिक अतएव नवीन विचारोंका परिचय करानेके लिये, श्रमण-समूहकी साधारण और प्रिय भाषा जो उस समय प्राकृत थी, उसमें भी कुछ लिखनेकी आवश्यकता प्रतीत हुई होगी। 'सम्मतिप्रकरण' का प्राकृत भाषामें होना हमारे इस अनुमानका विशिष्ट कारण है। ऐसा न होता तो फिर, वैसा प्रौढ और तर्क-प्रवण ग्रंथ, संस्कृत भाषाके अत्यंत अनुरागी और महाकवि होने पर भी वे प्राकृत जैसी सरल और साधारण भाषामें क्यों लिखते?

समन्तभद्र स्वामीने प्राकृत भाषामें कोई ग्रंथ-रचना की है या नहीं, इसका कुछ पता नहीं लग सकता। उनके नामसे जितने ग्रंथ वर्तमानमें प्रचलित और प्रसिद्ध हैं—और उनको उन्हींकी कृति माननेमें कोई विशेष सन्देह-जनक कारण भी नहीं है—उनके विषयका विचार करनेसे प्रतीत होता है कि उन्होंने प्राकृतमें कोई रचना नहीं की होगी। 'रत्नकरण्डक श्रावकाचार' का विषय प्राकृतमें गूँथे जानेके योग्य था। ऐसे धर्मतत्त्व-प्रतिपादक ग्रंथ, जैनसाहित्यमें संस्कृतकी अपेक्षा प्राकृतहीमें अधिक उपलब्ध हैं, और समाजको प्रिय भी इसी भाषाके ग्रंथ अधिक हो सकते हैं। क्यों कि अज्ञान बालक-बालिकायें और मन्दमति स्त्रियाँ भी उन्हें सरलतापूर्वक पढ़ सकती हैं। श्वेताम्बर संप्रदायमें तो बहुत अर्वाचीन कालतक भी ऐसे ग्रंथ प्राकृतहीमें लिखे गये हैं। रत्नकरण्डकका दिगम्बर संप्रदायमें सभी स्त्री-पुरुष पाठ पढ़ते-सुनते रहते हैं, इस लिये संस्कृतकी अपेक्षा यह ग्रंथ प्राकृतमें होता तो लोगोंको और भी अधिक सुगम और सरल पड़ता। परंतु हमारे विचारसे, दिगम्बराचार्योंमें, स्वामी कुन्दकुन्दके बाद, प्राकृत भाषा परसे बिलकुल प्रेम उठ गया था और उसके उठ जानेमें मुख्य कारण स्वामी समन्तभद्रका संस्कृत-प्रेम और उनकी उसीमें रची गई सब कृतियाँ हैं। समन्तभद्रकी देखादेखी पिछले प्रायः सब ही दिगम्बर विद्वान्, विशेष कर संस्कृतहीमें ग्रंथ-रचना करते रहे हैं। अस्तु।

हमारे इस लिखनेका मतलब यही है कि, सिद्धसेन और समन्तभद्र दोनों जैनसमाजमें संस्कृत-भाषाके विशिष्ट लेखक और प्रचारक थे।

हम ऊपर सूचित कर आये हैं कि सिद्धसेनके पूर्वहीमें बौद्ध और ब्राह्मणोंके बीच तर्क-युद्धका प्रारभ हो चुका था, और इसलिये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बौद्ध श्रमणोंको पाली भाषाके प्रवाहमेंसे निकल-कर संस्कृतके स्रोतमें दाखिल होना पड़ा था और ब्राह्मणोंके समान ही तर्क-विषयक साहित्य-का संगठन कर भगवान् गौतम बुद्धके शासनका संरक्षण करनेमें वे कटिबद्ध हो रहे थे। उन बौद्ध श्रमणोंका प्रभाव जैन निर्ग्रन्थों पर भी पड़ा और उनको अपने कार्यमें सफल होते देख जैन निर्ग्रन्थोंने भी उसी मार्गका अनुसरण करना शुरू किया।

बौद्धोंके साथ वाद-विवाद करते हुए ब्राह्मणों-की दृष्टि, शनैः शनैः बौद्धोंहीके समान बहुतसे आचार-विचार रखनेवाले और अतएव ब्राह्मणवर्चस्वका विनिपात करनेवाले जैन निर्ग्र-न्थोंके, शान्त परंतु स्थिर भावसे बढ़ते हुए सामर्थ्य और लोकप्रियत्व पर भी पड़ने लगी। यद्यपि जैन निर्ग्रन्थ उस समय अपना प्रशम-रसपरिपूर्ण जीवन केवल निर्जन-वनोंमें घूमते और धर्मध्यानमें मग्न रहते ही बिताते थे; उन्हें अपना अनुरक्त-वर्ग बढ़ानेका या सम्राटोंके गुरु बननेका कोई लोभ नहीं था। जनसमूहके विशेष संसर्गसे वे दूर दूर रहते थे। इसलिये ब्राह्मणोंको अपनी आजीविका और लोकप्रतिष्ठामें उनकी तरफसे किसी विशेष आघातके आनेकी आशंका करनेका अधिक कारण नहीं था। तथापि बौद्ध श्रमणोंकी जनहितकर प्रवृत्ति और सेवाभावनासे आकर्षित हो कर लोकमत दिन प्रतिदिन जो उनका अनुरक्त होता जाता था और ब्राह्मणोंके प्रति जो शिथिलादर होता जाता था, इसके कारण मनस्वी ब्राह्मणोंकी सात्त्विक वृत्ति तमःप्रधान बन गई थी। इस कारण, उन्होंने अनात्मवादी बुद्धानुरागियोंके साथ साथ परम आत्मवादी निर्ग्रन्थानुयायियोंको भी 'नास्तिक' 'नास्तिक' कह कर परमाप्त भगवान् महावीरके मोक्षमार्गका तिरस्कार करना शुरू कर दिया था और इस प्रकार मुमुक्षु आत्माओंके कल्याणके मार्गमें काँटे बिछा कर उन्हें मार्गभ्रष्ट करनेके प्रयत्नका प्रारंभ हो गया था। समाधिशील निर्ग्रन्थोंको, अपने मौनधर्मका इस प्रकार विप-र्यास और दुरुपयोग होते देख जगत्के कल्या-णार्थ और परमपुरुष महावीरके मोक्षमार्गका सत्यत्व स्थापनार्थ, मौनधर्मका त्याग करना पड़ा; और फिर बौद्ध भिक्षुओंकी तरह वे भी जन-सहवासमें आकर, वाद-विवादके युद्ध-क्षेत्रमें उपस्थित हो कर, अपने प्रतिपक्षियोंका मुकाबला करने लगे। ऐसे ही एक विवाद-क्षेत्रमें वृद्ध-वादी नामक निर्ग्रन्थाचार्यके साथ वाद करते हुए चतुर्दशविद्यापारंगत ब्राह्मणकुल-भूषण सिद्धसेन पराजित हुए थे, और 'जो मुझे शास्त्रवादमें पराजित करेगा, उसका मैं शिष्य बनूँगा,' ऐसी गर्विष्ठ प्रतिज्ञा करनेवाले विद्यो-न्मत्त परंतु कृत-प्रतिज्ञाका पूर्ण निर्वाह करनेवाले सत्य-प्रतिज्ञ सिद्धसेनको अपने विजेता आचार्यके पास निर्ग्रन्थ-दीक्षा लेकर 'ब्राह्मणवर' से 'श्रमणवर' होना पड़ा था।

सिद्धसेनके उद्गारोंसे पता लगता है कि उस समय निर्ग्रन्थोंकी सरल वाद-पद्धति और आकर्षक शांतवृत्तिका लोगों पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता था। निर्ग्रन्थ अकेले-दुकेले ही ऐसे स्थलों पर जा पहुँचते थे, और ब्राह्मणादि परवादी विस्तृत-शिष्य समूह और जनसमुदायके सहित राजसी ठाठ-वाठके साथ पेश आते थे, तो भी जो यश निर्ग्रन्थोंको मिलता था वह उन प्रतिवादियोंको अप्राप्य था। यह बात स्वयं सिद्धसेनसूरिने, महावीरस्तुतिरूप प्रथम द्वात्रिं-शिकामें इस प्रकार प्रकट की है:—

अलब्धनिष्ठाः प्रसमिद्धचेतस-
स्तव प्रशिष्याः प्रथयन्ति यद्यशः।
न तावदप्येकसमूहसंहताः
प्रकाशयेयुः परवादिपार्थिवाः॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस कथनसे उस समयकी लोकरुचिका भी पता लगता है कि लोग ब्राह्मणोंके जल्पवितण्डा-परिपूर्ण शुष्क वाद और कर्मकाण्डके प्रपंचसे कितना ऊब गये थे और शांतिपूर्ण सात्त्विक मार्गके कितने उत्सुक बन गये थे। अस्तु।

सिद्धसेन निर्ग्रन्थ दीक्षा लेनेके पहले सर्व-शास्त्र-पारंगत ब्राह्मण विद्वान् थे, यह बात ऊपर सूचित की जा चुकी है। इस लिये निर्ग्रन्थ बनते ही उन्होंने अपनी सर्वज्ञकल्प शास्त्रज्ञताका, जैन तत्त्वोंको न्यायसंगत बनानेमें और स्याद्वा-द्के सिद्धान्तको नय और प्रमाण द्वारा सुव्य-वस्थित बनानेमें, पूरा उपयोग किया। ब्राह्मण-वर्ग अपने प्रतिपक्षियोंपर जो 'नास्तिकता' का कुत्सित आरोप कर सर्व साधारणमें मिथ्याभ्रान्ति फैलानेका उद्योग किया करता था उसका प्रति-वाद और निराकरण करनेके लिये; तथा यथार्थमें आप्त-पुरुष कौन है, और किसका सिद्धान्त स्वीकरणीय होना चाहिए, इस विषयका उद्-घाटन करनेके लिये, सिद्धसेनने बड़े गंभीर और उच्च विचारवाले, भिन्न भिन्न दृष्टिसे अनेक प्रकरण लिखे। ये वे ही प्रकरण हैं जिनका जिकर हम ऊपर द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिकाओंके नामसे कर आये हैं। इन प्रकरणोंमें उन्होंने अपने पक्षका समर्थन और परपक्षका निरसन इतनी उत्तमता, इतनी मार्मिकता और इतनी गंभीरताके साथ किया है कि उन्हें पढ़ कर सहृदय विद्वानोंको काव्यका, तर्कशास्त्रका और सत्यके साक्षात्कारका एक साथ ही आनंद आ सकता है। यह एक विचारणीय और ऐतिहासिक सत्य है कि ब्राह्मणोंके वर्चस्वका और कर्म-मार्गका विरोध करनेवाले कृष्ण, महावीर, गौतम बुद्ध आदि क्षत्रिय-वीर ही हैं और अध्यात्म मार्गकी गवेषणा कर जगत्को उसका उपदेश देनेवाले भी एक मात्र वे ही हैं; परंतु इन क्षत्रिय धर्म-प्रवर्तकोंके सिद्धान्तोंको संगत, सुस्थित और सुप्रचलित करनेवाले फिर वे ही ब्राह्मण हैं। भागवत, जैन और बौद्ध धर्म्मके समर्थ लेखक और आचार्योंकी जातिकी तरफ दृष्टि करते हैं तो अधिकांश ब्राह्मण जातिहीके ऐसे सरस्वतीवर-लब्ध पुत्र उत्पन्न किये हुए दिखाई देते हैं। निःसंशय ब्राह्मण जातिने जगत्के अज्ञानका नाश करनेमें सर्वाधिक श्रेष्ठ कार्य किया है। और इसी कार्यके लिये यदि वह जगत्के ऊपर अपने पूज्यत्वका अधिकार सदैवके लिये रक्खे तो उसमें उसकी कोई अनुचितता नहीं है।

सिद्धसेनसूरिके बाद, दिगम्बर संप्रदायमें, उनके ही जैसे प्रतिभाशाली और प्रतापवान् आचार्य स्वामी समन्तभद्र हुए। समन्तभद्रके समयका अनुमान किया जाय, ऐसा कोई भी विशिष्ट प्रमाण अभीतक उपलब्ध नहीं हुआ है, और न कोई वैसी विश्वसनीय जीवनकथा ही उनके बारेमें दृष्टिगोचर होती है। इस लिये वे कब हुए इस बारेमें हम पूरी तौरसे कुछ भी नहीं कह सकते। दिगम्बर पट्टावलियोंकी गणना-नुसार विक्रमकी दूसरी शताब्दीमें उनका अस्तित्व बताया जाता है। हमने इस विषयमें अभीतक कुछ भी विशेष विचार नहीं किया है। हम जो कुछ ऊपर ऊपरसे अनुमान कर सके हैं उसका सार इतना ही है कि सिद्धसेनके बाद थोड़े ही समयमें समन्तभद्र हुए होंगे। इन दोनोंकी लेखशैली, विचारशैली और भाषाशैली बहुत कुछ मिलती जुलती है। भेद है तो केवल इतना ही है कि सिद्धसेनकी कृतियोंमें गूढार्थता अधिक है और समन्तभद्रकी कृतियोंमें स्पष्टार्थता।

इन दोनों आचार्योंके जीवनवृत्तांत-संबंधमें जो दंतकथायें पिछले जैनग्रंथोंमें देखी जाती हैं, उनमें भी लगभग एक ही बात, कुछ थोड़ेसे फेरफारके साथ, कही हुई है। सिद्धसेनके बारेमें लिखा हुआ है कि, उन्होंने अवन्ती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(उज्जैनी) के राजा विक्रमादित्यके अत्याग्रह करनेसे, वहाँके जगत्प्रसिद्ध महाकालेश्वरकी स्तुति करनी शुरू की जिसके प्रभावको महाकालेश्वरका महालिंग सहन न कर सका, उसके टुकड़े टुकड़े हो गये और फिर उसमेंसे जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथकी मूर्ति प्रकट हुई । इससे राजा बड़ा आश्चर्यचकित हुआ और उसने सिद्धसेनके पादतलमें मस्तक रख कर उनको अपना गुरु बनाया ।

इधर, समन्तभद्रकी कथामें भी इसके जैसी ही बात लिखी मिलती है। उन्होंने वाराणसी (काशी) के राजा शिवकोटिके आग्रह करने पर वहाँके विश्वविख्यात विश्वेश्वर महादेवकी स्तवना करनी प्रारंभ की और उसके सामर्थ्यसे विश्वेश्वरका महालिंग फटकर उसमेंसे चतुर्मुख जैनमूर्ति प्रकट हुई ! समन्तभद्रके इस प्रभावसे मुग्ध हो कर वह राजा उनका शिष्य बन गया !

मालूम नहीं, इन दंतकथाओंमें कितना तथ्य है । इनके आकार-प्रकारसे तो विद्वानोंको ऐसा ही भास हो सकता है कि केवल इन आचार्योंकी महिमा बढ़ानेके लिये ये कथायें मनगढन्त बना ली गई हैं, और सिद्धसेनकी कथाहीमें कुछ नाम परिवर्तन कर समन्तभद्रको भी लागू कर दी है । परन्तु संभव है कि इनमें कुछ ऐतिहासिक सत्यांश भी हो । सिद्धसेनने अवन्तीकी और समन्तभद्रने काशीकी ब्राह्मण-परिषद्में—जिस तरह न्यायाचार्य यशोविजयजीने काशीकी विद्वत्सभामें विजय प्राप्त किया था वैसे—दार्शनिक वाद-विवाद कर विजय प्राप्त किया हो, और उसके स्मरणार्थ उन उन स्थानोंमें जैन मंदिरोंकी प्रतिष्ठा करवा कर जैनधर्मका खूब जयजयकार करवाया हो । ऐसी बातें समय समय पर अनेक जगह होती रही हैं, इस लिये सिद्धसेन और समन्तभद्रके समयमें भी ऐसी ही कोई बात बनी हो और उसीको लेकर उपर्युक्त दंतकथा—अर्द्ध-सत्यमिश्रित होकर—प्रचलित हो गई हो, तो उसमें कोई असंभवनीयता नहीं है । अवन्ती और वाराणसी ये दोनों नगरियाँ प्राचीन कालसे ब्राह्मणोंकी राजधानियाँ सी बनी हुई हैं । उस समयमें जितने बड़े बड़े दिग्गज विद्वान् हुआ करते थे, वे अवश्य इन क्षेत्रोंकी यात्रा किया करते थे और वहाँके विद्वत्समाजोंमें भिन्न भिन्न विषयोंपर शास्त्रार्थ कर अपने पाण्डित्यका प्रमाणपत्र तथा विजयपताका प्राप्त कर कृतकृत्य होते थे । सिद्धसेन और समन्तभद्र दोनों बड़े प्रखर वाग्ग्मी और प्रचण्ड वादी थे, इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं है । उनकी यह प्रसिद्धि तब ही हो सकी होगी जब उन्होंने अवन्ती और वाराणसी जैसी सरस्वतीके वरपुत्रोंकी वासभूमिमें जा कर वहाँके दिग्गज विद्वानोंके साथ शास्त्रार्थ कर महती प्रतिष्ठा प्राप्त की होगी । इस लिये इन दंतकथाओंमें कुछ सत्यांश अवश्य होना चाहिए, ऐसा अनुमान करनेकी तरफ हमारी चित्तवृत्ति सहज खींची जाती है ।

सिद्धसेन और समन्तभद्र दोनों महाकवि और महावादी थे । उनका महाकवित्व तो उनकी चिरंजीविनी कृतियोंमें स्पष्ट प्रतिभाषित हो रहा है और महाकवित्वका अनुमान उनकी कृतियोंमें कूट कूट कर भरे हुए पाण्डित्यको देखकर सहज किया जा सकता है । इन प्रवादि-करि-केशरियोंने अपने जीवनमें कहाँ कहाँ

---

१ आजकल जैसे निरक्षर भट्टाचार्य भी अपने आपको बड़े धाष्टर्यके साथ **'शास्त्रविशारद'** और **'व्याख्यानवाचस्पति'** कहलाते फिरते हैं, वैसे धृष्ट उस जमानेमें नहीं होते थे । और यदि कोई मूर्ख वैसा करनेका साहस कर भी लेता, तो तीसरे ही दिन लोग उसको दंड-कमंडलु छीन कर, बहिष्कृत कर देते थे ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर किन किन विद्वानोंके साथ वाद-विवाद कर दिग्विजयिपना प्राप्त किया था इसके जाननेका कोई साधन नहीं है। सिद्धसेनकी कथाओंमें, उनके मालव देशमें विचरणके साथ दाक्षिण देशमें विचरण करनेका भी उल्लेख किया हुआ है, इस लिये इन देशोंमें तो उनके पाण्डित्यके प्रकाश–किरण सर्वत्र अवश्य फैले ही होंगे। अन्य देशोंके विषयमें हम कुछ नहीं कह सकते। समन्तभद्रके दिग्विजयका क्षेत्र बहुत विस्तृत है। दक्षिणके प्रसिद्ध दिगम्बर-जैन-तीर्थस्थल श्रवणबेलगोलाके विन्ध्यगिरि पर्वत पर एक मन्दिरमें 'मल्लिषेण-प्रशस्ति' नामका एक बहुत बड़ा शिलालेख है। इस लेखमें समन्तभद्रके परिचायक कुछ प्राचीन पद्य उत्कीर्तित हैं जिनमेंसे निम्न लिखित पद्यमें उनके दिग्विजय-क्षेत्रका उल्लेख किया हुआ है।—

पूर्वं पाटलिपुत्रमध्यनगरे भेरी मया ताडिता
पश्चान्मालवसिन्धुढक्कविषये काञ्चीपुरे वैदिशे।
प्राप्तोऽहं करहाटकं बहुभटं विद्योत्कटं सङ्कटम्
वादार्थी विचराम्यहं नरपते शार्दूलविक्रीडितम्॥

इस पद्यमें समन्तभद्र स्वयं अपने मुखसे किसी एक राजाकी सभामें यह बात कहते हुए बताये गये हैं कि, उन्होंने कौनसे कौनसे देशोंमें वाद-विवाद कर विजयपताका प्राप्त की है। पद्यका अर्थ इस प्रकार है:—

"पहले मैंने पाटलीपुत्र नगर (पटना) में वादकी भेरी बजाई, फिर मालवा, सिन्धु देश, ढक (ढाका—बंगाल), काञ्चीपुर और वैदिश (भिलसेके आसपासका देश) में भेरी बजाई। और अब बड़े विद्वान् वीरोंसे भरे हुए इस करहाटक (कराड, जिला सतारा) नगरको प्राप्त हुआ हूँ। इस प्रकार हे राजन्, मैं वाद करनेके लिये सिंहके समान इतस्ततः क्रीडा करता फिरता हूँ।"

इस उल्लेखसे जाना जाता है कि समन्तभद्र स्वामी भारतके पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण; सब ही खण्डोंमें घूमे थे और उन्होंने सब देशोंके विद्वानोंके साथ शास्त्रार्थ कर जैनधर्मकी विजय-दुन्दुभि बजवाई थी।

समन्तभद्र स्वामीकी कृतियोंके देखनेसे पता लगता है कि सिद्धसेनसूरिने अपनी कृतियोंमें जो बात संक्षेपसे सूचित की है, समन्तभद्रने उसीको व्यवस्थित रूपमें विस्तारके साथ वर्णन की है। सिद्धसेन अपने ग्रंथमें प्रमाण और नयके लक्षण स्थिर मात्र कर गये थे; समन्तभद्रने उनके अनुसार मीमांसा कर उन्हें सफल संगत और सिद्ध कर दिखाया। सिद्धसेनने आप्तपुरुषके बारेमें संक्षिप्त और प्रकीर्ण विचार प्रदर्शित किये थे; समन्तभद्रने उन्हीं विचारोंको विस्तृत और क्रमबद्ध रूपमें ग्रथित कर संपूर्ण रूपसे आप्तकी मीमांसा की। इस प्रकार, यदि सिद्धसेनने जैनधर्मके तत्त्वज्ञानको अंकुरित होनेमें जलसिंचनका काम किया; तो समन्तभद्रने उसको स्वच्छंद और निर्भय रीतिसे ऊँचे बढ़नेमें कांटोंकी बाड़का काम किया। इन्हीं दो महापुरुषोंके सुप्रयत्न और स्तुत्य जीवनसे जैनदर्शन सजीव रहा और इन्हींके बताये हुए मार्गका अवलम्बन कर, पिछले समर्थ आचार्योंने (जिनमेंसे कितने एकके नाम हम इस लेखके प्रारंभहीमें लिख आये हैं) उसे खूब पल्लवित किया।

सिद्धसेनसूरिकी कृतियोंके समान समन्तभद्राचार्यकी कृतियोंका भी पिछले आचार्योंने बड़ा गौरव किया है। उनपर संक्षिप्त और विस्तृत अनेक भाष्य–टीका आदि लिख कर उनकी खूब प्रतिष्ठा बढ़ाई है। समन्तभद्रकी कृतियोंमें सबसे अधिक मान 'आप्तमीमांसाको' मिला है। यह देखनेमें ११४ श्लोकोंका एक छोटासा ग्रंथ मालूम देता है, पर इसका गांभीर्य इतना है कि,

१ विद्वद्रत्नमाला (श्रीनाथूरामप्रेमी लिखित), पृ० १६८।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसपर सैकडों-हजारों श्लोकोंवाले बड़े बड़े गहन भाष्य-विवरण आदि लिखे जाने पर भी विद्वानोंको यह दुर्गम्यसा दिखाई देता है।

सबसे पहले इसपर महान् तार्किक भट्ट अकलंकदेवने अष्टशती (आठ सौ श्लोकं परिमाणवाला) नामका अल्पाक्षर और बह्वर्थवाला गंभीर भाष्य लिखा। इस भाष्यके ऊपर प्रचण्ड विद्वान् आचार्य विद्यानन्दिने अष्टसहस्री (आठ हजार श्लोक प्रमाण) नामक विशद व्याख्या बनाई। समुच्चय संस्कृत साहित्यमें, भिन्न भिन्न दार्शनिक सिद्धान्तों-विचारोंकी आलोचना-प्रत्यालोचना करनेवाला यह एक महान् और प्रौढ ग्रंथरत्न है। इसमें ब्राह्मण और बौद्ध धर्मके सब ही तात्त्विक संप्रदायोंके तत्त्व-विचारोंका बड़ी मार्मिक और युक्तिपूर्ण पद्धतिसे खण्डन-मण्डन किया गया है और अन्तमें जैनधर्मका स्याद्वाद-सिद्धान्त कितना प्रमाणयुक्त और अखण्डनीय है, यह विचार बड़े गौरवके साथ सिद्ध किया गया है।

इस ग्रंथकी महत्ताका पता इतने ही से लगजायगा कि, श्वेताम्बर संप्रदायके महान् नैयायिक और समर्थ ग्रंथकार उपाध्याय यशोविजय जैसे पूर्ण सांप्रदायिक विद्वान्ने भी, इस कृतिके गांभीर्यसे मुग्ध हो कर, इस पर, मूल ग्रंथके जितनी ही श्लोक प्रमाण (अर्थात् आठ हजार श्लोकवाली) और उतनी ही प्रौढ टिप्पणी लिखी है[1]। और इस प्रकार 'अष्टसहस्री' को 'षोडशसहस्री' बना कर उसके महत्त्वको द्विगुणित कर दिया है। संपूर्ण जैनसाहित्यमें यही एक ऐसा ग्रंथ है, जिस पर, दूसरे संप्रदायके एक ऐसे विद्वान्ने व्याख्या लिखी है, जो योग्यतामें मूल कर्तासे रत्तीभर भी न्यून न हो कर, सर्वथा सांप्रदायिकभावका पूर्ण समर्थक था।

समन्तभद्र स्वामीके इन महान् टीकाकारोंके सिवा जिनसेन, वादीभसिंह, वीरनन्दी, शुभचन्द्राचार्य इत्यादि अन्यान्य सभी प्रसिद्ध प्रसिद्ध दिगम्बर ग्रंथकारोंने भी उनके कवित्व, वाग्मित्व और पाण्डित्यकी भूरि भूरि प्रशंसा और स्तुति की है। और सभीने उनको जैनधर्मका एक महान् संरक्षक और समर्थक स्वीकृत किया है।

राष्ट्रकूटवंशीय प्रतापी नृपति महाराजा अमोघवर्षके परमगुरु और सुप्रसिद्ध महापुराण आदिपुराणके कर्ता महाकवि जिनसेनने अपने पुराणकी प्रस्तावनामें स्वामी समन्तभद्रकी प्रशंसा करते हुए निम्नगत उद्गार प्रकट किये हैं—

नमः समन्तभद्राय महते कविवेधसे।
यद्वचोवज्रपातेन निर्भिन्नाः कुमताद्रयः॥
कवीनां गमकानां च वादिनां वाग्मिनामपि।
यशः सामन्तभद्रीयं मूर्ध्नि चूडामणीयते॥

हरिवंश-पुराणके प्रणेता जिनसेन (प्रथम) ने भी स्वकीय पुराणके प्रारंभमें समन्तभद्रके वचनको भगवान् महावीरके वचनतुल्य लिखा है। यथा—

जीवसिद्धिं विधायेह कृतयुक्त्यनुशासनम्।
वचः समन्तभद्रस्य वीरस्येव विजृम्भते॥

गद्यचिन्तामणि नामक सुप्रसिद्ध गद्यकाव्यके रचयिता महाकवि वादीभसिंहने समन्तभद्रके वचनस्वरूप वज्रपातके कारण परवादीरूप करोड़ों पर्वत चूरचूर हो गये, बतलाये हैं। यथा—

१ आकलूज निवासी सेठ नाथारंगजी गांधीने पं० वंशीधरजी शास्त्रीद्वारा संशोधित करवा कर जो अष्टसहस्री छपवाई है उसके साथ यदि यशोविजयजीकी यह टिप्पणी भी (टिप्पणी क्या टीकाकी भी टीका) छपवा दी जाती तो 'सोनेमें सुगन्ध' आ जाती। हमें इस बातका पता नहीं लगा कि शास्त्री वंशीधरजीने अपनी अष्टसहस्रीकी भूमिकामें इस महती टिप्पणीका नामोल्लेख तक क्यों नहीं किया। क्या उन्हें इसका अस्तित्व मालूम नहीं था अथवा अन्य किसी कारणसे वैसा नहीं कर सके?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सरस्वतीस्वैरविहारभूमयः
समन्तभद्रप्रमुखा मुनीश्वराः ।
जयन्तु वाग्वज्रनिपातपाटित-
प्रतीपराद्धान्तमहीध्रकोटयः ॥

अध्यात्मज्ञानके समुद्रस्वरूप ज्ञानार्णव ग्रन्थके निर्माता आत्मज्ञानी शुभचन्द्रने समन्तभद्रके कृतिस्वरूप सूर्यके सम्मुख अपनी कृतिको खद्योततुल्य उपहासपात्र लिख कर समन्तभद्रके वचनोंकी महत्ता प्रकट की है—

समन्तभद्रादिकवीन्द्रभास्वतां
स्फुरन्ति यत्रामलसूक्तरश्मयः ।
व्रजन्ति खद्योतवदेव हास्यतां
न तत्र किं ज्ञानलवोद्धता जनाः ॥

चन्द्रप्रभचरितके कर्ता महाकवि वीरनन्दिने, मोतियोंके बने हुए हारसे कंठको विभूषित करना दुर्लभ नहीं है, परन्तु समन्तभद्रके वचनरूप मुक्ताफलसे गुँथे हुए काव्यस्वरूपहारसे कंठको अलंकृत करना परम दुर्लभ बतलाया है—

गुणान्विता निर्मलवृत्तमौक्तिका
नरोत्तमैः कण्ठविभूषणीकृता ।
न हारयष्टिः परमेव दुर्लभा
समन्तभद्रादिभवा च भारती ॥

इसी प्रकार और भी अनेकानेक ग्रन्थकारोंने विविध प्रकारसे समन्तभद्र स्वामीकी स्तवना और प्रशंसा की है। इतना गौरव शायद ही अन्य किसी आचार्यका किया गया हो।

* * *

दिगम्बर विद्वानोंने तो समन्तभद्र स्वामीको इस प्रकार अपना प्रमाणभूत पुरुष माना ही है। परंतु श्वेताम्बर विद्वानोंने भी उनकी प्रामाणिकाग्रगण्यताको खुले दिलसे स्वीकार किया है। हरिभद्र, वादिदेव, हेमचन्द्र और मलयगिरि जैसे श्वेताम्बरशिरोमणि सूरियोंने भी प्रसंगोपात्त उनकी कृतियोंका उल्लेख या अवतरण कर उन्हें एक प्रमाणभूत पुरुषकी कोटिमें स्थान दिया है। हरिभद्रसूरिने उनको 'वादिमुख्य' के महत्त्वसूचक विशेषणसे सम्बोधित किया है और अनेकान्तजयपताकामें निम्नलिखित दो श्लोक इनके नामसे उद्धृत किये हैं। यथा—

आह च वादिमुख्यः समन्तभद्रः—
'बोधात्मा चेच्छब्दस्य न स्यादन्यत्र तच्छ्रुतिः ।
यद्बोद्धारं परित्यज्य न बोधोऽन्यत्र गच्छति ॥
न च स्यात्प्रत्ययो लोके यः श्रोत्रा न प्रतीयते ।
शब्दाभेदेन सत्येवं सर्वः स्यात्परचित्तवित्' ॥
—अनेकान्तजयपताका पृ. ४३ (अमदाबाद)।

आचार्यवर्य हेमचंद्रने अपने सिद्धहैमशब्दानुशासन नामक व्याकरणके प्रारंभमें, दूसरे सूत्रकी व्याख्यामें 'स्तुतिकारोऽप्याह' ऐसा उल्लेख कर निम्नगत स्तुतिपद्य उद्धृत किया है जो इन्हीं समन्तभद्र स्वामीका बनाया हुआ है और बृहत्स्वयम्भू स्तोत्रमें उपलब्ध होता है। पद्य यह है—

नयास्तव स्यात्पदलाञ्छना इमे
रसोपविद्धा इव लोहधातवः ।
भवन्त्यभिप्रेतफला यतस्ततो
भवन्तमार्याः प्रणता हितैषिणः ॥

यही पद्य मलयगिरिसूरिने आवश्यकसूत्रकी अपनी अपूर्ण टीकामें, 'आद्यस्तुतिकारोऽप्याह'— आद्य—प्रथम—स्तुतिकार भी कहते हैं—ऐसा

---

१ 'समन्तभद्र' यह नाम टीकामें लिखा है, जो स्वयं ग्रंथकारहीकी बनाई हुई है। मूलमें केवल 'वादिमुख्य' विशेषण ही का उल्लेख है।

२ शान्त्याचार्य विरचित प्रमाणकलिका और वादीदेवसूरिरचित स्याद्वादरत्नाकरमें भी ये दोनों श्लोक समन्तभद्रके नामसे अवतारित हैं। जहाँ तक हम जान सके, समन्तभद्रकी उपलब्ध कृतियोंमेंसे किसीमें भी ये श्लोक नहीं पाये जाते। इस लिये यह स्पष्ट मालूम पड़ता है कि स्वामीकी केवल इतनी ही कृतियाँ नहीं हैं जो अभीतक जानी गई हैं। इनके सिवा, और भी कृतियाँ होनी चाहिएँ जो अद्यापि अज्ञात या अप्राप्य हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उल्लेख कर, उद्धृत किया है। इस उल्लेखसे स्पष्ट जाना जाता है कि ये प्रसिद्ध स्तुतिकार माने जाते थे। इतना ही नहीं, परंतु इन्हें आद्य—सबसे पहले होनेवाले—स्तुतिकारका मान प्राप्त था। हरिभद्रादि श्वेताम्बराग्रणी आचार्योंने सिद्धसेन दिवाकरको भी वादिमुख्य और स्तुतिकारके विशेषणोंसे उल्लिखित किया है; और उपर्युक्त प्रमाणानुसार समन्तभद्र स्वामीको भी इन्हीं विशेषणोंसे अलंकृत किया है। इससे यही अनुमान हो सकता है कि श्वेताम्बरोंकी दृष्टिमें सिद्धसेन और समन्तभद्र दोनों समान पूज्य और समान सत्कारास्पद हैं। इधर, सिद्धसेनसूरिको भी जिस प्रकार श्वेताम्बराचार्योंने अपना श्रद्धास्पद और प्रमाणभूत पुरुष माना है, वैसे, जैसा कि हम ऊपर सप्रमाण लिख आये हैं, दिगम्बराचार्योंने भी उन्हें अपना स्तुतिपात्र और शिरसावंद्य माना है; अतः दिगम्बरोंकी दृष्टिमें भी सिद्धसेन और समन्तभद्र दोनों समान गुणगणालंकृत हैं। इससे यह स्वतः सिद्ध हो गया कि, समग्र जैनसमाज और जैनसाहित्यमें इन दोनों महापुरुषोंका ज्ञानप्रभान्वित, सत्त्वपरिपूर्ण और निर्ग्रन्थगणवन्द्य सिंहासन, समान स्थान और समान रूपमें संस्थापित है।

दुष्प्राप्य और अलभ्य जैनग्रन्थ।

१६ आयज्ञान तिलक।

पालीतानासे मुनि पुण्यविजयजीके पत्रद्वारा हालमें हमें 'आयज्ञानतिलक' नामक एक नये ग्रंथका पता लगा है, जिसकी एक प्रति इस समय घोघांके भंडारमें मौजूद है। यह ग्रंथ श्रीरामनंदि आचार्यके शिष्य भट्ट वोसरीका बनाया हुआ है। ग्रंथकी[1] भाषा प्राकृत है और उसके साथमें स्वोपज्ञ संस्कृतटीका भी लगी हुई है। मूल गाथाओंकी संख्या ४१५ और टीकाकी संख्या १२०० श्लोक परिमाण है। ग्रंथका विषय ज्योतिष है और वह २५ प्रकरणोंमें विभक्त है। घोघाके भंडारकी उक्त प्रति देवनागरी लिपिमें, कागजके ऊपर, ४२ पत्रोंपर लिखी हुई है और उसकी लिखावट पुरानी है, ऐसा मुनिजी सूचित करते हैं। उन्होंने, ग्रंथकी इस प्रतिपरसे, ग्रंथकारके परिचयविषयक मूल तथा टीकाके कुछ वाक्य भी हमारे पास उद्धृत करके भेजे हैं जिन्हें हम, उक्त मुनिजीका आभार मानते हुए, अपने पाठकोंके अवलोकनार्थ ज्योंका त्यों नीचे देते हैं:—

मूलके आदिका भाग—

नमिऊण नमियनमियं दुत्तरसंसारसायरुत्तिन्नं।
सव्वन्नुं वीरजिणं पुलिंदिणिं सिद्धसंघं च ॥ १ ॥
जं दामनंदिगुरुणे मणयं आयाण जाणियं गुज्झं।
तं आयनाणतिलए वोसिरिणा भन्नए पयडं॥२॥

टीकाके आदिका भाग—

सिद्धाध्वजादिचिरसूत्रितनामधेयान्,
सर्वांगसौहृदशुभस्थितिसौम्यपातान्।
स्वस्वामिसद्ग्रहयुताक्षितफुल्लपूर्णा—
नायान् प्रणम्य बलिनः शुभकार्यसिद्ध्यै ॥ १ ॥

सर्वायशास्त्रसारेण यत्कृतं जनमंडनम्।
तदायज्ञानतिलकं स्वयं विव्रियते मया ॥ २ ॥

अत्र तावत् शास्त्रस्यारंभेऽभिमतदेवतानमस्कारप्रतिपादनार्थं निर्विघ्नाभिप्रेतसिद्ध्यर्थं निजगुरुगौरवसंवर्धनार्थं च शास्त्रकारो गाथायुगलं चकार—नमिऊणनमिय १ जं दामनंदि २ गाथा ॥

प्रथम प्रकरणकी टीकाका अंतिम भाग—

इति श्रीदिगंबराचार्यपंडितश्रीदामनंदिशिष्यभट्टवोसिरिविरचिते सायश्रीटीकाऽऽयज्ञानतिलके आयस्वरूपप्रकरणं प्रथमं ॥ १ ॥

---

[1] यह भावनगरका निकटवर्ती एक ग्राम है जिसे घोघाबन्दर भी कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राच्योदीच्यकुले द्विजोऽच्युत इति ख्यात ......यः, श्रीनारायणसंज्ञयाऽभवदतः सूनुःकुलीनाग्रणीः। विद्वान् दुर्लभराज इत्यभिहितस्तस्यात्मजो वोसरिः, स्वे शास्त्रे रचयांचकार रुचिरामायस्वरूपस्थितिं ॥ १ ॥

द्वितीयप्रकरणकी टीकाका अन्तिम भाग—

सुग्रीवादिमुनींद्रगुंफितमहाशास्त्रेषु यज्जल्पितं,
साम्नायं गुरुदामनंदिवचसा विज्ञाय सर्वं पुनः।
संक्षेपादणहिल्लपाटकपुरि प्रज्ञापदं ज्ञानिनं,
समाश्रयं तदध्वता (?) चक्रे स्फुटं वोसरिः ॥ १ ॥

इति श्री दिगं० सायश्रीटीकायज्ञानतिलके पातविभागप्रकरणं द्वितीयम्

चतुर्थप्रकरणकी टीकाका अन्तिम भाग—

शास्त्राणि पूर्वमुनिभिर्बहुशो निबध्य,
मुक्तानि यान्यतिगुरूणि ततोऽवधार्य।
तत्पार्श्वचंद्रसुहृदा बहुशोऽनुभूत-
मुद्दिष्टमंत्रवदिदं ग्रहयोगसारम् ॥ १ ॥

इति दिगं० आयज्ञानतिलके ग्रहयोग प्रक०चतुर्थं ॥

पंचम प्रकरणकी टीकाका अन्तिम भाग—

यत्तत्कालसमागतस्य जनयत्युल्लापमात्रादपि,
प्रष्टुर्भव्यवचोविकारपटुभिस्तत्त्वोपदेशैः—।
तत्सांवत्सरमोहजालपटलप्रध्वंसदिव्यौषधं,
कार्यज्ञानमिदं चकार रुचिरं कोकाऽनुजो वोसरिः॥

इति दिगंबराचार्यपंडितश्रीदामनंदिशिष्यभट्टवोसरिविरचिते सायश्रीटीकायज्ञानतिलके पृच्छाकार्यज्ञानप्रकरणं पंचमम् ॥

ऊपरके इस संपूर्ण परिचयसे मालूम होता है कि ग्रंथकार भट्ट वोसरि, जोकि दिगम्बराचार्य श्रीदामनन्दिके शिष्य थे, प्राच्योदीच्य कुलमें उत्पन्न हुए थे। आपके पिताका नाम दुर्लभराज, पितामहका श्रीनारायण और प्रपितामहका अच्युत द्विज था। कोक नामके आपके कोई बड़े भाई थे—क्योंकि आपने अपनेको उनका अनुज प्रगट किया है—और पार्श्वचंद्र आपके मित्र होते थे। सुग्रीवादि मुनीन्द्रों द्वारा रचे हुए महाशा... गया है उसे आम्नायपूर्वक द... कर और भी बहुत कुछ अनुभव संक्षेपसे यह ग्रंथ अणहिल्लपाटणपुरमें (...गुजरात) बनाया है। परंतु कौनसे सन्संवत्में बनाया है, यह बात उक्त परिचयसे कुछ भी मालूम नहीं होती। मुनिजीने परिचय भेजते समय लिखा है कि, जिस जिस प्रकरणके अंतमें ग्रंथकार संबंधी विशेष परिचय है वह भी उल्लिखित किया जाता है। इससे मालूम होता है कि ग्रंथके अन्तमें अथवा दूसरे प्रकरणोंके अन्तमें ग्रंथकारके समयादि संबंधी और कोई विशेष परिचय नहीं है।

...गेन जीवासीद्धिं निबध्नता।
...निमार्गैव लक्ष्यते ॥ २४ ॥
संवत् ९४७ ...आ है।

श्रवणबेलगोलके ४२ और ४३ नम्बरके शिलालेखोंको देखनेसे मालूम होता है कि दामनंदि मुनि संपूर्णचन्द्र मुनिके शिष्य थे। और संपूर्णचंद्रको रविचंद्र सिद्धान्तका वेत्ता लिखा है—अर्थात्, वे ज्योतिर्विद्यामें निपुण थे। ऐसी हालतमें उनके शिष्य दामनंदि भी ज्योतिर्विद्याके जानकार रहे होंगे, यह बहुत कुछ स्वाभाविक जान पड़ता है। संभवतः इन्हीं दामनंदि गुरुसे ज्योतिःशास्त्रोंका अध्ययनकर भट्ट वोसरिने यह ग्रंथ बनाया है। इन दामनंदि आचार्यका समय उक्त दोनों शिलालेखोंसे विक्रमकी प्रायः १२ वीं शताब्दी पाया जाता है *। अतः यह ग्रंथ,

* क्योंकि, ४२ वें शिलालेखमें नयकीर्तिकी मृत्युका उल्लेख शक १०९९ (वि० सं० १२३४) में किया गया है और नयकीर्तिको गुणचंद्रका, गुणचंद्रको माघनंदिका, माघनंदिको श्रीधरका शिष्य और श्रीधरको दामनंदिका बड़ा पुत्र और शिष्य बतलाया गया है। ४३ वेंमें शुभचंद्रकी मृत्युका उल्लेख शक १०४५ (वि० सं० ११८०) में किया गया है और उनसें पहले उनकी गुरुपरम्परामें क्रमशः गंडविमुक्तदेव, मलधारि, दिवाकरनन्दि, चन्द्रकीर्ति, श्रीधरदेव और दामनंदि ये नाम दिये हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

... वीं शताब्दीक उल्लेख कर, उद्धृत कि... मालूम होता है। इससे, स्पष्ट जाना जाता ... कर्ता और उनके ग्रंथ ' नामक कार माने ... ३२० पर " वोसटी भट्ट—आर्यतिआ... टीका " ऐसा जो उल्लेख है वह गलत मालूम होता है। उसके स्थानमें ' वोसरिभट्ट—आयज्ञानतिलक स्वोपज्ञटीकायुक्त ' होना चाहिये। इसी तरह नं० ११६ का उल्लेख भी उसका गलत जान पड़ता है जिसमें दमनंदिको आर्यतिलक (प्राकृत) ग्रंथका कर्ता बतलाया है। यह दमनंदि उक्त दामनंदि आचार्यसे और ' आर्यतिलक ' उक्त आयज्ञानतिलक ' ग्रंथसे भिन्न मालूम नहीं होते। परंतु आयज्ञानतिलक ग्रंथ स्वयं दामनंदि आचार्यका बनाया हुआ नहीं है बल्कि उनके शिष्य भट्टवोसरिका बनाया हुआ है जैसा कि ऊपरके परिचयसे प्रकट है। और इस लिये सूचीका यह उल्लेख भूलसे परिपूर्ण मालूम होता है।

नहीं मालूम यह ग्रंथ और कहाँ कहाँके भंडारोंमें मौजूद है। इसकी कापी होकर उद्धार होना चाहिये।

१७ राद्धान्त (सिद्धान्त) सूत्र।

हितैषीके पिछले अंकमें, हमने, चारित्रसार और आचारसार नामक ग्रंथोंके आधार पर, ' राद्धान्त ' नामके एक ग्रंथका उल्लेख किया था और, उसके एक पद्यका नमूना देते हुए, यह प्रकट किया था कि वह संस्कृत भाषाका ग्रंथ है। हालमें उक्त चारित्रसार ग्रंथको देखते हुए उसमें ' **उक्तं च राद्धान्तसूत्रे** ' इस वाक्यके साथ निम्न वाक्य भी पाया गया:—

" आदाहीणं पदाहीणं तिखुत्तं तिऊणदं
चदुस्सिरं वारसावत्तं चेति। "

यही वाक्य अनगारधर्मामृतटीकामें ' **उक्तं च सिद्धान्तसूत्रे** ' इस वाक्यके साथ उद्धृत मिलता है। इससे मालूम होता है कि, 'राद्धान्त सूत्र' या ' सिद्धान्तसूत्र ' नामका भी कोई ग्रंथ है जो प्राकृत भाषामें गद्यात्मक है। और इसलिये यह उस ' राद्धान्त ' नामके शास्त्रसे भिन्न जान पड़ता है जिसके एक संस्कृत पद्यका उल्लेख पिछले अंकमें किया गया था। यदि वह पद्य और ऊपरका प्राकृत गद्य दोनों वास्तवमें एक ग्रंथके अंश हैं तो यह कहना पड़ेगा कि ' राद्धान्त ' नामका ग्रंथ गद्यपद्यात्मक है और साथ ही, वह संस्कृत प्राकृत दोनों भाषाओंमें है। परंतु जहाँतक हम समझते हैं संस्कृत और प्राकृतके ये दोनों ग्रंथ भिन्न हैं और भिन्न भिन्न आचार्योंके रचे हुए हैं। यह दूसरी बात है कि संस्कृतका ' राद्धान्त ' प्राकृतके राद्धान्तसूत्र परसे बनाया गया हो और दोनोंका विषय एक हो। परन्तु इन बातोंका निर्णय दोनों ग्रंथोंके सामने आये विना नहीं हो सकता। अतः विद्वानोंको ऐसे सिद्धान्तप्रतिपादक मूल ग्रंथोंकी शीघ्र खोज लगाना चाहिये और मालूम करना चाहिये कि ये कौनकौनसे आचार्योंके बनाये हुए हैं और कब बने हैं।

१८ रत्नमाला।

राइस साहब, अपनी ' इन्स्क्रिपशंस ऐट्ट श्रवणबेल्गोल ' नामक पुस्तककी प्रस्तावनामें, ' राजावलीकथे ' नामक कनडी ग्रंथके आधार पर यह सूचित करते हैं कि श्रीसमन्तभद्रस्वामीके शिष्य शिवकोटि आचार्यने ' रत्नमाला ' नामका भी कोई ग्रंथ बनाया है, जिसने बहुतोंको उस समय जैनधर्मका अनुयायी बना दिया था। यद्यपि शिवकोटि जैसे प्राचीन आचार्योंके ग्रंथ महत्त्वशाली होंगे, इस कहनेमें कोई संकोच नहीं होता तो भी राजावली कथेके इस पिछले उल्लेखसे ग्रंथका महत्त्व और भी अधिकताके साथ

१ ' सिद्धान्त ' यह ' राद्धान्त ' का पर्याय नाम है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्यक्त होता है । और इस लिये ऐसे ग्रंथके शीघ्र उद्धारकी बड़ी ज़रूरत है । अभीतक यह मालूम नहीं था कि यह ग्रंथ कहाँके भंडारमें मौजूद है, किस भाषामें है और इसकी श्लोकसंख्या कितनी है । परन्तु हालमें जैनसिद्धान्तभवन आराकी सूची देखनेसे मालूम हो गया कि, यह ग्रंथ उक्त भवनमें कनडी लिपिमें कागज़पर लिखा हुआ मौजूद है । इसकी भाषा संस्कृत और श्लोकसंख्या सिर्फ ६७ है । ऐसा छोटा ग्रंथ शीघ्र ही 'माणिकचंदग्रंथमाला' के एक संग्रहमें निकल जाना चाहिये । परंतु हमें खेदके साथ यह लिखना पड़ता है कि सिद्धान्तभवनमें ऐसे किसी आदमीका कोई प्रबंध नहीं है जो कनड़ी लिपिके ग्रंथोंकी देवनागरी लिपिमें कापी कर-सके । और इस लिये ऐसे छोटे छोटे किन्तु महत्त्वशाली ग्रंथोंका उद्धार भी व्यर्थ ही रुका पड़ा है । आशा है, भवनके प्रबंधकर्ता महाशय शीघ्र ही भवनमें ऐसे किसी व्यक्तिका प्रबंधकर स्वर्गीय बा० देवकुमारजीके उद्देश्यको सफल करनेकी चेष्टा करेंगे । यदि यह ग्रंथ किसी दूसरी जगहके भंडारमें भी मौजूद हो और कोई भाई इसकी कापी कराकर हमारे पास भेजनेकी कृपा करें तो हम उनका आभार मानते हुए सहर्ष उसकी न्योछावर देनेके लिये तय्यार हैं ।

१९ जीवसिद्धि (द्वितीय) ।

जैनहितैषीके पहले अंकमें हमने श्रीसमंतभद्राचार्यप्रणीत 'जीवसिद्धि' नामके एक महत्त्वशाली ग्रंथका उल्लेख किया था । आज उसी नामके एक दूसरे ग्रंथका परिचय हम अपने पाठकोंको देते हैं । यह दूसरा ग्रंथ अनन्तकीर्ति नामके आचार्यका बनाया हुआ है; जैसा कि श्रीवादिराजप्रणीत पार्श्वनाथचरितके निम्न पद्यसे प्रकट है ।

आत्मनैवाद्वितीयेन जीवसिद्धिं निबध्नता ।
अनंतकीर्तिना मुक्तिरात्रिमार्गैव लक्ष्यते ॥ २४ ॥

उक्त पार्श्वनाथचरित शक संवत् ९४७ (वि० सं० १०८२) में बनकर समाप्त हुआ है। और इस लिये अनन्तकीर्ति आचार्य उसके निर्माणसे पहले हो चुके हैं, इसके कहनेमें कोई संकोच नहीं हो सकता । परंतु कितने पहले हुए हैं और कौनसे सन्-संवत्में उन्होंने यह ग्रंथ बनाया है, ये सब बातें अभी निर्णयाधीन हैं । यह भी मालून होनेकी जरूरत है कि इस समय कहाँके भंडारमें यह ग्रंथ मौजूद है । आशा है, हमारे भाई अपने अपने भंडारोंमें इस ग्रंथरत्नकी भी खोज लगाएँगे ।

२० त्रिभंगी ।

जैनसिद्धान्तभवन आराकी सूचीसे मालूम होता है कि वहाँ 'त्रिभंगी' नामके कई ग्रंथ हैं । एक ग्रंथ प्राकृतभाषाका श्रीनेमिचंद्राचार्यका बनाया हुआ २१४ श्लोक परिमाण है; दूसरा संस्कृत भाषाका २९२ पत्र परिमाण है, जिसके कर्ताका नाम और श्लोकसंख्या नहीं दी; तीसरा प्राकृत भाषाका नेमिचंदका बनाया हुआ ११३६ श्लोकपरिमाण है । ये तीनों ग्रंथ कनडी लिपिमें लिखे हुए हैं और सूचीमें क्रमशः नं० १००१,१००२,१००३ पर दर्ज हैं । मालूम नहीं, इनमें नेमिचंद्रके नाम पर जो दो ग्रंथ हैं वे कौनसे नेमिचंद्रके बनाये हुए है—दोनोंका कर्ता एक ही है या भिन्न भिन्न। यद्यपि श्लोकसंख्यासे दोनों ग्रंथ अलग अलग मालूम होते हैं तो भी संभव है कि ये दोनों ग्रंथ एक ही हों और श्लोकसंख्याके लिखनेमें भूल हुई हो । अतः इसका निर्णय होनेकी जरूरत है । साथ ही यह भी मालूम होनेकी जरूरत है कि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संस्कृतका 'त्रिभंगी' ग्रंथ कौनसे आचार्यका बनाया हुआ है और उसकी श्लोकसंख्याका परिणाम कितना है। इनके सिवाय एक चौथा 'त्रिभंगी' ग्रंथ भी भवनमें मौजूद है और वह देवनागरी अक्षरोंमें लिखा हुआ है। यह ग्रंथ **श्रीकनकनंदि** आचार्यका बनाया हुआ है और इसकी श्लोकसंख्याका परिमाण १४०० दिया है। श्रीकनकनंदी आचार्य गोम्मटसारके कर्ता नेमिचंद्र सिद्धान्तचक्रवर्तीके गुरु थे। संभवतः यह ग्रंथ उन्हींका बनाया हुआ मालूम होता है। सूचीपरसे यद्यपि ग्रंथकी भाषाका कोई पता नहीं चलता, तो भी यह ग्रंथ संस्कृत-प्राकृत इन दोनों भाषाओंमेंसे ही किसी एक भाषामें होगा ऐसा खयाल होता है। अधिकतर संभावना ग्रंथके प्राकृत होनेकी है। ग्रंथका विषय यद्यपि उसके नामपरसे कुछ स्पष्ट मालूम नहीं होता तो भी जहाँ तक हम समझते हैं इसमें कर्मोंकी बंध, उदय और सत्व, इन तीन अवस्थाओंका विस्तारके साथ वर्णन होगा। नेमिचंद्र सिद्धान्तचक्रवर्तीसे भिन्न दूसरे आचार्योंके इस विषयके ग्रंथोंके प्रकाशित होनेकी बड़ी जरूरत है। कनकनंदि आचार्यका अभीतक कोई ग्रंथ प्रकाशित नहीं हुआ और न इससे भिन्न दूसरा कोई ग्रंथ सुननेमें आया। अतः कनकनंदिके इस त्रिभंगी ग्रंथका शीघ्र उद्धार होना चाहिये। यह ग्रंथ देवनागरी लिपिमें लिखा होनेसे इसकी कापीमें भी कोई विशेष दिक्कत नहीं हो सकती। दूसरी जगहोंके भंडारोंमें भी यदि 'त्रिभंगी' नामके कोई ग्रंथ हों तो विद्वानोंको उनका परिचय भेजनेकी कृपा करनी चाहिये। (क्रमशः)

जैनजातिका सुधार।

(लेखक—**श्रीसत्यभक्तजी**—प्रयाग)

संसारमें प्रत्येक व्यक्ति, जाति, समाज, सम्प्रदाय, समूह, देश, राष्ट्रकी सदैव यह इच्छा रहती है कि उसका सुधार हो, उन्नति हो उसे सुख, प्राप्त हो, सब उसका आदर सम्मान करें, सब पर उसका प्रभाव पड़े और सब कामोंमें उसे सफलता मिले। इस उद्देश्यको सामने रखकर सभी अपने अपने सुधार, उन्नातिके लिये प्रयत्न, किया करते हैं। यह बात दूसरी है कि नासमझी अथवा बुद्धिहीनताके कारण कभी सुधार या उन्नतिके लिये किये गये प्रयत्नोंका फल उलटा हो और वे सुधारके स्थानमें बिगाड़ अथवा अवनतिका कारण बन जायँ। पर अपनी समझमें प्रत्येक मनुष्य, जाति, समाज, देश सदा अपनी उन्नतिके लिये ही चेष्टा करता रहता है।

जैनजातिमें भी अब सुधार शब्द सुना जाने लगा है, और कितनेही सज्जन जात्युन्नतिके लिये चेष्टायें करते देखे जाते हैं। यद्यपि इस कार्यको आरम्भ हुए कितने ही वर्ष समाप्त हो गये, पर जैनियोंमें उन्नति अथवा सुधारके कोई चिह्न हमारे देखनेमें नहीं आते। सुधार अथवा उन्नति तो दूर रही, जहाँ तक जान पड़ता है जैनजातिकी दशा दिन पर दिन बिगड़ती जाती है, उसकी जड़ कमजोर होती चली जाती है और उसमें तरह तरहकी त्रुटियाँ, हानिकारक बातें, कुरीतियाँ प्रवेश करती जाती हैं। इससे मालूम होता है कि जैन जातिकी उन्नातिके लिये किये जाते हुए प्रयत्न यथोचित, समयानुकूल और बुद्धियुक्त नहीं हैं। अतः प्रत्येक जातिहितैषीका कर्तव्य है कि वह जैन जातिके सुधार, उसकी उन्नतिके लिये ठीक ठीक और कार्यकर उपाय सोचें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रत्येक व्यक्ति अथवा जातिकी उन्नति मुख्य कर तीन प्रकारकी हुआ करती है । पहली धार्मिक, दूसरी सामाजिक और तीसरी राजनैतिक । यद्यपि इन तीनों प्रकारकी उन्नतियोंका एक दूसरेसे सम्बन्ध है, और तीनोंके लिये ज्ञान, विद्याका होना आवश्यक है, तो भी यदि प्रत्येक प्रकारकी उन्नतिके पृथक् पृथक् उपाय सोचे जायँ तो यह समस्या सरलतापूर्वक तय हो सकती है ।

धार्मिक उन्नतिमें प्रधान बात चरित्रका सुधार और आत्माका उत्कर्ष है । जैनधर्म इस उद्देश्यको पूरा करनेके लिये किसी दृष्टिसे हीन नहीं है । यह धर्म शुद्ध तत्त्वज्ञान पर अवस्थित है और चरित्रका सुधार इसका एक प्रधान अंग है । पर खेदसे कहना पड़ता है कि आजकल जैनधर्मका वास्तविक स्वरूप एक प्रकारसे बिल्कुल लुप्त हो गया है; और जैनी लोग ऊपरी क्रियाकर्मों और कथा कहानियोंको ही असली धर्म समझ बैठे हैं । जैनधर्मके तत्त्वज्ञानका उन्हें नाममात्रको भी पता नहीं, और जो लोग शास्त्रोंमें उसे पढ़ते भी हैं वे उसके गूढ़ रहस्य अथवा वास्तविक तात्पर्यको नहीं समझते, इसी लिये आज कल जैनसमाज धार्मिक उन्नतिकी दृष्टिसे बिल्कुल गिर गया है । और इस सम्बन्धमें सुधार किये जानेकी बड़ी आवश्यकता है ।

सामाजिक दशा और भी खराब है । जैनसमाजकी इस समय जैसी अव्यवस्था हो रही है और उसमें जिस प्रकार असंख्यों कुरीतियोंने घर कर लिया है वह वर्णन कर सकनेसे बाहर है । जैसे बेमेल विवाह इस जातिमें होते हैं वैसे शायद ही किसी दूसरी जातिमें होते हों ।

समाजशासन भी क्रमशः शिथिल होता जाता है, और आजकल बुरे नियमोंके समयमें उसका शिथिल होना है भी अनिवार्य । शारीरिक, मानसिक आर्थिक सभी दृष्टियोंसे जैनी हीन होते चले जाते हैं । यदि सामाजिक पतनका यही क्रम कुछ समय और बना रहा तो जैन जातिकी अवस्था कल्पनातीत हो जायगी ।

जब सामाजिक और धार्मिक अवस्था इस प्रकारकी है तो राजनैतिक उन्नतिका तो सवाल ही क्या । ऐसी बिगड़ी हुई, जर्जर त्रुटिपूर्ण, अव्यवस्थित, जीवनरहित, रूढ़ियोंकी गुलाम, कुसंस्कारयुक्त, क्षुद्रभावापन्न समाजको न आज तक कहीं राजनैतिक अधिकार मिले हैं और न आगे मिलना सम्भव है । राजनैतिक उन्नतिके लिये घोर दृढ़ता, अविरत उद्योग, धैर्य, बुद्धिमत्ता, साहस आदि अनेक सद्गुणोंकी आवश्यकता है । जैनियोंमें आजकल ये कहाँ ? अतः राजनैतिक क्षेत्रमें कोई जैनियोंका नाम भी नहीं जानता ।

अब आवश्यकता है कि यदि जैन समाज अपना कल्याण चाहता हो तो उसके विद्वान्, बुद्धिमान, जातिहितैषी लोग तीनों प्रकारकी उन्नतिके लिये सच्चे दिल और ठीक मार्गसे प्रयत्न करना आरम्भ करें । ठीक मार्गसे हमारा आशय यही है कि जैसे वर्षोंसे उन्नति और सुधारके लिये हल्ला मचाने पर भी अभी तक कोई फल नहीं देखा जाता, उसी प्रकार यदि अज्ञानके कारण गलत रास्ते पर कार्य किया गया तो परिणाममें निराश होना जरूरी है । अतः जब इस विषय पर बुद्धिमानीके साथ सूक्ष्म विचार किया जायगा तभी कुछ कार्य हो सकनेकी आशा है । हम तीनों प्रकारकी उन्नतिके प्रधान उपाय—अपनी सम्मातिके अनुसार—नीचे लिखते हैं ।

धार्मिक उन्नतिके लिये खास बात उत्तम शिक्षाका प्रचार है । न तो भक्ताम्मर, सत्रजी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

या पूजनादिके याद कर लेनेसे धार्मिक उन्नति हो सकती है और न संस्कृत पाठशालायें खोल कर व्याकरण और काव्यके कुछ ग्रंथ पढ़ादेनेसे। धार्मिक उन्नतिके लिए इस प्रकारकी शिक्षाका देना आवश्यक है जिससे लोगोंकी बुद्धिका विकाश हो, और वे सत्य असत्यका निर्णय कर सकनेमें समर्थ हो सकें। जो शिक्षा मनुष्यके नेत्र खोल दे और संसारमें क्या हो रहा है, संसार किस तरह जा रहा है, और देशकालानुसार किन बातोंको ग्रहण करना और किनको त्याग करना जरूरी है आदि बातोंके समझने और पूरा करनेकी शक्ति प्रदान करे वही सच्ची शिक्षा है। और वही मनुष्यको सच्चा धार्मिक बना सकती है। कूपमण्डूक बना रह कर धार्मिक कहलाने वाला मनुष्य कदापि धर्मके वास्तविक स्वरूपको नहीं जान सकता। अतः यदि जैनियोंको अपनी धार्मिक उन्नति और चरित्रका सुधार करना मंजूर हो तो शिक्षाका सुधार और प्रचार करना परमावश्यक है।

सामाजिक उन्नतिका सबसे अधिक सम्बन्ध विवाह-प्रणालीसे है। क्योंकि वर्तमान समयमें समाजका आधार ही विवाह अथवा स्त्रीपुरुषका मिलकर रहना है। जैनियोंकी विवाह-प्रथा इतनी अधिक बिगड़ी हुई और दोषपूर्ण है कि उसका पूरा वर्णन कर सकना भी कठिन है। यदि जैनी अपने समाजका स्थिर रहना अथवा उसकी उन्नति चाहते हों तो परमावश्यक है कि अपनी विवाह प्रथाका सुधार करें। वृद्ध-विवाह, बालविवाह, कन्याविक्रय, युवाओंका अविवाहित रहना, आदि सब हानिकारक रिवाजोंका रोका जाना जरूरी है। साथ ही दूसरी सब प्रकारकी कुरीतियोंको छोड़ना और रहन-सहनके उस ढंगको बदलना भी, जिसके कारण जैनी शारीरिक बल और बुद्धिमें हीन होकर दब्बू, कायर, डरपोक, 'बनिये' कहे जाने लगे हैं और दिनपर दिन उनकी मूर्खता बढ़ती जाती है, समाजोन्नतिके लिये आवश्यकीय है।

रही राजनैतिक उन्नति; उसके लिये मैं पहले ही लिख चुका हूँ कि जैनियोंकी वर्तमान गिरी हुई दशामें उसकी कुछ आशा रखना व्यर्थ है। जिन लोगोंको अपने घरका ही होश नहीं, जिनकी जाति दोषों त्रुटियोंकी खान बन रही है उनकी राजनैतिक संसारमें पूछ हो सकना एक प्रकार असम्भव है, पर यदि जैनी लोग चाहें तो उसके लिये भी उपाय हो सकता है और वह है देशसेवा। जिसे राजनैतिक उन्नतिकी अभिलाषा हो, अधिकार प्राप्त करनेकी आकांक्षा हो उसके लिये जरूरी है कि सच्चे मनसे परिश्रमके साथ देशसेवा करे। यद्यपि आन्दोलन भी इसका उपाय समझा जाता है, पर वह नकली उपाय है। असलमें देशसेवासे ही राजनैतिक अधिकार प्राप्त हो सकते हैं।

अतएव यदि जैनी लोग अपनी वर्तमान दशासे असन्तुष्ट हों, उनको अपनी अवनतिके ऊपर शोक होता हो, उनकी इच्छा हो कि वे भी दूसरी आगे बढ़ी हुई जातियोंके मुकाबिलेमें जा पहूँचे, यदि वे चाहते हों कि हमारे वर्तमान कष्ट, दुःख दुर्दशा दूर होकर संसारमें हम चैन, सुख, शांति और आरामके साथ जीवन व्यतीत कर सकें, तो उसके लिये आवश्यक है कि वे अपनी धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक तीनों प्रकारकी उन्नति करें और इस उद्देशको पूरा करनेके लिये शिक्षाका वर्तमान ढंग पर प्रचार करें, विवाहप्रथाका संशोधन करके अपनी घटती हुई संख्याको रोकें और तन मन धनसे परिश्रमपूर्वक देशसेवा करना आरम्भ करें। यदि जैनियोंने ये तीनों कार्य पूर्ण परिश्रम और उद्योगके साथ तथा सच्चे मनसे किये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो अवश्य ही उनकी उन्नति होगी और वे पुनः सच्चे और असली धर्मके ज्ञाता, सुधरी हुई और आदर्श समाजके सभ्य तथा राजनैतिक संसारमें अग्रगण्य बन कर अपने पूर्व गौरवको प्राप्त कर सकेंगे।

संपादकीय नोट—श्रीसत्यभक्तजीने जैन-जातिकी हालतपर तरस खाकर उसके सुधारके लिये जो यह कुछ पंक्तियाँ लिखनेका कष्ट उठाया है उसके लिये हम आपके बहुत आभारी हैं। और अपनी जातिके विद्वानों-नेताओं-शुभ-चिन्तकोंसे प्रार्थना करते हैं कि वे जैनजातिकी वर्त्तमान दशा और उसके सुधारके उपायों पर गहरा विचार करनेकी कृपा करें। हमारे खया-लमें धर्मका रहस्य न समझने और संसारकी प्रगतिसे अनभिज्ञ होनेके कारण जैनियोंकी शक्ति व्यर्थके ऊपरी क्रियाकांडों और नुमायशी कामोंमें खर्च हो रही है। इसीसे धर्म, समाज तथा देश-उन्नतिके काम उनसे कुछ भी नहीं हो पाते। वे उलटे अधार्मिक, संकीर्णहृदय और अकर्मण्य बनते चले जाते हैं। उन्हें अनेक मार्गोंसे, पहलुओंसे, धर्मका रहस्य समझाने और संसारकी गतिका अनुभव करानेकी बहुत बड़ी जरूरत है। ऐसा होने पर उनकी शक्तिका अपव्यय रुक जायगा। शक्तिका अपव्यय रुकने पर उनका रुख पलट जायगा और तब वे स्वयं ही अपना वास्तविक सुधार—यथार्थ उन्नति—कर-नेमें लग जायँगे। अतः सहृदय विद्वानोंको इसके लिये दिल खोलकर प्रयत्न करना चाहिये।

हृदयकी तान।

(ले०-पं० दरबारीलालजी, न्यायतीर्थ।)

हृदयमें गूँजे ऐसी तान।
न्याय मार्गसे नहीं डरें हम, अनुत्साहको नहीं धरें हम,
प्राणिमात्रसे प्रेम करें हम, करें देश उत्थान;
हृदयमें गूँजे ऐसी तान।

दीनोंके सब दुःख दूर हों, कार्यक्षेत्रमें हम सुशूर हों,
अन्यायीके लिये क्रूर हों, रक्खें अपना मान;
हृदयमें गूँजे ऐसी तान।

कायर-वचन न मुखसे बोलें, ज्ञान सुधारस घटघट घोलें,
सत्य-तुलामें सब कुछ तोलें, जबतक तनमें प्रान;
हृदयमें गूँजे ऐसी तान।

निर्बल कहीं न समझे जावें, जगमें कहीं न दीन कहावें,
विघ्न करोड़ों सिर पर आवें, झेलें सब शुभ जान;
हृदयमें गूँजे ऐसी तान।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीमती सरलादेवीका भाषण ।

गुरुकुलोंके सम्बंधमें तीन प्रश्न ।

सांताक्रूज गुरुकुलके साथ यह मेरा पहला प्रसंग नहीं है। दो वर्ष हुए इस संस्थाका मुझे अच्छा परिचय मिल चुका है । आज इस उत्सवके लिये निमंत्रण देकर उत्सवमें हाजिर होनेका जो शुभ अवसर मुझे दिया गया है उसके लिये मैं व्यवस्थापकोंका आभार मानती हूँ।

इसी तरह गुरुकुल-संस्थाओंके विषयमें मैंने जो कुछ विचार बाँधे हैं उन्हें संक्षेपमें सज्जनोंके सामने उपस्थित करनेकी अनुमति देकर कार्यकर्ताओंने मुझे बहुत ही आभारी किया है। इसके लिये मैं उन्हें धन्यवाद देना चाहती हूँ। मुझे आशा है कि जिन विचारोंको मैं दर्शाऊँगी उनमें धृष्टता होनेपर वे क्षमापात्र ही होंगे।

बंगालसे पंजाब आने बाद—एवं आर्यसमाजके साथ मेरा संपर्क होनेके बाद, दो शब्दोंके साथ मेरा गहरा परिचय हुआ है।

पहला शब्द 'गुरुडम' है । इस शब्दके अर्थकी खोज करने–पूछताछ करनेपर ऐसा मालूम हुआ कि आर्यसमाजियोंमें किसी भी मनुष्यदेहधारी जीवके प्रति अंधविश्वास, अंधभक्ति अथवा अंध-ताबेदारीका होना बहुत ही खराब गिना जाता है । भारतवर्षका यह प्राचीन संस्कार कुसंस्कार गिननेमें आता है।

सुनकर मनमें विचार उत्पन्न हुआ, कि, हाँ, बात तो ठीक है। प्राचीन कालके गुरु आज कल कहाँ हैं, कि जिनके वचन वेदवाक्य तुल्य प्रमाणभूत माने जा सकें और जिनकी पूजा की जा सके, जिनके चरणोंमें अंधभक्ति समर्पण करके इस तरह निश्चिन्त रह सकें कि जो कुछ उनकी आज्ञानुसार किया जायगा उससे कल्याण ही होगा, उत्तम फल ही मिलेगा । अतः गुरुपदके अधिकारी मनुष्य आज कल दुर्लभ होनेसे चाहे जिसको गुरु मानकर उसकी आज्ञाका पालन करना यह ठीक ठीक गुरुडम * ही है।

इसके साथ साथ ही दूसरा शब्द सुना गया। वह था 'गुरुकुल'। सुननेमें आया कि यह एक ऐसा विद्यालय है जहाँ प्राचीन पद्धतिसे विद्या सिखलाई जाती है। यह बात सुनकर चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। परंतु धीरे धीरे प्रश्नपर प्रश्न हृदयको व्यथित करने लगे। जिस समयमें और जिस देशमें सद्गुरुका अभाव होनेके कारण 'गुरुडम' जैसे एक नवीन शब्दकी उत्पत्ति हुई, उस समयमें और उस देशमें गुरुकुलका पुनः प्रचार होना कहाँतक संभव है ? गुरुकुल यह अपने भारतवर्षकी एक अति प्राचीन प्रणाली है। उपनिषदों परसे प्राचीन गुरुकुलोंका कुछ दर्शन होता है। शास्त्रकारोंने गुरुकुलके सम्बंधमें नियम भी गढ़ रक्खे हैं। इन परसे हम देख सकते हैं कि गुरुकुलमें ब्रह्मज्ञानको ही प्रधान पद दिया जाता था। वहाँ विज्ञान आदि दूसरी विद्याओंकी जो शिक्षा मिलती थी वह अधिकतर ब्रह्मज्ञानको मददरूप ही होती थी।

सनत्कुमार-नारद-संवाद परसे हमें इस विषयमें थोड़ा बहुत जाननेको मिलता है—

"अधिहि भगव इति होपससाद सनत्कुमारं नारदः। तं होवा च यद्वेत्थ तेन मोपसीद ततस्त ऊर्ध्वं वक्ष्यामीति । सहोवाच ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पंचमं वेदानां वेदं पिंन्यं (?) राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्यां सर्पदेवजनविद्यामेतद्भगवोऽध्येमि । सोऽहं भगवो

* ईसाई धर्ममें प्रोटेस्टेंट लोग पोपके अधिकारको पोपडम (pope-dom) कहते हैं। वे पोपका अधिकार नहीं मानते। आर्यसमाजियोंने इसी अर्थमें गुरुडम शब्द–डम (dom) यह अँगरेजी प्रत्यय लगाकर उत्पन्न किया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मंत्रविदेवास्मि नात्मविच्छ्रुतं ह्येव मे भगव वशेभ्यस्तरति शोकमात्मविदिति । सोऽहं भगवः शोचामि तं मां भगवांच्छोकस्य पारं तारयत्विति ॥"

इसका सारांश ऐसा है कि नारदजीने सनत्कुमारके पास आकर कहा, 'हे भगवन् मुझे ज्ञान दो।' सनत्कुमारने कहा, 'तुमको क्या आता है वह पहले बतलाओ, उसमें जो कुछ रह गया होगा वह मैं बतलाऊँगा।' नारदने कहा, 'मैं चारों वेद, इतिहास, पुराण, गणितशास्त्र, तर्कशास्त्र, ज्योतिष इत्यादि बहुत बहुत विद्याएँ जानता हूँ; मैं मंत्रविद् हूँ, आत्मविद् नहीं; आप जैसे ऋषियोंके पाससे मैंने सुना है कि जो आत्मवित्—अर्थात् ब्रह्मवित् होता है वह शोकको तर जाता है; मुझे विद्याएँ तो प्राप्त हो गई हैं परंतु मैं अब भी शोकके वश हूँ; मुझे ब्रह्मज्ञानका दान करके शोकसे पार कीजिये।'

इस परसे हम देख सकते हैं कि गुरुके पास जानेका मुख्य उद्देश ब्रह्मज्ञान (आत्मज्ञान) प्राप्त करना ही था। दूसरी बात यह है कि प्राचीन कालमें हरएक शिष्य समित्पाणि होकर गुरुके पास जाता था—

"तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्।"

उस ब्रह्मको जाननेके लिये श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ ऐसे गुरुके पास समित्पाणि होकर जावे।

"ते हैते ब्रह्मपरा ब्रह्मनिष्ठाः परं ब्रह्मान्वेषमाणा एष ह वै तत्सर्वं वक्ष्यतीति । तेह समित्पाणयो भगवन्तं पिप्पलादमुपसन्नाः।"

अर्थात्—भरद्वाज, सुकेशा, सत्यकाम, शैव्य, गार्ग्य, सौर्या, याण, आश्वलायन, कैशल्य, वैदर्भि, भार्गव और कवन्धी कात्यायन समित्पाणि होकर भगवान पिप्पलादके पास ब्रह्मान्वेषणके लिये गये।

इस 'सामित्पाणि' शब्दसे जो गूढ़भाव मेरे मनमें उदय होता है उसे मैं आपके सामने उपस्थित करना चाहती हूँ। समित्पाणि होकर जानेका अभिप्राय यह था कि शिष्यने सेवाधर्मको अंगीकार किया है। इसके बहुतसे प्रमाण हमको मनुस्मृति, गीता और उपनिषदोंसे उपलब्ध होते हैं। उनमेंसे कुछ वाक्य यहाँ उध्दृत करती हूँ।

अग्नीन्धनं भैक्ष्यचर्यामधः शय्यां गुरोर्हितम्।
आसमावर्तनात्कुर्यात्कृतोपनयनो द्विजः॥
अनुव्रज्या च शुश्रूषा यावदध्ययनं गुरोः॥
हीनान्नवस्त्रवेषः स्यात्सर्वदा गुरुसन्निधौ।
उत्तिष्ठेत्प्रथमं चास्य चरमं चैव संविशेत्॥
चोदितो गुरुणा नित्यं अप्रचोदित एव वा।
कुर्यादध्ययने यत्नमाचार्यस्य हितेषु च॥
इमं लोकं मातृभक्त्या पितृभक्त्या तु मध्यमं।
गुरुशुश्रूषयात्वेवं ब्रह्मलोकं समश्नुते॥
तेषां त्रयाणां शुश्रूषा परमं तप उच्यते॥
यथा खनन्खनित्रेण नरो वार्यधिगच्छति।
तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति॥
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति।
श्रद्धावान् लभते ज्ञानं तत्परः संयतेंद्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥
तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।

कृशानाबलानां चतुःशताः गा निराकृत्योवाचेयाः सोम्यानुसंव्रजेति। ता अत्रिप्रस्थापयन्नुवाच नासहसेणावर्तयेति॥

धर्मार्थौ यत्र न स्यातां शुश्रूषा वापि तद्विधा।
तत्र विद्या न वक्तव्या शुभं बीजमिवोषरे॥

एक देखा गुरुडमका चित्र और दूसरा देखा गुरुसेवाका। ये दोनों परस्परविरुद्ध जैसे मालूम होते हैं कि नहीं? जिस समय गुरुसेवाके ऊपर श्रद्धा न हो उस समय गुरुकुलमें अध्ययन होना क्या संभवित है?

गुरुकुलमें एक दूसरी बात रही हुई है और वह गुरु-शिष्यके मध्यका कौटुम्बिक संबंध है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अच्छा तो ये गुरु कैसे थे? गुरुत्वके योग्य कौन थे?—जो श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ हों, इतना ही नहीं, बल्कि दुश्चरित्रसे विरत, शांत और समाहित हों, जो पूरी तौरसे विनयी हों, जिनमें दंभ तो लेशमात्र भी न हो। इसीसे वे पाठारंभमें हमेशा प्रार्थना करते हैं कि:—

सहनाववतु सहनौ भुनक्तु सहवीर्यं करवावहै, तेजस्विनावधीतमस्तु मां विद्विषावहै।

गुरुको भी अपनी रक्षाकी जरूरत तो सदा है ही। गुरु कहीं पतनानीत तो बन गया नहीं होता। गुरु शिष्य दोनोंको वीर्यवृद्धिकी जरूरत है, केवल शिष्यको ही है ऐसा नहीं। इसीसे गुरु विनयसे नम्र होकर प्रार्थना करता है—

सहनौ अवतु सहवीर्यं करवावहै।

एक ऋषिके पास कुछ ब्रह्मविज्ञानार्थी शिष्य गये, तब ऋषिने कहा—

'भूय एव तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया संवत्सरं संवन्स्यथ यथाकामं प्रश्नान् पृच्छथ। यदि विज्ञास्यामः सर्वं हवो वक्ष्याम इति।'

गुरुकुलके वास्ते देखना चाहिये ऐसा विनयी, साधक, ब्रह्मनिष्ठ, स्थितप्रज्ञ, सदाचारी और शांत गुरु कि जिसका गुरुत्व गुरुडम न हो।

समित्पाणि बनकर गुरुके निकट जानेमें दूसरा जो महत्त्वका शिक्षण मिलता है उसे भी ध्यानमें रखनेकी जरूरत है। शिष्य समित्पाणि बनकर गुरुके पास जाता था, इससे यह सिद्ध होता है कि प्राचीन कालमें विद्याप्राप्तिके लिये द्रव्यकी जरूरत न थी। जरूरत खाली गुरु-शुश्रूषाकी ही थी। और इस सेवाके लिये विद्यार्थी अवस्थामें कुछ न कुछ शारीरिक परिश्रमका भी प्रयोजन था। अपने ही हाथसे लकड़ी काटकर लाना, अपने ही हाथसे पानी भरना, रसोई करनी, ये बहुधा ज्ञानसाधनमें अंगीभूत और मददरूप गिने जाते थे। आजकल जो इन्हें विघ्नरूप माना जाता है; ऐसा न था। संपूर्ण मनुष्यत्वके विकासके सारभूत हाथ पैरोंको पराधीन बनाकर अकेले मस्तिष्कसे ही काम लेना, यह प्राचीन मान्यतासे विरुद्ध था। उसका संस्कार आजतक अपने हिन्दू समाजमें चला आरहा है।

अधिकांश अँगरेजीभावापन्न बंगाल देशमें भी वहाँके विशुद्ध ब्राह्मण पंडित, जो ज्ञानाराधनमें ही मशगूल रहते हैं वे भी गरीब हैं और स्वयं रसोई बनाते हैं।

परमार्थदृष्टिसे जिन विद्यार्थियोंको शारीरिक श्रम करना पड़ता है उनका शरीर वज्र जैसा मजबूत बन जाता है, वे निर्भय बनते हैं और इस संसारमें आजीविकाके लिये जो दारुण संग्राम चल रहा है उसमें पूरा भाग लेनेके लिये तय्यार होते हैं। काष्ठ वगैरह चुनकर लानेके लिये जंगलमें भटकना होता है और रातको गौशाला वगैरहकी रक्षा करनी होती है इससे विद्यार्थी चुस्त और चंचल बनते हैं, भयरहित और स्वाश्रयी तय्यार होते हैं। जिन विद्यार्थियोंको पारमार्थिक दृष्टिसे शारीरिक परिश्रम उठाना पड़ता है उनके लिये सत्य, ब्रह्मचर्य वगैरह महाव्रतोंका पालन सुगम हो जाता है, यह अनुभवसिद्ध बात है।

अब प्रश्न यह है कि आजकलके स्कूल और कालिजोंमें जो शिक्षा मिलती है वह जैसी चाहिये वैसी क्यों नहीं? इतना तो निर्विवाद है कि आधुनिक शिक्षणक्रममें धर्मको बिलकुल स्थान नहीं। इतना ही नहीं बल्कि आधुनिक विद्वानोंकी ऐसी मान्यता है कि शिक्षणमें धर्मको स्थान देनेकी कोई जरूरत नहीं। धर्मकी शिक्षा देनेमें हानि है, ऐसा भी कितनोंहीका कहना है। अतः जिन्हें धर्मशिक्षणसे प्रेम है उनके लिये आधुनिक पाठशालाएँ निरर्थक हैं। परिणाम भी ऐसा ही निकला है। यद्यपि आधुनिक विद्यार्थियोंके अंदर थोड़ा बहुत नैतिक विकास

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देखनेमें आता है तो भी उनकी धर्ममें श्रद्धा नहीं होती। कोई कोई तो नास्तिक तक बन जाते हैं। बहुतसे हिन्दूधर्मके मूलतत्त्वोंसे भी अनभिज्ञ रहते हैं। ऐसी दशा अवश्य शोचनीय है। अतः जहाँ धर्मका ज्ञान और धर्माचरणकी शिक्षा मिल सके ऐसे स्थानकी खास जरूरत है।

अब हमारे आधुनिक गुरुकुल कैसे होने चाहियें इसका विचार किया जाना चाहिये। यदि हम अपने बच्चोंको वैसा ही ज्ञान देना चाहते हैं जैसा कि स्कूल कालिजोंमें दिया जाता है तो मैं जरूर कहूँगी कि हमारे लिये यह बेहतर है कि हम अपने बच्चोंको स्कूल कालिजोंमें भेजें और गुरुकुलके लिये खास प्रयत्न करना छोड़ देवें। परंतु गुरुकुलोंका प्रयोजन है। क्योंकि आज धर्मज्ञानकी, धर्माचरणकी अतिशय आवश्यकता है और वह हमेशा रहनेवाली है। भारतवासियोंकी धर्मकी पिपासा अभी तक लुप्त नहीं हुई। इस परसे यह सिद्ध होता है कि हमें गुरुकुलोंकी परीक्षा करते समय बड़े बड़े मकानोंसे मोहित नहीं होना चाहिये, अँगरेजी भाषा, विज्ञान, गणितशास्त्र वगैरहका ज्ञान देनेके लिये वहाँ कैसा प्रयत्न जारी है यह देखकर हमें हर्षित नहीं हो जाना चाहिये, बल्कि ऐसी बड़ी संस्थाओंमें धार्मिक ज्ञान और धार्मिक वर्तनको विशेष पद देनेमें आता है या कि नहीं, यह हमें देखना चाहिये, और इसीके ऊपरसे ऐसी संस्थाओंकी परीक्षा करनी चाहिये।

धर्मज्ञानका अर्थ केवल वेदोंका या पुराणोंका अध्ययन ही नहीं है। धर्मज्ञान केवल पुस्तकोंसे दिया जाना असंभव है। धर्मज्ञान सुशिक्षित और सदाचारी गुरुके संपर्कसे ही दिया जाना संभव है। इसीसे गीताजीका महावाक्य कहता है—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।

इसमें गुरुभक्तिकी महिमा मधुर शब्दोंद्वारा बतलाई गई है। इसप्रकारका धर्मज्ञान दिये जानेके अर्थ बाह्य और अभ्यंतर दोनों प्रकारकी व्यवस्थाकी जरूरत है। बाह्य साधनोंमें एकान्त रमणीय प्रदेश, जहाँ विद्यार्थीगणको शांति, कोमलता, पवित्रता—इनका ही परिचय हो सके, और ऐसे स्थानमें पर्णकुटी अथवा प्राचीनकलाकी जिनमें प्रधानता हो ऐसे सादा आडम्बररहित मकान ही होने चाहियें।

आभ्यन्तर आवश्यकताका विचार करते हुए जिस तरह हमें योग्य अधिकारी, विनयी गुरुका प्रयोजन मालूम होता है, उसीतरह सेवावृत्तिवाले विनीत शिष्योंका। परंतु जबतक सुयोग्य गुरुका और सेवाभावसे भरे हुए शिष्योंका अभाव रहेगा, तबतक हम गुरुकुलोंमें जान नहीं डाल सकते। सामान्य बाजारमेंसे गुरुकुलके योग्य शिक्षक मिलना असंभव है। जबतक इस त्रुटिको हम दूर नहीं कर सकेंगे तबतक आदर्श गुरुकुल तय्यार होनेवाले नहीं। ऐसे शिक्षक मिलना दुर्लभ है, यह बात मैं स्वीकार करती हूँ, परंतु साथ साथ यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि जबतक ऐसे गुरु हिन्दुस्तानमें तय्यार नहीं होंगे तबतक हमारे गुरुकुल बहुत ही अपूर्ण रहेंगे। इतना ही नहीं, बल्कि जिस सफलता और जिस विशेषताकी हमें अभिलाषा रखनी चाहिये वह व्यर्थ जायगी। यदि मेरा यह अभिप्राय उचित माना जाय तो हमारे सामने यह बहुत ही महत्त्वका प्रश्न उपस्थित होता है कि ऐसे गुरुओंको हम किस रीतिसे तय्यार कर सकते हैं?

प्रश्न उपस्थित करना जितना आसान है, उत्तर देना उतना ही कठिन है। मुझमें उत्तर देनेकी शक्ति नहीं। विद्वानोंके सामने इस प्रकारके प्रश्न खड़े कर देना इतना ही मेरा कर्तव्य है। अतः गुरुकुल-व्यवस्थापकोंसे मेरी तीन प्रार्थनाएँ हैं—

१ गुरुकुलमें धर्मज्ञान और धर्माचरणको प्रधानपद दिया गया है या नहीं इसका विचार करना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२ धर्माचारी शिक्षक किस रीतिसे उत्पन्न किये जा सकते है, इस प्रश्नके ऊपर खूब विचार करके कुछ न कुछ इलाज निकालना।

३ विद्यार्थियोंके लिये ऐसे शारीरिक उद्योगकी व्यवस्था की जाय कि जिससे भारतवर्षका कल्याण हो।

आज मैं गुजरातके एक आश्रमसे, जहाँ मेरा लड़का पढ़ रहा है, इस गुरुकुलके जल्सेमें आई हूँ। इस आश्रमका नाम गुरुकुल नहीं। यह है महात्मा गाँधीजीका सत्याग्रहाश्रम।

विद्यार्थियोंमें सेवाभाव उत्पन्न करनेका यहाँ हरएक प्रकारसे प्रयत्न होता है। विद्यार्थी अपने बहुतसे काम अपने ही हाथोंसे कर लेते हैं। योग्य गुरुओंके दृष्टांतसे धर्मज्ञान और धर्माचरण यह यहाँ विद्यार्थियोंके लिये प्रधानवस्तुके तौरपर रक्खा गया है।

अन्तमें एक दर्ख्वास्त मैं आप लोगोंके सामने पेश करना चाहती हूँ।

आज हिन्दुस्तानमें जब कोई काम आन पड़ता है तो हिन्दू मुसलमान महात्मा गाँधीजीका शरण ग्रहण करके उनकी धीर बुद्धिसे लाभ उठाते हैं। हमारे गुरुकुल इस लाभसे किस लिये वंचित रहते हैं? गुरुकुलका पुनरुद्धार करनेके लिये संपूर्ण गुरुकुलोंकी एक परिषद् एकत्र करनी चाहिये और दारिद्र्यव्रतधारी, यमनियमादिसाधनसंपन्न, सेवाधर्मी, सत्यनिष्ठ और ब्रह्मपरायण महात्मा गाँधीजीकी सहायतासे अपने अपने गुरुकुलकी पद्धति वर्तमानकालके अनुकूल बना लेनी चाहिये।

इस सूचनाके साथ इस सांताक्रूज संस्थाकी उन्नतिके लिये परमेश्वरकी प्रार्थना करके मैं विराम लेती हूँ। +

नोट—श्रीमती सरलादेवीजीने, अपने इस भाषणमें, गुरुकुलोंके सम्बंधमें जो जो बातें कही हैं और जो तीन प्रश्न उपस्थित किये हैं उन पर हमारे जैनी भाईयोंको भी और खासकर ऋषभ-ब्रह्मचार्याश्रम हस्तिनापुरके संचालकोंको विचार करना चाहिये। इसमें संदेह नहीं कि गुरुकुल जैसी संस्थाओंके लिये गुरुका प्रश्न एक बड़े ही महत्त्वका प्रश्न है। परंतु खेदके साथ कहना पड़ता है कि इस पर बहुत कम ध्यान दिया जाता है और बहुधा यही वजह है कि आधुनिक गुरुकुलोंसे प्रायः यथेष्ट परिणाम निकलता हुआ नजर नहीं आता—जिस परिमाणमें समाजकी आर्थिक आदि शक्तियोंका व्यय होता है नतीजा उसका शतांश भी नहीं। गुरुकुलोंके शिक्षकोंको धर्मके रहस्यका जाननेवाला, आत्मनिष्ठ, संयतेंद्रिय, विनयी, शांत, उदार, गंभीर, धीर और सदाचारी होना चाहिये। परंतु ऐसे शिक्षक साधारण बाजारोंसे उपलब्ध नहीं हो सकते, यह बिलकुल सच है। और इस लिये उनकी प्राप्तिके लिये खास यत्नकी जरूरत है। अन्तमें श्रीमतीने महात्मा गाँधीजीकी अध्यक्षतामें सर्व गुरुकुलोंकी एक परिषद् एकत्र करने आदिके सम्बंधमें जो बात कही है वह बहुत ही समुचित मालूम होती है। —संपादक।

+ 'नवजीवन' की १८ वीं अप्रेलकी संख्यामें प्रकाशित श्रीमतीके गुजराती भाषण परसे अनुवादित।

मुझे यदि निर्वृति न मिले तो कोई चिन्ता नहीं—मैं उसे अभी चाहता भी नहीं—परंतु मेरे अंतर्जल्परूप उत्प्रेक्षाजालोंका मूलसे नाश होना चाहिये। अर्थात्, मेरे हृदयमें जो अक्सर बैठे बिठाए ख्वामख्वाह किसी व्यक्ति आदिकी कल्पनाएँ उठकर उनके सम्बंधमें व्यर्थकी बातचीत हुआ करती है वह न हुआ करे। यह अंतरंगकी बातचीत दुःखोंका मूल कारण है। इससे न सिर्फ आत्माकी शक्तियाँ ही नष्ट होती हैं बल्कि शारीरिक और मानसिक शक्तियोंको भी बहुत बड़ा धक्का पहुँचता है। और इसमें तो कोई संदेह ही नहीं कि जब तक यह अन्तरंगकी बातचीत बनी रहेगी तब तक इस जीवात्माको कर्मबंधनसे छुटकारा नहीं मिल सकता।

—खंडविचार।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गड़बड़ानन्दिनी गवेषणायें।

[लेखक, **श्रीमान् पं० श्रीगड़बड़ानन्द शास्त्री।**]

जान पड़ता है बाबूदल जैनधर्मके पीछे हाथ धोकर पड़ गया है। अब उसने जैनधर्मके नाश करनेका एक और नया तरीका निकाला है। वह जैनधर्मके बड़े बड़े शास्त्रोंका अस्तित्व ही मिटा देना चाहता है। बाबू जुगलकिशोरजी बड़ी बड़ी दलीलें पेश करके फरमाते हैं कि स्वामी समन्तभद्रका बनाया हुआ 'गन्धहस्ति महाभाष्य' नामका कोई ग्रन्थ ही नहीं है। हमारी शास्त्रीय भाषामें उन्होंने उसे बिलकुल आकाशकुसुम या खरविषाण बतला दिया है। तरीका बड़ा बढ़िया है। "न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी।" जब जैनग्रन्थोंके अस्तित्वमें ही सन्देह होने लगेगा तब जैनधर्म क्या खाक रह जायगा? हमारे शास्त्री भाइयोंको जल्दी सावधान हो जाना चाहिए। यह कोई मामूली बात नहीं है। इसके लिए शास्त्रीयपरिषत्‌की एक स्पेशल मीटिंग बुलानी चाहिए और उसमें ऐसे विचारोंके प्रचारके रोकनेका कोई खास इन्तजाम करके महाभाष्यकी प्रति लानेके लिए जितनी जल्दी हो सके, किसी धुरन्धर शास्त्रीको आस्ट्रिया भेज देना चाहिए। जब कि एक शास्त्रीने वियनालायब्रेरीके 'कैटलाग' में महाभाष्यका नाम देखा है तब वह वहाँ अवश्य ही होगा। उनकी बात पर अविश्वास करनेका कोई कारण नहीं दिखाई देता। कोई 'बाबू' होता तो सन्देह भी किया जा सकता था। आस्ट्रियासे महाभाष्यके आनेपर बाबूसाहबकी सारी दलीलोंपर पानी फिर जायगा।

× × × ×

जिस तरह राक्षसराज रावण बहुरूपिणी विद्याकी साधनामें तन्मय हुआ था, उसी प्रकार बाबू सूरजभानजी वकील कथाग्रंथोंको कपोलकल्पित सिद्ध करनेकी साधनामें संलग्न हो रहे हैं। हमारे शास्त्री मित्र अंगदका रूप धारण करके उनके ऊपर तरह तरहके उपद्रव करनेके लिए आज वर्षोंसे कटिबद्ध हो रहे हैं—वाग्बाणोंकी वर्षा करते हैं, तिरस्कारवर्षा और गालिवर्षा करनेमें भी कसर नहीं रखते हैं, फिर भी वे टससे मस नहीं होते हैं—बराबर लिखे ही चले जाते हैं। उन्होंने सब तरफसे इस तरह आँख कान बन्द कर लिये हैं मानों कोई उनसे कुछ कहता ही नहीं है, कोई उनके विरुद्ध कुछ लिखता ही नहीं है। हम लोग शास्त्रार्थ करनेके लिए चुनौतियाँ देते देते थक गये, लिखते लिखते हार गये कि यदि दम हो तो खम ठोककर मैदानमें आ जाओ, नहीं तो अपनी मूर्खतापर पश्चात्ताप करो; तिरस्कार कर करके तंग आ गये कि पहले न्यायशास्त्रका 'ओनामा' पढ़ो तब इस तरह छोटे मुँह बड़ी बातें करो; पर यारने ऐसी गजबकी चुप्पी लगाई है कि कुछ कहते ही नहीं बनता। कौन जानता था कि यह बूढ़ा खुर्राट अपनी धुनका इतना पक्का होगा और मवक्किलोंके चाटे हुए इसके दिमागमें इतनी एकाग्रता बाकी बनी होगी, जो इस वानरदलके कोलाहलसे जरा भी चल-विचल न होगी। हमारे शास्त्री मित्र चाहे जो समझें, परन्तु मुझे तो यही निश्चय हो गया है कि यह महासाधना निष्फल जानेवाली नहीं है। सूरजभानी विद्या अवश्य सिद्ध होगी, बल्कि आँख खोलकर देखा जाय तो मालूम होगा कि उसका सिद्ध होना शुरू भी हो गया है। समाजमें जहाँ तहाँ बीसों सूरजभान दिखाई देने लगे हैं और यह राक्षसवंश बराबर बढ़ता ही चला जाता है। अब इसके सिवाय और कोई उपाय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं दिखाई देता कि स्वयं नारायण-बलभद्र मैदानमें आवें और अपने चक्ररत्नसे इनका शिरच्छेद करके जैनधर्मकी धुजा फहरावें।

× × × ×

देखते हैं कि वन और जंगल तो हिंस्रजन्तुओंसे खाली हो रहे हैं; परन्तु धर्मोंकी चहारदीवारियोंके भीतर इनके झुण्डके झुण्ड बेखौफ़ होकर घूम रहे हैं। इनके उपद्रवोंके मारे धर्मात्माओंका नाकों दम है। बेचारे बड़े ही परेशान हैं। यद्यपि आजकलकी सभ्य भाषामें ये 'शिक्षित' या 'पढ़े लिखे' कहलाते हैं, परन्तु इनके कृत्य वन्यजन्तुओंसे भी भयंकर हैं। शास्त्रियोंकी भाषामें इन्हें 'साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः' के सिवाय और कुछ भी नहीं कहा जा सकता। लोगोंकी भक्ति और श्रद्धारूपी निरीह गऊयें इनके मारे त्रस्त हैं। नित्य ही सुन पड़ता है कि आज अमुकके लड़केकी श्रद्धाको अमुक 'बाबू' चट कर गया और अमुककी भक्तिको अमुक 'मिस्टर' साफ कर गये! भगवन्! यह क्या हो रहा है? यदि कुछ समय तक यही क्रम जारी रहा तो जिस तरह श्वेताङ्गोंके मारे गोवंशका नाश समीप दिखलाई देता है, उसी प्रकार इन श्वापदोंके मारे श्रद्धावंशका सर्वनाश हो जायगा और तब समझमें नहीं आता कि इस सुजलसुफल-शस्यश्यामल धर्मराज्यकी क्या दशा होगी। हमें तो सिवाय इसके और कोई उपाय नजर नहीं आता कि अब क्षेत्रपाल पद्मावती आदि शासनदेवताओंके द्वार खड़खड़ाये जावें और उनसे इस संकटसे रक्षा करनेकी प्रार्थना की जाय। सैकड़ों वर्षोंसे ये देवता आराम कर रहे हैं। इनसे कोई भी शासनकार्य नहीं लिया जा रहा है। इस समय वे अवश्य काम आयँगे।

जो विधवा लोकलाज तथा किसी प्रकारके भयादिकी अपेक्षा न कर, ब्रह्मचर्य (शील) के माहात्म्यको वस्तुतः भले प्रकार समझती और श्रद्धान करती हुई, खुशीसे पूर्ण ब्रह्मचर्यका अनुष्ठान और प्रेमसे उसका पालन करती है; साथ ही, ऐसा करते हुए किसी पर कुछ अहसान नहीं जताती बल्कि यह समझती है कि मैं जो कुछ कर रही हूँ, वह सब अपने आत्मोत्कर्षके लिये कर रही हूँ, वह उत्तम विधवा है। मध्यम विधवा वह है जो पूर्ण ब्रह्मचर्यका पालन करनेके लिये असमर्थ है, अथवा देश, काल तथा स्वकुटम्बादिककी परिस्थितियोंके कारण पूर्ण ब्रह्मचर्यका पालन करना अपने लिये उचित तथा हितावह नहीं समझती, और इस लिये जो पुनर्विवाहदीक्षासे दीक्षित हो जाती है। इसके सिवाय अवस्था ढल जाने आदिके कारण जिनकी कामवासनाएँ प्रायः शान्त हो गई हैं, जो ब्रह्मचर्यके महत्त्व और उसके द्वारा अपने आत्मोत्कर्षको कुछ जानतीं या समझतीं नहीं, केवल लोकरीति ही जिनकी ब्रह्मवृत्तिका एक मात्र आश्रय है, अथवा जो लोकलाज या किसी भयादिके कारण मजबूरीसे ब्रह्मचर्यका पालन करती हैं वे सब विधवाएँ भी मध्यम श्रेणीमें दाखिल हैं। जघन्य श्रेणीकी या अधम विधवाएँ वे हैं जो न तो किसी प्रकारसे ब्रह्मचर्यका पालन करती हैं और न पुनर्विवाहदीक्षासे दीक्षित होकर बैठ रहनेकी जिनमें हिम्मत है; बल्कि जो बाहरसे सती साध्वीका ढोंग बनाकर बराबर गुप्त व्यभिचार किया करती हैं और अपने इस दुष्कर्मपर पर्दा डालनेके लिये भ्रूणहत्या तथा बालहत्यादि जैसे महान् पापोंके करनेमें भी जिन्हें कुछ भय तथा संकोच नहीं होता और जो बराबर उनके करने करानेमें तय्यार रहती हैं।

—खंडविचार।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विविध प्रसङ्ग ।

१–महावीरस्वामीकी सच्ची जयन्ती ।

अहमदाबादमें महावीर जयन्तीके उत्सव पर महात्मा गाँधीने नीचे लिखी विचारणीय बातें कही थीं—

“ मैं आप लोगोंसे विश्वासपूर्वक यह बात कहूँगा कि महावीर स्वामीका नाम इस समय यदि किसी भी सिद्धान्तके लिए पूजा जाता हो, तो वह अहिंसा है । मैंने अपनी शक्तिके अनुसार संसारके जुदा जुदा धर्मोंका अध्ययन किया है और जो जो सिद्धान्त मुझे योग्य मालूम हुए हैं उनका आचरण भी मैं करता रहा हूँ । मैं अपनेको एक पक्का सनातन हिन्दू मानता हूँ; परन्तु मैं नहीं समझता कि जैन-दर्शन दूसरे दर्शनोंकी अपेक्षा हलका है अथवा उसकी हिन्दूधर्ममें गणना न हो सके; और इसी लिए मैं मानता हूँ कि जो सच्चा हिन्दू है वह जैन है और जो सच्चा जैन है वह हिन्दू है। प्रत्येक धर्मकी उच्चता इसी बातमें है कि उस धर्ममें अहिंसाका तत्त्व कितने परिमाणमें है और इस तत्त्वको यदि किसीने भी अधिकसे अधिक विकसित किया हो, तो वे महावीर स्वामी थे । परन्तु उन महावीर भगवानका वर्तमान शासन उसका पूरा पूरा आचरण नहीं करता । महावीर स्वामीका शासन ऐसे लोगोंके हाथोंमें जा पड़ा है कि उनके द्वारा वह यथेष्ट रूपमें विकसित नहीं हो सका । मैं यह बात त्रुटि बतलानेके लिए नहीं कह रहा हूँ और न मुझे जैनोंसे किसी प्रकारकी घृणा ही है । मैं सैकड़ों हजारों लोगोंके समागममें रहता हूँ । अनेक श्रावकोंके साथ मेरा गाढ़ परिचय है । जैनसाधुओंके साथ मैंने मित्र-भावसे अनेक बार वादविवाद किये हैं और इससे मुझे अनुभव हुआ है कि महावीर भगवानने जिन तत्त्वोंका उपदेश दिया है उनका आचरण जैनोंमें नहीं होता है । यद्यपि वे पशुओंकी रक्षा करते हैं, नानाप्रकारके जीवजन्तुओंको बचाते हैं, पानी छानकर पीते हैं, गिने चुने खाद्य पदार्थोंको खाते हैं, दूसरे अभक्ष्य पदार्थोंको त्यागे रहते हैं और कुछ खास खास धर्मक्रियाओंको करते रहते हैं और केवल इतनेसेही वे अपनेको सच्चा जैन मानते हैं । परन्तु जैनधर्मकी और महावीरपुत्रोंकी ऐसी छोटी–अपूर्ण व्याख्या समझ लेनेसे आजकलके जैनभाई अगणित छोटे छोटे जीवजन्तुओंकी रक्षा भले ही करते हों परन्तु मनुष्योंके प्रति उनका जो बर्ताव है–जो आचरण है–वह कदापि ठीक नहीं कहा जा सकता । भले ही वे खटमल, कीड़ों-मकोड़ों और मच्छड़ोंकी चिन्ता रखते हों, परन्तु मनुष्योंके प्रति तो वे विश्वासघात करते हैं, उनका पेट काटते हैं, झूठ बोलते हैं और निर्दयता प्रकट करते हैं । अतः उनकी अपेक्षा जो मनुष्य सैकड़ों कीड़ों-मकोड़ोंकी ओरसे लापरवा रहकर भी मनुष्यजातिकी ऊँचीसे ऊँची सेवा करता है, लकवा, गलितकुष्ठ अथवा छूतके रोगोंसे ग्रसित रोगियोंकी अपने जीवनकी भी परवा किये बिना सेवाशुश्रूषा करता है, उसे मैं विशेष पूजनीय समझता हूँ। मैं आप सब लोगोंसे बिनती करता हूँ कि आप महावीर स्वामीके उपदेशोंको पहचानें, उन पर विचार करें, और उनके अनुसार आचरण करें । जिस समय हम ऐसा करने लगेंगे उसी समय महावीर भगवानकी सच्ची जयन्ती मनानेके योग्य गिने जायँगे । जो मनुष्य मनुष्यकी सेवा करनेमें अपने आत्माको ओतप्रोत कर डालते हैं, उन्हें मैं विशेष उत्तम गिनता हूँ । मेरे इस कथनका कहीं आप उलटा अर्थ नहीं करने लगना । महावीर स्वामी क्षत्रिय थे और उन्होंने जिस अहिंसाधर्मका प्रतिपादन किया है तथा अपने चरित्रके द्वारा जिस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अहिंसा और करुणाके दृष्टान्त संसारके सामने खड़े किये हैं, उस अहिंसाधर्म और प्रेमधर्मको समझकर जिस समय आप आचारमें लावेंगे, उसी समय समझा जायगा कि आप लोगोंने महावीर भगवानकी वास्तविक जयन्ती मनाई है।"

महात्माजीकी इन मार्मिक बातों पर हमारे जैनी भाईयोंको गहरे विचारके साथ ध्यान देना चाहिये। और उन्हें शीघ्र ही अपनी त्रुटियोंको दूर करके महावीर भगवानके सच्चे भक्त कहेजाने और सच्चे जैनी बननेका सौभाग्य प्राप्त करना चाहिये।

२–उपवास और प्रार्थना।

महात्मा गाँधीजीने उपवास और प्रार्थनाकी प्रेरणा करते हुए 'यंगइंडिया' और 'नवजीवन' में जो अपने विचार प्रकट किये हैं उनमेंसे कुछ विचारोंको हम अपने पाठकोंके अवलोकनार्थ नीचे देते हैं—

"उपवास और प्रार्थनाका रिवाज पुराना है। उपवाससे शरीर, मन और आत्माकी शुद्धि होती है। उपवाससे देहको कष्ट होता है और इतने ही दर्जे आत्मा मुक्त होता है। शुद्ध हृदयकी प्रार्थनामें चमत्कार भरा हुआ है। इसके द्वारा आत्मा अपनी अधिकसे अधिक शुद्धिके लिये प्रयत्न करता है।

(समझपूर्वक भी) गायत्रीका जप करना, निमाज़ पढ़नी अथवा प्रार्थना करनी, यह ज्यादातर अज्ञानी तथा भोले लोगोंके वास्ते है और यह उनका वहम है, ऐसा मानना मोटीसे मोटी भूल है। उपवास और प्रार्थना यह आत्माकी शुद्धिके लिये सबसे अच्छा मार्ग है। जिससे आत्माकी शुद्धि होती है उससे अपना धर्म भी अधिक अच्छी रीतिसे पाला जा सकता है और अपना लक्ष्यस्थान भी निकट आता जाता है। इससे उपवास और प्रार्थना निरर्थक हैं उनमें कुछ भी नहीं, ऐसा नहीं, बल्कि उनके बराबर कोई योग्य बल नहीं ऐसा समझना चाहिये।

जो मनुष्य जन्माष्टमीके दिवसकी तरह अपना सारा दिन उपवास करके ही गाल देते हैं वे मनुष्य उपवासका फल एवं शुद्धि प्राप्त नहीं कर सकते। बल्कि इस प्रकारके निकम्मे उपवाससे मनुष्य निर्बल बन जाता है। उपवास तो खरा तभी कहलाता है जब कि उपवासके साथ शुद्ध विचारोंका सेवन होवे और अधम वासनाओंके साथ टक्कर झेलनेका संकल्प किया जाय। उसी तरह प्रार्थना भी खरी तभी कहलाती है जब कि वह समझपूर्वक और चौकस रीतिसे (यथाविधि) की जाय। मनुष्यको उसके साथ तन्मय हो जाना चाहिये। जब अपना मन दशोंदिशाओंमें भटकता हो तब प्रभुके नामके मणके फेरना निरर्थक है।

प्राचीन समयमें प्रजा तथा व्यक्तिके जीवनविकासमें प्रार्थनाओंने अतिमहत्वका भाग लिया है।"

आशा है हमारे जैनीभाई महात्माजीके इन विचारोंसे कुछ शिक्षा ग्रहण करेंगे। उनके ये विचार जैनधर्मके विचारोंसे बहुत कुछ मिलते जुलते हैं।

३–धर्मके डूब जानेका भय।

हमारे ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीको बहुत दिनोंसे जैनधर्मके डूब जानेका भय चला आता है। परंतु हालमें आपका यह भय और भी ज्यादा बढ़ गया है। आपको अनुभव हुआ है कि अब जैनियोंमें ही जैनधर्मको डुबानेवाले पैदा हो गये हैं। और इस लिये आपने इन धर्मशत्रुओंको मार गिराकर जैनधर्मकी रक्षा करनेके लिये कुछ पंडितोंसे जोरदार अपील की है। आपकी यह अपील जरूर सुनी जानी चाहिये,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्योंकि आप अनुभवी पुरुष हैं! परंतु हमारे खयालमें न तो जैनधर्म डूबनेवाला है और न उसे कोई डुबानेवाला है। आजकल तो देशमें चहुँओर प्रेमका आलाप सुनाई पड़ता है, उदारताका गीत गाया जाता है और लोग मतमतान्तरोंसम्बंधी परस्परके द्वेषभावोंको भुलाते जाते हैं। फिर यह विभीषिकामय स्वप्न (अनुभव) कैसा? कहीं स्वतंत्र विचार-वायुके झकोरोंका तो यह विकार नहीं है!!

४—स्वतंत्र विचारोंसे घृणा।

हिन्दी जैनगजटके वयोवृद्ध संपादक पं० रघुनाथदासजीको स्वतंत्र विचारोंसे बड़ी घृणा है। आप उन्हें जैनधर्मके अधःपतनका कारण समझते हैं और यह बतलाते हैं कि वे उसका मटियामेट करके पीछा छोड़ेंगे! जैनधर्मकी प्यारी वस्तु परीक्षा-प्रधानताको भी आप शायद अच्छी नजरसे नहीं देखते। और विचार-परिवर्तनके तो आप सख्त विरोधी ही बने हुए हैं। आप विचारोंमें कूटस्थताका साम्राज्य चाहते हैं। जो विचार बाल्यावस्थामें—अव्युत्पन्नावस्थामें उत्पन्न होते हैं—चाहे वे अच्छे हों या बुरे, सत्य हों या असत्य, उपयोगी हों या अनुपयोगी—उन्हें मरणपर्यंत ज्योंका त्यों बनाये रखना चाहिये, व्युत्पन्नदशा हो जाने पर भी उनमें जरा भी परिवर्तन न होना चाहिये, ऐसी आपकी नीति मालूम होती है! शायद भगवती आराधना और गोम्मटसारकी उस गाथाको भी आप नहीं मानते जिसका ऐसा आशय है कि अल्पज्ञानी गुरुके संयोगसे यदि किसी मनुष्यको पदार्थका कुछ अन्यथा श्रद्धान हो जाय तो बादमें विशेष ज्ञानी तथा शास्त्रादिकके द्वारा समाधान होने पर उसे वह श्रद्धान छोड़ देना चाहिये—अपने पूर्व विचारको बदल देना चाहिये—न छोड़ने और बदलनेकी हालतमें वह उसी क्षणसे मिथ्यादृष्टि हो जायगा। विचारपरिवर्तनका विधान करनेवाले ऐसे और भी सैकड़ों ऋषिवाक्य हैं जो आपके सिद्धान्तके विरुद्ध पड़ते हैं और इस लिये शायद आप उन्हें भी नहीं मानते। नहीं मालूम फिर आप जैनगजटका संपादन क्यों करते हैं? क्या आप इसके द्वारा अपने पाठकोंके विचारोंको बदलनेका उद्योग नहीं करते? उन्हें अपने विचारानुकूल बनाना नहीं चाहते? यदि ऐसा नहीं है तो फिर पत्र ही क्यों निकाला जाता है? इसका उत्तर शायद पंडितजी ही दे सकेंगे। हम तो देशकालानुसार अपनेमें बराबर परिवर्तन देखते हैं और इसे प्रगति तथा जीवनका चिह्न समझते हैं। अभी थोड़े दिन हुए घड़ी भर रुईका लिहाफ लेकर बड़ी खुशीसे मकानके अन्दर दर्वाजे बंद करके सोते थे। परंतु अब रुचि बदल गई—वह घड़ीभर रुईका लिहाफ लेना और बन्द मकानके अन्दर सोना अच्छा मालूम नहीं होता—और इसलिये अब खुली हवामें छतोंपर सोते हैं और एक पतलासा चादरा ओढ़ते हैं, यही अच्छा मालूम होता है। शायद पंडितजीकी अवस्था कूटस्थ हो, उनके विचारोंमें बचपनसे लेकर अब तक कुछ भी हेर फेर न हुआ हो और इसीसे आप दूसरोंके सामने मुँह खोलने—उन पर कुछ आक्षेप करनेका साहस करते हों!!

५—परमात्माकी पहिचान।

हालमें सहयोगी 'पद्मावती-पुरवाल' ने, मिथ्यात्वमें फँसे हुए कुछ अज्ञानी और भोले जीवों पर दया करके, 'परमात्मा' शीर्षक एक कविता प्रकाशित की है और उसके द्वारा परमात्माकी कुछ पहिचान बतलाई है। इस कविताका एक युक्तिवाक्य इस प्रकार है:—

'किसी इन्सानके वालिदको कैसे? ईश मानें हम।'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस वाक्य द्वारा यह बतलाया गया है कि जो किसी इन्सान (मनुष्य) का वालिद (पिता) होता है उसे हम ईश (परमात्मा) नहीं मान सकते। अर्थात्, जो मनुष्योंका पिता होता है वह परमात्मा नहीं हो सकता। इस युक्ति परसे क्या हम यह समझें कि श्रीऋषभदेव भगवान् जो भरत, बाहुबलि आदि मनुष्योंके पिता थे परमात्मा नहीं थे? इसी तरह और भी बहुतसे तीर्थंकर तथा इतर केवलीगण, जिनके अपने उस शरीरसे अनेक संततियाँ मौजूद थीं और इसलिये वे उन इन्सानोंके (मनुष्योंके) साक्षात् पिता थे, क्या परमात्मा नहीं थे? हमारे खयालमें सहयोगीके इस युक्तिवादने जैनियोंके लिये, परमात्माके विषयमें, एक बड़ी ही विलक्षण समस्या उपस्थित कर दी है; क्योंकि वे अभी तक अर्हतोंको, जो प्रायः मनुष्योंके पिता होते हैं, सकल परमात्मा मानते आए हैं और उनके शास्त्रोंमें भी ऐसा ही विधान पाया जाता है।

६–सहयोगीका भ्रम।

सहयोगी जैसवाल जैनने, अपनी १० वें नम्बरकी संख्यामें, 'स्त्रीमुक्ति' नामक पुस्तकका परिचय देते हुए यह बतलाया है कि इस पुस्तकके लेखक "सूरजभानु वकील" हैं। हमें यह पढ़कर बढ़ा कौतूहल हुआ, कई बार पुस्तकको उठाकर देखा; परंतु उसमें सूरजभानु वकील तो क्या, किसी भी लेखकका नाम नहीं पाया। तब 'सत्योदय' की फायलको निकाला गया, जिस परसे यह पुस्तक उद्धृत की गई है। उसे टटोलने पर मालूम हुआ कि इस 'स्त्रीमुक्ति' शीर्षक लेखमालाके लेखक 'सूरजमलजी, छावड़ा' हैं। हम नहीं कह सकते कि लेखकका यह नाम कहाँ तक सही है—सूरजमलजी छावड़ा वास्तवमें इस लेखमालाके लेखक हैं या कि नहीं। परंतु पं० रघुनाथदासजीको ऐसा मालूम हुआ है कि इसके वास्तविक लेखक बाबू अर्जुनलालजी सेठी हैं और इस लिये आपने इस बातको सर्व साधारण पर प्रकट भी कर दिया है। हालमें पद्मावती–पुरवालके संपादक महोदयने भी ऐसा ही कुछ इशारा किया है। अस्तु इस पुस्तकके लेखक सूरजमलजी छावड़ा हों या उनके गुरु पं० अर्जुनलालजी सेठी—यहाँ हमें इस विषयको कुछ स्पष्ट करनेकी जरूरत नहीं—परंतु इसमें संदेह नहीं कि बाबू सूरजभानजी वकील इस पुस्तकके लेखक नहीं हैं, और इस लिये सहयोगी जैसवाल जैनका उन्हें उसका लेखक प्रकट करना कोरा भ्रम है। हम नहीं समझते प्रकाशकजीने पुस्तक पर लेखकका नाम क्यों नहीं दिया। क्या उसके फर्जी होनेके कारण ही पीछेसे उन्हें उसके देनेमें संकोच हो गया? कुछ भी हो पुस्तकप्रकाशकोंका यह ढंग अच्छा नहीं।

७–सेठीजी और जैनसमाज।

जबसे सेठी अर्जुनलालजी जेलसे छूट कर आए हैं तबसे उनके विषयमें तरह तरहकी बातें सुननेमें आती हैं। पत्रोंमें परस्परविरोधी लेख भी निकल रहे हैं जो एक दूसरेकी बातका खंडन करते हैं। अभी तक हम, विश्वस्त रूपसे, आपकी हालतके विषयमें कोई ठीक निश्चय नहीं कर सके और इसलिये हम उन संदिग्ध बातोंका उल्लेख करके अपने पाठकोंको भ्रममें डालना नहीं चाहते; तो भी इतना जरूर कहेंगे कि जैनियोंसे बिगड़कर या उनकी किसी बातसे चिढ़कर भले ही दुःखितहृदय सेठीजी कुछ कह जायँ, फिर भी जहाँ तक हम समझते हैं, आप जैनधर्मके विरोधी नहीं हो सकते। जैनधर्म चिरकालसे आपकी अस्थिमज्जामें समाया हुआ है। यह दूसरी बात है कि जैनसिद्धान्तोंका आशय समझनेमें आपके और दूसरे विद्वानोंके परस्पर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मतभेद हो और उसमें आपकी भी भूल हो। इसी तरह जैनसमाजके विरोधी होकर आप उसकी हितचिन्तासे भी मुख नहीं मोड़ सकते। क्योंकि जैनसमाजसे आपका गाढ़ सम्बंध है और आप बराबर उसकी हितकामना करते आए हैं। यह दूसरी बात है कि समाजका हित समझनेमें भी आपकी कुछ भूल हो। परंतु इस प्रकारकी भूलोंका प्रेमपूर्वक सुधार होना चाहिये। अनादर और तिरस्कारसे वे उलटी वृद्धिको प्राप्त होती हैं।

८–जैनों और अजैनोंका दान।

सूरतके सार्वजनिक कालिजको एक बनियेने दो लाख रुपये देना स्वीकार किया है। इस समाचारको देकर ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी पूछते हैं, 'है कोई ऐसा दानी जैनियोंमें?' हम कहते हैं हालमें जबलपुरकी दो जैनाविधवाओंने प्रतिष्ठा कराने और रथ चलानेमें अस्सी हजार रुपया खर्च किया है। एक तो स्त्रीजाति, दूसरे विधवा और तिसपर इतना भारी त्याग; मुकाबला कर देखिये, यह कुछ कम दान नहीं है। धर्मके नामपर मेले ठेले और तमाशोंमें खर्च किये हुए रुपयोंसे भी जब स्वर्गोंके सुखोंकी प्राप्ति होती है तो फिर भला ऐसा कौन मूर्ख है जो इस उपयोगी नाचने कूदनेके मार्गको छोड़कर कालिज जैसे कामोंमें अपने रुपयेको देकर बर्बाद करे!! ब्रह्मचारीजी! आप अपने इन उद्गारोंको रहने दीजिये और जैनियोंको अपने धर्मकी यथेष्ट प्रभावना कर लेने दीजिये! अभी आपकी इस धीमी आवाजको कोई सुनने सुनानेवाला नहीं है। जब समाजकी शक्ति इधर व्यय हो रही है तो उधर कैसे लग सकती है?

९–पुनर्विवाह-दीक्षा।

हालमें स्थानीय अग्रवाल जैन बिरादरीकी एक बालविधवाने अपने कुछ रिश्तेदारोंकी सलाहसे, सहारनपुर जाकर एक अग्रवाल जैनसे अपनी शादी कर ली है और इस तरह अपनेको पुनर्विवाह-दीक्षासे दीक्षित बना लिया है। सुना गया है, यह विधवा अपने चरित्र और शीलव्रतको बराबर सुरक्षित रखती आई है। उसे यह बात कभी पसंद नहीं आई कि वह दूसरी अनेक विधवाओंकी तरह गुप्त व्यभिचार करके अपने आपको हिंसा, झूठ, चोरी आदि बहुतसे महान अपराधोंकी अपराधिनी बनाए। उसे अपना भविष्य दोनों ओरसे पूर्ण निराशाजनक प्रतीत हुआ और इसलिये कौटुम्बिक परिस्थितियोंसे मजबूर होकर उसने अपने लिये अब यही मार्ग उचित समझा है!! जो लोग अच्छे सलूकद्वारा विधवाओंको सुरक्षित रखनेका यत्न नहीं करते और न उनके जीवन-निर्वाह तथा सुखदुःखकी कुछ पर्वाह करते हैं उन्हें इस घटनासे सबक़ सीखकर सावधान होना चाहिये।

१०–देशके लिये शुभचिह्न।

सहयोगी भारतमित्र सूचित करता है कि—
"जोधपुर राज्यके रिजेण्ट महाराज सर प्रताप सिंह १६ अप्रेलको श्रीमती बाईजी लाल साहबा सहित स्पेशल ट्रेनसे कुचामनरोड पधारे थे। सेठ साहूकार नजर लेकर आपकी सेवामें उपस्थित हुए। जब प्रजाजन मोहरें नजर करने लगे तब श्रीमान्ने उन्हें यह उपदेश दिया–हम इन गिन्नियोंकी नजरसे प्रसन्न नहीं होते हैं, यदि तुम लोग वास्तवमें हमें प्रसन्न करना चाहते हो तो देशका हित करो, स्वदेशी वस्त्र धारण करो, कपड़ेकी मिलें खोलो और उन मिलोंमें जो बढ़िया कपड़ा बने उसे लाकर हमारी नजर करो तब हम सचमुच प्रसन्न होंगे। प्रजाजनोंने आपकी आज्ञा शिरोधार्य की।"

हमें इस समाचारको पढ़कर बहुत प्रसन्नता हुई। सचमुच यह देशके लिये बड़ा ही शुभ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चिह्न है जो हमारे देशी नरेशोंका ध्यान स्वदेशी वस्त्र धारण करने और कल कारखाने खुलवाने आदि देशके हितवर्धक कामोंकी ओर आकर्षित हुआ है। आशा है जोधपुरके महाराज अपने इस उपदेशको कार्यमें परिणत करानेका शीघ्र यत्न करेंगे, और दूसरी रियासतोंके महाराजा भी अपनी अपनी प्रजाको इस प्रकारका उपदेश देकर उसे देशके हितसाधनमें लगाएँगे।

११–विधवा-विवाहके विषयमें महात्मा गाँधीकी सम्मति।

गुजराती 'नवजीवन' में एक सज्जनने भारतवर्षकी विधवाओंका एक कोष्टक प्रकाशित कराया है। उसके ऊपर नोट करते हुए महात्मा गाँधीजी कहते हैं,—"विधवाओंकी संख्याका कोष्टक जो बाँचेगा, वह अवश्य ही रोएगा। उतावले सुधारक तो तत्काल ही कह उठेंगे कि इस रोगका सबसे अच्छा और सीधा उपाय विधवा-विवाह है। परन्तु मुझसे ऐसा नहीं कहा जाता। मैं एक कुटुम्बी हूँ और मेरे कुटुम्बमें भी अनेक विधवायें हैं। परन्तु उनसे फिर विवाह करनेके लिए कहनेको मेरी जीभ तैयार नहीं होती। वे फिरसे विवाह करनेका विचार करेंगी भी नहीं। इसका सच्चा उपाय यह है कि पुरुषोंको पुनर्विवाह (दूसरा तीसरा विवाह) नहीं करनेकी प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिए।

इसके सिवाय और भी कई उपाय हैं, जिन्हें न हम करते हैं और न करना चाहते हैं। वे उपाय ये हैं:—

१ बालविवाह बन्द होना चाहिए।

२ जब तक वर कन्या साथ रहनेके योग्य न हो जायँ, तब तक उनका विवाह हरगिज न किया जाय।

३ जो स्त्री अपने पतिके साथ बिलकुल न रही हो, उसे विवाह करनेकी छुट्टी दी जानी चाहिए। इतना ही नहीं बल्कि उसे विवाह करनेके लिए उत्साहित करना चाहिए। ऐसी स्त्री विधवा ही न समझी जानी चाहिए।

४ जो १५ वर्षकी उमरके भीतर विधवायें हुई हैं और जो अभी जवान हैं, उन्हें पुनर्विवाह करनेकी छुट्टी मिलनी चाहिए।

५ वैधव्य एक अपशकुनका चिह्न समझा जाता है। इसके बदले उसे पवित्र समझना चाहिए और विधवाओंको आदरकी दृष्टिसे देखना चाहिए।

६ विधवाओंके लिए शिक्षाका और उद्योग-धंदे सिखानेका भी उत्तम प्रबन्ध होना चाहिए।

इतने सुधार हो जायँ तो इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि विधवाओंकी शापसे हिन्दू-संसार बच जाय। ऊपर लिखे हुए सुधार प्रत्येक कुटुम्ब और प्रत्येक जाति अपने आप कर सकती है। लोग एक दूसरेकी राह देखा करते हैं और इसीसे अनेक सुधार नहीं हो पाते हैं। जिसे जिस समय जो काम पुण्यकर्म मालूम हो उसे उसी समय कर डालना चाहिए। यह ईश्वरीय नियम है। पाप कर्म करते हुए अवश्य ही विचारना चाहिए, जोशको दबाना चाहिए, हजारोंकी सलाह लेनी चाहिए और अन्तमें उसे नहीं करना चाहिए। परन्तु पुण्य कर्म करनेके लिए समयकी अपेक्षा करते रहना, यह ईश्वरके निकट अपराधी बननेके समान है। फिर भी हमारा बर्ताव उलटा ही होता है। पाप कर्म करते हुए तो हम डरते नहीं हैं; परन्तु पुण्य कर्म करनेके लिए सभा-पंचायतियोंके प्रस्तावोंकी राह देखा करते हैं!"

१२–एक प्रशंसनीय दान।

पाठकोंने खुरई (सागर) निवासी श्रीमन्त सेठ मोहनलालजीका नाम अवश्य सुना होगा। आप कई वर्ष तक दिगम्बरजैनमहासभाके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रधान कार्यकर्त्ता रह चुके हैं। बिलकुल पुराने खयालोंके आदमी हैं। नये विचारोंकी आपके पास गुजर नहीं। परन्तु अभी आपने सागरके प्रान्तीय हिन्दीसाहित्यसम्मेलनके समय जबलपुरके हिन्दीसाहित्यमन्दिरको दसहजार रुपयेका प्रशंसनीय दान किया है। हम इस उदारताके लिए सेठजीका हृदयसे अभिनन्दन करते हैं; विशेषतः इस लिए कि आप उस परवार जातिके मुखिया हैं जो रथप्रतिष्ठाओं और मन्दिरों जैसे अनावश्यक और निरुपयोगी कार्योंमें ही अपने धनको पानीकी तरह बहाया करती है और जो जैनसमाजके कार्योंको छोड़कर अन्य सार्वजनिक कार्योंकी सहायता करनेमें बहुत ही कृपण गिनी जाती है।

जान पड़ता है कि समयके प्रवाहमें जैनसमाज भी स्थिर नहीं रह सकेगा, उसका प्रबल वेग उसे भी, इच्छा या अनिच्छापूर्वक, अपना साथी बनाये विना न छोड़ेगा। बहे विना वह रह भी नहीं सकता। क्योंकि उसका अस्तित्व उसी भूमिपर और उसी स्थानपर है जिस परसे देशोत्थानकी लहरें निरन्तर कलरव करती हुई बह रही हैं। उनकी रगड़ बड़ी बड़ी जड़ शिलाओंके भीतरसे भी अपना मार्ग बनानेकी शक्ति रखती है।

१३–खंडेलवाल और हूमड़का विवाह-सम्बन्ध।

जिन लोगोंने जैनसमाजके सामाजिक संकटों पर विचार किया है, वे इस बातकी आवश्यकता बहुत समयसे अनुभव कर रहे हैं कि जैनसमाजमें जो पचासों छोटी छोटी जातियाँ हैं उनमें आपसमें विवाह सम्बन्ध होने लगे। इसके बिना दिन पर दिन क्षीण होनेवाले जैनसमाज की रक्षा नहीं हो सकती। जैनहितैषीमें और दूसरे पत्रोंमें इस प्रकारके विचार अनेक वार प्रकट किये जा चुके हैं, परन्तु अभी तक किसीने अगुआ बनकर इस विचारको कार्यमें परिणत करके नहीं दिखाया था। खुशीकी बात है कि जैनसमाजके सुपरिचित विद्वान् पं० अर्जुनलालजी सेठी बी० ए० इस कार्यमें सबके लिए पथप्रदर्शक बने हैं और उन्होंने अपनी मध्यमा कन्याका विवाह शोलापुरके एक हूमड़जातीय सुशिक्षित लड़केके साथ कर देनेका साहस प्रकट किया है। यह अनुकरणीय विवाह बम्बईके हीराबाग-हालमें ता० ८ जूनको वैद्यवर्य पं० भरमण्णाजी उपाध्यायके द्वारा जैनविधिके अनुसार अनेक गण्यमान्य स्त्रीपुरुषोंकी उपस्थितिमें बड़े उत्साहके साथ हो गया और उन लोगोंके लिए एक उदाहरण बन गया जो ऐसे कामोंको नैतिक साहसके अभावसे करनेमें डरते हैं। इस विषयमें विशेष विस्तारके साथ आगामी अंकमें लिखा जायगा।

प्यारा भारतदेश।

(ले०–मुनि तिलकविजयजी, पंजाबी)

हमारा प्यारा भारत देश। हमारा प्यारा०।
करें स्वदेशी व्रत हम धारण, तजें विदेशी वेष। हमारा प्यारा०
भक्त बनें भारत सुभूमिके, सिद्ध करें उद्देश। हमारा प्यारा०
बन्धुबन्धुमें भिन्न-भावना, रहे नहीं लवलेश। हमारा प्यारा०
आर्यभूमिमें प्रेम परस्पर फैल जाय सविशेष। हमारा प्यारा०।
दान करो वरदान यही 'हम बनें वीर' अखिलेश! हमारा प्यारा०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्थान ।

(ले०-बाबू कन्हैयालाल जैन, कस्तला ।)

१ जैनो ! उठो, सजग होकर, आँख खोलो,
पातालमें पतित भाव हुए तुम्हारे ।
देखो अधोगत दशा कितनी हुई है,
हैं भ्रष्ट-से अब हुए कृतिकर्म्म सारे ॥

२ हैं व्यर्थके व्यय बढ़े शुभकर्म्म भागे,
हैं आय-श्रोत सब ही अब पापपूर्ण ।
सद्धर्म्म कर्म्म सब भूलगए भला जो-
वे क्या कभी कर सकें भवताप चूर्ण ?

३ साहित्य-वृद्धि-हित क्या करते प्रयत्न ?
मोहान्ध हैं न लखते-लखते सभी हैं
पुण्य-प्रचार-कृति दूर रही-यहाँ तो
वे भाव भी न मनमें रखते कभी है

४ यों जातिका प्रिय ! गला नित घोटते हो,
प्राचीन गौरव सदा अपमान पाते ।
यों आप पाप-मल-पङ्क फँसे पड़े हो,
आश्चर्य क्या फिर रसातल आप जाते ?

५ विद्वेष-भाव तज, प्रेम पगे नहीं जो-
है ऐक्यका छिड़ रहा फिर राग कैसा ?
आशा नहीं उचित है मृदु भी फलोंकी
हो मूल-स्थान जिनका नभलोक जैसा ।

६ ऐसी वृथा हृदयमें रखना न आशा,
आकाशका कुसुम तोड़ नहीं सकोगे ।
क्या चन्द्र-बिम्ब जल-संस्थित पासकोगे ?
प्राप्त्यर्थ व्यर्थ श्रम ही करके थकोगे ।

७ हे जैनियो, अब सुकर्म्म-ध्वजा उड़ाओ,
कर्तव्य-क्षेत्र-दिशि पाद अभी बढ़ाओ
जो कर्म्म-वेदि अतिविस्तृत जातिकी हो-
ऐसा अपूर्व कुछ अर्घ्य यहाँ चढ़ाओ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैनसाहित्य-संशोधक

अपूर्व त्रैमासिक पत्र ।

जैन इतिहास और जैनसाहित्यके जिज्ञासुओंके लिए अपूर्व साधन। यह त्रैमासिक पत्र सरस्वतीके साइजके सवासौ पृष्ठों पर निकलता है। अनेक ऐतिहासिक चित्रोंसे भी सुशोभित रहता है। अँगरेजी, हिन्दी और गुजराती इन तीनों भाषाओंके लेख इसमें रहते हैं। प्राचीन आचार्योंका समय-निर्णय, अपूर्व तथा दुष्प्राप्य जैनग्रन्थों, शिलालेखों तथा ताम्रपत्रोंका परिचय, विदेशी विद्वानोंकी जैनसाहित्य और इतिहाससम्बन्धी आलोचनायें, जैनतत्त्वज्ञान-सम्बन्धी गंभीर विचार आदि अनेक विषय इसमें रहते हैं और वे बड़ी निष्पक्षतासे लिखे जाते हैं। जैन और जैनेतर सभी विद्वान् इसमें लिखते हैं। प्रत्येक दिगम्बर और श्वेताम्बरको इसका ग्राहक होना चाहिए। पहला अंक छपकर तैयार है। वार्षिक मूल्य ५) पाँच रुपया और एक अंकका १॥)। पोस्टेज जुदा। व्यवस्थापक—

जैनसाहित्य-संशोधक,

C/o भारत जैनविद्यालय, फर्गुसनकालेजरोड, पूना।

सुगम-चिकित्सा। खाने पीनेके नियमोंका विधिपूर्वक पालन करनेसे कैसे कैसे रोग आराम हो जाते हैं, यह बात इस अपूर्व पुस्तकके पढ़नेसे मालूम होगी और निरोग रहनेके उपाय सूझ पड़ेंगे। मूल्य दो आने।

मूलाचार। आचार्य बट्टकेरका सुप्रसिद्ध ग्रन्थ। मूल प्राकृत, संस्कृतच्छाया और भाषाटीका सहित बहुत सुन्दरताके साथ हाल ही छपकर तैयार हुआ है। मूल्य लागत मात्र अर्थात् तीन रुपया।

पाण्डव पुराण।

श्रीशुभचन्द्राचार्यकृत संस्कृत ग्रन्थका पं० घनश्यामदासजी न्यायतीर्थकृत नवीन हिन्दी भाषानुवाद। वचनिकामें यह ग्रन्थ पहले पहल छपा है। इसे जैनोंका महाभारत समझना चाहिए। मूल्य साढ़े पाँच रुपये।

हमारे यहाँ सब जगहके छपे हुए जैनग्रन्थ मिलते हैं।

जैनग्रन्थ-उद्धारक कार्यालयके तमाम ग्रन्थ।

हमने खरीद लिये हैं, इस लिए जिन भाइयोंको चाहिए वे हमसे मँगानेकी कृपा करें:—

१ **ऋषिमण्डल मंत्र कल्प** (मंत्र, पूजा और साधन-विधिसहित)। दूसरी बारका छपा हुआ। मू० ॥)

२ **प्रतिष्ठासारोद्धार** पं० आशाधरकृत। संस्कृत और भाषाविधिसहित। इसकी सहायतासे वेदीप्रतिष्ठा बिम्बप्रतिष्ठा आदि सब काम कराये जा सकते हैं। मू० १॥) और सजिल्दका २=)

३ **महावीरपुराण।** भगवान् महावीर तीर्थंकरका जीवनचरित। सकलकीर्तिभट्टारकके संस्कृतग्रन्थका पं० मनोहरलालजीकृत हिन्दी अनुवाद। मू० १।) और १॥=)

४ **आलोचनापाठ** भाषा, अर्थसहित। मूल्य -)॥

मैनेजर, जैन-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई।

बम्बईका माल।

बम्बईका सब तरहका माल—कपड़ा, किराना, स्टेशनरी, पीतल ताँबा, दवाइयाँ, तेल, साबुन आदि—हमसे मँगाइए। माल दस जगह जाँच करके बहुत सावधानी और ईमानदारीके साथ भेजा जाता है। चौथाई रुपयेके लगभग पेशगी भेजना चाहिये। एकबार व्यवहार करके देखिए।

नन्हेंलाल हेमचन्द जैन, कमीशन एजेण्ट,
चन्दावाड़ी, पो० गिरगाँव, बम्बई।

Printed by Chintaman Sakharam Deole, at the Bombay Vaibhav Press, Servants of India Socity's Building, Sandhurst Road, Girgaon, Bombay.

Publshed by Nathuram Premi, Proprietor, Jain-Granth-Ratnakar Karyalaya, Hirabag, Bombay.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीवर्द्धमानाय नमः ।

भाग १४ ।

अंक ७-८-९ ।

जैनहितैषी ।

वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़ १९७७। अप्रैल, मई, जून १९२०।

विषय-सूची ।

		पृष्ठसंख्या ।
१	जगतकी रचना और उसका प्रबन्ध	१८५
२	जैनाचार्योंका शासन-भेद	१९५
३	कलकत्ता जैनसभाकी आज्ञा	२०६
४	मुक्तिके मार्ग	२११
५	श्रीहरिषेणकृत कथाकोश	२१६
६	वेश्यानृत्य-स्तोत्र	२१९
७	साधु-विवेक (कविता)	२२१
८	स्वदेश-सन्देश (कविता)	२२२
९	कदम्बराजाओंके ताम्रपत्र	२२४
१०	पुस्तक-परिचय	२३०
११	हिन्दी ज्ञानार्णव	२३३
१२	धर्म और समाज	२३५
१३	सम्पादक जैनगजट और विचार-परिवर्तन	२४०
१४	गूढ़ गवेषणायें	२४३
१५	सहानुभूति	२४९
१६	श्रीअमृतचन्द्रसूरि	२५५
१७	लायब्रेरी	२५७
१८	प्राचीन ग्रन्थोंका संग्रह	२६२
१९	विद्यावती-वियोग	२६६
२०	विविध प्रसङ्ग	२६७
२१	त्रुवल्लुव नायनार त्रुकुरल	२७७

१३-८-१९२० ।

सम्पादक, बाबू जुगलकिशोर मुख्तार ।

मुंबई वैभव प्रेस.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रार्थनायें ।

१ जैनहितैषी किसी स्वार्थबुद्धिसे प्रेरित होकर निजी लाभके लिए नहीं निकाला जाता है । इसके लिए जो समय, शक्ति और धनका व्यय किया जाता है वह केवल निष्पक्ष और ऊँचे विचारोंके प्रचारके लिए । अतः इसकी उन्नतिमें हमारे प्रत्येक पाठकको सहायता देनी चाहिए ।

२ जिन महाशयोंको इसका कोई लेख अच्छा मालूम हो उन्हें चाहिए कि उस लेखको वे जितने मित्रोंको पढ़कर सुना सकें अवश्य सुना दिया करें ।

३ यदि कोई लेख अच्छा न मालूम हो अथवा विरुद्ध मालूम हो तो केवल उसीके कारण लेखक या सम्पादकसे द्वेषभाव धारण न करनेके लिए सविनय निवेदन है ।

४ लेख भेजनेके लिए सभी सम्प्रदायके लेखकोंको आमंत्रण है । —सम्पादक ।

नियमावली ।

१ जैनहितैषीका वार्षिक मूल्य २) दो रुपया पेशगी है ।

२ ग्राहक वर्षके आरंभसे किये जाते हैं और बीचमें ७ वें अंकसे । आधे वर्षका मूल्य १।)

३ प्रत्येक अंकका मूल्य तीन आने ।

४ लेख, बदलेके पत्र, समालोचनार्थ पुस्तकें आदि "**बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तार, सरसावा (सहारनपुर)**" के पास भेजना चाहिए । सिर्फ प्रबन्ध और मूल्य आदि सम्बन्धी पत्रव्यवहार इस पतेसे किया जायः—

मैनेजर, जैन ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई ।

पारितोषिक ।

'दुष्प्राप्य और अलभ्य जैनग्रंथ' नामकी लेखमालाको प्रारंभ करते हुए, हमने शुरूमें यह प्रकट किया था कि, 'जिन ग्रंथोंके विषयमें यह जाहिर किया जाय कि उनके अस्तित्व-स्थानका कुछ पता नहीं है उनकी तलाशके लिये कुछ धर्मोपकारी भाइयोंको पारितोषिक भी नियत करना चाहिये जिससे कि तलाशका काम कुछ अधिक दिलचस्पीके साथ प्रारंभ हो और तलाश करनेवाले साधारण व्यक्तियोंको उनके परिश्रमका फल मिल सके ।' उस वक्तसे आजतक ऐसे अनेक ग्रंथोंके नाम जाहिर किये गये हैं और कुछके सम्बंधमें यह प्रेरणा भी की गई है कि उनपर पारितोषिक निकलना चाहिये परंतु खेद है कि आजतक किसी भी धर्मात्मा और जिनवाणीके सच्चे भक्तका ध्यान इस अत्यावश्यक कार्यकी ओर नहीं गया ! अतः आज हम अपनी तरफसे ही शक्त्यनुसार, कुछ ग्रंथोंपर पारितोषिक नियत करते हैं और इस तरहपर इस सिलसिलेको चलाना शुरू करते हैं । आशा है, हमारे इस कार्यमें, परोपकारी भाई सविशेषरूपसे सहायक बनकर हमें सफलमनोरथ होनेका अवसर देंगे और साथ ही, स्वयं प्राचीन ग्रंथोंके उद्धारजन्य पुण्य तथा यशके भागी बनेंगे । पारितोषिककी वह व्यवस्था इसप्रकार है ।

जो भाई निम्नलिखित ग्रंथोंमेंसे किसी भी ग्रंथको कहींके भंडारसे तलाश करके, भादों मासके अन्ततक, हमें सबसे पहले उसके मिलनेकी सूचना देंगे और बादमें रजिष्टर्ड बुक पोष्ट-द्वारा उस ग्रंथको देखनेके लिये हमारे पास भेजनेकी कृपा करेंगे उन्हें प्रत्येक ग्रंथके लिये २५) २५) रुपयेका पारितोषिक दिया जायगा । ग्रंथ जो हमारे पास देखनेके लिये आयगा वह देखनेके बाद पूरी सावधानीके साथ ज्योंका त्यों वापिस कर दिया जायगा । यदि कोई भाई किसी कारण विशेषसे मूल ग्रंथ न भेज सकें तो उन्हें उसकी कापी (नकल) देवनागरी लिपिमें भेजनी होगी जिसकी लिखाईका दाम अलग दिया जायगा । ग्रंथोंके नाम—

१ जीवसिद्धि, स्वामी समन्तभद्राचार्यकृत ।
२ जल्पनिर्णय श्रीदत्ताचार्यकृत ।
३ वादन्याय, कुमारनन्दि आचार्यकृत ।

सरसावा } **जुगलकिशोर,**
जि० सहारनपुर । } **मुख्तार ।**

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाश चंद्र जी शास्त्री
प्राचार्य; श्री स्याद्वाद महाविद्यालय, वाराणसी
द्वारा भेंट

हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः

चौदहवाँ भाग। अंक ७-८

जैनहितैषी।

अप्रैल, मई १९२०
वैशाख, ज्येष्ठ २४४६

न हो पक्षपाती बतावे सुमार्ग, डरे ना किसीसे कहे सत्यवाणी।
बने है विनोदी भले आशयोंसे, सभी जैनियोंका हितैषी 'हितैषी'॥

जगतकी रचना और उसका प्रबंध।

[लेखक, श्रीयुत बा० सूरजभानुजी, वकील।]

यह जगत् किस तरह बना और किस तरह इसका यह सब प्रबन्ध चल रहा है, इस विषयमें लोगोंमें बहुत ही ज्यादा मतभेद पाया जाता है। सभी अपने मतको 'आप्तवचन' या 'सर्वज्ञवाक्य' बता रहे हैं। इससे इस विषयका निर्णय शब्द प्रमाणके द्वारा होना तो बिलकुल ही असम्भव प्रतीत होता है। एक मात्र अनुमान प्रमाणसे ही निश्चय किये जानेका सहारा रह गया है। इसी हेतु हम भी आज इस लेखके द्वारा, तर्क और अनुमानसे इस गहन विषयकी खोज पाठकोंके सामने रखते हैं। आशा है कि सत्यके इच्छुक हमारे इस लेखको ध्यानके साथ पढ़ेंगे और जो बात सच्ची तथा सही सिद्ध होगी उसके माननेमें कुछ भी आनाकानी न करेंगे।

इस विषयमें विचार करने योग्य सबसे पहली बात यह है कि तर्क या अनुमान अर्थात् बुद्धि-विचारसे किसी विषयकी जाँच तथा खोज करनेका अर्थ सिवाय इसके और कुछ भी नहीं होता है कि संसारमें जो कुछ भी हो रहा है उससे उन कार्य्योंके नियमोंको निश्चय कर लें और फिर उन्हीं नियमोंको अपनी जाँचकी कसौटी बना लें। जैसा कि गेहूँके बीजसे सदा गेहूँका ही पौधा उगता हुआ देखकर हम यह सिद्धांत ठहरा लें कि गेहूँके बीजसे तो गेहूँका ही पौधा उग सकता है, गेहूँके सिवाय अन्य किसी भी अनाजका पौधा नहीं उग सकता। इस प्रकार यह सिद्धान्त निश्चय करके और इसे अटल नियम मानकर आगामीको गेहूँके बीजसे गेहूँका पौधा पैदा हो जानेकी बात तो सही और सच्ची ठहराते रहें तथा गेहूँके बीजसे चने या मटरका पौधा पैदा हो जानेकी बातको असत्य मानते रहें। इसी प्रकार स्त्रीपुरुष द्वारा ही मनुष्यकी उत्पत्ति देखकर प्रत्येक मनुष्यका अपने माँ-बाप द्वारा पैदा होना ही ठीक समझें, इसके विपरीत किसी भी बातको सत्य न मानें। इसी प्रकारकी जाँच और खोजको बुद्धिकी जाँच कहते हैं। अनुभव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वारा खोजे हुए इसी प्रकारके नियमोंसे आपसमें लोगोंके मतभेदका निर्णय हो सकता है और होता है।

यद्यपि इस विचारणीय विषयके सम्बन्धमें यहाँ दुनियामें सैकड़ों प्रकारके मत माने जा रहे हैं तो भी वे सब, मोटे रूपसे, तीन भागोंमें विभाजित हो जाते हैं। (१) एक विभाग-वाले तो एक परमेश्वर या ब्रह्मको ही अनादि अनन्त मानते हैं। इनमेंसे भी कोई तो यह कहते हैं कि उस ईश्वर या ब्रह्मके सिवाय अन्य कुछ है ही नहीं, यह जो कुछ भी सृष्टि दिखाई दे रही है वह स्वप्नके समान एक प्रकारका भ्रम मात्र है। कुछ यह कहते हैं कि भ्रम मात्र तो नहीं है, दुनियाके सब पदार्थ सत्रूप विद्यमान तो हैं परन्तु इन सभी चेतन अचेतन पदार्थोंको उस परमेश्वरने ही नास्तिसे अस्तिरूप कर दिया है। पहले तो एक परमेश्वरके सिवाय अन्य कुछ भी नहीं था; फिर उसने किसी समयमें अवस्तु-से ही ये सब वस्तुएँ बना दी हैं, जब वह चाहेगा तब इन सब पदार्थोंको नास्तिरूप कर देगा और तब सिवाय उस एक ईश्वरके अन्य कुछ भी न रह जायगा। (२) दूसरे विभाग-वाले यह कहते हैं कि अवस्तुसे कोई वस्तु बन नहीं सकती; वस्तुसे ही वस्तु बना करती है; इस कारण जीव अजीव ये दोनों प्रकारकी वस्तुएँ जो संसारमें दिखाई देती हैं न तो किसीके द्वारा बनाई गई हैं और न बनाई ही जा सकती हैं। जिसप्रकार परमेश्वर सदासे है और सदा-तक रहेगा उसी प्रकार जीव अजीवरूप वस्तुएँ भी सदासे हैं और सदा रहेंगी। परन्तु इन जीव-अजीवरूप वस्तुओंकी अनेक अवस्थाओं—अनेक रूपों—का बनाना बिगाड़ना उस परमेश्वरके ही हाथमें है। (३) तीसरे प्रकारके लोगोंका यह कहना है कि जीव और अजीव ये दोनों ही प्रका-रकी वस्तुएँ अनादिसे हैं और अनन्त तक रहेंगी। इनकी अवस्था और रूपको बदलनेवाली, संसार-चक्रको चलानेवाली, कोई तीसरी वस्तु नहीं है। बल्कि इन्हीं वस्तुओंके आपसमें टक्कर खानेसे इन्हींके गुण और स्वभावके द्वारा संसारका यह सब परिवर्तन होता रहता है—रंग-बिरंगे रूप बनते बिगड़ते रहते हैं।

इस प्रकार, यद्यपि, इन तीनों प्रकारके लोगोंके सिद्धान्तोंमें धरती आकाशका सा अन्तर है तो भी एक जरूरी विषयमें ये सभी सहमत हैं; अर्थात् ये तीनों ही किसी न किसी वस्तुको अनादि अवश्य मानते हैं। नम्बर अव्वल तो यह कहता है कि परमेश्वरको किसीने नहीं बनाया, वह तो बिना बनाये ही सदासे चला आता है और अपने अनादि स्वभावानुसार ही इस सारे संसारको चला रहा है—अनेक प्रकारकी वस्तुओंको बना बिगाड़ रहा है। नम्बर दोका यह कहना है कि परमेश्वरके समान जीव और अजीवको भी किसीने नहीं बनाया, वे सदासे चले आते हैं और सदातक रहेंगे। इसी तरह नं० ३ भी कहता है कि जीव और अजीवको किसीने नहीं बनाया, किन्तु ये दोनों प्रकारकी वस्तुएँ बिना बनाये ही सदासे चली आती हैं। इन तीनों विरोधी मतवालोंमें यह विवाद तो उठ ही नहीं सकता कि बिना बनाये सदासे भी कोई वस्तु हो सकती है या नहीं और जब यह बात भी सभी मानते हैं कि वस्तुमें कोई न कोई गुण या स्वभाव भी अवश्य ही होता है; अर्थात् बिना किसी प्रकारके गुण या स्वभावके कोई वस्तु हो ही नहीं सकती है, तब ये तीनों ही प्रकारके लोग यह बात भी जरूर मानते हैं कि जो वस्तु अनादि है उसके गुण और स्वभाव भी अनादि ही होते हैं। अर्थात्, अकेले एक परमेश्वरको अनादि माननेवाले तो उस परमे-श्वरके गुण और स्वभावको अनादि बताते हैं; जीव, अजीव और परमेश्वरको अनादि मानने-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वाले इन तीनोंहीके गुणोंको अनादि कहते हैं, और केवल जीव और अजीवको ही अनादि माननेवाले इन दोनोंहीके गुणोंको अनादि बताते हैं। अतः इन दो बातोंमें तो संसारके सभी मतवाले सहमत हैं कि (१) संसारमें कोई वस्तु बिना बनाये अनादि भी हुआ करती है और (२) उसके गुण और स्वभाव भी बिना बनाये अनादि होते हैं। अब केवल इतनी ही बात निश्चय करनी बाकी रह जाती है कि कौन वस्तु तो बिना बनी हुई अनादि है और कौन वस्तु बनी हुई अर्थात् सादि है।

इस बातका निर्णय करनेके वास्ते हम अपने पाठकोंको फिर उस बातकी याद दिलाते हैं जिसका उल्लेख हमने ऊपर किया है; अर्थात्, ऐसी बातोंके निर्णय करनेके हेतु मनुष्य जो कुछ भी अपने बुद्धिबलसे कर सकता है वह यही है कि संसारके चलते हुए कारखानेके नियमोंको ढूँढ़ निकाले और फिर उन्हीं नियमोंके द्वारा इन गुप्त और गहन विषयोंका भी निर्णय कर लेवे। परन्तु इस प्रकार खोज करने पर संसारमें तो ऐसी कोई भी वस्तु नहीं मिलती है जो बिना किसी वस्तुके ही बन गई हो, अर्थात् नास्तिसे ही अस्तिरूप हो गई हो। और न कोई ऐसी ही वस्तु देखी जाती है जो किसी समय नास्तिरूप हो जाती हो। बल्कि यहाँ तो वस्तुसे ही वस्तु बनती देखी जाती है; अर्थात् प्रत्येक वस्तु किसी न किसी रूपमें सदा ही बनी रहती है। भावार्थ, न तो कोई नवीन वस्तु पैदा ही होती है और न कोई वस्तु नाश ही होती है, बल्कि जो वस्तुएँ पहलेसे चली आती हैं उन्हींका रूप बदल बदल कर नवीन नवीन वस्तुएँ दिखाई देती रहती हैं; जैसा कि सोना रूपा आदि धातुओंसे ही अनेक प्रकारके आभूषण बनाये जाते हैं। सोना रूपा आदिके विना ये आभूषण कदाचित् भी नहीं बन सकते हैं। फिर उन्हीं आभूषणोंको तोड़कर अन्य अनेक प्रकारके आभूषण बना लिये जाते हैं। उन्हींका तार खींच कर गोटा ठप्पा आदि बना लिया जाता है, अथवा पत्रा छेत (गढ़) लिया जाता है। गरज यह कि एक सोना या रूपा आदि धातुएँ यद्यपि भिन्न भिन्न प्रकारके रूप धारण करती रहती हैं परन्तु सभी रूपोंमें वे धातुएँ अवश्य विद्यमान रहती हैं। इसी प्रकार बीज, मिट्टी, पानी और वायु आदि परमाणुओंके संगठनसे ही वृक्ष बनता है और फिर उस वृक्षको जला देनेसे वे ही परमाणु कोयला धूँआँ और राख आदिका रूप धारण कर लेते हैं और फिर आगेको भी अनेक रूप धारण करते रहते हैं। इस तरह जहाँ तक भी इस संसारकी वस्तुओंकी जाँच की जाती है उससे तो यही सिद्ध होता है कि जगतका एक भी परमाणु कमती बढ़ती नहीं होता। बल्कि जो कुछ भी होता है वह यही होता है कि उनका रूप और अवस्था बदल बदल कर नवीन नवीन वस्तुएँ बनतीं और बिगड़ती रहती हैं। ऐसी दशामें मनुष्यके पास तो ऐसा कोई हेतु हो ही नहीं सकता जिससे वह यह कह सके कि किसी समयमें कोई वस्तु बिना किसी वस्तुके ही बन गई थी, अर्थात् नास्तिसे अस्तिरूप हो गई थी; बल्कि तर्क प्रमाण तथा बुद्धिबलसे काम लेने, और दुनियाके चलते हुए कारखानोंके नियम टटोलने पर तो मनुष्य इसी बातके मानने पर बाध्य होता है कि नास्तिसे अस्ति हो जाना अर्थात् बिना वस्तुके वस्तु बन जाना बिलकुल ही असम्भव है और इस लिये यह बात तो स्पष्ट ही सिद्ध है कि संसारकी वस्तुएँ नास्तिसे अस्तिरूप नहीं हो गई हैं किन्तु किसी न किसी रूपमें सदासे ही विद्यमान चली आती हैं और आगेको भी किसी न किसी रूपमें सदा विद्यमान रहेंगी। अर्थात् संसारकी सभी जीव, अजीवरूप वस्तुएँ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनादि अनन्त हैं जिनके अनेक प्रकारके नवीन नवीन रूप होते जानेके द्वारा ही यह विचित्र संसार चल रहा है।

इस प्रकार जीव और अजीवरूप संसारकी सभी वस्तुओंकी नित्यता सिद्ध हो जाने पर अब केवल यह बात निर्णय करनेके योग्य रह जाती है कि संसारके ये सब पदार्थ किस प्रकारसे नवीन नवीन रूप धारण करते हैं, अर्थात् इन अनादि वस्तुओंके द्वारा इस विचित्र संसारका कारखाना किस तरह चल रहा है। इस बातके निश्चय करनेके वास्ते भी मनुष्य सिवाय इसके और कुछ नहीं कर सकता कि वह संसारके ढाँचेकी जाँच करे और उसकी कार्यप्रणालीके नियमोंको ढूँढ़ निकाले। परन्तु इस प्रकारकी खोजमें लगते ही सबसे पहली बात मनुष्यको यह मालूम होती है कि मनुष्य मनुष्यसे ही पैदा होता अनादि कालसे चला आता है। गाय, भैंस, घोड़ा, गधा, भेड़, बकरी, कुत्ता, बिल्ली, शेर, भेड़िया, चील, कबूतर, कौआ, और चिड़िया आदि पशु पक्षियोंकी बाबत भी जो अपने मा-बापसे ही पैदा हुए देखे जाते हैं, यह मानना पड़ता है कि वे भी नसल दर नसल सदासे ही चले आते हैं और बिना माँ-बापके पैदा नहीं किये जा सकते हैं। गेहूँ, चना, मक्का, बाजरा, उड़द, मूँग, और आम अमरूद आदि उन पौधोंकी बाबत भी, जो अपने पौधेके बीज, जड़ शाखा आदिसे ही पैदा होते हैं, यह मानना पड़ता है कि वे भी सन्तानक्रमसे सदासे ही चले आते हैं, और किसी समयमें एकाएक पैदा होने शुरू नहीं हो गये हैं। इस तरह इन पशु, पक्षी, वनस्पति और मनुष्योंका अपने माँ बाप या बीज आदिके द्वारा अनादि कालसे पैदा होता हुआ चला आना मानकर इन सबकी उत्पत्ति और निवासस्थानके वास्ते इस धरतीका भी अनादि कालसे ही मौजूद होना मानना पड़ता है। आगे चलकर हम वस्तुस्वभावकी खोज करते हैं तो उनके स्वभाव भी अनादि और अनन्त ही पाते हैं। अर्थात्, अग्निका जो स्वभाव जलाने, उष्णता पहुँचाने और प्रकाश करनेका अब है वह उसमें सदासे ही है और सदा तक रहेगा। इसी प्रकार लोहे, पीतल, सोने, चाँदी, नमक, सुहागा और फिटकरी आदि सभी पदार्थोंके गुण और स्वभाव भी सदासे ही चले आते हैं। इनके ये गुण और स्वभाव अटल होनेके कारण ही मनुष्य इनके स्वाभावोंकी खोज करता है और फिर उन खोजे हुए उनके स्वभावोंके द्वारा उनसे नाना प्रकारके काम लेता है और बेखटके उनको काममें लाता है। यदि वस्तुओंके ये गुण और स्वभाव अटल न होते—बदलते रहा करते—तो मनुष्यको किसी वस्तुके छूने और उसके पास जाने तकका भी साहस न होता; क्यों कि तब तो यही खटका बना रहता कि न जानें आज इस वस्तुका क्या स्वभाव हो गया हो, और इसके छूनेसे न जाने क्या फल पैदा हो। परन्तु संसारमें तो यही दिखाई दे रहा है कि वस्तुका जो स्वभाव आज है वही कल था और वही आगामी कलको रहेगा। इसी कारण वह वस्तुओंके स्वभावके विषयमें अपने और अपनेसे पहलेके लोगोंके अनुभव पर पूरा भरोसा करता है और सभी वस्तुओंके स्वभावको अटल मानता है। इससे साफ साफ यही नतीजा निकलता है कि किसी खास समयमें कोई किसी वस्तुमें कोई खास गुण पैदा नहीं कर सकता है, बल्कि जबसे वह वस्तु है तभीसे उसमें उसके गुण भी हैं। और चूँकि संसारकी वस्तुएँ अनादि हैं इस वास्ते उनके गुण भी अनादि ही हैं—उनको किसीने नहीं बनाया है।

इसी प्रकार संसारकी वस्तुओंकी जाँच करनेसे, यह भी मालूम हो जाता है कि दो या अधिक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वस्तुओंको किसी विधिके साथ मिलानेसे जो नवीन वस्तु इस समय बन जाती है वह इस प्रकारके मिलापसे पहले भी बनती थी और वही आगेको भी बनेगी, जैसा कि नीला और पीला रंग मिलनेसे जो हरा रंग इस समय बनता है वही सदासे बनता रहा है और सदाको बनता रहेगा। ऐसे ही किसी वस्तुके प्रभावसे जो परिवर्तन किसी दूसरी वस्तुमें हो जाता है वह पहले भी होता था और वही आगेको भी होगा ; जैसा कि आगकी गर्मीसे पानीकी जो भाप इस समय बनती है वही पहले बनती थी और वही आगेको भी बनती रहेगी। लकड़ियोंको आगमें डालनेसे, इस समय, जैसी वे कोयला धुँआँ और राखरूप हो जाती हैं वैसी ही पहले भी होती थीं और आगेको भी होती रहेंगी। सारांश यह कि, संसारकी वस्तुओंके आपसमें अथवा अन्य वस्तुओंपर अपना प्रभाव डालने या अन्य वस्तुओंसे प्रभावित होने आदिके सब प्रकारके गुण और स्वभाव ऐसे नहीं हैं जो बदलते रहते हों या बदल सकते हों, बल्कि वस्तुओंकी जाँच और खोजके द्वारा उनके ये सब स्वभाव अटल ही दिखाई देते हैं— अनादि अनन्त ही सिद्ध होते हैं। इस प्रकार, मनुष्यको अपने बुद्धिबलसे काम लेने पर जब यह बात सिद्ध हो जाती है कि वृक्षसे बीज और बीजसे वृक्षकी उत्पत्तिके समान या अंडेसे मुरगी और मुरगीसे अंडेके समान संसारके सभी मनुष्य, अनेक पशु पक्षी और वनस्पतियाँ नसल दर नसल, सन्तान दर सन्तान, अनादिकालसे ही चले आते हैं, किसी समयमें इनका आदि नहीं हो सकता और इन सबके अनादि होनेके कारण इस पृथ्वीका भी अनादि होना जरूरी है जिसपर वे अनादि कालसे उत्पन्न होते और वास करते हुए चले आवें। साथ ही, वस्तुओंके गुण, स्वभाव और आपसमें एक दूसरे पर असर डालने तथा एक दूसरेके असरको ग्रहण करनेकी प्रकृति आदि भी अनादि कालसे ही चली आती है, तब जगतके प्रबन्धका सारा ही ढाँचा मनुष्यकी आँखोंके सामने हो जाता है, उसको साफ साफ दिखाई देने लग जाता है कि दुनियामें जो कुछ भी हो रहा है वह सब वस्तुओंके गुण और स्वभावसे ही हो रहा है। संसारकी इन सब वस्तुओंके सिवाय न तो कोई भिन्न प्रकारकी शक्ति ही इस प्रबन्धमें कोई कार्य्य कर रही है और न किसी भिन्न शक्तिकी किसी प्रकारकी कोई जरूरत ही है। जैसा कि जब समुद्रके पानी पर सूरजकी धूप पड़ती है तो उस धूपमें जितना ताप होता है उसीके अनुसार समुद्रका पानी उस तापसे प्रभावित हो (तप्त हो) भाफ बन-जाता है और जिधरको हवाका प्रवाह होता है उधरको ही भाफके रूपमें बहा चला जाता है। फिर जहाँ कहीं भी उसे इतनी ठंड मिल जाती है कि वह पानीका पानी हो जावे वहीं पानी होकर बरसने लगता है। पुनः वह बरसा हुआ पानी अपने समतल रूप रहनेके स्वभावके कारण ढालहीकी तरफको बहने लग जाता है और धरतीकी उस वस्तुको, जो पानीमें घुल सकती है, घोलता और अपने साथ लेता हुआ चला जाता है। इसी प्रकार जो वस्तुएँ पानीपर तैर सकती हैं वे भी उस पानी पर तैरती हुई साथ साथ चली जाती हैं, परन्तु जो वस्तुएँ न पानीमें घुल सकती हैं और न पानी पर तैर सकती हैं वे प्रवाहित पानीके धक्कोंसे कुछ दूरतक तो लुढ़कती हुई साथ जाती हैं परन्तु जिस स्थानपर धरतीका ढाल कम होनेके कारण पानीका प्रवाह हलका हो जाता है वहीं वे वस्तुएँ रह जाती हैं। पानीका यह प्रवाह अपने मार्गकी हलकी हलकी रुकावटोंको हटाकर अपना मार्ग साफ करता, बलवान् रुकावटोंसे अपना मार्ग अदलता बदलता, घूमता घामता ढालहीकी ओर बहता जाता है। और जहाँ कहीं भी कोई गड्ढा पाता है वहीं जमा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होने लग जाता है तथा जो पानी गड्ढेसे अधिक होता है वह आगेको बहता चला जाता है; यहाँ तक कि वह बहता बहता समुद्रमें ही जा पहुँचता है।

धूप, हवा, पानी और मिट्टी आदिके इन उपर्युक्त स्वभावोंसे दुनिया भरमें लाखों और करोड़ों ही परिवर्तन हो जाते हैं, जिनसे फिर नवीन नवीन लाखों करोड़ों काम होने लग जाते हैं। और भी जिन जिन कार्योंपर दृष्टि दौड़ाते हैं उन उनपर इसी प्रकार वस्तुस्वभावके द्वारा ही कार्य्य होता हुआ पाते हैं और होना भी चाहिए ऐसा ही; क्योंकि जब संसारकी सारी वस्तुएँ तथा उनके स्वभाव सदासे हैं; जब संसारकी सारी वस्तुएँ आपसमें एक दूसरे पर अपना अपना प्रभाव डालती हैं और दूसरी वस्तुओंके प्रभावसे प्रभावित होती हैं तब तो यह बात जरूरी ही है कि उनमें सदासे ही बराबर खिचड़ीसी पकती रहे और संसारकी वस्तुओंके स्वभावानुसार नाना प्रकारके परिवर्तन होते रहें। यही संसारका सारा कार्य्य-व्यवहार है जो वस्तुस्वभावके द्वारा अपने आप हो रहा है और अविचारी पुरुषोंको चकित करके भ्रममें डाल रहा है।

इस प्रकार दुनियाके इस सारे ढाँचेकी पड़-ताल करने पर, बुद्धि और विचारसे काम लेने पर, सिवाय इसके और कुछ भी सिद्ध नहीं होता कि जिन जिन वस्तुओंसे यह दुनिया बनी हुई है वे सभी जीव, अजीव तथा उनके गुण और स्वभाव अनादि अनन्त हैं। उनके इन अनादि स्वभावोंके द्वारा ही जगतका यह सब कार्य्य व्यवहार चल रहा है। इन जीव अजीव पदार्थोंके सिवाय न तो कोई तीसरी वस्तु सिद्ध होती है और न उसके होनेकी कोई जरूरत ही मालूम होती है। इसके सिवाय यदि विचारके वास्ते कोई तीसरी वस्तु मान भी लें तो उसके विरुद्ध आक्षेपोंका ऐसा भारी समूह सामने आ खड़ा होता है कि जिसको दूर हटाना और विचार-क्षेत्रमें खड़ा रहना ही असम्भव हो जाता है। हाँ, विचारके क्षेत्रसे दूर भाग जाने पर, पक्षपात और अंधविश्वासकी लाठीको चारों तरफ घुमाकर किसी भी हेतु या प्रमाणको अपने पास न फटकने देनेकी अवस्थामें हम जो चाहे मान सकते हैं; पर ऐसी दशामें हमारे लिये यह बात भी जरूरी हो जाती है कि न अपनी कहें और न किसी-की सुनें—अर्थात्, स्वयं भी जो चाहे विश्वास बाँध कर बैठ जावें और दूसरोंको भी उलटा पुलटा जो मन चाहे विश्वास बाँध लेने देवें। गरज न तो अपने विश्वासको झूठा बतानेका किसीको अधिकार देवें और न स्वयं किसीके विश्वासको असत्य ठहरावें।

विचारनेकी बात है कि जब समुद्रके पानीकी ही भाफ बन कर उसका ही बादल बनता है तब यदि वस्तुस्वभावके सिवाय कोई अन्य ही बारिश बरसानेका प्रबन्ध करनेवाला होता तो वह तो कदाचित् भी उस समुद्र पर पानी न बरसाता जिसके पानीकी भाफ बन कर ही यह बादल बना था। परन्तु देखनेमें तो यही आता है कि बादलको जहाँ भी इतनी ठंड मिल जाती है कि भाफका पानी बन जावे वहीं वह बरस पड़ता है। यही कारण है कि वह समुद्र पर भी बरसता है और धरती पर भी। वह बादल तो इस बातकी जरा भी परवाह नहीं करता कि मुझे कहाँ बरसना चाहिए और कहाँ नहीं। इसी कारण कभी तो यह वर्षा समय पर हो जाती है और कभी कुसमय पर होती है, बल्कि कभी कभी तो यहाँ तक भी होता है कि सारी फसल भर अच्छी बारिश बरस कर और खेतीकी अच्छे प्रकार पालना होकर अन्तमें एक आध बारिशकी ऐसी कमी हो जाती है कि सारी करी कराई खेती मारी जाती है। यदि वस्तु-स्वभावके सिवाय कोई दूसरा प्रबंध करनेवाला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होता तब तो ऐसी अंधाधुंधी कभी भी न होती। इस स्थान पर यदि यह कहा जावे कि उसकी तो इच्छा ही यह थी कि इस वर्ष इस खेतमें अनाज पैदा न हो या कमती पैदा हो । परन्तु यदि यही बात होती तब तो वह सारी फसल भर अच्छी अच्छी बारिशें बरसा कर उस खेतीको इतनी बड़ी ही क्यों होने देता ? बल्कि वह तो उस खेतके किसानको ही इतना साहस न करने देता जिससे वह उस खेतमें बीज बोवे । यदि किसान पर उस प्रबंधकर्ताका काबू नहीं चल सकता था और बीजके बोये जानेको वह नहीं रोक सकता था तो खेतमें पड़े हुए बीजको ही न उगने देता। यदि बीज पर भी उसका काबू नहीं था तो कमसे कम बारिशकी एक बूँद भी उस खेतमें न पड़ने देता, जिससे वह बीज ही जल भुन कर वहीं नष्ट हो जाता । और यदि संसारके उस प्रबंधकर्ताकी यही इच्छा होती कि इस वर्ष अनाज पैदा ही न हो या कमती पैदा हो, तो वह केवल उन्हीं खेतोंको खुश्क न करता जो बारिशके ऊपर ही निर्भर हैं बल्कि उन खेतोंको भी जरूर खुश्क करता, जिनमें नहरसे पानी आता है । परन्तु देखनेमें यही आता है कि जिस वर्ष बारिश नहीं होती या कमती बारिश होती है उस वर्ष उन खेतोंमें तो प्रायः कुछ भी पैदा नहीं होता जो बारिश पर ही निर्भर हैं; हाँ, नहरसे पानी आनेवाले खेतोंमें उन्हीं दिनों सब कुछ पैदा हो जाता है । इससे यह बात प्रत्यक्ष सिद्ध है कि संसारका कोई एक प्रबंधकर्ता नहीं है; बल्कि वस्तुस्वभावके कारण ही जब बारिश बरसनेका सामान बँध जाता है तब पानी बरस जाता है और जब वैसा सामान नहीं बँधता तब वह नहीं बरसता। वर्षाको इस बातकी कुछ भी परवाह नहीं है कि उसके कारण कोई खेती हरी होगी या सूखेगी और संसारके जीवोंको नफा पहुँचेगा या नुकसान। इसीसे कभी कभी ऐसी गड़बड़ी भी हो जाती है कि जहाँ जरूरत नहीं होती वहाँ तो बारिश बरस जाती है और जहाँ जरूरत होती है वहाँ एक बूँद भी नहीं पड़ने पाती । किसी प्रबंधकर्ताके न होनेके कारण ही तो मनुष्य, कुएँ खोद कर और नहर आदि निकाल कर, यह प्रबंध कर सका है कि यदि बारिश न बरसे तो भी वह अपने खेतोंको पानी देकर सब कुछ अनाज पैदा कर लेवे।

इसके सिवाय जब प्रत्येक धर्म और पंथके कथनानुसार संसारमें इस समय पापोंकी ही अधिकता हो रही है और नित्य ही भारी भारी अन्याय देखनेमें आते हैं, तब यह कैसे माना जा सकता है कि जगतका कोई प्रबंधकर्ता भी अवश्य है, जिसकी आज्ञाओंको न माननेके कारण ही ये सब पाप और अपराध हो रहे हैं। संभव है कि यहाँ पर कोई भाई ऐसा भी कहने लगे कि राजाकी आज्ञा भी तो भंग होती रहती है। उनको यह विचारना चाहिये कि राजा न तो सर्वका ज्ञाता सर्वज्ञ ही होता है और न सर्वशक्तिमान्। इसलिये न तो उसको सर्व प्रकारके अपराधों तथा अपराध करनेवालोंका पता लग सकता है और न वह सर्व प्रकारके अपराधोंको दूर ही कर सकता है। परन्तु जो सर्वज्ञ हो, सर्वशक्तिमान् हो, संसार भरका प्रबंध करनेवाला हो और एक छोटेसे परमाणुसे लेकर धरती आकाश तककी गति-स्थितिका कारण हो, उसके सम्बंधमें यह बात कभी भी नहीं कही जा सकती कि, वह ऐसा प्रबंध नहीं कर सकता, जिससे कोई भी उसकी आज्ञाको भंग न कर सके और सारा कार्य उसकी मर्जीके मुताबिक (इच्छानुसार) ही होता रहे । एक ओर तो संसारके एक एक कण (अणु) का उसे प्रबंधकर्ता बताना और दूसरी ओर अपराधोंके रोकनेमें उसे असमर्थ ठहराना, यह तो वास्तवमें उस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रबंधकर्ताका मखौल ही उड़ाना है; बल्कि यों कहना चाहिये कि इस तरह तो असिलमें उसका न होना ही सिद्ध करना है।

अफसोस है कि मनुष्योंने वस्तुस्वभावको न जानकर विना किसी हेतुके ही संसारका एक प्रबन्धकर्ता मान लिया है। पृथ्वी पर राजाओंको मनुष्योंके बीचमें प्रबंधसम्बंधी कार्य करता हुआ देखकर सारे संसारके प्रबंधकर्ताको भी वैसा ही कमशक्तिवाला समझ लिया है और जिस प्रकार राजा लोग खुशामद तथा स्तुतिसे प्रसन्न होकर खुशामद करनेवालोंके काबूमें आ जाते हैं और उनकी इच्छाके अनुसार ही उलटे सीधे कार्य करने लग जाते हैं उस ही प्रकार दुनियाके लोगोंने संसारके प्रबंधकर्ताको भी खुशामद तथा स्तुतिसे काबूमें आजानेवाला मानकर उसकी भी खुशामद करनी शुरू कर दी है और वे अपने आचरणको सुधारना छोड़ बैठे हैं। यही कारण है कि संसारमें ऐसे ऐसे महान् पाप फैल रहे हैं जो किसी प्रकार भी दूर होनेमें नहीं आते। जब संसारके मनुष्य इस कच्चे खयालको हृदयसे दूर करके वस्तुस्वभावके अटल सिद्धान्तको मानने लग जावें तब ही उनके दिलोंमें यह खयाल जड़ पकड़ सकता है कि जिस प्रकार आँखोंमें मिरच झोंक देनेसे या घाव पर नमक छिड़क देनेसे दर्दका हो जाना जरूरी है और वह दर्द किसी प्रकारकी खुशामद या स्तुतिके करनेसे दूर नहीं हो सकता, उस ही प्रकार जैसा हमारा आचरण होगा उसका फल भी हमको अवश्य ही भुगतना पड़ेगा, वह केवल खुशामद तथा स्तुतिसे टाला न टलेगा। जैसा बीज वैसा वृक्ष और जैसी करनी वैसी भरनीके सिद्धान्त पर पूर्ण विश्वास हो जाने पर ही यह मनुष्य बुरे कृत्योंसे बच सकता है और भले कृत्योंकी तरफ लग सकता है। परन्तु इसके विरुद्ध, जब तक मनुष्यको यह खयाल बना रहेगा कि खुशामद करने, स्तुतियाँ पढ़ने या भेट चढ़ाने आदिके द्वारा भी मेरे अपराध क्षमा हो सकते हैं तब तक वह बुरे कृत्य करनेसे नहीं बच सकता और न शुभ आचरणोंकी तरफ लग सकता है। अतः मैं संसारके सभी लोगोंसे पुकार पुकार कर यह अपील करता हूँ कि वे कारण-कार्यके अटल सिद्धान्तको मान कर वस्तुस्वभाव पर पूरा पूरा विश्वास लावें, अपने भले बुरे कृत्योंका फल भुगतनेके वास्ते पूरी तौरसे तय्यार रहें और उनका फल टल जाना बिलकुल ही असंभव समझें। ऐसा मान लेने पर ही मनुष्योंको अपने ऊपर पूरा भरोसा होगा, वे अपने पैरोंके बल खड़े होकर अपने आचरणोंको ठीक बनानेके लिये कमर बाँध सकेंगे और तब ही दुनियासे ये सब पाप और अन्याय दूर हो सकेंगे। नहीं तो, किसी प्रबंधकर्ताके माननेकी अवस्थामें, अनेक प्रकारके भ्रम हृदयमें उत्पन्न होते रहेंगे और दुनियाके लोग पाप करनेकी तरफ ही झुकेंगे। एक तो यह सोचने लग जायगा कि यदि उस प्रबंधकर्ताको मुझसे पाप कराना मंजूर न होता तो वह मेरे मनमें पाप करनेका विचार ही क्यों आने देता; दूसरा विचारेगा कि यदि वह मुझसे इस प्रकारके पाप कराना न चाहता तो वह मुझे ऐसा बनाता ही क्यों, जिससे मेरे मनमें इस प्रकारके पाप करनेकी इच्छा पैदा होवे; तीसरा कहेगा कि यदि वह पापोंको न कराना चाहता तो पापोंको पैदा ही क्यों करता; चौथा सोचेगा कुछ ही हो अब तो यह पाप कर लें फिर संसारके प्रबंधकर्ताकी खुशामद करके और नजर भेट चढ़ाकर क्षमा करा लेंगे; गरज यह कि संसारका प्रबंधकर्ता माननेकी अवस्थामें तो लोगोंको पाप करनेके लिये सैकड़ों बहाने बनानेका अवसर मिलता है, परन्तु वस्तुस्वभावके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वारा ही ससारका संपूर्ण कार्य व्यवहार चलता हुआ माननेकी अवस्थामें सिवाय इसके और कोई विचार ही नहीं उठ सकता कि जैसा करेंगे उसका फल भी हम स्वयं वैसा ही अवश्य भुगतेंगे। ऐसा माननें पर ही हम बुरे आचरणोंसे बच सकते हैं और अच्छे आचरणोंकी तरफ लग सकते हैं।

पाठक जरा यह भी विचार करें कि यदि कोई प्रबंधकर्ता होता तो क्या ऐसा ही अन्धेर रहता जैसा कि अब हो रहा है। अर्थात्, किसीको भी इस बातकी खबर नहीं कि हमको इस समय जो कुछ भी सुख दुःख मिल रहा है वह हमारे कौनसे कृत्योंका फल है। प्रबंधकर्ता होनेकी हालतमें हमें वह बात प्रकट रूपसे अवश्य ही बतलाई जाती, जिससे हम आगामीको बुरे कृत्योंसे बचते और भले कृत्योंकी तरफ लगते, परंतु अब यह मालूम होना तो दूर रहा कि हमको कौन कौन दुःख किस किस कृत्यके कारण मिल रहा है, यह भी मालूम नहीं है कि पाप क्या होता है और पुण्य क्या। इसीसे दुनियामें यहाँतक अन्धेर छाया हुआ है कि एक ही कृत्यको कोई पाप मानता है और कोई पुण्य अथवा धर्म। और यही वजह है कि संसारमें सैकड़ों प्रकारके मत फैले हुए है, जिनमें यह बड़े तमाशेकी बात है कि सब ही अपने अपने मतको उसी सर्वशक्तिमान प्रबंधकर्ताका प्रचार किया हुआ बतलाते हैं। जहाँतक हम समझते हैं ऐसा अंधेर तो मामूली राजाओंके राज्यमें भी नहीं होता। प्रत्येक राजाके राज्यमें जिस प्रकारका कानून जारी होता है उसके विरुद्ध यदि कोई मनुष्य कोई विपरीत नियम चलाना चाहे तो वह राजविद्रोही समझा जाता है और दंड पाता है, परंतु सर्वशक्तिमान परमेश्वरके राज्यमें दिनदहाड़े सैंकड़ों ही मतोंके प्रचारक अपने अपने धर्मोंका उपदेश करते हैं, अपने अपने सिद्धान्तोंको उसी एक परमेश्वरकी आज्ञा बताकर उसके ही अनुसार चलनेकी घोषणा करते हैं, और यह सब कुछ होते हुए भी उस परमेश्वर या संसारके प्रबंधकर्ताकी तरफसे कुछ भी रोक-टोक, इस विषयमें, नहीं होती। ऐसे भारी अन्धेरकी अवस्थामें तो कदाचित् भी यह नहीं माना जा सकता कि कोई महाशक्ति-संपन्न प्रबंधकर्ता इस संसारका प्रबंध कर रहा है; बल्कि ऐसी दशामें तो यही माननेके लिये विवश होना पड़ता है कि वस्तुस्वभाव पर ही संसारका सारा ढाँचा बँध रहा है और उसीके अनुसार जगतका यह सब प्रबन्ध चल रहा है। यही वजह है कि यदि कोई मनुष्य वस्तुस्वभावको उलटा पुलटा समझकर गलती खाता है या दूसरोंको बहकाकर गलतीमें डालता है तो संसारकी ये सब वस्तुएँ उसको मना करने अथवा रोकने नहीं जातीं और न अपने अपने स्वभावके अनुसार अपना फल देनेसे ही कभी चूकती हैं। जैसे आगमें चाहे तो कोई नादान बच्चा अपने आप हाथ डाल देवे और चाहे किसी बुद्धिमान-पुरुषका हाथ भूलसे पड़ जावे, परंतु वह आग उस बच्चेकी नादानीका और बुद्धिमानके अनजानपनेका कुछ भी खयाल नहीं करेगी, बल्कि अपने स्वभावके अनुसार उन दोनोंके हाथोंको जलानेका कार्य्य अवश्य कर डालेगी। मनुष्यके शरीरमें सैकड़ों बीमारियाँ ऐसी होती हैं जो उसके विना जाने बूझे दोषोंका ही फल होती हैं, परन्तु प्रकृति या वस्तुस्वभाव उसे यह नहीं बताती कि तेरे अमुक दोषके कारण तुझको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह बीमारी हुई है। इसी तरह हमारे आत्मीय दोषोंका फल भी हमको वस्तुस्वभावके अनुसार ही मिलता है और वस्तुस्वभाव हमको यह नहीं बतलाता है कि हमको हमारे किस कृत्यका कौन फल मिला, परन्तु फल प्रत्येक कृत्यका मिलता अवश्य है।

इस प्रकार वस्तुस्वभावके सिद्धान्तानुसार तो यह बात ठीक बैठ जाती है कि सुख दुःख भुगतते समय क्यों हमको हमारे उन कृत्योंकी खबर नहीं होती, जिनके फलरूप हमको वह सुख दुःख भुगतना पड़ता है। परन्तु किसी प्रबंधकर्ताके माननेकी हालतमें वह बात कभी ठीक नहीं बैठती, बल्कि उलटा बड़ा भारी अंधेर ही दृष्टिगोचर होने लगता है। यदि हम यह मानते हैं कि जो बच्चा किसी चोर, डाकू या वेश्या आदि पापियोंके घर पैदा किया गया है वह अपने भले बुरे कृत्योंके फलस्वरूप ही ऐसे स्थानमें पैदा किया गया है तो प्रबन्धकर्ता परमेश्वर माननेकी अवस्थामें यह बात भी ठीक नहीं बैठती; क्योंकि शराबी यदि शराब पीकर और पागल बनकर फिर भी शराबकी दुकानपर जाता है और पहलेसे भी ज्यादा तेज शराब माँगता है तो वस्तुस्वभावके अनुसार तो यह बात ठीक बैठ जाती है कि शराबने उसके दिमागको ऐसा खराब कर दिया है, जिससे अब उसको पहलेसे भी ज्यादा तेज शराब पीनेकी इच्छा उत्पन्न हो गई है; परन्तु जगतके प्रबंधकर्ताके द्वारा ही फल मिलनेकी अवस्थामें तो शराब पीनेका यही दंड मिलना चाहिये था कि वह किसी ऐसी जगह पटक दिया जाय जहाँसे वह शराबकी दुकान तक ही न पहुँच सके और ऐसा दुःख पावे कि फिर कभी शराबका नाम तक भी न लेवे। इसी तरह व्यभिचार तथा चोरी आदिकी भी ऐसी ही सजा मिलनी चाहिये थी, जिससे वह कदापि व्यभिचार तथा चोरी न करने पाता। जो जीव चोरों तथा वेश्याओंके यहाँ पैदा किये जाते हैं उनका ऐसी जगह पैदा करना तो चोरी और व्यभिचारकी शिक्षा दिलानेकी ही कोशिश करना है। संसारके प्रबंधकर्ताकी बाबत तो ऐसा कभी भी खयाल नहीं किया जा सकता कि उसीने ऐसा प्रबंध किया हो—अर्थात्, वही पापियों और अपराधियोंको चोरों तथा व्यभिचारियोंके यहाँ पैदा करके चोरी और व्यभिचारकी शिक्षा दिलाना चाहता हो। ऐसी बातें देखकर तो लाचार यही मानना पड़ता है कि संसारका कोई भी एक बुद्धिमान् प्रबंधकर्ता नहीं है—बल्कि वस्तुस्वभावके द्वारा और उसीके अनुसार ही जगतका यह सब प्रबंध चल रहा है, दुनियाका सब कार्य व्यवहार हो रहा है। अतः किसी प्रबंधकर्ताकी खुशामद करके या भेट चढ़ाकर उसको राजी कर लेनेके भरोसे न रह कर हमको स्वयं अपने आचरणोंको सुधारनेकी ही ओर दृष्टि रखनी चाहिये और यही श्रद्धान बाँधे रखना चाहिये कि जगत अनादिनिधन है और उसका कोई एक बुद्धिमान प्रबंधकर्ता नहीं है।

सत्यसमान कठोर, न्यायसम पक्षविहीन,
हूँगा मैं, परिहास-रहित, कूटोक्ति-क्षीण।
नहीं करूँगा क्षमा, इंचभर नहीं टलूँगा,
तो भी हूँगा मान्य, ग्राह्य, श्रद्धेय बनूँगा॥

—हितैषी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैनाचार्योंका शासनभेद ।

[तृतीय लेख ।]

गुणव्रत और शिक्षाव्रत ।

जैनधर्ममें, अणुव्रतोंके पश्चात्, श्रावकके बारह व्रतोंमें तीन गुणव्रतों और चार शिक्षाव्रतोंका विधान पाया जाता है । इन सातों व्रतोंको सप्त शीलव्रत भी कहते हैं । गुणव्रतोंसे अभिप्राय उन व्रतोंका है जो अणुव्रतोंके गुणार्थ अर्थात् उपकारके लिये नियत किये गये हैं—भावनाभूत हैं—अथवा जिनके द्वारा अणुव्रतोंकी वृद्धि तथा पुष्टि होती है । और शिक्षाव्रत उन्हें कहते हैं जिनका मुख्य प्रयोजन शिक्षा अर्थात् अभ्यास है—जो शिक्षाके स्थानक तथा अभ्यासके विषय हैं—अथवा शिक्षाकी—विद्योपादानकी—जिनमें प्रधानता है और जो विशिष्ट श्रुतज्ञानभावनाकी परिणति द्वारा निर्वाह किये जानेके योग्य होते हैं । इनमें गुणव्रत प्रायः यावज्जीविक कहलाते हैं; अर्थात्, उनके धारणका नियम प्रायः जीवनभरके लिये होता है—वे प्रतिसमय पालन किये जाते हैं—और शिक्षाव्रत यावज्जीविक न होकर प्रतिदिन तथा नियत दिवसादिकके विभागसे अभ्यसनीय होते हैं—उनका अभ्यास प्रतिसमय नहीं हुआ करता, उन्हें परिमितकालभावित समझना चाहिये । यही सब इन दोनों प्रकारके व्रतोंमें परस्पर उल्लेखयोग्य भेद पाया जाता है * । यद्यपि इन दोनों जातिके व्रतोंकी संख्यामें कोई आपत्ति मालूम नहीं होती—प्रायः सभी आचार्योंने, जिन्होंने गुणव्रत और शिक्षाव्रतका विधान किया है, गुणव्रतोंकी संख्या तीन और शिक्षाव्रतोंकी संख्या चार बतलाई है—तो भी इनके भेद तथा स्वरूपादिकके प्रतिपादनमें कुछ आचार्योंके परस्पर मत-भेद है । आज उसी मत-भेदको स्थूलरूपसे, यहाँपर, दिखलानेका यत्न किया जाता है:—

१—श्रीकुंदकुंदाचार्य, अपने 'चारित्रपाहुड'में, इन व्रतोंके भेदोंका प्रतिपादन इस प्रकारसे करते हैं:—

दिसविदिसमाण पढमं अणत्थदंडस्स वज्जणं विदियं ।
भोगोपभोगपरिमा इयमेव गुणव्वया तिण्णि ॥ २५ ॥
सामाइयं च पढमं विदियं च तहेव पोसहं भणियं ।
तइयं अतिहीपुज्जं चउत्थं संलेहणा अंते ॥ २६ ॥

अर्थात्—१ दिशाविदिशाओंका परिमाण, २ अनर्थदंडका त्याग और ३ भोगोपभोगका

---

* यथाः—

१—'गुणार्थमणुव्रतानामुपकारार्थंव्रतं गुणव्रतं । शिक्षायै अभ्यासाय व्रतं देशावकाशिकादीनां प्रतिदिवसाभ्यसनीयत्वात् । अतएव गुणव्रतादस्यभेदः । गुणव्रतं हि प्रायो यावज्जीविकमाहुः । अथवा शिक्षाविद्योपादानं शिक्षाप्रधानं व्रतं शिक्षाव्रतं देशावकाशिकादेर्विशिष्टश्रुतज्ञानभावनापरिणतत्वेनैव निर्वाह्यत्वात् ।' 'शिक्षाव्रतत्वं चास्य शिक्षाप्रधानत्वात् परिमितकालभावित्वाच्च ।'

—इत्याशाधरः स्वसागारधर्मामृतटीकायां ।

२—अनुवृंहणाद्गुणानामाख्यान्ति गुणव्रतान्यार्याः ।

—इति स्वामिसमन्तभद्रः ।

३—'अणुव्रतानां परिपालनाय भावनाभूतानि गुणव्रतानि ।' 'शिक्षापदानि च शिक्षाव्रतानि वा तत्र शिक्षा अभ्यासः स च चारित्रनिबंधनविशिष्टक्रियाकलापविषयस्तस्य पदानि स्थानानि तद्विषयानि वा व्रतानि शिक्षाव्रतानि ।'

—इति श्रावकप्रज्ञप्तिटीकायां हरिभद्रः ।

४—'शीलं च गुणशिक्षाव्रतं । तत्र गुणव्रतानि... अणुव्रतानां भावनाभूतानि । यथाणुव्रतानि तथा गुणव्रतान्यपि सकृद्गृहीतानि यावज्जीवं भावनीयानि ।' 'शिक्षाभ्यासस्तस्याः पदानि स्थानानि अभ्यासविषयस्तान्येव व्रतानि शिक्षापदव्रतानीति । गुणव्रतानि तु न प्रतिदिवसग्राह्याणि सकृद्ग्रहणान्येव ।

—इति तत्त्वार्थसूत्रस्य स्वस्वटीकायां सिद्धसेनगणिः यशोभद्रश्च ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिमाण, ये ही तीन गुणव्रत हैं। १ सामायिक, २-प्रोषध, -३ अतिथिपूजन और ४ अन्तमें सल्लेखना, ये चार शिक्षाव्रत हैं।

२—तत्त्वार्थसूत्रके प्रणेता श्रीउमास्वाति आचार्यने यद्यपि अपने सूत्रमें 'गुणव्रत' ऐसा स्पष्ट नामोल्लेख नहीं किया तो भी सप्तशील व्रतोंका जिस क्रमसे निर्देश किया है उससे मालूम होता है कि उन्होंने १ दिग्विरति, २ देशविरति, ३ अनर्थदंडविरतिको गुणव्रत, और १ सामायिक, २ प्रोषधोपवास, ३ उपभोगपरिभोगपरिमाण, ४ अतिथिसंविभागको शिक्षाव्रत माना है। यथाः—

-दिग्देशानर्थदंडविरतिसामायिकप्रोषधोपवासोपभोगपरिभोगपरिमाणातिथिसंविभागव्रतसंपन्नश्च।

इस सूत्रकी टीकामें—सर्वार्थसिद्धिमें—श्रीपूज्यपाद आचार्य भी दिग्विरतिः, देशविरतिः, अनर्थदंडविरतिरिति। एतानि त्रीणिगुणव्रतानि, इस वाक्यके द्वारा पहले तीन व्रतोंको गुणव्रत सूचित करते हैं। और इसलिये बाकीके चारों व्रत शिक्षाव्रत हैं, यह स्वतः स्पष्ट हो जाता है; क्योंकि शीलव्रत गुणशिक्षाव्रतात्मक कहलाते हैं।

सप्तशीलानि गुणव्रतशिक्षाव्रतव्यपदेशभांजीति,

ऐसा, श्लोकवार्तिकमें, श्रीविद्यानन्द स्वामीका भी वाक्य है।

इससे उमास्वाति आचार्यका शासन, और संभवतः उनके समर्थक श्रीपूज्यपाद और विद्यानंदस्वामीका शासन भी, इस विषयमें, कुंदकुंदाचार्यके शासनसे एकदम विभिन्न जान पड़ता है। उमास्वातिने सल्लेखनाको शिक्षाव्रतोंमें तो क्या, श्रावकके बारह व्रतोंमें भी वर्णन नहीं किया; बल्कि व्रतोंके अनन्तर उसे एक जुदा ही धर्म प्रतिपादन किया है, जिसका अनुष्ठान मुनि और श्रावक दोनों किया करते हैं। इसके सिवाय उन्होंने गुणव्रतोंमें 'देशविरति' नामके एक नये व्रतकी कल्पना की है और, साथ ही, भोगोपभोगपरिमाण व्रतको गुणव्रतोंसे निकाल कर शिक्षाव्रतोंमें दाखिल किया है। तत्त्वार्थसूत्रके टीकाकारों पूज्यपाद, अकलंकदेव और विद्यानंदमेंसे किसीने उनके इस कथनपर कोई आपत्ति नहीं की। बल्कि विद्यानंदने एक वाक्यद्वारा साफ़ तौरसे सल्लेखनाको अलग दिखलाया है और यह प्रतिपादन किया है कि जिस प्रकार मुनियोंके महाव्रत और शीलव्रत सम्यक्त्वपूर्वक तथा सल्लेखनान्त होते हैं उसी प्रकार गृहस्थके पंच अणुव्रत और गुणव्रत-शिक्षाव्रतके विभागको लिये हुए, सप्तशीलव्रत भी सम्यक्त्वपूर्वक तथा सल्लेखनान्त समझने चाहियें। अर्थात्, इन व्रतोंसे पहले सम्यक्त्वकी जरूरत है और अन्तमें—मृत्युके संनिकट होनेपर—सल्लेखना, संन्यास अथवा समाधिका विधान होना चाहिये। वह वाक्य इस प्रकार है:—

'तेन गृहस्थस्य पंचाणुव्रतानि सप्तशीलानि गुणव्रतशिक्षाव्रतव्यपदेशभांजीति द्वादशदीक्षाभेदाः सम्यक्त्वपूर्वकाः सल्लेखनांताश्च महाव्रततच्छीलवत्।'

इस वाक्यमें गृहस्थके बारहव्रतोंको 'द्वादश दीक्षाभेद' प्रकट किया है, जिससे उन लोगोंका बहुत कुछ समाधान हो सकता है जो अभीतक यह समझे हुए हैं कि श्रावकके बारहव्रतोंका युगपत् ही ग्रहण होता है, क्रमशः अथवा व्यस्त रूपसे नहीं।

हाँ, श्वेताम्बर टीकाकारोंमें श्रीसिद्धसेनगणि और यशोभद्रजीने उमास्वातिके उक्त सूत्र पर कुछ आपत्ति जरूर की है। उन्होंने, दिग्विरतिके बाद देशविरतिके कथनको परमागमके क्रमसे विभिन्न सूचित करते हुए, एक प्रश्न खड़ा किया है और उसके द्वारा यह विकल्प उठाया है कि, जब परमागममें गुणव्रतोंका क्रमसे निर्देश करनेके बाद शिक्षाव्रतोंका उपदेश

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिया गया है तो फिर सूत्रकार (उमास्वाति) ने उसके विरुद्ध भिन्नक्रम किस लिये रक्खा है। अर्थात्, दिग्विरत्यादि गुणव्रतोंका कथन पूरा किये बिना ही बीचमें 'देशविरति' नामके शिक्षाव्रतका उपदेश क्यों दिया है ? और फिर आगे स्वयं ही इस क्रमभंगके आरोपका समाधान किया है। यथा:—

"संप्रति क्रमनिर्दिष्टं देशव्रतमुच्यते । अत्राह वक्ष्यति भगवान् देशव्रतं । परमार्षप्रवचनक्रमः कैमर्थ्याद्भिन्नः सूत्रकारेण । आर्षे तु गुणव्रतानि क्रमेणादिश्य शिक्षाव्रतान्युपदिष्टानि सूत्रकारेण त्वन्यथा । तत्रायमभिप्रायः पूर्वतो योजनशतपरिमितं गमनमभिगृहीतं न चास्तिसंभवो यत्प्रतिदिवसं तावती दिगवगाहाऽतस्तदनंतरमेवोपदिष्टं देशव्रतमिति । देशे भागेऽवस्थापनं प्रतिदिनं प्रतिप्रहरं प्रतिक्षणमिति सुखावबोधार्थमन्यथाक्रमः ।"

इस अवतरणमें क्रमभंगके आरोपका जो समाधान किया गया है और उसका जो अभिप्राय बतलाया गया है, वह इस प्रकार है:—

"पहलेसे सौ योजन गमनका परिमाण ग्रहण किया था, परंतु यह संभव नहीं कि प्रति दिन इतने परिमाणमें दिशाओंका अवगाहन हो सके इस लिये उसके (दिग्व्रतके) बाद ही देशव्रतका उपदेश दिया गया है। इस तरह सुखसे समझमें आनेके लिये (सुखावबोधार्थ) सूत्रकारने यह भिन्नक्रम रक्खा है।"

जो विद्वान् निष्पक्ष विचारक हैं उन्हें ऊपरके इन समाधानवाक्योंसे कुछ भी संतोष नहीं हो सकता। वास्तवमें इनके द्वारा आरोपका कुछ भी समाधान नहीं हो सका। देशव्रतको दिग्व्रतके अनन्तर रखनेसे वह भले प्रकार समझमें आ जाता है, बादको रखनेसे वह समझमें न आता या कठिनतासे समझमें आता, ऐसा कुछ भी नहीं है। और इस लिये 'सुखावबोध' नामके जिस हेतुका प्रयोग किया गया है वह कुछ कार्यसाधक मालूम नहीं होता। सूत्रकार जैसे विद्वानोंसे ऐसी बड़ी गलती कभी नहीं हो सकती कि वे, जानते बूझते और मानते हुए भी, ख्वामख्वाह एक जातिके व्रतको दूसरी जातिके व्रतोंमें शामिल कर दें, उन्हें ऐसी बातोंका खास खयाल रहता है और इसी लिये उन्होंने अपने सूत्रमें अनेक बातोंको, किसी न किसी विशेषताके प्रतिपादनार्थ, अलग अलग विभक्तियों द्वारा दिखलानेकी चेष्टा की है। यहाँ क्रमनिर्देशसे ही गुणव्रत और शिक्षाव्रत अलग हो जाते हैं, इस लिये किसी विभक्तिद्वारा उन्हें अलग अलग दिखलानेकी जरूरत नहीं पड़ी। हाँ, दिग्देशानर्थदंडके बाद 'विरति' शब्द लगाकर इन तीनों व्रतोंकी एकजातीयता और दूसरे व्रतोंसे विभिन्नताको कुछ सूचित जरूर किया है, ऐसा मालूम होता ह। यदि उमास्वातिको 'देशविरति' नामके व्रतका शिक्षाव्रत होना इष्ट था तो कोई वजह नहीं थी कि वे उसका यथास्थान निर्देश न करते। तत्त्वार्थाधिगमभाष्यमें भी, जिसे स्वयं उमास्वातिका बनाया हुआ भाष्य बतलाया जाता है, इस विषयका कोई स्पष्टीकरण नहीं है। यदि उमास्वातिने सुखावबोधके लिये ही (जो प्रायः सिद्ध नहीं है) यह क्रमभंग किया होता और तत्त्वार्थाधिगमभाष्य स्वयं उन्हींका स्वोपज्ञ टीकाग्रंथ था तो वे उसमें अपनी इस बातका स्पष्टीकरण जरूर करते, ऐसा हृदय कहता है। परंतु वैसा नहीं पाया जाता और न उनकी इस सुखावबोधिनी वृत्तिका श्वेताम्बर सम्प्रदायमें पीछेसे कुछ अनुकरण देखा जाता है। इस लिये, विना इस बातको स्वीकार किये कि उमास्वाति आचार्य देशविरति नामके व्रतको गुणव्रत और उपभोगपरिभोगपरिमाण नामके व्रतको शिक्षाव्रत मानते थे, उक्त क्रमभंगके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आरोपका समुचित समाधान नहीं बनता। हमारी रायमें, ऐसा मालूम होता है कि श्वेताम्बर-सम्प्रदायके आगम ग्रंथोंसे तत्त्वार्थसूत्रकी विधि ठीक मिलानेके लिये ही यह सब खींचातानी की गई है। अन्यथा, उमास्वाति आचार्यका मत इस विषयमें वही मालूम होता है जो इस नम्बर (२) के शुरूमें दिखलाया गया है और जिसका समर्थन श्रीपूज्यपादादि आचार्योंके वाक्योंसे भले प्रकार होता है। और भी बहुतसे आचार्य तथा विद्वान् इस मतको माननेवाले हुए हैं, जिनमेंसे कुछके वाक्य नीचे उद्धृत किये जाते हैं:—

क—दिग्देशानर्थदंडानां विरतिस्त्रितयाश्रयम्।
गुणव्रतत्रयं सद्भिः सागारयतिषु स्मृतम्॥
आदौ सामायिकं कर्म प्रोषधोपासनक्रिया।
सेव्यार्थनियमो दानं शिक्षाव्रतचतुष्टयं॥

—यशस्तिलके सोमदेवः।

यहाँ 'सेव्यार्थनियम' से उपभोगपरिभोग-परिमाणका और 'दान' से अतिथिसंविभागका अर्थ समझना चाहिये।

ख—स्थवीयसीं विरतिमभ्युपगतस्य श्रावकस्य व्रत-विशेषो गुणव्रतत्रयं शिक्षाव्रतचतुष्टयं शीलसप्तकमित्यु-च्यते। दिग्विरतिः, देशविरतिः, अनर्थदंडविरतिः, सामायिकं, प्रोषधोपवासः, उपभोगपरिभोगपरिमाणं, अतिथिसंविभागश्चेति।

—चारित्रसारे श्रीचामुंडरायः।

ग—दिग्देशानर्थदंडेभ्यो विरतिर्या विधीयते
जिनेश्वरसमाख्यातं त्रिविधं तद्गुणव्रतं॥

—सुभाषितरत्नसंदोहे अमितगतिः।

"देशविरतेर्द्वितीयं गुणव्रतं वर्ण्यते तस्य॥"
"भोगोपभोगसंख्या शिक्षाव्रतमुच्यते तस्य॥"

—उपासकाचारे अमितगतिः।

घ—'दिग्देशानर्थदंडेभ्यो यत्त्रिधा विनिवर्तनम्।
पोतायते भवाम्भोधौ त्रिविधं तद्गुणव्रतम्॥'
'भोगोपभोगसंख्यानं... तृतीयं तत्तदाख्यं स्यात्...॥'

—धर्मशर्माभ्युदये श्रीहरिचंद्रः।

ऊपरके इन सब अवतरणोंसे साफ प्रकट है कि श्रीसोमदेवसूरि, चामुंडराय, अमितगति आचार्य और श्रीहरिचंद्रजीने दिग्विरति, देश-विरति, अनर्थदंडविरति इन तीनोंको गुणव्रत और सामायिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोग परिमाण, अतिथिसंविभाग, इन चारोंको शिक्षा-व्रत वर्णन किया है। साथ ही, इन सभी विद्वा-नोंने भी सल्लेखनाको श्रावकके बारह व्रतोंसे अलग एक जुदा धर्म प्रतिपादन किया है। इस लिये इनका शासन भी, इस विषयमें, श्रीकुंद-कुंदाचार्यके शासनसे विभिन्न है। परंतु उसे उमास्वातिके शासनके अनुकूल समझना चाहिये।

३—स्वामी समंतभद्र, अपना शासन, इस विषयमें, कुंदकुंद और उमास्वातिके शासनसे कुछ भिन्नाभिन्नरूपसे स्थापित करते हुए, अपने 'रत्नकरंडक' नामके उपासकाध्ययनमें, इन व्रतोंका प्रतिपादन इस प्रकारसे करते हैं:—

दिग्व्रतमनर्थदंडव्रतं च भोगोपभोगपरिमाणम्।
अनुबृंहणाद्गुणानामाख्यान्ति गुणव्रतान्यार्याः॥
देशावकाशिकं वा सामयिकं प्रोषधोपवासो वा।
वैय्यावृत्यं शिक्षाव्रतानि चत्वारि शिष्टानि॥

अर्थात्—दिग्व्रत, अनर्थदंडव्रत और भोगो-पभोगपरिमाण; इन तीन व्रतोंके द्वारा गुणोंकी (अणुव्रतों अथवा समंतभद्र प्रतिपादित अष्ट मूलगुणोंकी) वृद्धि तथा पुष्टि होनेसे आर्य पुरुष इन्हें गुणव्रत कहते हैं। देशावकाशिक, सामायिक, प्रोषधोपवास और वैय्यावृत्य, ये चार शिक्षाव्रत बतलाये गये हैं।

इससे स्पष्ट है कि गुणव्रतोंके सम्बंधमें स्वामी समंतभद्र और कुंदकुंदाचार्यका शासन एक है। परंतु शिक्षाव्रतोंके सम्बंधमें वह एक नहीं है। समंतभद्रने 'सल्लेखना' को शिक्षाव्रतोंमें नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रक्खा बल्कि उसकी जगह 'देशावकाशिक' नामके एक दूसरे व्रतकी तजवीज की है और उसे शिक्षाव्रतोंमें सबसे पहला स्थान प्रदान किया है। रही उमास्वातिके साथ तुलनाकी बात, समंतभद्रका शासन उमास्वातिके शासनसे दोनों ही प्रकारके व्रतोंमें कुछ विभिन्न है। उमास्वातिने जिस देशविरति व्रतको दूसरा गुणव्रत बतलाया है समंतभद्रने उसे 'देशावकाशिक' नामसे पहला शिक्षाव्रत प्रतिपादन किया है। और समंतभद्रने जिस 'भोगोपभोगपरिमाण' नामके व्रतको गुणव्रतोंमें तीसरे नम्बर पर रक्खा है उसे उमास्वातिने शिक्षाव्रतोंमें तीसरा स्थान प्रदान किया है। इसके सिवाय 'अतिथिसंविभाग' के स्थानमें 'वैय्यावृत्य' को रखकर समंतभद्रने उसकी व्यापकताको कुछ अधिक बढ़ा दिया है। उससे अब केवल दानका ही प्रयोजन नहीं रहा बल्कि उसमें संयमी पुरुषोंकी दूसरी प्रकारकी सेवा टहल भी आ जाती है। इसी बातका स्पष्टीकरण करनेके लिये आचार्य महोदयने, अपने ग्रंथमें, दानार्थप्रतिपादक पद्यसे भिन्न एक दूसरा पद्य भी दिया है जो इस प्रकार है:—

व्यापत्तिव्यपनोदः पदयोः संवाहनं च गुणरागात्।
वैयावृत्यं यावानुपग्रहोऽन्योऽपि संयमिनाम्॥

पं० आशाधरजीने अपने सागारधर्मामृतमें इन व्रतोंका कथन प्रायः स्वामी समंतभद्रके मतानुसार ही किया है। गुणव्रतोंका कथन प्रारंभ करते हुए, टीकामें, 'आहुर्ब्रुवन्ति स्वामिमतानुसारिणः' इस वाक्यके द्वारा उन्होंने स्वामी समंतभद्रके मतकी औरोंसे भिन्नता और अपनी उसके साथ अनुकूलताको खुले शब्दोंमें उद्घोषित किया है। परंतु शिक्षाव्रतोंका प्रारंभ करते हुए टीकामें ऐसा कोई वाक्य नहीं दिया, जिसका कारण शायद यह मालूम होता है कि उन्होंने समंतभद्रके 'वैय्यावृत्य' नामक चौथे शिक्षाव्रतके स्थानमें उमस्वातिके 'अतिथिसंविभाग' व्रतको ही रखना पसंद किया है। और उसका लक्षण भी दानार्थप्रतिपादक किया है। यथाः—

व्रतमतिथिसंविभागः पात्रविशेषाय विधिविशेषेण।
द्रव्यविशेषवितरणं दातृविशेषस्य फलविशेषाय॥५-४१

देशावकाशिक व्रतका वर्णन करते हुए, टीकामें, पं०आशाधरजीने लिखा है कि, शिक्षाकी प्रधानता और परिमितकाल भावितपनेकी वजहसे इस व्रतको शिक्षाव्रतत्वकी प्राप्ति है। यह दिग्व्रतके समान यावज्जीविक नहीं होता। परंतु **तत्त्वार्थसूत्र आदिकमें जो इसे गुणव्रत माना** है सो वहाँ इसका लक्षण दिग्व्रतको संक्षिप्त करने मात्र विवक्षित मालूम होता है। साथ ही वहाँ इसे दूसरे गुणव्रतादिकोंका संक्षेप करनेके लिये उपलक्षण रूपसे प्रतिपादित समझना चाहिये। अन्यथा, दूसरे व्रतोंके संक्षेपको यदि अलग अलग व्रत करार दिया जाता तो व्रतोंकी 'बारह' संख्यामें विरोध आता। यथाः—

'शिक्षाव्रतत्वं चास्य शिक्षाप्रधानत्वात्परिमितकालभावित्वाच्चोच्यते। न खल्वेतद्दिग्व्रतवद्यावज्जीविमपीष्यति। यत्तु तत्त्वार्थादौ गुणव्रतत्वमस्य श्रूयते तद्दिग्व्रतसंक्षेपण लक्षणत्वमात्रस्यैव विवक्षितत्वाल्लक्ष्यते। दिग्व्रतसंक्षेपकरणं चात्रा (न्य) गुणव्रतादि संक्षेपकरणस्याप्युपलक्षणं द्रष्टव्यं। एषामपि संक्षेपस्यावश्यकर्तव्यत्वात्प्रतिव्रतं च संक्षेपकरणस्य भिन्नव्रतत्वे गुणाः स्युर्द्वादशेति संख्याविरोधःस्यात्॥'

पं० आशाधरजीके इन वाक्योंसे यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है कि उमास्वातिका शासन, चाहे वह किसी भी विवक्षासे * क्यों न

* पं० आशाधरजीने जिस विवक्षाका उल्लेख किया है उसके अनुसार 'देशव्रत' गुणव्रत हो सकता है और उसका नियम भी यावज्जीवके लिये किया जा सकता है। इसी तरह भोगोपभोगपरिमाण यावज्जीविक भी होता है, ऐसा न मानकर यदि उसे नियतकालिक ही माना जावे तो इस विवक्षासे वह शिक्षाव्रतोंमें भी जा सकता है। विवक्षासे केवल विरोधका परिहार होता है। परंतु शासनभेद और भी अधिकताके साथ दृढ़ तथा स्पष्ट हो जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Narja, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हो, इस विषयमें समंतभद्रके शासनसे और उन श्वेताम्बर आचार्योंके शासनसे विभिन्न है जिन्होंने 'देशावकाशिक' को शिक्षाव्रत प्रतिपादन किया है।

४--स्वामि कार्तिकेयने, अपने अनुपेक्षाग्रंथमें, देशावकाशिकको चौथा शिक्षाव्रत प्रतिपादन किया है। अर्थात्, शिक्षाव्रतोंमें उसे पहला दर्जा न देकर अन्तका दर्जा प्रदान किया है। साथ ही, उसके स्वरूपमें दिशाओंके परिमाणको संकोचनेके साथ साथ इंद्रियोंके विषयोंको अर्थात् भोगोपभोगके परिमाणको भी संकोचनेका विधान किया है। यथा:—

पुव्वपमाणकदाणं सव्वदिसीणं पुणोवि संवरणं।
इंदियविसयाण तहा पुणोवि जो कुणदि संवरणं॥
वासादिकयपमाणं दिणेदिणे लोहकामसमणत्थं।
सावज्जवज्जणट्ठं तस्स चउत्थं वयं होदि॥

इस तरह उनके इस व्रतका क्रम तथा विषय समंतभद्रके क्रम तथा विषयसे कुछ भिन्न है और इस भिन्नताके कारण दूसरे शिक्षाव्रतोंके क्रममें भी भिन्नता आ गई है—उनके नम्बर बदल गये हैं। इसके सिवाय स्वामि कार्तिकेयने वैय्यावृत्यके स्थानमें 'दान' का ही विधान किया है। * इन सब विभिन्नताओंके सिवाय अन्य प्रकारसे उनका शासन, इस विषयमें, समंतभद्रके शासनसे प्रायः मिलता जुलता है। और इस लिये यह कहनेमें कोई संकोच नहीं हो सकता कि स्वामिकार्तिकेयका शासन कुंदकुंद, उमास्वाति, पूज्यपाद, विद्यानंद, सोमदेव, अमितगति और कुछ समंतभद्रके शासनसे भी भिन्न है।

५—श्रीजिनसेनाचार्य, अपने आदिपुराण ग्रंथके १० वें पर्वमें, लिखते हैं:—

दिग्देशानर्थदंडेभ्यो विरतिः स्याद्गुणव्रतम्।
भोगोपभोगसंख्यानमप्याहुस्तद्गुणव्रतम्॥ ६५॥
समतां प्रोषधविधिं तथैवातिथिसंग्रहम्।
मरणान्ते च संन्यासं प्राहुः शिक्षाव्रतान्यपि॥ ६६॥

अर्थात्—दिग्विरति, देशविरति, अनर्थदंडविरति, (तीन) गुणव्रत हैं। भोगोपभोगपरिमाणको भी गुणव्रत कहते हैं। समता (सामायिक), प्रोषधविधि, अतिथिसंग्रह (अतिथिपूजन) और मरणके संनिकट होने पर संन्यास, इन (चारों) को शिक्षाव्रत कहते हैं।

इससे मालूम होता है कि श्रीजिनसेनाचार्यका मत, इस विषयमें, समन्तभद्रके मतसे बहुत कुछ भिन्न है। उन्होंने देशविरतिको शिक्षाव्रतोंमें न रख कर उमास्वाति तथा पूज्यपादादिके सदृश उसे गुणव्रतोंमें रक्खा है, और साथ ही संन्यास (सल्लेखना) को भी शिक्षाव्रत प्रतिपादन किया है। इसके सिवाय भोगोपभोगपरिमाणको भी जो उन्होंने गुणव्रत सूचित किया है उसे केवल समन्तभद्रादिके मतका उल्लेख मात्र समझना चाहिये। अन्यथा, गुणव्रतोंकी संख्या चार हो जायगी, और यह मत प्रायः सभीसे भिन्न ठहरेगा। हाँ, इतना जरूर हैं कि इसमें गुणव्रतसंबंधी प्रायः सभी मतोंका समावेश हो जायगा। शिक्षाव्रतोंके सम्बंधमें आपका मत कुंदकुंदको छोड़कर उमास्वति, पूज्यपाद, विद्यानंद, सोमदेव, अमितगति, समंतभद्र और स्वामिकार्तिकेय आदि प्रायः सभी आचार्योंसे भिन्न पाया जाता है।

६—श्रीवसुनन्दी आचार्यने, अपने श्रावकाचारमें, शिक्षाव्रतोंके १ भोगविरति, २ परिभोगनिवृति, ३ अतिथिसंविभाग ओर ४ सल्लेखना, ये चार नाम दिये हैं। यथा:—

'तं भोयविरइ भणियं पढमं सिक्खावयं सुत्ते।'
'तं परिभोयणिवुत्ती विदिय सिक्खावयं जाणे।'
'अतिहिस्स संविभागो तिदियं सिक्खावयं मुणेयव्वं।'
'सल्लेखणं चउत्थं सुत्ते सिखावयं भणियं।'

*...दाणं जो देदि सयं णवदाणविहीहिं संजुत्तो।
सिक्खावयं च तिदियं तस्स हवे......॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इससे स्पष्ट है कि वसुनन्दी आचार्यका शासन, इस विषयमें, पहले कहे हुए सभी आचार्योंके शासनसे एकदम विभिन्न है। आपने भोगपरिभोगपरिमाण नामके व्रतको, जिसे किसीने गुणव्रत और किसीने शिक्षाव्रत माना था, दो टुकड़ोंमें विभाजित करके उन्हें शिक्षाव्रतोंमें सबसे पहले दो व्रतोंका स्थान प्रदान किया है और भोगविरतिके संबंधमें लिखा है कि उसे सूत्रमें पहला शिक्षाव्रत बतलाया है। मालूम नहीं वह कौनसा सूत्रग्रंथ है, जिसमें केवल भोगविरतिको प्रथम शिक्षाव्रत प्रतिपादन किया है। इसके सिवाय आपने सामायिक और प्रोषधोपवास नामके दो व्रतोंको, जिन्हें उपर्युक्त सभी आचार्योंने शिक्षाव्रतोंमें रक्खा है, इन व्रतोंकी पंक्तिमेंसे ही कतई निकाल डाला है। शायद आपको यह खयाल हुआ हो कि जब 'सामायिक' और 'प्रोषधोपवास' नामकी दो प्रतिमाएँ ही अलग हैं तब व्रतिक प्रतिमामें इन दोनों व्रतोंके रखनेकी क्या जरूरत है। और इसी लिये आपको वहाँसे इन व्रतोंके निकालनेकी जरूरत पड़ी हो अथवा इस निकालनेकी कोई दूसरी ही वजह हो। कुछ भी हो, यहाँ हम, इस विषयमें, कुछ विशेष विचार उपस्थित करनेकी जरूरत नहीं समझते। परंतु इतना जरूर कहेंगे कि बारह व्रतोंमें व्रतिक प्रतिमामें—सामायिक और प्रोषधोपवास शीलरूपसे निर्दिष्ट हैं और अपने अपने नामकी प्रतिमाओंमें वे व्रतरूपसे प्रतिपादित हुए हैं*। शीलका लक्षण अकलंकदेव और विद्यानंदने, अपने अपने वार्तिकोंमें 'व्रतपरिरक्षण' किया है। पूज्यपाद भी 'व्रतपरिरक्षणार्थं शीलं,' ऐसा लिखते हैं। जिस प्रकार परिधियाँ नगरकी रक्षा करती हैं उसी प्रकार 'शील' व्रतोंकी पालना करते हैं, ऐसा श्रीअमृतचन्द्र आचार्यका कहना है×। श्वेताम्बराचार्य श्रीसिद्धसेनगणि और यशोभद्रजी भी अणुव्रतोंकी दृढताके लिये शीलव्रतोंका उपदेश बतलाते हैं+। अतः अहिंसादिक व्रतोंकी रक्षा, परिपालना और दृढता संपादन करना ही सप्तशीलोंका मुख्य उद्देश्य है। और इस दृष्टिसे सप्तशीलोंमें वर्णित सामायिक और प्रोषधोपवासको नगरकी परिधि और शस्यकी वृत्ति (धान्यकी बाड़) के समान अणुव्रतोंके परिरक्षक समझना चाहिये। वहाँ पर मुख्यतया रक्षणीय व्रतोंकी रक्षाके लिये उनका केवल अभ्यास होता है, वे स्वतंत्र व्रत नहीं होते। परंतु अपनी अपनी प्रतिमाओंमें जाकर वे स्वतंत्र व्रत बन जाते हैं और तब परिधि अथवा वृति (बाड़) के समान दूसरोंके केवल रक्षक न रहकर नगर अथवा शस्यकी तरह स्वयं प्रधानतया रक्षणीय हो जाते हैं। यही इन व्रतोंकी दोनों अवस्थाओंमें परस्पर भेद पाया जाता है।

मालूम नहीं उक्त वसुनन्दी सैद्धान्तिकने, और श्रीकुंदकुंद तथा जिनसेनाचार्यने भी, सल्लेखनाको शिक्षाव्रतोंमें क्यों रक्खा है, जब कि शिक्षाव्रत अभ्यासके लिये नियत किये गये हैं और सल्लेखनामरणके संनिकट होनेपर एक बार ग्रहण की जाती है, उसका पुनः पुनः अनुष्ठान नहीं होता और इसलिये उसके द्वारा प्रायः कोई अभ्यासविशेष नहीं बनता। दूसरे, प्रतिमाओंका विषय अपने अपने पूर्वगुणोंके साथ क्रमविवृद्ध बतलाया गया है।

---

* यथाः—यत्प्राक् सामायिकं शीलं तद्व्रतं प्रतिमावतः।
यथा तथा प्रोषधोपवासोऽपीत्यत्र युक्तिवाक्॥
—आशाधरः।

× परिधय इव नगराणि व्रतानि किल पालयन्ति शीलानि। —पुरुषार्थसिद्ध्युपायः।

+ प्रतिपन्नस्याणुव्रतस्यागारिणस्तेषामेवाणुव्रतानां दार्ढ्यापादनाय शीलोपदेशः। —तत्त्वार्थसूत्रटीका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थात्, उत्तर-उत्तरकी प्रतिमाओंमें, अपने अपने गुणोंके साथ, पूर्व-पूर्वकी प्रतिमाओंके सारे गुण विद्यमान होने चाहियें*। बारह व्रतोंमें सल्लेखनाको स्थान देनेसे 'व्रतिक' नामकी दूसरी प्रतिमामें उसकी पूर्ति आवश्यक हो जाती है। विना उस गुणकी पूर्तिके अगली प्रतिमाओंमें आरोहण नहीं हो सकता और सल्लेखनाकी पूर्तिपर शरीरकी ही समाप्ति हो जाती है, फिर अगली प्रतिमाओंका अनुष्ठान कैसे बन सकता है। अतः सल्लेखनाको शिक्षाव्रत मानकर दूसरी प्रतिमामें रखनेसे तीसरी सामायिकादि प्रतिमाओंका अनुष्ठान अशक्य हो जाता है और वे केवल कथनमात्र रह जाती हैं, यह बड़ा दोष आता है। इस पर विद्वानोंको विचार करना चाहिये। इसी लिये प्रसंग पाकर यहाँ पर यह विकल्प उठाया गया है। संभव है कि ऐसे ही किन्हीं कारणोंसे समंतभद्र, उमास्वाति, सोमदेव, अमितगति और स्वामिकार्तिकेयादि आचार्योंने सल्लेखनाको शिक्षाव्रतोंमें स्थान न दिया हो। अथवा वसुनंदी आदिकका सल्लेखनाको शिक्षाव्रत करार देनेमें कोई दूसरा ही हेतु हो। उन्हें प्रतिमाओंके विषयका अपने पूर्व गुणोंके साथ विवृद्ध होना ही इष्ट न हो—कुछ भी हो उसके मालूम होनेकी जरूरत है। और उससे आचार्योंका शासनभेद और भी अधिकताके साथ व्यक्त होगा।

गुणव्रतोंके सम्बंधमें भी वसुनन्दीका शासन समंतभद्रादिके शासनसे विभिन्न है। उन्होंने दिग्विरति, देशविरति और संभवतः अनर्थदंडविरतिको गुणव्रत करार दिया है। अनर्थदंडके साथमें 'संभवतः' शब्द इस वजहसे लगाया गया है कि उन्होंने अपने ग्रंथमें उसका नाम

---

* श्रावकपदानि देवैरेकादश देशितानि येषु खलु।
स्वगुणाः पूर्वगुणैः सह संतिष्ठन्ते क्रमविवृद्धाः ॥

—समंतभद्रः।

नहीं दिया। और लक्षण अथवा स्वरूप जो दिया है वह इस प्रकार है:—

अयदंडपासविक्कयकूडतुलामाणकूरसत्ताणं।
जं संगहो ण कीरइ तं जाण गुणव्वयं तिदियं ॥

इसमें लोहेके दंड-पाशको न बेचने और झूठी तराजू, झूठे बाट तथा क्रूर जंतुओंके संग्रह न करनेको तीसरा गुणव्रत बतलाया गया है। अनर्थदंडका यह लक्षण अथवा स्वरूप समंतभद्रादिकके पंचभेदात्मक अनर्थदंडके लक्षण तथा स्वरूपसे बिलकुल विलक्षण मालूम होता है। इसी तरह देशविरतिका लक्षण भी आपका औरोंसे विभिन्न पाया जाता है। आपने उस देशमें गमनके त्यागको देशविरति बतलाया है जहाँ व्रतभंगका कोई कारण मोजूद हो *। और इस लिये जहाँ व्रतभंगका कोई कारण नहीं उन देशोंमें गमनका त्याग आपके उक्त व्रतकी सीमासे बाहर समझना चाहिये। दूसरे आचार्योंके मतानुसार देशावकाशिक व्रतके लिये ऐसा कोई नियम नहीं है। वे कुछ कालके लिये दिग्व्रतद्वारा ग्रहण किये हुए क्षेत्रके एक खास देशमें स्थितिका संकल्प करके अन्य संपूर्ण देशों—भागोंके त्यागका विधान करते हैं चाहे उनमें व्रतभंगक कोई कारण हो या न हो। जैसा कि देशावकाशिक व्रतीके निम्न लक्षणसे प्रकट है।—

स्थास्यामीदमिदं यावदियत्कालमिहास्पदे।
इति संकल्प्य संतुष्टस्तिष्ठन्देशावकाशिकी ॥

—इत्याशाधरः।

यहाँ पर हमें इन व्रतोंके लक्षणादिसंबंधी विशेष मतभेदको दिखलाना इष्ट नहीं है। वह वसुनन्दीसे पहले उल्लेख किये हुए आचार्योंमें भी थोड़ा बहुत, पाया जाता है। और इन व्रतोंके अतीचारोंमें भी अनेक आचार्योंके परस्पर मत-

---

* वयभंगकारणं होइ जम्मि देसम्मि तत्थ णियमेण।
कीरइ गमणणियत्ती तं जाण गुणव्वयं विदियं ॥२१४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भेद है। इस संपूर्ण मतभेदको दिखलानेसे लेख बहुत बढ़ जायगा। अतः लक्षण, स्वरूप तथा अतीचारसंबंधी विशेष मतभेदको फिर स्वतंत्र शीर्षकों द्वारा दिखलानेका यत्न किया जायगा। यहाँ, इस समय, सिर्फ इतना ही समझना चाहिये कि इन दोनों प्रकारके व्रतोंके भेदादिक प्रतिपादनमें आचार्योंके परस्पर बहुत कुछ मतभेद है। इन व्रतोंका विषयक्रम (कोर्स course) कक्षाओंके पठनक्रमकी तरह समय समय पर बदलता रहा है। और इस लिये यह कहना बहुत कठिन है कि महावीर भगवानने इन विभिन्न शासनोंमेंसे कौनसे शासनका प्रतिपादन किया था। संभव है कि उनका शासन इन सबोंसे कुछ विभिन्न रहा हो। परंतु इतना जरूर कह सकते हैं कि इन विभिन्न शासनोंमें परस्पर सिद्धान्तभेद नहीं है—जैनसिद्धान्तोंसे कोई विरोध नहीं आता—और न इनके प्रतिपादनमें जैनाचार्योंका परस्पर कोई उद्देश्यभेद पाया जाता है। सबोंका उद्देश्य सावद्य कर्मोंके त्यागकी परिणतिको क्रमशः बढ़ाने—उसे अणुव्रतोंसे महाव्रतोंकी ओर ले जाने—और लोभादिकका निग्रह कराकर संतोषके साथ शांतिपूर्वक जीवन व्यतीत करानेका मालूम होता है। हाँ, दृष्टिभेद, अपेक्षाभेद, विषयभेद, क्रमभेद, प्रतिपादकोंकी समय और प्रतिपाद्योंकी स्थिति आदिका भेद अवश्य है, जिसके कारण उक्त शासनोंको विभिन्न जरूर मानना पड़ेगा। और इस लिये यह कभी नहीं कहा जा सकता कि महावीर भगवानने ही इन सब विभिन्न शासनोंका विधान किया था—उनकी वाणीमें ही ये सब मत अथवा इनके प्रतिपादक शास्त्र इसी रूपसे प्रकट हुए थे। ऐसा मानना और समझना नितान्त भूलसे परिपूर्ण तथा वस्तुस्थितिके विरुद्ध होगा। अतः श्रीकुंदकुंदाचार्यने गुणव्रतोंके संबंधमें, 'एव' शब्द लगाकर—'इयमेव गुणव्वया तिण्णि,' ऐसा लिखकर—जो यह नियम दिया है कि, दिशाविदिशाओंका परिमाण, अनर्थदंडका त्याग और भोगोपभोगका परिमाण, ये ही तीन गुणव्रत हैं दूसरे नहीं, इसे उस समयका, उनके सम्प्रदायका अथवा खास उनके शासनका नियम समझना चाहिये। और श्रीअमितगतिने 'जिनेश्वरसमाख्यातं त्रिविधं तद्गुणव्रतं' इस वाक्यके द्वारा दिग्विरति, देशविरति और अनर्थदंडविरतिको जो जिनेंद्रदेवका कहा हुआ गुणव्रत बतलाया है उसका आशय प्रायः इतना ही लेना चाहिये कि अमितगति इन व्रतोंको जिनेंद्रदेवका—महावीर भगवानका—कहा हुआ समझते थे अथवा अपने शिष्योंको इस ढंगसे समझाना उन्हें इष्ट था। इसके सिवाय यह मान लेना ठीक नहीं होगा कि, महावीर भगवानने ही इन दोनों प्रकारके गुणव्रतोंका प्रतिपादन किया था। इसी तरह अन्यत्र भी जानना। वास्तवमें हर एक आचार्य उसी मतका प्रतिपादन करता है जो उसे इष्ट होता है और जिसे वह अपनी समझके अनुसार सबसे अच्छा तथा उपयोगी समझता है और इस लिये इन विभिन्न शासनोंको आचार्योंका अपना अपना मत समझना चाहिये। हमारी रायमें ये सब शासन भी, जैसा कि हमने अपने पहले लेखोंमें प्रकट किया है, पापरोगकी शांतिके नुसखे (Prescriptions) हैं—ओषधिकल्प हैं—जिन्हें आचार्योंने अपने अपने देशों तथा समयोंके शिष्योंकी प्रकृति और योग्यता आदिके अनुसार तय्यार किया था। और इस लिये सर्व देशों, सर्व समयों और सर्व प्रकारकी प्रकृतिके व्यक्तियोंके लिये अमुक एक ही नुसखा उपयोगी होगा, ऐसा हठ करनेकी जरूरत नहीं है। जिस समय और जिस प्रकारकी प्रकृति आदिके व्यक्तियोंके लिये जैसे ओषधिकल्पोंकी जरूरत होती है, बुद्धिमान वैद्य, उस समय और उस प्रकारकी प्रकृति आदिके व्यक्तियोंके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिये वैसे ही ओषधिकल्पोंका प्रयोग किया करते हैं। अनेक नये नये ओषधिकल्प गढ़े जाते हैं, पुरानोंमें फेरफार किया जाता है और ऐसा करनेमें कुछ भी आपत्ति नहीं होती, यदि वे सब रोगशांतिके विरुद्ध न हों। इसी तरह पर देशकालानुसार किये हुए आचार्योंके उपर्युक्त भिन्न शासनोंमें भी प्रायः कोई आपत्ति नहीं की जा सकती। क्योंकि वे सब जैनसिद्धान्तोंके अविरुद्ध हैं। हाँ, आपेक्षिक दृष्टिसे उन्हें प्रशस्त-अप्रशस्त, सुगम-दुर्गम, अल्पविषयक–बहुविषयक, अल्पफलसाधक–बहुफलसाधक इत्यादि जरूर कहा जा सकता है, और इस प्रकारका भेद आचार्योंकी योग्यता और उनके तत्तत्कालीन विचारों पर निर्भर है। अस्तु, इसी सिद्धान्ताविरोधकी दृष्टिसे यदि आज कोई महात्मा वर्त्तमान देशकालकी परिस्थितियोंको ध्यानमें रखकर उपर्युक्त शीलव्रतोंमें भी कुछ फेरफार करना चाहे और उदाहरणके तौरपर १ क्षेत्र-(दिग्देश) परिमाण, २ अनर्थदंडविरति, ३ भोगोपभोगपरिमाण, ४ आवश्यकतानुत्पादन,[१] ५ अन्तःकरणानुवर्तन,[२] ६ सामायिक और ७ निष्कामसेवा (अनपेक्षितोपकार–) नामके सप्तशीलव्रत, अथवा गुणव्रत और शिक्षाव्रत, स्थापित करे तो वह ख़ुशीसे ऐसा कर सकता है। उसमें कोई आपत्ति किये जानेकी जरूरत नहीं है और न यह कहा जा सकता है कि उसका ऐसा विधान जिनेंद्रदेवकी आज्ञाके विरुद्ध है अथवा महावीर भगवानके शासनसे बाहर है; क्योंकि उक्त प्रकारका विधान जैनसिद्धान्तोंके विरुद्ध नहीं है। और जो विधान जैनसिद्धान्तोंके विरुद्ध नहीं होता वह सब महावीर भगवानके अनुकूल है। उसे प्रकारान्तरसे जैनसिद्धान्तोंकी व्याख्या अथवा उनका व्यावहारिक रूप समझना चाहिये, और इस दृष्टिसे उसे महावीर भगवानका शासन भी कह सकते हैं। परंतु भिन्न शासनोंकी हालतमें **महावीर भगवानने यही कहा, ऐसा ही कहा, इसी क्रमसे कहा, इत्यादिक मानना मिथ्या होगा** और उसे प्रायः मिथ्यादर्शन समझना चाहिये। अतः उससे बचकर यथार्थ वस्तुस्थितिको जानने और उसपर ध्यान रखनेकी कोशिश करनी चाहिये। इसीमें वास्तविक हित संनिहित है।

यहाँ, श्वेताम्बर आचार्योंकी दृष्टिसे, हम इस समय सिर्फ इतना और बतला देना चाहते हैं, कि श्वेताम्बरसम्प्रदायमें आमतौरपर १ दिग्व्रत, २ उपभोगपरिभोगपरिमाण, ३ अनर्थदंडविरति, इन तीनको गुणव्रत और १ सामायिक, २ देशावकाशिक, ३ प्रोषधोपवास, ४ अतिथिसंविभाग, इन चारको शिक्षाव्रत माना है*। उनका 'श्रावकप्रज्ञप्ति' नामक ग्रंथ भी इन्हींका विधान करता है और, योगशास्त्रमें, श्रीहेमचंद्राचार्यने भी इन्हीं व्रतोंका, इसी क्रमसे, प्रतिपादन किया है। तत्त्वार्थसूत्रके टीकाकार श्रीसिद्धसेनगणि और यशोभद्रजी, अपनी अपनी टीकाओंमें, लिखते हैं:—

'गुणव्रतानि त्रीणि दिग्भोगपरिभोगपरिमाणानर्थदंडविरतिसंज्ञानि। शिक्षापदव्रतानि सामायिकदेशावकाशिकप्रोषधोपवासातिथिसंविभागाख्यानि चत्वारि।'

१ जरूरतोंको बढ़ने न देना, प्रत्युत घटाना।
२ अन्तःकरणकी आवाजके विरुद्ध न चलना।

*ये सब व्रत प्रायः वही हैं जो ऊपर स्वामी समंतभद्राचार्यके शासनमें दिखलाये गये हैं और इस लिये श्वेताम्बर आचार्योंका शासन, इस विषयमें, प्रायः समंतभद्रके शासनसे मिलता जुलता है। सिर्फ दो एक व्रतोंमें, क्रमभेद अवश्य है। समंतभद्रने अनर्थदंडविरतिको दूसरे नम्बर पर रक्खा है और यहाँ उसे तीसरा स्थान प्रदान किया गया है। इसी तरह शिक्षाव्रतोंमें देशावकाशिकको यहाँ पहले नम्बर पर न रख कर दूसरे नम्बर पर रक्खा गया है। इसके सिवाय चौथे शिक्षाव्रतके नाममें भी कुछ परिवर्तन है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इससे भी उक्त व्रतोंका समर्थन होता है। बल्कि इन दोनों टीकाकारोंने जिस प्रकारसे उमास्वातिपर आर्षक्रमोल्लंघनका आरोप लगाकर उसका समाधान किया है, और जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है, उससे ऐसा मालूम होता है कि श्वेताम्बरसम्प्रदायके आगम ग्रंथोंमें भी, जिन्हें वे गणधर सुधर्मास्वामी आदिके बनाये हुए बतलाते हैं, इन्हीं सब व्रतोंका इसी क्रमसे विधान किया गया है। परंतु उनमें गुणव्रत और शिक्षाव्रतका विभाग भी किया गया है या कि नहीं, यह बात अभी संदिग्ध है। क्योंकि 'उपासकदशा' नामके आगम ग्रंथमें, जो द्वादशांगवाणीका सातवाँ अंग कहलाता है, ऐसा कोई विभाग नहीं है। उसमें इन व्रतोंको, उमास्वातिके तत्त्वार्थसूत्र, तत्वार्थाधिगमभाष्य और सूत्रकी उक्त दोनों टीकाओंकी तरह, शीलव्रत भी नहीं लिखा, बल्कि सात शिक्षाव्रत बतलाया है। यथा:—

"समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिएएं चाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जाहि।"

इसके सिवाय अतिथिसंविभागको 'यथा संविभाग' व्रत प्रतिपादन किया है। इससे ऐसा मालूम होता है कि श्वेताम्बर संप्रदायमें पहले इन व्रतोंको सात शिक्षाव्रत माना जाता था, बादमें इनके गुणव्रत और शिक्षाव्रत ऐसे दो विभाग किये गये हैं। साथ ही, इन्हें 'शील' संज्ञा भी दी गई है। इसी तरह यथासंविभागके स्थानमें बादको अतिथिसंविभागका परिवर्तन किया गया है। संभव है कि इस बादके संपूर्ण परिवर्तनको कुछ आचार्योंने स्वीकार किया हो और कुछने स्वीकार न किया हो। और यह भी संभव है कि दूसरे आगमग्रंथोंमें पहलेहीसे गुणव्रत और शिक्षाव्रतके व्यपदेशको लिये हुए इन व्रतोंका शीलव्रतरूपसे विधान हो और चौथे शिक्षाव्रतका नाम अतिथिसंविभाग ही दिया हो। कुछ भी हो, अभी तक हम इस विषयमें यथार्थ निर्णय नहीं कर सके। समयाभाव और ग्रंथोंकी अप्राप्तिके कारण यह भी मालूम नहीं कर सके कि उक्त व्रतोंके नामादिक संबंधमें किसी विशेष मतभेदको रखनेवाले भी कोई आचार्य, श्वेताम्बरसंप्रदायमें, हुए हैं या कि नहीं। मालूम होने पर प्रकट किया जायगा। यदि कोई श्वेताम्बर विद्वान् हमें, इस विषयमें, किसी विशेष बातसे सूचित करनेकी कृपा करेंगे तो हम उनके इस कृत्यके लिये बहुत आभारी होंगे।

सरसावा। ता० ११ जून सन १९२०।

"समाचारपत्र एक संस्था है जिसे निरन्तर उत्कर्ष और संशोधनके लिये संग्राम करते रहना चाहिये, जिसे चाहिए कि कभी भी अन्याय वा अनीतिको सहन न करे, सदा सब दलोंके (ऐसे) बेअसूले अगुओंसे लड़ता रहे (जो जनताके अंधविश्वासों और कमजोरियोंसे लाभ उठाते हों), स्वयं कभी किसी दल विशेषका होकर न रहे, अनुचित अधिकार पाई हुई श्रेणियों और जनताके लूटनेवालोंका सदा विरोध करता रहे, कभी भी गरीबोंकी ओर सहानुभूतिमें कमी न करे, हमेशा सार्वजनिक कल्याणकी बातोंमें अनन्यभावसे लिप्त रहे, केवल खबरें छाप देनेसे ही कभी भी संतुष्ट न रहे, वरन् सदा जोरोंके साथ स्वाधीन रहे और कभी भी किसी दुष्कर्म पर हमला करनेसे न डरे, चाहे वह दुष्कर्म धनाढ्य और अधिकारप्राप्त लुटेरोंकी ओरसे हो और चाहे निर्धन लुटेरोंकी ओरसे।" * —दि वर्ल्ड।

* ये वाक्य दैनिक 'भविष्य' के शुरूमें श्रीयुत जोजफ पुलिटजर द्वारा संपादित 'दि वर्ल्ड' नामक अमरीकन पत्रके प्रथम अंकके अग्रलेखसे उद्धृत किये गये हैं और वहींसे यहाँपर लिये गये हैं।—संपादक।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कलकत्ता जैनसभाकी आज्ञा !

संपादकीय विचार।

हालमें दिगम्बरजैनसभा कलकत्ताने, ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीके सभापतित्वमें, एक प्रस्ताव पास किया है और उसके द्वारा संपूर्ण जैनियोंके नाम यह आज्ञा जारी की है कि वे 'सत्योदय' और 'जातिप्रबोधक' नामके दो पत्रोंको 'जैनपत्र' न समझें, न वैसा समझकर खरीदें और न उन्हें पढ़ें। सभाकी तरफसे प्रस्तावकी एक नकल, हितैषीमें प्रकाशित होनेके लिये; हमारे पास भी आई है। उसे पढ़कर हमारे हृदयमें जिन जिन विचारोंका उदय हुआ है उनके साथ हम उक्त प्रस्तावको नीचे प्रकाशित करते हैं। वह प्रस्ताव इस प्रकार है:—

"कलकत्ता दिगम्बरजैनसभा प्रस्ताव करती है कि सत्योदय इटावा व जातिप्रबोधक झांसी पत्रोंके लेखोंसे पर ('यह' या 'प्र'?) स्पष्ट झलकता है कि उसके लेख जैनधर्मके विरुद्ध तथा जैनधर्मके गौरवको अयोग्य वाग्जालद्वारा घटानेका उद्योग करनेवाले निकलते हैं जिससे ये पत्र कभी जैनपत्र नहीं माने जा सकते अतएव कोई भी जैनी भाई उनको जैनपत्र समझकर न खरीदें और न पढ़ें इस प्रस्तावकी नकल तमाम जैनपत्रोंमें तथा पंचायतीमें भेज दी जाय।

प० पं० जयदेवजी
स० पं० कस्तूरचन्दजी
पं० बल्देवदासजी
अ० पं० भूरामलजी
पं० बाबूलालजी वैद्य
सभापति ब्र० शीतलप्रसादजी

(प्रस्ताव सर्वसम्मतिसे पास) २१–४–२०"

इस प्रस्तावमें जिन दो पत्रोंको अजैनपत्र करार दिया गया है उन्हें हम बराबर पढ़ते आये हैं। ये दोनों पत्र जैनसमाजसे सम्बंध रखते हैं, जैनियोंके हिताहितकी चिन्ता करते हैं, जैनसमाज ही इनका ध्येय तथा आराध्य है, और दूसरे समाजोंसे इनका प्रायः कोई सम्बंध विशेष नहीं है। ऐसी हालतमें इन्हें जैनपत्र न मानकर अजैन कहना, यह बात हमें अभी सुननेको मिली है। समझमें नहीं आता कलकत्ता जैनसभाने जैनपत्रका क्या लक्षण तजवीज किया है—किसको जैनपत्र माना है। 'जैन' शब्दके साथ न होनेसे किसी पत्रका अजैन होना तो सभाको इष्ट नहीं हो सकता; क्योंकि ऐसी हालतमें सत्यवादी, पद्मावतीपुरवाल आदि और भी दूसरे अनेक ऐसे पत्रोंको अजैन कहना होगा, जिनके साथ 'जैन शब्द' लगा हुआ नहीं है। इसी तरह सभाकी दृष्टिमें यह भी इष्ट नहीं हो सकता कि जो पत्र जैनव्यक्तियों द्वारा संपादित होते हैं वे ही जैनपत्र हैं; क्योंकि अजैन व्यक्तियों द्वारा भी जैनपत्र संपादित हुए हैं और होते हैं।* इसके सिवाय जिन दो पत्रोंको उसने अजैन करार दिया है वे दोनों ही जैनव्यक्तियों द्वारा संपादित होते हैं—दोनोंके एडीटर जैन हैं—एकके वर्तमान एडीटर तो खास पं० गोपालदासजीके शिष्योंमेंसे है और वे बहुत दिनोंतक उक्त पंडितजीके सत्संगमें रहे हैं। इन दोनों संपादकोंमेंसे हालमें किसीने जैनधर्मका परित्याग भी नहीं किया है और न जैनजातिने ही उन्हें अपनेसे पृथक् किया है, जिससे जैन न रहनेके कारण उनके पत्रोंको अजैन समझ लिया जाता। तब क्या

* दिगम्बरजैनमहासभाका मुखपत्र 'जैनगजट' एक बार अजैन व्यक्ति द्वारा संपादित हुआ था और 'धर्माभ्युदय' नामका जैनपत्र एक अजैन व्यक्ति द्वारा संपादित होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उक्त सभा निम्न लक्षणोंमेंसे किसी एक लक्षणसे लक्षित पत्रको जैनपत्र समझती है ?—

१—जो केवल जैनधर्मसे सम्बंध रखता हो और एक मात्र उसके सिद्धान्तोंका ही प्रतिपादक हो।

२—जो जैनधर्मके मूल सिद्धान्तोंसे अविरुद्ध हो—उनका विरोध न करता हो।

३—जिसका खास समाजसे सम्बंध हो और जो प्राय: उसीके हित, अहित तथा उत्थानकी चिन्तामें निमग्न रहता हो।

पहले लक्षणानुसार इस समय समाजमें कोई भी पत्र विद्यमान नहीं है। अर्थात् ऐसा कोई भी पत्र मौजूद नहीं है जो केवल जैनधर्मके सिद्धान्तोंका ही प्रतिपादन या विवेचन करनेवाला हो, और सामाजिक आदि दूसरे विषयोंसे जिसका कुछ भी सम्बंध न हो। ऐसा लक्षण करने पर 'जैनमित्र' आदि समाजके उन सभी पत्रोंको अजैन कहना होगा जिनमें अधिकतर सामाजिक आदि विषयोंका ही प्रसंग रहता है और जो खालिस जैनसिद्धान्तोंके प्रतिपादक नहीं हैं।

दूसरा लक्षण मानने पर देश विदेशके उन सभी राष्ट्रीय (पोलीटिकल), वैज्ञानिक, व्यापारिक और कलाकौशलादि संबंधी पत्रोंको भी जैनपत्र कहना होगा, जिनका किसी भी धर्मसे कुछ सम्बंध नहीं है, और इस लिये जो जैनधर्मके सिद्धान्तोंका कुछ भी विरोध नहीं करते। परंतु जैनसमाजसे भी इन पत्रोंका कोई खास सम्बंध नहीं, और न वे खास जैन समाजको लक्ष्य करके निकाले जाते हैं। इस लिये उन्हें कोई जैनपत्र नहीं कहता।

तीसरा लक्षण स्वीकार करने पर 'सत्योदय' और 'जातिप्रबोधक' उसकी सीमासे बाहर नहीं रहते—वे बराबर जैनपत्र कहलानेके योग्य होते हैं—क्योंकि, जैसा कि हमने ऊपर बयान किया है, ये दोनों ही पत्र जैनसमाजसे खास सम्बंध रखते हैं, उसीको लक्ष्य करके निकाले जाते हैं, जैनसमाज ही इनका ध्येय तथा आराध्य है और ये बराबर उसके हित, अहित तथा उत्थानकी चिन्ता किया करते हैं। यह दूसरी बात है कि एक व्यक्ति जिसे हित समझता है दूसरा उसे अहित मानता हो, अथवा हितसाधनके उपायोंमें दोनोंके परस्पर मतभेद हो। क्योंकि ऐसा हरएक शख्स अपने अपने बुद्धिवैभवके अनुसार ही समाजकी हितचिन्तना और हितसाधनाके उपायोंकी योजना किया करता है। इस चिन्तना और योजनामें भूलका होना भी संभव है, जिसका सुधार हो सकता है। परंतु इतनेपरसे ही बिना किसी कलुषितहृदयता अथवा शत्रुताका स्पष्ट प्रमाण मिले—कोई व्यक्ति समाजहितैषियोंकी पंक्तिसे बाहर नहीं हो जाता। फिर नहीं मालूम सभाने उक्त दोनों पत्रोंको किस आधार पर अजैन करार दिया है। हाँ, प्रस्तावसे इतना जरूर मालूम होता है कि सभा इन पत्रोंके लेखोंको जैनधर्मके विरुद्ध और जैनधर्मके गौरवको घटानेका उद्योग करनेवाले समझती है। नहीं मालूम सभाने जैनधर्म और उसकी विरुद्धताका क्या आशय समझा है। क्या वह, जैनधर्मके मूल सिद्धान्तोंपर आघात न करते हुए, प्रचलित रीति-रिवाजोंके विरोधको—उनमें देशकालानुसार कुछ परिवर्तन करनेके परामर्शको—भी जैनधर्मका विरोध समझती हैं ? अथवा अमुक सिद्धान्त जैनधर्मका सिद्धान्त है या कि नहीं—हो भी सकता है या कि नहीं, इस प्रकारके विवेचनको भी धर्मविरुद्धतामें परिगणित करती है ? यदि ऐसा है तो समझना चाहिये कि सभा बड़ी भारी भूल कर रही है। वह अंधश्रद्धा—अंधविश्वासका एकच्छत्र राज्य चाहती है, अविवेकको आश्रय देने—पुष्टिप्रदान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करनेका यत्न करती है और परीक्षाप्रधानताका गला घोंटनेके लिये तय्यार है । उसे अभीतक किसी कविका यह वाक्य मालूम नहीं है—

जिनमतमहल मनोज्ञ अति कलियुगछादित पंथ ।
समझबूझके परखियो चर्चा निर्णय-ग्रंथ ॥

अनगारधर्मामृतकी टीकामें, पं० आशाधरजी द्वारा उद्धृत किसी विद्वान्के निम्न वाक्यकी भी उसे खबर नहीं है:—

पंडितैर्भ्रष्टचारित्रैर्बठरैश्च तपोधनैः ।
शासनं जिनचंद्रस्य निर्मलं मलिनीकृतम् * ॥

शायद वह जैनशास्त्रोंके परस्परविरुद्ध कथनोंको भी सोलह आना महावीर भगवान-द्वारा प्रतिपादित समझती है और इसी लिये परीक्षा तथा विवेकका दर्वाजा बंद करना चाहती है । अस्तु; यह उसकी समझ उसके साथ है; कोई भी सहृदय विद्वान् और विचारवान् मनुष्य उसकी इस समझका साथी नहीं हो सकता ।

और यदि उक्त सभा वैसा नहीं समझती और न परिगणित करती है तो फिर हम नहीं समझते कि वह कैसे इन पत्रोंके लेखोंको सर्वथा जैन-धर्मके विरुद्ध कहनेका साहस करती है ! इन पत्रोंमें प्रायः ऐसे ही तो लेख रहा करते हैं जो प्रचलित रीति-रिवाजोंके विरोध—उनमें देश-कालानुसार परिवर्तनसे सम्बंध रखते हैं, प्राचीन रीति-रिवाजोंपर टीका-टिप्पण किया करते हैं अथवा इस प्रकारके विचार पबलिकके सामने रक्खा करते हैं कि अमुक सिद्धान्त जैनसिद्धान्त है या कि नहीं और हो भी सकता है या कि नहीं । 'जातिप्रबोधक' नामका पत्र तो खास कर सामाजिक विषयोंसे ही सम्बंध रखता है । उसमें जैनधर्मके सिद्धान्तोंका ऊहापोह करनेवाले ऐसे कोई लेख निकले भी नहीं जिनपर धर्मविरुद्धताका कलंक लगाया जा सके । रही जैनधर्मका गौरव घटानेके उद्योगकी बात, सो जहाँ तक हमने इन पत्रोंको देखा है इनमें बराबर जैनधर्मकी प्रशंसाके गीत गाये जाते हैं। जो शख्स खुले दिलसे दूसरेका यशोगान करता हो उसके सम्बंधमें यह कभी खयाल नहीं किया जा सकता कि वह जान बूझकर उसके गौरवको घटानेका कोई काम कर रहा है । हाँ, यह हो सकता है कि गौरवको समझनेमें उसकी समझमें कुछ फ़र्क़ हो—वह किसी अपमानकी बातको भी गौरव समझता हो—परंतु इससे उसपर यह इलजाम नहीं लगाया जा सकता कि वह जान बूझकर गौरवको घटानेका उद्योग करनेवाला है। डिपुटी कालेरायके इजलासमें एक देहातीका मुकदमा था । डिपटी साहबने पूरा न्याय किया और वह देहाती जीत गया । इस पर देहातीने प्रसन्न होकर भरे इजलासमें दोनों बाँह उठाकर डिपटी साहबका गुणानुवाद गाते हुए यह भी कहा कि " तेरा नाम किस बड़चोदने काले-राय धरा तौं तो मेरा धौलेराय है । " इस वाक्य-को सुनकर डिपटी साहब कुछ मुसकराहटके साथ चुप हो गये, उन्हें जरा भी क्षोभ नहीं आया और वे यही खयाल करते रहे कि यह गँवार है, इसे इस बातकी तमीज (विवेक) नहीं कि मैं जो कुछ कह रहा हूँ उससे डिपटी साहबके पितादिकको गाली भी दे रहा हूँ। क्यों-कि वे जान रहे थे कि उसका आशय बुरा नहीं है—वह भक्तिसे परिपूर्ण है—इस लिये उन्होंने उक्त वाक्यसे अपना कुछ भी अपमान नहीं समझा और न दूसरोंने ही उससे डिपटी साहबके गौरवमें कुछ खलल (वाधा) आते देखा, बल्कि सबको उस देहातीके गँवारपन पर ही हँसी आई ।

शीतकालमें एक मुनि महाराज रात्रिके समय जंगलमें नग्न बैठे हुए ध्यान लगा रहे थे।

* जिनेंद्र भगवानके निर्मल शासनको भ्रष्टचरित्र पंडितों और धूर्त मुनियोंने मलीन कर दिया है !

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0:In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक गँवार ग्वाला वहाँ आया। उसके हृदयमें मुनिको इस प्रकारसे जाड़ेमें अकड़ते देखकर बहुत दया उत्पन्न हुई और उसने अपना कम्बल उन्हें ओढ़ा दिया। साथ ही, जंगलसे कुछ लकड़ियाँ वगैरह इकट्ठा करके उसने उनके पास आग भी जला दी। मुनिराजने ग्वालेके इस कृत्यको उपसर्ग समझा और वे सवेरे तक विना कुछ हले चले उसी तरह बैठे रहे। प्रातःकाल जब कुछ श्रावक वहाँ पर आये और उन्होंने कम्बलादिकको दूर किया तब मुनि महाराजने उपसर्ग टला समझ कर अपना ध्यान खोला और वे दूसरे कामोंमें लगे। शास्त्रोंमें बतलाया गया है कि यद्यपि मुनिराजने ग्वालेके इस कृत्यको उपसर्ग समझा और वह उनकी चर्यानुसार था भी उनके लिये उपसर्ग, तो भी ग्वालेका भाव उपसर्ग करनेका नहीं था, वह उनके शीतोपसर्गको दूर करके उन्हें आराम ही पहुँचाना चाहता था। उसे यह खबर नहीं थी कि ऐसे कामोंसे भी दिगम्बर मुनियोंको उपसर्ग हुआ करता है। और इस लिये उसके इस कृत्यसे पुण्यका ही बंध हुआ पापका नहीं। लोगोंने भी उसकी अज्ञता, दयार्द्रता और सरलहृदयके कारण उसे मुनिको उपसर्ग करने या उनका गौरव घटाने आदि किसी भी अपराधका अपराधी नहीं समझा। इन दोनों उदाहरणोंसे हमारे पाठक गौरव घटाने, अपमान करने या नुकसान पहुँचाने आदिके उद्योगका रहस्य बहुत कुछ अनुभव कर सकते हैं। किसी मनुष्य पर गौरव घटाने या नुकसान पहुँचाने आदिके उद्योगका आरोप (इलजाम) उस वक्त तक नहीं लगाया जा सकता जब तक कि उसका कलुषित भाव सिद्ध न हो—बदनीयती साबित न कर दी जाय। क्या सभाके पास ऐसा कोई स्पष्ट प्रमाण मौजूद है जिससे इन पत्रोंकी बदनीयती पाई जाय और यह साबित हो कि ये जान बूझकर गौरवको गौरव और अगौरवको अगौरव समझते हुए भी अमुक द्वेषभावसे जैनधर्मके गौरवको घटानेका उद्योग कर रहे हैं। यदि सभाके पास ऐसा कोई प्रमाण मौजूद नहीं है बल्कि वह सिर्फ इतना ही जानती है कि जिसे मैं गौरव, गौरव घटाना या गौरव घटानेका उद्योग समझती हूँ दूसरे भी उसको वैसा ही समझते होंगे, तो यह उसकी महामूर्खता और कोरी अनुभवशून्यता है।

हम पूछते हैं, बहुतसे जैनी भाई देवोंके आगमन, आकाशमें गमन और चँवरछत्रादि विभूतिको जिनेन्द्र भगवानके गौरवकी उनके अतिशय, चमत्कारकी चीज समझते हैं। परंतु श्रीसमन्तभद्राचार्य महावीर भगवानको लक्ष्य करके कहते हैं कि इन बातोंसे मेरे हृदयमें आपका कोई गौरव नहीं है—मैं इनके आधार पर आपको महान्—पूज्य—नहीं मानता, ये बातें तो मायावियों—इंद्रजालियोंमें भी पाई जाती हैं*। क्या सभा स्वामी समंतभद्रके इन उद्गारोंको जैनधर्म अथवा महावीर भगवानका गौरव घटानेवाले अथवा घटानेका उद्योग करनेवाले समझती है? यदि नहीं समझती, तो फिर किसी पत्रमें यदि इस प्रकारके विचारभेदको लिये हुए कोई लेख निकलें अथवा इन पत्रोंके कोई लेखक किसी बातको जैनधर्मके गौरवकी चीज न समझकर उसको वैसी ही अथवा गौरव घटानेवाली प्रतिपादन करें तो उससे सभा उत्तेजित क्यों होती है? क्या वह इतनेहीसे उनकी बदनीयती समझती है? उदाहरणके लिये हालमें 'स्वामी समन्तभद्रकी अद्भुत कथा' शीर्षक एक लेख सत्योदयमें प्रकाशित हुआ है। इस लेखमें लेखक बाबू सूरजभानजी वकीलने श्रीसमंतभद्राचार्यकी खुले दिलसे

* देवागमनभोयानचामरादिविभूतयः।
मायाविष्वपि दृश्यंते नातस्त्वमसि नो महान्॥
—आप्तमीमांसा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रशंसा की है और उन्हें भगवान्, अद्वितीय विद्वान, न्यायविद्याके पारगामी, जैनधर्मको प्रकाश करनेवाले अद्वितीय सूर्य, इस कलिकालमें धर्मको परवादियोंसे बचानेवाले, जैनधर्मके स्तंभस्वरूप, आचार्योंमें भी उत्कृष्ट आचार्य इत्यादि विशेषणोंके साथ स्मरण करके उनके प्रति अपना बहुमान प्रदर्शित किया है । परंतु साथ ही आपकी कथा जोड़नेवाले ब्रह्मचारी नेमिदत्तकी बुद्धि पर दुःख प्रकाशित करते हुए यह भी जतलाया है कि यह कथा बिलकुल असम्बद्ध और बनावटी है, इससे भगवान् समंतभद्रका गौरव उलटा नष्ट होता है, इतना ही नहीं, बल्कि इससे जैनजाति और जैनधर्मकी कीर्तिमें भी बहुत बड़ा धब्बा लगता है । यद्यपि हम बाबू साहबके इस लेखसे बहुतसे अंशोंमें सहमत नहीं है और अवकाश मिलने पर उस पर कुछ लिखना भी चाहते हैं तो भी इतना जरूर कहेंगे कि इस लेखके लिखनेमें बाबू साहबका कोई बुरा भाव मालूम नहीं होता । क्या सभा इस लेखको जैनधर्म अथवा स्वामी समंतभद्रके गौरवको घटानेका उद्योग समझती है ? यदि ऐसा है तो कहना होगा कि यह सभाकी बड़ी भारी भूल है । नहीं मालूम एक साधारण ग्रंथकर्ताकी भूलें प्रकट करनेका जैनधर्मके गौरवसे क्या संबंध है, और उस लेखमें ऐसे कौनसे शब्द है, जिनसे जैनधर्म अथवा स्वामी समंतभद्रके प्रति लेखकका कोई बुरा भाव पाया जाय और जिससे उनके लेखको गौरव घटानेका उद्योग समझ लिया जाय ? उत्तर इसका कुछ भी नहीं हो सकता । हाँ, हम इतना जरूर कह सकते हैं कि लेखोंकी लेखनप्रणाली अच्छी नहीं है और उसमें कुछ ऐसी बातें भी हैं, जिनमें लेखकको भ्रम हुआ है । बल्कि सत्योदयके विषयमें हमारी शुरूसे यह धारणा है कि उसके अधिकांश लेखोंकी लेखनप्रणाली अच्छी नहीं होती । उससे साधारण जनता पर बुरा असर भी पड़ता है । इसी तरह जातिप्रबोधककी लेखनप्रणालीको भी हम अनेक अंशोंमें अच्छा नहीं समझते हैं, परंतु इतनेसे ही ये पत्र जैनकी कोटिसे निकलकर अजैन नहीं हो जाते । जैन शब्द एक बहुत व्यापक शब्द है । उसमें दिगम्बर, श्वेताम्बर, स्थानकवासी और उनकी शाखा प्रतिशाखायें सभी शामिल हैं, सभा किस किसको अजैन करार देगी ? सभाका काम ज्यादासे ज्यादा इतना ही हो सकता था कि वह इन पत्रोंकी लेखनप्रणाली पर शोक प्रकाशित करती, खेद जतलाती, उन्हें अपनी चालढाल सुधारनेकी प्रेरणा करती । और उसके सदस्योंका यह कर्तव्य था कि उनके ज्ञानमें जो जो बातें स्पष्ट रूपसे जैनधर्मके विरुद्ध और उसके गौरवको घटानेवाली झलकी थीं उन्हें प्रमाणसहित विशद रूपसे सर्वसाधारण पर प्रकट करते, जिससे जनताका भ्रम दूर होता । परंतु ऐसा कुछ भी न करके सभाने जो यह प्रस्ताव पास किया है इससे उसकी अनधिकारचेष्टा पाई जाती है । एक साधारण और स्थानीय सभा होनेकी हैसियतसे सभाको इस प्रकारकी तजवीज देनेका कोई अधिकार नहीं था, और यह बात तो उसके अधिकारसे बिलकुल ही बाहर थी कि वह संपूर्ण जैनियों और जैन पंचायतियोंके नाम इस प्रकारकी आज्ञा जारी करे कि कोई भी जैनी अमुक अमुक पत्रोंको जैनपत्र न समझे, न तद्दृष्टिसे खरीदे और न पढ़े । उसका काम सम्मति प्रकाश करनेका था आज्ञा जारी करनेका नहीं ।

हमारी रायमें कलकत्ता जैनसभाने इस प्रस्तावको पास करके अपने हृदयकी संकीर्णता, अनुदारता, अदूरदृष्टता और नासमझीका ही परिचय नहीं दिया, बल्कि साथ ही विद्वानोंके प्रति अपनी धृष्टता भी प्रकट की है ।

सरसावा । ता० १६ मई सन् १९२०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुक्तिके मार्ग ।

[अनु०—श्रीयुत पं० नाथूराम प्रेमी ।]

बहुत समयसे एक किम्वदन्ती चली आ रही है कि मनुष्यजातिके आदिम माता पिताने (आदम और हव्वाने) ज्ञानवृक्षके फल खाकर संसारमें पाप, दुःख और मृत्युको निमंत्रण दिया था ।

इस किम्वदन्तीमेंसे एक आध्यात्मिक तत्त्व निकाला जा सकता है । ज्ञानसे पापकी और तज्जात दुःखकी उत्पत्ति हुई है । अज्ञान अवस्थामें पाप नहीं है और तज्जात दुःख भी नहीं है । यह जगतका अन्यतम विभीषिकामय सत्य है ।

अन्य स्थानोंमें इससे सर्वथा विपरीत और एक तत्त्व प्रचलित है । जिस तरह ज्ञानसे दुःखकी उत्पत्ति मानना किसी किसी समाजके प्रचलित धर्मतत्त्वकी दीवार है, उसी प्रकार ज्ञानकी पूर्णता होनेसे दुःखका विनाश मानना, अन्य कई समाजोंके प्रचलित धर्मतत्त्वकी जड़ है।

यहाँ इस बातकी आलोचना करनेकी आवश्यकता नहीं है कि इनमेंसे कौनसी बात सत्य है । पर यह स्वीकार किये बिना नहीं चल सकता कि दोनों बातोंके मूलमें कुछ न कुछ सत्य अवश्य छुपा हुआ है ।

तब यह ऐतिहासिक सत्य है कि उक्त दो वाक्य मानवजातिके दो बड़े समाजोंको एक दूसरेसे सर्वथा भिन्न दो मार्गों पर खींच ले गये हैं ।

जब ज्ञानसे दुःखकी उत्पत्ति हुई है, तब जान पड़ता है कि किसी न किसी तरहसे—योगयागसे—ज्ञानका नाश साधन कर सकनेसे ही दुःखसे रक्षा की जा सकती है । कमसे कम तर्कशास्त्रकी निर्दिष्ट युक्तियोंके बलसे इसी प्रकारके सिद्धान्त पर आना पड़ता है । परन्तु दुःखकी बात यह है कि जिस रसनाने एक बार ज्ञानवृक्षके फलका रसास्वादन कर लिया है उसे उस रसके खोजनेसे रोकना एक प्रकारसे असाध्य कार्य हो जाता है और इस लिए इस रोकनेकी चेष्टासे कुछ भी लाभ नहीं होता है । तो भी, जब दुःखनिवृत्ति ही परम पुरुषार्थ है और उस परमपुरुषार्थके साधनका उपाय करना ही मानवजातिके गुरुओं और शिक्षकोंके जीवनका व्रत है, तब उन गुरुओं और शिक्षकोंने मानवोंके दुःख दूर करनेके लिए किस किस प्रकारके उपाय किये, यूरोपके लगभग डेढ़ हजार वर्षके इतिहासमें, वे खूनके अक्षरोंमें लिखे हुए हैं ।

सभ्यताके प्रारंभिक कालमें, यूरोपमें यूनानने जो ज्ञानका दीपक जलाया था, वह कई सौ वर्षोंतक सारे पश्चिमी देशोंको आलोकित करता रहा था । पीछे, ईसाई मतका अभ्युदय होनेपर, राष्ट्रीय शक्ति और याजक शक्ति (पादरियोंकी शक्ति) ने एक होकर, किस प्रकारसे उस ज्ञानके दीपकको बुझाकर गभीर अन्धकारकी सृष्टि की, सो इतिहासमें स्पष्ट शब्दोंमें लिखा हुआ है । कोई डेढ़ हजार वर्षतक ईसाई पादरियोंने किसीको भी किसी प्रकारका उजेला नहीं करने दिया * । यूरोपके ईसाई मतका केवल यही इतिहास है । उसने बड़ी ही निर्लज्जताके साथ अपनी सारी शक्ति इस दीवारकी

* ईसाई धर्मका इतिहास बड़ा ही भयंकर है । बाइबलमें जो कुछ लिखा हुआ है, उसके विरुद्ध कोई एक शब्द भी नहीं कह सकता था । यदि कोई विद्वान् कोई नई खोज करता था और वह बाइबलसे विरुद्ध होती थी, तो उसकी शामत आ जाती थी । गैलेलियोने जब यह सिद्धान्त प्रकाशित किया कि पृथ्वी चलती है और सूर्य स्थिर है, तब सारा ईसाई-संसार उसपर टूट पड़ा और उसको बड़े ही अमानुषिक कष्ट दिये गये ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जड़को उखाड़ डालनेके लिए लगा रक्खी कि जिसके ऊपर प्रतिष्ठालाभ करके मनुष्य अपने महत्त्वको अव्याहत बनाये आ रहा है और अबतक प्रकृतिके निष्ठुर कवलसे अपनी रक्षा कर सका है।

इस विश्वासके कारण मनुष्य बहुत युगोंतक ठगा गया है कि जब ज्ञानसे दुःखकी उत्पत्ति हुई है तब ज्ञानका पथ रुद्ध कर देनेसे ही उस दुःखसे छुटकारा हो जायगा। जिन लोगोंने इस तरह अपनेको ठगाया है, वे पुकार पुकार कर कहते आ रहे हैं कि यदि दुःखसे मुक्त होना चाहते हो तो ज्ञानमार्गको छोड़कर अन्धविश्वासके मार्गका अवलम्बन करो, यदि तुम्हारी इच्छा परमपुरुषार्थ प्राप्त करनेकी है तो बुद्धिवृत्तिका निरोध करो, ज्ञानके अन्वेषणमें व्यर्थ समय मत खोओ; जविनके मार्गपर व्यक्तिविशेष + और वाक्यविशेषमें × विश्वास स्थापन करके, चलनेसे ही परमपुरुषार्थ प्राप्त होगा।

वास्तवमें देखा जाय तो मनुष्यके समान अभागा जीव संसारमें शायद ही कोई हो। मनुष्य क्षुद्र और दुर्बल है; और सदासे चले आये नियमके अनुसार जो क्षुद्र है वह अभागा है और जो दुर्बल है वह दीन है। वह अपनी असमर्थताके कारण दूसरोंके आगे कृपा-भिक्षाके लिए सदासे लालायित है और अपनी परमुखापेक्षिता (पराया मुँहताकनेकी आदत)के फलसे सदासे प्रतारित (ठगाया हुआ) है। मनुष्य प्रकृतिके द्वारा तरह तरहसे पीडित होकर दुःखकी यंत्रणासे 'हाय हाय' करता आ रहा है, इस लिए जब जब जिस किसी व्यक्तिने अपनी मूर्खता और निर्लज्जताके भरोसे अपनेको इस सनातन दुःखरोगका एक मात्र चिकित्सिक (वैद्य) प्रकट किया तब तब यह उसीके बहकानेमें भूल कर, उसके दिये हुए कुपथ्यका सेवन करके ठगा गया है।

+ ईसा या मुहम्मद आदि धर्मप्रवर्तक।

× बाइबल या कुरान आदि धर्मग्रन्थ।

यह ठीक है कि ज्ञानसे दुःखकी उत्पत्ति हुई है; परन्तु उस दुःखबन्धनसे छूटनेके लिए ज्ञानके प्रकाशको छोड़कर अज्ञानके अन्धकारमें प्रवेश करना होगा, इस प्रकारकी आज्ञा माननेके लिए तो कोई भी सुस्थ और मोहमुक्त मनुष्य सिर झुकाकर तैयार न होगा।

यह बड़े ही सौभाग्यकी बात है कि सब देशोंकी सभी जातियोंने इस बातको स्वीकार नहीं किया कि ज्ञानके मार्गको छोड़कर दुःखनाशके उपायका अवलम्बन किया जाय। कमसे कम एक बड़े भारी समाजमें* यह मत ग्रहण किया गया है कि अपूर्ण ज्ञानसे जिसकी उत्पत्ति होती है, ज्ञानका पूर्ण विकास होना ही उसके नाशका एक मात्र उपाय है।

परन्तु, ज्ञानकी पूर्णता होने पर वास्तवमें दुःखकी निवृत्ति होना सम्भवपर है या नहीं, इसकी आलोचना अवश्य कर देखनी चाहिए। जहाँ तक देखा जाता है, जान तो यही पड़ता है कि ज्ञानके विकाशके साथ साथ दुःखकी मात्रा भी बढ़ती जाती है। इस प्रश्नका उत्तर देनेकी चेष्टायें अनेक प्रकारसे की गई हैं।

कोई कोई तो पृथिवीमें दुःखका आस्तित्व ही नहीं स्वीकार करना चाहते, मंगल (ईश्वर) के राज्यमें अमंगलका आस्तित्व स्वीकार करनेमें उन्हें संकोच होता है। किन्तु मनुष्यकी अनुभूतिका तीव्रतम और मुख्यतम विषय दुःख ही है; इसके अस्तित्वमें सन्देह करनेसे काम नहीं चल सकता। यहूदी 'जेकब' से लेकर हिन्दू 'रामप्रसाद' तक सबने ही एक स्वरसे इसे मान लिया है। पृथिवीपर अवतीर्ण होते ही मनु-

* भारतवर्षके ब्राह्मण, जैन, बौद्ध आदि संप्रदायोंमें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ष्यको पद पद पर जीवनकी प्रसारण-विरोधी सर्वग्रासी जडशक्ति और समाजशक्तिके साथ संग्राम करके आगे बढ़ना पड़ता है, यह नित्यकी घटना और प्रत्यक्ष व्यापार है। यही मनुष्यका जीवन है । इस संग्राममें जरा भी शिथिलता आई कि फिर जीवनरक्षा असाध्य हो जाती है। यहाँ तक कि सावधानता और वीरतासे युद्ध चलाते रहने पर भी जीवनरक्षा अन्त तक साध्य नहीं होती, यही तो जीवनकी विशिष्टता है । यह दूसरी बात है कि तुम उसका नाम दुःख मत रक्खो; वह भाषागत विवादका विषय है, परन्तु इससे हम जिसे दुःख नाम दे रहे हैं, उसका अभाव सिद्ध नहीं होता ।

पर सभी लोग दुःखके अस्तित्वको अस्वीकार नहीं करते और इसकी उत्पत्तिके कारण भी और और बतलाते हैं ।

जरथोस्तके[1] मतानुसार संसारमें दो प्रतिद्वन्द्वी विधाता प्रभुत्व कर रहे हैं, एकका कार्य है सुखविधान और दूसरेका दुःखविधान । अन्तमें जान पड़ता है सुखविधाताकी ही जय होती है, अतएव मनुष्यका कर्तव्य है कि वह सुखविधाताका ही आश्रय ग्रहण करे ।

शेमेटिक जातियोंने भी संभवतः यही मत ग्रहण करके दो विधाताओंका—खुदा और शैतानका—अस्तित्व स्वीकार किया है । सुखविधाताका पराक्रम दुःखविधाताकी अपेक्षा सर्वतोभावसे अधिक है, यहाँतक कि यदि वे चाहते तो सारे दुःखोंका विलोप-साधन भी कर सकते । परन्तु उनकी आज्ञाकी अवहेलना ही इस अभागिनी मनुष्यजातिके प्रति उनके निदारुण क्रोधका कारण हो गई है, और मनुष्यको इसी क्रोधका फल निर्दिष्ट काल तक अपने पापके प्रायश्चित्तस्वरूप भोगना पड़ेगा । यही उनकी व्यवस्था और आदेश है । उनके प्रतिद्वन्द्वी दुःखविधाताके बहकानेसे मानवजातिके आदिम माता-पिता (आदम और हव्वा) ने उनकी आज्ञाकी अवहेला की थी, इसी लिए उनका मनुष्यजातिके ऊपर यह दुर्ज्जय कोप है। आदिम माता-पिताके पापसे भविष्यत् वंशपरंपरा किस प्रकार दण्डनीय हो सकती है और परम दयालुताके[1] साथ इस तीव्र प्रतिहिंसाप्रवृत्ति (बदलेकी इच्छा) का किसप्रकार सामञ्जस्य हो सकता है, इसका कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिलता । जान पड़ता है, यह खुदाका एक खयाल मात्र है, अथवा उसकी रहस्यमय जागतिक विधानावलियोंमेंसे एक रहस्यमय विधान मात्र है । कुछ भी हो, जब प्रतिद्वन्द्वी दुःखविधाता उनके प्यारे जगतमें झगड़ा मचाकर अनर्थघटित करनेमें समर्थ हुआ है, तब इसे सर्वशक्तिमानकी अदूरदृष्टिताका ही फल समझना पड़ता है । परन्तु वे इस अनर्थका प्रतिकार करनेमें समर्थ हैं और किसी समय इसका प्रतीकार कर भी देंगे, मनुष्य इसी भरोसे पर ढाढ़स बाँधे रहता है । उस सुखविधाताने मानवजातिके आदि दम्पती (जोड़े) को स्वाधीन इच्छाके साथ साथ असमर्थता प्रदान करके क्यों अपने प्रतिद्वन्द्वीकी ईर्ष्यावृत्तिको तृप्त करनेका सुयोग दिया, यह भी एक सोचने समझनेकी बात है ।

वास्तवमें विधातामें करुणामयत्वका आरोप करके उसकी सृष्टिमें दुःखका अस्तित्व स्वीकार करनेसे बड़ा ही गोलमाल मच जाता है । इसी लिए इस दुःखकी नाना प्रकारकी व्याख्यायें करके दुःखके अस्तित्वको ढँक देने अथवा उड़ा देनेके लिए नाना प्रकारकी चेष्टायें की गई हैं ।

---

१ पारसी-धर्मके प्रवर्तक जरदुश्त या जरथोस्त ।

१ खुदा और शैतानको माननेवाले सभी धर्म खुदा या ईश्वरको परमदयालु करुणासागर मानते हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक तरहकी व्याख्या और भी है। दुःखकी परिणति परम सुख है। यदि दुःखका अभाव होता तो सुखानुभूतिमें बाधा पड़ती, इस लिए अन्त तक सुखकी मात्रा बढ़ानेके लिए ही इस दुःखकी सृष्टि हुई है। अर्थात् अन्तमें परम सुखदान ही दुःखसृष्टिका उद्देश्य है।

आजकल जो लोग अभिव्यक्तिवाद (विकाशवाद या उत्क्रान्तिवाद) की नीव पर दार्शनिक तत्त्वोंकी आलोचना करने बैठते हैं, वे भी इस प्रकारकी एक बात कह कर मानवजातिको आश्वस्त करने या ढाढस बँधानेकी चेष्टा किया करते हैं। अभिव्यक्तिवादका एक और नाम क्रमोन्नति है। अभिव्यक्तिके फलसे सुखकी उन्नति और दुःखका ह्रास क्रम क्रमसे होता जायगा। किन्तु जब मृत्युके समान महादुःखजनक व्यापार प्रत्येक मनुष्यके और सारे मानव कुलके सन्मुख हर समय उपस्थित रहता है और उस मृत्युके साथ अविराम युद्ध करना ही जीवोंका जीवन है, एवं मृत्युसे बचनेकी चेष्टामें ही जीवकी क्रमोन्नति या अभिव्यक्ति है, परन्तु मृत्युके हाथसे बचनेका कोई भी उपाय अब तक कोई भी जीव आविष्कार नहीं कर सका है, तब, अभिव्यक्तिका यह परिणाम देखते हुए, इस प्रकारसे, दुःखके अपलाप करनेकी चेष्टा निष्फल ही प्रतीत होती है।

फलतः जिस तरह यह सच है कि दुःखके साथ सुख आता है, अविमिश्र दुःख जगतमें नहीं है, उसी तरह यह भी सच है कि सुखके साथ दुःख आता है, अविमिश्र सुख जगतमें नहीं है। इसमें सन्देह करनेसे सत्यका अपलाप होता है।

ज्ञानकी वृद्धि दुःख नाश करनेका प्रयास मात्र है, बस यहीं तक निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है; किन्तु यह बात नहीं कही जा सकती कि ज्ञानकी वृद्धिसे दुःखका ह्रास होकर सुखका परिणाम बढ़ेगा।

इस बातकी यथार्थताके सम्बन्धमें चारों ओरसे संशय आकर उपस्थित हो जाते हैं कि ज्ञानकी पूर्णता होने पर दुःखसे छुटकारा हो जायगा। आश्चर्य नहीं जो मनुष्यजातिका पूर्वोक्त समाज (ईसाई आदि धर्मोंका माननेवाला) इसी कारणसे ज्ञानका मार्ग छोड़कर अतिशय निरुपाय होकर विश्वासका मार्ग अवलम्बन करनेका उपदेश देता हो। तुम कहते हो कि ज्ञानवृद्धिके साथ साथ दुःखकी उत्पत्ति हुई है और ज्ञानवृद्धिके साथ साथ उसकी मात्रा बढ़ती जाती है। ऐसी दशामें यह कैसे माना जा सकता है कि ज्ञानकी पूर्णता होने पर दुःखका नाश हो जायगा ?

इस प्रश्नका कोई संगत उत्तर है या नहीं, यह तो हम नहीं जानते; परंतु एक इस प्रकारका उत्तर देनेकी चेष्टा की गई है:—

तुम जिसे ज्ञान कहते हो वह जगतके सम्पर्कसे ज्ञान है। इससे यह सिद्ध नहीं होता कि इस ज्ञानके न रहने पर भी जगत् रहेगा। उस तथाकथित ज्ञानके अभावमें यदि जगतका अभाव माना जाय, तो फिर उस जगतके साथ उस ज्ञानका एक अविच्छेद्य सम्बन्ध खड़ा हो जाता है; एकके बिना दूसरेका अस्तित्व नहीं रहता। ज्ञानसे ही इस सुखदुःखमय जगतकी उत्पत्ति हुई है। इस जगतकी उत्पतिके साथ दुःखकी उत्पत्ति और सुखकी उत्पत्ति हुई है। सुख दुःख दोनों ही इस ज्ञाननामधारक भ्रान्तिसे उत्पन्न हुए हैं। दोनों ही एक तरहके विकारके फल हैं ; एक ही विक्रियाके दो बाजू हैं। एक बाजूसे देखने पर जो सुख है, दूसरी बाजूसे देखनेसे वह दुःख है। यदि तुम विशुद्ध सुख चाहो, तो वह तुम्हें कहीं नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिलेगा; यदि विशुद्ध दुःख चाहो तो वह भी कहीं नहीं मिलेगा । एक कढ़ाहा (कटाह) एक तरफसे जैसे भीतरको धँसा हुआ और दूसरी तरफसे ऊपरको उठा हुआ होता है; 'धँसाहुआ-पन' मिटानेसे जैसे 'उठाहुआ-पन' चला जाता है और 'उठाहुआ-पन' मिटानेसे 'धँसाहुआ-पन' नहीं रहता है, और एकके मिटानेके साथ दोनोंके मिट जानेसे कढ़ाहेका कटाहत्व भी नहीं रहता है, उसी प्रकार इस जगतके दुःखभागको लोप करनेका प्रयत्न करनेसे सुखका भाग आप ही लोप हो जाता है, सुखभागको लोप करनेसे दुःखका भाग भी लुप्त हो जाता है और सुखदुःख दोनोंको लुप्त करनेसे सुखदुःखमय जगतका अस्तित्व नहीं रहता है। इस जगतमें सुख भी नहीं है, और सुखदुःख भोगनेके लिए चेतन कोई नहीं है, उस अचेतन जगतका अस्तित्व अकल्पनीय है। ज्ञान नामक परिचित भ्रान्तिसे इसकी उत्पत्ति है और वह भ्रान्ति जबतक वर्तमान रहेगी तबतक सुखदुःखपरिहारकी चेष्टा व्यर्थ है।

ज्ञान नामसे परिचित इस भ्रान्तिका नाश करना कुछ असाध्य नहीं है। परन्तु उसके लुप्त होने पर जिस तरह दुःख नहीं रहेगा, उसी तरह सुख भी नहीं रहेगा और तब यह जो प्रत्यक्षगोचर सुखदुःखका आश्रय जगत् है, उसका भी अस्तित्व विलुप्त हो जायगा।

दुःखसे मुक्त होना मनुष्यके लिए वाञ्छनीय हो सकता है, इसमें कोई हर्ज नहीं है; परन्तु दुःखके बदले, दुःखको दूर करके उसके स्थानमें सुखप्रतिष्ठाकी आशा रखना बड़ी भारी मूर्खता है। अत एव मुक्तिका अर्थ केवल दुःखसे ही मुक्त होना नहीं है, वह सुखसे भी मुक्त होना है, भ्रान्तिके जालसे मुक्त होना है, और जगतके बन्धनसे मुक्त होना है। इस तरह सुखदुःखविनिर्मुक्त होकर रहना यदि कल्पनीय हो, तभी परम पुरुषार्थ साधित होगा।

एक समय भारतवर्षमें इसी प्रकारका मुक्तितत्त्व प्रचारित हुआ था। इस मुक्तिवादने भारतवर्षके जनसमाजको गठित, नियमित और चालित किया था। अब तक भी यहाँके जनसमाजकी अस्थि-मज्जाओंमें यह मत गूढ़भावसे निहित रह कर उसे जीवनके पथमें प्रेरित कर रहा है। हम यह नहीं कहते कि अन्य देशोंमें और अन्य समाजोंमें इस मतकी क्षीण ध्वनि भी नहीं सुनी गई है। किन्तु अन्य देशोंमें यह मत मानवजीवनकी गतिका नियामक हुआ है, या मनुष्यके गन्तव्य मार्गमें इसने कोई विशेष अनुकूलता उत्पन्न कर दी है, यह इतिहासमें नहीं लिखा। यह मत विचारसह है या नहीं, यह पथ सुपथ है या नहीं, इन बातोंका विचार करना इस लेखका आलोच्य विषय नहीं है।*

नोटः—यद्यपि हम इस लेखके विचारोंसे सर्वथा सहमत नहीं हैं तो भी अपने पाठकोंको विभिन्न विचारोंका परिचय कराने और विज्ञ पाठकोंको उनपर विचार करनेका अवसर देनेके लिये इसे प्रकाशित किये देते हैं। —सम्पादक।

---

* स्वर्गीय पं० रामेन्द्रसुन्दर त्रिवेदी एम० ए० के बंगलालेखका अनुवाद।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीहरिषेणकृत कथाकोश ।

[लेखक—श्रीयुत पं० नाथूरामजी प्रेमी।]

दिगम्बर और श्वेताम्बरसम्प्रदायके विद्वानों द्वारा अनेक कथाकोश रचे गये हैं, परंतु अभी तक जितने कथाकोश उपलब्ध हुए हैं, वे अपेक्षाकृत अर्वाचीन हैं—ग्यारहवीं शताब्दीके पहलेका अभी तक कोई कथाकोश प्राप्त नहीं हुआ है। इस लेखमें हम जिस कथाकोशका परिचय देना चाहते हैं वह शक संवत् ८५३, विक्रम संवत् ९८९ और खर नामक वर्तमान संवत्के २४ वें वर्षका बना हुआ है और इस लिए इस समय हम उसे सबसे प्राचीन जैन-कथाकोश कह सकते हैं।

इस कथाकोशकी एक प्रति पूनेके "भाण्डारकर–प्राच्यविद्यासंशोधन मन्दिर" में मौजूद है जो वि० सं० १८६८ की लिखी हुई है। यह जयपुरके गोधाजीके मन्दिरमें लिखी गई थी और संभवतः वहींसे गवर्नमेण्टके लिए खरीदी गई है। इसकी श्लोकसंख्या १२५००, पत्रसंख्या ३५० और कथासंख्या १५७ है। प्रायः सारा ग्रन्थ अनुष्टुप् छन्दोंमें रचा गया है। रचना बहुत प्रौढ और सुन्दर तो नहीं है; परन्तु दिगम्बर सम्प्रदायके अन्य कथाकोशोंसे अच्छी है।

इसके कर्ता हरिषेण नामक आचार्य हैं जो अपनी गुरुपरम्परा इस भांति बतलाते हैं—१ मौनि भट्टारक, २ श्रीहरिषेण, ३ भरतसेन और ४ हरिषेण। हरिषेण पुन्नाट संघके आचार्य थे। यद्यपि दिगम्बर सम्प्रदायके अनेक आचार्योंने इस संघको पांच जैनाभासोंमें[1] एक बतलाया है; परन्तु फिर भी यह दिगम्बर सम्प्रदायका ही भेद था। यह द्राविडसंघका नामान्तर जान पड़ता है। द्रविडदेशीय होनेके कारण इसका द्रविडसंघ नाम हुआ है। पुन्नाट भी संभवतः द्रविड देशका ही नामान्तर है। इस कथाकोशमें ही भद्रबाहु-कथानकमें लिखा है:—

> अनेन सह संघोऽपि समस्तो गुरुवाक्यतः।
> दक्षिणापथदेशस्थपुन्नाटविषयं ययौ ॥ ४० ॥

इससे सिद्ध है कि पुन्नाट दक्षिणापथका ही एक देश है और उसे द्रविडदेश मानना कुछ असंगत नहीं हो सकता। उस समय शायद कर्नाटक देश भी द्रविडदेशमें गिना जाना था। इस संघका एक और नाम द्रविडसंघ भी है। न्यायविनिश्चयालंकार और पार्श्वनाथचरित आदिके कर्ता सुप्रसिद्ध तार्किक वादिराजने अपनेको द्रविडसंघीय लिखा है। द्रविडदेशको द्रमिलदेश भी कहते हैं।

सुप्रसिद्ध हरिवंशपुराणके कर्ता प्रथम जिनसेन भी इसी पुन्नाट संघके आचार्य थे:—

> "व्युत्सृष्टापरसंघसन्ततिबृहत्पुन्नाटसंघान्वये—"
> हरिवंश-प्रशस्ति।

यह कथाकोश भी उसी वर्द्धमाननगरमें बनाया गया है जहाँ कि जिनसेनसूरिने हरिवंशपुराणकी रचना की थी। और जब कि जिनसेन पुन्नाट संघके ही आचार्य हैं तब संभव है कि हरिषेण आचार्य जिनसेनकी ही शिष्यपरम्परामें हों। यदि मौनिभट्टारककी गुरुपरम्पराका पता लग जाय तो इस बातका निर्णय सहज ही हो जाय।

वर्द्धमानपुर कर्नाटक देशका ही कोई प्रसिद्ध नगर है। मालूम नहीं, इस समय वह किस नामसे प्रसिद्ध है। जिनसेनसूरि लिखते हैं:—

१ मेरे द्वारा सम्पादित और जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय, बम्बई द्वारा प्रकाशित 'दर्शनसार' में जैनाभासोंका विस्तृत विवेचन देखिए।

१ दक्खिणमहुराजादो द्राविडसंघो महामोहो ॥ २८ ॥ देवसेन।

२ आपटेकी संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरीमें पुन्नाटका अर्थ 'कर्नाटक देश' लिखा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"कल्याणैः परिवर्द्धमानविपुलश्रीवर्द्धमाने पुरे,
श्रीपार्श्वालयनन्नराजवसतौ पर्याप्तशेषः ××"

इसी प्रकार इस कथाकोशके कर्ता लिखते हैं:—

" जैनालयव्रातविराजितांते चन्द्रावदातद्युतिसौधजाले।
कार्तस्वरापूर्णजनाधिवासे श्रीवर्द्धमानाख्यपुरे ×××॥"

इससे जान पड़ता है कि उस समय यह नगर बहुत समृद्धिशाली था और अनेक जैन-मन्दिरोंसे सुशोभित था। वहाँके नन्नराजके बनाये हुए पार्श्वनाथालय नामक जैनमन्दिरका—जहाँ कि हरिवंशपुराण समाप्त हुआ था—और भी कई ग्रन्थोंमें उल्लेख मिलता है।

यह ग्रन्थ विनयपाल नामक राजाके समयमें लिखा गया है। ग्रन्थप्रशस्तिसे यह मालूम नहीं होता है कि विनयपालकी राजधानी कहाँ थी। संभवतः वह वर्धमानपुरमें ही होगी। हम इस बातका पता नहीं लगा सके कि विनयपाल किस वंशका राजा था; परन्तु संभवतः वह राष्ट्रकूट राजाओंका माण्डलिक होगा और चतुर्थ गोविन्द या सुवर्णवर्षका समकालीन होगा जिसने शक संवत् ८५६ तक राज्य किया था।

यह कथाकोश किसी 'आराधना' नामक ग्रन्थसे उद्धृत करके सारांश रूपमें या उसके सहारेसे लिखा गया है, यह बात प्रशस्तिके आठवें श्लोकके 'आराधनोद्धृतः' पदसे मालूम होती है। ऐसी दशामें कहना होगा कि इस ग्रन्थकी कथायें अधिक नहीं तो हरिषेणके समयसे सौ दो सौ वर्ष पहलेकी अवश्य होंगी।

दिगम्बर सम्प्रदायमें 'आराधना-कथाकोश' नामके दो संस्कृत कथाकोश और भी हैं। इनमेंसे एक प्रभाचन्द्र भट्टारकका बनाया हुआ गद्यमें है और दूसरा मल्लिभूषणके शिष्य नेमिदत्त ब्रह्मचारीका पद्यमें है। यह दूसरा प्रथमका पद्यानुवाद मात्र है।[1] ये दोनों कथाकोश इस कथाकोशकी अपेक्षा छोटे हैं, इसीलिए जान पड़ता है कि इसकी प्रति लिखनेवालेने इसके नामके साथ बृहत् विशेषण लगा दिया है। ग्रंथकर्त्ताने स्वयं इसे 'कथाकोश' ही लिखा है।

हमको इस कथाकोशकी सब कथायें पढ़नेका अवसर नहीं मिला। हैं भी वे बहुत मामूली और विशेषत्वहीन। कुछ कथायें ऐतिहासिक पुरुषोंसे सम्बन्ध रखनेवाली हैं, जैसे चाणक्य, शकटाल, और भद्रबाहु; परन्तु वे भी वास्तविक इतिहाससे कम सम्बन्ध रखती हैं—केवल जैनधर्मकी महिमा बढ़ानेके उद्देश्यसे लिखी गई हैं।

इसमें भद्रबाहुकी जो कथा लिखी गई है उसमें दो बातें बड़ी विलक्षण हैं और पुरातत्त्वज्ञोंके ध्यानमें रहने योग्य हैं। एक तो यह कि, भद्रबाहुने १२ वर्षका घोर दुर्भिक्ष पड़नेका निश्चय करके अपने शिष्योंको ही दक्षिणापथ तथा सिन्ध्वादि देशोंको भेज दिया था, पर वे स्वयं उज्जयिनीमें रहे और कुछ दिनोंमें उज्जयिनीके निकट भाद्रपद—(भेलसा?) नामक स्थानमें स्वर्गवासी हो गये[2]। दूसरे, उज्जयिनीके राजा चन्द्रगुप्तने भद्रबाहुके समीप दीक्षा ले ली थी और वे ही पीछे विशाखाचार्यके नामसे

१—नेमिदत्त ब्रह्मचारी वि० सं० १५७५ के लगभग हुए हैं।

१—देवेन्द्रचन्द्रार्कसमर्चितेन तेन प्रभाचन्द्रमुनीश्वरेण। अनुग्रहार्थं रचितं सुवाक्यैराराधनासारकथाप्रबन्धः॥६॥ तेन क्रमणैव मया स्वशक्त्या श्लोकैः प्रसिद्धैश्च निगद्यते सः। मार्गे न किं भानुकरप्रकाशे स्वलीलया गच्छति सर्वलोकः॥७॥ —नेमिदत्तकृत कथाकोश।

२—भद्रबाहुमुनीर्धीरो भयसप्तकवर्जितः।
पंपाक्षुधाश्रमं तीव्रं जिगाय सहसोत्थितम्॥४२॥
प्राप्य भाद्रपदं देशं श्रीमदुज्जयिनीभवम्।
चकारानसनं धीरः स दिनानि बहून्यलम्॥४३॥
आराधनां समाराध्य विधिना स चतुर्विधाम्।
समाधिमरणं प्राप्य भद्रबाहुर्दिवं ययौ॥४४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रसिद्ध हुए थे[1]। वे भद्रबाहुके समीप न रह कर दक्षिणापथको चले गये थे। अन्य कई कथाओंके और शिलालेखोंके अनुसार भद्रबाहु आचार्य स्वामी दक्षिणापथको गये थे और उनका स्वर्गवास श्रवणबेलगोलके चन्द्रगिरि पर्वतपर हुआ था, तथा उनके साथ चन्द्रगुप्त भी गये थे और उनका दूसरा नाम विशाखाचार्य नहीं किन्तु प्रभाचंद्र था[2]। विशाखाचार्य नामके आचार्य उस संघमें दूसरे ही थे। इन कथाओं और शिलालेखोंके आधारसे ही सम्राट् चन्द्रगुप्तके जैन होनेकी सारी दीवाल खड़ी की गई है और स्वर्गीय विन्सेंट स्मिथ जैसे सुप्रद्धि इतिहासज्ञ भी चन्द्रगुप्तका जैन होना 'संभवनीय' बतला गये हैं। जिन शिलालेखोंसे और कथाओंसे चन्द्रगुप्तका जैनत्व सिद्ध करनेका प्रयत्न किया जाता है, इसमें सन्देह ही है कि उनमेंसे कोई भी इस कथाकोशसे प्राचीन हो। हम आशा करते हैं कि इतिहासज्ञ इस विषयपर विशेष विचार करनेकी कृपा करेंगे।

इस कथाकोशमें समन्तभद्र, अकलंकदेव और पात्रकेसरी (विद्यानंद) की कथायें नहीं हैं; जो अवश्य होनी चाहिए थीं। क्यों कि इसके कर्ता उक्त समन्तभद्रादि आचार्योंके देशके ही थे और अकलंकदेव पात्रकेसरीसे थोड़े ही समय बाद हुए थे। प्रभाचन्द्र और नेमिदत्तके कथाकोशोंमें ही सबसे पहले उक्त कथायें दिखलाई देती हैं, जिससे संदेह होता है कि उनकी रचना किम्वदन्तियों या प्रचलित प्रवादोंके अनुसार स्वयं उक्त कथाकोशकारों द्वारा ही की गई है।

अन्तमें हरिषेणके कथाकोशके प्रारंभका मंगलाचरण और अन्तकी प्रशस्ति देकर हम इस लेखको समाप्त करते हैं:—

ओं नमो वीतरागाय।

श्रियं परां प्राप्तमनन्तबोधं मुनीन्द्रदेवेन्द्रनरेन्द्रवन्द्यम्।
निरस्तकन्दर्प्पगजेन्द्रदर्प्पं नमाम्यहं वीरजिनं पवित्रम्॥ १

विघ्नो न जायते नूनं न क्षुद्रामरलंघनम्।
न भयं भव्यसत्त्वानां जिनमंगलकारिणाम्॥ २

जि (ज) नस्य सर्वस्यं कृतानुरागं
विपश्चितां कर्णरसायनं च।
समासतः साधुमनोभिरामं
परं कथाकोशमहं प्रवक्ष्ये॥ ३

अन्तमें ग्रंथकर्ता ग्रन्थके अमर होनेकी इच्छा करते हुए अपना परिचय इस प्रकार देते हैं—

यावच्चन्द्रो रविः स्वर्गो यावत्सलिलराशयः।
यावद्व्योम नगाधीशो यावद्गंगादिनिम्नगाः॥ १
यावत्तारा धरा यावद्रामरावणयोः कथा।
तावच्चारुकथाकोशः तिष्ठतु क्षितिमण्डले॥ २
युगलमिदम्।

यो बोधको भव्यकुमुद्वतीनां निःशेषराद्धान्तवचोमयूखैः।
पुन्नाटसंघांबरसान्निवासी श्रीमौनिभट्टारकपूर्णचन्द्रः॥ ३
जैनालयव्रातविराजितान्ते चन्द्रावदातद्युतिसौधजाले।
कार्तस्वरापूर्णजनाधिवासे श्रीवर्धमानाख्यपुरे वसन्सः॥ ४
युगलमिदम्।

सारागमाहितमतिर्विदुषां प्रपूज्यो
नानातपोविधिविधानकरो विनेयः।
तस्याभवद्गुणनिधिर्जनताभिवंद्यः
श्रीशब्दपूर्वपदको हरिषेणसंज्ञः॥ ५

छन्दोलंकृतिकाव्यनाटकचणः काव्यस्य कर्ता सतो,
वेत्ता व्याकरणस्य तर्कनिपुणस्तत्त्वार्थवेदी परं।
नानाशास्त्रविचक्षणो बुधगणैः सेव्यो विशुद्धाशयः,
सेनान्तो भरतादिरत्र परमः शिष्यः बभूव क्षितौ॥ ६

---

[1] भद्रबाहुवचः श्रुत्वा चन्द्रगुप्तो नरेश्वरः।
अस्यैव योगिनं पार्श्वे दधौ जैनेश्वरं तपः॥ ३८॥
चन्द्रगुप्तमुनिः शीघ्रं प्रथमो दशपूर्विणाम्।
सर्वसंघाधिपो जातो विशाखाचार्यसंज्ञकः॥ ३९॥
अनेन सह संघोपि समस्तो गुरुवाक्यतः।
दक्षिणापथदेशस्थपुन्नाटविषयं ययौ॥ ४०॥

[2] इसके लिये देखो जैनसिद्धान्तभास्कर किरण १-२-३, वर्ष १।

१ मूर्खस्य वा पाठः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लक्षणलक्ष्मविधानविहीनः छन्दसापि रहितः प्रमया च ।
तस्य शुभ्रयशसो हि विनेयः संबभूव विनयी हरिषेणः ॥ ७
आराधनोध्दृतः पथ्यो भव्यानां भावितात्मनाम् ।
हरिषेणकृतो भाति कथाकोशो महीतले ॥ ८
हीनाधिकं चारुकथाप्रबन्धाख्यातं यदस्माभिरतिप्रमुग्धैः ।
मात्सर्यहीनाः कवयो धरण्यां तत्शोधयन्तु स्फुटमादरेण ॥ ९
भद्रं भूयाजिनानां निरुपमयशसां शासनाय प्रकामं,
जैनो धर्मोपि जीयाज्जगति हिततमो देहभाजां समस्तं ।
राजानोऽवन्तु लोकं सकलमतितरां चारुवातोऽनुकूलः,
सर्वे शाम्यन्तु सत्त्वाः जिनवरवृषभाः सन्तु मोक्षप्रदा नः ॥
नवाष्टनवकेष्वेषु स्थानेषु त्रिषु जायतः ।
विक्रमादित्यकालस्य परिमाणमिदं स्फुटम् ॥ ११
शतेष्वष्टसु विस्पष्टं पंचाशत त्र्यधिकेषु च ।
शककालस्य सत्यस्य परिमाणमिदं भवेत् ॥ १२
संवत्सरे चतुर्विंशे वर्तमाने खराभिधे ।
विनयादिकपालस्य राज्ये शक्रोपमानके ॥ १३
एवं यथाक्रमोक्तेषु कालराज्येषु सत्सु कौ ।
कथाकोशः कृतोऽस्माभिर्भव्यानां हितकाम्यया ॥ ११
कथाकोशोऽयमीदक्षो भव्यानां मलनाशनः ।
पठतां शृण्वतां नित्यं व्याख्यातृणां च सर्वदा ॥ १६
सहस्रैर्द्वादशैर्बद्धो नूनं पंचशतान्वितैः ।
जिनधर्मश्रुतोद्युक्तैरस्माभिर्मतिवर्जितैः ॥ १७

संवत् १८६८ का मासोत्तममासे जेठमास शुक्लपक्ष चतुर्थ्यां तिथौ सूर्यवारे श्रीमूलसंघे नन्याम्नाये बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारकजी श्रीमहेन्द्रकीर्तिजी तत्पट्टे भट्टारकजी श्रीक्षेमेन्द्रकीर्तिजी तत्पट्टे भट्टारकजी श्रीसुरेन्द्रकीर्तिजी तत्पट्टे भट्टारकशिरोमणी भट्टारकजी श्रीसुखेन्द्रकीर्तिजी तद्आम्नाये सवाई जंयनगरे श्रीमन्नेमिनाथचैत्यालये गोधाख्यमान्दिरे पंडितोत्तमपंडितजी श्रीसंतोषरामजी तत्सिख्य-पंडित वषतरामजी तच्छिष्य हरिवंशदासजी तत्सिष्य कृष्णचन्द्रः तेषां मध्ये वषतरामकृष्णचंद्राभ्यां ज्ञानावरणीकर्मक्षयार्थं बृहदाराधनाकथाकोशाख्यं ग्रन्थं स्वाशयेन लिषितं श्रोतृवक्तृजनानामिदं शास्त्रं मंगलं भवतु । ”

वेश्यानृत्य-स्तोत्र ।

वेश्यानृत्य नमस्तुभ्यं स्वार्थचिन्ताविघातिने ।
लज्जां पापादिभीतीश्च हित्वा स्वातंत्र्यदायिने ॥

हे वेश्यानृत्य ! ऐ रंडीके नाच ! ! तुझे नमस्कार हो, प्रणाम हो, हम तेरे आगे ढाई हाथ जोड़ते हैं ! संसारके अधिकांश मनुष्य स्वार्थमें फँसकर पतित हो रहे हैं, स्वार्थी और खुदगर्ज जैसे बुरे नामोंसे पुकारे जाते हैं; परन्तु जो लोग तेरी शरणागत हैं वे इस कलंकसे मुक्त हैं ! तू अपने भक्तोंकी स्वार्थचिन्ताको ही दूर कर देता है—तेरे उपासकोंको कमाने खाने तककी फिकर नहीं रहती, फिर लिखने पढ़ने और गुरुजनोंकी सेवा-शुश्रूषा आदिकी बात तो कौन कहे ! वे अर्थकी तो क्या धर्म पुरुषार्थकी भी कुछ पर्वाह नहीं करते ! ऐसी निश्चिन्तावस्था जिसके द्वारा साध्य हो वह क्या स्तुतिका पात्र नहीं है ? अवश्य ही स्तुतिके योग्य है ! महाशय ! आपके प्रतापसे, आपके संसर्ग अथवा सत्संगसे भक्तजनोंकी गति सहजहीमें वेश्या महादेवी तक हो जाती है और वे उस रूपेन्धनसे प्रज्वलित कामज्वालामें बड़ी खुशीके साथ अपने धन, धर्म और यौवन सभीका स्वाहा कर डालते हैं, यह कितना बड़ा स्वार्थत्याग है ! सच पूछिये तो त्यागभावकी शिक्षा आपके ही द्वारा प्रारंभ होती है। आपकी प्रेरणासे कभी कभी मनुष्य इतने निर्मोही हो जाते हैं कि वे अपनी सर्वांगसुन्दर, सच्चरित्र और शीलसम्पन्न गृहदेवियोंका भी त्याग कर देते हैं ! वेश्या महादेवीका सामीप्य प्राप्त होने पर भक्तजनोंके क्रोध, मान, माया और लोभ शान्त हो जाते हैं—उन पर चाहे कितनी भी गालिवर्षा हुआ करे,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जूतियोंकी मार तक पड़े परंतु वे चूँ तक नहीं करते। उन्हें क्रोध नहीं आता और न वे उसके द्वारा अपना कुछ अपमान ही समझते हैं। खुशीके साथ सब कुछ सहन करते हुए खुले हाथों अपना द्रव्य लुटाते हैं। मायाचार किये उनसे नहीं बनता और न लोभी मनुष्यको उक्त महादेवीका सामीप्य ही प्राप्त होता है। इस तरह जब आपकी बदौलत चारों कषायें ही शांत हो जाती हैं तब स्वार्थचिन्ता कैसे रह सकती है? फिर तो मुक्तिका सर्टिफिकेट मिला ही समझिये; चाहे वह मुक्ति हो अपने कुटंब परिवारसे, कार्यव्यवहारसे, धनधान्यसे, धर्माचरणसे, इज्जत आबरूसे, शरीर मनसे और या जीवनोपायकी चिन्ताओंसे। गरज है मुक्ति, और वह मुक्ति आपके दर्शनोंसे सहज साध्य हो जाती है। इस लिये आपको हमारा दंडवत् है। महात्मन्! वास्तवमें आपकी महिमा अपरंपार है। आपकी छत्र-छायामें रह कर मनुष्य बहुत कुछ स्वच्छंद हो जाता है, उसके बंधन टूट जाते हैं, वह स्वतंत्र बन जाता है, लोकलाजका भूत फिर उसे नहीं सताता और न गुरुजनोंकी ही उसे कुछ पर्वाह रहती है। आपके अखाड़ेमें बाप-बेटा, बाबा-पोता, चचा-भतीजा, श्वशुर-जँवाई और मामा-भानजा सभी एक स्थान पर बैठे हुए, विना किसी संकोचके, बड़ी खुशीके साथ उक्त महादेवीकी आराधना किया करते हैं, वह देवी उस समय सभीके विनोद और विलासकी चीज होती है, सभी उसको एक नजरसे देखते हैं और उसे अपनी प्राणवल्लभा बनानेकी चेष्टा किया करते हैं। वहाँ लज्जाका नाम नहीं और न शरमका कुछ काम होता है। संसारमें लोक-लाजका बड़ा भारी बंधन है, सैकड़ों अच्छे बुरे काम इसकी वजहसे रुके रहते हैं, गृहस्थोंको परम दिगम्बर मुनिमुद्रा धारण करनेमें भी यही बाधक होती है; सो श्रीमन्, इसका विजय आपके प्रतापसे बातकी बातमें हो जाता है, आपके अनुग्रहसे भक्तजनोंका यह बंधन शीघ्र टूट जाता है और उनका आत्मबल फिर इतना बढ़ जाता है कि उन्हें एक व्यभिचारिणी, पापप्रचारिणी और मद्य-मांस तथा व्यभिचारादिके सेवनका उपदेश देनेवाली विलासिनी स्त्रीके द्वारतक पहुँचने, दर्वाज़ा खटखटाने और उसकी चरणसेवाको अपना अहोभाग्य समझनेमें कुछ भी संकोच नहीं होता और न कोई प्रकारका भय रहता है। यह कितना बड़ा स्वात्मलाभ है! कभी कभी स्त्रियाँ भी आपके प्रसादसे पार उतर जाती हैं-बन्धमुक्त हो जाती हैं—उन्हें विवाहादिके अवसरोंपर जब आपके दर्शनोंका शुभ सौभाग्य प्राप्त होता है तब वे आपकी अधिष्ठात्री देवताकी बेहद भक्तिपूजाको देखकर, यह देखकर गद्गद हो जाती हैं, कि अच्छे अच्छे सेठ-साहूकार और धनकुबेर भी सामने हाथ बाँधे खड़े अथवा बैठे हैं, उसकी तानमें हैरान व परेशान हैं, भेट तथा नजरें चढ़ा रहे हैं और इस बातकी प्रतीक्षा कर रहे हैं कि कब वह देवी एक प्रेमभरी नजरसे उनकी ओर देखती है या कमसे कम अपनी मधुर मुसकराहटसे उन्हें पवित्र बनाती है। इस दृश्यसे वे स्त्रियाँ जो हमेशा घरकी चार दीवारियोंमें बंद रहती हैं, चौका चूल्हा करती हैं, रसोई बनाती हैं, बर्तन माँजती हैं, संतानका पालन करती हैं और कुटुंबी जनोंकी दूसरी अनेक प्रकारकी सेवाशुश्रूषाओंमें लगी रहती हैं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परंतु फिर भी तिरस्कार पाती हैं अपनेको धिक्कारती हैं—अपने इस दासत्वमय जीवनकी निन्दा करती हैं—और उस महाभाग्यशालिनी देवीके जीवनकी सराहना करती हुई, उसे धन्य कहती हुई और यह समझती हुई कि पुरुषोंको ऐसी स्त्रियाँ पसंद आती हैं, आप भी तद्रूप होनेकी भावना करती हैं! बहुतसी स्त्रियोंकी व्यभिचारसे घृणा उठ जाती है! और किसी किसीका लज्जाबंधन तो यहाँतक टूट जाता है कि वे परपुरुषके साथ घरके जेलखानेसे निकल भागती हैं और इसतरह अपनेको स्वच्छंदचारिणी बना लेती हैं! महोदय! यह सब आपकी ही करामात है! आपके कृपाकटाक्षसे भक्तजन उन पंच पापोंका जरा भी भय नहीं करते जिनसे अच्छे अच्छे महात्मा तथा योगिजन डरते और घबराते हैं। वे वेश्या महादेवीकी आराधनाके लिये सब कुछ पापाचरण करनेको तय्यार रहते हैं। उसे मांस चढ़ाते हैं, शराबकी बोतलें पिलाते हैं; उसके कारण झूठ बोलते हैं, चोरीतक करते हैं, जेवर कपड़ा छीनकर या अन्य प्रकारसे अपनी स्त्रीको सताते हैं, और यह बात तो सब जानते हैं कि उक्त महादेवीको जो कुछ भेट पूजा चढ़ाई जाती है उससे वह गौ आदिकी कुर्बानी जरूर करती है परंतु फिर भी भक्तजन उसके चरणोंमें बराबर द्रव्य अर्पण किये जाते हैं और इस बातकी जरा भी पर्वाह नहीं करते कि उसके द्वारा कितने गोवंशका नाश होगा और कितने मूक पशुओंकी जानें जायँगी। यह कितनी बड़ी निर्भीकता है! भला जो लोग इतने कायर हैं कि पापोंसे ही डरते हैं वे इस संसारसमुद्रसे कैसे पार उतर सकते हैं? पार वे ही उतर सकते हैं जो पापोंकी जरा भी पर्वाह नहीं करते और न उनसे कुछ भय खाते हैं! प्रत्युत, पापियोंको उनके पापाचरणमें बराबर सहायता प्रदान करते रहते हैं! महानुभाव! यह अभया दशा और यह निर्भय पदकी प्राप्ति आपके ही द्वारा साध्य होती है! आपके प्रसादसे गुरुजनोंका, पञ्च-पंचायतका, और राज्यका भी कोई भय नहीं रहता! आप लज्जा तथा पापादिजन्य भयोंको दूर करके स्वतंत्रता प्रदान करनेवाले हैं। भले ही आपके कारण मनुष्य घरका या घाटका न रहे परंतु वह स्वतंत्र जरूर हो जाता है। स्वतंत्रता संसारमें बड़ी ही स्पृहणीय वस्तु है। सारा संसार उसके पीछे मारा मारा फिरता है। हर एक यही चाहता है कि मैं स्वतंत्र अथवा स्वाधीन बन जाऊँ; और यह बात है भी अच्छी। क्यों कि परतंत्रता अथवा पराधीनतामें दुःख ही दुःख भरा हुआ है। कहा भी है—"पराधीन सुपने सुख नाहीं।" जब स्वतंत्रता जैसी अच्छी वस्तु हीं आपकी बदौलत प्राप्त होती है फिर आपके बराबर उपास्य और कौन हो सकता है?

महाभाग्य! इस तरह आप स्वार्थचिन्ताओंका नाश करनेवाले और लज्जा तथा पापादिजन्य भीतियोंको दूर करके स्वतंत्रता प्रदान करनेवाले हैं। अतः आपको हमारा साष्टांग प्रणाम है! आप हमारे ऊपर दूरसे ही कृपादृष्टि रक्खें और हमेशा हमें ऐसी बुद्धि प्रदान करते रहें जिससे हम आपको इसी प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा याद करते रहें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साधु-विवेक ।

(ले०—ला० दलीपसिंहजी कागजी, देहली ।)

असाधु ।

वस्त्र रँगाते, मन न रँगाते, कपटजाल नित रचते हैं;
'हाथसुमरनी पेट कतरनी,' पर-धन-वनिता तकते हैं।
आपापरकी खबर नहीं, परमार्थिक बातें करते हैं;
ऐसे ठगिया साधु जगतमें, गली गलीमें फिरते हैं॥ १॥

साधु ।

राग, द्वेष जिनके नहिं मनमें, प्रायः विपिन विचरते हैं;
क्रोध, मान, मायादिक तजकर, पंचमहाव्रत धरते हैं।
ज्ञान-ध्यानमें लीनचित्त, विषयोंमें नहीं भटकते हैं;
वे हैं साधु; पुनीत, हितैषी, तारक जो खुद तरते हैं॥ २॥

स्वदेश-सन्देश ।

(ले०—श्रीयुत भगवन्त गणपति गोयलीय ।)

महावीरके अनुयायी प्रिय पुत्र हमारे—
श्वेताम्बर, ढूँढिया, दिगम्बर-पंथी सारे।
उठो सबेरा हो गया, दो निद्राको त्याग;
कुक्कुट बाँग लगा चुका, लगा बोलने काग।
अँधेरा गत हुआ॥

(२)

उदयाचलपर बाल-सूर्यकी लाली छाई;
उषा सुन्दरी अहो, जगाने तुमको आई।
मन्द मन्द बहने लगा, प्रातः मलय समीर;
सभी जातियाँ हैं खड़ीं, उन्नति-नदके तीर।
लगाने डुबकियाँ॥

(३)

उठो उठो, इस तरह कहाँ तक पड़े रहोगे;
कुटिल कालकी कड़ी धमकियाँ अरे! सहोगे।
मेरे प्यारो! सिंहसे, बनो न कायर स्यार;
तन्द्रामय-जीवन बिता, बनो न भारत-भार।
शीघ्र शय्या तजो॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(४)

मत इसकी परवाह करो क्या कौन कहेगा;
तथा सहायक कौन, हमारे संग रहेगा।
क्या चिन्ता तुम हो वही, जिसकी शक्ति अनन्त;
जिसका आदि मिला नहीं, और न होगा अन्त।
अटल सिद्धान्त है ॥

(५)

यद्यपि कुछ कुछ लोग, मार्ग रोकेंगे आकर;
किन्तु शीघ्र ही भाग जायँगे धक्के खाकर।
यदपि मिलेंगे मार्गमें, तुमको कितने शूल;
पग रखते बन जायँगे, वे सबके सब फूल।
यही आश्चर्य है ॥

(६)

युद्ध स्वार्थ अथवा असत्यसे करना होगा;
जीनेही के लिए, तुम्हें अब मरना होगा।
तब न मरे अब ही मरे, मरना निस्सन्देह;
अब न मरे सब कुछ रहे, रहे न केवल देह।
देह-ममता तजो ॥

(७)

सुनो सुनो जो आज, कहीं साहस तुम हारे;
डूबोगे यों, नहीं लगोगे कभी किनारे।
तन मन धनसे देश-हित, करो प्रमाद विसार;
सबके सँग मिलकर सहो, भूख-प्यास या मार।
पुनः आनन्द भी ॥

(८)

पिछड़ गए हो बहुत, लड़ रहे हो आपसमें;
पकड़ पकड़ रूढ़ियाँ, घोलते हो विष रसमें।
ऐसा ही करते रहे, तो विनाश है पास;
बस भविष्यमें देयगा, तव-परिचय इतिहास।
एक मृत-जाति कह ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कदम्बवंशीय राजाओंके तीन ताम्रपत्र ।

आज हम अपने पाठकोंके सामने कदम्ब राजाओंके तीन ताम्रपत्र रखते हैं जो कि ऐतिहासिकदृष्टिसे बहुत कुछ पुराने और बड़े महत्त्वके हैं। ये तीनों ताम्रपत्र, कुछ अर्सा हुआ, देवगिरि तालुका करजघी (जि० धारवाड़) का तालाब खोदते समय मिले थे और इन्हें मिस्टर काशीनाथ त्रिम्बक तेलंग, एम. ए., एलएल. बी. ने, रायल एशियाटिक सोसायटीकी बम्बईशाखाके जर्नल नं० ३४ की १२ वीं जिल्दमें, अपने अनुसंधानोंके साथ प्रकाशित कराया था। इनमेंसे पहला पत्र (Plate) समकोण तीनपत्रों (Rectangular sheets) से दूसरा चार पत्रोंसे और तीसरा तीन पत्रोंसे बना हुआ है। अर्थात्, ये तीनों दानपत्र, जिनमें जैनसंस्थाओंको दान दिया गया है, क्रमशः ताँबेके तीन, चार और तीन पत्रोंपर खुदे हुए हैं। परंतु प्रत्येक दानपत्रके पहले और अन्तिम पत्रका बाहिरी भाग खाली है और भीतरी पत्र दोनों ओरसे खुदे हुए हैं। इस तरह पर इन दानपत्रोंकी पृष्ठसंख्या क्रमशः ४, ६ और ४ है। प्रत्येक दानपत्रके पत्रोंमें एक एक मामूली छल्ला (Ring) सुराखमें होकर पड़ा हुआ है जिसके द्वारा वे पत्र नत्थी किये गये हैं। छल्लों पर मुहर मालूम होती है, परंतु वह अब मुशकिलसे पढ़ी जाती है। उक्त जर्नलमें इन तीनों दानपत्रोंके प्रत्येक पृष्ठका फोटू भी दिया है और उस परसे ये पत्र गुप्त राजाओंकी लिपिमें लिखे हुए मालूम होते हैं। मिस्टर काशीनाथजी अपने अनुसंधानविषयक नोट्समें, लिखते हैं कि, "कृष्णवर्मा, जिसका उल्लेख यहाँ तीसरे दानपत्रमें है, वही कृष्णवर्मा मालूम होता है जिसका उल्लेख चेरा (chera) के दानपत्रोंमें पाया जाता है। क्योंकि उन पत्रोंमें जिस प्रकार कृष्णवर्माको महाराजा और अश्वमेधका कर्ता लिखा है उसी प्रकार उक्त तीसरे दानपत्रमें भी लिखा है। चेरा दानपत्रोंके कृष्णवर्माका समय ईसवीसन् ४६६ के लगभग निश्चित है। इस लिये यह तीसरा दानपत्र भी उसी समयके लगभगका होना चाहिये। शेष दोनों दानपत्र इससे पहलेके हैं या पीछेके, यह पूरी तौरसे नहीं कहा जासकता। संभवतः इनका समय ईसाकी पाँचवीं शताब्दीके लगभग है।" इसके सिवाय आपने अपने अनुसंधानके अन्तमें ये पंक्तियाँ दी हैं:—

We may now sum up the result of our investigations. We find, then, that there were two branches of the Kadamba family, one of which may be described as Goa branch, and the other as the Vanvâsi branch. It is just possible that there was some connection between the two branches, but we have not at present the materials for settling the question. We find, too, that the princes mentioned in our plates belong to the Vanvâsi branch, and that there is not sufficient ground for refering them to a different division from the Vanvâsi Kadambas enumerated in Sir W. Elliot's paper. We find, further, that these princes appear from their recorded grants to have been independent sovereigns, and not under subordination to the Chalukya kings, as their successors were, and that they flourished, in all probability, before the fifth century after Christ. Lastly we find that there is great reason for believing that these early Kadambas were of the jain persuasion, as we find some of the latter Kadambas to have been from their recorded grants.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन पंक्तियोंके द्वारा, काशीनाथजीने अपने अनुसंधानका नतीजा निकाला है, और वह इस प्रकार है:—

'हमें ऐसा निश्चित हुआ है कि कदम्बवंशकी दो शाखाएँ थीं, जिनमेंसे एकको 'गोआ' शाखा और दूसरीको 'वनवासी' शाखाके तौर पर निरूपण किया जा सकता है। यह बिलकुल संभव है कि इन दोनों शाखाओंके मध्यमें कुछ सम्बंध था, परंतु इस समय उस विषयका निर्णय करनेके लिये हमारे पास सामग्री नहीं है। हमारा यह भी निश्चय है कि जिन राजाओंका हमारे इन पत्रोंमें उल्लेख है वे 'वनवासी' शाखाके थे, और यह कि उन्हें सर डब्ल्यू एलियटके पत्रमें गिनाये गये वनवासी कदम्बोंसे एक भिन्न विभागमें स्थापित करनेकी कोई काफी वजह नहीं है। इसके सिवाय, हमारा निर्णय यह है कि ये राजा अपने पत्रारूढ दानोंसे स्वतंत्र सम्राट् मालूम होते हैं, न कि चालुक्य राजाओंके मातहत (अधिकाराधीन), जैसा कि उनके उत्तराधिकारी थे। और यह कि वे, संपूर्ण संभावनाओंको ध्यानमें लेने पर भी ईसाके बाद पाँचवीं शताब्दीसे पहले हुए जान पड़ते हैं। अन्तमें हमारी यह तजवीज है कि यहाँ इस बातके विश्वास करनेकी बहुत बड़ी वजह है कि ये प्राचीन कदम्ब जैनमतानुयायी थे, जैसा कि हम कुछ बादके कदम्बोंको उनके दानपत्रों परसे पाते हैं।

इन तीनों दानपत्रोंकी बहुतसी शब्दरचना परस्पर कुछ ऐसी मिलती जुलती है कि जिससे एक दूसरेको देखकर लिखा गया है, यह कहनेमें कुछ भी संकोच नहीं होता। परंतु सबसे पहले कौनसा पत्र लिखा गया है, यह अभी निश्चित नहीं हो सका। संभव है कि ये पत्र इसी क्रमसे लिखे गये हों जिस क्रमसे इन पर प्रकाशनके समय नम्बर डाले गये हैं। तीनों पत्रोंमें '**स्वामि महासेन**' और '**मातृगण**' का उल्लेख पाया जाता है जिनके अनुध्यानपूर्वक कदम्ब राजा अभिषिक्त होते थे। जान पड़ता है 'स्वामि महासेन' कदम्ब वंशके कोई कुलगुरु थे। इसीसे राज्याभिषेकादिकके समयमें उनका बराबर स्मरण किया जाता था। परंतु स्वामि महासेन कब हुए हैं और उनका विशेष परिचय क्या है, ये सब बातें अभी अंधकाराच्छन्न हैं। मातृगणसे अभिप्राय उन स्वर्गीय माताओंके समूहका मालूम होता है जिनकी संख्या कुछ लोग सात, कुछ आठ और कुछ और इससे भी अधिक मानते हैं। जान पड़ता है कदम्बवंशके राजघरानेमें इन देवियोंकी भी बहुत बड़ी मान्यता थी। जिन कदम्ब राजाओंकी ओरसे ये दानपत्र लिखे गये हैं वे सभी '**मानव्यस**' गोत्रके थे, ऐसा तीनों पत्रोंमें उल्लेख है। साथ ही, पहले दो पत्रोंमें उन्हें '**हारितीपुत्र**' भी लिखा है। परंतु 'हारिती' इन कदम्बवंशी राजाओंकी साक्षात् माता मालूम नहीं होती, बल्कि उनके घरानेकी कोई प्रसिद्ध और पूजनीया स्त्री जान पड़ती है जिसके पुत्रके तौर पर ये सभी कदम्ब पुकारे जाते थे, जैसा कि आज कल खुर्जेके सेठोंको 'रानीवाले' कहते हैं।

अब हम इस समुच्चय कथनके अनन्तर प्रत्येक दानपत्रका कुछ विषद परिचय अथवा सारांश देकर मूलपत्रोंको ज्योंका त्यों उद्धृत करते हैं:—

+यथाः—"ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा।
माहेंद्री चैव वाराही चामुंडा सप्तमातरः॥"
"ब्राह्मी माहेश्वरी चंडी वाराही वैष्णवी तथा।
कौमारी चैव चामुंडा चर्चिकेत्यष्ट मातरः॥
देखो 'संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी'—वामन शिवराम आपटेकी बनाई हुई।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पत्र नम्बर १—यह पत्र '**श्रीशांतिवर्माके** पुत्र महाराज श्री '**मृगेश्वरवर्मा**' की तरफसे लिखा है, जिसे पत्रमें काकुस्था (त्स्था) न्वयी प्रकट किया है, और इससे ये कदम्बराजा, भारतके सुप्रसिद्ध वंशोंकी दृष्टिसे, सूर्यवंशी अथवा इक्ष्वाकुवंशी थे, ऐसा मालूम होता है। यह पत्र उक्त मृगेश्वरवर्माके राज्यके तीसरे वर्ष, पौष (?) नामके संवत्सरमें, कार्तिक कृष्णा दशमीको, जब कि उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र था, लिखा गया है। इसके द्वारा अभिषेक, उपलेपन, पूजन, भग्नसंस्कार (मरम्मत) और महिमा (प्रभावना) इन कामोंके लिये कुछ भूमि, जिसका परिमाण दिया है, अरहंत देवके निमित्त दान की गई है। भूमिकी तफसीलमें एक निवर्तनभूमि खालिस पुष्पोंके लिये निर्दिष्ट की गई है। ग्रामका नाम कुछ स्पष्ट नहीं हुआ, 'वृहत्परलूरे' ऐसा पाठ पढ़ा जाता है। अन्तमें लिखा है कि जो कोई लोभ या अधर्मसे इस दानका अपहरण करेगा वह पंच महा पापोंसे युक्त होगा और जो इसकी रक्षा करेगा वह इस दानके पुण्यफलका भागी होगा। साथ ही इसके समर्थनमें चार श्लोक भी 'उक्तं च' रूपसे दिये हैं, जिनमेंसे एक श्लोकमें यह बतलाया है कि जो अपनी या दूसरेकी दान की हुई भूमिका अपहरण करता है वह साठ हजार वर्षतक नरकमें पकाया जाता है, अर्थात् कष्ट भोगता है। और दूसरेमें यह सूचित किया है कि स्वयं दान देना आसान है परंतु अन्यके दानार्थका पालन करना कठिन है, अतः दानकी अपेक्षा दानका अनुपालन श्रेष्ठ है। इन 'उक्तं च' श्लोकोंके बाद इस पत्रके लेखकका नाम '**दामकीर्ति भोजक**' दिया है और उसे परम धार्मिक प्रकट किया है। इस पत्रके शुरूमें अर्हंतकी स्तुतिविषयक एक सुन्दर पद्य भी दिया हुआ है जो दूसरे पत्रोंके शुरूमें नहीं है, परंतु तीसरे पत्रके बिलकुल अन्तमें जरासे परिवर्तनके साथ, जरूर पाया जाता है।

पत्र नं० २—यह दानपत्र कदम्बोंके धर्म-महाराज '**श्रीविजयशिवमृगेश वर्मा**' की तरफसे लिखा गया है और इसके लेखक हैं '**नरवर**' नामके सेनापति। लिखे जानेका समय चतुर्थ संवत्सर, वर्षा (ऋतु) का आठवाँ पक्ष और पौर्णमासी तिथि है। इस पत्रके द्वारा '**कालवङ्ग**' नामके ग्रामको तीन भागोंमें विभाजित करके इस तरह पर दान दिया है कि पहला एक भाग तो अर्हच्छाला परम पुष्कलस्थाननिवासी भगवान् अर्हन्महाजिनेंद्रदेवताके लिये, दूसरा भाग अर्हत्प्रोक्त सद्धर्माचरणमें तत्पर **श्वेताम्बर महाश्रमणसंघके** उपभोगके लिये और तीसरा भाग **निर्ग्रंथ** अर्थात् दिगम्बर **महाश्रमणसंघके** उपभोगके लिये। साथ ही, देवभागके सम्बंधमें यह विधान किया है कि वह धान्य, देवपूजा, बलि, चरु, देवकर्म, कर, भग्नक्रिया प्रवर्तनादि अर्थोपभोगके लिये है, और यह सब न्यायलब्ध है। अन्तमें इस दानके अभिरक्षकको वही दानके फलका भागी और विनाशकको पंच महापापोंसे युक्त होना बतलाया है, जैसा कि नं० १ के पत्रमें उल्लेख किया गया है। परंतु यहाँ उन चार 'उक्तं च' श्लोकोंमेंसे सिर्फ पहलेका एक श्लोक दिया है जिसका यह अर्थ होता है कि, इस पृथ्वीको सगरादि बहुतसे राजाओंने भोगा है, जिस समय जिस जिसकी भूमि होती है उस समय उसी उसीको फल लगता है। इस पत्रमें 'चतुर्थ' संवत्सरके उल्लेखसे यद्यपि ऐसा भ्रम होता है कि यह दानपत्र भी उन्हीं मृगेश्वर वर्माका है

१—साठ संवत्सरोंमें इस नामका कोई संवत्सर नहीं है। संभव है कि यह किसीका पर्याय नाम हो या उस समय दूसरे नामोंके भी संवत्सर प्रचलित हों।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिनका उल्लेख पहले नम्बरके पत्रमें है अर्थात् जिन्होंने पत्र नं० १ लिखाया था और जो उनके राज्यके तीसरे वर्षमें लिखा गया था, परंतु एक तो 'श्रीमृगेश्वर वर्मा' और 'श्रीविजयशिवमृगेश वर्मा' इन दोनों नामोंमें परस्पर बहुत बड़ा अन्तर है; दूसरे, पहले नम्बरके पत्रमें 'आत्मनः राज्यस्य तृतीये वर्षे पौष संवत्सरे' इत्यादि पदोंके द्वारा जैसा स्पष्ट उल्लेख किया गया है वैसा इस पत्रमें नहीं है; इस पत्रके समय निर्देशका ढंग बिलकुल उससे विलक्षण है। 'संवत्सरः चतुर्थः, वर्षा पक्षः अष्टमः, तिथिः पौर्णमासी,' इस कथनमें 'चतुर्थ' शब्द संभवतः ६० संवत्सरोंमेंसे चौथे नम्बरके 'प्रमोद' नामक संवत्सरका द्योतक मालूम होता है; तीसरे, पत्र नं० १ में दातारने बड़े गौरवके साथ अनेक विशेषणोंसे युक्त जो अपने 'काकुत्स्थान्वय' का उल्लेख किया है और साथ ही अपने पिताका नाम भी दिया है, वे दोनों बातें इस पत्रमें नहीं हैं जिनके, एक ही दातार होनेकी हालतमें, छोड़े जानेकी कोई वजह मालूम नहीं होती; चौथे इस पत्रमें अर्हतकी स्तुतिविषयक मंगलाचरण भी नहीं है, जैसा कि प्रथमपत्रमें पाया जाता है; इन सब बातोंसे ये दोनों पत्र एक ही राजाके पत्र मालूम नहीं होते। इस पत्र नं० २ में श्रीविजयशिवमृगेशवर्माके जो विशेषण दिये हैं उनसे यह भी पाया जाता है कि, "यह राजा उभय लोककी दृष्टिसे प्रिय और हितकर ऐसे अनेक शास्त्रोंके अर्थ तथा तत्त्वविज्ञानके विवेचनमें बड़ा ही उदारमति था, नयविनयमें कुशल था और ऊँचे दर्जेके बुद्धि, धैर्य, वीर्य, तथा त्यागसे युक्त था। इसने व्यायामकी भूमियोंमें यथावत् परिश्रम किया था और अपने भुजबल तथा पराक्रमसे किसी बड़े भारी संग्राममें विपुल ऐश्वर्यकी प्राप्ति की थी; यह देव, द्विज, गुरु और साधुजनोंको नित्य ही गौ, भूमि, हिरण्य, शयन (शय्या), आच्छादन (वस्त्र) और अन्नादि अनेक प्रकारका दान दिया करता था; इसका महाविभव विद्वानों, सुहृदों और स्वजनोंके द्वारा सामान्यरूपसे उपभुक्त होता था; और यह आदिकालके राजा (संभवतः भरतचक्रवर्ती) के वृत्तानुसारी धर्मका महाराज था।" दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों-ही संप्रदायोंके जैनसाधुओंको यह राजा समानदृष्टिसे देखता था, यह बात इस दानपत्रसे बहुत ही स्पष्ट है।

पत्र नं० ३—यह दानपत्र कदम्बोंके धर्ममहाराज श्रीकृष्णवर्माके प्रियपुत्र '**देववर्मा**' नामके युवराजकी तरफसे लिखा गया है और इसके द्वारा '**त्रिपर्वत**' के ऊपरका कुछ क्षेत्र अर्हत भगवानके चैत्यालयकी मरम्मत, पूजा और महिमाके लिये '**यापनीय**' संघको दान किया गया है। पत्रके अन्तमें इस दानको अपहरण करनेवाले और रक्षा करनेवालेके वास्ते वही कसम दी है अथवा वही विधान किया है जैसा कि पहले नम्बरके पत्रसम्बंधमें ऊपर बतलाया गया है। 'उक्तं च' पद्य भी वही चारों कुछ क्रमभंगके साथ दिये हुए हैं। और उनके बाद दो पद्योंमें इस दानका फिरसे खुलासा दिया है, जिसमें देववर्माको रणप्रिय, दयामृतसुखास्वादनसे पवित्र, पुण्यगुणोंका इच्छुक और एक वीर प्रकट किया है। अन्तमें अर्हतकी स्तुतिविषयक प्रायः वही पद्य है जो पहले नम्बरके पत्रके शुरूमें दिया है। इस पत्रमें श्रीकृष्णवर्माको 'अश्वमेध' यज्ञका कर्ता और शरदृतुके निर्मल आकाशमें उदित हुए चंद्रमाके समान एक छत्रका धारक, अर्थात्—एकछत्र पृथ्वीका राज्य करनेवाला लिखा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मूल—Text.

सिद्धम् जयत्यर्हंस्त्रिलोकेशः सर्वभूतहिते रतः
रागाद्यरिहरोनन्तोनन्तज्ञानदृगीश्वरः

स्वस्ति विजयवैजन्त्या स्वामिमहासेनमातृगगानुध्याताभिषिक्तानां मानव्यसगोत्राणां हारितीपुत्राणं अङ्गिरसां प्रतिकृतस्वाध्यायचर्चकानां सद्धर्म्मसदम्बानां कदम्बानां अनेकजन्मान्तरोपार्जितविपुलपुण्यस्कंधः आहवार्जितपरमरुचिरदृढसत्वः विशुद्धान्वयप्रकृत्यानेकपुरुषपरंपरागते जगत्प्रदीपभूते महत्यदितोदिते काकुस्थान्वये श्रीशान्तिवर्म्मतनयः श्रीमृगेशवरवर्म्मा आत्मनः राज्यस्य तृतीये वर्षे पौषसंवत्सरे कार्तिकमासे बहुले पक्षे दशम्यां तिथौ उत्तराभाद्रपदे नक्षत्रे वृहत्परलूरे (?) त्रिदशमुकुटपरिघृष्टचारुचरणेभ्यः परमार्हद्देवेभ्यः संमार्ज्जनोपलेपनाभ्यर्च्चनभग्नसंस्कारमहिमार्थं ग्रामापरदिग्विभागसीमाभ्यन्तरे राजमानेन चत्वारिंशन्निवर्त्तनं कृष्णभूमिक्षेत्रं चत्वारिक्षेत्रन्निवर्त्तनं च चैत्यालयस्य वहिः[4] एकं निवर्त्तनं पुष्पार्थं देवकुलस्याङ्गनञ्च एकनिवर्त्तनमेव सर्व परिहारयुक्तं दत्तवान् महाराजः लोभादधर्म्माद्वा योस्याभिहर्त्ता स पंचमहापातकसंयुक्तोभवति योस्याभिरक्षिता स तत्पुण्यफलभाग्भवति उक्तञ्च बहुभिर्वसुधाभुक्ता राजभिस्सगरादिभिः यस्य यस्य यदा भूमितस्य तस्य तदा फलं स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेत वसुन्धरां षष्टिं वर्ष सहस्राणि नरके पच्यते तु सः अद्भिर्द्दत्तं त्रिभिर्भुक्तं सद्भिश्च परिपालितं एतानि न निवर्त्तंते पूर्वराजकृतानि च स्वन्दातुं सुमहच्छक्यं दुःखमन्यार्त्थपालनं दानं वा पालनं वेति दानाच्छ्रेयोनुपालनं

परमधार्मिकेण दामकीर्तिभोजकेन लिखितेयं पट्टिका इति सिद्धिरस्तु ॥—

(२)

सिद्धम् ॥ विजयवैजयन्त्याम् स्वामिमहासेनमातृगणानुद्ध्याताभिषिक्तस्य मानव्यसगोत्रस्य हारितीपुत्रस्य प्रतिकृतचर्चापारस्य विबुधप्रतिबिम्बानां कदम्बानां धर्ममहाराजस्य श्रीविजयशिवमृगेशवर्म्मणः विजयायुरोग्यैश्वर्यप्रवर्द्धनकरः संव्वत्सरः चतुर्त्थः वर्षापक्षः अष्टमः तिथिः पौर्णमासी अनयानुपूर्व्या अनेकजन्मान्तरोपार्ज्जितविपुलपुण्यस्कंधः सुविशुद्धपितृमातृवंशः उभयलोकप्रियहितकरानेकशास्त्रार्त्थतत्वविज्ञानविवेच (?) ने विनिविष्टविशालोदारमतिः हस्त्यश्वारोहणप्रहरणादिषु व्यायामिकीषु भूमिषु यथावत्कृतश्रमः दक्षो दक्षिणः नयविनयकुशलः अनेकाहवार्ज्जितपरमदृढसत्वः उदात्तबुद्धिधैर्य्यवीर्य्यत्यागसम्पन्नः सुमहति समरसङ्कटे स्वभुजबलपराक्रमावाप्तविपुलैश्वर्यः सम्यक्प्रजापालनपरः स्वजनकुमुदवनप्रबोधनशशाङ्कः देवद्विजगुरुसाधुजनेभ्यः गोभूमिहिरण्यशयनाच्छादनान्नादि अनेक विधदाननित्यः विद्वत्सुहृत्स्वजनसामान्योपभुज्यमानमहाविभवः आदिकालराजवृत्तानुसारी धर्ममहाराजः * कदम्बानां श्रीविजयशिवमृगेशवर्म्मा कालवङ्गग्रामं

---

१ मूलमें ऐसा ही है, यह 'वैजयन्त्या' होना चाहिये।

२ इन पत्रोंमें यह एक खास बात है कि जहाँ द्वित्वाक्षरोंका इतना अधिक प्रयोग किया गया है वहाँ 'सत्व' और 'तत्व' में 'त' अक्षर द्वित्व नहीं किया गया।

३ मूलमें ऐसा ही है। ४ व्याकरणकी दृष्टिसे यह वाक्य बिलकुल शुद्ध मालूम नहीं होता।

५ यह पद्य मिस्टर फ्लीटके शिलालेख नं० ५ में मनुका ठहराया गया है। आम तौरपर यह व्यासका माना जाता है।

* यह बात एक वार सर्वदाके लिये बतला देनेकी है कि इन प्रतिलिपियोंमें विसर्ग उस चिह्नके स्थानमें लिखा गया है जो कंठ्यवर्णों (gutturals) से पहले विसर्गकी जगह प्रयुक्त हुआ है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्रिधा विभज्य दत्तवान् अत्रपूर्व्वमर्हच्छालापरम-पुष्कलस्थाननिवासिभ्यः भगवदर्हन्महाजिनेन्द्रदेवताभ्य एकोभागः द्वितीयोर्हत्प्रोक्तसद्धर्म्मकरणपरस्यश्वेतपटमहाश्रमणसंघोपभोगाय तृतीयो निर्ग्रन्थमहाश्रमणसंघोपभोगायेति अत्र देवभाग धान्यदेवपूजाबलिचरुदेवकर्म्मकरभग्नक्रियाप्रवर्त्तनाद्यर्थोपभोगाय एतदेवं न्यायलब्धं देवभोगसमयेन योभिरक्षति सततफलभाग्भवति यो विनाशयेत्स पंचमहापातकसंयुक्तो भवति उक्तञ्च बहुभिर्वसुधाभुक्ता राजभिस्सगरादिभिः यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदाफलं नरवरसेनापतिना लिखिता

(३)

विजयत्रिपर्व्वते स्वामिमहासेनमातृगणानुद्धयाताभिषिक्तस्य मानव्यसगोत्रस्य प्रतिकृतस्वाध्याय बर्च्चा[1]पारगस्य आदिकालराजर्षिबिम्बानां आश्रितजनाम्बानां कदम्बानां धर्म्ममहाराजस्य अश्वमेधयाजिनः समरार्जितविपुलैश्वर्य्यस्य सामन्तराजविशेषरत्नसुनागजिनाकम्पदायानुभूतस्य (?) शरदमलनभस्युदितशशिसदृशैकातपत्रस्य धर्म्ममहाराजस्य श्रीकृष्णवर्म्मणः प्रियतनयो देववर्म्मयुवराजः स्वपुण्यफलाभिकांक्षया त्रिलोकभूतहितदेशिनः धर्मप्रवर्त्तनस्य अर्हतः भगवतः चैत्यालयस्य भग्नसंस्कारार्चनमहिमार्थं यापनीयसंङ्घेभ्यः सिद्धकेदारे राजमानेन द्वादश निवर्त्तनानि क्षेत्रं दत्तवान् योस्य अपहर्त्ता स पंचमहापातक संयुक्तो भवति योस्याभिर[3]क्षिता (?) स पुण्यफलमश्नुते उक्तं च बहुभिर्वसुधा भुक्ता राजभिस्सगरादिभिः यस्य यस्य यदाभूमिस्तस्यतस्य तथा (?) फलं अद्भिर्दत्तं त्रिभिर्युक्तं सद्भिश्च परिपालितं एतानि न निवर्त्तन्ते पूर्वराजकृतानि च स्वं दातुं सुमहच्छक्यं दु (?):ख (म) न्यार्त्थपालनं दानं वा पालनं वेति दानाच्छ्रेयोनुपालनं स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेत वसुन्धरां षष्ठिवर्षसहस्राणि-नरके पच्यते तु सः श्रीकृष्णनृपपुत्रेणकदम्बकलकेतुना रणाप्रियेण देवेन दत्ता भू (?) मिस्त्रिपर्व्वते दयामृतसुखास्वादपूतपुण्यगुणेप्सुना देववर्म्मैकवीरेण दत्ता जैनाय भूरियं जयत्यर्हं स्त्रिलोकेशः सर्व्वभूतहितंकरः रागाद्यरिहरोनन्तोनन्तज्ञानदृगीश्वरः

इन तीनों दान पत्रों परसे निम्नलिखित ऐतिहासिक व्यक्तियोंका पता चलता है:—

१ स्वामिमहासेन——गुरु।

२ हारिती—मुख्य और प्रसिद्ध स्त्री।

३ शांतिवर्मा—राजा।

४ मृगेश्वरवर्मा—राजा।

५ विजयशिवमृगेशवर्मा—महाराजा।

६ कृष्णवर्मा—महाराजा।

७ देववर्मा——युवराज।

८ दामकीर्ति—भोजक।

९ नरवर——सेनापति।

इन व्यक्तियोंके सम्बंधमें यदि किसी विद्वान् भाईको, दूसरे पत्रों, शिलालेखों अथवा ग्रंथ-प्रशस्तियों आदि परसे, कुछ विशेष हाल मालूम हो तो वे कृपाकर हमें उससे सूचित करनेका कष्ट उठावें जिससे एक क्रमबद्ध जैन इतिहास तय्यार करनेमें कुछ सहायता मिले।

सरसावा। ता० १८ जुलाई सन् १९२०।

---

१ मूलमें ऐसा ही है। शुद्ध पाठ 'चर्चा' होना चाहिये। २ यह अक्षर 'स' मूलमें नहीं है जो निःसन्देह खोदनेसे रह गया है। ३ मूलमें यह 'रन्धिता' सा मालूम होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुस्तक-परिचय।

१ जैनसाहित्यसंशोधक। यह वही त्रैमासिक पत्र है जिसके निकाले जानेके विचारोंकी सूचना एक आवेदन पत्रद्वारा, जो जैनहितैषी अंक नं० २-३ के साथ बँटा है, दी गई थी। अब यह पत्र पूनासे निकलना प्रारंभ हुआ है। विद्वद्वर मुनि जिनविजयजी इसके संपादक हैं। अभी इसका पहला ही अंक प्रकाशित हुआ है और वही इससमय हमारे सामने है। इस अंकको देखनेसे मालूम होता है कि यह पत्र 'सरस्वती' के आकारमें १२४ पृष्ठों पर निकाला गया है। प्रेस ऐक्टके अनुसार सरकारसे डिक्लेरेशन लेनेकी दिक्कतके कारण, अभी इसे त्रैमासिकका रूप न देकर एक 'निबंधसंग्रह' का रूप दिया गया है। इससे, यद्यपि यह पत्र नियतकालिक नहीं रहता तो भी सालमें इसके चार अंक यथावसर जरूर निकाले जायँगे; इसीसे इसका वार्षिक मूल्य ५) रु० और प्रत्येक अंकका १॥) रुपया रक्खा गया है। इस अंकके साथमें दो सुन्दर चित्र भी लगे हुए हैं, जिनमेंसे महावीर भगवानकी निर्वाणभूमि पावापुरीका रंगीन चित्र बड़ा ही चित्ताकर्षक और मनोमोहक मालूम होता है, दूसरा चित्र चितौड़गढ़के किसी प्राचीन जैनकीर्तिस्तंभका फोटो है जो संभवतः दिगम्बर सम्प्रदायका है। पत्रमें इन दोनों चित्रोंका कोई परिचय विशेष नहीं दिया जिसके दिये जानेकी जरूरत थी। ये दोनों चित्र आराके श्रीयुत कुमार देवेंद्रप्रसादजीने अपने खर्चसे तय्यार कराकर पत्रको भेट किये हैं। इस अंकमें प्रायः चार लेख हिन्दीके, चार गुजरातीके और दो अंग्रेजीके, इस तरह तीन भाषाओंके प्रायः दस लेख हैं। लेख प्रायः सभी अच्छे, पढ़ने और विचार किये जानेके योग्य हैं। 'हरिभद्रसूरिका समयनिर्णय' नामका हिन्दी लेख बड़े महत्त्वका है, अनेक ऐतिहासिक बातोंको लिये हुए है और बहुत कुछ परिश्रम तथा परिश्रमके साथ लिखा गया है। वास्तवमें यह लेख उस संस्कृत निबंधका अनुवाद जान पड़ता है जिसे मुनि जिनविजयजीने, गत नवम्बर मासमें होनेवाली, पूनाकी ओरियंटल कान्फरेंसके सामने पढ़ा था और जो अब चार आने मूल्यमें उक्त पत्रके आफिससे मिलता है। अथवा यह भी संभव है कि पहले यह लेख हिन्दीमें ही तय्यार हुआ हो और फिर इसीका संस्कृत अनुवाद उक्त कान्फरेंसमें पढ़ा गया हो। कुछ भी हो, मुनिजीने पत्रमें इस विषयका कोई नोट नहीं दिया। दूसरा विस्तृत हिन्दी लेख 'सिद्धसेन दिवाकर और स्वामी समंतभद्र' के विषयका वह है जो जैनहितैषीके पिछले कई अंकोंमें प्रकाशित हो चुका है। तीसरा हिन्दी लेख 'हरिषेणकृत कथाकोश' हितैषीके इस अंकमें उद्धृत किया जाता है। गुजराती लेखोंमें डाक्टर हर्मन जैकोबीकी लिखी हुई 'कल्पसूत्रकी प्रस्तावना' का अनुवाद, और पं० बेचरदास जीवराजजी न्याय-व्याकरणतीर्थका लिखा हुआ 'जैनागमसाहित्यकी मूल भाषा क्या थी और अर्धमागधी किसे कहते हैं' इस आशयका लेख, ये दोनों ही लेख खास तौरपर ध्यानके साथ पढ़े जाने और विचार किये जानेके योग्य हैं। हमारे खयालमें पत्र बहुत अच्छा है और छपाई, सफाई और कागजकी दृष्टिसे भी कुछ बुरा नहीं है। ऐसे एक पत्रकी जैनसमाजमें बड़ी जरूरत थी। आशा है इस पत्रके द्वारा जैनइतिहासकी बहुतसी त्रुटियाँ दूर होंगी, अनेक नई नई बातें मालूम होंगी, प्राचीनसाहित्यकी खोज होगी और साथ ही, तत्त्वज्ञान पर भी कुछ अच्छा प्रकाश पड़ेगा। इतिहास-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रेमी और नये नये अनुसंधानोंको जाननेके इच्छुक प्रत्येक दिगम्बर और श्वेताम्बर जैनी भाईको इसका ग्राहक होकर संपादक तथा प्रकाशकके उत्साहको बढ़ाना चाहिये। अजैन विद्वान् भी इससे बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं। मँगानेका पता-मैनेजर 'जैनसाहित्यसंशोधक' ठि० भारत जैन-विद्यालय, फर्गुसन कालिज रोड, पूना सिटी है। अन्तमें हम इतना निवेदन कर देना उचित समझते हैं कि इस पत्रमें संपादकीय विचार हिन्दीमें प्रकट होने चाहियें और साथ ही शुद्ध छपनेकी ओर कुछ अधिक ध्यान रक्खे जानेकी जरूरत है।

२ **जैसवाल जैन**। मासिकपत्र। सम्पादक-महेन्द्र। मूल्य, १) रु० वार्षिक। मिलनेका पता, जैसवाल जैन कार्यालय, मानपाड़ा, आगरा।

यह पत्र भारतवर्षीय जैसवाल जैन सभाका मुखपत्र है और कोई ढाई सालसे जारी है। तीसरे सालका पहला संयुक्त अंक नं० १-२ इस समय, हमारे सामने है, बादके अंक शायद अभी तक प्रकाशित नहीं हुए। इस अंकके लेख पिछले सालके अंकोंकी अपेक्षा अच्छे हैं और अनेक विद्वानोंके लिखे हुए हैं। संपादक महाशयने इस अंकको खास अंकके तौर पर निकालनेका विचार प्रकट किया था और ऐसा लिखकर कुछ विद्वानोंको लेख भेजनेकी प्रेरणा भी की थी। परंतु किसी वजहसे फिर वे इसे खास अंकके तौर पर नहीं निकाल सके। अस्तु यह पत्र जैसवाल जैनोंकी उन्नतिके लिये बहुत कुछ प्रयत्नशील रहता है, अतः हमारे जैसवाल भाईयोंको खास तौरसे इसका ग्राहक होना चाहिये और इस तरह अपने जातीयपत्रके उत्साहको बढ़ाकर उन्नतिमें अग्रसर होनेके लिये सहायता देनी चाहिये।

३ **श्रीशारदा**—सचित्र मासिकपत्रिका। संपादक, साहित्यशास्त्री पं० नर्मदाप्रसाद मिश्र, बी. ए., विशारद। मूल्य, ५) रु० वार्षिक, मिलनेका पता, प्रबंधक 'श्रीशारदा,' दीक्षित-पुरा, जबलपुर।

यह पत्रिका हालमें नई प्रकाशित होनी शुरू हुई है। अभी तक इसके चार अंक निकले हैं। आकार इसका 'सरस्वती' जैसा और पृष्ठसंख्या ६८ के करीब है। इसमें हिन्दीके अच्छे अच्छे प्रसिद्ध विद्वानोंके लेख निकलते हैं। प्रत्येक अंकमें अधिकांश लेख बहुत कुछ उपयोगी, पढ़ने तथा विचारनेके योग्य होते हैं। हिन्दीकी इसे उच्चकोटिकी पत्रिका समझना चाहिये। यदि यह बराबर चलती रही तो इसके द्वारा हिन्दी संसारका बहुत कुछ उपकार होना संभव है। हिन्दी भाषाके प्रेमियोंको इसे जरूर अपनाना चाहिये।

४ **वैद्य**—मासिकपत्र। संपादक, वैद्य शंकर-लालजी (जैन)। मूल्य, १) रु० वार्षिक। मिलनेका पता, वैद्य शंकरलाल हरिशंकर, आयुर्वेदोद्धारक औषधालय, मुरादाबाद।

यह अपने विषयका एक अच्छा पत्र है और कई वर्षसे जारी है। समय समय पर इसमें अनेक रोगोंकी ओषधियोंके नाना वैद्योंद्वारा किये हुए अनुभूत तथा परीक्षित प्रयोग भी निकला करते हैं जिनसे पाठक बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं। कविताएँ भी इसमें अपने ही विषयकी मनोरंजक रहती हैं। इस वर्षका चौथा अंक इस समय हमारे सामने है। इसके प्रायः सभी लेख पढ़नेयोग्य हैं, खासकर शिशुका प्राकृतिक खाद्य और मानसिक रोग नामके लेख 'स्वास्थ्य-सर्वस्व' नामकी कविता भी अच्छी है, जिसका प्रथम पद्य इस प्रकार है:—

सुखसम्पतिसे भरा सदन है, वर वैभव है।
प्रभुता है, पाण्डित्य, प्रशंसा, गुणगौरव है॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुर-दुर्लभ बहुमूल्य भवनमें भोग भरे हैं॥
हैं सब निष्फल, जो शरीरमें रोग भरे हैं॥
परिणत होगी कार्यमें, तभी शास्त्रकी योग्यता।
धर्म, अर्थ, कामादिप्रद, जो होगी आरोग्यता॥

५ गुणस्थानक्रमारोह, सानुवाद। लेखक, श्रीयुत मुनि तिलकविजयजी। प्रकाशक श्रीआत्मतिलक-ग्रंथ–सोसायटी, रतनपोल, अहमदाबाद। पृष्ठसंख्या, २००। मूल्य, बारह आने।

यह मूल ग्रंथ अपने विषयका एक छोटासा—१३६ पद्योंका–संग्रहग्रंथ है जिसे श्रीरत्नशेखर सूरि नामके श्वेताम्बर आचार्यने अनेक प्राचीन ग्रंथों परसे उद्धृत करके बनाया है। ग्रंथका विषय उसके नामसे ही प्रकट है। इसमें १४ गुणस्थानोंका संक्षेपसे स्वरूपवर्णन किया गया है। मूलकी भाषा संस्कृत और अनुवादकी भाषा हिन्दी है। अनुवादक हैं मुनि तिलकविजयजी पंजाबी। आपने अनुवादके साथ साथ अपनी व्याख्याएँ लगाकर ग्रंथकी उपयोगिताको बहुत कुछ बढ़ानेका यत्न किया है। इन व्याख्याओंमें ही आपने श्रावकके बारह व्रतों, चार प्रकारके ध्यानों और १४ मार्गनाओंका भी कुछ विस्तारके साथ वर्णन कर दिया है जो मूलमें नहीं है। अनुवाद प्रायः अच्छा हुआ है और सुबोध भाषामें लिखा गया है। छपाई, सफाई और कागज भी सब अच्छे हैं। सुन्दर जिल्द बँधी हुई है। परंतु छपनेमें अनेक स्थानोंपर कुछ अशुद्धियाँ रह गई हैं। बाईसवें श्लोकमें 'त्रितुर्येवा' का अर्थ 'अथवा चतुर्थ भवमें' ऐसा किया गया है जो ठीक नहीं, उसमें चतुर्थसे पहले 'तृतीय' शब्द और आना चाहिये था। हमारे खयालमें इस प्रकारकी अशुद्धियाँ भी छापेकी ही अशुद्धियाँ मालूम होती हैं। इनके सिवाय पुस्तकमें उर्दू फार्सीके शब्दोंके कुछ अशुद्ध प्रयोग भी पाये जाते हैं, जैसे नसा, होस, याने, दानत, पेस इत्यादि। पुस्तकमें विषय-सूची नहीं लगाई गई जिसका लगना बहुत जरूरी था। इसी तरह श्लोकानुक्रमणिका भी नहीं है। फिर भी पुस्तक उपयोगी, पढ़ने और संग्रह किये जानेके योग्य है। साथमें, मुनि तिलकविजय और वल्लभविजयजीके दो फोटू भी हैं।

६ परिशिष्ट पर्व, प्रथम व द्वितीय भाग। मूल्य, प्रथम भाग बारह आने, द्वितीयभाग आठ आने। मिलनेका पता, 'श्रीआत्मतिलक-ग्रंथ–सोसायटी, अहमदाबाद।'

इस पुस्तकके लेखक भी मुनि तिलकविजयजी पंजाबी हैं। यह श्वेताम्बराचार्य श्रीहेमचंद्रके 'परिशिष्ट पर्व' नामक संस्कृत ग्रंथका अनुवाद है। अनुवादके साथमें मूल लगा हुआ नहीं है और न मूलसे अनुवादको जाँचनेका हमें अवसर मिला। पुस्तकमें श्वेताम्बर सम्प्रदायानुसार, महावीरस्वामीके बाद होनेवाले जम्बूस्वामी आदि खास खास आचार्योंका जीवनचरित्र है। इतिहासकी दृष्टिसे पुस्तक अच्छी पढ़ने और संग्रह किये जानेके योग्य है। इस पुस्तकके साथ भी विषयसूची लगी हुई नहीं है। पहले भागमें मुनि तिलकविजय और उनके गुरु मुनि ललितविजयजीके दो सुन्दर फोटू लगे हुए हैं।

७ नकली और असली धर्मात्मा। यह साधारण हिन्दी भाषामें लिखी हुई २०० पृष्ठकी पुस्तक समाजके चिरपरिचित विद्वान् बाबू सूरजभानजी वकीलकी बनाई हुई है, 'सत्योदय' मासिकपत्रके उपहारमें बाँटी गई है, और इस समय बाबू चंद्रसेनजी जैन वैद्य इटावाके पाससे आठ आने मूल्यमें मिलती है।

पुस्तकमें कुछ औपन्यासिक ढंगसे, एक कथाके रूपमें, नकली और असली धर्मात्माओंका चित्र खींचा गया है। चित्र एक नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनेक हैं और वे सब बड़े ही हृदयग्राहीं तथा सत्यप्राय मालूम होते हैं। बाबू साहब सामाजिक घटनाओंका चित्र खींचनेमें बहुत कुछ सिद्धहस्त हैं। उनका यह चरित्र-चित्रण निःसन्देह अच्छा हुआ है। धर्मात्मापनेकी कुछ रजिष्टर्ड—नुमायशी क्रियाओंको करनेवाले कैसे कैसे बेईमानी और अधर्मके काम किया करते हैं उनका इस पुस्तकमें अच्छा दिग्दर्शन कराया गया है। आजकल ऐसे ही नकली धर्मात्माओंका आधिक्य है—साथ ही, उक्त क्रियाओंको न करते हुए भी, असली धर्मात्माओंकी परिणति शील-शांति-संतोषपूर्वक कैसी ईमानदारीको लिये हुए, सत्यनिष्ठ, निष्कपट और दया तथा प्रेममय होती है, यह भी दर्शाया है। यद्यपि यह पुस्तक खास जैनियोंको लक्ष्य करके लिखी गई है और दूसरोंकी तरफ सिर्फ कुछ इशारा ही किया गया है, तो भी दूसरे धर्मावलम्बी इससे बहुत कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। अच्छा होता यदि दूसरे धर्मके धर्मात्माओंके भी इसमें खास खास चित्र रहते और इसे एक अच्छे चित्रालयका रूप दिया जाता। अस्तु, पुस्तक उपयोगी, सब स्त्रीपुरुषोंके पढ़ने और संग्रह किये जानेके योग्य है। छपाई पुस्तककी कुछ अच्छे ढंगसे नहीं हुई, उसमें बहुतसी अशुद्धियाँ भी पाई जाती हैं और साथ ही कागज भी घटिया लगाया गया है। आशा है दूसरी आवृत्तिमें इस प्रकारकी त्रुटियोंके दूर करनेका यत्न किया जायगा।

८ **एक आदर्श जीवन**। ले०, पं० कन्हैयालालजी जैन, कस्तला। प्रकाशक, श्री आत्मानंद जैन ट्रैक्ट सोसायटी, अम्बालाशहर। मूल्य, एक आना।

इस पुस्तकमें सम्राट् अकबर द्वारा पूजित श्वेताम्बराचार्य श्रीहीरविजयसूरिका ७८ पद्योंमें संक्षिप्त जीवन वृत्तांत है। रचना प्रायः अच्छी है और पुस्तक पढ़ने योग्य है। कहीं कहीं कुछ अशुद्धियाँ जरूर पाई जाती हैं जिनसे छंदोभंग हो गया है।

हिन्दी ज्ञानार्णव।

अलीगंज जि० एटासे बाबू कामताप्रसादजी पी० जैन लिखते हैं कि मैं स्थानीय मंदिरजीमें शास्त्रोंके कुछ अस्तव्यस्त पत्रोंको देख रहा था, तो उनमें एक पत्र पर अत्यंत ही मनोहर, भावपूर्ण—परंतु कठोर छंदोंको संकलित देखा। प्रारंभमें लिखा हुआ है 'हिन्दी ज्ञानार्णवके छंद;' फिर सवैया ३१ सा और दोहोंमें वृद्धाधिकार सम्यग्ज्ञानाधिकार आदि विषयों पर कविता है; अन्तमें लेख है कि "मिती आश्विनसुदी ३ जीवालालने सं० १८६५ वि० में लिखा।" इससे मालूम होता है कि हिन्दीमें भी 'ज्ञानार्णव' नामका कोई ग्रंथ बना है जिसपरसे जीवालालने अपनी रुचि तथा आवश्यकताके अनुसार कुछ छंदोंको उक्त पत्र पर उद्धृत कर रक्खा था। यह ग्रंथ कब बना है और किसने बनाया है, इन बातोंका उक्त पत्र परसे कोई पता नहीं चलता। हाँ, इतना पता जरूर चलता है कि ग्रंथ वि० सं० १८६५ से पहलेका बना हुआ हैं। बाबूसाहब लिखते हैं कि "यहाँ पर ऐसा कोई ग्रंथ नहीं है और न मेरे सुननेमें ही कोई हिन्दी ज्ञानार्णव नामक ग्रंथ आया है।" अस्तु; हमारे खयालमें यह वही छंदोबद्ध ज्ञानार्णव होगा जो जैनसिद्धान्तभवन आराकी, हस्तलिखित भाषाग्रंथोंकी, सूचीमें नं० २३७ पर दर्ज है। सूचीमें ग्रंथकर्ताका नाम लक्ष्मीचंद, पत्रसंख्या १११, श्लोकसंख्या ३०००, और लिपिकाल सं० १८६९ दिया है। बाबूसाहबने उक्त पत्र परसे, जिन छंदोंको उद्धृत करके हमारे पास भेजनेकी कृपा की है और जिन्हें हम अपने पाठकोंके परिज्ञानार्थ नीचे प्रकट करते हैं उनमें स्त्रीवर्णनसम्बंधी एक दोहेमें 'चंदबुद्धिकी संपदा' ये शब्द आये हैं। इनसे कविने अपना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नाम 'लक्ष्मीचंद' सूचित किया है, ऐसा ध्वनित होता है। और इस लिये दोनों ग्रंथ एक ही जान पड़ते हैं। परंतु इसका विशेष निर्णय निम्नपद्योंको उक्त ग्रंथमें देखनेसे हो सकता है। आशा है कि आराके कोई भाई या दूसरे किसी स्थानके भाई जहाँ छंदोबद्ध ज्ञानार्णव ग्रंथ हो, इस विषयका स्पष्टीकरण करनेकी कृपा करेंगे।

यहाँ बाबूसाहबके भेजे हुए उक्त पत्रके पद्योंको देनेसे पहले हम अपने पाठकोंपर इतना और प्रकट किये देते हैं कि इन पद्योंपरसे यह ग्रंथ श्रीशुभचंद्राचार्यके संस्कृत ज्ञानार्णवका अनुवाद मालूम नहीं होता। संभव है कि उसका आशय लेकर यह ग्रंथ हिन्दीके नाटक समयसारकी तरह स्वतंत्र रचा गया हो। ग्रंथके देखने पर इन सब बातोंका भले प्रकार निर्णय हो सकता है:—

वृद्धसेवा। सवैया ३१—

"त्यागु त्यागु संगकौ अनंगकौ अंदोह (?) जहां,
मुंच मुंच कुप्रपंच मोह-उरझाव रे।
जानि जानि एक तत्व आतमीक नीके करि,
एकमेक रमि रहु चारितके चाव रे॥
सुनि सुनि सीख गुरु जिनकी समाधि भजि,
तजि तजि विषयविकारकौ विभाव रे।
करु करु एक पुरुषारथ मुकतिहेतु,
देख देख निजरूप कैसो है रे बावरे॥ १॥

दोहा—

सुखनिधान विज्ञानघन, विगतविश्वपरचार।
आपुनहीते पाइए, प्रीतमतत्वविचार॥"

स्त्रीवर्णन। सवैया ३१—

"जाति है न निंद्य कहूँ, निंद्य है कुचालि चालि,
सारी हैं न नारी बुरी बुरी ये बुरी कहीं।
दूषन है कोऊ कुलभूषन है कोऊ तातें,
भूषनरु दूषनकौ संग एह है मही।
भवभीतहारी सबश्रुतज्ञानधारी, जो ये
निंदीं साधु नारी तोऊ बड़ाबड़ी है नहीं।
शील सावधान, संयमसहित ज्ञान नाहीं (?)
नहीं निंदनीक ++ ऐसी वानी है सही॥

दोहा—

यह सरूप लखिया लख्यौ, नारि सुभासुभ जाति।
चंदबुद्धिकी संपदा, ताहीको नियरात॥"

सम्यक्ज्ञानमहिमा। सवैया ३१—

"दुरति तिमिरको दिनेस यौं जिनेस कहै
मोक्ष इंदिराकौ, यहै इंदीवर (?) एक है।
मदन महाभुजंग मंत्र साँचौ जगमांहि,
चित्त गज समनकों सिंह याकौ कै कहें॥
व्यसन सघन [घन] मथन समीरसम
जगतत्व देखिवेकौ दीपक विवेक है।
विषय सफर जाल कालको विसाल साल,
साधु साधु ज्ञान एक आतमीक टेक है॥
याही जग कक्षमें विपक्ष जगजीवनकौ,
तक्षक कीनास विष व्यापि रह्यो जनमें।
क्रोध ऊंचे सैलसम कुटिल सरितगति
पतन यतन विनु होत भव वनमें॥
विषई विरंध (?) फिरैं विधुरित प्रानीगन,
तौलौं जौलौं ज्ञानभानु प्रघटै न मनमें।
लवधि विमल ज्ञान विमल प्रमान रहै,
राते सुख आतमीक संपतिके गनमें॥

दोहा—

सुखद दसा सारी चहै, वंछित चितकौ आप।
साधु एक तू ज्ञान गुन तजिके और कलाप।"

[क्रोधवर्णन] सवैया—

"द्वारिकाकौ दाह कीनो द्वीपाइन क्रोधवस,
यादव जराये सारे पाप न विचार्यो है।
आप पर दोऊ कोऊ पावें अपकार एहु,
साथ हौ अनादिके या चेतन उचार्यो है॥
पापको संतापीको मिलापी है नरक देन,
याहीते महंत जन नातो तोरि डार्यो है।
तातें समसेवी जीव क्रोधकौं निवारि दूरि,
आगम अभ्यासें जीवें भ्रमको निवार्यो है।

दोहा—

क्रोधअग्निकौं एक ही, उपसावने समर्थ।
क्षमानदी सम जलभरी, न रहै त्रषा अनर्थ॥"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्म और समाज।

(प्रतिभासे उद्धृत।)

समाजके लिए धर्मकी आवश्यकता है या नहीं ? इस प्रश्न पर कुछ अपने विचार प्रकट करना ही आज इस लेखका उद्देश है। प्राचीन और नवीन अथवा पूर्व और पश्चिम इन दोनोंके संघर्षसे यह प्रश्न उत्पन्न हुआ है। पूर्वी सभ्यता सदासे धर्मकी पक्षपातिनी रही है और उसने धर्मको समाजमें सबसे ऊँचा स्थान दिया है। पश्चिमी सभ्यता इस समय चाहे उसकी विरोधिनी न हो, पर उससे उदासीन अवश्य है और कमसे कम समाजकी उन्नतिके लिए वह उसे आवश्यक नहीं समझती। उसकी सम्मतिमें बिना धर्मका आश्रय लिए भी नैतिक बलके सहारे मनुष्य अपनी वैयक्तिक और सामाजिक उन्नति कर सकते हैं।

यद्यपि पहले पश्चिम भी धर्मका ऐसा ही अनन्य भक्त था जैसा कि इस समय भारतवर्ष। पर मध्यकालमें कई शताब्द तक वहाँ धर्मके कारण बड़ी अशांति मची रही। धर्ममदसे उन्मत्त होकर समाजने बड़े बड़े विद्वानों और संशोधकोंके साथ वह सलूक किया जो लुटेरे मालदारोंके साथ करते है। ५० वर्ष तक लगातार जारी रहनेवाला यूरोपका धर्मयुद्ध प्रसिद्ध ही है। इसलामने जो सलूक ईसाइयोंके साथ किया उसको जाने दीजिए, क्योंकि वह एक भिन्न धर्म था। ईसाई धर्मकी ही दो शाखाओंने, जिनका नाम कैथलिक और प्रोटेस्टेन्ट है, एक दूसरेके साथ जैसे जैसे अत्याचार और अमानुषिक बर्ताव किये हैं उनपर अब तक यूरोपका इतिहास रुधिरके आँसू बहा रहा है। इसलिए अब सभ्यता और उन्नतिके युगमें पश्चिमनिवासियोंकी यदि धर्म पर वह श्रद्धा नहीं है जो उनके पूर्वजोंकी थी तो वह सकारण है। यद्यपि पूर्वापेक्षा अब उनके धर्मका भी बहुत कुछ संस्कार हो गया है और शिक्षाकी उन्नतिके साथ साथ जिसमें यूरोप और अमेरिकाने सबसे अधिक भाग लिया है, उनके धर्ममें भी सहिष्णुता, स्वतन्त्रता और उदारताकी मात्रा बढ़ गई है, तथापि धर्मवादके परिणामस्वरूप जो कड़वे फल उनको चखने पड़े हैं, उन्होंने उनको धर्मकी सीमा नियत कर देनेके लिए बाधित किया, तदनुसार उन्होंने धर्मकी अबाध सत्तासे अपने समाजको मुक्त कर दिया। अब वहाँ यही नहीं कि समाजकी शासन-सत्तामें धर्म कुछ विक्षेप नहीं डाल सकता, किन्तु व्यक्तिस्वातन्त्र्य और सामाजिक प्रबंधमें भी कुछ हस्तक्षेप नहीं कर सकता और बहुतसी बातोंके समान धर्म भी एक व्यक्तिगत बात मानी जाती है, जिसका जी चाहे, किसी धर्मको माने, न चाहे न माने। माननेसे कोई विशेष स्वत्व पैदा नहीं होते, न माननेसे कोई हानि नहीं होती।

यह तो रही पश्चिमकी धार्मिक अवस्था, अब रहा पूर्व। यद्यपि पूर्वमें सर्वत्र ही धर्मका प्राधान्य है तथापि भारतवर्षमें तो उसका एकाधिपत्य राज्य है। यद्यपि यहाँकी शासनसत्ता पश्चिमी लोगोंके हाथमें होनेसे अब उसमें वह हस्तक्षेप नहीं कर सकता, तथापि भारतीय समाजोंमें और उनकी विविध शाखाओंमें उसका अप्रतिबन्ध अधिकार है। हम जन्मसे लेकर मृत्युपर्यन्त चाहे किसी दशामें रहें, कुछ करें, धार्मिक बन्धनसे मुक्त नहीं हो सकते।

हमको केवल अपने पूजा-पाठ या संस्कारोंमें ही धर्मकी आवश्यकता नहीं किन्तु हमारा हर काम चाहे वह सामाजिक हो या व्यक्तिगत धर्मके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बन्धनसे जकड़ा हुआ है । यहाँतक कि हमारा खाना पीना, जाना आना, सोना, जागना और देना लेना इत्यादि सभी बातोंमें धर्मकी छाप लगी हुई है। हम हिन्दू होकर सब कुछ छोड़ सकते हैं पर धर्मको किसी अवस्थामें भी नहीं छोड़ सकते। हमारे पूर्वज धर्मको ही अपना जीवनसर्वस्व मानते थे और यही उपदेश शास्त्रोंमें वे हमको भी कर गये हैं। मनु लिखता है:—

धर्मएव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मानोधर्मो हतोऽवधीत ॥

प्राचीन आर्य लोग धर्मको केवल परलोकका ही साधन नहीं मानते थे, किन्तु इसलोकका बड़ेसे बड़ा सुख भी धर्मके बिना उनकी दृष्टिमें हेय था। त्रिवर्गमें जिसका सम्बन्ध संसारसे है, धर्म ही सबसे पहला और मुख्य माना गया है। कणाद तो अपने वैशेषिक दर्शनमें अभ्युदयकी नींव भी धर्मपर ही रखता है। यथा:—

यतोऽभ्युदय निःश्रेयससिद्धिः स धर्मः ।

अतएव हम अपने शास्त्रोंको मानते हुए और पूर्वजों पर श्रद्धा रखते हुए किसी दशामें भी धर्मकी उपेक्षा नहीं कर सकते।

पश्चिमकी शिक्षाका प्रभाव जिन लोगों पर पड़ा है, वे चाहे हमारे स्वदेशी बान्धव ही क्यों न हों, हमको भी यह सलाह देते हैं कि हम भी यदि इस जातीय उन्नतिकी दौड़में भाग लेना चाहते हैं तो धर्मकी कोई ऐसी सीमा नियत कर दें, जिससे आगे यह अपने पैर न फैला सके। उनका यह कथन है कि जबतक हमारे हरएक काममें धर्मका पचड़ा लगा हुआ है, हम समयकी गतिके साथ नहीं चल सकते और न अपना कोई जातीय आदर्श बना सकते हैं। जो लोग हमको यह सलाह देते हैं, हम उनके सद्भावमें कोई संदेह नहीं कर सकते और यह भी हम मानते हैं कि देशहितकी प्रेरणासे ही वे यह सलाह हमको देते हैं। पर हाँ यह हम अवश्य कहेंगे कि वर्तमान धार्मिक अवस्थाके विकृत स्वरूपको देख कर और हमारे धर्मके वास्तविक तत्त्व पर गम्भीर दृष्टि न डाल कर ही यह सम्मति दी जाती है । यदि धर्मको उसके वास्तविक रूपमें देखा जाय तो वह कदापि उपेक्षणीय नहीं हो सकता । यद्यपि विदेशियोंके संसर्गसे या हमारे दौर्भाग्यसे यहाँ भी धर्मका विधेय वह नहीं रहा, जो प्राचीन कालमें था । हमें यह कहनेमें कुछ भी संकोच नहीं है कि सभ्यताके आदि गुरु आर्योंका धर्म मतवादसे सर्वथा पृथक् है।

इस मतवादको धर्म समझनेका यूरोपमें यह परिणाम हुआ कि वह राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्रसे ही अलग नहीं किया गया किन्तु मानसिक और नैतिक उच्चभावोंकी रीतिके लिए भी अनावश्यक समझा गया । उसका सम्बन्ध केवल उपासनालयोंसे रह गया और वह भी रविवारके दिन घंटे दो घंटेके लिए । बहुतसे स्वतन्त्रता देवीके उपासक तो इससे भी मुक्त हो गये। हम उनकी बुद्धिमत्ताकी प्रशंसा करते हैं। यदि वे ऐसा न करते और हमारी तरहसे अपनी विचारशक्तिको कल्पनाशक्तिके अधीन कर देते तो आज उनके देशमें विद्या और बुद्धिका यह विकास, कलाकौशलकी यह उन्नति और उद्योग तथा व्यवसायका यह प्रभाव देखनेमें न आता । यदि हमारे धर्मकी भी ऐसी ही व्यवस्था हो औरवह वास्तवमें मतवादका प्रवर्तक हो, तब तो हमको भी कृतज्ञताके साथ उनकी यह सलाह मान लेनी चाहिए और यदि ऐसा नहीं है तो हमें धर्मका वास्तविक तत्त्व उन्हें समझाना चाहिए।

---

१ जैनाचार्य श्रीसोमदेवसूरिने अपने नीतिवाक्यामृतमें भी धर्मका लक्षण इन्हीं वाक्योंमें दिया है।
—सम्पादक।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हम यहाँ पर कह देना चाहते हैं कि मत या संप्रदायके अर्थमें धर्म शब्दका प्रयोग करना भी हमने अधिकतर विदेशियोंहीसे सीखा है। जब विदेशी भाषाओंके 'मजहब' 'रिलीजन' शब्द यहाँ प्रचलित हुए, तब भूलसे या स्पर्धासे हम उनके स्थानमें 'धर्म' शब्दका प्रयोग करने लगे। परन्तु हमारे प्राचीन ग्रन्थोंमें जो विदेशियोंके आनेसे पूर्व रचे गये थे, कहीं पर भी 'धर्म' शब्द मत, विश्वास या संप्रदायके अर्थमें प्रयुक्त नहीं हुआ, प्रत्युत उनमें सर्वत्र स्वभाव और कर्त्तव्य इन दो ही अर्थोंमें इसका प्रयोग पाया जाता है। प्रत्येक पदार्थमें उसकी जो सत्ता है, जिसको स्वभाव भी कहते हैं, वही उसका धर्म है। जैसे वृक्षका धर्म जड़ता और पशुका धर्म पशुता कहलाती है, ऐसे ही मनुष्यका धर्म मनुष्यता है। वह मनुष्यता किस वस्तु पर अवलम्बित है? इसमें किसीका मतभेद नहीं हो सकता कि मनुष्यताका आधार बुद्धि है। बुद्धिकी दो शाखायें हैं, एक कल्पनाशक्ति, दूसरी विचारशक्ति। कल्पनाशक्ति, सन्देहात्मक है और विचारशक्ति निर्णयात्मक। बिना सन्देहके किसी बातका निर्णय हो नहीं सकता। अतएव अपनी कल्पनाशक्तिसे सन्देह उठा कर पुनः विचारशक्तिसे उसका निर्णय करनेमें जो समर्थ है, वही मनुष्य है। संसारमें सिवाय असभ्य और वन्य लोगोंके और कौन ऐसा मनुष्य होगा, जिसको ऐसे धर्मकी आवश्यकता न होगी, जो उनको मनुष्य बनाता है?

यह तो हुआ सामान्य धर्म, अब रहा विशेष धर्म, इसीका दूसरा नाम कर्त्तव्य भी है। मनुष्य चाहे किसी दशा में हो, उसका कुछ न कुछ कर्त्तव्य होता है। यदि राजा राजधर्मका, प्रजा प्रजाधर्मका, स्वामी प्रभुधर्मका, सेवक सेवाधर्मका, पिता पितृधर्मका, पुत्र पुत्रधर्मका, पति पतिधर्मका, स्त्री स्त्रीधर्मका, गृहस्थ गृहस्थधर्मका और यति यतिधर्मका साधन न करें तो फिर संसारमें न कोई मर्यादा रहे, न व्यवस्था। संसारमें शान्ति और व्यवस्था तभी रह सकती है, जब प्रत्येक मनुष्य कर्तव्यके अनुरोधसे अपने अपने धर्मका पालन करे। अतएव इसमें कुछ भी अत्युक्ति नहीं कि धर्म ही संसारकी प्रतिष्ठाका कारण है। धर्मके इसी महत्त्वको लक्ष्यमें रखकर तैत्तिरीयारण्यकमें यह कहा गया है:—

धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा, लोके धर्मिष्ठं प्रजा उपसर्पन्ति, धर्मेण पापमपनुदन्ति धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितम्॥

अब हम कुछ प्रमाण भी जिनमें 'धर्म' शब्द प्रस्तुत अर्थमें प्रयुक्त हुआ है, उद्धृत करते हैं। महाभारतमें धर्मका निर्वचन इस प्रकार किया गया है:—

धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मेण विधृताः प्रजाः।
यः स्याद्धारणसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः॥

धात्वर्थसे भी इसीकी पुष्टि होती है, क्योंकि 'धृ' धातु धारणके अर्थमें है।

यो ध्रियते दधाति वा स धर्मः।

जो धारण किया हुआ प्रत्येक पदार्थको धारण करता है, वह धर्म है। अग्निमें यदि उसका धर्म तेज न रहे फिर कोई उसे अग्नि नहीं कहता, ऐसे ही मनुष्य यदि अपने धर्मको त्याग दे तो फिर केवल आकृति और बनावट उसकी मनुष्यताकी रक्षा नहीं कर सकती। उपनिषदोंमें जहाँ 'धर्मञ्चर,' 'धर्मान्न प्रमदितव्यम्' इत्यादि वाक्य आते हैं, वहाँ भी इससे कर्तव्य या सदाचारका ही ग्रहण होता है। मनुने धर्मके धृत्यादि जो दस लक्षण बतलाये हैं और जिनको धारण करके एक नास्तिक भी धर्मात्मा बन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सकता है, उनमें मतवादका गन्ध तक नहीं है। गीतामें भीः—

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।

इत्यादि वाक्योंमें 'धर्म' शब्द कर्तव्यका ही सूचक है, क्योंकि मनुष्यके लिए प्रत्येक दशामें अपने कर्त्तव्यका पालन करना ही सर्वोपरि धर्म है, अपने कर्त्तव्यसे उदासीन होकर दूसरोंका अनुकरण करना चाहे वे अपनेसे श्रेष्ठ भी हों, अनधिकारचर्चा है। जब मनुष्यके आचार या कर्त्तव्यका नाम धर्म है तब यदि हमारे पूजनीय पूर्वजोंने उसको मनुष्यकी प्रत्येक दशासे (चाहे वह आत्मिक हो या सामाजिक या वैयक्तिक) सम्बद्ध किया तो इससे उनका यह अभिप्राय कदापि नहीं हो सकता था कि उन्होंने हमको मतवादके जालमें फँसानेके लिए धर्मकी टट्टी खड़ी की। उन्होंने तो हमारे मनुष्यत्वकी रक्षाके लिए ही प्रत्येक कार्यमें इसका आयोजन किया था।

अब प्रश्न यह होता है कि जब धर्म मतसे पृथक् है तो फिर मतवादमें या भ्रमात्मक विश्वासोंमें उसका पर्यवसान क्यों कर हुआ? इसका कारण चाहे कुछ हो पर इसमें सन्देह नहीं कि हमारे दौर्भाग्यसे इस समय हमारी धार्मिक अवस्था वह नहीं हैं जो उपनिषदा आर दर्शनोंके समय थी। उस समय सैद्धान्तिक भेद भी हमारे धर्मको कुछ हानि नहीं पहुँचा सकता था, पर आजकल आंशिक भेदको भी हमारा कोमल धर्म सहन नहीं कर सकता। उस समय हिन्दू धर्म इतना उदार था कि वह बौद्ध और जैन जैसे निरीश्वरवादी मतोंको भी अपने क्रोड़में स्थान दे सकता था, पर आजकल का हिन्दूधर्म साकारवादी और निराकारवादियोंको भी मिलकर नहीं रहने देता। पहलेका हिन्दूधर्म सदाचारीको धर्मात्मा और ज्ञानीको मोक्षका अधिकारी (चाहे वह कोई हो) मानता था, पर आजकलका हिन्दूधर्म अपने लक्ष्यसे ही च्युत होकर या तो मत मतान्तरके शुष्क वादविवादमें या पुरानी लकीरको पीटनेमें अपनी शक्तिका दुरुपयोग कर रहा है। संसारके और समस्त विषयोंमें हम विचारशक्तिका उपयोग कर सकते हैं, पर केवल धर्म ही एक ऐसा सुरक्षित विषय है कि जिसमें आँखें बन्द करके दूसरोंके पीछे चलना चाहिए। यदि इसकी कोई सीमा नियत होती, तब भी गनीमत थी, पर अब इस दशामें जब कि इसकी अबाध सत्ता है, कोई भी विषय हमारे लिए ऐसा नहीं रह जाता, जिसमें हम स्वच्छन्द विचरण कर सकें। धर्मके नामसे अब तक हमारे समाजमें जैसे जैसे अनर्थ और अत्याचार हो रहे हैं, उनके कारण हमारे करोड़ों भाई बहन मनुष्य होते हुए पशु जीवन व्यतीत कर रहे हैं। इस बीसवीं सदीमें जब कि अन्य देशवासी राष्ट्र ही नहीं किन्तु राष्ट्रसंघ और साम्राज्यकी स्थापना कर रहे हैं, भारतवर्ष यदि समाज-संगठनके भी अयोग्य है तो उसका कारण भ्रमात्मक संस्कार ही हैं।

हम मानते है कि जैसा धर्मका दुरुपयोग आजकल भारतवर्षमें हो रहा है, और ऐसा कहीं देखनेमें न आवेगा। परन्तु अब प्रश्न यह है कि धर्मका प्रयोग अन्यथा किया जारहा है, क्या इसलिए हम धर्मको ही छोड़ दे? यदि कोई मनुष्य अपनी मूर्खतासे अग्निमें हाथ जला लेता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है तो क्या उसे यह उपदेश करना ठीक होगा कि वह अग्निसे कभी कोई काम न ले या कि उसे अग्निसे काम लेनेकी तरकीब सिखाना ठीक होगा। इसका उत्तर प्रत्येक बुद्धिमान् मनुष्य यही देगा कि दूसरी बात ही होनी चाहिए।

यद्यपि आधुनिक शिक्षा और समयके प्रभावसे आजकल धार्मिक क्षेत्रमें भी असन्तोष और हलचल मची हुई है और प्रत्येक धर्मके अग्रणी और शिक्षित पुरुष यह अनुभव करने लगे हैं कि अब इस बीसवीं शताब्दीकी जनताको इस प्रकाशके युगमें केवल धर्मके नामसे रूढ़िका दास नहीं बनाया जा सकता और न इस बढ़ते हुए हेतुवादके प्रवाहको ही रोका जा सकता है। तथापि वे:—

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसंगिनाम्।

इस नीतिका अनुसरण करते हुए धर्मके विषयमें स्पष्टवादितासे काम नहीं ले सकते। इतना ही नहीं बहुतसे शिक्षित ऐसे भी मिलेंगे जो अपने समाजको प्रसन्न करनेके लिए या उसका विश्वास-भाजन बननेके लिए उसके भ्रमात्मक विश्वासों पर तर्क और विज्ञानकी कलई चढ़ाने लगते हैं। जिस देशमें नैतिक बलकी यह दुर्दशा हो और जहाँ मानके भूखे शिक्षित लोग अशिक्षितोंसे मानभिक्षाकी याचना करें, वहाँ यदि धर्मका ऐसा दुरुपयोग हो रहा है तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? परन्तु प्रश्न यह है, कि जब तक धर्मके सूर्यमें अन्धविश्वासका यह ग्रहण लगा हुआ है क्या हम अपने उद्देश्य और लक्ष्यको प्राप्त कर सकते हैं? हमारे देशके नेता राजनैतिक स्वतंत्रताके लिए तो फड़फड़ा रहे हैं, पर यह धार्मिक परतन्त्रता जो हमें खुली हवामें साँस भी नहीं लेने देती, उनकी दृष्टिमें जरा भी नहीं खटकती। क्या इसीलिए कि यह फाँसी हमने अपने आप लगाई है, इसकी मौत मीठी है?

हमारा वक्तव्य केवल यह है कि यदि धर्म हमारे स्वभाव या कर्त्तव्यका बोधक है, जैसा कि हम अपना अभिप्राय प्रकट कर चुके हैं, तब तो वह हमसे और हम उससे किसी दशामें भी पृथक् नहीं हो सकते। क्योंकि प्रत्येक पदार्थकी सत्ता उसके धर्म पर ही अवलम्बित होती है और ऐसे धर्मकी आवश्यकता न केवल समाजको है किन्तु प्रत्येक व्यक्तिको है। जहाँ राष्ट्र या समाज अपने उस स्वाभाविक धर्मका पालन करें, वहाँ कोई व्यक्ति भी उसकी उपेक्षा न करे। इस दशामें धर्मकी व्यापकता या अबाधसत्ता किसीको अवाञ्छनीय नहीं हो सकती और यदि यह हमारा भ्रम है और वास्तवमें धर्मका अभिप्रेय जैसा कि आजकल माना जा रहा है, मतमतान्तरके काल्पनिक सिद्धान्त और भ्रमात्मक विश्वास हैं, तो हम निःसंकोच अपने देशवासियोंसे यह प्रार्थना करेंगे कि जिस प्रकार पश्चिमवासियोंने धर्मकी सीमा नियत करके अपने सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और औद्योगिक क्षेत्रोंसे उसका प्रतिबन्ध हटा दिया है, ऐसा ही हमको भी करना चाहिए अन्यथा ये भ्रमात्मक विश्वास अपने साथ हमको भी ले डूबेंगे।

आप डुबन्ते बामना ले डूबे जजमान।

—स्पष्टवादी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्पादक जैनगजट और विचार-परिवर्तन ।

(लेखक—श्रीयुत, नाथूराम प्रेमी)

स्वनामधन्य हिन्दी जैनगजटके सम्पादक बरसोंसे एक बड़ा भारी कष्ट उठा रहे हैं । पुराने जैनपत्रोंके संग्रह-समुद्रको मन्थन करके वे अपने पाठक-परिवारके सम्मुख इस तत्त्वरत्नको रख रहे हैं कि इस समय उनके विचारोंसे विरुद्ध लिखनेवाले जितने लेखक हैं वे एक समय उन्हींके अनुयायी थे । समयके प्रभावसे अब उनकी बुद्धि बिगड़ गई है और वे (उनके माने हुए) जैनधर्म पर कुठाराघात कर रहे हैं । इत्यादि । हम जैनगजटके ग्राहकों और पाठकोंको इतना विवेकशून्य नहीं समझते हैं कि वे सम्पादक महाशयके उद्धार किये हुए इस वारुणीरत्नको ही अमृत समझकर पान कर जायँगे और मतवाले बनकर केवल इसी एक दललिके जोर पर उनकी हाँमें हाँ मिलाने लगेंगे, इस कारण हमें सम्पादक महाशयके इस मन्थन-श्रम पर बड़ा तरस आता है और हम चाहते हैं कि वे अपनी शक्ति और समयका व्यय किसी अन्य उपयोगी कार्यके लिए करने लगें तो अच्छा हो ।

मनुष्यके विचार सदा एकसे नहीं रहते । उनमें निरन्तर परिवर्तन हुआ करते हैं । जिस बातको आज एक मनुष्य अच्छा समझता है उसीको कल बुरा समझने लगता है । यह विचार-परिवर्तनशीलता मनुष्यजातिमें है, इसीलिए संसारमें उपदेशकों, गुरुओं और पुस्तकोंकी आवश्यकता है । यदि यह न होती, जन्मसे लेकर मरणतक मनुष्यके एकसे 'कूटस्थ नित्य' विचार रहते, उनमें कभी परिवर्तन नहीं होता, तो सम्पादकमहाशयको रातदिन यह चिल्लाहट न मचानी पड़ती कि धर्म डूबा जा रहा है—उसकी रक्षाके लिए धर्मशिक्षाकी पतवारकी आवश्यकता है । हम सम्पादक महाशयकी अध्यात्म-जीवनीसे परिचित नहीं हैं, शायद वे जन्मसे ही मति-श्रुत-अवधिधारी हों और पूर्वोक्त नियमके अपवाद हों, इसी लिये जहाँके तहाँ, चलता-मलिनता-अगाढ़ता रहित, दूधके धोये जैसे रक्खे हों । परन्तु सभी तो ऐसे नहीं हो सकते हैं । उनकी बुद्धिका विकाश तो क्रम-क्रमसे ही होता है । ऐसी दशामें उनके विचार-परिवर्तनको तिरस्कारकी दृष्टिसे देखना, उन्हें रातदिन कोसना या उन्हें बुद्धिभ्रष्ट बतलाना कहाँकी बुद्धिमानी है !

स्वर्गीय पं० गोपालदासजी बरैया पहले आर्यसमाजी खयालोंके थे, पीछे उनके विचारोंमें परिवर्तन हो गया और वे कट्टर जैन बन गये । स्वामी विद्यानन्द या पात्रकेसरीके विषयमें प्रसिद्ध है कि वे पहले वेदानुयायी पण्डित थे, पीछे देवागमके प्रभावसे उनके विचारोंमें परिवर्तन हो गया और उन्होंने सुप्रसिद्ध तार्किक बनकर जैनधर्मके तर्कसाहित्यको चमका दिया । महावीर भगवानके जितने गणधर थे वे सब प्रायः वेदानुयायी ब्राह्मण थे और इस विचार-परिवर्तनकी महिमासे ही द्वादशांगके ज्ञाता हुए थे । इन सब उदाहरणोंके होते हुए भी यदि कोई विचारपरिवर्तनको बुरा समझे और इसके कारण बिगड़कर जमीन-आसमान एक करने लगे तो इसके सिवाय और क्या कहा जा सकता है कि उसे 'बुद्धिमान्द्य' हो गया है ।

यदि बाबू सूरजभानजी, बाबू जुगलकिशोरजी आदिके और मेरे विचार आजसे दस बीस वर्ष पहले सम्पादक महाशयके ही जैसे थे और अब उनमें परिवर्तन हो गया है, तो इसमें तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है । यह तो स्वाभाविक ही है । मनुष्यका अध्ययन और अनुभव ज्यों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्यों बढ़ता है; त्यों त्यों वह अपनी भूलें समझता है और अपने विचारोंको अधिकाधिक परिष्कृत और स्वच्छ करता जाता है। इसीसे तो मालूम पड़ता है कि वह सत्यान्वेषी है, जिज्ञासु है और उसके हृदयमें किसी तरहका आग्रह या पक्षपात नहीं है। यही तो मनुष्यका मनुष्यत्व है। यही तो उसकी शोभा है।

यदि सम्यग्दृष्टित्वका अर्थ यह है कि उसका धारक आपके समान जीवनभर जहाँका तहाँ बना रहे, टससे मस नहीं होवे, जो बात पकड़ ले उसे मर जानेतक भी न छोड़े, जो कुछ आपने समझ लिया वही सर्वज्ञका वचन और जो दूसरे समझते हैं वह सब मिथ्यात्व, तो महाराज यह सम्यग्दर्शन आपको ही मुबारिक हो, हम तो इसे दूरसे ही नमस्कार करते हैं। यदि दुर्भाग्यसे संसारमें आपके इस अनोखे सम्यग्दर्शनकी ही पूजा होती रहती तो वह अब तक असभ्य अवस्थामें ही पड़ा रहता। न वह समता और अहिंसा आदि तत्त्वोंका स्वर्गीय संदेशा लानेवाले भगवान् महावीर, बुद्धदेव आदि महात्माओंको जन्म दे सकता और न अपनी छातीपरसे घोर अन्धकार-की घटाको दूर करनेमें समर्थ होता। बल्कि दूरतक विचार कर सोचा जाय तो आपके इस जैनधर्मका अभ्युदय भी नहीं होता।

और दूर क्यों जाते हैं, आपका यह तेरह पन्थ या शुद्धाम्नाय क्या है ? यदि इसके संचालक आप ही जैसे टससे मस न होनेवाले होते, जैनधर्मकी छाप लगे हुए सभी शास्त्रोंको सर्वज्ञवचन समझकर चुप हो जानेवाले होते, तो क्या इसकी जड़ जम सकती थी ? उस समय भी इनके विरुद्ध उछल कूद करनेवाले आप ही जैसे मठपतियों भट्टारकों और उनके शिष्यगणोंकी कमी नहीं थी। उन्होंने इनको कोसने और धर्मभ्रष्ट सिद्ध करनेमें भी कोई बात नहीं उठा रक्खी थी। हमने एक बीसपंथी पंडितका बनाया हुआ ग्रन्थ पढ़ा है, जिसमें भट्टारकोंको न माननेवाले तेरहपंथियोंको मुसलमान और म्लेच्छतुल्य बतलाया है ! परन्तु ये लोग चिल्लाते ही रहे और तेरहपन्थका प्रभाव देखते देखते देशव्यापी हो गया। यह सब आगरा और जयपुर आदिके विद्वानोंके विचारपरिवर्तनका ही तो फल था।

विचारोंका परिवर्तन उसी अवस्थामें बुरा कहा जा सकता है जब वह हृदय और बुद्धि-की ताड़नाके बिना, किसी स्वार्थके वश किया जाता है। परन्तु वास्तवमें विचार किया जाय तो उसे विचारोंका परिवर्तन कह ही नहीं सकते। वह तो एक तरह का ढोंग है, छल है, और वञ्चकता है। विचार तो उसके वही रहते हैं जो पहले थे; परन्तु अपना स्वार्थ साधनेके लिए, दूसरोंकी आँखोंमें धूल झोंकनेके लिए, वह कहने लगता है कि अब मेरे विचार पलट गये हैं और अब मैं सत्य मार्ग पर आ गया हूँ। इस तरहके स्वार्थसाधु जिस तरह अपने विचारोंका परिवर्तन प्रकट करने लगते हैं, उसी तरह इन्हींके भाई-बन्धु कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, जिनके विचार तो बदल जाते हैं—अपने समाजके विचारोंको वे बुरा समझने लगते हैं, परन्तु साहसके अभावसे और वर्तमान सम्मान-प्रतिष्ठा आदिके लोभसे वे उन्हें प्रकट नहीं करते हैं—हृदयमें ही छुपाये रहते हैं। उन्हें भय रहता है कि यदि हम अपने असली विचार प्रकट कर देंगे तो समाजमें हमारी इज्जत तीन कौड़ीकी हो जायगी और हमारे स्वार्थोंका घात होने लगेगा। इस इज्जत और आबरूके लिए कोई कोई तो यहाँ तक नीच हो जाते हैं कि अपने विचारोंको तो छुपाते ही हैं, साथ ही उन विचारोंको निर्भीक होकर प्रकट करनेवालोंके प्रति अन्याय और अत्याचारतक करने लगते हैं !

इस समय हमारे समाजकी जो अवस्था है उसके अनुसार मान-सम्मान, आदर-आतिथ्य,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आश्रय-प्रश्रय उन्हीं लोगोंको मिलता है जो गतानुगतिक विचारोंके माननेवाले और प्रकट करनेवाले होते हैं। इस मार्गमें जरा भी कष्ट नहीं है, अतएव इस पर चलनेवालोंकी भी कमी नहीं। परन्तु जो लोग गतानुगतिक नहीं हैं, प्रचलित विचारोंसे विरुद्ध विचार रखते हैं, उनका मार्ग बड़ा ही कण्टकाकीर्ण है। थोड़ेसे इने गिने विचारशीलोंको छोड़कर सभी उनका तिरस्कार करते हैं, उनसे घृणा करते हैं और उन्हें कष्ट देने तकसे भी बाज नहीं आते हैं। अतएव इस पर चलनेका साहस वे ही लोग करते हैं, जो सत्यके अनुयायी हैं, जिनके हृदय है और जो लोगोंके अज्ञान अन्धकारके कारण दुःखी हैं। उन्हें सब तरहके स्वार्थोंको लात मारनी पड़ती है और असह्य कष्टोंका स्वागत करना पड़ता है। ऐसे लोगोंकी संख्या हमारे ही समाजमें नहीं, सभी समाजोंमें कम है और रहेगी।

यह नहीं कहा जा सकता कि उन लोगोंके विचार हमेशा ठीक ही होते हैं—उनसे भूलें होती ही नहीं, परन्तु फिर भी उनके साहसका और सत्यप्रेमका मूल्य है। नितान्त पक्षपाती और अन्धविश्वासीको छोड़कर उनकी सत्यप्रियताकी सभी विवेकी प्रशंसा करेंगे। इसके सिवाय उनमें एक विशेषता और भी रहती है, अर्थात् अपनी भूलके मालूम होते ही वे तत्काल ही उसको सुधार लेते हैं और अपने विचारोंको बदल डालते हैं। उन्हें अपनी बातका आग्रह या हठ नहीं रहता है।

सम्पादक महाशयको चाहिए कि वे जिन जिन लोगोंके विचारपरिवर्तनोंके नमूने पुरानी फाइलोंमेंसे ढूँढ़ ढूँढ़ कर दिया करते हैं, लगे हाथ उनके विषयमें यह भी प्रकट कर दिया करें तो अच्छा हो कि अमुक बाबूके विचार पहले ऐसे थे, पर अब ऐसे हो गये हैं और इसका कारण उसका अमुक स्वार्थ है। अमुक सभाका प्रेसीडेण्ट होनेके लिए, अमुक पदवी पानेके लिए, अमुक धनीसे सहायता पानेके लिए, अथवा इसी तरहके अन्य किसी मतलबसे उसने यह पाप किया है। इसके बतलाये बिना न तो आपका परिश्रम ही सफल हो सकता है और न उस विचारपरिवर्तन करनेवालेको बुरा ही सिद्ध किया जा सकता है।

विचारपरिवर्तकों पर सबसे बड़ा आक्षेप यह किया जाता है कि उनके विचार आर्षग्रन्थों या प्राचीन शास्त्रोंसे विरुद्ध हैं। साधारण जनताके ऊपर सबसे बड़ा प्रभाव इसी बातका पड़ता है और यही सुनकर वह आपेसे बाहर हो जाया करती है। उसमें यह समझनेकी शक्ति नहीं कि संसारमें जो सब ग्रन्थ या पुस्तकें शास्त्र या ग्रन्थ नामसे प्रसिद्ध हैं वे सभी सर्वज्ञभाषित नहीं हैं। उनका प्रत्येक अक्षर और शब्द भगवानकी वाणी नहीं है। प्रायः छद्मस्थोंने ही—जिनमें अल्पज्ञानी भी थे—शास्त्रोंकी रचनायें की हैं। अतः उनसे भूलें भी हो सकती थीं। उनमेंसे बहुतोंने लोगोंकी कल्याणकामनासे जैसा वे जानते थे उसके अनुसार लिखा है, बहुतोंने सुन सुनाकर लिखा है और बहुतोंने कषायादिके वश भी लिखा है। जैनहितैषीमें ऐसे बहुतसे ग्रन्थोंकी समालोचनाएँ हो चुकी हैं जो अभीतक भगवानकी वाणी समझ कर माने पूजे जाते थे; परन्तु वास्तवमें जो जाली हैं और जिनके रचनेवालोंके उद्देश्य अच्छे नहीं थे। इसके सिवाय जैनाचार्योंके कथनोंमें परस्पर मतभेद भी पाया जाता है जिसका कुछ परिचय, शासनभेदादिसंबंधी लेखों द्वारा, समय समय पर हितैषीके पाठकोंको मिलता रहा है। ऐसी दशामें ग्रन्थों या शास्त्रोंकी दुहाई देकर यह हल्ला मचाना कि अमुक लेखक या वक्ता उनके विरुद्ध लिखता या बोलता है, इस लिए उसने जैनधर्म छोड़ दिया—वह भ्रष्ट हो गया—उससे बचना चाहिए—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसकी लिखी हुई पुस्तक या पत्र नहीं पढ़ना चाहिए—कुछ अर्थ नहीं रखता। इस तरहका आन्दोलन—जिसका सारा दार मदार साधारण भोली भाली जनताकी अज्ञानता पर रहता है— अधिक टिकाऊ नहीं होता। कुछ समय तक अवश्य ही इसका कुछ फल दिखलाई देता है; परन्तु ज्यों ही लोग समझने-बूझने लगते हैं—यह आन्दोलनकी दीवाल अररा कर गिर पड़ती है।

यह याद रखना चाहिए कि संस्कृत, प्राकृत या पुरानी ढूँढारी आदि भाषाओंमें लिखे हुए सभी ग्रन्थ शास्त्र नहीं कहला सकते। केवल इसी हेतुसे कि वे अबसे पहलेके लिखे हुए हैं सभी आचार्यों, पण्डितों और भट्टारकोंके लेख मस्तक पर नहीं चढ़ाये जा सकते। किसी बड़े आचार्य या महात्माके नामसे भी अब अधिक समय तक लोग नहीं भुलाये जा सकते। अब तो भगवान् समन्तभद्रके नीचे लिखे हुए लक्षणोंसे युक्त शास्त्र हीं शास्त्र गिने जायँगे और उन्हींके आगे विवेकियों और विचारशीलोंके मस्तक नत होंगे:—

आप्तोपज्ञमनुल्लंघ्यमदृष्टेष्टविरोधकम्।
तत्त्वोपदेशकृत् सार्वं शास्त्रं कापथघट्टनम्॥

अर्थात् जो आप्त या रागद्वेषरहित ज्ञानीका कहा हुआ हो, जिसका खण्डन नहीं हो सके, जो प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रमाणोंसे बाधित न हो, जिसमें तत्त्व या सत्यका उपदेश हो, जो मनुष्यमात्र और जीवमात्रका हितकारक हो और कुमार्गका मिटानेवाला हो वही सच्चा शास्त्र है।

अन्तमें सम्पादक महाशयसे फिर एक बार प्रार्थना है कि वे लोगोंके विचारपरिवर्तनोंको प्रकट करनेमें जो एड़ी-चोटीका पसीना एक कर रहे हैं, उसके करनेकी कृपा न करें और न शास्त्रों और ग्रन्थोंकी दुहाई देकर लोगोंको उत्तेजित करनेका प्रयत्न करें। इसका कुछ फल न होगा। संसारमें अन्धविश्वासों और गतानुगतिकताओंको पुनः प्रतिष्ठित करनेके प्रयत्न सफल होनेके दिन चले गये।

गूढ़ गवेषणायें।

(लेखक, श्रीमान् गड़बड़ानन्दजी शास्त्री।)

(१)

'अस्माकूणां नैयायिकाणां कर्णे' बहुत दिनोंसे यह वार्ता गूँज रही है कि ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी बाहरसे 'बगुला' (स्थितिपालक) और भीतरसे सौ-टंची सुधारक हैं। परन्तु हमने इस बातपर कभी विश्वास नहीं किया। बिना हेतु और प्रमाणके किसी बातको मान लेना शास्त्रिसम्प्रदायमें निषिद्ध है। उथली बुद्धिके बाबूसम्प्रदायकी बात दूसरी है। बेचारे करें भी क्या? हेतु और प्रमाणका शास्त्र सीखे हों तब न। परन्तु सावनवदी ७ के जैनमित्रको पढ़कर मैं चौंक पड़ा। उसमें ब्रह्मचारीजी महाराजने स्त्रीशिक्षाके प्रचारकी आवश्यकताको बड़े जोरोंके साथ प्रतिपादन किया है और उसकी पुष्टिमें माडर्न रिव्यूके सम्पादक श्रीयुत बाबू रामानन्द चटर्जीके लेखका हवाला दिया है। चटर्जी बाबू बड़े भारी सुधारक हैं। स्त्रियोंके लिए वे ऊँचीसे ऊँची शिक्षा देनेके पक्षपाती हैं। वे तो राज्यकी बड़ी बड़ी कौंसिलों तक में स्त्रियोंका जाना और उन्हें सम्मति देनेका अधिकार मिलना आवश्यक समझते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि ब्रह्मचारीजी भी अपने समाजकी स्त्रियोंको ऐसा ही बनाया चाहते हैं।

अब जरा सूक्ष्म शास्त्रीय बुद्धिसे इस बातपर विचार कीजिए। यह निश्चय है कि ब्रह्मचारीजी केवल पूजा-पाठ सूत्र-भक्तामर, सामायिक-आलोचना आदिकी शिक्षाको ही पर्याप्त नहीं समझते हैं। वे उन्हें व्याख्यान देनेके, पाठशालाओंमें पढ़ा सकनेके, सर्वसाधारणमें ऊँचे विचार फैला सकनेके और अपने गृहको स्वर्ग बना सकनेके योग्य बनाना चाहते हैं। ये बातें सुननेमें तो बड़ी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अच्छी मालूम होती हैं, परन्तु जरा गहरे पैठनेसे जान पड़ेगा कि ये कितनी भयंकर हैं। ज्यों ही वे पूजा-पाठसे आगे बढ़ेंगी, त्यों ही उनमें सद-सद्विवेक बुद्धि जाग्रत होगी; उन्हें अपने व्यक्तित्वका ज्ञान होगा; वे समझने लगेंगी कि संसारमें पुरुष ही सब कुछ नहीं हैं हम भी कोई चीज हैं, हमारा भी आत्मा है, हमारे भी स्वतंत्र सुख-दुःख हैं, हमारे आत्माको भी स्वाधीन सुखकी प्यास है; केवल पुरुषोंके लिए ही हमारी सृष्टि नहीं हुई है; हम भी अपने आत्माकी उन्नति करनेकी अधिकारिणी हैं। हमसे हमारी इच्छाके विरुद्ध कोई काम करानेका, या किसी कामसे रोकनेका उन्हें कोई अधिकार नहीं है। माना कि पातिव्रत, पतिसेवा, वैधव्य आदि व्रत अच्छे हैं, और कल्याणकारी हैं। हमें अपने कल्याणकी इच्छा होगी तो हम स्वयं उन्हें पाल लेंगी; परन्तु इन्हें जबर्दस्ती पलवानेका पुरुषोंको— उन नीच पुरुषोंको—क्या अधिकार है जिन्हें व्यभिचार करनेमें, एकाधिक पत्नियाँ रखनेमें, एकके मरते ही दूसरीको और फिर तीसरी चौथी पाँचवीं आदिको ब्याह लानेमें कोई संकोच नहीं होता है ? जैसे धूमके साथ अग्निकी व्याप्ति है, उसी प्रकार शिक्षाके साथ इस प्रकारके विचारोंके होनेकी व्याप्ति है। लड़कियोंको ज्यों ही थोड़ीसी ऊँची शिक्षा मिलेगी, वे अपने मातापिताके पसन्द किये हुए वरको पसन्द करनेसे इंकार करने लगेंगीं। माता-पिता कहेंगे इस बूढ़ेके साथ तुम्हारी शादी होगी, इसने हमें दस हजार रुपये दिये हैं। वे कहने लगेंगी—यह बूढ़ा खूसट यदि हमारे सामने भी देखेगा तो हम इसकी झाडूसे पूजा करेंगी ! इसका परिणाम यह होगा कि समाजके स्तंभ स्वरूप बड़े बड़े धनी मानी अपने एकाधिक पत्नियोंको प्राप्त करनेके परम्परागत अधिकारसे वञ्चित होने लगेंगे, अन्धे काने, लूले लँगड़े, रोगी दुर्बल, मूर्ख दुराचारी ब्याहे न जायँगे,—पढ़ी लिखी लड़कियाँ उनके साथ क्यों ब्याह करने लगीं ? इसके बाद जाति-पाँतिका बन्धन भी उन्हें असह्य प्रतीत होगा। अपनी जातिमें अनुरूप वर न मिलेगा तो वे दूसरी जातियोंमेंसे ढूँढ़ने लगेंगी। यदि कोई दुर्भाग्यसे विधवा हो गई और उसने समझा कि मैं अपनी इन्द्रियोंसे नहीं जूझ सकूँगी तो दूसरा विवाह करनेके लिए तैयार हो जायगी। इस तरह विधवा-विवाह भी जारी हो जायगा ! यदि इतना ही होकर रह जाता तो भी गनीमत थी; स्त्रीशिक्षाका यह विष यहीं तक असर न करेगा, वह धीरे धीरे तलाक (डाइवोर्स) की रीतिको भी चलायगा और अन्तमें बहुतसी स्त्रियोंको यहाँ तक भी कहनेके लिए आमादा करेगा कि हम बच्चे जननेकी झंझटमें क्यों पड़ें ? कुमारी रहना क्या बुरा है ? परदा-सिस्टम, घरोंके पिंजरेमें कैद रहना, मर्दोंसे बात न करना, दिन भर दासियोंके समान काम करना, आदि बातें तो ऐसी हैं कि स्त्रीशिक्षाप्रचारके एक साधारण झोंकेसे ही उड़ जावेंगी। गरज यह कि ब्रह्मचारीजीने जिस स्त्रीशिक्षाके प्रचारका आन्दोलन उठाया है, उसके उक्त परिणाम अवश्यंभावी हैं और इससे शास्त्रीय बुद्धि कहती है कि ब्रह्मचारीजी कट्टर सुधारक हैं और उन सुधारकोंसे भी भयंकर हैं जो स्पष्ट शब्दोंमें अपने सुधारविचारोंका प्रचार करते हैं। ये हजरत छुपे रुस्तम हैं, मिल कर मारनेवाले हैं, और पालिसीके धुरन्धर आचार्य हैं। इनसे सावधान रहनेकी जरूरत है। पं० खूबचन्दजी शास्त्रीने एक बार सत्यवादीमें बिलकुल सत्य लिखा था कि "जैनियोंमें आर्यसमाजके आदिब्रह्मा प्रकट हो गये!" शास्त्री लोगोंको ही ऐसी बातें इतने पहले सूझा करती हैं !

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२)

श्रीयुत् पं० पन्नालालजी गोधा यद्यपि भाखाके पंडित हैं, परन्तु फिर भी वे हमारे शास्त्री सम्प्रदायके अनुयायी हैं। यद्यपि अभी थोड़े दिन पहले उन्होंने एक लेखमें बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तारके स्वरमें स्वर मिला कर त्रिवर्णाचार आदि ग्रन्थोंको जाली बतलाने तकका साहस कर डाला था, फिर भी हमने उन्हें माफ कर दिया था। पर अब देखते हैं कि वे इस उन्नत सम्प्रदायके अनुयायी रहनेके योग्य नहीं हैं। उन्होंने बिना किसीसे पूछेताछे वायुयान पर बैठ कर पृथ्वी चलती है या स्थिर, इस बातका निर्णय करनेका बिगुल फूँक दिया। कहना नहीं होगा कि इस ढंगका प्रयत्न करना शास्त्रि-सम्प्रदायसे सर्वथा विरुद्ध है। शास्त्री लोग प्रत्येक बातका निर्णय तर्कशास्त्रसे किया करते हैं, एरोप्लेन, दूरबीन, खुर्दबीन आदि यंत्रोंसे नहीं। वे खूब जानते हैं कि यदि हमने इनमेंसे किसी एक यंत्रका भी सहारा लिया तो बाबू लोग हमें अन्यान्य यंत्रोंका सहारा लेनेके लिए भी लाचार करेंगे और उनके माननेसे यदि पृथ्वी चलती सिद्ध हो गई तो बड़ा गजब हो जायगा—हमें संसारमें खड़े होनेको भी कोई जगह न रह जायगी! जब कि हमारे प्राचीन आचार्योंने प्रत्येक विषयको तर्कशास्त्रसे सिद्ध किया है तब हम भी क्यों न उसी अमोघ शास्त्रका बल भरोसा रक्खें? यदि यंत्रादिकोंको ही प्रमाण मानना है, तो फिर पृथ्वीको चल क्यों नहीं मान लेते? क्या युरोपके विद्वानोंने इस विषयमें कोई कसर रख छोड़ी है? तरह तरहके यंत्र बनाकर और प्रत्यक्ष परीक्षायें करके उन्होंने तो इस विषयको बिलकुल ही हलकर डाला है। ८–१० वर्ष पहले जैनधर्मके एक सुप्रसिद्ध प्रचारकको लंदनकी भौगोलिक सोसायटीने, उनके एक पत्रके उत्तरमें, लिखा था कि सभ्य जगतमें अब कोई भी ऐसा मूर्ख नहीं है जिसे पृथ्वीके गोल और सचल होनेमें सन्देह हो! ऐसी दशामें शास्त्री लोगोंका इन यंत्रों और प्रत्यक्ष परीक्षाओंकी झंझटोंसे बिलकुल अलग रहनेमें ही कल्याण है। यदि कोई सामने आवे तो उसे शास्त्रार्थ करके चुप कर देना, बस इसीमें चतुराई है। साफ कह देना चाहिए कि हमें तुम्हारे यंत्रोंपर और परीक्षाओंपर बिलकुल विश्वास नहीं है। यदि हिम्मत हो तो शास्त्रार्थ कर लो! बस। और शास्त्रार्थ भी इन बातोंको लेकर कभी न करना चाहिए कि एक लाख योजनका ऊँचा जम्बूद्वीप है, गंगा सिन्धु आदि नदियोंकी सहायक नदियाँ अठारह अठारह हजार हैं, द्वीपके बाद समुद्र और समुद्रके बाद द्वीप हैं, आदि। क्योंकि इनके सिद्ध करनेका इस पंचमकालमें कोई उपाय ही नहीं रह गया है। हमें तो केवल उन्हींके सिद्धान्तोंका खण्डन करना चाहिए। इस झगड़ेमें अपने घरकी चर्चासे मतलब? जब दूसरोंका खण्डन हो गया तो अपना मण्डन स्वतः सिद्ध है! जान पड़ता है बेचारे गोधाजीको यह प्रायमरी भूगोलकी भी बात मालूम नहीं है कि पृथ्वीके साथ उसका वायुमण्डल भी घूमता है और उड़ता हुआ वायुयान भी पृथ्वीके आकर्षणके कारण उसके साथ ही रहता है, अतः उसपर चढ़कर न पृथ्वीकी स्थिरताकी ही परीक्षा हो सकती है और न चलताकी। ऐसी ऐसी बातें अखबारोंमें लिखना अपनी मूर्खताका प्रदर्शन करना है। इसमें पण्डितों और शास्त्रियोंकी हँसी होती है। ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी बड़े उस्ताद हैं। वे सदैव एक ईंटसे दो पक्षी मारा करते हैं। गोधीजी जैसे लोगोंके लेखोंको छापकर इधर तो पुराणमतानुयायियोंके श्रद्धा भाजना बने रहते हैं और उधर पण्डितोंकी विद्याबुद्धिकी गहराई मापनेके लिए लोगोंके हाथोंमें गज भी थमा देते हैं। सावनवदी ७ के जैन-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मित्रमें आगरेके बाबू मंगलसेनजी बी० एस सी०, सी० टी० का एक ऐसा भी लेख उन्होंने छाप दिया है, जिसमें पण्डितोंकी दलीलोंको कुतर्क और जैनधर्मका गौरव घटानेवाली बतलाया है ! हम अलीगढ़की भूज्योतिषचक्रविवेचनी सभाको सावधान करे देते हैं कि वह भूगोल और खगोलसम्बन्धी प्रश्नोंके निर्णयमें शास्त्रार्थको छोड़कर और किसी मार्गका अवलम्बन भूलकर भी न करे, बल्कि हमारी रायमें तो उसे और गोधाजीको चाहिए कि वे वायुयानकी चिन्ताको छोड़कर कोई ऐसा प्रयत्न करें, जिससे विदेहक्षेत्रकी यात्रा सुगम हो जाय और वहाँ सीमंधरस्वामीसे इन सब प्रश्नोंका समाधान कर लिया जाय। हम तो इसीमें कल्याण देखते हैं।

(३)

बड़े बड़े धुरंधर विद्वानोंकी भी बुद्धिमें यह बात नहीं आती थी कि श्वेताम्बर सम्प्रदायके श्रावक जो दिगम्बरियोंकी अपेक्षा धनी भी अधिक हैं और 'भगत' भी कम नहीं हैं—दिगम्बरियोंकी अपेक्षा मन्दिर बनवानेमें, और प्रतिष्ठायें करानेमें इतने पिछड़े हुए क्यों रहते हैं । वर्षोंके अध्ययन, मनन और अनुशीलनके बाद बड़ी मुश्किलसे मैं इसके कारणका पता लगा सका हूँ और आज उसे परोपकाराय प्रकाश कर देता हूँ । पर इस गवेषणाका सारा श्रेय मुझे ही मिलना चाहिए। क्यों कि मैं ही इसका प्रथम आविष्कारिक हूँ। बात यह है कि श्वेताम्बर समाजमें चलते फिरते सजीव मन्दिरोंकी संख्या बहुत बढ़ी हुई है और उनकी पूजा-प्रतिष्ठाके लिए उन्हें इतना धन खर्च करना पड़ता है कि जड़ मन्दिरोंके लिए उनके हाथ तंगीका अनुभव करने लगते हैं। इन सजीव मन्दिरोंको साधु, मुनि या मुनिराज आदि कहते हैं । इनका टोटल ५००-६०० से कम नहीं है । इनकी पूजा-अर्चाके लिए इतना खर्च किया जाता है कि यदि धर्मध्वंसी बाबू लोगोंके वशकी बात हो और वे उक्त खर्चको बन्द करके शिक्षाके काममें लगा सकें तो उससे एक स्वतंत्र यूनीवर्सिटी चलाई जा सकती है ! यदि किसीको इस खर्चका पूरा पूरा पता लगाना हो तो उसे उन सब नगरोंमें जाकर वहाँके श्रावकोंसे पूछना चाहिए जहाँ जहाँ किसी साधुसमुदायका चातुर्मास हुआ हो । एक एक साधुसंघके चातुर्मासके लिए दस दस हजार रुपये खर्च हो जाना तो बहुत ही मामूली बात है ! जिस समय साधुसंघका शुभागमन होता है उस समय बड़े ठाटबाटसे उनकी अगवानीका जुलूस निकाला जाता है । उसमें हजार दो हजार रुपये तो सहज ही स्वाहा हो जाते हैं । इसके बाद दूसरे खर्च शुरू होते हैं। एक प्रसिद्ध आचार्य महाराजका कारबार इतना बढ़ा हुआ है कि वे केवल पुस्तकों और डाँकखर्चके लिए ही अपने उपासकोंसे प्रतिमास पाँच सौ रुपयोंके लगभग अदा करते हैं ! अभी हाल ही एक लिक्खाड़ साधुने केवल एक पुस्तकका साहित्य संग्रह करनेके लिए पाँच हजार रुपये खर्च कराये हैं ! साधुओंको पदवियाँ भी चाहिए । जब उनके भक्त रायबहादुरी, सर नाइट आदिकी पदवियोंके लिए लाखों रुपये खर्च कर डालते हैं तब वे भी शास्त्रविशारद, न्यायविशारद आदि पाण्डित्यपूर्ण पदवियाँ प्राप्त करनेका प्रयत्न क्यों न करें ? एक आचार्य महाराजके विषयमें हम जानते हैं कि उनके कई शिष्य काशी और बंगालके बड़े बड़े पण्डितोंके यहाँ भटकते फिरे थे और उन्हें दक्षिणा दे देकर एक लम्बी चौड़ी पदवी प्राप्त करके लाये थे । इस काममें सिर्फ दस हजार रुपयेके लगभग खर्च हुए होंगे । उनकी देखा देखी कुछ और मुनि महाराजोंको भी यह शौक चर्राया था और उन्होंने भी इसी मार्गसे अपनी योग्यताके प्रमाणपत्र संग्रह किये थे । सुनते हैं इन निर्ग्रन्थनाथोंमेंसे अनेकोंके कई कोठीवालोंके यहाँ 'गुपचुप' खाते भी खुले हुए हैं और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

 CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उनमें लाखों रुपये जमा हैं! अवश्य ही वे उन रुपयोंको कभी हाथसे स्पर्श नहीं करते हैं! इन महात्माओंको ग्रन्थ छपाने और ग्रन्थ-संग्रह करनेका बड़ा शौक रहता है। इन दोनों मार्गोंसे रुपया संग्रह करनेमें सुभीता भी बहुत है। इससे जिनवाणी माताका उद्धार तो होता ही है, साथ ही इनके निर्ग्रन्थ व्रतका उद्यापन भी कम नहीं होता है। ग्रन्थ लिखनेमें भी ये बड़े सिद्धहस्त रहते हैं। शायद ही कोई वर्ष ऐसा जाता हो जिसमें इनकी सौपचास कृतियाँ प्रकाशित न होती हों और उन पर लेखकके और उनके गुरु महाराजोंके दिव्य फ़ोटू न चमकते हों। इस मुद्रणकार्यका बोझा भी श्रावक ही उठाते हैं और इसके बदलेमें कभी कभी वे अपनी उदार मूर्तिको भी जनसाधारणके समक्ष उपस्थित करके कृतकृत्य हो लेते हैं। कहीं जैनधर्म इन अनाड़ी श्रावकोंके ही हाथमें पड़कर नष्ट भ्रष्ट न हो जावे—साधु-परम्परा बनी रहे, इस कारण प्रतिवर्ष दो चार नये रंगरूट भी तैयार किये जाते हैं और उनकी भरती या दीक्षाके उत्सवमें भी दस पाँच हजार रुपयोंका श्राद्ध किया जाता है। यह तो हुआ साधुओंका नैमित्तिक खर्च। अब रहा नित्य खर्च, सो वह कुछ बहुत बड़ा नहीं होता है! वस्त्रोंमें यदि दो तीन रुपये गजका मलमल और तीस तीस चालीस चालीस रुपयेके दो दो तीन तीन कम्बल मिल गये तो काफी हैं! जो विशेष प्रतिष्ठित और प्रभावशाली आचार्य हैं, अवश्य ही उन्हें कोई कोई श्रावक सौ सौ रुपयेके भी कम्बल दे देते हैं! भोजनके सम्बन्धमें तो साधु मात्र भाग्यवान् होते हैं। वे गृहस्थ थोड़े ही हैं जो लूखा सूखा भोजन करके गुजर करें। दिनमें सिर्फ दो बार आहार करते हैं—और बम्बई, अहमदाबाद, सूरत आदि शहरोंमें एक दो बार चा और दूध आदि भी ले लिया करते हैं। क्या करें, यहाँके लोगोंकी आदत ही पड़ गई है! बढ़ियासे बढ़िया माल जब तक वे गुरुओंको न दे लेवें तब तक उन्हें चैन ही नहीं पड़ता! तपस्वी ठहरे, तपसे शरीर क्षीण न होने पावे; इसके लिए साधु महाराज ओषधि-सेवन भी किया करते हैं। साधुओंको विदेशी वस्तुओंसे कोई द्वेष नहीं, इस लिए वे विलायती दवाइयोंको तो खुशीसे लेते ही हैं, साथ ही स्वदेशी वैद्योंका भी खयाल रखना पड़ता है, इस लिए उनकी भी बहुमूल्य ओषधियों—सुवर्णमाक्षिक, चन्द्रोदय, बंगभस्म, मकरध्वज आदि—पर कृपा किया करते हैं। इसके लिए भी अनेक धनी श्रावक प्रतिवर्ष हजारों रुपया खर्च करते हैं और हृष्टपुष्ट साधुओंके अजस्र आशीर्वादोंकी वर्षासे भीगते रहते हैं। कुछ समय पहले एक स्वर्गवासी मुनिकी पेटी खोली गई तो उसमें कई शीशियाँ बहुमूल्य धातुपौष्टिक ओषधियोंसे भरी हुई मिली थीं। मालूम नहीं, भक्त श्रावकोंने उन शीशियोंको स्वर्ग भेजनेकी कोई व्यवस्था की या नहीं! इन सब मोटी मोटी बातोंसे पाठक समझ लेंगे कि श्वेताम्बर श्रावक कितने उदार, कितने गुरुभक्त और कितने शासनप्रेमी हैं और उनके इन गुणोंसे जैनधर्मकी कैसी प्रभावना हो रही है!

(४)

श्वेताम्बर श्रावकोंकी उदारताका विस्तार तो सुनाया जा चुका अब उसके मुकाबिलेमें अपने दिगम्बरियोंकी संकीर्णताका संक्षेप और सुन लीजिए। गत भाद्रपदमें न्यायाचार्य पं० माणिक्यचन्द्रजी फलटण गये थे और वहाँके श्रावकोंसे नाम मात्रकी थोड़ीसी दक्षिणा ले आये थे। इस पर जातिप्रबोधक आदि मोंड़े पत्रोंने कैसा अकाण्डताण्डव किया था, सो पाठक भूले न होंगे। क्षुल्लक मुन्नालालजी महाराज श्रावकोंसे—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विशेष कर श्राविकाओंसे कभी कभी सुमतिके अनुसार कुछ भेट आदि ले लिया करते थे, इस पर कलकत्तेमें बेचारेके पिच्छि कमण्डलु तक छीन लिये गये। अभी अभी कुछ दिनोंसे महामान्य ऐलक पन्नालालजीके विषयमें भी लोग तरह तरहकी बातें करने लगे हैं। बैठे ठाले लोग और कोई दोष नहीं मिलता तो यही पूछ-ताछ किया करते हैं कि क्योंजी, उनके आहा-रकी विधि धनियों और तर माल खिलानेवालोंके यहाँ ही क्यों मिल जाया करती है और गरीबों तथा साधारण लोगोंके यहाँ क्यों अन्तराय आ जाते हैं? और वे फर्स्ट और सेकिण्ड क्लासमें रेलवे सफर किस शास्त्रकी आज्ञासे किया करते हैं? गाँवों और कसबोंकी अपेक्षा वे शहरों पर ही सबसे अधिक कृपा क्यों रखते हैं? उनके केशलोचके उत्सव भी बहुतसे सुधारकों-की आँखोंमें खटकने लगे हैं जिनमें मुश्किलसे दो चार हजार रुपये खर्च होते होंगे। दिगम्ब-रियोंकी इसी ओछाई और तुच्छताके कारण उनके यहाँ साधुसम्प्रदायका अभावसा हो गया है और उन्हें अपना रुपया अचल मन्दिरों और उनकी प्रतिष्ठाओंमें लगाना पड़ता है। जिन लोगोंको अब मन्दिर प्रतिष्ठायें इष्ट न हों, उन्हें चाहिए कि वे दिगम्बर सम्प्रदायमें साधु-ओंके उत्पन्न करने और उनके बढ़ानेका उद्योग करें तथा लोगोंको गुरुभक्तिका पाठ पढ़ावें। यदि किसी उपायसे साधुओंका बढ़ना संभव न हो तो कमसे कम इस पञ्चम कालके लिए शास्त्री और पण्डितोंको ही साधुओंके समान मानने और पूजनेका विधान शास्त्रविहित कर देना चाहिए। पर मैं भी एक शास्त्री और धुरन्धर पण्डित हूँ, अतः इस प्रस्तावके कारण किसीको मुझ पर स्वार्थसाधुताका दोष नहीं लगाना चाहिए। क्यों कि मैं स्वयं इस अधिकारसे वंचित रहनेके लिए तैयार हूँ। मुझे यही देख-कर सन्तोष होगा कि मेरे शास्त्री भाई अच्छी तरहसे पूजे-थापे जा रहे हैं!

जरूरत।

जैनसिद्धान्तभवन आराके लिये एक ऐसे कनडी जाननेवाले विद्वानकी जरूरत है जिसकी दूसरी भाषा हिन्दी, अंग्रेजी अथवा संस्कृत हो और जो इन भाषाओंमेंसे किसी भाषामें कनडी भाषाके ग्रंथोंका आशय प्रगट कर सके। वेतन योग्यता-नुसार ५०) रुपये मासिकतक दिया जायगा और साथमें रहनेको मकान भी फ्री मिलेगा। जो महाशय आना चाहें उन्हें, अपनी योग्यता आदिका परिचय देते हुए, 'मंत्री जैनसिद्धान्त-भवन, आरा' से अथवा हमसे पत्रव्यवहार करना चाहिये। —सम्पादक।

संशोधन।

हितैषीके गत अंक ४-५ में प्रकाशित गंध-हस्ति महाभाष्यवाले लेखमें असावधानीसे कुछ शब्द छपनेसे रह गये हैं। पाठक उन्हें निम्न प्रकारसे अपनी अपनी कापियोंमें बना लेवें:—

पृष्ठ १११ के प्रथम कालमकी १२ वीं पंक्ति में श्लोकवार्तिकके बाद 'राजवार्तिक' शब्द और दूसरे कालमके पाँचवें अनुसंधानमें 'भी' के बाद निम्न शब्दोंको बढ़ा लेना चाहिये:— 'ग्रंथका उल्लेख नहीं है इसलिये वहाँसे भी'

पृष्ठ ११३ की प्रथम पंक्तिमें 'भी' के स्थानमें 'श्री' बना लेना चाहियें और पृष्ठ ११४ के प्रथम कालममें ६ ठी पंक्तिके बाद निम्न पंक्ति छूट गई है उसे लिख कर ठीक कर लेना चाहिये—

'इस पद्यकी टीकामें 'अद्य' शब्दका अर्थ यों बतलाया है:—'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाश चंद्र जी शास्त्री
स्याद्वाद महाविद्यालय, वाराणसी
द्वारा भेट

हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः ।

चौदहवाँ भाग । अंक ९

जैनहितैषी ।

जून १९२०
आषाढ़ २४४६

न हो पक्षपाती बतावे सुमार्ग, डरे ना किसीसे कहे सत्यवाणी ।
बने है विनोदी भले आशयोंसे, सभी जैनियोंका हितैषी 'हितैषी' ॥

सहानुभूति[1] ।

(अनु०—श्रीयुक्त ठा० कल्याणसिंह बी. ए. ।)

जब तुम अपनी आत्माको देखो तो कड़ी और तीव्र दृष्टिके साथ देखो; परन्तु जब दूसरोंको देखो तो अनुकम्पासे देखो । जैसे दलदल भूमिसे काई निकलती है उसी प्रकार साधारण मनुष्योंके मुँहसे गालियाँ और उलहने निकलते हैं । उन्हें तुम मत निकालो ।

—इला व्हीलर विलकाक्स ।

पीडित मनुष्यसे मैं यह नहीं पूछता कि तुम्हारी पीड़ा कैसी है, बल्कि मैं स्वयं पीडित बन जाता हूँ और पीड़ाका अनुभव करने लगता हूँ ।

—वाल्ट व्हाइटमेन ।

हमने जितना आत्म-दमन प्राप्त कर लिया है उतना ही हम दूसरोंसे सहानुभूति रख सकते हैं । जब तक हम अपने पर ही दया करते रहें और अपनेसे ही सहानुभूति रखते रहें तब तक दूसरोंका विचार नहीं कर सकते हैं । यदि हम स्वयं अपनी ही प्रशंसा, अपनी ही रक्षा, अपनी ही सम्मातिका विचार करें तो दूसरोंके साथ प्रेमका व्यवहार नहीं कर सकते । दूसरोंका विचार करना और अपना विचार भूलना इसीको सहानुभूति कहते हैं ।

दूसरोंके साथ सहानुभूति रखनेके लिये पहले हमें उनकी दशा समझनी चाहिये और उनकी दशा समझनेके लिये हमें उनके विषयमें पहलेहीसे बुरे विचार नहीं बाँध लेने चाहिये—जैसे वे हैं उनको उसी प्रकार देखना चाहिये । हमें दूसरोंकी आन्तरिक दशाके अन्दर प्रविष्ट होना चाहिये और उनके नेत्रोंसे देखकर तथा उनके अनुभवके अनुक्रमको समझकर उन जैसा हो जाना चाहिये । निस्सन्देह ऐसा व्यवहार हम ऐसे मनुष्यके साथ तो कर ही नहीं सकते जिसकी बुद्धि और अनुभव हमसे बढ़कर हैं और न ऐसेके साथ ऐसा व्यवहार कर सकते हैं जिससे

---

१ जेम्स एलेनकृत Byways of Blessedness (आनन्दकी पगडंडियाँ) नामक पुस्तकका एक अध्याय । यह पुस्तक हिन्दीग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालयकी ओरसे हाल ही प्रकाशित हुई है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हम अपने आपको उन्नत और उच्च समझते हैं। क्योंकि सहानुभूति और स्वार्थ एक स्थानपर स्थिर नहीं रह सकते। परन्तु हम ऐसे मनुष्योंके साथ सहानुभूति रख सकते हैं जो उन पापों और क्लेशोंमें फँसे हुए हैं जिनसे हमने सफलताके साथ अपने आपको मुक्त कर लिया है। जिस पुरुषकी महत्ता हमसे बढ़कर है उसको हम अपनी सहानुभूतिकी छायासे ढँक नहीं सकते हैं, परन्तु उसके साथ हम अपनेको इस प्रकार रख सकते हैं कि उसकी महत्तरा सहानुभूतिका सहारा ले सकें और उन पापों और दुःखोंसे मुक्त हो सकें जिनमें हम अब भी फँसे हुए हैं।

पक्षपात और दुष्कामनायें सहानुभूतिके मार्गकी बड़ी भारी रुकावटें हैं और अहंकार सहानुभूति ग्रहण करनेमें बाधा डालता है। तुम उसके साथ सहानुभूति नहीं रख सकते जिसके लिये तुम्हारे मनमें पूर्वहीसे घृणा है और उस मनुष्यकी सहानुभूति तुम अपने पर रखना नहीं चाहते जिसके लिये तुम्हारे मनमें पूर्वहीसे द्वेष है। जिस मनुष्यसे तुम घिन करते हो उसके जीवनको तुम समझ नहीं सकते और जिनके प्रति तुम अपनी पाशविक बुद्धिसे ईर्ष्या करते हो उसको भी नहीं समझ सकते, किन्तु जैसे तुमने उसके लिये अपने हृदयमें अपूर्ण और कच्चे विचार बाँध रक्खे हैं उन्हींके अनुसार समझोगे। अपनी अशुद्ध और कारणशून्य सम्मातिके द्वारा तुम केवल उसकी बुराईको देख सकोगे, भलाई नहीं।

यदि तुम्हें दूसरोंकी यथार्थता समझनी है तो उनके और अपने बीचमें रुचि या अरुचि, पक्षपात तथा स्वार्थिक वासनाओंको मत आने दो; उनके कार्योंका विरोध न करो और उनके मतों और विश्वासोंको दूषित न ठहराओ। थोड़े समयके लिये तुम अपने आपको पृथक् रखकर उनकी स्थितिको ग्रहण करो। केवल इसी प्रकार तुम उनके साथी होकर उनके जीवन और अनुभवको पूर्णतासे समझोगे और जब किसीको समझ लोगे तो फिर उसको निन्दित और दूषित नहीं ठहराओगे। मनुष्य एक दूसरेको दूषित और अपराधी बताकर इसी वास्ते दूरसे टालते हैं कि वे एक दूसरेको भलेप्रकार समझते नहीं। और जब तक वे अपने आप पर विजय न प्राप्त कर लें और शुद्ध न बन लें तब तक समझ भी कैसे सकते हैं?

वृद्धि, परिपक्वता, और विस्तरताको जीवन कहते हैं और एक प्रकारसे देखा जाय तो पापी और पुण्यात्मामें विशेष अन्तर नहीं है, केवल श्रेणी और क्रमका अन्तर है। पुण्यात्मा किसी समयमें पापी था और पापी भविष्यमें पुण्यात्मा होगा। पापी बच्चा है और पुण्यात्मा वृद्ध है। जो पापियोंको दुष्ट समझकर उनसे अपने आपको पृथक् रखता है वह उस पुरुषकी नाई है जो छोटे बच्चोंको निर्बोध, अनाज्ञाकारी और खिलौनोंसे खेलनेवाले समझकर उनसे दूर हटता है।

जीवन समान है, परन्तु देखनेमें इसके कई भेद हैं। पुष्प वृक्षसे कोई पृथक् पदार्थ नहीं है। यह उसी वृक्षका एक अंग है बल्कि पत्तीका एक दूसरा भेद है। भाप पानीसे कोई पृथक् वस्तु नहीं है, वह पानीका रूपान्तर है। पुण्यात्मा परिपक्व और परिणत पापी है।

पापी वही है जिसकी बुद्धि अपरिपक्व है और जो अज्ञानताके कारण अशुद्ध कार्य-प्रणालीमें रुचि रखता है। पुण्यात्मा वह है जिसकी बुद्धि परिपक्व है और जिसकी कार्य-प्रणाली शुद्ध और सत्य है। एक पापी दूसरे पापीको दूषित बताता है, क्यों कि दूषित बताना कार्यकी अशुद्ध प्रणाली है। पुण्यात्मा पापीको दूषित नहीं ठहराता, क्यों कि उसको स्मरण रहता है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कि एक बार मैं स्वयं भी उसी दशामें था, बल्कि उसको अपना लघुभ्राता या मित्र समझ कर उसके साथ गंभीर सहानुभूति रखता है, क्यों कि सहानुभूति रखना कार्यकी शुद्ध और उज्ज्वल प्रणाली है।

परिपक्व महात्माको—जो सबसे सहानुभूति रखता है—दूसरोंसे सहानुभूति पानेकी आवश्यकता नहीं है। क्यों कि वह पाप और क्लेशको जीत चुका है और आनन्दमें मग्न रहता है। परन्तु जो क्लिष्ट हैं उनको सहानुभूतिकी आवश्यकता है और जो पाप करते हैं वे क्लेश पाते हैं। जब मनुष्य यह समझने लगता है कि प्रत्येक पापके लिये (चाहे वह मानसिक हो या कायिक) उसको अवश्य क्लेश उठाना पड़ेगा तब वह दूसरों पर दोष लगाना छोड़ देता है और पापसे उत्पन्न हुए उनके क्लेशोंको देख कर उनके साथ सहानुभूति रखना आरम्भ करता है। ऐसा वह तब समझने लगता है जब अपने आपको पवित्र और शुद्ध बना लेता है।

जब मनुष्य अपने मनके विकारोंको शुद्ध कर लेता है, स्वार्थिक इच्छाओंको बदल देता है और अहंकारको पैरके नीचे कुचल देता है तब वह सर्व प्रकारके मानुषिक अनुभवोंको, अर्थात् समस्त पाप, दुःख, शोक, विचार और उद्देशोंको संपूर्णतासे माप लेता है और धर्म्मनीतिको सुप्रकार समझ लेता है। सम्पूर्ण आत्मदमन और सम्पूर्ण ज्ञान सहानुभूति हैं। जो मनुष्य दूसरोंको अपने पवित्र हृदयकी स्वच्छ दृष्टिसे देखता है वह उनपर अवश्य करुणा करता है, उनको अपने ही देहका भाग समझता है, उनको पतित और पृथक् नहीं किन्तु अपनी ही आत्मा मानता है और उनके विषयमें यह समझता है कि "जैसे मैंने पहले पाप किया था, वैसा ही ये भी कर रहे हैं, जैसे मैंने क्लेश उठाया था, वैसा ये भी उठा रहे हैं, और जैसे मैं अन्तमें शान्तिको प्राप्त हुआ वैसे ही ये भी प्राप्त हो जावेंगे।"

यथार्थमें भला और धीमान् वह है जो प्रबल पक्षपाती नहीं है, जो सबसे सहानुभूति रखता है, जो दूसरोंमें दोष नहीं देखता, जो पापीके उस पापको पहिचान लेता है जिससे वह अज्ञानताके कारण प्रसन्न हो रहा है और यह नहीं जानता कि अन्तमें मुझे इस पापके हेतु दुःख और पीड़ा उठानी पड़ेगी।

जितनी दूर मनुष्यकी बुद्धि पहुँचती है उतनी ही दूर वह अपनी सहानुभूति विस्तृत कर सकता है; उससे अगाड़ी नहीं और मनुष्य जितना नम्र और दयावान् होता जाता है उतना ही अधिक वह बुद्धिमान होता जाता है। सहानुभूति संकुचित होनेसे हृदय संकुचित होता है और जी धुँधला तथा कटु होता है। सहानुभूतिको विस्तृत करना जीवनको प्रकाशित और हर्षित करना है और दूसरोंके लिये प्रकाश और आनन्दका मार्ग सुगमतर बनाना है।

दूसरेके साथ सहानुभूति रखना उसके शरीरको अपने शरीरमें धारण करना और उसके समान भाव करना है, क्योंकि स्वार्थशून्य प्रेम बहुत शीघ्र ऐक्य उत्पन्न करता है। वह मनुष्य-जिसकी सहानुभूति समस्त प्राणधारियोंके साथ है—उन सबमें तन्मय है और संसारके सर्वव्यापक प्रेम, नीति और बुद्धिको समझता है।

स्वर्ग, शांति और सत्य मनुष्यसे उतने ही दूर हैं जितने दूसरे मनुष्योंको वह अपनी सहानुभूतिसे दूर रखता है। जिस सीमापर उसकी सहानुभूति समाप्त होती है वहींसे अन्धकार, दुःख और हलचल आरम्भ होती है, क्योंकि दूसरोंको अपने प्रेमसे दूर रखना मानों स्वयंको प्रेमके आनन्दसे दूर रखना है और स्वार्थके अन्धेरे कारागारमें पड़े पड़े सुकड़ना है।

जब मनुष्यकी सहानुभूति असीम होती है तब ही उसको सत्यका अनन्त प्रकाश दृष्ट होता है। असीम प्रेममें ही असीम आनन्द मिलता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हम अपने आपको उन्नत और उच्च समझते हैं। क्योंकि सहानुभूति और स्वार्थ एक स्थानपर स्थिर नहीं रह सकते। परन्तु हम ऐसे मनुष्योंके साथ सहानुभूति रख सकते हैं जो उन पापों और क्लेशोंमें फँसे हुए हैं जिनसे हमने सफलताके साथ अपने आपको मुक्त कर लिया है। जिस पुरुषकी महत्ता हमसे बढ़कर है उसको हम अपनी सहानुभूतिकी छायासे ढँक नहीं सकते हैं, परन्तु उसके साथ हम अपनेको इस प्रकार रख सकते हैं कि उसकी महत्तरा सहानुभूतिका सहारा ले सकें और उन पापों और दुःखोंसे मुक्त हो सकें जिनमें हम अब भी फँसे हुए हैं।

पक्षपात और दुष्कामनायें सहानुभूतिके मार्गकी बड़ी भारी रुकावटें हैं और अहंकार सहानुभूति ग्रहण करनेमें बाधा डालता है। तुम उसके साथ सहानुभूति नहीं रख सकते जिसके लिये तुम्हारे मनमें पूर्वहीसे घृणा है और उस मनुष्यकी सहानुभूति तुम अपने पर रखना नहीं चाहते जिसके लिये तुम्हारे मनमें पूर्वहीसे द्वेष है। जिस मनुष्यसे तुम घिन करते हो उसके जीवनको तुम समझ नहीं सकते और जिनके प्रति तुम अपनी पाशविक बुद्धिसे ईर्ष्या करते हो उसको भी नहीं समझ सकते, किन्तु जैसे तुमने उसके लिये अपने हृदयमें अपूर्ण और कच्चे विचार बाँध रक्खे हैं उन्हींके अनुसार समझोगे। अपनी अशुद्ध और कारणशून्य सम्मातिके द्वारा तुम केवल उसकी बुराईको देख सकोगे, भलाई नहीं।

यदि तुम्हें दूसरोंकी यथार्थता समझनी है तो उनके और अपने बीचमें रुचि या अरुचि, पक्षपात तथा स्वार्थिक वासनाओंको मत आने दो; उनके कार्योंका विरोध न करो और उनके मतों और विश्वासोंको दूषित न ठहराओ। थोड़े समयके लिये तुम अपने आपको पृथक् रखकर उनकी स्थितिको ग्रहण करो। केवल इसी प्रकार तुम उनके साथी होकर उनके जीवन और अनुभवको पूर्णतासे समझोगे और जब किसीको समझ लोगे तो फिर उसको निन्दित और दूषित नहीं ठहराओगे। मनुष्य एक दूसरेको दूषित और अपराधी बताकर इसी वास्ते दूरसे टालते हैं कि वे एक दूसरेको भलेप्रकार समझते नहीं। और जब तक वे अपने आप पर विजय न प्राप्त कर लें और शुद्ध न बन लें तब तक समझ भी कैसे सकते हैं?

वृद्धि, परिपक्वता, और विस्तरताको जीवन कहते हैं और एक प्रकारसे देखा जाय तो पापी और पुण्यात्मामें विशेष अन्तर नहीं है, केवल श्रेणी और क्रमका अन्तर है। पुण्यात्मा किसी समयमें पापी था और पापी भविष्यमें पुण्यात्मा होगा। पापी बच्चा है और पुण्यात्मा वृद्ध है। जो पापियोंको दुष्ट समझकर उनसे अपने आपको पृथक् रखता है वह उस पुरुषकी नाई है जो छोटे बच्चोंको निर्बोध, अनाज्ञाकारी और खिलौनोंसे खेलनेवाले समझकर उनसे दूर हटता है।

जीवन समान है, परन्तु देखनेमें इसके कई भेद हैं। पुष्प वृक्षसे कोई पृथक् पदार्थ नहीं है। यह उसी वृक्षका एक अंग है बल्कि पत्तीका एक दूसरा भेद है। भाप पानीसे कोई पृथक् वस्तु नहीं है, वह पानीका रूपान्तर है। पुण्यात्मा परिपक्व और परिणत पापी है।

पापी वही है जिसकी बुद्धि अपरिपक्व है और जो अज्ञानताके कारण अशुद्ध कार्य-प्रणालीमें रुचि रखता है। पुण्यात्मा वह है जिसकी बुद्धि परिपक्व है और जिसकी कार्य-प्रणाली शुद्ध और सत्य है। एक पापी दूसरे पापीको दूषित बताता है, क्यों कि दूषित बताना कार्यकी अशुद्ध प्रणाली है। पुण्यात्मा पापीको दूषित नहीं ठहराता, क्यों कि उसको स्मरण रहता है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कि एक बार मैं स्वयं भी उसी दशामें था, बल्कि उसको अपना लघुभ्राता या मित्र समझ कर उसके साथ गंभीर सहानुभूति रखता है, क्यों कि सहानुभूति रखना कार्यकी शुद्ध और उज्ज्वल प्रणाली है।

परिपक्व महात्माको—जो सबसे सहानुभूति रखता है—दूसरोंसे सहानुभूति पानेकी आवश्यकता नहीं है। क्यों कि वह पाप और क्लेशको जीत चुका है और आनन्दमें मग्न रहता है। परन्तु जो क्लिष्ट हैं उनको सहानुभूतिकी आवश्यकता है और जो पाप करते हैं वे क्लेश पाते हैं। जब मनुष्य यह समझने लगता है कि प्रत्येक पापके लिये (चाहे वह मानसिक हो या कायिक) उसको अवश्य क्लेश उठाना पड़ेगा तब वह दूसरों पर दोष लगाना छोड़ देता है और पापसे उत्पन्न हुए उनके क्लेशोंको देख कर उनके साथ सहानुभूति रखना आरम्भ करता है। ऐसा वह तब समझने लगता है जब अपने आपको पवित्र और शुद्ध बना लेता है।

जब मनुष्य अपने मनके विकारोंको शुद्ध कर लेता है, स्वार्थिक इच्छाओंको बदल देता है और अहंकारको पैरके नीचे कुचल देता है तब वह सर्व प्रकारके मानुषिक अनुभवोंको, अर्थात् समस्त पाप, दुःख, शोक, विचार और उद्देशोंको संपूर्णतासे माप लेता है और धर्म्मनीतिको सुप्रकार समझ लेता है। सम्पूर्ण आत्मदमन और सम्पूर्ण ज्ञान सहानुभूति हैं। जो मनुष्य दूसरोंको अपने पवित्र हृदयकी स्वच्छ दृष्टिसे देखता है वह उनपर अवश्य करुणा करता है, उनको अपने ही देहका भाग समझता है, उनको पतित और पृथक् नहीं किन्तु अपनी ही आत्मा मानता है और उनके विषयमें यह समझता है कि "जैसे मैंने पहले पाप किया था, वैसा ही ये भी कर रहे हैं, जैसे मैने क्लेश उठाया था, वैसा ये भी उठा रहे हैं, और जैसे मैं अन्तमें शान्तिको प्राप्त हुआ वैसे ही ये भी प्राप्त हो जावेंगे।"

यथार्थमें भला और धीमान् वह है जो प्रबल पक्षपाती नहीं है, जो सबसे सहानुभूति रखता है, जो दूसरोंमें दोष नहीं देखता, जो पापीके उस पापको पहिचान लेता है जिससे वह अज्ञानताके कारण प्रसन्न हो रहा है और यह नहीं जानता कि अन्तमें मुझे इस पापके हेतु दुःख और पीड़ा उठानी पड़ेगी।

जितनी दूर मनुष्यकी बुद्धि पहुँचती है उतनी ही दूर वह अपनी सहानुभूति विस्तृत कर सकता है; उससे अगाड़ी नहीं और मनुष्य जितना नम्र और दयावान् होता जाता है उतना ही अधिक वह बुद्धिमान होता जाता है। सहानूभूति संकुचित होनेसे हृदय संकुचित होता है और जी धुँधला तथा कटु होता है। सहानुभूतिको विस्तृत करना जीवनको प्रकाशित और हर्षित करना है और दूसरोंके लिये प्रकाश और आनन्दका मार्ग सुगमतर बनाना है।

दूसरेके साथ सहानुभूति रखना उसके शरीरको अपने शरीरमें धारण करना और उसके समान भाव करना है, क्योंकि स्वार्थशून्य प्रेम बहुत शीघ्र ऐक्य उत्पन्न करता है। वह मनुष्य-जिसकी सहानुभूति समस्त प्राणधारियोंके साथ है—उन सबमें तन्मय है और संसारके सर्वव्यापक प्रेम, नीति और बुद्धिको समझता है।

स्वर्ग, शांति और सत्य मनुष्यसे उतने ही दूर हैं जितने दूसरे मनुष्योंको वह अपनी सहानुभूतिसे दूर रखता है। जिस सीमापर उसकी सहानुभूति समाप्त होती है वहींसे अन्धकार, दुःख और हलचल आरम्भ होती है, क्योंकि दूसरोंको अपने प्रेमसे दूर रखना मानों स्वयंको प्रेमके आनन्दसे दूर रखना है और स्वार्थके अन्धेरे कारागारमें पड़े पड़े सुकड़ना है।

जब मनुष्यकी सहानुभूति असीम होती है तब ही उसको सत्यका अनन्त प्रकाश दृष्ट होता है। असीम प्रेममें ही असीम आनन्द मिलता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सहानुभूति आनन्द है। इसमें सर्वोत्तम और पवित्र आनन्द दृष्टिगत होता है। सहानुभूति स्वर्गीय है, क्योंकि इसके प्रकाशमें सब तरहके स्वार्थिक विचार नष्ट हो जाते हैं और सबके साथ एक भाव अर्थात् आध्यात्मिक समानताका दृढ संग रखनेसे पवित्र आनन्द मिलता है। जब मनुष्य सहानुभूति रखना छोड़ देता है तो उसका जीवन, दृष्टि और ज्ञान वृथा हो जाता है।

मनुष्य जबतक दूसरोंके प्रति स्वार्थिक विचार नहीं छोड़े तबतक उनके साथ सच्ची सहानुभूति नहीं रख सकता। जो सच्ची सहानुभूति रखता है वह दूसरोंको जैसे वे हैं वैसा देखनेका प्रयत्न करता है, उनके विशेष पाप, वासनाएँ, दुःख, विश्वास, पक्षपात इत्यादिको यथार्थतासे जाननेकी चेष्टा करता है। वह अन्तमें जान लेता है कि वे लोग अपनी आध्यात्मिक उन्नतिमें किस श्रेणी तक पहुँचे हुए हैं, उनका अनुभव कहाँ-तक है और वे अपनी दशाको अभी बदल सकते हैं या नहीं। वह जान लेता है कि उनका जैसा ज्ञान है उसीके अनुसार वे विचार और कार्य करते हैं। वह यह भी जान लेता है कि उनकी हीन बुद्धि और ज्ञान अच्छे उदाहरणोंके द्वारा सहायता और उन्नति पा सकते हैं, परन्तु वे तत्क्षण नहीं बदले जा सकते। विवेक और प्रेमके पुष्पोंको बढ़ने और विकसनेके लिये समयकी आवश्यकता है और ईर्ष्या तथा मूर्खताकी बाँझ टहनियाँ शीघ्र नहीं काटी जा सकतीं।

ऐसा मनुष्य उससे परिचित जितने भी मनुष्य हैं उनके प्रत्येकके आभ्यन्तरिक जगतका द्वार ढूँढ़ लेता है, उसको खोलता है, उसके अन्दर चला जाता है और उनके जीवनके पवित्र मन्दिरमें निवास करके उन सबके साथ एकमेक हो जाता है। फिर उसको धिक्कारने, क्रोध करने और द्वेष करनेको कोई भी स्थान नहीं दिखता और उसके हृदयमें अधिकतर अनुकम्पा, धैर्य तथा प्रेम रहने लगते हैं।

वह अपने आपको सर्वमय देखता है और समझता है कि सब मनुष्य मेरे दूसरे देह हैं और उनकी प्रकृतियाँ भी मुझ जैसी हैं, केवल उनमें न्यूनाधिकताका अन्तर है। अगर उसे दूसरोंके हृदयोंमें पाप-प्रवृत्तियाँ काम करती दिखती हैं तो वह अपने हृदयको टटोलता है और देखता है कि ऐसी ही प्रवृत्ति है तो मेरे मनमें भी, परन्तु उसने पापकी ओर झुकना छोड़ दिया है। यदि वह दूसरोंमें पुण्य प्रवृत्ति देखता है तो उसको अपने मनमें भी वैसी ही पुण्यप्रवृत्ति दिखती है जो अभी उतनी शक्ति और परिपक्वताको नहीं पहुँची है।

एकका पाप सबका पाप है और एकका पुण्य सबका पुण्य है। एक मनुष्य दूसरे मनुष्योंसे पृथक् नहीं है। प्रकृतिका कोई अन्तर नहीं है, केवल स्थितिका या दशाका अन्तर है। यदि कोई मनुष्य अपनेको किसी दूसरे मनुष्यसे इस विचारसे पृथक् समझे कि वह मुझसे अधिक पवित्र है तो उसका ऐसा विचारना उसका अज्ञान है। वह पृथक् नहीं है। मनुष्यत्व सब एक है। सहानुभूतिके पवित्र मन्दिरमें पुण्यात्मा और पापी मिलते हैं और एक होते हैं।

जीसिस क्राइस्टके विषयमें कहा जाता है कि उसने अखिल संसारके पाप अपने ऊपर लिये—अर्थात् उसने अपनेको पापियोंसे पृथक् नहीं गिना बल्कि अपने आपको उन जैसा ही जाना। प्राणीमात्रके साथ उसका ऐसा समभाव उसके जीवनमें स्पष्टतासे सबको दृष्टिगत हुआ। उसने उन पापियोंको—जिनको लोगोंने उनके भयंकर पापोंके कारण दूर फेंक दिया था—अपनी छातीसे लगाया और उनके साथ घनिष्ठ सहानुभूति दिखाई।

सहानूभूतिकी सबसे अधिक आवश्यकता किसको है? पुण्यप्रतापी, ज्ञानी, या महात्माको इसकी आवश्यकता नहीं है। ज्ञानरहित और अपरिपक्व पापी मनुष्यको ही इसकी आवश्य-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कता है । जो जितना अधिक पापी है वह उतना ही अधिक दुःखी है, इसलिये उसको सहानुभूतिकी भी उतनी ही अधिक आवश्यकता है । महात्मा क्राइस्टने कहा है—"मैं पुण्यात्माओंको नहीं बल्कि पापियोंको पश्चात्ताप कराने आया हूँ ।" पुण्यात्माओंको तुम्हारी सहानुभूतिकी आवश्यकता नहीं, केवल पापियोंको है । जो दूषित कर्म्मोंसे बहुत समय तक दुःख और क्लेश उठानेके लिये पाप संचय कर रहा है उसीको सहानुभूतिकी आवश्यकता है ।

एक प्रकारका पाप कर्म्म करनेवाला दूसरे प्रकारके पाप करनेवालेको बुरा, अपराधी और अधम बताता है । वह यह नहीं सोचता कि मेरे और उसके पाप यद्यपि भिन्न प्रकारके हैं, परन्तु अन्तमें वे हैं पाप । वह यह नहीं देखता कि सर्व प्रकारके पाप एक ही हैं, केवल उनके रूपोंमें अन्तर है । मनुष्य स्वयं जितना पापी है उतना ही दूसरोंको पापी ठहराता है । जब उसको सद्ज्ञान होता है और वह अपने पापसे मुँह फेरता है तथा उससे बचनेका यत्न करने लगता है, तब दूसरोंको भी पापी बतानेसे रुकने लग जाता है और उनके साथ सहानुभूति जताने लगता है । परन्तु यह एक अटल सांसारिक नियम है कि इन्द्रियोंके वशीभूत पापी मनुष्य आपसमें एक दूसरेको दूषित समझते हैं और घृणा करते हैं । वह मनुष्य—जिसको सब बुरा और दोषी बताते हैं और जिससे घृणा करते हैं—यदि उन लोगोंके धिक्कारनेको अच्छा समझे और विचार करे कि मेरे अपराधोंके कारण वे मुझे बुरा बताते हैं तो उसकी उन्नति होने लगती है और वह स्वयं दूसरोंकी बुराई करना छोड़ देता है ।

जो वास्तवमें सच्चा और भला मनुष्य है वह दूसरोंकी निन्दा नहीं करता । ऐसा मनुष्य स्वार्थता और अन्ये उद्वेगको दूर रख कर प्रेम और शान्तिके साथ रहता है और सर्व प्रकारके पापोंको और उनसे जो जो दुःख और क्लेश समुपस्थित होते हैं उनको जानता है । वह निद्रासे जाग कर, ज्ञानका प्रकाश प्राप्त कर और स्वार्थताको छोड़कर सबको जैसे वे हैं वैसे देखता है और उन सबसे पवित्र सहानुभूति रखता है । ऐसे मनुष्यको यदि लोग दोष लगाते हैं, उसकी बुराई करते हैं या उससे घृणा करते हैं, तो वह बुराईके बदले उनके साथ सहानुभूति प्रकट करता है और विचार करता है कि ये मनुष्य अपनी अज्ञानताके कारण मुझसे घृणा करते हैं, इन्हें अपने बुरे कर्म्मोंका फल भोगना पड़ेगा ।

आत्मदमन और ज्ञानवृद्धिके द्वारा जो तुमसे घृणा करें उनसे स्नेह करना सीखो । उनके बुराई करनेकी ओर दृष्टि न डालो, प्रत्युत अपने मनको टटोलो; कदाचित् तुम्हारे मनमें भी कोई बुरी बात होगी । यदि तुम अपने दोषों और अपराधोंको समझ लोगे तो दूसरोंकी निन्दा करना छोड़कर अपने आपको धिक्कारने लगोगे । साधारण प्रकारसे जिसको सहानुभूति कहते हैं वह सहानुभूति नहीं है, किन्तु वह एक प्रकारका शारीरिक स्नेह है । जो हमसे स्नेह करे उससे हम भी स्नेह करें, यह एक मानुषिक स्वभाव और प्रकृति है । परन्तु जो हमसे स्नेह नहीं करें उनसे हम स्नेह करें, यह पवित्र सहानुभूति है ।

सहानुभूतिकी आवश्यकता दुःख और क्लेशके कारण है । क्योंकि ऐसा कोई प्राणी नहीं है जिसको दुःख न हुआ हो । दुःखहीसे सहानुभूति उत्पन्न हुई है । एक वर्ष या एक ही जीवनमें मानुषिक हृदय दुःख पाकर पवित्र और स्वच्छ नहीं बन सकता, किन्तु बारंबार जन्म लेकर और दुःख पाकर ही मनुष्य अपने अनुभवोंकी सुनहरी फसलको काटता है और प्रेम और ज्ञानकी परिपक्व और अमूल्य फलियाँ प्राप्त करता है । इस प्रकार जन्मजन्मान्तरके पश्चात् वह समझने लगता है और सहानुभूति रखने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लगता है। नियमोंका उल्लंघन ही पाप है। मनुष्य अज्ञानतासे नियमोंका उल्लंघन करते हैं। जो पाप है वही क्लेश है। एक पापके बार बार करनेसे उसका फल अर्थात् क्लेश बारंबार भोगना पड़ता है और बारंबार कष्ट भोगनेसे उस नियमका ज्ञान हो जाता है और जब ज्ञान हो जाता है तो सहानुभूतिके पवित्र और सुन्दर कुसुम खिल उठते हैं।

सहानुभूतिका अंश दया है। संसारमें दुःखित और क्लिष्टोंका दुःख दूर करनेके लिये और उनको धैर्य दिलानेके लिये दयाकी बड़ी आवश्यकता है। "दया अशक्तोंके लिये संसारको कोमल बनाती है, और शक्तिमानोंके लिये संसारको उन्नत बनाती है।"

क्रूरता, अकृपा, दोषारोष और क्रोधको हटानेसे दया बढ़ती है। जो मनुष्य किसी पापीको पापका फल पाते देखकर अपने हृदयको कठोर करता है और कहता है कि "यह अपने उचित पापोंका फल पा रहा है" वह दया नहीं कर सकता है। मनुष्य जब जब प्राणियोंपर कठोरता करता है और उन पर आवश्यक सहानुभूति प्रकट नहीं करता है, तब तब ही वह अपनेको संकीर्ण बनाता, अपने आनन्दको न्यून करता और क्लेश भोगनेके बीज बोता है।

सहानुभूतिका दूसरा अंश यह है कि अपनी अपेक्षा दूसरोंकी अधिकतर सफलता देखकर हर्ष मनाना और समझना कि उनकी सफलता मेरी ही है। निस्सन्देह वह मनुष्य धन्य है जो ईर्ष्या, द्वेष और कुढ़नसे मुक्त है और जो उन लोगोंके शुभ समाचार सुनकर—जो उसको अपना वैरी समझते हैं—हर्षित होता है।

अपनेसे न्यूनतर और हीनतर प्राणियोंकी रक्षा करना भी सहानुभूतिका एक अंश है। बेजबान जानवरोंकी रक्षाके लिये बड़ी गहरी सहानुभूतिकी आवश्यकता है। शक्तिकी शोभा रक्षा करना है, न कि नाश करना। जीवन छोटे जीवोंकी रक्षासे सफल होता है उनके नाशसे नहीं।

जीवन सब एक है। छोटेसे छोटा प्राणी महत्से महत् प्राणीसे केवल शक्ति और बुद्धिकी न्यूनाधिकतामें भिन्न है, नहीं तो सब प्राणी एक हैं। जब हम दया और रक्षा करते हैं तो हमारा ऐश्वर्य और हर्ष बढ़ता है और प्रकट होता है। इसके विपरीत जब हम अविवेकता और कठोरतासे प्राणियोंको दुःख और क्लेश पहुँचाते हैं तो हमारा ऐश्वर्य आच्छादित होता और हर्ष बुझ जाता है। एक प्राणीका दूसरा प्राणी चाहे आहार करे, और एक उद्वेग चाहे दूसरे उद्वेगको नष्ट करे; परन्तु मनुष्यकी सात्विक प्रकृति केवल दया, प्रेम, सहानुभूति और स्वार्थशून्य पवित्र कर्मोंसे ही वृद्धिङ्गत, सुरक्षित और परिपक्व होती है।

दूसरोंके प्रति सहानुभूति रखनेसे हम अपने लिये दूसरोंकी सहानुभूति बढ़ाते हैं। किसीके साथ की हुई सहानुभूति नष्ट नहीं होती। कमीनेसे कमीना प्राणी भी सहानुभूतिके स्वर्गीय स्पर्शसे भला मानेगा, क्यों कि सहानुभूति एक ऐसी विश्वव्यापक भाषा है जिसको सब प्राणी समझते हैं। अमेरिकाके डारटमूर नगरमें एक अत्यंत अत्याचारी अपराधी मनुष्य था जिसको कितने ही अपराधोंके कारण चालीस वर्षसे भी ऊपर तक कई नगरोंमें कैद रहना पड़ा था। उसको सब लोग बहुत भयानक, कठोर और अन्यायकारी समझते थे और कारागारोंके पहरेदार इत्यादि उसके सुधारकी कोई आशा नहीं रखते थे। एक दिन जिस कोठरीमें वह रक्खा जाता था वहाँ एक गरीब भूखा और अस्वस्थ चूहा आ निकला। उसकी असहाय और दुर्बल दशाको देखकर उस पापीके भी हृदयमें दयाकी बिजलीका संचार हो गया और वह अपनी और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उस चूहेकी एक ही प्रकारकी दशा समझकर उसपर सहानुभूति प्रकट करने लगा। उसने उस चूहेको अपने एक बूटमें वासस्थान दे दिया और अपने भोजन और जलमेंसे वह उसको खाने पीनेके लिये देने लगा। जिस अत्यंत कठोर और दूषित हृदयमें किसी भी मनुष्यके लिये दया नहीं थी, उसी हृदयमें एक चूहेके हेतु सहानुभूतिका स्वर्गीय दीपक जलने लगा। अपनेसे शक्तिहीनोंकी ओर उसकी दया और प्रेम बढ़ने लगा और अपनेसे अधिक शक्तिमानोंसे उसकी घृणा कम होने लगी। वह पहरेदारोंकी पूर्ण आज्ञा मानने लगा। वे लोग इस बातको अद्भुत समझने लगे कि इतना कठोर मनुष्य इतना नम्र कैसे बन गया। उसकी आकृति भी बदल गई। नेत्रों और होठों आदिकी भयंकरता धीरे धीरे कोमलता और प्रेममें परिणत हो गई। अब वह दूषित और पापी कैदी नहीं रहा, उसका प्रायश्चित्त हो गया और उसका मन पुण्यमें रत हो गया। अन्तमें यह समस्त वृत्तान्त अधिकारियों तक पहुँच गया। उन्होंने उसको स्वतन्त्र कर दिया। जब वह जाने लगा तो उस चूहेको भी साथ ले गया।

इस प्रकार दूसरोंपर सहानुभूति प्रकट करनेसे इसका भंडार स्वयं हमारे हृदयमें बढ़ता है और हमारा जीवन सफल होता है। सहानुभूतिके दानसे आनन्दका पुरस्कार मिलता है और सहानुभूतिका दान न देनेसे हमारा अनन्द नष्ट होता है। मनुष्य जितनी अधिक सहानुभूति रखता है उतना ही वह आदर्श जीवन अर्थात् सत्यानन्दके समीप पहुँचता है। जब उसका हृदय इतना कोमल हो जाता है कि उसमें कोई भी कठोर, कटु या निर्दय विचार उत्पन्न नहीं होता और उसके माधुर्यको न्यून नहीं करता तब वह मनुष्य सचमुच सत्य आनन्दमें मग्न हो जाता है।

आचार्यप्रवर अमृतचन्द्र।

(लेखक—श्रीयुत नाथूराम प्रेमी।)

आध्यत्मिक विद्वानोंमें भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यके बाद यदि किसीका नाम लिया जा सकता है तो वे श्रीअमृतचन्द्रसूरि हैं। दुःखकी बात है कि इतने बड़े सुप्रसिद्ध आचार्यके विषयमें हम सिवाय इसके कुछ भी नहीं जानते हैं कि उनके बनाये हुए तत्वार्थसार, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, समयसार टीका, पंचास्तिकाय टीका और प्रवचनसार टीका, ये पाँच ही ग्रन्थ उपलब्ध हैं। उनकी गुरुपरम्परा, और समयादिसे हम सर्वथा अनभिज्ञ हैं। इस छोटेसे लेखमें हम उन्हींके विषयमें कुछ बातें सूचनिकारूपमें उपस्थित करना चाहते हैं:—

१—पण्डितप्रवर आशाधर अपने अनगारधर्मामृतकी भव्यकुमुदचन्द्रिका टीकामें (पृष्ठ १६० में) लिखते हैं:—

" एतदनुसारेणैव ठक्कुरोपीदमपाठीत्—

लोके शास्त्राभासे समयाभासे च देवताभासे।
नित्यमपि तत्त्वरुचिना कर्तव्यममूढदृष्टित्वम्॥ "

यह श्लोक पुरुषार्थसिद्ध्युपायका है, इसमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं किया जा सकता, अतएव पं० आशाधर अमृतचन्द्रसूरिको ही ठक्कुर नामसे अभिहित करते हैं। इससे मालूम होता है कि या तो वे गृहस्थावस्थामें ठक्कुर उपनामसे पुकारे जाते होंगे, या फिर मुनि अवस्थामें ही यह उनका दूसरा नाम होगा।

अनगार धर्मामृतमें अमृतचन्द्रके और भी अनेक श्लोकादि 'उक्तं च' रूपमें उद्धृत किये गये हैं, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि पूर्वोक्त श्लोकको आशाधरजीने भ्रमसे ठक्कुर नामक किसी दूसरे विद्वानका समझकर उद्धृत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर दिया है। पुरुषार्थ सि० से तो वे बहुत ही परिचित जान पड़ते हैं।

२–महोपाध्याय मेघविजयगणि नामक श्वेताम्बराचार्यका बनाया हुआ एक स्वोपज्ञसंस्कृतटीकायुक्त प्राकृत ग्रन्थ है। उसकी सातवीं गाथाकी टीकामें लिखा है–"श्रावकाचारे अमृतचन्द्रोप्याह–

संघो कोवि न तारइ कट्ठो मूलो तहेव निप्पिच्छो।
अप्पा तारइ अप्पा तम्हा अप्पा दु झादव्वो ॥ १ ॥"

इससे मालूम होता है कि अमृतचन्द्रका बनाया हुआ कोई श्रावकाचार भी है और वह प्राकृतमें है।

उक्त गाथा तत्त्वानुशासनादिसंग्रहके 'ढाढसी गाथा' नामक ग्रन्थमें भी है और उसका २० वाँ नम्बर है। ढाढसी गाथायें किसकी बनाई हुई हैं यह अबतक मालूम नहीं हुआ है। आश्चर्य नहीं जो उसके कर्त्ता अमृतचन्द्र ही हों।

३–यदि उक्त 'संघो कोवि' आदि गाथा अमृतचन्द्रकी ही है तो इससे उनके समय-निर्णयमें बहुत कुछ सहायता मिल सकती है। इसमें काष्ठासंघ और निःपिच्छिकका उल्लेख है। यदि देवसेनका बतलाया हुआ समय ठीक है तो वि० सं० ९५३ में निःपिच्छिकों (माथुरसंघ) की उत्पत्ति हुई है और इसलिए अमृतचन्द्र इसके पीछेके ग्रन्थकर्त्ता सिद्ध होते हैं।

४–युक्तिप्रबोधमें नीचे लिखी गाथा भी अमृतचन्द्रके नामसे दी हैः—

"यदुवाच अमृतचन्द्रः–(सातवीं गाथाकी टीका)

सव्वे भावा जम्हा पच्चक्खाई परित्ति नाऊण।
तम्हा पच्चक्खाणं णाणं नियमा मुणेयव्वं ॥ १ ॥"

यह गाथा प्राभृतत्रयमें तो है नहीं, इसलिए मालूम होता है कि यह भी अमृतचन्द्रके किसी प्राकृत ग्रन्थसे ली गई है।

५–युक्तिप्रबोध (पत्र १५) में एक जगह 'श्रावकाचारे अमृतचन्द्राचार्योक्तिरपि दिगम्बरनये' लिखकर 'या मूर्च्छानामेयं' आदि पुरुषार्थसि० की आर्यायें दी हैं। इससे मालूम होता है कि मेघविजयजी पु० सि० को श्रावकाचार कहते हैं। और 'संघो कोवि न तारइ' को भी श्रावकाचारकी गाथा लिखी है। यह चिन्त्य है।

६–राजवार्तिक सूत्र २२ की टीका (पृष्ठ २८४) में नीचे लिखी गाथा 'उक्तं च' रूपमें दी गई हैः—

रागादीणमणुप्पा अहिंसकत्तेति देसिदं समये।
तेसिं चेदुप्पत्ती हिंसेति जिणेहिं णिद्दिट्ठा ॥

इसी आशयका श्लोक पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें भी है—

अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति।
तेषामेवोत्पत्तिर्हिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः ॥

इसी तरह प्रवचनसारकी तात्पर्यवृत्तिमें ये दो गाथायें हैंः—

पक्केसु अ आमेसु अ विपच्चमाणासु मांसपेसीसु।
संततियमुववादो तज्जादीणं णिगोदाणं ॥
जो पक्कमपक्कं वा पेसी मंसस्स खादि पासदि वा।
सो किल णिहणदि पिंडं जीवाणमणेगकोडीणं ॥
(पृष्ठ ३१३)

इन गाथाओंकी टीका अमृतचन्द्रसूरिने नहीं की है, इससे मालूम होता है कि ये मूल प्रवचनसारकी नहीं हैं। इनकी बिलकुल छाया पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें देखिएः—

आमास्वपि पक्वास्वपि विपच्यमानासु मांसपेशीषु।
सातत्येनोत्पादस्तज्जातीनां निगोतानाम् ॥ ६६ ॥
आमां वा पक्वां वा खादति यः स्पृशति वा पिशितपेशीम्।
स निहन्ति सततनिचितं पिण्डं बहुजीवकोटीनाम् ॥ ६७ ॥

इनसे मालूम होता है कि या तो अमृतचन्द्रसूरिने स्वयं कोई श्रावकाचार प्राकृतमें बनाया है और उसीका अनुवाद संस्कृतमें भी किया है और या अन्य किसीके प्राचीन ग्रन्थकी छाया लेकर पुरुषार्थसि० को रचा है। मेघविजयजीके उल्लेखोंसे तो यही मालूम होता है कि प्राकृतमें भी उनका कोई ग्रन्थ है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यदि राजवार्तिकोक्त गाथा अमृतचन्द्रकी हो है तो वे अकलंकदेवजीसे भी पहलेके ठहरते हैं।

७–राजवार्तिक पृष्ठ ३६१ में 'उक्तं च' रूपसे नीचे लिखा श्लोक दिया है:—

" दग्धे बीजे यथात्यन्तं प्रादुर्भवति नाङ्कुरः।
कर्मबीजे तथा दग्धे न रोहति भवाङ्कुरः।"

यह श्लोक अमृतचन्द्रसूरिकृत तत्त्वार्थसारके मोक्षतत्त्वप्रकरणका ७ वाँ श्लोक है। इससे भी मालूम होता है कि वे अकलंकभट्टसे पहलेके ग्रन्थकर्त्ता हैं। मालूम नहीं राजवार्तिकके संशोधक पं० गजाधरलालजीने इस श्लोकको प्रक्षिप्त कैसे समझ लिया है और यह निर्णय कैसे कर लिया है कि अमृतचन्द्र अकलंकदेवसे पीछे हुए हैं।

८–इसी तरह तत्त्वार्थसारके मोक्षतत्त्व प्रकरणकी भी ३२ कारिकायें राजवार्तिककारने ग्रन्थान्तमें उद्धृत की हैं। उनसे भी मालूम होता है कि राजवार्तिकसे तत्त्वार्थसारके कर्त्ता पहले हुए हैं। इन कारिकाओंको भी प्रक्षिप्त मान लेनेका कोई कारण नहीं है।

तत्त्वार्थाधिगम भाष्यके अन्तमें भी—जो स्वयं उमास्वातिका बनाया हुआ कहा जाता है—तत्त्वार्थसारके पूर्वोक्त (मोक्षतत्त्ववर्णनके नं० २० नं० से ५४ तककी) कारिकायें दो चार शब्दोंके हेर फेरसे दी गई हैं। कई श्वेता० टीकाकारोंने इनकी टीका भी लिखी है। फिर भी जब तक यह सिद्ध न हो जाय कि तत्त्वार्थाधिगमभाष्य स्वयं उमास्वातिका है, तब तक यह कैसे कहा जा सकता है कि पूर्वोक्त कारिकायें अमृतचन्द्रकी नहीं हैं। ५–८–२०।

लायब्रेरी।

(ले०–श्रीयुक्त नाथूराम प्रेमी।)

चन्दननगरमें 'नृत्यगोपालस्मृतिमन्दिर' नाम की एक लायब्रेरी खुली है। उसके खोलनेके समय बंगालके सुप्रसिद्ध विद्वान् महामहोपाध्याय पं० हरिप्रसाद शास्त्री एम० ए० ने एक बड़ा ही महत्त्वपूर्ण व्याख्यान दिया था। हमारे पाठक लायब्रेरियोंके इतिहाससे परिचित हो जावें और उनके महत्त्वको समझने लगें, इसलिए हम उसके सारभागका अनुवाद यहाँ प्रकाशित करते हैं—

" यह सभी जानते हैं कि जितने प्रकारके दान हैं उनमें विद्यादान सबसे बड़ा है। इसी लिए आज कल अनेक लोग स्कूल आदि स्थापित करके विद्यादान किया करते हैं। सुसभ्य जातियोंको छोड़कर दूसरे लोग इस दानके माहात्म्यको नहीं समझ सकते। जो सुसभ्य नहीं हैं वे अन्नदान, भूमिदान, जलदान आदिसे ही सन्तुष्ट रहते हैं। वे नहीं समझते कि विद्यादानसे अन्य सब दान अपने आप ही हो जाते हैं। विद्यादानमें लायब्रेरी-दान और भी श्रेष्ठ है। क्यों कि लायब्रेरियाँ विद्याकी मूल हैं। विद्याकी यदि वृक्षके साथ तुलना की जाय तो लायब्रेरी उसकी जड़ है। विद्याकी यदि नदीके साथ तुलना की जाय तो लायब्रेरी उसका उद्गमस्रोत—अनन्त जलराशिका आधार—है। इसलिए जो लोग लायब्रेरी-दान करते हैं वे श्रेष्ठसे श्रेष्ठ दान करते हैं। स्कूलोंमें जो विद्यादान होता है वह लड़कोंके लिए; परन्तु लायब्रेरीका दान बालक-बूढ़े सबके लिए होता है। स्कूलोंका जो विद्यादान होता है उसे लड़के नियमित वर्षों तक ही ग्रहण कर सकते हैं; परन्तु लायब्रेरीमें जो विद्यादान होता है उसे मनुष्य जब तक जीता है—बारह मास तीन सौ साठ दिन—लिया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करता है। स्कूलोंमें जो विद्यादान होता है, उसकी सीमा है, बालविद्याका ही दान हुआ करता है; परन्तु यह दान असीम, अनन्त है— इसकी सीमा भी नहीं है और अन्त भी नहीं है। पृथिवीमें जो कुछ ज्ञान है, प्रायः सभी पुस्तकोंमें लिपिबद्ध है। इसलिए लायब्रेरीमें जब सभी तरहकी पुस्तकें रहती हैं तब जितने तरहकी विद्यायें हैं, जितने तरहका ज्ञान है सभीका उसके द्वारा दान होता है। अत एव लायब्रेरी खोलना बड़े ही पुण्यका कार्य है।

"लायब्रेरियोंका इतिहास बहुत लम्बा है। मनुष्य जबसे सभ्य हुआ है, जबसे उसने अपने मनके भाव बाहर अंकित करने सीखे हैं, तभीसे लायब्रेरियोंकी उत्पत्ति हुई है। 'अंकित करना' कहनेका कारण यह है कि लिखनेके लिए वर्णमालाकी आवश्यकता होती है। परन्तु वर्णमालाकी उत्पत्तिके पहले भी मनुष्य मनके भाव प्रकट करता था और वे वर्णमालाके द्वारा नहीं किन्तु चित्र आंकित करके, जीव-जन्तु और वृक्षपत्र आदि अंकित करके। उस समय छापेखाने नहीं थे, कागज नहीं था, तालपत्र और भोजपत्रोंका भी व्यवहार नहीं था। उस समय मनके भाव प्रकट करनेके लिए चित्र अंकित करना पड़ते थे पत्थरोंपर और मिठीके ईंटोंपर— और वे भी पकाई हुई नहीं किन्तु धूपमें सुखाई हुई ईंटें। पत्थरोंपर लिखी हुई एक लायब्रेरी मिसर देशमें जमीनके बहुत नीचे पाई गई है। उस समय मिसरके पिरामिडों (समाधिस्तूपों) का बनाना शुरू हुआ था या नहीं, इसमें सन्देह है। जिन लोगोंने बड़े बड़े पिरामिड बनाये थे, उन लोगोंसे तो पहलेकी यह अवश्य ही है। उसके पत्थरोंपर केवल चित्र बने हुए हैं। इस लायबेरीमें जितनी पुस्तकें थीं, दीवालपर उन सबकी एक सूची दी हुई है। इसलिए वे सचमुच ही लायब्रेरीकी पुस्तकें हैं इसमें सन्देह करनेको जरा भी जगह नहीं है।

"ये सब लायब्रेरियाँ मन्दिरोंमें ही होती थीं। मन्दिरोंके पुरोहित ही पढ़ते पढ़ाते और यत्नपूर्वक उन्हें रखते थे। मिसरकी यह लायब्रेरी ईसाके जन्मसे ४—५ हजार वर्ष पहले बनी थी। उसके बाद मिसरमें बराबर लायब्रेरियाँ बनती रही हैं। उस समय ये पत्थरोंकी पुस्तकें कितनी बनी थीं, इसका कुछ ठिकाना नहीं है।

"सन् १८५० में लेयार्ड साहबने निनिवा नामक नगरमें खुदाई आरम्भ की थी। ३० फुट खोदनेके बाद उन्हें एक बड़ा भारी कमरा मिला। उस कमरेका सारा मध्यभाग एक फुट ऊँची पत्थरकी लादियोंसे (पत्थरके चौकोर टुकड़ोंसे) सजाया हुआ था और लादियोंमें आदिसे अन्ततक तिकौने अक्षर लिखे हुए थे। पण्डितोंका अनुमान है कि यह असुरराज (असीरियाके राजा) सार्डे नापोलासकी लायब्रेरी थी। इसमें लगभग २०,००० पृथक् पृथक् ग्रन्थ थे जिनमें कितने ही कोष, अनेक महाकाव्य, इतिहास और ज्योतिषके ग्रन्थ थे। अर्थात् एक बड़े राजाकी लायब्रेरीमें जो कुछ रहना चाहिए था वह सभी था। निनिवामें इतनी बड़ी लायब्रेरीका पता लगने पर यूरोपके लोगोंको बड़ा कुतूहल हुआ और इस शोधके काममें उनका उत्साह बढ़ गया। अब वे मेसपटमें जहाँ कहीं कोई बड़ासा टीला दिखा वहीं खोदने लगे। फल यह हुआ कि इस खुदाईमें उन्हें न जाने कितने मकान, कितनी मूर्तियाँ और कितने ग्रन्थालय मिले! यह सब देख सुनकर और पढ़ कर सबका यह विश्वास हो गया है कि ईसाके जन्मके ४००० वर्ष पहले मेसपटमें सुमेर और आकाद नामकी दो जातियोंका निवास था। सुमेर जातिके लोग दाढ़ीकी हजामत बनवाते थे, पर आकाद नहीं बनवाते थे। सुमेर सबसे पहले सभ्य हुए थे। वे पत्थरकी मूर्तियाँ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गढ़ते थे, पत्थरके मकान तैयार करते थे, दूर दूर तक वाणिज्य करते थे और लिखना पढ़ना भी जानते थे। इन्हें मार कर आक्काद लोग वहाँके राजा हुए। सुमेरोंकी बहुत कुछ सभ्यता आक्कादोंने ले ली थी, इस लिए उन्हें सुमेरोंकी भाषा सीखनेके लिए कोषकी आवश्यकता हुई। आखिर उन्होंने सुमेर और आक्काद दोनों ही भाषाओंका कोश बनाया। वह कोष भी उक्त लायब्रेरीमें प्राप्त हुआ है। एक महाकाव्य भी इन सब लायब्रेरियोंमें मिला है। उसका नाम है--'ईस्तर और ईसदुबाल'। इस काव्यका अँगरेजी अनुवाद हो गया है और उसे मैंने पढ़ा है। बड़े ही आश्चर्यकी बात है कि जितने प्राचीन महाकाव्य हैं वे सभी बहुत लम्बे हैं--रामायण, महाभारत, इलियड, ओडेसी आदि सभी; परन्तु ईस्तर और ईसदुबाल इस समयके महाकाव्योंके--रघुवंश, मेघनादवध आदिके--समान हैं और सर्गबद्ध है। इसमें भी बीज--बिन्दु--पताका सब हैं और वर्णन भी बहुत सुन्दर है। इसमें स्वर्ग, नरक, समुद्र, पर्वत, युद्धविग्रह, किले आदि सभी बातोंका वर्णन है। एक अद्भुत वस्तु है।

"यवन या ग्रीस देशमें अनेक बड़ी बड़ी लायब्रेरियाँ थीं। बादशाह सिकन्दरके गुरु अरस्तू (अरिस्टाइल) की एक विशाल लायब्रेरी थी। वे उसे अपने एक छात्रको दे गये थे। एथेन्समें यूक्लिडकी एक लायब्रेरी थी। किन्तु सिकन्दरिया (अलेकजेण्ड्रिया) की लायब्रेरी पृथिवीकी सभी लायब्रेरियोंसे बढ़ गई थी। महावीर सिकन्दरके सेनापति टालेमीने मिसर देश विजय किया था। इसी टालेमीने सिकन्दरियाकी लायब्रेरी स्थापित की थी। उस समय टेपिरास नामक एक झाड़की छालपर लिखना आरंभ हो गया था। वर्णमालाका भी प्रचार हो गया था। टालेमी और उसके अनुचर सभी देशोंकी पुस्तकें संग्रह करते थे। मिसरकी पुस्तकें भी वे संग्रह करते थे और हिब्रू लोगोंकी भी करते थे। वे बड़े बड़े पण्डितोंको तलाश करके उन्हें लायब्रेरीके अध्यक्ष बनाते थे। किसी-किसीका मत है कि वहाँ ७ लाख पुस्तकें थीं! बहुतोंका खयाल है कि जब खलीफा उमरने अलेकजेण्ड्रिया पर अधिकार किया, तभी उक्त लायब्रेरी जला दी गई थी और बहुतोंका कथन है कि खलीफाके बहुत पहले अनेक गड़बड़ोंके कारण वह नष्ट हो गई थी। एक उदाहरण लीजिए। इस लायब्रेरीके दो भाग थे। एक समुद्रके बहुत निकट था और वही बड़ा था। जूलियस सीजरने जब अलेकजेण्ड्रियाकी नौकाओंके बेड़ेमें आग लगा दी, तब उसी आगसे उक्त बड़ा भाग जल गया। सीजरके बाद उसका परम मित्र एण्टोनी इस हानिको पूर्ण करनेके लिए बहुत ही चिन्तित हुआ। उसने यह किया कि पार्गामस नामक स्थानमें जो एक विशाल लायब्रेरी थी उसीको लाकर क्लिओपेट्रा (मिसरकी रानी) को दान कर दी। तब क्लिओपेट्राने इस बड़ी लायब्रेरीमें पार्गामसकी पुस्तकें रख दीं।

"रोममें भी बड़ी बड़ी लायब्रेरियाँ थीं। ये सब लायब्रेरियाँ सर्वसाधारणके हाथमें रहती थीं, सब ही लोग उनमें जाकर पढ़ सकते थे। इस प्रकारकी पब्लिक लायब्रेरी या सर्व साधारणका पाठागार सबसे पहले आगस्टसने खोला था। ईस्वी सन् ४ में रोमनगरमें इस प्रकारकी २९ पब्लिक लायब्रेरियाँ थीं। इनके सिवाय प्रायः सभी बड़े बड़े नगरोंमें लायब्रेरियाँ थीं। जब रोमकी राजधानी कस्तुस्तुनियामें चली गई, तब वहाँ भी खूब बड़ी बड़ी लायब्रेरियाँ बनाई गईं। वहाँकी एक लायब्रेरीमें एक लाखसे भी अधिक पुस्तकें थीं। रोम साम्राज्यके नष्ट होने पर पोपोंने भी बड़ी बड़ी लायब्रेरियाँ बनाई थीं। जहाँ बड़े बड़े मठ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

या विहार थे, वहाँ बिशप रहते थे और उनमें बड़ी बड़ी लायब्रेरियाँ रहती थीं ! बड़े बड़े राजा भी उस समय लायब्रेरी रखते थे। पहले पहले लोग लायब्रेरियोंमें बैठ कर पढ़ते थे, पीछे पुस्तकें घर ले जा कर पढ़नेकी भी व्यवस्था कर दी गई थी।

"यह तो हुई प्राचीन अन्धयुगकी बात। वर्तमान समयमें तो लायब्रेरियोंकी गिनती ही नहीं है। सभी नगरोंमें बड़ी बड़ी पब्लिक लायब्रेरियाँ हैं। यूनीवर्सिटियोंमें लायब्रेरियाँ हैं और राजमहलोंमें भी। इनमें जो एक सबसे बड़ी लायब्रेरी है उसका हाल आप सब लोगोंको अवश्य जान लेना चाहिए। यह लायब्रेरी अमेरिकाके वाशिंगटन नगरमें खुली है। उसमें एक करोड़ पुस्तकें रखनेकी व्यवस्था की गई है और आवश्यकता होने पर उसमें और भी स्थान बढ़ाया जा सकता है! लायब्रेरीके अध्यक्ष कोई भी पुस्तक नहीं छोड़ते हैं; कोई भी पुस्तकका पता लगा कि वे उसका संग्रह किये बिना नहीं रहते। इस समय यूरोपमें लायब्रेरियन होनेके लिए एक कठिन परीक्षा देनी पड़ती है—आलमारियोंमें पुस्तकें किस तरह सजाना और किस तरह लायब्रेरीके सूचीपत्र बनाना इन सब बातोंको सिखानेवाली वहाँ एक जुदा साइन्स ही बन गई है। वहाँ केवल लायब्रेरियनोंके ही उपकारके लिए अनेक मासिकपत्र निकलते हैं और अनेक सोसायटियाँ हैं।

"अब अपने देशकी लायब्रेरियोंकी बात सुनिए। जब हमारे ब्राह्मणगण वेदमंत्रोंको कण्ठ रखते थे तब—उस प्राचीन कालमें—लायब्ररियोंकी जरूरत नहीं थी। ब्राह्मण लोग अपने पाँच वर्षके बच्चेको घरसे ले जाकर गुरुगृहोंमें रख आते थे। उस समय वे वेदोंको मुखस्थ किया करते थे। ९–१८–२७ या ३६ वर्ष केवल वेद कण्ठस्थ करना पड़ते थे। इस लिए जब ब्राह्मण गुरुकुलोंसे लौटते थे तब एक एक लायब्रेरी बनकर लौटते थे। वेद लिखे तो जा ही नहीं सकते थे, क्योंकि जो लिखता उसके लिए घोर नरक निश्चित था! प्रसिद्ध मुसलमान इतिहासज्ञ अलबेरुनी लिख गये हैं कि ईसवी सन् ९५० में सबसे पहले काश्मीर देशमें वेद लिपिबद्ध हुए थे। इस समय वेदोंकी हस्तप्रतियाँ बहुत कम उपलब्ध होती हैं। मोक्षमूलरने जितनी प्रतियों परसे ऋग्वेदका संस्करण प्रकाशित किया था, उनमेंसे कोई भी १६ वीं शताब्दिसे पहलेका नहीं है। हम लोगोंने उनसे भी कई पुरानी प्रतियाँ पाई हैं उनमें एक ईसवी सन् १३४२ की लिखी हुई है। शुरूसे अब तक वेद कण्ठस्थ ही चले आते हैं। यही हाल बौद्धोंका भी रहा है। ईसवी सन् ४०० में चीनका प्रसिद्ध यात्री फाहियान यहाँ पुस्तक संग्रह करनेके लिए आया था। परन्तु उसे कहीं भी ग्रन्थ नहीं मिले। वह एक तरहसे हताश हो गया था, किन्तु उससे एक आदमीने कहा—"यहाँ वैसे पुस्तकें नहीं मिलेंगी। बूढ़े बूढ़े भिक्षुकोंके पास जाओ और उनके मुखसे ग्रन्थ सुन सुनकर लिख ले जाओ।" फाहियानने आखिर ऐसा ही किया और वह बौद्धधर्मकी समस्त पुस्तकें लिख ले गया।

"वेद और धर्मग्रन्थोंके सम्बन्धमें यहाँ यही हाल था, परन्तु अन्यान्य विषयोंके ग्रन्थ बराबर लिखे जाते थे। लायब्रेरियाँ भी थीं। प्रायः प्रत्येक ब्राह्मणके यहाँ एक एक छोटी मोटी लायब्रेरी रहती थी। जिसके जितनी बड़ी लायब्रेरी होती थी, वह उतना ही बड़ा पण्डित समझा जाता था—क्यों कि "ग्रन्थी भवति पण्डितः।"

"बौद्धोंके प्रत्येक विहार या मठमें लायब्रेरी रहती थी। जैनोंके उपाश्रयों और मन्दिरोंमें शास्त्रभाण्डार होते थे। राजाओंके यहाँ भी पुस्तकालय रहते थे। मुसलमानोंकी विजयके समय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बौद्धोंके अनेक बड़े बड़े पुस्तकालय नष्ट हो गये। यह बात मुसलमानोंके ही इतिहाससे सुव्यक्त होती है कि तदन्तपुरी-विहारके पुस्तकालयको बख्तियार खिलजीने जला दिया था। इसी तरह नालन्द और विक्रमशीलके पुस्तकालय भी नष्ट हो गये। बंगालके प्रधान गौरव जगद्दल विहारकी भी यही दशा हुई और जान पड़ता है, भोज महाराजके पुस्तकालयकी भी यही गति हुई। सौभाग्यसे उस समय अनेक बौद्धभिक्षु पुस्तकें लेकर नेपाल और तिव्वतको भाग गये थे। इसके सिवाय इसके पहले भी भूटानके लोग जगद्दल विहारसे १० हजार ग्रन्थ अनुवाद करके ले गये थे। इसीसे हमें इस समय पता लगता है कि बंगाल एक समय बौद्ध देश था।

"बंगालके सेनवंशीय राजा बल्लालसेनकी भी एक लायब्रेरी थी। उस समयके भी ब्राह्मणोंके यहाँ पुस्तकालय थे, क्योंकि उनमें अनेक ग्रन्थोंके कोटेशेन (उद्धरण) पाये जाते हैं। यदि ग्रन्थ न होते तो इस प्रकारके कोटेशन कैसे दिये जाते? वे सब पुस्तकालय कहाँ गये? हमारा देश बड़ा बुरा है। हमारे यहाँ पुस्तकें नहीं रहतीं—अग्नि है, वृष्टि है, जल है, नदियोंके पूर हैं और सबसे बड़े शत्रु चूहे और दीमक हैं—और एक शत्रु हैं पण्डितोंके मूर्ख पुत्र। इन सबके द्वारा अनेक प्राचीन पुस्तकालय नष्ट हो गये। पर इस समय भी जो जो हैं, उनका कुछ वर्णन सुन लीजिए।

"नेपालमें मुसलमानोंका उपद्रव नहीं हुआ। वहाँके निवार राजे बहुत काल तक पुस्तकसंग्रह करते रहे हैं। उनके पुस्तकालयमें १४००–१५०० वर्षके पुराने ग्रन्थ हैं। उस देशमें थोड़ेसे प्रयत्नसे पुस्तकें बहुत समय तक टिकती हैं। जब गोरखा राजाओंने नेपालपर अधिकार किया तब निवार राजाओंके पुस्तकालयकी लूट हो गई। किन्तु अबसे कोई ५०–६० वर्ष पहले राणा जंगबहादुरके समयसे फिर पुस्तकालय बनाया जा रहा है। उसमें लगभग १६ हजार पुस्तकें हैं और लगभग २००० पुस्तकें ताड़पत्रों पर लिखी हुई हैं। वे प्रायः बंगालविहारके भागे हुए भिक्षुओं द्वारा ही वहाँ गई थीं। यह पुस्तकालय बड़ी सावधानीसे रक्खा जाता है। उसके लिए महाराजा वीर शमशेरजंग राणाने एक टावर बनवा दिया है। उसका एक विशाल कमरा और उसके चारों ओरकी दालानें पोथियोंसे ठसाठस भरी हुई हैं। उसमें अँगरेजी पुस्तकोंका भी संग्रह है। १६००० ग्रन्थ संस्कृतके हैं। भूटान देशके लगभग १०००० और चीन देशके ३–४ हजार ग्रन्थ हैं। चित्र भी बहुत हैं और वे तरह तरहके हैं;—विशेषतः तन्त्र-साहित्यके। यह पुस्तकालय महाराजका अक्षय यश है। इनके सिवाय नेपालमें और भी अनेक लोगोंके यहाँ अनेक ग्रन्थ हैं, जिनका पता पाना दुष्कर है।

"महाराजा रणजीतसिंहके पुरोहित मधुसूदनने पुस्तकोंका बड़ा संग्रह किया था। उनके पुत्रोंके उत्तराधिकारियोंने उन पुस्तकोंका क्या किया, कुछ पता नहीं।

"राजपूतानेके प्रायः सभी राजाओंके किलोंमें एक एक 'पोथीखाना' है। उनमेंसे अनेक पुस्तकालयोंमें २००० से लेकर ६००० तक पुस्तकें हैं। जब अलाउद्दीन खिलजीने देश पर अधिकार किया तब गुजरातके जैन लोग अपने ग्रन्थोंको लेकर जैसलमेर भाग गये। वे सब ग्रन्थ वहाँ अब भी बचे हुए हैं। मैसूर और त्रावणकोरमें भी बहुत ग्रन्थ हैं। वहाँके राजाओंके भी बड़े बड़े पुस्तकालय हैं। तंजौरकी लायब्रेरी बहुत पुरानी है। छत्रपति शिवाजीके पिता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साहूजीने जब उक्त देश पर अधिकार जमाया और तंजौरको राजधानी बनाया तब इस लायब्रेरीकी खूब उन्नति हुई। इसमें १८००० से अधिक ग्रन्थ हैं।

"लगभग ३०० वर्ष पहले एक बड़े भारी संन्यासी गोदावरी-तीरसे काशीवास करनेके लिए आये थे और उन्होंने वरुणाके तीर पर एक लायब्रेरी स्थापित की थी। उसमें चुने हुए लगभग ३००० ग्रन्थ थे। उसकी एक सूची इस समय भी उपलब्ध है। संन्यासीका नाम था—सर्वविद्यानिधान कवीन्द्राचार्य सरस्वती।

"मुसलमान बादशाहोंमें अनेक बादशाह लायब्रेरी रखते थे। उनके अमीर उमरावोंकी भी लायब्रेरियाँ थीं। वे केवल अरबी और फारसीके ही नहीं, भारतीय ग्रन्थ भी संग्रह करके रखते थे। मुसलमानोंको लायब्रेरीमें बैठकर पुस्तकें पढ़नेका बड़ा शौक था। हुमायूँने लायब्रेरीके जीनेसे गिरकर ही प्राणत्याग किया था।

"अँगरेजी शिक्षाके प्रभावसे इस समय तो सर्वत्र ही लायब्रेरियाँ खुल रही हैं। बंगालमें सबसे पुरानी लायब्रेरी रायल एशियाटिक सोसाइटीकी है। लार्ड वेलसलीने फोर्ट विलियम कालेजमें बड़े ठाठसे एक लायब्रेरी खोली थी। पीछेसे इस लायब्रेरीकी सब पुस्तकें एशियाटिक सोसाइटीको दे दी गईं।"

प्राचीन ग्रन्थोंका संग्रह और उनकी रक्षा।

(लेखक-श्रीयुत नाथूराम प्रेमी।)

मालूम नहीं हमारे जैनी भाइयोंको—जो रात दिन धर्म धर्म चिल्लाया करते हैं—यह बात कब सूझेगी कि धर्मकी रक्षा और उसके स्वरूपज्ञानके साधनभूत ग्रन्थोंकी रक्षा करनेकी भी जरूरत है। लोग थोड़ा बहुत प्रयत्न सभी प्रकारकी संस्थाओंके लिए कर रहे हैं, पर इस सबसे मुख्य कार्यकी ओर किसीका भी ध्यान नहीं जाता है कि देशके किसी मुख्यस्थानमें एक विशाल सरस्वती-मन्दिर स्थापित किया जाय और उसमें जितने ग्रन्थ मिल सकें, उन सबका एक बड़ा भारी संग्रह किया जाय।

यह कोई भी नहीं सोचता है कि अन्य संस्थायें तो अभी नहीं दस पाँच वर्ष पीछे भी खोली जावेंगी तो हर्ज नहीं; पर इस संस्थाकी तो सबसे पहले एक दिनका भी विलम्ब किये बिना—जरूरत है। जितने दिन जा रहे हैं, उतने ही ग्रन्थ नष्ट हो रहे हैं और उनके बचनेकी संभावना नष्ट हो रही है। यदि जान-बूझकर हमारे इस प्रमादसे जैनसाहित्यका एक भी पत्र—एक भी वाक्य—नष्ट होता है जो फिर किसी तरह भी प्राप्त नहीं हो सकता है, तो हम एक बड़ा भारी अपराध कर रहे हैं—जैनधर्मको विकलाङ्ग करनेका पाप सिरपर लाद रहे हैं। और यह बिलकुल स्पष्ट है कि हमारी इस लापरवाहीसे प्रतिदिन और प्रतिक्षण जगह जगह अनेक अनमोल और दुर्लभ ग्रन्थ किसी न किसी तरहसे नष्ट हो रहे हैं। कहीं वे चूहे और दीमकोंका भक्ष्य बन रहे हैं, कहीं लोगोंकी अज्ञानतासे वे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घास-फूसकी तरह पड़े हुए हैं और कहीं स्वार्थी लोगोंने उन्हें छुपा रक्खा है।

अब भी समय है। हमें विश्वास है कि यदि अब भी इस विषयमें काफी उद्योग किया जायगा तो अकेले दिगम्बर सम्प्रदायके ही इस समय अधिक नहीं तो जुदा जुदा दस हजार ग्रन्थोंका संग्रह किया जा सकता है और हमारा विशाल साहित्य अनेक अंशोंमें प्रकाशमें आ सकता है।

बम्बईकी गवर्नमेण्टने अबसे लगभग ३०-३५ वर्ष पहले इस विषयमें थोड़ासा प्रयत्न किया था जिसके फलसे डेक्कन कालेजकी लायब्रेरीके लिए लगभग ६ हजार श्वेताम्बरी और डेढ़ दो हजार दिगम्बरी ग्रंथोंका संग्रह हो गया था—जो बड़ा ही मूल्यवान् संग्रह समझा जाता है और जो इस समय डा० भाण्डारकर ओरियण्टल रिचर्स इन्टिटयूटकी शोभा बढ़ा रहा है। कहा जाता है कि जैनग्रन्थोंका इतना अच्छा और महत्त्वपूर्ण संग्रह देशके किसी भी पुस्तकालयमें नहीं है।

अवश्य ही यदि बम्बईसरकारका उक्त प्रयत्न अभीतक जारी रहता तो यह संग्रह इससे भी कई गुणा बड़ा हो जाता। परन्तु दुर्भाग्यकी बात है कि आगे उसने इस कार्यको बन्द कर दिया।

इससमय हमारे ईडर, नागौर, श्रवणबेलगोला, मूडबिद्री, आमेर (जयपुर), कारंजा, सोनागिर, ग्वालियर, डूँगरपुर, प्रतावगढ़ आदि प्राचीन भाण्डारोंमें जो कुछ संग्रह है वह तो सभीको मालूम है; परन्तु इसके सिवाय छोटे छोटे ग्रामों और नगरोंमें भी—जो किसी समय अच्छे स्थान थे और अब समयके फेरसे ऊजड़ हो गये हैं—हजारों ग्रन्थ पड़े हुए हैं। भट्टारकोंके शिष्य पाँडे और पण्डित पहले प्रायः सभी मध्यम श्रेणीके कस्बों और गाँवोंमें रहा करते थे और उन सबके पास एक एक छोटा मोटा पुस्तकालय होता था। ऐसे पुस्तकालय—अवश्य ही जीर्णशीर्ण अवस्थामें—तलाश करनेसे अब भी सैकड़ोंकी संख्यामें मिल सकते हैं। इनके सिवाय अनेक गृहस्थोंके घरोंमें भी—जिनके पूर्वजोंमें कोई विद्याव्यसनी थे— दस दस बीस बीस ग्रन्थोंके संग्रह मिलना कोई बड़ी बात नहीं है।

अजैन लोगोंके गृहपुस्तकालयोंमें और राजा महाराजाओंकी लायब्रेरियोंमें भी तलाश करनेसे हजारोंकी संख्यामें जैनग्रंथ मिल सकते हैं। जिस तरह जैनपुस्तकालयोंमें सैकड़ों अजैन ग्रन्थ मिलते हैं उसी तरह अजैन पुस्तकालयोंमें जैनग्रन्थ भी रहते हैं। जो सच्चे विद्याव्यसनी होते हैं, उनकी जिज्ञासा केवल अपने ही ग्रन्थोंके पठन—पाठनसे नहीं मिट सकती है—वे अपने पास सभी प्रकारके ग्रन्थ रखते हैं।

ग्रन्थोंके सिवाय जैनसाहित्य और इतिहास पर प्रकाश डालनेवाले और भी अनेक साधन जैनग्रंथोंकी खोज और उनका संग्रह करते समय मिल सकते हैं। खेद है कि इस विषयमें दिगम्बर सम्प्रदायकी ओरसे कुछ भी प्रयत्न नहीं किया गया है। प्रसिद्ध प्रसिद्ध ऐतिहासिक पुरुषोंके और पुराण-पुरुषोंके चित्र, चिट्ठी पत्रियाँ—जो साधु और विद्वान् एक दूसरोंको लिखा करते थे और जिनसे तत्कालीन अनेक घटनाओंका ज्ञान हो सकता है—विद्वानोंकी लिखी हुई तरह तरहकी याददाश्तें, तीर्थों और मन्दिरोंसम्बन्धी दस्तावेजें, आज्ञापत्र, दानपत्र आदि चीजें भी, बहुलताके साथ पुराने संग्रहोंमें मिल सकती हैं। इनका संग्रह करना बहुत ही आवश्यक है।

देशभाषाओंके ग्रन्थोंके संग्रह करनेकी भी बहुत आवश्यकता है। भाषाविज्ञान और इतिहासकी दृष्टिसे उनका भी कम महत्त्व नहीं है। उनका भी एक एक पत्र और पत्रका टूकड़ा संग्रह करनेसे न चूकना चाहिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यद्यपि यह काम बड़े खर्चका है परन्तु जो समाज केवल मन्दिरों और मूर्तियोंकी प्रतिष्ठामें प्रतिवर्ष कई लाख रुपये खर्च करता है उसके लिए तो यह, यदि वह चाहे तो, जरा भी कठिन नहीं है।

यह संग्रह दो तरहसे किया जाना चाहिए। एक तो जो ग्रन्थादि खरीदनेसे मिल सकें उन्हें खरीदकर और दूसरे जो इस तरह न मिल सकते हों उनकी प्रतिलिपि या कापी कराके। यदि तीन चार अच्छे विद्वान् और अनुभवी आदमी इस कार्यके लिए नियत कर दिये जायँ और वे जगह जगह जाकर ग्रन्थोंकी खोज करें तो ऐसे हजारों ग्रन्थ खरीद किये जा सकते हैं और हजारों ग्रन्थोंकी प्रतिलिपि करानेका प्रबन्ध कर सकते हैं। बाँकीपुरकी सुप्रसिद्ध खुदाबख्श लायब्रेरीके लिए इसी तरह ग्रन्थोंका संग्रह किया गया था। उसके कर्मचारी ईराण, तूरान, और तुर्कस्तान आदि तक ग्रन्थोंकी खोजके लिए घूमे थे। इसी लिए आज उर्दू, अरबी और फारसी साहित्यका इतना अच्छा संग्रह कहीं भी नहीं है।

बहुतसे भाण्डार ऐसे हैं जो ऐसे लोगोंके हाथोंमें हैं जिन्हें साक्षात् ज्ञानावरणीय कर्म कहना चाहिए। इन लोगोंको राह पर लानेके लिए भी अब प्रयत्न करनेका समय आ गया है। पहले तो चार छह अच्छे अच्छे प्रतिष्ठित पुरुषोंका डेप्युटेशन भेजकर उन्हें समझाना चाहिए और उनके भाण्डारोंको खुलवाना चाहिए। यह आवश्यक नहीं है कि उनकी बिना इच्छाके ग्रन्थ लिये जायँ; परन्तु वे इस बातके लिए अवश्य मजबूर किये जाने चाहिए कि ग्रन्थोंकी सूची बना लेने दें और जो ग्रन्थ अन्यत्र अलभ्य हों उनकी कापी करा लेने दें।

जो लोग बहुत हठी दुराग्रही और स्वार्थसाधु हैं, वे सरकारी और राजाओंकी सहायतासे ठीक किये जा सकते हैं। प्राचीन ग्रन्थ पब्लिककी सम्पत्ति हैं। उन्हें कोई अधिकार नहीं है कि वे उनके ज्ञानसे सर्वसाधारणको वंचित रक्खें। डा० बुल्हर आदि पाश्चात्य विद्वानोंने इसी न्यायसूत्रपर राजपूतानेके अनेक प्राचीन पुस्तकालयोंका निरीक्षण किया था और उनकी सूची बनाई थी। इस काममें उन्हें कहते हैं कि ब्रिटिश सरकारसे और देशी रियासतोंसे काफी सहायता मिली थी। यदि हमारे भाई भी इस कामको अच्छे और प्रभावशाली ढंगसे उठायँगे तो उन्हें भी इस प्रकारकी सहायता मिल सकती है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

पाठकोंको स्मरण होगा कि लगभग २० वर्ष पहले मूडबिद्रीके जयधवलादि सिद्धान्तग्रन्थोंकी द्वितीय प्रति करानेके लिए दिगम्बरजैनसमाजने कोई १०–१२ हजार रुपयेका चन्दा किया था। चार पाँच वर्ष हुए कि उक्त कापी करानेका कार्य समाप्त हो गया; परन्तु उन ग्रन्थोंका दर्शन सर्वसाधारणके लिए अब भी दुर्लभ है। विद्वान् लोग तरसते हैं कि देखें उनमें क्या लिखा हुआ है; परन्तु वे ग्रन्थ वहाँके स्वार्थी मठाधीशके धन कमानेके साधन बने हुए हैं और हमसे कुछ भी नहीं बन पड़ता है। एक दिन आयगा कि जिस तरह हम अपने सैकड़ों ग्रन्थरत्न नष्ट कर चुके हैं उसी तरह ये सिद्धान्त भी लुप्त हो जायँगे—क्योंकि संसार भरमें इनकी कोई दूसरी प्रति नहीं है और इनके साथके कई सिद्धान्त ग्रन्थ—जो लगभग १०० वर्ष पहले मौजूद थे—उक्त मठाधीशोंकी कृपासे, नष्ट हो भी चुके हैं।

यदि हम लोगोंमें अपने प्राचीन ग्रन्थोंपर जरा भी भक्ति हो और ग्रन्थोंकी रक्षा करना हम अपने धर्मका अंग समझें तो इन ग्रन्थोंकी एक नहीं पचास प्रतियाँ छह महीनेके भीतर ही कराई जा सकती हैं और वे जुदा जुदा पचास

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्थानोंके मन्दिरोंमें विराजमान कराई जा सकती हैं। हमको चाहिए कि हम वहाँके भट्टारकको मजबूर करें कि वे सिद्धान्तग्रन्थोंकी–प्रतिलिपियाँ कर लेने दें और यदि वे न मानें तो इसके लिए सरकारसे सहायता माँगी जावे। हमारा विश्वास है कि सरकार हमें इस काममें बिना किसी विलम्बके सहायता देवेगी।

एक फोटोग्राफरको कुछ महीनोंके लिए रख लेनेसे यह काम बहुत आसानीसे हो जाता है। बिलकुल मूल प्रतिके समान चाहे जितनी प्रतियाँ कराई जा सकती हैं और उक्त सिद्धान्त ग्रन्थ सदाके लिए अमर किये जा सकते हैं।

पूनेके भाण्डारकर इन्स्टिटयूटमें बारहवीं शताब्दिकी लिखी हुई एक आवश्यकसूत्रकी टीका है। ताड़पत्र पर इससे पहलेकी लिखी हुई कोई भी प्रति अब तक कहीं भी उपलब्ध नहीं हुई है। इस प्रतिकी तीन चार प्रतियाँ फोटू लेकर ही कराई गई हैं। हमनें उन्हें देखा है। बड़ी ही अच्छी हैं और खर्च भी ऐसा कुछ बहुत अधिक नहीं पड़ा है। अलभ्य ग्रन्थोंकी कापी करानेका यह बहुत ही अच्छा और सुगम उपाय है।

सुना है अबकी बार कानपुरमें दिगम्बर-जैनमहासभाका जल्सा बड़े ठाठ और उत्साहसे होनेवाला है। जल्सेके समय एक जैनसाहित्यकी प्रदर्शिनी खोलनेका भी प्रबन्ध किया जा रहा है। क्या हम आशा करें कि महासभामें इस विषय पर कुछ विचार किया जायगा? यद्यपि इस बातकी संभावना बहुत ही कम है कि उसे तीर्थक्षेत्रोंकी मुकद्दमेंबाजी, पण्डितों और बाबुओंके झगड़ों, धर्मके डूब जानेके भयोंसे बचनेके उपायों और ऐसे ही दूसरे अनेक कामोंकी चिन्ताओंके मारे इस कामकी ओर ध्यान देनेका अवकाश मिलेगा; फिर भी इस आशासे यह चर्चा उठाना आवश्यक समझा है कि इतने दिनोंके बाद महासभामें कुछ लोग तो अवश्य ऐसे उपस्थित होंगे जो और नहीं तो इस कार्यकी आवश्यकताका अनुभव करते हैं और जिन्हें वातूनी जमाखर्चके बदले कुछ ठोंस काम करनेकी इच्छा उत्पन्न हो गई है।

अन्तमें इस सम्बन्धमें हम अपने पाठकोंका ध्यान इस ओर आकर्षित करना आवश्यक समझते हैं कि श्रीमान् ऐलक पन्नालालजीने झालरापाटनमें एक 'सरस्वतीभण्डार' स्थापित करनेका प्रारंभ किया है और उसके लिए वे कई वर्षोंसे चन्दा कर रहे हैं। कहते हैं कि यह चन्दा पचास हजारके लगभग हो गया है और शीघ्र ही एक लाख हो जायगा। यह बड़ी खुशीकी बात है। यह भी सुना है कि त्यागीजी इस संस्थाका ट्रस्टीड करानेवाले हैं। इस विषयमें हमारा नम्र निवेदन यह है कि झालरापाटन स्थान ऐसी विशाल संस्थाके योग्य नहीं है। यह संस्था बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, और काशी जैसे स्थानोंमें ही शोभा देगी और वहीं इसका यथेष्ट उपयोग हो सकेगा। इस लिए ऐलकजीसे प्रार्थना करना चाहिए कि वे सर्वसम्मतिसे उसे झालरापाटनसे हटा दें और उसे तमाम दिगम्बर समाजकी संस्था बना दें। यदि इस संस्थाको सुव्यास्थित पद्धतिसे चलाया जायगा, अच्छे योग्य पुरुष इसके कार्य-सम्पादनके लिए रक्खे जावेंगे और उसमें जिस रीतिसे मैं पहले लिख चुका हूँ उस रीतिसे ग्रन्थसंग्रह किया जावेगा तो जैनसमाजकी एक बड़ी भारी जरूरत रफा हो जायगी।

हम अपने सहयोगियोंसे प्रार्थना करते हैं कि वे भी इस चर्चाको उठा लेनेकी कृपा करें और दिगम्बरजैनसमाजके माथेसे इस कलंकके टीकेको मिटानेका प्रयत्न करें कि इतने बड़े धनी समाजमें उसका कोई निजका अच्छा पुस्तकालय नहीं है। —बम्बई ५-८-२०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विद्यावती-वियोग ।

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं,
भास्वानुदेष्यति हसस्यति पङ्कजश्रीः ।
इत्थं विचिन्तयति कोषगते द्विरेफे,
हा हन्त हन्त नलिनीं गजमुज्जहार ॥
—भर्तृहरि ।

पाठक यह जान कर अवश्य दुखी होंगे कि हितैषीके सुयोग्य सम्पादक सज्जनोत्तम बाबू जुगलकिशोरजीकी एकमात्र शिशुकन्या विद्यावतीका गत ता० २८ जूनको एकाएक देहान्त हो गया । विद्यावती अभी लगभग ढाई वर्षकी ही थी । ७ दिसम्बर सन् १९१७ को उसका जन्म हुआ था और जन्मसे प्रायः सवा तीन महीने बाद ही, १६ मार्च सन् १९१८ को उसकी माताका देहान्त हो गया था, इससे उसका पालन-पोषण एक धाय रख कर कराया गया था । लड़की इतनी गुणवती और होनहार थी कि उसके बाल्यसुलभ क्रीड़ा कौतुकोंमें बाबू साहब अपनी सहधर्मिणीके वियोगजन्य कष्टको भूल गये थे । मोहवश उन्होंने उससे बड़ी बड़ी आशायें बाँध रक्खी थीं और उन दुर्बल आशातन्तुओंके आधार पर वे अपने कठोर भविष्यको गढ़ रहे थे; परन्तु मनुष्य सोचता कुछ है और हो कुछ और ही जाता है । दुर्भाग्यके एक ही झकोरेसे वे आशातन्तु टूट गये—विद्यावतीका प्राण-पखेरू उड़ गया और भविष्यकी कठोरता भीषणरूपमें स्पष्ट हो गई !

विद्यावतीकी मृत्युके सम्बन्धमें बाबू साहबका जो पत्र आया है, उसे पढ़ कर हृदय भर आता है । वे लिखते हैं—"विद्यावतीकी यादसे छाती भर भर आती है । उसकी इस दो ढाई वर्षकी छोटी अवस्थामें, बड़े आदमियों जैसी समझकी बातें, सबके साथ 'जी' की बोली, दयापरणति, उसका सन्तोष, उसका धैर्य और उसकी अनेक दिव्य चेष्टायें अपनी अपनी स्मृतिद्वारा हृदयको बहुत ही व्यथित करती हैं । वह कभी साधारण बच्चोंकी तरह व्यर्थकी जिद्द करती अथवा रोती-रड़ाती हुई नहीं देखी गई । ऐसी बीमारीकी हालतमें भी कभी उसके कूल्हने या कराहने तककी आवाज नहीं सुनी गई, बल्कि जब तक वह बोलती रही और उससे पूछा गया कि तेरा जी कैसा है तो उसने बड़े धैर्य और गाम्भीर्यके साथ यही उत्तर दिया कि 'चोखा है ।' वितर्क करने पर भी इसी आशयका उत्तर पाकर आश्चर्य होता था ! स्वस्थावस्थामें जब कभी कोई उसकी बातको ठीक नहीं समझता था या समझनेमें कुछ गलती करता था तो वह बराबर उसे पुनः पुनः कहकर या कुछ अते-पतेकी बातें बतलाकर समझानेकी चेष्टा किया करती थी और जब तक वह यथार्थ बातको समझ लेनेका इजहार नहीं कर देता था तब तक बराबर 'नहीं' शब्दके द्वारा उसकी गलत बातोंका निषेध करती रहती थी । परन्तु ज्यों ही उसके मुँहसे ठीक बात निकलती थी तो वह 'हाँ' शब्दको कुछ ऐसे लहजेमें लम्बा खींच कर कहती थी, जिससे ऐसा मालूम होता था कि उसे उस व्यक्तिकी समझ पर अब पूरा संतोष हुआ है । वह हमेशा सच

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बोलती थी और अपने अपराधको खुशीसे स्वीकार कर लेती थी । विद्यावतीके ऊपर मैंने बहुतसी आशायें बाँध रक्खी थीं और अनेक विचारोंको कार्यमें परिणत करनेका उसे एक आधार समझ रक्खा था ! मेरी हमेशा यह कोशिश रहती थी कि उसकी स्वाभाविक इच्छाओंका विघात न होने पावे और अपनी तरफसे कोई ऐसा कार्य न किया जाय, जिससे उसकी शक्तियोंके विकाशमें किसी प्रकारकी बाधा उपस्थित हो या उसके आत्मा पर कोई बुरा संस्कार पड़े । मैं उसे एक आदर्श कन्या और स्त्रीसमाजका उद्धार करनेवाली एक आदर्श स्त्रीके रूपमें देखना चाहता था । परन्तु मेरा इतना भाग्य कहाँ कि वह दिव्यमूर्ति मेरी आँखोंके सामने रह कर मुझे कुछ शान्ति, तृप्ति तथा धैर्य प्रदान करती और इस तरह मेरे भी दिलके कुछ अरमानोंको निकलनेका अवसर मिलता ! अब सब बातें कोरी ख्वाबखयाल तथा स्वप्नजाल हो गई हैं, अथवा कहानी मात्र रह गई हैं । अब विद्यावतीकी सूरत दुर्लभ हो गई ! वह ऐसी जगह नहीं गई जहाँसे जल्दी लौट आयगी ! उसे मैंने अपनी आँखोंके सामने चिता पर भस्म होते देखा है !! मुझे नहीं मालूम था कि वह इतनी थोड़ी आयु लेकर आई है ! ”

सूझ नहीं पड़ता कि बाबू साहबको किस तरह समझाया जाय और किस तरह धैर्य बँधाया जाय । सच मुच यह दुःख दुःसह है और इसे सहन करनेके लिए बड़ी शक्ति चाहिए । हमारी एकान्त कामना है कि जिनेन्द्रदेवका शासन उन्हें वह शक्ति प्रदान करे ।

—नाथूराम प्रेमी ।

विविध-प्रसङ्ग ।

१–वैद्यजीका तर्क ।

जैनमित्रके गत २९ अप्रेलके अंकमें किसी अज्ञातनामा वैद्यजीने, घूँघट निकालकर, जैनहितैषी और सत्योदयसे स्त्रीपुरुषोंकी समानता पर कुछ प्रश्न किये हैं । यद्यपि इन प्रश्नोंका जैनहितैषीसे कोई खास सम्बन्ध नहीं, हितैषीने कभी स्त्रीपुरुषोंके सर्वथा समान होनेका प्रतिपादन नहीं किया और इस लिये वह उनका उत्तर देना अपने लिये कोई जरूरी नहीं समझता–उन सब प्रश्नोंका उत्तर उन्हें किसी वैद्य, हकीम या डाक्टर आदिकी सेवा करनेसे ही प्राप्त होगा–तो भी जैनहितैषी संक्षेपमें इतना जरूर कहना चाहता है कि “ स्त्री पुरुष अनेक अंशोंमें परस्पर समान हैं और अनेक अंशोंमें समान नहीं हैं । अर्थात्, वे समान भी हैं और असमान भी । दोनों एक नहीं हैं—स्त्री स्त्री है और पुरुष पुरुष है । रही रीतिरिवाजों पर उनके अधिकार–की बात, सो रीतिरिवाज सदा एक अवस्थामें नहीं रहा करते—उनमें देशकालानुसार बराबर परिवर्तन हुआ करता है, परिवर्तन पाया जाता है और इस लिये उनके आधार पर किसी विषयका कोई अटल सिद्धान्त नहीं बन जाता । ” परंतु इन प्रश्नोंके अनन्तर ही वैद्यजीने कुछ पंक्तियाँ दी हैं, जिनसे आपके नये तर्कशास्त्रका परिचय मिलता है । वे पंक्तियाँ इस प्रकार हैं:–

“ यदि उक्त प्रश्नोंके महानुभाव सयुक्तिक उत्तर देकर सिद्ध करें कि पुरुष और स्त्री समान हैं तो उनकी बातें सच हैं नहीं तो लोगोंको धोखा देनेके लिये जाल हैं—बिलकुल झूंठ हैं । ”

पाठको, देखा, कैसा बढ़िया युक्तिवाद है ! शायद आपको किसी भी न्यायशास्त्रमें इससे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अच्छा युक्तिवाद देखनेको न मिला होगा ! बात यह है कि यदि हम स्त्रीपुरुषोंकी समानता सिद्ध कर दें तो वैद्यजी हमारी उलटी सीधी सभी बातोंको सच माननेके लिये तय्यार हैं, और यदि सिद्ध न कर सकें या करना न चाहें तो फिर हमारी बातें चाहे कितनी भी अच्छी, सत्यतापूर्ण और शास्त्रसम्मत क्यों न हों परंतु वैद्यजी उन्हें बिलकुल झूठ और जाल समझेंगे ! है कोई वीर महानुभाव जो वैद्यजीके हृदयका यह काँटा निकाल देवे, उनकी विकलता दूर करदेवे और उन्हें लटकंतमें लटकनेसे बचा लेवे ? हमारी तो शक्तिसे यह काम बाहर मालूम होता है । हम यदि अनेक अवयवोंसे स्त्रीपुरुषोंकी समानता सिद्ध भी कर देवें तो वैद्यजी यही कहेंगे कि हम सर्वथा समानता चाहते हैं यद्यपि उनके उपर्युक्त प्रतिज्ञावाक्यमें 'सर्वथा' शब्द नहीं है । इस पर हमारा यह कहना होगा कि यदि संपूर्ण अवयवोंकी सर्वथा समानता पर ही कोई समानाधिकार निर्भर है और स्त्रीपुरुषोंके संपूर्ण अवयवोंमें सर्वथा समानता नहीं है तो फिर उनका कोई भी अधिकार समान न होना चाहिये । उन्हें खाने पीने, उठने बैठने, सोने जागने, रोने धोने, सोचने विचारने, देखने सुनने, दुख सुखका अनुभव करने, जीने मरने और आत्मरक्षा आदिके जो समान अधिकार मिले हुए हैं वे सब रद्द होने चाहियें । नहीं मालूम इस पर वैद्यजी क्या उत्तर देंगे । इस लिये हमसे उनका समाधान नहीं हो सकेगा । अस्तु ।

यहाँ किसीको यह कहनेका साहस न करना चाहिये कि वैद्यजीने, न्यायशास्त्रमें गति न होते हुए, व्यर्थ ही उसमें हाथ डालकर अपनी और उसकी मिट्टी खराब की है, नहीं तो वैद्यजी रुष्ट हो जायँगे और उनकी बातोंको भी बिलकुल झूठ समझने लगेंगे !

२–ब्राह्मणविधवाकी उदारता ।

नीलकटरा, देहलीके पंडित दीनानाथजी जैतली (सारस्वत) की विधवाने अपनी सारी संपत्ति, जो प्रायः एक लाख रुपयेकी मालियतकी है, एक सनातनधर्म-कन्यापाठशाला, एक पुस्तकालय और एक प्याऊ स्थापित करनेके लिये लिख दी है । महामहोपाध्याय पं० बांकेराय नवल गोस्वामी, लाला राधामोहन, मि० ताराचंद वकील आदि कई सज्जन उसके ट्रस्टी नियत हुए हैं । हम उक्त विधवाबाईकी इस उदारता और समयोपयोगी दानशीलताकी हृदयसे सराहना करते हुए अपनी उन जैनविधवाओंका ध्यान इस ओर आकर्षित करते हैं जिन्हें रथयात्रा, मेले ठेले, मंदिरप्रतिष्ठा और उत्सवादिके सिवाय दूसरा कोई पुण्यकर्म ही मालूम नहीं होता । उन्हें एक ब्राह्मणविधवाके इस समयोपयोगी दानसे कुछ सबक सीखना चाहिये और अपने समाजकी वर्तमान अवश्यताओंको मालूम करके उनके पूरा करनेका यत्न करना चाहिये । समयोपयोगी कार्योंमें व्यय किया हुआ धन ही अधिक फलदायक और विशेष पुण्यजनक होता है ।

३–सेठजीका वेश्यानृत्यसे प्रेम ।

भारतवर्षीय दिगम्बर जैनमहासभाके सभापति, सरकारसे 'रायबहादुर' 'सर' और 'नाइट' की उपाधियाँ प्राप्त, इन्दौरके धनकुबेर सेठ हुकमचंदजी वेश्यानृत्यके बड़े ही प्रेमी मालूम होते हैं । यद्यपि आपने अपने अनेक व्याख्यानोंमें, वेश्यानृत्यका जोरके साथ निषेध किया है और पालीताणामें दि० जैन प्रान्तिक सभा बम्बईके सभापतिकी हैसियतसे ये शब्द कहे थेः—

"इस (वेश्यानृत्य) के द्वारा हमारा धन ही नष्ट नहीं होता, बल्कि हमारी संतान भी इससे नष्ट होती है । सुकुमार संतानके हृदय पर जैसी शिक्षाका प्रभाव डाला जाता है वह आगामी सदैवके लिये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्थिर हो जाता है। महफिलोंमें अपनी संतानको साथ बिठाकर वेश्यानृत्य दिखलाना मानों उनको वेश्याव्यसनकी शिक्षा देना है। इस लिये सज्जनो! इन कुरीतियोंको दूर कर जातिको निर्मल बनाइये। यहाँ यह कहना ठीक होगा कि कुरीतियों या उन्नतिके उपायोंके सबसे ज्यादा प्रचार करनेवाले जातिके मुखिया ही हैं। क्योंकि जातीय मुखियोंकी देखादेखी ही अन्य सामान्य लोगोंकी वैसी ही प्रवृत्ति होती है। यदि जातीय मुखिया अपने अपने घरोंसे इन कुरीतियोंको निकाल दें तो जातिसे कुरीतियाँ दूर होनेमें कुछ भी देरी नहीं है। अतएव जातिकी उन्नति और अधोदशाका श्रेय या अश्रेय जातीय मुखियों पर ही है। इस लिये जातीय मुखियोंको इन कुरीतियोंके दूर करनेके लिये पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये।"

परंतु इतने पर भी आपने, उक्त कथनसे कुछ ही वर्ष बाद, अपने पुत्रके विवाहमें बड़े जोर शोरके साथ वेश्याओंका नृत्य कराया था और उसकी सीमाको यहाँ तक बढ़ाया था कि नृत्यकी एक स्पेशल महफिल अपने अन्तःपुरमें भी लगवाई थी और इस तरह अपने कुटुंब परिवार, रिश्ते नाते, गलीमहोल्ला और नगरकी स्त्रियोंको भी खास तौरसे रंडीका नाच दिखलाया था। इसपर समाजके तथा दूसरे अनेक पत्रोंमें सेठजीपर बहुत कुछ फटकारें पड़ी थीं और यह आशा की गई थी कि आगामीको सेठजी फिर वेश्यानृत्यका नाम नहीं लेंगे, बल्कि 'दिगम्बर जैन' का तो यहाँतक कहना है कि तब सेठजीने इन्दौरमें एक सभामें खास प्रतिज्ञा ली थी कि मैं अबसे वेश्यानृत्य नहीं कराऊँगा। परंतु जान पड़ता है सेठजी पर उस फटकार-वर्षाका कुछ भी असर नहीं हुआ। और यदि सचमुच ही उस वक्त आपने; अपनी उस कृति पर पश्चात्ताप करके, उक्त प्रकारकी कोई प्रतिज्ञा ली थी तो वह वेश्यानृत्यके प्रेमोद्रेकमें विस्मरण अथवा उसके भक्तिरसमें निमग्न हो गई मालूम होती है। इसी लिये हालमें आपने अपनी पुत्रीके विवाहमें भी, जोकि अजमेरके रायबहादुरसेठ टीकमचंदजी सोनीके पुत्रके साथ हुआ है, बड़ी धूमधामके साथ फिर वेश्यानृत्य कराया है! और बड़े तमाशेकी बात यह हुई कि आपको अपना यह नृत्य उस वक्त बंद करना पड़ा जब कि बारात आई; क्योंकि ऐसी हालतमें सेठ टीकमचंदजी शामिल नहीं होते थे, उनके वेशानृत्यके न देखने तककी प्रतिज्ञा थी और उन्होंने स्वयं अपनी ओरसे इस विवाहमें कतई वेश्यानृत्य नहीं कराया; जैसा कि 'जैनमित्र' और 'दिगम्बर जैन' के हालके समाचारोंसे प्रकट है *।

इन सब बातोंसे पाठक भले प्रकार समझ सकते हैं कि सेठ हुकमचंदजी वेश्यानृत्यके अथवा प्रकारान्तरसे वेश्याके कितने बड़े प्रेमी और भक्त हैं। उनका नैतिक बल, इस विषयमें सेठ टीकमचंदजीके नैतिक बलके सामने, निःसन्देह, पराजित हुआ है। उन्हें इस बातका जरा भी खयाल नहीं आया कि संसारमें मेरा क्या पदस्थ है, जैनसमाज मुझे किस गौरवकी दृष्टिसे देखता है, देश तथा समाजमें वेश्यानृत्यके सम्बंधमें कैसी हवा बह रही है, मैं स्वयं उसके विरुद्ध भरी सभाओंमें क्या कुछ कह चुका हूँ और वेश्यानृत्यके करानेवाले आजकल किस हीन दृष्टिसे देखे जाते हैं। हमें सेठजीकी इस नीची प्रवृत्ति और परिणतिपर बहुत खेद होता है। जान पड़ता है आपके सलाहकार भी अच्छे नहीं हैं। उन्हें, अपनी अदूरदृष्टिके कारण, इस बातका जरा भी ध्यान नहीं है कि सेठजीका गौरव वास्तवमें किन बातोंसे बढ़ता और किन बातोंसे घटता है। अच्छा होता यदि सेठजी इस विवाहके अवसर पर कुछ भी दान न करते परंतु वेश्यानृत्य न

* देखो 'जैनमित्र' अंक ३१ और 'दिगम्बर जैन' अंक २।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कराते। वेश्यानृत्य कराकर और उसके द्वारा अपनी तथा दूसरोंकी संतानको व्यभिचार व पाप-प्रचारका उपदेश दिलाकर तथा अन्य प्रकारसे भी उसके नष्ट भ्रष्ट हो जानेका बीज बोकर, आपने अपनी घरू संस्थाओं आदिको जो कुछ दान दिया है उसका क्या अर्थ है, यह कुछ समझमें नहीं आता। एक ओर तो पापप्रचारको खूब उत्तेजन देना और पापियोंको सहायता देकर उन्हें गलेसे लगाना, दूसरी ओर दानके नामसे कुछ धार्मिक कामोंकी भी पीठ ठोकना, यह किस नीति पर अवलम्बित है? क्या सेठजी इसके द्वारा अपने ही आचरण पर पर्दा डालना चाहते हैं या उसके विरुद्ध उठनेवाली आवाजको दबानेकी फिकरमें हैं; अथवा पबलिकको यह समझानेकी रखते हैं कि इस तरह पर हमने अपने दुष्कर्मका प्रायश्चित्त किया है। कुछ भी हो; हमें इस विषयमें आपकी समझ ठीक मालूम नहीं होती और न आपका वह दान धार्मिक-भावोंसे प्रेरित होकर दिया हुआ जान पड़ता है। जो वेश्यायें स्वभावतः ही—अपनी वृत्तिके अनुसार—संसारमें अनेक प्रकारके अमंगलोंको मनानेवाली हैं उन्हें विवाह जैसे मांगलिक कार्योंमें बुलाकर नचाना कभी भी आजकलके सुदूरदर्शी विद्वानों तथा धार्मिक पुरुषोंकी दृष्टिमें अच्छा नहीं समझा जा सकता। किसी कविने ठीक कहा है:—

ब्याह समय सौभाग्यका, रांड नचावें भूर।
मंगलमें असगुन करें, पड़ी बुद्धिपै धूर॥

हम सेठजीसे, उन्हींके (ऊपर उद्धृत किये हुए) शब्दोंकी याद दिलाकर, पूछते हैं कि आपने वेश्यानृत्यमें जो धन खर्च किया है वह क्या किसी सुकृतमें व्यय हुआ है? अथवा उसे वैसे ही व्यर्थ नष्ट हुआ समझना चाहिये? अपनी और दूसरोंकी संतानको वेश्यानृत्य दिखलाकर क्या आपने उन्हें नष्ट करनेका प्रयत्न नहीं किया और उन्हें वेश्या-व्यसनकी शिक्षा नहीं दी? अपनी उस सुकुमार कन्याको, जिसके विवाहमें वेश्या नचाई गई है, आपने इसके द्वारा क्या सिखलाया है? यह जाननेकी हमारी बड़ी उत्कंठा है। इसके सिवाय हम इतना और पूछना चाहते हैं कि क्या आप जातिके मुखिया नहीं हैं? यदि हैं तो जातिके मुखियोंको लक्ष्य करके आपने जो कुछ अपने व्याख्यानमें कहा था उसका पालन क्या इसी तरह किया जाता है? क्या इसे हम 'परोपदेशकुशलता' अथवा 'खुदरा फजीहत दीगरांरा नसीहत' न समझें? क्या यह समझें कि आपके विचार अब बदल गये हैं और आप इस समय वेश्यानृत्यको ही जैनजातिके उत्थानका प्रधान साधन समझते हैं; इसीसे आप वेश्या-नृत्यके प्रचारमें लगे हुए हैं और स्वयं अगुआ बनकर दूसरोंके सामने उसका उदाहरण रखते हैं। आशा है सेठजी इन सब बातोंका उत्तर देकर हमें संतुष्ट करनेकी अवश्य कृपा करेंगे और यदि उन्हें अब भी अपनी भूल मालूम पड़े तो उसे प्रकाश्य रूपसे सर्व साधारण पर प्रकट करनेकी उदारता दिखलाएँगे। साथ ही आगेको वेश्यानृत्य न करानेकी ही नहीं, बल्कि उसके प्रचारको रोकनेकी दृढ प्रतिज्ञा धारण करेंगे। अन्यथा हमें इस बातका बड़ा भय है कि सेठजीके इस वेश्यानृत्यप्रेमसे इन्दौरमें आपकी कहीं स्थायी नृत्यशाला कायम न हो जाय।

४—विलायत न जाना अपराध।

महात्मा गाँधीजी, नवजीवनमें, अपनी विलायत यात्राके विचारका स्पष्टीकरण करते हुए, लिखते हैं कि, "किसी भी प्रसंगसे विलायत न जाना, ऐसी मेरी मान्यता कभी नहीं हुई। मैं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनेक ऐसे प्रसंगोंकी कल्पना कर सकता हूँ जब कि विलायत न जाना अपराध गिना जायगा।" दूसरे शब्दोंमें यों कहना चाहिये कि विलायतयात्रासे यदि किसी भारी लाभकी संभावना हो तो उसके लिये जरूर प्रस्तुत होना चाहिए। अन्यथा, केवल सैर-सपाटेके लिये नहीं। इसीसे महात्माजीने खिलाफत मामलेमें विलायत जाना स्वीकार किया था और अपने भेजे या न भेजे जानेका अन्तिम निर्णय मुसलमान भाईयोंके ऊपर छोड़ा था।

५—अछूत तथा नीच जातियोंका सौभाग्य।

सहयोगी 'भविष्य' आदि पत्रोंसे मालूम होता है कि आजकल अछूत तथा नीच जातियोंके उत्थानका अनेक स्थानोंपर अच्छा प्रयत्न जारी है, जिसके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैः—

१ थैया सम्प्रदायके धर्मगुरु श्रीनारायणगुरु स्वामीने, जिनके शिष्योंकी संख्या १७ लाख है; मंदिरोंमें परिया और दूसरी अछूत जातिवालोंको घुसनेकी आज्ञा दे दी है। परिया जाति मद्रास प्रांतमें एक बहुत नीची कौम समझी जाती है।

२ कालीकटके जमोरिन कालिजमें अभीतक सिर्फ ऊँची जातिके लड़के ही दाखिल हो सकते थे परंतु अब अछूत लड़के भी दाखिल हो सकेंगे।

३ कोचीनकी 'कांग्रेस' नामकी सभाने प्रस्ताव पास किया है कि अछूत जातियोंको वर्त्तमान दशाके अनुसार उचित अधिकार दिये जाने चाहियें।

४ मैसूर राज्यमें अछूत जातियोंके उद्धारके लिये कई वर्षसे प्रयत्न जारी है। वहाँ उन्हें आरंभिक शिक्षा मुफ्त दी जाती है। इस वर्ष राजसभामें उच्च शिक्षाको भी मुफ्त किये जानेका प्रस्ताव हुआ है।

५ नागपुरमें ३०—३१ मईको कोल्हापुर महाराजके सभापतित्वमें 'आल इंडिया कांग्रेस आफ़ डिप्रेस क्लास' (नीच समझी जानेवाली जातियोंकी सभा) का जो जल्सा हुआ है उसमें अछूत जातियोंके साथ किये जानेवाले सामाजिक और राजनैतिक अन्यायोंकी बड़ी निन्दा की गई और उसे देशके लिये घातक बतलाया गया।

६ मि० बी० बोसने कहा है कि नई कौंसिलोंका सबसे पहला कार्य यह होना चाहिये कि वह उन संपूर्ण अन्यायोंको दूर करनेका उद्योग करे जो नीचोंके साथ किये जाते हैं।

७ कोचीनके दीवानने कुछ छोटी जातियोंके मंदिरमें जानेके अधिकारको स्वीकार कर लिया है।

ये सब बातें अछूत तथा नीच जातियोंके सौभाग्योदयको सूचित करती हैं। इन जातियों पर पिछले जमानेमें बहुत कुछ अन्याय और अत्याचार हुए हैं। जान पड़ता है अब इनके भी कुछ दिन फिरे हैं और इनके सौभाग्यका सितारा भी चमकेगा। महात्मा गाँधी जैसे देश-नेता भी इनके उद्धारमें लगे हुए हैं। इस विषयमें उनके विचारोंको हमने अन्यत्र प्रगट किया है।

६—विना नामके लेख-पत्र।

'नवजीवन'में एक विना नामके लेखको उद्धृत करके उस पर टीका करते हुए, महात्मा गाँधी लिखते हैं कि—

"मैं अनेक बार लिख गया हूँ कि जवाबदारी (जिम्मेदारी) वाले लेख किसीको भी विना नामके नहीं लिखने चाहियें। विना नामके लेखपत्र लिखनेकी हमारी आदत दूसरे देशोंकी अपेक्षा मुझे बढ़ी हुई मालूम होती है। हमें अपने विचारोंको प्रकट करते हुए क्यों डरना चाहिये? शरमाना चाहिये? सच्चे विचारोंको प्रकट कर-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नेमें डर किसका ? और शरम किसकी ? विना नामके लेख-पत्र लिखनेवालोंको अब भी मेरी यह शिक्षा है कि तुम इस आदतको छोड़ दो। जिन विचारोंकी, जिस भाषाकी जवाबदारी उठानेके लिये हम तय्यार नहीं हैं उन विचारोंको बतलाने अथवा वैसी भाषा प्रयोग करनेका हमें अधिकार नहीं है। ”

विना नामके लेखों तथा पत्रोंमें अक्सर भाषा कटुक हो जाती है और नम्रता जाती रहती है, इसलिये महात्मा गाँधीजी आगे सूचित करते हैं कि इस तरह पर विवेक छोड़कर लिखनेका हमें कभी अधिकार नहीं है। जिन्हें किसी विषय पर टीका टिप्पण करनेका विचार हो उन्हें विवेक न छोड़कर हिम्मतके साथ अपना नाम देते हुए उसे कार्यमें परिणत करना चाहिये।

आशा है हमारी जैनसमाजके लेखक भी महात्माजीकी इस शिक्षाको ध्यानमें रक्खेंगे।

७–दुअन्नीका मूल्य।

हालमें ‘ अखिल भारतवर्षीय एकादश वैद्य सम्मेलन’का जो जल्सा इन्दौरमें हुआ था उसमें एक दिन प्रयागमें विद्यापीठ महाविद्यालय खोलनेके लिये चंदेकी अपील की गई थी। इस अपीलका परिचय देते हुए सहयोगी वैद्य, अपने ४ थे नम्बरकी संख्यामें लिखता है कि चंदेमें “ पंजाबके एक साधुने एक दुअन्नी दी थी, जो नीलाम की गई। अन्तमें वह दुअन्नी १०२५)रु. में बम्बईके डा० पोपट प्रभुरामने ख़रीद ली। ” जिस साधुकी एक दुअन्नीकी इतनी कदर की गई और इतना मूल्य दिया गया वह कैसा प्रतिष्ठित, प्रभावशाली और लोकप्रिय होगा, इसे पाठक स्वयं समझ सकते हैं। परंतु खेद है सहयोगीने उसका नाम नहीं दिया और इस तरह अपने पाठकोंको उसका नाम जाननेके लिये उत्कंठित ही रक्खा।

८–अंत्यजोंके उद्धारसम्बंधमें महात्मा गाँधीके विचार।

अंत्यजों को, अस्पृश्य मानना पाप है।

काठियावाड़की किसी प्रसिद्ध, धर्मपरायण और विदुषी बहनने, एक पत्रके द्वारा, महात्मा गाँधीजीसे दो बातें पूछी थीं, जिनमेंसे एक बात अंत्यजोंके सम्बंधकी थी और उसका प्रश्न इस प्रकारसे किया गया था—

“ मैं एक दूसरी जरूरी बात पूछती हूँ। यह दुर्भागी हिन्दुस्तान उग्रभागी कब होगा, यह बात आप तो जानते होंगे पर क्या दूसरोंको भी बतलाओगे ? बहुतसी कौमोंकी अपेक्षा आप अंत्यज कौमको अधिक उत्तेजन देते हो, इसका विशेष रहस्य क्या है ? हिन्दुस्थानमें बहुतसी कौमें (जातियाँ) दुर्बल स्थितिमें हैं उनमेंसे अंत्यजोंकी कौमके ऊपर आपकी अधिक लगन (तवज्जह) है ऐसा मालूम होता है। मेरी यह मानता ठीक नहीं होगी, क्योंकि आपने ‘ आत्मवत्सर्वभूतेषु ’ के सिद्धान्तको मानकर सत्याग्रह पकड़ा है। ”

महात्मा गाँधीजीने, अपने ३० मईके ‘ नवजीवन ’ में, उक्त बहनकी दोनों बातोंका उत्तर देते हुए अंत्यजोंके उद्धार विषयमें अपने विचार इस प्रकारसे प्रकट किये हैं:—

“ अब मैं अंत्यजोंके विषयका उत्तर देता हूँ। हिन्दुस्तानके मंदभाग्यका प्रश्न इसमें समाया हुआ है। अंत्यजोंका प्रश्न करके यह बहन शंका उठाती है कि क्या अंत्यजोंको अंत्यजतामेंसे निकाल कर हम हिन्दुस्तानको उग्रभागी बना सकेंगे ? मैं समझता हूँ जरूर ऐसा परिणाम निकाला जा सकता है; क्यों कि जिस शक्तिके द्वारा हम एक महा पापसे मुक्ति प्राप्त करेंगे उसी शक्तिके द्वारा दूसरे पापोंमेंसे भी अपनेको निकाल सकेंगे। और मेरी यह दृढ मान्यता है कि नव-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तक हम कुछ पापकर्मोंमें पड़े हुए हैं तबतक हिन्दुस्तान मंदभागी ही रहेगा। मैं अंत्यजोंकी सेवा करके संपूर्ण कौम (जातिसमूह) की सेवा करता हूँ, ऐसी मेरी मान्यता है। जिस प्रकार अंत्यज दुखी हैं उस प्रकार दूसरे भी हैं परंतु अन्त्यजोंके ऊपर हम तो धर्मके नामसे डाका डाल रहे हैं। अतः इस अधर्ममेंसे निकल जाना और दूसरोंको निकल जानेकी सूचना करना, यह एक चुस्त हिन्दूके तौर पर मैं अपना विशेष कर्तव्य मानता हूँ। अंत्यजोंके दुःखका मुकाबला प्रजाके दूसरे किसी भी विभागके दुःखके साथ हम नहीं कर सकते। अंत्यज अस्पृश्य हैं, ऐसा धर्म हम कैसे मानते हैं, यह मेरी बुद्धि ग्रहण नहीं कर सकती। और जब मैं इसका विचार करता हूँ तब मेरा हृदय काँपता है। यह अस्पृश्यता हिन्दूधर्मका अंग कभी नहीं हो सकती, ऐसा मेरा आत्मा साक्षी देता है। इतने वर्षोंतक अज्ञानतावश उन्हें (अंत्यजोंको) अस्पृश्य गिनकर हिन्दू संसारने पापका एक बड़ा भारी पुंज जमा किया है, जिसको दूर करनेके लिये संपूर्ण जीवन अर्पण करना यह मुझे जरा भी अधिक मालूम नहीं पड़ता और मैं केवल इसी एक कार्यके अंदर अपनेको नहीं रोक सकता, इतनी बातका मुझे दुःख रहा करता है। इसमें अंत्यजोंके साथ जीमन (भोजन)-व्यवहार तथा बेटीव्यवहार रखनेका सवाल जरा भी उत्पन्न नहीं होता, केवल छूने और नहीं छूनेका ही प्रश्न है। अंत्यज मुसलमान हो जाय तो मैं छूऊँ, ईसाई हो जाय तो मैं उसे सलाम करूँ, जिस ईसाई अथवा मुसलमानको वह छूवे उसके छूनेमें पाप न मानूँ परंतु उस अंत्यजको छूनेमें मुझे संकोच होता है! यह विचार मुझे तो अन्यायसे भरा हुआ, विवेकरहित और अधार्मिक ही मालूम होता है। इसीसे अंत्यजको छूकर मैं अपनेको पवित्र हुआ मानता हूँ और अनेक रीतिसे मर्यादामें रहनवाले हिन्दू-संसारको इस दोषसे निकल जानेकी विनती ही किया करता हूँ। इस बहनसे भी, जिसने सरल भावसे ऊपरका पत्र लिखा है, मेरी विनती है कि वह अपनी उत्तम शक्तिको और अपने परिचितोंके प्रयत्नको पूरी तौरसे लगाकर हिन्दू संसारको इस अस्पृश्यताके पापबोझमेंसे छुड़ानेमें भागीदार बने।"

९—समयोपयोगी कार्य।

सहयोगी भारतमित्रसे मालूम हुआ कि हालमें खंडेलवाल महासभाका जो अधिवेशन दिल्लीके रईस ला० रघुमलजीके सभापतित्वमें हुआ है उसमें १५४ परिवारों (कुटुम्बों) को जो प्रायः १३२ वर्षसे जातिच्युत थे, जातिमें शामिल कर लिया गया है, बोर्डिंग हाउसोंके लिये सभास्थानपर ही एक लाख पंद्रह हजारका चंदा हुआ जिसमें एक लाख रुपया सभापतिसाहबने दिया है, और एक स्त्री श्रीमती नारायणी बाईको, स्त्रीशिक्षापर एक सुन्दर निबन्ध पढ़नेके उपलक्षमें १५०) रुपये पुरस्कारस्वरूप दिये गये। इन सब समयोपयोगी कार्योंको मालूम करके हमें बहुत प्रसन्नता हुई। आशा है हमारे जैनसमाजकी भी भिन्नभिन्न सभाएँ इससे कुछ शिक्षा ग्रहण करेंगी और खासकर अपने चिरकालसे बिछुड़े हुए (जातिच्युत किये हुए) भाईयोंको फिरसे गले लगाने और उन्हें अपनी जातिमें शामिल करनेकी उदारता दिखलाएँगी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१०–आँखें बंद कर लो, देखो मत !

कलकत्तेकी दिगम्बर जैनसभाको 'सत्योदय' और 'जातिप्रबोधक' से बड़ा भय मालूम होता है। उसकी श्रद्धा-कुटी इन पत्रोंके वाग्बाणोंसे छिन्न भिन्न हुई जाती है; नहीं नहीं, बल्कि इनके हुंकार मात्रसे उड़ी जाती है ! उसे अपने समीपमें स्थित जैनधर्म इतना लचर और पोच दिखलाई देता है कि वह इन पत्रोंकी कुटिल दृष्टिके सामने ठहर नहीं सकता ! साथ ही, उसे यह भी अनुभव हुआ जान पड़ता है कि दूसरे जैनी भाईयोंकी श्रद्धा-कुटियोंकी हालत भी उसी जैसी है—वे भी फूँक मारते ही उड़ जानेवाली हैं। और इस लिये उसने अपनी, जैनधर्मकी, और अपने दूसरे जातिभाईयोंकी रक्षाके लिये एक बहुत बड़ा रामबाण उपाय खोज निकाला है, और वह आँखें बंद कर लेना है ! इसीसे वह दूसरोंको भी यही उपदेश देती है अथवा आदेश करती है कि 'आँखें बंद कर लो देखो मत'[1]—अर्थात्, इन पत्रोंको मत पढ़ो ! उसके खयालसे इसीमें सारा रक्षातत्त्व छिपा हुआ है। परंतु हमारी समझमें यह तो वही बात हुई कि जैसे किसी बिलावको सामनेसे आता हुआ देख-एक कबूतर उसके तेजको न सह सकनेके कारण किंकर्तव्यविमूढसा होकर अपनी आँखें बंद करके बैठ जाता है और समझता है कि इस तरह मेरी रक्षा हो जायगी—मैं उसे नहीं देखता तो मानों वह भी मुझे नहीं देखता—परंतु पाठक समझ सकते हैं कि क्या इस तरह पर उस कबूतरकी रक्षा हो जाती है ? कभी नहीं। आँखें खुली रहनेकी हालतमें यदि वह उड़-उड़ाकर अपनी कुछ रक्षा कर भी सकता तो अब उससे भी वंचित हो जाता है और अपनेको अनायास ही दूसरोंके हाथोंमें समर्पण कर देता है। ठीक ऐसी ही दशा, इस समय, कलकत्ता जैनसभाके सभासदों और उनके अनुयायियोंकी जान पड़ती है, वे भी किंकर्तव्यविमूढ मालूम होते हैं और इसी कबूतर जैसी नीतिका अनुसरण किये हुए हैं। परंतु वीरपुरुषोंकी ऐसी नीति नहीं हुआ करती, वे आक्रमणकारीके मुकाबलेमें खम ठोककर आते हैं। आँखें बंद कर लेना या पीठ देकर बैठ रहना, यह कायरों तथा कापुरुषोंका चिह्न है। और इस लिये, जो लोग ऐसा आचरण करते हैं वे संसारमें अपनी निर्बलता और अकर्मण्यताको सर्वसाधारणके सामने उच्च स्वरसे उद्घोषित करते हैं। जान पड़ता है कलकत्तेकी उक्त सभाको जैनधर्म पर विश्वास नहीं है अथवा उसने जैनधर्मका वास्तविक स्वरूप नहीं समझा और न उसके रहस्यका ही उसे कुछ बोध है। वह कुछ अस्थिर रूढ़ियोंके समूहको ही जैनधर्मका शरीर कल्पित किये हुए है और इसीसे जैनधर्म उसे इतना लचर तथा पोच दिखलाई देता है कि उसके चलायमान हो जानेकी उसके हृदयमें हर वक्त आशंका बनी रहती है ! नहीं तो, मूल जैनधर्मकी दीवारें ऐसी वज्रकी बनी हुई हैं और इतने मजबूत तथा सुदृढ पायेके ऊपर खड़ी हैं कि उन्हें जरा भी कोई हिला नहीं सकता। परंतु खेद है कि सभाको इसका कुछ भी अनुभव नहीं है। यदि सभा जैनधर्मके वास्तविक स्वरूपको जानने, उसके रहस्यको समझनेकी कोशिश करे और साथ ही समय पर अपनी आत्मशक्तियोंका यथार्थ प्रयोग करना सीखे तो उसके लिये भयका कोई स्थान न रहे और न फिर, व्यर्थकी घबराहटसे उत्पन्न हुए, इस प्रकारके निष्फल तथा हानिकर प्रयत्नों द्वारा उसे विद्वत्समाजमें हँसीका ही पात्र बनना पड़े।

---

१ इस विषयका जो प्रस्ताव उक्त सभाने पास किया है उसे हमने अपने विचारोंके साथ अन्यत्र प्रकाशित किया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

११–सेठीजी जाति-च्युत किये गये ।

गत अंकमें यह समाचार प्रकाशित किया जा चुका है कि बम्बईमें खंडेलवालजातीय श्रीयुक्त पं० अर्जुनलालजी सेठी बी. ए. ने अपनी मँझली कन्याका विवाह एक हूमड़ जातीय जैन युवकके साथ कर दिया है। जहाँ तक हम जानते हैं जैनधर्म इस प्रकारके विवाहोंका निषेध नहीं करता। जब जैन पुराणोंके अनुसार चक्रवर्ती जैन राजा म्लेच्छ देशकी कन्याओं तकसे विवाह करते थे, और द्विज जातियोंमें—ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यवर्णोंमें—परस्पर विवाहसम्बन्ध होनेके सैकड़ों उदाहरण जैनकथासाहित्यमें भरे हुए हैं, तब यह एक ही वैश्यवर्णकी और एक ही दिगम्बर जैनधर्मको माननेवाली दो जातियोंका सम्बन्ध तो किसी प्रकार भी ऐसा नहीं हो सकता कि इसका विरोध किया जाय। परन्तु न जाने क्या सोचकर बम्बईकी खण्डेलवाल जैनपंचायतने सेठीजीको जातिच्युत करनेकी आज्ञा जारी कर दी है! इस आज्ञाको सुनकर बड़ा भारी आश्चर्य इस कारण हुआ कि यहाँकी पंचायतके अग्रणी-प्रधाननेता–पं० धन्नालालजी काशलीवाल हैं और वे जैनधर्मके धुरन्धर पण्डित हैं। वे उन लोगोंमेंसे हैं जो जैनशास्त्रोंको अक्षर अक्षर मानते हैं। हम नहीं समझते कि उन्होंने इस जैनधर्मसे सर्वथा अनुकूल विवाहको क्यों अवैध समझा और उसका विरोध करनेकी क्यों आवश्यकता समझी।

इस बम्बई पंचायतसे तो शोलापुरकी हूमड़ पंचायत ही विचारशील निकली। सुनते हैं, उसने अभी तक इस विवाहके विरुद्ध कोई भी प्रयत्न नहीं किया है और न वह करना ही चाहती है। इसके पहले शोलापुरमें दसा और बीसा हूमड़ोंमें भी परस्पर एक दो सम्बन्ध हो गये हैं और वे थोड़ेसे ही विरोध आदिके बाद एक तरहसे जायज समझ लिये गये हैं।

खण्डेलवाल पंचायती अपने रीति-रवाजोंको और जातिनियमोंको अपनी इच्छानुसार जारी रखनेके लिए स्वतन्त्र है। उसमें हस्तक्षेप करनेका किसी दूसरेको अधिकार नहीं हो सकता; फिर भी उसे ऐसे मामलोंमें अब विशेष सोच–समझसे काम लेना चाहिए। समय बदल रहा है, लोगोंके दृष्टिकोण बदल गये हैं और सामाजिक अत्याचारोंसे लोग इतने पीडित हो रहे हैं कि यदि उनकी न्याय्य आकांक्षाओंके प्रति सहानुभूति प्रकट न की जायगी तो वह समय दूर नहीं है जब पंचायतियोंकी अवाधित सत्ताके जूँएको लोग अपने कन्धोंसे उतार कर फेंक देंगे और उससे जो थोड़ा बहुत लाभ होता था उससे भी वंचित हो जायँगे। हमारी छोटीसी समझमें यह ढंग अच्छा नहीं है। इनसे स्वेच्छाचार घटेगा नहीं—जैसी कि आशा की जाती है, उलटा बढ़ेगा।

१२–एक कदम और आगे।

सत्यवादीके भूतपूर्व सम्पादक पं० उदयलालजी काशलीवाल भी खण्डेलवाल जातिके हैं। उनकी उमर इस समय लगभग ३६ वर्षकी है। कई वर्षसे वे प्रयत्न कर रहे थे कि किसी खण्डेलवाल जातिकी कन्याके साथ शादी कर लेवें। इस कार्यके लिए उन्होंने ४–५ हजार रुपये तकका प्रबन्ध कर लिया था। वे अपने एक धनी मित्रके साथ नागोर आदि प्रान्तोंमें कन्याकी शोधमें घूमे भी; परन्तु जब उनका कार्य सिद्ध नहीं हुआ और वे इस ओरसे निराश हो गये—उन्हें अपनी चरित्ररक्षाका और कोई उपाय नहीं सूझ पड़ा तब उन्होंने एक सच्चरित्र बालविधवाको जो जातिकी ब्राह्मणी है, बुला लिया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और अब वे उसके साथ बहुत जल्दी विवाह करनेवाले हैं। इस बातकी खबर पाकर खण्डेलवाल पंचायती चौंक पड़ी और उसने पण्डित उदयलालजीको जन्मभरके लिए जातिसे खारिज कर दिया और साथ ही यह आज्ञा भी जारी कर दी कि उनका मन्दिरसम्बन्ध भी बन्द किया जाता है, अर्थात् वे अब जैनमन्दिरमें दर्शनादि भी न कर सकेंगे !

जब पण्डितजीने विधवाको बुला लिया है और वे उसके साथ विवाह करनेकी तैयारीमें हैं तब यह आशा तो कोई भी समझदार नहीं कर सकता था कि वे जातिच्युत न किये जावेंगे। वह दिन अभी इतने निकट नहीं मालूम होता जब कुरीतियोंके कीचड़में फँसी हुई ये पंचायतियाँ एक आपद्धर्मके रूपमें भी विधवाविवाहके प्रति स्वेच्छापूर्वक सहानुभूति प्रकट करने लगेंगी। उनमें अभी इतनी समझ ही कहाँ है? इतना हृदय ही कहाँ है? अत: पण्डितजीको जातिच्युत करना पंचायतका एक बहुत ही मामूली काम हुआ है, इसके विषयमें हम कुछ भी नहीं कहा चाहते; परन्तु उसने जो उन्हें मन्दिर भी बन्द कर दिया है यह खंडेलवाल जातिके इतिहासमें बिलकुल नई बात है—इस विषयमें वह एक कदम और भी आगे बढ़ गई है।

यह मन्दिर बन्द करनेका दण्ड परवार और गोलापूरब आदि दो एक बुन्देलखण्डकी जातियोंमें प्रचलित है। इसे सुनकर हमारे कई खंडेलवाल मित्र बड़ा आश्चर्य करते थे और इस प्रथाके विषयमें उक्त जातियोंका परिहास भी किया करते थे; परन्तु हम समझते हैं अब उन्हें वह आश्चर्य न होगा और न परिहास करनेका ही साहस होगा। क्यों कि इस दण्डविधिको अब स्वयं उनकी खण्डेलवाल सभाने जायज करार दिया है। परवार भाइयोंको इस समाचारसे अवश्य ही सन्तोष होगा कि उनकी जातिके एक अद्वितीय रिवाजका दिगम्बर सम्प्रदायकी एक बहुत ही प्रतिष्ठित जाति अनुकरण कर रही है !

किसीका देवदर्शन बन्द कर देना, उसकी आत्मोन्नतिके एक प्रचलित मार्गमें रुकावट डालदेना, और फलतः उसे जैनधर्मके आश्रयसे दूर फेंकनेकी कोशिश करना कहाँ तक उचित और शास्त्रविहित है तथा इसका कौनसा अच्छा परिणाम होगा इसका उत्तर तो जैनधर्मके धुरन्धर विद्वान् ही दे सकेंगे; परन्तु हमारी समझमें बम्बईकी खंडेलवाल पंचायतने इस आज्ञाके जारी करनेमें कुछ जल्दी अवश्य की है। जिस मन्दिरसे पंडित उदयलालजी बन्द किये गये हैं, उसमें दक्षिणके सेतवाल, चतुर्थ और पंचम आदि जातिके लोग बराबर दर्शन करनेके लिए आते हैं और उनमें कई सौ वर्षोंसे विधवा-विवाहकी प्रथा जोरोंके साथ जारी है और सेतवाल जातिका तो यह हाल है कि उसमें तलाक तकका रिवाज जारी है, अर्थात् उनमें बहुतसी स्त्रियाँ अपने पतियोंके जीतेजी भी—उनसे न बनने पर—दूसरोंके यहाँ चली जाती हैं ! क्या पंचायतीने इस बात पर विचार करनेका कष्ट उठाया है? क्या वह पंडितजीकी विधवाविवाहकी तैयारीको उक्त जातियोंके विधवाविवाह और तलाक (छोड़छुट्टी) के रिवाजसे भी बुरा समझती है? अथवा उसको यह सच्चा ज्ञान हो गया है कि जो रिवाज पुराने हो जाते हैं और जिनको जातिके एकसे अधिक सभ्य स्वीकार कर लेते हैं, वे जायज हो जाते हैं—उनमें दोषकल्पना नहीं हो सकती ?

१३ जैनहितैषी भी जैनपत्र नहीं है !

कलकतेकी दिगम्बर जैनसभाने आखिर अपनी भूल सुधार ली। पहले उसने 'जातिप्रबोधक' और 'सत्योदय' को ही अजैन पत्र ठहराया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

था; परन्तु अब उसने फिर दूसरी आज्ञा जारी की है कि नहीं, जैनहितैषी भी क्यों जैन बना रहे? उसको भी जैन बनाये रखनेमें लाभ नहीं है। जैनी भाइयोंको चाहिए कि इसे भी अजैन समझें और इसके ग्राहक न बननेकी और न पढ़नेकी प्रतिज्ञा कर लें! सभाको उसकी इस उदारता और गुणज्ञताके लिए अनेक धन्यवाद!

१४ महात्मा तिलकका स्वर्गवास।

पूनेके सुप्रसिद्ध देशभक्त महात्मा तिलकका ता० ३१ जुलाईकी रातको बम्बईमें स्वर्गवास हो गया। राजनीतिके क्षेत्रमें काम करनेवालोंमें आज तक उनके समान सम्मान और प्रतिष्ठा किसीको भी प्राप्त नहीं हुई। उस दिन उनके अन्तिम संस्कारके समय जनताकी जैसी भीड़ हुई थी वैसी आज तक किसी भी नेता, महात्मा और धर्माचार्यके लिए तो क्या किसी राजा महाराजाके लिए भी नहीं हुई थी! एक समाचारपत्रके कथनानुसार उस समय ५–६ लाख मनुष्य उपस्थित थे! वह दृश्य अपूर्व था। उससे पता लगता था कि इस समय देशमें देशप्रेमकी महिमा कितनी बढ़ गई है। महात्मा तिलक प्रतिभा, साहस, धैर्य, निर्भयता, कष्टसहिष्णुता, राजनीतिज्ञता और एकनिष्ठता आदि सभी गुणोंमें अद्वितीय थे। ज्योतिष और पुरातत्त्वके भी वे धुरन्धर पण्डित थे। उनके देहावसानसे देशकी जो महती हानि हुई है वह जल्दी मिटनेवाली नहीं। उनके कट्टरसे कट्टर विरोधियोंको भी उनकी इस असमयमृत्युसे शोक हुआ है। सभीकी यह राय है कि देशका एक महान् रत्न लुप्त हो गया। देश कंगाल हो गया। महात्मा गाँधीके शब्दोंमें लोकमान्य तिलक मरकर भी हमें जीनेका मंत्र सिखा गये हैं। साथही देशके हृदयमें वे अमर हो गये हैं। *

---

* पिछले चार नोट प्रकाशकके लिखे हुए हैं।

त्रुवल्लुव नायनार त्रुकुरल।

(लेखक–स्वर्गीय बाबू दयाचन्दजी गोयलीय)

(अंक ४–५ से आगे)

५–गृहस्थाश्रम।

४१–गृहस्थसे ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और सन्यासी तीनों अवस्थाओंके लिये सहायता मिलती है।

४२–अनाथों, दरिद्रों और असहाय मृतक (?) मनुष्योंके लिये गृहस्थ अवलम्ब है।

४३–पितरोंका श्राद्ध (?) करना, देवताओंका यज्ञ करना अतिथियोंका सत्कार करना, सम्बंधियोंकी सहायता करना और आत्म-रक्षा करना ये पाँच गृहस्थके कर्त्तव्य हैं।

४४–उसका वंश कभी नहीं नाश होता जो धर्मानुकूल आजीविका प्राप्त करता ह और सुपात्रोंको दान देकर भोजन करता है।

४५–जिस घरमें धर्म और प्रेमका बाहुल्य है अर्थात् जहाँ पति और पत्नीमें गाढ़ प्रेम है, वही घर सुखी है और उसका प्रत्येक कार्य उत्तम रीतिसे सिद्ध होता है।

४६–जो मनुष्य गृहस्थाश्रमके धर्मका समीचीन रूपसे पालन करता है उसके लिये वानप्रस्थ या संन्यासाश्रममें जानेकी क्या आवश्यकता है?

४७–जो मनुष्य गृहस्थाश्रममें शास्त्रानुकूल धर्माचरण करता है वह वानप्रस्थोंसे भी बढ़कर है।

४८–जो मनुष्य गृहस्थाश्रममें रहता हुआ इस बातका ध्यान रखता है कि तपस्वी लोग निर्विघ्नतासे अपनी तपस्या कर रहे हैं, अर्थात् उन्हें कोई कष्ट नहीं है और जो स्वयं धर्मानुकूल जीवन व्यतीत करता है वह तपस्वियोंसे बढ़कर है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४९–वास्तवमें गृहस्थ जीवन ही धर्म जीवन है। अन्य आश्रम भी यदि वे निर्दोष हैं तो उत्तम हो सकते हैं।

५०–जो गृहस्थ गृहस्थाश्रमके नियमोंका पूर्ण रूपसे पालन करता है वह इस लोकमें, मनुष्योंमें देवताओंके सदृश है।

६–गृहिणी-सुख।

५१–वही स्त्री गृहिणी होनेके योग्य है, जिसमें गृहिणीके समस्त गुण हों और जो अपने पतिकी आयके अनुसार व्यय करती हो। (गुरुभक्ति, अतिथिसत्कार, निर्धन और निराश्रित जनोंके प्रति दया-अनुकम्पाका व्यवहार तथा आवश्य-कतानुसार सामग्रीका संचय करना और पाक विधिमें चातुर्य इत्यादि गुण गृहिणीमें होने चाहिए।)

५२–जिस घरकी गृहिणीमें उपर्युक्त गुण न हों तो चाहे जितनी धन सम्पदा होने पर भी उस घरमें प्रकाश नहीं हो सकता।

५३–जिस घरमें गृहिणीमें उपर्युक्त गुण हैं उसमें फिर किस बातकी कमी है? अर्थात् किसी बातकी कमी नहीं। परंतु जिस घरमें गृहिणीमें उक्त गुण नहीं हैं उसमें क्या धरा है? अर्थात् उसमें कुछ भी नहीं है।

५४–जिस मनुष्यके घरमें पतिव्रता विदुषी स्त्री है उसके लिये उससे बढ़कर फिर संसारमें और कौन वस्तु है?

५५–जो स्त्री नित्य प्रातःकाल उठकर पतिके चरणारविन्दोंको नमस्कार करती है और पतिको छोड़कर अन्य किसी देवी देवताके आगे सिर नहीं झुकाती है, वह यदि यह कहे कि वर्षा हो तो तत्काल वर्षा होने लगेगी। (पाति-व्रत धर्मकी ऐसी ही महिमा है।)

५६–जो स्त्री अपने धर्म और शीलकी रक्षा करती है, पतिभक्तिमें लीन रहती है, और अपने घरकी प्रतिष्ठाको सुरक्षित रखती है वही स्त्री वास्तवमें सच्ची गृहिणी है। ऐसे पति-पत्नीमें जो प्रेम होता है वह अक्षय और स्थायी होता है।

५७–स्त्रीको अपने धर्म और शीलकी रक्षा आप करनी चाहिए। उसके लिये किसी प्रका-रके परदेकी या रोककी आवश्यकता नहीं है। (लोगोंका यह विचार कि स्त्रियोंको पर-देमें रखनेसे और उन्हें घरसे बाहर न निक-लने देनेसे उनके धर्मकी रक्षा होगी, भ्रम है। जिन स्त्रियोंको अपने शीलकी रक्षाका विचार होता है, वे खुले मुँह बाजारमें फिरकर भी अपने शीलकी रक्षा कर सकती हैं, परन्तु जिन्हें इस बातका ध्यान नहीं है उन्हें चाहे सात तालोंके अंदर बंद करके रख दिया जाय, फिर भी वे सुरक्षित नहीं रह सकतीं।

५८–जो स्त्री अपने पतिकी शुद्ध अन्तः-करणसे भक्ति करती है अर्थात् जो स्त्री सच्ची पतिव्रता है उसकी देवता तक भी पूजा करते हैं।

५९–जिस पुरुषकी स्त्री अपने धर्म और कुलकी प्रतिष्ठाको सुरक्षित नहीं रख सकती है वह अपने शत्रुओं और द्वेषियोंके सामने सिंहके समान निर्भय होकर खड़ा नहीं हो सकता है।

६०–घरकी प्रतिष्ठा पतिव्रता विदुषी गृहिणीसे है और उसकी शोभा गुणी और सदाचारी सन्तानसे है।

७–सन्तान।

६१–चतुर और सद्गुणी सन्तानसे बढ़कर संसारमें कोई सुख नहीं है।

६२–जिस मनुष्यके ऐसी सुंदर, सुशील और सद्गुणी सन्तान है कि जिसमें किसीको कोई दोष दिखलाई नहीं देता, उसको सात जन्म तक भी कोई दुख नहीं हो सकता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६३–विद्वानोंका कथन है कि सन्तान माता पिताका धन है, कारण कि जो धन संतान पैदा करती है और उससे जो सत्कार्य माता-पिताके लिये करती है उनका फल माता पिताको पहुँचता है।

६४–बच्चोंके नन्हें नन्हें हाथोंसे स्पर्श किया हुआ और इधर उधर फैलाया हुआ भोजन अमृतसे भी बढ़कर स्वादिष्ट होता है।

६५–बच्चोंके स्पर्श करनेसे शरीरको सुख मिलता है और उनकी तोतली बोलीके सुननेसे कानोंको।

६६–जिन्होंने अपने बच्चोंकी तोतली और मीठी बोलीको नहीं सुना है केवल वे ही लोग यह कहा करते हैं कि वीणा और बाँसुरीका स्वर मधुर होता है।

६७–पुत्रके प्रति पिताका यही कर्तव्य है कि वह उसको विद्वानोंकी सभामें उच्च आसन पर बैठनेके योग्य बना दे।

६८–पुत्रको पितासे अधिक उन्नति करते हुए देखकर सम्पूर्ण संसारको आनंद होता है।

६९–माताको पुत्रकी उत्पत्तिसे बड़ा आनन्द होता है, परंतु उसका आनन्द उस समय और भी अधिक बढ़ जाता है, जब वह संसारमें उसके गुणों और विद्याकी प्रशंसा सुनता है।

७०–पुत्रसे पिताको क्या लाभ है? अर्थात् पुत्रको पिताके लिये क्या करना उचित है? इसका उत्तर यह है कि पुत्रको ऐसा सुशील और सदाचारी होना चाहिए कि लोग उसे देखकर स्वतः यह कहने लगें कि तपस्या करनेसे उक्त मनुष्यको ऐसे पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई है।

८–प्रेम।

७१–क्या कोई वस्तु ऐसी है जो प्रेमको प्रकट होनेसे रोक सके? प्रेमीकी आँखोंके छोटे छोटे आँसू ही उसके प्रेमको प्रकट कर देते हैं।

७२–जिन मनुष्योंमें प्रेम नहीं है वे स्वार्थी हैं और अपने लिये जीते हैं, परंतु जिनमें प्रेम है वे दूसरोंके लिये अपने प्राण तक न्योछावर करनेको तैयार रहते हैं।

७३–विद्वानोंका कथन है कि आत्माने इस कारण स्थूल शरीरको धारण किया है कि जिससे जीवधारियोंमें प्रेमका संचार हो।

७४–प्रेमसे जीवमात्रके प्रति मनमें दयाका भाव होता है और दयालुतासे मनुष्यकी इतनी इज्जत होती है कि सब लोग उसको अपना मित्र कहते हैं।

७५–प्रेमके शांतिमय जीवनसे मनुष्यको इस लोक और परलोकमें दोनों जगह सुख मिलता है।

दूसरा सर्ग।

३९–राजाके सद्गुण।*

३८१–जिस राजाके पास सैन्य, मनुष्य, द्रव्य, मंत्री और दुर्ग (किला) ये छहों चीजें हैं वह राजाओंमें सिंहके समान है।

३८२–साहस, उदारता, बुद्धिमत्ता और उत्साह ये चार गुण ऐसे हैं कि राजामें सदैव पाये जाने चाहिये।

३८३–राजामें निरन्तर कार्यतत्परता, विद्या और दृढता ये तीन गुण भी रहने चाहिये।

३८४–यदि राजा धर्मसे च्युत नहीं होता है, प्रजाको पापकर्म करनेसे रोकता है और अपनेमें साहस रखता है तो उसका गौरव सुरक्षित रहता है।

३८५–राजा वह है जो द्रव्योपार्जन करता है, उसका संचय करता है, उसकी रक्षा करता है और फिर उसे धर्मकार्योंमें व्यय करता है।

३८६–जिस राज्यमें प्रजा आसानीसे राजाके पास पहुँच सकती है और जहाँ पर राजा

* इनके पहलेके ३०५ पद्योंके अनुवादकी कापी खो गई है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कठोर वचनोंका प्रयोग नहीं करता उस राज्यकी सम्पूर्ण संसार प्रशंसा करता है।

३८७-जो राजा मीठी वाणीसे उदारताके साथ प्रजाकी सहायता करता है और अपने बल पराक्रमसे उसकी रक्षा करता है, उसकी सेवा करनेके लिए सम्पूर्ण जगत् तैयार रहता है।

३८८-जो न्यायसे शासन करता है और प्रजाके दुःखोंको दूर करके उनकी सहायता करता है उसे प्रजा उसके कामोंके करण देवताके समान समझती है यद्यपि वह जन्मसे मनुष्य होता है।

३८९-योग्य और उत्तम राजा वह है जो ऐसे कड़वे बचनोंको भी समझकर सहन कर लेता है जिन्हें कान सहन नहीं कर सकते। ऐसे राजाकी छत्रछायामें सम्पूर्ण संसार सुखचैनसे रहता है, अर्थात् वह सम्पूर्ण जगत पर शासन करता है।

३९०-दान, दया, उत्तम शासन और प्रजाके आनन्दकी चिन्ता ये चार बातें राजाके प्रकाशको प्रकट करती हैं।

४०-विद्या।

३९१-इस प्रकार विद्या प्राप्त करो कि जिससे तुम्हें पूर्ण और निर्दोष ज्ञानकी प्राप्ति हो और फिर ठीक प्राप्य ज्ञानके अनुकूल आचरण करो।

३९२-जिस प्रकार दोनों आँखें मनुष्यको मार्ग प्रदर्शित करती हैं उसी प्रकार संख्याज्ञान और (गणित) शब्दज्ञान (व्याकरण) ये दो विद्यायें इस संसारके समस्त प्राणियोंके लिए मार्गप्रदर्शक हैं।

३९३-कहा है कि जिन मनुष्योंने विद्यालाभ कर लिया है, वे ही वास्तवमें नेत्रधारी हैं। मूर्खजन नेत्रहीन अर्थात् हियेके अन्धे हैं।

३९४-ज्ञानवान् पुरुषोंका यह गुण है कि वे बड़ी उत्सुकतासे उस समयकी प्रतीक्षा करते हैं जब उन्हें फिरसे विद्वानोंकी संगतिका आनन्द प्राप्त हो।

३९५-जिस प्रकार भिक्षुक धनिकोंके सामने उनके नीचे खड़े रहते हैं उसी प्रकार मूर्खजन ज्ञानी पुरुषोंसे नीचे खड़े रहते हैं।

३९६-रेतीले मैदानको जितना अधिक गहरा खोदते हैं पानीके सोते उतने ही अधिक निकल आते हैं, उसी प्रकार जितनी अधिक तुम विद्या प्राप्त करोगे उतने ही अधिक ज्ञानके सोते तुम्हारे अन्दरसे निकलेंगे।

३९७-जब विद्यावानोंके लिए प्रत्येक देश स्वदेशके समान और प्रत्येक गृह स्वगृहके समान हो जाता है तब समझमें नहीं आता कि बहुतसे मनुष्य बिना कुछ सीखे अपना जीवन कैसे व्यर्थ खो देते हैं। (क्रमशः)

विनामूल्य।

१ जो लोग इस सूचनाके निकलनेके बादसे छह महीनेके लिये, इसी अंकसे, जैनहितैषीके ग्राहक होंगे और ६ महीनेके मूल्यकी बावत १।) रु. मनीआर्डर द्वारा भेज देवेंगे, अथवा पूरे सालके लिये ग्राहक होंगे और पिछले अंकोंको भेजे जानेकी स्वीकारता देकर साल भरके लिये २) रुपये मूल्यका मनीआर्डर रवाना करेंगे ऐसे सब नवीन ग्राहकोंको 'विधवा कर्तव्य' नामकी एक डेढसौ पृष्ठोंसे ऊपरकी पुस्तक विना मूल्य भेट की जायगी।

२ जिनभाईयोंको अपने तथा अपने इष्टमित्रादिकोंके लिये 'मेरी भावना' की दो चार कापियोंकी जरूरत हो वे डाक खर्चके लिये आधा आनेका टिकट भेजकर हमसे विनामूल्य मँगा सकते हैं।

संपादक। सरसावा (सहारनपूर)

चर्चा-समाधान।

यह सुप्रसिद्ध ग्रन्थ हाल ही छपकर तैयार हुआ है। मूल्य २॥=)

जैन ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय

हीराबाग, बम्बई।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हिन्दीके नये और अपूर्व ग्रन्थ।

जीवन-निर्वाह।

लेखक, श्रीयुत बाबू सूरजभानुजी वकील । बड़ी खोज और चिरकालके अनुभवसे लिखा हुआ अपूर्व ग्रन्थ । प्रत्येक धर्मात्मा, प्रत्येक विचारक, प्रत्येक सुधारक और प्रत्येक सुख-शान्तिके चाहनेवालेके पढ़नेकी चीज । घरघरमें इसका पाठ होना चाहिए । तमाम बच्चों और स्त्रियोंको इसका स्वाध्याय करा देना चाहिए । भाषा ऐसी सरल है और समझानेका ढंग ऐसा अच्छा है कि साधारण पढ़े लिखे लोग भी इसे समझ सकेंगे । जैनी और अजैनी सभी इससे लाभ उठा सकते हैं । इसके पढ़नेसे लोग असली धर्मका, सच्चे सदाचारका और सच्ची देशोन्नतिका स्वरूप समझ सकेंगे । देवमूढता, लोकमूढता और गुरुमूढ़ताका स्वरूप दर्पणके समान स्पष्ट हो जायगा । धार्मिक और साम्प्रदायिक झगड़ोंसे, अन्धश्रद्धासे, झूठे तंत्र-मंत्रों और भूतप्रेतोंके विश्वासोंसे तबीयत हट जायगी । सच्चे धर्म, सच्ची दानशीलता, सच्चे सदाचार, और सच्चे ज्ञानसे हार्दिक प्रीति उत्पन्न हो जायगी । जो धर्म लड़ाई झगड़ोंकी, पापोंकी और देशको डुबानेकी जड़ बन रहे हैं, उनका असली स्वरूप खूब अच्छी तरह समझमें आ जायगा । एक धर्मात्मा सज्जनने इसकी ५०० प्रतियाँ खरीदकर अपने भानजेके विवाहोत्सवमें मुफ्त वितरण की हैं । अन्य धर्मात्माओंको भी इसका प्रचार करना चाहिए । बाँटनेके लिए कमसे कम १०० प्रतियाँ एक साथ लेनेसे बहुत किफायतसे दी जायँगी । मूल्य एक प्रतिका एक रुपया । पृष्ठ-संख्या २०० से ऊपर ।

महादजी (माधवराव) सिन्धिया।

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-सीरीजका ४२ वाँ ग्रन्थ । इतिहासका महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ । यदि आप यह जानना चाहते हों कि मुगलसाम्राज्यका अस्त कैसे हुआ और उनके हाथसे मराठोंके हाथमें राज्यसत्ता आकर अन्तमें अँगरेजोंके हाथमें कैसे चली गई तो यह ग्रन्थ अवश्य पढ़िए । सिन्धियाकी गणना देशके महान् पुरुषोंमें है । यदि महादजी सिन्धिया थोड़े ही दिन और जीते, अथवा उनका उत्तराधिकारी उन ही जैसा योग्य पुरुष होता तो आज हिंदुस्तानके इतिहासका रूप कुछ और ही होता । इस मराठासाम्राज्यके स्तंभस्वरूप वीरपुङ्गवका आलोचनात्मक चरित्र हिन्दीमें सबसे पहला यही है । मूल्य १)

पुष्प-लता।

हिन्दीमें एक नये लेखककी लिखी हुई अपूर्व गल्पें । प्रत्येक गल्प मनोरंजक, शिक्षाप्रद और भावपूर्ण है । सभी गल्पें स्वतंत्र हैं और हिन्दीसाहित्यके लिए गौरवकी चीजें हैं । जो लोग अनुवाद ग्रन्थोंसे अरुचि रखते हैं उन्हें यह मौलिक गल्पग्रन्थ अवश्य पढ़ना चाहिए । ७–८ चित्रोंसे पुस्तक और भी सुन्दर हो गई है । हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-सीरीजका यह ४१ वाँ ग्रन्थ है। मूल्य १) सजिल्दका १।।)

आनन्दकी पगडंडियाँ।

जेम्स एलेन अँगरेजीके बड़े ही प्रसिद्ध आध्यात्मिक लेखक हैं । उनके ग्रन्थ बड़े ही मार्मिक और शान्तिप्रद गिने जाते हैं । अँगरेजीमें उनका बड़ा मान है । यह ग्रन्थ उन्हींके 'Byways of Blessedness' नामक ग्रन्थका अनुवाद है । इस अंकमें इस ग्रन्थका 'सहानुभूति' शीर्षक अध्याय उद्धृत किया गया है, उससे पाठक इस ग्रन्थके महत्त्वको समझ सकेंगे । प्रत्येक विवेकी और विचारशील पुरुषको यह ग्रन्थ पढ़ना चाहिए । मूल्य १) सजिल्दका १।।)

सुखदास।

जार्ज इलियटके सुप्रसिद्ध उपन्यास 'साइलस माइनर' का हिन्दी रूपान्तर । इस पुस्तकको हिन्दीके लब्धप्रतिष्ठ उपन्यासलेखक श्रीयुत प्रेमचन्दजीने लिखा है । बढ़िया एण्टिक पेपर पर बड़ी ही सुन्दरतासे छपाया गया है । उपन्यास बहुत ही अच्छा और भावपूर्ण है । मूल्य ।।=) । बायडिंग होनेमें अभी १५ दिनका विलम्ब है ।

नकली और असली धर्मात्मा।

श्रीयुत बाबू सूरजभानुजी वकीलका लिखा हुआ सर्वसाधारणोपयोगी सरल उपन्यास । ढोंगियोंकी बड़ी पोल खोली गई है । मूल्य ।।)

नया सूचीपत्र।

उत्तमोत्तम हिन्दी पुस्तकोंका ९२ पृष्ठोंका नया सूचीपत्र छपकर तैयार है । पुस्तक-प्रेमियोंको उसकी एक एक कापी मँगाकर रखना चाहिए ।

मैनेजर, हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैनसाहित्य-संशोधक

अपूर्व त्रैमासिक पत्र ।

जैन इतिहास और जैनसाहित्यके जिज्ञासुओंके लिए अपूर्व साधन । यह त्रैमासिक पत्र सरस्वतीके साइजके सवासौ पृष्ठों पर निकलता है । अनेक ऐतिहासिक चित्रोंसे भी सुशोभित रहता है । अँगरेजी, हिन्दी और गुजराती इन तीनों भाषाओंके लेख इसमें रहते हैं । प्राचीन आचार्योंका समय-निर्णय, अपूर्व तथा दुष्प्राप्य जैनग्रन्थों, शिलालेखों तथा ताम्रपत्रोंका परिचय, विदेशी विद्वानोंकी जैनसाहित्य और इतिहाससम्बन्धी आलोचनायें, जैनतत्त्वज्ञान-सम्बन्धी गंभीर विचार आदि अनेक विषय इसमें रहते हैं और वे बड़ी निष्पक्षतासे लिखे जाते हैं । जैन और जैनेतर सभी विद्वान् इसमें लिखते हैं । प्रत्येक दिगम्बर और श्वेताम्बरको इसका ग्राहक होना चाहिए । पहला अंक छपकर तैयार है । वार्षिक मूल्य ५) पाँच रुपया और एक अंकका १॥) । पोस्टेज जुदा । व्यवस्थापक--

जैनसाहित्य-संशोधक,

C/o भारत जैनविद्यालय, फर्गुसनकालेजरोड, पूना ।

युक्त्यनुशासन सटीक ।

माणिकचन्द्र-जैनग्रन्थमालाका १५ वाँ ग्रन्थ छपकर तैयार हो गया । इसके मूलकर्त्ता भगवान् समन्तभद्र और संस्कृतटीकाके कर्त्ता आचार्य विद्यानन्दि हैं । यह भी देवागमकी भाँति स्तुत्यात्मक है और युक्तियोंका भाण्डार है । अभी तक यह ग्रन्थ दुर्लभ था । प्रत्येक भण्डारमें इसकी एक एक प्रति अवश्य रहनी चाहिए । मूल्य ॥।)

नयचक्र संग्रह ।

यह उक्त ग्रन्थमालाका १६ वाँ ग्रन्थ है । इसमें देवसेनसूरिकृत प्राकृत नयचक्र (संस्कृतछायासहित) और आलापपद्धति तथा माइल्ल धवलकृत द्रव्यस्वभाव-प्रकाश (छायासहित) ये तीन ग्रन्थ छपे हैं । भूमिका पढ़ने योग्य है । लगभग एक महीनेमें तैयार होगा । मू० ॥=)

जैनग्रन्थ-उद्धारक कार्यालयके तमाम ग्रन्थ ।

हमने खरीद लिये हैं, इस लिए जिन भाइयोंको चाहिए वे हमसे मँगानेकी कृपा करें:--

१ ऋषिमण्डल मंत्र कल्प (मंत्र, पूजा और साधन-विधिसहित) । दूसरी बारका छपा हुआ । मू० ॥)

२ प्रतिष्ठासारोद्धार पं० आशाधरकृत । संस्कृत और भाषाविधिसहित । इसकी सहायतासे वेदीप्रतिष्ठा बिम्बप्रतिष्ठा आदि सब काम कराये जा सकते हैं । मू० १॥।) और सजिल्दका २=)

३ महावीरपुराण । भगवान् महावीर तीर्थकरका जीवनचरित । सकलकीर्तिभट्टारकके संस्कृतग्रन्थका पं० मनोहरलालजीकृत हिन्दी अनुवाद । मू० १॥) और १॥।=)

४ आलोचनापाठ भाषा, अर्थसहित । मूल्य -)॥

मैनेजर, जैन-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई ।

बम्बईका माल ।

बम्बईका सब तरहका माल--कपड़ा, किराना, स्टेशनरी, पीतल ताँबा, दवाइयाँ, तेल, साबुन आदि--हमसे मँगाइए । माल दस जगह जाँच करके बहुत सावधानी और ईमानदारीके साथ भेजा जाता है । चौथाई रुपयेके लगभग पेशगी भेजना चाहिये । एकबार व्यवहार करके देखिए ।

नन्हेंलाल हेमचन्द जैन, कमीशन एजेण्ट,
चन्दावाड़ी, पो० गिरगाँव, बम्बई ।

Printed by Chintaman Sakharam Deole, at the Bombay Vaibhav Press, Servants of India Society's Building, Sandhurst Road, Girgaon, Bombay.

Published by Nathuram Premi, Proprietor, Jain-Granth-Ratnakar Karyalaya, Hirabag, Bombay.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीवर्द्धमानाय नमः ।

भाग १४ ।

जैनहितैषी ।

अंक १०-११ ।

श्रावण, भाद्रपद १९७७ । जुलाई, अगस्त १९२० ।

विषय-सूची ।

	पृष्ठसंख्या ।
१ जैनसमाजकी दशा और उसके सुधारके उपाय	२८१
२ जैनसमाजके शिक्षित, खासकर बाबूलोग ...	२८५
३ हिन्दीके स्थानकवासी जैनलेखक	२९६
४ जैनधर्मका अध्ययन	३००
५ नयचक्र और श्रीदेवसेनसूरि	३०५
६ स्वप्न-सर्वस्व (कविता)	३१०
७ दुष्प्राप्य और अलभ्य जैनग्रन्थ	३११
८ शास्त्रीय-चर्चा	३१५
९ हमारी शिक्षासंस्थायें	३१८
१० पुस्तकालयोंकी सहायता	३२४
११ तामिल भाषामें जैनग्रन्थ	३२९
१२ विधवा-विवाह-खण्डन	३३६
१३ विविध प्रसङ्ग	३३८

२-१०-१९२० ।

सम्पादक, बाबू जुगलकिशोर मुख्तार ।

मुंबई वैभव प्रेस.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रार्थनायें।

१ जैनहितैषी किसी स्वार्थबुद्धिसे प्रेरित होकर निजी लाभके लिए नहीं निकाला जाता है। इसके लिए जो समय, शक्ति और धनका व्यय किया जाता है वह केवल निष्पक्ष और ऊँचे विचारोंके प्रचारके लिए। अतः इसकी उन्नतिमें हमारे प्रत्येक पाठकको सहायता देनी चाहिए।

२ जिन महाशयोंको इसका कोई लेख अच्छा मालूम हो उन्हें चाहिए कि उस लेखको वे जितने मित्रोंको पढ़कर सुना सकें अवश्य सुना दिया करें।

३ यदि कोई लेख अच्छा न मालूम हो अथवा विरुद्ध मालूम हो तो केवल उसीके कारण लेखक या सम्पादकसे द्वेषभाव धारण न करनेके लिए सविनय निवेदन है।

४ लेख भेजनेके लिए सभी सम्प्रदायके लेखकोंको आमंत्रण है। —सम्पादक।

नियमावली।

१ जैनहितैषीका वार्षिक मूल्य २) दो रुपया पेशगी है।

२ ग्राहक वर्षके आरंभसे किये जाते हैं और बीचमें ७ वें अंकसे। आधे वर्षका मूल्य १।)

३ प्रत्येक अंकका मूल्य तीन आने।

४ लेख, बदलेके पत्र, समालोचनार्थ पुस्तकें आदि "**बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तार, सरसावा (सहारनपुर)**" के पास भेजना चाहिए। सिर्फ प्रबन्ध और मूल्य आदि सम्बन्धी पत्रव्यवहार इस पतेसे किया जायः—

मैनेजर, जैनग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई।

विचारशील जैनियोंके पढ़नेके लिए।

नीचे लिखी आलोचनात्मक पुस्तकें विचारशीलोंको अवश्य पढ़नी चाहिए। साधारण बुद्धिके गतानुगतिक लोग इन्हें न मँगावें।

१ **ग्रंथपरीक्षा प्रथम भाग**। इसमें कुन्दकुन्द-श्रावकाचार, उमास्वातिश्रावकाचार और जिनसेन-त्रिवर्णचार इन तीन ग्रन्थोंकी समालोचना है। अनेक प्रमाणोंसे सिद्ध किया है कि ये असली जैनग्रन्थ नहीं हैं—भेषियोंके बनाये हुए हैं। मूल्य ।=)

२ **ग्रन्थपरीक्षा द्वितीय भाग**। यह भद्रबाहुसंहिता नामक ग्रन्थकी विस्तृत समालोचना है। इसमें बतलाया है कि यह परमपूज्य भद्रबाहु श्रुतकेवलीका बनाया हुआ ग्रन्थ नहीं है, किन्तु ग्वालियरके किसी धूर्त भट्टारकने १६–१७ वीं शताब्दिमें इस जाली ग्रन्थको उनके नामसे बनाया है और इसमें जैनधर्मसे विरुद्ध सैकड़ों बातें लिखी गई हैं। इन दोनों पुस्तकोंके लेखक श्रीयुक्त बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तार हैं। मू० ।)

३ **दर्शनसार**। आचार्य देवसेनका मूल प्राकृत ग्रन्थ, संस्कृतच्छाया, हिन्दी अनुवाद और विस्तत विवेचन। जैन इतिहासका एक महत्त्वका ग्रन्थ है। इसमें श्वेताम्बर, यापनीय, काष्ठासंघ, माथुरसंघ, द्राविड़संघ, आजीवक (अज्ञानमत) और वैनेयिक आदि अनेक मतोंकी उत्पत्ति और उनका स्वरूप बतलाया गया है। बड़ी खोज और परिश्रमसे इसकी रचना हुई है।

पार्श्वपुराण भाषा।

कविवर भूधरदासजीका यह अपूर्व ग्रन्थ दूसरीवार छपाया गया है। इसकी कविता बड़ी ही मनोहारिणी है। जैनियोंके कथाग्रन्थोंमें इससे अच्छी सुन्दर कविता आपको और कहीं न मिलेगी। विद्यार्थियोंके लिए भी बहुत उपयोगी है। शास्त्रसभाओंमें बाँचनेके योग्य है। बहुत सुन्दरतासे छपा है। मू० सिर्फ १)रु.

नियमसार।

भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यका यह बिलकुल ही अप्रसिद्ध ग्रन्थ है। लोग इसका नाम भी नहीं जानते थे। बड़ी मुश्किलसे प्राप्त करके यह छपाया गया है। नाटक समयसार आदिके समान ही इसका प्रचार होना चाहिए। मूल प्राकृत, संस्कृतच्छाया, आचार्य पद्मप्रभ मलधारि देवकी संस्कृत टीका और श्रीयुत शीतलप्रसादजी ब्रह्मचारीकृत सरल भाषाटीकासहित यह छपाया गया है। अध्यात्मप्रेमियोंको अवश्य स्वाध्याय करना चाहिए। मूल्य दो रुपया

मैनेजर, जैनग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग बम्बई।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः ।

चौदहवाँ भाग । अंक १०-११

जैनहितैषी ।

जुलाई, अगस्त १९२०
श्रावण, भाद्र २४४६

न हो पक्षपाती बतावे सुमार्ग, डरे ना किसीसे कहे सत्यवाणी ।
बने है विनोदी भले आशयोंसे, सभी जैनियोंका हितैषी 'हितैषी' ॥

जैनसमाजकी दशा और उसके सुधारके उपाय ।

(ले०—सरस्वती सहोदर ।)

आम्नाय-आग्रह पंथ-हठ औ रूढ़िमें सब सन रहे ।
स्याद्वादके झंडे तले यों पक्षपाती बन रहे ॥
सं-ज्ञान-श्रद्धा, मानते हैं धर्मके बहिरंगमें ।
आचरण हैं बस रूढ़ियों पर, ढोंगियोंके ढंगमें ॥१॥

जैनसमाजकी वर्तमान अवस्था बड़ी शोचनीय हो रही है। गतानुगतिक आदतोंसे समाजको घुनसा लग गया है। जिधर देखो उधर पक्षपातका साम्राज्य नजर आ रहा है। विचार-स्वातंत्र्यकी ओटमें भी पक्षपातकी बुरी गंध फैल रही है। इसी पक्षपात और अनेकतासे वास्तविक जैनधर्म और जैनसमाजकी जड़ दृढ़ होनेकी अपेक्षा निर्बल होती जा रही है।

वर्तमानमें "आठ कनोजिया नौ चूल्हेकी" कहावत बराबर घटित होती है। जैनधर्मके भीतर बहुत समयसे दिगम्बर और श्वेताम्बर संप्रदाय पक्षपातसे चले आ रहे हैं। बादमें दिगम्बर और श्वेताम्बर संप्रदायके गृहत्यागी आचार्योंके अलग अलग संघ, गण, गच्छ, पट्ट, आदि निर्माण हुए। प्रत्येक संघको माननेवाले श्रावकोंने पक्षभेदसे अपनेको भिन्न भिन्न आम्नायके माननेवालोंका स्वरूप दिया। इसी तरह जरा जरासी विचारविभिन्नता पर जैनजनता एक दूसरेसे अलग होती गई। वर्तमानमें जैनसमाजमें दिगम्बर, श्वेताम्बर यह दो संप्रदाय मुख्य गिने जाते हैं। श्वेताम्बरोंमें स्थानकवासी और मन्दिरमार्गी दो भेद हैं। इनके अतिरिक्त तेरहपंथी बाईसटोला आदि और भी कई उपभेद हैं। दिगम्बरोंमें भी बीसपंथी, तेरापंथी और तारनपंथी इत्यादि भेद हैं। बीसपंथी भट्टारकोंकी आम्नायके कहलाते हैं। इनमें भी बलात्कार, सेनगण आदि कई भेदभाव हैं, जिनके माननेवालोंमें परस्पर इतना वैमनस्य है कि वे लोग दूसरे गणके भट्टारकोंके पास या उस गण-गच्छवालोंके मंदिरोंमें जाना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पातक समझते हैं। तेरापंथी पंडित आम्नायके समझे जाते हैं। पं० टोडरमलजी, पं० जयचंदजी आदिके समयसे इस पंथकी उत्पत्ति बतलाई जाती है। इस पंथमें और बीसपंथमें केवल आचारोंकी थोड़ीसी भिन्नता है। बीसपंथी वस्त्रधारी भट्टारकोंको अपना गुरु मानते हैं और उन्हींकी आज्ञा प्रमाण मानते हैं। दूसरे, बीसपंथी लोग रात्रिमें पूजनाभिषेक करते हैं, और पूजनकी सामग्रीमें सचित्त फूल, फल, चढ़ाते हैं तथा पंचामृत—दूध, दही, घृत, शक्कर, और केशरामिश्रित जल—से अभिषेक करते हैं। इसके अतिरिक्त नवग्रहपूजन, पद्मावती, क्षेत्रपाल आदि देवी देवताओंकी आराधना करते हैं। तेरापंथी इन सब बातोंका निषेध करते हुए दिनको ही पूजनादिक कर लेते हैं। पूजनकी सामग्री अचित्त लेते हैं। पंचामृतकी जगह केवल जल, सुगंध (केशरमिश्रित जल) का अभिषेक करते हैं। पहले दिगम्बर मुनियोंको अपने गुरु और साधु मानते थे, परन्तु वर्तमानमें ऐसे मुनियोंका अभाव है; इसलिये ऐलक, क्षुल्लक, ब्रह्मचारी गणोंको ही अपने गुरु समझते हैं। पद्मावती, क्षेत्रपाल आदि देवी देवताओंकी स्थापना तेरापंथी अपने मंदिरोंमें नहीं करते। प्रायः यही बीसपंथी और तेरापंथी आम्नायमें भेद है। बीसपंथके माननेवाले दक्षिण महाराष्ट्र और गुजरातप्रांतमें अधिक हैं। तेरापंथके अनुयायी राजपूताना संयुक्त प्रांत, बुंदेलखंड आदि उत्तरी भागोंमें विशेष हैं। तारनपंथके अनुयायी परवार गोलालारे आदि जातियोंके कुछ लोग हैं। तारनपंथी मूर्तिको नहीं मानते, वे शास्त्रकी आराधना करते हैं। तारनपंथी अपने मंदिरोंमें मूर्तियोंके स्थानमें शास्त्र रखकर पूजा करते हैं। उनके मंतव्य, मूर्तिके विरोधमें, प्रायः श्वेताम्बरसम्प्रदायके स्थानकवासियोंके समान हैं।

ऊपर कहा जा चुका है कि श्वेताम्बर संप्रदायमें भी स्थानकवासी, बीसपंथी आदि भेद हैं। स्थानकवासी, मूर्तिपूजाका विरोधी पंथ है। इसके अनुयायी अपने साधुओंको ही पूजते हैं। श्वेताम्बर संप्रदायके लोग मूर्तियोंमें आँखें जड़वाकर आभूषण इत्यादिसे विभूषित कर पूजन करते हैं। दूसरे उनके सिद्धांतमें स्त्रीमुक्ति, शूद्रमुक्ति, केवलि-भुक्ति और वस्त्रसहित मुक्ति मानी है। दिगम्बर संप्रदाय इन बातोंके विरोधमें हैं।

इन बातोंका तात्पर्य यही है कि जैन समाजमें बाहरी क्रियाकाण्ड—आचरणकी मतभिन्नता पर अनेक आम्नाय और पंथ हो गये हैं। वास्तवमें देखा जाय तो यही ज्ञात होता है कि क्या दिगंबर और क्या श्वेताम्बर दोनों संप्रदायके मूल और तात्विक सिद्धांत प्रायः एक ही हैं। किन्तु अज्ञानताके कारण जैन जनता आंतरिक बातों तक प्रवेश नहीं कर पाती, इसलिये केवल वंशपरंपराकी मान्यता कायम रखनेके लिये अपने अपने पूर्वजोंके बाहरी क्रियाकाण्डके पंथाभिमानमें खूब सन रही है। आम्नाय और पंथके हठमें जैनसमाज इतना उन्मत्त हो रहा है कि वह धर्मके नाम पर लाखों रुपया अपने ही भाई बन्धुओंसे लड़ने-झगड़नेमें बर्बाद कर चुका, तो भी उसको अकल नहीं आई। आवे कैसे? उसे तो अपने अपने मत-पंथोंका वर्चस्व कायम रखना है न। इसी मतपंथकी चढ़ा ऊपरीसे नित्य प्रति तीर्थों, और मंदिरोंके लड़ाई झगड़े खड़े होते हैं और उनसे सामाजिक उन्नतिमें बाधा पहुँचती है। जैनधर्मके अंतर्गत ऐसा कोई संप्रदाय, आम्नाय, मत-पंथ इत्यादि नहीं है जो स्याद्वादको नहीं मानता हो। तथापि स्याद्वाद धर्मके अनुयायी पंथहठ और क्रियाकाण्डमें इतने एकांती बन रहे हैं कि उन्हें जैनधर्मके मूल सिद्धांतों पर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सोचने, विचार करने और अनुभव करनेकी जरा भी इच्छा नहीं होती । 'स्याद्वाद' शब्द केवल कहने मात्रके लिये रह गया है। स्याद्वादके द्वारा वे अपने संप्रदाय और पंथके विरोधको दूरकर एक नहीं हो सकते प्रत्युत, स्याद्वादका दुरुपयोग कर धर्मके असली सिद्धांतोंसे सदैव अलग रहनेकी कोशिस किया करते हैं। जैन जनताने अपने अपने पंथों और संप्रदायके क्रियाकाण्डोंको जानकर उसकी हठ कर लेना ही सम्यक् ज्ञान तथा श्रद्धान मान लिया है और क्रियाकाण्डकी ओटमें मिथ्यारूढियों पर चलना ही चारित्र समझ रक्खा है। इन्हीं बातोंसे जैनसमाजकी बड़ी अधोगति हो रही है। सब जैन अपने अपने सांप्रदायिक ग्रंथोंके क्रियाकाण्डके अनुसार ही अपना अपना आचरण रखते आ रहे हों, यह बात भी नहीं है। ग्रंथोंकी बातें तो सिर्फ अन्य पंथोंसे विरोध करनेके ही लिये हैं। आचरण तो यही है कि सिर्फ अपने स्वार्थसाधनके भीतर जो जो बातें गर्भित हों उन्हींका वर्ताव किया जाय, बाकी श्रद्धा और झगड़नेके लिये अलग रख दी जायँ। इसी पंथाचारकी ओटमें जैनसमाजने अपनी परंपराकी सामाजिक रूढ़ियोंको भी धर्माचरणका स्वरूप देकर उन पर मुहर लगा दी है।

यह तो हुई साम्प्रदायिक पंथभेदोंकी बीमारीकी बात; अब विशेष रूपसे जैनसमाजके नये भेद प्रभेदोंको देखिये। जबसे भारतवर्षमें पश्चिमी सभ्यता और शिक्षाका जोर शोरसे प्रचार हुआ, तबसे जैनसमाजपर भी इन बातोंका कुछ न कुछ प्रभाव पड़ता ही गया। धार्मिक उन्नति, सामाजिक सुधार और संगठन तथा शिक्षाप्रचारके लिये जैनसमाजमें भिन्न भिन्न सभा-सुसाइटियाँ, शिक्षा प्रदान करनेवाली संस्थाएँ, और जैनसाहित्यप्रकाशक संस्थाओंका आविर्भाव होता गया। दिगम्बर समाजमें सबसे पहले भा० दि० जैन महासभा, और दो एक विद्यालयोंकी स्थापना हुई। बादमें प्रांतिक सभाओंका जन्म हुआ। दो एक पत्र भी निकलने लगे। पहले पहले शिक्षाप्रचारका ही उक्त सभाओं और पत्रोंमें खूब आंदोलन होता रहा। साथमें जैनग्रन्थ भी छपने प्रारम्भ हो गये। तीर्थोंकी रक्षा और प्रबन्धके लिये कमेटी बन गई। जगह जगह बोर्डिंग और पाठशालाएँ भी खुलने लगीं। इसी प्रकार श्वेताम्बर सम्प्रदायमें भी उक्त प्रकारकी सभासुसाइटियाँ और भिन्नभिन्न संस्थाएँ खुलने लगीं। इन संस्थाओंके प्रारम्भमें, जबतक उनके कार्यकर्त्ता योग्य रहे तबतक समाजका उक्त संस्थाओंसे गाढ़ प्रेम रहा। किन्तु समयकी गतिसे जैसे जैसे शिक्षाका थोड़ा बहुत प्रचार होता गया, सभा सुसाइटियोंकी भरमार होती गई और वह भी यहाँ तक कि समाजको उनका अजीर्णसा हो गया, उनके कार्यकी ओर ध्यान देते हुए जनताको फलकी आशा कम होने लगी, दूसरे चंदा देते देते लोग ऊब गये। बादमें कई संस्थाओंकी कलई खुलना प्रारंभ हुआ। इससे लिखे पढ़े लोगोंका प्रेम सामाजिक संस्थाओंसे कम होने लगा। इसी अर्सेसे जैनपत्रोंमें विवादग्रस्त और आक्षेपक लेख निकलना शुरू हो गये। दलबन्दियाँ प्रारम्भ हो गई। अर्थात् धीरे धीरे लिखे-पढ़े लोग भी परस्पर बिछुड़ते गये। इसका फल यह हुआ कि कुछ समय पहले छापेका प्रचारक और छापेका विरोधी ऐसे दो दल उत्पन्न हुए। इनके अनंतर संस्कृतज्ञोंका पंडितदल और अंग्रेजीके मर्मज्ञोंका बाबूदल बना। ये दोनों दल वर्तमानमें जारी हैं। इस तरह इन सभा सुसाइटियों और अन्यान्य संस्थाओंकी भरमारसे तथा दलबन्दियोंसे और भी अधिक भेदभाव बढ़ गया है। इससे धर्मकी उन्नति और प्रचार होना तो दूर रहा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

केवल आपसहीमें शक्ति नष्ट हुई और हो रही है। सभा सुसाइटियोंकी मनमानी कार्यवाही और वर्षमें तीन दिनके बातूनी प्रस्तावोंसे न तो समाजका सुधार हुआ और न समाजका उचित संगठन ही हुआ। इसके विपरीत समाज पूर्वकी अपेक्षा और भी छिन्न भिन्न हो गया।

इसका कारण यही है कि जैनसमाजमें अन्धश्रद्धा और रूढ़ियोंकी गुलामीका बड़ा जोर शोर है। जैनसमाजकी सभा, संस्थाएँ भी इन्हीं रोगोंसे आक्रान्त हैं। एक तो जैनसमाजमें अन्य जातियोंकी अपेक्षा शिक्षाकी बहुत ही कमी है। जो थोड़ी बहुत शिक्षा आजकल जैनछात्रोंको दी जाती है वह भी उक्त रोगके संक्रमणसे खाली नहीं। पिछले दश वर्षोंमें (सन् १९१० से आजतक) भारतके राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक आकाशमंडलमें बड़ाभारी परिवर्तन हो चुका है जिसके होनेकी कल्पना भविष्यतमें सौ पचास वर्षोंतक नहीं थी। इसका कारण यूरोपीय महा समर है। यद्यपि यह महासमर स्थगित हो गया तथापि अंतर्राष्ट्रीय विप्लवकी अग्नि जहाँ तहाँ भड़क रही है और संभव है कि थोड़े ही समयमें संसारमें महाप्रलयका युद्ध फिर आरंभ हो जाय। इन्हीं बातोंसे संसारके सभी देशोंमें जनताकी राष्ट्रीय, सामाजिक गति बड़ी तीव्रतासे बदल रही है। ऐसी अवस्थामें भी हमारे जैनसमाजकी सभा, सुसाइटियाँ और भिन्नभिन्न संस्थाएँ भारतके उसी वातावरणमें लीन हो रही हैं जो आजसे लगभग २०-२५ वर्ष पूर्व था। यह बात प्रत्येक व्यक्तिको अपने हृदय-पटपर लिख रखना चाहिये कि प्रत्येक समाजका देशसे अत्यंत घनिष्ठ सम्बन्ध है और देशकी गतिके अनुसार ही उसे अपनी गति, अपना अस्तित्व कायम रखनेके लिये, बदलनी पड़ती है। और यह बात हमारे जैनसमाजमें तथा उसकी सभा संस्थाओंमें नहीं है। इसी लिये अनेक आन्दोलनोंके होते हुए भी समाजका सुधार नहीं होता। बल्कि समाजकी शक्ति दिन पर दिन क्षीण ही होती जा रही है। जैसे जैसे समाजमें धार्मिक और सामाजिक आन्दोलन, उन्नति और सुधारके लिये, वर्तमान समयतक होता आया है वैसे ही हमारा धार्मिक और सामाजिक पतन होता जा रहा है। इसका कारण यही है कि हम लोग जैनसमाजके रोगकी वास्तविक परीक्षा न करके आँख बंद किये केवल बाहरी उपचार करते आये हैं जो समाजको पथ्यरूप होना तो दूर रहा उलटा अपथ्य हो रहा है।

जैनधर्म और समाजकी उन्नति और सच्चे सुधारके लिये निम्न लिखित उपाय काममें लाना होगा तभी वास्तवमें उन्नति होगी, ऐसी लेखककी दृढ भावना है—

(१) सबसे पहले जैनसमाजके अंतर्गत भेद भावों (आम्नाय, मत, पंथ और संप्रदाय इत्यादि) को मिटानेके लिये जैनधर्मके वास्तविक मूल सिद्धांत अध्यात्मका खूब जोर शोरसे प्रचार करना चाहिये, ताकि जैन जनताकी नस नसमें आध्यात्मिक भाव जागृत हो उठें। आध्यात्मिक भावोंकी जागृति होने पर स्वयं ही बाहरी भेदभाव नष्ट होने लगेंगे और अभेदभावकी वृद्धि होने लगेगी। दूसरे आध्यात्मिक भावोंकी जागृति हो जानेपर जैनसमाज मिथ्या रूढ़ियोंकी गुलाम न बनी रहेगी, बल्कि देश, काल, भावकी परिस्थितियों और आवश्यकताओंके मार्ग पर चलने लगेगी। उसके सब बनावटी ढोंग और असमयानुकूल दानकी प्रवृत्ति मिट जायगी।

(२) आध्यात्मिकताके साथ ही साथ जैनसमाजमें नीतिपथका विचार और प्रवृत्ति बढ़ानेकी योजना करनी चाहिये। नीतिपथके वर्तमानमें तीन भेद हैं—व्यक्तिगत, सामाजिक, और राष्ट्रीय (राजनैतिक)। जैनधर्मके ग्रन्थोंमें वर्णित क्रियाकाण्ड जिसे हम मोक्षमार्गका बाह्य चारित्र मानते हैं उसकी रचना यद्यपि नीतिके सिद्धांतों पर अवलम्बित है, तथापि हमें वर्तमान द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावके अनुसार सर्वव्यापी, सुगम, और उपयोगी बनानेके लिये उसमें कई प्रकारके परिवर्तन करने होंगे और यह बात पूर्वाचार्योंके शासनभेदसे भी भली

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भाँति सिद्ध होती है कि चारित्र मार्गके नियमोंमें समयानुकूल परिवर्तन प्राचीन परंपरासे होते आ रहे हैं। किन्तु चारित्रकी मूल नींव—नीति—नष्ट नहीं हुई और न इसे कभी नष्ट ही होने देना चाहिये। नीतिकी उत्कृष्टता ही व्यक्ति, समाज, देश और धर्मको उज्ज्वल करती है। जिस व्यक्तिमें जितना अधिक नैतिक बल होगा उतना ही वह व्यक्ति पूज्य और मोक्षमार्गका अनुगामी बनता जायगा। समाज और देशकी नीति जितनी उदार, पक्षपातरहित, सत्यमार्ग पर अवलंबित होगी उतना ही उस समाज और देशका मुख उज्ज्वल होता रहेगा। कोई भी देश और समाज कितना ही धनवान् और शिक्षित क्यों न हो, यदि वह आध्यात्मिकताके भाव और नीतिपथसे गिरा हुआ हो तो उसकी उन्नति नहीं बल्कि अधोगति ही समझिये। उसी प्रकार धर्मको उत्कृष्टताकी कसोटीपर जाँचनेके लिये प्रत्येक धर्मकी नीति जाँच कर ही तुलना होती है। जिस धर्ममें नीति जितने अधिक परिमाणमें होती है, वह धर्म उतना ही अधिक उत्कृष्ट गिना जाता है। अहिंसा, सत्य आदि पंच अणुव्रत और महाव्रत आदि जैनधर्मकी नीतिके मूल सिद्धांत हैं, परन्तु इस समय जैनियोंमें कोई भी ऐसा गृहस्थ या त्यागी नहीं निकला जो अपने धर्मकी नीतिको समयानुकूल वर्तावमें लाकर धर्मका मुख उज्ज्वल करता। परन्तु, धन्य है कर्मवीर महात्मा गाँधीको—जिन्होंने अजैन होते हुए भी अहिंसा और सत्यके सिद्धांतको अपनाकर, उसे समयानुकूल स्वरूप देकर, अपने देशके उद्धारमें लगाते हुए संसार भरको चकित कर दिया है। इसी समयानुकूल परिस्थितिके अनुसार हमें अब अपने धर्मनीतिके प्रायः सभी नियम उपनियम बदलने होंगे और उन्हें समाज और देशकी वर्तमान गतिके अनुकूल व्यापक स्वरूप देना होगा, ताकि हमारी धार्मिक और लौकिक उन्नति उन्हीं व्यापक नियमों पर चलनेसे एक ही साथ होती रहे।

जैनसमाजके शिक्षित।

(खासकर, बाबूलोग।)

(ले०-श्रीयुत बाबू सूरजभानजी वकील।)

प्रत्येक जातिकी उन्नति उसके पढ़े लिखे विद्वानों और समझदारों पर ही निर्भर होती है। वे ही संसारकी गतिको, जातिकी वास्तविक दशाको, और उसे उन्नति शिखर पर चढ़ानेके समयोचित उपायोंको जान सकते हैं और वे ही उन उपायोंका जातिमें प्रचार तथा प्रसार कर सकते हैं। हमारी इस जैनजातिमें भी विद्वानोंकी कमी नहीं है। भारतवर्षकी ३० करोड़ प्रजामें यद्यपि जैनियोंकी संख्या केवल बारह लाख ही रह गई है—अर्थात् भारतके २५० मनुष्योंमें केवल एक ही जैनी है, और यह १२ लाखकी संख्या भी तब ही है जब कि संपूर्ण दिगम्बर, श्वेताम्बर और स्थानकवासियोंको इकट्ठा गिन लिया जाता है। यदि प्रत्येक सम्प्रदायवाले केवल अपनी ही सम्प्रदायके लोगोंको जैनी मानें और दूसरोंको मिथ्याती जानें, जैसा कि आजकल हो रहा है, तब तो उनकी गणनाके अनुसार जैनी केवल ४ लाख ही रह जाते हैं अर्थात् भारतके ७०० मनुष्योंमें केवल एक ही जैनी गिननेमें आता है। आजका हमारा यह लेख भी दिगम्बर सम्प्रदायके ही विषयमें होनेके कारण हम भी इस लेखमें दिगम्बर जैनियोंको ही जैनी मानते हैं और उनकी संख्या ज्यादासे ज्यादा ५ लाख अनुमान करके भारतके ६०० मनुष्योंमें एक जैनीकी गणना करते हैं। इस प्रकार, इस समय, यद्यपि जैनियोंकी संख्या बहुत ही थोड़ी बल्कि न होनेके ही समान रह गई है तो भी अपनी इस थोड़ीसी संख्याकी अपेक्षा इस जातिमें विद्वानोंकी कमी किसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकार भी नहीं है। क्योंकि जब भारतके ६०० मनुष्योंमें केवल एक ही जैनी है तब भारतके ६०० विद्वानोंमें यदि एक भी जैन विद्वान् हो तो जातिमें विद्वानोंकी कमी नहीं कही जा सकती। परन्तु जातिमें तो इससे कई गुणे विद्वान् पाये जाते हैं। उदाहरणके लिये यदि इस समय भारतके विद्वानोंकी संख्या ६० हजार भी मान ली जावे तो जैनियोंमें १०० विद्वानोंका होना ही काफी हो जाता है। परन्तु देखते यह हैं कि जैनियोंमें इस समय कमसे कम १०० विद्वान् तो संस्कृतविद्याकी उच्च उपाधियोंसे विभूषित हैं और २०० विद्वान् अंग्रेजीकी बी० ए० और एम० ए० आदिकी उपाधियाँ-प्राप्त हैं। इस प्रकार कमसे कम ३०० विद्वान् मौजूद हैं, जिससे हमको बड़े अभिमानके साथ यह कहनेका साहस होता है कि अन्य जातियोंकी अपेक्षा जैनजातिमें तिगुणे विद्वान् हैं। परन्तु ऐसा होने पर क्या अन्य जातियोंकी अपेक्षा इस जैनजातिकी उन्नति भी तिगुनी हो रही है? उत्तरमें शोकके साथ कहना पड़ता है कि 'नहीं;' यह जाति तो अन्य जातियोंकी बराबरी भी नहीं कर रही है बल्कि उनसे बहुत नीचे गिरी हुई है और ज्यादा ज्यादा गिरती चली जाती है। दृष्टान्तरूपसे विचार कीजिये कि मनुष्य-गणनाके अनुसार भारतकी अन्य जातियाँ तो संख्यामें बढ़ती चली जा रही हैं, जिससे पिछले ३० वर्षके अंदर ही भारतके लोग २८ करोड़से ३३ करोड़ हो गये और अबकी मनुष्यगणनामें आशा है कि वे ३५ करोड़ हो जावेंगे; परन्तु जैनजाति इन ही पिछले ३० वर्षोंमें घटते घटते १५ लाखसे १२ लाख रह गई है और भय है कि कहीं अबकी मनुष्यगणनामें वह १०-११ लाख ही न रह जावे! इससे अधिक अवनति और अधोगति और क्या हो सकती है? इस ही प्रकार भारतकी अन्य सब ही जातियोंने स्थान स्थानपर अपने अपने हाईस्कूल, बोर्डिंग और कालिज बना लिये हैं और बनाती चली जा रही हैं, जिनमें अपनी अपनी जातियोंके बालक इकट्ठे रह कर विद्याध्ययन करते हैं, अपना धर्म कर्म सीखते हैं और अपनी जातिके प्रेमका पूर्ण संस्कार प्राप्त करते हैं; परन्तु हमारी अधिकांश जाति अभी तक अपने बालकोंके लिये अपने स्कूल, बोर्डिंग और कालिज बनाना पाप ही समझ रही है। उसके धर्माधिकारी और मोक्ष-पथप्रदर्शक विद्वान् भी चिल्ला चिल्ला कर और पुकार पुकार कर जातिको ऐसे कामोंसे रोक रहे हैं और ऐसे कामोंमें रुपया देनेको कुदान बता रहे हैं। इस कारण इस जातिके बालक बहुत करके अन्य जातियोंके ही स्कूल कालिजोंमें पढ़ते हैं, उन्हींके बोर्डिंगोंमें रह कर उन्हींकी बातें सीखते हैं और उन्हींके संस्कार प्राप्त करते हैं—यहाँ तक कि, ईसाइयोंके स्कूलों और कालिजोंमें पढ़नेकी हालतमें तो वे उनके धर्मग्रन्थोंको भी कंठस्थ करते हैं, नित्य प्रति उनकी नमाज या प्रार्थनामें शामिल होते हैं और उनके धर्मोपदेशोंको सुननेके लिये भी बाध्य किये जाते हैं। इससे अधिक गिरी हुई दशा जातिकी और क्या हो सकती है!

भ्रातृभाव, परस्परकी प्रीति और ऐक्यमें भी यह जाति अन्य जातियोंसे बहुत नीचे गिर गई है। एक समय था जब यह जाति संख्यामें अल्प होते हुए भी अपने वात्सल्य और ऐक्यके कारण सब कुछ शक्ति और गौरव प्राप्त किये हुए थी और अन्य बड़ी बड़ी जातियोंसे किसी बातमें भी कम नहीं समझी जाती थी; परन्तु अब तो इसने अपने इस अमूल्य रत्नको भी खो दिया है और आम्नायभेद, पंथभेद, सम्प्रदायभेद, जातिभेद, आदि अनेक भेदोंके द्वारा ईर्षा और द्वेषका अटल राज्य ही स्थापित कर दिया है। यह गिरते गिरते यहाँतक गिर गई है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कि गाँव गाँव और नगर नगरमें अनेक गोठें तथा धड़े खड़े होकर धर्मकार्योंमें भी लड़ाई दंगे होने लग गये हैं, कहीं कहीं मंदिरोंतकको भी ताले लग जाते हैं, कहीं कहीं अनंत चौदसके दिन दो दो उत्सव निकलने लगते हैं और कहीं अन्य प्रकारसे ही कहींके जैनीभाई अपनी फूट दिखाकर जैनधर्मकी प्रभावना करते हैं !

व्यर्थव्यय और कुरीतियोंने तो मानो इस जातिमें अपना अड्डा ही बना लिया है और यहाँ तक काबू पाया है कि चाहे कोई कितना ही कमावे, अपने बाल बच्चोंके खाने पहनने और पालन-पोषणमें चाहे जितनी कमी करके कौड़ी कौड़ी बचावे तो भी जातिकी रीति-रस्मोंका पूरा नहीं पड़ सकता यहाँतक कि, घरकी सब पूँजी लगा देने और जितना कर्ज मिल सकता हो वह सब लेकर लुटा देने पर भी बिरादरीके स्त्रीपुरुषोंके मुखसे यही सुननेमें आता है कि 'कुछ नहीं किया,' अपने बाप-दादाओंका नाम भी डबो दिया। कुरीतियोंके विषयमें तो इससे अधिक और क्या कहा जाय कि आठ आठ दस दस वर्षके बच्चोंतकके ब्याह इस जातिमें होते हैं, पचास पचास साठ साठ बरसके बुड्ढोंको उनकी पोतियोंके बराबर दस दस बरसकी नन्हीं नन्हीं बच्चियाँ इस जातिमें बेची जाती हैं और ये बुड्ढे उनको गोद खिलानेके स्थानमें अपनी जोरू बनाते हैं, विवाह रचाकर दोनों तरफकी बिरादरीके सामने उनसे फेरे फिरवाते हैं और बिरादरीके लोग लड्डू कचौरी खाकर बिलकुल मुँह सियेसे रह जाते हैं—चूँ तक भी नहीं करने पाते। इसी प्रकार बिरादरीके किसी भाईके मर जाने पर नुक्ता कराने और हलवा पूरी खानेमें भी ये लोग कुछ नहीं शरमाते, बल्कि जो न खिलावे उसीको उलटा शरमाते हैं और यदि बस चल जाय तो जातिसे ही बाहर कर दिखाते हैं। ऐसी ऐसी बातोंके कारण यदि जातिका नीचातिनीच दशाको पहुँच जाना मान लिया जाय तो इसमें कुछ भी आश्चर्य न होगा।

जब धर्मकी तरफ खयाल करते हैं तो उसकी भी ऐसी ही दशा पाते हैं। अव्वल तो इस जैनजातिमें मिथ्यातका ही इतना भारी प्रचार है कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता। हिन्दू मुसलमानोंके देवी देवताओं समाधियों और कबरोंको खुल्लमखुल्ला पूजनेवाले, हिन्दू मुसलमानोंके यंत्रों मंत्रों तथा गंडे तावीजोंको माननेवाले और हिन्दू ब्राह्मणोंसे उनके अनेक अनुष्ठान करानेवाले जैनियोंकी इस समय कोई कमी नहीं है; बल्किसे सबसे बढ़िया बात यह हो रही है कि विवाहसंस्कार तक कई प्रान्तोंमें बहुत करके हिन्दूधर्मकी ही विवाहपद्धतिके ही अनुसार होता है, जिसमें उन्हींके सब देवताओंका पूजन किया जाता है और उन्हींके धर्मकी सब क्रियायें होती हैं। इस प्रकार जब कि दोनों ही पक्षोंकी बिरादरीके सामने और और अनेक नगरोंके भाइयोंके सन्मुख ही विवाह जैसे महान् संस्कारमें मिथ्यात्वका सेवन होता है तब इस जातिमें मिथ्यात्वके प्रचारकी हद्द ही क्या रह जाती है? यह ठीक है कि अनेक स्थानों पर जैनपद्धतिके अनुसार भी विवाह होने लग गये हैं परन्तु जब उनमेंसे किसी किसी स्थानसे यह बात भी सुननेमें आती है कि एक पक्षकी तरफसे जैनपद्धतिके अनुसार विवाह होनेका महान् आग्रह होने पर भी दूसरे पक्षके जैनियोंने इस बातको नहीं माना और लाचार वह विवाह हिन्दू विवाहपद्धतिके अनुसार ही हुआ तो क्या ऐसी दशामें यह कहना अनुचित हो जाता है कि जैनजातिमें मिथ्यात्वका पूरा पूरा साम्राज्य हो गया है?

जातिके सन्मान और पूछ-प्रतीतिके विषयमें भी जब कुछ गौर किया जाता है तो ऐसी ही गिरी हुई हालत नजर आती है। व्यापारी जाति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होनेके कारण यद्यपि इस जातिके लोग अन्य पुरुषोंकी अपेक्षा सरकारको कई गुणा ज्यादा टैक्स देते हैं, और अनेक प्रकारके सरकारी चंदों तथा कर्जोंमें भी भर भर थैलियाँ रुपयोंकी देकर सरकारका खजाना भरते रहते हैं। परन्तु फिर भी सरकारमें इस जातिका सम्मान, राज्य-प्रबन्धमें इस जातिकी सम्मतिका वजन और इसकी पुकार तथा चिल्लाहट पर सरकारका ध्यान इतना भी नहीं है जितना कि बहुत ही कम टैक्स देनेवालों या बिल्कुल ही न देनेवालोंसे सम्बंध रखता है। कारण इसका यही है कि इस जातिके लोगोंके हृदयमें स्वयं अपनी प्रतिष्ठा नहीं है, वे जैसे बने तैसे रुपया कमाते रहने और उस रुपयेको जातिकी रीति-रस्मोंमें आँख मीच कर लुटाते रहनेकी अपने आपको केवल एक मशीन समझते हैं। इसी कारण जड़ पदार्थके समान ज्ञानशून्य रहकर न तो वे संसारकी गतिका ही कुछ अनुभव प्राप्त करते हैं और न राज्यकी नीति--रीतिको ही समझनेकी कोई कोशिश करते हैं।

रही व्यापार और कमाईकी बात, सो इसका भी उनको कुछ विशेष ज्ञान नहीं है और न इस व्यापारविद्याको वे सीखना ही चाहते हैं। वे तो बहुत करके बचपनमें औंचे-ढौंचे विकट-पहाड़े याद कर लेना ही जानते हैं; फल जिसका यह हो रहा है कि यूरुपके व्यापारी बड़े बड़े कालिजोंमें व्यापारकी उच्च शिक्षा प्राप्त करके और पोलिटिकल इकानोमीकी पूर्ण शिक्षा पाकर हिन्दुस्तानमें आते हैं और सोना, चाँदी, रूई, अनाज आदि सब ही वस्तुओंका बाजार अपने हाथमें कर लेते हैं और हिन्दुस्तानके मूर्ख व्यापारी सोचते ही रह जाते हैं कि क्यों एक-दम अमुक वस्तुका भाव घट गया और अमुकका बढ़ गया। वास्तवमें ये लोग तो आपसमें सट्टा लगाकर या दलाली करके अथवा विदेशी व्यापारियोंको थोड़ा थोड़ा माल बेचकर ही अपनेको महान् व्यापारी समझने लग जाते हैं। रहे ग्रामोंके दूकानदार, सो वे तो अपने ग्राममें प्रति सप्ताह पीठ (हाट) भरने पर एक दिन अर्थात् महीनेमें चार दिन ही कुछ कमा पाते हैं और बाकीके २६ दिन हाथ पर हाथ धर कर प्रायः खाली ही बैठे रहते हैं या ताश-गंजफा खेल कर और चिलम तम्बाकू पीकर अपने दिन बिताते हैं।

इस प्रकार जिधर भी दृष्टि डाली जाती है उधर इस जातिकी प्रत्येक विषयमें ही अत्यंत हीन दशा दिखाई देती है। नतीजा इसका यही निकलता है कि यद्यपि इस जातिमें भारतकी अन्य जातियोंकी अपेक्षा तिगुणे विद्वान् हैं परन्तु वे अपना कुछ भी कर्तव्य पालन नहीं कर रहे हैं। शास्त्री, आचार्य, विशारद और तीर्थ आदि उपाधिधारी संस्कृतके विद्वानोंको तो व्याकरणके सूत्रोंको घोकने, शृंगारादि रसोंसे भरे हुए काव्योंका मनन करके संस्कृत भाषाकी जानकारी प्राप्त करने और नयप्रमाणके भेद-प्रभेदों तथा लक्षणोंको याद करनेमें ही अपना बहुत समय बिताना पड़ता है; साथ ही धर्म-ग्रन्थोंको भी बहुत करके कंठस्थ ही कर लेना होता है। उन्हें न तो जातिकी दशाका ही कुछ अनुभव होता है और न संसारकी गतिका। जैन-शास्त्रोंको घोक कर वे यह कहना तो जरूर सीख जाते हैं कि प्रत्येक कार्य अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावके अनुसार होता है, परन्तु उनको इस बातकी जरा भी खबर नहीं कि अब क्या समय बीत रहा है, कैसी हवा चल रही है, कैसा राज्य है, किन लोगोंसे हमको वास्ता पड़ रहा है, क्या हमारी योग्यता है और क्या दशा है; बल्कि वे तो रूढ़िके दास बनकर सीधा मार्ग यह ग्रहण कर लेते हैं कि जो कुछ भी प्रचलित है—चाहे वह लाभदायक हो या हानिकारक, समयके अनुकूल हो या प्रतिकूल—उसहीका पोषण करना और उसके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विरुद्ध जो कोई कुछ कहे उसको नास्तिक धर्म-ज्ञानशून्य आदि कहकर उसके पीछे पड़ जाना।

ऐसा करनेमें न तो उनको कोई हेतु ढूँढ़ना पड़ता है और न किसी प्रकारके अनुभव प्राप्त करनेकी ही जरूरत होती है। क्योंकि इधर अपने अनुकूल आवाज निकालते हुए देखकर साधारण जनता तो इनकी वाहवाही करने लग जाती है, और उधर ये पंडित लोग भी जाति भरको अपना साथी देखकर अपनी महाविजय समझ बैठते हैं। इन्हें इस बातका जरा भी खयाल नहीं आता कि हमारा तो यह कर्तव्य था कि हम नासमझ लोगोंको लोकमूढ़ताओं और रूढ़ियोंके पंजेसे निकालकर समयानुकूल सत्यपथपर ले जावें, सो न करके हम तो उलटा उन्हींके पथपर चलने लग गये हैं और उन्हींकी बोली बोलते हैं; इस कारण हमारी तो बहुत ही भारी हार तथा पतित दशा हो गई है।

अब रहे बी० ए० और एम० ए० आदि पदवीधारी हमारे बाबूलोग, जो संख्यामें हमारे संस्कृत विद्वानोंसे दुगने तथा तिगने हैं। इनसे जातिकी उन्नति होनेकी बहुत ज्यादा आशा थी; क्योंकि इन्होंने प्राचीन संस्कृत भाषाके स्थानमें वह प्रचलित अंग्रेजी भाषा सीखी है जो इस समय भारतकी राज्यभाषा हो रही है, जिसके द्वारा इस समय संसार भरका व्यापार चल रहा है और जगत भरको प्रत्येक विषयकी उच्च शिक्षा प्राप्त हो रही है। इसके सिवाय हमारे संस्कृतके पंडित तो इस समय अपनी विद्याके द्वारा ज्यादासे ज्यादा १००-१२५ रुपये महीनेका ही रोजगार प्राप्त कर सकते हैं और वह भी प्रायः जैनपाठशालाओंके अध्यापक बनकर, परन्तु हमारे अंग्रेजीके विद्वान् तो अपनी विद्याके द्वारा राज्यमें ही हजारों रुपये महीनेका रोजगार पा लेते हैं और वकील, डाक्टर, इंजीनियर तथा न्यायाधीश आदि बनकर संसारके अनेकानेक महान् कार्योंको सम्पादन करते हैं और इस कारण वे धनमें, पदमें, मानमें, अधिकारमें और संसारके अनुभव आदि सब ही बातोंमें अपने संस्कृत विद्वानोंसे कई गुना बढ़िया रहते हैं, अतः सच पूछिये तो जातिकी उन्नतिका भार इन्हीं बाबू लोगोंपर है न कि प्राचीन विद्याके जानकर बेचारे संस्कृतके विद्वानोंपर! परन्तु शोक है कि इन बाबूलोगोंने अपने कर्तव्यका कुछ भी पालन नहीं किया, बल्कि यों कहिये कि इन्होंने उसकी ओर ध्यान भी नहीं दिया। हमारे संस्कृतके विद्वान् यद्यपि जातिकी उन्नतिका कोई विशेष कार्य नहीं कर रहे हैं तो भी जातिकी पाठशालाओंसे अध्यापक बनकर अपनी विद्याका लाभ अपनी जातिको जरूर पहुँचा रहे हैं, परन्तु हमारे बाबू लोग बिलकुल ही मौन हैं। वे न तो जातिके प्रति अपना कुछ कर्तव्य समझते हैं, और न उसके लिये अपनी कुछ शक्तिका व्यय ही करते हैं। ऐसी हालतमें यदि यह कहा जाय कि इनमें और जातिके अन्य साधारण अनपढ़ लोगोंमें कुछ भी अन्तर नहीं है, तो कुछ भी अनुचित न होगा।

बल्कि हमारी रायमें, एक प्रकारसे, इन बाबू लोगोंके कारण जातिकी उन्नतिमें बड़ी भारी बाधा पहुँच रही है। ये लोग यों तो सबहीको मूर्ख ठहराकर बड़ी बड़ी ऊँची बातें बनाया करते हैं, सब ही रीतिरिवाजोंको दूषित बताया करते हैं, परन्तु जब इनके यहाँ कोई ऐसा कारण आन पड़ता है, जिसमें बिरादरीके सम्मलित होनेकी जरूरत होती है तो बुरीसे बुरी और फिजूलसे फिजूल रीतियोंको भी ये उस ही तरह पूरा करने लग जाते हैं जिस तरह कि मूर्ख स्त्रियाँ किया करती हैं; यहाँतक कि जिन छोटी मोटी रीतियोंको बिरादरीके लोग भी उपेक्षाकी दृष्टिसे देखते हैं और कोई उनको करे या न करे अथवा जिस प्रकार चाहे करे इसकी कुछ भी परवाह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं करते हैं ऐसी फिजूल रीतियोंको भी ये बाबू लोग ज्योंकी त्यों ही करके दिखाते हैं। उनके ऐसा करनेसे रूढ़ीके दासोंकी बड़ीभारी मजबूती हो जाती है और सबहीके हृदयमें यह बात जम जाती है कि रूढ़ियाँ तो ऐसी अटल और पालन करने योग्य होती हैं कि बड़ी बड़ी बातें बनानेवाले बाबूलोग भी उन पर चलना अपना परमधर्म समझते हैं। फल इसका यह होता है कि अगर जातिका कोई साधारण मनुष्य किसी कुरीति या दुखदाई रूढ़िको तोड़ना या किसी-प्रकारकी लोकमूढ़तासे निकलना चाहता है तो भी लोग उसके विरोधी हो जाते हैं और उदाहरणके तौर पर कहने लग जाते हैं कि जब ऐसे ऐसे बाबूलोग भी इन रीतियोंका पालन करते हैं तो इनको छोड़नेका तुम्हारा साहस तो महामूर्खता और पागलपनके सिवाय और कुछ भी नहीं हो सकता है। इस प्रकार इन बाबूलोगोंके उदाहरणसे जातिमेंसे कोई भी कुरीति दूर होने नहीं पाती, बल्कि कुरीतियाँ ज्यादा ज्यादा मजबूत होती जाती हैं।

परन्तु ये बाबूलोग ऐसा करते क्यों हैं? कारण इसका यह है कि बी० ए० और एम० ए० की उपाधि प्राप्त करने और फिर उसके पीछे विकालत इंजीनियरी या डाक्टरी आदि पास करनेतकके लिये इन बाबू लोगोंको पाँच सात वर्षकी उमरसे लेकर २३–२४ वर्षकी उमरतक बराबर विद्याध्ययनमें लगा रहना पड़ता है, जिसमें अनुमान दस बारह वर्ष तो उनको अपने मा-बापोंसे अलग किसी बोर्डिंगमें ही रहना होता है जहाँ इनका रातदिनका समागम हिन्दू मुसलमानोंकी अनेक जातिके बालकोंसे रहता है। इसलिये इनकी खान-पानकी छूत-छात बहुत ढीली पड़ जाती है—यहाँतक कि इनमेंसे बहुतसे तो चूढ़े-चमारों और हिन्दू-मुसलमान आदि चाहे जिस जातिके लोगोंका बनाया हुआ सोडावाटर और पानीका बरफ आदि भी पीने लग जाते हैं, कोई कोई बाजारोंमें बिकते हुए बिस्कुट भी खाने लगते हैं और इस बातकी जरा भी परवाह नहीं करते हैं कि इन सोडावाटर, बर्फ, बिस्कुट आदिके बनानेमें पानी चमड़ेकी मशकका वर्ता गया था या काँसे पीतलके कलशोंका और इनके बनानेमें क्या क्या मसाला डाला गया था। इस प्रकारकी अन्य भी अनेक ढीलें इनके खान-पानमें हो जाती हैं, जैसा कि कभी बगैर नहाये या बगैर कपड़े उतारे ही रोटी खा लेना, रोटी खाते समय कोई एक आध कपड़ा पहने रहना, रोटी खाते हुए यदि किसी अन्य जातिके हिन्दूका हाथ उसके किसी कपड़े या शरीरसे छू जाय तो खाना नहीं छोड़ना, बाजारकी कचौरी पूरी या मिठाई आदिक खाने लगना, मेज पर रखकर भी खा लेना, अन्य जातिके हिन्दू मुसलमान बालकोंके पास बैठे हुए भी खा लेना, बूट पहने हुए पान चबाना या इलायची आदिक खा लेना और सूतकी बनी हुई दरी तथा फर्श पर बूट पहने ही फिरते रहना, इत्यादि।

विद्याध्ययनके इस बहुत बड़े लम्बे चौड़े कालमें इस प्रकारकी ढीलोंका इन्हें इतना अधिक अभ्यास हो जाता है कि अपने कारबारी जीवनमें इन ढीलोंको छोड़कर फिरसे प्राचीन बंधनोंका ग्रहण करना इनके लिये प्रायः असम्भव हो जाता है। इनकी आजीविका भी बहुत करके ऐसी ही होता है जिसमें इन्हें अपने जैसे अंग्रेजी लिखे पढ़ोंकी ही अधिक संगति रहती है और अनेक अंग्रेजी दफ्तरोंमें नित्य उन्हीं सूतके बने हुए दरीफर्शोंपर बैठकर दफ्तरका काम करना होता है जिन पर भंगी ही झाड़ू देता है। इस वास्ते अपनी इस चिराभ्यस्त परिणतिको छोड़कर नवीन प्रकारके कठिन बंधनोंमें पड़ना उन्हें और भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुश्किल हो जाता है, अतः वे कारोबारी होकर भी छूतछातके विषयमें अनेक प्रकारसे ढीले ही रहते हैं, परन्तु यह संकोच उनके हृदयमें जरूर रहता है कि ऐसा करनेसे हम अपने जाति भाइयोंसे ताके अवश्य जाते हैं, साथ ही वे यह भी जानते हैं कि जातिका पृथक् पृथक् व्यक्ति तो हमारे प्रभावसे सामने कुछ बोल नहीं सकता और यदि कुछ आक्षेप करता भी है तो उसकी कुछ चलती नहीं, परन्तु मरने जीने या विवाह शादी आदिके अवसरोंपर जब बिरादरीके सब लोग इकट्ठे होते हैं उस समय जातिके प्रत्येक मनुष्यमें ही समूहका बल आजाया करता है, इस कारण उस समय छोटेसे छोटा आदमी भी जातिके बड़े बड़े सर्दारोंपर आक्षेप करनेका साहस कर बैठता है और उसका वह आक्षेप बहुत कुछ कार्यकारी भी हो जाता है। ऐसा विचार कर ये बाबूलोग नित्य तो चाहे जैसी स्वच्छन्दतासे रहते हैं परन्तु बिरादरीके इकट्ठा होनेके अवसरपर बिल्कुल उन्हींका अनुकरण करने लग जाते हैं और छूतछात आदि सबही प्रकारके बंधनोंको पूरा पूरा पालके दिखाते हैं; बल्कि कभी कभी तो वे उस समय सर्वसाधारणसे भी आगे बढ़ जाते हैं और छूतछात आदि बंधनोंका खूब ही बढ़िया स्वांग बनाकर लोगोंके प्रशंसापात्र बनते हैं। ऐसा करनेके लिये उनको अपनी विचारबुद्धिके अतिरिक्त जातिके ऐसे लोगोंका उदाहरण भी मिल जाता है जो मदिरापान और वेश्यागमन आदि अनेक महा कुकर्मोंसे दूषित होने पर भी जाति-बिरादरीके जीवनमें पूरी पूरी छूतछात दिखानेसे जातिके प्रशंसाभाजन ही बने रहते हैं, साथ ही ऐसे धनवानोंका दृष्टान्त भी बहुत असर करता है जो नित्य स्वच्छन्दताके साथ जीवन व्यतीत करते हुए भी बिरादरीसंबंधी रीतिरिवाजोंको प्रचलित रीतिके अनुसार कर देनेसे ही जातिके सर्दार बने रहा करते हैं।

७–८ वर्षकी उमरसे लेकर २३–२४ वर्षकी उमर तक बराबर अंग्रेजी भाषाका ही अभ्यास करते करते और इस अभ्यासमें निपुण होनेके वास्ते अपने साथके विद्यार्थियों तथा पाठकोंके साथ भी हरवक्त अंग्रेजीमें ही बात चीत करते करते और कारबारी होने पर अपने पदका सब काम भी अंग्रेजीमें ही करते रहनेसे इनको इस भाषाका इतना अधिक अभ्यास हो जाता है कि ये लोग परस्पर सदा अंग्रेजीमें ही बातचीत करते हैं और यदि देशभाषा भी बोलते हैं तो उसमें भी आधे शब्द अंग्रेजीके बोल जाते हैं, यहाँ तक कि, अनपढ़ नौकरों चाकरोंसे बातचीत करते हुए भी इनकी जबानसे कोई न कोई शब्द अंग्रेज़ीका निकले बिदून नहीं रहता। ये लोग अपने घरका हिसाब किताब तथा अन्य प्रकारकी कोई याददाश्त भी अंग्रेजीमें ही लिखते हैं और जहाँ तक हो सकता है पत्र-व्यवहार भी अंग्रेजीमें ही किया करते हैं। ऐसी दशामें इनको उन लोगोंसे मिलना जुलना और बातचीत करना बहुत ही मुश्किल तथा अरुचिकर होता है जो अंग्रेजी नहीं समझ सकते हैं। यही कारण है कि देशभाषामें लिखी हुई पुस्तकोंका पढ़ना भी उनको अच्छा नहीं लगता, वे अपने प्यारे धर्मसे जानकारी प्राप्त करनेके वास्ते भी अंग्रेजी पुस्तकोंकी ही इच्छा रखते हैं, जिनके न मिलनेके कारण उनको जन्मभर धर्मसे अनजान ही रहना होता है। इसके सिवाय विद्याध्ययनके बहुत बड़े लम्बे समयमें रातदिन अंग्रेजी साहित्यका ही अध्ययन करते करते उनको उनही विषयोंकी चर्चाका व्यसन हो जाता है जिनकी मुख्यता और बहुलता अंग्रेजी साहित्यमें पाई जाती है, और जिनकी चर्चा अंग्रेजी समाचारपत्रोंमें हुआ करती है। इस लिये गप-शपके समय भी ये बाबू लोग ऐसी ही बातोंकी चर्चा करके अपना दिल-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बहलाया करते हैं। यदि कोई अंग्रेजी पढ़ा साथी नहीं मिलता, तो किसी अंग्रेजी समाचारपत्र या पुस्तकको ही अपना साथी बनाकर उसीसे अपना दिल बहलाते रहते हैं; परन्तु ऐसे पुरुषसे बातचीत करके दिलबहलाना पसन्द नहीं करते जो अंग्रेजी पढ़ा नहीं होता और जो उनके रुचिकर विषयोंमें अच्छी तरह बातचीत नहीं कर सकता। यही कारण है कि इन बाबू लोगोंको अपनी अनपढ़ स्त्रीके साथ बातचीत करके दो घड़ी दिल बहलाना भी बहुत दूभर होता है; बल्कि अपनी स्त्रीके पास बैठने पर तो इनको ऐसा कोई विषय ही नहीं मिलता जिसमें इन दोनोंकी बातचीत होकर दिल बहलावा हो सके।

ऐसी हालतमें वे अपनी जातिकी दशा और रीति रस्मोंसे बिल्कुल अनजान ही रहते हैं, न उसका कुछ सुधार कर सकते हैं और न सुधार करनेकी कुछ इच्छा ही रखते हैं। वे अपने लिये सबसे सहज सुखका मार्ग यही समझते हैं कि नित्य तो जो चाहा सो किया परन्तु जब कभी बिरादारीके साथ मिल कर कोई कार्य करना पड़ा तो जातिकी पुरानी चाल ढालके अनुसार ही कर दिया। इसीसे इन बाबू लोगोंके रीति-रिवाज सम्बन्धी सब कार्य प्रायः उनकी स्त्रीके ही अधिकारमें रहते हैं, ये लोग उस समय उसीके इशारे पर काठकी पुतलीकी तरह नाचा करते हैं और अपनी बुद्धिको जरा भी काममें नहीं लाते; परंतु कारज पूरा होने पर फिर अपनी उसी चाल ढाल पर आ जाते हैं। यदि किसी नगर या ग्राममें या किसी जातिमें इन बाबू लोगोंकी कुछ जबरदस्ती चल सकती है तो वहाँ ये लोग अपनी स्त्रीको भी धता बताकर और जातिके लोगोंके बुड़बुड़ानेकी भी कुछ परवाह न करके रीतिरिवाजोंको बिल्कुल अंधाधुंध ढंगसे तोड़ने लग जाते हैं, किसी रीतिको किसी प्रकार और किसीको किसी प्रकार करके अपनी खूब ही हँसी कराते हैं और अनभिज्ञता प्रकट करते हैं। सारांश यह कि, जातिके रीतिरिवाजोंसे अच्छी तरह वाकिफ होकर और अपनी स्त्रीको अच्छी तरह समझानेके पश्चात् उससे सम्मति मिलाकर सुधार करना तो इन लोगोंके लिये बहुत ही मुश्किल हो रहा है। यही वजह है कि इन लोगों द्वारा कुछ भी सुधार नहीं होता बल्कि कुरीतियोंकी बहुत कुछ पुष्टि ही होती रहती है।

बाबू लोगोंके विषयमें एक बात यह भी जाननेके योग्य है कि, बड़े बड़े धनाढ्योंके बालक तो प्रायः विद्याप्राप्तिका कष्ट उठाना ही पसन्द नहीं करके बल्कि उनमें कोई कोई तो ऐसे लाड़ले भी होते हैं जो अपनी दूकानके बहीखातोंका लिखना पढ़ना मात्र भी नहीं सीखते हैं, और बड़े होकर अपना सब काम मुनीमों तथा कारिंदोंके ही भरोसे पर छोड़नेके लिये लाचार होते हैं। रहे गरीब लोग सो वे अंग्रेजी पढ़नेका भारी खर्चा नहीं उठा सकते हैं। अतः अंग्रेजीकी उच्च शिक्षा प्रायः मध्यम स्थितिके मनुष्योंके बालक ही पाते हैं और वे सब सरकारी नौकरी पाने या वकील आदि होनेके वास्ते ही पढ़ते हैं। ये अंग्रेजी पढ़नेवाले बालक सरकारी हाकिमोंको बहुत कुछ अधिकारप्राप्त और बड़े बड़े धनाढ्यों तथा ध्वजाधारियोंसे भी सर्व प्रकार सेवित और पूजित देखकर अपने वास्ते भी बड़ी ऊँची ऊँची आकांक्षाएँ बाँध लेते हैं और शेखचिल्लीवाले बड़े बड़े मंसूबे घड़ने लग जाते हैं कि पढ़लिखकर हम भी ऐसा ऐसा वैभव प्राप्त करेंगे और ऐसे ऐसे अधिकार पावेंगे। इसी प्रकार इनके कुटुम्ब तथा ग्रामके लोग भी इनके विषयमें ऐसा ही विचार करके इनके विद्यार्थी-जीवनमें ही इनकी बहुत बड़ी प्रतिष्ठा करने लग जाते हैं, जिससे इनके दिमाग और भी ज्यादा ऊँचे चढ़ जाते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Sarayu Trust/eGangotri

वे विद्यार्थी अवस्थामें ही बड़ी शान शौकतके साथ रहने लग जाते हैं और अपने माता पिताको बड़ी बड़ी आशायें दिलाकर उनसे बहुत ज्यादा खर्च लेते हैं। परन्तु जब परीक्षा पास करके ये लोग कालिजसे निकलते हैं तब तुरन्त ही उस ऊँचे पदको नहीं प्राप्त कर पाते हैं जिसकी आकांक्षा अपनी बालबुद्धिके कारण बाँधे बैठे थे। प्रारम्भमें इनको बहुत ही छोटा पद और बहुत ही थोड़े वेतनकी नौकरी मिलती है जिसमें वह किसी प्रकार भी अपनी इस ऊँची हैसियतसे नहीं रह सकते जो उन्होंने विद्यार्थी अवस्थामें बना रक्खी थी। इसके सिवाय उनके मां-बाप जो उन पर पूरी पूरी आशा बाँधे बैठे थे और इस ही कारण जिस तरह भी हो सकता था उनको पूरा पूरा खर्च देते थे साथ ही, उनकी स्त्री और बालबच्चोंको भी ऊँची हैसियतमें पाल रहे थे वे भी अब उनका रोजगार लग जाने पर तुरन्त ही उनकी स्त्री और बालबच्चोंका सारा बोझ उन पर डाल देते हैं और अपने वास्ते भी सब कुछ सहायता चाहने लग जाते हैं। बल्कि, बेटेका रोजगार लग जाने पर जो ऊँची हैसियत बनानेकी आकांक्षा बाँध रक्खी थी उसके पूरा होनेकी इच्छा करने लगते हैं और यदि विद्यार्थी अवस्थामें उसको अपनी हैसियतसे ज्यादा खर्च देते रहनेके कारण कुछ कर्ज भी जिम्मे हो गया हो तो, उसके बेबाक करदेनेका भी तकाजा करने लग जाते हैं। इस प्रकार नौकरी लगते ही बाबूसाहब पर एकदम इतने भारी बोझ पड़ जाते हैं कि वह अपनी प्रारम्भिक छोटी नौकरीमें उनको किसी प्रकार भी नहीं झेल सकता, बल्कि शुरू शुरूमें तो वह स्वयं अकेला अपना भी खर्च नहीं चला सकता है जिसको वह बहुत ही ऊँचे दर्जेका रखना चाहता है। इसलिये वह बहुत ही ज्यादा सटपटाता है और रातदिन इसी सोचमें पड़कर परम स्वार्थी बन जाता है और अपने मातापितासे भी आँख चुराने लगता है और अपने बालबच्चोंको भी भारस्वरूप ही समझने लग जाता है। यही कारण है कि विद्यार्थी अवस्थामें जो थोड़ा बहुत जोश जातिप्रेम तथा देशसेवाका पैदा भी होता है वह कालिजसे निकलकर कारबारी होनेपर बिलकुल ही जाता रहता है, सर्व प्रकारके सद्विचार लुप्त होकर उन्हें आटे-दालका भाव मालूम होने लग जाता है और यह कहावत उनपर बिलकुल चरितार्थ हो जाती है कि "भूल गये राग रंग भूल गये जक्कड़ी, तीन चीज याद रहीं नून तेल लक्कड़ी।"

होते होते जब हमारे ये बाबू लोग बहुत ऊँचे पद पर पहुँच जाते हैं, वेतन भी इनका बहुत ज्यादा बढ़ जाता है और घरबारका सब प्रबन्ध भी ठीक बैठ जाता है, तब यदि फिर इनको जाति तथा देशकी सेवाका खयाल आता है या सरकारके द्वारा प्रतिष्ठा पानेके पश्चात् जातिमें भी भी प्रतिष्ठा पानेका कुछ शौक उभरता है तो उस समय ये लोग जातीय सभाओंमें भी शामिल होते हैं और बहुत कुछ सेवा करनेका जोश दिखलाते हैं। परन्तु जब देखते हैं कि वहाँ तो अनपढ़ और नासमझ धनाढ्य ही पूजे जाते हैं और बड़े बड़े पंडितों तथा विद्वानोंके ऊपर भी वे ही प्रधान बना दिये जाते हैं; बल्कि पंडित और विद्वान् लोग स्वयं भी उन्हींकी हाँमें हाँ मिलाते हैं तब बहुत घबराते हैं और अपनी दाल गलती न देखकर सभाओंमें सम्मिलित होनेकी अरुचि ही पैदा कर लेते हैं। इसके सिवाय वहाँ इनकी चालढाल और वेशभूषाके ऊपर भी लोग कानाफूसी किया करते हैं। पंडित लोग तो इस मौकेको गनीमत समझकर और शेखीमें आकर उनकी अनेक क्रियाओंमें त्रुटि निकालने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लग जाते हैं; धर्मात्माओंका रूप बनाकर उनको धर्मका उपदेश देने लगते हैं और अनेक प्रकारकी आखड़ी तथा नियम लेनेके लिये बाध्य किया करते हैं, जिससे वे लज्जित होकर ज्यों त्यों अपना पिंड छुड़ाते हैं। फिर जब वे सभामें बैठते हैं और किसी प्रस्तावपर अपनी सम्मति देते हैं तो जातिका पूरा पूरा अनुभव न होने और सभाकी परिस्थितिको भी ठीक ठीक न जाननेके कारण उनकी वह सम्मति बिल्कुल ऐसी ही बेतुकी हुआ करती है जैसी कि उस अनाड़ी अंग्रेज हाकिमकी जो किसी हिन्दुस्तानी सभामें आने और सभाकी तरफसे फूलोंका हार गलेमें पड़ जाने पर सम्मति प्रकाश किया करता है। ऐसी हालतमें सभाके लोग बाबूसाहबकी उस सम्मति पर कुछ भी ध्यान नहीं देते बल्कि उनको उपेक्षाकी दृष्टिसे देखने लग जाते हैं। बाबूसाहब इससे अपना बड़ा भारी अपमान समझकर यही सोचने लग जाते हैं कि इन मूर्खोंकी सभामें सम्मलित होकर तो हमने बहुत ही ज्यादा भूल की जिसे फिर नहीं करेंगे, अर्थात् अबसे फिर कभी सभामें नहीं आवेंगे।

इस प्रकार हमारे इन बाबू लोगोंके हाथोंसे भी जातिका कुछ उपकार या सुधार नहीं हो रहा है। बाबू लोग जातिके वास्ते कुछ भी काम नहीं कर रहे हैं और बिल्कुल ही उपेक्षित हुए बैठे हैं; मानो इनके जिम्मे जातिका कुछ कर्तव्य ही नहीं है। ये लोग जातिके वास्ते कुछ करके तो क्या दिखाते इनको यह भी खबर नहीं है कि इस समय जातिमें क्या हो रहा है, और क्या हालत बीत रही है। क्यों कि देशभाषामें छपनेवाले जातिके समाचारपत्रोंको तो यह लोग पढ़ना पसंद नहीं करते और अँग्रेजीमें जो एक मासिकपत्र निकलता है वह अव्वल तो कई कई महीनेकी डुबकी मारता रहता है और दूसरे जब कभी दर्शन देता है तो जातीय समाचार तो उसमें नाममात्रको ही रहते हैं, बहुत करके लेख या शास्त्रोंके अनुवादका सिलसिला ही जारी रहता है। इन समाचारपत्रोंके अतिरिक्त जातिके लोगोंसे मिलकर अपनी जातिकी दशाके विषयमें बात चीत करते रहना भी इनको बहुधा पसंद नहीं हुआ। इसलिये जातिकी दशा और उसके समाचारोंसे तो ये लोग बिल्कुल ही अनजान रहते हैं। हाँ, अँग्रेजी भाषा और उसमें वर्णित विषयोंका इनको एक प्रकारका व्यसन सा हो जानेके कारण ये लोग बहुत बहुत मूल्य देकर भी अँग्रेजी समाचारपत्रोंको मँगाते हैं और उनके द्वारा बेजरूरत भी दुनिया भरकी व्यर्थकी राजनैतिक बातोंको पढ़कर अपना दिल बहलाते रहते हैं और आपसमें भी इस ही प्रकारकी चर्चा किया करते हैं कि जापानने रूसका अमुक देश ले लिया है, चीन यह कहता है और अमरीकामें सभापति चुननेके वास्ते यह सलाह हो रही है। इत्यादि।

तात्पर्य इस सारे कथनका यह है कि न तो हमारे पंडित लोग ही जातिका उद्धार कर सके हैं और न हमारे बाबू लोग ही जातिके उन्नतिमें लगे हुए हैं, इसी कारण यह जाति अन्य सब जातियोंसे बहुत पीछे पड़ी हुई है और नीचेको ही गिरती चली जाती है। बल्कि अपनी मनुष्यगणना कमती होते रहनेसे तो शीघ्र ही समाप्त हो जानेकी भी सूचना दे रही है। इस कारण इसकी रक्षाका तो बहुत ही जल्द कोई उपाय होना चाहिये और ऐसे विद्वान् पैदा करने चाहियें जो इस जातिको उन्नति-शिखर पर चढ़ावें और अन्य सब जातियोंसे आगे निकाल कर ले जावें। यह कार्य ऐसे ही विद्वानोंसे चल सकता है जो संस्कृत और अंग्रेजीके पूरे पंडित हों, अपने धर्मके पूरे ज्ञाता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हों, जातिसे पूर्ण प्रेम रखते हों, जातिमें पूरी तरह घुसते हों, उसकी सब रीति रस्मों और चाल ढालको अच्छी तरह जानते हों, अपनी देश भाषा और देशी भाइयोंसे पूरा अनुराग रखते हों, अपने देश और जातिकी घरेलू बातोंकी चर्चामें ही अपना दिल बहलाते हों और जातिकी उन्नति करना अपना परम कर्तव्य समझते हों। कोरे पंडितों अथवा कोरे बाबुओंसे काम नहीं चलेगा। परन्तु यह तब ही हो सकता है जब कि जातिके बालक अपने ही स्कूल और कालिजोंमें पढ़ें और अपने ही बोर्डिंगोंमें रहें जहाँ उनको उपर्युक्त सभी बातें बड़ी कोशिशके साथ सिखाई जावें और उनके हृदयमें जातिप्रेम और जात्युन्नतिका जोश खूब मजबूतीके साथ कूटकूट कर भर दिया जाय। यहाँ हमें शोक और महाशोकके साथ लिखने पड़ता है कि हमारे पंडित लोग जातिसे अंग्रेजी पढ़नेके प्रचारको तो बंद नहीं करते हैं और न बन्द कर ही सकते हैं—इस कारण जातिके बालक अंग्रेजी पढ़ पढ़ कर बाबू तो धड़ाधड़ बनते जारहे हैं, दिन प्रतिदिन उनकी संख्या बढ़ती ही जाती है और वह आगेको और भी ज्यादा बढ़ेगी; परंतु फिर भी हमारे बहुतसे विलक्षण पंडित जातिकी तरफसे ऐसे स्कूल तथा कालिजोंके खड़ा करने और बोर्डिंगोंके खोलनेको महापाप बताते हैं जहाँ जैनधर्मकी भी शिक्षा होती रहे और अंग्रेजीकी भी, जहाँ रहकर जातिके बालकोंका धर्म कर्म सब ठीक ठीक बनता रहे, उन पर अपनी जाति और धर्मके प्रेमका संस्कार पड़ता रहे—और संगति भी अपनोंहीकी मिलती रहे। अतः जब तक इन पंडित महाशयोंकी यह अद्भुत नीति चलती रहेगी तब तक जातिके बालक ऐसे ही स्कूलोंमें पढ़ते रहेंगे और ऐसे ही बोर्डिंगोंमें रहते रहेंगे जहाँ जैनधर्म और जैनजातिके प्रेमकी तो कुछ भी चर्चा न हो; बल्कि जैनी ६०० में एक होनेके कारण अन्य मतियोंकी ही बहुलतासे उन्हींके धर्मकर्मकी चर्चा हुआ करती हो और उन्हींका प्रभाव पड़ता हो और ऐसे ही बाबू लोग बनते रहेंगे जैसा कि पंडित लोग इनको समझते हैं और फिर होते होते इन बाबू लोगोंकी बहुतायतसे सम्भव है कि इनका असर जाति पर भी पड़ने लग जाय और सारी जाति ही इन जैसी हो जाय।

अन्तमें हम इतना कह देना जरूरी समझते हैं कि पंडितों, बाबू लोगों, धनाढ्यों तथा सर्व साधारण आदिके विषयमें जो कुछ भी हमने इस लेखमें लिखा है उससे हमारा यह मतलब नहीं है कि वह सब पर ही लागू होता है अथवा सब ऐसे ही हैं; नहीं, यह हमारा अभिप्राय हर्गिज नहीं है और न ऐसा हो सकता है बल्कि वास्तवमें तो पंडितोंमें भी अनेक प्रकारके लोग हैं, और बाबुओंमें भी, और इसी तरह दूसरोंमें भी; और ऐसा ही सदा हुआ भी करता है। यहाँ तक कि बहुतसे लोग ऐसे भी होंगे जिनपर हमारे लेखका एक अक्षर भी लागू न होता हो। हमारा अभिप्राय तो इस लेखमें जातिकी बहुत ही मोटी बाहरी दशाके दिग्दर्शन करानेका है, जिससे जातिके हितैषियों और शुभचिन्तकोंको इसकी अंतरंग दशाके जाननेकी उत्सुकता हो और वे इसके सुधारका कुछ उपाय करें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हिन्दीके स्थानकवासी जैन लेखक।

(लेखक—बाबू मोतीलालजी जैन, एम. ए.)

१–मगन मुनि।

आप श्वेताम्बर स्थानकवासी संप्रदायके साधु हैं। आपका जन्म भरतपुर रियासतके अन्तर्गत डीग नामक नगरमें हुआ था। विक्रम संवत् १९१८ में आपने पूज्य मुनिवर धर्मदासकी संप्रदाय (गच्छ) में दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा लेनेके पश्चात् आप ५–६ वर्ष तक मालवा प्रान्तके इन्दौर इत्यादि स्थानोंमें देशाटन करते रहे। पुनः आपने कोटा, बूँदी, बजरङ्गगढ़, लश्कर इत्यादि अनेक स्थानोंमें भ्रमण किया और जनताको जैनधर्मका उपदेश दिया। आज कल आप जयपुर राज्यके अंतर्गत मँड़ावर नगरमें ही अधिकतर रहते हैं और उसीके आसपासके ग्रामोंमें देशाटन करते हैं। कालू मुनि, शोभाचन्द मुनि, माधव मुनि और हंसरत्न मुनि आपके चार शिष्य हैं।

आपको हिन्दी कवितासे बहुत प्रेम रहा है। आपकी समस्त रचना हिन्दी-पद्यमें है। आपकी रचना विविध छंदोंमें है, परन्तु आपने अधिकतर झूलना छंदका ही प्रयोग किया है। काव्यकी दृष्टिसे आपकी रचना साधारण है, परन्तु कहीं कहीं आपकी रचनामें चमत्कार भी पाया जाता है। आपकी भाषामें कतिपय प्राकृत शब्दोंका प्रयोग हुआ है। आपने कुल मिला कर चार ग्रंथ लिखे हैं।

१ मेघमुनिचरित। यह एक खण्ड काव्य है। विविध छन्दोंमें लिखा गया है। बड़ा रोचक है। आपकी रचनाओंमें यही ग्रंथ सर्वश्रेष्ठ है। इस ग्रन्थकी भाषा कुछ प्राचीन अवश्य है, परन्तु है प्रसादगुणसंपन्न। इसकी रचना ज्ञातृधर्मकथाङ्गके प्रथम अध्यायके आधार पर हुई है। इसमें जो नखशिखवर्णन है वह औपपतिकोपाङ्गके आधार पर लिखा गया है। इस ग्रन्थका निर्माण संवत् १९३९ में हुआ था। तत्पश्चात् मुनि महाराजके शिष्य माधव मुनिने इस ग्रंथके छंदोंमें यत्र तत्र कुछ हेर फेर किया। इस कारण इसमें कहीं कहीं गुजराती शब्दोंका भी समावेश हो गया है। यह ग्रंथ अभी प्रकाशित नहीं हुआ और इसकी केवल एक हस्तलिखित प्रति उपलब्ध है, जो माधव मुनिके पास सुरक्षित है। उन्हींकी कृपासे मुझे इस ग्रंथके देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इस ग्रंथमें जो कथा वर्णन की गई है वह संक्षेपमें इस प्रकार है। कथाके साथ कविताके नमूने भी दिये जाते हैं:—

मगधाधिपति राजा श्रेणिककी धारिणी नामक रानी थी। उस रानीके उदरसे मेघकुमार नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। गर्भिणी रानीके मनमें जो दोहद उत्पन्न हुआ था उसका वर्णन कविने इस प्रकार किया है:—

“ बिना काल वारिद होवें, घन वरसै अति जोर।
तड़ तड़ात तड़के तड़ित गाज रहा चहुँ ओर॥

वारिद पंच बरणके न्यारे हैं।
घनघटा उठी उमगी आवें मनो इंदर बान समारे हैं॥

मारेगा दुस्मन सूखाकूँ, वो सूर रूप अवधारे हैं।
इम विविध भाँति अँबरकी सोभा हो मुझ मन अनुसारे हैं॥

विहग विविध क्रीड़ा करैं, निज तिय सँग लवलीन।
हों षट रितु फल फूल युत, सब तरु रम्य नवीन॥

सर्ज अर्जुन सहकार कलंबू हैं।
पुंगीफल श्रीफल नारंगी केला दाड़िम अरु जंबू हैं॥

चारोली पिस्ता खरजूरी बादाम सेब पुनि निंबू हैं।
इत्यादि वृक्ष भूमें राजें, मनो विहग-वसन ये तंबू हैं॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पड़े जल-धार त्रिविध वयार चले।
चपला चमके घन गरज करे शुचि धाय भूमि प्रताप टले।
इस विधि पूरण पावस ऋतु हो, तब मुझ चिन्तितकी आस फले।
नृप साथ तामें गज पर बैठूँ शिर छत्र होय, अरु चमर ढले॥

मेघकुमार जब विवाहके योग्य हुए तब उनको

"अद्भुत अलबेली अष्ट राज़-कन्या विधियुत परणाई।
समवयवाली भोली विशालनयनी मनमोहनगोरी।
शशिबदनी, नासा शुकसमान, जस अधर अरुण छबि न्यारी॥
दाड़िम-कणदंती सोहै वो सुर नरको मन मोहै।
ग्रीवा कम्बू सम भुज मृणाल सरसी शुचि नरम कलाई॥
कज कोमल कज पल्लव पर महँदी बुंद अमंद लसै है।
अति उत्तम शोभन रिदैय[3], कठिन कुच कनक कुंभ सरसै हैं॥
त्रिवली सह क्षामोदर है, नाभी पियूषको सर है।
कटि केहर लखि सरमाय मदनके सदन सुमन सुख-दाई॥"

विवाहके पश्चात् एक बार मेघकुमार वीर भगवान्‌के समव-सरणमें गये। यहाँ पर कविने वीर भगवानका शिख-नख विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। यथा—

खगपति गरुड़ तनी परें, लम्बी अरु ऋजु जान।
ऊँची घ्राण जिनेशकी, कहि मुनि मगन बखान॥१॥

उपचित परम उदार, जैसे होवें बिम्बफल।
ता समान सुखकार, अधर लसें जिनराजके॥२॥

रक्त हस्त-तल अरु सुकुमार, उन्नत पुष्ट सुंदराकार।
अति प्रशस्त लक्षणयुत जान, छिद्ररहित जिनके जुग पाण॥३॥

तरुण सूर्यकी किरण कर, ज्यों जाग्रत कज होय।
त्यों गंभीर रु पसरती, नाभि आकृती जोय॥४॥

नाभि आकृती जोय, किधों सर सरितामाँहीं।
भ्रमर दक्षिणावरत तरंगें अधिक तहाँ हीं॥५॥
ता समान जिनराजकी नाभी अति परधान।
जिन आगम अनुसारथी[1] कहें मुनि मगन बखान॥६॥

जब मेघकुमारने श्री महावीरका धर्मोपदेश सुना तब उनके चित्तमें वैराग्य उत्पन्न हो गया। घर आकर मातासे कहने लगे:—

श्री जिन भाषियो मा अथिर यह संसार।
जिन उदय रविको अथिर, तिम अथिर नर अवतार।
नियम ना पुनि धनीसे होय दरिद नो[2] आगार॥१॥
नलिनदलगत जल तरल जिम तड़ितको झबकार।
जलद बुदबुद सुर-धनुष सम चपल आयु विचार॥२॥
जिम कुशाके अग्रपर जल-बिन्दु थिति निरधार।
तरल चल दल बाण संध्या सरिसै[3] आयु निहार॥३॥
चैतन्य चिड़ियाकी करै जब काल बाज सिकार।
तबै अबरै[4] चिड़िया सम सजन रह जात पुकार॥४॥"

इसी प्रकार बहुतसी बातें कहके मेघकुमारने मुनिव्रत धारण करनेकी मातासे अनुमति माँगी। माताने बहुत कुछ समझाबुझाकर मेघकुमारको वैराग्य लेनेसे रोकना चाहा, परन्तु सब प्रयत्न निष्फल हुआ। अंतमें माताने मेघकुमारकी पत्नियोंको बुलवाया। वे—

प्रियतमको पाड़न प्रेम-पाशमें पदमनि बन बन आई।
जिन पहिरयो अनुपम वेश अंग आभूषण नूतन धारे।
मृदु कृष्ण अभ्रराजी समान सूच्छम केश समारे॥
वेणी काली घुँघराली, चोटी जड़ावनी[5] डाली।
शिर शीस फूलमणिरतन-जटित, मुतियनसे माँग भराई॥१॥
कल दल सम कोमल करतल पर महँदी अमंद राजै है।
लचकती लंक पर हेममेखला अति अद्भुत छाजै है॥
नूपुर पग माँहि विराजैं, जिन लख सुर-परियाँ लाजैं।
पग धरत धराणि पर अचक पचक बिछुअनकी झनक सुनाई॥२॥

अपनी स्त्रियोंके देखने पर और माताके पुनः समझाने पर भी मेघकुमार अपने संकलपसे विच-लित न हुए और उन्होंने माता-पितासे बलात्कार

१ तब। २ कारी अर्थात् करनेवाली। ३ हृदय।

१ से। २ का। ३ सदृश। ४ अन्य। ५ की।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आज्ञा लेकर श्रीमहावीरसे मुनि दीक्षा ग्रहण कर ली। परन्तु वे मुनिव्रतकी परीषहसे एक दिनमें ही घबड़ा उठे और पुनः गृहस्थ जीवनमें प्रवेश करनेको उद्यत हो गये। इसी इरादेसे महावीर स्वामीके पास पहुँचे। स्वामीने उनके मनकी बात जान ली और उन्हें उनके पूर्व भवोंका वृत्तान्त सुनाया। महावीरस्वामी बोले—

"सुनहु मुनि मेघ तव पुव्वभव[1] वारता,
देहु उपयोग विभ्रम विसारी।
पेख इहँ[2] भव थकी[3] तीसरे भव विषें,
हतो गजराज तूं बन बिहारी॥
एकदा ग्रीष्मऋतु माँहि तिहँ बन विषें,
लगी दावाग्नि अटवी अजारी।
विस्तरी धूम दिशि विदिश वायू बलें,
भये भयभीत सब विपिनचारी॥
करत आक्रंद निज जीव जीवा विवाँ[4],
इत उतें भ्रमण लागे तिवारी।
भूमि भवकंत आतप पड़ै आकरी,
लगें लू-लपट तन दहनहारी॥
दैववश एक सर नजर तुझ आवियो,
ता विषें पंक बहु, अल्प वारी[5]।
सर विषें पैठियो नीर पीवा भनीं[6],
दंड सम सुंड जलहित पसारी॥
नीर ना कर चव्यौ, कीच माँहीं गव्यौ,
लौट हू सक्यौ ना तूं पिछारी।
नीर अरु तीर दोऊनकौ ना रह्यौ,
कर्मगति अजब ना टरे टारी॥
एतलें[7] तिहाँ तव शत्रु गज आवियों[8],
पूर्वलौ वैर चित माँ चितारी।
रविश लख तोय कर कोप पायें हन्यौ,
होय प्रतिकूल रद-सूल मारी॥
मारता मारता और हू कीचमें,
घोंचियो अस्थि नस तोरि डारी।
तीव्रतर वेदना अनुभवी ता समैं[1],
सात दिन रात तक तें करारी॥"

महावीर स्वामीने मेघमुनिको धर्मोपदेश देकर मुनिव्रतमें पुनः दृढ किया।

सुन वैन वीर प्रभुके मुनि मेघ चैन पायो।
जिनराजके चरणमें एकाग्र मन लगायो॥
पुनि मेघने दुबारा चारित्र लेन चायो।
उत्थान सूत्र फिरसे श्री वीरने सुनायो॥
दीक्षा प्रदान करके मुनि-मार्ग भी बतायो।
आज्ञानुसार मेघे मुनि-मार्गको निभायो॥"

तदुपरान्त मेघमुनिने सिद्धांत पढ़े और घोर तप किया।

२ **श्रीप्रदेशीचरित्र**। इस ग्रंथकी रचना संवत् १९५८ में हुई थी। यह राजप्रश्नीय सूत्रके आधार पर लिखा गया है। इसका अपर नाम 'नास्तिकमतनिराकरण' है। इसमें एक कथाके बहाने नास्तिकमतका खण्डन किया गया है। इसमें युक्तियों सहित बतलाया गया है कि जीव और काया पृथक् पृथक् पदार्थ हैं। अन्तमें क्षमा और तपका महात्म्य दिखाया गया है। यह ग्रंथ छोटासा है; कुल ८१ छंदोंमें है। प्रकाशित हो चुका है। रचना बहुत साधारण है। उदाहरणः—

"तप दावानल कर्मकूँ, क्षणमें डारे जार।
लब्धादिक बहु ऊपजै, पावे केवल सार॥

३ **भावनाविलास**—इसमें द्वादश भावनाओंका स्वरूप वर्णन किया गया है। यह ग्रंथ अभी प्रकाशित नहीं हुआ।

४ चौथे ग्रंथमें मुनिजीके फुटकर छंदोंका संग्रह है। प्रायः सभी छंद अप्रकाशित हैं। दो चार छंद प्रकाशित हो चुके हैं। उदाहरणः—

"समकत पान सुधारके चूना चारित लाय।
करणीका कत्था करो बीड़ा लेय बनाय॥

---

१ पूर्व। २ इस। ३ से। ४ जिलानेके लिए अर्थात् रक्षा करनेके लिए। ५ पानी। ६ पानी पीनेके लिए। ७ इतनेहीमें। ८ आगया।

१ समय।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बीड़ी लेय बनाय सुपारी तपस्या कीजै।
प्रभू नामकी डार इलायची मुखमें दीजै॥
कहे मगन ऋषि राय पापकी काटो स्याई।
संक्यां पीक निकाल ज्ञान मुख लाली छाई॥

२–दलपतराय।

आप दिल्लीके रहनेवाले श्वेताम्बर स्थानकवासी श्रावक थे। जौहरीका काम करते थे। सुना जाता है कि आपने अपनी पढ़ाईमें और पण्डितोंके आदर-सत्कारमें तीन लाख रुपया खर्च किया था। आप संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, गुजराती, उर्दू फारसी इत्यादि भाषाओंके ज्ञाता थे। आपने इनमेंसे पहली तीन भाषाओंमें रचना की है। आपकी हिन्दी रचना गुजरातीमिश्रित है। वह गद्य और पद्य दोनोंमें है और काव्यकी दृष्टिसे बहुत साधारण है। आपके बनाये हुए तीन हिन्दी ग्रंथोंका हमको पता है, इनमेंसे पहले दो हमने स्वयं देखे हैं। आपके बनाये हुए कदाचित् और भी ग्रंथ होंगे।

१–नवतत्त्वप्रकरण। यह ग्रंथ गद्य-पद्यमय है। बड़े महत्त्वका है। श्वेताम्बरोंके बत्तीस सूत्रोंका सार इसमें बड़ी खूबीके साथ भरा है। यह ग्रंथ गागरमें सागर भरनेकी उक्तिको चरितार्थ करता है। समस्त ग्रंथमें खानापूरी की हुई है और अनेक चित्र दिये हैं, जो दर्शनीय हैं और लेखकके पाण्डित्य और बुद्धि-विकाशका परिचय देते हैं। इस ग्रंथमें इबारत बहुत कम है। इसके लिखनेमें गोमट्टसार और लीलावती इत्यादि ग्रंथोंसे भी सहायता ली गई है। इसकी रचना संवत् १८१२ में हुई थी। इसकी जो प्रति हमने देखी है वह बहुत अशुद्ध लिखी हुई थी। प्रशस्ति देखिए—

कीरत कूँ नाहीं किया, कर विचार उपगार।
अपने समरणको कियो, नवतत संग्रह सार॥
कहाँ बुध मेरी जु हों, आरँभ परिग्रह लीन।
गुरुमुखतैं नहिं लह्यौ, आगम अरथ अहीन॥
जो कोई जिन वयनसों, अल्प भिन्नता + +।
बहुश्रुति सोधौ करि मयो, मोहि नहीं पषपात॥
सकल जिनेश्वर देवकै, भक्ता तिनको दास।
दलपतराय सुसंघ सूँ, करै सुनो अरदास॥
मैं पापी अति मूढ़मति, विकल विषैमें लीन।
तारो मोहूँ करि मया, वाँचौ ग्रंथ प्रवीन॥
जहाँ लिष्यो आगम विरुध, देषो वहाँ निसंक।
कहु अज्ञान मुझ मूढ़कूँ, तातै हों निकलंक॥
संवत अट्ठारैसें, बारा अधिके जान।
वैसाष शुद दसमको, ग्रंथ समापत ठान॥

इसी नामका एक ग्रंथ आपने संस्कृतमें और एक प्राकृतमें लिखा है, परन्तु वे चित्रबद्ध नहीं हैं। दोनों ग्रंथ पद्यमें हैं। आपने प्राकृतमें एक 'शकुनावली' नामक ग्रंथ भी लिखा है।

२–सम्यक्त्वषट्पंचासिका। यह एक बहुत छोटा ग्रंथ है। विषय नामसे ही स्पष्ट है। इसकी भी मुझे एक बहुत अशुद्ध प्रति देखनेको मिली। नमूना देखिए—

उपशम जेह कषाय नों, तेहनो सम अवधान।
मुक्ति पंथनी चाहना, संवेग...प्रधान॥
होय उदास विषय विषैं, जाना जो निर्वेद।
परदुष देषी दुष दया, ये छै चौथौ भेद॥

३–द्रव्य-गुण-पर्याय। यह ग्रंथ अलवरमें भज्जूलाल साधुके भाण्डारमें मौजूद है। हमारे देखनेमें नहीं आया।

आपके लिखे हुए फारसीके कुछ शेर भी एक सज्जनने देखे हैं।

३–मुनि तिलोकरिख।

आप श्वेताम्बर स्थानकवासी संप्रदायके साधु थे। आपकी भाषा गुजराती और प्राकृत मिश्रित

१ शंका।

१ दया। २ विनय।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। रचना कविताकी दृष्टिसे साधारण है। आपके लिखे हुए हमने दो ग्रंथ देखे हैं।

१ श्रीप्रतिक्रमणसत्यबोध। —यह ग्रंथ संवत् १९४७ में निर्णयसागर प्रेसमें छपा था। ४०० पृष्ठका बड़ा ग्रंथ है। इस ग्रंथका मूल विषय प्रतिक्रमणसूत्र और उसका अर्थ थोड़े ही पृष्ठोंमें आगया है। ग्रंथके अधिकांशमें चौबीसों तीर्थंकरोंके स्तवन द्वादश भावनासे और जिन देवोंकी अनेक प्रकारकी बंदनायें दी हैं। विविध छंदोंका प्रयोग हुआ है। नमूना देखिए:—

जिनसासन स्वामी, अंतरजामी, शिवगतगामी, सुखकारी,
जगमें जसवंता, श्रीभगवंता, सुगुणअनंता, उपगारी।
सिद्धार्थकुलआया, जगत सुहाया, शुभपलआया, गुणधारी;
धनत्रिसलानंदन कुलध्वजस्यंदन जिनचरननकी बलिहारी॥
समकित क्रिया बिना जगतमें, नहिकोई तारणहारी जी।
तिलोक रिखजी कहे इम सर्दहो, जे सुगुणां नरनारी जी॥

२ श्रीश्रेणिकचरित्र। इसकी मैंने एक नितान्त अशुद्ध हस्तलिखित प्रति देखी है। इसका विषय नामसे ही स्पष्ट है। यह ग्रंथ मुनिजीने जिला पूना (दक्षिण) में रह कर संवत् १९२९ में लिखा था। इसमें ६३ पृष्ठ हैं। उदाहरण:—

राजै राज प्रजा सुखी, इक दिन सभा मँझार।
खे[1] मारग थी[2] आवियो, कोइक विद्याधार॥

भूपतिसे विनती करै, गिरि वैताढ्य मँझार।
दक्षिण श्रेणि केरल पुरी, मृगाङ्क नरपतिसार॥

विलासवती तस कन्यका, रूप कला नहिं पार।
जोबन वय देखी करी, भूपति करै विचार॥

(३) आपका तीसरा ग्रंथ पाँच पदकी बंदना है, जो गद्यमें है।

---

१ प्रकाश। २ से।

जैनधर्मका अध्ययन।

"प्रो० वेबर, बुल्हर, जेकोबी, हर्नल, भाण्डारकर, ल्यूमन, राइस, गेरीनाट आदि विद्वानोंने यद्यपि बड़े ही परिश्रमसे जैनधर्मके सम्बन्धमें अनेक महत्त्वकी खोजें प्रकाशित की हैं, तो भी हम देखते हैं कि भारतीय विद्वानोंने अभी तक इस धर्मके अध्ययनकी ओर जितना चाहिए उतना ध्यान नहीं दिया है। जिस समय प्राच्य विद्याओं, और कलाओंके संशोधनका प्रारंभकाल था, उस समय जैन साधुओंकी उदासीनताके कारण, अथवा हस्तलिखित पुस्तकोंमें छुपे हुए अपने धर्मका पवित्र ज्ञान जैनेतरोंको देना वे पसन्द नहीं करते थे इस कारण, संभव है कि भारतीयोंको इस धर्मके अध्ययनका सुभीता न मिला हो और उसके बाद बौद्धधर्मके अध्ययनके बढ़ते हुए अनुरागके कारण, कितने ही अंशोंमें उनकी इस महत्त्वपूर्ण धर्मकी ओर उपेक्षा हो गई हो—क्योंकि शुरू शुरूमें विद्वानोंके मस्तिष्क पर बौद्धधर्मकी इतनी प्रबल सत्ता स्थापित हो गई थी कि वे जैनधर्मको बौद्धधर्मकी एक शाखा ही समझने लगे थे; परन्तु अब तो वह बात नहीं रही है, उनकी दृष्टिमर्यादाको आच्छादित करनेवाले परदे हट रहे हैं और इससे जैनधर्म पूर्वीय धर्मोंमें अपना स्वतंत्र स्थान प्राप्त करता जा रहा है। इधर जैनसमाज भी आलस्य छोड़कर जाग रहा है। उसकी ओरसे अनेक समाचारपत्र और सामयिक पत्रादि प्रकाशित होने लगे हैं। साधुओंको भी जान पड़ता है अपने उत्तरदायित्वका भान हो रहा है। जैनधनिकोंके आश्रयसे अनेक संस्थायें दिनों दिन अधिकाधिक जैनग्रन्थ प्रकाशित कर रही हैं। जैनधर्म और जैनसाहित्यसम्बन्धी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनेक लघुग्रन्थ, सारग्रन्थ, स्थूलवर्णनात्मक ग्रन्थ, रहस्योद्घाटकग्रन्थ (Keys), शब्दकोष, आदि भारतीय विद्वानोंके द्वारा सम्पादित होकर प्रकाशित हो रहे हैं। और इनके सिवाय देशी भाषाओंमें भी प्रतिवर्ष बहुतसा जैनसाहित्य प्रकट हो रहा है।

यह सब होनेपर भी अभी बहुत कुछ करना है। जैनधर्म एक ऐसी चीज है कि वह केवल जैनोंको ही नहीं किन्तु प्राच्य संशोधनविद्याके प्रत्येक विद्यार्थीको—विशेषकरके उन लोगोंको जो कि पूर्वदेशीय धर्मोंका तुलनात्मक दृष्टिसे अध्ययन करना चाहते हैं—अपनेमें तन्मय करके रख सकता है।

इस समय अर्वाचीन संशोधनपद्धतिके अनुसार और गुणदोषविवेचक दृष्टिसे, जैनधर्मका अध्ययन होनेकी बहुत ही आवश्यकता है। इस विषयके निष्णात विद्वान् स्पष्ट शब्दोंमें यह बात स्वीकार करते हैं कि इस तरह तुलनात्मक पद्धतिसे जैनधर्मका अध्ययन होनेसे प्राचीन भारतके इतिहाससे सम्बन्ध रखनेवाली ऐसी अनेक बातें प्रकाशित होंगी जो अभीतक सर्वथा अज्ञात हैं और उनसे ऐतिहासिक कालके अनेक परिचयहीन खाली स्थान भर जायँगे। इस तरह इतिहासप्रेमियों और भारतीय धर्मों तथा तत्त्वज्ञानके जिज्ञासुओंके लिए जैनसाहित्य एक सर्वथा नवीन और बिना जुता हुआ विस्तृत क्षेत्र है। परन्तु इस समय जैनधर्मके निष्पक्ष और समदर्शी अध्ययन करनेवालोंको बहुतसी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है। सबसे पहली और मुख्य कठिनाई यह है कि उत्तमतापूर्वक सम्पादिक किये हुए मूल और प्रामाणिक जैनग्रन्थोंका एक तरहसे अभाव हो रहा है। यह तो सभी जानते हैं कि जैनोंके पवित्र ग्रन्थोंकी प्रधान भाषा अर्धमागधी नामकी प्राकृत है। इस भाषाको इस समय बड़े बड़े जैनसाधु और विद्वान् भी नहीं समझते हैं। क्योंकि जब कभी उन्हें उन ग्रन्थोंके समझनेका काम पड़ता है वे मूलके साथ दी हुई संस्कृतछाया अथवा टीका परसे ही अपना मतलब निकालते देखे जाते हैं। इस पद्धतिका विशेष अनुसरण होनेके कारण मूल भाषा प्राकृतके अध्ययनकी उपेक्षा हो गई है और इसका परिणाम यह हुआ है कि उसमें अनेक भूलें और असंगतियाँ घुस गई हैं। बहुतसी हस्तलिखित प्रतियाँ तो शुद्ध पाठान्तरोंकी दृष्टिसे निराशाजनक ही दिखलाई देती हैं। इससे जैनसाहित्यका जिन्हें व्यासंग है उन्हें सबसे पहले तो जुदा जुदा पुस्तकालयोंमें संगृहीत सारी प्रतियाँ एकत्र करके, उन्हें बारीकीके साथ परस्पर मिलान करनेका काम अपने हाथमें लेना चाहिए और इसके बाद पाली टेक्स्ट सुसाइटीके छपाये हुए बौद्धग्रन्थोंकी तरह पवित्र जैनग्रन्थोंकी भी विश्वासपात्र आवृत्तियाँ तैयार करनी चाहिए। अवश्य ही, यह कार्य बहुत ही कष्टकर और श्रमसाध्य है, परन्तु जब तक यह कार्य नहीं होगा तब तक इस विषयमें हमें एक पैर आगे बढ़नेकी भी आशा न रखनी चाहिए।

यह कार्य ऐसा नहीं है कि इसे कोई एकाद व्यक्ति कर डालेगा। इसमें अनेक सभा सुसाइटियों और संस्थाओंकी सहकारिताकी आवश्यकता होगी। वर्तमानमें इस दिशामें जो कितने ही प्रयत्न हो रहे हैं उनसे तो उलटी निराशा ही होती है। प्रायः सभी संस्थायें उत्तराध्ययन और कल्पसूत्र जैसे अतिशय लोकप्रिय ग्रन्थ ही छपाती हैं। परन्तु उनके समान ही अन्य महत्त्वके ग्रन्थ सर्वथा उपेक्षापात्र बन रहे हैं। इस कार्यके लिए सबसे उत्तम मार्ग तो यह है कि जितनी ग्रन्थप्रकाशक संस्थायें हैं, वे सब अपने सम्मिलित उद्योगसे प्रामाणिक पद्धतिके अनुसार यह मूल ग्रन्थ प्रकाशित करनेका काम उठा लें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मैं समझता हूँ कि आराके 'जैनपब्लिशिंग हाउस' जैसी संस्थाके लिए इस प्रकारका सहकारी कार्य उठाना कुछ कठिन नहीं पड़ेगा। इसके सिवाय, इस समय जो ग्रन्थ छपते हैं वे सब प्रायः पोथी साइजमें पत्राकार छपते हैं और इससे उनके जुदा जुदा पत्रोंके कारण, अध्ययन करते समय विद्यार्थियोंको बहुत ही अड़चन पड़ती है। और फिर कितने ही सम्पादक तो अपना कर्तव्य यहाँतक भूल जाते हैं कि ग्रन्थमें जो अवतरण या 'उक्तं च श्लोक' आदि होते हैं उनको जुदा दिखलानेके लिए कोई प्रयत्न नहीं करते—उन्हें भी मूलके ही टाइपमें 'रनिंग' छपा देते हैं।

जिस समय यह कार्य अर्वाचीन पद्धतिके अनुसार योग्य रीतिसे सम्पादित किया जायगा—अर्थात् जब मूल ग्रन्थोंमें, प्रकरणों और सूत्रोंके जुदा जुदा स्पष्ट विभाग रक्खे जायँगे, उनके अवतरण और उद्धरण स्पष्ट दिखलाये जायँगे, अनुसन्धानोंका अन्वेषण किया जायगा, अनुक्रमणिकायें और सूचियाँ भी साथ ही दी जायँगी, उसी समय समझा जायगा कि अर्वाचीन विवेचकपद्धतिकी सहायतासे इस साहित्यके अध्ययन करनेका समय आ गया है। हमें नवीन साहित्यमेंसे प्राचीन साहित्य सावधानीके साथ जुदा करना होगा, विविधग्रन्थोंका भरसक समय-निर्णय करना होगा, और उसकी शुद्धता या निर्दोषताकी छानवीन करनी होगी। ऐसा करते समय जो विषय स्वभावतः विवादास्पद हैं उनके सम्बन्धमें ऊहापोह करनेकी स्वतंत्रता रहनी चाहिए और उन पर प्रामाणिक मतभेद प्रकट करनेकी भी स्वतंत्रता रहनी चाहिए। इस समय प्राच्यविद्याविषयक विवेचनके दो जुदा जुदा सम्प्रदाय दिखलाई देते हैं। एक पक्ष तो मूलग्रन्थोंको जितना बन सकता है उतना पुराना सिद्ध करनेका प्रयत्न करता है और दूसरा पक्ष उन्हें 'येन केन प्रकारेण' ईसाके बादके किसी एक कालविभागमें—अर्थात् अर्वाचीन समयमें खींच लानेमें प्रयत्नशील दिखाई देता है। कुछ लोग ऐसे भी हैं, जिनके मस्तिष्क पुराणप्रियताके विचारोंसे अतिशय संकुचित हो रहे हैं और इस कारण प्राचीन ग्रन्थोंमें एक भी भूल या दोष दिखलाया जाता है तो वे बहुत ही चिढ़ जाते हैं। उनके विश्वासके अनुसार मूलग्रन्थके किसी भी लिखित अर्थ या विचारके सम्बन्धमें किसी तरहकी स्वतंत्र चर्चा की ही नहीं जा सकती। परन्तु अब इस प्रकारके विचार अधिक समय तक टिक नहीं सकते। तो भी हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि पुराणप्रियता भी बड़ी उपयोगी चीज है। उसके द्वारा हमें पुरातन परंपराओंका परिचय मिलता है और अनेक समय अन्य साधनोंके अभावमें वही हमारे लिए मार्ग-दर्शिका होती है। यह ठीक है कि परम्पराओंकी भी गंभीरतासे परीक्षा होनी चाहिए; परन्तु उनका सर्वथा त्याग कर देना भी किसी तरह न्याय्य नहीं हो सकता और इस विषयमें साधुओंको ही विशेष सहायता करनी होगी। उन्हें भी अपने सदाके मौनको त्याग करके, उनके पास जो परम्परागत बातोंका बड़ा भारी संग्रह है उसे उपासकोंके समक्ष उपस्थित करना चाहिए। अब उन्हें यह भय रखनेकी आवश्यकता नहीं है कि ऐसा करनेसे उनका धर्म किसी जोखिममें पड़ जायगा। क्योंकि अब यह सर्वमान्य सिद्धान्त हो गया है कि छुपा रखनेसे कभी किसी सत्यकी वृद्धि नहीं होती।

यह सब व्यवस्था करने और जैनधर्मको अध्ययनकी सुदृढ़नीव पर खड़ा करनेके लिए एक उत्साही और शक्तिशाली विद्वन्मण्डलको आगे बढ़ना चाहिए और अपने दृढ़तायुक्त कार्यके द्वारा जगतको बतला देना चाहिए कि आज तक जिन जिन ज्ञानशाखाओंका पता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लगा है, उन्हींके समान यह भी एक शाखा है और महत्त्वकी दृष्टिसे यह अन्य सब शाखाओंसे जरा भी कम नहीं है। सौभाग्यसे पवित्र आगमग्रन्थोंकी भाषामें प्रवीणता प्राप्त करनेकी एक कठिनाई तो अब बाम्बे यूनीवर्सिटीने दूर कर दी है-उसने अपने अभ्यासक्रममें अर्ध-मागधीकों भी स्थान दे दिया है। अब जैन विद्यार्थियोंका यह कर्तव्य है कि वे अन्तःकरणपूर्वक इस भाषाका अध्ययन करना स्वीकार करें और जैन धनिकोंको चाहिए कि वे इस कार्यमें विशेष उत्तेजन देवें और उन्हें हर तरह सहायता पहुँचावें। मैंने सुना है कि एक जैनसंस्था जैनधर्मके विद्यार्थियोंको जो जो सहायतायें अपेक्षित हों वे देनेके लिए तैयार है, इसलिए हमें आशा है कि इस विषयके उत्साही विद्यार्थी आगे आवेंगे और इस महान् कार्यके प्रथम फल थोड़े ही समयमें जनताके सामने उपस्थित करनेमें न चूकेंगे।"*

१–इसमें जो कुछ लिखा गया है वह श्वेताम्बर सम्प्रदायके सूत्रग्रन्थोंको लक्ष्य करके लिखा गया है जो कि अर्ध मागधी भाषामें हैं और जिन्होंने श्वेताम्बर साहित्यके एक बहुत बड़े भागको रोक रक्खा है। यद्यपि इस समय दिगम्बर सम्प्रदायका जितना साहित्य उपलब्ध और परिचित है, उसका अधिकांश संस्कृतमें है और इस कारण हमारे समाजके बड़े बड़े विद्वानोंतकका यह खयाल हो गया है कि हमारी प्रधान धार्मिक भाषा संस्कृत है। परन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं है। बहुत कुछ नष्ट होजाने पर भी–अब भी हमारा खयाल है कि हमारे सम्प्रदायके जीवनभूत प्रधान धर्मग्रन्थ प्राकृतमें ही हैं और वही हमारा सबसे प्राचीन साहित्य है। भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यके नाटक समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, षट्पाहुड़, आचार्य वट्टकेरका मूलाचार, शिवायनकी भगवती आराधना, यतिवृषभकी त्रिलोकप्रज्ञप्ति, स्वामिकुमारकी कार्तिकेयानुप्रेक्षा, पद्मनन्दिकी जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति, गोम्मटसार, त्रिलोकसार, द्रव्यसंग्रह, परमात्मप्रकाश आदि प्रधान प्राकृतग्रन्थ इस समय भी सर्वत्र विख्यात हैं। आचार्य पूज्यपाद, भट्टाकलंकदेव, विद्यानन्द, प्रभाचन्द्र आदिके महान् ग्रन्थोंमें जब हम जगह जगह प्राकृतके उद्धरण और 'उक्तंच' श्लोक आदि देखते हैं, तब अनुमान होता है कि उनके समयमें भी प्रधान माननीय ग्रन्थ प्रायः प्राकृतके ही थे। इस समय बीसों संस्कृत ग्रन्थ ऐसे मिलते हैं जो प्राकृत परसेही संस्कृतमें अनुवाद किये गये हैं और मूडविद्रीके सुप्रसिद्ध सिद्धान्त ग्रन्थ-जो हम लोगोंके आलस्यसे कईसौ वर्षोंसे एक ही जगह कैद हो रहे हैं–तथा दिन पर दिन नष्ट होते जा रहे हैं–प्रायः प्राकृतमें ही हैं। इन्द्रनन्दिके श्रुतावतारमें जो उनका संक्षिप्त परिचय मिलता है, उससे तो मालूम होता है कि वे सब ग्रन्थ दिगम्बर सम्प्रदायके सर्वस्व हैं और उनकी श्लोकसंख्या कई लाख है! हमारा अनुमान है कि श्वेताम्बरसाहित्यमें जो स्थान आगम या सूत्रग्रन्थोंका है वही दिगम्बरसाहित्यमें उक्त सिद्धान्तग्रन्थोंका है। हमारे एक मित्रने नागौरका पुस्तकभण्डार देखा है। वे कहते हैं कि इस भण्डारमें भी ऐसे सैकड़ों प्राकृत भाषाके ग्रन्थ हैं जो अन्य दिगम्बर सम्प्रदायके पुस्तकालयोंमें नहीं मिलते। ऐसी दशामें कोई कारण नहीं मालूम होता कि हम लोग भी प्रो० राजवाड़ेके कथनानुसार जैनधर्मके अध्ययन करनेवालोंके लिए अपने प्राकृतग्रन्थोंको नई संशोधन पद्धतिके अनुसार प्रकाशित करनेका प्रयत्न न करें। हमें यह भी चाहिए कि अपने

* यह लेख बड़ौदा–कालेजके गत फरवरीके मेगजीनमें 'दि स्टेडी आफ जैनिज्म' नामसे अँगरेजीमें प्रकाशित हुआ था। यह उक्त कालेजके पाली भाषाके प्रोफेसर श्रीयुक्त सी० बी० राजवाड़े एम० ए०, बी० एस सी० का लिखा हुआ है। हम अपने दिगम्बर समाजका ध्यान इस ओर आकर्षित करनेके लिए इसका हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धार्मिक विद्यालयोंमें संस्कृतके साथ साथ प्राकृतके अध्ययनका भी खास प्रयत्न करें और कुछ विद्यार्थियोंको प्राकृतका विशेषज्ञ बनावें जिनके द्वारा आगे प्राकृतग्रन्थोंके सम्पादनका कार्य कराया जा सके। यह तो कहनेकी आवश्यकता ही नहीं है कि हमें सबसे पहले अपने बचे खुचे साहित्यके संग्रह करनेका, उसे सबके लिए सुलभ कर देनेका और सिद्धान्त ग्रन्थोंके प्राण बचानेका उद्योग करना चाहिए।

२—प्राचीन ग्रन्थोंका सम्पादन किस ढंगसे होना चाहिए, इस विषयमें प्रो० राजवाड़ेने जो कुछ लिखा है उस पर हमारे समाजके ग्रन्थ-प्रकाशकों और सम्पादकोंको खास तौरसे ध्यान देना चाहिए। जिस समय हम यूरोपीय और सुशिक्षित भारतीय विद्वानोंके द्वारा सम्पादित प्राचीन ग्रन्थ देखते हैं उस समय सचमुच ही यह खयाल होता है कि हम लोग अपने पाण्डित्यकी चाहे जितनी डींग मारें, परन्तु अभी तक हमको यह ग्रंथसम्पादनका कार्य आता ही नहीं है। हमारे ग्रन्थ इतने अशुद्ध और अप्रामाणिक पद्धतिसे छपते हैं कि किसी विषयका निर्णय करते समय उन पर बिश्वास करनेको जी ही नहीं चाहता। न तो महीनों परिश्रम किये बिना उनसे यह पता लग सकता है कि अमुक ग्रन्थमें उक्तंच श्लोक आदि कितने हैं, कहाँ कहाँ पर आये हैं और किन किन ग्रन्थोंके हैं और न कोई श्लोक ही ढूँढ़नेसे सहज ही उसमें मिल सकता है। पाठान्तर तो बहुत ही कम दिये जाते हैं। जिन ग्रन्थोंकी प्रयत्न करनेसे अनेक प्रतियाँ मिल सकती हैं, उनके भी पाठान्तर नहीं दिये जाते हैं। कोई कोई सम्पादक महाशय तो यहाँ तक कृपा करते हैं कि ग्रन्थमें जहाँ कहीं ठीक समझमें नहीं आता है वहाँ अपनी बुद्धिके अनुसार मूल पाठको भी ठीक (?) कर देते हैं और यह भी लिखनेका कष्ट नहीं उठाते कि यहाँ पर मूलम तो ऐसा है, परन्तु हमारी समझमें ऐसा होना चाहिए। अब हमें चाहिए कि इस ढंगको बदलें और ग्रन्थप्रकाशनके कार्यको बहुत सावधानीके साथ नई पद्धतिके अनुसार करें।

३—प्रो० राजवाड़ेने अपने लेखमें जो ग्रन्थ-प्रकाशिनी संस्थाओंका उल्लेख किया है, वह भी प्रधानतः श्वेताम्बर सम्प्रदायकी संस्थाओंको लक्ष्य करके किया है। श्वेताम्बर सम्प्रदायमें कई बड़ी बड़ी ग्रन्थप्रकाशिनी संस्थायें हैं और उनके द्वारा प्रतिवर्ष सैकड़ों ग्रन्थ प्रकाशित होते हैं। दिगम्बर समाजका दुर्भाग्य है कि उसमें एक तो ऐसी संस्थायें ही बहुत कम हैं और जो एक दो हैं भी, वे मुश्किलसे सालभरमें दस पाँच छोटे मोटे ग्रन्थ प्रकाशित करती हैं। दुनिया कहींसे चलकर कहीं पहुँच गई, परन्तु हम लोगोंके मस्तकमें इस समय भी कुछ न कुछ अंशमें यह गतानुगतिकताका भूत डेरा जमाये हुए है कि धर्मग्रन्थ छपानेमें पाप है। यही कारण है कि छपे जैनग्रन्थोंका घर घर प्रचार हो जानेपर भी अभी तक हमारी महासभा या प्रान्तिक सभायें प्रकाश्यरूपसे स्वयं अपने द्वारा ग्रन्थप्रकाशनका कार्य करानेमें डरती हैं। महासभाका मुखपत्र जैनगजट तो छपे हुए जैनग्रन्थोंके विज्ञापन प्रकाश करनेमें भी पाप समझता है! हमारी समझमें अब ये मूर्खताके ढंग बदल दिये जाने चाहिये और दिगम्बर साहित्यके प्रकाशित करनेके लिए एक अच्छी संस्था स्थापित की जानी चाहिए। इसके बिना हमारा साहित्य दिन पर दिन नष्ट होता जा रहा है और इसका पाप हमारे ही सिर चढ़ रहा है!

४—बाम्बे यूनीवर्सिटीने अपने कोर्समें जो मागधीको स्थान दिया है, उससे भी हमें लाभ उठाना चाहिए। हमारी ओरसे भी मागधी पढ़नेवाले विद्यार्थियोंको सहायता देनेका प्रबन्ध होना चाहिए।

—नाथूराम प्रेमी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नयचक्र और श्रीदेवसेनसूरि* ।

[लेखक-श्रीयुत नाथूराम प्रेमी ।]

नयचक्र ।

आचार्य विद्यानन्दने अपने श्लोकवार्तिक (तत्त्वार्थसूत्रटीका) के नयविवरण नामक प्रकरणके अन्तमें लिखा है:—

संक्षेपेण नयास्तावद्व्याख्याताः सूत्रसूचिताः ।
तद्विशेषाः प्रपञ्चेन संचिन्त्या नयचक्रतः ॥

अर्थात् तत्त्वार्थसूत्रमें जिन नयोंका उल्लेख है, उनका हमने संक्षेपमें व्याख्यान कर दिया । यदि उनका विस्तारसे और विशेषपूर्वक स्वरूप जाननेकी इच्छा हो तो 'नयचक्र' से जानना।

इस उल्लेखसे मालूम होता है कि विद्यानन्द स्वामीसे पहले 'नयचक्र' नामका कोई ग्रन्थ था जिसमें नयोंका स्वरूप खूब विस्तारके साथ दिया गया है । परन्तु वह नयचक्र यही देवसेन-सूरिका नयचक्र था, ऐसा नहीं जान पड़ता । क्योंकि यह बिलकुल ही छोटा है । इसमें कुल ८७ गाथायें हैं और माइल्ल धवलके बृहत् नयचक्रमें भी नयसम्बन्धी गाथाओंकी संख्या इससे अधिक नहीं है । इन दोनों ही ग्रन्थोंमें नयोंका स्वरूप बहुत संक्षेपमें लिखा गया है । इनसे अधिक तो स्वामी विद्यानन्दने ही नयविवरणमें लिख दिया है । नयविवरणकी श्लोकसंख्या ११८ है और उनमें नयोंका स्वरूप बहुत ही उत्तम रीतिसे नयचक्रकी भी अपेक्षा स्पष्टतासे—लिखा है। ऐसी दशामें यह संभव नहीं कि श्लोक-वार्तिकके कर्ता अपने पाठकोंसे देवसेनसूरिके नयचक्रपरसे विस्तारपूर्वक नयोंका स्वरूप जाननेकी सिफारिश करते । इसके सिवाय जैसा आगे चलकर बतलाया जायगा, देवसेनसूरि विद्यानन्द स्वामीके पीछेके ग्रन्थकर्ता हैं । अतः श्लोकवार्तिकमें जिस नयचक्रका उल्लेख है, वह कोई दूसरा ही नयचक्र होगा ।

श्वेताम्बरसंप्रदायमें 'मल्लवादि' नामके एक बड़े भारी तार्किक हो गये हैं । आचार्यहरिभद्रने अपने 'अनेकांत-जयपताका' नामक ग्रंथमें वादिमुख्य मल्लवादिकृत 'सम्मति-टीका'के कई अवतरण दिये हैं और श्रद्धेय मुनि जिनविजयजीने अनेकानेक प्रमाणोंसे हरिभद्रसूरिका समय वि०सं० ७५७ से ८२७ तक सिद्ध किया है। अतः आचार्य मल्लवादि विक्रमकी आठवीं शताब्दिके पहलेके विद्वान् हैं, यह निश्चय है । और विद्यानन्दस्वामी विक्रमकी ९ वीं शताब्दिमें हुए हैं, यह भी प्रायः निश्चित हो चुका है ।

उक्त मल्लवादिका भी एक 'नयचक्र' नामका ग्रंथ है जिसका पूरा नाम 'द्वादशार-नयचक्र' है । जिसतरह चक्रमें आरे होते हैं, उसी तरह इसमें बारह आरे अर्थात् अध्याय हैं । यह ग्रंथ बहुत बड़ा है । इसपर आचार्य यशोभद्रजीकी बनाई हुई एक टीका है जिसकी श्लोकसंख्या १८००० है । यह अनेक श्वेताम्बर पुस्तकालयोंमें उपलब्ध है । संभव है कि विद्यानन्दस्वामीने इसी नयचक्रको लक्ष्य करके पूर्वोक्त सूचना की हो । जिस तरह हरिवंशपुराण और आदिपुराणके कर्त्ता दिगंबर जैनाचार्योंने सिद्धसेनसूरिकी प्रशंसा की है—जो कि श्वेताम्बराचार्य समझे जाते हैं—उसी तरह विद्यानन्दस्वामीने भी श्वेतांबराचार्य

* माणिकचन्दजैनग्रन्थमालाके १६ वें ग्रन्थ 'नयचक्र-संग्रह' की भूमिकाके लिए यह लेख लिखा गया था और वहींसे यहाँ उद्धृत किया जाता है ।

१ अहमदाबादमें सेठ मनसुखभाई भगूभाईके द्वारा छप चुका है । २ यह आचार्य सिद्धसेनसूरिके 'सम्मतितर्क' नामक ग्रंथकी टीका है। ३ देखो, जैनसाहित्यसंशोधक अंक १। ४ देखो जैनहितैषी वर्ष ९ अंक ९ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मल्लवादिके ग्रंथको पढ़नेकी सिफारिश की हो, तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। जिस तरह सिद्धसेनसूरि तार्किक थे उसी तरह मल्लवादि भी थे और दिगंबर और श्वेतांबर संप्रदायके तार्किक सिद्धांतोंमें विशेष महत्त्वका मतभेद भी नहीं है। तब नयसंबंधी एक श्वेतांबर तर्कग्रन्थका उल्लेख एक दिगम्बराचार्य द्वारा किया जाना हमें तो असंभव नहीं मालूम होता। अनेक श्वेतांबर ग्रन्थकर्ताओंने भी इसी तरह दिगंबर ग्रन्थकारोंकी प्रशंसा की है और उनके ग्रन्थोंके हवाले दिये हैं।

यह भी संभव है कि देवसेनके अतिरिक्त अन्य किसी दिगम्बराचार्यका भी कोई नयचक्र हो और विद्यानन्दस्वामीने उसका उल्लेख किया हो। माइल्लधवलके बृहत् नयचक्रके अंतकी एक गाथा—जो केवल बम्बईवाली प्रतिमें है, मोरेनाकी प्रतिमें नहीं है—यदि ठीक हो तो उससे इस बातकी पुष्टि होती है। वह गाथा इस प्रकार है:—

दुसमीरणेण पोयं पेरियसंतं जहा ति (चि) रं नट्ठं।
सिरिदेवसेन मुणिणा तह णयचक्कं पुणो रइयं ॥

इसका अभिप्राय यह है कि दुःषमकालरूपी आँधीसे पोत (जहाज) के समान जो नयचक्र चिरकालसे नष्ट हो गया था उसे देवसेन मुनिने फिरसे रचा। इससे मालूम होता है कि देवसेनके नयचक्रसे पहले भी कोई नयचक्र था जो नष्ट हो गया था और बहुत संभव है कि देवसेनने यह उसीका संक्षिप्त उद्धार किया हो।

उपलब्ध ग्रंथोंमें नयचक्र नामके तीन ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं—१ आलापपद्धति, २ लघुनयचक्र, और ३ बृहत् नयचक्र। इनमेंसे पहला ग्रन्थ आलापपद्धति संस्कृतमें है और शेष दो प्राकृतमें।

१ आलापपद्धति। इसके कर्त्ता भी देवसेन ही हैं। डा० भाण्डारकर रिसर्च इन्स्टिटयूट पूनामें इस ग्रन्थकी एक प्रति है, उसके अन्तमें प्रतिलेखकने लिखा है—"इति सुखबोधार्थमालापपद्धतिः श्रीदेवसेनविरचिता समाप्ता। इति श्रीनयचक्र सम्पूर्णम् ॥" उक्त पुस्तकालयकी* सूचीमें भी यह नयचक्र नामसे ही दर्ज है। बासोदाके भंडारकी सूचीमें भी—जो बम्बईके दिगम्बर जैनमन्दिरके सरस्वतीभण्डारमें मौजूद है—इसे नयचक्र संस्कृत गद्यके नामसे दर्ज किया है। पं० शिवजीलालकृत दर्शनसार-वचनिकामें देवसेनके संस्कृत नयचक्रका जो उल्लेख है, वह भी जान पड़ता है, इसी आलापपद्धतिको लक्ष्य करके किया गया है। यद्यपि आलापपद्धतिमें नयचक्रका ही गद्यरूप सारांश है और वह नयचक्रके ऊपर ही की गई है, इस लिए कुछ लोगों द्वारा दिया गया उसका यह 'नयचक्र' नाम एक सीमातक क्षम्य भी हो सकता है; परन्तु वास्तवमें इसका नाम 'आलापपद्धति' ही है—नयचक्र नहीं।

आलापपद्धतिके प्रारंभमें ही लिखा है—"आलापपद्धतिर्वचनरचनानुक्रमेण नयचक्रस्योपरि उच्यते।" इससे मालूम होता है कि आलापपद्धति नयचक्रपर ही प्रश्नोत्तररूप संस्कृतमें लिखी गई है। आलाप अर्थात् बोलचालकी पद्धतिपर अथवा वचनरचनाके ढंगपर यह 'सुखबोधार्थ' या सरलतासे समझमें आनेके लिए बनाई गई है। इसकी प्रत्येक प्रतिमें इसे 'देवसेनकृता' लिखा भी मिलता है, इससे यह निश्चय हो जाता है कि यह नयचक्रके कर्त्ता देवसेनकी ही रची हुई है—अन्य किसीकी नहीं।

२ लघु नयचक्र। श्रीदेवसेनसूरिका वास्तविक नयचक्र यही है। इसके साथ जो 'लघु'

* सन् १८८४-८६ की रिपोर्टके ५१९ वें नम्बरका ग्रन्थ देखो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विशेषण लगाया गया है वह इसके दूसरे ग्रन्थको बड़ा देखकर लगा दिया गया है; परंतु वास्तवमें उसका नाम 'द्रव्यस्वभावप्रकाश' है और उसके कर्त्ता 'माइल्ल धवल' हैं जैसा कि आगे सिद्ध किया गया है। इसलिये इसका नयचक्रके ही नामसे उल्लेख किया जाना चाहिए।

श्वेतांबराचार्य यशोविजयजी उपाध्यायने अपने 'द्रव्यगुणपर्यय रासा' (गुजराती) में देवसेनके नयचक्रका कई जगह उल्लेख किया है और उक्त रासेके आधारसे ही लिखे हुए 'द्रव्यानुयोगतर्कणा' नामक संस्कृत ग्रन्थमें भी उक्त उल्लेखोंका अनुवाद किया है। एक उल्लेख इस प्रकार है:—

"नयश्चोपनयाश्चैते तथा मूलनयावपि।
इत्थमेव समादिष्टा नयचक्रेऽपि तत्कृता ॥ ८ ॥

एते नया उक्तलक्षणाश्च पुनरुपनयास्तथैव द्वौ मूलनयावपि निश्चयेनेत्थममुना प्रकारेणैव नयचक्रेऽपि दिगम्बरदेवसेनकृते शास्त्रे नयचक्रेपि तत्कृता तस्य नयचक्रस्य कृता उत्पादकेन समादिष्टं कथितं। एतावता दिगम्बरमतानुगतनयचक्रग्रन्थपाठपठितनयोपनयमूलनयादिकं सर्वमपि सर्वज्ञप्रणीतसदागमोक्तयुक्तियोजनासमानतंत्रत्वमेवास्ते न किमपि विसंवादितयास्तीति * ।"

उक्त 'तर्कणा' में जो नयोंका स्वरूप दिया है, वह बिलकुल 'नयचक्र' का अनुवाद है और इसे स्वयं ग्रन्थकर्त्ता भोजसागरने स्वीकार किया है। इससे निश्चय हो जाता है कि उपाध्याय यशोविजयजी और तर्कणाके कर्ता भोजसागर इसी नयचक्रको देवसेनका रचा हुआ समझते थे।

दर्शनसारकी वचनिकाके कर्ता पं० शिवजीलालजीने देवसेनसूरिके बनाये जिन सब ग्रन्थोंके नाम दिये हैं उनमें प्राकृत नयचक्र भी है। अर्थात् उनके मतसे भी यह देवसेनकी ही कृति है।

यह नयचक्र (लघु) बृहत् नयचक्र (द्रव्यस्वभावप्रकाश) मेंसे छाँटकर जुदा निकाला हुआ नहीं है। यह बात इस ग्रंथको आदिसे अंततक अच्छी तरह बाँच लेनेसे ही ध्यानमें आ जाती है। यह संपूर्ण ग्रन्थ है और स्वतंत्र है। यह इसकी रचना-पद्धतिसे ही मालूम हो जाता है। नयोंको छोड़कर इसमें अन्य विषयोंका विचार भी नहीं किया गया है। इसके अंतकी नं० ८६ और ८७ की गाथाओंसे (पृष्ठ १९-२०) यह भी स्पष्ट हो जाता है कि इसका नाम नयचक्र ही है—उसके साथ कोई 'लघु' आदि विशेषण नहीं है।

२ **बृहत् नयचक्र**। इसका वास्तविक नाम 'दव्वसहावपयास' (द्रव्यस्वभाव-प्रकाश) यह 'द्रव्यस्वभावप्रकाशक नयचक्र' है। ग्रंथकर्ताने स्वयं इस नामको ग्रंथके प्रारंभमें और अंतमें कई जगह व्यक्त किया है। नयचक्र तो इसका नाम हो ही नहीं सकता है, क्योंकि नयोंके अतिरिक्त द्रव्य, गुण, पर्याय, दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि अन्य अनेक विषयोंका इसमें वर्णन किया गया है। यह एक संग्रहग्रन्थ है। जिस तरह इसमें भगवत्कुंदकुंदाचार्यकृत पंचास्तिकाय प्रवचनसार आदिकी गाथाओंको और उनके अभिप्रायोंको संग्रह किया गया है, उसीतरह लग भग पूरे नयचक्रको भी इसमें शामिल कर लिया गया है; यहाँतक कि मंगलाचरणकी और अंतकी नयचक्रकी प्रशंसासूचक गाथायें भी नहीं छोड़ी हैं। जान पड़ता है कि नयचक्रकी उक्त प्रशंसासूचक गाथाओंके कारण ही लोगोंको भ्रम हो गया है और वे इसे 'बृहत नयचक्र' कहने लगे हैं।

* देखो रायचंद्रशास्त्रमालाद्वारा प्रकाशित 'द्रव्यानुयोगतर्कणा' अध्याय ८ श्लोक ८ पृष्ठ ११५।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसके प्रारंभकी उत्थानिकामें लिखा है:— "श्रीकुंदकुंदाचार्यकृतशास्त्राणां सारार्थं परिगृह्य स्वपरोपकाराय द्रव्यस्वभावप्रकाशकं नयचक्रं मोक्षमार्गं कुर्वन् गाथाकर्ता '...इष्टदेवता-विशेषं नमस्कुर्वन्नाह- ।" यहाँ द्रव्यस्वभाव-प्रकाशक नयचक्रका विशेषण है। संग्रहकर्ताका इससे यह अभिप्राय भी हो सकता है कि यह नयचक्रयुक्त द्रव्यस्वभावप्रकाशक ग्रंथ है।

अब हमें यह देखना चाहिए कि इस 'द्रव्य-स्वभावप्रकाश' के कर्ता कौन हैं।

दव्वसहावपयासं दोहयबंधेण आसि जं दिट्ठं ।
तं गाहाबंधेण य रइयं माइल्लधवलेण ॥
दुसमीर-पोयमि (नि) वाय पा (या) ता (णं) सिरिदेवसेणजोईणं ।
तेसिं पायपसाए उवलद्धं समणतच्चेण ॥

पहली गाथाका अर्थ यह है कि 'दव्वसहा-वपयास' नामका एक ग्रन्थ था जो दोहा-छंदोंमें बनाया हुआ था। उसीको माइल्ल धव-लने गाथाओंमें रचा।

दूसरी गाथा बहुत कुछ अस्पष्ट है; फिर भी उसका अभिप्राय लगभग यह है कि श्रीदेवसेन योगींके चरणोंके प्रसादसे यह ग्रंथ बनाया गया।

यह गाथा बम्बईकी प्रतिमें नहीं है, मोरे-नाकी प्रतिमें है। बम्बईकी प्रतिमें इसके बदले 'दुसमीरणेण पोयं पेरियसंतं' आदि गाथा है—जो ऊपर एक जगह उद्धृत की जा चुकी है और जिसमें यह बतलाया गया है कि देवसेन-मुनिने पुराने नष्ट हुए नयचक्रको फिरसे बनाया।

मोरेनावाली प्रतिकी गाथा यदि ठीक है तो उससे केवल यही मालूम होता है कि माइल्ल धवलका देवसेनसूरिसे कुछ निकटका गुरुशिष्य संबंध होगा। बम्बईवाली प्रतिकी गाथा माइल्ल धवलसे कोई संबंध नहीं रखती है—वह नय-चक्र और देवसेनसूरिकी प्रशंसावाचक अन्य तीन चार गाथाओंके समान एक जुदी ही प्रशस्ति-गाथा है।

नीचे लिखी गाथामें कहा है कि दोहा छंदमें रचे हुए 'द्रव्य-स्वभाव-प्रकाश'को सुनकर सुहं-कर या शुभंकर नामके कोई सज्जन—जो संभवतः माइल्ल धवलके मित्र होंगे—हँसकर बोले कि दोहा-ओंमें यह अच्छा नहीं लगता; इसे गाथाबद्ध कर दोः—

सुणिऊण दोहरत्थं सिग्घं हसिऊण सुहंकरो भणइ ।
एत्थ ण सोहइ अत्थो गाहाबंधेण तं भणह ॥

इससे भी यही मालूम होता है कि 'दव्वस-हावपयास' पहले दोहाबद्ध था और उसे माइल्ल धवलने गाथाबद्ध किया है। माइल्ल धवल 'गाथा-कर्ता' ही हैं, इसका खुलासा इस ग्रन्थकी उत्था-निकासे भी हो जाता है जहाँ लिखा है कि गाथाकर्ता (ग्रन्थकर्ता नहीं) इष्टदेवताको नमस्कार करते हुए कहते हैं।

नीचे लिखी गाथाओंसे भी यह प्रकट होता है कि इस ग्रन्थके कर्ता देवसेनसूरि नहीं किंतु माइल्ल धवल हैं:—

दारियदुण्णयदणुयं परअप्पपरिक्खतिक्खखरधारं ।
सव्वण्हुविण्हुचिण्हं सुदंसणं णमह णयचक्कं ॥
सुयकेवलीहिं कहियं सुअसमुद्दअमुदमयमाणं ।
बहुभंगभंगुराविय विराजियं णमह णयचक्कं ॥
सियसद्दसुणयदुण्णयदणुदेहविदारणेक्कवरवीरं ।
तं देवसेणदेवं णयचक्कयरं गुरुं णमह ॥

इनमेंसे पहली दो गाथाओंमें नयचक्रकी प्रशंसा करके कहा है कि ऐसे विशेषणों युक्त नयचक्रको नमस्कार करो और तीसरी गाथामें कहा है कि दुर्नयरूपी राक्षसको विदारण कर-नेवाले श्रेष्ठ वीर गुरु देवसेनको जो नयचक्रके

१ बम्बईवाली प्राचीन प्रतिमें यहाँ 'गाथाकर्त्ता' ही पाठ है, जब कि मोरेनाकीमें 'ग्रन्थकर्ता' है। वास्तवमें गाथाकर्ता ही होना चाहिए। यही पाठ छपना भी चाहिए था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर्ता हैं—नमस्कार करो । यदि इस ग्रंथके कर्ता स्वयं देवसेन होते तो वे अपने लिये गुरु आदि शब्दोंका प्रयोग न करते और न यही कहते कि तुम उन देवसेनको और उनके नयचक्रको नमस्कार करो ।

इन सब बातोंसे सिद्ध है कि छोटे नयचक्रके कर्ता ही देवसेन हैं और माइल्लधवल उन्हींको लक्ष्य करके उक्त प्रशंसा करते हैं । माइल्लधवलने देवसेनसूरिके पूरे नयचक्रको अपने इस ग्रन्थमें अन्तर्गर्भित कर लिया है, ऐसी दशामें उनका इतना गुणगान करना आवश्यक भी हो गया है।

माइल्लधवलने इसके सिवाय और भी कोई ग्रंथ बनाये हैं या नहीं और ये कब कहाँ हुए हैं, इसका हम कोई पता नहीं लगा सके। आश्चर्य नहीं जो वे देवसेनके ही शिष्योंमें हों, जैसा कि मोरेनाकी प्रतिकी अंतिम गाथासे और देवसेनके लिए श्रेष्ठ गुरु शब्दका प्रयोग देखनेसे जान पड़ता है ।

देवसेनसूरि ।

नयचक्रके संबंधमें इतनी आलोचना करके अब हम संक्षेपमें इसके कर्ता देवसेनसूरिका परिचय देना चाहते हैं । इनका बनाया हुआ एक 'भावसंग्रह' नामका ग्रन्थ है । उसमें वे अपने विषयमें इस प्रकार कहते हैं:—

सिरिविमलसेणगणहरसिस्सो
णामेण देवसेणुत्ति ।
अबुहजणबोहणत्थं तेणेयं विरइयं सुत्तं ॥

इससे मालूम होता है कि इनके गुरुका नाम श्रीविमलसेन गणधर (गणी) था । दर्शनसार नामक ग्रन्थके अंतमें वे अपना परिचय देते हुए लिखते हैं:—

पुव्वायरियकयाइं गाहाइं संचिऊण एयत्थ ।
सिरिदेवसेणगणिणा धाराए संवसंतेण ॥ ४९ ॥
रइओ दंसणसारो हारो भव्वाण णवसए नवए।
सिरिपासणाहगेहे सुविसुद्धे माहसुद्धदसमीए ॥५०॥

अर्थात् पूर्वाचार्योंकी रची हुई गाथाओंको एक जगह संचित करके श्रीदेवसेन गणिने धारानगरीमें निवास करते हुए पार्श्वनाथके मंदिरमें माघ सुदी दशवीं विक्रम संवत् ९९० को यह दर्शनसार नामक ग्रन्थ रचा । इससे निश्चय हो जाता है कि उनका अस्तित्वकाल विक्रमकी दशवीं शताब्दि है । अपने अन्य किसी ग्रन्थमें उन्होंने ग्रंथ-रचनाका समय नहीं दिया है ।

यद्यपि इनके किसी ग्रन्थमें इस विषयका उल्लेख नहीं है कि वे किस संघके आचार्य थे; परन्तु दर्शनसारके पढ़नेसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वे मूलसंघके आचार्य थे। दर्शनसारमें उन्होंने काष्ठासंघ, द्रविडसंघ, माथुरसंघ और यापनीयसंघ आदि सभी दिगम्बर-संघोंकी उत्पत्ति बतलाई है और उन्हें मिथ्याती कहा है; परन्तु मूलसंघके विषयमें कुछ नहीं कहा है । अर्थात् उनके विश्वासके अनुसार यही मूलसे चला आया हुआ असली संघ है ।

दर्शनसारकी ४३ वीं गाथामें लिखा है कि यदि आचार्य पद्मनन्दि (कुन्दकुन्द)

१—श्रीविमलसेनगणधरशिष्यः नामेन देवसेन इति । अबुधजनबोधनार्थं तेनेदं विरचितं सूत्रं ॥

१—पूर्वाचार्यकृता गाथाः संचयित्वा एकत्र । श्रीदेवसेनगणिना धारायां संवसता ॥ ४९ ॥

२—रचितो दर्शनसारो हारो भव्यानां नवशते नवतौ । श्रीपार्श्वनाथगेहे सुविशुद्धे माघशुद्धदशम्याम् ॥५०॥

३—दर्शनसारकी अन्य गाथाओंमें जहाँ जहाँ संवत्का उल्लेख किया है, वहाँ वहाँ 'विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स' पद देकर विक्रम संवत् ही प्रकट किया है। इसके सिवाय धारा (मालवा) में प्रायः विक्रम संवत् ही प्रचलित रहा है ।

४ जइ पउमणंदिणाहो सीमंधरसामिदिव्वणाणेण । ण विबोहइ तो समणा कहं सुमग्गं पयाणंति ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सीमन्धर स्वामीद्वारा प्राप्त दिव्यज्ञानके द्वारा बोध न देते तो मुनिजन सच्चे मार्गको कैसे जानते ? इससे यह भी निश्चय हो जाता है कि वे श्रीकुन्दकुन्दाचार्यकी आम्नायमें थे।

भावसंग्रह (प्राकृत) में जगह जगह दर्शनसारकी अनेक गाथायें उद्धृत की गई हैं और उनका उपयोग उन्होंने स्वनिर्मित गाथाओंकी भाँति किया है। इससे इस विषयमें कोई संदेह नहीं रहता कि दर्शनसार और भावसंग्रह दोनोंके कर्त्ता एक ही देवसेन हैं।

इनके सिवाय आराधनासार और तत्त्वसार नामके ग्रंथ भी इन्हीं देवसेनके बनाये हुए हैं।

पं० शिवजीलालने इनके 'धर्मसंग्रह' नामके एक और ग्रंथका उल्लेख किया है; परंतु वह अभीतक हमारे देखनेमें नहीं आया है।

स्वप्न-सर्वस्व।

(ले०-भगवन्त गणपति गोइलीय।)

(१)

क्यों आये थे निठुर इस तरह मुझे जलाने ?
मुझ दुखिनीके लिए सदयता यों दिखलाने।
शान्तिप्रदा वह नींद लगी थी कुछ कुछ आने।
और कष्टसे उठा शान्तिसुखमें पहुँचाने।
सच कहती हूँ उससमय, मुझे न कुछ भी ध्यान था।
कहाँ पड़ी हूँ ? कौन हूँ ? तनिक न इसका भान था॥

(२)

वर्षा थी हो रही रात थी खूब अँधेरी;
टपटप थी चू रही कोठरी सारी मेरी।
इस कथरीपर फटी खौरको मैं सिमटाए–
सोती थी, यह एक हाथ उपधान बनाए।
देख रही थी स्वप्नमें, भोजन मुझको मिल गया।
यद्यपि भूख मिटी नहीं, तौ भी था मन खिल गया।

(३)

आहा बासी भात ! रोटियाँ जिनपर घी था;
चौलाईका साग ! मिष्ट सुस्वाद सभी था।
ज्योंकी त्यों थी भूख खूब था यद्यपि खाया;
पानी पीकर एक ओरको पैर बढ़ाया।
देखा, ओहो सामने, चले श्वसुरजी जा रहे।
उनके पीछे जेठजी धीरे धीरे आ रहे॥

(४)

जेठानी भी एक हाथ सासूका पकड़े–
और एकसे प्रिय कृष्णाके करको जकड़े–
उनके पीछे चली आ रही हैं इतरातीं;—
मुसका करके किसी विषय पर कुछ बतरातीं।
सबकी नजरें थीं पड़ीं, चढ़ीं सभीकी भृकुटियाँ।
हा कपाल ! हैं बन गई, मुझसे क्या क्या कुत्रुटियाँ॥

(५)

याद तुम्हारी आजाने पर जी मसोस कर–
मैं थी रोने लगी भाग्यको कोसकोस कर;–
वे सुख, वे आनन्द और वे प्यारी बातें—
वे गहने, वे वस्त्र और वे रसमय घातें––
क्या हो गईं पता नहीं, कहाँ गया सुख साज सब ?
एक तुम्हारे ही बिना नरक हुआ जग आज सब॥

(६)

ऐसा कह कह जभी प्रभो ! मैं विलप रही थी;
इस अभाग्य पर फूट फूट रो-कलप रही थी।
परम दीप्ति-संयुक्त निकट तुम मेरे आए;
झपक गए दृग तुम्हें भली विधि देख न पाए।
तुमने ठोड़ी पकड़कर कहा–"प्रिये क्यों रो रही ?
मैं हूँ तेरे सामने, विकल भला क्यों हो रही ?"

(७)

चौंक उठी फिर वदन तुम्हारा तनिक निहारा;
इतनेमें बह चली तीव्र लोचन-जल-धारा।
जितना जितना यत्न रोकनेका करती थीं;
उतना उतना तीव्रवेगसे वह झरती थीं;
पिघल गया था हृदय या वर्षाका नव-ढंग था !
घनों दृगोंकी होड़का अथवा विकट प्रसंग था !

(८)

तुमने भरकर अंक कहा–अब रो न प्रिये तू;
तुझे तजूँगा नहीं विकल अब हो न प्रिये तू।

---

१ भावसंग्रह 'माणिकचंद-ग्रंथमाला' में शीघ्र ही छपनेवाला है। प्रेसमें दिया जा चुका है।

२ माणिकचंद ग्रंथमालाका छट्ठा ग्रंथ–श्रीरत्ननन्दि-आचार्यकृत टीकासहित छपा है।

३ मा० ग्रं० मालाके १३ वें अंकमें यह छप चुका है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सदा रखूँगा साथ धैर्य अब खो न प्रिये तू;
आगेको यों कष्ट बीज अब बो न प्रिये तू।
तुमसे इसके बादमें, हाय न कुछ बोला गया;
दुखोद्रेकसे तनिक भी हृदय न फिर खोला गया।

(९)

तबतक मैं चेतना-हीन हो गई प्रेमधन!
रही चेतना-रहित न जाने मैं कितने क्षण।
पर सचेत हो उठी शीघ्र ही जब घबरा कर--
और गिर पड़ी पुनः भींतसे मैं टकरा कर।
आँखें मेरी खुल गई, सपना सपना हो गया।
प्रलय हुआ पलमात्रमें, सरवस अपना खो गया॥

(१०)

पूर्व दिशा थी लोहित चिड़ियाँ चहक रही थीं;
कलियाँ खुल खुल डुल डुल कर सब महक रहीं थीं।
तरुओं पर मृदु ललित लताएँ लहक रही थीं;
प्रातः पवनें खेल खेलमें बहक रही थीं।
योंवे मेरे घावपर, नमक सभी थीं डालतीं,
अथवा 'हा-ही' स्वप्न पर, थीं दुष्टाएँ घालतीं॥

(११)

क्या करती कुछ जोर नहीं था, बस रो आया;
मर जाऊँ अविलम्ब यही मनमें हो आया।
कहा प्राणसे--प्राण! कहाँ लों कष्ट सहोगे?
तन-पंजरके संग कहाँलों और रहोगे?
करती हूँ मैं प्रार्थना-तनका मोह विसार दो।
और दुःख-दावाग्निसे कृपया अब निस्तार दो॥

(१२)

पर सुन लो अब जन्म न तुम नारीका लेना;
लेना तो मत भूल पैर भारतमें देना।
देना ही जो पड़े कभी तो जैन न होना;--
क्या जानें जो पड़े पुनः ऐसा ही रोना।
कर दे तुमको जैन ही, वह अदृष्ट यदि अदय हो।
जन्म उधर लेना जिधर, विजयित नय हो हृदय हो॥

(१३)

हे अदृष्ट तुम घोर नरकके दुख दिखलाओ;
पर, नारीको, हाय! कभी विधवा न बनाओ।
और बनाओ ही तो इतनी दया दिखाओ;-
उसकी आँखें और हृदय यों गढ़ो गढ़ाओ।-
जो कि देखते हुए भी, देखे वह कुछ भी नहीं।
और जानते हुए भी, जाने वह कुछ भी नहीं॥

दुष्प्राप्य और अलभ्य जैनग्रंथ।

२१ सत्यशासन-परीक्षा।

जैनसिद्धान्तभवन आराकी सूचीपरसे मालूम हुआ कि 'सत्यशासनपरीक्षा' नामका भी कोई जैनग्रंथ है। नामपरसे यह ग्रंथ अश्रुतपूर्व मालूम होता था और ऐसा खयाल होता था कि शायद विद्यानंदस्वामीका बनाया हुआ हो। अतः देखनेकी उत्कंठा उत्पन्न हुई और भवनके मंत्री साहबको उसके भेजनेके लिये लिखा गया। परंतु भवनमें ग्रंथकी एक ही प्रति होने आदिके कारण मंत्रीसाहबने उसके न भेजनेके लिये मजबूरी जाहिर की और यह लिखा कि लेखकका प्रबंध करके उसकी कापी करा दी जावेगी। भवनमें एक विद्वान् क्लर्कके आजाने पर हालमें; उक्त ग्रंथका जो परिचय मँगाया गया उससे मालूम हुआ कि यह विद्यानंद स्वामीका बनाया हुआ एक न्यायका ग्रंथ है। इसका मंगलाचरण इस प्रकार है:—

विद्यानन्दाधिपः स्वामिर्विद्व-द्देवो जिनेश्वरः।
यो लोकैकहितस्तस्मै नमस्तात्स्वात्मलब्धये॥ १॥

ग्रंथके अन्तमें प्रशस्ति आदि कुछ नहीं है, बल्कि वह अपूर्ण और अधूरा मालूम होता है। उसका अन्तिम भाग इस प्रकार है:—

"न हि भिन्नदेशासु व्यक्तिषु सामान्यमेकं यथा स्थूणादिषु वंशादिरितिप्रतीयते यतो भिन्नदेशस्वाधारवृतित्वे सत्येकत्वं तस्य सिद्धयत् स्वाधारान्तरालेऽस्तित्वं साधयेदिति तदेवमनेकबाधकसद्भावात् भाट्टप्राभाकरैरिष्टम्।"

ग्रंथके शुरूमें परीक्षाके लिये जिन शासनोंका नामोल्लेख किया गया है उनका द्योतक वाक्य इस प्रकार है:—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"इह हि पुरुषाद्वैत-शब्दाद्वैत-विज्ञानाद्वैत-चित्राद्वैत-शासनानि चार्वाक-बौद्ध-सेश्वर-निरीश्वर-सांख्य-नैय्यायिक-वैशेषिक-भाट्ट-प्राभाकरशासनानि तत्त्वोपप्लुतशासनमेकान्तशासनं चेति अनेकशासनानि प्रवर्तन्ते।"

इस वाक्यमें जिनशासनोंका उल्लेख है ग्रंथमें उनका क्रमशः 'भाट्ट प्राभाकर' तक कथन किया गया है, और ऐसा ही ऊपर उद्धृत किये हुए अन्तिम भागसे भी प्रकट है। और इसलिये तत्त्वोप्लुतादि शासनोंकी परीक्षाका भाग उक्त प्रतिमें नहीं है। संभव है कि भाट्ट प्राभाकर शासनोंकी परीक्षाका भी कुछ भाग रह गया हो। अतः दूसरे शास्त्रभंडारोंमें इस ग्रंथरत्नकी पूरी प्रतिकी खोज होनेकी बहुत बड़ी जरूरत है, जिससे इस पूरे ग्रंथका उद्धार हो सके। यदि दूसरे भंडारोंमें भी इस ग्रंथका इतना ही भाग उपलब्ध हो तो यह समझना होगा कि विद्यानंद स्वामी इसे पूरा नहीं कर सके हैं और यह उनका अन्तिम ग्रंथ है। परन्तु भवनमें इस ग्रंथकी प्रति देवनागरी लिपिमें है और सूचीमें उसकी लिपिका संवत् १९६० दिया है। इससे मालूम होता है कि यह प्रति किसी दूसरी प्रतिपरसे अभी कुछ ही वर्ष हुए कराई गई है। बहुत संभव है कि मीलानके लिये वह मूल्य प्रति भी अभी मिल सके। अतः इसके लिये जरूर प्रयत्न होना चाहिये। इस ग्रंथमें बहुत जगह 'उक्तं च भट्टाकलंकदेवैः' 'उक्तं च स्वामिसमन्तभद्राचार्यैः' ऐसे वाक्य पाये जाते हैं। विद्यानंदस्वामीका ग्रन्थ होनेसे यह निःसन्देह एक महत्त्वका ग्रंथ है और इसका शीघ्र उद्धार होना चाहिये।

२२ तत्त्वानुशासन (द्वितीय)।

एक 'तत्त्वानुशासन' नामका ग्रंथ 'माणिकचंद-दिगम्बर-जैनग्रन्थमाला'में प्रकाशित हो चुका है, जिसे उक्त ग्रंथमालामें श्रीनागसेन आचार्यका बनाया हुआ प्रकट किया है। वह श्रीनागसेन आचार्यका बनाया हुआ है या कि नहीं, इस विषयका विचार हमने एक अलग नोटद्वारा उपस्थित किया है। परंतु यहाँ हम सिर्फ इतना बतलाना चाहते हैं कि उक्त तत्त्वानुशासनसे भिन्न एक और तत्त्वानुशासनका भी पता चलता है। 'दिगम्बरजैनग्रन्थकर्ता और उनके ग्रंथ' नामकी सूचीमें समन्तभद्रके ग्रंथोंमें 'तत्त्वानुशासन' का भी एक नाम है। श्वेताम्बर कान्फरेंसद्वारा प्रकाशित 'जैनग्रन्थावली' में भी तत्त्वानुशासनको समन्तभद्रका बनाया हुआ लिखा है और साथ ही यह भी प्रकट किया है कि उसका उल्लेख सूरतके उन सेठ भगवानदास कल्याणदासजीकी प्राइवेट रिपोर्टमें है जो कि पिटर्सन साहबकी नौकरीमें थे। और भी कुछ विद्वानोंने समंतभद्रका परिचय देते हुए उनके ग्रंथोंमें 'तत्त्वानुशासन' का भी नाम प्रगट किया है। परन्तु अनेक प्रसिद्ध भंडारोंकी सूचियाँ देखने पर भी अभीतक हमको यह मालूम नहीं हुआ कि स्वामी समन्तभद्रका बनाया हुआ तत्त्वानुशासन ग्रंथ किस जगह मौजूद है और यह भी अभीतक पूरी तौरसे निश्चय नहीं हुआ कि उक्त आचार्य महोदयने वास्तवमें तत्त्वानुशासन नामका कोई ग्रंथ बनाया है या कि नहीं। परन्तु खोज करनेसे इतना पता जरूर चला है कि तत्त्वानुशासन नामका कोई दूसरा ग्रंथ भी बना है, जिसका एक पद्य नियमसारकी टीकामें पद्मप्रभमलधारिदेवने 'तथा चोक्तं तत्त्वानुशासने' इस वाक्यके साथ, उद्धृत किया है। वह पद्य इस प्रकार है:—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

" उत्सर्ज्यकायकर्माणि भावं च भवकारणं।
स्वात्मावस्थानमव्यग्रं कायोत्सर्गः स उच्यते ॥ "

यह पद्य मणिकचंद्ग्रन्थमालाद्वारा प्रकाशित उक्त तत्त्वानुशासनमें नहीं है। और इस लिये यह किसी दूसरे ही तत्त्वानुशासनका पद्य है, ऐसा कहनेमें कुछ भी संकोच नहीं होता। पद्यपरसे ग्रंथ कुछ कम महत्त्वका मालूम नहीं होता। संभव है कि जिस तत्त्वानुशासनका उक्त पद्य है वह स्वामी समंतभद्राचार्यका ही बनाया हुआ हो। यदि ऐसा हो और वह ग्रंथ उपलब्ध हो जाय तो उसे जैनियोंका महाभाग्य समझना चाहिये; क्योंकि स्वामी समंतभद्रके ग्रंथ प्राय: बड़े ही महत्त्वशाली और अद्वितीय होते हैं। हमारे खयालसे, समंतभद्रके दूसरे मूल ग्रंथोंकी तरह यह ग्रंथ भी आकारमें छोटा होगा। और किसी गुटके आदिमें तलाश करनेसे मिलेगा। जिनवाणीके भक्तोंको चाहिये कि वे अपने अपने यहाँके शास्त्रभंडारोंमें इस ग्रंथरत्नकी जरूर तलाश करें और कुछ परोपकारी भाइयोंको समन्तभद्रके तत्वानुशासन पर पारितोषिक भी निकालना चाहिये।

एक तत्वानुशासन नागचंद्र मुनिका भी बनाया हुआ कहा जाता है और जैनग्रन्थावलीमें उसकी श्लोकसंख्या पाँच हजार दी है। मालूम नहीं यह कहाँके भंडारमें मौजूद है, इसकी भी तलाश होनी चाहिये। (क्रमशः)

तत्त्वानुशासनके कर्ता।

माणिकचंद-दिगम्बर-जैनग्रंथमालामें जो 'तत्त्वानुशासन' नामका ग्रंथ प्रकाशित हुआ है उसमें उसके कर्ताका नाम 'नागसेन' मुनि दिया है। और ग्रंथके परिचयमें वीरचंद्रदेव, शुभचंद्रदेव तथा महेंद्रदेवको नागसेनके विद्यागुरु और विजयदेवको दीक्षागुरु प्रकट किया है। यह सब जिस आधारपर प्रकट किया गया है वह ग्रंथकी प्रशस्तिके निम्नलिखित दो पद्य हैं:—

श्रीवीरचंद्रशुभदेवमहेंद्रदेवाः
शास्त्राय यस्य गुरवो विजयामरश्च।
दीक्षागुरुः पुनरजायत पुण्यमूर्तिः
श्रीनागसेन मुनिरुद्यचरित्रकीर्तिः ॥ २५६ ॥

तेन प्रवृद्धधिषणेन गुरूपदेश-
मासाद्य सिद्धिसुखसंपदुपायभूतं।
तत्त्वानुशासनमिदं जगतो हिताय
श्रीनागसेनविदुषा व्यरचि स्फुटार्थं ॥ २५७ ॥

बम्बईके मंदिरकी जिस एक मात्र प्रतिपरसे यह ग्रंथ छपाया गया है संभव है कि उसमें ये दोनों पद्य इसी प्रकारसे दिये हों। परंतु जयपुरसे हमने एक प्राचीन शुद्ध प्रति मँगाकर उसपरसे इस ग्रंथका जो मीलान किया तो मालूम हुआ कि उसमें प्रशस्तिके दूसरे पद्यके अन्तिम चरणमें 'नागसेन' के स्थानमें **'रामसेन'** पाठ दिया है। आराके जैनसिद्धान्तभवनका यही तत्त्वानुशासन, जिसे सूचीमें गलतीसे 'श्रीरामेश्वर' का बनाया हुआ लिखा है और जिसके कारण हमें बहुत कुछ लिखा पढ़ी करनेका कष्ट उठाना पड़ा, इस समय कलकत्तेमें है। कुमार देवेंद्रप्रसादजीने उस परसे जो एक नकल उतरवाकर हमारे पास भेजी है उसमें भी, इस चरणमें, नागसेनकी जगह **'रामसेन'** ही पाठ दिया है। इस पाठके अनुसार दोनों पद्योंका अर्थ यह होता है कि—'श्रीवीरचंद्र, शुभदेव, महेंद्रदेव और विजयदेव ये चारों जिसके शास्त्रगुरु अर्थात् विद्यागुरु थे और फिर पुण्यमूर्ति तथा उद्यचरित्रकीर्ति ऐसे श्रीनागसेन नामके मुनि जिसके दीक्षागुरु हुए उस प्रबुद्धबुद्धि श्रीरामसेन नामके विद्वान्ने गुरूपदेशको पाकर, यह सिद्धसुखसंपदाका उपायभूत और स्फुट अर्थको लिए हुए तत्त्वानुशासन नाम-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का ग्रंथ जगतके हितके लिये रचा है।' जहाँ-तक हम समझते हैं यह अर्थ दोनों पद्योंकी शब्दरचना परसे बहुत कुछ सीधा, सुसंगत और प्राकृतिक मालूम होता है। विपरीत इसके, छपे हुए पाठको ज्योंका त्यों रखनेकी हालतमें, 'नागसेनकी पुनरावृत्ति बहुत खटकती है। 'सः' आदि शब्दोंको ऊपरसे लगाकर पहले पद्यका अर्थ करना होता है और विजय-देवको खींच-खाँचकर नागसेन मुनिका दीक्षागुरु बनाना पड़ता है। इस लिये हमारी रायमें जय-पुरादिकी प्रतियोंका उपर्युक्त पाठ बहुत कुछ ठीक मालूम होता है और उसके अनुसार यह ग्रंथ 'श्रीनागसेनमुनिका बनाया हुआ न होकर उनके दीक्षित शिष्य श्रीरामसेन विद्वान्का बनाया हुआ जान पड़ता है। पं० आशाधरजी भी अपने अनगारधर्मामृतके ९ वें अध्यायमें, इस ग्रंथका एक पद्य 'रामसेन' के नामसे उद्-धृत करते हैं। वह उद्धरण इस प्रकार है—

"तथा श्रीमद्रामसेन पूज्यैरप्यवाचि
स्वाध्यायाद्ध्यानमध्यास्तां ध्यानात्स्वाध्यायमामनेत्।
ध्यानस्वाध्याय संपत्त्यापामात्मा प्रकाशते ॥ ८१ ॥

इससे यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है कि यह ग्रंथ नागसेनका नहीं, किंतु 'रामसेन' का बनाया हुआ है। 'नाग' और 'राम' ये दोनों शब्द लिखनेमें बहुत कुछ मिलते जुल-तेसे मालूम होते हैं। हस्तलिखित ग्रंथोंके पत्र वर्षा आदिके कारण अक्सर चिपट जाया करते हैं और उनको छुड़ानेमें किसी किसी अक्षरका कुछ भाग उड़कर उसकी आकृति भी बदल जाया करती है। ऐसी हालतमें यदि किसी लेखकने 'राम' के स्थानमें 'नाग' पढ़कर वैसा लिख दिया हो तो इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है। और यह भी संभव है कि पहले पद्यमें जो नागसेन लिखा था उसीके खयाल तथा संस्कारसे दूसरे पद्यमें भी नागसेन लिखा गया हो और इस तरह पर लेखकसे भूल हुई हो। तत्त्वानुशासनकी इस छपी हुई प्रतिमें वैसे भी पचासों अशुद्धियाँ पाई जाती हैं। यदि बम्बईके मंदिरकी वह प्रति बिलकुल इसीके मुताबिक है तो कहना होगा कि वह प्रति बहुत कुछ अशुद्ध है और उसमें ऐसी भूलका हो जाना कोई बड़ी बात नहीं है। विद्वानोंको चाहिये कि वे दूसरे स्थानोंकी और भी प्रतियोंसे इस बातको अच्छी तरह जाँच लेवें और उसे सर्वसाधारण पर प्रकट कर देवें, जिससे एक विद्वान्की कृति व्यर्थ ही दूसरे विद्वानकी कृति न समझ ली जाय। यदि वे भी इस ग्रंथको श्रीरामसेनका ही बनाया हुआ निश्चित करें तो उन्हें साथमें यह भी खोज करनी चाहिये कि ये रामसेन नामके विद्वान विक्रमकी १३ वीं शताब्दीसे कितने पहले हुए हैं, इनका विशेष परिचय क्या है, और इनका उल्लेख और किस किस ग्रंथमें पाया जाता है। पं० आशाधरजीने इनके लिये बहुवचनान्त 'पूज्य' शब्दका प्रयोग किया है जिससे ये कोई बड़े आचार्य मालूम होते हैं। तत्त्वानुशासन नामकी कृति भी अच्छे महत्त्वको लिये हुए है। संभव है कि ये वही रामसेन आचार्य हों जिनको 'दर्शनसार' में माथुरसंघका उत्पादक लिखा है और जिनका समय वि० सं० ९५३ दिया है। विद्वानोंको इस विषयकी खोज करनी चाहिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शास्त्रीय-चर्चा।

१-क्या मुनि कंदमूल खा सकते हैं ?

ऊपरका प्रश्न हमारे बहुतसे पाठकोंको एकदम खटकेगा और वे उत्तरमें सहसा 'नहीं' शब्द कहना चाहेंगे। परंतु शास्त्रीय चर्चामें इस प्रकारके जबानी उत्तरोंका कुछ भी मूल्य नहीं है। इसमें केवल वही उत्तर ग्राह्य हो सकते हैं जो शास्त्रप्रमाणको लिये हुए हों। अतः उक्त प्रश्नका समाधान करनेके लिये शास्त्रीय प्रमाणोंके अनुसंधानकी जरूरत है। हम भी इस विषयमें आज कुछ यत्न करते हैं।—

दिगम्बर सम्प्रदायमें 'मूलाचार' नामका एक अतिशय प्राचीन और प्रसिद्ध ग्रंथ है, जिसे श्रीवट्टकेर आचार्यने बनाया है। श्वेताम्बरोंमें 'आचारांगसूत्र' को जो पद प्राप्त है दिगम्बरोंमें मूलाचारको उससे कम पद प्राप्त नहीं है। दिगम्बर सम्प्रदायमें यह एक बड़ा ही पूज्य और माननीय ग्रंथ समझा जाता है। श्रीवसुनन्दी सैद्धान्तिकने इस पर 'आचारवृत्ति' नामकी एक संस्कृत टीका भी लिखी है जो सर्वत्र प्रसिद्ध है और बड़े गौरवके साथ देखी जाती है। इस ग्रंथकी निम्नलिखित दो गाथाओं और उनकी संस्कृतटीका परसे उक्त प्रश्नका अच्छा समाधान हो जाता है, इसीसे हम उन्हें नीचे उद्धृत करते हैं:—

फलकंदमूलबीयं अणग्गिपक्कं तु आमयं किंचि।
णच्चा अणेसणीयं णवि य पडिच्छंति ते धीरा ॥९-५९॥

टीका—फलानि कंदमूलानि बीजानि चाग्निपक्वानि न भवंति यानि अन्यदपि आमकं यत्किंचिदनशनीयं ज्ञात्वा नैव प्रतीच्छंति नाभ्युपगच्छंति ते धीरा इति। यदशनीयं तदाहः—

जं हवदि अणव्वीयं णिवट्टिमं फासुयं कयं चेव।
णाऊण एसणीयं तं भिक्खं मुणी पडिच्छंति ॥९-६०॥

टीका—यद्भवत्यबीजं निर्बीजं निर्वर्तिमं निर्गतमध्यसारं प्रासुकं कृतं चैव ज्ञात्वाऽशनीयं तद्भैक्ष्यं मुनयः प्रतीच्छंति ॥

इन दोनों गाथाओंमेंसे पहली गाथामें मुनिके लिये 'अभक्ष्य क्या है' और दूसरीमें 'भक्ष्य क्या है,' इसका कुछ विधान किया है। पहली गाथामें लिखा है कि जो फल, कंद, मूल तथा बीज अग्निसे पके हुए नहीं हैं और और भी जो कुछ कच्चे पदार्थ हैं उन सबको अनशनीय (अभक्ष्य) समझकर वे धीरमुनि भोजनके लिये ग्रहण नहीं करते हैं। दूसरी गाथामें यह बतलाया है कि जो बीजरहित हैं, जिनका मध्यसार (जलभाग ?) निकल गया है अथवा जो प्रासुक किये गये हैं ऐसे सब खानेके पदार्थोंको भक्ष्य समझकर मुनि लोग भिक्षामें ग्रहण करते हैं।

मूलाचारके इस संपूर्ण कथनसे यह बिलकुल स्पष्ट है और अनशनीय कंद-मूलोंका 'अनग्निपक्व' विशेषण इस बातको साफ बतला रहा है कि जैन मुनि कच्चे कंद मूल नहीं खाते परंतु अग्निमें पकाकर शाक-भाजी आदिके रूपमें प्रस्तुत किये हुए कंद-मूल वे जरूर खा सकते हैं। दूसरी गाथामें प्रासुक किये हुए पदार्थोंको भी भोजनमें ग्रहणकर लेनेका उनके लिये विधान किया गया है। यद्यपि अग्निपक्व भी प्रासुक होते हैं, परंतु प्रासुककी सीमा उससे कहीं अधिक बढ़ी हुई है। उसमें सुखाए, तपाए, खटाईनमक मिलाए और यंत्रादिकसे छिन्न भिन्न किये हुए सचित्त पदार्थ भी शामिल होते हैं; जैसा कि निम्न लिखित शास्त्रप्रसिद्ध गाथासे प्रकट है।—

सुक्कं पक्कं तत्तं अंबिल लवणेहिं मिस्सियं दव्वं।
जं जंतेण य छिण्णं तं सव्वं फासुयं भणियं ॥

Gahesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रासुकके इस लक्षणानुसार जैन मुनि अग्नि-पकके अतिरिक्त दूसरी अवस्थाओं द्वारा प्रासुक हुए कंद मूलोंको भी खा सकते हैं, ऐसा आता है। परंतु पहली गाथामें साफ तौरसे उन कंद मूलोंको अभक्ष्य ठहराया है जो अग्निद्वारा पके हुए नहीं हैं और इससे सूखने, तपने, आदि दूसरी अवस्थाओं द्वारा प्रासुक हुए कंद मूल मुनियोंके लिये अभक्ष्य ठहरते हैं। अतः या तो पहली गाथामें कहे हुए 'अनग्निपक्क' विशेषणको उपलक्षण मानना चाहिये जिससे सूखे, तपे आदि सभी प्रकारके प्रासुक कंद-मूलोंका ग्रहण हो सके और नहीं तो यह मानना पड़ेगा कि मुनिलोग फलों तथा बीजोंको भी अग्निपक्कके सिवाय दूसरी अवस्थाओंद्वारा प्रासुक होनेपर ग्रहण नहीं कर सकते; क्योंकि गाथामें 'फलमूलकंदवीयं' ऐसा पाठ है, जिसका 'अनग्गिपक्क' विशेषण दिया गया है परंतु जहाँ तक हम समझते हैं उक्त अनग्निपक्क विशेषणको उपलक्षणरूपसे मानना ज्यादह अच्छा होगा और उससे सब कथनोंकी संगति भी ठीक बैठ जावेगी। अस्तु; उक्त विशेषण उपलक्षणरूपसे हो या न हो परंतु इसमें तो कोई संदेह नहीं रहता कि दिगम्बर मुनि अग्निद्वारा पके हुए-शाक भाजी आदिके रूपमें प्रस्तुत किये हुए कंद मूल जरूर खा सकते हैं। हाँ, कच्चे कंद-मूल वे नहीं खा सकते। छठी प्रतिमा-धारक गृहस्थोंके लिये भी उन्हींका निषेध किया गया है जैसा कि श्रीसमंतभद्रके निम्नवाक्यसे प्रकट है:—

> मूलफलशाकशाखाकरीरकंदप्रसूनबीजानि।
> नामानि योऽत्ति सोऽयं सचित्तविरतो दयामूर्तिः॥

परन्तु आजकलके श्रावकोंका त्यागभाव बड़ा ही विलक्षण मालूम होता है, वह मुनियोंके त्यागसे भी बढ़ा हुआ है! मुनि तो अग्निद्वारा पके हुए कंद मूलोंको खासकते हैं परन्तु वे गृहस्थ जो छठी प्रतिमा तो क्या पहली प्रतिमाके भी धारक नहीं हैं उनके खानेसे इनकार करते हैं, इतना ही नहीं बल्कि उनका खाना शास्त्र-विहित नहीं समझते! यह सब अज्ञान और रूढ़िका माहात्म्य है!!

२-क्या सभी कंदमूल अनंत-काय होते हैं?

आमतौर पर जैनियोंमें यह माना जाता है कि कंदमूल सब अनंतकाय होते हैं—उनमें एक एक शरीरके आश्रित अनंते जीव विद्यमान हैं—इस लिये हमारे बहुतसे पाठकोंको यह प्रश्न भी कुछ नया सा मालूम होगा। परन्तु नया हो या पुराना, प्रश्न अच्छा है और इसका निर्णय भी शास्त्राधारसे ही होना चाहिए। हम भी ऐसा ही यत्न करते हैं:—

गोम्मटसारके जीवकांडमें, प्रत्येक और अनंत-कायकी पहिचान बतलाते हुए, विशेष नियमके तौर पर एक गाथा इस प्रकारसे दी है:—

> मूले कंदे छल्ली पवालसालदलकुसुमफलवीजे।
> समभंगे सदि णंता असमे सदि होंति पत्तेया॥ १८७॥

इसमें यह बतलाया है कि जिस किसी कंद-मूलादिकके तोड़ने पर समभंग हो जायँ उसे अनंतकाय और जिसके समभंग न हों—बीचमें तंतु रहें, ऊँचा नीचा टूटे—उसे प्रत्येक समझना चाहिये। इससे स्पष्ट है कि कंदमूल भी दो प्रकारके होते हैं, एक प्रत्येक और दूसरे अनंतकाय। उक्त गाथाके अनन्तर एक दूसरे विशेष नियमकी प्रतिपादक गाथा इस प्रकार है:—

> कंदस्सव मूलस्सव सालाखंदस्स वाविबहुलतरी।
> छल्ली साणंतजिया पत्तेयजिया तु तणुकदरी॥१८८॥

---

१ यथा शुष्कपक्वध्वस्ताम्ललवणसंमिश्रदग्धादिद्रव्यं प्रासुकं। इति —गोम्मटसारटीकायां।

१ आदिक शब्दसे छाल, कोंपल, शाखा, पत्र, पुष्प, फल और बीज समझना चाहिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस गाथामें कंदमूलादिककी छाल (त्वचा) के सम्बंधमें एक विशेष नियम दिया है और यह बतलाया है कि जो छाल ज्यादह मोटी होती है उसे अनंतकाय और जो ज्यादह पतली होती है उस छालको प्रत्येक जानना चाहिए। इससे यह पाया जाता है कि कंदमूलादिक अपने सर्वांगरूपसे अनंतकाय अथवा प्रत्येक नहीं होते, उनमें उनकी छालसे विशेष रहता है—अर्थात्, कोई कंदमूलादिक ऐसे होते हैं जिनकी छाल अनंतकाय होती है परंतु वे स्वयं-भीतरसे अनंतकाय नहीं होते और कोई कोई ऐसे भी होते हैं जो खुद भीतरसे तो अनंतकाय होते हैं परंतु उनकी छाल अनंतकाय नहीं होती, वह प्रत्येक ही रहती है।

इसके बाद गोम्मटसारमें एक अपवाद नियम और भी दिया है और वह यह है कि ये कंद-मूलादिक ('आदि' शब्दसे प्रथम गाथोक्त छाल, कोंपल, शाखा, पत्र, पुष्प, फल और बीज सभी ग्रहण करने चाहियें) अपनी प्रथमावस्थामें प्रत्येक होते हैं। यथाः—

जे विय मूलादीया ते पत्तेया पढमदाए ॥

यह नियम इस बातको सूचित करता है कि कंदमूलादिक—चाहे वे समभंग हों या न हों, उनकी छाल मोटी हो अथवा पतली—अपनी प्रथमावस्थामें सब प्रत्येक होते हैं। उत्तरकी अवस्थाओंमें वे प्रत्येक भी होते हैं और अनंतकाय भी और उनकी खास पहिचान ऊपर बतलाई गई है।

नतीजा इस सारे कथनका यह निकलता है कि सभी कंदमूल अनंतकाय नहीं होते, न सर्वांगरूपसे ही अनंतकाय होते हैं और न अपनी सारी अवस्थाओंमें अनंतकाय रहते हैं। बल्कि वे प्रत्येक और अनंतकाय (साधारण) दोनों प्रकारके होते हैं; किसीकी छाल ही अनंत-काय होती है, भीतरका भाग नहीं और किसीका भीतरी भाग अनंतकाय होता है तो छाल अनंतकाय नहीं होती; कोई बाहर भीतर सर्वांगरूपसे अनंतकाय होता है और कोई इससे बिलकुल विपरीत कतई अनंतकाय नहीं होता; इसी तरह एक अवस्थामें जो प्रत्येक है वह दूसरी अवस्थामें अनंतकाय हो जाता है और जो अनंतकाय होता है वह प्रत्येक बन जाता है। प्रायः यही दशा दूसरी प्रकारकी वनस्पतियोंकी भी है। वे भी प्रत्येक और अनंत-काय दोनों प्रकारकी होती हैं--आगममें उनके लिये भी इन दोनों भेदोंका विधान किया गया है—जैसा कि ऊपरके वाक्योंसे ध्वनित है और मूलाचारकी निम्नगाथाओंसे भी प्रकट है, जिनमें पहली गाथा गोम्मटसारमें भी नं० १८५ पर दी है:—

मूलग्गपोरबीजा कंदा तह खंधबीजबीजरुहा।
संमुच्छिमा य भणिया पत्तेयाणंतकाया य ॥२१३॥
कंदा मूला छल्ली खंधं पत्तं पवालपुप्फफलं।
गुच्छा गुम्मा वल्ली तणाणि तह पव्वकायाय २१४

ऐसी हालतमें कंद-मूलों और दूसरी वनस्प-तियोंमें अनंतकायकी दृष्टिसे आमतौर पर कोई विशेष भेद नहीं रहता। अतः जो लोगअनंत-कायकी दृष्टिसे कच्चे कंदमूलोंका त्याग करते हैं उन्हें इस विषयमें बहुत कुछ सावधान होनेकी जरूरत है। उनका संपूर्णत्याग विवेकको लिये हुए होना चाहिये। अविवेकपूर्वक जो त्याग किया जाता है वह कायकष्टके सिवाय प्रायः किसी विशेष फलका दाता नहीं होता। उन्हें कंदमूलोंके नाम पर ही भूलकर सबको एकदम अनंतकाय न समझ लेना चाहिये; बल्कि इस बातकी जाँच करनी चाहिये कि कौन कौन कंदमूल अनंतकाय हैं और कौन कौन अनंतकाय नहीं हैं. किस कंदमूलका कौनसा अवयव अनंत-काय है और कौनसा अनंतकाय नहीं हैं, साथ ही यह भी कि, किस किस अवस्थामें वे अनंत-काय होते हैं और किस किसमें अनंतकाय नहीं रहते। अनेक वनस्पतियाँ भिन्न भिन्न देशोंकी अपेक्षा जुदा जुदा रंग, रूप, आकार, प्रकार और गुण-स्वभावको लिये हुए होती हैं। बहुतोंमें वैज्ञानिक रीतिसे अनेक प्रकारके परि-वर्तन कर दिये जाते हैं। नाम-साम्यकी वजहसे उन सबको एक ही लाठीसे नहीं हाँका जा सकता। संभव है कि एक देशमें जो वनस्पति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनंतकाय हो दूसरे देशमें वह अनंतकाय न हो, अथवा उसका एक भेद अनंतकाय हो और दूसरा अनंतकाय न हो। इन सब बातोंकी विद्वानोंको अच्छी तरह जाँच करनी चाहिये और जाँचके द्वारा जैनागमका स्पष्ट व्यवहार लोगोंको बतलाना चाहिये।

ऊपरकी कसौटीसे दो एक कंदमूलोंकी जो सरसरी जाँच की गई है उसे भी हम आज अपने पाठकोंके सामने रखते हैं और आशा करते हैं कि विद्वान् लोग उन पर विचार करके अपनी सम्मति प्रकट करेंगे:—

१—हमारे इधर अदरक बहुत तंतुविशिष्ट होता है। तोड़ने पर वह समभंग रूपसे नहीं टूटता, ऊँचा नीचा रहता है और बीचमें तंतु खड़े रहते हैं। छाल भी उसकी मोटी नहीं होती। ऐसी हालतमें वह अनंतकाय नहीं ठहरता। बम्बईकी तरफका अदरक हमने नहीं देखा, परंतु उसकी जो सोंठ इधर आती है वह 'मैदा सोंठ' कहलाती है और उसके मध्यमें प्रायः वैसे तंतु नहीं होते, इस लिये संभव है कि वह अनंतकाय हो।

२—गाजर भी अक्सर तोड़ने पर समभंग रूपसे नहीं टूटती और न उसकी छाल मोटी होती है। इस लिये वह भी अनंतकाय मालूम नहीं होती।

३—मूलीकी छाल मोटी होती है और इस लिये उसे अनंतकाय कहना चाहिये। परंतु छालको उतार डालने पर मूलीका जो भीतरका भाग प्रकट होता है उसकी शिराएँ, रग रेशे अच्छी तरहसे दिखाई देने लगते हैं, तोड़ने पर वह समभंग रूपसे भी नहीं टूटता। ऐसी हालतमें संभव है कि मूलीका भीतरी भाग अनंतकाय न हो।

४—आलूका ऊपरका छिलका बहुत पतला होता है। अतः वह अनंतकाय न होना चाहिये।

विद्वानोंको चाहिये कि वे भी इसी तरह कंद-मूलादिककी जाच करें और फिर उसके नतीजेसे हमें सूचित करनेकी कृपा करें। हम भी इनकी विशेष जाँच करेंगे और साथ ही दूसरे कंदमूलोंकी भी जाँचका यत्न करेंगे।

हमारी शिक्षा-संस्थाएँ।

(लेखक, श्रीयुक्त बाबूलालजी मास्टर।)

इस बातके बतलानेकी जरूरत नहीं कि जैन-समाजने शिक्षाको अपनी उन्नतिका साधन समझ उसके प्रचारकी ओर ध्यान दिया है, जिसके फलस्वरूप अकेले दिगम्बर सम्प्रदायकी ही २०—२५ वर्षमें अनेक शिक्षासंस्थाएँ नजर आने लगी हैं। इन संस्थाओंसे प्रतिवर्ष अनेक शास्त्री, तीर्थ, विशारद तैयार हो रहे हैं, संस्कृत न्याय व्याकरण साहित्य और धर्मशास्त्रोंके विद्वानोंकी संख्या सैकड़ोंपर पहुँच चुकी है और अब वह समय दूर नहीं है कि जब, हमारे कतिपय विद्वान् नेताओंकी इच्छापूर्तिस्वरूप, जैनसंस्थाओंमें संस्कृत व्याकरणादि पढ़ानेके लिये अजैन विद्वानोंको न ढूँढ़ना पड़ेगा। परंतु यह सब होते हुए भी समाजको शिक्षाविषयक वास्तविक संतोष नहीं हुआ, और यदि इन संस्थाओंकी कार्यप्रणाली ऐसी ही बनी रही तो भविष्यमें भी उक्त संतोषकी आशा करना व्यर्थ है।

थोड़ा भी समय विचार करनेमें लगानेसे विदित हो जायगा कि समाजने शिक्षाकी साधनस्वरूप संस्थाओंको स्थापित कर उनमें लक्षावधि रुपया खर्च करके जो शिक्षाप्रचारका काय किया है वह औरोंकी अपेक्षा बहुत ही कम है, इतना ही नहीं, किंतु इन संस्थाओंद्वारा जो पंडित तय्यार हुए हैं वे प्रायः वर्तमान समयसे हजार आठसौ वर्ष पहलेके युगमें विचरण करनेवाले व्यक्ति हैं। इन विचारोंको, अन्य देशोंकी कौन कहे, स्वदेशके ही हुए और होनेवाले परिवर्तनोंका ज्ञान नहीं, उनके हृदयकमलमें इतिहास, गणित, विज्ञान, समाजनीति, अर्थनीति, स्वास्थ्य आदि आवश्यकीय विषयोंकी वायु भी नहीं लगी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यदि वे कोई काम करना भी सीखे हैं तो वह प्रायः अध्यापकी और उपदेशकी करना है।

और देशोंकी बातको न लेकर जब हम अपने देशवासियोंकी ओर देखते हैं तब हमें चकित होना पड़ता है। अल्पवयस्क आर्यसमाजने थोड़े ही दिनोंमें अपने तथा औरोंके हजारों बालकोंको प्राचीन तथा अर्वाचीन जगत्की बातोंका ज्ञाता बना दिया है। उनके कालेजों, विद्यालयों तथा गुरुकुलोंमें बालक बालिकाओंको धार्मिक और जीवनमें काम आनेवाले अनेक विषयोंकी अच्छी शिक्षा दी जाती है। इन संस्थाओंसे निकले हुए छात्र प्रायः स्वाभिमानी, निर्भीक, देशसेवक और स्वावलम्बी होते हैं। यह सब श्रेय उक्त समाजकी शिक्षापद्धति और संस्थाओंकी शासनप्रणालीको प्राप्त है। उसके यहाँ सामाजिक संस्थाओंमें काम करनेवालोंकी कमी नहीं है। विपरीत इसके जैन-संस्थाओंमें इस बातका अकाल रहता है। हमें बराबर अपनी जैनसंस्थाओंके कार्यकर्त्ताओंसे "पाठशालामें लड़के ही नहीं आते, पंच ध्यान ही नहीं देते, सहायकों पर चंदा बकाया पड़ा है, वेतन थोड़ा है" इत्यादि बातोंका दुखड़ा सुनना पड़ता है। और हजारों लाखोंका ध्रुवफंड रहते भी संस्थासे संतोषप्रद फल नहीं निकलता। यद्यपि हम इन संस्थाओंमें बरबाद होनेवाले रुपयों पर समय समय पछतावा करते रहते हैं, तथापि पंचमकालके माथे सम्पूर्ण दोष मढ़ शिक्षा और प्रबंधकी पद्धतिसे अपरिचित होनेके कारण यही सोचकर खर्चकी धारा बहाये चले जाते हैं कि शालाके रहनेसे भ्रमण करते हुए आनेवाले पंडित या धनी जन हमें कृपण तो न कहेंगे। हमारी पंचमकाल महाराजसे विनय है कि आप इस शिक्षाविहीन जैन जातिपरसे अपनी शनि दृष्टि उठानेकी शीघ्र कृपा कीजिये, ताकि यह जाति अधिक नहीं तो, अपनी ही संतानको पारसी महाराष्ट्र आदि अपने देशभाइयोंके समान तो अवश्य शिक्षित बना सके।

जैनसमाजने विद्याप्रेमियोंके कहनेसे लाखों रुपये शिक्षा प्रचारमें खर्च कर दिये और कर रहा है, इसके एक नहीं अनेक विद्यालय खुल चुके हैं जिनमें सैकड़ों समर्थ और असमर्थ छात्र शिक्षा पा रहे हैं। अनेक छात्रालय भी जारी हो चुके हैं। इतना होनेपर चाहिये तो यह था कि समाज अपने कृत्यपर प्रसन्न होता और इस परमोपयोगी कार्यमें अधिक भाग लेता। परंतु ऐसा नहीं हुआ। वह दिनोंदिन उदास होता जाता है। जहाँ पाठशालाओंकी चर्चा छिड़ी कि लोगोंके चेहरेपर उदासी झलकी। चंदेकी बात उठी कि खिसकनेका नंबर जारी हुआ। बड़ी कठिनाईसे रुपयेके देनेवाले आने दो दो आने चिट्ठेपर चढ़ाते हैं। पाठशालाओंसे लोग इतना क्यों चिढ़ते हैं? सहायता देनेमें क्यों आगा पीछा करते हैं? यदि ऐसा कहा जावे कि वे अपने बालकोंको पढ़ाना नहीं चाहते, अथवा उनके मनमें कृपणता बहुत बढ़ गई है, तो यह ठीक नहीं जँचता। कारण कि, ऐसे बहुतसे जैनी अपने लड़के लड़कियोंको, शिक्षा दिलानेके लिये, सरकारी पाठशालाओंमें भेजते हैं और उनकी रुचि विद्याभ्यासमें बढ़ानेके लिये उन्हें प्रतिदिन मिठाई, फल, पैसा आदि देते रहते हैं। प्रतिवर्ष रथ चलाने, मंदिर बनवाने, जीर्णोद्धार करने, औषधालय स्थापित करने और जीवदयाका प्रचार करने आदि धर्मकार्योंमें भी जैनी बहुत कुछ धन खर्च करते हैं, इससे उनमें विद्याप्रेमका अभाव अथवा दानशीलताकी कमी कहना भारी भूल करना है।

जैनियोंकी उदासीनताका कारण क्या है, इसकी खोज करनेकी ओर अभी समाजने ध्यान नहीं दिया। समाजमें विद्वानोंके दो प्रधान दल हैं एक पंडितदल दूसरा बाबूदल। ये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोनों दल अपनी ही धुनमें मस्त हैं। जब सुनो तब इनसे यही सुननेको मिलता है कि अभी विद्यालय थोड़े हैं, लोग अपने लड़कोंको पढ़नेके लिये नहीं भेजते। बाबुओंको बिना दस बीस जैन हाईस्कूल और चार छै जैन-कालेज खुले समाजकी उदासीनता घटनेकी आशा नहीं दिखती। उनको रात दिन यही धुन रहती है कि समाजमें ग्रेज्युएटोंकी संख्या खूब बढ़ाई जावे और यह तभी हो सकेगा जब जैन हाईस्कूल और कालेज काफी संख्यामें खुलेंगे। शिक्षाप्रचारक विद्यालय, कालेज आदिकी वृद्धि और स्थापनासे लाभ तो अवश्य होगा परंतु इन दोनों दलवालोंने अभीतक इसका विचार नहीं किया है कि उस लाभसे समाजकी शिक्षाविषयक उदासीनतामें कितनी कमी होगी। हमारी उदासीनता वास्तवमें उस समय घटेगी जिस समय हमारी संतानको उपयुक्त व्यावहारिक शिक्षा देनेवाली संस्थाओंकी स्थापना होकर उनका परिचालन भलीभाँति होने लगेगा।

हम बणिक् हैं, हमारी जीविकाका द्वार वाणिज्य है, जिन्दगीमें पद पद पर काम पड़नेवाले (जीवोंके ग्यारहवें प्राण) धनकी प्राप्तिका हमारा प्रतिष्ठित और सुखसाध्य मार्ग व्यापार ही है। व्यापारियोंका ही हमारे यहाँ अधिक मान है। अपरिचित व्यक्तिके परिचयके लिये हम उसके शास्त्रज्ञानकी विशेष पूँछताछ न करके प्रायः उसके व्यवसायको ही पूँछा करते हैं। अपरिमित साहित्यका ज्ञाता और अतुलनीय बलशाली जैनी यदि व्यापारमें पटु नहीं है तो हम उसका प्रायः उतना मान नहीं करते जितना कि इन दोनों गुणोंसे शून्य व्यापारकुशल व्यक्तिका करते हैं। पैतृक सम्पत्ति पानेवाले धनिक जैन भले ही व्यापार न करें, अपने कारोबारका सम्हालना और हिसाब किताबका लिखना वे भले ही न जानें; परंतु साधारण स्थितिवालोंका बिना व्यापार किये अथवा हिसाब-किताब लिखे काम नहीं चलता, अतएव हमारे लिये व्यापारिक शिक्षा परम आवश्यक है और यही कारण है कि अपनी शिक्षासंस्थाओंमें इसका अभाव देखकर हम लोग उनसे उदासीन होते जाते हैं।

हम लोग अपने लड़कोंको पढ़ानेमें लाभ तो समझते हैं परंतु उच्च शिक्षा दिलानेमें प्रमादी हैं। अपनी निजी शालाओंमें व्यावहारिक विषयोंकी शिक्षाकी कमी देख वहाँ बालकोंको भेजनेमें विशेष लाभ नहीं समझते। जब कोई हमसे कहता है कि लड़का मिडिल पास हो गया है इसे अब हाईस्कूलमें क्यों नहीं भेजते, तो हमसे यही कहते बनता है कि क्या हमें उससे नौकरी कराना है? कामलायक उसने पढ़ ही लिया है, अब दुकानमें बैठाल कर व्यापार सिखायँगे। यद्यपि हम उच्च शिक्षासे अनभिज्ञ हैं तथापि हमारा उपर्युक्त कथन सारहीन नहीं है। हम प्रतिवर्ष देखते हैं कि हमारे यहाँ हाईस्कूलों और कालेजोंकी परीक्षाओंमें बैठे हुए छात्र निर्वाहके लिये नौकरी ढूँढ़नेमें घोर परिश्रम करते हैं, नौकरी चाहे वह कितने ही परिश्रमकी क्यों न हो परंतु हो ऐसी जिसमें कुरसीपर बैठना और टेबिल पर कागज रखकर लिखनेको मिले। ये विचारे वैसे भी इतने कमजोर और साहसहीन हो जाते हैं कि यदि कहीं परीक्षामें फेल हो गये तो महीनों रोते रहते हैं और कई एक तो विद्याभ्यासको ही तिलांजलि दे बैठते हैं। शिक्षाविभागने पठनक्रममें साहित्य गणित भूगोल आदिकी भरमार तो कर दी है परंतु पढ़नेके पश्चात्, हमें ही नहीं किंतु अन्य व्यवसायवालोंको भी उनसे कितनी कम सहायता मिलती है उसे सभी जानते हैं। अपने घरमें लाखोंका व्यापार होते हुए भी, एक सिंघईजीको बी० ए० तक पढ़नेके बाद साधारण वेतन पर स्कूल मास्टरका कार्य करते देख हमने अपनी उपर्युक्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

कल्पनाको यदि ठीक समझ लिया तो इसमें हमारा दोष ही क्या है ? यथार्थमें हम उच्चशिक्षाके विरोधी नहीं हैं, विरोधी हैं तो केवल आजकलकी शिक्षाप्रणालीके। क्यों कि उसके द्वारा शिक्षा प्राप्त करनेमें हमें जितना अर्थव्यय करना और कष्ट उठाना पड़ता है उतना लाभ नहीं होता। इसीसे हम उच्च शिक्षा प्राप्त करानेमें प्रमादी बन रहे हैं और यही कारण है कि हम, अपनी उदासीनताके इस वास्तविक कारणको ठीक तौर पर न जतला सकनेकी वजहसे, शिक्षाकी चर्चा छिड़ते ही 'मौनी बाबा' बन जाते हैं।

जिस समय शिक्षाका अभाव कह कर समाजमें शिक्षाप्रचारके लिये आन्दोलन जारी किया गया था उस समय लोगोंको यही सूझी थी कि जहाँ तहाँ संस्थाएँ खुलनेसे शिक्षाका प्रचार हो जायगा। उनकी इस भोली समझने ही उन्हें आज इस परमोपकारी कार्यसे उदासीन बना दिया है। वे बेचारे तो संस्थाओंकी पठन-प्रणाली रचने और उनके प्रबंध करनेका भार पंडितोंपर रखकर इस आशासे निश्चिन्त हो गये कि ये लोग हमारी आवश्यकताओंको अवश्य दूर करेंगे, परंतु उनकी वह आशा सफलीभूत नहीं हुई। पंडितोंने जिस पाठ्यप्रणालीका आश्रय लिया वह उस समाजकी थी जिसके यहाँ पठन, पाठन, यज्ञ, हवन आदि धार्मिक कृत्य करने तथा वादविवादमें पांडित्य प्रकट करने योग्य ज्ञान प्राप्त कर लेनेसे ही जीवकी जीविका चलती और अंतमें जीवका उद्धार होना माना जाता है। साथ ही, इन कृत्योंके करनेपर ही उस समाजके व्यक्तियोंकी प्रतिष्ठा होती है। परंतु हमारी समाजमें यह बात नहीं है। हम लोग भगवानकी पूजा स्वयं करते हैं, भगवानके निकट अपनी प्रार्थना किसी दूसरे व्यक्तिके द्वारा पहुँचाना अच्छा नहीं समझते, बल्कि धार्मिक कृत्योंको मिहनताना लेकर करनेवाले सजातीय भाईयोंको घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं। हमारे यहाँ तो प्रायः मुनि और गृहत्यागी श्रावक ही गृहस्थोंसे भोजन, शास्त्र तथा पिच्छी आदि ग्रहण करनेके अधिकारी हैं। यही कारण है कि ब्राह्मणोंकी पद्धतिका अनुकरण करनेवाले हमारे पंडितजन इन संस्थाओंसे समाजको संतोषित करनेमें विफल हुए हैं। परंतु अब इन लोगोंको अपने कामकी समालोचना करनेमें प्रमादी न होना चाहिये, अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है।

कला बहत्तर पुरुषकी, तामें दो सरदार।
एक जीवकी जीविका, दूजी जीव उद्धार॥

जबतक नीतिके इस दोहेपर ध्यान देकर काम न किया जायगा तबतक जातिमें शिक्षाका प्रचार होना असम्भव है। उसे आजकलके विद्यालयोंमें धार्मिक शिक्षाके साथ व्यावहारिक शिक्षाका प्रबंध करना होगा और अपनी ज्ञानप्रसार चाहनेवाली इच्छाको पूर्ण करनेके लिये ऐसे मिडिलस्कूल (पाठशाला), हाईस्कूल (विद्यालय), कालेज (महाविद्यालय) खोलने पड़ेंगे जिनमें जीविकाके साधनोंकी शिक्षा प्रधानतः देशभाषामें दी जाय। प्राचीन जैनसाहित्यके जाननेके लिये प्राकृत, संस्कृतादि भाषाएँ और शासकों तथा विदेशीव्यापारियोंसे व्यवहार करनेके लिये अँगरेजीभाषा सीखनेकी भी आवश्यकता है परंतु वह उतने ही अंशमें, जितनेसे दूसरेके भाव समझ सकें और अपने दूसरों पर प्रकट कर सकें।

वर्तमानमें जैनियोंकी जितनी शिक्षा संस्थाएँ हैं वे सब स्वतंत्र हैं और अपनी अपनी ढफली अपना अपना राग आलापनेमें मस्त हैं। उनके प्रबंधक और कार्यकर्त्ता अपनी अपनी संस्थाकी पढ़ाई और व्यवस्थाकी सदैव प्रशंसा ही किया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करते हैं। यदि कभी किसीके कहनेसे उन्हें संस्थामें किसी प्रकारकी त्रुटि स्वीकार करनी पड़ती है तो उसका कारण वे धनाभाव बतलाकर दोषमुक्त हो जाते हैं। इन संस्थाओंमें पारस्परिक सम्बन्ध न होनेसे एक बड़ी हानि यह हो रही है कि इनमें काम करनेके लिये योग्य व्यक्ति व पढ़नेके लिये योग्य छात्र नहीं मिलते। कहीं कहीं तो साल भरमें तीन तीन चार चार पाठकोंका परिवर्तन हो जाता है। पाठ्य ग्रन्थोंका यह हाल है कि शालाके प्रारम्भसे जारी हुए ग्रंथ हानिलाभ पर ध्यान दिये बिना अबतक पढ़ाये जा रहे हैं और कहीं कहीं सालमें एक ही विषयके तीन तीन ग्रंथोंका परिवर्तन हो जाता है। प्रबंधका विचित्र ही हाल है। शुद्धाम्नायियोंकी विशुद्ध संस्थाओंकी प्रबंधकारिणी सभाओंमें अजैनोंका चुनाव ही नहीं होता; यदि भूलसे किसी अभागिनी संस्थामें हो भी जावे तो लोग उसकी सम्मतिमात्र सुनते हैं, उसके अनुकूल कार्य करनेमें उन्हें सदैव संस्थाके मिथ्यात्विनी बननेका डर लगा रहता है। अजैन पंचने पाठ्य ग्रंथ, प्रबंध, पाठककी नियुक्ति, पृथक्त्व आदिके विषयमें कितनी ही अच्छी सलाह क्यों न दी हो, वह अपनी सम्मतिके अनुकूल निःस्वार्थ भावसे काम करनेको कितना ही तैयार क्यों न हो जावे, परंतु अजैनोंको मिथ्यात्वकी ही मूर्ति समझनेवाले हमारे जैनीभाई अपने इस पंचकी बात पर चलनेका साहस नहीं कर सकते। "समय क्या बतला रहा है, हमारे पड़ोसी अपनी अपनी उन्नतिके लिये क्या क्या कर रहे हैं, उन्नतिपथमें दूसरी जातियों तथा धर्मोंवाले हमसे कितने आगे बढ़ रहे हैं" इन बातोंको अव्वल तो, सबेरेसे आधी राततक व्यापार धंधोंमें फँस रहनेके कारण, हमें जाननेकी फुरसत ही नहीं मिलती, दूसरे हमें सदैव अपनेको साधुओंके स्थानापन्न माननेवालोंके मुँहसे यही उपदेश सुननेको मिलते हैं कि "भाई मिथ्यात्वियोंकी बातोंमें क्या धरा है, अपनेसे जो बने सो करो, इस पंचम कालमें उन्नतिकी आशा करना व्यर्थ है।" आदि अपने गुरुओंके ऐसे वचनामृतोंसे हमारी हार्दिक संकीर्णता सदैव बलवती बनी रहती है। अभी बहुत दिन नहीं हुए कि एक पाठशालामें व्यापारिक शिक्षा दिलानेके पक्षपाती अजैन पंचकी सम्मति मानकर कार्य करनेकी तैयारी देख हमारे एक बाबाजीको यह चिंता हो गई थी कि कहीं ऐसा न हो कि ऐसी सलाह देनेवाले महाशयके फेरमें पड़कर गरीबिनी पाठशालाके माथे जैनपाठशालाके बदले महाजनी पाठशालाके कुनामका धब्बा लग जावे। इसी आशंकासे शंकित हो आपने खूब उछल कूद मचाई, जिससे फल वही हुआ जो होना चाहिये था, अर्थात् अजैन पंचोंने उस पाठशालाके काममें योग देना बंद कर दिया और पाठशाला उनकी संगतिसे बढ़नेवाले परिग्रहके पापसे बच गई!

हमारी रायमें समाजको अब अपने इन कुसंस्कारोंको दूर कर देना चाहिये।

उसे अपने धनिक भाईयोंकी सम्पत्तिके रक्षणार्थ और निर्धनोंकी सुखसाध्य जीविका बनानेके लिये व्यापारिक विद्यालय खोलनेमें विलम्ब न करना चाहिये। देशमें निर्धनताकी बाढ़ जोरों पर है, महँगाई मुँह फाड़े गरीबोंकी ओर बढ़ रही है, जैनसमाजमें गरीबोंकी संख्या भी कम नहीं है, इससे अब शिक्षाकार्यको बड़ी सावधानताके साथ चलानेका समय है। दुःखकी बात है कि अपने धनिक भाईयोंके यहाँ मुनीम मुख्तारगारीके सैकड़ों स्थान खाली होने पर भी इन पदों पर काम करनेकी योग्यता न रखनेसे तथा नाना प्रकारके व्यापारोंको देखते हुए भी उद्योगधंधोंके ज्ञानसे शून्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होनेके कारण हजारों जैनी बंजी और मजदूरी सरीखे घोर परिश्रमसाध्य पेशोंको कर रहे हैं; परंतु तो भी इनका "नौ खाये तेरहकी भूख" से नाता नहीं टूटता। ये समाजके तीन चौथाई भागको दबाये बैठे हैं। इनकी उन्नतिसे ही समाजकी उन्नति है। धनिक भागसे इनका घनिष्ठ सम्बंध है, इस कारण डर है कि कहीं द्रव्योपार्जनके साधनों और शक्तिके अभावमें ये गरीब शाखामृग बने रहकर अपने धनी सम्बन्धियोंके सम्पत्ति-बागको चट न कर जावें। कहावत है कि "सूखा ईंधन गीलेको लेकर जल जाता है।" धनिक कहाँ तक हाथ सिकोड़ेंगे? देनेकी इच्छा तथा सामर्थ्य न होते भी दया और लोकलाजके दबावसे दबने पर कुछ न कुछ देना ही पड़ेगा। इससे श्रीमानोंको चाहिये कि शीघ्र समयोपयोगी शिक्षासंस्थाएँ स्थापित करें और विद्वानोंको चाहिये कि शास्त्री और ग्रेजुएटोंके बनानेकी धुनको कम करके इन गरीबोंको व्यापारिक (औद्योगिक) शिक्षा देनेका शीघ्र प्रबंध करें।

संस्थाओंसे सम्यक् फल प्राप्त करनेके लिये उनकी व्यवस्था और पाठ्यप्रणालीको सम्यक् बनाना आवश्यक है। व्यवस्थाके लिये शिक्षा-पद्धतिके ज्ञाता, चतुर, उद्योगी और समयानुकूल व्यवहार करनेवाले अध्यापकोंकी खोज होनी चाहिये, और संस्थाको ऐसे पंचोंके हाथोंमें सौंपनेकी जरूरत है जो उन अध्यापकोंके कार्योंका भले प्रकार निरीक्षण करने और उन्हें समय समय पर निर्दिष्ट तथा यथोचित सहायता देनेके लिये तैय्यार हों। विना ऐसा किये अब काम नहीं चलेगा। आवश्यकीय विषयोंका निर्धार कर उनपर विद्वानोंद्वारा ग्रंथ लिखवानेसे ग्रंथोंका अभाव दूर हो सकता है।

और प्रान्तोंकी अपेक्षा बुंदेलखंड और मध्यप्रांत शिक्षामें बहुत पीछे हैं। यहाँ अक्षर और अंक ज्ञानवाले जैनी भाई सैकड़े पीछे २०-२५ भले ही मिल जावें, परंतु जिन्हें सभ्य समाज शिक्षित कह सके ऐसे व्यक्ति सैकड़ेमें एक दो ही मिलेंगे। इन्हीं दोनों प्रांतोंमें परवार, गोलापूरव, गोलालारे भाइयोंका बहुतायतसे निवास है। इससे परवार महासभा अथवा मध्यप्रांत बुंदेलखंड प्रांतिक सभाको अधिक नहीं तो, एक ऐसे विद्यालयकी स्थापना अवश्य करनी चाहिये जिससे पाठशालाओं और विद्यालयोंमें काम करनेके लिये अध्यापक तैयार होवें, तथा व्यापारी और व्यापारियोंके यहाँ काम करनेवाले मुनीम मुख्तार भी तैयार होवें। यद्यपि ऐसे विद्यालयको स्थापित करना और उससे इच्छित फल पानेके लिये उसे भली भाँति चलाना कष्टसाध्य कार्य है, तथापि वह असाध्य नहीं है। हमारे धनिक बंधुओंके दिलमें यदि आ जाय तो वे आर्थिक सहायता देकर सहजहीमें इसे स्थापित कर सकते हैं और विद्वान् भाई अपने मित्र अजैन विद्वानोंकी सहायता लेकर उसे सहजमें चला सकते हैं। अब समय बदल गया है। लोग धार्मिक उत्सवोंमें भिन्नधर्मावलम्बियोंको, मिथ्यात्वी नास्तिक आदि कहकर, बुलाने और सम्मति लेनेके विरोधी भाइयोंको तुच्छ दृष्टिसे देखने लगे हैं। फिर शिक्षा सरीखे व्यावहारिक और आवश्यकीय कार्यमें अपने अनुभवी, शिक्षातत्त्वज्ञ अजैन बंधुओंकी सम्मति और सहायतासे वंचित रहना यह कौनसी अक्लमंदी है? अतः इस प्रस्तावित औद्योगिक विद्यालयकी प्रबंधकारिणी सभामें ऐसे ही व्यक्तियोंको नियत करना चाहिये जो समाजकी स्थिति और सामायिक बातोंके जानकार होनेके सिवाय उद्योगी और शिक्षातत्त्वज्ञ हों, चाहे वे जैन हों या अजैन।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुस्तकालयोंकी सहायता।

(ले०–गुलाबचंद जैनवैद्य, अमरावती ।)

"सार्वजनिक पुस्तकालय जनसमुदायके विश्वविद्यालय हैं।"

वास्तवमें देखा जाय तो जितना लाभ पुस्तकालयों द्वारा हो सकता है, उतना अन्य संस्थाओं द्वारा नहीं हो सकता। अन्य विद्यासंस्थाओंसे शिक्षा केवल विद्यार्थियोंको ही मिलती है दूसरोंको नहीं। परंतु पुस्तकालयोंसे समाजकी प्रायः सभी व्यक्तियोंको शिक्षा मिला करती है। पुस्तकालयके द्वारा बच्चोंसे लगाकर वृद्ध अवस्थातकके सभी स्त्री पुरुष समरूपमें अपनी इच्छानुसार ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। संसारमें ज्ञानप्राप्तिका सर्वश्रेष्ठ और सहज उपाय पुस्तकालय ही है। पुस्तकालयोंके समान उदारतापूर्वक ज्ञानामृतकी वर्षा करनेवाला दूसरा कोई भी उपाय इस समय नहीं है। जिस देश, समाज और जातिमें पुस्तकालयोंका आदर है, जहाँपर असंख्य पुस्तकालय विद्यमान हैं और जहाँके कार्नेगी सरीखे महा धनकुबेर अपनी अटूट संपत्तिको रूढ़ियोंके प्रवाहमें न बहाकर समयोपयोगी आवश्यकीय कार्योंमें दान करते हैं, वह अमेरिका देश, वहाँका समाज और जाति कैसे अज्ञ और धनहीन रह सकती है? नहीं कदापि नहीं। 'सार्वजनिक पुस्तकालय मनुष्यसमाजके धर्ममंदिरोंसे बढ़कर हैं,' 'सार्वजनिक पुस्तकालय मानव समुदायके विश्वविद्यालय हैं,' ऐसी जहाँके देशवासियोंकी मनोभावनाएँ हैं, फिर वह देश कला, कौशल्य, विज्ञानादिका महान् केंद्र तथा धनवैभवसंपन्न रहा, तो इसमें क्या आश्चर्य है। जिस समय हमारे भारतवर्षमें तथा हमारे जैनसमाजमें इसी प्रकारकी उच्च भावनाएँ थीं उससमय हमारे धार्मिक और लौकिक वैभवको देखकर अन्य धर्म और देश मारे लज्जाके नतमस्तक दिखाई देते थे। लेकिन दुःखकी बात है, कि कुछ शताब्दियोंसे हमारा जैनसमाज ग्रंथालयोंके महत्त्वको बिलकुल भूल गया। इसीसे ऐसी हीन और शोचनीय दशा हो गई।

हमारे प्राचीन जैन महर्षियोंने दशधर्मके स्वरूपमें चार प्रकारका त्याग (दान) बतलाया है, उसमें शास्त्रदान भी है। इस शास्त्रदानमें तीनों (आहार, औषध और अभय) दान गर्भित हो जाते हैं। अनेक विद्वान् शास्त्रदानको विद्यादानमें गर्भित कर विद्यादानकी ही महिमा गाते हैं। समाजमें विद्याका अभाव देखकर उनका आलाप एक प्रकारसे उचित भी है। किन्तु वास्तवमें शास्त्रदानका अर्थ शास्त्रालयोंका निर्म्माण करना है। ग्रंथालयोंके द्वारा धर्मका प्रचार और सामाजिक उन्नति बहुत कुछ हो सकती है। इसी लिए हमारे पूर्वज जिनमंदिरोंके साथ साथ ग्रंथसंग्रहालय (शास्त्रभंडार) स्थापित करते आए हैं। परन्तु खेद है कि हमारे ही जैनसमाज पर विशेष कर परिवार जाति पर रूढ़ियोंका, भेड़ियाधसान बुद्धिके अंधेरका और मानकषायका इतना आक्रमण हुआ है कि उसके द्वारा समाजका सत्त्व नष्ट हो गया। रूढ़ियोंने उसे अपना दास बना लिया, भेड़ियाधसान बुद्धिने समाजमें अपना आडंबर फैलाया और इसी आडंबरके द्वारा मानकषाय प्रज्वलित हो गई। इन त्रिकूटोंके एकत्र होनेसे धड़ाधड़ मंदिरोंपर मंदिर बनने लगे। फिर किसीका लक्ष्य शास्त्रोद्धारकी तरफ नहीं गया। इन त्रिकूटोंके आक्रमणसे मंदिर बनवाने और रथ चलानेका उद्देश भ्रष्ट होता गया। यहाँतक कि जहाँपर अनेक मंदिर होनेके कारण नये मंदिरोंकी किंचित् भी आवश्यकता नहीं थी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Narja, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वहाँपर अनेक और भी नये नये मंदिर तैयार हो गये, जिनमें पूजा तक नहीं होती। तीर्थोंके अतिरिक्त कहीं कहीं पर इतने मंदिर हैं जितने कि वहाँपर जैनियोंके घर भी नहीं हैं। इतने पर भी प्रत्येक मंदिरमें बहुसंख्यक प्रतिमाएँ हैं जिनकी सँभालतक नहीं होती। पुराने जीर्ण-शीर्ण मंदिर नष्ट भले ही हो जावें, पर हमारी जातिके धनिक सज्जन, और पंचायतियोंके मुखिया अपने द्रव्यका व्यय घरके कार्योंमें अर्थात् संतानोंकी ब्याह सगाईमें, वेश्याओंके नाच मुजरोंमें करते हैं और या धार्मिक दृष्टिसे नये मंदिर बनवाकर रथप्रतिष्ठा आदिमें करते हैं। रूढ़ि, भेडियाधसान बुद्धि और मानकषाय इन त्रिकूटोंके कारण पदवियोंके लिये, अथवा बुढ़ापेमें ब्याह शादी करके संतानोत्पादनके लिये हमारे धनिक और मुखिया लोग इतने लालायित रहते हैं, कि मेरे पास उसके लिखनेके लिये शब्द नहीं हैं। सिंघई बनना मानों इंद्रका सिंहासन प्राप्त करना है। जो विशेष श्रीमान् हैं उनकी इच्छा केवल सिंघई पदवीसे ही तृप्त नहीं होती, किन्तु वे उत्तरोत्तर और भी विशेष पदवियोंकी आकांक्षा रखते हुए सिंघईसे सवाईसिंघई, सेठ, सवाई सेठ, श्रीमंत सेठ और महा महा श्रीमंत सेठ बननेके लिये लालायित रहते हैं। इन्हीं मंदिरोंकी अधिकताको देखकर 'बऱ्हाड़-शालापत्रक' के संपादकने "जैनपंथाची माहिती" शीर्षक लेखमें इधर उधरकी बातें लिख कर जैनियोंके कार्यकी विवेचना करते हुए मंदिरोंके निर्माणरूपी एक बड़ेभारी कार्यका दिग्दर्शन कराया है। उन्होंने लिखा है "जैनियोंका आज तकका कर्त्तव्य कर्म मंदिरोंके निर्माण करनेका ही रहा है।" आप लोगोंको शायद इस परसे स्वाभिमान उत्पन्न हो, पर स्वाभिमानकी बात नहीं, यह हृदयभेदक कटाक्ष है। कटाक्ष न भी हो तो क्या यही हमारे कर्त्तव्यकी परम सीमा है? हमको लज्जा आनी चाहिए कि अन्य लोग हमारा कार्य केवल मंदिरनिर्माण करनेका ही बतलाते हैं! हमारे पास इसका उत्तर भी क्या है? यदि हमने कोई अन्य आर्थिक महत्कार्य किया होता, सार्वजनिक हितका कार्य स्थापित किया होता, या किसी सार्वजनिक कार्योंमें योग दिया होता तो आज हमें यह आक्षेप न सुनना पड़ता। हमारी कौमके मुखिया और धनिक लोगोंकी दातृत्वलालसाका श्रेय इन त्रिकूटोंको ही मिलना चाहिये। इसी लिये ये लोग न तो समयकी आवश्यकताको जानते है और न द्रव्यका उपयोग करना ही इन्हें आता है। ये तो केवल इन त्रिकूटोंके शिकार बन गये हैं। ये बातें कुछ वर्ष पहलेकी हैं। वर्तमानसमयका प्रवाह पहलेके समान जोरों पर नहीं है, तब भी प्रतिवर्ष दो चार नये मंदिरोंके निर्माणके साथ साथ रथप्रतिष्ठाएँ भी होती ही रहती हैं। अब भी हम लोग नहीं चेतते। यद्यपि नये मंदिर बनाना कम हो गया है, तथापि उसके बदलेमें लोग मंदिरोंकी मीनाकारी आदि अनेक सजावटके कार्योंमें बेहद रुपया खर्च करते रहते हैं। इन्हीं कार्योंके सबबसे हमारी वर्तमान संस्थाएँ जर्जरित अवस्थामें अपना जीवन व्यतीत कर रही हैं। हमारी परंपरागत रूढ़ियों, भेड़ियाधसान बुद्धि और मान कषायके कुसंस्कार जैनसमाजके धनिकोंको अपने कर्तव्यपथ पर आरूढ़ नहीं होने देते। यदि ऐसी ही अवस्था बराबर बनी रही तो भविष्यत्में वर्तमानकी अनेक संस्थाएँ मृत्युमुखमें पतित हुए विना न रहेंगी और समाजको उन्नतिके बदलेमें हानि ही उठानी होगी।

वर्तमानमें जितनी प्रसिद्ध जैनसंस्थाएँ हैं उनका उद्देश विद्यार्थियोंको धार्मिक और लौकिक शिक्षा देनेका है। वे अपने उद्देश्यकी पूर्ति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनेक अंशोंमें कर भी रही हैं, परन्तु जबतक समाजमें बच्चोंसे लगाकर वृद्ध अवस्थातकके सभी स्त्रीपुरुष शिक्षित न होंगे तब तक उन्नति होना एक बड़ा ही विकट कार्य है। अभी हमारे समाजमें ऐसे बहुसंख्यक स्त्रीपुरुष विद्यमान हैं जिन्हें एक अक्षर भी पढ़ना लिखना नहीं आता। अब बतलाइये, ऐसी अवस्थामें, वे कहाँतक अपनी संतानोंको शिक्षित बनानेके विचार रखते होंगे। हमारे हुल्लड़ मचानेसे भले ही कुछ बालक स्कूलोंकी प्रवेश कक्षाओंतक पढ़ा लिये जायँ, पर इतनेसे ही विद्यार्थी शिक्षित नहीं हो सकते। शिक्षाके लिये योग्य आचरण और बुद्धिके विकासकी आवश्यकता है और इसकी पूर्ति विना मातापिताके सुशिक्षित हुए कदापि हो नहीं सकती। इन सब त्रुटियोंको दूर करने और समाजके प्रत्येक स्त्रीपुरुषको शिक्षित बनानेके लिये ग्राम ग्राम तथा नगर नगरमें **नूतन ढंगके सार्वजनिक जैनपुस्तकालयों-की और प्रान्तप्रान्तमें एक बृहत् ऐति-हासिक ग्रंथसंग्रहालयकी बहुत बड़ी आवश्यकता है।**

अमेरिकाके एक श्रीमानकी इच्छा कोई भारी रकम अपने निवासस्थानके पुस्तकालयको दान करनेकी हुई। उसके सलाहकारोंने उसके दिलमें अनेक संशय पैदा कर दिये। उन्होंने अनेक संस्थाएँ बतलाईं। किसीने कहा अस्पतालमें दान करो—अर्थात् औषधदान दो, किसीने कहा देवालय बनवा दो; कोई कहने लगा अनाथालयको क्यों नहीं देते जिसमें आहार और अभयदानादि अनेक लोकोपकारी कार्य शामिल हैं, कुछ लोगोंने पूछा कि यंगमेन्स क्रिश्चियन एसोसिएशन आदि अनेक दानपात्र संस्थाओंके होने पर भी केवल पुस्तकालयको आप क्यों दान देते हो? इसप्रकारके अनेक प्रश्न उसके मित्र और सलाहकार करते थे और उसे समझाते थे। परन्तु उसने एककी भी न मानी और उपर्युक्त नाना प्रकारकी शंकाओंसे परिपूर्ण एक पत्र न्यूयार्क-पुस्तकालयविभागको लिखा और पूछा कि पुस्तकालयको दान करना कहाँतक आवश्यक और उपयुक्त है? उसके पत्रका समाधानकारक उत्तर 'न्यूयार्क लायब्रेरीज' नामके मासिकपत्रके संपादकने पुस्तकालय-विभागकी तरफसे निम्न प्रकार दिया है। इसी प्रकारके संदेह अनेक लोगोंके मनमें बारबार उठा करते हैं। यह जानकर संपादक महोदयने इस उत्तरको सर्वसाधारणरूप दिया है और यह संपूर्ण उत्तर पाठकोंके लिये 'लायब्रेरी मिसेलेनी' से यहाँ उद्धृत किया जाता है,—

संपादक महोदय लिखते हैं, कि किस प्रकारके सार्वजनिक कार्यको सहायता करना चाहिए; इसका दृढ निश्चय करनेके लिये प्रत्येक कार्यके भले बुरे स्वरूपका भलीभाँति अवलोकन करनेका हक दातारोंको है। उसमें अन्य लोगोंको अपने स्वयं स्थिर किये मत बिलकुल सत्य हैं ऐसा कहनेका यद्यपि अधिकार नहीं है, तथापि "पुस्तकालयकी ही सहायता करें" यह जो हम आग्रह करते हैं, उसमें जितनी उपयुक्तता है वही दिखानेका हमारा विचार है। वह युक्तिवाद इस प्रकार है—

१—प्रथम यह ध्यानमें रखना चाहिए कि पुस्तकोंके द्वारा मनके भीतर जो विचार, जितनी जितनी भावनाएँ और जिस जिस प्रकारके ध्येय होते हैं, उनके योगसे मनुष्यजीवनमें परिवर्तन होते हुए, एक प्रकारकी जीवनशक्तिका संचार और मानव-जीवनका जो विकास होता है वैसा प्रत्यक्ष और स्थिर रहनेवाला परिणाम अन्य किसी कार्यके द्वारा नहीं होता। प्रत्यक्ष धर्मोंका अस्तित्व भी बायबल, कुराण, वेद आदि धार्मिक ग्रंथों द्वारा ही है। मनुष्य जीवनका जितना भला या

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बुरा संचालन होना संभव है वह ग्रंथों द्वारा जितना सहजसाध्य होता है उतना अन्य किसी द्वारा नहीं बन सकता । जीवित और स्फूर्तिदायक ग्रंथसंग्रहालयमें जैसी शक्ति और सामर्थ्य है वैसी भला अन्य किस संस्थामें है ?

२—'धर्मादाय' विभागमें आनेवाली जितनी संस्थाएँ हैं उनमें पुस्तकालयही एक ऐसी संस्था है जिसके सम्बंधमें मि० कार्नेगी सरीखे महा दानवीर पुरुषने कहा है "यह किसीको कुछ भी मुफ्त नहीं देती और न भिखारी बनाती है।" दान करना एक बड़ा बिकट और धोखेका कार्य है। किसीका भी सांपत्तिक कल्याण किया जाता है तो उसकी स्वतंत्रता, आत्मविश्वास, उपकार बुद्धि आदि गुण कुछ कुछ परिमाणमें तो अवश्य ही हुए विना नहीं रहते; और इन सब गुणोंका मूल्य मिले हुए दानकी अपेक्षा बहुत अधिक होनेके कारण वे गुण उससे न छुड़ाकर उसका कल्याण करना महा विकटसे विकट है। अस्पताल, यंगमेन्स क्रिश्चियन एसोसिएशन, अनाथालय आदि संस्थाओंके कारण ऐसे गुणोंके अपहरण होनेका बारबार भय रहता है। पर सार्वजनिक पुस्तकालय लोगोंको जो कुछ अमूल्य निधि अर्पण करता है उसकी प्राप्तिके लिये लोगोंको जितनी मानसिक शक्ति और शारीरिक श्रमका व्यय करना पड़ता है, उसीके मानसे वह निधि उनको श्रीमान् बनाती है। पुस्तकालय अपना भंडार ऐसे ही व्यक्तियोंको खोलकर देता है जो उसे अपनानेका परिश्रम करते हैं। इस लिये सब धार्मिक दानोंमें पुस्तकालय (शास्त्रदान) का हक अद्वितीय और अशंकनीय है, ऐसा ही कहना उचित है। कार्नेगीने जो कहा है कि "सब लोगोंके लिये मुफ्त खुले हुए सार्वजनिक पुस्तकालय मुफ्त कुछ भी नहीं देते, किन्तु प्रत्येक वाचक वृंदको स्वयं अपने ज्ञानसोपान पर चढ़ना पड़ता है और चढ़ते समय इसबातका ज्ञान प्राप्त करना होता है कि अपने इस जीवनको अच्छा किसप्रकारसे बनाया जाय" यह बिलकुल सत्य है।

३—'सार्वजनिक पुस्तकालय' समाजकी ऐसी एक ही संस्था है कि जिसका द्वार सदा मुफ्त रहता है और जो लोगोंको सर्व समयोंमें कुछ न कुछ देती ही है। हृष्टपुष्ट और निर्बलको, श्रीमानों तथा गरीबोंको, वृद्धों और युवकोंको, जगतकी आवश्यकताओंको खोज करनेवालों और जगत्के बन्धनोंसे मुक्त होनेवालोंको समान भावसे देखनेवाली ऐसी पुस्तकालय ही एक संस्था है। संपूर्ण समाजको समृद्ध बनानेवाले केवल पुस्तकालय ही हैं। अन्य धार्मिक संस्थाओंके उद्देश कुछ ही लोगोंको लाभ पहुँचानेवाले होते हैं, परन्तु पुस्तकालय बहुतों क्या, सभी लोगोंको लाभ पहुँचाते हैं।

४—किसी भी नगर या ग्राममें एकता और प्रेम बढ़ानेवाला सार्वजनिक पुस्तकालयके समान अन्य दूसरा प्रबल साधन नहीं है। दूसरी संस्थाओंके कारण समाजमें भेद और पंथ उपस्थित होते हैं, अनेक समाजों तथा जातियोंमें तड़ (धड़े) पड़ जाते हैं। समाजमें एकमत और एक विचार होनेके मार्गमें वे संस्थाएँ बाधक हो बैठती हैं। पर सार्वजनिक पुस्तकालय पर समाजकी सर्व जातियोंका चाहे उनमें परस्परमें कितना ही मतभेद, आदि क्यों न हो, समान प्रेम रहता है। किसी भी समाजमें सामाजिक केन्द्र बननेके लिए सार्वजनिक पुस्तकालय नामकी संस्था सब प्रकारसे योग्य है।

५—सार्वजनिक पुस्तकालयोंमें जो खर्च होता है वह उनके द्वारा प्राप्त हुए नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक हितके कारण ही नहीं किन्तु उनके द्वारा होनेवाले प्रत्यक्ष सांपत्तिक लाभोंके कारण भी उचित समझा जाना चाहिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्य धार्मिक संस्थाओं द्वारा यद्यपि नैतिक और सामाजिक लाभ होते हैं, तथापि आर्थिक दृष्टिसे सांपत्तिक हानि ही होती है। सार्वजनिक पुस्तकालयों द्वारा नैतिक और उसी प्रकार सांपत्तिक भी लाभ होता है; क्योंकि जिन जिन लोगोंको पुस्तकोंकी, खबरोंकी, या अन्य किसी वस्तुके प्राप्तिस्थलके ज्ञानकी आवश्यकता होती है तो वे सब पुस्तकें या जरूरी बातें मुफ्तमें मिलनेके कारण उन लोगोंके उतने पैसे बचते हैं और उन पैसोंको वे लोग अपने घरके जरूरी कामोंमें खर्च कर सकते हैं।

६—सर्व साधनोंसे युक्त और सुव्यवस्थितरूपसे चलनेवाले पुस्तकालय सब जगह होनेसे अन्य प्रकारकी धार्मिक संस्थाओंकी जरूरत बहुत कम हो जाती है। जिस समाजको किसी भी प्रकारके धर्मादायकी जरूरत नहीं वही समाज आदर्शभूत है। जिस समाजमें सार्वजनिक धर्मादाय प्रचलित रहते हैं उस समाजकी रचनामें अनेक त्रुटियाँ हैं, ऐसा पर्यायसे कुबूल करना पड़ता है और उन त्रुटियोंको दूर करनेके लिये ही धर्मादायोंका (दान करनेका) अस्तित्व हुआ। पुस्तकालयोंके द्वारा जो अच्छे विचार, जो बौद्धिकस्फूर्ति, उद्योग व्यापारादिमें जो प्रवीणता वगैरह प्राप्त होती हैं उनके द्वारा मनुष्यजीवन ऐसा समृद्धिवान् होता है, कि लोगोंको सामुदायिक धर्मादाय पर (आहार, औषध और अभयादि दानोंपर) अवलंबित रहनेका प्रसंग दिन पर दिन कम होता जाता है। कुछ परिमाणसे यह कार्य सचमुच ही सार्वजनिक पुस्तकालय कर रहे हैं। लॉर्ड ॲव्हबरीने एक जगह कहा है कि "किसी भी समाजको पुस्तकालयों पर जो खर्च करना पड़ता है, वह दरिद्रता और उसके द्वारा होनेवाले अपराधोंका परिमाण कम होनेसे समाजको व्याजसहित वापिस मिल जाता है।"

७—अंतमें समाजकी अन्य संस्थाओंके सुव्यवस्थित रूपसे चलने और उनके द्वारा श्रेष्ट लाभकी प्राप्तिके लिये पुस्तकालयोंकी बड़ीभारी आवश्यकता हुआ करती है। कोई भी पाठशाला, विद्यालय, महाविद्यालय, औद्योगिक संस्था, देवालय, समाजसेवासंघ अर्थात् सभा सुसाइटियाँ मंडल वगैरह अंतर्राष्ट्रीय धर्मादायके कार्य इन सबको अपने अपने उद्देशकी योग्य रीतिसे पूर्ति करनेके लिये और उसमें कौशल्य तथा प्रवीणता संपादन करनेके लिये अच्छे अच्छे ग्रंथसंग्रहालयोंकी ही सहायता लेनी पड़ती है। विना ग्रंथसंग्रहालयकी सहायताके अन्य संस्थाओंका कार्य भली भाँति परिपूर्ण नहीं होने पाता।

इस युक्तिवादको पढ़नेसे प्रत्येक मनुष्यको विश्वास हो जायगा कि पुस्तकालय स्थापन करने और उनकी सहायता करनेसे अन्य सब सब धार्मिक कार्योंमें नूतन सामर्थ्य और कर्तृत्व पैदा करनेके समान समाजकी प्रत्येक अच्छी संस्थाको अधिक अच्छी और अधिक संपन्न करना है।

क्या हमारी जैनकौमके नेता, श्रीमान् और समाजकी सभा सुसाइटियोंके सदस्य जैन पुस्तकालय स्थापित करेंगे? बन्धुओ, अब इन रूढ़ि आदि त्रिकुटोंका सत्यानाश करो जिन्होंने तुम्हारे सत्य धर्मके प्रचारमें रोड़ा अटका रक्खा है और सामाजिक उन्नतिके मार्गसे तुम्हें नीचे ढकेल दिया है। प्रत्येक नगर और ग्राममें अपने पुस्तकालय खोल दो और सबके लिये उनका द्वार मुक्त कर दो। उन्हीं पुस्तकालयोंमें एक एक रात्रिशालाका भी विभाग रख दो जिसमें लोगोंको पुस्तकें पढ़नेको दी जायँ और साधारण लिखना पढ़ना सिखलाया जाय। बड़े बड़े नगरोंमें पुस्तकालयके साथ साथ एक ऐसा औद्योगिक विभाग भी होना चाहिये, जिसमें समाजके नव युवक शिक्षा प्राप्त कर अपनी आजीविकासे वंचित न रह सकें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सबसे पहले एक विराट् पुस्तकालय हो जिसमें प्राचीन हस्तलिखित शास्त्रोंका संग्रह-विभाग, छपे हुए शास्त्रोंका और अन्यान्य हिन्दी तथा प्रांतिक भाषाओंके उत्तमोत्तम साहित्यका संग्रह-विभाग, ऐतिहासिक खोज और उसका संग्रह-विभाग, स्त्रीशिक्षा और बालशिक्षोपयोगी पुस्तक-विभाग, औद्योगिक और वैद्यकोपयोगी ग्रंथसंग्रह-विभाग वगैरह रहें, तथा प्रसिद्ध प्रसिद्ध दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, द्वैमासिक और त्रैमासिक आदि पत्र आते रहें। इसी पुस्तकालयका एक ऐसा विभाग रहे जिसके द्वारा समाजके प्रत्येक व्यक्ति इसके सभासद बनकर अपने अपने स्थलों पर इस पुस्तकालयसे पुस्तकें मँगाकर नियत समय तक पढ़ सकें और पढ़नेके बाद वापिस भेज दें। इसके लिये चाहे डिपाजिट और पोष्ट-खर्च सभासदोंसे ले लिया जावे। दूसरे एक ऐसा विभाग रक्खा जाय कि प्रत्येक सभाके उपदेशक जो जगह जगह घूमते हैं उन्हें उपयुक्त पुस्तकोंका एक एक बक्स तैयार करके दे दिया जाय। जहाँ वे जावें वहाँके लोगोंको पुस्तकें विना किसी अपेक्षाके नियत समयके नियमानुसार पढ़नेके लिये दिया करें। दूसरी जगह जानेपर वे पुस्तकें पढ़नेवालोंसे माँगकर पुस्तकालयकी सहायताके लिये अर्पील करें। इस प्रकारसे अभी थोड़ा बहुत काम चल सकता है। कुछ दिन बाद समाजके अधिकांश व्यक्ति स्वयं ही पुस्तकालयकी उपयोगिता जान जायँगे और तब अपने अपने स्थलोंमें खुद पुस्तकालय खोल लेंगे।

आशा है कि इन बातों पर जैनसमाजका ध्यान आकर्षित होगा। इसके द्वारा यदि एक भी नया पुस्तकालय खुल गया तो मैं अपने परिश्रमको सफल समझूँगा।

७-८

तामिल भाषामें जैनग्रंथ।

(अनु०—कुमार देवेंद्रप्रसादजी, आरा।)

प्रायः सभी पाश्चात्य विद्वानोंका यह मत है कि ईसाकी ९ वीं शताब्दीके पहले तामिल साहित्य ही नहीं था। पर वास्तवमें बात यह मालूम होती है कि तामिल साहित्यमें जो कुछ भी मौलिक और अत्युत्तम है वह सब नवीं (९ वीं) शताब्दीके पहले ही लिखा गया था और इसके बाद जो कुछ लिखा गया है वह अधिकतर या तो संस्कृत ग्रंथोंका केवल अनुकरण है और या उनका अनुवाद मात्र है। प्राचीन तामिल काव्योंका ध्यानपूर्वक अनुशीलन करनेसे यह बात आसानीसे समझमें आ जाती है कि तामिल साहित्यके कुछ प्राचीनतम ग्रंथ दो हजार वर्षसे भी पहले रचे गये थे और उसी समय तामिल लोगोंने अरब, ग्रीस (यूनान), रोम और जावा जैसी विदेशी जातियोंके साथ व्यापारसम्बंध स्थापित करके प्रचुर धन और सभ्यताको प्राप्त किया था। सांसारिक उन्नतिके साथ साथ उनकी साहित्यिक उन्नतिका भी प्रारंभ हुआ। ईसाकी पहली शताब्दी तामिल साहित्यकी उन्नतिका सर्वोत्तम काल है और इसी समय मदुरामें तामिल राजा उग्रपांड्यकी राजसभामें कवियोंका अन्तिम सम्मेलन हुआ था। इस कालके उन कवियोंकी संख्या जिनके ग्रंथ हम लोगोंको उपलब्ध हैं पचाससे कम नहीं है। ये कविलोग भिन्न भिन्न जातियों, मतों और तामिल देशके भिन्न भिन्न प्रांतोंके रहनेवाले थे। इनमेंसे कुछ जैन, कुछ बौद्ध और कुछ वैदिक मतानुयायी थे।

नीचेकी पंक्तियोंमें, तामिल साहित्यमें निर्ग्रंथों (जैनियों) द्वारा लिखे हुए ग्रंथोंकी आलोचना करने और यह दिखलानेकी चेष्टा की गई है कि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैनियोंकी प्रतिभाने चोल और पांड्य राज्योंकी राजभाषाओंकी उन्नति करनेमें कितना योग दिया है। जैनियोंके लिखे हुए असंख्य तामिल ग्रंथोंमेंसे अनेकों ग्रंथ भिन्न भिन्न कारणोंसे नष्ट हो गये हैं–कितने अग्नि और वर्षा आदि नैसर्गिक कारणोंसे नष्ट हो गये हैं, कितनोंका काम चूहों तथा दीमकोंने तमाम किया है और कितनोंको जैनमतके शत्रुओंने नाश कर डाला है। जो इने गिने ग्रंथ रह गये हैं उनमेंसे आधेसे अधिक ताड़के पत्तोंपर लिखे हुए अंधे तहखानोंमें प्रच्छन्न हैं।

तामिल साहित्यमें जैनियोंके लिखे हुए ग्रंथ महाकाव्य, नीतिकाव्य, व्याकरण, कोश और फलितज्योतिष इन पाँच भागोंमें विभाजित किये जा सकते हैं।

महाकाव्य।

१ जीवक-चिन्तामणि। इस महाकाव्यके रचयिता थिरुथ्थक देवर (Tniruththaka devar) हैं। इसको बने हुए लगभग १०२० वर्ष हुए हैं और यह ९०० ईसवीसे बादका बना हुआ मालूम नहीं होता। इसमें भगवान् महावीरके समकालीन राजा जीवककी जीवनकथा है, जो कि हेमांगदमें राज्य करते थे। कथा १३ कांडों और ३१४५ पद्योंमें वर्णित है। वर्णन-सौंदर्य और अत्युत्तम लेखनशैलीके कारण तामिल साहित्यमें जीवक-चिन्तामणिको प्रथम स्थान दिया गया है। तामिल साहित्यके पाँच महा काव्योंमें यह सबसे प्रधान काव्य है। इसमें राजा जीवकके साहसिक जीवनका मनोरंजक वर्णन देनेके साथ साथ लोगोंके रहन-सहन, उनके सामाजिक रीति-रिवाजों और व्यापार, धन तथा वैभवका भी सजीव वर्णन दिया है।

संस्कृतमें प्रसिद्ध वाल्मीकि रामायणके सदृश अनुपम काव्य-सौन्दर्यको लिये हुए, चिन्तामणि काव्य उत्तरकालीन तामिल कवियोंके लिये मार्गदर्शक और इस बातको बतलानेके लिये ज्वलन्त आदर्श है कि जीवनकी भिन्न भिन्न दशाओं और प्रकृतिके भिन्न भिन्न सौंदर्योंका हृदयहारी वर्णन कैसे किया जा सकता है।

इस काव्यमें बहुतसी शिक्षाकी बातें भरी हुई है, जिनमेंसे कुछ इस प्रकार हैं:—(१) कोई काम करनेके पहले राजाको चाहिये कि अपने मंत्रियोंसे कई बार परामर्श करे; (२) जो मनुष्य स्त्रीकी इच्छाके अधीन है उसे अनेक कष्टोंका सामना करना होगा; (३) मनुष्यको हमेशा अपने गुरुकी आज्ञाके अनुसार काम करना चाहिये; (४) शत्रुओंको वशमें करनेके लिये मनुष्यको धैर्यपूर्वक सुअवसरकी प्रतीक्षा करनी चाहिये; (५) मनुष्यको चाहिये कि यदि किसी जीवको दुःखमें देखे तो उसे दुःखसे छुड़ाकर उसकी रक्षा करे; (६) प्रत्येक व्यक्तिको अपने मातापिताकी आज्ञाका सदा पालन करना चाहिये; (७) जिस व्यक्तिका साथी बुद्धिमान और दयालु होता है वह जिस कामको चाहे कर सकता है; (८) सुख और दुःखमें मनुष्यको अपना चित्त हमेशा समभाव रूपसे स्थिर रखना चाहिये और यह समझना चाहिये कि जीवनकी प्रत्येक घटना उसके कर्मोंका नतीजा है; (९) दान उन्हींको देना चाहिये जो अच्छे भले आदमी, धर्मात्मा तथा पात्र हों; (१०) जो लोग ठीक रास्तेपर नहीं हैं उनके साथ सहानुभूति रखनी चाहिये और उन्हें मुक्तिके यथार्थ मार्गपर लानेका यत्न करना चाहिये और (११) जिन्होंने अपने ऊपर उपकार किया है अथवा जो अपने सहायक रहे हैं उन्हें कभी न भूलना चाहिये।

२ सीलप्पथिहरम् (Silppathiharam)। इसका नम्बर पाँचों महाकाव्योंमें दूसरा है। इसे भी पहले महाकाव्यकी तरह अतिशय प्राचीन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और अत्युत्तम होनेका मान प्राप्त है । बड़े बड़े टीकाकार अक्सर प्रामाणिक ग्रंथके तौर पर इसमेंसे अनेक वाक्योंको अपनी टीकाओंमें उद्धृत किया करते हैं । यह पुस्तक लंकाके तामिल लोगोंके बड़े कामकी है; क्योंकि यही एक प्राचीन पुस्तक है जिसमें रावणके समयके बाद लंकाका वर्णन पाया जाता है और जिसमें, स्वयं ग्रंथकर्ताके कथनानुसार, उस टापूमें बहुत पूजी जानेवाली काव्यकी नायिका **पट्टिनी कन्निका** (Pattini Kannika) का जीवनवृत्तांत दिया हुआ है । यद्यपि इस काव्यकी कथा पूर्णरूपसे जैनकथा नहीं है तथापि इसके रचयिताके जैन होनेमें संदेह नहीं है; क्योंकि परलोकवासी वी० कनकसबाई पिल्ले जो तामिलके एक बड़े भारी विद्वान् थे, अपनी किताब "The Tamils Eighteen hundred years ago" में लिखते हैं:—"सबसे अन्तिम चेर राजा (इमायवर्मा Imayavarmau) का एक छोटा भाई **इल्लंकोआडिगल्** (Illam-koadigal) था जो जैनमतका साधु हो गया था। यह इलंकोआडिगल् 'चीलप्पथिकरं' (Chilappathikaram) नामक एक बड़े काव्यका रचयिता था । " इस ग्रंथका रचनाकाल ईसाकी पहली शताब्दी मालूम किया गया है। शेष तीन महाकाव्योंमें **वलयपति और कुंडलकेसी** ये दो ग्रंथ दूसरे दो जैन विद्वानोंके बनाये हुए बतलाये जाते हैं । इनमेंसे कुंडलकेसीका कुछ पता ही नहीं चलता; पर दूसरेके सिर्फ कुछ खंड समय समय पर प्रकाशित हुए हैं ।

पाँच महाकाव्योंके सदृश पाँच छोटे काव्य भी हैं जिनके नाम हैं चूलामणि, यशोधरकाव्य, उदयनकुमारकाव्य, नागकुमारकाव्य और नीलकेसी । इन काव्योंकी रचनाका क्रम ज्ञात नहीं है।

१ इन काव्योंमें, **चूलामणि** सबसे बड़ा है। इसमें काव्यसौन्दर्य और उत्तम भाव भरे पड़े हैं । काव्यकी शैली मनोहारिणी है और जिन शब्दोंका इसमें प्रयोग किया गया है वे 'अजेय' कहे जाते हैं। प्राचीन तामिल विद्वान् जब इस काव्यको पढ़ा करते थे तब इसके रचयिताका नाम मालूम न होनेके कारण इसके कर्ताको '**थोलमोलिथेवर**' (Tholamoli thewar) अर्थात् "शब्दाजेयके" तौरपर पुकारा करते थे । तभीसे यह ग्रंथ शब्दाजेयका बनाया हुआ कहा जाता है। इसमें २१३१ पद्य और १२ परिच्छेद हैं जिनमें जैनपुराणोक्त नौ वासुदेवोंमेंसे 'थृप्पृष्ट' (त्रिपृष्ठ) वासुदेव और उसके शत्रु 'अयकृव' प्रथि– (प्रति) वासुदेवकी कथा लिखी हुई है। यह कथा गुणभद्राचार्यके **उत्तरपुराण**से ली गई है (?) इस काव्यका रचनाकाल अभी तक ठीक तौरसे मालूम नहीं हुआ, परंतु चूलामणिके स्वसंपादित संस्करणकी भूमिकामें, तामिलके नामी विद्वान् मिस्टर सी० वी० थामोधरं पिल्ले लिखते हैं कि चूलामणि कमसे कम १५०० वर्ष×से कमका बना हुआ नहीं है ।

२ **यशोधरकाव्य**के रचयिता एक जैनी हैं जिनके नामका पता नहीं लगा । इस ग्रंथमें ३२० पद्य और चार सर्ग हैं, जिनमें पौराणिक राजा 'यशोधर' की कथा है। अच्छे और बुरे कर्मोंका फल कैसा होता है, यह इस कथामें दिखलाया गया है। साथ ही, उदाहरण द्वारा यह भी बतलाया गया है कि जो कोई किसी जीवको कष्ट पहुँचाता है उसे नरकयातना सहनी पड़ती है और अपनी इच्छाके विरुद्ध पशुपक्षियों तथा कीड़ोंमकोड़ोंमें जन्म लेना पड़ता है ।

× हमारी रायमें, जब यह ग्रंथ गुणभद्राचार्यके उत्तरपुराणके आधार पर बनाया गया है तब इतना पुराना नहीं हो सकता; क्योंकि गुणभद्राचार्यका समय विक्रमकी १० वीं शताब्दी है और उनका उक्त पुराण शक संवत् ८२० में बनकर समाप्त हुआ था ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public.Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३ **उदयनकुमारकाव्यमें** वत्स देशके राजा उदयनकी कथा है। इसके रचियता भी एक अज्ञातनामा जैन हैं। यह काव्य छह सर्गोंमें है और अब प्रकाशित किया जा रहा है।

४ **नागकुमार काव्य** अभी हस्तलिपिके रूपमें है, और एक छोटा किन्तु रोचक काव्य है।

५ **नीलकेसीके** रचयिताका नाम ज्ञात नहीं, पर यह भी एक जैन थे। यह ग्रंथ दस सर्गोंमें है और इसमें जैनधर्मके तथ्योंका वर्णन है। इस पर '**श्रीसमयदिवाकर वामन**' मुनिकी एक अच्छी टीका है।

नीतिकाव्य।

१ **थिरुक्कुरल्** (Thirukkural) । यह वास्तवमें एक ऊँचे दर्जेका तामिलग्रंथ और एक जैनाचार्यकी अमरकृति है, जिन्हें उनकी अधिक प्रसिद्धिके कारण हिन्दू लोग भी अपनानेकी चेष्टा कर सकते हैं, पर इस विषयके अकाट्य प्रमाण उपलब्ध हैं कि वे जैनी थे। इस पुस्तकमें धर्म, धन और प्रेमका वर्णन १३३ परिच्छेदोंमें किया गया है और प्रत्येक परिच्छेदमें १० दोहे (Couplets) हैं। यह पुस्तक अपने ढंगकी ऐसी सार्वभौमिक है कि विभिन्नमतोंके अच्छे अच्छे लेखक प्रमाणके तौरपर इसमेंसे अवतरण दिया करते हैं और इसका अनुवाद योरुपकी चारसे अधिक भाषाओंमें हो गया है। यह पुस्तक ईसाकी दूसरी शताब्दीके बादकी बनी हुई मालूम नहीं होती। (जैनहितैषीमें इसका अनुवाद प्रकाशित हो रहा है।)

२ **नालडियार** (Naladiyar) । यह एक काव्यसंग्रह है, जिसके ४० परिच्छेदोंमें ४०० चतुष्पदी (Quartrasin) हैं। इसमें धन, सांसारिक यश, शारीरिक सुन्दरता और यौवनकी क्षणभंगुरता तथा धर्म, सत्य और साधुताके गुणोंकी महत्ता और स्थिरशीलताका वर्णन है।

इस ग्रंथके रचे जानेकी कथा इस प्रकार है:- दो हजार वर्ष हुए जब कि उत्तर भारतमें घोर दुर्भिक्षसे पीड़ित होकर आठहजार जैनमुनियोंने दक्षिण भारतको प्रस्थान किया और वे **पांड्य** देशमें पहुँचे, जहाँके पांड्यराजा **उग्रपेरुवली** (Ugraperuvali) ने उनका हृदयसे स्वागत किया। विद्वानोंकी संगतिसे राजाको बड़ा प्रेम था, इस लिये उसने मुनियोंपर बड़ा अनुग्रह रक्खा और उनका अच्छा आदर सत्कार किया। कुछ महीनोंके बाद मुनियोंको मालूम हुआ कि अब उनके देश उत्तरभारतमें अकाल नहीं है और वहाँकी दशा फिरसे अच्छी हो गई है। अतः उन लोगोंकी इच्छा स्वदेश लौटनेकी हुई और उन्होंने उग्रपेरुवलीसे जानेकी इजाजत माँगी। राजाको उनका संग छूट जाना दुःखदायक जान पड़ता था और वह नहीं चाहता था कि वे लोग उसके राज्यसे चले जायँ, इसलिये उसने अपने ही देशमें अपनी रक्षातले रहनेके लिये उनसे विनय किया। पर मुनियोंको यह बात पसंद नहीं थी। राजासे दूसरी बार अनुमति माँगनेसे डरकर मुनियोंने एकदिन प्रातः काल अपने अपने आसनके नीचे तालपत्रके टुकड़ेपर एक एक श्लोक (पद्य) लिखकर रख दिया और वे वहाँसे चल दिये। जब राजाने सुना कि मुनिलोग चले गये तो वह उस विशाल भवनमें आया जहाँ वे लोग बैठते थे और आसन हटानेपर उसे तालपत्रके टुकड़े मिले। राजाने क्रोधवश अपने आदमियोंसे कहा कि इन टुकड़ोंको '**वैगाइ**' नदीमें फेंक दो। नौकरोंने राजाकी आज्ञाके अनुसार काम किया। परंतु आश्चर्यकी बात यह हुई कि इनमेंसे लगभग चारसौ टुकड़े धाराके विरुद्ध तैरते हुए किनारेपर जा लगे, जहाँपर लोगोंने आश्चर्यके साथ उनको उठा लिया और राजाके पास जाकर इस आश्चर्यजनक घटनाको कह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुनाया। राजाको सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ और उसने साधुओंकी ऐसी उत्तम यादगार (स्मृतिचिह्न) को फेंक देनेकी अपनी सहसा आज्ञापर बहुत अफसोस किया, साथ ही साधुओंके प्रति अपना सम्मान प्रकट करनेके लिये उसने उन पद्योंको इकट्ठा करके नीतिकी एक पुस्तक बनाई और उसका नाम 'नालडियार' रक्खा; क्योंकि उसके प्रत्येक पद्यमें 'नालडी' अर्थात् चार पंक्तियाँ (चरण) थीं। कुछ कालके पश्चात् पद्मनर नामके एक तामिल विद्वानने इस पर एक टीका लिखी और इसके पद्योंको ४० परिच्छेदोंमें विभाजित कर दिया।

२ पालमोलिननरु Palmolinanuru (चारसौ कहावतें)। यह एक पुस्तक है जिसमें ४०० पद्य हैं और जिसे एक जैन राजाने बनाया है, जो कि पांड्यदेशके 'मुनरुराइ' भागपर राज्य करता था। इस पर एक जैनकी लिखी हुई प्राचीन टीका है। मिस्टर टी० चेल्वकेसवराय मुदालियर द्वारा संपादित 'पालमोलिननरु' की भूमिकासे कुछ अवतरण यहाँ दिये जाते हैं जिनके पढ़नेसे पुस्तकके महत्त्वका अच्छा परिचय मिल सकता है:—

"यह पुस्तक 'पालमोलिननरु' इस वजहसे कही जाती है कि इसके प्रत्येक पद्यके अन्तमें एक पालमोलि (कहावत) लगी हुई है। ये कहावतें छन्दकी आवश्यकतानुसार जहाँ तहाँ बदल दी गई हैं।"

"यद्यपि कुछ कहावतें समयके फेरसे इस समय प्रचलित नहीं हैं तो भी उनमेंसे बहुतसी आजतक व्यवहारमें आती हैं। कहावतें ग्रंथमालाकी दूसरी बहुतसी पुस्तकोंमें भी पाई जाती हैं, पर प्राचीन अथवा मध्यमकालीन उच्च साहित्यके किसी भी दूसरे ग्रंथमें कहावतोंकी ऐसी भरमार नहीं है। यही इस पुस्तककी सबसे अधिक विलक्षणता है।"

"जो चारसौ कहावतें इस ग्रंथमें प्रयुक्त हुई हैं वे मदुराकी अन्तिम विद्वज्जन सभाके समयमें प्रचलित थीं। वे ग्रंथकर्ताकी प्रस्तावनामें 'प्राचीन कहावतें' बतलाई गई हैं। अतः इस ग्रंथसे तामिल लोगोंकी प्राचीन सभ्यताका बहुमूल्य उल्लेख मिलता है। प्रायः हर एक पद्यकी तीसरी पंक्तिमें ग्रंथकार किसी राजा (शायद उस समयके पांड्य राजा) को या किसी स्त्रीको सम्बोधन करके लिखता है। पहली दो पंक्तियोंमें आम तौर पर वह विषय रक्खा गया है जिसे ग्रंथकार सुझाना चाहता है और अन्तिम पंक्ति कहावतकी है। बहुतसे पद्योंमें विषय और कहावतके बीचमें जो सादृश्य है वह प्रशंसनीय है और कहीं कहीं पर बड़ा ही चमत्कारिक है, यद्यपि कोई कोई सादृश्य कुछ कहावतोंके प्रचलित न रहनेके कारण अब समझमें नहीं आता है। कुछ पद्योंमें कहावतें उपमाओंका काम देती हैं; दूसरे पद्योंमें किसी कहावतकी यथार्थताका उदाहरण किसी प्राचीन तथा प्रसिद्ध उल्लेखद्वारा दिया गया है।"

"यद्यपि साहित्यसम्बन्धी उत्तम प्रकारके व्यवहारोंका इस पुस्तकमें, जहाँ तहाँ, प्रयोग पाया जाता है, तो भी इसकी शब्दरचना 'नालडी' और 'कुरल' जैसी प्रासाद्गुणविशिष्ट नहीं है। लेखनशैली इसकी तीक्ष्ण है और वह अर्थकी सुस्पष्टता, और व्याख्यानकी महत्त्वपूर्णताको लिये हुए है। ग्रंथकारकी विद्वत्ता उसकी कवित्तशक्तिसे बढ़ी हुई है। इस ग्रंथमें जो कुछ मुग्धकारी गुण है वह उन कहावतों द्वारा उत्पन्न है जो प्रत्येक पद्यमें वर्णित बातों पर पाठकोंका ध्यान खींच लेती हैं।"

"ग्रंथकार जैनमतावलम्बी होने पर भी कट्टर जैनी नहीं है। किसी किसी पद्यमें धार्मिक तथ्यका वर्णन वह बिलकुल पक्षपातरहित हो कर करता नजर आता है।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

" ग्रंथमालाके अन्य ग्रंथोंकी भाँति यह ग्रंथ भी पुरुषार्थका वर्णन करनेवाला है। इसमें जीवनके अनुभवोंका संग्रह है, जिनमेंसे कोई कोई ऐसे बहुमूल्य और व्यावहारिक संकेतों तथा सूचनाओंको लिये हुए हैं जो कि 'नालडी' और 'कुरल' में भी उपलब्ध नहीं हैं।"

४ थिनैमलै (Thinaimalai)। इसके लेखक '**कनिमेधावियर**' हैं। इसमें १५० पद्य हैं और उनमें पाँच अंतरंग पदार्थोंका वर्णन है।

५ सिरुपंचमूलं (Siru-Panchamulam)। यह **करियासन्**का बनाया हुआ ९८ पद्योंका ग्रंथ है। इसके प्रत्येक पद्यमें पाँच चीजोंका वर्णन है और इसीसे 'पंच' शब्द साथमें जोड़ा गया है।

६ येलाडी (Yeladi)। **कनिमेधावियर**-का लिखा हुआ यह ८० पद्योंका ग्रंथ है और इसके प्रत्येक पद्यमें ६ शिक्षाएँ हैं।

ये छहों पुस्तकें मदुराकी अन्तिम विद्वज्जनसभासे स्वीकृत होकर प्रसिद्ध १८ किलकनक्कुओं (खंडकाव्यों) में परिगणित की गई थीं।

७ अरनेरिच्चरं (Aranerichcharam)। यह पुस्तक **मुनैप्पडियर** (Munaippadiar) की बनाई हुई है और इसमें जैनधर्म तथा नीतिविषयक २२२ पद्य हैं।

व्याकरण।

१ अहप्पोरुल्–इलक्कनम् (Ahapporul-ilakkanam)। '**नर्कविराजनम्बियर**' विरचित यह तामिल व्याकरण पर लिखे हुए 'तोलहाप्पियम्' नामक एक अतिशय प्राचीन ग्रंथके तृतीय भागका सारांश है।

२ यप्परुंगलम्। **कनकसागर** मुनिरचित यह अलंकार और छंदशास्त्र विषयका एक ग्रन्थ है। इसमें तीन परिच्छेदोंमें ९५ पद्य हैं।

३ यप्परुंगलकारिकै। **अमृतसागर** मुनिकी बनाई हुई यह उपर्युक्त ग्रन्थकी टीका है।

४ वीरचोलियम। यह भी एक व्याकरण ग्रन्थ है, जो 'बुद्धमित्र' नामके, सम्भवतः एक जैन व्यक्ति द्वारा रचा गया और वीरचोल राजाके नामसे अंकित किया गया है। इसमें १८१ पद्य हैं, और उन पर एक टीका है। ग्रंथमें अक्षर, शब्द, वाक्यरचना, छंद और अलंकारका वर्णन है और वह प्रायः ईसाकी ११ वीं शताब्दीका बना हुआ है।

५ नन्नुल। यह प्रसिद्ध '**पविनन्दि**' मुनिकी रचना है, जिसने कुलोत्तुंग तृतीयके अधीनस्थ राजा चोलवंशीय अमराभरण सीयगंगकी प्रार्थना पर इस ग्रन्थको प्रायः १२ वीं शताब्दीके अन्तमें लिखा था; क्यों कि यह अच्छी तरह ज्ञात है कि कुलोत्तुंग तृतीय सन् ११७८ ई० में राज्यसिंहासन पर बैठा था। इस ग्रन्थमें केवल अक्षरों और शब्दोंका वर्णन है, और आज कल यह सबसे अधिक प्रामाणिक ग्रन्थके तौर पर माना जाता है। प्रत्येक वर्ष मद्रास विश्वविद्यालयके द्वारा, उसकी मैट्रीक्यूलेशन, एफ० ए० और बी० ए० की परीक्षाओंमें, यह पुस्तक व्याकरणविषयकी एक मात्र उपयोगी पाठ्य पुस्तकके तौर पर नियत की जाती है।

६ नेमिनादम। **गुणवीर**पण्डितरचित इस ग्रंथमें अक्षरों और शब्दोंका वर्णन ९६ पद्योंमें दिया है और उन पर एक टीका भी है।

७ अच्चनन्दिमलै। **गुणवीर**-पण्डितरचित यह छंदः शास्त्रविषयक एक काव्य है।

कोश।

चूडामणि निघण्टु। इसमें १२ अध्याय हैं और इसके रचयिताका नाम **मण्डलपुरुष** है,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो अपनेको उत्तरपुराणके लेखक गुणभद्र आचार्यके शिष्य बतलाते हैं। यह भली भाँति विदित है कि उत्तर पुराण ८९८ ई० में समाप्त हुआ है। और लेखक उसमें राष्ट्रकूट-नृप अकालवर्ष कृष्णरायका उल्लेख करता है, जिसने ८७५ और ९११ ई० के मध्यवर्ती समयमें राज्य किया है, इस लिए यह ग्रन्थ दसवीं शताब्दीके प्रथम पादका बना हुआ होना चाहिये।

ज्योतिष।

जिनेन्द्रमाले। तामिलमें फलित-ज्योतिषका यह एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसके रचयिता सम्भवतः जिनेन्द्रव्याकरणके कर्ता (पूज्यपाद) हैं।

अन्य ग्रन्थ।

१ **मेरुमन्दरपुराणम्**। वामनाचार्यरचित। इस ग्रन्थमें १३ सर्ग और १४०६ पद्य हैं। इसमें 'मेरु' और 'मन्दर' नामके दो भाईयोंकी कथा और जैन-सिद्धान्तोंकी व्याख्या है।

२ **थीरुनुत्रान्धान्धि**। यह अविरोध नाथका बनाया हुआ है। (देखो अँ० जैनगजट भाग ९, २, पृ० ११)

३ **थीरुकलम्बकम्**। उथीसे देवविरचित। इस ग्रन्थमें जैन-सिद्धान्तों (दर्शनशास्त्र) की अच्छी व्याख्या है।

इन ग्रन्थोंके अतिरिक्त भगवान अर्हतके गुणगानको लिए हुए सैकड़ों स्तोत्र हैं।

जैन-लेखकोंद्वारा लिखे हुए तामिलके इतने ही ग्रन्थ अभीतक हमको मालूम हुए हैं। इनमेंसे अनेक ग्रन्थ मद्रास-विश्वविद्यालयकी साहित्य-परीक्षाओंमें नियत हो चुके हैं। बहुत ग्रन्थोंको प्रतिभाशाली अजैन विद्वानोंने प्रकाशित किया है और उनमेंसे अनेकके साथमें अत्युत्तम टीकाएँ लगी हुई हैं। यह शोकका विषय है कि दक्षिण भारतके जैन लोगोंने अपने सहधर्मी विद्वानों द्वारा रचे हुए दक्षिणी साहित्यके इन अमूल्य ग्रन्थोंको प्रकाशित करने अथवा उन दूसरे पवित्रतम स्थिर किरणोंवाले ग्रन्थरत्नोंको प्रकाशमें लानेके लिये, जो कि बहुतसे पुराने घरानों और मठोंके अंधेरे एकांतस्थानों तथा मैले-कुचैले शास्त्रभंडारोंमें दबे पड़े हैं, अब तक बहुत ही कम ध्यान दिया है। जब कि उनके उत्तरीय जैन-बन्धु जैनोन्नतिका विस्तार करनेको बड़े ही उत्साहके साथ अग्रसर हुए हैं—उन्होंने जैनियोंके लिए विद्यालय और छात्रालय खोल रक्खे हैं, संस्कृत प्राकृतके जैन-ग्रन्थोंको प्रकाशित कराया है, जैन-ग्रन्थोंके पुस्तकालय खोल रक्खे हैं, जिनमें संस्कृत, बंगला, हिन्दी, मराठी, गुजराती, तामिल आदि भाषाओंके ग्रन्थ हैं। वे अँगरेजी, हिन्दी, मराठी और गुजरातीमें जैनपत्र सम्पादन करते हैं—और भी अनेक ऐसे कार्य करते हैं जोकि अपने उन सहधर्मीभाईयोंकी उन्नति तथा उत्थानमें सहायक हों जो कि सारे उत्तरभारतमें फैले हुए हैं। आशा है कि दक्षिणके जैन लोग भी अब शीघ्र जागेंगे और स्वसमाजके उत्थानके लिये अपनी जिम्मेदारीको समझते हुए अपने उत्तरीय भाईयोंका अनुकरण करेंगे।*

---

* यह लेख एक तामिल जैनद्वारा लिखे हुए 'जैनी और तामिल साहित्य' नामके अँगरेजी लेखका, जो कि अँगरेजी जैनगजटके कई अंकोंमें प्रकाशित हुआ है, भावानुवाद है। इसके लिये हम मूल लेखक तथा संपादक जैनगजटके बहुत आभारी हैं।—अनुवादक।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

" ग्रंथमालाके अन्य ग्रंथोंकी भाँति यह ग्रंथ भी पुरुषार्थका वर्णन करनेवाला है । इसमें जीवनके अनुभवोंका संग्रह है, जिनमेंसे कोई कोई ऐसे बहुमूल्य और व्यावहारिक संकेतों तथा सूचनाओंको लिये हुए हैं जो कि 'नालडी' और 'कुरल' मे भी उपलब्ध नहीं हैं । "

४ थिनैमलै (Thinaimalai) । इसके लेखक '**कनिमेधावियर**' हैं । इसमें १५० पद्य हैं और उनमें पाँच अंतरंग पदार्थोंका वर्णन है ।

५ सिरुपंचमूलं (Siru-Panchamulam) । यह **करियासन्**का बनाया हुआ ९८ पद्योंका ग्रंथ है । इसके प्रत्येक पद्यमें पाँच चीजोंका वर्णन है और इसीसे 'पंच' शब्द साथमें जोड़ा गया है ।

६ येलाडी (Yeladi) । **कनिमेधावियर**-का लिखा हुआ यह ८० पद्योंका ग्रंथ है और इसके प्रत्येक पद्यमें ६ शिक्षाएँ हैं ।

ये छहों पुस्तकें मदुराकी अन्तिम विद्वज्जनसभासे स्वीकृत होकर प्रसिद्ध १८ किलकनक्कुओं (खंडकाव्यों) में परिगणित की गई थीं ।

७ अरनेरिच्चरं (Aranerichcharam) । यह पुस्तक **मुनैप्पडियर** (Munaippadiar) की बनाई हुई है और इसमें जैनधर्म तथा नीतिविषयक २२२ पद्य हैं ।

व्याकरण ।

१ अहप्पोरुल्-इलक्कनम् (Ahapporul-ilakkanam) । '**नर्क्कविराजनम्बियर**' विरचित यह तामिल व्याकरण पर लिखे हुए 'तोलहप्पियम्' नामक एक अतिशय प्राचीन ग्रंथके तृतीय भागका सारांश है ।

२ यप्परुंगलम् । **कनकसागर** मुनिरचित यह अलंकार और छंदशास्त्र विषयका एक ग्रन्थ है । इसमें तीन परिच्छेदोंमें ९५ पद्य हैं ।

३ यप्परुंगलकारिकै । **अमृतसागर** मुनिकी बनाई हुई यह उपर्युक्त ग्रन्थकी टीका है ।

४ वीरचोलियम । यह भी एक व्याकरण ग्रन्थ है, जो 'बुद्धमित्र' नामके, सम्भवतः एक जैन व्यक्ति द्वारा रचा गया और वीरचोल राजाके नामसे अंकित किया गया है । इसमें १८१ पद्य हैं, और उन पर एक टीका है । ग्रंथमें अक्षर, शब्द, वाक्यरचना, छंद और अलंकारका वर्णन है और वह प्रायः ईसाकी ११ वीं शताब्दीका बना हुआ है ।

५ नन्नुल । यह प्रसिद्ध '**पविनन्दि**' मुनिकी रचना है, जिसने कुलोत्तुंग तृतीयके अधीनस्थ राजा चोलवंशीय अमराभरण सीप गंगकी प्रार्थना पर इस ग्रन्थको प्रायः १२ वीं शताब्दीके अन्तमें लिखा था; क्यों कि यह अच्छी तरह ज्ञात है कि कुलोत्तुंग तृतीय सन् ११७८ ई० में राज्यसिंहासन पर बैठा था । इस ग्रन्थमें केवल अक्षरों और शब्दोंका वर्णन है, और आज कल यह सबसे अधिक प्रामाणिक ग्रन्थके तौर पर माना जाता है । प्रत्येक वर्ष मद्रास विश्वविद्यालयके द्वारा, उसकी मैट्रीक्यूलेशन, एफ० ए० और बी० ए० की परीक्षाओंमें, यह पुस्तक व्याकरणविषयकी एक मात्र उपयोगी पाठ्य पुस्तकके तौर पर नियत की जाती है ।

६ नेमिनादम । **गुणवीर**पण्डितरचित इस ग्रंथमें अक्षरों और शब्दोंका वर्णन ९६ पद्योंमें दिया है और उन पर एक टीका भी है ।

७ अच्चनन्दिमलै । **गुणवीर**-पण्डितरचित यह छंदः शास्त्रविषयक एक काव्य है ।

कोश ।

चूडामणि निघण्टु । इसमें १२ अध्याय हैं और इसके रचयिताका नाम **मण्डलपुरुष** है,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो अपनेको उत्तरपुराणके लेखक गुणभद्र आचार्यके शिष्य बतलाते हैं। यह भली भाँति विदित है कि उत्तर पुराण ८९८ ई० में समाप्त हुआ है। और लेखक उसमें राष्ट्रकूट—नृप अकालवर्ष कृष्णरायका उल्लेख करता है, जिसने ८७५ और ९११ ई० के मध्यवर्ती समयमें राज्य किया है, इस लिए यह ग्रन्थ दसवीं शताब्दीके प्रथम पादका बना हुआ होना चाहिये।

ज्योतिष।

जिनेन्द्रमाले। तामिलमें फलित-ज्योतिषका यह एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसके रचयिता सम्भवतः जिनेन्द्रव्याकरणके कर्ता (पूज्यपाद) हैं।

अन्य ग्रन्थ।

१ **मेरुमन्दरपुराणम्**। वामनाचार्यरचित। इस ग्रन्थमें १२ सर्ग और १४०६ पद्य हैं। इसमें 'मेरु' और 'मन्दर' नामके दो भाईयोंकी कथा और जैन-सिद्धान्तोंकी व्याख्या है।

२ **थीरुनुत्रान्धान्धि**। यह अविरोध नाथका बनाया हुआ है। (देखो अँ० जैनगजट भाग ९, २, पृ० ११)

३ **थीरुकलम्बकम्**। उथींसे देवविरचित। इस ग्रन्थमें जैन-सिद्धान्तों (दर्शनशास्त्र) की अच्छी व्याख्या है।

इन ग्रन्थोंके अतिरिक्त भगवान अर्हतके गुणगानको लिए हुए सैकड़ों स्तोत्र हैं।

जैन-लेखकोंद्वारा लिखे हुए तामिलके इतने ही ग्रन्थ अभीतक हमको मालूम हुए हैं। इनमेंसे अनेक ग्रन्थ मद्रास-विश्वविद्यालयकी साहित्य-परीक्षाओंमें नियत हो चुके हैं। बहुत ग्रन्थोंको कुछ प्रतिभाशाली अजैन विद्वानोंने प्रकाशित किया है और उनमेंसे अनेकके साथमें अत्युत्तम टीकाएँ लगी हुई हैं। यह शोकका विषय है कि दक्षिण भारतके जैन लोगोंने अपने सहधर्मी विद्वानों द्वारा रचे हुए दक्षिणी साहित्यके इन अमूल्य ग्रन्थोंको प्रकाशित करने अथवा उन दूसरे पवित्रतम स्थिर किरणोंवाले ग्रन्थरत्नोंको प्रकाशमें लानेके लिये, जो कि बहुतसे पुराने घरानों और मठोंके अंधेरे एकांतस्थानों तथा मैले-कुचैले शास्त्रभंडारोंमें दबे पड़े हैं, अब तक बहुत ही कम ध्यान दिया है। जब कि उनके उत्तरीय जैन-बन्धु जैनोन्नतिका विस्तार करनेको बड़े ही उत्साहके साथ अग्रसर हुए हैं—उन्होंने जैनियोंके लिए विद्यालय और छात्रालय खोल रक्खे हैं, संस्कृत प्राकृतके जैन-ग्रन्थोंको प्रकाशित कराया है, जैन-ग्रन्थोंके पुस्तकालय खोल रक्खे हैं, जिनमें संस्कृत, बंगला, हिन्दी, मराठी, गुजराती, तामिल आदि भाषाओंके ग्रन्थ हैं। वे अँगरेजी, हिन्दी, मराठी और गुजरातीमें जैनपत्र सम्पादन करते हैं—और भी अनेक ऐसे कार्य करते हैं जोकि अपने उन सहधर्मीभाईयोंकी उन्नति तथा उत्थानमें सहायक हों जो कि सारे उत्तरभारतमें फैले हुए हैं। आशा है कि दक्षिणके जैन लोग भी अब शीघ्र जागेंगे और स्वसमाजके उत्थानके लिये अपनी जिम्मेदारीको समझते हुए अपने उत्तरीय भाईयोंका अनुकरण करेंगे।*

---

* यह लेख एक तामिल जैनद्वारा लिखे हुए 'जैनी और तामिल साहित्य' नामके अँगरेजी लेखका, जो कि अँगरेजी जैनगजटके कई अंकोंमें प्रकाशित हुआ है, भावानुवाद है। इसके लिये हम मूल लेखक तथा संपादक जैनगजटके बहुत आभारी हैं। —अनुवादक।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विधवा-विवाह-खण्डन ।

(ले०—श्रीयुत नाथूराम प्रेमी ।)

श्रीयुत पं० झमनलालजी तर्कतीर्थने अभी कुछ ही समय पहले कलकत्तेके 'पद्मावती पुरवाल' नामक मासिकपत्रमें 'विधवा-विवाह-खण्डन' नामका एक लेख लिखा था। यह लेख पत्रसम्पादक लेखक और उनके अनुयायियोंको इतना पसन्द आया कि उन्हें उसे विशेष रूपसें प्रचार करनेकी आवश्यकता प्रतीत हुई और तदनुसार अब वह जुदा पुस्तकाकार छपा लिया गया है। इसकी जो समालोचनायें जैनमित्र आदि पत्रोंमें प्रकाशित हुई हैं, उन्हें तो पाठक भी पढ़ चुके होंगे और निबन्ध-लेखक भी; परन्तु इधर हमारे गुजराती सहयोगी जैनहितेच्छु (सितम्बर सन् १९२०) ने इस पुस्तककी जो समालोचना की है, उसे शायद ही किसीने पढ़ा हो, अतएव हम यहाँ उसका अनुवाद प्रकाशित कर देते हैं। हमें आशा है कि जो लोग पूर्वोक्त मधुर समालोचनाओंका उपभोग कर चुके हैं उन्हें यह तीखी और चटपटी समालोचना बहुत अरुचिकर न होगी।

"**विधवा-विवाहखण्डन**। लेखक, पं० झम्मनलालजी तर्कतीर्थ, कलकत्ता, मूल्य तीन आने। बेचारे पण्डितजी अभी तक सौ वर्ष पहलेकी पुरानी दलीलोंमें ही मस्त हैं। उन्हें खबर ही नहीं कि ये भद्दी दलीलें हजारों बार काटी गई हैं और कभीकी साफ कर दी गई हैं। यदि अब उनका कहीं भी अस्तित्व है तो केवल तर्कतीर्थ पण्डितोंके मास्तिष्कमें। हमें तो अब ये तर्कतीर्थ पण्डित दुनियाके लिये भाररूप ही प्रतीत होते हैं। इन बेचारोंमें जान पड़ता है कि सामान्य बुद्धि (Common Sense) का भी टोटा है। एक उदाहरण देकर मैं अपनी इस कठोर समालोचनाका औचित्य सिद्ध करूँगा। तर्कतीर्थजी फरमाते हैं कि सिंह एक ही बार संभोग करता है, कदली (केल) एक ही बार फलती है, स्त्रीको एक ही बार तेल चढ़ता है अर्थात् वह एक ही बार परण सकती है और राणा हमीरकी प्रतिज्ञा भी एक ही हो सकती है, और इस दलीलसे पण्डितजी यह सिद्धान्त गढ़ डालना चाहते हैं कि कोई स्त्री दूसरी बार व्याही ही नहीं जा सकती। सचमुच पण्डितजीकी तर्कतीर्थता बड़ी ही जबर्दस्त है! यदि पण्डितजी विवाहित हैं तो मैं उनसे पूछता हूँ कि आप अपने माने हुए सिंहके आदर्शके अनुसार सारे जीवनमें एक ही बार संभोग करके सन्तुष्ट हो गये हैं या नहीं? यदि वे विवाहित हैं तो उन्हें इसका उत्तर नकारमें ही देना पड़ेगा। और यदि विवाहित नहीं हैं तो उन्हें कहना पड़ेगा कि मेरे माने हुए नीतिधर्मके अनुयायी गृहस्थ जीवनमें एक ही बार स्त्रीसंभोग करके तृप्त नहीं हो सकते। और यदि यह ठीक है तो हम पण्डितजीके ही न्यायसे कहेंगे कि स्वयं पण्डितजी और उनकी पसन्द की हुई उच्चनीतिके माननेवाले गृहस्थ एक तिर्यंचसे भी बदतर हैं, अतएव मनुष्यवर्गमेंसे उनका बहिष्कार कर डालना चाहिए। क्यों नहीं? सिंह जो तिर्यंच है वह तो सारी जिन्दगीमें एक ही बार संभोग करे और धर्मशास्त्री मनुष्य प्रतिदिन या प्रति महीने करे, यह तो तिर्यंचसे भी बुरा काम है और इस लिए इन पण्डितजीको मनुष्यसमाजमेंसे क्यों न खारिज किया जाय? यह बात मैं मानता हूँ कि केलेका झाड़ एक ही बार फलता है, परन्तु साथ ही तर्कतीर्थजीसे पूछता हूँ कि क्या आपको यह खबर नहीं है कि दूसरे ऐसे भी झाड़ हैं जो अनेक बार फलते हैं और फिर भी झाड़ोंके वर्गमेंसे न उनका बहिष्कार ही किया जाता है और न वे वारंवार फलनेसे रोके ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाते हैं ? राणा हमीरकी प्रतिज्ञा एक ही बार होती है, इस लिए सारी स्त्री जातिका वाग्दान भी एक ही बार होना चाहिए—इस तरहका तर्क स्वीकार करनेके पहले पूछना पड़ेगा कि सारी स्त्रीजातिका राणा हमीरके साथ क्या सम्बन्ध है और यदि स्त्रीजातिके सिर पर राणा हमीर (जो एक पुरुष थे) का उदाहरण कानून-के रूपमें लाद देना धर्म है तो राणा हमीरके सजातीय पुरुषसमूहके लिए तो यह उदाहरण ख़ास तौरसे कानून बन जाना चाहिए। पण्डित-जीको चाहिए कि पहले वे राणा हमीरके सजातीय पुरुषवर्गके लिए दूसरी बार ब्याह न करनेका कायदा जारी करावें और तब स्त्री-जाति पर अपना यह निरंकुश शासन चलानेके लिए बाहर निकलें। राणा हमीरके उदाहरणको जनसाधारणकी नीतिमें घुसेड़नेके लिए छटपटा-नेवालों पर मुझे सचमुच ही बड़ी दया आती है! मालूम नहीं इन बेचारे पोथा—पण्डितोंमें, इतनी सामान्य बुद्धि भी कब आयगी!

इन पढ़े लिखे बालकोंको इतना भी ज्ञान नहीं है कि पृथ्वीके भूषण राणा हमीर या राणा प्रताप तो बिरले ही पैदा होते हैं, दुनियाके सभी आदमी वैसे नहीं हो सकते। ये पोथापण्डित इस बातका विचार नहीं कर सकते कि किस चीजको 'आदर्श' मानना चाहिए और किसे आवश्यक—बलादाचरणीय—ठहराना चाहिए, और यही इनको सबसे बड़ी बीमारी है। तमाम स्त्री-पुरुषोंका विकास हो, इस ओर समाजकी दृष्टि रहना चाहिये और इस कारण हमीर, प्रताप, महावीर आदिके चरित्र लोगोंके आगे आदर्शके रूपमें रखना चाहिए; परंतु इनके नियम सब लोगोंके बलादाचरणीय नहीं ठहराये जा सकते। यह तो शक्तिका प्रश्न है। प्रत्येक गृहस्थको कुबेरके समान धनी होना ही चाहिए, नहीं तो उसका सिर काट डाला जायगा; प्रत्येक साधुको भगवान् महावीरके समान साढे बारह वर्षकी उग्र तपस्या करके कैवल्य प्राप्त करना ही चाहिए, नहीं तो उसका बहिष्कार किया जायगा; प्रत्येक पण्डित और तर्कतीर्थको शंक-राचार्यके समान दिग्विजय करना ही चाहिए, नहीं तो उसे देश निकालेकी सजा दी जानी चा-हिए,—समाज यदि इस तरहके नियम बना चुका हो, तभी वह यह नियम बनानेका अधि-कारी हो सकता है कि प्रत्येक विधवा सम्पूर्ण-तया कामको जीतनेवाली होनी चाहिए, नहीं तो उसका बहिष्कार किया जायगा।

आदर्श और व्यवहार, व्यक्तिगत धर्म और सामाजिक नियम, फर्जियात (बलात्पालनीय) धर्म, और मर्जियात (स्वेच्छया पालनीय) धर्म, इनके बीचमें क्या अन्तर है, इसका 'विवेक' न कर सकनेके कारण ही ये धर्मके खिलौने विधवाविवाहके प्रश्नका रहस्य नहीं समझ सकते। एक पाठशालामें सातवीं कक्षाके विद्यार्थीको स्थान चाहिए और 'अ इ उ' पढ़नेवालेके लिए भी स्थान चाहिए। पाठ-शालाके विवेकी संचालकका यह कर्तव्य होना चाहिए कि वह 'अ इ उ' घोखनेवालोंको पहली कक्षामें और उनके बाद दूसरोंको दूसरी तीसरी और सातवीं कक्षाओंमें बिठावे। शालामें केवल उन्हींको स्थान न मिलना चाहिए जो 'अइउ' पढ़ना भी पसन्द न करते हों और केवल इधर उधर भटकते फिरनेमें ही खुश हों। इसी तरह समाजमें सब तरहके ऊँची नीची श्रेणीके मनुष्य रह सकें और जी सकें, ऐसी मध्यम ढंगकी उसकी रचना होनी चाहिए—केवल आवारा—व्यभिचारी स्त्री-पुरुषोंको ही उसमें स्थान न मिलना चाहिए। एक बार क्यों इक्कीस वार भी पुनर्विवाह करनेवाला समाजसे दूर नहीं किया जा सकता; हाँ उसका दर्जा अवश्य ही नीचा गिना जाना चाहिए और शुद्ध सधवा धर्म तथा विधवा धर्मको वीरतासे पालनेवाले स्त्री-पुरुष, खास करके सर्वथा विवाह ही न करके आजन्म ब्रह्मचर्य पालनेवाले स्त्री-पुरुष

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दर्जेमें बहुत ऊँचे गिने जाने चाहिए । हम अपनी गृह-व्यवस्थामें भी क्या किया करते हैं ? आपने कभी कोई ऐसा गृहस्थ देखा है जो केवल सोने और हीरे मोतियोंको ही घरमें रखता हो और लोहे पीतलकी चीजोंको पास भी न आने देता हो ? यह ठीक है कि वह सोनेको तिजोरीमें रक्खेगा, चाँदीको आलमारीमें रक्खेगा, पीतल ताँबेको मँडवे पर रक्खेगा और लोहेकी तथा मिट्टीकी चीजोंको जहाँ तहाँ—जरूरत पड़ने पर बाहरके आँगन तकमें—रख देगा; परन्तु जरूरत उसे इन सभी चीजोंकी पड़ेगी—इनके बिना वह अपना काम नहीं चल सकेगा । ऐसी ऐसी सीधी सादी बातें भी ये धर्मशास्त्रोंके पन्ने पलटनेवाले नहीं समझते और इतने पर भी समाजके नेता और शास्त्रोंके उपदेशक बनने चलते हैं । हमारी समझमें तो शास्त्रोंके अर्थ भी इन लोगोंके दो अंगुलके मास्तिष्कोंमेंसे विकृत हो कर ही बाहर निकलते होंगे और इस कारण ऐसे उपदेशकोंको समाजके लिए सदा भयंकर ही समझने चाहिए । ”

———

‘ ईश्वर उनकी मदद करता है जो अपनी मदद आप करते हैं—God helps those who help themselves, यह जिस महात्माका वचन है उसे इस बातका अनुभव हो चुका था कि वास्तवमें कोई एक ईश्वर या परमात्मा जगतका कर्ता हर्ता नहीं है । परंतु जिस वातावरणमें वह साँस लेता था, जिन लोगोंमें उसे जीवन व्यतीत करना था और जिनका हित करना उसे इष्ट था, उनकी परिस्थिति उस समय ऐसी नहीं थी कि वह परमात्माके कर्ताहर्तापनेके विरुद्ध कुछ जबान खोले और उससे कोई लाभ उठाए । इसीलिये उसको लोगोंमें स्वावलम्बनका भाव पैदा करनेके लिये उपर्युक्त सूरत अख्तियार करनी पड़ी थी—अपने उपदेशके साथमें एक ऐसा गुरुमंत्र लगाना पड़ा था जिससे जनता केवल ईश्वरके भरोसेपर ही रहकर अकर्मण्य न बन जाय । —खंडविचार ।

———

विविध प्रसङ्ग ।

१—जातिबहिष्कारके सम्बंधमें सोमदेवसूरिके विचार ।

भारतकी उच्च जातियोंमें पंचायतोंकी हालत प्रायः बड़ी ही शोचनीय है । वे अपने अविवेक और पक्षपातादि दूषणोंके कारण समाज परसे अपनी सत्ता—अपना प्रभुत्व—उठा चुकी हैं, उनका प्रभाव समाजके व्यक्तियों पर अब बहुत कम अवशिष्ट है । यही वजह है कि देशमें दिन पर दिन मुकदमेबाजी बढ़ती चली जाती है और उससे उसका बहुत कुछ पतन हो रहा है। जैन पंचायतोंकी हालत और भी ज्यादह खराब है । जिसके जो जीमें आता है-विना सोचे समझे, विना गहरा परामर्श किये और विना अपनी सत्ताका विचार किये वह उसे सहसा कर डालती है और फल पर कुछ भी दृष्टि नहीं रखती। नतीजा जिसका यही होता है कि या तो पंचायतकी वह तजवीज कागजोंमें ही रक्खी रह जाती है—उस पर कुछ भी अमल नहीं होता—और या उसके द्वारा समाज तथा धर्मको बहुत बड़ी हानि उठानी पडती है । इन दोनों ही बातोंके बहुतसे उदाहरण दिये जा सकते हैं । परंतु यहाँ पर हम पंचायतोंकी हालतको दिखलाने और उनके कार्याकार्य पर विवेचन करना नहीं चाहते; हमारा अभिप्राय इस समय सिर्फ इतना ही बतलानेका है कि जैनपंचायतोंने जातिबहिष्कार नामके तीक्ष्ण हथियारको जो खिलौनेकी तरह अपने हाथमें ले रक्खा है और, विना उसका प्रयोग जाने तथा अपने बलादिकको समझे, जहाँ तहाँ यद्वा तद्वा उसका व्यवहार किया जाता है वह धर्म और समाजके लिये बड़ा ही भयंकर तथा हानिकारक है । श्रीसोमदेव आचार्य अपने ‘ यशस्तिलक ’ ग्रंथमें लिखते हैं—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

" नवैः संदिग्धनिर्वाहैर्विदध्याद्गणवर्धनम् ।
एकदोषकृते त्याज्यः प्राप्ततत्त्वः कथं नरः ॥
यतः समयकार्यार्थो नानापंचजनाश्रयः ।
अतः संबोध्य यो यत्र योग्यस्तं तत्र योजयेत् ॥
उपेक्षायां तु जायेत तत्त्वाद्दूरतरो नरः ।
ततस्तस्य भवो दीर्घः समयोऽपि च हीयते ॥ "

इन पद्योंका आशय इस प्रकार हैः—

ऐसे ऐसे नवीन मनुष्योंसे अपनी जातिकी समूह वृद्धि करनी चाहिये जो संदिग्धनिर्वाह हैं अर्थात्, जिनके विषयमें यह संदेह है कि वे जातिके आचार विचारका यथेष्ट पालन कर-सकेंगे । (और जब यह बात है तब) किसी एक दोषके कारण कोई विद्वान् जातिसे बहिष्कारके योग्य कैसे हो सकता है ? चूँकि धर्मका प्रयोजन नाना पंचजनोंके आश्रित होता है, अतः समझाकर जो जिस कामके योग्य हो उसको उसमें लगाना चाहिये—जातिसे पृथक् न करना चाहिये । यदि किसी दोषके कारण एक व्यक्तिकी—खासकर विद्वान्की—उपेक्षा की जाती है, उसे जातिसे पृथक् किया जाता है—तो उस उपेक्षासे वह मनुष्य तत्त्वसे बहुत दूर जा पड़ता है। तत्त्वसे दूर जा पड़नेके कारण उसका संसार बढ़ जाता है और धर्मकी भी क्षति होती है, अर्थात् समाजके साथ साथ धर्मको भी हानि उठानी पड़ती है ।

आचार्य महोदयने अपने इन वाक्यों द्वारा जैन जातियों और जैन पंचायतोंको जो गहरा परामर्श दिया है और जो दूरकी बात सुझाई है वह सभीके ध्यान देने और मनन करनेके योग्य है । हम बम्बईकी दि० जैन खंडेलवाल पंचायतसे खास तौर पर आचार्य महाराजके इन वाक्यों पर विचार करनेका अनुरोध करते हैं, जिसने हालमें पं० अर्जुनलालजी सेठी जैसे विद्वानोंको अपनी जातिसे पृथक् करनेका असमीक्षित कार्य ही नहीं बल्कि दुःसाहस किया है। मालूम नहीं जब उक्त पंचायत सेठीजीके कार्यको धर्मविरुद्ध नहीं समझती, तो फिर वह कैसे उसके द्वारा अपनी जातिके गौरवका नष्ट होना मानती है । हमारे खयालमें तो जिस जातिमें धर्माविरुद्ध कार्य करनेवालोंको भी स्थान नहीं है वह जाति कुछ भी गौरवान्वित नहीं है । हम पूछते हैं कि जब जैनशास्त्रोंमें जाति तो जाति भिन्नवर्ण तकके व्यक्तियोंमें परस्पर विवाह संबंधके सैकड़ों उदाहरण पाये जाते हैं तब क्या बम्बईकी खंडेलवाल जैनपंचायत उन सभी ऐसे विवाह करनेवालोंको, जिनमें अच्छे अच्छे पूज्य पुरुष भी शामिल हैं, घृणा और तिरस्कारकी दृष्टिसे देखती है ? यदि नहीं देखती तो फिर सेठीजीके साथ ऐसा व्यवहार किये जानेमें कौनसा विशेष कारण है । उसकी इस कार्रवाईसे तो ऐसा मालूम होता है कि वह अपने वर्तमान रीतिरिवाजोंके मुकाबलेमें जैनशास्त्रोंकी आज्ञाओं और उसके विधिविधानोंको कोई चीज नहीं समझती और न सोमदेवसूरि आदिके उन वाक्योंको मानती है जिनमें लिखा है कि ' जैनियोंको वे सर्वलौकिक विधियाँ प्रमाण हैं जिनसे सम्यक्त्वको हानि नहीं पहुँचती और न व्रतोंमें कोई दूषण आता है * । ' क्या सेठीजीके इस विवाहकार्यसे सम्यक्त्वमें कोई बाधा आती है और श्रावकीय व्रतोंमें कोई दूषण लगता है ? यदि ऐसा नहीं है तो क्या उक्त पंचायतके सदस्योंको अजैन समझा जाय जो वे सेठीजीकी उक्त कार्रवाईका अभिनंदन न करके—उसे प्रामाणिक न मानकर—उलटा उसका तिरस्कार करते हैं ? अथवा यही समझा जाय

*यथाः—
सर्व एव हि जैनानां प्रमाणं लौकिकोविधिः ।
यत्र सम्यक्त्वहानिर्न यत्र न व्रतदूषणम् ॥
—यशस्तिलके सोमदेवः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कि वे शास्त्रोंकी उक्त आज्ञाओंको नहीं मानते ? दोनोंमेंसे एक बात जरूर स्वीकार करनी होगी। बम्बई पंचायतकी इस अनुचित कर्रवाई पर यद्यपि बहुत कुछ युक्तिपूर्वक लिखा जा सकता है, परंतु यहाँ हमें उसकी कोई विशेष आलोचना करना इष्ट नहीं है, सिर्फ सूचनाके तौरपर ये कुछ पंक्तियाँ लिखी गई हैं। आशा है बम्बईकी उक्त पंचायत अपनी कार्रवाई पर फिरसे विचार करेगी और जिस प्रकार एक निष्पक्ष विचारवान् जज तजवीज सानी (Review) में—पुनर्विचार प्रसंगमें—अपने ही पूर्व फैसलेको लौटकर यशका भागी बनता है उसी प्रकार पंचायत भी प्रकृत विषय पर गहरा विचार करके अपने पूर्व प्रस्तावको रद्द करेगी, और इस तरह अपनी विचारपटुता तथा निष्पक्षपातताका सर्व साधारणको परिचय देगी।

२—दृष्टि-विकार।

मालूम होता है कलकत्तेकी दिगम्बर जैन सभाका दृष्टि-विकार दिन पर दिन बढ़ता जाता है। पहले उसे 'सत्योदय' और 'जातिप्रबोधक' ये दो पत्र ही भयंकर तथा उसकी श्रद्धादेवीके मंदिरको गिरा देनेवाले दिखलाई देते थे, परंतु अब कुछ ही दिन बाद, जैनहितैषी भी उसे वैसा ही नजर आने लगा है—सभाकी निर्बल और विकृतदृष्टिमें अब उसका मधुर तथा हितकर तेज भी नहीं समाता, वह भी उसे कष्टकर बोध होता है—और इस लिये अब उसने उसकी तरफसे भी आँखें बंद कर लेनेका विधान किया है—अर्थात्, एक प्रस्तावके द्वारा उक्त पत्रोंके समान उसे भी अजैन पत्र करार देकर उसके पढ़नेका निषेध किया है। जहाँतक हम समझते हैं और दूसरे विद्वान् समझ सकते हैं, जैनहितैषीकी जो नीति इस वर्षके शुरूमें थी वही अन्ततक बराबर चली आती है—उसमें जरा भी परिवर्तन नहीं हुआ—बल्कि पिछले वर्षोंकी नीतिसे भी उसकी इस वर्षकी नीतिमें कोई खास फर्क नहीं पड़ा—हाँ, इतना जरूर है कि पिछले वर्षोंकी अपेक्षा इस वर्ष जैनाचार्योंके शासनभेदको दिखलानेवाले कुछ नये ढंगके लेख जरूर निकाले गये हैं। यदि सभा वास्तवमें इन लेखोंसे ही भयभीत होती है, इन्हें ही जैनधर्मके विरुद्ध और जैनधर्मकी इमारतको धराशायी करनेवाले समझती है तो कहना होगा कि सभाको सत्यसे बिलकुल प्रेम नहीं है, सत्यके सामने उसकी आँखें चौंधियाती हैं, वह सत्यकी दुश्मन हैं और इस लिये उसने अपनी इस कार्रवाईके द्वारा सर्वसाधारणको यह बतलानेकी चेष्टा की है कि, सच्ची बात मत कहो—सच्ची बातोंके कहनेसे जैनधर्म स्थिर नहीं रहेगा!" क्यों कि इन लेखोंमें दिगम्बर जैनशास्त्रोंसे जो कुछ भी प्रमाण वाक्य उद्धृत किये गये हैं, और जिनसे बहुत स्पष्टताके साथ आचार्योंका परस्पर शासनभेद पाया जाता है, उन्हें कोई गलत साबित नहीं कर सकता—यह सिद्ध नहीं कर सकता कि वे वाक्य स्वयं लेखकद्वारा कल्पित किये गये हैं और उक्त ग्रंथोंमें मौजूद नहीं हैं। परंतु ये लेख तो इस वर्षके प्रथम अंकसे ही निकलने प्रारंभ हुए हैं और जिस समय 'सत्योदय' आदिकके संबंधमें सभाने प्रस्ताव पास किया था उस समय दो लेख निकल चुके थे, बादमें, हितैषीसम्बंधी दूसरे प्रस्तावके पास होने तक, और कोई लेख उस प्रकारका नहीं निकला। ऐसी हालतमें इन लेखोंके कारण सभाके कुपित, क्षुभित अथवा भयभीत होने आदिकी कोई बात समझमें नहीं आती—यदि इनके कारण ऐसा हुआ होता तो वह सत्योदयादि संबंधी प्रथम प्रस्तावके समय ही

---

१ ता० २१ अप्रेल सन् १९२० को (जैनमार्तंड।

२ ता० २३ जुला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होता—परंतु उस समय वैसा होना तो दूर रहा, जैनहितैषी सभाकी दृष्टिमें एक जैनपत्र था और इसी लिये प्रस्तावानुसार प्रस्तावकी एक नकल उसके संपादकके पास भी भेजी गई थी। अस्तु। दूसरा भी कोई ऐसा नवीन कारण मालूम नहीं होता जिसका अस्तित्व उस समय न हो। इस लिये यही कहना होगा कि सभाका दृष्टिविकार उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। उसे जो वस्तु थोड़े ही दिन पहले अपने असली रंगरूपमें दिखलाई देती थी वही वस्तु, उसी रंगरूपमें होते हुए भी, अब विकृत दशामें नजर आती है—सफेद चीज पीली, काली अथवा हरी नजर आने लगी है—इसीका नाम दृष्टिविकार है।

३—विक्रीत देह।

सहयोगी 'जैनमार्तंड' ने अपना शरीर २५०) रुपयेमें ला० देवीसहायजी जैन रईस व बेंकर फीरोजपुर छावनीके हाथ कुछ शर्तों पर बेच डाला है। अब उसके संपादक महाशय इच्छा रहने पर भी उसमें अपने स्वतंत्र विचार प्रकट नहीं कर सकेंगे और न शर्तोंके विरुद्ध अपनी किसी इच्छाको चरितार्थ कर सकेंगे। अतः जैनमार्तंडको अबसे 'विक्रीत देह' समझना चाहिये। पहली शर्तके अनुसार उसमें सिर्फ वही लेख निकला करेंगे जो दिगम्बर शुद्धाम्नायके अनुसार होंगे, दूसरे लेखोंको स्थान नहीं मिलेगा। मालूम नहीं 'दि० शुद्धाम्नाय' के स्वरूपकी लाला साहबसे कोई रजिष्टरी कराई गई या कि नहीं। दूसरी शर्तके अनुसार उन मिथ्यावादियोंका प्रत्येक अंकमें खंडन निकला करेगा जो इस (शुद्धाम्नायी) धर्मपर कलंक लगा रहे हैं। परंतु यदि किसी अंकमें खंडनके योग्य कोई बात न हो अथवा कोई लेखक खंडनविषयक लेख लिख कर न भेजे और संपादक महाशय स्वयं कोई वैसा लेख लिखनेके लिये तय्यार न हों तो अंक विना खंडनके निकलेगा या कि नहीं, और यदि निकल जाय तो पत्रको क्या तावान (जुर्माना) देना पड़ेगा यह सब कुछ मालूम नहीं हुआ। तीसरी शर्तके मुताबिक पत्रमें विधवाविवाहके प्रतिकूल लेख निकाले जावेंगे। अनुकूल लेखोंको, चाहे वे महात्मा-गाँधी जैसे विद्वानोंके विचार ही क्यों न हों, सूचना रूपसे भी, कोई स्थान नहीं मिलेगा। इसतरह मार्तंडके पाठकोंको दूसरी तरहके विचारोंकी गड़बड़में पड़ने और सोचने समझनेका कष्ट उठानेसे सुरक्षित रक्खा जायगा। चौथी शर्तके अनुसार शास्त्रोंके श्लोक तथा गाथाओंको अब इस पत्रमें छपनेका सौभाग्य प्राप्त न होगा। हाँ, उनका कुछ अंश जरूर छप सकेगा, चाहे वह किसी विवादके लिये पर्याप्त हो या न हो। मालूम नहीं, इस शर्तमें लालाजीका क्या रहस्य है और उसके अनुसार पत्रमें शास्त्रोंका गद्य भाग भी उद्धृत हो सकेगा या कि नहीं।

अपने शरीरके इस तरह बिक जानेपर जैनमार्तंडने बहुत हर्ष मनाया है और अपने खरीदारको 'परम धर्मात्मा' की पदवी प्रदान की है! इससे पाठक पत्रके हृदयकी गहराईको बहुत कुछ माप सकते हैं।

४—शुभ चिह्न।

सहयोगी जैनमित्रसे यह मालूम करके हमें बहुत प्रसन्नता हुई कि पापड जि० अमरावतीकी एक स्त्री श्रीमती राधाबाईजीने अमरावतीमें एक 'जैन बोर्डिंग हाउस' खोलनेके लिये २० हजार रुपये मकानके वास्ते और ९ हजार रुपये वार्षिक आमदनीके पाँच खेत चिरस्थायी खर्चके लिये दान किये हैं। हमारी रायमें जैनियोंके लिये यह बड़ा ही शुभचिह्न है जो उनके स्त्री-समाजकी परिणति ऐसे समयोपयोगी कार्योंकी तरफ़ होने लगी है। हम श्रीमतीकी इस उदारता, दूरदृष्टता और परोपकार बुद्धिकी हृदयसे प्रशंसा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करते हैं। आशा है दूसरी स्त्रियाँ भी आपके इस दानका अनुकरण करेंगी और समयोपयोगी कार्योंमें धन व्यय करना सीखेंगी।

५—सेठी अर्जुनलालजीके विषयमें शीतलप्रसादजीके विचार।

श्रीमान् ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीने सेठी अर्जुनलालजीको, उनके पत्रके उत्तरमें, जो पत्र २८ जून सन् १९२० को देहलीसे भेजा था वह सत्योदयके हालके अंक नं० ७-८ में मुद्रित हुआ है। इस पत्रमें ब्रह्मचारीजीने सेठीजीके जैनधर्मविषयक ज्ञानके प्रति अपने जो विचार प्रकट किये हैं और उनकी पुत्रीके विवाहसम्बंध पर जिस सम्मतिका इजहार किया है उस सबको हम अपने पाठकोंके अवलोकनार्थ नीचे उद्धृत करते हैं:—

" आप जैनसिद्धान्तके मर्मको जाननेवाले हैं तथा जीवन कैसे सार्थक करना इस बातसे भी पूर्ण विज्ञ हैं। मैं आपको किसी प्रकारकी शिक्षा देनेका पात्र अपनेको नहीं समझता हूँ।"

" आपने जो अपनी पुत्रीका विवाह एक हूमड़ व्यक्तिके साथ किया, सो भी जैनपद्धतिके अनुसार, (वह) किसी भी तरह जैनशास्त्रके विरुद्ध नहीं है। जैन जाति ८४ जातियोंमें विभक्त होकर अपनी २ जातिमें योग्य सम्बंध न पाकर जो धीरे धीरे नष्ट हो रही है उसकी रक्षाके उपायका एक नमूना आपने पेश किया है। मेरी अन्तःकरणकी भावना है कि जैसे जयपुरके पं० जयचंद, टोडरमल, दौलतराम, सदासुख आदिने जैन जातिका उपकार किया है उससे कहीं अधिक उपकार आपकी आत्मा तथा मन वचन कायके द्वारा संपादन हो तथा आपके द्वारा जैनधर्म व उसका अहिंसा तत्त्व जगतमें विस्तरै।"

ब्रह्मचारीजीके इन प्राइवेट तथा अन्तरिक विचारोंसे प्रकट है कि वे सेठीजीको कितने गौरवकी दृष्टिसे देखते हैं और उनके जैनधर्मविषयक ज्ञानको कितना ऊँचे दर्जेका समझे हुए हैं। साथ ही, यह भी स्पष्ट है कि वे अंतर्जातीय विवाहोंको अच्छा मानते हैं। इतने पर भी उनके पत्र जैनमित्रमें जो कभी कभी कुछ विरुद्ध विचार निकला करते हैं उन्हें किसी दूसरी ही बाह्य पालिसी पर अवलम्बित समझना चाहिये। हो सकता है कि उनका मूल कारण लोकानुरंजन हो और उसके द्वारा ही अपने सम्मानकी रक्षा की जाती हो।

६—विशेष युद्धकी तय्यारी।

बम्बईमें दि० जैन तीर्थक्षेत्र कमेटीकी स्पेशल मीटिंग हो गई। इसमें दूर दूरसे समाजके बहुतसे कर्णधार पधारे थे, जिनका मिशन तीर्थोंकी रक्षा पर विचार करना था। विचार हो गया, और उसमें किसीको भी युद्धके सिवाय रक्षाका कोई दूसरा उपाय सूझ नहीं पड़ा! बल्कि मीटिंगका यही निष्कर्ष निकला कि अभी तक धनाभावके कारण काफी युद्ध नहीं हो सका और बिना पूर्ण युद्धके सफल मनोरथ होना असंभव है, अतः श्वेताम्बरोंके साथ विशेष युद्ध करनेके लिये, प्रचुर धन एकत्र होना चाहिये। कमेटीने फिलहाल सिर्फ २० लाख रुपयेका फंड एकत्र करनेका प्रस्ताव पास किया है। जब दिगम्बरोंमें २० लाख रुपया एकत्र होगा तब श्वेताम्बरोंमें चालीस लाख रुपया इकट्ठा हो जाना कोई बड़ी बात नहीं है। इससे ऐसे लक्षण पाये जाते हैं कि अब जैनसमाजमें युद्धकी आग और भी ज्यादह भड़केगी और अपना वह उग्ररूप धारण करेगी, जिसमें जैनियोंकी रही सही शांति सब नष्ट हो जायगी, और ये लोग घरू झगड़ोंमें अपनी शक्तिके दुरुपयोग द्वारा न कुछ देशके काम आ सकेंगे और न अपना ही भला कर सकेंगे। नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मालूम ऐसे लोगोंको कब सद्बुद्धिकी प्राप्ति होगी और कब वह दिन आयगा जब ये लोग महावीर भगवानके शासनका रहस्य समझकर उसके अनुयायी बनेंगे और इस प्रकार व्यर्थके झगड़ोंसे मुक्ति प्राप्त करेंगे ।

७–शूद्रमुक्ति ।

सहयोगी पद्मावती पुरवालके संपादक पं० गजाधरलालजी न्यायतीर्थ, स्त्रीमुक्ति पर विचार करते हुए, अपने गतांकमें लिखते हैं कि, **विदेह क्षेत्रके शूद्रतक मोक्षके अधिकारी हैं ।** इससे ऐसा पाया जाता है कि आप शास्त्रानुसार शूद्रपर्यायसे मुक्तिका होना मानते हैं, परंतु वह भरतक्षेत्रमें नहीं । विदेह क्षेत्रमें भरतक्षेत्रके शूद्रोंकी पर्याय, चाहे वे चतुर्थ कालवर्ती ही क्यों न हों, उन्हें वह अधिकार प्रदान नहीं करती । अच्छा होता यदि संपादक महाशय उन शास्त्रीय प्रमाणोंको भी साथमें उद्धृत कर देते जिनके आधार पर उन्होंने ऐसा लिखा है । इससे पाठकोंको बहुत कुछ संतोष होता और विद्वानोंको उस पर विचार करनेका अवसर मिलता ।

८–सफेद झूठ ।

हालके पद्मावती पुरवाल अंक नं० ३ में 'विचित्र समाचारकी विरसता' नामका एक लेख पंडित झम्मनलालजी तर्कतीर्थकी ओरसे प्रकाशित हुआ है । यह लेख कषायसे कितना लबालब भरा हुआ है, कितना पक्षापातपूर्ण है, सभ्यताका इसमें कितना खून किया गया है, सबको एक लाठीसे हाँक कर कितना 'वाहीतवाही' बका गया है और कितनी झूठी, ऊटपटाँग तथा बेसिर पैरकी बातें लिखी गई हैं उन सबको यहाँ पर बतलानेकी जरूरत नहीं है । यहाँ हम अपने पाठकों पर सिर्फ इतना ही प्रकट करना चाहते हैं कि इस लेखमें जैनहितैषीके संपादक पर यह बिलकुल झूठा कलंक लगाया गया है कि वह श्रीसमंतभद्रादि मुनिश्रेष्ठोंकी हँसी उड़ाता और उनके वचनों पर कुठाराघात करता है । जो निष्पक्ष विद्वान् जैनहितैषीको पढ़ते हैं अथवा जिनमें कुछ भी विवेक अवशिष्ट है वे हितैषीके संपादकीय लेखोंको देखकर कह सकते हैं कि तर्कतीर्थजीने जो इलजाम लगाया है वह बिलकुल उनका 'सफेद झूठ' है और उसमें कुछ भी सार नहीं है । जान पड़ता है पंडितजी जोशतीर्थमें कुछ ऐसे डूबे हैं कि उन्हें अच्छे बुरे तथा हेयादेयकी कुछ भी तमीज नहीं रही । जो हृदय स्वामी समंतभद्र जैसे आचार्योंके प्रति अपनी गाढ भक्ति रखता है, उनके नामका नित्य स्मरण करता है और उनकी कृतियोंको बड़ी पूज्य दृष्टिसे देखता है, जिसने उनकी कृतिके रूपमे 'देवागम' नामके मंगलाचरणविशिष्ट 'गंधहस्तिमहाभाष्य' का नाम सुनकर एक बार यह प्रतिज्ञा की थी कि यदि वह महान् ग्रंथ उसे उपलब्ध हो जाय तो वह उसके अध्ययन, मनन और प्रचारमें अपना जीवन व्यतीत करेगा, उस पर ऐसे इलजामका लगाया जाना निःसन्देह असहनीय है । हमें तर्कतीर्थजीके सारे लेखको पढ़कर उतना दुःख और खेद नहीं हुआ जितना कि उनके इस मिथ्या दोषारोपणसे हुआ । हमारे चित्तको इससे बहुत आघात पहुँचा है । हमारा दृढविश्वास है कि स्वामी समन्तभद्रके प्रति हम अभीतक जितना पूज्यभाव रखते हैं उसकी कल्पना भी तर्कतीर्थजी नहीं कर सकते । और इस लिये हम, बातको अधिक न बढ़ाकर तीर्थजीसे इस समय सिर्फ इतना ही निवेदन करते हैं कि वे हमारे उन वाक्योंको प्रकट करें जिनमें समंतभद्रस्वामीकी हँसी उड़ाई गई है और उनके वचनों पर कुठाराघात किया गया है । यदि वे ऐसा प्रकट करनेमें असमर्थ हैं तो उन्हें अपनी इस महती भूल पर पश्चात्ताप करना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust eGangotri

चाहिये और बन सके तो कुछ प्रायश्चित्त लेना चाहिये, तभी उनके आत्माकी इस गुरुतर पापसे शुद्धि हो सकेगी।

अन्तमें हम पद्मावती पुरवालके संपादक तथा प्रकाशक दोनों महाशयोंसे निवेदन करते हैं कि वे ऐसे लेखोंको जरा सोच समझकर निकाला करें, उनपर भी कुछ जिम्मेदारी है; केवल जैसे तैसे लेखोंको अँधाधुंध प्रकाशित कर देना कोई बहादुरीका काम नहीं है, बल्कि यह बात संपादकीय धर्मके विरुद्ध है। ऐसे मिथ्या असभ्य और ऊटपटाँग लेखोंसे उनके पत्रका कुछ भी गौरव नहीं रह सकता, और न समाजमें अशांति फैलनेके सिवाय दूसरा कोई नतीजा निकल सकता है। आप लोग जैसे विद्वान् हैं—न्यायतीर्थ और काव्यतीर्थ हैं—अपना पत्र भी आपको वैसे ही ऊँचे आदर्शपर रखना चाहिये। विपक्षियोंकी बातोंका उत्तर आपके पत्रमें बड़ी ही जँचीतुली और संयत भाषामें निकलना चाहिये। इससे आपके पत्रका गौरव बढ़ेगा और समाजको भी उससे विशेष लाभ पहुँचेगा।

९ संपादक जैनगजटका स्वप्न।

हालमें हिन्दी जैनगजटके संपादक पं० रघुनाथदासजीको, अमावस्याकी मध्यरात्रिके समय जब कि उनकी प्रकृति अस्वस्थ थी, एक स्वप्न हुआ है जिसमें उन्होंने देखा है कि जैनहितैषी दिगम्बर मतसे श्वेताम्बर मतको अधिक महत्त्व दे रहा है और साथ ही जैनधर्मके विरुद्ध लेख लिखकर जैनसमाजका अहित कर रहा है! इस आश्चर्यजनक और अभूतपूर्व घटनाको देखकर सम्पादकमहाशय सहसा चकित हो उठे हैं और आपने विद्वन्मंडलीसे इस बातकी पुकार की है कि वह सूक्ष्मदृष्टिसे उनके इस स्वप्नकी जाँच करें; क्योंकि स्थूल दृष्टिसे हितैषीके सम्बंधमें उन्हें ऐसा कुछ भी मालूम नहीं होता। हमारी रायमें विद्वानों, खासकर स्वप्नशास्त्रियोंको संपादकजीकी इस पुकार पर अवश्य ध्यान देना चाहिये और दया करके उनके स्वप्नका फल बतलाते हुए उनके चित्तका समाधान करना चाहिये।

१०–विरुद्धप्रतीति।

जैनहितैषीके गतांकमें 'जगतकी रचना और उसका प्रबंध' नामका जो लेख बाबू सूरजभानजी वकीलका लिखा हुआ छपा है और जिसमें ईश्वरके जगतकर्तृत्वका निषेध किया गया है उसे हिन्दी जैनगजटके वयोवृद्ध संपादक पं० रघुनाथदासजी 'विरुद्ध' लिखते हैं! जान पड़ता है उन्हें ऐसा ही प्रतीत हुआ है। परंतु मालूम नहीं उनकी इस विरुद्धप्रतीतिका कारण क्या है। कहीं बाबूसूरजभानजीका नाम ही तो उसका कारण नहीं? अथवा ऐसा तो नहीं कि साधारण जैनजनताकी परणति कर्तृत्ववादकी ओर झुकी हुई देखकर तथा लोगोंके व्यवहारोंको उसके अनुकूल पाकर पंडितजी भी कर्तृत्ववादको पसंद करते हों और इस लिये ऐसा लिखकर उसका विधान करनेके लिये तय्यार हुए हों। कुछ भी हो, विना किसी विशेष बातका उल्लेख किये, साधारण तौर पर संपूर्ण लेखके विषयमें ऐसा लिख देना समाजमें बहुत कुछ भ्रम पैदा करेगा, और लोगोंको संपादकजीकी नीतिके समझनेमें बहुत कठिनाई होगी। आपने प्रेमीजीके लेखोंको भी विरुद्ध लिखा है, जिनमें हरिषेणकृत कथाकोश, श्रीअमृतचंद्रसूरि, लायब्रेरी, और प्राचीनग्रंथोंका संग्रह नामके लेख शामिल हैं! परंतु कुशल हो गई कि इस संयुक्तांकके संपादकीय लेखोंके मस्तक पर आपने विरुद्धताका कलंक नहीं लगाया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हिन्दीके नये और अपूर्व ग्रन्थ।

जीवन-निर्वाह।

लेखक, श्रीयुत बाबू सूरजभानुजी वकील। बड़ी खोज और चिरकालके अनुभवसे लिखा हुआ अपूर्व ग्रन्थ। प्रत्येक धर्मात्मा, प्रत्येक विचारक, प्रत्येक सुधारक और प्रत्येक सुख-शान्तिके चाहनेवालेके पढ़नेकी चीज। घरघरमें इसका पाठ होना चाहिए। तमाम बच्चों और स्त्रियोंको इसका स्वाध्याय करा देना चाहिए। भाषा ऐसी सरल है और समझानेका ढंग ऐसा अच्छा है कि साधारण पढ़े लिखे लोग भी इसे समझ सकेंगे। जैनी और अजैनी सभी इससे लाभ उठा सकते हैं। इसके पढ़नेसे लोग असली धर्मका, सच्चे सदाचारका और सच्ची देशोन्नतिका स्वरूप समझ सकेंगे। देवमूढता, लोकमूढता और गुरुमूढ़ताका स्वरूप दर्पणके समान स्पष्ट हो जायगा। धार्मिक और साम्प्रदायिक झगड़ोंसे, अन्धश्रद्धासे, झूठे तंत्र-मंत्रों और भूतप्रेतोंके विश्वासोंसे तबीयत हट जायगी। सच्चे धर्म, सच्ची दानशीलता, सच्चे सदाचार, और सच्चे ज्ञानसे हार्दिक प्रीति उत्पन्न हो जायगी। जो धर्म लड़ाई झगड़ोंकी, पापोंकी और देशको डुबानेकी जड़ बन रहे हैं, उनका असली स्वरूप खूब अच्छी तरह समझमें आ जायगा। एक धर्मात्मा सज्जनने इसकी ५०० प्रतियाँ खरीदकर अपने भानजेके विवाहोत्सवमें मुफ्त वितरण की हैं। अन्य धर्मात्माओंको भी इसका प्रचार करना चाहिए। बाँटनेके लिए कमसे कम १०० प्रतियाँ एक साथ लेनेसे बहुत किफायतसे दी जायँगी। मूल्य एक प्रतिका एक रुपया। पृष्ठ-संख्या २०० से ऊपर।

महादजी (माधवराव) सिन्धिया।

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-सीरीजका ४२ वाँ ग्रन्थ। इतिहासका महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ। यदि आप यह जानना चाहते हों कि मुगलसाम्राज्यका अस्त कैसे हुआ और उनके हाथसे मराठोंके हाथमें राज्यसत्ता आकर अन्तमें अँगरेजोंके हाथमें कैसे चली गई तो यह ग्रन्थ अवश्य पढ़िए। सिन्धियाकी गणना देशके महान् पुरुषोंमें है। यदि महादजी सिन्धिया थोड़े ही दिन और जीते, अथवा उनका उत्तराधिकारी उन ही जैसा योग्य पुरुष होता तो आज हिंदुस्तानके इतिहासका रूप कुछ और ही होता। इस मराठासाम्राज्यके स्तंभस्वरूप वीरपुङ्गवका आलोचनात्मक चरित्र हिन्दीमें सबसे पहला यही है। मूल्य १)

पुष्प-लता।

हिन्दीमें एक नये लेखककी लिखी हुई अपूर्व गल्पें। प्रत्येक गल्प मनोरंजक, शिक्षाप्रद और भावपूर्ण है। सभी गल्पें स्वतंत्र हैं और हिन्दीसाहित्यके लिए गौरवकी चीजें हैं। जो लोग अनुवाद ग्रन्थोंसे अरुचि रखते हैं उन्हें यह मौलिक गल्पग्रन्थ अवश्य पढ़ना चाहिए। ७-८ चित्रोंसे पुस्तक और भी सुन्दर हो गई है। हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-सीरीजका यह ४१ वाँ ग्रन्थ है। मूल्य १) सजिल्दका १॥)

आनन्दकी पगडंडियाँ।

जेम्स एलेन अँगरेजीके बड़े ही प्रसिद्ध आध्यात्मिक लेखक हैं। उनके ग्रन्थ बड़े ही मार्मिक और शान्तिप्रद गिने जाते हैं। अँगरेजीमें उनका बड़ा मान है। यह ग्रन्थ उन्हींके 'Byways of Blessedness' नामक ग्रन्थका अनुवाद है। पिछले अंकमें इस ग्रन्थका 'सहानुभूति' शीर्षक अध्याय उद्धृत किया गया था, उससे पाठक इस ग्रन्थके महत्त्वको समझ सकेंगे। प्रत्येक विवेकी और विचारशील पुरुषको यह ग्रन्थ पढ़ना चाहिए। मूल्य १) सजिल्दका १॥)

सुखदास।

जार्ज इलियटके सुप्रसिद्ध उपन्यास 'साइलस माइनर' का हिन्दी रूपान्तर। इस पुस्तकको हिन्दीके लब्धप्रतिष्ठ उपन्यासलेखक श्रीयुत प्रेमचन्दजीने लिखा है। बढ़िया एण्टिक पेपर पर बड़ी ही सुन्दरतासे छपाया गया है। उपन्यास बहुत ही अच्छा और भावपूर्ण है। मूल्य ॥≈)।

नकली और असली धर्मात्मा।

श्रीयुत बाबू सूरजभानुजी वकीलका लिखा हुआ सर्वसाधारणोपयोगी सरल उपन्यास। ढोंगियोंकी बड़ी पोल खोली गई है। मूल्य ॥)

नया सूचीपत्र।

उत्तमोत्तम हिन्दी पुस्तकोंका ९२ पृष्ठोंका नया सूचीपत्र छपकर तैयार है। पुस्तक-प्रेमियोंको उसकी एक एक कापी मँगाकर रखना चाहिए।

मैनेजर, हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust eGangotri

जैनसाहित्य-संशोधक

अपूर्व त्रैमासिक पत्र ।

जैन इतिहास और जैनसाहित्यके जिज्ञासुओंके लिए अपूर्व साधन । यह त्रैमासिक पत्र सरस्वतीके साइजके सवासौ पृष्ठों पर निकलता है । अनेक ऐतिहासिक चित्रोंसे भी सुशोभित रहता है । अँगरेजी, हिन्दी और गुजराती इन तीनों भाषाओंके लेख इसमें रहते हैं । प्राचीन आचार्योंका समय-निर्णय, अपूर्व तथा दुष्प्राप्य जैनग्रन्थों, शिलालेखों तथा ताम्रपत्रोंका परिचय, विदेशी विद्वानोंकी जैनसाहित्य और इतिहाससम्बन्धी आलोचनायें, जैनतत्त्वज्ञान-सम्बन्धी गंभीर विचार आदि अनेक विषय इसमें रहते हैं और वे बड़ी निष्पक्षतासे लिखे जाते हैं । जैन और जैनेतर सभी विद्वान् इसमें लिखते हैं । प्रत्येक दिगम्बर और श्वेताम्बरको इसका ग्राहक होना चाहिए । दूसरा अंक शीघ्र ही निकलनेवाला है । बार्षिक मूल्य ५) पाँच रुपया और एक अंकका १॥) । पोस्टेज जुदा ।

व्यवस्थापक—
जैनसाहित्य-संशोधक,
C/o भारत जैनविद्यालय, फर्गुसनकालेजरोड, पूना ।

युक्त्यनुशासन सटीक ।

माणिकचन्द्र-जैनग्रन्थमालाका १५ वाँ ग्रन्थ छपकर तैयार हो गया । इसके मूलकर्त्ता भगवान् समन्तभद्र और संस्कृतटीकाके कर्त्ता आचार्य विद्यानन्दि हैं । यह भी देवागमकी भाँति स्तुत्यात्मक है और युक्तियोंका भाण्डार है । अभी तक यह ग्रन्थ दुर्लभ था । प्रत्येक भण्डारमें इसकी एक एक प्रति अवश्य रहनी चाहिए । मूल्य ।॥)

नयचक्र संग्रह ।

यह उक्त ग्रन्थमालाका १६ वाँ ग्रन्थ है । इसमें देवसेनसूरिकृत प्राकृत नयचक्र (संस्कृतछायासहित) और आलापपद्धति तथा माइल्ल धवलकृत द्रव्यस्वभावप्रकाश (छायासहित) ये तीन ग्रन्थ छपे हैं । भूमिका पढ़ने योग्य है । लगभग एक महीनेमें तैयार होगा । मू० ।॥=)

मैनेजर, जैनग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, बम्बई ।

डाँकखानेका नया नियम ।

अब डांकखानेके नये नियमके अनुसार अनरजिस्टर्ड वी० पी० नहीं जा सकेंगे, सब वी० पी० रजिस्टर्ड ही लिये जावेंगे । अर्थात् पुस्तकके प्रत्येक पाकेट पर अभी जो पोस्टेज और म० आ० चार्ज लगता था उसके सिवाय दो आने और भी अधिक लगा करेंगे । पुस्तक चाहे चार आनेकी ही हो तो भी उसपर म० आ० और पोस्टेजके सिवाय ये दो आने भी अवश्य लगेंगे । इस लिए ग्राहक महाशयोंको चाहिए कि वे पुस्तकोंका आर्डर भेजते समय इस खर्चका विचार अवश्य कर लेवें । एक रुपयेसे कमका वी० पी० हम अब नहीं भेजते । कमका आर्डर हो तो टिकट आदि भेज देने चाहिए ।

जैनहितैषीका मूल्य अब म० आ० से ही भेजनेमें लाभ हैं । वी० पी० मँगानेसे नाहक दो आने अधिक पड़ेंगे ।

—मैनेजर ।

बम्बईका माल ।

बम्बईका सब तरहका माल—कपड़ा, किराना, स्टेशनरी, पीतल ताँबा, दवाइयाँ, तेल, साबुन आदि—हमसे मँगाइए । माल दस जगह जाँच करके बहुत सावधानी और ईमानदारीके साथ भेजा जाता है । चौथाई रुपयेके लगभग पेशगी भेजना चाहिये । एकबार व्यवहार करके देखिए ।

नन्हेंलाल हेमचन्द जैन, कमीशन एजेण्ट,
चन्दाबाड़ी, पो० गिरगाँव, बम्बई ।

Printed by Chintaman Sakharam Deole, at the Bombay Vaibhav Press, Servants of India Society's Building, Sandhurst Road, Girgaon, Bombay.

Published by Nathuram Premi, Proprietor, Jain-Granth-Ratnakar Karyalaya, Hirabag, Bombay.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीवर्द्धमानाय नमः ।

भाग १४ ।

जैनहितैषी ।

अंक १२ ।

आश्विन १९७७ । सितम्बर १९२० ।

विषय-सूची ।

पृष्ठसंख्या ।

१ जैनेन्द्र व्याकरण और आचार्य देवनन्दी ३४५
२ जैनधर्मपर बड़ा भारी कलंक ३३१
३ शिक्षाप्रद शास्त्रीय उदाहरण ३३६
४ पं० उदयलालजीका विवाह ३३८
५ आगामी वर्षके लिए सूचनायें ... ...

डाकखानेका नया नियम ।

अब डाकखानेके नये नियमके अनुसार अनरजिस्टर्ड वी० पी० नहीं जा सकेंगे, सब वी० पी० रजिस्टर्ड ही लिये जावेंगे । अर्थात् पुस्तकके प्रत्येक पाकेट पर अभी जो पोस्टेज और म० आ० चार्ज लगता था उसके सिवाय दो आने और भी अधिक लगा करेंगे । पुस्तक चाहे चार आनेकी ही हो तो भी उसपर म० आ० और पोस्टेजके सिवाय ये दो आने भी अवश्य लगेंगे । इस लिए ग्राहक महाशयोंको चाहिए कि वे पुस्तकोंका आर्डर भेजते समय इस खर्चका विचार अवश्य कर लेवें । एक रुपयेसे कमका वी० पी० हम अब नहीं भेजते । कमका आर्डर हो तो टिकट आदि भेज देने चाहिए ।

जैनहितैषीका मूल्य अब म० आ० से ही भेजनेमें लाभ है । वी० पी० मँगानेसे नाहक दो आने अधिक पड़ेंगे । —मैनेजर ।

३–११–१९२० ।

सम्पादक, बाबू जुगलकिशोर मुख्तार ।

मुंबई वैभव प्रेस.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रार्थनायें ।

१ जैनहितैषी किसी स्वार्थबुद्धिसे प्रेरित होकर निजी लाभके लिए नहीं निकाला जाता है। इसके लिए जो समय, शक्ति और धनका व्यय किया जाता है वह केवल निष्पक्ष और ऊँचे विचारोंके प्रचारके लिए। अतः इसकी उन्नतिमें हमारे प्रत्येक पाठकको सहायता देनी चाहिए।

२ जिन महाशयोंको इसका कोई लेख अच्छा मालूम हो उन्हें चाहिए कि उस लेखको वे जितने मित्रोंको पढ़कर सुना सकें अवश्य सुना दिया करें।

३ यदि कोई लेख अच्छा न मालूम हो अथवा विरुद्ध मालूम हो तो केवल उसीके कारण लेखक या सम्पादकसे द्वेषभाव धारण न करनेके लिए सविनय निवेदन है।

४ लेख भेजनेके लिए सभी सम्प्रदायके लेखकोंको आमंत्रण है। —सम्पादक।

नियमावली।

१ जैनहितैषीका वार्षिक मूल्य ३) तीन रुपया पेशगी है।

२ ग्राहक वर्षके आरंभसे किये जाते हैं और बीचमें ७ वें अंकसे। आधे वर्षका मूल्य १॥)

३ प्रत्येक अंकका मूल्य चार आने।

४ लेख, बदलेके पत्र, समालोचनार्थ पुस्तकें आदि "बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तार, सरसावा (सहारनपुर)" के पास भेजना चाहिए। सिर्फ प्रबन्ध और मूल्य आदि सम्बन्धी पत्रव्यवहार इस पतेसे किया जायः—

मैनेजर, जैनग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई।

विचारशील जैनियोंके पढ़नेके लिए।

नीचे लिखी आलोचनात्मक पुस्तकें विचारशीलोंको अवश्य पढ़नी चाहिए। साधारण बुद्धिके गतानुगतिक लोग इन्हें न मँगावें।

१ **ग्रंथपरीक्षा प्रथम भाग।** इसमें कुन्दकुन्द-श्रावकाचार, उमास्वातिश्रावकाचार और जिनसेन-त्रिवर्णाचार इन तीन ग्रन्थोंकी समालोचना है। अनेक प्रमाणोंसे सिद्ध किया है कि ये असली जैनग्रन्थ नहीं है—भेषियोंके बनाये हुए हैं। मूल्य ।≈)

२ **ग्रन्थपरीक्षा द्वितीय भाग।** यह भद्रबाहुसंहिता नामक ग्रन्थकी विस्तृत समालोचना है। इसमें बतलाया है कि यह परमपूज्य भद्रबाहु श्रुतकेवलीका बनाया हुआ ग्रन्थ नहीं है, किन्तु ग्वालियरके किसी धूर्त भट्टारकने १६–१७ वीं शताब्दिमें इस जाली ग्रन्थको उनके नामसे बनाया है और इसमें जैनधर्मसे विरुद्ध सैकड़ों बातें लिखी गई हैं। इन दोनों पुस्तकोंके लेखक श्रीयुक्त बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तार हैं। मू० ।)

३ **दर्शनसार।** आचार्य देवसेनका मूल प्राकृत ग्रन्थ, संस्कृतच्छाया, हिन्दी अनुवाद और विस्तृत विवेचन। जैन इतिहासका एक महत्त्वका ग्रन्थ है। इसमें श्वेताम्बर, यापनीय, काष्ठासंघ, माथुरसंघ, द्राविड़संघ, आजीवक (अज्ञानमत) और वैनेयिक आदि अनेक मतोंकी उत्पत्ति और उनका स्वरूप बतलाया गया है। बड़ी खोज और परिश्रमसे इसकी रचना हुई है।

पार्श्वपुराण भाषा।

कविवर भूधरदासजीका यह अपूर्व ग्रन्थ दूसरीबार छपाया गया है। इसकी कविता बड़ी ही मनोहारिणी है। जैनियोंके कथाग्रन्थोंमें इससे अच्छी सुन्दर कविता आपको और कहीं न मिलेगी। विद्यार्थियोंके लिए भी बहुत उपयोगी है। शास्त्रसभाओंमें बाँचनेके योग्य है। बहुत सुन्दरतासे छपा है। मू० सिर्फ १)६०

नियमसार।

भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यका यह बिलकुल ही अप्रसिद्ध ग्रन्थ है। लोग इसका नाम भी नहीं जानते थे। बड़ी मुश्किलसे प्राप्त करके यह छपाया गया है। नाटक समयसार आदिके समान ही इसका प्रचार होना चाहिए। मूल प्राकृत, संस्कृतच्छाया, आचार्य पद्मप्रभमलधारि देवकी संस्कृत टीका और श्रीयुत शीतलप्रसादजी ब्रह्मचारीकृत सरल भाषाटीकासहित यह छपाया गया है। अध्यात्मप्रेमियोंको अवश्य स्वाध्याय करना चाहिए। मूल्य दो रुपया

मैनेजर, जैनग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, बम्बई।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः ।

चौदहवाँ भाग । अंक ९

जैनहितैषी ।

सितम्बर १९२०
आश्विन २४४६

न हो पक्षपाती बतावे सुमार्ग, डरे ना किसीसे कहे सत्यवाणी ।
बने है विनोदी भले आशयोंसे, सभी जैनियोंका हितैषी 'हितैषी' ॥

जैनेन्द्र व्याकरण और आचार्य देवनन्दी ।

[लेखक—श्रीयुत नाथूरामजी प्रेमी ।]

जैनेन्द्र ।

इन्द्रश्चन्द्रः काशकृत्स्नापिशलीशाकटायनाः ।
पाणिन्यमरजैनेन्द्रो जयन्त्यष्टौ च शाब्दिकाः ॥
—धातुपाठ ।

मुग्धबोधकर्ता पं० बोपदेवने उक्त श्लोकमें जिन आठ वैयाकरणोंके नामोंका उल्लेख किया है, उनमें एक 'जैनेन्द्र' भी है। ये जैनेन्द्र अथवा जैनेंद्र व्याकरणके कर्त्ता कौन थे इस विषयमें इतिहासज्ञोंमें कुछ समय तक बड़ा विवाद चला था। डॉ० कीलहार्नने इसे जिनदेव अथवा भगवान् महावीरद्वारा इन्द्रके लिए कहा गया सिद्ध करनेका प्रयत्न किया था और इसके सुबूतमें उन्होंने कल्पसूत्रकी समयसुन्दरकृत टीका, और लक्ष्मीवल्लभकृत उपदेशमालाकरणिकाका यह उल्लेख पेश किया था कि जिनदेव महावीर जिस समय ८ वर्षके थे उस समय इन्द्रने उनसे शब्दलक्षणसंबंधी कुछ प्रश्न किये और उनके उत्तररूप यह व्याकरण बतलाया गया, इसलिये इसका नाम जैनेन्द्र पड़ा।

यदिन्द्राय जिनेन्द्रेण कौमारेपि निरूपितम् ।
ऐन्द्रं जैनेन्द्रमिति तत्प्राहुः शब्दानुशासनम् ॥

श्वेताम्बरसम्प्रदायके और भी कई ग्रन्थोंमें इस प्रकारके उल्लेख मिलते हैं। कल्पसूत्रकी विनयविजयकृत सुबोधिकाटीकामें लिखा है:—

"[शक्रः] यत्र भगवान् तिष्ठति तत्र पण्डितगेहे समाजगाम। आगत्य च पण्डितयोग्ये आसने भगवन्तं उपवेश्य पण्डितमनोगतान् सन्देहान् पप्रच्छ; श्रीवीरोऽपि बालोऽयं किं वक्ष्यतीत्युत्कर्णेषु सकललोकेषु सर्वाणि उत्तराणि ददौ, ततो 'जैनेन्द्रव्याकरणं' जज्ञे। यतः—

सक्को य तस्समक्खं भगवंतं आसणे निवेसित्ता ।
सद्दस्स लक्खणं पुच्छे वागरणं अवयवा इंदं ॥"

१ इंडियन एण्टिक्वेरी जिल्द १०, पृ० २५।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थात् भगवानको माता-पिताने पाठशालामें गुरुके पास पढ़नेके लिए भेजा है, यह जानकर इन्द्र स्वर्गसे आया और पण्डितके घर, जहाँ भगवान् थे वहाँ, गया। उसने भगवानको पण्डितके आसनपर बिठा दिया और पण्डितके मनमें जो जो सन्देह थे, उन सबको पूछा। जब सब लोग यह सुननेके लिए उत्कर्ण हो रहे थे कि देखें यह बालक क्या उत्तर देता है; भगवान् वीरने सब प्रश्नोंके उत्तर दे दिये, तब 'जैनेंद्र व्याकरण' बना।

परंतु इस प्रसंगके वे सब उल्लेख अपेक्षाकृत अर्वाचीन ही हैं जिनमें भगवानके उत्तररूप इस व्याकरणका नाम 'जैनेन्द्र' बतलाया है। प्राचीन उल्लेखोंमें इसका नाम जैनेन्द्रकी जगह 'ऐन्द्र' प्रकट किया गया है, जैसा कि आवश्यकसूत्रकी हारिभद्रीयवृत्तिके पृष्ठ १८२ में—

"शक्रश्च तत्समक्षं लेखाचार्यसमक्षं भगवन्तं तीर्थंकरं आसने निवेश्य शब्दस्य लक्षणं पृच्छति। भगवता च व्याकरणं अभ्यधायि। व्याक्रियन्ते लौकिकसामयिकाः शब्दाः अनेन इति व्याकरणं शब्दशास्त्रम्। तदवयवाः केचन उपाध्यायेन गृहीताः, ततश्च ऐन्द्रं व्याकरणं संजातम्।"

इसी प्रकार सुप्रसिद्ध आचार्य हेमचन्द्र अपने योगशास्त्रके प्रथम प्रकाशमें लिखते हैं:—

"मातापितृभ्यामन्येद्युः प्रारब्धेऽध्यापनोत्सवे।
आः सर्वज्ञस्य शिष्यत्वमितीन्द्रस्तमुपास्थित ॥ ५६ ॥
उपाध्यायासने तस्मिन्वासवेनोपवेशितः।
प्रणम्य प्रार्थितः स्वामी शब्दपारायणं जगौ ॥ ५७ ॥
इदं भगवतेन्द्राय प्रोक्तं शब्दानुशासनम्।
उपाध्यायेन तच्छ्रुत्वा लोकेष्वैन्द्रमितीरितम् ॥ ५८ ॥

इसके अनुसार भगवानने इन्द्रके लिए जो शब्दानुशासन कहा, उपाध्यायने उसे सुनकर लोकमें 'ऐन्द्र' नामसे प्रकट किया। अर्थात् इन्द्रके लिए जो व्याकरण कहा गया, उसका नाम 'ऐन्द्र' हुआ।

प्राचीन कालमें इन्द्रनामक आचार्यका बनाया हुआ एक संस्कृत व्याकरण था[1]। इसका उल्लेख अनेक ग्रन्थोंमें मिलता है। ऊपर दियेहुए बोपदेवके श्लोकमें भी उसका नाम दर्ज है। हरिवंशपुराणके कर्त्ताने देवनन्दिको 'इन्द्रचंद्रार्कजैनेंद्रव्यापिव्याकरणोक्षिणः' विशेषण दिया है। शब्दार्णवचंद्रिकाकी ताड़पत्रवाली प्रतिमें, जो १३ वीं शताब्दिके लगभगकी लिखी हुई मालूम होती है, "इन्द्रश्चन्द्रः शकटतनयः" आदि श्लोकमें इन्द्रके व्याकरणका उल्लेख है। बहुत समय हुआ यह नष्ट होगया है[2]। जब यह उपलब्ध ही नहीं है तब इसके विषयमें कुछ कहनेकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। यद्यपि आजकलके समयमें इस बातपर कोई भी विद्वान् विश्वास नहीं कर सकता है कि भगवान् महावीरने भी कोई व्याकरण बनाया होगा और वह भी मागधी या प्राकृतका नहीं, किन्तु ब्राह्मणोंकी खास भाषा संस्कृतका—तो भी यह निस्सन्देह है कि वह व्याकरण 'जैनेन्द्र' तो नहीं था। यदि बनाया भी होगा तो वह 'ऐन्द्र' ही होगा। क्यों कि हरिभद्रसूरि और हेमचंद्रसूरि उसीका उल्लेख करते हैं, जैनेन्द्रका नहीं। जान पड़ता है, विनयविजय और लक्ष्मीवल्लभने पीछेसे 'ऐन्द्र' को ही 'जैनेन्द्र' बना डाला है। उनके समयमें भी 'ऐन्द्र' अप्राप्य था, इसलिये उन्होंने प्राप्य 'जैनेंद्र' को ही भगवान महावीरकी कृति बतलाना विशेष सुखकर और लाभप्रद सोचा होगा।

---

१ डॉ० ए० सी० बर्नेलने इन्द्रव्याकरणके विषयमें चीनी तिब्बतीय और भारतीय साहित्यमें जो जो उल्लेख मिलते हैं उनको संग्रह करके 'ओन दि ऐन्द्रस्कूल ऑफ संस्कृत ग्रामेरियन्स' नामकी एक बड़ी पुस्तक लिखी है।

२ "तेन प्रणष्टमैन्द्रं तदस्मद्व्याकरणं भुवि"
—कथासरित्सागर, तरंग ४।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि हरिभद्रसूरि विक्रमकी आठवीं शताब्दिके और हेमचन्द्रसूरि तेरहवीं शताब्दिके विद्वान् हैं जिन्होंने 'ऐन्द्र' को भगवानका व्याकरण बतलाया है; परंतु 'जैनेन्द्र' को भगवत्प्रणीत बतलानेवाले विनयविजय और लक्ष्मीवल्लभ विक्रमकी अठारहवीं शताब्दिमें हुए हैं ।

विनयविजयजीके इस उल्लेखने बड़ा काम किया कि भगवत्प्रणीत व्याकरणका नाम 'जैनेन्द्र' है । यह निश्चय है कि भगवत्प्रणीत व्याकरणको 'जैनेन्द्र' लिखते समय उनका लक्ष्य इस देवनन्दि या पूज्यपादकृत 'जैनेन्द्र' पर ही रहा होगा; परन्तु जान पड़ता है कि वे इस विषयमें उक्त उल्लेखके सिवाय और कुछ प्रयत्न नहीं कर सके । यह काम बाकी ही पड़ा रहा कि वह जैनेन्द्र व्याकरण लोगोंके समक्ष उपस्थित कर दिया जाय और भक्तजन अपने भगवानकी व्याकरणज्ञता देखकर गद्गद हो जायँ । खुशीकी बात है कि उनके कुछ ही समय बाद वि० सं० १७९७ में एक श्वेताम्बर विद्वान्ने इस कार्यको पूरा कर डाला—साक्षात् महावीर देवका बनाया हुआ व्याकरण तैयार कर दिया और उसका दूसरा नाम 'भगवद्वाग्वादिनी' रक्खा !

इस भगवद्वाग्वादिनीकी सबसे पहली प्रतिके दर्शन करनेका सौभाग्य हमें पूनेके भाण्डारकर रिसर्च इन्टिट्यूटमें प्राप्त हुआ । यह तक्षक नगरमें रत्नर्षि नामक लेखकद्वारा वि० सं० १७९७ में लिखी गई थी । इसकी पत्रसंख्या ३०, और श्लोकसंख्या ८०० है । प्रत्येक पत्रमें ११ पंक्तियाँ और प्रत्येक पंक्तिमें ४० अक्षर हैं । प्रति बहुत शुद्ध है । जैनेन्द्रका सूत्रपाठ मात्र है—और वह सूत्रपाठ है जिसपर शब्दार्णवचन्द्रिका टीका लिखी गई है । इस वाग्वादिनीके आविष्कारक अच्छे वैय्याकरण दिखते हैं । उन्होंने शक्तिभर इस बातको सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है कि इसके कर्त्ता साक्षात् महावीर भगवान् हैं । दिगम्बरी देवनन्दीका बनाया हुआ यह कभी नहीं हो सकता । उनकी सब युक्तियाँ हमने इस ग्रन्थके परिचयमें—जो परिशिष्टमें दिया गया है—उद्धृत कर दी हैं । उन सब पर विचार करनेकी यहाँ आवश्यकता प्रतीत नहीं होती । इस लेखको पूरा पढ़ लेने पर पाठकोंको वे सब युक्तियाँ स्वयं ही सारहीन प्रतीत होने लगेंगी ।

हमारा अनुमान है कि डॉ० कीलहार्नके हाथमें यह 'भगवद्वाग्वादिनी' की प्रति अवश्य पड़ी होगी और इसीकी कृपासे प्रेरित होकर उन्होंने अपना पूर्वोक्त लेख लिखा होगा । उनके लेखमें जो श्लोकादि प्रमाणस्वरूप दिये गये हैं वे भी सब इसी परसे लिये गये जान पड़ते हैं । अस्तु ।

डॉ० कीलहार्नके इस भ्रमको सबसे पहले प्रो० पाठकने दूर किया था और अब तो जैनेंद्र व्याकरणकी बहुत प्रसिद्धि हो चुकी है । उसकी या उसके परिशोधित—परिवर्तित संस्करणकी कई टीकायें भी छप चुकी हैं । इस लिए अब सभी विद्वान् इस विषयमें सहमत हो गये हैं कि जैनेन्द्र व्याकरण किसी तीर्थंकर या भगवानका नहीं किन्तु अन्य वैयाकरणोंके समान ही एक विद्वानका बनाया हुआ है और उनका नाम देवनन्दि या पूज्यपाद था ।

देवनन्दि अथवा पूज्यपाद ।

श्रीगृद्धपिच्छमुनिपस्य बलाकपिच्छः
शिष्योऽजनिष्ट भुवनत्रयवर्तिकीर्तिः ।
चारित्रचञ्चुरखिलावनिपालमौलि-
मालाशिलीमुखविराजितपादपद्मः ॥ १ ॥
एवं महाचार्यपरम्परायां
स्यात्कारमुद्राङ्कितत्त्वदीपः ।
भद्रः समन्ताद्गुणतो गणीशः
समन्तभद्रोऽजनि वादिसिंहः ॥ २ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ततः—

यो देवनन्दिप्रथमाभिधानो
बुद्धया महत्या स जिनेंद्रबुद्धिः ॥ २ ॥
श्रीपूज्यपादोऽजनि देवताभि-
र्यत्पूजितं पादयुगं यदीयम् ॥ ३ ॥

जैनेन्द्रं निजशब्दभागमतुलं सर्वार्थसिद्धिः परा
सिद्धान्ते निपुणत्वमुद्धकवितां जैनाभिषेकः स्वकः ।
छन्दः सूक्ष्मधियं समाधिशतकं स्वास्थ्यं यदीयं विदामा-
ख्यातीह स पूज्यपादमुनिपः पूज्यो मुनीनां गणैः ॥४॥*

इस अवतरणके तीसरे श्लोकका अभिप्राय यह है कि उनका पहला नाम देवनन्दि था, बुद्धिकी महत्ताके कारण वे जिनेन्द्रबुद्धि कहलाये और देवोंने उनके चरणोंकी पूजा की, इस कारण उनका नाम पूज्यपाद हुआ।

श्रवणबेल्गोलके नं० १०८ के मंगराज कवि-कृत शिलालेखमें जो शकसंवत् १३६५ (वि० सं० १५००) का लिखा हुआ है, नीचे श्लोक उपलब्ध होते हैंः—

श्रीपूज्यपादोध्दृतधर्मराज्य-
स्ततः सुराधीश्वरपूज्यपादः ।
यदीयवैदुष्यगुणानिदानीं
वदन्ति शास्त्राणि तदुध्दृतानि ॥ १५ ॥
धृतविश्वबुद्धिरयमत्रयोगिभिः
कृतकृत्यभावमनुविभ्रदुच्चकैः ।
जिनवद्बभूव यदनङ्गचापहृत्स
जिनेन्द्रबुद्धिरिति साधुवर्णितः ॥ १६ ॥
श्रीपूज्यपादमुनिरप्रतिमौषधर्द्धि-
र्जीयाद्विदेहजिनदर्शनपूतगात्रः ।
यत्पादधौतजलसंस्पर्शनप्रभावात्
कालायसं किल तदा कनकीचकार ॥ १७ ॥

इन श्लोकोंसे भी उनके पूज्यपाद और जिनेंद्रबुद्धि नाम प्रकट होते हैं।

नन्दिसंघकी पट्टावलीके नीचे लिखे हुए श्लोकसे भी देवनन्दिका दूसरा नाम पूज्यपाद था, यह स्पष्ट होता है।

यशःकीर्तिर्यशोनन्दी देवनन्दी महामतिः ।
श्रीपूज्यपादापराख्यो गुणनन्दी गुणाकरः ॥

इनका संक्षिप्त नाम 'देव' भी था। आचार्य जिनसेन, वादिराजसूरि, और पुन्नाटसंघीय जिनसेनने इन्हें इसी संक्षिप्त नामसे स्मरण किया है—

कवीनां तीर्थकृद्देवः किंतरां तत्र वर्ण्यते ।
विदुषां वाङ्मलध्वंसि तीर्थं यस्य वचोमयम् ॥५२॥
—आदिपुराण प्रथम पर्व।

अचिन्त्यमहिमा देवः सोऽभिवंद्यो हितैषिणा ।
शब्दाश्च येन सिद्धयन्ति साधुत्वं प्रतिलंभिताः॥१८॥
—पार्श्वनाथचरित प्रथम सर्ग।

इन्द्रचन्द्रार्कजैनेन्द्रव्यापि (डि) व्याकरणेक्षिणः ।
देवस्य देववन्द्यस्य न वंदते गिरः कथम् ॥ ३१ ॥
—हरिवंशपुराण।

अनेक लेखकोंने उन्हें केवल देवनन्दि नामसे और केवल पूज्यपाद नामसे स्मरण किया है और दोनों नामोंसे उन्हें वैयाकरण माना है। आचार्य शुभचन्द्र पाण्डवपुराणमें लिखते हैं—

पूज्यपादः सदापूज्यपादः पूज्यैः पुनातु माम् ।
व्याकरणार्णवो येन तीर्णो विस्तीर्णसद्गुणः ॥

महाकवि धनंजय अपनी नाममालामें पूज्यपादको लक्षणग्रन्थ (व्याकरण) का कर्ता मानते हैं:—

प्रमाणमकलंकस्य पूज्यपादस्य लक्षणम् ।
धनंजयकवेः काव्यं रत्नत्रयमपश्चिमम् ॥ २० ॥

श्रवणबेल्गोलके ४७ वें नंबरके शिलालेखमें श्रीमेघचन्द्र त्रैविद्यदेवकी स्तुतिमें नीचे लिखा हुआ श्लोक दिया हैः—

सिद्धान्ते जिनवीरसेनसदृशः शास्त्राब्जिनीभास्करः,
षट्तर्केष्वकलंकदेवविबुधः साक्षादयं भूतले ।
सर्वव्याकरणे विपश्चिदधिपः श्रीपूज्यपादः स्वयं,
त्रैविद्योत्तममेघचन्द्रमुनिपो वादीभपञ्चाननः ॥

* ये श्लोक श्रीयुक्त पं० कलापा भरमापा निटवेने सर्वार्थसिद्धिकी भूमिकामें उध्दृत किये हैं; पर यह नहीं सूचित किया है कि ये कहाँके हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसमें मेघचन्द्रको पूज्यपादके समान व्याकरणका ज्ञाता बतलाया है। इससे पूज्यपादका वैयाकरण होना सिद्ध है। ये मेघचन्द्र आचारसारके कर्ता वीरनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्तिके गुरु थे और इनका स्वर्गवास शक संवत् १०३७ (वि० सं० ११७२) में हुआ था।

अनगारधर्मामृतटीकाकी प्रशस्तिमें—जो वि० सं० १३०० में लिखी गई है—पण्डित आशाधरजीने लिखा है कि मैंने जैन न्याय और जैनेन्द्र व्याकरणशास्त्र पण्डित महावीरसे धारा नगरीमें पढ़े—"धारायामपठज्जिनप्रमिति-वाक्शास्त्रे महावीरतः।" और 'जिनप्रमितिवाक्शास्त्रे' की टीका में लिखा है—"जैनेन्द्रं प्रमाणशास्त्रं जैनेन्द्रव्याकरणं च।" इससे यह निश्चय होता है कि आशाधरके समयमें जैनेन्द्र व्याकरणका पठन-पाठन होता था। सागार और अनगारधर्मामृतटीकामें कई जगह प्रमाणरूपमें व्याकरणके सूत्र दिये हैं और वे इसी देवनन्दिकृत जैनेन्द्रव्याकरणके हैं।

कर्नाटक देशमें वृत्तविलास नामके एक जैन कवि हो गये हैं। उन्होंने अमितगतिकृत धर्मपरीक्षाके आधारसे वि० सं० १२१७ के लगभग 'धर्मपरीक्षा' नामका ग्रन्थ कनड़ी भाषामें लिखा है। इस ग्रन्थकी प्रशस्तिमें पूज्यपाद आचार्यकी बड़ी प्रशंसा लिखी है और वे जैनेन्द्रव्याकरणके रचयिता थे, इस बातका स्पष्ट उल्लेख किया है। साथ ही उनकी अन्यान्य रचनाओंका भी परिचय दिया है:—

> भरदिं जैनेन्द्र भासुरं=एनल् ओरेदं पाणिनीयक्के टीकुं बरेदं तत्त्वार्थमं टिप्पणदिन् अरिपिदं यंत्र-मंत्रादिशास्त्रोकरम्।
>
> भूरक्षणार्थं विरचिसि जसमुं तालिददं विश्वविद्याभरणं भव्यालियाराधितपदकमलं पूज्यपादं व्रतीन्द्रम्॥

इसका अभिप्राय यह है कि व्रतीन्द्र पूज्यपादने-जिनके चरणकमलोंकी अनेक भव्य आराधना करते थे और जो विश्वभरकी विद्याओंके शृंगार थे—प्रकाशमान जैनेन्द्र व्याकरणकी रचना की, पाणिनि व्याकरणकी टीका लिखी, टिप्पण द्वारा (सर्वार्थसिद्धि नामक तत्त्वार्थसूत्रटीका) तत्त्वार्थका अर्थावबोधन किया और पृथ्वीकी रक्षाके लिए यंत्रमंत्रादि शास्त्रकी रचना की।

आचार्य शुभचन्द्रने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ ज्ञानार्णवके प्रारंभमें देवनन्दिकी प्रशंसा करते हुए लिखा है।

> अपाकुर्वन्ति यद्वाचः कायवाक्चित्तसंभवम्।
> कलङ्कमङ्गिनां सोऽयं देवनन्दी नमस्यते॥

अर्थात् जिनकी वाणी देहधारियोंके शरीर, वचन और मनसम्बन्धी मैलको मिटा देती है, उन देवनन्दीको मैं नमस्कार करता हूँ। इस श्लोकमें देवनन्दीकी वाणीकी जो विशेषता बतलाई है, वह विचारयोग्य है। हमारी समझमें देवनन्दिके तीन ग्रन्थोंको लक्ष्य करके यह प्रशंसा की गई है। शरीरके मैलको नाश करनेके लिए उनका वैद्यकशास्त्र, वचनका मैल (दोष) मिटानेके लिए जैनेन्द्र व्याकरण और मनका मैल दूर करनेके लिए समाधितंत्र है। अतएव इससे मालूम होता है कि वचनदोषको दूर करनेवाली उनकी कोई रचना अवश्य है और वह जैनेद्र व्याकरण ही हो सकती है।

इनके सिवाय विक्रमकी आठवीं शताब्दिके बाद कनड़ी भाषामें जितने काव्यग्रन्थ लिखे गये हैं, प्रायः उन सभीके प्रारंभिक श्लोकोंमें पूज्यपादकी प्रशंसा की गई है*।

इन सब उल्लेखोंसे यह बात अच्छी तरह स्पष्ट हो जाती है कि पूज्यपाद एक बहुत ही प्रसिद्ध ग्रंथकार हो गये हैं और देवनन्दि उनका ही दूसरा नाम था। साथ ही वे सुप्रसिद्ध

* देखो हिस्ट्री आफ दि कनडी लिटरेचर।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैनेन्द्र व्याकरणके कर्ता थे इस बातको इतना विस्तारसे लिखनेकी आवश्यकता इसी कारण हुई कि बहुत लोग पूज्यपाद और देवनन्दिको जुदा जुदा मानते थे और कोई कोई पूज्यपादको देवनन्दिका विशेषण ही समझ बैठे थे।

जैनेन्द्रकी प्रत्येक हस्तलिखित प्रतिके प्रारंभमें नीचे लिखा श्लोक मिलता हैः—

लक्ष्मीरात्यन्तिकी यस्य निरवद्याऽवभासते।
देवनन्दितपूजेशं नमस्तस्मै स्वयंभुवे॥

इसमें ग्रन्थकर्तानें 'देवनन्दितपूजेशं' पदमें जो कि भगवानका विशेषण है अपना नाम भी प्रकट कर दिया है। संस्कृत प्राकृत ग्रन्थोंके मंगलाचरणोंमें यह पद्धति अनेक विद्वानोंने स्वीकार की है *। इससे स्वयं ग्रन्थकर्ताके वचनोंसे भी जैनेन्द्रके कर्ता 'देवनन्दि' ठहरते हैं।

× गणरत्न महोदधिके कर्ता वर्धमान (श्वेताम्बर) और हैम शब्दानुशासनके लघुन्यास बनानेवाले कनकप्रभ भी जैनेन्द्र व्याकरणके कर्ताका नाम देवनन्दि ही बतलाते हैं। अतः हम समझते हैं कि अब इस विषयमें किसी प्रकारका कोई सन्देह बाकी नहीं रह जाता है कि यह व्याकरण देवनन्दि या पूज्यपादका बनाया हुआ है।

प्रथम जैनव्याकरण।

जहाँ तक हम जानते हैं, जैनोंका सबसे पहला संस्कृत व्याकरण यही है। अभी तक इसके पहलेका कोई भी व्याकरणग्रन्थ उपलब्ध नहीं हुआ है। शाकटायन, सिद्धहेमशब्दानुशासन आदि सब व्याकरण इससे पीछेके बने हुए हैं। इस ग्रन्थकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके सूत्र बहुत ही संक्षिप्त हैं। 'अर्धमात्रालाघवं पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैय्याकरणाः।' इस प्रवादकी सचाई इसके सूत्रोंपर दृष्टि डालनेसे बहुत अच्छी तरह स्पष्ट होती है। संज्ञाकृत लाघवको भी इसमें स्वीकार किया है, जब कि पाणिनीयमें संज्ञाकृत लाघव ग्रहण नहीं किया है। इसकी प्रशंसामें जैनेंद्रप्रक्रियामें लिखा हैः—

नमः श्रीपूज्यपादाय लक्षणं यदुपक्रमम्।
यदेवात्र तदन्यत्र यन्नात्रास्ति न तत् क्वचित्॥

संस्करण-भेद।

जैनेन्द्र व्याकरणका मूल सूत्रपाठ दो प्रकारका उपलब्ध है—एक तो वह जिसपर आचार्य अभयनन्दिकी 'महावृत्ति' तथा श्रुतकीर्तिकृत 'पंचवस्तु' नामकी प्रक्रिया है; और दूसरा वह जिसपर सोमदेवसूरिकृत 'शब्दार्णव-चन्द्रिका' और गुणनन्दिकृत 'जैनेन्द्र-प्रक्रिया' है [1]। पहले प्रकारके पाठमें लगभग ३००० और दूसरेमें लगभग ३७०० सूत्र हैं, अर्थात् एकसे दूसरेमें कोई ७०० सूत्र अधिक हैं, और जो ३००० सूत्र हैं वे भी दोनोंमें एकसे नहीं हैं। अर्थात् दूसरे सूत्रपाठमें पहले सूत्रपाठके सैकड़ों सूत्र परिवर्तित और परिवर्धित भी किये गये हैं। पहले प्रकारका सूत्रपाठ पाणिनीय सूत्रपा-

---

* १–देखिए नीतिवाक्यामृतके मंगलाचरणमें सोमदेव कहते हैंः—

"सोमं सोमसमाकारं सोमाभं सोमसंभवम्।
सोमदेवं मुनिं नत्वा नीतिवाक्यामृतं ब्रुवे॥"

२–आचार्य अनन्तवीर्य लघीयस्त्रयकी वृत्तिके प्रारंभमें कहते हैं—

जिनाधीशं मुनिं चन्द्रमकलंकं पुनः पुनः।
अनन्तवीर्यमानौमि स्याद्वादन्यायनायकम्॥"

३–भावसंग्रहमें देवसेनसूरि मंगलाचरण करते हैंः—

पणमिय सुरसेणणुयं मुणिगणहरवंदियं महावीरं।
वोच्छामि भावसंगहमिणमो भव्वप्पबोहट्ठं॥

× शालातुरीयशकटाङ्गजचन्द्रगोमि—
दिग्वस्त्रभर्तृहरिवामनभोजमुख्याः।

१ यह जैनेन्द्रप्रक्रिया गुणनन्दिकृत है या नहीं, इसमें हमें बहुत कुछ सन्देह है। आगे चलकर इस विषयका खुलासा किया गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ठके ढंगका है, वर्तमानदृष्टिसे वह कुछ अपूर्णसा जान पड़ता है और इसी लिए महावृत्तिमें बहुतसे वार्तिक तथा उपसंख्यान आदि बनाकर उसकी पूर्णता की गई दिखलाई देती है, जब कि दूसरा पाठ प्रायः पूर्णसा जान पड़ता है और इसी कारण उसकी टीकाओंमें वार्तिक आदि नहीं दिखलाई देते। दोनों पाठोंमें बहुतसी संज्ञायें भी भिन्न प्रकार की हैं।

इन भिन्नताओंके होते हुए भी दोनों पाठोंमें समानता भी कमी नहीं है। दोनोंके अधिकांश सूत्र समान हैं, दोनोंके प्रारंभका मंगलाचरण बिलकुल एक ही है और दोनोंके कर्ताओंका नाम भी देवनन्दि या पूज्यपाद लिखा हुआ मिलता है।

असली सूत्रपाठ।

अब प्रश्न यह है कि इन दोनोंमेंसे स्वयं देवनन्दि या पूज्यपादका बनाया हुआ असली सूत्रपाठ कौनसा है। सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ प्रो० के० बी० पाठकका कथन है कि दूसरा पाठ जिसपर सोमदेवकी शब्दार्णवचन्द्रिका लिखी गई है वास्तविक पाठ है। हमारे दिगम्बर सम्प्रदायके विद्वानोंमें श्रीयुत पं० पन्नालालजी बाकलीवाल और उनके अनुयायी पं० श्रीलालजी व्याकरणशास्त्री भी इसी मतको माननेवाले हैं। इसके विरुद्ध न्यायतीर्थ और न्यायशास्त्री पं० वंशीधरजी तथा पं० पन्नालालजी सोनी दूसरे पाठको वास्तविक मानते हैं, जिसपर कि अभयनन्दिकी वृत्ति लिखी गई है। यद्यपि इन दोनों ही पक्षके विद्वानोंकी ओरसे अभीतक कोई ऐसे पुष्ट प्रमाण उपस्थित नहीं किये गये हैं जिनसे इस प्रश्नका अच्छी तरह निर्णय हो जाय; परन्तु हमको पं० वंशीधरजीका मत ठीक मालूम होता है और पाठक यह जानकर प्रसन्न होंगे कि हमें इस मतको करीब करीब निर्भ्रान्त मान लेनेके अनेक पुष्ट प्रमाण मिल गये हैं।

इन प्रमाणोंके आधारसे हम इस सिद्धान्तपर पहुँचे हैं कि आचार्य देवनन्दि या पूज्यपादका बनाया हुआ सूत्रपाठ वही है जिसपर अभयनन्दिने अपनी महावृत्ति लिखी है। यह सूत्रपाठ उस समयतक तो ठीक समझा जाता रहा जबतक पाल्यकीर्तिका शाकटायन व्याकरण नहीं बना था। शायद शाकटायनको भी जैनेन्द्रके होते हुए एक जुदा व्याकरण बनानेकी आवश्यकता इसी लिए मालूम पड़ी होगी कि जैनेन्द्र अपूर्ण था, और बिना वार्तिकों और उपसंख्यानों आदिके काम नहीं चल सकता था। परन्तु जब शाकटायन जैसा सर्वांगपूर्ण व्याकरण बन चुका, तब जैनेन्द्र व्याकरणके भक्तोंको उसकी त्रुटियाँ विशेष खटकने लगीं और उनमेंसे आचार्य गुणनन्दिने उसे सर्वांगपूर्ण बनानेका प्रयत्न किया। इस प्रयत्नका फल ही यह दूसरा सूत्रपाठ है जिस पर सोमदेवकी शब्दार्णवचन्द्रिका रची गई है। इस सूत्रपाठको बारीकीके साथ देखनेसे मालूम पड़ता है कि गुणनन्दिके समय तक व्याकरणसिद्ध जितने प्रयोग होने लगे थे उन सबके सूत्र उसमें मौजूद हैं और इसलिए उसके टीकाकारोंको वार्तिक आदि बनानेके झंझटोंमें नहीं पड़ना पड़ा है। अभयनन्दिकी महावृत्तिके ऐसे बीसों वार्तिक हैं जिनके इस पाठमें सूत्र ही बना दिये गये हैं। नीचे लिखे प्रमाणोंसे हमारे इन सब विचारोंकी पुष्टि होती है:—

१—शब्दार्णवचन्द्रिकाके अन्तमें नीचे लिखा हुआ श्लोक देखिए—

> श्रीसोमदेवयतिनिर्मितमादधाति
> या नौः प्रतीतगुणनन्दितशब्दवार्धौ।
> सोऽयं सतामलचेतसि विस्फुरन्ती
> वृत्तिः सदानुतपदा परिवर्तिषीष्ट ॥

इसमें सुप्रसिद्ध गुणनन्दि आचार्यके शब्दवार्धि या शब्दार्णवमें प्रवेश करनेके लिए सोमदेवकृत वृत्तिको नौकाके समान बतलाया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इससे यह जान पड़ता है कि आचार्य गुणनन्दिके बनाये हुए व्याकरण ग्रन्थकी यह टीका है और उसका नाम शब्दार्णव है। इस टीकाका 'शब्दार्णवचन्द्रिका' नाम भी तभी अन्वर्थक होता है, जब मूल सूत्रग्रन्थका नाम शब्दार्णव हो। हमारे इस अनुमानकी पुष्टि जैनेन्द्रप्रक्रियाके नीचे लिखे अन्तिम श्लोकसे और भी अच्छी तरहसे होती है—

> सत्संधिं दधते समासमभितः ख्यातार्थनामोन्नतं,
> निर्व्रातं बहुतद्धितं क्रम [कृत] मिहाख्यातं
> यशःशालिना (न) म्।
> सैषा श्रीगुणनन्दितानितवपुः शब्दार्णवं निर्णयं,
> नावत्याश्रयतां विविक्षुमनसां साक्षात्स्वयं प्रक्रिया ॥

इसका आशय यह है कि गुणनन्दिने जिसके शरीरको विस्तृत किया है, उस शब्दार्णवको जाननेकी इच्छा रखनेवालोंके लिए तथा आश्रय लेनेवालोंके लिए यह प्रक्रिया साक्षात् नावके समान काम देगी। इसमें 'शब्दार्णव' को 'गुणनन्दितानितवपुः' विशेषण दिया है, वह विशेष ध्यान देने योग्य है। उससे साफ समझमें आता है कि गुणनन्दिके जिस व्याकरणपर ये दोनों टीकायें—शब्दार्णवचन्द्रिका और जैनेन्द्रप्रक्रिया—लिखी गई हैं उसका नाम 'शब्दार्णव' है और वह मूल (असली) जैनेन्द्र व्याकरणके संक्षिप्त शरीरको तानित या विस्तृत करके बनाया गया है।

शब्दार्णवचन्द्रिकाके प्रारंभका मंगलाचरण भी इस विषयमें ध्यान देने योग्य है:—

> श्रीपूज्यपादममलं गुणनन्दिदेवं
> सोमामरव्रतिपपूजितपादयुग्मम्।
> सिद्धं समुन्नतपदं वृषभं जिनेन्द्रं
> सच्छब्दलक्षणमहं विनमामि वीरम् ॥

इसमें ग्रन्थकर्ताने भगवान् महावीरके विशेषणरूपमें क्रमसे पूज्यपादका, गुणनन्दिका और अपना (सोमामर या सोमदेवका) उल्लेख किया है और इसमें वे निस्सन्देह यही ध्वनित करते हैं कि मुख्य व्याकरणके कर्ता पूज्यपाद हैं, उसको विस्तृत करनेवाले गुणनन्दि हैं और फिर उसकी टीका करनेवाले सोमदेव (स्वयं) हैं। यदि यह चन्द्रिका टीका पूज्यपादकृत ग्रन्थकी ही होती, तो मंगलाचरणमें गुणनन्दिका नाम लानेकी कोई आवश्यकता नहीं थी। गुणनन्दि उनकी गुरुपरम्परामें भी नहीं हैं, जो उनका उल्लेख करना आवश्यक ही होता। अतः यह सिद्ध है कि चन्द्रिका और प्रक्रिया दोनोंके ही कर्ता यह समझते थे कि हमारी टीकायें असली जैनेन्द्रपर नहीं किन्तु उसके 'गुणनन्दितानितवपु' शब्दार्णवपर बनी हैं।

२—शब्दार्णवचन्द्रिका और जैनेन्द्रप्रक्रिया[1] इन दोनों ही टीकाओंमें 'एकशेष' प्रकरण है; परन्तु अभयनन्दिकृत 'महावृत्ति' वाले सूत्रपाठमें एकशेषको अनावश्यक बतलाया है— "स्वाभाविकत्वादभिधानस्यैकशेषानारम्भः।" (१-१-९९) और इसी लिए देवनन्दि या पूज्यपादका व्याकरण 'अनेकशेष' कहलाता है। चन्द्रिका टीकाके कर्ता स्वयं ही "आदावुपज्ञोपक्रमम्" (१-४-११४) सूत्रकी टीकामें उदाहरण देते हैं कि "देवोपज्ञमनेकशेषव्याकरणम्।" यह उदाहरण अभयनन्दिकृत महावृत्तिमें भी दिया गया है। इससे सिद्ध है कि शब्दार्णवचन्द्रिकाके कर्ता भी उस व्याकरणको देवोपज्ञ या देवनन्दिकृत मानते हैं, जो अनेकशेष है, अर्थात् जिसमें 'एकशेष' प्रकरण नहीं है। और ऐसा व्याकरण वही है जिसकी टीका अभयनन्दिने की है।

आचार्य विद्यानन्दि अपने तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक (पृष्ठ २६५) में 'नैगमसंग्रह—' आदि सूत्रकी

१ हमारा अनुमान है कि इस प्रक्रियाका भी नाम 'शब्दार्णव-प्रक्रिया' होगा, जैनेन्द्र-प्रक्रिया नहीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्याख्या करते हुए लिखते हैं—" नयश्च नयौ च नयाश्च नया इत्येकशेषस्य स्वाभाविकस्याभिधाने दर्शनात् केषांचित्तथा वचनोपलम्भाच्च न विरुद्ध्यते । " इसमें स्वाभाविकताके कारण, एकशेषकी अनावश्यकता प्रतिपादित है और यह अनावश्यकता जैनेन्द्रके वास्तविक सूत्रपाठमें ही उपलब्ध होती है । " स्वाभाविकत्वादभिधानस्यैकशेषानारम्भः " (१-१-९९) यह सूत्र शब्दार्णववाले पाठमें नहीं है, अतः विद्यानन्द भी इसी सूत्रवाले जैनेन्द्रपाठको माननेवाले थे। पाठकोंको यह स्मरण रखना चाहिए कि उपलब्ध व्याकरणोंमें 'अनेकशेष' व्याकरण केवल देवनन्दिकृत ही है, दूसरा नहीं ।

३—'सर्वार्थसिद्धि' तत्त्वार्थसूत्रकी सुप्रसिद्ध टीका है । इसके कर्ता स्वयं पूज्यपाद या देवनन्दि हैं जिनका कि बनाया हुआ प्रस्तुत जैनेन्द्र व्याकरण है । इस टीकामें अध्याय ५ सूत्र २४ की व्याख्या करते हुए वे लिखते हैं—" 'अन्यतोऽपि ' इति तसि कृते सर्वतः । " इसी सूत्रकी व्याख्या करते हुए राजवार्तिककार लिखते हैं—" ' दृश्यतेऽन्यतोपीति ' तसि कृते सर्वेषु भवेषु सर्वत इति भवति । " जान पड़ता है या तो सर्वार्थसिद्धिकारने इस सूत्रको संक्षेप करके लिखा होगा, या लेखकों तथा छपानेवालोंने प्रारंभका 'दृश्यते' शब्द छोड़ दिया होगा। कुछ भी हो, पर यह पूरा सूत्र 'दृश्यतेऽन्यतोपि ' ही है और यह अभयनन्दिवाले सूत्रपाठके अ० ४ पा० ७ का ७५ वाँ सूत्र है । परन्तु शब्दार्णववाले पाठमें न तो यह सूत्र ही है और न इसके प्रतिपाद्यका विधानकर्ता कोई और ही सूत्र है । अतः यह सिद्ध है कि पूज्यपादका असली सूत्रपाठ वही है जिसमें उक्त सूत्र मौजूद है ।

४–भट्टाकलंकदेवने तत्त्वार्थराजवार्तिकमें 'आद्ये परोक्षं (अ० १ सू० ११) ' की व्याख्यामें " सर्वादि सर्वनाम । " (१-१-३५) सूत्रका उल्लेख किया है, इसी तरह पण्डित आशाधरने अनगारधर्मामृत टीका (अ० ७ श्लो० २४) में " स्तोके प्रतिना " (१-३-३७) और "भार्थे" (१-४-१४) इन दो सूत्रोंको उद्धृत किया है और ये तीनों ही सूत्र जैनेन्द्रके अभयनन्दिवृत्तिवाले सूत्रपाठमें ही मिलते हैं । शब्दार्णववाले पाठमें इनका अस्तित्व ही नहीं है । अतः अकलंकदेव और पं० आशाधर इसी अभयनन्दिवाले पाठको ही माननेवाले थे । अकलंकदेव वि० की नौवीं शताब्दिके और आशाधर १३ वीं शताब्दिके विद्वान् हैं ।

५—पं० श्रीलालजी शास्त्रीने शब्दार्णवचन्द्रिकाकी भूमिकामें लिखा है कि " आचार्य पूज्यपादने स्वनिर्मित 'सर्वार्थसिद्धि' में प्रमाणनयैरधिगमः ' (अ० १ सू० ६)की टीकामें यह वाक्य दिया है—' नयशब्दस्यालपाच्तरत्वात्पूर्वनिपातः प्राप्नोति नैषदोषः । अभ्यर्हितत्वात्प्रमाणस्य तत्पूर्वनिपातः । ' और अभयनन्दिवाले पाठमें इस विषयका प्रतिपादन करनेवाला कोई सूत्र नहीं है । केवल अभयनन्दिका ' अभ्यर्हितं पूर्वं निपतति ' वार्तिक है । यदि अभयनन्दिवाला सूत्रपाठ ठीक होता तो उसमें इस विषयका प्रतिपादक सूत्र अवश्य होता जो कि नहीं है । पर शब्दार्णववाले पाठमें ' अर्च्यं ' (१-३-११५) ऐसा सूत्र है जो इसी विषयको प्रतिपादित करता है । इसलिए यही सूत्रपाठ देवनन्दिकृत है । " बस, पं० श्रीलालजीकी सबसे बड़ी दलील यही है जिससे वे शब्दार्णववाले पाठको असली सिद्ध करना चाहते हैं । इसके सिवाय वे और कोई उल्लेखयोग्य प्रमाण अपने पक्षमें नहीं दे सके हैं । अब इसपर हमारा निवेदन सुन लीजिए—

" अल्पाच्तरम् " (२-२-३४) यह सूत्र पाणिनिका है और इसके ऊपर कात्यायनका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

" अभ्यर्हितं च " वार्तिक तथा पतंजलिका " अभ्यर्हितं पूर्वं निपतति " भाष्य है। इससे मालूम होता है कि पूज्यपादने अपनी सर्वार्थसिद्धिटीकाके इस स्थलमें पाणिनि और पतंजलिके ही सूत्र तथा भाष्यको लक्ष्यकर उक्त विधान किया है। अब इस पर यह प्रश्न होगा कि जब सर्वार्थसिद्धिकार स्वयं एक व्याकरणके कर्ता हैं, तब उन्होंने पाणिनिका और उसके भाष्यका आश्रय क्यों लिया? हमारी समझमें इसका उत्तर यह है कि पूज्यपाद स्वामी यद्यपि सर्वार्थसिद्धिकी रचनाके समय अपना व्याकरण तो बना चुके होंगे, परन्तु उस समय उनके व्याकरणने विशेष प्रसिद्धि लाभ नहीं की होगी और इस कारण स्वयं उनके ही हृदयमें उसकी इतनी प्रमाणता नहीं होगी कि वे अन्य प्रसिद्ध व्याकरणों तथा उनके वार्तिकों और भाष्योंको सर्वथा भुला देवें–या उनका आश्रय नहीं लेवें। कुछ भी हो परंतु यह तो निश्चय है कि उन्होंने अपनी सर्वार्थसिद्धिमें अन्य वैयाकरणोंके भी मत दिये हैं। इस विषयमें हम एक और प्रमाण उपस्थित करते हैं जो बहुत ही पुष्ट और स्पष्ट है—

सर्वार्थसिद्धि अ० ४ सूत्र २२ की व्याख्यामें लिखा है—" यथाहुः द्रुतायां तपरकरणे मध्यमविलम्बितयोरुपसंख्यानमिति। " इसकी अन्य पुरुषकी ' आहुः ' क्रिया ही कह रही है कि ग्रन्थकर्ता यहाँ किसी अन्य पुरुषका वचन दे रहे हैं। अब पतंजलिका महाभाष्य देखिए। उसमें १-२-१ के ५ वें वार्तिकके भाष्यमें बिलकुल यही वाक्य दिया हुआ है—एक अक्षरका भी हेरफेर नहीं है। इससे स्पष्ट है कि सर्वार्थसिद्धिके कर्त्ता अन्य व्याकरण ग्रन्थोंके भी प्रमाण देते हैं। और भी एक प्रमाण लीजिए—

सर्वार्थसिद्धि अ० ७ सूत्र १६ की व्याख्यामें लिखा है—" शास्त्रेऽपि ' अश्ववृषयोर्मैथुनेच्छायामि ' त्येवमादिषु तदेव गृह्यते। " यह पाणिनिके ७-१-५१ सूत्रपर कात्यायनका पहला वार्तिक है। वहाँ " अश्ववृषयोर्मैथुनेच्छायाम् " इतने शब्द हैं और इन्हींको सर्वार्थसिद्धिकारने लिया है। यहाँ कात्यायनके वार्तिकको उन्होंने ' शास्त्र ' शब्दसे व्यक्त किया है।

सर्वार्थसिद्धि अ० ५ सूत्र ४ की व्याख्यामें 'नित्य' शब्दको सिद्ध करनेके लिए पूज्यपाद स्वामी लिखते हैं:— " नेः ध्रुवे त्यः इति निष्पादितत्वात्। " परन्तु जैनेन्द्रमें ' नित्य ' शब्दको सिद्ध करनेवाला कोई मूल सूत्र नहीं है, इस लिए अभयनन्दिने अपनी वृत्तिमें " ङ्येस्तुट् " (३-२-८१) सूत्रकी व्याख्यामें " नेर्ध्रुवः इति वक्तव्यम्" यह वार्तिक बनाया है और ' नियतं सर्वकालं भवं नित्यं ' इस तरह स्पष्ट किया है। जैनेन्द्रमें ' त्य ' प्रत्यय ही नहीं है, इसके बदले ' य ' प्रत्यय है। इससे मालूम होता है कि सर्वार्थसिद्धिकारने स्वनिर्मित व्याकरणको लक्ष्यमें रखकर पूर्वोक्त बात नहीं कही है। अन्य व्याकरणोंके प्रमाण भी वे देते थे और यह प्रमाण भी उसी तरहका है।

परन्तु इससे पाठकोंको यह न समझ लेना चाहिए कि सर्वार्थसिद्धिमें ग्रन्थकर्ताने अपने जैनेन्द्रसूत्रोंका कहीं उपयोग ही नहीं किया है। नहीं, कुछ स्थानोंमें उन्होंने अपने निजके सूत्र भी दिये हैं। जैसे पाँचवें अध्यायके पहले सूत्रके

१ तत्त्वार्थराजवार्तिकमें इसी ' प्रमाणनयैरधिगमः ' सूत्रकी व्याख्यामें पतंजलिका यह भाष्य ज्योंका त्यों अक्षरशः दिया है। अभयनन्दिका भी यही वार्तिक है।

२ राजवार्तिक और श्लोकवार्तिकमें भी यह वाक्य उद्धृत किया गया है।

१ तत्त्वार्थराजवार्तिकमें भी है " शास्त्रेऽपि अश्ववृषयेर्मैथुनेच्छायामित्येवमादौ तदेव कर्माख्यायते। "

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्याख्यानमें लिखा है "'विशेषणं विशेष्येण' इति वृत्तिः।" यह जैनेन्द्रका १-३-५२ वाँ सूत्र है। यह सूत्र शब्दार्णवचन्द्रिका (१-३-४८) वाले पाठमें भी है।

इन सब प्रमाणोंसे यह बात अच्छी तरह सिद्ध हो जाती है कि जैनेन्द्रका असली सूत्रपाठ वही है जिसपर अभयनन्दिकृत वृत्ति है। शब्दार्णवचन्द्रिकावाला पाठ असली सूत्रपाठको संशोधित और परिवर्धित करके बनाया गया है और उसका यह संस्करण संभवतः गुणनन्दि आचार्यकृत है।

अब एक प्रश्न यह रह जाता है कि जब गुणनन्दिने मूल ग्रंथमें इतना परिवर्तन और संशोधन किया था, तब उस परिवर्तित ग्रन्थका नाम जैनेन्द्र ही क्यों रक्खा? इसके उत्तरमें निवेदन है कि एक तो शब्दार्णवचन्द्रिका और जैनेन्द्रप्रक्रियाके पूर्वोल्लिखित श्लोकोंसे गुणनन्दिके व्याकरणका नाम 'जैनेन्द्र' नहीं किन्तु 'शब्दार्णव' मालूम होता है। संभव है कि लेखकोंके भ्रमसे इन टीकाग्रंथोंमें 'जैनेन्द्र' नाम शामिल हो गया हो। दूसरा यदि 'जैनेन्द्र' नाम भी हो, तो ऐसा कुछ अनुचित भी नहीं है। क्यों कि गुणनन्दिने जो प्रयत्न किया है, वह अपना एक स्वतंत्र ग्रंथ बनानेकी इच्छासे नहीं किन्तु पूर्वनिर्मित 'जैनेन्द्र' को सर्वांगपूर्ण बनानेकी सदिच्छासे किया है और इसी लिए उन्होंने जैनेन्द्रके आधेसे अधिक सूत्र ज्योंके त्यों रहने दिये हैं, तथा मंगलाचरण आदि भी उसका ज्योंका त्यों रक्खा है। हमारा विश्वास है कि गुणनन्दि इस संशोधित और परिवर्तित सूत्रपाठको ही तैयार करके न रहे गये होंगे, उन्होंने इसपर कोई वृत्ति या टीकाग्रंथ भी अवश्य लिखा होगा, जो अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ है। सनातनजैनग्रंथमालामें जो जैनेन्द्र-प्रक्रिया छपी है, वह जैसा कि हम आगे सिद्ध करेंगे गुणनन्दिकी बनाई हुई नहीं है।

जैनेन्द्रकी टीकायें।

पूज्यपादस्वामीकृत असली जैनेंद्रकी इस समय तक केवल तीन ही टीकायें उपलब्ध हैं—१ अभयनन्दिकृत 'महावृत्ति,' २ आर्यश्रुतकीर्तिकृत 'पंचवस्तु-प्रक्रिया,' और ३ बुधमहाचन्द्रकृत 'लघु जैनेन्द्र'। परन्तु इनके सिवाय इसकी और भी कई टीकायें होनी चाहिए। पंचवस्तुके अन्तमें नीचे लिखा हुआ एक श्लोक है:—

सूत्रस्तम्भसमुध्दृतं प्रविलसन्न्यासोरुरत्नक्षिति,
श्रीमद्वृत्तिकपाटसंपुटयुतं भाष्यौघशय्यातलम्।
टीकामालमिहारुरुक्षुरचितं जैनेन्द्रशब्दागमं,
प्रासादं पृथुपंचवस्तुकमिदं सोपानमारोहतात्॥

इसमें जैनेन्द्र शब्दागम या जैनेन्द्र व्याकरणको महलकी उपमा दी गई है। वह मूलसूत्ररूप स्तम्भोंपर खड़ा किया गया है, न्यासरूप उसकी रत्नमय भूमि है, वृत्तिरूप उसके किवाड़ हैं, भाष्यरूप शय्यातल है, और टीकारूप उसके माल या मंजिल हैं। यह पंचवस्तु टीका उसकी सोपानश्रेणी है। इसके द्वारा उक्त महल पर आरोहण किया जासकता है। इससे मालूम होता है कि पंचवस्तुके कर्ताके समयमें इस व्याकरणपर १ न्यास, २ वृत्ति, ३ भाष्य और ४ टीका, इतने व्याख्याग्रन्थ मौजूद थे। इनमेंसे श्रीमद्वृत्ति या वृत्ति तो यह अभयनन्दिकी महावृत्ति ही होगी, ऐसा जान पड़ता है। शेष तीन टीकायें अभी तक उपलब्ध नहीं हुई हैं। हमारा अनुमान है कि इनमेंसे एक टीकाग्रन्थ चाहे वह न्यास हो या भाष्य हो, स्वयं पूज्यपादस्वामीका बनाया हुआ होगा। क्यों कि वे केवल सूत्रग्रन्थ ही बनाकर रह गये होंगे, यह बात समझमें नहीं आती। अपनी मानी हुई

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अतिशय सूक्ष्म संज्ञाओं और परिभाषाओंका स्पष्टीकरण करनेके लिए उन्हें कोई टीका, वृत्ति या न्यास अवश्य बनाना पड़ा होगा, जिस तरह शाकटायनने अपने व्याकरणपर अमोघवृत्ति नामकी स्वोपज्ञ टीका बनाई है।

आचार्य विद्यानन्दने अष्टसहस्री (पृष्ठ १३२ में 'प्यखे कर्मण्युपसंख्यानात् का' यह वचन उद्धृत किया है। यह किसी व्याकरण ग्रन्थका वार्तिक है; परन्तु पाणिनिके किसी भी वार्तिकमें यह नहीं मिलता। अभयनन्दिकी महावृत्तिमें अवश्य ही "प्यखे कर्मणि का वक्तव्या" (४-१-३८) इस प्रकारका वार्तिक है; परन्तु हमारा खयाल है कि अभयनन्दिकी वृत्ति विद्यानन्दसे पीछेकी बनी हुई है, इस लिए विद्यानन्दने यह वार्तिक अभयनन्दिकी वृत्तिसे नहीं किन्तु अन्य ही किसी ग्रन्थसे लिया होगा और आश्चर्य नहीं जो वह स्वयं पूज्यपादकृत टीकाग्रन्थ हो। सुनते हैं, जैनेन्द्रका न्यास कर्नाटक प्रान्तके जैन पुस्तकभण्डारोंमें है। उसके प्राप्त करनेकी बहुत आवश्यकता है। उससे इस व्याकरणम्बन्धी अनेक संशयोंका निराकरण हो जायगा।

आगे हम उपलब्ध टीकाग्रन्थोंका परिचय देते हैं:--

१-महावृत्ति। इसकी एक प्रति पूनेके भाण्डारकर रिसर्च इन्स्टिट्यूटमें मौजूद है। इसकी श्लोकसंख्या १३००० के लगभग है। इसके प्रारंभके ३१४ पत्र एक लेखकके लिखे हुए और शेष ७४ पत्र, चैत्र सुदी २ सं० १९३३ को किसी दूसरे लेखकके लिखे हुए हैं। प्रतिके दोनों ही भाग जयपुरके लिखे हुए मालूम होते हैं। कई स्थानोंमें कुछ पंक्तियां छूटी हुई हैं। इसका प्रारंभ इस तरह हुआ है:—

ओं नमः। श्रीमत्सर्वज्ञवीतरागतद्वचनतदनुसारिगुरुभ्यो नमः।

देवदेवं जिनं नत्वा सर्वसत्त्वाभयप्रदम्।
शब्दशास्त्रस्य सूत्राणां महावृत्तिर्विरच्यते ॥ १ ॥
यच्छब्दलक्षणमसुव्रजपारमन्यै-
रव्यक्तमुक्तमभिधानविधौ दरिद्रैः।
तत्सर्वलोकहृदयप्रियचारुवाक्यै-
र्व्यक्तीकरोत्यभयनन्दिमुनिः समस्तम् ॥ २ ॥

शिष्टाचारपरिपालनार्थमादाविष्टदेवतानमस्कारलक्षणं मंगलमिदमाहाचार्यः।

और अन्तमें कोई प्रशस्ति आदि न देकर सिर्फ इतना ही लिखा है—

"इत्यभयनन्दिविरचितायां जैनेन्द्रव्याकरणमहावृत्तौ पंचमाध्यायस्य चतुर्थः पादः समाप्तः। समाप्तश्चायं पंचमोऽध्यायः।"

इससे मालूम होता है कि इस महावृत्तिके कर्ता अभयनन्दि मुनि हैं। उन्होंने न तो अपनी गुरुपरम्पराका ही परिचय दिया है और न ग्रन्थरचनाका समय ही दिया है, इससे निश्चयपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि वे कब हुए हैं। परन्तु उन्होंने सूत्र ३-२-५५ की टीकामें एक जगह उदाहरण दिया है—"तत्त्वार्थवार्तिकमधीयते।" इससे मालूम होता है कि भट्टाकलंकदेवके बाद अर्थात् वि० की आठवी शताब्दिके बाद—और पंचवस्तुके पूर्वोल्लिखित श्लोकमें इसी वृत्तिका उल्लेख जान पड़ता है, इस लिए आर्य श्रुतकीर्तिके अर्थात् विक्रमकी बारहवीं शताब्दिके पहले—किसी समयमें वे हुए हैं। हमारा अनुमान है कि चन्द्रप्रभकाव्यके कर्ता महाकवि वीरनन्दिने जिन अभयनन्दिको अपना गुरु बतलाया है, ये वे ही अभयनन्दि होंगे*। आचार्य नेमिचन्द्रने भी गोम्मटसार-कर्मकाण्डकी ४३६ वीं गाथामें इनका उल्लेख किया है। अत

१ नं० ५९० A और B सन् १८७५-७६ की रिपोर्ट।

* वीरनन्दि और अभयनन्दिका समय जाननेके लिए देखो त्रिलोकसार ग्रन्थकी मेरी लिखी भूमिका।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एव इनका समय विक्रमकी ग्यारहवीं शताब्दिके पूर्वार्धके लगभग निश्चित होता है । जैनेन्द्रकी उपलब्ध टीकाओंमें यही टीका सबसे प्राचीन मालूम होती है । प्रो० एस० के० बेलवलकरने अभयनन्दिका समय ई० सन् १३००-१३५० के लगभग मालूम नहीं किन प्रमाणोंसे निश्चित किया है ।

२—पंचवस्तु । भांडारकर रिसर्च इन्स्टिटयूट्में इसकी दो प्रतियाँ मौजूद हैं, जिनमें एक ३००, ४०० वर्ष पहलेकी लिखी हुई है और बहुत शुद्ध है । पत्रसंख्या ९१ है । इस पर लेखकका नाम और प्रति लिखनेका समय आदि नहीं है । इसके अन्तमें केवल इतना लिखा हुआ है—

"कृतिरियं देवनंद्याचार्यस्य परवादिमथनस्य ॥छा॥ शुभं भवतु लेखकपाठकयोः ॥ श्रीसंघस्य ॥"

दूसरी प्रति रत्नकरण्डश्रावकाचारवचनिका आदि अनेक भाषाग्रन्थोंके रचयिता सुप्रसिद्ध पण्डित सदासुखजीके हाथकी लिखी हुई है और संवत् १९१० की लिखी हुई है[3] । इसके अन्तमें प्रतिलेखकने अपना परिचय इस तरह दिया है:—

अब्दे नभश्चन्द्रविधिस्थिरांके
शुद्धेसहस्यैम (?) युक्चतुर्थ्याम् ।
सत्प्रक्रियाबन्धनिबन्धनेयं सद्वस्तुवृत्तीरदनात्समाप्ता (?)॥
श्रीमन्नराणामधिपेशराज्ञि श्रीरामसिंहे विलसत्यलेखि ।
श्रीमद्बुधेनेह सदासुखेन श्रीयुक्फतेलालनिजात्मबुद्ध्यै ॥
शाब्दीयशास्त्रं पठितं न यैस्तैः स्वदेहसंपालनभारवद्भिः ।
किं दर्शनीयं कथनीयमेतद् वृथांगसंघावपलापवद्भिः ॥

यह प्रति भी प्रायः शुद्ध है ।

यह टीका प्रक्रिया-बद्ध टीका है और बड़े अच्छे ढंगसे लिखी गई है । इसकी श्लोकसंख्या ३३०० के लगभग है । प्रारंभके विद्यार्थियोंके लिए बड़ी उपयोगी है । इसका प्रारंभ इसप्रकार किया है—

ओं नमः श्रीशान्तिनाथाय ।
जगत्त्रितयनाथाय नमो जन्मप्रमाथिने ।
नयप्रमाणवाग्रश्मिध्वस्तध्वान्ताय शान्तये ॥ १॥
प्रत्याहारस्यादाविष्टदेवतास्तुतिवचनं मंगलार्थमुपात्तम् ।

आगे चलकर पाँचवें पत्रमें इस प्रकार लिखा है—

याम-वैर-वर्ण.कर-चरणादीनां संधीनां बहूनां संभवत्वात् संशयानः शिष्यः संपृच्छतिस्म—कस्सन्धिरिति ।

संज्ञास्वरप्रकृतिहल्जविसर्गजन्मा
संधिस्तु पंचक इतीत्थमिहाहुरन्ये ।
तत्र स्वरप्रकृतिहल्जविकल्पतोऽस्मि-
न्संधिं त्रिधा कथयति श्रुतकीर्तिरार्यः ॥

इस ग्रन्थके आदि-अन्तमें कहीं भी इसके कर्त्ताका नाम नहीं है । केवल इसी जगह यह नाम आया है और इससे मालूम होता है कि पंचवस्तुके रचयिता आर्य श्रुतकीर्ति हैं ।

कनड़ी भाषाके चन्द्रप्रभचरित नामक ग्रन्थके कर्ता अग्गल कविने श्रुतकीर्तिको अपना गुरु बतलाया है—"इति परमपुरुनाथकुलभूभृत्समुद्भूतप्रवचनसरित्सरिन्नाथ—श्रुतकीर्तित्रैविद्यचक्रवर्तिपदपद्मनिधानदीपवर्तिश्रीमदग्गळदेवविरचिते चन्द्रप्रभचरिते—" इत्यादि । और यह चरित शक संवत् १०११ (वि० सं० ११४६) में बनकर समाप्त हुआ है । अतएव पंचवस्तुको भी अभयनन्दि महावृत्तिके कुछ ही पीछे की—विक्रमकी बारहवीं शताब्दिके प्रारंभ की—रचना समझना चाहिए । नंदिसंघकी गुर्वावलीमें श्रुतकीर्तिको वैयाकरणभास्कर लिखा है:—

---

१ नं० १०५९ सन् १८८७-९१ की रिपोर्ट । २ नं० ५९० सन् १८७५-७६ की रिपोर्ट । ३ इस ग्रन्थकी एक प्रति परतावगढ़ (मालवा) के पुराने दि० जैनमन्दिरके भंडारमें भी है । देखो जैनमित्र ता० २६ अगस्त १९१५ ।

१ देखो प्रो० पिटर्सनकी दूसरी रिपोर्ट सन् १८८४ पृष्ठ १६४ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

" त्रैविद्यः श्रुतकीर्त्याख्यो वैयाकरणभास्करः ।" ये नन्दिसंघ, देशीयगण और पुस्तकगच्छके आचार्य थे । श्रुतकीर्ति नामके और भी कई आचार्य हो गये हैं ।

३—लघुजैनेन्द्र । इसकी एक प्रति अंकलेश्वर (भरोंच) के दिगम्बर जैनमन्दिरमें है और दूसरी अधूरी प्रति परतापगढ़ (मालवा) के पुराने दि० जैनमन्दिरमें है । उसमें इस तरह प्रारंभ किया गया है—

महावृत्तिं शुंभत्सकलबुधपूज्यां सुखकरीं,
विलोक्योद्यद्ज्ञानप्रभुविभयनन्दीप्रवहिताम् ।
अनेकैः सच्छब्दैर्भ्रमविगतकैः संदृढभूतां (?)
प्रकुर्वेऽहं तनुमतिमहाचन्द्रविबुधः (!)

इससे मालूम होता है कि यह अभयनन्दी वृत्तिके आधारसे लिखी गई है । पण्डित महाचन्द्रजी विक्रमकी इसी बीसवीं शताब्दिके ग्रन्थकर्ता हैं । इन्होंने संस्कृत, प्राकृत और भाषामें कई ग्रन्थ लिखे हैं ।

४–जैनेन्द्र-प्रक्रिया । इसे न्यायतीर्थ न्यायशास्त्री पं० बंशीधरजीने अभी हाल ही लिखी है । इसका अभी केवल पूर्वार्ध ही छपकर प्रकाशित हुआ है ।

शब्दार्णवकी टीकायें ।

जैनेन्द्र सूत्रपाठके संशोधित परिवर्धित संस्करणका नाम–जैसा कि पहले लिखा जा चुका है—शब्दार्णव है । इसके कर्ता आचार्य गुणनन्दि हैं । यह बहुत संभव है कि सूत्रपाठके सिवाय उन्होंने उसकी कोई टीका या वृत्ति भी बनाई होगी जो कि अभीतक उपलब्ध नहीं हुई है ।

गुणनन्दि नामके कई आचार्य हो गये हैं । उनमेंसे एक शक संवत् ३८८ (वि० सं० ५२३) में पूज्यपादसे भी पहलेके हैं [१], दूसरे गुणनन्दिका उल्लेख श्रवणबेलगोलके ४२, ४३ और ४७ वें नम्बरके लिखालेखोंमें मिलता है । ये बलाकपिच्छके शिष्य और गृध्रपिच्छके प्रशिष्य थे । तर्क, व्याकरण और साहित्य शास्त्रोंके बहुत बड़े विद्वान् थे । इसके ३०० शास्त्रपारंगत शिष्य थे और उनमें ७२ शिष्य सिद्धान्तशास्त्री थे । आदि पंपके गुरु देवेन्द्र भी इन्हींके शिष्य थे । अनेक ग्रन्थकारोंने इन्हें कई काव्योंका कर्त्ता बतलाया है; परन्तु अभीतक इनका कोई काव्य नहीं मिला है । कर्नाटककविचरितके कर्त्ताने इनका समय वि० संवत् ९५७ निश्चय किया है । क्यों कि इनके शिष्य देवेन्द्रके शिष्य आदि पंपका जन्म वि० सं० ९५९ में हुआ था और उसने ३९ वर्षकी अवस्थामें अपने सुप्रसिद्ध कनड़ी काव्य भारतचम्पू और आदिपुराण निर्माण किये हैं । हमारा अनुमान है कि ये ही गुणनन्दि शब्दार्णवके कर्त्ता होंगे । श्रवणबेलगोलके ४७ वें शिलालेखमें इनके सम्बन्धमें नीचे लिखे श्लोक मिलते हैं:—

श्रीगृद्ध्रपिच्छमुनिपस्य बलाकपिच्छः
शिष्योऽजनिष्ट रत्नत्रयवर्तिकीर्तिः ।
चारित्रचञ्चुरखिलावनिपालमौलि-
मालाशिलीमुखविराजितपादपद्मः ॥ ६ ॥

तच्छिष्यो गुणनन्दिपण्डितयतिः चारित्रचक्रेश्वरः ।
तर्कव्याकरणादिशास्त्रनिपुणः साहित्यविद्यापतिः ॥ ७ ॥
मिथ्यात्वादिमदान्धसिन्धुरघटासंघातकण्ठीरवो ।
भव्याम्भोजदिवाकरो विजयतां कन्दर्पदर्पापहः ॥ ८ ॥
तच्छिष्यास्त्रिशतं विवेकनिधयः शास्त्राब्धिपारंगताः ।
तेषूत्कृष्टसमा द्विसप्ततिमिताः सिद्धान्तशास्त्रार्थकाः ॥ ९ ॥
व्याख्याने पटवो विचित्रचरिताः तेषु प्रसिद्धो मुनिः ।
नानानूननयप्रमाणनिपुणो देवेन्द्रसैद्धान्तिकः ॥ १० ॥

१ देखो जैनमित्र ता० २६ अगस्त १९१५।

१ मर्कराका ताम्रपत्र, इंडियन एण्टिक्वेरी, जिल्द १, पृष्ठ ३६३–६५ । तथा एपिग्राफिका कर्नाटिका जिल्द १, का पहला लेख ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चन्द्रप्रभचरित महाकाव्यके कर्त्ता वीरनन्दिका समय शक संवत ९०० के लगभग निश्चित होता है। क्यों कि वादिराजसूरिने अपने पार्श्वनाथकाव्यमें उनका स्मरण किया है। और वीरनन्दीकी गुरुपरम्परा इस प्रकार है—१ श्रीगुणनन्दि, २ विबुधगुणनन्दि, ३ अभयनन्दि और वीरनन्दि। यदि पहले गुणनन्दि और वीरनन्दिके बीचमें हम ७८ वर्षका अन्तर मान लें, तो पहले गुणनन्दिका समय वही शक संवत् ८२२ या वि० सं० ९५७ के लगभग आ जायगा। इससे यह निश्चय होता है कि वीरनन्दिकी गुरुपरम्पराके प्रथम गुणनन्दि और आदिपंपके गुरु देवेन्द्रके गुरु गुणनन्दि एक ही होंगे और जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं ये ही शब्दार्णवके कर्त्ता होंगे।

गुणनन्दि नामके एक और आचार्य शक संवत् १०३७ (वि०सं० ११७२) में हुए हैं जो मेघचन्द्र त्रैविद्यके गुरु थे। संभव है कि शब्दार्णवके कर्त्ता ये ही हों।

शब्दार्णवकी इस समय दो टीकायें उपलब्ध हैं और दोनों ही सनातनजैनग्रन्थमालामें छप चुकी हैं—१ शब्दार्णवचन्द्रिका, और २ शब्दार्णवप्रक्रिया।

१ शब्दार्णवचन्द्रिका। इसकी एक बहुत ही प्राचीन और अतिशय जीर्ण प्रति भाण्डारकर रिसर्च इन्स्टिट्यूटमें मौजूद है। यह ताड़पत्रपर नागरी लिपिमें है। इसके आदि–अन्तके पत्र प्रायः नष्ट हो गये हैं। इसमें छपी हुई प्रतिमें जो गद्यप्रशस्ति है, वह नहीं है। और अन्तमें एक श्लोक है जो आधा पढ़ा जाता है—मंगलमस्तु।......इन्द्रश्चंद्रःशकटतनयः पाणिनिः पूज्यपादो यत्प्रोवाचापिशलिरमरः काशकृत्स्न....... शब्दपारायणस्येति।"

१ नं० २५ सन् १८८०–८८ की रिपोर्ट।

इसके कर्त्ता श्रीसोमदेव मुनि हैं। ये शिलाहार वंशके राजा भोजदेव (द्वितीय) के समयमें हुए हैं और अर्जुरिका नामक ग्रामके त्रिभुवनतिलक नामक जैनमन्दिरमें—जो कि महामण्डलेश्वर गंडरादित्यदेवका बनवाया हुआ था—उन्होंने इसे शक संवत् ११२७ (वि० सं० १२६२) में बनाया है। यह ग्राम इस समय आजरें नामसे प्रसिद्ध है और कोल्हापुर राज्यमें है। वादीभवज्रांकुश श्रीविशालकीर्ति पण्डितदेवके वैयावृत्यसे इस ग्रन्थकी रचना हुई है:—

"श्रीसोमदेवयतिनिर्मितिमादधाति
या नौः प्रतीतगुणनंदितशब्दवार्धौ।
सेयं सताममलचेतसि विस्फुरंती
वृत्तिः सदा नुतपदा परिवर्तिषीष्ट॥

स्वस्ति श्रीकोल्हापुरदेशांतर्वर्त्यार्जुरिकामहास्थानयुधिष्ठिरावतारमहामण्डलेश्वरगंडरादित्यदेवनिर्मापितत्रिभुवनतिलकजिनालये श्रीमत्परमपरमेष्ठिश्रीनेमिनाथश्रीपादपद्माराधनबलेन वादीभवज्रांकुशश्रीविशालकीर्तिपंडितदेववैयावृत्यतः श्रीमच्छिलाहारकुलकमलमार्तंडतेजःपुंजराजाधिराजपरमेश्वरपरमभट्टारकपश्चिमचक्रवर्तिश्रीवीरभोजदेवविजयराज्ये शकवर्षैकसहस्रैकशतसप्तविंशति ११२७ तमक्रोधनसंवत्सरे स्वस्ति समस्तानवद्यविद्याचक्रचक्रवर्तिश्रीपूज्यपादानुरक्तचेतसा श्रीमत्सोमदेवमुनीश्वरेण विरचितेयं शब्दार्णवचन्द्रिका नाम वृत्तिरिति। इति श्रीपूज्यपादकृतजैनेन्द्रमहाव्याकरणं सम्पूर्णम्।"

१ ये विशालकीर्ति वे ही मालूम होते हैं जिनका उल्लेख पं० आशाधरने अपने अनगारधर्मामृतकी प्रशस्तिकी टीकामें 'वादीन्द्रविशालकीर्ति' के नामसे किया है और जिनको उन्होंने न्यायशास्त्रमें पारंगत किया था। पं० आशाधर वि० सं० १२४९ के लगभग धारामें आये थे और वि० सं० १३०० तक उनके अस्तित्वका पता लगता है। (देखो मन्निर्मित विद्वद्रत्नमालामें 'पण्डितप्रवर आशाधर' शीर्षकलेख) अतः सोमदेवका वैयावृत्य करनेवाले विशालकीर्ति दूसरे नहीं हो सकते। पं० आशाधरके पाससे पढ़कर ही वे दक्षिणकी ओर चले आये होंगे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यशस्तिलकचम्पूके कर्त्ता सुप्रसिद्ध सोमदेव-सूरि इनसे पहले हुए हैं। क्यों कि उनका उक्त चम्पू शक संवत् ८८१ (वि० १०१६) में समाप्त हुआ था। अतएव उनसे और इनसे कोई सम्बन्ध नहीं है, यह स्पष्ट है।

इस ग्रन्थके मंगलाचरणमें नीचे लिखे दो श्लोक दिये हैं:—

श्रीपूज्यपादममलं गुणनन्दिदेवं
सोमामरव्रतिपपूजितपादयुग्मम्।
सिद्धं समुन्नतपदं वृषभं जिनेन्द्रं
सच्छब्दलक्षणमहं विनमामि वीरम्॥ १॥
श्रीमूलसंघजलजप्रतिबोधभानो-
र्मेघेन्दुदीक्षितभुजंगसुधाकरस्य
राद्धान्ततोयनिधिवृद्धिकरस्य वृत्तिं
रेभे हरींदुयतये वरदीक्षिताय॥ २॥

इनमेंसे पहले श्लोकमें पूज्यपाद, गुणनन्दि और सोमदेव ये विशेषण वीर भगवानको दिये हैं। दूसरे श्लोकमें कहा है कि यह टीका मूलसंघीय मेघचन्द्रके शिष्य नागचन्द्र (भुजंगसुधाकर) और उनके शिष्य हरिचन्द्र यतिके लिए बनाई जाती है।

गुणनन्दिकी प्रशंसा चुरादि धातुपाठके अन्तमें भी एक पद्यमें की गई है जिसका अन्तिम चरण यह है:—

शब्दब्रह्मा स जीयाद् गुणनिधिगुणनंदिव्रतीशस्सुसौख्यः।

अर्थात् इसमें शब्दब्रह्मा विशेषण देकर गुणनन्दिको शब्दार्णवव्याकरणकर्ता ही प्रकट किया गया है।

अब देखना चाहिए कि ये मेघचन्द्र और नागचन्द्र आदि कौन थे और कब हुए हैं:—

ये मेघचन्द्र आचारसारके कर्ता वीरनन्दि सिद्धान्त चक्रवर्तीके गुरु ही मालूम होते हैं।[1] ये बड़े भारी विद्वान् थे। इन्हें सिद्धान्तशास्त्रमें जिनसेन और वीरसेनके सदृश, न्यायमें अकलंकके समान और व्याकरणमें साक्षात् पूज्यपाद-सदृश बतलाया है। श्रवणबेलगोलके नं० ४७, ५० और ५२ नम्बरके शिलालेखोंसे मालूम होता है कि इनका स्वर्गवास शक संवत् १०३७ (वि० सं० ११७२) में और उनके शुभचन्द्रदेव नामक शिष्यका स्वर्गवास शक संवत् १०६८ (वि० सं० १२०३) में हुआ था। तथा उनके दूसरे शिष्य प्रभाचंद्रदेवने शक सं० १०४१ (वि० सं० ११७६) में एक महापूजाप्रतिष्ठा कराई थी। जब सोमदेवने शब्दार्णवचन्द्रिका मेघचन्द्रके प्रशिष्य हरिचन्द्रके लिए शक सं० ११२७ (वि० सं० १२६२) में बनाई थी, तब मेघचन्द्रका समय वि० सं० ११७२ के लगभग माना जा सकता है।

नागचन्द्र नामके दो विद्वान् हो गये हैं, एक पम्परामायणके कर्ता नागचन्द्र जिनका दूसरा नाम अभिनव पंप था, और दूसरे लब्धिसारटीकाके कर्ता नागचन्द्र।[1] पहले गृहस्थ थे और दूसरे मुनि। अभिनव पंपके गुरुका नाम बालचन्द्र था जो मेघचन्द्रके सहाध्यायी थे, और दूसरे स्वयं बालचन्द्रके शिष्य थे। इन दूसरे नागचन्द्रके शिष्य हरिचन्द्रके लिए यह वृत्ति बनाई गई है। इन्हें जो 'राद्धान्ततोयनिधिवृद्धिकर' विशेषण दिया है उससे मालूम होता है, कि ये सिद्धान्तचक्रवर्ती या सिद्धान्त शास्त्रोंके ज्ञाता या टीकाकार होंगे।

(अपूर्ण)

---

१ मेघचन्द्रके विषयमें विशेष जाननेके लिये देखो माणिकचन्द्रग्रन्थमालाके 'आचारसार' की भूमिका।

१ देखो, 'इन्स्क्रिप्शन्स एट श्रवणबेलगोल' का ४७ वाँ शिलालेख।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैनधर्मपर बड़ा भारी कलङ्क।

(लेखक—श्रीयुत नाथूराम प्रेमी ।)

जैनधर्म क्यासे क्या हो गया है और उसके अनुयायियोंका कितना पतन हो गया है, इसका सबसे बड़ा स्पष्ट प्रमाण वे मुकद्दमें हैं, जो सम्मेदशिखर, अन्तरीक्ष, मक्सी आदि तीर्थोंके सम्बन्धमें लड़े जाते हैं। जो जैनधर्म वीतराग भावनाओंका बढ़ानेवाला था, मनुष्यजातिमेंसे द्वेषके बीजोंको जीर्ण शीर्ण कर डालना जिसका ध्येय था, जो शत्रुके प्रति भी क्षमा करनेकी शिक्षा देता था, विपरीत वृत्तिवालोंको मध्यस्थ भावनाके बल पर जो बातकी बातमें शान्त कर देना जानता था, उसी जगत्पूज्य जैनधर्मके अनुयायी—दिगम्बर और श्वेताम्बर—आज आपसमें एक दूसरेके हकोंको हड़पनेके लिए निरन्तर कटिबद्ध हैं, प्रतिवर्ष लाखों रुपया ऐसी बुरी तरहसे बरबाद करते हैं कि सुन कर तरस आता है और जब सारा संसार एकता और भ्रातृभाव बढ़ानेके लिए पागल हो रहा है—और तो क्या हिन्दू और मुसलमान भी एक दूसरेके गले मिल रहे हैं, तब ये आपसी फूटकी खाईको और भी अधिक गहरी और चौड़ी बनानेमें व्यस्त दिखलाई देते हैं।

जिस समय देशमें जहाँ तहाँ दुर्भिक्ष पड़ रहे हैं, हजारों निर्धन कुटुम्ब अन्नके बिना तड़प तड़प कर मर रहे हैं, बुंदेलखंड आदि प्रान्तोंमें स्वयं जैनोंके ही बच्चे टुकड़ोंके लिए मोहताज हो रहे हैं, हजारों लड़के सहायताके अभावसे इच्छित शिक्षा प्राप्त करनेमें असमर्थ होकर अज्ञानकी कीचड़में फँसनेके लिए मजबूर हो रहे हैं, देशसेवाके कार्योंके लिए जब अगणित धनकी आवश्यकता है, तब इधर तो दिगम्बर जैनसमाजके बड़े बड़े धनी एकट्ठे

होकर सम्मेदशिखरके मुकद्दमेके लिए बीस लाख रुपयेका चन्दा करनेकी घोषणा कर रहे हैं, और उधर श्वेताम्बर सम्प्रदायके एक अगुए इससे भी दूना रुपया बातकी बातमें जमा कर लेनेकी आशा करते हैं! यह सब क्या हो रहा है? यह हमारे घोर अधःपतनका जीताजागता चित्र नहीं तो और क्या है? क्या कोई अब भी कह सकता है कि हम उसी जैनधर्मके अनुयायी हैं जो एक समय संसारमें मैत्री, प्रमोद, करुणा और मध्यस्थ भावनाओंका प्रचारक था और जिसने द्वेषक्लेशदग्ध संसारको शान्ति प्रदान करनेका बीड़ा उठाया था?

उधर महात्मा गाँधी आदि देशपूज्य नेता वकीलोंको वकालत छोड़नेका और जनसाधारणको अपने आपसी झगड़े पंचायतों द्वारा तय करनेका उपदेश दे रहे हैं और उसके अनुसार काम भी होना शुरू हो गया है, और इधर हमारे समाजके अगुए सम्मेदशिखरका मुकद्दमा प्रिवी कौन्सिलतक ले जानेके लिए और देशका बुरी तरहसे रक्त शोषण करनेवाले वकील बैरिस्टरोंको उत्तेजना देनेके लिए कमर कस रहे हैं!

उधर भारतके इतिहासमें जो मुसलमान धर्मोन्मादके लिए सबसे अधिक बदनाम हैं, वे भी आज इस धार्मिक कलहको मिटानेके लिए गोवध करना छोड़ रहे हैं और हिन्दुओंके धार्मिक उत्सवोंमें प्रसन्नतासे शामिल हो रहे हैं, इसी तरह हिन्दू लोग भी मुसलमानोंके धार्मिक उत्सवोंमें मदद करते नजर आ रहे हैं; और इधर हम दिगम्बर और श्वेताम्बर—जो बहुत ही नजदीकके भाई हैं, जिनके धार्मिक विचारोंमें विशेष अन्तर नहीं है—कमसे कम हिन्दू-मुसलमानोंके बराबर तो नहीं है—एक दूसरेको फूटी आँखों नहीं देख सकते और उन्हीं तीर्थंकरोंकी निर्वाणभूमियोंपर निरंतर कलह करनेमें व्याप्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रहते हैं, जिन्हें हम दोनों ही अपने परमपूज्य मार्गदर्शक मानते हैं और जिन्होंने उन भूमियों-पर एक समय संसारको राग-द्वेषसे मुक्त होनेका और परस्पर प्रेम और शान्तिसे रहनेका उपदेश दिया था ! सचमुच हम लोग अपने पूज्य पुरुषोंके बड़े ही अनोखे भक्त हैं ।

हिन्दू और मुसलमानोंके समाचारपत्र इस समय दोनोंकी एकता बढ़ानेके सम्बन्धमें बहुत ही अच्छा प्रयत्न कर रहे हैं, उन्हें सफलता भी खूब हो रही है, परन्तु इधर हमारे जैन समाचारपत्रोंको जो जैनसमाजको उन्नत करनेका दम भरते हैं, देखिए कि वे क्या कर रहे हैं । वे भोले भाले भाइयोंको रणभेरी बजाकर इस युद्धके लिए उत्तेजित कर रहे हैं । वे बड़े जोरोंसे इस 'जेहाद' के झंडेको उठानेके लिए चिल्ला रहे हैं और जो उनसे जरा भी विरुद्ध आवाज निकालता है उसे कायर, डरपोंक, धर्म-द्रोही आदि पदवियोंसे पुरस्कृत करते हैं ।

जो मुकद्दमे चल रहे हैं, उनसे ही खैर नहीं है । नये नये झगड़े भी ईजाद किये जाते हैं और उन्हें देखते हुए यह आशा नहीं की जा सकती कि आगे कभी निकट भविष्यमें इन धर्मयुद्धोंका अन्त आ जायगा । ये बराबर चलते ही रहेंगे और जैनधर्मकी कीर्तिको दिग्दिगन्तव्यापिनी करनेमें कमी पीछे न रहेंगे !

कुछ समाचारपत्रोंमें बीच बीचमें बहुत ही धीमे स्वरमें यह आवाज भी सुनाई पड़ती है कि यह आपसकी लड़ाई अच्छी नहीं; इससे बदनामी होती है, परन्तु साथ ही उनमें जो दिगम्बरसम्प्रदायके हैं वे कहते हैं "कि हमारा इसमें कोई दोष नहीं है । श्वेताम्बर भाई हमें नाहक सता रहे हैं । वे ही जगह जगह हमें छेड़ते हैं और हमारे हकोंको छीनना चाहते हैं । हमारा कोई अपराध नहीं है । हमें लाचार होकर अपने हकोंकी रक्षा करनेके लिए अदालतोंकी शरण लेनी पड़ती है ।"

ठीक इसी तरह जो श्वेताम्बर सम्प्रदायके हैं वे अपनेको निर्दोष और दिगम्बर सम्प्रदायको सारे झगड़ोंकी जड़ करार देते हैं और इतना कहकर ही अपने कर्तव्यकी इतिश्री समझ लेते हैं । हम कह चुके हैं कि इस प्रकारकी आवाजें कभी कभी ही सुन पड़ती हैं और वे भी बड़ी मन्दतासे । उनमें इतनी तेजी नहीं जिससे यह आशा की जा सके कि वे बढ़कर इस धर्म-युद्धके मारूके उत्तेजित स्वरको कभी दबा भी सकेंगी ।

यह तो सुनिश्चित है कि इन सब मामलोंमें गल्तियाँ दोनों ही तरफसे होती हैं । ताली दोनों हाथोंसे ही बजा करती है । यह संभव है कि किसी झगड़ेमें एक पक्षका अधिक अपराध हो और दूसरेका कम और किसीमें दूसरेका अधिक हो और पहलेका कम । यह भी संभव है कि किसी एक मामलेमें एक पक्ष बिल्कुल ही निर्दोष हो और सब दोष दूसरे ही पक्षका हो; परतु साथ ही यह मानना पड़ेगा कि वह पहला पक्ष यदि उस मामलेमें नहीं तो दूसरे किसी मामलेमें अवश्य दोषी होगा, जिसका बदला लेनेके लिए दूसरे पक्षने इस नये मामलेको खड़ा किया होगा ।

परन्तु इन झगड़ोंके निबटारेका यह मार्ग ही नहीं है कि हम इस बातकी जाँच करने बैठें कि कुसूर किस पक्षका है, और इस तरहकी जाँच हो भी नहीं सकती है कमसे कम हम। लोग जो अपनेको दिगम्बर और श्वेताम्बर कहते हैं, इसका निर्णय नहीं कर सकते । इसके हम अधिकारी भी नहीं हैं । क्योंकि जहाँ पक्ष-मोह होता है, वहाँ निर्णय और सत्यान्वेषण-की बुद्धिके पैर नहीं टिक सकते । गरज यह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कि इन सब झगड़ोंका निबटारा करनेके लिए यह निर्णय करनेकी झंझटमें पड़नेसे कोई लाभ न होगा कि कुसूर किसका है। दोनों ही सम्प्रदायवालोंको यह मान लेना चाहिए कि कुसूर दोनोंका ही है। यदि दोनोंका ही कुसूर न होता तो जैनधर्मके नामको बदनाम करनेवाले इन झगड़ोंमें हम पड़ते ही क्यों, और अपनी शक्तियोंका दुरुपयोग ऐसी निर्दयताके साथ क्यों करते।

अभी कुछ ही महीनों पहले हम श्वेताम्बर सम्प्रदायके एक अगुएसे—जिनका शिखरजीके मुकद्दमेमें बहुत कुछ हाथ है—मिले थे। उनसे हमने अपील की कि इस झगड़ेको आपसमें तय कर लेना चाहिए। उन्होंने बातोंमें तो बहुत सहानुभूति दिखलाई, परंतु कहा यही कि "भाई साहेब हम तो बहुत चाहते हैं कि यह झगड़ा शान्त हो जाय, परंतु करें क्या, आपके सम्प्रदायवाले मानते ही नहीं। वे अपनी बात ऊँची रखना चाहते हैं।" इत्यादि। ठीक इसी तरहकी बात हमने अपने एक दो दिगम्बर सम्प्रदायके मुखियोंसे सुनी थी जिन्होंने एक बार आपसमें फैसला कर लेनेका प्रयत्न किया था। उनका भी यही कहना था कि हम "क्या करें, वे तो किसी तरह मानते ही नहीं।" इससे हम इस निश्चय पर आये हैं कि अभीतक दोनों ही सम्प्रदायके मुखिया इन धर्मयुद्धोंको इतना बुरा नहीं समझ रहे हैं जितने कि ये वास्तवमें हैं। अपनी बात रह जावे और फैसले हो जावें, तो इन्हें मंजूर है। परन्तु 'बात' अवश्य रहनी चाहिए। मुकद्दमे लड़ने न लड़नेको वे अपनी इस 'बात' से बड़ा नहीं समझते। जब तक इन्हें यह ज्ञान न होगा कि हम जो कर रहे हैं वह बुरा है, धर्मको बदनाम करनेवाला है और एक तरहसे देशद्रोह है, तब तक इन मामलोंका अन्त नहीं आ सकता।

हमें यह समझ लेना चाहिए कि जिस तरह हमें अपना धर्म या सम्प्रदाय प्यारा है, उसी तरह दूसरोंको भी अपने धर्म और सम्प्रदाय पर भक्ति होती है। जिस तरह हम चाहते हैं कि कोई हमारे धार्मिक कार्योंमें बाधा न डाले, उसी तरह दूसरे भी चाहते हैं। ऐसी दशामें इन धार्मिक मामलोंमें सभी धर्मवालोंको—यदि वे यह चाहते हैं कि धर्मकार्य बिना विपत्तिके, बाधाविघ्नरहित होकर पाले जावें—इतना उदार अवश्य हो जाना चाहिए कि वे किसी भी धर्मवालोंके कार्यमें कोई बाधा उपस्थित न करें, बल्कि बन सके तो अन्य धर्मवालोंके लिए अपनी ओरसे कुछ सुविधायें भी कर दें—उन्हें उनके कार्योंमें सहायता पहुँचावें। अवश्य ही ऐसा करते समय अपने धर्मको कोई वास्तविक हानि न पहुँचे, इसका विचार कर लेना चाहिए। इस तरहकी नीतिका पालन किये बिना संसारमें न तो शान्ति ही रह सकती है और न धार्मिक कलहोंका अन्त ही हो सकता है।

ऊपर एक जगह लिखा जा चुका है कि दिगम्बरसमाजके मुखियोंने अबकी बार मुकद्दमेबाजीके लिये बीस लाख रुपयेका चन्दा करना निश्चय किया है और लगभग ढाई लाख रुपयेका चन्दा हो भी गया है जैसा कि सुना गया है। सम्मेद शिखरपर श्वेताम्बरियोंकी ओरसे दिगम्बरियोंपर बहुत ज्यादतियाँ हो रही हैं, उनके उपद्रव असह्य हो रहे हैं। हमारे अगुए इन्हीं ज्यादतियोंका उल्लेख करके अपनी इस तैयारीको आवश्यक कर्तव्य बतला रहे हैं। परन्तु हमारा उनसे यह प्रश्न है कि यह जो आप अपनी रक्षाके लिए प्रयत्न कर रहे हैं, उसके लिए तो हम आपको विशेष दोष नहीं देना चाहते; परन्तु यह तो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बतलाइए कि आप इन झगड़ोंको मिटानेके लिए क्या प्रयत्न कर रहे हैं ? यह कैसे माना जावे कि आप इस झगड़ेको मिटानेके लिए सचमुच ही उत्सुक हैं ? जिस तरह आपने मुकद्दमे लड़नेके लिए ढाई लाखका चन्दा किया है, उसी तरह क्या आपका यह फर्ज नहीं है कि दस बीस हजार रुपयाका चन्दा इस बातके लिए भी करें जिससे दोनों सम्प्रदायोंमें एकताके भाव जाग्रत हों और ये बखेड़े हमेशाके लिए शान्त हो जायँ ? इसी तरह वे श्वेताम्बरी भाई भी—जो दिगम्बरियोंका दोष बतलाकर अपने हकोंकी रक्षाके लिए पानीकी तरह रुपये बहा रहे हैं—इन झगड़ोंको मिटानेका कौनसा प्रयत्न कर रहे हैं ? उनका भी क्या यह कर्तव्य नहीं है कि इस कामके लिए भी कुछ चन्दा करें ? इससे तो यही मालूम होता है कि या तो दोनों ही पक्षवाले अपनी अपनी ऐंठमें मरे जा रहे हैं और अपनी अपनी जीतके स्वप्न देख रहे हैं, मेल-मिलापकी जो थोड़ी बहुत बातें बीच-बीचमें कर बैठते हैं, वे खाली दुनियासाजीकी बातें हैं, और या वे जैनधर्मके तत्त्वोंसे इतने अनभिज्ञ हैं कि इस लड़ने मरनेको ही पुण्यका कार्य समझते हैं।

जिसमें थोड़ीसी भी बुद्धि है, वह विचार करनेसे इस बातको समझ सकता है कि इन मुकद्दमोंके लड़नेसे—चाहे ये कितने ही जोरोंसे लड़े जावें और इनमें चाहे जितना रुपया खर्च किया जाय—ये तीर्थोंके झगड़े कभी नहीं मिटेंगे। यदि आज एक झगड़ा मिट जायगा तो कल कोई दूसरा खड़ा हो जायगा और परसों कोई तीसरा। इनकी परम्परा तो चलती ही रहेगी। क्रोधसे क्रोध नहीं जीता जा सकता; उसके जीतनेके लिए तो अक्रोध या क्षमाकी ही ढाल लेनी पड़ेगी। ये झगड़े उस समय तक शान्त नहीं हो सकते जबतक दोनों पक्षवाले एकताकी, क्षमाकी, दयाकी, प्रेमकी, और सहानुभूतिकी महिमाको न जानें।

हमारा विश्वास है कि जितने बलके साथ मुकद्दमा लड़नेके आन्दोलन किये जा रहे हैं उतने ही बलके साथ यदि आपसमें सब झगड़े तय कर डालनेका आन्दोलन एक व्यवस्थित पद्धतिसे किया जायगा तो केवल एक ही वर्षके भीतर सारे झगड़े शान्त हो जावेंगे और दोनों सम्प्रदायोंमें प्रेम-प्रीति बढ़कर जैनधर्मके मस्तक-परसे यह बड़ाभारी कलङ्कका टीका मिट जायगा।

इस कामके लिए दोनों सम्प्रदायके शिक्षितोंको आगे बढ़ना चाहिए। दोनों सम्प्रदायोंकी ओरसे इस कामके लिए एक एक संस्था स्थापित होनी चाहिए और उसकी ओरसे जगह जगह व्याख्यान देनेकी, पेम्फलेट बाँटनेकी, लेख प्रकाशित करनेकी, प्रत्येक तीर्थपर जाकर झगड़ोंकी जड़का पता लगानेकी और इसतरह लोकमत तैयार करनेकी, व्यवस्था होनी चाहिए। इसके बाद जब लोकमत तैयार हो जाय, अधिकांश लोग यह समझने लगें कि मुकद्दमा लड़ना बुरा है, और मेल बढ़ाना आवश्यक है तब समाजके मुखियोंसे कहा जाय कि वे आपसमें समझौता कर लेनेका प्रयत्न करें। इसके बाद दोनों सम्प्रदायके लोगोंकी सम्मतिसे महात्मा गाँधी, माननीय मालवीयजी आदि निष्पक्ष नेताओंको मध्यस्थ बनाकर ये झगड़े निबटा लिये जायँ। हम समझते हैं, कि इस पद्धतिसे आन्दोलन करनेसे अवश्य सफलता होगी और जैनसमाजके लिए वह दिन बड़े सौभाग्यका होगा जिस दिन वह अपनी इन झगड़ोंमें नष्ट भ्रष्ट होती हुई शक्तिको किसी दूसरे अच्छे कार्योंमें लगानेको समर्थ होगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हम यह मानते हैं कि दिगम्बर और श्वेताम्बर दो जुदा जुदा सम्प्रदाय हैं। उनमें जो मतभेद पड़ गये हैं, वे धीरे धीरे इतने मजबूत हो गये हैं कि उनके एक होनेकी आशा नहीं की जा सकती। परन्तु क्या जैनधर्मकी उदार नीतिके नाम पर हम यह भी आशा नहीं कर सकते कि दोनों सम्प्रदायवाले, अपने अपने विश्वासोंके अनुसार अपने अपने धर्मकृत्य सम्पादन करते हुए और एक दूसरेको हानि न पहुँचाते हुए एकत्र रह सकें? एक जमाना था जब एक ही घरमें, एक ही कुटुम्बमें जैन, बौद्ध और वैदिक धर्मोंको माननेवाले प्रेम प्रीतिसे निवास करते थे और यह तो बहुत पिछले समयकी बात है जब दिगम्बर और श्वेताम्बर लोग एक साथ बड़े बड़े संघ लेकर तीर्थयात्राको निकलते थे और तीर्थोंपर एक साथ धर्मकार्य सम्पादन करके पुण्य सम्पादन करते थे। क्या अब हम इतनी भी उदारता नहीं बतला सकते कि तीर्थोंपर इस तरहके झगड़े बखेड़े तो खड़े न करें और एक दूसरेको सतानेकी तैयारियोंमें तो अपनी शक्तियोंका क्षय न करें?

क्या हम जैनसमाजके धनिकोंसे यह आशा करें कि उनमेंसे दो चार सज्जन ऐसे भी निकल आवेंगे जो मुकद्दमे लड़ानेके लिए नहीं किन्तु उनके मिटानेका आन्दोलन करनेके लिए कुछ दान करनेकी आवश्यकता समझेंगे?

दोनों सम्प्रदायके पत्रसम्पादकोंसे प्रार्थना है कि वे इस आवश्यक विषयपर अपने अपने पत्रोंमें चर्चा करें और जैनधर्म और जैनसमाजके सिरसे इस कलङ्कको पोंछ डालनेके उद्योगमें शामिल हों।

शिक्षाप्रद शास्त्रीय उदाहरण।

कुछ समय हुआ जब हमने 'शिक्षाप्रद शास्त्रीय उदाहरण' नामका एक लेख 'सत्योदय' में प्रकाशित कराया था। आज हम उसे उपयोगी समझकर अपने पाठकोंके विचारार्थ नीचे प्रकट करते हैं—सम्पादक।

"श्रीनेमिनाथ तीर्थंकरके चचा और श्रीकृष्ण महाराजके पिता वसुदेवजी जैनसमाजमें एक सुप्रसिद्ध व्यक्ति हो गये हैं। हरिवंशपुराणादि जैनकथाग्रन्थोंमें आपका विस्तारके साथ वर्णन दिया है। यहाँ पर हम आपके जीवनकी सिर्फ चार घटनाओंका उल्लेख करते हैं; एक 'देवकीसे विवाह' दूसरी 'जरा नामकी म्लेच्छ कन्यासे विवाह' तीसरी 'प्रियंगुसुन्दरीसे विवाह,' और चौथी घटना 'रोहिणीका स्वयम्बर'।

१—देवकीसे विवाह।

देवकी राजा उग्रसेनकी पुत्री, नृप भोजकवृष्टिकी पौत्री और महाराजा सुवीरकी प्रपौत्री थी। वसुदेव राजा अन्धकवृष्टिके पुत्र और नृप शूरके पौत्र थे। ये नृप 'शूर' और देवकीके प्रपितामह 'सुवीर' दोनों सगे भाई थे। दोनोंके पिताका नाम 'नरपति' और पितामह (बाबा) का नाम 'यदु' था। ऐसा श्रीजिनसेनाचार्य्यने अपने हरिवंशपुराणमें सूचित किया है और इससे यह प्रकट है कि राजा उग्रसेन और वसुदेवजी दोनों आपसमें चचा-ताऊजाद भाई लगते थे और इस लिये उग्रसेनकी लड़की 'देवकी' रिश्तेमें वसुदेवकी भतीजी (भ्रातृजा) हुई। इस देवकीसे वसुदेवका विवाह हुआ जिससे स्पष्ट है कि इस विवाहमें गोत्र तथा गोत्रकी शाखाओंका टालना तो दूर रहा एक वंश और एक कुटुम्बका भी कुछ खयाल नहीं रक्खा गया। वसुदेवजीने गोत्रादि सम्बन्धी इन सब बातोंको कुछ भी महत्त्व न देकर, बिना किसी संकोचके अपनी भतीजीके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साथ विवाह कर लिया और उनका यह विवाह उस समय कुछ भी अनुचित नहीं समझा गया। इस विवाहसे अनेक सुप्रतिष्ठित और बहुमान्य पुत्ररत्नोंका उद्भव हुआ; अर्थात् देवकीने श्रीकृष्णके अतिरिक्त छः तद्भवमोक्षगामी पुत्रोंको भी जन्म दिया। यह तो हुई देवकीसे विवाहकी बात, अब जराकी विवाहवार्ताको लीजिये।

२–जरासे विवाह।

जरा किसी म्लेच्छ राजाकी कन्या थी जिसने गङ्गा तट पर वसुदेवजीको परिभ्रमण करते हुए देखकर उनके साथ अपनी इस कन्याका पाणि-ग्रहण कर दिया था। पं० दौलतरामजीने, अपने हरिवंशपुराणमें, इस राजाको 'म्लेच्छखण्डका राजा' बतलाया है और पं० गजाधरलालजी उसे 'भीलोंका राजा' सूचित करते हैं। वह राजा म्लेच्छखण्डका राजा हो या आर्य्यखण्डोद्भव म्लेच्छ राजा, और चाहे उसे भीलोंका राजा कहिये, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि वह आर्य्य तथा उच्चजातिका मनुष्य नहीं था। और इस-लिये उसे अनार्य्य तथा म्लेच्छ कहना कुछ भी अनुचित नहीं होगा। म्लेच्छोंका आचार आम तौर पर 'हिंसामें रति, मांसभक्षणमें प्रीति और जबरदस्ती दूसरोंकी धन-सम्पत्तिका हरना इत्यादिक' होता है; जैसा कि श्रीजिनसेनाचार्य्य-प्रणीत आदिपुराणके निम्नलिखित वाक्यसे प्रगट है:—

म्लेच्छाचारो हि हिंसायां रतिर्मांसाशनेऽपि च।
बलात्परस्वहरणं निर्धूतत्वमिति स्मृतम्॥ ४२-१८४॥

वसुदेवजीने, यह सब कुछ जानते हुए भी, बिना किसी झिझक और रुकावटके बड़ी खुशीके साथ इस म्लेच्छ राजाकी उक्त कन्यासे विवाह किया और उनका यह विवाह भी उस समय कुछ अनुचित नहीं समझा गया। बल्कि उस समय और उससे पहिले भी इस प्रकारके विवाहोंका आम दस्तूर था। अच्छे अच्छे प्रतिष्ठित, उच्चकुलीन और उत्तमोत्तम पुरुषोंने म्लेच्छ राजाओंकी कन्याओंसे विवाह किया, जिनके उदाहरणोंसे जैनसाहित्य परिपूर्ण है। अस्तु; इस विवाहसे वसुदेवजीके 'जरत्कुमार' नामका एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो बड़ा ही प्रतापी, नीतिवान् और प्रजाप्रिय राजा हो गया है और जिसने अन्तको, राजपाट छोड़कर जैनमुनिदीक्षा तक धारण की थी। इसी राजाके वंशमें 'जितशत्रु' नामका राजा हुआ, जिससे भगवान् महावीरके पिताकी छोटी बहिन ब्याही गई। अब प्रियंगुसुन्दरीके विवाहको लीजिये।

३—प्रियंगुसुंदरीसे विवाह।

प्रियंगुसुन्दरीके पिताका नाम 'एणीपुत्र' था। यह एणीपुत्र ऋषिदत्ता नामकी एक अविवाहिता तापसकन्यासे व्यभिचार द्वारा उत्पन्न हुआ था। प्रसवसमय उक्त ऋषिदत्ताका देहान्त हो गया और वह मरकर देवी हुई, जिसने एणी अर्थात् हरिणीका रूप धारण करके जङ्गलमें अपने इस नवजात शिशुको स्तन्यपानादिसे पाला और पालपोषकर अन्तको शीलायुध राजाके सुपुर्द कर दिया। इस प्रियंगुसुन्दरीका पिता एणीपुत्र 'व्यभिचार जात' था, जिसको आजकलकी भाषामें 'दस्सा' या 'गाटा' भी कहना चाहिये। वसुदेवजीने विवाहके समय यह सब हाल जानकर भी इस विवाहको किसी प्रकारसे दूषित, अनुचित अथवा अशास्त्रसम्मत * नहीं समझा

* शास्त्रोंमें तो ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्यके लिये 'शूद्र' तककी कन्यासे विवाह करना भी उचित ठहराया है, यथा:—

शूद्रा शूद्रेण वोढव्या नान्या स्वां तां च नैगमः।
वहेत्स्वां ते च राजन्यः स्वां द्विजन्मा क्वचिच्च ताः॥
—आदिपुराण।

'आनुलोम्येन चतुस्त्रिद्विवर्णकन्याभाजना ब्राह्मण-क्षत्रियविशः।'
नीतिवाक्यामृत।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और इसलिये उन्होंने बड़ी खुशीके साथ प्रियंगुसुन्दरीका भी पाणिग्रहण किया।

यद्यपि ये तीनों विवाह आजकलकी हवाके बहुत कुछ प्रतिकूल पाये जाते हैं तो भी, उस समय, इन विवाहोंको करके वसुदेवजी जरा भी पतित नहीं हुए।

पतित होना अथवा जातिसे च्युत किया जाना तो दूर रहा, तत्कालीन समाजने उन्हें घृणाकी दृष्टिसे भी नहीं देखा। उनकी कीर्त्ति और प्रतिष्ठामें इन विवाहोंसे जरा भी बट्टा या कलङ्क नहीं लगा; बल्कि वह उलटी वृद्धिंगत हुई और यहाँ तक बनी रही कि उसके कारण आज तक भी अनेक ऋषि-मुनियों तथा विद्वानोंके द्वारा वसुदेवजीके पुण्य चरित्रका चित्रण और यशोगान होता रहा। श्रीजिनसेनाचार्य्यने हरिवंशपुराणमें, वसुदेवजीकी कीर्तिका अनेक प्रकारसे कीर्त्तन कर उन्हें यदुवंशमें श्रेष्ठ, उदारचरित्र, शुद्धात्मा, स्वभावसे ही निर्मल चित्तके धारक, अनन्य साधारण (जो औरोंमें न पाया जाय) विवेकसे युक्त और ऐसे महान् धर्मज्ञ तथा तत्त्ववेत्ता प्रकट किया है कि जिनके मुनि और श्रावकधर्मसम्बन्धी उपदेशको सुनकर बहुतसे मिथ्यामती तापसियोंने भी तत्काल ही अपना वह मिथ्यामत छोड़ दिया था और जैनधर्मका शरण लेकर उसके व्रतोंको ग्रहण किया था। श्रीजिनदास ब्रह्मचारी भी, अपने हरिवंशपुराणमें, वसुदेवजीका ऐसा ही यशोगान करते हैं और उन्हें 'महामति' आदिक लिखते हैं। साथ ही, उन्होंने बलभद्रके मुखसे श्रीकृष्णके प्रति जो वाक्य कहलाया है उससे मालूम होता है कि वसुदेवजीका सौभाग्य जगत्में विख्यात था और उनकी सत्कीर्त्तिका खेचर और भूचर सभी जन गान किया करते थे। वह वाक्य इस प्रकार है:—

जगद्विख्यातसौभाग्यो वसुदेवः पिता तव।
गीयते यस्य सत्कीर्त्तिः खेचरीभूचरीजनैः॥

सर्ग १४ श्लोक १४३।

इन दोनों ग्रन्थोंके अवतरणोंसे ही इस बातका भले प्रकार पता चल जाता है कि वसुदेवजी कितने यशस्वी, विवेकी, प्रखर विद्वान् और धार्मिक पुरुष थे। ऐसी हालतमें उनके ये तीनों विवाह उस समयकी दृष्टिसे जरा भी हीन अथवा जघन्य नहीं समझे जा सकते। उन्हें अनुचित समझना ही अनुचित होगा। अस्तु; अब रोहिणीके स्वयम्बरकी ओर चलिये।

४—रोहिणीका स्वयंवर।

रोहिणी अरिष्टपुरके राजाकी लड़की और एक सुप्रतिष्ठित घरानेकी कन्या थी। इसके विवाहका स्वयम्वर रचाया गया था, जिसमें जरासन्धादिक बड़े बड़े प्रतापी राजा दूर देशान्तरोंसे एकत्र हुए थे। स्वयम्वरमण्डपमें वसुदेवजी, किसी कारण विशेषसे अपना वेष बदल कर, 'पणव' नामका वादित्र हाथमें लिये हुए एक ऐसे रङ्क तथा अकुलीन बाजन्त्री (बाजा बजानेवाला) के रूपमें उपस्थित थे कि जिससे किसीको उस वक्त वहाँ उनके वास्तविक कुल जाति आदिका कुछ भी पता मालूम नहीं था। रोहिणीने सम्पूर्ण उपस्थित राजाओं तथा राजकुमारोंको प्रत्यक्ष देखकर और उनके वंश तथा गुणादिका परिचय पाकर भी जब उनमेंसे किसीको भी अपने योग्य वर पसन्द नहीं किया तब उसने, सब लोगोंको आश्चर्य्यमें डालते हुए, बड़े ही निःसङ्कोच भावसे उक्त बाजन्त्री रूपके धारक एक अपरिचित और अज्ञातकुलजातिनामा व्यक्ति (वसुदेव) के गलेमें ही अपनी वरमाला डाल दी। रोहिणीके इस कृत्य पर कुछ ईर्षालु, मानी और मदान्ध राजा, अपना अपमान समझकर कुपित हुए और रोहिणीके पिता तथा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वसुदेवसे लड़नेके लिये तैयार हो गये । उस समय विवाहनीतिका उल्लंघन करनेके लिये उद्यमी हुए उन कुपितानन राजाओंको सम्बोधन करके, वसुदेवजीने बड़ी तेजास्विताके साथ जो वाक्य कहे थे उनमेंसे स्वयंवर-विवाहके नियम-सूचक कुछ वाक्य इस प्रकार हैं:—

कन्या वृणीते रुचितं स्वयंवरगता वरं ।
कुलीनमकुलीनं वा क्रमो नास्ति स्वयंवरे ॥
—सर्ग ११, श्लो० ७१ ।

अर्थात् स्वयंवरको प्राप्त हुई कन्या उस वर-को वरण (स्वीकार) करती है जो उसे पसन्द होता है, चाहे वह वर कुलीन हो या अकुलीन। क्योंकि स्वयंवरमें इस प्रकारका—वरके कुलीन या अकुलीन होनेका—कोई नियम नहीं होता। ये वाक्य सकलकीर्त्ति आचार्य्यके शिष्य श्रीजिनदास ब्रह्मचारीने अपने हरिवंशपुराण-में उद्धृत किये हैं और श्रीजिनसेनाचार्य्यकृत हरिवंशपुराणमें भी प्रायः इसी आशयके वाक्य पाये जाते हैं । वसुदेवजीके इन वचनोंसे उनकी उदार परिणति और नीतिज्ञताका अच्छा परिचय मिलता है, और साथ ही स्वयंवर-विवाहकी नीतिका भी बहुत कुछ अनुभव हो जाता है। यह स्वयंवर-विवाह, जिसमें वरके कुलीन या अकुलीन होनेका कोई नियम नहीं होता, वह विवाह है जिसे, आदिपुराणमें श्रीजिनसेनाचार्य्यने 'सनातनमार्ग' लिखा है और सम्पूर्ण विवाहविधानोंमें सबसे अधिक श्रेष्ठ (वरिष्ठ) विधान प्रकट किया है* । युगकी आदिमें सबसे पहले जब राजा अकम्पन द्वारा इस (स्वयंवर) विवाहका अनुष्ठान हुआ था तब भरत चक्रवर्त्तीने भी इसका बहुत कुछ अभिनन्दन किया था। साथ ही, उन्होंने ऐसे सनातन मार्गों-के पुनरुद्धारकर्त्ताओंको सत्पुरुषों द्वारा पूज्य भी ठहराया था* । अस्तु । विवाहकी यह सनातन विधि भी आजकलकी हवाके प्रतिकूल पाई जाती है । आजकल इस प्रकारके विवाहोंका प्रायः अभाव ही देखनेमें आता है । परन्तु आजकल कुछ ही होता रहे, उस समय वसुदेव-जीका रोहिणीके साथ इस स्वयंवर-विधिसे बड़े आनन्दपूर्वक विवाह हो गया और रोहिणीका एक बाजन्त्रीके गलेमें वरमाला डालना भी कुछ अनुचित नहीं समझा गया । इस विवाहसे वसुदेवजीको बलभद्र जैसे पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई।

इन चारों घटनाओंको लिये हुए वसुदेवजीके इस एक पुराने बहुमान्य शास्त्रीय उदाहरणसे, और साथ ही वसुदेवजीके उक्त वचनोंको आदिपुराणके उपर्युल्लिखित वाक्योंके साथ मिलाकर पढ़नेसे विवाह-विषय पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है और उसकी अनेक समस्यायें खुद ब खुद (स्वयमेव) हल हो जाती हैं। इस उदाहरणसे वे सब लोग बहुत कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं जो प्रचलित रीति-रिवाजोंको ब्रह्म-वाक्य तथा आप्तवचन समझे हुए हैं, अथवा जो रूढ़ियोंके इतने भक्त हैं कि उन्हें गणितशास्त्रके नियमोंकी तरह अटल सिद्धान्त समझते हैं और इसलिये उनमें जरा भी फेरफार करना जिन्हें रुचिकर नहीं होता; जो ऐसा करनेको धर्मके विरुद्ध चलना और जिनेन्द्र भगवानकी आज्ञाका उल्लङ्घन करना मान बैठे हैं; जिन्हें विवाहमें कुछ संख्यप्रमाण गोत्रोंके न बचाने तथा अपने वर्णसे भिन्न वर्णके साथ शादी कर-नेसे धर्मके डूब जानेका भय लगा हुआ है; इससे भी अधिक, जो एक ही धर्म और एक ही

*सनातनोऽस्ति मार्गोऽयं श्रुतिस्मृतिषु भाषितः ।
विवाहविधिभेदेषु वरिष्ठो हि स्वयंवरः ॥ ४४–३२॥

* तथा स्वयंवरस्येमे नाभूवन्यद्यकम्पनाः ।
कः प्रवर्त्तयितान्योऽस्य मार्गस्यैष सनातनः ॥५४॥
मार्गाश्चिरंतनान्येऽत्र भोगभूमितिरोहितान् ।
कुर्वन्ति नूतनान्सन्तः सद्भिः पूज्यास्त एव हि ५५
—आ० पु० पर्व ४५।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचारके मानने तथा पालनेवाली अग्रवाल, खण्डेलवाल आदि समान जातियोंमें भी परस्पर रोटी-बेटी व्यवहार एक करनेको अनुचित समझते हैं—पातक अथवा पतनकी शङ्कासे जिनका हृदय सन्तप्त है-और जो अपनी एक जातिमें भी आठ आठ गोत्रों तकको टालनेके चक्करमें पड़े हुए हैं। ऐसे लोगोंको वसुदेवजीका उक्त उदाहरण और उसके साथ विवाहसम्बन्धी वर्त्तमान रीति-रिवाजोंका मीलान बतलायगा कि रीति-रिवाज कभी एक हालतमें नहीं रहा करते, वे सर्वज्ञ भगवानकी आज्ञायें और अटल सिद्धान्त नहीं होते, उनमें समयानुसार बराबर फेरफार और परिवर्त्तनकी जरूरत हुआ करती है। इसी जरूरतने वसुदेवजीके समय और वर्त्तमान समयमें जमीन आसमानका सा अन्तर डाल दिया है। यदि ऐसा न होता तो वसुदेवजीके समयके विवाहसम्बन्धी नियम-उपनियम इस समय भी स्थिर रहते और उसी उत्तम तथा पूज्य दृष्टिसे देखे जाते जैसे कि वे उससमय देखे जाते थे। परन्तु ऐसा नहीं है और इसलिये कहना होगा कि वे सर्वज्ञ भगवान्की आज्ञायें अथवा अटल सिद्धान्त नहीं थे और न हो सकते हैं। दूसरे शब्दोंमें यों कहना चाहिये कि यदि वर्त्तमान वैवाहिक रीतिरिवाजोंको सर्वज्ञ-प्रणीत—सार्वदेशिक और सार्वकालिक अटल सिद्धान्त—माना जाय तो यह कहना पड़ेगा कि वसुदेवजीने प्रतिकूल आचरणद्वारा बहुत स्पष्टरूपसे सर्वज्ञकी आज्ञाका उल्लङ्घन किया। ऐसी हालतमें आचार्यों द्वारा उनका यशोगान नहीं होना चाहिये था, वे पातकी समझे जाकर कलङ्कित किये जानेके योग्य थे। परन्तु ऐसा नहीं हुआ और न होना चाहिये था; क्योंकि शास्त्रों द्वारा उस समयके मनुष्योंकी प्रायः ऐसी ही प्रवृत्ति पाई जाती है, जिससे वसुदेवजी पर कोई कलङ्क नहीं आ सकता। तब क्या यह कहना होगा कि उस वक्तके वे रीति-रिवाज सर्वज्ञप्रणीत थे और आजकलके सर्वज्ञ-प्रणीत अथवा जिनभाषित नहीं हैं? ऐसा कहने पर आजकलके रीति-रिवाजोंको एकदम उठाकर उनके स्थानमें वही वसुदेवजीके समयके रीति-रिवाज कायम कर देना ही समुचित न होगा बल्कि साथ ही अपने उन सभी पूर्वजों—को कलङ्कित और दोषी भी ठहराना होगा जिनके कारण वे पुराने (सर्वज्ञभाषित) रीति-रिवाज उठकर उनके स्थानमें वर्त्तमान रीति-रिवाज कायम हुए और फिर हम तक पहुँचे। परन्तु ऐसा कहना और ठहराना दुःसाहस मात्र होगा। वह कभी इष्ट नहीं हो सकता और न युक्तियुक्त ही प्रतीत होता है। इस लिये यही कहना समुचित होगा कि उस वक्तके वे रीति-रिवाज भी सर्वज्ञभाषित नहीं थे। वास्तवमें गृहस्थोंका धर्म दो प्रकारका वर्णन किया गया है, एक लौकिक और दूसरा पारलौकिक। लौकिक धर्म लोकाश्रय और पारलौकिक आगमाश्रय होता है *। विवाहकर्म गृहस्थोंके लिये एक लौकिक धर्म है और इसलिये वह लोकाश्रित है—लौकिक जनोंकी देशकालानुसार जो प्रवृत्ति होती है उसके अधीन है—लौकिक जनोंकी प्रवृत्ति हमेशा एक रूपमें नहीं रहा करती। वह देशकालकी आवश्यकताओंके अनुसार कभी पञ्चायतियोंके निर्णय द्वारा और कभी प्रगतिशील व्यक्तियोंके उदाहरणोंको लेकर, बराबर बदला करती है और इसलिये वह पूर्णरूपमें प्रायः कुछ समयके लिये ही स्थिर रहा करती है। यही वजह है कि भिन्न भिन्न देशों, समयों और जातियोंके विवाहविधानोंमें बहुत बड़ा अन्तर पाया जाता है। एक समय था जब इसी भारतभूमि पर सगे भाई बहिन भी परस्पर

* द्वौ हि धर्मौ गृहस्थानां लौकिकः पारलौकिकः।
लोकाश्रयो भवेदाद्यः परः स्यादागमाश्रयः॥—सोमदेवः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्त्री पुरुष होकर रहा करते थे और इतने पुण्याधिकारी समझे जाते थे कि मरने पर उनके लिये नियमसे देवगतिका विधान किया गया है ×। फिर वह समय भी आया जब उक्त प्रवृत्तिका निषेध किया गया और उसे अनुचित ठहराया गया। परन्तु उस समय गोत्र तो गोत्र एक कुटुम्बमें विवाह होना, एक स्त्रीके अनेक भर्तार होना, अपनेसे भिन्न वर्णके साथ शादीका किया जाना और शूद्र ही नहीं किन्तु म्लेच्छोंतककी कन्याओंसे विवाह करना भी अनुचित नहीं माना गया। साथ ही, मामा-फूफीकी कन्याओंसे विवाह करनेका तो आम दस्तूर रहा और वह एक प्रशस्त विधान समझा गया। इसके बाद समयके हेरफेरसे उक्त प्रवृत्तियोंका भी निषेध प्रारम्भ हुआ, उनमें भी दोष निकलने लगे—पापोंकी कल्पनायें होने लगीं—और वे सब बदलते बदलते वर्त्तमानके ढाँचेमें ढल गईं। इस अर्सेमें सैकड़ों नवीन जातियों, उपजातियों और गोत्रोंकी कल्पना होकर विवाहक्षेत्र इतना सङ्कीर्ण बन गया कि उसके कारण आजकलकी जनता बहुत कुछ हानि तथा कष्ट उठा रही है और क्षतिका अनुभव कर रही है—उसे यह मालूम होने लगा है कि कैसी कैसी समृद्धिशालिनी जातियाँ इन वर्त्तमान रीतिरिवाजोंके चुङ्गलमें फँसकर संसारसे अपना अस्तित्व उठा चुकी हैं और कितनी मृत्युशय्यापर पड़ी हुई हैं—इसीसे अब वर्त्तमान रीतिरिवाजोंके विरुद्ध भी आवाज उठानी शुरू हो गई है। समय उनका भी परिवर्त्तन चाहता है। संक्षेपमें, यदि सम्पूर्ण जगत्के भिन्न भिन्न देशों, समयों और जातियोंके कुछ थोड़े थोड़ेसे ही उदाहरण एकत्र किये जायँ तो विवाहविधानोंमें हजारों प्रकारके भेद, उपभेद और परिवर्त्तन दृष्टिगोचर होंगे, और इसलिये कहना होगा कि यह सब समय समयकी जरूरतों, देश देश देशकी आवश्यकताओं और जाति जातिके पारस्परिक व्यवहारोंका नतीजा है; अथवा इसे कालचक्रका प्रभाव कहना चाहिए। जो लोग कालचक्रकी गतिको न समझकर एक ही स्थान पर खड़े रहते हैं और अपनी पोजीशन (Position) को नहीं बदलते—स्थितिको नहीं सुधारते—वे निःसन्देह कालचक्रके आघातसे पीड़ित होते और कुचले जाते हैं। अथवा संसारसे उनकी सत्ता उठ जाती है। इस सब कथनसे अथवा इतने ही संकेतसे लोकाश्रित (लौकिक) धर्मोंका बहुत कुछ रहस्य समझमें आ सकता है। साथ ही यह मालूम हो जाता है कि वे कितने परिवर्तनशील हुआ करते हैं। ऐसी हालतमें विवाह जैसे लौकिक धर्मों और सांसारिक व्यवहारोंके लिये किसी आगमका आश्रय लेना, अर्थात्—यह ढूँढ़ खोज लगाना कि आगममें किस प्रकारसे विवाह करना लिखा है, बिल्कुल व्यर्थ है। कहा भी है "**संसारव्यवहारे तु स्वतःसिद्धे वृथागमः** *।" अर्थात्, संसारव्यवहारके स्वतः सिद्ध होनेसे उसके लिये आगमकी जरूरत नहीं। वस्तुतः आगम ग्रन्थोंमें इस प्रकारके लौकिक धर्मों और लोकाश्रित विधानोंका कोई क्रम निर्द्धारित नहीं होता। वे सब लोकप्रवृत्ति पर अवलम्बित रहते हैं। हाँ, कुछ त्रिवर्णाचारों जैसे अनार्ष ग्रन्थोंमें विवाहविधानोंका वर्णन जरूर पाया जाता है। परन्तु वे आगम ग्रन्थ नहीं हैं—उन्हें आप्त भगवानके वचन नहीं कह सकते और न वे आप्तवचनानुसार लिखे गये हैं—इतने पर भी कुछ ग्रन्थ तो उनमेंसे बिल्कुल ही जाली और बनावटी हैं; जैसा कि 'जिनसेनत्रिवर्णाचार' और 'भद्रबाहुसंहिताके' के परीक्षालेखोंसे प्रकट है ×।

× यह कथन उस समयका है जब कि यहाँ भोगभूमि प्रचलित थी।

* यह श्रीसोमदेव आचार्यका वचन है।

× ये सब लेख 'ग्रन्थपरीक्षा' नामसे पहिले जैनहितैषी पत्रमें प्रकाशित हुए थे और अब कुछ समयसे अलग पुस्तकाकार भी छप गये हैं। बम्बई और इटावा आदि स्थानोंसे मिलते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वास्तवमें यह सब ग्रन्थ एक प्रकारके लौकिक ग्रन्थ हैं। इनमें प्रकृत विषयके वर्णनको तात्कालिक और तद्देशीय रीतिरिवाजोंका उल्लेखमात्र समझना चाहिये, अथवा यों कहना चाहिये कि ग्रन्थकर्त्ताओंको समाजमें उस प्रकारके रीतिरिवाजोंका प्रचलित करना इष्ट था। इससे अधिक उन्हें और कुछ भी महत्त्व नहीं दिया जा सकता—वे आजकल प्रायः इतने ही कामके हैं—एकदेशीय, लौकिक और सामयिक ग्रन्थ होनेसे उनका शासन सार्वदेशिक और सार्वकालिक नहीं हो सकता। अर्थात्—सर्व देशों और सर्व समयोंके मनुष्योंके लिये वे समान रूपसे उपयोगी नहीं हो सकते। और इसलिये केवल उनके आधार पर चलना कभी युक्तिसङ्गत नहीं कहला सकता। विवाही विषयमें आगमका मूलविधान सिर्फ इतना ही पाया जाता है कि वह गृहस्थधर्मका वर्णन करते हुए गृहस्थके लिये आम तौरपर गृहिणीकी अर्थात् एक स्त्रीकी जरूरत प्रकट करता है। वह स्त्री कैसी, किस वर्णकी, किस जातिकी, किन किन सम्बन्धोंसे युक्त तथा रहित और किस गोत्रकी होनी चाहिये अथवा किस तरह पर और किस प्रकारके विधानोंके साथ विवाह कर लानी चाहिये, इन सब बातोंमें आगम प्रायः कुछ भी हस्तक्षेप नहीं करता। ये सब विधान लोकाश्रित हैं। आगमसे इनका प्रायः कोई सम्बन्ध विशेष नहीं है। यह दूसरी बात है कि आगममें किसी घटना विशेषका उल्लेख करते हुए उनका उल्लेख आजाय और तात्कालिक दृष्टिसे उन्हें अच्छा या बुरा भी बतला दिया जाय; परन्तु इससे वे कोई सार्वदेशिक और सार्वकालिक अटल सिद्धान्त नहीं बन जाते—अर्थात्, ऐसे कोई नियम नहीं हो जाते कि जिनके अनुसार चलना सर्व देशों और सर्व समयोंके मनुष्योंके लिये बराबर जरूरी और हितकारी हो। हाँ, इतना जरूर है कि आगमकी दृष्टिमें सिर्फ वही लौकिक विधियाँ अच्छी और प्रामाणिक समझी जा सकती हैं जो जैनसिद्धान्तोंके विरुद्ध न हों, अथवा जिनके कारण जैनियोंकी श्रद्धा(सम्यक्त्व)-में बाधा न पड़ती हो और न उनके व्रतोंमें ही कोई दूषण लगता हो। इस दृष्टिको सुरक्षित रखते हुए जैनी लोग प्रायः सभी लौकिक विधियोंको खुशीसे स्वीकार कर सकते हैं और अपने वर्त्तमान रीति-रिवाजोंमें, देशकालानुसार, यथेष्ट परिवर्तन कर सकते हैं*। उनके लिये इसमें कोई बाधक नहीं है। अस्तु; इस सम्पूर्ण विवेचनसे प्राचीन और अर्वाचीनकालके विवाह-विधानोंकी विभिन्नता, उनका देशकालानुसार परिवर्त्तन और लौकिक धर्मोंका रहस्य इन सब बातोंका बहुत कुछ अनुभव प्राप्त हो सकता है, और साथ ही यह भले प्रकार समझमें आ सकता है कि वर्तमान रीति-रिवाज कोई सर्वज्ञभाषित ऐसे अटल सिद्धान्त नहीं हैं कि जिनका परिवर्त्तन न हो सके अथवा जिनमें कुछ फेरफार करनेसे धर्मके डूब जानेका कोई भय हो। हम, अपने सिद्धान्तोंका विरोध न करते हुए, देश, काल और जातिकी आवश्यकताओंके अनुसार उन्हें हर वक्त बदल सकते हैं। वे सब हमारे ही कायम किये हुए नियम हैं और इस लिये हमें उनके बदलनेका स्वतः अधिकार प्राप्त है। इन्हीं सब बातोंको लेकर, एक शास्त्रीय उदाहरणके रूपमें, यह नोट लिखा गया है। आशा है कि हमारे जैनी भाई इससे जरूर कुछ शिक्षा ग्रहण करेंगे, और विवाहतत्त्वको समझकर, जिसके समझनेके लिये 'विवाहका उद्देश्य' × नामक निबन्ध भी साथमें पढ़ना विशेष उपकारी होगा, अपने वर्तमान रीति-रिवाजोंमें यथोचित फेरफार करनेके लिये समर्थ होंगे। और इस तरह पर कालचक्रके आघातसे बचकर अपनी सत्ताको चिरकाल तक यथेष्टरीतिसे बनाये रक्खेंगे। इत्यलम्।

---

* सर्व एव हि जैनानां प्रमाणं लौकिको विधिः।
यत्र सम्यक्त्वहानिर्न यत्र न व्रतदूषणम्॥ —सोमदेवः।

× यह पुस्तक 'जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय' बम्बई द्वारा प्रकाशित हुई है, और लेखकके पाससे बिना मूल्य भी मिलती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पं० उदयलालजीका विवाह ।

(लेखक—श्रीयुत, नाथूराम प्रेमी ।)

आखिर गत 'विजयादशमी' को सत्यवादीके भूतपूर्व सम्पादक, अनेक जैनग्रन्थोंके अनुवादक, लेखक और प्रकाशक पं० उदयलालजीका विवाह ब्राह्मणजातीय बालविधवा श्रीमती मर्यादादेवीके साथ हो गया । श्रीयुक्त पं० अर्जुनलालजी सेठी बी० ए० द्वारा जैनविवाहविधिसे यह विवाहकार्य बड़े आनन्द और उत्साहके साथ समाप्त हुआ । बम्बईके और बाहरके लगभग ३००–३५० गण्यमान्य दिगम्बर, श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन और अजैन गृहस्थोंने विवाहोत्सवकी शोभा बढ़ाई थी । लगभग २५–३० स्त्रियाँ भी उपस्थित थीं । उत्सवका सारा प्रबन्ध जैनहितेच्छुके प्रतिभाशाली सम्पादक श्रीयुत वाडीलाल मोतीलाल शाह और उनके सहयोगी स्वयंसेवकोंने किया था । श्रीयुत शाह और सेठीजीके प्रासंगिक व्याख्यान भी इस समय हुए। इसी प्रसंग पर वरकी ओरसे ३००), श्रीयुत शाहकी ओरसे २००) और वर्धानिवासी श्रीमान् सेठ चिरंजीलालजी बड़जात्याकी ओरसे १००) इस तरह ६००) का दान हुआ । इस द्रव्यसे स्त्रीसमाजमें विदेशी वस्तु बहिष्कार और असहकारका प्रचार किया जायगा । उत्सवके अन्तमें उपस्थित सज्जनोंका दुग्ध, मिष्टान्न, फल और मेवोंसे सत्कार किया गया । अन्तमें विवाहित दम्पतिने कई पुरुषों और स्त्रियोंके साथ चौपाटीके चन्द्रप्रभ जिनालयमें जाकर दर्शन किये और इस तरह यह विवाहकार्य समाप्त हुआ ।

बम्बईकी खण्डेलवाल पंचायतीकी ओरसे इस बातका खास प्रबन्ध किया गया था कि कोई जैनी भाई इस विवाहमें शामिल न हो, इस कारण बहुतसे भाई इच्छा होते हुए भी उपस्थित न हुए, फिर भी लगभग ५०–६० खंडेलवाल, परवार, हूमड़, पंचम, चतुर्थ, सेतवाल, पद्मावती पुरवाल, कठनेरा, बदनेरा, अग्रवाल, और पल्लीवाल भाई उत्सवकी शोभा बढ़ाने पहुँच ही गये थे ! इस पर पंचायतीके सूत्रधारोंका क्रोध बहुत ही बढ़ गया है और वे जानेवाले सज्जनोंको दण्डित करने या करानेकी तैयारी कर रहे हैं । पंचायतीने उस दिन मन्दिरमें तीन ताले लगवाये थे और ५–६ पुर्बियोंकी नियुक्ति इस लिए की थी कि कहीं विवाहितदम्पत्ति दर्शन करनेके लिए न आजावें ! यदि जाते तो संभवतः उनके स्वागतका भी प्रबन्ध किया जाता ! इन्दौरकी पंचायतसे ऐन मौकेपर सुना है कि एक इस आशयका तार आया था कि यदि उदयलालजीका विवाह जैन विधिसे होता हो तो उसको रोको ! पर यहाँकी पंचायती उक्त आज्ञाके पालनका कोई प्रबन्ध न कर सकी। स्वर्गीय पं० गोपालदासजी और उनके अनुयायी अपने अनेक व्याख्यानोंमें कह चुके हैं कि जैनधर्म 'सार्वधर्म' है । उसे 'सार्वधर्म' बनाना चाहिए । इसके लिए एक 'सार्वधर्मपरिषत्' भी स्थापित हुई थी; परंतु बम्बईकी खंडेलवाल पंचायत—जिसके संचालक स्वर्गीय पण्डितजीके परम मित्र पं० धन्नालालजी हैं—चाहती है कि उदयलालजी केवल खंडेलवाल जातिसे ही च्युत होकर रिहाई नहीं पा सकें—उन्हें जैनधर्म भी छोड़ देना चाहिए। जिनदर्शन भी उन्हें न मिलना चाहिए और जैनविधिके अनुसार चलनेका भी उनसे अधिकार छीन लिया जाना चाहिए !

हम पहले लिख चुके हैं कि खंडेलवाल समाजका बहुमत जब विधवाविवाहके विरुद्ध है और उसके अधिकांश सभ्य जब इसे घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं, तब उसको अधिकार है कि वह विधवा-विवाह करनेवालेसे अपना सम्बन्ध तोड़ दे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और उस पर अपने अस्त्रागारके सबसे तेज अस्त्र 'जातिबहिष्कार' का प्रयोग करे। ऐसा करनेसे उसको कोई मना भी नहीं कर सकता,—उस समय तक जब तक कि विधवा-विवाहको पसन्द करनेवाले लोग समाजमें अपना बहुमत न कर लें। बम्बईकी पंचायतका कार्य यहाँ तक तो न्यायानुमोदित कहा जा सकता है; परन्तु इसके आगे यह समझमें नहीं आता कि वह लोगोंके जन्मसिद्ध हक विचारस्वाधीनता और धर्मस्वाधीनता पर क्यों हस्तक्षेप करती है। उसे क्या अधिकार है कि वह किसीको जैनधर्म पालनेसे और दर्शन करनेसे रोके और उसके रोकनेसे कोई रुक भी कैसे सकता है? अरे भाई, यदि तुम उदयलालजीको खण्डेलवाल जातिमें रखनेसे नाराज हो तो मत रक्खो—उनके साथ रोटी-बेटीका व्यवहार बन्द कर दो-बस। पर इस ईर्षाग्निसे तुम क्यों जलते हो कि वे जैनधर्मपर विश्वास रखते हैं और जिनदेवको अपना परमोपकारी इष्टदेव समझते हैं? यदि तुम्हारी समझमें उन्होंने पापकार्य किया है, तो उससे मुक्त होनेका दरवाजा भी उनके लिए क्यों बन्द करते हो? संसारकी सभ्य सरकारें तो कैदियों और अपराधियोंको सुधारनेके लिए—उनकी बुरी आदतें छुड़ानेके लिए—जेलखानोंमें उपदेशक भेजती हैं—धर्मोपदेश देनेका प्रबन्ध करती हैं और तुम जगदुद्धारक धर्मके अनुयायी होकर चाहते हो कि कोई पापी भगवानका दर्शन स्मरण भी न कर सके! जैनधर्मपर इतनी तो दया करो, उसका जैनत्व इस दर्जे तक तो नष्ट मत कर दो कि वह अपराधियों और दुःखसन्तप्त आत्माओंको भी अपने पास न फटकने दे।

पं० उदयलालजीने यहाँकी पंचायतको जो उत्तर दिया था उसमें उन्होंने इस आशयकी कुछ बातें लिखी हैं कि "खंडेलवाल जातिके हजारों युवकोंने निर्धनताके कारण विवाह न कर सकनेसे, लश्कर, इन्दौर, बड़नगर, जयपुर आदि स्थानोंमें अपनी जातिकी और गैर जातिकी विधवाओंको यह कहकर रख छोड़ा है कि ये हमारे यहाँ रसोई बनाती हैं और जगत जानता है कि वे सब तरहसे उनकी स्त्रियाँ हैं; परन्तु उनको खण्डेलवाल जाति कोई दण्ड नहीं देती है। खास बम्बईमें ही एक खण्डेलवाल सज्जन एक ब्राह्मणीको रक्खे हुए हैं और उसके सन्तान भी उन्हींकी मौजूद है। ऐसी दशामें मैं ही क्यों दोषी समझा जाता हूँ जो स्पष्ट रूपसे एक विधवाके साथ शादी करना चाहता हूँ?" हमारी समझमें पण्डितजीकी यह दलील निरर्थक है। उन्हें जानना चाहिए कि खंडेलवाल जातिमें और उसके समान और भी अनेक जातियोंमें इस विषयमें बहुत समयसे बहुमत हो गया है—अधिकांश लोगोंकी यह राय बन चुकी है कि चुपचाप गुप्तरूपसे किसी विधवाको रख लेना इतना बड़ा अपराध नहीं है कि वह जातिसे खारिज किया जाय या उसका मन्दिर बन्द कर दिया जाय। यह संभव भी नहीं है। क्योंकि ऐसे लोगोंकी संख्या कम नहीं है। परन्तु विधवाविवाहके सम्बन्धमें अभी तक बहुमत नहीं हुआ है। प्रायः सभी लोग उसे बुरा समझते हैं और छुपकरके वह किया भी नहीं जा सकता है। ऐसी दशामें वह जायज कैसे ठहर सकता है? जिस समय इस तरहके विवाह करनेवाले अनेक हो जायँगे, बहुमत इसके पक्षमें आ जायगा उस समय यह भी जायज हो जायगा।

श्रीयुक्त पं० धन्नालालजीके अनुयायी एक पण्डितजीने, जो न्यायतीर्थ हैं और जैनधर्मके अच्छे ज्ञाता हैं, एक बार पं० उदयलालजीको समझाया था कि "तुम यह विवाह मत करो। यदि तुम्हें अपनी जातिमें कोई लड़की नहीं मिलती है, तो मैं कोशिश करके—स्वयं २–३ महीने घूम फिरकर—किसी दूसरी दिगम्बर जैन जातिकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कन्या तुम्हारे लिए तलाश कर दूँगा।" इस पर उदयलालजीने कहा कि "एक तो यह सर्वथा असंभव जान पड़ता है कि दूसरी जातिका कोई आदमी अपनी कन्या मुझ गैर जातिवालेको दे देगा और यदि यह संभव भी हो, तो यह तो बतलाइए कि इस ब्राह्मण विधवाकी क्या दशा होगी जो मेरे विश्वास पर यहाँ आई है और जिसने मुझे हृदयसे स्वीकार कर लिया है?" इस पर न्यायतीर्थजीने कहा कि "विवाह तो किसी दूसरी कन्याके ही साथ करना चाहिए; इसे चाहे तो तुम दासीके तौर पर अपने पास रक्खे रहना। इसमें कुछ हानि भी नहीं है। उसे विवाहिताके तौर पर रखना ही अपराध है!" इसी तरह खण्डेलवाल जातिके और भी कई सज्जनोंने उनसे स्पष्ट शब्दोंमें कहा था कि तुम "विधवाको दासी या रसोई बनानेवालीके तौर पर रक्खे रहो, तो हम तुमसे कुछ भी न कहेंगे!—इस तरह रखनेका अपने यहाँ रिवाज है। पर यदि शादी करोगे तो उसे हम सहन न करेंगे!" कहनेकी आवश्यकता नहीं कि पं० उदयलालजीने उक्त दोनों ही सम्मतियोंकी अवहेलना की। उन्होंने कहा कि "मैं इस तरह किसी स्त्रीको अपने घरमें डाल रखना पाप समझता हूँ। जब मैं उसे रखना चाहता हूँ तो खुले आम विवाह करके ही रक्खूँगा।"

इन बातोंसे पाठक समझ सकेंगे कि पंचायतियाँ पाप या अपराधकी तर-तमता देखकर किसीको दण्ड नहीं देती हैं—वे केवल एक लकीरको पीटती हैं और जिन बातोंका उनके यहाँ चलन नहीं है—चाहे वे अच्छी हों या बुरी—उनके करनेवालोंपर अपना हाथियार उठाती हैं; और बुरी बातोंको भी अभ्यास पड़जानेके कारण खुशी खुशी चलने देती हैं। इनसे यह आशा करना कि ये सदा धर्मके अनुकूल ही चलेंगी, व्यर्थ है।

हम पं० उदयलालजीके इस विवाहको कोई आदर्श कार्य नहीं समझते हैं। हमने मित्रताके तौर पर उन्हें कई बार समझाया भी था कि आप विद्वान् हैं, आपको चाहिए कि विवाहकी झंझटोंमें न पड़ें और ब्रह्मचारी रहकर देश और समाजकी सेवा करते हुए अपने जीवनको बिता दें। विवाहको आप जितना आवश्यक और आकर्षणीय समझते हैं उतना वह नहीं है। वह केवल अपने लिये जीना है। उससे कहीं अधिक सुख दूसरोंके लिए जीनेमें है। परन्तु उन्होंने अपनेको इतना समर्थ सिद्ध नहीं किया और वे इस विवाहके प्रपंचमें पड़ गये। फिर भी हम इसके कारण उन्हें दोष नहीं दे सकते। इसमें सन्देह नहीं कि वे साधुओं और महापुरुषोंकी श्रेणीमें नहीं बिठाये जा सकते, परंतु साथ ही खण्डेलवाल जातिमें ऐसे हजारों पुरुष हैं जिनसे उनका चरित्र कई गुणा अच्छा है। यह ठीक है कि यदि वे आज स्वार्थत्यागी ब्रह्मचारी होते तो हम लोगोंके लिए आदर्श और पूज्य होते; परन्तु यदि उन्होंने विवाह कर लिया है तो केवल इसी कारण, वे तिरस्करणीय भी नहीं ठहर सकते—कमसे कम उन लोगोंसे तो वे बहुत अच्छे हैं जो चुपचाप पापपङ्कमें लौटा करते हैं और अपने पापोंको छुपानेके लिए अपने बाहरी चरित्रपर धर्मात्मापनकी कलई चढ़ाये रहते हैं। विधवाओंके साथ गुप्त सम्बन्ध रखनेकी अपेक्षा स्पष्ट विवाह कर लेना हजार गुणा अच्छा है और इस सत्यको हजार खण्डेलवाल पंचायतियाँ भी असत्य सिद्ध नहीं कर सकतीं।

पं० उदयलालजीने खण्डेलवाल बिरादरीको क्षुभित करनेके लिए एक साथ दो काम किये हैं। एक तो विधवा-विवाह और वह भी एक अजैन ब्राह्मणकी लड़कीके साथ। यदि अपनी जातिकी विधवाके साथ ही वे विवाह करते तो शायद इतना क्षोभ न होता—कमसे कम कुछ लोग अवश्य उनके अनुमोदक होते। परन्तु एक साथ उन्होंने दो छलाँगें भरी हैं। ऐसी दशामें उनका जातिसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खारिज किया जाना कोई आश्चर्यजनक घटना नहीं समझी जा सकती। सभी जगहकी जैन पंचायतियाँ उनके साथ यही व्यवहार करतीं। इस सम्बन्धमें पुराणों और धर्मशास्त्रोंकी दोहाई देना और यह कहना कि पहले जैनोंमें असवर्ण विवाह होते थे, अथवा विधवा-विवाहका कोई स्पष्ट निषेध जैनशास्त्रोंमें नहीं है—निरर्थक है। क्योंकि जातियाँ सभी काम धर्मशास्त्रोंकी आज्ञानुसार करती हों, ऐसी बात नहीं है। उनके लिए सबसे पहले रिवाज और रूढियाँ मान्य हैं और उनके बाद धर्मशास्त्र। 'शास्त्राद्रूढ़िः बलीयसी' यह प्रवाद बहुत पुराना है। यदि वर्तमान जैन जातियाँ शास्त्रोंके अनुसार ही चलती होतीं तो आज उनका यह पृथक् पृथक् अस्तित्व ही नहीं होता। कमसे कम वैश्य वर्णकी जैन जातियोंमें—जिनकी संख्या सबसे अधिक है—परस्पर रोटी-बेटी व्यवहार अवश्य होता, मामाके लड़कियोंके साथ भानजोंके विवाह प्रचलित होते, पुराणोंमें जो बहुतसे असवर्ण विवाहके उदाहरण मिलते हैं उनके समान बीच बीचमें इन जातियोंमें भी असवर्ण तथा म्लेच्छ विवाह होते और हालके समान चार चार और आठ आठ गोत्र मिलानेके टंटे प्रत्येक जातिमें न होते। ये सब जातियाँ शास्त्रोंका सहारा उसी समय ढूँढ़ती हैं, जब उन्हें कोई नये आचरणको करणीय और अकरणीय ठहराना होता है, अन्यथा वे अपनी रूढ़ियों पर ही चला करती हैं। ऐसी दशामें खण्डेलवाल पंचायतको शास्त्रोंके प्रमाण दिखाकर बुरा भला कहनेसे कोई लाभ नहीं हो सकता। हाँ, उसे और अन्य पंचायतियोंको सिर्फ एक ही बातकी आगाही कर देनी उचित जान पड़ती है कि उनके पास जातिच्युत कर देनेके और (किसी किसी के पास) मन्दिर बन्द कर देनेके जो दो हथियार हैं, वे तभी तक काम दे सकते हैं और उनके बार भी तभी तक कारगर हो सकते हैं जब तक कि उनका प्रयोग बहुत सोच समझ कर यदा कदा ही किया जायगा। यदि इनसे अधिक काम लिया जायगा तो ये स्वयं भौथले हो जायँगे और लोग इनकी परवा करना भी छोड़ देंगे। अधिक प्रयोग न किया जाय, इसके लिए यह आवश्यक है कि जातियोंमेंसे वे सब दोष निकालनेका प्रबन्ध किया जाय, जिनके कारण लोग विधवा-विवाह या वर्णान्तरविवाह करनेके लिए तैयार होते हैं। यह अप्राकृतिक अन्धाधुन्धी अब बहुत समय तक नहीं चल सकती कि इधर तो धनियोंके मारे और एक स्त्रीके मरनेके बाद दूसरी, तीसरी, चौथी बार विवाह करनेवालोंके मारे युवकोंको लड़कियाँ न मिलें—उनके लिए जीवनभर कुँआरे रहनेकी व्यवस्था की जाय और उधर उन्हें असमानजातीय विवाह, वर्णान्तर—विवाह और विधवा-विवाह करनेसे भी रोका जाय। इसी तरह पुरुषोंको तो बुढ़ापे तक चाहे जितने विवाह करनेकी छुट्टी दी जाय और जिनके दूधके भी दाँत नहीं टूटे हैं उन अबोध विधवाओंको जीवनभर ब्रह्मचारिणी रहनेके फरमान जारी रहें! देशमें जो नये विचारोंकी लहरें उठ रही हैं, वे इन असमान व्यवस्थाओंको बहुत समय तक नहीं टिकने देंगी। रूसकी प्रचण्ड जारशाहीके समान ये भी लोकमतकी अनवरत टक्करोंसे चूर चूर हो जायँगी। इसलिए पंचायतियोंको बहुत सोच समझकर अपना आगामी कार्यक्रम बनाना चाहिए। रस्सीको उतना ही खींचना चाहिए जितनेसे वह टूट न जाय। यदि वह असावधानीसे कहीं टूट गई तो फिर उसका जुड़ना मुश्किल हो जायगा।

× × × ×

इस लेखके लिखे जा चुकनेपर मालूम हुआ कि खंडेलवाल पंचायतने पं० अर्जुनलालजी सेठीका जैनविधिसे विवाह करानेके अपराधमें मन्दिर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बन्द दिया, विवाहमें शामिल होनेवालोंमेंसे जिन्होंने यह कह दिया कि हम सहज तमाशा देखनेके लिए गये थे, हमारी कोई सहानुभूति नहीं थी, वे माफ कर दिये गये और जिन लोगोंने ऐसा नहीं कहा अपनी सहानुभूति बतलाई, उनके साथ अपना भोजन व्यवहार तोड़ दिया। ऐसे लोग खंडेलवाल बिरादरीके नहीं किन्तु दूसरी दिगम्बर जैन जातियोंके थे।

× + + ×

खण्डेलवाल भाइयोंकी यह पंचायत दर्शनीय थी। चीखना-चिल्लाना, उछलना-अड़कना, बेसिलसिले बेजरूरत चाहे जिसका बोलना, न सुनना न सुनने देना, एक दूसरे पर टूट पड़ना और यहाँ तक बेकाबू हो जाना कि अश्लील शब्दों तक का बकने लगना, आदि सभी बातें अपूर्व थीं। सभी नेता और सभी समझदार बन रहे थे। धन्य है पण्डित धन्नालालजीके साहसको, जो ऐसे लोगोंके भरोसेकी नींव पर खण्डेलवाल महासभाका महल चिननेका प्रयत्न कर रहे हैं।

आगामी वर्षके लिए सूचनायें।

१-इस अंकके साथ जैनहितैषीका वर्ष समाप्त होता है। आगामी अंकसे नया वर्ष शुरू होगा। एक तो बीचमें लगभग १॥ वर्ष बन्द रहनेके कारण ग्राहकोंकी संख्या पहलेसे कम हो गई और दूसरे वर्षके प्रारंभमें जो कागजके और छपाई आदिके भाव थे, एक ही दो अंकोंके बाद उनसे डेढ़ गुनेसे अधिक भाव हो गये और फिर मूल्य बढ़ाया नहीं जा सका, इस कारण हमें इस वर्ष आशासे अधिक घाटा रहा। यद्यपि अभी पूरा हिसाब तैयार नहीं हुआ है; परन्तु अनुमानसे वह ६००-७०० रुपयेसे कम न होगा। ऐसी दशामें आगामी वर्षके लिए हमें इसका मूल्य बढ़ाकर ३) तीन रुपया करना पड़ता है। आशा है कि हमारी आर्थिक परिस्थितियोंको देखते हुए यह बढ़ाया हुआ मूल्य ग्राहकगण स्वीकार कर लेंगे।

२-डाकखानेके नये नियमके अनुसार अब बिना रजिस्टरीके वी० पी० नहीं हो सकता और इस कारण यदि हम वी० पी० करेंगे तो ग्राहकोंको ३≈) देने पड़ेंगे। अतः ग्राहकोंको, ये व्यर्थके दो आने बचानेके लिए आगामी वर्षका मूल्य ३) तीन रुपया मनीआर्डरसे भेज देना चाहिए। जो महाशय म० आ० से भेजेंगे वे हम पर भी एक उपकार करेंगे, अर्थात् हमें वी० पी० करनेकी झंझटोंसे मुक्त कर देंगे। आशा है कि ग्राहकगण इस अंकको पाते ही आगामी वर्षका पेशगी मूल्य म० आ० से भेज देनेकी कृपा करेंगे।

३-जो महाशय म० आ० से न भेजना चाहें वे एक कार्ड द्वारा सूचना दे देवें, जिससे हम उन्हें पहला अंक वी० पी० से भेजनेकी व्यवस्था कर सकें। जिन महाशयोंकी कोई सूचना न आवेगी, उनके पास दूसरा अंक न भेजा जायगा।

४-जो सज्जन आगामी वर्ष ग्राहक न रहना चाहें, उन्हें भी एक एक कार्ड द्वारा सूचना कर देनेकी कृपा करनी चाहिए।

५-जैनहितैषी कमाईके लिए नहीं निकाला जाता। ऊँचे और निष्पक्ष विचारोंके प्रचारके लिए ही इसमें समय और श्रमका व्यय किया जाता है। अतः जिन पाठकोंको हितैषीके इस मिशनसे सहानुभूति हो, उन्हें इसे अपनी ही चीज समझकर इसके ग्राहक बढ़ानेका प्रयत्न करना चाहिए। पर यह खयाल रहे कि केवल संख्या बढ़ानेके लिए ही ग्राहक न बढ़ाये जायँ, पात्र अपात्रका ध्यान अवश्य रक्खा जाय। इसके लिए किसीपर अनुचित दबाव भी न डाला जाय। ग्राहक बढ़नेसे घाटा कुछ कम हो सकता है पर विचारक तैयार नहीं हो सकते, जिसके लिए यह सब प्रयत्न है।

—प्रकाशक।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीवर्द्धमानाय नमः।

भाग १५ अंक ७

जैनहितैषी

चैत सं० २४४७। अप्रैल सन् १९२१

विषय-सूची।

१. नया सन्देश (सम्पादक) १६२-१६६

२. पण्डितगण और इतिहास (पं० नाथूराम प्रेमी) ... १६६-१६८

३. संकट-निवारण फंडका ट्रस्टडीड (बा० अजित प्रसाद) १६९-१६९

४. नयचक्र और देवसेनसूरि (पं० नाथूराम प्रेमी) ... १७०-१७७

५. महासभाके कानपुरी अधिवेशनका कच्चा चिट्ठा (बा० अजित प्रसाद) १७७-१८५

६. भगवत्कुन्दकुन्द और श्रुतसागर (पं० नाथूराम प्रेमी)... १८५-१८८

७. विविध विषय १८८-१९१

प्रार्थनाएँ।

१ जैनहितैषी किसी स्वार्थबुद्धिसे प्रेरित होकर निजी लाभके लिये नहीं निकाला जाता है। इसके लिये समय, शक्ति और धनका जो व्यय किया जाता है वह केवल निष्पक्ष और ऊँचे विचारोंके प्रचारके लिये; अतः इसकी उन्नतिमें हमारे प्रत्येक पाठकको सहायता देनी चाहिए।

२ जिन महाशयोंको इसका कोई लेख अच्छा मालूम हो उन्हें चाहिए कि उस लेखको वे जितने मित्रोंको पढ़कर सुना सकें, अवश्य सुना दिया करें।

३ यदि कोई लेख अच्छा न मालूम हो अथवा विरुद्ध मालूम हो तो केवल उसीके कारण लेखक व सम्पादकसे द्वेषभाव धारण न करनेके लिये सविनय निवेदन है।

४ लेख भेजनेके लिये सभी सम्प्रदायके लेखकोंको आमंत्रण है।

सम्पादक।

सम्पादक, बाबू जुगुलकिशोर मुख्तार।

श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, काशी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नियमावली।

१ जैनहितैषीका वार्षिक मूल्य ३) तीन रुपया पेशगी है।

२ ग्राहक वर्षके आरम्भसे किये जाते हैं और बीचमें ७वें अंकसे। आधे वर्षका मूल्य १॥)

३ प्रत्येक अंकका मूल्य।) चार आने।

४ लेख, बदलेके पत्र, समालोचनार्थ पुस्तक आदि

"बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तार, सरसावा (सहारनपुर)" के पास भेजना चाहिए। सिर्फ प्रबन्ध और मूल्य आदि सम्बन्धी पत्रव्यवहार इस पतेसे किया जायः—

मैनेजर—

जैन ग्रंथ-रत्नाकर कार्यालय,

हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई।

नये नये ग्रन्थ।

कालिदास और भवभूति।

महाकवि कालिदासके अभिज्ञान शाकुन्तलकी और भवभूतिके उत्तररामचरितकी अपूर्व, अद्भुत और मर्मस्पर्शी समालोचना। मूल लेखक, स्वर्गीय नाटककार द्विजेन्द्रलाल राय। प्रत्येक कवि, साहित्यप्रेमी और संस्कृतज्ञोंको यह ग्रन्थ पढ़ना चाहिए। मूल्य १॥), सजिल्दका २)

साहित्य-मीमांसा।

पूर्वीय और पाश्चात्य साहित्यकी, काव्यों और नाटकोंकी मार्मिक और तुलनात्मक पद्धतिसे की हुई आलोचना। इसमें आर्यसाहित्यकी जो महत्ता, उपकारिता और विशेषता दिखलाई गई है, उसे पढ़कर पाठक फड़क उठेंगे। हिन्दीमें इस विषयका यह सबसे पहला ग्रन्थ है। मूल्य १॥)

अरबी काव्यदर्शन।

अरबी साहित्यका इतिहास, उसकी विशेषतायें और नामी नामी कवियोंकी कविताके नमूने। हिन्दीमें बिलकुल नई चीज। लेखक, पं० महेशप्रसाद साधु, मौलवी आलिम-फाजिल। मू० १।)

सुखदास—जार्ज ईलियटके सुप्रसिद्ध उपन्यास 'साइलस मारनर' का हिन्दी रूपान्तर। इस पुस्तकको हिन्दीके लब्ध प्रतिष्ठ उपन्यास-लेखक श्रीयुत प्रेमचन्दजीने लिखा है। बढ़िया एण्टिक पेपर पर बड़ी ही सुन्दरतासे छपाया गया है। उपन्यास बहुत ही अच्छा और भावपूर्ण है। मूल्य ॥=)

स्वाधीनता—जान स्टुअर्ट मिलकी 'लिबर्टी'का अनुवाद। यह ग्रन्थ बहुत दिनोंसे मिलता नहीं था, इसलिये फिरसे छपाया गया है। 'स्वाधीनता'की इतनी अच्छी तात्विक आलोचना आपको कहीं न मिलेगी। प्रत्येक विचारशीलको यह ग्रन्थ पढ़ना चाहिए। मूल्य २) सजिल्दका २॥)

ज्ञान और कर्म—हिन्दीमें अपूर्व तात्विक ग्रन्थ। कलकत्ता हाईकोर्टके जज स्वर्गीय सर गुरुदास बन्धोपाध्यायके लिखे हुए सुप्रसिद्ध ग्रन्थका अनुवाद। इसमें मनुष्यके इहलोक और परलोक-सम्बन्धी सभी विषयोंकी बड़ी विद्वत्ता-पूर्ण आलोचना की गई है। बहुत बड़ा ग्रन्थ है। मूल्य ३) सजिल्दका ३॥)

जान स्टुअर्ट मिल—स्वाधीनताके मूल लेखकका अतिशय शिक्षाप्रद और पढ़ने योग्य जीवनचरित। अबकी बार यह जुदा छपाया गया है। मूल्य ॥=)

तमाखूसे हानि—पं० हनुमत्प्रसादजी वेधकृत। मू० ।=)

मलावरोध-चिकित्सा— " " मू० ।=)

फिजीमें भारतीय प्रतिज्ञाबद्ध कुलीप्रथा—लेखक, एक भारतीय हृदय। मूल्य १)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः ।

पन्द्रहवाँ भाग । अंक ७

जैनहितैषी ।

अप्रैल १९२१ चैत्र २४४७

न हो पक्षपाती बतावे सुमार्ग, डरे ना किसीसे कहे सत्यवाणी ।
बने है विनोदी भले आशयोंसे, सभी जैनियोंका हितैषी 'हितैषी' ॥

नया संदेश ।

समालोचना करनेवाला जैनी नहीं !

किसी वस्तुके गुण-दोषोंपर विचार करना और उन्हें दिखलाना समालोचना कहलाता है । परीक्षा, मीमांसा और विवेचना भी उसीके नामान्तर हैं । समालोचनाके द्वारा विवेक जागृत होता, हेयोपादेयका ज्ञान बढ़ता और अन्ध श्रद्धाका नाश होता है । इसलिए सद्धर्म-प्रवर्तक और सद्विचारक जन हमेशा परीक्षा-प्रधानताका अभिनन्दन किया करते और उसे महत्त्वकी दृष्टिसे देखा करते हैं । जैनधर्ममें इस परीक्षा-प्रधानताको और भी ज्यादा महत्त्व दिया गया है और किसी भी विषयके त्याग-ग्रहणसे पहले उसकी अच्छी तरहसे जाँच पड़ताल कर लेनेकी प्रेरणा की गई है । गुण दोषोंपर विचार करनेका यह अधिकार भी सभी मनुष्योंको स्वभावसे ही प्राप्त है, चाहे वह मनुष्य छोटा हो या बड़ा और चाहे उच्चासन पर विराजमान हो या नीचे पर । जो मनुष्य किसी वस्तुको निर्माण करके उसे पब्लिकके सामने रखता है, वह अपने उस कृत्यके द्वारा इस बातकी घोषणा करता है कि प्रत्येक मनुष्य उस वस्तुके गुण-दोषोंपर विचार करे । और इसलिए पब्लिकमें रक्खी हुई किसी वस्तुपर यदि कोई मनुष्य अपनी सम्मति प्रकट करता है, उसके गुण-दोषोंको बतलाता है तो उसके इस अधिकारमें बाधा डालनेका किसी-को अधिकार नहीं है । अपनी भूल और अपनी त्रुटि बहुधा अपनेको मालूम नहीं हुआ करती, उसे प्रायः दूसरे लोग ही बतलाया करते हैं । कभी कभी उन भूलों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और त्रुटियोंका अनुभव ऐसे लोगोंको हो जाया करता है जो ज्ञानादिकमें अपने बराबर नहीं होते और बहुत कम दर्जा रखते हैं। और यह सब आत्मशक्तियोंके विकाशका माहात्म्य है—किसीमें कोई शक्ति किसी रूपसे विकसित होती है और किसीमें कोई किसी रूपसे। ऐसा कोई भी नियम नहीं हो सकता कि पूर्वजोंके सभी कृत्य अच्छे हों, उनमें कोई त्रुटि न पाई जाती हो और गुरुओंसे कोई दोष ही न बनता हो। पूर्वजोंके कृत्य बुरे भी होते हैं और गुरुओं तथा आचार्योंसे भी दोष बना करते हैं अथवा त्रुटियाँ और भूलें हुआ करती हैं। यही वजह है कि शास्त्रोंमें अनेक पूर्वजोंके कृत्योंकी निन्दा की गई है और आचार्यों तकके लिए भी प्रायश्चित्तका विधान पाया जाता है। इसलिए चाहे कोई गुरु हो या शिष्य, पूज्य हो या पूजक और प्राचीन हो या अर्वाचीन, सभी अपने अपने कृत्यों द्वारा आलोचनाके विषय हैं और सभीके गुण-दोषोंपर विचार करनेका जनताको अधिकार है। नीतिकारोंने भी साफ़ लिखा है कि—

"शत्रोरपि गुणावाच्या
दोषावाच्या गुरोरपि।

अर्थात्—शत्रुके भी गुण और गुरुके भी दोष कहने—आलोचना किये जानेके योग्य होते हैं। अतः जो लोग अपना हित चाहते हैं, अन्धश्रद्धाके कूपमें गिरनेसे बचनेके इच्छुक हैं और जिन्होंने परीक्षा-प्रधानताके महत्त्वको समझा है उन्हें खूब जाँच पड़तालसे काम लेना चाहिए, किसी भी विषयके त्याग अथवा ग्रहणसे पहले उसकी अच्छी तरहसे आलोचना प्रत्यालोचना कर लेनी चाहिए और केवल 'बाबा वाक्यं प्रमाणं' के आधार पर न रहना चाहिए। यही उन्नतिमूलक शिक्षा हमें जगह जगह पर जैनशास्त्रोंमें दी गई है और ऐसे सारगर्भित उदार उपदेशोंसे जैनधर्म अबतक गौरवशाली बना हुआ है। परन्तु हमारे पाठकोंको आज यह जानकर आश्चर्य होगा कि शोलापुरके सेठ रावजी सखाराम दोशीने जैनसिद्धान्त विद्यालय मोरेनाके वार्षिकोत्सव पर सभापतिकी हैसियतसे भाषण देते हुए, उक्त शिक्षासे प्रतिकूल, जैनसमाजको हालमें एक नया सन्देश सुनाया है; और वह संक्षेपमें यह है कि जो विद्वान् लोग जैनग्रन्थोंकी समालोचना करते हैं—उनके गुण-दोषोंको प्रकट करते हैं—वे जैनी नहीं हैं! इस सम्बन्धमें आपके कुछ खास वाक्य इस प्रकार हैं:-

"अब थोड़े दिनोंसे कुछ पढ़े-लिखे लोगोंमें एक तरहका भ्रम होकर वे परम पूज्य आचार्योंके ग्रन्थोंकी समालोचना कर रहे हैं। जो जैनी हैं वे आचार्योंकी समालोचना करते हैं, यह वाक्य कहनेमें विपरीतता दिखाई देती है। आचार्योंकी समालोचना करनेवाला जैनी कैसे कहला सकता है?"

समझमें नहीं आता कि जैनी होने और आचार्योंकी समालोचना करनेमें परस्पर क्या विपरीतता है। क्या सेठ साहबका इससे यह अभिप्राय है कि, जो स्वयं आचार्य नहीं वह आचार्यके गुण-दोषोंका विचार नहीं कर सकता अथवा उसे वैसा करनेका अधिकार नहीं? यदि ऐसा है तो सेठ साहबको यह भी कहना होगा कि जो आप्त नहीं है, अनीश्वर है उसे आप्त भगवान्की, ईश्वर-परमात्माकी मीमांसा और परीक्षा करनेका भी कोई अधिकार नहीं है, न वह कर सकता है। और तब आपको स्वामी समन्तभद्र और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विद्यानन्दादि जैसे महान् आचार्योंको भी कलङ्कित करना होगा और उन्हें अजैन ठहराना पड़ेगा; क्योंकि स्वयं आप्त, ईश्वर या परमात्माके पदपर प्रतिष्ठित न होते हुए भी उन्होंने आप्त-परमात्माकी मीमांसा और परीक्षातक कर डालनेका साहस किया है। स्वामी समन्तभद्रने तो भगवान् महावीर स्वामीकी भी परीक्षा कर डाली है और यहाँतक लिखा है कि देवोंका आगमन, आकाशमें गमन और छत्र चँवरादि विभूतियोंकी वजहसे मैं आपको महान्-पूज्य नहीं मानता, ये बातें तो मायावियों—इन्द्रजालियोंमें भी पाई जाती हैं*। क्या सेठ साहब स्वामी समन्तभद्र जैसे महान् आचार्योंपर इस प्रकारका दोष लगाने और उन्हें अजैन ठहरानेके लिये तय्यार हैं? यदि नहीं तो आपको यह मानना होगा कि नीचे दर्जेवाला भी ऊँचे दर्जेवालेकी परीक्षा और उसके गुण-दोषोंकी जाँच, अपनी शक्तिके अनुसार, कर सकता है। और इसलिए श्रावकोंका मुनियों तथा आचार्योंके कुछ कृत्योंकी समालोचना करना, उनके गुणदोष जतलाना, अधिकारकी दृष्टिसे कोई अनुचित कार्य नहीं है। इसके सिवा हम सेठसाहबसे पूछते हैं कि क्या साधु सम्प्रदायमें कपट-वेषधारी, द्रव्यलिंगी, शिथिलाचारी अल्पज्ञानी, और अनेक प्रकारके दोषोंको लगानेवाले साधु तथा आचार्य नहीं हुए हैं?† क्या आचार्योंमें मठाधिपति (गद्दीनशीन) भट्टारक लोग शामिल नहीं हैं? क्या ऐसे आचार्योंके बनवाये हुए सैकड़ों ग्रन्थ जैनसमाजमें प्रचलित नहीं हैं? क्या इन ग्रन्थोंमें श्रमणाभास भट्टारकोंने अपनेको परम आचार्य और मुनीन्द्रतक नहीं लिखा? क्या बहुतसे ग्रन्थोंमें अज्ञान, कषाय और भूल आदिके कारण पीछेसे कुछ मिलावट नहीं हुई? क्या जिनसेन त्रिवर्णाचार और कुन्दकुन्दश्रावकाचार जैसे कुछ ग्रन्थ बड़े आचार्योंके नामसे जाली बने हुए नहीं? और क्या अनेक विषयोंमें अज्ञानादि किसी भी कारणसे, बहुतसे आचार्योंमें परस्पर मतभेद नहीं रहा है? यदि यह सब कुछ हुआ है तो फिर सत्यकी जाँचके लिए ग्रन्थकी परीक्षा, मीमांसा और समालोचना आदिके सिवा दूसरा और कौनसा अच्छा साधन है जिससे यथेष्ट लाभ उठाया जा सके? शायद इसी स्थितिका अनुभव करके किसी कविने यह वाक्य कहा है—

जिनमत महल मनोज्ञ अति
कलियुग छादित पन्थ।
समझ बूझके परखियो।
चर्चा निर्णय ग्रन्थ॥

इस वाक्यमें साफ़ तौरसे हमें जैन ग्रन्थोंकी अच्छी तरहसे परीक्षा और समालोचना करके उनके विषयको ग्रहण करनेकी सलाह दी गई है और उसका कारण यह बतलाया गया है कि जैनधर्मका वास्तविक मार्ग आजकल आच्छादित हो रहा है—कलियुगने उसमें तरह तरहके काँटे और झाड़ खड़े कर दिये हैं जिनको साफ करते चलनेकी जरूरत है। पं० आशाधरजीने 'अनगारधर्मामृत' की टीकामें किसी विद्वान्का जो निम्नलिखित वाक्य उद्धृत किया है वह भी ध्यानमें रखे जानेके योग्य है—

पण्डितैर्भ्रष्टचारित्रैर्बठरैश्च तपोधनैः।
शासनं जिनचन्द्रस्य निर्मलं मालिनी कृतम्॥

इस बातमें सखेद यह बतलाया गया है कि जिनेन्द्र भगवान्के निर्मल शासन-

---

* देवागमनभोयान चामरादि विभूतयः। मायाविष्वपि दृश्यंते नातस्त्वमसि नो महान्॥—आप्तमीमांसा।

† ऐसे ही साधुओंको लक्ष्य करके 'सज्जनचित्तवल्लभ' आदि ग्रन्थोंमें उनकी कड़ी आलोचना की गई है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को भ्रष्टचारित्र पण्डितों और धूर्त मुनियों-ने मलीन कर दिया है। और इससे भी यही ध्वनित होता है कि हमें जैनग्रन्थोंके विषयको बड़ी सावधानीके साथ, खूब परीक्षा और समालोचनाके बाद, ग्रहण करना चाहिए; क्योंकि उक्त महात्माओं-की कृपासे जैनशासनका निर्मल रूप बहुत कुछ मैला हो रहा है। ऐसी हालतमें मालूम नहीं होता कि सेठसाहब ग्रन्थोंकी परीक्षाओं और समालोचनाओंसे क्यों इतना घबराते हैं और क्यों उसका दर्वाजा बन्द करनेकी फिकरमें हैं। क्या आप जिनसेन त्रिवर्णाचारके कर्ता जैसे आचार्यों-को 'परमपूज्य' आचार्य समझते हैं और ऐसे ही आचार्योंकी मानरक्षाके लिए आपका यह सब प्रयत्न है? यदि ऐसा है तो हमें कहना होगा कि आप बड़ी भारी भूलमें हैं। अब वह जमाना नहीं रहा और न लोग इतने मूर्ख हैं जो ऐसे जाली ग्रन्थोंको भी माननेके लिए तैयार हो जायँ। सहृदय विद्वत्समाजमें अब ऐसे ग्रन्थलेखक कोई आदर नहीं पा सकते और न स्वामी समन्तभद्र जैसे महा-प्रतिभाशाली और अपूर्व मौलिक ग्रन्थोंके निर्माणकर्ता आचार्योंका आदर तथा गौरव कभी कम हो सकता है। इसलिए समालोचनाओंसे घबरानेकी ज़रूरत नहीं। ज़रूरत है समालोचनामें कही हुई किसी अन्यथा बातको प्रेमके साथ सम-झानेकी, जिससे उसका स्पष्टीकरण हो सके। समालोचनाओंसे दोषोंका संशो-धन और भ्रमोंका पृथक्करण हुआ करता है और उससे यथार्थ वस्तुस्थितिको समझकर श्रद्धानके निर्मल बनानेमें भी बहुत बड़ी सहायता मिलती है। इसलिए सत्यके उपासकों द्वारा सद्भावसे लिखी हुई समालोचनाएँ सदा ही अभिनन्दनीय होती हैं। जो लोग ऐसी समालोचनाओं-से घबराते हैं उनकी जैनधर्मविषयक श्रद्धा, हमारी रायमें बहुत ही कमज़ोर है और उनकी दशा उस मनुष्य जैसी है जिसे अपने हाथमें प्राप्त हुए सुवर्णपर उसके शुद्ध सुवर्ण होनेका विश्वास नहीं होता और इसलिए वह उसे तपाने आदिकी परीक्षामें देते हुए घबराता है और यही कहता है कि तपानेकी क्या ज़रूरत है, तपानेसे सोनेका अपमान होता है! और उसको आगमें डालनेवाला सोनेका प्रेमी कैसे कहला सकता है! जो लोग शुद्ध सुवर्णके परीक्षक नहीं होते और अपने खोट मिले हुए सुवर्णको ही शुद्ध सुवर्ण-की दृष्टिसे देखते हैं और उसीसे प्रेम रखते हैं, उनके सुवर्णमें कभी किसी परी-क्षक द्वारा खोट निकाले जानेपर उनकी प्रायः ऐसी ही दशा हुआ करती है। ठीक यही दशा इस समय हमारे सेठसाहबकी जान पड़ती है। उन्हें अपने सुवर्ण (श्रद्धा-स्पद साहित्य) के खोट मिश्रित करार दिये जानेका भय है और उसके संशोधन करानेमें सुवर्णका वज़न कम हो जानेका डर है। इसी लिए आप ऐसे ऐसे नवीन संदेश सुनाकर—समालोचकोंको अजैनी करार देकर—परीक्षाका दर्वाज़ा बन्द कराना चाहते हैं और शायद फिरसे अन्धश्रद्धाका साम्राज्य स्थापित करनेकी फिकरमें हैं!

आपने अपने सन्देशमें एक बात यह भी कही है कि हमें किसी सभाके सभा-पति, किसी पत्रके सम्पादक और किसी स्थानके पण्डितकी बातोंपर ध्यान नहीं देना चाहिए और न उन्हें प्रमाण मानना चाहिए; बल्कि 'गुरूणां अनुगमनं' के सिद्धान्तपर चलना चाहिए। अर्थात्, हमारे गुरुओंने, पूर्वाचार्योंने जो उपदेश दिया है उसीके अनुसार हमें चलना चाहिए। यह सामान्य सिद्धान्त कहने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुननेमें जितना सुगम और रुचिकर मालूम होता है, अनुष्ठानमें उतना सुगम और रुचिकर नहीं है। बहुतसे गुरुओंके वचनोंमें परस्पर भेद पाया जाता है—हर एक विषयमें सब आचार्योंकी एक राय नहीं है। जब पूर्वाचार्योंके परस्पर विभिन्न शासन और मत सामने आते हैं तब अच्छे अच्छे आज्ञाप्रधानियोंकी बुद्धि चकरा जाती है और वे 'किं कर्तव्य विमूढ़' हो जाते हैं। उस समय परीक्षा-प्रधानता और अपने घरकी अकलसे काम लेनेसे ही काम चल सकता है। अथवा यों कहिये कि ऐसे परीक्षाप्रधानी और खोजी विद्वानोंकी बातोंपर ध्यान देनेसे ही कुछ नतीजा निकल सकता है, केवल 'गुरूणां अनुगमनं' के सिद्धान्तपर बैठे रहनेसे नहीं। हम सेठ साहबसे पूछते हैं कि; (१) एक आचार्य सीताको रावणकी पुत्री और दूसरे जनककी पुत्री बतलाते हैं, (२) जम्बू स्वामीका समाधि-स्थान एक मथुरामें, दूसरे विपुलाचल पर्वतपर और तीसरे कोटिकपुरमें ठहराते हैं;(३) भद्रबाहुके समाधि-स्थानको एक श्रवण वेलगोलके चन्द्रगिरि पर्वतपर और दूसरे उज्जयिनीमें बतलाते हैं;(४) श्रावकोंके अष्ट मूल गुणोंके निरूपण करनेमें एक आचार्य कुछ कहते हैं, दूसरे कुछ और तीसरे चौथे कुछ और ही; (५) कुछ आचार्य छठी प्रतिमाको 'दिवामैथुन त्याग' बतलाते हैं और कुछ 'रात्रिभोजन विरति';(६) कोई गुरु रात्रि-भोजनविरति-को छठा अणुव्रत करार देते हैं और कोई नहीं;(७) गुणव्रत और शिक्षाव्रतके कथनमें भी आचार्योंमें परस्पर मतभेद है*; (८) कितने ही आचार्य ब्रह्माणुव्रतीके लिए वेश्याका निषेध करते हैं और कुछ सोमदेव जैसे आचार्य उसका विधान करते हैं*। इसी तरहके और भी सैकड़ों मत-भेद हैं; इनमेंसे प्रत्येक विषयमें कौनसे गुरुकी बात मानी जाय और कौनसे की नहीं ? जिसकी बात न मानी जाय उसकी आज्ञा भङ्ग करनेका दोष लगेगा या नहीं ? और तब क्या उक्त 'गुरूणांमनुगमनं' के सिद्धान्तमें बाधा नहीं आवेगी ? क्या आप उस गुरुको गुरुत्वसे ही च्युत कर देंगे ? परीक्षा, जाँच-पड़ताल और युक्तिवादको छोड़कर, आपके पास ऐसी कौनसी गारंटी है जिससे एक गुरुकी बात मानी जाय और दूसरेकी नहीं ? कृपाकर यह तो बतलाइये कि जितने आचार्यों, भट्टारकों आदि गुरुओंके वचन (शास्त्र) समाजमें इस समय प्रचलित हैं, अथवा सुने जाते हैं उनमेंसे आपको कौन कौनसे गुरुओंके वचन मान्य हैं, जिससे आपके 'गुरूणां अनुगमनं' सिद्धान्तका कुछ फलितार्थ तो निकले—लोगोंको यह तो मालूम हो जाय कि आप अमुक अमुक गुरुओं, ग्रन्थकारोंकी सभी बातोंको आँख बन्द कर मान लेनेका परामर्श दे रहे हैं। साथ ही यह भी बतलाइये कि यदि उनके कथनोंमें भी परस्पर विरोध पाया जाय तो फिर आप उनमेंसे कौनसेको गुरुत्वसे च्युत करेंगे और क्योंकर। केवल एक सामान्य वाक्य कह देनेसे कोई नतीजा नहीं निकल सकता। भले ही साक्षात् गुरुओंके सम्बन्धमें आपके इस सिद्धान्त वाक्यका कुछ अच्छा उपयोग हो सके, परन्तु परम्परा गुरुओं और विभिन्न मतोंके धारक बहुगुरुओंके सम्बन्धमें वह बिलकुल निरापद मालूम

* देखो हमारे शासनभेद सम्बन्धी लेख, जैनहितैषी भाग १४ अंक १,२-३, ७-८-९।

* वधूवित्तस्त्रियौ मुक्त्वा सर्वत्रान्यत्रतज्जने। मातास्वसातनूजेति मतिर्ब्रह्म गृहाश्रमे॥ (यशस्तिलक)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं होता और न सर्वथा उसीके आधार पर रहा जा सकता है—ख़ासकर इस कलिकालमें जब कि भ्रष्टचरित्र पण्डितों और धूर्त मुनियोंके द्वारा जैनशासन बहुत कुछ मैला (मलिन) किया जा चुका है।

आजकल हिन्दू साधुओंमें कितना अत्याचार बढ़ा हुआ है और वे अपने साधुधर्मसे कितने पतित हो रहे हैं! उनकी चरित्रशुद्धि और उत्थानके लिए अथवा दूसरोंको सन्मार्ग दिखलानेके लिए, क्या किसी गृहस्थको यह समझकर उनके दोषोंकी आलोचना नहीं करनी चाहिए कि वे साधु हैं और हम गृहस्थ, हमें गुरुजनोंकी समालोचना करनेका अधिकार नहीं? और क्या ऐसी समालोचना करनेवाला हिन्दू नहीं रहेगा? यदि सेठ साहब ऐसा कुछ नहीं मानते, बल्कि देश, धर्म और समाजकी उन्नतिके लिए वैसी समालोचनाओंका होना आवश्यक समझते हैं तो उन्हें जैन-समालोचकोंको भी उसी दृष्टिसे देखना चाहिए। कोई वजह नहीं है कि क्यों त्रुटिपूर्ण साधुओं और त्रुटिपूर्ण ग्रन्थोंकी, सम्यक् आलोचना द्वारा, त्रुटियाँ दिखलाकर जनताको उनसे सावधान न किया जाय और क्यों इस तरहपर उन्नतिके मार्गको अधिकाधिक प्रशस्त बनानेका यत्न न किया जाय।

आशा है, वस्तुस्थितिका दिग्दर्शन करानेवाले हमारे इस नोटपर सेठ साहब शान्तिके साथ विचार करेंगे और बन सकेगा तो, संयत* भाषामें, योग्य उत्तरसे भी कृतार्थ करनेकी कृपा करेंगे।

सरसावा। वैशाख कृष्ण ६ सं १९७८।

---

* ऐसे लेखोंपर यहाँ प्रायः कोई विचार नहीं किया जाता जो असंयत, असभ्य अथवा द्वेषपूर्ण भाषामें लिखे हों।—सम्पादक।

पण्डितगण और इतिहास।

[लेखक—पण्डित नाथूरामजी प्रेमी]

इधर कुछ पण्डित महाशयोंकी कृपादृष्टि हम लोगोंके पीछे खुफिया पुलिसके समान रहने लगी है। हम लोगोंकी प्रत्येक हरकतपर और प्रत्येक बातपर उन्हें सन्देह होने लगा है। दुर्भाग्यसे हम लोगोंका नाम 'बाबू-दल' के रजिस्टरमें लिख लिया गया है और पण्डितशाही इस दलको उसी भयभीत दृष्टिसे देखती है जिससे 'नौकरशाही' असहयोगवादियोंको देखती है। उसे भय हो गया है कि हम लोगोंकी प्रत्येक बात और प्रत्येक चर्चा जैनधर्मको मिट्टीमें मिला देनेवाली है, इसलिए वह हमसे सदा सावधान रहना चाहती है। इस निर्मूल भयने उसकी मतिको गुसाईं तुलसीदासजीके शब्दोंमें 'कीट-भृंगकी नाईं' बना दिया है। यही कारण है जो उसे हम लोगोंके इतिहास-सम्बन्धी लेखोंमें भी उक्त भय मुँह फाड़े हुए नज़र आने लगा है। हमें उसकी इस अवस्थापर बड़ी दया आती है; परन्तु ऐसा कोई उपाय नहीं सूझता जिससे वह इस भयसे मुक्त हो जाय।

पण्डित महाशयोंको यह हम कैसे समझावें कि इतिहास बहुत ही कठोर और निर्मम सत्यका उपासक है। वह न वेदशास्त्रोंका लिहाज करता है और न परम्परासे चले आये हुए विश्वासोंका। वह उसी ओरको अपना मस्तक झुकाता है जिस ओर 'सत्यदेव' अपने निर्विकाररूपमें विराजमान दिखलाई देते हैं। यह बात भी उनके गलेमें कैसे उतारी जाय कि इतिहासके लेखक या खोज करनेवाले सर्वज्ञ नहीं होते और इसलिए उनसे भूलें होना कुछ अस्वाभाविक बात नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। उनके अनुमानोंके सत्य होनेकी जितनी सम्भावना होती है, असत्य और निर्मूल होनेकी भी उससे कम नहीं होती। बुद्धिकी कमी और गहरा अध्ययन न होनेके कारण उनके प्रमाण भी कभी कभी अप्रमाण ठहर जाते हैं। परन्तु यह सब कुछ होनेपर भी इतिहास-लेखकोंपर यह अपराध नहीं लगाया जा सकता कि उनकी दयानत—उनका अभिप्राय अच्छा नहीं है। जो उनसे अधिक अध्ययनशील और विद्वान् होते हैं, वे उनकी भूलें बतलाते हैं और वे उन्हें सादर स्वीकार कर लेते हैं। भूलें होती हैं, इस कारण किसीको इतिहासकी चर्चा ही न करनी चाहिए, ऐसा नादिरशाही हुक्म निकाला भी जाय तो उसका अर्थ यही होगा कि हमें इतिहासकी कोई आवश्यकता ही नहीं है।

परिडतजनोंको यह समझा देना भी हमारी शक्तिसे परे है कि परम्परासे चले आये हुए सभी विश्वास, सभी किंवदन्तियाँ और कथा-कहानियाँ इतिहास नहीं हैं। इनके भीतर इतिहासका अंश हो सकता है; परन्तु वे सर्वांशमें सत्य नहीं मानी जा सकतीं। और जबतक वे यह नहीं समझ लेते हैं, तबतक उनका भय दूर हो भी कैसे सकता है?

दुर्भाग्यसे जैनधर्म और जैनसाहित्यका इतिहास अभीतक बहुत ही अन्धकारमें पड़ा हुआ है। ज्ञानके इस बड़े भारी आवश्यक साधनको खड़ा करनेके लिए अभीतक जो कुछ प्रयत्न हुए हैं वे प्रायः न होनेके ही बराबर हैं। उचित तो यह था कि ये परिडत लोग—जिन्हें जैन-समाजने बड़ी बड़ी आशायें बाँधकर तैयार किया है—इस साधनके तैयार करनेमें सबसे अधिक हाथ बँटाते और अपने परिश्रम तथा अध्ययनशीलताके द्वारा इस अन्धकारपूर्ण मार्गको प्रकाशित करते। सो न करके उलटे ये परिडत उन लोगोंके मार्गमें रोड़े अटकाते हैं जो अपनी थोड़ीसी शक्ति और योग्यताके बलपर जो कुछ बन सकता है, शुद्ध भावनाओंसे किया करते हैं। अपनी उक्त 'कीट-भृङ्गकी नाई' मतिके कारण इन्हें इतिहासके इस शुद्ध और सरल मार्गमें भी वही 'भयका भूत' दिखलाई देता है और ये बीच बीचमें चीख उठते हैं कि "देखो ये बड़े चालाक हैं, तुम्हारी आँखोंमें धूल झोंक देंगे, ये श्वेताम्बरोंसे विशेष प्रेम रखते हैं, इनकी बातोंपर विश्वास मत करो।" इत्यादि।

परिडतोंके इस भयको दूर करनेका केवल एक ही उपाय हो सकता है और वह यह कि हम लोग इस कामको करना छोड़ दें और इनके धर्ममार्गको निष्कण्टक बना दें। परन्तु दुःख तो यह है कि अभीतक ये बेचारे इतिहासका 'श्रीगणेश' भी नहीं जानते हैं और इतिहासकी एक पंक्ति और एक वाक्यके लिखनेके लिए कितना परिश्रम और कितनी ढूँढ़-खोज करनी पड़ती है, उसकी इन्हें कल्पना भी नहीं है। गत बीस वर्षोंमें दिगम्बर जैन-साहित्यके इतिहासके सम्बन्धमें जो कुछ थोड़ा बहुत काम हुआ है, उसमें इनका शायद ही कहीं कोई हाथ हो। और आगे भी हमें यह आशा नहीं है कि इतिहासके मार्गमें धींगाधींगी करनेके सिवा इनके द्वारा कोई वास्तविक काम होगा।

अभी अभी गन्धहस्तिमहाभाष्य, सिद्धसेन दिवाकर, सूक्तमुक्तावली और नयचक्र आदिके सम्बन्धमें कुछ परिडत महाशयोंके द्वारा जिस ढंग और जिस शैलीसे लिखे हुए उत्तर लेख प्रकाशित हुए हैं, उन्हें पढ़कर निष्पक्ष पाठक यह अच्छी तरह जान लेंगे कि उनमें इतिहास-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चर्चा करनेकी कितनी योग्यता है और हम लोगोंके इतिहाससम्बन्धी प्रयत्नोंकी ओर वे कैसी भीत और सशंक दृष्टिसे देखते हैं।

जो लोग इतिहास और पुरातत्व सम्बन्धी पत्रोंको पढ़ते हैं, वे जानते हैं कि एक इतिहासज्ञकी भूलको दूसरा इतिहासज्ञ कैसी सभ्यता, शिष्टता और भाषा-समितिकी रक्षा करता हुआ प्रकट करता है; और फिर उसका विरोध करनेवाला अपना दूसरा मत कैसी अच्छी शैलीसे स्थापित करता है। उसमें न कटाक्षोंका काम पड़ता है और न कटूक्तियोंका, और इस तरह इतिहासके बड़ेसे बड़े गूढ़ प्रश्न हल हो जाते हैं। परन्तु यहाँ तो यह हाल है कि हम लोगोंने कोई नई बात लिखी और पण्डित महाशयोंको उसमें हमारी दुरभिसन्धिकी—चालाकीकी—बू आई!

उक्त विषय, जिन पर पण्डित महाशयोंके विरोधी लेख निकले हैं, इतने महत्वके और मनोरंजक हैं कि उनपर बड़े अच्छे ढंगसे बरसों चर्चा चल सकती थी। उनमें कटूक्तियों और व्यक्तिगत आक्षेपोंके लिए तो कोई स्थान ही नहीं था। जो बातें हम लोगोंने लिखी हैं, वे यदि भ्रमयुक्त हैं तो उनके विरुद्ध प्रमाणोंके पाते ही हम उन्हें मान लेते; और यदि हम दुराग्रहसे या हठसे न मानते, तो कमसे कम जो विचारशील हैं उन्हें तो मानना ही पड़ता। सो न करके पण्डित महाशयोंने प्रतिपाद्य विषयोंकी अपेक्षा स्वयं हम लोगोंपर ही विशेष कृपा की है और इस तरह इतिहास जैसे आनन्दप्रद विषयको अतिशय कटुक्लेश कर बना दिया है। पण्डित वंशीधरजी शास्त्रीने तो बाबू जुगलकिशोरजी पर यहाँतक इलज़ाम लगाया है कि वे गन्धहस्तिमहाभाष्यके अस्तित्वका लोप इस कारण कर रहे हैं कि "कहीं ऐसा न हो कि अधिक प्राचीन एक महाग्रन्थ उपलब्ध हो जाय और उससे उपलब्ध आगमोंकी जड़ और भी पक्की हो जाय। नास्तिकोंका जो डर है उसका एक मात्र यही कारण है और इसलिये उक्त ग्रन्थराजकी खोजमें लगनेसे लोगोंको विमुख करनेका प्रयत्न किया जा रहा है।" धन्य है इस पाण्डित्यको और धन्य है उस मस्तिष्कको जिसमेंसे ऐसे पवित्र विचार निकलते हैं!

उक्त उत्तर-लेखोंको पढ़कर यह इच्छा नहीं होती कि उनके प्रतिवादमें कुछ लिखा जाय। लिखनेमें हम लोग पेश भी नहीं पा सकते। परन्तु फिर भी यह आवश्यक प्रतीत होता है कि कमसे कम उन बातोंका प्रत्युत्तर अवश्य दे दिया जाय, जो केवल इतिहाससे सम्बन्ध रखती हैं और जिनके कारण लोग भ्रममें पड़ सकते हैं।

इस अङ्कमें मैंने 'नयचक्र' सम्बन्धी लेखका उत्तर दे दिया है। अन्यान्य लेखोंका उत्तर भी यथावकाश देनेका प्रयत्न किया जायगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संकटनिवारण फंडका ट्रस्टडीड।

[सेठी अर्जुनलालजीके नज़रबन्द किये जानेके समय ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीकी प्रेरणासे उक्त नामका जो फण्ड खोला गया था, उसका कुछ रुपया बाबू अजितप्रसाद साहब वकील हाईकोर्ट लखनऊके पास जमा हुआ था, जिसका वे हिसाब प्रकाशित करते रहे हैं। हालमें बाबू साहबने, अपने सिरका बोझा हलका करनेके लिए, उक्त फण्डकी रक़मपर सूद लगाकर उसे 'ट्रेडिंग ऐण्ड बैंकिंग हाउस लखनऊ' में तीन व्यक्तियोंके नामसे सूदपर जमा करा दिया है और साथ ही, उसका एक ट्रस्ट डीड लिखकर उसकी रजिस्टरी भी करा दी है। ट्रस्ट डीड (Trust deed) की एक नक़ल बाबू साहबने जैनहितैषीमें प्रकाशित करनेके लिए हमारे पास भेजी है जिसे हम अपने पाठकोंके अवलोकनार्थ नीचे प्रकट करते हैं—सम्पादक।]

सर्वसाधारण जनता और विशेष करके जैन जनताको विदित हो कि श्रीमान् जैनधर्मभूषण ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीके उपदेशसे जैन जनतामें परिडत अर्जुनलाल सेठी बी० ए० को सन् १६१४ में नज़रबन्द किये जानेपर एक कोष सङ्कट निवारण फण्डके नामसे स्थापित किया था। कुछ रुपया उस फण्डका मेरे पास आता रहा और जमाख़र्च होता रहा, जिसका हिसाब मैं जैन गज़ट और जैनमित्र समाचारपत्रोंमें प्रकाशित करता रहा। मई १६२० में मेरे पास १२०४-६-३ थे (जैनमित्र मिती आषाढ़ सुदी १५ से २४४६)। एक सालके क़रीब हो चुका, किन्तु जैन जनताने इस विषयमें अभी तक कुछ निर्णय नहीं किया। अतः इस भारसे हलके होनेके हेतुमें इस विश्वासपत्र (Deed of Trust) द्वारा, एक विश्वास कोष (Trust) स्थापित करता हूँ, कि ऊपरकी रक़ममें एक सालका ब्याज दर ॥) सैंकड़ा जोड़कर १२७६-६-३ एक हज़ार, दो सौ छिहत्तर रुपये, नौ आने, तीन पाई, (जिसको मैंने 'ट्रेडिंग ऐण्ड बैंकिंग हाउस' लखनऊमें ब्याजपर जमा कर दिया है)* जैन जनताके उपकारार्थ जमा रहेगी। चाहे इस ही बैंकमें चाहे कहीं और-और इसके ब्याज अथवा यदि आवश्यकता हो, तो मूलसे, जैन जनताका यथोचित उपकार होता रहेगा।

इस कोषके प्रबन्धक (Trustees) श्रीमान् जैनधर्म-भूषण ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी, परिडत नाथूराम प्रेमी बम्बई, परिडत जुगुलकिशोरजी सरसावा, ज़िला सहारनपुर, श्रीयुत ज्योतीप्रसाद, सम्पादक जैनप्रदीप, देवबन्द और मैं अजितप्रसाद रहेंगे। प्रबन्धक बहुसम्मतिसे इस कोषके उपयोगार्थ नियम बनावें। मैं इस विश्वासपत्रको यथाशक्ति बदल (Modify) वा खरिडत (Cancel) कर सकूँगा। और मेरे देहान्तपर अन्य प्रबन्धक ऐसा ही बहुसम्मतिसे कर सकेंगे।

अजितप्रसाद
(Sd) Ajit Prasad
वकील हाईकोर्ट, लखनऊ।

(Sd) Witness
Gokul Chand Rai
Vakil
22-3-2

Witness
(Sd) Jaswant Rai
Shama
22-3-2

Registerd as No. 199 in Book Iv Vol. 293. pp. 97 &98 on 30.3.21.

---

* इस रुपएकी रसीद नं० २५० है जो श्रीमान् ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद, अजितप्रसाद और परिडत जुगलकिशोरके नाम है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitised by Sarayu Trust/eGangotri

नयचक्र और देवसेनसूरि।

(ले०—श्रीयुत् पं० नाथूरामजी प्रेमी।)

माणिकचन्द्र ग्रन्थमालाके १६ वें ग्रन्थ 'नयचक्र संग्रह' के भूमिका-स्वरूप मैंने एक लेख लिखा था। उसमें मैंने यह सिद्ध किया था कि श्लोकवार्तिकमें विद्यानन्दस्वामीने जिस नयचक्रका उल्लेख किया है, वह नयचक्र देवसेनसूरिके इस नयचक्रसे कोई जुदा ग्रन्थ होना चाहिए। क्योंकि विद्यानन्दस्वामी देवसेनसूरिसे पहले हुए हैं, अतएव वे देवसेनके नयचक्रका उल्लेख नहीं कर सकते। श्वेताम्बर सम्प्रदायके मल्लवादि आचार्यका बनाया हुआ भी एक 'नयचक्र' नामका ग्रन्थ है। वह श्लोकवार्तिकसे पहलेका बना हुआ है। सम्भव है कि विद्यानन्दस्वामीने उसीका उल्लेख किया हो। अथवा "यह भी सम्भव है कि देवसेनके अतिरिक्त अन्य किसी दिगम्बराचार्य्यका भी कोई नयचक्र हो और विद्यानन्द स्वामीने उसीका उल्लेख किया हो।" इन वाक्योंसे विचारशील पाठक समझ सकते हैं कि मुझे यह सिद्ध करनेका जरा भी आग्रह नहीं है कि मैं उस नयचक्रको श्वेताम्बराचार्यकृत ही सिद्ध करूँ। मुझे एक बात मालूम थी कि मल्लवादिका भी एक नयचक्र है, अतएव उसका उल्लेख कर दिया था कि शायद उससे इस प्रश्नके हल करनेमें कुछ सहायता मिल जाय कि श्लोकवार्तिकोल्लिखित नयचक्र दरअसल कौनसा ग्रन्थ है। परन्तु हमारे पण्डित महाशयोंको यह बात कैसे सहन हो सकती थी कि मैं एक श्वेताम्बराचार्यके ग्रन्थका उल्लेख कर जाऊँ और वे उसका प्रतिवाद न करें। बस, मुझपर सदय-हृदय होकर कई धुरन्धर पण्डितोंने एक साथ आक्रमण कर दिया है। इस आक्रमणमें मेरे लिए जो इस तरहके कृपा-वाक्य लिखे हैं कि—'प्रेमीजीने जनताकी आँखोंमें धूल झोंकनेका प्रयास किया है।' 'प्रेमीजीको श्वेताम्बरोंसे अधिक प्रेम है।' उनका तो मैं क्या उत्तर दूँ। मेरे लेखोंके पढ़नेवाले विचारशील पाठक स्वयं इनका उत्तर दे लेंगे। परन्तु कुछ बातें ऐसी हैं कि इनका उत्तर दे देना आवश्यक प्रतीत होता है।

१—पं० पन्नालालजी सोनीका कथन है कि देवसेनसूरिने अपना 'दर्शनसार' वि० संवत् ६०६ में बनाया है, ६६० में नहीं। परन्तु वास्तवमें यह उनकी भूल है। दर्शनसारमें माथुरसंघकी उत्पत्तिका समय वि० सं० ६५३ लिखा है (गाथा ४०)। यदि दर्शनसार ६०६ में बना होता तो उसमें ६५३ में होनेवाले माथुरसंघकी उत्पत्ति कैसे लिखी जाती ? दर्शनसारकी वह विवादग्रस्त गाथा इस प्रकार है:—

रइओ दंसणसारो हारो
भव्वाण णवसए णवए।
सिरिपासणाहगेहे सुविसुद्धे
माहसुद्धदसमीए ॥५०॥

दर्शनसारकी पं० शिवजीलाल कृत एक भाषावचनिका है। उसमें भी इस गाथाका अर्थ यही किया गया है कि वि० संवत् ६६० में यह ग्रन्थ रचा गया। 'णवसए णवए' की छाया 'नवशते नवके' न करके 'नवशते नवतौ' करनेसे यह अर्थ ठीक बैठ जाता है। यदि 'नवति' का सप्तम्यन्त प्राकृतरूप 'णवए' नहीं बनता तो मूल पाठ 'णवदीए' या 'णवईए' होगा। दो चार प्राचीय प्रतियोंके देखनेसे इसका निश्चय हो जायगा*। परन्तु

* आरा जैनसिद्धान्त भवनकी एक प्रतिमें 'णवणउए' ऐसा पाठ है जो नौ सो नव्वेका ही वाचक मालूम होता है। 'णवदीए' और 'णवईए' ये दोनों पाठ नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह बिलकुल स्पष्ट है कि जब दर्शनसारमें माथुरसंघकी उत्पत्तिका समय ६५३ लिखा है तब वह उसके ३०-४० वर्ष बाद ही बना होगा। मैंने अपने 'दर्शनसार' के अन्तिम पृष्ठ पर 'भ्रमसंशोधन' शीर्षक के नीचे इस बातका उल्लेख कर भी दिया है; परन्तु मालूम नहीं सोनीजीने ग्रन्थको कैसे पढ़ा है जो यह लिख दिया कि मैंने दर्शसारमें उसके कर्त्ताका समय सं० ६०६ लिखा है।

२—श्लोकवार्तिकके कर्त्ता विद्यानन्दस्वामी किस समय हुए हैं, इसका निर्णय मैंने जैनहितैषी भाग ६ पृष्ठ ४३६-५५ में किया है और उसीका सारांश युक्त्यनुशासनकी भूमिकामें दिया गया है। उसके अनुसार विद्यानन्दस्वामीका ग्रन्थ-रचनाकाल वि० सं० ८४० से ८६५ के बीच निश्चित होता है। ८४० के बाद कहनेका कारण यह है कि हरिवंशपुराण में—जो वि० सं० ८४० में समाप्त हुआ है—उस समयके प्रायः सभी दाक्षिणात्य जैनाचार्योंका स्मरण किया गया है; परन्तु उनमें विद्यानन्दका नाम नहीं है। इसके सिवा दो कारण और हैं जिनसे वे ८४० के बादके ही मालूम होते हैं। एक तो, यह कि प्रसिद्ध मीमांसक विद्वान् कुमारिलभट्टका समय वि० सं० ७५७ से ८१७ तक निश्चित है और वे अकलंकदेवके समकालीन विद्वान् हैं, बल्कि अकलंकदेवके बाद भी कुछ समयतक जीते रहे हैं। क्योंकि उन्होंने अपने श्लोकवार्तिकमें अष्टशतीके अनेक वाक्योंको उद्धृत करके उनका खण्डन किया है और अकलंकदेवके स्वर्गवासके बाद उसका प्रतिखण्डन विद्यानन्दस्वामीने अष्टसहस्रीमें किया है। दूसरे, राठौर राजा साहसतुंग या शुभतुङ्गका राज्यकाल वि० सं० ८१० से ८३२ तक है और भट्टाकलंकदेव उसकी सभामें शास्त्रार्थ करने गये थे। विद्यानन्दस्वामी अकलंकदेवके पश्चाद्वर्ती हैं, अतः उनका समय ८३२ के बाद मानना अनुचित नहीं जान पड़ता। वि० सं० ८६५ के पहले माननेका कारण यह है कि आदिपुराणमें विद्यानन्दस्वामी (पात्रकेसरी) का स्मरण किया गया है, जिससे मालूम होता है कि उस समय उनकी खूब ख्याति हो चुकी थी।

३—परन्तु यह वि० संवत् ८६५ उनके अस्तित्वका अधिकसे अधिक पिछला समय हो सकता है। इसके बाद तो उन्हें मान ही नहीं सकते। क्योंकि पूर्वोक्त आदिपुराणमें चन्द्रोदयके कर्त्ता आचार्य प्रभाचन्द्रने अपने प्रमेयकमलमार्तण्डमें विद्यानन्दस्वामीका उल्लेख किया है। ऐसी अवस्थामें विद्यानन्दस्वामीको प्रभाचन्द्रका उल्लेख करनेवाले आदिपुराणसे यदि ३०-४० वर्ष पहले माना जाय, तो कुछ अयुक्त न होगा।

४—इस तरह दर्शनसारके कर्त्ता

नहीं बन सकते, क्योंकि इनमेंसे किसीके स्वीकार करनेपर छन्दमें दो मात्राएँ बढ़ जाती हैं। भले ही अजैन और अनार्ष प्राकृतमें 'नवति' शब्दका सप्तम्यन्तरूप 'णवदीए' या 'णवईए' बनता हो, परन्तु आर्ष प्राकृतमें उसका रूप 'णउए' या 'णवए' होना भी बहुत अधिक संभव है; क्योंकि आर्ष प्राकृत 'बहुल' रूपसे होती है और उसमें संपूर्ण विधियोंका विकल्प किया जाता है जैसा कि हेमचन्द्राचार्यके निम्न वाक्योंसे प्रकट है—"आर्षं प्राकृतं बहुलं भवंति। आर्षेहि सर्वे विधयो विकल्प्यन्ते।" त्रिविक्रम नामके दि० जैनकवि भी इस विषयमें प्रायः ऐसा ही सूचित करते हैं और आर्ष प्राकृतका कोई खास नियम (लक्षण) न बतलाकर सम्प्रदायको ही उसका बोधक ठहराते हैं। यथा—

देश्यमार्षं च रूढत्वात्स्वतन्त्रत्वाच्च भूयसा।
लक्ष्म नापेक्षते तस्य संप्रदायोहि बोधकः॥

इसलिए प्राकृतमें उक्त 'णउए' या 'णवए' रूपका होना ज़रा भी अप्राकृतिक नहीं मालूम होता।

—सम्पादक।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवसेनके और विद्यानन्दके समयमें लगभग १५० वर्षका अन्तर पड़ जाता है और इस कारण विद्यानन्दस्वामीके लिए उक्त देवसेनके नयचक्रका उल्लेख करना कदापि सम्भव नहीं है। यदि थोड़ी देरके लिए यह भी मान लिया जाय कि दर्शनसार ६०६ में ही बना है, तो भी वह विद्यानन्दस्वामीका पूर्ववर्त्ती तो कदापि नहीं हो सकेगा।

५—सोनीजीका आक्षेप है कि हमने विद्यानन्द और देवसेन दोनों आचार्योंका समय जुदा जुदा स्थानोंमें 'चतुराईसे' 'चालाकीसे' जुदा जुदा बतलाया है। परन्तु मेरा निवेदन है कि वास्तवमें ऐसा नहीं है। सोनीजीको अपनी घोर कट्टरताके कारण मैं जो कुछ लिखता हूँ, उसमें 'चतुराई' और 'चालाकी' ही दिखलाई देती है। दर्शनसारकी विवेचनामें लिखा हुआ आप देवसेनका समय 'सं० ६०६' तो पढ़ लेते हैं; परन्तु उसीके अन्तिम पृष्ठपर छपा हुआ भ्रमसंशोधन नहीं पढ़ते जिसमें सूचना दी है कि "'णवसए णवए' का अर्थ ६६० करना चाहिए।" युक्त्यनुशासनकी भूमिका भी शायद आपने अच्छी तरह नहीं पढ़ी है। क्योंकि उसमें विद्यानन्दका समय वि० सं० ८६५ नहीं लिखा है, किन्तु यह लिखा है कि "विद्यानन्दका अस्तित्व वि० सं० ८३२ से ८६५ के बीचमें माना जाना चाहिए।" दोनों बातोंमें बहुत अन्तर है। इसी तरह दर्शनसारकी विवेचनामें एक तो विद्यानन्दका समय 'वि० सं० ८००' नहीं किन्तु '८०० के लगभग' है और इतिहासमें 'लगभग' का भी कुछ अर्थ होता है, इससे मैं पूर्वापरविरोध दोषसे साफ बच जाता हूँ। दूसरे वहाँ भूलसे ८५७ की जगह ८०० लिखा गया है और यह भूल इस कारण हुई है कि जैनहितैषीमें विद्यानन्दस्वामीका जो समय-निर्णय किया गया है, वह विक्रम संवत् नहीं किन्तु ईस्वी सन्के हिसाबसे किया है और उसमें यही वाक्य दिया है कि " + + + + विद्यानन्दस्वामीका समय ईस्वी सन् ८०० के लगभग ही निश्चित किया है।" दर्शनसारकी विवेचना लिखते समय यह लेख मेरे सामने था, इस कारण उसमें भी ज्योंका त्यों लिखा गया। वास्तवमें ईस्वी सन् ८०० की जगह वि० संवत् ८५७ लिखना चाहिए। इस भूलको मैं स्वीकार करता हूँ; परन्तु यह भूल ही है, सोनीजीके हृदयमें बसी हुई 'चालाकी' या 'प्रतारणा' नहीं।

६—श्लोकवार्तिकमें जिसका उल्लेख किया गया है, वह नयचक्र श्वेताम्बराचार्यका ही होना चाहिए, ऐसा मेरा आग्रह नहीं है। परन्तु इस बातको मैं नहीं मानता कि हमारे सम्प्रदायके आचार्य श्वेताम्बर सम्प्रदाय या अन्य धर्मी विद्वानोंके ग्रन्थोंका उल्लेख कर ही नहीं सकते, अथवा उनके ग्रन्थोंके अवतरण देने या उनपर टीका लिखनेमें उनके सम्यक्त्वमें कोई बाधा आ जाती है। जो विद्वान् होते हैं वे सभीके ग्रन्थोंको निष्पक्ष दृष्टिसे पढ़ते हैं और एक सीमातक उनका आदर भी करते हैं। "गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः।" यह उदारहृदय विद्वानोंका ही सिद्धान्त है। यद्यपि अभी तक हमारे सम्प्रदायके विद्वानोंका साहित्य बहुत ही कम प्रकाशित हुआ है और जो कुछ प्रकाशित हुआ है, उसका अभीतक अन्वेषिणी बुद्धिसे अध्ययन नहीं किया गया है, फिर भी उपलब्ध साहित्यमेंसे ही ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनसे मालूम होता है कि दि० जैन विद्वान् भी विभिन्न सम्प्रदायके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विद्वानोंके ग्रन्थोंका उल्लेख करते थे, टीकाएँ लिखते थे और उनके प्रति अपना आदरभाव भी व्यक्त किया करते थे। यथा—

(१) सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० आशाधरने, जिनका उल्लेख सोनीजीने 'सूरिकल्प' विशेषणके साथ किया है, तीन अजैन ग्रन्थोंकी टीकाएँ लिखी हैं और इनका उल्लेख उन्होंने अपने धर्मामृतशास्त्रकी प्रशस्तिमें किया है। इन ग्रन्थोंमेंसे एक तो है वाग्भटका सुप्रसिद्ध वैद्यकग्रन्थ अष्टाङ्गहृदय और दूसरा है अमरसिंहका सुप्रसिद्ध अमरकोश। वाग्भट और अमरसिंह ये दोनों ही बौद्ध विद्वान् थे। तीसरा ग्रन्थ है, आचार्य रुद्रटका काव्यालङ्कार। यह अलङ्कारका बहुत ही प्रसिद्ध ग्रन्थ है और इसके कर्त्ता वेदानुयायी थे। आशाधरजीने 'अनगारधर्मामृत" की टीकामें एक स्थानपर (पृष्ठ १५०) अपने प्रतिपाद्य विषयके समर्थनार्थ नीचे लिखा एक श्लोक उद्धृत किया है जो श्रीहर्षके 'नैषधचरित' के १७ वें सर्गका है—

अनादाविह संसारे दुर्वारे मकरध्वजे।
कुले च कामिनीमूले काजातिपरिकल्पना॥

(२) आचार्य पूज्यपादके शिष्य गङ्गवंशीय राजा दुर्विनीतने महाकवि भारविके किरातार्जुनीय काव्यके १५ सर्गोंकी कनड़ी टीका लिखी है और भारवि अजैन थे।

(३) वादिपर्वतवज्र भावसेन त्रैविधदेवने शालिवाहनके मन्त्री शर्ववर्माके बनाये हुए सुप्रसिद्ध व्याकरणकलाप या कातन्त्रकी रूपमाला टीका लिखी है जो जैन-पाठशालाओंमें पढ़ाई जाती है। जो लोग यह समझते हों कि शर्ववर्मा जैन थे, उन्हें डा० बेलवलकर एम० ए०, पीएच० डी० के 'सिस्टम्स आफ़ संस्कृत ग्रामर' को और 'बङ्गीय साहित्यपरिषत्पत्रिका' के बँगला सं १३१७ के पहले अङ्कमें श्रीवनमाली चक्रवर्ती वेदान्ततीर्थ एम० ए० के 'कातन्त्रव्याकरण' शीर्षक लेखको पढ़ना चाहिए। इसके कर्त्ताके जैन होनेका जैन-साहित्यमें कहीं उल्लेख भी नहीं मिलता।

(४) आदिपुराणके कर्त्ता भगवज्जिनसेनका पार्श्वाभ्युदय काव्य कालिदासके प्रति उनके आदर-भावका ही द्योतक है। इस किंवदन्तीका खण्डन अच्छी तरह किया जा चुका है कि पार्श्वाभ्युदय काव्य कालिदासको अपमानित या तिरस्कृत करनेके लिए बनाया गया था।

(५) श्रीसोमदेवसूरिने अपने यशस्तिलकके द्वितीय आश्वास (पृष्ठ ३१७) में राजाको 'सुकविकाव्यकथाविनोददोहनमाघ' के विशेषणसे सम्बोधित किया है और इस तरह पर्यायसे महाकवि माघकी प्रशंसा की है। इसी आश्वासमें और एक जगह (पृष्ठ २३६-३७) आचार्य पूज्यपाद, अकलङ्क आदि जैन विद्वानोंके साथ पाणिनि (पणिपुत्र), शुक्राचार्य (कवि), नाट्याचार्य भरत आदि अजैन आचार्योंका उल्लेख किया है और वह उल्लेख उनके गुणोंकी प्रशंसा करनेवाला ही है।*

आजकलके कट्टर धर्मात्मा कह सकते हैं कि हमारे आचार्य अन्य धर्मियोंका आदर भले ही करें, परन्तु श्वेताम्बरी आदि जैनाभासोंका तो कदापि नहीं कर सकते। इसके लिए सोनीजीने बड़े बड़े शास्त्रीय प्रमाण दिये हैं। परन्तु हम ऐसे भी अनेक प्रमाण दे सकते हैं जिनसे पाठकोंको यह निश्चय हो जायगा कि

* यशस्तिलकमें सोमदेव सूरिने कितने ही अजैन आचार्यों तथा विद्वानोंके वाक्योंको गौरवके साथ उद्धृत किया है। और एक स्थानपर उर्व, भारवि, भवभूति, भर्तृहरि, भर्तृमेण्ठ, कण्ठ, गुणाढ्य, व्यास, भास, वोस, कालिदास, बाण, मयूर, नारायण, कुमार, माघ, राजशेखर आदि अजैन कवियोंको 'महाकवि' ऐसे गौरवान्वित पदसे विभूषित किया है (चतुर्थ आश्वास) —सम्पादक।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मूलसंघी दिगम्बरी विद्वानोंने जैनाभासों-के श्वेताम्बर, यापनीय, द्रविड़ और माथुर सङ्घके ग्रन्थोंका भी आदर किया है।

(६) यह सिद्ध किया जा चुका है कि शाकटायन या पाल्यकीर्ति यापनीय सङ्घ-के आचार्य थे और श्रीश्रुतसागरसूरिके कथनसे* तथा और भी अनेक प्रमाणोंसे यह निश्चय हो गया है कि यापनीयसङ्घ श्वेताम्बरोंके ही समान स्त्रीमुक्ति केवलि-मुक्ति आदि मानता है। बल्कि स्वयं शाकटायन आचार्यका बनाया हुआ 'स्त्रीनिर्वाण-केवलिमुक्ति प्रकरण' नामका ग्रन्थ मिला है जिसमें उन्होंने इन दोनों बातोंका खूब जोरोंसे प्रतिपादन किया है। ऐसी दशामें भी उनके व्याकरणपर अनेक मूलसङ्घी आचार्यों और विद्वानों-ने टीकाएँ लिखी हैं और किसी किसीने तो उनको नमस्कारतक किया है! शाक-टायनकी एक टीका 'मणिप्रकाशिका' नामकी है जो अजितसेनाचार्यकी लिखी हुई है, दूसरी कातन्त्ररूपमालाके कर्त्ता भावसेन त्रैविधदेवकी है, तीसरी आचार्य प्रभाचन्द्रकी है, जिसका नाम 'अमोघ-वृत्तिन्यास' है और चौथी अभयचन्द्र सूरिकी 'प्रक्रियासंग्रह' है। ये चारों टीकाएँ मूलसंघी आचार्योंकी हैं। मुनि वंशाभ्यु-दय काव्यके कर्त्ता चारुकीर्ति पण्डितदेव (चिदानन्द) ने—जो मूलसंघीय आचार्य थे—लिखा है कि "शाकटायनने अपने बुद्धिरूप मन्दराचलसे श्रुतसमुद्रका मन्थन करके यशके साथ व्याकरणरूप उत्तम अमृत निकाला। × × जगत्प्रसिद्ध शाक-टायन मुनिने सूत्र और वृत्ति बनाकर एक प्रकारका पुण्य सम्पादन किया। एक बार अविद्धकर्ण सिद्धान्तचक्रवर्ती पद्मनन्दिने मुनियोंके मध्य पूजित हुए शाक-टायनको 'मन्दरके समान धीर' विशेषण-से विभूषित किया था।" कहनेकी आव-श्यकता नहीं कि ये पद्मनन्दि सिद्धान्त-चक्रवर्ती भी मूलसंघी आचार्य थे।

(७) न्यायविनिश्चयालंकार, पार्श्वनाथ काव्य, यशोधर चरित, आदिके कर्त्ता वादिराजसूरि द्रविडसंघके आचार्य थे और इस संघकी गणना भी मिथ्या-तियोंमें—जैनाभासोंमें—है। परन्तु इनके ग्रन्थोंपर भी अनेक मूलसंघी विद्वानोंने टीकाएँ आदि लिखी हैं और उनकी प्रशंसा की है। पार्श्वनाथ-काव्यकी एक 'पंजिका-टीका' षट्भाषाकविचक्रवर्ती शुभचन्द्रा-चार्य कृत और दूसरी प्रभाचन्द्राचार्य कृत है। यशोधरचरित पर भी प्रभाचन्द्रकी एक 'पंजिकाटीका' है। पं० रायमल्लने एकी-भावकी टीका लिखी है। श्रवणबेलगोल-की मल्लिषेण प्रशस्तिमें—जो एक मूल-संघी आचार्यकी लिखी हुई है—वादि-राजसूरिकी निःसीम प्रशंसा की गई है।

(८) हरिवंशपुराणके कर्त्ता जिनसेन द्रविड़संघके और अमितगतिसूरि माथुर-(निःपिच्छिक) संघके आचार्य थे। ये दोनों ही जैनाभास हैं। फिर भी इनके ग्रन्थोंकी टीकाएँ और वचनिकाएँ मूल-संघियोंने लिखी हैं। आचार्य वसुनन्दिने अपनी आचारवृत्ति टीका (८ वें परि-च्छेद) में माथुरसंघी अमितगति श्रावका-चारके पाँच श्लोक 'उपासकाचारे उक्त-मास्ते' कहकर उद्धृत किये हैं। इससे तो यहाँतक मालूम होता है कि खास धर्म-ग्रन्थोंमें भी हमारे आचार्य जैनाभासोंके ग्रन्थोंके अवतरण दिया करते थे।#

* "यापनीयास्तु......रत्नत्रयं पूजयन्ति, कल्पंच वाचयन्ति, स्त्रीणां तद्भवेमोक्ष केवलिजिनानां कवलाहारं परशासने सग्रन्थानां मोक्षं च कथयन्ति"

और भी दि० जैन विद्वानोंके बनाये हुए 'सम्यक्त्व-कौमुदी' आदि बीसियों ग्रन्थ ऐसे हैं जिनमें स्वविषय समर्थनादिके लिए सैंकड़ों वाक्य अजैन तथा जैनाभास

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७—सोनीजीने इस बातको सिद्ध किया है कि श्लोकवार्तिककी अपेक्षा देवसेनसूरिके नयचक्रमें नयोंका कथन विस्तारसे लिखा गया है। इस बातको हम मान लेते हैं और अपनी भूलको सुधार लेते हैं; परन्तु इससे फिर भी यह सिद्ध नहीं होता है कि देवसेनसूरिके इसी नयचक्रके पढ़नेकी सिफारिश श्लोकवार्तिकमें की गई है। पं० वंशीधरजी शास्त्रीके इस कथनके माननेमें भी हमें कोई आपत्ति नहीं है कि देवसेनसूरिने जिस नयचक्रके नष्ट हो जानेका उल्लेख किया है, संभव है कि उसीके पढ़नेकी सिफारिश श्लोकवार्तिकमें की गई हो और वह किसी दिगम्बराचार्यका ही बनाया हुआ हो। परन्तु फिर भी इस विषयमें कोई बात सर्वथा निश्चित रूपसे नहीं कही जा सकती है।

८—सिद्धसेनसूरिके सम्बन्धमें सोनीजीने, पं० वंशीधरजीने और पं० रामप्रसादजीने जो अनेक आक्षेप किये हैं, इस समय हम उनका उत्तर नहीं देना चाहते। इसके पहले कि उनके विषयमें कुछ लिखा जाय, हम पण्डित महाशयोंसे यह प्रार्थना करते हैं कि वे पहले स्वयं ही सिद्धसेनसूरिके सम्मतितर्क, न्यायावतार और त्रिंशंकासमूहको एक बार अच्छी तरह पढ़कर निश्चय कर लें कि उनकी रचनाओंमें कोई बात, कोई सिद्धान्त दिगम्बर सम्प्रदायके विरुद्ध तो नहीं है? और यदि है तो उसे किसी श्वेताम्बरी विद्वान्ने पीछेसे तो नहीं घुसेड़ दिया है? सोनीजीको सन्देह है कि शायद वे पहले श्वेताम्बर रहे हों और पीछे दिगम्बरी हो गये हों। इसलिए यह भी निश्चय कर लेना चाहिए कि इनमेंसे कौन कौन ग्रन्थ श्वेताम्बरी अवस्थाके हैं और कौन दिगम्बर अवस्थाके। पण्डित महाशयोंके द्वारा इन सब बातोंके प्रकट हो चुकनेपर ही हमें उनके आक्षेपोंका समाधान करनेमें सुभीता होगा। हम यह कह देना भी उचित समझते हैं कि इन ग्रन्थोंके पढ़नेमें जो परिश्रम किया जायगा वह व्यर्थ न जायगा, क्योंकि ये सभी ग्रन्थ अनुपम हैं।

सम्पादकीय नोट।

पं० पन्नालालजी सोनीके जिस लेखके उत्तरमें यह लेख लिखा गया है उसे

विद्वानोंके ग्रन्थोंसे उद्धृत किये गये हैं। और सोनीजीने त्रिवर्णाचारों तथा संहिताओंको भी प्रमाण माना है। उनके लिए और दूर जानेकी जरूरत ही क्या है? उन्हें जिनसेन त्रिवर्णाचार और भद्रबाहुसंहिताके परीक्षालेखोंको ही देखना चाहिए। उनके देखनेसे मालूम हो जायगा कि इन ग्रन्थोंमें विवेकविलास (श्वे०), योगशास्त्र (श्वे०) मुहूर्तचिन्तामणि, पीयूषधारा, याज्ञवल्क्यस्मृति, मिताक्षरा, आचारादर्श, विष्णुपुराण, वामनपुराण, मनुस्मृति, पराशरस्मृति, अत्रिस्मृति, आपस्तम्भ, गृह्यसूत्र, बृहत्संहिता, बृहत्पाराशरीहोरा आदि कितने अजैन और जैनाभास ग्रन्थोंके वाक्योंको उठाकर रक्खा गया है और उन्हें अपने प्रतिपाद्य विषयका एक अंग बनानेके लिए कितना अधिक पसन्द किया गया है। कितनी ही जगह तो साफ तौरसे अजैन ग्रन्थोंको देखनेकी प्रेरणा की गई है। यथा—

"एतेच सूतवैदेहिकचाण्डालमागध क्षत्रायोगवाः षट् प्रतिलोमजाः एतेषां च वृत्तयः 'औशनसे मानवे' द्रष्टव्याः।" (ग्रन्थपरीक्षा प्रथम भाग पृ० ७५)

कितने ही वाक्योंके साथ 'इतिविज्ञानेश्वरः' 'इत्यंगिराः,' 'प्रचेताः' ऐसे अजैनाचार्योंके नाम भी लगे हुए हैं। ऐसी हालतमें जो लोग सर्वथा यह समझते हैं कि दिगम्बर आचार्योंने अजैन तथा जैनाभास आचार्योंके वाक्योंको प्रमाण मानकर उनका उल्लेख अपने ग्रन्थोंमें नहीं किया, यह उनकी बड़ी भूल है और उससे ऐसा मालूम होता है कि उनका जैनसाहित्य विषयक अध्ययन अभी बहुत कम है और जो कुछ है भी वह तुलनात्मक पद्धतिसे नहीं किया गया। ऐसी ही हालत जैनाभासोंके प्रमाणादि विषयकी है। सोनीजीने अभीतक उसका रहस्य नहीं समझा। वे स्वयं कितने ही जैनाभास आचार्योंके ग्रन्थोंको बड़ी पूज्य दृष्टिसे पढ़ते, प्रणाम करते और प्रमाण मानते हैं। उन्हें पहले ऐसे आचार्योंकी एक सूची तय्यार करनी चाहिए और फिर उससे जैनसाहित्यको जाँचना चाहिए।

सम्पादक।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हमने देखा है और साथ ही पं० नाथूरामजी प्रेमीका वह मूल लेख भी इस समय हमारे सामने है जिसकी भित्ति पर सोनीजीको अपना लेख खड़ा करना पड़ा। प्रेमीजीके लेखमें 'सम्भव' आदि शब्दोंसे प्रारम्भ होनेवाले उस प्रकारके सब वाक्य मौजूद हैं जिनका उल्लेख उन्होंने इस लेखके शुरूमें किया है। दर्शनसारके अन्तमें उन्होंने साफ तौरसे ग्रन्थके बननेका समय वि० सं० ६६० सूचित किया है। दर्शनसारकी विवेचनामें सं० ८०० के साथ "लगभग" शब्द लगा हुआ है और युक्त्यनुशासनकी भूमिकामें विद्यानन्द स्वामीका अस्तित्वविषयक वह वाक्य भी मौजूद है जिसे प्रेमीजीने ऊपर उद्धृत किया है। साथ ही एक स्थान पर वि० सं० ८६५ के साथ 'लगभग' शब्द भी लगा हुआ है। इन सब बातोंके मौजूद होते हुए, हमारी रायमें, उस प्रकारका लेख लिखे जानेकी कुछ भी जरूरत नहीं थी जिसके लिखनेका सोनीजीने कष्ट उठाया है। जान पड़ता है, सोनीजीको अभी तक इस बातका परिज्ञान नहीं है कि ऐतिहासिक पर्यालोचन किस तरहसे हुआ करता है, वह कितना कठोर और निर्मम विषय है, उसमें 'सत्यदेव' की कितने शुद्ध हृदयसे उपासना की जाती है और ऐसे लेखोंका कोई भी शब्द, व्यर्थ न होकर, कभी कभी कितने गहरे अर्थको लिये हुए होता है। यही वजह है कि आप उक्त लेखके आशयको नहीं समझ सके और न उसके 'सम्भव' 'लगभग' आदि महत्त्वपूर्ण शब्दोंका आपको कुछ अर्थ बोध हो सका। आपके लेखसे कषायभाव टपका पड़ता है और कितनी ही जगहपर उसकी भाषा दोषपूर्ण हो गई है। एक ऐतिहासिक लेखकके उत्तरमें लिखे हुए लेखकी भाषा ऐसी कभी नहीं होती और न होनी चाहिए। ऐसी भाषाके लेखोंके प्रत्युत्तरमें विचारकोंकी बहुत ही कम प्रवृत्ति पाई जाती है और उससे बहुत कुछ हानिकी सम्भावना है। हमें सोनीजीके लेखके सम्बन्धमें कुछ अधिक लिखनेकी जरूरत नहीं है। प्रेमीजीने स्वयं अपने इस लेखमें प्रकृत विषयका बहुत कुछ स्पष्टीकरण कर दिया है; और जहाँ कुछ विशेष सूचित करनेकी जरूरत समझी, वहाँ हमने फुटनोट लगा दिये हैं, और इससे हम समझते हैं कि पाठकोंका बहुत कुछ समाधान हो जायगा। हाँ, एक बात और प्रकट कर देना जरूरी है; और वह यह है कि, यद्यपि हमें अभी तक इसमें कोई सन्देह नहीं कि 'दर्शनसार' ग्रन्थ वि० सं० ६६० का बना हुआ है, तो भी इसमें कुछ सन्देह जरूर है कि यह 'नयचक्र' ग्रन्थ उन्हीं देवसेन आचार्यका बनाया हुआ है जो कि दर्शनसारके कर्ता थे। दोनों ग्रन्थ एक ही आचार्यके बनाये हुए हैं, इस बातको बतलानेवाला कोई भी पुष्ट प्रमाण अभी तक किसी विद्वान्की ओरसे उपस्थित नहीं किया गया। यह कहा जा सकता है कि 'भावसंग्रह' के कर्ता देवसेन आचार्यने अपनेको 'विमलसेन' गणधरका शिष्य लिखा है और ग्रन्थके शुरूमें महावीर भगवानको नमस्कार किया है। इन दोनों ग्रन्थोंके आदिमें भी 'वीरजिनेन्द्र' को नमस्कार किया गया है और साथ ही उनका 'विमलणाणं' तथा 'विमलणाण संजुत्तं' ऐसा विशेषण दिया गया है। आराधनासारका भी ऐसा ही मंगलाचरण पाया जाता है। इससे ये चारों ग्रन्थ एक ही विद्वान्के बनाये हुए हैं। परन्तु ये सब बातें 'दर्शनसार' और 'नयचक्र' के कर्ताकी एकता सिद्ध करनेके लिए पर्याप्त नहीं हैं। ऐसी समानताओंकी अन्यत्र भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust and eGangotri

बहुत कुछ सम्भावना हो सकती है। देवसेन नामके और भी कई आचार्य हो गये हैं। एक 'देवसेन' माथुरसंघी अमितगति (धर्मपरीक्षाके कर्ता)के पड़दादा गुरुके भी गुरु थे और इसलिए उनका समय वि० की ६ वीं शताब्दीके करीब बैठता है। दूसरे देवसेन आदिपुराणके कर्ता जिनसेनाचार्यके समकालीन पाये जाते हैं, जैसा कि जयधवला टीकाकी प्रशस्तिके अन्तमें दिये हुए निम्न वाक्यके 'श्रीदेवसेनार्चिताः' पदसे ध्वनित होता है और यह भी पाया जाता है कि वे एक बड़े पूज्य आचार्य थे—

सर्वज्ञ प्रतिपादितार्थगण-
भृत्सूत्रानुटीकामिमां।
येऽभ्यस्यन्ति बहुश्रुताः
श्रुतगुरुं सम्पूज्यवीरं प्रभुं॥
ते नित्योज्वल पद्मसेनपरमाः (?)
श्रीदेवसेनार्चिताः।
भासन्ते रविचन्द्रभासिसुतपाः
श्रीपालसत्कीर्तयः॥

श्रीजिनसेनाचार्यने पात्रकेशरी (विद्यानन्द स्वामी) का आदिपुराणमें जिस ढङ्गसे उल्लेख किया है उससे विद्यानन्द स्वामी जिनसेनके समकालीन ही जान पड़ते हैं। जिनसेनाचार्य एक अच्छे वृद्ध आचार्य हुए हैं। सम्भव है कि नयचक्र उन्हीं देवसेनाचार्यका बनाया हुआ हो जो जिनसेनाचार्य तथा विद्यानन्द स्वामीके समकालीन थे। इनका भी समय विक्रमकी ६वीं शताब्दी होता है। क्योंकि जयधवला टीका शक सं० ७५६ (वि० ८६४) में बनकर समाप्त हुई है। अतः विद्वानोंको अन्तरंग साहित्यकी जाँच आदिके द्वारा इस विषयकी अच्छी खोज करनी चाहिए कि यह 'नयचक्र' ग्रन्थ कौनसे देवसेन आचार्यका बनाया हुआ है। यह विषय और भी अच्छी तरहसे स्पष्ट हो जाय इसी लिए हमें इतना सूचित करनेकी जरूरत पड़ी है।

९३३२

महासभाके कानपुरी अधिवेशनका कच्चा चिट्ठा।

(लेखक—श्रीयुत् बाबू अजितप्रसादजी वकील, लखनऊ।)

भारतवर्षीय दि० जैन महासभाका पचीसवाँ अधिवेशन कानपुरमें हो चुका। इस अधिवेशन पर जैन जातिहितैषियोंकी बहुत बड़ी आशा लगी हुई थी और महीनों पहलेसे इसके दिन गिने जा रहे थे। इस अधिवेशनके सभापति थे, वयोवृद्ध, सौम्यमूर्ति साहु सलेखचन्दजी, नजीबाबाद। चैत्र बदी ७ को सभापति महोदयके स्वागतका दृश्य अपूर्व था। कानपुर निवासी जैन और अजैन जनताने एक-मन होकर जिस प्रकार उनका सन्मान किया है, उससे प्रत्येक जैनको आनन्द और आत्मगौरवका अनुभव होता था। चैत्रबदी ८ का रथोत्सव बड़ी शानके साथ निकाला गया था और उससे जैन जातिके गौरवकी बहुत कुछ घोषणा होती थी।

उत्सवकी समाप्ति पर अभिषेक और पूजन हो जानेके बाद, दिल्ली निवासी श्रीयुत मिस्टर चम्पतरायजी, बैरिस्टर हरदोईने जैन साहित्य प्रदर्शनका द्वारोद्घाटन करते हुए जैनोंके दर्शन, न्याय और साहित्यका महत्व बड़े ही अच्छे ढंगसे दर्शाया। रात्रिको फिर आपका व्याख्यान सभामण्डपमें, जो ८०×१०० फीटके साफ़ सुथरे शामियानेके नीचे बनाया गया था, रायबहादुर लाला द्वारिकाप्रसादजी, हढौरके सभापतित्वमें "जैनदर्शन" पर हुआ। इस व्याख्यानमें बैरिस्टर साहबने प्रायः घंटेतक, जैन सिद्धान्त-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का महत्व ऐसे स्पष्ट शब्दोंमें दिखलाया कि जिससे उपस्थित जनताको यह विदित हो गया कि सनातन हिन्दूधर्म, जैनधर्म केही सिद्धान्तोंकी नीवपर खड़े किये गये हैं और खोज करनेसे प्रतीत होता है कि सार्वधर्म जैनधर्म ही है, जो स्याद्वाद नय-विवक्षासे सब मतान्तरोंके भेदों और विरोधोंको दूर कर देता है। आपके प्रभावशाली व्याख्यानकी श्रीमान् ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी तथा अन्य ब्रह्मचारियों और पण्डित महाशयोंने प्रशंसा करते हुए समालोचना की, और "जैनधर्मकी जय" ध्वनिके साथ सभा रातके ११ बजेके क़रीब विसर्जित हुई।

दूसरे दिन दो बजेसे महासभाकी कार्यवाही प्रारम्भ हुई। सभा-मण्डप भरा हुआ था। महिला-समाजके वास्ते जो स्थान चिक और परदे डालकर नियत किया गया था; वह संकुचित था और पीछेको था, जहाँ वक्ताकी आवाज़ स्पष्ट रूपसे नहीं पहुँचती थी, इस कारण कुछ चिकोंको उठाकर आगेकी और महिला-समाज को स्थान दिया गया और वह भी सब तुरन्त ही महिलामण्डलसे भर गया। मंगलाचरणके पश्चात् श्रीमान् बाबू नवलकिशोरजी वकीलने स्वागतकारिणी-समितिकी ओरसे महासभाका विवरण और कानपुरके अधिवेशनके विषयमें संक्षेप रूपसे कुछ प्रस्तावनामात्र कहा। फिर श्रीमान् लाला रामस्वरूपजी सभापति स्वागत का० समितिका व्याख्यान हुआ। इस भाषणमें आपने यह भी कहा कि, 'जैनसमाज आधुनिक देशपरिवर्तनोंसे अपनेको विलग नहीं रख सकता, बल्कि उसका कर्तव्य और अधिकार है कि अपनी आध्यात्मिकताके द्वारा संसारके अनेक कष्टोंको दूर करनेका उचित प्रबन्ध करे। जैन व्यापारी बहुधा दलाल सरीखे हैं और इस कारण देशकी वास्तविक उन्नति नहीं कर सकते, जैन शास्त्रोंका प्रकाशन तथा प्रचार शृंखलाबद्ध रीतिसे होना उचित है, शिक्षाविभागमें धन और शक्तिका अपव्यय हो रहा है, एक जैन शिक्षाका प्रबन्ध केन्द्रस्थ हो सके, दिगम्बर श्वेताम्बर समाजके झगड़ोंका निबटारा होना आवश्यक है; और कुप्रथा सम्बन्धी प्रस्ताव कार्यरूपमें परिणत करनेका समय आ गया है"। इसके बाद चुनाव हो जानेपर सभापति श्रीमान् साहु सलेखचन्दजीका भाषण पढ़ा गया जिसमें उन्होंने कहा कि "महासभाके नामके अनुसार उसकी व्यापकता नहीं है, बल्कि खण्डेलवाल, पद्मावती पुरवाल, जैसवाल, परवार आदि जातीय सभाएँ अलग अलग स्थापित हो रही हैं। ये महासभाके अधीन जातीय पंचायतके रूपमें कार्य करें तो अच्छा हो। महासभा सम्बन्धी दि० जैन महाविद्यालयका कार्य सामान्य पाठशालाका सा है. इसको स्याद्वाद महाविद्यालय काशीके साथ ही मिला देना उचित है; एक ऐसे परीक्षालयकी भी आवश्यकता है जिसका सम्बन्ध समस्त दि० जैन शिक्षासंस्थाओंसे हो और जिसका प्रमाणपत्र सबके लिए मान्य हो; शिल्प, विज्ञान, कृषि, वैद्यक, कला-कौशल विषयोंके सार्वजनिक शिक्षालयोंमें पढ़नेवाले असमर्थ जैन छात्रोंके वास्ते छात्रवृत्तियाँ स्थापित करना जैनसमाजका कर्तव्य है; छपे जैन ग्रन्थोंके प्रचार निषेधमें जो महासभाका सम्वत् १९५३ का प्रस्ताव है, वह रद्द किया जाना चाहिए* जैन

---

* इस विषयका प्रतिपादन करते हुए आपने जो शब्द कहे थे वे इस प्रकार हैं—

"यहाँ पर मुझे महासभाके उस प्रस्तावका उल्लेख कर देना जरूरी है जो छापे हुए जैन ग्रन्थोंके निषेधसे सम्बन्ध रखता है। यह प्रस्ताव सम्वत् १९५२ में पास हुआ था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC-0. Jain Digital Library Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मन्दिरों और तीर्थोंको लोगोंने अपनी जागीर बना रक्खा है, उनके हिसाबकी जाँचके वास्ते निरीक्षक नियत होने चाहिएँ; मन्दिरोंके रुपयेको जीर्ण ग्रन्थों-की प्रतिलिपि करानेमें, और एक मन्दिर-का रुपया आवश्यकतानुसार दूसरे मन्दिरमें लगाना चाहिए; तीर्थक्षेत्र सम्बन्धी झगड़ोंके फैसलेके वास्ते ११ सदस्योंकी कमेटी पूर्ण अधिकार सहित बनाई जाय; गौने (द्विरागमन) की रसम-को उठा देना चाहिए; महासभाके सभा-सद और कार्यकर्त्ता उसके प्रस्तावोंपर अमल नहीं करते, अतः ऐसा नियम होना चाहिए कि ऐसे व्यक्ति महासभाके सभा-सद तथा कार्यकर्ता न रह सकें; और एक जैन बैंककी भी स्थापना होनी चाहिए।"

सभापतिका भाषण समाप्त होनेपर रिपोर्टें पढ़ी गईं*। जैन गज़टकी रिपोर्टके सम्बन्धमें ब्र० शीतलप्रसादजी अपने जैनमित्रके गताङ्क २१ में यह प्रगट करते हुए कि, ६०६६)॥ का घाटा जैनगज़ट खातेमें है और करीब ३०००) का घाटा गत वर्षका है, शोकके साथ लिखते हैं कि "गज़टकी लेखनशैली उत्तम न होने-पर भी इसकी सम्पादकीका कोई यथो-चित प्रबन्ध न किया गया, जिससे यह भारी घाटा बन्द हो जाता।" अस्तु। रिपोर्टोंके पश्चात् सब्जेक्ट कमेटीका चुनाव हुआ और उसके सदस्योंकी सूची ब्रह्म-चारी शीतलप्रसादजीने पढ़कर सुनाई। अनुमान १११ सदस्य थे, जिनमें जैन-महिला-रत्न श्रीमती मगनबाई और पण्डिता चन्दाबाईजीके नाम पढ़े जानेपर सभाने हर्ष प्रकट किया। सब्जेक्ट कमेटीका कार्य ८ बजे प्रारम्भ होना निश्चित हुआ था, किन्तु ६ बजे रात्रिके भी पीछे काम-का प्रारम्भ हुआ। पहले ही ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीने कहा कि सब्जेक्ट कमेटी-में दो महिलाओंके चुने जानेसे समाजके कुछ लोग असन्तुष्ट हैं; यद्यपि स्वयं उनके विचारमें उक्त दो महिलाओंका सदस्य होना अनुचित नहीं है, किन्तु समाजकी असन्तुष्ट अवस्थाको देखते हुए यदि उनका चुनाव न होता तो अच्छा होता। और उन्होंने फिर यह भी कहा कि सब्जेक्ट कमेटीका चुनाव नियम-विरुद्ध होनेके कारण ठीक नहीं है; क्योंकि दोनों महिलाएँ न महासभाकी सदस्य हैं

उस समय जैन ग्रन्थोंका छापना प्रारम्भ हो हुआ था, और शायद यह सोचा गया था कि वह इस प्रकारकी कार्रवाहियों द्वारा रुक जायगा, परन्तु ऐसा नहीं हो सका, और प्रस्ताव पूर्ण रूपसे असफल रहा।

अब जब कि छपे हुए ग्रन्थोंका आम तौरसे खुला प्रचार हो रहा है, सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक, अष्टसहस्री, प्रमेयकमलमार्तण्ड, पञ्चाध्यायी, समयसार, प्रवचनसार, पंचस्तिकाय, गोम्मटसारादि जैसे बड़े बड़े और महान् ग्रन्थ भी छप चुके हैं। अच्छे अच्छे विद्वान् पंडित लोग ग्रन्थोंके छपानेका कार्य कर रहे हैं। कुछ सेठ लोग भी ग्रन्थोंके उद्धारमें लगे हुए हैं। माणिकचन्द ग्रन्थ-माला, अनन्तकीर्ति ग्रन्थमाला, जैन ग्रन्थरत्नाकर कार्या-लय बम्बई, जैनसिद्धान्त प्रकाशिनी संस्था कलकत्ता, दी सेंट्रल पबलिशिंग हाउस आरा आदि कितनी ही संस्थाएँ ग्रन्थोंको छापकर उनका उद्धार कर रही हैं, मन्दिरों तकमें छपे ग्रन्थ विराजमान किये जाते हैं, लोग प्रेमसे उन्हें पढ़ते, खरीदते तथा वितरण करते हैं। और इस समय महासभाके साहित्य प्रदर्शनमें भी उनका एक अलग विभाग रक्खा गया है। तब ग्रन्थोंके छापने और छपे ग्रन्थोंको पढ़ने तथा खरीदनेके निषेध सम्बन्धी उक्त प्रस्तावको स्थिर रखनेका कुछ भी अर्थ नहीं रहता। उलटे सुननेवालोंके लिए वह एक हास्यका विषय बन जाता है। और उससे महासभाके गौरवको धक्का पहुँचता है। इसलिए मेरी सम्मतिमें वह प्रस्ताव अब अनावश्यक और अव्यवहरणीय समझा जाकर रद्द किया जाना चाहिए।"

---

* जैनप्रदीपसे मालूम हुआ कि रिपोर्टोंकी मंजूरीपर कई व्यक्तियोंने आपत्ति की थी, परन्तु फिर भी वे धींगा-धींगीसे पास हो ही गईं।—सम्पादक।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

न प्रतिनिधि और इस कारण सब्जेक्ट कमेटीमें नहीं चुनी जा सकतीं; और जबतक नई सब्जेक्ट कमेटी (विषय निर्धारण समिति) नियत न हो, काम नहीं हो सकता। इसपर कहा गया कि यह असङ्गत विषय है, इस कमेटीको इस प्रश्नके उठानेका अधिकार नहीं है, यह कमेटी महासभाकी बनाई हुई है और यह प्रश्न यदि हो सकता है तो महासभाके अधिवेशनमें उपस्थित हो सकता है। सभापति महोदयने इस युक्तिसे सहमत होकर यह निर्णय किया कि यह प्रश्न नहीं उठाया जा सकता और काम प्रारम्भ होना चाहिए; किन्तु पण्डित धन्नालालजी काशलीवाल, पण्डित बंशीधर और एक दो और सदस्य, उच्च स्वरसे, बोलते ही रहे और कभी अनुचित शब्दोंका व्यवहार भी करते रहे। सभापति महोदयके बारम्बार सविनय प्रार्थना करनेपर भी चुप नहीं हुए और पण्डित बंशीधरने सभापति महोदयको यहाँतक कहनेपर मजबूर कर दिया, कि यदि पण्डित बंशीधरजीको इस विषयमें इतना हठ है और वह सभापतिका फैसला और सभापतिकी प्रार्थनाको भी नहीं मानते तो वह सभाको छोड़ दें और आगे कामको चलने दें। इसपर पण्डित धन्नालाल और उनके आठ दस अनुयायी कोलाहल करते हुए खड़े हो गये और वहीं खड़े रहकर देरतक शोर मचाते रहे। बादको दूसरे कमरेमें जहाँ पण्डित धन्नालाल ठहरे हुए थे, चले गये। उनके पीछे महामन्त्री लाला भगवानदासजी और शनैः शनैः उनके दफ्तरके लोग भी पण्डित धन्नालालजीके स्थानपर चले गये; और सभापति महोदयके बुलानेपर भी नहीं आये। रूठोंको मनाने और फिर बुलानेका कार्य घण्टोंतक होता रहा। सभापतिके अतिरिक्त अन्य प्रतिष्ठित महाशय कई बार इस रुष्ट मण्डलको मनाने गये किन्तु वे लोग नहीं आये। जहाँतक याद पड़ता है, इस काममें रायबहादुर लाला घमण्डीलाल, लाला रामस्वरूपजी सभापति स्वागतकारिणी समिति, लाला तिलोकचन्द दिल्लीवाले, लाला झिब्बामल अम्बालेवाले, हकीम कल्याणराय और ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीने भी भाग लिया था। इस प्रकार जब रातके करीब दो बज गये तब ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीसे व्यवस्था माँगी गई और उनका यह आदेश होनेपर कि महासभाके अधिवेशनमें सब्जेक्ट कमेटीका चुनाव फिरसे किया जाय, सब लोग अपने अपने स्थानपर चले गये।

दूसरे दिन महासभामें साहु जुगमन्दिरदासजीने, जो गत रात्रिको सभापति महोदयके सहायकरूपसे सब काम करते रहे थे, रात्रिका विवरण संक्षेपसे सुनाया और कहा कि सब्जेक्ट कमेटी नई चुनी जाय। लाला जग्गीमलजी दिल्लीनिवासीने इसका अनुमोदन किया। लाला जुग्गीमलजी उसी दिन दिल्लीसे पधारे थे और गत दिवसकी कार्यवाहीमें उपस्थित न थे। अनुमोदन होते ही एक ब्रह्मचारी महाशयने खड़े होकर जैनधर्मकी जयध्वनिके साथ यह कह दिया कि यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ, और उपस्थित प्रतिनिधि समाजको यह अवसर ही नहीं दिया गया कि कोई इस विषयमें कुछ कह सके! हमारे इस प्रश्न करनेपर कि यह बतला दिया जाय कि सब्जेक्ट कमेटीमें महासभाके सदस्य और प्रतिनिधि ही चुने जायँगे या अन्य उपस्थित महाशय भी, महामन्त्रीजीने उत्तर दिया कि अन्य प्रतिष्ठित महाशय भी चुने जा सकते हैं। तब हमने कहा कि यह बात

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस स्थानपर सभाकी कार्यवाहीमें लिख ली जाय और सभापति महोदयने हुक्म दिया कि ऐसा किया जाय। इसके बाद हमने यह निवेदन किया कि जो सब्जेक्ट कमेटी आज चुनी जाय उसकी नामावली-के साथ साथ गत दिवसकी चुनी हुई सब्जेक्ट कमेटीकी नामावली भी लगा दी जाय; इस कहनेपर कोलाहलसा हो गया और कोई निर्णय नहीं हुआ। फिर नामावली पढ़ी गई। उसमें श्रीयुत विश्वम्भरदासजी गार्गीय सम्पादक 'जाति प्रबोधक' का नाम न था, जो पहले दिन सब्जेक्ट कमेटीमें लिये गये थे और रात्रिको बराबर उसमें उपस्थित रहे थे। साथ ही कुछ नाम बढ़ा दिये गये थे। उपर्युक्त दोनों विदुषी महिलाओंने सब्जेक्ट कमेटीकी सदस्यतासे अपना त्यागपत्र पहले ही भेज दिया था और वे गत रात्रिकी सब्जेक्ट कमेटीमें उपस्थित भी नहीं थीं। वास्तविक फल इस सात आठ घण्टेके ख़र्च होनेका यह हुआ कि श्रीयुत विश्वम्भरदासजी गार्गीय सम्पादक 'जाति प्रबोधक' का नाम सब्जेक्ट कमेटीके सदस्योंकी श्रेणीसे निकाल दिया गया और कुछ नये महाशयोंके नाम बढ़ा लिये गये। फिर नई सब्जेक्ट कमेटी-की बैठक प्रारम्भ हुई। देवगढ़के पुराने जैन मन्दिरों और प्रतिबिम्बके रक्षार्थ उपाय करनेका प्रस्ताव पेश हुआ। उस समय विश्वम्भरदास गार्गीयकी आवश्यकता जान पड़ी कि इस विषयमें समझावें कि क्या हुआ और क्या होना चाहिए; क्योंकि उन्होंने इस सम्बन्धमें बड़ा परिश्रम किया था। परन्तु उनको सब्जेक्ट कमेटीकी सभासदीसे पहले ही पृथक् कर दिया गया था इससे वे नहीं बुलाये गये और प्रस्ताव उठा लिया गया*। श्रीयुत कुमार देवेन्द्रप्रसादजी द्वारा स्थापित "दि सेंट्रल जैन पब्लिशिंग हाउस" नामकी संस्थाको चिरस्थायी बनाने और उसकी सब सम्पत्ति खरीद लेनेके विषयमें एक प्रस्ताव लाला रूपचन्दजीके सुपुत्र लाला रामस्वरूपजी सभापति खा० का० समितिने उपस्थित कराया जिसका पण्डित धन्नालालजीने विरोध किया और कहा कि जैनशास्त्र छपानेका काम महासभाके उद्देश्यके विरुद्ध है और इसलिए यह प्रस्ताव गिरा दिया गया। ३ घण्टेमें कुल छः प्रस्तावोंका निर्णय हुआ—इनमें दो प्रस्ताव कुछ सज्जनोंकी मृत्युपर शोक और कुटुम्बसे सहानुभूति-सम्बन्धी थे, शेष चार प्रस्ताव स्वदेशी वस्तु व्यवहार, धवलत्रयकी प्रतिलिपि, संयुक्त प्रान्तीय सभा और महाविद्यालय कमेटीसे सम्बन्ध रखते थे। ये सब प्रस्ताव रात्रिके अधिवेशनमें स्वीकृत हो गये।

२ अप्रेलको फिर सब्जेक्ट कमेटीकी बैठक बैठी और वह ८ से ११ और फिर २ से ५ बजे दिन तक हुई। पहले ही महामन्त्रीजीने प्रस्ताव उपस्थित किया कि बाबू नवलकिशोरजी वकीलको कोषाध्यक्षके पदसे पृथक् किया जाय, उनको अवकाश नहीं है और न वे हिसाब देते हैं। बाबू नवलकिशोर कोषाध्यक्ष तो हैं, परन्तु महासभाकी आमदनीका रुपया उनके पास जमा नहीं होता और न उनके पास आमदनी-खर्चका हिसाब रहता है। महासभाकी आमदनी और उसका खर्च

* जैनप्रदीपके सम्पादक महाशय लिखते हैं कि महासभाके नियम नं० ६२ के अनुसार किसी भी प्रस्तावका पेश करनेवाला सब्जेक्ट कमेटीका मेम्बर जरूर रहेगा। परन्तु अफसोस है कि कुछ मनमौजी लोगोंने इसके विरुद्ध आचरण किया और विश्वम्भरदासजी गार्गीयका नाम बिना वजह ही दूसरे दिन सब्जेक्ट कमेटीसे निकाल दिया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सब महामन्त्रीजीके अधिकारमें है और वे ही उसका हिसाब रखते हैं। बाबू नवलकिशोर कोषाध्यक्ष इस कारण कहलाते हैं कि महाविद्यालयके ध्रुवकोष सम्बन्धी रुपयोंके सरकारी प्रामिसरी नोट जो उनके पूज्यपिता श्रीमान् जैन जातिभूषण डिप्टी चम्पतरायजीके नाम थे, वे उनके देहान्त पर बाबू नवलकिशोरजीके नामपर कोषाध्यक्ष महासभाकी हैसियतसे हैं। उनका सूद सरकारी खजानेसे छठे महीने नियत दरसे दिया जाता है और नोटोंपर लिख दिया जाता है। इन नोटोंके नम्बर और सूदकी दर महासभाके कार्यालयमें है। महामन्त्री जो रुपया बाबू नवलकिशोरजीसे पाते हैं उसकी रसीद भी उनको नहीं देते। यह प्रस्ताव सब्जेक्ट कमेटीसे नामंजूर हुआ परन्तु इसके वादविवादमें कमेटीका एक घण्टेके करीब समय लग गया। जैन गजटके गत वर्षसम्बन्धी लगभग ३०००) रुपये घाटेकी पूर्ति और आगामी सुप्रबन्ध तथा योग्य सम्पादककी योजना-विषयक प्रस्तावपर बहुत विवेचन हुआ।* लाला रामस्वरूपजी कानपुर निवासीने कहा कि आगामी वर्षके वास्ते कानपुर जैनसमाज, जैनगजटके सम्पादन और खर्चेका भार अपने ऊपर लेता है। पं० धन्नालालजीने पूछा, सम्पादन कौन करेगा? कहा गया कि, पण्डित दुर्गाप्रसादजी। इसपर पं० धन्नालालजीने कहा कि पण्डित दुर्गाप्रसादजी स्वतः खड़े होकर कहें। पण्डित दुर्गाप्रसादजीने ऐसा भी किया। तब धन्नालालजीने कहा—"तुम जैनधर्मके अविरुद्ध लेख इसमें लिखोगे और जो धर्मविरुद्ध लेख अन्य समाचारपत्रोंमें प्रकाशित होंगे, उनका खण्डन करोगे।" उन्होंने यह भी स्वीकार किया। फिर कहा गया कि एक वर्ष नहीं बल्कि ३ वर्षका ठेका जैनगजटका कानपुरके भाई ले लें। इससे कानपुरके जैनसमाजका एक प्रकारसे अपमान और निरादर हुआ और वे इस विषयमें उदासीन हो गये। ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीने जैनगजट सम्पादक पं० रघुनाथदासजी सरनऊ निवासीके सुसम्पादनकी प्रशंसा की और जैनगजटको सालाना घाटा देकर भी उन्हींकी सम्पादकीमें रखनेका परामर्श दिया।* और इस घाटेकी पूर्तिके पुण्यकार्यमें कितने ही धर्मात्माओंने भाग लिया और १२५-१२५ रुपये देना स्वीकार किया। २४८००) का बजट पसन्द किया गया और हमारे यह पूछनेपर कि गत वर्ष १००) रु० जो युवराजके ऐड्रेसमें खर्च होना बतलाये गये हैं वे किस बातमें खर्च हुए; क्योंकि युवराज नहीं पधारे और ऐड्रेस नहीं दिया गया, उत्तर दिया गया कि १००) रु० एक वकीलको मानपत्र (ऐड्रेस) का मसविदा करनेके उपलक्ष्यमें दिये गये हैं। इसपर हमने कहा कि महामन्त्रीजीके इच्छानुसार हमने जो एक ऐड्रेस तय्यार करके उनके पास भेजा था, उसका क्या

० इस विवेचनमें स्वागतकारिणी सभाके उपमन्त्री बा० रूपचन्दजीने यह भी कहा कि जैनगजटके वर्तमान सम्पादक अपने कर्तव्यको नहीं। समझते और न जिम्मेदारियोंको पहचानते हैं उन्हें सम्पादकीय कर्तव्योंका ज्ञान करानेके लिए उनके ऊपर एक हेड सम्पादककी भी जरूरत है, ऐसा जैनप्रदीपके सम्पादक महाशय सूचित करते हैं।—सम्पादक।

* परन्तु ब्र० शीतलप्रसादजी जैनमित्रके गतांक नं० २१ में जैनगजटकी सम्पादकीपर अपना निम्न प्रकारसे असन्तोष प्रगट करते हैं, यह बड़ी ही विचित्र बात है। मालूम नहीं इसमें क्या रहस्य है—"शोक है कि गजटकी लेखनशैली उत्तम न होनेपर भी इसकी सम्पादकीका कोई यथोचित प्रबन्ध न किया गया जिससे यह भारी घाटा बन्द हो जाता।"—सम्पादक।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हुआ। इसका कोई उत्तर नहीं दिया गया! महासभाके परीक्षालय सम्बन्धमें बहुमत उसको कायम रखनेके विरुद्ध था। सभापति महोदय और प्रबल बहुमतकी समझमें परीक्षालयको जारी रखना व्यर्थ व्यय समझा गया! कुरीतिसम्बन्धी प्रस्ताव उपस्थित होनेपर हमने कहा कि बहुविवाहकी कुप्रथा भी इसमें जोड़ दी जाय और यह भी प्रस्ताव किया जाय कि जो व्यक्ति इन कुप्रथाओंमेंसे किसीको करे उससे पञ्चायत सम्बन्ध न रक्खे और न उसके ऐसे कार्यों में सम्मिलित हो। इसपर पं० धन्नालालजीने बहुत क्रोध प्रकट किया और कहा कि वह और उनके मित्रमण्डल ऐसे प्रस्तावका विरोध करेंगे, ऐसे प्रस्तावके होनेसे परिणाम बुरा होगा, धर्म और जातिको हानि पहुँचेगी, स्थानीय पञ्चायतीयोंको अपने अपने प्रान्तमें ऐसे विषयोंका पूर्ण अधिकार है और महासभाको उस अधिकारमें हस्तक्षेप न करना चाहिए। इसपर हमें कहना पड़ा कि यदि महासभा २५ वर्षतक भी ऐसे प्रस्तावको प्रति वर्ष पास करते करते उसपर अमल करनेके लिए पूर्णतया तय्यार नहीं है, तो ऐसे व्यर्थके शब्दाडम्बरमात्र प्रस्तावको न रखना ही अच्छा है।*

शामतक सब्जेक्ट कमेटीमें फिर भी ६ ही प्रस्ताव तैयार हुए। सब्जेक्ट कमेटीकी १२ घण्टेकी ३ बैठकोंमें कई बातें अनोखी और अपूर्व देखनेमें आईं। एक तो यह कि जब कोई बात महामन्त्रीजीके मन्तव्यसे विरुद्ध होती थी तब तो वे और उनके क्लार्क ज़ोर ज़ोरसे यह पुकारते थे कि सभापति महोदयकी स्वीकारता लिए बिना कोई न बोले, बल्कि कभी कभी तो वे यह भी कह देते थे कि लिखितपत्र भेजकर और लिखित स्वीकारता लेकर बोला जाय, किन्तु महामन्त्रीजी और उनके क्लार्क, पं० धन्नालालजी, पं० वंशीधरजी, और कुछ और व्यक्ति कभी भी सभापतिकी अनुमति या इजाज़त लेकर नहीं बोलते थे बलिक सभापति महोदयके मना करने और प्रार्थना करनेपर भी चुप नहीं होते थे। दूसरी बात यह कि, सिवाय जैनगज़टकी सम्पादकीके प्रस्तावके और किसी भी प्रस्तावपर बहुमतसे निर्णय नहीं किया गया, बल्कि बहुमतसे निर्णय किये जानेके लिए बारम्बार प्रार्थना होनेपर भी सभापति महोदय मुसकराकर यह कह देते थे कि बहुमत तो प्रकट ही है, किन्तु बहुमतसे निर्णय करना मुझको अभीष्ट नहीं है! और जैनगज़टकी सम्पादकीके प्रस्तावके समय दोपहर हो जानेसे और पण्डित दुर्गाप्रसाद तथा अलकापुर निवासी महानुभावोंके प्रति इस विषयमें योग्य व्यवहार न होनेसे बहुत लोग उठ गये थे, पण्डित धन्नालालजीके कमरेके लोग समीप ही थे, और बहुमत उस समय स्पष्टतया कानपुरवालोंके विरुद्ध था। परन्तु इस स्थितिपर कुछ ध्यान नहीं दिया गया! तीसरी बात यह कि महामन्त्रीजीने जो प्रस्ताव जिस समय चाहा, उपस्थित किया; किसी सदस्यको अपना प्रस्ताव उपस्थित करानेका अवसर नहीं दिया गया। चौथी बात, यह कहा गया था कि अनुमान २०० प्रस्ताव दफ़्तर महासभामें आये हुए हैं किन्तु उन प्रस्तावोंकी सूचीतक सदस्योंके

---

* जैनप्रदीपके सम्पादक महाशय लिखते हैं कि बहुविवाह-निषेधके सम्बन्धमें यह भी कहा गया था कि उस विषयका प्रस्ताव पहलेसे महासभामें पास हो चुका है। परन्तु फिर भी पं० धन्नालालजीके विरोध करनेपर बहुविवाहके शब्द इस प्रस्तावमें नहीं रक्खे गये, यह आश्चर्यकी बात है! बालविवाहादि सम्बन्धी प्रस्ताव भी तो कई बार पास हो चुका है।—सम्पादक।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सामने उपस्थित नहीं की गई। किसीको यह भी ज्ञात नहीं हुआ कि जैनसमाजसे अनेक प्रकार रुपया खर्च करनेकी स्वीकारता प्राप्त करनेके अतिरिक्त महासभाके इस अधिवेशनका और क्या आशय था। धवलत्रयके जीर्णोद्धारका प्रस्ताव तो मूड़विद्रीमें अभिषेकोत्सव पर दिल्लीके संघकी उपस्थितिमें पहले ही हो चुका था। प्रान्तिक सभाकी स्थापनाके वास्ते कानपुरके भाई तथा अन्य युक्त प्रान्तस्थ लोग उत्सुक ही थे। स्वदेशी वस्तु प्रचारका प्रस्ताव जिन शब्दोंमें लिखा गया। उनका प्रयोग बड़े सोच विचार और संकोचके साथ किया गया है। कुरीति निवारण प्रस्ताव केवल एक मङ्गल कामना रूप था। और पाँचवीं बात यह है कि जो आवश्यक बातें स्वागत का० स० के सभापतिके भाषणमें, अथवा महासभाके सभापति महोदयके व्याख्यानमें लिखी गई थीं, उनका कथनमात्र भी सब्जेक्ट- कमेटीमें नहीं हुआ, और साधारण व्यक्तियोंके भेजे हुए प्रस्तावोंका तो किसीको पता तक भी नहीं लगा। सभापति महोदयका बराबर यह प्रयत्न रहा, कि महासभा जिस रूपमें उनके सामने आई है उसी रूपमें कानपुरसे सही सलामत वापस चली जाय, उनके सभापतित्वमें किंचित्मात्र भी परिवर्तन न हो। और इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए उन्होंने बड़ी सहनशीलता, वचनगुप्ति, मनोगुप्ति, और विचारगुप्तिसे काम लिया और बड़ा कष्ट उठाया। इस सभा-चातुर्यताके लिए उनके सुपौत्र साहू जुगमन्दिरदासजीकी जितनी भी सराहना की जाय वह कम है; क्योंकि सभाका काम सभापतिके नामसे सदा व सर्वथा वे ही करते थे और उन्होंने ही सभापतिका भाषण पढ़कर सुनाया था।

रात्रिको महासभाका फिर अधिवेशन हुआ। जैनगज़टके घाटेका प्रस्ताव उपस्थित होनेपर हमने सखेद उसका विरोध किया और कहा कि यह प्रस्ताव स्वीकार न किया जाय और यदि स्वीकार हो तो इस शब्द परिवर्तनके साथ कि, "लिए" के स्थान में "विषय में" पढ़ा जाय और "कि घाटेके दस हिस्से" आदि शब्दोंके स्थानमें "कि जैन गज़टमें केवल महासभाके कार्योंकी रिपोर्टें छपा करें, महीनेमें एक दफ़ा निकाला जाय, कोई विवादग्रस्त विषय उसमें न हो, और जो रुपया इस खातेमें बचे, उससे छोटी छोटी पुस्तकें जैनधर्मकी सिद्धान्त-निरूपक छापी जायँ, और लागतके दामपर बेची जायँ।" ऐसा करनेसे घाटेका नाम उड़ जायगा। यह ध्यान रखना चाहिए कि जैन समाजमें और कोई भी ऐसा पत्र नहीं है जिसमें इतना घाटा होता हो और जिसके घाटेका पचड़ा सभामें पेश होकर उसके वास्ते जनतासे चन्दा लिया जाता हो। हमारे इस संशोधनका विरोध पं० धन्नालालजी, पं० वंशीधर जी और कुछ अन्य महाशयोंने किया। और इसलिए यह सातवाँ प्रस्ताव ज्योंका त्यों स्वीकृत हुआ। प्रस्ताव नं० ६ में परीक्षालयके सम्बन्धमें यद्यपि सभापति महोदय और जैन जनता चाहती थी कि यह व्यर्थ व्ययका खाता बन्द किया जाय और माणिकचन्द दि० जैन परीक्षालय मुम्बईसे ही परीक्षा लिवाई जाय, किन्तु इस खातेके खर्चका अधिकार भी महामन्त्रीजीके हाथमें ही रहा, लखनऊका न्योता स्वीकार न होनेमें भी पं० धन्नालालजी, पं० वंशीधरजी और कुछ अन्य लोगोंने हर प्रकार बाधा डाली, किन्तु अवध प्रान्तके मुखिया भाइयोंके धर्मप्रेम, और जातिहितैषिताके प्रवाहवश महासभाको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उनका न्योता स्वीकार करना ही उचित जान पड़ा।

कानपुरकी स्वागतकारिणी समितिकी सेवा और अतिथि-सत्कारकी जितनी सराहना की जाय, थोड़ी है। उनका प्रबन्ध ऐसा था जैसा अबतक महासभाके किसी भी अधिवेशनमें न हुआ होगा। इतना बड़ा विशाल बगीचा, इतना विशाल भवन (जिसमें श्री देवाधिदेवकी प्रतिमा विराजमान थी), इतना साफ़ सुथरा नये कपड़ेका बना हुआ विशाल सभामण्डप, रथयात्राका ऐसा स्वच्छ दृश्य, सेवासमितिका रात्रि भर "वन्देमातरम" की पुकारपर पहरा, इतने अच्छे और सुखप्रद डेरे, मकान, धर्मशाला आदि सबका प्रबन्ध ऐसा था कि इतनी सब उत्तमोत्तम बातोंका समुदाय इस अधिवेशनसे पहले शायद ही कहीं हुआ हो।

महासभाकी शेष कार्यवाही तो और समाचारपत्रोंमें प्रकाशित होगी और हो रही है, किन्तु यह कच्चा चिट्ठा जैनहितैषीके वास्ते उसके सम्पादककी प्रार्थनापर लिखा गया है।

लखनऊ १८-४-२१

भगवत्कुन्दकुन्द और श्रुतसागर।

[माणिकचन्द जैन-ग्रन्थ-मालाका १७ वाँ ग्रन्थ 'षट्प्राभृतादि संग्रह' हालमें ही प्रकाशित हुआ है। उसमें कुन्दकुन्द स्वामीके षट्प्राभृत, रयणसार, बारह अनुवेक्खा, लिंगप्राभृत और शीलप्राभृत ये पाँच ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। इनमेंसे पहला श्रीश्रुतसागराचार्यकृत संस्कृत टीका सहित और शेष सब संस्कृतच्छाया सहित हैं। इस ग्रन्थकी भूमिकामें भगवत्कुन्दकुन्द और श्रुतसागरका जो परिचय दिया गया है, उसे हम उपयोगी समझकर यहाँ उद्धृत किये देते हैं।

—सम्पादक]

भगवत्कुन्दकुन्द।

दिगम्बर-जैन-सम्प्रदायमें आचार्य कुन्दकुन्द सबसे प्रसिद्ध और सबसे अधिक पूज्य आचार्य गिने जाते हैं। पिछले अधिकांश आचार्योंने आपको उन्हींके अन्वय या आम्नायका बतलाया है। उनकी रचना जैनसाहित्य भरमें अपनी तुलना नहीं रखती।

अबसे लगभग ६ वर्ष पहले हम उनके सम्बन्धमें एक विस्तृत लेख प्रकाशित कर चुके हैं।* वे द्रविड़ देशके 'कोण्डकुण्ड' नामक स्थानके रहनेवाले थे और इस कारण 'कोण्डकुण्ड' नामसे प्रसिद्ध थे। 'कोण्डकुण्ड' का ही श्रुतिमधुर संस्कृतरूप 'कुन्दकुन्द' हो गया है। 'एलाचार्य'के नामसे भी ये प्रसिद्ध थे। तामिल भाषाके सुप्रसिद्ध महाकाव्य 'कुरल' के विषयमें महाराजा कालेज विजयानगरमके इतिहासाध्यापक श्रीयुत एम० ए० रामस्वामी आयंगरने लिखा है कि "जैनियोंके मतसे उक्त ग्रन्थ 'एलाचार्य' नामक जैनाचार्यकी रचना है और तामिल काव्य 'नीलकेशी' के टीकाकार समयदिवाकर नामक जैनमुनि कुरलको अपना पूज्य ग्रन्थ बतलाते हैं"।* इससे आश्चर्य नहीं कि कुरलके रचयिता भगवत्कुन्दकुन्द ही हों। कहते हैं, एलाचार्यने इसे रचकर अपने एक शिष्यको इसलिए दे दिया था कि वह मदुराके कविसङ्घमें जाकर पेश करे।

नन्दिसङ्घकी गुर्वावलीमें लिखा है कि भगवत्कुन्दकुन्दको वि० संवत् ४९ में आचार्यपद मिला और १०१ में उनका

* देखो जैनहितैषी भाग १०, अंक ६-७।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वर्गवास हुआ। तामिल देशके विद्वानोंने कुरल काव्यका रचना-काल भी ईसाकी पहली शताब्दि निश्चित किया है। यदि सचमुच ही वह इन्हीं एलाचार्यका बनाया हुआ है, तो पट्टावलीके समयके साथ उसका रचनाकाल मिल जाता है।

हमने अपने पूर्वोल्लिखित लेखमें भगवत्कुन्दकुन्दका समय विक्रमकी तीसरी शताब्दि निश्चित किया था।

उसके बाद जैनसिद्धान्त-प्रकाशिनी संस्थाद्वारा प्रकाशित 'समयप्राभृत' की भूमिकामें दक्षिणके सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ प्रो० के० बी० पाठकका यह मत प्रकाशित हुआ है कि कुन्दकुन्दाचार्य वि० संवत् ५८५ के लगभग हुए हैं। अपने मतकी पुष्टिमें उन्होंने लिखा है कि जिस समय राष्ट्रकूट-वंशीय राजा तृतीय गोविन्द राज्य करता था उस समय, शक संवत् ७२४ का लिखा हुआ एक ताम्रपत्र मिला है। उसमें निम्नलिखित पद दिये हुए हैं:—

कोण्डकोन्दान्वयोदारो गणोऽभूद्भुवनस्तुतः।
तदैतद्विषयविख्यातं शाल्मलीग्राममावसन् ॥
आसीद(?)तोरणाचार्यस्तपःफलपरिग्रहः।
तत्रोपशमसंभूतभावनापास्तकल्मषः ॥
पण्डितः पुष्पनन्दीति बभूव भुवि विश्रुतः।
अंतेवासी मुनेस्तस्य सकलश्चन्द्रमा इव ॥
प्रतिदिवसभवद्वृद्धिनिरस्त-
दोषो व्यपेतहृदयमलः।
परिभूतचन्द्रबिम्बस्तच्छिष्योऽभूत्प्रभाचन्द्रः॥

उक्त तृतीय गोविन्द महाराजके ही समयका शक संवत् ७१९ का एक और ताम्रपत्र मिला है, जिसमें नीचे लिखे पद्य हैं:—

आसीद (?) तोरणाचार्यः
कोण्डकुन्दान्वयोद्भव।
स चैतद्विषये श्रीमान्
शाल्मलीग्रामसमाश्रितः॥
निराकृततमोऽरातिः
स्थापयन् सत्पथे जनान्।
स्वतेजोद्योतितक्षौणि-
श्चण्डार्चिरिव यो बभौ॥
तस्याभूत्पुष्पनन्दी तु
शिष्यो विद्वान्गणाग्रणीः।
तच्छिष्यश्च प्रभाचन्द्रस्तस्येयं
वसतिः कृता॥

इन दोनों लेखोंका अभिप्राय यह है कि कोण्डकोन्दान्वयके तोरणाचार्य नामके मुनि इस देशमें शाल्मली नामक ग्राममें आकर रहे। उनके शिष्य पुष्पनन्दि और पुष्पनन्दिके शिष्य प्रभाचन्द्र हुए।

पाठक महोदयका कथन है कि पिछला ताम्रपत्र जब शक संवत् ७१९ का है तो प्रभाचन्द्रके दादा-गुरु तोरणाचार्य शक संवत् ६०० के लगभग रहे होंगे और तोरणाचार्य कुन्दकुन्दान्वयमें हुए हैं—अतएव कुन्दकुन्दका समय उनसे १५० वर्ष पूर्व अर्थात् शक संवत् ४५० के लगभग मान लेनेमें कोई हानि नहीं है।

चालुक्यवंशी कीर्तिवर्म महाराजने बादामी नगरमें शक संवत् ५०० में प्राचीन कदम्बवंशका नाश किया था और इसलिए इससे लगभग ५० वर्ष पूर्व कदम्बवंशी महाराज शिवमृगेशवर्म राज्य करते थे, ऐसा निश्चित होता है। पंचास्तिकायके कनडी-टीकाकार बालचन्द्र और संस्कृत-टीकाकार जयसेनाचार्यने लिखा है कि यह ग्रन्थ आचार्य कुन्दकुन्दने शिवकुमार महाराजके प्रतिबोधके लिए रचा था और ये शिवकुमार शिवमृगेशवर्म ही जान पड़ते हैं। अतएव भगवत्कुन्दकुन्दका समय शक संवत् ४५० (वि० ५८५) ही सिद्ध होता है।

* देखो जैनहितैषी भाग १५ अंक १–२।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परन्तु हमारी समझमें भगवत्कुन्दकुन्द इतने पीछेके आचार्य नहीं हैं । जब तक शिवकुमार और शिवमृगेशवर्माके एक होनेके एक दो पुष्ट प्रमाण न दिये जायँ तब तक इस समयको ठीक मान लेनेकी इच्छा नहीं होती। तोरणाचार्य कुन्दकुन्दके अन्वयमें थे, अतएव यह नहीं कहा जा सकता कि वे उनके १५० वर्ष बाद ही हुए होंगे। तीन सौ चार सौ वर्ष या इससे भी अधिक पहले हो सकते हैं ।

इस भूमिकाका कम्पोज हो चुकनेपर हमें मालूम हुआ कि पंचास्तिकायके अङ्गरेजी टीकाकार प्रो० ए० चक्रवर्ती नायनार एम० ए०, एल० टी० ने भगवत्कुन्दकुन्दके समयके सम्बन्धमें एक विस्तृत लेख लिखा है । उसमें उन्होंने प्रो० पाठकके मतका विरोध करते हुए यह सिद्ध किया है कि शिवकुमार महाराज कदम्बवंशी शिवमृगेशवर्मा नहीं, किन्तु पल्लववंशी शिवस्कन्दवर्मा होने चाहिएँ। स्कन्द, कुमार और कार्तिकेय षड़ाननके नामान्तर हैं। अतएव शिवस्कन्द और शिवकुमार दोनों निस्सन्देह एक हो सकते हैं। पल्लववंशी राजाओंकी राजधानी काञ्चीपुर या वर्तमान काँजीवरम् थी। विद्या और कलाओंके लिए यह स्थान बहुत ही प्रसिद्ध था। दूर दूरके विद्वान् और कवि यहाँके दरबारमें आते थे। धार्मिक वादविवाद भी वहाँ होते थे। पल्लव राजा जैनी या जैनधर्मके आश्रयदाता थे, इसके भी प्रमाण मिलते हैं। उनकी दरबारी भाषा भी शायद प्राकृत थी। 'मायिड़ावोली' नामका सुप्रसिद्ध ग्रन्थ उसी समयका बना हुआ है और प्राकृतमें है। आचार्य कुन्दकुन्द द्रविड देशके थे, इसके अनेक प्रमाण हैं। अतएव उनका शिष्य शिवकुमार वही शिवस्कन्दवर्मा होगा और उसका अवस्थिति-काल विक्रमकी प्रथम शताब्दि है।

श्रीश्रुतिसागरसूरि ।

षट्प्राभृत या षट्पाहुड़के टीकाकार आचार्य श्रुतसागर बहुश्रुत विद्वान् थे। इस टीकासे और यशस्तिलक-चन्द्रिका-टीकासे मालूम होता है कि वे कलिकाल-सर्वज्ञ, कलिकाल गौतमस्वामी, उभय-भाषाकविचक्रवर्ती आदि महती पदवियों-से अलंकृत थे। उन्होंने 'नवनवति' (९९) महावादियोंको पराजित किया था !

वे मूलसंघ, सरस्वतीगच्छ और बलात्कारगणके आचार्य और विद्यानन्दि भट्टारकके शिष्य थे। उनकी गुरुपरम्परा इस प्रकार थी—पद्मनन्दि—देवेन्द्रकीर्ति-विद्यानन्दि ।

परन्तु विद्यानन्दि भट्टारकके पट्टपर, जान पड़ता है, उनकी स्थापना नहीं हुई थी। क्योंकि विद्यानन्दिके बादकी गुरुपरम्परा इस प्रकार मिलती है—विद्यानन्दि—मल्लिभूषण—लक्ष्मीचन्द्र ।

स्वर्गीय दानवीर सेठ माणिकचन्दजीके ग्रन्थभण्डारमें पं० आशाधरके महाभिषेक नामक ग्रन्थकी टीका है। उसके अन्तमें इस प्रकार लिखा है:—

"श्रीविद्यानन्दिगुरोर्बुद्धिगुरोः
पादपंकजभ्रमरः ।
श्रीश्रुतसागर इति देशव्रती
तिलकष्टीकते स्मेदं ॥
इति ब्रह्मश्रीश्रुतसागरकृता
महाभिषेकटीका समाप्ता ॥
श्रीरस्तु लेखकपाठकयोः ॥
शुभं भवतु ॥ श्री ॥

संवत् १५८२ वर्षे चैत्रमासे शुक्लपक्षे पंचम्यां तिथौ रवौ श्रीआदिजिन चैत्यालये श्रीमूलसंघे सरस्वतीगच्छे बलात्कार-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गणे श्रीकुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारकश्रीपद्मनन्दिदेवास्तत्पट्टे भट्टारकश्रीदेवेन्द्रकीर्तिदेवास्तत्पट्टे भट्टारकश्रीविद्यानन्दिदेवास्तपट्टे भट्टारकश्रीमल्लिभूषणदेवास्तपट्टे भट्टारकश्रीलक्ष्मीचन्द्रदेवास्तेषां शिष्यवरब्रह्मश्रीज्ञानसागरपठनार्थं ॥ आर्या श्रीविमलश्री चेली भट्टारक श्रीलक्ष्मीचन्द्रदीक्षिता विनयश्रिया स्वयं लिखित्वा प्रदत्तं महाभिषेकभाष्यं ॥ शुभं भवतु ॥ कल्याणं भूयात् ॥ श्रीरस्तु ॥

इससे मालूम होता है कि विद्यानन्दिके पट्टपर मल्लिषेणकी और उनके पट्टपर लक्ष्मीचन्द्रकी स्थापना हुई थी। यशस्तिलकटीकामें श्रुतसागरने मल्लिभूषणको अपना गुरुभ्राता लिखा है। इससे भी मालूम होता है कि विद्यानन्दिके उत्तराधिकारी मल्लिभूषण ही हुए होंगे। यशस्तिलकचन्द्रिका टीकाके तीसरे आश्वासके अन्तमें लिखा है—

इतिश्रीपद्मनन्दिदेवेन्द्रकीर्तिविद्यानन्दिमल्लिभूषणाम्नायेन भट्टारकश्रीमल्लिभूषणगुरुपरमाभीष्टगुरुभ्रात्रा गुर्जरदेशसिंहासनभट्टारकश्रीलक्ष्मीचन्द्रकाभिमतेन मालवदेशभट्टारकश्रीसिंहनंदिप्रार्थनया यतिश्रीसिद्धान्तसागरव्याख्याकृतिनिमित्तं नवनवतिमहामहावादिस्याद्वादलब्धविजयेन तर्कव्याकरणछन्दोऽलंकारसिद्धान्तसाहित्यादिशास्त्रनिपुणमतिना प्राकृतव्याकरणाद्यनेकशास्त्रचञ्चुना सूरिश्रीश्रुतसागरेण विरचितायां यशस्तिलचन्द्रिकाभिधानायां यशोधरमहाराजचरितचम्पुमहाकाव्यटीकायां यशोधरमहाराजराजलक्ष्मीविनोदवर्णनं नाम तृतीयाश्वासचन्द्रिका परिसमाप्ता।"

इससे मालूम होता है कि उस समय गुर्जर देशके पट्टपर भट्टारक लक्ष्मीचन्द्र स्थित थे और मल्लिभूषणका शायद स्वर्गवास हो चुका था।

(अपूर्ण।)

विविध विषय।

१—अधिवेशन सफल हुआ या असफल।

भारतवर्षीय दि० जैन महासभाके जिस अधिवेशनकी अर्सेसे बड़ी धूम थी और बहुत शोर था वह कानपुरमें गत १, २, ३ अप्रेल को हो गया। इस अधिवेशनकी जो रिपोर्ट जैनगजट, जैनमित्र और जैनप्रदीप आदि पत्रोंमें प्रकाशित हुई हैं, उन्हें हमने साद्यंत पढ़ा है और बाबू अजितप्रसादजी वकील, लखनऊका लिखा हुआ कच्चा चिट्ठा इस अङ्कमें अन्यत्र प्रकाशित ही है। इसमें सन्देह नहीं कि महासभाके सभापति श्रीमान् साहु सलेखचन्दजी और स्वागतकारिणी सभाके सभापति लाला रामस्वरूपजीके व्याख्यान समयानुकूल बहुत कुछ अच्छे हुए और उनमें कितनी ही बातें बड़े महत्वकी और कामकी कही गई थीं। परन्तु महासभामें उनपर विचार होकर किसी प्रस्तावका पास होना तो दूर रहा, वे सब्जेक्ट कमेटीमें प्रायः उठाईतक भी नहीं गईं और इसलिए ऐसी कामकी बातें महासभाके इस अधिवेशनमें एक प्रकारसे ऊँटका पाद ही रहीं! महासभाके जिस सङ्गठनकी अर्सेसे शिकायत चली जाती है, जिसके सम्बन्धमें जैनसिद्धान्तविद्यालय मुरैनाकी कमेटीने, महासभाके पत्रोंपर, अपना यह निश्चय प्रकट किया कि "महासभाका जबतक योग्य सङ्गठन न हो जाय तबतक उसकी अधीनता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करना उचित नहीं है,*" और जो संगठन ही उन्नति अवनतिका मूल होता है, उसपर भी कुछ ध्यान नहीं दिया गया और न उसकी महासभामें चर्चा ही उठाई गई। जैनमित्रसे मालूम होता है कि महासभामें अनेक प्रान्तोंकी उपस्थित जनता चार हज़ारसे ऊपर थी, और यह सब इसके अन्दोलनका फल है। परन्तु फण्डके लिए अपील किये जानेपर मुश-किलसे पन्द्रह सौ या सोलह सौ रुपये-से† अधिकका चन्दा नहीं हो सका, जिसमें एक हज़ार रुपये केवल सभापति साहबके दिये हुए हैं। बाकी पाँच सौ छः सौ रुपये शेष जनतासे बहुत कुछ कोशिश और प्रेरणाके साथ वसूल किये गये! इस चन्देमें चार आनेका हिस्सा दूसरी चार संस्थाओंका भी था और इसलिए महासभाको अपनी इस अपीलसे ज्यादासे ज्यादा बारह सौ रुपयेकी ही प्राप्ति हुई है। इतनी भारी जनता और ऐसे ऐसे प्रतिष्ठित श्रीमानोंकी उपस्थितिमें एक भारतवर्षीय जैसी संस्थाको उसके धनिक-समाजसे इतनी तुच्छ रकमका प्राप्त होना, निःसन्देह, बहुत ही खटकता है; और इससे पाठक इस बातका बहुत कुछ अनुभव कर सकते हैं कि महासभाके ऊपर समाजकी कितनी श्रद्धा और भक्ति है और उसे समाजपर अपना प्रभुत्व स्थापित करने—प्रभाव जमाने और उसके हृदयको अपने काबूमें लानेके लिए कितनी अधिक योग्यता और सुसङ्गठनकी ज़रूरत है। सभापति महोदयने ठीक ही कहा है कि 'महासभाके नामके अनुसार उसकी व्यापकता नहीं है और इसलिए यह नाम मात्रकी ही महासभा बनी हुई है।' अस्तु, इस चन्देका उल्लेख करते हुए ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद जी, जैनमित्र अंक २१ में लिखते हैं कि—"सभाके कार्योंमें किसी महाशय द्वारा कठोर भाषण होनेके कारण दिलोंमें उत्साहकी कमी हो गई जिससे भी चन्दा बहुत कम हुआ।" और एक दूसरे स्थानपर आप यह भी सूचित करते हैं कि—"यदि महासभामें पधारे हुए पण्डित और बाबूदलमें पूर्ण विश्वास होता तो कई महत्वके काम हो जाते। पर अन्ध अविश्वासने बहुत सी बातोंका सुधार होते होते रोक दिया।" लाला ज्योतिप्रसादजी अपने 'जैनप्रदीप' में, पण्डितोंकी धींगाधींगी* और उनके अशिष्ट तथा कषायपूर्ण व्यवहारका बहुत कुछ उल्लेख करते हुए लिखते हैं कि—"अगर दरअसल यह प्रदर्शिनी न खोली जाती तो महासभाकी धींगाधागी और नाकामयाबीको देखकर आनेवाले भाइयों-को बहुत कुछ पश्चात्ताप करना पड़ता।" और बाबू अजितप्रसादजी वकील अपने कच्चे चिट्ठेमें यह लिखते ही हैं कि—"किसीको यह भी ज्ञात नहीं हुआ कि जैनसमाजसे अनेक प्रकार रुपया ख़र्च करनेकी स्वीकारता प्राप्त करनेके अति-रिक्त महासभाके इस अधिवेशनका और क्या आशय था।"

इन सब बातोंसे पाठक स्वयं समझ सकते हैं कि महासभाका यह अधिवेशन सफल हुआ या असफल। महासभाके प्रस्तावोंकी सूची देखनेसे मालूम होता है कि इस साल उसके द्वारा कोई भी ख़ास महत्वका प्रस्ताव पास नहीं हुआ। हमारी रायमें महासभाको यदि कुछ सफलता

* देखो जैनमित्र अंक २१ पृ० ३१८।

† जैनगजट पन्द्रह सौ और जैनमित्र सोलह सौ लिखता है।

* "जैनसमाजके ऊपर पण्डितोंकी धींगाधींगीका हाल बखूबी रोशन हो गया और उनकी मनमानी कार्र-वाइयोंका खूबही भण्डार फूट निकला।"

—जैनप्रदीप।

Ganesh Varni.Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राप्त हुई है तो वह इतनी ही है कि महासभा जिस रूपमें कानपुर आई थी वह उसी रूपमें सहीसलामत वहाँसे वापस चली गई उसमें कुछ परिवर्तन होने नहीं पाया और न सूरतकी काँग्रेस जैसा दृश्य ही उपस्थित हुआ। महासभाके इस अधिवेशनका जैसा कुछ शोर था, लोगोंकी जैसी कुछ आशाएँ इसपर लगी हुई थीं और इसका जैसा कुछ परिणाम निकला है, उसे देखते हुए कविका यह वाक्य याद आये बिना नहीं रहता कि—

"बहुत शोर सुनते थे पहलूमें दिलका।
जो चीरा तो एक क़तरए† खून निकला॥"

महासभा यदि जीना चाहती है और अच्छी तरहसे जीना चाहती है तो उसे देशकालानुसार कुछ उदार बनकर अपनी हालतको सुधारना और अपने सङ्गठनको ठीक बनाना चाहिए। नहीं तो भविष्यमें उसे और भी अधिक अधिक असफलताओंका सामना करना पड़ेगा।

२—महिला परिषद्।

इस परिषद्का वार्षिक अधिवेशन भी महासभाके अवसर पर कानपुरमें ता० २, ३ अप्रेलको हो गया। परिषद्के सभापतिका आसन श्रीमती पंडिता चन्दाबाईजी आराने ग्रहण किया था। आपके छपे हुए भाषणकी एक कापी हमें प्राप्त हुई है जिसके देखनेसे मालूम हुआ कि भाषण अच्छा हुआ है और उसमें समयानुकूल कितनी ही बातें स्त्रीजातिके लिए अच्छी कही गई हैं। ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी सूचित करते हैं कि इस परिषद्ने कन्या महाविद्यालय और महिला उदासीन मन्दिरके स्थापना-सम्बन्धी दो उपयोगी प्रस्ताव पास किये हैं। अपील होने पर परिषद्के फण्डमें १५०८॥) की और श्राविकाश्रम बम्बईके फण्डमें २२६१ रुपये की आमदनी हुई। श्राविकाश्रमके ध्रौव्य फण्डमें श्रीमती पण्डिता चन्दाबाई ने १००१) और श्रीमती कंकुबाई शोलापुरने १००१) रुपये प्रदान किये। जैनस्त्री समाजके इस बढ़ते हुए उत्साहको देखकर हमें बहुत प्रसन्नता होती है और हम इसके भावी उत्कर्षके लिए हृदयसे भावना करते हैं। हमारी रायमें स्त्रीजाति स्वावलम्बनके द्वारा ही अपना उद्धार कर सकेगी और उसके उद्धारपर ही देश, धर्म तथा समाजका उद्धार निर्भर है।

३–जैनहितैषीसे प्रेम।

कोल्हापुरके एक पण्डित महाशय जैनहितैषीसे बड़ा प्रेम रखते हैं। हालमें आपने इस पत्रके सहायतार्थ ३० रुपये भेजे हैं और इस तरहपर अपने प्रेमका विशेष परिचय दिया है। हम आपकी इस उदारता और गुणग्राहकताका हृदयसे अभिनन्दन करते हैं।

४–आश्चर्यकी बात।

हमारे पाठकोंको यह जानकर आश्चर्य होगा कि समाजमें सत्योदय, जातिप्रबोधक और जैनहितैषीके बहिष्कारकी जो चर्चा चल रही थी वह कानपुरमें जाकर कुछ शान्त हो गई है। यद्यपि महासभाके सभापति श्रीमान् लाडुमलेखचन्द्रजीने जैनहितैषीको बहिष्कारके योग्य न बतलाकर सिर्फ दो पत्रोंको ही बहिष्कारके योग्य बतलाया था और शास्त्र-परिषद्के सभापति पं० लालारामने तीनोंके ही बहिष्कारकी प्रेरणा की थी, परन्तु बहिष्कारकी ये सब बातें सभापतियोंके भाषणों तक ही रहीं और वह भी शायद किसी खास गरजसे। महासभाकी सब्जेक्ट कमेटीमें इस विषयकी चर्चा नहीं उठाई गई और न महासभा तथा शास्त्र-परिषद्के द्वारा इन पत्रोंके विरुद्ध कोई

† बूँद (बिन्दु)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रस्ताव ही पास किया गया। कलकत्तेके षड्यन्त्रको देखते हुए और उसी वक्तसे महासभाके द्वारा भी उक्त प्रकारके प्रस्ताव-को पास करानेके इरादोंको सुनते हुए, यह कभी आशा नहीं होती थी कि महा-सभाकी सब्जेक्ट्स कमेटीमें जहाँ शास्त्रि-मण्डलका पूरा ज़ोर था, इन पत्रोंके बहि-ष्कारकी चर्चा तक न उठेगी और खास-कर शास्त्रिपरिषद्के द्वारा इनके बहि-ष्कारका कोई प्रस्ताव भी पास न किया जायगा और इसलिए ऐसा होना निःस-न्देह एक आश्चर्यकी बात ज़रूर है। अवश्य ही इसमें कोई गुप्त रहस्य है। शायद यही सोचा गया हो कि जब बहि-ष्कारके विधाता पण्डित लोग ही इन पत्रोंको पढ़ने, इनसे लाभ उठाने और इनके लेखों पर विचार प्रकट करनेकी अपनी प्रबल इच्छाओंका संवरण नहीं कर सकते और न स्वयं अपने विषयमें प्रामाणिक रह सकते हैं—उन्हें वास्तवमें बहिष्कार स्वीकार ही नहीं—तब परोपदेश कुशल बनकर दूसरोंको उनके पढ़नेसे रोकनेका उन्हें अधिकार ही क्या है और दूसरे लोग एक तरफ लेखोंको माननेके लिए बाध्य भी कैसे किये जा सकते हैं। सच है ऐसे लोगोंके वचनोंका जनतापर कोई असर नहीं होता जो अपने कथनपर स्वयं ही अमल न करते हों।

५—समाजका दुर्भाग्य।

अभी कुमार देवेंद्रप्रसादजीके वियोग-से हृदय संतप्त ही हो रहा था और शोकाश्रु सूखने भी नहीं पाये थे कि आज हम दूसरा हृदयविदारक दुःसमाचार सुन रहे हैं! हमें दुःख और शोकके साथ लिखना पड़ता है कि आज श्रीऋषभ-ब्रह्मचर्याश्रमके संस्थापक, उसके लिए अपना तन, मन, धन अर्पण करनेवाले और उसके बच्चोंको माताकी तरह प्रेमसे पालनेवाले, समाजके निःस्वार्थ सेवक और उस सेवाके लिए अपनी नौकरीको भी छोड़ देनेवाले वीर पुरुष ला० गेंदन-लालजी आज इस संसारमें नहीं हैं!! आप कुछ अर्सेसे श्रीसम्मेद शिखरजी गये हुए थे और वहाँ भीलोंसे मद्यादिक छुड़ाकर उन्हें सन्मार्गमें लगा रहे थे। सुनते हैं कि आपने कई हजार भीलोंको ठीक किया था और आप उनकी स्त्रियों-में चर्खेका प्रचार कराकर उनके जीवन-को सुधारना चाहते थे। इस सेवा-कार्य-को करते हुए रोगपीड़ित हो जानेके कारण आप वहाँसे वापस लौट रहे थे। रास्तेमें आपकी तबियत कुछ ज्यादा खराब मालूम हुई और इसलिए आप रायबरेली उतर गये जहाँ कि आपकी लड़की मौजूद थी। वहीं पर गत १६ अप्रैलको आपका शरीर एकाएक छूट गया! आपके हृदयमें जातिसेवाका बड़ा प्रेम था और आप बड़े ही परोपकारी और उत्साही पुरुष थे। ऐसे परोपकारी और उत्साही पुरुषका एकाएक समाजसे उठ जाना निःसन्देह समाजका बड़ा ही दुर्भाग्य है! मृत्युके समय आपके दोनों पुत्रोंमेंसे कोई भी पास नहीं था। एक पुत्र बाबू दीपचन्दजी बी० ए० सहारन-पुरमें वकालत करते हैं और दूसरे पुत्र बड़ोदाके कलाभवनमें शिक्षा पा रहे हैं। हम आपके कुटुम्बीजनोंके इस दुःखमें समवेदना प्रकट करते हुए हृदयसे इस बातकी भावना करते हैं कि ला० गेंदन-लालजीकी आत्माको सद्गतिकी प्राप्ति हो।

पुस्तक-परिचय।

जैनदर्शन—मूल लेखक श्वे० मुनि श्रीन्यायविजयजी। अनुवादक, कृष्णलाल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्मा। प्रकाशक, श्रीजैन सरस्वती भवन, अहमदाबाद। पृष्ठ-संख्या १४० के करीब। मूल्य, दस आने।

यह इस नामकी गुजराती पुस्तकका हिन्दी अनुवाद है। मूल पुस्तक भी इस समय हमारे सामने मौजूद है। उसे श्री-यशोविजय जैनग्रन्थमालाके व्यवस्थापक मण्डलने भावनगरसे प्रकाशित किया है। मूल्य पुस्तक पर लिखा नहीं। हाँ, उसकी एक हजार प्रतियाँ दोसी त्रिभुवनदास ताराचन्दकी ओरसे बिना मूल्य वितरण की गई हैं।

इस पुस्तकमें जीवादि नवपदार्थ, पंचास्तिकाय, षड्द्रव्य, सम्यग्दर्शनादि-मोक्षमार्ग, गुणस्थान, अध्यात्म, जैनआचार, न्यायपरिभाषा, स्याद्वाद, सप्तभंगी, नय और जैन दृष्टिकी उदारता, इतने विषयोंका सामान्य रूपसे संक्षिप्त परिचय दिया गया है। पुस्तक आम तौरपर अच्छी और उपयोगी है। इसके 'जैनआचार' प्रकरणमें अजैन ग्रन्थोंसे जो तुलनात्मक वाक्य दिये हैं, उनसे पुस्तककी उपयोगिता अनेक अंशोंमें बढ़ गई है। परन्तु ऐसे कितने ही वाक्योंके सम्बन्धमें यह त्रुटि भी पाई जाती है कि पुस्तकमें उनका पूरा पता नहीं दिया। यह नहीं लिखा कि वे उल्लिखित ग्रन्थके कौनसे अध्यायमें और किस पद्य नम्बर पर स्थित हैं। अच्छा होता, यदि ऐसा कर दिया जाता। हमारी रायमें अब भी मुनि न्यायविजयजीको ऐसे श्लोकोंके पूरे पतेका एक परिशिष्ट पुस्तकमें लगा देना चाहिए और या दूसरे संस्करणमें ऐसे पद्योंके नीचे ही उनका पूरा पता दे देना चाहिए। जल छानकर पीनेके सम्बन्धमें जो श्लोक उत्तरमीमांसा और महाभारतके नामसे, बिना पतेके, उद्धृत किये गये हैं उनमेंसे महाभारतवाले श्लोक इस प्रकार हैं—

"विंशत्यंगुलमानंतु त्रिंशदंगुलमायतम्।
तद्वस्त्रं द्विगुणीकृत्य गालयित्वा पिबेज्जलम्॥
तस्मिन् वस्त्रे स्थितान् जीवान्स्थापयेज्जलमध्यतः।
एवं कृत्वा पिबेत्तोयं स याति परमां गतिम्॥

इन श्लोकोंमें यह बतलाया है कि "२० अंगुल चौड़े और ३० अंगुल लम्बे वस्त्रको दोहरा करके उसमें पानी छानकर पीना चाहिए और उस वस्त्रमें स्थित जीवोंको जलमें ही स्थापित कर देना चाहिए। इस प्रकार जल छानकर जो पीता है वह उत्तम गतिको प्राप्त होता है।" यह बिलकुल जैनधर्मकी शिक्षा है और इसमें जैनियोंका अहिंसा और दयातत्त्व भरा हुआ है। मालूम नहीं, महाभारतके किस अध्याय और प्रकरणके ये श्लोक हैं। पुस्तकमें एक स्थानपर निम्न पद्य हरिभद्रसूरिके नामसे उद्धृत किया गया है—

पयो व्रतो न दध्यत्ति न पयोत्ति दधिव्रतः
अगोरसव्रतो नोभे तस्माद् वस्तु त्रयात्मकम्॥

यह पद्य वास्तवमें स्वामिसमन्तभद्रके आप्तमीमांसा ग्रन्थका है और वहाँ 'वस्तु' की जगह 'तत्वं' पद दिया हुआ है। हरिभद्रसूरिने अपने 'शास्त्रवार्तासमुच्चय' ग्रन्थमें इसे उद्धृत किया था और "अन्येत्वाहुः" इस वाक्यके द्वारा अपने ऐसा करनेको सूचित भी कर दिया था। संवत् १९६४ में, भावनगरसे हरिभद्रसूरिकृत ग्रन्थमालामें जो ग्रन्थ प्रकाशित हुआ उसमें भी 'वस्तु' की जगह 'तत्वं' पद ही दिया हुआ है। मुनि न्यायविजयजीने 'आप्तमीमांसा' को ज़रूर देखा होगा। ऐसी हालतमें उन्हें इस पद्यको उसी रूपमें स्वामी समन्तभद्र अथवा आप्तमीमांसाके नामसे ही उद्धृत करना चाहिए था। अस्तु; हिन्दी और गुजराती की दोनों पुस्तकें छपाई, सफाई तथा कागजकी दृष्टिसे भी अच्छी हैं और पढ़ने तथा संग्रह किये जानेके योग्य हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust eGangotri

भारतके प्राचीन राजवंश।

हिन्दीमें इतिहासका एक अपूर्व ग्रन्थ।

इस देशमें पहले जो अनेक वंशोंके बड़े बड़े प्रतापी, दानी और विद्याव्यसनी राजा महाराज हो गये हैं उनके सच्चे इतिहास हम लोग बिलकुल नहीं जानते। बहुतोंके विषयमें हमने तो झूठी, ऊटपटाँग किम्वदन्तियाँ सुन रक्खी हैं और बहुतोंको हम भूल ही गये हैं। इस ग्रन्थमें क्षत्रपवंश, हैहयवंश (कलचुरि) परमारवंश (जिसमें राजा भोज, मुंज, सिन्धुल आदि हुए हैं), चौहानवंश (जिसमें प्रसिद्ध महाराज पृथ्वीराज हुए हैं), सेनवंश और पाल-वंश तथा इन वंशोंकी प्रायः सभी शाखा-ओंके राजाओंका सिलसिलेवार और सच्चा इतिहास प्रमाणोंसहित संग्रह किया गया है। शिलालेखों, ताम्रपत्रों, ग्रन्थ-प्रशस्तियों, फारसी-अरबीकी तवारीखों तथा अन्य अनेक साधनोंसे बड़े ही परि-श्रमपूर्वक यह ग्रन्थ रचा गया है। प्रत्येक इतिहासप्रेमीको इसकी एक एक प्रति मँगाकर रखनी चाहिए। इसमें अनेक जैन विद्वानों तथा जैन धर्मप्रेमी राजाओंका भी उल्लेख है। लगभग ४०० पृष्ठोंका कपड़ेकी जिल्द सहित ग्रन्थ है। मूल्य ३) रु०। आगेके भागोंमें गुप्त, राष्ट्रकूट आदि वंशोंके इतिहास निकलेंगे।

नकली और असली धर्मात्मा।

श्रीयुत बाबू सूरजभानुजी वकीलका लिखा हुआ सर्वसाधारणोपयोगी सरल उपन्यास। ढोंगियोंकी बड़ी पोल खोली गई है। मूल्य ॥)

नया सूचीपत्र।

उत्तमोत्तम हिन्दी पुस्तकोंका ४२ पृष्ठोंका नया सूचीपत्र छपकर तैयार है। पुस्तक-प्रेमियोंको इसकी एक कापी मँगा कर रखनी चाहिए। मैनेजर,

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई।

उत्तमोत्तम जैन ग्रन्थ।

नीचे लिखी आलोचनात्मक पुस्तकें विचारशीलोंको अवश्य पढ़नी चाहिए। साधारण बुद्धिके गतानुगतिक लोग इन्हें न मँगावें।

१ ग्रंथपरीक्षा प्रथम भाग। इस-में कुन्दकुन्द श्रावकाचार, उमास्वाति-श्रावकाचार और जिनसेन त्रिवर्णाचार इन तीन ग्रन्थोंकी समालोचना है। अनेक प्रमाणोंसे सिद्ध किया है कि ये असली जैनग्रन्थ नहीं हैं—भेषियोंके बनाये हुए हैं। मूल्य ।=)

२ ग्रंथपरीक्षा द्वितीय भाग। यह भद्रबाहुसंहिता नामक ग्रन्थकी विस्तृत समालोचना है। इसमें बतलाया है कि यह परमपूज्य भद्रबाहु श्रुतकेवली-का बनाया हुआ ग्रन्थ नहीं है, किन्तु ग्वालियरके किसी धूर्त भट्टारकने १६-१७ वीं शताब्दिमें इस जाली ग्रन्थको उनके नामसे बनाया है और इसमें जैनधर्मके विरुद्ध सैंकड़ों बातें लिखी गई हैं। इन दोनों पुस्तकोंके लेखक श्रीयुक्त बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तार हैं। मूल्य ।)

३ दर्शनसार। आचार्य देवसेनका मूल प्राकृत ग्रन्थ, संस्कृतच्छाया, हिन्दी अनुवाद और विस्तृत विवेचना। इति-हासका एक महत्वका ग्रन्थ है। इसमें श्वेताम्बर, यापनीय, काष्ठासंघ, माथुर-संघ, द्राविड़संघ आजीवक (अज्ञानमत) और वैनेयिक आदि अनेक मतोंकी उत्पत्ति और उनका स्वरूप बतलाया गया है। बड़ी खोज और परिश्रमसे इसकी रचना हुई है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्मानुशासन।

भगवान् गुणभद्राचार्य्यका बनाया हुआ यह ग्रन्थ प्रत्येक जैनीके स्वाध्याय करने योग्य है। इसमें जैनधर्मके असली उद्देश्य शान्तिसुखकी ओर आकर्षित किया गया है। बहुत ही सुन्दर रचना है। आजकलकी शुद्ध हिन्दीमें हमने न्यायतीर्थ न्यायशास्त्री पं० वंशीधरजी शास्त्रीसे इसकी टीका लिखवाई है और मूलसहित छपवाया है। जो जैनधर्मके जाननेकी इच्छा रखते हैं, उन अजैन मित्रोंको भेंटमें देने योग्य भी यह ग्रन्थ है। मूल्य २)

षट्प्राभृतादिसंग्रह।

यह माणिकचन्द ग्रन्थमालाका १७वाँ ग्रन्थ है। इसमें आचार्य कुन्दकुन्दके ८ पाहुड़ और रयणसार, द्वादशानुप्रेक्षा ये दस ग्रन्थ छपे हैं। पहलेके ६ पाहुड़ोंकी आचार्य श्रुतसागरकृत संस्कृत टीका भी है, जो बहुत विस्तृत है। अन्य ग्रन्थ मूल और संस्कृत छाया सहित छपे हैं। प्रत्येक भंडारमें इसकी एक एक प्रति रहनी चाहिए। मूल्य लागत मात्र तीन रुपया।

नियमसार।

भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यका यह बिलकुल ही अप्रसिद्ध ग्रन्थ है। लोग इसका नाम भी नहीं जानते थे। बड़ी मुश्किलसे प्राप्त करके यह छपाया गया है। नाटक समयसार आदिके समान ही इसका भी प्रचार होना चाहिए। मूल प्राकृत, संस्कृतच्छाया, आचार्य पद्मप्रभमलधारि देवकी संस्कृत टीका और श्रीयुत शीतलप्रसादजी ब्रह्मचारीकृत सरल भाषाटीकासहित यह छपाया गया है। अध्यात्मप्रेमियोंको अवश्य स्वाध्याय करना चाहिए। मूल्य २) दो रु०।

पार्श्वपुराण भाषा।

कविवर भूधरदासजीका यह अपूर्व ग्रन्थ दूसरी बार छपाया गया है। इसकी कविता बड़ी ही मनोहारिणी है। जैनियोंके कथाग्रन्थोंमें इससे अच्छी और सुन्दर कविता आपको और कहीं न मिलेगी। विद्यार्थियोंके लिये भी बहुत उपयोगी है। शास्त्रसभाओंमें बाँचनेके योग्य है। बहुत सुन्दरतासे छपा है। मूल्य सिर्फ १) रु०।

कथामें जैनसिद्धान्त।

एक मनोरंजक कथाके द्वारा जैनधर्मकी गूढ़ कर्म-फिलासफीको सरलतासे समझना हो और एक बढ़िया काव्यका आनन्द लेना हो तो आचार्य सिद्धर्षिके बनाये हुए 'उपमितिभवप्रपचाकथा' नामक संस्कृत ग्रन्थके हिन्दी अनुवादको अवश्य पढ़िये। अनुवादक श्रीयुत नाथूराम प्रेमी। मूल्य प्रथम भागका ।॥) और द्वितीय भागका ।-) जैन साहित्यमें अपने ढंगका यही एक ग्रन्थ है।

संस्कृत ग्रंथ।

१ जीवन्धर चम्पू–कवि हरिचन्द्रकृत। ।।)
२ गद्यचिन्तामणि–वादीभसिंहकृत। ।-)
३ जीवन्धरचरित–गुणभद्राचार्यकृत। ।)
४ क्षत्रचूड़ामणि–वादीभसिंहकृत। मू० ।)
५ यशोधरचरित–वादिराजकृत। मू० ।।)

चरचा समाधान। पं० भूधरमिश्रकृत। भाषाका नया ग्रन्थ। हालहीमें छपा है। मूल्य २॥-)

जैन ग्रन्थोंका सूचीपत्र

अभी हाल में ही छपकर तैयार हुआ है। मिलनेवाले तमाम ग्रन्थोंकी सूची है। जिन सज्जनोंको चाहिए वे एक कार्ड लिखकर मँगा लें।

मैनेजर—
जैन-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्य्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई।

Printed & Published by G.K. Gurjar at Sri Lakshmi Narayan Press, Jatanbar, Benares City, for the Proprietor Nathuram Premi of Bombay 114-21.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीवर्द्धमानाय नमः ।

भाग १५

जैनहितैषी

अंक ९-१०

आषाढ़, श्रावण सं० २४४७ । जुलाई, अगस्त सन् १९२१

विषय-सूची ।

१.	भगवज्जिनसेनका विशेष परिचय	२५७–२६२
२.	एक विद्वान्के कुछ विचार	२६२–२६४
३.	अस्पृश्यता-निवारक आन्दोलन और महात्मा गान्धी, लेखक—पं. नाथूरामजी प्रेमी	२६४–२७६
४.	बाबू ऋषभदासजी वकील मेरठके विचार	२७६–२८२
५.	मानकी मरम्मतका अनोखा उपाय, लेखक—पं. नाथूरामजी प्रेमी	२८२–२८९
६.	स्वदेशी वर्दी	२८९–२९०
७.	त्रुवल्लुव नायनाट त्रकुरल अनु. बाबू दयानन्दजी गोयलीय	२९०–२९३
८.	जैनधर्मका अहिंसातत्व लेखक—श्रीयुत मुनिविजयजी ...	२९३–३००
९.	ऐलक-पद कल्पना	३००–३१७
१०.	जैनहितैषीपर विद्वानोंके विचार	३१७–३१८
११.	तेरा द्वार लेखक—भगवन्त गणपति गोयलीय, बम्बई ...	३१८–३१९
१२.	एक गृहस्थका ब्रह्मचर्याणुव्रत	३१९–३२०
१३.	विविध-विषय	३२०–३२२
१४.	पुस्तक-परिचय	३२३–३२४

———

सम्पादक, बाबू जुगुलकिशोर मुख्तार ।

श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, काशी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नियमावली।

१ जैनहितैषीका वार्षिक मूल्य ३) तीन रुपया पेशगी है।

२ ग्राहक वर्षके आरम्भसे किये जाते हैं और बीचमें ७वें अंकसे। आधे वर्षका मूल्य १॥)

३ प्रत्येक अंकका मूल्य ।) चार आने।

४ लेख, बदलेके पत्र, समालोचनार्थ पुस्तक आदि

'बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तार सरसावा (सहारनपुर)" के पास भेजना चाहिए। सिर्फ प्रबन्ध और मूल्य आदि सम्बन्धी पत्रव्यवहार इस पतेसे किया जायः—

मैनेजर

जैन ग्रंथ-रत्नाकर कार्यालय,

हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई।

राणा प्रतापसिंह। मेवाड़के प्रसिद्ध राणाके चरित्रके आधारपर लिखा हुआ अपूर्व नाटक। मूल लेखक—स्वर्गीय द्विजेन्द्रलाल राय। वीरता, देशभक्ति और अटल प्रतिज्ञाकी जीती जागती तसवीरें। पढ़कर तबियत फड़क उठती है। मू० १॥) सजिल्दका २)

अन्तस्तल। हृदयके भीतरी भावों द्वेष, हिंसा, प्रेम, भय आदिके अपूर्व चित्र लेखक, सुकवि पं० चतुरसेन शास्त्री। ॥=

नये नये ग्रन्थ।

कालिदास और भवभूति।

महाकवि कालिदासके अभिज्ञान शाकुन्तलकी और भवभूतिके उत्तररामचरितकी अपूर्व, अद्भुत और मर्मस्पर्शी समालोचना। मूल लेखक, स्वर्गीय नाटककार द्विजेन्द्रलाल राय। प्रत्येक कवि, साहित्यप्रेमी और संस्कृतज्ञोंको यह ग्रन्थ पढ़ना चाहिए। मूल्य १॥), सजिल्दका २)

साहित्य-मीमांसा।

पूर्वीय और पाश्चात्य साहित्यकी, काव्यों और नाटकोंकी मार्मिक और तुलनात्मक पद्धतिसे की हुई आलोचना। इसमें आर्यसाहित्यकी जो महत्ता, उपकारिता और विशेषता दिखलाई गई है, उसे पढ़कर पाठक फड़क उठेंगे। हिन्दीमें इस विषयका यह सबसे पहला ग्रन्थ है। मूल्य १॥)

अरबी काव्यदर्शन।

अरबी साहित्यका इतिहास, उसकी विशेषतायें और नामी नामी कवियोंकी कविताओंके नमूने। हिन्दीमें बिलकुल नई चीज़। लेखक, पं० महेशप्रसाद साधु, मौलवी आलिम-फाजिल। मू० १।)

सुखदास—जार्ज ईलियटके सुप्रसिद्ध उपन्यास 'साइलस मारनर' का हिन्दी रूपान्तर। इस पुस्तकको हिन्दीके लब्ध प्रतिष्ठ उपन्यास-लेखक श्रीयुत प्रेमचन्दजीने लिखा है। बढ़िया एण्टिक पेपर पर बड़ी ही सुन्दरतासे छपाया गया है। उपन्यास बहुत ही अच्छा और भावपूर्ण है। मूल्य ॥=)

स्वाधीनता—जान स्टुअर्ट मिलकी 'लिबर्टी'का अनुवाद। यह ग्रन्थ बहुत दिनोंसे मिलता नहीं था, इसलिये फिरसे छपाया गया है। 'स्वाधीनता'की इतनी अच्छी तात्विक आलोचना आपको कहीं न मिलेगी। प्रत्येक विचारशीलको यह ग्रन्थ पढ़ना चाहिए। मूल्य २) सजिल्दका २॥)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः ।

पन्द्रहवाँ भाग ।
अंक ६-१०

जैनहितैषी ।

मई, जून १९२,
वैशाख, ज्येष्ठ २४४७

न हो पक्षपाती बतावे सुमार्ग, डरे ना किसीसे कहे सत्यवाणी ।
बने है विनोदी भले आशयोंसे, सभी जैनियोंका हितैषी 'हितैषी' ॥

भगवज्जिनसेनका विशेष परिचय ।

आदि पुराणके पूर्व भाग और 'जयधवला' टीकाके उत्तर भागके रचयिता भगवज्जिनसेनका जो कुछ परिचय अभी तक श्रीयुत पं० नाथूरामजी प्रेमीकी 'विद्वद्रत्न माला' से साधारण जनताको प्राप्त हुआ है, उससे कुछ अधिक और विशेष परिचय आज हम अपने पाठकोंको देते हैं । इस परिचयके आधार स्वयं भगवज्जिनसेनके वाक्य हैं जिनको उन्होंने जयधवला टीकाके अन्तमें प्रशस्ति * रूपसे दिया है ।

इस प्रशस्तिसे मालूम होता है कि, उक्त श्री जिनसेनाचार्य 'पंचस्तूपान्वय'† नामके मुनिवंशमें उत्पन्न हुए थे । आपके गुरु श्री वीरसेन आचार्य 'आर्यनन्दी' के शिष्य और 'चन्द्रसेन' आचार्यके प्रशिष्य थे । और इसलिये, उपलब्ध साहित्यमें, आपकी गुरु-परम्परा इन्हीं चन्द्रसेनाचार्यसे प्रारम्भ होती है, एलाचार्यसे नहीं । एलाचार्यसे वीरसेनने सिर्फ सिद्धान्त शास्त्र पढ़ा था, इसलिये वे उस विषयमें उनके एक विद्यागुरु अवश्य थे; परन्तु दीक्षागुरु नहीं थे, यह सुनिश्चित है । और इसी लिये एलाचार्यसे भगवज्जिनसेनकी गुरु-परम्पराका प्रारम्भ होना मानना ठीक नहीं है । यथा—

यस्तपोदीप्त किरणैर्भव्यांभोजानि बोधयन् ।
व्यद्योतिष्ट मुनी''पंचस्तूपान्वयाम्बरे ॥२०
प्राशिष्यश्चंद्रसेनस्य यः शिष्योप्यार्यनंदिना ।
कुलं गुणं च संतानं स्वगुणैरुदजिज्वलन् ॥२१
तस्य शिष्योऽभवच्छ्रीमान्
जिनसेन प्रसिद्धधीः ।

* यह पूरी प्रशस्ति आराके जैनसिद्धान्त भवनमें मौजूद है ।

† यह सेन संघका ही नामान्तर अथवा उसकी एक शाखा विशेष है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आविद्धावपि यत्करणौ
विद्धौ ज्ञानशलाकया ॥२२॥

स्वयं वीरसेन आचार्यने, धवल सिद्धान्तकी* प्रशस्तिमें 'धवला' टीकाके अन्तमें जिन विशेषणोंके साथ अपना परिचय दिया है, उनसे भी यही मालूम होता है कि आप आर्यनंदिके शिष्य, चन्द्रसेनके प्रशिष्य और पंचस्तूपान्वयको प्रकाशित करनेवाले सूर्य थे। यथा-

अज्जज्जणंदिसिस्सेणु-
ज्जवकम्मस्स चंदसेणस्स ।
तह णत्तुवेण पंचथूहण्णय
भाणुणा मुणिणा ॥ ४ ॥

श्री जिनसेन आविद्धकर्ण थे अर्थात्, उनके दोनों कान बिंधे हुए थे, ऐसा ऊपर उद्धृत किये हुए पद्य नं० २० के उत्तरार्धसे पाया जाता है। साथ ही यह भी मालूम होता है कि आविद्धकर्ण होनेपर भी आपके कान पुनः ज्ञानशलाकासे विद्ध किये गये थे, जिसका भाव यही जान पड़ता है कि, मुनि-दीक्षाके बाद अथवा पहले आपको गुरुका खास उपदेश मिला था और उससे आपको बहुत कुछ प्रबोध की प्राप्ति हुई थी। आप बाल-ब्रह्मचारी थे। बाल्यावस्थासे ही आपने अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रतका पालन किया था। अति सुन्दराकार और अति चतुर न होनेपर भी सरस्वती आपपर मुग्ध थी और उसने अनन्य-शरण होकर उस समय आपका ही आश्रय लिया था। साथ ही, आसन्नभव्य होनेकी वजहसे, मुक्तिलक्ष्मीने स्वयंवराकी तरह समुत्सुक होकर आपके कंठमें श्रुतमाला डाली थी। इस अलंकृत भावको आपने नीचे लिखे पद्योंमें प्रगट किया है—

यस्मिन्नासन्नभव्यत्वान्मुक्तिलक्ष्मीः समुत्सुका
स्वयंवरितुकामेव श्रौतिं मालामयूयुजत् ॥२३
येनानुचरितं बाल्याद्ब्रह्मव्रतमखंडितम् ।
स्वयंवरविधानेन चित्रमूढा सरस्वती ॥२४॥
योनातिसुन्दराकारो न चातिचतुरो मुनिः ।
तथाप्यनन्यशरणायं सरस्वत्युपाचरत् ॥२५

आप स्वभावसे ही बुद्धिमान्, शांत और विनयी थे, और इन (बुद्धि, शांति, विनय) गुणोंके द्वारा आपने अनेक आचार्योंका आराधन किया था। अर्थात्, इन गुणोंके कारण कितने ही आचार्य उस समय आपपर प्रसन्न थे। आप शरीरसे यद्यपि पतले दुबले थे, तो भी तपोगुणके अनुष्ठानमें कमी नहीं करते थे। शरीरसे कृश होनेपर भी आप गुणोंमें कृश नहीं थे। आपने कपिल सिद्धान्तों—सांख्यतत्वों—को ग्रहण नहीं किया और न उनपर भले प्रकार विचार ही किया। तो भी आप अध्यात्म-विद्या-समुद्रके उत्कृष्ट पारको पहुँच गये थे। आपका समय निरंतर ज्ञानाराधनमें ही व्यतीत हुआ करता था, इसीसे तत्वदर्शीजन आपको ज्ञमयपिंड (?) कहते थे। इन सब बातोंके द्योतक पद्य, प्रशस्तिमें, इस प्रकार हैं—

धीः शमो विनयश्चेति यस्य नैसर्गिकागुणाः।
सूरीनाराधयंतिस्म गुणैराराध्यते न कः ॥२६॥
यः कृशोऽपि शरीरेण न कृशोभूत तपोगुणैः।
न कृशत्वं हि शारीरं गुणैरेव कृशः कृशः ॥२७॥
यो नाग्रहीत्कापालिकान्नाप्यचिन्तयदंजसा।
तथाप्यध्यात्मविद्याब्धेः परं पारमशिश्रयत् २८
ज्ञानाराधनया यस्य गतः कालो निरन्तरं।
ततो न (ज्ञ?)मयपिण्डं-यमाहुस्तत्वदर्शिनः २९

आपने जयधवला टीकाके उत्तर

* यह प्रशस्ति भी आराके जैनसिद्धान्त भवनमें मौजूद है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भागको अपने गुरु (वीरसेन) की आज्ञासे लिखा था। गुरुने उत्तर भागका बहुत कुछ वक्तव्य प्रकाशित किया था। उसे देखकर ही अल्प वक्तव्य रूप यह उत्तरार्ध आपने पूर्ण किया है, जो प्रायः संस्कृत भाषामें है और कहीं कहीं संस्कृत मिश्र भाषाको लिये हुए है; ऐसा आप निम्न पद्यों द्वारा सूचित करते हैं—

तेने दमनतिप्रौढमतिना गुरुशासनात्।
लिखितं विशदैरे भिरक्षरैः पुण्यशासनम् ३०
गुरुणार्धेऽग्रिमे भूरिवक्तव्ये संप्रकाशिते।
तन्निरीक्ष्याल्पवक्तव्यपश्चार्धस्तेन पूरितः ३१
प्रायः प्राकृतभारत्या क्वचित्संस्कृतमिश्रया।
मणिप्रवालन्यायेन प्रोक्तोऽयं ग्रंथविस्तरः ३२

कुछ आगे चलकर अपनी टीकाके सम्बन्धमें आपने यह भी बतलाया है कि थोड़े ही अक्षरों द्वारा सूत्रार्थका विवेचन करनेमें हम जैसोंकी टीका उक्त, अनुक्त और दुरुक्तका चिन्तन करनेवाली (वार्तिक रूप) टीका नहीं हो सकती। इसलिये पूर्वापर शोधनके साथ हम जैसोंका जो शनैः शनैः (शनकैस्) टीकन है, उसीको बुधजन टीका रूपसे ग्रहण करें, यही हमारी पद्धति है। यथा—

तत्सूत्रार्थविवेचने कतिपयैरेवाक्षरैर्मादृशा-
मुक्तानुक्तदुरुक्त चिन्तनपरा-
टीकेतिकः संभवः ॥ ३७ ॥
तत्पूर्वापरशोधनेन शनकै-
र्यन्मादृशां टीकनम्।
सा टीकेत्यनुगृह्यतां बुधजनै-
रेवाहिनः पद्धतिः ॥३८॥

इन पद्योंमें आए हुए 'मादृशां' (हम जैसोंकी) और 'नः' (हमारी) शब्दोंसे यह बात साफ तौरसे उद्घोषित होती है कि यह प्रशस्ति जयधवला टीकाके उत्तर भागके रचयिता स्वयं भगवज्जिनसेना-चार्यकी बनाई हुई है और इसके द्वारा उन्होंने आत्म-परिचय दिया है, जिससे विज्ञ पाठक आचार्य महोदयकी शारीरिक, मानसिक और बुद्ध्यादि विषयक स्थिति-का बहुत कुछ अनुभव कर सकते हैं।

प्रशस्तिमें टीकाका नाम कहीं 'वीर-सेनीया' और कहीं 'जयधवला' दिया है। साथ ही अन्तिम पद्यसे पहले पद्यमें * उसे 'श्रीपालसंपादित' भी बतलाया है। इसपरसे श्रीयुत पं० नाथूरामजी प्रेमीने, अपनी विद्वद्रत्न-मालामें, यह निष्कर्ष निकाला है कि—

"वास्तवमें कषाय प्रभृतकी जो वीर-सेन और जिनसेन स्वामी कृत ६० हजार श्लोक-प्रमाण टीका है, उसका नाम तो 'वीरसेनीया' है; और इस वीरसेनीया टीका सहित जो कषाय प्राभृतके मूलसूत्र और चूर्णिसूत्र, वार्तिक वगैरह अन्य आचार्योंकी टीकाएँ हैं, उन सबके संग्रहको 'जयधवला' टीका कहते हैं। यह संग्रह 'श्रीपाल' नामके किसी आचार्यने किया है, इसी लिये जयधवलाको 'श्रीपाल-संपादिता' विशेषण दिया है।"

हमारी रायमें प्रेमी जीका निष्कर्ष ठीक नहीं है, और उसके निकाले जाने की वजह यही मालूम होती है कि उस समय आपके सामने पूरी प्रशस्ति नहीं थी। आपको आगे पीछेके कुछ ही पद्य उपलब्ध हुए थे, जिन्हें आपने अपनी पुस्तकमें उद्धृत किया है। जान पड़ता है आप उन्हीं पद्योंको पूरी प्रशस्ति समझ बैठे हैं और उन्हींके आधारपर शायद आपको यह भी खयाल हो गया है कि

* वह पद्य इस प्रकार है—श्रीवीरप्रभुभाषितार्थ-घटना निर्लोडितान्यागमन्याया श्रीजिनसेनसन्मुनिवरैरा-दर्शितार्थस्थिति। टीका श्रीजयचिह्नितोरुधवला सूत्रार्थ संघो-तिनी, स्थेयादारविचन्द्रमुज्वलतपः श्रीपालसंपादिता ॥ ४०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह प्रशस्ति 'श्रीपाल' आचार्य की बनाई हुई है। परन्तु बात ऐसी नहीं है। यह प्रशस्ति श्रीपाल आचार्य की बनाई हुई नहीं है—जैसा कि ऊपरके अवतरणोंमें 'मादृशां' आदि शब्दोंसे प्रगट है—और न श्रीपालके उक्त संग्रहका नाम ही 'जयधवला' टीका है। बल्कि वीरसेन और जिनसेनकी इस ६० हज़ार श्लोक-संख्यावाली टीकाका असली नाम ही 'जयधवला' है। वीरसेन स्वामीने, चूँकि, इस टीकाको प्रारम्भ किया था और इसका एक तिहाई भाग (२० हज़ार श्लोक) लिखा भी था; साथ ही, टीकाका शेष भाग, आपके देहावसानके पश्चात्, आपके ही प्रकाशित वक्तव्यके अनुसार पूरा किया गया है, इसलिये गुरुभक्तिसे प्रेरित होकर श्रीजिनसेन स्वामीने इस समूची टीकाको आपके ही नामसे नामांकित किया है और 'वीरसेनीया' भी इसका एक विशेषण दिया है। इन्द्रनन्दिकृत 'श्रुतावतार', विबुध श्रीधर कृत 'गद्य श्रुतावतार' और ब्रह्म हेमचन्द्र विरचित 'श्रुतस्कंध'के उल्लेखोंसे भी इसी बातका समर्थन होता है कि वीरसेन और जिनसेनकी बनाई हुई ६० हज़ार श्लोक-संख्यावाली टीकाका नाम ही 'जयधवला' टीका है। यथा—

'···जयधवलैवं षष्टिसहस्रग्रंथोऽभवट्टीका।
—इन्द्रनंदिश्रु०।

'···अमुना प्रकारेण षष्टिसहस्रप्रमिता जयधवलनामाङ्किता टीका भविष्यति।'
—श्रीधर गद्यश्रुता०।

'सदरीसहस्स धवलो जयधवलो सट्ठिसहस बोधव्वो॥ —हेमचन्द्र श्रुतस्कंधः।

यदि प्रेमीजी द्वारा सूचित उक्त संग्रहका नाम ही 'जयधवला' होता तो उसकी श्लोक-संख्या ६० हज़ार न होकर कई लाख होनी चाहिए थी। परन्तु ऐसा नहीं है। ऊपरके अवतरणोंमें साफ तौरसे ६० हज़ार श्लोक-संख्याका ही जयधवलाके साथ उल्लेख है। और भी अनेक ग्रंथोंमें इस टीकाका नाम 'जयधवला' ही सूचित किया है।* इसके सिवाय वीरसेन स्वामीकी दूसरी सिद्धान्त टीकाका नाम 'धवला' है। उन्होंने स्वयं उसके अन्तमें भी यह नाम सूचित किया है। यथा—

"···कत्तियमासे एसा
टीकाहु स भाणिदा धवला॥"

धवलासे मिलता जुलता ही नाम जयधवला है, जो उनकी दूसरी टीकाके लिये बहुत कुछ समुचित प्रतीत होता है। और इस दूसरी टीकाके 'जयइ धवलंगते ये' इत्यादि मंगलाचरणसे भी इस नामकी कुछ ध्वनि निकलती है। अतः इन सब बातोंसे टीकाका असली नाम 'वीरसेनीया' न होकर 'जयधवला' ही ठीक जान पड़ता है। 'वीरसेनीया' एक विशेषण है जो पीछेसे जिनसेनके द्वारा इस टीकाको दिया गया है। रही 'श्रीपाल-संपादिता' विशेषणकी बात। उससे प्रेमीजीके उक्त निष्कर्षको, हमारी रायमें, कोई सहायता नहीं मिलती। श्रीपाल नामके एक बहुत बड़े यशस्वी विद्वान जिनसेनके समकालीन हो गये हैं।

प्रशस्तिके अन्तिम पद्यमें आपके यशकी (सत्कीर्तिकी) उपमा भी दी गई है। वह पद्य इस प्रकार है—

सर्वज्ञ प्रतिपादितार्थ-
गणभृत्सूत्रानुटीकामिमां।

* यथा।···येकृत्वाधवलां जयादिधवलां सिद्धान्त टीकांसती
···वन्दध्वंवरवीरसेनाचार्यान्बुधान्।
इति क्षपणासारटीकायां माधवचन्द्रः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

येऽभ्यस्यन्ति बहुश्रुताः
श्रुतगुरुं संपूज्य वीरं प्रभुं ।
ते नित्योज्वलपद्मसेनपरमाः (?)
श्रीदेवसेनार्श्चिताः ।
भासन्ते रविचंद्रभासि-
सुतपाः श्रीपालसत्कीर्तयः ॥

आदि पुराणमें भी आपके निर्मल गुणोंका कीर्तन किया गया है और आपको भट्टाकलंक तथा पात्र केसरी (विद्यानन्द) जैसे विद्वानोंकी कोटिमें रखकर यह बतलाया गया है कि आपके निर्मल गुण हारकी तरहसे विद्वानोंके हृदयोंमें आरूढ़ रहते हैं, यथा—

भट्टाकलंक-श्रीपाल-पात्रकेसरिणां गुणाः ।
विदुषां हृदयारूढा हारायन्तेऽति निर्मलाः ॥

इससे स्पष्ट है कि श्रीपाल एक ऐसे प्रभावशाली आचार्य थे जिनका सिक्का अच्छे अच्छे विद्वान् लोग मानते थे। जिनसेनाचार्य भी आपके प्रभावसे प्रभावित थे। उन्होंने अपनी इस टीकाको लिखकर आप हीसे उसका सम्पादन (संशोधनादि कार्य) कराना उचित समझा है, और इस तरह पर एक गहन विषयके सैद्धान्तिक ग्रन्थकी टीकापर एक प्रसिद्ध और बहुमाननीय विद्वानके नामकी (सम्पादनकी) मुहर प्राप्त करके उसे विशेष गौरवशालिनी और तत्कालीन विद्वत्समाजके लिए और भी अधिक उपयोगिनी तथा आदरणीया बनाया है। यही, हमारी समझमें, श्रीपाल-संपादिता विशेषणका रहस्य है। और इसलिये इससे यह स्पष्ट है कि एक सम्पादकको किसी दूसरे विद्वान् लेखककी कृतिका उसके इच्छानुसार सम्पादन करते समय, जरूरत होनेपर, उसमें संशोधन, परिवर्तन, परिवर्धन, स्पष्टीकरण, भाषा-परिमार्जन और क्रम-स्थापना आदिका जो कार्य करना होता है, यथासम्भव और यथावश्यकता, वह सब कार्य इस टीकामें विद्वद्रत्न श्रीपाल द्वारा किया गया है। उनकी भी इस टीकामें कहीं कहीं पर जरूर कलम लगी हुई है। यही वजह है कि उनका नाम सम्पादकके रूपमें खास तौरसे उल्लेखित हुआ है। अन्यथा, श्रीपाल आचार्यने पूर्वाचार्योंकी सम्पूर्ण टीकाओंका एकत्र संग्रह करके उस संग्रहका नाम 'जयधवला' रक्खा, इस कथनकी कहींसे भी उपलब्धि और पुष्टि नहीं होती।

जिनसेनके समकालीन विद्वानोंमें पद्मसेन, देवसेन और रविचन्द्र नामके भी कोई विद्वान हो गये हैं। यह बात ऊपर उद्धृत किये हुए प्रशस्तिके अन्तिम पद्यसे ध्वनित होती है।

गुर्जरनरेन्द्र महाराज अमोघवर्ष (प्रथम) जिनसेन स्वामीके शिष्योंमें थे, इस बातको स्वयं जिनसेनने अपने पार्श्वाभ्युदयमें प्रकट किया है; और गुणभद्राचार्यने एक पद्यमें यह सूचित किया है कि महाराज अमोघवर्ष श्रीजिनस्वामीके चरणकमलोंमें मस्तकको रखकर अपनेको पवित्र मानते थे। इससे अमोघवर्ष जिनसेनके बड़े भक्त थे, यह पाया जाता है। परन्तु जिनसेन स्वामी महाराज अमोघवर्षको किस गौरव भरी दृष्टिसे देखते थे, उनपर कितना प्रेम रखते थे, और उनके गुणोंपर कितने अधिक मोहित और मुग्ध थे, इस बातका पता अभी तक बहुत ही कम विद्वानों को मालूम होगा। और इसलिये हम इसका परिचय अपने पाठकोंको प्रशस्तिके निम्नलिखित पद्योपरसे कराते हैं जिनमें गुर्जरनरेन्द्र (महाराज अमोघवर्ष)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का यशोगान करके उन्हें आशीर्वाद दिया गया है *—

गुर्जरनरेन्द्रकीर्तेरन्तः
पतिता शशांकशुभ्रायाः ।
गुप्तैव गुप्तनृपतेः
शकस्य मशकायते कीर्तिः ॥७॥
गुर्जरयशः पयोब्धौ
निमज्जतीन्दौ विलक्षणं लक्ष्म ।
कृतमलिलिनं मन्ये
धात्रा हरिणापदेशेन ॥८॥
भरतसगरादि नरपतियशांसि
तारानिभेव संहृत्य ।
गुर्जरयशसो महतः
कृतावकाशो जगत्सृजानूनम् ॥९॥
इत्यादि सकल नृपतीनातिशय्य
पयः पयोधिफेनेत्था ।
गुर्जनरेन्द्रकीर्तिः स्थेयादा
चन्द्रतारमिह भुवने ॥१०॥

इन पद्योंमें यह बतलाया और कहा है कि, गुर्जर-नरेन्द्र (महाराज अमोघवर्ष) की शशांक शुभ्र कीर्तिके भीतर पड़ी हुई गुप्त नृपति (चन्द्रगुप्त)की कीर्ति गुप्त ही हो गई है—छिप गई है—और शक राजाकी कीर्ति मच्छरकी गुनगुनाहटकी उपमाको लिये हुए है। मैं ऐसा मानता हूँ कि गुर्जर-नरेन्द्रके यशरूपी क्षीर समुद्रमें डूबे हुए चन्द्रमामें विधाताने हरिण (मृगछाला) के बहानेसे मानों एक बेढंगा अलिमलिन चिह्न बना दिया है, और भरत, सगर आदि चक्रवर्ती राजाओंके यशोंका ताराओंके प्रकाशके सदृश संहार करके जगत्स्रष्टाने गुर्जर-नरेन्द्रके महान् यशको फैलने और प्रकाशित होनेका अवसर दिया है। और भी सम्पूर्ण राजाओंसे बढ़कर क्षीर समुद्रके फेन (झाग) की तरह गुर्जर-नरेन्द्रकी शुभ्र कीर्ति, इस लोकमें, चन्द्र-ताराओंकी स्थिति-पर्यन्त स्थिर रहे।

यद्यपि इस वर्णनमें कवित्व भी शामिल है, तो भी इससे इतना ज़रूर पाया जाता है कि महाराज अमोघवर्ष, जिनका दूसरा नाम नृपतुङ्ग था, एक बहुत बड़े प्रतापी, यशस्वी, उदार, गुणी, गुणज्ञ, धर्मात्मा, परोपकारी और जैन धर्मके एक प्रधान आश्रयदाता सम्राट् हो गये हैं*। आपके द्वारा तत्कालीन जैनसमाज और स्वयं जिनसेनाचार्य बहुत कुछ उपकृत हुए और आपके उदार गुणों तथा यशकी धाकने आचार्य महोदयके हृदयमें अच्छा घर बना लिया था।

एक विद्वान्के कुछ विचार।

मृत्यु जीवनका ही दूसरा रूप है, जिस तरह जीवन मृत्युका दूसरा रूप है।

× × ×

आजका जो कर्म है, वही कलका भाग्य है।

× × ×

बहुतसे लोग भविष्य कालके जीव होते हैं। उन्हें यह वर्तमान काल विघ्न-रूप जान पड़ता है। दूसरे कुछ लोग भूत

---

* वह पद्य इस प्रकार है—

यस्य प्रांशुनखांशुजालविसर द्वारान्तराविर्भवत्पादां भोजरजः पिशंग मुकुट प्रत्यग्ररत्नद्युतिः । संस्मर्ता स्वममोघवर्ष नृपतिः पूतोऽहमद्येत्यल स श्रीमान् जिनसेन पूज्य भगवत्पादो जगन्मंगलम् ॥

* 'गणितसारसंग्रह' के कर्ता महावीर आचार्यने भी आपकी प्रशंसामें कुछ पद्य लिखे हैं। कितने ही शिला-लेखों आदिमें आपके गुणोंका परिचय पाया जाता है। अवसर मिलनेपर हम आपके विषयमें एक स्वतन्त्र लेख लिखना चाहते हैं। सम्पादक।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कालके जीव होते हैं। उन्हें भविष्य काल डरावना दिखता है।

× × ×

ईसाई धर्ममें कहा है कि ईश्वरने छः दिन तक सृष्टिकी रचना की और सातवें दिन विश्राम किया। यह सातवाँ दिन बहुत लम्बा हो गया है। ईश्वरके आराम करनेसे पृथ्वीका नाकों दम आ रहा है।

× × +

तू अपने शत्रुओंसे प्रेम कर। इससे तेरा कोई शत्रु रहेगा ही नहीं। शत्रुसे प्रेम करना ही उसे हटा देना है। अपने धिक्कारनेवालेपर यदि तू प्रेमकी वर्षा करता रहेगा, तो वह तेरा बिगाड़ ही क्या सकेगा?

× × ×

जो वास्तविक शक्तिशाली हैं, वे ही दूसरों पर हाथ न उठानेका बल दिखला सकते हैं।

× × ×

निन्दा करनेवालोंको तू निन्दा ही करने दे। उन्हें उत्तर मत दे।

× × ×

जो मनुष्य तेरे विरुद्ध झूठी साक्षी देते हैं, उनके लिए तू अपने मुँहसे एक शब्द भी मत निकाल। शायद इसीसे उनका उद्धार हो जाय।

× × ×

पापकी निन्दा करनेको निकलना उस पापसे भी हलका बनना है।

× × ×

बुद्धि परीक्षण करने बैठती है, परन्तु विवेक निरीक्षणसे ही राजी रहता है।

× × ×

जो दोष हममें हैं, अपने हाथसे उनका न्याय होना कठिन है। जो दोष हममें नहीं हैं, उन्हें दूसरोंकी आँख देख ही कैसे सकती है?

× × ×

सोल्जरों (फौजी सिपाहियों) और लुटेरोंमें केवल इतना ही फर्क है कि सोल्जरोंको सरकारी वेतन मिलता है, पर लुटेरोंको नहीं मिलता।

+ ÷ +

जब तुम खाकी पोशाक पहनकर हत्या करते हो तब तुम्हारी प्रशंसा होती है। परन्तु क्या बढ़िया पोशाक पहननेसे ही हत्या बढ़िया हो जाती है? मारनेमें तो वीरता हो ही नहीं सकती।

× × × ×

चाहे एक मनुष्यकी हत्या हो चाहे एक जातिकी या सेनाकी हत्या हो, सब एक समान निन्द्य हैं।

× × × ×

इस समय जंगली और असभ्य राष्ट्र वे ही हैं जिनके अस्त्र शस्त्र अन्तिमसे अन्तिम आविष्कारोंके आधारपर बने हुए हैं।

× × ÷ ×

विवेक जब अपना राजपाट छोड़ देता है, तब वह श्रद्धा बन जाता है।

× × × ×

जो निर्धन हैं वे धन्य हैं; क्योंकि वे त्रिभुवन के स्वामी हैं।

× × × ×

जो निर्लोभ हो गये हैं, वे धन्य हैं; क्योंकि दुनियाँ को जिन जिन चीजों का लोभ होता है, वे सब उन्हें अनायास मिल जायँगी।

× × × ×

दुखिया ही वास्तविक सुखी हैं; क्योंकि वास्तविक सुखका भाण्डार उनके अन्तरमें है।

× × × ×

धन्य है रंकोंको; क्योंकि बली लोग आपसमें लड़ मरेंगे और तब रंक ही अकेले तिरेंगे।

× × × ×

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रसिद्ध बोल्शेविक नेता लेनिन धनियोंको 'अभागा' या 'बेचारा' कहता है। ईसा मसीह भी धनियोंके लिए यही विशेषण लगाते हैं।

\+ × × ×

धनी और श्रीमन्त लोग जब गरीबोंके लिए कुछ करते हैं, तब वह 'धर्म' या 'दान' कहलाता है। परन्तु जब गरीब लोग श्रीमन्तोंके लिए कुछ करते हैं तो वह 'बलवा' या 'अराजकता' कहलाता है!

× × × ×

तू जितना ही धन संग्रह करेगा, उतना ही दूसरोंको भूखों मारेगा और उतना ही तेरे सिर कर्ज चढ़ेगा।

× × × ×

जितना जितना तू देता रहेगा, उतना उतना ही दूसरों को लूटनेका पाप धोता जायगा।*

अस्पृश्यता-निवारक आन्दोलन और महात्मा गांधी

(ले०—श्रीयुत पं० नाथूरामजी प्रेमी)

इस समय देशमें एक बड़े भारी आन्दोलनकी सृष्टि हुई है और प्रत्येक धर्म, सम्प्रदाय और जातिमें उसकी चर्चा हो रही है। उसका नाम है अस्पृश्यता-निवारण।

विदेशियोंके लिए अस्पृश्यता एक आश्चर्यकी चीज है; परन्तु हम लोगोंके लिए यह एक सहज और स्वाभाविक वस्तु बन गई है। अपरिचित विदेशी यह नहीं समझ सकता कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्यको छूनेसे परहेज़ कर सकता है और छू जाने पर उसे स्नान करनेकी आवश्यकता हो सकती है; परन्तु हम लोग उसे अपने धर्म और आचारका एक अङ्ग समझते हैं। कुत्ता, बिल्ली आदि हिंस्र पशुओं तकको हम प्रसन्नतासे अपनी बगलमें बैठा सकते हैं, परन्तु किसी भङ्गी या चमारसे यदि हमारा पल्ला छू जाय, तो हम उसे बरदाश्त नहीं कर सकते। उस हतभागे भङ्गी या चमारको तो हमारे पवित्र वचनोंका कुछ न कुछ प्रसाद मिलेगा ही, साथ ही हम स्वयं भी स्नान आदिके प्रसादसे वंचित नहीं रहेंगे! हमारे इसी आचरणके संशोधनके लिए इस आन्दोलनका जन्म हुआ है।

भारतवर्षकी जनसंख्या ३० करोड़के लगभग है। इनमेंसे ७,६३,६२,६७३ मनुष्य हमारे लिए अस्पृश्य हैं। अर्थात् हमारे देशके लगभग एक चौथाई मनुष्य ऐसे हैं जिन्हें हम मनुष्य ही नहीं समझते और जो पशुओंसे भी अधम जीवन व्यतीत करते हैं। हमारी हजारों वर्षोंकी उपेक्षासे इनकी अवस्था ऐसी शोचनीय हो गई है कि उसका वर्णन ही नहीं हो सकता। वे अक्षर-शत्रु हैं, उनका आचरण बहुत ही गिर गया है, शराब आदि दुर्व्यसनोंने उन्हें तबाह कर दिया है, भरपेट भोजन उन्हें नसीब नहीं होता और संक्रामक बीमारियोंका सबसे पहला हाथ उन्हींपर साफ होता है।

इन अस्पृश्योंमें केवल वे ही लोग नहीं हैं जो पाखाना साफ करते हैं, पशुओंको चीरकर उनका चमड़ा निकालते हैं अथवा ऐसा ही कोई दूसरा धन्धा करते हैं। बल्कि गुजरात, बंगाल,

---

* यह सब विचार 'पालरिशर' नामक एक विद्वान् के हैं। इन्हें 'नवजीवनने' अन्य विचारोंके साथ, 'एरोज आफ फायर' नामक पुस्तक से उद्धृत किया था, और वहीं से यहाँ पर अनुवादित किया गया है।

नाथूराम प्रेमी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मद्रास आदि प्रान्तोंमें कपड़ा बुनने आदि जैसे पवित्र धन्धे करनेवाली अनेक जातियाँ भी अछूत मानी जाती हैं।

इन लोगोंकी दशा सुधारनेके लिए हमारे देशका सुधारक दल लगभग आधी-शताब्दीसे अपना कण्ठ सुखा रहा है। आर्यसमाज, ब्रह्मसमाज आदि नये धर्म-समाजोंने भी इसके लिए बहुत कुछ आन्दोलन किया है; परन्तु हिन्दू जनता-की विशाल कछुएकी पीठको भेदकर उसके ज्ञानतन्तुओंतक इस आन्दोलनकी खबर पहुँचानेमें अभी तक ये सब उपाय प्रायः असफल ही रहे हैं। मुट्ठीभर पढ़े-लिखे लोगोंके दिमाग़में स्थान पा जानेके सिवाय और कोई विशेष उल्लेखनीय फल इसका नहीं हुआ। साधारण जनता इसको क्रिस्तानी या ईसाइयत चर्चा समझकर इससे अलग ही रही।

परन्तु अबकी बार इस नये आन्दो-लनका जन्म एक दूसरे ही रूपमें हुआ है। लक्षणोंसे जान पड़ता है कि विशाल हिन्दू समाजकी कच्छप-पीठको भेदकर यह आन्दोलन उसके स्नायुचक्रपर भी अधिकार कर लेगा। कच्छप महाराजको अब करवट बदलनी ही पड़ेगी।

धर्मक्षेत्रको छोड़कर अबकी बार इसने राजनीतिक क्षेत्रमें जन्म लिया है और उस राजनीतिक क्षेत्रमें जन्म लिया है जिसमें देशके जीवन-मरणकी समस्या हल हो रही है। पहले यह राजनीतिक क्षेत्र भी अँगरेज़ी पढ़े-लिखे लोगोंकी चहल-क़दमी-की जगह थी। परन्तु अब उसमें शिक्षित, अशिक्षित, पण्डित, बाबू, किसान, व्यापारी, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी आदि सभी श्रेणियोंके लोगोंका समावेश हो गया है और उन सबका यह पक्का विश्वास हो गया है कि इस क्षेत्रमें ही हम चिरकालकी दासतासे मुक्त होंगे। देशकी इस आशा-भरोसेकी जगहमें जन्म लेनेके कारण भी इस आन्दोलनके सफल होनेकी बहुत कुछ आशा की जा रही है।

आशाका एक कारण और भी है। और वह यह है कि इस आन्दोलनकी घोषणा उस महात्माने की है जो वर्तमानमें देशका एकछत्रका सा सम्राट् है, जिसका प्रभाव महलोंसे झोपड़ियोंतक है, जिसके पवित्र साधु जीवनने देशके सभी धर्मों और सम्प्रदायोंके हृदयपर अधिकार प्राप्त कर लिया है और जिसके वचनोंपर सर्व-साधारणकी आश्चर्यजनक श्रद्धा है। महात्मा गान्धीके इस प्रभावके कारण ही इस आन्दोलनकी घोषणा देशकी सर्व-प्रधान महासभा (कांग्रेस) के मञ्चपरसे हुई है और देशके प्रायः सारे प्रतिनिधि इसके पृष्ठपोषक हैं।

भारतवासी बीसों धर्मों, सम्प्रदायों और पन्थोंमें विभक्त हैं और उनमें ऐसा कोई प्रेम-बन्धन नहीं है कि एक धर्म या सम्प्रदाय द्वारा स्वीकृत कोई बात दूसरा धर्म या सम्प्रदाय माने। परन्तु देशके राजनीतिक क्षेत्रमें सभी धर्म और सम्प्रदायके लोग एक होकर काम कर रहे हैं और देशकी चरम सीमापर पहुँची हुई दुःख-दैन्यावस्थाने इस समय प्रायः प्रत्येक देशवासीको एकताके सूत्रमें बाँध दिया है। सभीका यही एक ध्येय और एक धर्म बन गया है कि चाहे जितने कष्ट सहकर भी देशको स्वाधीन करना चाहिए। वर्तमान अस्पृश्यता-निवारक आन्दोलन इसी सर्वधर्मानुयायियोंके एक धर्मक्षेत्र—राजनीतिक-क्षेत्र—से शुरू किया गया है और इससे आशा है कि इसका प्रभाव किसी एक धर्म या सम्प्रदायतक न रह-कर देशव्यापी होगा।

राष्ट्रीय महासभाका प्रधान उद्देश्य है—देशको पराधीनतासे मुक्त करना,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नौकरशाहीके अत्याचारपूर्ण शासनको नष्ट करना और गोरों तथा कालोंके अस्वाभाविक अधिकार-भेद को मिटाना। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि हमारे देशमें वे लोग भी रहते हैं जिन्हें हम अस्पृश्य समझते हैं, जिनके स्पर्शको पाप समझते हैं, जिनके साथ पशुओंसे भी बदतर व्यवहार करते हैं और जिनकी संख्या सात करोड़से भी अधिक है। ये लोग भी इसी भारत माताकी सन्तान हैं और इनको भी हमारे ही समान स्वतन्त्रता चाहिए। जब जब हमारी ओरसे स्वतंत्रता और स्वाधीनताका दावा किया जाता है, तब तब हमारे शासकों और उनके भाई-बन्धुओंकी ओरसे सबसे पहले यही व्यंग्यपूर्ण उत्तर मिलता है कि—"पहले तुम अपने भाइयों को—अपने देशवासी अस्पृश्योंको तो स्वाधीन करो, उन्हें तो मनुष्य समझने लगो; तब दूसरोंसे स्वाधीन होनेकी चर्चा करना! जब तुम अपने देशवासियोंको ही इसके पात्र नहीं समझते हो, तब यदि हम लोग तुम कालोंको स्वाधीनताके पात्र न समझें, तो इसमें कौन सा आश्चर्य है?" एक बार स्वामी विवेकानन्दजीने भी इसी बात पर लक्ष्य रखते हुए खिजलाकर कहा था कि "अरे गुलामो! तुम स्वाधीनता क्यों चाहते हो? क्या और नये गुलाम तैयार करने के लिए?" राष्ट्रीय महासभाने इन्हीं सब आक्षेपोंके उत्तर-स्वरूप अबकी बार अस्पृश्यता-निवारक प्रस्ताव पास किया है; और सच तो यह है कि इस प्रस्तावको पास करके ही वह सच्ची महासभा बनी है।

लोग इसे भले ही धार्मिक प्रश्न समझें, परन्तु महासभाके लिए तो यह शुद्ध राष्ट्रीय प्रश्न है और इसके हल किये बिना वह सारे देशकी प्रतिनिधि होनेका दावा ही नहीं कर सकती। वह कैसे हो सकता है कि देश की एक चतुर्थांश जनताको बाद देकर हम अपनी पूरी शक्तिके साथ खड़े हो सकें? हमें उसकी भी पूरी पूरी सहायता चाहिए। घरमें घृणा, विद्वेष और तिरस्कारको बनाये रखकर हम बलवान् नहीं हो सकते।

महात्मा गान्धीके विचार।

इस प्रारंभिक निवेदनके बाद अब हम महात्मा गांधीके उन सब विचारोंका सारांश प्रकट करेंगे जो उन्होंने अपने अनेक व्याख्यानों और लेखोंमें प्रकाशित किये हैं। परन्तु इसके पहले हम यह भी कह देना चाहते हैं कि महात्माजी इस विषयकी चर्चा केवल राष्ट्रीय दृष्टिसे नहीं कर रहे हैं। धार्मिक दृष्टिसे भी उन्होंने इसका ऊहापोह किया है। इसके सिवाय उनकी राजनीति धर्मनिरपेक्ष नहीं है। वे धर्मको अपनी राजनीतिका प्रधान अंग मानते हैं। वे कट्टर धर्मात्मा हैं और साथ ही हिन्दुओंकी वर्णाश्रम-पद्धतिके विरोधी नहीं हैं। वे इसे भी पसन्द नहीं करते कि चाहे जहाँ और चाहे जिसके यहाँ खाना-पीना और चाहे जिसके साथ विवाह-सम्बन्ध किया जाय। फिर भी वे अस्पृश्यताको पाप समझते हैं और उनका दावा है कि हिन्दू धर्ममें इस अस्पृश्यताको कोई स्थान नहीं है। अच्छा तो अब उनके विचार सुनिये।

बम्बईके सुप्रसिद्ध पत्र 'गुजराती' के आक्षेपोंका उत्तर देते हुए आपने कहा है—

"× × × हिन्दू धर्ममें मुझे कहीं यह विधान नहीं मिला कि भंगी, डोम आदि जातियाँ अस्पृश्य हैं। हिन्दू धर्म अनेक रूढ़ियोंसे घिरा हुआ है। उनमेंसे कुछ रूढ़ियाँ प्रशंसनीय हैं, शेष निन्द्य हैं। अस्पृश्यताकी रूढ़ि तो सर्वथा निन्द्य है॥ इसकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बदौलत दो हजार वर्षोंसे धर्मके नामपर पापकी राशि हिन्दू धर्मपर लादी जा रही है और अब भी लादी जाती है। मैं इस रूढ़िको पाखण्ड समझता हूँ। इससे आपको मुक्त होना पड़ेगा और इसका प्रायश्चित्त तो आप कर ही रहे हैं। इस रूढ़िके समर्थनमें मनुस्मृति आदि धर्म-ग्रन्थोंके श्लोक उद्धृत करनेसे कोई लाभ नहीं। इन ग्रन्थोंमें कितने ही श्लोक प्रक्षिप्त हैं, कितने ही नितान्त निरर्थक हैं; और फिर मनुस्मृतिकी प्रत्येक आज्ञाका पालन करनेवाला या पालन करनेकी इच्छा रखनेवाला अबतक एक भी हिन्दू मेरे देखनेमें नहीं आया। धर्म-ग्रन्थोंके प्रत्येक श्लोकका समर्थन कर देनेसे सनातन धर्म-की रक्षा न होगी; बल्कि उनमें प्रतिपादित त्रिकालाबाधित तत्त्वोंको कार्यमें परिणत करनेसे ही उनकी रक्षा होगी। × × ×

"अस्पृश्यताकी भावनामें घृणाका अन्तर्भाव माननेसे इन्कार करनेवालोंके लिए तो कोई विशेषण ही मेरी समझमें नहीं आता। भूलसे कोई हमारे डब्बेमें सवार हो जाय तो बेचारा पिटे बिना नहीं रह सकता और गालियोंकी तो उस-पर वर्षा ही होने लगती है। उसके हाथ चायवाला चाय और दूकानदार सौदा नहीं बेचता। वह मरता हो तो भी हम उसको छूना गवारा नहीं करते। अपना जूठा हम उसे खानेको देते हैं और फटे तथा उतारे हुए कपड़े पहनने को। कोई हिन्दू उसे पढ़ानेको तैयार नहीं होता। वह अच्छे मकानमें नहीं रह सकता। रास्तोंमें हमारे भयसे उसे बार बार अपनी अस्पृश्यताकी घोषणा करनी पड़ती है। इससे बढ़कर घृणासूचक व्यवहार और कौन सा हो सकता है? उसकी दशासे कौन सी सूचना मिलती है? जिस तरह एक समय यूरोपमें धर्मकी ओटमें गुलामी-की प्रथाकी हिमायत की जाती थी, उसी तरह आज हमारे समाजमें भी धर्मके नामपर अन्त्यजोंके प्रति घृणा भावकी रक्षा की जाती है। यूरोपमें भी अन्त समय-तक ऐसे कुछ न कुछ लोग निकलते ही रहे थे जो बाइबिलके वचन उद्धृत करके गुलामीकी प्रथाका समर्थन करते थे। अपने यहाँकी वर्तमान रूढ़िके हिमायतियों-को भी मैं उसी श्रेणीमें समझता हूँ। हमें अस्पृश्यताका दोष धर्ममेंसे अवश्य दूर कर देना होगा। इसके बिना प्लेग, हैजे आदि रोगोंकी जड़ नहीं कट सकती। अन्त्यजोंके धन्धोंमें भी नीचताकी कोई बात नहीं है। डाक्टर और हमारी मातायें भी वैसे ही काम करती हैं। कहा जा सकता है कि वे सब फिर स्वच्छ हो जाते हैं। अच्छा, यदि भंगी आदि यह बात नहीं करते तो दोष उनका नहीं, सोलहो आने हमारा ही है। यह स्पष्ट है कि जिस समय हम प्रेमपूर्वक उनका आलिङ्गन करने लगेंगे, उस समय वे स्वच्छ रहना अवश्य ही सीख लेंगे।

"यह देश तपश्चर्या, पवित्रता, दया आदिके कारण जिस प्रकार सबके लिए वन्दनीय है, उसी प्रकार स्वेच्छाचार, पाप, क्रूरता आदि दुर्गुणोंका भी क्रीड़ा-स्थल बना हुआ है।"

नवजीवन (वर्ष २ अंक ४४) में "वैष्णवोंके प्रति" शीर्षक लेखमें म० गांधीजी लिखते हैं—

"कितने ही वैष्णव मानते हैं कि मैं वर्णाश्रम धर्मका लोप कर रहा हूँ। परन्तु सच तो यह है कि मैं वर्णाश्रम धर्मको मलिनतासे उबारकर उसका सच्चा स्वरूप प्रकट कर रहा हूँ। मैं कुछ पानी, रोटी या बेटी-व्यवहारकी हिमायत नहीं कर रहा हूँ।

मेरी समझमें तो किसी भी मनुष्यको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छूनेमें पाप समझनेकी भावना ही पापमय है ।

"रजस्वलाका उदाहरण देकर अन्त्यजोंकी अस्पृश्यताका बचाव किया जाता है । परन्तु यह अज्ञान है । यदि हम अपनी रजस्वला बहिनसे छू जाते हैं तो इसमें कोई पाप नहीं मानते; किन्तु शारीरिक शौचके नियमोंका भंग हुआ समझकर नहा लेते हैं और स्वच्छ हो जाते हैं । इस बातको मैं समझ सकता हूँ कि जिस अन्त्यज भाईने मैला कार्य किया हो, उसको हमें तबतक न छूना चाहिए जबतक वह नहा न ले अथवा दूसरी तरहसे स्वच्छ न हो जाय । परन्तु इस बातको मेरी आत्मा स्वीकार नहीं कर सकती कि अन्त्यज कुलमें जन्म लेनेवालोंका सर्वथा त्याग ही कर देना चाहिए ।

"अँगरेजी सरकार जिसके साथ कि हम असहकार कर रहे हैं, हमारा इतना तिरस्कार नहीं करती । हम तो अपनी अन्त्यजोंके प्रति की जानेवाली डायरशाहीको धर्म मानकर उसका पोषण करते हैं । मैं तो समझता हूँ कि हमने जैसा बोया, वैसा लुन रहे हैं । अन्त्यजों का तिरस्कार करके ही हम जगतके तिरस्कार-पात्र बने हैं ।

"अस्पृश्यता को बुद्धि ग्रहण नहीं कर सकती । यह सत्यका, अहिंसाका विरोधी धर्म है, इससे धर्म ही नहीं है । हम ऊँचे और दूसरे नीचे, ये विचार ही नीच हैं । जिस ब्राह्मणमें शूद्रका—सेवाका गुण नहीं है, वह ब्राह्मण नहीं है । ब्राह्मण तो वह है जिसमें क्षत्रियके, वैश्यके और शूद्रके सब गुण हों और उनके सिवाय ज्ञान भी हो । शूद्र कुछ ज्ञानसे सर्वथा विमुख नहीं है, यद्यपि उसमें सेवाकी प्रधानता है । वर्णाश्रम धर्ममें ऊँच नीच की भावनाको जगह ही नहीं है । वैष्णव सम्प्रदायमें तो अनेक भंगी और चाण्डाल आदि तर गये हैं । जो धर्म सारे जगतको विष्णुके समान जानता है, वह अन्त्यजोंको विष्णुसे रहित कैसे मान सकता है ?

"जबतक तुम उन्हें अस्पृश्य मानते हो, छूनेमें पाप समझते हो तब तक तुम्हें नहाना हो तो नहाओ । परन्तु यह प्रार्थना है कि जैसे तुम अपनी रजस्वला माता का तिरस्कार नहीं करते, उसकी सेवा करते हो, उसी प्रकार अन्त्यजोंका भी तिरस्कार न करके उनकी सेवा करो । उनके लिए कूएँ खुदवाओ, पाठशालायें खोलो, दवा-दारूका प्रबन्ध करो, वैद्य रक्खो और उनके दुःखके भागीदार बनकर उनकी आन्तरिक आशीष लो । उन्हें अच्छी जगहमें रक्खो, अच्छी तनख्वाह दो, उनका सत्कार करो, उन्हें उपदेश दो और अपने भाई समझकर उनसे शराब और गोमांसका त्याग कराओ, तथा जो त्याग करें, उन्हें उत्साहित करो । ऐसा करते हुए तुम्हें मालूम हो जायगा कि छूआछूत एक कुरीति है ।"

चौथी अन्त्यज परिषद्के सभापतिके रूपमें म० गान्धीजीने जो विस्तृत व्याख्यान (नवजीवन भाग २, अंक ३३) दिया था, उसके कुछ अंश इस प्रकार हैं:—

" अस्पृश्यताके इस पापसे ही हम सब पतित हुए हैं और साम्राज्यमें भंगी समझे जाते हैं । हमारे संसर्गसे मुसलमानोंको भी पतित होना पड़ा है । हिन्दू मुसलमान दोनों ही साम्राज्यमें पारिया पारिया (मद्रास प्रान्तकी एक अस्पृश्य जाति) बने हुए हैं । दक्षिण आफ्रिकामें, पूर्व आफ्रिकामें और कनाडामें केवल हिन्दू ही नहीं, मुसलमान भी हैं और वे भी सब भंगी गिने जाते हैं । यह इतना बड़ा पाप इसी अस्पृश्यता के फलसे उत्पन्न हुआ है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"अस्पृश्यता को जब तक हिन्दू समाज जान बूझकर धर्म समझता है और असंख्य हिन्दू अन्त्यजोंको छूनेमें पाप समझते हैं, तब तक स्वराज्य मिलना अशक्य है...जिन जुल्मोंके कारण हम अँग्रेजी सल्तनतको राक्षसी कहते हैं, उनमेंसे ऐसे कौन कौनसे जुल्म हैं जो हम अन्त्यजोंके साथ नहीं करते ?

"इस मैलको धोकर हमें स्वच्छ हो जाना चाहिए। जबतक ऐसा न हो, तब तक स्वराज्यकी चर्चा कोरा वितण्डा-वाद है। जबतक दुर्बलोंकी रक्षा न हो, एक भी मनुष्यका दिल स्वराज्यवादीके हाथसे दुखे, तबतक यह निस्सन्देह है कि स्वराज्य नहीं मिल सकता।......

"दुर्बलोंकी रक्षा करनेके बदले हम उन्हें कुचलते हैं। ऐसे दोषोंको जबतक हम निकालकर नहीं फेंक सकते, तबतक यदि हम भेड़ों और पशुओंसे भी निकम्मा जीवन व्यतीत करें तो इसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए।

"नेलोर में मैं अन्त्यज भाइयों से मिला था। वहाँ मैंने ईश्वरसे प्रार्थना की थी कि यदि मैं आगे जन्म लूँ तो अन्त्यज होकर ही जन्मूँ और उनके दुःखोंका अनुभव करूँ। मैं ब्राह्मण, वैश्य या शूद्र ही नहीं, अति शूद्रके घर जन्म लेना चाहता हूँ।

"मैं सारे हिन्दुस्तान के अन्त्यजों-का निकट परिचयी बन गया हूँ। मैं देखता हूँ कि अन्त्यज जातियों में जो शक्ति है उसको वे स्वयं नहीं जानतीं और न दूसरे हिन्दू ही जानते हैं। अन्त्यजों की बुद्धि कुमारिका के समान निर्दोष है। भाइयो, तुम बुनने, कातने और धुनने का धन्धा सीख लो। इससे तुम्हारी दरिद्रता चली जायगी। जबतक चरखे का पूजन न होगा, तबतक हमारे यहाँ लक्ष्मी नहीं आनेकी।

"और तुम स्वयं "ढेढ़ ऊँचा और भंगी नीचा," इस भ्रममें क्यों पड़े हुए हो ? ढेढ़ और भंगीमें कुछ भी फर्क नहीं है।

"मेरी समझ में तो दोनों का ही पेशा वकालत या सरकारी सेवा से किसी तरह कम प्रतिष्ठाका नहीं है।"

अस्पृश्यताके सम्बन्धमें महात्माजीके एक मित्र ने तीन शंकाएँ की थीं। उनका उत्तर उन्होंने अपने नवजीवनमें (१३ वाँ विशेषांक) जो कुछ लिखा था, उसके कुछ अंश ये हैं—

"मेरी अल्प बुद्धिके अनुसार भंगी पर जो मैल चढ़ती है, वह शारीरिक है और तत्काल ही दूर की जा सकती है। परंतु असत्य, पाखण्ड आदिकी मैल ऐसी सूक्ष्म होती है कि उसका धोना बहुत ही कठिन है। अतएव यदि हम किसीको अस्पृश्य गिन सकते हैं तो वे हैं असत्य और पाखण्ड रूपी मैलसे भरे हुए लोग। परन्तु उन्हें अस्पृश्य गिननेकी तो हमारी हिम्मत ही नहीं होती। क्योंकि हम सभीमें इस प्रकारकी थोड़ी बहुत मैल चढ़ी रहती है। यदि हम ऐसा करने बैठें तो सारे संसारके काजी बनने जैसी बात हो और हम स्वयं ही अस्पृश्य हो जायँ। इस सच्ची मलिनताके लिए हमारे पास धीरज और अपनी आन्तरिक स्वच्छताके सिवा दूसरा कोई उपाय नहीं है। परन्तु भंगीकी मलिनता तो हड्डियोंमें नहीं बैठती। उसके दूर करनेका उपाय तो बहुत ही सहज है। उन्हें यदि हम अपना बना लेंगे, तो वे अवश्य साफ होकर रहने लगेंगे।

"डाक्टरोंका पेशा चीर-फाड़ करने-और मैल साफ करने आदिका ही है। यदि उन्हें चौबीसों घंटे चीर-फाड़ करने-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का काम मिले तो वे उससे कभी इन्कार नहीं कर देंगे। वे भी तो अपनी आजीविकाके लिए मैल साफ करनेका पेशा करते हैं। फिर भी हम उक्त कार्यको परोपकारी समझते हैं और डाक्टरोंका आदर करते हैं। डाक्टरोंका पेशा तो केवल रोगियोंका ही उपकारक है, परन्तु भंगीका पेशा सारे जगतका उपकारकर्त्ता है; और इसलिए वह डाक्टरोंके पेशेसे भी अधिक आवश्यक और पवित्र है। यदि डाक्टर अपना पेशा छोड़ दें, तो केवल रोगियोंका ही नाश हो। परन्तु यदि भंगियोंका काम बन्द हो जाय तो जगतका नाश हो जाय। ऐसी दशामें एक आवश्यक पेशेके करनेवालोंको अपवित्र मानकर उन्हें सताना बड़ा भारी पाप है और ऐसा मानना सर्वथा उचित है।

"हमें चाहिए कि हम डाक्टरके पेशेको जैसा पवित्र मानते हैं, उसी तरह भंगीके पेशेको भी मानें। हमें उन्हें अच्छा रहनेकी प्रेरणा करनी चाहिए, उन्हें दूर भगानेकी अपेक्षा अपने समीप रखना चाहिए और उनकी सेवा करनी चाहिए।"

नवजीवन भाग २, अंक १२ में महात्माजीने 'अस्पृश्य-नीति' नामक लेखमें कुछ वाक्य इस प्रकार लिखे हैं:—

"मेरा दृढ़ विश्वास है कि अस्पृश्यता अधर्म है। हिन्दू धर्मकी यह अतिशयता या अतिरेक है। अतिशयका पोषण करना दुराग्रह है और उसे तपश्चर्या करके दूर करना सत्याग्रह है। सत्यका आग्रह ही धर्म है और रूढ़ी द्वारा माने हुए प्रत्येक दोषको पकड़ रखनेका आग्रह अधर्म है।

"असहकार शुद्धिशास्त्र है और अपनी विशुद्धि किये बिना उसका होना अशक्य है। जबतक हम अपने ही एक अंगको अस्पृश्य मानते हैं, तबतक स्वयं हिन्दू और मुसलमान जो आज अस्पृश्य बन रहे हैं, अस्पृश्य ही रहेंगे।"

'वैष्णव और अन्त्यज' शीर्षक लेखमें (नवजीवन भाग २ अंक १५) में लिखा है:—

"वल्लभ सम्प्रदायके एक आचार्यने मुझसे कहा कि शास्त्रनिर्णयमें बुद्धिको कोई स्थान नहीं है। मैं इससे घबरा गया। क्योंकि मैं तो उसे शास्त्र नहीं मानता, जो हृदयमें खटके और जिसे बुद्धि न समझ सके। और मेरे खयालमें जिसे धर्मका आचरण करना है, उसे यह सिद्धान्त अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा। ऐसा किये बिना हम अवश्य धर्मभ्रष्ट हो जायँगे। गीताका मैंने यह भी अर्थ सुना है कि यदि अपने भाईबन्धुओंमें कोई दुष्ट हो, तो उसे भी हमें पशुबलसे हटा देना चाहिए—हटाना यह धर्म है। रामने रावणको मारा, अतएव हम जिसे रावण समझते हों, उसका संहार करना क्या हमारा धर्म होगा? मनुस्मृतिमें मांसाहार करनेकी विधि है, तो क्या इससे वैष्णव मांसाहार कर सकते हैं? अनेक शास्त्री और संन्यासी तो रोगका निवारण करनेके लिए गोमांस भक्षण करनेको भी बुरा नहीं समझते हैं!

"अस्पृश्यताको पाप समझना यह पश्चिमी विचार है, ऐसा कहना पापको पुण्य माननेके बराबर है। अक्खा भगतने पश्चिमी शिक्षा नहीं पाई थी, परन्तु उसने भी छूतछातको बुरा बतलाया है। अपने दोष दूर करनेके प्रयत्नको दूसरे धर्मोंका अंग बतलाकर, उन दोषोंको छिपाना धर्मान्धता है और इससे धर्मकी अवनति होती है।

"इस दलीलका तो मैं कुछ मतलब

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही नहीं समझ सकता कि अन्त्यज नहाने और साफ कपड़े पहननेसे भी शुद्ध नहीं हो सकते। क्या अन्त्यजका अन्तःकरण ही मैला है? क्या जन्मसे ही अन्त्यज मनुष्य नहीं हैं? क्या अन्त्यज पशुओंसे भी गये-बीते हैं?

"मैंने अनेक अन्त्यजोंको सरलचित्त, प्रामाणिक, ज्ञानी और ईश्वरभक्त देखा और उन्हें मैं सब तरहसे वन्दनीय समझता हूँ!"

"यह बात तो समझमें आती है कि यदि अन्त्यज मैला हो, उसने मैला उठाकर स्नान न किया हो तो उसे नहीं छूना चाहिए। परन्तु वह चाहे जितना शुद्ध हो, फिर भी उसे न छूना, यह तो अधर्मकी हद है। मैंने ऐसे अनेक लोग देखे हैं जो अन्त्यज न होकर भी अन्त्यजोंसे अधिक गन्दे रहते हैं। सैंकड़ों ईसाई मैला साफ करते हैं और डाक्टरोंका तो धर्म ही मैल धोनेका है। परन्तु उन सबके छूनेमें हम पाप नहीं मानते!"

'अन्त्यजोंकी सेवा' शीर्षक लेख (नवजीवन भाग २ अंक १६) में गांधीजी लिखते हैं—

"अन्त्यज लोग चारों वर्णोंकी सेवा करते हैं और बहुत बड़ी सेवा करते हैं। परन्तु इसके बदलेमें उन्हें क्या मिलता है? जिस तरह हम धनका विनिमय करते हैं, उसी प्रकार संस्कृतिका भी विनिमय (बदला) होना चाहिए। जो जातियाँ एक दूसरेके साथ हिलती मिलती रहती हैं, वे एक दूसरेके संस्कारोंसे लाभ उठाती हैं। शूद्र भी कथा-पुराणोंके श्रवणसे धार्मिक शिक्षा पा सकते हैं। एक गाँवमें रहनेवाले सभी लोगोंकी रक्षा एकसी होती है। संगीतकला आदिके संस्कार मन्दिरोंमें सब कोई प्राप्त करते हैं। इस तरह संस्कृतिका विनिमय होता है। अन्त्यजोंको अस्पृश्य रखनेसे वे इन सभी बातोंसे वंचित रहते हैं। वे हमारे विवाहादि उत्सवोंमें शामिल नहीं हो सकते, कथा-कीर्तनोंमें नहीं आ सकते, मन्दिरोंमें प्रवेश नहीं कर सकते और गाँवोंके भीतर नहीं रह सकते। ऐसी दशामें हम उनसे जो बड़ी भारी सेवा लेते हैं, उसके बदलेमें उन्हें कुछ नहीं मिलता। उनकी सेवा निष्फल हो जाती है और इससे सेवा करानेवालोंका अधःपतन होता है।

"इस तरहकी सेवा लेना एक तरहकी चोरी है। अन्त्यजोंको अस्पृश्य रखकर उन्हें अपनी संस्कृतिका—सभ्यताका हिस्सा देनेकी हिन्दुओंने और क्या व्यवस्था की? जो लोग यह कहते हैं कि अन्त्यजोंकी अस्पृश्यता उनके पापोंकी वंशपरम्परागत सजा है, वे हिन्दू धर्मको लजाते हैं। क्या पतितपावन हिन्दू धर्म एक मनुष्यके पापके लिए उसकी ४८ पीढ़ियोंतकको नरकमें ढकेल देनेकी व्यवस्था देता है?"

वर्ण-व्यवस्था।

महात्मा गांधी वर्ण-व्यवस्थाको कैसा समझते हैं, यह जाननेके लिए हम उनके 'वर्णव्यवस्था' शीर्षक लेख (नवजीवन भाग २, अंक १५) के कुछ अंश उद्धृत करते हैं:—

"वर्ण-व्यवस्थामें जो चतुर्विध समाजकी रचना है, वही तत्वकी, स्वाभाविक और आवश्यक जान पड़ती है। असंख्य जातियों और अन्तर्जातियोंसे किसी समय भले ही कुछ सुभीते हुए हों; परन्तु इस समय तो जातियाँ विघ्न करनेवाली ही हैं। ये अन्तर्जातियाँ जितनी जल्दी एक हो जायँ, उतना ही समाजका लाभ है। इन जातियोंमें इस तरहकी नजरमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

न आनेवाली उत्पत्ति और नाश तथा नई रचना शुरूसे ही होती आई है और आगे भी होती रहेगी। यह काम कर लेनेके लिए—इन जातियोंको एक करनेके लिए प्रजामत और प्रजाके नैतिक दबावका असर ही काफी है। परन्तु मूल वर्ण-विभागको ही नष्ट कर डालनेके प्रयत्नका मैं विरोधी हूँ। वर्णविभागमें भेददृष्टि, असमानता या उच्चता-नीचता कुछ है ही नहीं; और मद्रास या दक्षिण आदि प्रान्तोंमें जहाँ ऐसे भेद खड़े हो गये हैं, वहाँ उन्हें अवश्य रोकना चाहिए। परन्तु इस तरहके प्रासङ्गिक दुरुपयोगोंके कारण सारी व्यवस्थाको ही मौतकी सजा नहीं दी जा सकती। इसमें सहज ही सुधार हो सकता है। हिन्दुस्तानमें और सारे संसारमें इस समय जो लोकयुग प्रवर्तित हो रहा है, उसके परिणामसे हिन्दू जातियोंमेंसे भी उच्चता-नीचताका खयाल निकल जायगा। × × × × हमें यह कभी न भूलना चाहिए कि जिस हिन्दू धर्मने वर्ण-व्यवस्थाको उत्पन्न किया है, उसी हिन्दू धर्मने हमें केवल मनुष्योंके प्रति ही नहीं, जीव मात्रके प्रति आत्मभाव प्राप्त करनेका आदर्श भी मनुष्यके सर्वोपरि कल्याणके लिए दिया है।

"मेरी समझमें राष्ट्रीय भावनाके फैलानेके लिए एक साथ भोजन करना या चाहे जिसके साथ ब्याह करनेकी स्वतंत्रता होना, आवश्यक नहीं है। मैं यह भी नहीं मानता कि कोई ऐसा स्वतंत्रताका जमाना आवेगा या ऐसा स्वतंत्र राज्य-संगठन होगा जब कि समाजके सभी लोगोंमें खाने पीने या ब्याह करनेके सम्बन्धमें एक सा आचार-व्यवहार हो जायगा। समाजके जुदा जुदा वर्गोंमें आचार-विचारोंकी भिन्नता हमेशा रहेगी। इस भिन्नता या विविधताके भीतर ही हमें हमेशा एकताको खोजना और स्थापित करना होगा। यदि कोई मनुष्य हर किसीके साथ खाना पीना पसन्द न करता हो, तो मैं यह कहनेके लिए तैयार नहीं कि वह पाप करता है। × × × चाहे जिसके साथ न खाना पीना यह एक तरहका संयम है। इस संयममें कोई दोष नहीं है। परन्तु यदि इसमें अतिशयता घुस जाती है तो अवश्य हानि होती है। यदि यह संयम उच्चताके अभिमानसे किया जाता है तो संयम न रहकर सचमुचही स्वेच्छाचार बन जाता है और घातक सिद्ध होता है। परन्तु जमाना जैसे जैसे आगे बढ़ता है और नई नई आवश्यकतायें तथा परिस्थितियाँ उत्पन्न होती जाती हैं, तदनुसार रोटी-बेटी-व्यवहारके विषयमें भी हमें बहुत ही सावधानीके साथ फेरफार अवश्य करने पड़ेंगे।

"इस तरह मैं हिन्दुओंकी वर्ण-व्यवस्थाका पक्ष लेता हूँ। फिर भी मैं हिन्दुओंकी अस्पृश्यताकी भावनाको मानव जातिका घोरसे घोर अपमान समझता हूँ। इस भावनाके मूलमें संयम नहीं—किन्तु उच्चताकी उद्धत भावना छिपी हुई है। इस भावनाने आजतक अपनी किसी भी प्रकारकी योग्यता नहीं दिखलाई। उलटे इसने समाजकी सेवा करनेवाले एक बड़े भारी समाजको मनुष्य-जातिमेंसे अलग फेंक देनेका घोर पाप किया है। इस पापसे हिन्दू धर्म जितनी जल्दी उद्धार पा जाय, उतना ही उसका बड़प्पन और प्रतिष्ठा है।"

महात्मा गांधीके प्रायः समस्त लेखों और व्याख्यानोंको पढ़कर, पुनरुक्तियोंको बचाते हुए, हमने उक्त विचारोंका संग्रह किया है। हमारी समझमें इनसे पाठक गण इस आन्दोलनका स्वरूप अच्छी तरह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समझ जायँगे और इसपर अपनी निजी राय कायम करनेमें बहुत कुछ समर्थ हो सकेंगे।

सम्पादकीय नोट।

अछूतों, अन्त्यजों और अस्पृश्यतादिके सम्बन्धमें महात्मा गांधीजीके क्या क्या विचार हैं, और वे क्या कुछ चाहते हैं, इस बातका अनुभव ऊपरके लेखसे बहुत कुछ हो जाता है। प्रत्येक भारतवासीको महात्माजीके इन विचारों और उनकी इच्छाको जाननेकी बड़ी ज़रूरत है, इसी लिये सर्वसाधारण, और खासकर जैनियोंके परिचयके लिये यहाँ यह लेख प्रकाशित किया जाता है। अस्पृश्यता-निवारक और अछूतोंके उद्धार-विषयक इस आन्दोलनका हिन्दुओंकी बाह्य प्रवृत्ति और उनके धर्मशास्त्रोंके साथ अनुकूलता या प्रतिकूलताका जैसा कुछ सम्बन्ध है, जैनियोंकी बाह्य प्रवृत्ति और उनके धर्म ग्रन्थोंके साथ भी उसका प्रायः वैसा ही संबन्ध है—दोनों ही इस विषयमें प्रायः समकक्ष हैं। और इसलिये यदि कुछ हिन्दू लोग, अपने चिर संस्कारोंके विरुद्ध होनेके कारण, इस आन्दोलनको अच्छा नहीं समझते, धर्म-घातक बतलाते हैं और उत्तेजित होकर इसका विरोध करते हैं, तो बाज जैनी भी यदि इसपर कुछ क्षुब्ध, कुपित तथा उत्तेजित हो जायँ और विरोध करने लगें तो इसमें कुछ भी अस्वाभाविकता नहीं है और न कोई आश्चर्यकी ही बात है। परन्तु इस प्रकारके क्षोभ, कोप और विरोधका कुछ भी नतीजा नहीं होता और न ऐसी अवस्थामें कोई मनुष्य किसी विषयके यथार्थ निर्णयको पहुँच सकता है। अच्छा नतीजा तभी निकल सकता है और तभी किसी विषयका यथार्थ निर्णय हो सकता है जब कि समस्त उत्तेजनाओंसे अलिप्त रहकर उस विषयका बड़ी शांति और गम्भीरताके साथ निष्पक्ष भावसे एक जजके तौर पर, गहरा विचार किया जाय, उसके हर पहलू पर नजर डाली जाय और इस तरह पर उसके असली तत्वको खोजकर निकाला जाय। यह ठीक है कि पुराने संस्कार किसी भी नई बातको ग्रहण करनेके लिये, चाहे वह कितनी ही अच्छी और उपयोगी क्यों न हो, हमेशा धक्का दिया करते हैं और उसे सहसा ग्रहण नहीं होने देते। परन्तु बुद्धिमान् और विचारक लोग वही होते हैं जो संस्कारोंके परदेको फाड़कर अथवा इस कृत्रिम आवरणको उठाकर 'नग्न सत्य' का दर्शन किया करते हैं। और इसलिये जो लोग महात्माजीके इन विचारोंको संस्कारोंके परदेमेंसे देखना चाहते हैं, वे भूल करते हैं। उन्हें उस परदेको उठाकर देखनेका यत्न करना चाहिए जिससे उनका वास्तविक रंग-रूप मालूम हो सके। और यह तभी हो सकता है जब कि उत्तेजनाओंसे अलग रहकर, बड़ी शांति और निष्पक्षता के साथ, गहरे अध्ययन, गहरे मनन और न्यायप्रियताको अपनेमें स्थान दिया जाय। महात्मा जीके किसी एक शब्दको पकड़कर उस पर झगड़ा करनेकी जरूरत नहीं है। ऐसा करना उनके शब्दोंका दुरुपयोग करना होगा। उनके निर्णयकी तहको पहुँचनेके लिये उनके विचार-समुच्चयको लक्ष्यमें रखनेकी बड़ी जरूरत है। आशा है, इन आवश्यक सूचनाओंको ध्यानमें रखते हुए हमारे पाठक इस लेखपर विचार करनेकी कृपा करेंगे। और साथ ही इन बातोंको भी सोचेंगे कि १—क्या पारमार्थिक दृष्टिसे धर्मका ऐसा विधान हो सकता है कि वह मनुष्योंको मनुष्यों-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से घृणा करना और द्वेष रखना सिखलावे? अपनेको ऊँचा और दूसरोंको नीचा समझनेके भावको अच्छा बतलावे, अथवा मनुष्योंके साथ मनुष्योचित व्यवहारका निषेध करे?

२—महावीर भगवानके समवसरणमें चारों ही वर्णके मनुष्य, परस्पर ऊँच-नीच और स्पृश्यास्पृश्यका भेद न करके एक ही मनुष्य-कोटिमें बैठते थे। इस आदर्शसे जैनियोंको किस बातकी शिक्षा मिलती है?

३—एक अछूत जातिके मनुष्यको आज हम छूते नहीं, अपने पास नहीं बिठलाते और न उसे अपने कूएँसे पानी भरने देते हैं। परन्तु कल वह मुसलमान या ईसाई हो जाता है, चोटी कटा लेता है, हिन्दू धर्म तथा हिन्दू देवताओंको बुरा कहने लगता है, धार्मिक दृष्टिसे एक दर्जे और नीचे गिर जाता है और प्रकारान्तरसे हिन्दुओंका हित-शत्रु बन जाता है, तब हम उसको छूनेमें कोई परहेज नहीं करते, उससे हाथ तक मिलाते हैं, उसे अपने पास बिठलाते हैं, कभी कभी उच्चासन भी देते हैं और अपने कूएँसे पानी न भरने देनेकी तो फिर कोई बात ही नहीं रहती। वह खुशी से उसी कूएँ पर बराबर पानी भरा करता है। हमारी इस प्रवृत्तिका क्या रहस्य है? क्या यह सब हिन्दू धर्मका ही खोट था जिसको धारण किये रहनेकी वजहसे वह बेचारा उन अधिकारोंसे वंचित रहता था और उसके दूर होते ही उसे वे सब अधिकार प्राप्त हो जाते हैं? ये सब खूब सोचने और समझनेकी बातें हैं। और

४—किसी व्यक्तिको अस्पृश्य या स्पृश्य ठहराना, एक वक्तमें अस्पृश्य और दूसरे वक्तमें स्पृश्य बतलाना अथवा उसका एक जगह अस्पृश्य और दूसरी जगह स्पृश्य करार दिया जाना, यह सब विधि-विधान, लोकाचार, लोकव्यवहार और लौकिक धर्मसे सम्बद्ध है या पारलौकिक धर्म अथवा परमार्थसे इसका कोई खास सम्बन्ध है? इसपर भी खास तौरसे विचार होनेकी जरूरत है। जहाँ तक हमने धार्मिक ग्रंथोंका अध्ययन किया है, उससे यह विषय हमें लौकिक ही मालूम होता है—परमार्थसे इसका कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। कहा भी है कि—

—स्पृश्याऽस्पृश्यविधिः सर्वशेषो लोकेन गम्यते। —इन्द्रनंदी।

अर्थात् स्पृश्य और अस्पृश्यका सम्पूर्ण विधान लोक-व्यवहारसे सम्बन्ध रखता है—वह उसीके आश्रित है और इसलिये उसीके द्वारा गम्य है।

लौकिक विषयों और लौकिक धर्मोंके लोकाश्रित होनेसे उनके लिये किसी आगमका आश्रय लेनेकी अर्थात् इस बातकी ढूँढ़-खोज करनेकी कि आगम इस विषयमें क्या कहता है, कोई जरूरत नहीं है। आगमके आश्रय पारलौकिक धर्म होता है, लौकिक नहीं; जैसा कि श्रीसोमदेव सूरिके निम्न वाक्यसे प्रगट है—

द्वौहिधर्म्मौ गृहस्थानां
लौकिकः पारलौकिकः।
लोकाश्रयो भवदाद्यः
परः स्यादागमाश्रयः॥

लौकिक धर्म लौकिक जनोंकी देशकालानुसार प्रवृत्तिके अधीन होता है और वह प्रवृत्ति हमेशा एक रूपमें नहीं रहा करती। कभी देशकालकी आवश्यकताओंके अनुसार, कभी पंचायतियोंके निर्णय द्वारा और कभी प्रगतिशील व्यक्तियोंके उदाहरणोंको लेकर बराबर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बदला करती है। इसलिये लौकिक धर्म भी हमेशा एक हालतमें नहीं रहता। वह बराबर परिवर्तनशील होता है, और इसीसे किसी भी लौकिक धर्मको सार्वदेशिक और सार्वकालिक नहीं कह सकते। ऐसी हालतमें किसी समय किसी देशके स्पृश्याऽस्पृश्य सम्बन्धी किसी लौकिक धर्मको लक्ष्यमें रखकर उसके अनुसार यदि किसी ग्रन्थमें कोई विधान किया गया हो, तो वह तात्कालिक और तद्देशीय विधान है, इतना ही समझना चाहिए। इससे अधिक उसका यह आशय लेना ठीक नहीं होगा कि वह सर्व देशों और सर्व समयोंके लिये, उस देश और उस समयके लिये भी जहाँ और जब वह परिस्थिति कायम न रहे, एक अटल सिद्धान्त है। और इसलिये एक लौकिक धर्म सम्बन्धी वर्तमान आन्दोलनके विरोधमें ऐसे ग्रन्थोंके अवतरण पेश करनेका कोई नतीजा नहीं हो सकता। शास्त्रोंमें ऐसी कितनी ही जातियोंका उल्लेख है जो उस समय अस्पृश्य (अछूत) समझी जाती थीं, परन्तु आज वे अस्पृश्य नहीं हैं। आज हम उन जातियोंके व्यक्तियोंको खुशीसे छूते हैं, पास बैठाते हैं और उनसे अपने तरह तरहके गृह-कार्य कराते हैं। उदाहरणके लिये धीवरोंको लीजिये जो हमारे इधर उच्चसे उच्च जातियोंके यहाँ पानी भरते हैं, बर्तन माँजते हैं और अनेक प्रकारके खाने आदि बनाते हैं। ये लोग पहले अस्पृश्य समझे जाते थे और उस समय उनसे छू जानेका प्रायश्चित्त भी होता था। परन्तु आज कितने ही प्रदेशोंमें वह दशा नहीं है, न वे अस्पृश्य समझे जाते हैं और न उनसे छू जानेका कोई प्रायश्चित्त किया जाता है। यह सब क्या है? क्या यह इस बातको सूचित नहीं करता कि बादमें लोगोंने देश-कालकी आवश्यकताओंके अनुसार अपनी प्रवृत्ति को बदल लिया है?* इसी तौर पर वर्तमान अछूत जातियों या उनमेंसे किसी जातिके साथ यदि आज भी अस्पृश्यताका व्यवहार उठा दिया जाय तो उससे एक लोकरूढ़िका—लोक-व्यवहारका—परिवर्तन हो जानेके सिवाय हमारे पारमार्थिक धर्मको क्या हानि पहुँचती है? और फिर वह हानि उस वक्त क्यों नहीं पहुँचती जब कि उस जातिके व्यक्ति मुसलमान या ईसाई हो जाते हैं और हम उनके साथ अस्पृश्यताका व्यवहार नहीं रखते? यह सभीके सोचने और समझनेकी बात है। और इससे तो प्रायः किसीको भी इन्कार नहीं हो सकता कि जिन अत्याचारोंके लिये हम अपने विषयमें गवर्नमेंटकी शिकायत करते हैं, यदि वे ही अत्याचार और बल्कि उनसे भी अधिक अत्याचार हम अछूतोंके साथ करते हैं, तो हमें यह कहने और इस बातका दावा करनेका कोई अधिकार नहीं है कि हमारे ऊपर अत्याचार न किये जायँ, हमें बराबरके हक दिये जायँ अथवा हमें स्वाधीन कर दिया जाय। हमें पहले अपने दोषोंका संशोधन करना होगा, तभी हम दूसरोंके दोषोंका संशोधन करा सकेंगे। भले ही हमारे पुराने संस्कार और हमारी स्वार्थ-वासनाएँ हमें इस बातको स्वीकार करनेसे रोकें कि हम अछूतोंपर कुछ अत्याचार करते हैं; और चाहे हम यहाँ तक कहने की धृष्टता भी धारण करें कि अछूतोंके साथ जो व्यवहार किया जाता है, वह उनके योग्य ही है और वे उसीके लिए बनाये गये हैं, तो

* स्पृश्याऽस्पृश्यके सम्बन्धमें कितने ही उल्लेख शास्त्रोंमें ऐसे भी पाये जाते हैं, जिनमें आचार्योंमें परस्पर मतभेद हैं और जो देश-कालकी भिन्न भिन्न स्थितियोंके परिवर्तनादिकको ही सूचित करते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी एक न्यायी और सत्यप्रिय हृदय इस बातको स्वीकार करनेसे कभी नहीं चूकेगा कि अछूतों पर असेंसे बहुत बड़े अन्याय और अत्याचार हो रहे हैं और इसलिये हमें अब उन सबका प्रायश्चित्त जरूर करना होगा।

अन्तमें हम अपने पाठकोंसे इतना फिर निवेदन कर देना चाहते हैं कि वे अपने पूर्व संस्कारोंको दबाकर बड़ी शांति और गंभीरताके साथ इस विषय पर विचार करनेकी कृपा करें और इस पर हर पहलूसे नजर डालें; क्योंकि यह विषय, इस समय, देशके लिये एक बड़े ही महत्वका विषय बना हुआ है। साथ ही, यह भी निवेदन है कि वे किसी विचार-विभिन्नताके कारण इस लेखके लेखक, सम्पादक तथा महात्मा गांधीजी आदिसे कोई व्यक्ति-गत द्वेषभाव धारण न करें। यही विचारकोंकी नीति होती है और होनी चाहिए। हम भी इस विषय पर अभी और गहरा विचार कर रहे हैं।

बाबू ऋषभदासजी वकील मेरठके विचार।

'हीरालाल जैन हाई स्कूल' पहाड़ी धीरज देहलीके वार्षिक अधिवेशन पर, गत २४ अप्रैल सन् १६२१ को, श्रीयुत बाबू ऋषभदासजी बी० ए० वकील मेरठने, सभापतिकी हैसियतसे जो भाषण दिया है, उसमें बालक और बालिकाओंकी शिक्षाके सम्बन्धमें कितनी ही कामकी बातें कहनेके बाद, जैनधर्म और जैन-समाजके सम्बन्धमें भी अपने कुछ विचारोंको खास तौरसे प्रकट किया है। हम चाहते हैं कि जैनहितैषीके पाठकोंको भी उन विचारोंका परिचय कराया जाय, जिससे एक विद्वान्के विचार उन्हें मालूम हो जायँ। अतः हम उर्दू जैन-प्रदीपमें प्रकाशित बाबू साहबके उक्त भाषणसे उनके ऐसे कुछ विचारोंको ज्योंका त्यों और कहीं कहीं अनुवाद रूप-में यहाँ उद्धृत करते हैं। उनके औचित्य और अनौचित्य पर विचार करना स्वयं पाठकोंके अधीन है।

"जैनधर्म उन उसूलों (सिद्धान्तों) और उन तरीकों (ढंगों) का ही नाम है कि जिनसे आत्माके निज शुद्ध स्वाभाविक गुणोंका विकाश होता है। जैन धर्मके अनुसार केवल ज्ञान आदिक ही आत्माके शुद्ध स्वाभाविक गुण हैं। अतः वास्तवमें जैनधर्मका उद्देश्य ही आत्माको परमात्मा बनाना है। इस धर्मके अनेक ग्रन्थोंमें आत्मस्वरूप, कर्मसिद्धान्त, परमात्मस्वरूप वगैरहका ऐसा स्पष्ट वर्णन है कि जो दूसरी जगह नहीं पाया जाता। वस्तुतः दुनियाँमें इस धर्मके महान् ग्रन्थोंका जुदा जुदा भाषाओंमें अनुवाद होकर उसके प्रचारकी जरूरत है।...."

"सबसे बड़ा सिद्धान्त जो जैनधर्म-के महत्त्वको प्रकट करता है, वह उसका 'अनेकान्त' सिस्टम है।"

इसके बाद अनेकान्त और एकान्तके स्वरूपका कुछ वर्णन देकर आपने उसके सम्बन्धमें अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये हैं—

'ये सब एकान्तवाद भी असली सिद्धान्तोंके लिहाज़ (अपेक्षा) से तो जरूर सच हैं, लेकिन जिस तरीके (ढंग) से उन्होंने उन सिद्धान्तोंको माना है, उस तरीकेके लिहाजसे वे गलत हैं। उदाहरणके तौरपर यह कहना कि 'वस्तु अनित्य है' गलत नहीं है। हाँ, बिना पर्यायकी अपेक्षाके वस्तुको अनित्य ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मानना गलत है। किसी विद्वान्का कहना है कि एकान्त और अनेकान्तमें सिर्फ 'ही' और 'भी' का फर्क है। एक एकान्तवाद कहता है कि वस्तु अनित्य ही है, दूसरा एकान्तवाद कहता है कि वस्तु नित्य ही है। अनेकान्तवाद कहता है कि भाई, तुम दोनोंका कहना ठीक है—वस्तु नित्य भी है और अनित्य भी। द्रव्य अपेक्षा वस्तु नित्य है, पर्याय अपेक्षा अनित्य है। तुम दोनोंको आपसमें लड़ना-झगड़ना नहीं चाहिए बल्कि जिस जिस अपेक्षासे तुम दोनोंका कहना ठीक है, उसको समझ लेना चाहिए। वास्तवमें जैनधर्म एक ऐसा धर्म है कि जो किसी मजहब (मत) से विरोध नहीं रखता है—किसी मतके सिद्धान्तको झूठा नहीं बतलाता, बल्कि सम्पूर्ण मतोंके सिद्धान्तोंको अनेकान्तसे सच्चा साबित कर देता है। असलियतमें अगर देखा जाय तो दुनिया भरके सिद्धान्त अद्वैत, द्वैत वगैरह जैनधर्मके अन्दर शामिल हैं और इस तरह जैनधर्मको अन्य सब धर्मोंका समुदाय कह सकते हैं। परन्तु यहाँ पर और कोई साहब यह खयाल न करें कि मैं जैनधर्मको संग्रहीत मत इस अर्थमें कहता हूँ कि किसी खास वक्तमें किसी खास शख्स (व्यक्ति) ने सब धर्मोंको इकट्ठा करके जैनधर्म बना दिया है। नहीं, मैं ऐसा हरगिज (कदापि) नहीं कहता, बल्कि मेरा कहना यह है कि जिस तरह समुद्र अपनी अनेक लहरोंको लिये हुए है, उसी तरह जैनधर्म भी अपनी भिन्न भिन्न अपेक्षाओं और नयोंसे अनेक सिद्धान्तोंको अनादिसे ही लिये हुए है। और जिस तरह समुद्रकी लहरें समुद्रके अन्दर अपने अपने उचित स्थान पर रह-कर समुद्र ही हैं, उसी तरह विभिन्न सिद्धान्त भी अपनी अपनी अपेक्षाकी दृष्टिसे माने जाकर जैनधर्म ही हैं। हाँ, अगर समुद्रकी किसी लहरको समुद्रसे बाहर सूखी जमीन पर ले आवें, तो वहाँ वह समुद्र तो नहीं कहला सकती; लेकिन वहाँ भी उसको समुद्रका पानी जरूर कहेंगे। इसी तरह यदि कोई सिद्धान्त बिना उसकी समुचित अपेक्षा या नयके माना जाता है, तो उस वक्त उसको पूरा जैनधर्म तो नहीं कह सकते, परन्तु उस वक्त भी वह जैनधर्मकी एक छाया मात्र या कुछ अंश जरूर है। अतः जैनधर्मियों या अनेकान्तवादियोंका कर्तव्य है कि वे किसी एकान्तवादीको अधर्मी, अश्रद्धानी या मिथ्यातीके नामसे न पुकारें; बल्कि जिस गलत तरीकेसे या जिस अपेक्षाको लक्ष्यमें न रखकर उसने उस सिद्धान्त-को मान रक्खा है, उस गलत तरीकेको सही करके या उस उपेक्षित अपेक्षाको समझाकर उसपर अनेकान्तवादकी छाप लगावें और अपनेमें जज्ब (समाविष्ट) करें। और अपनेमें जज्ब करनेका क्या अर्थ? अपना अंश तो वह पहलेसे ही है। केवल उस सिद्धान्तकी अपेक्षाको भुला देनेकी वजहसे जो वह अनेकान्त-वादसे भिन्न दिखलाई पड़ता है, उसकी उस अपेक्षाको हृदयमें बिठलाकर उस भिन्नताको मिटावें। वास्तवमें देखा जाय तो जैनधर्म या अनेकान्तवाद एक शान्ति-प्रिय और प्रेम फैलानेवाला धर्म है। वह किसी धर्मको झूठा नहीं कहता, वह किसी सिद्धान्तको गलत नहीं बतलाता; बल्कि विभिन्न धर्मों और सिद्धान्तोंमें जो अपेक्षा या नयको भुला देनेकी वजहसे परस्पर झगड़ा और विरोध नजर आता है, उनको समुचित अपेक्षाओंको दिखला-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर और उनके विरोधको मिटाकर उन सबको अनेकान्तके सूत्रमें बाँधता है। और अनेकान्तके सूत्रमें बाँधना क्या, बल्कि पहलेसे ही जो वे अनेकान्तके भीतर गर्भित हैं, उनके उस गर्भितपनेको प्रगट करता है। सज्जनों, अगर आप जैनधर्मके सच्चे रहस्य पर गौर करेंगे तो जरूर आप यह कहेंगे कि उसमें दूसरोंको अधर्मी, अश्रद्धानी या मिथ्याती कहनेकी जगह ही नहीं। शायद जिस जमानेमें अन्यमत-वाले यह (इस आशयका) श्लोक पढ़ा करते थे कि मस्त हाथीके सामने चला जाय, लेकिन जैन मंदिरमें न जाय, सम्भव है, उस जमानेमें आपका भी उनको मिथ्याती कहना कुछ अर्थ रखता हो। परन्तु इस जमानेमें जब कि प्रेम और एकताकी आवाज़ चारों तरफसे सुनाई दे रही है, आपका अन्य मतवालोंको मिथ्याती कहना या दूसरे धर्मों और सिद्धान्तोंको केवल मिथ्यात्व या जैनधर्मसे सर्वथा विपरीत अर्थात् विरुद्ध बतलाना, सिवाय इसके कि आप उनको मिथ्यात्वमें और दृढ़ करें और अपने अनेकान्त पर संकुचितता और संकीर्णताका धब्बा लगाएँ, और कुछ भी अर्थ नहीं रखता। और वास्तवमें यदि देखा जाय तो इस किस्मकी स्प्रिट अर्थात इस प्रकारकी बातें कहना और इस किस्मका बर्ताव करना जैनधर्मके अनेकान्त सिद्धान्तसे सर्वथा विरुद्ध और अनेकान्तवादको एकान्तवाद बनाना है।

इसके बाद आपने जैनधर्मके दूसरे 'अहिंसा' सिद्धान्तका महत्व और स्वरूप बतलाते हुए उसके अन्तमें कहा है—

"यहाँ पर मजबूर होकर मुझे यह जरूर कहना पड़ता है कि यद्यपि जैनधर्मकी अहिंसा अत्यन्त विस्तृत और व्याप[क] है, परन्तु इस कलिकालमें हमारे कुछ जै[न] भाइयोंने अपने आचरणसे उसको अत[्य]न्त परिमित बना दिया है। हमारे कु[छ] भोले भाई ऐसे हैं जो सिर्फ बनस्प[ति] वगैरह एकेंद्रिय जीवोंकी दयाको ही पू[र्ण] अहिंसा खयाल करते हैं। यह उनकी गलत[ी] है। उनको अपनी सन्तान, अपनी कौ[म] अपने देश और मनुष्य जातिके उपका[र] की तरफ भी ध्यान देना चाहिए। परो[प]कार भी अहिंसाका प्रधान अंग है। जै[न] धर्मकी अहिंसाको, जो कि अत्यन्त उ[च्च] कोटिकी अहिंसा है, केवल साग-सब्[जी] वगैरह एकेंद्रिय जीवोंकी रक्षा पर परि[]मित कर देना जैनसमाजका हास्य कराना है। इस अवसर पर कोई साहब [य]ह खयाल न करें कि मैं एकेंद्रिय जीवों[की] दयाका निषेध कर रहा हूँ। नहीं नहीं एकेंद्रिय जीवोंके साथ भी दया व अहिंसा का बर्ताव हर शख्सको अपनी ताकत और हालतके अनुसार जिस कदर हो सके, जरूर करना चाहिए। लेकिन मेरा कहना यह है कि एकेंद्रिय जीवोंकी दया को पंचेन्द्रिय जीवोंकी दया पर मुख्यता नहीं देनी चाहिए।

क्या आजकल हमारे जैनी भाई परस्पर एक दूसरेसे कलह करके, दूसरोंके साथ अन्यायका बर्ताव करके, तीर्थक्षेत्रों के झगड़ोंमें अपना रुपया और ताकत बर्बाद करके भाव-हिंसा नहीं कर रहे हैं जरूर कर रहे हैं। क्या आजकल जैन समाज बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, अन[मेल विवाह], बहु-विवाह, कन्या-विक्रय वगैरह कुरीतियाँ करके अपनी सन्तान [और] अपनी जातिके साथ घोर हिंसा नहीं कर रहा है ? निःसन्देह कर रहा है। अधि[क]तर इन्हीं कुरीतियोंकी वजहसे जैन जाति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की संख्या दिन पर दिन घटती जा रही है। अफसोस है, इन कुरीतियोंने ही कुछ लोगोंको विधवा-विवाह जैसी नीच प्रथाकी चर्चा करनेके लिये तय्यार कर दिया है। मेरी रायमें बेहतर तो यह होता कि ये लोग विधवा-विवाहका आन्दोलन करनेके स्थानमें इन कुरीतियोंको निर्मूल करनेकी कोशिश करते। लेकिन इससे ज्यादा अफसोस मुझे उन दूसरे लोगों पर है कि जो इन विधवा-विवाहका चर्चा करनेवालोंको गालियाँ वगैरह तो देते हैं, परन्तु इन कुरीतियोंके दूर करनेकी कोशिश नहीं करते—धड़ाधड़ वृद्ध विवाह बहुविवाह, कन्या-विक्रय वगैरह माल-दार लोगोंकी विषयवासना और स्वार्थ-सिद्धिके लिये किये जाते हैं; और ये दूसरी किस्मके लोग उपेक्षा धारण करनेके अति-रिक्त किसी किसी अवसर पर तो इनमेंसे कुछ कुरीतियोंको निर्दोष भी बतलाने लगते हैं! भाइयों! यदि आप विधवा विवाह-को रोकना चाहते हैं तो वे बातें जिनकी वजहसे इस हानिकारक प्रथाकी ओर लोगोंका ख्याल जाता है, दूर कीजिये। केवल इस प्रथाकी चर्चा करनेवालोंको गालियाँ देनेसे या उनको किसी किस्मकी सजा देनेसे काम नहीं चलेगा। ऐसा करनेसे तो इस नीच प्रथाके प्रचारमें और ज्यादा मजबूती होगी। यह बात वस्तु-स्वभावके विरुद्ध है कि यदि कोई नई कुप्रथा कुछ कारणोंसे जारी होती हुई नजर आती हो तो वह बिना उन कारणों-को दूर किये केवल उसके आन्दोलन करनेवालोंको गालियाँ और सजा देने वगैरहसे रुक जाय।

ऊपरकी पंक्तियोंमें मैंने जैनधर्मके सिर्फ दो सिद्धान्तों—अनेकान्त और 'अहिंसा'का जिकर किया है। इनके अतिरिक्त जैनधर्ममें और बहुतसे अमूल्य और महत्वपूर्ण सिद्धान्त हैं जैसे कि कर्म-सिद्धान्त, आत्म-स्वरूप, परमात्मस्वरूप, भेद विज्ञान, आत्मिक स्वतंत्रता, वीतरा-गता वगैरह कि जिनसे जैनधर्म अति श्रेष्ठ और उत्तम साबित होता है; और यह खयाल पैदा होता है कि इस धर्मके माननेवालोंकी शारीरिक, मानसिक, नैतिक और धार्मिक गरज हर तरहकी हालत बहुत अच्छी होनी चाहिए। लेकिन देखने पर इसके विरुद्ध नजर आता है। जैन समाजकी दशा हर तरहसे अति हीन नज़र आती है। इसकी वजह क्या है? इसकी वजह ग़ौर करनेसे यह मालूम होती है कि इस ज़मानेमें जैन-समाज जैनधर्मका पालन उसके असली स्वरूप और आभ्यन्तर रहस्यके अनुसार नहीं कर रहा है। यद्यपि ऊपरी (बाह्य) क्रियाओं जैसे कि हरी वगैरहके त्यागका पालन अब भी कर रहा है, परन्तु वह बिना उसके प्रयोजन और अभिप्रायको समझे केवल रूढ़िके तौर पर कर रहा है; और उससे अधिक मुख्य, ज़रूरी और हितकर आभ्यन्तरिक बातोंसे उपेक्षा धारण किये हुए है। दूसरे, जैनसमाजमें विद्या और एकताकी बहुत कमी है। एकता न होनेकी वजहसे शिक्षाके काममें बड़ा धक्का पहुँच रहा है। ज़रा ज़रा सी बातोंपर परस्पर खींचतान हो रही है और व्यर्थके वादविवादमें जैनसमाजकी शक्ति खर्च हो रही है। कोई कहता है कि वर्णव्यवस्था कर्मपर निर्भर है। दूसरा कहता कि तुम वर्णव्यवस्थाको उड़ाना चाहते हो, वर्णव्यवस्था तो बिलकुल जन्मपर निर्भर है। खेद है कि ये दोनों ग़ौर करके इस बातका अनुभव नहीं करते कि यद्यपि शुरूमें भगवान् ऋषभदेवने वर्णव्यवस्था

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर्मपर ही स्थिर की थी, क्योंकि उससे पहले भोगभूमि होनेके कारण वर्णव्यवस्था नहीं थी, तो भी अब तो वर्णव्यवस्था कर्म और जन्म दोनों पर ही निर्भर हो सकती है और दोनोंपर ही है। यदि कोई मनुष्य यह पूछता है कि अमुक व्यक्ति जन्मसे ब्राह्मण है या नहीं, तो इसका यही तो अर्थ है कि वह यह पूछता है कि वह व्यक्ति ब्राह्मणसे उत्पन्न हुआ था कि नहीं। यदि वास्तवमें उसकी उत्पत्ति ब्राह्मणसे है, तो इस घटनाके विरुद्ध कौन कह सकता है कि वह जन्मसे ब्राह्मण नहीं है। यदि उस व्यक्तिके कर्म ब्राह्मण जैसे नहीं हैं बल्कि अत्यन्त नीच हैं, और उस वक्त यह प्रश्न किया जाता है कि यह व्यक्ति कर्मकी अपेक्षासे ब्राह्मण है या नहीं, तो इस प्रश्नका यही तो आशय होता है कि इसके कर्म ब्राह्मण जैसे हैं या नहीं। तो फिर कौन सच्ची बातके विरुद्ध यह कहनेका साहस करेगा कि इसके कर्म ब्राह्मण जैसे हैं या यह कर्मकी अपेक्षा ब्राह्मण है? पूरा ब्राह्मण तो वही है जो कर्म और जन्म दोनोंकी अपेक्षा ब्राह्मण हो। हाँ यदि कोई मनुष्य जन्मसे तो ब्राह्मण हो नहीं और उसके कर्म बहुत अच्छे हों, और एक दूसरा मनुष्य है जो जन्मसे तो ब्राह्मण हो परन्तु उसके कर्म अत्यन्त बुरे हों, तो निःसन्देह इन दोनोंमेंसे पहले मनुष्यकी ज़्यादा इज़्ज़त होती है और पहले मनुष्यकी ज़्यादा इज़्ज़त (मान्यता) होनी भी चाहिए; क्योंकि ऐसा होनेसे दूसरा अपने कर्म अच्छा करनेकी कोशिश करेगा। इसके अतिरिक्त जैनधर्ममें निश्चय और व्यवहार दो मार्ग हैं। निश्चयकी अपेक्षा जैनशास्त्रोंमें यह लिखा हुआ है कि यह आत्मा न ब्राह्मण है, न क्षत्रिय, न वैश्य और न शूद्र। और यदि कोई मनुष्य ब्राह्मण होनेकी वजहसे अपने आपको दूसरोंसे ऊँचा ख़याल करता है तो यह उसका भ्रम है और इससे उसके सम्यक्त्वमें दोष लगता है। अतः स्पष्ट है कि वर्णव्यवस्थाको इस क़दर खींचकर मानना कि जिससे दूसरोंको नीचा समझनेके भाव पैदा हो जायँ, जैन निश्चय मार्गके विरुद्ध और उसमें हानिकारक है और व्यवहार मार्गको खींचकर निश्चयका बाधक नहीं बनाना चाहिए। वर्णव्यवस्था कर्मभूमिके व्यवहारकी सहूलियत (सुगमता) के लिये कायम हुई है। जहाँतक व्यवहारका सम्बन्ध है, उसको अनेकान्त रूपसे जन्म और कर्म दोनोंपर निर्भर मानना चाहिए।

दूसरी लड़ाई-झगड़ेकी बात आजकल छूतछातका सिद्धान्त हो रहा है। कुछ लोग कहते हैं कि छूतछात सर्वथा हानिकारक है, इसको बिलकुल उड़ा देना चाहिए। दूसरे उनके इस कहनेसे भयभीत होकर छूतछातको धर्मकी जड़ बतलाने लगते हैं और कहते हैं कि छूतछात जाती रही तो सब धर्म ही नष्ट हो जायगा। मेरे ख़यालमें छूतछातका सम्बन्ध खान-पानकी शुद्धतासे है। जो मनुष्य मैला कुचैला और गन्दा हो, या जिसका खानपान मांसादिक अशुद्ध पदार्थोंका हो, या जिसके कर्म बहुत नीच हों, उसकी स्पर्श की हुई चीज़ खानेसे खानेवालेके दिलमें एक प्रकारकी ग्लानि और आकुलता पैदा होती है जिससे वह अपने धर्मका साधन ठीक तौरसे नहीं कर सकता। अतः दिलमें ग्लानि और आकुलताको आनेसे रोकनेके लिये यह छूतछातका सिद्धान्त रक्खा गया मालूम होता है। परन्तु निःसन्देह, इस निकृष्ट कालमें इसको इस बुरी तरहसे खींचा है कि दूसरेकी छायासे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सड़कपर अपने बराबर चलनेसे अपना धर्म भ्रष्ट होना ख़याल किया जाता है, या कहीं हम खा रहे हों और वहाँ कोई शूद्र या मुसलमान आ जाय तो समझ लिया कि हमारा ईमान (धर्म) जाता रहा । अतः इस किस्मका बर्ताव कि जो नफ़रत और द्वेषकी हदतक पहुँचता है, वास्तवमें, हमारे समाज तथा देशकी उन्नति और निश्चय मोक्ष-मार्गमें बहुत बाधक है । जैनधर्ममें दूसरोंसे नफ़रत और द्वेष करना धर्मके बिलकुल विरुद्ध है । इसके अतिरिक्त आजकल वह ज़माना है कि हम अलग किसी कोनेमें बैठकर अपना जीवन नहीं बिता सकते । आजकल तमाम दुनियाके लोगोंसे हमें सम्बन्ध, कार्य-व्यवहार और मेलजोल रखना होता है। ऐसी हालतमें अगर हम छूतछातको ही इस क़दर खींचकर बैठ जायँ कि किसीका हाथ या कपड़ा छू जानेसे भी हम अपना धर्म नष्ट होना ख़याल करें या दूसरोंको दूरसे ही 'दूर दूर' करें तो हम इस ज़मानेकी ज़िन्दगी (जीवन) की दौड़में कदापि सफल नहीं हो सकते । छूतछातके ऐसे खींचे हुए व्यवहारसे हमारे धर्मका हास्य होता है और संसारसे हमारा अस्तित्व उठ जानेकी सम्भावना है । अतः छूतछात जहाँतक समाज, देश और धर्मकी उन्नतिमें बाधक है वहाँ तक वह निःसन्देह छोड़ देनेके योग्य है । परन्तु जहाँतक इसका सम्बन्ध खानपानकी शुद्धतासे है, वहाँतक वह बुरी चीज़ नहीं है । इसलिए विद्वानोंको चाहिए कि इसपर अधिक खींचातानी करके आपसमें अनैक्य न फैलाएँ, बल्कि निष्पक्ष होकर छूतछातको ज़्यादा खींचनेसे जितने अंशमें उसमें अर्थहीनता, अस्पष्टता और हानिकरता आ गई है उतने अंशमें उसका पक्ष न लें । हाँ, जितने अंशमें वह शुद्धताकी साधक है उतने अंशमें इसको स्थिर रक्खें।

इसी तरह और भी बहुत सी बातें हैं कि जिनपर वादविवाद होकर आजकल एक दूसरेकी निन्दा करने और गाली-गलौजका सिलसिला चल रहा है कि जिससे समाजमें एक हलचल और नाइत्तफ़ाकी (अनैक्य) फैली हुई है और समाजकी शिक्षा तथा सुधार-सम्बन्धी कामोंमें बहुत धक्का पहुँच रहा है। मेरी तुच्छ सम्मतिमें विद्वानोंको चाहिए कि यदि कोई व्यक्ति कोई बात आपत्तिके योग्य या धर्म-विरुद्ध लिखे तो बिना किसी व्यक्तिगत आक्षेप और कषायके शान्तिपूर्वक उसका उत्तर दे दें, बाकी हर वक्त एकता और विद्याके प्रचारकी कोशिश करें । शास्त्रोंके विरुद्ध लेखोंको मैं भी नापसन्द करता हूँ; परन्तु जो तरीका लोगोंने आजकल इसके रोकनेका ग्रहण कर रक्खा है, मेरे ख़यालमें वह ठीक नहीं है। बात यह है कि जब कोई शख़्स कोई बात विपरीत या धर्म-विरुद्ध कहता या लिखता है तो उसका कारण उसके मिथ्यात्व-कर्मका उदय हुआ करता है । अब अगर आप उसकी बातका जवाब (उत्तर) देनेमें उसकी निन्दा करें, इसको अधर्मी, अश्रद्धानी, मिथ्याती वगैरह कहें तो इसका नतीजा (फल) यह होगा कि वह मिथ्यात्वमें और ज़्यादा दृढ़ हो जायगा और आपके जवाबका उसकी तबीयतपर कुछ भी असर नहीं होगा । इसलिए उसको तो आपके उत्तरसे कोई लाभ नहीं पहुँचेगा और दूसरोंकी दृष्टिमें आपका उत्तर, ठीक होनेपर भी, केवल आपके उन कठोर, असभ्य और निन्दामय शब्दोंके कारण कुछ अधिक महत्व

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं रक्खेगा। सिर्फ़ आपके इस प्रकारके शब्द दूसरोंके दिलमें आपकी तरफ़से कुछ कमज़ोरीका सन्देह पैदा करेंगे। अतः किसी विपरीत या धर्म-विरुद्ध बातके उत्तर देनेका सबसे अच्छा तरीका यही है कि बिना अधर्मी और अश्रद्धानी कहे, बिना किसी प्रकारकी निन्दा और बिना किसी प्रकारका व्यक्तिगत आक्षेप किये केवल उस बातका उत्तर अत्यन्त शान्ति और गम्भीरताके साथ दिया जाय कि जिससे उस विपरीत बात कहनेवालेको और दूसरोंको लाभ पहुँचे और समाज अनैक्यसे बचा रहे।"

मानकी मरम्मतका अनोखा उपाय।

दिगम्बर जैन प्रान्तिक सभा बम्बईके महामन्त्री बाबू माणिकचन्दजी बैनाड़ाने जैनमित्रमें एक लेख इस आशयका लिखा था कि कलकत्तेकी 'जैनसिद्धान्त-प्रकाशिनी संस्था' इस समय केवल पं० गजाधरलालजी और श्रीलालजीके हाथमें है; और सुना गया है कि उक्त दोनों पण्डित सट्टा खेलते हैं और इसमें घाटा आनेसे उनपर बड़ा भारी कर्ज़ हो गया है। जब संस्थाके जन्मदाता पं० पन्नालालजी बाकलीवालने अपने कामसे इस्तीफ़ा दे दिया है, तब केवल इन पण्डितोंकी जिम्मेदारी पर—जो सट्टा खेलते हैं—इतनी बड़ी संस्था रखना जोखिमका काम है, इत्यादि। इस लेखको पढ़कर पण्डित महाशयोंका क्रोध भड़क उठा और उन्होंने जैनमित्र, जैनगजट, पद्मावती पुरवाल और संस्थाकी रिपोर्टमें लेखोंका ताँता बाँध दिया। बैनाड़ाजी सोचते होंगे कि हम पण्डित-दलके कृपा-पात्र हैं, परन्तु उन्हें भी लेनेके देने पड़ गये!

बैनाड़ाजीने तो पण्डितोंकी प्रतिष्ठाको धक्का लगानेका पाप किया था, इसलिए उन्हें उसका प्रायश्चित्त मिलना ही चाहिए था; परन्तु उनके साथमें बैठे बिठाये मेरी और भाई छगनमलजी बाकली वालकी भी दुर्दशा क्यों की गई, सो बिल्कुल ही समझमें नहीं आया! ख़ैर।

पूर्वोक्त लेखोंमें पण्डित महाशयोंने हमारे ऊपर जो आक्षेप किये हैं, यदि वे हमारे सिद्धान्तों या विचारोंके सम्बन्धमें होते तो हम उनके प्रतिवादमें एक अक्षर भी नहीं लिखते। क्योंकि ऐसे व्यर्थके आक्षेपोंके सहन करनेका हमें काफ़ी अभ्यास हो गया है। परन्तु इन आक्षेपों में हमारी शुभ निष्ठा तथा दयानतपर आक्रमण किया गया है और यह हमें असह्य है। यद्यपि हम यह जानते हैं कि आगे चलकर हमें ऐसे आक्रमणोंके सहन करने का भी अभ्यास करना पड़ेगा, इन्हें भी चुपचाप सह लेना होगा और हमारे ये गुरु लोग हमें इस तपश्चर्यामें भी पारंगत किये बिना न रहेंगे; फिर भी इस समय तो हमसे पण्डितोंके असत्य और निर्मूल आक्षेप नहीं सहे जाते और अपने मित्रों के समझाने बुझानेसे दो ढाई महीने चुप रहकर भी आज हम इस अप्रिय कार्यमें प्रवृत्त होते हैं।

हमें खेद है कि हितैषीके बहुमूल्य पृष्ठोंको हम इस अप्रिय चर्चासे भर रहे हैं। फिर भी विचारशील पाठकोंसे आशा है कि वे इससे कुछ न कुछ लाभ अवश्य उठावेंगे। कमसे कम उन्हें इस बातका ज्ञान अवश्य हो जायगा कि इस समय उद्धतता और स्वेच्छाचार करते हुए भी पण्डितजन कितने सुरक्षित हैं और उनको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मार्गमें बाधा डालनेवालोंकी कैसी दुर्दशा की जाती है।

यह एक गूढ़ प्रश्न है कि बैनाड़ाजीने पण्डितोंपर जो आक्षेप किया है, उसके उत्तरमें हम लोग क्यों घसीटे गये ? गेहूँके साथ बेचारे घुन भी पीसे गये। जो लोग संस्थाके एक मात्र कर्त्ता, हर्त्ता और विधाता बने हुए हैं, उनके लिए बैनाड़ाजीका यह आक्षेप कि "वे सदा खेलते हैं और उनपर कई हजार रुपयोंका कर्ज हो गया है" इसमें सन्देह नहीं कि असह्य हुआ होगा। परन्तु उसका सारा क्रोध हमपर क्यों निकाला गया? इसका कारण सिवाय इसके क्या हो सकता है कि जो लोग अपनेको निरपराध सिद्ध नहीं कर सकते, वे अपने क्रोधका वेग इसी तरह, जो सामने आया उसीके ऊपर, आक्रमण करके हलका किया करते हैं। यह क्रोधका आवेश ही था जो तमाम जैनसंस्थाओंके शुभचिन्तक ब्रह्मचारीजी पर भी यह अपराध लगानेसे न चूका कि "वे सत्यका खून करनेवाले हैं, उनका भीतरी हृदय काला है और वे माणिकचन्द ग्रन्थमालाका ही बार बार स्मरण किया करते हैं, जैनसिद्धान्त प्रकाशिनी संस्थाका नाम भूल जाया करते हैं।" और यह सर्वथा मिथ्या कषायपूर्ण आक्रमण इसलिए किया गया कि ब्रह्मचारीजी पं० गजाधरलाल और श्रीलालजीके उस बहुत जरूरी (?) लेखको समय पर प्रकाशित नहीं कर सके जो जैनगजट आदिमें छप चुका था और जिसके प्रतिवादमें हम लोग यह लेख लिख रहे हैं।

इसके बाद ही तीर्थक्षेत्र कमेटीके मैनेजर बाबू रामलालजीको उक्त पंडित महाशयोंने यह नोटिस दिया कि तुम फौरन माफी माँगकर हमारे मानकी मरम्मत करो, नहीं तो तुम पर बाकायदा कार्रवाई की जायगी! परन्तु जब रामलालजीने माफी माँगनेसे इन्कार किया, तब पद्मावती पुरवालके पिछले अंकमें तीर्थक्षेत्र कमेटीके नाम एक गुमनाम खुली चिट्ठी छापी गई जिसमें कमेटीके अधिकारियोंको सुझाया गया कि रामलाल ऐसा बुरा आदमी है; उसके विचार अमुक तरहके हैं; इसलिए उसे कमेटीके दफ़रसे अलग कर देना चाहिए! बाबू रामलालजीका अपराध यह है कि उन्होंने बैनाड़ाजीके उस लेखकी पुष्टि की थी जिसमें पण्डितोंपर सट्टा खेलने और कर्ज़दार होनेका आक्षेप था। वे बहुत दिन पहलेसे कमेटीमें और दूसरी संस्थाओंमें काम कर रहे हैं और उनके विचार भी जैसे आज हैं; वैसे ही पहलेसे हैं। परन्तु इसके पहले कभी पण्डित महाशयोंने उनका कमेटीमें रहना आपत्तिजनक नहीं समझा। परन्तु ज्योंही उन्होंने पण्डितोंको सट्टेबाज़ बतलाया, त्योंही कमेटीके नाम खुली चिट्ठी छाप दी गई। इन सब बातोंसे पण्डित महाशयोंके क्रोधके आवेशका स्पष्ट पता लगता है और तब पाठक समझ सकते हैं कि उन्होंने इस आवेशके समय जो लेख लिखे हैं, उनमें न्याय-अन्याय और सत्य-असत्यका कितना खयाल रक्खा गया होगा।

परन्तु यह स्पष्ट है कि इतने यद्वा-तद्वा लेख लिखकर भी पण्डित महाशय अपनेको निर्दोष सिद्ध नहीं कर सके; और न इस अनोखे उपायके द्वारा वे अपने मानकी कुछ मरम्मत ही कर सके हैं। यदि उन्होंने हम सब लोगोंको दोषी, विरोधी और पक्षपाती भी सिद्ध कर दिया, तो भी वे स्वयं तबतक निर्दोष नहीं बन सकते जबतक लोगोंको यह प्रमाण न दिखला दिया जाय कि उन्होंने न तो कभी सट्टा खेला और न उनपर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किसीका एक कौड़ीका क़र्ज़ ही है। और इस दोषसे मुक्त हुए बिना न्यायतः उनपर संस्थाका सारा उत्तरदायित्व कभी नहीं रक्खा जा सकता।

हमारे ऊपर सबसे बड़ा आक्षेप यह किया गया है कि हम लोग (मैं और भाई छगनमलजी बाकलीवाल) पं० गजाधरलाल और श्रीलालजीसे जलते हैं और जैनसिद्धान्त प्रकाशिनी संस्थाके अशुभचिन्तक हैं! परन्तु यह बिलकुल झूठ है। हम लोग उक्त पण्डितोंसे भी अधिक इस संस्थाके शुभचिन्तक हैं और हमारी उस शुभचिन्तकताका ही यह फल है कि वे हमें अपना विरोधी और जलनेवाला समझ बैठे हैं।

संस्थाके जन्मदाता पं० पन्नालालजी बाकलीवालके साथ हमारा शुरूसे ही घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है और वे संस्थाके सम्बन्धमें हमसे बराबर सम्मति लेते रहे हैं। हमने उन्हें सदा संस्थाकी भलाईकी सम्मति दी है और हमारा विश्वास है कि यदि उसके अनुसार काम होता तो संस्थाकी दशा वर्त्तमान दशासे कई गुनी अच्छी होती और उसके द्वारा जैनसाहित्यका प्रकाशन भी अधिक होता। यद्यपि गुरुजी (पं० पन्नालालजी) के काम करनेका ढंग हमें कभी पसन्द नहीं आया और हम प्रायः ही उसका विरोध करते रहे हैं—यहाँ तक कि उनसे लड़ते भी रहे हैं; परन्तु वह विरोध भी संस्था और गुरुजीकी शुभचिन्तनाके कारण ही हम लोग करते रहे हैं और इसकी साक्षी हमारी वे सब चिट्ठियाँ देंगी जो उनके संग्रहमें हैं।

गुरुजीको हम सदा पूज्य दृष्टिसे देखते रहे हैं; परन्तु उनके साथ हमारा मतैक्य बहुत ही कम हुआ है। यहाँतक कि इसके कारण वे कभी कभी हमसे रुष्टतक हो गये हैं। फिर भी, जहाँतक हम जानते हैं, उन्होंने हम लोगोंको अपना या संस्थाका अशुभचिन्तक कभी नहीं समझा। और हमें अब भी विश्वास है कि गुरुजी हमें ऐसा नहीं समझते; और इसलिए हम उन्हें ही इस मामलेमें साक्षीस्वरूप पेश करते हैं। यदि वे हमें ऐसा समझते तो उन्हें हमारी सम्मतियोंकी अपेक्षा कभी न रहती।

हमने जैनहितैषीमें जैनसि० प्र० संस्था और सनातन जैनग्रन्थमालाके लिए कई बार अपने ग्राहकोंसे अपील की है। इसके विरुद्ध जबतक यह न बतला दिया जाय कि हमने संस्थाको हानि पहुँचानेके लिए कभी कुछ लिखा है, तबतक हम उसके अशुभचिन्तक नहीं ठहर सकते।

पण्डित महाशयोंको शायद यह स्मरण नहीं है कि संस्थाको भाषा टीका सहित ग्रन्थ प्रकाशित करने और उन्हें लागतके मूल्यपर बेचनेकी सम्मति हम लोगोंने ही दी थी और यह उस समय दी थी जब संस्थाको आर्थिक कष्ट हो रहा था और संस्कृत ग्रन्थोंके न बिकनेकी शिकायत थी।

गोम्मटसार (बड़ी टीका) के छपानेका हमने विरोध किया था; परन्तु इसके दो कारण थे। एक तो यह कि रायचन्द्रशास्त्रमालामें इसकी संक्षिप्त टीकायें छप चुकी थीं; इस कारण हमारा खयाल था कि यह कम बिकेगा और इससे संस्थाको हानि होगी। दूसरे हमारी यह इच्छा रहती है कि एक प्रचलित और परिचित ग्रन्थकी अपेक्षा ऐसी संस्थाओंके द्वारा अपरिचित और दुर्लभ ग्रन्थोंका ही उद्धार होना चाहिए। ऐसी दशामें भी यदि हम संस्थाके विरोधी करार दिये जायँ, तो फिर लाचारी है!

अपने स्वार्थकी दृष्टिसे भी हम संस्था-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के अशुभचिन्तक नहीं बन सकते। क्योंकि, ७-८ वर्ष हुए, जबसे हम सार्वजनिक हिन्दी पुस्तकोंके प्रकाशनका कार्य करने लगे हैं, तबसे अवकाशाभावके कारण नवीन जैनग्रन्थोंके प्रकाशनका कार्य प्रायः बन्दसा ही कर चुके हैं; बल्कि अपनी अनेक पुस्तकें दूसरोंको प्रकाशित करनेके लिए दे रहे हैं। ऐसी दशामें संस्थाके पुस्तक-प्रकाशन कार्यके प्रतिस्पर्धी तो हम ठहर ही नहीं सकते जो हम उसका अशुभचिन्तन करें। उलटे हमारा स्वार्थ तो इसीमें सधता है कि संस्था अधिकाधिक ग्रन्थ प्रकाशित करे और हम उन्हें बेचकर लाभ उठावें। क्योंकि, हमारे यहाँ सब जगहके जैनग्रन्थोंकी बिक्रीका प्रबन्ध है।

बेशक हमने गुरुजीको इस विषयमें कई बार लिखा है कि आप पण्डित लोगोंसे ग्रन्थसम्पादन, प्रूफ-संशोधन आदिक काम ठेके पर फार्मके हिसाबसे करावें, उन्हें वेतन देकर न रक्खें। क्योंकि वैसा करनेसे संस्थाको ख़र्च बहुत करना पड़ेगा और काम कम होगा। हमारा यह लिखना पण्डितोंके लिए हानिप्रद अवश्य था, और इसके कारण ही उन्होंने इसपर बहुत आक्रोश प्रकट किया है; परन्तु यह तो हमारी संस्थाकी शुभचिन्तनाका बड़ा भारी सुबूत है। इससे हम अशुभचिन्तक कैसे ठहर सकते हैं?

हमारी इस सम्मतिसे पण्डित महाशयोंको अवश्य ही बहुत घाटेमें रहना पड़ा होगा। क्योंकि गुरुजीने इसके अनुसार बहुत समय तक ठेकेपर ही काम कराया था। और यह एक ऐसा कारण है जिससे विचारशील सहजमें ही यह निर्णय कर लेंगे कि स्वयं पण्डित महाशय हमसे चिढ़ गये हैं या हम उनसे जलते हैं। और पण्डितोंकी इस हानिका कारण 'पण्डितोंसे वैर' नहीं, किन्तु संस्थाके हितकी अभिलाषा है।

संस्थाके पचास पचास रुपयाके शेअर निकालनेका और उसके लिए दौरा करनेका भी हमने विरोध किया था। क्योंकि हम नहीं चाहते थे कि गुरुजी एक बड़ी भारी जोखिमको अपने सिरपर ले लें। हम उनके स्वभावसे बहुत कुछ परिचित हैं। किसी एक कामको जमकर चलाते रहना उनकी प्रकृतिके विरुद्ध है। ज्योंही कोई छोटी मोटी बाधा, विपत्ति या अड़चन आई कि उन्होंने उसे बन्द किया और दूसरा खेल शुरू किया। इसी प्रकृतिके कारण वे अबतक न जाने कितनी ग्रन्थमालायें और संस्थायें खोल चुके हैं। हमने सोचा कि वे एक बड़ी भारी जिम्मेदारी अपने सिरपर ले रहे हैं, अपनी संस्थाको पब्लिककी चीज़ बना रहे हैं और उनसे उसका काम न सँभलेगा। कल ही यदि लहर उठी कि अब मैं यह काम नहीं करना चाहता, कोई दूसरा काम करूँगा, तो उसका फल क्या होगा? और हमारा यह सोचना अयुक्त भी नहीं था। लोगोंने केवल उनके विश्वासपर धन दिया और आशा की कि वे उसे बराबर चलाते रहेंगे; परन्तु उन्होंने अपनी जिम्मेदारीका कोई ख़याल न किया और धन देनेवाले सहायकोंकी सम्मति लिये बिना ही ऐसे लोगोंके हाथ संस्थाको सौंपकर चल दिये जिनके विषयमें प्रान्तिक सभा बम्बईके महामन्त्री कहते हैं कि सट्टेबाज़ हैं और उनपर कई हज़ारका क़र्ज़ है। और मज़ा यह कि स्वयं गुरुजी भी इस सट्टे और क़र्ज़का हाल जानते हैं। यदि उन्हें अपनी जिम्मेदारीका ख़याल होता तो ऐसी परिस्थितिमें वे संस्थासे कभी अलग न होते। परन्तु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Narià, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उनकी प्रकृति ही ऐसी है; और इसी प्रकृतिका ज्ञान होनेके कारण हम लोगोंने उन्हें रोका था कि आप इस झंझटमें मत पड़िये। इस बातकी साक्षी पण्डित गजाधरलालजी भी अपने लेखमें देते हैं। वे लिखते हैं:—"प्रेमीजीने कहा कि बाकलीवालजी काम खोजना जानते हैं पर काम करना (चलाना?) नहीं जानते। उन्होंने इस तरह रुपया एकट्ठा करके ठीक नहीं किया। उनसे वह कभी न सँभलेगा। किसीका रुपया फँसाकर उसका हिसाब न रखनेसे बड़ा फजीता होता है।" बेशक मैंने यही कहा होगा और गुरुजीके सद्भावों और सदुद्देश्योंपर सब तरह श्रद्धा रखते हुए भी मेरा अबतक उनपर यही आक्षेप है कि वे अपनी जिम्मेदारीका बहुत ही कम खयाल रखते हैं और यह बात मैं उनके समक्ष भी कई बार कह चुका हूँ। अब पाठक समझ गये होंगे कि हम लोगोंने शेअर निकालनेका विरोध किस अभिप्रायसे किया था।

दौरेपर विद्यार्थियोंके ले जानेके भी हम विरोधी थे। क्योंकि हमें सन्देह था कि यदि काफी चन्दा न हुआ तो यह व्यर्थका खर्च सिरपर पड़ेगा और गुरुजी और भी अधिक आर्थिक संकटमें फँस जायँगे। इससे तो यही अच्छा है कि वे जो काम कर रहे हैं वही करते रहें। उसमें कमसे कम कोई बड़ी जिम्मेदारी तो उनके सिर नहीं है।

यह बहुत ही बढ़िया और निष्पक्ष न्याय है कि यदि मैंने गुरुजीको यह सम्मति दी कि आप हरिवंश पुराणका अनुवाद पं० गजाधरलालजीसे न कराकर सुकवि और सुलेखक पं० गिरधर शर्मासे कराइये, तो मैं उनका शत्रु हो गया। मेरा तो अब भी यह विश्वास है कि यदि शर्माजी अनुवाद करते तो वह इस अनुवादसे कई गुना अच्छा होता। यह हो सकता है कि मैं पं० गजाधरलालजीके प्रकाण्ड पाण्डित्यपूर्ण अनुवादकी खूबियोंको समझनेकी योग्यता न रखता होऊँ; परन्तु इससे मैं संस्थाका या पण्डितजीका अशुभचिन्तक तो कदापि सिद्ध नहीं हो सकता।

हमें इस बातका बड़ा दुःख है कि हम लोगोंने गुरुजीको जो जो सम्मतियाँ दीं, प्रायः उन सभीसे पं० गजाधरलालजीका हृदय जर्जरित होता गया, उन्हें घोर कष्ट होता रहा और इसपर भी वे अबतक चुप बने रहे! यदि गुरुजी महाराज हमें यह लिखनेकी कृपा कर देते कि तुम्हारी सम्मतियोंसे इतने महान् दुःखकी सृष्टि हो रही है, इसलिए तुम ऐसी सम्मतियाँ मत दिया करो, अथवा वे स्वयं ही हमसे सम्मति माँगना छोड़ देते तो आज यह नौबत न आती। कमसे कम इस समय जब कि पण्डितोंका चित्त सट्टेकी बदनामी और कर्जसे व्यस्त हो रहा है, उन्हें हम लोगोंके ये 'कारनामे' लिखनेका तो कष्ट न उठाना पड़ता। और हम लोग भी इन काँटोंमें घसीटे जाकर व्यर्थ ही क्षत-विक्षत न किये जाते।

हम लोगोंने गुरुजीको यह भी अनेक बार लिखा है कि संस्थाके ग्रन्थ बहुत ही अशुद्ध छप रहे हैं और हम समझते हैं कि ऐसा लिखकर हमने कोई पाप नहीं किया। न्यायतीर्थ पं० वंशीधरजी शास्त्रीका कथन है कि राजवार्तिकका कोई पृष्ठ ऐसा नहीं है जिसमें दस बीस अशुद्धियाँ न हों और वे अशुद्धियाँ ऐसी नहीं हैं जो अन्य प्रतियोंकी अप्राप्तिके कारण रह गई हों, वे केवल अज्ञान और प्रमादके कारण हुई हैं। इसके प्रमाणस्वरूप उक्त पण्डितजीने राजवार्तिकके कई पत्र शुद्ध करके दिखलाये थे, जो इस समय भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हमारे पास मौजूद हैं। पण्डित महाशयों-के इस प्रमाद और अज्ञानको यदि हमने सर्वसाधारणमें प्रकट किया होता तो बात दूसरी थी और तब हम उनकी बुराई करनेवाले भी किसी तरह ठहराये जा सकते। परन्तु हमने तो प्राइवेट तौरपर ही लिखा था और इससे उन्हें एक सज्जन-की तरह लज्जित होकर आगेके लिए सावधान हो जाना चाहिए था। सो न करके उलटे हमें अशुभचिन्तक ठहराया जाता है और अपने दोषोंपर परदा डाला जाता है!

माणिकचन्द्र ग्रन्थमालाके १७ ग्रन्थों-मेंसे १२ ग्रन्थोंकी भूमिकायें—जिनमें विशेष करके उनके कर्त्ताओंका ऐति-हासिक परिचय है—मेरी लिखी हुई हैं। उनमें शुरूके पाँच ग्रन्थोंमें मैंने उन्हें ग्रन्थमालाके पण्डितोंसे संस्कृतमें अनुवाद कराके प्रकाशित कराया है और उनके नीचे सूचित कर दिया है कि वे मेरी लिखी हुई हिन्दीके अनुवाद हैं। दुर्भाग्यसे ग्रन्थमालाका पहला ग्रन्थ कोल्हापुरमें छपवाया गया था। मैंने उसकी भूमिका भी हिन्दीमें ही लिखकर भेजी थी और श्रीयुक्त पं० कलापा भर-माया निटवेको लिख दिया था कि आप उसे संस्कृतमें परिवर्तित कर दीजिएगा। उन्होंने उसे संस्कृतमें अनुवाद करके छाप तो दिया; परन्तु वे यह लिखना भूल गये कि यह हिन्दीपरसे अनुवादकी गई है। बस, इसपरसे पं० गजाधर-लालजी मुझपर बड़ी बुरी तरहसे आक्र-मण करते हैं कि मुझे संस्कृतज्ञ बननेकी हवस है और मैं ग्रन्थमालाके पण्डितोंको दबाकर अपनी उक्त हवस पूरी करता हूँ! मानों पं० निटवे मेरे हाथके नीचेके पण्डित हैं! इसके उत्तरमें मैं इसके सिवाय क्या लिखूँ कि भगवान् मुझे ऐसी हवससे बचावें। क्योंकि मैं संस्कृत-में लेख लिख लेने या बोल लेनेको हा पाण्डित्य नहीं समझता हूँ। मेरी समझमें संस्कृतज्ञोंमें भी मूर्खोंकी कमी नहीं है; और जो संस्कृत लिखना बोलना नहीं जानते हैं, उनमें भी विद्वानोंकी कमी नहीं है।

जिस समय 'आप्तपरीक्षा' छप चुकी, उस समय गुरुजीकी आज्ञा हुई कि मैं उसके कर्त्ता विद्यानन्दस्वामीका ऐति-हासिक परिचय लिख दूँ। तदनुसार मैंने उसे लिखकर जैनहितैषीमें प्रकाशित कर दिया और उसे आप्त-परीक्षामें लगा देनेके लिए लिख दिया। पं० गजाधर-लाल जीका कर्तव्य था कि वे उसके संकृत अनुवादमें यह लिख देते कि यह नाथूरामके लिखे हुए हिन्दी लेखका अनु-वाद है। परन्तु उन्होंने लेखके प्रारम्भमें केवल "जैनहितैषितः समुद्धृतः" (जैन-हितैषीसे उद्धृत) लिख दिया और लेख-के अन्तमें 'अनुवादकर्त्ता' न लिखकर "विदुषामनुचरो गजाधरलालो जैनः" लिखकर छुट्टी पा ली। इस बातका कहीं भी कोई उल्लेख करनेकी ज़रूरत ही नहीं समझी कि यह किसका लिखा हुआ है। 'जैनहितैषीसे उद्धृत' लिख देनेसे क्या यह नहीं समझा जा सकता कि आपने स्वयं ही उसे जैनहितैषीमें लिखा होगा और फिर उसपरसे भूमिका-में उद्धृत कर लिया है? यदि उसमें मेरे जैसे क्षुद्र लेखकका नाम लिख दिया जाता तो क्या इससे आपकी संस्कृतज्ञताका अपमान हो जाता? मुझे यह बुरा मालूम हुआ और मैंने गुरुजीसे इसकी शिकायत की। इसके बाद मैं चुप हो गया। वह बात ही भुला दी गई। परन्तु अब इतने दिनोंके बाद ये अहंमन्य पण्डित अपनी इति-हासज्ञ बननेकी उत्कट हवसको छिपाकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उलटे मुझपर यह दोष लगाते हैं कि मैं संस्कृतज्ञोंमें अपना नाम लिखाना चाहता हूँ!

तत्वार्थ राजवार्तिकके भट्टाकलंकदेवके परिचयमें भी पं० गजाधरलालजीने इसी तरह इतिहासज्ञ बननेका प्रयत्न किया है। वह परिचय भी मेरे लेखका प्रायः अनुवाद ही है। उसकी भूमिकामें आपने यह वाक्य लिखनेकी कृपा की है—"जैनहितैषिसम्पादयितृभिः पं० श्रीनाथूराम प्रेमिभिः स्वकीये जैनहितैषिपत्रे प्रकाशितं श्रीमद्भट्टाकलंकजीवन-चरितमात्र केषुचित्स्थलेषु समवलम्ब्य विलिखितं ततोऽस्म्यहमुपकार्यस्तेषां।" अर्थात् नाथूरामप्रेमीके लिखे हुए जीवनचरितके कितने ही स्थलोंका अवलम्बन करके मैंने यह चरित लिखा है। मतलब यह कि अनुवाद नहीं किया है; उसकी कुछ कुछ बातें ले ली हैं! हिन्दीका अनुवाद करना तो पण्डितोंके लिए शायद घोर अपमानका कारण है, फिर यह कैसे लिख दें कि अनुवाद किया? परन्तु वास्तवमें उक्त लेखमें एक भी प्रमाण ऐसा नहीं है जो उनकी गाँठकी पूँजी हो। केवल अनुवादकी भाषा और लम्बे लम्बे विशेषण तथा समास उनके हैं। पाठक सोचें कि यह इतिहासज्ञ बननेकी हवस नहीं तो और क्या है।

हमारे ऊपर एक और आक्षेप यह है कि हमने गुरुजीको और संस्थाके संरक्षक सेठ हीराचन्द्र रामचन्द्रजीको बहकाकर संस्थाकी चिरस्थायिताके मार्गमें कंटक बोये, तथा गुरुजीने हम लोगोंकी प्रेरणासे संस्थासे इस्तीफा दे दिया। इसका सीधा अर्थ यह है कि गुरुजी और संरक्षकजीमें स्वयं सोचने समझनेकी अक्ल नहीं है और इस कारण वे हम लोगोंके कहने सुननेसे बहक जाते हैं! वे ऐसी मोमकी नाक हैं कि जिस तरफको मोड़ दिया, उसी तरफको मुड़ गये! अच्छा हो यदि उक्त दोनों सज्जनोंकी ओरसे यह प्रकाशित किया जाय कि हम लोगोंने उन्हें क्या समझाया था और उन्होंने क्यों इस्तीफा दिया और क्यों संरक्षकजीने संस्थाका भवन बनानेका विरोध किया। इसके बिना यह मामला स्पष्ट नहीं हो सकता। परन्तु हमारी समझमें पण्डित महाशयोंको यह प्रकाशित कराना अभीष्ट नहीं होगा। क्योंकि इसमें उनकी वे सब बातें प्रकाशित हो जायँगी जिनके कारण यह सब बखेड़ा खड़ा हुआ है। फिर भी हमारी प्रार्थना है कि उक्त महाशय अपना अपना वक्तव्य प्रकाशित कर देनेकी कृपा करें।

इस लेखमें हमने पण्डित महाशयोंके लेखोंकी केवल उन्हीं बातोंका समाधान किया है जिनसे हमारा प्रत्यक्ष सम्बन्ध है और जिनके द्वारा लोगोंको हमारे विषयमें उलटी बातें समझाई गई हैं। लेखोंकी अन्य बातोंसे हमारा कोई सरोकार नहीं और अब हम धीरे धीरे इस निर्णयपर पहुँच रहे हैं कि इस समय पण्डितोंके अनुचित कार्योंपर टीका-टिप्पणी करनेसे कोई लाभ नहीं हो सकता। क्योंकि इस समय सर्वत्र पण्डितोंके दलकी तूती बोल रही है और इस दलके कर्णधारोंमें उस नैतिक बलका अभाव है जो "शत्रोरपि गुणा वाच्याः दोषाः वाच्याः गुरोरपि" को महत्त्व देता है। यदि ऐसा न होता तो क्या ये पण्डित महाशय अपराध करके भी इतनी उद्धतता और उच्छृङ्खलतासे भरे हुए लेख लिखनेका साहस कर सकते और फिर भी इनकी पीठ ठोंकी जाती? इसके प्रमाणमें हम 'खण्डेलवाल जैनहितेच्छु' के धुरन्धर सम्पादक पं० पन्नालालजी सोनीका वह सद्विचारपूर्ण नोट (अंक ५) समाजके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सामने पेश करते हैं जिसमें उन्होंने जैन-सिद्धान्त-प्रकाशिनी संस्थाके सर्वस्व उक्त पण्डितोंके दोषोंको सारी शक्ति लगाकर छिपाया है और उनके विरोधियोंको जैन-धर्मका विरोधी बतलाकर टाल दिया है। उसमें एक जगह आप कहते हैं--"हमने विश्वास्त (?) सज्जनसे सुना है कि माणिकचन्दजी बैनाड़ाके भाई पन्नालाल-जीने संस्थाके पण्डितोंको सट्टा खेलनेके लिए उकसाया, सट्टा खेलनेकी तरकीब सुझाई, एक एक घंटा हर रोज व्याख्यान दे देकर पण्डितोंको सट्टा खेलनेके लिए लालायित कर दिया और आखिर पण्डितोंने सट्टा खेल डाला।" यह सब स्वीकार करके भी सोनीजीकी आज्ञा है कि रामलालजीका और बैनाड़ाजीका लेख पण्डितोंकी निर्मल कीर्तिको समल करनेके लिए लिखा गया है, इसलिए जैन समाजको ऐसे लेखोंकी ओर दृष्टि न देकर अपने धर्मकी जी-जानसे रक्षा करने-वाले साधर्मी पण्डितोंसे मुँह न मोड़ना चाहिए !!

हम भी सोनीजीके स्वरमें स्वर मिला-कर कहते हैं कि जै० सि० प्र० संस्थाके संरक्षकों, सहायकों और मेम्बरोंको चाहिए कि वे संस्थाका बैनामा लिखकर साधर्मी पण्डितोंके नाम रजिस्टरी करा दें और अपने सच्चे धर्मवात्सल्यका परि-चय दें। इसमें किसीको कोई आपत्ति नहीं हो सकती। हम लोगोंने अबतक संस्था-की जो शुभचिन्तना या अशुभचिन्तना की, उसका प्रसाद हमें काफी मिल चुका। अब और प्राप्त करनेकी हमें इच्छा नहीं रही। पण्डित महाशयोंसे भी हमारी सविनय प्रार्थना है कि आप अपने क्रोध-का संरक्षण करके हम लोगोंको क्षमा कर दें। आगे हम आपके मार्गमें कभी कण्टक न बनेंगे, इस बातको आप नोट कर रक्खें।

नाथूराम प्रेमी।

स्वदेशी वर्दी।

महात्मा गान्धीने खद्दरकी पोशाकको स्वराज्य-सैनिककी वर्दी कहा है और स्वदेशी पोशाकके तीन भेद माने हैं:—

(१) हाथके सूतसे हाथके ही करघे पर बुना हुआ कपड़ा, यह प्रथम श्रेणी है। परन्तु ऐसे कपड़ेकी जितनी माँग है उतना कपड़ा अभी तैयार नहीं है, इस-लिए—

(२) हाथके सूतसे देशी मिलमें बना कपड़ा, यह द्वितीय श्रेणी है; पर यह भी जहाँ असम्भव हो वहाँके लिये—

(३) देशी मिलके सूतसे देशी मिलमें ही तैयार हुए कपड़ेकी व्यवस्था है। यह तृतीय श्रेणी है।

इन तीन श्रेणियोंमेंसे किसी एक श्रेणीमें भी जो मनुष्य न हो, उसे पतित समझना चाहिए और उसका उद्धार करनेकी चेष्टा करनी चाहिए।

अब हमें एक बात और बतलानी है। वह यह कि कोई किसी दर्जेकी वर्दी पहने, उसके सिरपर खद्दरकी ही टोपी या पगड़ी रहनी चाहिए, मिलके कपड़ेकी नहीं। खद्दर न मिल सकनेके कारण आप देशी मिलकी धोती या कुरता भले ही पहनिये, पर खद्दरका आदर करनेके लिए कहिये या स्वराज्य सैनिककी पोशाकमें यूनिफार्म बना रखनेकी व्यव-स्थाके लिए कहिये, माथेपर खद्दरकी ही टोपी या पगड़ी रहे।

सब लोग यदि खद्दरकी ही टोपी दिया करें तो स्वराज्यके सैनिकोंको पह-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चाननेमें बड़ा सुभीता होगा । परन्तु परम्परासे पगड़ीकी जो इज्जत चली आई है और उसमें जो परम्परागत जातीय अभिमान है उसकी रक्षा अवश्य होनी चाहिए। इसलिए जो अपने सिरपर पगड़ी देते हैं वे पगड़ी ही दें; पर वह पगड़ी शुद्ध हो, शुद्ध स्वदेशी खद्दरकी हो, माताके रक्तमें भींगी हुई न हो। यदि खद्दरकी पगड़ी न मिले तो ऐसी पगड़ीको आग लगा दीजिये जो आपके दो करोड़ भाइयोंको भूखों मारकर अब भी आपके सिरपर सवार है । महत्कार्यके लिए लोग पगड़ी उतार देते हैं, मानों भीष्म-प्रतिज्ञा करते हैं; और जब तक वह कार्य पूरा नहीं होता तब तक सिरपर पगड़ी नहीं देते । आज भारतके लिए स्वदेशीसे बढ़कर महत्कार्य और क्या होगा ? इस-लिए जबतक खद्दरकी पगड़ी न बन जाय, तबतक खद्दरकी पगड़ीके लिए अपनी विदेशी पगड़ी उतार दीजिये । थोड़ा कहा बहुत समझिये, और धर्मकी इस आज्ञा-की अन्तरात्माके इस वचनकी अवहेलना मत कीजिये ।

जिनका काम टोपीसे चल जाता है, उन्हें यह स्मरण रखना होगा कि "स्व-राज्य टोपी" ही सबको अपने सिरपर देनी चाहिए । यह "स्वराज्य टोपी" वही है जिसका शावालेस आदि कम्पनियोंने तथा मध्यप्रदेशके कुछ उद्दण्ड हाकिमोंने अपमान करनेका साहस किया है । इस अपमानका उत्तर यही है कि सब लोग वही टोपी दिया करें । इसके अतिरिक्त इस टोपीसे इस बातकी पहचान होगी कि कौन स्वदेशप्रेमी है और कौन स्वदेश-की उपेक्षा करनेवाला है । अब जो लोग देशी मिलोंका कपड़ा पहनेंगे, उनका कपड़ा देशी या विदेशी है यह मालूम करना कठिन होगा । पर सिरपर "स्वराज्य टोपी" देखनेसे यह अनुमान करना कठिन न होगा कि कपड़ा स्वदेशी ही होगा । "स्वराज्य टोपी" का लक्षण यह है कि उसका वर्ण शुभ्र है और आकार नौकाके समान—मानों पराधीनताके पार ले जानेवाली यह नौका ही है । खद्दरको काला रङ्ग देकर उसे खंजड़ीनुमा बना लेना इसी लिए हम उतना अच्छा नहीं समझते ।

तात्पर्य, तीन श्रेणियोंमेंसे किसी श्रेणी-का स्वदेशी वस्त्र आप परिधान करें, सिरपर आपके खद्दरकी ही पगड़ी या टोपी होनी चाहिए । जो लोग टोपीसे अपना काम चला लेते हैं उन्हें "स्वराज्य टोपी" ही सिरपर चाहिए ।

(भारतमित्र ।)

तुवल्लुव नायनार तुकुरल ।

(अनुवादक, स्वर्गीय बाबू दयाचन्दजी गोयलीय ।)

(अंक ६ भाग १४ से आगे ।)

३९८—जो मनुष्य इस लोकमें विद्या-के भण्डारको प्राप्त कर लेता है वह सातों लोकोंमें आनन्द भोग करता है ।

३९९—यदि मनुष्य एक बार कुछ ज्ञान प्राप्त कर लेता है और उसके कारण प्रतिष्ठा प्राप्त करके आनन्द भोग करता है, तो फिर उसे और अधिक ज्ञान प्राप्त करनेकी उत्कण्ठा बढ़ जाती है ।

४००—मनुष्यका वास्तविक धन विद्या है जिसे कोई नष्ट नहीं कर सकता । विद्याके सिवाय और कोई चीज धन नहीं कही जा सकती ।

४१—अज्ञानता ।

४०१—जो मनुष्य बोलनेकी योग्यता प्राप्त किये बिना विद्वानोंकी सभामें बोलना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चाहता है, वह उस मनुष्यके समान है जो बिना शतरंजके तख्तेके शतरंज खेलना चाहता है।

४०२—जो मनुष्य निरा मूर्ख है, परन्तु सभामें बोलनेको उत्सुक रहता है वह उस स्त्रीके समान है जिसके कूँख नहीं है।

४०३—जो मनुष्य अपनी मूर्खताको समझकर विद्वानोंकी उपस्थितिमें मौन धारण किये रहते हैं, वे भी एक तरहसे योग्य समझे जाने चाहिएँ।

४०४—मूर्खोंके मुँहसे कभी कभी समयानुकूल शब्द भी निकल जाते हैं। परन्तु जो बुद्धिमान् हैं वे उन्हें बुद्धिमानीसे बोला हुआ नहीं समझते।

४०५—यदि कोई मनुष्य बिना कुछ सीखे हुए अपनेको बड़ा समझता है तो उसकी बड़ाई उस समय जाती रहेगी जब वह किसी विद्वान्के सामने बोलेगा।

४०६—जिस प्रकार बंजर भूमिमें न कुछ पैदावार ही होती है और न उससे जीवोंका पालन होता है, उसी प्रकार मूर्ख मनुष्य केवल आत्मगौरवसे ही हीन नहीं होते किन्तु संसारको भी कुछ लाभ नहीं पहुँचाते।

४०७—जिस मनुष्यको अनेक शास्त्रोंका गहरा ज्ञान नहीं है वह उस खिलौनेके समान है जिसे मिट्टीके आभूषण पहनाये गये हैं।

४०८—विद्वान्को जितना कष्ट निर्धनताके कारण होता है, उससे कहीं अधिक कष्ट अज्ञानीको धनके कारण होता है।

४०९—मूर्खोंका कुल चाहे जितना ऊँचा हो, पर वे उन नीच कुलवालोंसे भी नीचे हैं जो शिक्षासम्पन्न हैं। अर्थात् जो मनुष्य शिक्षित हैं वे चाहे नीचे कुलमें भी उत्पन्न हुए हों, परन्तु उन मनुष्योंसे अच्छे हैं जो मूर्ख हैं चाहे उनका वंश कितना ही ऊँचा हो।

४१०—मनुष्य वही है जो विद्यालंकृत है। शेष मनुष्य पशुओंके समान हैं।

४२-श्रवण।

४११—वह सम्पत्ति जो बड़े ध्यानके साथ सुननेसे उपार्जन की जाती है, सम्पत्तिकी सम्पत्ति अर्थात् महान् सम्पत्ति है। ऐसी सम्पत्ति संसारकी सम्पूर्ण सम्पत्तियोंसे श्रेष्ठ है।

४१२— × × ×

४१३—जिन लोगोंमें उत्तमोत्तम शिक्षाओंको श्रवण करनेकी शक्ति है वे यद्यपि इस जगत्में उत्पन्न हुए हैं, तथापि देवताओंके समान हैं।

४१४—कोई व्यक्ति शिक्षित न भी हो, तो भी उसे सदैव उपदेश श्रवण करने दो। कारण, कठिनाईके समय वह उसे लकड़ीका सहारा देगा, अर्थात् आपत्तिसे बचा देगा।

४१५—जिस प्रकार लकड़ी मनुष्यको चिकनी मिट्टी पर गिरनेसे बचाती है उसी प्रकार उन पुरुषोंके शब्द, जो सन्मार्गमें चलते हैं, चाहे वे अशिक्षित ही हों, उस व्यक्तिको सहारा देते हैं जो शिक्षित होकर भी अपने मार्गसे च्युत हो गया है।

४१६—प्रत्येक मनुष्यको अच्छी बातें सुननी चाहिएँ, चाहे वे कितनी ही साधारण और छोटी क्यों न हों। क्योंकि ऐसा करनेसे उसका ज्ञान बढ़ेगा और ज्ञानके बढ़नेसे वह महत्ता प्राप्त करेगा।

४१७—जिन मनुष्योंको शास्त्रोंका पूर्ण ज्ञान है और जिन्होंने बहुत कुछ श्रवण भी किया है वे कभी असावधानीसे भी मूर्खताके शब्दोंका प्रयोग नहीं करते।

४१८—उस श्रोताको बहरा समझना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चाहिए जिसके कान उपदेशोंसे नहीं खुलते, भले ही वह उन उपदेशोंको सुनता रहे।

४१९—जिसके कानोंने शुद्ध परिष्कृत ज्ञानकी बातें नहीं सुनी हैं उसके मुँहके लिए मीठे और कोमल शब्दोंका जुटना कठिन है। अर्थात् जिस मनुष्यने सदुपदेशोंको सुनकर ज्ञान प्राप्त नहीं किया है, उससे यह आशा नहीं की जा सकती कि वह नम्र शब्दोंका प्रयोग करेगा।

४२०—जो मनुष्य जिह्वा-इन्द्रियके स्वादको तो जानता है परन्तु कर्ण-इन्द्रियके द्वारा आनन्दप्राप्ति नहीं कर सकता, उस मनुष्यके जीवनसे संसारका कुछ सरोकार नहीं—चाहे वह जीये और चाहे मरे।

४३-सत्यार्थ ज्ञान।

४२१—सत्यार्थ ज्ञान वह है जो सेनाके समान राजाकी और दुर्गके समान उसके राज्यकी रक्षा करता है।

४२२—यद्यपि विवेक मनको स्वच्छन्द रूपसे नहीं विचरने देता है, किन्तु उसे बुराईसे बचाकर सन्मार्गमें लगा देनेवाला भी वही है।

४२३—लोगोंके मुँहसे हम चाहे जितनी बातें सुनें, परन्तु सत्यका पता बिना बुद्धिमानीके नहीं लगता।

४२४—बुद्धिमानोंके द्वारा ऐसे स्पष्ट शब्दोंका प्रयोग होता है कि उन्हें सब कोई समझ जाते हैं। बुद्धि ही दूसरे मनुष्योंके वार्तालापमेंसे तत्त्वको निकालती है। अर्थात् बुद्धिमान् ऐसे शब्दोंका प्रयोग करता है जिन्हें सब समझ जाते हैं और वह दूसरोंके भावोंको भी चट समझ जाता है।

४२५—बुद्धिमान् संसार भरको अपना मित्र रखता है। उसका स्वभाव कमलके फूलकी तरह नहीं होता, जो कभी तो खूब खिल उठता है और कभी बिलकुल बन्द रहता है।

४२६—जिस भाँति संसार चलता है, बुद्धिमान् उसीका अनुकरण करता है।

४२७—बुद्धिमान् पुरुष 'होनहार' को पहलेसे ही जान जाते हैं, परन्तु मूर्ख भविष्यके विषयमें कुछ भी नहीं जान पाते।

४२८—मूर्ख मनुष्य भयङ्कर बुराइयोंको निधड़क होकर करते हैं। जहाँ भयका कारण हो वहाँ भय खाना, यह बुद्धिका काम है।

४२९—बुद्धिमान् मनुष्य—जो बड़े ध्यानसे आनेवाली बुराइयोंको पहलेसे ही जान लेते हैं—उन बुराइयोंसे भी बचे रहते हैं जो भयावह हैं।

४३०—बुद्धिमान्के पास सब कुछ है। परन्तु मूर्खके पास चाहे सब कुछ हो तो भी कुछ नहीं है।

४४-दोषनिवृत्ति।

४३१—जो मनुष्य क्रोध, मान, मद और कामसे रहित हैं, उनमें एक विशेष गुण होता है जो उनकी सम्पत्तिको सुशोभित करता है।

४३२—कृपणता, अहङ्कार और अनुचित अभिमान ये तीन अवगुण राजाओंमें कदापि न होने चाहिएँ।

४३३—पाप-भीरु लोग अपने छोटेसे छोटे दोषको भी ताड़के समान बड़ा समझते हैं।

४३४-३५— × × ×

४३६—जो राजा पहले अपने दोषोंकी शुद्धि कर लेता है और फिर दूसरोंके दोषोंकी जाँच-पड़ताल करता है, उसपर ऐसी कौन बुराई है जो असर करेगी? कोई नहीं।

४३७—जो मनुष्य अपने धनको जहाँ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चाहिए वहाँ खर्च नहीं करता, उसके धनका नाश हो जाता है--उसके पास कुछ भी नहीं रहता।

४३८--दोषोंमें सबसे बड़ा दोष लोभ, अर्थात् जहाँ चाहिए वहाँ खर्च न करना है।

४३९--कभी अपनेको बहुत बड़ा ख़याल मत करो और कभी ऐसी चीज़ोंकी इच्छा न करो जिनसे कोई लाभ न हो।

४४०--जिन बातोंकी तुम इच्छा करते हो, यदि उन्हें दूसरों पर प्रकट न होने दो तो तुम्हारे शत्रुओंका तुम्हारे विरुद्धका सारा उद्योग निष्फल हो जायगा।

जैनधर्मका अहिंसा-तत्त्व।

(ले०—श्रीयुत मुनि जिनविजयजी।)

जैनधर्मके सभी 'आचार' और 'विचार' एक मात्र 'अहिंसा' के तत्त्वपर रचे गये हैं। यों तो भारतके ब्राह्मण, बौद्ध आदि सभी प्रसिद्ध धर्मोंने अहिंसाको 'परम धर्म' माना है और सभी ऋषि, मुनि, साधु, संत इत्यादि उपदेष्टाओंने अहिंसाका महत्त्व और उपादेयत्व बतलाया है, तथापि इस तत्त्वको जितना विस्तृत, जितना सूक्ष्म, जितना गहन और जितना आचरणीय जैनधर्मने बनाया है, उतना अन्य किसीने नहीं। जैनधर्मके प्रवर्तकोंने अहिंसा-तत्त्वको चरम सीमातक पहुँचा दिया है। उन्होंने केवल अहिंसाका कथन मात्र ही नहीं किया बल्कि उसका आचरण भी वैसा ही कर दिखाया है। और और धर्मोंका अहिंसा-तत्त्व केवल कायिक बनकर रह गया है, परन्तु जैनधर्मका अहिंसा तत्त्व उससे बहुत कुछ आगे बढ़कर वाचिक और मानसिकसे भी परे—आत्मिक रूप बन गया है। औरोंकी अहिंसाकी मर्यादा मनुष्य, और उससे ज्यादह हुआ तो पशु-पक्षीके जगत् तक जाकर समाप्त हो जाती है; परन्तु जैनी अहिंसाकी कोई मर्यादा ही नहीं है। उसकी मर्यादामें सारी सचराचर जीव-जाति समा जाती है और तो भी वह वैसी ही अमित रहती है। वह विश्वकी तरह अमर्याद—अनन्त है और आकाशकी तरह सर्व-पदार्थ-व्यापिनी है।

परन्तु जैनधर्मके इस महत् तत्त्वके यथार्थ रहस्यको समझनेके लिए बहुत ही थोड़े मनुष्योंने प्रयत्न किया है। जैनधर्मकी इस अहिंसाके बारेमें लोगोंमें बड़ी अज्ञानता और बेसमझी फैली हुई है। कोई इसे अव्यवहार्य बतलाता है। कोई इसे अनाचरणीय बतलाता है। कोई इसे आत्मघातिनी कहता है और कोई राष्ट्र-नाशिनी। कोई कहता है कि जैनधर्मकी अहिंसाने देशको पराधीन बना दिया और कोई कहता है कि इसने प्रजाको निर्वीर्य बना दिया है। इस प्रकार जैनी अहिंसाके बारेमें अनेक मनुष्योंके अनेक कुविचार सुनाई देते हैं। कुछ वर्ष पहले देशभक्त पंजाबकेशरी लालाजी तकने भी एक ऐसा ही भ्रमात्मक विचार प्रकाशित कराया था, जिसमें महात्मा गांधीजी द्वारा प्रचारित अहिंसाके तत्त्वका विरोध किया गया था, और फिर जिसका समाधायक उत्तर स्वयं महात्माजीने दिया था। लालाजी जैसे गहरे विद्वान् और प्रसिद्ध देशनायक होकर तथा जैन साधुओंका पूरा परिचय रखकर भी जब इस अहिंसाके विषयमें वैसे भ्रान्तविचार रख सकते हैं, तो फिर अन्य साधारण मनुष्योंकी तो बात ही क्या कही जाय। हालहीमें, कुछ दिन पहले, जी. के. नरीमान नामक एक पारसी विद्वान्ने महात्मा गांधीजीको सम्बोधन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करके एक लेख लिखा है, जिसमें उन्होंने जैनोंकी अहिंसाके विषयमें ऐसे ही भ्रमपूर्ण उद्गार प्रकट किये हैं। मि. नरीमान एक अच्छे ओरिएन्टल स्कालर हैं, और उनको जैन-साहित्य तथा जैन-विद्वानोंका कुछ परिचय भी मालूम देता है। जैनधर्मसे परिचित और पुरातन इतिहाससे अभिज्ञ विद्वानोंके मुँहसे जब ऐसे अविचारित उद्गार सुनाई देते हैं, तब साधारण मनुष्योंके मनमें उक्त प्रकारकी भ्रांतिका ठस जाना साहजिक है। इसलिए हम यहाँपर संक्षेपमें आज जैनधर्मकी अहिंसाके बारेमें जो उक्त प्रकारकी भ्रांतियाँ जनसमाजमें फैली हुई हैं, उनका मिथ्यापन दिखाते हैं।

जैनी अहिंसाके विषयमें पहला आक्षेप यह किया जाता है कि—जैनधर्मप्रवर्तकोंने अहिंसाकी मर्यादा इतनी लम्बी और इतनी विस्तृत बना दी है कि जिससे लगभग वह अव्यवहार्यकी कोटिमें जा पहुँची है। यदि कोई इस अहिंसाका पूर्ण रूपसे पालन करना चाहे तो उसे अपनी समग्र जीवन-क्रियायें बन्द करनी होंगी और निश्चेष्ट होकर देहत्याग करना होगा। जीवन-व्यवहारको चालू रखना और इस अहिंसाका पालन भी करना, ये दोनों बातें परस्पर विरुद्ध हैं। अतः इस अहिंसाके पालनका मतलब आत्मघात करना है; इत्यादि।

यद्यपि इसमें कोई शक नहीं कि जैन अहिंसाकी मर्यादा बहुत ही विस्तृत है और इसलिए उसका पालन करना सबके लिए बहुत ही कठिन है, तथापि यह सर्वथा अव्यवहार्य या आत्मघातक है, इस कथनमें किञ्चित् भी तथ्य नहीं है। न यह अव्यवहार्य ही है और न आत्मघातक ही। यह बात तो सब कोई स्वीकारते और मानते हैं कि, इस अहिंसा-तत्त्वके प्रवर्तकोंने इसका आचरण अपने जीवनमें पूर्ण रूपसे किया था। वे इसका पूर्णतया पालन करते हुए भी वर्षों तक जीवित रहे और जगत्को अपना परम तत्त्व समझाते रहे। उनके उपदेशानुसार अन्य असंख्य मनुष्योंने आजतक इस तत्त्वका यथार्थ पालन किया है; परन्तु किसीको आत्मघात करनेका काम नहीं पड़ा। इसलिए यह बात तो सर्वानुभव-सिद्ध जैसी है कि जैन अहिंसा अव्यवहार्य भी नहीं है और इसका पालन करनेके लिए आत्मघातकी भी आवश्यकता नहीं है। यह विचार तो वैसा ही है जैसा कि महात्मा गान्धीजीने देशके उद्धारके निमित्त जब असहयोगकी योजना उद्घोषित की तब अनेक विद्वान् और नेता कहलाने वाले मनुष्योंने उनकी इस योजनाको अव्यवहार्य और राष्ट्रनाशक बतानेको बड़ी लम्बी लम्बी बातें की थीं और जनताको उससे सावधान रहनेकी हिदायत दी थी। परन्तु अनुभव और आचरणसे यह अब निस्सन्देह सिद्ध हो गया कि असहयोगकी योजना अव्यवहार्य ही है और न राष्ट्रनाशक ही। हाँ, जो अपने स्वार्थका भोग देनेके लिए तैयार नहीं और अपने सुखोंको त्याग करनेको तत्पर नहीं, उनके लिए ये दोनों बातें अवश्य अव्यवहार्य हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। आत्मा या राष्ट्रका उद्धार बिना स्वार्थ-त्याग और सुख-परिहारके कभी नहीं होता। राष्ट्रको स्वतन्त्र और सुखी बनानेके लिए जैसे सर्वस्व-अर्पणकी आवश्यकता है वैसे ही आत्माको आधि-व्याधि-उपाधिसे स्वतन्त्र और दुःख-द्वंद्वसे निर्मुक्त बनानेके लिए भी सर्व मायिक सुखोंके बलिदान कर देनेकी आवश्यकता है। इसलिए जो "मुमुक्षु" (बन्धनोंसे मुक्त होनेकी इच्छा रखनेवाला) है—राष्ट्र और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Jatayu Trust/eGangotri

आत्माके उद्धारका इच्छुक है, उसे तो यह जैन अहिंसा कभी भी अव्यवहार्य या आत्मनाशक नहीं मालूम देगी—स्वार्थ-लोलुप और सुखैषी जीवोंकी बात अलग है।

जैन धर्मकी अहिंसा पर दूसरा और बड़ा आक्षेप यह किया जाता है कि इस अहिंसाके प्रचारने भारतको पराधीन और प्रजाको निर्वीर्य बना दिया है। इस आक्षेपके करनेवालोंका मत है कि अहिंसाके प्रचारसे लोगोंमें शौर्य नहीं रहा। क्योंकि अहिंसा-जन्य पापसे डर-कर लोगोंने मांस-भक्षण छोड़ दिया, और बिना मांस भक्षणके शरीरमें बल और मनमें शौर्य नहीं पैदा होता। इस-लिए प्रजाके दिलमेंसे युद्धकी भावना नष्ट हो गई और उसके कारण विदेशी और विधर्मी लोगोंने भारत पर आक्रमण कर उसे अपने अधीन बना लिया। इस प्रकार अहिंसाके प्रचारसे देश पराधीन और प्रजा पराक्रम-शून्य हो गई।

अहिंसाके बारेमें की गई यह कल्पना नितान्त युक्तिशून्य और सत्यसे पराङ्-मुख है। इस कल्पनाके मूलमें बड़ी भारी अज्ञानता और अनुभवशून्यता भरी हुई है। जो यह विचार प्रदर्शित करते हैं उनको न तो भारतके प्राचीन इतिहासका पता होना चाहिए और न जगत्के मानव समाजकी परिस्थितिका ज्ञान होना चाहिए। भारतकी पराधीनताका कारण अहिंसा नहीं है, परन्तु अकर्मण्यता, अज्ञा-नता और असहिष्णुता है। और इन सबका मूल हिंसा है। भारतका पुरा-तन इतिहास प्रकट रूपसे बतला रहा है कि जबतक भारतमें अहिंसा-प्रधान धर्मों-का अभ्युदय रहा, तबतक प्रजामें शान्ति, शौर्य, सुख और सन्तोष यथेष्ट व्याप्त थे। अहिंसा धर्मके महान् उपासक और प्रचारक नृपति मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त और अशोक थे। क्या उनके समयमें भारत पराधीन हुआ था? अहिंसा धर्मके कट्टर अनुयायी दक्षिणके कदम्ब, पल्लव और चालुक्य वंशोंके प्रसिद्ध प्रसिद्ध महाराजा थे। क्या उनके राजत्वकालमें किसी पर-चक्रने आकर भारतको सताया था? अहिंसा तत्त्वका अनुगामी चक्रवर्ती सम्राट् श्रीहर्ष था। क्या उसके समयमें भारतको किसीने पददलित किया था? अहिंसा मतका पालन करनेवाला दक्षिण-का राष्ट्रकूट वंशीय नृपति अमोघवर्ष और गुजरातका चालुक्य वंशीय प्रजा-पति कुमारपाल था। क्या उनकी अहिंसो-पासनासे देशकी स्वतन्त्रता नष्ट हुई थी? इतिहास तो साक्षी दे रहा है कि भारत इन राजाओंके राजत्व कालमें अभ्युदयके शिखर पर पहुँचा था। जबतक भारत-में बौद्ध और जैन धर्मका जोर था और जबतक ये धर्म राष्ट्रीय धर्म कहलाते थे, तब तक भारतमें स्वतन्त्रता, शान्ति, सम्पत्ति इत्यादि पूर्ण रूपसे विराजती थीं। अहिंसाके इन परम उपासक नृप-तियोंने अनेक युद्ध किये, अनेक शत्रुओं-को पराजित किया और अनेक दुष्ट जनों-को दण्डित किया। इनकी अहिंसोपासना-ने न देशको पराधीन बनाया और न प्रजाको निर्वीर्य बनाया। जिनको गुज-रात और राजपूतानेका थोड़ा बहुत भी वास्तविक ज्ञान है, वे जान सकते हैं कि देशोंको स्वतन्त्र, समुन्नत और सुरक्षित रखनेके लिए जैनोंने कैसे कैसे पराक्रम किये थे। जिस समय गुजरातका राज्य-कार्यभार जैनोंके अधीन था—महामात्य, मन्त्री, सेनापति, कोषाध्यक्ष आदि बड़े बड़े अधिकारपद जैनोंके अधीन थे—उस समय गुजरातका ऐश्वर्य उन्नतिकी चरम सीमा पर चढ़ा हुआ था। गुजरातके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इतिहासमें दण्डनायक विमलशाह, मन्त्री मुंजाल, मन्त्री शान्तु, महामात्य उदयन और बाहड, वस्तुपाल और तेजपाल, आभू और जगडू; इत्यादि जैन राजद्वारी पुरुषोंका जो स्थान है वह औरोंका नहीं है। केवल गुजरातके ही इतिहासमें नहीं, परन्तु समूचे भारतके इतिहासमें भी इन अहिंसाधर्मके परमोपासकोंके पराक्रमकी तुलना करनेवाले पुरुष बहुत कम मिलेंगे। जिस धर्मके परम अनुयायी स्वयं ऐसे शूरवीर और पराक्रमशाली थे और जिन्होंने अपने पुरुषार्थसे देश और राज्यको खूब समृद्ध और सत्त्वशील बनाया था, उस धर्मके प्रचारसे देश या प्रजाकी अधोगति कैसे हो सकती है? देशकी पराधीनता या प्रजाकी निर्वीर्यतामें कारणभूत 'अहिंसा' कभी नहीं हो सकती। जिन देशोंमें 'हिंसा' का खूब प्रचार है, जो अहिंसाका नाम तक नहीं जानते हैं, एक मात्र मांस ही जिनका शाश्वत भक्षण है और पशुसे भी जो अधिक क्रूर होते हैं, क्या वे सदैव स्वतन्त्र बने रहते हैं? रोमन साम्राज्यने किस दिन अहिंसाका नाम सुना था? और कब मांस-भक्षण छोड़ा था? फिर क्यों उसका नाम संसारसे उठ गया? तुर्क प्रजामेंसे कब हिंसाभाव नष्ट हुआ और क्रूरताका लोप हुआ? फिर क्यों उसके साम्राज्यकी आज यह दीन दशा हो रही है? आयर्लैण्डमें कब अहिंसाकी उद्घोषणा की गई थी? फिर क्यों वह आज शताब्दियोंसे स्वाधीन होनेके लिए तड़फड़ा रहा है? दूसरे देशोंकी बात जाने दीजिए—खुद भारतहीके उदाहरण लीजिये। मुगल साम्राज्यके चालकोंने कब अहिंसाकी उपासना की थी जिससे उनका प्रभुत्व नामशेष हो गया और उसके विरुद्ध पेशवाओंने कब मांस-भक्षण किया था जिससे उनमें एकदम वीरत्वका वेग उमड़ आया? इससे स्पष्ट है कि देशकी राजनीतिक उन्नति-अवनतिमें हिंसा-अहिंसा कोई कारण नहीं है। इसमें तो कारण केवल राजकर्ताओंकी कार्यदक्षता और कर्तव्यपरायणता ही मुख्य है।

हाँ, प्रजाकी नैतिक उन्नति-अवनतिमें तत्त्वतः अहिंसा-हिंसा अवश्य कारणभूत होती है। अहिंसाकी भावनासे प्रजामें सात्त्विक वृत्ति खिलती है और जहाँ सात्त्विक वृत्तिका विकास है, वहाँ सत्वका निवास है। सत्वशाली प्रजाहीका जीवन श्रेष्ठ और उच्च समझा जाता है इससे विपरीत सत्वहीन जीवन कनिष्ठ और नीच गिना जाता है। जहाँ प्रजामें सत्व नहीं वहाँ सम्पत्ति, स्वतन्त्रता आदि कुछ नहीं। इसलिए प्रजाकी नैतिक उन्नतिमें अहिंसा एक प्रधान कारण है। नैतिक उन्नतिके मुकाबलेमें भौतिक प्रगतिको कोई स्थान नहीं है और इसी विचारसे भारतवर्षके पुरातन ऋषि मुनियोंने अपनी प्रजाको शुद्ध नीतिमान बननेका ही सर्वाधिक सदुपदेश दिया है। यूरोपकी प्रजाने नैतिक उन्नतिको गौण कर भौतिक प्रगतिकी ओर जो आँख मींचकर दौड़ना शुरू किया था, उसका कटु परिणाम आज सारा संसार भोग रहा है। संसारमें यदि सच्ची शान्ति और वास्तविक स्वतन्त्रताके स्थापित होनेकी आवश्यकता है तो मनुष्योंको शुद्ध नीतिमान् बनना चाहिए।

शुद्ध नीतिमान् वही बन सकता है जो अहिंसाके तत्वको ठीक ठीक समझकर उसका पालन करता है। अहिंसा ही शान्ति, शक्ति, शुचिता, दया, प्रेम, क्षमा, सहिष्णुता, निर्लोभता इत्यादि सर्व प्रकारके सद्गुणोंकी जननी है। अहिंसाके आचरणसे मनुष्यके हृदयमें पवित्र भावोंका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संचार होता है, वैर विरोधकी भावना नष्ट होती है और सबके साथ बन्धुत्वका नाता जुड़ता है। जिस प्रजामें ये भाव खिलते हैं, वहाँ ऐक्यका साम्राज्य होता है। और एकता ही आज हमारे देशके अभ्युदय और स्वातन्त्र्यका मूल बीज है। इसलिए अहिंसा देशकी अवनतिका कारण नहीं है, बल्कि उन्नतिका एकमात्र और अमोघ साधन है।

'हिंसा' शब्द हननार्थक 'हिंसि' धातु पर से बना है। इसलिए 'हिंसा' का अर्थ होता है, किसी प्राणीको हनना या मारना। भारतीय ऋषि-मुनियोंने हिंसाकी स्पष्ट व्याख्या इस प्रकार की है—'प्राणवियोग प्रयोजन व्यापारः' अथवा 'प्राणि दुःख साधन व्यापारो हिंसाः'—अर्थात्, प्राणीके प्राणका वियोग करनेके लिए अथवा प्राणीको दुःख देनेके लिए जो प्रयत्न या क्रिया होती है, उसका नाम हिंसा है। इसके विपरीत किसी भी जीव को दुःख या कष्ट न पहुँचाना अहिंसा है। पातंजलि योगसूत्र के भाष्यकार महर्षि व्यासने 'अहिंसा' का लक्षण यह दिया है—'सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानामनभिद्रोहः अहिंसा' अर्थात् सब तरहसे, सब समयोंमें, सभी प्राणियोंके साथ अद्रोह भाव बर्तने—प्रेमभाव रखनेका नाम अहिंसा है। इसी अर्थको विशेष स्पष्ट करनेके लिए ईश्वर-गीतामें लिखा है कि—

कर्मणा मनसा वाचा सर्वभूतेषु सर्वदा।
अक्लेशजननं प्रोक्ता अहिंसा परमर्षिभिः ॥

अर्थात्—मन, वचन और कर्मसे सर्वदा किसी भी प्राणीको क्लेश नहीं पहुँचानेका नाम महर्षियोंने 'अहिंसा' कहा है। इस प्रकारकी अहिंसाके पालनकी क्या आवश्यकता है, इसके लिए आचार्य हेमचन्द्रने कहा है कि—

आत्मवत् सर्वभूतेषु
सुखदुःखे प्रियाप्रिये।
चिन्तयन्नात्मनोऽनिष्टां
हिंसामन्यस्य नाचरेत् ॥

अर्थात्—जैसे अपनी आत्माको सुख प्रिय और दुःख अप्रिय लगता है, वैसे ही सब प्राणियोंको लगता है। इसलिए जब हम अपनी आत्माके लिए हिंसाको अनिष्ट समझते हैं, तब हमें अन्य आत्माओंके प्रति भी उस हिंसाका आचरण कभी नहीं करना चाहिए। यही बातें स्वयं श्रमण-भगवान् श्री महावीर द्वारा इस प्रकारसे कही गई हैं—

"सव्वे पाणा पिया उया, सुहसाया, दुहपडिकूला, अप्पिय वहा, पियजीविणो, जीविउकामा। (तम्हा) णातिवाएज्ज किंचणं"

अर्थात्—सब प्राणियोंको आयुष्य प्रिय है, सब सुख के अभिलाषी हैं, दुःख सबको प्रतिकूल है, वध सबको अप्रिय है, जीवन सभीको प्रिय लगता है—सभी जीनेकी इच्छा रखते हैं। इसलिए किसीको मारना या कष्ट न देना चाहिए।

अहिंसाके आचरणकी आवश्यकताके लिए इससे बढ़कर और कोई दलील नहीं है—और कोई दलील हो भी नहीं सकती। परन्तु यहाँपर एक प्रश्न यह उपस्थित होता है कि, इस प्रकारकी अहिंसाका पालन सभी मनुष्य किस तरह कर सकते हैं। क्योंकि जैसा कि शास्त्रोंमें कहा है—

जले जीवाः स्थले जीवा
जीवाः पर्वतमस्तके।
ज्वालमालाकुले जीवाः
सर्वं जीवमयं जगत् ॥

अर्थात् जलमें, स्थलमें, पर्वतमें, अग्निमें इत्यादि सब जगह जीव भरे हुए हैं—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सारा जगत् जीवमय है। इसलिए मनुष्य-के प्रत्येक व्यवहार में—खानेमें, पीनेमें, चलनेमें, बैठनेमें, व्यापारमें, विहारमें इत्यादि सब प्रकारके व्यवहारमें—जीव-हिंसा होती है। बिना हिंसाके कोई भी प्रवृत्ति नहीं की जा सकती। अतः इस प्रकारकी सम्पूर्ण अहिंसाके पालन करने-का अर्थ तो यही हो सकता है कि मनुष्य अपनी सभी जीवन-क्रियाओंको बन्द कर, योगीके समान समाधिस्थ हो, इस नर-देहका बलात् नाश कर दे। ऐसा करनेके सिवा, अहिंसाका भी पालन करना और जीवनको भी बचाये रखना, यह तो आकाश-कुसुमकी गन्धकी अभिलाषाके समान ही निरर्थक और निर्विचार है। अतः पूर्ण अहिंसा केवल विचारका ही विषय हो सकती है, आचार का नहीं।

यह प्रश्न अच्छा है और इसका समा-धान अहिंसाके भेद और अधिकारीका निरूपण करनेसे हो जायगा। इसलिए प्रथम अहिंसाके भेद बतलाये जाते हैं। जैनशास्त्रकारोंने अहिंसाके अनेक प्रकार बतलाये हैं; जैसे स्थूल अहिंसा और सूक्ष्म अहिंसा; द्रव्य अहिंसा और भाव अहिंसा; स्वरूप अहिंसा और परमार्थ अहिंसा; देश अहिंसा और सर्व अहिंसा इत्यादि। किसी चलते फिरते प्राणी या जीव-को जी-जानसे न मारनेकी प्रतिज्ञाका नाम स्थूल अहिंसा है, और सर्व प्रकारके प्राणियोंको सब तरहसे क्लेश न पहुँचानेके आचरणका नाम सूक्ष्म अहिंसा है। किसी भी जीवको अपने शरीरसे दुःख न देनेका नाम द्रव्य अहिंसा है और सब आत्माओंके कल्याणकी कामनाका नाम भाव अहिंसा है। यही बात स्वरूप और पर-मार्थ अहिंसाके बारेमें भी कही जा सकती है। किसी अंशमें अहिंसाका पालन करना देश अहिंसा कहलाता है और सर्व प्रकार—सम्पूर्णतया अहिंसाका पाल[न] करना सर्व अहिंसा कहलाता है।

यद्यपि आत्माको अमरत्वकी प्राप्ति[के] लिए और संसारके सर्व बन्धनोंसे मु[क्त] होनेके लिए अहिंसाका सम्पूर्ण रूप[से] आचरण करना परमावश्यक है, वि[ना] वैसा किये मुक्ति कदापि नहीं मि[ल] सकती; तथापि संसार निवासी सभ[ी] मनुष्योंमें एक दम ऐसी पूर्ण अहिंसा[के] पालन करनेकी शक्ति और योग्यता नहीं आ सकती। इसलिए न्यूनाधिक शक्ति और योग्यतावाले मनुष्योंके लिए उपर्यु[क्त] रीतिसे तत्त्वज्ञोंने अहिंसाके भेद कर क्रमश[ः] इस विषयमें मनुष्यको उन्नत होने[की] सुविधा कर दी है। अहिंसाके इ[न] भेदोंके कारण उसके अधिकारियोंमें भे[द] कर दिया गया है। जो मनुष्य अहिंसाका सम्पूर्णतया पालन नहीं कर सकते, वे गृहस्थ, श्रावक, उपासक, अणुव्रती, देश-व्रती इत्यादि कहलाते हैं। जबतक जि[स] मनुष्यमें संसारके सब प्रकारके मोह और प्रलोभनको सर्वथा छोड़ देने जितनी आत्मशक्ति प्रकट नहीं होती, तबतक व[ह] संसारमें रहता हुआ और अपना गृह[-] व्यवहार चलाता हुआ धीरे धीरे अहिंसा व्रतके पालनमें उन्नति करता चला जाय। जहाँतक हो सके, वह अपने स्वार्थोंको कम करता जाय और निजी स्वार्थके लिए प्राणियोंके प्रति मारन-ताड़न-छेदन-आक्रोशन आदि क्लेशजनक व्यवहारोंका परिहार करता जाय। ऐसे गृहस्थके लिए कुटुम्ब, देश या धर्मके रक्षणके निमित्त यदि स्थूल हिंसा करनी पड़े तो उसे अपने व्रतमें कोई हानि नहीं पहुँचती। क्योंकि जबतक वह गृहस्थी लेकर बैठा है तबतक समाज, देश और धर्मका यथाशक्ति रक्षण करना भी उसका परम कर्तव्य है। यदि किसी भ्रान्तिवश

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0. In Public Domain. Sarayu Trust/eGangotri

वह अपने कर्तव्यसे भ्रष्ट होता है तो उसका नैतिक अधःपात होता है; और नैतिक अधःपात एक सूक्ष्म हिंसा है। क्योंकि इससे आत्माकी उच्च वृत्तिका हनन होता है। अहिंसा धर्मके उपासकके लिए निजी स्वार्थ-निजी लोभके निमित्त स्थूल हिंसाका त्याग पूर्ण आवश्यक है। जो मनुष्य अपनी विषय-तृष्णाकी पूर्तिके लिए स्थूल प्राणियोंको क्लेश नहीं पहुँचाता है, वह कभी किसी प्रकार अहिंसा-धर्मी नहीं कहलाता। अहिंसक गृहस्थके लिए यदि हिंसा कर्तव्य है तो वह केवल परार्थक है। इस सिद्धान्तसे विचारक समझ सकते हैं कि, अहिंसा-व्रतका पालन करता हुआ भी, गृहस्थ अपने समाज और देशका रक्षण करनेके लिए युद्ध कर सकता है—लड़ाई लड़ सकता है। इस विषयकी सत्यताके लिए हम यहाँपर ऐतिहासिक प्रमाण भी दे देते हैं।

गुजरातके अन्तिम चौलुक्य नृपति दूसरे भीम (जिसको भोला भीम भी कहते हैं) के समयमें, एक दफह उसकी राजधानी अणहिलपुरपर मुसलमानोंका हमला हुआ। राजा उस समय राजधानीमें मौजूद न था, केवल रानी मौजूद थी। मुसलमानोंके हमलेसे शहरका संरक्षण कैसे करना चाहिए, इसकी सब अधिकारियोंको बड़ी चिन्ता हुई। दण्डनायक (सेनापति) के पदपर उस समय आभू नामक एक श्रीमालिक वणिक श्रावक था। वह अपने अधिकारपर नया ही आया हुआ था, और साथमें वह बड़ा धर्माचरणी पुरुष था। इसलिए उसके युद्धविषयक सामर्थ्यके बारेमें किसीको निश्चित विश्वास नहीं था। इधर एक तो राजा स्वयं अनुपस्थित था; दूसरे राज्यमें कोई वैसा अन्य पराक्रमी पुरुष न था, और न तीसरे राज्यमें यथेष्ट सैन्य ही था। इसलिए रानीको बड़ी चिन्ता हुई। उसने किसी विश्वस्त और योग्य मनुष्यसे दण्डनायक आभू की क्षमताका कुछ हाल जानकर स्वयं उसे अपने पास बुलाया और नगरपर आई हुई आपत्तिके सम्बन्धमें क्या उपाय किया जाय, इसकी सलाह पूछी। तब दण्डनायकने कहा कि, यदि महारानीका मुझपर विश्वास हो और युद्ध-सम्बन्धी पूरी सत्ता मुझे सौंप दी जाय तो, मुझे विश्वास है कि, मैं अपने देशको शत्रुके हाथसे बाल बाल बचा लूँगा। आभूके इस उत्साहजनक कथनको सुनकर रानी खुश हुई और युद्ध सम्बन्धी सम्पूर्ण सत्ता उसको देकर युद्धकी घोषणा कर दी। दण्डनायक आभूने उसी क्षण सैनिक संगठन कर लड़ाईके मैदानमें डेरा किया। दूसरे दिन प्रातःकालसे युद्ध शुरू होनेवाला था। पहले दिन अपनी सेनाका जमाव करते करते उसे सन्ध्या हो गई। वह व्रतधारी श्रावक था, इसलिए प्रतिदिन उभय काल प्रतिक्रमण करनेका उसका नियम था। सन्ध्या पड़नेपर प्रतिक्रमणका समय हुआ। उसने कहीं एकान्तमें जाकर वैसा करनेका विचार किया। परन्तु उसी क्षण मालूम हुआ कि, इस समय उसका वहाँसे अन्यत्र जाना इच्छित कार्यमें विघ्नकर था। इसलिए उसने वहीं हाथीके हौदेपर बैठे ही बैठे एकाग्रतापूर्वक प्रतिक्रमण करना शुरू कर दिया। जब वह प्रतिक्रमणमें आनेवाले—"जेमे जीवा विराहिया-एगिंदिया-बेइंदिया" इत्यादि पाठका उच्चारण कर रहा था, तब किसी सैनिकने उसे सुनकर किसी अन्य अफसरसे कहा कि—देखिए जनाब, हमारे सेनाधिपति साहब तो इस लड़ाईके मैदानमें भी, जहाँपर शस्त्रास्त्रकी झनाझन हो रही है, मारो मारोकी पुकारें मचाई जा रही हैं, वहाँ 'एगिंदिया बेइंदिया' कर रहे हैं। नरम नरम सीरा खानेवाले ये श्रावक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साहब क्या बहादुरी दिखावेंगे। धीरे धीरे यह बात खास रानीके कान तक पहुँची। वह सुनकर बहुत संदिग्ध हुई, परन्तु उस समय अन्य कोई विचार करनेका अवकाश नहीं था, इसलिए भावीके ऊपर आधार रखकर वह मौन रही। दूसरे दिन प्रातःकाल ही से युद्धका प्रारम्भ हुआ। योग्य सन्धि पाकर दण्डनायक आभूने इस शौर्य और चातुर्यसे शत्रुपर आक्रमण किया कि, जिससे क्षण भरमें शत्रुके सैन्यका भारी संहार हो गया और उसके नायकने अपने शस्त्र नीचे रखकर युद्ध बन्द करनेकी प्रार्थना की। आभूका इस प्रकार विजय हुआ देखकर अणहिलपुरकी प्रजामें जयजयका आनन्द फैल गया। रानीने बड़े सम्मानपूर्वक उसका स्वागत किया और फिर बड़ा दरबार करके राजा और प्रजाकी तरफसे उसे योग्य मान दिया गया। उस समय हँसकर रानीने दण्डनायकसे कहा कि--सेनाधिपति, जब युद्धकी व्यूह रचना करते करते बीच ही में आप--"एगिंदिया बेइंदिया" बोलने लग गये थे, तब तो आपके सैनिकोंको ही यह सन्देह हो गया था कि, आपके जैसा धर्मशील और अहिंसाप्रिय पुरुष मुसलमानों के साथ लड़नेके इस क्रूर कार्यमें कैसे धैर्य रख सकेगा। परन्तु आपकी इस वीरताको देखकर सबको आश्चर्य-निमग्न होना पड़ा है। यह सुनकर उस कर्तव्यदक्ष दण्डनायकने कहा कि--महारानी, मेरा जो अहिंसाव्रत है, वह मेरी आत्माके साथ सम्बन्ध रखता है। मैंने जो "एगिंदिया बेइंदिया" के वध न करनेका नियम लिया है, वह अपने स्वार्थकी अपेक्षा से है। देशकी रक्षाके लिए और राज्यकी आज्ञाके लिए यदि मुझे वध-कर्मकी आवश्यकता पड़े, तो वैसा करना मेरा कर्तव्य है। मेरा शरीर राष्ट्रकी सम्पत्ति है। इसलिए राष्ट्रकी आज्ञा और आवश्यकतानुसार उसका उपयोग होना ही चाहिए। शरीरस्थ आत्मा या मन मेरी निजी सम्पत्ति है। उसे स्वार्थीय हिंसा भावसे अलिप्त रखना यही मेरे अहिंसा व्रतका लक्षण है, इत्यादि। इस ऐतिहासिक और रसिक उदाहरणसे विज्ञ पाठक भली भाँति समझ सकेंगे कि, जैन गृहस्थके पालने योग्य अहिंसाव्रतका यथार्थ स्वरूप क्या है।

('महावीर' से उद्धृत)

ऐलक-पद-कल्पना।

दिगम्बर जैनसमाजमें श्रावकोंकी ११ वीं प्रतिमाके आजकल दो भेद कहे जाते हैं; एक 'क्षुल्लक' और दूसरा 'ऐलक'। ऐलक सर्वोत्कृष्ट समझा जाता है और उसके साथ ही श्रावक धर्मकी परिपूर्णता मानी जाती है। 'ऐलक' पदका प्रयोग भी अब दिनों दिन बढ़ता जाता है। यह शब्द प्रायः जैनियोंकी जबान पर चढ़ा हुआ है और जैन समाचारपत्रोंमें भी इसका खूब व्यवहार होता है। परन्तु उत्कृष्ट श्रावकके लिए 'ऐलक' ऐसा नाम-निर्देश कौनसे आचार्य महाराजने किया है, कब किया है, किस भाषाका यह शब्द है और इसका क्या अर्थ होता है, इत्यादि बातोंका परामर्श करने पर भी इनका कहीं कुछ पता नहीं चलता। संस्कृत और प्राकृतके ऐसे सभी ग्रन्थ इस विषयमें मौन जान पड़ते हैं। किसीमें 'ऐलक' शब्दका नामोल्लेख तक नहीं मिलता। संस्कृत और प्राकृत भाषाका यह कोई शब्द भी नहीं मालूम होता, जिसका व्युत्पत्तिपूर्वक कुछ प्रकृत अर्थ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किया जाय। वास्तवमें, खोज करनेसे, ऐलक पदकी कल्पना बहुत पीछेकी और बहुत ही आधुनिक जान पड़ती है। अतः आज हम इसी विषयके अपने अनुसंधानको अपने पाठकोंके सामने रखते हैं। आशा है कि विज्ञ पाठक इसपर भले प्रकार विचार करेंगे। और साथ ही, ११वीं प्रतिमाके स्वरूपमें समय समय पर जो फेरफार हुआ है, अथवा आचार्य आचार्यके मतानुसार उसमें जो कुछ विभिन्नता पाई जाती है, उसे ध्यानमें रक्खेंगे:—

१—भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यके चारित्त-पाहुड (चारित्र प्राभृत) ग्रन्थमें यद्यपि एक गाथा द्वारा* ग्यारह प्रतिमाओंके नाम पाये जाते हैं, परन्तु उनके स्वरूपादिकका कोई वर्णन उक्त ग्रन्थमें नहीं है और न आचार्य महोदयके किसी दूसरे उपलब्ध ग्रन्थमें ही इन प्रतिमाओंके स्वरूपका निर्देश है। हाँ, सुत्तपाहुड (सूत्र प्राभृत) ग्रन्थमें एक गाथा इस प्रकारसे जरूर पाई जाती है—

दुइयं च वुत्तलिंगं उक्किट्ठं
अवरसावयाणं च।
भिक्खं भमेइ पत्तो
समिदीभासेण मोणेण ॥२१॥

इसमें मुनिके बाद दूसरा उत्कृष्ट लिंग उत्कृष्ट श्रावकका—गृहत्यागी या अगृहस्थ श्रावकका—बतलाया गया है और उसके स्वरूपका निर्देश इस प्रकारसे किया गया है कि, वह पात्र हाथमें लेकर समितिसहित मौनपूर्वक भिक्षाके लिए भ्रमण करता है। यह उत्कृष्ट श्रावक ११ वीं प्रतिमाके धारकके सिवा दूसरा कोई मालूम नहीं होता, और इसलिए यह स्वरूप उसीका जान पड़ता है। परन्तु इस सब कथनसे ११ वीं प्रतिमावालेके लिए 'उद्दिष्टविरत' और 'उत्कृष्ट श्रावक' के सिवाय दूसरे किसी नामकी उपलब्धि नहीं होती।

२—स्वामि समन्तभद्राचार्यने अपने 'रत्नकरण्डक' नामके उपासकाध्ययन (श्रावकाचार) में, श्रावकके ग्यारह पदों (प्रतिमाओं) का वर्णन करते हुए, ११ वीं प्रतिमाके धारक श्रावकका जो स्वरूप-वर्णन किया है, वह इस प्रकार है—

गृहतो मुनिवनमित्वा
गुरूपकंठे व्रतानि परिगृह्य।
भैक्ष्याशनस्तपस्यन्नुत्कृष्ट-
श्चेलखण्डधरः ॥ १४७ ॥

अर्थात्—घरको छोड़कर मुनि-वनमें जाकर और गुरुके निकट व्रतोंको ग्रहण करके, जो तपस्या करता हुआ भिक्षा-भोजन करता है और खण्ड वस्त्रका धारक है, वह उत्कृष्ट श्रावक है।

इसमें ११वीं प्रतिमावाले श्रावकको 'उत्कृष्ट श्रावक'के नामसे निर्दिष्ट किया है। चेलखण्डधारी या खण्डवस्त्रधारी नाम-की भी कुछ उपलब्धि होती है, और उसके लिए १ घर छोड़कर मुनिवन (तपोवन) को जाना, २ वहाँ गुरुके निकट व्रतोंका ग्रहण करना, ३ भिक्षा भोजन करना, ४ तपस्या करना और ५ खण्ड-वस्त्र रखना, ये पाँच बातें जरूरी बतलाई हैं।

३—भगवज्जिनसेनप्रणीत आदिपुराणमें, यद्यपि ग्यारह प्रतिमाओंका कथन नहीं है, परन्तु उसमें गर्भान्वय और दीक्षान्वय

* वह गाथा इस प्रकार है—
दंसणवयसामाइय पोसह सचित्त रायभत्तेयं।
बंभारंभ परिग्गह अणुमण उद्दिट्ठ देसविरदेदे ॥२१॥
यही गाथा वसुनन्दि श्रावकाचारके शुरूमें नम्बर ४ पर पाई जाती है। और गोम्मटसारके संयममार्गणाधिकार-में भी यही गाथा दी हुई है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नामकी क्रियाओंमें 'गृहत्याग' क्रियाके बाद और 'जिनरूपता' क्रियासे पहले 'दीक्षाद्य' नामकी जो क्रिया वर्णन की है, उसका अभिप्राय ११ वीं प्रतिमाके आचरणसे ही जान पड़ता है। उसमें भी घर छोड़नेके बाद तपोवनको जाना लिखा है और ऐसे तपस्वीके लिए एक शाटक (वस्त्र) धारी होनेका विधान किया है। भिक्षा भोजनादिकका शेष कथन उसके स्वरूपसे ही आ जाता है, यथा—

त्यक्तागारस्य सद्दृष्टेः प्रशांतस्य गृहीशिनः।
प्राग्दीक्षो पयिकात्कालादेकशाटकधारिणः॥
यत्पुरश्चरणं दीक्षाग्रहणं प्रतिधार्यते।
दीक्षाद्यं नाम तज्ज्ञेयं क्रियाजातं द्विजन्मनः॥

—पर्व ३८ श्लो० १५८,१५९

त्यक्तागारस्य तस्यांतस्तपोवनमुपेयुषः।
एकशाटकधारित्वं प्राग्वद्दीक्षाद्यमिष्यते॥

पर्व ३९ श्लो० ७७

इसके सिवाय, आदिपुराणमें, उन विद्याशिल्पोपजीवी मनुष्योंके लिए, जो अदीक्षार्ह (मुनिदीक्षाके अयोग्य) कुलमें उत्पन्न हुए हैं, उपनीति आदि संस्कारोंका निषेध करते हुए, जिस उचित लिंगका विधान किया है वह 'एकशाटकधारी' होना है, और उसका संकेत ११ वीं प्रतिमाके आचरणकी तरफ ही पाया जाता है, यथा—

अदीक्षार्हे कुले जाता
विद्याशिल्पोपजीविनः।
एतेषामुनीत्यादि-
संस्कारो नाभिसम्मतः॥
तेषां स्यादुचितं लिंगं
स्वयोग्यव्रतधारिणां।
एकशाटकधारित्वं
संन्यासमरणावधि॥

पर्व ४० श्लो० ७०,७१।

आदिपुराणके इस कथनसे यह ध्वनि निकलती है कि ११वीं प्रतिमाके आचरणका अनुष्ठान करनेवालेको उस समय-९वीं शताब्दीमें-'एकशाटकधारी' या 'एक वस्त्रधारी भी कहते थे--वह इस नामसे संलक्षित होता था। स्वामी समन्तभद्रने उसे ही 'चेलखण्डधारी' लिखा है।

४--स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षामें ११ वीं प्रतिमाका स्वरूप इस प्रकारसे पाया जाता है--

जो णवकोडि विसुद्धं
भिक्खायरणेण भुंजदे भोज्जं।
जायणरहियं जोग्गं
उद्दिट्ठाहार विरओसो॥३९०॥

अर्थात्—जो श्रावक नवकोटि विशुद्ध (मन-वचन-काय और कृतकारित-अनुमोदनाके दोषसे रहित ऐसे शुद्ध) और योग्य आहारको बिना किसी याचनाके भिक्षा द्वारा ग्रहण करता है, वह 'उद्दिष्टाहार विरत' नामका श्रावक है*।

यहाँ भिक्षाभोजनके तीन खास विशेषण दिये गये हैं—१ नवकोटि विशुद्ध, २ याचनारहित और ३ योग्य—जो समन्तभद्र प्रतिपादित स्वरूपमें नहीं पाये जाते। यद्यपि 'योग्य' विशेषणका वहाँ

* ब्र० शीतलप्रसादने अपने 'गृहस्थधर्म' में स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षाकी टीकाका, जो कि शुभचन्द्र भ० द्वारा वि० सं० १६१३ में बनकर समाप्त हुई है, एक अंश उद्धृत किया है और वह अंश इसी गाथाके टीका-रूपसे है। उसके अन्तमें दो पद्य निम्न प्रकारसे दिये हैं—"एकादशके स्थानेह्युत्कृष्टः श्रावको भवेद्द्विविधः। वस्त्रैकधरः प्रथमः कौपीन परिग्रहोऽन्यस्तु॥ कौपीनोऽसौरात्रि प्रतिमायोगं करोति नियमेन। लोचं पिच्छं धृत्वा भुंक्ते ह्युपविश्य पाणिपुटे॥

इन पद्योंमें जो कथन किया गया है, वह मूल गाथाके कथनसे अतिरिक्त है और उसे टीकाकारने दूसरे विद्वानोंके कथनानुसार लिखा है, ऐसा समझना चाहिए। इसी तरह पर टीकामें कुछ और भी विशेष पाया जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वरूपसे समावेश हो जाता है, परन्तु 'नवकोटि विशुद्ध' और 'याचना रहित' ये दो विशेषण ऐसे हैं, जो ख़ास तौरसे उल्लेख किये जानेपर ही समझमें आ सकते हैं। और इसलिए इन दो विशेषणोंका यहाँ ख़ास तौरसे उल्लेख हुआ है, यह कहना होगा। साथ ही, इस प्रतिमाके धारकका 'उद्दिष्टाहार विरत' नामसे उल्लेख किया गया है और उसके लिए खण्डवस्त्र या एक-दो वस्त्र रखने आदिका कोई नियम नहीं दिया गया।

५--चारित्रसार ग्रन्थमें, श्रीमच्चामुण्डराय, जो कि वि० की ११वीं शताब्दीके विद्वान् हैं, इस प्रतिमाके धारकका 'उद्दिष्टविनिवृत्त' नामसे उल्लेख करते हैं और उसका स्वरूप इस प्रकार देते हैं--

"उद्दिष्टविनिवृत्तः स्वोद्दिष्टपिंडोपधिशयनवसनादेर्विरतः सन्नेकशाटकधरो भिक्षाशनः पाणिपात्रपुटेनोपविश्यभोजी रात्रिप्रतिमादितपः समुद्यत आतापनादियोगरहितो भवति।"

अर्थात्--जो अपने निमित्त तय्यार किये हुए भोजन, उपधि, शयन और वस्त्रादिकसे विरक्त रहता है--उन्हें ग्रहण नहीं करता,--एक वस्त्र रखता है, भिक्षा भोजन करता है, कर-पात्रमें आहार लेता है, बैठकर भोजन करता है, रात्रिप्रतिमादि तपश्चरणमें उद्यमी रहता है और आतापनादि योगसे वर्जित होता है, वह 'उद्दिष्ट विनिवृत्त' नामका श्रावक कहलाता है।

इस स्वरूपमें, स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षाकी अपेक्षा, उद्दिष्टाहारके साथ १ उद्दिष्ट उपधि, २ उद्दिष्ट शयन और ३ उद्दिष्ट वस्त्रादिकके त्यागका विधान अधिक किया गया है और शायद इसीसे इस पदवी (प्रतिमा) धारकका नाम 'उद्दिष्टाहारविरत' न रखकर 'उद्दिष्ट विनिवृत्त' रक्खा गया है। भिक्षाशनको छोड़कर और सब विशेषण भी यहाँ स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षासे अधिक निर्दिष्ट हुए हैं। परन्तु उनमें एक वस्त्रधारी होना और रात्रिप्रतिमादि तपश्चरणमें उद्यमी रहना, ये दो विशेषण स्वामिसमन्तभद्र प्रतिपादित 'चेलखंडधर' और 'तपस्यन्' विशेषणोंके साथ मिलते जुलते हैं। हाँ, इतना ज़रूर है कि समन्तभद्र स्वामीने जिस तपश्चरणका सामान्य रूपसे उल्लेख किया है, उसके यहाँ दो भेद किये गये हैं--एक रात्रिप्रतिमादिरूप और दूसरा आतापनादि योगरूप। पहलेका विधान और दूसरेका निषेध किया गया है। एक बात यहाँ और भी बतला देनेके योग्य है। और वह यह है कि इतने अधिक विशेषणोंका प्रयोग करनेपर भी भिक्षा भोजनके साथ स्वामिकार्तिकेयके 'याचनारहित' विशेषणका उल्लेख यहाँ नहीं किया गया है। सम्भव है कि ग्रन्थकर्ताको शायद इस प्रतिमाधारीके लिए यह विशेषण इष्ट न हो। आगे भी कितने ही आचार्यों तथा विद्वानोंको यह विशेषण इष्ट नहीं रहा है, और उन्होंने साफ़ तौरसे इस प्रतिमाधारीके लिए याचनाका विधान किया है।

६--श्रीअमितगति आचार्य अपने 'सुभाषितरत्नसंदोह' नामक ग्रन्थमें, जो कि वि० सं १०५० में बनकर समाप्त हुआ है, लिखते हैं कि--

स्वनिमित्तं त्रिधायेन कारितोनुमतः कृतः।
नाहारो गृह्यते पुंसा त्यक्तोद्दिष्टः स भण्यते ८३

अर्थात्--जो मनुष्य मन-वचन-काय-द्वारा अपने निमित्त किये हुए, कराये हुए या अनुमोदन किये हुए भोजनको ग्रहण नहीं करता है (नवकोटि विशुद्ध भोजन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लेता है) वह 'त्यक्तोद्दिष्ट' नामका श्रावक कहलाता है।

'उपासकाचार' में भी आपने प्रायः ऐसा ही स्वरूप वर्णन किया है*। साथ ही, एक स्थानपर उसे 'उत्कृष्ट श्रावक' लिखकर उसके कुछ विशेष कर्तव्योंका भी उल्लेख किया है, जो सामायिकादि षडावश्यक क्रियाओंके अतिरिक्त निम्न प्रकार हैं--

वैराग्यस्य परांभूमिं संयमस्य निकेतनं ।
उत्कृष्टःकारयत्येव मुण्डनं तुण्डमुण्डयोः ८-७३
केवलं वा सवस्त्रं वा कौपीनं स्वीकरोत्यसौ ।
एकस्थानान्नपानीयो निन्दागर्हापरायणः-७४
सधर्मलाभशब्देन प्रतिवेश्म सुधोपमां ।
सपात्रो याचते भिक्षां जरामरणसूदनीम्-७५

इन कर्तव्योंमें पहला कर्तव्य है, मुख और सिरके बालोंका मुण्डन कराना (क्षौर कराना, लौंच करना नहीं), दूसरा ख़ाली कौपीन (लंगोट) या वस्त्र-सहित कौपीनका धारण करना, तीसरा एक स्थान पर (बैठकर) अन्न जल ग्रहण करना (भोजन करना), चौथा अपनी निन्दा गर्हासे युक्त रहना और पाँचवाँ कर्तव्य है पात्र हाथमें लेकर प्रत्येक घरसे 'धर्म-लाभ†' शब्दके साथ भिक्षा माँगना।

अमितगतिके इस संपूर्ण कथन से ११ वीं प्रतिमावालेके लिए 'त्यक्तोद्दिष्ट' 'उद्दिष्टवर्जी' और 'उत्कृष्ट श्रावक' इन नामों-की उपलब्धि होती है। और साथ ही यह मालूम होता है कि इस स्वरूप-कथनमें नवकोटि विशुद्ध भोजनका लेना स्वामि-कार्तिकेयके कथनानुकूल है। परन्तु भिक्षाके लिए याचना करना और 'धर्म लाभ' शब्द कहना, ये बातें स्वामिकार्तिकेयके 'याचना-रहित' विशेषण और श्रीकुंदकुंदाचार्यके 'मौनपूर्वक' विशेषणके साथ कोई मेल नहीं रखतीं–प्रतिकूल मालूम होती हैं। और भिक्षापात्रमें, अनेक घरोंसे भिक्षा एकत्र करके उसे एक स्थान पर बैठकर खानेका जो विधान यहाँ किया गया है, वह चामुण्डरायके 'करपात्रभोजी' विशेषणके विरुद्ध पड़ता है। चामुंडरायके कथनसे उनका ऐसा आशय जान पड़ता है कि वे इस प्रतिमाधारीको भिक्षाके लिए घर घर फिराना नहीं चाहते, बल्कि एक ही घर पर मुनिकी तरह कर-पात्रमें आहार करा देनेके पक्षमें हैं। हाँ, इतना जरूर है कि मुनि खड़े होकर आहार लेते हैं और इस प्रतिमाधारीके लिए चामुंडरायने बैठकर भोजन करनेका विधान किया है। अस्तु, कुछ भी हो, परन्तु यह बात श्रीकुंदकुंदाचार्यके 'भिक्खं भमेइ पत्तो' (पात्र हाथमें लेकर भिक्षाके लिए भ्रमण करता है) इस विशेषणके विरुद्ध नहीं पड़ती। इन सब बातोंके सिवा यहाँ मुख और मस्तकके केशोंका मुण्डन करानेकी बात ख़ास तौरसे कही गई है और केवल कौपीन रखने या वस्त्र-सहित कौपीन रखनेका कथन विकल्प-रूपसे किया गया है। उसकी वजहसे प्रतिमाके दो भेद नहीं किये गये, यह बात ख़ास तौरसे ध्यानमें रक्खे जानेके योग्य है। बाकी उद्दिष्ट उपधि-शयन-वस्त्रादिकके त्याग आदि कितने ही विशेषणोंका यहाँ उल्लेख नहीं किया गया, यह स्पष्ट ही है।

८—श्रीनन्दनन्द्याचार्यके शिष्य श्रीगु-रुदासाचार्यका बताया हुआ 'प्रायश्चित-

* यथा—यो बंधुराबंधुरतुल्यचित्तो गृह्णाति भोज्यं नवकोटि-शुद्धं । उद्दिष्टवर्जी गुणिभिः स गीतो विभीलुकः संसृतिजातुधान्याः ॥ ७–७७ ॥

† श्वेताम्बरोंके यहाँ ११वीं प्रतिमावालेके वास्ते इस शब्दके साथ भिक्षा माँगनेका निषेध है, ऐसा योगशास्त्रकी गुजराती टीकासे मालूम होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समुच्चय' नामका एक प्राचीन ग्रंथ है, जिसपर श्रीनंदिगुरुने एक संस्कृत टीका भी लिखी है और इसलिए जो विक्रमकी ११ वीं शताब्दीसे पहलेका बना हुआ है। इस ग्रंथकी चूलिकामें, श्रावक प्रायश्चित्तका वर्णन करते हुए, उत्कृष्ट श्रावकके लिए (११ वीं प्रतिमाधारीके वास्ते) 'क्षुल्लक' शब्दका ही प्रयोग किया गया है, 'ऐलक' का नहीं; और उसके स्वरूपका कुछ निदर्शन भी इस प्रकारसे किया है—

क्षुल्लकेष्वेककं वस्त्रं
नान्यस्थितिभोजनं ।
आतापनादियोगोऽपि
तेषां शश्वन्निषिध्यते ॥१५५॥
क्षौरं कुर्याच्चलोचं वा
पाणौभुंक्तेऽथ भाजने ।
कौपीनमात्रतन्त्रोऽसौ
क्षुल्लकः परिकीर्तितः ॥१५६॥

अर्थात्—क्षुल्लकोंके लिए एक वस्त्रका ही विधान है दूसरेका नहीं। खड़े होकर भोजन करनेका भी विधान नहीं है और आतापनादि योगका अनुष्ठान उनके लिए सदा निषिद्ध है। वे क्षौर कराओ (हजामत बनवाओ) या लौंच करो, हाथमें भोजन करो या बर्तन (पात्र) में और चाहे कौपीन मात्र रक्खो, उन्हें 'क्षुल्लक' कहते हैं।

यहाँ यह बात बहुत स्पष्ट शब्दोंमें बतलाई गई है कि उस उत्कृष्ट श्रावकको भी 'क्षुल्लक' ही कहते हैं जो १ लौंच करता है, २ करभोजी है और ३ कौपीन मात्र रखता है। उसके लिए क्षौर करानेवाले, पात्रभोजी और एक वस्त्र-धारक उत्कृष्ट श्रावकसे भिन्न किसी दूसरे नामकी कोई जुदा कल्पना नहीं है। और इसलिए आजकल प्रायः इन्हीं तीन गुणोंके कारण

७

'ऐलक' नामकी जो जुदा कल्पना की जाती है, वह पीछेकी कल्पना ज़रूर है। कितने पीछेकी, यह आगे चलकर मालूम होगा। यहाँ पर इतना और बतला देना ज़रूरी है कि श्रीगुरुदासाचार्यके मतानुसार क्षुल्लक या तो एक वस्त्रका धारक होता है और या कौपीन मात्र रखता है। परन्तु वस्त्रसहित कौपीन अर्थात् दोनों चीज़ें नहीं रख सकता। और यह बात अमितगतिके कथनके विरुद्ध पड़ती है। वे वस्त्रसहित कौपीनका भी विधान करते हैं; और कौपीन रहित खाली एक वस्त्रका तो विधान ही नहीं करते। इसी तरह लौंच करने और करभोजी होनेका कथन भी उनके कथनके साथ सामंजस्य नहीं रखता।

यहाँ तकके इस संपूर्ण कथनसे इस बातका पता चलता है कि उत्कृष्ट श्रावक, खंडवस्त्रधारी, एक वस्त्रधारी, कौपीनमात्रधारी, उद्दिष्टाहार विरत, उद्दिष्टविनिवृत्त और त्यक्तोद्दिष्ट, इन सबका आशय एक क्षुल्लकसे ही है—क्षुल्लक पदके ही ये सब नामान्तर हैं। यह दूसरी बात है कि इस पदकी कुछ क्रियाओंमें आचार्योंमें परस्पर मतभेद पाया जाता है; परन्तु उन सबका अभिप्राय इसी एक पदके निदर्शन करनेका जान पड़ता है। साथ ही यह भी मालूम होता है कि कुछ वैकल्पिक (Optional) आचरणोंकी वजहसे उस समय तक इस पदके (प्रतिमाके) दो भेद नहीं हो गये थे। परन्तु अब आगेके उल्लेखोंसे पाठकोंको यह मालूम होगा कि बादको अथवा कुछ पहले किसी अज्ञातनामा आचार्यके द्वारा इस प्रतिमाके साफ तौरसे दो भेद कर दिये गये हैं और उन भेदोंमें उक्त वैकल्पिक आचरणोंको बाँटा गया है।

८—विक्रमकी बारहवीं शताब्दीके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विद्वान् श्रीवसुनन्दी आचार्य, अपने उपासकाध्ययनमें*, ११ वीं प्रतिमाके धारकको 'उत्कृष्ट श्रावक' बतलाते हुए उसके दो भेद करते हैं, प्रथम और द्वितीय। आपके मतानुसार प्रथमोत्कृष्ट श्रावक एक वस्त्र रखता है और द्वितीय कौपीनमात्र; पहला कैंची या उस्तरेसे बालोंको कटाता है और दूसरा नियमपूर्वक लौंच करता है अर्थात् उन्हें हाथसे उखेड़ता है; स्थानादिकके प्रतिलेखनका कार्य पहला (वस्त्रादिक) मृदु उपकरणसे लेता है, परन्तु दूसरा उसके लिए नियमसे (मुनिवत्) पिच्छी रखता है। प्रथमोत्कृष्टके लिये इस बातका कोई नियम नहीं है कि वह पात्रमें ही भोजन करे या हाथमें, वह अपने इच्छानुसार चाहे जिसमें भोजन कर सकता है। परन्तु द्वितीयोत्कृष्टके लिए कर-पात्रमें अर्थात् हाथमें ही भोजन करनेका नियम है। इसके सिवाय बैठकर भोजन करना, भिक्षाके लिए श्रावकके घर जाना और वहाँ आँगनमें स्थित होकर 'धर्म लाभ' शब्दके साथ स्वयं भिक्षा माँगना, भिक्षाके मिलने या न मिलनेपर अदीनवदन होकर शीघ्र वहाँसे निकलना और फिर दूसरे घरमें जाकर मौनपूर्वक अपने आशयको प्रगट करना, इत्यादि नियम दोनोंके लिए समान हैं। साथ ही दिनमें प्रतिमा-योग धरना, वीरचर्या करना, त्रिकालयोग (आतापनादिक) का अनुष्ठान करना, इत्यादि बातोंका आपने दोनोंको ही अनधिकारी बतलाया है। इन सब आशयकी गाथाएँ इस प्रकार हैं—

एयारसम्मिठाणे
उक्किट्ठो सावओ हवे दुविहो।
वत्थेकधरो पढमो
कोवीणपरिग्गहो त्रिदिओ ॥३०१॥
धम्मिल्लाणंचयणं
करेइ कत्तरिछुरेण वा पढमो।
ठाणाइसु पडिलेहइ
उ(मिद्दु ?)वयरणेण पयडप्पा ॥३०२॥
भुंजइ पाणपत्तम्मि
भायणे वा सुई समुवइट्ठो।
उववासं पुणणियमा
चउव्विहं कुणइ पव्वेसु ॥३०३॥
पक्खालिऊण पत्तं पविसइ
चरियाय पंगणेठिच्चा।
भणिऊणधम्मलाहं
जायइ भिक्खं सयं चेव ॥३०४॥
सिग्घं लाहालाहे अदीण-
वयणो णिउयत्तिऊणतओ।
अण्णम्मि गिहे वच्चइ
दरिसइ मौणेण कायव्वं ॥३०५॥
× × × ×
एवं भेओ होई णवर
विसेसो कुणिज्ज णियमेण।
लोचं धरिज्ज पिच्छं
भुंजिज्जो पाणिपत्तम्मि ॥३११॥
दिण पडिमवीरचर्या
तियालजोगेसुणत्थि अहियारो।
सिद्धान्तरहस्साणवि
अज्झयणं देसविरदाणं ॥३१२॥

यहाँ पर इतनी बात और बतला देनेके योग्य है कि वसुनन्दि आचार्यने इस प्रतिमाके दो भेद करने पर भी उन भेदोंके लिए क्षुल्लक, ऐलक जैसे जुदा जुदा कोई दो खास नामोंका निर्देश नहीं किया, बल्कि उनका यह भेद करना एक कक्षाके कोर्सको दो सालोंमें विभाजित करनेके तौर पर है। और इसीसे,

* देखो 'वसुनन्दीश्रावकाचार' नामसे जैनसिद्धान्त-प्रचारक मण्डली देवबन्दकी तरफसे सं० १९६६ की छपी प्रति।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रथमादि शब्दोंके साथ, वे दोनोंके लिए 'उत्कृष्ट श्रावक' और 'उद्दिष्टपिंड विरत' नामोंका ही व्यवहार करते हैं। 'उद्दिष्ट-पिंड विरत' नाम आपने इस प्रकरणकी निम्नलिखित अन्तिम गाथामें दिया है; और उससे यह ध्वनि निकलती है कि आपको इस प्रतिमाधारीके लिए उद्दिष्ट उपाधि, उद्दिष्ट शयन और उद्दिष्ट वस्त्रादिकसे विरक्त होना शायद इष्ट नहीं है। पिंड (आहार) के लिए नवकोटि-विशुद्ध होनेका भी आपने कोई विधान नहीं किया। अस्तु, वह गाथा इस प्रकार है—

उद्दिट्ठपिंडविरओ
दुवियप्पो सावओ समासेण।
एयार सम्मिठाणे
भणिओ सुत्तणुसारेण ॥३१३॥

इस गाथामें ऊपरका सब कथन सूत्रानुसार कहा गया है, ऐसा सूचित किया है। परन्तु कौन से सूत्रग्रंथके अनुसार यह सब कथन है, ऐसा कुछ मालूम नहीं होता; क्योंकि वसुनन्दीसे पहलेके आचार्यों-का इस विषयका जो कथन है, वह इस लेखमें ऊपर दिखलाया गया है। उसमें और इस कथनमें बहुत कुछ अन्तर है। यहाँ उस आचरणको दो भेदोंके शिकंजेमें जकड़कर निश्चित रूप दिया गया है जिसे किसी किसी आचार्यने विकल्प रूपसे कथन किया था, और उसका अनुष्ठान (संभवतः अभ्यासादिकी दृष्टिसे) इस प्रतिमाधारीकी इच्छा पर छोड़ा था। संभव है कि आचार्योंके पारस्परिक मत-भेदका सामंजस्य स्थापित करनेके लिए यह सब चेष्टा की गई हो; और यह भी संभव है कि जब वैकल्पिक (Optional) आचरण रूढ़ हो गये और अधिक संख्यामें क्षुल्लक लोग उनका जुदा जुदा अनुष्ठान करके अपनेको बड़ा छोटा मानने लगे, तब किसी आचार्यने, जरूरत समझकर, इस प्रतिमाको दो भागोंमें विभाजित कर दिया हो और उन्हींके कथनानुसार आचार्य वसुनन्दीजीका यह सब कथन हो। परन्तु कुछ भी हो, इसमें संदेह नहीं कि उक्त पूर्वाचार्योंके कथनमें भेद जरूर है और दोनोंका कथन किसी एक सूत्र-ग्रंथके अनुसार नहीं हो सकता।

६—तेरहवीं शताब्दीके विद्वान् पं० आशाधर जीने, अपने सागारधर्मामृतमें, इस प्रतिमाका जो स्वरूपनिर्देश किया है, वह प्रायः वसुनन्दी आचार्यके कथनसे मिलता जुलता है। हाँ, इतना विशेष जरूर है कि आशाधर जीने—

(क) उद्दिष्ट पिंडके साथ 'अपि' शब्द लगाकर उपधिशयनासनादिके भी त्याग-का संग्रह किया है, जिसे वसुनन्दी जी छोड़ गये थे, और स्वोपज्ञ टीकामें उसका स्पष्टीकरण भी कर दिया है।

(ख) प्रथमोत्कृष्ट श्रावकके लिए कौपीन और उत्तरीय वस्त्र ऐसे दो पटों-का विधान किया है और उनका रंग सफेद दिया है, जब कि वसुनन्दि आचार्य-ने उसके लिए एक वस्त्रका ही विधान किया था और उसका कोई रंग नियत नहीं किया था।

(ग) 'वा मौनेन दर्शयित्वांगं' शब्दोंके द्वारा विकल्पसे मौनपूर्वक स्वशरीर दिखलाकर भिक्षा लेनेका भी विधान किया है, और इस तरह पर श्रीकुंदकुंदाचार्य और स्वामिकार्तिकेयके कथनोंका समुच्चय किया है जिसे वसुनन्दी यथेष्ट रूपमें नहीं कर पाये थे।

(घ) प्रथमोत्कृष्ट श्रावकके दो भेद किये हैं—१ एक-भिक्षा नियम और २ अनेक-भिक्षा नियम। एक घर संबंधिनी भिक्षाका जिसका नियम है, वह एकभिक्षानियम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नामका श्रावक है। उसके लिए मुनिके पश्चात् दातारके घरमें जाकर भोजन करने, भोजन न मिलने पर नियमसे उपवास करने और गुरुशुश्रूषा तथा तपश्चरणादिकको करते हुए हमेशा मुनि-वनमें रहनेका विधान किया है। और अनेकभिक्षानियम नामके श्रावकके वास्ते अनेक घरोंसे उस वक्त तक भिक्षाकी याचना करते रहनेका विधान किया है, जबतक कि स्वोदर-पूर्तिके योग्य भिक्षा एकत्र न हो जाय।

(ङ) द्वितीयोत्कृष्ट श्रावककी संज्ञा 'आर्य' दी है, जब कि वसुनन्दी आचार्यने इस श्रावकके लिए किसी खास संज्ञाका निर्देश नहीं किया और न दूसरे ही किसी पूर्वाचार्यने, जिनका कथन ऊपर दिया गया है, ११ वीं प्रतिमाधारी श्रावकके लिये इस संज्ञाका कोई विधान किया है; बल्कि पूज्य प्रतिष्ठितादि अर्थवाचक यह सामान्य संज्ञा अनेक आचार्यों द्वारा अनेक प्रकारके व्यक्तियोंके लिए व्यवहृत हुई पाई जाती है। श्रीसमंतभद्राचार्यने तो इसे जिनेंद्र भगवान्को—तीर्थंकरोंको—सम्बोधन करने तकमें प्रयुक्त किया है। यथा—

"...ममार्य देयाः शिवतातिमुच्चैः।"
"त्वमार्यनक्तं दिवमप्रमत्तवान्...।"
"...त्वया स्वतृष्णासरिदार्य शोषिता।"
बृहत्स्वयंभुस्तोत्र।

असि, मसि और कृषि आदि कर्म करनेवालोंको भी 'आर्य' कहते हैं। ऐसी हालतमें इस संज्ञासे यद्यपि यहाँ कोई ख़ास विशेषत्व मालूम नहीं होता और न यह संज्ञा इस प्रतिमाधारी पुरुषके लिए कुछ रूढ़ ही पाई जाती है, तो भी स्त्री-लिंगमें 'आर्या' (या आर्यिका) शब्द एक साधु वेषधारिणी स्त्रीके लिए रूढ़ ज़रूर है। संभव है कि उसी परसे और उसी दृष्टिको लेकर यहाँ पुल्लिंगमें इस संज्ञाका प्रयोग किया गया हो। परन्तु कुछ भी हो, इन सब विकल्पोंको छोड़कर यह तो स्पष्ट ही है कि पं० आशाधर जीने इस द्वितीयोत्कृष्ट श्रावकको 'आर्य' नामसे नामांकित किया है, 'ऐलक' नामसे नहीं। अस्तु; पं० आशाधर जीके वे सब पद्य जो इस विषयमें वसुनन्दी आचार्यकी ऊपर उद्धृत की हुई गाथाओंके साथ समानता या असमानता रखते हैं, इस प्रकार हैं—

तत्तद्व्रतास्त्रनिर्भिन्न-
श्वसनमोहमहाभटः।
उद्दिष्टं पिंडमप्युज्झे-
दुत्कृष्टः श्रावकोऽन्तिमः ॥३७॥
स द्वेधा प्रथमः श्मश्रु-
मूर्धजानपनाययेत्।
सितकौपीन संव्यानः
कर्तर्या वाक्षुरेण वा ॥३८॥
स्थानादिषु प्रतिलिखेत्
मृदूपकरणेन सः।
कुर्यादेव चतुष्पर्व्या-
मुपवासं चतुर्विधम् ॥३९॥
स्वयं समुपविष्टोऽद्या-
त्पाणिपात्रेऽथ भाजने।
स श्रावकगृहं गत्वा
पात्र पाणिस्तदंगणे ॥४०॥
स्थित्वा भिक्षां धर्मलाभं
भणित्वा प्रार्थयेत्वा।
मौनेन दर्शयित्वांगं
लाभालाभे समोऽचिरात् ॥४१॥
निर्गत्यान्यद्गृहं गच्छे-
द्भिक्षोद्युक्तस्तु केनचित्।
भोजनायार्थितोऽद्यात्त-
द्भुक्त्वा यद्भिक्षितं मनाक् ॥४२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रार्थयेतान्यथा भिक्षां
यावत्स्वोदरपूरणीम् ।
लभेतप्रासु यत्राम्भस्त-
त्रसंशोध्य तां चरेत् ॥४३॥
× + × ×
यस्त्वेक भिक्षानियमो
गत्वाऽद्यादनुमुन्यसौ ।
भुक्त्यनुभावे पुनःकुर्या-
दुपवासमवश्यकम् ॥४६॥
वसेन्मुनिवने नित्यं
शुश्रूषते गुरूंश्चरेत् ।
तपोद्विधापि दशधा
वैय्यावृत्यं विशेषतः ॥४७॥
तद्वद्द्वितीयः किन्त्वार्य-
संज्ञो लंचत्यसौकचान् ।
कौपीनमात्रयुग्धत्ते
यातवत्प्रतिलेखनम् ॥४८॥
स्वपाणिपात्र एवात्ति
संशोध्यान्येन योजितम् ।
इच्छाकारं समाचारं
मिथः सर्वेतुकुर्वते ॥४९॥
श्रावको वीरचर्याहः
प्रतिमातापनादिषु ।
स्यान्नाधिकारी सिद्धान्त
रहस्या ध्ययनेऽपिच ॥५०॥
सागा० अ० ७ ।

१०-धर्मसंग्रह श्रावकाचारमें*, पं० मेधावीने जो कि विक्रमकी १६ वीं शताब्दीके विद्वान् हैं, इस प्रतिमाका स्वरूप पं० आशाधरजीके ही कथनानुसार द्विभेद अथवा त्रिभेदरूप दिया है। इतना ही नहीं, बल्कि उनके शब्दोंका प्रायः अनुसरण भी किया है। सिर्फ दो एक जगह कुछ विशेष पाया जाता है; जैसा कि (१) उद्दिष्ट पिंडके साथमें आपने 'अपि' शब्दको छोड़ दिया है, जिससे ऐसा मालूम होता है कि शायद आपको उद्दिष्ट उपधि-शयनासनादिक का त्याग इष्ट नहीं था; (२) विकल्पसे मौनपूर्वक भिक्षाके कथनको न दे कर उसके स्थानमें वही वसुनन्दी जैसा कथन रक्खा है, और (३) द्वितीयोत्कृष्ट श्रावकके लिए रक्त कौपीनका विधान किया है। इस ग्रंथके सिर्फ दो चार पद्य नमूनेके तौर पर नीचे दिये जाते हैं—

दशधा धर्मास्त्रसंभिन्न-
श्वसन्मोहमृगाधिपः ।
पिंडमुद्दिष्ट मुञ्झन्स्या-
दुत्कृष्टः श्रावकोऽन्तिमः ॥५९॥
उत्कृष्टोऽसौ द्विधाज्ञेयः
प्रथमोद्वितीयस्तथा ।
प्रथमस्य स्वरूपंतु
वच्म्यहं त्वं निशामय ॥६०॥
श्वेतैकपटकौपीनो
वस्त्रादि प्रतिलेखनः ।
कर्तर्या वा क्षुरेणासौ
कारयेत्केशमुंडनम् ॥६१॥
लाभालाभे ततस्तुल्यो
निर्गत्यैत्यान्यमंदिरम् ।
पात्रं प्रदर्श्य मौनेन
तिष्ठेत्तत्र क्षणंस्थिरः ।
प्रार्थयेद्यदि दातातं
स्वाभिन्नत्रैव भुंक्ष्वहि ।
तदानिजाशनं भुक्त्वा
पश्चात्तस्यप्रसेद्रुचौ ॥६६॥
यस्त्वेकभिक्षो भुंजीत
गत्वाऽक्षावनुमुन्यतः ।

* यह ग्रंथ जैन सिद्धान्त प्रचारक मंडली देवबन्द द्वारा प्रकाशित हो चुका है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तदलाभे विदध्यात्स
उपवासमवश्यकम् ।८०॥
तथा द्वितीयः किन्त्वार्य-
नामोत्पाटयेत्कचान् ।
रक्तकौपीनसंग्राही
धत्ते पिच्छं तपस्विवत् ॥८२॥
धर्म सं० अ० ८ ।

११—भावसंग्रहमें*, पं० वामदेव जी, जिनका अस्तित्व समय विक्रमकी १६ वीं शताब्दी पाया जाता है, इस प्रतिमाधारी-के दो भेद करते हैं-एक 'ग्रंथसंयुक्त' और दूसरा 'कौपीनधारक'। पहलेके लिए आपने एक वस्त्रका विधान किया है, परन्तु आशाधरादिककी तरह साथमें कौपीनका नहीं। वह क्षौर कराता है, गुरुके निकट पढ़ता है और पाँच घरोंके भिक्षा-भोजनको ग्रहण करता है। दूसरा केशलोच करता है, कौपीन, शौचोपकरण (कमंडलु) और पिच्छीको छोड़कर उसके पास दूसरा कोई परिग्रह नहीं होता, वह मुनियोंके अनुमार्गसे चर्याको जाता है और बैठकर करपात्रमें आहार करता है। शेष त्रिकालयोगादिकके निषेधका कथन उसके लिए साधारण है और उसमें वीर-चर्या (मधुकरी वृत्तिसे भोजन) के न होने-का कारण आपने खंडवस्त्र (कौपीन) का परिग्रह बतलाया है; यथा—

नोद्दिष्टां...(चरेद्) भिक्षा-
मुद्दिष्टविरतो गृही ।
द्वेधैको ग्रंथसंयुक्त-
स्त्वन्यः कौपीनधारकः ॥५४५॥
आद्यो विदधते क्षौरं
प्रावृणोत्येकवाससं ।
पंचभिक्षाशनं भुंक्ते
पठते गुरुसन्निधौ ॥५४६॥
अन्यः कौपीनसंयुक्तः
कुरुते केशलुंचनं ।
शौचोपकरणं पिंछं
मुक्त्वान्यग्रंथवर्जितः ॥५४६॥
मुनीनामनुमार्गेण
चर्यायै सुप्रगच्छति ।
उपाविश्य चरेद् भिक्षां
करपात्रेऽङ्गसंवृतः ॥५४८॥
नास्ति त्रिकालयोगोऽस्य
प्रतिमाचार्कसम्मुखा ।
रहस्य ग्रन्थसिद्धान्त-
श्रवणे नाधिकारिता ॥५४९॥
वीरचर्या न तस्यास्ति
वस्त्रखण्डपरिग्रहात् ।
एवमेकादशो गेही
सोत्कृष्टः प्रभवत्यसौ ॥५५०॥

यहाँ पंचभिक्षाशनके नियमका जो खास विधान किया गया है, वह वसुनंदी आदिके कथनोंसे अधिक और विशिष्ट है। इस विधानसे और द्वितीयोत्कृष्ट श्रावकके लिए जो मुनियोंके अनुमार्गसे चर्याको जानेका विधान है, उससे ऐसी ध्वनि निकलती है कि पं० वामदेवने प्रथमोत्कृष्ट श्रावकके एक-भिक्षा-नियम और अनेक-भिक्षा-नियम नामके दो भेद नहीं किये; बल्कि प्रथमोत्कृष्ट श्रावकको अनेक-भिक्षा-नियममें और द्वितीयोत्कृष्ट श्रावकको एक-भिक्षा-नियममें रक्खा है। साथ ही, इस प्रतिमाधारीको रहस्य और सिद्धान्तग्रंथोंके अध्ययनका अनधिकारी न बतलाकर उनके सुनने (तक) का अनधिकारी बतलाया है, यह विशिष्टता है।

१२—ब्रह्मनेमिदत्त, जिन्होंने वि० सं० १५८५ में श्रीपालचरित्रकी रचना की

* यह हस्तलिखित ग्रंथ देहलीके नये मंदिरमें मौजूद है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है, अपने 'धर्मोपदेशपीयूषवर्ष'* नामके श्रावकाचारमें, इस प्रतिमाके दो भेद करते हुए लिखते हैं कि—

तस्य भेदद्वयं प्राहु-
रेकवस्त्रधरः सुधीः ।
प्रथमोऽसौ द्वितीयस्तु
यती कौपीनमात्रभाक् ॥२७०॥
यः कौपीनधरो रात्रि-
प्रतिमायोगमुत्तमं ।
करोति नियमेनोच्चैः
सदासौ धीरमानसः ॥२७१॥
लोचं पिच्छं च संधत्ते
भुंक्ते सौ चोपविश्य वै ।
पाणिपात्रेण पूतात्मा
ब्रह्मचारी सचोत्तमः ॥२७२॥
कृतकारितं परित्यज्य
श्रावकानां गृहे सुधीः ।
उद्दण्डभिक्षया भुंक्ते
चैकवारं सयुक्तितः ॥२७३॥
त्रिकालयोगे नियमो
वीरचर्या च सर्वथा ।
सिद्धान्ताध्ययनं सूर्य
प्रतिमा नास्ति तस्यवै ॥२७४॥

अर्थात्—इस प्रतिमा के दो भेद इस प्रकार हैं—पहला एक वस्त्रका धारक जिसे 'सुधी' कहते हैं; और दूसरा कौपीन-मात्रका धारक जिसे 'यती' कहते हैं। जो कौपीन मात्रका धारक है, वह धीरमानस, पवित्रात्मा नियमसे उत्तम रात्रिप्रतिमा-योग किया करता है, केशलौंच करता है, पिच्छी रखता है, बैठकर करपात्रमें आहार करता है और उत्तम ब्रह्मचारी होता है। और सुधी नामका श्रावक कृतकारित दोषको छोड़कर उद्दंड भिक्षाके द्वारा, श्रावकोंके घर पर, एक बार युक्तिपूर्वक भोजन किया करता है। उसके त्रिकाल-योगका नियम नहीं और वीरचर्या, सिद्धान्ताध्ययन तथा सूर्यप्रतिमाका सर्वथा निषेध है।

यहाँ इस प्रतिमाधारी के दो भेद करके उन भेदोंके जो 'सुधी' और 'यती' दो नाम दिये गये हैं, वे ऊपरके सभी विद्वानोंके कथनोंसे विभिन्न है। और सुधी (प्रथमोत्कृष्ट) श्रावकके लिए कृत-कारित दोषको टालनेका जो विधान किया गया है, वह इस बातको सूचित करता है कि ब्रह्मनेमिदत्तके मतानुसार उसका भोजन, स्वामिकार्तिकेय तथा अमितगत्यादिके अनुसार नवकोटि विशुद्ध होता है। अस्तु, ब्रह्मनेमिदत्तने इस प्रतिमाधारीके लिए सुधी और यती नामके दो नये नामोंका विधान करने पर भी 'ऐलक' नामका कोई निर्देश नहीं किया, यह स्पष्ट है। साथ ही यह बात भी किसीसे छिपी नहीं है कि 'यति' अथवा 'यती'* नाम जैन समाजमें, महा-व्रतीके लिए रूढ़ है और इस यति पदकी प्राप्ति ग्यारहवीं प्रतिमाका उल्लंघन कर जाने के बाद होती है। श्रीसोमदेव सूरिके निम्न वाक्यसे भी यही पाया जाता है—

षडत्रगृहिणो ज्ञेयास्त्रयः
स्युर्ब्रह्मचारिणः ।
भिक्षुकौ द्वौतु निर्दिष्टौ
ततः स्यात्सर्वतो यतिः ॥

—यशस्तिलक ।

इस वाक्यमें यह बतलाया गया है कि श्रावककी ११ प्रतिमाओंमें पहले छह

* यह हस्तलिखित ग्रंथ देहलीके नये मंदिरके भंडारमें मौजूद है।

* यह 'यतिन्' शब्दकी प्रथमा विभक्तिके एकवचन का रूप है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'गृहस्थ' मध्यके तीन 'ब्रह्मचारी' और अन्तके दो 'भिक्षुक' कहलाते हैं और इसके बाद 'यति' संज्ञा होती है। यह दूसरी बात है कि श्रावकको 'देशयति' भी कहते हैं। परन्तु यह संज्ञा सभी दर्जोंके श्रावकोंके लिये व्यवहृत होती है।* खालिस 'यति' संज्ञाका प्रयोग आम तौर से महाव्रती साधुओंके लिए ही पाया जाता है। फिर भी यहाँ देशव्रतीके लिए 'यती' संज्ञाका व्यवहार किया गया है, वह एक खास बात है; और इसमें कोई गुप्त रहस्य ज़रूर है। संभव है कि श्वेताम्बर यतियोंके पदस्थको लक्ष्य करके ही यहाँ इस संज्ञाका प्रयोग किया गया हो।

१३—श्रीसोमदेव सूरिके ऊपर उद्धृत किये हुए वाक्यसे पाठकोंको यह भी मालूम होगा कि इस ११ वीं प्रतिमाधारीको 'भिक्षुक' भी कहते हैं। यद्यपि जैनधर्ममें 'भिक्षुक' नामका एक जुदा ही आश्रम माना गया है† जो कि अन्तिम आश्रम है और जिसे संन्यस्त आश्रम भी कहते हैं। और इसलिए 'भिक्षुक' एक मुनिकी या महाव्रती साधुकी संज्ञा है; परन्तु सोमदेवसूरिने ११ वीं प्रतिमाधारीको भी इस नामसे अविहित किया है और साथ ही १० वीं प्रतिमावालेके लिए भी इसी संज्ञाका प्रयोग किया है‡। ऐसी हालतमें यह एक प्रकारकी सामान्य संज्ञा हो जाती है और उससे ११ वीं प्रतिमावाले का ही खास तौरसे कुछ बोध नहीं हो सकता। परन्तु खास तौर से बोध हो सके या न हो सके, इतना जरूर मानना पड़ेगा कि शास्त्रमें ११ वीं प्रतिमावालेके लिए 'भिक्षुक' संज्ञा भी बहुत पहलेसे चली आती है, क्योंकि यशस्तिलक ग्रंथ शक सं० ८८१ (वि० सं० १०१६) में बनकर समाप्त हुआ है और उसमें उक्त संज्ञाका निर्देश है।

यहाँपर हमारे कितने ही पाठक यह जाननेके लिए ज़रूर उत्कण्ठित होंगे कि श्रीसोमदेव सूरिने ११ वीं प्रतिमाका क्या स्वरूप वर्णन किया है। परन्तु हमें खेदके साथ लिखना पड़ता है कि यशस्तिलक नामके आपके प्रधान ग्रंथमें, जिसमें उपासकाध्ययनका बहुत कुछ लम्बा चौड़ा वर्णन है, हमें इस प्रतिमाका कोई ख़ास स्वरूप उपलब्ध नहीं हो सका। हाँ, एक स्थान पर* ११ प्रतिमाओंके नाम ज़रूर मिले हैं। परन्तु वे नाम कितने ही अंशोंमें इतने विलक्षण हैं और उनका क्रम भी इतना विभिन्न है कि वे दोनों (नाम और क्रम) ऊपर उल्लेख किये हुए आचार्यों तथा विद्वानोंके कथनोंमेंसे किसी एकके भी कथनसे मेल नहीं खाते। यथा—

मूलव्रतं व्रतान्यर्चा
पर्वकर्माकृषिक्रियाः।
दिवा नवविधं ब्रह्म
सचित्तस्य विवर्जनम्॥
परिग्रहपरित्यागो
भुक्तिमात्रानुमान्यता।

---

* यथा—"तच्च देशयतीनां द्विविधं मूलोत्तरगुणाश्रयणात्" यशस्तिलकः।

† यथा—ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः इत्याश्रमास्तु जैनानामुत्तरोत्तर शुद्धितः॥ इत्यादि पुराणे श्रीजिनसेनः।

‡ पं० आशाधर और पं० मेधावीने भी इस विषयमें सोमदेव सूरिका अनुसरण किया है और १० वीं तथा ११ वीं दोनों ही प्रतिमावालोंको 'भिक्षुक' लिखा है; यथा—अनुमतिविरतोद्दिष्ट विरतावुभौ भिक्षुकौ प्रकृष्टौच—सागार धर्मामृत।

उत्कृष्टौ भिक्षुकौ परौ—धर्म संग्रह श्रावकाचारः।

* ऊपर उद्धृत किये हुए 'षडत्रगृहिणो' इत्यादि श्लोकमे पहले।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तद्धानौ च वदन्त्येता-
न्येकादश यथाक्रमं ।
अवधिव्रतमारोहे-
त्पूर्वपूर्वव्रतस्थितः ।
सर्वत्रापि समाः प्रोक्ता
ज्ञानदर्शनभावनाः ॥*
आश्वास नं० ८ ।

इन पद्योंमें १ मूलव्रत, २ व्रतानि, ३ अर्चा, ४ पर्वकर्म, ५ अकृषि क्रिया, ६ दिवाब्रह्म, ७ नवविध ब्रह्म, ८ सचित्त विवर्जन, ९ परिग्रह परित्याग, १० भुक्ति-मात्राहानि और ११ अनुमान्यताहानि, ऐसी ग्यारह प्रतिमाओंके नाम दिये हैं और उनका यही क्रम निर्दिष्ट किया है। साथ ही यह भी बतलाया है कि इन सभी प्रतिमाओंमें ज्ञानदर्शनकी भावनाएँ समान हैं और पूर्व पूर्व व्रतस्थित (प्रतिमाधारी) को चाहिए कि वह अवधिव्रत-को आरोहण करे। परन्तु अवधिव्रतको आरोहण करना क्या है, यह कुछ समझमें नहीं आता। संभव है कि जिस प्रकार श्वेताम्बरोंके यहाँ पहली प्रतिमा एक महीने तक, दूसरी दो महीने तक और तीसरी तीन महीने तक, इस प्रकार क्रमशः अवधिको बढ़ाते हुए अगली अगली प्रतिमाओंके पालनका विधान है,† उसी तरहका अभिप्राय यहाँ 'अवधिव्रत' से सोमदेव सूरिका हो; अथवा इसका कुछ दूसरा ही आशय हो। परन्तु कुछ भी हो, इसमें संदेह नहीं कि प्रतिमाओंका यह सब कथन दूसरे दिगम्बर आचार्यों तथा विद्वानोंके ग्रंथोंसे, जिनका ऊपर उल्लेख किया गया है, नहीं मिलता। यहाँ ग्यारहवीं प्रतिमावालेको उद्दिष्ट-त्यागी ही नहीं बतलाया, बल्कि अनुमान्य-ताको हानि करनेवाला अथवा उसका त्यागी ठहराया है जिसका अभिप्राय, पूर्वाचार्योंके कथनानुसार, दसवीं प्रतिमा (अनुमति त्याग) के विषयसे हो सकता है। दसवीं प्रतिमावालेको यहाँ भोजनकी मात्राका घटानेवाला लिखा है; परिग्रह-त्यागसे पहले 'आरम्भ त्याग' नामकी प्रतिमाका कोई उल्लेख नहीं; सचित्त त्याग' नामकी प्रतिमाको पाँचवीं प्रतिमा करार न देकर आठवीं प्रतिमा करार दिया है; 'अकृषि क्रिया' नामकी एक नई प्रतिमा पाँचवें नम्बर पर दी है और तीसरी प्रतिमा 'सामायिक' की जगह 'अर्चा' (पूजा) लिखी है। इससे पाठक सोमदेव सूरिके प्रतिमाविषयक विभिन्न शासनका बहुत कुछ अनुभव कर सकते हैं। यह शासन प्रतिमाओंके नाम, विषय और उनके क्रमकी अपेक्षा श्वेताम्बरोंके शासनसे भी भिन्न है। श्वेताम्बर सम्प्र-दायमें दसवीं प्रतिमावालेको 'उद्दिष्ट-त्यागी' माना है और ग्यारहवीं प्रतिमा-की संज्ञा 'श्रमणभूत' दी है। इसके सिवा उन्होंने ५वीं प्रतिमा 'कायोत्सर्ग' (प्रतिमा), ६ ठी अब्रह्मवर्जन, ७ वीं सचित्ताहार-वर्जन, ८ वीं स्वयमारम्भवर्जन, और ९वीं प्रतिमा भृतकप्रेष्यारम्भवर्जन मानी है*। बाकी दर्शन, व्रत, सामायिक और पोषध नामक पहली चार प्रतिमाएँ उनके यहाँ भी उन्हीं नामोंके साथ पाई जाती हैं जिन नामोंसे भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यने अपने 'चारित्तपाहुड' ग्रन्थमें उनका उल्लेख किया है, यथा—

* देखो यशस्तिलक उत्तरखण्ड पृ० ४१०, निर्णय-सागर प्रेस, बम्बई द्वारा सन् १९०३ का छपा हुआ।

† देखो योगशास्त्रकी गुजराती टीका, निर्णयसागर प्रेस बम्बईमें संवत् १९५५ की छपी हुई, पृष्ठ ३३७; और उपासकदशा' का अभयदेव कृत विवरण, होर्नले साहब-का, सन् १८८५ में, छपाया हुआ, पृ० २६ से २९।

* देखो 'उपासक दशा' का अभय देवकृत विवरण।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दंसण-वय-सामाइय-पोसह-
पडिमा अबम्भ सचित्त ।
आरंभ-पेस-उद्दिट्ठ-
वज्जए समणभूए य ॥११॥
उपासकदशा ।*

१४—पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय, पद्मनंदि श्रावकाचार, पूज्यपाद उपासकाचार रत्नमाला, पंचाध्यायी (उपलब्ध अंश), तत्वार्थ सूत्र, तत्वार्थ सार, सवार्थ सिद्धि, राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक, धर्म शर्माभ्युदय आदिक बहुतसे ग्रंथोंमें ११ प्रतिमाओंका कथन ही नहीं है और न उनमें किसी दूसरी तरह पर 'ऐलक' नामका उल्लेख पाया जाता है। गोम्मटसारके संयम मार्गणाधिकारमें ११ प्रतिमाओंके नाम ज़रूर हैं और उनकी सूचक वही गाथा दी है जो भगवत्कुंदकुंदके चारित्त-पाहुड ग्रंथमें पाई जाती है। परन्तु उन प्रतिमाओंका वहाँ कोई स्वरूप-निर्देश नहीं किया गया, इसलिए वहाँसे भी इस विषयमें कोई सहायता नहीं मिलती।

इस तरह पर संस्कृत-प्राकृतके प्रायः उन सभी प्रसिद्ध प्रसिद्ध ग्रंथोंको टटोलने पर जिनमें प्रतिमाओंके कथनकी संभावना थी, हमें किसी भी ग्रंथमें 'ऐलक' नामकी उपलब्धि नहीं हुई। हाँ, 'क्षुल्लक' पदवीका उल्लेख बहुतसे ग्रंथोंमें ज़रूर पाया जाता है। उदाहरणके लिए यहाँ उनमेंसे कुछका परिचय दे देना काफी होगा—

(क) श्रीजिनसेनाचार्य प्रणीत 'हरिवंशपुराण' में, जो कि शक सं० ७०५ में बनकर समाप्त हुआ है, विष्णुकुमार मुनि और प्रद्युम्नकी कथाओंमें क्षुल्लक पदवीधारक श्रावकका उल्लेख है †।

(ख) विष्णुकुमार मुनिकी कथामें, प्रभाचंद्राचार्य और ब्रह्मनेमिदत्तने भी क्षुल्लक पदका उल्लेख किया है और उस क्षुल्लक श्रावकका नाम, जो विष्णुकुमार मुनिके पास अकम्पनाचार्यादि मुनियोंके उपसर्गका समाचार लेकर गया था, 'पुष्पदन्त' दिया है *।

(ग) विक्रमकी १० वीं शताब्दीके विद्वान् श्रीदेवसेनाचार्य, अपने 'दर्शनसार' ग्रंथमें, कुमारसेन द्वारा वि० सं० ७५३ में काष्ठासंघकी उत्पत्ति बतलाते हुए, लिखते हैं कि कुमारसेनने 'क्षुल्लक' लोगोंके लिए 'वीरचर्या'† का विधान किया है।

इत्थीणं पुणदिक्खा
खुल्लय लोयस्स वीरचरियत्तं ।

(पूरा प्रकरण देखो-गाथा नं० ३३ से ३९ तक)

दर्शनसारके इस प्रकरण से साफ़ ज़ाहिर है कि वि. संवत ७५३ से भी पहले से क्षुल्लक पदका अस्तित्व है और उस समय मूल संघमें क्षुल्लकोंके लिए वीरचर्याका निषेध था।

(घ) यशस्तिलकमें श्रीसोमदेव सूरि भी 'क्षुल्लक' पदका उल्लेख करते हैं और लिखते हैं कि क्षुल्लकोंके लिए परस्पर 'इच्छाकार' वचनके व्यवहारका विधान है। यथा—

अर्हद्रूपे नमोस्तु स्याद्-
विरतौ विनय क्रिया ।
अन्योन्य क्षुल्लकेचाह-
मिच्छां कारवचः सदा ॥
आश्वास ८ पृ० ४०७।

* देखो होर्नले (A. F. Rudolf Hoernle) का संस्करण, सन् १८८५ का छपा हुआ, पृ० १६७।

† ऐसा पं० दौलतरामजीकी भाषावचनिकासे मालूम होता है। मूल ग्रंथ हमारे सामने नहीं है।

* देखो उक्त विद्वानोंके बनाये हुए 'आराधना सार कथा' और 'आराधना कथा कोश' नामके ग्रंथ। ब्रह्मनेमिदत्तके आराधना कथा कोशका एक पद्य इस प्रकार है—

इति प्राह तदाकर्ण्यं पृष्ठोऽसौ क्षुल्लकेन च ।
पुष्पदन्तेन भो देव कुत्र केषां गुरुर्जगौ ॥६२॥

† यह 'वीरचर्या' वही है जिसका कितने ही आचार्यों तथा विद्वानोंने ११ वीं प्रतिमाधारक उत्कृष्ट श्रावकके लिए निषेध किया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(ङ) वादिचंद्र सूरि अपने 'यशोधर-चरित' में, जिसका निर्माण-काल वि० संवत् १६५७ है, पहले शिक्षा (११ प्रतिमा), फिर दीक्षा (मुनिदीक्षा) और फिर भिक्षाका विधान करते हुए, एक स्थान पर लिखते हैं कि वह संसारसे भयभीत राजा अपने गुरुकी दी हुई शिक्षाको ग्रहण करके और अपने सर्व साम्राज्यको छोड़कर उस वक्त 'क्षुल्लक' हो गया और उसने गुरुकी आज्ञासे भिक्षापात्र, कौपीन, एक वस्त्र और कमंडलु धारण कर लिया। यथा—

> शिक्षांश्रित्वा गुरोर्दत्तां
> संसारभयभीलुकः।
> हित्वाहि सर्वं साम्राज्यम-
> भवत्क्षुल्लकस्तदा ॥३०२॥
> भिक्षापात्रंच कौपीन-
> मेकवस्त्रं कमंडलु।
> अधारि वचसा साधो-
> र्मयांगि (?) क्षमया सह ॥३०३॥
> सर्ग १७।

इन सब अवतरणोंको ध्यानमें रखते हुए, और प्रायश्चित्त समुच्चयकी चूलिकाके उस अवतरण पर ख़ास तौरसे लक्ष्य देते हुए, जो ऊपर नं० ७ में उद्धृत किया गया है और जिसमें साफ़ तौरसे क्षुल्लक-का स्वरूप बतलाया गया है, हमें तो यही मालूम होता है कि इस समूची ११ वीं प्रतिमाके धारकका सुप्रसिद्ध और रूढ़ नाम 'क्षुल्लक' है। बाक़ी 'उत्कृष्ट श्रावक' यह श्रेणी (दर्जे) की अपेक्षा नाम है; उद्दिष्टाहारविरत (उद्दिष्टपिंड विरत), उद्दिष्टविनिवृत्त (त्यक्तोद्दिष्ट, उद्दिष्टवर्जी, उद्दिष्टत्यागी), एक-वस्त्र-धारी, खंडवस्त्रधारी, कौपीनमात्रधारी, भिक्षुक इत्यादि नाम उसके गुण-प्रत्यय नाम हैं। और हमारे इस कथनका समर्थन धर्मसंग्रह श्रावकाचारकी प्रशस्तिके निम्न पद्यसे भी होता है—

> यः कक्षापट मात्रवस्त्रममलं
> धत्ते च पिच्छं लघुः।
> लोचं कारयते सकृत्करपुटे
> भुंक्ते चतुर्थादिभिः।
> दीक्षां श्रौतमुनीं बभार
> नितरां सत्क्षुल्लकः साधकः
> आर्यो दीपद आख्ययात्र
> भुवनेऽसौ दीप्यतां दीपवत् ॥१६॥

इस पद्यमें 'दीपद' नामके एक क्षुल्लकको आशीर्वाद दिया गया है जिसने श्रुतमुनिसे दीक्षा ली थी; और उसके सम्बन्धमें यह लिखा है कि वह कौपीन मात्र वस्त्रका धारक था, हलकी पिच्छी रखता था, लौंच किया करता था और कर-पात्रमें दूसरे तीसरे दिन एक बार भोजन किया करता था। यद्यपि इन लक्षणोंसे वह साफ़ तौर पर द्वितीयोत्कृष्ट श्रावक जान पड़ता है, जिसके लिए पं० आशाधर और उक्त धर्मसंग्रह श्रावकाचारके कर्ता पं० मेधावीने, अपने अपने ग्रंथोंमें 'आर्य' संज्ञाका प्रयोग किया है, तो भी यहाँ उसके लिए 'आर्य' विशेषण देकर इस बातको और भी बिलकुल साफ़ कर दिया है कि जिसे हम 'द्वितीयोत्कृष्ट श्रावक' अथवा 'आर्य' कहते हैं, वह 'क्षुल्लक' ही है-उससे भिन्न दूसरा कोई शख़्स नहीं है। और गुरुदासाचार्यने तो, अपने प्रायश्चित-समुच्चयकी चूलिकामें, क्षुल्लकोंके लिए यह साफ़ लिखा ही है कि वे क्षौर कराओ या लौंच करो, हाथमें भोजन करो या बर्तनमें और कौपीन मात्र रक्खो या एक वस्त्र, परन्तु उन्हें 'क्षुल्लक' कहते हैं *।

* देखो इस लेखका नं० ७ पृष्ठ ३०४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उनके इस कथनमें ११ वीं प्रतिमाके दोनों भेदोंका, चाहे वे पहलेसे हों या पीछेसे कल्पित किये गये हों, समावेश हो जाता है। और इसलिए यह कहना चाहिए कि आगममें उक्त दोनों प्रकारके श्रावकोंके लिए 'क्षुल्लक' संज्ञाका समान रूपसे विधान पाया जाता है।

जो लोग प्रथम भेदको ही क्षुल्लक मानते हैं और दूसरेको क्षुल्लक स्वीकार नहीं करते, बल्कि उसके लिए 'ऐलक' नामकी एक नई संज्ञाका व्यवहार करते हैं, उनका यह आचरण जैनागमके प्रतिकूल है।

यहाँ पर हम इतना और बतला देना चाहते हैं कि धर्मसंग्रहश्रावकाचार वि० संवत् १५४१ में बनकर समाप्त हुआ है और उस वक्त 'दीपद' नामका उक्त क्षुल्लक मौजूद था। चूँकि स्वरूपकी दृष्टिसे इस क्षुल्लक और आजकलके 'ऐलक' में परस्पर कोई भेद नहीं पाया जाता, इसलिए धर्मसंग्रहश्रावकाचारके उपर्युक्त उल्लेखसे यह नतीजा निकलता है कि जिसे हम आज ऐलक कहते हैं, उसे विक्रमकी १६ वीं शताब्दीमें भी 'क्षुल्लक' कहते थे।

१५—अब देखना यह है कि पिछले साहित्यमें 'ऐलक' नामकी उपलब्धि कहींसे होती है या कि नहीं। संस्कृतप्राकृत ग्रंथोंको छोड़कर क्या ऐसे दूसरे कोई ग्रंथ मौजूद हैं जिनमें ऐलक पदका उल्लेख पाया जाता है? उत्तरमें कहना होगा कि हाँ, हिन्दी भाषाके कुछ ग्रंथ ऐसे ज़रूर हैं जिनमें ऐलक पदका उल्लेख मिलता है। इन ग्रंथोंमें सबसे पुराना ग्रंथ जो हमें उपलब्ध हुआ है, वह पण्डित भूधरदासजीका 'पार्श्वपुराण' है। इस ग्रंथमें ११ वीं प्रतिमाका स्वरूप इस प्रकार से वर्णन किया है—

अब एकादशमी सुनो,
उत्तम प्रतिमा सोय।
ताके भेद सिधान्तमें,
छुल्लक ऐलक दोय ॥१९४॥

जो गुरु निकट जाय व्रत गहै।
घर तज मठमंडपमें रहै॥
एक वसन तन पीछी साथ।
कटि कौपीन कमंडल हाथ ॥१९५॥

भिक्षा भाजन राखै पास।
चारो परब करै उपवास॥
ले उदंड भोजन निर्दोष।
लाभ अलाभ राग ना रोष ॥१९६॥

उचित काल उतरावै केश।
डाढी मोछ न राखै लेश॥
तपविधान आगम अभ्यास।
शक्ति समान करै गुरु पास ॥१९७॥

यह छुल्लक श्रावक की रीत।
दूजो ऐलक अधिक पुनीत॥
जाके एक कमर कौपीन।
हाथ कमंडल पीछी लीन ॥१९८॥

विधिसे खड़ा लेहि आहार।
पानिपात्र आगम अनुसार॥
करै केश लुंचन अति धीर।
शीतघाम तन सहै शरीर ॥१९९॥

पान पात्र आहार,
करै जलांजुलि जोड़ मुनि।
खड़ो रहै तिहि बार,
भक्तिरहित भोजन तजै ॥२००॥

एक हाथ पै ग्रास धर,
एक हाथसे लेय।
श्रावक के घर आयके,
ऐलक अशन करेय ॥२०१॥

अधिकार ९ वाँ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस वर्णनमें साफ़ तौर से ११ वीं प्रतिमाके दो भेदोंके लिए 'क्षुल्लक' और 'ऐलक' ऐसे दो नाम दिये हैं। साथ ही, ऐलकके वास्ते खड़ा होकर भोजन करनेका विधान किया है, जो ऊपर उद्धृत किये हुए अनेक आचार्यों तथा विद्वानोंके कथनोंके विरुद्ध है। किसी भी आचार्य तथा प्राचीन विद्वान्ने इस प्रतिमाके दो भेद करके उनके क्षुल्लक और ऐलक ऐसे दो नाम नहीं दिये, बल्कि इस समूची प्रतिमा अथवा इसके दोनों भेदोंके लिए 'क्षुल्लक' ऐसे एक नामका विधान ज़रूर पाया जाता है। तब पंडित भूधरदासजीका यह लिखना कि सिद्धान्तमें इस प्रतिमाके क्षुल्लक और ऐलक ऐसे दो भेद किये गये हैं, कहाँ तक ठीक और माननीय है, इसे विज्ञ पाठक स्वयं समझ सकते हैं।

हमारी रायमें किसी भाषा-ग्रंथका कोई शास्त्रीय विधान उस वक्त तक माननीय नहीं हो सकता जब तक कि उसका समर्थन किसी पूर्वाचार्य तथा दूसरे समर्थ विद्वानोंके ग्रंथोंसे न होता हो। भूधरदासजीके इस कथनका, चूँकि, ऐसा कोई समर्थन नहीं होता, इसलिए यही कहनेको जी चाहता है कि 'ऐलक' पदकी* यह सब कल्पना भूधरदासजीके समयकी अथवा उससे कुछ ही पहलेकी है और वह शास्त्रीय दृष्टिसे माने जानेके योग्य नहीं है। भूधरदासजीका उक्त पार्श्वपुराण वि० सं० १७८९ में बनकर समाप्त हुआ है। अतः इस कल्पनाको उत्पन्न हुए प्रायः दो सौ वर्षका समय बीता है, यह कहना चाहिए। और इससे पाठक स्वयं समझ सकते हैं कि 'ऐलक' पदकी यह कल्पना कितनी आधुनिक और कितनी अर्वाचीन है। अस्तु।

* दिगंबरोत्कृष्ट श्रावकके (ऐलक पदवीके) क्रियाकाण्ड-की नहीं।

इन सब अनुसंधानोंको, जिन्हें ११ वीं प्रतिमाका एक प्रकारका इतिहास कहना चाहिए, खोजते समय हमें कितनी ही रहस्यकी बातें मालूम हुई हैं जिन्हें हम फिर कभी अपने पाठकों पर प्रकट करेंगे; और उसी समय ऐलक शब्दकी उत्पत्ति पर भी विशेष प्रकाश डाला जायगा। इस समय विज्ञ पाठकोंसे हमारा सिर्फ़ इतना ही निवेदन है कि उन्हें यदि किसी दूसरे प्राचीन ग्रंथके द्वारा ऐलक पदकी यह कल्पना इससे अधिक पुरानी मालूम हुई हो, तो वे कृपाकर सद्भावपूर्वक उसे हम पर प्रकट करें जिससे हम अपने विचारोंमें यथोचित फेरफार करनेके लिए समर्थ हो सकें। यह लेख यथार्थ वस्तुस्थितिको सामने लानेकी गरज़से ही लिखा गया है, इसके लिखनेमें हमारा और दूसरा कुछ भी अभिप्राय नहीं है। आशा है, सहृदय पाठक इससे कितनी ही बातोंका नया अनुभव प्राप्त करेंगे और लाभ उठावेंगे।

सरसावा। ता० १३ सितम्बर सन् १९२१

जैनहितैषीपर विद्वानोंके विचार।

(गताङ्क से आगे।)

१०—श्रीयुत पं० महेशदत्तजी शर्मा, भूतपूर्व सम्पादक 'कालिन्दी' पत्रिका, रामनगर, बनारस स्टेट।

ता० ३१-५-२१

"निस्सन्देह जैनहितैषीमें इधर कुछ दिनोंसे उच्च कोटिके विचारपूर्ण लेख प्रकाशित हो रहे हैं, जिसके लिए आपको विशेष धन्यवाद है। आशा है, ठीक समय पर प्रकाशनका प्रबन्ध शीघ्र ही होगा। हितैषी केवल जैनियोंके लिए

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हो नहीं, समस्त भारतके पढ़े लिखे जिज्ञासुओंके लिए भी हितैषी है।"

११*—श्रीयुत पं० तात्या नेमिनाथजी पांगल, सम्पादक 'सरस्वाङ्मय ग्रन्थ-माला' (मराठी), रविवार पेठ, पूना सिटी।

ता० १२-५-२१

"आपका मार्चके अंकका 'तीर्थोंके झगड़ोंका रहस्य' यह लेख पढ़ा बहोत हि संशोधन व ऐतिहासिक श्रमतया आप (ने) लिखा है—जो पढ़नेसे अन्तःकरण प्रसन्न और सन्तुष्ट होता (है). आपके ऐतिहासिक समालोचनका मैं अभिनन्दन करता हूँ—आपका यह लेख पढ़ने से मुझे ऐतिहासिक क्षेत्रमें फिर भी काम करनेकी प्रेरणा होती है। आपके जैनहितैषीके बन सके उतने सब अंक पढ़नेके लिए एक बार र. ह. के. व्ही. पी. से भेजनेकी कृपा करें।

हमारा अन्ध जैनसमाज आपका द्वेषबुद्धीसे कदर नहीं करता, लेकिन आपकी योग्यता डा० भांडारकर जैसे विद्वानोंसे भी ऐतिहासिक वाङ्मयमें उच्च श्रेणी की है। परमात्मा आपके कार्यको चिरंजीव तथा प्रभवशाली करें।"

१२*—श्रीयुत ला० दशरथलालजी, उपमन्त्री 'जैनमित्रमण्डल' वाचनालय विभाग, सिवनी (सी. पी.)।

ता० ६-८-२१

"आपके 'हितैषी' पत्रके दर्शनोंकी बड़ी उत्सुकता थी। आज पाकर प्रसन्न हुआ। मुझे साप्ताहिकमें जैनमित्र और मासिकमें आपके जैनहितैषीका अभिमान है लेकिन पूर्ववत् न मालूम गल्प, राजनीति, हिन्दी साहित्य इ० पर अब लेख क्यों नहीं आते जिसके लिए मेरी आपसे प्रेरणा तथा प्रार्थना है। पत्रिकाके कुछ विचार यद्यपि मुझसे भिन्न हैं, पर अधिकांश एकमत हैं। इससे मैं इसका ज्यादा प्रेमी हूँ। अतएव आपका और सम्पादक महोदयका परिश्रम सराहनीय है।

* ११-१२ नम्बरके दोनों विचार पं० नाथूरामजी प्रेमीको लिखे हुए पत्रोंमें से उद्धृत किये गये हैं।

तेरा द्वार।

(ले०—श्रीयुत भगवन्त गणपति गोयलीय, बम्बई।)

(१)

जीवनसे जी घबराया था,
ढोते ढोते उसका भार।
हा भलाइयोंने बुराइयोंसे
जीवनमें मानी हार।
सारी नई नई आशाएँ
उड़ीं कि जैसे उड़े कपूर।
जीवनाब्धि की तरल तरंगों ने
ला पटका मुझको दूर॥

(२)

बनस्थलीमें जब व्याकुल हो
ढूँढ़ रहा था अपनी राह।
तरुओं-टीलोंसे टकरा कर
खींच रहा था लम्बी आह।
नभमें घटा घिरी थी, बनमें
अंधकारका था विस्तार।
मेरे पदरव मेरी श्वासें
डरवातीं थीं कर फूत्कार॥

(३)

यम आमंत्रण आया, मैंने
परवश किया उसे स्वीकार।
तेरा ध्यान किया जब
खण्डित होने को था जीवन तार।
देखो वहीं हो उठा सत्वर
तथा अचानक दीप प्रकाश।
दौड़ा पाश-मुक्त—मृग जैसा
आ पाया यह तेरा वास॥

Mahavir Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(४)

देख तुझे निर्जीव देह में
मेरी मानो आया प्राण ।
समझा त्राण मिलेगा
तुझसे होगा ही जीवन कल्याण ।
खोल खोल सत्वर खुलने दे
अब अपनी कुटीर का द्वार ।
तेरे चरण पकड़ पा लेने
दे मुझको विपत्तिका पार ॥

(५)

धूलि भरे पग हैं मैली हो
जावेगी यह भव्य कुटीर ।
डरना मत धो डालेगा
उसको मेरी आँखोंका नीर ।
निकल निकल मेरे पैरोंसे
इधर उधर फैलेंगे शूल ।
शीघ्र वरुणियोंसे बुहार
दूँगा उधार पट हो अनुकूल ॥

(६)

जैसे तैसे द्वार खुला तो
फिर अब हे भवसागर सेतु ।
मौन हो रहा तू इतनी
निठुराई है, बतला किस हेतु ?
पापी हूँ तो भला पापियों
का क्या नहीं हुआ उद्धार ।
अगर न पापी होता तो
फिर आता ही क्यों तेरे द्वार ?

(७)

निस्सन्देह पापियों से
करता है घृणा सकल संसार ।
तो क्या तू भी सँसारी सा
है अज्ञानी या सविकार ?
नहीं नहीं, तू दयाधाम है,
पूर्णकाम है, है शिवराज ।
स्वीय विरद या बाँह गहे
की तो क्या नहीं रखेगा लाज ?

(८)

जग की प्रलयङ्करी घृणा से
जीवन ऊब गया है नाथ !
चाहे आँसू पोंछ या कि
ठुकरा दे है चरणों में माथ ।
मुझको अङ्गीकार वही है
जो कुछ हो तुझको स्वीकार ।
इस जीवनमें किन्तु न
छोडूँगा अप्राप्य प्राप्त-तव द्वार ॥

एक गृहस्थका ब्रह्मचर्याणुव्रत ।

एक गृहस्थ पंचाणुव्रतधारी है और उसके स्वस्त्री मौजूद है । तिस पर भी उसने एक और रखेली स्त्री (अपरिगृहीता इत्वरिका) भी अपने पास रख छोड़ी है । उसके इस आचरणके कारण किसीने उसको टोका और पूछा तो वह कहता है कि-"मैं यह व्रत श्रीसोमदेव सूरिके अभिप्रायानुरूप पाल सकता हूँ । उनका अभिप्रायसूचक वह श्लोक इस प्रकार है—

वधूवित्तस्त्रियौ मुक्त्वा
सर्वत्रान्यत्र तज्जने ।
मातास्वसातनूजेति
मतिर्ब्रह्म गृहाश्रमे ॥१॥

(यशस्तिलक उ० ख० उपासकाध्ययन प्रकरण पृ० ३५९)

अर्थात्—वधू माने स्वस्त्री और वित्तस्त्री माने वेश्या या रखेली स्त्री, इनके सिवा शेष स्त्रियों पर माता, बहन और छोकरी, पुत्री ऐसी भावना रखनी, यह गृहस्थका ब्रह्मचर्याणुव्रत है ।"

इस प्रकार वह श्रीसोमदेव सूरिका आधार दिखाता है । सो उसका वह व्रत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भंग हुआ कि नहीं, इसका विद्वान् लोग कृपा करके खुलासा करें।

आपका कृपाकांक्षी—
शंकर पंढरिनाथ रणदिवे।

विविध विषय।

१-खण्डेलवाल जैनहितेच्छुका विरोध।

'खण्डेलवाल जैनहितेच्छु' नामका एक पाक्षिक पत्र छः सात महीने हुए, दि० जैन खण्डेलवाल महासभाकी तरफ़से निकलना प्रारम्भ हुआ है। इसके सम्पादक हैं पं० पन्नालालजी सोनी। पत्रकी रीति, नीति और सम्पादनशैली कुछ ऐसी विलक्षण है कि वह जनताको बहुत ही कम पसन्द आई है और इसलिए पहले अंकके निकलनेके बादसे ही इस पत्रका विरोध शुरू हो गया है। जैनमित्र आदिकमें इसके विरुद्ध कितने ही लेख निकल चुके हैं। स्वयं खण्डेलवाल भाई भी इसका विरोध कर रहे हैं। कई सभाओंने इसके विरुद्ध प्रस्ताव भी पास किये हैं। निम्नलिखित दो प्रस्ताव हम यहाँ जैनमित्र अंक ३६ (ता० २८ जुलाई २१) से उद्धृत करते हैं—

(१) बंगाल आसाम प्रान्तीय खण्डेलवाल सभा द्वारा आषाढ़ कृष्ण ५मीको पास हुआ प्रस्ताव।

"यह सभा श्री दि० जैन खण्डेलवाल महासभाके मुखपत्र 'खडेलवाल जैनहितेछु' की वर्तमान् सम्पादनशैलीके प्रति असन्तोष प्रकट करती है और मन्त्रीको अधिकार देती है कि उक्त पत्रकी सम्पादन शैलीको परिवर्तन करानेके लिए महासभासे पत्र व्यवहार करे।"

(२) डीग रियासत भरतपुरकी मिथ्याभ्रमनाशिनी सभा द्वारा, उसकी खास मीटिङ्गमें और २०० मनुष्योंकी उपस्थितिमें, ता० १५ (जुलाई) को पास हुआ प्रस्ताव।

"खण्डेलवाल जैनहितेच्छुमें इसके सम्पादक पं० पन्नालाल सोनी जातिके सुधारक, प्रचारक, विद्वान्, त्यागी, ब्रह्मचारियोंके निन्दापूर्ण द्वेष भरे लेख हर एक अंकमें प्रकट करते रहते हैं। अतः यह सभा इस पत्रकी नीति पर खेद प्रकट करती है और जैनसमाजसे प्रार्थना करती है कि ऐसे पत्रों से सावधान रहे।"

किसी सभा या सोसायटी द्वारा प्रकाशित होनेवाला समाजका शायद यह पहला ही पत्र है जिसका जनमते ही इस तरहसे विरोध हुआ हो। इसमें सन्देह नहीं कि इस पत्रके अधिकांश लेख प्रायः द्वेषसे भरे हुए, शिष्टता और सभ्यतासे गिरे हुए, कषायसे परिपूर्ण और उद्दण्डता, छिछोरपन तथा हठधरमीको लिये हुए होते हैं। एक महासभाके मुखपत्रकी ऐसी दुर्दशा देखकर चित्तको बड़ा ही दुःख होता है! सम्पादक महाशयको चाहिए कि वे अपने कर्तव्य और उत्तरदायित्वको समझकर शीघ्र ही इस पत्रकी चाल ढालको सुधारें। उन्हें इस विषयमें अधिक गंभीर और विचारशील होनेकी ज़रूरत है, और उनका ख़ास कर्तव्य यह है कि वे इस पत्रको उसकी जन्मदात्री खण्डेलवाल महासभाकी रीति-नीति और उद्देश्योंके अनुसार चलावें और उसे व्यर्थ ही अपने दिली फफोलोंके फोड़ने या अपने हृदयके गुबारोंको निकालनेका एक साधन न बनावें। एक महती संस्थाके पत्र-सम्पादक होनेकी हैसियतसे उनकी भाषा बहुत ही संयत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होनी चाहिए। आशा है सोनीजी अब इसपर ज़रूर ध्यान देंगे।

२-'सिद्धान्त' में सिद्धान्त-विरुद्ध बातें।

'जैनसिद्धान्त' नामका एक मासिक-पत्र अभी साल भरसे निकलना प्रारम्भ हुआ है। यह दिगम्बरजैनशास्त्रि-परिषद्-का मुखपत्र है और इसके सम्पादक हैं पं० वंशीधरजी शास्त्री। लोग समझते थे कि इस पत्रमें जैनसिद्धान्तके रहस्यका उद्घाटन करनेवाली कुछ मर्मकी बातें प्रकाशित हुआ करेंगी और उनके द्वारा साधारण जनताका जैनसिद्धान्त-विषयक अज्ञान दूर होगा। परन्तु ऐसा कुछ भी न होनेसे उनकी वह आशा अब निराशामें परिणत होती जाती है। आजतक इस पत्रमें ऐसा एक भी लेख प्रकाशित नहीं हुआ जिसके द्वारा जैनधर्मके किसी भी सिद्धान्तपर कोई गहरा प्रकाश डाला गया हो। प्रत्युत् इसके, अब इसमें कितनी ही बातें जैनसिद्धन्तोंके विरुद्ध निकल रही हैं—असत्यको सत्य और सत्यको असत्य सिद्ध करनेकी चेष्टा की जाती है-योनिपूजन और कुदेव पूजनादि जैसे निषिद्ध विषयोंतकका विधान होने लगा है। लक्षणोंसे ऐसा मालूम होता है कि यह पत्र फिरसे भट्टारकी शासनको प्रवर्तित करना चाहता है और तेरह पंथियोंके विचारोंपर बिलकुल ही पानी फेर देनेकी फिकरमें है। यही वजह है कि यह त्रिवर्णाचारों जैसे आधुनिक ग्रन्थोंकी हर एक बातको, चाहे वह कितनी भी अनुचित क्यों न हो, सत्य सिद्ध करनेकी धुनमें मस्त है। ऐसी हालत देखकर, कितने ही विद्वान् लोग भी अब इस पत्र-की रीति-नीतिसे घबरा उठे हैं और उन्होंने इसके विरुद्ध लिखना शुरू किया है। कोई कोई तो इस पत्रके लिए और इसके सम्पादक आदि कतिपय लेखकोंके वास्ते ऐसी ऐसी उपमाओं तथा लोकोक्तियोंका प्रयोग करने लगे हैं कि—"गाडर आनी ऊनको बैठी चरे कपास," "आप डुबंते पांडे ले डूबे यजमान।" हमें लोगोंकी इस घबराहटको देखकर कविका एक वाक्य याद आता है जो ऐसे ही घबराये हुए प्रेमियोंको लक्ष्य करके कहा गया है—

इब्तदाए* इश्क़ है रोता है क्या ?
आगे आगे देख तो होता है क्या !

कितने ही लेख इस पत्रमें ऐसे बेहूदा और अहंकार तथा कषायसे भरे हुए निकले हैं कि जिनमें सभ्यता और शिष्टता का बिलकुल ही खून किया गया है और उन्हें पढ़कर कोई भी समझदार व्यक्ति-विवेकी पुरुष-निश्चयपूर्वक यह नहीं कह सकता कि उनके लेखकके हृदयमें सद्भावका भी कुछ अंश विद्यमान है। प्रायः कटु शब्दोंका प्रयोग ही इस पत्रके अधिकांश संपादकीय लेखोंका युक्तिबल होता है। पत्रकी लेखन और प्रतिपादन शैली आम तौरसे अच्छी नहीं है और संपादकीय कर्तव्योंके पालनसे तो यह पत्र अभी कोसों दूर है। यदि इस पत्रकी यही हालत रही तो इसमें संदेह नहीं कि कितने ही विद्वानोंको शास्त्रिपरिषद्से अलग होना पड़ेगा अथवा वह परिषद् ही टूट जायगी जिसका यह मुखपत्र है। क्योंकि अब ज़माना भट्टारकी शासनका नहीं है और न बलपूर्वक कोई असत् बात किसीके गलेमें उतारी जा सकती है। अन्धाधुंध प्रवृत्तियाँ तथा आज्ञाएँ अब नहीं चल सकतीं, और न ऐसे साहित्यके पढ़नेमें सत्पुरुषोंकी रुचि हो सकती है

* इश्क़का अभी प्रारंभ ही है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिसमें प्रेम न हो या जो सभ्यता और शिष्टतासे गिरा हुआ तथा द्वेष और कषाय भावको लिये हुए हो।

३—त्रिवर्णाचार और ब्रह्मचारीजी।

सोमसेन-त्रिवर्णाचारके सम्बन्धमें एक भाईकी शंकाको प्रकाशित करते हुए ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी उस पर नोट देते हैं कि–"त्रिवर्णाचारके इस श्लोकका क्या भाव है, उसे त्रिवर्णाचारको जैनशास्त्र समझनेवाले विद्वान स्पष्ट करके शंकाका समाधान करें।" इससे यह साफ़ तौरसे ध्वनित है कि स्वयं ब्रह्मचारीजी इस सोमसेन त्रिवर्णाचारको जैनशास्त्र नहीं मानते। इसी लिए उन्होंने तद्विषयक शंकाका समाधान उन्हीं विद्वानों पर छोड़ा है जो उसे जैनशास्त्र मानते हैं और उसका पक्ष करते हैं।

४–आचार्योंके बनाये हुए नहीं हैं।

खंडेलवाल जैनहितेच्छुके संपादक पं० पन्नालालजी सोनी हितेच्छुके गतांक नं० १४ में लिखते हैं कि "भद्रबाहु संहिता और त्रिवर्णाचारोंके कर्ता आचार्य नहीं हैं" और इसलिए उन्होंने अपने इस वाक्यके द्वारा इस बातको स्वीकार कर लिया है कि ये ग्रंथ जैनाचार्योंके बनाये हुए नहीं हैं; भले ही इन ग्रंथोंके कर्ता, ग्रंथोंमें, अपने आपको आचार्य, मुनि, भट्टारक, गणी और मुनीन्द्र तक लिखें, परन्तु सोनीजी उनके इस लिखनेकी कुछ भी पर्वाह न करके अब उन्हें जैनाचार्य नहीं मानते, यह बड़ी खुशीकी बात है। और हम सोनीजीकी इतनी ही मान्यताको ग़नीमत समझकर उसका अभिनंदन करते हैं।

५–लखनऊका हौआ।

जबसे कानपुरके अधिवेशनमें, पंडित मंडलीके विरोध करने पर भी, महासभाके आगामी अधिवेशनके लिए लखनऊका निमंत्रण स्वीकार हुआ है, तबसे पंडित लोग बहुत ही भयविह्वल मालूम होते हैं। उन्हें वहाँ किसी बड़े ही अजितबल-पराक्रमसिंहका दर्शन हो रहा है और वे समझते हैं कि वह संपूर्ण महासभाको अपने पेटमें रख लेगा! इसीसे पत्रोंमें इस बातका आन्दोलन मचा हुआ है कि लखनऊका निमंत्रण किसी न किसी तरह से नामंजूर किया जाय; क्योंकि वहाँ बाबू पार्टी भेड़ियाधसान ज़रूर कर डालेगी। ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी इस बाबू पार्टी रूपी भूतके भयको दूर करनेकी बहुत कुछ चेष्टा कर रहे हैं और समझा रहे हैं; परन्तु भय दूर होनेमें नहीं आता और न उस वक्त तक दूर हो सकता है जब तक कि लखनऊमें अधिवेशनका होना मन्सूख (रद्द) न कर दिया जाय और या अधिवेशन पंडित मंडलीके इच्छानुसार पूरा न उतर जाय। पिछली बात यद्यपि लखनऊवाले भाइयोंके हाथमें नहीं है, परन्तु पहली बात उनके हाथमें ज़रूर है। और इसलिए हमारी रायमें उन्हें, जिस तिस प्रकारसे बने, इस निमंत्रणको स्वयं मन्सूख कराकर अपने पंडित भाइयोंको अभयदान प्रदान करना चाहिए और इस बातका अवसर देना चाहिए कि वे जहाँ चाहे अधिवेशन करके अपने दिली अरमानोंको पूरा करें। यह बड़े पुण्यका काम है। अधिवेशन करानेमें इससे अधिक पुण्य नहीं होगा और संभव है कि कानपुरवाले भाइयोंकी तरह उससे कुछ प्रसन्नता लाभ भी न हो सके।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुस्तक-परिचय।

२ क्षत्रचूडामणि (सान्वयार्थ) अन्वयार्थ कर्ता और प्रकाशक; पं० निद्धामलजी, क्षेत्रपाल, ललितपुर। पृष्ठसंख्या सब मिलाकर ३०० के करीब। मूल्य, कच्ची जिल्द १।।) और पक्की जिल्द २) रुपये।

यह मूल ग्रन्थ श्रीवादीभसिंह सूरिका वही सुन्दर प्रसिद्ध ग्रन्थ है जो दो एक बार छप चुका है और जिसमें कथाके साथ साथ पद पद पर नीतिकी शिक्षा पाई जाती है। इस बार पं० निद्धामलजीने ग्रन्थका यह अन्वयार्थ बोधक संस्करण विद्यार्थियोंको लक्ष्य करके तय्यार किया और प्रकाशित किया है। आपका यह प्रयत्न प्रशंसनीय है और इससे विद्यार्थी लोक तथा दूसरे लोग भी ज़रूर कुछ न कुछ लाभ उठावेंगे। अच्छा होता यदि ग्रन्थके साथमें उन संपूर्ण नीति वाक्योंकी एक अनुक्रमणिका, बारीक टाइपमें लगा दी जाती जो ग्रन्थ भरमें पाये जाते हैं। ऐसा होनेसे ग्रन्थकी उपयोगिता बहुत कुछ बढ़ जाती। पुस्तककी छपाई सफाई साधारण है और कागज बुरा नहीं है। परन्तु पुस्तकके साथमें ६ पेजका शुद्धिपत्र बहुत खटकता है।

३ जैनइतिहास दूसरा भाग- लेखक, बा० सूरजमलजी जैन, हरदा। प्रकाशक, ला० मूलचंद किसनदासजी कापड़िया, चंदावाडी, सूरत। पृष्ठसंख्या, सब मिलाकर १८०। मूल्य, एक रुपया इसमें विमलनाथ (१३ वें तीर्थंकर) से लेकर मुनिसुव्रतनाथ (२० वें तीर्थंकर) तक ८ तीर्थंकरों और उनके समयके नारायण, प्रति नारायण, बलदेव और चक्रवर्ति आदि पुराण-पुरुषोंका अलंकारादिसे रहित, संक्षेपमें पौराणिक वर्णन दिया हुआ है। परन्तु कौनसे पुराणग्रन्थके आधार पर यह सब लिखा गया है, ऐसा पुस्तक परसे कुछ मालूम नहीं होता। इसके प्रकट करनेकी बड़ी ज़रूरत थी; क्योंकि अनेक आचार्योंके कथनोंमें परस्पर बहुत कुछ भेद भी पाया जाता है। अच्छा होता यदि प्रधान प्रधान आचार्योंके मतभेदोंको इसमें एक साथही दिखला दिया जाता। ऐसा होने पर यह पुस्तक बहुत कुछ उपयोगी हो सकती थी। पुस्तक अच्छी छपी है; परन्तु अशुद्धियोंकी इसमें भी भरमार है और उसके लिए ४ पेजका शुद्धिपत्र लगाना पड़ा है। यह पुस्तक भी उसी प्रेसमें छपी है जिसमें ऊपरकी क्षत्र चूड़ामणि, और इसलिए, प्रेसकी यह असावधानी बहुत ही उपालंभ के योग्य है।

रत्नाकर पचीसी-प्रकाशक, श्री-आत्मानन्द जैनसभा, अम्बाला शहर। मूल्य, डेढ़ आना।

यह श्वेताम्बर साधु श्रीरत्नाकर सूरिका २५ पद्योंका एक छोटा सा संस्कृत स्तोत्र है, जिसमें सूरिजीने जिनेन्द्र भगवानसे अपने दोषोंकी आलोचना की है। स्तोत्र अच्छा है और इसके पढ़नेसे चित्तकी शुद्धि तथा प्रमाद-जन्य दोषोंकी निवृत्ति की ओर प्रवृत्ति होती है। प्रत्येक पद्यके नीचे उसका हिन्दी पद्यानुवाद दिया हुआ है जिसे पं० रामचरितजी उपाध्याय ने खड़ी बोलीमें लिखा है; और इससे पुस्तककी उपयोगिता और भी अधिक बढ़ गई है—वह केवल हिन्दी जाननेवालोंके लिए भी कामकी चीज़ हो गई है।

५ आत्मानुशासन, प्राणप्रिय-काव्य, भरतबाहुबलिसंवाद-लेखक त्रिलोकचंद पाटनी, केकड़ी जि० अजमेर।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकाशक, मगनलाल त्रिलोकचंद, केकड़ी (अजमेर) पृष्ठ संख्या ७०।

ये तीनों पुस्तकें खड़ी बोलीके हिन्दी पद्योंमें हैं और एकत्र छपी हैं। पहली दो पुस्तकें अपने अपने नामकी संस्कृत पुस्तकोंपर से अनुवादित हैं और तीसरीके विषयमें ऐसा कुछ लिखा नहीं। अनुवाद मूलसे कहाँतक मिलता जुलता है, इसकी जाँचका हमें कोई अवसर नहीं मिला। पुस्तकमें यद्यपि अनेक छन्दोंका प्रयोग किया गया है, परन्तु रचना साधारण है। अच्छा होता यदि आत्मानुशासनादिका अनुवाद खड़ी बोलीके पद्योंमें किया जाता। अस्तु, यह पुस्तक प्रकाशकके पाससे बिना मूल्य मिलती है, और इसकी कुल पाँच सौ प्रतियाँ छपाई गई हैं। दो पेजके शुद्धिपत्रसे बाहर भी पुस्तकमें कितने ही स्थानोंपर अशुद्धियाँ पाई जाती हैं।

६ असहयोग (प्रथम भाग) प्रकाशक, राष्ट्रीय ग्रन्थमाला कार्यालय ९३ हिवेट रोड, इलाहाबाद। पृष्ठ संख्या ९०। मूल्य, छह आना।

जिस असहयोगकी आज सारे भारतवर्षमें चर्चा फैली हुई है, उसीके सम्बन्धमें लिखे हुए महात्मा गांधीके महत्वपूर्ण लेखोंका इस पुस्तकमें संग्रह किया गया है। साथ ही, असहयोगका प्रस्ताव, असहयोग कमेटीका कार्यक्रम, कौन्सिलोंका बायकाट और पंजाबका फैसला नामसे कुछ बातें परिशिष्ट रूपसे भी दी हुई हैं और इससे पुस्तककी उपयोगिता स्वतः सिद्ध है। ये लेख महात्माजीकी संपादकीसे निकलनेवाले 'यंगइंडिया' और 'नवजीवन' नामके पत्रोंमें प्रकाशित हुए थे, वहींसे अनुवादित किये गये हैं। प्रत्येक भारतवासीके पढ़ने और मनन करनेके योग्य यह लेखमाला है, इस बातके बतलानेकी ज़रूरत नहीं है। पुस्तककी छपाई सफाई साधारण है और कागज घटिया लगाया गया है जो ऐसी पुस्तकके लिए उपयुक्त मालूम नहीं होता। पुस्तकके टाइटिल पेजपर महात्माजीका पवित्र चित्र भी लगा हुआ है जो पाठकोंके मनको अपनी ओर आकर्षित किये बिना नहीं रह सकता।

आवश्यक सूचना।

भारतवर्षमें देवी देवताओंके नामपर घोर हिंसा होती है। उसको यथाशक्ति प्रेमपूर्वक बन्द करानेका कार्य हमारी सभाने अपने हाथ में लिया है; अतएव जहाँ पर जिस किसी भी त्यौहार अथवा मेले पर पशुबध होता हो, वहाँके भाई पत्र द्वारा सम्पूर्ण व्यवस्था लिखकर खबर भेजें। जहाँ तक हो सकेगा, उसको बन्द करनेका प्रयत्न किया जायगा। चूँकि स्वामी सच्चिदानन्दजी, महात्मा रामानन्दजी आदि संन्यासी इस सभाके आनरेरी प्रचारक हैं, और बहुतसे प्रतिष्ठित गृहस्थ इसके सभासद तथा अन्य कई विद्वान् प्रचारक हैं, इसलिए डेपुटेशन आदि द्वारा उक्त कार्य किया जा सकेगा। पत्र निम्नलिखित पते पर भेजना चाहिए—

पं० बाबूराम बजाज मन्त्री
जीवदयाप्रचारिणी सभा. N. S.
अहारन (आगरा)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC-0. Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वानुभव दर्पण सार्थक ।

आचार्य योगीन्द्रदेवकृत प्राकृत दोहाबद्ध योगसारका मुंशी नाथूराम लमेचू कृत पद्यानुवाद और भाषा टीका । अध्यात्म-का अपूर्व ग्रन्थ है। हमारे पास थोड़ीसी प्रतियाँ एक जगहसे आ गई हैं मू० ।)

जैन द्वितीय पुस्तक ।

यह भी उक्त मुंशीजीकी लिखी हुई बड़े कामकी पुस्तक है। इसमें करणानु-योगकी सैकड़ों उपयोगी बातोंका संग्रह किया गया है। १६० पृष्ठकी पुस्तकका मू० केवल ॥)

जैनहितैषीके फाइल ।

पिछले पाँच छः वर्षोंके कुछ फाइल जिल्द बँधे हुए तैयार हैं। जो भाई चाहे मँगा लेवें। पीछे न मिलेंगे। मू० वार्षिक मूल्यसे आठ आने ज्यादा ।

नया सूचीपत्र ।

उत्तमोत्तम हिन्दी पुस्तकोंका ४२ पृष्ठोंका नया सूचीपत्र छपकर तैयार है। पुस्तक-प्रेमियोंको इसकी एक कापी मँगा कर रखनी चाहिए। मैनेजर,

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,

हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई ।

बिना मूल्य ।

'वीर-पुष्पांजलि' नामकी एक चार आना मूल्यकी सुन्दर पुस्तक हमारे पास से बिना मूल्य मिलती है। यह पुस्तक अभी नई छपी है और हमने उसकी ६०० कापियाँ वितरणार्थ खरीद की हैं, जिनमें-से दो सौसे ऊपर वितरण हो चुकी हैं और शेष अभी बाकी हैं। जैनहितैषीके जिन पाठकोंको ज़रूरत हो वे डाकखर्चके लिये आध आनेका टिकट भेजकर एक २ कापी मँगा सकते हैं। 'मेरी भावना' नाम की पुस्तक भी हमारे पास बिना मूल्य मिलती है। इनके सिवाय कुछ कापियाँ हमारे पास 'विधवा कर्त्तव्य' की भी रक्खी हुई हैं। जिन विधवा बहनोंको इस पुस्तककी ज़रूरत हो उन्हें डाक खर्चके लिए एक आनेका टिकट भेजकर मँगा लेना चाहिये और अपना पूरा पता साफ़ अक्षरोंमें लिखना चाहिए ।

जुगलकिशोर मुख्तार,
सरसावा जि० सहारनपुर

उत्तमोत्तम जैन ग्रन्थ ।

नीचे लिखी आलोचनात्मक पुस्तक विचारशीलोंको अवश्य पढ़नी चाहिएँ। साधारण बुद्धिके गतानुगतिक लोग इन्हें न मँगावें ।

१ ग्रंथपरीक्षा प्रथम भाग । इस-में कुन्दकुन्द श्रावकाचार, उमास्वाति-श्रावकाचार और जिनसेन त्रिवर्णाचार इन तीन ग्रन्थोंकी समालोचना है । अनेक प्रमाणोंसे सिद्ध किया है कि ये असली जैनग्रन्थ नहीं हैं—भेषियोंके बनाये हुए हैं। मूल्य ।=)

२ ग्रंथपरीक्षा द्वितीय भाग । यह भद्रबाहुसंहिता नामक ग्रन्थकी विस्तृत समालोचना है। इसमें बतलाया है कि यह परमपूज्य भद्रबाहु श्रुतकेवली-का बनाया हुआ ग्रन्थ नहीं है, किन्तु ग्वालियरके किसी धूर्त भट्टारकने १६-१७ वीं शताब्दिमें इस जाली ग्रन्थको उनके नामसे बनाया है और इसमें जैनधर्मके विरुद्ध सैंकड़ों बातें लिखी गई हैं। इन दोनों पुस्तकोंके लेखक श्रीयुक्त बाबू जुगुलकिशोरजी मुख्तार हैं। मूल्य ।)

३ दर्शनसार । आचार्य देवसेनका मूल प्राकृत ग्रन्थ, संस्कृतच्छाया, हिन्दी अनुवाद और विस्तृत विवेचना । इति-हासका एक महत्वका ग्रन्थ है। इसमें श्वेताम्बर, यापनीय, काष्ठासंघ, माथुर-संघ, द्राविड़संघ आजीवक (अज्ञानमत) और वैनेयिक आदि अनेक मतोंकी उत्पत्ति और उनका स्वरूप बतलाया गया है। बड़ी खोज और परिश्रमसे इसकी रचना हुई है।

आत्मानुशासन ।

भगवान् गुणभद्राचार्य्यका बनाया हुआ यह ग्रन्थ प्रत्येक जैनीके स्वाध्याय करने योग्य है। इसमें जैनधर्मके असली उद्देश्य शान्तिसुखकी ओर आकर्षित किया गया है। बहुत ही सुन्दर रचना है। आजकल-की शुद्ध हिन्दीमें हमने न्यायतीर्थ न्याय-शास्त्री पं० वंशीधरजी शास्त्रीसे इसकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
Reg. No. A 1050.

टीका लिखवाई है और मूलसहित छपवाया है। जो जैनधर्मके जाननेकी इच्छा रखते हैं, उन अजैन मित्रोंको भेंटमें देने योग्य भी यह ग्रन्थ है। मूल्य २)

प्रायश्चित्त संग्रह।

संस्कृत और प्राकृतके इस अपूर्व संग्रहमें चार प्राचीन और नवीन प्रायश्चित्त ग्रन्थ छापे गये हैं। अभी तक ये कहीं भी नहीं छपे थे। मुनियों, आर्यिकाओं और श्रावक श्राविकाओंके सभीके प्रायश्चित्तोंका वर्णन है। मू० १=)

मूलाचार सटीक।

मूल प्राकृत और वसुनन्दि आचार्यकृत संस्कृत टीका पूर्वार्ध। मू० २॥) उत्तरार्ध छप रहा है।

नियमसार।

भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यका यह बिलकुल ही अप्रसिद्ध ग्रन्थ है। लोग इसका नाम भी नहीं जानते थे। बड़ी मुश्किलसे प्राप्त करके यह छपाया गया है। नाटक समयसार आदिके समान ही इसका भी प्रचार होना चाहिए। मूल प्राकृत, संस्कृतच्छाया, आचार्य पद्मप्रभमलधारि देवकी संस्कृत टीका और श्रीयुत शीतलप्रसादजी ब्रह्मचारीकृत सरल भाषाटीकासहित यह छपाया गया है। अध्यात्मप्रेमियोंको अवश्य स्वाध्याय करना चाहिए। मूल्य २) दो रु०।

पार्श्वपुराण भाषा।

कविवर भूधरदासजीका यह अपूर्व ग्रन्थ दूसरी बार छपाया गया है। इसकी कविता बड़ी ही मनोहारिणी है। जैनियोंके कथाग्रन्थोंमें इससे अच्छी और सुन्दर कविता आपको और कहीं न मिलेगी। विद्यार्थियोंके लिये भी बहुत उपयोगी है। शास्त्रसभाओंमें बाँचनेके योग्य है। बहुत सुन्दरतासे छपा है। मू० सिर्फ १) रु०।

कथामें जैनसिद्धान्त।

एक मनोरंजक कथाके द्वारा जैनधर्मकी गूढ़ कर्म फिलासफीको सरलतासे समझना हो और एक बढ़िया काव्यका आनन्द लेना हो तो आचार्य सिद्धर्षिके बनाये हुए 'उपमितिभवप्रपंचाकथा' नामक संस्कृत ग्रन्थके हिन्दी अनुवादको अवश्य पढ़िये। अनुवादक श्रीयुत नाथूराम प्रेमी। मूल्य प्रथम भागका ।||) और द्वितीय भागका ।=) जैन साहित्यमें अपने ढंगका यही एक ग्रन्थ है।

संस्कृत ग्रंथ।

१ जीवन्धरचम्पू–कवि हरिचन्द्रकृत १)
२ गद्यचिन्तामणि–वादीभसिंहकृत। २)
३ जीवन्धरचरित–गुणभद्राचार्यकृत। १)
४ क्षत्रचूडामणि–वादीभसिंहकृत। मू० १)
५ यशोधरचरित–वादिराजकृत। मू० ॥)

चरचा समाधान।

पं० भूधरमिश्रकृत। भाषाका नया ग्रन्थ। हालहीमें छपा है। मूल्य २॥-)

जैन ग्रन्थोंका सूचीपत्र

अभी हाल में ही छपकर तैयार हुआ है। मिलनेवाले तमाम ग्रन्थोंकी सूची है। जिन सज्जनोंको चाहिए वे एक कार्ड लिखकर मँगा लें। मैनेजर—

जैन-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई।

श्राविका।

स्त्रीधर्म, गृहउद्योग आरोग्य और शिक्षण सम्बन्धी उत्तम लेखोंसे स्त्रीवर्गमें अच्छी प्रसिद्धिको प्राप्त हुई यह गुजराती पत्रिका मासिक रूपसे प्रकाशित होती है। प्रत्येक अङ्कमें विषयानुसार खास चित्र भी रहते हैं। वार्षिक मूल्य तीन रुपये।

पता—श्राविका आफिस–भावनगर।

जैन।

'जैन' नामका यह गुजराती पत्र बिना पंथभेदके हर एक घरमें पढ़ा जाना चाहिये। अढ़ाई रुपयेकी 'जैनऐतिहासिक वार्ता' भेंटमें दिये जानेपर भी वार्षिक मूल्य डाक खर्च सहित पाँच रुपये है।

मैनेजर 'जैन'–भावनगर।

Printed & Published by G. K. Gurjar at Sri Lakshmi-Narayan Press, Jatanbar, Benares City, for the Proprietor...
Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीवर्द्धमानाय नमः।

भाग १५   अंक ७-८

जैनहितैषी

बैशाख, ज्येष्ठ सं० २४४७। मई, जून सन् १९२१

विषय-सूची।

१. भारतपर ईसाइयोंकी चढ़ाई (पं० नाथूरामजी प्रेमी) ... १९३-१९६
२. पुरानी बातोंकी खोज। १९६-१९९
३. भूभ्रमणसिद्धांत और जैनधर्म (बा० निहालकरणजी सेठी एम. एस. सी.) १९९-२१३
४. हिन्दीमें जैनदर्शन (बा० मोतीलालजी एम. ए.) ... २१३-२१८
५. द्राविड़ देशीय रामायण! (हितकारिणीसे उद्धृत) ... २१८-२२१
६. भगवत्कुन्द कुन्द और श्रुतसागर (पं० नाथूरामजी प्रेमी) ... २२१-२२३
७. ऐतिहासिक जैन व्यक्तियाँ २२३-२२६
८. जैनहितैषीपर विद्वानोंके विचार २२७-२२८
९. भाई उद्धतता बन्द करो (भगवन्त गणपति गोइलीय) ... २२८-२२९
१०. वीरबाला-विश्राम २२९-२३०
११. एक जैन विधवाको कालापानी (एक सागरनिवासी) ... २३०-२३४
१२. जैन सभाओं और संस्थाओंका संगठन (बा०मोतीलालजी जैन एम.ए.) २३४-२४३
१३. जमाना बदल रहा है (पं० नाथूरामजी प्रेमी) ... २४३-२४७
१४. विधवा विवाह का कानून २४७-२४९
१५. महात्माके लक्षण (ले० पं० नाथूरामजी प्रेमी) ... २५०-२५३
१६. दुःख (पं० नाथूराम प्रेमी) २५३-२५५
१७. पुस्तक-परिचय ... २५५-२५६

भ्रम-संशोधन।

तीसरे फार्ममें पृष्ठ २१२ के प्रथम कालममें अंतिम पंक्ति के बाद निम्नलिखित पंक्ति छपनेसे रह गई है। पाठक कृपया सुधार लें।

'सिद्धान्त गढ़ लेना और आप ही'

सम्पादक, बाबू जुगुलकिशोर मुख्तार।

श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, काशी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC-0. Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१ जैनहितैषीका वार्षिक मूल्य ३) तीन रुपया पेशगी है।

२ ग्राहक वर्षके आरम्भसे किये जाते हैं और बीचमें ७वें अंकसे। आधे वर्षका मूल्य १॥)

३ प्रत्येक अंकका मूल्य ।) चार आने।

४ लेख, बदलेके पत्र, समालोचनार्थ पुस्तक आदि

"बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तार, सरसावा (सहारनपुर)" के पास भेजना चाहिए। सिर्फ प्रबन्ध और मूल्य आदि सम्बन्धी पत्रव्यवहार इस पतेसे किया जायः—

मैनेजर—

जैन ग्रंथ-रत्नाकर कार्यालय,

हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई।

नये नये ग्रन्थ।

कालिदास और भवभूति।

महाकवि कालिदासके अभिज्ञान शाकुन्तलकी और भवभूतिके उत्तररामचरितकी अपूर्व, अद्भुत और मर्मस्पर्शी समालोचना। मूल लेखक, स्वर्गीय नाटककार द्विजेन्द्रलाल राय। प्रत्येक कवि, साहित्यप्रेमी और संस्कृतज्ञोंको यह ग्रन्थ पढ़ना चाहिए। मूल्य १॥), सजिल्दका २)

साहित्य मीमांसा।

पूर्वीय और पाश्चात्य साहित्यकी, काव्यों और नाटकोंकी मार्मिक और तुलनात्मक पद्धतिसे की हुई आलोचना। इसमें आर्यसाहित्यकी जो महत्ता, उपकारिता और विशेषता दिखलाई गई है, उसे पढ़कर पाठक फड़क उठेंगे। हिन्दीमें इस विषयका यह सबसे पहला ग्रन्थ है। मूल्य १।।)

अरबी काव्यदर्शन।

अरबी साहित्यका इतिहास, उसकी विशेषतायें और नामी नामी कवियोंकी कविताके नमूने। हिन्दीमें बिलकुल नई चीज। लेखक, पं० महेशप्रसाद साधु, मौलवी आलिम-फाजिल। मू० १।)

सुखदास—जार्ज ईलियटके सुप्रसिद्ध उपन्यास 'साइलस मारनर' का हिन्दी रूपान्तर। इस पुस्तकको हिन्दीके लब्ध प्रतिष्ठ उपन्यास-लेखक श्रीयुत् प्रेमचन्दजीने लिखा है। बढ़िया एण्टिक पेपर पर बड़ी ही सुन्दरतासे छपाया गया है। उपन्यास बहुत ही अच्छा और भावपूर्ण है। मूल्य ॥=)

स्वाधीनता-जान स्टुअर्ट मिलकी 'लिबर्टी'का अनुवाद। यह ग्रन्थ बहुत दिनोंसे मिलता नहीं था, इसलिये फिरसे छपाया गया है। स्वाधीनता'की इतनी अच्छी तात्विक आलोचना आपको कहीं न मिलेगी। प्रत्येक विचारशीलको यह ग्रन्थ पढ़ना चाहिए। मूल्य २) सजिल्दका २॥)

ज्ञान और कर्म हिन्दीमें अपूर्व तात्त्विक ग्रन्थ। कलकत्ता हाईकोर्टके जज स्वर्गीय सर गुरुदास बन्धोपाध्यायके लिखे हुए सुप्रसिद्ध ग्रन्थका अनुवाद। इसमें मनुष्यके इहलोक और परलोक-सम्बन्धी सभी विषयोंकी बड़ी विद्वत्ता-पूर्ण आलोचना की गई है। बहुत बड़ा ग्रन्थ है। मूल्य ३) सजिल्दका ३॥)

जान स्टुअर्ट मिल-स्वाधीनताके मूल लेखकका अतिशय शिक्षाप्रद और पढ़ने योग्य जीवनचरित। अबकी बार यह जुदा छपाया गया है। मूल्य ॥=)

तमाखूसे हानि—पं० हनुमत्प्रसादजी वेधकृत। मू० ।=)

मलावरोध-चिकित्सा- „ „ मू० ।=)

फिजीमें भारतीय प्रतिज्ञाबद्ध-कुलीप्रथा—लेखक, एक भारतीय हृदय। मूल्य ।)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः ।

पन्द्रहवाँ भाग । अंक ७-८

जैनहितैषी ।

मई, जून १९२१ । वैशाख, ज्येष्ठ २४४७

न हो पक्षपाती बतावे सुमार्ग, डरे ना किसीसे कहे सत्यवाणी ।
बने है विनोदी भले आशयोंसे, सभी जैनियोंका हितैषी 'हितैषी' ॥

भारतपर ईसाइयोंकी चढ़ाई ।

(ले०—पं० नाथूरामजी प्रेमी ।)

यूरोप और अमेरिकाके अनेक राष्ट्र भारतमें ईसाई धर्मका प्रचार करनेके लिए जो प्रयत्न कर रहे हैं, मालूम नहीं यहाँके धर्मात्माओं और धर्मके ठेकेदारोंको उसका कुछ पता है या नहीं । अमेरिकाके 'मिशनरी रिव्यू' में सन् १९१९ के प्रचार-कार्यकी जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई है, उससे मालूम होता है कि उस वर्षमें यहाँपर १३३६ अमेरिकन और ६८७० देशी पादरियोंने अपने धर्मका प्रचार किया है । यहाँपर उनके सब मिलाकर २०६० स्कूल और कालेज हैं, जिनमें पौने आठ लाखके करीब विद्यार्थी पढ़ते हैं; और ११ छापेखाने हैं जिनमें ईसाई साहित्यके ५, ६१, ४०, ३२० पृष्ठ मुद्रित हुए हैं । इसके सिवा उनके १७० अस्पताल (औषधालय) हैं जिनमें ७,०४,७१४ रोगियोंकी चिकित्सा की गई है !

अमेरिकामें ईसाई धर्मका प्रचार करनेवाली २३५ सभाएँ हैं और प्रत्येक सभाके अधिकारमें हजारों गिरजाघर तथा उपदेशक हैं । इन सब सभाओंने अभी हालमें ही एकत्र होकर एक संयुक्त सभा स्थापित की है और उसके द्वारा भारतमें बड़े जोरोंसे अपने धर्मका प्रचार करनेका निश्चय किया है । सुना है कि इस कार्यके लिए उन्होंने लगभग १५ अरब रुपया इकट्ठा किया है और इस बड़ी भारी रकमसे यहाँ अगणित स्कूल, कालेज, अस्पताल, पुस्तकालय, बायस्कोप, सेवा-मण्डल और को-आपरेटिव सोसाइटियाँ स्थापित की जायँगी ।

यह तो एक अमेरिकन मिशनका हाल है । इनके सिवा यहाँ इंग्लैण्ड, फ्रान्स,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुर्त्तगाल, कनाडा, आदि देशोंके ईसाइयोंके भी मिशन हैं, और वे भी इस बातका जी-तोड़ परिश्रम कर रहे हैं कि भारत को जितनी जल्दी हो सके, ईसाई धर्मकी छत्र-छायामें ले आना चाहिए।

दुर्भाग्यसे, भारत बहुत दरिद्र है। साथ ही सामाजिक दुःखोंके मारे भी वह परेशान है। दयाधर्म और परोपकारकी डींग हाँकनेवाले वहाँके बड़ेसे बड़े धर्मके अनुयायी भी उसकी दरिद्रता और समाजके अत्याचारजनित दुःखोंकी ओर नहीं देखते। वे धर्म धर्म तो चिल्लाते हैं परन्तु यह नहीं सोचते कि धर्मसे भी अधिक महत्वका प्रश्न 'रोटी' का है। खाली पेटको धर्मकी बातें नहीं सुहातीं। 'सर्वारम्भास्तण्डुला प्रस्थमूलाः' 'पेट दियो बड़ो पाप दियो है,' 'क्षीणानराः निष्करुणा भवन्ती' आदि मार्मिक वाक्योंकी ओर उनका ध्यान नहीं जाता; और इसीसे भय होता है कि ये पादरी लोग अपने उद्योगमें सफल हुए बिना न रहेंगे। कमसे कम भूखे मरनेवाले और समाजसे तिरस्कृत लोग तो अवश्य ही उनके पंजेमें धीरे धीरे फँस जायँगे। अभी तक भारतमें ईसाइयोंकी जो वृद्धि हुई है उसमें अधिक संख्या ऐसे ही लोगोंकी है। इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्यके लिए अपना 'धर्म' बहुत बड़ी चीज है और उसके लिए वह बड़ेसे बड़े कष्ट भोग सकता है; परन्तु साथ ही हमें यह न भूल जाना चाहिए कि सर्वसाधारणके लिए 'भोजन' और 'प्रतिष्ठा' का प्रलोभन भी कोई चीज है। उससे बचकर केवल धर्मकी माला फेरते रहना सभीका काम नहीं है।

भारतमें ७,६३,६२,६७७ लोग ऐसे हैं जो मनुष्य होकर भी पशुओंसे बुरा जीवन व्यतीत करते हैं, जो अस्पृश्य समझे जाते हैं, जिनका स्पर्श हो जानेसे हमें स्नान करना पड़ता है और दक्षिण देशोंमें तो जिनकी छाया पड़ जानेसे भी उच्च वर्णके लोग अपवित्र हो जाते हैं! यह संख्या सारे देशकी जनसंख्याकी लगभग एक चौथाई है! ईसाइयोंके ग्रास सबसे पहले ये ही बनेंगे। क्योंकि सबसे अधिक पददलित, तिरस्कृत और अशिक्षित ये ही हैं। ईसाई लोग इन्हें पढ़ना लिखना सिखावेंगे, जीविकाके उपाय बतलावेंगे, इनकी दवा दारू करेंगे और सबसे बड़ा काम यह करेंगे कि इन्हें मनुष्योचित सम्मान दिलावेंगे। जो उच्च वर्णके लोग इनकी छायाको भी अपवित्र समझते हैं, वे ही इनके कोट-बूट-पटलून धारी ईसाई हो जानेपर इनसे शेकहैण्ड करनेमें भी आगा पीछा नहीं सोचते। ऐसी दशामें इन लोगोंका ईसाई बन जाना अच्छा भले ही न हो, परन्तु अस्वाभाविक तो नहीं कहा जा सकता।

कभी कभी यह कहनेको जी चाहता है कि ये लोग जिस पतित और तिरस्कृत जीवनको व्यतीत कर रहे हैं, उससे तो इनका ईसाई हो जाना ही अच्छा है! भले ही ये हिन्दू न रहें, परन्तु मनुष्य तो बन जायँगे। हिन्दू पशु बने रहनेकी अपेक्षा तो ईसाई मनुष्य बनना हज़ार दर्जे अच्छा है। परन्तु तत्काल ही यह ख़याल आता है कि इससे हमारी राष्ट्रीय शक्तिकी बहुत बड़ी हानि होगी। जिस समय ये ७ करोड़से अधिक लोग हममेंसे अलग हो जायँगे और अलग ही नहीं होंगे बल्कि हमारे हितशत्रु बन जायँगे, उस समय हमारा हिन्दुत्व और हमारा राष्ट्रीयत्व बहुत बड़े खतरेमें पड़ जायगा। हम अपनी मूर्खतावश इन्हें चाहे जितने नगण्य और हीन समझें, परन्तु सच तो यह है कि हमसे मनुष्योचित व्यवहार न पाते हुए भी ये हमारी राष्ट्रीय शक्तिके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक बड़े भारी पोषक हैं और इस संकट-के समयमें इन्हें धक्का देकर पराया बना देना अपने पैरों आप कुल्हाड़ी मारना है। इस खयालसे हमें इनका ईसाई होना दुःखदायक प्रतीत होता है और तब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या इन्हें हिन्दू बनाये रखकर ही मनुष्य नहीं बनाया जा सकता ?

इसी समय देशके परमपूज्य नेता महात्मा गांधीने अपनी जलदगम्भीर वाणीमें कहा है कि—"वास्तविक हिन्दू-धर्ममें अस्पृश्यताको कोई स्थान नहीं है। यह हिन्दूधर्मका कलङ्क है और प्राण देकर भी यह कलङ्क मिटाया जा सके तो मैं मिटानेको तैयार हूँ।" गाँधीजीकी जय हो! यदि उनकी प्रभावशालिनी अधिकारयुक्त वाणीने इस प्रश्नको हल कर दिया, तो देशका बड़ा भारी कल्याण होगा और ईसाइयोंकी यह भयंकर चढ़ाई निष्फल हो जायगी।

ईसाइयोंकी इस चढ़ाईकी खबर प्रत्येक धर्मके आचार्यों, महन्तों, पण्डितों और नेताओं तक पहुँच जानी चाहिए और उन्हें अभीसे इसके प्रतिकारके लिए कटिबद्ध हो जाना चाहिए। उन्हें कृपा करके, कमसे कम इस समय तकके लिए जब तक कि यह महान् भय हमारे सामने है, आपसके झगड़ोंको—धार्मिक विवादों और शास्त्रार्थोंको—एक दूसरे-की बुराईके कामोंको—स्थगित कर देना चाहिए और अपने पड़ोसी सम्प्रदायों या अन्तर्धर्मोंके लोगोंको अपने धर्ममें लानेके लोभको सम्वरण करके अपनी सारी शक्तियोंको इसी ओर लगा देना चाहिए। इन्हें यह भी जान लेना चाहिए कि शास्त्रार्थोंसे, वादविवादोंसे और खण्डन-मण्डनसे ईसाई धर्मकी यह बाढ़ नहीं रुकेगी। इसके लिए चाहिएँ हार्दिक उदारता, सहानुभूति और सेवा तथा सहायताके भाव। जब तक हम अपने दुःखी दरिद्र भाइयोंको मनुष्य बनानेका प्रयत्न न करेंगे, उनके लिए भोजन वस्त्र, दवा-दारू और शिक्षा-संस्कारोंके साधन तैयार न करेंगे और उनके साथ मनुष्यो-चित व्यवहार न करेंगे तब तक अपने धर्मोंकी महत्ता, पवित्रता और उदारताके चाहे जितने गीत गावें और ईसाई धर्म-को चाहे जितना बुरा बतलावें, कुछ भी न होगा।

इस अभागे देशमें धर्मके नाम पर इतना अधिक रुपया खर्च होता है कि यदि वह व्यवस्थित रीतिसे योग्य मार्गमें खर्च हो तो इस धार्मिक संकटसे पार पाना देशके लिए कुछ भी कठिन न हो। परन्तु जब हम उस खर्चका विवरण देखते हैं तो बड़ी ही निराशा होती है। देखते हैं कि हमारे आचार्यों, महन्तों और मठाधीशोंके वैभव राजाओंसे भी बढ़े चढ़े हैं, उनके द्वारा जो अपव्यय होता है उसे देखकर दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है। हिन्दुओंके बड़े बड़े तीर्थोंमें ठाकुरजीके लिए जो भोगकी सामग्री तैयार होती है, उसका वार्षिक खर्च करोड़ों रुपया है। मन्दिरोंकी संख्या काफी-से कहीं ज्यादा होने पर भी प्रतिवर्ष हजारों नये मन्दिर बनते हैं और उनकी प्रतिष्ठाओंमें अगणित धनव्यय किया जाता है। निष्कर्मा ब्राह्मण और ५२ लाख साधु करोड़ों रुपया चट कर जाते हैं। धार्मिक कलहों और मुकद्दमोंमें भी बे-शुमार रुपया खर्च होता है। क्या ये सब खर्च घटाये नहीं जा सकते और क्या उनकी बचतसे ईसाइयोंका यह आक्रमण निष्फल नहीं किया जा सकता ? अपनी जन्मभूमि और अपने धर्मको प्यार करने-वाले प्रत्येक भारतवासीको सदय हृदय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होकर इन प्रश्नों पर विचार करना चाहिए। चैत्र सुदी ११

पुरानी बातों की खोज।

६–उमास्वाति या उमास्वामी ?

दिगम्बर सम्प्रदायमें तत्त्वार्थसूत्रके कर्त्ताका नाम आजकल आम तौरसे 'उमास्वामी' प्रचलित हो रहा है। जितने ग्रन्थ और लेख प्रकाशित होते हैं और जिनमें किसी न किसी रूपसे तत्त्वार्थ-सूत्रके कर्ताका नामोल्लेख करनेकी ज़रूरत पड़ती है उन सबमें प्रायः उमास्वामी नामका ही उल्लेख किया जाता है। बल्कि कभी कभी तो प्रकाशक अथवा सम्पादक जन 'उमास्वाति' की जगह 'उमास्वामी' या 'उमास्वामि' का संशोधन-तक कर डालते हैं! तत्त्वार्थसूत्रके जितने संस्करण निकले हैं उन सबमें भी ग्रन्थ-कर्ताका नाम उमास्वामी ही प्रगट किया गया है। प्रत्युत इसके, श्वेताम्बर सम्प्रदायमें ग्रन्थकर्ताका नाम पहलेसे ही 'उमास्वाति' चला आता है और वही इस समय प्रसिद्ध है। अब देखना यह है कि उक्त ग्रन्थकर्ताका नाम वास्तवमें उमास्वाति था या उमास्वामी और उसकी उपलब्धि कहाँसे होती है। खोज करनेसे इस विषयमें हमें दिगम्बर साहित्यसे जो कुछ मालूम हुआ है उसे हम अपने पाठकोंके अवलोकनार्थ नीचे प्रगट करते हैं—

(१) श्रवणबेलगोलके जितने शिलालेखोंमें आचार्य महोदयका नाम आया है उन सबमें आपका नाम 'उमास्वाति' ही दिया है। 'उमास्वामी' नामका उल्लेख किसी शिलालेखमें नहीं पाया जाता। उदाहरणके लिए कुछ अवतरण नीचे दिये जाते हैं—

"अभूदुमास्वातिमुनीश्वरोऽसा-
वाचार्यशब्दोत्तर गृध्रपिञ्छः।
शिलालेख नं० ४७।

"श्रीमानुमास्वातिरयं यतीश-
स्तत्वार्थसूत्रं प्रकटीचकार।
–शि० नं० १०५।

"अभूदुमास्वातिमुनिः पवित्रे
वंशे तदीये सकलार्थवेदी।
सूत्रीकृतं येन जिनप्रणीतं
शास्त्रार्थजातं मुनिपुंगवेन॥
–शि० नं० १०८।

इन शिलालेखोंमें पहला शिलालेख शक संवत् १०३७ का, दूसरा १३२० का और तीसरा १३५५ का लिखा हुआ है। ४७ वें शिलालेखवाला वाक्य ४०, ४२, ४३ और ५० नम्बरके शिलालेखोंमें भी पाया जाता है। इससे स्पष्ट है कि आजसे आठ सौ वर्षसे भी पहलेसे दिगम्बर सम्प्रदायमें तत्त्वार्थसूत्रके कर्ताका नाम 'उमास्वाति' प्रचलित था और वह उसके बाद भी कई सौ वर्षतक बराबर प्रचलित रहा है। साथ ही, यह भी मालूम होता है कि उनका दूसरा नाम गृध्रपिञ्छाचार्य था। विद्यानन्द स्वामीने भी, अपने 'श्लोकवार्तिक' में, इस पिछले नामका उल्लेख किया है।

(२) नन्दिसङ्घकी 'गुर्वावली' में भी तत्त्वार्थसूत्रके कर्ताका नाम 'उमास्वाति' दिया है। यथा—

तत्त्वार्थसूत्रकर्तृत्व
प्रकटीकृत सन्मतिः।
उमास्वाति पदाचार्यो
मिथ्यात्वतिमिरांशुमान ।*

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैनसिद्धान्त भास्करकी ४ थी किरण-में प्रकाशित श्रीशुभचन्द्राचार्यकी गुर्वावलीमें भी यही नाम है और यही वाक्य दिया हुआ है। और ये शुभचन्द्राचार्य विक्रमकी १६ वीं और १७ वीं शताब्दीमें हो गये हैं।

(३) नन्दिसङ्घकी 'पट्टावली' में भी कुन्दकुन्दाचार्यके बाद छठे नम्बरपर 'उमास्वाति' नाम ही पाया जाता है।*

(४) बालचन्द्र मुनिकी बनाई हुई तत्वार्थसूत्रकी कनडी टीका भी 'उमास्वाति' नामका ही समर्थन करती है और साथ ही उसमें 'गृध्रपिच्छाचार्य' नाम भी दिया हुआ है। बालचन्द्र मुनि विक्रमकी १३ वीं शताब्दीके विद्वान् हैं।

(५) विक्रमकी १६वीं शताब्दीसे पहलेका ऐसा कोई ग्रन्थ अथवा शिलालेख आदि अभीतक हमारे देखनेमें नहीं आया जिसमें तत्त्वार्थसूत्रके कर्ताका नाम 'उमास्वामी' लिखा हो। हाँ, १६ वीं शताब्दीके बने हुए श्रुतसागर सूरिके ग्रन्थोंमें इस नामका प्रयोग ज़रूर पाया जाता है। श्रुतसागर सूरिने अपनी श्रुतसागरी टीकामें जगह जगहपर यही (उमास्वामी) नाम दिया है और 'औदार्यचिन्तामणि' नामके व्याकरण ग्रन्थमें, "श्रीमानुमाप्रभुरनन्तर पूज्यपादः" इस वाक्यमें आपने 'उमा' के साथ 'प्रभु' शब्द लगाकर और भी साफ़ तौरसे 'उमास्वामी' नामको सूचित किया है। जान पड़ता है कि 'उमास्वाति' की जगह 'उमास्वामी' यह नाम श्रुतसागर सूरिका निर्देश किया हुआ है और उनके समयसे ही यह हिन्दी भाषा आदिके ग्रन्थोंमें प्रचलित हुआ है। और अब उसका प्रचार इतना बढ़ गया कि कुछ विद्वानोंको उसके विषयमें बिलकुल ही विपर्यास हो गया है और वे यहाँतक लिखनेका साहस करने लगे हैं कि "तत्त्वार्थसूत्रके कर्ताका नाम दिगम्बरोंके अनुसार 'उमास्वामी' और श्वेताम्बरोंके अनुसार 'उमास्वाति' है।" *

(६) हमारी रायमें, जबतक कोई प्रबल प्राचीन प्रमाण इस बातका उपलब्ध न हो जाय कि १६ वीं शताब्दीसे पहले भी 'उमास्वामी' नाम प्रचलित था, तबतक यही मानना ठीक होगा कि आचार्य महोदयका असली नाम 'उमास्वाति' था और 'उमास्वामी' यह नाम श्रुतसागर सूरिका निर्देश किया हुआ है। यदि किसी विद्वान् महाशयके पास ऐसा कोई प्रमाण मौजूद हो तो उन्हें कृपाकर प्रगट करना चाहिए।

७-ज्ञानार्णवके एक पद्यकी जाँच।

श्रीशुभचन्द्राचार्य विरचित 'ज्ञानार्णव' ग्रन्थकी सन् १६०७ की छपी हुई प्रतिमें, ३१ वें अध्यायके अन्तमें, एक पद्य इस प्रकारसे दिया हुआ है—

कटस्य कर्ताहमिति
सम्बन्धः स्याद्द्वयोर्द्वयोः।
ध्यानं ध्येयं यदात्मैव
सम्बन्धः कीदृशस्तदा ॥४०॥

यही पद्य श्रीपूज्यपादाचार्यके 'इष्टोपदेश' नामक एक छोटेसे (५१ पद्यात्मक) महत्वशाली ग्रन्थमें भी नं० २५ पर ज्योंका त्यों पाया जाता है। जिस समय सबसे पहले हमें 'इष्टोपदेश' ग्रन्थ देखनेको मिला और उसमें हमने ज्ञानार्णवका उक्त पद्य देखा तो चित्तमें अनेक प्रकारके विकल्प हमने उत्पन्न हुए। हमने सोचा कि, ज्ञानार्णवका यह पद्य यहाँ कैसे आया। क्या

* देखो जैनहितैषी भाग ६ अंक ७—८।

* देखो तत्वार्थसूत्रके अंग्रेजी अनुवादकी प्रस्तावना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0:In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह प्रक्षिप्त है अथवा संगृहीत? संगृहीत हो नहीं सकता, क्योंकि पूज्यपाद आचार्य शुभचन्द्रसे बहुत पहले हो गये हैं। और प्रक्षिप्तकी जाँचके लिए देहली, शोलापुर और बम्बईकी प्रतियोंपरसे मिलान किया गया तो उनमें भी यह पद्य बदस्तूर पाया गया। साथ ही यह ख़याल भी उत्पन्न हुआ कि कहीं ज्ञानार्णवमें ही तो यह पद्य इष्टोपदेशसे उठाकर नहीं रक्खा गया। परन्तु ज्ञानार्णवमें जो पद्य दूसरे ग्रन्थोंसे लिये गये हैं उनके साथमें सूचनाके लिए 'उक्तंच' आदि शब्द लगे हुए हैं। इस पद्यके साथ ऐसा कोई शब्द न होनेसे सन्देह बराबर चला जाता था। हालमें, आराके जैनसिद्धान्त भवनका निरीक्षण करते हुए, उसकी एक प्राचीन प्रतिपरसे हमें यह मालूम हुआ है कि इस पद्यसे पहले 'उक्तन्तु' शब्द लगे हुए हैं; और इन शब्दोंका साथमें लगा होना पूर्वापर सम्बन्धकी जाँचसे ठीक भी मालूम होता है। क्योंकि यह पद्य पहले पद्योंके आशयका समर्थक ही है। ऐसी हालतमें यह बिलकुल साफ हो जाता है कि उक्त पद्य श्रीशुभचन्द्राचार्यका बनाया हुआ नहीं है बल्कि उन्होंने उसे किसी दूसरे ही ग्रन्थ परसे उद्धृत किया है और वह ग्रथ सम्भवतः 'इष्टोपदेश' ही है। परन्तु इष्टोपदेशकी टीकामें, पण्डित आशाधरजी इस पद्यको 'संग्रह श्लोक' बतलाते हैं। आपने इससे पहले यह वाक्य दिया है—

"श्रूयतां चास्यैवार्थस्य संग्रह श्लोकः।"*

मालूम नहीं होता, आशाधरजीने इसे कैसे संग्रह श्लोक बतलाया है और यह पूज्यपाद स्वामीसे पहलेके कौनसे आचार्यके किस ग्रन्थका पद्य है। टीकामें ऐसा कुछ विशेष लिखा नहीं, जिससे इस विषयका स्पष्टीकरण हो जाता। जहाँ तक हम समझते हैं, पूज्यपाद जैसे एक महान् विद्वान और शब्द-शास्त्रके निर्माता आचार्यके द्वारा अपने छोटेसे मूल ग्रन्थमें संग्रह श्लोकोंके दिये जानेकी बहुत ही कम सम्भावना मालूम होती है। सम्भव है कि पं० आशाधरजीको ज्ञानार्णवकी कोई ऐसी ही प्रति उपलब्ध हुई हो जिसमें उक्त पद्यसे पहले 'उक्तन्तु' शब्द न हो और इतने परसे ही उन्हें इस श्लोकके संग्रह श्लोक होनेका ख़याल उत्पन्न हो गया हो। अथवा यह भी सम्भव है कि पूज्यपाद स्वामीसे पहलेका बना हुआ कोई ग्रन्थ आशाधरजीको उपलब्ध हो और उसीका यह श्लोक हो या उसमें बादको किसी प्रकारसे प्रक्षिप्त हो गया हो और उसीके आधारपर यह सब उल्लेख किया गया हो। परन्तु कुछ भी हो, इसमें सन्देह नहीं कि उक्त पद्य ज्ञानार्णवके कर्ता श्रीशुभचन्द्राचार्यका बनाया हुआ नहीं है। ज्ञानार्णवमें और भी कुछ ऐसे पद्य हैं जो छपी हुई प्रतियोंमें 'उक्तंच' रूपसे नहीं दिये परन्तु हस्तलिखित प्रतिमें वे 'उक्तंच' रूपसे दिये हुए हैं। हम उनकी जाँच कर रहे हैं। लेखकोंकी भूलसे कभी कभी कैसी कैसी विकट समस्याएँ उपस्थित हो जाती हैं, इसका अनुभव हमारे पाठक ऊपरके इस कथनसे और पिछले नोट्सपरसे भी बहुत कुछ कर सकते हैं। हमें अफ़सोस है कि समाजमें ग्रन्थोंके प्रकाशनका कार्य जैसे अच्छे ढंगसे होना चाहिए वह नहीं हो रहा है। जो ग्रन्थ प्रकाशित हो वह कितनी ही प्राचीन प्रतियोंसे मिलान करके प्रकाशित होना चाहिए और जिस प्रतिमें जो विशेषता हो उसे फुटनोट्समें ज़ाहिर

* देखो माणिकचन्द्र ग्रन्थमालाका 'तत्त्वानुशासनादि संग्रह' नामका ग्रन्थ नं० १३।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर देना चाहिए। जबतक ऐसा नहीं होगा तबतक कठिनाइयाँ दूर नहीं होंगी और न मूल वस्तुकी ही रक्षा हो सकेगी। प्राचीन प्रतियाँ दिनपर दिन जीर्ण होती जा रही हैं। उनसे शीघ्र स्थायी काम निकालनेकी बड़ी ज़रूरत है। जिनवाणी माताके सच्चे भक्तोंको इस ओर खास ध्यान देना चाहिए। उनके द्वारा ऐसा प्रबन्ध होना चाहिए जिससे ग्रन्थ बहुत ही प्रामाणिक रूपसे प्रकाशित हुआ करें, ग्रन्थोंकी प्राचीन प्रतियाँ विद्वानोंको मिलानके लिए मिल सकें और प्रत्येक ग्रन्थका संस्करण ऐसे गहरे परिश्रमके साथ तैयार कराया जाय कि जिससे वह बहुत ही उपयोगी सिद्ध हो सके।

भूभ्रमणसिद्धान्त और जैनधर्म।

(लेखक—श्रीयुत बाबू निहालकरणजी सेठी, एम. एस. सी.)

कुछ वर्षोंसे जैन समाजमें भूगोलकी चर्चा बढ़ती जा रही है। साधारण दृष्टिसे देखनेपर यह बात कुछ कुछ आश्चर्यजनक प्रतीत होती है कि आत्माके स्वरूपका चिंतवन और उसे कर्मबन्धनसे मुक्त करनेके उपायोंका अध्ययन करनेके स्थानमें धर्मके नामसे इस लौकिक विषयपर वादविवाद करनेकी आवश्यकता जैन मतावलम्बियोंको क्यों हुई। किन्तु इन दो विषयोंका आपसमें प्रायः कोई सम्बन्ध न होनेपर भी जान पड़ता है, कुछ मनुष्योंकी दृष्टिमें जैन धर्मके आत्मा और आप्त सम्बन्धी उपदेशों और कर्म सिद्धान्तकी फिलासफीकी सत्यताकी जाँच करनेके लिये भूगोल ही सर्वश्रेष्ठ उपाय देख पड़ा है। आधुनिक विज्ञानवेत्ता पृथ्वीका जो आकार मानते हैं, उसका सूर्य और चन्द्रमाके साथ जो सम्बन्ध उन्होंने स्थिर किया है वह जैन शास्त्रोंमें वर्णित आकारादिसे सर्वथा भिन्न है। अतः यदि किसी प्रकार यह प्रमाणित हो जाय कि वैज्ञानिकोंका सिद्धान्त असत्य है और जैन आचार्योंका वर्णन बिलकुल ठीक, तब अवश्य ही सर्वसाधारणको उन आचार्योंके असीम ज्ञानके प्रति श्रद्धा उत्पन्न होगी और उनके प्रतिपादित अन्य सिद्धान्तोंमें भी विश्वास बढ़ जायगा। विपरीत इसके, यदि वैज्ञानिक सिद्धान्त ही ठीक निकला तो सर्वसाधारण जैन धर्मके अत्यन्त उपयोगी सिद्धान्तोंको भी आदरकी दृष्टिसे न देख सकेंगे। ऐसे ही कुछ विचारोंके कारण शायद आत्माको कुछ समयके लिये एक ओर रखकर जैनसमाजने भूगोल चर्चा पर अधिक ज़ोर दिया है।

यद्यपि जैनसमाजके इस कार्यमें किसीको कोई आपत्ति नहीं हो सकती, क्योंकि इसका फल अन्तमें ज्ञानकी वृद्धि और सत्यका उद्घाटन ही होगा, परन्तु इसके साथ कुछ बातें ऐसी मिला दी गई हैं कि जिनके कारण बहुत कुछ हानि होनेकी सम्भावना है। जो लोग यह समझते हैं कि यदि पृथ्वी स्थिर और चिपटी प्रमाणित न हो सकी तो जैनधर्मका नाश हो जायगा, बहुत बड़ी भूल करते हैं। उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि मनुष्य धर्मकी उपासना अपनी आत्माका कल्याण करनेके लिये करता है। हवाई जहाज बनानेका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये अथवा पृथ्वीका आकार जाननेके लिये कोई धर्म शास्त्रोंका अध्ययन और उनकी आज्ञाओंका पालन नहीं करता। और आत्माके सम्बन्धमें जिन कर्म सिद्धान्तादिसे जैन धर्म विभूषित है, उनका मूल्य सभ्य संसारकी दृष्टिमें और पूर्वीय ही नहीं पाश्चात्य दार्शनिकोंके लिये भी कभी घट

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Narla, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं सकता। हम उसका आदर केवल इस कारण नहीं करते हैं कि वह सर्वज्ञ-का वचन है, किन्तु विशेष कर इस कारण कि प्रतिपक्षी सिद्धान्तोंके साथ तुलना करनेपर, जैन सिद्धान्त अधिक युक्तिपूर्ण और उसके उपदेश सर्वथा उपयोगी प्रतीत होते हैं। पृथ्वीके गोल अथवा चिपटी होनेसे उसकी यह महत्ता किसी प्रकार कम नहीं हो सकती।

पृथ्वीके सम्बन्धमें सत्य ज्ञान प्राप्त करनेकी चेष्टा करना अत्यन्त प्रशंसनीय कार्य है। परन्तु उपर्युक्त व्यर्थके भयके कारण पक्षपातरहित होकर विचार करनेमें बाधा उपस्थित होती है। सत्यकी खोज करनेवालेके लिये अत्यन्त आवश्यक है कि वह इस बातका ज़रा भी खयाल न करे कि अमुक व्यक्तिका इस विषयमें क्या मत है और न पहलेसे अपना ही कोई मत उसे स्थिर कर लेना चाहिये। किन्तु जो जो प्रमाण मिलें उनपर विचार करके अंतमें वह सिद्धान्त स्थिर करे कि जिसमें किसी प्रकारकी बाधा न आती हो। इस नियमके अनुसार कोई वैज्ञानिक किसी व्यक्तिको यह नहीं कह सकता कि तुम बिना विचार किये, बिना परीक्षा किये ही मान लो कि पृथ्वी गोल है और वह घूमती भी है। और जो कोई व्यक्ति इस प्रकार सहसा मान बैठे वह अवश्य ही सत्यकी खोज करनेके योग्य नहीं।

खेदका विषय है कि जैन समाजके लोग यद्यपि भूगोल सम्बन्धी चर्चा करते हैं परन्तु वैज्ञानिक दृष्टिसे नहीं। एक सिद्धान्त विशेषके पक्षपातके कारण बहुधा वे ऐसी बातें कह डालते हैं और पत्रों तथा पुस्तकोंमें प्रकाशित भी कर डालते हैं कि जिनपर वे, यदि पक्षपात रहित होते तो, इतना शीघ्र विश्वास कभी न करते और अवश्य अधिक विचार द्वारा उनकी असत्यता स्वयँ समझ लेते। किन्तु अपने पूर्व निर्धारित मतका प्रेम उन्हें इतना अवकाश ही नहीं देता कि वे कोई बात कहनेसे पहले उसकी पूर्ण रूपसे परीक्षा करलें। जो लोग सरल हृदयसे यह कहते हैं कि हममें परीक्षा करनेकी शक्ति नहीं, किन्तु हम जो कुछ शास्त्रमें लिखा है उसीको प्रमाण मानते हैं, उनसे हमारा कोई झगड़ा नहीं है। उनके सरल सत्यका हम हृदयसे आदर करते हैं। किन्तु जो लोग युक्तियोंका प्रयोग कर भूभ्रमण सिद्धान्तको असत्य सिद्ध करनेका प्रयत्न करते हैं, उनसे इस प्रकारकी गलतीका होना अवश्य ही दुःखका विषय है। वे लोग अवश्य ही कुछ अंशोंमें जैन-धर्मकी हँसी कराते हैं। यदि वे केवल अपनी व्यक्तिगत राय ही प्रकाशित करते तो जैन समाज उनके इस कार्यको उपेक्षाकी दृष्टिसे देख सकता था। परन्तु ऐसी भ्रमपूर्ण बातोंको जैनधर्मके नामसे प्रकट करना जैन समाजके लिये उपेक्षाका विषय नहीं हो सकता।

हालमें, कलकत्तेके 'पद्मावती पुरवाल' के श्रावणके अङ्कमें, "भूगोल भ्रमण मीमांसा" नामका जो लेख दिगम्बर जैन महासभाके मुखपत्र "जैनगजट" के सम्पादक श्रीयुत पण्डित रघुनाथदास जी सरनौने लिखा है, उसमें ऐसी ही कई बातोंको देखकर लेखकको बहुत दुःख हुआ है और वह अपना कर्त्तव्य समझता है कि जैनसमाजको उन बातोंसे परिचित कर दे।

सबसे पहिली बात जो उक्त लेखको पढ़नेसे ज्ञात होती है, वह यह है कि यद्यपि लेखका उद्देश्य है 'भूभ्रमण सिद्धान्तका खण्डन' तथापि उसके लेखकने उस सिद्धान्तके अध्ययन करनेका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कष्ट ही नहीं उठाया जिसके खण्डनको लेखनी उठाई है। आम तौरपर यद्यपि यह विश्वास नहीं होता कि ऐसे सुयोग्य पण्डित जिस सिद्धान्तका खण्डन करनेके लिए उद्यत हों, उसको भले प्रकार समझनेकी चेष्टा ही न करें। परन्तु लेखमें जिन बातोंको पूर्वपक्ष मानकर खण्डन किया गया है उनमेंसे एक नहीं, दो नहीं बल्कि कितनी ही बातें ऐसी हैं कि जिन्हें कोई भी भूभ्रमणवादी नहीं मानता। और इसीसे हमारा यह कहना है कि भूभ्रमण सिद्धान्तको अध्ययन करनेका कष्ट ही नहीं उठाया गया। उन बातोंमेंसे कुछ बातें उदाहरणके तौरपर नीचे दी जाती हैं:—

१—पृथ्वी समधरातल है। कहींसे ऊँची नीची नहीं है।

२—टीला, घास, वृक्ष, मकान आदिसे युक्त पृथ्वीपर नीचे खड़े होनेसे जितनी पृथ्वी दिखलाई पड़ती है उससे अधिक पहाड़ आदि ऊँचे स्थानसे दिखलाई पड़ती है। अतः पृथ्वी गोल है।

३—नीचेको ढलनेका और गढ़ेमें भर जानेका जलका "स्वभाव" है, अर्थात् इस कार्यमें उसे किसी शक्तिकी आवश्यकता नहीं होती।

४—पृथ्वीपर सर्व देश ऊपरको हैं। इससे सब ओर ऊँचा ही ऊँचा है। अमेरिकासे हिन्दुस्थान नीचा और हिन्दुस्थानसे अमेरिका नीचा।

५—तारागण कोई गोल हैं, कोई तिखूँटे और कोई चौखूँटे।

६—आकाशमें ऐसे भी तारे हैं जिनका प्रकाश एक सेकंडमें ९६ मील चलता है जब कि साधारण प्रकाश एक सेकंडमें १८६००० मील चलता है।

७—कोई विद्वान् सूर्यको स्थिर मानते हैं कोई चलता हुआ। कोई नक्षत्रोंको स्थिर मानते हैं कोई चलते हुए। उनके दो विरुद्ध मत हैं।

८—चन्द्र, शनि, बृहस्पति तथा शुक्रकी भाँति साधारण नक्षत्र भी चलते हैं।

९—सौर जगत् प्रति सेकंड ४ मील चलता है। सौर जगत्में चन्द्रमा भी गर्भित है अतः वह भी ४ मील प्रति सेकंडके वेग से पृथ्वी-परिक्रमा करता है।

१०—उत्तर दक्षिणकी ओर दो ध्रुव तारे हैं। वे चुम्बककी आकर्षक शक्तिवाले हैं। उनकी आकर्षण शक्तिसे कुतुबनुमाकी सूईका मुख उत्तर-दक्षिणको रहता है।

११—ग्रह, उपग्रह सब अपने प्रकाशसे प्रकाशवाले हैं। केवल चन्द्रमा सूर्यके प्रकाशसे प्रकाशित होता है।

१२—सूर्यग्रहणमें सूर्यपर पृथ्वीकी छाया पड़ती है।

१३—चुम्बक पत्थर लोहेको अपनी तरफ़ खींच तो लेता है परन्तु वह खुदको या सूईको घुमाता या चलाता नहीं है।

१४—पृथ्वीके केन्द्रसे पदार्थ जितना जितना दूर होगा उतना ही उतना भारी होता जायगा।

१५—पृथ्वी सूर्यसे समान दूरीपर अर्थात् २३॥ डिगरीपर रहती हुई अपनी कीलीपर घूमती है।

ऐसी ऐसी निर्मूल बातोंको अपने ही मनसे पूर्व पक्ष करार देकर उनके खंडन करनेमें व्यर्थका समय नष्ट करनेके अतिरिक्त और कोई भी लाभ होनेकी सम्भावना नहीं हो सकती और न इसमें कोई बहादुरी ही है। बल्कि दूसरोंके सिद्धान्तोंका अन्यथा और मिथ्या उल्लेख करनेसे उलटे विद्वत्समाजके सम्मुख हँसीका पात्र बनना पड़ता है। कितना अच्छा होता यदि खण्डन करनेके पहले

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भूभ्रमण सिद्धान्त क्या है, इसको भली भाँति जान लेनेकी चेष्टा कर ली जाती।

इसके अतिरिक्त खण्डन करनेमें जिन युक्तियोंका प्रयोग किया गया है वे भी ऐसी हैं कि यदि उनपर थोड़ा भी विचार किया जाता तो अवश्य दोषोंका पता लेखकको स्वयं चल जाता। जो विषय ऐसे हैं कि जिनके सम्बन्धमें बिना कठिन अध्ययनके यथार्थ ज्ञान होना सम्भव नहीं है, उनपर लिखते समय भूल हो जाना कुछ हदतक क्षमाके योग्य हो सकता है। परन्तु ऐसे विषयों-पर बिना ज्ञान लिख डालनेका साहस भी अनुचित है। और सर्वसाधारणकी समझमें आ सकनेवाली बातोंमें भी भूल करना तो केवल इस बातका परिचायक है कि प्रश्नपर विचार करनेका प्रयत्न ही नहीं किया गया। यह निश्चय है कि विचारशून्य बातोंसे भोले लोग चाहे सन्तुष्ट हो जायँ, किन्तु समझनेका प्रयत्न करनेवालोंपर उनका अवश्य उलटा असर पड़ता है। ऐसी भ्रमपूर्ण युक्तियों-पर बहुत संक्षेपसे कुछ विचार करना आवश्यक जान पड़ता है और आशा की जाती है कि इससे सर्वसाधारणको भूभ्रमण सिद्धान्तपर स्वतन्त्र विचार करनेमें कुछ सहायता मिलेगी।

पृथ्वीकी गोलाई।

पृथ्वीका आकार गोल है, ऐसा अनुमान करनेके लिए जो हेतु साधारणतया दिये जाते हैं उनमेंसे एक अत्यन्त सरल हेतु यह है कि दूरसे आते हुए किसी जहाजको समुद्रके किनारेपरसे देखनेपर सबसे पहले उसका मस्तूल दिखाई देता है और अत्यन्त शक्तिशाली दूरबीनका प्रयोग करनेपर भी उस समय उसका तलभाग नहीं दिखलाई देता। वह जलमें डूबा हुआ मालूम होता है। ज्यों ज्यों जहाज़ निकट आता है त्यों त्यों अधिक अधिक नीचेका भाग नज़र आता जाता है। किन्तु यदि देखनेवाला किनारेपरके किसी पहाड़की चोटीपर चढ़ जाय तो जिस दशामें उसे नीचेसे केवल मस्तूल दिखलाई देता था, उसी दशामें वह जहाज़का बहुतसा भाग देख सकता है। अर्थात् ऊपर चढ़नेसे वह अधिक दूरकी वस्तुको भी देख सकता है। यह ऐसी बात है कि जिसकी प्रत्यक्ष परीक्षा करना कोई कठिन कार्य नहीं है। समुद्र-के किनारे एक अच्छी दूरबीन लेकर जाने हीसे सब ठीक हो सकता है। किन्तु ऐसा न करके उपर्युक्त हेतुका खण्डन इस प्रकार किया गया है:—

नीचेसे देखते समय टीले, घास, वृक्ष आदि पदार्थोंसे दृष्टि रुक जाती है। मस्तूल उपर्युक्त दृष्टिके प्रतिबन्धक पदार्थोंसे ऊँचा होनेके कारण दिखलाई देता है। और पहाड़ आदि ऊँचे स्थानसे इन पदार्थों द्वारा दृष्टि नहीं रुकती। इसके अतिरिक्त दूरबीनसे देखनेपर या फोटो खींचनेपर यदि पूरा जहाज़ दिखलाई देने लगे तो उपर्युक्त हेतु ठीक नहीं ठहरता।

विचार करनेकी बात है कि समुद्र-में टीले, घास, वृक्ष कहाँसे आये? यदि कोई यह कहता कि घरके आँगनमें खड़े होकर देखनेकी अपेक्षा छतपर चढ़ जाने-से अधिक दूरकी वस्तु दिखलाई देती है, इस कारण पृथ्वी गोल है तब तो अवश्य यह उत्तर ठीक होता। जिस समय समुद्रतटसे मस्तूल ही दीखता है उस समय दूरबीन और फोटोसे भी पूरे जहाज़का चित्र नहीं उतरता। इस बात-की परीक्षा हो चुकी है और जो चाहे आसानीसे कर सकता है। इसके अति-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रिक दृष्टिके प्रतिबन्धक पदार्थ बीचमें रहनेपर भी दूरबीन किसी वस्तुको दिखला सकती है, या केमरा उसका चित्र खींच सकता है यह बात कोई भी नहीं मान सकता। यदि किसीने ऐसे चित्र खींचे हों तो उन्हें प्रकाशित करना चाहिए। अतः कहना होगा कि इस उत्तरसे हेतुका खण्डन तो हुआ ही नहीं, किन्तु यह अवश्य प्रकट हो गया कि उत्तरदाताने तनिक भी विचार करनेका कष्ट नहीं उठाया, अन्यथा समुद्रमें दृष्टि-प्रतिबन्धक वृक्षोंका अनुमान असम्भव था। इस स्थलपर यह भी कह देना आवश्यक जान पड़ता है कि यह जहाज़वाला हेतु इतना सरल और सीधा होनेपर भी अत्यन्त बलवान हेतु है। चपटी पृथ्वी होनेपर, और पानीके समस्थल होनेपर इस हेतुमें बतलाई हुई प्रत्यक्ष बात कदापि सम्भव नहीं हो सकती। यदि अन्य अन्य बातोंको छोड़कर कोई केवल इसी एक हेतुका समुचित खण्डन कर सके तो अवश्य पृथ्वीके गोलाकार होनेमें सन्देह होने लगेगा।

पृथ्वीके गोल होनेके प्रमाणमें एक और हेतु जो बहुधा दिया जाता है वह चन्द्रग्रहणके समय चाँद पर जो पृथ्वीकी छाया पड़ती है उसके गोलाकार होनेपर अवलम्बित है। यह हेतु पहले हेतुकी तरह सरल नहीं है और इसके समझनेके लिये चन्द्रग्रहणके कारणको ठीक ठीक समझ लेनेकी ज़रूरत है। वैसा न करके इस हेतुके खंडन में लिखा है कि—"ग्रहण पड़ते समय सूर्य चन्द्रमापर पृथ्वीकी छाया नहीं पड़ती, क्योंकि सूर्य हमेशा पृथ्वीसे ऊपर रहता है और छाया नीचे को पड़ती है।" यदि इस वाक्यमें चन्द्रमा शब्द न रहता तो यह एक प्रकार ठीक हो सकता था; किन्तु तब इसका पृथ्वीके आकारसे कोई सम्बन्ध भी न रहता। क्योंकि सूर्य ग्रहणमें चन्द्रमा सूर्य और पृथ्वीके बीचमें आ जाता है और इस समय सूर्यके ढके हुए भागके आकारसे चन्द्रमाके गोल होनेका ही पता चल सकता है। किन्तु चन्द्रग्रहणके समय चन्द्रमापर पृथ्वीकी छाया नहीं पड़ती, यह कहनेमें अनेक बाधाएँ आती हैं। जिस किसीने भी चन्द्र और सूर्य ग्रहण देखे हैं उसे इन दोनोंमें कुछ अन्तर अवश्य मालूम हुआ होगा। सूर्य ग्रहणके समय सूर्यका कुछ भाग बिलकुल काला दिखलाई देता है और कुछ पूर्ण प्रकाशवाला। स्पष्ट जान पड़ता है कि किसी चीज़ने उसे ढक लिया है। किन्तु चन्द्रग्रहणमें ऐसा नहीं होता। चाँदकी कांति एक ओरसे धीरे धीरे कम होती जाती है और उसका रंग पहले पीला और फिर लाल होता जाता है। यहाँ तक कि चन्द्रमाका समस्त भाग लाल रङ्गका हो जाता है। बहुधा तो इतना होनेपर फिर धीरे धीरे वह पुनः उज्ज्वल हो जाता है, किन्तु कभी कभी उसका यह लाल रङ्ग भी धीरे धीरे काला होकर तब उज्वल होता है। किसी समय भी ऐसा नहीं जान पड़ता कि कोई वस्तु बीचमें आकर चाँदको ढक लेती हो। इसके अतिरिक्त सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहणमें एक और अन्तर है। चन्द्र-ग्रहण पृथ्वीके प्रत्येक स्थानसे जहाँसे वह देख पड़ता है, एक ही सा दिखलाई देता है; किन्तु सूर्यग्रहण भिन्न भिन्न स्थानोंपर भिन्न भिन्न प्रकारका—कहींसे पूर्ण और कहींसे अधूरा। इन बातोंपर विचार करनेसे स्पष्ट हो जाता है कि चन्द्रमा स्वयं प्रकाशवाला नहीं है, किन्तु सूर्यके प्रकाशसे प्रकाशित है और ग्रहण पड़ते समय उसपर पृथ्वीकी छाया पड़ती है। यह मत केवल पाश्चात्य ज्योतिषियोंका ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं है किन्तु सूर्यसिद्धान्त आदिके कर्त्ता भारतवर्षके प्रसिद्ध ज्योतिषियोंका भी प्रायः यही मत है। ग्रहणके समयका निर्णय जिन नियमोंके द्वारा होता है उनपर विचार करनेसे यह बात स्पष्ट हो जाती है। इस मतको काटनेके लिये आवश्यक है कि ग्रहण सम्बन्धी प्रत्यक्ष दिखलाई देनेवाली बातोंकी पूर्ण व्याख्या करनेवाला कोई दूसरा सिद्धान्त स्थिर किया जाय। परन्तु यदि खंडनकर्त्ता महाशयका यह आशय है कि पाश्चात्य मतके अनुसार भी चन्द्रमापर पृथ्वीकी छाया पड़ना सम्भव नहीं, क्योंकि चन्द्रमा ऊपर है और पृथ्वी नीचे, तो कहना होगा कि छाया क्यों पड़ती है? इस प्रश्नको समझने-का भी आपने प्रयत्न नहीं किया। सूर्य और चन्द्रमाके बीचमें पृथ्वी आ जानेसे अवश्य ही पृथ्वीकी छाया चन्द्रमा पर पड़ेगी। 'ऊपर नीचे' इन शब्दोंका प्रयोग बड़ा भ्रमपूर्ण है। क्या सूर्य और चन्द्रमा सदा ऊपर ही रहते हैं? उदय और अस्त होते समय क्या उन्हें हम अपनेसे अधिक ऊँचा पाते हैं? और अस्त होनेके पश्चात् क्या वे हमसे नीचे नहीं हो जाते हैं? चपटी पृथ्वीपर अवश्य ही उदय और अस्त कालमें सूर्य, चन्द्रमा और ताराओंके स्थानकी ऊँचाई हमारे बराबर नहीं हो सकती। पृथ्वीके गोल होनेके इस प्रमाण-को भी भूलनेसे काम नहीं चल सकता।

पृथ्वीकी गोलाईके सम्बन्धमें एक और अत्यन्त साधारण बात विचार करनेके योग्य है। यह सब कोई जानते हैं कि सूर्योदय पृथ्वीपर सब स्थानोंमें एक ही समय नहीं होता। भारतवर्षमें सूर्यके दर्शन हो चुकनेके प्रायः ६ घंटेके पश्चात् लण्डनमें प्रातःकाल होता है और अमे-रिकामें तो उस समय भी आधी रात बाकी रहती है। ज्यों ज्यों पश्चिमकी ओर जाइये, सूर्योदय और सूर्यास्तका समय अधिक अधिक विलम्बसे होता है। भारतवर्षसे बाहर जानेकी भी आवश्य-कता नहीं। कलकत्ते और बम्बईमें ही प्रायः एक घंटेका अन्तर हो जाता है। इस कारण बहुधा बड़े बड़े स्थानोंपर घड़ियोंमें अलग अलग टाइम रक्खा जाता है। भारतवर्षमें प्रायः सर्वत्र "स्टैन्डर्ड टाइम" रक्खा जाता है जो लग-भग मद्रास, बनारस आदिके समयके बराबर है। किन्तु कलकत्तेका समय उक्त समयसे २४ मिनट आगे रहता है। समयके इस अन्तरका कारण पृथ्वीकी गोलाई बतलाई जाती है; क्योंकि सम-धरातल अथवा चपटी पृथ्वीपर ऐसा नहीं हो सकता। प्रायः सर्वत्र एक ही साथ सूर्योदय होगा। जैन शास्त्रानुकूल पृथ्वीपर भी यह बात असम्भव है; क्योंकि जितनी पृथ्वीसे हम परिचित हैं वह मेरुके चारों ओर अवस्थित नहीं है। भारतवर्ष, लण्डन और अमेरिका सब मेरुके एक ही ओर हैं। मेरुके दूसरे ओर जानेकी हमारी शक्ति ही नहीं। ऐसी दशामें थोड़ा बहुत घंटे आधे घंटे का अन्तर हो सकता है, किन्तु यह कदापि नहीं हो सकता कि यहाँ सायंकाल हो और अमेरिकामें प्रातःकाल। जैनशास्त्रोक्त पृथ्वीपर यह तब ही सम्भव है जब अमे-रिका मेरुके दूसरे ओर हो। इसके अति-रिक्त वैसी पृथ्वीपर उदय और अस्त होते समय सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, तारे आदि सब ही उत्तरकी ओर जाते हुए दिखलाई देने चाहिएँ। किन्तु ऐसा नहीं होता। बहुतसे तारे प्रायः नित्य ही और सूर्य शीत कालमें उत्तर तो एक ओर रहा ठीक पश्चिममें भी उदय और अस्त नहीं होते वरन् साफ़ दक्षिणकी ओर हटकर ऐसा करते हैं। इससे ज्ञात होता है कि उत्तर-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की ओर स्थित किसी मेरुकी आड़में सूर्यके आ जानेसे रात्रि नहीं होती। इस प्रमाणके विषयमें उक्त बातोंके विरुद्ध कोई प्रमाण न देकर पद्मावती पुरवालके लेखक महाशयने यों लिखा है:—

"जैन ग्रन्थोंमें भारतक्षेत्रकी पृथ्वी विषम मानी है, कहीं अधिक ऊँची कहीं अधिक नीची। इससे सूर्यका प्रकाश कहीं आगे कहीं पीछे पड़ता है। जैसे एक भीत है। उसके ऊपरके भागपर प्रकाश प्रातःकाल पड़ेगा, उस भीतसे परे छाया पड़ेगी, वहाँ प्रकाश दुपहर को पड़ेगा वा मकानकी छतपर प्रकाश पहले पड़ेगा। और मकानके चौकपर बहुत देरीसे प्रकाश पड़ेगा।"

पृथ्वीको विषम तो सभी मानते हैं, किन्तु यह समयके अन्तरका कारण नहीं हो सकता। क्या पश्चिमकी ओरके सब स्थान पूर्वीय स्थानोंकी अपेक्षा नीचे हैं और यह नीचाई अधिक अधिक पश्चिममें जानेपर अधिक २ होती जाती है। देहली-में सूर्यका प्रकाश कलकत्तेकी अपेक्षा अधिक देरसे पहुँचनेका कारण क्या यह है कि देहली कलकत्तेसे नीची है? यदि ऐसा है तो जमुनाका जल देहलीसे बहकर कलकत्तेकी ओर कैसे पहुँच जाता है? और क्या विषम पृथ्वीपर देहलीसे पश्चिम-की ओर कोई ऐसा स्थान ही नहीं कि जो देहलीसे ऊँचा हो और जहाँ सूर्यका प्रकाश पहले पहुँच जाय; क्योंकि यद्यपि मकानके चौकमें प्रकाश देरसे पहुँचता है तो भी उस मकानके पश्चिमकी ओर अनेक मकान ऐसे मिलेंगे कि जिनमें अथवा जिनके चौकमें भी प्रकाश पहले पहुँच जाय। और विस्तीर्ण समुद्रमें तो ऊँचाईकी कोई बात ही नहीं। वह तो विषम नहीं माना जाता। फिर वहाँ भी समयका यह अन्तर क्यों?

पृथ्वी गोल है, यह कहनेसे उसके आकारके विषयमें पूरा ज्ञान नहीं होता। स्तम्भ भी गोल होता है, अंडा भी कुछ कुछ गोल होता है और गेंद भी गोल होता है। पृथ्वीका आकार इनमें किसके समान है? इस प्रश्नके उत्तरमें वही जहाज़वाला हेतु दिया जाता है। परीक्षा द्वारा देखा गया है कि पूर्वकी ओर जितनी दूर जाकर जहाज़ अदृश्य हो जाता है, उत्तर, दक्षिण आदि प्रत्येक दिशामें भी प्रायः उतनी ही दूरपर वह नज़रसे ग़ायब हो जाता है। जहाँ वह ग़ायब होता है वहाँ पृथ्वी और आकाश मिलते हुए दिखलाई देते हैं। इस कारण कह सकते हैं कि पृथ्वीका जो अंश दिखलाई देता है वह वृत्ताकार है। इससे प्रगट होता है कि पृथ्वीकी गोलाई स्तम्भ आदिके समान न होकर गेंदके समान है। अधिक बारीकीसे जाँच करने-पर यह भी ज्ञात हुआ है कि गेंदके आकार-से पृथ्वीका आकार थोड़ा भिन्न है। किन्तु यह भेद उत्तर और दक्षिणके ध्रुवोंके समीप ही अधिक है। अतः कहते हैं कि पृथ्वीका आकार नारङ्गीके समान है। ऊपर दिखलाया जा चुका है कि इस हेतु-का नेत्रोंकी शक्तिसे कुछ सम्बन्ध नहीं है। अत्यन्त शक्तिशाली दूरबीनकी सहायतासे भी कोई अन्तर नहीं होता। तब भी "भूगोल भ्रमण मीमांसा" के विधाता इस सम्बन्धमें यों कहते हैं:—

"नेत्रों द्वारा पृथ्वी गोल दिखलाई देनेका कारण कुछ और ही है। वह यह है कि हमारी नेत्र इन्द्रियका विषय सब तरफ चारों दिशामें एक सा है; क्योंकि केन्द्रसे चारों तरफ जो डोरी या रस्सी घुमाई जाती है वह गोलाकार ही क्षेत्र बनावेगी या बनाती है।"

हेतुके ठीक न होनेके सिवा नेत्रोंकी शक्ति और डोरीके घुमानेका सम्बन्ध भी समझमें आना ज़रा कठिन कार्य है और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसे मीमांसक महाशय ही समझ सकते हैं।

पृथ्वीका भ्रमण।

पृथ्वीका आकार गोल है, यह बात समझ लेना जितना सरल है उतना सरल दुर्भाग्यवश उसके भ्रमणका ज्ञान प्राप्त कर लेना नहीं है। और इस कारण साधारण स्कूलकी पुस्तकोंमें इस विषयके जो दृढ़ प्रमाण हैं वे नहीं दिये जाते। उनमें केवल इस बातका उद्योग किया जाता है कि पढ़नेवालेके मनमें जो शंकाएँ इस विषयमें उत्पन्न हों उनका निराकरण करके उसके हृदयमें यह बात बैठा दी जाय कि पृथ्वीका भ्रमण असम्भव नहीं है। जो साधारण बातें हम नित्य प्रति देखते हैं उनमें पृथ्वीके स्थिर होने अथवा उसके भ्रमण करनेसे कोई अन्तर नहीं हो सकता। और इस कारण जितनी दृढ़ताके साथ हम यह कह सकते हैं कि पृथ्वी स्थिर है और सूर्य, तारे आदि उसकी परिक्रमा करते हैं उतनी ही दृढ़ताके साथ हम यह भी कह सकते हैं कि सूर्य और तारे स्थिर हैं और पृथ्वी अपने अक्षपर घूमती है। विद्यार्थीके हृदयमें इतना विश्वास हो जाना कुछ कम कठिन कार्य नहीं है; क्योंकि स्वभावतः हम सब पृथ्वीके स्थिर होनेके पक्षपाती होते हैं। इस पक्षपातको दूर कर देनेपर ही विपरीत पक्षकी बातको समझनेका हम लोग उद्योग कर सकते हैं। भूगोल-भ्रमण-मीमांसाके लेखकने भी इन्हीं प्राथमिक शंकाओंके निराकरणमें दोष दिखानेकी चेष्टा की है किन्तु पृथ्वीकी अस्थिरताके विषयमें जो असली प्रमाण हैं उनका ज़िकर भी नहीं किया है। जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, वे हैं भी ज़रा समझनेमें कठिन। अतः प्रस्तुत लेखमें मैं भी उनका ज़िकर न करूँगा। यदि अवकाश मिला तो आगामी किसी लेखमें उनको स्पष्ट करनेका उद्योग करूँगा। यहाँ भूगोल-भ्रमण-मीमांसामें की गई शंकाओंपर ही विचार करना काफ़ी होगा।

सबसे पहले जो बात पृथ्वीके भ्रमणका नाम सुनते ही मनमें पैदा होती है वह यह है कि हम लोग पृथ्वीपर रहते हैं, किन्तु कभी उसे चलती तो नहीं देखते। हमें तो वह प्रत्यक्ष स्थिर दिखलाई देती है। इसके उत्तरमें नावका दृष्टान्त दिया जाता है। जिस प्रकार नावमें बैठे हुए मनुष्यको नाव स्थिर और किनारा चलता हुआ जान पड़ता है, उसी प्रकारका भ्रम हमें भी पृथ्वीके सम्बन्धमें हो सकता है। और जबतक हम अन्य बातोंके द्वारा पृथ्वीकी स्थिरता या अस्थिरता प्रमाणित न कर सकें, तबतक हम नहीं कह सकते कि हमारा यह प्रत्यक्ष ज्ञान भ्रमपूर्ण है या नहीं। यद्यपि इस दृष्टान्तके द्वारा यह सिद्ध नहीं होता कि पृथ्वी चलती है—और न कोई इसे प्रमाणके तौरपर पेश करना चाहता है—किन्तु यह अवश्य मानना पड़ता है कि पृथ्वीका भ्रमण असम्भव नहीं है। हमारा भ्रमणसम्बन्धी ज्ञान आपेक्षिक होता है, इसी सिद्धान्तकी यह दृष्टान्त पुष्टि करता है। अतः सर्प और रस्सी आदिके उदाहरण देकर यह कहना वृथा है कि एक पदार्थको भ्रमरूप देखकर दूसरोंको भी भ्रमरूप मानना अयुक्त है; क्योंकि ऐसा करनेके लिये कोई आग्रह नहीं करता। सर्प और रस्सीके उदाहरणसे भी यह सिद्ध नहीं होता कि दूसरे पदार्थका भ्रमरूप होना सम्भव ही नहीं। वहाँ भी दीपक लेकर परीक्षा करनेसे ही ज्ञात होगा कि अनुमान ठीक था या ग़लत। किसी समय वह ठीक भी हो सकता है और किसी समय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गलत भी। बिना दूसरे प्रमाणकी सहायताके हम कुछ भी नहीं कह सकते और हमें अनुमानकी सत्यता अथवा असत्यताके सम्बन्धमें मौन ही धारण करना युक्त है। किन्तु आश्चर्य है कि मीमांसाके लेखकने न्यायशास्त्रकी भाषामें कुछ शब्दोंको जोड़कर बिना अन्य प्रमाणकी सहायताके ही यह सिद्ध करनेकी चेष्टा की है कि पृथ्वी स्थिर है और सूर्य गतिमान है। वे कहते हैं कि नाव अवश्य गमन करती है, क्योंकि एक स्थानसे दूसरे स्थानको प्राप्त होती है, जैसे मार्ग चलता पुरुष व सूर्य चन्द्रमा। साध्य, साधन, अन्वय व्याप्ति और व्यतिरेक व्याप्ति आदिके द्वारा नावका गमन सिद्ध हो गया। किन्तु प्रश्न यह है कि नाव एक स्थानसे दूसरे स्थानको गमन करती है या करती हुई मालूम होती है? यदि नाव किनारे न आ सके तो जिस प्रकार किनारेवाले मनुष्य कहेंगे कि नाव एक स्थानसे दूसरे स्थानको गमन करती है उसी प्रकार नावमें बैठे हुए मनुष्य भी कह सकते हैं कि किनारेके वृक्ष आदि भी एक स्थानसे दूसरे स्थानको गमन करते हैं अतः वे भी गतिमान हैं। साध्य, साधन, अन्वय व्यतिरेक इसमें कोई सहायता नहीं कर सकते, जबतक कि कोई तरीक़ा ऐसा न हो कि जिससे वास्तविक गति और आपेक्षिक गतिका भेद प्रत्यक्ष न हो जाय। उक्त युक्तिसे पृथ्वी भी गतिमान सिद्ध हो सकती है और सूर्य भी।

नावके दृष्टान्तमें एक और आपत्ति दिखलाई गई है। यदि नावके दृष्टान्तके द्वारा यह माना जाय कि पृथ्वी चलती है और सूर्य स्थिर है तो भूगोल भ्रमण मीमांसाके लेखक कहते हैं कि इसी दृष्टान्तके द्वारा यह भी मानना पड़ेगा कि चन्द्रमा भी स्थिर है। यह नहीं हो सकता कि सूर्यके होनेके लिए नावका दृष्टान्त मान लें और चन्द्रमाके लिये नहीं। या तो दोनोंको स्थिर मानना पड़ेगा या दोनोंको गतिमान। किन्तु यह आपत्ति ठीक नहीं। नावमें बैठनेपर किनारेके वृक्ष मकान आदि गतिमान मालूम होते हैं। और किनारे पर दौड़ता हुआ घोड़ा भी गतिमान मालूम होता है। तब यदि वृक्षादिको स्थिर माना जाय तो क्या यह भी आवश्यक है कि घोड़ेको भी स्थिर ही मानें। चाहे नाव स्थिर हो या चलती हुई, वृक्षों और घोड़ेकी आपेक्षिक गति नावपरसे अवश्य देख पड़ेगी; और इसी प्रकार पृथ्वी स्थिर हो या गतिमान, सूर्य और चन्द्रमाकी आपेक्षिक गति अवश्य ज्ञात हो जायगी। दोनोंको स्थिर अथवा गतिमान माननेका नावके दृष्टान्तमें कोई उपयुक्त कारण नहीं देख पड़ता। ध्रुवतारेके सम्बन्धमें भी यही बात है। पृथ्वी जिस अक्ष पर घूमती है उसी पर स्थित ध्रुव तारा हमें गतिमान नहीं दिखलाई दे सकता। पाठकोंमेंसे जिन्होंने आनन्दचक्र (Joy Wheel अथवा Merry Go-round) नामक खेलको देखा है, वे अच्छी तरह समझ सकते हैं कि घूमते हुए चक्रकी धुरीके ऊपर स्थित वस्तु गतिमान नहीं मालूम होती, किन्तु अन्य सब वस्तुएँ चलती हुई नजर आती हैं।

किन्तु भूगोल भ्रमण मीमांसाके लेखकने एक और युक्तिका प्रयोग किया है जो देखनेमें अत्यन्त प्रबल बोध होती है, और जान पड़ता है कि उसके द्वारा अनुमानकी कोई आवश्यकता नहीं रह जायगी और पृथ्वीकी स्थिरता प्रत्यक्ष सिद्ध हो सकेगी। प्रायः एक वर्ष हुआ, जैनमित्रमें भी 'प्रत्यक्ष परीक्षा' शीर्षक देकर इसी युक्तिके द्वारा भूभ्रमण माननेवालोंको चैलज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किया गया था। युक्ति संक्षेपमें यह है कि हवाई जहाज़ जब आकाशमें उड़ जाता है तब उसका पृथ्वीसे कुछ सम्बन्ध नहीं रहता। अतः यदि वह आकाशके एक ही स्थानपर ठहरा रहे तो वहाँसे पृथ्वीके स्थान चलते हुए देख पड़ेंगे। कलकत्तेके ऊपर स्थित हवाई जहाज़ थोड़ी देरमें अपने आपको देहलीके ऊपर स्थित पावेगा क्योंकि पृथ्वी पश्चिमसे पूर्वकी ओर प्रायः ११०० मील प्रति घंटाके हिसाबसे चलती हुई मानी जाती है। यदि वह पूर्वकी ओर जानेका प्रयत्न करे तो उसके लिए यह कार्य असम्भव है, क्योंकि उसका वेग तो प्राय १०० मील प्रति घंटा ही है और इसलिये एक घंटेमें वह प्रायः १००० मील पश्चिमके किसी स्थानपर पर पहुँच जायगा। उत्तर दक्षिणके स्थानों-तक पहुँचना भी उसके लिये सम्भव नहीं। किन्तु हवाई जहाज नित्य प्रति अभीष्ट स्थान पर पहुँचते ही हैं। इस कारण स्पष्ट है कि पृथ्वी गतिमान नहीं है। वह सर्वथा स्थिर है। ठीक इसी युक्तिको पुष्ट करनेके लिये तोपके गोलेका भी उदाहरण दिया जाता है और कहा जाता है कि चलती हुई पृथ्वीपर गोला भी निशानेपर नहीं पहुँच सकता।

इस युक्तिके प्रतिपादनमें गणित विषयक जो भूलें की गई हैं उनका उल्लेख करना वृथा है; क्योंकि जब मूलमें ही युक्ति ग़लत है तब उसपर अवलम्बित गणितके सही और ग़लत होनेसे क्या मतलब ? यह युक्ति मूलमें ही क्यों ग़लत है, यह बात पहले एक सरल उदाहरणके द्वारा स्पष्ट कर देना अधिक लाभदायक होगा। ४० मील प्रति घंटेके वेगसे चलती हुई रेलगाड़ीमें बहुतसे पाठकोंने यात्रा की होगी। और वहाँपर चीज़ोंको इधर उधर फेंकनेका और नीचे गिरानेका भी अनुभव अवश्य हुआ होगा। चलती गाड़ीके एक भागसे दूसरे भागमें जानेका भी अवसर उन्हें अवश्य प्राप्त हुआ होगा। अतः यदि उपर्युक्त युक्तिका रेल गाड़ीके सम्बन्धमें प्रयोग किया जाय तो उसे समझनेमें कोई कठिनाई न होगी। इस युक्तिके अनुसार हम यों कह सकते हैं कि यदि कोई वस्तु गाड़ीमें ऊपरसे गिरा दी जाय या एक यात्री उसे दूसरे यात्रीके पास फेंके तो जिस समय वह हवामें गमन कर रही है, उस समय उसका रेल गाड़ीसे कोई सम्बन्ध नहीं है; और जितने समयमें वह नीचे गिरेगी उतने समयमें ४० मीलके वेगसे चलनेवाली गाड़ी अवश्य कुछ दूर आगे बढ़ जायगी। फल यह होगा कि आपके हाथसे गिरी हुई चीज़ आपके पैरोंके पास न गिरकर या तो पीछेकी तरफ बैठे हुए किसी यात्रीके सिरमें टकरावेगी या गाड़ीकी दीवारसे ही जा लगेगी। इसी प्रकार यदि गाड़ी पश्चिमसे पूर्वकी ओर चलती हो तो उत्तरकी तरफ फेंकी हुई वस्तु भी अभीष्ट स्थानपर नहीं पहुँच सकती। यदि आपको उसे ऐसे स्थान पर पहुँचाना ही हो तो बड़े वेगसे पूर्वोत्तरकी ओर उसे फेंकना पड़ेगा। किन्तु यदि पूर्वकी ओर आप उसे फेंकना चाहें तो यह कार्य आपके लिये असम्भव होगा; क्योंकि जिस वेगसे आपकी वस्तु गमन करेगी वह अवश्य रेल गाड़ीके वेगसे कम होगा। जिस प्रकार गतिमान पृथ्वीपर पूर्वाभिमुख हवाई जहाज़ १०० मील प्रति घंटा चलनेपर भी १००० मील पश्चिममें जा पहुँचेगा, उसी प्रकार आपकी फेंकी हुई वस्तु भी पूर्वकी ओर न जाकर पश्चिमकी ओर ही गमन करेगी। और यदि आपने कभी उछलनेका प्रयत्न किया तो आप भी बिना प्रयास गाड़ीके पश्चिम भागमें पहुँच

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आयँगे। इस कार्यमें यदि चोट लगनेका डर न हो तो कहना होगा कि गाड़ीके पिछले हिस्सेकी ओर आनेका इससे सरल और कोई उपाय नहीं हो सकता। क्या किसी पाठकने ये अद्भुत बातें देखी हैं ? क्या कभी वस्तुको फेंककर यथास्थान पहुँचानेमें कोई कष्ट हुआ है * ? यदि नहीं, तो कहना पड़ेगा कि रेलगाड़ी गतिमान नहीं है। वह स्थिर है और हमें किसी गुप्त कारणसे चलती हुई देख पड़ती है।

कहना न होगा कि जितनी स्पष्टतासे हवाई जहाज़के द्वारा पृथ्वीकी स्थिरता इस युक्ति द्वारा प्रत्यक्ष होती है, उतनी ही स्पष्टतासे फेंकी हुई वस्तुके द्वारा रेलगाड़ीकी स्थिरता भी प्रमाणित हो सकती है। यदि रेलगाड़ी बिना छतकी हो तो यह समानता और भी अधिक स्पष्ट हो जायगी, क्योंकि सम्भव है कि कोई यह कहे कि पृथ्वीके ऊपर छत कहाँ है। किन्तु रेलगाड़ीमें भी उपर्युक्त बातें देखनेको उनकी आवश्यकता नहीं है। खुली गाड़ीमें भी हवाके झोंकेसे बचाकर ये प्रयोग किये जा सकते हैं। कोई कहेगा कि रेलगाड़ीमें जो हवा बन्द है वह भी रेलगाड़ीके साथ ४० मीलके वेगसे चलती है, अतः फेंकी हुई वस्तु रेलगाड़ीसे पृथक् नहीं है। इसके उत्तरमें पहले तो यह कहा जा सकता है कि पृथ्वीपरकी वायु भी पृथ्वीके साथ गमन करती है और इस कारण हवाई जहाज़ पृथ्वीसे पृथक् नहीं है। किन्तु वास्तवमें हवाका इस बातसे कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि रेलगाड़ीमें हवा न हो या यन्त्र द्वारा वह निकाल ली जाय तब भी फेंकी हुई वस्तु यथास्थान अवश्य पहुँच जायगी। यह प्रयोग भी बहुत कठिन नहीं है और थोड़ा कष्ट करनेपर दिखलाया जा सकता है।

वास्तवमें बात यह है कि रेलगाड़ीमें बैठे हुए जब हमारे हाथमें वस्तु थी, तब वह भी हमारे और रेलगाड़ीके साथ ४० मीलके वेगसे चल रही थी। उसे हाथमेंसे छोड़ देनेसे ही उसका इतना बड़ा वेग सहसा नष्ट नहीं हो सकता। सब लोग जानते हैं कि वेगसे चलती हुई वस्तु एकदम नहीं ठहर जाती। पाँव चलाना बन्द कर देनेपर भी बाइसिकिल बहुत दूरतक चली जाती है। रेलके सहसा ठहरनेपर हम लोगोंको धक्का लगनेका भी यही कारण है। चलती वस्तुको ठहरानेके लिए किसी विपरीत बलकी आवश्यकता होती है और साधारणतः वह बल अन्य वस्तुओंकी रगड़के कारण उत्पन्न होता है। यह रगड़ जितनी कम कर दी जाय उतनी ही अधिक देरतक वस्तु चलती रहेगी; और यदि इस रगड़का सर्वथा अभाव हो जाय तो वह वस्तु कभी ठहर ही नहीं सकती। इस प्रत्यक्ष सिद्ध सिद्धान्तके अनुसार हाथसे छोड़ी हुई वस्तुका ४० मीलका वेग कभी नष्ट नहीं हो सकता; क्योंकि इस वेगके विरुद्ध रगड़ लगानेवाली कोई वस्तु ही नहीं है। हाँ, यदि खिड़कीसे आनेवाली हवाका झोंका उसे रोके तो वह अवश्य रोक सकता है। किन्तु इस बाहरी कारणकी अनुपस्थितिमें वह वस्तु चाहे हाथमें हो चाहे हाथसे छोड़ दी जाय, बराबर रेल गाड़ीके साथ चलती ही रहेगी। पश्चिमसे पूर्वकी ओर उसमें और रेल गाड़ीमें कोई आपेक्षिक गति नहीं हो सकती। अतः उस वस्तुको ओर जो

* ये बातें गाड़ीके ठहरते समय या रवाना होते समयके लिये ठीक नहीं हैं। पृथ्वीकी भाँति समान वेगसे जिस समय गाड़ी चलती हो उसी समयके लिये समझना चाहिए।

३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कोई गति दी जाय वह रेल गाड़ीके सम्बन्धमें अपना कार्य ठीक उसी प्रकार करेगी मानों गाड़ी स्थिर हो। यही बात हवाई जहाजके सम्बन्धमें भी ठीक है। वह पृथ्वीके साथ ११०० मीलके वेगसे पश्चिमसे पूर्वकी ओर बराबर चलता रहेगा और उसके एंजिनके द्वारा जो वेग उत्पन्न किया जाता है, उसके अतिरिक्त पृथ्वीकी अपेक्षा उसमें कोई गति नहीं हो सकती। इस कारण उसे अपने अभीष्ट स्थान पर पहुँचनेमें कोई कष्ट नहीं होगा। चाहे पृथ्वी गतिमान हो चाहे स्थिर, पृथ्वीकी आकर्षण शक्ति भी इस कार्यमें अवश्य कुछ सहायता करेगी। किन्तु उसका ज़िकर करके इस मामलेको अधिक जटिल बनानेकी कोई आवश्यकता नहीं। उसके बिना भी स्पष्ट है कि हवाई जहाज़ पृथ्वीकी गतिके बारेमें हमको कोई प्रमाण नहीं दे सकता।

भूभ्रमण सिद्धान्तमें दिन रात होनेका कारण पृथ्वीका अपनी धुरीपर भ्रमण करना माना जाता है। इसमें शंका की गई है कि, यदि समान वेगसे भ्रमण करनेवाली पृथ्वीके घूमनेसे ही दिन रात होते हैं और वह सूर्यसे समान दूरीपर अर्थात् २३॥ डिगरीपर रहती हुई घूमती मानी जाती है, तब दिन रात छोटे बड़े कैसे हो सकते हैं। यह घट-बढ़ तभी हो सकती है कि जब पृथ्वीकी चाल विषम हो। इस शंकामें २३॥ डिगरीका और सूर्यकी दूरीका जो सम्बन्ध बतलाया गया है, उसके सम्बन्धमें इतना ही कह देना काफी होगा कि २३॥ डिगरी एक कोणका माप है, उससे सूर्यकी दूरीका कोई सम्बन्ध नहीं। यह वह कोण है जो पृथ्वीकी धुरी उसके वार्षिक भ्रमण मार्गके धरातलसे बनाती है। और पृथ्वीकी चाल विषम नहीं है, यह भी इस बातसे प्रत्यक्ष है कि चाहे दिन बड़ा हो या रात, किन्तु दिन और रात दोनों मिलाकर सदा २४ ही घण्टेके होते हैं। या अधिक स्पष्ट रीतिसे यों कह सकते हैं कि आज कोई तारा रातके १० बजे ठीक हमारे सिरके ऊपर दिखलाई दे तो ठीक २४ ही घण्टेके बाद वह फिर सिरके ऊपर दिखलाई देगा। इस बीचमें पृथ्वीके जिस भागमें हम रहते हैं, उसमें कितनी देर सूर्यका प्रकाश रहेगा और कितनी देर अन्धकार, यह दूसरा प्रश्न है। इस प्रश्नको समझनेके लिए यह भी स्मरण रखना होगा कि समस्त पृथ्वीपर दिन और रातका परिमाण बराबर नहीं होता। जिस ऋतुमें उत्तरीय भारतमें दिन बड़ा होता है उसी समय पृथ्वीके सुदूर दक्षिण भागमें दिन बहुत छोटा होता है। और अधिक उत्तरमें भी दिन हमारे यहाँसे बहुत अधिक बड़ा होता है। यहाँतक कि उत्तरीय ध्रुवके समीपवर्ती स्थानोंमें उस समय महीनों सूर्य अस्त होता ही नहीं। जब यहाँ अर्धरात्रि होती है तब भी वहाँ सूर्य बराबर दिखलाई देता रहता है। पृथ्वी अथवा सूर्यकी गति विषम होनेसे यह फल कदापि नहीं हो सकता। वास्तविक कारण वही २३॥ डिगरीवाला कोण है और स्कूलकी साधारण पुस्तकोंमें वह अच्छी तरह समझाया भी जाता है। उसे समझनेके लिए रात्रिके समय लैम्पके सामने एक नारङ्गी और उसकी धुरी निर्दिष्ट करनेको एक तारकी आवश्यकता है। नारङ्गीपर एक बिन्दु द्वारा पृथ्वीपरका कोई स्थान विशेष समझा जा सकता है। यदि नारङ्गीको लैम्पके बराबर ऊँचाईपर पकड़कर धुरीको सीधी खड़ी रक्खें और तब नारङ्गीको घुमावें तो देख पड़ेगा कि नारङ्गीपर स्थित वह बिन्दु एक चक्करमें आधी देर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकाशमें और आधी देर अन्धकारमें रहेगा। इस दशामें दिन-रात बराबर हुए। अब यदि धुरीको लैम्पकी तरफ़ कुछ झुका दें तब नारंगी घूमनेपर भी कुछ भाग सदा प्रकाशमें ही रहेगा और अक्षके दूसरे सिरेके समीपका भाग बराबर अन्धकारमें। बीचके स्थानोंपर क्रमशः प्रकाशका काल घटता जायगा और अन्धकारका बढ़ता। धुरीको विपरीत दिशामें झुका देनेका उलटा असर होगा। इस सरल प्रयोगके देख लेनेपर इस विषयकी शंका अवश्य जाती रहेगी और पाठकोंसे मेरा अनुरोध है कि वे अवश्य इसे देखनेका प्रयत्न करें। पाँच मिनट देखनेसे जितना समझमें आ जायगा, उतना मेरे १० पृष्ठ रँग डालनेपर भी नहीं आ सकता।

भूभ्रमणके एक वास्तविक प्रमाणका भी कुछ विकृत रूपमें भूगोलभ्रमण मीमांसामें जिकर किया गया है। उसमें लिखा है कि वर्षाकी बूँद पृथ्वीपर टेढ़ी पड़ती है, इससे भूभ्रमणवादी सिद्ध करते हैं कि पृथ्वी गतिमान है। और इस बातका बहुत हास्य उड़ाकर लेखकने बतलाया है कि वर्षाकी बूँद टेढ़ी पड़नेका कारण वायुकी गति है। यदि वास्तवमें भूभ्रमणवादी उक्त प्रमाण देते तो यह उत्तर अवश्य समुचित होता। किन्तु यह सरल बात है कि हवाका झोंका बूँदको टेढ़ा गिरा सकता है। भूभ्रमणवादी अच्छी तरह जानते हैं और इसी कारण उन्होंने कभी उक्त प्रमाण नहीं दिया। हवाके सर्वथा बन्द रहनेपर अवश्य वे वर्षाकी बूँदकी टेढ़ाईको नाप कर पृथ्वीका गतिमान होना सिद्ध कर देते, क्योंकि इसमें सन्देह नहीं कि पृथ्वीकी चाल बूँदको टेढ़ा अवश्य गिराती है। कठिनाई केवल यही है कि हवा गड़बड़ मचा देती है। इसी लिये जो प्रमाण सचमुच उन लोगोंने दिया था, उसमें वर्षाकी बूँदके स्थानमें एक धातुकी गोलीका उपयोग किया था और यह गोली कोयलेकी एक बहुत गहरी खानमें ऊपरसे गिराई गई थी। उस स्थानपर हवाके चलनेकी कोई सम्भावना न थी। इस बातकी अच्छी तरहसे परीक्षा भी कर ली गई थी। बार बार गिराने पर भी वह गोली ठीक सीधी न गिरी किन्तु पूर्वकी ओर कुछ हटकर ही सदा गिरती थी। और जितनी दूर हटकर गिरती थी, उसका परिमाण भी सदा एक ही सा निकलता था। इसका कारण भी बतला देना अनुचित न होगा। यह सब जानते हैं कि पहियेकी धुरीके समीपवाले भाग धीरे धीरे चलते हैं और उसकी परिधिके समीपवाले भाग अधिक वेगसे। इसी प्रकार पृथ्वीपर खानके ऊपरके भाग अधिक वेगसे पूर्वकी ओर गमन करते हैं और खानका तल भाग अपेक्षाकृत न्यून वेगसे। जो वस्तु ऊपरसे छोड़ी गई वह भी ऊपरके भागके बराबर ही वेगसे पूर्वकी ओर चल रही थी और रोकका कारण न होनेसे वह तल भागतक पहुँचनेके समय पर्यन्त उसी अधिक वेगसे चलती रहेगी। अतः स्पष्ट है कि गिरते समय वह तल भागसे कुछ अधिक दूर पूर्वकी ओर चली जायगी।

इसके अतिरिक्त कुछ आक्षेप और किये गये हैं यथा—"नदीका जल गिर पड़ेगा अथवा उलटा बहने लगेगा; क्योंकि घूमनेवाली पृथ्वीपर कभी एक स्थान ऊँचा हो जायगा और कभी दूसरा।" इन सबका उत्तर पृथ्वीकी आकर्षण शक्ति है। उसके माननेपर ये सब शंकाएँ वृथा हो जाती हैं। और इसी कारण उक्त मीमांसामें आकर्षण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शक्तिका भी खण्डन किया गया है। चन्द्रमा आदिके विषयमें भी बहुतसे प्रश्न उठाये गये हैं। इन सबपर समय मिलनेपर अगले लेखमें विचार किया जायगा।

सम्पादकीय नोट।

पृथ्वी वास्तवमें नारंगीके समान गोल है या थालीके समान चपटी और वह सचमुच घूमती है या स्थिर है, ये सब बातें ऐसी विवादग्रस्त हैं जिनका उत्तर सहसा 'हाँ' या 'नहीं' नहीं दिया जा सकता, और न झटपट यह बतलाया जा सकता है कि जैन-शास्त्रोंका कथन इस विषयमें किस दृष्टि और अपेक्षाको लिये हुए है। ऐसे विषयोंपर शान्तिके साथ गहरा विचार होनेकी ज़रूरत है। तब कहीं कुछ नतीजा निकल सकता है। परन्तु जो लोग अपनी चिरश्रद्धाके विरुद्ध किसी बातको सुनना पसन्द नहीं करते, सुनकर एकदम क्षुभित और कुपित हो उठते हैं वे विचारक श्रेणीमें अवस्थान नहीं पा सकते। उनके विषयमें यह समझ लेना चाहिये कि वे ऐसी बातोंका विचार करनेके पात्र ही नहीं और न उनके द्वारा कभी किसी तत्वका निर्णय या किसी रहस्यका उद्घाटन हो सकता है। ऐसे ही लोग दूसरोंके सिद्धान्तोंको बिना अच्छी तरहसे समझे ही उनका खंडन करनेके लिये बैठ जाते हैं और जो जीमें आता है, लिख मारते हैं! हमें ऊपरके इस लेखसे, जो कि प्रकृत विषयके एक विशेषज्ञ विद्वान्का लिखा हुआ है, यह मालूम करके अत्यन्त दुःख होता है कि पं० रघुनाथदासजीने अपने लेखमें कितनी ही ऐसी बातोंका उल्लेख भूभ्रमणवादी पाश्चात्य विद्वानोंके सिद्धान्त रूपसे किया है जो वास्तवमें उनके सिद्धान्त नहीं हैं। आपकी उसका खण्डन करना अथवा दूसरेके सिद्धान्तोंको अपनी प्रयोजन सिद्धिके लिये, तोड़ मरोड़कर किसी दूसरी शकलमें पेश करना यह निःसन्देह बड़ी ही शर्म और नीचताकी बात है। हमारी रायमें दूसरोंके सिद्धान्तों का खण्डन उस वक्ततक न किया जाना चाहिये जबतक कि गहरे अध्ययन द्वारा उनको अच्छी तरहसे समझ न लिया जाय। जो लोग ऐसा न करके बिना समझे ही अपनी धुनमें ऊटपटांग लिखा करते हैं, यह उनकी बड़ी भारी भूल और हिमाक़त है। पण्डित लोगोंको चाहिये कि वे पहले अङ्गरेज़ी भूगोलका ख़ास तौरसे अध्ययन करें और तब उसके विषयमें कुछ लिखनेके लिये कलम उठावें। ऐसा न करके सुनी सुनाई बातोंके आधारपर अनाप-शनाप लिखनेसे विद्वानोंमें उलटे हँसी होती है।

हमारे इस सब कथनसे किसीको यह न समझ लेना चाहिये कि हम भूभ्रमणके पक्षपाती हैं। अभीतक इस भूभ्रमण सिद्धान्तको माननेके लिये हम बिलकुल तय्यार नहीं हैं और न इस वक्ततक हो सकते हैं जबतक कि हमारे सामने वे सब प्रमाण न आ जायँ जिन्हें बाबू साहबने असली और दृढ़ प्रमाण बतलाया है और जिनके आगामी किसी लेखमें प्रकट किये जानेकी बात कही गई है, और जाँच द्वारा वे प्रमाण हमें बिलकुल सत्य और निर्भ्रान्त प्रतीत न हो जायँ। साथ ही जबतक हमको यह मालूम न हो जाय कि भूभ्रमणके न माननेकी हालतमें अमुक अमुक बाधाएँ उत्पन्न होती हैं और अमुक अमुक ख़ास बातोंमें अन्तर पड़ता है। अभीतक हमारा ध्यान ही इस विषयकी ओर पूरी तौरसे नहीं गया। हाँ, हम इतना ज़रूर कहेंगे कि इस लेखमें पण्डितजीकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिन युक्तियों पर विचार किया गया है वह बहुत कुछ निर्बल थीं और उनकी उस निर्बलता का यहाँ अच्छा दिग्दर्शन कराया गया है। जान पड़ता है, मीमांसा-को लिखते समय पण्डितजीने विचारसे बहुत ही कम काम लिया है और गहरे अध्ययनसे तो उनका कुछ भी सम्बन्ध मालूम नहीं होता। उन्हें वैज्ञानिक दृष्टिसे और विवेचनात्मक पद्धतिसे पक्षपातरहित होकर लिखना नहीं आया। पण्डितजीकी लेखनशैली, उनके विषय प्रतिपादनके ढंग और बहुतसे अधि-कांश युक्तिवादको देखकर हमें बहुत ही अफसोस हुआ और इसीसे हमें इतना लिखनेकी जरूरत पड़ी है। हमारी रायमें अब कुछ विद्वानोंको सब प्रकारकी साधन सामग्री लेकर इस विषयके निर्णयकी ओर ख़ास तौरसे लगना चाहिये और बन सके तो ऐसे महत्त्वके हेतु खोज निकालना चाहिये जो बिलकुल निर्बाध हों। इस प्रकारके प्रयत्न द्वारा यदि जैन-शास्त्रोंमें वर्णित भूगोल सत्य प्रमाणित कर दिया जाय तो इसमें किसीको कुछ भी आपत्ति नहीं हो सकती, बल्कि यह एक बड़े ही आनन्दका विषय होगा और उससे पण्डितोंकी अपेक्षा हम लोग कहीं अधिक प्रसन्न होंगे। परन्तु असत् मार्ग-से ऐसा किया जाना बहुत ही बुरा है और वह कभी ठीक नहीं हो सकता। जहाँ तक हम समझते हैं, पं० रघुनाथ दास और पं० प्यारेलालजी जैसोंके वश-का यह रोग नहीं। ऐसे लोगोंका इस विषयमें कलम चलाना कौतुकावह ही नहीं, बल्कि उनकी अनधिकार चेष्टाकी एक प्रकारसे पराकाष्ठा है।

अन्तमें हम इतना और भी प्रगट कर देना ज़रूरी समझते हैं कि यदि साधना-भावसे जैनशास्त्रोंमें वर्णित भूगोल सत्य प्रमाणित न किया जा सके तो उससे जैनधर्म विषयक हमारी श्रद्धामें कुछ भी फर्क नहीं आता और न उन लोगोंकी श्रद्धामें कोई अन्तर पड़ सकता है जिन्होंने जैनधर्मके वास्तविक रहस्यको समझ लिया है। क्योंकि ऐसा न हो सकने पर जैनधर्म कुछ असत्य नहीं हो जाता और न उसकी सत्यता या असत्यता इस विषय पर निर्भर ही है।

हिन्दीमें जैनदर्शन।

एक स्कीम।

(ले०—बाबू मोतीलालजी एम. ए., मुजफ्फरनगर।)

[हालमें हमें एक पत्र* श्रीयुत बाबू मोतीलालजी जैन, एम. ए., हेडमास्टर एडवर्ड ऐंग्लो संस्कृत हाई स्कूल, मुजफ्फरनगरका प्राप्त हुआ है। इस पत्रमें बाबू साहबने, अन्य बातोंके सिवा, हिन्दीमें "जैनदर्शन" नामक एक विस्तृत पुस्तकके तय्यार किये जानेकी आव-श्यकताको प्रकट करते हुए उसके निर्माणकी एक स्कीम प्रस्तुत की है। हम इस स्कीमको उपयोगी समझकर, उसे अपने पाठकोंके अवलोकनार्थ नीचे उद्धृत करते हैं और साथ ही उसपर अपना एक नोट भी देते हैं।

सम्पादक।]

मैं बहुत समयसे एक ऐसी पुस्तककी आवश्यकताका अनुभव कर रहा हूँ जो संस्कृत न जाननेवालोंको भी जैनदर्शनका बहुत अच्छा ज्ञान करा सके। यह पुस्तक पहले तो हिन्दीमें लिखी जानी चाहिये और फिर इसका अँग्रेज़ी अनुवाद भी हो सकता है। पुस्तक बहुत बड़ी होनी चाहिये और उसका नाम "जैनदर्शन" रक्खा जाय। सम्पूर्ण पुस्तकमें कोई ४००० पृष्ठ हों, इस प्रकार पुस्तककी २० जिल्दें या भाग तैयार कर दिये जायँ और प्रत्येक भाग २०० पृष्ठका हो। सब भागोंको एक सी जिल्द बँधवाकर छपवाया जाय।

---

* यह पत्र १२ अप्रेल सन् १९२१ को श्रीयुत पं० नाथूरामजी प्रेमीके पास बम्बई भेजा गया था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह काम इस प्रकार होना चाहिये। इसके लिये लेखकोंका एक बोर्ड या समितिका चुनाव हो और वह समिति एक सम्पादकके अधीन रहकर काम करे। सम्पादक उत्कृष्ट योग्यताका मनुष्य होना चाहिये जिसको जैन दर्शनका बहुत अच्छा ज्ञान हो। सम्पादक पहले इस बातका निश्चय करे कि जैनदर्शनको कितने विभागोंमें विभक्त किया जा सकता है और सम्पूर्ण पुस्तककी लेखन-शैली कैसी होनी चाहिये। फिर वह इन विभागोंको लेखक-समितिके मेम्बरोंमें बाँट दे और प्रत्येक मेम्बर अपने अपने विभाग या विभागोंपर लेख लिखे। मेम्बरोंका चुनाव भी बड़ी सावधानीसे किया जाय। वे सब अनुभवी विद्वान् होने चाहिएँ और उनकी रुचि जिस विभाग या विषयकी ओर हो वही उनको लिखनेको दिया जाय। लिखनेसे पहले वे प्रत्येक विभाग या विषयके समस्त उपलब्ध ग्रन्थोंको एकत्र करके उनका खूब मनन करें और अपने निबन्धका क्रम तैयार करके सम्पादकको दिखावें। सम्पादककी स्वीकृति होनेपर वे निबन्ध लिखना शुरू करें। चूँकि ये निबन्ध बहुत लम्बे लम्बे होंगे इसलिये वे अध्यायोंमें विभक्त किये जायँगे। निबन्ध सर्वाङ्ग सुन्दर होने चाहिएँ और उनकी प्रत्येक लाइन प्रामाणिक ग्रन्थोंके आधारपर लिखी जाय। जगह जगह पाद नोटोंके रूपमें मूल ग्रन्थोंका हवाला होना चाहिये और यदि किसी विषयपर आचार्योंका मत-भेद हो, तो उसका उल्लेख भी स्पष्टतया पाद नोटोंमें कर देना चाहिये। प्रत्येक निबन्ध अथवा निबन्धोंके प्रत्येक अध्यायके अन्तमें उन सब मूल ग्रन्थोंकी सूची हो जिनके आधारपर वह निबन्ध या अध्याय लिखा गया हो, बल्कि मूल ग्रन्थोंके उन अध्यायों के नम्बर भी देने चाहिएँ जिनसे सहायता ली जाय। और कुछ ऐसी हिदायतें होनी चाहिएँ जिनके द्वारा निबन्ध पढ़कर पाठक मूल ग्रन्थोंके उन अंशोंको सुगमताके साथ पढ़ सकें जिनके आधारपर निबन्ध लिखा गया हो। प्रत्येक निबन्ध खूब विस्तारके साथ लिखा जाय जिससे बारीकसे बारीक बातोंका भी उसमें समावेश हो जाय। परन्तु उसमें कोई फजूल बात न आने पावे। निबन्ध ऐसे उत्तम हों कि उनको पढ़कर फिर मूल ग्रन्थों या शास्त्रोंको देखनेकी आवश्यकता ही न रह जाय। जो लोग मूलको देखनेकी विशेष उत्कंठा रखते हों वे भले ही मूल शास्त्रोंको देखें। सम्पादकका एक बड़ा कर्तव्य यह होगा कि वह यह देखे कि समस्त निबन्धोंका परस्पर सम्बन्ध ठीक है या नहीं और वे असंगतसे तो नहीं मालूम होते। सब निबन्धोंकी भाषा अत्यन्त सरल हो और वे इस ढंगसे लिखे जाने चाहिएँ कि मानो स्कूलके छोटे लड़कोंके लिए लिखे गये हों। पुस्तकके आरम्भमें एक अच्छी ख़ासी भूमिका होनी चाहिये। यह भूमिका सम्पादकको ही लिखनी चाहिए। भूमिकामें एक विशेष बात यह होनी चाहिए कि उसमें जैनदर्शनके विद्यार्थियोंके लिए मूल शास्त्रोंके अध्ययनका एक क्रम दिया हो और कुछ ऐसी हिदायतें दी हों जिनके अनुसार चलनेसे मूल शास्त्रोंका अध्ययन सुगम हो जाय।

सम्पादक जब समस्त पुस्तकका क्रम तैयार करे तो वह उसे जैनसमाजके सभी पत्रोंमें प्रकाशित करा दे और जैन विद्वानोंसे इस बातकी अपील करे कि यदि वे उस क्रममें कुछ त्रुटियाँ पाते हों तो उनकी सूचना तुरन्त ही दें। बल्कि सम्पादकको अपने पास एक क्यूमीकेटर मशीन रखनी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चाहिए। ऐसी अच्छीसे अच्छी मशीन ७०) ८०) में आ सकती है। इसी मशीनके द्वारा वह चिट्ठियाँ छाप छापकर जैनसमाजके योग्य विद्वानोंके पास भेजे और उनकी सम्मति पूछे; क्योंकि बहुतसे विद्वान् साप्ताहिक या मासिकपत्रोंको नहीं पढ़ते और यदि पढ़ते भी हैं तो वे उनके द्वारा पूछी हुई बातोंका उत्तर देनेकी परवाह नहीं करते। ऐसे लोगोंसे चिट्ठियोंके द्वारा ही काम लिया जा सकता है। प्रत्येक विषयपर जिसपर सम्पादकको दूसरोंकी सम्मतिकी आवश्यकता हो, इसी प्रकार साप्ताहिक तथा मासिकपत्रों और चिट्ठियोंके द्वारा दूसरोंकी सम्मति लेनी चाहिए।

यह आवश्यक नहीं कि लेखक-समिति किसी नगर अथवा स्थानमें रहकर काम करे, इसमें तो बहुत झंझट होगी और खर्च भी बहुत पड़ेगा, किन्तु उसका प्रत्येक मेम्बर जहाँ पर हो, वहीं पर रह कर लेखनका काम करता रहे। यदि आवश्यकता हो तो वह सम्पादकसे मिलनेके लिये आ सके। यथा सम्भव लेखक अवैतनिक होने चाहिएँ; परन्तु यदि वे पुरस्कार चाहें तो उनको पुरस्कार भी दिया जाय।

यह पुस्तक विशेषकर दिगम्बर जैनशास्त्रोंके आधार पर ही लिखी जायगी। परन्तु जब इसके प्रूफ उठें तब उन्हें कुछ श्वेताम्बर विद्वानोंके पास भी भेज दिया जाय और उनसे यह निवेदन किया जाय कि जिन जिन बातोंमें श्वेताम्बर सम्प्रदायकी मत-भिन्नता हो उसको वे लिख दें। और फिर इन बातोंको पाद नोटोंके रूपमें पुस्तकमें बढ़ाकर छपवा दिया जाय। भूमिकामें श्वेताम्बर (स्थानकवासी तथा मन्दिरमार्गी) सम्प्रदायके विशेष भावोंका उल्लेख अवश्य हो। यद्यपि अभी कितने ही जैन-ग्रन्थ ऐसे हैं जो भण्डारोंमें छिपे पड़े हैं, तथापि जितने उपलब्ध ग्रन्थ हैं उन्हींके आधार पर पुस्तक तैयार कर दी जाय। एक बार पुस्तक तैयार हो जाने पर तो फिर नये नये ग्रन्थोंके अनुसार उसका संशोधित संस्करण भी हो सकेगा। यदि लेखक मिल जायँ तो मेरी समझमें ऐसी पुस्तक २ या २॥ वर्षमें तैयार हो सकती है।

ऐसी पुस्तककी हिन्दीमें इसलिए आवश्यकता है कि एक तो जैनियों (तथा जैनेतर हिन्दुओंमें) संस्कृत या प्राकृत जाननेवाले बहुत थोड़े रह गये हैं और दूसरे शास्त्रोंकी लेखनशैली पुरानी है। हिन्दीके शास्त्रोंकी तो भाषा भी ऐसी पुरानी है कि वह आजकलके स्कूलोंके हिन्दी पढ़े लिखे विद्यार्थियोंको प्रायः एक नईसी भाषा मालूम होती है। अधिकांश मनुष्योंको इस बातकी परमावश्यकता मालूम होती है कि जैन धर्मपर एक नये ढँगकी पुस्तक रची जाय। यदि आवश्यकता समझी जाय तो पुस्तकमें दर्शनशास्त्र ही नहीं किन्तु और भी जैनधर्म-सम्बन्धी बातोंका समावेश कर दिया जाय। फिर इस पुस्तकका अनुवाद अँगरेज़ीमें भी हो सकता है; क्योंकि यूरोप तथा अमेरिकाके विद्वानोंको भी ऐसी पुस्तककी बड़ी भारी आवश्यकता है।

मैंने इतिहास इत्यादि और जैनधर्मसम्बन्धी विषयोंको छोड़कर दर्शनशास्त्रका ही इसलिए उल्लेख किया है कि वर्तमान समयमें, जहाँतक मैं समझता हूँ, हमको दर्शनशास्त्रके विषयपर ही सबसे अधिक सामग्री उपलब्ध है। जैन इतिहासपर हमारे पास शायद सबसे कम सामग्री है, इसलिए उसके लिखनेके लिए तो अभी वर्षों चाहिएँ। कथासाहित्यपर अवश्य कुछ सामग्री मौजूद है परन्तु इस विषयपर और सामग्रीका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इकट्ठा हो जाना अच्छा है। दर्शनशास्त्र-पर पुस्तक तैयार हो जानेपर तो हम और विषयोंपर भी पुस्तकें तैयार कर लेंगे; क्योंकि एक तो इस प्रकारकी पुस्तक लिखनेसे हमको बहुत कुछ अनुभव हो जायगा और दूसरे ऐसे कामोंकी ओर जैन विद्वानोंकी रुचि बढ़ जायगी। पुस्तकको पहले हिन्दीमें लिखनेके लिये मैं इसलिए कहता हूँ कि पहले तो इस समय जितने जैन विद्वान् हैं उनमें अधिकांश हिन्दी जाननेवाले हैं और जो इने गिने अंगरेजी-दाँ हैं, वे संस्कृत और प्राकृतके शास्त्रोंका ज्ञान नहीं रखते। और दूसरे जैनधर्मपर अँगरेजीकी अपेक्षा हिन्दीमें पुस्तक लिखना कहीं सुगम है।

सम्पादकीय नोट—इसमें सन्देह नहीं कि आधुनिक पद्धतिसे वर्तमान देश कालकी सुपरिष्कृत शैलीसे लिखे हुए ऐसे एक प्रामाणिक ग्रन्थराजकी जैन-समाजको क्या, देशभरको बड़ी भारी जरूरत है, जिसमें जैनदर्शनसम्बन्धी प्रायः सभी बातें आ जायँ और एकमात्र जिसके अध्ययनसे पाठकोंको जैनदर्शनका अच्छा अनुभव हो सके और उनकी जैन-सिद्धान्तोंके परिज्ञान-विषयकी पिपासा सहजमें बुझ सके। अभीतक इस ढंगका कोई ग्रन्थ संस्कृत साहित्यमें भी उपलब्ध नहीं है। और इसलिए जिज्ञासुओंको एक एक बातके लिए बहुत कुछ इधर उधर भटकना पड़ता है। कभी कभी बीसियों ग्रन्थ देख डालनेपर भी उनके इष्टकी सिद्धि नहीं होती। कितने ही लोग हताश होकर बैठ जाते हैं और कितनों हीके पास इतना समय ही नहीं होता कि वे सब ग्रन्थोंको मथन करके उनका रहस्य मालूम करें और सार निकालें। यही वजह है कि जैनधर्मके रहस्यको जानने और समझनेवाले विद्वान् इस समय बहुत ही कम पाये जाते हैं। लोगोंकी प्रवृत्ति ही इस ओर नहीं होती। उनके ज्ञानमार्गकी कठिनाइयाँ और समयकी ज़रूरतें कुछ ऐसी बढ़ गई हैं कि वे अपने जीवनका अधिक समय इसी कामके लिए अर्पण नहीं कर सकते। हमने बहुतोंको यही कहते सुना है कि हमें कोई ऐसा एक ग्रन्थ दीजिये अथवा बतलाइये जिससे जैनधर्मके सभी सिद्धान्तोंका थोड़ेमें ही सुगमतापूर्वक अच्छा अनुभव हो सके। परन्तु ऐसा कोई एक ग्रन्थ है ही नहीं जो उन्हें दिया जाय या बतलाया जाय और जो जैनसिद्धान्त-विषयक सभी बातोंका अपटु डेट उत्तर दे सके। ऐसी हालतमें उन लोगोंकी मनोकामनाएँ हृदयकी हृदयमें ही विलीन हो जाती हैं और उससे जैनधर्मको भी बहुत बड़ा धक्का पहुँचता है। इसलिये इस बातकी बहुत बड़ी ज़रूरत है कि जैनसिद्धान्त-विषयक जो कुछ सामग्री सैंकड़ों ग्रन्थोंमें इतस्ततः बिखरी हुई पड़ी है, उस सबको, एक नूतन अच्छी तरतीब और अच्छी विवेचनाके साथ, एकत्र सङ्कलित कराकर प्रकाशित किया जाय; और इस तरहपर लोगोंके ज्ञान-मार्गको प्रशस्त और सुगम बनाया जाय। और यह सब तभी हो सकता है जब कि ऐसे ही प्रस्तावित महान् ग्रन्थकी रचना कराई जाय और जिसके सम्बन्धमें यहाँतक कहा जा सके कि "यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्"—अर्थात् जैनसिद्धान्तविषयक जो बात इस ग्रन्थमें नहीं, वह अन्यत्र कहीं भी नहीं। ऐसे एक ग्रन्थके निर्माणसे जैनसमाजका बहुत कुछ हित होना सम्भव है। परन्तु ऐसे ग्रन्थका निर्माण कार्य कुछ आसान नहीं है। उसके लिये उदार हृदयके साथ साथ गहरे अध्ययन, गहरे मनन और गहरे परिश्रमकी बहुत बड़ी ज़रूरत है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साथ ही यह काम एक बहुत बड़े आयोजन और सहयोगसे सम्बन्ध रखता है। जैन-समाजके विद्वानों और श्रीमानोंकी वर्तमान स्थिति और परिणतिको देख कर हमें एक दम आशा नहीं होती कि उनके द्वारा हालमें ऐसा महत्त्वका कोई कार्य हो सकेगा। जैन पण्डितोंमें उदार हृदय और निष्पक्ष विवेचनकी बहुत बड़ी कमी है। अँग्रेजीके जैन-विद्वान संस्कृत और प्राकृत भाषाओंके ज्ञानसे प्रायः शून्य हैं और गहरे अध्ययन तथा गहरे मननकी दोनोंमें ही ख़ास त्रुटि है। इसके सिवा समाजमें अभी तक कुछ ऐसे विद्वानोंको भी नेतृत्व प्राप्त है जो जैन-शास्त्रोंकी एक पंक्ति तकको भी प्रमाण रूपसे किसी पत्रमें छापना पसन्द नहीं करते, पाप समझते हैं। ऐसे ही लोगोंके भयसे, ज़मानेकी रफ़्तार सब कुछ बदल जाने पर भी, अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन-महासभा छपे ग्रन्थोंके निषेध विषयक प्रस्तावको अभी तक अपने अङ्कमें धारण किये हुए है! समाजके विद्वानोंमें परस्पर सहयोग नहीं और न सद्भाव है। रही धनिक मण्डली, वह प्रायः मेले ठेले, पूजा प्रतिष्ठा और मन्दिरादिकके निर्माणमें ही अपने धार्मिक और सामाजिक कर्तव्योंकी "इतिश्री" समझती है। उसे ऐसे कामोंकी महत्ता और जरूरतका प्रायः अनुभव ही नहीं है। ऐसी हालतमें यदि यह कहा जाय कि जैन-समाज अभी ऐसे महान् कार्योंके अनुष्ठानके अयोग्य है, उसमें क्षमता ही नहीं तो शायद कुछ अनुचित न होगा। हमारी रायमें अभी ऐसे कामोंमें योग देनेवाले व्यक्तियोंका ही समाजमें एक प्रकारसे अभाव है और जो दो चार हैं भी तो उनसे काम लेनेवाले नहीं। समाजकी मौजूदा (वर्तमान) हालतको देख कर हमें तो कभी कभी इस बातकी भी आशंका होने लगती है कि कहीं कुछ समझदारोंके द्वारा, बाबू साहबकी इस स्कीमके कारण, उन पर धर्मविरुद्ध लिखनेका कोई दोषारोपण न कर दिया जाय; अथवा किसी गन्ध-परिज्ञानीको उनकी इस स्कीमसे दुरभिसन्धिकी बू न आने लगे। क्योंकि बाबू साहबने तत्वार्थ सूत्रोंके अनुवादकी ही कोई बात न कहकर एक दम हिन्दीमें जैनदर्शनके अवतारकी एक नई बात कह डाली है! और साथ ही, शास्त्रोंकी पुरानी शैलीके स्थानमें आजकलकी नई शैली और नई भाषाको पसन्द किया है। आश्चर्य नहीं जो समाजके दण्डनायकोंकी कृपासे आपको अपने इस अपराधका कुछ दण्ड भी भुगतना पड़े। समाजसे ऐसा होना आजकल कुछ भी दूर नहीं है; क्योंकि वर्तमानमें उसकी बागडोर कुछ ऐसे ही महानुभावोंके हाथोंमें है। परन्तु यह सब कुछ होते हुए भी हम आपकी इस स्कीमको केवल इस अभिप्रायसे प्रकाशित कर रहे हैं कि भविष्यमें उसका कुछ अच्छा उपयोग हो सके, लोग ऐसे ग्रन्थोंकी उपयोगिता और उनके निर्माणमें अपनी त्रुटियोंको समझने लगें और साथ ही उन त्रुटियोंको दूर करनेकी ओर उनका प्रयत्न जारी हो जाय।

समाजमें काम करनेवालोंकी जितनी कमी है, उससे कहीं अधिक कमी काम करानेवालों और काम करनेवालोंको उत्तेजना देनेवालोंकी है। हमारी धनिक मण्डली असेंसे सोई हुई है, उसका लक्ष्य ही बदल रहा है और धर्म तथा समाजके वास्तविक उत्थानकी उसे प्रायः कुछ भी चिन्ता मालूम नहीं होती। यदि सौभाग्यसे उसका रुख पलट जाय—वह देश कालकी जरूरतों, समाजकी आवश्यकताओं और उपयोगिता अनुपयोगिताके तत्वको समझकर तदनुकूल ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपनी शक्तिका उपयोग करने लगे तो हम समझते हैं, शीघ्र ही बहुत कुछ काम हो सकता है और तब धनिक मण्डलीकी आराधना करनेवाली पण्डित मण्डलीको भी अपनी शक्तिके सदुपयोगका अच्छा अवसर मिल सकता है।

द्राविड़ देशीय रामायण।

['हितकारिणी' की गत अप्रैलकी संख्यामें श्रीयुत बलवन्त विश्वनाथ वराड पाण्डे और विश्वनाथ सदाशिव असोलकरकी ओरसे 'द्राविड़ देशीय रामायण' नामका एक लेख किसी मराठी लेखके आधारपर. प्रकाशित हुआ है। हम उसे उपयोगी समझकर अपने पाठकोंके अवलोकनार्थ उसे नीचे उद्धृत करते हैं—संम्पादक।]

"उत्तर हिन्दुस्थान और महाराष्ट्र प्रदेशमें वाल्मीकीय रामायणका सर्वत्र प्रचार है। इससे यह न समझना चाहिए कि सर्वसाधारण वाल्मीकिप्रणीत संस्कृत रामायणका पठन करते हैं किन्तु तदाधार-भूत अनेक महत्कवियोंके अनेक प्राकृत रामायणोंको भी लोग आदरणीय समझते हैं। पर्यायसे आदि कविके संस्कृत काव्यका आदर किया जाता है। उदाहरणार्थ—हिन्दीमें तुलसीकृत रामायण, मराठीमें रामविजय, दक्षिणमें अर्थात् द्राविड़, तैलंगण, मलाबार, कर्नाटक आदि प्रदेशोंमें भी वाल्मीकि-रामायणका जनसमूहमें बड़ा मान है। इस प्रकार वाल्मीकि-रामायण लगभग ७५ प्रतिशत हिन्द-निवासियोंको आदरणीय जान पड़ती है। इसका कारण वाल्मीकिजीका कवित्व और भाषा प्रभुत्व ही प्रायः होना चाहिए—ऐसा मालूम होता है; क्योंकि ऐतिहासिक सत्यकी दृष्टिसे देखा जाय तो रामायणकी बहुत सी कथा वाल्मीकिजीने जिस प्रकार वर्णन की है, उसमें और जहाँ राम-कथाकी घटना हुई, उन द्राविड़ आदि देशोंकी हज़ारों वर्षोंसे चली आनेवाली परंपरागत दन्त-कथाओंमें भारी भेद दृग्गोचर होता है।

वाल्मीकि-रामायणकी अनेक असंभव प्रतीत होनेवाली बातोंपर इस द्राविड़ी रामायणसे नया प्रकाश पड़ता है और बहुतसे विवादग्रस्त प्रश्नोंका सम्बन्ध लगाया जाकर उन प्रश्नोंका निर्णय किया जा सकेगा, ऐसा विचार उपस्थित होने लगता है। इसलिए द्राविड़ी रामायणकी कुछ महत्वपूर्ण बातें थोड़ेमें यहाँ वर्णन की जाती हैं।

द्राविड़ देशके राजा 'जीमूतवाहन' ने शत्रुसे ग्रस्त होनेके कारण लंका और पाताल-लंकाके 'भीम' नामक बलिष्ठ और प्रतापशाली राक्षस राजाका आश्रय लिया। भीम राजा वृद्ध और सन्तानहीन था, इस कारण उसने जीमूतवाहनको ही अपना पुत्र समझकर उसका योग्य आदर किया और उसे रख लिया। तत्पश्चात् एक राक्षस-कन्यासे उसका विवाह करा दिया और लंका तथा पाताल लंका दोनों-के राज्य उसे दे दिये। लंका अर्थात् आजकलका सीलोन द्वीप सुप्रसिद्ध ही है। कन्याकुमारीसे गोकर्णतकका पश्चिमी घाट और समुद्र किनारेके बीचके प्रदेश-को—त्रावणकोर, कुर्ग व कनाडा ज़िलेका कुछ भाग मिलकर जो प्रदेश बनता है उसे पाताल लंका कहते थे। लंकाका राज्य सीलोन टापूतक ही न था, परन्तु वह राज्य उत्तर पूर्व दिशाको त्रिचनापल्लीतक और उत्तर पूर्व दिशाको समुद्र किनारेतक फैला हुआ था।

इसी जीमूतवाहनके वंशमें माली, सुमाली और माल्यवन्त ऐसे तीन पराक्रमी राजा हुए। परन्तु विद्याधर देशके राजा इन्द्रने उनका लंकाका राज्य छीन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिया, इसलिए पाताल लंकाका आश्रय लेना पड़ा।

उपर्युक्त सुमालीका लड़का 'रत्नश्रवा' और उसका पुत्र 'रावण' था। यह रावण राक्षस कुलमें अतिशय प्रतापशाली और दिग्विजयी राजा हो गया है। उसने विद्याधर देशके राजा 'इन्द्र' को जीतकर लंकाका स्वामित्व फिर प्राप्त कर लिया और किष्किन्धाके राज्यको जीतकर वहाँ ऋक्षरज और सूर्यजको राज्य-पदपर स्थापना की। सूर्यजको 'बालि' और 'सुग्रीव' नामके दो लड़के थे। किष्किन्धाका राज्य पुनः प्राप्त करा देनेके बदलेमें रावणने बालि और सुग्रीवकी बहिनकी मँगनी की। बालिको यह बात कबूल न हुई इस कारण उसे राज्य छोड़ना पड़ा। वह अपने भाई सुग्रीवको राज्य सौंपकर कहीं चल दिया। सुग्रीव अपनी भगिनीका रावणके साथ विवाह कराके निर्भय होकर राज्य करने लगा। बाल्मीकि-रामायणमें (सुन्दर कांड सर्ग ५१) हनुमान रावणके दरबारमें जाकर कहता है, 'हे राक्षसराज, तेरे नातेदार (नतेत) सुग्रीवने तेरा कुशल प्रश्न पूछा है', ऐसा जान पड़ता है कि इस वाक्यमें 'नतेत' शब्द सम्बन्धका सूचक है।

एक समय सुग्रीव और उसकी पत्नीमें अनबन हो गयी। सुग्रीवको बड़ा खेद हुआ और वह अपनी राजधानी छोड़कर एक स्थानमें (बहुधा ऋष्यमूक पर्वतपर) अज्ञात वासमें रहने लगा। यह सन्धि साधकर एक दुष्ट मनुष्य जो देखनेमें दूसरा सुग्रीव जान पड़ता था, सुग्रीव बनकर उसकी राजधानीमें राज्य करने लगा।

असली सुग्रीवको जब यह बात मालूम हुई तब वह भारी चिंतामें पड़ गया और वह अपने जिगरी-दोस्त हनुवर (होनावर?) देशके राजा 'पवनंजय' के पुत्र 'हनुमान' की सलाह लेनेके लिये उसके यहाँ गया। राजा हनुमानको उसके दूतोंने यह समाचार दे दिया था कि कोसल देशका सूर्यवंशीय 'रामचन्द्र' नामक कोई बड़ा वीर अपने बंधु लक्ष्मणके साथ किसी कारणसे वन-वास स्वीकार कर पाताल-लंकाके पासके जंगलोंमें भटकता फिरता है। तत्पश्चात् उसने स्वतः जाकर रामचन्द्रसे भेंट की और अग्निको साक्षी रखकर उनकी और सुग्रीवकी मैत्री करा दी। उन दोनों मित्रोंमें एक दूसरेके कार्यमें सहायक होनेके विषयमें कौल करार हुए अथवा शपथ ली गई। उन दोनोंमें यह ठहरा कि रामचन्द्रको बनावटी सुग्रीवको मारकर अपने मित्र सच्चे सुग्रीवको राज्य प्राप्त करा देना और सुग्रीवको रामचन्द्रकी पत्नी सीताकी खोज करके रामचन्द्रके पास वापस लानेमें मनपूर्वक सहायता देना चाहिये। सच्चे और बनावटी सुग्रीवोंमें इतना सादृश्य था कि उन्हें पहिचाननेके लिये सच्चे सुग्रीवके गलेमें रामचन्द्रने एक माला पहिनाई और झूठे सुग्रीवसे युद्ध करके हनुमानकी सहायतासे उसे मारकर सुग्रीवको उसका राज्य फिर दिला दिया। इतना होनेपर हनुमान अपनी राजधानीको चला गया और सुग्रीवने सीताकी खोज करनेके लिए चारों दिशाओंमें अपने दूत भेजे।

इन दूतोंने देशांतरोंमें घूम घूमकर यह खबर दी कि लंकाका राजा रावण सीताको हरण करके ले गया और उसका रोना सुनकर मार्गमें राजा 'जटायु' ने उस दुष्टके हाथोंसे सीताको छुड़ानेका प्रयत्न किया, जिसमें जटायु यशस्वी न हुआ और रावणने उसे मार डाला। इस प्रकार सीताका पता लगनेपर यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि रावणके हाथसे उसकी रिहाई किस प्रकार की जाय? तब

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राम, लक्ष्मण, सुग्रीव और हनुमानके विचारसे यह निश्चित किया गया कि राजा हनुमान रावणके यहाँ जायँ और सामोपचारसे सीताको लौटानेके विषय् में उसका मन फेरें। इस कामके लिये हनुमानकी जो योजना हुई थी वह अत्यंत सामयिक थी क्योंकि हनुमान भी रावण-के सरीखा राक्षस वंशोत्पन्न था और रावणका दूरका नतेत था। इतना ही नहीं, वह अत्यंत बुद्धिमान्, शूर, असामान्य और कुशल वक्ता भी था। अर्थात् रावण ऐसे पुरुषके शब्दोंका अनादर नहीं करेगा, यह जानकर शिष्टाचारके काममें हनुमान-की योजना की गई थी जो सर्वथा योग्य ही थी।

इस योजनाके अनुसार हनुमान शिष्टाचारके कामपर जानेके लिये निकला। निकलनेके पहिले उसने सीता-को दिखलानेके लिये पहिचानकी कोई वस्तु रामसे रख ली थी। महेन्द्र और दधिमुख नामक पर्वतोंमेंसे मार्ग निका-लता हुआ वह लंका जा पहुँचा। उसने रावणसे भेंट कर जो बातें कहनेकी थीं, कहीं, परन्तु रावणने उन्मत्त होकर उसका कहना न माना।

शिष्टाचारका मार्ग बंद हो जाने पर जब युद्धके सिवा अन्य मार्ग न रहा तब राम, सुग्रीव और हनुमान युद्धकी तैयारी करने लगे। सुग्रीव और हनुमान ने अन्य द्राविड़ राजाओंकी सहायतासे बड़ी सेना तैयार की और लंकाकी ओर प्रस्थान किया। जाते समय उन्हें वेलांध-पुर, सुवेलाचल और हंसद्वीप इत्यादि राज्योंमेंसे जाना पड़ा। वेलांधपुरमें उस समयमें 'समुद्र' नामक कोई राजा राज्य करता था। उसने उस सेनाको अपने राज्यमेंसे जानेके लिये रास्ता न दिया। सम्भवतः इस सीधी बातपर वाल्मीकिजी ने कवि कल्पनाके ओरसे रामके समुद्र-सेत बाँधकर बानर सेना लंकामें ले जाने कथा रची होगी।

द्राविड़ देशकी यह राम-कथा और किष्किन्धाके राज-वंशका इतिहास ध्यान-पूर्वक पढ़ने पर यह बात प्रकट होती है कि वाल्मीकि रामायणमें और इस कथामें कहीं कहीं अन्तर पड़ता है। जहाँ फरक पड़ा हुआ जान पड़ता है, वहाँ द्राविड़ कथा कैसी सुसंगत है और वाल्मीकिजी-की दी हुई कथामें कवि-कल्पनाका विलास ठूँस ठूँसकर भर देनेसे इस दूसरी कथामें असंभाव्य बातोंकी कैसी भीड़ मच गई है।

सम्पादकीय नोट।

इस लेखसे मालूम होता है कि हमारे कुछ उदार और विचारशील हिन्दू भाई वाल्मीकि रामायणको अब इतिहास और विवेककी कसौटी पर कसने लगे हैं, और उससे उन्हें उसकी कितनी ही बातें असङ्गत, असम्भव और कवि-कल्पना प्रतीत होने लगी हैं। यह अच्छी बात है और इस सत्यकी बहुत कुछ खोज और जाँच हो सकेगी। जिस द्राविड़ देशीय रामायणको लेकर यह लेख लिखा गया है वह कौनसे विद्वान्की बनाई हुई है और कबकी बनी हुई है, यह बात लेखमें प्रगट नहीं की गई। इसके प्रगट होनेकी बड़ी ज़रूरत थी; क्योंकि द्राविड़ देशमें जैन विद्वानों द्वारा रची हुई भी कुछ रामायण प्रचलित हैं जिन्हें सर्वसाधारण बड़े आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। इस लेखकी कितनी ही बातें ऐसी हैं जो जैन रामायणोंसे मिलती जुलती हैं और कुछ कुछ ऐसी भी हैं जो इधरकी जैनरामा-यणोंमें नहीं पाई जातीं, जैसे कि जटायु-का एक पक्षी न होकर राजा होना। हमारे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैनी भाइयोंको चाहिये कि वे अपने कानड़ी और तामील भाषाके कुछ प्राचीन रामायण ग्रन्थोंका वास्तविक अनुवाद प्रकाशित करें। इससे रामायण-विषय पर एक अच्छा प्रकाश पड़ेगा। साथ ही कुछ जैन विद्वानोंको यह भी चाहिये कि वे जैन रामयण ग्रन्थोंसे इस लेखकी सम्पूर्ण बातोंकी जाँच करके एक लेख प्रमाण सहित प्रकाशित करावें जिससे यह मालूम हो सके कि इसकी कौनसी बात जैन रामायणसे मिलती है और कौनसी नहीं।

भगवत्कुन्दकुन्द और श्रुत-सागर।

[गताङ्कसे आगे]

लक्ष्मीचन्द्रके बाद भी श्रीश्रुतसागर-के पट्टाधिकारी होनेका कोई उल्लेख नहीं मिलता। जान पड़ता है, वे कभी सिंहासनासीन हुए ही नहीं।

ये पद्मनन्दि, विद्यानन्दि आदि सब गुजरातके ही भट्टारक हुए। परन्तु यह मालूम न हो सका कि गुजरातकी किस स्थानकी गद्दीको इन्होंने सुशोभित किया था। ईडर, सूरत, सोजित्रा आदि कई स्थानोंमें भट्टारकों के पट्ट रहे हैं। यशस्तिलककी रचनाके समय मालवेके पट्टपर सिंहनन्दि भट्टारक थे। इन्हींकी प्रेरणासे श्रुतसागरसूरिने नित्यमहोद्योत या महाभिषेककी भी टीका लिखी थी।

श्रुतसागरसूरिके भी अनेक शिष्य रहे होंगे। इसी ग्रन्थमालाके तत्त्वानुशासनादिसंग्रहमें श्रीचन्द्र नामक इनके एक शिष्यकी रची हुई वैराग्यमणिमाला प्रकाशित हुई है। आराधनाकथाकोश, नेमिपुराण, आदि अनेक ग्रन्थोंके कर्त्ता ब्रह्मचारी नेमिदत्तने भी—जो मल्लिभूषणके शिष्य थे—श्रुतसागरको गुरुभावनासे स्मरण किया है*। नेमिदत्तने भी मल्लिभूषणकी वही गुरुपरम्परा दी है, जो श्रुतसागरके ग्रन्थोंमें मिलती है। उन्होंने सिंहनन्दिका भी उल्लेख किया है।

श्रुतसागरका अभी तक टीकाग्रन्थोंके अतिरिक्त कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हुआ है।

उनके बनाये हुए ग्रन्थोंका परिचय नीचे दिया जाता है:—

१ यशस्तिलकचन्द्रिका। यह निर्णयसागर प्रेसकी 'काव्यमाला' में प्रकाशित हो चुकी है। यह टीका अपूर्ण है—५वें आश्वास के कुछ अंशकी और छठे आश्वासकी टीका नहीं है। जान पड़ता है, यही उनकी अन्तिम रचना है। यह टीका अनेक स्थानोंके ग्रन्थभण्डारोंमें मिलती है, परन्तु सर्वत्र ही अपूर्ण है।

२ महाभिषेकटीका। सुप्रसिद्ध पण्डित आशाधरजीके बनाये हुए नित्यमहोद्योत या महाभिषेक नामक ग्रन्थकी यह टीका है। इसका अन्तिम अंश ऊपर उद्धृत किया जा चुका है। उससे मालूम होता है कि उस समय श्रुतसागर देशव्रती या ब्रह्मचारी थे, सूरि या आचार्य नहीं हुए थे।

३ तत्त्वार्थटीका। यह श्रुतसागरी टीकाके नामसे प्रसिद्ध है। इस लेखके लिखते समय हमें इसकी प्राप्ति नहीं हो सकी। परन्तु यह दुष्प्राप्य नहीं है—इसका भाषानुवाद भी हो चुका है।

४ तत्त्वत्रयप्रकाशिका। आचार्य शुभचन्द्रकृत ज्ञानार्णवके अन्तर्गत जो

* जीयान्मे सूरिवर्यो व्रतनिचयलसत्पुण्यपुण्यमुक्तः श्रुताब्धिः॥४
तेषां पादपयोज युग्मकृपया........। इत्यादिं।
आराधनाकथाकोशप्रशस्तिः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गद्यभाग है, यह उसीकी टीका है। इसकी एक प्रति स्व० सेठ माणिकचन्द्र-जीके ग्रन्थसंग्रहमें† मौजूद है। उसकी प्रशस्ति देखिए:—

"आचार्यैरिह शुद्धतत्त्वमतिभिः
श्रीसिंहनंद्याह्वयैः,
संप्रार्थ्यश्रुतसागरं [रां] कृ [कि]
तवरं भाष्यं शुभं कारितं।
गद्यानां गुणवत्प्रियं
विनयतो ज्ञानार्णवस्यांतरे।
विद्यानंदिगुरुप्रसादजनितं
देयादमेयं सुखम् ॥

इतिश्रीज्ञानार्णवस्य (?) स्थितगद्यटीका तत्त्वत्रयप्रकाशिना [का] समाप्तः [प्ता] ॥ शुभमस्तु ॥"

५ जिनसहस्रनामटीका। यह पण्डित आशाधरकृत जिनसहस्रनामकी विस्तृत टीका है। इसकी भी एक प्रति सेठजीके ग्रन्थसंग्रहमें मौजूद है। शब्द-बोध और व्युत्पत्तिबोधके अभिलाषियोंके लिए बड़े कामकी चीज़ है। इसकी भी प्रशस्ति देखिए:—

"श्रीपद्मनंदिपरमात्मपरः पवित्रो,
देवेन्द्रकीर्तिरथ साधुजनाभिवंद्यः।
विद्यादिनंदिवरसूरिरनल्पबोधः,
श्रीमल्लिभूषण इतोस्तु च मंगलं मे ॥२॥
अद्यः पट्टे भट्टादिकमतघटाघट्टनपट्टुः,
घटद्ध्यानः स्पटपरमभट्टारकपदः।
प्रभापुंजः संयद्विजितवरवीरस्मरनरः,
सुधीर्लक्ष्मीचन्द्रश्चरणचतुरोऽसौ विजयते ३
आतं वनं सुविदुषां हृदयांबुजानां,
आनन्दनं मुनिजनस्य विमुक्तिहेतोः
सट्टीकनं विविधशास्त्रविचारचारु-
चेतश्चमत्कृतिकृतं श्रुतसागरेण ॥४॥
श्रुतसागरकृतिवरवचना-
मृतपानमत्रैर्विहितं।
जन्मजरामरणहरं
निरंतरं तै शिवं लब्धं ॥५॥
अस्ति स्वस्ति समस्तसंघ-
तिलकं श्रीमूलसंघोऽनघं,
वृत्तं यत्र मुमुक्षुवर्ग-
शिवदं संसेवितं साधुभिः।
विद्यानंदिगुरुस्त्विहास्ति-
गुणवद्गच्छे गिरः सांप्रतं,
तच्छिष्यः श्रुतसागरेण
रचिता टीका चिरं नंदतु ॥६॥

इति सूरिश्रीश्रुतसागरविरचितायां जिननामसहस्रटीकायामंतकृच्छत विवरणो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ श्रीविद्या-नंदिगुरुभ्यो नमः।"

६ प्राकृतव्याकरण। यह ग्रन्थ हमें अभीतक प्राप्त नहीं हुआ। यशस्तिलक टीकामें एक जगह उन्होंने अपने लिए यह विशेषण भी दिया है—"प्राकृतव्या-करणाद्यनेकशास्त्ररचनाचञ्चुना।" इससे और षट्पाहुड़टीकामें जो जगह जगह प्राकृत व्याकरणके सूत्र दिये हैं उनसे भी मालूम होता है कि इनका बनाया हुआ कोई प्राकृत व्याकरण अवश्य है। इस ग्रन्थका पता लगानेकी बहुत आवश्य-कता है।*

इनके सिवाय तर्कदीपक, विक्रम-प्रबन्ध, श्रुतस्कन्धावतार, आशाधरकृत पूजाप्रबन्धकी टीका, बृहत्कथाकोश आदि

† ग्रन्थ नं० ३।

* यह व्याकरणस्वोपज्ञवृत्ति सहित है और इसका नाम 'औदार्यचिन्तामणि' है। इसपर देखो हमारा लेख अंक ५ में।—सम्पादक।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और भी कई ग्रन्थ इनके बनाये हुए कहे जाते हैं।

इन्होंने अपने किसी भी ग्रन्थमें अपने समयका उल्लेख नहीं किया है; परन्तु यह प्रायः निश्चित है कि ये विक्रमकी १६ वीं शताब्दिमें हुए हैं। क्योंकि—

१—ऊपर जिस महाभिषेकटीकाकी प्रतिका उल्लेख किया गया है वह वि० सं० १५८२ की लिखी हुई है और वह भट्टारक मल्लिभूषणके उत्तराधिकारी लक्ष्मीचन्द्रके शिष्य ब्रह्मचारी ज्ञानसागरके पढ़नेके लिए दान की गई है और इन लक्ष्मीचन्द्रका उल्लेख श्रुतसागरने स्वयं अपनी टीकाओंमें कई जगह किया है।

२—आराधनाकथाकोशके कर्त्ता ब्र० नेमिदत्त वि० १५७५ के लगभग* हुए हैं और वे श्रुतसागरके गुरुभ्राता मल्लिषेणके शिष्य थे।

३—स्वर्गीय बाबा दुलीचन्दजीकी सं० १६५४ की बनाई हुई हस्तलिखित ग्रन्थोंकी सूचीमें श्रुतसागरका समय वि० संवत् १५५० लिखा हुआ है।

४—षट्प्राभृतटीकामें जगह जगह लौंकागच्छपर तीव्र आक्रमण किये गये हैं और श्वेताम्बरसम्प्रदायमें यह मूर्तिपूजाका विरोधी पन्थ वि० संवत् १५०८ के लगभग स्थापित हुआ है। अतएव श्रुतसागरका समय इसकी स्थापनासे अधिक नहीं तो ४०-५० वर्ष पीछे अवश्य मानना चाहिए।

नाथूराम प्रेमी।

---

* ब्र० नेमिदत्तने वि० सं० १५८५ में 'श्रीपालचरित्र' बनाकर समाप्त किया है और उसके एक उल्लेखसे ऐसा पाया जाता है कि श्रुतसागर सूरि उस समय भी मौजूद थे।—सम्पादक।

ऐतिहासिक जैन व्यक्तियाँ।

अर्थात्—

जैनाचार्य, दूसरे जैन विद्वान् उनके पोषक, प्रधान और जैन राजादिक।

६ राजमंत्री श्रीकुशराज, जैसवाल।

ग्वालियर (गोपाचल) के तोमरवंशी राजाओंमें 'वीरमेन्द्र' वीरमदेव नामके एक प्रसिद्ध राजा हो गये हैं। ये नृप 'उद्धरण' के पुत्र और राजा 'वीरसिंह' के पौत्र थे। इनके महाविश्वासपात्र मन्त्री 'श्रीकुशराज' जो जैन थे, जिन्होंने अपने जन्मसे जैसवाल कुलको भूषित किया था। श्रीकुशराजजी सन्धिकार्यमें प्रवीण, क्षणमय (आनन्द अथवा सेवामय), शत्रुपक्षको क्षणभरमें नष्ट करनेवाले और पृथ्वीकी देखरेख तथा रक्षा करनेमें बड़े ही समर्थबुद्धि थे। साथ ही, जैनेन्द्रके भक्त थे और उनकी पूजामें लीन रहा करते थे। आपकी कीर्ति दूर दूर तक फैली हुई थी और और आप बड़े ही साधु पुरुष थे। आपके पिताका नाम 'जैनपाल', माताका 'लोणा', पितामहका 'भूलण' और पितामहीका नाम 'उदिता' था। आप छः भाई थे, जिनमेंसे चार आपसे बड़े और एक आपसे छोटा था। सबसे बड़े भाईका नाम 'हंसराज', दूसरे का 'सैराज' तीसरे का 'रैराज' चौथेका 'भवराज' और आपसे छोटे भाई का नाम 'क्षेमराज' था। आपके 'रल्हो' 'लक्षणश्री' और 'कौशीरा' नामकी तीन स्त्रियाँ थीं, जो सभी गुण और चरित्रसे विभूषित तथा सती और सुशीला थीं। रल्हो गृहकार्यमें बड़ी कुशल थी, दानशीला थी और जिनेन्द्रदेवकी पूजा किया करती थी। इसीसे कुशराजजीके 'कल्याणसिंह' नामका एक पुत्र उत्पन्न हुआ था, जो बड़ा ही रूप-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वान्, दानी और जिन-गुरु-चरणाराधन-में तत्पर था। कुशराजजीने बहुत धन खर्च करके 'श्रीचन्द्रप्रभ' भगवानका एक निर्मल चैत्यालय बनवाया था, जो कि अपनी समृद्धिमें स्वर्गकी स्पर्धा करता था और लोगोंके लिये बड़ा ही चित्ताकर्षक था। इस चैत्यालयके निर्माणके समय ही आपने 'यशोधर चरित्र' नामका एक सुन्दर काव्य ग्रन्थ भी बनवाया था जिसका दूसरा नाम 'दयासुन्दर'* महा-काव्य है और जो आपकी कीर्तिका चिर-स्थापक है। इसी ग्रन्थकी प्रशस्तिपरसे हमें ऊपरका यह सब हाल मालूम हुआ है†। वह प्रशस्ति इस प्रकार है:—

जात: श्रीवीरसिंह: सकल-
रिपुकुलव्रात निर्घातपातो,
वंशे श्रीतोमराणां निजविमल-
यशो व्याप्तदिक् चक्रवाल: ।
दानैर्मानैर्विवेकैर्न भवति
समता येन साकं नृपाणां,
केषामेषा कवीनां प्रभवति
धिषणा वर्णने तद्गुणानां ॥१॥
ईश्वर चूडारत्नं, विनिहत
करघातवृत्तसंहात: (?) ।
चन्द्र इव दुग्धसिन्धो-
स्तस्माद्धुद्धरण भूपतिर्जनित: ॥२॥
यस्य हि नृपते: यशसा,
सहसा शुभ्रीकृत त्रिभुवनेऽस्मिन् ।
कैलाशति गिरिनिकर:,
क्षीरति नीरं श्रुचीयते तिमरं ॥३॥

तत्पुत्रो वीरमेन्द्र:* सकल
वसुमती पालचूडामणिर्य:,
प्रख्यात: सर्वलोके सकल-
बुधकलानन्दकारी विशेषात् ।
तस्मिन् भूपालरत्ने
निखिलनिधिगृहे गोपदुर्गे प्रसिद्धं
मुंजानै: प्राज्यराज्यं विगतरिपुभयं
सुप्रज: सेव्यमानं ॥४॥
वंशेऽभूज्जैसवाले विमल-
गुणनिधि र्भूलण: साधुरत्नं,
साधु श्रीजैनपालोऽभवद्-
दितायास्तत्सुतो दानशील: ।
जैनेन्द्राराधनेषु प्रमुदित-
हृदय: सेवक: सद्गुरूणां,
लोणाख्या सत्यशीला जनि
विमल मतिर्जौण (जैन) पालस्य भार्या ॥५॥
जाता: षट् तनयस्तयो:
सुकृतिनो: श्रीहंसराजो भव-
त्तेषामाद्यतमस्ततस्तदनुज:
सैराज नामाजनि ।
रैराजो भवराजक:
समजनि प्रख्यातकीर्तिर्महा-
साधु श्रीकुशराजकस्तदनु च
श्रीक्षेमराजो लघु: ॥६॥
जात: श्रीकुशराज एव
सकलक्ष्मापाल चूडामणि: (णे:?),
श्रीमत्तोमर वीरमस्य विदितो
विश्वासपात्रं महान् ।
मन्त्री मन्त्रविचक्षण:
क्षणमय: क्षीणारिपक्ष: क्षणात्,
क्षोणीमीक्षणरक्षण क्षम- [म]
तिर्जैनेंद्रपूजारत: ॥ ७॥

---

* यह ग्रन्थ आराके जैनसिद्धान्त-भवनमें देवनागरी अक्षरोंमें मौजूद है।

† यह नाम ग्रन्थकी सन्धियोंमें इस प्रकार पाया जाता है—

"इति श्री यशोधर चरित्रे दयासुन्दराभिधाने महाकाव्ये साधु श्रीकुशराजकारापिते कायस्थ श्रीपद्मनाभ विरचते..."।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वर्गस्पर्द्धिसमृद्धिकोति-
विमलश्चैत्यालयः कारितो,
लोकानां हृदयंगमो
बहुधनैश्चंद्र प्रभस्य प्रभोः ।
येनैतत्समकालमेव रुचिरं
भव्यं च काव्यं तथा,
साधु श्रीकुशराजकेन
सुधिया कीर्तेश्चिरस्थापकं ॥८॥
तिस्रस्तस्यैव भार्या गुण-
चरितयुषस्तासु रल्होभिधाना,
पत्नी धन्या चरित्रा व्रत-
नियमयुता शीलशौचेन युक्ता ।
दात्री देवार्चनाढ्या गृह-
कृतिकुशला तत्सुतः कामरूपो,
दाता कल्याणसिंहो जिन-
गुरुचरणाराधने तत्परोभूत् ॥९॥
लक्षणश्रीः द्वितीया
भूत्सुशीला च पतिव्रता ।
कौशीरा च तृतीयेयम-
भूद्गुणवती सती ॥१०॥*

यह ग्रन्थ, 'गुणकीर्ति' मुनिके उपदेश-से 'पद्मनाभ' कायस्थने पहले शास्त्रों परसे बनाया है और इसके निर्माणकी ग्रन्थ-सामग्रीको 'सन्तोष' नामके जैसवालने संग्रह किया था, जिसने निर्माण हो चुकने पर इस ग्रन्थकी बहुत प्रशंसा की थी। और साथ ही यह ग्रन्थ साधु 'विजयसिंह' जैसवालके पुत्र 'पृथ्वीराज' के द्वारा भी अनुमोदित हुआ है; ऐसा प्रशस्तिसे पहले इस ग्रन्थके निम्नलिखित पद्योंसे पाया जाता है—

उपदेशेन ग्रन्थोऽयं गुणकीर्ति महामुनेः ।
कायस्थपद्मनाभेन रचितः पूर्वसूत्रतः ॥१०७॥
सन्तोष जैसवालेन सन्तुष्टेन प्रमोदिना ।
अतिश्लाघितो ग्रंथोऽयमर्थसंग्रहकारिणा १०८
साधोर्विजयसिंहस्य जैसवालान्वयस्य च ।
सुतेन पृथ्विराजेन ग्रन्थोऽयमनुमोदितः १०९

जान पड़ता है 'गुणकीर्ति' मुनि कुशराजजीके धर्मगुरु थे और उन्हींसे कहकर आपने यह ग्रन्थ पद्मनाभ कायस्थसे बनवाया है।

अब देखना यह है कि कुशराजजी कब हुए हैं। राजा वीरमका जो समय है वही समय उनके मन्त्री कुशराजका है। ऐसी हालतमें हमें सबसे पहले राजा वीरमका समय मालूम करना चाहिये। 'भारतके प्राचीन राजवंश' नामक पुस्तकके प्रथम भागमें पं० विश्वेश्वरनाथजी रेउ, सुपरिण्टेण्डेण्ट 'सरदार म्यूज़ियम' और 'सुमेर पब्लिक लाइब्रेरी' जोधपुर लिखते हैं कि—"ग्वालियरके तोमरवंशी राजा वीरमके कृपापात्र नयचन्दसूरिने 'हम्मीर महाकाव्य' नामक काव्य बनाया था। यह नयचन्द जैन साधु था और इसने उक्त काव्यकी रचना वि० सं० १४६० के करीब की थी।" पत्र द्वारा भी रेउ साहब ऐसा ही सूचित करते हैं। साथ ही यह भी

* इसके बाद तीन पद्य आशीर्वादात्मक हैं, जिनमेंसे एक पद्य इस प्रकार है—

यावत्कूर्मस्य पृष्ठे भुजगपतिरयं तत्रतिष्ठेद्गरिष्ठे,
यावत्तत्रापि चंचद्विकट फणिफणामण्डले क्षोणिरेषा ।
यावत्क्षोणौ समस्त त्रिदशपतिवृतश्चारुचामी करादि्र-
स्तावद्ग्रन्थं विशुद्धं जगति विजयतां काव्यमेतच्चिराय॥१२॥

इस पद्यमें कछुएकी पीठ पर शेषनाग और शेषनागके फणामण्डल पर पृथ्वी स्थित है, इत्यादि प्रकारका जो भाव है वह अन्य मतके सिद्धान्तोंसे सम्बन्ध रखता है, जैन-सिद्धान्तसे नहीं। और ग्रन्थमें उसके आनेका कारण यही है कि ग्रन्थकर्ता एक कायस्थ विद्वान् हैं। इसी तरह पर दूसरोंके द्वारा कितनी ही ऐसी बातें जैनशास्त्रोंमें प्रविष्ट हो जाती हैं जिनका जैनसिद्धान्तोंसे कुछ सम्बन्ध नहीं होता और फिर वे शनैः शनैः समाजमें प्रचलित हो जाती हैं और कुछ नासमझ लोग 'शास्त्रवाक्य' कहकर, उनपर आग्रह भी करने लगते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रगट करते हैं कि वीरम वि० सं० १४६२ में इकबालखाँसे लड़ा था, और उसका उत्तराधिकार क्रमशः गणपति, डूँगरसिंह और कीर्तिसिंहको प्राप्त हुआ है। डूँगरसिंहके दो शिलालेख ग्वालियरमें मिले हैं। पहला वि० सं० १४६७ का और दूसरा वि० सं० १५१० का है। बाराबंकी में एक प्राकृत महापुराण सं० १४६६ का लिखा हुआ है जो गोपाचल (ग्वालियर) में राजा श्रीडूँगरके राज्यमें लिखा गया था, ऐसा जैनमित्रने कानपुर-प्रदर्शिनीके विवरणमें प्रगट किया है। इन सब बातोंसे वीरमका राज्यकाल विक्रमकी १५ वीं शताब्दीका तृतीय चरण पाया जाता है और उनका अस्तित्व इस शताब्दीके द्वितीय चरणमें भी रहा है, यह स्वतः सिद्ध है। यही समय (वि० की १५ वीं शताब्दीका द्वितीय और तृतीय चरण) कुशराजजीका अस्तित्व-समय है। सम्भव है कि उनके जीवनका कुछ भाग इस शताब्दीके प्रथम और चतुर्थ चरणमें भी व्यतीत हुआ हो। गुणकीर्ति मुनिके समयकी जाँचसे भी यही समय ठीक बैठता है। गुणकीर्तिके पट्ट पर क्रमशः यशःकीर्ति, मलयकीर्ति और गुणभद्र नामके भट्टारक हुए हैं, ऐसा कितनी ही प्रशस्तियोंसे पाया जाता है। संवत् १५२१ में गुणभद्र मौजूद थे और उस वक्त गोपाचल दुर्ग पर तोमरवंशी राजा श्रीकीर्तिसिंहका (जो कि वीरमकी तीसरी पीढ़ीमें थे) राज्य था, ऐसा ज्ञानार्णव ग्रन्थकी एक लेखक-प्रशस्तिसे मालूम होता है जो कि उस ग्रन्थके साथ आराके जैन-सिद्धान्त भवनमें मौजूद है। यथा—

संवत् १५२१ वर्षे आषाढ़ सुदी ६ सोमवासरे श्रीगोपाचल दुर्गे तोमरवंशे राजाधिराज श्रीकीर्तिसिंह राज्यप्रवर्तमाने श्रीकाष्ठासंघे माथुरान्वये पुष्करगणे भ० श्रीगुणकीर्तिदेवस्तत्पट्टे भ० श्री यशःकीर्तिदेवस्तत्पट्टे भ० श्रीमलयकीर्तिदेवस्तत्पट्टे भ० श्रीगुणभद्रदेवास्तदाम्नाये गर्गगोत्रे.....................।"

इससे गुणकीर्ति मुनिका समय विक्रमकी १५ वीं शताब्दीका मध्य काल ही अनुमान किया जाता है और यही कुशराजजीका सुनिश्चित समय है।

कुशराजजीका इससे अधिक और परिचय अभी तक हमको मालूम नहीं हुआ। परन्तु इस परिचयसे पाठकोंको इतना ज़रूर मालूम हो जायगा कि १५वीं शताब्दीमें हमारे जैसवाल भाइयोंमें भी कैसे कैसे उच्च पदाधिकारी और राजनीतिज्ञ विद्वान् हो गये हैं जो उस समयके ग्वालियर जैसे बड़े राज्यकी बागडोरको अपने हाथोंसे सँभालते थे*। जिन विद्वानोंको किसी शिलालेख आदिके द्वारा कुशराजजीका और विशेष परिचय मालूम हो उन्हें कृपाकर उससे सूचित करना चाहिये। जबतक विद्वान् लोग जातिके इतिहासकी इधर उधर बिखरी हुई सामग्रीको एकत्र करनेकी ओर नहीं लगेंगे तबतक किसी क्रमबद्ध इतिहासके तय्यार होनेकी कोई आशा नहीं की जा सकती। क्रमबद्ध इतिहासकी तय्यारीके लिये पहले खंड इतिहासके एकत्र होनेकी बड़ी ज़रूरत है।

सरसावा। ज्येष्ठ शुक्ल २ सं० १९७८।

---

* किसी समय तो ग्वालियर राज्य पर जैनियोंका बहुत ही बड़ा आधिपत्य था और इसीसे उसका किला जैनमूर्तियोंसे आच्छादित है। उसमें स्थान स्थान पर जैनमूर्तियाँ पहाड़ खोद कर बनाई गई हैं। उस समयका इतिहास एकत्र किये जानेकी बड़ी ज़रूरत है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैनहितैषीपर विद्वानोंके विचार।

कितने ही विचारशील विद्वानोंने जैनहितैषीके सम्बन्धमें अपने स्वतंत्र विचार प्रगट किये हैं। उनमेंसे कुछ विचार आज हम अपने पाठकोंके अवलोकनार्थ नीचे देते हैं—

१—श्रीयुत मिस्टर चम्पतराय साहब, बैरिष्टर, हरदोई।

ता० १०—५—२१

"जैनहितैषीके बारेमें मेरी राय यह है कि हिन्दुस्तान भरमें शायद ही कोई दूसरा पर्चा (पत्र) इस क़दर उम्दगी (उत्तमता) और काबलीयत (योग्यता) का निकलता हो। मेरे खयालमें तो योरपके फर्स्ट क्लास जर्नल्स (Journals) के मुकाबलेका यह पर्चा रहा है।"

२—श्रीयुत बाबू मोतीलालजी एम० ए० जैन, हेडमास्टर एडवर्ड हाई स्कूल, मुजफ्फरनगर।

ता० २५—४—२१

"हितैषीका संपादन आजकल बड़ी योग्यतासे हो रहा है। कदाचित् पहले कभी ऐसा अच्छा संपादन नहीं हुआ। इसमें कोई अतिशयोक्ति न समझियेगा, किन्तु मैं अपनी सत्य सम्मति प्रकट कर रहा हूँ। यह आपकी विद्वत्ता और घोर परिश्रमका फल है। आपका कार्य परम प्रशंसनीय है। हम लोगोंको आपसे बड़ी बड़ी आशाएँ हैं।"

३—श्रीयुत महेंद्रजी, सम्पादक "जैसवाल जैन," आगरा।

ता० १९—१—२१

"जैनहितैषी वर्तमानमें बहुत ही अच्छा निकल रहा है। मुझे तो उसकी टक्करका एक भी पत्र हिन्दी संसारमें नहीं दीखता। आपको जय प्राप्त हो।"

४—श्रीयुत ख० कुमार देवेंद्रप्रसाद जी जैन, आरा।

"Your article on शासन भेद in the Hitaishi is very learned & full of striking researches" "your Hitaishi is excellent" "The Hitaishi is a pride to antiquarians & the Jains." "I thank you for your excellent note about 'Bhavan'."

अर्थात्—'जैनहितैषी' में आपका 'शासन भेद' सम्बन्धी लेख बड़ा ही पांडित्यमय और हृदयग्राही अनुसंधानों-से परिपूर्ण है। 'आपका हितैषी अत्युत्तम पत्र है।' "प्राक्कालीन विषयकोविदों (पुरातत्वपंडितों) और जैनियोंके लिये जैनहितैषी एक अभिमानकी चीज है।" 'जैनसिद्धान्त भवनके सम्बन्धमें आपके अत्युत्तम नोटके लिये मैं आपको धन्यवाद देता हूँ।'

५—श्रीमान् राजवैद्य शीतलप्रसाद जी जैन, देहली।

ता० ११—२—२१

"जैन हितैषीको आपने तवारीखी (ऐतिहासिक) लेखोंसे, पुरानी खोजोंसे बड़े कामका पर्चा बना दिया है। संपादकीय वक्तव्य मैंने पढ़ा था। सब किसीको उसपर ध्यान देना योग्य है।"

६—श्रीयुत पंडित नाना रामचन्द्रजी नाग, लोणंद, सतारा।

फाल्गुन शुक्ल १० सं० १९७७

"आपका जैनहितैषी मैं दर महिनेका अंक सतत् दश वर्षसे पढ़ता हूँ बाँचता हूँ और दुसरे भाई (यों) को सुनाता हूँ। इस जैनहितैषीमें उत्तम उत्तम लेख, तत्ववर्णन और अध्यात्म वर्णन, व्यवहार धर्मका स्वरूप बहुत ही खुबीके साथ रहता है। इसीमें खास लेख धर्मविरुद्ध

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बिलकुल नहीं हैं, ऐसी मेरी खात्री है। आपके सब ग्रंथ-परीक्षा लेख मैंने बाँचे, पढ़े, आपने अज्ञान भोले भाई (यों) पर बड़े उपकार किये हैं।"

७—श्रीयुत् पं० बाबूरामजी सुपरिएटेएडेएट जैन बोर्डिंग हाउस, इलाहाबाद।

"आपके पत्रको पढ़नेके कुल बोर्डर्स उत्सुक रहते हैं। समाजमें ऐसे ही निर्भीक तथा सच्चे पत्र-सम्पादकोंकी आवश्यकता है।"

८—श्रीमान् सेठ लालचन्दजी सेठी, झालरापाटन, सभापति प्रथमाधिवेशन भा० दि० जैन खंडेलवाल महासभा-कलकत्ता।

"मैं वर्तमान सामाजिक पत्रोंमें "जैन हितैषी" और "जैन मित्र" की प्रशंसा किये बिना नहीं रहूँगा, जिनका सम्पादन बड़ी योग्यतासे किया जाता है। बल्कि 'जैन हितैषी' के कितने ही लेख तो बड़ी खोजके साथ लिखे जाते हैं। हालाँकि मैं उसके कितने ही लेखों और कितने ही विचारोंसे सहमत नहीं हूँ।"

९—श्रीयुत मिस्टर वाड़ीलाल मोतीलाल शाह, सम्पादक "जैन हितेच्छु" बम्बई।

"जैन हितैषी जेवुं ठरेल, विद्वत्तापूर्ण, शुभाशय थी भरपूर अने समर्थ मासिक आखा जैन संसारमां बीजुं एक पण न थी, एम हुँ तीर्थंकर साक्षीए कहेवानी हिमत धरूं छुं.........एमां तत्वज्ञान, समाज, इतिहास, धर्म, न्याय इत्यादि विषयोंपर जे सुन्दर प्रकाश पाडवामां आवे छे ते माटे जैन कोम त्हेनी सदाने माटे ऋणी छे।"—जैनहितेच्छु।

अर्थात्-सारे जैन संसारमें जैनहितैषी जैसा ठरेल (गम्भीर?), विद्वत्तापूर्ण, शुभाशयसे भरपूर और समर्थ मासिक पत्र दूसरा एक भी नहीं है, यह बात मैं तीर्थंकर भगवानकी साक्षीसे कहनेकी हिम्मत रखता हूँ।..............इसमें तत्वज्ञान, समाज, इतिहास, धर्म, न्याय इत्यादि विषयोंपर जो सुन्दर प्रकाश डाला जाता है उसके लिये जैन जाति हमेशाके लिये इस पत्रकी ऋणी है।

(शेष फिर)

भाई उद्धतता बन्द करो।

(ले० भगवन्तगणपति गोइलीय।)

(१)

शीघ्र नष्ट कर द्वेष भावना,
प्रेमभाव फैलाओ;
सम्मतिका मान बढ़ाओ।
बिलग बिलग हो गये बन्धु हैं,
उनको गले लगाओ;
आदर दे अश्रु बहाओ॥
अब और न यों छल छन्द करो,
भाई उद्धतता बन्द करो॥

(२)

छोड़ो क्षुद्र विचार और,
सुविचार करो करवाओ;
आत्माकी ज्योति जगाओ।
स्वयं सुपथ पर चलो,
दूसरोंको सत्पथ बतलाओ;
तारो औ खुद तर जाओ॥
अब तो विचार स्वच्छन्द करो,
भाई उद्धतता बन्द करो॥

(३)

जो आता मन्दिरमें उससे,
कहो सप्रेम कि आओ;
प्रभुका दरशन करवाओ।
अगर न समझे शास्त्र,
उसे कर प्यार शास्त्र समझाओ;
अपना तुम उसे बनाओ॥
सच्ची कोशिश हरचन्द करो,
भाई उद्धतता बन्द करो॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और समाजमें अपमानित होनेके डरसे गर्भपात किया और वह उसे निर्धनता और किसी धनीका सहारा न होनेके कारण छिपा नहीं सकी। सुनते हैं कि उसकी एक विधवा बहन और भी है और उसके भी एक बच्चा हो गया है; परन्तु अपनी बहिनकी दुर्दशा देखकर वह बाल-हत्या करनेका साहस नहीं कर सकी।

इस (सागर) जिलेकी इसी तरहकी और भी तीन चार घटनाओंके समाचार मेरे पास आये हैं, परन्तु उनके प्रकाशित करनेमें अनेक बाधाएँ हैं। क्योंकि वे अभी तक ढँकी छिपी हुई हैं। परन्तु मेरा विश्वास है कि पाठकोंको उनके सच होनेमें सन्देह न होगा। क्योंकि ये घटनायें इस समय इतनी साधारण हो गई हैं कि प्रत्येक ऊँची कहलानेवाली जातिमें ये निरन्तर ही हुआ करती हैं।

इस तरहकी घटनाओंके समाचार पढ़कर यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि ये युवती विधवायें जो बालहत्यायें किया करती हैं, सो क्या उन्हें ऐसा करनेका शौक होता है? क्या उनमें माताका हृदय नहीं होता जो अपनी सन्तानको—जिस सन्तानके लिए पशुओं तकमें अतिशय प्रेम होता है और जिसके लिए मनुष्य अपने प्राणोंका भी मोह छोड़ देते हैं—इस तरह अपने हाथसे गला घोट दिया करती हैं? क्या कभी किसीने इन अभागिनी स्त्रियोंकी उस समयकी मानसिक अवस्थाका निरीक्षण किया है जिस समय वे ऐसी रोमांचकारी हत्या करनेके लिए लाचार होती हैं? मैं समझता हूँ कि ऐसे विवेकहीन पाषाण-हृदय बहुत ही थोड़े होंगे जो यह कह सकें कि विधवाएँ अपनी स्वाभाविक निष्ठुरता या निर्दयताके कारण यह पाप कर्म किया करती हैं।

यह सच है कि ये अभागिनी स्त्रियाँ दुर्बलहृदय होती हैं और अपनी वासनाओं पर काबू न रख सकनेके कारण व्यभिचार कर बैठती हैं। पापी पुरुष भी उन्हें इस कुमार्गमें फँसानेका कम प्रयत्न नहीं करते हैं। परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं किया जा सकता कि वे निर्दय होती हैं या हत्या करनेकी ओर उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। जो बहुत ही कोमल और दयालु प्रकृतिकी होती हैं उनके हाथसे भी ये हत्याकर्म हुआ करते हैं, और बड़े बड़े मानसशास्त्री चकराते हैं कि उनका हृदय ऐसा करनेके लिए कैसे तैयार हो गया।

मैं एक ऐसे कट्टर तेहरपंथी वृद्ध पण्डितजीको जानता हूँ जो वास्तवमें बड़े ही धर्मभीरु हैं और जिनके चरित्रमें कभी कोई दाग़ नहीं लगा। परन्तु जब उनके बेटेकी विधवा बहू अपने पिताके घर गर्भवती हो गई, तब उन्होंने अपने समधीको संकेत वाक्योंमें लिखा कि "बोझा वहीं हलका कर देना और फिर समाचार लिखना, तो मैं आकर लिवा ले आऊँगा।" परन्तु दुर्भाग्यसे बोझ हलका न हो सका और पुलीसको खबर लग गई! इसके बाद उसके बच्चा हुआ और इस अपराधमें वह इतनी धिक्कृत, तिरस्कृत और लाञ्छित की गई कि उसे अपने प्राण दे देने पर ही छुटकारा मिला! मेरा हृदय यह गवाही नहीं देता कि पण्डितजी वास्तवमें इतने निर्दय हैं कि पंचेन्द्रिय जीवकी हत्या करानेकी प्रेरणा करनेमें उनका हृदय न काँपा हो। वह बुरी तरह तड़फड़ाया होगा, परन्तु उसकी क्या चल सकती थी; जब सिर पर एक कच्चे धागेसे दोधारी तलवार लटक रही थी? उसके डरने ही उन्हें निर्दय होनेके लिए लाचार किया था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह दोधारी तलवार है इज़्ज़त-आबरू, प्रतिष्ठाका मोह और लाञ्छित या अपमानित होनेका भय। और जिसके लिए लोग कहा करते हैं कि "प्राण जायँ पर आन न जाय।" इसी दोधारी तलवारने ही आजतक अगणित विधवाओंके सुकोमल सुस्निग्ध हृदयको कठोर और रुक्ष बनाकर उनके जीवनको मिट्टीमें मिला दिया है। जब बड़े बड़े ज्ञाता और सच्चरित्र पण्डित भी इसके आगे चाहे जो करनेको तैयार हो जाते हैं, तब अज्ञानी और अवशा अवलाएँ यदि इसकी शिकार हो जायँ तो क्या आश्चर्य है?

स्त्रियाँ केवल अपनी प्रतिष्ठा या इज़्ज़तके लिए ही ये हत्याएँ नहीं करती हैं, अपने कुलके पुरुषोंकी आबरू बचानेके लिए भी उन्हें इसके लिए विवश होना पड़ता है या वे विवश की जाती हैं। बल्कि इस तरहकी घटनाएँ तो और भी हुआ करती हैं। कोई तीन वर्ष हुए, मैं अपने तीन मित्रोंके साथ एक ऐसे शहरमें गया हुआ था, जहाँ धनी परिवारोंकी बहुत बड़ी बस्ती है। वहाँ एक लखपतीके घरकी विधवा गर्भवती हो गई थी। वह नहीं चाहती थी कि एक पाप करके उसे छिपानेके लिए और दूसरा महान् पाप किया जाय। परन्तु घरवालोंकी दृष्टिमें कुलकी इज़्ज़तके सामने वह कुछ भी नहीं था। वे गर्भ गिरानेके लिए उसे दवाइयाँ पीनेको लाचार करने लगे। वह पीनेसे इन्कार करती थी, चीखती चिल्लाती थी, परन्तु दवाइयाँ बलपूर्वक पिलाई जाने लगीं। जब उनसे काम न हुआ, तो बहुत ही तीव्र दवाइयाँ दी गईं जिनसे गर्भ गिर गया, परन्तु उनकी तेजीने गर्भाशय और अँतड़ियोंमें घाव कर दिये! अवस्था भयंकर हो गई। सारे शरीरमें सूजन आ गई, घाव सड़ने लगे, और बदबू फैलने लगी। बेचारी विधवा घोर नरककी यातना भोगने लगी और तबतक उससे मुक्त नहीं हुई जबतक उसके प्राण पखेरू सदाके लिए न उड़ गये। घरवालोंकी आन बच गई, परवार जातिके नामपर कलंक नहीं लगने पाया और जिस पापीने उसे इस नरककुण्डमें पटका था वह थोड़े ही दिनों बाद पंचायतमें बैठकर दूसरोंके अपराधोंकी जाँच करनेका हक़दार हो गया! हे भगवन्! यह क्या है! छोटी सी कीड़ीकी भी जान बचानेवाले जैनधर्मके उपासकोंकी यह क्या दशा है? यह झूठी इज़्ज़त और आबरू हमसे क्या क्या काम करवा रही है?

अभी छः महीने पहले समैया परवार-जातिके एक लखपती और प्रतिष्ठित सज्जनने मुझसे कहा था कि हुशंगाबाद ज़िलेमें हम एक ऐसे पंचायती मामलेके पंच बनकर गये थे जिसमें एक विधवाको गर्भवती हो जानेके कारण उसके कुटुम्बियोंने कूएँमें ढकेल दिया था! और इस तरह उन्हें 'आन' के बदले दो प्राणियोंकी 'जान' दे देना सस्ता मालूम हुआ था!

यह कहा जाता है कि जो विधवायें अपने मनको नहीं रोक सकतीं उन्हें धरेजी कर लेना चाहिये! इसके लिये उन्हें कौन रोकता है? प्रायः सभी जातियोंमें दस्सा या विनैकया आदि होते हैं, उन्हींमें उन्हें मिल जाना चाहिए। इसकी क्या ज़रूरत है कि उनके धरेजेको विवाहसंज्ञा दी जाय और विधवा-विवाहका ढोल पीटा जाय? वे यदि अपनी जातिके नियमको तोड़ती हैं तो उन्हें जातिसे नीची बननेके लिये भी तैयार होना चाहिये।

परन्तु ऐसा कहनेवाले यह नहीं सोचते हैं कि मनुष्यको प्रतिष्ठा कितनी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्यारी है और अपमानसे उसे कितनी अरुचि है। इस आनसे बढ़कर न वह धर्मको समझता है न कर्तव्यको और न परलोकको। उसके लिए वह अपना इहलोक परलोक सब कुछ नष्ट कर सकता है। ऐसी दशामें उन साहसहीन अज्ञान अबलाओंसे यह आशा करना कि वे आन और मानका खयाल न करके धरेजा कर लेंगी, लोकनिन्दा सहन कर लेंगी और जातिमें नीची बनकर लोगोंकी दृष्टिमें काला मुँह करनेको तैयार होंगी, कहाँकी बुद्धिमानी है?

और वे ऐसा करेंगी ही क्यों? वे देखती हैं कि बड़े बड़े घरोंकी विधवायें ऐशो आरामसे रहती हैं, मज़े लूटती हैं फिर भी उनसे कोई कुछ नहीं कह सकता। न वे जातिसे खारिज होती हैं और न कोई खुलकर उनसे कुछ कह सकता है। बेईमान मर्द भी उन्हें विश्वास दिला देते हैं कि आओ हम मज़े लूटें; किसकी मजाल है जो चूँ भी कर सके? ऐसी दशामें भला वे जातिच्युत और निन्दित होना क्यों पसन्द करेंगी?

इसके सिवा हमारी वर्तमान जाति-व्यवस्थाने तो लोगोंके हृदयमेंसे पुण्यके वास्तविक स्वरूपका ज्ञान ही नष्ट कर दिया है। लोक दिखावा और बाहरी ढोंग ही तो इस समय धर्म और पुण्यके आसनपर प्रतिष्ठित हैं। सब तरहके नीच-से नीच पाप करता हुआ भी एक पापी तबतक पुण्यात्मा बना रहता है और जातिमें अबाधित अधिकार पाये रहता है, जबतक कि वह सरकारी न्यायालयसे और पंचायतसे दण्डित न हो जाय। लोग भली भाँति जानते हैं कि वह घोर अपराधी है; परन्तु उनकी मजाल नहीं कि उसके विरुद्ध एक अक्षर भी कह सकें। इसका फल यही हो रहा है कि लोग पापोंसे उतने भयभीत नहीं हैं जितने पापोंके प्रकट हो जानेसे हैं और इसीका अनुकरण ये स्त्रियाँ कर रही हैं।

इस इज्जत और आबरूकी रक्षाके सिवा विधवाओंके सामने एक और बड़ा भारी डर यह रहता है कि जो पाप वे अज्ञानसे या प्रमादसे कर चुकी हैं, इस जीवनमें उससे उन्हें छुटकारा नहीं मिल सकता। अर्थात् उनके पापका कोई प्रायश्चित्त ही नहीं है। और इस डरके कारण भी वे भ्रूणहत्या या बालहत्या करनेके लिए मजबूर होती हैं! यदि उनके लिए यह सुभीता होता कि एक बार पाप करनेके बाद, निन्दा आदि सब कुछ सह लेने पर अपमानित और तिरस्कृत हो चुकने पर, उन्हें प्रायश्चित्त या दण्ड दे दिया जाता और तब उन्हें बिरादरीमें शामिल कर लिया जाता, तो बहुत संभव था कि १०० में ७५ विधवाएँ गर्भ धारण करके भी उसको नष्ट करनेका प्रयत्न न करतीं। क्या जैन धर्मके विद्वान् बतलावेंगे कि स्त्रियोंसे यह प्रायश्चित्त करनेका अधिकार क्यों छीन लिया गया है? वे भी तो मनुष्य हैं, उनके भी तो हृदय हैं, पश्चात्ताप आदिसे उनके कर्म-बन्धन भी तो शिथिल होते हैं। पुरुष भी तो व्यभिचार आदि करते हैं और दण्डित होकर जातिमें मिला लिये जाते हैं। यदि कहो कि ऐसी विधवाओंकी सन्तानोंकी क्या व्यवस्था होगी? तो उत्तर यह है कि उन्हें जानसे मरवा डालनेकी अपेक्षा तो किसी अनाथालयमें, आश्रममें भेज देना हजार दर्जे अच्छा है। और यदि उस विधवाके कुटुम्बमें ही उसके भरण पोषणकी व्यवस्था हो जायगी तो कुछ पाप न लग जायगा।

जो लोग विधवा विवाहको पाप समझते हैं, यह नहीं कहा जा सकता कि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarvagya Trust/eGangotri

वे इन भ्रूणहत्याओं और बालहत्याओंको पाप न समझते होंगे। वे यह भी स्वीकार करते होंगे कि इन बालहत्याओंको करनेकी अपेक्षा तो उनका किसी एक पुरुषको लेकर बैठ जाना अच्छा है और छिपकर व्यभिचार करते रहनेकी अपेक्षा स्पष्ट 'धरेजा' कर लेना बेहतर है। परन्तु क्या मैं पूछ सकता हूँ कि जितना आन्दोलन विधवा विवाहका विरोध करनेके लिए किया जाता है, उसका शतांश भी इन हत्याओंको रोकनेके लिए किया जाता है? क्या इन रोमांचकारी हत्याओंको रोकनेका प्रयत्न करना जैन समाजका कर्त्तव्य नहीं है? मान लिया कि विधवा विवाह बुरा है, उसे न करना चाहिए और जो लोग करते हैं उन्हें जातिसे खारिज कर देना चाहिए; परन्तु क्या यह निश्चय कर लेनेसे ही उक्त पाप प्रवृत्ति कम हो जायगी? कमसे कम इस तरहके उपदेश दिलानेका प्रबन्ध करनेमें तो कोई हानि नहीं दिखलाई देती कि "छिपे पाप भी पाप ही हैं। एक पापके छिपानेके लिए दूसरे अनेक पाप करने पड़ते हैं, इस लिए यदि कोई पाप हो जाय तो उसे छिपाना नहीं चाहिएँ। दुनियाकी इज्जत आबरू भलेही चली जाय, उसकी इतनी कीमत नहीं, पर उसके लिए हत्यादि पाप कभी न करने चाहिए। ऐसे पाप करनेकी अपेक्षा तो जातिसे च्युत हो जाना हजार दर्ज अच्छा है। इसके सिवा जो पाप अज्ञान या प्रमादसे हो गया है, ऐसा नहीं है कि वह कभी धोया ही नहीं जा सकता हो। उस पापके लिए सच्चे दिलसे पश्चात्ताप करो, तपस्या करो और सदाचारी बनकर रहो। ऐसा करनेसे तुम अवश्य ही पवित्र हो जाओगी। निराश होनेका कोई कारण नहीं है।"

मैं समझता हूँ कि इस तरहके विचार फैलनेसे भी इन हत्याओंकी प्रवृत्ति अनेक अंशोंमें कम हो सकती है। विधवा विवाहके विरोधी भाइयोंसे सविनय प्रार्थना है कि वे इस कालेपानीकी सजापर और विधवाओंके हत्याकर्मोंपर कुछ सदय हृदय होकर सहानुभूतिके साथ विचार करनेकी कृपा करें।

एक सागरनिवासी।

जैन सभाओं और संस्थाओंका संगठन।

[लेखक—श्रीयुत बाबू मोतीलालजी जैन, एम० ए० मुजफ्फरनगर।]

संगठनमें जो शक्ति है उसका उदाहरण वर्त्तमान समयमें हमको जितना अच्छा मिलता है उतना अच्छा कदाचित् कभी न मिला होगा। संसारमें आजकल जो अनेक प्रकारके बड़े बड़े उद्योग-धन्धे देखनेमें आते हैं वे सब संगठनके ही बल पर चल रहे हैं। बड़ी बड़ी कोठियाँ और विशाल कारखाने जिनमेंसे एक एकमें हजारों ही मनुष्य मिलकर काम करते हैं संगठनकी शक्तिके ही फल हैं। बड़ी बड़ी सामाजिक, धार्मिक और साहित्यिक सभाएँ जो इस समय संसारमें मौजूद हैं संगठनके ही सहारे काम कर रही हैं। एक समय वह था जब जुलाहे अपने घरोंमें बैठकर ही थोड़ा बहुत कपड़ा तैयार कर लिया करते थे, लुहार कुछ छोटी मोटी चीजें बना लेते थे और इसी प्रकार बढ़ई भी गाड़ियाँ, हल इत्यादि बहुत परिश्रम करके तैयार कर लेते थे। उस समय उद्योग-धन्धोंका कोई संगठन न था। परन्तु आज कल यह संगठनका ही प्रसाद है कि हजारों और लाखों आदमी मिलकर और एक सूत्रमें बँधकर पहले-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की अपेक्षा सैंकड़ों गुना अधिक माल तैयार कर लेते हैं और उनको परिश्रम भी कम करना पड़ता है। नये नये आविष्कारों और युक्तियोंने इस संगठन शक्तिको और भी बढ़ा दिया है। इसी प्रकार धर्म प्रचार अथवा सामाजिक सुधारका काम भी संगठनके द्वारा बहुत ही शीघ्रता और अल्प परिश्रमके साथ हो सकता है। संसारके समस्त सभ्य और उन्नत देशोंमें उद्योग-धन्धोंके साथ ही साथ साहित्य-सेवा, धर्म-प्रचार अथवा सामाजिक सुधारके कार्य्योंका भी अच्छा संगठन हो गया है। भारतवर्षके ईसाइयोंको देखिये कि धर्म-प्रचार तथा शिक्षा-प्रचारके लिए उनकी कितनी सभाएँ बनी हुई हैं, वे सभाएँ परस्पर एक सूत्रमें कैसी बँधी हुई हैं तथा अमेरिका और योरपकी बड़ी सभाओंके साथ उनका कैसा घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। यदि सूक्ष्म दृष्टिसे देखा जाय तो उनकी सभाओंका इतना ही अच्छा सङ्गठन है जितना भारत अथवा अन्य किसी सभ्य देशकी राज्य-सत्ताका। जिस प्रकार राजा अथवा प्रजा-सत्तात्मक देशोंमें सभापतिके नीचे बड़े छोटे दर्जोंके कर्मचारी होते हैं, जिनमेंसे छोटे दर्जेके कर्मचारी बड़े दर्जेके कर्मचारियोंके अधीन रहकर काम करते हैं और उनकी आज्ञाका पालन तथा उनकी नीतिका अनुकरण करते हैं, राज्यका समस्त कार्य समुचित रीतिसे विभागोंमें बँटा रहता है और प्रत्येक विभागके लिए एक कर्मचारी वर्ग नियुक्त रहता है, इसी प्रकार ईसाइयोंके धर्म-प्रचारके कार्यमें भी अत्युत्तम सङ्गठन पाया जाता है। भारतकी अन्य उन्नत समाजों और जातियों, जैसे आर्य समाज तथा पारसियोंमें भी इतना उत्तम नहीं तो सन्तोषप्रद सङ्गठन अवश्य देख पड़ता है। जैन समाजमें सङ्गठनका प्रायः अभाव ही है। इसकी शक्तियाँ अस्त व्यस्त पड़ी हुई हैं। अनेक स्थानों पर जो कुछ सामाजिक अथवा धार्मिक उन्नतिका कार्य जारी है, उसमें सङ्गठन न होनेके कारण हमारी शक्तिका बहुत बड़ा अंश व्यर्थ ही नष्ट हो रहा है। इसके अतिरिक्त अब तक जितने कार्य हो चुके हैं। अथवा हो रहे हैं वे सब बहुत साधारण हुए हैं क्योंकि सङ्गठनके बिना कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं हो सकता।

पिछले बीस-पच्चीस वर्षोंमें जैन समाजमें अनेक सभाएँ और संस्थाएँ स्थापित हो गई हैं, जिनके द्वारा साहित्योद्धार, धर्म-प्रचार, तीर्थ-क्षेत्र रक्षा, शिक्षा-प्रचार, कुरीति-निवारण इत्यादि अनेक कार्य हो रहे हैं। इधर दो चार वर्षोंसे समाजके नवयुवकोंने अनेक छोटे छोटे स्थानों पर कितनी ही कुमार सभायें भी स्थापित कर दी हैं। चूँकि इन सभाओं और संस्थाओंमें सङ्गठन नहीं है, इसलिए उनकी कार्यक्षमता भी कम होती जाती है। यदि जैन साहित्यका उद्धार करना है, जैन समाजकी उन्नति करनी है, अपना अस्तित्व कायम रखना है और दूसरों पर जैन धर्मका महत्व प्रकट करना है, तो इन सभाओं और संस्थाओंका सङ्गठन अवश्य होना चाहिये। बिना सङ्गठनके अपनी अधिकांश शक्तिको पानीकी तरह बहाना कोई बुद्धिमानी नहीं है।

यह सङ्गठनका कार्य इस प्रकार होना चाहिये। एक सभा सबसे बड़ी होनी चाहिये जिसके अधीन भारतवर्षकी समस्त सभाएँ हों। भारतवर्षके प्रत्येक प्रान्तमें इस बड़ी सभाकी एक एक शाखा होनी चाहिये। यह सभा यथासम्भव विदेशोंमें भी अपनी शाखाएँ खोल सके और उनकी भी देख रेख रक्खे। फिर प्रत्येक प्रान्तमें जितनी छोटी छोटी सभाएँ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हों वे सब प्रान्तीय सभाओंके अधीन रह कर काम करें। इस प्रकार तीन प्रकारकी सभाएँ बन जायँगी। एक तो समस्त भारतवर्षीय सभा, दूसरे प्रान्तीय सभाएँ तथा विदेशी शाखा सभाएँ जो पहली सभाके अधीन रहकर काम करेंगी और तीसरे छोटी सभाएँ जिनको हम प्राथमिक सभाएँ कह सकते हैं और जो प्रान्तीय सभाओंके अधीन रहकर काम करेंगी। प्राथमिक सभाओंका नाम चाहे कुमार सभा रक्खा जाय चाहे और कुछ रख लिया जाय। यदि उनके भिन्न भिन्न नाम हों तो कुछ हर्ज नहीं है। हर्ज तो इसमें है कि वे सब अलग अलग रहकर अपनी अपनी अपनी डफली अपना अपना राग अलापा करें और एक दूसरे पर कटाक्ष किया करें। समस्त भारतवर्षीय सभाके सदस्य प्रान्तिक सभाओंके द्वारा चुने जायँ अथवा कमसे कम प्रान्तिक सभाको यह अधिकार हो कि वह बड़ी सभाकी बैठकोंमें अपने कुछ सदस्योंको प्रतिनिधि बनाकर भेज सके। इसी प्रकार प्रान्तिक सभाओंके सदस्य प्राथमिक सभाओं द्वारा चुने जायँ। समस्त भारतवर्षीय सभा और प्रान्तिक सभाओंके स्थायी दफ़्तर होने चाहिएँ जिनमें नियमित रूपसे काम होता रहे। समस्त भारतवर्षीय सभाका एक मुखपत्र होना चाहिये और सम्भव हो तो प्रान्तिक सभाओंके भी मुखपत्र हों। भारतवर्षीय सभाको प्रान्तिक सभाओंके कामकी देख रेख रखनी चाहिये और इसी प्रकार प्रान्तिक सभाओंको प्राथमिक सभाओंका निरीक्षण करना चाहिये। निरीक्षणके निमित्त दौरा करनेका काम केवल सभापति या मन्त्रीके हाथमें हो, क्योंकि प्रत्येक सदस्यको दौरा करनेका अधिकार देनेसे खर्च भी अधिक पड़ेगा और निरीक्षण भी ठीक न होगा। सभापति और मन्त्री बहुत योग्य और अनुभवी मनुष्य होने चाहिएँ। यदि आवश्यकता हो तो मन्त्री वैतनिक रक्खा जाय, परन्तु अन्य सदस्य अवैतनिक होने चाहिएँ। प्रान्तिक सभाओंको प्रतिवर्ष अपना अधिवेशन करना चाहिए और उनके कामकी वार्षिक रिपोर्ट भारतवर्षीय सभाके मुखपत्रमें छप जानी चाहिए। प्राथमिक सभाओंके लिए वार्षिक अधिवेशनकी कैद न लगाई जाय, परन्तु उन्हें प्रतिवर्ष अपने कार्यकी रिपोर्ट प्रान्तिक सभाओंको अवश्य करनी चाहिए। भारतवर्षीय सभाको प्रतिवर्ष शुरूमें प्रान्तिक सभाओंके लिए एक कार्य-क्रम तैयार कर देना चाहिए अथवा यों कहिये कि प्रान्तिक सभाओंको आगामी वर्षका कार्य-क्रम निश्चित करके भारतवर्षीय सभाकी मंजूरीके लिए भेजना चाहिए। इसी प्रकार प्राथमिक सभाओंको भी अपने वार्षिक कार्यक्रम पहलेसे ही तैयार करके प्रान्तिक सभाओंको दिखाने चाहिएँ। आय और व्ययके विषयमें प्रत्येक सभाको स्वतन्त्रता होनी चाहिए। तीनों प्रकारकी सभाओंके फण्डोंको मिलाकर एक न करना चाहिए। प्रत्येक सभाको चाहे वह प्राथमिक, प्रान्तिक या भारतवर्षीय हो अपने ख़र्चके लिए धन स्वयं एकत्र करना चाहिए, उसको अपने ही पास रखना चाहिये और आवश्यकताओंके अनुसार खर्च भी स्वयं करना चाहिए; क्योंकि इससे उनको स्वावलम्बनकी शिक्षा मिलेगी और वे जिस संस्थाके अधीन रहकर काम कर रही होंगी उसके लिए भार स्वरूप न हो जायँगी। यदि सब सभाओंके फण्ड मिला दिये जायँगे तो फिर प्राथमिक सभाओंको धन एकत्र करनेके लिए कोई उत्तेजन नहीं मिलेगा; बल्कि वे शिथिल हो जायँगी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और खर्चके लिए प्रान्तिक सभाओंका मुँह ताकेंगी। जो सभा अधिक धन एकत्र करेगी वह धन उसीके पास रहेगा। इससे वह दूसरी सभाओंसे अधिक कार्य करके दिखा सकेगी अथवा अधिक बचत कर सकेगी और दूसरी सभाओंके लिए उदाहरण बन जायगी। आजकल आर्थिक स्वतन्त्रताकी बहुत आवश्यकता है। प्रत्येक सभाको अपने आय-व्ययका हिसाब अपनी वार्षिक रिपोर्टमें अवश्य प्रकट करना होगा। एक नियम यह रक्खा जाय कि प्राथमिक सभाएँ अपनी आमदनीमेंसे एक या दो फी सदी (अधिक नहीं) रुपया प्रान्तिक सभाओंको दे दिया करें। प्रान्तिक सभाएँ इस रुपयेको उन प्राथमिक सभाओंकी सहायता करनेके काममें लाएँ जो धनाभावके कारण टूटती दिखलाई दें। परन्तु यदि ये आर्थिक सङ्कटग्रस्त प्राथमिक सभाएँ अपने आपको दो या तीन वर्षमें न सँभाल सकें तो फिर उनको अधिक सहायता न देकर तोड़ दिया जाय।

इन सभाओंका क्या काम होगा, यह समाजकी आवश्यकताओंपर निर्भर है। यह तो सबको विदित है कि आजकल समाजमें बहुत सी न्यूनताएँ और कमज़ोरियाँ हैं। उन्हींको दूर करना इन सभाओंका कर्तव्य होगा। सभाओंके कामोंके कुछ उदाहरण हम यहाँ देते हैं, परन्तु इस सूचीको पर्याप्त न समझना चाहिये। सब कामोंको आठ भागोंमें विभाजित किया जाता है।

१ साहित्यप्रसार।

आजकल जैनधर्मकी उन्नतिका सबसे बड़ा साधन साहित्योद्धार है। प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थोंके अर्वाचीन पद्धतिसे नये संस्करण प्रकाशित करना, समाचारपत्रों और सामाजिक पुस्तकोंका निकालना, भाण्डारोंमें पड़े हुए जीर्ण ग्रन्थोंका उद्धार और रक्षा करना, नये शास्त्रोंकी खोज करना, मन्दिरों और भाण्डारोंके ग्रन्थोंके सूचीपत्र तैयार करना, देशी, अङ्गरेज़ी तथा अन्य यूरोपीय भाषाओंमें शास्त्रोंका अनुवाद कराना अथवा शास्त्रोंके आधारपर नये नये ग्रन्थ तैयार कराना, शिलालेखोंकी खोज करना और उनको पढ़वाना, जैनोंकी चित्रकारी और मूर्तिनिर्माण-कलाकी खोज करना, इत्यादि अनेक काम बहुत आवश्यक हैं। इस विभागमें दो बातोंपर विशेष रूपसे ध्यान देना चाहिए। जैनोंके इतिहासका संसारको बहुत थोड़ा ज्ञान है। इसलिए ऐतिहासिक सामग्रीको एकत्र करने और ऐतिहासिक लेख और पुस्तकें लिखानेका विशेष प्रयत्न होना चाहिए। इसके अतिरिक्त प्रत्येक प्रान्तिक सभाका यह कर्तव्य होना चाहिए कि वह एक विद्यामन्दिर स्थापित करे जिसमें जैनोंके हस्तलिखित तथा प्रकाशित ग्रन्थोंका बहुत उत्तम संग्रह हो। और इन विद्यामन्दिरोंमें इतनी सुविधा होनी चाहिए कि यदि कोई जैन अथवा अजैन विद्वान् वहाँ रहकर दो चार महीने अथवा इससे भी अधिक समयतक ग्रन्थोंका अध्ययन और कुछ खोज करना चाहें तो कर सकें। इन विद्यामन्दिरोंमें कुछ अजैन ग्रन्थ भी होने चाहिएँ और इनके साथ साथ एक प्रदर्शनी भी होनी चाहिए जिसमें प्राचीन चित्रों, सिक्कों, लेखों इत्यादिका संग्रह हो। चूँकि जैनोंने अपने साहित्यको तालोंमें बन्द रक्खा, इसी कारण संसारके विद्वानोंको जैनधर्मके विषयमें कुछ जानकारी न हो सकी। इसके विपरीत बौद्धोंने अपने साहित्यको दूसरोंके सामने रक्खा और उसे प्रकाशित कराया जिसका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

परिणाम यह हुआ कि आजकल विदेशोंके प्रायः सभी शिक्षित मनुष्य गौतमबुद्धके जीवनचरित्र और उनके धर्मके विषयमें न्यूनाधिक ज्ञान रखते हैं। परन्तु यदि उन्हीं लोगोंसे यह पूछा जाय कि महावीर कौन थे, तो उनमेंसे अधिकांश मनुष्य आश्चर्यचकित होकर मौन धारण कर लेंगे।

२ शिक्षा-प्रचार।

जैन समाजमें साधारण पण्डितों अथवा मुड़िया सराफ़ी जाननेवालोंकी संख्या कितनी ही अधिक हो, परन्तु उसमें उच्च और समयानुकूल शिक्षाप्राप्त मनुष्योंकी संख्या बहुत थोड़ी है। इसलिए अच्छे विद्वानोंको तैयार करनेका भरसक प्रयत्न होना चाहिए। जैनोंकी वर्तमान शिक्षा संस्थाओंमें इस उद्देश्यकी पूर्ति समुचित रीतिसे नहीं हो रही है। इसलिए इसका कुछ प्रबन्ध अवश्य होना चाहिए। ऐसी संस्थाएँ स्थापित होनी चाहिएँ जिनमें शिक्षित नवयुवकोंको विशेष रूपसे तुलनात्मक पद्धतिसे जैनधर्म तथा अन्य धर्मोंकी शिक्षा दी जाय। इस प्रकारका एक विद्यालय बड़ौदा नरेशने अपने राज्यमें हालमें ही खोला है। योग्य नवयुवकोंको छात्रवृत्तियाँ देकर ऐसे विद्यालयोंमें भेजा जाय और उनके लिए अध्ययनकी सब प्रकारकी सुविधाएँ उपस्थित की जायँ। हमको विशेषज्ञ तैयार करनेकी ज़रूरत है। यूनीवर्सिटियोंके पठनक्रममें जैनग्रन्थोंके भरती करनेका प्रयत्न होना चाहिए। इसके साथ प्रारंभिक शिक्षाकी ओरसे भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। प्राथमिक सभाओंका यह कर्तव्य होना चाहिए कि वे नगर तथा आसपासके ग्रामोंमें पाठशालाओंका समुचित प्रबन्ध कर दें जिससे जैनियोंका कोई बालक अथवा बालिका प्रारंभिक शिक्षासे वंचित न रह जाय। इन पाठशालाओंके लिए एकसा पठनक्रम तैयार होना और उसके अनुसार पुस्तकोंका निर्माण होना चाहिए। इसके साथ ही परीक्षाओंका भी प्रबन्ध ठीक ठीक होना चाहिए। पाठशालाके अध्यापकोंको विशेष प्रकारसे तैयार करना चाहिए। संस्कृत और प्राकृतके विद्यालय तथा स्कूल और कालिज भी प्रसिद्ध प्रसिद्ध केन्द्रोंमें खोले जायँ। जैनोंका समाज व्यापार-प्रधान है, इसलिए हमको अपनी शिक्षा संस्थाओंमें व्यापारिक शिक्षाका प्रबन्ध अवश्य करना चाहिए। हमारी समझमें स्कूलों और कालिजोंके अभावमें बड़े बड़े नगरोंमें बोर्डिङ्ग हौस खोलनेसे भी बहुत लाभ हो सकता है। जैन बालक अजैन स्कूलोंमें पढ़ते रहें परन्तु, उनको बोर्डिङ्ग हौसमें धर्म-शिक्षा दी जाय। दूसरा लाभ छात्रालयोंसे यह होगा कि उनमें रहनेवाले छात्रोंको जैनवातावरण मिल जायगा जिससे उनमें अपने सहधर्मियोंके प्रति प्रेम पैदा होगा और जैनधर्मके अध्ययनकी ओर उनकी रुचि बढ़ेगी। आजकल अजैन स्कूलोंमें पढ़नेवाले और अजैन छात्रालयोंमें रहनेवाले विद्यार्थी वर्षोंतक अपने घरोंसे दूर जैनेतर विद्यार्थियोंकी संगतिमें रहकर अपने धर्म और निजत्वको बिलकुल भूल जाते हैं। हमको स्त्री-शिक्षाकी भी किंचित् अवहेलना न करनी चाहिए। स्त्री शिक्षाके विरोधियोंकी संख्या अब प्रायः उँगलियोंपर गिनने लायक रह गई है। सम्पूर्ण शिक्षित समाज स्त्री-शिक्षाके महत्वको समझने लगा है। पाठशालाओंके साथ छोटे छोटे वाचनालयों और पुस्तकालयोंका होना भी आवश्यक है।

३ धर्म-प्रचार।

मुसलमान लोग जब भारत सरकार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से शिक्षा संबन्धी विशेष स्वत्व माँगते हैं तब वे प्रायः यह कहा करते हैं कि मुसलमानोंके प्रत्येक बालकको प्रारम्भमें कुरानका पाठ कराया जाता है इसलिये मुसलमानोंके बालकोंके लिये अधिक मकतब खुलनेकी और स्कूलोंमें भी धार्मिक शिक्षाका विशेष प्रबन्ध होनेकी आवश्यकता है। कुछ समय हुआ यह कहा जा सकता था कि जैनोंके बालकोंको भी पहले पहल पाठशालाओंमें अथवा घरोंपर धार्मिक ग्रन्थ पढ़ाये जाते थे। यह बात अब भी बहुत अंशोंमें सत्य है। ब्राह्मणोंको छोड़कर (जैनेतर) हिन्दुओंकी अन्य जातियोंमें बालकोंको इस प्रकार धार्मिक शिक्षा देनेकी पद्धतिका अब प्रायः लोप हो गया है, परन्तु जैनियोंके यहाँ अब भी इस पद्धतिका बहुत कुछ अनुसरण किया जाता है। यह पद्धति बहुत अच्छी है। ऐसा न हो कि धीरे धीरे इसका लोप हो जाय इसलिए इसपर विशेष जोर देनेकी आवश्यकता है। इस प्रकार जैनधर्मका प्रचार करनेकी सबसे अधिक आवश्यकता जैन बालकोंमें ही है। जैनेतर लोगोंमें व्याख्यानों तथा ट्रैक्टोंके द्वारा जैन धर्मका प्रचार होना चाहिए। जैनधर्म सम्बन्धी छोटी छोटी पुस्तकोंको पढ़े लिखे लोगोंको बिना मूल्य तथा स्वल्प मूल्यमें वितरण करना चाहिये। ईसाई लोग अपने धर्म ग्रन्थ बाइबिलकी प्रतियाँ यूनीवर्सिटीके उत्तीर्ण छात्रोंको बिना मूल्य वितरण किया करते हैं। हमारी समझमें उनका यह काम जैनोंके लिये अनुकरणीय है। तत्वार्थ सूत्र इत्यादि ग्रन्थोंके उत्तम संस्करण अङ्गरेजी अनुवाद सहित प्रकाशित करके उत्तीर्ण छात्रोंको बिना मूल्य बाँटे जायँ। सुयोग्य उपदेशकोंको धर्म प्रचारके लिए ऐसे स्थानोंमें भेजा जाय जहाँ जैन धर्मका प्रचार कम अथवा बिलकुल न हो।

४ तीर्थक्षेत्र-रक्षा ।

अब समाजमें चारों ओरसे यह आवाज उठने लगी है कि नये मंदिरोंके बनवानेमें कोई बुद्धिमानी नहीं है जब कि वर्त्तमान मन्दिरोंको भी सुरक्षित रखनेका ठीक प्रबन्ध नहीं हो सकता। इसलिए नये मन्दिरोंके बनानेमें अपनी शक्तिको न खोकर हमको वर्त्तमान तीर्थ क्षेत्रोंकी रक्षा करनी चाहिये। इतिहासज्ञोंका विश्वास है कि कितने ही प्राचीन जैन तीर्थोंके स्थानोंपर अब केवल भग्नावशेष रह गये हैं और कितने ही प्राचीन जैन स्तूप और मन्दिर पृथ्वीके गर्भमें छिपे पड़े हैं। इनकी खोज अवश्य करनी चाहिए क्योंकि ये हमारे प्राचीन गौरवके स्मारक हैं। खोजका यह कार्य परमावश्यक है।

५ कुरीति-निवारण ।

जैनोंकी प्रत्येक जातिमें कुरीतियोंकी भरमार है। कुरीतियों और रूढ़ियोंसे बढ़कर समाजकी उन्नतिको रोकनेवाली कोई दूसरी चीज नहीं है। इसलिए इनका जितनी जल्दी मुँह काला किया जाय उतना ही अच्छा है। बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, अनमेल विवाह, कन्या विक्रय, सप्त व्यसनोंका प्रचार, विवाहादिमें अपव्यय, इत्यादि कितनी ही बातें समाजमें प्लेग और हैजेका काम कर रही हैं। जैन नवयुवकोंके लिए कुरीतियोंको दूर करनेसे अधिक श्रेयस्कर कार्य दूसरा नहीं हो सकता।

६ सामाजिक कुशल ।

समाजमें कुरीतियोंके अतिरिक्त कितनी ही बातें ऐसी आ गई हैं जिनके कारण दुःखकी वृद्धि हो रही है। हमारी जनसंख्या बड़ा शीघ्रताके साथ घट रही है। (देखिए अबकी मर्दुमशुमारीमें खैर रहती है या नहीं।) कितनी ही जातियाँ ऐसी हैं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिनमें मनुष्योंकी संख्या बहुत थोड़ी रह गई है और इसलिए उनमेंसे प्रत्येक जातिके मनुष्योंमें परस्पर विवाह सम्बन्ध होना प्रायः असम्भव हो गया है। कितनी ही जातियोंमें कुमारोंकी अपेक्षा कुमारियाँ कम हैं, जिससे कितने ही कुमार अविवाहित रह जाते हैं। विधवाओंकी संख्या भी समाजमें कम नहीं है। अनेक विधवाओंकी दशा ऐसी है कि वे दिन भर परिश्रम करनेपर भी अपने निर्वाहके लिए काफी नहीं कमा सकतीं और घोर यातनाएँ सहती हैं। विधवाओंके निर्वाह और शिक्षाका समुचित प्रबन्ध होना चाहिए। यद्यपि जैनोंकी आर्थिक अवस्था कई अन्य समाजोंसे अच्छी है तथापि इसमें अभी बहुत कुछ उन्नति हो सकती है। व्यापारको उन्नति दी जाय और नये नये कारखाने खोले जायँ। जैनोंकी कुछ जातियाँ तो नितान्त निर्धन हो गई हैं। उनकी दरिद्रताको दूर करना हमारा परम कर्तव्य होना चाहिए।

७ सेवा।

समय इस बातको माँग रहा है कि जैनोंके भिन्न भिन्न संप्रदाय और जातियाँ अपने पहले वैमनस्यको छोड़कर परस्पर एक दूसरेके साथ सहानुभूति रक्खें और प्रेम करें। तीर्थ क्षेत्रोंपर जो झगड़े हो रहे हैं उनका शीघ्र ही निबटेरा कर लें। सभाओंको स्वयं-सेवक तैयार करने चाहिएँ जो तीर्थ क्षेत्रोंके मेलों और सभाओंके उत्सवोंपर प्रबन्धका कार्य कर सकें। विधवाओं और अनाथोंको उनके घरोंपर ही अथवा विधवाश्रम और अनाथालय खोलकर सहायता पहुँचाई जाय। औषधदान इत्यादिका प्रबन्ध किया जाय। आपसके झगड़ोंका फैसला करनेके लिए पञ्चायतें स्थापित की जायँ।

८ राजनैतिक प्रगति।

सरकारसे अपने स्वत्व लिये जायँ और अन्य जातियोंके विरुद्ध अपने स्वत्वोंकी रक्षाके लिए आन्दोलन किया जाय और अपनी मानहानिको रोका जाय। देशके अन्य राजनैतिक आन्दोलनोंमें भी पूरा भाग लिया जाय।

भारतवर्षीय सभा और प्रान्तिक सभाओंमें ये सब विभाग होने चाहिएँ। प्राथमिक सभाएँ अपनी अपनी शक्तियोंका काम अपने हाथमें लें। छोटी छोटी सभाओंके लिए सब विभागोंका काम करना बहुत कठिन अथवा असम्भव होगा; इसलिए उनको अपनी शक्तिको इसमेंसे उतने ही विभागों पर खर्च करना चाहिए जिनका वे उत्तम रीतिसे प्रबन्ध कर सकें अथवा जिनको वे स्थानीय परिस्थितियोंके अनुसार अधिक आवश्यक समझती हों।

जो कुछ ऊपर लिखा गया है उससे यह अभिप्राय नहीं है कि हमको अपनी वर्त्तमान सभाओं और संस्थाओंको तोड़कर नये सिरेसे काम करना चाहिए। छोटी छोटी सभाएँ अब भी कितने ही नगरोंमें हैं। वे ही प्राथमिक सभाएँ हो सकती हैं। जिन नगरोंमें इस समय सभाएँ नहीं हैं, उनमें सभाएँ स्थापित करनेका उद्योग हो सकता है। बड़े बड़े नगरोंमें कई सभाएँ होनेमें भी कुछ हर्ज नहीं है। वर्त्तमान समयमें कई प्रान्तिक सभाएँ भी मौजूद हैं। इनमें आवश्यक सुधार किया जाय और शेष प्रान्तोंमें नई सभाएँ स्थापित की जायँ। यह आवश्यक नहीं है कि वर्त्तमान राजनैतिक प्रान्तोंके अनुसार ही प्रान्तिक सभाएँ स्थापित हों। बल्कि हमको अपने प्रान्त तो भाषा और जनसंख्याके अनुसार बनाने चाहिएँ। जितने क्षेत्रमें एक प्रकारकी भाषा बोली

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाती हो उसके लिए एक प्रान्तिक सभा बना देनी चाहिए। यदि वह क्षेत्र बहुत बड़ा हो अथवा उसकी जनसंख्या बहुत हो तो उस क्षेत्रको दो या अधिक प्रान्तोंमें विभाजित कर दिया जाय। इस समय ऐसी भी कुछ सभाएँ हैं जो भारतवर्षीय होनेका दावा करती हैं। यह भी विदित है कि इनका काम सन्तोषजनक नहीं है। इसलिए इनमें आवश्यक सुधार किया जाय और इनको मिलाकर एक सभा बना दी जाय। इस सभाके सदस्य बड़े अनुभवी और योग्य होने चाहिएँ। चूँकि भिन्न भिन्न प्रान्तोंमें भिन्न भिन्न भाषाएँ होंगी इसलिए समस्त भारतीय सभाको अपना कुछ काम अँगरेज़ीमें भी करना होगा। इसके अतिरिक्त विदेशी शाखाओं-के लिए भी उसे विदेशी भाषाओंमें काम करना होगा। किन्तु सभाका और सब कार्य हिन्दी भाषामें ही होना चाहिए। वर्त्तमान समयमें जैनोंकी जो अनेक बड़ी बड़ी जातीय सभाएँ जैसे जैसवाल सभा, परवार सभा इत्यादि कायम हैं उनको भी तोड़नेकी आवश्यकता नहीं। इनमेंसे कुछ सभाएँ तो अपने कार्य-क्षेत्रको कुछ ही बढ़ाकर प्रान्तिक सभाएँ बन सकती हैं, अथवा उनके अन्तर्गत हो सकती हैं, क्योंकि कितनी ही जातियाँ इस समय ऐसी हैं जो समस्त भारतवर्षमें फैली हुई नहीं हैं, किन्तु किसी एक प्रान्तमें ही सीमाबद्ध हो रही हैं। शेष सभाएँ जो उन जातियों-से सम्बन्ध रखती हैं जो अनेक प्रान्तों अथवा समस्त भारतवर्षमें फैली हुई हैं, भारतीय सभाका अंग अथवा विभाग बन सकती हैं। देशमें कुछ ऐसी भी बड़ी जातीय सभाएँ हैं जिनमें जैन और अजैन दोनों ही वर्गके लोग सम्मिलित हैं; जैसे वैश्य महासभा। ये सभाएँ हमारी व्यवस्था-के बाहर हैं, परन्तु भारतवर्षीय जैनसभा-को ऐसी सभाओंकी कार्रवाइयोंकी पूरी पूरी ख़बर रखनी और उनसे अपना सम्बन्ध भी बराबर कायम रखना चाहिए। ऐसी सभाओंके जैन सदस्योंको भी अपने आपको जैन सभाओंका प्रतिनिधि समझना चाहिए और जैनसभाओंकी आवाज़-को वहाँतक पहुँचाना चाहिए। इस समय जैन पब्लिककी ओरसे जो बड़ी बड़ी शिक्षा संस्थाएँ या ग्रन्थ प्रकाशिनी संस्थाएँ कायम हैं वे भारतवर्षीय अथवा प्रान्तीय सभाओंसे अपना सम्बन्ध जोड़ लें। उनके नाम ज्योंके त्यों रहें, उनका फण्ड भी बिलकुल अलग रहे, वे अपने लिए धन एकत्र करनेका प्रयत्न जैसे अब कर रही हैं वैसे ही अलग करती रहें वे अपना काम भी बदस्तूर करती रहें, परन्तु उन-को किसी प्रान्तिक अथवा भारतवर्षीय सभाके अन्तर्गत होना चाहिए। उसी सभाद्वारा ऐसी संस्थाओंकी प्रबन्ध-कारिणी कमेटीके मेम्बरोंका चुनाव हो अथवा कमसे कम उस सभाकी ओरसे दो एक मेम्बर उनकी प्रबन्धकारिणी कमे-टियोंमें हों। इससे कई लाभ होंगे। आज-कल कुछ संस्थाओंकी कमेटियोंके सभा: पति अपनी धींगाधींगीसे अपने भक्तोंको ही मेम्बर बना लेते हैं और फिर मनमाना गोलमाल किया करते हैं और उन संस्थाओंको निजी सम्पत्ति समझने लगते हैं। ऐसी कमेटियाँ पब्लिककी वास्तविक प्रतिनिधि नहीं हैं। इन कमेटियोंकी अनु-चित कार्रवाइयोंके विरुद्ध पब्लिक अपनी आवाज़ उठाती है और उनको बुरा भला कहती है, परन्तु कुछ कर नहीं पाती, क्योंकि स्याह और सफ़ेद करनेकी सारी शक्ति और सारा अधिकार तो उन कमेटियों और इसलिए उनके सभापति-योंके अधिकारमें होता है। सभापति महोदय अपनी कमेटी और तत्सम्बन्धी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संस्थाकी बागडोर चाहे जिधरको फेरते रहते हैं और बेचारी पब्लिक कमेटीके ऐसे मेम्बर जो सभापतिके अनन्य भक्त नहीं होते, दाँत पीस पीसकर रह जाते हैं। ऐसी ही एक दुःखपूर्ण घटना कुछ महीने हुए, हमारी एक बड़ी भारी संस्थामें हुई थी। हमने अपनी आँखोंसे देखा था। बड़ी सभाओंके अधीन रहकर ऐसी अनुचित और अन्यायपूर्ण बातें न हो सकेंगी। दूसरा लाभ यह होगा कि चूँकि भारतवर्षीय सभा अथवा प्रान्तिक सभाएँ देशकी अथवा अपने प्रान्तोंकी हालतको खूब अच्छी समझे हुए होंगी और उनको कुछ विदेशी संस्थाओंका भी अनुभव होगा, इसलिए वे इन संस्थाओंके कार्यक्रमके विषयमें उनकी कमेटियोंको अपनी बहुमूल्य सम्मति दे सकेंगी कि कहाँ पर कैसी संस्थाकी आवश्यकता है और प्रत्येक संस्थाका कार्यक्षेत्र और दूसरी संस्थाओंसे उनका सम्बन्ध क्या होना चाहिए। इससे समाजकी शक्ति और धनका अपव्यय न होगा और काम भी अच्छा हो सकेगा। तीसरा लाभ यह होगा कि आवश्यकता पड़ने पर ये सभाएँ संस्थाओंकी सहायता भी कर सकेंगी। एक और लाभ यह होगा कि इस प्रकार एक बड़ी सभाके अधीन रहकर इन संस्थाओंमें मज़बूती आ जायगी।

अब रहीं ऐसी संस्थाएँ जो पब्लिककी ओरसे नहीं हैं किन्तु किसीकी निजी सम्पत्ति हैं। उन संस्थाओंको सभाओंकी अधीनतामें रहकर काम करनेकी आवश्यकता नहीं। वे स्वतन्त्र रूपसे अपना काम करती रहें। परन्तु उनके स्वामियोंको यह अवश्य चाहिए कि वे भारतीय सभासे परामर्श लेते रहें, देश और समाजकी आवश्यकताओंको समझते रहें और तदनुसार कार्य्य करते रहें, जिससे समाजकी शक्तिका कोई अंश वृथा नष्ट न हो।

अब एक और समस्या बाकी रह जाती है। वह यह कि जैनसमाज तीन मुख्य सम्प्रदायोंमें और फिर अनेक उपसम्प्रदायोंमें विभाजित है। इस विषयमें हम यही कहेंगे कि तीनों सम्प्रदायोंको अपना अपना सङ्गठन अलग करना चाहिए। तीनोंकी अलग अलग प्राथमिक, प्रान्तिक तथा भारतवर्षीय सभाएँ हों। क्योंकि इस वर्तमान समयमें यह कभी आशा नहीं कर सकते कि तीनों सम्प्रदाय अपने भेदभावको छोड़ देंगे, अपने शास्त्रोंको एक कर लेंगे और धर्मसाधनका वही एक मार्ग ग्रहण कर लेंगे जो भगवान् महावीरने बतलाया था। वर्तमानमें इस बातकी आशा करना आकाश-पुष्पकी प्राप्तिके उद्योग करनेके समान है। यदि किसी बातमें तीनों सम्प्रदाय मिल सकते हैं तो वह जातीय सुधार है। तीनों सम्प्रदायोंके भेदभावको दृष्टिमें रखते हुए भी भारतवर्षीय सभाओंको एक दूसरेके साथ पूरी पूरी सहानुभूति रखनी चाहिए और कुछ ऐसे कार्य्य मिलकर करने चाहिएँ जिनमें परस्पर मतभिन्नता बिलकुल न हो, अथवा कम हो। यदि हो सके तो दो या तीन वर्षमें एक बार तीनों भारतवर्षीय सभाओंका एक बृहद् सम्मेलन हो जाया करे। उपसम्प्रदायोंको तो अपने तुच्छ भेदोंकी उपेक्षा करके अवश्य ही मिलकर काम करना चाहिए। यदि वे अपनी अपनी खिचड़ी अलग पकावेंगी तो समझ लीजिये कि कुछ दिनोंमें जैन-समाजका संसारसे अस्तित्व ही उठ जायगा।

यहाँपर यह शंका हो सकती है कि संगठनकी जो पद्धति या व्यवस्था ऊपर बताई गई है वह कागज़पर लिखी हुई तो बहुत अच्छी मालूम होती है, परन्तु उसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्यवहारमें लाना असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य है। इसका हम यही उत्तर देंगे कि ऐसे कामोंमें सदा कठिनाईका सामना करना पड़ता है और बहुत समय लगता है। उद्योग-धन्धोंके वर्तमान संगठनमें ही पाश्चात्य देशोंमें न जाने कितनी कठिनाइयाँ हुईं और कितने वर्ष लगे। परन्तु कठिनाइयोंसे डरना न चाहिए। अपने लक्ष्यपर दृष्टि रखकर दृढ़ताके साथ काम किये जाना चाहिए। अनेक अभिमानी और विमूढ़ मनुष्य इस प्रकारके संगठनका अर्थ न समझेंगे और इस संगठनसे होनेवाली धार्मिक और सामाजिक उथल-पुथलका चिन्तवन करके घबरायँगे, परन्तु हमको उन्हें धीरजके साथ समझाना पड़ेगा। कितनी ही कमेटियोंके सभापति अपने अधिकारोंमें कमी होते हुए देखकर और अपने एकछत्र राज्यमें विघ्न आते हुए जानकर इस संगठनका तीव्र विरोध करेंगे, परन्तु हमको उनका सामना करनेके लिए जनताके विचारोंको बदलना होगा और लोकमतको अपने पक्षमें करना होगा। याद रखिये कि लोकमतमें इतनी बड़ी शक्ति है कि उसके सामने कोई विरोध नहीं ठहर सकता। यदि समाज एक स्वरसे यह कहेगा कि हे धनी मानियो, नामके भूखो, आँखों पर स्वार्थकी पट्टियाँ बाँधनेवालो, भोले भाले समाजको बहकानेवालो, हमारी अधीनता स्वीकार करो अन्यथा अपने पदको खाली कर दो, तो क्या मजाल है कि वे फिर चूँ भी कर सकें। यदि समाज सम्मिलित कंठसे यह आवाज उठावेगा कि हे छद्मवेषियो, अपने आपको महावीर स्वामीके पट्टाधिकारी समझनेवालो, जिनवाणीको कैद करके संसारको सत्यसे वंचित रखनेवालो, हमारे प्राचीन गौरव को चूहों और दीमकोंके उदरमें भरनेवालो, अपनी आनी शास्त्र राशियोंको हमारे हवाले कर दो और सत्यके प्रकाशनमें हमारा हाथ बटाओ, तो क्या वे समाजकी आज्ञाका पालन न करेंगे? जो कुछ अनुचित कार्य, जो कुछ अत्याचार, जो कुछ गोल-माल समाजमें हो रहा है, उसके कारण हम ही हैं। हम ही इन भयंकर कार्रवाइयोंको जायज़ रखते और समाजके कुछ मनुष्योंको समाज-हितपर कुठाराघात करनेकी आज्ञा देते हैं। दीमकों और चूहों अथवा अधिकारियोंके सिर व्यर्थ ही दोष मढ़ा जाता है, क्योंकि जिनवाणीके भक्षक हम ही हैं।

लोकमतको बदलनेके लिए बड़े भारी आन्दोलनकी आवश्यकता है। यह आन्दोलन कमसे कम एक वर्षतक बड़े जोरके साथ होना चाहिए और फिर इसे उस समयतक जारी रखना चाहिए जबतक कि हमको अपने अभीष्टकी सिद्धि प्राप्त न हो जाय। चूँकि यह लेख जैनोंके तीनों सम्प्रदायोंपर एकसा लागू होता है इसलिये तीनों सम्प्रदायके पत्र-सम्पादकोंसे हमारा निवेदन है कि वे अपने अपने पत्रोंमें इसे स्थान दें और इस विषयपर समाजके विद्वानोंके विचारोंको प्रकाशित करें और सङ्गठनकी युक्तियोंको सोचें।*

ज़माना बदल रहा है।

(ले० पं० नाथूरामजी प्रेमी।)

नया जमाना अपने आगमनकी सूचना दे चुका है। जिनके आँखें हैं और जो अपनी आत्माको धोखा नहीं देना चाहते वे प्रत्येक समाजके, प्रत्येक संस्थाके और प्रत्येक कार्यके 'साइनबोर्ड'पर इस

---

* लेखकके प्रेरणानुसार 'जैसवाल जैन' से उद्धृत।

—सम्पादक।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सूचनाके अक्षरोंको बड़ी स्पष्टताके साथ लिख हुआ देख रहे हैं, और जो अपनी अपरिष्कृत धुँधली दृष्टिके कारण नहीं देख सकते हैं अथवा देखकर भी नहीं देखना चाहते, वे अनतिदूर भविष्यमें देखनेके लिए बाध्य होंगे। यह सम्भव है कि वे इस नये जमानेका स्वागत न करें और गतानुगतिकताके गीत गाते गाते ही अपना जीवन समाप्त कर दें। परन्तु फिर भी नया जमाना आवेगा और उसका अस्तित्व उसके विरोधियोंको भी स्वीकार करना पड़ेगा। यह आगमन उतना ही सत्य और ध्रुव है जितना स्वयं हमारा अस्तित्व।

हमारे मित्रोंकी शिकायत है कि जैन-समाजकी गति बहुत ही धीमी है—वह अफीमचीकी 'दिन भर चले अढ़ाई कोस' वाली कहावतको चरितार्थ करता है और इस कारण ये उतावले पथिक इसके साथ कदम मिलाकर नहीं चल सकते—या तो इससे बहुत आगे बढ़ जाते हैं या फिर उदास होकर निष्कर्मा बन जाते हैं। उनकी यह शिकायत किसी दर्जे तक ठीक है। अशिक्षा, कूपमण्डूकता, गतानुगतिकता और कट्टरतामें यह समाज इतना बढ़ा चढ़ा है और इन बोझोंके कारण वह इतने धीरे धीरे कदम रखता है कि उसे देखकर बड़ेसे बड़े धीरोंका भी धीरज हाथसे छूट जाता है। परन्तु फिर भी यह निश्चय है कि वह—मन्दगतिसे ही क्यों न हो—आगे बढ़ रहा है और नये जमानेके स्वागतकी तैयारी कर रहा है।

हम कुतूहलके साथ देख रहे हैं कि हमारे यहाँ कुछ लोग एक ऐसी शक्ति सङ्गठित करनेमें लगे हुए हैं जो इस तैयारीको रोक दे; और कुछ लक्षणोंसे बहुतसे ऊपरी दृष्टिवालोंको ऐसा जान पड़ता है कि यह शक्ति थोड़े ही समयमें बहुत बलवती हो जायगी। परन्तु जो लोग प्रगतिके रहस्यको जानते हैं, उनकी दृष्टिमें इस शक्तिका सङ्गठन अवश्यम्भावी ही नहीं किंतु आवश्यकीय भी है। शुरू शुरूमें हमें ऐसा भी मालूम हो सकता है कि इस शक्तिने नये जमानेके स्वागतके मार्गको बहुत ही कंटकाकीर्ण बना दिया; परन्तु अन्तमें यही शक्ति इस नये जमानेकी रफ़्तारको बढ़ानेमें सहायक होगी और उसके बिछाये हुए कंटक उसके लिए कोमल फूल सिद्ध होंगे।

जैन समाजकी धीमी चाल तब तक तेज नहीं हो सकती जब तक कि यह नवीन सङ्गठन उसको और भी मन्द करनेका प्रयत्न न करे। चालको बढ़ानेके लिए एक प्रतिस्पर्धी अवश्य चाहिए। इसके बिना न उत्साह बढ़ता है और न उद्योग। अतएव हमें अपने इस प्रतिस्पर्धी सङ्गठनके कारण चिन्तित न होकर प्रसन्न ही होना चाहिए।

हमारा यह प्रतिस्पर्धी दल कहता है कि खबरदार, आगे एक पैर भी नहीं रखना। जो कुछ अच्छा, अनुकरणीय, आचरणीय और विचारणीय था, उसे तुम पीछे छोड़ आये हो। यदि पीछे नहीं लौट सकते हो तो न सही, पर आगे तो मत बढ़ो। वर्तमान दुनियाके ज्ञान विज्ञान, बड़े ख़तरनाक हैं। इनसे तुम्हारा कल्याण नहीं हो सकता। ये बुरे हैं या भले, यह जाननेके लिए भी इनको जाननेका प्रयत्न मत करो। इन्हें तुमने जाना कि बस भ्रष्ट होनेमें देर नहीं लगेगी। इस बातका स्वप्नमें भी ख़याल मत करो कि हमारी वर्तमान शोचनीय अवस्थाके कारण हमारे कोई परम्परागत रीति-रवाज या आचार-विचार भी हो सकते हैं और इसके लिए उनमें कुछ संशोधन करनेकी जरूरत है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हमारे शास्त्रकार—यहाँतक कि पिछले भट्टारक और पण्डित तक—सर्वथा निर्भ्रान्त थे। उनके लिखे हुए ग्रन्थोंके विरुद्ध एक अक्षरका उच्चारण करना भी महापाप है। उन्हें बिना चूँचपड़ किये चुपचाप मानते रहो। हमारे धर्म और हमारे आचारों विचारोंका सदासे यही रूप था जिसे हम देख रहे हैं। उनमें ज़रा भी परिवर्तन नहीं हुआ है। सर्वज्ञ भगवानके वचन इसी रूपमें निर्गत हुए थे।

परन्तु नया ज़माना कहता है कि गति ही मनुष्यका और उससे बने हुए समाजका जीवन है। संसारमें कोई चीज़ स्थिर नहीं है। उसमें प्रतिसमय परिवर्तन हुआ करते हैं। जो कुछ हम पीछे छोड़ आये हैं, उसमें यदि बहुत सी बातें अच्छी, अनुकरणीय और आचरणीय थीं, तो बहुत सी बुरी और हेय भी थीं। इसी तरह इस समय यदि बहुत सी बातें बुरी और हेय हैं तो बहुत सी अच्छी और अनुकरणीय भी हैं। पीछे तो हम किसी तरह लौट ही नहीं सकते, आगे बढ़ना ही पड़ेगा। हाँ, हम यह ख़याल रक्खेंगे कि आँख बन्द करके न बढ़ें—सदसद्विवेक बुद्धिको तिलांजली देकर न बढ़ें। वर्तमान समयके ज्ञान विज्ञान एक दृष्टिसे खतरनाक हैं तो एक दृष्टिसे कल्याणकर भी हैं। हम उनका अध्ययन करेंगे, मनन करेंगे और उनसे जितना लाभ उठाया जा सकता है उतना उठावेंगे। तुम्हारे समान कूपमण्डूक बनकर हम उनको दिल्लगीमें नहीं उड़ा सकते। हमारे सामने संसारका और स्वयं हमारा इतिहास मौजूद है। वह बतलाता है कि हम अपनी रूढ़ियों और अनेक परम्परागत विचारोंके कारण भी बहुत अधिक बरबाद हुए हैं। अतएव उनमें विचार-पूर्वक संशोधन करनेकी सम्मतिको हम कभी अमान्य नहीं ठहरा सकते। सच्चे और त्रिकालाबाधित सत्योंके निरूपण करनेवाले शास्त्र हमारे लिए शिरसावन्द्य हैं; परन्तु हम इतने 'बुद्धू' नहीं हैं कि चाहे जिसके लिखे हुए पोथोंको भगवानकी वाणी समझकर नाचने लगें। हम उनको बुद्धिकी—न्यायकी—कसौटी पर कसेंगे और जो इस परीक्षामें सत्य सिद्ध होंगे उन्हें ही ग्रहण करेंगे और संसारको दिखलावेंगे कि हम यन्त्रचालित मनुष्य नहीं, किन्तु सच्चे मनुष्य हैं। हजारों वर्षोंके ज़मानेके थपेड़ोंने और संसारकी उथल-पुथल करनेवाली अवस्थाओंने हमारे धर्म और हमारे आचारों विचारोंमें बहुत ही बड़े बड़े परिवर्तन कर दिये हैं। हम प्रयत्न करेंगे कि हम अपने धर्मको उसी रूपमें देख सकें जिस रूपमें वह जगत्पूज्य परम कारुणिक भगवान् महावीरके समयमें था।

नये ज़मानेके आगमनकी सूचना देनेवाले ये विचार अब जगह जगह प्रकाशित होने लगे हैं और आगे और भी अधिक स्पष्टताके साथ प्रकाशित होंगे। जो लोग यह समझते हैं कि ये थोड़ेसे विकृत मस्तिष्कोंके ही आविष्कार हैं, सारा समाज इनसे घृणा करता है, वे या तो समाजसे परिचित नहीं हैं या उनकी बुद्धि उन्हें धोखा दे रही है।

जैन समाज इन नये विचारोंकी हवासे बच भी कैसे सकता है? यदि वह सारी दुनियाँसे अलग, किसी एक बड़े परकोटेके भीतर, बन्द रहता और बाहरसे उसका कोई सम्पर्क न होता तो शायद ऐसा सम्भव था। परन्तु वह भी तो संसारके साथ रहता है, संसारकी गति, संसारके विचार और संसारके परिवर्तन देखने, सुनने और अनुभव करनेके लिए उसकी इन्द्रियोंके द्वार भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो खुले हुए हैं। फिर वह नये ज़मानेकी हवासे बच ही कैसे सकता है? दो चार नये विचारोंके पत्रोंका, या नये विचारवालोंका बहिष्कार तो ख़ैर किसी तरह सम्भव भी है; परन्तु क्या जैनसमाज सारे संसारके सम्पर्कका भी बहिष्कार कर सकता है?

नये ज़मानेकी यह सूचना अब हमें महासभा, प्रान्तिक सभाओं और विविध जातीय सभाओंके अधिवेशनोंपर अधिकाधिक स्पष्टतासे मिलने लगी है। अब शायद ही किसी बड़ी सभाका ऐसा अधिवेशन होता हो जिसमें नये और पुराने विचारोंके सङ्घर्षका शब्द न सुन पड़ता हो। अब प्रायः प्रत्येक अधिवेशनके सभापतिको संकटका सामना करना पड़ता है। केशाकेशी या मुष्टामुष्टीकी नौबत अभीतक नहीं आई है; परन्तु वाचावाची, गालागालीका प्रदर्शन तो अक्सर हो जाया करता है।

यद्यपि अबकी दि० जैनमहासभाके सभापतिका व्याख्यान बहुत ही 'माडरेट' हुआ है, उसमें विचारोंको बहुत कुछ संयत और बहुजनसमाजके अनुकूल बनानेका प्रयत्न किया गया है, फिर भी उसमें नये ज़मानेके स्वागतसूचक विचारोंका सर्वथा बहिष्कार नहीं किया जा सकता। महासभाके द्वारपरसे छापेका कड़ा पहरा उठा देनेकी उसमें साफ़ सम्मति दी गई है, बल्कि महासभाके इस पुराने पहरेके फलको बिल्कुल बेवक़ूफ़ीका ठहरा दिया है। दिगम्बर-श्वेताम्बरोंके तीर्थ क्षेत्र-सम्बन्धी झगड़ोंका भी उसमें निषेध किया है। और बड़ी बात यह हुई कि सभापति महाशयने बहिष्कारके लिए जैनहितैषीकी सिफ़ारिश नहीं की और शायद इसी कारण पण्डित दलके लोगोंने कानपुरके अधिवेशनके एक ही महीने बाद, उड़ेसरके मेलेमें, महासभाका और एक अधिवेशन, कुछ इनेगिने लोगोंके बीचमें कर डाला और कानपुरमें जो बहिष्कार आदिके प्रस्ताव न हो सके थे, उन्हें पास कर डालनेकी बुद्धिमानी दिखलाई।

बड़ा भारी गज़ब यह हुआ कि महासभाकी सब्जेक्ट कमेटीमें दो स्त्रियाँ चुन ली गईं। इस पर पुराने दलने बड़ा ऊधम मचाया और यद्यपि उसके भयसे अन्तमें दूसरा चुनाव करना पड़ा, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि पहला चुनाव नये ज़मानेके आगमनकी स्पष्ट सूचना है। रामटेककी परवार महासभाकी सब्जेक्ट कमेटीमें भी इसी तरहका स्त्रियोंको मेम्बर बनानेका प्रस्ताव उपस्थित हुआ था और वहाँ भी यही दशा हुई थी। कलकत्तेकी खण्डेलवाल महासभाके अधिवेशनतकमें नये और पुराने विचारोंके सङ्घर्षकी बिजली थोड़ी देरके लिए कौंध गई थी। उसके सभापति महाशयने तो बहिष्कृत जैनहितैषीकी प्रशंसा तक कर डाली थी।

स्वयं पण्डित मण्डलीतकके कार्योंमें यह नये ज़मानेके आगमनकी सूचना झलकने लगी है। हमारे अनेक पण्डित मित्र जैनहितैषीके विचारोंके पुरस्कर्ता हैं, यद्यपि अभी उनमें इतना साहस नहीं है कि वे समाजके सामने स्पष्ट हो जायँ। अभी दक्षिणके एक धुरन्धर पण्डितने जैनहितैषीको ३०) तीस रुपयेकी सहायता भेजी है, जिसे हम बहुत ही बहुमूल्य समझते हैं।

इधर देशपूज्य महात्मा गांधीके अनुयायियोंकी संख्या जैनसमाजमें बेतरह बढ़ रही है। कट्टरसे कट्टर जैन पत्रोंके कालम उनके प्रशंसनीय कार्योंके समाचारोंसे भरे रहते हैं और मजा यह है कि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गांधीजी मनुष्य जातिमें नीच ऊँच, स्पृश्य अस्पृश्य आदि कृत्रिम भेदोंको नहीं मानते, उन्हें मिटा डालनेकी घोषणा करते हैं। साथ ही वे विधवा-विवाह और असवर्ण-विवाहके भी अनेक अंशोंमें पोषक हैं।

गरज़ यह कि नया ज़माना धीरे धीरे बढ़ता आ रहा है और हम भी ज्ञाताज्ञात भावसे उसकी तरफ़ बढ़े जा रहे हैं। हमें आशा करनी चाहिए कि इसका आगमन हमारे लिये कल्याणप्रद होगा।

जैनसमाजके शिक्षित नवयुवकोंको इस आगमनकी सत्यतापर विश्वास रखना चाहिए और उसके स्वागतके लिए अपने आलस्य, औदासीन्य, और भयको तिलांजलि देकर मैदानमें आना चाहिए।

वैशाख सुदी १४।

विधवा-विवाहका कानून।

[हिन्दू विधवाओंके विवाहको न्यायानुमोदित बनानेके लिए सरकारने, सन् १८५६ में, जो कानून पास किया था उससे साधारण जनता बहुत ही कम परिचित बल्कि यों कहिये कि अपरिचित मालूम होती है। यही वजह है कि वह उससे यथेष्ट लाभ नहीं उठा रही है—लोग अपने विचारोंको कार्यमें परिणत करते हुए डरते हैं—और न किसीने उस कानूनका विरोध कर अब तक उसे मन्सूख (रद) ही कराया है। आज हम उस कानूनका हिन्दी अनुवाद अपने पाठकोंके परिचयार्थ नीचे प्रकाशित करते हैं। आशा है, इसे पढ़कर अनुकूल और प्रतिकूल विचारके सभी पाठक कुछ न कुछ लाभ उठावेंगे।

नाथूराम प्रेमी।]

ऐक्ट नं० १५ सन् १८५६

हिन्दू विधवाओंके विवाहकी कानूनी रुकावटोंको दूर करनेके लिए कानून।

उपोद्घात।

चूँकि यह मालूम है कि, उस कानूनके अनुसार जो उन देशोंकी दीवानी अदालतोंमें प्रचलित है जो ईस्ट इण्डिया कम्पनीके अधिकारमें और उसके शासनाधीन हैं, हिन्दू विधवाएँ कुछको छोड़कर, एक बार विवाह हो जानेके कारण, दूसरा न्यायानुमोदित विवाह करनेके अयोग्य ठहराई गई हैं, और ऐसी विधवाओंकी सन्तानें जो किसी दूसरे विवाहसे उत्पन्न हुई हों हरामी और वर्सा पानेके (दाय भागके) अयोग्य करार दी गई हैं; और चूँकि बहुतसे हिन्दुओंका यह विश्वास है कि यह कानूनी रुकावट प्रचलित रिवाजके अनुकूल होने पर भी उनके धर्मशास्त्रोंके सच्चे अभिप्रायके अनुकूल नहीं है, और वे चाहते हैं कि सरकारी न्यायालयोंमें प्रचलित कानून भविष्यमें उन हिन्दुओंको एक भिन्न प्रथाके अङ्गीकार करनेसे न रोके जो कि अपने अन्तःकरणकी आवाजके अनुकूल वैसा करना चाहें; और चूँकि ऐसे समस्त हिन्दुओंको कानूनी रुकावटसे, जिसकी वे शिकायत करते हैं, बचाना न्याय्य है, और चूँकि हिन्दू विधवाओंके विवाहकी कानूनी रुकावटोंको दूर कर देना सदाचारकी वृद्धि और सार्वजनिक हितका साधक होगा; अतः निम्नलिखित कानून पास किया जाता है:—

हिन्दू विधवाओंका विवाह कानूनी तौरपर उचित है।

धारा १—हिन्दुओंमें कोई विवाह-सम्बन्ध, सिर्फ़ इस वजहसे अनुचित न समझा जायगा कि स्त्रीकी शादी या सगाई (मँगनी) पहले किसी दूसरे पुरुषके साथ हो चुकी है जो इस पुनर्विवाहके समय जीवित नहीं था, और न इस तरहके पुनर्विवाहसे उत्पन्न हुई सन्तान हरामी करार दी जायगी; कोई रीति-रिवाज और हिन्दू धर्मशास्त्रका कोई अर्थ जो इसके विरुद्ध हो, मान्य नहीं होगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुनर्विवाह पर उन अधिकारोंकी परिसमाप्ति जो विधवा मृत पतिकी सम्पत्ति पर रखती है।

धारा २—जो जो स्वत्व और अधिकार (rights & interests) कोई विधवा अपने मृत पतिकी जायदाद (सम्पत्ति) में गुज़ारे (रोटी कपड़ा आदि) के तौर पर, या अपने पति या पतिके वंशज दायभागियोंकी मीरास पानेकी हैसियतसे, या किसी ऐसी वसीयत (will) या वसीयत सम्बन्धी संविभाग पत्र (वसीयती इन्तकालनामे (Testamentary disposition) के आधारपर रखती हो जिसमें उसे, पुनर्विवाहकी स्पष्ट आज्ञाके बिना, ऐसी जायदादमें सिर्फ़ एक परिमित अधिकार, उस अधिकारको किसी दूसरेको न दे सकनेके अधिकारके साथ, दिया गया हो, वे सब उस विधवाके पुनर्विवाह कर लेने पर समाप्त हो जायँगे और यह समझा जायगा कि मानो वह विधवा उस समय मर गई है; और ऐसा होने पर उस विधवाके मृत पतिके दूसरे निकटतम दायभागी (क़रीबी वारिस), या दूसरे वे लोग जो विधवाकी मृत्यु पर जायदादके हक़दार होते, उस जायदादके उत्तराधिकारी होंगे।

विधवाके पुनर्विवाह कर लेनेपर उसके मृत पतिके बच्चोंका संरक्षण।

धारा ३—यदि मृत पतिके वसीयतनामे या वसीयतसम्बन्धी संविभागपत्र (वसीयती इन्तकालनामे) के द्वारा उसकी विधवा या कोई दूसरा शख़्स उसके बच्चोंका साफ़ तौरसे संरक्षक (guardian) नियत न किया गया हो तो एक हिन्दू विधवाका पुनर्विवाह हो जानेपर उसके मृत पतिका पिता या पितामह, (दादा) या माता या दादी, या उस मृत पतिका कोई मर्द रिश्तेदार किसी योग्य व्यक्तिको उक्त बच्चोंका संरक्षक नियत किये जानेके लिये उस सबसे बड़ी अदालतमें दरख़्वास्त (प्रार्थनापत्र) दे सकता है जो उस स्थानके दीवानी मुक़दमोंके सुननेका प्रारम्भिक अधिकार रखती हो जहाँ कि वह मृत पति अपनी मृत्युके समय स्थायी रूपसे निवास करता हो; और इसपर उक्त अदालतको अधिकार होगा कि यदि वह उचित समझे तो ऐसा संरक्षक नियत करे जिसे, नियुक्ति हो जानेपर, यह हक़ हासिल होगा कि वह उक्त बच्चोंकी या उनमेंसे किसीकी, उनकी नाबालिगी (बाल्यावस्था) के ज़मानेमें, उनकी माताकी जगह देख-रेख और रक्षा करे; और ऐसी नियुक्ति करनेमें अदालत, जहाँतक हो सकेगा, उन प्रचलित कानूनों और नियमोंका ध्यान रक्खेगी जो ऐसे बच्चोंके संरक्षणसे सम्बन्ध रखते हैं जिनके न पिता हो और न माता; परन्तु शर्त यह है कि जब उन बच्चोंके पास निजकी जायदाद इतनी न हो जो उनकी बाल्यकालमें पालना और योग्य शिक्षाके लिये काफ़ी (पर्याप्त) हो सके, तो ऐसी नियुक्ति बिना माताकी रज़ामन्दी (स्वीकृति) के नहीं होगी, सिवाय उस सूरतके जब कि प्रस्तावित संरक्षकने उन बच्चोंकी बाल्यावस्थाके समय पालना और उचित शिक्षाके लिए जमानत (security) दाख़िल कर दी हो।

इस कानूनका कोई लेख किसी निःसंतान विधवाको दायभागके योग्य नहीं बनाता।

धारा ४—इस कानूनके किसी लेखसे यह न समझा जायगा कि कोई विधवा, जो किसी ऐसे शख़्सकी मृत्युके समय निःसन्तान हो जो कोई जायदाद छोड़ गया है, उस कुल जायदाद या उसके किसी हिस्सेको दायभाग (विरासत) में पानेके योग्य होगी, यदि इस क़ानूनके पास

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होनेसे पहले वह निःसन्तान होनेके कारण उसे विरासतमें पानेके अयोग्य थी।

विवाह करनेवाली विधवाके स्वत्वोंकी रक्षा सिवाय उन सूरतोंके जिनका उल्लेख धारा २, ३ और ४ में है।

धारा ५-सिवाय उन सूरतोंके जिनका पिछली तीन धाराओंमें उल्लेख है, कोई विधवा, अपने पुनर्विवाहकी वजहसे, किसी ऐसी जायदाद, या किसी ऐसे स्वत्व (हक़) से वंचित नहीं होगी जिसकी वह पुनर्विवाह न करनेकी हालतमें हक़दार (अधिकारिणी) होती; और हर एक विधवाको, जिसने पुनर्विवाह कर लिया हो, दायभागके वे ही अधिकार प्राप्त होंगे जो उस उस सूरतमें प्राप्त होते यदि यह पुनर्विवाह उसका प्रथम विवाह होता।

विवाहको न्यायानुमोदित बनानेवाली रीतियाँ विधवाके विवाहमें भी वही असर रक्खेंगी।

धारा ६-किसी ऐसी हिन्दू स्त्रीके विवाहके समय जिसका पहले विवाह न हुआ हो, जो जो शब्द कहे जाते हैं, रीतियाँ (ceremonies) व्यवहारमें लाई जाती हैं, या प्रण किये जाते हैं, और जो उस विवाहको न्यायानुमोदित बनानेके लिए पर्याप्त होते हैं उनका वही असर होगा यदि वे (शब्द, रीतियाँ, या प्रण) एक हिन्दू विधवाके विवाहके समय कहे जायँ, व्यवहारमें लाई जायँ, या किये जायँ; और. कोई विवाह इस वजहसे अनुचित करार न दिया जायगा कि ऐसे शब्द, रीतियाँ, या प्रण विधवाके मामले (विवाह) से सम्बद्ध नहीं हैं।

बालविधवाके पुनर्विवाहकी बावत रज़ामन्दी।

धारा ७-यदि पुनर्विवाह करनेवाली विधवा ऐसी नाबालिग़ा (बाला) है जिसका विवाह परिपूर्ण नहीं हुआ (अपने पूर्व पतिके साथ जिसका सहवास नहीं हुआ) तो वह विधवा बिना रज़ामन्दी अपने पिताके, या यदि उसके पिता नहीं हैं तो बिना रज़ामन्दी अपने दादा (पितामह) के या अगर उसके ऐसा कोई दादा नहीं है तो बिना रज़ामन्दी अपनी माताके, या अगर इन सबमेंसे कोई भी न हो तो बिना रज़ामन्दी अपने बड़े भाईके, या अगर भाई भी न हों तो बिना रज़ामन्दी अपने दूसरे करीबी मर्द रिश्तेदारके पुनर्विवाह नहीं कर सकेगी।

इस धाराके विरुद्ध होनेवाले विवाहमें सहायक होनेकी सज़ा।

जो लोग जान बूझकर किसी ऐसे विवाहमें सहायता प्रदान करेंगे जो इस धाराकी आज्ञाओंके विरुद्ध हों वे सब, किसी मुद्दततक जिसकी अवधि एक वर्षसे अधिक नहीं होगी, कैदकी सज़ा पानेके, या जुर्मानेके, या दोनोंके योग्य होंगे।

ऐसे विवाहका असर।

और वे सम्पूर्ण विवाह जो इस धाराकी आज्ञाओंके विरुद्ध किये गये हों, अदालतसे मिथ्या क़रार दिये जा सकेंगे।

शर्तें।

परन्तु शर्त यह है कि, जब किसी विवाहके औचित्य (न्यायानुमोदित होने) के सम्बन्धमें, जो इस धाराकी आज्ञाओंके विरुद्ध किया गया हो, कोई झगड़ा उपस्थित हो तो उसमें वैसी रज़ामन्दीका होना जिसका कि ऊपर ज़िकर किया गया है, मान लिया जायगा उस वक्ततक जबतक कि उसके विरुद्ध साबित न किया जाय, और यह भी शर्त है कि सहवासके अनन्तर ऐसा कोई विवाह मिथ्या क़रार नहीं दिया जायगा।

युवती विधवाके पुनर्विवाहकी बावत रज़ामन्दी।

किसी ऐसी विधवाकी हालतमें जो कि पूर्णवयस्का (बालिग़ा) है, या जिसका अपने पूर्व पतिके साथ सहवास हो चुका है, खुद उसीकी रज़ामन्दी उसके पुनर्विवाहको न्यायानुमोदित और उचित बनानेके लिए काफ़ी होगी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महात्माके लक्षण ।

(अनुवादक—पं० नाथूरामजी प्रेमी ।)

पृथिवीके चाहे जिस देशके और चाहे जिस युगके मनुष्योंकी जाँच कीजिये, उससे यही मालूम होगा कि उनमेंसे अधिकांश लोग साधारणतः सांसारिक आवश्यकताओंकी ताड़नासे ही सब काम करते हैं; बल्कि अनेक बार अनेक नीच प्रवृत्तियों और कुप्रवृत्तियोंके वशीभूत होकर भी करते हैं। मनुष्य चाहे अकेला जीवन निर्वाह करे, चाहे कुटुम्ब परिवारके लोगोंमें रहकर करे, उसे अपनी शरीर-रक्षाके लिए परिश्रम करना और आवश्यक चीजोंका संग्रह करना जरूरी होता है। ये काम बहुतसे लोग नैतिक नियमोंका लंघन किये बिना करते हैं और बहुतसे नैतिक नियमोंका लंघन करके करते हैं। केवल शरीर-रक्षा ही नहीं, आरामके लिए, विलास और तरह तरहके शारीरिक सुखोंके लिए भी मनुष्य अनेक प्रयत्न किया करते हैं। ये प्रयत्न भी दोनों तरहसे होते हैं—नैतिक विषयोंका लंघन करके और न करके । बहुतसे आमोद-प्रमोद, ऐश-आराम और व्यसन ऐसे हैं जो नैतिक विषयोंके विरुद्ध होते हैं। उनमें जो लोग आसक्त रहते हैं, वे दुर्वृत्त और दुराचारी कहलाते हैं।

परन्तु ऐसे सभी और व्यवहार जो नैतिक विषयोंका भङ्ग किये बिना भी किये जा सकते हैं, महत् नहीं कहे जाते। यदि कोई मनुष्य अपने परिश्रमके द्वारा सदुपायोंसे रुपया पैसा कमाकर अपनी और अपने कुटुम्बियोंकी शरीर-रक्षा करता है और दूसरी सांसारिक जरूरतोंको रफा करनेमें खर्च करता है, तो उसे कोई दोष नहीं दिया जा सकता। परन्तु फिर भी वह महात्मा या साधु पुरुष नहीं कहा जाता । हाँ, यदि कोई दूसरोंका दुःख निवारण करनेके लिए, दूसरोंकी भलाई करनेके लिए अपने स्वार्थ और सुखका त्याग करता है और स्वयं दुःख भोगता है तो हम समझते हैं कि वह महत् है—महात्मा है।

यह बात सदासे देखी जाती है कि आत्मोत्सर्ग, साधुता और सात्विकताके मार्ग पर चलते हैं बहुत कम लोग और सांसारिकताके पथपर चलते हैं अनेक लोग, दुष्प्रवृत्तियों और दुराचारोंका अनुसरण करते हैं बहुत लोग और दूसरोंकी भलाईके लिए सर्वस्वत्याग करते हैं थोड़े लोग। सांसारिक बुद्धिके लोग अपनी कार्यसिद्धिके लिए मनुष्यकी नीच और निकृष्ट प्रकृतियोंको ही उत्तेजित करते हैं। इतिहाससे पता लगता है कि अनेक दिग्वजयी राजा लूटका, वन्दिनी स्त्रियोंका, यशःकीर्तिका, बेरोक मार काट करनेका, प्रभुताका और राज्यका लोभ दिखाकर सिपाही और सेनापति संग्रह किया करते थे।

इन सब बातोंपर विचार करके यदि स्थूलदर्शी लोगोंकी मनुष्य-प्रकृतिके सम्बन्धमें निकृष्ट धारणा हो जाय तो कुछ आश्चर्यका विषय नहीं है। इसी लिए, अवस्था विशेषमें कोई मनुष्य, कोई सम्प्रदाय, कोई समूह या जाति किस प्रकारका व्यवहार करेगी, यह अनुमान करनेके समय हम स्वभावतः ही निश्चय कर लेते हैं कि मनुष्य-प्रकृतिका जो निकृष्ट अंश है, जो मनुष्यको स्वार्थपर, सुखप्रिय, इहसर्वस्व और देहसर्वस्व करनेकी ओर उन्मुख करता है, उसीकी जीत होगी, धर्मबुद्धिकी जीत होनेका विश्वास हमें नहीं होता।

परन्तु हम बहुत प्राचीन कालसे देख रहे हैं कि पृथ्वीपर जितने साधु, धर्मो-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पदेष्टा, ऋषि, मुनि आदि हुए हैं वे सब यही विश्वास करते आ रहे हैं कि एक न एक दिन मनुष्य धर्म-बुद्धिके अधीन हो जायँगे, वे प्रेम (प्यारे, इच्छित) की अपेक्षा श्रेय (कल्याणकर) को ऊँचा मानेंगे, सहज सुलभ सांसारिकता और सुखका मार्ग छोड़कर कठिन दुःसाध्य धर्म-मार्गके पथिक बनेंगे और उसके लिए धन-दौलत, मान-सम्मान, कुटुम्ब-परिवार, ऐश-आराम यहाँतक कि प्राण भी दे देनेके लिए तैयार हो जायँगे। और यह अभी तक प्रमाणित नहीं हुआ कि यह आशा और विश्वास व्यर्थ और भ्रान्त है। इस कठिन धर्ममार्गके भी अनेक पथिक हो गये हैं जिन्होंने अपना सर्वस्व-दान और आत्म-बलिदान कर दिया है। और जो लोग ऐसा नहीं कर सके हैं उनमेंसे भी अधिकांश ऐसे ही हैं जो अपने आपको किसी न किसी धर्म-सम्प्रदायका अनुयायी बतलाते हैं और इस तरह परोक्ष रूपसे वे भी यही स्वीकार करते हैं कि हमारा आचरण चाहे जैसा हो, परन्तु हमारे धर्मके उपदेष्टा ठीक ही कह गये हैं। इसके सिवा किसी सम्राट्, सेनापति, राजनीतिज्ञ, या धनी के चरणों-में यह जगत् नहीं लोटा है, धर्मोपदेष्टा लोगोंके आगे ही अधिकांश मनुष्योंने मस्तक झुकाया है।

महत्प्रकृतिका लक्षण यही है कि महात्मा पुरुष उनके भीतर जो श्रेष्ठ भाव हैं उन्हींको चिरन्तन और स्थायी समझते हैं और उन्हींका अनुसरण करते हैं। केवल इतना ही नहीं, महत्पुरुष विश्वास करते हैं कि अन्य मनुष्योंमें भी ये श्रेष्ठ भाव विद्यमान हैं और यदि उनके आत्माको जगाया जाय तो यह श्रेयकी प्रेरणा उनके भी जीवनकी नियामक बन सकती है। वास्तवमें यदि मनुष्यको सुख, स्वार्थ और आरामके सहज पथपर चलनेको कहा जाय, तो न वह उतना बाध्य होता है और न उससे उतने अधिक और उतने महत्वके काम कराये जा सकते हैं जितने कि होने चाहिएँ। जितनी बाध्यता और जितने अधिक तथा महत्वके काम कराये जा सके हैं वे सब उसे धर्मके कठिन मार्ग-पर चलनेका आह्वान करनेपर ही कराये जा सके हैं।

श्रीयुत मोहनदास कर्मचन्द गांधीको बहुत लोग महत्पुरुष या महात्मा कहते हैं और कोई कोई तो उन्हें संसारके जीवित महत्पुरुषोंमें सर्वश्रेष्ठ बतलाते हैं। परन्तु उन्हें यह उच्च स्थान क्यों दिया जाता है, इस बातपर बहुत कम लोग विचार करते हैं। यदि वे इसपर अच्छी तरह ध्यान दें और विचार करें तो उन्हें मालूम होगा कि जगत्के अन्य साधुओंके समान उन्होंने भी अपने आपको मानव-प्रकृतिकी श्रेष्ठ प्रेरणाके वशमें कर दिया है और उन्हें विश्वास है कि अन्य मनुष्योंको भी ऐसा ही करना चाहिए और वे ऐसा कर सकते हैं। इसके सिवा उनमें एक और विशेषता है। अबतक राष्ट्रीय स्वाधीनता साधारणतः उन सब उपायोंसे प्राप्त हुई है जिनसे कि विदेश और विजातियाँ पराजित और सर्वस्वहीन हुआ करती हैं। एक जाति दूसरी जातिको अपनी हिंसा और लोभ प्रकृति उत्तेजित करके और उसके द्वारा अन्य जातिके अगणित लोगोंका प्राण-नाश और धन लूटकर अपने अधीन बनाती हैं। यह है युद्धका मार्ग; और युद्धका अर्थ है सब तरहके अपराधों और पापोंका समूह। स्वाधी-नता-लाभका मार्ग भी अबतक साधा-रणतः इसी हिंसा-द्वेषादिसे कलंकित युद्ध ही बन रहा है; अथवा कभी कभी युद्ध करनेकी धमकीसे भी यह काम हुआ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करता है। गांधीका विशेषत्व यह है कि वे हृदय और मनमें हिंसाको स्थान न देकर, कर्ममें हिंसाको जगह न देकर, स्वजातिको लोभ आदि अन्य रिपुओंके वशवर्ती होनेके लिए न कहकर, केवल सात्विक, आत्मिक उपायोंसे ही राष्ट्रीय स्वाधीनता प्राप्त करना सम्भव समझते हैं। इसके लिए वे प्रत्येक भारतवासीको शुद्धचेता, सत्याचारी और मन-वचन-कायसे हिंसाहीन बननेका उपदेश देते हैं और सारी जातिको इस आदर्शका अनुयायी बननेको कहते हैं। दूसरी ओर वे यह भी कहते हैं कि जो अन्याय है, जो असत्य है, उसे करनेके लिए यदि कोई कहे तो हम उसे नहीं करेंगे और उसके न करनेसे जो दुःख आ पड़ेगा उसे सहन करेंगे। जिन कामोंके करनेसे व्यक्तिगत रूपसे हमारे मनुष्यत्वका अपमान होता है, उन्हें न करेंगे और न ऐसी किसी दशामें उनको कोई आश्रय देंगे। उनका विश्वास है कि प्रत्येक व्यक्ति और सारी भारतीय जाति इस उपायसे स्वाधीन हो सकती है। वास्तवमें जिन जिन प्रधान कारणोंसे मनुष्य पराधीन होते हैं, उन सब कारणोंको निर्मूल करनेका एक मात्र उपाय धर्म है। भय, लोभ, सुखप्रियता, निकृष्ट प्रवृत्तियोंकी अधीनता, आदि दोष ही मनुष्योंको पराधीन रखते हैं। यदि हम धर्म-पथपर चलकर, सात्विक प्रकृति लाभ करके भयसे अतीत हो जायँ, लोभहिंसा आदिको जीत सकें, तो फिर इस लोकमें और परलोकमें, कहीं भी, कोई आशंका हमको स्खलित नहीं कर सकेगी, और हमें किसी भी कामनाकी गुलामी नहीं करनी पड़ेगी। हममें अधिकांश लोगोंका आचरण यदि इस आदर्शका अनुयायी हो जाय, तो फिर जातीय स्वाधीनता भी हमारे हाथमें आये बिना न रहेगी। यह सच है कि अँगरेजी गवर्नमेन्ट हम लोगोंको डरा सकती है, तरह तरहके लोभ दिखा सकती है और प्राणदण्ड तक तरह तरहके दण्ड दे सकती है; किन्तु यदि हम लोग किसी प्रकारके लोभ या भयसे उसके इच्छानुवर्ती न होकर अपनी अपनी इच्छाके और जातीय इच्छाके अनुवर्ती हो जायँ, तो फिर इसका मतलब यही हुआ कि हम लोग व्यक्तिगत भावसे भी स्वाधीन और जातिगत भावसे भी स्वाधीन हो गये। गाँधीजी स्वयं इस पथके पथिक हैं और सारी जातिको भी इसी मार्ग पर चलनेके लिए कहते हैं। उनका विश्वास है कि इस मार्गका अवलम्बन करना प्रत्येक भारतवासीके लिए सहज और सम्भव है, और इससे यह मालूम होता है कि वे अपनी जातिको कितनी बड़ी, कितनी महती समझते हैं।

किन्तु इतनेसे ही उनकी मानव-प्रकृतिके श्रेष्ठत्वकी धारणाके महत्वका पूरा परिचय नहीं मिलता। वे केवल अपनी ही जातिको महत् नहीं समझते हैं, अर्थात् वे महत्त्वको केवल भारतवासियोंके लिए ही सम्भव नहीं मानते हैं; उनके विश्वास और उनके प्रयत्नके साथ एक और भी विश्वास मिला हुआ है। उनका विश्वास है कि अँगरेज जातिके भीतर भी यही महत्त्व सो रहा है और हम उसको भी अपनी सात्विक वीरता और सबल सहनशीलता द्वारा जगा सकेंगे। उस समय वे हमारे सच्चे मित्र बन जायँगे, अर्थात् वे अनुग्रह करनेवाले मालिक, और हमारे दयालु 'मुरब्बी' न रहकर विश्वजनहित साधनके क्षेत्रमें हमारी जोड़ीके सहकर्मी (एक साथ काम करनेवाले) हो जायँगे। निकट भविष्यमें मानव-प्रकृतिके इस महत् विकाश, और बाह्य आचरणमें तदनुयायी महत् आत्म-प्रकाश,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन दोनोंमें दृढ़ विश्वासी होकर और तदनुसार कार्य करके ही गाँधीजी जगत्के श्रेष्ठ मनुष्योंकी गणनामें आये हैं और कोई कोई लोग उन्हें जो समस्त जीवित मनुष्योंमें महत्तम समझते हैं, उसका भी यही कारण है। उनके विषयमें तरह तरहकी जो अलौकिक बातें फैल रही हैं, उनसे उनका प्रकृत महत्व उलटे दब जाता है। इस तरहकी अलौकिक शक्तियोंका दावा उन्होंने कभी नहीं किया, बल्कि उनका प्रतिवाद ही वे करते रहते हैं। एक सज्जनने उनसे पत्र लिखकर भी इस विषयमें पूछा था। उत्तरमें उन्होंने खुले शब्दोंमें प्रकट किया था कि मैं न कोई ईश्वरीय दूत हूँ और न मुझे ईश्वरके यहाँसे ऐसी कोई आज्ञा ही मिली है।*

दुःख।

(अनुवादक—पं० नाथूरामजी प्रेमी।)

हमारी उपासनाके एक मन्त्र† का अर्थ है—सुखकरको नमस्कार करता हूँ और कल्याणकरको नमस्कार करता हूँ। परन्तु हम सुखकरको ही नमस्कार करते हैं, कल्याणकरको नहीं करना चाहते। क्योंकि जो कल्याणकर होता है, वह केवल सुखकर ही नहीं होता, दुःखकर भी होता है। हम सुखको ही उसका दान जानते हैं, दुःखको किसी दुर्दैवकी विडम्बना समझते हैं।

इसी लिए जो लोग दुःख-भीरु और वेदना-कातर हैं, वे अपनेको दुःखसे बचानेके लिए नाना प्रकारके आवरणोंकी रचना किया करते हैं, और उनके भीतर छिपे रहना चाहते हैं। इससे होता क्या है? इससे वे सत्यके पूर्ण संस्पर्शसे वंचित रहते हैं।

जो लोग धनी और विलासी हैं, वे अपनेको सारे परिश्रमों और कष्टोंसे बचाकर केवल आरामके भीतर परिवृत होकर रहते हैं। इससे क्या होता है? इससे वे अपनेको पंगु बना डालते हैं; अपने हाथ-पैरोंके ऊपर उनका अधिकार ही नहीं रहता। जिन सब शक्तियोंको लेकर वे पृथिवीमें जन्मे थे वे शक्तियाँ काममें न आनेसे परिणत—परिपक्व नहीं हो पातीं, सड़ जाती हैं—बिगड़ जाती हैं। अपने बनाये हुए आवरणके भीतर वे एक कृत्रिम जगत्में वास करते हैं और वह कृत्रिम जगत् हमारी प्रकृतिको किसी समय भी उसका सारा स्वाभाविक खाद्य नहीं जुटा सकता, इसी लिये उस अवस्थामें हमारा स्वभाव घरमें गढ़े हुए एक पुतलेके समान बन जाता है, पूर्णता लाभ नहीं कर सकता।

अपने मनको दुःखकी चोटोंसे सर्वथा बचाये रखनेकी चेष्टा करनेका फल यह होता है कि हम जगत्में असम्पूर्ण भावसे निवास करते हैं और इसलिए उससे हमारे स्वास्थ्यकी रक्षा और शक्तिकी परिणति नहीं हो सकती। पृथिवीपर आकर जिस व्यक्तिने दुःख नहीं पाया, उसने ईश्वरके पाससे अपना सारा प्राप्तव्य (पावना) नहीं पाया—उसका पाथेय (कलेवा) कम हो गया।

जिसका स्वभाव अति वेदनाशील है, मित्र-दोस्त भाई-बन्द आदि सब ही उसे बचाकर चलते हैं,—क्योंकि वह ज़रा सी बातको बड़ी बना डालता है। लोग उससे कुछ डरते से रहते हैं और इससे उनकी बातचीत व्यवहार आदि कुछ भी उसके प्रति स्वाभाविक नहीं होता। वह या तो सब बातें ही नहीं सुनता या उन्हें ठीक नहीं सुनता। इसका अर्थ यह हुआ कि उसका जो उपयुक्त प्राप्तव्य है उसे वह या

* आषाढ़के 'प्रवासी' के एक नोटका अनुवाद।

† नमः शम्भवायच मयो भवाय च।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो पूरा नहीं पाता, या ठीक नहीं पाता। जो व्यक्ति बन्धुके पाससे कभी चोट नहीं पाता केवल प्रश्रय पाता है, वह हतभागा बन्धुताके पूर्ण आस्वादसे वंचित रहता है—बन्धुगण उसके लिये पूरे बन्धु नहीं हो सकते।

जगत्में यह जो हमारा दुःखका पावना है, सो ऐसा मत समझो कि सर्वथा न्याय-संगत ही होगा। जिसे हम अन्याय कहते हैं, अविचार कहते हैं, उसे भी हमें ग्रहण करना होगा। अत्यन्त सावधानीसे सूक्ष्म हिसाबकी खाल खोलकर केवल न्यायके भीतर होकर ही अपनेको मनुष्य बना लेना—यह तो हो नहीं सकता और यदि होता है तो उससे हमारा मङ्गल नहीं होता। हममें ऐसा सामर्थ्य होना चाहिए कि जिससे अन्याय और अविचारको भी हम उपयुक्त भावसे ग्रहण कर सकें।

हमारे भागमें जो सुख आता है वह भी क्या सर्वथा ठीक हिसाबके माफिक आता है? हमने गाँठसे जितने दाम दिये हैं, क्या कभी कभी हम उनकी अपेक्षा अधिक खरीद नहीं कर डालते? किन्तु क्या कभी हम यह सोचते हैं कि उतना अधिक लेनेके योग्य हम नहीं थे? सभी कुछ बिना हिचकिचाहटके अपने हाथमें कर लेते हैं! तब क्या दुःखके समय ही केवल न्याय अन्यायका हिसाब करना होगा? सच तो यह है कि किसी भी चीज़को हम ठीक ठीक हिसाबके माफिक नहीं पाते।

इसका एक कारण है। ग्रहण और वर्जनके भीतरसे ही हमारे प्राणोंकी क्रिया जारी रहती है। केन्द्रानुग और केन्द्रातिग ये दो शक्तियाँ हमारे लिये बड़े गौरवकी हैं। हमारे प्राणोंका, हमारी बुद्धिका, हमारे सौन्दर्य-बोधका, हमारी मङ्गल-प्रवृत्तिका, वस्तुतः हमारी समस्त श्रेष्ठताका मूल धर्म ही यह है कि वह केवल लेता ही नहीं है, त्याग भी करता है।

इसलिए ही हमारे आहार्य पदार्थोंमें ठीक हिसाबके माफिक प्रयोजनीय उपकरण नहीं रहते हैं। उनमें जैसे खाद्य अंश रहता है, वैसे ही अखाद्य अंश भी रहता है। उस अखाद्य अंशको शरीर परित्याग करता है। यदि हम ठीक वज़नके माफिक खालिस खाद्य पदार्थ ही ग्रहण करें, तो उससे हमारा काम नहीं चल सकता, शरीर व्याधिग्रस्त हो जाता है। क्योंकि हमारे केवल पाक शक्ति और पाक यन्त्र ही नहीं है, त्यागशक्ति और त्यागयन्त्र भी तो हैं—उस शक्ति और यन्त्रको भी हमें काम देना पड़ता है, तब ही ग्रहण और वर्जनके सामञ्जस्यसे प्राणोंकी पूर्णता साधित होती है।

इसी तरह संसारमें यह नियम नहीं हो सकता कि हम केवल न्याय ही पावेंगे, अन्याय नहीं; अर्थात् हमारे प्रति कोई अविचार करेगा ही नहीं। न्यायके साथ अन्यायका मिला रहना हमारे चरित्र-गठनके लिये अत्यन्त आवश्यक है। निःश्वास प्रश्वासकी क्रियाके माफिक हमारे चरित्रमें एक ऐसी सहज क्षमता रहनी चाहिए जिससे हमारा जो कुछ प्राप्य है, वह अनायास ही हम ग्रहण कर लें और जो कुछ त्याज्य है, उसे बिना क्षोभके त्याग कर सकें।

अतएव दुःख और आघात चाहे न्याय्य हो चाहे अन्याय्य, उसके संस्पर्शसे सर्वथा बचकर चलनेकी अति चेष्टासे हम अपने मनुष्यत्वको दुर्बल और व्याधिग्रस्त कर डालते हैं।

यह मत समझना कि इस भीरुतासे सिर्फ़ विलासिताकी प्रबलता और दुर्बलता ही उत्पन्न होती है। नहीं, जो अति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वेदनाशील लोग आघातके भयसे अपनेको आवृत रखते हैं उनकी शुचिता भी नष्ट हो जाती है। आवरणके भीतर ही भीतर उनमें बहुत कुछ मलिनता इकट्ठी हो जाती है; वे जितना ही लोगोंके भयसे उसे लोगोंके नेत्रोंके सामने नहीं लाना चाहते हैं, उतना ही वह दूषित होती जाती है और स्वास्थ्यको विकृत करती रहती है। पृथिवीकी निन्दा, अविचार, दुःख या कष्टको जो लोग बिना संकोचके ग्रहण कर सकते हैं वे केवल बलिष्ठ ही नहीं होते, प्रत्युत निर्मल भी होते हैं। अनावृत जीवनके ऊपर जगत्की पूरी रगड़ लगते रहनेसे उनका कलुष क्षय होता जाता है।

अतएव जी जानसे तैयार हो जाओ—जो सुखकर है उसको प्रणाम करो और दुःखकर (फलतः कल्याणकर) है उसको भी प्रणाम करो। इससे तुम स्वास्थ्यलाभ भी करोगे और शक्तिलाभ भी करोगे।*

पुस्तक-परिचय।

१-विधवा-विवाहकी मुखालफ़त-पर बिरादरीके चौधरियोंको अदालतसे सज़ा—इस नामकी यह उर्दू पुस्तक अभी हालमें हमें देखनेको मिली है। इसे 'पंजाब विधवा-विवाह सहायक सभा' लाहौरने प्रकाशित किया है और उसके मन्त्रीको एक कार्ड लिखनेपर यह हर किसीको बिना मूल्य भेजी जाती है।

मेरठमें गौड़ जातिके एक व्यक्ति पं० राधेलालकी विधवा लड़की 'ब्रह्मादेवी' का पुनर्विवाह ता० २५ मई सन् १६१८ को पं० देवीदयाल, डिप्टी पोष्टमास्टर मुरादाबादके साथ हुआ था। पहले यह लड़की लक्ष्मीनारायणके पुत्र श्रीकृष्णके साथ ब्याही गई थी और तीन महीनेके बाद ही विधवा हो गई थी। विधवा हो जानेके लगभग तीन वर्षके बाद उसका यह पुनर्विवाह उसके पिता और नाना गणेशीलाल उर्फ़ मिर्चीसिंहकी रज़ामन्दीसे हुआ था। इस विवाहके विरुद्ध, उक्त लक्ष्मीनारायणकी प्रेरणासे, एक पंचायत ता० २ जून सन् १६१८ को धर्मसभाके मकानमें एकत्र हुई जिसमें लक्ष्मीनारायणने अपनी असम्मति और बेक़सूरी प्रकट की। इसपर कुछ लोगोंके मसवदेसे एक दूसरी पंचायतका ता० ६ जूनको उसी मकानमें एकत्र होना निश्चय किया गया और उससे पहले विधवा-विवाहको रोकनेके लिए कुछ नोटिस भी बिरादरीमें तक़सीम किये गये। ता० ६ जूनकी पंचायतमें, जिसमें प्रायः डेढ़ सौ आदमियोंकी उपस्थिति थी, गौड़ बिरादरीके ब्राह्मणोंके चारों थलोंके मुखियाओंकी ओरसे यह घोषणा की गई कि पं० राधेलाल और उनके मददगार (सहायक) पं० घासीराम (मुख़्तार) को जातिसे पतित किया जाता है और बिरादरीसे ख़ारिज करके उनका हुक्का-पानी बन्द किया जाता है। इसपर घासीराम और राधेलालने उक्त लक्ष्मीनारायण आदि मुखियाओं और कुछ दूसरे लोगोंके विरुद्ध, भारतीय दण्डविधान (ताज़ीरातहिन्द) की धारा नं० ५०० के अनुसार, मानहानिके दो अलग अलग दावे बाबू जयनारायण साहब स्पेशल मजिष्ट्रेट मेरठके इजलासमें दायर कर दिये। मजिष्ट्रेट साहबने, दोनों मुकदमोंको सुनने और उनपर विचार करनेके बाद, ता० ३ सितम्बरको प्रत्येक मुकदमेमें लक्ष्मीनारायणपर १५०) और रघुवीरशरण तथा शंकरसहाय मुखियाओंपर १००) १००) रुपये अर्थात् दोनों मुकदमोंमें उक्त तीनों

*महामना रवीन्द्रनाथ ठाकुरके एक लेखका अनुवाद।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुलज़िमोंपर सात सौ रुपये-जुर्माना किया, और जुर्माना न देनेकी हालतमें यथाक्रम चार चार महीने और तीन तीन महीनेकी कैदका हुक्म दिया। और शेष मुलज़िमों (अभियुक्तों) को सन्देहपर छोड़ दिया। सज़ा पाये हुए मुलज़िम सरदारों ने इन फैसलोंके विरुद्ध मेरठके सेशन जजकी अदालतमें अपीलें दायर कीं और इलाहाबादके प्रसिद्ध वकील मिस्टर सीताचन्द्र मुकरजीसे उनकी पैरवी कराई। परन्तु जज साहबने ता० २६ नवम्बर सन् १९१८को मजिस्ट्रेटके फैसलों-को बहाल (बदस्तूर क़ायम) रक्खा और अपीलें खारिज कर दीं। इसपर मुल-ज़िमोंने जज साहबके हुक्मके विरुद्ध इलाहाबादके हाईकोर्टमें निगरानी (Revision) की दरख्वास्तें पेश कीं, और अन्तको वे भी हाईकोर्टके जज आन-रेबुल मिस्टर टी. सी. पिगट (Mr. T.C. Piggot) के इजलाससे, ता० २८ मार्च सन् १९१९ को, खारिज कर दी गईं और मजिस्ट्रेटका हुक्म ही बहाल रहा।

इन्हीं सब बातोंका उल्लेख इस पुस्तक-में किया गया है और साथ ही मजिस्ट्रेट-के दोनों फैसले भी दिये हुए हैं।

मजिस्ट्रेटने अपने फैसलोंमें यह भी ज़ाहिर किया है कि जब कानून सन् १८५६ (ऐक्ट १५ सन् १८५६*) ने विधवा-के पुनर्विवाहको जायज़ (उचित-न्याया-नुमोदित) क़रार दिया है, तब यह बात किसी पंचायतके अधिकारसे बाहर है कि उसे नाजायज़ (अनुचित) क़रार दे सके। आपने 'पतित' शब्दपर भी विचार किया है और उसे एक बहुत सख़्त, कठोर, गिरानेवाला और मानहानिकारक शब्द बतलाया है। साथ ही, हाईकोर्टकी दो नज़ीरों (rulings)-अर्थात्, ६ मदरास पृष्ठ ३८१ और २६ इण्डियन केसेज पृष्ठ ४६०-का भी उल्लेख किया है और उनका यह आशय बतलाया है कि किसी हिन्दूसे जातिच्युत करनेके शब्द कहना—अर्थात् यह कहना कि वह बिरादरीसे खारिज किया गया-जुर्म (अपराध) में दाखिल है।

इन फैसलोंकी मौजूदगीने पंचायतोंके लिए अपने अधिकारोंको बहुत सोच समझकर काममें लानेकी ज़रूरत उप-स्थित कर दी है, इसमें सन्देह नहीं।

२-महावीर—पाक्षिक पत्र। सम्पा-दक, श्रीयुत मुनि जिनविजयजी, मूल्य, तीन रुपये वार्षिक। मिलनेका पता, व्यवस्थापक 'महावीर' ठि० भारत जैन-विद्यालय, पूना सिटी।

यह पत्र अभी हालमें प्रकाशित होना प्रारम्भ हुआ है और इसके पाँच अंक निकल चुके हैं। इसमें गुजराती और हिन्दी दोनों भाषाओंके लेख रहते हैं। पत्रकी लिपि पहले देवनागरी रक्खी गई थी; परन्तु अब गुजराती लेखोंकी लिपि गुजराती और हिन्दी लेखोंकी देवनागरी कर दी गई है। हालके अंकोंमें हिन्दीके कई अच्छे लेख प्रकाशित हुए हैं। 'जैनधर्म-परिचय' और 'असहकार' नामके लेख खास तौरसे पढ़े जानेके योग्य हैं। पत्र होनहार मालूम होता है और आशा है कि मुनि जिनविजयजी जैसे योग्य विद्वान्के द्वारा यह अच्छी उन्नति कर सकेगा। जैनी भाइयोंको इसे अपनाना चाहिए।

---

* यह ऐक्ट 'विधवा विवाहका कानून' शीर्षकके नीचे इसी अंकमें अन्यत्र प्रकाशित है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भारतके प्राचीन राजवंश।

हिन्दीमें इतिहासका एक अपूर्व ग्रन्थ।

इस देशमें पहले जो अनेक वंशोंके बड़े बड़े प्रतापी, दानी और विद्याव्यवसनी राजा महाराज हो गये हैं उनके सच्चे इतिहास हम लोग बिलकुल नहीं जानते। बहुतोंके विषयमें हमने तो झूठी, ऊटपटाँग किम्वदन्तियाँ सुन रक्खी हैं और बहुतोंको हम भूल ही गये हैं। इस ग्रन्थमें क्षत्रपवंश, हैहयवंश (कलचुरि) परमारवंश (जिसमें राजा भोज, मुंज, सिन्धुल आदि हुए हैं), चौहानवंश (जिसमें प्रसिद्ध महाराज पृथ्वीराज हुए हैं), सेनवंश और पालवंश तथा इन वंशोंकी प्रायः सभी शाखाओंके राजाओंका सिलसिलेवार और सच्चा इतिहास प्रमाणोंसहित संग्रह किया गया है। शिलालेखों, ताम्रपत्रों, ग्रन्थ-प्रशस्तियों, फारसी-अरबीकी तवारीखों तथा अन्य अनेक साधनोंसे बड़े ही परिश्रमपूर्वक यह ग्रन्थ रचा गया है। प्रत्येक इतिहासप्रेमीको इसकी एक एक प्रति मँगाकर रखनी चाहिए। इसमें अनेक जैन विद्वानों तथा जैन धर्मप्रेमी राजाओंका भी उल्लेख है। लगभग ४०० पृष्ठोंका कपड़ेकी जिल्द सहित ग्रन्थ है। मूल्य ३) रु०। आगेके भागोंमें गुप्त, राष्ट्रकूट आदि वंशोंके इतिहास निकलेंगे।

नकली और असली धर्मात्मा।

श्रीयुत बाबू सूरजभानुजी वकीलका लिखा हुआ सर्वसाधारणोपयोगी सरल उपन्यास। ढोंगियोंकी बड़ी पोल खोली गई है। मूल्य ॥)

नया सूचीपत्र।

उत्तमोत्तम हिन्दी पुस्तकोंका ६२ पृष्ठोंका नया सूचीपत्र छपकर तैयार है। पुस्तक प्रेमियोंको इसकी एक कापी मँगा कर रखनी चाहिए। मैनेजर,

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई।

उत्तमोत्तम जैन ग्रन्थ।

नीचे लिखी आलोचनात्मक पुस्तक विचारशीलोंको अवश्य पढ़नी चाहिएँ। साधारण बुद्धिके गतानुगतिक लोग इन्हें न मँगावें।

१ ग्रंथपरीक्षा प्रथम भाग। इसमें कुन्दकुन्द श्रावकाचार, उमास्वाति-श्रावकाचार और जिनसेन त्रिवर्णाचार इन तीन ग्रन्थोंकी समालोचना है। अनेक प्रमाणोंसे सिद्ध किया है कि ये असली जैनग्रन्थ नहीं हैं—भेषियोंके बनाये हुए हैं। मूल्य ।=)

२ ग्रंथपरीक्षा द्वितीय भाग। यह भद्रबाहुसंहिता नामक ग्रन्थकी विस्तृत समालोचना है। इसमें बतलाया है कि यह परमपूज्य भद्रबाहु श्रुतकेवली-का बनाया हुआ ग्रन्थ नहीं है, किन्तु ग्वालियरके किसी धूर्त भट्टारकने १६-१७ वीं शताब्दिमें इस जाली ग्रन्थको उनके नामसे बनाया है और इसमें जैनधर्मके विरुद्ध सैंकड़ों बातें लिखी गई हैं। इन दोनों पुस्तकोंके लेखक श्रीयुक्त बाबू जुगुलकिशोरजी मुख्तार हैं। मूल्य ।)

३ दर्शनसार। आचार्य देवसेनका मूल प्राकृत ग्रन्थ, संस्कृतच्छाया, हिन्दी अनुवाद और विस्तृत विवेचना। इतिहासका एक महत्वका ग्रन्थ है। इसमें श्वेताम्बर, यापनीय, काष्ठासंघ, माथुर-संघ, द्राविड़संघ आजीवक (अज्ञानमत) और वैनेयिक आदि अनेक मतोंकी उत्पत्ति और उनका स्वरूप बतलाया गया है। बड़ी खोज और परिश्रमसे इसकी रचना हुई है।

आत्मानुशासन।

भगवान् गुणभद्राचार्य्यका बनाया हुआ यह ग्रन्थ प्रत्येक जैनीके स्वाध्याय करने योग्य है। इसमें जैनधर्मके असली उद्देश्य शान्तिसुखकी ओर आकर्षित किया गया है। बहुत ही सुन्दर रचना है। आजकल-की शुद्ध हिन्दीमें हमने न्यायतीर्थ न्याय-शास्त्री पं० वंशीधरजी शास्त्रीसे इसकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust eGangotri

टीका लिखवाई है और मूलसहित छप-
वाया है। जो जैनधर्मके जाननेकी इच्छा रखते हैं, उन अजैन मित्रोंको भेंटमें देने योग्य भी यह ग्रन्थ है। मूल्य २)

षट्प्राभृतादिसंग्रह।

यह माणिकचन्द्र ग्रन्थमालाका १७वाँ ग्रन्थ है। इसमें आचार्य कुन्दकुन्दके ८ पाहुड़ और रयणसार, द्वादशानुप्रेक्षा ये दस ग्रन्थ छपे हैं। पहलेके ६ पाहुड़ोंकी आचार्य श्रुतसागरकृत संस्कृत टीका भी है, जो बहुत विस्तृत है। अन्य ग्रन्थ मूल और संस्कृत छाया सहित छपे हैं। प्रत्येक भंडारमें इसकी एक एक प्रति रहनी चाहिए। मूल्य लागत मात्र तीन रुपया।

नियमसार।

भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यका यह बिलकुल ही अप्रसिद्ध ग्रन्थ है। लोग इसका नाम भी नहीं जानते थे। बड़ी मुश्किलसे प्राप्त करके यह छपाया गया है। नाटक समयसार आदिके समान ही इसका भी प्रचार होना चाहिए। मूल प्राकृत, संस्कृतच्छाया, आचार्य पद्मप्रभमलधारि देवकी संस्कृत टीका और श्रीयुत शीतलप्रसादजी ब्रह्मचारीकृत सरल भाषाटीकासहित यह छपाया गया है। अध्यात्मप्रेमियोंको अवश्य स्वाध्याय करना चाहिए। मूल्य २) दो रु०।

पार्श्वपुराण भाषा।

कविवर भूधरदासजीका यह अपूर्व ग्रन्थ दूसरी वार छपाया गया है। इसकी कविता बड़ी ही मनोहारिणी है। जैनियोंके कथाग्रन्थोंमें इससे अच्छी और सुन्दर कविता आपको और कहीं न मिलेगी। विद्यार्थियोंके लिये भी बहुत उपयोगी है। शास्त्रसभाओंमें बाँचनेके योग्य है। बहुत सुन्दरतासे छपा है। मूल्य सिर्फ १) रु०।

कथामें जैनसिद्धान्त।

एक मनोरंजक कथाके द्वारा जैनधर्मकी गूढ़ कर्म-फिलासफीको सरलतासे [illegible] है और एक बढ़िया काव्यका आनन्द लेना हो तो आचार्य सिद्धर्षिके बनाये हुए 'उपमितिभवप्रपंचाकथा' नामक संस्कृत ग्रन्थके हिन्दी अनुवादको अवश्य पढ़िये। अनुवादक श्रीयुत नाथूराम प्रेमी। मूल्य प्रथम भागका ।॥) और द्वितीय भागका ।–) जैन साहित्यमें अपने ढंगका यही एक ग्रन्थ है।

संस्कृत ग्रंथ।

१ जीवन्धर चम्पू–कवि हरिचन्द्रकृत। ।)
२ गद्यचिन्तामणि–वादीभसिंहकृत। ।)
३ जीवन्धरचरित–गुणभद्राचार्यकृत। १)
४ क्षत्रचूड़ामणि–वादीभसिंहकृत। मू० ।)
५ यशोधरचरित–वादिराजकृत। मू० ॥)

चरचा समाधान। पं० भूधरमिश्रकृत। भाषाका नया ग्रन्थ। हालहीमें छपा है। मूल्य २॥–)

जैन ग्रन्थोंका सूचीपत्र

अभी हाल में ही छपकर तैयार हुआ है। मिलनेवाले तमाम ग्रन्थोंकी सूची है। जिन सज्जनोंको चाहिए वे एक कार्ड लिखकर मँगा लें।

मैनेजर—
जैन-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्य्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई।

श्राविका।

स्त्रीधर्म, गृहउद्योग आरोग्य और शिक्षण संबंधी उत्तम लेखोंसे स्त्रीवर्गमें अच्छी प्रसिद्धिको प्राप्त हुई यह गुजराती पत्रिका मासिक रूपसे प्रकाशित होती है, प्रत्येक अंकमें विषयानुसार खास चित्र भी रहते हैं। वार्षिक मूल्य तीन रुपये।

पता—श्राविका आफिस-भावनगर।

जैन।

'जैन' नामका यह गुजराती पत्र बिना पंथभेदके हर एक घरमें पढ़ा जाना चाहिये। अढ़ाई रुपयेकी 'जैनऐतिहासिक वार्ता' भेटमें दिये जानेपर भी वार्षिक मूल्य डाक खर्च सहित पाँच रुपये है।

मैनेजर 'जैन'-भावनगर।

Printed & Published by G.K. Gurjar at Sri Lakshmi Narayan Press, Jatanbar, Benares City, for the Proprietor Nathuram Premi of Bombay 21-4-21.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीवर्द्धमानाय नमः।

भाग १५

जैनहितैषी

अंक ५

फाल्गुन सं० २४४७। मार्च सन् १९२१

विषय-सूची।

१—जैनधर्म (ले० पं० नाथूरामजी प्रेमी) १२९

२—तीर्थोंके झगड़ोंका रहस्य (ले० पं० नाथूरामजी प्रेमी) ... १३०

३—हाथी गुफाका शिलालेख (ले० स्व० कुमार देवेन्द्र प्रसाद) ... १३८

४—सनातनी हिन्दू (म० गांधीके एक लेखका अनुवाद) ... १४६

५—दुष्प्राप्य और अलभ्य जैनग्रन्थ (सम्पादक) ... १५२

६—सेठ चिरंजीलालका दान (ले० पं० नाथूरामजी प्रेमी) ... १५५

७—देवेन्द्र वियोग (सम्पादक) १५८

८—पुस्तक परिचय १५९

प्रार्थनाएँ।

१ जैनहितैषी किसी स्वार्थबुद्धिसे प्रेरित होकर निजी लाभके लिये नहीं निकाला जाता है। इसके लिये समय, शक्ति और धनका जो व्यय किया जाता है वह केवल निष्पक्ष और ऊँचे विचारोंके प्रचारके लिये; अतः इसकी उन्नतिमें हमारे प्रत्येक पाठकको सहायता देनी चाहिए।

२ जिन महाशयोंको इसका कोई लेख अच्छा मालूम हो उन्हें चाहिए कि उस लेखको वे जितने मित्रोंको पढ़कर सुना सकें, अवश्य सुना दिया करें।

३ यदि कोई लेख अच्छा न मालूम हो अथवा विरुद्ध मालूम हो तो केवल उसीके कारण लेखक व सम्पादकसे द्वेषभाव धारण न करनेके लिये सविनय निवेदन है।

४ लेख भेजनेके लिये सभी सम्प्रदायके लेखकोंको आमंत्रण है।

सम्पादक।

सम्पादक, बाबू जुगुलकिशोर मुख्तार।

श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, काशी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नियमावली।

१ जैनहितैषीका वार्षिक मूल्य ३) तीन रुपया पेशगी है।

२ ग्राहक वर्षके आरम्भसे किये जाते हैं और बीचमें ७वें अंकसे। आधे वर्षका मूल्य १॥)

३ प्रत्येक अंकका मूल्य ।) चार आने।

४ लेख, बदलेके पत्र, समालोचनार्थ पुस्तक आदि

'बाबू जुगुलकिशोरजी मुख्तार, सरसावा (सहारनपुर)" के पास भेजना चाहिए। सिर्फ प्रबन्ध और मूल्य आदि सम्बन्धी पत्रव्यवहार इस पतेसे किया जायः—

मैनेजर—

जैन ग्रंथ-रत्नाकर कार्यालय,

हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई।

पुष्पलता।

हिन्दीमें एक नये लेखककी लिखी हुई अपूर्व गल्पें। प्रत्येक गल्प मनोरंजक, शिक्षाप्रद और भावपूर्ण है। सभी गल्पें स्वतन्त्र हैं और हिन्दीसाहित्यके लिये गौरवकी चीज हैं। जो लोग अनुवाद ग्रन्थोंसे अरुचि रखते हैं उन्हें यह मौलिक गल्पग्रन्थ अवश्य पढ़ना चाहिए। ७—८ चित्रोंसे पुस्तक और भी सुन्दर हो गई है। हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-सीरीजका यह ४१वाँ ग्रन्थ है। मूल्य १) सजिल्दका १॥)

आनंदकी पगडंडियाँ।

जेम्स एलेन अँगरेजीके बड़े ही प्रसिद्ध आध्यात्मिक लेखक हैं। उनके ग्रन्थ बड़े ही मार्मिक और शान्तिप्रद गिने जाते हैं। अँगरेजीमें उनका बड़ा मान है। यह ग्रन्थ उन्हींके 'Byways of Blessedness' नामक ग्रन्थका अनुवाद है। प्रत्येक विवेकी और विचारशील पुरुषको यह ग्रन्थ पढ़ना चाहिए। मूल्य ।) सजिल्दका १।)

सुखदास।

जार्ज-इलियटके सुप्रसिद्ध उपन्यास 'साइलस मारनर' का हिन्दी रूपान्तर। इस पुस्तकको हिन्दीके लब्धप्रतिष्ठ उपन्यास-लेखक श्रीयुत् प्रेमचन्दजीने लिखा है। बढ़िया एण्टिक पेपर पर बड़ी ही सुन्दरतासे छपाया गया है। उपन्यास बहुत ही अच्छा और भावपूर्ण है। मूल्य ॥=)

नये ग्रंथ।

१ स्वाधीनता—जान स्टुअर्ट मिलकी 'लिबर्टी' का अनुवाद। यह ग्रन्थ बहुत दिनोंसे मिलता नहीं था, इसलिये फिरसे छपाया गया है। 'स्वाधीनता' की इतनी अच्छी तात्विक आलोचना आपको कहीं न मिलेगी। प्रत्येक विचारशीलको यह ग्रन्थ पढ़ना चाहिए। मूल्य २) सजिल्दका २॥)

२ ज्ञान और कर्म- हिन्दीमें अपूर्व तात्विक ग्रन्थ। कलकत्ता हाईकोर्टके जज स्वर्गीय सर गुरुदास बन्धोपाध्यायके लिखे हुए सुप्रसिद्ध ग्रन्थका अनुवाद। इसमें मनुष्यके इहलोक और परलोकसम्बन्धी सभी विषयोंकी बड़ी विद्वत्तापूर्ण आलोचना की गई है। बहुत बड़ा ग्रन्थ है। मूल्य ३) सजिल्दका ३॥)

३ जान स्टुअर्ट मिल—स्वाधीनताके मूल लेखकका अतिशय शिक्षाप्रद और पढ़ने योग्य जीवनचरित। अबकी बार यह जुदा छपाया गया है। मूल्य ॥=)

दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास—लेखक, पं० भवानीदयालजी, ३५ चित्रोंसे युक्त। मूल्य ३॥)

रूसकी राज्यक्रान्ति-लेखक, पं० रमाशंकर अवस्थी। २३ चित्रोंसे सुशोभित। मू० २॥)

तमाखूसे हानि—पं० हनुमत्प्रसादजी वेधकृत। मू० ।=)

मलावरोध-चिकित्सा— ,, ,, मू० ।=)

फिजीमें भारतीय प्रतिज्ञाबद्ध कुलीप्रथा—लेखक, एक भारतीय हृदय। मूल्य १)

Gangesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः ।

पन्द्रहवाँ भाग । अंक ५

जैनहितैषी ।

मार्च १९२१ फागुन २४४७

न हो पक्षपाती बतावे सुमार्ग, डरे ना किसीसे कहे सत्यवाणी ।
बने है विनोदी भले आशयोंसे, सभी जैनियोंका हितैषी 'हितैषी' ॥

जैन धर्म ।

(ले० पं० नाथूरामजी प्रेमी ।)

कहाँ वह जैन धर्म भगवान् !

जाने जगको सत्य सुझायो, टालि अटल अज्ञान ।
वस्तु-तत्त्वपै कियो प्रतिष्ठित, अनुपम निज विज्ञान ॥ कहाँ० १

साम्यवादको प्रकृत प्रचारक, परम अहिंसावान ।
नीच-ऊँच निर्धनी-धनी पै, जाकी दृष्टि समान ॥ कहाँ० २

देवतुल्य चाण्डाल बतायो, जो है समकितवान ।
शूद्र, म्लेच्छ, पशुहूने पायो समवसरणमें थान ॥ कहाँ० ३

सती-दाह गिरिपात जीवबलि, मांसाशन, मदपान ।
देवमूढ़ता आदि मेटि सब, कियो जगतकल्यान ॥ कहाँ० ४

कट्टर बैरीहूपै जाकी, क्षमा दयामय बान ।
हठ तजि कियो अनेक मतनको, सामंजस्यविधान ॥ कहाँ० ५

अब तौ रूप भयो कछु औरहि, सकहिं न हम पहिचान ।
समता सत्यप्रेमने इक सँग, यातें कियो पयान ॥ कहाँ० ६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तीर्थोंके झगड़ोंका रहस्य।

(ऐतिहासिक दृष्टिसे विचार।)

[लेखक—श्रीयुत पं० नाथूरामजी प्रेमी।]

अब समय आ गया है कि हम लोग अपने दिगम्बरी और श्वेताम्बरी भाइयोंके बीचके झगड़ोंके सम्बन्धमें कुछ गहराई-के साथ विचार करें और जाँच करें कि इनकी असलियत क्या है, ये क्यों शुरू हुए, कब से शुरू हुए और आगे कभी इनका अन्त भी होगा या नहीं।

१—पूर्व कालके तीर्थक्षेत्रों और वर्तमानके तीर्थोंमें ज़मीन आसमानका अन्तर पड़ गया है। साधारण लोग तो उस अन्तरकी कल्पना भी नहीं कर सकते। शत्रुंजय और सोनागिरि पर्वत इस समय जिस तरह नीचेसे ऊपर तक मन्दिरोंसे ढँक गये हैं, पहले इनकी यह दशा नहीं थी। ये सब मन्दिर बहुतही अर्वाचीन हैं। जिस तरह अनेक तीर्थोंपर इस समय भी एक एक दो दो मन्दिर ही देखे जाते हैं, उसी तरह जान पड़ता है, पहले सभी तीर्थोंका लगभग ऐसा ही हाल था। पहले इन पर्वतोंपर बहुत करके चरण-चिह्नोंकी ही स्थापना थी। उन्हींकी सब लोग भक्तिभावसे पूजा वन्दना करते थे; और इस कारण जुदा जुदा सम्प्रदायोंके बीचमें झगड़ेका कोई कारण ही उपस्थित नहीं होता था। दिगम्बर-श्वेताम्बर ही क्यों, दूसरे भावुक अजैनोंको भी अपनी श्रद्धा-भक्ति चरितार्थ करनेके लिए वहाँ कोई रुकावट नहीं थी।

२—प्रायः जितने जैन तीर्थ हैं, वे सब विपुलजनाकीर्ण नगरों और सब प्रकार-के कोलाहलसे दूर, ऊँचे पर्वतोंपर और वनोंके बीच स्थापित हैं। इस धर्मकी प्रकृति ही ऐसी है कि वह संसारके कोलाहलोंसे दूर, निर्जन और शान्त स्थानोंमें रहनेकी प्रेरणा करती है। मुनि और साधुजन ऐसे ही स्थानोंको पसन्द करते थे और उन्हींकी स्मृतिकी रक्षाके लिए स्मारकस्वरूप—ये सब तीर्थ स्थापित हुए थे।

३—इन स्मारकोंके दर्शन करनेके लिए और अपने भक्तिभावोंको चरितार्थ करनेके लिए बहुत दूर दूरके भक्तजन आया करते थे; परन्तु फिर भी किसीके द्वारा इन स्थानोंकी एकान्त शान्तता नष्ट करनेका प्रयत्न नहीं किया जाता था; क्योंकि इन एकान्त स्थानोंमें संसार-त्यागी और शान्ति-प्रयासी साधुजन रहते थे और ध्यान अध्ययन किया करते थे। गृहस्थजन इन बातोंको जानते थे और इस कारण वे भक्तिपूरित होनेपर भी तीर्थोंकी इस शान्तिमें बाधा डालना उचित नहीं समझते थे।

४—परन्तु आगे यह बात न रही। भगवद्गुणभद्राचार्यके शब्दोंमें साधुजन स्वयंही मृगोंके समान भयभीत होकर वनोंको छोड़कर गाँवोंके समीप आकर रहने लगे और गृहस्थोंके साथ उनकी सन्निकटता बढ़ने लगी। धीरे धीरे चैत्य-वासकी जड़ जमी और अन्तमें मुनिमार्ग शिथिल होकर मठवासी भट्टारकों या महन्तोंके रूपमें परिणत हो गया। साधु-ओंकी इस शिथिलताने चैत्यों और मन्दिरोंका प्रभाव बहुत बढ़ा दिया और जैन धर्मकी प्रभावनाका सबसे बड़ा द्वार यही करार दिया गया। भगवान समन्त-भद्रके प्रभावनांगके इस श्रेष्ठ लक्षणको लोग एक तरहसे भूल ही गये कि "अज्ञा-नांधकारको जैसे बने, वैसे हटाकर जैन-शासनके माहात्म्यको प्रकट करना ही सच्ची प्रभावना है।" इसके बदलेमें यह उपदेश दिया जाने लगा कि इमलोंके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक पत्तेके बराबर मन्दिर बनाकर उसमें सरसोंके दानेके बराबर भी प्रतिमा स्थापन करनेवाले गृहस्थके पुण्यका वर्णन नहीं किया जा सकता! इसका फल यह हुआ कि मन्दिरों और प्रतिमाओंके बनवाने और स्थापन करानेकी बाबत लोगोंपर एक प्रकारका खब्त सवार हो गया। लोग आँख बन्द करके इसी कामकी ओर झुक पड़े। इतिहास साक्षी है कि पिछले ५००-६०० वर्षोंमें जैन-सम्प्रदायके अनुयायियोंने अपने धर्मके नामसे यदि कुछ किया है तो वह बहुत करके मन्दिरों और प्रतिमाओंकी वृद्धि करनेका ही काम है।

५—ये चैत्यवासी और मठवासी साधु दोनों ही सम्प्रदायोंमे हो गये थे; बल्कि श्वेताम्बर सम्प्रदायमें तो यह शिथिलता और भी पहलेसे प्रविष्ट हो गई थी। इन साधुजनोंके उपदेशसे तीर्थोंमें भी मन्दिर बनाये जाने लगे और नये नये तीर्थ—अतिशयक्षेत्र आदि नामोंसे—स्थापित होने लगे। इन मन्दिरों और तीर्थोंके व्यय-निर्वाहके लिए धन-संग्रह किया जाने लगा, धन-संग्रह करनेकी नई नई तरकीबें निकाली गईं और प्रबन्धके लिए कोठियाँ तक खुल गईं! बहुतसी कोठियोंकी मालिकी भी धीरे धीरे भट्टारकों और महन्तोंके अधिकारमें आ गई और अन्तमें उसने एक प्रकारसे धार्मिक दूकानदारीका रूप धारण कर लिया। यदि इस बीचमें दिगम्बर सम्प्रदायमें तेरह पंथका और श्वेताम्बर सम्प्रदायमें संवेगी साधुओंका उदय न होता तो यह दूकानदारी कौनसा रूप धारण कर लेती, इसकी कल्पना करना भी कठिन है।

६—यह सब हो गया था, तो भी तीर्थोंके लिये दिगम्बरी और श्वेताम्बरी झगड़ोंका सूत्रपात नहीं हुआ था। क्योंकि एक तो पहले तीर्थों पर तीर्थंकरों या सिद्धोंके चरणोंकी पूजा होती थी और वे चरण दोनोंको समान रूपसे पूज्य थे। दूसरे इस बातके भी प्रमाण मिलते हैं कि पहले दिगम्बरी और श्वेताम्बरी प्रतिमाओंमें कोई भेद न था। दोनों ही नग्न प्रतिमाओंको पूजते थे। जैनहितैषी भाग १३ अंक ६ में इस विषयपर एक श्वेताम्बर-विद्वानका लेख प्रकाशित हुआ है जो अवश्य पठनीय है। उसमें बतलाया है कि मथुराके कंकाली टीलेमें जो लगभग दो हजार वर्षकी प्राचीन प्रतिमाएँ मिली हैं, वे नग्न हैं और उन पर जो लेख हैं, वे श्वेताम्बर स्थविरावलीके अनुसार हैं। इसके सिवा १७ वीं शताब्दीमें श्वेताम्बर विद्वान्, पं० धर्मसागर उपाध्यायने अपने 'प्रवचन परीक्षा' नामक ग्रन्थमें लिखा है कि "गिरनार और शत्रुंजय पर एक समय दोनों सम्प्रदायोंमें झगड़ा हुआ, और उसमें शासन देवताकी कृपासे दिगम्बरोंका पराजय हुआ। जब इन दोनों तीर्थोंपर श्वेताम्बर सम्प्रदायका अधिकार सिद्ध हो गया, तब आगे किसी प्रकारका झगड़ा न होने पावे, इसके लिए श्वेताम्बर संघने यह निश्चय किया कि आगे जो नई प्रतिमाएँ बनवाई जायँ, उनके पादमूलमें वस्त्रका चिह्न बना दिया जाय। यह सुनकर दिगम्बरियोंको क्रोध आ गया और उन्होंने अपनी प्रतिमाओंको स्पष्ट नग्न बनाना शुरू कर दिया। यही कारण है कि संप्रति राजा (अशोकके पौत्र) आदिकी बनवाई हुई प्रतिमाओंपर वस्त्र-लांछन नहीं है और आधुनिक प्रतिमाओंपर है। पूर्वकी प्रतिमाओंपर वस्त्र-लांछन भी नहीं है और स्पष्ट नग्नत्व भी नहीं है।" इससे कमसे कम यह बात अच्छी तरह सिद्ध होती है कि दोनोंके विवादके पहले दोनोंकी प्रतिमाओंमें भेद नहीं होता था और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस कारण दोनों एकत्र होकर अपनी उपासना-वृत्तिको चरितार्थ करते थे। उस समय तक लड़ने-झगड़नेका कोई कारण ही नहीं था। परन्तु अब तो दोनों-की प्रतिमाओं और उपासना-विधिमें इतना अन्तर पड़ गया है कि उसपर विचार करनेसे आश्चर्य होता है। पाठक यह जानकर आश्चर्य करेंगे कि गुजरातके कई प्रसिद्ध शहरोंमें जिनेन्द्र भगवानके बिम्ब कोट-कमीज तक पहनते हैं और हमारे एक मित्रने तो एक भगवानको जेब-घड़ीसे भी सुशोभित देखा है! वीत-राग भगवानकी उनके भक्तों द्वारा इससे अधिक विडम्बना और क्या हो सकती है?

७—श्वेताम्बराचार्य रत्नमण्डनगणि-कृत सुकृतसागर नामक ग्रन्थके—'पेथड़ तीर्थयात्राह्वय प्रबन्ध'में जो कुछ लिखा है उसका सारांश यह है कि-"सुप्रसिद्ध दानी पेथड़शाह शत्रुंजयकी यात्रा करके संघसहित गिरिनारमें पहुँचे। उनके पहले वहाँ दिगम्बर संघ आया हुआ था। उस संघका स्वामी पूर्ण (चन्द्र) नामका अग्रवालवंशी धनिक था। वह देहलीका रहनेवाला था। उसे 'अलाउद्दीनशाखीन मान्य' विशेषण दिया है जिससे मालूम होता है कि वह कोई राजमान्य पुरुष था। उसने कहा कि पर्वतपर पहले हमारा संघ चढ़ेगा; क्योंकि एक तो हम लोग पहले आये हैं और दूसरे यह तीर्थ भी हमारा है। यदि यह तीर्थ तुम्हारा है, तो इसका सबूत पेश करो। यदि भगवान नेमिनाथकी प्रतिमापर अंचलिका और कटिसूत्र प्रकट हो जाय, तो हम इसे तुम्हारा तीर्थ मान लेंगे। भगवान भव्य जनोंके दिये हुए आभरण सहन नहीं कर सकते, इसलिए इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह तीर्थ हमारा है। इसपर श्वेताम्ब-रीय पेथड़ शाह बोले कि भगवान् आभ-रणादि सहन नहीं कर सकते, इसका कारण यह है कि उनकी कीर्ति १२ योजन तक फैली हुई है। आमके वृक्षपर तोरण-की और लंकामें लहरोंकी चाह नहीं होती। जिस तरह फलोधी (मारवाड़)में प्रति-माधिष्ठित देव आभूषणापहारक हैं, उसी तरह यहाँ भी हैं। यदि यह तीर्थ तुम्हारा है, तो शैवोंका भी हो सकता है; क्योंकि यह पर्वत लिंगाकार है और गिरिवारि-धारक है। इस तरह वादविवाद हो रहा था कि कुछ वृद्धजनोंने आकर कहा,—इस झगड़ेको छोड़ दो और यात्राको चलकर वहाँ इन्द्रमाला (फूलमाल) लेते समय इसका निर्णय कर लेना। उस मालाको जो सबसे ज्यादा धन देकर ले सकेगा, उसीका यह तीर्थ सिद्ध हो जायगा। निदान दोनों संघ पर्वतपर गये और दोनों-ने अभिषेक, पूजन, ध्वजारोपण, नृत्य, स्तुत्यादि कृत्य किये। जब इन्द्रमालाका समय आया तब श्वेताम्बर भगवानके दाहिने ओर और दिगम्बर बाईं ओर बैठे। इसीसे निश्चय हो गया कि कौन हारेगा और कौन जीतेगा! इन्द्रमालाकी बोली होने लगी। परस्पर बढ़ते बढ़ते अन्तमें श्वेताम्बरोंने ५६ धड़ी सोना देकर माला लेनेका प्रस्ताव किया। दिगम्बरी अभी तक तो बराबर बढ़े जाते थे; परन्तु अब वे घबराये और सलाह करने लगे। लोगोंने संघपतिसे कहा—

लुण्ठितैरिव भूत्वा च फलं किंतीर्थवालने।
इमं नहि समादाय शैलेशं यास्यते गृहे॥

अर्थात् इस तरह लुटकर तीर्थ लेनेसे क्या लाभ होगा? क्या इस पर्वतराजको उठाकर घर ले चलना है? अन्तमें पूर्ण-चन्द्रजीने कह दिया कि आप ही माला पहन लीजिए। इससे दिगम्बरी मुरझा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गये और अपनासा मुँह लिये यात्रा करके नीचे उतर गये।"

यह कथा यद्यपि श्वेताम्बरियोंकी उदारता और गिरिनारपर श्वेताम्बराधिकार सिद्ध करनेके मुख्य अभिप्रायसे लिखी गई है, तो भी इसमें बहुत कुछ ऐतिहासिक सत्य जान पड़ता है; और इससे यह बात अनायास ही सिद्ध हो जाती है कि उस समय दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों एक ही मन्दिरमें उपासना करते थे और इन्द्रमालाकी बोली दोनोंके एकत्र समूहमें बोली जाती थी। इसके सिवा यह भी मालूम होता है कि उस समय गिरनारकी मूलनायक नेमिनाथकी प्रतिमा आभूषणोंसे सुसज्जित और कटिसूत्र तथा अंचलिकासे भी लांछित नहीं थी। इसी तरह उदाहरणके तौर पर ओ फलोधी तीर्थको प्रतिमाओंके विषयमें कहा है कि वहाँका प्रतिमाधिष्ठित देव भूषणापहारक है, सो जान पड़ता है कि वहाँ भी उस समय प्रतिमाओंको आभूषणादि नहीं पहनाये जाते थे। वीतराग प्रतिमाओंकी ये सब विडम्बनाएँ बहुत पीछे की गई हैं।

=—श्रीरत्नमन्दिरगणिकृत उपदेश-तरंगिणी (पृ० २४८) में लिखा है कि—"सुराष्ट्रायाँ गोमण्डलग्रामवास्तव्यः सप्तपुत्रः सप्तशतसुभटः १३ शतशकटसंघः १३ कोटिस्वर्णपतिः सं० धाराकः श्रीशत्रुंजय यात्रां कृत्वा ५० वर्षावधि दिगम्बराधिष्ठित रैवतयात्रावसरे खङ्गारदुर्गपसैन्यैः सह युद्धे ७पुत्र ७ सुभटक्षये श्रीवप्पभट्टिप्रतिबोधितं गोपगिरौ श्रीआमभूपतिं ज्ञात्वा तस्या ऽ८ मनृपस्य सूरिपार्श्वे व्याख्यानोपविष्टाष्टश्राद्धैः समं सं० धाराकः समागतः। तेन दिगम्बरगृहीत तीर्थस्वरूपं कथितम्। गुरुमिस्तन्महिमोक्तौ आमनृपेण गिरिनारनेमिवन्दनं विना भोजनाभिग्रहो गृहीतस्ततः संघश्चाल। १ लक्षं पौष्टिकानाम् एकलक्षं तुरंगमाणाम् ७शतानि गजानाम्, विंशतिसहस्राणि श्रावककुलानाम्, ३२ उपवासैः स्तम्भतीर्थे प्राप्तः। राज्ञः शरीरं खिन्नम्। गुरुभिराम्बिकां प्रत्यक्षीकृत्य अपापमठात् प्रतिमैका आनीता। नृपाभिग्रहो मुत्कलोजातः। मासमेकं दिगम्बरैः सह वादः, पश्चादम्बिकया 'उज्जित सैलसिहरे' ति गाथया विवादो भग्नः, तीर्थं लात्वा दिगम्बरश्वेताम्बरजिनार्चानां नग्नावस्थाञ्चलिकाकरणेन विभेदः कृतः। इति यात्रोपदेशः।" इसका अभिप्राय यह है कि सुराष्ट्र देशके गोमण्डल नामक गाँवके निवासी धाराक नामके संघपति थे। उनके ७ पुत्र, ७०० योद्धा, १३०० गाड़ियाँ और १३ करोड़ अशर्फियाँ थीं। वे शत्रुंजयकी यात्रा करके जब गिरनार तीर्थकी यात्राको गये जो कि ५० वर्षसे दिगम्बरोंके अधिकारमें था, तब वहाँ उन्हें खङ्गार नामक किलेदारसे लड़ना पड़ा और उसमें उनके सातों पुत्र और सारे योद्धा मारे गये। उसी समय जब उन्होंने सुना कि गोपगिरि अर्थात् ग्वालियरके राजा आम हैं और उन्हें वप्पभट्टि नामक श्वेताम्बराचार्यने प्रतिबोधित कर रक्खा है, तब वे ग्वालियर आये। उस समय वप्पभट्टिका व्याख्यान हो रहा था। राजा बैठे थे और ८ श्रावक थे। धाराकने दिगम्बरगृहीत गिरनार तीर्थकी हालत सुनाई। गुरुने तीर्थकी महिमाका वर्णन किया। इस पर आम राजा प्रतिज्ञा कर बैठे कि गिरनारके नेमिनाथकी बन्दना किये बिना मैं भोजन ग्रहण नहीं करूँगा। १००० श्रावकोंने भी यही प्रतिज्ञा की। तब राजा एक बड़े भारी संघके साथ चल पड़े। ३२ उपवास करके स्तंभतीर्थ अर्थात् खंभातमें पहुँचे। राजाका शरीर बहुत खिन्न देखकर गुरुने अम्बिकाको बुलाया और उसके द्वारा अपापमठ (!) से एक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतिमा मँगवा ली। उसके दर्शन करके राजा प्रतिज्ञामुक्त हो गये! इसके बाद एक महीने तक दिगम्बरियोंसे विवाद हुआ और अन्तमें अम्बिकाने 'उज्जितसेल सिहरे' आदि गाथाएँ कहकर विवादकी समाप्ति कर दी। (इन गाथाओंमें यह कहा गया है कि जो स्त्रियोंकी मुक्ति मानता है, वही सच्चा जैन मार्ग है और उसीका यह तीर्थ है) इस तरह तीर्थ लेकर, दिगम्बर श्वेताम्बरोंकी प्रतिमाओंमें नग्नावस्था और अञ्चलिकाका भेद कर दिया।

उक्त अवतरणसे दो बातें मालूम होती हैं। एक तो यह कि पहले दोनोंकी प्रतिमाओंमें कोई भेद नहीं था; और दूसरी यह कि इस घटनाके पहले गिरनार पर ५० वर्ष तक दिगम्बरियोंका अधिकार था।

६—इसी उपदेशतरङ्गिणी (पृष्ठ २४७) में वस्तुपाल मंत्रीके सँघका वर्णन है जो उन्होंने सं० १२८५ में निकाला था। उसमें २४ दन्तमय देवालय, १२० काष्ठ देवालय, ४५०० गाड़ियाँ, १८०० डोलियाँ, ७०० सुखासन, ५०० पालकियाँ, ७०० आचार्य, २००० श्वेताम्बर साधु, ११०० दिगम्बर, १६०० श्रीकरी, ४००० घोड़े, २००० ऊँट और ७ लाख मनुष्य थे! यद्यपि यह वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण है, तो भी इससे यह मालूम होता है कि उस समय तीर्थ-यात्रा, पूजनार्चा आदि कार्य्योंमें दिगम्बरों और श्वेताम्बरोंमें इतनी विभिन्नता नहीं थी, जितनी कि अब है; और इसी कारण इस संघमें श्वेताम्बरियोंके साथ ११०० दिगम्बर भी गये थे। दोनोंमें आजकलके समान वैरभाव नहीं होगा। और दिगम्बर श्वेताम्बरोंकी मूर्तियोंमें यदि अन्तर होता तो दिगम्बरियोंके लिए वस्तुपालने दिगम्बर देवालयोंकी भी व्यवस्था की होती और उनकी भी संख्या दी होती।

१०—जान पड़ता है, गिरिनार पर्वत पर दिगम्बरों और श्वेताम्बरोंके बीच यह विवाद कभी न कभी अवश्य हुआ है जिसका उल्लेख धर्मसागर उपाध्यायने किया है। यह कोई ऐतिहासिक घटना अवश्य है; क्योंकि इसका उल्लेख दिगम्बर-साहित्यमें भी मिलता है। नन्दिसंघकी गुर्वावलीमें लिखा है:—

पद्मनन्दी गुरुर्जातो* बलात्कारगणाग्रणी।
पाषाणघटितायेन वादिता श्रीसरस्वती॥३६॥
उज्जयन्तगिरौ तेन गच्छः सारस्वतोभवेत्।
अतस्तस्मै मुनीन्द्राय नमः श्रीपद्मनन्दिने३७

और भी कई जगह † इस घटनाका जिक्र है कि गिरनारपर दिगम्बरों और श्वेताम्बरोंका शास्त्रार्थ हुआ था और उसमें सरस्वतीकी मूर्तिमेंसे ये शब्द निकलनेसे कि सत्य मार्ग दिगम्बरोंका है, श्वेताम्बर पराजित हो गये थे। इस सरस्वतीकी मूर्तिको वाचाल करनेवाले पद्मनन्दि भट्टारक थे जिनका समय उक्त गुर्वावलीमें विक्रम संवत् १३८५ से १४५० लिखा है। इनके शिष्य शुभचन्द्र और प्रशिष्य जिनचन्द्र थे। श्वेताम्बर ग्रन्थोंमें यही घटना इस रूपमें वर्णित है कि अम्बिकादेवीने श्वेताम्बरोंकी विजय यह

* आचार्य कुन्दकुन्दका भी एक नाम पद्मनन्दि है; अतएव पीछेके लेखकोंने इस शास्त्रार्थ और विजयका मुकुट कुन्दकुन्दको भी पहना दिया है; परन्तु यह बड़ा भारी भ्रम है। ये पद्मनन्दि १४वीं शताब्दिके एक भट्टारक हैं।

† कविवर वृन्दावनजी ने लिखा है:—

संघसहित श्रीकुन्द कुन्द (पद्मनन्दि?)
गुरु, बन्दन हेत गए गिरनार।
वाद पर्यो तहँ संशयमति सों,
साखी बदी अंबिकाकार।
'सत्यपन्थ निर्ग्रंथ दिगम्बर,
कही सुरी तहँ प्रगट पुकार।
सो गुरुदेव बसौ उर मेरे,
बिघन हरन मंगल करतार।'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहकर कराई थी कि जिस मार्गमें स्त्री-को मोक्ष माना है वही सच्चा है। जीत चाहे किसीकी हुई हो—क्योंकि शास्त्रार्थोंमें तो हम आजकल भी यही देखते हैं कि दोनोंही पक्षवाले अपनी अपनी जीतका डंका पीटा करते हैं—परन्तु यह निश्चित है कि उक्त विवाद हुआ था और उसी समयसे दिगम्बरों और श्वेताम्बरोंमें विद्वेषका यह बीज विशेष रूपसे बोया गया था जिसने आगे चलकर बड़े बड़े विषमय फल उत्पन्न किये। पिछले दिगम्बर-श्वेताम्बर साहित्यका परिश्रमपूर्वक परिशीलन करनेसे इस घटनाका निश्चित समय भी मालूम हो सकता है; और हमारा अनुमान है कि दोनों ओरके प्रमाणोंसे वह समय भी एक ही ठहरेगा। *

११—मुग़ल बादशाह अकबरके समयमें हीरविजय सूरि नामके एक सुप्रसिद्ध श्वेताम्बराचार्य हुए हैं। अकबर उन्हें गुरुवत् मानता था। संस्कृत और गुजरातीमें उनके सम्बन्धमें बहुतसे ग्रन्थ लिखे गये हैं। इन ग्रन्थोंमें लिखा है कि "हीरविजयजीने मथुरासे लौटते हुए गोपाचल (ग्वालियर) की बावन-गजी भव्याकृति मूर्तिके दर्शन किये।" और यह मूर्ति दिगम्बर सम्प्रदायकी है, इसमें कोई सन्देह नहीं। इससे मालूम होता है कि बादशाह अकबरके समय तक भी दोनों सम्प्रदायोंमें मूर्ति-सम्बन्धी विरोध नहीं था। उस समय श्वेताम्बर सम्प्रदायके आचार्य तक नग्न मूर्तियोंके दर्शन किया करते थे।

१२—ऐसा मालूम होता है कि दिगम्बर और श्वेताम्बर प्रतिमाओंमें भेद हो जानेके बाद भी बहुत समय तक दिगम्बरों और श्वेताम्बरोंमें मित्रता बनी रही है। बहुत समय तक इस खयालके लोग दोनों सम्प्रदायोंमें बने रहे हैं कि एक दूसरेके धर्मकार्योंमें बाधा नहीं डालनी चाहिए। दोनोंको अपने अपने विश्वासके अनुसार पूजा-अर्चा करने देनाही सज्जनता है। अनुसन्धान करनेसे इसके अनेक प्रमाण मिल सकते हैं।

शत्रुंजय और आबूके पहाड़ोंमें श्वेताम्बर मन्दिरोंके बीचों बीच दिगम्बर मन्दिरोंका अस्तित्व अब भी इस बातकी साक्षी दे रहा है कि उस समयके वैभवसम्पन्न और समर्थ श्वेताम्बरी भी यह नहीं चाहते थे कि इन तीर्थोंपर हमही हम रहें, दिगम्बरी नहीं आने पावें।

२—गन्धार (भरोंच) एक प्रसिद्ध बन्दरगाह था। वहाँ एक पुराना दिगम्बर मन्दिर था। जब वह गिर गया और उसकी जगह नया श्वेताम्बर मन्दिर बनवाया गया, तब वहाँके श्वेताम्बर भाइयोंने दिगम्बर प्रतिमाओंको एक जुदा देवकुलिका (देहली) में स्थापित कर दिया। यह देवकुलिका अब भी मौजूद है।

३—बिहारमें अबसे १२-१३ वर्ष पहले एक जैन मन्दिर हमने स्वयं देखा है जिसके अधिकारी श्वेताम्बर हैं। उसमें एक ओर दिगम्बरी वेदिका भी है और उसमें जो मूर्तियाँ हैं, उनका दर्शन पूजन दिगम्बरी भाई किया करते हैं।

४—ओरिएण्टल कालेज लाहौरके प्रो० बनारसीदास जी एम० ए० से मालूम हुआ है कि लाहौरके जैन मन्दिरमें दोनों सम्प्रदायोंकी मूर्तियाँ दो पृथक् पृथक्

* पूर्वोक्त पद्मनन्दिकी ही शिष्य-परम्परामें एक पद्मनन्दि भट्टारक और हुए हैं जिन्होंने शत्रुंजय पर्वतके दिगम्बर मन्दिरकी प्रतिष्ठा सम्वत् १६८६ में कराई थी। देखो जैनमित्र भाग २२ अंक १५।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वेदिकाओंमें थीं। अभी ५-७ वर्ष पहले दोनोंके बीचमें एक दीवार बनवा दी गई है।

५—पूना शहरमें एकही अहातेके भीतर दिगम्बर और श्वेताम्बर मन्दिर अब तक हैं।

६—ग्वालियर राज्यके शिवपुरकलाँ नामक स्थानमें एक दिगम्बर मन्दिर ऐसा है जिसमें ७-८ श्वेताम्बर मूर्तियाँ हैं; और एक श्वेताम्बर मन्दिर ऐसा है जिसमें ७-८ दिगम्बरी मूर्तियाँ हैं। पहले दोनों मन्दिरोंमें दोनों सम्प्रदायके लोग जाते थे; परन्तु अब केवल भादों सुदी १० को धूप खेनेके लिए जाया करते हैं। तलाश करनेसे इस तरहके और भी अनेक प्रमाण मिल सकते हैं। इनसे मालूम होता है कि पहलेके लोगोंमें आजकलके समान धर्मयुद्धोंकी प्रवृत्ति नहीं थी; बल्कि दोनों हिल मिलकर रहना चाहते थे।

१३—अकसर दिगम्बरी भाइयोंकी ओरसे यह आक्षेप किया जाता है कि श्वेताम्बरी भाई दिगम्बरी मन्दिरों और प्रतिमाओंपर अधिकार कर लिया करते हैं; और यही आक्षेप श्वेताम्बरियोंकी ओरसे दिगम्बरियोंपर किया जाता है। यह आक्षेप बहुत अंशोंमें सच्चा है; परन्तु इसके पात्र दोनोंही सम्प्रदायवाले हैं। इस विषयमें कोई सम्प्रदाय निर्दोष नहीं ठहर सकता। सम्प्रदाय-मोह चीज ही ऐसी है कि वह भिन्न सम्प्रदायवालोंके साथ उदारताका व्यवहार करनेमें संकुचित हुए बिना नहीं रह सकती। इसके सम्बन्धमें भी अनेक उदाहरण मिल सकते हैं। क—श्रद्धेय मुनि जिनविजयजीसे मालूम हुआ कि सुप्रसिद्ध तीर्थ रिखबदेवका मुख्य मन्दिर दिगम्बर सम्प्रदायका है; परन्तु उसपर अधिकार श्वेताम्बरी भाइयोंका है। ख—रोशन मुहल्ला आगरेके सुप्रसिद्ध श्वेताम्बर मन्दिर (चिन्तामणि पार्श्वनाथ) की मूलनायककी मूर्ति दिगम्बर सम्प्रदायकी है। (देखो जैनशासन वर्ष १)। ग—बैराट (जयपुर) का पार्श्वनाथका मन्दिर वास्तवमें श्वेताम्बर सम्प्रदायका है; परन्तु इस समय वह एक खण्डेलवाल श्रावकके अधिकारमें है। डा० देवदत्त रामकृष्ण भाण्डारकर एम० ए०ने इस मन्दिरका निरीक्षण करके वेस्टर्न सर्किलके आर्किआलोजिकल सर्वेकी सन् १९१० की रिपोर्टमें एक विस्तृत लेख लिखा है। यह मन्दिर शक सं० १५०९में बादशाह अकबरके समयमें बना है। अकबरने शकमणगोत्रीय इन्द्रराज श्रीमालीको बैराटका अधिकारी बनाया था। इसी इन्द्रराजका बनवाया हुआ यह महोदय प्रसाद या इन्द्रविहार नामका मन्दिर है। देवालयके अहातेकी दीवारमें इस विषयका विस्तृत शिलालेख लगा हुआ है। हीरविजयसूरिके शिष्य कल्याणविजयके हाथसे इस मन्दिरकी प्रतिष्ठा हुई थी और इस काममें इन्द्रराजने ४० हज़ार रुपया खर्च किया था।

१४—जब कोई मुझसे पूछता है कि अमुक तीर्थपर वास्तविक अधिकार किसका है, तो मैं कह दिया करता हूँ कि दोनोंका है। दोनोंमेंसे चाहे जो पीछेका हो, पर उसका अधिकार पहलेवालेसे कम नहीं ठहराया जा सकता। बल्कि उसपर तो ऐसे जैनेतर लोगोंका भी अधिकार है जो जिनदेवपर श्रद्धा रखते हैं और उनका भक्तिभावसे पूजन वन्दन करते हैं। जब दोनोंही सम्प्रदायवाले जिनदेवों और सिद्धोंके उपासक हैं और उपासना करना किसीकी जमींदारीका कोई खेत जोतना या फसल काट लेना नहीं है, तब इनका अधिकार कम या ज्यादा ठहर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राया ही कैसे जा सकता है ? कुछ लोग पुराने दस्तावेज और तमस्सुक पेश करके अपना अधिकार सिद्ध करनेका प्रयत्न किया करते हैं; और सम्भव है; उनसे उनका अधिकार सिद्ध भी होता हो, परन्तु क्या उनसे यह प्रश्न नहीं किया जा सकता कि इन दस्तावेजोंसे पहले भी तो ये दोनों सम्प्रदाय थे। तब क्या इनसे पहलेके प्रमाणपत्रोंका तुम्हारे प्रतिपक्षीके पास होना सम्भव नहीं है? और यह सिद्ध करना तो बाकी ही रह जायगा कि उनके लिखनेवाले शासकोंको वैसे किसी सार्वजनिक धर्मस्थानके सम्बन्धमें दस्तावेज लिख देनेका अधिकार था या नहीं। यह संभव और स्वाभाविक है कि किसी समय पर किसी सम्प्रदायवालों-का ऐहिक वैभव और प्रभाव बढ़ गया हो और उस समय उनके समीपके तीर्थ-का प्रबन्ध उनके हाथमें आ गया हो और किसी समय उनके बदले दूसरोंके पास चला गया हो। परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं हो सकता कि उस तीर्थका वास्तविक अधिकारी अमुक सम्प्रदाय ही था। ऊपर उपदेश-तरंगिणी ग्रन्थका जो अवतरण दिया है, उससे मालूम होता है कि संघवी धाराकके समयमें गिरनार तीर्थ पर ५० वर्षसे दिगम्बरियोंका अधिकार था और पीछे आम राजाकी कृपासे वह अधिकार श्वेताम्बरियोंके हाथमें चला गया होगा। इसी तरहका एक उल्लेख तारंगा सिद्धक्षेत्रके सम्बन्धमें कुमारपाल प्रतिबोध नामक श्वेताम्बर ग्रन्थमें मिलता है। यह ग्रन्थ सोमप्रभ सूरिका बनाया हुआ है और 'गायकाड़ ओरिएण्टल सीरीज' में हालमें ही प्रकाशित हुआ है। इसकी रचनाका समय विक्रम संवत् १२४१ है। इसमें आर्य खपुटाचार्यकी कथामें लिखा है कि—

ताराइ बुद्धदेवीइ मंदिरं,
तेण कारियं पुव्वं।
आसन्न गिरंम्मि तओ,
भन्नइ ताराउरं ति इमो ॥
तेणेव तत्थ पच्छा,
भवणं सिद्धाइयाइ कारवियं।
तं पुण कालवसेण,
दियंवरेहिं परिग्गहियं ॥
तत्थ समाएसेणं,
अजिय जिणिंदस्स मंदिरं तुगं।
दंडाहिव अभएणं
जसदेव सुएण निम्मवियं ॥

इन गाथाओंका अभिप्राय है कि—"पहले उसने तारा*नामकी बौद्ध देवीका मंदिर पर्वतके समीप बनवाया; इस कारण इस तीर्थको तारापुर कहते हैं। इसके बाद उसीने फिर वहीं पर सिद्धायिका (जैन-देवी) का मन्दिर बनवाया। परन्तु काल-वशसे उसे दिगम्बरियोंने ले लिया। अब वहीं पर (कुमारपाल राजा कहते हैं) मेरे आदेशसे उस देवके पुत्र दंडाधिप अभय-की देखरेखमें अजित † जिनेन्द्रका ऊँचा मन्दिर बनवाया गया है।" इससे मालूम होता है कि कुमारपाल राजाके समय तक समूचे तारंगा तीर्थ पर या कमसे कम सिद्धायिका देवीके मन्दिरपर दिगम्बरियोंका अधिकार था।

तारंगा पर्वत पर कोटिशिला पर एक

---

* तारंगा पर्वतकी तलैटीसे उत्तरकी ओर लगभग डेढ़ मीलकी दूरी पर तारादेवीकी मूर्ति अब भी मौजूद है और उस पर बौद्धोंकी एक प्रसिद्ध गाथा लिखी हुई है।

† कुमारपाल महाराजका यह विशाल मन्दिर अब भी वर्तमान है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वेदी है । उसकी एक प्रतिमा पर अब भी संवत् ११६० की वैशाख सुदी ६ का, सिद्धराज जयसिंहके समयका लेख है * जिससे मालूम होता है कि 'उस समय अर्थात् कुमारपाल महाराजके मन्दिर-निर्माणके पहले, वहाँ पर दिगम्बरियोंके मन्दिर और प्रतिमाएँ थीं और कुमारपाल प्रतिबोधके कथनानुसार संभव है कि पर्वत पर दिगम्बरियोंका ही अधिकार हो । इसी तरह पावागढ़ सिद्धक्षेत्र पर इस समय सम्पूर्ण अधिकार दिगम्बरियों-का है; परन्तु पर्वतके ऊपर कई ऐसे मन्दिरोंके खण्डहर पड़े हुए हैं जो श्वेताम्बर सम्प्रदायके हैं और जिनसे मालूम होता है कि वहाँ पर श्वेता-म्बरी भाई भी जाते थे और उनके मन्दिर थे । कदम्बवंशी राजाओंके जो ताम्रपत्र † प्रकाशित हुए हैं, उनमेंसे दूसरे ताम्रपत्रमें श्वेताम्बर महाश्रमणसंघ और दिगम्बर महाश्रमणसंघके उपभोगके लिए कालवङ्ग नामक ग्रामके देनेका उल्लेख है । यह स्थान कर्नाटक प्रदेशमें धारवाड़ जिलेके आस पास कहीं पर है । अवश्य ही उस समय वहाँ पर कोई श्वेताम्बर संघका भी स्थान, तीर्थादि होगा । परन्तु बहुत समयसे उस ओर श्वेताम्बरी भाइयोंका एक तरहसे अभाव ही है, इस कारण उक्त स्थान या तो नष्टभ्रष्ट हो गया होगा या दिगम्बरियोंके अधिकारमें होगा ।

आशा है कि पाठकगण उक्त प्रमाणों-से दिगम्बर-श्वेताम्बरोंके झगड़ेकी असलियतको बहुत कुछ समझ जायँगे । इस समय जब कि दोनों सम्प्रदायके समझदार लोग इन झगड़ोंसे ऊब गये हैं और चाहते हैं कि किसी तरह इनका अन्त हो जाय, इस लेखका बहुत कुछ उपयोग हो सकता है ।

परम वीतराग भगवानका शान्तिप्रद शासन दोनों पक्षके मुखियोंको सद्बुद्धि दे कि वे इस जैन धर्मको कलंकित करनेवाले व्यवसायसे शीघ्र ही पराङ्मुख हो जायँ ।

वीतराग मार्गकी रक्षा तीर्थों या मन्दिरोंको अपनी अपनी सम्पत्ति बना लेनेसे नहीं होगी, किन्तु उन तीर्थों और मन्दिरोंमेंसे घर घर और घट घटमें शान्ति, दया, क्षमाके सन्देश पहुँचानेसे होगी । इस बातको हमें घड़ी भरके लिए भी न भूलना चाहिए ।

हाथीगुफाका शिलालेख ।

जैन सम्राट् खारवेलका इतिहास ।

[लेखक—कुमार देवेंद्रप्रसाद, आरा ।]

(गतांकसे आगे ।)

हाथीगुफाका वह मूल शिलालेख जिसे श्रीयुत के० पी० जायसवालने पर्वत परसे पुनः जाँच द्वारा संशोधित करके 'दि जर्नल आफ् दि बिहार एँड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटीके, दिसम्बर सन् १६१८ के अंकमें, संस्कृत छायानुवाद सहित प्रकाशित कराया था और जिसका परिचय गतांकमें दिया गया है, अपने उस संशोधित रूपमें, संस्कृतानुवाद सहित निम्न प्रकार है । इसमें जो अक्षर मोटे (ब्लैक) टाइपमें छापे गये हैं वे इस बातको सूचित करनेके लिए हैं कि शिलालेखमें उन खास खास शब्दोंसे पहले उन्हें गौरवके साथ उच्चारण करनेके वास्ते, कुछ स्थान ख़ाली छोड़ा हुआ है ।

---

* देखो जैनमित्र भाग २२ अंक १२ ।

† इन ताम्रपत्रोंका विवरण देखो जैनहितैषी भाग १४ अंक ७-८ में ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

॥ प्राकृतम् ॥ / ॥ संस्कृतम् ॥

पहली पंक्ति

नमो अरहंतानं [।] नमो सवसिधानं [।] ऐरेन महाराजेन महामेघवाहनेन चेतराजवस-वधनेन पसथसुभलखनेन चतुरंतल थुन-गुनोपहितेन कलिंगाधिपतिना सिरि खारवेलेन ।

नमोऽर्हद्भ्यः [।] नमःसर्वसिद्धेभ्यः [।] ऐलेन महाराजेन महामेघवाहनेन चैत्रराजवंशवर्धनेन प्रशस्तशुभलक्षणेन चतुरंतरस्थूणगुणोपहितेन कलिङ्गाधिपतिना श्रीखारवेलेन ।

दूसरी पंक्ति

पन्दरसवसानि सिरि-कडार-सरीर-वता कीडिता कुमारकीडिका [।] ततो लेखरूपगणना-ववहार-विधिविसारदेन सवविजावदातेन नववसानि योवरजं पसासितं [।] संपुण-चतुवीसति-वसो तदानि वधमानसेसयोवे(=व) नाभिविजयो ततिये

पञ्चदशवर्षाणि श्री-कडारशरीर-वता क्रीडिताः कुमारक्रीडाः [।] ततो लेखरूपगणनाव्यवहारविधिविशारदेन सर्वविद्यावदातेन नववर्षाणि यौवराज्यं प्रशासितम् [।] सम्पूर्णचतुर्विंशतिवर्षस्तदानीं वर्धमानशेषयौवनाभिविजयस्तृतीये

तीसरी पंक्ति

कलिंगराजवंसे पुरिसयुगे महारजाभिसेचनं पापुनाति [।] अभिसितमतो च पधमे वसे वात-विहत-गोपुर-पाकार-निवेसनं पटिसंखारयति [।] कलिंनगरि' [ख]ब-बीरं इसि-तालं तडाग-पाडियो च बन्धापयति [।] सबुयान-पतिसंठपनं च

कलिङ्गराजवंशे पुरुष-युगाय* महाराज्याभिषेचनं प्राप्नोति [।] अभिषिक्तमात्रश्च प्रथमे वर्षे वातविहतं गोपुर-प्राकार-निवेशनं प्रतिसंस्कारयति [।] कलिङ्गनगर्याम् उत्तिका-बिल्लं इषितल्लं तडागपालीश्च बन्धयति [।] सर्वोद्यानप्रतिसंस्थापनञ्च

चौथी पंक्ति

कारयति [।] पनतीसाहि सतसहसेहि पकतियो च रंजयति [।] दुतिये च वसे अचितयिता सातकणिं पछिमदिसं हय-गज-नर-रध-बहुलं दंडं पथापयति [।] कण्हबेनां गताय च सेनाय वितापति * मुसिकनगरं [।] ततिये पुन वसे

कारयति [।] पञ्चत्रिंशच्छतसहस्रैः† प्रकृतीश्च रञ्जयति [।] द्वितीयेच वर्षे अचिन्तयित्वा सातकर्णिं पश्चिमदेशं‡ हय-गज-नर-रथ-बहुलं दण्डं प्रस्थापयति [।] कृष्णवेणां गतया च सेनया वितापयति मूषिकनगरम् [।] तृतीये पुनर्वर्षे

---

* वितापितं इति वा ।

* पुरिसयुगे इति निमित्ते सप्तमी । कम्मकरणनिमित्तत्थेसु सत्तमी इति काच्चायनः (२. १. ४०)

† पञ्चत्रिंशच्छत-सहस्रैः प्रकृतीः परिच्छिद्य परिगणय्य, इत्येतदर्थे तृतीया ।

‡ दिक्शब्दः पालीप्राकृते विदेशार्थोऽपि ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

॥ प्राकृतम् ॥

पाँचवीं पंक्ति.

गंधव-वेदबुधो दंत-नत-गीत-वादितसंदस-नाहि उसव-समाज-कारापनाहि च कीडापयति नगरिं [।] तथा चवुथे वसे विजाधराधिवासं अहत-पुवं कलिंगपुवराजनिवेसितं.........वितध-मकूटे स-बिलम' ढिते च निखित-छत-

छठी पंक्ति

भिंगारे हित-रतन-सापतेये सव-रठिक भोजके पादे वंदापयति [।] पंचमे च दानी वसे नंदराज—ति-वससत-ओघाटितं तनसुलिय-वाटा पनाडिं नगरं पवेस [य] ति [।] सो [पि च वसे] छडम' भिसितो च राजसुय['] सन्दसयंतो सव-कर-वणं

सातवीं पंक्ति

अनुगह-अनेकानि सतसहसानि विसजति पोरं जानपदं [।] सतमं च वसं पसासतो वजिरघरवि धुसि ति घरिनी स-मतुक-पद-पुंना सकुमार [।]............ ....[।] अठमे च वसे महतिसेनाय मह [त-भिति]-गोरधगिरिं

आठवीं पंक्ति

घातापयिता राजगहं उपपीडापयति [।] एतिना च कंम' पदान-पनादेन संवित सेन-वाहिनीं विपमुंचितुं मधुरां अपयातो येव नरिंदो [नाम]................ ......[मो ?] यछति [विछ]........... .. ..पलवभरे

नवीं पंक्ति

कलपरुखे हय-गज-रध-सह-यंते सव-घरावास-परिवसने स-अगिणठिये [।] सव-गहनं च कारयितुं बम्हणानं जाति-पंतिं परिहारं ददाति- [।] अरहत............व ....न...........गिय

॥संस्कृतम् ॥

गन्धर्ववेदबुधो दम्प*-नृत्त-गीत-वादित्र-सन्दर्शनैरुत्सव-समाज-कारणैश्च क्रीडयति नगरीम् [।] तथा चतुर्थे वर्षे विद्याधराधिवासम् अहतपूर्वं कलिङ्गपूर्वराजनिवेशितं.........वितथ-मकुटान् सार्धितबिल्मांश्च निक्षिप्त-छत्र-

भृङ्गारान् हृत-रत्न-स्वापतेयान् सर्वराष्ट्रिक भोजकान् पादावभिवादयते [।] पञ्चमे चेदानीं वर्षे नन्दराजेन त्रि-शत-वर्षीयाम् अवघट्टितां तनसुलियवाटात् प्रणालीं नगरं प्रवेशयति [।] सो [ऽपि च वर्षे] षष्ठेऽभिषिक्तश्च राजसूयं सन्दर्शयन् सर्व-कर-पणम्

अनुग्रहाननेकान् शतसहस्रं विसृजति पौराय जानपदाय [।] सप्तमं च वर्षं प्रशासतो वज्रगृहवती धृष्टिरिति गृहिणी सन्मातृकपद-पूर्णा सकुमार [।] .... [।] अष्टमे च वर्षे महत्या सेनया महा-[भित्ति] गोरथगिरिं

घातयित्वा राजगृहमुपपीडयति [।] एतेन च कर्मावदान-प्रणादेन संवीतां सैन्यवाहिनीं विप्रमोक्तुं मथुरामपयात एव नरेन्द्रो [नाम]...............[मो?]† यच्छति [विछ]...................पल्लवभृतानि

कल्पवृक्षान् हयगजरथान् सयन्तॄन् सर्वगृहावास-परिवसनानि साग्निष्ठिकानि [।] सर्वग्रहणं च कारयितुं ब्राह्मणानां जातिपङ्क्त्यै परिहारं ददाति [।] अर्हत्......... ....व.........न........गिया (?)

* दम्प = दम्पति ?

† नवमे वर्षे इत्येतस्य मूलपाठो नष्टोऽन्तर्हितावरेषु ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

॥ प्राकृतम् ॥

दसवीं पंक्ति

...[क]. [मा] नेहि रा [ज] संनिवासं महाविजयं पासादं कारापयति अठतिसाय सत-सहसेहि [।] दसमे च वसे महधीत' भिसमयो भरध-वस-पथानं महिजयनं...ति कारापयति...........[निरितय] उयातानं च मणि-रतना [नि] उपलभते [।]

ग्यारहवीं पंक्ति

...........मंडे च पुव-राजनिवेसित-पीथुडग-द [ल] भ-नंगले नेकासयति जनपद-भावनं च तेरस-वस-सत-केतुभद-तित' मर-देह-संघातं [।] वार-समे च वसे ..
...........सेहि वितासयति उतरापथ-राजानो

बारहवीं पंक्ति

..............मगधानं च विपुलं भयं जनेतो हथिसु गंगाय पाययति [।] मागधं च राजानं वहसातिमितं*पादे वंदापति [।] नंदराज-नीतं च कालिंग-जिन-संनिवेसं...........गहरतनान पडिहारेहि अंगमागध-वसुं च नेयाति [।]

तेरहवीं पंक्ति

........त जठर-लिखिल-बरानि सिहिरानि नीवेसयति सत-विसिकनं परिहारेन [।] अभुतमछरियं च हथि-नावन परीपुरं उ [प-] देणह हय-हथी-रतना-[मा] निकं पंडराजा पदानि अनेकानि मुतमणिरतनानि अहरापयति इध सत-[स] [।]

चौदहवीं पंक्ति

..........सिनो वसीकरोति [।] तेरसमे च वसे सुपवत-विजयि-चके कुमारी-पवते अरहिते य [।] प-खिम-व्यसंताहि

* वहसतिमितं इति वा ।

॥ संस्कृतम् ॥

...[क] [ ] मानैः (?) राजसन्निवासं महाविजयं प्रासादं कारयति अष्टात्रिंशता शत सहस्रैः [।] दशमे च वर्षे महधृताभिसमयो भारतवर्ष-प्रस्थानं महीजयनं...ति कारयति...............[निरित्या ?] उद्यातानां च मणि-रत्नानि उपलभते [।]

......*......मण्डे च पूर्वराजनिवेशिते पृथूदग्र-दल्भ-लाङ्गले निष्कासयति जनपद-भावनञ्च त्रयोदश-शत-वर्षीयस्य केतुभद्रस्य तिक्तामर-देह-संघातम् [।] द्वादशे च वर्षे............ भिः वित्रासयति उत्तरापथराजान्

.........मगधानाञ्च विपुलम्भयं जनयन् हस्तिषु गङ्गायां प्राययति [।] मागधञ्च राजानं बृहस्पतिमित्रं पादावभिवादयते [।] नन्दराजनीतञ्च कालिङ्ग-जिन-सन्निवेशं.........गृहरत्नानां प्रतिहारैरङ्ग-मागध-वसूनि च नाययति [।]

............त जठरोल्लिखितानि वराणि शिखराणि निवेशयति शत-वैशिकानां परिहारेण [।] अद्भुतमाश्चर्यञ्च हस्ति-नावां परिपूरम् उपदेयं हय-हस्तिरत्न-माणिक्यं पाण्ड्यराजात् इदानीमनेकानि मुक्ता-मणिरत्नानि आहारयति इह शत [शः] [।]

............सिनो वशीकरोति [।] त्रयोदशे च वर्षे सुप्रवृत्त-विजयिचक्रे कुमारी पर्वते ऽर्हिते याप-क्षेम-व्यसद्भ्यः का-

* एकादशे वर्षे इत्येतस्य मूलपाठो नष्टो गलितशिलायाम् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

॥ प्राकृतम् ॥

काय्यनिसीदीयाय यापञावकेहि राज-भितिनि चिनवतानि वोसासितानि [।] पूजानि कत-उवासा खारवेल-सिरिना जीवदेव-सिरि-कल्पं राखिता [।]

॥ संस्कृतम् ॥

यिकनिषीद्यां यापज्ञापकेभ्यः राज-भृती-श्चीर्णव्रताः व्यवशासिताः [।] पूजाः कृतो-पासाः खारवेलेन श्रीमता श्रीजीवदेव-कल्पं रक्षिताः [।]

पन्द्रहवीं पंक्ति

...........[ता] सु कतं समण-सुविहि-तानं (नुं?) च सात-दिसानं (नुं?) ञातानं तपस-इसिनं संघायनं (नुं?) [;] अरहत निसीदिया समीपे पभारे वराकर-समु-थपिताहि अनेक-योजनाहिताहि...... सिलाहि सिंहपथ-रानिय * धुसिय निस-यानि

...........[ता] सु कृतं श्रमणेभ्यः * सुवि हितेभ्यः शास्त्रदृग्भ्यः ज्ञातृभ्यः तपऋ-षिभ्यः संघायनम् [।] अर्हन्निषीद्याः समीपे प्राग्भारे वराकरसमुत्थापिता-भिरनेकयोजनाहृताभिः.........शिलाभिः सिंहप्रस्थीयायै राज्ञ्यै धूष्ट्यै निःश्रयाणि

सोलहवीं पंक्ति.

...........पटालिकोचतरे च वेडूरियगभे थंभे पतिठापयति [,] पानतरिया सत-सहसेहि [।] मुरिय—कालं वोछिंनं (नें?) च चोयठि-अगस-तिकंतरियं उपादायति [।] खेमराजा स वढराजा स भिखुराजा धमराजा पसंतो सुनंतो अनुभवंतो कला-णानि

........पाटालिकावचत्वरे च वैदूर्यग-र्भान् स्तम्भान् प्रतिष्ठापयति [,] पञ्चसप्तत्या शतसहस्रैः [।] मुरिय—कालं व्यवच्छि-न्नञ्च चतुःषष्ठ्याग्रशतिकान्तरीय-मुपादा-पयति † [।] क्षेमराजः स वर्द्धराजः स भिक्षुराजो धर्मराजः पश्यन् शृण्वन्नु-भवन् कल्याणानि

सत्रहवीं पंक्ति

...........गुण—विसेस—कुसलो सव पासंड-पूजको सव-देवायतन-संकारका-रको [अ]पति-हत-चकि-वाहिनिबलो चकधुर-गुतचको पवत-चको राजसि-वस-कुल-विनिश्रितो महा-विजयो राजा खार-वेलसिरि

.........गुण—विशेष—कुशलः सर्व-पाषण्डपूजकः सर्व-देवायतन-संस्कार-कारकः [अ] प्रतिहत-चक्रि-वाहिनी-बलः चक्रधुर-गुप्तचक्रः प्रवृत्तचक्रो राजर्षि-वंश-कुल-विनिःसृतो महाविजयो राजा खारवेलश्रीः

---

* रानिस वा इति हरनन्दनपाण्डेयाः ।

* श्रमणेषु वा ।

† दीह् खये पिचि दापयति ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शिलालेखका हिन्दी अनुवाद ।

पंक्ति १–अर्हतोंको नमस्कार। सर्व-सिद्धोंको नमस्कार। ऐल-महाराज महा-मेघवाहन, चैत्रराजवंशवर्धन, प्रशस्तशुभ-लक्षणरूपन्न, अखिल-देश-स्तम्भ, कलि-ङ्गाधिपति श्रीखारवेलने।

पंक्ति २–पन्द्रह वर्ष तक, श्रीसम्पन्न और कडार (गन्दुमी) रंगवाले शरीरसे कुमार क्रीड़ाएँ कीं। बादमें लेख, रूप-गणना, व्यवहार-विधिमें उत्तम योग्यता प्राप्त करके और समस्त विद्याओंमें प्र-वीण होकर उसने नौ वर्षोंतक युवराज-की भाँति शासन किया।

जब वह पूरा चौबीस वर्षका हो चुका तब उसने, जिसका शेष-यौवन विजयोंसे उत्तरोत्तर वृद्धिगत हुआ,–तृतीय

पंक्ति ३–कलिंगराजवंशमें, एक पु-रुषयुगके लिए महाराज्याभिषेक पाया। अपने अभिषेकके पहलेही वर्षमें उसने वातविहत (तूफ़ानके बिगाड़े हुए) गोपुर (फाटक) प्राकार (चहारदीवारी) और भवनोंका जीर्णोद्धार कराया; कलिंग नगरीके फव्वारेके कुण्ड, इषितल्ल (?) और तड़ागोंके बाँधोंको बँधवाया; समस्त उद्यानोंका प्रतिसंस्थापन कराया और पैंतीस लक्ष प्रजाको सन्तुष्ट किया।

पंक्ति ४–दूसरे वर्षमें, सातकर्णि-की चिन्ता न करके उसने पश्चिम देशको बहुतसे हाथी, घोड़ों, मनुष्यों और रथोंकी एक बड़ी सेना भेजी। कृष्णवेण नदी पर सेना पहुँचते ही, उसने उसके द्वारा मूषिक-नगरको सन्तापित किया। तीसरे वर्षमें फिर

पंक्ति ५–उस गन्धर्व-वेदमें निपुण-मतिने दम्प, नृत्य, गीत, वाद्य, सन्दर्शन, उत्सव और समाजके द्वारा नगरीका मनोरञ्जन किया।

और चौथे वर्षमें, विद्याधर-निवा-सोंको, जो पहले कभी नष्ट नहीं हुए थे और जो कलिंगके पूर्व राजाओंके निर्माण किये हुए थे........

उनके मुकुटोंको व्यर्थ करके और उनके लोहेके टोपोंके दो खंड करके और उनके छत्र,

पंक्ति ६–और भृंगारों (सुवर्ण-कलशों) को नष्ट करके तथा गिराकर, और उनके समस्त बहुमूल्य पदार्थों तथा रत्नोंका हरण करके, उसने समस्त रा-ष्ट्रिकों और भोजकोंसे अपने चरणोंकी बन्दना कराई।

इसके बाद पाँचवें वर्षमें उसने तन सुलिय मार्गसे नगरीमें उस प्रणाली (नहर) का प्रवेश किया जिसको नन्द-राजने तीन सौ वर्ष पहले खुदवाया था।

छठे वर्षमें उसने राजसूय-यज्ञ कर-के सब करोंको क्षमा कर दिया,

पंक्ति ७-पौर और जानपद (संस्था-ओं) पर अनेक शतसहस्र–अनुग्रह वित-रण किये।

सातवें वर्ष राज्य करते हुए, वज्र घरानेकी धृष्टि (प्राकृत-धिसि) नाम्नी गृहिणीने मातृक पदको पूर्ण करके सकुमार (।)...(।)

आठवें वर्षमें उसने (खारवेलने) बड़ी दीवारवाले गोरथगिरि पर एक बड़ी सेनाके द्वारा

पंक्ति ८–आक्रमण करके राजगृह-को घेर लिया। पराक्रमके कार्योंके इस समाचारके कारण नरेन्द्र [नाम]...अपनी घिरी हुई सेनाको छुड़ानेके लिये मथुरा-को चला गया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(नवें वर्षमें) उसने दिये......पल्लव युक्त

पंक्ति ९–कल्पवृक्ष, सारथी सहित हय-गज-रथ और सबको अग्निवेदिका सहित गृह, आवास और परिवसन। सब दानको ग्रहण कराए जानेके लिए उसने ब्राह्मणोंकी जातिपंक्ति (जातीय संस्थाओं) को भूमि प्रदान की। अर्हत्... ...व......न......गिया (?)

पंक्ति १०–[क] [f] मानैः (?) उसने महाविजय-प्रासाद नामक राज-सन्निवास, ३८ सहस्रकी लागतका बनवाया।

दसवें वर्षमें–उसने पवित्र विधानों द्वारा युद्धकी तैयारी करके देश जीतनेकी इच्छासे, भारतवर्ष (उत्तरी भारत) को प्रस्थान किया। ......क्लेश (?) से रहित ....उसने आक्रमण किये गये लोगोंके मणि और रत्नोंको पाया।

पंक्ति ११–(ग्यारहवें वर्षमें) पूर्व राजाओंके बनवाये हुए मण्डपमें, जिसके पहिये और जिसकी लकड़ी मोटी, ऊँची और विशाल थी, जनपदसे प्रतिष्ठित तेरहवें वर्ष पूर्वमें विद्यमान केतुभद्रकी तिक्त (नीम) काष्ठकी अमर मूर्तिको उसने उत्सवसे निकाला।

बारहवें वर्षमें–......उसने उत्तरापथ (उत्तरी पञ्जाब और सीमान्त प्रदेश) के राजाओंमें त्रास उत्पन्न किया।

पंक्ति १२–.........और मगधके निवासियोंमें विपुल भय उत्पन्न करते हुए उसने अपने हाथियोंको गंगा पार कराया और मगधके राजा बृहस्पतिमित्रसे अपने चरणोंकी बन्दना कराई.........(वह) कलिंग–जिनकी मूर्तिको जिसे नन्दराज ले गया था, घर लौटा लाया और अंग और मगधकी अमूल्य वस्तुओंको भी ले आया।

पंक्ति १३–उसने...........जठरोल्लिखित (जिनके भीतर लेख खुदे हैं) उत्तम शिखर, सौ कारीगरोंको भूमि-प्रदान करके, बनवाए और यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि वह पाण्ड्यराजसे हस्तिनावोंमें भराकर श्रेष्ठ हय, हस्ति, माणिक और बहुतसे मुक्ता और रत्न नजरानेमें लाया।

पंक्ति १४–उसने...........वश में किया।

फिर तेरहवें वर्षमें व्रत पूरा होने पर (खारवेलने) उन याप-ज्ञापकोंको जो पूज्य कुमारी पर्वतपर, जहाँ जिनका चक्र पूर्ण रूपसे स्थापित है, समाधियों पर याप और क्षेमकी क्रियाओंमें प्रवृत्त थे; राजभृतियोंको वितरण किया। पूजा और अन्य उपासक कृत्योंके क्रमको श्रीजीवदेवकी भाँति खारवेलने प्रचलित रखा।

पंक्ति १५–सुविहित श्रमणोंके निमित्त शास्त्र नेत्रके धारकों, ज्ञानियों और तपोबलसे पूर्ण ऋषियोंके लिए (उसके द्वारा) एक संघायन (एकत्र होनेका भवन) बनाया गया। अर्हत्की समाधि (निषद्या) के निकट, पहाड़की ढालपर, बहुत योजनोंसे लाये हुए, और सुन्दर खानोंसे निकाले हुए पत्थरोंसे, अपनी सिंहप्रस्थी रानी 'धृष्टी'के निमित्त-विश्रामागार—

पंक्ति १६–और उसने पाटालिकाओंमें रत्न-जटित स्तम्भोंको पचहत्तर लाख पणों (मुद्राओं) के व्ययसे प्रतिष्ठापित किया। वह (इस समय) मुरिय कालके १६४वें वर्षको पूर्ण करता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वह क्षेमराज, वर्द्धराज, भिक्षुराज और धर्मराज है और कल्याणको देखता रहा है, सुनता रहा है और अनुभव करता रहा है।

पंक्ति १७——गुणविशेष-कुशल, सर्व मतोंकी पूजा करनेवाला, सर्व देवालयोंका संस्कार करानेवाला, जिसके रथ और जिसकी सेनाको कभी कोई रोक न सका, जिसका चक्र (सेना) चक्रपुर (सेना-पति) के द्वारा सुरक्षित रहता है, जिसका चक्र प्रवृत्त है और जो राजर्षिवंश-कुलमें उत्पन्न हुआ है, ऐसा महाविजयी राजा श्रीखारवेल है।

परिशिष्ट ।

शिलालेखकी प्रसिद्ध घटनाओंका तिथिपत्र ।

ई० पू० (ईसा के पूर्व)		
„ १४६० (लगभग)	....	केतु भद्र
„ ४६० (लगभग)	...	कलिंगमें नन्द-शासन
„ ...६२३०	...	अशोककी मृत्यु]
„ [२२० (लगभग)	...	कलिंगके तृतीय-राजवंशका स्थापन]
„ १६७ ...	...	खारवेलका जन्म
„ [१८८ ...	...	मौर्यवंशका अन्त और पुष्पमित्रका राज्य प्राप्त करना]
„ १८२ ...	...	खारवेलका युवराज होना
„ [१८० (लगभग)	...	सातकर्णि प्रथमका राज्य प्रारम्भ]
„ १७३ ...	...	खारवेलका राज्याभिषेक
„ १७२ ...	...	मूषिक-नगरपर आक्रमण
„ १६६ ...	...	राष्ट्रिकों और भोजकोंका पराजय
„ १६७ ...	...	राजसूय-यज्ञ
„ १६५ ...	...	मगधपर प्रथम बार आक्रमण
„ १६१ ...	...	उत्तरापथ और मगधपर आक्रमण, पाण्ड्यराजसे अदेय (नजराने)की प्राप्ति
„ १६० ...	...	शिलालेखकी तिथि

२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सनातनी हिन्दू ।

महात्मा गाँधीके एक लेखका अनुवाद ।

मुझसे लोग अकसर पूछा करते हैं कि आप अपनेको चुस्त 'सनातनी हिन्दू' और 'वैष्णव' क्यों कर कहलवाते हैं ? मैं समझता हूँ कि इस समय मुझे इस प्रश्नका उत्तर दे डालना चाहिए।

इस उत्तरमें सनातनी हिन्दूकी व्याख्या और वैष्णवकी पहचान आ जायगी।

जो व्यक्ति हिन्दूस्तानमें हिन्दू कुलमें जन्म लेकर, वेद उपनिषद् पुराणादि ग्रन्थोंको धर्मग्रन्थके रूपमें मानता है; जो सत्य, अहिंसादि पाँच यमों पर श्रद्धा रखता है और उनका यथाशक्ति पालन करता है; जो मानता है कि आत्मा है, परमात्मा है, आत्मा अजर और अमर है, फिर भी देहाध्यासके कारण अनेक योनियोंमें आवागमन करता रहता है, उसे मोक्ष मिल सकता है और मोक्ष परम पुरुषार्थ है; जो वर्णाश्रम और गोरक्षाधर्मको मानता है, वह हिन्दू है। ऐसी मेरी मान्यता है। और जो मनुष्य इन सब बातोंको माननेके अतिरिक्त वैष्णव सम्प्रदायको माननेवाले कुलमें उत्पन्न हुआ हो और उसका जिसने त्याग न किया हो; जिसमें नरसिंह मेहताके 'वैष्णवजन*' नामक भजनमें वर्णन किये हुए गुण थोड़े बहुत अंशोंमें मौजूद हों और जो उन गुणोंको पूर्ण करने के लिए प्रयत्न करता हो, वह वैष्णव है।

मेरा पूरा विश्वास है कि मुझमें ऊपर बतलाए हुए चिह्न अनेक अंशोंमें मौजूद हैं और उन्हें अधिक दृढ़ीभूत करनेके लिए मैं निरन्तर प्रयत्नशील रहता हूँ। इसलिए मैं बड़ी नम्रता परन्तु दृढ़ताके साथ अपने आपको चुस्त (पक्का) सनातनी हिन्दू और वैष्णव कहलानेमें संकोच नहीं करता। मेरी समझमें हिन्दू धर्मका स्थूल बाह्य स्वरूप गोरक्षा है। इस गोरक्षाके कार्यमें सारी हिन्दू जनता असमर्थ बन गई है। इससे मैं हिन्दुओंको 'नपुंसक' मानता हूँ और उन नपुंसकोंमें मैं अपने आपको घटियासे घटिया नपुंसक समझता हूँ। मैं नहीं समझता कि मैंने जो तपश्चर्या गोरक्षाके लिए की है और कर रहा हूँ, उससे अधिक तपश्चर्या और कोई करता है, और गो-वंशके प्रति मेरी जो सहानुभूति है उससे अधिक सहानुभूति किसी दूसरेमें है। इसके लिए मेरे बराबर तपश्चर्या ज्ञानपूर्वक तो शायद ही किसीने की होगी। जबतक हिन्दू गायपर दया नहीं रखते, पशुओंको हिन्दू स्वयं ही अनेक तरहके दुःख देते हैं, जबतक वे मुसलमानोंकी प्रीति सम्पादन करके उनसे प्रेमकी खातिर गोवध नहीं छुड़ा सकते हैं, जबतक अँगरेज़ लोग हिन्दुस्तानमें गोवध करते हैं, और उसको सहन करते हुए हिन्दू अँगरेज़ी सल्तनतकी सलामी बजाते हैं तबतक मैं समझता हूँ कि हिन्दू धर्ममेंसे ब्राह्मण और क्षत्रिय धर्मका लोप हो गया है; और इस कारण मैं जन्मसे वैश्य होनेपर भी उक्त दोनों धर्मोंका पालन करनेके लिए निरन्तर प्रयत्न कर रहा हूँ।

*यह भजन ५ दिसम्बरके 'नवजीवन' में प्रकाशित हुआ है। उसके अनुसार वैष्णवमें नीचे लिखे २० गुण होने चाहिएँ—१ परदुःख भंजन करनेवाला हो, २ फिर भी निरभिमानी हो, ३ सबकी बन्दना करे, ४ किसीकी निन्दा न करे, ५—६ वचनका और काछ (कच्छ) का दृढ़ हो, ७ निश्चल-मन हो, ८ समदृष्टि हो, ९ तृष्णात्यागी हो, १० एकपत्नीव्रत पालनेवाला हो, ११—१२ सत्य और अचौर्य पालना हो, १३ मायातीत हो, १४ वीतराग हो, १५ रामभक्त हो, १६ पवित्र हो, १७—२० लोभ-कपट-काम क्रोध रहित हो,। —अनुवादक।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मेरी समझमें हिन्दू-धर्मका अन्तर-स्वरूप सत्य और अहिंसा है। मैंने अपनी जान पहचानके लोगोंमें ऐसा एक भी आदमी नहीं देखा जो सत्यका सेवन उतनी सूक्ष्मतासे करता हो जितना मैं बचपनसे अबतक कर रहा हूँ। अहिंसा-का जीता जागता लक्षण प्रेम—अवैर है। मुझे दृढ़ विश्वास है कि मेरे हृदयमें प्रेम छलक रहा है—भीतर समाता नहीं है। मुझे स्वप्नमें भी किसीके प्रति वैरभाव उत्पन्न नहीं हुआ। डायरके दुष्कृत्य जान-कर भी उसके प्रति मुझे वैर उत्पन्न नहीं होता। जहाँ जहाँ मैंने दुःख देखे हैं, अन्याय देखे हैं, वहाँ मेरा आत्मा व्याकुल हुआ है।

हिन्दूधर्मका तत्त्व मोक्ष है। मैं मोक्ष-के लिए तड़फड़ा रहा हूँ। मेरी सारी प्रवृत्तियाँ मोक्षके लिए हैं। मुझे जितना विश्वास अपने शरीरके अस्तित्व और उसकी क्षणिकताके विषयमें है, उतना ही आत्माके अस्तित्व और उसके अमृ-तत्वके विषयमें है।

इन सब कारणोंसे जब कोई मुझसे 'चुस्त सनातनी हिन्दू' कहता है तब मुझे प्रसन्नता होती है।

यदि कोई मुझसे पूछे कि तुमने शास्त्रोंका गहरा अभ्यास किया है? तो मैं उससे कहूँगा कि नहीं, मैंने नहीं किया। और यदि किया भी है तो विद्वान्की दृष्टिसे नहीं किया। मेरा संस्कृत-ज्ञान बहुत थोड़ा है। संस्कृतके भाषानुवाद भी मैंने थोड़े ही पढ़े हैं। यह दावा भी मैं नहीं कर सकता कि मैंने कोई एक वेद भी पूरा पूरा पढ़ा है। फिर भी मैंने शास्त्रोंको धर्मदृष्टिसे जान लिया है। उनका रहस्य मैं समझ गया हूँ और मेरी समझमें वेदोंको पढ़े बिना भी मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

मुझे शास्त्रोंको पढ़ने और समझनेकी कुंजी मिल गई है। जो शास्त्रवचन सत्य-का, अहिंसाका, ब्रह्मचर्यका विरोधी हो, वह चाहे जहाँसे मिला हो, अप्रमाण है। शास्त्र बुद्धिसे परे नहीं हैं। जो शास्त्र बुद्धिग्राह्य न हों, उन्हें हम रद्द कर सकते हैं। उपनिषदोंको मैं पढ़ गया हूँ। मैंने ऐसे भी उपनिषत् पढ़े हैं, जो मुझे बुद्धि-ग्राह्य नहीं जँचे। इससे मैंने उन्हें आधार-भूत नहीं माना। यह बात अनेक कवियों-ने कही है कि जो शास्त्रोंके अक्षरोंसे चिमटा रहता है—वह 'वेदिया ढोर' या वेदज्ञ पशु है। शङ्कर आदि आचार्योंने शास्त्रोंका दोहन बहुत थोड़े वाक्योंमें कर दिया है; और उन सबका तात्पर्य यह है कि हमें ईश्वरभक्ति करके ज्ञान और उस ज्ञानके द्वारा मोक्ष प्राप्त करना चाहिए। गुजरातके 'अखा भगत' ने कहा है:—

सूतर आवे त्यम तुं रहे, ज्यम त्यम करीने हरिने लहे।

जो शास्त्र मदिरापान, मांसभक्षण, पाखण्ड इत्यादि सिखलाते हैं वे शास्त्र नहीं कहला सकते।

स्मृतियोंके नामसे भी बड़ा अधर्म फैल रहा है। स्मृति आदि ग्रन्थोंके अक्षरोंमें उलझकर हम नरककी योग्यता प्राप्त कर रहे हैं। स्मृतियोंसे भ्रमित होकर हिन्दू कहलानेवाले लोग व्यभिचार करते हैं और बाल-कन्याओंके ऊपर बलात्कार करने-करानेके लिए तैयार रहते हैं।

अब यह एक बड़ा भारी प्रश्न उठता है कि शास्त्र अनेक हैं। उनमेंसे हम किसे क्षेपक समझें, किसे ग्राह्य गिनें और किसे त्याज्य मानें। यदि आज ब्राह्मण-धर्मका लोप न हुआ होता, तो हम किसी ऐसे ब्राह्मणको खोजकर उससे उक्त प्रश्नका समाधान कर लेते जो यम-निय-मादिके पालनसे शुद्ध होता और जिसने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्तम ज्ञान प्राप्त किया होता। ऐसे ब्राह्मणोंके अभावसे ही इस समय भक्ति-मार्ग प्रधान हो रहा है। जब हम पाखण्ड, दम्भ, मद, माया आदि पापोंके साथ असहकार करके जो कि आधुनिक सरकारमें अनेक रूपोंमें प्रकट हो रहे हैं, आत्मशुद्धि करेंगे, उस समय शायद हमें कोई शास्त्रदोहन करनेवाला संस्कृत पुरुष मिल जाय। तबतक हमें सरल भावसे मूल तत्त्वोंको पकड़े हरिभक्त होकर विचरना चाहिए। इसके सिवा और कोई मार्ग नहीं है।

"गुरु बिना ज्ञान नहीं होता।" इसमें सन्देह नहीं कि यह एक सुवर्णमय वाक्य है। परन्तु इस समय तो गुरु मिलना ही कठिन हो रहा है। सद्गुरुके अभावमें चाहे जिसको गुरु बनाकर संसारसागरके बीचमें डूब मरना बुद्धिमानीका कार्य नहीं है। जो तारे वही गुरु है। जो स्वयं ही तरना नहीं जानता वह दूसरोंको क्या तारेगा? ऐसे तारनेवाले यदि कहीं हों भी तो वे सुलभ नहीं हैं।

अब ज़रा वर्णाश्रम पर आइये। चार वर्णोंके सिवा और कोई वर्ण नहीं है। मेरी मानता यही है कि वर्ण जन्मसे है। जो ब्राह्मण कुलमें जन्मा है, वह ब्राह्मण रहकर ही मरेगा। गुणसे वह भले ही अब्राह्मण हो जाय, परन्तु उसका ब्राह्मण शरीर ब्राह्मण ही रहेगा। जो ब्राह्मण ब्राह्मण-धर्मका पालन नहीं करता, वह अपने गुणोंके अनुसार शूद्र योनिमें और पशु योनिमें भी जन्म लेता है। मेरे सदृश ब्राह्मण और क्षत्रिय-धर्म पालन करनेवाले वैश्यको यदि फिर जन्म लेना पड़े, तो दूसरे भवमें भले ही ब्राह्मण या क्षत्रिय जन्म मिले, परन्तु इस जन्ममें तो वैश्य ही रहना पड़ेगा। और यह बात है भी यथार्थ। यद्यपि हिन्दूधर्ममें समय समय पर दूसरे धर्मवाले समा गये हैं, परन्तु वे उसी जन्ममें हिन्दू नहीं कहलाये। हिन्दू-जगत् एक समुद्र है। उसके पेटमें सारा कूड़ा-कर्कट आकर साफ़ हो जाता है—शान्त हो जाता है। ऐसा बराबर होता रहा है। इटली, ग्रीस आदि देशोंके लोग आकर हिन्दूधर्ममें समा गये हैं, परन्तु उन्हें किसीने हिन्दू बनाया नहीं। कालान्तरमें ऐसी घटती बढ़ती होती ही रही है। हिन्दूधर्म ईसाई और मुसलमान धर्मोंके समान दूसरे धर्मवालोंको यह निमन्त्रण नहीं देता कि तुम हमारे धर्ममें आकर मिल जाओ। उसका आदेश है कि सबको अपने अपने धर्मका ही पालन करना चाहिए। सिस्टर निवेदिता जैसी विदुषी हिन्दूधर्ममें आ गई, फिर भी हम उसे हिन्दूके रूपमें नहीं पहचानते। साथ ही उसका बहिष्कार या तिरस्कार भी नहीं करते। हिन्दूधर्ममें किसीके लिए 'आनापन्त' नहीं है। परन्तु उस धर्मका पालन सब कोई कर सकता है।

वर्णाश्रम एक 'कायदा' (क़ानून) है। उसका व्यावहारिक रूप जाति है। जातियोंमें बढ़ती घटती होती रहती है। जातियोंकी उत्पत्ति और नाश हुआ ही करता है। हिन्दूधर्मके बाहर यदि कोई होना चाहे तो स्वयं ही हो सकता है, किसी दूसरेके करनेसे नहीं। परन्तु वह दूसरोंके द्वारा जातिसे बाहर किया जा सकता है। जाति-बहिष्कार एक प्रकारका दण्ड है और यह सब जातियोंके हाथमें होना चाहिए।

पानी-भोजन-व्यवहार और बेटी-व्यवहार ये हिन्दूधर्मके आवश्यक विह नहीं हैं। परन्तु हिन्दूधर्ममें संयमको प्रधान पद दिया गया है; इस कारण उसके पालनेवालोंके लिए पानी-भोजन-विवाह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आदि के सूक्ष्म प्रतिबन्ध रख दिये गये हैं। उन्हें मैं बुरा नहीं समझता। परन्तु साथ ही जो उनका पालन नहीं करता उसे मैं धर्मभ्रष्ट भी नहीं समझता। भोजन-पान और विवाह-व्यवहार चाहे जहाँ न करना, इसे मैं शिष्टाचार समझता हूँ। इसमें आरोग्य और पवित्राकी रक्षा समाई हुई है। परन्तु तिरस्कारके रूपमें किसीके भोजन-पानका त्याग करना हिन्दूधर्मके विरुद्ध है, ऐसा मैं मानता हूँ। मैंने अपने अनुभवसे निश्चय किया है कि परवर्णीयों और परधर्मियोंके साथ बेटी-व्यवहार और रोटी-व्यवहारका प्रतिबन्ध हिन्दूधर्मकी संस्कृतिकी एक आवश्यक बाड़ (परिधि) है।

यदि ऐसा है तो फिर मैं मुसलमानोंके यहाँ भोजन क्यों करता हूँ? इसलिए कि उनके यहाँ भोजन करते हुए भी मैं संयम धर्मका पूरा पूरा सेवन कर सकता हूँ। पकाई हुई चीजोंमें डबल रोटी तक खाता हूँ। क्योंकि डबलरोटीके पकानेकी क्रिया बिलकुल शुद्ध है और जिस तरह पोहे तथा फुटाने चाहे जहाँ भुने हुए खाये जाते हैं, उसी तरह डबल रोटी (रोटी या चपाती नहीं) भी चाहे जहाँकी पकी हुई खाई जा सकती है।* फिर भी मेरे साथी इतना प्रतिबन्ध नहीं पालते और मुसलमान तथा अपनेसे इतर वर्णवालोंके यहाँ शुद्ध रीतिसे पकाये हुए अन्य खाद्य भी खा लेते हैं। ऐसा करके वे अपने सिरपर जाति-बहिष्कारकी जोखिम उठाते हैं; परन्तु उनका हिन्दूपना नहीं मिटता। आश्रम (साबरमतीका सत्याग्रहाश्रम) संन्यासियों जैसा धर्म पालता है। उसमें हिन्दूधर्मके अनुसार, इस युगके योग्य, एक नई जातिका नया व्यवहार चल रहा है। इस कार्यको मैं एक प्रयोग या परीक्षाके रूपमें कर रहा हूँ। यदि वह फलीभूत हुआ तो अनुकरणीय गिना जायगा और यदि निष्फल होगा तो उससे किसीकी कोई हानि न होगी। प्रयोग करनेवालेको भी कोई हानि नहीं होगी। क्योंकि इस परीक्षाका मूल संयम है। इसमें मेरा हेतु यह है कि सेवाधर्मका बिना कठिनाईके पालन हो और जहाँ पर धर्मका समावेश केवल खाने पीनेमें कर लिया गया है वहाँ इस रिवाजको उसके योग्य और गौण स्थान दिया जाय।

अब रही अस्पृश्यता या छूआछूत। अस्पृश्यताकी उत्पत्ति कैसे हुई, इसको कोई नहीं समझ सकता। मैंने इसके सम्बन्धमें अनुमान ही किये हैं। वे सत्य हों या असत्य, परन्तु यह तो अन्धा भी देख सकता है कि अस्पृश्यता है। बहुत समयका अभ्यास जिस तरह हमें अपने आत्माको नहीं पहचानने देता, उसी तरह हमारा बहुत पुराना अभ्यास अस्पृश्यताके अधर्मको भी नहीं देखने देता। किसीको भी पेटके बल चलाना, जुदा रखना, गाँवसे बाहर निकाल देना, वह मरता है या जीता, इसकी परवाह न करना, उसे जूठा भोजन खिलाना ये सब बातें कभी धर्म नहीं हो सकतीं। पंजाबके जिस ओडायर-डायरशाही अत्याचारोंके विरुद्ध हम पुकार मचा रहे हैं, उनसे भी अधिक अन्याय और अत्याचार हम अन्त्यजों (भंगी, चमार आदि जातियों) पर कर रहे हैं। अन्त्यज पड़ोसमें नहीं रह सकता, अन्त्यजको अपनी मालिकी जमीन नहीं मिल सकती, अन्त्यजको हमें

* समझमें नहीं आया कि महात्माजीका यह विचार किस दृष्टिको लिये हुए है, कैसे उन्होंने साधारण रोटीकी अपेक्षा डबल रोटीके पकानेकी क्रियाको बिलकुल शुद्ध माना है और क्योंकर डबल रोटीकी, चाहे जहाँकी पकी हुई होने-पर भी ग्राह्य प्रतिपादन किया है—दोनोंमें तात्विक दृष्टिसे क्या विशेषता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देखते ही चिल्लाकर कहना चाहिए कि "दूर रहना, मुझे छूना नहीं," अन्त्यजको गाड़ीमें साथ बैठनेकी आज्ञा नहीं। यह हिन्दूधर्म नहीं है—यह तो डायरशाही है। अस्पृश्यतामें संयम नहीं है। अस्पृश्यताको पालना चाहिए, इसके लिए यह उदाहरण दिया जाता है कि माता बच्चेका मैला उठाकर तब तक किसीको नहीं छूती है जबतक वह स्नान नहीं कर लेती। परन्तु इसमें तो माता स्वयं ही नहीं छूना चाहती। और यदि इस नियमका हम भंगियोंके सम्बन्धमें पालन करावें तो उससे कोई इन्कार नहीं कर सकता। (अर्थात् जिस समय भंगी मैला उठाकर आया हो उसने न स्नान किया हो, उस समय वह स्वयं ही हम लोगोंको न छूए। स्नान कर चुकनेपर छूनेकी रोक-टोक नहीं होनी चाहिए।) भंगी आदि जातियोंको अस्पृश्य गिनकर हम गन्दगीको सहन करते हैं और रोगोंको उत्पन्न करते हैं। यदि अस्पृश्यको स्पृश्य गिनने लगेंगे तो अपने उस अङ्गको (भंगी आदि जातियोंको) साफ रखना सीख जायँगे।

बहुतसे भंगियोंके घरोंको मैंने वैष्णवके घरोंसे भी उजला देखा है। उनमेंसे कितनोंकी ही सत्यवादिता, सरलता, दया आदि देखकर तो मैं चकित हो गया हूँ। मेरा विश्वास है कि हिन्दूधर्ममें अस्पृश्यता (छूआछूत) रूपी कलिके प्रवेश करनेसे ही हम पतित बन गये हैं और इसीसे गोमाताकी रक्षा करनेके लिए वीर्यहीन हो गये हैं। जबतक हम इस डायरशाहीसे मुक्त नहीं होते, तबतक अँगरेज़ी डायरशाहीसे मुक्त होनेका हमें कोई अधिकार नहीं है।*

नोट। सिर्फ यह बतलानेके लिए कि महात्मा गान्धीके विचार कैसे हैं, यह लेख प्रकट किया जाता है। अनेक लोगोंने उन्हें जैनधर्मानुयायी समझ रक्खा है। कभी कभी सार्वजनिक सभाओं और पत्रों तकमें ऐसी बातें प्रकाशित हो जाती हैं। अभी कुछ ही समय पहले पूनेके 'ज्ञानप्रकाश' में नागपुरके देशभक्त डा० मुंजेका एक संवाद प्रकाशित हुआ था। उसमें डा० मुंजेने स्पष्ट शब्दोंमें यह प्रकट किया था कि म० गान्धी इस आन्दोलनके द्वारा जैनधर्मका प्रचार कर रहे हैं और यह बड़े दुःखकी बात है। असहकार आन्दोलन दाक्षिणात्योंकी और शिवाजी आदिकी राजनीतिके बिलकुल विरुद्ध है। परन्तु किया क्या जाय, दक्षिणमें कोई बड़ा नेता नहीं रहा। इत्यादि। स्वनामधन्य स्वर्गीय लोकमान्य तिलकके साथ महात्मा गान्धीका एक सिद्धान्तके सम्बन्धमें जो थोड़ा सा विवाद हुआ था, उससे भी लोगोंने यही समझा था कि म० गान्धी जैनधर्मके अनुयायी हैं। लोकमान्यका कथन था कि 'शठं प्रति शाठ्यं कुर्यात्' (जैसेके साथ तैसा होनेकी नीति ठीक है) और महात्मा गान्धी कहते थे कि बुरेके साथ भी भलाई करनी चाहिए। 'अक्रोधेन जयेत् क्रोधं' (क्रोधको क्षमासे जीतना चाहिए।) इस नीतिको गान्धीजी अपने व्याख्यानोंमें अक्सर बतलाया करते हैं और यह नीति जैनधर्मकी ओर बहुत अधिक झुकी हुई मालूम होती है। उनकी जीवनचर्या, उनके व्रत-नियम, उनकी अपरिग्रहशीलता और उनकी परम अहिंसा-वृत्ति भी लोगोंके इस विचारको पुष्ट करती है कि वे जैनधर्मानुयायी हैं। परन्तु इस लेखमें पाठक देखेंगे कि वे अपनेको चुस्त सनातनी हिन्दू और वैष्णव प्रकट करते हैं।

---

* ६ फ़रवरी १९२१ के 'नवजीवन' से अनुवादित।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह सच है कि महात्माजीके जीवन पर जैनधर्मकी बहुत बड़ी छाप पड़ी है। सुप्रसिद्ध जैनतत्वज्ञ स्वर्गीय रायचन्दजीको वे बहुत बड़ा आदर्श पुरुष मानते हैं। वे यह भी स्वीकार करते हैं कि मेरे चरित्र पर उनके जीवनका सबसे अधिक प्रभाव है। जैनधर्मके परम अहिंसा तत्त्वको जितने व्यापक और विशाल रूपमें उन्होंने व्यवहारयोग्य बनाकर दिखलाया है, उतना पिछले हजार वर्षोंमें शायद ही किसीने दिखलाया हो। उनका चरित्र एक सच्चेसे सच्चे जैनीके लिए भी अनुकरणीय है; और इस दृष्टिसे उन्हें 'जैन' कहना अनुचित नहीं हो सकता। फिर भी वे अपनेको 'जैन' न कहकर 'सनातनी हिन्दू' और 'वैष्णव' मानते हैं और उनके इस कथनपर अविश्वास करनेका कोई कारण नहीं देख पड़ता।

उनके अनेक व्याख्यानों और लेखोंसे प्रकट होता है कि वे कट्टर ईश्वरवादी हैं। अर्थात् उनका जैनोंके समान अनेक परमात्माओं या सिद्धोंमें नहीं, किन्तु एक परब्रह्म परमात्मामें विश्वास है। जैन धर्मके साथ उनके विश्वासमें जो बड़ा भारी अन्तर है वह यही जान पड़ता है*। और तात्त्विक दृष्टिसे यह अन्तर साधारण नहीं है। उनकी वेद, उपनिषत्, पुराण आदि धर्मग्रन्थोंकी मान्यता भी इसी बातको पुष्ट करती है। परन्तु इस एक सिद्धान्तको छोड़कर उन्होंने अपने लेखमें जो अन्य बातें प्रकट की हैं, वे ऐसी नहीं हैं जिनका जैनधर्मके साथ सामंजस्य न हो सके।

म० गान्धी जैनी नहीं हैं और वे अपने आपको 'चुस्त सनातनी हिन्दू' कहते हैं। परन्तु इस लेखसे उनका सनातन हिन्दूधर्म कुछ विलक्षण सा मालूम होता है। क्योंकि वे वेद, पुराण, स्मृति आदि धर्मग्रन्थोंकी उतनी ही बातें माननेके लिए तैयार हैं जो बुद्धिग्राह्य हों, अर्थात् उनकी सदसद्विवेक बुद्धि जिनके माननेसे इन्कार न करती हो। वे धर्मग्रन्थोंके अक्षरों और शब्दोंसे चिमटे रहनेको—उनके अर्थों पर लड़ मरनेको—भी ठीक नहीं समझते। स्मृतियोंके प्रति तो उनके हृदयमें बहुत ही कम आदर-बुद्धि जान पड़ती है। अनेक उपनिषदोंको भी वे बुद्धिग्राह्य नहीं मानते। इन सब बातोंको दूसरे शब्दोंमें कहा जाय तो यों कहना चाहिए कि वे 'आगमप्रामाण्य' को बहुत अधिक महत्त्व नहीं देते। इससे यह ध्वनित होता है कि वे वेदोक्त हिंसाको, बलिदानकी प्रथाको और मांसभक्षण आदिको सर्वथा अप्रमाण मानते होंगे। उन्होंने लिखा भी है कि "जो शास्त्रवचन सत्य, अहिंसा और ब्रह्मचर्यका विरोधी हो वह चाहे जहाँसे मिला हो, मान्य नहीं हो सकता।"

उनके सामाजिक विचार भी सनातनी हिन्दुओंके लिए विलक्षण मालूम हुए बिना न रहेंगे। अस्पृश्यता और छूआछूतके 'अधर्म' को नष्ट कर देनेके लिए तो उन्होंने कमर ही कस रक्खी है। रहा वर्णाश्रम, सो उसकी कठोरता और कट्टरताको भी उन्होंने बहुत कुछ

* महात्मा गान्धीके ईश्वरविषयक इस विश्वाससम्बन्धमें अभी हमें बहुत सन्देह है। सम्भव है कि इस विषयमें उनका विचार उस विचारसे विभिन्न न हो जिसे श्रीमद्राजचन्द नामके तत्त्वज्ञानीने, जिनको महात्माजी अपना आदर्शपुरुष मानते और अपने हृदयपर जिनकी छाप स्वीकार करते हैं, उन्हें उनके प्रश्नोंके उत्तरमें सुझाया था। वे तदनुसार आत्माको ही ईश्वर समझते हों। और इसलिए उनका ईश्वरविषयक शब्दप्रयोग उसी आत्मदृष्टि अथवा किसी नयविवक्षाको लिये हुए हो। परन्तु इन सब बातोंका निर्णय और स्पष्टीकरण स्वयं महात्माजीके द्वारा ही हो सकता है और होना चाहिए। सम्पादक।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कम कर दिया। संयमकी पालनामें जहाँ कोई बाधा न आती हो, वहाँ खाने पीनेमें वे धर्मभ्रष्ट होना नहीं मानते। एक वर्णकी विविध जातियोंके बीच बेटी-व्यवहार होना भी उनकी समझमें बुरा नहीं है। निदान उनके विचारोंका सार सोमदेव सूरिके शब्दोंमें यही हो सकता है कि "जिनके करनेसे व्रत या संयमका घात न होता हो और विश्वासमें अन्तर न आता हो, वे सब लौकिक विधियाँ हमको माननीय हैं।"

हमारी समझमें गान्धीजीका हिन्दूधर्म एक संस्कार किया हुआ हिन्दूधर्म है। उसे उन्होंने अपनी परम शान्त, निष्पक्ष और अहिंसक वृत्तिके अनुकूल संस्कृत कर लिया है और उस संस्कारमें उनके जीवन पर जैनधर्मका जो प्रभाव पड़ा है, उसकी छाया स्पष्टतया लक्षित होती है। इसी कारण वे जैनधर्मको हिन्दूधर्मसे जुदा नहीं समझते। उन्होंने अहमदाबादमें महावीर जयन्तीके अवसर पर यह कहा भी था कि "जो सच्चा हिन्दू है वह जैन है; और जो सच्चा जैन है वह हिन्दू है।"

कोई माने या न माने और समझे या न समझे, परन्तु महात्मा गान्धीके उपदेशों और प्रभावने अलक्षित रूपसे जैनधर्मका असीम उपकार किया है; और उन नवयुवकोंके विचारोंमें तो आश्चर्यजनक परिवर्तन कर दिया है जो जैनधर्मके अहिंसा-तत्त्वको भारतका गारत करनेवाला बहुत प्रधान कारण समझ रहे थे। अहिंसामें भी कोई महती शक्ति है और वह ऐसी शक्ति है जिसके आगे एक बड़े भारी साम्राज्यकी शक्ति भी तुच्छ है। यह उन्हींके आन्दोलनने विश्वास कराया है।

नाथूराम प्रेमी।

दुष्प्राप्य और अलभ्य जैन ग्रन्थ।

२३ द्विसन्धान काव्यकी टीकाएँ।

सत्कविशिरोमणि विद्वद्रत्न धनञ्जयका बनाया हुआ 'द्विसन्धान' नामका एक सुप्रसिद्ध महाकाव्य ग्रन्थ है। अपने साहित्य तथा काव्यकी दृष्टिसे यह ग्रन्थ बड़े ही महत्त्वका और उच्च कोटिका प्राचीन ग्रन्थरत्न है। इसका दूसरा नाम 'राघवपाण्डवीय' भी है। इसमें रचना-कौशलके द्वारा श्रीरामचन्द्र और पाण्डव दोनोंकी कथाओंका सम्मेलन किया गया है—एक ही शब्द-रचना परसे दोनों कथाओंका अर्थावबोध होता है। एक प्रकारसे अर्थ करने पर यह ग्रन्थ 'रामायण' मालूम होता है और दूसरे प्रकारसे अर्थ करने पर इसमें 'महाभारत' का आनन्द आने लगता है। यही इस ग्रन्थमें सबसे बड़ी खूबी है और इसीसे इसका सार्थक नाम 'द्विसन्धान' रक्खा गया है। ऐसे महत्त्वके ग्रन्थकी जितनी अच्छी और विस्तृत टीका उपलब्ध हो, उतना ही अच्छा है। अभीतक इस ग्रन्थ पर हमें दो संस्कृत टीकाएँ उपलब्ध हुई हैं। एक टीका श्रीनेमिचन्द्रकी बनाई हुई है जिसका नाम 'पदकौमुदी' है। यह टीका आराके जैनसिद्धान्त भवनमें मौजूद है। इसकी पत्रसंख्या २५३ और श्लोकसंख्या प्रायः नौ हज़ार है। टीकाके मङ्गलाचरणका प्रथम पद्य इस प्रकार है:-

श्रीमान् शिवानन्दनयीशवन्द्यो
भूयाद्विभूत्यै मुनिसुव्रतो वः।
सद्धर्मसंभूति नरेन्द्र पूज्यो
भिन्नेन्द्रनीलोल्लसदंग कान्तिः ॥१॥

यह टीका जिन नेमिचन्द्रकी बनाई

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हुई है वे 'देवनन्दी' के शिष्य और 'विनयचन्द्र' के प्रशिष्य थे, ऐसा उक्त मङ्गलाचरणके पद्यों और सन्धियों परसे पाया जाता है। साथ ही यह भी मालूम होता है कि 'त्रैलोक्यकीर्ति' भी उनके कोई गुरु अथवा समकालीन विद्वान् थे। यथा—

जीयान्मृगेन्द्रो विनयेन्दुनामा
संवित्सदाराजित कंठपीठः।
प्रक्षीववादीभकपोलभित्तिं
प्रमाक्षरैः स्वैर्नखरैर्विदार्य ॥२॥
तस्याथ शिष्योऽजनि देवनन्दी
सद्ब्रह्मचर्यव्रत देवनन्दी।
पदाम्बुज द्वन्द्वमनिन्द्यमर्च्यं
तस्योत्तमांगेन नमस्करोमि ॥३॥
त्रैलोक्यकीर्तेश्चरणारविन्दं
पारे नयार्णोदधि सम्प्रणम्य।
पिपासतां राघवपाण्डवीयां
टीकां करिष्ये पदकौमुदीं तां ॥४॥

"इति निरवद्यविद्यामण्डनमण्डितपण्डितमण्डलीडितस्य षट्तर्कचक्रवर्तिनः श्रीमद्विनयचन्द्रपण्डितस्य गुरोरन्तेवासिनो देवनन्दिनाम्नः शिष्येण सकलकलोद्भवचारुचातुरीचन्द्रिकाचकोरेण नेमिचन्द्रेण विरचितायां द्विसन्धानकवेर्धनञ्जयस्य राघवपाण्डवीयाभिधानस्य महाकाव्यस्य पदकौमुदी नामदधानायां टीकायां नायकाभ्युदयरावणजरासन्धवधवर्णनं नामाष्टादशः सर्गः॥

२५ वर्ष हुए, सन १८६५ में, बम्बईके निर्णयसागर प्रेसने, अपनी काव्यमालामें 'द्विसंधान' को प्रकाशित किया था। उसके साथ पं० बदरीनाथ (अजैन) की बनाई हुई जो टीका लगी हुई है, वह इसी पदकौमुदी नामकी विस्तृत टीकाका सार लेकर बनाई गई है, जैसा कि उसकी भूमिकाके निम्न वाक्योंसे प्रकट है:—

सभंगाभंगश्लेषप्रधानतया कथा द्वयवर्णकस्य तस्य चास्य महाकाव्यस्य टीकापि विनयचन्द्रान्तेवासि (?) नेमिचन्द्रेण महती वृत्तासीत्। तस्याश्चातीव विस्तृतत्वात्ततः सारमुद्धृत्य श्रीबदरीनाथेनेव सकलसुमनोभूषितेन दाधीच जयपुर संस्कृतपाठशालाध्यापक विद्वद्वर बदरीनाथेनेयं सुधारूपा प्रकाशिता।

ऐसी हालतमें नेमिचन्द्रकी उक्त विस्तृत टीकाके उद्धारकी बड़ी ज़रूरत है। वह ज़रूर माणिकचन्द्र ग्रन्थमालामें प्रकाशित हो जानी चाहिए, जिससे विद्वान् लोग उसकी विशेषताओंसे लाभ उठा सकें और एक विद्वान्की अच्छी कृति सुरक्षित हो जाय।

दूसरी टीका

कवि 'देवर' की बनाई हुई है, जिसे उन्होंने 'अरलु' नामके एक प्रधान सेठकी प्रेरणासे रचा था, जैसा कि उसके प्रत्येक सर्गके अन्तमें दिये हुए निम्न वाक्यसे प्रकट है:—

अकारयदिमां टीकामरलुः श्रेष्ठिपुंगवः।
अकरोदमृताशिष्ट वचनः कविदेवरः॥

इस टीकाका नाम 'राघवपांडवीय प्रकाशिका' है और यह भी आराके जैनसिद्धान्त भवनमें मौजूद है। परन्तु यह टीका ताड़पत्रोंपर कर्णाटकी अक्षरोंमें है और इसकी अवस्था अत्यन्त जीर्णशीर्ण है, ऐसा हमें पं० शान्तिराजजीके पत्रसे मालूम हुआ है। सूचीमें इसकी पत्रसंख्या ५२ और श्लोक-संख्या १२०० दी है। कवि देवरने टीकाके शुरूमें अमरकीर्ति, सिंहनन्दि, धर्मभूषण, श्रीवर्धदेव, भट्टारक मुनि, इन आचार्योंका स्मरण तथा स्तवन किया है; और इसके बाद अरलु सेठका तथा अपना कुछ परिचय दिया है। अरलु सेठ-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के परिचयमें उन्हें कर्णाटक देशनिवासी, 'कीर्ति' नामके पिता और 'गुम्मटा' नामकी मातासे उत्पन्न, अर्हद्भक्त, श्रेष्ठितिलक, कवियोंके लिये कल्पद्रुम, स्त्रियोंके लिये कामदेव, महा गुणवान्, निर्मल कीर्तिसे शोभित, कलावान, अशोक और सरल प्रकट किया है। और अपना परिचय सिर्फ इतना ही दिया है कि अपनेको 'रामभट्ट' का पुत्र बतलाया है जो कि 'परवादि घरट्ट' थे, अर्थात् अपनी युक्तियों द्वारा अन्य वादियोंको पील डालनेवाले थे। इससे कवि देवरके पिता एक नैयायिक विद्वान् थे, ऐसा पाया जाता है।

मङ्गलाचरण और परिचयादि-विषयक वे पद्य इस प्रकार हैं :—

"आरी (?) ष्सितान्या रचयत्त्ववन्द्या
न्याराधकानामयमादि देवः ।
आरात्रिकायन्त यदीश्वराया-
मास्थायिकायाममरेन्द्रनस्यः ॥१॥
नरेन्द्रार्चितपादाय नमोस्त्वमरकीर्तये ।
यस्तपः शिखिभीतेव ययौ कीर्तिः सुरापगां॥
सिंहनन्दिमुनीन्द्रस्य स्मरामि पदयोर्द्वयम् ।
श्रीः स्पर्धयेव दासीत्वं श्रायिता यत्तपः श्रिया ॥
धर्मभूषणदेवस्य दध्रे चरण रेखया ।
रत्नत्रयनिधानाप्ररोचमान लिपिच्छविः ॥
जिगाय भुवनं येन तेनैव धनुषास्मरः ।
जितः श्रीवर्धदेवेन चकार तृणचुम्बितां(?)।
भट्टारकमुनेः पादावपूर्वकमले स्तुमः ।
यदग्रे मुकुली भावं यांति राजकराः परं ॥
आसीत्कर्णाटभूमध्यमध्यासीनो वणिग्वरः ।
मूर्तेव जिनधर्मस्य कीर्तिः कीर्तिसमाह्वयः ॥
तस्य जाया जयासत्यं मात्राधिक्यमनीषिणे(?)
गुम्मटेति भुविख्याता नामतश्चार्थतश्च या॥
नन्दयन् विदुषां वृन्दं तयोरजनिनन्दनः ।
अर्हत्सुलीन चित्तत्वादरत्नश्रेष्ठिसंज्ञया ॥
ममास्मिन्वैस्मित्यं, यदयमरलुः श्रेष्ठितिलकः।
कवीनां कल्पद्रुर्भवति महिलानां च मदनः॥
गुणैर्व्यूढैस्तुंगः सुरभिरपिकात्या धवलया।
कलावान् भद्रश्रीरनुतलमशोकश्च सरलः॥
तत्प्रियाय तनोतीमां टीकां हि कवि-देवरः।
परवादिघरट्टस्य रामभट्टस्य नन्दनः ॥"

यह टीका भी माणिकचन्द्र-ग्रन्थमाला-में निकल जानी चाहिए। इसका नाम किसी दूसरे प्रसिद्ध भण्डारकी सूचीमें अभीतक हमारे देखनेमें नहीं आया।

२४-औदार्यचिन्तामणि ।

'औदार्यचिन्तामणि' नामका एक ग्रन्थ श्रुतसागर सूरिका बनाया हुआ है। यह संस्कृतमें प्राकृत भाषाका व्याकरण ग्रन्थ है। श्रीहेमचन्द्र और त्रिविक्रमके प्राकृत व्याकरणोंसे यह व्याकरण बड़ा है और अधिक व्याख्याको लिये हुए है। इसमें छः अध्याय हैं। प्रत्येक अध्यायके शुरू और अन्तमें मङ्गलाचरणादि-विषयक जो पद्य इस ग्रन्थमें दिये हैं, उनमेंसे ऐतिहासिक तत्त्वको लिये हुए कुछ पद्य इस प्रकार हैं :—

अथ प्रणम्य सर्वज्ञं विद्यानन्द्यास्पदप्रदम्।
पूज्यपादं प्रवक्ष्यामि प्राकृत व्याकृतिं सतां॥
श्रीपूज्यपादसूरिविद्यानन्दी समन्तभद्रगुरुः।
श्रीमदकलंकदेवो जिनदेवो मंगलं दिशतु॥
श्रीकुन्द कुन्दसूरेर्विद्यानन्दिप्रभोश्च पदकंजम्।
न त्वा च पूज्यपादं संयुक्तमतः परं वक्ष्ये॥
श्रीपूज्यपादमकलंक समन्तभद्र
श्रीकुन्दकुन्दजिनचन्द्रविशाखसंज्ञाः।
श्रीमाघनन्दिशिवकोटि शिवायनाख्या,
विद्यादिनन्दि गुरवः शम मीदिशंतु॥
श्रीसर्वज्ञमदोषं तदुक्तवचनानि
निखिलसुखभवनं ।
नत्वा विद्यानन्दं स्वाद्यध्यायं प्रचयामि॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विद्याविरोधं नोधनिधिसाधुनिरस्तवादः
श्रीमानुमाप्रभुरनन्तर पूज्यपादः ।
शं वो ददातु सदयः शुभदानदक्षो
विद्यादिनन्दिगुरुरात्मविदां मुमुक्षुः ॥
समन्तभद्रैरपि पूज्यपादै
कलंकमुक्तैर कलंकदेवैः ।
यदुक्तम प्राकृतमर्थसारं
तत्प्राकृतं च श्रुतसागरेण ॥

प्रत्येक अध्यायके अन्तमें जो सन्धि दी है वह इस प्रकारकी है:—

"इत्युभयभाषाकविचक्रवर्ति-व्याकरणकमलमार्तंड-तार्किकबुधशिरोमणि परमागमप्रवीण-सूरिश्रीदेवेन्द्रकीर्तिप्रशिष्यमुमुक्षुश्रीविद्यानन्दिप्रियशिष्य-श्रीमूलसंघ-परमात्मविदुष-सूरिश्रीश्रुतसागर विरचिते, औदार्यचिन्तामणि नाम्नि (स्वोषज्ञवृत्तिनि) प्राकृत व्याकरणे·········।"

इस परिचयसे स्पष्ट है कि इस ग्रन्थके कर्त्ता वे ही श्रुतसागर हैं जो षट्प्राभृत, तत्त्वार्थसूत्र और यशस्तिलक चम्पू नामक ग्रन्थोंकी टीकाओंके कर्त्ता हैं; क्योंकि इन टीका ग्रन्थोंमें इनके कर्त्ता श्रुतसागरका भी ऐसा ही परिचय पाया जाता है। बल्कि यशस्तिलककी टीकामें 'प्राकृत व्याकरणाद्यनेक शास्त्ररचना-चंचुना' इस विशेषणके द्वारा यह साफ़ तौरसे उल्लेख भी किया गया है कि आपने प्राकृत व्याकरण आदि अनेक शास्त्रोंकी रचना की है। श्रुतसागर मल्लिभूषणके गुरुभाई और मल्लिभूषणके प्रशिष्य ब्रह्म-नेमिदत्तके समकालीन विद्वान् थे। ब्रह्म-नेमिदत्तने श्रीपालचरित्र नामका एक ग्रन्थ वि० सं० १५८५ में बनाकर समाप्त किया है; और इस ग्रन्थके एक उल्लेखसे ऐसा मालूम होता है कि श्रुतसागर उस समय मौजूद थे। इसलिए श्रुतसागरका सुनिश्चित समय विक्रमकी १६वीं शताब्दी है। उनका यह व्याकरण यशस्तिलककी टीकासे पहले बन चुका था। हमारी रायमें यह ग्रन्थ १६ वीं शताब्दीके मध्य भागका बना हुआ है। यह ग्रन्थ बङ्गालकी एशियाटिक सोसायटीकी लाइब्रेरीमें मौजूद है। दूसरे किसी प्रसिद्ध भण्डारकी सूचीमें इस ग्रन्थका नाम अभीतक हमारे देखनेमें नहीं आया। इस ग्रन्थका भी उद्धार होनेकी बड़ी ज़रूरत है। यह भी माणिकचन्द्र-ग्रन्थमालामें प्रकाशित होना चाहिए जिसमें प्राकृत भाषाके शिक्षणमें अच्छी सहायता मिल सके। इसकी जो प्रति उक्त लाइब्रेरीमें मौजूद है उसके छठे अध्यायका अन्तिम भाग कुछ खण्डित है। इसलिए और जहाँ कहींके भण्डारमें यह ग्रन्थ मौजूद हो वहाँके भाइयोंको उसकी सूचना देनी चाहिए।*

सेठ चिरंजीलालजीका दान।

पं० उदयलालजीके विवाहके समय वर्धानिवासी सेठ चिरंजीलालजी बड़जात्याने १००) का दान इस उद्देश्यसे दिया था कि उन रुपयोंके द्वारा स्त्री-समाजमें विदेशी वस्तु-बहिष्कार और असहकारका प्रचार किया जाय। खण्डेलवाल हितेच्छुके सम्पादक महाशयने इस विषय पर ७ पेजका एक 'गूढ़ गवेषणात्मक' लेख लिखनेका कष्ट उठाया है

* औदार्यचिन्तामणि सम्बन्धी इस नोटके लिखनेमें हमें श्रीयुत एस० पी० वी० रङ्गनाथ स्वामी आर्यवरगुरु, विजगापट्टमके एक अँगरेजी लेखपरसे बहुत कुछ सहायता मिली है, जिसके लिए हम उनके बहुत आभारी हैं। इस व्याकरणके प्रथम तीन अध्यायोंका सूत्रपाठ भी हमें छपा हुआ मिला है। परन्तु उसे कहाँ और किसने छपाया है, यह मालूम नहीं हुआ। सम्भव है कि उक्त रङ्गनाथ-स्वामीका ही वह छपाया हुआ हो।—सम्पादक।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और उसमें अनेक अनुमान-प्रमाणोंसे यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है कि नहीं, उक्त रुपये विधवा-विवाहके प्रचारके लिये दिये गये हैं। इस लेखमें हमपर यह इलाज़म लगाया है कि सेठ चिरंजीलालजी हमारे मित्र हैं और इस कारण हमने उन्हें आपत्तिसे बचानेके लिये झूठमूठ ही उनके दानके उद्देश्यको बदल दिया है। परन्तु सम्पादक महाशयके इस लेखका कोई मूल्य नहीं है। क्योंकि वे स्वयं तो वहाँ उपस्थित न थे जो उनकी देखी सुनी बात पर कुछ विश्वास किया जाय। रहे उनके अनुमान-प्रमाण, सो वे एक असत्य बातको सत्य सिद्ध करनेके लिए लिखे गये हैं। उनके द्वारा तर्कपद्धतिका केवल दुरुपयोग किया है। मैं स्वयं उक्त विवाहमें उपस्थित था और वक्ताके बहुत ही निकट था। अतएव मुझे उक्त असत्य अनुमान-प्रमाणोंके वाग्जालमें फँसनेकी आवश्यकता नहीं। मैं फिर भी जैनहितैषीमें प्रकाशित समाचारको दुहराता हूँ कि चिरंजीलालजीका दान स्त्रीसमाजमें विदेशी वस्तु-बहिष्कार और असहयोग प्रचारके लिए ही दिया गया है। इसके सम्बन्धमें बम्बईके और भी अनेक जैन, अजैन प्रतिष्ठित सज्जन—जो वहाँ उपस्थित थे—साक्षी दे सकते हैं; और उनकी साक्षी उन लोगोंके वचनोंसे निस्सन्देह बहुमूल्य है जिन्होंने सम्पादक महाशयको उक्त समाचार सुनाया और जो विवाहमें शामिल तो हुए थे उत्साहसे, परन्तु पंचायतके डरके मारे जिन्होंने अपना नाम तमाशगीरोंमें लिखा देनेमें ही कुशल समझी थी!

साँझ वर्तमानमें और उसके आधारसे दैनिक हिन्दुस्थानमें विवाहका जो समाचार प्रकाशित हुआ है, उसमें भी यह नहीं लिखा है कि उक्त दान विधवाविवाहके प्रचारके लिए दिया गया है। उसमें केवल यही प्रकाशित हुआ है कि इससे स्त्रीसमाजकी उन्नतिके लिए स्त्रीउपदेशिकाएँ तैयार की जायँगी। बात यह है कि उस समय सेठीजीका जो व्याख्यान हुआ था, उसमें उन्होंने यह भी कहा था कि एक ऐसी संस्थाकी बहुत आवश्यकता है जिससे स्त्रीसमाजकी उन्नतिके लिए कुछ उपदेशिकाएँ तैयार की जायँ। जान पड़ता है, रिपोर्टरने इसी बातको आगे पीछे करके उसका सम्बन्ध दानके साथ जोड़ दिया है। रिपोर्टरने सेठीजीका जितना व्याख्यान लिखा है, उससे वह अधिक नहीं तो आठ दस गुणा अवश्य बड़ा था। उसमें उन्होंने अनेक विषयोंकी चर्चा की थी। राजनैतिक चर्चा तो उनके स्वभावमें ही दाखिल हो गई है। उनका चाहे जो व्याख्यान सुन लीजिये, उसमें राजनीतिक चर्चा आये बिना नहीं रहती। अतः उस दिन भी उन्होंने असहकार और विदेशी वस्तु-बहिष्कारके सम्बन्धमें बहुत कुछ कहा था। हिन्दुस्थानकी जरा सी रिपोर्ट परसे यह निर्णय कर लेना कि असहकारकी चर्चाका वहाँ कोई प्रसंग ही नहीं था, बड़े भारी साहसका काम है। क्या हितेच्छुके सम्पादक महाशय यह समझते हैं कि दैनिक पत्रोंके रिपोर्टर ऐसी सभाओंकी रिपोर्टें अक्षरशः लिखा करते हैं? उन्हें यहाँके किसी पत्रके रिपोर्टरके साथ कुछ दिनों घूमकर अपनी इस भद्दी भूलको सुधार लेना चाहिए।

सम्पादक महाशयने 'असहकार' शब्दके लिखनेमें मेरा हृद्गत अभिप्राय क्या था, उसे बतलानेमें अपना अपूर्व शब्दपाण्डित्य प्रकट किया है और लिखा है कि मैंने इस शब्दके लिखनेमें चालाकीसे काम लिया है। वास्तवमें मेरा अभिप्राय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भारतके प्राचीन राजवंश।

हिन्दीमें इतिहासका एक अपूर्व ग्रन्थ। इस देशमें पहले जो अनेक वंशोंके बड़े बड़े प्रतापी, दानी और विद्याव्यसनी राजा महाराज हो गये हैं उनके सच्चे इतिहास हम लोग बिलकुल नहीं जानते। बहुतोंके विषयमें हमने तो झूठी ...

पुस्तक-परिचय।

१-तत्वार्थसूत्र, अँग्रेजी अनुवाद सहित।

आराकी 'दि सेक्रेड बुक्स आफ् दि जैन्स'—अर्थात्, जैनियोंके पवित्र ग्रन्थ' नामकी ग्रन्थमालाका द्वितीय ग्रन्थ। प्रकाशक कुमार देवेन्द्रप्रसादजी आरा। पृष्ठसंख्या सब मिलाकर २४० और मूल्य कपड़ेकी जिल्द सहित, साढ़े चार रुपये।

यह श्री उमास्वाति आचार्यके सुप्रसिद्ध तत्वार्थ सूत्रका अँग्रेजी अनुवाद है जिसे मिस्टर जे० एल० जैनी साहब बैरिस्टरने ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीकी सहायतासे तय्यार किया है। यद्यपि इस सारे अनुवादको देखनेका हमें अवसर नहीं मिला तो भी हमने जहाँतक देखा है, उससे ऐसा मालूम होता है कि अनुवाद प्रायः अच्छा है और अच्छे ढंगसे किया गया है। सूत्रोंके अनुवादके बाद बहुधा नोट्स और टीकासे पुस्तकको अलंकृत किया गया है। मूल सूत्रोंको सबसे पहले देवनागरी अक्षरोंमें, और उसके बाद अँग्रेजी अक्षरोंमें दिया है। अनुवादादि करते समय खास खास शब्दोंको भी दोनों अक्षरोंमें जाहिर किया है, जिससे वे लोग पूरा लाभ उठा सकें जो 'देवनागरी' का एक अक्षर भी नहीं जानते। पुस्तकमें तत्वार्थसूत्रका सार, ग्रन्थका विषयविभाग, दिगम्बर और श्वेताम्बराम्नायके सूत्रपाठोंका भेदप्रदर्शक कोष्टक* और साधारण अनुक्रमणिका लगाकर उसे विशेष उपयोगी बनाया गया है। इसमें सन्देह नहीं कि पुस्तकके तय्यार करनेमें बहुत कुछ परिश्रमसे काम लिया गया है, जिसके लिए बैरिस्टर साहब और ब्रह्मचारीजी दोनों धन्यवादके पात्र हैं। बैरिस्टर साहबकी इस कृतिसे अब अँग्रेजी संसारके लिए भी तत्वार्थसूत्रका दर्वाजा खुल गया है। यह पुस्तक विद्यार्थियोंके विशेष कामकी है, और शायद ज्यादातर उन्हींको लक्ष्य करके तय्यार भी की गई है। इसके शुरूमें पाँच पेजीकी एक, ऐतिहासिक प्रस्तावना भी दी हुई है जो बहुत साधारण है। अच्छा होता, यदि इस प्रस्तावनाके लिखनेमें कुछ विशेष परिश्रम और अनुसन्धानसे काम लिया जाता। इसमें कितनी ही बातें आपत्तिजनक भी हैं। एक स्थानपर यह बतलाया गया है कि ग्रन्थकर्ताका नाम दिगम्बरोंके अनुसार उमास्वामी और श्वेताम्बरोंके अनुसार 'उमास्वाति' है। परन्तु यह बात इतिहासकी दृष्टिसे ठीक नहीं है। दिगम्बरोंके अनुसार भी ग्रन्थकर्ताका नाम प्रायः 'उमास्वाति' ही पाया जाता है—दिगम्बर सम्प्रदायके बीसियों प्राचीन शिलालेख इसी बातकी शिक्षा दे रहे हैं†—कुछ थोड़ेसे आधुनिक उल्लेख ऐसे जरूर हैं जिनमें उमास्वामी नाम भी पाया जाता है। तत्वार्थ सूत्रके रचे जानेकी जो कथा दी है उसके सम्बन्धमें यह नहीं लिखा कि वह कौनसे ग्रन्थसे अथवा कहाँसे

---

* यह कोष्ठक वही है जो रायचन्द्र जैनशास्त्र-मालामें प्रकाशित 'सभाष्यतत्वार्थाधिगम सूत्र' के साथ लगा हुआ है। वहाँसे उठाकर और उन्हीं देवनागरी अक्षरोंमें यह यहाँ ज्योंका त्यों रक्खा गया है।

† यथा—श्रीमानुमास्वातिरयं यतीशस्तत्वार्थ सूत्रं प्रकटीचकार—श्रवणबेल्गोलस्थ शि० ले० नं० १०५।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

 CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ली गई है। जान पड़ता है, पं० कलाप्पा निटवेने, सर्वार्थसिद्धिकी प्रस्तावनामें, जो कथा कर्णाटक भाषाकी टीकाके हवालेसे दी है और जिसे पं० नाथूरामजी प्रेमीने तत्वार्थाधिगमकी भाष्य अपनी प्रस्तावनामें दिया था, उसीको कुछ शब्दोंके परिवर्तन-के साथ यहाँ उक्त प्रस्तावना परसे अनुवादित कर दिया है। परन्तु निटवे साहबने उक्त कथाको देते समय यह लिख दिया था कि इस समय उस पुस्तकका अभाव होनेसे, जैसा हमको याद है, उसके अनुसार हम कथाको उदाहृत करते हैं*। और इसके अनुसार ही उनके कहनेका वजन था। परन्तु बैरिस्टर साहबने ऐसा कुछ भी नहीं किया जिससे वह कथा सचमुच ही किसी ग्रन्थमें कही हुई समझी जाती है। वास्तवमें उक्त कथा कर्णाटक टीकामें दी हुई कथासे बहुत कुछ भिन्न है जैसा कि हमने 'पुरानी बातोंकी खोज' नामके लेखमें 'तत्वार्थसूत्रकी उत्पत्ति' शीर्षक नोटके द्वारा सूचित किया है†। खेद है कि इसी तरहपर गलतियाँ प्रचलित हो जाती हैं और अनेक प्रकारके भ्रम फैल जाते हैं। तत्वार्थ सूत्रकी टीकाओंका परिचय देते हुए, एक स्थानपर लिखा है कि श्लोक वार्तिकके कर्ता 'श्रीविद्यानन्दी' शक सं० ६८१ में पैदा हुए थे; और दूसरे स्थानपर सिद्धसेन दिवाकरकी मृत्यु वीर संवत् ५०० में बतलाई है। परन्तु इनके लिए कोई प्रमाण नहीं दिया। इन दोनों विद्वानोंके जन्म तथा मृत्युके ऐसे निश्चित संवत् अभीतक कहीं भी देखनेमें नहीं आये और न पबलिकमें प्रकट हुए। जान पड़ता है, आजसे १५ वर्ष पहले जब कि अनुसन्धान बहुत कुछ बाल्यावस्थामें

* साम्प्रतं तत्पुस्तकाभावाद्यथास्मृतमत्रोदाहरिष्यामः।

† देखो जैनहितैषीका गतांक नं० ३—४ पृष्ठ ८०।

[प्र]वाहके प्रचारके लिए दिया गया है। [उ]समें केवल यही प्रकाशित हुआ है कि [उ]ससे स्त्रीसमाजकी उन्नतिके लिए स्त्री-[उ]पदेशिकाएँ तैयार की जायँगी। बात [य]ह है कि उस समय सेठीजीका जो [व्य]ाख्यान हुआ था, उसमें उन्होंने यह भी [कहा था कि '...] दिवाकरका स्वर्गवास हुआ था', उसीको बैरिस्टर साहबने उक्त रूपसे अनुवादित कर दिया है! किसी संवत्के लगभग होनेको आपने उस संवत्में ही पैदा होना और अनुमानसे किसी संवत्के करीबकी मृत्युको उस खास संवत्में ही मृत्युका होना समझ लिया है!

इस पुस्तकके तैयार करनेमें तत्त्वार्थ सूत्रादिके हिन्दी संस्करणोंपरसे बहुत कुछ सहायता ली गई है। पुस्तकका कितना ही भाग हिन्दीपरसे अनुवादित है; और कुछ भाग ऐसा भी है जो ज्योंका त्यों उठाकर रक्खा गया है; जैसे कि दिगम्बर और श्वेताम्बराम्नायके सूत्र-पाठोंका भेदप्रदर्शक कोष्ठक, जो रामचन्द्र-जैनशास्त्रमालामें प्रकाशित सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रके (हिन्दी) संस्करणपरसे लिया गया है। परन्तु यह सब कुछ होते हुए भी पुस्तकमें एक शब्दद्वारा भी किसी-का आभार प्रकट नहीं किया गया और न उन पुस्तकों अथवा उनके लेखकोंका नाम ही दिया है जिनसे इस पुस्तकके प्रस्तुत करनेमें ख़ास सहायता ली गई है। बैरिस्टर साहबकी यह अनुदारता बहुत ही खटकती है। अच्छा होता, यदि वे उन पुस्तकादिकोंके, कमसे कम, नाम दे देते। ऐसा करनेसे, हमारे ख़यालमें, उनकी इस पुस्तकका गौरव ज़रा भी कम न होता, बल्कि उससे उलटा उनके सिर-का भार बहुत कुछ हलका हो जाता। अस्तु; पुस्तककी छपाई, सफाई, कागज़ और जिल्द सब उत्तम है और वह पढ़ने तथा संग्रह किये जानेके योग्य है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भारतके प्राचीन राजवंश।

हिन्दीमें इतिहासका एक अपूर्व ग्रन्थ।

इस देशमें पहले जो अनेक वंशोंके बड़े बड़े प्रतापी, दानी और विद्याव्यसनी राजा महाराज हो गये हैं उनके सच्चे इतिहास हम लोग बिलकुल नहीं जानते। बहुतोंके विषयमें हमने तो झूठी, ऊटपटांग किम्वदन्तियाँ सुन रक्खी हैं और बहुतोंको हम भूल ही गये हैं। इस ग्रन्थमें क्षत्रपवंश, हैहयवंश (कलचुरि) परमारवंश (जिसमें राजा भोज, मुंज, सिन्धुल आदि हुए हैं), चौहानवंश (जिसमें प्रसिद्ध महाराज पृथ्वीराज हुए हैं), सेनवंश और पालवंश तथा इन वंशोंकी प्रायः सभी शाखाओंके राजाओंका सिलसिलेवार और सच्चा इतिहास प्रमाणोंसहित संग्रह किया गया है। शिलालेखों, ताम्रपत्रों, ग्रन्थ-प्रशस्तियों, फारसी-अरबीकी तवारीखों तथा अन्य अनेक साधनोंसे बड़े ही परिश्रमपूर्वक यह ग्रन्थ रचा गया है। प्रत्येक इतिहासप्रेमीको इसकी एक एक प्रति मँगाकर रखनी चाहिए। इसमें अनेक जैन विद्वानों तथा जैन धर्मप्रेमी राजाओंका भी उल्लेख है। लगभग ४०० पृष्ठोंका कपड़ेकी जिल्द सहित ग्रन्थ है। मूल्य ३) रु०। आगेके भागोंमें गुप्त, राष्ट्रकूट आदि वंशोंके इतिहास निकलेंगे।

नकली और असली धर्मात्मा।

श्रीयुत बाबू सूरजभानुजी वकीलका लिखा हुआ सर्वसाधारणोपयोगी सरल उपन्यास। ढोंगियोंकी बड़ी पोल खोली गई है। मूल्य ॥)

नया सूचीपत्र।

उत्तमोत्तम हिन्दी पुस्तकोंका ९२ पृष्ठोंका नया सूचीपत्र छपकर तैयार है। पुस्तक-प्रेमियोंको इसकी एक कापी मँगा कर रखनी चाहिए। मैनेजर,

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई।

उत्तमोत्तम जैन ग्रन्थ।

नीचे लिखी आलोचनात्मक पुस्तकें विचारशीलोंको अवश्य पढ़नी चाहिएँ। साधारण बुद्धिके गतानुगतिक लोग इन्हें न मँगावें।

१ ग्रंथपरीक्षा प्रथम भाग। इसमें कुन्दकुन्द श्रावकाचार, उमास्वाति-श्रावकाचार और जिनसेन त्रिवर्णाचार इन तीन ग्रन्थोंकी समालाचना है। अनेक प्रमाणोंसे सिद्ध किया है कि ये असली जैनग्रन्थ नहीं हैं—भेषियोंके बनाये हुए हैं। मूल्य ।=)

२ ग्रंथपरीक्षा द्वितीय भाग। यह भद्रबाहुसंहिता नामक ग्रन्थकी विस्तृत समालोचना है। इसमें बतलाया है कि यह परमपूज्य भद्रबाहु श्रुतकेवलीका बनाया हुआ ग्रन्थ नहीं है, किन्तु ग्वालियरके किसी धूर्त भट्टारकने १६-१७ वीं शताब्दिमें इस जाली ग्रन्थको उनके नामसे बनाया है और इसमें जैनधर्मके विरुद्ध सैंकड़ों बातें लिखी गई हैं। इन दोनों पुस्तकोंके लेखक श्रीयुक्त बाबू जुगुलकिशोरजी मुख्तार हैं। मूल्य ।)

३ दर्शनसार। आचार्य देवसेनका मूल प्राकृत ग्रन्थ, संस्कृतच्छाया, हिन्दी अनुवाद और विस्तृत विवेचना। इतिहासका एक महत्वका ग्रन्थ है। इसमें श्वेताम्बर, यापनीय, काष्ठासंघ, माथुर-संघ, द्राविड़संघ आजीवक (अज्ञानमत) और वैनेयिक आदि अनेक मतोंकी उत्पत्ति और उनका स्वरूप बतलाया गया है। बड़ी खोज और परिश्रमसे इसकी रचना हुई है।

आत्मानुशासन।

भगवान् गुणभद्राचार्य्यका बनाया हुआ यह ग्रन्थ प्रत्येक जनीके स्वाध्याय करने योग्य है। इसमें जैनधर्मके असली उद्देश्य शान्तिसुखकी ओर आकर्षित किया गया है। बहुत ही सुन्दर रचना है। आजकल-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की शुद्ध हिन्दीमें हमने न्यायतीर्थ न्याय-शास्त्री पं० वंशीधरजी शास्त्रीसे इसकी टीका लिखवाई है और मूलसहित छपवाया है। जो जैनधर्मके जाननेकी इच्छा रखते हैं, उन अजैन मित्रोंको भेंटमें देने योग्य भी यह ग्रन्थ है। मूल्य २)

युक्त्यनुशासन सटीक।

माणिकचन्द्र-जैनग्रन्थमालाका १५ वाँ ग्रन्थ छपकर तैयार हो गया। इसके मूल-कर्ता भगवान् समन्तभद्र और संस्कृत टीकाके कर्ता आचार्य विद्यानन्दि हैं। यह भी देवागमकी भाँति स्तुत्यात्मक है और युक्तियोंका भाण्डार है। अभी तक यह ग्रन्थ दुर्लभ था। प्रत्येक भण्डारमें इसकी एक एक प्रति अवश्य रहनी चाहिए मू०।॥)

नियमसार।

भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यका यह बिलकुल ही अप्रसिद्ध ग्रन्थ है। लोग इसका नाम भी नहीं जानते थे। बड़ी मुश्किलसे प्राप्त करके यह छपाया गया है। नाटक समय-सार आदिके समान ही इसका भी प्रचार होना चाहिए। मूल प्राकृत, संस्कृतच्छाया, आचार्य पद्मप्रभमलधारि देवकी संस्कृत टीका और श्रीयुत शीतलप्रसादजी ब्रह्म-चारीकृत सरल भाषाटीकासहित यह छपाया गया है। अध्यात्मप्रेमियोंको अवश्य स्वाध्याय करना चाहिए। मूल्य २) दो रु०।

नयचक्र संग्रह।

यह उक्त ग्रन्थमालाका १६ वाँ ग्रन्थ है। इसमें देवसेनसूरिकृत प्राकृत नयचक्र (संस्कृतच्छायासहित) और आलाप पद्धति तथा माइल्ल धवलकृत द्रव्यस्वभा-वप्रकाश (छायासहित) ये तीन ग्रन्थ छपे हैं। भूमिका पढ़ने योग्य है। तैयार हो गया। मूल्य ॥।=)

पार्श्वपुराण भाषा।

कविवर भूधरदासजीका यह अपूर्व ग्रन्थ दूसरी बार छपाया गया है। इसकी कविता बड़ी ही मनोहारिणी है। जैनियोंके कथाग्रन्थोंमें इससे अच्छी और सुन्दर कविता आपको और कहीं न मिलेगी। विद्यार्थियोंके लिये भी बहुत उपयोगी है। शास्त्रसभाओंमें बाँचनेके योग्य है। बहुत सुन्दरतासे छपा है। मूल्य सिर्फ १) रु०।

कथामें जैनसिद्धान्त।

एक मनोरंजक कथाके द्वारा जैनधर्म-की गूढ़ कर्म-फिलासफीको सरलतासे समझना हो और एक बढ़िया काव्यका आनन्द लेना हो तो आचार्य सिद्धर्षिके बनाये हुए 'उपमितिभवप्रपञ्चाकथा' नामक संस्कृत ग्रन्थके हिन्दी अनुवादको अवश्य पढ़िये। अनुवादक श्रीयुत नाथूराम प्रेमी। मूल्य प्रथम भागका ॥।) और द्वितीय भागका ।-) जैन साहित्यमें अपने ढंगका यही एक ग्रन्थ है।

संस्कृत ग्रंथ।

१ जीवन्धरचम्पू–कवि हरिचन्द्रकृत। ॥)
२ गद्यचिन्तामणि–वादीभसिंहकृत।)
३ जीवन्धरचरित–गुणभद्राचार्यकृत। १)
४ क्षत्रचूड़ामणि–वादीभसिंहकृत। मू० १)
५ यशोधरचरित–वादिराजकृत। मू० ॥)

चर्चा समाधान। पं० भूधरमिश्र कृत। [illegible] नया ग्रन्थ। हालहीमें छपा है मूल्य ॥-)

मैनेजर, जैनग्रंथ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाँव बम्बई।

बम्बईका माल।

बम्बईका सब तरहका माल—कपड़ा, किराना, स्टेशनरी, पीतल, ताँबा, दवाइयाँ, तेल, साबुन आदि—हमसे मँगाइये। माल दस जगह जाँचकर बहुत सावधानी और ईमानदारीके साथ भेजा जाता है। चौथाई रुपयेके लगभग पेशगी भेजना चाहिए। एक बार व्यवहार करके देखिये।

नन्हेलाल हेमचंद जैन,
कमीशन एजेण्ट,
चन्दाबाड़ी, पो० गिरगाँव, बम्बई।

Printed & Published by G. K. Gurjar at Sri Lakshmi Narayan Press, Jatanbar ... of Bombay. 114-21
Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

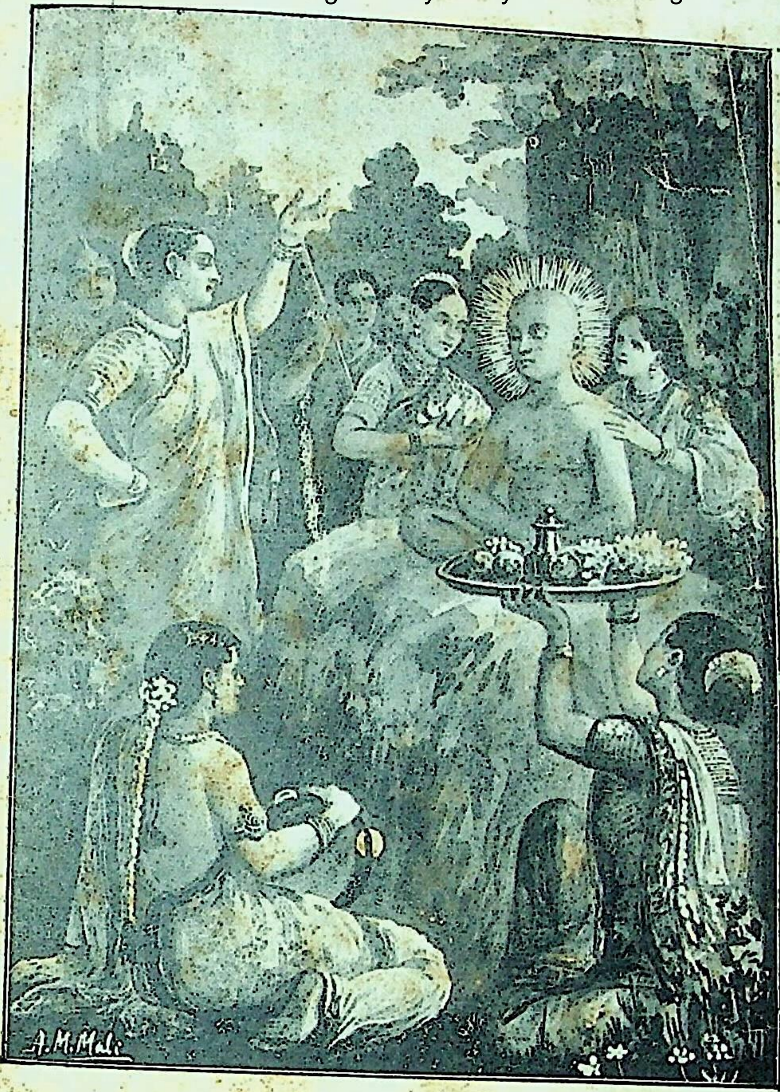

भगवान् महावीर और अप्सरायें।

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशाङ्गनाभि-
र्नीतं मनागपि मनो न विकारमार्गम्।
कल्पान्तकालमरुता चलिताचलेन
किं मन्दराद्रिशिखरं चलितं कदाचित्॥

(भक्तामरस्तोत्र)

देवाङ्गना हर सकीं मनको न तेरे,
आश्चर्य नाथ! इसमें कुछ भी नहीं है।
कल्पान्तके पवनसे उड़ते पहाड़,
पै मन्दराद्रि हिलता तक है कभी क्या?॥

(चित्राधिकारी श्रीयुक्त मेघजी हीरजीके सौजन्यसे मुद्रित।)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिद्धान्ताचार्य पं. कैला[illegible]चंद्र जी शास्त्री
[illegible], श्री स्याद्वाद महाविद्यालय, वाराणसी
द्वारा भेंट

हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः ।

बारहवाँ भाग । अंक १.

जैनहितैषी ।

जनवरी १९१६. पौष २४४२.

सारे ही संघ सनेहके सूतसौं, संयुत हों, न रहे कोउ द्वेषी ।
प्रेमसौं पालैं स्वधर्म सभी, रहैं सत्यके साँचे स्वरूप-गवेषी ॥
वैर विरोध न हो मतभेदतैं, हों सबके सब बन्धु शुभैषी ।
भारतके हितको समझें सब, चाहत है यह जैनहितैषी ॥

महावीर भगवान् ।

(सोहनी)

धन्य तुम महावीर भगवान,
लिया पुण्य अवतार जगतका, करनेको कल्याण ॥ १ ॥
बिलबिलाट करते पशुकुलको, देख दयामयप्राण ।
परम अहिंसा-मय सुधर्मकी, डाली नीव महान ॥ २ ॥
ऊँच नीचके भेदभावका, बढ़ा देख परिमाण ।
सिखलाया सबको स्वाभाविक, समता तत्त्व प्रधान ॥ ३ ॥
मिला समवसृतमें सुर नर पशु, सबको सम सम्मान ।
समता औ उदारताका यह, कैसा सुभग विधान ॥ ४ ॥
अन्धी श्रद्धाका ही जगमें, देख राज्य बलवान ।
कहा, " न मानो विना युक्तिके, कोई वचन प्रमाण " ॥ ५ ॥
जीव समर्थ स्वयं, करता है स्वतः भाग्यनिर्माण ।
यों कह स्वावलम्ब स्वाश्रयका, दिया सुफलप्रद ज्ञान ॥ ६ ॥
इन ही आदर्शोंके सम्मुख, रहनेसे सुखखान ।
भारतवासी एक समय थे, भाग्यवान गुणवान ॥ ७ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देशहित ।

(लेखक, श्रीयुत **बाबू खूबचन्दजी सोधिया** बी. ए. एल. टी. ।)

भारतवर्षकी सभ्यता अत्यंत प्राचीन है । जिस समय पश्चिमी यूरोपकी सुसभ्य जातियाँ निरी असभ्य और जंगली दशामें थीं, उससमय भारतमें सभ्यताकी उन्नत-पताका फहरा रही थी । यद्यपि हम लोगोंको उपर्युक्त बातपर पूरा विश्वास था; परंतु हम दुनियाके सामने इस बातको प्रमाणित नहीं कर सकते थे । हर्षका विषय है कि आज-कलकी वैज्ञानिक खोजोंने इस कमीको पूरा कर दिया है । पुरातत्त्वविभागकी खोजों और हमारे इतिहास और पौराणिक साहित्यके मथनसे ऐसे ऐसे प्रमाण मिले हैं और मिल रहे हैं कि जिनके द्वारा इतिहासज्ञोंने सुबूत कर दिया है कि सभ्यताके उस जमानेमें, भारतमें ऐसा कोई व्यापार, विज्ञान और कला नहीं, जिसमें उन्नति न की गई हो । हम इस भारी और महत्त्वपूर्ण खोजके लिए भारत सरकार और यूरोपीय विद्वानोंके ऋणी हैं ।

ज़रा हिंदुस्थानके नाना दर्शन, भिन्न भिन्न धर्म और संप्रदायोंकी ओर तो दृष्टि डालो । ये एक दूसरेसे कितने विभिन्न हैं ? भिन्न भिन्न धर्मोंके होनेसे हमारा जातीय बल अवश्य घट गया है और देशमें आपसी फूट और लड़ाई झगड़ोंके कई कारणोंमेंसे एक यह भी है; परंतु क्या इससे यह बात भी प्रमाणित नहीं होती है कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता उस समय इस देशमें कितनी बढ़ी चढ़ी थी और प्रत्येक व्यक्ति अपनी अपनी इच्छानुसार अपने विचारों और सिद्धांतोंको कायम कर सकता था ? विचारस्वातंत्र्य, और वचनस्वातंत्र्य, जो कि वर्तमान सभ्यताके पाये समझे जाते हैं, हमारे देशमें उस समय अपनी चरम सीमातक पहुँच चुके थे ।

प्रो० रामानन्द चटर्जीने अपनी 'Indian Shipping' नामक पुस्तकमें नाना प्रमाणोंसे यह बात भलीभाँति सुबूत की है कि नाविक विद्या और समुद्रप्रवासमें हमारे पूर्वज भलीभाँति दक्ष थे । बड़े बड़े व्यापारी और जंगी जहाज बनाना उन्हें भलीभाँति मालूम था । उक्त प्रोफेसर सा० ने धार्मिक साहित्यमेंसे भी कई सबल प्रमाण उक्त कथनकी पुष्टिमें दिये हैं । समुद्रप्रवासके विरोधियोंको उक्त पुस्तक अवश्य देखना चाहिए । अध्यापक महाशयने यह भी दिखाया है कि सिर्फ़ हमारा समुद्रीय व्यापार ही बहुत चढ़ा बढ़ा न था; परंतु हमें उपनिवेश बसानेके फायदे भी मालूम थे । जावा, सुमात्रा प्रभृति देशोंमें हिन्दू जातिकी वस्तियोंके भग्नांश आज भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नजर आते हैं। अध्यापक प्रफुल्लचन्द्रराय महाशयने प्राचीन भारतके रासायनिक ज्ञान और प्रक्रियाओंका इतिहास लिखकर दिखाया है कि इस विषयमें भी हमारा ज्ञान उस समय बहुत चढ़ा बढ़ा था। अंकगणितके मूल तत्त्व, संख्यालेखनकी दशमलवप्रणाली—जिसके विना गणित शास्त्रमें कोई उन्नति होना संभव ही न थी—भारतमें ही प्रचलित थी और यहींसे दूसरे देशोंको गई। हमारा मृतप्राय आयुर्वेद आज भी हमारे पूर्वजोंकी कीर्तिको बढ़ा रहा है। सुश्रुत, चरक आदि ग्रंथोंसे परिचित मनुष्य दावेसे कह सकता है कि शरीरविच्छेदक्रिया (Surgery) में भी हमें खूब अभ्यास था। शिल्प, चित्रविद्या और यंत्रविद्यामें भी हमारे यहाँ अच्छी उन्नति हो चुकी थी। पुरानी भारी भारी तोपें, बूँदीकी कटारें और अजंटाकी गुफाओंके चित्र इन सब कलाओंके मृतप्राय नमूने हैं। व्यापारके विषयमें इतना ही कहना बस होगा कि सत्रहवीं सदीके अंत तक स्वतः इँग्लेंड भी हमारे देशसे कपड़ा पाता था।

सारांश यह है कि सभ्यताके विषयमें भारतवर्ष किसी समय दुनियाका गुरु था। हमें इस बातका अभिमान अवश्य होना चाहिए; परंतु क्या सिर्फ़ इतना होनेसे ही हम देशहितैषी कहे जा सकेंगे? नहीं नहीं, यदि हमारे देशाभिमानकी 'इतिश्री' सिर्फ घमंडमें ही हो गई, तो जानना चाहिए कि हमने गुणके बदले अवगुण मोल लिया। ऐसा क्षुद्र देशाभिमान जिसके कारण हम आलस्यमें मग्न हो जायँ और स्वप्नकी दशाको सत्य समझने लगें नितान्त अनिष्टकर होगा। देशमें ऐसे लोगोंकी कमी नहीं है जो सिर्फ़ इसी ऐंठमें अकड़े फिरते हैं कि किसी समय हम दुनियाके गुरु थे। ये लोग हमेशा निठल्ले रहकर भी सोचते हैं कि हमारा दुख और दारिद्र इन्हीं विचारोंके भरोसे मिट जायगा। भला इन बेचारोंकी मूर्खताका भी कुछ ठिकाना है! इनकी दशा ठीक उसी मनुष्यकी नाईं है जो शराबके नशेमें मतवाला होकर पासमें लँगोटी न होते हुए भी अपनेको दुनियाका राजा समझता है। भाइयो, स्वप्नकी दशाको त्यागकर ज़रा वर्तमानको भी देखो।

वर्तमानमें हमारी अवस्था बहुत ही ख़राब है। हमारे मानसिक, नैतिक और शारीरिक बलका अधःपतन हो चुका है। देशमें ग़रीबी इतनी बढ़ गई है कि सौमें से ७९ मनुष्योंको दो बार भोजन भी मिलना कठिन है। फ़िज़ूल ख़र्चीने हमारा गला ऐसा फँसाया है कि हममें उठनेकी भी ताक़त नहीं है। शौकीनी और तड़क भड़क इतनी बढ़ गई है कि ऋण लेकर भी हमें इनको पूरा करना पड़ता है। साहसने हमसे पूर्ण विदा ले ली है। व्यापारमें नुकसान ही पड़ेगा और नौकरी सरीखा उत्तम व्यवसाय दूसरा नहीं है, इन नीच विचारोंने हमारे हृदयमें अधिकार कर लिया है। हानिकारक रीति रिवाजों-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के हम दास हैं। हम भलीभाँति जानते हैं कि ये रीति रिवाज़ हमें नुकसान पहुँचा रहे हैं; परंतु हममें उनको दूर करनेकी हिम्मत ही नहीं है। हमारा सामाजिक संगठन बिल्कुल सड़ गया है। दुर्व्यसनके पंजेमें हम इतने फँसे हैं कि हमारे नवयुवक भी लकड़ीके सहारे बिना नहीं चल सकते। स्त्रियोंको तो हमने पशुओंसे भी नीच बना रक्खा है। अज्ञानके अंधकारमें हम डूबे हुए हैं। जिस तरफ़ देखो दुर्दशा मुँह बाये खड़ी दीखती है। ऐसी हालतमें हमारा क्या कर्तव्य है?

सुखसे दुःख और दुःखसे सुख यह प्रत्येक मनुष्यका अनुभव है। इतिहास भी इस बातका साक्षी है कि किसी भी जातिके सब दिन सरीखे नहीं हो सकते। उन्नतिके बाद अवनति और अवनतिके पश्चात् उन्नति, यह सृष्टिका नियम है। जिस अदृष्टने हमें आज तक जिलाया है उसी अदृष्टके भरोसे, उसी भविष्यकी आशाके भरोसे हमें कर्तव्य करते रहना चाहिए। सघन जंगलमें रास्ता भूले हुए मनुष्यका एक मात्र सहारा आशा ही है। इस समय निराशा और निरुत्साहकी हवा हमें अपने हृदयमें नहीं लगने देनी चाहिए। कई आलसी मनुष्य समयके फेरको ही रोते हैं और भविष्यको निराशामय बताते हैं। यथार्थमें ये लोग जैसा देख रहे हैं वैसा ही बता रहे हैं। निरुद्योगी मनुष्योंने कब कब आशाका सहारा लियां है?

इस समय हमारी स्थिति सच पूछो तो बहुत अच्छी है। कुछ समयसे हम विचार भी करने लगे हैं। शिक्षाप्रचार और व्यापारमें भी थोड़ा बहुत उद्योग होने लगा है। सबसे बड़ी भारी फ़ायदेकी बात तो यह है कि हम अँगरेज़ जातिके शासनमें हैं। परमात्माकी बड़ी भारी कृपा है कि हम दुनियाकी सबसे बढ़ी चढ़ी जातिके शासनमें हैं। भारत और इँग्लेंडका संबंध–इससे बढ़कर सम्बन्ध तो हो ही नहीं सकता। हमारा कर्तव्य है कि अँगरेज़ोंके सहवास और शिक्षामें रहकर अपनेको सुधारें। यदि हमने इस समय भी उन्नति न की, तो फिर ऐसा मौक़ा न मिलेगा। हमें यह भलीभाँति याद रखना चाहिए कि ब्रिटिशकी जड़ न्याय है। अँगरेज़ोंका उद्देश्य है कि वे हमारी गिरी हुई जातिको उबारेंगे। ब्रिटिश राज्यनीतिज्ञ भली भाँति जानते हैं कि इँग्लेंड द्वारा हिन्दुस्तानका उत्थान, यह बात दुनियाके इतिहासमें सोनेके अक्षरोंमें लिखी जायगी। हमें राज्यप्रबन्धकी छोटी छोटी बातों पर अधिक ध्यान न देना चाहिए। ब्रिटिश जातिके हम ऋणी हैं। हमें इस समय शक्ति भर प्रयत्न करना चाहिए और ब्रिटिश जातिके गुणोंको सीखना चाहिए।

देशाभिमानका मतलब अपने गिरे हुए जीवनका पुनर्संस्कार है, अपने बल–मानसिक शारीरिक और नैतिक–को बढ़ाना है, समाजसंस्कार, शिक्षाविस्तार, राजकीय आन्दोलन,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मातृभाषाका उद्धार और शिल्प व्यवसाय इन सबको एक साथ बढ़ाना है। समाजका संगठन ही ऐसा होता है कि बिना चारों तरफ़ संस्कार किये उसकी दशा अच्छी नहीं होसकती। जिस प्रकार यदि तुम्हारे शरीरका एक अंग भी अस्वस्थ हो तो सारा शरीर अस्वस्थ होजाता है, उसी भाँति हमें याद रखना होगा कि हमारी राजनैतिक उन्नति, बिना समाजसुधार, शिक्षाविस्तार इत्यादि हुए बिना नहीं होसकती। तथा हमारी आर्थिक उन्नति भी इसी भाँति बिना शिक्षा और समाजसंस्कारके होना संभव नहीं। सारांश यह है कि साथ साथ हमें चारों तरफ उन्नति करनी होगी। हम लोगोंमें जो अकसर झगड़े हो जाया करते हैं और आपसमें सहानुभूति नहीं रहती, उसका कारण यही है कि हम समाजकी बनावट और उसके नियमोंसे अनभिज्ञ हैं। हम जानते हैं कि हमारी अवनतिका कारण सिर्फ़ एक ही है और उसीका योग्य उपचार करनेसे हमारी उन्नति हो सकेगी।

यह बात सर्वमान्य है कि समाजका उत्थान कोई साधारण काम नहीं है—कोटि कोटि मनुष्योंको दुखके गहरे दलदलसे निकालकर सुखी बना देना, यह कोई एक दो अथवा दस मनुष्योंका काम नहीं है। इसके लिए हमें सम्मिलित शक्तिसे कार्य लेना पड़ेगा। प्रत्येक व्यक्तिको साथ साथ दो काम करना होंगे—पहला तो स्वयं अपनी उन्नति और इसीके साथ ही दूसरोंकी उन्नतिका उपाय। यदि कोई चाहे कि बिना एक दूसरेकी सहायता लिये इतना भारी कार्य सम्पादन किया जासकेगा तो यह नितान्त भ्रम ही है। इस लिए परस्पर भ्रातृभावको बढ़ाकर सम्मिलित शक्ति द्वारा कार्य करो। जो लोग अन्यान्य क्षेत्रोंमें काम कर रहे हैं, उनसे सहानुभूति रक्खो और यथाशक्ति उनके कार्यमें सहायता दो। याद रक्खो, गिरीहुई जातिको सुधार लेना सहज बात नहीं है। वर्षों और शताब्दियों तक प्रयत्न करना होगा। निराशारूपी पिशाच बार बार आकर तुम्हारे कानोंमें मंत्र फूँकेगा। उससे सावधान रहो और उसे पास भी न फटकने दो।

हम लोगोंमें बड़ा भारी दोष यह है कि हम एक दूसरेके कार्यसे सहानुभूति नहीं दिखा सकते। मान लीजिए कि कोई व्यक्ति समाजसुधारके काममें प्रवृत्त है और दूसरा शिक्षाके क्षेत्रमें काम कर रहा है। अकसर देखनेमें आता है कि ऐसे दो व्यक्तियोंमें आपसमें बिल्कुल सहानुभूति नहीं है—एक दूसरेकी निन्दा करते हैं। होना तो चाहिए यह कि एक दूसरेको यथासंभव सहायता दें; क्योंकि दोनोंके कार्योंका अंतिम उद्देश्य एक ही है। उपर्युक्त उदाहरण हज़ारोंमेंसे सिर्फ़ एक ही है। ऐसे बीसों दृष्टान्त आपको प्रतिदिन मिलेंगे। यही कारण है कि हम सम्मिलित शक्तिका उपयोग करनेसे वञ्चित रहते हैं और इसी लिए हमारी कई

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varahasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपयोगी संस्थायें या तो नष्ट होजाती हैं अथवा योग्य फल नहीं दे सकतीं।

उपर्युक्त दोषका कारण यह विदित होता है कि हमारा मानसिक क्षेत्र बहुत ही संकुचित है। हम इस बातका विचार ही नहीं कर सकते कि अमुक कार्यके लिए कितने साधनोंकी आवश्यकता है। कूपमंडूकवत् हम यही समझते हैं कि जो कुछ विचार हमारे हैं वे ही सत्य हैं। विभिन्न विचारके आदमियोंसे हम तत्काल ही लड़ पड़ते हैं। सारी उच्च शिक्षाका मूल मंत्र यही है कि विचारोंकी भिन्नताके कारण हमें झगड़नेकी कोई आवश्यकता नहीं; उल्टा हमें प्रसन्न होना चाहिए। क्योंकि हमने कमसे कम इतना तो जान लिया कि अमुक विषय पर दूसरे मनुष्यके विचार क्या हैं। विचारोंको उन्नत बनानेकी चेष्टा करना हर एक व्यक्तिका कर्तव्य है।

देशाभिमानका मतलब सिर्फ़ अपने गुणोंको देखना ही नहीं, सिर्फ़ अपनी उन्नत अवस्थाका ढोल पीटते फिरना ही नहीं; परंतु अपने अवगुणोंका परिष्कार करना भी है। ऐसी कोई चीज़ नहीं जिसमें गुण और दोष-दोनों विद्यमान न हों; चाहे वह कितनी ही उत्तम क्यों न हो। हमारी सामाजिक अवस्थाओंका परिष्कार होना आवश्यक है। हमारे कई जातीय दोष इतने ख़राब हैं कि जबतक वे दूर न किये जायँगे उन्नति हो ही नहीं सकती। इनमें पहला और सबसे भारी तो अकर्मण्यता है। इस राक्षसने हमारा ऐसा पीछा किया है कि राजासे लेकर रंक तक इसके फँदेमें फँसे हुए हैं। भाग्यको हमने इतना प्रबल मान रक्खा है कि मानों हम बिल्कुल मुर्दा हों। हम यह नहीं जानते हैं कि भाग्य हमारे ही द्वारा बनाया गया है। जिस प्रकार चितेरा अपनी इच्छानुसार खिलौने बना सकता है और बने हुओंको मिटा सकता है, उसी तरह हम भी अपने भाग्यको बुरा या अच्छा बना सकते हैं।

उन लोगोंको ईर्ष्यासे मत देखो जो तुमसे बढ़े हुए हैं। बड़ी बड़ी पदवियाँ, विशाल इमारतें, सुन्दर बाग बगीचे, सुनहरे रुपहले रथ, बड़े बड़े हाथी घोड़े ये सब क्या हैं? ये किसको लुभाते हैं? क्या उसको जिसके पास मौजूद हैं? नहीं, किंतु उसको जिसके पास नहीं हैं। जिसके ये चीज़ें हैं, जो इनको नित्यप्रति काममें लाता है उसके लिए ये सस्ती और साधारण चीज़ें हैं। इनके कारण उसे किसी प्रकारका विशेष आनन्द नहीं होता। जैसा कुछ भाव उस मनुष्यका होता है जिसके पास इतने बहुमूल्य पदार्थ नहीं हैं वैसा ही भाव उसका होता है। जैसी वेपरवाईसे मैं और आप अपने अपने झोपड़ोंमें चले जाते हैं वैसी ही वेपरवाईसे वह अपनी कोठियों और महलोंमें जाता है। उनमें जो नक्काशी और चित्रकारीका काम हो रहा है अथवा वहाँ जो बढ़िया बढ़िया सामान रक्खा हुआ है उसकी तरफ़ उसका ध्यान भी नहीं जाता। यह ठीक ही है। इन चीज़ोंकी तरफ़ क्या ध्यान जायगा जब मनुष्योंकी दृष्टि उन पदार्थोंपर भी नहीं पड़ती जो सुन्दरतामें अपना सानी नहीं रखतीं। इस जगतसे बढ़कर, सूर्य चन्द्रमा और तारागणसे बढ़कर, क्या कोई चीज़ सुन्दर, मनोहर और विशाल हो सकती है? कदापि नहीं। फिर बतलाइए कितने मनुष्योंकी दृष्टि इनपर पड़ती है और कितने इनपर विचार करते हैं। (पड़ोसिन)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावना और सामायिकका रहस्य।

अनुवादक, **श्रीयुत कृष्णलाल वर्मा।**

दान, शील और तपके संबंधमें हमने विचार किया, और यह भी देखा कि जीवनके साथमें इनका कितना गाढ़ा संबंध है। इन तीनों तत्त्वोंको प्रत्येक मनुष्य बहुत सरलतासे समझ सकता है और आचरणमें भी ला सकता है। इनका पालन न करनेवाली व्यक्ति नीरोग निर्दोष और पवित्र नहीं बन सकती और न समाजके लिए उपयोगी ही बन सकती है। इतना ही नहीं बल्कि भावी जीवनमें सुखी होनेकी आशा भी उसे छोड़ देनी पड़ती है। परन्तु इन तीनोंसे भी विशेष महत्त्वके एक तत्त्वका हमें और विचार करना है कि जिसका प्रत्येक मनुष्यके अन्दर होना कठिन है। यह तत्त्व भावना है। यह मन और बुद्धिसे संबंध रखता है। इसके रहस्यको समझनेके लिए मानसशास्त्र (Psychology) के अभ्यासकी और तीव्र कल्पनाशक्तिकी आवश्यकता है, और आगे बढ़नेपर उच्च मनोबलकी भी ज़रूरत पड़ती है। इसी लिए इस भावनाके विस्तृत क्षेत्रमें बहुत ही भाग्यवान् पुरुष क्रीड़ा कर सकते हैं। दान, शील और तप, इन तीनोंको पालन कर चुकनेवाला मनुष्य—इस भव या परभवमें इस मंजिलके मार्ग पर बहुत कुछ चल चुकनेवाला मनुष्य—'भावना'के क्षेत्रमें प्रवेश कर सकता है। भावनाका राज्य स्थूल पृथ्वीपर नहीं; किन्तु सूक्ष्म पृथ्वीपर—मानसिक जगतमें—है, जहाँ मनुष्यको—पथिकको—एकाकी निस्सहाय होकर विचरना पड़ता है और इसही हेतुसे यह पथ दुर्गम जान पड़ता है। यह पथ चाहे विकट हो या सरल; परन्तु इसमें कुछ सन्देह नहीं है कि यह मार्ग बड़ा ही आनन्ददायक है और आत्माको—जो कि मन और बुद्धिसे परे है—पानेकी अन्तिम सीढ़ी है। 'भावना' तत्त्व कैसा गहन और विशाल है, इसका बहुत कुछ अनुमान, सामान्यतया इसके जो अर्थ होते हैं उनसे किया जा सकता है। ध्यान, मनन, चिन्तवन, शोधन, सूक्ष्मगवेषण, पूर्व स्मरण, प्रत्यक्षज्ञान (Perception or cognition) आदि इसके अर्थ हैं। ऐसे अनेक कार्योंके करनेवाले तत्त्वका विवेचन थोड़ेमें कर जाना असम्भव है और इस Science तथा Metaphysics के समान गहन विषयसे संबंध रखनेवाले विषयमें अल्पज्ञोंका दम मारना भी अनुचित है। इस लिए यहाँ केवल इस विषयकी गहनता—जिसको जैनियोंका अधिकांश भाग नहीं जानता—कुछ अंशोंमें, बताई है। अब इस भावनाकी अंगभूत धार्मिक क्रियाओंके संबंधमें कुछ कहा जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रत्येक मनुष्यको, मैत्री भावना, करुणा भावना, प्रमोद भावना और माध्यस्थ्य भावना सेवन करनेकी विधिसे परिचय होना चाहिए और तदनुसार आचरण भी करना चाहिए। समान गुण और समान विचार रखनेवाले मनुष्योंके साथ मैत्री भावना, अज्ञानी और दुखीकी तरफ़ करुणा भावना, अपनेसे विशेष ज्ञान–गुण–शक्ति आदि धारियोंमें प्रमोद भावना और अधम मनुष्योंकी तरफ़ माध्यस्थ्य भावना रखनी चाहिए।

समान गुण और विचारके धारकोंसे मित्रता रखनेसे पारस्परिक विचार विशेष विकसित होते हैं और दोनोंकी आत्मिक शक्तियाँ वृद्धिको प्राप्त होती रहती हैं।

दुखी और अज्ञानियोंके प्रति करुणाभाव रखनेसे उनके दुःख और अज्ञान नष्ट करनेमें प्रवृत्त होनेकी प्रेरणा होती है। अन्तमें परिणाम यह होता है कि न्यूनाधिक रूपसे उन दुखियोंके दुःख और अज्ञानियोंके अज्ञान मिटने लग जाते हैं, उनकी आत्मिक उत्क्रान्तिका मार्ग भी साफ़ हो जाता है और इस भावना और सहायताको करनेवाला मनुष्य भी उन्नत होता है।

विशेष ज्ञान–गुण–शक्ति आदिके धारणकरनेवालोंसे ईर्ष्या न कर उनकी उत्क्रान्तिको देख, प्रमोद–उल्लास–संतोषका अनुभव करना और उसकी अधिकाधिक उन्नतिकी इच्छा करना साधारण बात नहीं है। अतिशय उदार हृदयके बिना यह नहीं हो सकती। इस गुणसे–इस भावनासे–भावना भानेवाले मनुष्यमें भी उन गुणोंका अंश प्रविष्ट होता है और वह भी वैसा ही बन जाता है।

अधम जनोंकी नीच प्रवृत्ति देखकर माध्यस्थ्य भावना भाना चाहिए। इसका यह अभिप्राय है कि न उनकी प्रवृत्तियोंसे प्रमुदित होना चाहिए और न द्वेष ही करना चाहिए। सम्प्रति इस भावनाका बहुत ही बुरा अर्थ किया जाता है। निन्दा या स्तुतिके सिवा जैसे संसारमें अन्य कोई तत्त्व जीवित ही न हो, इस भाँतिसे लोग धर्मके बहाने यह कहकर चुप होते दिखाई देते हैं कि जनसंहारक प्रवृत्तियोंके आचरण करनेवालोंके प्रति क्षमा दिखाकर 'माध्यस्थ्य' भावनाका चिन्तवन करना चाहिए। इस समझने लोगोंको बहुत हानि पहुँचाई है। यदि ऐसी नपुंसकता ही धर्म है, तो फिर करुणाभावना बतानेकी क्या आवश्यकता थी? अपराधी या पापी भी एक मनुष्य है–आत्मा है। उसको अनिष्ट आचरणोंमें प्रवृत्त देखकर उसपर बन्धु आत्माकी भाँति करुणा करना चाहिए, जिससे उसका अन्तरात्मा सीधे मार्गपर आ जावे। यदि सर्वथा उत्तम पथका पथिक नहीं बने तो भी वह मार्गकी भीषण भयङ्करतासे तो बहुत कुछ बच सकता है। मान लो कि यदि ऐसा न भी हुआ तो भी उससे होनेवाली हानिसे अन्य मनुष्योंको बचानेका प्रयत्न करना भी 'करुणा' का ही विषय है। इस प्रकारसे कृत कर्तव्यके द्वारा उस ही समय यदि मनुष्यको, चाहे वह काल्पनिक हो या वास्तविक, कष्ट पहुँचे तो उसके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिए मनमें हर्ष विषाद न कर उदासीन भावसे रहना, 'माध्यस्थ्य' भावना कहलाती है। माध्यस्थ भावनाका अनुयायी कभी यह चिन्तवन न करेगा कि पापी दुखी हो और न वह पापीको किसीकी शान्तिमें या उन्नतिमें ही बाधक देख सकेगा। इस विषयपर बहुतसी बातें विचारणीय हैं; किन्तु उनके लिए अभी अवकाश नहीं है।

भावनाकी निर्मलता और पुष्टिके लिए जैनशास्त्रोंने जो सामायिक, प्रतिक्रमण, प्रोषध आदि क्रियायें बताई हैं उनके संबन्धमें अब हम कुछ व्यावहारिक बातोंका विचार करेंगे।

ये तीनों क्रियायें वास्तवमें बहुत महत्वकी और लाभप्रद हैं। इस बातको मानेविना तर्कशास्त्र, मानसशास्त्र और व्यवहार शास्त्रके वेत्ताओंका भी काम न चलेगा। इन तीनोंके संबन्धमें यहाँ केवल कुछ खास खास बातें ही बताई जायँगी। इनकी फिलासफी इतनी गहन है कि पूर्णतया विचार किया जाय तो इन पर बड़े बड़े ग्रंथ लिखे जा सकते हैं। यह हमें अवश्य मानना पड़ेगा कि इस समय जो ग्रंथ प्राप्त हैं वे बुद्धिवादको तृप्त करनेके लिए काफ़ी नहीं हैं।

आत्मा महान् कार्य सम्पादनके लिए, या अनन्त या असंख्य भवोंको मिटाने लिए मनुष्यशरीररूपी समर्थ शस्त्र प्राप्त करता है। यह शस्त्र किसी नियत समय तक ही रहनेवाला है, या यों कहिए कि अमुक समय तकका ही यह परवाना है। इस शस्त्रसे, आत्मा नियत समयमें चाहे ऊटपटाँग या अनावश्यकीय कार्य करे, चाहे उन शत्रुओंको जो चिरकालसे संतप्त करते आये हैं, जड़से नाश कर दे। इसके द्वारा दोनों ही कार्य हो सकते हैं। कौनसा करना चाहिए और कौनसा नहीं, यह उसकी पसंदगी पर निर्भर है और इसी पसंदगी पर उसका सदाका दुःख या सुख आश्रित है।

इसी हेतुसे परदुःखभंजक महान् गुरुओंने 'अनर्थदण्डविरति' व्रतका उपदेश प्रत्येक शस्त्रधारी अर्थात् मनुष्यको दिया है। पैसेके समान वस्तुयें, जो कि यहीं रहनेवाली हैं, या अन्नादि वस्तुयें, जो कुछ ही समय पीछे विष्ठाका रूप धारण करनेवाली हैं; इनकी प्राप्ति या उपभोगमें ही आत्मा इस शस्त्रका हर समय उपयोग न करता रहे और क्रोध, मान, माया, लोभके—जो कि एक क्षण मात्रके लिए ही सुखोत्पादक हैं—उत्पन्न करने या इनको स्थायी बनानेके प्रयत्नमें ही इस शस्त्रको काममें न लाता रहे, इसी लिए विश्वगुरुओंने 'अनर्थदण्डविरति' व्रतका उपदेश दिया है। इसके कारण अपने हितको जाननेवाले पुरुष अपने शस्त्रका विशेष उत्तम या चिरस्थायी लाभदायक कार्यके करनेमें उपयोग करने लगते हैं। इस सब प्रकारके निष्प्रयोजन कार्यों, शब्दों, और विचारोंसे पृथक् रहनेकी आज्ञा करनेवाले व्रतको पूर्णतया समझने या समझानेका शायद ही कहीं प्रयत्न किया जाता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हो। जो जीवात्मा इस व्रतको समझनेमें भाग्यशाली हुआ होगा, वह तो बाइबिल-वर्णित उड़ाऊ (अपव्ययी) लड़केकी भाँति यों ही कहेगा कि:–"मेरे पिताके बहुतसे बंगले हैं; मैं वहाँ जाऊँगा, अब विशेष समय तक क्षुधाकी पीड़ा न सहूँगा।" उड़ाऊ होनेसे–व्यर्थ कार्योंमें पैसा व्यय करनेसे जिसे अन्न भी मिलना कठिन हो गया था, उस लड़केको अन्तमें जिस भाँति बापके घरकी आवश्यकता हुई और वहीं उसने 'बंगले' देखे; उस ही भाँतिसे जो मनुष्य अपने शरीररूपी हथियारका, तथा समय, बुद्धि और धन आदिका दुरुपयोग करता है उसे भी अन्तमें 'शक्तिहीन' 'साधनहीन' बन अपने पिताके गृहकी ओर–परमेश्वरके स्मरणकी ओर–'आत्मभावनाकी ओर' फिरनेकी आवश्यकता पड़ती है। किन्तु यह आवश्यकता बहुत देरीसे होती है, इस कारण सार्थक नहीं होती है; क्योंकि पितृगृह या आत्मचिन्तवन तक जा पहुँचनेकी अब उसमें शक्ति ही नहीं रहती है। इधर उधरकी दौड़ धूपमें व्यर्थ ही अपनी शक्तिके नाश कर देनेसे अब वह दूरवर्ती 'बापके घर' या 'स्वस्वरूपमें'–जिसमें सहस्त्रों महल और आनन्दागार बने हुए हैं–किस भाँतिसे पहुँच सकता है?

इसी हेतु महान्‌गुरु श्रीमहावीरने प्रथम ही शक्तिका दुरुपयोग न करनेके लिए 'अनर्थदण्डविरति' नामी महामंत्र सिखाया है। उसके पश्चात् उन्होंने संचित शक्तिके द्वारा अपने पिताके घरमें–स्वाध्यायमें–जानेका मंत्र बताया है जिसे 'सामायिक व्रत' कहते हैं।

यहाँ मुझे स्पष्ट करके कहना चाहिए कि दूरसे सामायिक एक सामान्य घर सा दिखाई देता है, तो भी यदि यों कहा जाय कि उसमें सहस्त्रों बँगले समा रहे हैं तो अत्युक्ति नहीं होगी, न्यूनोक्ति भले ही हो जाय। सामायिकमें जब सारी तर्कनाओंको त्याग कर कायोत्सर्ग किया जाता है, उस समय ऐसे आनन्दभवन दिखाई देते हैं जिनका वर्णन करना लेखनी या जिह्वाकी शक्तिसे परे है। दिखावेके हेतु, अंधश्रद्धाके लिए या अंगीकृत नियम पालनेके हेतु जो सामायिक करते हैं मेरी समझमें वे इस छोटेसे घरमें छिपे हुए सहस्त्रों सुन्दर बंगले कदापि न देख सकेंगे। जिन्होंने अपने मन वचन और कायाकी शक्तिको व्यर्थ न उड़ा देकर उसे अपने कोषमें संचित रक्खा होगा उन्हें सामायिक सचमुच ही आनन्दका सागर जान पड़ेगा।

प्रथम सोपान परसे छलाँग मारकर अन्तिम सोपान पर पहुँच जानेकी इच्छा रखनेवाले लोग बड़ी भारी भूल करते हैं। उदाहरणार्थ किसी ऐसे मनुष्यको लो, जिसने निरन्तर विषयसेवनमें रत रहकर अपना शरीर निःसत्व बना लिया है, जिसने प्रत्येकका बुरा चिन्तवन और तन्दुल मच्छकी भाँति अहर्निश कुतर्क करते रहनेसे अपने मनको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चंचल और रोगी बना लिया है, जिसने यद्वा तद्वा, व्यर्थ बोल बोलकर जिह्वाको निकम्मी बनलिया है, या यों समझो कि जिसने अपने इन तीनों शस्त्रोंपर जंग चढ़ा लिया है, ऐसा मनुष्य (यथाशक्ति आचरित आठ व्रतों द्वारा) उस जंगको साफ किये विना, सामायिक—जिसमें मन वचन और कायकी जागृति अथवा उग्र शक्तिकी आवश्यकता पड़ती है—करने बैठा है। यह प्रायः लोग जानते हैं कि सामायिकमें कायोत्सर्ग करना पड़ता है। उसने भी कायोत्सर्ग किया है। यह भी ठीक है कि उसके कायोत्सर्गके बाह्य कृत्य सब यथाविधि दिखाई देते हैं। वह पद्मासन लगाकर बायें हाथकी हथेली पर दाहिने हाथकी हथेली टेक नासाग्रदृष्टि लगाये बैठा है। किन्तु इस समय क्या वास्तवमें वह चौरासी लक्ष जीवयोनिसे क्षमा करने करानेका ध्यान कर रहा है ? लोकका स्वरूप और तीर्थङ्करोंके प्रकाशकी कल्पना करनेकी क्या उसमें शक्ति है ? और क्या वह ऐसा ही कर भी रहा है ? उससे पूछो तो सही कि इस समय वह किसी चन्द्रवदनीका मधुर शब्द तो नहीं सुन रहा है ? या तोड़ोंसे भरी हुई तिजोरी तो नहीं देख रहा है ? अथवा अपना नये खरीदे हुए घरका दृश्य तो नहीं देख रहा है ? जो अनर्थदण्डविरति व्रतका पालन न करनेसे—उस व्रतको नहीं समझनेसे—चंचल और रुग्ण हो रहा है वह चित्त कदापि आज्ञानुसार न चलेगा। वह तो उसी स्वादको चखने जायगा जिसका वह हर समय आस्वादन करता रहा है। हम ऐसे चल चित्तवाले व्यक्तिको बे-लगाम घोड़ेका सवार कहेंगे। यह तो हमने अभ्यन्तर प्रवृत्तिका विचार किया; किन्तु क्या बाह्य कायोत्सर्गकी क्रिया भी वह ठीक कर रहा है ? कायाको पीडित कर पाषाणवत् बनानेके लिए और सब प्रकारके प्रमादोंको दूर करनेके लिए, जो कायोत्सर्ग किया जाता है, उसके किसी एक आसनको धारण करने पर भी क्या वह मूर्तिवत् बैठ सकता है ? विषयसेवन या अन्य निकम्मे कार्य्योंके द्वारा जिसने अपनी शारीरिक स्थितिका नाश कर दिया है वह कदापि मूर्तिवत् न बैठ सकेगा। क्षणमें पैर दुखने लगेंगे, कमरमें तकलीफ होगी और क्षणमें दम घुटने लगेगा। कभी खाँसी चलने लगेगी, कभी डकार आवेगी और कभी छींक होगी। ये सब रुक ही कैसे सकते हैं जब कि वह उनको अपने अधिकारमें रखनेवाली शक्तिका पहलेहीसे नाश कर चुका है ? क्या बच्चा कभी सहस्रों रुपयोंके व्यापारका कार्य चला सकता है ?

तब स्वभावतः यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि सामायिक करनेका अधिकारी कौन है ? यह बात मैं मानता हूँ कि मैं कोई बड़ा भारी ज्ञानी नहीं, न मैं मानस शास्त्रका ही पारगामी हूँ जिससे इसके लिए कोई नियम निर्माण कर दूँ। मैं ज्यादासे ज्यादा यह कर सकता हूँ कि सर्व साधारणके सामने अपने विचारोंको प्रगट कर दूँ। मेरे मतानुसार तो अनर्थ-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दण्डविरमण व्रतके पालक ही शुद्ध सामायिक कर सकते हैं। मैं न किसीका सामायिक पाठका बोलना बंद करना चाहता हूँ और न जो कोई दो घड़ीके लिए एकान्तमें बैठकर आरम्भ समारम्भका परित्याग करता है उसका विरोधी हूँ। मेरा तो केवल इतना ही कहना है कि जिसकी शक्ति और शस्त्र परतंत्रताकी बेड़ीमें जकड़े हुए हैं वह आत्मा सामायिकके सदृश क्रियाकारक Active (न कि निष्क्रिय Passive) व्रतमें कैसे प्रवेश कर सकता है? जिस बन्दीके हाथ पैर हथकड़ियों और बेड़ियोंसे जकड़े हुए हैं वह चाहे तो बन्दी बनानेवालेको मुँहसे गालियाँ दे सकता है; किन्तु तलवार चलानेका कार्य किसी भाँति नहीं कर सकता। ध्यान, कायोत्सर्ग और सामायिक इन क्रियाओंमें बड़े भारी पुरुषार्थकी आवश्यकता है। ये Active क्रियायें हैं। अतः जिस आत्माकी शक्ति चारों ओर विभक्त हो गई है, वह कदापि इनको आचरणमें नहीं ला सकता। तथापि जिनको सामायिक करनेकी इच्छा होती है उनसे यह कदापि मत कहो कि 'तुम इसे मत करो,' किन्तु सामायिक क्रियारूपी 'बोनी' करनेके पहले, आवश्यक भूमिशुद्धिकी प्राप्तिके लिए यथाशक्ति पाँच व्रतोंका अर्थात् हिंसा, झूठ, कुशील, चोरी और परिग्रहके त्यागका और अनर्थदण्डविरमण व्रतका अँगीकार कराओ और छोटेसे लेकर बड़े तक सब कार्योंमें उनका आचरण करना सिखाओ। इससे उनका हृदय शुद्ध होगा और वे सामायिक करनेके योग्य बनेंगे। इतना ही करके मत ठहरो; किन्तु आजकल अज्ञानतासे लोगोंको व्रतपालन करना अशक्य और भयंकर जान पड़ता है, अतः उनको ज्ञान कराके इस व्यर्थ खयालको उनके मस्तकमेंसे निकलवाओ, उन्हें व्रतोंका व्यावहारिक स्वरूप समझाओ और पश्चात् सामायिकके चढ़ते उतरते दर्जे बताओ।

'सम' यानी समता–समभाव–चित्तका समतोलपन (Equilibrium of mind) और 'आय' यानी लाभ। अर्थात् जिससे आत्माको स्वभावकी प्राप्ति हो उसे सामायिक कहते हैं। इसको निवृत्ति कहते हैं, तथापि मैं इसकी व्याख्या प्रवृत्तिकी भाँति करता हूँ। इससे मैं यह बताना चाहता हूँ कि सामायिक किसी मुर्दा या निद्रस्थ दशाका नाम नहीं है; किन्तु शरीर और मनके रोध करनेकी Acivity क्रिया actionका नाम है। सामायिककी यह व्याख्या मुझे बहुत ही सुन्दर मालूम होती है:—

समता सर्वभूतेषु, संयमः शुभभावना।
आर्तरौद्रपरित्यागः, तद्धि 'सामायिकं' व्रतं॥

सामायिक समताको (कि जिसमें स्थिति स्थापकता और स्थिरताके गुणोंका समावेश होता है) विकसित करती है, (और इन गुणोंसे आत्मिक लाभके उपरान्त व्यवहारमें भी अकथ्य लाभ होता है), प्राणी मात्रमें अपने आपको देखना सिखाती है,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन्द्रियनिग्रह और मनोनिग्रहका अभ्यास कराती है, शुद्ध और शुभ भावनाओंमें रमण करनेकी आदत डलवाकर सूक्ष्म प्रदेशोंमें विचरना सिखाती है, वाणी और शरीरके व्यापारमें उपयोग रखकर प्रवृत्ति करना बतलाती है। इसका परिणाम यह होता है कि हम बहुतसे अनावश्यकीय संकटोंसे बच जाते हैं। आगे हम सामायिकके भिन्न भिन्न अंगोंका विचार करेंगे:—

सामायिकमें सबसे पहले णमोकारमंत्र पढ़ा जाता है। इस मंत्रसे संसारके सारे उपकारी मनुष्योंका स्मरण होता है। जड़ देहकी बेड़ीसे छूटे हुए सिद्ध, छूटनेकी स्थितिमें पहुँच चुकनेवाले अरहंत, छूटनेके इच्छुक, आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधु; इन सबका स्मरण करनेसे इनकी भव्यमूर्तियाँ अपनी कल्पना शक्तिके सामने आजाती हैं। जब यह ज्ञान होता है कि हमारा आत्मा महान् शक्तिशाली आत्माओंकी छायामें—शरणमें आया है तब हममें बहुत कुछ साहस और शान्ति आती है और ४८ मिनिट तक मनको वशमें रखनेके जिस व्रतमें हम बँधते हैं उस व्रतको बराबर पालनेके लिए हम शक्तिशाली होते हैं।

इस प्रकार पहले पाठमें समर्थ आत्माओंका स्मरण किया, अपनी कल्पना शक्तिके द्वारा उनका दर्शन किया—पश्चात् दूसरे पाठमें हम उनको भावपूर्वक तीनवार नमस्कार करके, उनके प्रति, सत्कार सन्मान पर्युपासन आदि अनेक प्रकारसे भक्ति तथा बहुमान प्रदर्शित करते हैं। इससे उनके उच्च गुणोंमें हम तल्लीन होते हैं और उन गुणोंका अंश खींचते हैं।

फिर द्वितीय कर्ममें सर्व प्रकारके, एकेन्द्रीसे पंचेन्द्री पर्यन्त जीवोंकी हमारे द्वारा जो हानि हुई है उसके लिए हम अपनी निन्दा करते हैं—क्षमा माँगते हैं, उन्होंने जो हमें हानि पहुँचाई है उसे भुलाकर उन्हें क्षमा करते हैं और फिरसे ऐसा न होनेकी भावना भाते हैं—कल्पना करते हैं।

इन कृत्योंसे अपने हृदय स्थलको जोतकर—पोलाकर—बोने योग्य बनाकर अगला कर्म 'जगतमें उद्योत करनेवाले पुरुषोंकी प्रार्थना' किया जाता है। इसमें सागरसदृश गम्भीर 'सिद्धों' से सिद्धि माँगी जाती है। जैनधर्मकी यह महत्त्वाकाँक्षा विशेष ध्यान देने योग्य है। जैनधर्म किसी परमेश्वरकी चापलूसी करके थोड़ी भूमि या कुछ सोने चाँदीके टुकड़े माँगनेका सिद्धान्त नहीं सिखाता; किन्तु यह तो सबको परमेश्वर बननेकी ही महत्त्वाकाँक्षा करनेकी प्रेरणा करता है। इस धर्मकी प्रार्थना सेवकाईकी या किसी करद राजाकी पदवी प्राप्त करनेके लिए नहीं है; किन्तु जिनकी प्रार्थना की जाती है उन महाराजके तुल्य महाराज—परमेश्वरके सदृश परमेश्वर बननेके लिए है। प्रार्थनाके शब्दोंमें उन परमेश्वरोंको—सिद्धोंको—चन्द्रके समान शीतल और उसके साथ ही सूर्य जैसा तेजस्वी प्रकाशमय ज्ञानमूर्ति वर्णन किया है कि जिनके गुणोंकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कल्पना, प्रार्थना करनेवालेके मन और बुद्धिको चन्द्र सूर्य सदृश बनानेमें कारण होती है।

फिर सामायिक अंगीकार की जाती है। वास्तविक और पूर्ण सामायिक नव कोटि होना चाहिए। यानी मन वचन और कायासे कोई पाप करे नहीं, करावे नहीं और करते-को अच्छा समझे नहीं। इस प्रकार नवों रीतिओंसे पापोंसे दूर रहनेका व्रत लिया जाता है और यही सम्पूर्ण सामायिक है।

परन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि इससे कम दर्जेकी सामायिक हो ही नहीं सकती। करोड़ रुपयेकी पूँजी रखनेवाला मनुष्य करोड़का व्यापार कर सकता है और दो सौकी पूँजीवाला दो सौका। किन्तु दोसौकी पूँजीवालेको भी व्यापार करनेका उतना ही स्वत्व है जितना कि करोड़की पूँजीवालेको। उसे केवल इतना ध्यान रखना चाहिए कि छोटे व्यापारमें छोटी ही प्रतिज्ञायें करे, और उनको सम्पूर्णतया पालन करे; अन्यथा उसकी बात हल्की हो जायगी और समय पड़ने पर उसे जेलमें भी जाना पड़ेगा। इसी भाँतिसे यदि करोड़पति भी करोड़की प्रतिज्ञा कर उसे पूरी न करेगा तो अपनी साख खोकर आखिर उसे भी जेलमें जाना पड़ेगा। ऐसी सैकड़ों बातें प्रत्यक्ष देखी जाती हैं। सामायिकमें भी ऐसा ही समझना चाहिए।

जितनी जितनी क्रियायें पाली जा सकें उतनीहीको स्वीकार करनेकी प्रतिज्ञा करनी चाहिए और उसीके अनुसार पाठ बोलना चाहिए।

पहले वचन और कायासे पाप न करनेकी प्रतिज्ञा कर सामायिक करे। जब इसका पूर्ण अभ्यास हो जावे–सब तरहसे इसका पालन किया जा सके; तब दूसरी प्रतिज्ञा– कायासे और वचनसे अनुमोदन न करनेकी–लेवे। इस भाँतिसे छह प्रतिज्ञायें कर सामायिक किया करे। जब ये छह भली भाँतिसे पाली जा सकें, तब मनसे पापकर्म न करने और न करानेकी प्रतिज्ञा लेना प्रारम्भ करे। इस तरह जब सामायिक आठ प्रकारसे निर्विघ्नतया–सरलतासे होने लगे, तब नवीं कोटि यह है कि किसीको पापकर्म करते देखकर या जानकर उसको अच्छा न समझनेकी–अनुमोदन न करनेकी–प्रतिज्ञा अंगीकार करे। इस तरह करनेसे न कुछ कठिनता जान पड़ेगी और न अन्धाधुन्ध सामायिक करनेका ही रिवाज रह जायगा। शास्त्रानुसार नवकोटि सामायिक पाठके पढ़नेमें इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि जितनी क्रियायें हम पाल सकें उतनी ही पाठमेंसे बोलें–प्रतिज्ञा करें। प्रत्येक मनुष्यके लिए एकही तरहका सामायिक पाठ भी नहीं होना चाहिए। उक्त कोटिके क्रमके अनुसार सामायिक पाठ भी निर्माण होने चाहिएँ। यह भी कह देना आवश्यक है कि संस्कृत और मागधीके प्रचलित सामायिक पाठ वर्तमान सर्वसाधारण समाजके लिए सर्वथा निरुपयोगी हैं। यह सब मानते हैं कि जिस भाषामें हम विचार करते हैं, जिस भाषाको बोलकर हम अपना सारा व्यवहार चलाते हैं, जो देशकी भाषा है वही भाषा ध्यान, प्रार्थना,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूजन आदि क्रियाओंके करनेमें काम आवे तब ही भली भाँति–एकाग्रतासहित सब क्रियायें हो सकती हैं। प्रत्येक शब्दके उच्चारण, पाठ, और विचारके साथ साथ दूसरी जो सैकड़ों अनुवर्गणायें (Associations) स्वभावतः चली आती हैं, वे ऐसी भाषाके बोलनेसे कि जिसके शब्द समझमें नहीं आते हैं, या समझनेके लिए प्रयत्न करना पड़ता है, आनी बंद हो जाती हैं। अतः जिस भाषामें हम विचार करते हैं उसही भाषामें सामायिक पाठका भी उच्चारण करना चाहिए, स्मरण करना चाहिए। ऐसा करने पर ही सामायिक तल्लीनतापूर्वक हो सकेगी। यह भी ध्यानमें रखना चाहिए कि सामायिक तल्लीनताका दूसरा–पर्यायवाची शब्द है। सामायिक यह किसी पाठका नाम न होकर मानसिक स्थितिका नाम है अतः ऐसी मानसिक स्थिति उत्पन्न करनेके लिए जो शब्द-समूह उपयोगी हो उसे ही काममें लाना चाहिए। वर्तमानमें जो सामायिकपाठ प्रचलित है, वे प्राकृत, हिन्दी, उर्दू, बुन्देलखण्डी, ब्रज और मारवाड़ी भाषाओंकी खिचड़ी हैं। ऐसे पाठोंका प्रचलित रहना–जिसको किसी देशके भी लोग भली भाँति नहीं समझ सकते हैं, कदापि ठीक नहीं हो सकता। ऐसे पाठको कई वर्षोंसे लाखों मनुष्य बिना किसी भाँतिका परिवर्तन किये किस प्रकार पढ़ते रहे हैं, यह विचार जैनविचारनेताओंके प्रति उत्पन्न होनेवाली मेरी सम्मान-बुद्धिको रोक देता है। यह स्थितिचुस्तता Conservatism (मुर्दापन)का चिह्न है। इसलिए मैं आग्रहपूर्वक कहूँगा कि आत्मविद्या, मानसशास्त्र और कुछ अँशोंमें हिप्नोटिज्म auto suggestions वाले विभागके ज्ञानकी सहायतासे सामायिकके पाठ, हिन्दी, गुजराती, मराठी, बँगाली, कनड़ी, पंजाबी और अँगरेज़ी आदि सब भाषाओंमें बनानेका प्रयास करना चाहिए। इसके लिए पूर्ण अवकाश भी है और इसकी आवश्यकता भी है। (अपूर्ण)

(गुजराती जैनहितेच्छुसे)

तुम्हारा जीवन चाहे कितना ही छोटा और नीचा क्यों न हो तुम्हें चाहिए कि उसका स्वागत करो और उसे आनन्दपूर्वक व्यतीत करो। उससे दूर मत हटो, उसे बुरा मत समझो और उसकी निन्दा मत करो। वह इतना बुरा नहीं है जितने तुम हो। जब तुम बहुत धनी होते हो तब यह बहुत निर्धन मालूम होता है। दोष ढूँढ़नेवाले स्वर्गमें भी न मानेंगे। वे वहाँ भी दोष निकालते ही रहेंगे। अपने जीवनसे प्रेम करो, चाहे वह कितना ही तुच्छ हो। ग़रीबसे ग़रीब घरमें भी तुम्हें कुछ घंटे आनंददायक मिलेंगे। प्रकृतिकी सुन्दरतासे अमीर, ग़रीब दोनों एकसा लाभ और आनन्द उठा सकते हैं। सूर्यास्तकी सुन्दरता जैसी ग़रीबोंके झोपड़ोंमें मालूम होती है वैसी ही अमीरोंके महलोंमें भी मालूम होती है। संतोषी आदमीको झोपड़ीमें भी वैसा ही आनंद मिलता है जैसा महलोंमें। (थारो)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अप्रतिष्ठित प्रतिमा पूज्य है या नहीं ?

(ले०—श्रीयुत पं० उदयलालजी काशलीवाल ।)

इसके पहले कि हम इस विषयपर विचार करें, यह बतला देना बहुत आवश्यक समझते हैं कि प्रतिमा-पूजनसे जैनधर्मकी क्या मंशा है और क्यों इस विषयको उसने महत्त्व दिया ।

स्वर्गीय पं० भागचन्दजीने एक भजनमें अनेक देवोंका स्वरूप बतलाकर कहा है:—

श्रीअरहंत परम वैरागी—
दूषनलेश प्रवेश न जिनमें ।
'भागचन्द्र' इनको स्वरूप यह,
अब कहो पूज्यपनो है किनमें ॥

पंडित भागचन्दजीने उक्त भजनमें देव विषयकी चर्चा करके सत्यार्थदेवपना अरहंत भगवानमें ठहराया है । वह इसलिए कि उनमें किसी प्रकारका दोष नहीं है । वे वीतराग हैं । और और देवोंसरीखा उपासकोंके हृदयमें सरागभाव मोहभाव पैदा करनेका उनमें कोई चिह्न नहीं है । तब यह कहनेमें कोई हर्ज नहीं कि जैनधर्मकी मंशा प्रतिमा-पूजनसे पूजकोंके हृदयमें वीतरागता या शान्ति पैदा करना है। यदि उसकी यह मंशा न होती तो उसे इस प्रकारकी निष्परिग्रह वीतराग प्रतिमाओंके बनानेकी ज़रूरत न पड़ती । और और लोगोंकी तरह वह भी 'भूषणवस्त्र-शस्त्रादि युक्त' प्रतिमाओंकी स्थापना कर लेता । इस बातसे कोई इंकार नहीं कर सकता कि जैसा पदार्थ सामने होता है, या जैसेका ध्यान आराधन किया जाता है हृदयमें उसी तरहका प्रतिबिंब पड़कर परिणाम भी फिर उसी तरहके होते हैं । उदाहरणके लिए कल्पना कीजिए कि हमारी आँखोंके सामने एक सुन्दर स्त्रीका चित्र है । उसे देखकर हमारे हृदयमें भी कुछ न कुछ विकार उत्पन्न हो जायँगे—हमारे परिणामोंकी गति बदलना स्वाभाविक है । उसीतरह यदि हम किसी योगी-महात्माके दर्शन करते हों, तो हमारे भावोंमें शान्ति होती जान पड़ेगी । भावोंका यह परिवर्तन प्रायः सामनेकी वस्तुको देखकर हुआ करता है । पर यह स्मरण रखना चाहिए कि यह बात उन्हीं लोगोंके लिए है जो निरालम्ब ध्यान नहीं कर सकते । या यों कह लीजिए कि जिन्हें स्वतंत्ररूपसे आत्मस्मरण करनेकी योग्यता प्राप्त नहीं है । मोक्षमार्गके दो भेद हैं—एक निश्चय और दूसरा व्यवहार । पहले मार्गके उपासक योगी—माहात्मा होते हैं। उनकी आत्मशक्तियाँ इतनी विकाशको प्राप्त हो जाती हैं—उनका मन इतना स्थिर हो जाता है कि वे स्वतंत्ररूपसे आत्मध्यान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर सकते हैं और इसी लिए वे प्रतिमापूजन आदि न भी करें तो उनके लिए कोई हानि नहीं । दूसरे मार्गके उपासक गृहस्थ हैं। वे सारे दिन घरगिरिस्तीके काम-धन्दोंमें लगे रहते हैं। उन्हें अपने भावोंके पवित्र करनेके साधन बहुत कम मिलते हैं। इस लिए उन्हें घरगिरिस्तीके कामोंसे सारे दिनमें जितना कुछ थोड़ा या बहुत समय मिले, उसमें वे ऐसा अभ्यास करें, जिससे दिनोंदिन उनके भावोंमें पवित्रता बढ़ती जाय और धीरे धीरे वे भी स्वतंत्ररूपसे आत्म--ध्यान कर सकें। इसी विकाश या उन्नतिका साधन प्रतिमाराधन है। इसे छोड़कर प्रतिमा-पूजनसे जैनधर्मका और कोई मंशा नहीं जान पड़ता।

रही प्रतिमापूजनके महत्त्वकी बात, सो यह स्पष्ट है कि शान्ति सभी चाहते हैं और दुःख या आकुलतासे सब घबराते हैं। यह ऊपर लिखा जा चुका है कि योगियोंके दर्शनसे भावोंमें शान्ति पैदा होती है, इस लिए कि वे स्वयं भी शान्त हैं। तब यह कहनेमें भी कोई हर्ज नहीं कि उन्हीं तपस्वी ध्यानी योगियोंकी सी वीतराग शान्त मूर्तियाँ भी हृदय पर अपनासा प्रतिबिम्ब डालकर उसमें वैसी ही शान्त भावनायें पैदा करेंगीं। यही कारण है कि जैनधर्मने अपनी प्रतिमाओंको बहुत शांत बनाया है। क्योंकि जैनधर्मका अन्तिम ध्येय ही यह है कि संसारके जीवमात्र कर्मोंसे मुक्ति लाभकर परम शान्ति प्राप्त करें। उसी परम शान्तिके मार्ग पर चलनेकी यह प्रतिमा-पूजन पहली सीढ़ी है। जब यह सिद्ध हो गया कि प्रतिमा-पूजनसे जैनधर्मकी मंशा प्राणियोंको शान्ति लाभ कराना है, तब यह देखना चाहिए कि उसकी इस मंशाको प्रतितिष्ठित प्रतिमायें ही पूरा कर सकती हैं या अप्रष्ठित प्रतिमाओंसे भी काम चल सकता है? हमने जहाँ तक इस विषयपर विचार किया है, हमारा विश्वास इस बातसे इन्कार नहीं करता कि अप्रतिष्ठित प्रतिमायें भी शान्ति प्राप्त करनेकी साधिका हैं। हमें प्राप्त करना है वीतरागता--शान्ति और यह जैसी ही प्रतिष्ठित प्रतिमाओंके ध्यानादिसे हो सकती है वैसी ही अप्रतिष्ठित प्रतिमाओंसे भी। तब हम नहीं कह सकते कि केवल प्रतिष्ठित प्रतिमाके पूजनको ही इतना महत्त्व क्यों दिया गया?

हमने इस विषयका जिकर समाजके एक दो विचारशील विद्वानोंसे भी किया। वे भी हमारे इन विचारोंके बहुत अंशोंमें अनुकूल हुए। उन्होंने प्रतिष्ठित प्रतिमाको महत्त्व देनेका कारण केवल प्रसिद्धि बतलाया। उन्होंने इस विषयमें उदाहरण दिया कि यदि गवर्नमेंट किसीको 'रायबहादुर' आदिकी पदवी प्रदान करती है तो उसके समाचार पेपरोंमें प्रगट किये जाते हैं, सर्वसाधारण तक उसकी खबर पहुँचाई जाती है और उत्सव आदि किये जाते हैं। यह सब क्यों? विचार करनेसे निष्कर्ष निकलता है कि केवल प्रसिद्धके लिए। अन्यथा जिसे पदवी दी गई, उसे गुपचुप एक पत्र द्वारा सूचना दे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देनेसे, कि तुम्हें गवर्नमेंटने अमुक पदवी प्रदान की, काम चल सकता था। इसी तरह काम तो चल सकता था अप्रतिष्ठित प्रतिमाओंसे भी, पर सर्वसाधारण पर प्रतिमापूजनका अधिक प्रभाव पड़े और जैनधर्मकी प्रभावना हो, इन सब बातोंके लिए प्रतिष्ठाका मार्ग चलाया गया। हमें भी इस कथनमें तथ्य जान पड़ता है और ऐसा होना असंभव भी नहीं। कारण जैनधर्म सरीखा वीतरागताप्रिय धर्म इन बाह्य आडम्बरोंको पसन्द नहीं कर सकता। उसे प्रतिमापूजनसे जो वीतरागता इष्ट है वह अप्रतिष्ठित प्रतिमासे भी प्राप्त हो सकती है। तब वह क्यों एक नया भार अपने सिर उठाने चला !

तब यह प्रश्न उठता है कि एक तो यह प्रथा बहुत पुरानी है और दूसरे यदि अप्रतिष्ठित प्रतिमाओंसे ही जैनधर्मकी प्रतिमा-पूजनकी मंशा सिद्ध हो सकती थी तो फिर आचार्योंने प्रतिष्ठापाठ वगैरह ग्रन्थोंको क्यों बनाया और क्यों श्रावकोंको प्रतिष्ठाके करनेका उपदेश दिया ?

यद्यपि इस प्रश्नका समाधान ऊपर कहे गये प्रतिमापूजनके प्रभावसम्बधी कथनसे बहुत कुछ होजाता है तोभी इस प्रश्नके उत्तर पर एक और रीतिसे हम विचार करते हैं।

यह जो कहा गया कि प्रतिमाओंकी प्रतिष्ठा करना पुरानी प्रथा है, इस पर हमारा यह कहना है कि हो सकता है यह प्रथा पुरानी हो; परंतु यह मान लेनेके लिए हम बाध्य नहीं कि प्रतिष्ठाविधि सदासे चली आती हो। क्योंकि कई ऐसे भी प्रमाण मिलते हैं कि जिनसे अप्रतिष्ठित प्रतिमाका पूजा जाना भी सिद्ध होता है।

हम इस बातको सप्रमाण सिद्ध नहीं कर सकते कि जैनधर्ममें प्रतिष्ठाविधिका कब सूत्रपात हुआ, पर यह बतला सकते हैं कि जैनधर्ममें एक ऐसा भी युग बीत गया है, जिसमें कि अप्रतिष्ठित प्रतिमायें भी पूजी मानी जाती थीं और इस विषयका उल्लेख हम स्वयं आगे चल कर करेंगे।

दूसरे यह कहा गया कि 'तो आचार्योंने प्रतिष्ठा ग्रन्थोंको क्यों रचा और क्यों प्रतिष्ठादिके करनेका उपदेश किया।' इस पर हमारा कहना यह है कि हम यह नहीं कहते कि आचार्योंने प्रतिष्ठा वगैरहका उपदेश देकर या उस सम्बन्धके ग्रन्थोंको रचकर कोई बुरा काम किया हो। परन्तु हम जिस प्रतिष्ठापद्धतिकी चर्चा कर रहे हैं वह कितनी पुरानी है इस विषयका पता लगाना चाहते हैं। और इसी लिए हमें अधिकसे अधिक पुराने जमानेके सम्बन्धमें विचार करना आवश्यक होगा।

इस विषयके निर्णय करनेके दो साधन हो सकते हैं—एक साहित्य और दूसरा इतिहास। साहित्यकी दृष्टिसे जब हम विचार करते हैं तो हमें यह निःसंकोच कह देना पड़ेगा कि इस प्रतिष्ठाके सम्बन्धका इस समय जितना साहित्य उपलब्ध है, वह सब इतना पुराना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं जिससे हम विश्वास कर सकें कि प्रतिष्ठाविधि बहुत पुरानी है। इस समय आशाधर[1], नेमिचेन्द्र[2], अकलंक[3] (दूसरे), इन्द्रनन्दि[4], एकसन्धि[5], आदि जितने विद्वानों और मुनियोंके प्रतिष्ठापाठ मिलते हैं वे सब विक्रमकी ग्यारहवीं, बारहवीं शताब्दिके बादके हैं। हमें यह देखकर बड़ा विनोद होता है कि अब भी हमारे यहाँ विक्रमकी दूसरी, तीसरी शताब्दिके बने ग्रन्थ जब मिलते हैं तब प्रतिष्ठा सरीखे एक आवश्यक विषयके ग्रन्थ उस समयके बने क्यों प्राप्त नहीं ? इसका कोई कारण होना चाहिए।

कुछ लोगोंका कहना है कि पहले शास्त्रोंके लिपिबद्ध करनेकी प्रथा बहुत कम थी। इस लिए सब विषयोंके ग्रन्थ तब नहीं लिखे गये थे। यह ठीक है कि शास्त्रोंके लिखनेकी प्रथा पहले कम थी, पर यह हमारे प्रश्नका सन्तोषजनक उत्तर नहीं। कुन्दकुन्द, उमास्वामी, समन्तभद्र, पूज्यपाद, अकलंक, आदि आचार्योंके ग्रन्थ उपलब्ध हैं, पर प्रतिष्ठासम्बन्धके इतने पुराने ग्रन्थ भी उपलब्ध नहीं, तब इससे भी अधिक पुराने समयकी तो हम बात ही क्या कहें।

---

१ आशाधरका समय विक्रमकी तेरहवीं शताब्दि है। २ नेमिचन्द्र (गोम्मटसारके कर्त्ता) का समय विक्रमकी ग्यारहवीं शताब्दि है। ३ प्रतिष्ठापाठ शायद दूसरे अकलंकका है। अकलंक प्रतिष्ठापाठके प्रारंभमें नेमिचन्द्रके प्रतिष्ठापाठका उल्लेख है, अतएव ये दूसरे अकलंक ग्यारहवीं शताब्दिके भी पीछेके हैं। ४-५ इन्द्रनंदि और एकसंधिका समय विक्रमकी तेरहवीं शताब्दि है।

—सम्पादक।

इस पर यह बाधा दी जा सकती है कि तब पुरानी प्रतिष्ठित प्रतिमायें क्यों देखी जाती हैं ? इसका उत्तर यह है कि विक्रमकी समकालीन या उनके सौ दोसौ वर्ष बादकी प्रतिष्ठित प्रतिमायें अबतक देखनेमें नहीं आई हैं और यदि किसी सज्जनने कहीं देखीं हों तो उन्हें उसका उल्लेख करना चाहिए। और कदाचित् कहीं हों भी, तो उससे यह सर्वथा सिद्ध नहीं हो सकता कि प्रतिष्ठा करना उस समयके लिए आज जैसा आवश्यक ही समझा जाता हो। क्योंकि अप्रतिष्ठित प्रतिमा पूजे जानेके भी कई प्रमाण और युक्तियाँ दी जा सकती हैं।

इतिहासदृष्टिसे विचार करने पर भी इस विषयमें विशेष तथ्य नहीं निकलता। ऐसा कोई ऐतिहासिक प्रमाण अबतक प्रगट नहीं हुआ कि जिससे प्रतिष्ठाविधि दो हजार वर्षसे पुरानी ठहराई जा सके। पर ऐसे प्रमाण कई मिलते हैं जो जैनधर्मको उक्त अवधिसे पुराना सिद्ध करते हैं। हमारे कहनेका मतलब यह है कि प्रतिष्ठा विधि बहुत पुरानी नहीं। जैनधर्ममें एक समय अप्रतिष्ठित प्रतिमायें भी पूजी जाती थी। हमारा यह कथन उल्लिखित बातोंसे बहुत कुछ पुष्ट होता है। इसके सिवा अब हम कुछ ऐसी युक्तियाँ भी पेश करते हैं जो हमारे कथनको और भी सुदृढ़ करती हैं।

१—कई स्थानों पर ऐसी प्रतिमायें अब भी मौजूद हैं, जिन पर प्रतिष्ठा वगैरहका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कोई साल-संवत् नहीं और जो बहुत समयसे अबतक पूजी जा रही हैं। जैसे बड़वानीमें बावनगजाकी प्रतिमा और कुंडलपुर (दमोह) के पहाड़में उकेरी हुई महावीर भगवान्‌की प्रतिमा।

२—जमीनमेंसे कई प्रतिमायें ऐसी निकलती हैं जिनपर कोई संवत् वगैरह नहीं होता और जिन्हें अधिक श्रद्धालु लोग चौथे कालकी बतला देते हैं। हमारे विश्वासके अनुसार ऐसी प्रतिमायें अप्रतिष्ठित ही पूजी जाती थीं।

३—शास्त्रोंमें यह लिखा बतलाया जाता है कि कोई अप्रतिष्ठित प्रतिमा हो और यह मालूम न हो कि वह अप्रतिष्ठित है, और सौ वर्षतक बराबर पुजती चली जाय तो फिर वह भी पूज्य हो जाती है। हमारे विश्वासके अनुसार यह अप्रतिष्ठित प्रतिमाके साथ सौ वर्ष तक पुजते रहनेका सम्बन्ध पीछेसे जोड़ा गया है। पहले अप्रतिष्ठित प्रतिमा भी पूजी जाती थी। यह आग्रह ही न था कि प्रतिष्ठित प्रतिमा ही पूजी जाय। यदि ऐसा न हो तो बड़ी भारी बाधा आकर उपस्थित होती है। कल्पना कीजिए कि किसीने एक अप्रतिष्ठित प्रतिमाका पूजना भूलहीसे आरंभ कर दिया। वह प्रतिमा कोई चालीस पचास वर्षतक पुजती चली गई। तब यह बतलाइए कि चालीस वर्षतक जिन जिन लोगोंने उस प्रतिमाको पूजा उन्हें उनके भक्ति भावोंके अनुसार पुण्य-बन्ध हुआ या नहीं? यदि हुआ कहा जाय तब तो अप्रतिष्ठित प्रतिमा भी पूज्य ठहर ही जायगी और यदि यह कहा जाय कि उन्हें पुण्यबन्ध नहीं हुआ तो यह बात जैनधर्मके सिद्धान्तसे विरुद्ध पड़ती है। क्योंकि उसकी तो सारी इमारत ही भावोंपर खड़ी हुई है और इससे कोई इंकार नहीं कर सकता।

४—प्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित प्रतिमाको पूजनेसे प्रतिमाके सम्बन्धसे जो भाव होते हैं उन भावोंमें कोई अन्तर नहीं जान पड़ता।

५—यशस्तिलके आठवें अध्यायमें एक जगह लिखा हुआ है कि—

यथा पूज्यं जिनेन्द्राणां
रूपं लेपादिनिर्मितम्।
तथा पूर्वमुनिच्छायाः
पूज्याः संप्रति संयताः॥

इसका मतलब यह है कि जैसे लेप आदि द्वारा बनी जिनभगवान्‌की प्रतिमा पूज्य है, उसी तरह प्राचीन कालके मुनियोंकी छायाको धारण करनेवाले इस समयके मुनि भी पूज्य हैं। इसमें लेपकी बनी प्रतिमाका जिकर है। हमारी समझमें लेप प्रतिमासे भीतोंपर चित्रकारीकी बनी हुई प्रतिमासे ग्रन्थकारका मतलब है। क्योंकि लेप-प्रतिमाका बनना इसी रूपसे संभव हो सकता है। तब ऐसी प्रतिमाओंकी भी प्रतिष्ठाविधि होगी यह हमारे ध्यानमें कम आता है*। हम तो

१ परन्तु प्रतिष्ठापाठोंमें कागज आदिपर बनी हुई प्रतिमाओं (चित्रों) की भी प्रतिष्ठाविधि मौजूद है —सम्पादक।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहते हैं कि यह सब अप्रतिष्ठित प्रतिमाओंके पूजनेके ही विधान हैं और इसलिए हम यह कहनेमें, कि अप्रतिष्ठित प्रतिमा भी पूज्य है, कुछ हानि नहीं देखते।

७—अकृत्रिम प्रतिमाओंकी प्रतिष्ठा नहीं होती।

ऊपर जिस विषयकी चर्चा की गई है वह बिलकुल नया है और जहाँतक हमें विश्वास है हमारे भाइयोंको यह पसन्द भी न आयगा। पर हमने इस विषयको इस लिए नहीं चर्चाया है कि इसमें जो कुछ कहा गया है वह सब निर्भ्रान्त है। केवल एक विषयपर अपने विचार प्रगट किये हैं। समाजके विद्वानोंसे प्रार्थना है कि वे इसकी विशेष चर्चा कर निर्णय करें। यह कहना अनुचित न होगा कि विचार शान्तिके साथ किये जाने चाहिए।

सम्पादकीय नोट—इस लेख पर विद्वानोंको विचार करना चाहिए। इसके लिए बड़े परिश्रमकी और छानबीन करनेकी ज़रूरत है। मथुराकी जैनप्रतिमायें सबसे अधिक पुरानी हैं। वे लगभग १८०० वर्ष पहलेकी हैं। उनपर जो लेख हैं, उनमें प्रायः यह लिखा हुआ है कि अमुकके उपदेशसे अमुकने प्रतिमा बनवाई या स्थापित कराई। यह किसी भी लेखसे स्पष्ट नहीं होता कि उनकी प्रतिष्ठा करवाई गई। एक बात और है जिसका खयाल इस विषयपर विचार करते समय रखना चाहिए। प्रतिष्ठित कराई, या प्रतिमाकी प्रतिष्ठा की, इसका सामान्य अर्थ स्थापित करना, विराजमान करना, होता है। ऐसे शब्दोंको देखकर यह ख़याल कर लेना कि ये प्रतिष्ठापाठकी विधियोंके अनुसार प्रतिष्ठित की गई हैं, ठीक न होगा। उपलब्ध प्रतिष्ठापाठ ग्याहरवीं बारहवीं शताब्दि के पहलेके नहीं हैं। परन्तु इनका बारीकीसे अध्ययन करनेसे मालूम हो सकता है कि ये किन ग्रन्थोंके आधारसे बने हैं और इनके पहले प्रतिष्ठायें किस विधिसे होती थीं। इस विषयका निर्णय करनेवालोंको श्वेताम्बर सम्प्रदायके और वैदिक सम्प्रदायके प्रतिष्ठापाठोंका भी तुलनात्मक पद्धतिसे अध्ययन करना चाहिए। आश्चर्य नहीं जो बौद्धसम्प्रदायके भी प्रतिष्ठापाठ रहे हों और शायद अब भी मिलते हों। प्रतिष्ठापाठ अधिक पुराने नहीं मिलते हैं, केवल इसी कारण यह समझ लेना कि ग्यारहवीं शताब्दिके पहले प्रतिष्ठाविधि नहीं थी, या प्रतिष्ठायें नहीं होती थीं, निर्भ्रान्त नहीं हो सकता। हाँ, यह संभव है कि इन प्रतिष्ठापाठोंके पहले जो प्रतिष्ठायें होती होंगी, वे इतने आडम्बरसे न होती होंगी और विधि भी इतनी जटिल न होगी। इस विषयका खास तौरसे अध्ययन करनेवालोंके द्वारा और भी अनेक बातोंका पता लग सकता है। तीर्थंकरोंकी प्रतिमाओंमें पहले चिह्न थे या नहीं, नहीं तो इनका प्रचार कबसे हुआ, पार्श्वनाथकी प्रतिमापर फण और आदिनाथकी प्रतिमापर लम्बे स्कन्धपर्यन्त लटकते हुए केश, ये कबसे बनना शुरू हुए, यक्षयक्षियोंकी मूर्तियोंका बनना अरहंतकी प्रतिमाओंके साथ कबसे चला, मथुरामें जो आयागपट मिले हैं, वे क्या हैं, उनका प्रचार पीछे क्यों न रहा, उनके साथ जो नग्न स्त्रियोंकी मूर्ति रहती थीं, सो क्या हैं, आदि। आशा है कि विद्वानोंका ध्यान इस ओर जायगा और उनके द्वारा पं० उदयलालजीके खड़े किये हुए इस प्रश्नका यथार्थ निर्णय हो जायगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य सिद्धसेन।

(लेखक-श्रीयुत मुनि जिनविजयजी।)

जैनहितैषीकी गत श्रावण और भाद्रपद मासकी युग्मसंख्यामें (भाग ११, अंक १०-११) ' आचार्य सिद्धसेन ' के विषयमें संपादकका एक नोट निकला है। उसका मतलब यह है कि आदिपुराण और हरिवंशपुराण आदिके कर्ताओंने जिन सिद्धसेनाचार्यका उल्लेख किया है वे कब और कहाँ हुए इसका कोई पता नहीं। अभी तक यह ख़याल था कि, ये वे ही सिद्धसेन होंगे जो श्वेतांबरसंप्रदायमें ' दिवाकर ' के विशेषणसे प्रसिद्ध हैं। परंतु अब इसमें कुछ संदेह होने लगा है। संदेहका कारण प्रेमीजीने हरिभद्रसूरिके धर्मबिन्दुको लिखा है। इस ग्रंथके चौथे अध्यायमें दीक्षा लेने योग्य मनुष्यका वर्णन करते हुए ग्रंथ-कर्ताने वाल्मीकि, व्यास, सम्राट्, वायु, नारद, वसु, क्षीरकदंबक, बृहस्पति, विश्व और सिद्धसेन इन दश आचार्योंके मत दिये हैं और उनको ठीक न बतलाकर अंतमें अपना मत दिया है। सिद्धसेनका मत सबसे पीछे दिया है और अंतमें अपना। इससे मालूम होता है कि ये सिद्धसेनाचार्य हरिभद्रसे पहले हो गये हैं और संभवतः उनके संप्रदायके नहीं किन्तु दिगंबर संप्रदायके थे। "

इस विषयमें हमारा अभिप्राय यह है कि हरिभद्रसूरिने अपने धर्मबिन्दुमें जिन सिद्धसेनका मत दिया है वे जैन नहीं; अन्यधर्मी हैं। सिद्धसेनके पहले जितने आचार्योंके नाम हैं वे सब अन्यधर्मी होनेसे सिद्धसेन भी अन्य ही हैं। धर्मबिंदुके प्रसिद्ध टीकाकार श्रीमुनिचद्रसूरि (जिनका स्वर्गवास विक्रम संवत् ११७८ में हुआ था) ने भी इन्हें ' परतीर्थी ' लिखा है। परतीर्थी शब्दका वही अर्थ है जो ' एकांतवादी ' का है। टीकाकारका उल्लेख इस प्रकार है—

" अथैतस्मिन्नेवार्थे परतीर्थिकमतानि दश स्वमतं चोपदर्शयितुमिच्छुः 'नियम एवायमिति वायुः' इत्यादिकम्; 'भवन्त्यल्पाऽपि असाधारणगुणाः कल्याणोत्कर्षसाधकाः' इत्येतत्पर्यन्तं सूत्रकदम्बकमाह।

अध्याय ४ सूत्र ९।

" इत्थं परतीर्थिकमतान्युपदर्श्य, स्वमतमुपदर्शयन्नाह।" अध्याय४ सूत्र २३।

तथा स्वयं सिद्धसेनके मतको प्रदर्शित करनेवाले ' सर्वमुपपन्नमिति सिद्धसेनः ' (अध्याय ४, सू० २२) इस सूत्रके व्याख्याताने, सिद्धसेनको नीतिकार और शास्त्रविशेषका बनानेवाला—सिद्धसेनो नीतिकारशास्त्रकृद्विशेषः—लिखा है। इससे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निश्चित है कि ये सिद्धसेन जैनसंप्रदायके आचार्य नहीं परन्तु अन्यमतके अचार्थ हैं।

अब रही बात यह कि पुराणस्मृत सिद्धसेन कौन हैं ? हमारी समझमें तो, ये वे ही सिद्धसेन हैं, जिन्हें श्वेतांबराचार्योंने दिवाकरके प्रतिष्ठित-पदसे विभूषित लिखा है, जिन्होंने ' सम्मतितर्क ' और ' न्यायावतार ' जैसे अपूर्व तर्कशास्त्र लिखकर जैन-साहित्यमें अभिवनतर्कप्रणालीको प्रविष्ट किया है और जो उज्जयिनीके महाराज विक्रमादित्यकी सभाके ' क्षपणक ' नामसे प्रसिद्ध रत्न थे। पुराणोंमें दिये हुए विशेषण उन्हींमें चरितार्थ हो सकते हैं। पुराणोंमें कैसे विशेषण लिखे गये हैं, इस आकांक्षाके शमनार्थ हम यहाँ पर वे दो श्लोक उद्धृत करते हैं जो आदिपुराण और हरिवंशपुराणमें मिलते हैं:—

"प्रवादिकरियूथानां केशरी नयकेशरः।
सिद्धसेनकविर्जीयाद् विकल्पनखराङ्कुरः॥"

—आदिपुराण।

"जगत्प्रसिद्धबोधस्य वृषभस्येव निस्तुषाः।
बोधयन्ति सतां बुद्धिं सिद्धसेनस्य सूक्तयः"

—हरिवंशपुराण।

आदिपुराणके दिये हुए-प्रवादीरूप हाथियोंके लिए नयस्वरूप केसर और विकल्परूप तीक्ष्ण नखोंके धारण करनेवाले केशरी-सिंह-विशेषणसे सिद्धसेन बड़े भारी तार्किक-वादी होने चाहिए और हरिवंशपुराणके लिखे हुए-जगत्में प्रसिद्ध है बोध जिन का ऐसे वृषभ-आदिनाथ (?) के समान सिद्धसेनकी स्वच्छ सूक्तियाँ सज्जनोंकी बुद्धिको जागृत करती हैं-इस विशेषणसे सिद्धसेन महाकवि होने चाहिए। दिवाकर सिद्धसेनमें ये दोनों बातें घटती हैं। वे महावादी भी थे और महाकवि भी थे। बड़े बड़े आचार्योंने इनको, इन्हीं विशेषणोंसे विशिष्ट लिखा हैं। भद्रेश्वर नामके एक विद्वान् आचार्य बहुत पहले हो गये हैं। उन्होंने प्राकृत-भाषामें ' कथावली ' नामका एक महान् ग्रंथ लिखा है। उसके अन्तिम भागमें कितने एक प्रभावक और प्राचीन आचार्योंके जीवनचरित लिखे हुए हैं। सिद्धसेनसूरिका भी कुछ थोड़ासा हाल लिखा है। इनके प्रबंधके प्रारंभहींमें इन्हें महावादी और महाकवि लिखा है। यथा—

"उज्जेणीए नयरीए महावाई महाकवी य सिद्धसेणो नाम साहू।"

चरितग्रन्थोंके सिवा तात्त्विकग्रन्थोंमें भी इन्हें ऐसी ऐसी महती उपाधियोंसे विभूषित किया है। हरिभद्रसूरि, जिनेश्वरसूरि, यशोविजयोपाध्याय आदि विद्वानोंने अपने ग्रन्थोंमें इन्हें कहीं महावादी, कहीं महामति, कहीं वादिमुख्य, और कहीं तर्कविशुद्धबुद्धि, इत्यादि नाना विशेषणोंसे उल्लिखित किया है। वास्तवमें ये थे भी ऐसे ही सम्माननीय, इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं। इनके बनाये हुए सम्मतितर्क, न्यायावतार और स्तुतियाँ आदि ग्रन्थ इस बातकी प्रतीति करा रहे हैं।

श्वेताम्बर-संप्रदायके पूर्वाचार्योंमें, कितने एक शास्त्राय विचारोंके विषयमें थोड़ासा परंतु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रशस्य मतभेद था। इस भेदके कारण आचार्य-गण दो दलमें बँट गये थे।* जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण आदि आचार्य 'सैद्धान्तिक' पक्षके समर्थक थे और सिद्धसेनसूरि 'तार्किक' मतके संस्थापक थे। जिनभद्रगणिके मतके पोषक आचार्य 'सैद्धान्ति' कहे जाते हैं और सिद्धसेनसूरिके मत-पोषक 'तार्किक' या 'सिद्धसेनीय' कहे जाते हैं। हमारे विचारसे, शाकटायनकी अमोघवृत्तिमें 'सिद्धसेनीयाः' और 'सैद्धसेनाः' ऐसे जो उदाहरण "**नाम दुः** । १ । १ । १ ।" इस सूत्रकी व्याख्यामें दिये हैं, वे इसी आशयको लेकर दिये गये हैं।+

विवादास्पद विषयोंमें, केवलज्ञान और केवलदर्शन मुख्य हैं। सिद्धान्तपक्षी आचार्यों-का कथन है कि सिद्धान्तों—आगमोंमें केवलज्ञान और केवलदर्शन दोनों पृथक् पदार्थ माने गये हैं। इस लिए सर्वज्ञको ये दोनों उपयोग क्रमशः होते हैं। तर्कवादी सिद्धसेन कहते हैं कि, नहीं यह बात तर्कसे सिद्ध नहीं होती। केवलज्ञान और केवलदर्शन दोनों पृथक् पदार्थ नहीं, एक ही हैं। तर्कसे यही सिद्ध होता है। जो केवलज्ञान है वही केवल-दर्शन है। इस मतको तर्कसे खूब पुष्ट किया है। इनके तर्क बड़े बलिष्ठ और प्रौढ हैं। इस लिए इनका नाम तार्किकतया प्रसिद्ध हुआ। इनके मतका समर्थन करनेवाले विद्वान् तार्किक, सिद्धसेनीय या सैद्धसेनके विशेषणसे उल्लिखित किये जाते हैं।

विद्वानोंका मत है कि जैनसाहित्यमें जो तर्कशास्त्र प्रविष्ट हुआ है वह इन्हींकी बदौलत। इनके पूर्वमें जैनोंका खास कोई तर्कशास्त्र नहीं था। पिछले आचार्योंने जो तर्कशास्त्र रचे हैं वे इन्हींके बनाये हुए मार्गके ऊपर अवलंबित हैं। डा० सतीशचन्द्र विद्याभूषणने, मध्यकालीन भारतीय न्याय-शास्त्रके इतिहासकी जो पुस्तक (History of the Mediavel School of Indian Logic.) लिखी है, उसमें सिद्धसेनसूरिके विषयमें लिखा है कि—

"ऐतिहासिक कालके सबसे पहले न्याय-शास्त्रको नियमबद्ध लिखनेवाले जैन लेखक सिद्धसेन दिवाकर मालूम होते हैं। इनसे पहले शायद जैन न्यायका कोई खास ग्रंथ मौजूद नहीं था। उस समय न्यायकी बातें धर्म और सिद्धान्त ग्रंथोंमें ही गर्भित थीं। इन्होंने ही सबसे पहले न्यायावतार नामक न्यायग्रंथ बनाकर न्यायशास्त्रकी स्थापना की। यह छोटासा ग्रंथ केवल ३२ श्लोकोंका है। (जैनहितैषी, भा० ९, अं० ३.)

इन उल्लेखोंसे यह सिद्ध होता है कि सिद्धसेन दिवाकरको जो महावादी आदि

---

* "क्रमोपयोगवादिनां जिनभद्रगणिक्षमा-श्रमणपूज्यपादानां, * * * यदेव केवलज्ञानं तदेव केवलदर्शनमिति वादिनां च महावादिश्रीसिद्धसेनदि-वाकराणां साधारण्यो विप्रतिपत्तयः ॥"

—ज्ञानबिन्दु, यशोविजयोपाध्याय।

\+ अमोघवृत्तिके 'षड्नयानाहुः सिद्धसेनीयाः सैद्धसेनाः' इस उदाहरणसे मालूम होता है कि सिद्धसेन और उनके अनुयायी छह नय मानते थे, सात नहीं।

—सम्पादक।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपाधियाँ दी जाती हैं वे यथार्थ हैं। जैसे ये प्रचण्ड तार्किक थे कवि भी वैसे ही उत्कृष्ट थे। इनका बनाया हुआ 'कल्याणमन्दिर-स्तोत्र' पढ़कर कौन सहृदय आनन्दित नहीं होता? भक्तिरससे ओत-प्रोत भरे हुए उसके प्रत्येक काव्यसे किस अर्हद्भक्तका हृदय परमात्माके परम-गुणोंमें लीन नहीं हो जाता? कल्याणमन्दिर जैसी अनेक स्तुतियाँ इनकी बनाई हुई उपलब्ध हैं जिनमें अर्हद्देवकी अनेक प्रकारसे स्तवना की गई है। उपर्युक्त न्यायावतारको भी इन्हीं स्तुतियोंमें की एक स्तुति समझना चाहिए।

जगद्विश्रुत हेमचन्द्राचार्यने अपने सिद्ध-हेम-शब्दानुशासनमें उत्कृष्टता दिखानेके लिए 'अनुसिद्धसेनं कवयः' (तस्मादन्ये हीना इत्यर्थः) का उदाहरण लिखकर सिद्धसेनको सर्वोत्कृष्ट कवि बतलाया है। और अपने 'अयोगव्यवच्छेदस्तवन' के प्रारंभमें सिद्धसेनसूरिकी स्तुतियोंकी प्रशंसा करके उनके सामने अपनी कृतिको 'अशिक्षितालापकला' बतलाया है।

इन प्रमाणोंसे यह भलीभाँति ज्ञात होता है कि सिद्धसेनदिवाकर प्रखर वादी भी थे और महाकवि भी थे। पुराणस्मृत सिद्धसेन भी वादी और कवि थे। परन्तु दिगंबर संप्रदायका साहित्य इस विषयमें बिलकुल चुप है कि वे कौन थे और कब हुए हैं। यह भी संभव नहीं कि ऐसे सामर्थ्यवान् महात्माको समाज विस्मृत कर दे। यदि सिद्धसेन दिगंबर संप्रदायमें हुए होते और पुराणोल्लिखित विशेषण उनमें चरितार्थ होते, तो उनका कुछ न कुछ इतिहास दिगंबर साहित्यमेंसे अवश्य ही मिल आता। स्वामी कुंदकुंद, अकलंक, विद्यानंद आदि परमदिगंबराचार्योंके विषयमें, सत्य तथा कल्पित परंतु थोड़ा बहुत हाल मिल ही आता है। परंतु सिद्धसेनके विषयमें उक्त पुराणोंके सिवा, किसी विश्वसनीय ग्रंथमें, शायद नामोल्लेख भी न होगा। इससे यह अनुमान कि पुराणस्मृत सिद्धसेन, दिवाकरके अतिरिक्त और कोई नहीं; ठीक मालूम होता है। डा० सतीशचन्द्रका भी यही मत[1] है।

संभव है कि संप्रदायभेदके कारण बहुतसे पाठक हमारे इस निर्णयसे सहमत न होंगे। कारण कि पुराणकार दिगंबर संप्रदायके धुरंधर आचार्य थे और दिवाकर श्वेतांबर संप्रदायके प्रभावक पुरुष थे। (यद्यपि उस समय दिगंबर–श्वेतांबरका भेद नहीं हुआ था; परंतु उनकी कृतियाँ और जीवन-वार्तायें श्वेतांबर संप्रदायमें अधिक प्रचलित होनेके कारण वे श्वेतांबर माने गये हैं।) दिगंबर संप्रदायके आचार्योंद्वारा, श्वेतांबरीय आचार्यकी इस प्रकार प्रशंसा किया जाना, यह आजकलकी परिस्थितिके अवलोकनसे तो असंभवसा प्रतीत होता है; परंतु पूर्व-

१–जिनसेनसूरिने अपने आदिपुराणमें (ई० सन् ७८३ में) सिद्धसेन दिवाकरका–जो कि श्वेतांबर संप्रदायके थे–जिक्र किया है। (जैनहितैषी, भा० ९ अं० ३)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कालीन इतिहासका ध्यानपूर्वक निरीक्षण करनेसे मालूम होता है कि उस समय यह हाल न था। उस समयके विद्वान् गुणानुरागी अधिक होते थे। सांप्रदायिक आग्रहसे वे इतने लिप्त न थे जितने कि अर्वाचीन कालमें देखे जाते हैं। संप्रदायान्तरके गुणी पुरुषोंका भी उचित आदर पूर्वके विद्वान् किया करते थे। दिगंबर साहित्यका विशेषालोकन न होनेके कारण हम कह नहीं सकते कि उसमें ऐसे उदाहरण मिलते हैं या नहीं; परंतु, श्वेतांबर-साहित्यमें तो ऐसे माध्यस्थ्यसूचक अनेक दृष्टांत दृष्टिगोचर होते हैं। हरिभद्र और हेमचंद्र जैसे श्वेतांबराशिरोमणि आचार्योंने भी अपने ग्रंथोंमें अनेक स्थलों पर

'तथा चोक्तं महात्मना व्यासेन।'

(अष्टक ४—९.)

'तथा चाह महामतिः पतञ्जलिः।'

(योगदृष्टिस० १००)

'भगवता महाभाष्यकारेणावस्थापितम्।'

(काव्यानुशासन, अध्या० ३.)

इस प्रकारके बहुमानदर्शक वाक्योंद्वारा वेदव्यास और पतञ्जलि जैसे वैदिकाचार्योंकी भी प्रशंसा की है! परमार्हत महाकवि श्रीधनपालने अपनी तिलकमंजरी-आख्यायिकाकी पीठिकामें अनेक वैदिक कवियोंकी स्तुति की है। आप्तमीमांसाके रचयिता स्वामी समन्तभद्रकी स्तुतिके अनेक पद्य श्वेताम्बर ग्रन्थोंमें यत्र तत्र मिलते हैं। स्वयं श्रीमद् यशोविजयोपाध्याय जैसे तार्किकने भी—जिनका अस्तित्व ऐसे समयमें था कि जब सांप्रदायिक विरोध चरम-शिखर ऊपर चढ़ा हुआ था— अपने ग्रन्थोंमें इस प्रकारके कृतज्ञतासूचक वाक्य लिखकर अपना गुणानुरागत्व स्पष्ट प्रकट किया है। प्रवचनसारके रचयिता परम दिगंबराचार्य स्वामी कुंदकुंदको, उन्होंने एक जगह महर्षिके महत्त्वदर्शक विशेषणसे उल्लिखित किया है और अपने कथनकी पुष्टिमें प्रवचनसारकी एक गाथाको उद्धृत किया है। उपाध्यायजीका समय ऐसा विग्रह-पूर्ण था कि उस समयके बहुत से विद्वान् समान सिद्धांतवालोंको भी—अपने ही समुदायके अवांतरभेद—शाखविशेष-वालोंको भी तुच्छ शब्दोंसे स्मरण किया करते थे; तो फिर दिगंबर जैसे विभिन्न संप्रदायके परम पोषक आचार्यको श्वेतांबरसमाजका एक महान् नेता, 'महर्षि' की महती उपाधिसे उल्लिखित करे, यह श्रद्धासक्त सांप्रदायिकोंकी दृष्टिमें कैसे ठीक जँच सकता था? उपाध्यायजी इस बातको अच्छी तरह जानते थे, अतः उन्होंने उस जगह ऐसा मार्मिक उल्लेख कर दिया कि जिससे किसीको 'ननु-नच' करनेका मौका ही न मिले। लिखा है कि—

"न चैतद्गाथाकर्तुर्दिगंबरत्वेन महर्षित्वाभिधानत्वं न निरवद्यमिति मूढधिया शङ्कनीयं, सत्यार्थकथनगुणेन व्यासादीनामपि हरिभद्राचार्यैस्तथाभिधानादिति द्रष्टव्यम्।" (योगावतारद्वात्रिंशिका, २०)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पाठक इन उल्लेखोंसे समझ सकते हैं कि उच्चकोटिके विद्वान् सांप्रदायिक दुराग्रहके फंदेमें नहीं फँसे रहते हैं। वे सत्यके उपासक होते हैं, अतः उन्हें जहाँ कहीं सत्य दिखाई देता है, वे झट उसे अपना लेते हैं। वे सत्यका प्रकाशन और गुणी पुरुषोंका गुणगान सदा ही किया करते हैं। जो व्यक्ति जितनी योग्य होती है उसका उतना आदर, वे अवश्य करते हैं। चाहे वह फिर स्व-संप्रदायकी हो या परसंप्रदायकी। इससे जिनसेन जैसे उच्चतर विद्वान् सिद्धसेन दिवाकर जैसे जैन-प्रभावककी—श्वेतांबर होनेपर भी—प्रशंसा और स्तवना करें तो इसमें कोई आश्चर्य या असंभवता नहीं। सिद्धसेनकी एक कृतिहीको—कल्याणमंदिरस्तोत्रको—दिगंबर समाजने अपना लिया है। वह उसका नित्य पाठ करती है। इसके अंतमें जो कुमुदचंद्र नाम है वह दिवाकरहीका है, यह प्रमाणोंसे निश्चित हो सकता है।

पाठक, हमारे जो विचार थे वे हमने आपके सम्मुख रख दिये। यदि इस विषयमें अधिक खोज करने पर, युक्तिद्वारा यह सिद्ध हो जाय कि पुराणस्मृत सिद्धसेन, दिवाकर सिद्धसेनसे भिन्न हैं तो हमें इसमें कोई आग्रह नहीं। हम अपने विचारको परिवर्तित कर सकते हैं। विद्वान् वही कहलाता है जो युक्तिके अनुकूल अपने विचारोंको चलाता है, न कि विचारानुकूल युक्तिको खींचनेवाला। हरिभद्रसूरिने लिखा है कि—

> आग्रही बत निनीषति युक्तिं,
> तत्र, यत्र मतिरस्य निविष्टा।
> पक्षपातरहितस्य तु युक्ति-
> र्यत्र, तत्र मतिरेति निवेशम्॥

सम्पादककीय नोट—यद्यपि अभी इस बातके सिद्ध करनेके लिए और भी पुष्ट प्रमाणोंकी जरूरत है कि आदिपुराण और हरिवंशपुराणमें जिन सिद्धसेनका उल्लेख किया गया है वे न्यायावतारके कर्ता सिद्धसेनदिवाकरसे भिन्न नहीं हैं। अभी तक यह बात केवल अनुमानसे सिद्ध की गई है। खोजनेसे दिगम्बरसम्प्रदायके ग्रन्थोंमें शायद इनका विशेष परिचय मिल जाय और उससे सिद्ध हो जाय कि वे दिगम्बरप्रदायके ही थे। तो भी, जब तक ऐसा सिद्ध न हो जाय तब तक मुनि महाशयका यह कथन ठीक जान पड़ता है कि सिद्धसेन दिवाकर उस समय हुए हैं जब जैनधर्ममें दिगम्बर और श्वेताम्बर भेद ही न हुए थे। विक्रमकी सभाके नौ रत्नोंमें जिन 'क्षपणक' का उल्लेख है, वे 'सिद्धसेन दिवाकर' को छोड़ अन्य नहीं हो सकते। सिद्धसेनके उपलब्ध ग्रंथोंमें भी शायद कोई ऐसी बात नहीं है जिसे केवल दिगम्बर या श्वेताम्बर ही मानते हों। उनके ग्रन्थ दोनों सम्प्रदायका एकरूपसे कल्याण कर सकते हैं। संभव है कि उनके ग्रन्थोंका प्रचार श्वेताम्बर सम्प्रदायमें ही विशेष रहा हो और इस कारण वे श्वेताम्बर सम्प्रदायके ही आचार्य गिने जाने लगे हों। इधर दिगम्बरोंमें उनके ग्रन्थोंका प्रचार न रहनेसे वे उन्हें भूल गये हों और इस कारण उनके साहित्यमें उनका विशेष उल्लेख न मिलता हो—केवल भगवज्जिनसेन जैसे परिचितोंने ही उनका स्मरण किया हो। यह भी संभव है कि भगवज्जिनसेनने उनके अविरोधी ग्रन्थोंपरसे उन्हें दिगम्बर समझकर, अथवा श्वेताम्वर समझकर भी 'गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः' की उदार नीतिके अनुसार स्मरण किया हो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मेरा प्यारा हिन्दुस्तान ।

ले०—श्रीयुत सय्यद अमीर अली (मीर)

दयानिधे, हे अन्तर्यामी । परमपूज्य सब जगके स्वामी ॥
यद्यपि दिखते नहीं कहीं हो । सच पूछो तो कहाँ नहीं हो ? ॥
गावें सब मिल दो, वरदान ।
मेरा प्यारा हिन्दुस्तान ॥ १

भेद-बुद्धि हम जावें भूल । सभी हमारे हों अनुकूल ।
करें न नाहक बैर-विवाद । समझें पातक पर-अपवाद ॥
मूल मंत्र यह लेवें मान ।
मेरा प्यारा हिन्दुस्तान ॥ २

हिन्दू-बौद्ध-जैन हों आर्य्य । चाहे ब्रह्मो-यवन-अनार्य्य ॥
चाहे भारतीय ईसाई । समझें आपसमें सब भाई ॥
सुधामयी मिल छेड़ें तान ।
मेरा प्यारा हिन्दुस्तान ॥ ३

जननी जन्म-भूमि है एक । उसके हम सब पुत्र अनेक ॥
पालें अपना अपना धर्म्म । रहें समझते लेकिन मर्म्म ॥
और रखें मनमें अभिमान ।
मेरा प्यारा हिन्दुस्तान ॥ ४

ऊँच-नीच गुणहीमें मानें । सबको अपना भाई जानें ॥
सबके सुखदुखको निज मानें । व्यर्थ बातको कभी न तानें ॥
पढ़ें मंत्र कल्याणनिधान ।
मेरा प्यारा हिन्दुस्तान ॥ ५

विद्याका खोलें भण्डार । उस पर तन-मन दें बलिहार ॥
चाहे पढ़ने जायँ विदेश । भूलें पर नहिं यह उपदेश ॥
'मैं भारतका हूँ सन्तान ।
मेरा प्यारा हिन्दुस्तान' ॥ ६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहते हैं ऐसा विद्वान। नहीं एकका हिन्दुस्तान॥
इस पर सबका स्वत्व समान। हिन्दू किंवा हो कृस्तान॥
सब मिल गाओ मङ्गलगान।
मेरा प्यारा हिन्दुस्तान॥ ७

विधवा बाल अशक्त अनाथ। इन सबका पकड़ें हम हाथ॥
अन्न-वस्त्रका देवें दान। और सिखावें जीवन-ज्ञान॥
जिससे उन्हें रहे यह ध्यान–।
मेरा प्यारा हिन्दुस्तान॥ ८

स्वावलम्बका हो अवलम्ब। पर-हितमें नहिं करें विलम्ब॥
भारत-जननीके हो दास। सेवें चरणकमल सुखवास॥
जपा करें यह मंत्र महान।
मेरा प्यारा हिन्दुस्तान॥ ९

ऐसी सुमति वृद्ध नर पावें। कन्याओंका दिल न दुखावें॥
बूढ़ी विधवाओंको ब्याहें! तभी योग यह लोग सराहें॥
बूढ़ी जोड़ी गावे गान।
मेरा प्यारा हिन्दुस्तान॥ १०

करें न कोई बाल-विवाह। खूब पढ़ावें दे उत्साह॥
देश-भक्तिका हो अभिमान। आत्म-शक्तिसे हों बलवान॥
उनको हो यह निश्चय ज्ञान।
मेरा प्यारा हिन्दुस्तान॥ ११

करें स्वदेशी वस्तु पसन्द। कला-कुशलता पड़े न मन्द॥
करें नित्य नव आविष्कार। पावें फिर पहला सत्कार॥
तब कहनेका हो अभिमान।
मेरा प्यारा हिन्दुस्तान॥ १२

मादक द्रव्योंका व्यवहार। छोड़ें, सीखें शिष्टाचार॥
दया-धर्म्मके हों अवतार। करें न हिंसा, पर-अपकार॥
भरे रहें इस ध्वनिसे कान।
मेरा प्यारा हिन्दुस्तान॥ १३

सौत-द्वेषका भाव छोड़कर। श्री-वाणी सद्भाव जोड़कर॥
रहें यहाँ निज सदन बनाकर। बाहरके ले जायँ मनाकर॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऐसा सुन्दर वास-स्थान।
मेरा प्यारा हिन्दुस्तान ॥ १४

आधि-व्याधिका होवे नाश। रोग-शोकसे हो अवकाश ॥
घर घरमें हो सौख्य-निवास। बाल-वृद्धमें सुमति-विकास ॥
कहा करें हो बुद्धि-निधान।
मेरा प्यारा हिन्दुस्तान ॥ १५

चमक जाय भारत-व्यापार। ग्राहक आकर सेवें द्वार ॥
धान्य और धन हो भरपूर। फूट-काल-कण्टक हों दूर ॥
हो कुबेर सा विभव-निधान।
मेरा प्यारा हिन्दुस्तान ॥ १६ ॥

रत्न-प्रसूता धरा यहाँकी। वसुधा अति उर्वरा यहाँकी ॥
स्वास्थ्य-दायिनी हवा यहाँकी। प्राण-दायिनी दवा यहाँकी ॥
ऐसा है बल-गौरववान।
मेरा प्यारा हिन्दुस्तान ॥ १७

सद्य दुग्ध-दधि-घृत मिलता है। धान्य वारि नियमित मिलता है ॥
नाद यहाँ रत्नाकर करता। विमल सलिल नदियोंमें बहता ॥
सब देशोंमें महिमावान।
मेरा प्यारा हिन्दुस्तान ॥ १८

महज्जनोंकी लीला-भूमि। आत्म-ज्ञान, गुण-शीला भूमि ॥
कञ्चन-मणि-रत्नोंका आकर। सकल जगतके लिए सुधाकर ॥
देता है सद्विद्यादान।
मेरा प्यारा हिन्दुस्तान ॥ १९

इसकी महिमा अकथ अमेय। उपमा स्वयं स्वयं उपमेय ॥
देवगणोंका भी यह ध्येय। श्रेयोंसे भी उत्तम श्रेय ॥
कल्प-वृक्ष सम देता दान।
मेरा प्यारा हिन्दुस्तान ॥ २०

दे इस नम्र विनय पर ध्यान। 'एवमस्तु' कह दो भगवान ॥
जिससे सुधर जायँ सब काम। होवे 'मीर' देश सुख-धाम ॥
गाया करे प्रजा यह गान।
मेरा प्यारा हिन्दुस्तान ॥ २१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैनसिद्धान्तभास्कर ।

(समालोचना)

४

विक्रमादित्य संवत् ।

यह पाँच पृष्ठका लेख श्रीयुक्त बाबू परेशचन्द्र वन्द्योपाध्याय एम. ए. का लिखा हुआ है और अपूर्ण है । जबतक यह पूरा प्रकाशित न हो जाय, तबतक इसके विषयमें विशेष कुछ नहीं कहा जासकता । इसमें यह सिद्ध करनेका प्रारंभ किया गया है कि विक्रमादित्य वास्तवमें हुए हैं और उन्होंने शकोंको पराजित करके ईसासे ५७ वर्ष पहले अपना संवत् चलाया है ।

शाका सम्वत्की उलझन ।

दूसरी तीसरी संयुक्त किरणका यह लेख १६ पेजका है; परन्तु अपूर्ण है । आगे पूरा होगा या नहीं, भगवान् जानें । चौथी किरणमें तो सम्पादक महाशयने इसे पूरा करनेकी कृपा नहीं की, रही आगेकी किरणें, सो कब निकलेंगीं, इसका अनुमान करनेका हम जैसे इतिहासानभिज्ञोंको अधिकार नहीं । इस लेखका नाम तो है, 'शाकासंवत्की उलझन'; परन्तु इसमें विचार किया गया है 'विक्रमसंवत्' पर! ऐसा क्यों किया गया, यह शायद लेखके शेष भागमें बतलाया जाय । इस लेखमें अनेक देशी विदेशी विद्वानोंके मत देकर यह बतलाया गया है कि विक्रम या विक्रमादित्य नामका कोई राजा जिसने कि विक्रमसंवत् चलाया हो ईसासे ५७ वर्ष पूर्व–या अबसे लगभग १९००–२००० वर्ष पहले–हुआ ही नहीं है । कुछ राजा ऐसे अवश्य हुए हैं जिन्होंने विक्रमकी उपाधि धारण की थी; परन्तु वे बहुत पीछे हुए हैं । इसके सिवाय आज तक जितने प्राचीन शिलालेख, दानपत्र, आदि मिले हैं, उनमें एक भी ऐसा नहीं है जिसमें विक्रम संवत्की शुरूकी छह सात शताब्दियोंका उल्लेख हो । सबसे पहला लेख विक्रम संवत् ८९८ का है जिसमें संवत्के साथ विक्रमपद जुड़ा हुआ है । जब कि चन्द्रगुप्त, अशोक, कनिष्क, हुविष्क, खारवेल आदि प्राचीनसे प्राचीन राजाओंके लेख और उल्लेख मिलते हैं तब क्या कारण है कि विक्रमका उल्लेख नहीं मिलता ? उनका उल्लेख नहीं मिलता है, इससे मालूम होता है कि ईसवी सन्से ५७ वर्ष पहले कोई विक्रमादित्य नामका राजा हुआ ही नही । प्रो० मेक्समूलरका मत है कि उज्जैनीके राजा हर्ष विक्रमादित्यने ईस्वी सन् ५४४ में कोरूरके युद्धमें म्लेच्छोंको हराकर उस विजयके उपलक्ष्यमें अपना संवत् चलाया और इस नव स्थापित संवत्को उन्होंने ६०० वर्ष पहले माननेके लिए सबोंको बाध्य किया । कोई कहते हैं कि चन्द्रगुप्त द्वितीय ही विक्रमादित्य था । किसीका मत है कि मालवगणका संवत् ही पीछे बदलकर विक्रम कर दिया गया । पर ईसाकी पाँचवीं छट्ठी शताब्दिके पहले विक्रमादित्यको माननेके लिए कोई भी तैयार नहीं । सम्पादक महाशयको भी यही मत पसन्द है । वे लिखते हैं—"हम यह अवश्य कहेंगे कि इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं कि विक्रमादित्य ईसाकी छट्ठी शताब्दिमें राज्य करते थे । इनके सामयिक बड़े बड़े कवि और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लेखकोंने जो अपने अपने महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिख छोड़े हैं वे आज बड़ी पूज्य श्रद्धासे समादृत होकर पढ़े जाते हैं।" इस विश्वासके कारण जिन एक दो विद्वानोंने विक्रमको ईसाके ५७ वर्ष पहले सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है, उनका नाममात्र खण्डन भी सम्पादक महाशयने कर दिया है। पर हमारी समझमें विक्रमका अस्तित्व ईसासे ५७ वर्ष पहले सिद्ध करनेमें जो असफलता हो रही है उससे कहीं अधिक असफलता विक्रमको अपने समयसे सौ दो सौ या छह सौ वर्ष पीछे ले जानेमें हो रही है। इस बातका ठीक ठीक उत्तर कोई भी नहीं देता है कि जिस पिछले राजाने अपनी यादगार कायम रखनेके लिए अपने नामके संवत्को छह सौ वर्ष पहलेसे शुरू किया, उसने इसमें क्या लाभ सोचा होगा और उसकी इस आज्ञाको सारे देशने मान कैसे लिया होगा? और इतना बड़ा पराक्रमी राजा ऐसे झूठे कृत्यमें प्रवृत्त ही क्यों हुआ? उस समयके पहलेके और पीछेके अनेक राजाओंने अपने अपने संवत् अपने समयसे चलाये थे, फिर अकेले उसीने ऐसा क्यों किया? इसमें उसको लाभ क्या था? यदि कोई कहे कि अपना संवत् प्राचीन कहलाने लगे इस इच्छासे उसने ऐसा किया होगा, तो यह ठीक नहीं। यह कोई भी बुद्धिमान् और यशोभिलाषी राजा नहीं चाह सकता कि मुझे लोग मेरे समयसे छहसौ वर्ष पहले मानने लगें। इससे तो उलटी उसकी वर्तमान कीर्तिका घात होता है। जब तक इस शंकाका समाधान न हो जाय, तबतक विक्रमादित्यका समय आजसे १९७२ वर्ष पहले ही मानना पड़ेगा। आज यदि शुरूकी शताब्दियोंके विक्रमसंवत्-सूचक लेख या ग्रन्थादि नहीं मिलते हैं तो क्या हुआ? खोजें हो रही हैं, अन्वेषण हो रहे हैं, संभव है कि आगे कोई न कोई बलिष्ठप्रमाण मिल जावे और विक्रमादित्यका ठीक समय निश्चित हो जाय। अनेक विद्वान् इस समस्यापर विचार कर रहे हैं और सफलताकी ओर बहुत कुछ अग्रसर भी हुए हैं।

भगवज्जिनसेनाचार्य और कविवर कालिदास।

भास्करकी प्रथम किरणमें सम्पादक महाशयने यह लिख मारा था कि जिनसेन और कालिदास समकालीन थे और कालिदासको नीचा दिखलानेके लिए जिनसेनने मेघदूत-वेष्टित पार्श्वाभ्युदयकी रचना की थी। वास्तवमें यह एक भ्रम था, इस लिए सहयोगिनी सरस्वतीके सुविज्ञ सम्पादकने एक लेख लिखकर बतलाया कि यह निर्मूल कल्पना है। जिनसेन और कालिदास समसामयिक हो नहीं सकते। परन्तु इतिहासके महासागर सेठजी यह कैसे मान लें कि उनके गंभीर मस्तकमें रत्नोंके सिवाय कूड़े कर्कटको भी स्थान मिल सकता है? बस, आपकी बुद्धिका ज्वार आगया और उसके परिणामरूप यह लेख प्रकाशित होगया। इसमें आपने यह बतलाया है कालिदास नामके कई कवि हुए हैं। एक कवि विक्रमादित्यकी सभाका रत्न बतलाया जाता है; परन्तु विक्रम नामके किसी राजाका छठी शताब्दिके पहले पता ही नहीं लगता। अत एव कालिदास भी छठी शताब्दिके बादका कवि है। पाठकोंको यह बात ध्यानमें रखनी चाहिए कि इसके पहलेका विक्रम संवत् सम्बन्धी लेख भी इसी अभिप्रायसे लिखा गया है कि कालिदासको किसी तरह ईस्वी सन्के पहलेका सिद्ध न होने दिया जाय। कालिदासके समयनिर्णयके सम्बन्धमें आपने देशी विदेशी ३४ विद्वानोंके मतोंका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उल्लेख किया है और उसका यह निष्कर्ष निकाला है कि कालिदासके समयके सम्बन्धमें जब विद्वानोंकी इस तरह भिन्नभिन्न कल्पनायें हैं, तब हमारी कल्पना निर्मूल क्यों ? यहाँ हम यह भी कह देना चाहते हैं कि उक्त ३४ मतोंमें 'मत' कहने योग्य तो दो चार ही हैं, शेष सब उनके अनुवादक, अनुधावक अथवा उन्हींकी बातको प्रकारान्तरसे कहनेवाले हैं। कुछ लोग भास्करसम्पादकके समान ऊँटपटाँग हाँक-नेवाले भी हैं! आपने ऐसे लोगोंके भी मत दे डाले हैं जो कालिदासको भोजप्रबन्धके आधारसे ग्यारहवीं शताब्दिका कवि मानते हैं! दें क्यों नहीं, मतोंकी संख्या अधिक दिखलाकर लोगोंको भय ही तो दिखाना है; परन्तु यह मालूम न हुआ कि कालिदासके समयके विषयमें मतान्तर दिखलानेसे कालिदास और जिनसेन-की समकालीनता कैसे सिद्ध हो गई! १०–११ पेज रंग डाले; पर यह एक जगह भी नहीं लिखा कि उक्त दोनों विद्वानोंका समय एक कैसे हो सकता है। पहली किरणमें आपने प्रतिज्ञा की थी कि "अगामी किरणमें हम दोनोंकी समकालीनता पूरे प्रमाणके साथ सिद्ध करेंगे" (पृष्ठ ४६)। परन्तु इस लेखमें तो वे पूरे प्रमाण पेश नहीं किये गये। इसके बाद चौथी किरण भी निकल गई, परन्तु उसमें भी नदा-रद। सच तो यह है कि न समकालीनता सिद्ध हो सकती है और न आप कर सकते हैं। कुछ लोग ऐसे पुरुषार्थी होते हैं जो अपनी असत्य कल्पना पर भी अपनी योग्यताकी जिला चढ़ाकर कुछ समयके लिए सत्यके सदृश दिखला देते हैं; परन्तु अफसोस है कि आप यह भी नहीं कर सकते हैं! साथ ही बड़े ही दुःखकी बात यह है कि आप अपने भ्रमको स्वीकार करनेकी भी शक्तिको खो बैठे हैं!

जिनसेनस्वामीने पार्श्वाभ्युदय काव्यकी रचना अमोघवर्ष प्रथमके समयमें की है और अमोघवर्षका राज्यकाल शक संवत् ७३७ या ईस्वीसन् ८१५ से आरंभ होता है। अतः पार्श्वा-भ्युदय ८१५ से पहलेका नहीं हो सकता। इस बातको भास्करसम्पादक भी मानते हैं। अब इसके साथ कालिदासके समयको मिलाइए।

१ यदि विक्रमको छट्ठी शताब्दिमें ही मानें, तो भी उनकी सभाका रत्न कलिदास दो सौ वर्षके बाद अमोघवर्षकी सभामें उपस्थित नहीं हो सकता।

२ बीजापुर जिलेके आयहोली ग्रामके जैन-मंदिरमें जो जैन रविकीर्तिका शिलालेख है, वह शक संवत् ५५६ या ईस्वी सन् ६३४ का लिखा हुआ है और इसमें किसीको सन्देह भी नहीं है। ये रविकीर्ति अपनेको कालिदास और भारविके समान कीर्तिशाली कवि बतलाते हैं –'**स जयति कविरविकीर्तिः कविता–श्रितकालिदासभारविकीर्तिः**'। इससे सिद्ध है कि कालिदास ईस्वी सन् ६३४ से भी पहले हो चुके थे, अतः उनके साथ जिनसे-नका साक्षात् कदापि नहीं हो सकता।

३ बाणभट्टने अपने प्रसिद्ध ऐतिहासिक काव्य हर्षचरितमें कालिदासका उल्लेख किया है और बाणभट्टका समय ईसाकी छट्ठी शताब्दिका अन्त और सातवींका प्रारंभ माना जाता है। इस विषयमें किसीका मतभेद भी नहीं है। अतः कालिदासका समय छट्ठी शताब्दिसे पहले नि-र्विवाद है जो जिनसेन स्वामीसे कई सौ वर्ष पहले चला जाता है।

४ यह ठीक है कि कालिदास नामके कई कवि हो गये हैं; परन्तु मेघदूतके कर्त्ता कालि-दासका समय तो छट्ठी शताब्दिके बाद जाही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं सकता और इस कारण जिनसेनसे उनका साक्षात् होना असंभव है।

५ योगिराज पण्डिताचार्य चौदहवीं शताब्दिके बादके विद्वान् हैं। उनकी उस कथापर विश्वास नहीं किया जा सकता जिसमें वे कालिदास और जिनसेनका साक्षात् हुआ बतलाते हैं। जिनसेन जैसे ऋषि विद्वान् यह निरी मिथ्या बात कभी नहीं कह सकते कि मेघदूतकाव्य पुराने काव्यमेंसे चुराया गया है। जैनधर्मकी प्रभावना इस तरहके छलसे कदापि नहीं हो सकती और न ऐसी प्रभावनाको पण्डिताचार्य और सम्पादकाचार्य पद्मराजजीको छोड़कर और कोई ठीक ही मान सकता है। पार्श्वाभ्युदयके अन्तके दो श्लोकोंमें जिनसेन स्वामी स्वयं यह बात स्वीकार करते हैं कि इस पार्श्वकाव्यको मैंने मुनिराज विनयसेनकी प्रेरणासे कालिदासके मेघदूतकाव्यको वेष्टित करके बनाया है। उन्होंने यह तो कहीं नहीं कहा कि मैंने कालिदासका गर्व गलित करनेके लिए इसकी रचना की है! अतः दोनोंके साक्षात्की कथा पण्डिताचार्यजीकी मनगढ़न्त कल्पना है और यह उसी प्रकारकी है जैसी कल्पनायें बल्लालकविने अपने भोजप्रबन्धमें कालिदाससे लेकर अपने समयतकके तमाम बड़े बड़े कवियोंको भोजकी सभामें उपस्थित करके की है।

यह समकालीनता सम्बन्धी लेख भी अधूरा है जो चौथी किरणके निकल जानेपर भी पूरा नहीं किया गया है। जान पड़ता है सेठजी अभीतक समकालीनताके पूरे प्रमाण संग्रह नहीं कर सके हैं!

भारतवर्षीय प्राचीन शिल्पकला

इस तीन पेजके अधूरे लेखमें—जो अभीतक पूरा नहीं किया गया है—भारतके प्राचीन शिल्पकी प्रशंसाके गीत गाये हैं। गीत इस लिए कि इस लेख भरमें प्रशंसा और संस्कृत शब्दोंकी भरमारके सिवाय विशेष तथ्यकी बात कोई नहीं है। शिल्पकलाका जनक भारतवर्ष ही है, वेदादि ग्रन्थोंमें मूर्तिपूजाका स्पष्ट उल्लेख है, आदि बातोंके लिए प्रमाण देनेकी ज़रूरत थी जो नहीं दिये गये।

परिशिष्ट शिलालेख।

यह एक शिलालेख है। इसका लेखक मंगराज नामका प्रसिद्ध कवि है जो शक संवत् १३५५ के लगभग हुआ है। 'कर्नाटककविचरित' के लेखानुसार वह होयसल देशान्तर्गत कल्लहाल्लि राज्यके स्वामी विजयेन्द्रका पुत्र था। कनड़ीमें इसके बनाये हुए छह ग्रन्थ उपलब्ध हैं। उसके बनाये हुए इस लेखमें सब मिलाकर ७८ पद्य हैं जो बहुत ही सुन्दर शब्दालङ्कार अर्थालङ्कार दोनोंसे युक्त हैं। 'इन्स्क्रपुशन एट् श्रवणबेल्गोल' नामक पुस्तक पर से यह उद्धृत किया गया है। कविने इसे श्रुतकीर्ति, चारुकीर्ति, पाण्डितयति, और श्रुतमुनि इन चार प्रसिद्ध विद्वानोंकी यादगार कायम रखनेके लिए लिखा है। प्रारंभके २१ श्लोकोंमें महावीर भगवान्से लेकर अकलङ्कसूरितकके मुख्य मुख्य आचार्योंका उल्लेख किया गया है और इसके बाद अन्ततकके श्लोकोंमें पूर्वोक्त चार मुनियोंकी प्रशंसा और उनके समाधिमरणका उल्लेख है। अन्तिम श्रुतमुनिकी निषद्या या समाधिस्थलपर यह लेख संभवतः अब भी मौजूद है। यदि सिद्धान्तभास्करके सम्पादक महाशय इस लेखके विषयमें इतना सा परिचय भी दे देते, तो भास्करके हिन्दीपाठक उनके बड़े ही कृतज्ञ होते। परन्तु वे ऐसा क्यों करने लगे? भयंकर घटाटोप दिखलानेके सिवाय उनका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और कोई लक्ष्य भी हो तब न! पाठक कुछ लाभ उठावें या नहीं, इससे उन्हें मतलब नहीं। हमारे पाठक कहेंगे कि लेखका हिन्दी भावानुवाद भी तो साथहीमें दे दिया है, फिर और परिचय देनेकी क्या आवश्यकता थी? उत्तर यह है कि वह भावानुवाद आपके पूर्वपरिचित काव्यतीर्थ पं० हरनाथ द्विवेदीका किया हुआ है। तब यह आशा कैसे की जा सकती है कि उसको बेचारी हिन्दीके पाठक समझ लेंगे!

अनुवादके विषयमें अधिक कहनेकी अवश्यकता नहीं है। पाठक हरिंशपुराण और पद्मपुराणकी प्रशस्तिके अनुवादमें काव्यतीर्थजीके अनुवाद-कौशलका नमूना देख चुके हैं। ठीक वैसा ही ऊँटपटाँग, असम्बद्ध, अनर्थक और मूर्खतापूर्ण अनुवाद इस लेखका भी हुआ है। यह तो किसी तरह समझमें भी नहीं आता कि कवि किसका वर्णन कर रहा है। जहाँ जहाँ मूलमें यस्य, तस्य, यः, सः आदि सर्वनाम आये हैं अनुवादमें उनको 'जिसके, तिसके, जो, सो' आदि पर्यायवाची शब्द धर दिये हैं; परन्तु यह स्पष्ट करनेकी कृपा कहीं भी नहीं की है कि 'वह' या 'वे' कौन हैं जिनका वर्णन हो रहा है। कोई कोई पद्य बहुत ही साधारण हैं; परन्तु उनके अनुवादमें भी गोलमाल किया गया है। इस विषयमें अधिक न कहकर अब हम अनुवादके दो चार नमूने देकर इस विषयकी आलोचनाको समाप्त करेंगे।

१९ वें श्लोकमें अकलंकदेवका स्वर्गगमन वर्णन करके और यह कह करके कि उनके अन्वयमें देवनन्दि आदि संघ हुए कवि कहता हैः—

स योगिसंघश्चतुरप्रभेदाना-
साद्य भूयानविरुद्धवृत्तान्।
बभावयं श्रीभगवान्जिनेन्द्र-
श्चतुर्मुखानीव मिथस्समानि॥

इसका अर्थ यह है कि "वह बड़ाभारी मुनिसंघ, अविरुद्ध आचरणवाले चार भेदोंके कारण ऐसा शोभित हुआ जैसे भगवान् जिनेन्द्र अपने परस्पर समानरूप चार मुखोंके कारण शोभित होते हैं।" कविका भाव यह है कि यद्यपि दर्शन करनेवालोंको जिन भगवान्के चारों ओरसे बिलकुल एक सरीखे चार मुख दिखलाई पड़ते हैं; परन्तु वास्तवमें उनका एक ही मुख होता है। उसी तरह वह मुनियोंका संघ यद्यपि देव, नन्दि, सिंह, सेन इन चार भेदोंमें बँट गया, परन्तु वास्तवमें उसका चारित्रकी भिन्नतासे रहित एक ही रूप था।

इसका अर्थ काव्यतीर्थ महाशय इस प्रकार करते हैं—"इसके बाद श्रीमान् योगी जिनेन्द्र भगवान् अविरुद्ध वृत्तिवाले चार संघोंको पाकर परस्पर समान चार मुखके ऐसे उन्हें समझकर शोभने लगे।" मालूम नहीं अकलंकके समयमें ये योगी जिनेन्द्र भगवान् कहाँसे और कैसे आ गये! सेठ पद्मराजजीको यह ऐतिहासिक तत्त्व अवश्य मालूम होगा।

श्रीमान् श्रुतमुनिकी प्रशंसामें कवि कहता हैः—

का त्वं कामिनि कथ्यतां
श्रुतमुनेः कीर्तिः किमागम्यते।
ब्रह्मन्मत्प्रियसन्निभो
मुनिबुधः संमृग्यते सर्वतः॥
नेन्द्रः किं स च गोत्रभिद्-
धनपतिः किं नास्त्यसौ किन्नरः।
शेषः कुत्र गतः स च द्विरशनो
रुद्रः पशूनां पतिः॥ ५२॥

अर्थात्—"ब्रह्माजीने किसी स्त्रीको आई हुई देखकर पूछा—हे कामिनि, कह तू कौन है? (उत्तर) मैं श्रुतमुनिकी कीर्ति हूँ। (प्रश्न) यहाँ क्यों आई है? (उत्तर) हे ब्रह्मन्, मैं अपने प्यारेके सदृश विद्वान्को सब ओर ढूँढ़ती फिरती हूँ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(प्रश्न) क्या तेरे प्यारे श्रुतमुनिके समान इन्द्र नहीं है ? (उत्तर) नहीं, वह तो गोत्रभिद् (पर्वतोंका हनन करनेवाला) है । (प्रश्न) क्या कुबेर भी उसके सदृश नहीं है ? (उत्तर) नहीं, वह तो किन्नर (कुत्सित नर) है । (प्रश्न) तो फिर शेष (धरणेन्द्र) कहाँ गया ? वह तो उसके सदृश होगा ? (उत्तर) नहीं, वह तो द्विजिह्व (दो जीभोंवाला या चुग़ल) है । (प्रश्न) और महादेव ? (उत्तर) वह तो पशुपति है । ”

अब इसका काव्यतीर्थका किया हुआ, गोल-माल, वेदभाषामें लिखा हुआ भावार्थ भी पढ़-लीजिए:—“ हे कामिनि ! तू कौन है ? क्या श्रुत-मुनिकी कीर्ति तू इधर आ रही है ? क्या तू इन्द्र है, नहीं यह तो गोत्रभिद् है । कुबेर तो नहीं है ? किन्तु यह किन्नर नहीं मालूम पड़ता है । ब्रह्मन् ! मैं अपने ऐसे किसी विद्वान् मुनिको चारों तरफ़ खोज रहा हूँ ।” लीजिए, अन्ततक पहुँचते पहुँचते द्विवेदीजीकी कृपासे वह कामिनि पुरुष बन गई और अपने सदृश मुनिको ढूँढ़ने लगी । धन्य अनुवादकजी ! और धन्य सम्पादकजी ! !

श्रीचारुकीर्ति मुनि जब बीमार हुए और इस कारण उन्होंने समाधिमरण करनेका निश्चय किया, उस समयका वर्णन करते हुए कवि कहता है:—

> **एषां शरीराश्रयतोऽपि वातो**
> **रुजः प्रशान्तिं विततान तेषाम् ।**
> **बल्लालराजोत्थितरोगशान्ति-**
> **रासीत्किलैतत्किमु भेषजेन ॥ ३०**
> **मुनिर्मनीषाबलतो विचारितं**
> **समाधिभेदं समवाप्य सत्तमः ।**
> **विहाय देहं विविधापदां पदं**
> **विवेश दिव्यं वपुरिद्धवैभवम् ॥ ३१**

अर्थात्—जिनके शरीरको छूकर जानेवाली हवा भी रोगको शान्ति कर देती है—क्योंकि एक बार बल्लाल नरेशके शरीरमें जो रोग उठा था, वह इसी तरह शान्त हो गया था—उनको बतलाइए कि दवाईसे क्या लाभ होगा ? अभिप्राय यह कि जिनका शरीर ही दवाईरूप था, उन्हींको जब रोग हो गया है, तब और दवाई क्या काम देगी ?॥३०॥ मुनिमहाराजने बुद्धिबलसे विचार किया कि अब समाधिमरण करना ही श्रेयस्कर है, अर्थात् यही सबसे बड़ी ओषधि है और तब समाधिपूर्वक उन्होंने अपने रोगादि आपत्तियोंके स्थान शरीरको छोड़कर विभव-शाली देवशरीरको प्राप्त किया । अर्थात् चारु-कीर्ति स्वामीका स्वर्गवास हो गया ।

३० वें पद्यमें जिन बल्लालनरेशका उल्लेख है, वे विष्णुवर्धन राजाके भाई थे । कर्नाटक कविचरितसे मालूम होता है कि वे चारुकीर्ति पण्डिताचार्यके समकालीन थे ।

अब इन पद्योंकी हरनाथी या काव्यतीर्थी टीका देखिए:—“ जिनके शरीरके सम्पर्क मात्र हीसे वा सब किसीके रोगोंको शान्ति हो जाती थी । लोग कहा करते थे कि बल्लालराजकी कृपासे रोग छूटा है, दवासे क्या ? मुनिने समाधिपूर्वक अनेक आपदका स्थान इस विनश्वर शरीरको छोड़कर दिव्य शरीरको पाया । ” इससे बढ़कर अनुवाद और कौन कर सकता है ? कवि मुनिकी कृपासे रोग छूटना बतला रहा है; पर अनुवादक राजाकी कृपासे रोग छुड़ा रहे हैं । दोनों पद्योंका अनुवाद आपने तीन वाक्योंमें किया है, पर क्या मजाल जो एक वाक्य दूसरे वाक्यसे ज़रा भी सम्बन्ध रखता हो ! द्विवेदीजीका प्रत्येक वाक्य वर्णाश्रम धर्मका पालन करता हुआ नजर आता है ! !

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुवादकी खूबियाँ दिखलानेके लिए इससे अधिक स्थान रोकना अच्छा नहीं। जो पाठक संस्कृत जानते हों उनसे हमारी प्रार्थना है कि वे इस शिलालेखके अनुवादका प्रत्येक वाक्य मूलसे मिलान करके देखें और द्विवेदीजीके पाण्डित्यकी तथा सेठ पद्मराजजीके प्रचण्ड सम्पादकत्वकी प्रशंसा करनेका पुण्य सम्पादन करें।

दूसरी तीसरी किरणकी समालोचना समाप्त हो चुकी। इस किरणके प्रायः सब ही लेखोंपर हम विचार कर चुके। सम्पादकीय टिप्पणी और पुस्तक पर्यवेक्षण लेखोंपर विचार करनेकी विशेष आवश्यकता नहीं जान पड़ती। आगामी अंकसे भास्करकी अन्तिम किरणकी आलोचना शुरू होगी।

वस्तु नीचे क्यों गिरती है?

लेखक—श्रीयुक्त बाबू निहालकरणजी सेठी एम. एस. सी.

विद्यार्थी—मास्टर साहिब, सब कोई कहते हैं कि जड़ पदार्थ बिना किसीकी सहायताके अथवा बिना बलके एक स्थानसे दूसरे स्थान तक नहीं जा सकता—यह बात कुछ ठीक नहीं जान पड़ती। यह पैंसिल हाथमेंसे छोड़ देने पर अपने आप ही नीचे गिर पड़ती है, इसको तो कोई सहायता नहीं देता।

मास्टर—नहीं, तुम भूलते हो। यह स्वयं नहीं गिर पड़ती। इसको नीचेकी ओर खसकनेमें अवश्य सहायता मिलती है। कोई न कोई निःसन्देह इस पर बल लगा कर इसे नीचेकी ओर खींचता है।

वि०—वाह साहिब, कोई भी तो दिखलाई नहीं देता। इसके कोई तागा भी नहीं बँधा है जो कोई कहीं गुप्त स्थानसे बैठा बैठा खींच रहा हो और पिताजी इत्यादि सब यही कहते हैं कि यह तो वस्तुका स्वभाव ही है कि नीचे गिर पड़े।

मा०—अच्छा आज तुम्हें यही बात समझावेंगे। यदि वस्तुका स्वभाव ही नीचे गिर जानेका होता है तो गुब्बारा ऊपरको क्यों जाता है? पक्षी आकाशमें कैसे उड़ते हैं? पतंग क्यों घंटों वायुके मध्य डटा रहता है?

वि०—गुब्बारा तो हलका होता है। पक्षी अपने परोंके बलसे उड़ते हैं और पतंगको हवा ऊपर स्थित रखती है।

मा०—इसका तो अर्थ यह हुआ कि ऊपरकी ओर बल लगानेसे वस्तु ऊपरकी ओर भी जासकती है।

वि०—इसमें तो कोई नई बात न हुई। जिधर बल लगावेंगे उसही ओर तो वस्तु चली जायगी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मा०—यह तो ठीक परन्तु यह बताओ कि ऊपरकी ओर उठानेके लिए कितने बलकी आवश्यकता है ?

वि०—यह तो मैं क्या जानूँ ?

मा०—इतना तो बतला सकते होकि यदि किसी वस्तुको ऊपर उठावें तब अधिक बलकी आवश्यकता होगी अथवा जब उसे समतल पत्थरपर रखकर खिसकावें ?

वि०—उपर उठानेमें अवश्य अधिक बल लगेगा, क्योंकि एक मन भारको मैं उठा तो नहीं सकता किन्तु खिसका अवश्य सकता हूँ।

मा०—जब पदार्थ वही है और उतनाही है फिर एक दिशामें बल लगानेसे खिसके और एकमें नहीं, इसका क्या कारण ?

वि०—मैं तो कुछ नहीं जानता।

मा०—अच्छा यही बतलाओ कि यदि दो सेर भारको ऊपर उठाकर हाथमें रक्खे रहो तो तुम्हें बल लगाना पड़ता है या नहीं?

वि०—बल न लगावें, तो नीचे न गिर पड़े ?

मा०—तो बल लगानेपर भी वस्तु एक स्थानपर स्थित रह सकती है ? बल लगानेसे तो उसे जिधर बल लग रहा है उसही दिशामें खिसकना चाहिए। तुम ऊपरकी ओर बल लगा रहे हो परन्तु वह खिसकती नहीं, इससे यही स्पष्ट होता है कि नीचेकी ओर भी बल लग रहा होगा।

वि०—हाँ, यह बात तो ठीक जान पड़ती है। यहाँ जब रस्सा खिचवाया जाता है तब लड़के दोनों ओरसे खींचते हैं; परन्तु जब तक बल बराबर होता है वह नहीं खिसकता और बहुत अधिक बल लगाने पर कुछ खिसकता है।

मा०—इसही प्रकार जब तक तुम ऊपरकी ओर इतना बल लगाओ जो नीचेकी ओरके बलसे कम हो तब तक तो वह वस्तु हिल नहीं सकती। हाँ, जब उससे अधिक बल लगाओ तब निःसन्देह उठ सकती है।

वि०—परन्तु यह तो बताइए कि नीचे कौन बल लगा रहा है ?

मा०—जब इतना समझे हो कि वस्तु पर नीचेकी ओर बल लग रहा है तो पैंसिलका नीचे गिर पड़ना क्या आश्चर्यकी बात है ? हाँ, अब यह प्रश्न अवश्य है कि बल कौन लगा रहा है। क्या तुमने चुम्बक देखा है ?

वि०—हाँ, आपने उस दिन दिखलाया था। वह सुईको अपनी ओर खींच लेता है।

मा०—अर्थात् सुई पर वह अपनी ओर बल लगाता है।

वि०—अवश्य—नहीं तो सुई अपने स्थानसे हिलती ही क्यों ?

मा०—क्या चुम्बकमें और सुईमें किसी तार, तागे इत्यादिसे कुछ सम्बंध था ?

वि०—नहीं, वे तो सर्वथा पृथक् थे। चुम्बककी आकर्षणशक्ति ही सुईको खींच लेती थी।

मा०—फिर यदि इस वस्तु पर नीचेकी ओर बल लगता है अथवा यह नीचेकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह नहीं नापसकते। केवल इस बलकी और बाँटों पर जो बल पृथ्वी लगाती है उसकी तुलना की जाती है। पहाड़ पर जानेसे इस वस्तुपर पृथ्वीका बल घट जायगा तो बाँटों-परका बल भी तो कम हो जायगा—उन दोनों-हीका भार घट जायगा और साधारण तराजूसे वे दोनों वहाँ भी बराबर निकलेंगे।

वि०--अच्छा, इस काँटेमें एक ही वस्तुका भार नापा जाता है और तराजूमें एक वस्तुके भारकी बाँटोंके भारसे तुलना की जाती है। अब समझमें आया। किन्तु क्या भार भी घट बढ़ सकता है ?

मा०—जब भार पृथ्वीके आकर्षणके बलका ही नाम ठहरा तो उसके बदलनेमें क्या आश्चर्य है ? हाँ, वस्तु उतनीकी उतनी ही रहती है। दो सेर गेहूँके दाने गिनलो, पहाड़पर ले जानेसे दानोंकी गिनतीमें अंतर नही होगा—प्रत्येक दानेकी लम्बाई मुटाईमें भी अंतर न होगा; परन्तु भार अवश्य कम हो जायगा।

वि०—जो परमाणु थे वे थोड़े ही कहीं चले जावेंगे, केवल दूरीके कारण पृथ्वीका आकर्षण कम हो जायगा। एक बात और बताइए। क्या जिसप्रकार सुई भी चुम्बकको अपनी ओर खींचती है, उसही प्रकार यह वस्तु भी पृथ्वीको अपनी ओर खींचती है ?

मा०—इसमें क्या संदेह है, यह तो संसारका नियम ही है। यदि कोई तुम्हें खींचता है तो तुम भी उसे खींचोगे। यदि तुम किसीपर प्रेम रक्खोगे तो वह भी तुमपर प्रेम रक्खेगा।

वि०--फिर पृथ्वी उसकी ओर क्यों नहीं जाती ?

मा०--सुईकी ओर चुम्बक क्यों नहीं आता ? क्या जिस बलसे यह वस्तु खिंच जाती है उतने ही बलसे पृथ्वीके समान बड़ी वस्तु भी खिंच सकती है ?

वि०—हाँ, सो तो सत्य है; परन्तु पृथ्वी तो इन्हीं लोहा पत्थर इत्यादिसे बनी है। फिर यदि यह वस्तु पृथ्वीको खींच लेती है तो लोहेके टुकड़ेको अथवा पत्थर इत्यादिको भी तो खींच लेगी।

मा०—अवश्य।

वि०—परन्तु ऐसा तो कभी सुना नहीं गया कि एक पत्थरका टुकड़ा दूसरे टुकड़ेको खींच ले।

मा०—सुना नहीं गया, इसका कारण तो यह है कि ऐसी बारीक बात जाननेकी किसे फिक्र है ? इसके अतिरिक्त जब सारी पृथ्वीने बल लगाया तब तो इस वस्तुपर इतना बल लगा कि हम हाथसे उठा सकते हैं। यदि केवल एक छोटासा लोहेका टुकड़ा ही आकर्षण करे तो बताओ उसका बल कितना थोड़ा होगा ? इतना थोड़ा बल नापना साधारण मनुष्योंका कार्य नहीं।

वि०—थोड़ा तो अवश्य होगा; किन्तु फिर भी क्या कोई उपाय नहीं ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मा०—उपाय क्यों नहीं ? क्या वैज्ञानिक इतनीसी बातके लिए इस महान् प्रश्नको यहीं छोड़ देते ? कई प्रकारके प्रयोग किये हैं, परन्तु मैं तुम्हें सबसे सरल उपाय ही बतलाता हूँ।

कोई दो दो फुट ऊँचे पत्थरोंपर एक बहुत बड़ा सीसेका टुकड़ा रक्खा गया। इसकी लम्बाई चौड़ाई और ऊँचाई लगभग पाँच पाँच फुटके थी। नीचेके दोनों पत्थर किनारेपर थे जिससे कि उन दोनोंके बीचमें बहुत जगह बच गई थी। इस सीसेके टुकड़ेके ऊपर ही एक बहुत अच्छी तराजू ऐसे लटकाई गई कि उसके पलड़े इस सीसेसे कोई दो इंच ऊपर रह गये। ठीक इन पलड़ोंके नीचे दो सूराख सीसेके टुकड़ेमें कर दिये गये और उनमें होकर एक एक तार पलड़ोंसे लटका दिया गया। जहाँ ये तार सीसेसे टुकड़ेके नीचे निकले वहीं एक एक पलड़ा और बाँध दिया गया। इस प्रकार दो दो पलड़े इस तराजूकी दोनों ओर हो गये। एक एक तो सीसेके ऊपर और एक एक नीचे। इस अवस्थामें देख लिया गया कि तराजू ठीक है। अब एक ओरके ऊपरवाले पलड़ेमें एक लोहेका टुकड़ा रख दिया गया, और दूसरी ओरके नीचेके पलड़ेमें बाँट रक्खे गये और डंडी सीधी कर ली गई। अब लोहेके टुकड़ेको उठाकर नीचेके पलड़ेमें रक्खा और बाँटोंको ऊपर—तो मालूम हुआ कि बाँट अधिक भारी हैं—डंडी बाँटोंकी ओर झुक गई है।

वि०—यह अंतर तो ऊपर नीचे ले जानेहीसे होगया होगा। इसमें सीसेके टुकड़ेने क्या किया ?

मा०—नहीं, सीसेके टुकड़ेको हटाकर यही प्रयोग करनेसे कुछ भी अंतर नहीं मालूम हुआ। केवल पाँच सात फुट ऊपर नीचे करनेसे भारमें इतना अंतर नहीं हो सकता।

वि०—परन्तु इससे यह कैसे जान पड़ा कि सीसेका टुकड़ा लोहेके टुकड़ेको खींचता है।

मा०—इस अंतरका कारण यही होसकता है कि जब लोहा ऊपर था तब सीसा उसे नीचे खींचता था और बाँटोंको ऊपर खींचता था। इस कारण लोहेपर जो नीचेकी ओर बल लग रहा था वह पृथ्वीके बलका और सीसेके बलका योग था। और बाँटोंपर जो बल नीचेकी ओर लग रहा था वह पृथ्वीके बलसे कुछ कम था; क्योंकि सीसा उन्हें ऊपरको खींच रहा था। इस प्रकार लोहेका भार कुछ अधिक होगया था और बाँटोंका कुछ कम। अर्थात् यद्यपि वास्तवमें (सीसा न होता तो) बाँट लोहेसे भारी थे तो भी बराबर जान पड़ते थे; परन्तु जब लोहेको नीचे रख दिया और बाँटोंको ऊपर, तब लोहेका भार कम होगया और बाँटोंका अधिक। बाँटोंका भार पहले ही अधिक था, अब तो अंतर द्विगुण होगया।

वि०—युक्ति तो बहुत अच्छी है। इस प्रकार जितना अंतर मालूम होगा वह वास्त-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ओर आकृष्ट हो जाती है, तो क्या आश्चर्य है ?

वि०—परन्तु यह लोहेकी तो है नहीं और न नीचे कोई चुम्बक ही है।

मा०—पृथ्वी भी एक प्रकारका चुम्बक है। उसमें विशेषता यह है कि वह प्रत्येक वस्तुको खींच लेती है; केवल लोहेहीको खींचे, यह बात इसमें नहीं।

वि०—यह तो बड़ी विलक्षण शक्ति है। इस शक्तिके मान लेनेसे अवश्य वस्तुका नीचे गिरना तो समझमें आजाता है; परन्तु यही कारण है ऐसा अभी विश्वास नहीं होता।

मा०—यदि और कुछ प्रमाण मिले तब तो विश्वास होगा ? अच्छा यह बताओ कि चुम्बक सुईको कितनी दूरसे खींच सकता है?

वि०—थोड़ी दूरसे अधिक दूरी होनेपर बल बहुत कम होजाता है और उस बलसे सुई नहीं खिंच सकती।

मा०—तो ज्यों ज्यों उनका अंतर बढ़ता जाता है त्यों त्यों आकर्षणका बल घटता जाता है। यदि यही बात पृथ्वी और इस दो सेरकी वस्तुमें हुई तो ?

वि०—तब तो कुछ विश्वास होसकता है; परन्तु यह आप कैसे नापेंगे ? क्या कोई ऐसा भी स्थान है जहाँ पृथ्वीका आकर्षण न रहे ? वहाँसे छोड़नेपर वस्तु पृथ्वीपर न गिरेगी ?

मा०—नहीं, ऐसी जगह ढूँढ़नेकी कोई आवश्यकता नहीं है, उसके बिना भी काम चल जायगा। क्या तुम जानते हो कि स्प्रिंग-का कांटा (Spring Balance) किसे कहते हैं ?

वि०—वही एक सुईदार कांटा जिसपर लटकानेसे वस्तुका भार सुई बतला देती है।

मा०—अच्छा यह लो काँटा, इससे इस वस्तुको तौलो तो।

वि०—यह तो पूरे दो सेर है।

मा०—अब इसे मंसूरी पहाड़पर ले जाकर इसी काँटेसे तौलें तो कितनी निकलेगी ?

वि०—इतनी ही दो सेर। वहाँ तौलो या यहाँ तौलो, फरक ही क्या है ?

मा०—नहीं, अवश्य कुछ कम निकलेगा।

वि०—यदि कम होगा तब तो अवश्य पृथ्वीका आकर्षण पाया जायगा। अबकी बार जाऊँगा तब अवश्य तौल कर देखूँगा। परन्तु यदि वास्तवमें ऐसा ही है तो बड़ी अद्भुत बात है। यदि कोई व्यापारी यहाँसे वस्तु खरीदकर पहाड़ पर बेचे तो उसे तो तौलमें ही घाटा रह जावे।

मा०—नहीं, घाटे जितना तो फरक कदा-चित् ही निकले; परन्तु कम अवश्य निकलेगा यदि ऐसे ही काँटेसे तौलें।

वि०—क्यों ? सोनेकीसी बहुमूल्य वस्तु-में तो थोड़ा अंतर भी बहुत है। परन्तु यह आपने क्या कहा ? क्या यह ऐसे ही काँटोंकी विशेषता है ?

मा०—नहीं, बात यह है कि साधारण तराजूमें वस्तुपर पृथ्वीका बल कितना है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वमें सीसे और लोहेके बीच जो आकर्षण है उसका चौगुना हो जायगा। क्योंकि प्रथम बार लोहेका वास्तविक भार तो कम और बाँटोंका अधिक था, अंतर लोहे और सीसेके आकर्षणसे द्विगुण था और अंतिम अंतर इसका भी द्विगुण।

मा०-बहुत ठीक। देखा न बातकी बातमें चौगुणा करके नाप लिया। वैसे तो सीधा उपाय यह था कि साधारण तराजूके एक पलड़ेमें बाँट रखते और एकमें लोहेका टुकड़ा-बराबर करके लोहेवाले पलड़ेके नीचे सीसा रख देते, परन्तु ऐसा करनेसे अंतर इतना थोड़ा होता कि ऐसे तराजूसे नहीं नापा जा सकता था।

वि०-क्या ऐसा कोई तराजू नहीं बनाया गया जिससे इसे भी नाप लें?

मा०-क्यों नहीं? अब तो ऐसा अच्छा तराजू बन गया है कि जिसमें इतने बड़े सीसेके टुकडेकी भी आवश्यकता नहीं होती। बहुत छोटे छोटे टुकड़ोंका आकर्षण भी नापा जा सकता है।

वि०-वह तो बहुत आश्चर्यजनक तराजू होगा। हाँ, इससे तो यह प्रमाणित हो गया कि प्रत्येक वस्तु प्रत्येक दूसरी वस्तुको अपनी ओर खींचती है; पृथ्वीहीमें कोई विलक्षणता नहीं।

मा०-वास्तवमें यही बात है। इस नियमके आविष्कर्त्ता महात्मा न्यूटनने इसे यों लिखा है-"संसारका प्रत्येक परमाणु प्रत्येक दूसरे परमाणुको अपनी ओर खींचता है।" इसे गुरुत्वाकर्षण कहते हैं। इतना जानकर वे चुप हो जाते यह उनके स्वभावके विरुद्ध था। उन्होंने इस सम्बंधी और भी नियम जान लिये और उन नियमोंद्वारा चंद्रमा तारे इत्यादिका आकाशमें विना सहारे स्थित रहना, नियत मार्गमें भ्रमण करना इत्यादि ज्योतिषसम्बंधी अनेक बातोंका पता लगा लिया और आज उनके दिये हुए हिसाब अक्षरशः सत्य प्रमाणित होकर जनसमाजको बहुत लाभ पहुँचा रहे हैं। जिस प्रकार तुम्हें पैंसिल गिरने पर आश्चर्य हुआ उस ही प्रकार उन्हें वृक्ष परसे सेव गिरते देख आश्चर्य हुआ था, परन्तु अंतमें उस छोटीसी बातसे ही-जिसे करोड़ों मनुष्य दिनरात देखते आते थे-उन्होंने ऐसे विश्वव्यापी नियमका आविष्कार कर डाला।

कलम कहे कानमें।

कवि, श्रीयुत पं० गिरिधर शर्मा।

जड़से उखाड़के सुखाय डालें मोहिं, मेरे
प्राण घोंट डालें धर धुआँके मकानमें।
मेरी गाँठ काटें मोहि चाकूसे तराश डारें,
अंतरमें चीर डारें धरें नहीं ध्यानमें॥
स्याही माहिं बोर बोर करें मुख कारो मेरो,
करों मैं उजारो तौ हू ज्ञानके जहानमें।
परे हू पराये हाथ तजौं न परोपकार,
चाहे घिस जाऊँ यों कलम कहे कानमें॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्त्री-संसार।

भारतीय समाजोंमें किसी समय स्त्रियोंका भी एक विशिष्ट स्थान था और वे बहुत ही आदरणीय समझी जाती थीं । **यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः** । जहाँ स्त्रियोंका आदर होता है वहाँ देव निवास करते हैं । इत्यादि वाक्योंसे—जो यहाँके प्राचीन साहित्यमें मिलते हैं—इस बातकी अच्छी तरह पुष्टि होती है । स्त्रीपुरुषकी अर्द्धांगिनी, सहधर्मिणी, सहचारिणी मानी गई है, इससे भी उसके अधिकार और आदरकी कल्पना हो सकती है । परन्तु अब वह बात नहीं रही है । इस समय स्त्रीकी प्रतिष्ठा 'पैरोंकी जूती'से बढ़कर नहीं है । अपने आदरणीय स्थानसे पतित होकर अब वह पुरुषोंकी केवल दासी है । पुरुषोंको अधिकार है कि वे स्त्रियोंपर चाहे जैसे अत्याचार करते रहें; उनके अत्याचारोंको रोकनेका स्त्रियोंको कोई अधिकार नहीं है—उनको सिर्फ़ यही अधिकार है कि वे उन अत्याचारोंको चुपचाप सहन करती रहें !

पुरुषोंकी ओरसे स्त्रियोंपर जो अत्याचार होते हैं वे अब इतने रूढ हो गये हैं, समाजकी दृष्टिको उनके देखनेका इतना अभ्यास हो गया है कि अधिकांश लोग—जिनमें हजारों पढ़े लिखे भी शामिल हैं—उन्हें अत्याचार ही नहीं समझते । वे इस बातको माननेके लिए भी तैयार नहीं हैं कि पुरुष-समाज स्त्रियोंके साथ जो व्यवहार करता है, उसकी अत्याचार संज्ञा भी हो सकती है । उनकी समझमें वह अत्याचार नहीं, किन्तु स्वाभाविक तथा धार्मिक व्यवहार है । यही क्यों, जो स्त्रियाँ इन अत्याचारोंकी लक्ष्य हैं, जिनपर रातदिन ये अत्याचार होते हैं, वे भी तो इन्हें अत्याचार नहीं कहती हैं और इन्हें खुशीसे सहन करते रहना अपना धर्म समझती हैं ! अभ्यास ऐसी ही चीज़ है । अभ्यास पड़ जानेसे कष्टका भी कष्ट रूपमें अनुभव नहीं होता है । अमेरिकाके नीग्रो लोगोंका हृदय सैकड़ों वर्षोंकी गुलामीके अभ्याससे ऐसा बन गया था कि उन्हें वह गुलामी ही अच्छी मालूम होती थी । जिस समय उन्हें स्वाधीनता दी गई उस समय वह उन्हें भयावनी और पहलेकी गुलामी प्रार्थनीय जान पड़ती थी । यही हाल हमारी स्त्रियोंका भी है ।

* * * * *

स्त्रियोंके विषयमें जब कभी कोई चर्चा होती है उस समय हम यह भूल जाते हैं कि स्त्रियाँ भी मनुष्य हैं । उनके भी हृदय, बुद्धि, विवेक, सुखदुःखके अनुभव करनेकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शक्ति आदि बातें हैं और वे भी मनुष्यसमाजकी एक अग हैं। इन बातोंके भूल जानेसे ही पुरुष उन पर अत्याचार करता है और उनके प्रकृतिदत्त सत्वोंकी पायमाली करनेमें ज़रा भी नहीं हिचकता।

× × ×

हमारे पिछले साहित्यमें स्त्रीनिन्दाकी भरमार है। जहाँ देखिए वहाँ स्त्रियोंकी निन्दा। संभव है कि उक्त साहित्यके लेखकोंने स्त्रीनिन्दासे कुछ लाभ सोचा हो और शायद किसी अंशमें उससे लाभ हुआ भी हो; परन्तु हम उसे नहीं जान सकते; हाँ, हानि हम अवश्य अनुभव कर रहे हैं। इस निन्दाने स्त्रियोंको अपने पूज्य पवित्र और महनीय आसनसे बहुत ही नीचे गिरा दिया है और पुरुषसमाज उन्हें आदर श्रद्धा और स्नेहकी दृष्टिसे देखना भूल गया है। उसकी दृष्टिपर इस निन्दाका इतना प्रभाव पड़ चुका है कि अब वह उसमें प्रशंसाके दर्शन ही नहीं कर सकता। पवित्रसे पवित्र स्त्रीके सामने आते ही पुरुषके हृदयमें '**कामश्चाष्टगुणः स्मृतः**'– स्त्रीके अठगुणे कामके वेगका स्मरण हो आता है और तब उसके लिए उसे विकाररहित दृष्टिसे देखना असंभव हो जाता है। उसकी समझमें स्त्री एक विलासकी सामग्रीके सिवाय और कुछ नहीं है। मानों संसारमें एक कामवासनापूर्ण पाशविक सम्बन्धके सिवाय बहिन भाई, माता पुत्र, सखा सखी आदिके पवित्र सम्बन्ध हो ही नहीं सकते हैं। यही कारण है कि आज हमारे देशका युवा अपनी युवती बहिनके पवित्र स्नेहका उपभोग नहीं कर सकता है और प्रौढ़ पिता अपनी जवान बेटीपर अपना हार्दिक प्रेम व्यक्त नहीं कर सकता है। हम किसी वयस्क पुरुषको किसी स्त्रीके साथ बातचीत करते देखते ही, चाहे वह बातचीत कितनी ही अच्छी क्यों न हो, तरह तरहकी आशंकायें और कुतर्कनायें करने लगते हैं। करें क्यों नहीं, हम स्त्रियोंके संसर्ग आलाप आदि सभीको ही जो निन्दनीय समझते हैं।

* * * * *

इस स्त्रीनिन्दाका एक परिणाम यह भी हुआ है कि पुरुष अपने दोषोंका अनुभव करना भूल गया है। वह यह सोच ही नहीं सकता कि जब कोई स्त्री पतित होती है तब उसमें उस स्त्रीके सिवाय पुरुषका भी कुछ दोष होता है या नहीं। यह ठीक है कि अग्निके संसर्गसे घृत पिघलने लगता है, परन्तु इसमें केवल अग्निका स्वभाव ही कारण नहीं है, घृतकी दुर्बलता द्रवता भी कारण है। घीकी जगह पत्थर या लोहा हो, तो उसमें इतना विकार नहीं हो सकता। यदि पुरुष अपनी आँखोंपरसे इस स्त्रीनिन्दाके विकारको दूर करके देख सके तो उसे मालूम हो कि इस विषयमें स्त्रियोंकी अपेक्षा पुरुष ही अधिक निन्दनीय हैं। भारतके किसी भी समाजका स्त्रीसमुदाय अपने समाजके पुरुषसमुदायकी अपेक्षा बीसों गुणा पवित्र और चरित्रवान् है। बुरीसे बुरी स्त्री उतनी दुश्चरित्र नहीं हो सकती जितना कि एक मनचला पुरुष होता है। सच तो यह है कि सौमें नव्वे स्त्रियोंको पुरुष ही दुश्चरित्रताके मार्ग पर ले जानेवाले

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होते हैं। ये पुरुष ही उनकी अज्ञानता, भोलेपन, अदूरदर्शिता, हृदयकी कोमलता आदि बातोंसे लाभ उठाकर उन्हें पापके कुएमें ढकेल देते हैं। यदि आज पुरुषसमाज सदाचारी और संयमी बन जाय तो स्त्रीसमाज तो स्वभावतः सदाचारी है, उसके सुधारनेमें ज़रा भी देर न लगे। परन्तु यह तब हो जब पुरुष स्त्रीनिन्दा करना छोड़कर अपने हृदयका टटोलना और उसके साथ स्त्रीहृदयका मिलान करना सीखें।

* * * * *

पुरुषसमाज स्त्रियोंको सदाचारिणी पतिपरायणा बनानेका निरन्तर प्रयत्न करता रहता है। आजकलकी सभा समितियोंमें इस विषयमें खूब ही व्याख्यान दिये जाते हैं। यहाँतक कि जिस सभामें केवल पुरुष ही वक्ता और श्रोता होते हैं उसमें भी पातिव्रतके और आदर्श स्त्रियोंके चरित्रके जोशीले व्याख्यान दिये जाते हैं। आप जानते हैं कि इसका कारण क्या है? यह नहीं कि पुरुष स्त्रियोंको समाजका कोई अंग समझते हों या उनके सुख दुखकी उन्हें विशेष चिन्ता हो। स्त्रियाँ पुरुषोंकी गुलाम हैं—दासियाँ हैं। जैसे एक मालिक चाहता है कि मेरा नौकर सदाचारी हो, वह सदाचारी होगा तो मेरा काम अच्छी तरह करेगा—मुझे कोई भय नहीं रहेगा, उसी तरह स्वार्थी पुरुष चाहता है कि मेरी स्त्री पतिव्रता हो तो वह मेरी गुलामी अच्छी तरह कर सकेगी। वह यह नहीं समझता है कि स्त्रीको पतिव्रता बनानेके साथ साथ मुझे स्वदारसन्तोषी या एकपत्नीव्रतका धारण करनेवाला बनना भी आवश्यक है। यदि पुरुषसमाज इतना समझने लगे तो वह स्वयं सदाचारी बन जाय और उसके साथ साथ स्त्रियाँ भी अपने चरित्रको सुरक्षित रख सकें। पुरुषोंकी जिन सभाओंमें आज स्त्रियोंके पातिव्रतसम्बन्धी व्याख्यान होते हैं, उनमें यदि पुरुषोंके 'एकपत्नीव्रत' पर जोर दिया जाय, तो बहुत कुछ लाभ हो सकता है।

* * * * *

"पुरुष स्त्रियोंकी निन्दा जी खोलकर कर चुके हैं। जितनी निन्दा हो चुकी है, उससे अधिक और हो नहीं सकती। अब स्त्रियोंकी वारी है। सौभाग्यसे अब स्त्रियाँ भी शिक्षिता होने लगी हैं। उन्हें चाहिए कि अब वे भी पुरुषोंके इस अत्याचारका बदला चुकानेके लिए कटिबद्ध हो जायँ। इस कार्यमें उन्हें विशेष श्रम न करना पड़ेगा और उनका यह कार्य अनुचित भी नहीं कहा जा सकता। क्योंकि इस समयका पुरुषसमाज वास्तवमें ही निन्दाके योग्य है। उसकी जितनी निन्दाकी जाय उतनी थोड़ी है। इससे स्त्रीसमाजको लाभ भी होगा। वे पुरुषोंके छल कपटोंको जानने लगेंगीं और उनसे बचे रहनेका प्रयत्न करने लगेंगीं।" ये एक स्त्रीके वाक्य हैं। एक स्त्रियोपयोगी मासिक पत्रमें उसकी सम्पादिकाने इन्हें लिखा था। पुरुषोंकी लज्जा रखनेवालीं और उनको चरित्र सिखानेवालीं कोमल स्त्रियोंके द्वारा ऐसा होना हम उचित नहीं समझते हैं—(यद्यपि पुरुष इस शासनके सर्वथा योग्य है)—परन्तु पुरुषोंको सावधान कर देना हमारा कर्तव्य है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बादशाहकी दुलहिन।

लेखक, श्रीयुत कुँवर कन्हैयाजू।

(१)

सिन्धके बादशाह अहमदशाहने रजत-सरोवरके किनारे एक शीत-महल बनवाया था। गर्मीके दिनोंमें राजधानी छोड़कर वह बहुधा यहीं रहा करता था। वह एक सुन्दर और सुदृढ शरीरका युवा पुरुष था। जिस प्रकार वह युद्धकुशल और साहसी था उसी प्रकार काव्य, कलाकौशल आदि सद्गुणोंका प्रेमी और सहायक भी था।

एक दिन वह अपने कुछ चुने हुए साथियोंके सहित एक सुन्दर किश्तीमें सवार होकर जल-क्रीड़ा कर रहा था। स्वच्छ चाँदनी सरोवरके स्वच्छ जलको और भी स्वच्छ बना रही थी। हरे भरे वृक्षोंसे परिपूर्ण टापू—जिनके पास होकर वह किश्ती जा रही थी— बड़े ही सुहावने मालूम होते थे। मधुर संगीत कानोंमें अमृतकी वर्षा कर रहा था। किश्तीमें बैठे हुए मुसलमान कलावतोंने पहले बादशाहकी वीरता और उदारताके गीत गाये और फिर बहिश्तकी हूर और परियोंका वर्णन करते हुए गुलाब और बुलबुलोंपर जाकर अपना गाना समाप्त किया। उनके बाद एक हिन्दू कविने उच्च स्वरसे एक राजपूतकुमारीकी प्रशंसाका गीत गाया। गीतका संक्षेप यह था कि वह राजकन्या मृगशावकके समान भोलीभाली और मनोहारिणी है और सती सीताके समान अद्वितीय सुन्दरी, बुद्धिमती और लज्जाशीला है। गीतके प्रत्येक पदमें हृदयको हिलादेनेवाली सरसता और मधुरिमा भरी हुई थी। उस सुमधुर शीतल चन्द्र-किरणोंकी छायामें निस्तब्ध भावसे श्रवण करते हुए बादशाहके हृदयपर इस गीतका बड़ा प्रभाव पड़ा। उसने पूछा, यह "महताबरुख परी पैकर किसी ख़याली दुनियाकी चीज़ है, या दर असलमें कहीं है?" कविने उत्तर दिया, "हूजर, वह इस समय मौजूद है और कुमारी है। मैंने राजपूत सरदार पर्वतसिंहकी कन्या लालाकी प्रशंसामें यह गीत गाया है।" "अगर वह दर असलमें तुम्हारे बयानके मुआफ़िक दिलफिसाँ है, तो उसे मैं अपनी दुलहिन बनाऊँगा, नहीं तो इस तारीफ़का इनाम यह होगा कि तुम्हारा सिर कलम किया जायगा।" यह कहकर बादशाह गहरे विचारोंमें डूब गया। थोड़ी ही देरमें किश्ती किनारे पर लगा दी गई।

दूसरे दिन सबेरे ही बादशाहने अपनी सभाके सलाहकार ब्राह्मणको बुलाया और उससे पर्वतसिंहकी लड़कीके विषयमें पूछताँछ की। ब्राह्मण देवताने और भी नमक मिर्च लगाकर लालाके सौन्दर्यका वर्णन कर दिया जिससे कविके संगीत पर मानों मुहर लग गई। लालाकी प्राप्तिका ध्यान जो अभीतक अन्तरके निभृत कक्षमें छुपा हुआ था अब बाहर आ गया। बादशाहने ब्राह्मणको आज्ञा दी कि "तुम इसी समय पर्वतसिंहके यहाँ जाओ और कहो कि बादशाह तुम्हारी बेटी लालाको अपनी दुलहिन बनाना चाहते हैं।"

किन्तु बादशाह अपनी इच्छापूर्तिके मार्गको जितना निष्कण्टक और सुगम समझता था उतना वह वास्तवमें था नहीं। पर्वतसिंह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उन राजपूतोंके समान नहीं था जिन्होंने अपनी कन्यायें बादशाहको या उसके सरदारोंको ब्याहकर अपना सौभाग्य समझा था। वह सच्चा राजपूत था। उसे अपने पूर्वजोंका अभिमान था और इस कारण वह अपने कुलकी मर्यादाको बनाये रखना अपना कर्त्तव्य समझता था। उसे राजपूतोंका मुसलमानोंके साथ विवाहबन्धनमें बँधना बहुत ही खटकता था। वह इस कार्यसे बहुत घृणा करता था। अपने धर्मकी रक्षाके आगे शाही ताज और तख्तसे सत्कार पानेके लोभको वह तुच्छ समझता था।

पर्वतसिंह जैसा वीर था वैसा ही समझदार भी था। इस समय अपनी रक्षाका प्रबन्ध ठीक न होनेके कारण उसने बादशाहसे कहला भेजा कि मैं अपनी लड़कीको ब्याह देनेके लिए तैयार हूँ।

(२)

बादशाहने सुना कि पर्वतसिंह अहोरके पहाड़ी किलेमें चला गया है और वहाँ गुप्तरूपसे तैयारियाँ कर रहा है। उसके स्वजनसम्बन्धी और मैमार राजपूत आ आकर उससे मिल रहे हैं। अहमदशाहने दश हज़ार सेना तैयार की और निश्चय किया कि या तो इस सेनासे राजपूतोंका सर्वनाश कर देंगे या इसे ही बारात बनाकर नई दुलहिनको ले आयँगे।

निदान अहमदशाह बड़ी शानके साथ अपनी वीर बारातको लिये हुए अहोरके किलेके पास जा पहुँचा। वह एक बहुमूल्य साजोंसे सजे हुए हाथी पर बैठा था। शाहने ज्योंही किलेके भीतर जानेके लिए अपने हाथीको बढ़ाया त्योंही एक बाण किलेसे सनसनाता हुआ आया और उसके ताजकी कलगींमें आ लगा। बाण थोथा था और उसके सिरे पर एक कागजका पुरजा बँधा हुआ था जिसमें यह लिखा था–"जिस धनुर्धरके हस्तकौशलने इस बाणको तुम्हारे ताज तक पहुँचाया है वह तुम्हारे उस कुत्सित मस्तकको बातकी बातमें छेद सकता है जिसमें लालाको लेनेकी लालसा उत्पन्न हुई है। अब भी सचेत हो जाओ।" इसी समय किसीने वह बहुमूल्य पोशाक–जो बादशाहके यहाँसे नई दुलहिनके लिए आई थी–चिथड़े चिथड़े करके बादशाहके हाथीके आगे फेंक दी। गरज यह कि तुमुल युद्धकी सूचना हो गई। मुसलमान सेनाने समझा कि अब शीघ्र ही किलेसे आग बरसेगी और हमारी रक्षा होना कठिन है; परन्तु यह देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ कि वहाँ बहुत देर तक खड़े रहनेपर भी कहींसे एक भी बाण उन तक न आया और न कोई बन्दूककी आवाज़ ही सुनाई दी।

अहोरके किलेमें तीन हज़ार राजपूत थे। बादशाहके खजानेसे जो कुछ धन रत्न आदि सौगातकी तौर पर पर्वतसिंहको मिला था, वह सब उसने किलेकी दुरुस्ती, रसदके इन्तज़ाम और अच्छे अच्छे हथियारोंके ख़रीदनेमें ख़र्च किया था। उसकी प्रतिज्ञा थी कि चाहे जो हो, अपनी लालाको विधर्मीके हाथ न जाने दूँगा और अन्त तक इस किलेकी सहायतासे अपनी रक्षा करूँगा।

(३)

मुसलमान लोग नसैनियाँ लगा-लगाकर किलेकी दीवारोंपर चढ़ने लगे। चढ़ते समय जब उनके काममें कोई रुकावट न डाली गई, तब तो उनका हौसला बढ़ गया; परन्तु थोड़ी ही देरमें उन्हें विश्वास हो गया कि किलेके भीतर प्रवेश करना ज़रा टेढ़ी खीर है। राजपूत लोग ऊपर ताक लगाये हुए खड़े थे; उन्होंने बड़े बड़े लट्ठोंसे सारी नसैनियोंको खिसका दिया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिससे नसैनीपर चढ़े हुए मुसलमान लुढ़क लुढ़ककर खाईमें जा गिरे। किलेमें पैठनेके लिए अनेक यत्न करनेपर भी जब मुसलमानोंको सफलता न हुई, तब उन्होंने स्थायी घेरा डाल देनेका निश्चय कर लिया। इसके सिवाय पर्वतसिंहको ठिकाने लानेका और कोई उपाय भी न था।

धीरे धीरे तीन महीने बीत गये। अब राजपूतोंको रसदकी कमी मालूम होने लगी। बाहरसे किसी प्रकारकी सहायता पानेकी भी आशा न थी। अब पर्वतसिंहको चिन्ताने सताया। उसने अपने साथियों समेत दृढ़ प्रण किया था कि मर मिटना पर आत्मसमर्पण न करना। राजपूतोंको अपने प्राण देना कोई कठिन काम न था; पर उन्हें चिन्ता यह थी कि हमारे पीछे हमारी स्त्रियों और बेटियोंकी क्या दुर्दशा होगी।

और कोई उपाय न देखकर उन्होंने अपने चिर-प्रचलित जौहर व्रतकी उद्यापना करनेका ही निश्चय किया। सारी स्त्रियाँ प्रसन्नतापूर्वक अग्निमें जलजानेके लिए तैयार हो गईं। कई स्त्रियोंने यह इच्छा की कि हम अपने पति–पिता पुत्रोंके साथ हथियार बाँधकर लड़ें और उनकी यथासाध्य रक्षा करें; परन्तु पर्वतसिंहकी स्त्रीने जो सबकी शिरोमणि थी, उन्हें ऐसा करनेसे रोका और कहा—नहीं यह मार्ग स्त्रियोंके लिए निरापद नहीं है। चलो, हम सब चिताका आलिङ्गन करें और अपने पति पुत्रोंके पहुँचनेके पहले ही स्वर्गमें जा पहुँचें।

रातको एक बड़ी भारी चिता तैयार की गई। ढेरकी ढेर लकड़ियाँ एकठी करके उनमें मनों घी और राल डाल दी गई। इसके बाद उसमें आग लगाई गई जो देखते देखते आसमानसे बातें करने लगी। राजपूत वीरांगनायें एक एक करके उसमें कूदने लगीं और सबेरा होते होते उस किलेमें एक भी स्त्री जीती न बची!

(४)

स्त्रियोंकी ओरसे निश्चिन्त होकर अब राजपूत-वीरोंने अपने बलिदानकी तैयारी की। सबेरा होनेके पहले ही तीन हज़ार राजपूत केसरिया वस्त्र पहने हुए किलेके भीतरी फाटक पर एकत्रित हो गये। वहाँ उन्होंने एक दूसरेके गले लगकर हमेशाके लिए बिदा माँग ली और किलेका फाटक खोल दिया। इस वीर अभिनयके प्रधान नायक पर्वतसिंह, और उसके युवराज कुमार रामसिंहके पीछे पीछे सारे राजपूत एक तन एक मन होकर शत्रुदलपर इस प्रकारसे टूट पड़े जैसे भेड़ोंके झुंडपर भूखा भेड़िया टूटता है।

मुसलमान-सेनाने अपने बचावके लिए खाई खोद रक्खी थी और उसीकी मिट्टीके धूलि-कोट बना रक्खे थे। राजपूतदल कोटरक्षकोंको मारता–काटता हुआ सारी रुकावटोंको पार करके शत्रुओंके मध्यमें जा धँसा। पास ही बादशाहका खेमा था जिस पर नीला निशान फहरा रहा था। राजपूत यवनसेनाको चीरते हुए शाहीखेमेकी ओर बढ़ने लगे। मुसलमानोंने उनको रोकनेकी बहुत चेष्टा की; परन्तु वह निष्फल हुई। उनके भयंकर वेगको रोकना असंभव हो गया। बादशाह आपत्तिको बिलकुल समीप आई देखकर उठ खड़ा हुआ और शीघ्र हथियार बाँधकर हाथी पर सवार हो गया। जो मुसलमान सिपाही राजपूतोंके असह्य आक्रमणसे घबड़ाकर तितर बितर हो गये थे उन्हें एकत्र करके वह मुकाबिलेके लिए तैयार हो गया। राजपूतोंका हमला अचानक हुआ था, इस कारण मुसलमान दलमें खलबली मच गई थी। जबतक मुसलमान सिपाही तैयार होकर मोरचेबन्दी पर हुए तब

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तक राजपूत इतने बढ़ गये कि बादशाहके प्राण सूख गये। उसे घड़ी घड़ी पर यही भास होता था कि अब मरा या पकड़ा गया। उसके सैनिक सिमटकर हाथीके सामने हो गये और एक एक करके मारे गये! राजपूत प्राणपणसे आगे बढ़ रहे थे, इसलिए वे थोड़े ही समयमें बादशाहके हाथीके सामने आ पहुँचे। उनके वाणों और बरछोंसे हाथीकी पीठ चलनी बन चुकी थी और वह पलायोन्मुख हो रहा था कि पर्वतसिंहके साहसी पुत्र रामसिंहने नीचे पैठकर हाथीके तंगकी रस्सी अपनी कटारसे काट दी! रस्सीके कटते ही हौदा ओंधा हो गया और बादशाह जमीन सूँघने लगा। इसी समय रामसिंह अपने दो तीन साथियों सहित उस पर झपटा; परंतु उसका वार खाली गया; क्योंकि अहमदशाह तब तक सँभल गया था—उसने उस बारको अपनी ढालपर झेल लिया। इधर उसकी रक्षाके लिए मुसलमान सिपाही भी चारों ओरसे सिमट आये थे। लड़ाई धीरे धीरे भयंकररूप धारण करने लगी। राजपूतोंकी संख्या कम होने लगी और शत्रुओंकी बढ़ने लगी। राजपूत चारों ओरसे घेर लिये गये और उन पर प्रबल हमले होने लगे। राजपूतोंको अब जीतकी आशा न रही। जितने शत्रु मारे-जा सकें उतने मार लो; बस अब यही उनका उपस्थित कर्तव्य हो गया। उनका एक एक दल छूटता था और शत्रुसेनामें घुसता हुआ मारता काटता हुआ अन्तमें शान्त हो जाता था।

वीर पर्वतसिंहके मस्तकपर अब भी राजचिह्न शोभा दे रहे थे और वह अब भी अपने साथियोंको घमासान युद्धके लिए उत्तेजित करता हुआ शत्रुओंकी संख्या कम कर रहा था। मुसलमान उसे मारने या जीता पकड़ लेनेके लिए जीजानसे चेष्टा कर रहे थे; परन्तु उन्हें सफलता न होती थी। जब तलवारोंने काम न दिया, तब एक वाण छोड़ा गया और उसने पर्वतसिंहके विशाल शरीरको धराशायी कर दिया! पिताके गिरते ही पुत्रने मुकुट, छत्र आदि राजचिह्न धारण कर लिये। यह देख बरलीखाँ नामका मुसलमान सरदार उसके मुकाबिलेपर आ पहुँचा। बरलीखाँके एक कठिन प्रहारसे रामसिंहकी तलवार टूट गई, तो भी वह लड़ता रहा और उसी टूटी तलवारसे लड़ते हुए वरलीखाँके तीन साथियोंको मारकर उसने वीरगति प्राप्त की।

मुट्ठीभर राजपूत आखिर कहाँतक लड़ सकते थे? उन सबने अपनी मर्यादाकी रक्षाके लिए एक एक करके प्राण दे दिये। युद्धका अन्त हो गया। आकाशमें उड़ती हुई धूलि चिर-निद्रामें सोते हुए सात आठ हज़ार शवोंपर बैठकर शान्त हुई!

निर्दय बादशाहने बड़ी उत्सुकतासे अहोरके किलेके भीतर प्रवेश किया; परन्तु उसने वहाँ क्या देखा? निर्जन स्मशान! शवदाहकी दुर्गन्धिसे वायुमण्डल व्याप्त हो रहा था और चितामें अब भी अग्नि दहक रही थी। राजपूतोंके जौहरव्रतका वर्णन उसने पहले कईवार सुना था, इसलिए उसे यह समझनेमें विलम्ब न लगा कि यहाँ भी उसी व्रतका उद्यापन किया गया है। इससे उसे बड़ी निराशा हुई। उसका पाषाणहृदय भी इस नारीहत्यासे द्रवित हो गया। कुछ समयके लिए उसे ऐसा मालूम हुआ कि मैंने यह कार्य अच्छा नहीं किया। वह मन-ही-मन कहता था—

“ न ख़ुदा ही मिला न विसाले सनम,
न इधरके हुए न उधरके हुए। ”

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(५)

परन्तु उसकी यह निराशा शीघ्र ही आशामें परिणत हो गई। थोड़े ही दिनोंमें उसके पास यह संदेश आया कि "लाला अभी जीती है। उसे पर्वतसिंहने अपने पड़ौसके एक जागीरदार राजपूतके यहाँ भेज दी थी, इस लिए उसकी रक्षा हो गई है। लाला स्वयं बादशाह पर मुग्ध है और वह उसके साथ शादी करनेके लिए तैयार है!" अहमदशाहके आनन्दकी सीमा न रही। आकाशका चाँद उसने पृथ्वी पर ही पा लिया!

रजतसरोवरके किनारेके महलमें ही इस विवाहका होना निश्चित हुआ। यह विवाह राजनीतिकी दृष्टिसे बड़े महत्त्वका था। क्योंकि इसमें लाला और बादशाहके बीच ही नहीं; किन्तु हिन्दू और मुसलमानोंके बीच भी स्नेहका सम्बन्ध होना था। दरबारकी ओरसे घोषणा कर दी गई कि जो राजपूत पहले विरुद्ध रहे हों या अब भी विरोधी हों, उन सबको विवाहमें सम्मिलित होना चाहिए—उनके सब अपराध क्षमा कर दिये गये। यह भी प्रकट कर दिया गया कि विवाह हिन्दू-विवाहपद्धतिके अनुसार होगा!

दूर दूर तकके लोग इस अभिनव विवाहोत्सवमें आकर सम्मिलित हुए। जहाँ तहाँ मूर्तिमान आनन्द दृष्टिगोचर होने लगा।

आज एक सुन्दर विवाहमंडपके भीतर हम लाला और अहमदशाहको पास पास बैठे देखते हैं। दोनोंका गँठजोड़ा हो रहा है। दोनों ही विवाहके बहुमूल्य आभूषणोंसे सजे हुए हैं। लाला अपने चन्द्रविनिन्दित मुखको चटकीली चूनरीसे ढके हुए निश्चिन्त भावसे बैठी है। उसकी ओर लोगोंकी तरह तरहकी दृष्टियाँ पड़ रही हैं। कोई दृष्टि कौतुकयुत है, कोई आनन्दपूर्ण है, कोई विषादमय है और कोई घोर घृणायुक्त है। इस समय अहमदशाहने वह पोशाक पहिन रक्खी थी जो लालाकी ओरसे उसे प्राप्त हुई थी और जो बिलकुल देशी ढंगकी थी। पक्के मुसलमान उसके इस कार्य पर घृणाकी वर्षा कर रहे थे; परन्तु उस ओर उसका ज़रा भी लक्ष्य न था।

विवाहविधिको समाप्त करके पुरोहितजीने ज्योंही आशीर्वाद दिया, त्योंही लाला अपने स्थानसे उठी और अपने पतिका हाथ पकड़कर उसे बरामदेके ऊपरके उस छज्जेपर लिवा ले गई जो सरोवरके ठीक किनारे पर था और जहाँसे दूर दूर तककी प्रकृतिकी शोभा दिखलाई देती थी। उसने कहा—"मालिक मेरे, आइए यहाँ धूपमें खड़े होकर हम अपनी प्रजाको दर्शन देवें जो इसी लालसासे न जाने कबकी खड़ी है।" बादशाहने अपनी दुलहिनकी आज्ञाका तत्काल ही पालन किया। उसने देखा कि चारों ओर, दूर दूर तक, लोगोंका जमाव हो रहा है और वे सब टकटकी लगाकर हमारी ही ओर देख रहे हैं। मनुष्यसमूहसे आगे जहाँ तक उसकी नजर जाती थी कोई मैदान, घाटी, पर्वत, आदि ऐसा स्थान न था जो उसकी शासनसीमासे बाहर हो। इन सब बातोंके साथ ही उसने यह भी देखा कि जिस लालाके लिए बड़े बड़े कष्ट सहे, हज़ारों मनुष्योंका रक्त बहाया, वह आज दुलहिन बनकर बगलमें खड़ी है। इस समय उसका चेहरा आत्माभिमानकी दीप्तिसे दमक उठा।

अब बादशाहने अपनी दृष्टिको सब तरफसे हटाकर अपनी दुलहिनकी ओर डाला। उसे आश्चर्य हुआ कि साधारण दुलहिनें जिस संकोचकी दृष्टिसे अपने पतियोंकी ओर देखती हैं उस संकोचका लालाकी दृष्टिमें सर्वथा अभाव है। वह एक अनोखे ढंगसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शाहकी ओर देखती हुई व्यंग्यपूर्वक बोली— “ मालिक मेरे, इस उपस्थित आनन्दको भोग लीजिए, नहीं तो यह घड़ी जाती है। सांसारिक सुखोंकी सर्वोच्च सीमा पर पहुँचना ही मानों ईश्वरीय दण्डका पात्र होना है। हम लोग जो इस समय सब तरहसे सुखी और स्वस्थ हैं, आश्चर्य नहीं जो एक दिन भरमें—नहीं—नहीं घड़ी भरमें ही इस संसारसे उठ जायँ।” अहमदशाह नई दुलहिनकी प्राप्तिके आनन्दमें ऐसा मस्त हो रहा था कि उसने लालाके इन व्यंग्यपूर्ण वाक्योंको ज़रा भी न समझा। वह मुस्कराता हुआ बोला—“ ऐसा क्यों ? ”

नीचे सरोवरके किनारे खड़े हुए सर्वसाधारणजन और पास ही बरामदेमें खड़े हुए मुसाहब लोग इस अभिनव जोड़ेकी छवि निहार रहे थे। उनकी रत्नजटित–पोशाकपर पड़ती हुई सूर्यकी किरणें एक अपूर्व शोभाको जन्म दे रहीं थीं। सबके देखते देखते बादशाहके चेहरे पर घबड़ाहट नजर आने लगी। धूपके कारण ज्योंही उसके शरीरसे पसीना निकला, त्योंही वस्त्रोंमें लगे हुए तीव्र विषने अपना असर डालना शुरू कर दिया। वह विकल होकर इधर उधर दौड़ने लगा और पोशाकको फाड़फाड़कर फेंकनेका यत्न करने लगा। वह चिल्लाना चाहता था; परन्तु उसके कण्ठमेंसे आवाज़ न निकलती थी। अन्तमें उसका शरीर शिथिल हो गया और जब तक लोगोंने उसकी इस दशाका कारण मालूम किया, तब तक वह इस संसारसे ही विदा हो गया !

लालाने अहमदशाहके निर्जीव शरीरको एक बार घृणाकी दृष्टिसे देखा, फिर राजमहलके सबसे ऊँचे शिखरपर चढ़कर उसने अपने पिताके प्यारे अहोर किलेकी ओर देखा, और इसके बाद उसने माता–पिता–भाई–बन्धुओंकी मृत्युका ध्यान किया। अन्तमें उसके मुखमण्डलपर एक विकट हास्यकी छाया दीख पड़ी और उसने वहींसे सरोवरमें कूदकर प्राण दे दिये !

सुखशान्तिवर्द्धक नियम।

(लेखक, बाबू दयाचन्दजी गोयलीय बी. ए.)

१. हमको प्रति दिन आपत्तियाँ सहने और पग पग पर निराश होनेके लिए तैयार रहना चाहिए।

२. संसारमें कोई भी मनुष्य पूर्ण नहीं है, अतएव बहुत अधिककी लालसा मत करो।

३. प्रत्येक मनुष्यके स्वभावको देखो कि जिससे तुम उनको अच्छी तरह समझ सको।

४. यदि किसीपर दुःख या आपत्ति आजाय तो उसके साथ सहानुभूति प्रगट करो, और यदि किसीकी उन्नति या बढ़ती होती हो, तो उसे देखकर हर्षित होओ।

५. यदि तुम्हें क्रोध आरहा हो, तो मौन धारण करो। क्रोधावस्थामें बोलना ठीक नहीं है।

६. दूसरोंको प्रसन्न करनेके लिए शक्ति भर उद्योग करो।

७. जीवनको निःसार मत समझो, किंतु हर्ष और आनन्दकी दृष्टिसे देखो।

८. अपनेसे बड़ोंसे आदरके साथ पेश आओ और छोटोंसे प्रेमके साथ व्यवहार करो।

९. नौकरोंके साथ धीरे और प्रेमके साथ बोलो।

१० किसीके अवगुण एकान्तमें देखो, लोगोंके सामने उसकी प्रशंसा ही करो।

११. प्रशंसा जब हो सके, तब करो; परन्तु निन्दा उसी समय करो जब उसकी अत्यन्त आवश्यकता हो।

१२. मुलायम जबाबसे प्रायः क्रोध जाता रहता है।

१३. यदि वास्तवमें किसीने अपराध किया हो और तुम उसपर क्रोध करते हो, तो उस समय याद करो कि तुमने भी कभी कोई अपराध किया होगा।

१४. हर्षमें पहले दूसरोंका ख्याल रक्खो।

१५. दूसरोंकी प्रतिष्ठाका ख्याल रक्खो।

१६ जब हो सके दूसरोंके विषयमें अच्छे विचार रक्खो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैनोंकी वर्तमान दशाका चित्र।

एक सच्चे नाटकका अभिनय।

[लेखक, श्रीयुक्त बाडीलाल मोतीलाल शाह]

रविवारका सन्ध्यासमय है। अभी अभी छहका घंटा बजा है। मैं एक स्वानुभवी तत्त्वज्ञानीके ग्रन्थको लेटे लेटे बाँच रहा था। जीवन-नाटकके अभिनयका आनन्द कैसे अनुभव किया जाय, इस विषयमें उक्त तत्त्वज्ञानीके विचार पढ़कर मेरे मुँहसे एकाएक निकल पड़ा –"शाबास मित्र, शाबास !"

मेरे इन शब्दोंके निकलनेके साथ ही किसीने कहा–"शाबास सनकीजी, शाबास !" देखता हूँ तो मेरे मित्र डाक्टर रामलाल सामने खड़े हैं। चार नजरें होते ही वे बोले–"इस सनकको अब छोड़ दो, तो अच्छा हो। अपने लिए नहीं तो मेरे जैसे स्नेहियोंके लिए ही–कमसे कम ४–६ महीनेको तो यह पागलपन छोड़ दो। यदि न छोड़ोगे तो मैं कहे देता हूँ कि तुम्हें पागलखानेसे या मरघटसे आमंत्रण आये बिना न रहेगा। महीनों बीत गये, तुम बीमार हो। मैं कह कहकर थक गया कि बीमारीका कारण कोई रोग नहीं, किन्तु यह सनक ही है, तो भी तुमने इसे छोड़कर शामको टहलनेके लिए जानेका आरंभ न किया। बाँचने और सोच विचार करनेका आनन्द तुमसे नहीं छूटता और यही कारण है जो तुम्हें यह बीमारी नहीं छोड़ती। शरीरकी ओरसे इतने ला–परवा रहना, इससे बढ़कर मूर्खता और क्या हो सकती है ? मैंने आज सुना कि तुम्हारी तबीयत बहुत ख़राब हो रही है, इस कारण और सब कामोंका छोड़कर तुम्हें फिर एकवार सूचना देने आया हूँ। क्या तुम नहीं जानते कि 'अति सर्वत्र वर्जयेत्'?

मैं उठकर बैठ गया और डाक्टरको कुरसीपर बैठनेके लिए कहकर बोला—"भाई, तुम ज़रा सोचो, तो मालूम हो कि यह सनक भी एक अमूल्य चीज़ है। बाँचने और सोचने विचारनेसे यदि मनुष्य सनकी पागल या मृत हो जाता हो, तो भी मैं कहूँगा कि बाँचने और विचारनेकी यह बहुत ही थोड़ी कीमत है। यदि इससे भी अधिक कीमत देना पड़ती हो तो भी ये रत्न खरीदनेके योग्य हैं। तुम्हारी इस सनक–पागलपन और मौतसे डरनेवाली दुनिया तो जीवित रहनेपर भी मुरदोंकेसे दिन पूरे किया करती है और सदा रोती हुई शकल बनाये रहती है; मानों मौतके मुँहमें ही निवास करती हो ! पर मेरी दशा देखो; मुझे इस विचारसागरमें डुबकी लगानेसे एक प्रकारका नया जीवन मिलता है और इस कारण चाहे जितना बीमार रहनेपर भी मैं नई शक्ति और आनन्दका अनुभव किया करता हूँ। 'अति सर्वत्र वर्जयेत्' यह बोधवचन उन लोगोंके लिए है जो अपने आपको बोध नहीं दे सकते हैं। हम जैसे सनकियोंको तो दूसरोंके ग्रथित किये हुए नीतिसूत्रोंकी धज्जियाँ उड़ानेमें और सच्चे सूत्र बनानेमें ही आनन्द आता है और इसी कारण हमें कोई भी वचन डरावना नहीं मालूम होता। जो 'अति' दूसरोंके लिए भयस्थान है, वह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हमारे लिए आनन्दस्थान है—बल्कि हमें तो 'अल्प'में उलटी तुच्छता मालूम होती है–उससे एक प्रकारकी अरुचि उत्पन्न होती है और—"

"और मैं भी आज तुम्हें अरुचि उत्पन्न करानेका निश्चय करके आया हूँ।" डाक्टरने बात काटकर कहा और मेरे हाथसे पुस्तकको छीनकर टेबिलपर फेंक दिया। "मैं आज तुम्हें तुम्हारे थोथे और हवाई ख़यालोंमेंसे खींचकर बाहर घसीट ले जानेका विचार करके आया हूँ। आज मुझे दिखला देना है कि तुमारी ख़याली दुनियाकी अपेक्षा हमारी यह जीती-जागती साँची दुनिया कितनी अधिक आनन्दजनक है। मेरा विचार है कि आज कुछ खेलतमाशे दिखला-कर तुम्हारा जी बहला लाऊँ। खुली हुई हवामें फिरनेसे और जीती जागती दुनियाके मनो-रंजक दृश्य देखनेसे तुम्हारे मस्तकको विश्राम मिलेगा और शरीरको भी लाभ होगा। चलो, देर मत करो; कपड़े पहन कर मेरे साथ हो जाओ। यदि तुम इंकार करोगे तो मुझे बहुत दुःख होगा।"

मैंने सोचा, एक ओर तो मुझे तत्त्वज्ञानके वाचन–मननके इस आनन्दको गँवानेका दुःख भोगना पड़ेगा और दूसरी ओर, अपने प्रेमी मित्रकी बात नहीं मानता हूँ तो उसे दुःख होगा,–इन दोमेंसे मुझे कौनसा मार्ग ग्रहण करना चाहिए! बुद्धिने सम्मति दी कि "तुझे दुःख होता है इस कारण अथवा दूसरेको जो दुःख होता है उसकी सहानुभूतिसे, किसी कार्यको करनेके लिए तैयार होना, ये दोनों ही निर्बलतायें हैं। तेरा आशय केवल बल प्राप्ति करनेका होना चाहिए, सुख दुःखका नहीं। तब, इस समय तुझे पुस्तक पढ़नेमें जो सुख हो रहा है उस सुखको भी यदि तू जीत ले–उसकी भी दासता छोड़नेके लिए कमर कसले, तो क्या यह बलप्राप्तिका मार्ग नहीं है? जिस चीज़से सुख होता है उसे (उस चीज़के प्रति घृणा होनेके कारण नहीं किन्तु चीज़ चाहे जितनी सुखदायक और सुन्दर हो तो भी एक विचारकके लिए उसकी दासता स्वीकार कर लेना अपमानजनक है, केवल इसी ख़यालसे) छोड़ देना–यह जय–यह आनन्द यह बलप्राप्ति ही तो प्रार्थनीय है।" बुद्धिकी यह सम्मति पाकर मैंने तत्काल ही निश्चय कर लिया और कपड़े पहनकर कहा, 'चलो चलें।"

इसके बाद हम दोनों घरसे चल दिये। मैदानमें पहुँचकर पहले हमने 'टग आफ वार' (रस्सा खींचनेका तमाशा) देखा; परन्तु उससे मेरा ज़रा भी मनोरंजन न हुआ। वहाँसे हम सीनेमेटोग्राफमें गये जिसमें हमने जलते हुए महल देखे, उनमें एक वीरपुरुषको देखा जिसने अपनी जानपर खेलकर एक पूरे कुटुम्बको बचा लिया, पुराने खंडहर देखे और एक विनोदपूर्ण फिल्ममें एक भेड़के पीछे चलती हुई भेड़ोंकी सेनाको कुएमें पड़ते देखा। यहाँसे उठकर हम 'महाभारत' नाटक देख-नेके लिए गये। उस समय द्रौपदीके शरीर परसे वस्त्र खींचा जा रहा था। बलवान् पाँचों पाण्डव, ऋषिगण, और राजसभाके सारे सभ्य चित्र लिखेसे हो रहे थे। उनमेंसे कोई भी मनुष्य उस पतिव्रताकी रक्षा करनेके लिए तैयार न होता था। यह देखकर मेरे मित्रको उन सबसे बड़ी घृणा हुई। श्रीकृष्णकी कृपाका—किसी अलौकिक शक्तिका–कर्मके अदृश्य हाथोंका सहारा पाकर यद्यपि वह बिलकुल वस्त्रहीन न हो सकी, अन्यायी दुःशासनको इस कार्यमें सफलता प्राप्त न हुई तथापि उसे दासी बनानेमें तो वह सफलमनोरथ हो गया। यह सब होने पर भी जब उन हज़ारों पुरुषोंमेंसे कोई भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसे मुक्त करनेके लिए उद्यत न हुआ तब मैं बोला—"डाक्टर साहब, बहुत हुआ, चलिए अब मुझसे यहाँ बैठा नहीं जाता। पतियोंकी, दरबारियोंकी और ऋषियोंकी इस प्रकारकी निर्बलता और उनकी इस प्रकारकी नीतिकी व्याख्या मुझे सहन नहीं होती। इस दृश्यसे मेरे मनुष्यत्वसम्बन्धी विचारोंकी हत्या होती है। यहाँ जुआ खेलनेमें अनीति नहीं समझनेवाले, विस्तृत राजपाटको—जो किसी एक मनुष्यकी नहीं किन्तु सारी प्रजाकी चीज़ है—जुएके दाव पर लगा देनेवाले और जीवित मनुष्यको—मनुष्य ही नहीं, अपनी एकनिष्ठ अर्धांगनाको भी धन या महलके समान दावपर लगा देनेवाले मनुष्य, भरी सभामें और अपनी आँखोंके सामने, अपनी स्त्रीको—राजरानीको वस्त्रहीन होते देख चुप बैठे रहते हैं और अपने मनमें यह अभिमान करते हैं कि हम अपने वचनका पालन कर रहे हैं, यह सब मुझसे नहीं देखा जाता। मित्र, चलो, मुझे अब निद्राकी आवश्यकता है कि जिससे मेरी यह मानसिक व्यथा कुछ कम हो जाय।"

अधूरे नाटकको छोड़कर हम चल दिये और अपने अपने घर जाकर सो गये। सोते ही मुझे स्वप्न आया और उसमें मैंने देखा कि मैं अपने पूर्वोक्त मित्रके ही साथ विचरण कर रहा हूँ।

मेरा स्वप्न विचित्र था। स्वप्नकी जागृतदशामें मैंने अपने मित्रसे कहा—"डाक्टर, रुपये खर्च करके नाटक-तमाशे देखनेमें तो तुम लोगोंको आनन्द आता है; परन्तु तुम्हारे चारों ओर और तुम्हारे अन्तरमें जो सच्चे नाटक खेले जा रहे हैं उन्हें देखनेका तुम्हें ज़रा भी शौक़ नहीं। तुम मुझे 'टग-आफ-वार' (रस्सा खींचनेका खेल) दिखला करके हँसाना चाहते थे और स्वयं हँसते थे; परन्तु स्वयं तुम्हारे समाजमें जो 'टग-आफ-वार' हो रहा है उसे देखनेकी इच्छा तुम्हें क्यों नहीं होती? जैनतीर्थोंको मालिकीकी रस्सीसे लपेट कर श्वेताम्बर और दिगम्बर भाई खींच रहे हैं और इस खींचतानमें अपनी सारी शक्तियोंका और सारे द्रव्य-बलका उत्सर्ग कर रहे हैं, यह सब क्या तुम्हें दिखलाई नहीं देता? इस खींचतानमें—धींगामस्तीमें कितनोंकी पगड़ियाँ गिर पड़ती हैं, कितने ही हारकर सिर धुनते हैं और कितने ही जीतके नशेमें चूर होकर नाचते कूदते हैं। तीर्थोंकी दुर्दशाका यह हास्यकरुणमिश्र-नाटक क्या तुम्हारे चित्त पर कुछ भी प्रभाव नहीं डालता है? दया और क्षमा, सरलता और उदारताको धर्मका अंग समझनेवाले धर्मात्मा भाई अपने मनुष्य बन्धुओंपर—नहीं नहीं अपने सगे भाइयोंपर—भावहिंसाकी—कपटकी—क्लेशकी—निन्दाकी चोटें चलाकर प्रसन्न होते हैं, यह फार्स क्या 'टग आफ वार' की खींचातानीकी अपेक्षा कम दर्शनीय है? मित्र, इन दयाधर्मकी—शान्तिधर्मकी—क्षमा धर्मकी धर्ममूर्तियोंकी ओर ज़रा अच्छी तरह तो निहारो। यदि मेरे जैसे आन्तर-चक्षु तुम्हारे भी होते, तो इनके कुरूप, बीभत्स, वामन शरीर देखकर तुमसे हँसे विना न रहा जाता। मुझे इनके बुद्धि-शरीरकी विकृति देखकर भी बड़ी हँसी आती है। जिस धनशक्ति और समयको धर्म और संघकी उन्नतिके कामोंमें लगाना चाहिए उसे ये लोग अदालतों, आफिसरों और वकीलोंके तृप्त करनेमें खर्च करते हैं! इन लोगोंने अपनी वणिक्‌बुद्धिके अभिमानमें मस्त होकर एक कहावत चला रक्खी है कि 'बणिक बिना रावणका राज्य चला गया।' परतु इनकी बुद्धि कितनी है इसका पता एक इसी बातसे लग जाता है कि इनसे अपने आपसी घरू झगड़े

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी नहीं मिटाते बनते! डाक्टर साहब, यदि यह तीर्थक्षेत्रोंको दोनों ओरसे खींचनेवाला रस्सा बहुत समय तक इसी तरह तना रहा, तो अन्तमें इन तीर्थोंकी—इनकी पवित्रताकी—इनके पूजनेके उद्देश्योंकी क्या दशा होगी? पर अब इस तमाशेको जाने दो और यह दूसरी ओरका करुणारसप्रधान नाटक देखो।

"महाभारत-नाटकमें द्रौपदीके चीरका खींचना देखकर तुम और तुम्हारे साथी सैकड़ों दर्शक आँखोंसे आँसू बहा रहे थे और गहरी उसाँसें लेते थे। यह सब मिथ्या नाटक है; वास्तविक घटना नहीं है, यह जानकर भी उक्त दृश्यको सत्य मानकर तुम सबका हृदय सहानुभूतिसे भर आया था; पर तुम्हारी आँखोंके आगे तुम्हारे समाजकी सैकड़ों विधवाओं, सधवाओं और बालिकाओंपर जो अन्याय अत्याचार होते हैं, उन्हें देखकर मालूम नहीं तुम्हारी सहानुभूति कहाँ चली जाती है। आज तुम्हारे यहाँ न जाने कितनी अपक्व कन्यायें बलपूर्वक पत्नी और मातायें बनाई जाती हैं और इसतरह उनका सारा जीवन रूक्ष, नीरस, कष्टमय और भाररूप बना दिया जाता है। न जाने कितनी बालविधवायें और प्रौढ विधवायें उदरपोषणके फेरमें पड़कर पशुओंके समान जीवन व्यतीत करती हैं और उनमेंसे न जाने कितनी जानबूझकर और बिना जाने, अनीतिके फंदेमें फँस जाती हैं। क्या तुमने कभी इन दुःखोंके देखनेकी और उनके मूलकारणोंपर गंभीरतापूर्वक विचार करनेकी तथा उनके प्राकृतिक उपचार ढूँढ़नेकी चिन्ता की है? क्या तुमने उनके एकान्तमें पड़ते हुए आँसुओंके देखने और गहरी उसाँसे सुननेकी कभी आवश्यकता समझी है? क्या उनके फटते हुए हृदय और दुःखकी दाहसे दहकते हुए दिल, तुमपर उस कल्पित नाटककी द्रौपदीके बराबर भी प्रभाव नहीं डाल सकते हैं? अरे भाइयो! तुम्हारे यदि आँखें हैं, तो उनका उपयोग इस नाटकके देखनेमें करो और यदि उनमें कुछ पानी बचाहुआ है तो उसे इस सच्चे नाटकमें धधकती हुई अग्निपर बहने दो। इसी प्रकार यदि तुम्हारे हृदय वर्तमान हो तो उसे इस अग्निमें झंपापातपूर्वक सुवर्णके सदृश शुद्ध होकर निकलने दो और यदि तुम्हारे मस्तिष्कमें केवल भूसा ही न भरा हो तो उसे इस आगके बुझानेका कोई अच्छा उपाय सोचनेमें लगा दो!"

मेरे मुँहसे अन्तिम वाक्य पूरा न निकल पाया था कि इतनेमें एक भयंकर कोलाहल सुनाई दिया। ऐसा मालूम होता था कि उस कोलाहलमें हज़ारों कोमल आवाजें शामिल हो रही हैं। मैंने अपने जीवनमें ऐसी चिल्लाहट पहले कभी नहीं सुनी थी। मैं अपने मित्रको बहुत ही निडर समझता था। रोगियोंके अंग उपांगोंको काटनेमें उसे ज़रा भी भय न मालूम होता था। परन्तु इस कोलाहलको सुनकर वह बहुत ही डरा और इच्छा न रहते भी चिल्ला उठा—"बचाओ! बचाओ!"

एक अदृश्य आवाज़से भी डरनेवाला और अनिश्चित भयसे भी बचनेकी इच्छा करनेवाला मनुष्य औरोंकी सहायता पानेके लिए तो तड़फता है—व्याकुल होता है, परन्तु औरोंके भयंकर दुःखके लिए उसके हृदयमें ज़रा भी स्थान नहीं होता—औरोंको बचानेकी उसे इच्छा ही नहीं होती! हाय! हाय! मनुष्य कैसा आत्मवंचक है!

विधवाओंके समूहकी भयंकर चीखकी प्रतिध्वनि जड़ आकाशने तो गुँजा दी; परन्तु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मनुष्यके हृदयपर उसका कुछ भी परिणाम न हुआ ! ओ परमार्थकी पोशाकमें छुपे हुए स्वार्थी कीड़े ! आत्मवंचकता छोड़ और अपने हृदयको चीरकर देख । कोई बालविधवा—जिसने अपने पतिका मुँह भी अच्छी तरह नहीं देखा है—मजबूर होकर फिरसे ब्याह करना चाहती है और इस तरह अपने निर्वाह और रक्षणका एक विश्वासपात्र साधन खोज लेना चाहती है, पर हे मनुष्य ! तू उसमें रुकावटें डालनेको तैयार होता है और इसमें अधर्मका 'हौआ' दिखलाकर डराता है। क्या तूने कभी इसका गहरा और वास्तविक कारण जाननेका प्रयत्न किया है ? तूने स्त्रीको चेतन नहीं, पर जड़ भोज्य पदार्थ मान रक्खा है और इस कारण तेरा भोगा हुआ पदार्थ फ़िरसे किसी दूसरेके भोगनेमें आ जायगा, इस ख़यालसे तुझे ईर्षा उत्पन्न होती है । परन्तु इस ईर्षाके भावको छुपाकर तू धर्मके सुन्दर, मनोमोहक बहानेको आगे खड़ा कर देता है और कहता है,—"एक जीवनमें दो पति ! महान् अधर्म ! महान् अनर्थ ! घोर कलियुग !" परन्तु रे ईर्षाके खिलौने ! यह तो कह कि अपनी स्त्रीके मरनेके पीछे दूसरी, तीसरी, चौथी और पाँचवीं स्त्री ब्याहते समय तेरा वह धर्म कहाँ भाग जाता है ? यह अधर्मका शैतान उस समय तुझसे तोबा तोबा क्यों नहीं कराता ? तू अपने स्वार्थी हृदयसे तो पूछ । वह कहेगा कि तू भोक्ता है भोज्य नहीं, राजा है प्रजा नहीं, चेतन है जड़ नहीं । और भोज्यका अस्तित्व भोक्ताके लिए है, प्रजाका अस्तित्व राजाके लिए है, जडका अस्तित्व चेतनके लिए है । वह यह भी कहेगा कि प्रजाको नहीं किन्तु राजाको कानून बनानेका अधिकार है और वे कानून प्रजाको ही बाधक हो सकते हैं, राजाको ज़रा भी नहीं । इसी तरह स्त्री भी भोज्य और प्रजारूप है, अतः उसके लिए भोक्ता पुरुष ही कानून बनायगा; परन्तु स्वयं पुरुष उन कानूनोंसे मुक्त रहेगा ! तेरा हृदय स्पष्टतः यही कहेगा; परन्तु इसका अर्थ केवल यही है कि तेरी समझमें स्त्री जड़ है चैतन्य नहीं ! तो अब तू ही बतला दे कि अधर्मी कौन है ? स्त्रीको हृदयसे जड़ समझनेवाला तू, या अपने जीवननिर्वाहके लिए—अपनी रक्षाके लिए—फिरसे ब्याह करनेके लिए लाचार होनेवाली बालविधवा ? जो बालिका 'पत्नी' बननेका अर्थ ही नहीं समझती थी, उसे ज़बर्दस्ती पत्नी बनाकर—ऐसे पथिककी जो कि शीघ्र ही स्मशानके नज़दीक पहुँचनेवाला है—विधवापनेकी खाईमें धकेलनेवाला तू या तेरे ही समान व्यक्तियोंसे बने हुए समाजको छोड़कर और कौन है ? क्या कोई बालिका अपने पितामहकी उमरके बूढ़े खूसटकी पत्नी बननेकी इच्छा कर सकती है ? क्या कभी तूने या तेरे समाजने उसकी इच्छा जाननेकी चिन्ता की है ? क्या ऐसी घटनायें आये दिन नहीं हुआ करती हैं जिनमें कन्याके साफ़ इन्कार करनेपर भी वह ज़बर्दस्ती किसी बूढ़े या अयोग्यके साथ ब्याह दी जाती है ? और ऐसी दशामें उसका वैधव्य उस बेचारीका दोष है या समाजका ! तू समाजके दोषपर उस बेचारीको—बिना मारे मरी हुई गायको—दण्ड देनेके लिए तैयार होता है, क्या यही तेरा पुरुषत्व है, मनुष्यत्व है और धर्मकी व्याख्या है ? धर्मका 'ओ—ना—मा' न जानने पर भी धर्मकी शेखी मारनेवाले ओ ईर्षाके पुतले ! पहले यह तो बतला कि तेरा धर्म ब्याहकी भी आज्ञा कहाँ देता है ? जब जैनधर्म, आत्माके उद्धारके लिए जितनी प्रवृत्तियाँ की जाती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं उनके सिवाय दूसरी किसी भी प्रवृत्तिको पवित्र नहीं मानता है, तब ब्याह तो जैनधर्मकी दृष्टिसे पवित्र हो ही कैसे सकता है ? यदि धर्महीसे प्रेम है तो अखण्ड ब्रह्मचर्य धारण करो। ब्याह धार्मिक नहीं किन्तु व्यावहारिक सम्बन्ध है। भगवान् तीर्थंकरोंने ब्रह्मचर्य पालनका आदेश किया है न कि ब्याह करनेका। विवाहपद्धति और विवाहके नियमोंकी योजना भी उन्होंने नहीं की है। आत्माका आनन्द ब्रह्मचर्यपालनमें, एकान्तवासमें और गिरिगुहाओं और पहाड़ोंमें एकाकी विचरण करते हुए आत्मचिन्तवन करनेमें है। जो इस एकाकी सिंहवृत्तिको धारण करनेमें, असमर्थ हैं और जिन्हें संगी सहचारीकी आवश्यकता है व्यवहारशास्त्र उनके लिए रचे गये हैं। व्यवहारशास्त्र—जिन मनुष्योंके लिए—जिस समयके लिए —जिस भूमिके लिए आवश्यक होते हैं, उनकी प्रकृतियों योग्यताओं और आवश्यकताओंकी ओर दृष्टि रखके रचे जाते हैं। सारे देशों और सारे स्वभावोंके लिए एक सा व्यवहारशास्त्र नहीं हो सकता, अर्थात् उन्नतिक्रमकी जुदी जुदी सीढ़ियोंपर खड़े हुए जीवोंके लिए एकहीसे कानून उपयोगी नहीं हो सकते। महलका रहना चाहे जितना अच्छा हो, पर झोपड़ोंमें रहनेवालोंके लिए यह कानून नहीं बनाया जा सकता कि तुम अपने झोपड़ोंको तोड़ डालो और विना विलम्बके महल बनाओ; नहीं तो तुम्हें दण्ड दिया जायगा।

कानून बनानेवालेका लोगोंको इस बातके लिए मजबूर करना तो उचित है कि तुम अपने झोपड़े स्वच्छ रक्खो और उनके आसपास किसी तरहकी गंदगी न रहने दो जिससे कि पड़ोसियोंको कुछ हानि पहुँचे। उसका यह भी कर्तव्य है कि झोपड़ेवालोंकी आर्थिक और मानसिक शक्तिओंको विकसित करनेके लिए उचित उपायोंकी योजना कर दे, जिससे वे धीरे धीरे अच्छे और सब तरहकी सुविधाओंवाले मकानोंमें रहनेकी इच्छा करने लगें और अपनी इस इच्छाको पूर्ण करनमें समर्थ बनें। विवाह आदि व्यावहारिक क्रियाओंके विषयमें भी ऐसा ही समझना चाहिए। धर्मदृष्टिसे विवाह इष्ट नहीं है; परन्तु सारे ही मनुष्योंमें ऐसी शक्ति नहीं हो सकती कि वे सिंहके समान एकाकी और आत्मसन्तुष्ट रहकर विचरण कर सकें, इस ख़यालसे समाजको 'विवाह' इष्ट मानना पड़ा। पहले कहा जा चुका है कि विवाह 'धर्म, नहीं, 'व्यवहार' है और कोई भी व्यवहार स्थिर या निश्चित नहीं हो सकता। इसीसे जुदे जुदे देशों और और जुदे जुदे समयोंके विवाहसम्बन्धी कानून जुदे जुदे रहे हैं। एक समय ऐसा था कि जब भाई बहिन एक साथ जन्म लेते थे और योग्य वय प्राप्त होने पर परस्परमें विवाह कर लेते थे। ऐसा भी एक समय था जब एक स्त्रीके अनेक पति होते थे। एक पतिकी हज़ारों स्त्रियोंकी कथाओंसे तो हमारे शास्त्र भरे हुए हैं। हिन्दू धर्मके पुराणोंसे एक ऐसे समयका भी पता चलता है जब राजाके जीते जी राजमहिषी इच्छित पुत्रकी प्राप्तिके लिए किसी ऋषिके आश्रममें कुछ कालके लिए भेज दी जाती थी ! परन्तु इन सब रूढ़ियोंमें तात्कालिक स्त्रीपुरुषोंको कोई अनौचित्य, अनीति या अधर्म नहीं मालूम होता था। इसका कारण यही है कि स्त्रीपुरुषका सम्बन्ध—ब्याह—धर्मका अंग नहीं किन्तु व्यवहारका अंग है और व्यवहारकी सृष्टि समाज स्वयं करता है, इसलिए उसे उसमें भयंकरता, बीभत्सता या अनौचित्य नहीं जान पड़ता।

समाज अपनी परिस्थितियों, आवश्यकताओं और खासियतोंके अनुकूल 'व्यवहार' बनाता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है और ज्योंही कोई नई परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है त्योंही पूर्वके व्यवहारको तोड़ देता है या बदल देता है। जो समाज बनाने और तोड़नेकी शक्ति रखता है उसीको जीता जागता समाज कहना चाहिए और वही उन्नतिपथका पथिक बना रह सकता है। 'बनाना' और 'तोड़ना' ये दो क्रियायें आरोग्य और उत्क्रान्तिकी निशानियाँ हैं। जो समाज तोड़ नहीं सकता वह बना भी नहीं सकता।

वास्तवमें अखण्ड ब्रह्मचर्य ही इष्ट है। यही धर्म है और यही मनुष्यका लक्ष्यबिन्दु होना चाहिए। परन्तु जैसे भूमिके भीतर गड्ढे खोदकर रहनेवाले मनुष्य झोपड़ोंमें रहनेके लिए लाचार नहीं किये जा सकते और झोपड़ोंमें रहनेवाले महलोंमें रहनेके लिए मजबूर नहीं किये जा सकते, उसी प्रकार वासनाओं और आवश्यकताओंवाले संसारी मनुष्य अखण्ड ब्रह्मचर्य पालनेके लिए मजबूर नहीं किये जा सकते। यद्यपि ब्याह करना समाजकी दृष्टिमें कोई अधर्म और अपराध नहीं है, तो भी बहुतसे उच्च श्रेणीके मनुष्य ब्याहके या वासनाओंके कुएमें पड़ना पसन्द नहीं करते; वे अपनी बुद्धि और आत्माके भीतर ही अपने इच्छित आनन्दकी प्राप्तिके लिए प्रयास करते हैं। जिन देशोंमें एक पतिके मरने पर दूसरे पतिका कर लेना बुरा नहीं समझा जाता है उन देशोंमें भी बहुत सी स्त्रियाँ पुनर्विवाह करना पसन्द नहीं करतीं—इससे घृणा करती हैं। यद्यपि ऐसा कोई कानून न पहले था और न अब भी है कि पतिके मरनेके बाद स्त्रीको मर ही जाना चाहिए, तो भी हज़ारों स्त्रियाँ अपनी इच्छासे अपने पतियोंके लिए जल मरी हैं और अब भी जल मरती हैं। मनुष्य हमेशा अपनी खासियतों (Charactristick) के अनुसार ही चलता है। इन खासियतों पर जुल्मी हथोड़ा मारनेसे कुछ भी लाभ नहीं होता। मर्यादित अंकुश और मार्गसूचन करते रहनेसे ही ये खासियतें उच्च बनाई जा सकती हैं। समाजको इस नियमकी सत्यता समझ लेनी चाहिए और इसीके अनुसार अपने व्यवहार शास्त्रमें अखण्ड ब्रह्मचर्य, एक ही बारका ब्याह और पुनर्विवाह इन तीनोंको यथोचित स्थान देना चाहिए। समाजके नियम ऐसे होने चाहिए जिनसे सब तरहके—योग्य अयोग्य—समर्थ असमर्थ—संयमी और इन्द्रियासक्त जीवोंका निर्वाह होता जाय और वे धीरे धीरे आगे बढ़ते चले जायँ। ब्रह्मचर्य पालन करनेका सबसे ऊँचा व्रत तमाम व्यक्तियोंके लिए अनिवार्य—अवश्य पालनीय नहीं ठहराया जा सकता; और यदि ठहराना ही हो, तो पहले उस व्रतको पोषण करनेवाला वातावरण उत्पन्न कर देनेका प्रयत्न करना चाहिए। 'स्त्रीको पुनर्विवाह करना ही न चाहिए' यदि यह उच्च श्रेणीका नियम प्रचलित करना हो, तो समाजको दो बातोंकी तैयारी कर रखना चाहिए। एक तो स्त्रीको पति ऐसा सुयोग्य मिलना चाहिए कि जिससे उसके मरनेके बाद भी उसके हृदयमें उसका स्मरण जागृत बना रहे और दूसरे पुरुषकी पत्नी बननेका विचार भी उसे बुरा मालूम हो। ऐसा होनेके लिए यह आवश्यक है कि रोगी, निर्बल, बुद्धिहीन, अनुभवहीन, दाम्पत्य प्रेमकी पवित्रता तथा निस्वार्थताको न समझनेवाले और निर्वाहकी शक्तिसे रहित स्त्री—पुरुष ब्याह ही न कर सकें—ऐसे अयोग्योंको ब्याह करनेका अधिकार ही न रहे। यदि ऐसा हो जाय तो स्त्रीको ब्याहके बाद जो सुख मिलेगा उस सुखका स्मरण उसे इतना मीठा लगेगा कि उसे भुला देनेके लिए या पुनर्विवाहके लिए वह प्रायः तैयार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही न होगी। दूसरी तैयारी जो समाजको कर रखना चाहिए वह यह है कि विधवाओंको पतिके मर जानेसे—पतिकी रक्षा, सहायता और शिक्षा बन्द हो जानेसे—जिन जिन अड़चनों और भयोंके होनेकी संभावना रहती है उनसे बचनेके लिए कोई अच्छी और नियमित व्यवस्था कर दी जाय—उन्हें केवल कुटुम्बियोंकी दया पर न छोड़ दिया जाय।

इस दूसरी तैयारीके विषयमें तीन बातोंपर अधिक विचार करनेकी ज़रूरत है। एक तो इस बातको समाजका प्रत्येक मनुष्य स्वीकार करेगा कि पेटका गढ़हा भरे बिना किसी भी प्राणिका—बड़ेसे बड़े महात्माका भी नहीं चल सकता। दूसरे स्त्रियोंको हमने उनकी इच्छा जाननेकी परवा किये बिना ब्याहके पींजरेमें डालकर, सुन्दर परन्तु स्वतंत्रतापूर्वक उड़नेकी शक्तिसे रहित पक्षी बना रक्खा है। तीसरे सामान्यतः, पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंमें कामवासना अधिक होती है।

१–२ पक्षी सुन्दर है, मधुर स्वरसे गाता है, और हमारी इन्द्रियोंको सुख देता है, इस कारण हम उसे पींजरेमें—सोनेके पीजरेमें—बन्द करके रखते हैं; परन्तु यह क्या हमारा धर्म है! यदि पींजरेमें बन्द किये बिना हमारा मन नहीं मानता है तो इतना तो अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि पाँच दस वर्षके बाद—अपनी मृत्यु हो जानेपर यदि वह छोड़ दिया जायगा तो पंखोंके निकम्मे हो जानेसे उड़ नहीं सकेगा और अपना पोषण और रक्षण न कर सकेगा, इस लिए या तो हमें पक्षीको पींजरेमें रखना ही न चाहिए, या जब तक वह जीता रहे तब तक हमें मरना न चाहिए। (जैसा कि जुगलियोंके समयमें था—जोड़ी एक साथ जन्म लेती थी और एक ही साथ मरती थी।) और यदि मरना—जीना हमारे हाथमें न हो, तो उस निराधारको कोई नया आधार तलाश करनेमें हमें बाधक न बनना चाहिए। यदि पितृगृह या श्वसुरगृहमें यथेष्ट आधार मिलता हो और वे उसे भार समझकर कष्ट न देते हों तो उदरनिर्वाहकी कठिनाईका प्रश्न हल हो जाता है; परन्तु १०० में प्रायः ८० उदाहरण—बड़े बड़े धनियोंके घरोंमें भी—ऐसे मिलते हैं कि वहाँ विधवायें भार ही मानी जाती हैं। उनका सारा जीवन नीरस, रूक्ष, और दुःखमय बना रहता है। इस लिए या तो समाजको सारी विधवाओंके लिए आश्रम खोलना चाहिए जहाँ उनकी परवरिश हो और सत्संगति, विद्याव्यासंग आदिके कारण उनका जीवन भाररूप न बनकर सह्य बन सके। या यदि ऐसे आश्रम खोलनेके लिए समाज तैयार न हो तो और किसी मतलबसे नहीं केवल उदरनिर्वाहके लिए ही, विधवाओंको यदि वे चाहती हों तो—अपना दूसरा सहारा तलाश कर लेनेमें बाधा न डालना चाहिए। अब प्रश्न यह है कि दूसरा सहारा किस प्रकारका मिल सकता है? या तो कोई धर्मात्मा अपनी धर्मबहिन मानकर उसका पालन पोषण करे, या कोई स्वार्थी आत्मा उसे पत्नी बनाकर अपने आश्रयमें रखले। इनमेंसे पहले प्रकारके उदाराशय पुरुषोंकी संख्या संसारमें बहुत ही थोड़ी है; अधिक संख्या दूसरे प्रकारके लोगोंकी है। अतः ऐसे ही लोगोंका सहारा विधवाओंको लेना पड़ेगा। यह सच है कि यह मार्ग कोई अच्छा मार्ग नहीं है—प्रेमके उच्च आदर्शसे गिरा हुआ है—परन्तु किया क्या जाय, और कोई उपाय भी तो नहीं है।

३ ऊपर लिखी हुई तीन बातामस तीसरी बात कामवासनाकी है। इसके विषयमें विचार करनेसे मालूम होता है कि कामवासनाका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होना एक प्रकारकी आत्मिक निर्बलता है। कामवासनाके विरुद्ध युद्ध करने और उसमें विजय-प्राप्त करने लिए बड़े भारी आन्तरिक बलकी और आत्मज्ञानरूपी शस्त्रकी आवश्यकता है। जिस तरह राजाका अपने शत्रुके विरुद्ध लड़नेके लिए निर्बल और निःशस्त्र मनुष्योंका भेजना अन्याय है, उसी प्रकार काम जैसे प्रबल शत्रुके सामने-जिससे कि बड़े बड़े ऋषि मुनि भी हार मान गये हैं-आन्तरिक बल और आत्मज्ञानहीन व्यक्तियोंका-चाहे वे पुरुष हों या स्त्री-लड़नेके मजबूर किया जाना भी अस्वभाविक और पागलपन है। जब दो असमान पक्षोंमें युद्ध होता है तब उसका परिणाम निर्बल पक्षकी हार ही होती है यह जाननेपर भी-इस ख़यालसे कि पराजयसे या हारसे भी बल मिलता है, यदि अशक्त व्यक्तियाँ कामसेनाका सामना करनेके लिए भेजी जायँ, तो ऐसी दशामें भेजनेवाले समाजको युद्धके परिणाम पर अप्रसन्न न होना चाहिए। अर्थात् वे निर्बल व्यक्तियाँ कामसेनाके प्रबल आक्रमणके सामने कुछ समय तक साहससे लड़तीं रहकर यदि अन्तमें हार जायँ-कामसेनाके वश हो जायँ तो इसके लिए हारनेवाली व्यक्तियोंको अधर्मी, पापी, नीच, व्यभिचारी आदि उपनामोंसे तिरस्कृत या जातिबहिष्कृत आदि दण्डोंसे दण्डित न करना चाहिए। यदि ऐसी सहिष्णुता -ऐसी उदारवृत्ति समाज न रख सके-यथेष्ट आत्मबल और ज्ञानशस्त्रके अभावके कारण यदि किसी स्त्रीपुरुषका कामसेनासे हार जाना या विषयसेवन करने लगना समाजसे सहन न हो सके, तो उसे चाहिए कि ऐसे स्त्रीपुरुषोंको कामसेनाके सामने युद्धके लिए जाने और विजय करके ही आनेको मजबूर न करे। ऐसा करना प्रकृतिविरुद्ध, अन्याय और नादिरशाही आज्ञाके सिवाय और कुछ नहीं है। जिस शत्रुको पुरुषवर्ग भी-जो स्त्रियोंकी अपेक्षा अधिक बलवान्, ज्ञानवान्, और अनुभवी है-पचास वर्षकी उमर हो जाने पर भी नहीं जीत सकता है, वही शत्रु, अपरितृप्त अज्ञान, अनुभवहीन स्त्रियों-अबलाओंके द्वारा जीता ही जाना चाहिए, ऐसी आज्ञा देनेवाले सचमुच ही बहुत बड़े साहसका कार्य करते हैं। आश्चर्यकी बात तो यह है कि ये लोग इधर तो 'स्त्रियोंको विकारवश होना ही न चाहिए-उन्हें सदा ब्रह्मचर्यसे ही रहना चाहिए' इस तरहकी अस्वाभाविक आज्ञा जारी करके प्रकृतिपर शासन करनेका दम भरते हैं और उधर आप स्वयं एकके बाद एक चाहे जितने ब्याह करते जाते हैं। सन्तान होने पर भी ब्याह करते हैं, बूढे हो जाने पर भी ब्याह करते हैं, एक स्त्रीके होने पर भी दूसरा ब्याह करते हैं और इतनेपर भी तृप्ति नहीं होती है तो छुपकर या प्रकटरूपसे एक दो ग़ैर स्त्रियोंसे भी पण्यस्त्रियोंसे भी सम्बन्ध रखते है। स्वयं इनके चरित्रकी यह दशा है तो भी यदि कोई अपरितृप्त बालविधवा फिरसे ब्याह करनेकी इच्छा करती है, तो ये उसे अधर्मिणी, पापिनी, दुष्टाके विशेषण लगानेके लिए तैयार रहते हैं! यह क्या समाजका साधारण अन्याय और अज्ञान है? हमारा समाज चालीस या पचास वर्षके पुरुषका पाँचवाँ ब्याह खूब ठाठवाट और आनन्द उत्साहके साथ करता है और इसमें ज़राभी अधर्म, अनीति या अनौचित्य नहीं समझता है, पर उसीकी ही मूर्खतासे बालपनमें विधवा बनी हुई कोई निराधार स्त्री यदि कामसेनाके सामने युद्ध करनेमें ज़रा भी आनाकानी करती है तो उस पर अपने सारे अन्यायी अस्त्र शस्त्रोंको लेकर टूट पड़ता है। मालूम नहीं यह किस प्रका-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रका धर्मसिद्धान्त है। यदि कामवासनाको जीतना ही धर्म है, तो यह पुरुष और स्त्री दोनोंके लिए एक सा पालनीय होना चाहिए। अपने पचास वर्षकी उमरके पिता, काका या मामा आदिको नई ब्याही हुई १४–१५ वर्षकी बालिकाके साथ हँसते–आनन्द करते देखकर एक बाल-विधवाका ब्रह्मचर्यमें अटल रहना, हम नहीं समझते कि हमारा समाज कितना सहज सझझता है !

समाजका कर्तव्य है कि वह इन सब बातोंपर अच्छी तरह विचार करे और ब्याहको धार्मिक नहीं किन्तु व्यावहारिक बन्धन समझ कर इसके लिए नये सिरेसे उचित नियमोंका संगठन करे। समाजसंरक्षणके लिए उचित नियमोंके संगठनकी बहुत बड़ी आवश्यकता है। इसके बिना स्वच्छन्द दुराचार आदि अनिष्टकर दोष दूर नहीं हो सकते। समाजके नियम जुदी जुदी प्रकृतियों, न्यूनाधिक योग्यताओं, और कुदरतके कानूनोंको ध्यानमें रखकर बनना चाहिए जिससे छोटे वड़े, धनी निर्धन, पण्डित मूर्ख आदि सबको स्थान मिले और सबोंकी क्रमशः उत्क्रान्ति होती रहे। नियमसंगठन करते समय निम्न लिखित बातोंपर विशेष ध्यान देना चाहिए:—

१ अखण्ड ब्रह्मचर्यको श्रेष्ठ पद दिया जाय और यह मूर्खतापूर्ण विचार दूर कर दिया जाय कि पुरुष या स्त्रीके लिए विवाह करना अनिवार्य है—लाजिमी है, और यह प्रचार कर दिया जाय कि यदि वे चाहें तो आजन्म ब्रह्मचारी भी रह सकते हैं।

२ ब्याह पुष्ट अवस्थामें किये जायँ जिससे शरीरबल, मनोबल, अनुभव, बुद्धिवैभव आदिका यथेष्ट विकाश हो सके और स्त्रीपुरुष दोनों ही अपने विवाहित जीवनको एक वीरयोद्धाके समान बिता सकें तथा विपत्तियों, प्रतिस्पर्द्धाओं, और प्रलोभनोंके आनेपर उनसे सफलतापूर्वक युद्ध कर सकें।

३ योग्य वय और योग्य शक्तियाँ प्राप्त कर चुकनेपर जो पुरुष या स्त्री अविवाहित जीवन व्यतीत करना चाहें वे श्रेष्ठ मनुष्य समझे जावें–उनका खूब सम्मान किया जाय और जो सारी योग्यतायें प्राप्त करके ब्याह करनेके लिए तैयार हों, समाजमें उन्हें दूसरे नम्बरका स्थान दिया जाय।

४ योग्यता प्राप्त करनेके बाद जो ब्याह-सम्बन्ध होंगे हमारा विश्वास है कि वे चिरस्थायी सुखप्रद होंगे और इस लिए ऐसे सुखी स्त्रीपुरुषोंमेंसे बहुत कम ऐसे निकलेंगे जो एकके मरनेपर दूसरा सम्बन्ध करनेके लिए तैयार हों। उनकी इच्छा ही न होगी कि हम दूसरा ब्याह करें। यदि किसीकी ऐसी इच्छा हो तो उसकी गणना (चाहे वह पुरुष हो या स्त्री) तीसरे दर्जेमें करना चाहिए और समाजको उसकी परिस्थितियोंके अनुसार ब्याह करने न करनेकी आज्ञा देनी चाहिए।

५ जिन कारणोंसे विधवा स्त्रियोंको फिरसे ब्याह करनेकी इच्छा होती है, उन्हें मिटानेके लिए विधवाश्रम खोलने चाहिए। इन आश्रमोंमें विधवाओंका पालन–पोषण भी होगा, आत्मबल और संयमकी शिक्षा भी मिलेगी और पारस्परिक सहवास, सहानुभूति और आश्वासनोंका भी लाभ होगा। इन आश्रमोंपर उच्चश्रेणीकी ब्रह्मचारिणियोंकी बहुत ही कड़ी–बहुत ही कठोर देखरेख होनी चाहिए और ऐसी शिक्षा देनेका प्रबन्ध होना चाहिए जिससे ये निःस्वार्थ सेविकाओंके समान समाजकी सहायिका बन सकें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६ नये नियमोंकी सृष्टि करनेकी इच्छा रखनेवाले समाजको यह बात स्मरण रखना चाहिए कि ऐसे कोई भी सुधार न कभी हुए हैं और न होंगे जिनसे केवल लाभ ही होता हो, किसी प्रकारकी परोक्ष हानि बिलकुल ही न होती हो। अतः यदि हम अपनी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए कोई 'सुधार' कर रहे हों और उसमें कोई परोक्ष हानि नज़र आती हो—जो कि बिलकुल स्वाभाविक और अनिवार्य है—तो इससे हमें निराश या हतोत्साह न हो जाना चाहिए। जीवन एक युद्ध है। इस युद्धमें बलवान् पक्ष भी चोट खाये बिना विजय प्राप्त नहीं कर सकता।

इन सब बातों पर ध्यान रखकर स्त्रीवर्गको समाजका सुखी, बलवान्, पवित्र और उपयोगी अंग बनानेका प्रयत्न करना चाहिए। इसकी बहुत बड़ी आवश्यकता है। जिस समाजका लगभग आधा भाग दुखी, निर्बल, अज्ञान, भाररूप, निरूपयोगी, शाप देनेवाला और उसाँसें लेनेवाला है, कैसे आशा की जा सकती है कि वह समाज कभी व्यवहारमें या धर्ममें ऊँचा स्थान प्राप्त कर सकेगा?

ये सारे विचार मेरे मस्तिष्कमें केवल पाँच मिनिटके भीतर उत्पन्न हुए थे। जिन विचारोंके लिखने या प्रकट करनेमें घंटों लग जाते हैं, उनके उत्पन्न होनेमें कुछ ही मिनिट लगते हैं। मेरे मित्र डाक्टर साहब अभी तक मूर्च्छित ही थे। अब मैंने उनकी आँखोंपर ठंडे जलके छींटे डाल कर उन्हें सचेत किया और उनसे उस दृश्यका वर्णन सुना जो उन्होंने अपनी मूर्च्छितावस्थामें अनुभव किया था। उन्होंने देखा था कि हज़ारों बालाओं, माताओं और विधवाओंकी एक बड़ी भारी फौज़ बड़े भारी वेगसे पुरुषोंकी ओर दौड़ी हुई जा रही है और भयंकर शब्द करती हुई उनपर टूटी पडती है। यहाँ उस दृश्यका पूरा वर्णन करना मैं उचित नहीं समझता। मुझे आशा नहीं कि पाठक उसे मेरे मस्तिष्कके विकारको छोड़कर और कुछ समझेंगे;—यद्यपि मैं उसे एक प्रकारकी भविष्यवाणी समझता हूँ। क्योंकि मुझे प्रकृतिका यह नियम और इतिहासका यह पाठ बिलकुल सच जान पड़ता है कि "जिस समय राजा बहुत ही स्वेच्छाचारी और अत्याचारी हो जाता है उस समय प्रजामें न जाने कहाँसे एक अकल्पित बल आ जाता है। वह बलवा मचा देती है और अपने कंधेपरसे राजाकी अमर्यादित सत्ताके जूँएँको तोड़—मरोड़ कर फेंक देती है।"

मैंने कहा—"डाक्टर साहब, अब उस भयंकर दृश्यको भूल जाओ। संसार दुःखपूर्ण है। इन दुःखोंको देखकर स्वयं दुखी होना कोई वीरताका काम नहीं है। बुद्धिशाली द्रष्टा वह है जो दुःखोंसे जुदा रहकर उनका अवलोकन करता है और उनमेंसे नवीन ज्ञान और नवीन शक्ति प्राप्त करता हैं। तुम रुपये पैसे खर्च करके कल्पित नाटक और तमाशे देखा करते हो, पर सच कहो अपने समाजके ये दो सच्चे नाटक जो हम दोनोंने अभी देखे हैं क्या कम दर्शनीय और आकर्षक हैं? चलो, अब मैं तुम्हें उक्त दोनों नाटकोंसे भी अधिक दर्शनीय एक और नाटक दिखलाता हूँ। देखो, उस ओर गणेशजीके बाहन श्रीमान् मूषक महाराज—अपने गहन शास्त्रोंका अध्ययन कर रहे हैं!

[शेष आगे।]

_ जैनहितैषीके इस नये शरीरके लिए जो शृङ्गार या मुखपृष्ठ मेरी सम्मतिसे तैयार करवाया गया है उसका भाव समझानेके लिए

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक लेखकी आवश्यकता समझी गई और तद्नुसार यह लेख सम्पादक महाशयकी प्रेरणासे लिखा गया। इसके सम्बन्धमें मैं यह प्रकट कर देना चाहता हूँ कि मैं किसी पंथ या फिरकेका नहीं किन्तु सत्यका अनुयायी हूँ। सुधारकोंकी किसी सभा सुसाइटीका मैं मेम्बर नहीं। वर्तमानमें जिन्हें लोग सुधारक कहते हैं उनका भक्त या अनुगामी भी मैं नहीं हूँ। मेरी समझमें इन सुधारकोंकी बुद्धिमें गहराई और हृदयमें शुद्धभाव बहुत ही कम होता है। मैं अपने अनुभवसे अभ्याससे, और सदसाद्विवेक बुद्धिसे सत्यके जिस अंशको पाता हूँ, अथवा मुझे जो कुछ सत्य मालूम होता है उसे स्पष्ट शब्दोंमें प्रकट कर देता हूँ। मेरे विचार किसीकी समझमें आवें या न आवें, अच्छे लगें या न लगें, इसकी मैं परवा नहीं करता। साथही मैं इस प्रकारकी अस्वाभाविक इच्छा भी नहीं रखता कि मेरे विचारोंको सब कोई मान ही लेंगे। मैं सिर्फ़ यह चाहता हूँ कि मेरे विचारोंको पाठक अच्छी तरहसे सुनें और समझें; मानना न मानना उनकी मर्जी पर है। मैं इस प्रकारकी मूर्खतापूर्ण आशा कदापि नहीं रखता कि मेरे या किसीके एक लेख मात्रसे समाजसुधार हो जायगा। समाजमें विचारवातावरण फैले, बुद्धिपूर्वक विचार करनेकी शक्ति बढ़े, सिर्फ़ यही मेरा लक्ष्य बिन्दु है। इस लेखका शेषभाग आगेके अंकमें पूरा किया जायगा। तब तक पाठकोंको चाहिए कि वे चित्रका शेष भाग–विशेषकर नीचेका भाग क्या सूचित करता है, इसका अपने स्वतंत्र प्रयत्नसे विचार करें और अपने बुद्धिबलको बढ़ावें।

—लेखक।

नये वर्षका निवेदन।

इस अंकके साथ जैनहितैषीका नया वर्ष शुरू होता है। पूर्व सूचनाके अनुसार इसके आकार-प्रकारमें बहुत सा परिवर्तन किया गया है। आशा है कि पाठकगण इस परिवर्तनको पसन्द करेंगे और इसे स्थायी बनाये रखनेके लिए हमारा हाथ बँटाते रहेंगे।

* * *

हितैषीकी ग्राहकसंख्या इतनी कम है कि उसके भरोसे–ऐसे समयमें जब कि काग़ज़ स्याही आदिके चार्ज़ खूब बढ़ रहे हैं–यह परिवर्तन हम कदापि नहीं कर सकते यदि हमें यह विश्वास न होता कि इस आकार–प्रकारसे पाठक प्रसन्न होंगे और वे इसे जैनसमाजके गौरवका कार्य समझकर हमारी यथेष्ट सहायता करेंगे। हमको आशा है कि इस वर्ष कुछ अधिक ग्राहक मिल जायँगे और उनसे हमारा काम चल जायगा। यदि हितैषीका खर्च ही उसके ग्राहकोंसे चल गया, अथवा अधिकसे अधिक सौ दो सौका घाटा भी रह गया (क्यों कि इससे अधिक घाटा उठानेकी हमारी शक्ति नहीं है) तो यह हमारे संतोषके लिए यथेष्ट है। इतनेहींसे हम इसके वर्तमान आकारको स्थायी कर देंगे।

* * *

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हितैषीकी लेख-संकलन-शैलीमें भी एक महत्त्वका परिवर्तन किया गया है और इससे अब इसका विचार-क्षेत्र बहुत विशाल बन गया है। अभीतक जैनसमाजके-विशषकर दिगम्बर सम्प्रदायके जितने पत्र निकलते हैं प्रायः उन सबके विचारोंकी सीमा केवल जैन-धर्म, जैनसहित्य और जैनसमाज तक ही परिमित है; इस क्षेत्रके बाहर वे शायद ही कभी कदम बढ़ाते हों। उनकी इस शैलीको हम बुरा नहीं समझते हैं। कमसे कम किसी समाज-को जगानेके लिए शुरू शुरूमें तो यह शैली अवश्य ही लाभदायक है, परन्तु गत २५ वर्षोंमें जैनसमाजकी जितनी प्रगाति और बौद्धिक उन्नति हुई है, वह हमें इसीमें सन्तुष्ट नहीं रख सकती—अब वह अपनी परिमित सीमासे बाहर क्या है सो भी जाननेके लिए उत्काण्ठित करती है। वह कहती है कि केवल घरके भीतरकी बातें जान लेनेसे ही घरका पूरा और सुनिश्चित ज्ञान नहीं हो सकता—इसके लिए बाहरके ज्ञानकी भी आवश्यकता है। बाहरके ज्ञानसे घरकी खूबियाँ और भी अच्छी तरह समझी जा सकती हैं। केवल घरमें ही घुसे रहनेसे उलटा नुकसान होनेका डर रहता है। संभव है कि बाहरकी ओरसे आँखें बन्द किये रहनेवाला मनुष्य बाहरको बिलकुल ही भुला दे और यह समझ बैठे कि बाहर कुछ है ही नहीं-अथवा बाहर जो कुछ है सभी बुरा है। अब हमारा समाज इस योग्य हो चला है कि बाहरसे भी ज्ञान सम्पादन करे और उससे अपनी भीतरी दशाका सुधार करे। इस ख़याल-से जैनहितैषीमें जैनजगतसे बाहरके लेख भी प्रकाशित किये जायँगे। प्रसिद्ध प्रसिद्ध देशी विदेशी स्त्री पुरुषोंके जीवनचरित, वैज्ञानिक खोजें, ईसाई, जरथोस्त, बौद्ध, कनफ्युसिस आदि धर्मोंके परिचय, पाश्चात्य तत्त्वज्ञानियोंके विचार, भारतीय इतिहाससम्बन्धी नई नई खोजें, साहित्यकी आलोचनायें, मनोरंजक गल्पें उपन्यास आदि सभी विषयोंका ज्ञान इन लेखोंके द्वारा बढ़ाया जायगा।

* * *

ज्ञानविस्तारके साथ साथ हम यह भी चाहते हैं कि हमारे पाठक स्वतंत्र विचार करना सीखें-केवल दूसरोंके ही अनुगामी न बने रहें। इसके लिए यह आवश्यक है कि जब किसी विषयकी चर्चा उठे, कोई आन्दोलन शुरू हो, तब उस विषयकी अनुकूल और प्रतिकूल दोनों बाजुयें पाठकोंके सन्मुख रक्खी जायँ। ऐसा करनेसे पाठक प्रत्येक विषयको दोनों दृष्टियोंसे देख सकेंगे और तब अपना स्वतंत्र विचार स्थिर कर सकेंगे। हम किसी एक पक्षके नहीं किन्तु 'सत्य'के अनुयायी हैं और मनुष्यमात्रको इसी 'सत्य' धर्मका अनुयायी होना चाहिए। संभव है कि एक पदार्थको हमने जिस रूपमें देखा है, वह वैसा न हो; क्योंकि हम छद्मस्थ हैं और हमसे प्रतिकूल विचार रखनेवालेने उसे वास्तविक रूपमें देखा हो-उसके ज्ञानका क्षयोपशम विशेष हो गया हो। ऐसी दशामें क्या हमारा यह कर्तव्य नहीं है कि हम अपनेसे विरुद्ध विचारोंको भी प्रकाशित करें और इस तरह लोगोंको 'सत्य' की प्राप्तिका मार्ग प्रशस्त कर दें? इसी कर्तव्यके अनुरोधसे जैनहितैषीमें ऐसे भी लेख प्रकाशित होंगे जिनसे सम्पादक सहमत नहीं है अथवा जिनसे वह स्वयं विरुद्ध है-शर्त यह है कि वे अच्छे विचारशील और निष्पक्ष विद्वानोंके लिखे हुए या प्रकट किये हुए होना चाहिए। अतः पाठकोंसे प्रार्थना है कि वे जैनहितैषीके किसी लेखको पढ़कर यह विश्वास न कर लें कि उसके विचारोंसे सम्पादक सहमत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है; इसी प्रकार यह भी न समझ लें कि वह उनसे विरुद्ध है। विरुद्ध और अविरुद्ध इन दोनों बातोंका ख़याल न रखके पाठकोंके ज्ञान-विस्तारके उद्देश्यसे सब लेख प्रकाशित होंगे। यहाँ यदि हम अपने पाठकोंसे सहनशीलता—मतसहिष्णुता रखनेके लिए प्रार्थना करें तो अनुचित न होगा। उन्हें यह ध्यानमें रखना चाहिए कि किसीके एक लेखसे या एक विचार-से साधारणजनताका कोई विश्वास या विचार बदला नहीं जा सकता है। लेख कोई जर्मन-की प्रलयंकरी तोप नहीं है जो एक ही फायर-में किसी विश्वासके किलेको धाराशायी कर दे। इसके सिवाय जो लोग किसी ऐसे लेखको पढ़ते हैं वे उसके विरुद्ध लेखों और विचारों-को भी तो पढ़ते सुनते रहते हैं। अतः किसी विरुद्धविचारपूर्ण लेखसे उत्तेजित हो जाना, अधीर हो जाना या उसके प्रकाशकको शत्रु समझने लगना कदापि उचित नहीं है। उचित यह है कि ऐसे लेखोंको पढ़कर विचार किया जाय और यदि उनमें दोष मालूम हों तो उनकी विरुद्ध आलोचना लिखी जाय या लिखवाई जाय।

* * * *

इस अंकमें दो सुन्दर चित्र प्रकाशित किये जाते हैं। ये हमें 'महावीरजीवनविस्तार' नामक सुलिखित गुजराती पुस्तकके प्रकाशक श्रीयुक्त मेघजी हरिजीकी कृपासे प्राप्त हुए हैं। इनमें से एक चित्रका परिचय पाठकोंको श्रीयुक्त पं० गिरिधर शर्माकी 'महावीर और स्वावलम्बन' नामक कवितासे मिलेगा और दूसरेका भक्तामरस्तोत्रके पन्द्रहवें पद्यसे। पहला चित्र श्वेताम्बरसम्प्रदायकी एक ऐसी कथाके आधार पर बनाया गया है जो बहुत ही शिक्षाप्रद है और जिससे तीनों सम्प्रदायके अनुयायी लाभ उठा सकते हैं। हम चाहते हैं कि हितैषीके प्रत्येक अंकमें इस प्रकारके चित्र प्रकाशित हों; परन्तु इस तरहके प्रत्येक चित्रके बनवाने और प्रकाशित करनेमें लगभग ३५–४० रुपये ख़र्च होते हैं और इतना ख़र्च तब किया जा सकता है जब हितैषीकी आर्थिक अवस्था अच्छी हो और उसे सन्तोषयोग्य ग्राहक मिल जायँ। यदि हो सका तो हम आगामी अंकोंमें इस प्रकारके और भी दो चार चित्र प्रकाशित करनेका प्रयत्न करेंगे।

* * *

मनुष्यके जीवनमें मुख्य चीज़ उसका चरित्र है। चरित्रसे बढ़कर कोई भी बहुमूल्य चीज़ नहीं है। जीवनकी सफलता असफलता एक मात्र चरित्र पर निर्भर है। चरित्रसे ही मनुष्यकी प्रतिष्ठा है। धनमें इतनी शक्ति नहीं जितनी चरित्रमें है। चरित्रका प्रभाव अद्भुत है। जैसे सूर्यका प्रकाश छोटे छोटे छेदोंमेंसे दृष्टिगोचर होता है वैसे ही छोटी छोटी बातोंसे मनुष्यके चरित्रका अनुमान किया जा सकता है। छोटे छोटे कामोंको अच्छी तरह करनेसे ही चरित्र निर्माण होता है और यह प्रति दिन होता रहता है। चरित्रगठनके लिए किसी विशेष कार्य और विशेष समयकी आवश्यकता नहीं। किसी मनुष्यके चरित्रकी सबसे अच्छी पहिचान यह है कि वह दूसरोंके साथ किस तरह व्यवहार करता है। यदि वह उन्हें आदर और प्रेमकी दृष्टिसे देखता है, उनके साथ यथायोग्य व्यवहार करता है तो समझना चाहिए कि वह अपने चरित्रको सुधार रहा है। दूसरेके साथ व्यवहार करनेसे दूसरोंको भी हर्ष होता है और स्वयं अपनेको भी। इसमें कुछ खर्च भी नहीं होता।

(स्माइल्स)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बम्बईमें भारतजैनमहामण्डल।

पाठकोंको इस मण्डलका विशेष परिचय देनेकी आवश्यकता नहीं। यह सबसे पहली जैनसंस्था है जो दिगम्बर–श्वेताम्बर और स्थानकवासी इन तीनों सम्प्रदायोंको समान दृष्टिसे देखती है और तीनोंका समानरूपसे हित चाहती है। इसका यह उद्देश्य बहुत ही विशाल है और इस कारण इसके प्रति हमारी पूर्ण सहानुभूति है। हम चाहते हैं कि हमारे उक्त तीनों सम्प्रदायोंमें जो पारस्परिक द्वेष बढ़ रहा है उसको शमन करनेका यश इस मण्डलको मिले, इसके प्रयत्नसे तीनों सम्प्रदाय एकताके सूत्रमें बँध जाएँ और जैनजाति अपनी उन्नति करनेमें समर्थ हो।

इस मण्डलको स्थापित हुए १६ वर्ष हो चुके। पहले इसका नाम जैनयंगमेन्सएसोसियशन था जो पीछे कई विशेष कारणोंसे बदल दिया गया और अब यह आल इंडिया जैन एसोसियेशन या भारतजैनमहामण्डलके नामसे अभिहित होता है। पहले इसमें दिगम्बरसम्प्रदायके ही नवयुवक शामिल थे और उन्हींने इसे स्थापित किया था; परन्तु अब इसमें तीनों सम्प्रदायके शिक्षित–विशेष करके अँगरेज़ी पढ़े हुए–योग देने लगे हैं।

जैनसमाजमें अँगरेज़ी पढ़े–लिखे लोगोंकी संख्या कम नहीं है। तीनों सम्प्रदायोंमें हम समझते हैं कि ग्रेज्युएट और अंडर ग्रेज्युएटोंकी ही संख्या ५०० के लगभग होगी। मंडलके मेम्बर ही दोसौ से अधिक बतलाये जाते हैं। परन्तु हम देखते हैं कि मण्डलका कार्य बहुत ही मन्दगतिसे–प्रायः नहींके ही बराबर चल रहा है। अँगरेज़ी जैनगजट और जीवदयाविभागके ट्रैक्टोंको छोड़कर और कोई काम ऐसा नहीं है जिससे मण्डलके अस्तित्वका भी पता लग सके। अपनी १६ वर्षकी लम्बी आयुमें हम देखते हैं कि उसने कोई भी उल्लेखयोग्य कार्य नहीं किया है। और तो क्या उसके अधिवेशन भी प्रतिवर्ष नहीं हो सकते हैं। बम्बईका यह अधिवेशन भी कई वर्षोंके बाद हुआ है। शिक्षित कहलानेवालोंकी इतनी बड़ी–'महा'–नामधारिणी संस्थाकी यह अलसता और अकर्मण्यता देखकर बड़ा खेद होता है और जैनजातिका निराशामय भविष्य और भी गाढ़ अंधकारसे व्याप्त दिखलाई देता है।

अबकी बार महामण्डलका अधिवेशन देखनेका सौभाग्य हमें भी प्राप्त हुआ। बम्बईमें कांग्रेस आदि महती सभाओंकी धूमधामके कारण मण्डलने अपना अधिवेशन भी इसी मौकेपर कर डालना निश्चय किया। तदनुसार ता० ३० और ३१ दिसंबरको यहाँके एम्पायर थियेटरके सुन्दर भवनमें मण्डलकी दो बैठकें हो गईं। सभापतिका आसन श्रीयुक्त खुशालदास बी. ए. बी. एस. सी. बैरिस्टर एट-लाने सुशोभित किया था और स्वागतकारिणीके सभापति श्रीयुत मकनजी जूठा बैरिस्टर हुए थे।

हम पहले कह चुके हैं कि महामण्डलके प्रति हमारी पूर्ण सहानुभूति है और हम उसकी हृदयसे उन्नति चाहते हैं; परन्तु सहानुभूतिका मतलब यह नहीं है कि हम उसकी प्रशंसा ही किये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जायँ। नहीं; सहानुभूतिके कारण उसके दोषोंकी आलोचना करना भी हम अपना कर्तव्य समझते हैं। अतः इस लेखमें हम मण्डलकी उन बातोंकी आलोचना करना चाहते हैं जिन पर ध्यान देना उसके संचालकोंके लिए बहुत आवश्यक है।

बम्बईमें तीनों सम्प्रदायोंके जैनोंकी संख्या ३० हज़ारसे भी अधिक समझी जाती है। इनके सिवाय इस समय कांग्रेस आदिके कारण बाहरसे भी सैकड़ों सज्जन आये हुए थे। ऐसी अवस्थामें मण्डलके अधिवेशनमें ७००–८०० से अधिक आदमियोंकी उपस्थिति न होना बतलाता है कि मण्डलकी जनसाधारणमें बहुत ही कम प्रसिद्धि है। अपने १६ वर्षके लम्बे समयमें वह अपनी प्रसिद्धि भी जैसी चाहिए वैसी नहीं कर सका है। उसके उद्देश्य लोगोंका समझाये नहीं जाते हैं, इस कारण लोगोंका उसकी ओर प्रेमभाव नहीं है। श्वेताम्बर और स्थानकवासी भाई तो उससे बहुत ही कम परिचित हैं। अच्छे अच्छे शिक्षित भी उसके विषयमें बहुत कम जानकारी रखते हैं। हम मानते हैं कि इसमें लोगोंकी उदासीनता, अज्ञानता और साम्प्रदायिक द्वेष भी कारण हैं, तो भी मण्डलके कार्यकर्ता अपने प्रयत्नकी शिथिलताके दोषसे नहीं बच सकते। वे चाहते तो अपने अधिवेशनमें लोगोंकी संख्या इससे अधिक एकत्रित कर सकते थे।

महामण्डलके इस अधिवेशनके कार्यकर्ताओंमें कानून जाननेवाले वकील बैरिष्टरोंकी संख्या खूब थी, तो भी इसमें बे–कानूनी कार्रवाइयाँ इतनी हुई हैं जितनी साधारण लोगोंकी सभाओंमें भी नहीं होती हैं। मण्डलका यह एक वार्षिक अधिवेशन था–इसमें प्रतिनिधि–तत्त्व बिलकुल नहीं था–बाहरसे प्रतिनिधि भी नहीं बुलाये गये थे, तो भी क़ानूनके आचार्योंने इसे सारे भारतके जैनोंकी कान्फरेंसका रूप दे दिया, स्वागतकारिणी कमेटी बनाई गई और जिनका मण्डलसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं था, ऐसे लोगोंकी सब्जैक्टकमेटी बनाई गई। वास्तवमें उसमें मण्डलके मेम्बरोंको छोड़कर दूसरे लोगोंको 'वोट' देनेका अधिकार ही न होना चाहिए था। इस सब्जैक्टकमेटीकी बैठकमें जो तमाशे हुए, शिक्षितोंकी जो लीलायें देखनेमें आईं वैसी तो शायद ही कहीं दिखलाई दें।

मण्डलके कार्यकर्ताओंने जैनहितेच्छुके सम्पादक श्रीयुक्त बाडीलालजीको एक पत्र लिखा था। उसमें उन्होंने बम्बईमें अधिवेशन करनेकी इच्छा प्रकट की थी और लिखा था कि जेलमें बिना अपराधके कष्ट भोगनेवाले पं० अर्जुनलालजी सेठी बी. ए. के विषयमें खास तौरसे इस अधिवेशनमें विचार किया जायगा। श्रीयुक्त बाडीलालजी आजकल ऐसे कामोंसे कुछ उदास रहते हैं; परन्तु सेठीजीके लिए कुछ उद्योग होगा और उन्हें न्याय मिलेगा इस ख़यालसे उन्होंने मण्डलके कार्यमें योग देना स्वीकार किया। इसके बाद उन्हें सभापतिका चुनाव करनेके लिए लिखा गया और उन्होंने सेठीजीके कार्यकी महत्ता समझकर मि० खुशालदासशाहको इस कार्यके लिए सुयोग्य बतलाया और मि० शाहके उत्साहपूर्वक स्वीकार करनेपर कार्यकर्ताओंको स्वीकारता भेज दी। श्रीयुत बाडीलालजीने समझा था कि मि० शाह जैसे विद्वान् हैं वैसे ही विचारक और साहसी भी है; परन्तु उनका यह समझना केवल भ्रम था। सब्जैक्टकमेटीमें जब सेठीजीका प्रस्ताव उपस्थित किया गया, तब मि० शाहने स्वयं उसे पढ़कर सुना दिया और न जाने क्या समझकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कह दिया कि इस प्रस्तावको सभाके समक्ष उपस्थित करनेके लिए कोई तैयार नहीं होता है, इस कारण यह रद किया जाता है। इस पर श्रीयुत बाडीलालजीने कहा—" यह बिलकुल झूठ है। प्रस्ताव उपस्थित करनेके लिए अमुक महाशय—जो कानूनके आचार्य हैं—तैयार हैं, और यह सभापतिको तथा दूसरे अगुओंको मालूम है। फिर मालूम नहीं, यह प्रस्ताव क्यों रद किया जाता है। " इस पर सभापतिने और कई बहाने पेश किये; परन्तु जब उन सबका उचित उत्तर दिया गया, और दूसरा कोई अच्छा बहाना न मिला, तब उन्हें कहना पड़ा कि " थोड़े ही दिन पहले मुझे थोड़े समयके लिए एक सरकारी नौकरी मिली है, इसलिए मेरे सभापतित्वमें इस प्रस्तावको पास कराके क्या आप मुझ स्वधर्मीको हानि पहुँचाना पसन्द करते हैं?" इस पर बाडीलालजीने कहा कि, "सरकारी नौकरोंको डरनेकी तो इसमें कोई बात नहीं है। मि० अजितप्रसादजी आदि कई सरकारी नौकरोंने इस कार्यमें प्रकटरूपसे योग दिया है, यह सब जानते हैं। इसके सिवाय जब आरा और देहली–केसके फैसले हो चुके हैं और उनपरसे जब हमें कानून जाननेवाले विश्वास दिलाते हैं कि सेठीजी पर कोई भी अपराध साबित नहीं हो सकता है, तब, एक जैनकी दृष्टिसे नहीं तो एक मनुष्यकी ही दृष्टिसे और ब्रिटिश राज्यकी कीर्ति बढ़ानेके लिए, 'सेठीजीका मुकद्दमा चलाया जाय और अपराध हो तो उन्हें उचित दण्ड दिया जाय, नहीं तो वे छोड़ दिये जायँ' सरकारसे केवल इतनी सी प्रार्थना करनेका प्रस्ताव करना तो कुछ अनुचित नहीं है। और यदि अनुचित ही है, तो इसका विचार पहले ही हो जाना था। सभापति महाशय इस प्रस्तावके पहलेहीसे जानकार थे। उन्होंने उसी समय इसे रद करनेकी सम्मति क्यों न दी, अथवा यही क्यों न कह दिया कि यदि तुम्हें प्रस्ताव पेश करना हो तो दूसरा सभापति ढूँढ़ लो? बम्बई जैसे जैनोंसे भरे हुए शहरमें यह तो कहा ही नहीं जा सकता कि मण्डलके सभापति होनेके योग्य कोई पुरुष मिलता ही नहीं। यदि इस बातका इशारा पहले ही कर दिया गया होता, तो यह बात इतनी बढ़ती ही नहीं; पर ख़ैर अब भी एक उपाय है जिससे सारी कठिनाईयाँ दूर हो सकती हैं। कलकी बैठकमें अन्य सब प्रस्तावोंके पास हो चुकने पर सभापति महाशय सभास्थान छोड़कर चले जावें और हम लोग दूसरे सभापतिको नियत करके सेठीजीके प्रस्तावको पास कर डालें। " यह उपाय सारी कमेटीको पसन्द आ गया; परन्तु सभापति महाशयने इसे नहीं माना, वे उसी समय स्तीफा देनेके लिए तैयार हो गये। उन्होंने सोचा कि मेरी इस धमकीसे शान्तिप्रिय जैन दब जायँगे और मुझे अपना पद त्याग करना न पड़ेगा। इस पर बड़ा शोरो गुल मचा, निदान श्रीयुत बाडीलालजीने दरख्वास्त पेश की कि इस विषयमें सब लोगोंके वोट लिये जायँ। वोट लिये गये जिनमें ३५ मत सेठीजीका प्रस्ताव पेश करनेके अनुकूल और ६ विरुद्ध रहे और तब सभापतिको अपना पद छोड़ देना पड़ा! इसके बाद जो हुआ वह शायद अशिक्षितोंकी सभामें होता तो भी निन्दनीय समझा जाता! बाडीलालजीने अपनी दरख्वास्त वापस नहीं ली, तो भी एक महाशयकी प्रार्थनासे जिन्होंने कि सेठीजीके अनुकूल वोट दिया था—मि० खुशालदास फिर अपने छोड़े हुए पद पर आ बैठे और उन्होंने सेठीजीके प्रस्तावकी अपनी निर्दय कलमसे हत्या कर डाली! लोग देखते ही रह गये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सभापति महाशयका व्याख्यान, कहा जाता है कि बड़ी स्वतंत्रताके साथ हुआ और उसे लोगोंने बहुत पसन्द किया। इस व्याख्यानमें साधुसम्प्रदायकी निन्दा करते हुए आपने कहा कि "जैनसाधु मेरे जूते उठानेके भी योग्य नहीं हैं।" यद्यपि पीछेसे कह दिया गया था कि 'कितने ही साधु ऐसे हैं,' तथापि यह कथन अज्ञानियोंको शान्त रखनेकी कलाके सिवाय और कुछ नहीं था। श्वेताम्बर और स्थानकवासी सम्प्रदायमें साधुओंकी संख्या बहुत है और उनका समाज पर बड़ा प्रभाव है। ऐसे प्रभावशाली और पूज्य समझे जानेवाले समूहके विषयमें इतना खुला प्रहार करना बतलाता है कि सभापति महाशय बड़े स्पष्टवक्ता और साहसी हैं। व्याख्यान सुनकर हमारा भी यही ख़याल हुआ था; परन्तु रातकी सब्जैक्ट-कमेटीमें जब सेठीजीके प्रस्तावकी ऊपर लिखे अनुसार हत्या की गई, तब हमारा हृदय कह उठा कि क्या इसीको साहस कहते हैं? जो स्वयं बैरिस्टर हैं, जानते हैं कि सेठीजीके सम्बन्धमें कानूनके अनुसार प्रार्थना करनेका प्रस्ताव करना कोई अपराध नहीं है, जो इस प्रस्तावके करनेका वचन पहलेहीसे दे चुके थे, सारी सब्जैक्ट कमेटीने जिनसे इस प्रस्तावके लिए आग्रहपूर्वक प्रार्थना की थी, वे केवल इस तुच्छ ख़यालसे–कि कहीं सरकार मुझसे अप्रसन्न न हो जाय–डर गये! उन्होंने वचन भंग किया, कानून तोड़ा, सब्जैक्टकमेटीकी इच्छानुसार प्रस्ताव पेश करनेका कर्तव्य भुला दिया और सारे जैनोंकी आशाको धूलमें मिला दिया, क्या यह साहसका चिह्न है? बेचारे निरीह निष्कर्मा साधुओंपर तो सोंटेकी जगह तलवार खींचना और सरकारके सामने उचित प्रार्थना–नम्र निवेदन–और वह भी हज़ारों जैनोंके साथ मिलकर–करनेके समय दुम दबाकर भाग जाना, यह क्या साहसी सिंहोंका काम है? शिक्षितोंमें इस प्रकारकी भीरुता और दुर्बलता देखकर बड़ी ही निराशा होती है।

मण्डलका आठवाँ प्रस्ताव यह था–"जैनसाहित्य और तत्त्वज्ञानका प्रकाश किया जाय और इस विषयमें कुमार देवेन्द्रप्रसादजीने जो प्रशंसनीय उद्योग किया है उसके लिए उन्हें धन्यवाद दिया जाय।" सब्जेक्ट कमेटीमें जब उक्त प्रस्ताव उपस्थित हुआ, तब अनावश्यक बतलाकर इसका विरोध किया गया और वह रद कर दिया गया। इसके बाद दो तीन बार फिर भी इसकी चर्चा उठाई गई, परन्तु फल कुछ न हुआ-कमेटीके सामने ही प्रस्तावोंकी सूचीमेंसे उक्त प्रस्ताव अलग कर दिया गया। इतना होने पर भी दूसरे दिन जो छपी हुई प्रस्तावमालिका वितरण की गई, उसमें उक्त प्रस्ताव मौजूद था और उसके अनुमोदकोंमें श्रीयुक्त बाडीलालजीका नाम छपा हुआ था! बाडीलालजीने सभामें उपस्थित हो कर कहा–"मुझे बड़े अफ़सोसके साथ कहना पड़ता है कि यह प्रस्ताव कानूनके विरुद्ध पेश किया गया है और मुझसे पूछे विना ही इसके अनुमोदकोंमें मेरा नाम दे दिया गया है। यद्यपि साहित्यसम्बधी प्रत्येक प्रस्तावका मैं हृदयसे अनुमोदक हूँ; परन्तु कानूनके विरुद्ध कार्य करना मुझे पसन्द नहीं है। शिक्षितोंकी सभामें ये अशिक्षितोंके समान कार्रवाइयाँ होते देखकर मुझे बड़ा ही दुःख होता है।" हमारी समझमें यह नहीं आया कि जब साहित्यप्रकाशकोंको उत्तेजन देनेका ही प्रस्ताव करना था तब उसमें केवल एक ही संस्थाकी या एक ही व्यक्तिकी प्रशंसा क्यों की गई? क्या देशभरमें और कोई भी संस्था या पुरुष साहित्यकी सेवा करनेवाला नहीं है? काशीकी यशोविजय ग्रन्थमाला, भाव-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नगरकी जैनधर्मप्रसारक सभा, बम्बईका देवचन्द लालचन्द पुस्तकोद्धार फण्ड, काशीकी जैनसिद्धान्तप्रकाशिनी संस्था, निर्णयसागर प्रेस, आदि संस्थाओंने क्या जैनसाहित्यकी कुछ कम सेवा की है, जो उनका नामोल्लेख भी न किया गया और दो चार पुस्तकें छपानेवालोंकी प्रशंसा की गई ? हम बाबू देवेन्द्रप्रसादजीके उद्योगकी स्वयं प्रशंसा करते हैं और उनके कार्यको प्रेमकी दृष्टिसे देखते हैं; परन्तु नये नये और अल्प कार्यके लिए तो खास प्रस्ताव किया जाय और दूसरे बहुत समयसे काम करनेवालोंको भुला दिया जाय, साथ ही सब्जैक्ट कमेटीकी आँखोंमें धूल डाली जाय, इसे हम कदापि अच्छा नहीं कह सकते ।

हमारे समाजके शिक्षित पुरुषोंकी सभी लीलायें निराली हैं । वे सेवा तो करना चाहते हैं जैन समाजकी—जिसमें हज़ार पीछे पाँच आदमी भी अँगरेज़ी नहीं समझ सकते हैं—पर काम करते हैं सात समुद्र पारकी अँगरेज़ी भाषाके द्वारा ! इस विषयमें वे अपने निजत्वको बिलकुल ही भुला बैठे हैं । उन्हें अपनी मातृभाषामें बोलना लज्जाकर प्रतीत होता है और यही कारण है जो उनके द्वारा कुछ भी उल्लेख योग्य कार्य नहीं होता है । मण्डलकी सब्जैक्टकमेटीका और सभाका कामकाज अँगरेज़ीमें ही हुआ था । प्रारंभसे ही मेम्बरोंकी ओरसे हिन्दी या गुजरातीमें काम करनेकी वारवार प्रार्थना की गई; परन्तु उस पर कुछ भी लक्ष्य नहीं दिया गया । पहले दिनकी बैठकका प्रायः सारा काम काज अँगरेज़ीमें हुआ जिसे देखकर बड़ा ही अफ़सोस हुआ । उपस्थित ७००–८०० आदमियोंमेंसे अधिकसे अधिक १०० पुरुष ऐसे होंगे जो अँगरेज़ीको अच्छी तरह समझते हों, शेष लोग अपने शिक्षितोंका यह नाटक देखते हुए बड़े धैर्यके साथ अन्ततक बैठे रहे ! उस दिन कई सज्जनोंकी ओरसे जब बहुत ही ज़ोर दिया गया तब दूसरे दिनकी सभामें गुजराती हिन्दीकी कुछ सुनाई हुई । बम्बईकी पचरंगी प्रजाके सामने माननीय पं० मदनमोहन मालवीय जैसे अँगरेज़ीके सुवक्ताने तो अभी उस दिन हिन्दीमें व्याख्यान दिया जिसमें हिन्दू यूनीवर्सिटीके चन्देके काममें अच्छी सफलता प्राप्त हुई; परन्तु हमारे जैनाशिक्षितोंने अपने गुजराती-हिन्दीभाषाभाषी भाइयोंकी सभामें अँगरेज़ी भाषामें ही बोलना पसन्द किया ! जहाँ स्वभाषा और स्वजातिकी इतनी अवहेलना की जाती है, वहाँ सफलताकी आशा रखना व्यर्थ है !

इस लेखको समाप्त करनेके पहले, मण्डलने अपने इस अधिवेशनमें क्या क्या कार्य किये उन पर हम एक साधारण नजर डाल जाना चाहते हैं ।

पहला दिन तो सभापतिके व्याख्यानमें और मण्डलकी रिपोर्ट सुनानेमें समाप्त हो गया जिसका एक भी शब्द साधारण लोगोंकी समझमें न आया । रातका २॥ बजे तकका समय सब्जैक्ट कमेटीमें गया और सो भी लाभके बदले हानिके व्यापारमें ! दूसरे दिन ४ घंटेमें सब मिलाकर १० प्रस्ताव और व्याख्यान हुए ! राजभक्ति और ब्रिटिश–जयकी प्रार्थना, स्वर्गस्थ जैनोंके विषयमें शोकप्रदर्शन, शिक्षाप्रचारके लिए विद्वानोंकी एक कान्फरेंस होनेकी सूचना, शिक्षासम्बन्धी और अन्य सरकारी रिपोर्टोंमें जैनोंका जुदा खाना रखनेकी प्रार्थना, तीनों सम्प्रदायोंमें एकता रखनेकी सलाह, कुरीतियाँ दूर करनेकी सलाह, जैनसाहित्यप्रचारकी सलाह, और सभापतिके प्रति कृतज्ञताप्रकाश । दशवाँ प्रस्ताव कार्यरूप था जिसमें जैनोंकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संख्या कम होनेके कारणोंपर विचार करनेके लिए एक कमेटी बना दी गई।

इतना काम काज करनेके बाद यह सुसभ्य नाटक मण्डली अपना खेल समाप्त करके बिदा हो गई। नाटक कम्पनियोंको प्रजाके चरित्रके सुधारने बिगड़नेकी चिन्ता बहुत ही कम होती है, लोगोंका मनोरंजन करनेपर ही वे अधिक ध्यान रखती हैं। इसी तरह मण्डलके एक्टरोंने भी इक बातकी परवा किये बिना कि समाज-हितकी और समाजकी सहानुभूतिकी रक्षा होती है या नहीं, अपना छह घंटेका खेल समाप्त कर डाला! हमारे यहाँ इस तरहके अल्पसंतोषी लोगोंकी कमी नहीं है जो कहते हैं कि चाहे जो हुआ पर भारतजैनमहामण्डल' का अधिवेशन तो निर्बिघ्नताके साथ हो गया! परन्तु वास्तवमें देखा जाय तो हमारा ध्येय अधिवेशन करना ही नहीं है, काम करना है, और वह नहीं हुआ। सेठीजीके प्रस्तावको रद्-करके मण्डलने अपनी अकर्मण्यताको और भी असह्य बना डाला! हमारी समझमें हमें किसी व्यक्तिके मरने जीनेकी परवा कम करना चाहिए, परन्तु सिद्धान्त या प्रिन्सिपलकी रक्षाके लिए खूब दृढ रहना चाहिए। विश्वमें अनन्त जीव हैं, केवल मनुष्योंकी ही संख्या कई अरब है; ऐसी अवस्थामें एक सेठीजीका या भारतजैन-महामण्डलका जीना मरना हर्ष या खेदका विषय नहीं बन सकता; परन्तु जब सेठीजीको बचानेका प्रयत्न करना हमारे लिए 'इष्ट' है–कर्तव्य है–हमारे जीवनमरणका प्रश्न है तब इसके लिए एक भारतजैनमहामण्डल तो क्या सारा जैन समाज ही यदि ख्वार हो जाय हमें परवा नं करना चाहिए और अपने प्रयत्नमें लगे रहना चाहिए। मनुष्योंका–और विशेषतः उन लोगोंका जो जडवादी नहीं हैं–लक्ष्य बिन्दु लाभ–अलाभ या सुख दुःख नहीं किन्तु उच्चाशय, कर्तव्य, प्रगति और आत्मविजय होना चाहिए। अभीतक हम आशा कर रहे थे कि यद्यपि हमारी जातिके पुराने ख़यालोंके अगुओंमें आत्म–तेज नहीं है और उनसे कुछ होने जाने वाला नहीं है, परन्तु शिक्षितजनोंका ध्यान तो समाजकी ओर जा रहा है, अतः वे इस कमीको पूरा कर देंगे, किन्तु आज हमारी वह आशा निराशामें परिणत हो गई–हमारा स्वप्न-भंग हो गया–हम आँखें मलते हुए उठकर देखते हैं कि—

पूर्वकी महत्ता सचमुच ही अदृश्य हो गई है।

जैनहितैषी।

न हो पक्षपाती बतावे सुमार्ग,
डरे ना किसीसे कहे सत्यवाणी।
बने है विनोदी भले आशयोंसे,
सभी जैनियोंका हितैषी हितैषी॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालयका विज्ञापन।

नये ग्रन्थोंकी सूची।

हमारे छपाये हुए।

१ **अंजनापवनंजयकाव्य**—बोलचालकी सरल हिन्दीका यह काव्य अभी हाल ही छपकर तैयार हुआ है। बहुत अच्छे चमकदार कागज़ पर छपाया गया है। अंजना सतीका पवित्र चरित्र प्रत्येक स्त्री और पुरुषके पढ़ने तथा कण्ठ करने योग्य है। यह जैनहितैषीमें छप चुका था, अब जुदा छपवाया गया है। मूल्य ढाई आने।

२ **शान्तिवैभव**—इसके लेखक बाबू दयाचन्दजी गोयलीय बी. ए. हैं। विद्यार्थियों और युवकोंको खास तौरसे पढ़ना चाहिए। इसे पढ़कर शान्ति मिलेगी और जीवनको उच्च बनानेकी उत्कण्ठा होगी। १ शान्ति, २ मनुष्यका प्रभाव, ३ असफलतामें सफलता, ४ आत्मनिर्भरता, ५ उतावली नाशका कारण है। ६ सदा यथाशक्ति उद्योग करो, ७ आनन्दमार्ग और ८ शान्ति और सुख; इन आठ अध्यायोंमें यह पुस्तक विभक्त है। मूल्य चार आने।

३ **नियमसार**—यह अपूर्व ग्रन्थ भगवान् कुन्दकुन्दाचार्यका बनाया हुआ है। अभी तक इसका नाम भी किसीको मालूम न था। समयसार, प्रवचनसार आदिके समान यह ग्रन्थ भी अध्यात्मका है। मूल प्राकृतमें है और उस पर निर्ग्रन्थमुनि श्रीपद्मप्रभमलधारिदेवकी संस्कृत टीका है। प्राकृत और संस्कृतको साधारण स्वाध्यायप्रेमी नहीं समझते, इस कारण जैनमित्र-सम्पादक श्रीयुत ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीने इसकी सरल भाषाटीका कर दी है और इस तरह मूल, संस्कृत और हिन्दी सहित छपा है। यह अपूर्व ग्रन्थ प्रत्येक मन्दिरके भंडारमें पहुँच जाना चाहिए। मूल्य १॥) कपड़ेकी जिल्दका २)। १५ फरवरी तक भेजा जा सकेगा।

४ **विनतीसंग्रह**—यह पुस्तक बहुत दिनोंसे मिलती नहीं थी। अब इसकी दूसरी आवृत्ति छपाई गई है। मूल्य तीन आना।

५ **आत्मानुशासन**—मूल्य और सरल हिन्दी भाषा टीका सहित। गुणभद्राचार्यका यह प्रसिद्ध ग्रन्थ दूसरी वार छपाया जा रहा है। एक महीनेमें तैयार हो जायगा। मूल्य ढाई रुपयेके लगभग।

६ **श्रावकधर्मसंग्रह**—पं० दरयावसिंहजी सोधिया कृत। श्रावकाचारके प्रायः समस्त उपलब्ध ग्रन्थोंके आधारसे लिखा गया है। मूल्य कपड़ेकी जिल्द सहित २)

दूसरोंके छपाये हुए।

१ **पद्मनन्दिपंचविंशतिका**—आचार्य पद्मनन्दिका प्रसिद्ध ग्रन्थ पं० गजाधर लालजी न्यायशास्त्रीकी हिन्दी भाषाटीका सहित छपाया गया है। हमने थोड़ी सी प्रतियाँ मँगाई हैं। मूल्य चार रुपया।

२ **पंचकल्याणकविधान**—पं० बख्तावर रतनलालजी कृत। मूल्य चार आने।

३ **महेन्द्रकुमार नाटक**—सुप्रसिद्ध पं० अर्जुनलालजी सेठी बी. ए. के. बनाये हुए इस नाटकको उनके एक शिष्यने अपनी यादगारी परसे लिखकरके छपाया है। खेलने योग्य अच्छा है। बिलकुल नये ढंगका है। छपाई सफाई सुन्दर है। मूल्य छह आना।

४ **सम्यक्त्वकौमुदी**—इसमें सम्यक्त्व प्राप्त करनेवालोंकी आठ मनोहर और धार्मिक कथायें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं। यह सरल हिन्दी भाषामें अनुवाद कराकर मूल संस्कृत सहित छपवाकर प्रकाशित गया किया है। इसकी सरल और सुन्दर बोलचालकी संस्कृत भाषाद्वारा विद्यार्थीगण भी इससे लाभ उठा सकते हैं। इसमें जगह २ नीतिके सिद्धान्त उद्धृत किये गये हैं, जिससे पाठकोंको नीतिविषयक शिक्षा भी बहुत कुछ मिल सकती है। कीमत सादी जिल्द १=) कपड़ेकी पक्की जिल्द १।=)

५ **ऋषिमंडलयंत्रपूजा**—मंत्र शास्त्रका अपूर्व ग्रंथ **गुणनन्दि आचार्य** कृत है। इसमें पूजा करानेवालेके लक्षण, चढ़ानेवालेका लक्षण, आचार्यका लक्षण, मंडलका लक्षण, सामग्रीका स्वरूप, मंत्र बनानेकी विधि, यंत्र पूजाका प्रारंभ, बीजाक्षरका स्वरूप, सर्प आदिकी रक्षाके मंत्र, मंत्रादिका लौकिक फल, पूजाका विधान, ग्रंथप्रशस्ति विषय हैं। यंत्र भी साथमें लगाया है। मूल्य पांच आना।

६ **जैनतीर्थयात्राविवरण**—यह पुस्तक नये ढंगसे लिखी गई है। शिखरजी गिरनारजीका फोटो तथा सारे भारतवर्षका नकशा दो रंगसे छपाकर लगवाया है। मुल्य २ विषय—तीर्थयात्राका फल, तीर्थक्षेत्रोंकी सूची, तीर्थोंकी अनुक्रमाणिका, शिखरजीका परिचय, गिरनारजीकी यात्रा, जैनबद्री मूलबद्रीकी यात्रा, प्रसिद्धिता, किरायेकी सूची, आदि विषयोंका संग्रह है। मूल्य सिर्फ छह आना।

अठारहनाते—यति नयनसुखजीकी फड़कती हुई कवितामें दुराचारसे एकही भवमें होनेवाले अठारहनातोंका वर्णन है। मू० एक आना।

आराधनाकथाकोश—मूल और भाषानुवाद सहित। सैकड़ों जैनकथाओंका संग्रह। पहला भाग मू० १।) दूसरा भाग १।) और तीसरा भाग १॥)।

तत्त्वमाला—ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी कृत। मूल्य चार आने।

बालबोध आत्मख्याति—सिवनीनिवासी स्वर्गीय सेठ गोपाल साहुजीकी बनाई हुई आत्मख्यातिकी संक्षिप्त वचानिका। मूल्य १॥)

समयसार नाटक—कविवर बनारसीदासजीकृत हिन्दी कविता। मूल्य छह आने।

७ **लघीयस्त्रयी**—मूल्य छह आना और ८ **सागारधर्मामृत** मूल्य सात आना। स्वर्गीय दानवीर जैनकूलभूषण सेठ माणिकचंद हीराचन्द जे. पी. के स्मरणार्थ दि० जैन समाजकी ओरसे जो ग्रन्थमाला प्रकाशित होना निश्चित हुआ था, उसीमें ये दोनों ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। दोनों ग्रन्थ मूल संस्कृत भाषामें हैं। टाइटल पेजपर स्वर्गीय सेठ साहेबका फोटो है। छपाई सफाई देखने योग्य है।

मारवाड़ी भाषाकी पुस्तकें।

फाटकाजंजालनाटक-सट्टेकी पढ़ने योग्य लीला	२)
केसरविलास नाटक	१)
कनकसुन्दर	॥)
बुढ़ापेकी सगाई नाटक	॥)

बड़ा सूचीपत्र।

एक पैसेका कार्ड लिखनेसे प्रत्येक भाईको सूचीपत्र भेजा जाता है। अब तक जितने जैन-ग्रन्थ छपे हैं, उन सबका विस्तारपूर्वक परिचय उक्त सूचीपत्रमें दिया गया है। सब जगहके छपे हुए जैन ग्रन्थ हमारे यहां हर समय विक्रीके लिए तैयार रहते हैं, उनके नाम दाम आदि इस सूचीपत्रसे मालूम हो सकते हैं। हमारे छपाये हुए ग्रन्थ शुद्धता, सफाई और छपाई आदिके विषयमें प्रसिद्ध हैं। चिट्ठी आते ही ग्रन्थ वी. पी. से भेज दिये जाते हैं और हिसाब किताब बहुत साफ रहता है।

पता—**मैनेजर, जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,**
हीराबाग मो० गिरगाँव—बम्बई.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लागतके दामोंपर

दो महान ग्रंथ.

हरिवंशपुराण बड़ा नवीन भाषानुवादसहित और तत्त्वार्थ सूत्रकी **अर्थ-प्रकाशिका** टीका सदासुखजीकृत, ये दोनों ग्रंथ शोलापुरनिवासी दानवीर श्रेष्ठिवर्य **गांधी हरिभाई देवकरण एंड सन्सकी जैनग्रंथमालामें** छपानेका प्रबंध किया गया है और सेठजी साहवने ये दोनों ही ग्रंथ लागतके दामोंसे ही बेचनेकी आज्ञा दी है।

इनमें हरिवंशपुराण बड़ा जिनसेनाचार्यकृत १२००० श्लोकोंमें मूल है। उसका हमने नया सरल हिंदी भाषानुवाद कराकर १२००० मूल श्लोकोंसहित नये सुंदर टाइपोंमें छपानेका प्रबंध किया है। इसकी कुल लागतका हिसाव लगाया तौ लगभग ५) रु. में एक प्रति पड़ेगी। ये ग्रंथ नीचे लिखे महाशयोंको लागतके दामोंसे दिये जायगे,—

१ एक तौ जो महाशय भारतीय जैनसिद्धांतप्रकाशिनी संस्थाकी तीनों ग्रंथमालाओंमें छपे हुये भाषा वा भाषाटीकासहित प्रत्येक ग्रंथकी छपते ही वी. पी. द्वारामँगानेवाले हैं, अर्थात् एक एक रुपया मनीआर्डरसे भेजकर पक्के ग्राहक बनगये हैं वा आगेको चैतसुदी १ तक १) रुपया भेजकर पक्के ग्राहक बन जायँगे उनको।

२ दूसरे-जो शास्त्रदानी महाशय १०-२०-२५ प्रति तक खरीदकर मंदिर पाठशाला पुस्तकालयोंमें वा विद्वान् विद्यार्थियोंको दान करैंगे उनको। और-

३ जो महाशय हमारे दौरेमें पचास २ रुपये देना स्वीकार करके स्थायी सभासद (लाइफ मेंबर) बन गये हैं अथवा अब १००) रुपये भेजकर स्थायी मेंबर वन जाँयगें उनको। उन्हें इन दोनों ग्रंथोंके सिवाय संस्थासे छपनेवाले सब ग्रंथोंकी एक एक प्रति विना मूल्य भेजी जायगी।

४ इसी प्रकार अर्थप्रकाशिकाकी टीका ऊपर लिखे नियमानुसार ग्राहक बननेवालोंको अनुमान२) २।) के लागतके दामोंसे भेजी जायगी। जो लोग १) रु. भेजकर पक्के ग्राहक नहिं होंगे और न १०-२० प्रतियां ही लेंगे उनको इस भावसे कोई ग्रंथ नहीं मिलेगा।

५ जो महाशय जिस ग्रंथकी २०० प्रतियोंके ग्राहक होंगे उनका फोटो व परिचय उस ग्रंथमें लगा दिया जायगा और १०-२० प्रतिवालोंके नाम दानी ग्राहकोंकी लिष्टमें छपा दिये जायँगे।

जिनको जितनी प्रतियोंके ग्राहक बनना हो जवाबी कार्डद्वारा चैत सुदी १ तक ग्राहक बनजावें।

श्रीलाल जैन काव्यतीर्थ,
मंत्री-भारतीय जैनसिद्धांत प्रकाशिनी संस्था.
९ नं. विश्वकोषलेन, बागबाजार, कलकत्ता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'दिगंबर जैन' पत्रका वीरनिर्वाण सचित्र खास अंक।

सारी जैनसमाजमें सिर्फ "दिगंबर जैन" ही ऐसा नियमित मासिक पत्र है जो अपने ग्राहकोंको प्रतिवर्ष १७५ पृष्ठका सचित्र खास अंक, जैनतिथिदर्पण और दो तीन रुपये तकके मूल्यकी कुल ५-७ पुस्तकें उपहारमें देता है। इस नववें वर्ष (वीर सं. २४४२) का सचित्र खास अंक हिन्दी, अंग्रेजी, मराठी और गुजराती भाषाके १७६ पृष्ठके ३९ विषयोंके उपयोगी लेखों और त्यागी, दानी श्रीमानों, विद्वानों, प्राचीन दि० जैन साहित्य, महाराज चन्द्रगुप्तके सोलह अशुभ स्वप्न (मनमोहक रंगीन चित्र) आदिके ३२ चित्रों (मय परिचय) सहित अभी ही प्रकट हुआ है, जिसके अंग्रेजी और हिन्दी भाषाके महत्त्वके लेखोंकी सूची निम्न लिखित है-

1. **Old Gujarati & Old Western Rajasthani** (by Dr. L. P. Tessitori of Italy.)
2. **The substance of Religion** (by Manilal H. Udani, M. A. L. L. B. etc.)
3. **The cultivation of Peace of mind by supression of greed** (by Alexandar Gordon Jain, Stock-Port-England.)
4. **Jain Theism** (by Herbert Warren Jain, London.)
5. **Gommata-Sara** (by-Saratchandra Ghoshal, M. A. B. L. etc. Calcutta.)
6. **The Light of Truth** (by J. L. Jaini, M. A., Bar-at-Law Judge, High Court—Indore.)
7. **The Ascendency of the Jain church in Medieval India** (by Motilal Jain, Agra.)

८ समाजसुधार (बाबू दयाचन्द्र गोयलीय जैन, बी. ए.)

९ विश्वसेवापर कुछ विचार (कुमार देवेन्द्रप्रसाद जैन)

१० श्रीशंकराचार्यजीकी सप्तभंगी विषयक जानकारी (पं० उमरावसिंहजी काशी)

११ अजैन विद्वानोंकी जैनधर्मके विषयमें सम्मतियाँ। (पं० विहारीलालजी—अमरोहा।)

१२ सनातन जैनधर्म और उसका सार (जैनधर्मभूषण ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी)

१३ जैनधर्मकी वर्तमान दशा (बाबू जोतिप्रसादजी)

१४ जैनसमाजकी उन्नतिके उपाय (बाबू सूरजमल जैन।)

ऐसे महत्वपूर्ण लेखोंयुक्त सचित्र खास अंकके अतिरिक्त इस वर्षके ग्राहकोंको श्री सागारधर्मामृत शास्त्र उत्तरार्द्ध (पं० आशाधरकृत, हिन्दी अनुवाद) धर्मचर्चासंग्रह, षोडशकारण धर्म, चतुरवह्नू समाधिमरण, वालबोध जैनधर्म आदि ७ पुस्तकें उपहारमें मिलेंगी।

मान्यवर पाठक! इतना बड़ा भारी लाभ घर बैठे लेने चाहते हो तो आज ही पत्र लिखकर ग्राहक हूजिए। अन्यथा खास अंक मिलना दुष्कर है। क्योंकि सिर्फ इनी गिनी कापी ही वची हैं। उपहारोंके डांकव्यय सहित वार्षिक मूल्य सिर्फ रु. १-१२-० ही है। नवीन वर्ष कार्तिकसे शुरु होता है।

मँगानेका पता—

मैनेजर, "दिगम्बर जैन" चन्दावाड़ी-सूरत।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैनियोंमें सबसे सस्ता ! सबसे अच्छा !!

जैनतत्त्वप्रकाशक।

संसार भर में जैनधर्म का प्रचार करनेवाली, कुरीतियों का निषेध और सुरीतियों का प्रचार करनेवाली, मानियों का मान मर्दन करनेवाली, सुप्रसिद्ध श्री जैन-तत्त्व-प्रकाशनी सभा का यह मुख-पत्र है। इसमें सर्व प्रकार के उत्तमोत्तम लेख व कवितायें छपती हैं। वार्षिक मूल्य केवल १) एक रुपया है। नमूने का अंक मुफ्त। तिस पर भी प्रति वर्ष अनेक उपयोगी पुस्तकें उपहारमें मिलतीं हैं। इस वर्षकी उपहारकी पुस्तकें १—संसार और मोक्ष २—सच्चे सुखकी कुंजियां, ये दो पुस्तकें छप चुकीं हैं और छपनेका प्रबन्ध हो रहा है। आप भी शीघ्र ग्राहक होकर लाभ उठाइये।

मँगाने का पताः—

सम्पादक जैन-तत्त्व-प्रकाशक.

चन्दाश्रम—इटावह [यू॰ पी॰]

नई खुश खबरी !

हमारे यहाँ हर किस्मका लचकपट्ठा, गोटा, सलमा सितारा, टोपियाँ—जरदोज़ी सलमेंके कामकी—वा माल चिकनका कुरता—डुपट्टा—साड़ी टोपी वगैरह और इसके सिवाय हर किस्मकी फरमाइसी चिजें भी तैयार होती हैं। एक बार आप थोड़ासा माल नमूनाके तौर पर मंगाकर देखिये।

माल मंगानेका पत्ता—

बनवारीलाल जैन गोटेवाले

चौक—बजार

लखनऊ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Nana, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

डाक्तर एस. के. बर्म्मनका वही प्रसिद्ध बिना मूल्य—

विनामूल्य वितरण

पंचांग

SKB

नये सम्बत् १९७३ का पञ्चांग सम्पूर्ण नये रूपमें छपा है, इसबार भी १२ नये नये मनोहर चित्र दिये गये हैं। पीछे हताश न होना चाहें तो आजही एक पोष्ट कार्ड पर दस सज्जनोंका नाम वो ठिकाना (भिन्न भिन्न स्थानोंके) लिख भेजिये आपकी सेवामें भेजा जायेगा।

नं० २७.

कलकत्तेके नामी डाक्टर एस, के, बर्म्मन के ३१ वर्षकी परीक्षित दवाइयां।

लाल शरबत।

बच्चे, लड़के वो प्रसुतिकी पुष्टई। **लाल शरबत** पाचन शक्ति बढ़ाकर खाना हजम करता है। **लाल शरबत** लालरंग वो पीनेमें मीठा होता है।

मूल्य ॥।) शीशी, डा० म० ।) आने, ३ शीशी २) रु०, डा० म० ॥=) आने।

कोला टानिक ! कोला टानिक !! कोला टानिक !!!

कोला—दिमाग को पुष्ट करता है। कोला—बालक, बडे, बूढ़े सभी पी सकते हैं। कोला—से कसरत दूनी चढ़ती है। कोला—हौलदिल धड़कन वो कलेजे की कमजोरी मिटाता है। कोला—यह पुष्टई है दवा नहीं। कोला—एफ्रिका देशके कोला फल से बनी हुई पुष्टइ है। कोला—कलेजेको जोर देता है। कोला—से कभी मेहनत गढ़ाती नहीं, थकावट आती नहीं कोला—से चिन्ता शक्ति बढ़ती है।—दिमाग लड़ाने में सुन्दर बल देता है।

३२ खुराक की शीशी मूल्य १) एक रुपया डा० म० ।-) आने।

डाक्टर बर्म्मनका आईओडाइजड् सालसा।

खून साफ़ करनकी दवा।

खूनसे मनुष्यका जीवन है; इसलिये खून साफ रक्खो। सालसा खून साफ करनेकी प्रसिद्ध दवा है। इसी सालसेको सोधकर उसमें पोटास आईओडाइजड् आदिक कई एक परीक्षित दवाए मिलाकर यह सालसा बना है। जिससे यह साधारण सालसाओंसे अधिक गुण करता है। गर्मी (आतशक) गठिया वा पारा मिली हुई दवायोंसे खून बिगड़ा हुआ होतो सालसाका सेवन करो।

खून बिगड़नेके प्रधान दोष दो ही है—गर्मी वो गठिया। इन रोगोंमें अक्सर लोग पारा मिली हुई दवाएं खाया करते हैं, जिससे बिगड़ा हुआ खून और भी अधिक बिगड़ जाता है।

इसका अन्त यही होता है, कि शरीरका चमड़ा फटना, सिरका बाल उड़ना, चकत्ता पड़ना गांठ व गिलट होना, घाव फूटना, कमर वो जोड़ोंमें दर्द, फोड़ा फुन्सी रक्त मैला व क्षीणता आदिक दोष उपजते हैं। ठीक ऐसीही हालतको सुधारनेके लिये यह सालसा बना है और प्रसिद्ध है मूल्य २) दो रु० शीशी डा० म० व पै० ।= छः आने, २ शीशी तक ॥) आठ आने।

एक शीशी ३२ खुराक (१६ दिनके सेवन योग्य) सालसा रहता है।

डा: एस, के, बर्म्मन ५, ६, ताराचंद दत्त ष्ट्रीट, कलकत्ता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भाग १२

श्रीवर्द्धमानाय नमः ।

अंक ४-५

जैनहितैषी

अप्रैल, मई १९१६

जैनसमाज ।

तीर्थक्षेत्रोंके झगड़े, स्त्रियोंकी अज्ञानमय-दुःखमय दशा, शास्त्रोंकी रक्षा और प्रचारके काममें लापरवाही और अगुओंकी 'भेड़ियाधसान' बुद्धिके अन्धेर; ये सब बातें देखकर शासनदेवी धनवानों, पण्डितों और बाबुओंको सम्मिलित शक्तिसे उद्योग करनेके लिए समझा रही है ।

सं०-नाथूराम प्रेमी ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय-सूची।

१ जैनधर्म और जैन जातिके भविष्यपर एक दृष्टि—लेखक, श्रीयुत बाबू निहालकरणजी सेठी एम. एस. सी। ... १७७

२ मेरी भावना—(कविता) ले० श्रीयुत बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तार। ... १९०

३ इतिहास-प्रसंग—ले० श्रीयुत बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तार। ... १९२

४ पुनर्जन्म—ले० श्रीयुत रूपनारायण पाण्डेय। १९९

५ शिक्षा—ले० श्रीयुत बाबू खूबचंदजी सोधिया बी. ए. एल. टी. २०९

६ वह क्यों न निराश हो? (कविता) ले० बाबू जुगलकिशोरजी, मुख्तार। २१३

७ महाकवि वीरनन्दि। ... २१३

८ सहनशीलता और प्रेम—ले०, बाबू भैयालालजी जैन। २१७

९ सिंहान्योक्ति-(कविता) ले०, श्रीयुत 'मीर'। २१९

१० कषाय-वासना—ले० श्रीयुत बाबू दयाचन्द्रजी गोयलीय बी. ए. २२०

११ जीवन और मृत्यु—ले० स्वामी विवेकानंदजी। २२२

१२ गांधीका सत्याग्रह-आश्रम—

१३ वायुयानोंका इतिहास—ले० पं. शिवसहाय चतुर्वेदी। २२६

१४ पराधीन तोतेके प्रति (कविता) ले०, कविवर गिरिधर शर्मा। २३४

१५ विविध प्रसङ्ग— २३७

१६ जनरल आर्मस्ट्रॉंग—ले० पं० शिवसहाय चतुर्वेदी। २५४

१७ आत्मानन्दजैन-ग्रन्थमाला— २६२

१८ पुनर्विवाह विधेय नहीं निषिद्ध है २६७

विवाहका उद्देश्य।

यह पुस्तक हिन्दी-साहित्यमें एक बिलकुल नई चीज है। जैन जातिके प्रसिद्ध लेखक श्रीयुत बाबू जुगलकिशोर मुख्तार देवबन्दने इसे लिखकर, निःसन्देह, जैनसमाजका बहुत बड़ा उपकार किया है। इसमें विवाहका बड़ा ही मार्मिक और तात्विक विवेचन किया गया है विवाह क्यों किया जाता है? उसकी असली ग़रज़ और सिद्धान्त क्या है? धर्मसे, समाजसे और गृहस्थाश्रमसे उसका क्या संबंध है? वह कब किया जाना चाहिए? उसके लिए वर्ण और जातिका क्या नियम हो सकता है? विवाह न करनेसे क्या हानि होती है? विवाहके पश्चात् किन किन नियमोंका पालन करनेसे और किस प्रकारकी प्रवृत्ति रखनेसे स्त्री पुरुष दोनों अपने जीवनको सुखमय बना सकते हैं? और किस प्रकार वे, अपनी लौकिक तथा धार्मिक उन्नति करते हुए समाज और देशका हितसाधन कर सकते हैं? इन सब बातोंका इस पुस्तकमें, संक्षेपसे, बड़ा ही युक्तिपूर्वक वर्णन किया है। यह पुस्तक प्रत्येक दम्पत्तिके तथा विवाहकी अभिलाषा रखनेवाले संपूर्ण स्त्री-पुरुषोंके, एक बार ही नहीं, किन्तु बारबार पढ़ने और मनन करने योग्य है। जैन और अजैन सभीके लिए उपयोगी है। प्रत्येक घरमें इसकी एक एक कापी जरूर रहनी चाहिए। धर्मात्माओंके द्वारा ऐसी ही पुस्तकें जगतके उपकारार्थ विनामूल्य वितरण किये जानेके योग्य हैं। इस पुस्तकका प्रचार होनेके लिए इसे केवल लागतके दामोंपर बेचते हैं। एक प्रतिका मूल्य)॥ है।

मैनेजर, जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगांव-बम्बई।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः ।

बारहवाँ भाग। अंक ४-५.

जैनहितैषी।

अप्रैल, मई १९१६. चैत्र, वैशाख २४४२.

सारे ही संघ सनेहके सूतसौं, संयुत हों, न रहे कोउ द्वेषी।
प्रेमसौं पालैं स्वधर्म सभी, रहैं सत्यके साँचे स्वरूप-गवेषी॥
वैर विरोध न हो मतभेदतैं, हों सबके सब बन्धु शुभैषी।
भारतके हितको समझें सब, चाहत है यह जैनहितैषी॥

जैनधर्म और जैनजातिके भविष्यपर एक दृष्टि* ।

लेखक, श्रीयुत बाबू निहालकरणजी सेठी एम. एस. सी।

'जैनधर्म अनादि है,' यह बात हम लोग बहुत अभिमानके साथ कहते आये हैं; किन्तु जनसाधारण इसका विश्वास नहीं करते थे और न हममें इतनी सामर्थ्य ही थी कि इसको प्रमाणित कर देते। खैर, हमारे सौभाग्यसे कुछ पाश्चात्य विद्वानोंका ध्यान इस ओर गया और उन्होंने प्रमाण ढूँढ निकाले; जिनका परिणाम यह हुआ कि आज सब कोई यह बात मानते हैं कि जैनधर्म वास्तवमें बहुत ही प्राचीन और स्वतंत्र धर्म है और यह अनेक शताब्दियोंकी सहयोगिता और अत्याचारोंके होने पर भी आज तक जीवित है। इस बातसे कौन ऐसा जैनधर्मानुयायी है जिसका हृदय आनंदसे परिपूर्ण न हो जावे।

किन्तु इस पिछले गौरवसे हममें यह भाव उत्पन्न नहीं होना चाहिए कि दूसरे धर्म, और दूसरी जातियाँ—जो हमारी अपेक्षा बहुत आधुनिक हैं—इस योग्य ही नहीं कि हम उनसे कुछ सीख सकें। क्योंकि अतीत

* लेखक महाशय इस लेखको पहले इलाहाबादके लीडरमें और अँगरेजी जैनगजटमें प्रकाशित करा चुके हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कालमें हम चाहे जो रहे हों, उस समय हमारा ज्ञान, हमारा बल, हमारा ऐश्वर्य चाहे कितना ही अधिक क्यों न रहा हो इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता कि आज हमारी दशा बहुत ही गिरी हुई है—आज हमारी गणना संसारकी उन्नत जातियोंमें न सही, साधारण जातियोंमें भी नहीं है। हमारा नाम लेते ही सबसे पिछड़ी हुई जातियोंका ध्यान आता है। अपने पूर्ववैभवको याद करके तो हमें कुछ लज्जा आजानी चाहिए! क्या हम उसी जैनधर्मके अनुयायी हैं? क्या उसी जैनजातिकी सन्तान हैं? क्या हम इस योग्य हैं कि जैन कहलावें? उन पिछले दिनोंके ध्यानसे तो हममें यह इच्छा उत्पन्न होनी चाहिए कि जरा वर्तमान दशा पर विचार करें और वे उपाय ढूँढ़ें कि जिनसे हम पुनः अपने वास्तविक स्थान पर—उस उच्चआदर्श पर—पहुँच सकें। यही नहीं—यह बात तो ऐसी है कि जिसके कारण हमारे हृदयोंमें ऐसा उत्साह भर जाना चाहिए कि तन मन धनसे ऐसा प्रयत्न करें कि जिसमें हमारी सब त्रुटियाँ दूर हो जायँ, संसारकी जातियोंमें हमारी भी कुछ पूछ हो।

कुछ ऐसे ही विचारसे यहाँ जैनोंकी वर्तमान दशाका विचार करनेका इरादा किया गया है; किन्तु एक ही लेखमें इस सम्बन्धी सब बातोंका उल्लेख करना सम्भव नहीं, इस कारण यही ठीक समझा गया है कि इस लेखमें केवल एक ही बात पर विचार किया जाय। जैनसमाजमें कितने मनुष्य हैं? वे घट रहे हैं या बढ़ रहे हैं? घटीके कारण क्या हैं? क्या उपाय हो सकते हैं कि जिनसे वे कारण दूर किये जा सकें? इत्यादि प्रश्नोंका ही उत्तर देना इस लेखका उद्देश्य है।

जैनोंकी संख्या दिन प्रतिदिन घट रही है। यह बात प्रायः सबको ज्ञात है और इसे जान लेनेके लिए अधिक परिश्रमकी भी आवश्यकता नहीं। सन् १९११ की मनुष्यगणनामें उनकी संख्या १२, ४८, १८२ पाई गई थी। कुछ शताब्दियों पहले कहा जाता है कि प्रायः सारा संसार जैनधर्मानुयायी था। खैर, इतनी पुरानी बातसे घट बढ़का अंदाजा करना उचित नहीं; परन्तु सन् १९०१ और १८९१ के अंकोंसे वर्तमान संख्याकी तुलना करना कोई अनुचित बात न होगी।

इससे स्पष्ट होता है कि १९०१-१९११ में ६.४ प्रतिशत और १८९१–१९०१ में ५.८ प्रतिशत जैन घट गये। किन्तु स्मरण रखना चाहिए कि इन्हीं वर्षोंमें समस्त भारतवर्षकी जनसंख्या घटी नहीं है वरन् बहुत बढ़ी है। १८९१–१९०१ में ·९ प्रतिशत और १९०१–१९११ में ११.८ प्रतिशत।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह तो हुई सारे भारतकी बात—पृथक् पृथक् प्रदेशोंकी जैनसंख्याका ह्रास इससे भी अधिक डरावना है। मनुष्यगणनासे पिछले दस वर्षोंमें संयुक्त प्रदेशमें सैकड़ा पीछे १०. ९ पंजाबमें ६. ४ बम्बईमें ८. ६ मध्यप्रदेशमें २२ और बड़ोदेमें १० जैन कम हो गये। ग्वालियर राज्यमें यह घटी सैकड़ा पीछे २६ हो गई है और खास ग्वालियर नगरके समीप तो १०० मनुष्योंमें केवल ७० ही बच रहे हैं। यदि एक एक नगर और ग्रामका हिसाब देखें तो ऐसे बहुतसे स्थान मिलेंगे जहाँ दशवर्ष पहले सौ कुटुम्ब निवास करते थे और अब केवल २ या ३ ही बाकी बच गये हैं। मध्यप्रदेश और मध्यभारतमें ऐसी अनेक जैनजातियाँ हैं कि जिनकी जनसंख्या सहस्रोंसे घटकर सैकड़ों पर रह गई है और सैकड़ोंके स्थानमें अब केवल इने गिने २–४ मनुष्य ही जिनमें बच रहे हैं।

किन्तु ये तो वे बातें हैं जो सरकारी मनुष्यगणनाकी रिपोर्टोंमें लिखी हैं। यदि हमें जैनजातिकी इस घटीका ठीक ठीक पता लगाना है तो इन संख्याओं ही पर निर्भर न रह कर विचारशक्तिसे भी काम लेना चाहिए। एक बातका विशेष ध्यान रखना होगा—वह यह कि गत मनुष्य-गणनाके पहले एक बहुत जोरदार आन्दोलन जैनजातिमें प्रारम्भ हुआ था जिसमें समस्त जैनियोंसे यह प्रार्थना की गई थी कि वे अपनेको हिन्दू न लिखवा कर जैन लिखवावें और सरकारी कर्मचारियोंको भी इस विषयकी खास हिदायत थी। इस आन्दोलनकी आवश्यकता यों हुई थी कि पहलेकी मनुष्यगणनाओंमें बहुतसे जैन हिंदुओंमें गिने गये थे और इस कारण जैनोंकी वास्तविक संख्याका ठीक ठीक अन्दाज नहीं लग सकता था। इस ही बातसे स्पष्ट है कि १८९१ और १९०१ में जैनोंकी संख्या रिपोर्टमें जितनी लिखी है उससे कहीं अधिक थी; किन्तु १९११ की संख्यामें अधिक अन्तर या गलती नहीं हो सकती। अतः इसमें कोई सन्देह नहीं कि ऊपर लिखे हुए अंकोंसे जैनोंकी जो घटी प्रगट होती है वह ठीक नहीं, वास्तवमें वह बहुत अधिक होगी। खैर, इस समय कोई उपाय ऐसा नहीं कि जिससे यह गलती सुधार ली जाय और इस कारण हम इन अंकों ही पर विचार करेंगे।

सब बातोंका विचार कर यह जान पड़ता है कि जैनोंकी संख्या प्रतिदशवर्षमें प्रायः एक लाखसे अधिक घट जाती है। यदि यही दशा रही और जैनजातिने अपने इस मरणोन्मुख कलेवरकी स्थितिका कोई अच्छा उपाय ढूँढ़ न निकाला तो प्रायः एक ही शताब्दिमें वह सर्वथा विलुप्त हो जायगी, यह समझ लेना कोई कठिन कार्य नहीं। तिस पर यदि हम यह स्मरण रक्खें कि एक छोटी जाति—जिसमें प्रवेशका द्वार बंद हो—बड़ी जातिकी अपेक्षा अधिक शीघ्रतासे नाशको प्राप्त होती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है–तो यह समय और भी कम हो जायगा। किन्तु इस विचारके द्वारा हमें अपने आशंका–पूर्ण भविष्यको अधिक भयानक बनानेकी आवश्यकता नहीं।

इस प्रश्नपर हम दूसरे प्रकारसे भी विचार कर सकते हैं। यह घटी वास्तविक नहीं है। क्योंकि इसके हिसाबमें यह समझा गया है कि भारतकी जनसंख्या बढ़ी नहीं, अथवा यों कहिए कि यदि जैनोंकी संख्या १९११ में भी वही होंती जो १९०१ में थी तो उस हिसाबके अनुसार कोई घटी न मालूम पड़ती; किन्तु यह ठीक नहीं। क्यों कि जब स्वास्थ्यका सरकारको और जनता-को अधिक ध्यान होने लगा है, जब शान्ति अधिक अधिक फैल रही है, जब शिक्षा-का प्रचार उत्तरोत्तर अधिक वेगसे हो रहा है, जब व्यापार आदिमें दिनों दिन उन्नति होती जाती है और इस कारण जनताकी आर्थिक दशा भी उन्नतिके पथ पर है तो यह हो नहीं सकता कि जनसंख्या न बढ़े–और हम देखते भी हैं कि १९०१–१९११ तक समस्त भारतवर्षकी जनसंख्या सैकड़ा पीछे ११·८ बढ़गई है। क्या जैनोंकी संख्या भी ११·८ प्रति शत न बढ़नी चाहिए थी? किन्तु वे तो ६·५ प्रतिशत घट गये। अतः स्पष्ट है कि जैनों-की कमी वास्तवमें १८·३ प्रतिशत हुई और सो भी जब कि पिछले वर्षोंमें जो जैन हिन्दू लिखे गये वे हिसाबमें न जोड़े जायँ।

परन्तु हम बहुत बड़ी भूल करेंगे यदि हम यह समझें कि जैनोंको भारतकी औसत-के अनुसार प्रतिशत ११.८ ही बढ़ना चाहिए था! भारतमें प्रत्येक पाँच मनुष्यों-मेंसे चार कृषिसे पेट भरते हैं और भार-तीय कृषकोंकी दशा कैसी है इस भयंकर दुःखपूर्ण कथाके कहनेका न हमें साहस होता है और न वह किसीसे छिपी है। दुर्भिक्षने–प्रति वर्षके दुर्भिक्षने–उन्हें सर्वथा निर्जीव कर रक्खा है और इसके अतिरिक्त उनकी निर्धनताके, उनके भूखों मरनेके अनेक कारण हैं जिन्हें प्रायः सब ही विचार-शील भारतवासी जानते हैं, उनके उल्लेख-की आवश्यकता नहीं। इतना ही कह देना बस होगा कि जब लाखों करोड़ों उनमें ऐसे हैं कि जिन्हें यह भी ज्ञान नहीं कि दिनमें दूसरी बार भोजन करना किसे कहते हैं तो उनकी संख्याकी वृद्धि अधिक कैसे होस-कती है? अतः यह विचारना सर्वथा युक्ति-संगत जान पड़ता है कि कृषकोंको छोड़ अन्य भारतवासियोंकी संख्या बहुत अ-धिक बढ़ी है। किन्तु सबका औसत लगानेपर किसानोंकी बुरी दशाके कारण ११.८ प्रतिशत ही रह गई है।

किन्तु जैनाजाति तो अधिकतर व्यापार ही करती है। उस पर अच्छी और बुरी फसलका उतना अधिक असर नहीं होता, दुर्भिक्षसे भी वह अधिक पीड़ित नहीं होती, वह निर्धन और भूखी भी नहीं है। उसकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गणना तो भारतवर्षकी सबसे अधिक धनाढ्य जातियोंमें है। मद्यपान और मांसभक्षणकी बुरी आदतोंसे स्वास्थ्यको जो हानि होती है उससे भी वह मुक्त है। अतः कोई कारण नहीं देख पड़ता कि जिससे जैनोंकी दशा भी भारतीय निर्धन कृषकोंकीसी रहे अथवा उन्हें भी उन्हीं कठिनाइयोंका सामना करना पड़े जिनके कारण बेचारे कृषकोंको कालके गालमें जाना पड़ता है। कोई कारण नहीं कि उनकी संख्याकी वृद्धि केवल औसत मात्रही हो और औसतसे बहुत अधिक न हो। इस प्रकार विचार करनेपर हमारी क्षति और भी अधिक मालूम होती है और जिस १८.३ प्रतिशतकी घटीसे हम घबड़ा उठे थे वह वास्तवमें २९ प्रतिशत होकर हमारे रोंगटे खड़े कर देगी; किन्तु इस डरसे इस विचारकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। यदि मरणोन्मुख जातिको सर्वनाशसे बचाना हमें अभीष्ट है तो इन बातोंको ध्यानपूर्वक विचारकर भलीभाँति समझ लेना होगा। दश वर्षमें जैनजातिका चतुर्थांश नाश होगया और वह भी इस हिसाबसे। यदि पिछली मनुष्यगणनाओंमें जैनजातिकी संख्या वास्तविक होती तो न जाने यह घटी कितनी हो जाती! क्या जैनजातिके मुखिया लोग इस ओर ध्यान देंगे? क्या जैनधर्म पर न्योछावर हो जानेकी डींग मारनेवाले सेठ लोगोंकी आँखें खुलेंगी? क्या भोले भाले समाजसे आदर सत्कार और भेंटके लोलुपी पंडितोंको अपने कर्तव्यका ध्यान आवेगा? क्या आधुनिक बाबूमंडल इस जीवन मरणके प्रश्नको उपेक्षाकी दृष्टिसे देखना छोड़ देगा? अनादि जैनधर्मका अतीत गौरव, उसके बहुमूल्य सिद्धान्त और जैनजातिकी धनाढ्यता ये सब बातें कुछ भी काम न आवेंगी। इनके द्वारा नाश नहीं रोका जा सकता। यदि उनके हृदयोंमें इस पवित्र धर्मकी उन्नतिके लिए प्रेम और उत्साह बाकी है, यदि उन्हें इस बातका कुछ भी ध्यान है कि उन महान् आचार्योंकी कृतियाँ और उपदेश संसारमें स्थित रहकर सदा मनुष्योंका कल्याण करते रहें, यदि उन्हें कभी यह इच्छा होती है कि पृथ्वीपरसे जैनजातिका नाम न मिट जाय, तो समय आगया है कि जब वे इस प्रश्नपर विचार कर ऐसे उपायोंका ढूँढ़ना ही अपना परम धर्म समझें कि जिनसे हमारा ह्रास रुक जाय और हम मृत्युके पथसे हटकर पुनः सजीवताकी ओर अग्रसर हो सकें। मैं दृढ़तापूर्वक कह सकता हूँ कि इस समय मंदिर बनवानेमें, पूजाव्रत आदि करनेमें, और शास्त्रोक्त कठिनसे कठिन तपस्याओंके करनेमें उतना धर्म नहीं है जितना इस नाशको रोकनेके उपाय करनेमें है। यही नहीं मैं तो यहाँतक कहूँगा कि जो इस ओर कुछ कार्य कर सकते हैं किन्तु करनेमें आलस्य करते हैं, अथवा शास्त्रोंकी आज्ञाओंका मिथ्या बहाना बनाकर उन्नतिके कार्योंसे पीछे हटते हैं उनकी पूजामें, उनकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भक्तिमें, और उनके व्रतोंमें भी उन्हें महान् पापका बंध होता है।

इतना जान चुकने पर यह आवश्यक होगया है कि अब उन कारणोंपर विचार किया जाय कि जिनके द्वारा हमारी यह बुरी दशा हुई है। सरकारी रिपोर्टमें निम्न लिखित ४ कारण लिखे हैं:—

१ प्लेग,
२ हिन्दुओंमें मिल जाना,
३ आर्यसमाजी हो जाना,
४ नाशमान धर्म।

हम इन पर पृथक् पृथक् विचार करेंगे।

१ प्लेग—पिछले दश वर्षोंमें प्लेगका अधिक जोर रहा और उसके कारण बहुत-से मनुष्योंकी मृत्यु हुई। यह सच है परन्तु सब ही जातिओंके लिए—कोई कारण नहीं कि प्लेगने दूसरी जातियोंकी अपेक्षा जैन जातिको ही अपना शिकार बनाना अधिक पसंद किया हो। अधिक संभव तो यह है कि जैनों पर इस बीमारीका औरोंसे कम असर हुआ हो; क्योंकि वे अधिक धनवान् हैं और हमारे अन्य गरीब भाइयोंकी अपेक्षा वे अधिक स्वस्थ स्थानोंमें निवास करते हैं। यदि यह मान भी लिया जाय तो भी २९ प्रतिशतका बहुत थोड़ा भाग भी प्लेगके मत्थे नहीं मढ़ा जा सकता और सच पूछिए तो भारतकी औसत वृद्धि ११.६ प्रतिशतमें ही प्लेग महाराजका प्रभाव गर्भित है।

२ हिन्दुओंमें मिलजाना—सामाजिक रीति रिवाज जैनोंको और हिन्दुओंको आपसमें मिला देते हैं। यह तो बहुत अच्छी बात है और इससे तो हमें इस बातका बहुत अच्छा उदाहरण मिलता है कि धार्मिक अन्तर होने पर भी सामाजिक कार्योंमें दो जातियाँ मिल सकती हैं। उनके लिए धार्मिक भिन्नता सामाजिक-मिलन असंभव नहीं बनाती। किन्तु यह बात तो शताब्दियोंसे चली आई है और ऐसा तो मालूम नहीं होता कि इन पिछले दश वर्षोंमें ही कोई ऐसी विशेष बात हुई हो कि जिसके कारण जैनोंने जैनधर्म छोड़कर हिन्दू-धर्म ग्रहण कर लिया हो। वरन् जैसा पहले लिखा जा चुका है १९११ में तो १९०१ की अपेक्षा अधिक जैन हिन्दू न लिखे जाकर जैन लिखे गये थे। और यदि यह भी मान लिया जाय कि सामाजिक मेल इन दिनों बढ़ गया है तो भी यह कदापि ठीक नहीं कि इस मेलके कारण लोग अपना धर्म छोड़ देते हों। कमसे कम युक्त-प्रान्त और पंजाबमें तो ऐसा नहीं होता और यहीं ऐसा सामाजिक मेल अधिक प्रचलित है।

३ आर्यसमाजी हो जाना—इससे कदाचित् जैनसमाजका हृदय बहुत दुखेगा; किन्तु यदि निष्पक्ष होकर विचार किया जाय तो यह बात बहुत स्वाभाविक जान पड़ेगी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि युक्त-प्रान्त और पंजाबमें बहुतसे जैन आर्य-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समाजी हो गये हैं; परन्तु प्रश्न—वास्तविक प्रश्न—यह है कि क्यों हो गये? कारण ढूँढ लेनेमें कोई कठिनाई नहीं। यदि हम अपने ऐबोंको छुपाना न चाहें तो कहना होगा कि इसका कारण यह है कि जैनोंमें सुधार और उन्नतिका मार्ग सर्वथा बंद है। मनुष्य समाजका भलाकर भाइयोंको उन्नत करनेकी अभिलाषाको सन्तुष्ट करनेके जो १००० वर्ष पहलेके उपाय हैं उन्हें छोड़कर आप सामाजिक सुधार शिक्षणसम्बन्धी कार्य आदि चाहे जो कार्य करनेको उद्यत होजाइए, जैनसमाज आपके कार्यको अच्छा नहीं समझेगा और पग पग पर आपके मार्गमें विघ्न उपस्थित करना अपना धर्म समझेगा। एक नवयुवक अपरिमित उत्साहसे पूर्ण होकर अपने भाइयोंके लिए, अपनी मातृ-भूमिके अर्थ, भारतकी नीच जातियोंके उत्थानके कार्यमें अपना जीवन समर्पण कर देना चाहता है; सहसा समस्त जैन जाति उसके विरुद्ध सशस्त्र आ उपस्थित होती है। तब उसके लिए और कोई उपाय बच नहीं रहता सिवाय इसके कि वह जैन जातिको अंतिम प्रणाम कर किसी ऐसे समाजमें जा मिले जहाँ उसकी उच्चतम आशायें और उच्चतम विचार अधिक सरलतासे फलीभूत हो सकें और इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता कि आर्यसमाज ऐसा ही समाज है—उसमें सम्मिलित होकर वह यही नहीं इनसे भी अधिक साहसके कार्य सरलतापूर्वक कर सकता है। इस बातके लिए आर्यसमाजकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। और यदि हम भारतवासी यह न मानें कि उत्तरीय भारतमें जो कुछ सामाजिक और शिक्षासम्बन्धी कार्य देख पड़ते हैं वे सब प्रायः इन्हीं उत्साही आर्यसमाजियोंके कारण हैं तो अवश्य हम कृतघ्नता सूचित करेंगे। जैनोंके आर्यसमाजी होनेका सचमुच यही वास्तविक कारण है। इस बीसवीं शताब्दिमें धर्मकी परिभाषामें कुछ अंतर हो गया है! मातृभूमि, मनुष्य समाजकी सेवा और आत्मत्यागहीको आजकल न्याय, सिद्धान्त, संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और नाश इत्यादिके ज्ञान, और पूजा, यज्ञ जप आदि बाह्य आडम्बरोंकी अपेक्षा अधिक महत्त्व दियाजाता है। यही नवयुवकोंका आदर्श धर्म है। यदि जैनजाति चाहती है कि उसका यह बहुमूल्य अंश, यह उत्साह और जीवनसे परिपूर्ण युवक-मंडल उसे छोड़कर न चला जाय, तो उसे उचित है कि वह भी समयानुकूल कार्यको उत्तेजना दे, और वह भी आधुनिक ढंगपर शिक्षाप्रचारकी संस्थायें संगठित करे। फिर वह निश्चिन्त होकर बैठे; कोई नवयुवक कभी यह बात स्वप्नमें भी न सोचेगा कि मैं इस श्रेष्ठ धर्मको त्याग कर किसी दूसरे मतकी शरण लूँ। इटावेकी तत्त्व-प्रकाशिनी सभाने यह कार्य प्रारम्भ किया है किन्तु अभी इस ओर बहुत कुछ करना बाकी है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस सम्बधमें एक बात और है। कुछ तो पुराने द्वेषोंके कारण और कुछ इस समाजमें प्रचलित बुरी प्रथाओंके कारण लोगोंने इस धर्मको एक प्रकारके भयंकर विषमय धुएँमें लिप्त कर दिया है, जिसके कारण न केवल लोगोंको इससे घृणा और भय होता है किन्तु स्वयं इस धर्मका भी गला घुँट रहा है। अतः विचारशील जैनोंका यह भी कर्तव्य है कि प्रयत्न करें और इस धुएँको नाश कर डालें, कुप्रथाओंको दूर कर दें और वास्तविक मूल सिद्धान्तोंके ज्ञानका प्रचार करें।

४ नाशमान धर्म—उपर्युक्त बातोंसे ही यह चतुर्थ कारण ठीक जान पड़ता है। सरकारी रिपोर्टमें लिखा है कि "ऐसा जान पड़ता है कि यह धर्म विलुप्त हो रहा है।" विचारवान् पुरुष पूछते हैं कि क्या इस धर्ममें कोई ऐसी बात है जो जैनोंको उन्नत नहीं होने देती और उनकी संख्या नहीं बढ़ने देती ? किन्तु हा! इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि हमारा नाश हो रहा है। क्या धनाढ्य जैनोंकी आँखें खुलेंगी ? क्या उन्हें इस बातका ध्यान आवेगा कि जिन मंदिरोंके बनावानेमें वे लाखों रुपये व्यय कर देते हैं वे बहुत निकट भविष्यमें बिना पुजारियोंके व्यर्थ हो जायँगे! क्या कोई उन्हें यह नहीं समझा सकता कि इस ह्रासके रोकनेका कार्य लाखों गुणा अधिक पुण्यमय है ? क्या इस बातको जानकर भी वे जैनधर्मको निजकी सम्पत्ति समझनेवाले धुरंधर पंडित लोग—जो अगाध प्रेमके कारण अपनेसे निम्न श्रेणीके मनुष्योंका जैनधर्ममें पदार्पण करना सहन नहीं कर सकते—अपनी संकीर्ण उपदेशदेनेवाली जिह्वाओंके लगाम न लगावेंगे ? ऐतिहासिक दृष्टिसे जैनधर्म बड़े महत्त्वका है, इसके पुराने मंदिरों और शास्त्रोंसे संसारको बहुत लाभ पहुँचा है, यह सब कुछ ठीक है; किन्तु क्या वे यह नहीं देख सकते कि यदि इस धर्मके अनुयायी ही न रहे तो यह सब महत्त्व क्या काम आवेगा ? क्या इतने पर भी औरोंके इस धर्ममें आजानेको वे लोग द्वार न खोलेंगे ?

सरकारी रिपोर्टोंमें घटी क्यों हुई इसका तो उल्लेख है; किन्तु इसका कोई जिकर नहीं कि इस जातिकी जन-संख्या बढ़ी क्यों नहीं। जिन करणोंसे घटी हुई है वे चाहे थोड़े समयसे हों ओर शायद थोड़े समय तक रहें भी; किन्तु हम देखेंगे कि वे कारण कि जिनसे हमारी उन्नति रुकी हुई है कहीं अधिक बलवान् और भयंकर हैं।

इन कारणोंमें हमारे सामाजिक रीतिरिवाजोंका बहुत बड़ा भाग है और इनमें भी यहाँ एक विशेष रिवाज पर ख़ास जोर देना अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि वह समाजमें ऐसा जमा हुआ है कि कभी किसीको यह ध्यान भी नहीं आता कि इसमें भी परिवर्त्तन करनेकी आवश्यकता है। आइए, पहले जैनोंकी विवाह–सम्बधी संख्याओं पर विचार करें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उमर	समस्त जनसंख्या		विवाहित		अविवाहित		रंडुवे और विधवायें	
	पुरुष	स्त्रियाँ	पुरुष	स्त्रियाँ	पुरुष	स्त्रियाँ	पुरुष	स्त्रियाँ
०–५	७५,३१६	७६,२१२	४२५	९४८	७४,७२३	७५,१७२	१६८	९२
५–१५	१,४१,२२७	१,२६,३१३	६,७१०	२५,३४९	१,३४,०११	९९,७९७	५०६	१,१६७
१५–४५	३,२२,०११	२,९८,३२८	१,९८,७९६	२,१७,६८२	९९,५०७	६,२०७	२३,७०८	७४,४३९
४५–	१,०४,९९९	१,०३,७७६	६३,००७	२५,६४८	८,९५६	५२९	३३,०३६	७७,५९९
जोड़	६,४३,५५३	६,०४,६२९	२,६८,९३८	२,६९,६२७	३,१७,१९७	१,८१,७०५	५७,४१८	१,५३,२९७

इस विवरणसे एकदम स्पष्ट हो जाता है कि जिस वयमें अधिक सन्तान उत्पन्न हो सकती है अर्थात् १९–४९ वर्षतक, उस वयके ३,२२,०११ पुरुषोंमेंसे केवल १,९८,७९६ ही विवाहित हैं और उस ही वयकी २,९८,३२८ स्त्रियोंमेंसे ८०,६४६ अविवाहित अथवा विधवायें हैं। अथवा लगभग ९ पुरुषोंमेंसे २ और चार स्त्रियोंमेंसे १ या तो अविवाहित है या विधुर अथवा विधवा है। ४० प्रतिशत पुरुष, और २९ प्रतिशत स्त्रियाँ अविवाहित! यह संख्या वास्तवमें बहुत ही अधिक है और इसमें सन्देह नहीं कि वे अपनी इच्छासे अविवाहित नहीं रहे हैं। अमरीका और यूरोपके लोग बहुधा निर्धनताके कारण विवाह नहीं करते; किन्तु भारतवर्षमें और जैनोंमें ऐसा नहीं है। विवाहके मार्गमें खास रुकावट जो है वह यह है कि जैन-समाजमें अगणित छोटी छोटी जातियाँ हैं जिनमेंसे बहुतोंमें केवल २–३ सौ स्त्री पुरुष ही बच गये हैं। लगभग २० जातियाँ तो ऐसी हैं जिनमें १०० से अधिक स्त्री पुरुष नहीं।

एक जातिका पुरुष दूसरी जातिमें विवाह नहीं कर सकता। यही नहीं, एक जातिमें बहुतसे गोत्र होते हैं और यदि विवाह होता है तो वर कन्याकी औरसे चार चार गोत्रोंको छोड़कर विवाह हो सकता है अर्थात् वर अपना गोत्र, अपने नानाका गोत्र, अपने पिताके नानाका गोत्र और अपनी माताके नानाका गोत्र इनमेंसे किसी भी गोत्रकी कन्यासे विवाह नहीं कर सकता और इस ही प्रकार कन्याके पक्षमें भी वर चार गोत्रोंमें से किसीका नहीं होना चाहिए। यह तो हुई राजपूतानेकी बात; मध्यप्रदेश और मध्यभारतमें यह नियम और भी कड़ा है। वहाँ कई जातियोंमें आठ आठ गोत्रोंको छोड़कर विवाह होता है।

ऐसी दशामें यदि किसी जातिमें १०० स्त्री पुरुष हैं तो वहाँ इस प्रकार गोत्र छोड़े नहीं जा सकते और युवकोंको अविवाहित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रहना पड़ता है। जिन जातियोंमें इससे भी कम संख्या है उनकी दशाका इसहीसे अनुमान कर लेना होगा।

२९ वर्षसे अधिक वयकी २, ०३२ स्त्रियाँ अविवाहित हैं। इन स्त्रियोंके अविवाहित रहनेका और कोई कारण हो ही नहीं सकता। इस प्रश्नके हल करनेका जो भी उपाय निकलेगा उसमें प्रचलित रिवाजमें बहुत बड़े परिवर्त्तन करने होंगे और छोड़नेके गोत्र घटाने होंगे। जो लोग इन परिवर्तनोंको करनेकी इच्छा करें उन्हें किसी बातसे डरना नहीं चाहिए। क्योंकि इन रिवाजोंमें कोई धार्मिक अंश नहीं है। धर्म ऐसा करनेके विरुद्ध उपदेश नहीं देता। यदि ये प्रथायें धार्मिक हों तो भी आत्मरक्षाके लिए ऐसे परिवर्त्तन अनिवार्य हो जाते हैं। उत्तरीय भारतके लोग इस नियमकी कड़ाईको भलीभाँति नहीं समझ सकते; क्योंकि प्रथम तो अग्रवाल जाति बहुत बड़ी है और दूसरे जैन अग्रवालों और वैष्णव अग्रवालोंमें विवाह हो सकता है; किन्तु मध्यप्रदेश और राजपूतानेमें ये बातें नहीं है।

स्त्रियोंकी संख्याका कम होना भी बहुत बड़ी कठिनाई है। सब मिलाकर वे संख्यामें पुरुषोंसे लगभग ४०००० कम हैं। किन्तु इस संख्यासे वास्तविक कठिनाईका कुछ भी पता नहीं चलता। स्त्रियोंका चतुर्थांश तो वैधव्यका दुःख भोग रहा है। कुल विधवायें १,९३, २९७ हैं। अविवाहित स्त्रियोंकी संख्या १,८१, ७०९ है। ३० वर्षसे ऊपरकी स्त्रियोंको छोड़ दें तो १,८०, ००० ऐसी स्त्रियाँ बच जाती हैं जिनका विवाह हो सकता है। ४९ वर्षसे कम वय वाले विवाह कर सकनेवाले पुरुषोंकी संख्या ३, ३२, ६२३ है। यदि मान लिया जाय कि वे सब १,८०,००० स्त्रियाँ विवाह कर लें (यद्यपि यह संभव नहीं है) तो भी डेढ़ लाखसे अधिक पुरुष अथवा ४९ वर्षसे कम वय वाले पुरुषोंमेंसे २८ प्रतिशत क्वाँरे ही रह जावेंगे। इससे कुछ पता चलता है कि किस प्रकार स्त्रियोंकी कमी जैनोंकी संख्या बढ़ने नहीं देती।

जो लोग इस कठिनाईसे बचनेका उपाय सोचेंगे उन्हें इस स्त्रियोंकी कमीके कारण ढूँढ़ने होंगे। उन्हें यह ध्यान रखना होगा कि प्रकृतिने ही इस जातिके लिए यह कठिनाई उपस्थित नहीं की है। जितने लड़के पैदा होते हैं लड़कियाँ उनसे कम नहीं होतीं। ऊपरके विवरणसे ही स्पष्ट है कि पाँच वर्षसे कम अवस्थावाले बालकोंमें लड़कियोंकी ही संख्या अधिक है। १० से २० वर्ष तक ही प्रायः सब बालकोंका विवाह होता है और इस ही वयमें प्रायः लड़कियाँ मातायें बन जाती हैं और इस ही वयमें स्त्रियोंकी संख्या बहुत अधिक घटजाती है। इस वयके १,२८,१०९ पुरुष हैं और १,०९,३७४ स्त्रियाँ। स्त्रियोंकी संख्या कोई २२,४३१ कम है। यह कमी सब

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उमरोंकी स्त्रियोंकी कमीकी आधीसे अधिक है। इससे स्पष्ट है कि यद्यपि प्रकृति पुरुषोंसे अधिक स्त्रियाँ पैदा करती है तो भी हम उन्हें अपने बुरे बर्त्तावे और बुरी प्रथाओंसे मार डालते हैं। सरकारी रिपोर्टमें भी यही बात लिखी है। बुरा बर्त्ताव, कामकी अधिकता, स्वास्थ्य नाशक पर्दा, बालविवाह और बचपनमें ही माता हो जानेका भार, सचमुच उन्हें मार डालता है। इन रिवाजोंके प्रति घोर युद्ध करना होगा। इनको जबतक हम समूल नाश न कर डालेंगे जैन जातिकी वृद्धि कदापि नहीं हो सकती।

बालविवाहसे केवल स्त्रीजातिका स्वास्थ्यही नहीं बिगड़ता; किन्तु बलहीन समाज और रोगी बालकोंके होनेका यही मुख्य कारण है। यह एक ऐसी प्रथा है कि जिसे हम उपेक्षाकी दृष्टिसे कदापि नहीं देख सकते। किन्तु याद रखना चाहिए कि इसके नाश करनेके लिए बहुत साहसऔर बलकी आवश्यकता होती है। इसकी हानियोंको जानते हुए भी हमारे जैन भाई, शिक्षित और विद्वान् जैन नेता तक अपने बालकोंकी रक्षा करनेमें असमर्थ दिखलाई देते हैं। जबतक हम प्रयागके भ्रातृमंडलके सदस्योंकी भाँति निर्भयतासे और साहसपूर्वक नियम न बना लेंगे तबतक इस कुप्रथाका नाश होना कठिन ही नहीं असम्भव होगा। १८ वर्षके युवा और १४ वर्षकी कन्याका विवाह हो सकता है। इससे कमवयका विवाह, विवाह नहीं गुड़ियोंका खेल है। उसमें हमारी सहानुभूति नहीं—हम उसमें भाग नहीं ले सकते। हो सका तो अपनी सन्तानका विवाह इससे भी अधिक वयमें करेंगे। इत्यादि बातें जबतक हम दृढ़तापूर्वक हृदयमें अंकित नहीं करलेंगे, तबतक कोई आशा करना व्यर्थ है।

किन्तु केवल इन बातोंसे काम न चलेगा। चले भी कैसे? जब प्रति ४ स्त्रियोंमेंसे एक विधवा है। बालविवाहके बन्द हो जानेसे कुछ दशा सुधरेगी अवश्य; किन्तु बिना विधवाविवाहके प्रचलित किये जैनजातिका जीवित रहना कठिन है। २५ वर्षसे कम वय वाली ११,३०४ विधवाओं पर समाजके नेताओंको दया आनी चाहिए। १५ वर्षसे छोटी १,२५९ विधवाओंको देखकर तो उन्हें रोदन आजाना चाहिए। और ५ वर्षसे छोटी ९२ विधवाओंकी तुतली बोलीको सुनकर, यदि वे सच्चे नेता हैं तो प्रचलित रिवाजोंपर और उनको न बदलनेकी सलाह देनेवाले समाज पर क्रोध और दुःखके मारे काँप उठना चाहिए। पुरुषकी एक पत्नी बीमार होती है कि उसी समय दूसरे विवाहकी बातें पक्की होने लगती हैं। कोई पूछता है कि लाला साहब! आपके पुत्र पौत्र सब मौजूद हैं, फिर अब विवाहकी क्या आवश्यकता? कहते हैं, भाई इसके बिना काम नहीं चलता। उन्हें यह कहते लज्जा नहीं आती! इस बातका ध्यान नहा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आता कि उनकी पुत्री जो विवाहके कुछ ही महीने पीछे विधवा हो गई है जन्म कैसे व्यतीत करेगी ? खैर । यदि समाजको जीवित रहना ही नहीं है, यदि उसे अपने स्त्री-समाजके चरित्रकी पवित्रता स्थिर रखनी ही नहीं है तो चाहे जो करे; किन्तु यदि यह इच्छा है कि संसारसे नाम न मिटे तो उसे इस प्रश्नको उठाना पड़ेगा और हजार बाधाओंके होनेपर भी कार्य करना ही होगा। शिक्षाप्रचार, विधवाश्रमोंका खुलना, ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञायें इत्यादि प्रयत्न कदापि सफल नहीं हो सकते । प्रकृतिके विरुद्ध कार्य करनेकी सामर्थ्य लाखोंमें एक दोसे अधिकमें नहीं हो सकती । स्त्रियोंसे यह आशा करना मूर्खता है । बहुत अच्छा होता कि इसकी आवश्यकता न पड़ती; किन्तु अब कोई उपाय नहीं ।

बूढ़ोंके विवाह भी रोकने होंगे । इससे विधवाओंकी संख्या अवश्य घटेगी और कमसे कम ऐसे हास्यमय दृश्य देखनेको तो न मिलेंगे कि सफेद बालोंको रँगकर लाठीके सहारे बूढ़ेराम वर बन कर १० वर्षकी बालिकाका पाणिग्रहण कर रहे हैं । दो महीने पीछे उनकी मृत्युसमाचार सुनकर दुःखसे आँसू तो न बहाने पड़ेंगे !

विवाहके मार्गमें इस जातिमें न जाने और कितनी कठिनाइयाँ हैं । इनमें इतना अधिक व्यय करनेकी क्या आवश्यकता है ? सब बिरादरीको मिठाई खिलानेका भार क्यों लाद दिया जाता है ? और न जाने कितनी बातें हैं । कहाँ तक कोई लिखे किन्तु एक नये सुधारका जिकर किये बिना नहीं रहा जाता । राजपूतानेको ही इस सुधारके प्रचलित करनेका सौभाग्य प्राप्त है । आजकल कोई युवा विवाह करना चाहे तो उसे पहले कन्याके पिताको कुछ हजार रुपये भेंट देना पड़ते हैं । वैसे तो कन्याका पिता अपने जामाताके घरका पानी भी नहीं पीता; किन्तु रुपया कुछ पानी थोड़े ही है । धनवानोंकी बन आती है । खूब पसन्द करके बाजारके भावसे अधिक रुपया देते हैं और चाहे कितनी भी उमर हो, चाहे पाँचवी बार विवाह करते हों, झट पट विवाह हो जाता है । गरीब लड़का पढ़ लिखकर होशियार हुआ । शायद २५-३० रुपये महीना कमाने लगा । वह कन्याके पिताकी भेटके रुपये कहाँसे लावे ? कहीं ५-७ वर्षमें कुछ रुपया एकत्रित किया और कहीं बातचीत जमाई कि कोई धनाढ्यने अधिक रुपया देकर सौदा बिगाड़ दिया । रहे क्वाँरे ।

इनके अतिरिक्त और भी बहुतसे कारण इस क्षतिके निकलेंगे और इससे बचनेके लिए प्रत्येक कारणका नाश करनेका दृढ़ प्रयत्न करना होगा । बहुत सी सैकड़ों वर्षोंसे चली आनेवाली रीतियोंको उठा देना पड़ेगा । सुधारके कार्यमें बहुत बड़ा विरोध भी होगा । जैनलोग ऐसा भी कहेंगे कि यह कार्य धर्मके सिद्धान्तोंके अनुकूल नहीं । जो यह कार्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर रहे हैं वे जैनधर्मको नाश करडालनेका उपाय कर रहे हैं, इत्यादि; किन्तु सुधारकको यह भी याद रखना चाहिए कि ऐसा शोर केवल संकीर्णहृदय मनुष्य ही मचावेंगे-जिन्हें ये सब बातें कुछ भी समझमें नहीं आतीं। कुछ समयके लिए विचारहीन जैनजाति उन्हें घृणाकी दृष्टिसे देखेगी, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इस प्राचीन धर्मको बहुत सहारा मिलेगा। नाशसे वह अवश्य बच जायगा और इस कारण सब विचारशील मनुष्य इसे पसंद करेंगे। जैनधर्म अपने अनुयायी युवकोंकी ओर आशाकी दृष्टिसे देखता है। वे ही उसे नाशसे बचाकर जैनोंको अन्य भारतवासियोंके बराबरीके बना सकते हैं। किन्तु जैन जाति जिस प्रकार युवकोंके साहसको तोड़ रही है, जिस प्रकार वह सब उन्नतिके विचारोंका हास्य करती है और जिस प्रकार नेतागण स्वाभाविक अकर्मण्यतामें फँस कर इस ओर ध्यान नहीं दे रहे हैं, इससे तो यही ज्ञात होता है कि भविष्य कुछ अच्छा नहीं है। यदि जैनधर्म जीवित रहेगा, यदि जैन लोग चाहते हैं कि हम जीवित रहें, तो उन्हें साहसपूर्वक निर्भयतासे कार्य करना होगा। मृत्युसे बचनेका इस समय इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं कि आधुनिक उपायोंका अवलम्बन किया जाय—संसारमें अन्य जातियोंने कैसे उन्नति की है उससे कुछ शिक्षा ग्रहण की जाय। आशा की जाती है कि जैनजाति इस प्रश्नको हँसी खेल न समझकर इस ओर कुछ ध्यान देगी और उपर्युक्त मार्गका अवलम्बन करनेमें हिचकिचाहट न दिखलावेगी।

नोट—यह जैनजातिकी संख्याके घटनेका विषय बहुत ही महत्त्वका है—यह हमारे जीवन-मरणका प्रश्न है। यदि हमने इस प्रश्नको हल कर लिया—संख्याह्रासके यथार्थ कारणोंको जान लिया और हम उनके दूर करनेके उपाय प्रचलित कर सके, तो समझ लीजिए कि हम संसारमें जीते रहेंगे, नहीं तो बस कूच समझिए। अतः जैनसमाजके प्रत्येक हितैषीका यह कर्तव्य होना चाहिए कि वह इस विषयपर विचार करे और यथार्थ कारणोंको ढूँढ़े। इस विषयमें किसीको भी सन्देह नहीं हो सकता है कि संख्या घट रही है; पर किन कारणोंसे घट रही है, इस विषयमें मतभेद हो सकता है। संभव है कि लेखक महाशयके बतलाये हुए कारण और उनके दूर करनेके उपाय सर्वसम्मत न हों, ऐसी दशामें विरुद्ध मत रखनेवालोंको दूसरे कारण और उपाय बतलाना चाहिए—चुप होकर बैठ रहना ठीक नहीं है।

जुदा जुदा प्रान्तोंमें संख्याका ह्रास जुदा जुदा परिमाणमें हुआ है, अतः प्रत्येक प्रान्तकी और उस प्रान्तमें बसनेवाली प्रत्येक जातिकी घटी आदिके कारणोंपर भी विचार करनेकी जरूरत है। लेखमें बतलाई हुई प्रान्तवार घटीके अंकोंसे मालूम होता है कि सबसे अधिक संख्या दिगम्बर जैनोंकी घटी होगी। मध्य प्रदेशमें फी सदी २२ और ग्वालियर राज्यमें फी सदी २६ घटी हुई है और इन प्रान्तोंमें श्वेताम्बरसम्प्रदायके लोग बहुत ही कम—प्रायः नहींके बराबर—हैं। इसी प्रकार युक्तप्रान्तमें भी अधिकांश बस्ती दिगम्बरियोंकी है और वहाँ फी सदी १०.५ की कमी हुई है। अतः यह भी एक विचारणीय बात है कि दिगम्बरियोंकी संख्याका ह्रास ही क्यों अधिक हुआ? यह उक्त प्रान्तोंकी विशेषता है या हमारी जातियोंके रीति-रिवाजोंकी?

दिगम्बरसम्प्रदायके विद्वानोंको शायद श्वेताम्बरोंकी चिन्ता न हो, पर जब उन्हींका सम्प्रदाय घट रहा है, तब तो उन्हें इस ओर अपनी बुद्धिको लगाना चाहिए।

—सम्पादक।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मेरी भावना ।

(नूतन सामायिक-पाठ ।)

ले०, श्रीयुत बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तार ।

(१)

जिसने रागद्वेषकामादिक, जीते, सब जग जान लिया,
सब जीवोंको मोक्ष-मार्गका, निस्पृह हो उपदेश दिया।
बुद्ध, वीर जिन, हरि, हर, ब्रह्मा, या उसको स्वाधीन कहो,
उसके पद-पंकजमें मेरा, मन-मधुकर लवलीन रहो ।

(२)

विषयोंकी आशा नहिं जिनके, साम्य-भाव धन रखते हैं,
निज-परके हितसाधनमें जो, निशदिन तत्पर रहते हैं ।
स्वार्थत्यागकी कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं,
ऐसे ज्ञानी साधु जगतके दुख-समूहको हरते हैं ॥

(३)

रहे सदा सत्संग उन्हींका, ध्यान उन्हींका नित्य रहे,
उनही जैसी चर्यामें यह, चित्त सदा अनुरक्त रहे ।
नहीं सताऊँ किसी जीवको, झूठ कभी नहिं कहा करूँ,
परधन-वनिता पर न लुभाऊँ, संतोषामृत पिया करूँ ॥

(४)

अहंकारका भाव न रक्खूँ, नहीं किसी पर क्रोध करूँ,
देख दूसरोंकी बढ़तीको, कभी न ईर्षा-भाव धरूँ ।
रहे भावना ऐसी मेरी, सरल-सत्य-व्यवहार करूँ,
बने जहाँतक इस जीवनमें, औरोंका उपकार करूँ ॥

(५)

मैत्री-भाव जगतमें मेरा, सब जीवोंसे नित्य रहे,
दीन-दुखी जीवों पर मेरे, उरसे करुणा-स्रोत बहे ।
दुर्जन-क्रूर-कुमार्गरतों पर, क्षोभ न मेरेको आवे,
साम्य-भाव रक्खूँ मैं उनपर, ऐसी परिणति हो जावे ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(६)

गुणीजनोंको देख हृदयमें, मेरे प्रेम उमड़ आवे,
बने जहाँतक उनकी सेवा, करके यह मन सुख पावे,
होऊँ नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे,
गुण-ग्रहणका भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों पर जावे ॥

(७)

कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे,
लाखों वर्षोंतक जीऊँ या, मृत्यु आज ही आजावे।
अथवा कोई कैसा ही भय, या लालच देने आवे,
तो भी न्याय-मार्गसे मेरा, कभी न पद डिगने पावे ॥

(८)

होकर सुखमें मग्न न फूले, दुखमें कभी न घबरावे,
पर्वत-नदी-स्मशान-भयानक, अटवीसे नहिं भय खावे।
रहे अडोल-अकम्प निरन्तर, यह मन, दृढतर बन जावे,
इष्टवियोग-अनिष्ट योगमें, सहनशीलता दिखलावे ॥

(९)

सुखी रहें सब जीव जगतके, कोई कभी न घबरावें,
बैर-पाप-अभिमान छोड़ जग, नित्य नये मंगल गावे।
घरघर चर्चा रहे धर्मकी, दुष्कृत दुष्कर हो जावें,
ज्ञान-चरित उन्नत कर अपना, मनुज-जन्म-फल सब पावें ॥

(१०)

ईति-भीति व्यापे नहिं जगमें, वृष्टि समय पर हुआ करे,
धर्म-निष्ठ होकर राजा भी, न्याय प्रजाका किया करे।
रोग-मरी-दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शान्तिसे जिया करे,
परम अहिंसा धर्म जगतमें, फैल सर्व-हित किया करे ॥

(११)

फैले प्रेम परस्पर जगमें, मोह दूर पर रहा करे,
अप्रिय-कटुक-कठोर शब्द नहिं, कोई मुखसे कहा करे।
बनकर सब 'युग-वीर' हृदयसे देशोन्नति-रत रहा करें,
वस्तु-स्वरूप विचार खुशीसे, सब दुख-संकट सहा करें ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इतिहास-प्रसङ्ग ।

लेo, श्रीयुत-बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तार।

(३३)

वसुनन्दिका समय।

'वसुनन्दि' नामके अनेक आचार्य और भट्टारक होगये हैं जिन सबका समय अभी-तक प्रायः अनिश्चत है । जैनसमाजमें इस नामके ग्रंथकार या ग्रंथकारोंके बनाये हुए जो ग्रंथ प्रचलित हैं उनमेंसे **वसुनन्दिश्रावकाचार, प्रतिष्ठासारसंग्रह** (वसुनन्दि-संहिता), मूलाचारकी **आचारवृत्ति** और आप्तमीमांसाकी '**देवागमवृत्ति**' नामके ग्रंथोंको देखनेका मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इन चारों ग्रंथोंमे ग्रंथोंके बननेका कोई सन् संवत् नहीं दिया और न 'वसुनन्दिश्रावकाचार' को छोड़कर अन्य तीन ग्रंथोंमें ग्रंथकारने अपनी गुरु–परम्पराका ही उल्लेख किया है । इससे बिना किसी विशेष अनुसंधानके, अभी यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि ये चारों ग्रंथ एक ही '**वसुनन्दि**' के बनाये हुए हैं या एकसे अधिकके । परन्तु इतना जरूर कहा जा सकता है कि '**श्रावकाचार**' के कर्ता **वसुनन्दि** प० **आशाधरसे पहले** हो चुके हैं; क्योंकि पं० आशाधरने अपनी '**सागारधर्मामृत**' की टीकामें, जो कि विक्रमसंवत् १२९६ में बनकर समाप्त हुई है, वसुनन्दिश्रावकाचारकी '**पंचुंबर-सहियाइं....**' इस गाथाका उल्लेख करते हुए लिखा है कि–" इति **वसुनन्दिसैद्धान्तिमतेन दर्शनप्रतिमायां प्रतिपन्नस्तस्येदं । तन्मतेनैव व्रतप्रतिमां बिभ्रतो ब्रह्माणुव्रतं स्याात्तद्यथा**–' पव्वेसु इत्थि-सेवा ... । ' इस तरह पर पं० आशाधरजीके द्वारा वसुनन्द्याचार्य और उनके श्रावकाचार दोनोंका उल्लेख किया जाता है।

'प्रतिष्ठासारसंग्रहके कर्ता **वसुनन्दिका** भी उल्लेख पं० आशाधरने अपने '**जिनयज्ञकल्प**' नामके प्रतिष्ठापाठमें किया है, जो इस प्रकार है:—

> **जयाद्यष्टदलान्येके**
> **कर्णिकवलयाद्बहिः ।**
> **मन्यन्ते वसुनन्द्युक्त-**
> **सूत्रज्ञैस्तदुपेक्ष्यते ॥ १७४ ॥**

अथार्त्—कोई ऐसा मानते हैं कि कर्णिकाके वलयसे बाहर **जयादि** अष्ट देवताओंके अष्ट दल बनाने चाहिए । परन्तु **वसुनन्द्याचार्यके** कहे हुए प्रतिष्ठा–सिद्धान्तको जाननेवाले विद्वान् उसकी उपेक्षा करते हैं—वैसा नहीं मानते । स्वयं पं० **आशाधरने** भी **वसुनन्दिसंहिताके** अनुसार ही वेदिलेखनका विधान किया है और कर्णिकाके वलयके बाहर क्रमशः १६, २४ और ३२ दलोंके बनानेकी आज्ञा की है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इससे उक्त 'प्रतिष्ठासारसंग्रह' भी पं० आशाधरसे पहले बन चुका है, ऐसा कहनेमें कुछ संकोच नहीं होता । इसी प्रकार यह भी कहा जा सकता है कि, 'आचारवृत्ति' के कर्त्ता वसुनन्दि श्रीअमितगतिके पीछे हुए हैं । क्योंकि उन्होंने आचारवृत्तिके आठवें परिच्छेदमें, कायोत्सर्गके चार भेदोंका वर्णन करते हुए, 'त्यागो देहममत्वस्य तनूत्सृतिरुदाहृता ....' इत्यादि पाँच श्लोक 'उक्तं च' रूपसे दिये हैं और उनके अन्तमें लिखा है कि, 'उपासकाचारे उक्तमास्ते' अर्थात् यह कथन 'उपासकाचार' का है । यह 'उपासकाचार' ग्रन्थ श्रीअमितगतिसूरिका बनाया हुआ है जो विक्रमकी ११ वीं शताब्दिमें हुए हैं । इस ग्रंथके आठवें परिच्छेदमें उक्त पाँचों श्लोक उसी क्रमको लिये हुए नं० ९७ से १०१ तक दर्ज हैं । 'देवागमवृत्ति' प्रायः उन्हीं वसुनन्दिकी बनाई हुई मालूम होती है जो 'आचारवृत्ति' के कर्त्ता हैं । इस तरहपर इन चारों ग्रंथोंमेंसे दो ग्रंथोंका अमितगति (११ वीं शताब्दि) के बाद और दो ग्रंथोंका आशाधर (१३ वीं शताब्दी) के पहले बनना पाया जाता है । इनमेंसे प्रत्येकका कर्ता वसुनन्दि 'सैद्धान्तिक' कहलाता है । आश्चर्य नहीं कि ये चारों ग्रंथ एक ही वसुनन्दिके बनाये हुए हों । मेरी रायमें ये सब ग्रंथ विक्रमकी १२ वीं शताब्दीके लगभगके बने हुए हैं । श्रावकाचारमें वसुनन्दिने अपने गुरुका नाम 'नेमिचंद्र' दिया है और उन्हें जिनागमरूपी समुद्रकी वेलातरंगोंसे धूयमान तथा समस्त जगतमें विख्यात प्रगट किया है । हो सकता है कि ये नेमिचंद्र वे ही हों जो 'गोम्मटसार' ग्रंथके कर्ता कहे जाते हैं । ऐसा होने पर उक्त श्रावकाचारका १२ वीं शताब्दिके लगभग बनना और भी अधिक निश्चित हो जाता है । क्योंकि गोम्मटसारके कर्ता विक्रमकी ११ वीं शताब्दिमें हुए हैं ।

(३४)

अरुणमणि और अजितपुराण ।

'अरुणमणि' या 'लालमणि' नामके एक कवि हो गये हैं, जिन्होंने विक्रम संवत् १७१६ में 'अजितपुराण' की रचना की है । यह पुराण उन्होंने औरंगजेब बादशाहके राज्यमें, जहानाबाद नगरके पार्श्वनाथ चैत्यालयमें बनाकर समाप्त किया है । जैसा कि इस पुराणके निम्न पद्योंसे प्रगट है:—

रसवृषयतिचंद्रे ख्यातसंवत्सरेऽस्मिन्,
नियमितसितवारे वैजयंतीदशम्याम् ।
अजितजिनचरित्रं बोधपात्रं बुधानाम्,
विरचिममलवाग्मी रक्तरत्नेन तेन ॥
मुद्गले भूभुजां श्रेष्ठे राज्येऽवरंगशाहिके ।
जहानाबादनगरे पार्श्वनाथ जिनालये ।४।

ग्रंथकर्ताने, इस ग्रंथमें, अपना परिचय देते हुए अपनेको काष्ठासंघके माथुर गच्छान्तर्गत पुष्करगणका अनुयायी प्रगट किया है और अपनी वंश-परम्परा लोहाचार्यसे प्रारंभ की है । लोहाचार्यके वंशमें अनेक मुनियोंके पश्चात धर्मसेन नामके गुरु हुए । फिर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उनके पट्टपर क्रमशः भावसेन, सहस्रकीर्ति, गुणकीर्ति, यशःकीर्ति और जिनचन्द्रका प्रतिष्ठित होना लिखा है। जिनचंद्रका शिष्य श्रुतकीर्ति साधु और श्रुतकीर्तिका शिष्य बुध राघव हुआ। इसके बाद राघवके तीन शिष्य प्रगट किये हैं; एक रत्नपाल, दूसरा श्रीवनमालि और तीसरा कान्हरसिंग और अन्तमें अपनेको कान्हरसिंहका पुत्र 'लालमणि' लिखा है। इस परिचयका आदिम पद्य इस प्रकार हैः—

श्रीमच्छ्रीकाष्ठसंघे मुनिगण-
गणनातीतदिग्वस्त्रयुष्टे,
तस्मिच्छ्रीमाथुराख्ये वृषभ-
वृषयुते गच्छश्रेष्ठाधिपूज्ये।
तन्मध्ये सर्वश्रेष्ठे परमपद-
प्रदे पुष्कराख्ये गणे च,
लोहाचार्यान्वये च विगतकलु-
षिता संयतानेक जाताः॥ ११॥

(३५)

कनकनन्दि और इन्द्रनन्दि।

'गोम्मटसारके' कर्मकाण्डमें श्रीमन्नेमिचंद्राचार्यने लिखा है किः—

वरइंदणंदिगुरुणो
पासे सोऊण सयल सिद्धंतं।
सिरिकणयणंदिगुरुणा
सत्तट्ठाणं समुद्दिट्ठं॥ ३९६॥"

अर्थात्—इंद्रनन्दि गुरुके पाससे सकल सिद्धान्तको सुनकर श्री कनकनन्दि गुरुने सत्वस्थानका कथन किया। इससे मालूम होता है कि एक इन्द्रनन्दि विक्रमकी ११ वीं शताब्दिमें हुए हैं जो सकल सिद्धान्तके पारगामी कहलाते थे। साथ ही यह भी मालूम होता है कि कनकनन्दि भी नेमिचंद्रके गुरु थे और उन्होंने 'सत्वस्थान' नामका कोई ग्रंथ बनाया है। श्रवणबेलगोलके शिलालेख नं० ४० में भी एक 'कनकनन्दि' का जिकर आया है और उसमें उन्हें माघनन्दि सैद्धान्तिकके शिष्य गण्डविमुक्त देवके बड़े भाई बतलाया है। साथ ही उनकी प्रशंसामें यह पद्य भी दिया हैः—

यो बौद्धक्षितिभृत्कराल-
कुलिशश्चार्व्वाकमेघानलो—
मीमांसामतवर्त्तिवादि-
मदवन्मातङ्गकण्ठीरवः।
स्याद्वादाब्धिशरत्समुद्गत-
सुधारोचिस्समस्तैस्स्तुतः-
स श्रीमान् भुवि भासते
कनकनन्दी ख्यातयोगीश्वरः॥

इस शिलालेख और शिलालेख नं० ३९ में गण्डविमुक्तदेवके शिष्य महामंडलाचार्य देवकीर्तिके स्वर्गवासका उल्लेख किया गया है जो शक संवत् १०८९ में हुआ है और जिसकी यादगारमें ये दोनों शिलालेख देवकीर्तिके शिष्यों द्वारा एक ही पत्थर पर खुदवाये गये हैं। इस शिलालेखके 'कनकनन्दि, और नेमिचंद्रके गुरु 'कनकनन्दि' दोनोंका समय अनुमानसे एक ही बैठता है। बहुत संभव है कि ये दोनों कनकनन्दि एक ही व्यक्ति हों।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३६)

नेमिचन्द्रसंहिता (प्रतिष्ठातिलक) ।

जैनसमाजमें, यद्यपि '**नेमिचंद्र**' नामके अनेक विद्वान्, आचार्य और भट्टारक हो गये हैं; परन्तु '**गोम्मटसार**' के कर्त्ता **नेमिचंद्रसिद्धान्त चक्रवर्त्तीका** नाम सबसे अधिक प्रसिद्ध है। इस प्रसिद्धि और नामसाम्यके कारण बहुतसे लोग 'नेमिचंद्र' नामके दूसरे विद्वानोंके बनाये हुए कुछ ग्रंथोंको गोम्मटसारके कर्त्ताके ही बनाये हुए समझने लगे हैं। अनेक विद्वानोंको भी इस विषयमें भ्रम हुआ है । **नेमिचंद्रसंहिता**, जिसका दूसरा नाम '**प्रतिष्ठातिलक**' है और जिसको '**नेमिचन्द्रप्रतिष्ठापाठ**' भी कहते हैं, उन्हीं ग्रंथोंमेंसे एक है जो गोम्मटसारके कर्त्ताके बनाये हुए समझे जाते हैं। इस ग्रंथकी एक पुरानी प्रति ताडपत्रोंपर लिखी हुई श्रवणबेल्गोलके पं० **दौर्बलि** शास्त्रीके भंडारमें मौजूद है। उसके अन्तमें '**शास्त्रावतार**' नामकी एक ४९ पद्योंकी **प्रशस्ति है,** जिसमें ग्रंथकर्ता **नेमिचंद्रने** अपने कुलादिकका अच्छा परिचय दिया है। इस प्रशस्तिको देखनेसे साफ मालूम होता है कि यह ग्रंथ गोम्मटसारके कर्ताका बनाया हुआ नहीं है बल्कि इसके बनानेवाले 'नेमिचंद्र,' मुनि न होकर, एक **बहुकुटुम्बी गृहस्थ** थे। प्रशस्तिके आदिमें, ब्राह्मण कुलकी प्राचीनताको दिखलाते हुए यह प्रगट किया गया है कि इस कुलके कुछ ब्राह्मण **कांची** नामके महानगरमें हुए हैं, जो ९३ क्रियाओंको पालनेवाले थे और जिनका **विशाखाचार्य**ने आदर किया था। यथा:—

पुराकृतयुगस्यादा-
वादिब्रह्मतनूभवः ।
अन्त्यब्रह्मा स भरतो या-
न्ससृज्य द्विजोत्तमान् ॥ १ ॥
तेषु केचिदथात्यक्त-
जिनमार्गाविवेकिनः ।
अविच्छिन्नान्वयाचार-
परावृत्तिरे द्विजाः ॥ २ ॥
तदन्वयभवाः केचि-
त्कांची नामा महापुरे ।
त्रिपंचाशत्क्रियानिष्ठा-
स्तस्थुः षट्कर्मकर्मठाः ॥ ३ ॥
तान् किलाद्रियतेस्मार्या-
न्विशाखाचार्यपुंगवः ।
उपासकमहावेद-
रहस्याद्युपदेशिनः ॥ ४ ॥

इसके आगे (पद्य नं० १९ तक) उन्हीं ब्राह्मणोंकी संतानमें **अकलंक, इन्द्रनन्दि, अनंतवीर्य, वीरसेन, जिनसेन, वादीभसिंह, वादिराज** और **हस्तिमल्ल** आदि अनेक विद्वानोंके अवतार लेनेका कथन किया है और फिर इन विद्वानोंकी वंशपरंपरामें अपने कुटुम्बका सिलसिला बतलाया है, जो इस प्रकार है:—

'**लोकपाल**' नामके एक ब्राह्मण हुए हैं जो 'गृहस्थाचार्य' कहलाते थे, **चोल** राजाके द्वारा पूजित थे और इस राजाकेसाथ अपने बन्धुवर्गसहित कर्णाटक देशको चले गये थे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उनके पुत्रका नाम **समयनाथ** था। समयनाथका पुत्र **राजमल**, राजमलका पुत्र **चिन्तामणि**, चिन्तामणिका पुत्र **अनन्तवीर्य**, अनन्तवीर्यका पुत्र **पार्श्वनाथ**, पार्श्वनाथका पुत्र **आदिनाथ**, आदिनाथका पुत्र **कोदण्डराम**, कोदण्डरामका पुत्र **ब्रह्मदेव** और ब्रह्मदेवका पुत्र **देवेन्द्र** हुआ। इनमें समयनाथको तार्किक, राजमल्लको कवि, चिन्तामणिको वादि और वाग्मी, अनन्तवीर्यको घटवादविशारद, पार्श्वनाथको गीत और आगम शास्त्रका जाननेवाला, आदिनाथको आयुर्वेदमें निपुण, कोदण्डरामको धनुर्वेदका वेत्ता, ब्रह्मदेवको बड़ा बुद्धिमान् तथा षट्कर्मकर्मठ और देवेन्द्रको संहिताशास्त्रमें निष्णात तथा राजमान्यतादि गुणोंसे युक्त लिखा है। यथाः—

आसीत्तदन्वये लोक–
पालाचार्य इति द्विजः।
गृहस्थाचार्यतां रूढो
विद्वान्निस्तारकोत्तमः॥ १६
चोलेन पूजितो राज्ञा
तेन राज्ञा समं स च।
प्रतिदेशाख्यकर्णाट–
देशं प्रापत्स्वबन्धुभिः॥ १७॥
पुत्रः समयनाथाख्यः
तस्यासीत्तर्ककर्कशः।
तत्पुत्रः कविराजादि–
मल्लतः कविशिखामणिः। १८
वादी वाग्मी च तत्पुत्र–
श्चिन्तामणिसमाह्वयः।
अनन्तवीर्यस्तत्सूनु–
र्घटवादविशारदः॥ १९
तदात्मजः पार्श्वनाथः
संगीतागमशास्त्रवित्।
आदिनाथस्तु तत्सूनु–
रायुर्वेदाविशारदः॥ २०॥
तस्यात्मजो धनुर्वेद–
वेदी कोदण्डरामकः।
तन्नंदनो ब्रह्मदेवो
धीमान् षट्कर्मकर्मठः॥ २१॥
देवेन्द्रस्तत्सुतो नाम्ना
देवेन्द्रोपमवैभवः।
संहिताशास्त्रनिष्णातः
कलासुकुशलः शुचिः॥ २२॥
राजमान्यो वदान्यश्च
जिनधामादिकारकः।
त्रिवर्गलक्ष्मीसम्पन्नः
चतुरो बन्धुवत्सलः॥ २३॥

देवेन्द्रकी धर्मपत्नी '**आर्यदेवी**' थी। आर्यदेवीके पिताका नाम **विजयपार्य** और माताका नाम **श्रीमती** था। चंद्रपार्य, **ब्रह्मसूरि** और **पार्श्वनाथ** ये तीनों आर्यदेवीके सगे भाई थे, जिनमें **ब्रह्मसूरि**को 'महाविद्वान्' लिखा है। यथाः—

सद्धर्मचारिणी तस्य
सैवाभूदार्यदेविका
या श्रीविजयपार्यस्य
श्रीमत्याश्च सुता सती॥ २४॥
यस्या सहोदरा धीरा–
श्चंद्रपार्यो बुधोत्तमः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महाविद्वान्ब्रह्मसूरिः
पार्श्वनाथ इति त्रयः ॥ २५ ॥

देवेन्द्रके आर्यदेवीसे तीन पुत्र उत्पन्न हुए;–१ आदिनाथ, २ नेमिचंद्र और ३ विजयप । आदिनाथ नामका पुत्र समस्त जैनसंहिताशास्त्रोंका पारगामी था और उसके यहाँ त्रैलोक्यनाथ तथा जिनचंद्रादिनामके पुत्रोंका जन्म हुआ। विजयपनामका पुत्र ज्योतिषादि शास्त्रोंमें निपुण था और उसका पुत्र समन्तभद्र साहित्यका प्रेमी हुआ। नेमिचंद्र नामका पुत्र (विवादस्थ प्रतिष्ठापाठका कर्त्ता) अभयचन्द्र नामके महोपाध्यायसे तर्क, व्याकरण और आगमको पढ़कर एक प्रसिद्ध विद्वान् हुआ । उसके कल्याणनाथ और धर्मशेखर नामके दो पुत्र उत्पन्न हुए, जिन दोनोंको ही शास्त्र-समुद्रके पारगामी लिखा है। यथाः—

तद्देवेन्द्रार्यदेव्याख्य-
दम्पत्योरादिनाथकः ।
नेमिचंद्रो विजय इति
पुत्रास्त्रयोऽभवन् ॥ २६ ॥
तत्रादिनाथः सर्वार्ह-
त्संहिताशास्त्रपारगः ।
तत्पुत्रास्त्रैलोक्यनाथ-
जिनचंद्रादयो बुधाः ॥ २७ ॥
धीमान्विजयपाख्यस्तु
ज्योतिःशास्त्रादिकोविदः ।
समन्तभद्रस्तुतत्पुत्रः
साहित्यरससान्द्रधीः ॥ २८ ॥
धीधना नेमिचंद्रस्तु
तर्कव्याकरणागमान् ।
अधीत्याभयचन्द्राख्य -
महोपाध्यायसन्निधौ ॥ २९ ॥
पदवाक्यप्रमाणज्ञ-
रूढिं वाढमुपागतः ।
पुत्रौद्वौ तस्य कल्याण-
नाथाख्यो धर्मशेखरः ॥ ३० ॥
इति तत्रादिमः सर्व-
शास्त्रवाराशिपारगः ।
द्वितीयस्तदीयोभू-
च्छास्त्रेषु सकलेष्वपि ॥ ३१ ॥

इसके बाद ग्रंथकर्ता नेमिचन्द्रने, अपना कुछ विशेष परिचय देते हुए, ग्रंथ बननेका सम्बंध प्रगट किया है, जिससे मालूम होता है कि नेमिचंद्र सदा धर्मार्थियोंको शास्त्रका व्याख्यान किया करते थे; उन्होंने सत्यशासनपरीक्षा आदि ग्रंथोंकी रचना की थी, राजसभाओंमें अनेक प्रतिवादी नैयायिकोंको जीतकर वे जैनधर्मकी बहुत कुछ प्रभावना करनेमें समर्थ हुए थे; उन्हें राजादिकोंके द्वारा आन्दोला, शिबिका (पालकी) और छत्ररूपी वैभवकी प्राप्ति हुई थी; वे याचकोंको दान देते हुए अपने बन्धुवर्गसहित भोगोंको भोगते थे, उन्होंने जैनमंदिर, मंडप और वीथियाँ बनवाई थीं और श्रीपार्श्वनाथभगवानके आगे गाने बजाने आदिका सामान जोड़ा था । इस प्रकार नेमिचंद धर्म, अर्थ और कामरूपी त्रिवर्ग-लक्ष्मीसे शोभित थे और राजाके द्वारा सन्मानित हुए स्थिरकदम्ब नामके नगरमें रहते थे। एक समय उनके मामा (संभवतः पार्श्वनाथ) ने जो कि पार्श्वनाथ भगवानका दृढ़ भक्त था, मामाके पुत्रोंने, पिताके भाइयोंने, स्वकीय भाइयोंने, भाई-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

योंके पुत्रोंने, निज पुत्रोंने और अन्य बन्धुवर्ग तथा विद्वानोंने उनसे प्रीतिपूर्वक यह प्रार्थना की कि, 'हे आयुष्मन् सर्वशास्त्रविशारदसूरे! आप एक उत्तम पंचकल्याणके विस्तारको लिये हुए प्रतिष्ठाशास्त्रकी रचना करो।' इस प्रार्थनाको सुनकर और जिनेंद्रकी भक्तिसे प्रेरित होकर नेमिचंद्रने यह 'प्रतिष्ठातिलक' नामका प्रतिष्ठाशास्त्र बनाया है। यथा:—

अथ यो नेमिचंद्रार्यः
शास्त्रं वेत्त्यखिलं स्फुटं।
व्याखाति शास्त्रमर्थिभ्यो
यः सदा धर्मकाम्यया ॥ ३२ ॥
सत्यशासनपरीक्षा-
मुख्यप्रकरणादिकं।
यस्तु शास्त्रं विरचय-
द्विश्वविद्वज्जनस्तुतं ॥ ३३ ॥
नृपास्थानेषु तर्केषु
कर्कशान्प्रतिवादिनः।
निर्जित्य बहुशोयस्तु
जैनं प्राभावयन्मतं ॥ ३४ ॥
यो नृपाद्यार्पितान्दोल-
शिबिकाछत्रवैभवः।
योददात्यर्थमर्थिभ्यो
भुंक्ते भोगान्स्वबन्धुभिः ॥ ३५ ॥
अकारयच्च यो जैन-
धाममंडपवीथिकाः।
गीतं (नृत्यं च) वाद्यं च
पार्श्वेशाग्रे नियोजयत् ॥ ३६ ॥
एवं यो धर्मकामार्थ-
त्रिवर्गश्रीविराजितः।
आस्ते स्थिरकदम्बाख्य-
नगरे राजपूजितः ॥ ३७ ॥
श्रीपार्श्वनाथपादाब्ज-
सेवाहेवाकमानसः।
मातुलः स्वस्य तत्पुत्राः
पितृव्याश्च सहोदराः ॥ ३८ ॥
तत्पुत्राश्च स्वपुत्राश्च
बन्धवोन्ये विपश्चितः।
कदाचित्प्रार्थयन्तेस्म
तमेनं प्रीतिमानसः ॥ ३९ ॥
आयुष्मन् श्रणु भोः सूरे
सर्वशास्त्रविशारद।
प्रतिष्ठाशास्त्रमेकं सत्
पंचकल्याणविस्तरं ॥ ४० ॥
विरच्यतामिति ततो
जिनभक्त्या च चोदितः।
स:चाहं नेमिचंद्राख्यो
निर्मिणोमि स्वशक्तितः ॥ ४१ ॥
प्रतिष्ठातिलकं नाम
प्रतिष्ठाशास्त्रमुत्तमं।
शास्त्रेऽत्र स्खलितं यन्मे
तद्बुधाः क्षन्तुमर्हत ॥ ४२ ॥

ऊपरके इस संपूर्ण परिचयसे इस विषयमें कोई संदेह बाकी नहीं रहता कि यह प्रतिष्ठापाठ गोम्मटसारके कर्ता उन नेमिचंद्र सिद्धान्त चक्रवर्तीका बनाया हुआ नहीं है जो मुनि थे और विक्रमकी ११ वीं शताब्दिमें हुए हैं। बल्कि इसके कर्ता नेमिचंद्र एक गृहस्थ थे और वे कवि हस्तिमल्लसे भी, जो विक्रमकी १३ वीं शताब्दिके अन्तमें हुए हैं, कई शताब्दि पीछेके विद्वान् हैं और इस लिए मेरी रायमें यह ग्रंथ लगभग १६ वीं शताब्दिका बना हुआ है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुनर्जन्म ।

लें०, पं० रूपनारायण पाण्डेय ।

(पिछले अंकसे आगे ।)

१ परोसिन—यह कौन है रे !

२ परोसिन—हम क्यों निकलें रे ?

३ परोसिन—क्यों निकलें ?

४ परोसिन—बतला तो सही !

५ परोसिन—मर मुर्दे !

दौलत०—(अवाक् होकर) वाह !

१ परोसिन—कलमुहा मर गया, अच्छा हुआ । (बैठती है ।)

२ परोसिन—लोगोंकी जान बची । (बैठती है ।)

३ परोसिन—दोनों लड़के पेट भर खायँगे । (बैठती है ।)

४ परोसिन—लड़की मगर खानेको न पावेगी । (बैठती है ।)

५ परोसिन—बुड्ढेको नरकमें भी जगह न मिलेगी । (बैठती है ।)

दौलत०—बैठ गईं !—दौलतराम सँभलो ! तुम्हारा अस्तित्व ही मिटाया जा रहा है ! अपनेको बचाओ—नहीं तो बस मरे !—(परोसिनोंसे) निकलो हरामजादियो यहाँसे; निकलो-निकलो ! न निकलोगी ? अच्छा ठहरो—(बाहरसे लकड़ी लाकर) निकल जाओ, इसीमें खैर है, नहीं तो देखो इसी लकड़ीसे—

१ परोसिन—वाह, खूब बना है !

दौलत०—निकलो !

२ परोसिन—मारेगा क्या ?

दौलत०—मार डालूँगा । (लाठी घुमाते हुए) निकलो !

३ परोसिन—मार तो सही ! देखें तो (ईंट उठाना ।)

दौलत०—अरे बापरे ! (पीछे हटता है ।)

४ परोसिन—निकल मुर्दे निकल, नहीं तो सिर तोड़ दूँगी !

दौलत०—(डरकर) नहीं नहीं—मैं जाता हूँ ।

५ परोसिन—नहीं तो (झाड़ू उठाकर) यह झाड़ू देखी है ?

दौलत०—अरे बचाओ ।

(दौलत भागता है और उसके पीछे दौड़ती हुई परोसिनें जाती हैं ।)

(दौलतकी लड़कीका प्रवेश ।)

लड़की—लालाजी ! लालाजी ! अम्मा रो रही हैं ।

(दौलतरामका प्रवेश ।)

दौलत०—कौन रो रहा है ?

लड़की०—अम्मा ।

दौलत०—क्यों ?

लड़की०—मैं क्या जानूँ ?

(नेपथ्यमें विलाप—)

" अरे तुम कहाँ चले गये—तैयार रसोई छोड़कर कहाँ चल दिये—ऊँ हूँ हूँ हूँ ! "

दौलत०—वाहवाह, औरत तकने मरा समझकर रोना शुरू कर दिया ! अरे मुनुआकी अम्मा—मैं जीता हूँ । आया । (लड़कीसे) चलो बेटी ।

(कन्याका जाना और उसके पीछे दौलतरामका जानेकी चेष्टा करना ।)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(दौलतरामके सालोंका प्रवेश उनके साथ सन्दूक पिटारे ट्रंक वगैरह हैं।)

१ साला–ले चलो, ले चलो !

दौलत०–अब यह क्या है !

२ साला–अजी कुलीको बुलाओ ।

३ साला–कुली ! कुली !

(प्रस्थान।)

दौलत०–अरे कुलीको क्यों पुकारते हो ? सब सामान क्यों घरसे बाहर निकाले फेंके देते हो ?

२ साला–ले जाँयगे ।

दौलत०–कहाँ ?

१ साला–कहाँ और कहाँ! अपने घर !–

दौलत०–क्यों ? मेरा सामान अपने घर क्यों ले जाओगे ?

२ साला–तुम्हारा सामान ?

दौलत०–जी ।

१ साला–(व्यंग्यके तौरपर) जी,–लो कुली आगये ।

(तीन चार कुलियोंके साथ तीसरे सालेका फिर प्रवेश।)

२ साला–उठाओ । पहले यह लोहेका सन्दूक उठाओ ।

(कुली लोग लोहेका सन्दूक उठानेकी कोशिश करते हैं।)

दौलत०–खबरदार ! (आगे बढ़ता है)

१ साला–चुप रहो ! (मारनेको तैयार होता है)

दौलत–बिहारी ! बिहारी ! (जाता है)

(सब सालोंका एक दूसरेको देखकर इशारा करना और हाथकी ओटमें हँसना।)

१ साला–बिहारीको लेकर फिर आरहा है।

२ साला—(कुलीसे) यह उठाओ—

३ साला—जल्दी जल्दी ।

(बिहारीके साथ दौलतरामका फिर प्रवेश।)

दौलत०—बिहारी, देखो तो सही कैसा अन्धेर है—

बिहारी—(दौलतके सालोंसे). क्यों साहब, आपलोग घरका असबाब कहाँ लिये जा रहे हैं ?

१ साला—क्यों न ले जाँय! ये सब चीजें अब हमारी बहनकी हैं।

२ साला—वह अब हम लोगोंके पास रहेगी।

३ साला—क्योंकि हमारे जीजाजी मर गये हैं।

दौलत०—देखते हो अंधेर ! मेरे जीतेजी यह अत्याचार हो रहा है । उधर स्त्री जारही है और इधर मेरा सब कुछ—(रोता है)

बिहारी—भाइयो ! दौलतरामकी विधवा इस समय मेरी स्त्री है ! क्योंकि हाल ही मेरी स्त्री मर गई है और तुम्हारी बहनका पति मर गया है।

दौलत०—इससे यह प्रमाणित होता है कि मेरी स्त्री तुम्हारी स्त्री है ?

बिहारी—कमसे कम यह साबित करना कुछ कठिन नहीं है । (दौलतके सालोंसे) आपलोग इस समय घर जाइए । इस लोहेके सन्दूकको मैं अपने जिम्मेमें लेता हूँ।

साले—यह क्या साहब !

बिहारी—ज्यादह चालाकी न कीजिएगा। मैं वकील हूँ। बस चले जाइए।

साले—अगर न जायँगे तो ?

बिहारी—तो कानूनी बहससे तुमलोगोंको उड़ा दूँगा। गवाहोंके द्वारा खाकमें मिला दूँगा।

साले—अरे बापरे ! चलो, चलो (जाते हैं)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बिहारी—(दौलतसे) अब आप भी जाइए। यह घर अब मेरा है। सेठ दौलतराम मर गये।

दौलत०—लेकिन मैं तो मरा नहीं।

बिहारी—इसके लिए प्रमाणकी आवश्यकता है। कोई गवाह है ?

दौलत०—क्यों, मेरी स्त्री गवाही देगी।

बिहारी—अच्छी बात है, अपनी स्त्रीको बुलाइए।

दौलत०—सुनती हो मुनुआकी अम्मा! जरा इधर आओ। लज्जा करके अब क्या होगा! मैं जान और मालसे जा रहा हूँ। बाहर आओ।

(रोते रोते चुन्नीका प्रवेश।)

मैं हुई अकेली छुटे सहारे सारे।
इस तरह छोड़ कर कहाँ सिधारे प्यारे॥
हूँ नहीं जानती राह, भटकना होगा।
ठोकर खाकर सिर-पैर पटकना होगा॥
हे प्राणनाथ, दो दरस, तरस कुछ खाओ।
पैरोंसे ठेलो नहीं, नाथ, अपनाओ॥
मैं व्याकुल रोती यहाँ तुम्हारे मारे।
इस तरह छोड़कर कहाँ० ॥

दौलत०—नहीं नहीं, मैं पैरोंसे नहीं ठेलूँगा। आहा, कैसी सती स्त्री है!

(चुन्नीका रोना)

यह कढ़ी पकौड़ी बड़े, मुँगौरी भाजी।
है सभी रसोई अभी बनाई ताजी॥
विधना, तूने क्या निठुर ठान ठाना है।
अफसोस, अकेले मुझे सभी खाना है॥
तुमको न बदे थे खान-पान ये न्यारे।
इस तरह छोड़कर कहाँ० ॥

दौलत०—रसोई बनाई है ? मैं भी तुम्हारे साथ खाऊँगा! आहा कैसी सती लक्ष्मी है!

(चुन्नीका रोना)

मल मलकर नित्य खिजाब अजीब मसाले।
सन ऐसे उजले बाल बनाकर काले॥
ज्वानीका सा सब रंग ढंग दिखलाना।
सोनेके तारों बँधे दाँत चमकाना॥
सपने ऐसी वह हँसी हुई दैयारे।
इस तरह छोड़कर कहाँ० ॥

दौलत०—अरे मैं हँसूँगा। (दाँत निकालकर हँसता है)

(चुन्नीका रोना)

आकर अब मुझको कौन कहेगा प्यारी।
बढ़िया ला देगा कौन दुपट्टे सारी॥
एसेंस, लवेंडर, टूथपाउडर साबन।
किससे अब माँगूँ, राम, जड़ाऊ जोशन॥
मिलकर मरते तो रँज न कुछ फिर था रे।
इस तरह छोड़कर कहाँ० ॥

दौलत०—मेरी प्यारी रो मत, मैं आता हूँ। (चुन्नीका हाथ पकड़ता है)

चुन्नी—अरे बापरे! यह कौन है!

दौलत०—मैं तुम्हारा स्वामी हूँ-तुम्हारा प्यारा हूँ-तुम्हारा नाथ, तुम्हारा प्राणेश्वर, तुम्हारा हृदयसर्वस्व सेठ दौलतराम हूँ। देखो, जरा इधर देखो।

चुन्नी—(घूँघट खोलकर देखकर) अरे बापरे! (मूर्च्छाका अभिनय करती है)

दौलत०—ऐं ? यह क्या बात है!

बिहारी—तू कौन पाजी है! भले आदमीकी औरतके बदनमें हाथ लगाता है ?

दौलत०—यह तो मेरी ही स्त्री है।

बिहारी—तुम्हारी!

दौलत—हाँ!

बिहारी—तुम बड़े भले आदमी हो!

दौलत०—यह मेरी स्त्री है।

(चुन्नीका उठना।)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दौलत०—वह देखो, होश आगया।

चुन्नी—मैं उनके बिना नहीं जी सकती।

बिहारी—धन्य पतिव्रता!

चुन्नी—मैं अबला सरला विह्वला बाला—

बिहारी—आहा हा हा!

चुन्नी—दैवकी सताई दुखपाई मुरझाई—

बिहारी—हाय हाय!

चुन्नी—मैं अलबेली नबेली अकेली कैसे रह सकती हूँ!

बिहारी—अकेली क्यों रहोगी मोहिनी, मायाविनी, बिहारीके जीतेजी तुमको काहेकी चिन्ता है?

दौलत०—बिहारी, तुम्हारी यह हरकत!

चुन्नी—अभी मेरे पतिका पीछा हुआ है—

बिहारी—मेरी भी स्त्री अभी मरी है—

चुन्नी—मनकी हालत—

बिहारी—बहुत—

दौलत०—खराब है! सो तो समझा। लेकिन—

बिहारी—(चुन्नीसे) जाओ, अब तुम भीतर जाओ! मैं ब्याहकी तैयारी करने जाता हूँ।

(चुन्नीका जाना)

दौलत०—कैसे! ब्याह और क्रियाकर्म एक साथ ही होगा! हा जगदीश्वर!

बिहारी—लाठी कहाँ है? यह है। (लाठी लेना)

दौलत०—लकड़ीकी क्या जरूरत है?

बिहारी—स्त्रीको वश करनेकी तैयारी पहलेहीसे कर लूँ। ५०००) रुपयेका गहना है। १००००) रुपये नगद तो चुन्नीके पास हैं।

दौलत०—देखो, तुम मेरे बहनोई हो—वकील हो। तुम ऐसे नीच नहीं हो सकते कि मेरे जीते ही मेरी स्त्रीसे ब्याह करो।

बिहारी—नीच कैसा? विधवासे व्याह करनेमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

दौलत०—किन्तु वह तो मेरी स्त्री है।

बिहारी—यह बात तो वह खुद नहीं स्वीकार करती।

दौलत०—ईश्वर! (रोता है)

बिहारी—देखिए साहब, आपको देखकर मुझे दुःख होता है। शायद आप दौलतराम सेठ ही हों। किन्तु प्रमाण नहीं है। कानूनमें आप टिक नहीं सकते। बतलाइए, क्या करूँ?

दौलत०—वही तो। स्त्रीने नहीं पहचाना, या मैं सचमुच मर गया हूँ, देखूँ। समस्या यह है कि मैं मर गया हूँ या जीता हूँ? मैं लहरोंमें पड़कर तूफानसे भरे संसार-सागरमें बहा-बहा फिर रहा हूँ, या खेल खेल रहा हूँ? मैं शेर रीछ साँप आदिसे परिपूर्ण बनके घोर घने अन्धकारमें रो रहा हूँ, या गाना गाता हूँ? चुटकी काटकर देखूँ! (चुटकी काटता है) लगता तो है! सिर हिला डुला कर देखूँ! (वैसा ही करता है) कुछ भी समझमें नहीं आता!—नहीं यह न जीना है न मरना है। यह जीने-मरनेकी एक खिचड़ी है! कैसी आफत है! मैंने स्वप्नमें भी नहीं सोचा था कि ऐसी दशा मेरी होगी।—ये कौन हैं? ये तो सब मेरे सगे हैं! अच्छा, छिपकर देखूँ ये क्या करते हैं! (छिपता है)

(बाजेगाजेके साथ दौलतके नातेदारोंका प्रवेश।)

१ आदमी—यहीं बैठो? (बैठता है)

२ आदमी—हाँ, आज जरा जी भरकर आनन्द मनालें। (बैठता है)

३ आदमी—(बैठकर) बुड्ढा अब जाकर मरा।

४ आदमी—मैं तो बहुत खुश हुआ। (बैठता है)

५ आदमी—एक पैसा किसीको नहीं दिया। (बैठता है)

१ आदमी—बड़ा कंजूस था!

Ganesh Verni Digambar Jain Institute, Narια, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३ आदमी—वह समझे था कि मैं कभी नहीं मरूँगा।

२ आदमी—तो यह प्रमाणित हुआ कि दौलतराम सेठको भी मौत नहीं छोड़ती !

४ आदमी—खूब कहा—हाः हाः हाः हाः—

५ आदमी—हाः हाः हाः हाः—

दौलत०—ये लोग तो खूब खुश देख पड़ते हैं।

१ आदमी—बुड्ढा बड़ा सूम था।

२ आदमी—आफ़त गई।

दौलत०—एहसानमन्द हूँ।

३ आदमी—वसीयतनामेमें ज़रूर हमलोगोंके लिए कुछ लिख गया होगा।

दौलत०—(अँगूठा दिखाकर) एक पैसा भी नहीं।

५ आदमी—किसीको तो दे ही गया होगा।

दौलत०—किसीको नहीं।

६ आदमी—साथ में ले जा सकेगा नहीं !

दौलत०—सन्दूकें न ले जा सकूँगा, चाभीका गुच्छा तो ले जा सकूँगा।

२ आदमी—दूसरे जन्ममें सिर पीटेगा।

दौलत०—सिर पीटनेको तो जी अभी चाहता है।

३ आदमी—आप न कुछ खाया न पिया—देखो तो !

दौलत०—भाई अब ऐसा न होगा। दिनको अंगूर वग़ैरह मेवा और रातको बढ़िया भोजन !

४ आदमी—अब उसके दोनों लड़के सारी दौलत उड़ावेंगे।

दौलत०—छोड़ जाऊँगा, तब न !

५ आदमी—अच्छा अब गाओजी !

दौलत०—अच्छा गाओ, सुनूँ।

(सबका गाना)

गज़ल।

प्राण-रक्षामें सदा
प्राणान्तका है सामना।
जानकर यह, कौन करता,
जन्मकी फिर कामना॥
भोर होते नींद खुलती,
हर घड़ी आफत खड़ी।
आयुको अपनी बिताना,
घोर है शव-साधना॥
स्नान करते भूख लगती
है सुलगती आगसी।
तब जुटाना अन्नका,
उसको निगलना चावना॥
अन्न चुकजाता, न बुझती
पेटकी ज्वाला अहो।
नोन है तो घी नहीं,
संयोग कुछ ऐसा बना॥
लेटते ही मक्खियाँ
दिनको हमेशा दिक करें।
रातको फ़िर मच्छड़ोंका
जुल्म होता है घना॥
हाय, आधी रातको
जेवर जड़ाऊके लिए।
रूठना रोना प्रियाका
मिनमिनाना माँगना॥
चीज़ लो तो दाम उसके
माँगते हैं फिर असभ्य।
राह रोके हैं महाजन
और करते लुचपना॥
ब्याह करते ही कई
बच्चे भी हो जाते हैं ढेर।
ब्याहनेमें औ पढ़ानेमें
दिवाला पीटना॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(दौलतरामके दोनों पुत्रोंका प्रवेश ।)

१ पुत्र—जायदाद आधी मेरी है ।

२ पुत्र—एक पैसा भी तुम्हारा नहीं है । लालाजी वसीयतनामेमें सब मेरे नाम लिख गये हैं।

दौलत०—लिख गया हूँ ! कहाँ ? मुझे तो नहीं याद ?

१ पुत्र—वसीयतनामा जाली है। मैं साबित करूँगा ।

२ पुत्र—कभी नहीं ।

१ पुत्र—कभी नहीं ।

२ पुत्र—मैं मिस्टर दासको अपनी ओरसे खड़ा करूँगा ।

१ पुत्र—मैं बैरिस्टर जैक्सनसे पैरवी कराऊँगा ।

२ पुत्र—मैं दस हज़ार रुपये खर्च करूँगा ।

१ पुत्र—मैं पन्द्रह हज़ार रुपये उठाऊँगा ।

२ पुत्र—तू बेईमान है !

१ पुत्र—तू धोपेबाज है !

२ पुत्र—तू मूसा है !

१ पुत्र—तू मच्छड़ है !

२ पुत्र—मेरे घरसे निकलजा !

१ पुत्र—तेरा घर !—तेरे बापका घर है ।

२ पुत्र—निकलो—

१ पुत्र—चुपरह—

१ नातेदार—अजी झगड़ा क्यों करते हो ! आज खुशी मनाओ। ऐसा आनन्दका दिन, तुम्हारे बाप मरे हैं !

३ नातेदार—हाँ, पेट भरकर खाओ ।

४ नाते०—जी भरकर आनन्द मनाओ ।

५ नाते०—नाचो !

२ नाते०—गाओ !

१ नाते०—मैंने एक गीत जोड़ा है !

२ नाते०—हाँ गाओ, वही गीत—

३ नाते०—कौन ?

१ नाते०—वही जो मैंने जोड़ा है, 'बुड्ढा मरा है'।

दौलत०—इसी बीचमें गीत भी बनगया। बलिहारी !

(सबका गाना)

बुड्ढा मरा है बुड्ढा मरा है
बुड्ढा मरा है मरा है मरा है ।

दौलत०—बस, अब तो सहा नहीं जाता।

(सबका गाना)

बुड्ढा मरा है मरा है मरा है

(दौलतराम लकड़ी हाथमें लिये आगे बढ़कर गाता है–)

बुड्ढा मरा नहिं बुड्ढा मरा नहिं
देखो अजी अभी बुड्ढा मरा नहिं ।

१ पुत्र—ऐं ऐं ! यह कौन है ?

२ पुत्र—हाँ, यह कौन है ?

दौलत०—(लड़कोंसे) तुम चाहे जितना आश्चर्य प्रकट करो, लेकिन मुझको विश्वास है कि बुड्ढा अभी नहीं मरा और वह सशरीर तुम्हारे आगे खड़ा है ।

१ पुत्र—कैसे !

२ पुत्र—ठीक तो है, कैसे !

(दोनों भाग जाते हैं)

नातेदार लोग—(दौलतसे) तुम कौन हो जी, हमारे गानेमें खरमंडल डाल दिया ! निकलो । तुम कौन हो ?

दौलत०—मैं इन दोनों लड़कोंका बाप हूँ।

नातेदार०—बाप ! हो ही नहीं सकता। हम विश्वास ही नहीं करते । तुम साबित करो कि बाप हो ।

दौलत०—सब कुछ साबित ही करना होगा ! भाइयो ! सुनो–इस बातको तो कोई साला नहीं साबित कर सकता कि वह बाप है। उस बात पर तो विश्वास ही कर लिया जाता है।

Jainesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नातेदार०—नहीं, हम लोग विश्वास नहीं करते। निकल जाओ।

दौलत०—कहाँ जाऊँ?

नातेदार०—यह हम क्या जानें? हम नहीं जानते।

दौलत०—दोनों लड़कोंने पहचान लिया है, मगर मुँहसे स्वीकार नहीं किया। बाहरे कलजुगी लड़के!

नातेदार०—(दौलतसे) अजी सोचते क्या हो? दूधिया भंग है। पियोगे? लो ज़रासी।

दौलत०—(कुछ सोचकर) मैं तो जीता हूँ, फिर दूधिया क्यों छोड़ूँ। (भंग लेकर पीता है)

(रण्डीका प्रवेश।)

१ नातेदार—लो बी गौहरजान आगई। (गानेके ढंगसे) "आओ आओ मित्र।"

२ नातेदार—(उसी स्वरमें) "बैठिए सिर आँखोंपर"

३ नातेदार—(उसी स्वरमें)

इश्ककी गोली बना कर
बाम पर फेंका करूँ।
तू मुझे देखे-न देखे
मैं तुझे देखा करूँ॥

४ नातेदार—ठीक नहीं हुआ (दूसरे स्वरमें)—

इश्ककी गोली बनाकर
बाम पर फेंका करूँ।
तू मुझे देखे-न-देखे
मैं तुझे देखा करूँ॥

५ नातेदार—दे-ए-ए-ए-ए-ए।

दौलत०—वाह, यहाँ तो सभी उस्ताद हैं।

१ नाते०—देखते क्या हो!

२ नाते०—बी गौहरजानको गाने दो।

दौलत०—(भंगके नशेमें) लेकिन मैं दौलतराम सेठ—

३ नाते०—पहले मैं गाऊँगा!—खा-आ-आ-आ-आ-।

४ नाते०—चुप।—करूँ ऊँ-ऊँ।

५ नाते०—गाओ जान, कोई नाटककी चीज़ गाओ—

गौहर०—अच्छा, सुनिए—

बूटी पिलाके लुभाय
गया कोई मुझे।

१ नाते०—वाह वाह, वाह वाह।

२ नाते०—ठहरो बीबी, अन्तरा मुझे कहने दो।—

बड़े सबेरे जो कोई छाने
बाकी लंबी दीठ।
उड़त चिरैया वह पहचाने
गिरी सड़कसे ईंट॥

१ नाते०—सबेरे फेर छनेगी भंग सबेरे फेर छनेगी—

३ नाते०—सुनो—

दुसरे पहरे जो कोई छाने
वाके लंबे कान।
तवा कटोरा कलसी बेची
धर लोटे पर ध्यान॥

१ नाते०—सबेरे फेर छनेगी भंग सबेरे फेर छनेगी।—

४ नाते०—अरे मेरी भी तो सुनो—

तिसरे पहरे जो कोई छाने
ज्यों भादौंकी कीच।
घरके जानें मर गये और
आप नशेके बीच॥

दौलत—अरे घरके जानें तो जाना करें, पर न मैं मरा हूँ और न नशेके बीचमें हूँ!—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१ नाते०—अरे चुप, सबेरे फेर छनेगी भंग सबेरे—

५ नाते०—मेरी क्या योंहीं रह जायगी। सुनो—

चौथे पहरे जो कोई छाने
बच्चा आपी आप।
बे-जोरू बे-ससुरेके हो
छै बच्चेका बाप॥

दौलत०—वाह बेटा, तुम्हारी खूब रही!

१ नाते—अररररर सबेरे फेर छनेगी भंग—

गौहर—मुझे कोई बूटी पिलाके
लुभाय गया कोई मुझे।

(सबका नाचना। साथ ही साथ दौलतका भी नाचना और गिरना।)

नातेदार—लो बी गोहरजान, एक ढेर हुआ तुम्हारे गानेसे।

दौलत०—(पड़े ही पड़े नशेमें) अबे चुप—मैं सेठ—दौलतराम हूँ। या नहीं?—फिर—मैं कौन हूँ? कौन भाई दौलत, आगये!

(बिहारी, दारोगाके वेषमें रामचन्द्र और एक हवलदार दो सिपाहियोंके वेषमें नन्दू, मोहन और सुन्दरका प्रवेश।)

बिहारी—हाँ आगया दादा—

नातेदार—अरे पुलिस आगई। भागो भागो (भाग जाते हैं!)

बिहारी—(दारोगासे) यही दौलतराम बनकर आया है- असामियोंको धोका देनेके लिए।

दारोगा—क्या तुम कहते हो कि मैं सेठ दौलतराम हूँ?

दौलत०—(हाथ जोड़कर) जी जमादार साहब।

(सिपाहियोंका पकड़लेना!)

दारोगा—पकड़ो इसको।

दौलत०—जी मैं—

दारोगा—दौलतराम सेठ है!

दौलत०—(काँपता हुआ) जी, कभी किसी जन्ममें नहीं!

दारागो—तब उसके जैसा रूप रखकर क्यों आया?

दौलत०—जी—

दारोगा—झूठ, सच बोलो।

दौलत०—दारोगा साहब, मेरे कहनेके पहले ही आपने मेरी बातको झूठा ठहरा लिया!

दारोगा—वह मैं जानता हूँ।

दौलत०—दारोगा साहब, यह तो मैं जानता था कि पुलिसके आदमी सर्वशक्तिमान् होते हैं, लेकिन यह न जानता था कि सर्वज्ञ भी होते हैं।

दारोगा—सच बोलो। (रूलका हूला मारना)

दौलत०—जी वही कहनेवाला था, लेकिन इस मारसे तो सच बात भूली जाती है। अब मैं क्या कहूँ तो आप खुश हों?

दारोगा—कि मैं दौलत सेठ नहीं हूँ। (रूल दिखाता है)

दौलत०—कभी नहीं। मारो न बाबा!

दारोगा०—फिर तुम कौन है?

दौलत०—संपत सेठ—

दारोगा—संपत सेठ कौन?

दौलत०—दौलत सेठका छोटा भाई।

दारोगा—तो फिर दौलत सेठके जैसा चेहरा बनाकर क्यों आया?

दौलत०—जी—(सोचता है)

दारोगा—सच बोलो। (रूलका हूला मारता है) उसका ऐसा चेहरा बनाकर—

दौलत०—हम दोनों जोड़िया भाई थे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दारोगा—चुप रह।

दौलत०—अच्छा चुप रहूँगा।

दारोगा—(बिहारीको दिखाकर) ये कौन हैं?

दौलत०—पहले थे मेरे—अर्थात् दौलतरामके बहनोई; लेकिन अब उसकी विधवा स्त्रीके पति हैं!

दारोगा—यह तुम सच कह रहे हो?

दौलत०—जी मैं झूठ कभी कभी बोलता हूँ।

दारोगा—नाक रगड़ो, कान पकड़ो।

दौलत०—क्यों जमादार साहब?

दारोगा—चुप रहो, कान पकड़ो।

दौलत०—अच्छा साहब। (वही करता है)

दारोगा—कहो—मैं कभी किसी जन्ममें सेठ दौलतराम नहीं था।

दौलत०—ऐसा ही होगा साहब। मैं कभी न था।

बिहारी—Barred by limitation.

दारोगा—अच्छा, छोड़ दो।

बिहारी—(दारोगासे) चलिए, कुछ जलपान कर लीजिए।

दौलत०—और मेरी भूतपूर्व विधवाके साथ दारोगा साहबकी जान पहचान भी करा देना।

दारोगा—चुप रहो!

दौलत०—(डरकर) जी!

(दौलतके सिवा सब चल देते हैं)

दौलत०—(आप ही आप) अन्तको कलके हूलोंसे यह साबित होगया कि मैं दौलत सेठ नहीं हूँ। कहा ही है कि मारके आगे भूत भागते हैं। नहीं भाई, मैं मरगया था, यह बात झूठ नहीं है। मरगया था। यह मेरा पुनर्जन्म है। आज नया अनुभव और नया विश्वास पाकर मैं फिर जी उठा हूँ। मरनेके बाद जो कुछ होनेवाला था वह जीतेजी अपनी आँखोंसे ही देख लिया। गरीबोंको सताकर और अपनेको भी धोका देकर जो रुपया मैंने जमा किया है वह इन लोगोंके यों उड़ानेके लिए! बस, अब नहीं! अब अगर मैं अपना जीना साबित कर सका तो गरीबोंको अन्न-वस्त्र बाँटूंगा—और खुद भी पेट भरकर खाऊँगा। जबतक साबित नहीं करता तब तक हँस-लो-खालो। अगर अपना जीना साबित न करसका तो वनको चला जाऊँगा और इस लिए तपस्या करूँगा कि पुनर्जन्म न हो।

(बिहारी और चुन्नीका प्रवेश)

(चुन्नीका गाना)

इसीसे रखूँ तुम्हें नजरोंमें।
तनिक फिरी जो आँख पिया
तो देख न पड़ें घरोंमें॥ इसी०
रत्न समझ, आँचलमें बाँधूँ,
पीतम तुम्हें नरोंमें।
आओ, रसमें रीस भला क्या,
चलो चलें कमरोंमें॥ इसी०॥

चुन्नी—(दौलतसे) क्या सोच रहे हो?

दौलत०—यही कि! (हाथ जोड़कर बिहारीसे) प्रणाम। (प्रणाम करना। फिर चुन्नीके हाथ जोड़ना) क्या हुआ है?

बिहारी—दौलतरामजी!

दौलत—कौन दौलतराम?

बिहारी—तुम!

दौलत०—कौन कहता है! तुम लोगोंने मिलकर अभी साबित कर दिया है कि मैं सेठ दौलतराम नहीं हूँ। अब मैं दौलतराम हूँ? नहीं, मैं दौलतराम नहीं हूँ।

चुन्नी—अजी ख़फ़ा क्यों होते हो। तुम तो मेरे प्राणनाथ हो।

दौलत०—कैसे! अभी तो सब साबित हो गया है। ... सार्टीफ़िकेट,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अखबार, गवाह-और सबसे बड़ा प्रमाण रूलका हूला। इतनेपर भी मैं तुम्हारा प्राणनाथ बना हुआ हूँ! मैं कौन हूँ? मैं नहीं हूँ।

चुन्नी—नहीं, तुम हो।

दौलत०—यह सुनकर बहुत खुश हुआ।

चुन्नी—तुम नाहक ख़फ़ा क्यों होते हो!

दौलत—मैं ख़फ़ा हूँ, चिढ़ गया हूँ, मुझे हैरान न करो, मैं वनको जाऊँगा।

चुन्नी—मैं भी जाऊँगी।

दौलत—मैं फ़कीर हो जाऊँगा।

चुन्नी—मैं फ़कीरिन हो जाऊँगी।

दौलत०—और तपस्या करूँगा कि पुनर्जन्ममें मुझे ब्याह न करना पड़े। और अगर ब्याह भी करना पड़े तो तुम्हारे ही साथ न करना पड़े।

चुन्नी—मैं तपस्या करूँगी कि तुम्हारे ही साथ मेरा ब्याह हो।

दौलत०—नहीं, तुम मुझे प्यार नहीं करतीं।

चुन्नी—वाह, प्यार क्यों नहीं करती।

(बिहारी सिर हिलाता है।)

दौलत०—सिर हिलाते हो! अब क्या कोई और उपद्रव सोच रहे हो।

बिहारी—तुम्हारा यही विश्वास है?

दौलत०—विश्वास? अब क्या यह साबित करना चाहते हो कि यह मेरी स्त्री भी नहीं है! जन्मपत्र निकालो—सार्टीफ़िकेट हासिल करो—अख़बारमें लिखो।

बिहारी—अच्छा तुम्हारी स्त्री तुमको देता हूँ।

दौलत०—बड़ी कृपा हुई!

बिहारी—अच्छा सेठजी, आपको कुछ शिक्षा मिली या नहीं?

दौलत०—बहुत कुछ।—यह मेरा पुनर्जन्म है।

गाना।

गज़ल (सोहनी)

व्यर्थ ही तूने जमा जोड़ी
मिला सुख क्या भला?
हाय, इसके वास्ते काटा
अनेकोंका गला?
गाड़ना, संदूकमें रखना,
जमाकरना, वृथा।
कालके आगे कहीं चलती
किसीकी है कला?
जो न परउपकारमें या
भोगमें दौलत लगी।
तो कहो, फिर साथ
उसको कौन अपने ले चला?
दान या तो भोग या फिर
नाश धनकी गति कही।
जो न देता और खाता,
नाश ही उसको फला॥
सूमके पीछे सभी धन
दसजगह लुट जायगा।
इस लिए खाले, खिलाले
और बनले मनचला॥

(पर्दा गिरता है।)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शिक्षा ।

(ले०, श्रीयुत बाबू खूबचन्दजी सोधिया
बी. ए, एल. टी. ।)

समाजके सामने यह महत्त्वका प्रश्न सदैव ही उपस्थित रहता है कि अपनी संतानको किस भाँति शिक्षा दी जाय, उन्हें ऐसे नागरिक किस भाँति बनाया जाय जिसमें कि वे अपने जीवनका सर्वोत्तम उपयोग कर सकें । समाजकी सत्तामें हमेशा अदल बदल हुआ ही करती है । नये नये परिवर्तन होते हैं और प्राचीन विचार-प्रणाली तथा रीति-रिवाज अपने बलको खोकर धीरे धीरे मृतप्राय हो जाते हैं । समाजकी जरूरतें भी समय समय बदला करती हैं । प्राचीन भारतको एक समय संतान-वृद्धि इष्ट थी, इसके विपरीत आज हमें संतानवृद्धिको कम करना ही ठीक जँचता है । इसी लिए समाजको समय समयपर इन नवीन बलोंका विचार करके अपनी जरूरतोंके माफिक अपने बालकोंकी शिक्षामें फर्क करना ही पड़ता है । यथार्थमें अपनी आवश्यकताओंको पूर्णरूपसे पूरी करनेवाली शिक्षाप्रणालीका प्राप्त हो जाना कोई सरल बात नहीं है । जब कि इंग्लेंड सरीखे सुसभ्य और विचारशील देशमें भी राष्ट्रीय शिक्षा पूरी संतोषजनक नहीं है, तब भारत जैसा अवनति प्राप्त देश यदि अपनी शिक्षाप्रणालीसे असंतुष्ट हो तो कौनसा आश्चर्य है ।

जरा जातीय शिक्षाकी गहनताका भी तो विचार करो । प्रथम तो योग्य शिक्षाका मतलब क्या है यही हल होना है, दूसरे कौन कौनसे विषय पढ़ाये जानेसे यह उद्देश्य सिद्ध होगा, तीसरे शिक्षापद्धति और शिक्षक किस तरह प्राप्त किये जायँ, चौथे नैतिकशिक्षा और औद्योगिक विभाग, पाँचवें स्कूलोंको बनवाना, छट्ठे इस विभागका ऐसा संगठन करना ताकि समाजका प्रत्येक बच्चा उसे सरलतासे प्राप्त कर सके, इत्यादि सब बातोंका योग्य संस्कार करना और समय पर उसकी आलोचना करते रहना कोई सरल काम नहीं है । जबतक देशके प्रत्येक व्यक्तिको शिक्षाका महत्त्व भलीभाँति विदित न होगा, जबतक हम इस बातकी जिम्मेदारी अपने सिरपर लेनेके लिए राजी न होंगे–तबतक इस विषयमें यथेष्ठ उन्नति होना संभव नहीं है । हमारे अगुओं और अधिकारियोंके चित्तपर यह बात भलीभाँति अंकित हो जाना चाहिए कि देशके जीवन–मरणका प्रश्न यही है । संतोषका विषय है कि कुछ दिनोंसे सरकारने शिक्षा विस्तार करनेका निश्चय कर लिया है; परंतु भारत सरीखे भारी देशके लिए शिक्षाका यथेष्ठ बंदोवस्त कर देना कोई सहज बात नहीं है । इस काममें प्रचुर धन और प्रचुर समयकी आवश्यकता है । इसी लिए सरकार हमसे बार बार कहा करती है कि इस विषयमें हम लोग आगे बढ़ें । सर्वसाधारणको अब इस विषयमें सावधान होकर विचार करना चाहिए ।

हर्षका विषय है कि थोड़े समयसे हमारा ध्यान भी इस ओर जाने लगा है । समाचार-पत्रों और सभाओंमें जहाँ तहाँ इस विषयकी चर्चा होने लगी है । सब लोग एक स्वरसे प्रचलित प्रणालीके दोषोंको दिखला रहे हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किसी बातके दोषोंको देख लेना जितना सहज है, उतना उन दोषोंका प्रतिकार करनेवाले उपायोंको बता देना सहज नहीं है । हमें एक बात यह भी ध्यानमें रखना चाहिए कि वस्तुके गुण और दोषोंकी सच्ची आलोचना बिना उसकी परीक्षा किये नहीं हो सकती । समाज-सुधारका क्षेत्र इतना विस्तीर्ण है कि इसमें सहसा उतावली करके किसी कार्यको कर डालना अच्छा नहीं हो सकता । गिरते-पड़ते, उठते-बैठते, साहसपूर्वक आशाके सहारे चलते चलते उन्नतिका शिखर ही प्राप्त होता है ।

इसमें संदेह नहीं कि वर्तमान प्रणालीमें कई बड़े बड़े दोष हैं; परंतु नवीन प्रणाली कैसी होनी चाहिए इस विषयमें भी तो बड़ा मतानैक्य है । एक ओर वर्तमान प्रणालीके पृष्ठपोषक अधिकांश इसीको कायम रखकर जहाँ तहाँ कुछ कुछ रद्दोबदल करनेसे ही संतुष्ट हैं, दूसरी ओर कई लोग प्रचलित पद्धतिका नये सिरेसे संस्कार करना आवश्यक समझते हैं । मतानैक्य होना तो कोई बुरी बात नहीं है; परंतु विषयके महत्त्वको देखकर जहाँ तक हो सुधार इस भाँति किया जाय कि जिसमें पैसे और परिश्रमकी बचतके साथ ही साथ अधिकसे अधिक लाभ मिल सके ।

वर्तमान प्रणालीमें क्या क्या दोष हैं? पहला और सबसे भारी तो यही है कि स्कूलों और कालेजोंसे निकले हुए विद्यार्थी सिर्फ नौकरी पर ही अवलम्बित रहते हैं । कारण इसका यह है कि उन्हें ऐसी कोई कला अथवा उद्योग नहीं सिखाया जाता जिससे कि उनमें स्वावलम्बनकी मात्रा बढ़े । इसमें सन्देह नहीं कि एक समय ऐसा था जब कि हमें राज्यकी नौकरियाँ करके राज्यप्रबन्ध-सम्बन्धी शिक्षा प्राप्त करनेकी आवश्यकता थी; परन्तु सरकारकी कृपासे इस विषयमें हमने खूब उन्नति कर ली है । जो कुछ बाकी है धीरे धीरे और भी पूरी होजायगी; परंतु अब सिर्फ नौकरीके लिए ही शिक्षा प्राप्त करनेका समय नहीं है । शिक्षाका विस्तार भी अब इतना होगया है कि सब शिक्षितोंको सरकारी नौकरी मिल जाना भी संभव नहीं । इस बातको भी सब लोग मानते हैं कि शिक्षित मनुष्योंका बेकार बैठना अच्छा नहीं । भूखे बैठे किसीसे रहा नहीं जा सकता । कहावत है कि निठल्ले मनुष्यके हृदयमें शैतानका निवास होता है । समाजका उपकार करनेके बदले ऐसे लोग अक्सर उसे बड़ा नुकसान पहुँचाते हैं । इस कठिन समस्याका कोई न कोई उपाय अवश्य ढूँढ़ना चाहिए । अब ऐसा समय नहीं है कि इस विषयकी उपेक्षा की जाय ।

शिक्षित युवाओंको रोजगार किस भाँति मिले—ऐसी शिक्षाकी व्यवस्था क्योंकर की जाय कि स्कूल और कालेजोंसे निकलकर हमारे युवाओंको नौकरीके लिए भटकना न पड़े, यही प्रश्न हमारे सामने उपस्थित है । कई लोग इसको हल करनेका एक विचित्र ही उपाय बताते हैं । वे कहते हैं कि हर साल सरकारी नौकरीकी जगहें कितनी खाली होती हैं यह गिन लो—अपने स्कूल कालेजोंमें उसी प्रमाणसे विद्यार्थियोंकी संख्या रखलो अथवा कुछ नहीं तो परीक्षाओंको सख्त कर दो—ऐसा करनेसे काम हो जायगा । विद्यार्थी उतने ही पास होसकें जितने नौकरी पा सकते हैं, पर यह उपाय कोई अच्छा उपाय नहीं है । हम पूछते हैं, भला वे विद्यार्थी जो कई बार फेल होकर घर बैठेंगे कौन सा रोजगार करेंगे? यदि उत्तरमें कहा जाय कि हम अधिक विद्यार्थियोंको भर्ती करेंगे ही नहीं, तो कहना होगा कि यह असंभव है । शिक्षा एक ऐसी मिठाई है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कि जिसकी एक बार चाट लग जाने पर मनुष्य उसे खाये बिना नहीं रह सकता। शिक्षाके क्षेत्रको संकुचित करनेकी सलाह अच्छी नहीं है, वह निराशा और असंतोषसे भरी हुई साफ नजर आती है। इस सलाहको माननेके लिए कोई तैयार न होगा।

इस रोगका उत्तम उपाय यही है कि औद्योगिक शिक्षाकी व्यवस्थाकी जाय। इसके दो उपाय हैं या तो जिस भाँति साधारण शिक्षाके छोटे स्कूलसे लगा कर बड़े बड़े कालेज तक हैं उसी भाँति औद्योगिक शिक्षाके लिए भी ऐसे स्कूल हों जहाँ निम्न श्रेणीके कौशलसे लगाकर ऊँची ऊँची कलाओंकी शिक्षा दी जाय। प्रत्येक शहरमें एक एक औद्योगिक स्कूल खोलनेसे बड़ा भारी लाभ होगा। अथवा यदि खर्चके कारण ऐसी व्यवस्था नहीं हो सकती तो कमसे कम इतना तो अवश्य होना चाहिए कि प्रत्येक स्कूलमें एक एक औद्योगिक कक्षा खोल दी जाय। ऐसे विद्यार्थी जो पढ़ने लिखनेमें कुशल नहीं हैं इन कक्षाओंमें स्थान पा सकेंगे। इस भाँति एक निशानेसे हम दो मतलब सिद्ध कर सकेंगे। पहला, हमारे विद्यार्थी नौकरीके लिए चिल्लाहट न मचायँगे, दूसरे हमारा उद्योग भी उन्नत हो जायगा। इस विषयमें सिर्फ एक ही अड़चन नजर आती है। वह यह कि वर्ण-व्यवस्थाके कारण क्या उच्च जातिके हिन्दू अपने लड़कोंको इन शालाओंमें भेजनेको राजी होंगे? जहाँ तक देखा जाता है, अब लोग वर्ण-व्यवस्थाके उतने अंध-उपासक नहीं हैं और वे इन शालाओंका उपयोग करनेमें न हिचकेंगे।

वर्तमान प्रणालीके विरुद्ध दूसरा दोष यह है कि अँगरेजी भाषाके द्वारा शिक्षा प्राप्त करनेमें अधिक श्रम और समय खर्च होता है। इससे बालकपनकी बहुमूल्य वर्षें और स्वास्थ्य बुरी तरहसे नष्ट होता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि मेट्रिकुलेशन तककी सात सालकी शिक्षामें जो ज्ञान सम्पादित होता है यदि मातृभाषाके द्वारा शिक्षा दी जाय तो उतना ज्ञान दो सालहीमें प्राप्त हो सकता है। बड़ा भारी नुकसान तो इससे यह है कि बालकको कामयाबी हासिल न होनेसे उसे शिक्षासे घृणा हो जाती है। यदि शिक्षा मातृभाषाके द्वारा दी जाय तो निस्संदेह बड़ा लाभ हो। यहाँ तक तो सब लोगोंकी राय एक ही है; परंतु प्रश्न यह है कि क्या हमारी मातृभाषायें इतनी प्रौढ़ हो गई हैं कि उनके द्वारा शिक्षा दी जासके? इस प्रश्नके विषयमें लोगोंकी रायें भिन्न भिन्न हैं! बहुतोंका मत है कि मातृभाषायें इस कार्यके लिए सर्वथा उपयुक्त हैं। पुस्तकें तैयार की जासकती हैं और उनके द्वारा शिक्षा मजेसे दी जासकती है। इसके विरुद्ध कई लोगोंकी समझमें समय अभी नहीं आया है। कुछ भी हो, इस विषयमें अधिक विवाद करनेकी आवश्यकता नहीं है। मातृभाषा द्वारा शिक्षा प्राप्त करना यही प्राकृतिक नियम है। हर्षका विषय है कि सरकारका ध्यान भी कुछ कुछ इस ओर झुकने लगा है। वह दिन अब दूर नहीं है जब कि शिक्षा मातृभाषा द्वारा दी जाने लगेगी।

अँगरेजी भाषाने हमारा बड़ा उपकार किया हैं। हमारे संकुचित विचार-क्षेत्रको विस्तृत कर देना इसीका काम है। इस भाषाका साहित्य कई अमूल्य भावोंसे भरा हुआ है। मातृभाषाओंका खजाना बढ़ानेके लिए भी अँगरेजीका ज्ञान आवश्यक है। संसारके सामयिक विचारोंसे परिचित रहना भी अँगरेजी जाने बिना कठिन है और खास कर व्यापारमें तो इसके बिना बड़ी ही असुविधा होती है। इस लिए अँगरेजीकी शिक्षा तो हमें अवश्य देना होगी; परंतु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अँगरेजी अन्य भाषाओंकी तरह क्यों न पढ़ाई जाय ? इस विषयमें भी हमें कई कठिनाइयोंका साम्हना करना होगा । कालेजोंकी उच्चशिक्षा अभी मातृभाषाओंमें नहीं दी जा सकती । यदि हाईस्कूलोंमें शिक्षा अँगरेजीमें न दी जाय-तो क्या कालेजोंकी शिक्षा उसके द्वारा आसानीसे प्राप्त की जासकेगी ? यथार्थमें इस विषयमें आधिक वादविवाद न करके समय ही की प्रतीक्षा करनी चाहिए ।

शिक्षापद्धतिके विषयमें भी बहुत कुछ सुधार करनेकी आवश्यकता है । कई विषय यथा- भूगोल इतिहास स्कूलोंमें बुरी रीतिसे पढ़ाये, जाते हैं । पहाड़ों और नदियोंके नाम तथा इतिहासकी तारीखें रटते रटते विद्यार्थियोंका जी ऊब आता है । विद्यार्थियोंको इन विषयोंसे अभिरुचि उत्पन्न करानेका उद्देश्य शिक्षकोंको अपने सामने रखना चाहिए । शिक्षाको व्यवहारोपयोगी बनाना हमारा कर्तव्य है ।

इस समयका बड़ा भारी प्रश्न शिक्षाका विस्तार है । देशमें अशिक्षाका राज्य फैला हुआ है । समाजको इससे बढ़कर हानि और क्या हो सकती है , जब कि अज्ञानमें हम इतने डूबे हुए हैं कि सौमेंसे ८० मनुष्योंको काला अक्षर भैंसेके बराबर है। तब बताओ उन्नति किस भाँति हो सकती है ? उन्नतिके जितने रास्ते हैं उन सबमें सबसे पहली और भारी अड़चन जनसमूहका अशिक्षित होना है । मानसिक, आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक उन्नति होनेका सर्वप्रधान उपाय शिक्षा ही है । निरक्षरताके समान देशका दूसरा भयानक शत्रु कोई नहीं है। इसलिए राजा और प्रजा दोनोंका कर्तव्य है कि जिस भाँति हो सके शिक्षाका विस्तार किया जाय । नैतिकशिक्षाका प्रश्न भी बड़े महत्त्वका है । परंतु नैतिकशिक्षाका मतलब हमें भलीभाँति समझ लेना चाहिए । नैतिकशिक्षाका मतलब पुस्तकें पढ़ लेना ही नहीं है । चरित्रगठन करनेके लिए अच्छी आदतें डालना ही सबसे अच्छा उपाय है । यह बात निस्संदेह सत्य है कि बालकोंके सामने अच्छे आदर्श रक्खे जायँ; परंतु बालकोंकी आदतोंको सावधानीसे देखना भी आवश्यक है । हमारे देशमें ज्योंही माता पिताओंने लड़केका नाम स्कूलमें भर्ती करा पाया कि वे उसकी ओरसे बिलकुल निश्चिंत हो जाते हैं । यह बात ठीक नहीं है । यदि तुम बालककोंको २४ घंटे गुरुके सामने नहीं रख सकते तो जितने समय तक वह पाठशालामें नहीं है तुम्हीं उसके जिम्मेदार हो । प्रत्येक माता पिताका कर्तव्य है कि वह अपने बालकोंके आचरण पर दृष्टि रक्खे ।

हमारे युवाओंका बड़ा भारी दोष यह है कि वे आलसी हो जाते हैं । अपना काम खुद करनेकी तो उनमें हिम्मत ही नहीं रहती । उसका सबब कुछ तो यह है कि विद्यार्थी समझते हैं कि अँगरेजी पढ़कर बाबू बनेंगे, खूब तनख्वाह मिलेगी--काम करना तो कुलीगिरी है । अक्सर माता पिता भी इस विषयमें ला-परवा रहते हैं । वे कहते हैं लड़का तो पढ़ता है उससे बाजारका काम न लेना चाहिए । यह बड़ी गल्ती है । दूसरा कारण बोर्डिंगहाउसोंकी अव्यवस्था है जहाँ विद्यार्थियोंको पानी भी बहुधा नौकर ही पिलाते हैं । इनके सिवाय और भी कई कारण हैं। यथा (१) मानसिक श्रमकी अधिकता (२) विषय विभागमें ऐसा कोई विषय नहीं जिसमें शारीरिक श्रम करना पड़े (३) परीक्षाफलोंकी कड़ाई (४) शारीरिक खेल कूदमें योग न देना। हमें आवश्यक है कि अपने बालकोंकी इस बुरी टेव पड़ जानेके कारणोंको देखें और उन्हें दूर करें ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शिक्षाका विषय बहुत ही गहन है। इस विषयमें वर्षों तक लगातार विचार करनेकी आवश्यकता है। इसके विचारके लिए प्रत्येक ग्राममें एक एक शिक्षा—समितिका होना आवश्यक है। इन सभाओंमें ग्रामके सभ्य इकट्ठे होकर शिक्षा विषयक बातोंकी आलोचना किया करें। सरकारने इसी अभिप्रायसे प्रत्येक स्कूलमें एक एक बोर्ड स्थापित किया है। दुखका विषय है कि सरकारकी इस मंशाका लाभ हम न उठावें। शहरोंमें तो इस प्रकारकी सभायें अवश्य ही होना चाहिए। ऐसी सभाओंका प्रचार होनेसे माता पिताओंकी शिक्षाके विषयमें रुचि बढ़ेगी।

लड़कियोंकी शिक्षाके विषयमें हमें बहुत कुछ करनेकी आवश्यकता है। जब तक मातायें सुशिक्षित न होंगीं तब तक देश और समाजका कल्याण न होगा। आनन्दका विषय है कि इस विषयमें अब हम सचेत हो चले हैं; परंतु सच पूछो तो हमने आज तक कुछ भी उन्नति नहीं की है। यदि सैकड़े पीछे हम एक या दो पुत्रियोंको शिक्षित कर सके तो मानना होगा कि हमने अभी तक भरे हुए समुद्रमें सिर्फ मन दो मन शक्कर ही डाली है। परन्तु याद रहे कि शिक्षाकी जरूरतको जब तक हम पूरी न करेंगे, उन्नतिके लिए चिल्लाना मानो सघन जंगलमें रोना ही है।

वह क्यों न निराश हो ?

ले०—बाबू जुगल किशोरजी, मुख्तार।

प्रबल धैर्य नहीं जिस पास हो,
हृदयमें न विवेक-निवास हो।
न श्रम हो, नहिं शक्ति-विकाश हो,
जगतमें वह क्यों न निराश हो ?

महाकवि वीरनन्दि।

मूलसंघ अर्थात् दिगम्बर सम्प्रदायकी चार शाखायें हैं—नन्दि, सिंह, सेन और देव। इन शाखाओंकी भी प्रतिशाखायें हैं जो गण, गच्छ आदि नामोंसे प्रसिद्ध हैं। नन्दिसंघमें जो कई गण गच्छादि हैं, उनमेंसे एक 'देशीय'[1] गण भी है। चन्द्रप्रभकाव्यके कर्त्ता महामना वीरनन्दि इसी देशीय गणमें हुए हैं। ग्रन्थके अन्तमें उन्होंने जो अपना थोड़ासा परिचय दिया है उससे मालूम होता है कि वे आचार्य अभयनन्दिके शिष्य थे और अभयनन्दिके गुरुका नाम गुणनन्दि तथा दादा-गुरुका नाम भी गुणनन्दि[2] था।

बभूव भव्याम्बुजपद्मबन्धुः
पतिर्मुनीनां गणभृत्समानः।

---

१ जैनसिद्धान्तभास्करकी चौथी किरणमें देशीयगणको देवसंघका गण बतलाया है; परन्तु बाहुबलिचरितके निम्न श्लोकसे मालूम होता है कि वह नन्दिसंघका ही भेद या नामान्तर थाः—

पूर्वं जैनमतागमाब्धिविधुव-
च्छ्रीनन्दिसंघेऽभव-
न्सुज्ञानर्द्धितपोधनाः
कुवलयानन्दा मयूखा इव।
सत्संघे भुवि देशदेशनिकरे
श्रीसुप्रसिद्धे सति
श्रीदेशीयगणो द्वितीयविलसन्-
नाम्ना मिथः कथ्यते ॥ ८७ ॥

२ छपी हुई, और दो हस्तालिखित प्रतियोंमें भी गुणनन्दिके गुरुका नाम गुणनन्दि ही लिखा है। मालूम नहीं यह कहाँ तक ठीक है, कुछ पाठान्तर न हो!

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सदग्रणीर्देशिगणाग्रगण्यो गुणाकरः
श्रीगुणनन्दिनामा ॥ १ ॥
गुणग्रामाम्भोधेः
सुकृतवसतेर्मित्रमहसा-
मसाध्यं यस्यासीन्न किमपि
महीशासितुरिव ।
स तच्छिष्यो ज्येष्ठः
शिशिरकरसौम्यः समभव-
त्प्रविख्यातो नाम्ना
विबुधगुणनन्दीति भुवने ॥ २ ॥
मुनिजननुतपादः
प्रास्तमिथ्याप्रवादः
सकलगुणसमृद्ध-
स्तस्य शिष्यः प्रसिद्धः ।
अभवदभयनन्दी
जैनधर्माभिनन्दी
स्वमहिमजितसिन्धु-
र्भव्यलोकैकबन्धुः ॥ ३ ॥
भव्याम्भोजविबोधनोद्यतमते-
र्भास्वत्समानत्विषः
शिष्यस्तस्य गुणाकरस्य सुधियः
श्रीवीरनन्दीत्यभूत् ।
स्वाधीनाखिलवाङ्मयस्य भुवन-
प्रख्यातकीर्त्तेः सतां
संसत्सु व्यजयन्त यस्य जयिनो
वाचः कुतर्काङ्कुशाः ॥ ४ ॥

अर्थात् भव्यजनरूपी कमलोंको प्रफुल्लित—हर्षित करनेवाले मुनिसंघके स्वामी, गणधरकी तरह ज्ञानवान्, सज्जनोंमें श्रेष्ठताका मान पाये हुए, देशिगणमें प्रधान माने-जाने वाले और गुणकी खान ऐसे श्रीगुणनन्दि नामके एक आचार्य हुए। उन गुणसमुद्र सुकृतके स्थान गुणनन्दि आचार्य्यके लिए—राजाको जैसे कोई बात असाध्य या कठिन नहीं होती—कुछ कठिन न था। इन गुणनन्दिके प्रधान शिष्य दूसरे गुणनन्दि हुए, जो चन्द्रमाके समान शान्त-स्वभाव और पृथ्वीमें प्रसिद्ध थे। जिनके चरणोंको मुनिजन नमस्कार करते हैं, मिथ्यावाद जिन्होंने नष्ट कर दिया है, जो सब श्रेष्ठ गुणोंसे युक्त हैं, जैनधर्मका प्रभाव बढ़ानेवाले हैं, जिन्होंने अपनी गंभीरतारूप महिमासे समुद्रको जीत लिया है और जो भव्यजनोंके एकमात्र बन्धु—हितकर्त्ता थे ऐसे अभयनन्दि मुनि उन दूसरे गुणनन्दि आचार्यके शिष्य हुए। उन भव्यजनरूपी कमलोंको विकसित—आनन्दित करनेवाले, सूर्यके समान तेजस्वी और गुणोंके धारी बुद्धिमान अभयनन्दि आचार्यके शिष्य वीरनन्दी हुए, जिन्होंने सम्पूर्ण वाङ्मयको अपने अधीन कर लिया था—जो अपनी रचनामें अपनी इच्छाके अनुसार अर्थगाम्भीर्य, शब्द-सौन्दर्य आदि गुण ला सकते थे और जिनकी कीर्ति संसारमें प्रख्यात थी उन वीरनन्दिके वचन कुतर्कका नाश करनेको अंकुश समान थे। सभाओंमें उन्हींके वचनोंकी विजय होती थी।

अपने विषयमें उन्होंने इससे अधिक परिचय देनेकी आवश्यकता नहीं समझी। परन्तु आजकलके पाठक एक प्रसिद्ध महाकविके सम्बन्धमें इतनेसे सन्तुष्ट नहीं हो सकते। उन्हें अधिक नहीं तो कमसे कम इतना तो अवश्य मालूम हो जाना चाहिए कि वे किस समय हुए हैं।

एकीभाव-स्तोत्रके कर्ता महाकवि वादिराजसूरिने अपना पार्श्वनाथकाव्य शक संवत् ९४७ में * बनाया है। इसके प्रारंभमें रचयिताने

* शाकाब्दे नगवार्धिरन्ध्रगणने
संवत्सरे क्रोधने,
मासे कार्तिकनाम्नि बुद्धिमहिते
शुद्धे तृतीयादिने ।
सिंहे पाति जयादिके वसुमतीं
जैनी कथेयं मया,
निष्पत्तिं गमिता सती भवतु वः
कल्याणनिष्पत्तये ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूर्वके अनेक ग्रन्थकर्त्ताओंका स्तवन करते हुए लिखा है:—

चन्द्रप्रभाभिसम्बद्धा
रसपुष्टा मनः प्रियम् ।
कुमुद्वतीव नो धत्ते
भारती वीरनन्दिनः ॥ ३० ॥

इस श्लोकमें महाकवि वीरनन्दिके चन्द्रप्रभचरितका स्पष्ट उल्लेख है । इससे मालूम होता है कि चन्द्रप्रभकाव्य पार्श्वनाथकाव्यकी रचनाके समयसे अर्थात् शक संवत् ९४७ से पहले बना है ।

आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीने अपने गोम्मटसार ग्रन्थमें नीचे लिखी गाथायें कही हैं:—

णमिऊण अभयणंदिं
सुदसागरपारगिंदणंदिगुरुं ।
वरवीरणंदिणाहं
पयडीणं पच्चयं वोच्छं ॥ ७८५ ॥

—कर्मकाण्ड, अ० ६ ।

णमह गुणरयणभूसण
सिद्धंतामियमहब्धिभवभावं ।
वरवीरणंदिचंदं
णिम्मलगुणमिंदणंदिगुरुं ॥ ८९६ ॥

—कर्मकाण्ड, अ० ८

जस्स य पायपसाए-
ण-णंतसंसारजलहिमुत्तिण्णो ।
वीरिंदणंदिवच्छो
णमामि तं अभयणंदिगुरुं ॥ ४३६ ॥

कर्मकाण्ड, अ० ४ ।

अर्थात्—अभयनन्दिको, शास्त्रसमुद्रके पार पहुँचे हुए इन्द्रनन्दि गुरुको और वीरनन्दिनाथको नमस्कार करके प्रकृति-प्रत्यय अध्यायको कहता हूँ ॥ ७८५ ॥ हे गुणरूप रत्नोंके भूषण चामुण्डराय ! सिद्धान्तरूप अमृतसमुद्रके बढ़ानेवाले वीरनन्दि चन्द्रमाको और निर्मल गुणोंके धारक इन्द्रनन्दि गुरुको नमस्कार करो ॥८९६॥ जिनके चरणोंके प्रसादसे वीरनन्दि और इन्द्रनन्दि शिष्य अनन्त संसारसे पार हुए उन श्री अभयनन्दि गुरुको नमस्कार करता हूँ॥४३६॥

इन गाथाओंमें इन्द्रनन्दि वीरनान्दि और अभयनन्दि इन आचार्योंका उल्लेख है और अन्तिम गाथासे मालूम होता है कि इन्द्रनन्दि और वीरनन्दि ये दोनों अभयनन्दिके शिष्य थे । इन्द्रनन्दिको नेमिचन्द्रने अपने गुरुके रूपमें स्मरण किया है और साथ ही वीरनन्दिको भी जगह जगह नमस्कार किया है । इससे भी जान पड़ता है कि वीरनन्दि और इन्द्रनन्दि ये दोनों अभयनन्दि गुरुके सहाध्यायी शिष्य होंगे ।

चन्द्रप्रभके कर्त्ता अपनेको भी अभयनन्दिका शिष्य बतलाते हैं, इससे जान पड़ता है कि नेमिचन्द्रने जिन वीरनन्दिका स्मरण किया है वे ही चन्द्रप्रभकाव्यके कर्ता हैं ।

गोम्मटसार-कर्मकाण्डमें ३९६ नम्बरकी एक गाथा इस प्रकार है:—

वरइंदणंदिगुरुणो
पासे सोऊण सयलसिद्धंतं ।
सिरिकणयणंदिगुरुणा
सत्तट्ठाणं समुद्दिट्ठं ॥

अर्थात्—श्रीकनकनन्दिगुरुने इन्द्रनंदिगुरुके पास सारे सिद्धान्तको सुनकर सत्त्वस्थानका कथन किया ।

इसमें जिन कनकनन्दिका उल्लेख है, वे संभवतः वे ही हैं जिनका वर्णन श्रवणबेल्गोलके ४७ वें शिलालेखमें है । शिलालेखमें लिखा है कि गुणनान्दि आचार्यके ३०० शिष्य थे, उनमें ७२ शिष्य बहुत ही बड़े सिद्धान्तशास्त्री थे और उन सबमें देवेन्द्र सैद्धान्तिक सबसे अधिक प्रसिद्ध थे । इन देवेन्द्र मुनिके शिष्य कलधौतनन्दि या कनकनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्ती थे ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चन्द्रप्रभकी प्रशस्तिके अनुसार गुणनन्दिके शिष्य अभयनन्दि और उनके वीरनन्दि हैं। जान पड़ता है उन्हीं गुणनंदिकी परम्परामें ही पूर्वोक्त कनकनन्दि हैं। अर्थात् गुणनंदिके ३०० शिष्योंमेंसे जिस तरह एक देवेन्द्र होंगे उसी प्रकार अभयनन्दि भी होंगे। देवेन्द्रके शिष्य कनकनन्दि हुए और अभयनन्दिके वीरनन्दि हुए।

आचार्य नेमिचन्द्रकी लिखावटसे जान पड़ता है कि वीरनंदि, इंद्रनन्दि अभयनन्दि, कनकनन्दि आदि सब उनके समकालीन थे। अतएव यदि नेमिचन्द्रका समय मालूम हो जाय तो लगभग वही समय वीरनन्दिका सिद्ध हो जायगा।

गोम्मटसारकी अन्तिम गाथाओंसे मालूम होता है कि नेमिचन्द्र आचार्यने यह ग्रन्थ चामुण्डरायकी प्रेरणासे बनाया था और चामुण्डरायने स्वयं इस ग्रन्थकी एक कर्णाटकी-वृत्ति बनाई थी। अत: चामुण्डरायके समयमें ही नेमिचन्द्र हुए हैं, यह निर्विवाद है।

चामुण्डराय गंगवंशीय राजा राचमल्लके प्रधान मंत्री और सेनापति थे। राचमल्लके भाई रक्कस गंगराजने शक संवत् ९०६ से ९२१ तक राज्य किया है और शायद रक्कस गंगराजके बाद ही राचमल्लको सिंहासन मिला था। कनड़ीभाषाके प्रसिद्ध कवि रन्नने शक संवत् ९१५ में 'पुराणतिलक' नामक ग्रन्थकी रचना की है और उसने आपको रक्कस गंगराजका आश्रित बतलाया है। चामुण्डरायकी भी अपने पर विशेष कृपा रहनेका वह जिकर करता है। कर्णाटकाकविचरितके कर्त्ताने चामुण्डरायका जन्म शक संवत् ९०० के लगभग बतलाया है। इन सब बातोंसे शक संवत् ९०० के लगभग चामुण्डरायका समय सिद्ध होता है और यही समय नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीका भी समझना चाहिए *।

* बृहद्द्रव्यसंग्रहकी भूमिकामें साहित्यशास्त्री पं० जवाहरलालजीने नेमिचन्द्रका समय शक संवत् ६०० सिद्ध किया है; परन्तु उसमें जो प्रमाण दिये गये हैं, वे सब ऊँटपटाँग हैं--उनमें कोई तथ्य नहीं।

ऊपर यह कहा ही जा चुका है कि शक संवत् ९४७ में वादिराजने वीरनन्दिका उल्लेख किया है। अतएव इससे पहले शक संवत् ९०० या विक्रम संवत् १०३५ के लगभग वीरनन्दिका समय समझना चाहिए। विक्रमकी ग्यारहवीं शताब्दिके प्रारंभमें वे इस धरामण्डलको सुशोभित करते थे।

वीरनन्दि नामके अनेक विद्वान् हो गये हैं। एक वीरनन्दि 'आचारसार' नामक यत्याचार-ग्रन्थके प्रणेता भी हैं; बृहद्द्रव्यसंग्रहकी भूमिकामें पं० जवाहरलालजी शास्त्रीने उन्हें और चन्द्रप्रभकाव्यके कर्ताको एक ही बतला दिया है; परन्तु यह भ्रम है। वे मेघचन्द्र त्रैविद्यदेवके शिष्य थे जिनका कि स्वर्गवास शक संवत् १०३७ में हुआ था। एक वीरनन्दिका जिकर श्रवणबेलगुलके ४७ वें शिलालेखमें है; परन्तु वे महेन्द्रकीर्त्तिके शिष्य थे।

महाकवि वीरनन्दिका केवल एक चन्द्रप्रभचरित नामका काव्य उपलब्ध है। उन्होंने इसके सिवाय और कोई ग्रन्थ रचा या नहीं, इसका पता नहीं।

इस ग्रन्थकी अन्तप्रशस्तिसे और आचार्य नेमिचन्द्रने उन्हें जिन शब्दोंमें स्मरण किया है उनसे, मालूम होता है कि वे केवल कवि ही नहीं थे—अखिल वाङ्मय पर उनका अधिकार था, वे सभाओंमें बोलनेवाले अच्छे वक्ता थे और सिद्धान्तशास्त्रोंके ज्ञाता भी थे।

कविने अपने स्थानादिका उल्लेख कहीं भी नहीं किया है। तो भी जान पड़ता है कि वे कर्णाटकप्रान्तके ही रहनेवाले होंगे। क्योंकि नेमिचन्द्र, चामुण्डराय आदि सब उसी प्रान्तमें हुए हैं।

नोट--सम्पादकने यह लेख पं० उदयलालजी काशलीवाल द्वारा प्रकाशित हिन्दी-चन्द्रप्रभचरितकी भूमिकाके लिए लिखा था; उपयोगी समझकर हितैषीमें भी प्रकाशित कर दिया जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सहनशीलता और प्रेम ।

(ले०—श्रीयुत बाबू भैयालालजी जैन ।)

कोई भी मनुष्य जो अपने जीवनको इस संसारमें, सुखमय करना चाहता हो और अपना वर्तमान शरीर छोड़नेके पश्चात् अपने जीवात्माको सुखी बनाना चाहता हो, उसे अपने निकट तथा दूरके सम्बन्धियोंकी ओरसे, अपने पड़ोसियोंकी ओरसे तथा अन्य परिचित या अपरिचित लोगोंकी ओरसे, अपने मन्द प्रारब्धकर्मके उदयसे जो दुःख आ पड़ें उन्हें चिन्ता या विलाप किये बिना प्रसन्न मनसे सहन करनेका स्वभाव डालना चाहिए । इतना ही नहीं किन्तु जो अपनेको योग्य कारणके बिना ही दुःख देता हो न तो उससे द्वेष करना चाहिए और न बैर बाँधना चाहिए; न उसे शाप देना चाहिए और न किसीके समक्ष उसकी निन्दा करनी चाहिए। मनुष्योंका एक बड़ा भाग अज्ञानवश होनेके कारण भूलका पात्र है । जो दुःख मिलता है, वह अपने पूर्वके कोई दुष्कर्मोंके फलरूप प्राप्त होता है । ऐसा समझ कर अपनेको जो दुःख देता हो, उसपर मनमें किसी प्रकारका खेद न लाकर, विशुद्ध प्रीति रखना चाहिए । इस संसारमें सब प्रकारसे सुखी कोई भी नहीं है । सब मनुष्योंको दुःख भोगना ही पड़ता है । इसलिए दुःखके समय मनुष्य ऊपर कहे गये दो शुभ गुणोंका आचारण करे तो वह दुःखमें भी सुख और शान्तिका अनुभव कर सकता है ।

सुखी होनेके लिए मनुष्यको पर्वतों तथा पृथ्वीकी स्थितिका विवेकपूर्वक अवलोकन करके उनके धैर्यका सावधानीसे अनुसरण करना चाहिए। कितने मनुष्य अपने प्रयोजनके लिए वृक्षोंकी जड़ तथा डाली काटते हैं; उनकी छाल निकालते हैं, तथा उनके ऊपर चढ़कर फल और फूलोंको तोड़ते हैं । किन्तु वे वृक्ष उनपर न तो लेश मात्र क्रोध करते हैं और न वैर ही बाँधनेका प्रयत्न करते हैं—सब दुःखोंको प्रसन्न मनसे सहन करते हैं । इतना ही नहीं किन्तु वे ही लोग यदि धूपसे संतप्त हो उनकी छायामें बैठने आते हैं तो बिना किसी प्रकारकी आना-कानी किये बैठने देते हैं और अपनी छायाकी शीतलतासे उनके शरीरकी संतप्तताको दूर करते हैं। जो वृक्षको पत्थर या लकड़ी मारता है, उसे वह उल्टा फल फूल देता है । पत्थर, धातु अथवा रत्नोंके लिए कई लोग पर्वतको खोदते हैं; परन्तु वह उन खोदनेवाले लोगोंपर क्रोध न करके उल्टा उन्हें उनकी इच्छित वस्तुयें देकर सन्तोष करता है । पृथ्वीपर लोग कई अपवित्र वस्तुयें डालते हैं तथा स्वार्थवश होकर, स्थान स्थान पर उसका छेदन भेदन करते हैं, किन्तु वह उनपर किसी प्रकारका क्रोध नहीं करती वरन् उन्हें अमूल्य पदार्थ देकर प्रसन्न होती है । देखो, वृक्षादि जड़ कहलानेवाले पदार्थोंमें कितनी भारी सहनशीलता है ! अपकार करनेवालोंके ऊपर भी उनकी कितनी भारी प्रीति रहती है ! !

कहावत है कि " जितनी आकृतियाँ उतनी प्रकृतियाँ । " इस लिए इस जगत्में अपने ही समान सबका स्वभाव हो, यह सम्भव नहीं है । जिस प्रकार अपनी मुखाकृति पूर्णतया किसीसे नहीं मिलती, उसी प्रकार अपना स्वभाव भी सर्वांशमें किसीसे मिलना सम्भव नहीं है। जिसके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वभावके साथ अपना स्वभाव न मिले और वह कदाचित् अपनी शक्ति भर हमको दुःख पहुँचावे, उस समय भी विवेकपूर्वक यदि हम अपने मनको उत्तम प्रकारसे समाधान कर सकें तो उस दुःखका बुरा असर होनेके बदले हमको सुखका अनुभव होगा। कोई भी मनुष्य, जो अपने मनमें सच्चा विवेक रखता है, उसे इस पृथ्वीपर लेश मात्र भी दुःखकी प्रतीति होना सम्भव नहीं है। इसके विपरीत यदि उसके मनमें सच्चे विवेकका अभाव हो तो उसको प्राप्त हुए सुखमें भी दुःखका भान होना सम्भव है। वस्तुओंकी ऐसी दशा होनेसे हमें सर्वदा उत्तम सहवासमें रहना चाहिए, अवकाशके अनुसार उत्तम पुस्तकोंका श्रवण, पठन तथा मनन करना चाहिए और सर्वदा शुभ विचार करके, अपने हृदयमें सच्चे और उच्च प्रकारके ज्ञानकी वृद्धि करना चाहिए। ऊँचे ज्ञानकी वृद्धि होनेसे हमको प्रत्येक प्रतिकूल प्रसंगमें सहनशील होने तथा प्रसन्न रहनेका बल प्राप्त होगा। जिस मनुष्यको परमात्माको प्रसन्न करनेकी इच्छा हो, उसे प्रत्येक प्राणीके हृदयमें परमात्माका वास है, ऐसा विचार कर, निर्दोष मार्गपर चलके, सब प्राणियोंको प्रसन्न करनेका प्रयत्न करना चाहिए। परमात्माकी कृपा सम्पादन करनेके इच्छुकको तो कीड़े मकोड़े सदृश क्षुद्र प्राणियोंपर भी विशुद्ध प्रीति रखना चाहिए, फिर सब मनुष्योंपर और विशेषकर अपने सम्बन्धियों तथा इष्ट मित्रोंपर सच्चा प्रेम करना चाहिए, इसमें तो कहना ही क्या है?

विवेकी मनुष्यको अपना हृदय संकीर्ण न रखकर जितना हो सके उतना उसे विशाल बनानेका प्रयत्न करना चाहिए, अर्थात् सब जगत् अपने स्वरूपके एक स्थानमें समा जाय इतनी विशालता हमको अपने हृदयकी करना चाहिए। जो मनुष्य अपने हृदयको इतना बृहत् बना सकता है वह सर्वदा प्रसन्नताका अनुभव करने के लिए, भाग्यशाली होता है। जिस प्रकार अपनेको दुःख प्रिय नहीं है, उसी प्रकार प्राणी मात्रको दुःख प्रिय नहीं है। ऐसा समझकर बुद्धिमान् पुरुष किसी भी प्राणीको दुःख नहीं देता और अपनी सामर्थ्यानुसार सब प्राणियोंको सुख हो ऐसे विचार और प्रवृत्तिका सेवन करता है।

यह सर्वदा स्मरण रखना चाहिए कि, इस संसारमें, प्रायः सब मनुष्योंको न्यूनाधिक दुःख भोगना पड़ता है। किसी भी प्रकारका दुःख आनेपर मनुष्यको अपने मनमें ग्लानि व चिन्ता न लानी चाहिए; और न किसीके साम्हने इस सम्बन्धमें विलाप करना चाहिए। अपनी मन्दप्रारब्धसे जो दुःख आपड़े, उसको प्रसन्न मनसे सहन करनेकी आदत डालना चाहिए। ऐसा स्वभाव बनानेसे लौकिक कार्योंमें भी वाधा नहीं पड़ती और पारलौकिकमें भी उन्नति होती है। चिन्ता और विलाप मनुष्यके तन और मन दोनोंकी शक्तिको क्षीण करते हैं। यह कदापि न भूलना चाहिए कि आये हुए दुःखकी निवृत्तिके लिए सज्जन लोग जो जो उपाय बतावें अथवा जो निर्दोष उपाय अपने मनमें उत्पन्न हों उनको कार्यमें परिणत करनेमें कोई हानि नहीं है। जैसे, उस प्रसंग पर सुपात्रको, यथाशक्ति दान देना, अथवा परम पवित्र परमात्माका ध्यान या स्मरण करना बहुत लाभदायक है। अपत्ति पड़ने पर शोकसे आपघात करनेका विचार करना मनकी निर्बलता है। मनमें आपघात करनेके विचार मात्रसे पापका बन्ध होता है। इसलिए ऐसे समय सत्संगमें रहकर, आपघातका विचार ही मनमें न आने देना चाहिए। दुःखके समय मनुष्य धैर्य न रखके आत्मघात करता है, परन्तु उसे स-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रण रखना चाहिए कि पापका फल भविष्यमें अवश्य भोगना पड़ता है, इस लिए मनुष्यको दुःख आ पड़ने पर और कोई उपायकी शरण लेना चाहिए। परन्तु ऐसा पाप भूलकर भी न करना चाहिए। अपने किये हुए पाप कर्मोंसे ही मनुष्यको दुःख भोगना पड़ता है। इस लिए उन दुःखोंको सहनशीलता और प्रसन्नतासे भोग लेनेमें ही उसका लाभ है, क्योंकि किसी लौकिक उपायसेतो वह उससे छुटकारा पा ही नहीं सकता।

विवेकी मनुष्यको अपना हृदय सर्वदा जाग्रत रखना चाहिए। हृदयको इतना सहनशील बनावे कि चाहे आकाश टूट पड़े पर उसे लेश मात्र भी क्लेशानुभव न हो। मनुष्यको अन्य प्राणियोंकी ओरसे जो जो दुःख मिलते हुए प्रतीत हों, वे सब उसकी मंदप्रारब्धसे प्राप्त हुए हैं, उनका देनेवाला तो किसी कारणसे निमित्तरूप ही हुआ है, ऐसा मानना चाहिए। अपने दुःख देनेवाले तथा अपने शत्रु पर, जितना जितना मनुष्य दया तथा प्रेमकी दृष्टिसे देख सके तथा अपने मनमें उसपर क्रोधके भाव उत्पन्न न होने दे, उतना उतना उसे उन्नत होता हुआ जानना चाहिए।

कोई भी मनुष्य जो इस लोक तथा परलोकमें सुख भोगना चाहता है, उसे चाहिए कि वह बहुत सहनशील बने। अर्थात् दुःख आपड़ने पर लेशमात्र भी दुखित न हो कर अपने मनमें प्रसन्नता रक्खे। अपने दुःखको कोई पाप संस्कारका उपभोग समझकर, अपने दुःख पहुँचानेवाले पर क्रोध न करके, उस पर दया तथा प्रेम रक्खे। बुरे प्रसंग पर सहनशीलता धारण करना तथा उपकार करनेवाले पर प्रेम करनेका कार्य आरम्भमें तो बहुत त्रासदायक जान पड़ेगा किन्तु दयासागर परमात्मा पर विश्वास रखके, जो कोई सर्वदा इस शुभ प्रयत्नको चालू रक्खेगा तो योग्य कालमें, वह उपयुक्त दोनों शुभ गुणोंको प्राप्त कर सकेगा; और उनका फलरूप वह इस लोक तथा परलोक दोनोंमें सुखानुभव करनेको भाग्यशाली होगा।

'सांज वर्तमान' के पटेटी–अंकसे अनुवादित।

सिंहान्योक्ति।

ले०—श्रीयुत 'मीर'

जाने कीन्हों दमन है,
  मत्त मतंगन मान।
हाय! दैववश सिंह सो,
  परो पींजरे आन॥
परो पींजरे आन,
  श्वानके गन ढिग भूकैं।
विहसें ससा–सियार,
  कान पै आके कूकें॥
'मीर' बात है सत्य,
  लोकमें कहिगे स्याने।
का पै कैसो समय कबै
  परि है को जाने॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कषाय-वासना ।

(लेखक, श्रीयुत बाबू दयाचन्द्रजी गोयलीय बी. ए. ।)

मनुष्यके जीवनमें कषाय * सबसे नीची और बुरी चीज है । इससे नीची और बुरी और कोई प्रवृत्ति नहीं है । कषायरूपी नरक–कुण्डमें राग, द्वेष, काम, क्रोध, मोह, लोभ, मान, माया, द्रोह, मात्सर्य, प्रतीकार, मिथ्या अपवाद, मिथ्या भाषण, हिंसा, चौर्य्य, अदया, संदेह, ईर्ष्या आदि दुर्गुणोंका बास रहता है । ये दुर्गुण मनुष्यके मनरूपी वनमें सदा भ्रमण किया करते हैं । इनके अतिरिक्त शोक, दुःख, संताप, पश्चात्तापकी भीषण भयंकर मूर्तियाँ भी मन पर सदा अधिकार जमाये रखती हैं। ऐसे अंधकारमय जगत्के निवासी वे अज्ञानी जन होते हैं जिन्हें शांतिकी पवित्रता और परमात्मप्रकाशके परमानंदसे अनभिज्ञता होती है जो सदा उनके ऊपर दैदीप्यमान रहता है परंतु उनके लिए कुछ भी लाभदायक नहीं; कारण कि उनकी दृष्टि उस पर नहीं पड़ती, किंतु सदा भूमिकी ओर भौतिक पदार्थों पर लगी रहती है ।

हाँ, ज्ञानी पुरुष ऊपरको दृष्टि उठाकर देखते हैं । उन्हें इस कषायरूपी जगतसे संतोष नहीं होता । वे ऊपरके शांतिमय जगतकी ओर चढ़ते हैं। उसका प्रकाश और वैभव पहले तो उन्हें बहुत दूर मालूम होता है, परंतु ज्यों ज्यों वे ऊपरको चढ़ते जाते हैं वह निकट और निकटतर होता जाता है ।

कषाय (बासना) का क्षेत्र सबसे नीचा है। उससे नीचा और कोई स्थान नहीं है । उसमें पड़े हुए जीवोंको अनेक कष्टोंको भोगना पड़ता है । जिनको अपना हित अभीष्ट हैं, उन्हें उसमेंसे निकलकर ऊपर ऊपर चढ़ना उचित है । उन्नति–मार्ग कुछ कठिन या दूर नहीं है । बहुत ही सहज और पास है । अपने ऊपर विजय प्राप्त कर लो, अपनी इन्द्रियोंको अपने वशमें करलो बस उन्नति-मार्ग मिल जायगा । जिस मनुष्यमेंसे स्वार्थकी गंध निकल गई है, जिसने अपनी इच्छाओंको वशमें करना और अपने चंचल मनपर अधिकार प्राप्त करना शुरू कर दिया है, उसने उन्नत्ति मार्गको प्राप्त कर लिया है ।

कषाय मनुष्य जातिका शत्रु है, शांतिका घातक है और आनंदका नाशक है । कषायोंके वशीभूत होकर मनुष्य नीचसे नीच और अधमसे अधम काम करनेपर उतारू हो जाता है। कषाय दुखका मूल है और पापकी खानि है।

मनुष्यके अतरंगमें स्वार्थकी उत्पत्ति, ईश्वरीय नियमोंकी और परमात्मगुणोंकी अज्ञानता और शान्त और पवित्र मार्गकी अनभिज्ञताके कारण होती है । कषाय अंधकाररूप है । इसकी बढ़ती वहींपर होती है जहाँ ब्रह्मज्ञानका अभाव है । जहाँ ब्रह्मज्ञान है वहाँ इसका प्रवेश नहीं होसकता। ज्ञानी पुरुषके मनसे अज्ञान अंधकार नष्ट होजाता है। विशुद्ध हृदयमें वासनाका अभाव रहता है।

कषाय प्रत्येकरूप और प्रत्येक अवस्थामें दुःख, आपत्ति और अशांतिका कारण है । जिस

* कषायसे तात्पर्य यहाँ वासना, मनोविकारसे है । अँगरेजीके Passion से जो बोध होता है, वही यहाँ कषायसे समझना चाहिए ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकार अग्नि बड़ी बड़ी विशाल इमारतोंको देखते देखते जलाकर राख कर देती है उसी प्रकार कषायकी अग्नि मनुष्योंको भस्म कर देती है और उनके कार्योंको नष्ट-भ्रष्ट कर डालती है।

यदि तुम्हें शांतिकी अभिलाषा है, तो कषायको क्षय कर दो। ज्ञानी पुरुष कषायोंको शमन करते हैं, परन्तु मूर्खजन कषायोंके वशीभूत होते हैं। जिन मनुष्योंको ज्ञान और बुद्धिकी चाह होती है, वे मूर्खता और अज्ञानतासे दूर रहते हैं। शान्तिका इच्छुक शान्तिके मार्गको ग्रहण करता है और ज्यों ज्यों वह उस मार्ग पर बढ़ता जाता है, त्यों त्यों कषाय, दुःख और निराशाके अंधेरे गुप्त स्थानको पीछे छोड़ता जाता है।

ज्ञान और शांतिके प्राप्त करनेके लिए मनुष्यको पहले कषायके स्वरूपको जान लेना उचित है। जिस समय उसका वास्तविक ज्ञान हो जायगा उसी समयसे उसको दूर करना और उससे मुक्त होना मनुष्य शुरू कर देगा। देरी उसी समय तक है, जब तक मनुष्य स्वार्थमें लीन है और कषायके आधीन है।

कषायसे केवल यही नहीं होता, कि मनुष्य क्रोधी अथवा लोभी होता है, किंतु उसके वशीभूत हुआ मनुष्य अपनेको उच्च और दूसरोंको तुच्छ समझने लगता है। दूसरोंमें सदा अवगुण निकाला करता है और उन्हें स्वार्थी और मायावी बताया करता है। दूसरोंकी निंदा करनेसे, दूसरोंको स्वार्थी बनानेसे मनुष्य अपने स्वार्थको नहीं त्याग सकता। स्वार्थसे बचनेके लिए अपने आपको पवित्र करना मनुष्यका काम है। दूसरों पर दोषारोपण करनेसे शांतिमार्गकी प्राप्ति नहीं हो सकती। शांतिमार्गके लिए स्वार्थत्याग, इंद्रिय-दमन और आत्मसंयमकी आवश्यकता है। दूसरोंके स्वार्थादि अवगुणोंको दूर करानेकी चेष्टामें लगे रहनेसे हम कषायसे रहित नहीं हो सकते; किंतु अपने अवगुणोंके दूर करनेसे हमें स्वाधीनताकी प्राप्ति होती है। वही मनुष्य दूसरोंपर विजय प्राप्त कर सकता है, उनको अपने वशमें कर सकता है जिसने अपने ऊपर विजय प्राप्त करली है। ऐसा मनुष्य दूसरोंको कषायसे अर्थात् क्रोध, मान, माया, लोभसे वशमें नहीं करता, किंतु प्रेम और प्रीतिसे करता है।

मूर्खजन अपनी प्रशंसा और दूसरोंकी निंदा किया करते हैं; परंतु बुद्धिमान् मनुष्य अपनी निंदा और दूसरोंकी प्रशंसा करते हैं। शांति-मार्ग मनुष्योंके बाहिरी जगतमें नहीं है, किंतु विचारोंके अंतरंग संसारमें है। दूसरोंके कार्योंमें परिवर्तन करानेसे इसकी प्राप्ति नहीं होती, किंतु इसकी प्राप्ति अपने निजी कार्योंके विशुद्ध और पवित्र बनानेसे होती है।

कषाययुक्त मनुष्य प्रायः दूसरोंके सुधारनेमें लगा रहता है, परंतु ज्ञानी पुरुष अपनेको सुधारनेकी धुनमें रहता है। संसारको सुधारनेके लिए पहले अपने आपको सुधारना आवश्यक है। अपना सुधार केवल विषयवासनाओंके दूर करने पर ही समाप्त नहीं हो जाता, किंतु इसके लिए उस प्रत्येक विचारका—जिसमें मानका तनिक भी अंश है—तथा स्वार्थका सर्वनाश कर देना होता है। इससे ऊँचे चढ़कर पूर्ण विशुद्धतासे पहले एक प्रकारका शल्य और होता है, उसे भी दूर करना जरूरी है।

मनुष्यका जीवन एक प्रकारका पहाड़ है जिसकी तलहटी कषाय है और शान्ति चोटी है। कषायको घटाता घटाता ही मनुष्य शान्तिके उच्च शिखिर पर चढ़ सकता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कषायमें शक्ति होती है, परंतु शक्ति कुमार्गकी ओर लगी रहती है। उससे दुःख होता है। मनमें सदैव इच्छायें उत्पन्न हुआ करती हैं। यदि वे शुभरूप होती हैं तो सुखकर होती हैं और यदि अशुभरूप होती हैं तो दुःखकर होती हैं। इच्छायें एक प्रकारकी जलती हुई तलवारें हैं जो स्वर्गके द्वार पर रक्षकका काम कर रही हैं। मूर्खोंको वे जलाकर भस्म कर डालती हैं और बुद्धिमानोंको स्वर्गमें दाखिल कर लेती हैं।

वह मनुष्य मूर्ख है जो अपनी अज्ञानताकी सीमाको नहीं जानता, जो केवल अपने विचारोंका गुलाम है और जो सदा अपनी इच्छाओंके अनुसार काम करता है। इसके विपरीत वह मनुष्य बुद्धिमान है, जो अपनी अज्ञानताको जानता है, अपने विचारोंकी निरर्थकताको समझता है और जो अपने कषायोंको शमन करता है।

मूर्ख अज्ञानताके नीचेसे नीचे कूपमें गिरता जाता है परंतु बुद्धिमान ज्ञानके ऊँचे ऊँचे क्षेत्रमें प्रवेश करता जाता है। मूर्ख इच्छा करता है, कष्ट उठाता है और मर जाता है; परंतु बुद्धिमान उच्च अभिलाषा रखता है, प्रसन्न होता है और जीवित रहता है।

आत्मोन्नतिका अभिलाषी वीर योद्धा मानसिक उन्नति करता हुआ ज्ञानप्राप्तिमें लीन होकर शांतिके उच्चतम शिखरकी ओर दृष्टि लगाये हुए, ऊँचे ऊँचे चढ़ता जाता है और एक दिन उस अभीष्ट स्थानपर पहुँचकर परमसुख-परमानंदका भोग करता है।*

---

* जेम्स एलनकी Passion to Peace नामक पुस्तकके Passion शीर्षक निबंधका भावानुवाद।

जीवन और मृत्यु।

वास्तवमें जीवन और मृत्यु भिन्न भिन्न नहीं हैं—एक ही व्यापारके भिन्न भिन्न नाम मात्र हैं। एक रुपयेके ऊपर दोनों ओर जैसे भिन्न भिन्न छापें रहती हैं, उसी तरह जीवन और मृत्यु ये दोनों व्यापारकी जुदी जुदी अवस्थायें हैं।

जगत्में यदि कोई पाप है तो वह दुर्बलताके सिवाय और दूसरा नहीं है। इस लिए सब प्रकारकी दुर्बलताओंको त्यागो। दुर्बलता ही मृत्यु है, दुर्बलता ही पाप है।

जीवनका अर्थ उन्नति और उन्नतिका अर्थ हृदय–विस्तार है। हृदय–विस्तार कहो या प्रेम-भावना कहो, दोनों एक ही वस्तु हैं। मतलब यह कि प्रेम ही जीवन है और प्रेम ही जीवन-नियामक वस्तु है। स्वार्थान्धताको मृत्यु समझना चाहिए। जहाँ स्वार्थवासना होती है—वहाँ जीवन टिक ही नहीं सकता।

जीवनका नाम विस्तार है और मृत्युका नाम संकोच; अथवा प्रेम ही जीवन है और द्वेष ही मृत्यु। जिस दिनसे हम संकुचित बनने लगेंगे और अन्यान्य मनुष्योंका तिरस्कार करने लगेंगे उसी दिनसे हमारी मृत्युका प्रारंभ होगा। जब तक हमारा हृदय उदार और विशाल रहेगा तब तक मृत्युकी शक्ति नहीं है कि वह हमारा स्पर्श कर सके।

स्वामी विवेकानन्द।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गाँधीका सत्याग्रह–आश्रम ।

थोडे दिन पहले मद्रासमें श्रीयुत मोहनचन्द्र कर्मचन्द्र गाँधीका जो महत्त्वपूर्ण भाषण हुआ था, उसका सारांश यह है–

आज मैं अपने उस आन्तरिक भावको बतलाना चाहता हूँ जिसे मैंने अपने हृदयमें बहुत दिनसे स्थान दे रक्खा है और जो मेरे लिए सब कुछ है। और वह है क्या ? वह है अपने उस आश्रमके विषय पर विचार करना जिसे मैं भारतमें कहीं न कहीं स्थापित करना चाहता था, और जिसे वे बहुतसे विद्यार्थी जो मुझे पारसाल मिले थे जानते भी होंगे। सर्व्वसाधारणके कामोंमें योग देकर जो कुछ भी मैंने अनुभव किया है वह बस केवल यही है कि हमारे लिए सबसे बड़ी आवश्यकता है चरित्र-गठनकी, हमारे लिए ही नहीं बल्कि हर जातिके लिए, यदि वह अपना आस्तित्व संसारमें कायम रखना चाहती है।

सत्यव्रत ।

और इसी चरित्रगठनके लिए इस आश्रममें कुछ नियमोंका पालन कराया जायगा और उन सबमें सबसे प्रथम है सत्यकी प्रतिज्ञा । यह सत्य वह सत्य नहीं है जिसे हम आम तौरसे आज दिन व्यवहारमें ला रहे हैं, किन्तु इस सत्य द्वारा हमें अपने जीवनको सत्यमय बनाना होगा। दृष्टान्तके लिए बहुत दूर न जाइए। प्रह्लादको ही लीजिए और देखिए कि उसने केवल सत्यहीके कारण अपने पिता पर विजय पाई थी। इस आश्रमका यह नियम होगा कि जिस बातको हम 'नहीं' करना चाहते, उसके विषयमें हम स्पष्ट रीतिसे नहीं कर देंगे, चाहे नतीजा कुछ भी क्यों न हो।

अहिंसा–व्रत ।

दूसरा नियम है अहिंसाकी प्रतिज्ञा। यों तो अहिंसाका अर्थ हिंसा न करना ही है किन्तु यदि आप इसके तह तक जायँ तो आपको पता चलेगा कि अहिंसाका अर्थ है किसीको किसी प्रकारका भी दुख न देना, यहाँ तक कि उस व्यक्तिके विषयमें भी, जो अपनेको तुम्हारा शत्रु मानता हो, कोई भी बुरा विचार हृदयमें न लाया जाय। जिसने अहिंसाके मर्मको समझ लिया है उसके हृदयमें शत्रुभावका स्थान ही नहीं, और इस सिद्धान्तके अनुसार मान मर्य्यादा तथा देशकी रक्षा तकके लिए न हत्याओंके लिए स्थान है और न उत्पातहीके लिए । अहिंसाका यह सिद्धान्त हमसे कहता है कि हम उन आदमियोंके हाथोंमें जो अत्याचार कर रहे हों, आत्म–समर्पण करके उनके मानकी रक्षा करें जिनका भार हमारे ऊपर है, और इस काममें उस बलसे शारीरिक और मानसिक बलकी अधिक आवश्यकता है जिसकी आवश्यकता घूँसेका उत्तर घूँसेमें देनेमें होता है। मानलो, तुममें शारीरिक बल है, तुमने उसका प्रयोग किया, तो जानते हो कि आगे क्या होगा ? क्रोध और घृणासे पागल विपक्षी तुम्हारे इस प्रकारके मुकाबलेसे और भी पागल हो जायगा, और जब वह तुम्हें समाप्त कर चुकेगा तो उसकी उद्दण्डता तुम्हारी धरोहर पर झपटेगी। परन्तु, यदि तुम उसका इस प्रकारका मुकाबला न करो, केवल अपने स्थान पर घूँसा खानेके लिए अपनी धरोहर और अपने विपक्षीके बीचमें जमे रहो, तो मैं तुमसे कहता हूँ कि विपक्षीकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सारी शक्ति तुम्हारे ऊपर खर्च हो जायगी और तुम्हारी पवित्र धरोहर ज्योंकी त्यों बनी रहेगी ।

ब्रह्मचर्य्य-व्रत ।

तीसरी प्रतिज्ञा है ब्रह्मचर्य्य की । जिनमें जातीय-जीवनकी लहर है, जो जातिकी सेवा करना चाहते हैं वे ब्रह्मचर्य्य-व्रत धारण करें । यदि उनका व्याह हो गया हो तो भी कोई हर्ज नहीं । विवाहसे तो घनिष्ठताका एक ऐसा सम्बन्ध हो जाता है कि स्त्री और पुरुष कभी और किसी जन्ममें एक दूसरेसे पृथक् न हों, क्या आवश्यकता है कि इस बन्धनमें रति–कार्य्य अनिवार्य्य ही हो !

स्वादोंका संयम ।

चौथी बात है चिटोरापन छोड़ना, रुचिको अपने वशमें करना । इसकी भी वैसी ही प्रतिज्ञा करनी होगी जैसे औरोंके लिए, और यद्यपि इसका वशमें लाना तनिक कठिन है किन्तु यह हो जाता है बड़ी आसानीसे । आप स्वादके गुलाम न बनिए । बस, फिर सीधे ही पिण्ड छूट जायगा । मैं अभी विक्टोरिया होस्टेल देख कर आ रहा हूँ । वहाँ मैंने बहुतसे भोजनालय देखे और वे केवल स्वादोंके लिए ही इतनी अधिकतासे हैं । जबतक कि हम उन खाद्य पदार्थों पर सन्तुष्ट न होंगे जिनके ग्रहण न करनेसे ही हमारा जीवन नहीं चल सकता, तबतक चटोरेपनकी आदत नहीं जा सकती । खाया तो केवल प्राणरक्षा और शरीररक्षाके लिए ही जाता है, और जानवर भी इसी लिए खाते हैं, फिर क्या कारण है कि वे इतने चटोरे नहीं दिखलाई देते ? बस, यही कि वे अपने जीभके गुलाम नहीं । उनकी जीभ उनके काबूमें है ।

चोरी न करना ।

पाँचवी बात है चोरी न करनेकी । यह वह चोरी नहीं कि किसीका माल हड़प बैठें । किसी एक ऐसी वस्तुको लेना भी, जिसकी अपने पास तत्काल कोई आवश्यकता नहीं और यदि वह दूसरेके पास रहे तो उसका बहुत कुछ कष्ट दूर हो जाय, एक प्रकारकी चोरी ही है । प्रकृति माता इतनी चीजें पैदा करती हैं कि यदि प्रत्येक आदमी अपनी आवश्यकतासे अधिक उन्हें न ले; तो संसारमें गरीबी रह न जाय, और कोई भी आदमी भूख न मरे । और जब तक यह असमानता दूर न होगी तब तक मुझे कहना पड़ता है, कि हम सब चोर हैं । मैं 'सोशियालिस्ट' नहीं हूँ और इसलिए धनवानोंको धनसे वंचित नहीं करना चाहता, परन्तु जो लोग देशके अधपेट रहनेवाले करोड़ों आदमियोंका दुख दूर करना चाहते हैं उन्हें इस सिद्धान्तके अनुसार कार्य करना पड़ेगा ।

स्वदेशी–व्रत ।

छट्ठी प्रतिज्ञा है स्वदेशीकी । हर एक मनुष्यमें स्वदेशाभिमान होना चाहिए । यदि एक व्यापारी बम्बईसे तुम्हारे पास इस गरजसे आवे कि तुम उसे आश्रय दो, तो जब तक तुम्हारे यहाँ उसी प्रकारका व्यापारी मौजूद है तब तक उसे छोड़ कर तुम्हें बम्बईके व्यापारीकी मदद करना उचित नहीं । स्वदेशीके विषयमें मेरी यही राय है । मेरा यही कहना है कि यदि तुम्हारे गाँवका नाई तुम्हारी हजामत बनानेके लिए तुम्हारे द्वार पर आता हो तो कोई कारण नहीं कि तुम उससे तो हजामत न बनवाओ और जरासी भड़कीली शानके लिए शहरसे आनेवाले नाईके पास दौड़ो । तुम अपने उस नाईको योग्य बनाओ यदि वह पहलेसे योग्य नहीं है । उसमें वह बात पैदा करो जो एक शहराती नाईमें तुम देखते हो । और उसको उस समय तक, जब तक कि तुम पूरी तौरसे अपने कामके बिल्कुल अयोग्य न पा लो, हर-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गिज हरगिज अपने पाससे, अपने आश्रयसे, पृथक् न करो ।

निर्भयताका व्रत ।

देश भरमें मैंने खूब घूम कर देखा कि शिक्षित भारत पर भय छाया हुआ है । लोगोंमें हृदयकी बातें खुल्लमखुल्ला कहनेका साहस नहीं है । गुपचुप चहारदीवारीके भीतर हम अपना मत प्रकट करते हैं, परन्तु लोगोंके सामने नहीं । जो खुल्लमखुल्ला कहेंगे उसे हृदयसे न चाहेंगे । यह हाल सभीने देखा होगा । मैं तुमसे कहता हूँ कि ईश्वरके सिवा किसीसे डरनेकी आवश्यकता नहीं, यदि तुम सत्यका किसी भी रूपमें पालन करना चाहते हो तो निर्भय होना पड़ेगा ।

अछूतोद्धार ।

आठवीं बात है अछूतोंके विषयमें । यह रोग हिन्दुओंमें बहुत बेतरह घुस पड़ा है । हम अछूतोंके साथ इस प्रकारका व्यवहार करके अत्यन्त पापके भागी बन रहे हैं । तुममें इतनी शिक्षा ग्रहण करने पर भी यह कमजोरी ऐसी ही बनी है तो मैं कहता हूँ कि तुम्हारा यह ज्ञानोपार्जन करना, यह पढ़ना और लिखना बिल्कुल फिजूल है । यह सच हो सकता है कि तुम शिक्षा विदेशी भाषामें ग्रहण करनेके कारण अपने सच्चे भावोंको अपने उन कुटुम्बियोंमें, जिनके जंजीरमें तुम बँधे हो, न डाल सको । पर इसी लिए हमने इस आश्रमकी शिक्षाका माध्यम देशी भाषा रक्खा है । और इसमें जितनी देशी भाषाओं-की शिक्षा हो सकेगी दी जायगी और वह भी जो विदेशीय भाषाके शिक्षाके लिए जितने कष्ट उठाने पड़ते हैं उनसे कमहीमें ।

राजनीति ।

इसके लिए तुम्हें उस समय तैयार होना चाहिए जब उपर्युक्त नियमोंको भली प्रकार दृढ़तापूर्वक निबाह लो । धर्मसे बिछुड़ी हुई राजनीतिके कोई अर्थ नहीं होते । यदि देशके सभी विद्यार्थी राजनैतिकक्षेत्रकी ओर झुक जाँय तो यह कोई अच्छा चिह्न नहीं, परन्तु इसके ये अर्थ नहीं है कि हम विद्यार्थी-जीवन-में राजनीति न सीखें । राजनीति भी हमारे जीवनका एक अंग है । राष्ट्रीय संस्थाओं और राष्ट्रीय-विकासके समझनेके लिए प्रत्येक आश्रमवासी बालकको राजनैतिक संस्थाओं और देशमें प्रसरित नये भावों और नये जीवनकी बातें बतलाई जाती हैं, परन्तु साथ ही हमें हृदय और बुद्धिके धार्मिक-विश्वास-के अक्षयप्रकाशकी भी आवश्यकता है । आजकल तो युवकोंकी यह हालत है कि जहाँ विद्यार्थी-जीवन समाप्त हुआ कि फिर वे मिट्टी-में मिल गये । टुटपुंजिया नौकरी कर ली, थोड़ी तनख्वाहोंमें फँस गये । वे परमात्माको नहीं जानते, ताजी हवा और ताजे उजेलेका उन्हें क्या पता, उन्हें क्या पता उस तेज-पूर्ण स्वाधीनताका जो इन नियमोंके पालनसे प्राप्त होती है, जो मैं तुम्हें बतला चुका ।

अन्तमें ।

मैं तुमसे आश्रममें आनेके लिए नहीं कहता क्योंकि उसमें स्थान ही नहीं । हाँ अलग अलग आश्रमका-सा जीवन व्यतीत करो । मेरी बातोंमेंसे जो बात तुम्हें पसन्द आई हो उसी-के अनुसार काम करो । यदि तुम खयाल करते हो कि यह एक पागलकी बातें हैं तो स्पष्ट कह दो, मुझे तुम्हारे इस फैसलेसे कोई आश्चर्य न होगा । (प्रतापसे उद्धृत)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वायुयानोंका इतिहास।

(ले० पं० शिवसहाय चतुर्वेदी।)

बहुत पुराने समयसे मनुष्यके हृदयमें आकाशमें घूमनेकी इच्छा चली आ रही है। प्रत्येक जातिके इतिहासमें इसके कई स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं। हिन्दुओंके महाकाव्य रामायणमें लिखा है कि रामचन्द्रजी पुष्पक विमानके द्वारा आकाशमार्गसे स्वदेशको लौटे थे। ग्रीक पुराणोंमें लिखा है—फ्रिक्साश और हेल अपनी सौतेली मा इनोरके दुःखोंसे छुटकारा पानेके लिए एक सोनेके रोमोंवाले मेष (भेड़) पर चढ़ कर स्वर्गलोकको भाग गये थे। जैनग्रंथोंमें जीवन्धर स्वामीकी कथा बहुत प्रसिद्ध है। उनके पिता सत्यंधरने अपने मंत्री काष्ठाङ्गारके द्वारा अपने वंशच्छेद होनेके भयसे अपनी गर्भवती पत्नीको मयूरयंत्रमें बिठाकर आकाशमार्गसे उड़ा दिया था। जीवंधरचरितसे मालूम होता है कि यह यंत्र मोरके आकारका होता था और शायद चावीके बलसे चलाया जाता था। अँगरेजी ग्रंथोंमें भी ऐसी बहुतेरी कहानियाँ पाई जाती हैं। जाटलेंडके राजा निडाङ्कके आदेशसे उनके नौकरोंने जब बयेलेंड नामके एक अपराधीके दोनों पैरोंके पंजे काट डालें थे, तब वह राजाके अत्याचारोंसे रक्षा पानेके लिए एक प्रकारका जामा तैयार करके उसकी सहायतासे अपने देशको उड़ गया था। आरब्य उपन्यासोंके उड़नेवाले गलीचे और पारस्य उपन्यासोंके उड़नेवाले सन्दूकोंकी कहानियाँ सभी जानते हैं। इस तरह प्रत्येक जातिके पौराणिक ग्रन्थोंमें आकाशभ्रमणकी दो चार कहानियाँ अवश्य मिलती हैं! इन सब बातोंसे जाना जाता है कि मनुष्योंके मनमें आदिम कालसे पक्षियोंके समान आकाशमें भ्रमण करनेकी इच्छा चली आती है और वायु मंडलपर प्रभुत्व जमानेके लिए बहुतसे काल्पनिक उपायोंकी उद्भावना करके उन्होंने बहुत कुछ परितृप्ति भी प्राप्त की है। एक समयका उक्त काल्पनिक विषय कालक्रमसे आज सत्यके रूपमें बदल गया है—मनुष्योंका बहुत दिनोंका परिश्रम सफल हो गया है। मनुष्यने साधनाके बलसे न जाने कितने बाधा विघ्नोंको हटाकर, कितने जीवनसंग्रामोंमें विजयलाभ करके सफलता पाई है—संसारका इतिहास इस बातका साक्षी है। मनुष्यने किस तरह क्रम क्रमसे प्राकृतिक—शक्तियोंको अपने वशमें किया है, इसके रहस्यमय इतिहासकी खोजपर मनुष्य सदैव उत्सुकता प्रगट करता रहेगा। मनुष्यके कल्पना-जगतसे बाहर होकर व्योमयानने किस प्रकार वास्तविक स्वरूप धारण किया और मनुष्योंके परिश्रमको सफल किया—इसका विवरण बहुत ही कौतूहल बढ़ानेवाला है।

इटली देशके लेखक 'लियोनार्दो दा भिञ्चि' ने सबसे पहले (सन् १४५२–१५१९) अपनी ग्रंथावलीमें आकाशमार्गमें भ्रमण करनेका एक उपाय लिखा था। कहा जाता है कि उसीने सबसे पहले कल्पनाकी वस्तुको वास्तविकरूप देनेका उपाय लिखा है। वह लिखता है—पक्षियोंके समान कई एक पंखे मनुष्यके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शरीरमें लगा कर उन सबको हाथ और पैरोंके द्वारा संचालित करनेसे शून्य पथमें उड़ा जा सकता है। ऊपर चढ़नेके लिए पंखों (डानों) को फैली हुई दशासे सिकुड़ाना पड़ता है और फिर नीचे उतरनेके लिए सिकुड़े हुए पंखोंको फैलाना पड़ता है। कई लोगोंने कागजकी सहायतासे उपरिलिखित प्रणालीके अनुसार परीक्षा की; परन्तु कोई कृतकार्य नहीं हुआ । इसके कुछ समय बाद ही फाउष्ट वेराञ्जिने नये उपायोंके द्वारा इस कार्यमें कई अंशोंमें सफलता प्राप्तकी। चार बराबरीके लकड़ीके टुकड़ोंको चतुर्भुजाकारमें मजबूत कस देनेसे और सघन कपड़ेको उसके चारों ओर संयुक्त कर देनेसे छाताके आकारका एक बेलून (गुब्बारा) बन जाता है। ऐसे बेलून पर चढ़कर वह वेनिस नगरके एक बहुत ऊँचे स्तंभ परसे जमीन पर उतरा था।

सन् १६७८ ई० में वेसनिये नामके एक व्यक्तिने अपने दोनों कधों पर दो समानान्तर लकड़ीके डंडे रखकर उनके दोनों छोरों पर पुस्तकके समान दो परस्पर मिले हुए समतल तख्ते लगा दिये । उक्त दोनों लकड़ीके डंडे ऊपर नीचे करनेसे वे समतल तख्ते एक बार खुलते और एक बार बंद होते थे। उसने इसी यंत्रके डानोंको बारबार खोल और बंद करके उड़नेकी चेष्टा की थी।

कुछ दिनोंके बाद मार्कुई दी वाकेविलने इस यंत्रमें सुधार किया। वह सन् १७४२ ई० में अपने ऊँचे भवनकी छतपरसे उस पर बैठा और समीपवर्ती एक उपवनको लाँघता हुआ सीन नदीके पास जाकर उतरा। इस तरह वह इस विषयमें औरोंकी अपेक्षा अधिक कृतकार्य हुआ।

इस समय तक आकाशभ्रमणके लिए जितने यंत्र बने थे, वे सब पक्षियोंके पंखोंके अनुकरण पर निर्माण किये गये थे।

सन् १६७० ई० में फ्रान्सिस्को डिलानाने आकाश-नौका या हवाई-जहाज प्रस्तुत करनेके लिए एक उपाय लिखा । उसके मतसे चार वायुशून्य ताँबेके गोलोंको एक हल्की नौकाके ऊपरी किनारों पर लकड़ी आदिकी मूठमें लगा कुछ ऊँचाई पर रखना चाहिए और नाव पर पाल भी तान देना चाहिए; ऐसा करनेसे गोले वायुशून्य होनेके कारण ऊपर उठनेकी चेष्टा करेंगे। ताँबेके गोले कितने बड़े होना चाहिए, इसके लिए उसने हिसाब लगा कर देखा कि २५ फुट व्यास और $\frac{1}{225}$ इंच मुटाईके गोलोंकी सहायतासे बहुत अच्छी तरह काम निकल सकता है। ऐसे चार वायुशून्य गोले प्रायः १५ मन वजन खींच कर ऊपर ले जा सकते हैं। किन्तु इतने पतले गोलोंका वायुके दबावसे एकदम फट जाना बहुत संभव था। मि० डानने अनेक युक्तियाँ देकर इस आपत्तिको दूर करनेकी चेष्टा की, परन्तु लोगोंको उसकी बात पर विश्वास नहीं हुआ।

सन् १७८३ ई० में लियन नगरके समीपवर्त्ती किसी गाँवमें रहनेवाले एक कागजके व्यापारीके दो पुत्र स्टीफिन और योसफ मेंटगलफियेने इस बातकी ओर लक्ष्य देकर अनुसन्धान करना प्रारंभ किया कि वायुमंडलमें मेघ किस तत्त्वके आधार पर रहते हैं। उन्होंने सोचा कि यदि एक थैलीमें किसी वायवीय पदार्थको भरकर हवामें छोड़ दें तो वह मेघके समान आकाशमें तैरती रहेगी। पहले पहल उन्होंने भाफकी सहायतासे परीक्षा करके देखा; परन्तु इसमें वे सफलमनोरथ न हुए । फिर उन्होंने एक थैलीको अग्निके मुँहपर रखकर उससे उठते हुए धुएँ और गैस-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से उसको भरकर हवामें छोड़ दिया और देखा कि वह वायुमंडलमें कुछ दूर तक गई। फिर उन्होंने और भी प्रशस्त प्रणालीके अनुसार उक्त परीक्षा करना प्रारंभ किया और एकबार १०५ फुट परिधिवाली एक कपड़ेकी थैलीको घासके धुएँसे परिपूर्ण करके हवामें छोड़ दिया। थैली बहुत ऊँचे तक उड़ी, हवामें १० मिनिट तक स्थिर रही और फिर १॥ मीलकी दूरी पर जा गिरी। ज्योंही यह खबर चारों और फैली त्यों ही भिन्न भिन्न लोगोंने भिन्न भिन्न रीतियोंसे परीक्षा करना प्रारंभ कर दिया। इसके कुछ समय पहले सन् १७७६ ई० में सबसे हलके गैस हैड्रोजनका आविष्कार हो चुका था। जब स्टीफेन और योसफकी परीक्षाका समाचार पारी पहुँचा, तब विज्ञानवेत्ता चार्लस साहबने कहा कि शीतल वायुकी अपेक्षा गरम वायु हलकी होती है और वह हमेशा ऊपर उठनेकी चेष्टा किया करती है, इस लिए किसी व्योमयानमें हैड्रोजन भरकर परीक्षा करनेसे पूर्ण सफलता प्राप्त हो सकती है। अतः १३ फुट व्यासवाले एक वार्निश किये हुए रेशमके व्योमयानको उक्त गैससे परिपूर्ण करके हवामें छोड़ा—वह ३००० फुट ऊपरतक गया और प्रायः ४५ मिनिट तक वायुमंडलमें परिभ्रमण करके १५ मील दूरीपर जा गिरा! कहते हैं, जिस जगह यह वायुयान गिरा—वहाँके किसानोंने इस अनदेखी घटनाको किसी शैतानके आगमनकी सूचना समझा और इस कारण उन्होंने उसे डरते डरते उठाया और फिर एक हलसे बाँध कर चारों ओर घुमाया। इस तरह जब तक वह फट-फटाकर चिन्दी चिन्दी न हो गया तब तक उन लोगोंने चैन नहीं लिया!

इस घटनाके कई महीने बाद योसफ माण्टगलफियेने एक नवीन व्योमयान बनाकर और उसे उष्ण गैससे परिपूर्ण करके दर्शक-मंडलीके सामने उड़ाया। वह बहुत ऊँचाई तक गया और इस तरह उसने अपनी कृतकार्यताका अच्छा परिचय दिया।

सन् १७८३ ई० में योसिओ पिलाट्रे द्री रोजिये नामक एक व्यक्तिने पृथ्वीसे रस्सी आदिके द्वारा कोई सम्बन्ध न रखकर सबसे पहले एक मुक्त व्योमयान आकाशमें उड़ाया था। इस दुःसाहसिक विमानविहारीकी मृत्यु इससे दो वर्ष वाद ३००० फुटकी ऊँचाईसे विमान गिर पड़नेके कारण हो गई। उसने मरनेके पहले हैड्रोजन और उष्ण वायुकी सहायतासे एक नये ढँगका यान तैयार किया था। उस यानमें दो गोले एक हैड्रोजनसे और दूसरा उष्णवायुसे भर कर तर ऊपर लगाये गये थे। क्योंकि उसको विश्वास था कि हैड्रोजन गैस हलकी होनेके कारण स्वभावतः ऊपर उठनेकी चेष्टा करेगी और नीचेके गोलेको गरम करनेसे उसकी हवा फैलनेकी चेष्टा करेगी। फलतः यान ऊपर उठेगा और पीछे ज्यों ज्यों वह उष्ण वायु ठंडी होती जावेगी, त्यों त्यों वह भारी होकर नीचेकी ओर आने लगेगा। किन्तु ऐसे यंत्रमें जो विपत्ति थी, उसकी ओर उसका ध्यान नहीं पहुँचा। इस यानमें विपद यह थी कि वायुके साथ हैड्रोजन मिलते समय यदि अग्निसंयोग हो जाय तो वह आवाज करके एकदम फट जावेगा। आखिर यही हुआ। उसने इस यानको उड़ाया और वह आध घंटा आकाशमें भ्रमण करनेके बाद हैड्रोजनके फटनेसे नष्ट होकर जमीनपर गिर पड़ा और उसके साथ ही विमान-विहारीकी भी मृत्यु हो गई।

व्योमयानको इच्छानुसार चलानेके लिए जिन लोगोंने अपनी अपार शक्ति व्यय की थी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उन लोगोंमेंसे जनरल मयेसूनियका नाम विशेष उल्लेखनीय है। वह आजसे प्रायः डेढ़ सौ वर्ष पहले व्योमयानको स्वेच्छापूर्वक चलानेके लिए जिन सब उपायोंका उल्लेख कर गया है, वर्तमान समयके व्योमयान उन्हीं सब उपायोंके अवलम्बनसे बनाये जाते हैं। उसके मतसे बेलूनको लम्बी आकृतिका बनाकर उसके उपरिभागको आवरणसे ढँक देना चाहिए, फिर उसमें एक त्रिकोण पालको जोड़कर उसमें गरम वायुसे भरी हुई थैलियाँ बाँध देना चाहिए और बेलूनके पिछले भागमें स्टीमरके चाकके समान एक चाक लगाना चाहिए। मयेसूनियकी पद्धति पर बनाये हुए बेलूनका चाक मनुष्य द्वारा घुमाया जाता था।

सन् १७८४ इ० में पारी नगरके राबर्ट नामके दो भाइयोंने एक बेलून बनाया। उसका आकार खंभेके समान था, परन्तु उसके दोनों छोर अर्धगोल (Hemispherical) थे। उन्होंने इस बेलूनको दांड़े (पतवार) की सहायतासे चलानेकी चेष्टा की थी। पहली साल तो उनकी मिहनत सफल न हुई, परन्तु दूसरी सालके उद्यमसे उनका बेलून आकाशमें गोलाकृतिमार्गसे घूमने लगा।

वैज्ञानिक जगतमें भाफ पैदा करनेवाले यंत्र (Steam boiler) और जल पहुँचानेवाले यंत्र (Injector) का आविष्कार करनेके कारण मि. गिफार्डका नाम सर्वत्र परिचित है। वे बहुत दिनोंसे एक हल्के और बहुत शक्तिवाले एंजिनको बनानेमें व्यस्त थे और उसके फलस्वरूप उन्होंने १ मन दस सेर भारी, और ५ घोड़ोंकी शक्तिवाला एक एंजिन तैयार किया था। उसने देखा कि ऐसे एंजिनकी सहायतासे व्योमयान स्वेच्छापूर्वक चलाया जा सकता है। अतएव उसने सन् १८५२ ई० में पारी नगरमें एक व्योमयान बनाया। यह व्योमयान जुलाहेके करघेके सिटलके आकारका था। इसकी लम्बाई १४४ फुट थी। इसके मध्यके फूले भागकी परिधि ४० फुट थी और भीतर ९००० घन फुट जगह थी। इसका ऊपरी भाग रस्सियोंके जालसे आच्छादित था और नीचेभागमें ६० फुट लम्बी एक लकड़ी कई रस्सियोंकी सहायतासे लटकती हुई ऊपरी जालके दोनों छोरोंसे जुड़ी थी। कई रस्सियोंकी सहायतासे इस लकड़ीमें एक नौका लटकाकर उसपर ३ घोड़ोंकी शक्तिवाला एक एंजिन रक्खा जाता था। यह एंजिन बिजलीके पंखेके समान तीन फलके एक पंखेको हर एक मिनिटमें ११० बार घुमाता था।

गिफार्डके आविष्कृत व्योमयानमें दो दोष थे—पहला, व्योमयानसे नौका जिसतरह लटकाई गई थी, उससे चलते समय व्योमयान कम्पित न होने पर भी एंजिनके काँपनेसे सारा व्योमयान कंपित हो उठता था; दूसरा, व्योमयानमें हैड्रोजन वा कोयलेकी गैस (Coal gas) के समान किसी गैसको भरकर उसके पास अग्नि रखनेसे जो अनर्थ हो सकता है, उसे सभी अनुमान कर सकते हैं। मि० गिफार्डने इन दोषोंको भी बहुत कुछ दूर कर दिया था। उनका यह व्योमयान प्रतिसेकंड ६ से ८ फुट तक चल सकता था।

तीन वर्षके बाद इस वायुयानमें और भी कइ सुधार हुए। आकाशमार्गमें चलते समय व्योमयानके प्रतिकूल चलनेवाली हवाके वेगको कम करनेके लिए इसके आकार और अनेक भागोंमें बहुत परिवर्तन किया गया। मि० गिफार्ड इस वायुयानमें बैठकर हवाकी गतिके विरुद्ध चलनेमें समर्थ तो हुए परन्तु उतरते समय पृथ्वीसे टकराकर वह सारा यान नष्टभ्रष्ट होगया। इसके बाद उन्होंने और भी कई व्योमयान बनाये; परन्तु उनमें और कोई विशेषता नहीं थी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सन् १८७२ ई० में पाउल हेनलाइनने एक नई तर्जका विमान बनाया, इसकी आकृति एक विचित्र ढंगकी थी।

पहले करघेके सिटलके आकारके जिस व्योमयानका वर्णन लिखा है उसके दोनों सिरे सकरे थे परंतु यह केवल एक ही ओर सकरा था और उस जगहसे वह क्रमशः चौड़ा होता गया था। इसके नीचे कोयलेकी गैस (Coal gas) से परिपूर्ण एक एंजिन लगाया जाता था। यह एँजिन गैसको जला कर चलाया जाता था। पूर्वोक्त व्योमयान गैस कम हो जानेपर आकृतिमें छोटा हो जाता था। इसी दोषको दूर करनेके लिए व्योमयानके एक मध्यस्थ गोलेको एक पंपकी सहायतासे सदैव वायुपूर्ण रखते थे। उक्त एँजिनके एक Trapezium के आकारके डानेको घुमानेसे सब यंत्र चलते थे। यह व्योमयान प्रति सेकंडमें प्रायः पाँच फुटके वेगसे चल सकता था। इसके निर्माता धनाभावके कारण और परीक्षा करनेमें समर्थ नहीं हुए।

सन् १८७२ ई० में फ्रान्स और प्रशियाके युद्धके समय फ्रान्सके अधिकारियोंने डूपय डि लोमको व्योममान निर्माण करनेके लिए नियुक्त किया था। उस समय तक जितने व्योमयान बने थे वे सब बिजलीकी शक्तिसे चलनेवाली मोटर या गैससे चलनेवाले एँजिनोंकी सहायतासे वायुमें विचरण करते थे; किन्तु डिलोमने उन उपायोंका अवलम्बन न करके मनुष्यशक्तिसे चलानेका उपाय निकाला था। उन्होंने अपने नवीन व्योमयानमें एक वायुपूर्ण गोलेका व्यवहार किया था। उस गोलेके साथ रस्सीकी सहायतासे एक पंखोंवाला यंत्र नीचे लटका रहता है। आठ आदमी ताकतके साथ उन पंखोंको घुमाते थे। इससे यंत्र प्रति सेकंड ४ फुटकी गतिसे चलता था और इच्छानुसार १० डिगरी तक दिशाओंको बदलकर उड़ाया जा सकता था।

फ्राँसमें डि लोमके बाद तीन चार और भी वायुयान बने, वे प्रायः बिजलीकी शक्तिसे चलनेवाली मोटरकी सहायतासे भ्रमण करते थे। इसके पश्चात् सेनापति रेनार्ड और क्रेवसने जिन व्योमयानोंका आविष्कार किया उन्होंने मानों स्वेच्छासे चलनेवाले व्योमयानोंका रास्ता खोल दिया। उन्होंने १८८४ ई० में जो व्योमयान बनाया था वह देखनेमें मछलीके आकारका और पहले बने हुए विमानोंसे बहुत बड़ा था। ९ घोड़ोंके ताकतकी एक बहुत हल्की बिजलीकी मोटर एक पंखेको प्रति मिनिटमें ५० वार घुमाती थी। यह पंखा सामनेकी ओर लगा रहता था। इस पंखेके चलनेसे समस्त यंत्र वायुमें सहज ही उड़ सकता था। बेलूनके नीचेके भागमें जो बैठनेकी जगह थी, वह रस्सीकी सहायतासे खूब मजबूतीके साथ उपर मत्स्याकृतियंत्रसे बँधी रहती थी। यदि बेलूनके वजनका केन्द्र किसी तरफ हट जावे, तो उसको ठीक करनेके लिए एक झूला लगा रहता था। उसे एक बाजूसे दूसरी बाजूतक ले जाकर यंत्रके वजनको समतोलकर देते थे और इसके द्वारा यंत्रका हिलना डुलना या किसी एक ओरका झुकना बंद हो जाता था। इस बेलूनका नाम 'ला–फ्रांस' रक्खा गया था। पहले इसके निर्माता लोग किसी निर्दिष्ट स्थानसे उक्त यानपर बैठकर पेरिस नगरके ऊपरसे अनेक चक्कर लगाकर वापिस लौट जाते थे। किसी स्थानसे उसी यात्राकरके फिर उसे अपनी शक्तिसे उसी स्थानपर लेजाना–इसका आविष्कार सबसे पहले इसी यानके निर्माताओंने किया था। यह विमान प्रति सेकंड २१ फुटके हिसाबसे–हिले डुले या कंपित हुए बिना चल सकता था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मि० वेनहोमने बहुत दिनोंतक पक्षियोंके उड़नेकी प्रणालीका अनुसंधान करके सन् १८६६ में यह निश्चय किया कि जब कोई समतल चीज वायुमण्डलमेंसे होकर जाती है तब वायु उसके ऊपरकी ओर जो दवाव डालता है वह उक्त सब स्थानोंमें एकसा प्रयुक्त नहीं होता; केवल सामनेके कुछ ही अंशोंमें प्रयुक्त हुआ करता है। इस लिए विमानके सामनेके भागको विस्तृत न बनाके उसे लम्बाई देकर बनाना उचित है। उन्होंने इस बातपर भी लक्ष्य किया कि एक बड़ा पक्षी अपने दोनों पंखोंको एक ही साथ हिलाकर शान्त भावसे सहज ही चला जा सकता है। इससे उन्होंने यह सिद्धांत निकाला कि पक्षीके उक्त अवस्थामें उड़ते समय वायुकी अत्यन्त पतली तह अपने स्थानसे हट जाती है; अतएव वायुमण्डलमें चलनेके समय यदि किसी भारी पदार्थको ले जाना हो तो पूर्वोक्त सामनेके भागके समतलोंकी संख्या बढ़ानी होगी और उन सबको समान्तराल भावसे, बीचमें थोड़ेसे लम्बाईके भागको छोड़कर, एकके ऊपर एक स्थापित करना होगा।

मालूम पड़ता है कि इसी आधार पर ट्राईप्लेन आदिकी सृष्टि हुई है। मि० वेनहोमने गंभीर पर्यवेक्षण करके उपरिलिखित जिन सत्य बातोंका आविष्कार किया था उनसे वैमानिकोंको बहुत लाभ पहुँचा और इसी कारण, मि० वेनहोमकी कीर्ति संसारमें अचल रहेगी।

मि० वेनहोमके आविष्कृत तत्त्वोंकी परीक्षा करके फिलिप्सने एक यंत्र निर्माण किया। परीक्षा द्वारा देखा गया कि वह यंत्र जमीनसे सहज ही आकाशमें उड़ सकता है किन्तु उड़ते समय साम्यावस्थामें नहीं रह सकता था। ऐसे बेलूनको Captive Baloon या 'बन्दी-बेलून' कहते हैं। क्योंकि उसे एक स्थान पर रस्सीसे बाँधकर चारों ओर घूमकर देखभाल करनेके काममें ला सकते हैं—आने जानेके काममें नहीं। इसके बाद ही अमेरिका, जर्मनी, इंग्लेंड, फ्राँस आदि देशोंमें बेलूनकी उन्नतिके लिए खूब ही प्रयत्न होने लगे। अमेरिका और जर्मनीने इस काममें सबसे पीछे हाथ डाला था।

अमेरिकाके प्रसिद्ध पदार्थविज्ञानविद् मि० एस. पी. लेङ्गलिने गहरी गवेषणा करके व्योम-मानोंकी खूब उन्नति की थी, इसी समयसे परीक्षक लोग पक्षीके आकारके छोटे छोटे और फिर बड़े बड़े यान प्रस्तुत करके पर्वत या किसी ऊँचे स्थानोंपरसे बैठकर नीचे जमीनमें आनेकी चेष्टा करने लगे।

इस काममें सबसे पहले अटो लिलियेन्थाल नामक एक जर्मन इंजीनियरने प्रयत्न किया। उसकी परीक्षा-प्रणाली अभीतक संसारभरमें प्रसिद्ध है। उसने पक्षियोंके परोंके समान दो पर अपनी पीठपर लगाकर देखा कि वह ४५ फुट ऊँची जगहसे उड़ कर प्रायः ४५० फुट दूरीतक अपनी इच्छानुसार हाथ पैर हिलाकर और दिशा बदल कर उड़ सकता है। फिर उसने मोटरकी सहायतासे परीक्षा करनेके लिए प्रत्येक बाजू पर दो समतल पीठवाले वायुयानोंको निर्माण किया।

उसकी इस प्रणालीको ग्रहण करके अमेरिकामें हेरिंग, इंग्लेंडमें पिलसार और फ्राँसमें फारवार नामक व्यक्तियोंने वायुयानोंकी खूब उन्नति और सुधारणा की।

पिलसारकी इस गवेषणाके बाद इंग्लेंडमें और कोई मौलिक गवेषणा नहीं हुई। केवल कोडि और ए. वी. रो इन दोनों विमान-विहारियोंने एक ट्राईप्लेनका उपयोग किया था।

राईट नामके दो भाइयोंने लिलियेन्थालकी गवेषणा (खोज) प्रणालीका अध्ययन करके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक उच्चश्रेणीका वाईप्लेन तैयार किया था। सन् १८९४ ई० में फारवार नामक एक फरासीसी सेनापतिने भी लिलियेन्थाल की प्रणालीके अनुसार व्योमयान बनाया था।

सन् १९०६ ई० में सेब्टच्-डूमण्ट नामक एक गगनविहारी परीक्षा-भूमिमें अवतीर्ण हुआ। उसे ८३ फुट लम्बे स्थानका भ्रमण करनेके उपलक्षमें आर्कडेकन-पुरस्कार मिला। कहा जाता है कि एडके सिवा सबसे पहले पूरी पूरी सफलताके साथ इसीने आकाशभ्रमण किया था। एक महीनेके बाद वह प्रायः ७४० फुट दूरीतक भ्रमण करने लगा था। इसके बाद सन् १९०८ में हेनरी फारमेनको ३३०० फुट परिधिकी एक त्रिकोणाकृति भूमि परिभ्रमण करनेके उपलक्ष्यमें ३ लाख रुपयेका आर्कडेकन पुरस्कार मिला।

इसी समय व्योमविहारके लिए फ्राँसमें बहुतसे यंत्र बनें, जिनमेंसे अनेक यंत्र परीक्षाके समय नष्ट हो गये और इस काममें बहुतेरे मनुष्योंके प्राण भी गये। सन् १९०८में अमेरिकाके विलवर राइटने व्योमयानकी सहायतासे अनेक आश्चर्यजनक काम दिखाकर कुछ समयके लिए सब लोगोंकी दृष्टि अमेरिकाकी ओर खींच ली। किन्तु इसके बाद जब मि. फारमनने सेलनस्से रिम्स नगर तक २१ मीलकी उड़ान भरी, तब सबकी दृष्टि यूरोपकी ओर आकर्षित हुई। इसके बाद लुईस ब्लेरियट १९ मीलका भ्रमण करके अपने स्थान पर लौट आया। सन् १९०९ के जुलाई महीनेमें मि. लेथामने इंग्लिशचेनलको लाँघनेकी चेष्टा की थी, परन्तु पहली वार विफलमनोरथ होनेपर उन्होंने अपने व्योमयानको ब्लेरिमट नामक व्यक्तिको बेच डाला। २५ वीं जुलाईको सबसे पहले मि० ब्लेरियटने इंग्लिशचेनलको लाँघा। इसके पश्चात् कोम डि लामवार्टने पारीनगरके ऊपर एक स्तम्भके चारों ओर १००० फुट ऊँचाई पर भ्रमण किया और १९०९ की ३१ वीं दिसम्बरको मरिस फारमेनने ४० मिनटमें ४७ मीलकी यात्रा तय की।

इसके पश्चात् पहले कही हुई रीतिके अनुसार कई लोगोंने आकाशभ्रमण किया और इसके बाद व्योमयानके द्वारा लम्बी लम्बी यात्रायें करना भी सहज हो गया। आकाशमें जो लोग बहुत ऊँचे तक उड़े हैं, उन सबमें लेथम और केवेजरका नाम ही सबसे प्रथम उल्लेखनीय है। इनके बाद भी लेगान्न १०७४६ फुट ऊँचाइ तक जानेमें समर्थ हुए थे।

लिलियेन्थालके समयसे ही जर्मनीमें सबसे पहले बेलून-रचनाका काम प्रारंभ हुआ था। इसके पश्चात् ही जर्मनीमें वायुयान-निर्माणका काम बड़ी तेजीके साथ चलने लगा। बहुत संभव है कि जर्मनीने अपने पक्षके देशोंमें गुप्तरीतिसे युद्धविभागके व्यवहारके लिए व्योमयानोंके बनानेका उत्साह दिया हो। उसने अगणित अर्थव्यय और भगीरथ प्रयत्नके बलसे बहुत थोड़े समयमें ही वायुयानोंको इतनी उन्नत अवस्थामें करके संसारको चकित कर दिया है। १९ वीं शताब्दीके शेष भागसे जर्मनीमें व्योमयानोंकी उन्नतिके लिए बड़े बड़े आयोजन हुए, बड़ी बड़ी परीक्षा हुई। इसी समय इस आन्दोलनके क्षेत्रमें काउंट जेपेलिन उतरे और उन्होंने व्योमविहारके लिए एक अद्भुतयंत्र निर्माण करके सबको विस्मित कर दिया। उन्होंने अपने नामके अनुसार इस यंत्रका नाम भी 'जेपेलियन' रक्खा। इनकी जीवन-कहानी बड़ी आश्चर्यमय है। आत्मविश्वासके बलपर मनुष्य किस तरह अनेक बाधा—विघ्नोंको हटाकर निर्भय मनसे अपने कार्य-साधनमें अग्रसर हो सकता है—उनके जीवनसे इसकी अच्छी शिक्षा मिलती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

काँउट जेपेलिनका जन्म सन् १८२४ ई० में कनष्टेन्स ह्रदके एक गिरजाघरमें हुआ था। युवावस्थामें किसी व्यापारकी लालसासे आप अमेरिका गये थे, और २५ वर्षतक वहीं रहकर आपने अमेरिकाके प्रसिद्ध घरूयुद्धमें योग दिया था। इसी समय आपको जीवनमें सबसे पहले व्योमयानपर बैठनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ और इसीके फलसे आप व्योमयानविद्यामें साधारण जानकारी प्राप्त करके भविष्य जीवनके जगतव्यापी यशको अर्जन करनेमें समर्थ हुए। अमेरिकाका युद्ध बंद होते ही आप जर्मनी लौट आये और इसके बाद आस्ट्रिया और प्रशिया तथा आस्ट्रिया और फ्रांसमें जो युद्ध हुए उन दोनों युद्धोंमें आपने उपस्थित रहकर अपना वीरत्व दिखाया।

यद्यपि युद्धकार्यमें आप बहुत दक्ष और योग्य सैनिक थे; परन्तु आपका मन युद्धव्यवसायकी अपेक्षा आविष्कारोंकी ओर अधिक आकर्षित रहता था। फलतः २५ वर्ष सेनाविभागमें काम करनेके पश्चात् व्योमयानके विषयमें अनुशीलन करनेके हेतु आप जनरलके पदको परित्याग करके इस काममें लग गये। इस लिए ५० वर्षसे अधिक उमरमें आपको विद्युत्-विज्ञान, शक्तिविज्ञान (mechanics) और वायुविज्ञान (meteorology) का भलीभाँति अनुशीलन करना पड़ा।

इसके पश्चात् आपको व्योययान रखने और नाना तरहकी व्ययसाध्य परीक्षाओंके करनेके लिए एक पृथक् भवन बनानेकी आवश्यकता हुई और तदनुसार आपने इस कामके लिए कानष्ट्रेंट ह्रदके समीपवर्त्ती फ्रिड्रिकसाफेन नामक स्थान पर व्योमयोनोंके गिरनेका भय निवारण करनेके लिए एक ऐसा जहाजीपुल बनाया जो इच्छानुसार चारों ओर घुमाया जा सकता था। परीक्षाके समय वायुप्रवाह व्योंमयान पर गिर कर अनिष्ट पैदा कर सकता था, इसी आशंकाको दूर करनेके लिए उस जहाजी पुलको इच्छानुसार घुमाकर वायुप्रवाहके सन्मुख कर लेते थे।

परीक्षा आरंभ करनेके पहले काउंटके पास ३७५०००) की सम्पात्ति थी, परन्तु यह सम्पत्ति थोड़े ही दिनोंमें पूरी हो गई। तब आपने उक्त विषयमें और भी अनुशीलन करनेके लिए अपने भाई–बंधुओं, समस्त स्वदेशहितैषी लोगों और सबके पीछे सम्राट्से सहायताकी प्रार्थना की। अंतमें १९०८ में उनका भाग्य प्रसन्न हुआ। जर्मन-गवर्नमेण्ट बहुत दिनोंसे काउंटकी शीघ्रतासे उन्नति करनेवाली कार्यप्रणालीको देखती आती थी। अतः जर्मन सम्राट् कैसरकी अनुकूलतासे जर्मनीके समस्त शहरों और नगरोंमें जेपेलिन-अर्थभाण्डार स्थापित कर दिये गये और उनके द्वारा पहले ही महीनेमें प्रायः ४५ लाख रुपया भंडारमें जमा हो गये!

इस सहायताको पाकर काउंट अपनी कार्यप्रणालीको और अधिक परिमाणमें विस्तृत करनेमें समर्थ हुए और उन्होंने थोड़े समयके भीतर ही हजारों वायुयान बना डाले। शुरू शुरूमें परीक्षाके समय बहुतेरे यान तेज हवा और ऐसे ही कई कारणोंसे नष्ट हो गये।

काउंट शुरू शुरूमें जब इस तरह अपने कार्यसाधनमें लगे थे उससमय अनेक प्रतिद्वन्द्वी गवर्नमेण्टोंने उन्हें बहुत लोभ-लालच दिया था। परंतु लालचमें पड़ कर उन्होंने देशके साथ विश्वासघात नहीं किया। और इस लिए कि उनके आविष्कार किसी तरह विदेशियोंको प्रगट न हो जायँ, उन्होंने खूब सावधानी रक्खी। आज्ञाके अतिरिक्त कोई आदमी उनके कारखानेके पास नहीं जा सकता था। कारीगरों और व्योमसंचालकोंसे व्योमयान और उसके आवि-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ष्कारके संबंधकी कोई बात प्रगट न करनेके लिए प्रतिज्ञा कराई गई थी। परन्तु इतनी सावधानी रखने पर भी सौभाग्यवश फरासीसियोंको इनकी प्रणालीका पता लग गया। १९१२ ई० में एक जेपेलियनको लाचार होकर फ्रांसके लूम्याँ नामक स्थानमें उतरना पड़ा और उस समय वहाँके व्योमयान-विद्याके जाननेवाले लोगोंने उसे रोक कर २४ घंटे तक उसके प्रत्येक अंग प्रत्यंग और कल पुरजेकी बारीकीसे जाँच कर डाली। तथापि इस समय जर्मनी ही आकाशयानोंकी उन्नतिमें सबसे आगे है। एक नये किस्मके बलिष्ट ट्राइप्लेनके बननेका सम्बाद अभी हाल ही जर्मनीसे आया है *।

पराधीन तोतेके प्रति।

(कवि, श्रीयुत पं० गिरिधर शर्मा।)

(मुमुक्षु भारतीय बन्धुओंको सादर समर्पित।

(१)

विविध सुन्दर रत्न जड़ा हुआ,
कनकका शुक! है यह पींजरा।
मलिनता मनकी कर दूर क्या-
हृदयमें भरता तव मोद है।

(२)

यह मनोहर कांचन-यष्टिका;-
जड़ रहीं मणियाँ जिसमें भलीं।
चरण तू रखके इस पै सदा,
न कितना मनमें खुश हो रहा।

(३)

कुछ मनोहर गर्दन मोड़ तू,
सुभग! देख रहा शुभ दृष्टिसे।
नच रहा कुछ बोल रहा गिरा,
छबि रहा दिखला कुछ पाँखकी।

(४)

प्रिय मनोहर पाँख हरी हरी,
अरुण है अति उत्तम चोंच भी।
शुक! मनोहर श्याम लकीर है,
कुछ ललास लिये तव कंठमें।

(५)

इधर भोजनको फल हैं नये,
उधर है जल निर्मल पानको।
शुक! तुझे यह आसन है मिला,
महलमें इस नौ-लख बागके।

(६)

कर रहे मलको कुछ दूर हैं,
कुछ खगेश! तुझे नहला रहे।
न कितने प्रिय सेवक-सेविका,
लग रहे जन यों तव दास्यमें।

(७)

विभव जो मिलते सबको नहीं,
सुलभ हैं सब वे तुझको यहाँ,
महिप भी जिसको कर दें, वही—
मुख नृपेश्वर देखरहा तव।

(८)

अति कृतज्ञ विहङ्गम तू सही,
कि नयनोज्वल पाकर नाथका।
मृदु गिरा पहले पढ़ ली वही,
कह रहा प्रभुको सुद दे रहा।

(९)

शुक! बड़ी कितनी यह बात है,
कि इस पंजरमें रहते हुए-।
भय नहीं तुझको कुछ बाजका,
न चिर शत्रु विशाल बिड़ालका।

---

* बंगला प्रवासीके लेखका अनुवाद।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१०)

भटकते फिरना वनमें कहाँ ?
सुख कहाँ यह जो मिलता यहाँ ?
सुकृतसे तुझको यह है मिला,
न जगमें तुझसा पर धन्य है।

(११)

जगतमें बरसे जल या नहीं,
रुचिर शस्य फले अथवा नहीं।
पर अनुग्रहसे तव नाथके,
सुख नहीं कम हो अणु मात्र भी।

(१२)

विपिनमें दुसरे खगवृन्द ये,
कर रहे तन तोड़ परिश्रम।
तदपि है मिलता इनको नहीं,
नियत, वक्त हुए पर भोजन।

(१३)

नियत काल हुए, हर रोज ये
शुक ! तुझे मिलते फल मिष्ट हैं।
चख रहा इनको धर चंचुमें;
तज रहा कुछ झूठनमें यहाँ।

(१४)

शकुनि ! 'पेट भरे' इसके लिए-
श्रम हजार करें जग जीव ये
बिन परिश्रम ही तुझको यहाँ,
अयि कृतार्थ ! मिला सब भोज्य है।

(१५)

न तुझको श्रम हो जगमें कहीं,
न उड़ना, चलना, फिरना पड़े।
इस लिए प्रभु है तव काटता,
युगलपंख दयालुशिरोमणि।

(१६)

चरणमें प्रभुने तव डाल दी,
कनककी अति सुन्दर पैजनी।
जब कभी उठता पद है तव,
रणन है करती अति सुन्दर।

(१७)

विभव सुन्दर पाकर ये यहाँ,
विहगराज[1] ! रहो सुख भोगते।
मम कुतूहलके वश हो मन,
वचन यों तुमको कहला रहा।

(१८)

पर विचार करें यदि सूक्ष्म तो,
स्थिति यही तव तप्त करे हमें।
न कुछ भी अफसोस ! स्वतंत्र तू,
न इसका कुछ बोध रहा तुझे !

(१९)

कनकके जिस पंजरमें यहाँ,
शकुनराज ! सखे ! तुम बंद हो।
कर नहीं सकता वह साम्य है,
विपिनके तरु-कोटरकी कभी।

(२०)

रख पदद्वय कांचन-यष्टिपै,
हँस रहा शुक ! क्या खगवृन्दको।
मृदुल पल्लव शोभित-बेलकी
यह कहीं सम हो सकती नहीं।

(२१)

जरठता[2] जब हे शुक ! आयगी,
मधुर-भाषण-शक्ति नसायगी।
तव विपत्ति नितान्त सतायगी,
कि जिसकी सुध भी दुख दे रही।

(२२)

अब बिलोक रहे अति प्रेमसे,
सुन रहे तव हैं वचनावली।
फिर यही सबके सब मानव,
शकुनि ! दानवसे बन जाँयगे।

(२३)

तव समीप कभी नहीं आयँगे,
वचन यों अति तीक्ष्ण सुनायँगे !
" न इसको कुछ बोध, न कामका,
जरठ पिंजड़ है यह चामका ! "

---

१ हे पक्षिराज। २ बुढ़ापा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२४)

विविध नीति कला पढ़ते हुए,
शुक ! कभी यह भी प्रभुसे पढ़ा, ।
"सुखमयी सब भाँति स्वतंत्रता,
सकल दुःखभरी परतंत्रता।"

(२५)

निपुणतायुत हो कुछ सोच तो,
शकुन ! है सुख भी कितना तुझे।
यदि यही सुख है परतंत्रता,
जगतमें फिर है कह दुःख क्या ?

(२६)

विभव है कुछ ही दिनके लिए,
स्थिर नहीं रहती शुक ! ये कभी।
कमलिनी-दलके जल-बिन्दु क्या-
पवनके चलते स्थिर हैं रहे ?

(२७)

निकल जाय नहीं करसे कहीं,
हृदयमें दुख पाकर तू कभी।
यह विचार सदा धर चित्तमें,
कतरता प्रभु है तव पक्षको !

(२८)

यह मनोरम सुन्दर भोजन,
शुक ! तभीतक है मिलता तुझे,
सुमधुर-स्वरसे जबलों गिरा,
श्रवणमें प्रभुके तव आरही।

(२९)

हृदय-वल्लभ, जीवनप्राण तू,
विहग ! तू जिसका सिरमौर है।
कुछ विचार वही सुपतिव्रता,
तव शुकी कितना दुख पारही।

य

(३०)

अति विषाद भरी जननी तव,
सतत दुर्बल है शुक ! होरही।
धर महा अभिमान परान्नका,
स्मरण भी करता उसको न तू।

(३१)

सुमतिकी मतिके प्रतिकूल जो,
हृदयको लगता अतिशूल जो,
जब यही सुख है, तब, दुःखका-
बस अभाव शुकोत्तम ! हो लिया।

(३२)

शुक ! सुवर्ण-सुशोभित पींजरा,
मत विचार इसे प्रिय तू कभी।
समझ तू इसको मुख व्यालका,
सकल-वस्तु-विनाशक कालका।

(३३)

जनक पूज्य कहाँ ? जननी कहाँ ?
सुहृदवृन्द कहाँ ? गृह है कहाँ ?
कि जिनसे तव जन्म हुआ, तथा-
सुख मिला तुझको अति बाल्यमें।

(३४)

स्वजन आदि जिसे मिल भोगते,
विभव हैं कहते उसको सुधी।
रह जुदा सबसे शुक भोगता,
विभव नाम कहीं इसका नहीं।

(३५)

अब विचार किये फल क्या ? नहीं।
स्ववश तू, सब भाँति बँधा हुआ।
न सहता विधि भी परतंत्रकी,
इसप्रकार विचार-परम्परा।

(३६)

स्वजनसे तुझको जिस क्रूरने,
कर जुदा शुक ! बंद किया यहाँ।
अशन तू उसके करका दिया,
कर रहा हह भूल सभी कथा।

(३७)

कुपित होकर, या, कर भूल जो,
न तुझको जल भोजन दे प्रभु।
मर रहे शुक ! तो पिंजरे पड़ा,
खबर भी तब हो जगको नहीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३८)

स्वजनका तुझसे न भला हुआ,
कर सका कुछ काम न जातिका ।
अहह ! पेट भरा पड़ पींजरे,
स्व-पुरुषार्थ विनष्ट किया सभी !!

(३९)

मिल नहीं सकता निज जातिसे,
नहिं मिटा सकता मनकी व्यथा ।
परम सुन्दर कुंजनिकुंजमें—
न दिखला सकता, अपनी छटा ।

(४०)

अति मनोज्ञ छटा वन-कुंजकी,
स्वजन-मित्र-सुहृज्जनमें स्थिति ।
वह विचार, सुकर्म, स्वतंत्रता,
सब हुए सपना तव हेतु हैं ।

(४१)

सुन गिरा मम क्या इस चंचुसे,
लग गया शुक ! पंजर तोड़ने ।
विफल ही यह यत्न नहीं सखे !
विहग ! चंचु-विघातक भी बड़ा ।

(४२)

शुक ! न रो, धर धीर, सुचित्त हो,
न कर शोक, लगा मन योगमें ।
कर भला जगका, भज 'कृष्ण' को,
रह सदा परमारथमें रँगा ।

(४३)

समय पाकर यों भगवानकी,
विहग ! तू प्रियता अति पायगा,
सकल बंधनसे छुट जायगा,
सब कहीं सुख चैन उड़ायगा ।

विविध प्रसङ्ग ।

१ जाली जैन-ग्रन्थ ।

प्रत्येक धर्म और सम्प्रदायमें बीसों ग्रन्थ ऐसे मिलते हैं, जिन्हें जाली कह सकते हैं; जो उस सम्प्रदायके किसी प्रसिद्ध पुरुषके नामसे प्रसिद्ध किये गये हैं और इस कारण सर्वसाधारण लोग उन्हें मानने लगे हैं। उदाहरणके लिए हिन्दुओंके 'भविष्यत्पुराण' का उल्लेख किया जा सकता है। यह व्यासजीका बनाया हुआ कहलाता है; परन्तु इसमें अभी अँगरेजी राज्यतकका वर्णन लिखा हुआ है ! यदि कोई शंका करे कि व्यासजीकी रचनामें अँगरेजी राज्यके लार्डोंका वर्णन कहाँसे आया ? तो पौराणिक लोग उत्तर देते हैं कि व्यासजी सर्वदर्शी थे—उनके ज्ञानमें ये सब घटनायें पहले ही झलक गई थीं ! पाठक यह जानकर आश्चर्य करेंगे कि जैनधर्ममें—दिगम्बरजैनसम्प्रदायमें—भी ऐसे कई ग्रन्थ हैं जिन्हें जाली कह सकते हैं और जो प्राचीन आचार्योंके नामसे उनके बहुत पीछे गढ़े गये हैं। ऐसे एक दो ग्रन्थोंकी चर्चा जैनहितैषीमें हो चुकी है। अब ऐसे एक और भी ग्रन्थका पता लगा है जिसका नाम '**भद्रबाहुसंहिता**' है। यह अन्तिम श्रुतकेवली श्रीभद्रबाहु स्वामीका—आजसे लगभग २२०० वर्ष पहलेका—रचा हुआ समझा जाता है ! बहुतसे श्रद्धालु सज्जन इसे बड़े ही महत्त्वकी चीज समझते हैं; परन्तु श्रीयुत बाबू जुगलकिशोरजीके पत्रसे मालूम हुआ कि यह ग्रन्थ विक्रमकी तेरहवीं शताब्दिके बादका बना हुआ है ! वे बहुत ही जल्दी इसकी एक विस्तृत समालोचना प्रकाशित करेंगे और उसमें बतलायँगे कि उक्त ग्रन्थ जाली क्यों है और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लगभग किस समयमें इसकी रचना हुई होगी। इसमें भी बहुतसी बातें भविष्यत्कथनके रूपमें लिखी गई हैं और यह प्रकट करनेकी कोशिश की गई है कि ग्रन्थकर्त्ता सचमुच ही भद्रबाहु श्रुतकेवली हैं! आशा है कि अन्यान्य विद्वान् भी इस ग्रन्थकी परीक्षा करेंगे और उसका फल सर्वसाधारणपर प्रकाशित करनेकी कृपा करेंगे।

२ प्रान्तिक-सभाका अधिवेशन।

दिगम्बर-जैन-प्रान्तिक सभा बम्बईका चौदहवाँ अधिवेशन इस वर्ष नासिकके निकट गजपंथ तीर्थ पर ता० ८ और ९ अप्रैलको सकुशल हो गया। गजपन्थ तीर्थपर सभाका यह दूसरा अधिवेशन है—इसके ७–८ वर्ष पहले वहाँ एक अधिवेशन और भी हो चुका है। अबकी बार जनसंख्या पहलेसे भी कम रही। लगभग ५००–६०० स्त्री पुरुष एकत्र हुए थे। पहले दिन तो मेम्बरोंका कोरम ही पूरा न हो पाया था, इस कारण सभाका अधिवेशन न हो सका। ये ऐसी बातें हैं जिनसे लोगोंकी रुचिका पता लगता है। सभाओं और व्याख्यानोंसे अब लोगोंको उतना प्रेम नहीं रहा है जितना कुछ समय पहले दिखलाई देता था। अब ये रोज रोजके काम हो गये हैं और इस कारण इनकी 'अतिपरिचियादवज्ञा' होने लगी है। जब तक इन कामोंमें कोई नई जान न डाल दी जाय और इनके मार्गोंमें कोई उत्साहवर्धन परिवर्तन न किया जाय तब तक यह शिथिलता बढ़ती ही जायगी। अधिवेशनकी सबसे बड़ी सफलता यह समझना चाहिए कि जुदी जुदी संस्थाओंको लगभग ढाई हजार रुपयोंकी प्राप्ति हो गई। सब मिलाकर १३ प्रस्ताव पास हुए जिनमें दो उल्लेख योग्य हैं। एक पं० अर्जुनलालजीके सम्बन्धका और दूसरा जैनहितैषी और जैनतत्त्वप्रकाशकके सम्बन्धका। हिन्दू विश्वविद्यालयके पाठ्य-ग्रन्थोंमें जैनग्रन्थोंको स्थान देनेके विषयमें प्रेरणा करने और जैनमित्रको आगामी वर्षसे साप्ताहिक कर देनेके प्रस्ताव भी उल्लेख योग्य हैं।

३ सेठीजीका प्रस्ताव।

सेठीजीके विषयमें जैनसमाजमें जो आन्दोलन हुआ है जान पड़ता है उसका परिणाम अच्छा हुआ है। उसने लोकमतको उनके अनुकूल बना दिया है और वह इतना प्रभाव डाल चुका है कि जो लोग पहले विरुद्ध थे वे भी अनुकूल हो गये हैं। यही कारण है जो प्रान्तिक सभामें यह प्रस्ताव सर्वसम्मतिसे पास होगया कि उनके छुटकारेकी प्रार्थना करनेके लिए वायसराय साहबके पास एक डेप्यूटेशन भेजा जाय। श्रीयुक्त सेठ हीराचन्द अमीचन्दजी शोलापुर और श्रीयुत जयकुमार देवीदास चवरे बी. ए. बी. एल. ने डेप्यूटेशनमें जाना स्वीकार किया। श्रीयुत बाबू अजितप्रसादजी एम. ए. एल. एल. बी. डेप्यूटेशनमें जाना पहले ही स्वीकार कर चुके हैं। इस विषयमें सभाकी जितनी प्रशंसा की जाय उतनी थोड़ी है। जिस प्रस्तावके लिए उच्चशिक्षा प्राप्त लोगोंके भारत-जैनमहामण्डलका साहस न पड़ा, उसीको साधारण पढ़े लिखे लोगोंकी सभाने विना विरोध पास कर डाला! यद्यपि इस प्रस्तावके अनुकूल बहुमत तो महामण्डलकी सब्जैक्ट कमेटीमें भी था; परन्तु वहाँ प्रस्ताव पास न हो सका था। यहाँ हो गया, इसका सबसे बड़ा कारण यह जान पड़ता है कि यहाँ न तो सभापति ही सरकारी नौकर थे और न दूसरे कार्यकर्त्ता। भारतके एक प्रसिद्ध नेताका मत है कि उच्चशिक्षाप्राप्त लोगोंके हृदय जितने कमजोर और भयभीत हैं, उतने साधारणजनताके नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं। इस मतकी सत्यता मण्डल और प्रान्तिक-सभाके कार्योंसे बहुत कुछ स्पष्ट हो जाती है।

४ जैनहितैषीके आन्दोलनका निषेध।

दूसरा महत्त्वका प्रस्ताव इन शब्दोंमें पास हुआ है–"जैनतत्त्वप्रकाशक और जैनहितैषीमें जो विधवाविवाहके मण्डनका आन्दोलन शुरू हुआ है–यह कार्य जैनधर्मसे अत्यन्त विरुद्ध है। अतएव यह सभा इस दुष्कृत्यका निषेध करती है और पत्रसम्पादकों तथा विद्वानोंको प्रेरणा करती है कि वे इसके विरुद्ध लेख प्रकाशित करें।" इस प्रस्तावके अनुमोदनके लिए न्यायाचार्य पं० माणिकचन्द्जी, पं० पीताम्बरदासजी और पं० कस्तूरचन्दजीके लगभग १॥ घंटे तक व्याख्यान हुए और जिसके मनमें जो आया उसने वही कहा। पिछले उपदेशक महाशयने तो जोशमें आकर यहाँतक कह डाला कि जो लोग जैनहितैषी खरीदते हैं वे अपने पैसेको पानीमें फेंकते हैं। सब भाइयोंको इसी समय प्रतिज्ञा कर लेना चाहिए कि जैनहितैषीको न कभी मँगायँगे और न कभी पढ़ेंगे। कई सज्जनोंने कहा था कि इस प्रस्तावकी जरूरत नहीं है, अनेक लोग इसके विरुद्ध भी थे, परन्तु अन्तमें प्रस्ताव रक्खा गया और जनरल सभामें पास भी हो गया।

हमें इस प्रस्तावके पास हो जानेमें जरा भी आश्चर्य नहीं हुआ। जहाँ स्वतंत्र विचारकोंकी–अपनी सदसद्विवेक बुद्धिपर विश्वास रखनेवालोंकी–संख्या थोड़ी होती है; दूसरोंके पीछे चलनेवाले–हाँमें हाँ मिलानेवाले अथवा दूसरोंके प्रभावसे दब जानेवाले ही अधिक होते हैं, वहाँ ऐसा होना ही चाहिए और फिर यह तो एक ऐसा विषय है कि जिसका नाम सुनते ही लोग भड़क उठ हैं–उसपर विचार करनेका उनकी गतानुगतिक बुद्धिको अवकाश ही नहीं मिलता है। और इसी कारण हम इसके पास होनेको कुछ महत्त्व भी नहीं देते हैं। यह तो पास होना ही चाहिए था। यदि यह पास न होता तो आश्चर्य होता। इस प्रस्तावको पेश करनेवालों, अनुमोदन करनेवालों और सम्मति देनेवालोंमेंसे किसीने भी इस बातकी जरूरत नहीं समझी कि जैनहितैषीके प्रथम अंकका वह लेख–जिसके कारण यह उछल कूद शुरू हुई है—एक बार अच्छी तरह बाँच तो लिया जाय। हमें बहुत अधिक सन्देह है कि उक्त लेख बाँचा गया है अथवा उसका अभिप्राय समझनेकी चेष्टा की गई है।

५ जैनहितैषीके लेखका सारांश।

जैनहितैषीके उक्त लेखका सारांश यह है कि स्त्री और पुरुष दोनोंको जन्मभर ब्रह्मचर्यपूर्वक रहना चाहिए। यह **श्रेष्ठ** मार्ग है। जो ऐसा नहीं कर सकते उन्हें शादी कर लेना चाहिए और पुरुषको अपनी एक मात्र स्त्रीमें और स्त्रीको एक मात्र अपने पुरुषमें सन्तुष्ट रहना चाहिए। यदि बीचमें पुरुष मर जाय तो स्त्रीको और स्त्री मर जाय तो पुरुषको जीवन भर ब्रह्मचर्यसे रहना चाहिए। यह **मध्यम** मार्ग है। जिन लोगोंसे यह नहीं बन सकता है–जिन्हें ब्रह्मचर्यसे जीवन बिताना कठिन जान पड़ता है उनके लिए तीसरा **निकृष्ट** मार्ग यह है कि स्त्रीके मरनेपर पुरुष दूसरी शादी करले और पुरुषके मरनेपर स्त्री अपने लिए कोई आश्रय ढूँढ़ ले। उक्त सारे लेखका यही आशय था और जिनके जरा भी विचार शक्ति शेष है, जो धर्म और समाजशास्त्रके स्वरूपको जानते हैं, वे इसमें कोई भी दोष या अन्याय नहीं देख सकते। लेख भरमें यह कहीं नहीं कहा गया है कि पुन-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विवाह करना कोई पुण्यका कार्य है, अतएव उसे करना ही चाहिए। यह अवश्य कहा गया है कि जिन बालविधवाओंसे ब्रह्मचर्यका पालन नहीं हो सकता है, जो अपने विचारोंपर विजय नहीं पा सकती हैं, और इस कारण गुप्त पाप करनेके लिए लाचार होती हैं, उनको बलपूर्वक एकाकिनी रहनेके लिए मजबूर करनेकी अपेक्षा यह अच्छा है कि उन्हें दूसरा पति करनेकी आज्ञा दे दी जाय। जो स्त्री पापोंसे डरती है और इस कारण एक बड़े भारी पापकी परम्पराको छोड़ देती है; परन्तु सर्वथा निष्पाप ब्रह्मचारिणी होकर रहनेमें लाचार है, इस कारण एक छोटासा पाप कर लेती है, अर्थात् निरन्तर छुपकर पाप करना छोड़कर किसी एककी हो जाती है; निःशङ्क होकर कहा जा सकता है कि वह अच्छा काम करती है। बड़े बड़े कुलीन सेठ साहूकारोंके घरकी उन विधवाओंसे जो जीवन भर पापके घड़े फोड़ा करती हैं, उन साधारण घरोंकी विधवायें अच्छी हैं जो अपनी प्रवृत्तियोंको दमन न कर सकनेके कारण पुनर्विवाह कर लेती हैं और दस्सा या विनैकया बनकर जीवन व्यतीत करती हैं।

६ जैनधर्म और पुनर्विवाह।

प्रस्तावके शब्दोंमें कहा गया है कि 'यह कार्य जैनधर्मसे अत्यन्त विरुद्ध है।' अवश्य ही जो विधवा ब्रह्मचर्यसे रहना चाहती है उसे पुनर्विवाहके लिए लाचार करना; अथवा जो कई बालबच्चोंका बाप परलोककी तैयारी कर रहा है उसे १०-११ वर्षकी कन्याके साथ पुनर्विवाह करनेकी इजाजत देना पापका कार्य है और इस कारण जैनधर्मसे अत्यन्त विरुद्ध है। बड़े पापसे बचाकर छोटे पापकी इजाजत देना जैनधर्मसे विरुद्ध कभी नहीं हो सकती। जो इसे धर्मविरुद्ध बतलाते हैं वे धर्मका स्वरूप ही नहीं समझते हैं। जैनधर्ममें प्रत्येक मनुष्यको उसकी शक्तिके और स्थितिके अनुसार धीरे धीरे सीढ़ी दर सीढ़ी ऊपर चढ़ानेकी विधि है। जो जिस योग्य होता है उसे उसी चरित्रके धारण करनेका विधान किया जाता है। जो अगणित प्रकारके जीवोंका मांस खाता था, उसे एक कौएके मांसको छोड़नेका उपदेश दिया गया था। हाथीको छना हुआ पानी नसीब नहीं होता था, इस कारण वह तालाबके पानीको मचाकर-बिलोकर-प्रासुक कर लेता था और फिर उसे पीता था।

पण्डित प्रवर आशाधर और सोमदेवसूरिने ब्रह्मचर्यके तीन भेद किये हैं-एक स्त्री मात्रका त्यागी, और दूसरा अपनीको छोड़कर शेष सबका त्यागी और तीसरा अपनी स्त्री और वेश्याको छोड़कर अन्य सबका त्यागी। इस तीसरेको आचार्य सोमदेवने गृहीका ब्रह्मचर्य कहा है:—

वधू-वित्तस्त्रियौ मुक्त्वा सर्वत्रान्यत्र तज्जने।
माता स्वसा तनूजेति मतिर्ब्रह्म गृहाश्रमे॥

पं० आशाधरके शब्द ये हैं:— "**यस्तु स्वदारवत्साधारणस्त्रियोऽपि व्रतयितुमशक्तः परदारानेव वर्जयति सोऽपि ब्रह्माणुव्रतीष्यते।**" अर्थात् जो, जिस तरह अपनी स्त्रीका त्याग नहीं कर सकता है उसी प्रकार वेश्याका भी त्याग नहीं कर सकता है, केवल पराई स्त्रियोंका त्याग करता है वह भी ब्रह्मचर्याणुव्रती है। जो लोग गतानुगतिक और विचारबुद्धिसे रहित हैं, वे इस बातको कभी नहीं मान सकते कि वेश्यागामी भी ब्रह्मचारी कहल सकता है। वे सोमदेव और आशाधरको सैकड़ों गालियाँ सुनायँगे और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अभी कुछ समय पहले जैनगजटके किसी लेख-कने सुनाई भी थीं; परन्तु जो मर्मज्ञ हैं वे इसे माननेसे कभी इंकार नहीं कर सकते। उक्त विद्वानोंने ब्रह्मचर्यकी जुदा जुदा सीढ़ियाँ बतलाई हैं। जो वेश्यासे सम्बन्ध करता है वह पापी है इसमें कोई सन्देह नहीं; परन्तु यहाँ केवल पापका विचार नहीं है--पापके दर्जोंका विचार है। यह देखना है कि कौन पाप छोटा है और कौन बड़ा है। जैनधर्मकी दृष्टिसे तो वेश्यागमन ही क्यों स्वस्त्रीगमन भी पाप है। परन्तु सबसे बड़ा पाप है, पराई स्त्रियोंसे सम्बन्ध, उससे छोटा है वेश्याओंसे सम्बन्ध, और उससे छोटा है अपनी स्त्रीसे सम्बन्ध। अतः परस्त्रीगमनकी अपेक्षा वेश्यागमन और वेश्यागमनकी अपेक्षा स्वदारसन्तोष अच्छा है; पर स्वतः तीनों ही अच्छे नहीं हैं—तीनों ही—पाप हैं। जो उत्तम पात्र है, उसे शुद्ध ब्रह्मचर्यका, जो मध्यम है उसे स्वदारसंतोषका और जो निकृष्ट है उसे परदारनिवृत्तिका उपदेश दिया जाता है। ठीक इसी दृष्टिसे पुनर्विवाहका विचार होना चाहिए। विधवाविवाह या विधुर-विवाहको कोई पुण्य नहीं बतलाता है। अवश्य ही यह पाप हैं; परन्तु उस पापकी अपेक्षा अच्छा है—ऊँचे दर्जेका है जिसके कि कारण प्रति दिन सैकड़ों भ्रूणहत्यायें और गर्भपात किये जाते हैं और इसी कारण जो अपनी इन्द्रियोंके गुलाम हैं उनके लिए यह आचरणीय है। जिन पण्डित और उपदेशक महाशयोंने इसे जैनधर्मसे अत्यन्त विरुद्ध और दुष्कृत्य बतलाया है, वे क्या कृपा करके बतलावेंगे कि वेश्यागामी गृहस्थका ब्रह्मचर्य जैनधर्मसे अत्यन्त अविरुद्ध और सत्कृत्य कैसे हो सकता है? क्या उनकी समझमें किसी विधवाके साथ पुनर्विवाह करने-वाला गृहस्थ उक्त वेश्यागामी गृहस्थसे भी बुरा है? एक ब्रह्मचारिणी बालविधवाकी इज्जत क्या बाजारू वेश्याके भी बराबर नहीं हो सकती है? हमें आशा है कि विद्वान् जन इस विषयमें निर-पेक्ष होकर विचार करनेका कष्ट उठायँगे।

७ जैनहितैषीका निषेध।

जैनहितैषीके किसी एक लेखका निषेध तो किया जा सकता है; परन्तु यह समझमें नहीं आया कि पं० कस्तूरचन्दजीने जैनहितैषीका निषेध क्या समझकर कर डाला! क्या आपकी उपदेश-मुखरा बुद्धिमें अभी तक यह बात नहीं आई कि पत्रसम्पादक अपने पत्रके प्रत्येक लेखका उत्तर-दाता नहीं होता है? वह किसी एक विषयके निर्णयके लिए अपने अनुकूल और प्रतिकूल दोनों प्रकारके विचारोंका प्रकाश करता है; यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक लेख उसीके वि-चारोंके अनुकूल हो। उसका सबसे बड़ा उद्देश्य 'सत्य' के निर्णयका रहता है, आप लोगों-के समान लकीरके फकीर बने रहनेका नहीं। यदि हितैषीमें एक लेख पुनर्विवाहके अनुकूल प्रकाशित हुआ है तो आप चिन्ता क्यों करते हैं प्रतिकूल लेख भी प्रकाशित होंगे। अभी तो इस विषयका प्रारंभ ही हुआ है। यदि आप प्र-तिकूल लिख सकते हैं, तो कुछ लिख-नेकी कोशिश कीजिए। पर यहाँ उन पुरानी जंग खाई हुई युक्तियोंसे काम न चलेगा जिन्हें सुनकर आपके भोले भाले श्रोता तालियाँ पीटने लगते हैं। क्योंकि जैनहितैषीके पाठक इस बीसवीं शताब्दिके हैं और आपकी युक्तियाँ दशवीं शताब्दिके कामकी हैं। आपको यह भी स्मरण रखना चाहिए कि आपके उप-देशोंसे और प्रतिज्ञाओंके करानेसे हितैषीके ग्राहक कम नहीं हो सकते; क्योंकि जिन लोगोंपर आपका प्रभाव पड़ता है—जो लोग आ-पके संकीर्ण विचारोंपर श्रद्धा रखते हैं, उनमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ढूँढ़नेपर भी जैनहितैषीका कोई ग्राहक न मिलेगा । हितैषीके प्रायः ग्राहक ऐसे ही हैं जिन तक आपके प्रभावकी पहुँच नहीं और जो आपसे अधिक विवेक-बुद्धि रखते हैं । और अपने ग्राहकोंकी योग्यता पर हमें यथेष्ट अभिमान है । यदि दश बीस आपहीकी योग्यताके ग्राहक आपकी प्रेरणासे घट जायँगे, तो इससे हमें यह समझकर खुशी ही होगी कि विधाताके निकट हमारी यह प्रार्थना स्वीकृत हो गई—**अरसिकेषु कवित्वनिवेदनं शिरसि मा लिख मा लिख मा लिख ।** ”

८ प्रगति-सम्पादकका मार्मिक नोट।

सहयोगी ‘ प्रगति आणि जिनविजय ’ में उसके सुयोग्य सम्पादक गजपंथक्षेत्रके अधिवेशनकी समालोचना करते हुए लिखते हैं—

“ दिगम्बरजैनप्रान्तिकसभाके अधिवेशनमें एक विदुषी स्त्रीका व्याख्यान होनेवाला था; परन्तु उसे पं॰ धन्नालालजीके आग्रहके कारण आज्ञा नहीं दी गई और इस तरह जैनधर्मपर आया हुआ एक भयंकर संकट टल गया ! नहीं तो भला कितना बड़ा अनर्थ हो गया होता ! अच्छा हुआ जो पण्डितजीने जैनसमाजको इस संकटसे मुक्त कर दिया ! इस सभामें दूसरा महत्त्वका प्रस्ताव यह हुआ कि विधवाविवाहके अनुकूल लेख लिखनेवाले पत्रोंका निषेध किया जाय ! यह प्रस्ताव भी बहुत दूरदर्शिताका हुआ ! जैनसमाजमें स्त्रियोंकी संख्या कम है । इसके कारण हजारों जैनपुरुषोंको अविवाहित रहना पड़ता है । रहने दो; इससे कुछ हानि नहीं ! इससे पुरुषोंमें अनाचार बढ़ता है । तो भी कुछ हानि नहीं ! इसके कारण विधवाओंमें दुराचार फैलता है । तो भी क्या हुआ ? इस विषयमें कुछ कहना ही न चाहिए । इससे जैनसमाजका ऱ्हास होता है । होने दो; जो होनेवाला है वह होकर रहेगा । इस तरह शंका-समाधान हो जाने पर भी जैनहितैषी आदि पत्र विधवाविवाहके विषयमें लेख क्यों प्रकाशित करते हैं ? उनका निषेध होना ही चाहिए । जैनमित्रके कथनानुसार तो विधवाविवाहका समर्थन करनेवालोंको मौन धारण करना चाहिए । वे आपसमें चर्चा करें, गुप्तरूपसे सम्मतियाँ दें अथवा बाला बाला उत्तेजन दें, कुछ हर्ज नहीं; पर दश आदमियोंमें—सभा-सोसाइटियोंमें इस विषयकी चर्चा करनेकी क्या जरूरत ? ”

९ यज्ञोपवीत और जैनधर्म।

हितैषीके पिछले संयुक्त अंकमें उक्त विषयका एक लेख प्रकाशित हुआ है । उसमें हमने लिखा था कि एक दो श्वेताम्बर विद्वानोंसे मालूम हुआ कि श्वेताम्बर सम्प्रदायके शास्त्रोंमें भी यज्ञोपवीतकी क्रियाका विधान नहीं है । इसपर सहयोगी ‘ जैन ’ के गत २ अप्रेलके अंकमें ‘सत्याकांक्षी’ की सहीसे किसी महाशयने लिखा है कि “श्वेताम्बर—साहित्यमें ‘आचार दिनकर’ इत्यादि बहुतसे ग्रन्थोंमें यज्ञोपवीतकी क्रियाका सहेतुक विवरण है । लेखक महाशय उसमें देख लेनेकी कृपा करें जिससे खुलासा होगा और आगामी अंकमें अपनी भूल सुधारनेकी कृपा करें । ” इसके उत्तरमें हम श्वेताम्बरसम्प्रदायके एक विद्वान् साधु महाशयके पत्रको प्रकाशित कर देते हैं जिसे उन्होंने हमारी जिज्ञासानिवृत्तिके लिए अभी कुछ ही दिनों पहले भेजा था। साधु महोदय जैनधर्मके और इतिहासके बहुत अच्छे ज्ञाता हैं । इससे यज्ञोपवीतके मूलविषयपर भी बहुत अच्छा प्रकाश पड़ेगा—

“ यज्ञोपवीतविषयक लेख पढ़ा । मेरे विचारसे यह प्रथा बहुत पुरानी नहीं; ब्राह्मणोंके संसर्गसे मध्यकालमें प्रविष्ट हो गई है । श्वेताम्बरोंमें जनेऊ पहननेका रिवाज नहीं है । पुराने जमानेमें भी पहननेका कोई उल्लेख नहीं मिलता ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"संवत् १५०० के आसपास वर्धमानसूरि नामके एक आचार्य हो गये हैं । उन्होंने 'आचार दिनकर' नामका विस्तृत ग्रन्थ गृहस्थोंके आचार विषयमें लिखा है । इस ग्रन्थमें अन्यान्य आचारोंके साथ १६ संस्कारोंका भी विधान है । आधुनिक ब्रह्मसमाज और आर्यसमाजने जैसे अपने अपने मन्तव्यानुसार नये ढंगसे संस्कारोंका विधान किया है वैसे ये संस्कार भी जैनदृष्टिसे जैनत्व लानेके लिए विहित किये गये हैं । इन संस्कारोंमें एक 'उपनयन' संस्कार है जिसमें जैनधर्मका आराधन करनेवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यको 'जिनोपवीत' देनेका विधान है । ('यज्ञोपवीत' के स्थानपर 'जिनोपवीत' नाम रक्खा है जो ग्रन्थकारके कौशलका सूचन करता है ।)

"केवल इस एक ग्रन्थके सिवा अन्य किसी पुराने या नये ग्रन्थमें न कहीं इस विषयका विधान है और न कोई उल्लेख ही मिलता है । इस ग्रन्थमें विहित विधान आदरणीय है या अनादरणीय, इसका जिक्र आजतक किसीने नहीं किया । स्वर्गीय श्रीमदात्मारामजी महाराजने, सबसे पहले इन संस्कारोंका प्रकाशन अपने 'तत्त्वनिर्णयप्रासाद' में किया है । इसके बाद कुछ लोगोंके विचार इन संस्कारोंको प्रचलित करनेके पक्षमें सुनाई देते हैं ।

"इतिहास और तत्त्वकी दृष्टिसे देखा जाय तो जैनत्वकी छापवाले व्यवहारोंका अस्तित्व हो ही नहीं सकता । जैन एक प्रकारका धर्म विशेष है, समाज या जाति-विशेष नहीं । व्यवहार जितने हैं वे सब, समाज और जातिविशेषके साथ सम्बन्ध रखते हैं । जैन-जीवन जगत् मात्रके मनुष्य—पशुतक भी धारण कर सकते हैं । ऐसी दशामें व्यावहारिक नियमोंके विषयमें किसी प्रकारका स्वतंत्र नियम जैनधर्म नहीं बना सकता; उसका यह कार्य नहीं । जगतकी भिन्न भिन्न जातियों और समाजोंके रीति-रिवाज जुदा जुदा प्रकारके हैं । किसी देश और जातिवाले मुर्देको जला देते हैं, कोई जमीनमें खड्डा खोदकर गाड़ देते हैं और कोई यों ही जंगलमें फेंक आते हैं । जैनधर्मके सिद्धान्तानुरूप इन सब जातियोंके मनुष्य जैनधर्मका आराधन उत्कृष्टतया कर सकते हैं, तो अब फिर इनके लिए कौन सी रीति नियमित की जाय ? जैनदृष्टिसे तीनों कृत्य— जला देना, गाड़ देना या फेंक देना—एकसे हैं । जैनधर्म व्यवहारके विषयमें बिल्कुल मौन है । चाहे मुर्दा जलाया जाय, चाहे गड़ाया जाय, वह इस विषयमें किसी भी विधिको धर्म्य नहीं बतलाता । ऐसी अवस्थामें जैनधर्मसे व्यावहारिक नियम बनाये नहीं जा सकते । जो मनुष्य जिस देश और जातिका हो वह अपना लौकिक व्यवहार अपने देशजात्यनुसार चलावे, धर्म उसमें कुछ नहीं कहता । केवल धर्माचरणमें जैनत्वकी आवश्यकता है । जैनधर्म केवल 'निवृत्तिमार्गविधायक' है प्रवृत्तिका उपदेशक नहीं । हाँ, यह अवश्य वह कह देगा कि अमुक प्रवृत्ति अधिक कर्मजनक है और अमुक अल्प पापवाली ।

"वैदिक धर्मकी दृष्टिमें और जैनधर्मकी दृष्टिमें बड़ा अन्तर है । यह बात हमेशा ध्यानमें रहनी चाहिए । वैदिक धर्म व्यवहारप्रवृत्तिको भी धर्मके साथ संलग्न रखना चाहता है । वह व्यवहार और धर्मका अभेद संबन्ध मानता है, इसलिए कुल व्यवहारोंमें वह अपना दखल रखना चाहता है । जैनधर्मकी यह मानता नहीं । जैनधर्म तो कहता है कि कर्मजनक सब ही प्रवृत्तियाँ अधर्ममें शामिल हैं । ऐसी प्रवृत्तियोंका विधान निवृत्तिपरायण जैनधर्ममें कैसे हो सकता है ! इत्यादि बहुत कुछ बातें विचारने लायक हैं । वर्णाश्रमके विषयमें भी यही हाल है । मैं अभी मुसाफिरीमें हूँ साथमें किसी भी प्रकारका साहित्य नहीं है—लिखनेके लिए कागज भी यथेष्ट नहीं है ! ...."

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आशा है कि सत्याकांक्षी महाशयको इस पत्रसे सन्तोष हो जायगा और अन्यान्य पाठकोंको यज्ञोपवीतके मर्मको समझनेमें सहायता मिलेगी।

१० महात्मा गाँधी और मातृभाषा।

हितैषीके पाठकोंको मालूम होगा कि 'भारत-जैनमहामण्डल' के गत दिसम्बरके अधिवेशनमें हमारे अँगरेजीभक्त भाइयोंने लगभग एक हजार श्रोताओंके सामने—जिनमें अँगरेजी जाननेवालोंकी संख्या मुश्किलसे १०० होगी—अपने विचार अँगरेजीमें प्रकट किये थे। एक दिनकी तो सारी कार्रवाई अँगरेजीहीमें की गई थी और उस समय थोड़ेसे इने गिने लोगोंको छोड़कर शेष सभी उनका मुँह ताकते रहे थे। ठीक यही हाल संगामपुर–सूरतकी एक सभामें भी हुआ। महात्मा गाँधीके हाथसे वहाँ एक जैनपुस्तकालय खोला जानेवाला था। और इसके लिए एक सभा की गई थी। यद्यपि उस सभामें भी अधिकांश श्रोता अँगरेजीसे अनभिज्ञ थे, तो भी कुछ जैनविद्यार्थियोंका जी नहीं माना–उन्होंने अपने विचार अँगरेजीमें ही प्रकट करना उचित समझा। जब उनके अँगरेजी व्याख्यान हो चुके तब माहात्मा गाँधीने अनेक उपदेश देते हुए जो कुछ कहा उसे हम 'सरस्वती' से यहाँ उद्धृत कर देते हैं। हम आशा करते हैं कि मण्डलके सभासद महात्मा गाँधीके बहुमूल्य शब्दोंपर ध्यान देनेकी कृपा करेंगेः—

"यह अत्यन्त आश्चर्य्यका विषय है कि अँग्रेजीमें व्याख्यान देनेवाले विद्यार्थी इतना भी विचार नहीं करते कि जिनके सन्मुख वे बोल रहे हैं वे उनका व्याख्यान समझ सकेंगे या नहीं। वे नहीं सोचते कि यहाँपर जो अँगरेजी समझनेवाले उपस्थित हैं वे इस त्रुटिपूर्ण अशुद्ध अँगरेजी-भाषासे आनन्द प्राप्त करेंगे, या उनके हृदयमें अरुचि उत्पन्न होगी। चढ़ती उमरके युवकोंको मातृ-भाषासे पराङ्मुख होकर पर-भाषा पर इतना मुग्ध होना शोभा नहीं देता। यह बड़ी ही शोकजनक स्थिति है। विदेशी संसर्गके कारण देशमें नवीन युग उपस्थित हुआ सही; पर इसका यह अर्थ नहीं है कि हमें अपनी भाषा छोड़कर विदेशी भाषाहीमें अपने विचार प्रकट करना चाहिए। जिस भाषाको व्याख्यान देनेवालोंके माता-पिता नहीं जानते, जिसको उनके बहन-भाई नहीं समझ सकते और जिसको उनके स्त्री-पुत्र तथा नौकर-चाकर नहीं समझ सकते, उसका सेवन करनेसे नवीन युग समीप आयेगा कि दूर चला जायगा, इसपर उनको अवश्य विचार करना चाहिए। कितने ही मनुष्योंका ख्याल है कि अँगरेजी अब हमारी मातृ-भाषा है। परन्तु यह ख्याल मुझे ठीक नहीं मालूम पड़ता। यदि अँगरेजी जाननेवाले मुट्ठीभर लोगोंको हम 'देश' मानलें तो यह कहना पड़ेगा कि 'देश' शब्दका ठीक अर्थ ही हमने नहीं समझा। मेरा तो यह सिद्धान्त है कि ३२ करोड़ मनुष्योंका अँगरेजी सीखना और अँगरेजीका देशभाषा होजाना नितान्त असम्भव है। जिन नव-युवकोंने नई विद्या सीखी है और जिन्होंने नये विचारोंसे लाभ उठाया है, उनको अपने विचार अपने देशभाइयोंपर अवश्य प्रकट करना चाहिए। यह बात अपनी ही भाषाद्वारा हो सकती है। जो युवक यह कहते हैं कि हम अपने विचार मातृभाषाद्वारा नहीं प्रकट कर सकते उनसे मैं यही निवेदन करूँगा कि आप मातृ-भूमिके लिए भाररूप हैं। मातृ-भाषाकी अपूर्णता दूर करनेके बदले उसका अनादर करना–उससे हाथ ही धो बैठना–किसी सच्चे सपूतको शोभादायक नहीं। वर्तमान जनसमुदाय मातृ-भाषाकी उन्नतिके विषयमें चुप रहेगा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो भावी प्रजाको चिरकाल तक पछताना पड़ेगा। उलहनेसे वे कभी नहीं बचेंगे। मैं आशा करता हूँ कि यहाँ बैठे हुए समस्त विद्यार्थी प्रतिज्ञा करेंगे कि निरुपाय दशाके सिवा और कभी भी हम अपने घर पर अँगरेजी न बोलेंगे। विद्यार्थियोंके माता पिता भी समयकी खरतर धारामें बह जानेसे सावधान रहें। अँगरेजी भाषा हमे पढ़ना अवश्य चाहिए, किन्तु मातृभाषाको भुलाकर नहीं। हमारे जनसमाजका सुधार हमारी मातृभाषा द्वारा ही होगा। मातृभाषाकी उन्नति करना विद्यार्थियों और उनके माता पिताओंका भी कर्तव्य है। मैं प्रसन्न हूँ कि यह पुस्तकालय मेरे हाथसे खोला जा रहा है। पर, यदि यह अपनी भाषाकी पुष्टि न करके उसे क्षीण करेगा तो मुझे अत्यन्त दुःख होगा।"

११ प्रान्तिक सभाके सभापतिका व्याख्यान।

दिगम्बर-जैन-प्रान्तिक सभा बम्बईके इस अधिवेशनमें सभापतिका आसन आलन्दनिवासी शेठ माणिकचन्द मोतीचन्द शहाने स्वीकार किया था। मालूम नहीं स्वयं आपको जैन-समाजसे कितना परिचय है और आपकी योग्यता कैसी है; परन्तु आपने जो व्याख्यान पढ़ा, वह अच्छा लिखा गया है। यद्यपि उसमें विशेष जोश या उत्तेजना नहीं है, तो भी जैनसमाजका उसमें खासा परिचय दिया गया है। कहीं कहीं नये विचारों और सुधारोंकी 'ढंगके साथ' हिमायत की गई है। अछूत और नीच जातियोंको शिक्षित बनानेके लिए कहा गया है–" नीच मानी हुई जातियोंके लड़कोंको ज्ञान दिया जायगा तो उसमें स्वार्थ और परमार्थ दोनों सधेंगे। इस समय वे अशिक्षित हैं, इस लिए हिंसा, चोरी, डकैती आदि नीच कर्म करके पेट भरते हैं–हमारे ही घरोंपर डाँके डालते हैं, हमारे ही घरोंकी चोरियाँ करते हैं और हमारे ही पशुओंको मारकर खाजाते हैं। अतः यदि उन्हें शिक्षा दी जायगी, तो वे अपनी आजीविका न्यायमार्गसे करने लगेंगे। इससे उनका कल्याण होगा और हमारे घरोंमें चोरी आदि उपद्रव न होंगे। हमारे तीर्थक्षेत्रोंके निकट रहनेवाले जो भील आदि अनार्य्य लोग हैं, उनके लड़कोंके लिए यदि हम पाठशालायें खोल देंगे, तो वे लड़के बड़े होनेपर नौकरी चाकरी या और कोई व्यापार करके अपना पेट भरने लगेंगे।" जैनोंकी जनसंख्या कम होती जाती है, इस विषयमें सेठजीने दो कारण बतलाये हैं एक जैनधर्मानुयायी अन्य धर्म स्वीकार करने लगे हैं और दूसरा प्लेग। पहले कारणको ठीक बतलाते हुए कहा है कि "सतारा, पूना, अहमदनगरके कासार लोग धर्मोपदेशके अभावसे अपनेको हिन्दू कहलवाते हैं और निजाम स्टेटके जैनोंका भी यही हाल है।" यह हम मानते हैं कि कुछ लोगोंने पिछले १० वर्षोंमें जैनधर्म छोड़ दिया होगा; परन्तु वह इतना बड़ा कारण नहीं है। इस विषय पर विशेष विचार इसी अंकमें प्रकाशित हुए श्रीयुत बाबू निहालकरणजी सेठीके लेखमें किया गया है। उसमें यह भी बतलाया गया है कि प्लेग भी जैनसंख्याकी हानिका प्रधान कारण नहीं है।

१२ रोटी-बेटी व्यवहार।

प्रान्तिक सभाके स्वागतकारिणी कमेटीके सभापति सेठ नवलचन्द-हीराचन्दजीने अपने व्याख्यानमें कहा कि " प्राचीन कालमें जब रेल, तार, डाँक, आदिके सुभीते न थे, तब लोग रोजगार-धंधेका तथा ब्याह शादियोंका सम्बन्ध अपने समीपके ग्रामोंसे ही रखना चाहते थे और इस कारण एक भागके रीति रिवाज, वेष-भूषा आदि दूसरे भाग-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से जुदा प्रकारके हो गये थे ! जातियोंकी छोटी छोटी संस्थायें भी उसी समय स्थापित हुई होंगी, ऐसा मालूम होता है । परन्तु अब समय बदल गया है। यह सुधारका जमाना है। जब रहन–सहन, वेष-भूषा, भाषा आदि सभी बातें बदल गई हैं; तब पुराने रीती-रिवाज ही कैसे स्थिर रहेंगे ? उस समयकी रहन–सहन, वेषभूषा, आचार–विचार तो बदल जावें; परन्तु उस समयकी परिस्थितियोंके अनुसार बनाये हुए रीतिरिवाज न बदले जावें, इसके समान मूर्खतापूर्ण कार्य और क्या हो सकता है ? इन रिवाजोंमें सबसे प्रधान रिवाज 'ब्याह' का है। जातियोंके छोटे छोटे टुकड़े हो गये हैं, इस कारण वरके योग्य कन्या और कन्याके योग्य वर नहीं मिलते हैं। जिन जातियोंमें कन्यायें कम हैं, उनमें बेजोड़ ब्याह अधिक होते हैं और सैकड़ों युवाओंको जीवन भर कुआँरा रहना पड़ता है। इसके सिवाय कहीं कहीं श्वेताम्बर या वैष्णव कन्यायें लानी पड़ती हैं । इन सब संकटोंके दूर करनेके लिए दिगम्बरजैनसमाजमें जातियोंकी भिन्नताके बिना ब्याह होना चाहिए। जहाँ रोटी–व्यवहार है वहाँ बेटी-व्यवहार भी होना चाहिए । " इसमें श्वेताम्बर और वैष्णवोंकी कन्याओंके साथ विवाह करना अच्छा नहीं बतलाया गया। परन्तु हम इस सम्बन्धको बुरा नहीं समझते। अग्रवाल ओसवाल आदि जातियोंके समान जो ऐसी जातियाँ हैं जिनमें जैन और वैष्णव, अथवा श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों धर्म पाले जाते हैं उनमें इस प्रकारके सम्बन्ध अकसर होते हैं और ये सम्बन्ध हमें प्राचीन भारतकी धार्मिक स्वतंत्रता और उदारताका आज भी स्मरण कराते हैं। भारतमें एक समय ऐसा था जब मनुष्य अपनी इच्छानुसार चाहे जिस धर्मको पालन करनेके लिए स्वतंत्र था और इसीका यह फल था कि एक घरमें जैन, बौद्ध और ब्राह्मण-धर्म साथ साथ प्रेमपूर्वक पाले जाते थे। राजा श्रेणिक बौद्ध थे और उनकी रानी चेलना जैन थी। यह बहुत ही प्रसिद्ध कथा है। ये सम्बन्ध किसीतरह हानिकारक नहीं हो सकते। ये हमारे महत्त्वके द्योतक हैं। इनके बढ़ानेका प्रयत्न करना चाहिए, न कि घटानेका।

१३ श्वेताम्बर-जैन-कान्फरेन्स।

गत २३, २४ और २५ अप्रैलको श्वेताम्बर जैन कान्फरेन्सका दशवाँ अधिवेशन धूमधामके साथ हो गया। सभामें दो ढाई हजार श्रोता उपस्थित होते थे । बाहरसे भी बहुतसे लोग आये थे। हमारी दिगम्बरसभाओंके अधिवेशनोंकी अपेक्षा इस कान्फरेन्सके अधिवेशनमें कई एक विशेषतायें थीं। सबसे बड़ी विशेषता सभा-शुल्ककी थी । दो, तीन, पाँच और दश रुपयेके टिकिट थे । साधारण दर्शकोंका टिकिट दो रुपयाका था । इससे कमका टिकिट कोई भी न था । बिना टिकिटके किसीको भी भीतर जानेका अधिकार न था। इस नियमकी पालना भी कड़ाईसे होती थी। टिकिटोंसे सुनते हैं कि लगभग छह हजार रुपयेकी आमदनी हो गई ! यदि हमारी महासभा या प्रान्तिक सभाके किसी जल्सेमें इस प्रकारका प्रबन्ध किया जाय, तो शायद सभामंडपमें २०० श्रोता भी उपस्थित न हों। एक तो बम्बई अहमदाबाद जैसे बड़े शहरोंमें रहनेवाले लोग यों ही खर्चीले होते हैं और दूसरे इन स्थानोंमें श्वेताम्बर धानिकोंकी संख्या भी अधिक है। यही कारण है जो यहाँ टिकिट होने पर भी लगभग दो ढाई हजार श्रोता सभामें उपस्थित हो गये। हो जायँ, पर यह रीति अच्छी नहीं । कमसे कम जैनसमाजमें तो अभी इसके प्रचालित करनेकी जरूरत नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इससे वे लोग सभाके लाभोंसे वंचित रह जाते हैं जो धनहीन हैं अथवा उपदेशको मूल्य देकर लेने योग्य अभिरुचि नहीं रखते हैं । शिक्षा और समाजोन्नतिके विचारोंको हम जितना सुलभ और सहज कर सकें उतना करना चाहिए। दूसरी विशेषता यह देखी कि धनी और पुराने ख़यालके लोगोंके साथ अनेक ग्रेज्युएट–वकील, बैरिस्टर, सालीसिटर, डाक्टर–काम करते थे। हमारे दिगम्बर समाजमें यह बात नहीं है। हमारे यहाँ पण्डितों और बाबुओं तथा धनियोंमें इतना मतभेद तथा मतासहिष्णुता है कि वे बिना लड़े-झगड़े मिलकर काम कर ही नहीं सकते। हमारे यहाँ कट्टरता ज्यादा है और हमारी जनता नवीन सुधारके विचारोंसे बहुत ही अनभिज्ञ है । साथ ही हमारे यहाँ धर्मतत्त्वोंके जाननेकी डींग हाँकनेवाले अर्द्धदग्ध लोग बहुत हैं जो हर जगह धर्मके डूब जानेका रोरा मचानेके लिए तैयार रहते हैं । सभापतिका आसन बड़ौदाके डाक्टर श्रीयुक्त बालाभाई मगनलाल णाणावटीने सुशोभित किया था । आप बड़ोदा महाराजके खास डाक्टर हैं और देशोपकारके कामोंमें हमेशा योग दिया करते हैं ।

१४ सभापतिके व्याख्यानकी कुछ बातें ।

डाक्टर साहबका व्याख्यान खासा था । पुस्तकोद्धारके विषयमें कहते हुए आप बोले–" फिजूलके मुकद्दमें लड़नेमें, जैनधर्मकी झूठी प्रभावना प्रकट करनेमें और जाति-रिवाजोंकी खर्चीली सेवा बजानेमें हमारा जैनसमाज प्रति वर्ष लाखों रुपया खर्च कर डालता है; परन्तु जिस ज्ञानके लिए हम अभिमान करते हैं, जिस धर्मकी प्राप्तिके कारण हम अपने जन्मको सार्थक मानते हैं और भगवान् महावीर स्वामीके अनुयार्य कहलानेमें अपनेको भाग्यशाली समझते हैं, उस ज्ञान और धर्मके ग्रन्थोंको अन्धेरेमें डाल रखनेमें हमें जरा भी संकोच नहीं होता है । यह बहुत ही शोककी बात है । पुस्तकोंकी रक्षा और प्रचारके लिए तो हमें धन नहीं मिलता; परन्तु ज्योनारोंके लिए, ब्याह शादियोंके जुलूसोंके लिए और निरर्थक धार्मिक मुकद्दमे लड़नेके लिए रुपयोंकी कभी कमी नहीं पड़ती ! " समाज-संगठनके विषयमें आपने कहा–" हमारी वर्तमान सामाजिक रचना ऐसी है कि हम धार्मिक और आर्थिक उन्नति करनेके लिए चाहे जितना प्रयत्न करें तो भी अच्छी स्थिति प्राप्त नहीं कर सकते; क्योंकि हम अपने धर्मके सिद्धान्तोंके और समाजरचनाके विरुद्ध छोटी छोटी जातियों और उपजातियोंमें बँट गये हैं और इससे एक साथ काम करनेकी शक्ति घटती जाती है । अनेक बातोंमें हमारे विचार भी संकुचित होते जाते हैं और समाजबल कम होता जाता है । इससे जब हम सारे जैनसमाजके प्रश्नोंको हाथमें लेना चाहते हैं, तब हमारे कार्यमें तरह तरहके विघ्न आ पड़ते हैं । गत पचास वर्षके इतिहाससे मालूम होता है कि हमारी जुदी जुदी जातियाँ परस्पर मिलती तो नहीं हैं, उलटी उपजातियाँ बढ़ती जाती हैं, और तड़ें पड़ती जाती हैं ! जैनजातिको छोड़कर अन्य जातियोंके साथका सम्बन्ध कम होता जाता है और जैनधर्मका पालन करनेवाली एक ही जातिकी अन्तर्जातियोंके साथका सम्बन्ध भी घटता जाता है । अर्थात् एक ही जातिके जुदा जुदा प्रदेशोंमें रहनेवाले लोगोंका सम्बन्ध वर्तमान डाँक, रेल, तार आदिके उत्तम साधन मिलने पर भी बढ़नेके बदले संकुचित होता जाता है । व्यवहारका क्षेत्र इस तरह संकीर्ण होनेके कारण कन्याविक्रय, वरविक्रय, बाल्यविवाह, वृद्धविवाह आदि हानिकारक रिवाजोंको उत्तेजन मिला है । इससे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हमारी सामाजिक और शारीरिक दशा बिगड़ती जा रही है, तथा बन्धुभावका कार्यक्षेत्र संकुचित होकर एकता होनेके बदले फूट बढ़ती जाती है। हमें समझना चाहिए कि वर्तमानका जातिसंगठन हमारे धर्म और समाजशास्त्रके नियमोंसे विरुद्ध है। अतः इस मुख्य और महत्त्वके प्रश्नकी ओर सबको ध्यान देना चाहिए।" अपना दूसरे सम्प्रदायोंके साथ और देशके साथ सम्बन्ध बतलाते हुए आपने कहा—"हमें यह न भूलजाना चाहिए कि हमें जैनसमाजके दूसरे पन्थोंके साथ हिल मिलकर रहना है तथा भारतनिवासी होनेके कारण हमें अपने देशसंबन्धी कर्तव्य भी करने हैं और अनेक सत्व प्राप्त करने हैं। सारी जैनजातिके हितके लिए 'जैन एसोसियेशन आफ इंडिया' तथा 'भारत जैनमहामण्डल' आदि संस्थायें स्थापित हुई हैं। इन संस्थाओंके साथ रहकर भी हमें काम करना है। हम सब भगवान् महावीर स्वामीके पुत्र हैं और थोड़ेसे मत मतान्तरोंको यदि हम न गिनें तो हम सबकी मानता भी एक ही है। सबका अन्तिम साध्य मोक्षप्राप्ति ही है। अतएव बन्धुभावकी विशाल भावनाके साथ हम सबको मिल कर जैनजातिकी भलाई करनेके यत्न करना चाहिए।" व्याख्यानके अन्तमें आपने निम्नलिखित बहुमूल्य इच्छा प्रकट की "मेरी आन्तारिक अभिलाषा है कि हमारा समाज धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और शारीरिक विषयोंमें आगे बढ़े, एकताके सूत्रमें बँधे और उच्चजीवन व्यतीत करने लगे। उसकी प्रत्येक व्यक्ति पहले मनुष्यत्वके और पीछे जैनत्वके कर्तव्योंका पालन करनेके लिए शक्तिवान् बने और अन्तमें इस भव और परभवके सुधारनेके लिए बुद्धिपूर्वक तत्पर हो।"

१५ कान्फरेंसके प्रस्ताव।

कान्फरेंसने सब मिलाकर १८ प्रस्ताव पास किये, जिनमें दश प्रस्ताव केवल शिक्षासम्बन्धी थे। यह अब अच्छी तरहसे निश्चित होता जाता है कि उन्नतिके तमाम साधन शिक्षाके हाथमें हैं, इसलिए सबसे अधिक जोर शिक्षा पर ही देनेकी जरूरत है। बम्बईके शिक्षाखातेके डायरेक्टरने जैन विद्यार्थियोंके शिक्षासम्बन्धी अंक प्रकाशित करनेकी स्वीकारता दे दी है। इसलिए कान्फरेंसने बम्बईके शिक्षाखातेको धन्यवाद देने और अन्यप्रान्तोंके शिक्षाखातेको प्रेरणा करनेका भी एक प्रस्ताव पास किया। दिगम्बर कान्फरेंसको भी इस विषयमें प्रयत्न करना चाहिए। इससे हमें अपनी शिक्षाकी दशाका ज्ञान होगा। एक प्रस्ताव हिन्दी-यूनीवर्सिटीके सम्बन्धका था। उसमें यूनीवर्सिटीकी स्थापना पर प्रसन्नता प्रकट की गई और उसके संचालकोंसे आग्रह किया गया कि हिन्दूधर्मके समान जैनधर्मकी शिक्षाका भी वे प्रबन्ध करें। इसी प्रकारका एक प्रस्ताव बम्बई प्रान्तिक सभाके अधिवेशनमें भी पास हुआ है। आशा है कि इस ओर ध्यान दिया जायगा। १५ वाँ प्रस्ताव जैनोंकी संख्यावृद्धिके सम्बन्धमें था। घटती हुई संख्याको बढ़ानेके लिए पाँच उपाय बतलाये गये—१ जिन लोगोंने अपना असली धर्म छोड़कर अन्य धर्म स्वीकार कर लिया हो उन्हें फिरसे जैनधर्ममें लानेका प्रयत्न करना, २ जैनधर्ममें रुचि रखनेवाले उच्चवर्णके आर्योंको साधुमहाशयोंकी सम्मतिसे जैनधर्ममें दाखिल करनेका यत्न करना, ३ आरोग्यविद्याके नियमोंका ज्ञान जैनसमाजमें फैलाना, ४ सघन वस्तीवाले बड़े शहरोंमें गरीब और साधारण स्थितिके लोगोंके लिए कम किरायेके हवादार मकान और कोठरियाँ बनानेके लिए जैनधनिकोंको प्रेरणा करना। कान्फरेंसने अपने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गत अधिवेशनमें जैनीमें मृत्युसंख्या अधिक क्यों होती है, इसकी जाँचके लिए एक कमेटी बनाई थी। उक्त कमेटीने इससमय अपनी रिपोर्ट छपाकर बाँटी थी। पाँचवाँ उपाय इस रिपोर्टकी सूचना पर ध्यान देना बतलाया गया। रिपोर्ट बड़े महत्त्वकी है; परन्तु अफसोस है कि वह केवल बम्बई शहरकी है। सारे देशके जैनियोंकी मृत्युसंख्याके विषयमें भी इसी प्रकारकी एक रिपोर्ट प्रकाशित करनेकी जरूरत है। आशा है कि इसकी ओर औरं और सभायें भी ध्यान देंगी।

१६ तीसरी बैठकमें कुछ विघ्न।

ता० २३ अप्रैलको सभाका काम ११ बजेसे शुरू होनेवाला था और लोग ठीक समयपर उपस्थित भी होगये थे; परन्तु ढाई बजेतक काम बन्द रहा। श्रीयुत पं० फतहचन्द कपूरचन्द लालनका नाम पाठकोंने सुना होगा। आप श्वेताम्बर समाजके बड़े नामी वक्ता, निःस्वार्थ सेवक और विद्वान् पुरुष हैं। आप कई बार यूरोप और अमेरिकाकी सफर कर आये हैं। आपका हृदय बहुत उदार है और समस्त जैनसमाजकी उन्नतिके लिए आप निरन्तर प्रयत्न किया करते हैं। कई वर्ष हुए पालीतानेमें आपकी इच्छाके विरुद्ध कुछ जैन विद्यार्थियोंने आपकी पादपूजा की थी, इस कारण पादपूजाके रजिस्टर्ड अधिकारी कुछ श्वेताम्बर साधुओंने आपके विरुद्ध आन्दोलन शुरू किया था और उन्हें संघसे बाहर निकाल डालनेके लिए कमर कसी थी। इसका फल यह हुआ कि श्वेताम्बरसंमाजमें दो बड़े भारी पक्ष पड़ गये—एक पं० लालनका अनुयायी और दूसरा साधुओंका। यह फूट अभी तक चली आती है और उसीके कारण उस दिनकी बैठकका काम ढाई बजेतक शुरू न होसका। एक पक्ष चाहता था कि पं० लालनके स्टेजपर व्याख्यान हों; परन्तु दूसरा पक्ष इसका विरोधी था। सभापति महाशयने बड़ी कठिनाईसे विरोध शान्त किया और उस दिनका काम ज्यों त्यों करके समाप्त किया। पं० लालन स्वयं ही उस दिन न आये; उन्होंने अपने कारण कान्फरेंसके काममें बाधा पहुँचे, यह पसन्द न किया। उनके व्याख्यानोंके विना कान्फरेंसकी स्टेज सूनीसी रही। अवश्य ही वीतराग साधुओंको—धर्मके सर्वाधिकारियोंको इससे सन्तोष हुआ होगा।

१७ एक सेठजीके पत्रका उत्तर।

हमारे एक शुभचिन्तक सेठजीने—जो जैनसमाजके बहुत ही प्रतिष्ठित पुरुष समझे जाते हैं—अभी कुछ ही दिन पहले हमें एक पत्र लिखनेकी कृपा की थी जिसमें उन्होंने जैनहितैषीके पहले अंकमें प्रकाशित हुए 'जैनोंकी वर्तमान दशाका चित्र' शीर्षक लेखके सम्बन्धमें हमें उलहना दिया था और हमें सदिच्छावश अनेक उपदेश देनेका कष्ट भी उठाया था। पत्रका उत्तर हमने जो कुछ दिया था, वह यहाँ प्रकाशित कर दिया जाता है। इससे उन सज्जनोंको भी संतोष हो जायगा जिन्होंनें हमें सेठजीके ही समान उलहने देने या उपदेश देनेका कष्ट उठाया था और हम अवकाशाभावके कारण सबको पृथक् पृथक् उत्तर न लिख सके थे। इससे हमारे पाठकोंकी भी अनेक शंकाओंका समाधान हो जायगाः—

"महाशय, धर्मस्नेहपूर्वक जुहारु। आपका ता० २६-३-१६ का कृपापत्र मिला। आपका पत्र पढ़नेसे चार बातोंका पता लगता है—**एक** तो आपको जैनधर्मकी उन्नतिकी बड़ी चिन्ता है, **दूसरे** आप स्वयं यह मानते हैं कि विधवाविवाह जैन समाजको अत्यन्त हानि पहुँचानेवाला और जैनधर्मके पवित्र आदर्शको मिटानेवाला है, **तीसरे** आपकी समझमें विधवाविवाहके प्रश्नकी चर्चा करना मन्दबुद्धिवा-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोंका काम है और **चौथे** आपकी आज्ञा है कि मैं पहले अंकमें प्रकाशित हुए विधवाविवाहसम्बन्धी लेखका खंडन करूँ। मैं इन चारों ही बातोंपर नम्रतापूर्वक निवेदन करना चाहता हूँ जिससे आपको मेरे विचारोंका पता लग जाय और आपके पत्रका उत्तर हो जाय।

"यह बड़े ही आनन्दका विषय है कि आपको जैनधर्मकी उन्नतिकी चिन्ता है। सचमुच ही आपका यह कर्तव्य होना चाहिए कि जिन विचारों या प्रवृत्तियोंसे समाज या धर्मको हानि पहुँचती हो, उन सबको रोकनेका उद्योग करते रहें। हितैषीके जिस लेखपर आपको आक्षेप है उसके विषयमें तो मैं आगे चलकर विचार करूँगा। यहाँ आपका लक्ष्य इस ओर आकर्षित करना चाहता हूँ कि वे विचार जो उक्त लेखमें प्रकट किये गये हैं थोड़ी देरके लिए मान भी लिया जाय कि हानिकारक हैं; परंतु यह भी तो सोचिए कि उनकी उत्पत्ति किस कारणसे हुई? मेरी समझमें बालविवाह, वृद्धविवाह, कन्याविक्रय और विधवाओं पर होनेवाले अत्याचार, ये ही कारण हैं जिन्होंने विधवाविवाहकी चर्चाको जन्म दिया है। मैं पूछता हूँ कि विधवाविवाहकी तो **चर्चा** भी आपको असह्य मालूम होती है, पर बाल और वृद्धविवाहके **कार्य** क्यों असह्य मालूम नहीं होते? उसकी तो चर्चामें भी अधर्म है और इनके प्रत्यक्ष कार्य्योंमें भी अधर्म नहीं है! आप कहेंगे कि इन कार्य्योंमें अधर्म तो है, पर किया क्या जाय? लोग माने तब न? पर यह उत्तर सन्तोष—जनक नहीं है। आप जैसे प्रतिष्ठित अगुए यदि चाहें—कमर कस लें तो ये पाप-प्रवृत्तियाँ अवश्य बन्द हो सकती हैं। हितैषीमें चर्चा न होने पावे, इसके लिए तो आप कटिबद्ध जान पड़ते हैं, पर इस चर्चाके जन्मदाता पापकार्योंके रोकनेके लिए—आप समर्थ होते हुए भी—कुछ भी उद्योग नहीं करते हैं, यह जानकर आश्चर्य होता है। मान्यवर! हमारे समाजके अगुए और धर्मात्मा कहलानेवाले लोग ऐसी गाढ़ निद्रामें सोये हुए पड़े हैं कि उनको जगानेके लिए इस तरहकी उत्तेजना फैलानेवाली भयदायक चर्चा उठाना बहुत आवश्यक है। ऐसी भयंकर चर्चाके विना वे जागनेवाले नहीं। विधवाविवाह धर्मदृष्टिसे बुरा है या भला यह दूसरा प्रश्न है, इसका विचार आगे होगा; पर इसमें तो कोई संदेह नहीं कि लोगोंको भयभीत करके जगानेके लिए इससे अच्छा नुसखा और दूसरा नहीं। भला यह भी कोई जैनधर्मका न्याय है कि पुरुष तो पचास और पचपन वर्षकी उम्र तक विषय-भोग करते हुए भी सन्तुष्ट न होकर बारह वर्षकी नासमझ लड़कीका जन्म मिट्टीमें मिला दें और बारह वर्षकी अनाथ विधवा इन्द्रियनिग्रह करनेके लिए लाचार की जाय? हम लोग तो ऐशो-आराममें जिन्दगी वितावें और स्त्रियोंको दुःखके गढ़ेमें ढकेलकर उनकी ओर नजर उठाकर भी न देखें? इसका नाम क्या धर्म है? यदि हम सच्चे जैनी हैं और जैन-धर्मके गौरवका रक्षण करना चाहते हैं तो हमें बालविवाह, वृद्धविवाह, कन्याविक्रय और छोटी छोटी उपजातियोंका अस्तित्व मिटाना ही पड़ेगा। जबतक ये बातें न मिटेंगी तबतक इनसे उत्पन्न होनेवाला विधवा-विवाहका पाप रुक नहीं सकता। जबतक पापोंका मूल बना है, तबतक उनका फल चखना ही होगा। अतः आप जैसे सच्चे समाज-सेवकों—अग्रेसरोंको चाहिए कि विधवाविवाहकी चर्चाको सुनकर क्रोधित न हों, बल्कि इसकी आवश्यकताको खड़ी करनेवाले वृद्धविवाहादि कुकर्म्मोंको—कमसे कम अपने अपने प्रान्तोंमें—शीघ्र ही बन्द करनेकी कोशिश करें, जिससे कि विधवाविवाहकी आवश्यकता ही न रहे।

"अब मैं जैनहितैषीके लेखके मुद्देपर आता हूँ। इस विषयमें पहले यह जानना चाहिए कि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पत्रसम्पादकोंका कर्तव्य क्या है? प्रबल युक्तिवाले और गालीगलौज जिसमें न हो ऐसा कोई भी लेख कोई प्रसिद्ध लेखक भेजे तो सम्पादकको चाहे वह उससे सहमत हो या न हो; लोगोंको स्वयं विचार करनेका मौका देनेके लिए उसे अपने पत्रमें अवश्य प्रकाशित करना चाहिए। यही पत्र-सम्पादकोंका धर्म है। जिस लेखके विषयमें आप शिकायत करते हैं, वह लेख खास विधवाविवाहके विषयमें नहीं है। जैनसमाजकी तमाम परिस्थितियोंके अनुभवसे उन्नतिके मार्गको बतलाना उस लेखका आशय है। स्त्रियोंके सिवाय और भी बहुतसी बातोंकी—शास्त्रोद्धार, ऐक्य, आत्मबलि आदिकी भी उसमें चर्चा है। इन सब चर्चाओंके पढ़नेसे आपको स्वतः मालूम होजायगा कि लेखक महाशय जैनधर्म और जैनसमाजके सच्चे सेवक, भक्त और शुभेच्छुक हैं। उनके अन्यान्य अनेक लेखों ग्रंथों, और व्याख्यानोंसे मैं परिचित हूँ और उनके निजी वा सार्वजनिक जीवनका भी मुझे बहुत कुछ अनुभव है। मैं कह सकता हूँ कि उनका आशय हमेशा निर्मल और समाजसेवा करनेका रहता है। उनकी युक्तियाँ और अनुभव भी विस्तृत है। ऐसे पुरुषके विचारोंको हम अपने पत्रमें स्थान न दें तो फिर और किसके विचारोंको स्थान दें? मुझे भय है कि आपने वह लेख शान्तिसे नहीं पढ़ा, यदि पढ़ा होता तो आपको मालूम होता कि—

"उन्होंने पुनर्विवाहको धर्मकार्य नहीं किन्तु पाप ही माना है; इतना ही नहीं, उन्होंने तो प्रथम विवाहको भी धर्म नहीं किन्तु व्यवहार माना है। वे अखंड—ब्रह्मचर्य्यको ही धर्म समझते हैं और अखंड-ब्रह्मचर्य्य पालनेवालोंको ही वे पवित्र, उच्चतमजैन और पूज्य ठहराते हैं। परन्तु जिनसे अखंड—ब्रह्मचर्य-पालन न हो सके उनके लिए समाजने विवाहकी व्यवस्था की है और उसे धर्म-विवाह ठहराया है। इस शुभ हेतुसे कि लोग स्वपत्नीसे भी केवल विषयसेवनके ही अभिप्रायसे संबंध न करें। प्रकृतिकी वास्तविक मंशा यह है कि स्त्री पुरुष संभोगके विषयमें मितव्ययी हों और उनमें शारीरिक तथा मानसिक आरोग्य और बलकी वृद्धि हो। इस तरह मितसंभोगके द्वारा संतान भी बलिष्ठ होती है। परन्तु ऐसा उपदेश सुनकर लोग विषयसेवनमें मितव्ययी नहीं हो सकते, यह समझकर विवाहको धर्मविवाह ठहराना पड़ा, ताकि धर्मके डरसे लोग स्वस्त्रीसम्बन्धमें भी नियमित रहें और विषय वासनाओंको रोकें।

"इस तरह लेखकने ब्रह्मचर्यको ही धर्म माना है और विवाहको धर्म नहीं; किन्तु व्यवहारकी दृष्टिसे माना हुआ धर्म ठहराया है। इतना ही नहीं परन्तु स्वस्त्रीसे भी नियमित रहनेका उपदेश दिया है।

"फिर जो लोग पहली और दूसरी कक्षाके नहीं हैं, अर्थात् तीसरी कक्षाके—कनिष्ठ आत्मबलवाले हैं—या यों कहिए कि जो एकबार विवाहित हो चुकनेपर विधवा या विधुरकी अवस्थामें नहीं रह सकते, उनके लिए क्या करना चाहिए? इस प्रश्नका उत्तर लेखक महाशय अनेक स्थितियोंका विचार करके भिन्न भिन्न स्थितिवाले स्त्री पुरुषोंके लिए भिन्न भिन्न रूपसे देते हैं। उनकी प्रथम और सर्वोत्तम सलाह तो यह है कि सुयोग्य पुरुष और सुयोग्य स्त्रीका ही विवाह हो, अयोग्य स्त्री-पुरुषको समाज विवाह करनेकी आज्ञा ही न दे; जिससे कि छोटी उमरमें विधवा होनेकी संभावना ही न रहे। यदि हजारमें कोई एक दो विधवायें हो जायँ, तो उनके लिए कोई खास कानून (विधवा-विवाहके समान) रखनेकी जरूरत नहीं है। उनका मत है कि जब बहुतसे स्त्री पुरुष पुख्त उमरमें और गृह-संसार चलानेकी योग्यता प्राप्त करके विवाह करेंगे तब विवाह ऐसा सुखमय हो जायगा कि स्त्रीको अपने प्यारे पतिकी मृत्युके बाद दूसरे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुरुषकी शय्यापर जानेका विचार भी पसंद न आयगा। (इस बात परसे लेखककी शुभनिष्ठाका ख्याल आप कर सकेंगे) इसके सिवा उनका यह भी कहना है कि विधवाओंको केवल उदरपोषणके लिए ही पुनर्विवाहका आश्रय न लेना पड़े, इसके लिए समाजको चाहिए कि वह जगह जगह विधवाश्रम खोले और उनमें उनके उदरपोषणके सिवा उन्हें आत्मज्ञान देनेका प्रबंध भी किया जाय, जिससे वे उस ज्ञानके जोरसे अपने विकारोंपर जय प्राप्त कर सकें।

"अब यह देखना चाहिए कि लेखक महाशयने विवाहकी बकालत किस रूपसे की है। उन्होंने कहा है कि यदि हम लोग बालविवाह या वृद्ध विवाहको बंद न रख सकेंगे, तो बालविधवाओंकी संख्या बढ़ती ही जायगी और उनके उदरपोषणके लिए कुछ न कुछ विचार करना ही पड़ेगा। अतएव लेखककी राय है कि उनके लिए विधवाश्रम खोलकर उन्हें इन्द्रियनिग्रहकी शिक्षा दी जाय। पर जिन बहुत ही कम उम्रवाली स्त्रियोंसे इन्द्रियनिग्रह न हो सके, उन्हें समाज को चाहिए कि पुनर्विवाह की आज्ञा दे। यह बात ध्यानमें रखने योग्य है कि यदि बालविधवायें न हों तो विधवा-विवाह की जरूरत ही न रह जाय। विधवाविवाह पसन्द न हो तो ऐसा प्रबंध करना चाहिए जिससे बालविधवायें ही न होने पावें और ऐसा प्रबंध करना समाजके हाथमें है।

"एक ध्यान देने योग्य बात लेखक महाशय यह लिखते हैं कि मुझे यह बात पसंद नहीं है कि प्रत्येक स्त्री-पुरुष अपनी इच्छासे पुनर्विवाह करें। ऐसा करनेसे समाजमें अव्यवस्था हो जायगी। समाजको चाहिए कि जो स्त्री फिरसे विवाह करना चाहती है उसकी उम्र क्या है, स्थिति क्या है, उसकी विवाहित स्थिति कितने समयतक कायम रही थी इत्यादि बातोंका विचार करके फिर उसे पुनर्विवाह करनेकी इजाजत दे या उसका निषेध करे। तात्पर्य यह है कि समाजकी आज्ञाके सिवाय स्त्री-पुरुष खुदमुख्तारीसे पुनर्विवाह न करें। उनकी यह बात भी उनकी शुभनिष्ठाको प्रकट कर रही है।

"इस कथनका उद्देश्य क्या है सो भी ध्यानमें रखना चाहिए। उनका मत है कि, हम यदि सभाजके कानून बहुत सख्त रक्खेंगे तो लोग इस धर्मको छोड़कर अपने सुभीतेवाले किसी अन्य धर्ममें चले जावेंगे। इस लिए यह उचित समझ पड़ता है कि पहली दूसरी और तीसरी इन तीनों श्रेणियोंमें समाजके सारे मनुष्योंका समावेश किया जाय। ब्रह्मचारियोंका दर्जा सबसे ऊँचा है। विवाहित स्त्रीपुरुषोंकी गणना दूसरे दर्जेमें की जा सकती है और जो पुनर्विवाह करते हैं वे तीसरे दर्जेमें हैं। क्या यह न्यायसंगत नहीं हैं? ऐसा करनेसे उत्तम मध्यम और कनिष्ठ तीनों ही प्रकारके लोग जैन धर्मको पालन कर सकेंगे। यदि ऐसा न किया जायगा आपद्धर्मके रूपमें भी विधवाविवाहकी आज्ञा न दी जायगी तो बहुतसे स्त्रीपुरुष आर्यसमाजी या क्रिश्चियन आदि बन जायँगे और बनते हैं।

"यहाँपर मैं आपको एक बात याद कराता हूँ कि हिन्दूधर्मवालोंने भी ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र ऐसे चार दर्जे योग्यतानुसार रक्खे हैं और उत्तम ब्राह्मणसे कनिष्ठ शूद्रतक को हिन्दूधर्ममें स्थान दिया है। ऐसी व्यवस्था करनेसे जैनसंख्याकी कमी रुक जायगी। यदि आप कहेंगे कि क्या विधवाविवाह जैसे नीच काम करनेवालोंको हम जैनसमाजमें रक्खेंगे? तो मैं पूछता हूँ कि क्या व्यभिचार, शराब खोरी, चोरी, दगाबाजी इत्यादि महानीच पाप जैनियोंमें कम होते है? और ऐसे पाप करनेवाले क्या जैनसमाजसे बहिष्कृत किये जाते हैं? क्या यह बात सच नहीं है कि सच्चे जैन तो हजारमें एक दो ही हैं? तथापि व्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हार रक्षाके लिए हमने यही ठहरा लिया है कि मनुष्य चाहे जैसी अनीतिका सेवन करे परन्तु वह जबतक अपने मुँहसे तीर्थंकरोंका नाम जपता रहे और 'जैनधर्म सच्चा है' ऐसा कहता रहे तबतक उसे जैनी ही कहना चाहिए। जब ऐसी धारणा है तब उत्तम मध्यम और कनिष्ठ इन तीन प्रकारके लोगोंके जैनधर्ममें स्थान देनेसे क्या हानि है?

"इन बातोंका विचार बहुत कुछ शान्तिके साथ करनेकी आवश्यकता है। और और सुधारकोंके समान हमारे लेखकने विषयसेवनको पुष्टि देने या अधर्म सेवनका पक्ष नहीं किया है। लेखक यह बतलाना चाहते हैं कि विधवाओंकी दशा सुधारनेके लिए समाजका संगठन फिर नये सिरेसे करना होगा, तथापि यदि आपको और दूसरे धर्मप्रेमी महाशयोंको उनकी किसी दलीलमें कोई दोष मालूम पड़े, तो उसकी निजी तौरसे या सामयिक पत्रों द्वारा चर्चा होनी चाहिए। इससे समाजको लाभ ही होगा।

"सेठजी, अंतमें मैं आपसे एक ही विनय करना चाहता हूँ और वह यह कि जब गत कई वर्षोंमें आपने या किसी जैनभाईने मेरे लेखोंमें, विचारोंमें या व्यवहारमें कोई दोष नहीं देखा तब क्या केवल एक ही लेखको स्थान देनेसे मैं अधर्मका हिमायती हो गया? जिन महाशयने यह लेख लिखा है वे जैनसमाजके एक प्रसिद्ध लेखक, विचारक और धर्मसेवक हैं, उन्होंने धर्मसेवाके लिए अनेक कष्ट सहे हैं, उनकी महात्मा तिलक, खापर्डे आदि देशभक्तोंने प्रशंसा की है। ऐसे पुरुषको भी एक विषयके एक लेखके लिए अधर्मी समझना मेरी दृष्टिसे तो साहस ही है। इस चर्चासे न उनका कोई निजी स्वार्थ है और न मेरा ही; तो भी मैं आपलोगों की दलीलें सुननेको सदैव तत्पर हूँ और आप की समाजसेवाकी जिज्ञासाको—जो कि आपकी चिट्ठीसे प्रत्यक्ष मालूम पड़ती है—देखकर आपको हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। मैं चाहता हूँ कि हमारे समाजमें विचार सहिष्णुताका उदय हो और निजी रागद्वेष आदिसे दूर रहकर शुभनिष्ठा और समाजसेवाके आशयसे प्रत्येक विषयका भलीभाँति ऊहापोह होता रहे।"

१८ आचार-दिनकर और यज्ञोपवीत।

'यज्ञोपवीत और जैनधर्म' शीर्षक नोट (पृष्ठ २४२) में जिन साधु महोदयके पत्रका एक अंश उद्धृत किया गया है, उन्हींके दूसरे पत्रमें लिखा है—

"यहाँ पर मुझे 'आचार-दिनकर' मिल गया। देखनेसे मालूम हुआ कि ग्रन्थान्तमें, कर्ताने अपनी गच्छपरम्परा वगैरहका उल्लेख करनेवाली लम्बी प्रशस्ति लिखी है। इस प्रशस्तिमें यह भी लिखा है कि इस ग्रन्थकी रचना श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदायके अनेक आचारविषयक ग्रन्थोंका अवलोकन करके की गई है। इससे यह अनुमान -निश्चितरूपसे—हो सकता है कि इसमें जो श्रावकोंको 'जनेऊ' पहननेका विधान बताया गया है वह किसी दिगम्बर ग्रन्थका ही अनुसरण है। क्योंकि दिगम्बर सम्प्रदायमें एककी अपेक्षा अधिक ग्रन्थोंमें 'जनेऊ' पहननेका विधान है और श्वेताम्बरसम्प्रदायके—आचारदिनकरको छोड़कर एकमें भी नहीं।"

१९ 'दिगम्बरजैन' के लेखक।

उक्त साधु महोदय अपने इसी पत्रमें लिखते हैं—

"हितैषी और हितेच्छुमें जो पुनर्विवाहविषयक गंभीर और तात्त्विक विचार प्रकट किये जाते हैं उनके सम्बन्धमें सूरतके 'दिगम्बर जैन' के पिछले अंकमें एक महाशयके कुछ उद्गार मेरे पढ़नेमें आये, तो मुझे बड़ी हँसी आई। लेखक अपने विचारसे खण्डन तो करने चले हैं पुनर्विवाहका और सारे लेखमें श्लोक भर दिये हैं पतिव्रता सीता आदिके वृत्तान्तके। जो मनुष्य इस प्रकार पुराने ग्रन्थोंके श्लोकोंकी सेनाको, विना समझे ही विज्ञ विचारकोंके सामने लड़नेके लिए भेजता है उसे इतना तो विचारना चाहिए था कि शत्रु किस दिशामें खड़ा है और इन निर्जीव सिपाहियोंमें बन्दूक उठानेकी भी शक्ति है या नहीं। 'शत्रु आया' इतने शब्दोंको सुनकर ही, चाहे जिस दिशामें दौड़ पड़नेसे और आँख मीचकर जो हाथमें आया उसे उठाकर फेंक देनेसे ही जो शत्रु परास्त यदि हो सकता तो जर्मन शत्रुका पराजय करनेमें मित्रोंको इतना विलम्ब न लगता। परन्तु इतनी विचारशक्ति यदि हमारे इन श्रुतज्ञानियोंमें होती तो वे इस जड़समाजमें कुछ न कुछ चैतन्यका संचार अवश्य करते।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जनरल आर्मस्ट्रॉंग ।

(ले०-- पं० शिवसहाय चतुर्वेदी।)

संसारमें लोकसेवासे बढ़कर दूसरा कोई पुण्य-काय नहीं है। आज हम एक ऐसे महापुरुषकी जीवनी पाठकोंको भेट करते हैं कि जिसने दास्य-पंक और अज्ञानान्धकारमें पड़ी हुई एक काली अनार्यजातिके लिए अपार श्रम किया था, जिसने उनको दास्यपंकसे उद्धार करनेके लिए शस्त्र-धारण किया था और उन्हें सब तरहसे सुशिक्षित और स्वाबलम्बी बनानेमें अपना जीवनतक उत्सर्ग कर दिया था ! इस महात्माका पूरा नाम 'सेमुएल चेपमेन आर्मस्ट्रॉंग 'था। इनका जन्म जनवरी सन् १८३९ को हवाई-द्वीपमें हुआ था। इनके माता पिता धर्मोपदेशक (पादरी) थे। माता विदुषी थी इस लिए वह स्त्रियोंकी सहायता करती थी और पिता धर्मोपदेशक, अध्यापकी और डाक्टरी-इन तीनों कामोंको करते थे। माता पिताके लोकसेवा सम्बन्धी इन कामोंका पुत्र पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। हवाई-द्वीपमें यूरोपियन लड़कोंकी शिक्षाके लिए जो पाठशाला थी आर्मस्ट्रॉंगकी प्रारंभिक शिक्षा उसी जगह हुई थी। आर्मस्ट्रॉंग हवाई लोगोंपर हार्दिक प्रेम रखते थे। बहुत दिनोंतक उनके संसर्गमें रहकर उनकी धारणा हो गई थी कि-हवाईलोग दयालु और विश्वासी होते हैं, अतिथि और मेहमानोंका आदर-सत्कार प्रेमपूर्वक करते हैं; वे खेती आदि परिश्रमके काम बहुत उत्तमता और ईमानदारीके साथ करते हैं—चोरी कभी नहीं करते।

आर्मस्ट्रॉंगके हृदयमें उनके प्रति बड़ी सहानुभूति थी और वे उनको सब तरहसे सहायता देकर उनकी उन्नति करनेकी इच्छा रखते थे। वे जानते थे कि यद्यपि उन लोगोंकी सामाजिक अवस्था हीन है, परन्तु उनकी आत्मिक स्थिति हम लोगोंहीके समान है। यदि उनको सहायता दी जावे-उनकी उन्नतिका मार्ग उन्मुक्त कर दिया जाय तो वे बहुत शीघ्र उन्नत हो सकते हैं।

सन् १८६० ई० में कालेज छोड़नेपर आर्मस्ट्रॉंगने मिशनकी नौकरी करली। साथ ही उन्होंने हवाई-भाषामें 'ही-हवाई' नामका एक समाचार-पत्र निकाला। उसके द्वारा वे हवाई लोगोंकी सुधारणाका प्रयत्न करने लगे। कुछ समयके बाद वे इस कामको छोड़कर अमेरिका-संयुक्तराज्यके विलियम्सटाउन नगरमें गये और वहाँ डा० हाफ्किन्स नामक तत्त्ववेत्ताके समीप रहकर अपने ज्ञानको परिमार्जित करने लगे। जिस समय वे वहाँ रहते थे उस समय बीच बीचमें उनकी इच्छा धर्मोपदेशक बननेकी होती थी, परन्तु उनकी वह इच्छ पूर्ण न हुई और उन्हें सन् १८६२ में लड़ाईके मैदानमें जाना पड़ा।

उस समय अमेरिका-संयुक्तराज्यमें दास्यप्रथा या गुलामगीरीके विषयमें बड़े जोरका आन्दोलन हो रहा था। इस स्थलपर पाठकोंको गुलामीके प्रारंभिक इतिहासकी कुछ बातें सुनाना उचित जान पड़ता है। लगभग चारसौ वर्ष पहले अमेरिका एक बीरान और जंगली देश था। सत्रहवीं शताब्दीके प्रारंभमें यूरोपीय लोगोंकी दृष्टि उस पर पड़ी और यूरोपसे भिन्न भिन्न देशोंके लोग जाकर वहाँ बसने लगे। वहाँ खेती आदिके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिए खूब जगह पड़ी थी, पर वह जंगलमय थी और उसके साफ करनेके लिए बहुत परिश्रमकी जरूरत थी। अतएव इन यूरोपीय लोगोंको—जो वहाँ जाकर जमींदार बन गये थे—खेती आदिके कामोंके लिए मजदूरोंकी जरूरत हुई। इस कामके लिए आफ्रिकाके नीग्रो या हबशी लोग जहाजोंमें भर भरकर लाये जाने लगे। यह धँदा खूब चल पड़ा। व्यापारी लोग आफ्रिका जाकर वहाँसे बेचारे नीग्रो लोगोंको भेड़—बकरीके समान बलपूर्वक भर लाते थे और अमेरिका आकर उन्हें मनमानें दामोंपर बेचते थे। पहले यह रोजगार पोर्तुगीजोंके हाथमें था, पर पीछेसे अँगरेजोंके हाथमें आगया। यह दास्य-विक्रयका रोजगार दिनपर दिन बढ़ता ही गया और लगभग ढाईसौ वर्षोंतक जारी रहा। उस समय इन दासोंकी संख्या ४० लाखसे ऊपर हो गई थी। नीग्रोलोगोंपर उनके प्रभु या मालिक जो जो अत्याचार करते थे उनको सुनकर रोमांच हो आता है। वे बेचारे पशुओंके समान बाजारमें खड़े करके बेचे जाते थे, निर्दयतापूर्वक मारेपीटे और कभी कभी बध तक किये जाते थे! और उनकी स्त्रियोंपर पैशाचिक अत्याचार होते थे! कोई उनकी रक्षा करनेवाला न था। कहनेका तात्पर्य यह है कि न तो वे मनुष्य समझे जाते थे और न उसके प्राणोंका कोई मूल्य गिना जाता था। यह आसुरिक अत्याचार कैसा भयंकर होगा, इसका पाठक स्वत: अनुभव कर सकते हैं। इसी अमानुषिक अत्याचारको दूर करनेके लिए अमेरिकाके कुछ सहृदय सज्जनोंने उक्त आन्दोलन उठाया था।

उत्तर प्रांत निवासी गोरे तो नीग्रोलोगोंको दासत्वसे मुक्त कर देना चाहते थे पर दक्षिणप्रान्तनिवासी इसके घोर विरोधी थे। यह विरोध यहाँ तक बढ़ा कि अंतमें उत्तर और दक्षिण प्रान्तोंमें परस्पर युद्धकी भेरी बजने लगी और दाक्षिणप्रांतनिवासी धनी लोगोंके चुंगलसे लगभग ४० लाख नीग्रोलोगोंको छुड़ानेके लिए युद्ध प्रारंभ हो गया। अंतमें उनका यह उद्देश सफल हुआ और पहली जनवरी सन् १८६३ को ढाईसौ वर्षोंकी गुलामीके बाद नीग्रोलोगोंको स्वाधीनता दे दी गई।

इस युद्धके समय अमेरिकाके प्रेसीडेण्ट लिंकनको युद्धोपयोगी मनुष्योंकी बड़ी जरूरत थी, इस लिए उस समय हमारे चरितनायकने आगे बढ़कर नीग्रो लोगोंकी सहायतार्थ युद्धभूमि पर पैर रक्खा। कप्तान आर्मस्ट्राँगने इस कामको बड़े उत्साह और प्रेमके साथ किया—सुशिक्षित और धर्मवान् लोगोंको ऐसे ही कामोंसे प्रेम होता है। "नीग्रोलोग हमारे भाई हैं और उनको दासत्वसे छुड़ानेके लिए हम लड़ रहे हैं।" इस भावको हृदयमें रखकर वे अपने कर्तव्यपालनमें लगे हुए थे। वे कभी निराशा नहीं हुए। इस भावनाका उल्लेख उन्होंने अपने एक पत्रमें इस तरह किया है—

"मैं किस लिए लड़ रहा हूँ? कानूनके अनुसार नीग्रो लोग मुक्त हो चुके हैं, परन्तु दक्षिण प्रांतवाले इस कानूनको मान्य नहीं करते हैं। मैं दीन जनोंके लिए—उनकी स्वतंत्रताके लिए लड़ रहा हूँ। यदि मैं इस युद्धमें मारा जाऊँगा तो समझूँगा कि मेरे जीवनका उपयोग एक सत्कार्यके लिए हुआ। क्योंकि यह महायुद्ध पवित्र-तत्त्वके लिए हो रहा है। इस समय दक्षिणके लोगोंकी जगह जगह विजय हो रही है; परन्तु मुझे दृढ़ भरोसा है कि हमारी बाजू सत्यकी है, अत: अन्तमें हमें ही यश मिलेगा। जब मैं इन नीग्रो लोगोंकी ओर देखता हूँ, तब मुझे यही भावना होती है कि ये मनुष्य हैं—स्वाधीनताके अधिकारी हैं; इन्हें गुलामीमें रखनेका न किसीको अधिकार है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और न ये सदा इस हालतमें रह ही सकते हैं। मैं इस युद्धभूमिपर जो कुछ करता हूँ उसे ईश्वरीय आज्ञा—ईश्वरीय काम समझकर करता हूँ। मेरा दृढ़ निश्चय है कि अपने प्रयत्नमें किसी तरहकी न्यूनता न होने देकर उसे अंतिमसीमा तक पहुँचाऊँगा और जो कुछ संकट आपड़ेंगे उन्हें धीरतापूर्वक सहन करके अपने कर्तव्य पर दृढ़ रहूँगा। युद्धभूमि पर अगणित कष्ट होते हैं, परन्तु मैं उन्हें कष्ट नहीं गिनता। नीग्रोलोगोंको दासत्वसे मुक्त करना—गुलामीसे छुड़ाना बहुत उत्तम और पुण्यकर्म है। इस समय वे हमारे साथ हमारे समान ही युद्धभूमि पर लड़ रहे हैं। उनके गुणोंको देखकर कौन कह सकता है कि वे गुलामीके योग्य हैं? मुझे उनके उद्धारके लिए लड़नेका मौका मिला इस कारण मैं अपनेको धन्य समझता हूँ। हम मनुष्योंकी मनुष्यताके लिए लड़ रहे हैं। आजके युद्धमें मेरी सेनाके दो नीग्रोभाई काम आये हैं और मैंने उनको सच्चे नागरिकोंके समान बड़े सन्मानसे मिट्टी दी है। जो पहले तुच्छ समझे जाते थे उनको आजमैं बराबरीके नागरिक मानता हूँ। उनको नागरिकों और सिपाहियोंका सन्मान देनेसे उनमें अच्छे अच्छे गुण प्रकट होंगे। इस युद्धके परिणाम पर४०लाख नीग्रो भाइयोंकी गुलामी या स्वाधीनता अवलंबित है, इस लिए मैं प्राणपनसे लड़ रहा हूँ और इस कामके लिए अपने सर्वस्वकी आहुति देनेको तैयार हूँ। परसोंकी बात है। नीग्रो लोग युद्धभूमिपर हमला करने जा रहे थे। उस समय शत्रु-सैन्यकी ओरसे गोलियोंकी मार पड़ रही थी, तो भी जब तक उन्हें सेनापतिकी आज्ञा नहीं मिली, तब तक वे रुके नहीं बराबर शत्रुकी ओर बढ़ते गये। न वे पीछे हटे और न किसी प्रकार भयभीत हुए। ये क्या उनके प्रशंसनीय गुण नहीं हैं? शाबास नीग्रोवीरो! तुम्हारे इस गुणको देखकर मुझे अतिशय आनंद होता है।"

उक्त पत्रको पढ़नेसे—जो उन्होंने युद्धक्षेत्रसे अपने घर भेजा था—कप्तान आर्मस्टाँगके उदार हृदयका पता लग जाता है।

कुछ दिनोंमें युद्धके समाप्त होनेका समय आगया। दक्षिण प्रान्तकी सेनाका नायक ९ अप्रैल सन् १८६३ को शरण आगया और इस तरह इस गृह-कलहके समाप्त होनेपर कप्तान आर्मस्टाँगको इस कामसे छुट्टी मिल गई। थोड़े ही दिनोंके बाद जब अमेरिकन सरकारने इनके युद्ध-कौशलको सुनकर इन्हें सेनाविभागमें उच्चपद देनेके लिए बुलाया तब आर्मस्टांगने सोचा अब क्या करना चाहिए? नौकरी करके सुख—शान्तिपूर्वक जीवन बिताना अच्छा है या रूखी—सूखी रोटी खाकर दीन, असहाय और अज्ञानान्धकारमें पड़े हुए लोगोंके हितसाधनमें अपने जीवनको उत्ससर्ग कर-देना। इस विषयमें उन्होंने अपने एक पत्रमें लिखा है।

"मैं सोच रहा था कि अब कौनसा काम करना चाहिए। मुझे जैसा मैं चाहता था वैसा ही काम मिल गया। इस देशमें दीनोंके उद्धारके लिए जो कार्य चल रहे हैं उनमें योग देना ही उचित समझ पड़ता है। लोकसेवाके लिए यदि मेरी बुद्धि और शक्ति काम आवे तो इससे बढ़कर अच्छा काम और क्या हो सकता है? जनसेवा ईश्वरसेवा ही है, और इस कामको न करना ईश्वरकी आज्ञाका उल्लंघन करना है-उसके प्रतिकूल चलना है। मैं जनसेवारूपी इस ईश्वरीय आज्ञाको पालन करना सर्वथा उचित और अपना कर्तव्य समझता हूँ। युद्धमें परमेश्वरकी कृपासे बचे हुए इस शरीरको किसी परोपकार या जनसेवाके काममें लगाना ही उचित है। कोरा धर्मोपदेशक होना मुझे पसंद नहीं है, क्योंकि उपदेशक होनेकी अपेक्षा किसी अच्छे कामको करना लाख तरह अच्छा है।"

जिस समय मनुष्य विचार तरंगोंसे व्याकुल हो जाता है उस समय वह बहुधा कुछ निश्चय नहीं कर सकता; परन्तु कईबार ऐसा होता है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कि जिस समय मनुष्यके मनमें क्रान्तिकारक विचार धूम मचाते हैं उस समय उसे एकाएक अपना अभीष्ट काम सूझ जाता है। हमारे चरितनायकको भी ऐसा ही हुआ। यह सच है कि ४० लाख नीग्रो कानूनके अनुसार दासत्वसे मुक्त होगये, परन्तु अब उन्हें क्या करना चाहिए? उनके भरण पोषण और रहनेके लिए क्या व्यवस्था करना चाहिए? इस समय राष्ट्रके साम्हनें यही प्रश्न खड़ा था। पहलेके मालिकोंने अपने दासोंको सरकारके जिम्मेंकरके रसीद लेली। कुछ समय पहले जो दास सनाथ थे वे अब अनाथ हो गये—उन्हें कोई सहारा देनेवाला न रहा। स्वाधीनताप्राप्त नीग्रो लोगोंमेंसे अधिकांश दक्षिणप्रान्तोंहीमें रहते थे और वहाँके निवासी उन्हें किसी तरहकी सहायता नहीं देना चाहते थे। अंतको उत्तरप्रान्तवालोंका इस ओर ध्यान गया और उन्होंने इनके लिए योग्य सहायता देना शुरू कर दिया। सरकारने भी उनके लिए अन्न पानीका कुछ सुभीताकर दिया। इसके सिवा एक 'नीग्रो–हितेच्छु–मंडल' भी स्थापित किया गया। उसके सभासद उनकी हर तरहसे मदद करनेके लिए तैयार हो गये। कप्तान आर्मस्ट्राँगने यह सब देखकर और यह समझकर कि हमारे सोचे हुए सभी काम चालू होगये हैं—बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। उन्होंने उन सब कामोंमें तन मन धनसे योग देना प्रारंभ कर दिया। और इस तरह सन् १८६६ से १८९३ तक उन्होंने अपने आयुष्यकी २७ वर्षे एकनिष्ठासे नीग्रोलोगोंकी सेवामें व्यतीत कीं।

दूसरे और भी कई आदमी व्यक्तिशः या संस्थायें स्थापित करके इस कार्यमें लग गये थे, तौभी आर्मस्ट्रांगका भाव और उत्साह आलौकिक था—उसमें जरा भी शिथिलता न आई। वे भूख प्यास भूलकर एक पतितजातिके उद्धारमें लगे थे। उनको न तो अपने सुखोंका ख्याल था और न स्वार्थों का; केवल नीग्रोलोगोंका उद्धार, यह एक ही विचार—एक ही ध्येय—एक ही कामना उनके मनमें जागरित रहती थी।

दूसरोंको दासत्वके फंदसे छुड़ानेवाला स्वतः ही अपने बलवान् विचारोंका दास बनगया। क्या करना चाहिए? क्या करनेसे एक पतित जातिका उद्धार होगा—वे निरंतर इन्हीं विचारोंमें रहा करते थे और जो युक्तियाँ उन्हें सूझ पड़ती थीं उन्हींके अनुसार काम करनेमें लग जाते थे। उन कामोंको पूर्ण करनेके लिए वे पत्र लिखते थे, मित्रोंसे प्रार्थनायें करते थे, व्याख्यान देते थे, और समाचार पत्रोंमें लेख लिखते थे। इस तरह इस दीनवत्सल महापुरुषका सारा समय इसी परोपकार चिन्तामें बीतता था। इस तरहके प्रयत्नोंसे नीग्रो लोगोंको खूब सहायता मिलने लगी; किसीने उनको घरपर नौकर रख लिया, किसीने खेतोंमें तनख्वाहसे काम करनेके लिए नियुक्त किया और किसी किसीने उनको अपने कारखानोंमें रखकर उनको काम सिखाना शुरू कर दिया। इतना हो चुकने पर नीग्रो बालक बालिकाओंको पढ़ाने लिखानेकी व्यवस्था करनेका विचार हमारे चरितनायकके मनमें उत्पन्न हुआ और उसके लिए उन्होंने प्रयत्न भी शुरू कर दिया। पढ़ लिखकर सुशिक्षित होना ही नीग्रोलोगोंका सच्चा दास्यविमोचन या गुलामीसे छुटकारा पाना था। परन्तु अभीतक इस बातकी ओर किसीका ध्यान नहीं गया था। आर्मस्ट्राँगने नीग्रोबालक बलिकाओंकी शिक्षाके लिए अनेक लोगोंकी सहानुभूति सम्पादन की और उनमेंसे बहुतोंने उनको द्रव्यकी सहायता देनेका वचन भी दिया। पाठशालाके लिए स्थान और पढ़ानेके लिए योग्य विषयोंका चुनना, ये दो बातें ही महत्त्वकी थीं। इन दोनों बातों पर खूब

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विचार करके उन्होंने स्वतः ही उनका निर्णय कर लिया। थोड़ा लिखना पढ़ना सिखलाना, स्वच्छता और आरोग्यताके नियमोंका ज्ञान कराना और लड़के लड़कियोंको अपने निर्वाहके योग्य जुदेजुदे काम धंदोंमें निपुण बना देना ही उनकी निर्द्धारित की हुई शिक्षाका उद्देश्य था। विषयोंकी योजना हो चुकनेपर पाठशालाके लिए स्थान चुननेका काम और बाकी रह गया।

पाठशालाके लिए वस्तीसे कुछ दूर स्वच्छ आरोग्यप्रद और मनोहर स्थान होना चाहिए। आर्मस्ट्रॉंग किसी ऐसे ही स्थानकी फिकरमें थे। प्रवासके समय उन्होंने हेम्पटन नदीके किनारे एक अत्यन्त मनोहर मैदान देखा और वह स्थान उन्हें पसंद आगया। उन्हें तत्काल ही यह भावना होने लगी कि मानो वह जगह हजारों विद्यार्थियोंकी शिक्षाभूमि है। इस भावी शिक्षाभूमिके मनोहर दर्शन करके उनका मन आनंदसे नाच उठा। उन्होंने उसी भूमिको अपनी तपोभूमि बनानेकी ठान कर काम करना शुरू कर दिया। एक मिशनरी संस्थाने १६० एकर जमीन खरीद दी, एक मित्रने ७००००) रुपया दिये और एक मिशनसे ३००००) रु. मिलनेका अभिवचन मिला। इतनी तैयारी हो चुकनेपर १ अक्टूबर सन् १८६७ को इमारत बननेका काम शुरू किया गया। एक ही काममें पूर्ण उद्योग करते रहनेके कारण लोकमत विरुद्ध रहनेपर भी आर्मस्ट्रॉंगको यश मिले विना नहीं रहा। केवल इतना ही नहीं बरन् आगेके लिए उनका मार्ग भी प्रशस्त होगया।

हेम्पटन एक मनोहर स्थान है। वह उत्तर और दक्षिणप्रान्तोंके मध्यमें है। इस स्थानका ऐतिहासिक महत्त्व भी कुछ कम नहीं है। यूरोपियन लोगोंकी पहली आबादी इसी स्थानके समीप हुई थी। पहले नीग्रो लोग जब दास बनाकर लाये गये थे तब वे भी इसी जगह उतारे गये थे। सिविल-वारमें सरकारी सेनापति जनरल ग्रॉंटकी मुख्य छावनी इसी जगह थी और इसी जगहपर जनरल बटलरने नीग्रो लोगोंके दास्यविमोचनकी घोषणा की थी। इस पुण्यक्षेत्रमें आर्मस्ट्रॉंगने अपने विद्यालयको स्थापित करके मानो उसे तीर्थराज बना दिया। हेम्पटन-विद्यालयमें नीग्रो बालक बालिकाओंकी शिक्षाके लिए जो योजना की थी, उसके विषयमें आर्मस्ट्रॉंगने एक जगह लिखा है—

नीग्रो बालक बालिकाओंको धंदा सिखानेका परिणाम अच्छा होगा, इससे वे बहुत बुद्धिमान् और तीक्ष्ण बुद्धि होंगे। स्वावलम्बनका महत्त्व समझ जाने पर 'यह काम हलका है—यह हमारे करने योग्य नहीं है।' इत्यादि बातोंको वे भूल जावेंगे। सुशिक्षासे उनको नियमितरूपसे काम करनेकी आदत पड़ जावेगी। जो विद्यार्थी उच्चशिक्षा प्राप्त करेंगे वे पढ़लिखकर शिक्षक या उपदेशक बनकर जातिउद्धारके के लिए कटिबद्ध होंगे। इसमें कुछ भी संदेह नहीं है कि नीग्रोबालक शिक्षा पाकर उद्योगी, सुशील और कामकाजमें चतुर निकलेंगे।"

सरकारीतौरसे भी नीग्रोलोगोंको शिक्षा देनेके लिए प्रयत्न चल रहा था। इस कामकी व्यवस्था करनेके लिए महात्मा आर्मस्ट्रॉंग ही चुने गये और उन्हें 'जनरल' की उपाधि प्रदान की गई। आपने इस कामको बहुत सुन्दर रीतिसे चलाया परंतु आपके मनमें सदैव यह बात जागरित रहा करती थी कि कब हेम्पटन विद्यालय बनेगा और कब मैं नीग्रो बालकोंको शिक्षा दूँगा। पढ़ाने लिखानेके कामको वे बहुत पसंद करते थे। अतएव हेम्पटन-विद्यालयका भवन तैयार हो जाने पर उन्होंने और सब कामोंको छोड़ कर केवल उसीकी ओर चित्त लगाया। सन् १८६८ की पहली अप्रैलके शुभ मुहूर्तमें विद्यालय खोला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गया । इस शुभ अवसर पर आर्मस्ट्रॉंगके गुरु भी उपस्थित थे । पहले पहल विद्यालय बहुत छोटे स्कीम पर खोला गया था—पहले दिन विद्यार्थियोंकी संख्या केवल १५ थी। विद्यार्थियोंको सबेरे हाथके काम करनेकी और दो पहरको पढ़ने लिखनेकी शिक्षा दी जाती थी । न तो विद्यार्थियोंसे फीस ली जाती थी और न अध्यापकोंको वेतन दिया जाता था । इस तरह पाठशालाका काम चलने लगा । धीरे धीरे विद्यार्थियोंकी संख्या जैसे जैसे बढ़ती गई, मित्रोंकी सहायता और एकत्रित हुए द्रव्यसे वैसे वैसे अध्यापक भी बढ़ाये जाने लगे । जनरल आर्मस्ट्रांगके कुछ मित्रोंने उनसे वेतन लेनेके लिए अनुरोध किया था । इस विषयमें उन्होंने एक जगह लिखा है:—

"मेरे मित्र मुझे वेतन लेनेके लिए कहते हैं; परन्तु निरपेक्ष काम करना ही अच्छा और श्रेयस्कर होता है। युद्धके समय शत्रुसैन्यके अधिकारी विना तनख्वाह लिए लड़ते थे; तब क्या मैं विद्यादानके कामको बिना वेतन लिए नहीं कर सकूँगा ? यह मेरा व्रत है, इस व्रतको मैं बिलकुल निरपेक्षतासे करता रहूँगा"।

हेम्पटन विद्यालयके लिए जब जब नये मकान बनवानेका अवसर आता था या जब जब किसी दूसरे कामके लिए मजदूर लगाये जाते थे तब तब जनरल आर्मस्ट्रॉंग आधे यूरोपियन और आधे नीग्रो लोगोंको कामपर लगाते थे और जातिविषयक भेदभावको भूलकर सबको समान वेतन देते थे। जनरल आर्मस्ट्रॉंगने सन् १८६९ में एमा वॉकर नामक एक महिलासे पाणिग्रहण किया । इस महिलाके विचार बहुत ही उदार थे । उसे निष्काम कर्मोंसे बहुत प्रेम था । अब एककी जगह दो कार्य-कर्त्ता हो गये । श्रीमती एमा और आर्मस्ट्रॉंग दोनोंके परिश्रमसे हेम्पटन-संस्थाका काम बहुत अच्छी तरहसे चलने लगा।

सत्कार्योंमें विरोध हुआ ही करता है, स्वार्थ का मोह अपना जाल फैलाता ही है, माया मोहकरूप धारण करके साम्हने आतीही है और इसी तरह न जाने क्या क्या विघ्न आया करते हैं । ऐसा ही यहाँ हुआ । जनरल आर्मस्ट्रॉंगको उनके कई मित्रोंने अमेरिका-काँग्रेसके सभासद होने और उसके द्वारा कीर्ति सम्पादन करनेकी सलाह दी थी; परन्तु उन्होंने उसे अस्वीकार की और गरीब शिक्षक रहने और केवल शिक्षकका ही काम करनेकी इच्छा प्रगट की। कई लोग उनके इस कामको पसंद नहीं करते थे; वे पूर्वकी भाँति सदैव काले-गोरोंमें भेदभाव रखना चाहते थे। इस कारण दक्षिणके वार्जिनिया स्टेटकी ओरसे विद्यालयके रजिस्टर्ड करानेमें अड़चन उपस्थित की गई । सभासदोंके मनमें पुराना क्रोध तो था ही, वे अनेक विघ्न खड़े करने लगे । वे गोरे बालकोंको पाठशालामें लेनेसे रोकने लगे । जनरल आर्मस्ट्रॉंग कहते थे कि यद्यपि पाठशाला काले लड़कोंके लिए है; परन्तु गोरे लड़कोंके आने पर मैं उनके साथ सबको समान शिक्षा देनेका पक्षपाती हूँ । ऐसा होना अर्थात् भेदभावको मिटाना काले-गोरे दोनोंको लाभकारी है । अंतमें कर्मवीर आर्मस्ट्रॉंगको सफलता प्राप्त हुई और ४ जून सन् १९७० को पाठशाला रजिस्टर्ड होगई । इस तरह पाठशालाका काम फिर निर्विघ्न रीतिसे चलने लगा ।

सन् १८७० से १८९० ई० तक २० वर्ष पर्यंत जनरल आर्मस्ट्रॉंगने हेम्पटन-संस्थाकी उन्नतिके लिए अविश्रान्त परिश्रम किया । 'मनुष्य जातिका उपकार करना ही परम पुण्य-कार्य है और इसीसे ईश्वरकी प्रसन्नता प्राप्त होती है' । इस भावनासे उन्होंने लगातार काम किया । नीग्रो लोगोंको सब तरहसे उत्तेजन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देकर उनमें स्वाभिमान जाग्रत किया, उनके आज्ञानान्धकारको दूर करके उनमें विद्याभिरुचि उत्पन्नकी, गुलामीके भावोंसे भरे हुए उनके दिलोंमें स्वाधीनताका जोश डाला, पाठशालाको उन्नत करने, सुन्दर इमारतें बनाने और शिक्षाको फलवती बनानेके लिए उन्होंने भरपूर प्रयत्न किया। वे बारह बारह घंटे तक संस्थाका काम किया करते थे। आर्मस्ट्राँगका मत था कि लड़के लड़कियोंके साथ पढ़नेसे दोनोंके विचारोंमें गंभीरता और आचारोंमें सभ्यता आती है; अतएव उनके विद्यालयमें लड़के लड़कियाँ दोनों साथ पढ़ा करती थीं। वे अपने विद्यार्थियोंको शिक्षा दिया करते थे कि जिसको जो काम आता हो और जो जिस कामको अच्छी तरह कर सकता हो, वह उसे ही करे और सदा उद्योगशील रहे। जो सीखना जानता हो वह अच्छी तरह सीखे, जो सिखाना जानता हो वह अच्छी तरह सिखावे। जिसे बढ़ईके काममें रुचि हो वह बढ़ईका काम करे और जिसे जूतोंपर पालिश करना आता हो वह पालिश करे। जनरल आर्मस्ट्राँग ऐसे ही सत्कर्मोंके ध्येय विद्यार्थियोंके सन्मुख उपस्थित किया करते थे। वे कहते थे कि नीग्रो मनुष्य हैं; यद्यपि वे सदोष हैं, अशिक्षित हैं, परन्तु उनमें दोषोंके दूर करने, शिक्षित और सुसभ्य होने की योग्यता भी है। वे लड़कोंको धर्म और नीतिकी शिक्षा देकर उन्हें धर्मात्मा और सदाचारी बनानेका सदैव प्रयत्न किया करते थे। उनमें उत्साह लानेके लिए कभी कभी वे कहानियाँ भी सुनाया करते थे। उनकी एक कहानी नीचे लिखी जाती है:—

“ विद्यार्थियो, एक बिल्ली थी, उसे अभीतक झाड़पर चढ़ना नहीं आता था। एकवार उसके पीछे कुत्ता लगा, तब वह भागते भागते पेड़के समीप जा पहुँची। उसने सोचा कि झाड़पर चढ़नेके सिवा रक्षाका और कोई उपाय नहीं है। चढ़ना तो आता नहीं है पर अब तो किसी तरह चढ़ना ही होगा, नहीं तो बस मरी। अब चढ़ना ही होगा, ऐसा सोचकर वह झाड़पर चढ़नेका प्रयत्न करने लगी और चढ़ गई। विद्यार्थियो! तुम्हें भी सदैव ऐसा ही प्रयत्न करना चाहिए।”

महात्मा आर्मस्ट्राँग सच्चे कर्मवीर थे। वे एक बड़ी संस्थाको बड़ी ही उत्तम रीतिसे चलाते थे। इससे कोई यह न समझे कि उस संस्थाके लिए उनके पास कोई खजाना भरा पड़ा था, या कोई उन्हें घर बैठे द्रव्य दे जाता। नहीं, संस्थाके खर्चके लिए उन्हें प्रवास करना पडता था, गाँव गाँव नगरों-नगरों भटकना पड़ता था, व्याख्यान देना पड़ते थे, लोगोंको अपना उद्देश समझाना पड़ता था और समाचार पत्रोंमें लेख लिखना पड़ते थे। आप स्वतः समझ सकते हैं कि किसी आश्रम या संस्थाके लिए पैसे इकट्ठे करना कोई सहज काम नहीं है—उसके लिए बड़ी सरगर्मी, अपार बुद्धिमत्ता, सच्चरित्रता और चतुराईकी आवश्यकता है। उन्होंने १२ वर्षोंमें संस्थाके लिए १८ इमारतें बनवाई और बहुतसा शिक्षणोपयोगी सामान खरीदा। इन सब कामोंके लिए उन्होंने इसी तरह पैसा एकत्रित किया था। इस तरहके अपार और अविश्रान्त परिश्रम द्वारा उन्होंने नीग्रोलोगोंमें योग्यता बढ़ाई और उनको हीनावस्थासे खींच कर उन्नत अवस्थाके मार्गपर आरूढ़ कर दिया।

जनरल आर्मस्ट्राँगको इस काममें सफलता मिलते देखकर और भी कई लोगोंने उनका अनुकरण किया। हेम्पटन विद्यालय एक प्रकारकी प्रयोगशाला या अनुभव प्राप्त करनेकी जगह थी। इसमें शिक्षा पाकर और काम सीखकर और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और लोगोंने भी कई विद्यालय खोले । इस काममें सबसे अधिक सफलता बुकर टी. वाशिंगटन नामक उनके एक नीग्रो–शिष्यको हुई । उन्होंने टस्केजीमें एक नीग्रो–संस्था खोलकर अपनी जातिका जो कल्याण किया, उसकी शतमुखसे भी प्रशंसा नहीं की जा सकती है । बुकर टी. वाशिंगटनकी टस्केजी–संस्थाको देख कर उन्हें बहुत संतोष होता था । सन् १८८७ और १८८९ इन दोनों बर्षोंमें दो विश्वविद्यालयोंने इन्हें एल. एल. डी. की बहुत ही बड़ी और सन्मानसूचक पदवी दी थी ।

आर्मस्टॉंगका मत था कि नीग्रो लोगोंके लिए राजकीय अधिकार प्राप्त करा देनेकी अपेक्षा उनमें ज्ञान फैलानेकी जियादा जरूरत हैं । वे जैसे जैसे सुशिक्षित होते जायँगे उनको वैसे वैसे अधिकार भी मिलते जायँगें । आखिर ऐसा ही हुआ । नीग्रोलोग लुजियाना प्रान्तमें बड़े बड़े ओहदोंपर नियुक्त होकर गोरे और काले लोगों पर समान रूपसे शासन करने लगे ।

महात्मा आर्मस्ट्रॉंगने जीवन भर लोकसेवाका काम किया । वे सदैव एक समान परिश्रम किया करते थे । विश्राम क्या वस्तु है इसे वे जानते ही न थे । इस तरह अविश्रान्त परिश्रम करनेसे उनका शरीर क्षीण हो गया । वे मरनेके पहले सन् १८९३ ई. में अपने प्रिय शिष्य बुकर टी. वाशिंगटनकी ‘ टस्केजी–संस्था ’ देख आये थे । उन्होंने उस समय कहा था कि बस अब हमारा काम हो चुका अब हम सुखके साथ चिरशान्ति–लाभ कर सकेंगे । उसी वर्ष इस महात्माका स्वर्गवास हो गया ।

आर्मस्ट्रॉंग लोकसेवा और परोपकारकी जीती जागती मूर्ति थे । उनका चरित प्रत्येक धर्मसेवक और देशसेवकके लिए अनुकरणीय है । प्रत्येक देश और प्रत्येक जातिमें ऐसे महापुरुषोंके जन्म लेनेकी आवश्यकता है । हमारे भारतमें तो इस समय एक नहीं सैकड़ों आर्मस्ट्रॉंगोंकी जरूरत है । अमेरिकामें तो केवल ४० लाख नीग्रोलोगोंके उद्धारका कार्य था; परन्तु इस देशमें नीग्रो लोगोंके ही समान तुच्छ दृष्टिसे देखे जानेवाले कई करोड़ अस्पृश्य या अछूत जातिके लोग हैं जिन्हें हस्तावलम्बन देकर ऊपर उठानेका बहुत बड़ा कार्यक्षेत्र पड़ा हुआ है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिगम्बर और श्वेताम्बर समाजका ग्रन्थप्रकाशनकार्य ।

आत्मानन्द-ग्रन्थरत्नमाला ।

किसी भी धर्मकी रक्षा और प्रसारके लिए यह आवश्यक है कि उस धर्मका साहित्य—ग्रन्थभण्डार प्रकाशित किया जाय और इतना सुलभ कर दिया जाय कि केवल उस धर्मके पालनेवालोंको ही नहीं; किन्तु इतर जिज्ञासुओंको भी वह विना कष्टके प्राप्त हो सके । जबसे मुद्रणकलाका–छापेकी कलाका आविष्कार हुआ है, तबसे ग्रन्थ-प्रसारका काम बहुत ही सहज–आश्चर्यजनक सुगम –हो गया है । इसकी कृपासे बड़ेसे बड़े ग्रन्थकी लाखों प्रतियाँ कुछ ही दिनोंमें या महीनोंमें तैयार हो सकती हैं, जब कि पहले एक ग्रन्थकी एक ही प्रति करानेमें महीनों लग जाते थे । यह छापेकी ही कृपाका फल है जो ईसाइयोंकी धर्मपुस्तक बायबिलकी करोड़ों प्रतियाँ–शताधिक भाषाओंमें छप कर प्रतिवर्ष बिकती हैं और आज दुनियामें ईसाई धर्मके स्वरूपको समझनेवालोंकी संख्या सबसे अधिक है ।

यूरोपकी देखादेखी हमारे देशवासियोंका ध्यान भी छापेकी कलसे लाभ उठानेकी ओर गया; परन्तु जिस तरह और सब सुधारोंको हमने विना विरोध किये ग्रहण नहीं किया, उसी तरह इसको भी नहीं किया । भारतमें जितने धर्म हैं, उन सब ही धर्मके अनुयायियोंने शुरूशुरूमें अपने धर्मग्रन्थोंके छपानेका विरोध किया । यहाँका शायद ही कोई धर्म या सम्प्रदाय होगा, जिसने इसका विरोध न किया हो; परन्तु इसकी आश्चर्यजनक सुविधाओंके आगे सभीको सिर झुकाना पड़ा–किसीने कुछ वर्ष आगे और किसीने पीछे–इसे स्वीकार कर ही लिया ।

औरोंके समान जैनधर्मके अनुयायियोंने भी इसका विरोध किया और खूब किया । पर छापेका प्रबल प्रवाह रुका नहीं —पक्केसे पक्के धर्मात्माओंकी भी कट्टरता उसके पूरमें बह गई । जहाँतक हम जानते हैं सबसे पहले श्वेताम्बर सम्प्रदायके ग्रन्थोंका ही छपना शुरू हुआ । दिगम्बरियोंमें इसकी चर्चा बहुत पीछे हुई । जिस समय दिगम्बरों के १०–२० ही ग्रन्थ छपे थे उस समय श्वेताम्बरसम्प्रदायका विरोध प्रायः शान्त हो चुका था । इसी कारण इस विषयमें श्वेताम्बरोंकी अपेक्षा दिगम्बर समाज बहुत पीछे है । यद्यपि दिगम्बर समाजमें भी छापेका विरोध निर्जीव हो चुका है–यहाँ तक कि मालवा जैसा कट्टर शुद्धाम्नायी प्रान्त भी छापेका अनुमोदक हो गया है, तो भी अभी इस विरोधका सर्वथा निर्मूलन करनेमें दिगम्बर सम्प्रदायको दो चार वर्ष और भी लग जाँयगे।

परन्तु अब विरोधी लोग बहुत ही थोड़े रह गये हैं और जो हैं वे समाजके हानिलाभकी बहुत ही कम परवा करनेवाले अथवा 'संसारमें क्या हो रहा है' इससे एकदम अज्ञान रहने-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वाले हैं। तब इनकी परवा न करके कहा जा सकता है कि दिगम्बरसमाजमें छापेकी जीत हो चुकी है—उसकी उपयोगिताको प्रायः सभीने स्वीकार कर लिया है। तो भी दिगम्बरसमाजमें ग्रन्थ—प्रकाशनका काम जितना होना चाहिए उतना नहीं हो रहा है—बहुत हीं कम हो रहा है। और संस्कृत, प्राकृतके ग्रन्थोंके उद्धारके लिए तो अभी तक हमने कुछ भी नहीं किया है। ऐसी संस्था तो हमारे यहाँ एक भी नहीं है जो अनवरत रूपसे बिना किसी प्रकारके कष्टके इस कामको करती हो। पाठकोंको आगे चलकर मालूम होगा कि श्वेताम्बर सम्प्रदायमें ऐसी अनेक संस्थायें हैं जो संस्कृत, प्राकृतके कई सौ ग्रन्थ प्रकाशित कर चुकी हैं।

इसका कारण क्या है ? क्या दिगम्बर—सम्प्रदायके लोग कंजूस हैं ? अपने श्वेताम्बर भाइयोंकी अपेक्षा क्या वे धार्मिक कार्योंमें कम पैसा खर्च करते हैं ? नहीं, इस विषयमें वे अपने भाइयोंकी अपेक्षा अधिक नहीं तो कम उदार भी नहीं हैं। इस बातको हम दृढ़तापूर्वक कह सकते हैं कि यदि दोनों संम्प्रदायोंके धार्मिक खर्चका जोड़ लगाया जायगा, तो वह प्राय बराबर ही निकलेगा। परन्तु खर्चके मार्ग दोनोंके भिन्न भिन्न हैं। दिगम्बरसमाजका सबसे अधिक रुपया मन्दिर बनवाने और प्रतिष्ठा करवानेमें खर्च होता है। ऐसा कोई वर्ष नहीं जाता है जिसमें कमसे कम पचास मन्दिर न बनते हों और बीस पच्चीस प्रतिष्ठायें न होती हों ! अभी थोड़े दिन पहले जबलपुरके पास एक रथप्रतिष्ठा हुई थी। कहते हैं कि प्रतिष्ठा करानेवालेने अपनी प्रायः सबकी सब पूँजी लगा दी—मुश्किलसे हजार दो हजारकी पूँजी उसके पास शेष रही होगी ! ऐसे कई धर्मात्मा हमने स्वयं देखे हैं जिन्होंने अपनी चार पाँच हजारकी पूँजीमेंसे दो तीन हजार रुपया लगाकर मन्दिर बनवानेका पुण्य लूट लिया ! बुन्देलखण्ड प्रान्तने तो इस विषयमें सबका नम्बर ले लिया है। यदि वहाँके तमाम मन्दिरोंमेंकी जिन—प्रतिमाओंकी गणनाकी जाय, तो वह जैनोंकी संख्याकी अपेक्षा अधिक ही निकलेगी, कम नहीं ! सोनागिर तीर्थपर मन्दिरोंके मारे जगह नहीं है—सारा पर्वत मन्दिरोंसे ढक गया है, तो भी किसी धर्मात्माने अभी हाल ही वहाँ एक और मन्दिर बनवानेका शुभ संकल्प किया है ! परन्तु श्वेताम्बर-समाजमें यह बात नहीं है। मन्दिर और प्रतिष्ठाओंका रिवाज इस समाजमें बहुत ही कम है। यही कारण है कि उनके पास पुस्तकोद्धार जैसे अच्छे कार्योंमें खर्च करनेके लिए धन रह जाता है, परन्तु हमारे समाजके पास ईंट पत्थर चूना और लड्डुओंमें खर्च होकर इतना थोड़ा धर्मार्थधन रह जाता है कि उससे पुस्तकोद्धारका कार्य जैसा चलना चाहिए वैसा नहीं चल सकता।

दिगम्बरसम्प्रदायका अभी तक जितना साहित्य प्रकाशित हुआ है उसका अधिकांश उन लोगोंके द्वारा हुआ है जो इस कार्यको व्यवसायकी दृष्टिसे करते हैं; परन्तु इस ओर गहरी दृष्टि डालनेसे मलूम होता है कि व्यवसायियोंके द्वारा जैनसाहित्यका उद्धार होना असंभव नहीं तो कष्टसाध्य अवश्य है। जैनसाहित्यका आधिक भाग संस्कृत और प्राकृत भाषामें है और इन दोनों भाषाओंके जाननेवाले हमारे यहाँ इतने कम हैं कि उनके लिए ग्रन्थ छपवाकर कोई भी—व्यवसायी लाभ नहीं उठा सकता ! अतः जब तक ऐसी संस्थायें न खोली जायँगी, जो केवल ग्रन्थोद्धारकी दृष्टिसे इस कामको करें तब तक जैनसाहित्यका उद्धार नहीं हो सकता, यह निश्चय है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हर्षका विषय है कि हमारे श्वेताम्बरी भाइयोंने इस बातको समझ लिया है और उन्होंने अभी अभी ऐसी कई संस्थायें स्थापित कर डाली हैं। बम्बईके 'सेठ देवचन्द लालचन्द–पुस्तकोद्धार भण्डार' का परिचय हम पहले कई बार दे चुके हैं जिसमें एक लाख रुपयेसे अधिककी पूँजी है और जिसके द्वारा अभी तक कोई ३२–३३ ग्रन्थ छपकर प्रकाशित हो चुके हैं। आज हम एक और ऐसी ही श्वेताम्बर संस्थाका परिचय देना चाहते हैं जो अपने ढंगकी एक ही है और जिसने थोड़े ही समयमें आशासे अधिक काम करके दिखलाया है।

इस संस्थाका नाम, 'आत्मानन्द जैन सभा' है। सुप्रसिद्ध श्वेताम्बर साधु स्वर्गीय आत्मानन्दजीकी स्मृतिमें लगभग १३–१४ वर्ष पहले भावनगरमें इसकी स्थापना हुई थी। इसके मंत्री श्रीयुत सेठ वल्लभदास त्रिभुवन दासजी गाँधी हैं। सभाकी ओरसे आत्मानन्द नामका एक मासिकपत्र भी निकलता है। भावनगरमें एक और संस्था है जिसका नाम, जैनधर्मप्रसारक सभा है। यह सभा बहुत पुरानी है और जैनग्रन्थोद्धारके कार्यमें उसने सबसे अधिक कार्य किया है। वह अब तक सैकड़ों ग्रन्थ प्रकाशित कर चुकी है। उसीका अनुसरण करके आत्मानन्दजैनसभाने भी दो तीन वर्षसे जैनग्रन्थोंके छपानेका काम शुरू कर दिया है और इस कार्यमें उसने बहुत बड़ी सफलता प्राप्त की है।

अब तक इस सभाकी ओरसे कोई ५० ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं जो संस्कृत और मागधी भाषामें मूल या संस्कृतटीका सहित हैं। इनके सिवा सभाके मुखपत्र आत्मानन्द प्रकाशके पौषके अंकमें जिन छपे हुए ग्रन्थोंकी सूची दी है उनकी संख्या ३४ है। छपे हुए ग्रन्थोंमेंसे सभाके उत्साही मंत्री महाशयने नीचे लिए २९ ग्रन्थ हमारे पास समालोचनाके लिए भेजनेकी कृपा है जिन्हें हम कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करते हैं:—

१ **पंचसूत्र**—आचार्य हरिभद्रकृतव्याख्यासहित। पत्रसंख्या २९। इसकी व्याख्या विक्रमकी छट्ठी शताब्दीकी लिखी हुई है। मूल ग्रन्थ इससे भी पहलेका होना चाहिए।

२ **धर्मरत्नप्रकरण**—श्रीशान्तिसूरिकृत। पत्र ८४। यह विक्रमसंवत् ११९१ का रचा हुआ है।

३ **देवबन्दन–गुरुबन्दन–प्रत्याख्यान**—देवेन्द्रसूरिकृत मूल और सोमसुन्दरकृत टीका सहित। प० ७०।

४ **सिद्धपंचाशिका**—देवेन्द्रसूरिकृत। प० १४।

५ **विचारसंततिका**—महेन्द्रसूरिकृत। पत्र १७। उक्त तीनों ग्रन्थ विक्रमकी १३ वीं सदीके हैं।

६ **कुमारपालप्रबन्ध**— पत्र १२० और

७ **श्राद्धगुणविवरण**—पत्र ८४। श्रीजिनमण्डनगणिकृत।

८ **श्रावकव्रतभंगप्रकरण**—पत्र ८।

९ **समयसारप्रकरण**—देवनन्दाचार्य कृत स्वोपज्ञटीकायुक्त। प० ४४।

१० **धन्यकथानक**—दयावर्द्धनकृत। पत्र ९।

११ **सम्यक्त्वकौमुदी**—जिनहर्षगणिकृत। पत्र ९०।

१२ **रत्नपालनृपकथा**—सोममण्डनगणिकृत। पत्र ३२।

१३ **गुरुगुणषट्त्रिंशत्षट्त्रिंशिका**—रत्नशेखरसूरिकृत। प० ९०।

ये नौ ग्रन्थ विक्रमकी १६ वीं शताब्दिके बने हुए हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१४ उपदेशसप्तति—सोमधर्मगणिकृत पत्र १०२। इसकी रचना वि० संवत्, १५०३ में हुई है।

१५ विचारपंचाशिका— पत्र १० और

१६बन्धषट्त्रिंशिकासावचूरि—पत्र १०। वानरर्षिकृत।

१७ ज्ञानसारसूत्र—यशोविजयकृत मूल और देवचन्द्रकृत टीका सहित। पत्र ११०।

१८ प्रतिमाशतक—यशोविजयकृत मूल और भावप्रभसूरिकृत टीका सहित। प० ४५।

१९ सूक्तिरत्नावली—विजयसेनसूरिकृत। पृष्ठ ४८।

२० महादण्डकस्तोत्र—समयसुन्दरकृत। पत्र १२। ये छह ग्रन्थ विक्रमकी सत्रहवीं शताब्दिके बने हुए हैं।

२१ मेघदूतसमस्यालेखः— मेघविजय कृत। पृष्ठ २८।

२२ चम्पकमालाकथा—भावविजयगणिकृत। पत्र ३०। ये दो ग्रन्थ अठारहवीं शताब्दिके हैं।

२३ धम्मिल्ल कथा। पत्र ७।

२४ चतुर्विंशतिजिनस्तुतिसंग्रह—शीलरत्नसूरिकृत। प० १२।

२५ चेतोदूत। पृष्ठसंख्या ३०।

२६ परमाणुखण्ड–पुद्गल–निगोदषट्त्रिंशिका–रत्नसिंहसूरिकृत वृत्तिसहित। पत्र२२।

२७ रोहिणी-अशोकचन्द्र कथा—कनककुशल कृत। प० १६।

२८ पर्युषणपर्वाष्टाह्निकाव्याख्यान—विजयलक्ष्मीसूरि। प० १२।

२९ अज्ञाय उंछकुलक—आनन्दविजयकृत। प० १०। पिछले नौ ग्रन्थोंका समय आदि अज्ञात है।

दो चारको छोड़ कर प्रायः सभी ग्रन्थ बम्बईके निर्णयसागर प्रेसमें, बढ़िया और बहुमूल्य मजबूत कागज पर, खुले पत्रोंमें सुपररायल बारह पेजी साइजमेंछपे हुए हैं। प्रायः प्रत्येक ही ग्रन्थके प्रारंभमें ग्रन्थकर्ताका परिचय या रचनाका समय आदि दिया गया है। सम्पादन और संशोधन योग्यतापूर्वक हुआ है। इस विषयमें सबसे अधिक उल्लेख योग्य बात यह है कि प्रायः सब ही ग्रन्थ चार चार पाँच पाँच प्रतियोंकी सहायतासे संशोधन किये गये हैं। किसी किसी ग्रन्थकी तो सात सात प्रतियाँ संग्रह करके सम्पादन किया गया है! इसका कारण यह है कि श्वेतम्बरसम्प्रदायके प्राचीन पुस्तक-भण्डार पुस्तक-प्रकाशक-संस्थाओंके लिए प्रायः मुक्तद्वार रहते हैं। पर हमारे यहाँकी दशा इससे ठीक उलटी है। हम लोगोंको एक एक प्रतिका प्राप्त करना भी बहुत कठिन है। डिपाजिट रुपया रखने पर भी ग्रन्थ नहीं मिलते। हमारे आराके सिद्धान्तभवनकी तो—जिसकी कीर्ति-दिग्विदिग्व्यापी हो रही है—अभीतक सूची ही तैयार नहीं हुई है, फिर उससे ग्रन्थोंकी सहायता ली जाय तो कैसे!

इस ग्रन्थमालाकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसका कोई भी ग्रन्थ विक्री करनेकी इच्छासे नहीं छपाया जाता। इनका सबसे अधिक भाग साधु और साध्वियोंको दान किया जाता है। सभाके लाइफ-मेम्बरोंको एक एक प्रति मुफ्त दी जाती है। दूसरे विद्वानों और योग्य पुरुषोंको भी ये ग्रन्थ बिना मूल्य दिये जाते हैं। कुछ ऐसे जैनपुस्तकालय और जैन-मन्दिरोंके भण्डार भी हैं जहाँ प्रत्येक ग्रन्थकी एक एक प्रति दानस्वरूप भेज दी जाती है।

सभाके पास इस कार्यके लिए कितना फण्ड है और उसके कितने लाइफमेम्बर हैं यह हमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मालूम नहीं; परन्तु श्वेताम्बरसमाजमें शास्त्र-दानकी पद्धति इतनी अच्छी है कि बिना किसी अच्छे फण्डके भी सभा इस कार्यको अच्छी तरह चला सकती है। जितने ग्रन्थ हमारे पास समालोचनार्थ आये हैं प्रायः उन सबके ही मुखपृष्ठोंपर लिखा है कि यह ग्रन्थ अमुक श्रावक या श्राविकाके दान-द्रव्यसे छपाया गया। देखिए कैसी अच्छी प्रथा है! इस प्रथाका फल आप देखेंगे कि कुछ ही वर्षोंमें हजारों ग्रन्थोंका उद्धार हो जायगा।

श्वेताम्बर सम्प्रदायमें साधुओं या मुनियोंकी संख्या अधिक है और धार्मिक कार्योंमें ये ही उक्त सम्प्रदायके नेता समझे जाते हैं। इनके उपदेशों और शासनोंको लोग मानते भी बहुत हैं। एक तो शास्त्रदानकी प्राचीन प्रथा श्वेताम्बर समाजमें अभीतक अस्खलित रीतिसे चली आ रही है, दूसरे उनके कुछ साधुओंका ध्यान इस विषयकी ओर अधिक रहने लगा है। बहुत थोड़े प्रयत्नसे ही वे श्रावकोंको शास्त्रदानकी ओर प्रवृत्त कर सकते हैं। पर हमारे दिगम्बर सम्प्रदायकी अवस्था इससे भिन्न है। एक तो मुनियोंके अभावसे हमारे यहाँ शास्त्रदानकी प्रथाका ही प्रायः अभाव हो गया है, दूसरे जो थोड़े बहुत त्यागी ब्रह्मचारी हैं उनमें प्रायः अक्षरशत्रु ही अधिक हैं, अतः वे इस कार्यकी ओर दृष्टि ही क्यों देने लगे? रहे पण्डित लोग–जिनका कि समाजके ऊपर कुछ प्रभाव है–वे या तो ग्रन्थोंके छपानेको पाप समझते हैं, या कमसे कम अपने अन्नदाता सेठोंको खुश रखनेके लिए–छापेकी चर्चासे दूर रहना चाहते हैं। वे यदि चाहें तो प्रत्येक उत्सवमें, मन्दिरप्रतिष्ठामें, व्रतोद्यापनमें, तथा ब्याह-शादियोंकी खुशीमें शास्त्रदान करनेकी पद्धतिको जारी कर सकते हैं।

सभाके कार्यकर्त्ताओंको हम उनके इस पुण्यकार्यके उपलक्ष्यमें अनेकानेक धन्यवाद देते हैं और चाहते हैं कि वह इसी तरह अनवरत परिश्रम करके सारे श्वेताम्बर साहित्यको सर्वसाधारणके लिए सुलभ कर दे और अपने दिगम्बर-समाजसे आग्रह करते हैं कि वह भी इस ओर शीघ्र ध्यान दे और अपने सबसे बड़े कर्तव्य—ग्रन्थप्रकाशन—का पालन करे। स्वर्गीय दानवीर सेठ माणिकचन्द्जी जौहरीके स्मारकमें जो ग्रन्थमाला निकाली गई है उसका कार्य हमने उक्त आत्मानन्द-ग्रन्थमालाके ढंग पर ही शुरू किया है। यदि हमारा समाज इसकेद्वारा शास्त्रदान करनेकी ओर अनुरक्त होगा तो दिगम्बर साहित्यका बहुत कुछ उद्धार होने लगेगा। कलकत्तेकी सनातनजैनग्रन्थमालाकी ओर भी हमारा ध्यान जाना चाहिए। उसके द्वारा कई बड़े बड़े महत्त्वके ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। यदि उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी हो जाय तो उसके द्वारा भी बहुत काम हो सकता है।

आत्मानन्द ग्रन्थमालाके संपादकोंका ध्यान एक बातकी ओर आकर्षित करके हम इस लेखको समाप्त करेंगे। उसके जितने ग्रन्थ देखनेका हमें सौभाग्य प्राप्त हुआ है उनमें एक पंचसूत्रको छोड़कर शेष सब ग्रन्थ विक्रमकी बारहवीं शताब्दिके बादके हैं और उनमें भी अधिकांश पन्द्रहवीं शताब्दिके पीछेके रचे हुए हैं। हम यह मानते हैं कि पिछले साहित्यको प्रकाशमें लानेकी भी कम आवश्यकता नहीं है, तो भी अभी हमें सबसे अधिक उद्योग प्राचीन साहित्यको प्रकाशित करनेके लिए करना चाहिए। आशा है कि हमारी इस सूचना पर सभा विचार करेगी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुनर्विवाह विधेय नहीं निषिद्ध है।

"जिस हेतुसे विवाहकी आवश्यकता बतलाई गई है उसकी पूर्तिके लिए यह आवश्यक है कि वह एक और अचल होना चाहिए। ये दोनों शर्तें इतनी अधिक ज़रूरी हैं कि वे उस जगह भी—जहाँ कि स्त्र पुरुषका अनुचित सम्बन्ध होता है—मालूम पड़ जाती हैं। प्रेममार्गमें अचल न रहनेसे, तथा प्रेमको अपने सुभीतेका एक साधारण साधन समझ लेनेसे सुखकी प्राप्ति हो सकती है, यह कहना व्यवहार तथा नीतिके सिद्धांतोंकी गहरी अज्ञानता प्रकट करना है। ......मनुष्यकी स्वाभाविक अस्थिरता और तरंगोंको नियममें रखनेके लिए आवश्यक है कि समाज उसके कार्य्योंमें हस्तक्षेप करे। यदि ऐसा न किया जायगा तो सुखके लिए एकके बाद एक व्यर्थ और दुःखकारक प्रयत्न करते करते मनुष्यका जीवन सर्वथा निष्फल और नीचा बन जायगा।"

—आगस्ट कास्टी।

जैनसमाजमें पुनर्विवाहका प्रश्न बहुत समयसे दबाया जा रहा था। आवश्यक होने पर भी एक पक्षके प्रभावके कारण इसकी चर्चा खुलकर नहीं होने पाती थी; परंतु देखते है कि अब इसकी चर्चा रुक नहीं सकती। चर्चाका न होना इस बातका प्रमाण नहीं है कि जैनसमाजमें इस प्रश्नका निर्णय हो चुका है अथवा सारा ही समाज पुनर्विवाहके विरुद्ध है, इस लिए आवश्यक जान पड़ता है कि इस प्रश्नका खूब खुलकर विचार किया जाय और इसकी अनुकूल और प्रतिकूल दोनों बाजुओंकी अच्छी तरह जाँच की जाय।

हितैषीके पिछले प्रथम अंकमें जैनहितेच्छुके सम्पादक श्रीयुत बाड़ीलाल मोतीलालजी शाहने इस विषयमें अपने कुछ विचार प्रकट किये थे। आज हम स्वर्गीय पं० मणिलाल नभू भाई द्विवेदी बी.ए.के. विचार उनके एक पुराने लेख परसे यहाँ उद्धृत करते हैं। आशा है कि विचारशीलपाठक इनका गंभीरतापूर्वक अध्ययन करनेका कष्ट उठावेंगे। द्विवेदीजी गुजरातीके सुप्रसिद्ध विचारशील लेखक थे। वे पुराने आचार विचारोंके पोषक होनेपर भी नये विचारोंको सहन करनेवाले थे।

पुनर्विवाहका विषय बहुत ही विवादग्रस्त है। इसका निर्णय तब तक नहीं हो सकता है जब तक इन बातोंका मर्म अच्छी तरह न समझ लिया जायः—१ संसारमें नीति और धर्मकी रचनाके सिद्धान्त किस प्रकारके हैं, २ संसारको सुखमय बनानेके लिए वे सिद्धान्त किस प्रकारके होने चाहिए ३ और हमारे देशके पूज्य स्त्रीपुरुषोंमें जो अनुकरणीय उत्साह, साहस, और शौर्य आदि गुण थे वे किस प्रकारके सिद्धान्तों पर चलनेसे उत्पन्न हुए थे।

जगतमें परंपरासे यही व्यवहार चला आ रहा है कि धर्मनीतिका सदुपदेश एक ओर तो कठिन, कष्टकर परन्तु शुभफलदायक मार्गकी योजना करता है और दूसरी ओर जिसे देख कर दया आ जाय ऐसे कष्टमें पड़ा हुआ मनुष्य उससे छुटकारा पानेका यत्न करता है। परन्तु विचार करनेसे मालूम होता है कि हमारी धर्मबुद्धि हमें जो ऊँचा स्वरूप—पवित्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मार्ग—बतलाती है वही सच्चा मार्ग है और उससे समाजका कल्याण हो सकता है । यद्यपि बहुत-से उदाहरण ऐसे मिलते हैं जो इस नियमसे विरुद्ध जाते हैं, परंतु उन्हें अपवाद ही समझना चाहिए, और एक तरह वे मूल नियमको ही सबल करते हैं । एक साधारण उदाहरणसे यह बात अच्छी तरह समझमें आ जायगी । धर्मशास्त्रोंकी आज्ञा है कि सत्य बोलना ही फलदायक है,और उसीसे सब सुखोंकी प्राप्ति होती है । जिन जिन देशोंमें इस तरहका दृढ़ उपदेश दिया गया है वहाँ वहाँ कहना चाहिए कि सद्विद्या और सद्विचारोंका खूब ही प्रचार हुआ है और इसके विरूद्ध जिस देशमें सत्य बोलनेके विषयमें पूरा जोर नहीं दिया गया है वह देश अधम स्थितिपर पहुँचा हुआ है । परन्तु ऐसा होनेपर भी क्या आप कह सकते हैं कि जहाँ सत्यका उपदेश दिया गया है वहाँ कभी असत्यके और जहाँ सत्यका उपदेश नहीं दिया गया है वहाँ कभी सत्यके छोटे मोटे उदाहरण नहीं मिल जाते हैं ? परन्तु इससे क्या उन उन देशोंकी स्थापित रूढ़िको और उस रूढ़िके कारण प्राप्त हुई प्रतिष्ठा या अप्रतिष्ठाको हानि पहुँच सकती है ? कभी नहीं । इस सारे विवेचनका सारांश यह है कि किसी तात्कालिक तीव्र दुःखके कारण व्याकुल होकर भले ही हम चाहे जिस मार्गको पकड़ लेना उचित समझ लें, तथापि उस विषयका जो मूल सद्रूप है वही सच्चा मार्ग है और उसीके अनुसार चलनेसे संसार सुखमय बनेगा यह स्वीकार किये विना नहीं चल सकता ।

पुनर्विवाहके सूक्ष्म विषयमें भी उपर्युक्त नियमके अनुसार विचार करना चाहिए । स्त्रीको अपने पतिके अभावमें और पतिको अपनी स्त्रीके अभावमें फिरसे ब्याह करना उचित है या अनुचित, यह बात तब समझमें आयगी जब इसके करनेमें जो हेतु है वह और इसका करना अनुचित समझनेमें जो सद्धर्म है वह, इन दोनोंकी तुलना की जायगी ।

यद्यपि विवाहका उद्देश्य भरणपोषणरूप स्वार्थका जान पड़ता है; परन्तु यह देखना चाहिए कि इस सम्बन्धमें सच्ची पवित्र गाँठ काहेकी है ? स्त्री पोषकशक्तिका स्वरूप है और पुरुष उत्पादक शक्तिका । पुरुष शरीरबलमें बढ़ा चढ़ा है और स्त्री प्रेमवृत्तिमें । प्रेमवृत्तिमें पुरुष उसकी बराबरी कदापि नहीं कर सकता और यही उसका ऐश्वर्य है जो उसे पूज्य बनाता है। प्राचीन आचार्योंने इसी लिए स्त्रियोंको पूज्य कहा है:—

प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हा गृहदीप्तयः ।
स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन ॥

अर्थात् प्रजाकी उत्पत्ति करनेवाली, महाभाग्यवाली और इसी कारण पूज्य, घरकी दीपिका रूप स्त्री और लक्ष्मी इन दोनोंमें कोई भेद नहीं है । और भी कहा है :—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सार्वस्तत्राफलाः क्रियाः ।

अर्थात् जहाँ स्त्रियोंकी पूजा होती है वहाँ देवता निवास करते हैं और जहाँ ये नहीं पुजतीं वहाँ सारी क्रियायें निष्फल जाती हैं । याज्ञवल्क्य ऋषिने भी कहा है:—

भर्तृमातृपितृज्ञातिश्वश्रूश्वसुरदेवरैः ।
बन्धुभिश्च स्त्रियःपूज्या भूषणाच्छानाशनैः ।

पति, भाई, पिता, जातिवाले, सास, ससुर, देवर और बन्धुओंको भूषण वस्त्र और भोजनादिसे स्त्रियोंकी सेवा करनी चाहिए । स्त्रियोंको पूज्य बनानेवाले इस प्रेममय ऐश्वर्यकी पुरुषको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इतनी आवश्यकता है कि उसके बिना उसका जीवन कष्टमय है और उसके लिए मोक्षके मार्ग पर चलना कठिन है। इसी तरह पुरुषके बिना स्त्रीका निर्वाह होना कठिन है। तब स्त्री और पुरुष दोनोंके योगसे पूरा मनुष्य बनता है और उसीका नाम विवाह है। विवाह केवल प्रेमकी गांठसे दृढ़ होता है। इस प्रेमके बलको दृढ़ करनेके लिए और उस बलसे उभयपक्षको जो मोक्षावधि महान् लाभ होता है उसकी प्राप्तिके लिए यह प्रेम होना कैसा चाहिए? हमारा मत है कि यह प्रेम एक ही और अखण्ड होना चाहिए; नहीं तो जिस अमूल्य फलकी आशा की जाती है उसे व्यर्थ ही समझना चाहिए। फ्रान्सका प्रसिद्ध विद्वान्, आगस्टकाम्टी भी यही कहता है कि "ऐसा प्रेम–इष्ट फल दे इस लिए एक, अविच्छिन्न और अखण्ड–मरणके बाद भी अखण्ड—होना चाहिए। यदि यह सिद्धान्त ठीक है तो फिर स्त्रीपुरुषके बीचमें–दोनोंमें पवित्र प्रेमका सम्बन्ध हो जानेके बाद–किसी दूसरेके लिए अवकाश ही कहाँ रहता है? ऐसे अनेक उदाहरण हमारे सामनेसे गुजरा करते हैं कि बहुतसे स्त्री-पुरुष जिन्हें ऐसे प्रेममय विवाहका अनुभव हो गया है–मरणजन्यवियोगके संकटसे जरा भी नहीं डरते हैं; इतना ही नहीं बल्कि वे दूसरा सम्बन्ध करना अपनी पहली पवित्र गाँठको दूषित करनेके बराबर समझते हैं। ऐसी अवस्थामें पुनर्विवाहके होनेमें–'प्रेम' तो हेतु भूत हो ही नहीं सकता; क्योंकि यह वृत्ति जहाँ एकबार लग जाती है वहाँसे दूसरी जगहके लिए कभी हिलती भी नहीं है। अब यह समझनेमें सरलता पड़ेगी कि प्रेमसम्पादित विवाह और प्रेमके सिवाय दूसरी वृत्तिसे सम्पादित हुआ पुनर्विवाह, इन दोनोंमें क्या अन्तर है और यह भी समझमें आ जायगा कि यदि विवाहका सम्बन्ध एक और अखण्ड रक्खा जाय जिससे कि पुनर्विवाहका मौका ही न आने पावे तो अच्छा है, और इसीसे यह भी सिद्ध हो जायगा कि पुनर्विवाह एक निषिद्ध आचार है।

जिन देशोंमें पुनर्विवाहका रिवाज लोकसम्मत है वहाँ, और हिन्दुओंकी जिन जिन जातियोंमें यह जारी है उनमें भी, पुनर्विवाहका लाभ कितने स्त्रीपुरुष लेते हैं और उसे अच्छा समझते हैं, यदि इसकी गणना की जाय तो यह सिद्ध हुए बिना न रहेगा कि मनुष्य जातिकी स्वाभाविक वृत्ति ही प्रेमकी एकता पर दृढ़ है और उसीमें वह सुखका और महत्ताका अन्तिम परिणाम मान रही है। सुप्रसिद्ध बाबू प्रतापचन्द्र रायने अपने एक व्याख्यानमें कहा था कि "मनुष्यकी वृत्ति ही एक प्रेम करनेकी ओर बलवती जान पड़ती है। यदि कोई हिन्दुओंके लिए यह कहे कि इनमें प्रतिष्ठित समझे जानेवाले ब्राह्मणोंका अनुकरण करके वैश्य शूद्रादि वर्ण पुनर्विवाहको बुरा समझने लगे हैं, तो इस बातको स्वीकारते हुए भी यह प्रश्न होता है कि जिन देशोंमें यह जायज है वहाँ क्यों बहुतसे स्त्री–पुरुष इसे पसन्द नहीं करते? उत्तर यही है कि जनसमाजका झुकाव प्रेमकी एकताकी ही ओर है। जैसे संसारके और और कामोंमें दृढ़ताकी मुख्य आवश्यकता है उसी प्रकार प्रेमसम्बन्धके व्यवहारमें भी है जिसके कि आधारसे सारे सुखोंकी मर्यादा बँधती है। यदि यह दृढ़ता न होगी तो मनुष्य पुनर्विवाहके कारण जो बार बार विवाहान्वेषणकी आदत पड़ जायगी उससे किसी एक स्थितिमें सुख न मानकर, सारा जीवन सुख प्राप्त करनेकी एकके बाद एक परीक्षायें करनेमें ही व्यर्थ गवाँकर दुखी हुआ करेगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तब विवाहका बन्धन केवल प्रेमग्रान्थिसे होनेके लिए आवश्यक है कि दोनोंकी उम्र अच्छी हो (कमसे कम १६ और २५ वर्ष) दोनों शिक्षित हों, (वर्तमानमें स्त्रियोंके लिए जिस प्रकारकी शिक्षी दी जाती है उसकी अपेक्षा जुदे ही प्रकारकी शिक्षा उन्हें मिलना चाहिए, जिससे उनकी मानसिक और नैतिक शक्तियोंका विकास हो।) और दोनोंका विवाह मा बाप या गुरुजनोंकी योग्य आज्ञानुसार उन दोनोंकी पसन्दगीके द्वारा हुआ हो। इस प्रकारके विवाहको ही सच्चा प्रेमग्रन्थियुक्त विवाह समझना चाहिए।

विवाहका यही स्वरूप हमें मान्य है और इसी कारण हम पुनर्विवाहको बुरा समझते हैं। परन्तु हमारे मित्र कहते हैं कि आप जैसे बतलाते हैं वैसे विवाह आजकाल नहीं होते हैं। अपने रीतिरिवाज बिगड़ गये हैं, शिक्षा दी नहीं जाती, बाल्यविवाहका जोर है और पसन्दगीका तो कोई अभिप्राय भी नहीं समझता है; तब इन सारे दुष्टाचारोंके दुष्ट परिणामका निवारण कैसे किया जाय ? जिन लड़कियोंने अभी विवाहका अर्थ भी नहीं सुना समझा है, उन्हें क्या विना अपराध जीवन भर दुःखके गड्ढेमें ही डाले रखना चाहिए ? जिनके हृदय है, जो पराये दुःखोंका अनुभव कर सकते हैं, वे दयाशील सज्जन इसका उत्तर देते हुए कहते हैं—“विषस्य विषमौषधम्— विषकी दवा विष ही है। इस दुःखसे मुक्त होनेके लिए यदि पुनर्विवाहकी आवश्यकता है, तो उसे अपने दुष्टाचारोंका परिणाम समझकर होने दो—उसमें रुकावट मत डालो।” हम भी ऐसे दयार्द्र सज्जनोंका सर्वांशतः अनुमोदन करते हैं; परन्तु साथ ही यह स्मरण रखनेकी प्रार्थना करते हैं कि हमारा वास्तविक मार्ग तो—जैसा पहले कहा जा चुका है–विवाह करके वैधव्यधर्म पालना ही है। पुनर्विवाह तो हमारी दुर्वृत्तिके कारण, हमारी दुर्बलताके कारण लाचार होकर ग्रहण किया हुआ—क्षमा करने योग्य और सबके सहन करने योग्य मार्ग है।

पुनर्विवाहको यदि कोई पाप माने, तो इसके लिए हम उसका आदर करेंगे। क्योंकि ऐसा माननेमें उसकी सद्बुद्धि–धर्मवृत्ति कारण है। परन्तु यदि कोई पुनर्विवाह करनेवालेको दुःख देनेके लिए या उसको जातिबहिष्कृत आदि करनेके लिए तैयार हो, तो इसे हम जरा भी सहन नहीं कर सकेंगे। जब तुम प्राचीन आर्यधर्मके सिद्धान्तोंके विरूद्ध दूसरे न जाने कितने आचारोंको सहन कर रहे हो, तब इस एकको भी क्यों चुपचाप सहन नहीं कर लेते हो ? परन्तु वे लोग जो इस काममें उचित सहनशीलता प्रकट नहीं कर सकते हैं अर्थात् पुनर्विवाहके रिवाजसे क्षुब्ध हो जाते हैं, उनकी अपेक्षा वे लोग और भी अधिक दोषके भागी हैं जो पुनर्विवाहादि करनेको ही सच्चे सुधारका शृंगार समझते हैं। जो आचार हमें पसन्द हैं उन्हीं आचारवाले लोगोंको अपने पास रखना और दूसरोंको न रखना, इसके लिए तो हर एक अदमी स्वतंत्र है, परन्तु प्राचीन सत्सिद्धान्तोंके नष्ट भ्रष्ट करनेका किसीको भी अधिकार नहीं है। हमारे सुधारक भाई जितना परिश्रम इस अनिष्ट आचारको प्रचलित करनेके लिए करते हैं, उतना ही यदि विवाहके वास्तविक स्वरूपको समझानेमें, विवाहके सामाजिक नियमोंमें परिवर्तन करानेमें, और धर्मकी महत्ता समझानेमें करते तो यह व्यर्थका विवाद कभीका मिट गया होता। पुनर्विवाहकी रीतिको उत्तेजन देते समय वे यह बात भूल जाते हैं कि इस प्रकारके उत्तेजनसे, वे अव्यवस्थित विवाह भी स्थायी हो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जायँगे, जो कि अनेक अंशोंमें पुनर्विवाहको जन्म देनेवाले हैं और इससे दुःखकी परम्परा कभी बन्द न होगी। जिन कारणोंसे हम छोटी छोटी लड़कियोंकी दयायोग्य दशाको देखकर, विषकी ओषधि विष समझकर, पुनर्विवाह करनेके लिए लाचार होते हैं उन कारणोंको किसी तरह सबल न होने देना चाहिए। हमारा आचार ऐसा न होना चाहिए जिससे कि वह बुरा रिवाज सदाके लिए गढ़ बाँधकर रह जाय कि जिसके कारण इस समय हम पुनर्विवाहके लिए लाचार हुए हैं। तात्कालिक दुःख दूर करनेके लिए लोगोंको अधिक सहनशीलता धारण करनेका उपदेश दो –ऐसा प्रयत्न करो जिससे वे पुनर्विवाहको सहन कर लें; परन्तु ऐसा प्रयत्न मत करो जिससे यह उपायरूप अनिष्ट आचार सदाके लिए हमारे गले बँध जाय। पुनर्विवाहको विधेय कोटिमें मत ले जाओ; परन्तु जिस निषेध कोटिमें वह है उसीमें रहने देकर उसे सिर्फ आपद्धर्म-लाचारीके कारण धारण किया हुआ रिवाज-समझो। सुधारकोंका काम है सद्विचारकी प्रवृत्ति करना। उसे छोड़कर अपनी शक्तियोंको दूसरी ओर-असद्विचारोंकी प्रवृत्तिकी ओर-लगाना हमें तो उचित नहीं जान पड़ता। अनाड़ी वैद्योंकी पद्धतिपर चलना अच्छा नहीं। शरीरमें जो दोष हो गये हैं उन्हें दूर करनेकी दवा न देकर केवल उस दोषके कारण उत्पन्न हुए तात्कालिक कष्टोंको दूर करनेका प्रयत्न करनेसे जिस प्रकार शरीरका स्थायी आरोग्य सिद्ध नहीं होता है, उसी प्रकार समाज–शरीरके विषयमें भी समझना चाहिए। तात्कालिक उपाय करनेसे जिस प्रकार कुछ आराम मिलता है, उसी प्रकार पुनर्विवाहसे मिलेगा–हम यह नहीं कहते कि न मिलेगा–और वह मिले तो अच्छा, ऐसा हम चाहते हैं; परन्तु मूल दोषके दूर करनेकी ओर जो ध्यान नहीं दिया जाता है उसे हम बहुत ही बुरा समझते हैं और इससे भी बुरी बात यह है जो यह निषिद्ध–आचार विधेयाचार समझा जाने लगा है और इस समय सुधारका शुभचिह्न गिना जाने लगा है।

सुधारकोंको चाहिए कि पुनर्विवाहका प्रचार करनेके पहले विवाहकी जो अव्यवस्था है उसे व्यवस्थित करनेकी कोशिश करें। जब तक जातियों और उपजातियोंके बन्धनके कारण स्त्रीपुरुष वर कन्या पसन्द करनेमें स्वतंत्र नहीं हैं तब तक विवाहपद्धति व्यवस्थित नहीं हो सकती। हमे यहाँ फिर कहना पड़ता है कि मतमतांतरोंके कारण जो वर्तमान जातिभेद हो गया है, उसे छोड़कर जब प्राचीन चातुर्वर्णिक धर्म स्थिर किया जायगा तभी हमारी अनेक सांसारिक अडचनें दूर हो सकेंगी, नहीं तो नहीं। सुधारकोंके द्वारा विवाहके शुभ विचारके साथ साथ जातिबन्धनके शुद्ध रूपका विवेचन होनेकी भी पूरी पूरी आवश्यकता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चित्रशाला स्टीम प्रेस, पूना सिटीकी अनोखी पुस्तकें।

चित्रमयजगत्—यह अपने ढंगका अद्वितीय सचित्र मासिकपत्र है। "इलेस्ट्रेटेड लंडन न्यूज" के ढंग पर बड़े साइजमें निकलता है। एक एक पृष्टमें कई कई चित्र होते हैं। चित्रोंके अनुसार लेख भी विविध विषयके रहते हैं। साल भरकी १२ कापियोंको एकमें बंधा लेनेसे कोई ४००,५०० चित्रोंका मनोहर अलबम बन जाता है। रंगीन चित्र भी इसमें रहते हैं। आर्टपेपरके संस्करणका वार्षिक मूल्य ५॥) डाँ० व्य० सहित और एक संख्याका मूल्य ॥) आना है। साधारण कागजका वा० मू० ३॥) और एक संख्याका ।=) है।

राजा रविवर्माके प्रसिद्ध चित्र:—राजा साहबके चित्र संसारमें नाम पा चुके हैं। उन्हीं चित्रोंको अब हमने सबके सुभीतेके लिये आर्ट पेपरपर पुस्तकाकर प्रकाशित कर दिया है। इस पुस्तकमें ८८ चित्र मय विवरणके हैं। राजा साहबका सचित्र चरित्र भी है। टाइटल पेज एक प्रसिद्ध रंगीन चित्रसे सुशोभित है। मूल्य है सिर्फ १) रु.।

चित्रमय जापान—घर बैठे जपानकी सैर। इस पुस्तकमें जापानके सृष्टिसौंदर्य्य, रीतिरवाज, खाना पान, मृत्यु, गायनवादन, व्यवसाय, धर्मविषयक और राजकीय, इत्यादि विषयोंके ८४ चित्र, संक्षिप्त विवरण सहित हैं। पुस्तक अव्वल नम्बरके आर्ट पेपर पर छपी है। मूल्य एक रुपया।

सचित्र अक्षरबोध—छोटे २ बच्चोंके वर्णपरिचय करानेमें यह पुस्तक बहुत नाम पा चुकी है। अक्षरोंके साथ साथ प्रत्येक अक्षरको बतानेवाली, उसी अक्षरके आदिवाली वस्तुका रंगीन चित्र भी दिया है। पुस्तकका आकार बड़ा है। जिससे चित्र और अक्षर सब सुशोभित देख पड़ते हैं। मूल्य छह आना।

वर्णमालाके रंगीन ताश--ताशोंके खेलके साथ साथ बच्चोंके वर्णपरिचय करानेके लिये हमने ताश निकाले हैं। सब ताशोंमें अक्षरोंके साथ रंगीन चित्र और खेलनेके चिन्ह भी हैं। अवश्य देखिये। फी सेट चार आने।

सचित्र अक्षरलिपि—यह पुस्तक भी उपर्युक्त "साचित्र अक्षरबोध" के ढंगकी है। इसमें बाराखड़ी और छोटे छोटे शब्द भी दिये हैं। वस्तुचित्र सब रंगीन हैं। आकार उक्त पुस्तकसे छोटा है। इसीसे इसका मूल्य दो आने है।

सस्ते रंगीन चित्र—श्रीदत्तात्रय, श्रीगणपति, रामपंचायतन, भरतभेट, हनुमान, शिवपंचायतन, सरस्वती, लक्ष्मी, मुरलीधर विष्णु, लक्ष्मी, गोपीचन्द, आहिल्या, शाकुन्तला मेनका, तिलोत्तमा, रामवनवास गजेंद्रमोक्ष, हरिहरभेट, मार्कण्डेय, रम्भा, मानिनी, रामधनुर्विद्याशिक्षण, अहिल्योद्धार, विश्वामित्र मेनिका, गायत्री, मनोरमा, मालती, दमयन्ती और हंस, शेषशायी, दमयन्ती इत्यादिके सुन्दर रंगीन चित्र। आकार ७+५, मूल्य प्रति चित्र एक पैसा।

श्री सयाजीराव गायकवाड़ बड़ोदा, महाराज पंचम जार्ज और महारानी मेरी, कृष्णाशिष्टाई, स्वर्गीय महाराज सप्तम एडवर्डके रंगीन चित्र, आकार ८+१० मूल्य प्रति संख्या एक आने।

लिथोके बढ़ियाँ रंगीन चित्र—गायत्री, प्रातःसन्ध्या, मध्याह्न सन्ध्या, सायंसन्ध्या प्रत्येक चित्र ।) और चारों मिलकर ॥) नानक पंथके दस गुरू, स्वामी दयानन्द सरस्वती, शिवपंचायतन, रामपंचायतन, महाराज जार्ज, महारानी मेरी। आकार १६+२० मूल्य प्रति चित्र चार आना।

अन्य सामान—इसके सिवाय सचित्र कार्ड, रंगीन और सादे, स्वदेशी बटन, स्वदेशी दियासलाई, स्वदेशी चाकू, ऐतिहासिक रंगीन खेलनेके ताश, आधुनिक देशभक्त, ऐतिहासिक राजा महाराज-बादशाह, सरदार, अंग्रेजी राजकर्ता, गवर्नर जनरल इत्यादिके सादे चित्र सस्ते मूल्य पर मिलते हैं। स्कूलोंमें किंडरगार्डन रीतिसे शिक्षा देनेके लिये जानवरोंके चित्र सब प्रकारके रंगीन नकशे, ड्राइंगका सामान भी योग्य मूल्यपर मिलता है। इस पतेपर पत्रव्यवहार कीजिये।

मैनेजर—चित्रशाला प्रेस, पूना सिटी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालयका विज्ञापन।

नये ग्रन्थोंकी सूची।

हमारे छपाये हुए।

१ **अंजनापवनंजयकाव्य**—बोलचालकी सरल हिन्दीका यह काव्य अभी हाल ही छपकर तैयार हुआ है। बहुत अच्छे चमकदार कागजपर छपाया गया है। अंजना सतीका पवित्र चरित्र प्रत्येक स्त्री और पुरुषके पढ़ने तथा कण्ठ करने योग्य है। यह जैनहितैषीमें छप चुका था, अब जुदा छपवाया गया है। मूल्य ढाई आने।

३ **नियमसार**—यह अपूर्व ग्रन्थ भगवान् कुन्दकुन्दाचार्यका बनाया हुआ है। अभी तक इसका नाम भी किसीको मालूम न था। समयसार, प्रवचनसार आदिके समान यह ग्रन्थ भी अध्यात्मका है। मूल प्राकृतमें है और उस पर निर्ग्रन्थमुनि श्रीपद्मप्रभमलधारिदेवकी संस्कृत टीका है। प्राकृत और संस्कृतको साधारण स्वाध्यायप्रेमी नहीं समझते, इस कारण जैनमित्रसम्पादक श्रीयुत ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीने इसकी सरल भाषाटीका कर दी है और इस तरह मूल, संस्कृत और हिन्दी टीका सहित छपा है। यह अपूर्व ग्रन्थ प्रत्येक मन्दिरके भंडारमें पहुँच जाना चाहिए। मूल्य १।।।), कपड़ेकी जिल्दका २) रु०।

४ **आत्मानुशासन**—मूल और सरल हिन्दीभाषाटीका सहित। गुणभद्राचार्यका यह प्रसिद्ध ग्रन्थ दूसरी वार छपाया गया है। अध्यात्मके प्रेमियों तथा शान्तिके अभिलाषियोंके लिए अपूर्व है। हिन्दी भाषाटीका नई बनवाई गई है जो बहुत ही शुद्ध और सुबोध है। मूल्य इसका पहले तीन रुपया था, परन्तु अब यह सिर्फ १।।) रु०में मिलेगा। कपड़ेकी जिल्दका १।।।) रु०।

श्रावकधर्मसंग्रह—पं० दरयावसिंहजी सोधिया कृत। श्रावकाचारके प्रायः समस्त उपलब्ध ग्रन्थोंके आधारसे लिखा गया है। मूल्य कपड़ेकी जिल्द सहित २।) रु०।

दूसरोंके छपाये हुए।

१ **पद्मनन्दिपंचविंशतिका**—आचार्य पद्मनन्दिका प्रसिद्ध ग्रन्थ पं० गजाधरलालजी न्यायशास्त्रीकी हिन्दी भाषाटीका सहित छपाया गया है। हमने थोड़ी सी प्रतियाँ मँगाई हैं। मूल्य चार रुपया।

२ **पंचकल्याणकविधान**—पं० बख्तावर रतनलालजी कृत। मूल्य चार आने।

३ **महेन्द्रकुमार नाटक**—सुप्रसिद्ध पं० अर्जुनलालजी सेठी बी. ए. के बनाये हुए इस नाटकको उनके एक शिष्यने अपनी यादगारी परसे लिखकरके छपाया है। खेलने योग्य अच्छा है। बिलकुल नये ढंगका है। छपाई सफाई सुन्दर है। मूल्य छह आना।

चन्द्रप्रभचरित—संस्कृतके एक सुप्रसिद्ध जैनकाव्यका सरल हिन्दी अनुवाद। अनुवादक, हिन्दीके सुपरिचित लेखक पं० रूपनारायणजी पाण्डेय। यद्यपि इसकी रचना एक जैनकथानक पर हुई है; परन्तु है वह बहुत ही सुन्दर है। पाठक पढ़कर बहुत ही प्रसन्न होंगे। अनुवादकी भाषा बहुत ही मनोहारिणी है। संस्कृतमें यह काव्य रघुवंशके जोड़का समझा जाता है। मूल्य सवा रुपया।

४ **सम्यक्त्वकौमुदी**—इसमें सम्यक्त्व प्राप्त करनेवालोंकी आठ मनोहर और धार्मिक कथायें हैं। यह सरल हिन्दी भाषामें अनुवाद कराकर मूल संस्कृत सहित छपवाकर प्रकाशित किया गया है। इसकी सरल और सुन्दर बोलचालकी संस्कृत भाषाद्वारा विद्यार्थीगण भी लाभ उठा सकते हैं। इसमें जगह २ नीतिके सिद्धान्त उद्धृत किये गये हैं, जिससे पाठकोंको नीतिविषयक शिक्षा भी बहुत कुछ मिल सकती है। कीमत सादी जिल्द १=) कपड़ेकी पक्की जिल्द १।=)

५ **ऋषिमंडलयंत्रपूजा**—यह मंत्रशास्त्रका ग्रंथ गुणनन्दि आचार्य कृत है। इसमें पूजा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करानेवालेके लक्षण, चढ़ानेवालेका लक्षण, आचार्यका लक्षण, मंडलका लक्षण, सामग्रीका स्वरूप, मंत्र बनानेकी विधि, यंत्रपूजाका प्रारंभ, बीजाक्षरका स्वरूप, सर्प आदिकी रक्षाके मंत्र, मंत्रादिके लौकिक फल, पूजाका विधान, ग्रंथ-प्रशस्ति विषय हैं। यंत्र भी साथमें लगाया है। मूल्य पाँच आना।

६ **जैनतीर्थयात्राविवरण**--यह पुस्तक नये ढंगसे लिखी गई है। शिखरजी गिरनार-जीका फोटो तथा सारे भारतवर्षका नकशा दो रंगसे छपाकर लगवाया है। तीर्थयात्राका फल, तीर्थक्षेत्रोंकी सूची, तीर्थोंकी अनुक्रमणिका, शिखरजीका परिचय, गिरनार-जीकी यात्रा, जैनबद्री मूलबद्रीकी यात्रा, प्रसिद्धिता, किरायेकी सूची, आदि विषयोंका संग्रह है। मूल्य छह आना।

७ **अठारहनाते**–यति नयनसुखजीकी फड़कती हुई कवितामें दुराचारसे एक ही भवमें होनेवाले अठारहनातोंका वर्णन है। मू० एक आना

८ **आराधनाकथाकोश**–मूल और भावानुवाद सहित। सैकड़ों जैनकथाओंका संग्रह। पहला भाग मू० १।) दूसरा भाग १।=) और तीसरा भाग १॥) रु०।

तत्वमाला–ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी कृत। मूल्य चार आने।

बालबोध आत्मख्याति–सिवनी निवासी स्वर्गीय सेठ गोपाल साहुजीकी बनाई हुई आत्मख्यातिकी संक्षिप्त वचनिका। मूल्य १॥)

११ **समयसार नाटक**–कविवर बनारसी-दासजीकृत हिन्दी कविता। मूल्य छह आने।

१२ **लघीयस्त्रीय**–मूल्य छह आना और
१३ **सागारधर्मामृत** मूल्य सात आना। स्वर्गीय दानवीर जैनकूलभूषण सेठ माणिकचंद हीराचन्द जे. पी. के स्मरणार्थ दि० जैन समाजकी ओरसे जो ग्रन्थमाला प्रकाशित होना निश्चिय हुआ था, उसीमें ये दोनों ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। दोनों ग्रन्थ मूल संस्कृत भाषामें हैं। टाइटल पेजपर स्वर्गीय सेठ साहेबका फोटो है। छपाई सफाई देखने योग्य है।

१३ **विक्रान्त कौरवीय नाटक**–उक्त ग्रन्थमालाका तीसरा ग्रन्थ। श्रीहस्तिमल्ल कविकृत मूल्य छह आना।

१४ **पार्श्वनाथ चरित**—महाकवि वादिराजसूरि कृत। उक्त मालाका चौथा ग्रन्थ है। मूल्य ।=)।

मैनेजर, **जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,**
हीराबाग पो० गिरगांव, **बम्बई।**

भारतविख्यात ! हजारों प्रशंसापत्र प्राप्त !

अस्सी प्रकारके वात रोगोंकी एकमात्र औषधि

महानारायण तैल।

हमारा महानारायण तैल सब प्रकारकी वायुकी पीड़ा, पक्षाघात, (लकवा, फालिज) गठिया सुन्नवात, कंपवात, हाथ पांव आदि अंगोंका जकड़ जाना, कमर और पीठकी भयानक पीड़ा, पुरानीसे पुरानी सूजन, चोट, हड्डी या रगका दबजाना, पिचजाना या टेढी तिरछी होजाना और सब प्रकारकी अंगोंकी दुर्बलता आदिमें बहुत बार उपयोगी सावित होचुका है।

मूल्य २० तोलेकी शीशीका दो रुपया डा० म० ॥) आना।

पता–**वैद्य शङ्करलाल हरिशङ्कर**
आयुर्वेदोद्धारक–औषधालय, मुरादाबाद।

भारत–हितैषी

ऐतिहासिक पत्र।

इस पत्रमें भारतीय साहित्य, इतिहास और शिक्षा संबंधी मनोरंजक लेख निकला करते हैं, जैनधर्म संबंधी आचार्योंका इतिहास भी इसमें रहा करता है। वार्षिक मूल्य १॥) है।

मिलनेका पता:–**मैनेजर, भारत-हितैषी,**
देहरादून।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हिन्दीकी नई नई पुस्तकें।

हिन्दी गीतांजलि—महाकवि सर रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी जगतप्रसिद्ध गीतांजलिका हिन्दी अनुवाद। यह वही ग्रन्थ है जिसमें लेखकको सवा लाख रुपयेका पारितोषिक मिला है। मूल्य एक रुपया।

हिन्दू जाति मर रही है-वर्तमान समयमें हिन्दू जातिकी कैसी शोचनीय दशा हो रही है, कैसी शीघ्रतासे उसकी संख्या घट रही है, इसका विचार इस पुस्तकमें किया गया है। मू० =)

ईसापनीति—यह पुस्तक हितोपदेशके ढंगकी बालकोंके लिए बहुत ही उपयोगी है। कुल२६२ कहानियाँ और१०४चित्र हैं। इन कहानियोंसे बालकोंका मनोरंजन भी होगा और नीतिकी शिक्षा भी मिलेगी। मूल्य एक रुपया।

तिलोत्तमा—यह पौराणिक नाटक हिन्दीके प्रसिद्ध कवि बाबू मैथिलीशरणजी गुप्तका लिखा हुआ हालहीमें छपकर प्रकाशित हुआ है। मूल्य ॥)

अर्थशास्त्र—एक अँगरेजी ग्रन्थका पं० गिरिधर शर्माकृत अनुवाद। व्यापारियोंको और सम्पाति शास्त्रका महत्व समझनेवालोंको यह पुस्तक अवश्य-पढ़नी चाहिए। मूल्य कपड़ेकी जिल्दका १॥), सादीका १।) रुपया।

कुसुमसंग्रह—इसमें श्रीमती बंगमहिलाके लिखे हुए अनेक लेख और अनेक गल्पोंका संग्रह है। इंडियन प्रेसमें बढ़िया एंटिक कागज़पर यह छपा है। मूल्य एक रुपया।

मानकुमारी—यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है। अयोध्याकी नवाबीका इसमें बड़ा ही हृदय द्रावक और मनोरंजक दृश्य है। एक बार पढ़ना शुरू करके फिर छोड़नेको जी नहीं चाहता। बहुत ही सस्ती पुस्तक है। सब मिलाकर इसमें २७सुन्दर चित्र हैं। ऐतिहासिक विवरण भी दिया है। पृष्ठसंख्या ४५०। मूल्य सिर्फ दो रुपया।

अकबर—प्रसिद्ध सम्राट् अकबरका जीवनचरित। मू०॥)

पद्यप्रबन्ध—कविवर मैथिलीशरणजीकी सुन्दर कविताओंका संग्रह। मूल्य आठ आना।

अन्योक्ति कुसुमांजलि-मूल्य एक आना।

राष्ट्रीय-वीणा—हिन्दीके नामी नामी कवियोंकी हृदयको फड़का देने वाली चुनी हुई कविताओंका अपूर्व संग्रह। मूल्य छः आने।

जननी जीवन—आज कल स्त्रियाँ माता तो बन जाती हैं, पर यह नहीं जानतीं कि माताके क्या कर्तव्य हैं और सन्तानका पालन-पोषण किस तरह किया जाता है, बीमारियोंसे, सर्दी गर्मीसे उनकी कैसे रक्षाकी जाती है, उनका स्वभाव कैसे सुधारा जा सकता है, वे पढ़ाये लिखाये कैसे जा सकते हैं, और स्वयं अपने शरीरकी सावधानी किस तरह रखनी चाहिए। प्रत्येक माता या माता बननेवाली जननीको यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। भाषा इसकी बहुत ही सरल है और प्रश्नोत्तरके रूपमें लिखी गई है। मूल्य नौ आने।

शारदा—श्रीयुत शिवनाथ शास्त्री एम. ए. बंगालमें स्त्री-प्राठ्य ग्रंथोंके लिखनेमें सिद्धहस्त हैं। यह उपन्यास उन्हींके मेजवऊ नामक प्रसिद्ध उपन्यासका परिवर्तित अनुवाद है। पुस्तककी उत्तमता और सर्वप्रियता इसीसे प्रकट होती है कि उसके अभीतक १३ संस्करण छप चुके हैं। इस पुस्तककी नायिका एक आदर्श स्त्री है। उसके चरितसे दिखाया गया है कि पढ़ी लिखी स्त्रियाँ—प्रतिकूल अवस्थामें भी अपने पति, स्वजन और घरकी कहाँतक सेवा और भलाई कर सकती हैं। यह पुस्तक क्या स्त्री क्या पुरुष सभीके पढ़ने योग्य है। मूल्य छः आना।

मैनेजर, **हिन्दीग्रन्थरत्नाकर कार्यालय**

गिरगाँव, **बम्बई**।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हितैषी–औषधालय–इटावहकी

पवित्र-सस्ती-औषधियां.

नमक सुलेमानी ।

जगत्प्रसिद्ध असली २० वर्षका आजमूदा हाजमेकी अक्सीर दवा । की० ।।) तीन सी० १।=)

धातु संजीवन ।

संपूर्ण धातु विकारको नष्ट कर नया वीर्य पैदा होकर शरीर हृष्ट–पुष्ट होजाता है । की० १)

प्रदरान्तक–चूर्ण ।

स्त्रियोंके श्वेत, लाल आदि प्रदरोंको शर्तिया दूर कर ताकत बढ़ाता और गर्भस्थिति करता है की० १)

नयनामृत–सुरमा ।

सम्पूर्ण विकारोंको दूरकर नेत्रोंकी ज्योति बढ़ाता और तरावट पैदा करता है । की० १)

दन्त–कुसुमाकर ।

दाँतोंके सब रोग दूर होकर दांतोंकी चमक बढ़ाता और मजबूत करता है । की० ।)

दद्रु–दमन ।

यह खुशबूदार मरहम विना कष्टके दादके दादाको तगादाकर भगाती है । की० ।)

केश-बिहार–तैल ।

अत्यन्त सुगन्धिसे चित्त प्रसन्न कर केश और मस्तकके रोगोंको दूर करता है । की० ।।)

नारायण–तैल ।

शरदी आदिसे उत्पन्न हुए दर्द, गठिया, पक्षाघात आदि सर्व वात रोगोंकी शर्तिया दवा है । की० १)

चन्द्रामृत ।

सब रोगोंकी एक दवा । की० ।।।) सी०

दवा सफेद दागोंकी ।

इससे शरीरमें जो सफेद २ दाग पड़जाते हैं वह दूर हो जाते हैं । की० १)

श्वास–कुठार ।

यह श्वांस दमेंकी शर्तिया दवा है । की० १)

गोली दस्तबंदकी ।

रक्त, आम, आदि अतिसार तथा संग्रहणी आदिको शीघ्र दूर करती है । की० ।।)

दवा खांसीकी ।

सूखी या तर खांसीको और कफको दूर करने वाली आजमूदा दवा है । की० ।।)

अर्क कपूर ।

हैजेकी अक्सीर दवा । की० ।)

चंद्रकला ।

यह गोरे व खूब सूरतीकी दवा है । की० ।।)

नैन-सुधा-अञ्जन ।

इससे आँखका जाला धुन्ध फुली माड़ा आदि सब अच्छे होते हैं । की० ।।)

दवा पेटके दर्दकी ।

चाहे कैसा पेट दर्द हो फौरन दूर होता है । की० ।।)

ताम्बूल रंजन ।

पानके साथ खानेका बढ़िया मसाला । की० ।)

शिरदर्द-हर तैल । की० ।)

कर्ण-रोग-हर तैल की० ।)

खुजली–नाशक तैल । की० ।)

बाल उड़ानेका साबुन । की० ।)

कोकिल–कण्ठ–बटिका । की० ।)

दवा बच्चोंके ज्वर खांसीकी । की० ।)

पता—चन्द्रसेन जैन वैद्य, चन्द्राश्रम, इटावह U. P.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीवर्द्धमानाय नमः ।

भाग १२

अंक ९-१०

जैनहितैषी

सितंबर अक्टूबर १९१६.

जैनसमाज ।

तीर्थक्षेत्रोंके झगड़े, स्त्रियोंकी अज्ञानमय-दुःखमय दशा, शास्त्रोंकी रक्षा और प्रचारके काममें लापरवाही और अगुओंकी 'भेड़ियाधसान' बुद्धिके अन्धेर; ये सब बातें देखकर शासनदेवी धनवानों, पण्डितों और बाबुओंको सम्मिलित शक्तिसे उद्योग करनेके लिए समझा रही है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Narla, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय-सूची ।

१ भद्रबाहु-संहिता (ग्रन्थपरीक्षा)- लेखक, श्रीयुत बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तार । ४२१
२ पुस्तक-परिचय ... ४४२
३ शारदागम (कविता)-ले०, श्रीयुत पं० रामचरित उपाध्याय । ... ४४५
४ राजनीतिके मैदानमें आओ-ले०, श्रीयुत ब्र० भगवानदीन । ... ४४६
५ जैनधर्मके पालनेवाले वैश्य ही क्यों ? ... ... ४...
६ प्रार्थना (कविता)-ले०, श्रीयुत पं० गिरधिर शर्मा । ... ४५४
७ जैनधर्म और जैनदर्शन ... ४५५
८ काश्मीरका इतिहास-ले०, श्रीयुत बाबू सुपार्श्वदास जैन बी. ए. । ... ४६४
९ पतितोद्धार (कविता)-ले०, श्रीयुत ब्र० विश्वंभरदास गार्गीय ... ४६८
१० सूक्तमुक्तावली और सोमप्रभाचार्य-ले०, श्रीयुत मुनि जिनविजयजी ४६९
११ माताका पुत्रको जगाना (कविता) ले०, श्रीयुत पं० रामचरित उपाध्याय ४७७
१२ सार्वजनिक धनकी जिम्मेवारी ४७९
१३ बालविवाह-ले०, श्रीयुत ठाकुर शिवनन्दनसिंह बी. ए. ... ४८६
१४ युवकोंके प्रति (कविता) ... ४९५
१५ सम्मानित (गल्प)-ले० श्रीयुत पं० ज्वालादत्त शर्मा ४९६
१६ विविध प्रसङ्ग ५०४
१७ तीर्थोंके झगड़े मिटानेकाआन्दोलन ५०९
१८ भारतमें जैनसमाजकी अवस्था ५१९

नियमावली ।

१. वार्षिक मूल्य उपहारसहित ३) तीन रुपया पेशगी है । वी. पी. तीन रुपया एक आनेका भेजा जाता है।

२. उपहारके बिना भी तीन रुपया मूल्य है ।

३. ग्राहक वर्षके आरंभसे किये जाते हैं और बीचसे अर्थात् ७ वें अंकसे । बीचसे ग्राहक होनेवालोंको उपहार नहीं दिया जाता । आधे वर्षका मूल्य १।) रु० है ।

४. प्रत्येक अंकका मूल्य पाँच आने है ।

५. सब तरहका पत्रव्यवहार इस पतेसे करना चाहिए।

मैनेजर—जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय.
हीराबाग, पो० गिरगांव-बंबई।

प्रार्थनायें ।

१. जैनहितैषी किसी स्वार्थबुद्धिसे प्रेरित होकर निजी लाभके लिए नहीं निकाला जाता है। इसमें जो समय और शक्तिका व्यय किया जाता है वह केवल अच्छे विचारोंके प्रचारके लिए । अतः इसकी उन्नतिमें हमारे प्रत्येक पाठकको सहायता देनी चाहिए।

२. जिन महाशयोंको इसका कोई लेख अच्छा मालूम हो उन्हें चाहिए कि उस लेखको जितने मित्रोंको वे पढ़कर सुना सकें अवश्य सुना दिया करें ।

३. यदि कोई लेख अच्छा न मालूम हो अथवा विरुद्ध मालूम हो तो केवल उसीके कारण लेखक या सम्पादकसे द्वेष भाव न धारण करनेके लिए सविनय निवेदन है ।

४. लेख भेजनेके लिए सभी सम्प्रदायके लेखकोंको आमंत्रण है । —सम्पादक ।

दूसरे उपहारकी सूचना ।

दूसरा उपहार अभीतक नहीं दिया गया, इसका कारण यह है कि जिन लेखक महाशयने उसे लिख देना कहा है वे अवकाशाभावके कारण अब तक लिख नहीं सके हैं । तकाजा किया जा रहा है । ज्यों ही वे लिख देंगे, त्योंही उसके छपानेका प्रबन्ध कर दिया जायगा । कागज खरीदा हुआ रक्खा है । एक धर्मात्मा सज्जनने इस पुस्तकके छपानेका पूरा खर्च देनेकी स्वीकारता दे दी है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हितं मनोहारि च दुर्लभ वचः ।

बारहवाँ भाग । अंक ९-१०

जैनहितैषी ।

सितम्बर, अक्टू० १९१६.
भाद्र, आश्विन २४४२

सारे ही संघ सनेहके सूतसौं, संयुत हों, न रहै कोउ द्वेषी ।
प्रेमसौं पालैं स्वधर्म सभी, रहैं सत्यके साँचे स्वरूप-गवेषी ॥
बैर विरोध न हो मतभेदतैं, हों सबके सब बन्धु शुभैषी ।
भारतके हितको समझें सब, चाहत है यह जैनहितैषी ॥

भद्रबाहु-संहिता ।

(ग्रन्थ-परीक्षा-लेखमालाका चतुर्थ लेख ।)

[ले०-श्रीयुत बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तार]

जैनसमाजमें, भद्रबाहुस्वामी एक बहुत प्रसिद्ध आचार्य हो गये हैं । आप पाँचवें श्रुतकेवली थे । श्रुतकेवली उन्हें कहते हैं जो संपूर्ण द्वादशांग श्रुतके पारगामी हों—उसके अक्षर अक्षरका जिन्हें यथार्थ ज्ञान हो । दूसरे शब्दोंमें यों कहना चाहिए कि तीर्थंकर भगवानकी दिव्य ध्वनि द्वारा जिस ज्ञान-विज्ञानका उदय होता है उसके अविकल ज्ञाताओंको श्रुतकेवली कहते हैं। आगममें संपूर्ण पदार्थोंके जाननेमें केवली और श्रुतकेवली दोनों ही समान रूपसे निर्दिष्ट हैं । भेद है सिर्फ प्रत्यक्ष-परोक्षका या साक्षात्-असाक्षात्का । केवली अपने केवलज्ञान द्वारा संपूर्ण पदार्थोंको प्रत्यक्ष रूपसे जानते हैं और श्रुतकेवली अपने स्याद्वादालंकृत श्रुतज्ञान द्वारा उन्हें परोक्ष रूपसे अनुभव करते हैं। जैसा कि स्वामि समन्तभद्रके इस वाक्यसे प्रगट है:—

> स्याद्वादकेवलज्ञाने सर्वतत्त्वप्रकाशने ।
> भेदः साक्षादसाक्षाच्च ह्यवस्त्वन्यतमं भवेत् ॥ १० ॥
>
> —आप्तमीमांसा ।

जैनियोंको भद्रबाहुकी योग्यता, महत्ता, और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naraj Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्वमान्यता आदिके विषयमें इससे अधिक परिचय देनेकी जरूरत नहीं है। वे भद्रबाहुके द्वारा संपूर्ण तत्त्वोंकी प्ररूपणाका उसी प्रकार अविकल रूपसे होते रहना मानते हैं जिस प्रकार कि वह वीर भगवानकी दिव्यध्वनि द्वारा होती रही थी और इस दृष्टिसे भद्रबाहु वीर भगवानके तुल्य ही माने और पूजे जाते हैं। इससे पाठक समझ सकते हैं कि जैनसमाजमें भद्रबाहुका आसन कितना अधिक ऊँचा है। ऐसे महान् विद्वान् और प्रतिभाशाली आचार्यका बनाया हुआ यदि कोई ग्रंथ उपलब्ध हो जाय तो वह निःसन्देह बड़े ही आदर और सत्कारकी दृष्टिसे देखे जाने योग्य है और उसे जैनियोंका बहुत बड़ा सौभाग्य समझना चाहिए। अस्तु; आज इस लेख द्वारा जिस ग्रंथकी परीक्षाका प्रारंभ किया जाता है उनके नामके साथ 'भद्रबाहु'का पवित्र नाम लगा हुआ है। कहा जाता है कि यह ग्रंथ भद्रबाहु श्रुतकेवलीका बनाया हुआ है।

ग्रन्थ-प्राप्ति।

जिस समय सबसे पहले मुझे इस ग्रंथके शुभ नामका परिचय मिला और जिस समय (सन् १९०५ में) पंडित गोपालदासजीने इसके 'दायभाग' प्रकरणको अपने 'जैनमित्र' पत्रमें प्रकाशित किया उस समय मुझे इस ग्रंथके देखनेकी बहुत उत्कंठा हुई। परन्तु ग्रंथ न मिलनेके कारण मेरी वह इच्छा उस समय पूरी न हो सकी। साथ ही, उस वक्त मुझे यह भी मालूम हुआ कि अभीतक यह ग्रंथ किसी भंडारसे पूरा नहीं मिला। महासभाके सरस्वतीभंडारमें भी इसकी अधूरी ही प्रति है। इसके बाद चार पाँच वर्ष हुए जब ऐलक पन्नालालजीके द्वारा झालरापाटनके भंडारसे इस ग्रंथकी यह प्रति निकाली गई और ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीके द्वारा, जैनमित्रमें, इस पूरे ग्रंथके मिल जानकी घोषणा की गई और इसके अध्यायोंकी विषय-सूचीका विवरण देते हुए सर्व साधारण पर ग्रंथका महत्त्व प्रगट किया गया, तब मेरी वह ग्रंथावलोकनकी इच्छा और भी बलवती हो उठी और मैंने निश्चय किया कि किसी न किसी प्रकार इस ग्रंथको एकबार परीक्षा-दृष्टिसे जरूर देखना चाहिए। झालरापाटनकी उक्त प्रतिको, उसपरसे कई प्रतियाँ करा कर ग्रंथका प्रचार करनेके लिए, ऐलक पन्नालालजी अपने साथ ले गये थे। इस लिए उक्त ग्रंथका सहसा मिलना दुर्लभ हो गया। कुछ समयके बाद जब उन प्रतियोंमेंसे एक प्रति मोरेनामें पं० गोपालदासजीके पास पहुँच गई तब, समाचार मिलते ही, मैंने पंडितजीसे उसके भेजनेके लिए निवेदन किया। उत्तर मिला कि आधा ग्रंथ पं० धन्नालालजी बम्बई ले गये है और आधा यहाँपर देखा जा रहा है। अन्तको, बम्बई, और मोरेना दोनों ही स्थानोंसे ग्रंथकी प्राप्ति नहीं हो सकी। मेरी उस प्रबल इच्छाकी पूर्तिमें इस प्रकारकी बाधा पड़ती देखकर बाबा भागीरथजी वर्णीके हृदयपर बहुत चोट लगी और उन्होंने अजमेर जाकर सेठ नेमिचंदजी सोनीके लेखक द्वारा, जो उससमय भद्रबाहुसंहिताकी प्रतियाँ उतारनेका ही काम कर रहा था, एक प्रति अपने लिए करानेका प्रबंध कर दिया। बहुत दिनोंके इन्तजार और लिखा पढ़ीके बाद वह प्रति देहलीमें बाबाजीके नाम वी. पी. द्वारा आई, जिसको लाला जग्गीमलजीने छुड़ाकर पहाड़ीके मंदिरमें विराजमान कर दिया और आखिर वहाँसे वह प्रति मुझको मिल गई। देखनेसे मालूम हुआ कि यह प्रति कुछ अधूरी है। तब उसके कमती भागकी पूर्ति तथा मिलानके लिए दूसरी पूरी प्रतिके मँगानेकी जरूरत पैदा हुई, जिसके लिए अनेक स्थानोंमें पत्रव्यवहार किया गया। इस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परं सेठ हीराचंद नेमिचंदजी शोलापुरने, पत्र पाते ही, अपने यहाँकी प्रति भेज दी, जो कि इस ग्रंथका पूर्वखंड मात्र है और जिससे मिलान-का काम लिया गया। परन्तु इससे कमती भागकी पूर्ति नहीं हो सकी। अतः झालरापाटनसे इस ग्रंथकी पूरी प्रति प्राप्त करनेका फिरसे प्रयत्न किया गया। अबकी बारका प्रयत्न सफल हुआ। गत जुलाई मासके अन्तमें श्रीमान् सेठ विनोदीराम बालचंदजीके फर्मके मालिक श्रीयुत सेठ लालचन्दजी सेठीने इस ग्रंथकी वह मूल प्रति ही मेरे पास भेज देनेकी कृपा की जिस परसे अनेक प्रतियाँ होकर हालमें इस संहिताका प्रचार होना प्रारंभ हुआ है और इस लिए सेठ साहबकी इस कृपा और उदारताके लिए उन्हें जितना धन्यवाद दिया जाय वह थोड़ा है। जिन जिन महानुभावोंने मेरी इस ग्रंथावलोकन-की इच्छाको पूरा करनेके लिए ग्रंथ भेजने-भिजवाने आदि द्वारा मेरी सहायता की है उन सबका मैं हृदयसे आभार मानता हूँ। इस विषयमें श्रीयुत पं० नाथूरामजी प्रेमीका नाम खास तौरसे उल्लेख योग्य है और वे मेरे विशेष धन्यवादके पात्र हैं; जिनके खास उद्योगसे झालरापाटनकी मूल प्रति उपलब्ध हुई, जिन्होंने ग्रंथ-परीक्षाकी सहायतार्थ अनेक ग्रंथोंको खरीदकर भेजने तककी उदारता दिखलाई और जिनकी कोशिशसे एक अलब्ध ग्रंथकी दक्कन कालिज पूनाकी लायब्रेरीसे भी प्राप्ति हुई। इस प्रकार ग्रंथ-प्राप्तिका यह संक्षिप्त इतिहास देकर अब मैं प्रकृत विषयकी ओर झुकता हूँ:—

परीक्षाकी जरूरत।

भद्रबाहु श्रुतकेवलीका अस्तित्व-समय वीर निर्वाण संवत् १३३ से प्रारंभ होकर संवत् १६२ पर्यंत माना जाता है। अर्थात् विक्रम संवतसे ३०८ वर्ष पहले और ईसवी सनसे ३६५ वर्ष पहले तक भद्रबाहु मौजूद थे और इसलिए भद्रबाहुको समाधिस्थ हुए आज २२८१ वर्ष हो चुके हैं। इस समयसे २९ वर्ष पहलेके किसी समयमें (जो कि भद्रबाहुके श्रुतकेवली रहनेका समय कहा जाता है) भद्रबाहु श्रुतकेवली द्वारा इस ग्रंथकी रचना हुई है, ऐसा कुछ विद्वानोंका अनुमान और कथन है। ग्रंथमें, ग्रंथके बननेका कोई सन् संवत् नहीं दिया और न ग्रंथकर्ताकी कोई प्रशस्ति ही लगी हुई है। परंतु ग्रंथकी प्रत्येक सन्धिमें, 'भद्रबाहु' ऐसा नाम जरूर लगा हुआ है; मंगलाचरणमें '**गोवर्धनं गुरुं नत्वा**' इस पदके द्वारा गोवर्धन गुरुका, जो कि भद्रबाहु श्रुतकेवलीके गुरु थे, नमस्कारपूर्वक स्मरण किया गया है; कई स्थानों पर '**मैं भद्रबाहु मुनि ऐसा कहता हूँ या कहूँगा**' इस प्रकारका उल्लेख पाया जाता है; और एक स्थानपर "**भद्रबाहुरुवाचेदं पंचमः श्रुतकेवली+**" यह वाक्य भी दिया है। इसके सिवाय ग्रंथमें कहीं कहींपर किसी कथनके सम्बंधमें इस प्रकारकी सूचना भी की गई है कि वह कथन भद्रबाहु श्रुतकेवलीका या द्वादशांगके जाननेवाले भद्रबाहुका है। इन्हीं सब बातोंके कारण जैन समाजके वर्तमान विद्वानोंका उपर्युक्त अनुमान और कथन जान पड़ता है। परन्तु सिर्फ इतने परसे ही इतना बड़ा भारी अनुमान कर लेना बहुत बड़े साहस और जोखमका काम है। खासकर ऐसी हालत और परस्थितिमें जब कि इस प्रकारके अनेक ग्रंथ जाली सिद्ध किये जा चुके हों। जाली ग्रंथ बनानेवालोंके लिए इस प्रकारका खेल कुछ भी मुश्किल नहीं होता और इसका

+ खंड ३ अध्याय [illegible] श्लोक १० का पूर्वार्ध।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिग्दर्शन पहले तीन ग्रंथोंपर लिखे गये परीक्षा-लेखोंद्वारा भले प्रकार कराया जा चुका है+। भद्रबाहुको हुए आज २३ सौ वर्षका लम्बा चौड़ा समय बीत गया। इस अर्सेमें बहुतसे अच्छे अच्छे विद्वान् और माननीय आचार्य होगये; परन्तु उनमेंसे किसीकी भी कृतिमें इस ग्रंथका नामोल्लेख तक नहीं मिलता और न किसी प्राचीन शिलालेखमें ही इस ग्रंथका उल्लेख पाया जाता है। श्रुतकेवली जैसे आदर्श पुरुष द्वारा रचे हुए एक ऐसे ग्रंथका, जिसका अस्तित्व आजतक चला आता हो, बादको होनेवाले किसी भी माननीय प्राचीन आचार्यकी कृतिमें नामोल्लेख तक न होना संदेहसे खाली नहीं है। साथ ही, श्रवणबेल्गोलके श्रीयुत पंडित दौर्बलि जिनदास शास्त्रीजीसे मालूम हुआ कि उधर दक्षिणदेशके भंडारोंमें भद्रबाहुसंहिताकी कोई प्रति नहीं है और न उधर पहलेसे इस ग्रंथका नाम ही सुना जाता है। जिस देशमें भद्रबाहुका अन्तिम जीवन व्यतीत हुआ हो, जिस देशमें उनके शिष्यों और प्रशिष्योंका बहुत बड़ा संघ लगभग १२ वर्षतक रहा हो, जहाँ उनके शिष्यसम्प्रदायमें अनेक दिग्गजविद्वानोंकी शाखा प्रशाखायें फैली हों और जहाँपर धवल, महाधवल आदि ग्रन्थोंको सुरक्षित रखनेवाले मौजूद हों, वहाँपर उनकी, अद्यावधिपर्यंत जीवित रहनेवाली, एक मात्रसंहिताका नामतक सुनाई न पड़े, यह कुछ कम आश्चर्यकी बात नहीं है। ऐसा होना कुछ अर्थ रखता है और वह उपेक्षा किये जानेके योग्य नहीं है। इन सब कारणोंसे यह बात बहुत आवश्यक जान पड़ती है कि इस ग्रंथ (भद्रबाहुसंहिता) की परीक्षा की जाय और ग्रंथके साहित्यकी जाँच द्वारा यह मालूम किया जाय कि यह ग्रंथ वास्तवमें कब बना है और इसे किसने बनाया है। इसी लिए आज पाठकोंका ध्यान इस ओर आकर्षित किया जाता है।

ग्रन्थकी विलक्षणता।

जिस समय इस ग्रन्थको परीक्षा-दृष्टिसे अवलोकन करते हैं उस समय यह ग्रन्थ बड़ा ही विलक्षण मालूम होता है। इस ग्रंथमें तीन खंड हैं—१ पूर्व, २ मध्यम, ३ उत्तर और श्लोकोंकी संख्या लगभग सात हजार है। परंतु ग्रंथके अन्तमें जो १८ श्लोकोंका 'अन्तिम वक्तव्य' दिया है उसमें ग्रन्थके पाँच खंड बतलाये हैं और श्लोकोंकी संख्या १२ हजार सूचित की है। यथाः—

> प्रथमो व्यवहाराख्यो ज्योतिराख्यो द्वितीयकः।
> तृतीयोऽपि निमित्ताख्यश्चतुर्थोऽपि शरीरजः ॥ १ ॥
> पंचमोऽपि स्वराख्यश्च पंचखंडैरियं मता।
> द्वादशसहस्रप्रमितासंहितेयं जिनोदिता ॥ २ ॥

अन्तिम वक्तव्य अन्तिम खंडके अन्तमें होना चाहिए था; परन्तु यहाँपर तीसरे खंडके अन्तमें दिया है। चौथे पाँचवें खंडोंका कुछ पता नहीं, और न उनके सम्बंधमें इस विषयका कोई शब्द ही लिखा है। किसी ग्रंथमें तीन खंडोंके होनेपरही उनका पूर्व, मध्यम और उत्तर इस प्रकारका विभाग ठीक हो सकता है, पाँच खंडोंकी हालतमें नहीं। पाँच खंडोंके होनेपर दूसरे खंडको 'मध्यम' और तीसरेको 'उत्तरखंड' कहना ठीक नहीं बैठता। पहले और अन्तके खंडोंके बीचमें रहनेसे दूसरे खंडको यदि 'मध्यमखंड' कहा जाय तो इस दृष्टिसे तीसरे खंडको भी 'मध्यमखंड' कहना होगा, 'उत्तरखंड' नहीं। परन्तु यहाँपर पद्यमें भी तीसरे खंडको,

+ इससे पहले उमास्वामि-श्रावकाचार, कुन्द-कुन्द-श्रावकाचार और जिनसेन-त्रिवर्णाचार ऐसे तीन ग्रंथोंकी परीक्षा की जा चुकी है, जिनके पाँच परीक्षा-लेख जैनहितैषीके १० वें भागमें प्रकाशित हुए हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसके दस अध्यायोंकी सूची देते हुए, 'उत्तर-खंड'ही लिखा है। यथाः—

> ग्रहस्तुतिः प्रतिष्ठां च मूलमंत्रर्षिपुत्रिके ।
> शास्तिचक्रे क्रियादीपे फलशान्ती दशोत्तरे ॥८॥

इसलिए खंडोंका यह विभाग समुचित प्रतीत नहीं होता। खंडोंके इस विभाग–सम्बंधमें एक बात और भी नोट किये जाने योग्य है और वह यह है कि इस ग्रंथमें पूर्व खंडकी संधि देनेके पश्चात्, दूसरे खंडका प्रारंभ करते हुए, "**अथ भद्रबाहु–संहितायां उत्तरखंडः प्रारभ्यते**" यह वाक्य दिया है और इसके द्वारा दूसरे खंडको 'उत्तरखंड' सूचित किया है; परन्तु खंडके अन्तमें उसे वही 'मध्यमखंड' लिखा है। हो सकता है कि ग्रंथकर्ताका ग्रंथमें पहले दो ही खंडोंके रखनेका विचार हो और इसी लिए दूसरा खंड शुरू करते हुए उसे 'उत्तरखंड' लिखा हो; परन्तु बादको दूसरा खंड लिखते हुए किसी समय वह विचार बदलकर तीसरे खंडकी जरूरत पैदा हुई हो और इस लिए अन्तमें खंडको 'मध्यमखंड' करार दिया हो और पहले जो उसके लिए 'उत्तरखंड' पद लिखा गया था उसका सुधार करना स्मृतिपथसे निकल गया हो। कुछ भी हो, पर इससे ग्रंथका अव्यवस्थितपना प्रगट होता है। यह तो हुई खंडोंके साधारण विभागकी बात; अब उनके विषय-विभागकी अपेक्षा विशेष नामकरणको लीजिए। ऊपर उद्धृत किये हुए श्लोक नं० १ में दूसरे खंडका नाम 'ज्योतिष–खंड' और तीसरेका नाम 'निमित्तखंड' दिया है जिससे यह सूचित होता है कि ये दोनों विषय एक दूसरेसे भिन्न अलग अलग खंडोंमें रक्खे गये हैं। परंतु दोनों खंडोंके अध्यायोंका पाठ करनेसे ऐसा मालूम नहीं होता। तीसरे खंडमें सिर्फ 'ऋषिपुत्रिका' और 'दीप' नामके दो अध्याय ही ऐसे हैं जिनमें 'निमित्त' का कथन है। बाकीके आठ अध्यायोंमें दूसरी ही बातोंका वर्णन है। इससे पाठक सोच सकते हैं कि इस खंडका नाम कहाँतक 'निमित्त-खंड' हो सकता है। रही दूसरे खंडकी बात। इसमें १ केवलकाल, २ वास्तुलक्षण, ३ दिव्येन्दु-संपदा, ४ चिह्न और ५ दिव्योषधि नामके पाँच अध्याय तो ऐसे हैं जिनका ज्योतिषसे प्रायः कुछ सम्बंध नहीं और 'उल्का' आदि २६ अध्याय तथा शकुन (स्वरादि द्वारा शुभाशुभज्ञान), लक्षण और व्यंजन नामके कई अध्याय ऐसे हैं जो निमित्तसे सम्बंध रखते हैं और उस अष्टांग निमित्तमें दाखिल हैं जिसके नाम 'राजवार्तिक' में इस प्रकार दिये हैं:—

> अंतरिक्ष–भौमांग-स्वर-स्वप्न–लक्षण-व्यंजन–छिन्नानि अष्टौमहानिमित्तानि ।

इस खंडके शुरूके २६ अध्यायोंको उनकी संधियोंमें दिये हुए 'भद्रबाहुके निमित्ते' इन शब्दों द्वारा निमित्ताध्याय सूचित भी किया है। शेषके अध्यायोंमें एक अध्याय (नं० ३०) का नाम ही 'निमित्त' अध्याय है और उसके प्रतिज्ञा-वाक्यमें भी निमित्त कथनकी प्रतिज्ञा की गई है। यथाः—

> अथ वक्ष्यामि केषांचिन्निमित्तानां प्ररूपणं ।
> कालज्ञानादिभेदेन यदुक्तं पूर्वसूरिभिः ॥ १ ॥

इस तरह पर इस खंडमें निमित्ताध्यायोंकी बहुलता है। यदि दो निमित्ताध्यायोंके होनेसे ही तीसरे खंडका नाम 'निमित्त' खंड रक्खा गया है तो इस खंडका नाम सबसे पहले 'निमित्त खंड' रखना चाहिए था; परन्तु ऐसा नहीं किया गया। इस लिए खंडोंका यह नामकरण भी समुचित प्रतीत नहीं होता। यहाँ पर पाठकोंको यह जानकर और भी आश्चर्य होगा कि इस खंडके शुरूमें निमित्तग्रंथके कथनके लिए ही

१ तीसरे खंडके अन्तमें भी उसका नाम 'निमित्तखंड' लिखा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रश्न किया गया है और उसीके कथनकी प्रतिज्ञा भी की गई है। यथाः—

सुखग्राह्यं लघुग्रंथं स्पष्टं शिष्याहितावहम्।
सर्वज्ञभाषितं तथ्यं निमित्तं तु ब्रवीहि नः॥ २-१-१४॥
भवद्भिर्यदहं पृष्टो निमित्तं जिनभाषितम्।
समासव्यासतः सर्वं तन्निबोध यथाविधि॥ -२-२॥

ऐसी हालतमें इस खंडका नाम 'ज्योतिष-खंड' कहना पूर्वापर विरोधको सूचित करता है। खंडोंके इस नामकरणके समान बहुतसे अध्यायोंका नामकरण भी ठीक नहीं हुआ। उदाहरणके तौरपर तीसरे खंडके 'फल' नामके अध्यायको लीजिए। इसमें सिर्फ कुछ स्वप्नों और ग्रहोंके फलका वर्णन है। यदि इतने परसे ही इसका नाम 'फलाध्याय' रक्खा गया तो इससे पहलेके स्वप्नाध्यायको और ग्रहाचार प्रकरणके अनेक अध्यायोंको फलाध्याय कहना चाहिए था। क्योंकि उनमें भी इसी प्रकारका विषय है। बल्कि उक्त फलाध्यायमें जो ग्रहाचारका वर्णन है उसके सब श्लोक पिछले ग्रहाचारसंबंधी अध्यायोंसे ही उठाकर रक्खे गये हैं, तो भी उन पिछले अध्यायोंको फलाध्याय नाम नहीं दिया गया। इसलिए कहना पड़ता है कि यह नामकरण भी ठीक नहीं हुआ। इसके सिवाय ग्रंथके आदिमें मंगलाचरणपूर्वक जो प्रतिज्ञा-वाक्य दिया है और जिसे संपूर्ण ग्रंथके लिए व्यापक समझना चाहिए वह इस प्रकार है:—

गोवर्धनं गुरुं नत्वा दृष्ट्वा गौतमसंहिताम्।
वर्णाश्रमस्थितियुता संहिता वर्ण्यतेऽधुना॥ ३-॥

अर्थात्—'गोवर्धन' गुरुको नमस्कार करके और 'गौतमसंहिता' को देखकर अब वर्णों तथा आश्रमोंकी स्थितिवाली संहिताका वर्णन किया जाता है।

इस प्रतिज्ञा-वाक्यमें 'अधुना' (अब) शब्द बहुत खटकता है और इस बातको सूचित करता है कि ग्रंथमें पहलेसे कोई कथन चल रहा है जिसके बादका यह प्रकरण है; परन्तु ग्रंथमें इससे पहले कोई कथन नहीं है। सिर्फ मंगलाचरणके दो श्लोक और दिये हैं जो 'नत्वा' और 'प्रणम्य' शब्दोंसे शुरू होते हैं और जिनमें कोई अलग प्रतिज्ञावाक्य नहीं है। इस लिए इन दोनों श्लोकोंसे सम्बंध रखनेवाला यह 'अधुना' शब्द नहीं हो सकता। परन्तु इसे रहने दीजिए और खास प्रतिज्ञा पर ध्यान दीजिए। प्रतिज्ञामें संहिताका अभिधेय-संहिताका उद्देश—वर्णों और आश्रमोंकी स्थितिको बतलाना प्रगट किया है। इस अभिधेयसे दूसरे तीसरे खंडोंका कोई सम्बंध नहीं; खासकर दूसरा 'ज्योतिषखंड' बिलकुल ही अलग हो जाता है और वह कदापि इस वर्णाश्रमवती संहिताका अंग नहीं हो सकता। दूसरे खंडके शुरूमें, 'अथ भद्रबाहुसंहितायां उत्तरखंडः प्रारभ्यते' के बाद 'ॐनमः सिद्धेभ्यः, श्रीभद्रबाहवे नमः' ये दो मंत्र देकर, 'अथ भद्रबाहुकृत निमित्तग्रंथः लिख्यते' यह एक वाक्य दिया है। इससे भी इस दूसरे खंडका अलग ग्रंथ होना पाया जाता है। इतना ही नहीं, इस खंडके पहले अध्यायमें ग्रंथके बननेका सम्बंध (शिष्योंका भद्रबाहुसे प्रश्न आदि) और ग्रंथके (दूसरे खंडके) अध्यायों अथवा विषयोंकी सूची भी दी है जिससे इस खंडके भिन्न ग्रंथ होनेकी और भी अधिकताके साथ पुष्टि होती है। अन्यथा, ग्रंथके बननेकी यह सब सम्बंध-कथा और संहिताके पूरे अध्यायों वा विषयोंकी सूची पहले खंडके शुरूमें दी जानी चाहिए, जहाँ वह नहीं दी गई। यहाँपर खसूसियतके साथ एक खंडके सम्बंधमें वह असम्बद्ध-मालूम होती है। दूसरे खंडमें भी इतनी विशेषता और है कि वह संपूर्ण खंड किसी एक व्यक्ति-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का बनाया हुआ मालूम नहीं होता। उसके आदिके २४ या ज्यादहसे ज्यादह २५ अध्यायोंका टाइप और साँचा, दूसरे अध्यायोंसे भिन्न एक प्रकारका है। वे किसी एक व्यक्तिके बनाये हुए जान पड़ते हैं और शेष अध्याय किसी दूसरे तथा तीसरे व्यक्तिके। यही वजह है कि इस खंडमें शुरूसे २५ वें अध्यायतक तो कहीं कोई मंगलाचरण नहीं है; परन्तु २६ वें अध्यायसे उसका प्रारंभ पाया जाता है, जो एक नई और विलक्षण बात है +। आम तौर पर जो ग्रंथकर्ता ग्रंथोंमें मंगलाचरण करते हैं वे ग्रंथकी आदिमें उसे जरूर रखते हैं। एक ग्रंथकर्ता होनेकी हालतमें यह कभी संभव नहीं कि ग्रंथकी आदिमें मंगलाचरण न दिया जाकर ग्रंथके मध्य भागसे भी पीछे उसका प्रारंभ किया जाय। इसके सिवाय इन अध्यायोंकी संधियोंमें प्रायः 'इति' शब्दके बाद "नैर्ग्रंथे भद्रबाहुके निमित्ते" ऐसे विशेष पदोंका प्रयोग पाया जाता है, जो २६ वें अध्यायको छोड़कर संहिता भरमें और किसी भी अध्यायके साथ देखनेमें नहीं आता। और इसलिए यह भेद-भाव भी बहुत खटकता है। संपूर्ण ग्रंथका एक कर्ता होनेकी हालतमें इस प्रकारका भेद भाव नहीं बन सकता। अस्तु। अब एक बात और प्रगट की जाती है जो इस दूसरे खंडकी अध्याय-सूची अथवा विषय-सूचीसे सम्बंध रखती है और वह यह है कि इस खंडके पहले अध्यायमें, क्रमशः कथन करनेके लिए, जो अध्यायों अथवा विषयोंकी सूची दी है उसमें ग्रहयुद्धके बाद 'वातिक' और वातिकके बाद 'स्वप्न' का विषय कथन करना लिखा है। यथाः—

* गन्धर्वनगरं गर्भान् यात्रोत्पातांस्तथैव च।
ग्रहचारं पृथक्त्वेन ग्रहयुद्धं च कृत्स्नशः॥ १६॥
वातिकं चाथ स्वप्नांश्च मुहूर्तांश्च तिथींस्तथा।
करणानि निमित्तं च शकुनं पाकमेव च॥ १७॥

परन्तु कथन करते हुए 'ग्रहयुद्ध' के बाद 'ग्रहसंयोग अर्घकांड' नामका एक अध्याय (नं० २५) दिया है और फिर उसके बाद 'स्वप्नाध्याय' का कथन किया है। यद्यपि 'ग्रहसंयोग अर्घकांड' नामका विषय ग्रहयुद्धका ही एक विशेष है और इस लिए श्लोक नं० १६ में लिये हुए 'कृत्स्नशः' पदसे उसका ग्रहण किया जा सकता है; परन्तु इस अध्यायके बाद 'वातिक' नामके अध्यायका कोई वर्णन नहीं है। स्वप्नाध्यायसे पहले ही नहीं, बल्कि पीछे भी उसका कहीं कथन नहीं है। इस लिए कथनसे इस विषयका साफ छूट जाना पाया जाता है। इसके आगे, विषय-सूचीमें, श्लोक नं० १७ के बाद ये दो श्लोक और दिये हैं:—

ज्योतिषं केवलं कालं वास्तु दिव्येन्द्रसंपदा।
लक्षणं व्यंजनं चिह्नं तथा दिव्यौषधानि च॥१५॥
बलाबलं च सर्वेषां विरोधं च पराजयं।
तत्सर्वमानुपूर्वेण प्रब्रवीहि महामते॥ १६॥

इन श्लोकोंमें 'बलाबलं च सर्वेषां' इस पदके द्वारा पूर्वकथित संपूर्ण विषयोंके बलाबल कथनकी सूचना की गई है; परन्तु कथन करते हुए, अध्याय नं०४१ और ४२ में सिर्फ ग्रहोंका ही बलाबल दिखलाया गया है। शेष किसी भी विषयके बलाबलका इन दोनों अध्यायोंमें कहीं कोई वर्णन नहीं है और न आगे ही इस विषयका कोई अध्याय पाया जाता है। इसलिए यह कथन अधूरा है और प्रतिज्ञाका एक अंश पालन

\+ २६ वें अध्यायका वह मंगलाचरण इस प्रकार है:—
नमस्कृत्य महावीरं सुरासुरनमस्कृतम्।
स्वप्नान्यहं प्रवक्ष्यामि शुभाशुभसमीरितम्॥ १॥

* इससे पहले विषय-सूचीका निम्नश्लोक और है:—
उल्का समासतो व्यासात्परिवेषांस्तथैव च।
विद्युतोऽभ्राणि संध्याश्च मेघान्वातान्प्रवर्षणम्॥१५॥"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किया गया मालूम होता है। यदि श्लोक नं० १९को १६ के बाद रक्खा जाय तो "बलाबलं च सर्वेषां' इस पदके द्वारा ग्रहोंके बलाबलकथनका बोध हो सकता है। और श्लोक नं० १४ में दिये हुए 'सुखग्राह्यं लघुग्रथं' इस पदका भी कुछ अर्थ सध सकता है (यद्यपि श्रुतकेवलीके सम्बन्धमें लघुग्रंथ होनेकी बात कुछ अधिक महत्त्वकी नहीं समझी जा सकती)। परन्तु ऐसा करनेपर श्लोक नं० १७-१८ और उनके कथन-विषयक समस्त अध्यायोंको अस्वीकार करके—ग्रन्थका अंग न मान कर—ग्रंथसे अलग करना होगा जो कभी इष्ट नहीं हो सकता। इस लिए कथन अधूरा है और उसके द्वारा प्रतिज्ञाका सिर्फ एक अंश पालन किया गया है, यही मानना पड़ेगा। इस प्रकारकी और भी अनेक विलक्षण बातें हैं जिनको इस समय यहाँपर छोड़ा जाता है। इन सब विलक्षणोंसे **ग्रंथमें किसी विशेष गोलमालकी सूचना होती है** जिसका अनुभव पाठकोंको आगे चलकर स्वतः हो जायगा। यहाँ पर मैं इतना जरूर कहूँगा और इस कहनेमें मुझे जरा भी संकोच नहीं है कि **ऐसा असम्बद्ध, अधूरा, अव्यवस्थित और विलक्षणोंसे पूर्ण ग्रंथ भद्रबाहु श्रुतकेवली जैसे विद्वानोंका बनाया हुआ नहीं हो सकता।** क्यों नहीं हो सकता ? यद्यपि विद्वानोंको इस बातके बतलानेकी जरूरत नहीं है; वे इस ऊपरके कथन परसे ही सब कुछ अनुभव कर सकते हैं; परन्तु फिर भी चूँकि समाजमें घोर अज्ञानान्धकार फैला हुआ है, अन्धी श्रद्धाका प्रबल राज्य है, गतानुगतिकता चल रही है, स्वतंत्र विचारोंका वातावरण बंद है और कुछ विद्वान् भी उसमें दिशा भूल रहे हैं, इस लिए मैं सविशेष रूपसे इस बातको सिद्ध करनेकी चेष्टा करूँगा कि यह ग्रंथ भद्रबाहु श्रुतकेवलीका बनाया हुआ नहीं है।

श्वेताम्बरोंकी मान्यता।

परन्तु इस सिद्ध करनेकी चेष्टासे पहले मैं अपने पाठकोंको यह बतला देना जरूरी समझता हूँ कि यह ग्रंथ (भद्रबाहुसंहिता) श्वेताम्बर सम्प्रदायमें भी भद्रबाहु श्रुतकेवलीका बनाया हुआ माना जाता है। श्वेताम्बर साधु मुनि आत्मारामजीने अपने 'तत्त्वादर्श' के अन्तिम परिच्छेदमें भद्रबाहु श्रुतकेवलीके साथ उसका भी नामोल्लेख किया है और उसे एक ज्योतिष शास्त्र बतलाया है, जिससे इस संहिताके उस दूसरे खंडका अभिप्राय जान पड़ता है जो ऊपर एक अलग ग्रंथ सूचित किया गया है। बम्बईके श्वेताम्बर बुकसेलर शा भीमसिंह माणिकजीने इसी भद्रबाहुसंहिता नामके ज्योतिःशास्त्रका गुजराती अनुवाद संवत् १९५९ में छपाकर प्रसिद्ध किया था; जिसकी प्रस्तावनामें उक्त प्रसिद्धकर्ता महाशयने लिखा है कि:—

"आ भद्रबाहुसंहिता ग्रंथ जैनना ज्योतिष विषयमां आद्य ग्रंथ छे. तेमना रचनार श्रीभद्रबाहुस्वामि, चौद पूर्वधर श्रुतकेवली हता. तेमनां वचनो जैनमां आप्त वचनो गणाय छे। ... श्रीभद्रबाहुसंहिता नामना ग्रंथनी महत्वता अति छतां आ प्रसिद्ध थयेला भाषांतररूप ग्रंथनी महत्वता जो जनसमुदायने अल्प लागे तो तेनो दोष पंचमकालने शिर छे।"

प्रसिद्धकर्ताके इन वाक्योंसे श्वेताम्बरसम्प्रदायमें ग्रंथकी मान्यताका अच्छा पता चलता है; परन्तु इतना जरूर है कि इस सम्प्रदायमें भी दिगम्बर सम्प्रदायके समान, यह ग्रंथ कुछ अधिक प्रचलित नहीं है। इसी लिए श्रीयुत मुनि जिनविजयजी अपने पत्र[1]में लिखते हैं कि-

---

१ यह पत्र श्रीयुत पं० नाथूरामजी प्रेमीके नाम लिखा गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

" पाटनके किसी नये या पुराने भंडारमें भद्र-बाहु-संहिताकी प्रति नहीं है । गुजरातके या मारवाड़के अन्य किसी प्रसिद्ध भंडारमें भी इसकी प्रति नहीं है। श्वेताम्बरोंके भद्रबाहुचरितोंमें उनके संहिता बनानेका उल्लेख मिलता है; परन्तु पुस्तक अभीतक नहीं देखी गई । "

गुजराती अनुवाद ।

संहिताके इस गुजराती अनुवादके साथ मूलग्रंथ लगा हुआ नहीं है । प्रस्तावनामें लिखा है कि " यह अनुवाद श्रावक हीरालाल हंसराजजीका किया हुआ है, जिन्होंने माँगने पर भी मूलग्रंथ नहीं दिया और न प्रयत्न करने पर किसी दूसरे स्थानसे ही मूलग्रंथकी प्राप्ति हो सकी । इससे समूल छापनेकी इच्छा रहते भी यह अनुवाद निर्मूल ही छापा गया है। " यद्यपि इस अनुवादके सम्बंधमें मुझे कुछ कहनेका अवसर नहीं है; परन्तु सर्व साधारणकी विज्ञप्ति और हितके लिए संक्षेपसे, इतना जरूर कहूँगा कि यह अनुवाद सिरसे पैरतक प्रायः गलत मालूम होता है । इस अनुवादमें ग्रंथके दो स्तबक (गुच्छक) किये हैं, जिनमें पहले स्तबकमें २१ अध्यायोंका और दूसरेमें २२ अध्यायोंका अनुवाद दिया है । पहले स्तबकका मिलान करनेसे जान पड़ता है कि अनुवादक जगह जगहपर बहुतसे श्लोकोंका अनुवाद छोड़ता, कुछ कथन अपनी तरफसे मिलाता और कुछ आगे पीछे करता हुआ चला गया है। शुक्रचारके कथनमें उसने २३४ श्लोकोंके स्थानमें सिर्फ पाँच सात श्लोकोंका ही अनुवाद दिया है। मंगलचार, राहुचार सूर्यचार, चंद्रचार और ग्रहसंयोग अर्घकाण्ड नामके पाँच अध्यायोंका अनुवाद क़तई छोड़ दिया है। उनका ग्रंथमें नाम भी नहीं है। रही दूसरे स्तबककी बात, सो वह बिलकुल ही विलक्षण तथा अनुवादक द्वारा कल्पित मालूम होता है । संहिताके पहले अध्यायमें ग्रंथ भरमें क्रमशः वर्णनीय विषयोंकी जो उपर्युल्लिखित सूची लगी हुई है और जिसका अनुवाद अनुवादकने भी दिया है उससे इस स्तबकका प्रायः कुछ भी सम्बंध नहीं मिलता । उसके अनुसार इस स्तबकमें मुहूर्त, तिथि, करण, निमित्त, शकुन, पाक, ज्योतिष, काल, वास्तु, इंद्रसंपदा, लक्षण, व्यंजन, चिह्न, ओषधि, सर्व निमित्तोंका बलाबल, विरोध और पराजय, इन विषयोंका वर्णन होना चाहिए था, जो नहीं है। उनके स्थानमें यहाँ राशि, नक्षत्र, योग, ग्रहस्वरूप, केतुको छोड़कर शेष ग्रहोंकी महादशा, राजयोग, दीक्षायोग, और ग्रहोंके द्वादश भावोंका फल, इन बातोंका वर्णन दिया है । चूँकि यह अनुवाद मूलके अनुकूल नहीं था शायद इसी लिए अनुवादकको मूल ग्रंथकी कापी देनेमें संकोच हुआ हो । अन्यथा दूसरी कोई वजह समझमें नहीं आती । प्रकाशकको भी अनुवाद पर कुछ संदेह हो गया है और इसीलिए उन्होंने अपनी प्रस्तावनामें लिखा है कि—

" आ भाषांतर ' खरी भद्रबाहुसंहिता ' नामना ग्रंथनुं छे एम विद्वानोनी नजरमां आवे तो ते बाबतनो मने अति संतोष थशे, परंतु तेथी विरुद्ध जो विद्वानोनी नजरमां आवे तो हुं तो लेशमात्र ते दोषने पात्र नथी. में तो सरल अंतःकरणथी आ ग्रंथ खरा ग्रंथनुं भाषांतर छे एम मानी छपाव्यो छे तेम छतां विद्वानोनी नजरमां मारी भूल लागे तो हुं क्षमा मागुं छुं। "

इस प्रस्तावनामें प्रकाशकजीके उन विचारोंका भी उल्लेख है जो मूलग्रंथके सम्बंधमें इस अनुवाद परसे उनके हृदयमें उत्पन्न हुए हैं और जो इस प्रकार हैं:—

" श्रीबराहमिहिरे करेली वाराहीसंहिता अति विस्तारयुक्त ग्रंथ छे, तेनां प्रमाणमां आ उपलब्ध थयेलो भद्रबाहुसंहिता ग्रंथ अति स्वल्प छे. श्रीभद्रबाहुस्वामि जेवा श्रुतकेवली पुरुषे ज्योतिष विषयनो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रचेलो ग्रंथ आटलो स्वल्प होय एम अंतःकरण कबुल करतुं नथी, ते ग्रंथ वाराहीसंहिता करतां पण अति विस्तारवालो होवो जोइए। ”

समझमें नहीं आता कि क्यों हीरालालजीने ऐसा अधूरा, गलत और कल्पित अनुवाद प्रकाशित करनेके लिए दिया और क्यों उसे भीमसी माणिकजीने ऐसी संदिग्धावस्थामें प्रकाशित किया। यदि सचमुच ही श्वेताम्बरसम्प्रदायमें ऐसी कोई भद्रबाहुसंहिता मौजूद है जिसका उपर्युक्त गुजराती अनुवाद सत्य समझा जाय तो मुझे इस कहनेमें भी कोई संकोच नहीं है कि वह संहिता और भी अधिक आपत्तिके योग्य है।

ग्रन्थ कब बना ? और किसने बनाया ?

अब यहाँपर, विशेष रूपसे परीक्षाका प्रारंभ करते हुए, कुछ ऐसे प्रमाण पाठकोंके सम्मुख उपस्थित किये जाते हैं जिनसे यह भले प्रकार स्पष्ट हो जाय कि यह ग्रंथ भद्रबाहु श्रुतकेवली-का बनाया हुआ नहीं है और जब उनका बनाया हुआ नहीं है तो यह कब बना है और इसे किसने बनाया है:—

१ इस ग्रंथके दूसरे खंडके पहले अध्यायमें ग्रंथके बननेका जो सम्बंध प्रगट किया है उसमें लिखा है कि,—एक समय राजगृह नगरके पांडुगिरि पर्वत पर अनेक शिष्य-प्रशिष्योंसे घिरे हुए द्वादशांगके वत्ता भद्रबाहु मुनि बैठे हुए थे। उन्हें प्रीतिपूर्वक नमस्कार करके शिष्योंने, दिव्यज्ञानके कथनकी आवश्यकता प्रगट करते हुए, उनसे उस दिव्यज्ञान नामके निमित्त ज्ञानको बतलानेकी प्रार्थना की और साथ ही, उन विषयोंकी नामावली देकर जिनको क्रमशःकथन करनेकी प्रार्थना की गई, उन्होंने नम्रताके साथ अन्तमें यह निवेदन किया:—

सर्वानेतान्यथोद्दिष्टान् भगवन्वक्तुमर्हसि।
प्रश्नं शुश्रूषवः सर्वे वयमन्ये च साधवः॥ २०॥

अर्थात्—‘ हे भगवन् क्या आप कृपाकर इन समस्त यथोद्दिष्ट विषयोंका वर्णन करेंगे ? हम सब शिष्यगण तथा अन्य साधुजन उनके सुननेकी इच्छा रखते हैं। ’ इसके बाद ग्रंथमें दूसरे अध्यायका प्रारंभ करते हुए, जो वाक्य दिये हैं वे इस प्रकार हैं:—

ततः प्रोवाच भगवान् दिग्वासा श्रमणोत्तमः।
यथावस्थासुविन्यासद्वादशांगविशारदः॥ १॥
भवद्भिर्यदहं पृष्टो निमित्तं जिनभाषितं।
समासव्यासतः सर्वं तन्निबोध यथाविधि॥ २॥

अर्थात्—यह सुनकर यथावत् द्वादशांगके ज्ञाता उत्कृष्ट दिगम्बर साधु भगवान् भद्रबाहु बोले कि ‘ आप लोगोंने संक्षेप-विस्तारसे जो कुछ जिनभाषित निमित्त मुझसे पूछा है उस संपूर्ण निमित्तको सुनिए। ’

एक स्थानपर, इसी खंडके ३६ वें अध्यायमें पुरुषलक्षणोंके बाद स्त्री-लक्षणोंका वर्णन करते हुए यह भी लिखा है:—

कन्या च कीदृशी ग्राह्या कीदृशी च विवर्जिता।
कीदृशी कुलजा चैव भगवन्वक्तुमर्हसि॥ १३६॥
भद्रबाहुरुवाचेति भो भव्याः संनिबोधत।
कन्याया लक्षणं दिव्यं दोषकोशविवर्जितम्॥ १३७॥

अर्थात्—हे भगवन्, क्या आप कृपया यह बतलाएँगे कि ग्राह्य कन्या कैसी होती है, विवर्जिता कैसी और कुलजा किस प्रकारकी होती है ? इस पर भद्रबाहु बोले कि हे भव्यपुरुषो तुम कन्याका दोषजालसे रहित दिव्य लक्षण सुनो। इसके सिवाय इस खंडके बहुतसे श्लोकोंमें ‘भद्रबाहुवचो यथा-’ भद्रबाहुने ऐसा कहा है-इन शब्दोंके प्रयोगद्वारा, यह सूचित किया है कि अमुक अमुक कथन भद्रबाहुके वचनानुसार लिखा गया है। उन श्लोकोंमेंसे दो श्लोक नमूनेके तौर पर इस प्रकार हैं:—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पापासूल्कासु यद्यस्तु यदा देवः प्रवर्षति ।
प्रशांतं तद्भयं विंद्याद्भद्रबाहुवचो यथा ॥ ३-६५ ॥
द्योतयंती दिशः सर्वा यदा संध्या प्रदृश्यते ।
महामेघस्तदा विंद्याद्भद्रबाहुवचो यथा ॥ ७-१६ ॥

इस संपूर्ण कथन और कथन-शैलीसे मालूम होता है कि यह ग्रंथ—अथवा कमसे कम इसका दूसरा खंड भले ही भद्रबाहुश्रुत-केवलीके वचनानुसार लिखा गया हो; परन्तु वह **खास भद्रबाहु श्रुतकेवलीका बनाया हुआ नहीं है** और चूँकि ऊपर भद्रबाहुके कथनके साथ 'प्रोवाच-उवाच' ऐसी परोक्षभूतकी क्रियाका प्रयोग किया गया है, जिसका यह अर्थ होता है कि वह प्रश्नोत्तररूपकी संपूर्ण घटना ग्रंथकर्ताकी साक्षात् अपनी आँखोंसे देखी हुई नहीं है—वह उस समय मौजूद ही न था—उससे बहुत पहलेकी बीती हुई वह घटना है। इसलिए **यह ग्रंथ भद्रबाहु श्रुतकेवलीके किसी साक्षात् शिष्य या प्रशिष्यका भी बनाया हुआ नहीं है**। इसका सम्पादन बहुत काल पीछे किसी तीसरे ही व्यक्तिद्वारा हुआ है, जिसके समयादिकका निर्णय आगे चलकर किया जायगा। यहाँ पर सिर्फ़ इतना ही समझना चाहिए कि यह ग्रंथ भद्रबाहुका बनाया हुआ या भद्रबाहुके समयका बना हुआ नहीं है।

२ द्वादशांग वाणी अथवा द्वादशांग श्रुतके विषयमें जो कुछ कहा जाता है और जैन-शास्त्रोंमें उसका जैसा कुछ स्वरूप वर्णित है उससे मालूम होता है कि संसारमें कोई भी विद्या या विषय ऐसा नहीं होता जिसका उसमें पूरा पूरा वर्णन न हो और न दूसरा कोई पदार्थ ही ऐसा शेष रहता है जिसका ज्ञान उसकी परिधिसे बाहर हो। इसलिए संपूर्ण ज्ञान-विज्ञानका उसे एक अनुपम भंडार समझना चाहिए। उसी द्वादशांग श्रुतके असाधारण विद्वान् श्रुतकेवली भगवान् होते हैं। उनके लिए कोई भी विषय ऐसा बाक़ी नहीं रहता जिसका ज्ञान उन्हें द्वादशांगको छोड़कर किसी दूसरे ग्रंथ द्वारा सम्पादन करना पड़े। इसलिए उन्हें संपूर्ण विषयोंके पूर्ण ज्ञाता समझना चाहिए। वे, जाननेके मार्ग प्रत्यक्ष परोक्ष-भेदको छोड़कर समस्त पदार्थोंको केवल ज्ञानियोंके समान ही जानते और अनुभव करते हैं। ऐसी हालत होते हुए, श्रुतकेवलीके द्वारा यदि कोई ग्रंथ रचा जाय तो उसमें केवल-ज्ञानीके समान, उन्हें किसी आधार या प्रमाणके उल्लेख करनेकी जरूरत नहीं है और न द्वादशांगको छोड़कर दूसरे किसी ग्रंथसे सहायता लेनेहीकी जरूरत है। उनका वह ग्रंथ एक स्वतंत्र ग्रंथ होना चाहिए। उसमें, खंडनमंडनको छोड़कर, यदि आधार प्रमाणका कोई उल्लेख किया भी जाय—अपने प्रतिपाद्य विषयकी पुष्टिमें किसी वाक्यके उद्धृत करनेकी जरूरत भी पैदा हो, तो वह केवली और द्वादशांगश्रुतको छोड़कर दूसरे किसी व्यक्ति या ग्रंथसे सम्बंध रखनेवाला न होना चाहिए। ऐसा न करके **दूसरे ग्रंथों और ग्रंथ-कर्ताओंका उल्लेख करना, उनके आधार पर अपने कथनकी रचना करना, उनके वाक्योंको उद्धृत करके अपने ग्रंथका अंग बनाना और किसी खास विषयको, उत्तमताकी दृष्टिसे, उन दूसरे ग्रंथोमें देखनेकी प्रेरणा करना, यह सब काम श्रुतकेवली पदके विरुद्ध ही नहीं किन्तु उसको बट्टा लगानेवाला है। ऐसा करना, श्रुत केवलीके लिए, केवली भगवान्, और द्वादशांग श्रुतका अपमान करनेके बराबर होगा,** जिसकी श्रुतकेवली जैसे महर्षियों द्वारा कभी आशा नहीं की जा सकती। चूँकि इस ग्रंथमें स्थानस्थान पर भद्रबाहुका **ऐसा ही अयुक्ताचरण** प्रगट हुआ है इससे मालूम होता है कि यह ग्रंथ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भद्रबाहु श्रुतकेवलीका बनाया हुआ नहीं है। नमूनेके तौरपर यहाँ उसका कुछ थोड़ासा परिचय दिया जाता है। विशेष विचार यथावसर आगे होगाः—

(क) दूसरे खंडके ३७ वें अध्यायमें, घोड़ोंका लक्षण वर्णन करते हुए, घोड़ोंके अरबी आदि १८ भेद बतलाकर लिखा है कि,—उनके लक्षण नीतिके जाननेवाले 'चंद्रवाहन'ने कहे हैं। यथाः—

ऐरावताश्च काश्मीरा हया अष्टादशस्मृताः।
तेषां च लक्षणान्यूचे नीतिविच्चंद्रवाहनः॥ १२६॥

इस कथनसे पाया जाता है कि ग्रंथकर्ता (भद्रबाहु)ने चंदवाहनके कथनको द्वादशांगके कथनसे उत्तम समझा है और इसी लिए उसके देखनेकी प्रेरणा की है।

(ख) तीसरे खंडमें 'शांतिविधान' नामका १० वाँ अध्याय है, जिसमें दो श्लोक इस प्रकारसे पाये जाते हैंः—

परिभाषासमुद्देशे समुद्दिष्टेन लक्षणात्।
तन्मध्ये कारयेत्कुंडं शांतिहोमक्रियोचितं॥ १५॥
हुताशनस्य मंत्रज्ञः क्रियां संधुक्षणादिकां।
विदध्यात्परिभाषायां प्रोक्तेन विधिना क्रमात्॥ ९६॥

इन दोनों श्लोकोंमें 'परिभाषासमुद्देश' नामके किसी ग्रंथका उल्लेख है। पहले श्लोकमें परिभाषासमुद्देशमें कहे हुए लक्षणके अनुसार होमकुंड बनानेकी और दूसरेमें उक्त ग्रंथमें कही हुई विधिके अनुसार संधुक्षणादिक (आग जलाना आदि) क्रिया करनेकी आज्ञा है। इसी खंडके छठे अध्यायमें, यंत्रोंकी नामावली देते हुए, एक 'यंत्रराज' नामके शास्त्रका भी उल्लेख किया है और उसके सम्बंधमें लिखा है कि, इस शास्त्रके जानने मात्रसे बहुधा निमित्तोंका कथन करना आजाता है। यथाः—

यंत्रराजागमे तेषां विस्तारः प्रतिपादितः।
येन विज्ञानमात्रेण निमित्तं बहुधा वदेत्॥ २६॥

ये दोनों ग्रंथ (परिभाषासमुद्देश और यंत्रराज) द्वादशांग श्रुतका कोई अंग न होनेसे दूसरे ही विद्वानोंके बनाये हुए ग्रंथ मालूम होते हैं, जिनका यहाँ आदरके साथ उल्लेख किया गया है और जिनका यह उल्लेख, ग्रंथकर्ताकी दृष्टिसे, उनमें द्वादशांगसे किसी विशिष्टताका होना सूचित करता है।

(ग) पहले खंडके पहले अध्यायमें 'गौतमसंहिता'को देखकर इस संहिताके कथन करनेकी प्रतिज्ञा की गई है। साथ ही दो स्थानोंपर ये वाक्य और दिये हैंः—

१—आचमनस्वरूपभेदा गौतमसंहितातो ज्ञातव्याः।
२—पात्रभेदा गौतमसंहितायां द्रष्टव्याः। भूम्यादिदानभेदाश्च ग्रंथान्तरात् उत्सेयाः।

इनमें लिखा है कि (१) आचमनक स्वरूप और उसके भेद गौतमसंहितासे जानने चाहिए। (२) पात्रोंके भेद गौतमसंहितामें देखने चाहिए और भूमि आदि दानके भेद दूसरे ग्रंथोंसे मालूम करने चाहिए। इस संपूर्ण कथनसे 'गौतमसंहिता' नामके किसी ग्रंथका स्पष्टोल्लेख पाया जाता है। गौतमका नाम आते ही पाठकोंके हृदयमें भगवान् महावीरके प्रधान गणधर गौतमस्वामीका खयाल आजाना स्वाभाविक है; परन्तु यह सर्वत्र प्रसिद्ध है कि गौतमस्वामीने द्वादशांग सूत्रोंकी रचना की थी। इसके सिवाय उन्होंने संहिता जैसे किसी अनावश्यक पृथक् ग्रंथकी रचना की हो, इस बातको न तो बुद्धि ही स्वीकार करती है और न किसी माननीय प्राचीन आचार्यकी कृतिमें ही उसका उल्लेख पाया जाता है। इस लिए यह 'गौतमसंहिता' गौतमगणधरका बनाया हुआ कोई ग्रंथ नहीं है। यदि ऐसा कहा जाय कि संपूर्ण द्वादशांगसूत्रों या द्वादशांग श्रुतका नाम ही 'गौतमसंहिता' है तो यह बात भी नहीं बन सकती। क्योंकि ऊपर उद्धृत किये हुए दूसरे वाक्यमें भूमि आदि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दानके भेदोंको ग्रंथान्तरसे जाननेकी प्रेरणा की गई है; जिससे साफ मालूम होता है कि गौतम-संहितामें उनका कथन नहीं था तभी ऐसा कहनेकी जरूरत पैदा हुई और इसलिए द्वादशांगके लक्षणानुसार ऐसे अधूरे ग्रंथका नाम, जिसमें दानके भेदोंका भी वर्णन न हो, 'द्वादशांगश्रुत' नहीं हो सकता। बहुत संभव है कि इस संहिताका अवतार भी भद्रबाहुसंहिताके समान ही हुआ हो, अथवा यहाँ पर यह नाम दिये जानेका कोई दूसरा ही कारण हो।

(घ) एक स्थानपर, इस ग्रंथमें, 'जटिलकेश' नामके किसी विद्वान्का उल्लेख मिलता है, जो इस प्रकार है:--

रविवाराद्या क्रमतो वाराः स्युः कथितजटिलकेशादेः ।
वारा मंदस्य पुनर्दद्यादाशी विषस्यापि ॥३-१०-१७३॥
इन्द्रानिलयमयक्षत्रितयनदहनाब्धिरक्षसां हरितः ।
इह कथित जटिलकेशप्रभृतीनां स्युः क्रमेण दिशः-॥१७४॥

इन उल्लेख वाक्योंमें लिखा है कि रविवारादिकके क्रमसे वारोंका और इन्द्रादिकके क्रमसे दिशाओंका कथन जटिलकेशादिकका कहा हुआ है, जिसको यहाँ नागपूजाविधिमें, प्रमाण माना है। इससे या तो द्वादशांगश्रुतका इस विषयमें मौन पाया जाता है अथवा यह नतीजा निकलता है कि ग्रंथकर्ताने उसके कथनकी अवहेलना की है।

(ङ) तीसरे खंडके आठवें अध्यायमें उत्पातोंके भेदोंका वर्णन करते हुए लिखा है:—

एतेषां वेदपंचाशद्भेदानां वर्णनं पृथक् ।
कथितं पंचमे खंडे कुमारेण सुविन्दुना ॥ १४ ॥

अर्थात्—इन उत्पातोंके ५४ भेदोंका अलग अलग वर्णन कुमारविन्दुने पाँचवें खंडमें किया है। इससे साफ़ ज़ाहिर है कि ग्रंथकर्ताने कुमारविन्दुके कथनको द्वादशांगसे श्रेष्ठ और विशिष्ट समझा है तभी उसको देखनेकी इस प्रकारसे प्रेरणा की गई है। साथ ही, यह भी मालूम होता है कि कुमारविन्दुने भी कोई संहिता जैसा ग्रंथ बनाया है जिसमें पाँच खंड जरूर हैं। जैनहितैषीके छठे भागमें 'दिगम्बर जैन-ग्रंथकर्ता और उनके ग्रंथ' नामकी जो बृहत् सूची प्रकाशित हुई है उसमें भी कुमारविन्दुके नामके साथ 'जिनसंहिता' का उल्लेख किया है। यह संहिता अभीतक मेरे देखनेमें नहीं आई; परँतु जहाँतक मैं समझता हूँ 'कुमारविन्दु' नामके कोई ग्रंथकर्ता जैनविद्वान् भद्रबाहु श्रुतकेवलीसे पहले नहीं हुए। अस्तु। द्वादशांग श्रुत और श्रुतकेवलीके स्वरूपका विचार करते हुए, इन सब कथनोंपरसे यह ग्रंथ भद्रबाहुश्रुतकेवलीका बनाया हुआ प्रतीत नहीं होता।

२ भद्रबाहु श्रुतकेवली राजा श्रेणिकसे लगभग १२५ वर्ष पीछे हुए हैं। इसलिए राजा श्रेणिकसे उनका कभी साक्षात्कार नहीं हो सकता; परन्तु इस ग्रंथके दूसरे खंडमें, एक स्थानपर, दरिद्रयोगका वर्णन करते हुए, उन्हें साक्षात् राजा श्रेणिकसे मिला दिया है और लिख दिया है कि यह कथन भद्रबाहु मुनिने राजा श्रेणिकके प्रश्नके उत्तरमें किया है। यथा:—

अथातः संप्रवक्ष्यामि दारिद्रं दुःखकारणं ।
लग्नाधिपे रिष्कगते रिष्केशे लग्नमागते ॥अ० ४१श्लो० ६५॥
मारकेशयुते दृष्टे जातः स्यान्निर्धनो नरः ।
भद्रबाहुमुनिप्रोक्तः नृपश्रेणिकप्रश्नतः ॥-६६ ॥

पाठक समझ सकते हैं कि ऐसा मोटा झूठ और ऐसा असत्य उल्लेख क्या कभी भद्रबाहुश्रुतकेवली जैसे मुनियोंका हो सकता है ? कभी नहीं। मुनि तो मुनि साधारण धर्मात्मा गृहस्थका भी यह कार्य नहीं हो सकता। इससे ग्रंथकर्ताका, असत्यवक्तृत्व और छल पाया जाता है। साथ ही, यह भी मालूम होता है कि वे कोई ऐसे ही योग्य व्यक्ति थे जिनको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भद्रबाहु और राजा श्रेणिकके समयतककी भी खबर नहीं थी। हिन्दुओंके यहाँ 'बृहत्पाराशरी होरा' नामका एक बहुत बड़ा ज्योतिषका ग्रंथ है। इस ग्रंथके ३१ वें अध्यायमें, दरिद्रियोगका वर्णन करते हुए, सबसे पहले जो श्लोक दिया है वह इस प्रकार है:—

" लग्नेशे वै रिष्फगते रिष्फेशे लग्नमागते।
मारकेशयुते दृष्टे जातः स्यान्निर्धनो नरः ॥ १ ॥

ऊपर उद्धृत किये हुए संहिताके दोनों पद्योंमेंसे पहले पद्यका पूर्वार्ध और दूसरे पद्यका उत्तरार्ध अलग कर देनेसे यही श्लोक शेष रह जाता है। सिर्फ 'लग्नेशे वै' के स्थानमें 'लग्नाधिपे' का परिवर्तन है। इस श्लोकके आगे पीछे लगे हुए उपर्युक्त दोनों आधे आधे पद्य बहुत ही खटकते है और असम्बद्ध मालूम होते हैं। दूसरे पद्यका उत्तरार्ध तो बहुत ही असम्बद्ध जान पड़ता है। उसके आगे इस प्रकरणके ९ पद्य और दिये हैं, जो उक्त होराके प्रकरणमें भी श्लोक नं० १ के बाद पाये जाते हैं। इससे मालूम होता है कि संहिताका यह सब प्रकरण उक्त होरा ग्रंथसे उठाकर रक्खा गया है और उसे भद्रबाहुका बनानेकी चेष्टा की गई है। इस प्रकारकी चेष्टा अन्यत्र भी पाई जाती है और इस 'पाराशरी होरा'से और भी बहुतसे श्लोकोंका संग्रह किया गया है जिसका परिचय पाठकोंको अगले लेखमें कराया जायगा।

४ इस ग्रंथके दूसरे ज्योतिषखंडमें—केवलकाल नामके ३४ वें अध्यायमें—पंचम कालका वर्णन करते हुए, शक, विक्रम और प्रथम कल्कीका भी कुछ थोड़ासा वर्णन दिया है जिसका हिन्दी आशय इस प्रकार है:—

" वर्धमानस्वामीको मुक्ति प्राप्त होनेपर ६०५ वर्ष और पाँच महीने छोड़कर प्रसिद्ध शकराजा हुआ (अभवत्)। उससे शक संवत् प्रवर्तैगा (प्रवर्त्स्यति)। ४७० वर्षसे (?) प्रभु विक्रम राजा उज्जयिनीमें अपना संवत् चलावेगा (वर्तयिष्यति)। शक राजाके बाद ३९४ वर्ष और सात महीने बीतनेपर सद्धर्मका द्वेषी और ७० वर्षकी आयुका धारक 'चतुर्मुख' नामका पहला कल्की हुआ (आसीत्)। उसने एक दिन अजितभूम नामके मंत्रीको यह आज्ञा की (आदिशत्) कि 'पृथ्वी पर निर्ग्रंथमुनि हमारे अधीन नहीं हैं।' उनके पाणिपात्रमें सबसे पहले जो ग्रास रक्खा जाय उसे तुम करके तौर पर ग्रहण करो। इस नरककी कारणभूत आज्ञाको सुनकर मूढ़बुद्धि मंत्रीने वैसा ही किया (अकरोत्)। इस उपद्रवके कारण मुनिजन राजासे व्याकुल हुए (आसन्), उस उपसर्गको जानकर जिनशासनके रक्षक असुरेन्द्र चतुर्मुखको मार डालेंगे (हनिष्यन्ति)। तब वह पापात्मा कल्की मरकर अपने पापकी वजहसे समस्त दुःखोंकी खान पहले नरकमें गया (गतः)। उसी समय कल्कीका जयध्वजनामका पुत्र सुरेन्द्रके भयसे सुरेन्द्रके किये हुए जिनशासनके माहात्म्यको प्रत्यक्ष देखकर और काललब्धिके द्वारा सम्यक्त्वको पाकर अपनी सेना और बन्धुजनादि सहित सुरेन्द्रकी शरण गया (जगाम) ॥ ४७–५७ ॥ "

ऊपरके इस वर्णनको पढ़कर निःसन्देह पाठकोंको कौतुक होगा! उन्हें इसमें भूत काल और भविष्यत् कालकी क्रियाओंका बड़ा ही विलक्षण योग देखनेमें आयगा। साथ ही, ग्रंथकर्ताकी योग्यताका भी अच्छा परिचय मिल जायगा। परन्तु यहाँ ग्रंथकर्ताकी योग्यताका परिचय कराना इष्ट नहीं है—इसका विशेष परिचय दूसरे लेख द्वारा कराया जायगा, यहाँपर सिर्फ यह देखनेकी जरूरत है कि इस वर्णनसे ग्रंथके सम्बंधमें किस [illegible] पता चलता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पता इस बातका चलता है कि यह ग्रंथ भद्रबाहु श्रुतकेवलीका बनाया हुआ न होकर शक संवत् ३९५ अथवा विक्रम सं० ५३० से भी पीछेका बना हुआ है। यही वजह है कि इसमें उक्त समयसे पहलेकी घटनाओं (प्रथमकल्कीका होना आदि)का उल्लेख भूतकालकी क्रियाओं द्वारा पाया जाता है। ऊपरका सारा वर्णन भूत-कालकी क्रियाओंसे भरा हुआ है-उसका प्रारंभ भी भूतकालकी क्रियासे हुआ है और अन्त भी भूतकालकी क्रियासे-सिर्फ मध्यमें तीन जगह भविष्यत्कालकी क्रियाओंका प्रयोग है जो बिलकुल असम्बद्ध मालूम होता है। इस असम्बद्धताका विशेष अनुभव प्राप्त करनेके लिए मूल श्लोकोंको देखना चाहिए जो इस प्रकार हैं:—

त्यक्त्वा संवत्सरान्पंचाधिकषट्संमितान् ।
पंचमासयुतान्मुक्तिं वर्द्धमाने गते सति ॥ ४७ ॥
शकराजोऽभवत् ख्यातः तेन शाकः प्रवर्त्स्यति ।
चतुर्वर्षशतैः सप्तत्यधिकैर्विक्रमो नृपः ।
उज्जयिन्यां प्रभुः स्वस्य वत्सरं वर्तयिष्यति ॥ ४८ ॥
उपसर्गं विदित्वा तं मुनीनामसुराधिपः ।
चतुर्मुखं हनिष्यन्ति जिनशासनरक्षकः ॥ ५४ ॥

इनमेंसे दूसरा श्लोक (नं० ४८) वास्तवमें डेढ़ श्लोक है। उसके पूर्वार्धका सम्बंध पहले श्लोक (नं. ४७) से मिलता है; परन्तु शेष दोनों अर्ध भागोंका कोई सम्बंध ठीक नहीं बैठता। 'त्यक्त्वा' शब्दके साथ 'चतुर्वर्षशतैः सप्तत्यधिकैः' इन पदोंका कुछ भी मेल नहीं है। इसी प्रकार 'अभवत्' के साथ 'प्रवर्त्स्यति' क्रियाका भी कोई मेल नहीं है। प्रवर्तते क्रियाका संबंध ठीक बैठ सकता है। तीसरे श्लोक (नं० ५४) में 'हनिष्यन्ति' यह क्रिया बहुवचनात्मक है और इसका कर्ता 'असुराधिपः' एक वचनात्मक दिया है। इससे क्रियाका यह प्रयोग गलत है। यदि इस क्रियाको एक वचनकी क्रिया 'हनिष्यति' समझ लिया जाय तो भी काम नहीं चलता उससे छंदभंग होता है। इस लिए यह क्रिया किसी तरह भी ठीक नहीं बैठती। इसके स्थानमें परोक्षभूतकी क्रियाको लिये हुए 'जघानेति' पदका प्रयोग बहुत ठीक हो सकता है और उससे आगे पीछेका सारा सम्बन्ध मिल जाता है। परंतु यहाँ ऐसा नहीं है। अस्तु। इन्हीं सब बातोंसे यह कथन एक विलक्षण कथन होगया है। अन्यथा, ग्रंथमें, इसके आगे 'जलमंथन' नामके कल्कीका, जिसका अवतार अभीतक भी नहीं हुआ—पाँचवें कालके अन्तमें होना कहा जाता है—जो वर्णन दिया है उसमें इस प्रकारकी विलक्षणता नहीं है। उसका सारा वर्णन भविष्यत् कालकी क्रियाओंको लिये हुए है। तब यह प्रश्न सहज ही उठ सकता है कि इसी वर्णनके साथ यह विलक्षणता क्यों है? इसका कोई कारण जरूर होना चाहिए। मेरे खयालमें कारण यह है कि यह सारा प्रकरण ही नहीं बल्कि संभवतः सारा अध्याय किसी ऐसे पुराणादिक ग्रंथसे उठाकर यहाँ रक्खा गया है जो विक्रम संवत् ५३० से बहुत पीछेका बना हुआ था। ग्रंथकर्ताने ऊपरके वर्णनका भद्रबाहुके साथ सम्बंध मिलाने और उसे भद्रबाहुकी भविष्यद्वाणी प्रगट करनेके लिए उसमें भविष्यत्कालकी क्रियाओंका परिवर्तन किया है। परंतु मालूम होता है कि वह सब क्रियाओंको यथेष्ट रीतिसे बदल नहीं सका। इसीसे इस वर्णनमें इस प्रकारकी विलक्षणता और असम्बद्धताका प्रादुर्भाव हुआ है। मेरा यह उपर्युक्त खयाल और भी दृढ़ताको प्राप्त होता है। जब कि इस अध्यायके अन्तमें यह श्लोक देखनेको मिलता है:—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इत्येतत्कालचक्रं च केवलं भ्रमणान्वितं ।
षड्भेदं संपरिज्ञायशिवं साधयतं नृप ॥ १२४ ॥

इस श्लोकमें लिखा है कि–हे राजन् इस प्रकारसे केवल भ्रमणको लिये हुए इस छह भेदोंवाले कालचक्रको भले प्रकार जानकर तुम अपना कल्याण साधन करो। यहाँ पर पाठकोंको यह बतला देना जरूरी है कि इस ग्रंथमें इससे पहले किसी राजाका कोई संबंध नहीं है और न किसी राजाके प्रश्नपर इस ग्रंथकी रचना की गई है, जिसको सम्बोधन करके यहाँपर यह वाक्य कहा जाता। इसलिए यह वाक्य यहाँ पर बिलकुल असम्बन्द्ध है और इस बातको सूचित करता है कि यह प्रकरण किसी ऐसे पुराणादिक ग्रंथसे उठाकर रक्खा गया है जो वि० सं० ५३० के बादका बना हुआ है और जिसमें किसी राजाको लक्ष्य करके अथवा उसके प्रश्नपर इस सारे कथनकी रचना की गई है और इसलिए यह उस ग्रंथसे भी बादका बना हुआ है।

५ एक स्थानपर, दूसरे खंडमें, निमित्ताध्यायका वर्णन करते हुए, ग्रंथकर्तानें यह प्रतिज्ञा–वाक्य दिया है:—

पूर्वाचार्यैर्यथा प्रोक्तं दुर्गाद्येलादिभिर्यथा ।
गृहीत्वा तदभिप्रायं तथा रिष्टं वदाम्यहम् ॥३०-१०॥

अर्थात्–'दुर्गादि और एलादिक नामके पूर्वाचार्योंने रिष्टसंबंधमें जैसा कुछ वर्णन किया है उसके आभिप्रायको लेकर मैं वैसे ही यह रिष्टका कथन करता हूँ'। इस प्रतिज्ञावाक्यसे स्पष्ट है कि ग्रंथकर्तानें दुर्गादिक और एलादिक नामके आचार्योंको 'पूर्वाचार्य' माना है। वे ग्रंथकर्तासे पहले होगये हैं और उन्होंने रिष्ट या अरिष्टके सम्बंधमें कोई ग्रंथ लिखे हैं जिनके आधार ग्रंथकर्तानें यहाँ कथनकी प्रतिज्ञा की है। ऐसी हालतमें उक्त आचार्यों और उनके ग्रंथोंकी खोज लगानेकी ज़रूरत पैदा हुई। खोज लगानेसे मालूम हुआ कि भद्रबाहु श्रुतकेवलीसे पहले इस नामके कोई भी उल्लेख योग्य आचार्य नहीं हुए। एक एलाचार्य भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यका दूसरा नाम है। दूसरे एलाचार्य चित्रकूटपुरनिवासी कहे जाते हैं जिनसे वीरसेनाचार्यने सिद्धान्तशास्त्र पढ़ा था और जिनका उल्लेख इन्द्रनन्दीने अपने 'श्रुतावतार' ग्रंथमें किया है। तीसरे एलाचार्य भट्टारक हैं, जिनका नाम 'दि० जैनग्रंथकर्ता और उनके ग्रन्थ' नामकी सूचीमें दर्ज है, और जिनके नामके साथ उनके बनाये हुए ग्रंथोंमें सिर्फ 'ज्वालामालिनी कल्प' नामके किसी ग्रंथका उल्लेख है। ये तीनों एलाचार्य भद्रबाहु श्रुतकेवलीसे उत्तरोत्तर कई कई शताब्दी बाद हुए माने जाते हैं। इनमेंसे किसी भी आचार्यका बनाया हुआ रिष्ट-विषयका कोई ग्रंथ उपलब्ध नहीं हुआ। 'दुर्ग' नामके आचार्यकी खोज लगाते हुए 'जैनग्रंथावली' से मालूम हुआ कि 'दुर्गदेव' नामके किसी जैनाचार्यने 'रिष्टसमुच्चय' नामका कोई ग्रंथ बनाया है और वह ग्रंथ जैनियोंके किसी भी प्रसिद्ध भंडारमें न होकर 'दक्कन कालिज पूना' की लायब्रेरीमें मौजूद है। चूँकि यह ग्रंथ उसी विषयसे सम्बंध रखता था जिसके कथनकी प्रतिज्ञाका ऊपर उल्लेख है इस लिए इसको मँगानेकी कोशिश की गई। अन्तको, श्रीयुत पं० नाथूरामजी प्रेमीने अपने मित्र श्रीयुत मोहनलाल दलीचंदजी देसाई, वकील बम्बई हाईकोर्टकी मार्फत पूनाकी लायब्रेरीसे उक्त ग्रंथको मँगाकर उसे मेरे पास भेज देनेकी कृपा की। देखनेसे मालूम हुआ कि ग्रंथ प्राकृत भाषामें है, उसमें २६० (२५८+२) गाथायें हैं और उसकी वह प्रति एक पुरानी और जीर्णशीर्ण है। बड़ी सावधानीसे संहिताके साथ उसका मिलान किया गया और मिलानसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निश्चय हुआ कि, ऊपरके प्रतिज्ञावाक्यमें जिन 'दुर्ग' नामके आचार्यका उल्लेख है वे निःसन्देह ये ही 'दुर्गदेव' हैं और इनके इसी 'रिष्टसमुच्चय' शास्त्रके आधार पर संहिताके इस प्रकरणकी प्रधानतासे रचना हुई है। वास्तवमें इस शास्त्रकी १०० से भी अधिक गाथाओंका आशय और अनुवाद इस संहितामें पाया जाता है। अनुवादमें बहुधा मूलके शब्दोंका अनुकरण है और इस लिए अनेक स्थानों पर, जहाँ छंद भी एक है, वह मूलका छायामात्र हो गया है। नमूनेके तौर पर यहाँ दोनों ग्रंथोंसे कुछ पद्य उद्धृत किये जाते हैं जिससे इस विषयका पाठकोंको अच्छा अनुभव हो जायः—

१–करचरणेसु अ तोयं, दिन्नं परिसुसइ जस्स निब्भंतं ।
सो जीवइ दियह तयं, इह कहिअं पुव्वसूरीहिं ॥ ३१ ॥
(रिष्टस०)

पाणिपादोपरि क्षिप्तं तोयं शीघ्रं विशुष्यति ।
दिनत्रयं च तस्यायुः कथितं पूर्वसूरिभिः ॥ १८ ॥
(भद्र० संहिता)

२–बीआए ससिबिंबं, नियइ तिसिंगं च सिंगपरिहीणं ।
उवरम्मि धूमछायं, अह खंडं सो न जीवेइ ॥ ६५ ॥
(रि० सं)

द्वितीयायाः शशिबिंबं, पश्येत्रिशृंगं च शृंगपरिहीनं ।
उपरि सधूमच्छायं, खंडं वा तस्य गतमायुः ॥ ४३ ॥
(संहिता)

३–अहव मयंकविहीणं, मलिणं चंदं च पुरिससारित्थं ।
सो जीयइ मासमेगं, इय दिट्ठं पुव्वसूरीहिं ॥ ६६ ॥
(रि० सं)

अथवा मृगांकहीनं, मलिनं चंद्रं च पुरुषसादृश्यं ।
प्राणी पश्यति नूनं, मासादूर्ध्वं भवान्तरं याति ॥ ४४ ॥
(संहि०)

४–इय मंतियसव्वंगो, मंती जोएउ तत्थ वर छायं ।
सुहदियहे पुव्वण्हे, जलहरपवणेण परिहीणे ७१ (रि०)

इति मंत्रितसर्वांगो, मंत्री पश्यंन्नरस्य वरछायां ।
शुभदिवसे पूर्वाण्हे, जलधरपवनेन परिहीनं ४९ (संहिता)

दुर्गदेवका यह 'रिष्टसमुच्चय' शास्त्र विक्रम संवत् १०८९ का बना हुआ है। जैसा कि इसकी प्रशस्तिमें दिये हुए निम्न पद्यसे प्रगट हैः—

संवत्थर इगसहसे बोलीणे नवयसीइ संजुत्ते
सावणसुक्के यारसि दियहम्मि मूल रिक्खम्मि २५७

दुर्गदेवका समय मालूम हो जानेसे, ग्रंथमुखसे ही, यह विषय बिलकुल साफ हो जाता है और इसमें कोई संदेह बाकी नहीं रहता कि **यह भद्रबाहुसंहिता ग्रंथ भद्रबाहु श्रुतकेवलीका बनाया हुआ नहीं है, न उनके किसी शिष्य-प्रशिष्यका बनाया हुआ है और न वि० सं० १०८९ से पहलेहीका बना हुआ है। बल्कि उक्त संवत्से बादका—विक्रमकी ११ वीं शताब्दीसे पीछेका—बना हुआ है और किसी ऐसे व्यक्तिद्वारा** बनाया गया है जो विशेष बुद्धिमान् न हो कर साधारण मोटी अकलका आदमी था। यही वजह है कि उसे ग्रंथमें उक्त प्रतिज्ञावाक्यको रखते हुए यह खयाल नहीं आया कि मैं इस ग्रंथको भद्रबाहु श्रुतकेवलीके नामसे बना रहा हूँ—उसमें १२ सौ वर्ष पीछे होनेवाले विद्वानका नाम और उसके ग्रंथका प्रमाण न आना चाहिए। मालूम होता है कि ग्रंथकर्ताने जिस प्रकार अन्य अनेक प्रकरणोंको दूसरे ग्रंथोंसे उठाकर रक्खा है उसी प्रकार यह रिष्टकथन या कालज्ञानका प्रकरण भी उसने किसी दूसरे ग्रंथसे उठाकर रक्खा है और उसे इसके उक्त प्रतिज्ञावाक्यको बदलने या निकाल देनेका स्मरण नहीं रहा। सच है '**झूठ छिपायेसे नहीं छिपता**'। फारसीकी यह कहावत यहाँ बिलकुल सत्य मालूम होती है कि '**दरोग गोरा हाफ़िज़ा न बाशद**'—अर्थात् असत्यवक्तामें धारणा और स्मरणशक्तिकी त्रुटि होती है। वह प्रायः पूर्वापरका यथेष्ट संबंध सोचे बिना मुँहसे जो आता है निकाल देता है। उसे अपना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

असत्य छिपानेके लिए आगे पीछेके कथनका ठीक सम्बन्ध उपस्थित नहीं रहता–इस बातका पूरा खयाल नहीं रहता कि मैंने अभी क्या कहा था और अब क्या कह रहा हूँ । मेरा यह कथन पहले कथनके अनुकूल है या प्रतिकूल–इस लिए वह पकड़में आ जाता है और उसका सारा झूठ खुल जाता है । ठीक यही हालत कूट लेखकों और जाली ग्रंथ बनानेवालोंकी होती है । वे भी असत्यवक्ता हैं । उन्हें भी इस प्रकारकी बातोंका पूरा ध्यान नहीं रहता और इस लिए एक न एक दिन उन्हींकी कृतिसे उनका वह सब कूट और जाल पकड़ा जाता है और सर्व साधारण पर खुल जाता है । यही सब यहाँ पर भी हुआ है । इसमें पाठकोंको कुछ आश्चर्य करनेकी जरूरत नहीं है । आश्चर्य उन विद्वानोंकी बुद्धि पर होना चाहिए जो ऐसे ग्रंथको भी भद्रबाहु श्रुतकेवलीका बनाया हुआ मान बैठे हैं । अस्तु । अब इस लेखमें आगे यह दिखलाया जायगा कि यह ग्रंथ विक्रमकी ११ वीं शताब्दीसे कितने पीछेका बना हुआ है ।

६ वसुनन्दि आचार्यका बनाया हुआ ‘ प्रतिष्ठासारसंग्रह ’ नामका एक प्रसिद्ध प्रतिष्ठापाठ है । इस प्रतिष्ठापाठके दूसरे परिच्छेदमें ६२ श्लोक हैं, जिनमें ‘ लग्नशुद्धि ’ का वर्णन है और तीसरे परिच्छेदमें ८८ श्लोक हैं, जिनमें ‘ वास्तुशास्त्र ’ का निरूपण है । दूसरे परिच्छेदके श्लोकोंमेंसे लगभग ५० श्लोक और तीसरे परिच्छेदके श्लोकोंमेंसे लगभग ६० श्लोक इस ग्रंथके दूसरे खंडमें क्रमशः ‘मुहूर्त ’ और ‘ वास्तु ’ नामके अध्यायोंमें उठाकर रक्खे गये हैं । उनमेंसे दो श्लोक नमूनेके तौर पर इस प्रकार हैंः—

पुनर्वसूत्तरापुष्पहस्तश्रवणरेवती–।
रोहिण्यश्विमृगर्क्षेषु प्रतिष्ठां कारयेत्सदा ॥२७-११॥

जन्मनिष्क्रमणस्थानज्ञाननिर्वाणभूमिषु ।
अन्येषु पुण्यदेशेषु नदीकूलनगेषु च ॥ ३५-४ ॥

इनमेंसे पहला श्लोक उक्त प्रतिष्ठापाठके दूसरे परिच्छेदमें नं० ५ पर और दूसरा श्लोक तीसरे परिच्छेदमें नं० ३ पर दर्ज है । इससे प्रगट है कि यह ग्रंथ ‘प्रतिष्ठासारसंग्रह’ से पीछेका बना हुआ है । इस प्रतिष्ठापाठके कर्ता वसुनन्दिका समय विक्रमकी १२ वीं १३ वीं शताब्दी पाया जाता है । इसलिए यह ग्रंथ, जिसमें वसुनन्दिके वचनोंका उल्लेख है, वसुनन्दिसे पहलेका न होकर विक्रमकी १२वीं शताब्दीके बादका बना हुआ है ।

७ पंडित आशाधर और उनके बनाये हुए ‘सागारधर्मामृत’ से पाठक जरूर परिचित होंगे । सागारधर्मामृत अपने टाइपका एक अलग ही ग्रंथ है । इस ग्रंथके बहुतसे पद्य संहिताके पहले खंडमें पाये जाते हैं, जिनमेंसे दो पद्य इस प्रकार हैंः—

धर्मं यशः शर्म च सेवमानाः
केप्येकशः जन्म विदुः कृतार्थम् ।
अन्ये द्विशो विद्म वयं त्वमोघा–
न्यहानि यान्ति त्रयसेवयैव ॥ ३-३६३ ॥
निर्व्याजया मनोवृत्या सानुवृत्या गुरोर्मनः ॥
प्रविश्य राजवच्छश्वद्विनयेनानुरंजयेत् ॥ १०-७२

इनमेंसे पहला पद्य सागारधर्मामृतके पहले अध्यायका १४ वाँ और दूसरा पद्य दूसरे अध्यायका ४६ वाँ पद्य है । इससे साफ जाहिर है कि यह संहिता सागारधर्मामृतके बादकी बनी हुई है । सागारधर्मामृतको पं० आशाधरजीने टीकासहित बनाकर विक्रमसंवत् १२९६ में समाप्त किया है । इसलिए यह संहिता भी उक्त संवतके बादकी–विक्रमकी १३ वीं शताब्दीसे पीछेकी–बनी हुई है ।

८ इस ग्रंथके तीसरे खंडमें, ‘ फल ’ नामक नौवें अध्यायका वर्णन करते हुए, सबसे पहले जो श्लोक दिया है वह इस प्रकार हैः–

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रणम्य वर्धमानं च जगदानंददायकम्।
प्रणिधाय मनो राजन् सर्वेषां शृणु तत्फलम् ॥ १ ॥

यह श्लोक बड़ा ही विलक्षण है। इसमें लिखा है कि-'जगत्को आनंद देनेवाले वर्धमानको नमस्कार करके (क्या कहता हूँ, ऐसी प्रतिज्ञा, आगे कुछ नहीं) हे राजन् तुम उन सबका फल चित्त लगाकर सुनो।' परन्तु इससे यह मालूम न हुआ कि राजा कौन, जिसको सम्बोधन करके कहा गया और वे सब कौन, जिनका फल सुनाया जाता है। ग्रंथमें इससे पहले कोई भी ऐसा प्रकरण या प्रसंग नहीं है जिसका इस श्लोकके 'राजन्' और 'तत्' शब्दोंसे सम्बन्ध हो सके। इस लिए यह श्लोक यहाँपर बिलकुल भद्दा और निरा असम्बद्ध मालूम होता है। इसके आगे ग्रंथमें, श्लोक नं० १८ तक उन १६ स्वप्नोंके फलका वर्णन है जिनका सम्बन्ध राजा चंद्रगुप्तसे कहा जाता है और जिनका उल्लेख रत्ननन्दिने अपने 'भद्रबाहुचरित्र' में किया है। स्वप्नोंका यह सब फल-वर्णन प्रायः उन्हीं शब्दोंमें दिया है जिनमें कि वह उक्त भद्रबाहुचरित्रके दूसरे परिच्छेदमें श्लोक नं० ३२ से ४८ तक पाया जाता है। सिर्फ किसी किसी श्लोकमें दो एक शब्दोंका अनावश्यक परिवर्तन किया गया है। जैसा कि नीचे लिखे दो नमूनोंसे प्रगट है:—

१-रवेरस्तमनालोकात्कालेऽत्र पंचमेऽशुभे।
एकादशांगपूर्वादिश्रुतं हीनत्वमेष्यति ॥ ३२ ॥
—भद्रबाहुचरित्र।

भद्रबाहुसंहिताके उक्त 'फल' नामके अध्यायमें यही श्लोक नं० ३ पर दिया है। सिर्फ 'रवेरस्तमनालोकात्' के स्थानमें 'स्वप्ने सूर्यास्तावलोकात्' बदला हुआ है।

२-तुंगमातंगमासीनशाखामृगनिरीक्षणात्।
राज्यहीना विधास्यन्ति कुकुला न च बाहुजाः॥४३॥

भद्रबाहुसंहिताके उक्त अध्यायमें यह भद्रबाहुचरित्रका श्लोक नं० १३ पर दिया है। सिर्फ 'बाहुजाः' के स्थानमें उसका पर्यायवाचक पद 'क्षत्रियाः' बनाया गया है। भद्रबाहुचरित्रमें, इस फलवर्णनसे पहले, राजा चंद्रगुप्त और उसके स्वप्नादिकोंका सब संबंध देकर उसके बाद नीचे लिखा वाक्य दिया है, जिससे वहाँ पर 'राजन्' और 'तत्' शब्दोंका सम्बंध ठीक बैठता है और उस वाक्यमें भी कोई असम्बद्धता मालूम नहीं होती:—

प्रणिधाय मनो राजन् समाकर्णय तत्फलम् ॥३१॥

यह वही वाक्य है जो जरासे ग़ैरज़रूरी परिवर्तनके साथ ऊपर उद्धृत किये हुए श्लोक नं० १ का उत्तरार्ध बनाया गया है। इन सब बातोंसे जाहिर है कि यह सब प्रकरण रत्ननन्दिके भद्रबाहुचरित्रसे उठाकर यहाँ रक्खा गया है और इसलिए यह ग्रंथ उक्त भद्रबाहुचरित्रसे पीछेका बना हुआ है। रत्ननन्दिका भद्रबाहुचरित्र विक्रमकी १६ वीं शताब्दीके अन्तका या १७ वीं शताब्दीके शुरूका बना हुआ माना जाता है। परन्तु इसमें तो किसीको कोई सन्देह नहीं है कि वह वि० सं० १५२७ के बाद का बना हुआ जरूर है। क्योंकि उसके चौथे अधिकारमें इस संवत्का लुंकामत (ढूँढ़ियामत) की उत्पत्तिकथनके साथ उल्लेख किया है*। ऐसी हालतमें यह ग्रंथ भी वि० सं० १५२७ से पीछेका बना हुआ है, इसमें कुछ संदेह नहीं हो सकता।

९ हिन्दुओंके ज्योतिष ग्रंथोंमें 'ताजिक नीलकंठी' नामका एक प्रसिद्ध ग्रंथ है। यह अनन्तदैवज्ञके पुत्र 'नीलकंठ' नामके प्रसिद्ध विद्वानका बनाया हुआ है। इसके बहुतसे पद्य संहिताके दूसरे खंडमें-'विरोध' नामके ४२ वें अध्यायमें-कुछ परिवर्तनके साथ पाये जाते

* यथाः- मृते विक्रमभूपाले सप्तविंशतिसंयुते। दशपंचशतेऽब्दानामतीते शृणुता परम् ॥ १५७ ॥ लुंकामतमभूदेकं लोपकं धर्मकर्मणः। देशेऽत्रगौर्जरे ख्याते विद्वत्ताजितनिर्जरे ॥ १५८ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं । यहाँ पर उनमेंसे कुछ पद्य, उदाहरणके तौर पर, उन पद्योंके साथ प्रकाशित किये जाते हैं जिन परसे वे कुछ परिवर्तन करके बनाये गये मालूम होते हैं:—

१–क्रूरमूशरिफोऽब्देशो जन्मेशः क्रूरितः शुभैः ।
कंबूलेपि विपन्मृत्युरित्थमन्याधिकारतः ॥२-३-४ ॥
–ताजिक नीलकंठी ।

अब्देशः क्रूरमूशरिफः शुभैर्जन्मेशः क्रूरितः ।
कंबूलेपि विपन्मृत्युरित्थं वर्षेशमुन्थहे ॥ ४८ ॥
–भ०संहिता ।

२–अस्तगौ मुथहालग्ननाथौ मंदेक्षितौ यदा ।
सर्वनाशोमृतिः कष्टमाधिव्याधिभयं भवेत् ॥–५॥

सर्वनाशो मृतिः कष्टमाधिभयं भवेत् ॥ ५ ॥
—ता० नी०

यदा मंदेक्षितौ मुथहा–लग्ननाथावधोगतौ ।
सर्वनाशो मृतिः कष्टमाधिव्याधिरुजां भयं ॥ ४७ ॥
—भ० सं०

गुरुः केन्द्रे त्रिकोणे वा पापादृष्टः शुभेक्षितः ।
लग्नचन्द्रेन्थिहारिष्टं विनश्यार्थसुखं दिशेत् ॥ ४–२ ॥
—ता० नी०

पापादृष्टो गुरुः केन्द्रे त्रिकोणे वा शुभेक्षितः ।
लग्नसोमेन्थिहारिष्टं विनश्यार्थसुखं दिशेत् ॥ ५६ ॥
—भ० सं०

ऊपरके पद्योंसे पाठकोंको दो बातें मालूम होंगीं। एक यह कि **नीलकंठीके** पद्योंसे **संहिताके** पद्योंमें जो भेद है वह प्रायः नीलकंठीके शब्दोंको आगे पीछे कर देने या किसी शब्दके स्थानमें उसका पर्यायवाचक शब्द रख देने मात्रसे उत्पन्न किया गया है और इससे परिवर्तनका अच्छा अनुभव हो जाता है । इस परिवर्तनके द्वारा दूसरे पद्यके पहले चरणमें एक अक्षर बढ़ गया है–८ के स्थानमें ९ अक्षर हो गये हैं–और चौथे चरणमें '**व्याधि**'के होते हुए '**रुज्**' शब्द व्यर्थ पड़ा है। दूसरी बात यह है कि इन पद्योंमें **मूशरिफ** (मुशरिफ़), **कंबूल** (क़बूल), **मुथहा**, **मुन्थहा** (मुन्तिही), **इन्थिहा** (इन्तिहा) ये शब्द जो पाये जाते हैं वे संस्कृत भाषाके शब्द नहीं हैं । अरबी–फारसी भाषाके परिवर्तित रूप हैं । ताजिकग्रंथोंकी उत्पत्ति यवन-ज्योतिष परसे हुई है, जिसको बहुत अधिक समय नहीं बीता, इसलिए इन शब्दोंको यवन-ज्योतिषमें प्रयुक्त संज्ञाओंके अपभ्रंशरूप समझना चाहिए । दूसरे पद्योंमें '**इत्थिसाल**' (**इत्तिसाल**) आदि और भी इस प्रकारके अनेक शब्दोंका प्रयोग पाया जाता है । अस्तु । इन सब बातोंसे मालूम होता है कि संहितामें यह सब प्रकरण या तो नीलकंठीसे परिवर्तित करके रक्खा गया है अथवा किसी ऐसे ग्रंथसे उठाकर रक्खा गया है जो नीलकंठी परसे बना है और इस लिए यह संहिता 'ताजिक नीलकंठी' से पीछे बनी हुई है, इसमें कोई संदेह नहीं रहता । नीलकंठका समय विक्रमकी १७ वीं शताब्दीका पूर्वार्ध है । उनके पुत्र गोविन्द दैवज्ञने, अपनी ३४ वर्षकी अवस्थामें, 'मुहूर्तचिन्तामणि' पर 'पीयूषधारा' नामकी एक विस्तृत टीका लिखी है और उसे शक सं० १५२५ अर्थात् वि० सं० १६६० में बनाकर समाप्त किया है। इस समयसे लगभग २० वर्ष पहलेका समय ताजिक नीलकंठीके बननेका अनुमान किया जाता है और इस लिए कहना पड़ता है कि **यह संहिता विक्रम सं० १६४० के बादकी बनी हुई है ।**

१० इस ग्रन्थके दूसरे खंडमें, २७ वें अध्यायका प्रारंभ करते हुए सबसे पहले यह वाक्य दिया है:—

"तत्रादौ च मुहूर्तानां संग्रहः क्रियते मया ॥"

यद्यपि इस वाक्यमें आये हुए 'तत्रादौ'[१] शब्दोंका ग्रंथ भरमें पहलेके किसी भी कथनसे कोई सम्बंध नहीं है और इस लिए वे कथनकी असम्बद्धताको प्रगट करते हुए इस बातको सूचित करते हैं कि यह वाक्य किसी दूसरे

१ इसका अर्थ होता है-वहाँ, आदिमें, उसके आदिमें, अथवा उनमें सबसे पहले ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रंथसे उठाकर रक्खा गया है जहाँ उसे उक्त ग्रंथके कर्ताने अपने प्रकरणानुसार दिया होगा। परन्तु इसे छोड़कर इस वाक्यमें मुहूर्तोंका संग्रह करनेकी प्रतिज्ञा की गई है । लिखा है कि मेरे द्वारा मुहूर्तोंका संग्रह किया जाता है, अर्थात् मैं इस अध्यायमें मुहूर्तोंका संग्रह करता हूँ । यह वाक्य श्रुतकेवलीका बतलाया जाता है । ऐसी हालतमें पाठक सोचें और समझें कि यह कैसा अनोखा और असमंजस मालूम होता है । श्रुतकेवली और मुहूर्तोंका संग्रह करें ? जो स्वयं द्वादशांगके पाठी और पूर्ण ज्ञानी हों—जिनका प्रत्येक वाक्य संग्रह किये जानेके योग्य हो—वे खुद ही इधर उधरसे मुहूर्तोंके कथनको इकठ्ठा करते फिरें ! यह कभी नहीं हो सकता । **वास्तवमें यह सारा ही ग्रंथ भद्रबाहु श्रुतकेवलीका बनायाहुआ न होकर इधर उधरके प्रकरणोंका एक बेढंगा संग्रह है**—जैसा कि ऊपर दिखलाया गया है और अगले लेखोंमें, असम्बद्ध विरुद्धादि कथनोंका उल्लेख करते हुए और भी अच्छी तरहसे दिखलाया जायगा । इसलिए इस ग्रंथमें उक्त प्रतिज्ञाके अनुसार मुहूर्तोंका भी अनेक ग्रंथों परसे संग्रह किया गया है। अर्थात् दूसरे ग्रंथोंके वाक्योंको उठा उठाकर रक्खा है । उन ग्रंथोंमें 'मुहूर्तचिन्तामणि' नामका भी एक प्रसिद्ध ग्रंथ है, जिसे नीलकंठके छोटे भाई रामदैवज्ञने शक संवत् १५२२ (वि० सं० १६५७) में निर्माण किया है ।+इस ग्रंथसे भी अनेक पद्य उठाकर उक्त अध्यायमें रक्खे गये हैं, जिनमेंसे एक पद्य, उदाहरणके तौरपर, यहाँ उद्धृत किया जाता हैः—

क्षिप्रध्रुवाहिचरमूलमृदुत्रिपूर्वा,
रौद्रेऽर्कविद्गुरुसितेन्दुदिने व्रतं सत् ।
द्वित्रीषुरुद्ररविदिक् प्रमिते तिथौ च,
कृष्णादिमत्रिलवकेपि न चापराह्णे ॥ १७२ ॥

यह पद्य मुहूर्तचिन्तामणिके पाँचवें संस्कार-प्रकरणका ४० वाँ पद्य है । इससे साफ़ जाहिर है कि यह संहिता ग्रंथ मुहूर्तचिन्तामणिसे बादका अर्थात् वि०सं०१६५७से पीछेका बना हुआ है।

यहाँतकके इस संपूर्ण कथनसे यह तो सिद्ध हो गया कि,—**यह खंडत्रयात्मक ग्रंथ (भद्रबाहुसंहिता) भद्रबाहु श्रुतकेवलीका बनाया हुआ नहीं है, न उनके किसी शिष्यप्रशिष्यका बनाया हुआ है और न वि० सं० १६५७ से पहलेहीका बना हुआ है; बल्कि उक्त संवत्से पीछेका बना हुआ है।** परन्तु कितने पीछेका बना हुआ है और किसने बनाया है, इतना सवाल अभी और बाकी रह गया है ।

भद्रबाहुसंहिताकी वह प्रति जो झालरापाटनके भंडारसे निकली है और जिसका ग्रंथ-प्राप्तिके इतिहासमें ऊपर उल्लेख किया गया है वि० सं० १६६५ की लिखी हुई है। इससे स्पष्ट है कि, यह ग्रंथ वि० सं० १६६५ से पहले बन चुका था और वि० सं० १६५७ से पीछेका बनना उसका ऊपर सिद्ध किया जा चुका है। इस लिए **यह ग्रंथ इन दोनों सम्वतों (१६५७-१६६५) के मध्यवर्ती किसी समयमें सात आठ वर्षके भीतर**—बना है, इस कहनेमें कोई संकोच नहीं होता । यही इस ग्रंथके अवतारका समय है । अब रही यह बात कि, ग्रंथ किसने बनाया, इसके लिए झालरापाटनकी उक्त प्रतिके अन्तमें दी हुई लेखककी इस प्रशस्तिको गौरसे पढ़नेकी जरूरत हैः—

" संवत्सर १६६५ का मृगसिर सुदि १० लिपीकृतं ज्ञानभूषणेन गोपाचलपुस्तकभंडार धर्मभूषणजीकी सुं लिषी । या पुस्तक दे जीनैं जिनधर्मका सपथ

+ यथाः—

तदात्मज उदारधीर्विबुधनीलकंठानुजो, गणेशपदपंकजं हृदि निधाय रामाभिधः । गिरीशनगरे वरे भुजभुजेषुचंद्रैर्मिते (१५२२), शके विनिरमादिमं मुहूर्तचिन्तामणिम् ॥ १४-३ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इजार छै । मुनिपरंपरा सूं विमुख छै । तीसूं न देणी । सूरि भी नहीं देवै । एक वार धर्मभूषण स्वामी दो चार स्थल मांगे दिये सो फेरि पुस्तक नहीं आई । तदि वामदेवजी फेर शुद्धकरि लिषी तयार करी । तीसूं नहीं देणी । "

ऊपरकी इस प्रशस्तिसे, जो कि ग्रंथ बननेके अधिक समय बादकी नहीं है, साफ ध्वनित होता है कि यह ग्रंथ गोपाचल (ग्वालियर) के भट्टारक **धर्मभूषणजी**की कृपाका एक मात्र फल है । वही उस समय इस ग्रंथके सर्व सत्वाधिकारी थे । उन्होंने **वामदेव** सरीखे अपने किसी कृपापात्र या आत्मीयजनके द्वारा इसे तय्यार कराया है, अथवा उसकी सहायतासे स्वयं तय्यार किया है । तय्यार हो जानेपर जब इस ग्रंथके दो चार अध्याय किसीको पढ़नेके लिए दिये गये और वे किसी कारणसे वापिस नहीं मिलसके तब वामदेवजीको फिरसे दुबारा उनके लिए परिश्रम करना पड़ा । जिसके लिए प्रशस्तिका यह वाक्य 'तदि वामदेवजी फेर शुद्ध करि लिषी तयार करी–' खास तौरसे ध्यान दिये जानेके योग्य है और इस बातको सूचित करता है कि उक्त अध्यायोंको पहले भी वामदेवने ही तय्यार किया था । मालूम होता है कि लेखक **ज्ञानभूषणजी** धर्मभूषण भट्टारकके परिचित व्यक्तियोंमें थे और आश्चर्य नहीं कि वे उनके शिष्योंमें भी हों । उनके द्वारा खास तौरसे यह प्रति लिखाई गई है । उन्होंने प्रशस्तिमें अपने स्वामी धर्मभूषणकी ग्रंथ न देने संबंधी आज्ञाका–जो संभवतः उक्त अध्यायोंके वापिस न आने पर दी गई होगी–उल्लेख करते हुए भोलेपनसे उसके कारणका भी उल्लेख कर दिया है, जिसकी वजहसे ग्रंथकर्ताके विषयमें उपर्युक्त विचारोंको स्थिर करनेका अवसर मिला है और इस लिए पाठकोंको उनके इस भोलेपनका आभारी होना चाहिए । ता० २९–९–१६ ।

पुस्तक-परिचय ।

१ सूक्तिमुक्तावली ।

सोमप्रभाचार्यका यह प्रसिद्ध ग्रन्थ कई जगह छप चुका है । इस संस्करणमें एक विशेषता यह है कि साथ ही एक सरल संस्कृत टीका लगा दी गई है जो विद्यार्थियोंके लिए विशेष उपयोगी है । टीकाकारने अपना नाम नहीं दिया है; पर जान पड़ता है कि वे दिगम्बर सम्प्रदायके अनुयायी अवश्य हैं । संस्कृतटीकाके नीचे मराठी अर्थ दिया है जिसके लेखक माणगाँव (कागल) के कालचन्द्र जिनदत्त उपाध्याय हैं । आपने भूमिकामें लिखा है कि 'अभी तक इसकी संस्कृतटीका कहीं नहीं छपी थी; ' परन्तु हमारे पुस्तकालयमें भावनगरकी किसी जैनसभाके द्वारा लगभग ३०–३५ वर्ष पहले छपाई हुई श्रीचन्द्रकीर्तिविनेय हर्षकीर्तिसूरिकृत संस्कृतटीका मौजूद है । इसके ऊपरका एक पृष्ठ नष्ट हो गया है । आश्चर्य नहीं जो कहीं अन्यत्रसे भी इसकी और और टीका यें प्रकाशित हुई हों । पुस्तककी छपाई अच्छी है; पर प्रारंभमें ही ६ पेजका शुद्धिपत्र देखकर दुःख होता है । प्रकाशकोंके द्वारा संशोधनमें इस प्रकारका प्रमाद होना बहुत खटकता है । पुस्तकका मूल्य आठ आने है । मिलनेका पता–" बी. ए. संकेश्वरे, श्रीवर्द्धमानप्रेस, गुरुवार पेठ, निपाणी (बेलगाँव) । "

२ वर्णव्यवस्थापर विचार ।

लेखक पं० शिवकुमार शास्त्री । प्रकाशक, विश्वविद्याप्रचारक मण्डल, चन्दौसी- यू. पी. । मूल्य एक आना । इस ४० पृष्ठकी छोटीसी पुस्तकमें यह बतलाया है कि वर्णव्यवस्था न जन्मसे मानना अच्छा है और न आर्यसमाजके समान कर्मसे । इसे सर्वथा ही उड़ा देना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चाहिए। इसके उड़ाये बिना देशकी उन्नति नहीं हो सकती। यह अस्वाभाविक है। जो इसके भक्त हैं उनके यहाँ भी यह पाली नहीं जाती है। प्रकृति भी अब इसे रहने नहीं देना चाहती। इत्यादि। यह विषय जितने महत्त्वका है, उतनी गंभीरतासे लेखक महाशयने इस पर विचार नहीं किया। हमारी समझमें यह इस तरह जोशमें आकर उड़ा देनेकी चीज नहीं है, इस पर सब ओरोंसे विचार होना चाहिए।

३ समाधितंत्र।

समाधितंत्र आचार्य पूज्यपादका बनाया हुआ प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसकी एक मराठी और एक हिन्दी टीकाकी समालोचना जैनहितैषीमें हो चुकी है। अब उसीकी यह एक गुजराती टीका भी प्रकाशित हुई है। इसे डाक्टर भूखणदास परभूदासने पर्वत धर्मार्थीकी पुरानी भाषाटीकाके आधारसे लिखा है और शा कस्तूरचन्द धर्मचन्दजीकी सहायतासे प्रकाशित करके विनामूल्य वितरण किया है। इसके गुजराती अनुवादको पढ़नेका तो हमें समय नहीं मिला, इससे हम उसके विषयमें तो कुछ राय नहीं दे सकते हैं; परन्तु ग्रन्थके मूल श्लोक इतने अशुद्ध पदच्छेदादिका खयाल रक्खे बिना छपे हैं कि जितने आजतक शायद ही किसी जैनग्रन्थमें छपे हों। श्लोकोंकी संख्यातक नहीं दी गई है और और ग्रन्थान्तरोंके तथा मूलके श्लोकोंमें कोई भी भेद नहीं रक्खा गया है। ऐसे महत्त्वके ग्रन्थोंका इस प्रकार असावधानीसे प्रकाशित होना बड़े ही खेदका विषय है। हम प्रकाशक महाशयकी, इस ग्रन्थको बिनामूल्य प्रकाशित करनेके कारण जितनी प्रशंसा करेंगे, उससे कहीं अधिक उनकी इस कारण निन्दा करेंगे कि उन्होंने ग्रन्थको सावधानीके साथ प्रकाशित नहीं किया। यह १७५ पृष्ठकी पुस्तक प्रकाशकके पास नवापुरा सूरतसे (शायद पोस्टेज भेजनेपर) मिल सकेगी।

४ गद्यचिन्तामणि।

तंजौर-ट्रेनिंगस्कूलके अध्यापक श्रीयुत टी. एस. कुप्पूस्वामी शास्त्री जैनसाहित्यके बड़े ही प्रेमी हैं। आपकी आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं है, तो भी आपने कई अलभ्य जैन ग्रन्थोंको छपाकर प्रकाशित किया है। महाकवि वादीभसिंहका यह अपूर्व काव्य भी आपकी ही कृपासे जैनसमाजके दृष्टिगोचर हुआ था। पाठक यह जानकर प्रसन्न होंगे कि उक्त काव्यका अब यह दूसरा संस्करण प्रकाशित हुआ है। यह संस्करण पहले संस्करणकी अपेक्षा अधिक शुद्ध और सुन्दर है। कपड़ेकी बढ़िया जिल्द बँधी हुई है। मूल्य वही दो रुपया है। आशा है कि हमारे संस्कृतज्ञ पाठक इस संस्करणकी एक एक प्रति मँगाकर शास्त्रीजीके उत्साहको बढ़ायँगे। शास्त्रीजी हिन्दी नहीं जानते, इस कारण उन्हें आर्डरका पत्र अँगरेजी या संस्कृतमें लिखना चाहिए।

५ प्रभंजनचरित।

लेखक, पं० घनश्यामदासजैन न्यायतीर्थ और प्रकाशक, जैनग्रन्थकार्यालय, ललितपुर (झांसी)। पृष्ठसंख्या ४२। मूल्य चार आने। 'यशोधरचरित' नामक किसी संस्कृतग्रन्थकी पीठिकामें प्रभंजनमुनिका चरित वर्णित है। पण्डितजीने उसीका यह हिन्दी रूपान्तर लिखा है; परन्तु यह बतलानेकी कृपा नहीं की कि उक्त 'यशोधरचरित' किसका बनाया हुआ है और कहाँ पर है, जिसकी पीठिका या उत्थानिकामें यह चरित वर्णित है। उपलब्ध यशोधरचरितोंमें तो ऐसा कोई नहीं है जिसमें इस प्रकारकी विस्तृत उत्थानिका हो। यदि परिश्रम किया जाय तो संभव है कि मूलग्रन्थपरसे ग्रन्थकर्ताका पता चल जाय। ग्रन्थके प्रारंभमें प्रतिज्ञा की गई है कि 'प्रभंजनगुरोश्चरितं वक्ष्ये' अर्थात् प्रभंजन गुरुका चरित कहता हूँ। इसपर-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से पण्डितजी अनुमान करते हैं कि यशोधर-चरित प्रभंजन मुनिके किसी शिष्यका बनाया हुआ है। परन्तु यह अनुमान ठीक नहीं। साक्षात् शिष्य ही किसीको 'गुरु' कह सकता हो, ऐसा नहीं है। गुरुका अर्थ साधारण जैनमुनि भी हो सकता है। प्रभंजन मुनिका चरित राजा पूर्णभद्रके पूछने पर श्रीवर्धन मुनिने कहा है और इसके बीचमें उन्होंने अपने और अपने साथी अन्य सात मुनियोंके वैराग्यका कारण भी पृथक् पृथक् बतलाया है। सात मुनियोंकी दीक्षाका कारण बतलाकर चौथे सर्गके अन्तमें उन्होंने कहा है कि आठवें नन्दमुनिके तपका हेतु यशोधर महाराजका चरित है (जो आगे कहा जायगा)। इससे मालूम होता है कि प्रभंजन, नन्दिवर्धन, नन्द और यशोधर महाराज आदि सब समकालीन हैं, और इस लिए यशोधरचरितके रचयिताके लिए जिस प्रकार यशोधरमहाराज एक बहुत पुराने समयके पुराण-पुरुष हैं उसी प्रकार प्रभंजन मुनि भी हैं। वे उनके गुरु या दादागुरु आदि कोई नहीं हो सकते। पण्डितजी चाहते, तो उन्हें यह बात थोड़े ही परिश्रमसे मालूम हो सकती थी। प्रभंजनमुनिका चरित्र स्त्रीचरित्रसे—स्त्रियोंके छल कपटोंसे—भरा हुआ है। प्रभंजन मुनि और उनके साथी दूसरे आठ मुनि सभी स्त्रियोंके पापकर्मोंको देखकर विरागी हुए हैं। मालूम नहीं उस समय केवल स्त्रियोंका ही चरित्र इतना गिरा हुआ था, या पुरुषोंमें भी यही बात थी। कथायें यद्यपि बहुत ही छोटी छोटी हैं, तो भी वे शुकबहत्तरीकी कथाओंके समान खूब ही कुतूहलवर्धक और मनोरंजक हैं। उनके पढ़नेमें जी लगता है। हमारे कथाग्रन्थोंमें इस श्रेणीकी कथायें बहुत ही कम हैं। अच्छा होता, यदि पण्डितजी इसके साथ मूलग्रन्थको भी प्रकाशित कर देते। अनुवादकी भाषा अच्छी है और वह अन्य पण्डितोंकी रचनाके समान क्लिष्ट नहीं है। इसके लिए हम पण्डितजीका अभिनन्दन करते हैं।

६ रस-क्रिया।

सम्पादक, वैद्यरत्न पं० शिवबक्स शर्मा गुरु, फतहपुर (सीकर) और प्रकाशक, बाबू जमनादास पोद्दार, लाल कटरा, दिल्ली। मूल्य चार आने। 'यंत्र निर्माणका प्रामाणिक सचित्र निबन्ध।' धातुओंके मारने या रस बनानेमें जिन यंत्रोंका उपयोग होता है, उनका स्वरूप इस संस्कृत पद्यनिबन्धमें बतलाया गया है। सम्पादक महाशयने अपने पुस्तकालयके अनेक प्राचीन ग्रन्थोंसे उद्धृत करके इसे लिखा है। इस विषयके ग्रन्थ बहुत ही दुर्लभ हैं। अच्छा होता यदि पण्डितजी इसका हिन्दी अनुवाद भी साथ ही साथ प्रकाशित कर देते। यंत्रोंके जो चित्र पीछेके पृष्ठोंमें दिये गये हैं, वे बहुत ही भद्दे और अस्पष्ट हैं। यदि किसी चित्रकारको समझाकर उससे ये चित्र बनवाये जाते, तो पाठकोंको बहुत लाभ होता। वे यंत्रोंके स्वरूपको अच्छी तरह समझ लेते।

प्राप्तिस्वीकार।

नमक सुलेमानी—'श्रीयुत भाई गोरेलाल पन्नालाल जैन, चन्दाबाड़ी गिरगाँव, बम्बई' से हमें एक शीशी नमक सुलेमानी मिला है। हमने कुछ दिनोंतक इसका उपयोग किया। यथेष्ट स्वादिष्ट न होनेपर भी यह बहुत गुणकारी है। खाते ही अजीर्ण पच जाता है। दस्त साफ आता है। एक अच्छे अनुभवी वैद्यके बतलाये हुए नुसखेके अनुसार यह बनाया गया है। छह तोलेकी एक शीशीका मूल्य आठ आने है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शरदागम ।

(ले०—श्रीयुत पं० रामचरित उपाध्याय ।)

(१)

अति दुखदाई नीति दुर्जनोंकी होती है,
पर सुखदाई वही सज्जनोंकी होती है ।
मेघोंका उत्पात सदा जग स्मरण करेगा,
पर आया अब शरत्काल दुख हरण करेगा ॥

(२)

धन पाकरके नीच अन्यको दुख देते हैं,
वे ही हो धन-हीन सभीको सुख देते हैं ।
क्या करते थे मेघ वारिसे पूर्ण रहे जब,
शान्त सुखद अति विशद हुए हैं वे कैसे अब ॥

(३)

धुली हुई सी मही हुई है, जल निर्मल है,
धूलि-कणोंसे हीन व्योम कैसा उज्ज्वल है ।
अन्यायीके बाद भूप यदि न्यायी आवे,
क्यों न देशकी दशा तुरत ही पलटा खावे ॥

(४)

काश कमल केवड़े आमित फूले हैं कैसे,
ये मेघोंकी मृत्यु तुरत भूले हैं कैसे ।
या उत्पीड़क-पतन दुखद क्यों होगा जगमें ॥
कण्टक कैसे कभी रुचेगा अपने मगमें,

(५)

आवसते हैं सुभग राज्यमें जैसे सज्जन,
हंस और आबसे यहाँ वैसे ही खञ्जन ।
पर क्रमशः खद्योत दूर होते जाते हैं,
दुष्ट कभी क्या भली जगह रहने पाते हैं ॥

(६)

इन्द्र—धनुष अब नहीं दृष्टि-गोचर होता है,
परदेशीका राग अधिक आस्थिर होता है ।
पर नभमें शुक-पंक्ति छटा क्या दिखा रही है,
मनो ऐक्यकी प्रथा हमें यह सिखा रही है ॥

(७)

उद्धतपनको छोड़ सूखती हैं सरितायें,
पातिव्रत ज्यों पाल रही हों पतिव्रतायें ।
उनके दोनों कूल रहित हो गये पंकसे,
ज्यों सतियोंके चरित हीन हों दुष्कलंकसे ॥

(८)

चातक दादुर मोर मौन हो छिपे कहीं हैं,
कोयल भी निज कूक सुनाती कभी नहीं है ।
धूर्तोंकी धूर्तता सदा क्या चल सकती है,
या विधिकी लिपि कभी किसी विधि टल सकती है॥

(९)

जब अज्ञान-तमिस्र मनुजका खो जाता है,
निजहितमें तब दत्तचित्त वह हो जाता है ।
मेघाडम्बर दूर हुआ है बाधक जबसे,
निज उन्नतिमें लगा हुआ है यह जग तबसे ॥

(१०)

नृप उदारकी प्रजा स्वत्व पाती है जैसे,
सुख जीवनका और तत्त्व पाती है जैसे ।
उसी भाँति व्यापार—लग्न संसार हुआ है,
शरदागमसे सत्य बड़ा उपकार हुआ है ॥

(११)

सुख-साधनके लिए यही उत्तम अवसर है,
शीत—भीति है नहीं, नहीं आतपका डर है ।
सब होकरके एक, देशके प्राण बचाओ,
दुख दानवको शीघ्र देशसे दूर भगाओ ॥

४–५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राजनीतिके मैदानमें आओ !

(ले०–श्रीयुत ब्र. भगवानदीनजी ।)

जिनकी प्रतिमायें हमारे मन्दिरोंमें विराजमान हैं वे सब ऐसे पुरुष थे जिन्होंने अपनी घोर तपस्या द्वारा निर्वाणपद प्राप्त किया था । वे सब क्षत्रियकुलमें उत्पन्न हुए थे और उनमेंसे अधिकांशने बड़े बड़े राज्योंका संचालन किया था । भगवान् ऋषभदेवजीने प्रजाके हितके लिए अगणित काम बतलाये थे जो अब तक जारी हैं । यदि यह कहा जाय कि उन्होंने प्रजाको सभ्यता सिखलाई थी, तो कुछ अत्युक्ति न होगी । हमारे अन्तिम तीर्थंकर महावीर जब हमसे बिदा हुए, तब भी हमारी अवस्था खासी थी और हमारे रीति–रिवाज बहुत सीधीसादे क्षत्रियोंके जैसे ही थे । हमारे सारे पुराणपुरुष भी क्षत्रिय वंशके थे, ऐसा उल्लेख मिलता है । कुछ उपपुराणोंमें क्षत्रिय और वैश्य दोनोंका कथन पाया जाता है–अर्थात् उनमें वैश्य भी जैनधर्मके धारक बतलाये गये हैं, परन्तु इस समय तो जितने जैनधर्मावलम्बी हैं वे प्रायः सब ही वैश्य हैं । अक्सर लोग पूछ बैठते हैं कि "बनियाँ (वैश्य), क्या यह कोई बुरी बात है ?" पर हम पूँछते हैं कि "तो क्या यह कोई अच्छी बात है ?" आप कितने ही अच्छे पहलवान् बनकर पल्टनमें दाखिल होने जाइए; परन्तु यह जानकर कि आप बनियें हैं तुरन्त निकाल बाहर कर दिये जायँगे ! यह बात हमारी समझमें नहीं आती कि सारे ही क्षत्रिय हमारा–जैनधर्मका–साथ छोड़कर चले गये हों और बीचमें मिले हुए बनियें ही बनियें हम सब रह गये हों । क्योंकि इस प्रकारका कोई प्रमाण या उदाहरण नहीं मिलता । इस सम्बन्धमें हमको एक बात याद आती है–। जब कुँवर दिग्विजयसिंहजी आश्रमके भ्रमणमें हमारे साथ थे तब अनेक स्थानोंमें वहाँके जैनी भाई अन्य लोगोंको उनका परिचय देते हुए कहते थे–"पहले आप क्षत्रिय थे; परन्तु अब जैन हो गये हैं ।" अभिप्राय यह कि साधारण लोगोंकी अब यह धारणा ही नहीं रही है कि जैनोंमें वैश्योंके अतिरिक्त और कोई–क्षत्रिय आदि–भी गिने जा सकते हैं । जैन कहनेसे अब केवल वैश्योंका बोध होता है ।

इस विषयमें जब हम विचार करते हैं तब यह निश्चित होता है कि पार्श्वनाथस्वामीके पश्चात् जब जैनधर्म बिल्कुल लुप्त हो गया, तब महावीरस्वामीका जन्म हुआ । इस समय हिंसाका प्रचार बहुत बढ़ चुका था । इसके रोकनेके महत्कार्यके लिए एक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बड़ी भारी शक्तिकी अवश्यकता थी, इस लिए उस समय जो कोई महावीर जिनके झण्डे तले आया, वह जैन (श्रावक) नामसे पुकारा गया। इस महत्कार्यमें क्षत्रियोंको छोड़कर और शामिल ही कौन हो सकता था? और यदि कोई हुआ भी होगा, तो उस समय उद्देश्य एक होनेसे सबका रहन-सहन एक ही ढंगका होता होगा, ऐसा जान पड़ता है। उस समय जाति-पाँतिका ख़याल करना उद्देश्यसिद्धिमें सब प्रकार हानिकर होता, इससे सारे जैनधर्मावलम्बी एक ही होंगे। इन विचारोंको प्रकट करके हम ऋषभदेवजी द्वारा स्थापित वर्णाश्रमका विरोध नहीं करते हैं; परन्तु यह बतलाना चाहते हैं कि लुप्त धर्ममें जान इसी तरह पड़ा करती है। जिस प्रकार आज कुँवर दिग्विजयसिंहजी यह पूछे जानेपर कि कौन हैं, जैन बतलाये जाते हैं और चाहिए था राजपूत बतलाना, ठीक इसी प्रकार उस समय जैनधर्मावलम्बी किसी भी वर्णके होनेपर भी जैन या श्रावक बतलाये जाते थे। अस्तु। अहिंसा प्रचारका काम खूब जोरशोरसे चला। पर यह कार्य यों ही नहीं चल गया था। बड़े बड़े आचार्योंने बड़े परिश्रमसे लोगोंको राजनीति सिखाई और ऐसे ऐसे शिष्य तैयार किये जिन्होंने सैकड़ों राजाओंको इस धर्ममें शामिल किया और इस प्रकार उनके द्वारा हिंसाको रोका। हिंसाका जो लक्षण शास्त्रमें दिया है उससे मालूम होता है कि वे केवल बकरों, बैलों या पक्षियोंको ही मारनेसे नहीं बचाते थे, या उनपर ज्यादा बोझ न लदने देकर या व्यर्थ भार पड़ने न देकर ही चुप न रह जाते थे; किन्तु उनका सबसे अधिक लक्ष्य मनुष्योंकी ओर था। उनका यही काम था कि वे किसी व्यक्तिको किसी प्रकार दुःख न पहुँचने दें। वे प्रजाके स्वत्वोंकी रक्षा करते थे, उनके ऊपर किये जानेवाले अत्याचारोंको रोकते थे और राजाके लिए ऐसी नीति तैयार करते थे जिससे किसी प्रकारकी बाधा राष्ट्रको न हो। इस प्रकारके धर्मग्रन्थोंकी रचना करते थे जिनके अनुसार चलनेसे उनकी सारी जरूरतें मिट जाती थीं। यह बात ऐसी नहीं है कि योंही आसमानसे गिर पड़ी हो; परन्तु राजनीतिके अच्छे अच्छे ग्रन्थ अब भी उपलब्ध हैं*। हमारे घरके साहित्यकी टटोल ही कब की गई? आज कल तो जैनधर्मावलम्बी पण्डितोंका विषय केवल न्याय ही रह गया है, इस लिए और ग्रन्थ आँखके सामने होते हुए भी नजर नहीं आते। अस्तु। जब महावीर भगवान् द्वारा चेताये हुए समाजने बहुत समय तक स्वार्थत्याग करके अनेक राजाओंको जैन बना दिया और उनके द्वारा यह कार्य अच्छी तरह चलने लगा, तब समाजके लोग यह लोकहितका कार्य छोड़कर व्यापारमें लग गये और तबहीसे हम बनियें कहलाने लगे। हमारी रग-रगमें राजनीति भरी थी और क्षत्रियत्वका

* जैसे श्रीसोमदेवसूरिकृत नीतिवाक्यामृत।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जोश ज्योंका त्यों कायम था, इसलिए हमने बनियें बननेमें भी अपने महत्त्वको नहीं खोया —गुलामीके फन्दोंसे हम अभीतक बहुत कुछ बचे हुए हैं। परन्तु बिना पानीके पौधा कितने दिन हरा—भरा रह सकता है ? उस वृक्षके कुछ पत्ते पीले होकर गिर चुके हैं और कुछ समयकी धींगाधींगीके कारण तोड़ लिये जाकर विदेशी बाजारमें राष्ट्र—हानिकर चाटकी बिक्रीके काममें लाये जाने लगे हैं। बहुतसे ऐसे हैं जो शिक्षारूपी रस न मिलनेके कारण वृक्षपर ही मुरझा-मुरझा कर रह गये हैं और बहुतोंका शरीर रीति—रिवाजोंके कीड़ोंके आक्रमणसे छिन्नभिन्न हो चुका है। एक बात और भी है। हम और जातियों-की अपेक्षा मजबूत ऐक्यसूत्रमें बँधे हुए हैं। लोग हमारे अन्दर अनेकपना देखते हैं सही, परन्तु वे ऐसी ही भूलमें हैं जैसे कोई वट-वृक्षकी अनेक पीढ़ें देखकर उसको अनेक वृक्ष समझ बैठे। हम कितने ही जुदे दिखलाई दें; परन्तु हम सबमें रस उसी एक ही महा-वीरवृक्षसे प्रवाहित होता है।

आजकल स्वराज्यका आन्दोलन बड़े जोर-शोरसे हो रहा है। देशकी तमाम जातियाँ इस बातको समझने लगी हैं कि बिना स्वराज्य मिले भारतवर्षका वास्तविक कल्याण नहीं हो सकता है। प्यारे जैनी भाइयो! इस आन्दोलनमें तुम्हारे शामिल हुए विना पशु और पक्षियोंको कोई अधिकार न मिल सकेगा। अब तुम्हारे चुप रहनेका समय नहीं है। राजनीतिके मैदानमें आओ। लोग तुम्हारी बाट जोह रहे हैं। तुम्हारा यह मौरूसी—परम्परागत काम है। तुम्हारे ही हाथ लगा-नेसे यह छप्पर उठेगा और प्राणीमात्रका दुःख दूर होगा। तुम्हारे बिना और किसका ऐसा हृदय है जो इस भारी कामको कर सके? यह काम जोशका नहीं; किन्तु जोशके डाट-नेका है। यह काम नामकी इच्छासे नहीं हो सकता; इसमें नामकी इच्छाका त्याग करना पड़ेगा। इसमें बड़े भारी स्वार्थत्याग-की आवश्यकता है—बड़े विशाल हृदयोंकी आवश्यकता है और इन गुणों पर तुम्हारा सबसे अधिक स्वत्व है। उठो और इस नावको शीघ्र ही पार लगा दो; तुम्हारे लिए यह बाँये हाथका खेल है। और लोग इस कामको शारीरिक शक्तिसे किया चाहते हैं और इसके लिए अपने कषायभावोंको हथि-यार बनाना चाहते हैं; परन्तु वास्तवमें इसकी सिद्धि क्षमासे ही हो सकती है। यह काम मनोबलका है, वीतरागताका है, हितैषिताका है और ऐसे ही सर्वोच्च लक्ष्यके आप उपासक हैं। फिर क्यों बिलम्ब कर रहे हो और तृषातुर भूमिको तरसा रहे हो ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैनधर्मके पालनेवाले वैश्य ही क्यों ?

पिछले पृष्ठोंमें श्रीयुत ब्र० भगवानदीनजीका 'राजनीतिके मैदानमें आओ' शीर्षक लेख प्रकाशित किया गया है। इस लेखमें एक स्थल पर यह प्रश्न उठाया गया है कि पहले जैनधर्मके धारण करनेवाले क्षत्रिय ही अधिक थे, तब वे पीछे वैश्य कैसे हो गये ? और इसका समाधान यह किया गया है कि जब वे लोग अपना लोकहितका कार्य समाप्त कर चुके, तब व्यापारमें लग गये और बनियें या वैश्य कहलाने लगे। परन्तु हमारी समझमें यह उत्तर सन्तोषप्रद नहीं। यह प्रश्न बहुत ही महत्त्वका है, जैनधर्मके उत्थान और पतनके इतिहाससे इसका गहरा सम्बन्ध है, इसलिए इस पर खूब गंभीरतासे विचार किया जाना चाहिए।

१ जैनधर्मके धारण करनेवाले या उसको प्रचारमें लानेवाले केवल क्षत्रिय ही नहीं थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र यहाँतक कि अनार्य भी जैनधर्मके उपासक थे। कथा-ग्रन्थोंसे मालूम होता है कि सब ही प्रकारके लोग जैनधर्मका पालन करते थे। एक चाण्डालकी कथा बहुत ही प्रसिद्ध है जिसने जैनधर्म धारण किया था। गरज यह कि जैन एक प्रकारका धर्मविशेष है, समाज या जाति नहीं। उसे सारे जगतके मनुष्य धारण कर सकते हैं चाहे वे किसी भी जाति या देशके हों। ऐसी दशामें यह संभव नहीं कि किसी समयमें, भगवान् महावीरके समयमें या और कभी, केवल क्षत्रिय ही इसके अनुयायी हों। यह दूसरी बात है कि पुराण पुरुष तीर्थंकर चक्रवर्ती नारायण आदि सब क्षत्रिय ही हुए हैं; परन्तु इससे यह सूचित नहीं होता है कि ब्राह्मण वैश्य आदि जैनधर्मके उपासक नहीं थे। स्वयं महावीरस्वामीके गणधर इन्द्रभूति आदि जो भगवानके मार्गके खास प्रवर्तक थे ब्राह्मण थे। यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि जिन (कर्मशत्रून् जयतीति जिनः), विजयी, या कर्मोंको जीतनेवाले उन्हीं लोगोंमें हो सकते हैं जिनकी परिस्थितियाँ साहस, वीरता, उदारता आदि गुणोंके विकास होनेके अधिक अनुकूल होती हैं। उस समय क्षत्रिय जैसे जयशील समाजमें ही यह योग्यता थी कि वह तीर्थंकरोंको—अरहंतोंको जन्म दे सके। भारतके अन्यान्य महापुरुष भी—राम, कृष्ण, बुद्ध आदि भी—क्षात्रियोंके ही वंशमें हुए हैं।

२ क्षत्रिय जब अपना काम कर चुके—अहिंसाधर्मका यथेष्ट प्रचार कर चुके, तब वे इस कार्यको छोड़कर वैश्य बन गये, यह कहना कोई युक्ति नहीं रखता। वे वैश्य ही क्यों बन गये ? क्षत्रिय ही क्यों न बने रहे ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अहिंसाप्रचारका काम बन्द करने पर जिस तरह वे वैश्य बननेके लिए स्वतंत्र थे उसी प्रकार क्षत्रिय बननेके लिए भी तो थे। वैश्यत्वमें उनके लिए ऐसा कोई खास प्रलोभन भी न था जो वे उसे ही स्वीकार करते। यह भी कैसे मान लिया जाय कि वे अपना काम पूरा कर चुके थे या जैनराजाओंके द्वारा अहिंसाका प्रचार धड़ाधड़ होने लगा था? यह काम इतना बड़ा था कि यदि महावीर स्वामीके समयसे लगातार आजतक वैसी ही तेजीसे चलाया जाता तो भी समाप्त न होता। जिस समय जैनधर्म उन्नतिके शिखरपर पहुँचा हुआ था, उस समय भी भारतवर्षका आधेसे अधिक भाग हिंसाप्रेमी–मांसभक्षी था और विदेशोंमें तो प्रायः सर्वत्र ही निरपराधी पशुओं और दूसरे जवोंपर छुरी चलाई जाती थी। इन सबको अहिंसाप्रेमी बनानेका काम क्या साधारण था?

३ इस समय यद्यपि जैनधर्मावलम्बियोंमें अधिक संख्या वैश्यवृत्तिवालोंकी ही है; परन्तु ब्राह्मण, क्षत्रिय, और शूद्र वर्णवालोंका सर्वथा अभाव नहीं हो गया है। दक्षिण और कर्नाटकमें 'जैनब्राह्मणोंके बहुतसे घर हैं, जो उपाध्याय कहलाते हैं। वहाँ ऐसे भी कोई सौ घर हैं, जो अपनेको क्षत्रिय बतलाते हैं। राजपूतानेके ओसवालोंके सैकड़ों खान्दान अब भी हथियार बाँधते हैं और यदि उनसे कोई वैश्य कहे तो वे अपनी अप्रतिष्ठा समझते हैं। वहाँके खण्डेलवाल भी अपनेको राजवंशीय समझते हैं। जैनहितैषीके पिछले अंकोंमें भंडारियों बच्छावतों और दूसरे राजपूतानेके जैनोंका जो इतिहास प्रकाशित हुआ है उससे मालूम होता है कि वहाँ अभी अभी तक क्षात्रधर्मकी पालना करनेवाले जैनोंकी खासी संख्या थी। दक्षिणमें एक 'कासार' नामकी जाति है जो काँसे पीतलके वर्तन बनाने और बेचनेका काम करती है। इस जातिके सैकड़ों घर जैन हैं, जो शिल्पवृत्तिके कारण शूद्र कहे जा सकते हैं। बरारमें भी कुछ शूद्रजातियाँ जैनधर्मको पालनेवाली हैं।

४ अब देखना यह है कि यह धर्म–जिसमें क्षत्रियोंकी प्रधानता थी–मुख्यतः वैश्योंका ही धर्म क्यों बन गया? तेरह लाख जैनोंमें साढ़े बारहलाखसे भी अधिक संख्या वैश्योंकी ही क्यों हो गई? जैसा कि हमने गताङ्कमें लिखा था संसारके अन्य पदार्थोंके समान धर्मोंमें भी परिवर्तन हुआ करते हैं। समयकी आवश्यकताओं और परिस्थितियोंके अनुसार उनमें भी धीरे धीरे अलक्ष्यभावसे थोड़ा थोड़ा परिवर्तन हुआ ही करता है। संसारमें ऐसा कोई भी धर्म नहीं है जो अपने ठीक उसी रूपको बनाये हुए हो–जिसमें कि वह अपने स्थापित होनेके समय था। अपनी इस परिवर्तनशीलताके कारण वे अनेक भेदों और उपभेदोंमें विभक्त भी हुआ करते हैं। ज्यों ही कोई नये परिवर्तनकी या नये सिद्धान्तके ग्रहणकी आवश्यकता होती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है और कोई शक्तिशाली विद्वान् या आचार्य उसकी पूर्तिका प्रयत्न करता है त्यों ही उसके विरोधी खड़े हो जाते हैं—विवाद खड़ा हो जाता है और अन्तमें दो भेद हो जाते हैं। आगे उनके चार, छह, आठ आदि विभाग होने लगते हैं। आज दुनियाका शायद ही कोई धर्म ऐसा हो, जिसकी दो चार शाखायें या सम्प्रदाय न हों। हमारा विश्वास है कि इस विषयमें जैनधर्म भी अपवादरूप नहीं है। उसमें भी समय समय पर अनेक परिवर्तन हुए हैं और वह भी अनेक भेद उपभेदोंमें बँटता रहा है। हम यह नहीं कहते हैं कि इन परिवर्तनोंके कारण जैनधर्म सर्वथा ही बदल गया है, अथवा उसके असलीरूपको हम देख ही नहीं सकते हैं; परन्तु यह अवश्य कहना पड़ेगा कि साधारण आँखोंसे उसके दर्शन नहीं हो सकते। उसके मूलरूपकी तो बहुत कुछ रक्षा हुई है, परन्तु उसका बाह्यरूप—उसका ऊपरी आवरण—बहुत ही बदल गया है। एक अहिंसाको ही ले लीजिए। इसका एकरूप तो उस समय प्रचलित था, जब जैनधर्मके पालनेवाले बड़े बड़े युद्ध करके खूनकी नदियाँ बहाते थे और एक स्वरूप अब प्रचलित है, जिसके कारण साधुओंकी तो बात ही जुदी है, साधारण नीचेसे नीचे दर्जेका श्रावक भी हिंसाके डरसे रातको चिराग नहीं जलाता है और दन्तधावनके बिना मुँहको दुर्गन्धका घर बनाये रहता है! हिंसाके स्वरूपमें या लक्षणमें अन्तर नहीं पड़ा है, पर उसका उपयोग किसे और किस प्रकार करना चाहिए, इसमें अन्तर पड़ गया है। हमारा खयाल है कि इसी प्रकारके अन्तर पड़ते रहनेसे जैनधर्ममें आजसे दो हजार वर्ष पहले जो जीवनप्रद तत्त्व थे, जिनसे मनुष्य कर्मवीर, कार्यक्षम और सच्चा महात्मा बन सकता था, वे धीरे धीरे कम होते गये और इसका परिणाम यह हुआ कि जैनधर्मको पालते हुए अपने क्षात्रधर्मका निर्वाह करना, या उसके तेजको बनाये रखना क्षत्रियोंके लिए कठिन हो गया। उनकी वृत्ति धीरे धीरे बदलती गई और उसने भीरु दुर्बल सहनशील वैश्यवृत्तिमें जाकर विश्राम लिया। क्षत्रियोंमें और वैश्योंमें जितना अन्तर है, हमारी समझमें उतना ही अन्तर पूर्वकालके और वर्तमानकालके जैनधर्ममें है। पं० सदासुखजीकृत रत्नकरण्डश्रावकाचारको पढ़कर क्षत्रिय वैश्य बन जायगा और वैश्य उदासीन, निराशावादी, कर्तव्यशून्य 'धर्मात्मा' बन जायगा। क्यों? इस लिए कि उसकी उपदेशप्रणाली ही ऐसी है। तत्त्व उसमें जैनधर्मके ही बतलाये गये हैं, पर यह खयाल नहीं रक्खा गया है कि गृहस्थोंका संसारको त्याज्य समझने, फूँकफूँककर पैर रखने और शुद्ध धर्मात्मा बन जानेके सिवाय और भी कुछ कर्तव्य है। जैनधर्मके प्राचीन साहित्यमें और पिछले साहित्यमें यही अन्तर है। आप जितना जितना पिछला साहित्य देखेंगे, उसमें वैश्य-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वृत्तिको गढ़नेवाले और क्षात्रवृत्तिको दबानेवाले उतने ही अधिक सामान पायँगे। जैनधर्ममेंसे क्षत्रियोंके कम करनेवाले या लुप्त करनेवाले इसके सिवाय और भी कारण होंगे, जिनका विचार विशेषज्ञोंके द्वारा होगा; परन्तु हमारी समझमें यह भी एक कारण हो सकता है। संभव है कि यह केवल भ्रम ही हो।

५ ब्राह्मणों और शूद्रोंके अभाव पर भी लगे हाथ विचार हो जाना चाहिए। ब्राह्मणोंकी वृत्ति यजन–याजन और पठन–पाठन आदि बतलाई गई है। पर जैनोंके यहाँ इसकी आवश्यकता नहीं। जैनधर्ममें उपदेश आदिका कार्य मुनि करते हैं। पुराणोंमें जहाँ कहीं किसीकी विद्याशिक्षाका जिक्र आता है, वहाँ यही लिखा रहता है कि अमुक राजपुत्र या राजपुत्रीने मुनि महाराजके पास जाकर विद्याध्ययन किया। पूजन पाठ और स्वाध्याय करनेका श्रावकोंको स्वयं अधिकार है। ये उनके नित्य षट्कर्मोंमेंसे दो प्रधान कर्म हैं। जैनधर्म यह मानता नहीं कि मैं आपके लिए प्रतिदिन पूजा अनुष्ठान या पुस्तकपारायण किया करूँ और उसका फल आपको मिले। चढ़े हुए द्रव्यको लेना या मन्दिरोंको लगी हुई भूमि या जागीरकी आमदनीसे निर्वाह करना जैनधर्ममें मना है। इसे 'निर्माल्य' माना है जिसका खाना महान् पाप है। ऐसी अवस्थामें जैनब्राह्मणोंका निर्वाह ही नहीं हो सकता और निर्वाहके—जीविकाके—अभावमें उनका अस्तित्व ही संभव नहीं। यही कारण है जो दक्षिण और कर्नाटक प्रान्तके थोड़ेसे उपाध्यायोंको छोड़कर सारे भारतवर्षमें जैनब्राह्मणोंका अभाव है। दक्षिण और कर्नाटकमें जो थोड़ेसे उपाध्याय हैं उनकी भी अवस्था अच्छी नहीं है। उन्हें निर्माल्य या देवद्रव्यसे ही अपनी जीविका चलानी पड़ती है। आदिपुराणोक्त संस्कारादि कर्म करानेसे जैनब्राह्मण अपना निर्वाह कर सकते हैं, ऐसा कहा जाता है; परन्तु एक तो अभी यह बात ही विवादग्रस्त है कि यह संस्कारपद्धति आदिपुराणके पहले भी थी या नहीं और दूसरे इन कर्मोंसे इनेगिने लोगोंका ही निर्वाह हो सकता है—लाखोंका नहीं।

६ दक्षिण और कर्नाटकमें जो जैन ब्राह्मण दिखलाई देते हैं, हमारी समझमें वे भगवज्जिनसेनाचार्यकृत आदिपुराणकी, उस समयकी परिस्थितिके अनुसार रची हुई, नवीन वर्णाश्रमसृष्टिके फल हैं। वे एक प्रतिभाशाली और अधिकारी आचार्य थे, इसमें सन्देह नहीं; पर यह रचना चिरप्रचलित जैनधर्मकी मूल प्रकृतिके अनुकूल नहीं थी इस कारण यथेष्ट समादृत नहीं हुई और उत्तर भारतमें तो इसका बीज ही नहीं जमा।

७ हम यह नहीं कहते कि ब्राह्मण लोग जैनधर्मके धारक ही नहीं हुए या हमारे आचार्योंने ब्राह्मणोंको जैन नहीं बनाया; नहीं,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लाखों ही ब्राह्मण जैनधर्मके उपासक हुए होंगे; परन्तु जैन होने पर उनकी ब्राह्मणवृत्ति न रही होगी। उन्हें वैश्यवृत्ति ग्रहण करनी पड़ी होगी और वे कुछ समय तक ब्राह्मण कहलाकर वैश्योंमें ही लीन हो गये होंगे। पद्मावतीपुरवारोंमें जो पांडे हैं वे ब्राह्मण बतलाये जाते हैं और कहा जाता है कि वे कहीं दक्षिणकी ओरसे बुलाये गये थे। कुछ समय तक तो उन्होंने किसी तरह दानदक्षिणासे अपना काम चलाया; परन्तु पीछे न चला और उन्हें भी वैश्यवृत्ति ग्रहण करनी पड़ी। लोग जानते हैं कि उनका बेटीव्यवहार पद्मावतीपुरवारोंके साथ अबसे लगभग १०० वर्ष पहले ही शुरू हुआ है।

८ अब शूद्रोंको लीजिए कि इनका अभाव कैसे हो गया। इनके पढ़ाने लिखानेकी या इनकी ज्ञानशक्तिको विकसित करनेकी ओर शायद ही कभी ध्यान दिया गया हो। ये लोग सदा अज्ञानमें ही पड़े रहे। इसलिए आज यदि एक जैन आचार्यने हजार दो हजार शूद्रोंको जैन बनाया, तो कल एक शैवाचार्यने आकर उन्हें शैव बना डाला। दक्षिणमें कासारोंके हजारों घर ऐसे हैं जो पहले जैन थे, उनके बनाये हुए जैनमन्दिर तक मौजूद हैं, पर अब वे शैव हैं। कुछ समय पहले एक थियोसोफिस्टने प्रकाशित किया था कि मद्रास प्रान्तके एक लाखसे अधिक जैन ईसाई बनाये जा चुके हैं और उनमें अधिकांश शूद्र थे। पिछले कई सौ वर्षोंसे जैनोंमें प्रभावशाली उपदेशकों और साधुओंका अभाव हो रहा है, इस कारण नये जैन तो कोई बनाये नहीं गये और पुरानोंको दूसरे धर्मवालोंने मूँड़ लिया। हमारी समझमें तो अभी यही एक कारण आता है जिससे जैनधर्मके माननेवालोंमें शूद्रोंका प्रायः अभाव हो रहा है। यह भी जान पड़ता है कि बहुतसे शूद्र जैन धीरे धीरे अपनी शूद्रवृत्तिको छोड़कर वैश्य बन गये हैं और इसविषयमें उन पर वैश्य जैनोंकी बड़ी भारी संख्याका प्रभाव पड़ा है। जैनोंमें एक दो जातियाँ ऐसी हैं भी जो पहले शूद्र थी, पर अब वैश्यवृत्तिसे निर्वाह करती हैं। दिगम्बरसम्प्रदायके अनुसार जैनसाधु शूद्रोंके यहाँ भोजन नहीं करते, शूद्र मोक्षका अधिकारी नहीं, वह अधिकसे अधिक क्षुल्लक हो सकता है—मुनि नहीं हो सकता, उसे शायद पूजन करनेकी भी आज्ञा नहीं है। संभव है कि इन संकुचित अधिकारोंका भी इस विषयमें प्रभाव पड़ा हो।

आशा है कि इस प्रश्नपर जैनसमाजके विद्वानोंका चित्त आकर्षित होगा और वे अपने अपने विचार प्रकट करके इसका समाधान करेंगे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रार्थना।

(ले०-श्रीयुत पं० गिरिधर शर्मा ।)

(१)

नाथ आपको हम नमते हैं,
हाथ जोड़ पैरों पड़ते हैं।
आप जानते हैं सब स्वामी,
घटघटके हो अन्तर्यामी ॥

(२)

हम मानव हैं सद्गुण पावें,
सारे दुर्गुण दूर हटावें।
कायरताके पास न जावें,
वीरपनेको लाड़ लड़ावें ॥

(३)

निज कर्तव्य कदापि न तज दें,
सदा सहारा दीनोंको दें।
लोकलोकमें जीवन भर दें,
मुरदोंको भी जीते कर दें ॥

(४)

आलसमें नहिं पड़े रहें हम,
नहीं खुशामद कहीं करें हम।
जिस शाखापर आश्रय पावें,
काट उसे नीचे न गिरावें ॥

(५)

सज धज कर हम अकड़ न जावें,
आपसमें लड़ यश न नसावें।
संशयमें पड़ मति न गुमावें,
आसमानमें उड़ें सुहावें ॥

(६)

विद्या ठौर ठौर फैलावें,
गहरे ज्ञान भेद प्रकटावें।
भारत गौरव जगमें छावें,
सारे जगमें जयी कहावें ॥

(७)

नहीं लालचोंमें फँस जावें,
नहीं किसीसे भय हम खावें।
सुदृढ रहें निज धर्म निभावें,
हो स्वाधीन सदा सुख पावें ॥

(८)

वह बल-विक्रम हममें आवे,
देख जिसे जग अचरज पावे।
सिंह चाटने पग लग जावे,
विजयवाद्य सुरवृन्द बजावे ॥

नोट—यह प्रार्थना विद्यार्थियोंको प्रातःकाल पढ़नेके लिए रची गई है। यदि जैनपाठशालाओं और विद्यालयोंके संचालक उचित समझें तो इसे काममें ले आवें। कई संस्थाओंके संचालकोंने ऐसी एक प्रार्थनाके लिए हमसे प्रेरणा भी की थी। -स०।

आजकल जेंटिलमैन (सभ्य पुरुष) बहुत ही साधारण शब्द हो गया है; परन्तु जेंटिलमैन असलमें हैं बहुत कम। जेंटिलमैनीके लिए बाहरी बातोंकी जरूरत नहीं है। अच्छे अच्छे कपड़ों और बड़े बड़े बंगले, कोठियोंकी भी जरूरत नहीं है। असलमें जेंटिलमैन वह है जिसके विचार उदार हैं, उद्देश्य उच्च हैं, सत्य पर जिसका अटल विश्वास है और सत्य ही जिसके जीवनका आधार है, जिसकी आवश्यकतायें बहुत थोड़ी हैं, जिसकी बड़े और छोटे, अमीर गरीब सबके साथ समान सहानुभूति है और जिसको अभिमान छूकर भी नहीं गया। अब बतलाइए, ऐसे आदमी कितने हैं? आपकी सभामें, आपकी मित्रमंडलीमें कौन कौन इन गुणोंसे विभूषित हैं? हम ऐसे सैकड़ोंके नाम ले सकते हैं जिनके कोट पतलून बड़े अच्छे बने हुए होते हैं। ऐसे भी बीसो बतला सकते हैं जिनमें बात चीत करने और रहन सहनके तरीके बड़े अच्छे हैं; परंतु जेंटिलमैन बहुत ही कम हैं। यदि कागज कलम लेकर उनके नाम लिखने बैठें तो शायद सौमें एक दो ही निकलें। —थेकरे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैनधर्म और जैनदर्शन ।

कलकत्तेसे 'मानसी और मर्मवाणी' नामकी एक उच्च कोटिकी बंगला मासिक-पत्रिका निकलती है। नाटोर-नरेश महाराज श्रीजगदिन्द्रराय और बाबू प्रभातकुमार मुखोपाध्याय बार-एट-ला उसके सम्पादक हैं। इसकी गत आषाढ़ और श्रावणकी दो संख्या-ओंमें 'जैनधर्म और दर्शन' शीर्षक एक विचारपूर्ण लेख प्रकाशित हुआ है जिसके लेखक श्रीयुत अम्बुजाक्ष सरकार एम. ए. बी. एल. हैं। पूरा लेख लगभग १९ पृष्ठोंमें समाप्त हुआ है। हम यहाँ अपने पाठकोंके लिए उसके केवल महत्त्वपूर्ण अंशोंका अनुवाद प्रकाशित करते हैं।

"पुण्यभूमि भारतवर्षमें हिन्दू, बौद्ध और जैन इन तीन प्रधान धर्मोंका अभ्युत्थान हुआ है। यद्यपि बौद्धधर्म भारतके अनेक सम्प्रदायों और अनेक प्रकारके आचारों व्यवहारोंमें अपना प्रभाव—अपनी छाप छोड़ गया है; परन्तु वह अपनी जन्मभूमिसे खदेड़ दिया गया है और सिंहल, ब्रह्मदेश, तिव्वत, चीन आदि देशोंमें वर्तमान है। इस समय हमारे देशमें बौद्धधर्मके सम्बन्धमें यथेष्ट आलोचना होती है; परन्तु जैनधर्मके विष-यमें अब तक कोई भी उल्लेख योग्य आलो-चना नहीं हुई। जैनधर्मके सम्बन्धमें हमारा ज्ञान बहुत ही परिमित है। स्कूलपाठ्य इति-हासोंके एक दो पाराग्राफोंमें महावीरप्रचारित जैनधर्मके सम्बन्धमें जो अतिशय संक्षिप्त विवरण रहता है, उसको छोड़कर हम कुछ नहीं जानते। जैनधर्मसम्बन्धी विस्तृत आलो-चना करनेकी लोगोंकी इच्छा भी होती थी, पर अभीतक उसके पूर्ण होनेका कोई विशेष सुभीता न था। कारण दो चार ग्रन्थोंको छोड़ कर जैनधर्मसम्बन्धी अगणित ग्रन्थ अभी-तक अप्रकाशित थे; भिन्न भिन्न मठोंके महन्त अपने मठोंके गुप्तगृहोंमें जैनग्रन्थोंको छुपाये हुए थे, इसलिए पाठ करने या आलोचना करनेके लिए वे दुर्लभ थे।

"बौद्धधर्मके समान जैनधर्मकी आलो-चना क्यों नहीं हुई, इसके और भी कई कारण हैं। बौद्धधर्म पृथिवीके एक तृतीयांश लोगोंका धर्म है, किन्तु भारतके ३० करोड़ लोगोंमें जैनधर्मावलम्बी केवल मात्र १४ लाख (वास्तवमें १३ लाखसे भी कम) हैं। इसी कारण बौद्धधर्मके समान जैनधर्मके गुरुत्वका किसीको अनुभव नहीं होता। इसके सिवाय भारतमें बौद्धप्रभाव विशेषताके साथ परिस्फुट है। इसलिए भारतके इतिहासकी आलोच-नामें बौद्धधर्मका प्रसङ्ग स्वयं ही आकर उप-स्थित हो जाता है। अशोकस्तम्भ, चीनयात्री

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हुयेनसंगका भारतभ्रमण आदि जो प्राचीन इतिहासकी निर्विवाद बातें हैं उनका बहुत बड़ा भाग बौद्धधर्मके साथ मिला हुआ है। भारतके कीर्तिशाली चक्रवर्ती राजाओंने बौद्ध-धर्मको राष्ट्रीयधर्मके रूपमें ग्रहण किया था, इसलिए एक समय हिमालयसे लेकर कुमारी तककी समस्त भारतभूमि पीले कपड़ोंसे रँग गई थी। किन्तु भारतीय इतिहासमें जैनधर्मने अपना प्रभाव कहाँतक विस्तृत किया था, यह अबतक भी मालूम नहीं हुआ है। भारतके अनेक स्थानोंमें जैनकीर्तिके जो अनेक ध्वंसावशेष वर्तमान हैं उनके सम्बन्धमें अच्छी तरह अनुसन्धान करके ऐतिहासिक तत्त्वोंके खोजनेकी कोई उल्लेख योग्य चेष्टा नहीं हुई। हाँ, कुछ वर्षोंसे साधारण चेष्टा हुई है। महसूर राज्यके श्रवणबेलगुल नामक स्थानके चन्द्रगिरिपर्वत पर जो थोड़ेसे शिलालेख प्राप्त हुए हैं, उनसे मालूम होता है कि मौर्यवंशके प्रतिष्ठाता महाराज चन्द्रगुप्त जैनमतावलम्बी थे। इस बातको मि. विन्सेंट स्मिथने अपने भारतेतिहासके तृतीय संस्करण (१९१४) में लिखा है; परन्तु इस विषयमें अबतक सब विद्वानोंकी एक राय नहीं हुई है। जैनशास्त्रोंमें लिखा है कि महाराज चन्द्रगुप्त छट्ठे (पाँचवें ?) श्रुतकेवली भद्रबाहुके द्वारा जैनधर्ममें दीक्षित हुए थे और महाराज अशोक भी पहले अपने पितामह-गृहीत जैनधर्मके अनुयायी थे; पर पीछे उन्होंने जैनधर्मका परित्याग करके बौद्धधर्म ग्रहण कर लिया था। भारतीय विचारोंपर जैनधर्म और जैनदर्शनने क्या प्रभाव डाला है, इसका इतिहास लिखनेके समग्र उपकरण अब भी संग्रह नहीं किये गये हैं। पर यह बात अच्छीतरह निश्चित हो चुकी है कि जैनविद्वानोंने न्यायशास्त्रमें बहुत अधिक उन्नति की थी। उनके और बौद्धनैयायिकोंके संसर्ग और संघर्षके कारण प्राचीन न्यायका कितना ही अंश परिवर्जित और परिवर्तित किया गया और नवीन न्यायके रचनेकी आवश्यकता हुई। शाकटायन आदि वैयाकरण, उमास्वाति, सिद्धसेन दिवाकर, भट्टाकलङ्कदेव आदि नैयायिक, टीकाकृत्कुलरवि मल्लिनाथ[1], कोषकार अमरसिंह[2], अभिधानकार, हेमचन्द्र, गणितज्ञ महावीराचार्य आदि विद्वान्, जैनधर्मावलम्बी थे। भारतीय विचार-जगत्, इन सबका बहुत कुछ ऋणी है।

"अच्छी तरह आलोचना न होनेके कारण अबतक जैनधर्मके विषयमें लोगोंके तरह तरहके ऊँटपटाँग खयाल हो रहे थे। कोई कहता था यह बौद्धधर्मका ही एक भेद है। कोई कहता था कि हिन्दूधर्ममें जो अनेक सम्प्रदाय हैं, उन्हींमेंसे यह भी एक है जिसे महावीरस्वामीने प्रवर्तित किया था। कोई कोई कहते थे कि जैन आर्य नहीं है, क्योंकि वे नग्नमूर्तियोंको पूजते हैं। जैनधर्म भारतके मूलनिवासियोंके किसी एक धर्मसम्प्रदायका

१–२ लेखक महाशयका यह भ्रम है। कालिदासके ग्रन्थोंके प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ और कोषकार अमरसिंह ये दोनों ही जैन नहीं थे। मल्लिनाथ वेदानुयायी और अमरसिंह बौद्ध थे। —सम्पादक।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

केवल एक रूपान्तर है । इस तरह नाना मुनियोंके नाना प्रकार कल्पनाप्रसूत मत फैल रहे थे, जिनकी असारता अब धीरे धीरे प्रकट होती जाती है ।

"यह अच्छीतरह प्रमाणित हो चुका है कि जैनधर्म बौद्धधर्मकी शाखा नहीं है। महावीर स्वामी जैनधर्मके स्थापक नहीं है, उन्होंने केवल प्राचीन धर्मका प्रचार किया था। महावीर या वर्द्धमानस्वामी बुद्धदेवके समकालिक थे। बुद्धदेवने बुद्धत्व प्राप्त करके धर्मप्रचारकार्यमें व्रती होकर जिस समय धर्मचक्रका प्रवर्तन किया था, उस समय महावीरस्वामी एक प्रसिद्ध धर्मशिक्षक थे। बौद्धोंके त्रिपिटक नामक ग्रन्थमें 'नातपुत्त' नामक जिस निर्ग्रन्थ धर्मप्रचारकका उल्लेख है, वह नातपुत्त ही महावीर स्वामी हैं। उन्होंने 'ज्ञातृ'[1] नामक क्षत्रियवंशमें जन्म ग्रहण किया था, इसलिए वे ज्ञातृपुत्र (पालीभाषामें ञातपुत्त) कहलाते थे। जैनमतानुसार महावीरस्वामी चौवीसवें या अन्तिम तीर्थंकर थे। उनके लगभग २०० वर्ष पहले तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथस्वामी हो चुके थे। अभीतक इस विषयमें सन्देह था कि पार्श्वनाथ स्वामी ऐतिहासिक व्यक्ति थे या नहीं; परन्तु डा० हर्मन जैकोबीने सिद्ध किया है पार्श्वनाथने ईस्वीसनसे पहले आठवीं शताब्दिमें जैनधर्मका प्रचार किया था। पार्श्वनाथके पूर्ववर्ती अन्य २२ तीर्थंकरोंके सम्बन्धमें अबतक कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिला है।

"तैर्थिक, निर्ग्रन्थ और नग्न नाम भी जैनोंके लिए व्यवहृत होता है। यह तीसरा नाम जैनोंके प्रधान और प्राचीनतम दिगम्बर सम्प्रदायके कारण पड़ा है। मेगास्थनीज इन्हें Gymnosphists या नग्न दर्शनिकके नामसे उल्लेख कर गया है।

"ग्रीसदेशमें एक ईलियाटिक नामका सम्प्रदाय हो गया है। वह एक नित्य परिवर्तनरहित अद्वैत सत्तामात्र स्वीकार करके जगतके सारे परिवर्तनों, गतियों और क्रियाओंकी संभावनाको अस्वीकार करता है। इस मतका प्रतिद्वन्द्वी एक हिराक्लीटियन सम्प्रदाय हुआ। वह विश्वतत्त्व (द्रव्य) की नित्यता सम्पूर्णरूपसे अस्वीकार करता है। उसके मतसे जगत् सर्वथा परिवर्तनशील है। जगत्स्रोत अवारित गतिसे बह रहा है; एक क्षण भरके लिए भी कोई वस्तु एक भावसे स्थितिशील होकर नहीं ठहर सकती। ईलियाटिक-सम्प्रदाय-प्रचारित उक्त नित्यवाद और हिराक्लीटियनसम्प्रदायप्रचारित परिवर्तन-वाद पाश्चात्य दर्शनोंमें समय समय पर अनेकरूपसे नाना समस्याओंके बीच होकर प्रकट हुए हैं। इन दो मतोंके समन्वयकी—मिलानेकी—अनेक वार चेष्टा भी हुई है; परन्तु वह फलवती कभी नहीं हुई। वर्त-

१ दिगम्बर सम्प्रदायके ग्रन्थोंमें महावीरस्वामीके वंशका उल्लेख 'नाथ' नामसे मिलता है, जो निश्चय ही 'ज्ञातृ' के प्राकृतरूप 'णात' का ही रूपान्तर है। —सम्पादक।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मान समयके प्रसिद्ध फरासीसी दार्शनिक वर्गसोन (Bergson) का दर्शन हिराक्लीटियनके मतवादका ही रूपान्तर है। वेदान्त दर्शनके नित्यवाद और बौद्धदर्शनके क्षणिकवादमें भी यह सदाका दार्शनिक विवाद प्रकाशमान हो रहा है। वेदान्तके मतसे केवल नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-सत्य-स्वभाव चैतन्य ही सत् है, शेष जो कुछ है वह केवल नामरूपका विकार, मायाप्रपञ्च-असत् है। शङ्कराचार्यने सत्‌शब्दकी जो व्याख्या की है उसके अनुसार इस दिखलाई देनेवाले जगत्प्रपञ्चकी कोई भी वस्तु सत् नहीं हो सकती। "यद्विषया बुद्धिर्न व्यभिचरति तत्सत्, यद्विषया बुद्धिर्व्यभिचरति तदसत्।"—गीता, शंकरभाष्य २-१६। भूत भविष्यत् वर्तमान इन तीन कालोंमें जिस वस्तुके सम्बन्धमें बुद्धिका व्यभिचार नहीं होता, वह सत् है और जिसके सम्बन्धमें होता है—वह असत् है। जो वर्तमान समयमें है, वह यदि अनादि अतीतके किसी समयमें नहीं था और अनन्त भविष्यतके भी किसी समयमें नहीं रहेगा, तो वह सत् नहीं हो सकता—वह असत् है। सत्‌शब्द परिवर्तनका प्रतियोगी है। जिसमें परिवर्तन होता है, हुआ है और होनेकी संभावना है वह असत् है। परिवर्तनशील असद्वस्तुके साथ वेदान्तका कोई सम्पर्क नहीं है। वेदान्तदर्शन केवल अद्वैत सद्ब्रह्मका तत्त्वानुसन्धान करता है। वेदान्तकी यही प्रथम बात है 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' और यही अन्तिम बात है। क्योंकि—"तस्मिन् विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति।"

"वेदान्तके समान बौद्धदर्शनमें कोई त्रिकाल अव्यभिचारी नित्यवस्तु नहीं मानी गई। बौद्ध क्षणिकवादके मतसे "सर्वं क्षणं क्षणं।" जगत्स्रोत अप्रतिहत या अरोकगतिसे बराबर बह रहा है—क्षणभरके लिए भी कोई वस्तु एक ही भावसे एक ही अवस्थामें स्थिर होकर नहीं रह सकती। परिवर्तन ही जगतका मूलमंत्र है। जो इस क्षणमें मौजूद है, वह आगामी क्षणमें ही नष्ट होकर रूपान्तरित हो जाता है। इस प्रकार अनन्त मरण और अनन्त जीवनोंकी अनन्त क्रीडायें इस विश्वनाटकमें लगातार हुआ करती हैं। यहाँ स्थिति, स्थैर्य, नित्यता असंभव है।

"स्याद्वादी जैनदर्शन वेदान्त और बौद्धमतकी आंशिक सत्यता स्वीकार करके कहता है कि विश्वतत्त्व या द्रव्य नित्य भी है और अनित्य भी है। वह उत्पत्ति, ध्रुवता और विनाश इन तीन प्रकारकी परस्परविरुद्ध अवस्थाओंसे युक्त है। वेदान्तदर्शनमें जिस प्रकार स्वरूप और तटस्थ लक्षण कहे गये हैं, उसी प्रकार जैनदर्शनमें प्रत्येक वस्तुको समझानेके लिए दो तरहसे निर्देश करनेकी व्यवस्था है। एकको कहते हैं निश्चयनय और दूसरेको कहते हैं व्यवहार नय। स्वरूपलक्षणका जो अर्थ है, ठीक वही अर्थ निश्चयनयका है। वह वस्तुके निज भाव या स्वरूपको बतलाता है। व्यवहार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नय वेदान्तके तटस्थ लक्षणके अनुरूप है। उससे वक्ष्यमाण वस्तु दूसरी किसी वस्तुकी अपेक्षासे वर्णित होती है। द्रव्य निश्चय नयसे ध्रुव है किन्तु व्यवहारनयसे उत्पत्ति और विनाशशील है। अर्थात् द्रव्यके स्वरूप या स्वभावकी अपेक्षा देखा जाय तो वह नित्यस्थायी पदार्थ है, किन्तु नियत परिदृश्यमान व्यवहारिक जगतकी अपेक्षा देखा जाय तो वह अनित्य और परिवर्तनशील है। द्रव्यके सम्बन्धमें नित्यता और परिवर्तन आंशिक या आपेक्षिक भावसे सत्य है—पर सर्वथा एकान्तिक सत्य नहीं है। वेदान्तने द्रव्यकी नित्यताके ऊपर ही दृष्टि रक्खी है और भीतरकी वस्तुका सन्धान पाकर, बाहरके परिवर्तनमय जगत्प्रपन्चको तुच्छ कहकर उड़ा दिया है; और बौद्ध क्षणिकवादने बाहरके परिवर्तनकी प्रचुरताके प्रभावसे रूप–रस–गन्ध–शब्द-स्पर्शादिकी विचित्रतामें ही मुग्ध होकर, उसके भीतरी, बहिर्वैचित्र्यके कारणीभूत, नित्य-सूत्रको खो दिया है। पर स्याद्वादी जैनदर्शनने भीतर और बाहर, आधार और आधेय, धर्म और धर्मी, कारण और कार्य, अद्वैत और विचित्र दोनोंको ही यथास्थान स्वीकार कर लिया है।

"इस तरह स्याद्वादने, विरुद्ध मतवादोंकी मीमांसा करके उसके अंतर्निहित आपेक्षित सत्यको स्वीकार करके उसे पूर्णता प्रदान की है। विलियम जेम्स नामके विद्वान् द्वारा प्रचारित Pragmatism मतवादके साथ स्याद्वादकी अनेक अंशमें तुलना हो सकती है। स्याद्वादका मूलसूत्र जुदे जुदे दर्शन शास्त्रोंमें जुदे जुदे आकारमें स्वीकृत हुआ है। यहाँ तक कि शङ्कराचार्यने पारमार्थिक सत्यतासे व्यवहारिक सत्यताको जिस कारण विशेष किया है, वह इस स्याद्वादके मूलसूत्रके साथ अभिन्न है। शंकराचार्यने परिदृश्यमान या दिखलाई देनेवाले जगतका अस्तित्व अस्वीकार नहीं किया है, उन्होंने केवल इसकी पारमार्थिक सत्ता अस्वीकार की है। बौद्ध विज्ञानवाद और शून्यवादके विरुद्ध उन्होंने जगतकी व्यवहारिक सत्ता अतिशय दृढताके साथ प्रमाणित की है। समतल भूमिपर चलते समय एकतल, द्वितल, त्रितल आदि उच्चताके नाना प्रकारके भेद हमें दिखलाई देते हैं; किन्तु बहुत ऊँचे शिखरसे नीचे देखनेपर सतखने महल और इकहरी कुटियामें किसी प्रकारका भेद नहीं जान पड़ता। इसी तरह ब्रह्मबुद्धिसे देखनेपर जगत मायाका विकाश ऐन्द्रजालिक स्वप्नमात्र–अनित्य है; किन्तु साधारण बुद्धिसे देखनेपर जगतकी सत्ता स्वीकार करनी ही पड़ती है। दो प्रकारका सत्य दो प्रकार Points of View से उत्पन्न है। वेदान्तसारमें मायाको जो प्रसिद्ध संज्ञा दी गई है, उससे भी इस प्रकारकी भिन्न दृष्टिजात भिन्नसत्यता स्वीकृत होती है। बौद्ध दृश्यवादमें शून्यका जो व्यतिरेकमुखी लक्षण दिया है, उसमें भी स्याद्वादकी छाया पाई जाती है। "सदसदुभुयानुभय–चतुष्कोटिविनिर्मुक्तं शून्यत्वम्"— अर्थात् अ-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्ति, नास्ति, अस्तिनास्ति दोनों, और आस्त नास्ति दोनों नहीं, इन चार प्रकारकी भावना-ओंके जो बहिर्भूत है, उसे शून्यत्व कहते हैं। इस प्रकार पूर्वी और पश्चिमी दर्शनोंके जुदे जुदे स्थानोंमें स्याद्वादका मूलसूत्र स्वीकृत होनेपर भी, स्याद्वादको स्वतंत्र दार्शनिक मतवादका उच्चासन देनेका गौरव केवल जैनदर्शनको ही मिल सकता है।

“जैनदर्शनके विश्वतत्त्व या द्रव्यके सम्बन्धमें जो कुछ कहा गया है उससे ही मालूम हो जायगा कि जैनदर्शन यह स्वीकार नहीं करता कि सृष्टि किसी खास समयमें उत्पन्न हुई है। एक ऐसा समय था जब सृष्टि नहीं थी, सर्व शून्यमय था, उस महाशून्यके भीतर केवल सृष्टिकर्त्ता अकेला विराजमान था और उसी शून्यसे किसी एक समयमें उसने इस ब्रह्माण्डको बनाया– इस प्रकारका मतवाद दार्शनिक दृष्टिसे अतिशय भ्रमपूर्ण है। शून्यसे– असत्से–सत्की उत्पत्ति नहीं हो सकती। सत्कार्यवादियोंके मतसे केवल सत्से ही सत्की उत्पत्ति होना संभव है। “नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।” सत्कार्यवादका यह मूलसूत्र संक्षेपमें भगवद्गीतामें मौजूद है। सांख्य और वेदान्तके समान जैनदर्शन भी सत्कार्यवादी है।

“जैनदर्शनमें जीवतत्वकी जैसी विस्तृत आलोचना है वैसी और किसी भी दर्शनमें नहीं है।

“वेदान्त दर्शनमें संचित, क्रियमाण और प्रारब्ध इन तीन प्रकारके कर्मोंका वर्णन है। जैनदर्शनमें इन्हींको यथाक्रम सत्ता, बन्ध और उदय कहा है। दोनों दर्शनोंमें इनका स्वरूप भी एक सा है।

“सयोग केवली और अयोग केवली अवस्थाके सहित हमारे शास्त्रोंकी जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्तिकी तुलना हो सकती है। जुदे जुदे गुणस्थानोंके समान मोक्षप्राप्तिकी जुदी जुदी अवस्थायें हमारे यहाँ भी स्वीकृत हुई हैं। योगवासिष्ठमें शुभेच्छा, विचारणा, तनुमानसा, सत्त्वापत्ति, संसक्ति, पदार्थाभावनी और नूर्यगा इन सात ब्रह्मविद् भूमियोंका वर्णन किया गया है।

“ पूर्वकथित संवर तत्त्व और प्रतिमापालन जैनदर्शनका चारित्र भाग है। इससे एक ऊँचे प्रकारका नैतिक आदर्श प्रतिष्ठापित हुआ है। सर्व प्रकार आसक्तिरहित होकर कर्म करना ही चारित्रसाधनकी मूल बात है। आसक्तिके कारण ही कर्मबन्ध होता है; अनासक्तहोकर कर्म करनेसे उसके द्वारा कर्मबन्ध नहीं होता। भगवद्गीतामें निष्काम धर्मका जो अनुपम उपदेश दिया है, जैनशास्त्रोंके चारित्रोपदेशमें उसकी छाया विशेष भावसे दिखलाई देती है।

“जैनधर्मने अहिंसातत्त्वको अतिशय विस्तारित करके व्यवहारिक जीवनको पग पग पर नियमित और विधिबद्ध करके एक उपहासास्पद सीमा पर पहुँचा दिया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसके सम्बन्धमें जितने विधिनिषेध हैं उन सबको मानकर चलना इस बीसवीं शताब्दीके जीवनसंग्राममें युक्तियुक्त और संभवपर है या नहीं, यह विचारणीय है ।

"जैनधर्ममें अहिंसाको इतनी प्रधानता क्यों दी गई है, यह ऐतिहासिकोंकी गवेषणाके योग्य है । जैनसिद्धान्तमें अहिंसा शब्दका अर्थ व्यापकसे व्यापकतर होकर, अपेक्षाकृत अर्वाचीन ग्रन्थोंमें वह गीतोक्त निष्काम धर्मके रूपान्तर भावमें ग्रहण किया गया है । तो भी, पहले अहिंसा शब्द साधारण प्रचलित अर्थमें ही व्यवहृत होता था, इस विषयमें कोई भी सन्देह नहीं है । वैदिक युगमें यज्ञ-क्रियामें पशुहिंसा निरतिशय निष्ठुर सीमा पर जा पहुँची थी । इस क्रूर कर्मके विरुद्ध उस समय कितने ही अहिंसावादी सम्प्रदायोंका उदय हुआ था, यह बात एक तरहसे सुनिश्चित है । वेदमें 'मा हिंस्यात् सर्व भूतानि' यह साधारण उपदेश रहनेपर भी, यज्ञ कर्ममें पशुहत्याकी अनेक विशेष विधियोंका उपदेश होनेके कारण, वह साधारण विधि केवल विधिके रूपमें ही पर्यवसित होगई थी, पद पद पर व्याहत और अतिक्रान्त होकर उसका कल्याणकर उपदेश विस्मृतिके गर्भमें विलीन हो गया था और अन्तमें 'पशु यज्ञके लिए ही बनाये गये हैं,' यह अद्भुत मतवाद प्रचलित हुआ था *। इसके फलसे वैदिक कर्मकाण्ड आलम्भित पशुओंके रक्तसे लाल होकर सब तरहके सात्विक भावोंका विरोधी हो गया था । जैन कहते हैं कि उस समय यज्ञकी इस नृशंस पशुहत्याके विरुद्ध जो कई मत खड़े हुए थे, उनमें जैन सबसे पहले थे । 'मुनयो वातवसनाः' कहकर ऋग्वेदमें जो नग्नमुनियोंका उल्लेख है, जैनोंका कथन है कि वे ही जैन दिगम्बर संन्यासी हैं ।

"बुद्धदेवको लक्ष्य करके जयदेवने कहा है—

निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातं
सदयहृदय दर्शितपशुघातम्'

किन्तु यह अहिंसातत्त्व जैनधर्मके साथ इस प्रकार अङ्गाङ्गी भावमें संयुक्त है कि जैनधर्म बौद्धधर्मके बहुत पहलेका स्वीकृत होनेपर पशुघातात्मक यज्ञविधिके विरुद्ध पहले खड़े होनेकी प्रशंसा बुद्धदेवकी अपेक्षा जैनधर्मको ही मिलेगी । वेदविधिकी निन्दा करनेके कारण हमारे शास्त्रोंमें चार्वाक, जैन और बौद्ध पाषण्ड या नास्तिक मतके नामसे विख्यात हैं । इन तीनों सम्प्रदायोंकी झूठी निन्दाकरके जिन शास्त्रकारोंने अपनी साम्प्रदायिक संकीर्णताका परिचय दिया है, उनके इतिहासकी पर्यालोचना करनेसे मालूम होगा कि जो ग्रन्थ जितना ही प्राचीन है, उसमें बौद्धोंकी अपेक्षा जैनोंपर उतना ही अधिक गाली गलौज है । अहिंसावादी जैनोंके निरीह मस्तकके ऊपर किसी किसी शास्त्रकारने तो श्लोकपर श्लोक ग्रथित करके मूसलधार वर्षा की है । उदाहरणके तौरपर विष्णुपुराणको ले लीजिए । अभी तककी खोजोंके अनुसार

* यज्ञार्थे पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयंभुवा ।
अतस्त्वां घातयिष्यामि तस्माद्यज्ञे वधोऽवधः ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विष्णुपुराण सारे पुराणोंसे प्राचीनतम न होने पर भी अतिशय प्राचीन है। इसके तृतीयांशके सत्रहवें और अठारहवें अध्याय केवल जैनोंकी निन्दासे पूर्ण हैं। नग्नदर्शनसे श्राद्धकार्य भ्रष्ट हो जाता है, और नग्नके साथ संभाषण करनेसे उस दिनका पुण्य नष्ट हो जाता है। शतधनु नामक राजाने एक नग्न पाषण्डसे संभाषण किया था, इस कारण वह कुत्ता, गीदड़, भेड़िया, गीध और मोरकी योनियोंमें जन्म धारण करके अन्तमें अश्वमेध यज्ञके जलसे स्नान करनेपर मुक्तिलाभ कर सका। जैनोंके प्रति (वैदिकोंको) प्रबल विद्वेष निम्नलिखित श्लोकसे प्रकट होता है:—

न पठेत् यावनीं भाषां प्राणैः कण्ठगतैरपि।
हस्तिना पीड्यमानोऽपि न गच्छेज्जिनमन्दिरम् ॥

"यद्यपि जैन लोग अनन्त मुक्तात्माओंकी उपासना करते हैं, तो भी वास्तवमें वे व्यक्तित्वविरहित पारमात्म्य स्वभावकी ही पूजा करते हैं। व्यक्तित्वरहित होनेके कारण ही जैनपूजापद्धतिमें वैष्णव और शाक्तमतके समान भक्तिकी विचित्र तरङ्गभङ्गोंकी संभावना बहुत ही कम है।

"बहुत लोग यह भूल कर रहे थे कि बौद्ध मत और जैनमतमें भिन्नता नहीं है। पर दोनों धर्मोंमें कुछ अंशोंमें समानता होने पर भी असमानताकी कमी नहीं है। समानतामें पहली बात तो यह है कि दोनोंमें अहिंसानीतिकी अतिशय प्रधानता है। दूसरे जिन, सुगत, अर्हत्, सर्वज्ञ, तथागत, बुद्ध आदि नाम बौद्ध और जैन दोनों ही अपने अपने उपास्य देवोंके लिए प्रयुक्त करते हैं। तीसरे दोनों ही धर्मवाले बुद्धदेव या तीर्थंकरोंकी एक ही प्रकारकी पाषाणप्रतिमायें बनवाकर चैत्यों या स्तूपोंमें स्थापित करते हैं और उनकी पूजा करते हैं। स्तूपों और मूर्तियोंमें इतनी अधिक सदृशता है कि कभी कभी किसी मूर्ति और स्तूपका यह निर्णय करना कि यह जैन है या बौद्ध, विशेषज्ञोंके लिए भी कठिन हो जाता है। इन सब बाहरी समानताओंके सिवाय मतवादमें भी दोनों धर्मोंकी कहीं कहीं सदृशता दिखती है; परन्तु उन सब विषयोंमें हिन्दूधर्मके साथ जैन और बौद्ध दोनोंका ही प्रायः ऐक्यमत्य है। इस प्रकार बहुत सी समानतायें होने पर भी दोनोंमें बहुत कुछ विरोध है। पहला विरोध, बौद्ध क्षणिकवादी है; पर जैन क्षणिकवादकी ऐकान्तिकता स्वीकार नहीं करता। जैनधर्म कहता है कि कर्मफलान्तक जन्मान्तरवादके साथ क्षणिकवादका सामञ्जस्य नहीं हो सकता। क्षणिकवाद माननेसे कर्मफल मानना असंभव है। जैनधर्ममें अहिंसा नीतिकी जितनी ज्यादती है उतनी बौद्धोंमें नहीं है। अन्य द्वारा मारे हुए जीवका मांस खानेकी बौद्धधर्म मनाई नहीं करता, उसमें स्वयं हत्या करना ही मना है। बौद्धदर्शनके पञ्च स्कन्दके समान कोई मनोवैज्ञानिक तत्त्व भी जैनदर्शनमें नहीं माना गया। बौद्धदर्शनमें जीवपर्याय अपेक्षाकृत सीमाबद्ध है, जैनदर्शनके समान उदार और व्यापक नहीं है। हिन्दूधर्मके समान जैनधर्ममें मुक्तिके मार्गमें जिसप्रकार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्तरोतर सीढ़ियोंकी बात है, वैसी बौद्ध धर्ममें नहीं है। जैन जातिविचार मानते हैं, पर बौद्ध नहीं मानते।

"जैन और बौद्धको एक समझनेका कारण जैनमतकी अच्छी तरह आलोचना न करना, इसके सिवाय और कुछ नहीं है। हमारे शास्त्रोंमें कहीं भी दोनोंको एक समझनेकी भूल नहीं की गई है। वेदान्तसूत्रमें जुदे जुदे स्थलों पर जुदे जुदे हेतुवादसे बौद्ध और जैनमतका खण्डन किया गया है। शंकर दिग्विजयमें लिखा है कि शंकराचार्यने काशीमें बौद्धोंके साथ और उज्जयिनीमें जैनोंके साथ शास्त्रार्थ किया था। यदि दोनों मत एक होते, तो उनके साथ दो जुदे जुदे स्थानोंमें दो बार शास्त्रार्थ करनेकी आवश्यकता नहीं थी। प्रबोधचन्द्रोदय नाटकमें बौद्ध भिक्षु और जैन दिगम्बरकी लड़ाईका वर्णन है।

"हिन्दूधर्मके साथ जैनधर्मका अनेक स्थलोंमें सादृश्य और अनेक स्थलोंमें विरोध है; परन्तु विरोधकी अपेक्षा सादृश्य ही अधिक है। इतने दिनोंसे कितने हीं मुख्य विरोधोंकी ओर दृष्टि रखनेके कारण वैर विरोध बढ़ता रहा और लोगोंको परस्पर अच्छी तरह देख सकनेका अवसर नहीं मिला। प्राचीन हिन्दू सब सह सकते थे; परन्तु वेदपरित्याग उनकी दृष्टिमें अक्षम्य अपराध था।

"हिन्दू धर्मका जन्म-कर्म-वाद जैन और बौद्ध दोनों ही धर्मोंका मेरुदण्ड है आर वह दोनों ही धर्मोंमें अविकृत रूपसे ले लिया गया है। जैनोंने कर्मको एक प्रकारके परमाणुरूप सूक्ष्म पदार्थके रूपमें कल्पना करके, केवल कितनी ही गुरुतर दार्शनिक समस्याओंकी सृष्टि की है, किन्तु उसमें कर्मफलवादकी मूल बात पूर्णरूपसे सुरक्षित है। हिन्दूदर्शनका दुःखवाद और जन्म-मरणात्मक दुःखरूप संसार सागरसे पार होनेके लिए निवृत्तिमार्गानुसारी मोक्षान्वेषण—यह हिन्दू बौद्ध और जैन, सबका ही मुख्य सूत्र है। निवृत्ति तपके द्वारा कर्मबन्ध क्षय होने पर आत्मा कर्मबन्धसे मुक्त होकर स्वभावको प्राप्त करेगा और अपने नित्य-बुद्ध-शुद्ध स्वभावके अमित गौरवसे महिमान्वित होगा। उस समय

> भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
> क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥

यह स्पष्ट भावसे जैन और हिन्दू शास्त्रोंमें घोषित हुआ है।

"जन्म जन्मातरोंमें कमाये हुए कर्मोंको वासनाविध्वंसी निवृत्तिमार्गके द्वारा क्षय करके परमपदप्राप्तिकी साधना हिन्दू, जैन और बौद्ध तीनों ही धर्मोंमें एक ही समान उपदेश की गई है। दार्शनिक मतवादके विस्तारमें और साधनाकी क्रियाओंकी विशिष्टतामें भिन्नता हो सकती है, किन्तु उद्देश्य और गन्तव्यस्थल सबका ही एक है—

> रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
> नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव॥

महिम्नस्तोत्रकी यह सर्वधर्म-बहुमान—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कारिणी उदारता हमारे शास्त्रोंमें बारबार उपदिष्ट होने पर भी संकीर्ण साम्प्रदायिक बुद्धिजनित विद्वेष हमारे प्राचीन ग्रन्थोंमें जहाँ तहाँ प्रकट हुआ है; किन्तु आजकल हमने उस संकीर्णताकी क्षुद्र मर्यादा अतिक्रम करके यह कहना सीखा है—

यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेतिवेदान्तिनो
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः।
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्मेति मीमांसकाः
सोऽयं वो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः॥

"ईसाकी आठवीं सदीमें इसी प्रकारके महान् उदार भावोंसे अनुप्राणित होकर जैनाचार्य भट्ट अकलङ्कदेव कह गये हैं:—

यो विश्वं वेद वेद्यं जननजलनिधेर्भङ्गिनः पारदृश्वा
पौर्वापर्याविरुद्धं वचनमनुपमं निष्कलङ्कं यदीयम्।
तं वन्दे साधुवन्द्यं सकलगुणनिधिं ध्वस्तदोषद्विषन्तं
बुद्धं वा वर्द्धमानं शतदलनिलयं केशवं वा शिवं वा।"

सम्पादकीय नोट—इस लेखमें हिन्दू-बौद्ध और जैनधर्मके विषयमें जो तुलनात्मक पद्धतिसे विचार किया गया है और दोनोंमें जो समानता बतलाई गई है, उसपर हमारे समाजके विद्वानोंको विचार करना चाहिए और जो भ्रम हों उन पर प्रकाश डालना चाहिए।

—आज हमें अपने विचार प्रकट करने चाहिए और आनेवाले दूसरे दिन उन पर विशेषरूपसे प्रकाश पड़नेपर यदि उनमें भ्रम मालूम हो तो उन्हें बदल देना चाहिए, परित्याग कर देना चाहिए अथवा उन्हींको परिमार्जित करके रखना चाहिए।— **'राल्फ वाल्डो ट्राइन'**।

—जो मनुष्य कभी अपने मन्तव्योंको नहीं बदलते, वे सत्यकी अपेक्षा अपने आपको विशेष चाहते हैं।— **'जोबर्ट'**

काश्मीरका इतिहास।

(ले०-श्रीयुत **बाबू सुपार्श्वदास गुप्त** बी. ए.।)

(गतांकसे आगे।)

गोनन्दीय वंश (११८२–१८० बी. सी.।)

प्रथम अभिमन्युके पश्चात् तृतीय गोनन्द राज्यका अधिकारी हुआ। यही गोनन्दीय वंशका संस्थापक माना जाता है। इसका भूतपूर्व्व प्रथम और द्वितीय गोनन्दोंके साथ कुछ सम्बन्ध था या नहीं, यह नहीं मालूम होता। यह भी आश्चर्यजनक ही है कि, प्रथम दो गोनन्दोंको छोड़कर तृतीय गोनन्द अपने वंशका चलानेवाला कहा जाता है। संभवतः इसका कारण यह हो सकता है कि, इसके वंशमें जितने राजे हुए हैं, सब पिता पुत्र, हैं। दूसरे वंशका कोई राजा इसमें शामिल नहीं है। डाक्टर स्टाइन इसके वंशको ऐतिहासिक मानते हैं, पर इसको नहीं। निस्सन्देह जिस वंशने एक हजार वर्षोंतक राज्य किया और जिसमें मिहिरकुल जैसा प्रसिद्ध ऐतिहासिक पुरुष हुआ, उसे अनैतिहासिक बताना ठेढ़ी खीर है। पर समझमें नहीं आता कि, जब गोनन्दीय वंशको ऐतिहासिक मानते हैं, तब वंशप्रवर्तक गोनन्दको ऐतिहासिक क्यों नहीं माना जाय। यह दूसरी बात है कि, उसके सम्बन्धमें राजतरंगिणीमें जो दो एक अलौकिक बातें लिखी हैं, वे विश्वसनीय न हों। राजतरंगिणीके अनुसार वह बौद्ध धर्मका विना-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शकर्त्ता और ब्राह्मण धर्मका उद्धारकर्त्ता हुआ है। ब्राह्मणधर्मके पुनर्जीवित होनेसे देशमें संजीवनी शक्तिका प्रवेश और राज्यमें प्रीतिका आविर्भाव हुआ। प्राचीन ढँगसे पूजा पाठ होने लगे। कल्हण लिखता है कि, जब श्रमण नामक एक बौद्ध वैरागी उसकी स्त्री-को बहका कर ले गया, तब क्रोधमें आकर उसने हजारों विहारोंको नष्ट कर डाला और हजारों गाँव ब्राह्मणोंको दान दे दिये। इसने ११८२ से ११४७ बी. सी तक ३६ वर्ष राज्य किया। इसके बाद इसके पुत्रपौत्रादि चार राजे हुए, जिन्होंने ११४७ से ९९३ बी. सी. तक १५४ वर्ष राज्य किया। इनके नाम प्रथम विभीषण, इन्द्रजीत, रावण और द्वितीय विभीषण हैं। राजतरंगिणीमें इनके बारेमें कोई ऐसी बात नहीं, जो उल्लेख योग्य है। वास्तवमें कल्हणने इनके सम्बन्धमें कुछ लिखा ही नहीं है।

द्वितीय बिभीषणके बाद उसका पुत्र प्रथम नर (किन्नर) सिंहासनका स्वामी हुआ। उसने ९९३ से ९५२ बी. सी तक ४१ वर्ष राज्य किया। कल्हणने इसका बड़ा लम्बा चौड़ा वृत्तान्त दिया है। इमारतें आदि बना-कर इसने काश्मीरकी शोभा बढ़ाई। प्रेम पाशमें पड़कर इसने एक ऐसा अनुचित कार्य्य किया जिससे इसका सर्वनाश हो गया। लिखा है कि, किसी नाराको एक अति सुन्दर कन्या थी, जिसका विवाह, एक ब्राह्मणसे हुआ था। एकवार अचानक राजाने उसे देख पाया और वह उसकी सुन्दरतापर मुग्ध हो गया। जब बहुत को-शिश करने पर भी वह उसके हाथ न आई, तब उसने अपने किसी नौकरको उसके घर उसे बलपूर्वक पकड़ लानेको भेजा। स्त्री पुरुषको जब नौकरके घरमें प्रवेश करनेकी आहट मिली, तब वे दोनों घरके पीछेकी खिड़कीके रास्ते निकल भागे। अन्तमें नरको अपने कुकर्मका फल भोगना पड़ा और उसका धर्मात्मा लड़का सिद्ध सिंहास-नका उत्तराधिकारी हुआ। नरने वितस्ता नदीके किनारे चक्रधर गाँवके पास एक सुन्दर नगर बसाया था, जिसका नाम उसने नरपुर रक्खा। यह नगर आधु-निक विजबहोर (वृजविहार) कस्बेके पास था। इस स्थानको देखने और यहाँसे निकले हुए खण्डहरों पर गौर करनेसे विश्वास होता है कि, किसी समय यहाँ एक सुन्दर नगर अवश्य था। नरके उत्तराधिकारी सिद्ध-के विषयमें केवल इतना ही लिखा है, कि वह अपने पिताके समान कुलांगार नहीं बल्कि एक धर्म्मात्मा और सत्यव्रत राजा था। लिखा है कि, वह धर्मबलसे सशरीर स्वर्गको चलगया। उसने ९५२ से ८९२ बी. सी. तक ६० वर्ष राज्य किया। उसके बाद उत्पलाक्ष, हिरण्ययक्ष, हिरण्यकुल और वसुकुल नामक चार साधारण राजे हुए, जिनके विषयमें राज्यकालके सिवा और कुछ नहीं लिखा है। इन्होंने ७०४ बी. सी. तक १८८ वर्ष राज्य किया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बसुकुलके बाद प्रासिद्ध ऐतिहासिक व्यक्ति उसका पुत्र मिहिरकुल राजा हुआ, जिसने ७०४ से ६३४ बी. सी. तक ७० वर्ष राज्य किया। राजतरंगिणीके बाहर इसके सम्बन्धमें जो प्रमाण मिले हैं, उनसे यह विश्वास होता है कि वह छट्ठी सदी ए. डी. के पूर्वार्धमें काश्मीरमें राज्य करता था। यह वही श्वेतांग हूण है, जिसके सम्बन्धमें हम इतना पढ़ते हैं। अपने पिता तोरामणके बाद ५१५ ए. डी. में उसके राज्यका उत्तराधिकारी होनेकी बात पहले पहल डाक्तर फ्लीटने शिलालेखादिके आधारोंपर निश्चय की थी। समझमें नहीं आता, किस प्रकार कल्हणने वसुकुलको मिहिरकुलका पिता और उसके राज्य करनेका समय १२०० वर्ष पहले ठहराया है। निस्सन्देह इस जगह कल्हणने अन्दाज, किम्बदन्ती अथवा किसी अनैतिहासिक तथा अविश्वसनीय प्रमाणसे काम लिया है। क्योंकि प्रसिद्ध चीनी यात्री हुयेनसंग तो उसकी क्रूरता और अत्याचारोंका वर्णन करता ही है, उसके पहलेका एक दूसरा चीनी यात्री भी जिसका नाम संगयन था, मिहिरकुलसे स्वयं भेट करनेका वृत्तान्त लिखता है। इसमें उसने उसे क्रूर राजाकी उपाधि दी है। यह बात भी छट्ठी सदीकी ही है। इससे स्पष्ट है कि मिहिरकुलका समय छट्ठी शताब्दीके सिवा दूसरा नहीं हो सकता। दूसरी बात यह भी है कि कल्हणने उसके सम्बन्धमें जितनी बातें लिखी हैं सभी इन यात्रियोंके वर्णनसे मिलती हैं और विश्वसनीय हैं। यदि मिहिरकुल कल्हणके लिखे अनुसार १२०० वर्ष पहले हुआ समझा जाय, तो राजतरंगिणीमें कुछ ऐसी अलौकिक बातें भी मिलनी चाहिए थीं; जैसी और राजाओंके विषयमें कही गई हैं और जिनपर किसीका विश्वास नहीं होता; क्योंकि १२०० वर्षोंमें ऐसी बातोंका ऐसे प्रसिद्ध राजाके सम्बन्धमें गढ़ा जाना संभव ही नहीं, बल्कि स्वाभाविक भी है। डाक्टर फ्लीटका कहना है कि, मिहिरकुलके राज्यका विस्तार काबुल वैलीसे मध्य भारत तक था और जब ५३० ए. डी. के लगभग वह अपने शत्रुओं द्वारा वहाँसे निकाल भगाया गया, तब उसने काश्मीरमें आकर शरण ली और वहींसे वह छः वर्षों (५४४ से ५५०) तक उसे पुनः प्राप्त करनेका उद्योग करता रहा। ऊपर मैंने उसके छट्ठी सदीमें होनेका जो दूसरा प्रमाण दिया है, उसके उत्तरमें राजतरंगिणीमें वर्णन किया हुआ उसके विस्तृत विजयका वृत्तान्त पेश किया जासकता है। पर स्मरण रहे कि, मुजमालुत–तवारीखमें भी इसका वर्णन सुरक्षित है। उसकी क्रूरताके दो एक उदाहरण जो राजतरंगिणीमें दिये हुए हैं, और जिनका चीनीयात्री भी जिक्र करते हैं, पाठकोंके विनोदार्थ यहाँ दिये जाते हैं। एक वार वह चन्द्रकुल्यां नामक नदीकी धाराको दूसरी ओर बहा लेजानेके अभिप्रायसे प्रयत्न कर रहा था कि, रास्तेमें उसे एक ऐसी चट्टानका सामना करना पड़ा, जो टससे मस नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होती थी। स्वप्नमें उसे मालूम हुआ कि, यह चट्टान पतिव्रता स्त्रीके सिवा दूसरेसे हट नहीं सकती। पतिव्रता होनेका दम भरनेवाली कितनी ही स्त्रियोंने आजमाइश की, पर कुछ फल न हुआ। अन्तमें एक कुम्हारकी चन्द्रावती स्त्रीने उसे स्थानान्तरित कर दिया। इसपर राजाको बड़ा क्रोध आया और उसने उच्चोकुलोद्भव तीन करोड़ स्त्रियोंको उनमें पति, पुत्र और भाइयों सहित मरवा डाला! इसीसे आनेवाली सन्तानने उसे 'त्रिकोटिहन' की उपाधिसे विभूषित किया। हुयेनसंगने भी काश्मीरमें उसके विषयमें ऐसा कहा जाते सुना था।

लिखा है कि जब वह हिन्दुस्थानको विजय कर काश्मीर लौट रहा था, तब उसने रास्तेमे पर्वतसे गिरे हुए एक हाथीको आलाप करते सुना। उससे वह इतना मुग्ध हुआ कि, उसने अपने सौ हाथियोंको पहाड़परसे कई हजार फुट नीचे गिराये जानेकी आज्ञा दी। अनुसंधान करनेसे इस स्थानका पता 'पीर पाँजाल' पासके पास लगा है। इसे लोग 'हस्तिभंज' कहते हैं। संभवतः यह वही स्थान है। यह ब्राह्मणधर्मका पोषक और बौद्धका विनाशकर्त्ता था। इसने कितनी ही बौद्धसंस्थायें नष्ट भ्रष्ट कर दीं। इसकी तरह बहुत कम राजाओंने मनुष्यहत्या की है।

उसके बाद उसका लड़का बक सिंहासनारूढ हुआ और उसने ६३४ बी. सी. से ६७१ बी. सी. तक ६३ वर्ष राज किया। वह अपने पिताकी तरह क्रूर और निर्दय न था। वह बड़ा धर्मात्मा और दयालु राजा हुआ। उसने कई मन्दिर बनवाये और गाँव बसाये। पर न मालूम क्यों उसकी मृत्यु एक डाइनके हाथसे हुई। कल्हणके समयमें भी यह बात काश्मीरियोंमें प्रचलित थी। उसके बाद उसीके वंशके क्षितिनन्द, वसुनन्द, द्वितीय नर और अक्ष नामक चार राजे हुए, जिन्होंने ५७१ से ३६९ बी. सी. तक २०२ वर्ष राज्य किया। चूँकि कल्हणने एक ही वाक्यमें इन्हें समाप्त कर दिया है, इसलिए डाक्टर स्टाइनका अनुमान है कि ये अनैतिहासिक व्यक्ति हैं।

अक्षके बाद उसका पुत्र गोपादित्य राजा हुआ, जिसने ३६९ से ३०९ बी. सी. तक ६० वर्ष राज्य किया। कहा जाता है कि, कई प्रसिद्ध स्थानोंमें उसने अग्रहरोंकी स्थापना की थी। लोगोंका यह भी विश्वास है कि, श्रीनगरसे पूर्व दो मीलकी दूरी पर एक पहाड़ी पर शंकराचार्य्यका जो मन्दिर है, वह इसीका बनाया हुआ है। यह तख्ते सुलेमानके नामसे भी मशहूर है। राजतरंगिणीमें इसे ज्येष्ठेश्वर बतलाया गया है। इसमें आजकल शिवका लिङ्ग है। इस पर्वतको गोपाद्रि भी कहते हैं।

गोपादित्यके पश्चात् उसका पुत्र गोकर्ण राजा हुआ, जिसने ३०९ से २९१ बी. सी. तक ५८ वर्ष राज्य किया। उसके बाद उसके पुत्र खिणखिल नरेन्द्रादित्यको शासनभार मिला।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोगोंका अनुमान है कि, यही देवशाही खिंगिल है। इसने २९१ से २१९ बी. सी. तक ३६ वर्ष राज्य किया। उसके बाद गोनन्दीय वंशका अन्तिम राजा अन्ध युधिष्ठर सिंहासनारूढ़ हुआ और उसने २१९ से १८० बी. सी. तक ३९ वर्ष राज्य किया। अपनी छोटी आँखोंके कारण वह अंध कहा जाता था। अपने राज्यकालके प्रथम कई वर्षों तक तो उसने धार्मिक जीवन व्यतीत किया; पीछे इन्द्रियोंके वशीभूत हो उसने प्रजा और मंत्रिवर्ग दोनोंको अप्रसन्न कर दिया। अन्तमें हार मानकर जब मंत्रियोंने इसके दुराचरणमें साथ देना छोड़ दिया, तब इसे भी असहाय हो सिंहासनको तिजांजली दे जंगलमें जाना पड़ा। कल्हण अपने ग्रंथका प्रथम तरंग यहीं समाप्त करता है।

भ्रमसंशोधन—पिछले अंकमें प्रमादवश कुछ अशुद्धियाँ रह गई हैं। पाठकोंको कृपा करके उनका संशोधन इस प्रकार करना चाहिए। ३४८ पृष्ठके दूसरे कालिमकी चौथी लाइनमें १८९४ की जगह ११८२ चाहिए। वास्तवमें १८९४ लौकिक वर्ष है। इसके ६ लाईन और नीचे 'यद्यपि राजतरंगिणीके अनुसार'से लेकर 'संदिग्ध अवश्य है' तकके बदले यह वाक्य होना चाहिए—"राजतरंगिणीके अनुसार यह समय असंभव नहीं है। क्योंकि १३९४ बी. सी. से ११८२ बी. सी. तक अशोक तथा उसके उत्तराधिकारी ६ राजाओंका राज्य करना भी असंभव नहीं कहा जा सकता।" आगे ३४९ पृष्ठपर दूसरे कालिमकी दूसरी लाइनमें १९ वींकी जगह १३ वीं और छठी लाइनमें १८९४ की जगह ११८२ चाहिए। —लेखक।

पतितोद्धार।

[ले०—श्रीयुत **विश्वंभरदास गार्गीय**।]

१

जिनधर्मका उपदेश है-"तुम द्वेष करना छोड़ दो।
अज्ञानताके जालको, बनसके तैसे तोड़ दो॥
जात्यादिके मदसे तिरस्कृत, मत किसीको भी करो।
संकीर्णताके स्थानमें औदार्यका आदर करो॥"

२

हैं शूद्र सेवक सदासे, सेवा हमारी कर रहे।
वे चाहते न समानता, अज्ञानतामें मर रहे॥
तो भी न हम समझें उन्हें, वे जानवर हैं या मनुज।
हा हन्त! गैर बनें हमारी भूमिके ही ये तनुज।

३

हा! श्वान सम आदर न अब, होता मनुजताके लिए।
कैसे हुए हैं सभ्य हम, निजस्वार्थसाधनके लिए।
चाहे मरें अन्त्यज कुचलकर, किसीकी गाड़ी तले।
पर छू सकेंगे हम न उनको, तत्सदृशतनुमें पले॥

४

यों कर घृणा हम हो गये, संसारमें सबसे गिरे।
पर शूद्र 'साहब' बन रहे, हो सदाको हमसे परे॥
अब पा रहे अधिकार वे, हम हिन्दुओंके सिर चढ़े।
हम घट रहे हैं संघबलमें, वे दिनोंदिन हैं बढ़े।

५

चेतो अभी तक ध्यान दो, इनको न ठुकराते रहो।
राष्ट्रीयताके मार्गमें, कंटक न बिखराते रहो॥
समझो इन्हें अपना, सहारा, प्रेमसे देते रहो।
आचार और विचार इनके, विशद नित करते रहो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सूक्तिमुक्तावली और सोमप्रभाचार्य।

[ले०—श्रीयुत **मुनि जिनविजयजी** ।]

सोमप्रभ नामक आचार्यका बनाया हुआ सूक्तिमुक्तावली नामका १०० पद्योंका एक छोटासा ग्रंथ जैनसमाजमें खूब आदर पा रहा है। इसकी रचना प्रसाद-गुणयुक्त मधुर और बोधप्रद है। इसके प्रत्येक पद्यमें नीति, भक्ति और वैराग्य आदि, विविध प्रकारके सन्मार्गमें प्रवृत्त करनेवाले उपदेशोंका उत्तम संग्रह है। इस पर न जाने कितने विद्वानोंने न जाने कितने टीका-टिप्पण और हिन्दी-गुजराती आदि प्रचलित देशभाषाओंके गद्यपद्यानुवाद लिखे हैं। इस तरह यह आकारमें लघु होनेपर भी गौरवमें एक तात्त्विक या महान् ग्रन्थकी बराबरीका मान पा रहा है। इसके प्रथम पद्यका आदि पद 'सिन्दूरप्रकरः' आदि है, इसलिए इसका दूसरा नाम 'सिन्दूरप्रकर' भी है। 'सोमशतक' के तीसरे नामसे भी यह प्रचलित है। क्योंकि इसके कर्त्ताका नाम सोमप्रभ है।

जैनसमाजके श्वेताम्बर और दिगम्बर नामक दोनों ही संप्रदायोंमें इसका आदर और प्रचार है। जिस प्रकार भक्तामर, कल्याणमन्दिर आदि स्तोत्रोंके कर्ताओंको दोनों संप्रदायवाले अपने अपने संप्रदायके प्रभावकपुरुष मानते हैं, और तत्त्वार्थसूत्रके रचयिता महर्षि उमास्वामी—(या उमास्वाति)—को अपने अपने मतानुसार सचेलक या अचेलक—सवस्त्र अथवा निर्वस्त्र—कह कर अपनाते हैं और उनके प्रति बहुमान प्रकट करते हैं, उसी प्रकार सोमप्रभाचार्यको भी श्वेताम्बर अपने आचार्य बतलाते हैं और दिगम्बर अपने और उनकी मुक्तावलीको सांप्रदायिक विरोध-दर्शक उद्गारोंके अभावके कारण निःशङ्क होकर अपने अपने हृदयमें धारण करते हैं। पर वास्तवमें सोमप्रभाचार्य कौन थे—दिगम्बर थे या श्वेताम्बर?

जो मनुष्य, सांप्रदायिक-मोहके वशीभूत होकर ही सोमप्रभाचार्यकी इस कृतिका आदर करते हैं और केवल धार्मिक पक्षपातके कारण ही इस ग्रंथमें उपयोगिता समझते हैं उन्हें उक्त प्रश्नका उत्तर अवश्य ही अरुचिकर होगा; परंतु जो गुणानुरागी और सत्यके अनुयायी हैं उनपर इसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ सकता। गुणग्राही और तत्त्वान्वेषी मनुष्य किसी व्यक्ति या कृतिका जो आदर-सत्कार करते हैं वह पक्षपात या स्वार्थ-साधनकी दृष्टिसे नहीं करते; किन्तु सत्यके स्वरूपको सुष्ठुतया समझनेके लिए उनका आतुर हृदय ही उन्हें वैसा करनेके लिए बाध्य करता है। जो सच्चा जैन है वह तो स्वयं भगवान् महावीरमें भी केवल श्रद्धा या धार्मिक-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विश्वासके वशीभूत होकर अपना प्रेमभाव प्रकट नहीं करता; किन्तु जब उनमें ' यथावदाप्तत्व ' आदि गुणोंकी बुद्धिपूर्वक सम्यक परीक्षा कर लेता है तब कहीं उन्हें मानता–पूजता है * । जो व्यक्ति या ग्रंथ सत्यका अनुयायी होकर उसके मार्गपर चलनेका उपदेश करता है, वह चाहे किसी सम्प्रदाय और किसी स्वरूपमें हो, सत्यग्राहक उसे अवश्य अपनायगा । यद्यपि ये उल्लेख प्रस्तुत विषयके साथ कोई सीधा संबंध नहीं रखते; परंतु हमारे समाजके वर्तमान धार्मिक–विचारोंने जो विचित्र वेष पहन लिया है उसे देखकर इस विषयमें दो शब्द लिखनेकी इच्छाका संवरण हम नहीं कर सके । हमारे समाजमें सांप्रदायिक मोह–अन्धश्रद्धा–का इतना प्राबल्य होगया है कि जिससे हम अपने धर्मके मूल-स्वरूपको बहुत कुछ भूल गये हैं । सत्योपदेष्टा श्रीमहावीरके सम्यक् तत्त्वोंपर हमने अपनी सङ्कुचित विचार-शीलताका ऐसा गहरा परदा डाल रक्खा है कि जिससे हम उनके–तत्त्वोंके–सत्यरूपको ठीक ठीक नहीं देख सकते । हमारी बुद्धिको अयोग्य पक्षपात–धार्मिक कदाग्रह–ने इस तरह दबा रक्खा है कि, वह स्वतंत्र विचारपूर्वक अपने आप सत्यासत्य और हेयोपादेयका सम्यग् निर्णय किसी प्रकार कर ही नहीं सकती । हमारे सामने कोई अज्ञात और कृत्रिम ग्रंथ लाकर रख दिया जाय और कह दिया जाय कि यह अमुक पूर्वाचार्यका बनाया हुआ है, चाहे फिर उसमें कुछ भी तत्त्व न हो–तो हम झट उसका आदरातिथ्य करने लग जायँगे और किसी प्रकार ' ननु न च ' किये बिना ही अन्यान्य ग्रन्थोंकी तरह उसकी उपादेयता स्वीकार कर लेंगे । इसी प्रकार किसी भिन्न सांप्रदायिक विद्वान्का बनाया हुआ ग्रंथ यदि हमें पसन्द आगया तो हम उसमें कुछ थोड़ासा परिवर्तन कर–आदि-अन्तके श्लोकोंमें नामादिका फेर फार कर–उसे अपने संप्रदायमें ले लेंगे । इस प्रकारके ग्रन्थचौर्यमें हमें कोई दूषण नहीं लगता–प्रत्युत अपने साहित्यमें इस प्रकार एक ग्रन्थकी वृद्धि हुई देख कर हमें आनन्द प्राप्त होता है ! परन्तु यदि उस ग्रन्थके मूलरूपको विकृत न बनाकर, असली रूपमें ही उसका वाचन-श्रवण किया जाय, तो हमारे सम्यक्त्वमें मालिन्य उत्पन्न हो जाता है ! हमारा नाम मिथ्यात्वके पृष्ठ-पोषकोंमें गिना जाता है ! ! श्वेताम्बर और दिगम्बर–दोनों ही संप्रदायोंमें, इस प्रकारके ग्रन्थचौर्य्यके अनेक उदाहरण दृष्टिगोचर हो रहे हैं ।

पाठक, आइए, इस विषयान्तरको यहीं छोड़ कर, अब हम मूलविषयकी तरफ दृष्टि डालें और देखें कि सोमप्रभाचार्यको अपने अपने आचार्य बतलानेमें, दोनों संप्रदायोंके पास क्या क्या प्रमाण हैं और वे कैसे हैं ?

---

* न श्रद्धयैव त्वयि पक्षपातो न द्वेषमात्रादरुचिः परेषु । यथावदाप्तत्वपरीक्षया तु त्वामेव वीर ! प्रभुमाश्रिताः स्मः ॥ —श्रीहेमचन्द्रसूरिः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पाठक जानते हैं कि, यह ग्रंथ सामान्य और हितकर उपदेश देनेवाला है और इसी लिए दोनों समुदायोंमें एकसा प्रिय हो रहा है। ऐसी दशामें, इसमेंसे ऐसे प्रमाण नहीं मिल सकते कि जिससे इसका संप्रदायत्व निश्चित किया जाय *। जो कुछ विचार किया जा सकता है वह केवल इसके अन्तिम पद्यपरसे—जिसमें कर्ताने अपना तथा अपने गुरु और दादा—गुरुका नामोल्लेख किया है।

अभजदजितदेवाचार्यपट्टोदयाद्रि—
द्युमणिविजयसिंहाचार्यपादारविन्दे।
मधुकरसमतां यस्तेन सोमप्रभेण
व्यरचि मुनिपनेत्रा सूक्तिमुक्तावलीयम्॥

अर्थ स्पष्ट ही है कि, श्रीअजितदेव नामक आचार्यके पदरूप उदयाचल पर सूर्यसमान विजयसिंहसूरि हुए; उनके चरणरूप कमलोंमें भ्रमरकी उपमाको धारण करनेवाले सोमप्रभाचार्य हुए; जिन्होंने इस सूक्तिमुक्तावलीकी रचना की। पुराने टीकाकारोंने भी यही भावार्थ लिखा है।

जहाँ तक हम खोज कर सके, दिगंबर साहित्य और इतिहासमें इस विषयका जानने लायक कोई उल्लेख नहीं मिला। न किसी पट्टावलीहीमें इन आचार्योंका वृत्तान्त मिला और न किसी ग्रन्थमें ही कोई उल्लेख नजर आया। * टीका-टिप्पण भी इसपर किसी दिगम्बर विद्वान्का बनाया हुआ देखनेमें नहीं आया*। हाँ, सुप्रसिद्ध कविवर श्रीबनारसीदासजीका किया हुआ इसका पद्यानुवाद अवश्य दिगम्बर-साहित्यकी शोभा बढ़ा रहा है। कविवरजीकी यह कृति बहुत ही उत्तम और प्रशंसनीय है। जितना आनन्द मूल ग्रन्थके पाठसे आता है उतना ही इस अनुवादसे भी। हमारा अनुमान तो यह कहता है कि कविवरजीके इस सुप्रयासने ही दिगम्बरसंप्रदायमें, इस ग्रंथको आदर दिलाया है और तत्पश्चात् ही उक्त समुदायमें इसके पठन पाठनका प्रचार हुआ है। ऐसा न होता तो कविवरजीके पूर्ववर्ती किसी विद्वानकी की हुई कोई टीका टिप्पणी अवश्य उपलब्ध होती; जैसा कि श्वेताम्बर-साहित्यमें देखा जाता है।

हमारे विचारसे इसकी प्रसिद्धि और प्रीतिमें मुख्य कारण उपर्युक्त कविवरजी ही हैं। एक तो दिगम्बर भाइयोंकी यह श्रद्धा है कि दिगम्बर-विद्वान् भिन्न संप्रदायके किसी भी ग्रन्थ पर उसके पोषणार्थ, एक अक्षर भी नहीं लिख सकता; ऐसी दशामें कविवरजीने जब इसका अनुवाद किया है तब यह ग्रन्थ हमारे ही संप्रदायका होना चाहिए और दूसरी बात यह है कि खुद कविवरजीने ही

---

* हमने लेखके अन्तमें एक ऐसा प्रमाण दिया है कि जिससे मालूम होता है कि यह ग्रन्थ किस सम्प्रदायका है। —सम्पादक।

* एक संस्कृत टीका अभी हाल ही निपाणी (बेलगांव) में छपी है, जो किसी दिगम्बर विद्वानकी बनाई हुई है, परन्तु उसमें टीकाकारका नाम नहीं है। इस पुस्तककी समालोचना इसी अंकमें अन्यत्र की गई है। —सम्पादक।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस पर दिगम्बरत्वकी मुहर (छाप) लगा दी है। बस इन्हीं दो कारणोंसे यह ग्रन्थ दिगम्बर सम्प्रदायका समझा जाने लगा है। देखिए, कविवरजीकी वह मुहर यह है:—

जैनवंश-सर-हंस **दिगम्बर**,
मुनिपति अजितदेव अति आरज ॥
ताके पट्ट वादिमद-भंजन,
प्रकटे विजयसेन आचारज ॥
ताके पट्ट भये सोमप्रभ,
तिन ये ग्रन्थ कियो हित कारज ।
जाके पढ़त सुनत अवधारत,
हैं सुपुरुष जे पुरुष अनारज ॥

—बनारसीविलास पृ० ६८।

यह पद्य सूक्तिमुक्तावलीके अन्तिम-पद्य का—जो ऊपर लिखा जा चुका है—भावानुवाद मात्र है। इस लिए जो बात मूलमें है उसीका भाव अनुवादमें आना चाहिए; परंतु इसमें उन्होंने अपनी तरफके चार अक्षर मिला दिये हैं जिससे यह मूलका ठीक ठीक संवाद न देकर एक पक्षका पक्षकार या वकील बन गया है और सोमप्रभ तथा उनके गुरु और दादा गुरु—सबको दिगम्बर बतलाता है। परन्तु इसमें जो दिगम्बर शब्द है उसे कविवरजीने अपनी ओरसे लिखा है। मूलमें यह शब्द या इसका पर्यायवाचक—अथवा भावोद्योतक भी—कोई शब्द नहीं है। इस शब्दको खास इच्छा-पूर्वक प्रयोग करनेमें उनका क्या आशय था सो जानना कठिन है; परंतु कल्पना करने पर दो अस्पष्ट कारण हमें प्रतिभात हुए। एक तो यह कि सूक्तिमुक्तावलीका श्वेताम्बर संप्रदायमें भी विशेष रूपसे प्रचार देख कर उन्हें इसके कर्ताके विषयमें विशेष जाननेकी इच्छा हुई हो और पूछताछ करने पर सोमप्रभाचार्यके दिगम्बर होनेमें, उन्हें कोई विश्वसनीय—ऐतिहासिक दृष्टिसे नहीं किन्तु सांप्रदायिक दृष्टिसे—बात ज्ञात हुई हो और फिर उसके आधारसे ऐसा स्वाभाविक लिखा गया हो। दूसरा यह कि, कविवरजी जब प्रथम श्वेताम्बर संप्रदायमें थे, तब, उन्हें यह ग्रंथ बहुत प्रियकर लगा हो; और फिर संप्रदायके परिवर्तन करनेका कारण उपस्थित होनेपर, अपने समान इसका भी संप्रदाय बदल देनेकी इच्छासे, उन्होंने इसका अच्छा अनुवाद बनाकर केवल चार अक्षरोंके संमिश्रणसे इसमें, दूसरे संप्रदायमें प्रविष्ट होनेकी शक्तिका संचार कर दिया हो। कुछ भी हो, परंतु यह ग्रन्थ उन्हें था बहुत प्रिय। इसके पाठसे उन्हें अनार्य भी आर्य होते प्रतीत होते थे। अपने इस अनुरागके कारण ही वे इसे दिगम्बर-संप्रदायमें आदर दिला गये।

अब हमें श्वेताम्बर साहित्यकी ओर दृष्टि डालना चाहिए और देखना चाहिए कि वह इस ग्रन्थके विषयमें क्या प्रमाण दे सकता है।

सोमप्रभाचार्य, श्वेताम्बरसंप्रदायकी मुख्य शाखा—जो तपागच्छके नामसे विख्यात है—उसके एक प्रतिष्ठित और पट्टधर आचार्य थे। विक्रमकी १३ वीं शताब्दीके पूर्वार्द्ध पर्यन्त ये विद्यमान थे। सुविख्यात जैनधर्मधारक महाराज कुमारपाल और जगद्विश्रुत आचार्य श्रीहेमचन्द्रजीके समयमें, गुर्जर—राजधानी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अणहिल्लपुरमें, ये बहुत रहा करते थे। कविचक्रवर्ती श्रीपाल और प्रसिद्ध धनिक दोहदिकी वसतियोंमें बहुत करके इनकी स्थिति हुआ करती थी। ये अपने समयके एक बड़े भारी विद्वान् और सम्मान्य आचार्य थे। हेम-कुमार-चरित, सुमतिनाथचरित, शृङ्गार-वैराग्य-तरंगिणी, आदि अनेक ग्रन्थोंकी, संस्कृत और प्राकृत भाषामें, इन्होंने रचना की है। इनकी प्रतिभा अलौकिक थी। इन्होंने एक काव्य बनाया है जिसके जुदा जुदा प्रकारके १०० अर्थ किये हैं। इस काव्य–चमत्कृतिसे मुग्ध होकर विद्वानोंने, इन्हें 'शतार्थिक' की महती उपाधि प्रदान की थी। इनके पदपर सुप्रसिद्ध श्रीजगचन्द्रसूरि प्रतिष्ठित हुए थे जिनसे बृहद्गच्छका नाम तपागच्छ पड़ा और जो आजतक प्रचलित है।

तपागच्छके आचार्योंकी पट्ट–परंपराके ५१ वें नम्बर पर मुनिसुन्दरसूरिका नाम है। ये आचार्य भी बड़े भारी विद्वान् और तेजस्वी माने जाते हैं। अध्यात्मकल्पद्रुम और उपदेशरत्नाकर आदि ग्रन्थ इन्हींके बनाये हुए हैं। इन ग्रन्थोंमें 'गुर्वावली' नामका भी ५०० पद्योंका एक ग्रन्थ है। यह ऐतिहासिक होकर रचनामें भी मनोहर हैं। इसमें श्रमण भगवान् श्रीमहावीरसे लेकर, कर्ताने, अपने समय तकके तपागच्छके आचार्योंका संक्षिप्त परंतु संशोधित इतिहास लिखा है। तपागच्छकी पट्टावलियोंमें यह पट्टावली सबसे पुरानी और प्रामाणिक गिनी जाती है। विक्रम संवत् १४६६ में इसकी रचना हुई है। अर्थात् सोमप्रभाचार्यके, लगभग २०० वर्ष बाद यह लिखी गई है। इस गुर्वावलीमें सोमप्रभाचार्य तथा उनके गुरु और दादा-गुरुका उसी क्रमसे उल्लेख है जैसा कि सूक्तिमुक्तावलीमें है। देखिए—

अष्ट–हयेश (११७८) मितेऽब्दे,
विक्रमकालाद्दिवंगतो भगवान्।
श्रीमुनिचन्द्रमुनीन्द्रो
ददातु भद्राणि सङ्घाय॥
तस्मादभूदजितदेवगुरुर्गरीयान्
प्राच्यस्तपःश्रुतनिधिर्जलधिर्गुणानाम्।
श्रीदेवसूरिरपरश्च जगत्प्रसिद्धो
वादीश्वरोऽस्तगुणचन्द्रमदोऽपि बाल्ये॥
तेष्वादिमाद्विजयसिंहगुरुर्बभासे
विद्यातपोभिरभितः प्रथमोऽथ तस्मात्।
सोमप्रभो मुनिपतिर्विदितः शतार्थी–
त्यासीद्गणीव मणिरत्नगुरुर्द्वितीयः॥

अर्थात्—संवत् ११७८ में श्रीमुनिचन्द्रसूरि स्वर्गको सिधारे। उनके दो प्रधान शिष्य हुए–एक अजितदेवसूरि और दूसरे देवसूरि। अजितदेवके शिष्य विजयसिंहसूरि हुए। उनके दो शिष्य थे जिनमें बड़े सोमप्रभ और छोटे मणिरत्नसूरि थे। यही वृत्तांत अन्य पट्टावलियोंमें तथा ग्रन्थोंमें भी लिखा हुआ है। उदाहरणके लिए, षड्दर्शनसमुच्चयके प्रसिद्ध टीका-कार श्रीगुणरत्नसूरिके क्रियारत्नसमुच्चयकी प्रशस्ति लीजिए—

नित्यं पपौ काञ्जिकमेकमम्भ–
स्तत्याज सर्वाविकृतीश्च सम्यग्।

१—जगच्चन्द्रसूरि इन्हीं मणिरत्नके शिष्य थे जिनसे तपागच्छ प्रसिद्ध हुआ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिगाय यो भावरिपूंश्च सोऽयं
श्लाघ्यो न केषां मुनिचन्द्रसूरिः ॥
तस्याभवन्नजितदेवमुनीन्द्रवादि-
श्रीदेवसूरिवृषभप्रमुखा विनेयाः ।
आद्यादभूद्विजयसिंहगुरुर्गरीयान्
निस्सङ्गतादिकगुणैरनिशं वरीयान् ।
ततः शतार्थिकः ख्यातः श्रीसोमप्रभसूरिराट् ।
सूरिः श्रीमणिरत्नश्च भारत्यास्तनयाविव ॥

ये प्रमाण तो उन अन्य ग्रन्थ-कारोंके हैं जो सोमप्रभाचार्यसे दो सौ वर्ष बाद हुए हैं। परन्तु, अब कुछ उल्लेख स्वयं सोमप्रभाचार्य-के दिये जाते हैं जो उनके अन्य ग्रन्थोंमें विद्यमान हैं। ऊपर हमने सोमप्रभाचार्यके किये हुए कुछ ग्रन्थोंके नाम दिये हैं उनमें 'हेम-कुमार-चरित' का नाम है। यह ग्रन्थ बहुत बड़ा है। कोई ७-८ हजार श्लोक प्रमाण है। इसकी रचना कुछ संस्कृत और कुछ प्राकृतमें हैं। महाराज कुमारपाल और आचार्य हेमचन्द्रका इसमें चरित वर्णित है। विक्रम सवत् १२४१ में इसकी समाप्ति हुई है। महाराज सिद्धराज जयसिंहके मान-पात्र और भ्रातृतुल्य प्राग्वाट (पोरवाड़) ज्ञातीय कविचक्रवर्ती श्रीश्रीपालके पुत्र सिद्ध-पाल-जो महाराज कुमारपालके बड़े प्रेमपात्र थे-की 'वसति' में रह कर यह बनाया गया था और स्वयं हेमचन्द्रसूरिके, महेन्द्र-मुनि, वर्द्धमान मुनि और गुणचन्द्रमुनि नामके विद्वान् शिष्योंने इसका श्रवण किया था। इस महत्त्ववाले ग्रंथमें, अन्तमें सोमप्रभाचार्यने जो अपनी गुरुप्रशस्ति दी है उसमें भी वही गुरुपरंपरा-वे ही तीनों नाम-क्रमसे मिलते हैं जो सूक्तिमुक्तावली और गुर्वावली आदिमें मिलते हैं। देखिए-

सूर्याचन्द्रमसौ कुतर्कतमसः कर्णावतंसौ क्षिते-
र्धुर्यौ धर्मरथस्य सर्वजगतस्तत्त्वावलोके दृशौ ।
निर्वाणावसथस्य तोरणमहास्तम्भावभूतामुभा-
वेकः श्रीमुनिचन्द्रसूरिरपरः श्रीमानदेवप्रभुः ॥
तयोर्विभूवाजितदेवसूरिः शिष्यो बृहद्गच्छनभःशशाङ्कः ।
जिनेन्द्रधर्माम्बुनिधिःप्रपेदे घनोदकः स्फूर्तिमतीव यस्मात्
श्रीदेवसूरिप्रमुखा बभूवुरन्येऽपि तत्पादपयोजहंसाः ।
येषामबाधा रचितास्थितीनां नालीकमैत्री मुदमाततान॥
विशारदशिरोमणेरजितदेवसूरेरभूत्
क्रमाम्बुजमधुव्रतो विजयसिंहसूरिः प्रभुः ।
मितोपकरणक्रियारुचिरनित्यवासी च य-
श्चिरन्तनमुनिव्रतं व्यधितदुःखमायामपि ॥
तत्पट्टपूर्वाद्रिसहस्ररश्मिः सोमप्रभाचार्य इति प्रसिद्धः ।
श्रीहेमसूरेश्च कुमारपालदेवस्य चेदं न्यगदच्चरित्रम् ॥

इन श्लोकोंका तात्पर्य पूर्वके श्लोकोंके जैसा ही है। ये ही श्लोक, कुछ थोड़ेसे शब्दोंके फेर फारके साथ, 'सुमतिनाथ-चरित' नामक ग्रन्थके अन्तमें भी दिये हुए हैं जो कुमारपालके राजत्व-कालमें लिखा गया था। विजयसिंहसूरिके एक शिष्य-अर्थात् सोमप्रभाचार्यके गुरु-भ्राता-हेमचन्द्र थे। उन्होंने, कोई १२०० श्लोक प्रमाण 'नाभेय-नेमि-द्विसन्धान' नामका गद्यपद्य-मय मनोहर काव्य लिखा है जिसका संशो-धन उक्त कवि-चक्रवर्ती श्रीश्रीपालने किया है। इसकी प्रशस्तिमें लेखकने जो अपनी गुरुपरंपरा लिखी है वह भी उपरि लिखित प्रशस्तिके समान ही है। पाठकोंके अवलो-कनार्थ हम उसे भी यहाँ पर उद्धृत कर देते हैं-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भक्तः श्रीमुनिचन्द्रसूरिसुगुरोः श्रीमानदेवस्य च
श्रीमान् सोऽजितदेवसूरिरभवत् षट्तर्कदुग्धाम्बुधिः।
सद्यः संस्कृतगद्यपद्यलहरीपूरेण यस्याप्रभ–
क्षिप्ता वादिपरम्परा तृणतुलां धत्तेस्म दूरीकृता ॥
श्रीमानाभूद्विजयसूरिरमुष्य शिष्यो
येन— —स्मरस्य शरान् गृहीत्वा + ।
कृप्तं चतुर्भिरनघं शरयन्त्रमग्रे
विश्वं तदेकविशिखेन वशं च निन्ये ॥
श्रीहेमचन्द्रसूरिर्बभूव शिष्यस्तथापरस्तस्य ।
भवहतये तेन कृतो द्विःसन्धानप्रबन्धोऽयम् ॥
एकाहनिष्पन्नमहाप्रबन्धः श्रीसिद्धराजप्रतिपन्नबन्धुः ।
श्रीपालनामा कविचक्रवर्ती सुधीरिमं शोधितवान् प्रबन्धम्

इन आवतरणों और प्रमाणोंसे विज्ञ-पाठ–कोंको निश्चय हो गया होगा कि जो सूक्ति-मुक्तावलीके कर्ता हैं वे ही हेमकुमारचरितादिके कर्ता हैं। गुर्वावली और क्रियारत्नसमुच्चयमें जिनका उल्लेख है वे सोमप्रभ तथा हेमकुमार-चरित और सिंदूरप्रकरके कर्ता सोमप्रभ भी एक ही हैं—भिन्न नहीं। ÷ ऐसी दशामें सोमप्रभाचार्यके श्वेताम्बर होनेमें किसी प्रकार-का सन्देह नहीं रहता।

अब हम अपने वक्तव्यको समाप्त करते हुए विज्ञवाचकोंसे एक निवेदन करते हैं कि यदि सूक्तिमुक्तावली वास्तविक हीं सूक्तियोंकी मुक्तावली है तो, चाहे उसके कर्ता दिगम्बर हों चाहे श्वेताबर; वह अपने ग्राहकका अवश्य ही समान-भावसे कल्याण कर सकती है। इसलिए यदि आप गुणग्राहक और सत्योपासक है तो संप्रदायके मिथ्यामोहमें न फँस कर, केवल तत्त्वदृष्टिसे, इसमें रहे हुए गुणोंका और गूँथे हुए सत्योंका, विवेकपुरःसर ग्रहण और उपासन करें। जीवन–प्रद सुमन्द पवनको श्वास द्वारा अपने हृदयमें भरते हुए मनुष्य, जिस प्रकार उसके उत्थानस्थानका विचार नहीं करते, उसी प्रकार जीवनको उन्नत बनानेवाले उत्तम–वचनोंको अपने अन्तःकरणमें प्रविष्ट करते समय उनके उद्भव-स्थानका विचार भी विचार नहीं करना चाहिए। सत्यके स्वरूपका साक्षात्कार करनेवाले तत्वज्ञोंका जगतके प्रति पवित्र सन्देश है कि–'बालादपि हितं ग्राह्यम्'। शमस्तु सर्वेषाम्।

+ यह काव्य कुछ अशुद्ध और अपूर्ण है। इसकी केवल एक ही प्रति–सो भी बहुत जीर्ण–पाटनके एक भाण्डारमें है।

—लेखक।

÷ डॉक्टर जी. आर, भाण्डारकरने भी अपनी रिपोर्टे यही लिखा है। देखिए–

"The Suktamuktavali of Somaprabhacharya, (No. 469), may also be mentioned in this connection. Somaprabhacharya represents himself to be the pupil of Vijayasinha who occupied the seat of High-priest after Ajitadev; (K. K.; Appendix II). All these names occur in the succession list of the pontiffs of the Tapagachcha, and Somaprabhacharya seems to have lived in the latter part of the twelth entury. (Ind. Ant., Vol. XI, p. 254.)"

Refort for the Search for Sanskrit Inss in the Bombay Presidency (1882-1883. by Bhandarkar—p. 42.

सम्पादकीय सम्मति—

१ सूक्तिमुक्तावलीमें 'संघाधिकार' नामका एक चार श्लोकोंका प्रकरण है जिसमें 'संघ' की प्रंशसा की गई है। यद्यपि दिगम्बर सम्प्रदा-यमें भी चतुर्विध संघकी प्रशंसा यत्र तत्र मिलती है; परन्तु वह इस रूपमें इतनी बढ़ा चढ़ाकर कहीं भी नहीं मिलती जितनी उक्त संघाधिकारमें है। संघकी भक्तिसे तीर्थंकरका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पद प्राप्त होता है, इन्द्र और चक्रीकी पदवी तो संघके भक्तके लिए न कुछ है, संघकी महिमाका वर्णन वाचस्पतिकी भी वाणी नहीं कर सकती, पवित्रताके कारण संघको 'तीर्थ' या तारनेवाला कहा है, संघको और तो क्या स्वयं तीर्थंकरदेव नमस्कार करते हैं, संघ समस्त गुणोंकी खान है, भगवत् संघ अतिशय पूजनीय है, आदि विशेषण उक्त संघाधिकारमें ऐसे हैं जो दिगम्बरसम्पदायके अनुयायीके लिए बिलकुल अपरिचित हैं। पर श्वेताम्बर सम्प्रदायमें संघका महत्त्व सचमुच ही बहुत अधिक वर्णन किया गया है और इससे हमारी समझमें यह ग्रन्थ श्वेताम्बरी ही जँच पड़ता है।

निर्णयसागरप्रेसकी काव्यमालामें जो सूक्तिमुक्तावली छपी है और जो तीन प्राचीन पुस्तकोंके आधारसे संशोधित हुई है, उसमें २२ वें नम्बरके श्लोकका तीसरा चरण इस प्रकार है:—

" यस्मै तीर्थपतिर्नमस्यति सतां यस्माच्छुभं जायते"

अर्थात् "जिस संघको तीर्थंकरदेव नमस्कार करते हैं और जिससे सबका कल्याण होता है।" परन्तु दिगम्बर सम्प्रदायमें यह बात मान्य नहीं है कि तीर्थंकरदेव संघको नमस्कार करते हैं, इसलिए दिगम्बर अधिकारकी या दिगम्बरोंकी छपाई हुई पुस्तकोंमें 'तीर्थपति' की जगह कहीं 'देवपति' और कहीं 'स्वर्गपति' पाठ मिलता है। यद्यपि साधारण दृष्टिसे स्वर्गपति और देवपति पाठ भी कुछ बुरे नहीं मालूम होते हैं और इनसे काम चल जाता है, परन्तु यह जाननेकी जरूरत है कि दिगम्बर सम्प्रदायमें कहीं इस बातका भी जिकर है या नहीं कि इन्द्रने संघको नमस्कार किया है। यदि ऐसा न हो तो उक्त पाठपरिवर्तन करना भी निरर्थक होगा।

२ कविवर बनारसीदासजी आध्यात्मिक पुरुष थे। उनकी रचनासे पता लगता है कि वे बहुत ही निष्पक्ष विद्वान् थे। उनमें इस प्रकारके साम्प्रदायिक मोहकी तो संभावना ही नहीं हो सकती है कि वे किसी श्वेताम्बर आचार्यको जानबूझकर दिगम्बर बना दें। या तो उनको स्वयं ऐसा विश्वास होगा कि यह दिगम्बर ग्रन्थ है, या जिस प्रतिपरसे उन्होंने अनुवाद किया होगा, उसकी ही किसी टीका टिप्पणीमें ग्रन्थके दिगम्बर होनेका उल्लेख होगा। बम्बईके तेरहपंथी मन्दिरमें बासोदेके भंडारसे आई हुई एक सूक्तिमुक्तावली है। इसके १३ पत्र हैं। प्रारंभका एक पत्र नहीं है। इसके अन्तमें लिखा है—" संवत् १६३० वर्षे चैत्र सुदि ८ बुद्धे दिने श्रीमूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे कुंदकुंदाचार्यान्वये अस्मिन मालवदेशे आचार्य पद्मनन्दिदेव तत्पट्टे आचार्य श्रीयशकीर्तिदेव तत् सिष्य ब्रह्म आसेसा इदं लिखितं। श्रेयस्तु कल्याणमस्तु। श्री। छ। " इससे मालूम होता है कि संवत् १६३० में यशकीर्ति भट्टारकके शिष्य आसेसा ब्रह्मचारीने इसे लिखा था। इसमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सूक्तिमुक्तावलीकी जो प्रशस्ति है, वह बहुत ही विलक्षण है। देखिए:—

अभजदजितदेवो वादिवादीन्द्रवज्रो
नृपतिविबुधवन्द्यो गौरसेनांघ्रिकंजे।
मधुकरसमतां यः सोमदेवेन तेन
व्यरचि मुनिपराज्ञा सूक्तिमुक्तावलीयम्॥

इत्याचार्य सोमदेवविरचितं सूक्तिमुक्तावली शास्त्र समाप्त।

डा० भाण्डारकरने अपनी सन १८८२-८३ की संस्कृत पुस्तकोंकी रिपोर्टमें सूक्तिमुक्तावलीकी जो दो प्रतियाँ लिखी हैं उनमेंकी भी एक प्रतिमें यही पद्य लिखा है। यह पद्य सूक्तिमुक्तावलीका वह अन्तिम पद्य परिवर्तित करके गढ़ा गया है जिसमें अजितदेव, विजयसिंह और ग्रन्थकर्ता सोमप्रभाचार्यका स्पष्ट वर्णन है। साफ मालूम होता है कि यह किसी सम्प्रदायमोहमुग्ध महात्माकी कारीगरी है। मालूम नहीं कौनसे गौरसेनशिष्य सोमदेवकी ख्याति बढ़ानेके लिए यह प्रयत्न किया गया है। अस्तु। इससे हम सिर्फ यह बतलाना चाहते हैं कि वि० संवत् १६३२ में भी—जब बनारसीदासजीका जन्म भी नहीं हुआ था—सूक्तिमुक्तावलीको दिगम्बर ग्रन्थ बनानेका प्रयत्न हो चुका था, तब यदि बनारसीदासजीके हाथमें भी कोई ऐसी प्रति आई हो जिसमें सोमप्रभको दिगम्बर लिखा हो तो कुछ आश्चर्य नहीं है।

इस तरह हमें भी यह ग्रन्थ एक श्वेताम्बराचार्यका बनाया हुआ ही प्रतीत होता है। पर यदि किसी सज्जनका ऐसा खयाल हो कि—नहीं, यह दिगम्बरसम्प्रदायका ही ग्रन्थ है, तो उन्हें इस विषयके प्रमाण लिखकर भेजना चाहिए। वे बड़ी खुशीसे प्रकाशित कर दिये जायँगे।

८

माताका पुत्रको जगाना।

(ले०—श्रीयुत **पं० रामचरित उपाध्याय।**)

(१)

नभोऽङ्कमें तारक-वृन्द खोगया,
निशेश भी तेज-विहीन होगया।
मनोहरा मोदमयी हुई दिशा,
उठो उठो पुत्र! रही नहीं निशा॥

(२)

ललाम है पूर्वदिशाऽऽस्य-लालिमा,
परन्तु है पश्चिम-भाग-कालिमा।
विलोकिए कौतुक है बड़ा भला,
उठो उठो पुत्र! प्रभात हो चला॥

(३)

दिनेश आना अब चाहता यहाँ,
सरोज-संघात विकाश पा रहा।
उठो उठो पुत्र! तमोऽवसान है,
प्रमाद-सेवा दुखका निधान है॥

(४)

न चन्द्रमा नष्ट हुआ समग्र है,
तमोनिहन्ता दिननाथ व्यग्र है।
यही घड़ी है सुख-सिद्धिके लिए,
उठो उठो पुत्र! सुबुद्धिके लिए॥

(५)

शशी कलंकी गिरता न क्यों कहीं?
घमण्डियोंका अवसान क्यों न हो?
इसी लिए आज जगा रही तुम्हें,
स्वधर्ममें पुत्र! लगा रही तुम्हें॥

(६)

निशान्तके साथ निशेश भी चला,
मनो महीके सिरसे टली बला।
दिखा रही है वह क्या छटा भली,
उठो उठो पुत्र! मधुव्रतावली॥

(७)

द्विरेफ गाके जगको जगा रहे,
सुकर्ममें हैं सबको लगा रहे।
न चूकिए पुत्र! परार्थके लिए
स्वबन्धुओंको उठिए उठाइए॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(८)

दिखा रहा है शिशु सूर्यधामको,
मिटा रहा है तम-शत्रु नामको।
विलोलता है जगमें बड़ी कड़ी,
चली गई पुत्र! विरामकी घड़ी॥

(९)

स्व-वंशका ज्ञान जिसे बना रहे,
भला कभी क्यों वह दुःखको सहे।
न भूल जाना तुम आर्यवंश हो,
जगो दुलारे! जगदीश–अंश हो

(१०)

मिली हुई भी उसकी न है रमा,
जिसे प्रिया है रिपुके लिए क्षमा,।
शशी इसीसे सब भाँति हीन है,
सुखाप्ति बेटा! बलके अधीन है॥

(११)

मनुष्य जो व्यर्थ प्रमाद-लिप्त है,
स्ववृद्धिहीमें अथवा सुतृप्त है।
कभी गिरेगा वह सोमसा सही,
सुनो, उठो पुत्र! विधेय है यही॥

(१२)

विवेकसे विक्रमसे विहीन हो,
अधर्मके आलसके अधीन हो।
विनष्ट जो हैं उनसे न बोलिए,
सुना न? हे पुत्र! दृगाब्ज खोलिए॥

(१३)

स्वगेहहीमें नर जो न तुष्ट हो,
कभी विधाता उससे न रुष्ट हो।
पड़े हुए हो किसके विचारमें?
उठो, लगो पुत्र! परोपकारमें॥

(१४)

अभिन्न है प्राक्तन कर्म भाग्यसे,
छिपी नहीं है यह बात प्राज्ञसे।
स्वदेश-सेवाव्रतसे न नहीं भगो,
उठो उठो पुत्र! सुकर्ममें लगो॥

(१५)

चलागया जो क्षण आपका अभी,
नहीं मिलेगा वह स्वप्नमें कभी।
स्वधर्मके ऊपर ध्यान दीजिए,
विनिद्र हो पुत्र! न देर कीजिए॥

(१६)

नरेश होवे अथवा सुरेश हो,
निरुद्यमी जो धन-आकरेश हो।
निपात होगा उसका अवश्य ही,
उठो उठो आँख खुली अभी नहीं॥

(१७)

प्रभावशाली कुलके मराल हो,
स्ववंश-कल्पद्रुप-आलवाल हो।
करो जरा पुत्र! स्ववंश नामको,
उठो सँभालो निजकाम धामको॥

(१८)

जिसे सिखाते तुम थे, तुम्हें वही–
सिखा रही है, पर होश है नहीं।
उठो दिखा दो निज तेज तो सही,
सुकार्यका पुत्र! मुहूर्त है यही॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सार्वजनिक धनकी जिम्मेवारी।

स्वं दातुं सुमहच्छक्यं दुःखमन्यस्य पालनम्।
दानं वा पालनं वेति दानाच्छ्रेयोऽनुपालनम्॥ +

मनुष्य, जिन बातोंसे उसका केवल निजका ही सम्बन्ध है उनमें चाहे जितना प्रमाद आलस्य आदि कर सकता है और उसके लिए उसको क्षमा भी मिल सकती है; पर पराये कामोंके लिए--उन कामोंके लिए जिनसे कि दूसरोंका— सर्वसाधारणका सम्बन्ध है—वह इतना स्वतन्त्र नहीं है। सार्वजनिक बातोंमें उसका जरासा भी प्रमाद अक्षम्य है। ऐसे काम उसे बड़ी सावधानीसे करना चाहिए।

आज हम और और सार्वजनिक कामोंको छोड़कर केवल सार्वजनिक द्रव्यके या पब्लिकके चन्देके सम्बन्धमें कुछ कहना चाहते हैं। हम देखते हैं कि आजकल सार्वजनिक कामोंके लिए—विद्यालय, आश्रम, पुस्तकालय, औषधालय, अनाथालय, मन्दिर, तीर्थ, पुस्तकप्रकाश, आदि सर्वोपयोगी कामोंके लिए जगह जगह चन्दा होता है, पर बहुत कम चन्दा करनेवाले ऐसे हैं जो इस चन्देके धनकी बड़ी भारी जिम्मेवारीको या उत्तरदायित्वको समझते हों। यद्यपि गवर्नमेंटने सार्वजनिक चन्दोंकी रक्षाके लिए और उनका दुरुपयोग न होने पावे इसके लिए बड़े बड़े कड़े कानून बना रक्खे हैं; परन्तु उनका उपयोग बहुत ही कम होनेपाता है, इस लिए लोग अपने इस उतरदायित्त्वको समझनेकी परवा भी बहुत ही कम करते हैं।

पर अब इस उत्तरदायित्वके महत्त्वको समझ लेनेकी बहुत बड़ी आवश्यकता है। सार्वजनिक संस्थायें खोलनेकी ओर हमारी प्रवृत्ति दिन पर दिन बढ़ती जाती है और हमारी उन्नतिके—प्रगतिके—लिए इस प्रवृत्तिका बढ़ना है भी बहुत आवश्यक; परन्तु यह बढ़ना तभी टिक सकता है, जब संस्थाओंके चलानेवाले अपनी पब्लिकके चन्देकी जिम्मेवारीको अच्छी तरह समझकर काम करें। यदि ऐसा न होगा, लोग अपनी जिम्मेवारियोंको न समझेंगे तो लोगोंको अविश्वास हो जायगा और तब लोग प्रयत्न करने पर भी—आवश्यकता समझनेपर भी—चन्दा देनेको हाथ न बढ़ायँगे।

'धनं वै प्राणाः।' विचारशीलोंने धनको एक प्राण बतलाया है। संस्थाओंके चलानेवालोंको जानना चाहिए कि आप लोगोंके हाथमें जब लोग अपने प्राणतुल्य धनको देते हैं, तब वे अपने उन प्राणोंकी भली भाँति रक्षा होनेकी भी आपसे आशा रखते

+ धन देना बहुत ही कठिन काम है और दूसरेके दिये हुएका पालन करना उससे भी कठिन है। दान करना और दूसरेके दिये हुएकी रक्षा करना, इनमें दानकी अपेक्षा रक्षा करना अधिक पुण्यका कार्य है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं। आपको केवल वे ही लोग चन्दा नहीं देते हैं जिनके यहाँ लाखों और करोड़ोंका धन है; किन्तु वे भी देते हैं जो साधारण स्थितिके हैं और जो बड़ी कठिनाईसे अपना निर्वाह करते हैं। उनके एक रुपये और एक आनेका मूल्य भी बहुत बड़ा है—प्राणोंसे वह सचमुच ही कम नहीं है। अतः उनके उस धनकी रक्षा प्राणोंकी रक्षाके ही समान बहुत सावधानीसे करना चाहिए। इसमें जरासा भी प्रमाद करना मानों प्राणघात करना है।

अपने--स्वोपार्जित या अपने बापदादोंके-धनको खर्च करनेमें आप जिस तरह स्वतंत्र हैं, उस तरह सार्वजनिक धनको खर्च करनेमें नहीं; इस धनकी जिम्मेवारी बहुत बड़ी है। उस धनके मालिक आप स्वयं हैं; परन्तु इस सार्वजनिक धनके, जिन्होंने वह धन दिया है वे, और जिनके लाभके लिए वह दिया गया है वे भी, मालिक हैं। अतः इसका खर्च आप केवल इच्छामात्रसे नहीं, किन्तु सबकी रायका और सबके लाभका खयाल रखकर कर सकते हैं। यदि आप ऐसा नहीं करते तो अन्याय करते हैं और लोगोंको सार्वजनिक कार्योंमें धन न देनेके लिए मानों परोक्षरूपसे उपदेश देते हैं। आपकी इच्छा ही यदि सर्व प्रधान हो जायगी, तो लोग अपना कष्टलब्ध धन आप जैसे लोगोंके हाथमें क्यों देंगे ?

देवद्रव्यके भोगनेमें पाप क्यों बतलाया गया है ? ' देवस्वं तु विषं घोरं न विषं विषमुच्यते ' आदि वाक्योंमें देवधनको विषसे बढ़कर क्यों बतलाया है ? पण्डितजन इसका चाहे जो कारण बतलावें, वे अदत्तादान आदिकी सूक्ष्म कल्पना करके इसकी तलीमें भले ही चोरीके पापको टटोलें; परन्तु हमारी मोटी समझके अनुसार तो इसके मूलमें यही सार्वजनिक धनकी जिम्मेवारीका महत्त्व छुपा हुआ है। जो धन एक मन्दिरको इसलिए अर्पण किया गया है कि उससे हजारों अन्यजन अपनी भक्तिभावनाको चरितार्थ करके पुण्य उपार्जन करें, उसे यदि कोई हजम कर जाय, तो कहना होगा कि उसने सर्व साधारणके एक पुण्यद्वारको बन्द कर दिया और सबके हितका घात करना यह चोरीकी अपेक्षा भी बहुत बड़ा पाप है। मन्दिरके ही समान विद्यालय, पुस्तकालय, तीर्थक्षेत्र आदि संस्थाओंका भी धन है, अर्थात् यह भी एक प्रकारका देवद्रव्य है। सेवाधर्ममें जनता भी एक देव है, अतएव इस दृष्टिसे भी उसकी सेवाके धनको देवधन कह सकते हैं। उसके धनके हरणमें और दुरुपयोग आदिके करनेमें पाप अवश्य है और वह बहुत बड़ा पाप है।

जिन लोगोंको सार्वजनिक धनके व्यय करनेका अधिकार दिया गया है, उनका कर्तव्य केवल यही नहीं है कि वर्षभरमें एक बार आमदनी और खर्चका हिसाब प्रकाशित कर दिया और छुट्टी पा ली। (यद्यपि बहुत लोग यह भी समय पर नहीं करते हैं, और कोई तो करते ही नहीं हैं।) उनका यह भी कर्तव्य है कि वे जो कुछ खर्च करें, वह ऐसी किफायतशारीसे करें कि उससे कम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खर्चमें किसी तरह काम हो ही नहीं सकता हो। मितव्ययता या किफायतशारीके सूत्रोंकी ओर उसका पूरा पूरा ध्यान होना चाहिए। पर हम अपनी वर्तमान संस्थाओंमें ऐसा बहुत ही कम देखते हैं। कहीं कहीं तो अंधाधुंध खर्च किया जाता है। दो तीन वर्ष पहले काशीस्याद्वादपाठशालाका वार्षिकोत्सव किया गया था जिसमें उसके शौकीन संचालकोंने सिर्फ ४०० रुपयोंकी स्वीकारता होनेपर भी ढाई तीन हजार रुपये केवल ऊपरी ठाटवाटमें ही स्वाहा कर दिये थे। एक और संस्थाके संचालकने अपने पढ़नेके लिए एक अध्यापकको रख छोड़ा था जिसे ६०) रुपया मासिक वेतन दिया जाता था और वे यह लगभग ७००–८०० रुपया सालका भारी बोझा कई वर्षतक संस्थाके ही सिरपर डाले रहे थे। अभी थोड़े ही दिन पहले हमने एक ऐसी संस्थाकी रिपोर्ट देखी थी जिसकी आर्थिक स्थिति बहुत ही मामूली है,पर उसकी कई फार्मोंकी रिपोर्ट कीमती आर्ट पेपर पर छपी हुई थी! वास्तवमें कामकी ओर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए, नामकी या दिखावटकी ओर कम, पर हमारे यहाँ दिखाऊपन दिन पर दिन बढ़ता जाता है। यह हम मानते हैं कि कभी कभी लोगोंका चित्त आकर्षित करनेके लिए मितव्ययताके सूत्रोंकी पूरी पूरी पालना नहीं हो सकती है; परन्तु यह निश्चित है कि यदि पूरी पूरी पालना की जायगी तो उसकी ओर लोगोंका चित्त और भी अधिक आकर्षित होगा।

सार्वजनिक संस्थाओंके संचालक हमारे समाजमें दो प्रकारके हैं—एक तो वे जो सर्वसम्मतिसे नियत किये गये हैं और थोड़ा बहुत स्वार्थत्याग करके इन कार्योंको करते हैं और दूसरे वे जिन्होंने स्वयं बड़ी बड़ी रकमें देकर संस्थाओंको स्थापित किया है। हमारी समझमें इन दोनोंको ही एकसा मितव्ययी होना चाहिए। लखपती और करोड़पती सेठ अपने निजके कामोंमें चाहे जितने अमितव्ययी या फिजूलखर्च हों,उससे सर्व साधारणका कोई विशेष सम्बन्ध नहीं; पर उनकी स्थापित की हुई संस्थाओंमें यदि उनके द्वारा फिजूल खर्च होगा, तो वह अन्याय होगा। क्योंकि वास्तवमें उस संस्था पर उनका उतना ही अधिकार है जितना और सबका है; क्योंकि वह सबकी चीज बना दी गई है। यह बात दूसरी है कि उनसे कोई कुछ कह न सके; पर न कह सकनेसे उनका अन्याय न्याय नहीं कहा जायगा।

दानवीर सेठ हुकमचन्दजीकी इन्दौरकी संस्थाओंकी इमारतोंको देखकर यह खयाल आये बिना नहीं रहता कि यदि सेठजीको सार्वजनिक द्रव्यके उत्तरदायित्वका खयाल होता, यदि वे इस कार्यमें मितव्ययतासे काम लेते, तो उनकी संस्थाओंसे जितने लोगोंको लाभ पहुँच रहा है उससे दूने लोगोंको पहुँचता। अवश्य ही इमारतें इतनी शानदार न बनतीं और दूरसे देखनेवालों पर सेठजीके दानका इतना अधिक प्रभाव न पड़ता; परन्तु काम निस्सन्देह अधिक होता। पर अभी कामकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तरफ लक्ष्य ही कहाँ है ? यदि कामकी तरफ लक्ष्य होता तो उदासीनोंके—विरक्त लोगोंके रहनेके लिए—तक्कूगंजमें १०—१२ हजार रुपयोंकी पक्की इमारत न बनवाई जाती, मामूली झोंपड़ियोंसे ही आश्रमका काम निकाल लिया जाता।

दूसरे प्रकारके संचालकोंमें भी बहुत कम लोग ऐसे हैं जो अपने उत्तरदायित्वको समझते हों। उनमें भी जो आनरेरी अवैतनिक काम करनेवाले हैं वे तो संस्थाओंके सर्वशक्तिमान् विधाता ही बन जाते हैं। उन्हें इस बातका ख़याल ही नहीं रहता कि स्वार्थत्यागीका महत्त्व 'स्वामी' बननेमें नहीं किन्तु 'सेवक' बननेमें है। यदि तुम स्वामी बन गये, तो तुमने अपने स्वार्थत्यागका बदला पा लिया—वेतन वसूल कर लिया—इससे अधिक और क्या चाहते हो ? वास्तवमें तुम्हारी शोभा इसीमें है कि अपने मान सम्मानकी अपेक्षा संस्थाके लाभ हानिकी ओर अधिक ध्यान रक्खो और सर्व सम्मतिके बिना कोई भी काम मत करो। हम ऐसे कई आनरेरी कार्यकर्ताओंको जानते हैं कि यदि संस्थायें उनके बदले वैतनिक कर्मचारी रखकर काम चलातीं, तो उनके वेतन देकर भी वे अधिक लाभमें रहतीं—उनके अन्धाधुन्ध खर्चोंसे बची रहतीं।

जैनसमाज बहुत अज्ञान है। उसमें ऐसे ही दानी अधिक हैं जो 'दे देने' में ही पुण्य समझते हैं। इस ओर उनका बहुत ही कम ध्यान जाता है कि हम जो देते हैं, उसका सदुपयोग भी होता है या नहीं। सार्वजनिक संस्थाओंके संचालकोंकी शिथिलताका यह भी एक बड़ा भारी कारण है। उनके ऊपर जनताका या लोकमतका उतना अंकुश नहीं रहता जितना कि रहना चाहिए। यदि जनता अपने धनके सदुपयोगका भी खयाल रखने लगे, जहाँ सदुपयोग न होता हो, वहाँ एक पाई भी न देवे तो बहुतसी संस्थायें सुधर जायँ, उनकी अन्धाधुन्धी आपसे आप कम हो जाय। ऐसे अनेक तीर्थक्षेत्र हैं जहाँके द्रव्यका कुछ पता नहीं है कि कहाँ गया और कहाँ जाता है, तो भी दाता लोग दिये ही जाते हैं—उन्हें अपने पुण्यसम्पादनमें शंका ही नहीं होती।

लोकमतका प्रभाव कम रहनेसे संस्थाओंके संचालक मस्त सोया करते हैं। उन्हें अपनी जिम्मेवारीका खयाल आवे ही क्यों, जब कोई पूछनेवाला ही नहीं है ? स्वर्गीय बाबू देवकुमारजीका सिद्धान्तभवन सार्वजनिक संस्था है। उसके लिए वे जो कुछ दे गये हैं वह सार्वजनिक धन हो गया है और लोगोंने उसमें जो थोड़ा बहुत धन दिया है वह भी सार्वजनिक है। परंतु आज ६—७ वर्षसे न तो उसकी कोई रिपोर्ट ही निकलती है और न कोई काम ही होता है। जैनसिद्धांतभास्कर निकलता था सो वह भी बन्द होगया। लोगोंको यह भी मालूम नहीं हुआ कि भास्करमें जो लगभग दो ढाई हजार रुपयाका घाटा रहा है, वह भवनसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिया गया है या सम्पादक महाशयने अपनी गाँठसे लगाया है। वंगीय सार्वधर्मपरिषत्-का काम बन्द हुए कई वर्ष हो गये, पर उसके मंत्री कुमार देवेन्द्रप्रसादजीने अब तक भी उसका हिसाब प्रकाशित नहीं किया। कितने रुपये एकट्ठे हुए थे और कितने खर्च किये गये, कुछ पता नहीं। सुनते हैं, सेठ नाथारंगजीने अपनी सहायताके रुपयोंके विषयमें बहुत कुछ लिखा पढ़ी की, पर फल कुछ भी नहीं हुआ। तीर्थक्षेत्र-कमेटीके महामंत्री लाला प्रभुदयालजीने बाहुबलि स्वामीकी तस्वीरोंका बेचना बन्द कर दिया जाय, इसके लिए दो तीन वर्ष पहले जैनमित्रमें 'भयंकर' आन्दोलन उठाया था और सुनते हैं कि लगभग ८००–९०० रुपयेका चन्दा एकट्ठा किया था; परंतु उसका भी हिसाब अब तक प्रकाशित न किया गया। लोगोंको यह भी मालूम न हुआ कि जब कोई मुकद्दमा वगैरह नहीं चलाया गया, तब केवल पत्रव्यवहारमें या नोटिसबाजीमें ही इतना रुपया कैसे खर्च हो गया। इस तरहके और भी अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं; जिनसे मालूम होता है कि सार्वजनिक या लोकमतके प्रभावके विना संचालकगण सुस्त हो जाते हैं और वे अपना उत्तरदायित्व भूल जाते हैं।

कोई कोई संचालक लोकमतकी परवा ही नहीं करते हैं। यदि कोई उनसे हिसाब किताब या ऐसी ही कोई बात पूछता है, तो वे अपना अपमान समझते हैं और लाल पीले हो जाते हैं। वे यह नहीं समझते कि यह सेवाधर्म—समाज या धर्मकी सेवा करना—कितना कठिन व्रत है। इसका पालन वही कर सकता है जो अपने मान अपमानको भी समाजको लिए उत्सर्ग कर देता है। अभी जातिप्रबोधकमें बाबू दयाचन्दजीने तीर्थक्षेत्र कमेटीके सबन्धमें एक नोट लिखा था कि "तीर्थक्षेत्रकमेटीमें इस समय ५००–६०० रुपया रोज खर्च हो रहा है, उसकी बाकायदा रिपोर्ट प्रकाशित की जानी चाहिए। जिस तरह जैनमित्रके हर एक अंकमें दाताओंके दानकी रकमें छपती हैं, उसी तरह खर्चकी रकमें भी छपनी चाहिए। हिसाब नहीं छपनेसे यदि हम यह कहें कि रुपयेका दुरुयोग किया जा रहा है तो कुछ अनुचित नहीं होगा। हम पिछले अंकमें चेता चुके हैं और इस बार भी कमेटीको सूचित करते हैं कि यदि वह हिसाब प्रकाशित न करे, तो जातिसे रुपया माँगना छोड़ दे। भोले भाले भाइयोंको धोखेमें रखना और उन्हें क्या हो रहा है, इसकी कुछ भी सूचना न देना, धर्मकी आड़में भारी अन्याय करना है। यदि इस पर भी कुछ ध्यान न दिया गया तो अगले अंकमें हम इस बातका आन्दोलन करेंगे कि एक पैसा भी कोई भाई न दे।" इस नोटको पढ़कर तीर्थक्षेत्रकमेटीके महामंत्री लाला प्रभुदयालजीका मिजाज गर्म हो गया। इसके उत्तरमें उन्होंने जो कुछ लिखा था अच्छा होता यदि वह उसी रूपमें प्रकाशित हो जाता, लोग समझ लेते कि ये सार्वजनिक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

काम करनेवाले महात्मा जनताके अधिकारोंपर किस तरह निष्ठुर आक्रमण करते हैं; परन्तु ब्रह्मचारीजीकी कृपासे वह न छपा और उसके बदलेमें लालाजीको आसोज सुदी २ के जैनमित्रमें छपी हुई कुछ थोड़ीसी ठंडी पंक्तियोंसे ही संतोष करना पड़ा। पर उनमें भी आपकी गर्मीकी झलक आ ही गई है। आपने लिखा है "....उन्होंने अपनी योग्यतानुसार जो चाहे भला बुरा लिखा है।.... लेखमें इतनी असभ्यताका वर्ताव एक बी. ए. महाशयके द्वारा होना और चलते मुकद्दमेमें समाजका अपने धर्मकी रक्षाके लिए तत्पर रह उपाय न करने और द्रव्य सहायता न करनेको झूठी बातों द्वारा भड़काना उनको कहाँतक योग्य है, यह वे स्वयं विचार देखें।" मालूम नहीं, लालाजी 'भला बुरा' किसको कहते हैं और 'असभ्यता' की परिभाषा क्या है। लालाजीकी समझमें बी. ए. महाशयकी यह धृष्टता हो सकती है, गुस्ताखी हो सकती है और गल्ती भी हो सकती है; पर यह समझमें नहीं आया कि 'असभ्यता' कैसे हो सकती है? यदि रुपयोंका हिसाब प्रकाशित करनेके लिए सूचना करना और उसके प्रकाशित न करनेपर इस बातका आन्दोलन करनेकी इच्छा प्रकट करना कि लोग तीर्थक्षेत्रकमेटीको एक पाई भी न दें, असभ्यता है, तब तो लालाजीके हिसाबसे सभ्यताकी व्याख्या बहुत ही विलक्षण होगी। जो लोग आँख बन्द करके रुपया देते जाते हैं और यह जाननेकी आवश्यकता नहीं समझते कि हमारे दिये हुए रुपयोंका सदुपयोग हो रहा है या दुरुपयोग, वे अभीतक 'भोले' कहे जाते थे, पर अब लालाजीकी व्याख्याके अनुसार 'सभ्य' कहे जायँगे! यदि लोग इस नई कल्पनाकी हुई सभ्यताके लोभसे सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओंके एकहत्थी शासनको और भी उच्छृंखल कर दें, तो अच्छा है; लालाजीकी आत्माको अवश्य ही इससे सन्तोष होगा।

यह बात सच है कि इस समय– मुकद्दमेके खर्चके लिए चन्देकी आवश्यकताके समय– जातिप्रबोधकके उक्त नोटसे हानि पहुँच सकती है, लोगोंको भ्रम हो सकता है कि हमारे रुपयेका सदुपयोग नहीं हो रहा है; इसलिए वे चन्दा देनेसे इंकार कर सकते हैं; परन्तु इसमें जातिप्रबोधकका तो कोई दोष दिखलाई नहीं देता। उसने अपने पिछले अंकमें– एक महीने पहले निकले हुए जुलाईके अंकमें–लिखा था कि तीर्थक्षेत्रकमेटीको जबतक मुकद्दमा चलता रहे, अपना हिसाब प्रत्येक जैनमित्रमें प्रकाशित करते रहना चाहिए। पर जब उसके लिखनेपर कुछ भी ध्यान नहीं दिया गया, लालाजीने पब्लिकके रुपयोंके खर्चका हिसाब प्रकाशित करना अपनी शानके खिलाफ समझा, तब जातिप्रबोधकको उक्त दूसरा नोट लिखना पड़ा और उसमें सूचित करना पड़ा कि यदि हिसाब प्रकाशित न होगा तो हम चन्दा देनेके विरुद्ध आन्दोलन करेंगे। हमारी समझमें नहीं आता कि इसमें बाबू दयाचन्दजीने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्या अन्याय किया और क्या बुराभला कहा, जिससे वे असभ्य ठहराये गये। यदि उनके लेखका परिणाम लालाजीके मुकद्दमेके या चन्देके लिए बुरा होता था, तो उन्हें शीघ्र ही हिसाब प्रकाशित करनेकी व्यवस्था करनी थी। अथवा यह प्रकट करना था कि इस कारणसे हिसाब प्रकाशित नहीं हो सकता है । सो न करके एक जातिकी सेवा करनेवालेको असभ्य बतलाना, साफ बतला रहा है कि लालाजी अपने उत्तरदायित्वको नहीं समझते हैं। उन्हें यह खयाल ही नहीं है कि हम जैनसमाजके सेवक हैं, न कि स्वेच्छाचारी स्वामी ।

शिखरजीका यह मुकद्दमा कोई ७-८ महीनेसे चल रहा है। इसमें लगभग ७०—८० हजार रुपये खर्च हुए बतलाये जाते हैं । ऐसी अवस्थामें कमेटीपर समाजका चाहे जितना अधिक विश्वास हो, कमेटीका क्या यह कर्तव्य नहीं है कि वह स्वयं अपने उक्त विश्वासको स्थिर रखनेके लिए जनसाधारणके सम्मुख नियमित रूपसे हिसाब प्रकाशित करती जाय? यह कोई ऐसा काम नहीं था जो समय पर तयार न हो सके। यदि यह कहा जाय कि बहुतसे खर्च ऐसे किये जाते हैं कि जिनके प्रकाशित होनेसे मुकद्दमा बिगड़ सकता है, या प्रतिपक्षियोंको लाभ पहुँच सकता है, तो कमसे कम इतना तो हो सकता था कि कमेटीके मेम्बरोंके पास ही साप्ताहिक या मासिक हिसाब भेजा जाता, पर सुनते हैं कि ऐसा भी नहीं होता। कमेटीके सारे मेम्बरोंको यह भी मालूम नहीं है कि क्या खर्च हो रहा है और किस तरह हो रहा है। यह शिकायत अनेक लोगोंके मुँहसे सुनी गई है कि खर्च अन्धाधुन्ध हो रहा है। ऐसी दशामें बाबू दयाचन्दजीने यदि एक नोट सचेत करनेके लिए लिख दिया तो कोई अन्याय नहीं किया। जनसाधारणके स्वत्वोंकी रक्षाके लिए प्रत्येक व्यक्तिको इस तरह लिखनेका अधिकार है। तीर्थक्षेत्रकमेटीके संचालक यदि लोगोंकी ऐसी सूचनाओंका आदर नहीं करते हैं, उलटा उन्हें झिड़कते हैं, तो वे अन्याय करते हैं और सार्वजनिक संस्थाओंके महत्त्वको गिराते हैं।

संस्थाओंका धन केवल किफायतशारीसे ही खर्च न किया जाना चाहिए, किन्तु ईमानदारी भी उसके साथ रहनी चाहिए। एक तो लोगोंसे जो धन जिस कामके लिए लिया जाय, वह उसी काममें खर्च किया जाना चाहिए। यदि कभी दूसरे काममें खर्च करनेकी आवश्यकता आन पड़े, तो दाताओंसे उस काममें खर्च करनेकी अनुमति ले लेनी चाहिए। दूसरे केवल इस प्रकारके समाधानसे कि 'हम स्वयं तो नहीं खा जाते हैं' किसी कामका खर्च छुपाकर किसी दूसरे मदमें डाल देना या और किसी प्रकारसे बतला देना भी ठीक नहीं हैं। गरज यह कि सार्वजनिक धनका उपयोग पूरी सत्यता और मितव्ययताके साथ होना चाहिए।

जैनसिद्धान्तप्रकाशिनी संस्थाके समान एक दो संस्थायें ऐसी भी चल रही हैं जिनमें सर्व साधारणका कुछ भी हाथ नहीं है। जो महाशय उन्हें चला रहे हैं, उनकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इच्छा ही उनके संचालनमें सब कुछ है। यद्यपि उनकी सत्यनिष्ठा और निस्वार्थतामें हमें कुछ भी सन्देह नहीं है, तो भी हम यह आवश्यक समझते हैं कि वे अपने उत्तरदायित्वके महत्त्वको समझें और उसे उदारतापूर्वक अनेक लोगोंमें बाँट दें, अर्थात् दश-बीस उत्साहियोंकी एक कमेटी स्थापित करके उसकी सम्मतिसे काम करें। ऐसा करनेसे संस्थाओं पर लोगोंका विश्वास बढ़ेगा और काम भी सुव्यवस्थित पद्धतिसे चलेगा।

आशा है कि हमारे समाजके संस्था-संचालक सज्जन हमारे इस लेखपर ध्यान देंगे और अपने उत्तरदायित्वको समझकर संस्थाओंकी उन्नति करनेमें दत्तचित्त होंगे। ९–१०–१६.

दूसरोंकी आलोचनाओं, दूसरोंके मतों और दूसरोंके विचारोंपर आधार रखनेवाले मनुष्योंको कभी कोई लाभ नहीं होता। एनिंग साहिब एक जगह लिखते हैं–"जो मनुष्य यह सोचकर कि लोग मेरी आलोचना करेंगे–अपनी आन्तरिक उच्च भावनाओंको दबा देता है और दूसरे मनुष्योंके साथ हिलमिल कर रहनेका योग्यायोग्यके विचार विना प्रयत्न करता है; उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और चरित्र हल्का–नीच–हो जाता है।"

\+ + + +

मैं अमुक पक्षके अन्दर पैदा हुआ हूँ यह सोचकर अथवा मेरे माता, पिता, भाई, बन्धु अमुक मतके हैं यह सोचकर जो किसी मतविशेषका पक्षपाती बन जाता है, वह कभी न्यायशील नहीं हो सकता। इसीलिए राजकीय और धार्मिक झगड़े होते हैं, इसीलिए मीलोंके मालिक, हुनरों और उद्योगोंके संस्थापक, राजकर्मचारी और धार्मिक नेता अपने ही हितके लिए–अपनी ही सत्ता बढ़ानेके लिए–लोगोंके हक़ोंको–स्वत्वोंको–मिट्टीमें मिलानेका प्रयत्न करते हैं। –ड्राइन।

बाल-विवाह।

[ले०, श्रीयुत **ठाकुर शिवनन्दनसिंह** बी. ए.।]

१ पशु-जगतमें कोई पशु, बिना सर्वांग पुष्ट हुए बच्चा नहीं देता। मनुष्य-जगतमें अंगोंकी पुष्टिके लिए २५ वर्षसे अधिक समय चाहिए। अतएव इस अवस्थाके पूर्व ही गर्भाधान करना पशुओंसे भी हीन कार्य्य करना है। ऐसा करना न केवल निन्दनीय है बल्कि अति हानिकारक भी है।

२ तरुणता (जवानी) के प्रथम चिह्नोंसे यह नहीं कहा जा सकता कि अब वे विषय आदिके योग्य हो गये। बच्चेको दूधका दाँत निकल आने पर यह नहीं समझा जाता कि वह ईख चूस सकता है।

३ गुड़ियाँ, बुरी तरह पर खेलनेसे, यानी उनकी शादी करना, गुड़ियोंको गुड़ियोंके साथ सुलाना और उन्हें बच्चे होना आदि; बच्चोंके मुहँ पर उनके विवाहकी बातें करना जिससे उनको यह ख्याल पैदा हो जाय कि वे सयाने हो गये, या ऐसी ही बातोंसे, बच्चोंका विवाह कर देनेसे और उनका आपसमें मेल जोल होनेसे, या साथके सोनेसे, बच्चे, समयके पहले ही सयाने हो जाते हैं और उन्हें शारीरिक हानि पहुँचती है।

४ अल्पायुका गर्भ माता पिता और स्वयं उस पेटकी सन्तान तीनोंके लिए अत्यन्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हानिकारक होता है। अक्सर ऐसी अवस्थाका गर्भ नष्ट हो जाता है। बालगर्भधारिणीको बच्चोंके जन्म समय अत्यन्त कष्ट होता है और बहुधा उसकी मृत्यु हो जाती है। यदि इस कठोर कष्टसे प्राण न निकला, तो बच्चा कोमल अंग चूसचूस कर उन्हें इतना निर्बल कर देता है और दूसरी या तीसरी बार तक उनका शरीर ऐसा निर्बल हो जाता है कि वे जीवनपर्यंत आरोग्य नहीं रह पातीं; बल्कि प्रसूतक्षय या और किसी असाध्य रोग द्वारा उनका अन्त अवश्य ही हो जाता है।

+ ९ पच्चीस बाल-गर्भवती स्त्रियोंकी जाँच की गई जिससे मालूम हुआ कि ९ लड़कियोंका गर्भ गिर गया, ३ बच्चा जननेके वक्त मर गईं, ९ को जननेके समय अत्यन्त कष्ट हुआ और उनके पेटसे बच्चे औजारोंके जरिये निकाले गये, ९ को प्रसूतका रोग हो गया, २ बच्चा पैदा होनेके कारण अत्यंत निर्बल होकर मर गईं, ३ दूसरी बार बच्चा जनते समय मर गईं और २ तीसरी बार बच्चा जनते समय मर गईं। अत्यन्त कष्ट उठाकर जो मरनेसे बच गईं, उनमेंसे १२ की तन्दुरुस्ती जन्म भरके लिए बिगड़ गई। अर्थात् कुल २५ मेंसे १० तो मर गईं और १२ जन्मरोगिणी हो गईं; केवल ३ लड़कियाँ अच्छी रहीं।

६ बालमाताओंको असह्य कष्ट होते हैं। जैसे हमल गिर जाता है और उनकी आत्माको दुःख पहुँचता है। मरा हुआ बच्चा पैदा होता है, इससे भी उनको कष्ट उठाना पड़ता है। जिन्दा पैदा होकर तुरन्त मर जाता है और मरना बिना तकलीफके नहीं होता। बच्चा इतना कमजोर पैदा होता है कि दूध नहीं पी सकता। बच्चा कुछ दिनोंतक जिन्दा रहता है, पर उसका शरीर क्षीण होता रहता है और जल्द ही मर जाता है। बच्चा सब आपत्तियोंसे बचकर बड़ा होकर निर्बल स्त्री या पुरुष होता है और जिन्दगी भर कष्ट भोगता रहता है।

गत मनुष्यगणनाकी रिपोर्टसे ज्ञात होता है कि बाल्यावस्थाका गर्भ अक्सर गिर जाता है। पहले दो तीन बच्चे जो बालमाताओंसे उत्पन्न होते हैं अक्सर मर जाते हैं और ऐसे बच्चे कमजोर, नाटे, दुर्बल, आयुपर्यन्त रोगी और अल्पायु होते हैं। एक हजार बच्चोंमेंसे ३३३ बच्चे एक वर्षकी आयुमें मर जाते हैं, अर्थात् हर तीन बच्चोंमेंसे एक बच्चा मर जाता है।

भारतके नवयुवक, प्रायः सभी पेशाब, पेचिश या बुखारके रोगसे दुखी रहते हैं। यहाँ पेशाबकी बीमारियोंसे सारी दुनियाँसे अधिक लोग मरते हैं—फी सैकड़ा १५ नवयुवक इस रोगके ग्रास बनते हैं।

भारतके प्रधान प्रधान डाक्टरोंने निश्चय किया है कि भारतवासियोंकी तन्दुरुस्ती

+ Dr. D. C. Shome, Medical congress, Calcutta.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३०–४० वर्षमें खराब होजाती है। इसका कारण यह है कि लड़कपनकी शादीसे उनका शरीर क्षीण हो जाता है और फिर जल्द ही बालबच्चोंकी चिन्ताका बोझ उनपर आपड़ता है। इससे उनको अत्यन्त मानसिक कष्ट उठाना पड़ता है और उसका नतीजा यह होता है कि उनका स्वास्थ्य खराब हो जाता है।

जो विद्यार्थी हैं उनको स्कूल या कालेजके भारके ऊपर बालबच्चोंका कठिन भार भी उठाना पड़ता है। इस दोहरे बोझको सँभालना उनके लिए अत्यन्त कठिन हो जाता है और उनकी तन्दुरुस्ती बिगड़ जाती है।+

सारांश यह कि बाल-विवाहसे भारत गारत हुआ जाता है। यदि अब भी हम सावधान न हुए तो हमारी सब आशायें धूलमें मिल जायँगी और हमारी जातिका सर्व-नाश होनेवाला है, यह एक निश्चित विषय हो जायगा। यद्यपि भारतललनाओंको हमने विद्या और विज्ञानसे वञ्चित रक्खा है तो भी परमात्माकी दयासे, अन्य राष्ट्रकी स्त्रियोंके सम्मुख उनका सिर ऊँचा ही है–सुशीलता, सुन्दरता पवित्रता, नम्रता, पातिव्रत और स्वार्थत्यागमें ये अब भी बाजी मारे हैं। शिक्षासे वञ्चित रक्खे जाने पर भी ऐसे पवित्र विचार! गुलामीमें जकड़ी रहने पर भी ऐसा उत्तम ऐसा उच्च स्वभाव! बाल-माता बनाई जाने पर भी ऐसा सुन्दर और मनोहर शरीर! बालविवाहकी कुप्रथा नवीन भारतके लिए अत्यन्त लज्जास्पद है, इसको निर्मूल करना भारतसन्तानका प्रथम और महान् कर्तव्य है।

बालविवाहका कारण भारतकी उष्णता नहीं है।

हमारे नये धर्म-शास्त्रोंने भारतवासियोंके हृदयपर ऐसा सिक्का जमा लिया है कि आज बीसवीं शताब्दीके उच्च शिक्षित–अनेक एम. ए., बी. ए.–यह मान बैठे हैं कि भारतकी आबोहवामें यह तासीर है कि यहाँ लड़कियाँ जल्द सयानी हो जाती हैं। भारत ऐसा गरम देश है कि यहाँ कन्यायें बहुत जल्द रजस्वला हो जाती हैं और बङ्गालकी १२–१३ वर्षकी बाल-मातायें इसके सुबूतमें पेश कीं जाती हैं। लोगोंको दृढ विश्वास हो गया है कि यदि सारे भारतमें नहीं तो बङ्गाल-प्रान्त और उसके बाद संयुक्तप्रान्तमें, प्रकृति दस बरसकी लड़कियोंको विवाहके लिए बल्कि माता बननेके लिए योग्य बना देती है। दस वर्षकी लड़कियोंको गर्भ रह गया

+ इतिहासकार टाल बाइस ह्वीलर लिखते हैं कि "जबतक भारतवासी छोटी छोटी बालिकाओंका विवाह छोटे छोटे बालकोंसे करते रहेंगे, तबतक उनकी सन्तान छोटे बच्चोंसे अधिक अच्छी दशामें कभी न रह सकेगी। स्वाधीनता और स्वराज्यके आन्दोलनमें वे निस्तेज और बलहीन हो जायँगे। राजकीय उन्नतिका उपयोग करनेके लिए वे किसी भी प्रकारकी शिक्षासे समर्थ नहीं हो सकेंगे। इसमें सन्देह नहीं कि शिक्षाके प्रभावसे उनकी बुद्धिमें गम्भीरता आ जायगी और वे किसी गम्भीर तथा प्रौढ मनुष्यके समान बातें करने लगेंगे; परंतु सब कुछ होते हुए भी उनका आचरण असहाय बालकोंहीके समान बना रहेगा।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है, उनमेंसे बहुतोंने ठीक समय पर सन्तान प्रसव किया है और दोनों जीते जागते रहे हैं।

डाक्टर चक्रवर्ती लिखते हैं कि "मैं एक लड़कीको बाल्यावस्थाहीसे भलीभाँति जानता हूँ जिसे दस वर्षकी उमरमें लड़का पैदा हुआ।" डाक्टर राबर्टन कहते हैं कि "एक कारखानेमें काम करनेवाली लड़की ११ वर्षकी आयुमें गर्भवती पाई गई।" डाक्टर बेली लिखते हैं कि "कलकत्तेके एक रईसकी ११ वर्ष ९ महीनेकी लड़कीको लड़का पैदा हुआ।" कई अन्य सभ्य रईसोंसे डाक्टर साहबने उसकी सच्ची अवस्था दर्याफ्त की और सभीने उसकी आयु ११ वर्ष ९ महीने बताई। डाक्टर ग्रीन कहते हैं कि "ढाकेमें मैंने एक लड़कीको १२ वर्षकी आयुमें गर्भवती पाया; पर लड़का पैदा होते वक्त बेचारी लड़की मर गई।" डाक्टर कन्हैयालाल दे कहते हैं कि "बङ्गालमें आम तौरपर बारह वर्षकी लड़कियाँ गर्भवती पाई जाती हैं।" *

इस प्रकार एक दो नहीं, आजकल सैकड़ों हजारों बाल-मातायें भारतमें मौजूद हैं। अब देखना यह है कि भारतके उष्ण देश होनेसे—यहाँकी जलवायुकी विलक्षणतासे—यहाँ कुमारियाँ जल्द ऋतुमती होती हैं, या इसके कुछ और कारण हैं और अन्य देशोंमें प्रकृतिका क्या नियम है।

जगत्प्रसिद्ध डाक्टर हालिक लिखते हैं "जाँच करने पर यही मालूम हुआ है कि संसारकी सब जातियोंमें कन्यायें लगभग एक ही उमरमें रजस्वला होती हैं। यदि आफ्रिका जैसे गर्म देशकी हबशी लड़की और यूरोप जैसे ठण्डे देशकी गोरी लड़की एक ही ढँगसे परवरिश पावें तो दोनों एक हीं साथ ऋतुमती होंगी।" +

यद्यपि इँग्लैण्डके मुक़ाबले भारतमें लड़कियाँ जल्द सयानी हो जाती हैं, पर यह सन्देहकी बात है कि भिन्न भिन्न देशोंमें भिन्न भिन्न समय पर लड़कियाँ सयानी हों। †

मिस्टर राबर्ट्सनने खूब जाँचकर निश्चय किया है कि भूमण्डलके सब देशोंमें लड़कियाँ लगभग एक ही आयुमें रजस्वला होती हैं। वे बतलाते हैं कि भारतमें प्राकृतिक नियमानुसार बालिकायें रजस्वला नहीं होतीं, वे कुरीतियों और बुरे व्यवहारोंसे, जबर्दस्ती सयानी बना दी जाती हैं। वे लिखते हैं कि "भारतकी राजनैतिक तथा सामाजिक दशा ऐसी बिगड़ी है, यहाँका कानून, यहाँके रीतिरिवाज ऐसी बुरी अवस्थामें हैं, भारतमें स्त्रियाँ ऐसी मूर्खा बना दी गई हैं, वे ऐसी सख्त गुलामीमें जकड़ी हुई हैं, यहाँकी विवाह-सम्बन्धवाली धार्मिक पुस्तकें ऐसा बुरा उपदेश देती हैं कि भारतकी कन्यायें प्रकृतिनियमके विरुद्ध जल्द सयानी हो जाती हैं।

* Medical Jurisprudece for India by R. Chevers, page 673.

+ The origin of Life page 363.

† Annuals of Medical Seince.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यदि अमरीका या इँग्लैण्डकी यही दशा रहती तो वहाँकी लड़कियाँ भी इतनी ही जल्द सयानी होतीं। अमरीकामें भी बेचारी असहाय, समाजसे गिरी हुई ११–१२ वर्षकी लड़कियाँ (Prostitutes) बाज बातोंमें १७–१८ वर्षकी स्त्रियोंकीसी जान पड़ती हैं। और किसी भी देशकी लड़की हो, वह यदि उसी बुरी तरह पर रक्खी जायगी तो उन गिरी हुई बाजारू लड़कियोंकी तरह बहुत जल्द सयानी हो जायगी। देहातोंके मुकाबले शहरोंमें हर देशमें लड़कियाँ जल्द सयानी हो जाती हैं, क्योंकि शहरोंमें इन लड़कियोंके उभाड़नेके समान ज्यादा पाये जाते हैं। +

जवानी जल्द बुलानेके लिए कोई और चीज उतना काम नहीं करती जितना कि प्रेमकी बातें करती हैं। बेहूदे किस्से और खेल, या बच्चोंको यह याद दिलाते रहना कि वे अब जवान हो गये, या यह कि उनकी युवा अवस्था अब निकट है, ये सभी जवानीके आमंत्रणके समान हैं।

सुप्रसिद्ध वैद्य धन्वन्तरी सुश्रुतमें बताते हैं कि भारतमें "कन्या बारह वर्षकी आयुमें रजस्वला होती है और यह रजोधर्म पचास वर्षकी आयुमें अकसर बन्द हो जाता है।"

भूमण्डलके अन्य देशोंमें भी रजस्वला होनेका यही नियम है। अत्यन्त ठण्डे इँग्लैण्डमें भी इसी आयुमें लड़कियाँ रजस्वला हुआ करती हैं। वहाँ पर भी १२ से १७ वर्षमें, और कभी कभी नौ वर्षकी आयुमें ही लड़कियाँ रजस्वला हो जाती हैं और ४५–५० वर्ष तक हुआ करती हैं। *

इँग्लैण्डके 'मैंचिस्टर लाइन इन' अस्पतालमें ३४० लड़कियोंकी परीक्षा ली गई, तो उनमेंसे १० लड़कियाँ ११ वर्षकी आयुमें, १९ बारह वर्षकी आयुमें, ५३ तेरह वर्षमें ८५ चौदहमें, ९७ पन्द्रहमें और ७६ सोलह वर्षकी आयुमें रजस्वला हुईं।

भारतमें २७ गोरी लड़कियोंकी जाँच हुई; उनमेंसे—

४ लड़कियाँ १२—१३ वर्षके बीचमें,
८ ,, १३—१४ के बीचमें,
९ ,, १४—१५ में,
५ ,, १५—१६ में और,
१ लड़की १६—१७में रजस्वला हुई।

डा० हटक्लिन्स कहते हैं कि "दो गोरी लड़कियाँ इतनी जल्द रजस्वला हुईं कि वे ग्यारह वर्ष सात महिनेकी आयुमें मातायें बन सकती थीं *।" डा० राबर्टसन कहते हैं कि "भारत और इँग्लैण्ड दोनों जगह नौ वर्षकी लड़कियाँ रजस्वला हुआ करती हैं या हो सकती हैं।" *

इन महान् पुरुषोंके वाक्योंसे प्रकट होता है कि दुनियाँमें रजस्वला होनेका समय प्रकृ-

---

+ The origin of Life by F. Holick page 378.

* Medicl Jurisprudence by R. Chevers, pages 672–692.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तिने एकसा रक्खा है। अब यह देखना है कि क्या अन्य देशोंमे भी कभी बाल-विवाहकी चाल थी और क्या उन देशोंमें भी बाल-मातायें हुआ करतीं थीं ?

* बालविवाहका रिवाज लगभग सब देशोंमें था जबतक कि वे देश असभ्यावस्थामें थे। यहाँतक कि इँग्लैण्डमें भी अट्ठारहवीं शताब्दीके शुरू तक यह कुरीति जारी थी। + फ्रांसके राजा फिलिपने इँग्लैण्डकी राजकुमारीको १२ वर्षकी छोटी आयुमें ब्याहा था। आपकी दूसरी राजकुमारीका विवाह नौ वर्षकी आयुमें हुआ। जब इँग्लैण्डके राजा रिचर्डका विवाह फ्रांसकी राजकुमारीसे हुआ उस समय राजकुमारीकी आयु कुल आठ वर्षकी थी। * एलिजबेथ हार्डविकका विवाह १३ वर्षकी आयुमें हुआ। * आडरे (सौथ एम्पटनके अर्लकी लड़की) का विवाह हो चुका था जब १४ वर्षकी अवस्थामें उसकी मृत्यु हुई। * इँग्लैण्डके राजा हेनरी सातवेंके अत्यन्त निर्बल होनेका कारण यह था कि उनकी माताका विवाह कुल नौवर्षकी अवस्थामें हुआ था और जब हेनरीका जन्म हुआ तब लेडी मार्गरेटकी आयु कुल दस वर्षकी थी। * इँग्लैण्डके उच्च श्रेणीके लोगोंकी प्राय: यही हालत थी; वे अत्यन्त न्यून अवस्थामें विवाह करते थे।

इँग्लैण्डकी रेस्क्यू सुसाइटीने सरकारसे प्रार्थना की थी कि समाजसे गिरी हुई दससे सोलह वर्षकी लड़कियोंके लिए एक घर बनना चाहिए, क्योंकि ऐसी कम उमरकी लड़कियोंकी दर्ख्वास्तें उन लोगोंको हमेशा नामंजूर करना पड़ती थीं।

मारिसका विवाह आठ वषकी आयुमें हुआ और १४ वर्षके पहले ही उन्हें लड़का हुआ †। बरजीनियाँ नगरमें एक १३ वर्षकी लड़कीको बिना किसी अधिक कष्टके लड़का पैदा हुआ *। इँग्लैण्डमें एक युवती स्त्री दस वर्षके लड़केके साथ सो रही थी। उसके हृदयमें पाप समाया और उसने यह सोचकर कि उस लड़केके साथ विषय करनसे गर्भका भय नहीं है, भोग किया। पर उसे गर्भ रह गया और बड़ी जिल्लत और शर्म उठानी पड़ी †। एक दस वर्ष १३ दिनकी लड़कीके लड़की पैदा हुई। उसका वजन ७ पाउण्ड था ‡।

टेलरसाहबका कथन है कि "किसी भी देशमें नौ वर्षकी लड़कियाँ गर्भवती हो सकती हैं। अर्थात् ऐसा हो जाना असम्भव नहीं है §।

जगत्प्रसिद्ध डाक्टर हालिक लिखते हैं— "मैंने एक सात वर्षके लड़केका अंग, विषय करने योग्य पाया है। प्रकृतिका नियम इस

---

* Medical Jurisprudence for India by R. Chevers page 692.

* Philadelphia Medical Examiner. April 1855.

† The origin of life page 456.

‡ Transylvania Journal vol. VII page 447.

§ Medical Jurisprudence by R. Chevers page 673.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषयमें बड़ा बेढंगा है। सात वर्षका लड़का विषय कर सकता है और गर्भस्थिति कर सकता है।"

उपर्युक्त कुल बातें ठण्डे देशोंकी हैं जहाँ भारतकी तरह गरमी नहीं पड़ती, पर रजस्वला होनेका समय अथवा बाल्यावस्थामें गर्भवती हो जाना उक्त देशोंमें भी वैसा ही है जैसा भारतमें है।

मुसलमानोंमें भी यह कुरीति थी और है। इनके कानूनकी किताबोंसे पता चलता है कि सात वर्षके ऊपरकी आयुवाली लड़कियोंके साथ विषय करना जायज है *। मुसलमानोंके नबी मुहम्मदने आयेशासे सात वर्षकी आयुमें विवाह किया और जब वह आठ वर्षकी हुई तब उसके साथ संभोग किया +। यदि किसी नौ या दस वर्षकी लड़कीमें युवावस्थाके कोई चिह्न प्रकट हों तो वह बालिग समझी जाती है ‡।

इन अनेक देशों और जातियोंके उदाहरणोंसे यह सिद्ध हुआ कि यदि भारतमें छोटी अवस्थामें लड़कियाँ रजस्वला होती हैं तो इससे यह नतीजा नहीं निकाला जा सकता कि भारतके जलवायुमें ऐसी उष्णता है कि लड़कियाँ जल्द सयानी हो जाती हैं। सारांश यह कि भूमण्डलके प्रत्येक देश और प्रत्येक जातिमें इस बारेमें प्रकृतिका एक ही नियम है और भारतके जलवायुमें कोई विशेषता अथवा न्यूनता नहीं है। जब देशकी अवस्था खराब होती है और लोग ज्ञानहीन रहते हैं तब वे बालविवाहकी बुरी चालमें फँस जाते हैं।

* Notes on Muhammedon Law by Khan Bahadur M. T. Khan.

+ The Origin of Life page 458.

‡ Macnaghtens Euhammedan Law pages 228 & 266.

प्रकृतिका अद्भुत रहस्य।

अभी हम दिखा चुके हैं कि नौ वर्षकी लड़कियाँ गर्भवती होकर बच्चा जनती हैं और दस या इससे कमके लड़कोंद्वारा स्त्रियाँ गर्भवती हो गई हैं। अब दूसरी ओर देखिए—टामस पार १६२ वर्ष तक जीये। उन्होंने १२० वर्षकी आयुमें विवाह किया और १४० वर्षकी आयुमें उन्हें लड़का पैदा हुआ ×। फ्रेलिक्स प्लेटर बतलाते हैं कि उनके दादाको १०० वर्षकी आयुतक बराबर लड़के होते रहे *। सीज नगरके बड़े पादरी लिखते हैं कि "सीजमें एक ९४ वर्षके पुरुषने एक ८३ वर्षकी स्त्रीसे विवाह किया। स्त्री गर्भवती हुई और उसे पुत्र उत्पन्न हुआ +।" मारशल डी एस्ट्रीने अपनी दूसरी शादी ९१ वर्षमें की। मारशल डी रिचलने, मैडम डीराथके साथ ८४ वर्षकी उमरमें शादी की। सर स्टीफ्रेन फाक्सकी शादी ७७ वर्षकी आयुमें हुई और उन्हें चार लड़के हु-

× Reference given in three books (1) Philosophical Transaction (2) The origin of Life rnd (3) The conjugal Relation ship.

* The conjugal Relation ship as to health by K. Gardner page 159-167.

+ History of the Acadamy of science.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ए-पहला ७८ वें वर्षमें, दूसरीबार दो एक साथ और चौथा ८१ वें वर्षमें। मिमायर्स डी ने ८० वर्षकी आयुमें विवाह किया और उसे तन्दुरुस्त लड़के पैदा हुए। बेगन साहब बतलाते हैं कि "मेरे एक मित्र ७९ वर्षकी आयुमें एक स्त्रीकी मुहब्बतमें फँस गये और उन्होंने उसके साथ विवाह किया।"

विज्ञानद्वारा विवाह-काल-निर्णय।

हम ऊपर दिखला चुके हैं कि जन्मके कुछ ही वर्षोंके बादसे मरणके कुछ वर्ष पहले तक स्त्री और पुरुष दोनोंहीमें भोगकी शक्ति रहती है। अतएव, अब विचार इस बात पर करना है कि इस शक्तिसे काम लेनेके लिए कौन उचित समय है, किस आयुमें स्त्री और पुरुषको विवाह करनेसे हानि न होगी। तरुणता या जवानी उस अवस्थाका नाम है जब अंगोंकी प्रौढता प्रारम्भ होती है। संसारके सब देशोंमें, भूमण्डलकी प्रत्येक जातिमें यह अवस्था पुरुषमें सोलह वर्षकी आयुसे और स्त्रीमें बारह वर्षकी आयुसे शुरू होती है। जन्मसे इस अवस्था तक केवल जीना और बढ़ना था; पर अब जीवकी बाढ़शक्तिका काम हड्डी और पट्ठोंको पुष्ट करनेके अतिरिक्त अपनी सब शक्तियोंकी उन्नति तथा सन्तानोत्पत्ति-शक्तिकी वृद्धि करना है।

शरीरकी सातों धातुओंमें रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्रमें नया चमत्कार आ जाता है। शुक्र या वीर्य जो अबतक मन्द था एक नये भावसे अपनी प्रधानता प्रकट करके शरीररूपी नगरका राजा बन जाता है। जैसे ईखमें रस, दहीमें घी और तिलमें तेल है, उसी तरह समस्त शरीरमें वीर्य है। तरुणतामें वीर्यवृद्धि और पुष्टता होती है, अतएव शरीरके प्रयेक अंगमें पुष्टता होती है। शरीरमें बल और पराक्रमका प्रवेश होता है, चेहरा चमकने लगता है, सुडौल हो जाता है और सारे शरीरमें एक खास तरहकी खूबसूरती आ जाती है।

यद्यपि तरुणताके प्रथम चिह्न पुरुषमें १६ और स्त्रियोंमें १२ वर्षकी उमरमें क्रमानुसार दिखाई देने लगते हैं, पर वीर्य और इन्द्रियोंकी पुष्टिमें अभी पूरे दस वर्ष और बाकी हैं। यह समय अकंटक बीत जाने पर सर्वांग पुष्ट हो जाते हैं; शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियोंमें प्रकाश आ जाता है; शरीरमें बल और पराक्रमकी थाह नहीं रहती; मनमें उमंग, अंगमें फुर्ती और चेहेरेसे आनन्दकी झलक दीखती है। अर्थात् पुरुषोंको वीर्य और शरीरके पुष्ट होनेके लिए जन्मसे २६ वर्ष और स्त्रियोंको २२ वर्ष चाहिए।

इस अवस्थाके जितने ही पहले और जितने ही अधिक कच्चे शरीरसे वीर्य निकलता है, शरीरकी पूर्ण पुष्टि और मानसिक आदि सब शक्तियोंके लिए वह उतना ही अधिक हानिकारक होता है।

अतएव विज्ञानद्वारा विचार करनेसे पुरुषोंके लिए २६ से ३२ तककी और स्त्रियों-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के लिए २२ से २८ तककी आयु, विवाहके लिए सर्वोत्तम जान पड़ती है।

संसारकी सारी सुशिक्षित और सभ्य जातियोंमें ऐसी ही अवस्थामें विवाह हुआ करते हैं।

डाक्टर एफ. हालिक कहते हैं:—"यूरोप और अमरीकामें आम तौर पर विवाह करनेका समय पुरुषके लिए २८ से ३१ वर्ष तक और स्त्रीके लिए २३ से २८ वर्ष तक होता है। पर उन लोगोंकी संख्या, जो और देरमें विवाह करते हैं या वे स्त्रीपुरुष जो जीवनपर्यन्त विवाह करते ही नहीं, बढ़ती जा रही है।"

एक उदाहरण।

बाबू अमीचन्द और बाबू घनश्यामदास कालेजके सहपाठी मित्र हैं। बाबू अमीचन्दको एक लड़का है और घनश्यामदासको एक एक लड़की। दोनों मित्रोंने कालेजमें ही तै कर लिया है कि उनके बच्चोंका विवाह एक साथ होगा। बड़ी धूमधामसे १२ वर्षके केदारनाथ १० वर्षकी चन्द्रमुखीके साथ ब्याहे गये। बाबू अमीचन्द इसी साल M. A. की परीक्षामें उत्तीर्ण होकर डिप्टी कलेक्टरीके पद पर नियुक्त हुए हैं। केदारनाथका शुभ विवाह हुए कुल अढ़ाई वर्ष बीते थे। आज फिर घरमें मङ्गलोत्सव हो रहा है। महफिलमें काशीकी नामी नामी रण्डियाँ आई हैं। सारे शहरमें धूम मच गई है। लोग बाबू अमीचन्दके भाग्यकी सराहना कर रहे हैं। स्त्रियाँ ईर्षासे गुड़ियासी अति सुन्दरी चन्द्रमुखीको देख कर कहती हैं—"परमेश्वर तू धन्य है। जिस पर परमेश्वर प्रसन्न होता है, उसे इसी तरह हर तरह सुख सम्पत्ति देता है! देखो न कहाँ चन्द्रमुखी और कहाँ गोद भराई! अभी तो अमीचन्दकी पतोहू लड़कीसी लगती है, पर वाह रे भाग्य! वाह रे ईश्वरकी देन कि उनकी गुड़िसासी बहूको लड़का होनेवाला है।" बाबू अमीचन्दके माता पिता दोनों जीवित हैं। वे आज फूले नहीं समाते। अभी पतोहूकी आयु १३ वर्षसे कम ही है और दिन पूरे हो गये!

आज दो दिनसे घरमें दाइयोंकी भरमार है। सारे शहरकी बूढ़ी खुशामदी स्त्रियाँ घरमें खचाखच भरी हैं। सब माथे पर हाथ रखकर उदास होकर बैठी हैं। बाबू अमीचन्द भी तार पाते ही डाकगाड़ीसे रवाना हो गये। दाइयोंसे काम न चलनेपर मिस साहबा बुलाई गईं और उनके कहनेपर सिविल सर्जन भी उपस्थित हुए। कई और डाक्टर भी बैठे हुए राय मिला रहे हैं, पर चन्द्रमुखीकी आह एक मिनटको नहीं रुकती। केदारनाथ बूढ़ी स्त्रियोंसे खुल्लमखुल्ला डाँटे जानेपर और बेहया कहे जानेपर भी बहूके पास जानेसे नहीं मानता। वह अपना कमरा और बहूका कमरा एक किये है। लाख कोशिश करने पर भी उसकी आँखोंसे आसुओंकी बड़ी बड़ी बूँदें टपक पड़ती हैं। वह घुटने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

टेककर अपने कमरेमें बारबार प्रार्थना करता-है–' हे ईश्वर ! तू मेरी जान जान भले ही लेले, पर उसको बचा । ' डाक्टरोंने निश्चय कर लिया कि बिना आपरेशनके काम न चलेगा, और यदि बहू इसी समय क्लोरोफार्मसे बेहोश नहीं कर दी जायगी, तो बस अब उसके प्राण न बचेंगे । सिविल सर्जन साहब नश्तर आदि लेने कोठी गये और आये। बेचारी बालिका बहोश कर दी गई । बेहोशीके पहले चन्द्रमुखीने गद्‌गद् स्वरसे केदारनाथकी ओर देखकर कहा था– ' प्यारे ! मैं अब परलोकको जा रही हूँ। ' बस उस समयसे केदार हदसे ज्यादा परेशान है और बैठा बैठा न जाने क्या सोच रहा है ।

बेहोश होनेके आधे घण्टे बाद मरा हुआ लड़का पैदा हुआ और थोड़ी ही देर बाद चन्द्रमुखीके प्राण पखेरू भी उड़ गये ।

बाबू अमीचन्द भी आगये, पर पतोहूको जीवित न देख पाये । उन्होंने यह भी सुना कि केदार बेहद परेशान है । वे दौड़े हुए उसके कमरेमें घुस गये । किन्तु, केदारको मुसकराते हुए शिष्टाचार करते देख उनका भय कुछ कम हुआ। वे बोले–"बेटा, लोगोंने तुम्हारी शोचनीय अवस्थाके विषयमें जो कहा था, उससे तो मैं बहुत ही घबड़ा गया था । " उसने उत्तर दिया–"जी हाँ, पहले मुझे बड़ा दुःख था, पर अब कुछ मिनटोंसे मैं बिलकुल अच्छा हूँ । " वे बाहर आये और उस समयके जरूरी कार्य्यकी चिन्तामें लगे । सहसा केदारके कमरेसे पिस्तौलकी एक आवाज हुई! लोग दौड़कर दरवाजा तोड़कर भीतर घुसे तो केदारको मरा हुआ पाया। टेबुल पर यह पत्र मिला–"प्यारी चन्द्रमुखीकी मृत्युके हमीं लोग प्रधान कारण हैं, अतएव उसे अकेले ही प्राणदण्ड न मिलना चाहिए । उसमें मेरे माता, पिता-पितामहका भी दोष है । मेरी मृत्युसे उनको भी दण्ड मिल जायगा–प्रकृतिका कठोर नियम मैं पूरा किये देता हूँ । "*

युवकोंके प्रति ।

(ले०, देशभक्त ।)

अरे हमारे युवको ! तुमको, निद्राने क्यों घेरा है ?
आलस त्याग करो कुछ उद्यम, देखो हुआ सवेरा है ॥
देश दशा सुधरेगी तुमसे, सबको ऐसी आशा है।
हो उत्थान पुनः भारतका, ' हाथ तुम्हारे पाशा है ' ॥ १ ॥
समझ रहे हो क्या तुम ऐसा, ' हमसे क्या कुछ होना है ?'
छोड़ इसे तुम लगो कार्यमें, तुमसे ही सब होना है ॥
मार्ग तुम्हारा देख रहे सब, किस पथपर तुम चलते हो ।
स्वार्थविवश ही रहते हो, या भारत हित भी मरते हो ॥ २ ॥

* यह लेख 'देश-दर्शन' नामक ग्रन्थसे उद्धृत किया जाता है । ' देशदर्शन ' छप रहा है, हिन्दीग्रन्थ-रत्नाकर-सीरीजमें शीघ्र ही निकलेगा ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्मानित ।

(ले०-श्रीयुत पं० ज्वालादत्त शर्मा ।)

[१]

व्यवसायके कारण अमरेन्द्र बाबूके साथ हमारा परिचय होने पर उनके सौजन्य और उदारता आदि गुणोंसे हमारे साथ उनकी एक तरहसे मित्रता हो गई थी। वे त्रिपुरा ज़िलेके ज़मीन्दार थे; पर उन्होंने कलकत्तेमें आकर एक साबुनका कारखाना खोल रक्खा था। कलकत्तेकी पार्क स्ट्रीटमें रहनेके कारण उनकी मित्रता कई बड़े बड़े आदमियोंके साथ हो गई थी। अमरेन्द्र बाबू सज्जन थे, उनके घरमें उनकी स्त्रीके सिवा और कोई न था। उनकी स्त्री असामान्या रूपवती और मधुरभाषिणी थी। वह पढ़ी लिखी भी मालूम होती थी; किन्तु थी बड़ी विलासप्रिया। पर विलासिता उसके लिए शोभाका कारण थी। निश्चय ही घरू काम काज करनेसे उसके रूपकी अवमानना होती। जिस समय वह बढ़िया कौंचपर लेटी हुई बड़ी ही नज़ाकतसे अपने कल्पित रोगकी कहानी सुनाती थी, उस समय सचमुच ही हमें धनी अमरेन्द्र पर ईर्ष्या हो आती थी।

उस दिन अमरेन्द्र बाबू एक बढ़िया कुर्सीपर बैठे हुए थे। उनकी सुन्दरी स्त्रीने कोमल कौंचपरसे अपना देवी-दुर्लभ हाथ बढ़ाकर कहा—"डाक्टर बाबू, अब तो मुझे सचमुच ही ज्वर हो गया मालूम पड़ता है।"

हमने कुछ हँसकर कहा—"आपको कोई रोग नहीं है। भगवानने आपका सुन्दर शरीर रोगोंके वासके लिए थोड़े ही बनाया है। रोग दुष्टोंको होता है।"

जमीन्दार-दम्पतीको हमारी बात सुनकर हँसी आगई। उन्होंने आपसमें एक दूसरेको देखा। दोनोंकी चितवनमें और दृष्टिमें कोमलता भरी हुई थी। अमरेन्द्रने कहा—"होता होगा, पर डाक्टरके मुँहसे यह बात अच्छी नहीं मालूम होती।"

छोटी आँखवालेको 'हिरन जैसे नेत्रवाला' कहनेसे वह प्रसन्न नहीं होता। पर सुन्दरीको सुन्दरी कहा जाय तो वह प्रसन्न होती है। मन-ही-मन प्रसन्न होकर, ललनासुलभ लज्जाको दिखाते हुए उसने हमारी ओर भर्त्सनाकी दृष्टिसे देखा—निस्सन्देह उसमें सन्तोष भरा हुआ था। हमने कुछ झेंपकर कहा—"नहीं, मेरे कहनेका यह आशय था कि आपको कोई रोग नहीं है और यदि रोग है भी, तो उसको डाक्टर नहीं बता सकता। किसी संन्यासीको दिखाइए और कोई दिव्य औषध खाइए।"

दोनोंका मुँह गंभीर हो गया। उन्होंने फिर एक दूसरेको देखा। हमने कहा—"कहिए तो संन्यासीको बुला लाऊँ? हमारे यहाँ आज एक संन्यासी ठहरे हुए हैं।"

उन्होंने फिर एक दूसरेको देखा। अमरेन्द्र बाबूने कहा—"आप शिक्षित होकर इन बदमाशों पर श्रद्धा रखते हैं! इनमें कितने चोर डाकू छिपे हुए हैं—आप जानते हैं?"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हमने कहा—"यह ठीक है। पर उनमें अच्छे आदमी भी हैं। हमारा मित्र पागल संन्यासी है। बिल्कुल उदासीन संन्यासी है। कभी कभी हमारे पास आजाता है। आप कहें तो आपके साथ..."

अमरेन्द्र बाबूने कहा—"क्षमा कीजिए। इन बदमाशोंको हम अपनी कोठीकी हदके अन्दर नहीं आने देते। सभी धूर्त्त हैं। सभीकी गुप्त कथायें है।"

[२]

हमारे अतिथि पागल साधुका भी कुछ गुप्त इतिहास था—इसमें कोई सन्देह नहीं। उसको देखनेसे यह मालूम होता था कि वह आनन्दमय है, शोक दुःख, हिताहित और शुभाशुभ विषयोंसे उदासीन है। पर जरा गौरसे देखो तो मालूम होता था कि वह दिनरात किसी घोर भावयुद्धमें लगा रहता है। हम चिकित्साव्यवसायी थे—इसीलिए उसकी मानसिक अवस्थाका बहुत कुछ आभास पा जाते थे। मानसिक संग्रामके चिह्न उसकी आँखोंमें, ललाटपर और तरुण मस्तकके किसी किसी सफेद बालमें विद्यमान थे। हमें यह भी मालूम होता था कि वह दिनों दिन उस संग्राममें जय प्राप्त कर रहा है। चाहे वह और मनुष्योंके समक्ष समदर्शी हो, पर हमें मालूम होता था कि वह स्त्रीजातिसे जरूर घृणा करता है। उसके अच्छे वंशके होनेमें कुछ भी सन्देह नहीं था। वह अच्छे साधुओंकी तरह धनको तुच्छ ही नहीं समझता था, किन्तु उसे धनसे घृणा भी थी। कोई पाँच महीने पहले जब वह हमारे पास आया था, तब हमने उसे मार्गव्ययके लिए कोई पाँच रुपये दिये थे। पहले तो उसने उन्हें लेनेसे इन्कार किया, पर बादको यह जानकर कि न लेनेसे शायद हमें तकलीफ पहुँचे—बायें हाथसे वे रुपये ले लिये। उसके जानेके कोई पाँच ही मिनट बाद हमारे पुत्रने आकर कहा—"बाबा, आज हमारे फुटबाल-क्लबको खूब लाभ हुआ है।" हमने पूछा—"क्या?" बालकने कहा—"आज हमारे क्लबमें वही पागल संन्यासी गये थे। सबने उन्हें नमस्कार किया। उन्होंने पूछा—'तुम्हारा कप्तान कौन है?' रमेशने उनके पास जाकर कहा—'जी मैं हूँ।' उन्होंने उसके हाथमें पाँच रुपये देकर कहा—'लो, यह हमारा चन्दा है। पर देखो किसी तरहकी बुराई तुम्हारे क्लबमें प्रवेश न करने पावे'।"

अमरेन्द्र बाबूके घरसे आकर हम पागल स्वामीसे बातचीत करने लगे। भगवद्गीता पर वह अक्सर बहुत ही भावपूर्ण भाषण किया करता था। आज बहुतसी बातोंके बाद उसने कहा—"हमारे देशके शास्त्रमें तो लिखा है कि काम तो करो, पर कामसे अलग रहो।"

हमने कहा—"अच्छा स्वामीजी, जिस समय आप संसारमें थे उस समय भी क्या इसी नीतिके अनुसार काम करते थे?"

स्वामीजीका मुँह गम्भीर हो गया। उन्होंने कहा—"किसी दिन बताऊँगा। मैं जिस समय गृहस्थ था उस समय मुझे इन बातोंकी खबर भी न थी। जिस समय गृहस्थ था, उस समय हमारे घरमें दुर्गोत्सव होता था—सभी कुछ होता था। किन्तु मैं उन सब कामोंमें राजसिक भावसे लिप्त रहता था। हाँ, जब गृहस्थ था तब एक अच्छा काम जरूर करता था—दान।"

हमने कहा—"उससे बढ़कर तो और कोई दूसरा काम ही नहीं है।"

उसने हँसकर कहा—"यह अच्छा काम भी और सब कामोंकी तरह सात्त्विक, राजसिक और तामसिक भावसे किया जाता है। राजसिक दान किसे कहते हैं—जानते हो?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मैंने कहा—" हाँ—

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः ।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् ॥ "

उन्होंने कहा—" ठीक है । मैं क्यों दान करता था—जानते हो ? मेरे पिता सामान्य अवस्थासे करोड़पति हो गये थे । पर उन्होंने किस तरह रुपया पैदा किया था, यह किसीको मालूम न था । सब लोग यही जानते थे कि वे सूद अधिक लेते हैं और इसीमें उन्होंने यह धन कमाया है; पर उनके ऐश्वर्य्यका मूलधन कहाँसे आया–किसीको मालूम न था । ग्राममें मशहूर था—"

स्वामीजी यह सोचकर कि बिनापूछे ही वे अपने पूर्व जीवनकी बात कह रहे हैं चुप हो गये । पर हमें बड़ा कौतुक हो गया था । हमने पूछा—" क्या मशहूर था ? "

उन्होंने कहा—" यह कि हमारे बापको यक्षका धन मिल गया है । उस यक्षके धनको पाकर कोई सुखी नहीं होता–उसे कोई खर्च नहीं कर सकता । पिता बहुत ही कंजूस थे और वे कभी प्रसन्न भी नहीं रहते थे । "

यह कह कर स्वामीजी चुप हो गये । उनके ललाट पर चिन्ताकी रेखायें खिंच गईं । वे मनमें न मालूम क्या क्या सोच रहे थे । उन्होंने एक साथ हमसे कहा—" मरते समय पिता हमसे कह गये कि ' मैंने बुरी तरह इस धनको इकट्ठा किया था ।' इसके सिवाय उन्होंने और कुछ भी नहीं कहा—हाँ, इतना अवश्य कहा था कि ' यदि किसीको मालूम हो जाता कि मैंने किस तरह रुपया इकट्ठा किया है तो मुझे जरूर जेलमें जाना पड़ता ' । "

स्वामी जी काँप उठे । एक दो मिनट इधर उधर देखकर उन्होंने कहा–" इसी लिए मैं दान किया करता था—ऐश्वर्य्यके संग पापका जो मिश्रण था उस पापको धोनेके लिए । "

हमने अन्यमनस्क होकर पूछा—" स्वामीजी, आपका जन्मस्थान कहाँ है ? "

स्वामीजीने गम्भीर होकर कहा—" इस बातको जाने दो । "

[३]

स्वामीजी कभी कभी बालकोंकी तरह हँसते थे । वे हमारे प्रस्तावको सुनकर खूब ही खिल खिलाकर हँसे । हम सब लोग भी हँस रहे थे । प्रस्ताव और कुछ नहीं उनकी तस्वीर उतरवानेका था । हमारे मित्र सुरेश्वरने शौकिया फोटोग्राफी सीखी थी । वह स्वामीजीकी तस्वीर खींचनेके लिए बहुत व्यस्त था । स्वामीजी बालकोंकी तरह हँसकर कहने लगे–' छिः छिः इस नश्वर देहका इतना सम्मान ! '

पर सुरेश्वर छोड़नेवाला नहीं था । उसने कहा–" आप तो उस चित्रको रखिएगा ही नहीं । आप एक बार ध्यानमग्न होकर बैठ जाइए । मैं आपका चित्र उतार लूँगा । आपको कुछ भी देर नहीं लगेगी । "

स्वामीजी बड़े ही दयालु थे । इस जरासी बातमें भी उन्हें हमारे दुःख पानेका ख्याल हुआ और सिर्फ इसीलिए वे चित्र उतरवानेके लिए बैठ गये । एक हिरनके चमड़े पर वे पद्मासनसे आ बैठे । क्या भीषण परिवर्तन था । हम दोनों ही विस्मित थे । शरीरके साथ मनका दृढ़ सम्बन्ध है, यह बात तो हम रोज ही प्रत्यक्ष किया करते थे; पर शरीर और मनका बन्धन इतना दृढ़ है–यह बात हमने आजसे पहले कभी नहीं जानी थी । उस दुबले, पतले, गेरुए वस्त्र पहरनेवाले और मुण्डित-शिर सन्न्यासीको देखकर कुछ भी श्रद्धा नहीं होती थी । वह भले घरका आदमी जरूर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मालूम पड़ता था; किन्तु हमारे ऊपर कृपा करके चित्र खिंचानेके लिए वही साधु जिस समय आँखें बन्द करके योगासनसे बैठ गया उस समय एक अपूर्व कान्तिसे उसका सर्वाङ्ग उज्वल हो गया। उस रूपका वर्णन करना मुश्किल है। उन्होंने अन्तरंगमें जरूर ही योगारम्भ कर दिया था। उस मूर्तिको देखकर हमें एक नये प्रकारका आनन्द प्राप्त होने लगा। हमारी धारणा थी कि मनुष्यका तेज आँखको छोड़कर और किसी इन्द्रियसे प्रकट नहीं होता है। मदनको भस्म करते समय महादेवके ललाटमेंसे निकली हुई तेजशिखाने विश्वविजयी कामदेवको भस्म किया था—यह कथा पुराणोंमें जरूर पढ़ी थी, पर आँखको छोड़कर किसी और स्थानसे हमने तेज निकलता हुआ देखा कभी नहीं था। किन्तु स्वामीजीके सारे शरीरसे एक अनिर्वचनीय ज्योति बाहर हो रही थी। अज्ञलोगोंके लिए वह ज्योति कैसी भयानक थी—उसकी बात सुनिए—

अमरेन्द्र बाबूका मोहन नामका एक नौकर था। केवल मोहन ही उनका त्रिपुराका नौकर था, बाकी सब कलकत्तेके थे। वह रूप और गुणमें रवीन्द्रनाथके 'कष्टो बेटा' के समान था। अमरेन्द्र बाबूके घरमें उसका खूब आदर था। वह अपनी इच्छासे ही काम करता था। जहाँ जीमें आता जाता—किसीको उसे बतानेकी जरूरत न थी। सभी उसका मान करते थे, उसे खुश रखते थे और उससे प्रेम करते थे। पर न मालूम क्यों हमें उससे पहले दिनसे ही घिन थी। न मालूम क्यों उसे हम बहुत बड़ा पापी, निष्ठुर—और विश्वासघातक समझते थे; पर अमरेन्द्र बाबू और उनकी स्त्रीका उस पर पूरा विश्वास था। निस्सन्देह हमारी जानमें उसने कोई बुरा-काम नहीं किया था; किन्तु फिर भी हमें उससे द्वेष था। पर हमारी इस अपनी बनाई हुई वृत्तिमें जरूर कुछ सत्य था—यह बात उस दिनकी घटनासे मालूम हो गई।

हम लोग जिस समय स्वामीजीका चित्र उतार रहे थे उस समय मोहन भी वहाँ आगया। वह स्वामीजीको देखकर काँपने लगा। भूतके भयसे जिस तरह आदमी काँप उठता है—बूढ़ा मोहन भी उसी तरह स्वामीजीको देखकर काँपने लगा। इसके बाद वह वहाँसे लड़खड़ाता हुआ बाहर चला गया। हमने उससे जाकर पूछा—"क्या हुआ मोहन ?"

मोहनने अर्द्धस्फुटस्वरसे कहा—"माजीकी तबीअत अच्छी नहीं है। आज शामको आप एक बार उधर हो आइए।"

हमने कहा—"शामको हम जरूर आयँगे। तुम्हारी तबीअत कैसी है ?"

वहाँ आकर उसकी तबीअत बहुत कुछ ठीक हो गई थी। उसने झूठीं हँसी हँसते हुए कहा—"तेज धूपमें आनेके कारण डाक्टर बाबू, मेरी तबीअत खराब हो गई थी।"

हमने कहा—"हम यह समझे कि सन्न्यासीको देखकर—तुम्हारी ऐसी दशा हो गई थी।"

मोहनने कहा—"नहीं। डाक्टर बाबू, जरूर आइएगा। नहीं तो माजी बहुत नाराज होंगी।"

[४]

स्वामीजी चले गये। उनका चित्र तय्यार हो गया। चित्रमें उनकी उस ज्योतिका विकास अवश्य ही नहीं हो सका; पर फिर भी चित्रमें उनके चेहरेपर यथेष्ट तेज मालूम पड़ता था। उस चित्रको देखकर सबने सुरेश्वरके शिल्पचातुर्य्यकी प्रशंसा की।

उस दिन अमेरन्द्र बाबू उस समय तक घर नहीं लौटे थे। उनकी स्त्री हमसे अपने कल्पित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रोगकी कहानी कह रही थी। उसके अङ्गमें एक तरहका आलस्य सदा ही बना रहता था। पर उस आलस्यसे उसकी शोभा बढ़ती थी, घटती नहीं थी।

हमने उसके साथ बात करते करते कहा— "उस दिन संन्यासीकी बात हमने कही थी—याद है?"

उसने वस्त्रको सम्हालते हुए मदालसा भावसे कहा—"कौन संन्यासीकी?" हमने कहा—"जिसे सुनकर अमरेन्द्र बाबूने कहा था कि संन्यासी प्रायः बदमाश होते हैं।"

उसने उस बात पर पूरा ध्यान न दिया और अलसभावसे पूछा—"कौन बदमाश?"

हमने जेबमेंसे चित्र निकालकर उसके सामने रख दिया और कहा—"देखिए यह!"

सर्वनाश! हमें इस बातकी स्वप्नमें भी आशा नहीं थी। स्नायुरोगमें उत्तेजक पदार्थ निषिद्ध हैं—यह बात हम अच्छी तरह जानते थे; किन्तु संन्यासीका चित्रगत तेज उसके स्नायुमण्डलको इतना उत्तेजित कर देगा—इस बातका हमें रत्तीभर भी संदेह नहीं था। चित्रको देखते ही अमेरन्द्र बाबूकी स्त्रीकी आँखें स्थिर हो गईं। हाथ पाँव अकड़ गये और मुँह रक्तसञ्चालनकी अधिकतासे सुर्ख पड़ गया। एक बार चीख मारकर वह मूर्च्छिता हो गई। हमें बहुत दुःख हुआ। हमने उसी समय बिजलीकी घंटी बजाई। नौकर उपस्थित हुआ। हमने उसकी आँखोंपर ठण्डे पानीके छींटे देने शुरू किये। धीरे धीरे उसने आँखें खोलीं। हमने पूछा—"अब तबअित अच्छी है?"

उसने सिर्फ सिर हिला दिया। इसी समय अमरेन्द्र भी आगये। वे घबराये हुए हमारे पास आकर बैठ गये।

हम झेंप रहे थे। हमने उनसे कहा कि "इनके स्नायु कमजोर हैं, इसलिए एक तेजस्वी पुरुषके चित्रको देखकर इन्हें 'फिट' आ गया था।"

अमरेन्द्रबाबू हमारी बातको अच्छी तरह नहीं समझे। पास ही संगमर्मरकी छोटीसी मेजपर वह चित्र रक्खा हुआ था। उसे उठाकर वे देखने लगे। उन्हें उसके छूते ही मानो बिजलीका धक्का लगा। उनकी आँखें लाल पड़ गईं और उनके हाथसे वह चित्र तप्त लोहेकी तरह असह्य होकर गिर पड़ा!

उन्होंने लाल लाल नेत्र निकालकर पागलोंकी तरह चिल्लाकर कहा—"यह क्या है?"

हमने कहा—"संन्यासीका चित्र!"

अमरेन्द्र—"पर यह हमारे घरमें किस तरह आया? आप डाक्टरीके लिए आते हैं, डाक्टरी कीजिए।"

उसके दुर्विनीत व्यवहारसे हमें बहुत दुःख हुआ। उसके मुख पर कोमलताका पता तक नहीं था। केवल एक नीच और नारकी भाव चमक रहा था। उसके शरीरमें भद्रताका चिह्न भी कहीं नजर न आता था।

हमें उसकी बातको सुनकर बहुत दुःख हुआ। हमने कहा—"आप इस कदर आपेसे बाहर क्यों हुए जाते हैं?"

उसने पहले जैसे ही उत्तेजनाके स्वरमें कहा—"आप डाक्टरोंकी तरह डाक्टरी करना चाहें तो आइए। कलकत्तेमें डाक्टरोंकी कमी नहीं है। और फिर हमारे यहाँ तो न जाने कितने डाक्टर आनेके लिए लालायित हैं।"

उसके चेहरेपर नीच और निष्ठुरभाव बढ़ता जाता था। हमने सोचा कि यही भाव इसका स्वाभाविक भाव है। इसमें भद्रता और ममताका भाव केवल दिखानेके लिए ही था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हम उसके मकानसे चले आये ।

(५)

हम कुछ स्थिर नहीं कर सके। स्वामीजीके चित्रको हमने बारबार देखा और आदमियोंको भी उसे दिखाया । उसे देखकर सभी प्रसन्न हुए। अमरेन्द्रबाबू या उनकी स्त्रीकी तरह किसीको बिजली जैसा आघात या बेहोशी नहीं हुई। उनका पुराना नौकर मोहन भी स्वामीजीको देखकर सहम गया था । तो क्या ये लोग स्वामीजीके साथ परिचित हैं ? स्वामीजीके पिछले जीवनकी एक बात मालूम थी कि वे बहुत बड़े ऐश्वर्य्यवान् थे । अमरेन्द्र बाबू भी धनवान् हैं । इन दोनोंमें क्या कोई सम्पर्क है ? पर इस प्रश्नके उत्तर पानेका कोई उपाय नहीं था। उस दिन अमरेन्द्र बाबूने हमारा जैसा अपमान किया था उसको देखकर हमने मन-ही-मन संकल्प कर लिया था कि हम उनके बुलाने पर भी कभी उनके यहाँ नहीं जायँगे। पर इस रहस्यको खोलनेकी प्रबल इच्छा हमारे मनमें उत्पन्न होगई थी ।

कोई एक सप्ताह बाद स्वयं अमरेन्द्र बाबू हमारे यहाँ आये । उस दिनके उस क्षणभरके कठोर नीचभावका चिह्न भी अब उनके चेहरे पर नहीं था। उन्होंने हमसे क्षमा माँगी और अपने घर आनेके लिए हमसे अनुरोध किया ।

हमने कहा—“क्या एक बात हम पूछ सकते हैं ? संन्यासी—”

हमारी बातको काटकर अमरेन्द्रबाबूने कहा-“हाँ, यही बात कहनेके लिए तो मैं आया हूँ। एक बार किसी संन्यासीकी दवा खाकर हमारी स्त्रीका कोई रिश्तेदार मर गया था। उसी दिनसे हम लोग संन्यासियोंसे जलते हैं । उस दिन संन्यासीके चित्रको देखकर उसका पुराना शोक फिर नया हो गया और उसके दुर्वल स्नायु उस शोकको धारण नहीं कर सके।”

हमने कहा-“क्या आप जिसका वह चित्र था उस संन्यासीको पहचानते हैं ?”

अमरेन्द्रने कहा “ नहीं।”

[६]

अमरेन्द्र बाबूने गवर्नमेण्टको परोपकारी कामोंके लिए बहुतसा रुपया दिया था और अपनी उदारतासे राजपुरुषोंको मुग्ध कर लिया था। अभी हाल ही उनकी इस सहृदयताके उपलक्षमें गवर्नमेण्टने उपाधि देकर उनकी सम्मानवृद्धि की है। राय अमरेन्द्रनाथ मित्र बहादुर अपने बढ़िया उद्यानमें अपने मित्रोंको भोज देनेकी तयारी कर रहे हैं। बाग हरतरहसे सजाया गया था। नृत्य, गीत, पान और भोजनद्वारा तृप्त होकर निमन्त्रित व्यक्ति नये रायबहादुरका यशोगान कर रहे थे। बागमें एक ओर परदा-मिलन भी हो रहा था। कलकत्तेके अनेक अच्छे घरोंकी स्त्रियाँ अमरेन्द्रगृहिणीके आदरको पाकर उसपर मोहित हो रही थीं। हमने उसका उस रातका वेश नहीं देखा था; किन्तु हम मानसचक्षुकी सहायतासे उस दैवी मूर्तिके दर्शन कर रहे थे। वही मदालसा भाव, मरालगति, मधुर और सरस हास्य तथा आँखोंमें विलास-विलोल कटाक्ष। आज अमरेन्द्र बाबूके सम्मानसे वह भी सम्मानिता हुई है। अनेक बड़े बड़े घरकी स्त्रियाँ उसका आतिथ्य पाकर खूब प्रसन्न हुई हैं।

बागके भीतर भीड़ बहुत थी। लोगोंके झुण्डके झुण्ड घूम रहे थे। लताओंके बीचमें बैठे हुए अनेक युवक मद्यपान कर रहे थे और जोर जोरसे हँस रहे थे। हम भी बागसे बाहर एक सूखे हुए आमके वृक्षके पास एकान्तमें बैठे हुए विश्राम ले रहे थे। वहाँ चाँदनीके सिवा और कोई प्रकाश नहीं था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वहाँसे हम कभी सजे हुए उस बागकी ओर देखते थे, कभी निमन्त्रित व्यक्तियोंके वस्त्रोंकी शोभाको देखते थे और कभी कभी निस्तब्ध प्रकृतिको भी देख लेते थे। इसी समय किसीने हमारा कन्धा छुआ। पीछे फिरकर देखा तो स्वामीजी! पागल स्वामी, मुण्डित शिर, कृशकाय, एक मैला गेरुआ वस्त्र पहने हुए, शरीरमें धूल रमाये, दैन्य और दारिद्र्यका जीता जागता चित्र लिये हुए उस वैभवविचित्र स्थलमें खड़े हुए थे। यह वैपरीत्य हमें बहुत अच्छा लगा। एक ओर धन, ऐश्वर्य, विलास और राजसम्मान था, दूसरी ओर दैन्य दारिद्र्य और वैराग्य था। सिर्फ उनके मुँहकी ज्योति विशेष थी; किन्तु वह ज्योति रातमें अधिक दिखाई न पड़ती थी। हमने पागल स्वामीको प्रणाम करके पूछा–"स्वामीजी, आज इधर कहाँ?"

स्वामीजीने हँसते हुए कहा–"तुमसे मिलनेके लिए। यह क्या हो रहा है?"

अनेक बड़े आदमी अमरेन्द्रको घेरे हुए धन्यवाद दे रहे थे। बिजलीके प्रकाशमें अमरेन्द्रके चेहरे पर हँसी साफ मालूम हो रही थी। हमने कहा–"स्वामीजी, आप सामने जिसे आदमियोंसे घिरा हुआ खड़ा देखते हैं–उसने राजसम्मान पाया है, खिताब पाया है–ये सब लोग उसीका अभिनन्दन कर रहे हैं। कैसा आनन्द है! दूसरी ओर उसकी स्त्री स्त्रियोंको भोज दे रही है। बड़ी सुन्दरी स्त्री है। अप्सराओंकी तरह उसका चेहरा है। कहिए स्वामीजी, क्या अब भी आप कह सकते हैं कि कामिनी और काञ्चनमें सुख नहीं है?"

स्वामीजीने हँस दिया। फिर कहा–"हमारी कहानी सुनोगे?"

हमने कहा–"जरूर।"

स्वामीजी सूखे हुए वृक्षके ऊपर बैठ गये। इस बार हमें उनका ज्योतिःपूर्ण मुख दिख गया। वे कहने लगे–"आज हमने मनको पूर्ण रूपसे जीत लिया है। गुरुदेव कहते हैं अब कुछ भय नहीं है। याद पड़ता है हमने तुमसे कहा था कि हम धनीके पुत्र थे और अतुल धनके मालिक थे। रुपया भी था, सुन्दरी स्त्री भी थी। अप्सराओंके समान उसका रूप था। वह मन्थरगमना, मदालसा, विलासविलोलनेत्रा और मक्खनके समान कोमल शरीरवाली थी। कामिनी और काञ्चन दोनों ही थे–तब मैंने क्यों वैराग्य ग्रहण किया?"

'क्यों?' यह प्रश्न हमारे मनमें बहुत दिनोंसे उठ रहा था। हम स्थिर हो कर उनकी बातको सुनने लगे।

उन्होंने कहा–"हमारे पिताके एक मातृपितृहीन भानजा था। उमरमें वह मेरी बराबरका था। हम दोनों ही पिताको दादा कहते थे। हमारा विवाह हो गया था पर वह कुँवारा था। हम स्त्रीका भी विश्वास करते थे और उसका भी विश्वास करते थे। एक दिन हमने अपनी आँखोंसे देखा–कहनेकी बात नहीं–हमारी स्त्री और फुफेरा भाई—"

स्वामीजी चुप होगये। हमने अच्छी तरह उनके मुखको देखा। वह एकदम भावहीन था। उस पर द्वेष नहीं था, लज्जा नहीं थी, क्रोध नहीं था, काम नहीं था–थी केवल एक स्वर्गीय ज्योति।

वे कहने लगे–"जवानीके मदमें मत्त होकर उस समय मैंने विचार किया कि दोनोंको मार डालूँ। एक पुराना नौकर भी उनके पापमें लिप्त था। सभीको मार डालूँ और पृथ्वीका भार उतार दूँ। फिर भय हुआ, लज्जा हुई,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दूसरा ख्याल आया—पिताका पापलब्ध धन और पापीयसी स्त्री—कामिनी और काञ्चन दोनों ही पापसे सने हुए—मैं क्रोध और क्षोभसे किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर विचार करने लगा। बागके बाहर एक संन्यासी ठहरे हुए थे। हमने उन्हें सब वृत्तान्त सुनाया। उन्होंने कहा—“बेटा, यह ठीक नहीं। तू धन और स्त्रीको छोड़कर हमारे साथ चल।” मैंने देखा कि स्वामी अन्तर्यामी हैं। मैं मंत्रमुग्धकी तरह उनके साथ हो लिया। आठ वर्ष साधना करके मैं परसों ही कुछ शान्त हुआ हूँ। नहीं तो प्रतिदिन ही मनमें द्वन्द्वयुद्ध होता रहता था। धीरे धीरे मुमुक्षुवृत्ति शुद्ध होती जाती थी। आज किसीसे द्वेष नहीं है। कोई द्वन्द्व नहीं है। क्रोध नहीं है। मनमें क्षमा है, पर उनपर भगवान् क्षमा नहीं—”

स्वामीजी चुप होगये। भीड़मेंसे ठट्ठा पड़ा। जलतरंग बजने लगी।

स्वामीजीने कहा—“इससमय क्षणिक आनन्द प्राप्त है, पर प्रकृति उन्हें नहीं छोड़ेगी। उन्हींकी भलाईके लिए उनको दण्ड मिलेगा। गुरुदेवने भविष्यत् देख दिया है—वह पागल होकर गली गली मारा फिरेगा, जूठन खावेगा। स्त्री किसी नौकरके साथ व्यभिचार करके असह्य यन्त्रणायें भोगेगी, दासीवृत्ति करेगी और अन्तमें अस्पतालमें मरेगी। हम प्रार्थना करके भी उन्हें नहीं बचा सकते। ईश्वरकी इच्छा!”

हमने कहा—“उन्हें आपने फिर कभी नहीं देखा?”

उन्होंने कहा—“जब हम संन्यासी होकर घरसे चले आये तब उन्हें वहाँ रहना मुश्किल हो गया। वे हमारे पिताका धन लेकर कलकत्ते चले आये और सुना है यहाँ नाम बदलकर रहते हैं। लोग उन्हें स्त्री-पुरुष जानते हैं।”

जलतरङ्ग बन्द हो गई। एक आदमीने कहा—“बोलो राय बहादुरकी जय।” सैकड़ों आदमियोंने एक साथ कहा—“जय, राय बहादुरकी जय!”

स्वामीजीने कहा—“अच्छा चलते हैं। ईश्वर राय बहादुरका मङ्गल करें। यही हमारा भाई है और इसकी अप्सरातुल्य स्त्री पहले हमारी धर्मपत्नी थी।”

स्वामीजी उठ खड़े हुए। हम विस्मयमें पड़े खड़े ही रहे, जुबानसे कुछ नहीं निकला। धूल रमाये, मैले गेरुये वस्त्र पहने, मुण्डितशिर, दुबले पतले स्वामीजी अन्धकारमें अदृश्य होगये। हमने देखा उनके चारों ओर स्वर्गीय ज्योति है और पापी अमरेन्द्र—राजसम्मानसे सम्मानित, हास्यमुख, लम्पट अमरेन्द्र—बागमें खड़ा हुआ अभिनन्दन ग्रहण कर रहा है। वह खूब तृप्त था, खूब सुखी था, खूब सम्मानित था। पर पागल धूलमें जा रहा था। उसीका धन, उसीकी स्त्री लेकर—ओफ़! क्या मालूम समाजमें क्या हो रहा है! एक बार संन्यासीकी ओर हमने देखा और एक बार उसकी ओर देखा—दोनोंके भविष्यतका स्मरण किया, स्त्रीके भविष्यतका भी स्मरण किया। सर्वनाश!

कौन जाने कौन सम्मानित है—संन्यासी या रायबहादुर! हम धीरे धीरे बागकी तरफ़को चल दिये। *

---

* श्रीयुत बाबू केशवचन्द्र गुप्त एम. ए., बी. एल. की बंगला गल्पका अनुवाद।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विविध प्रसङ्ग ।

१ भद्रबाहु-संहिताकी परीक्षा ।

गत चौथे पांचवें अंकमें हमने सूचित किया था कि हितैषीके पाठकोंके सुपरिचित्त लेखक श्रीयुत बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तार 'भद्र-बाहु-संहिता' की परीक्षा लिखनेवाले हैं । खुशीकी बात है कि परीक्षाका लिखना शुरू हो चुका है और उसका पहला लेख इस अंकके प्रारंभमें ही प्रकाशित किया जाता है । हम अपने पाठकोंसे आग्रहपूर्वक प्रेरणा करते हैं कि वे इस लेखको अवश्य पढ़ें और अच्छी तरह विचार पूर्वक पढ़ें । लेख कितने परिश्रमसे लिखा गया है और इसके लिए लेखक महाशयको कितनी कठिन तपस्या करनी पड़ी है, इसका अनुभव विचारशील पाठक स्वयं ही कर लेंगे । तो भी इतना कहे बिना नहीं रहा जाता कि जबसे जैनसमाजमें अन्ध श्रद्धाका साम्राज्य हुआ है, और लोग सच्चे झूठेकी परीक्षा करना भूल गये हैं, तबसे अबतक इस प्रकारका शायद एक भी प्रयत्न नहीं हुआ है । जैनसाहित्यके इतिहासमें यह प्रयत्न अपना प्रभाव सदाके लिए छोड़ जायगा । हमारा विश्वास है कि ये ग्रन्थपरीक्षासम्बधी लेख लोगोंको केवल परी-क्षापटु ही न बना देंगे; किन्तु यह भी सिख-लायँगे कि स्वाध्याय करना-ग्रन्थोंका बारीक दृष्टिसे अध्ययन करना–किसे कहते हैं और इसमें कितने अधिक परिश्रमकी तथा कितने अधिक साधनोंकी आवश्यकता होती है ।

२ दिगम्बर-जैनमहासभाका सुधार ।

हमारे एक मित्र लिखते हैं कि "महासभाके सुधारकी कुछ लोगोंको विशेष करके जैनमित्रके सम्पादक महाशयको बहुत चिन्ता रहती है जान पड़ता है कि ये सब लोग महासभाके सुधारको कोई बहुत बड़ा काम समझते हैं । पर वास्तवमें महासभाकी जो वर्तमान दशा है उसके देखते हुए उसका सुधार करना बहुत ही सहज है । दो चार उपचारोंसे ही उसका सुधार हो सकता है । सबसे पहला और अच्छा उपाय यह है कि जैनगजट बन्द कर दिया जाय । बेचारा बहुत समयसे कष्ट भोग रहा है, उसका जीना मरना बराबर हो रहा है, जो कोई उसे इस भवयंत्रणासे मुक्त कर देगा उसे बड़ा ही पुण्य होगा । उसके समाधिलाभ करनेसे महासभाके मेम्बरोंका एक बड़ा भारी बोझा घट जायगा । दूसरा उपाय यह है कि महासभाका दफ्तर बिलकुल उठा दिया जाय और महामंत्री साह-बके अनन्त आशीर्वाद ग्रहण किये जायँ । दफ्तरके उठ जानेसे जैनसमाजकी कोई हानि न होगी, उसका कोई भी काम रुक न रहेगा; यदि कोई चाहे तो इस बातकी हम गारंटी लिख दे सकते हैं । तीसरा उपाय यह है कि महाविद्यालय मथुरासे उठाकर फिर काशी भेज दिया जाय और उसका फण्ड स्याद्वादपाठशालामें शामिल कर दिया जाय । यदि यह पसन्द न हो, तो विद्यालय बन्द ही कर दिया जाय और जो रुपया है वह किसी तीर्थके मुकद्दमेंमें खर्च कर दिया जाय । यदि मेरी ये दोनों ही रायें कुतर्क समझी जायँ, तो विद्यालयकी रकम युद्धफण्डमें दे दी जाय और इस बातकी आशा रक्खी जाय कि महासभाके दो चार अधिकारियोंको रायबहादुरीका खिताब

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिया जायगा। यह याद रखना चाहिए कि ये तीनों ही उपाय जुदा जुदा फलदायक न होंगे; दर्शन-ज्ञान-चारित्रके समान इन तीनोंकी एकतासे ही महासभाका सुधार होगा। उसको महा समाधि प्राप्त हो जायगी और इससे बढ़कर उसका कोई सुधार हो नहीं सकता। जो लोग इससे विरुद्ध उपाय बतलाते हैं, वे उसे संसाराराण्यमें भटकाना चाहते हैं। सम्पादक महाशय, आशा है कि आप मेरे इन सुधारके नये आविष्कारोंको अपने पत्रमें अवश्य प्रकाशित कर देंगे।" इस पर टीका टिप्पणी व्यर्थ है।

३ भारत-जैन-महामण्डलका सुधार।

ब्रह्मचारीजी महासभाके समान भारत-जैन-महामण्डलका भी सुधार चाहते हैं। गत आसोज सुदी २ के जैनमित्रमें आपने 'जैन-यंगमेन्स एसोसियेशन' का पुराना इतिहास प्रकाशित करनेका पारिश्रम उठाया है और यह सिद्ध करनेकी कोशिश की है कि शुरू शुरूमें उसका उद्देश्य दिगम्बरजैनसमाजकी उन्नति करनेका था। संभव है कि उसका पहले यही उद्देश्य रहा हो, परन्तु ब्रह्मचारीजीने उसके जो २५ अक्टूबर सन् १८९९ को निश्चित किये हुए ४ उद्देश्य प्रकाशित किये हैं तथा सन् १९००के जो ३ प्रस्ताव दिये हैं, उनसे तो यह कदापि सिद्ध नहीं होता कि एसोसियेशन दिगम्बरजैन-समाजके लिए ही स्थापित हुआ था, यद्यपि उस समय उसके सारे मेम्बर दिगंबरी ही थे। उद्देश्योंमें या प्रस्तावोंमें एक भी शब्द ऐसा नहीं है जो उसके दिगम्बरीपनको सिद्ध करता हो। और यदि थोड़ी देरके लिए यह भी मान लिया जाय कि पहले यह मण्डल शुद्ध दिगम्बरी ही था, तो भी इससे क्या यह सिद्ध हो गया कि उसका दिगम्बर-श्वेताम्बर-स्थानकवासी इन तीनों जैन सम्प्रदायोंकी उन्नति करनेका वर्तमान उद्देश्य अच्छा नहीं है? अथवा किसी सभा या मण्डलको अपना संकुचित कार्य-क्षेत्र बढ़ानेका अधिकार नहीं है? एसोसियेशन या मण्डलके नामके साथ व्यापक 'जैन' शब्द लगा हुआ है, न कि दिगम्बर श्वेताम्बर या स्थानकवासी। अतः उसके उद्देश्य किसी एक ही सम्प्रदायमें कैद नहीं हो सकते। यह संभव है कि उसकी स्थापनाके समयकी परिस्थिति ऐसी हो कि वह केवल दिगम्बरसमाजमें ही काम कर सकता हो, पर पीछे वह दशा नहीं रही यह देखकर मण्डलने अपना कार्यक्षेत्र बढ़ना उचित समझा हो। यदि उसने अपना कार्यक्षेत्र बढ़ाया तो कुछ अनुचित नहीं किया। उसके नवीन उद्देश्यकी सफलता न होनेका कारण पुराने उद्देश्यका मारा जाना नहीं है; किन्तु काम करनेवालोंकी कमी है। भारतकी तमाम जातियोंकी अपेक्षा जैन जाति इस विषयमें सबसे अधिक अभागिनी है कि उसके प्रायः सभी उच्चशिक्षाप्राप्त ग्रेज्युएट-जिनकी एक अच्छी संख्या है- न अपने धर्म और समाजसे ही कुछ सहानुभूति रखते हैं और न देशसे। राजनीतिक और सामाजिक दोनों ही क्षेत्र उनसे खाली पड़े हैं। वास्तवमें उनके प्रेम और उत्साहके अभावसे ही मण्डलको सफलता नहीं मिल रही है। यदि दश बीस शिक्षित युवक अब भी कमर कसके खड़े हो जायँ, तो मण्डल वह काम कर सकता है जो अबतक किसी भी संस्थाने नहीं किया है। हम ब्रह्मचारीजीसे पूछते हैं कि आपकी महासभाका तो कोई भी उद्देश्य नहीं मारा गया है, फिर उसे सफलता क्यों नहीं हो रही है? उसकी दुर्दशाका भी क्या यही कारण नहीं है कि उसमें उत्साही काम करनेवाले नहीं हैं?

भारतजैनमहामण्डल कुछ काम कर रहा है या नहीं, यह दूसरी बात है, पर इसमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सन्देह नहीं कि उसका यह उद्देश्य कि तीनों सम्प्रदायोंमें पारस्पारिक सहानुभूति बढ़ाई जाय और एकताका प्रचार किया जाय, बहुत ही अच्छा है। उसका यह उद्देश्य कट्टरसे कट्टर दिगम्बरी श्वेताम्बरी या स्थानकवासीको भी बुरा नहीं लग सकता। सहानुभूति या एकताका मतलब यह नहीं है कि तीनों मिलाकर एक कर दिये जायँ, यह कभी हो भी नहीं सकता। मतलब यह है कि तीनोंमें जो पारस्परिक द्वेष बढ़ रहा है, वह मिट जाय और जो काम एक साथ मिलकर किये जा सकते हैं वे किये जायँ। शिक्षाप्रचार आदिके ऐसे एक नहीं सैकड़ों कार्य हैं जो जुदे जुदे धर्मविश्वासोंको रखकर भी एक साथ किये जा सकते हैं। एक मण्डल ही ऐसी संस्था है जो इस उदार उद्देश्यको समाने रखकर काम कर सकती है। यदि वह काम करे तो जैनजातिके लिए एक सबसे बढ़ कर गौरवकी चीज बन सकती है। ब्रह्मचारीजीको उसे 'दिगम्बर संस्था' बनानेकी कोशिश न करना चाहिए। यदि अँगरेजी पढ़े हुए लोगोंकी दिगम्बर संस्थाकी उन्हें आवश्यकता ही हो तो वे 'श्वेताम्बर ग्रेज्युएट एसोसियेशन' के समान एक जुदी 'दिगम्बर जैन ग्रेज्युएट एसोसियेशन' स्थापित कर सकते हैं और उससे अपनी इच्छानुसार केवल दिगम्बरजैन समाजकी ही उन्नति करा सकते हैं। जिसतरह जुदे जुदे सम्प्रदायों और जातियोंकी जुदी जुदी संस्थाओंकी जरूरत है, उसी तरह ऐसी संस्थाओंकी भी जरूरत है जो कई सम्प्रदायों और जातियोंमें प्रेम और सहानुभूति बढ़ानेका संदेशा सुनाती हों। काम सब ओरसे होना चाहिए। जिस तरह दिगम्बर जैनसमाजकी और और बातोंमें उन्नति करनेकी आवश्यकता है, उसी प्रकार उसे यह सिखलानेकी भी जरूरत है कि वह अपने श्वेताम्बरी-स्थानकवासीभाइयोंसे द्वेष न करके उनके साथ प्रेम और सहानुभूति रक्खे।

४ स्वयंवर पद्धतिसे विवाह।

बाबू अवधविहारीलालजी, मास्टर जिला स्कूल बदायूँ, अपनी कन्याका विवाह–जिसकी अवस्था १४ वर्षकी है–आगामी वर्ष स्वयंवर पद्धातिसे करना चाहते हैं। वे जातिके श्रीवास्तव कायस्थ हैं। किसी भी शाखाके कायस्थ-युवक–जिनकी उम्र २०–२५ वर्षकी हो और जो कमसे कम मैट्रिक पास हों–इस स्वयंवरमें उपस्थित हो सकते हैं। कन्या सुन्दरी, बुद्धिमती, संस्कृतकी प्रथम परीक्षा पास, और गृहकार्यनिपुणा है। आगत युवकोंमेंसे वह जिसे पसन्द करेगी उसके गलेमें वरमाला डालेगी और फिर उसीके साथ उसका विवाह हो जायगा। पाणिप्रार्थियोंको कन्याके पितासे पत्रव्यवहार करना चाहिए। इत्यादि। इस समाचारको प्रकाशित करके सहयोगी जातिप्रबोधक लिखता है– "इस संवादसे हमको अपार हर्ष हुआ और हम उस दिनकी प्रतीक्षा करते हैं कि जब हमारी जातिमें भी फिरसे इस प्राचीन रीतिका रिवाज हो। गार्हस्थ्य सुखसे जो आजकल प्रायः लोग वंचित हैं, उसका मूल कारण यह है कि पतिपत्नीका स्वभाव नहीं मिलता।......जबतक दोनोंका स्वभाव नहीं मिलता, गृहस्थकी गाड़ी ठीक नहीं चल सकती और दोनोंका स्वभाव उसी अवस्थामें मिल सकता है कि जब दोनों एक दूसरेको जानते हों और उन्होंने अपनी हार्दिक इच्छासे एक दूसरेसे विवाह किया हो। माता पिता द्वारा निश्चित किया हुआ सम्बन्ध सुख और शान्तिके स्थानमें प्रायः अशान्तिका कारण होता है। कारण कि सम्बन्ध करते समय उनकी दृष्टि एकदेशी होती है। सब बातोंकी ओर उनका ध्यान नहीं जाता।" स्वयंवर हमारे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देशकी पुरानी प्रथा है, उसकी प्रशंसाका प्रभाव हमारे चित्तोंपर जम रहा है । इस लिए उसके उद्धारकी बात सुनकर आनन्द होना ही चाहिए; परन्तु विचारपूर्वक देखनेसे मालूम होगा कि माता पिता द्वारा किये हुए विवाहोंमें जिस स्वभाव न मिलनेकी शिकायत सहयोगी करता है, उसकी संभावना इस स्वयम्वरमें भी रहेगी । स्वयंवर सभामें वह लड़की अधिकसे अधिक यह देख सकती है कि वर सुन्दर है, हृष्ट पुष्ट है, शिक्षित है और सुभाषी है। स्वभावकी परख बिना कुछ दिनों तक साथ रहे कैसे होगी ? और यह बिल्कुल सच है कि स्वभाव मिले बिना सुन्दरसे सुन्दर और हृष्टपुष्ट पुरुषसे भी स्त्रीको सुख नहीं मिल सकता है । चतुर और विचारशील मातापिता इस प्रकारके स्वयंवरके बिना भी इससे कहीं अच्छा चुनाव कर सकते हैं । वे पढ़ने–लिखनेकी योग्यता, सुन्दरता और स्वस्थताके सिवाय थोड़ेसे परिश्रमसे वरकी चाल चलनका भी पता लगा सकते हैं और यह भी जान सकते हैं कि उनकी लड़की उसे पसन्द करती है या नहीं । पर उक्त स्वयंवरमें इस प्रकारकी सावधानी होना कठिन है । न जाने कहाँ कहाँके अपरिचित युवक आवेंगे जिनकी चालचलन और स्वभाव आदिके विषयमें कुछ भी ज्ञान न होगा और लड़की अपनी १४ वर्षकी छोटीसी अनुभवहीन एकदेशी बुद्धिके द्वारा उनमेंसे किसी एकके हाथमें अपने जीवनकी बागडोर पकड़ा देगी । कौन कह सकता है कि वह इस युवकको पाकर सचमुच ही सुखी होगी ? पूर्व कालके स्वयंवरोंसे इस स्वयंवरका मिलान नहीं हो सकता । द्रौपदी, सीता आदिके स्वयंवरोंमें कन्याओंकी इच्छानुसार शर्तें की जाती थीं कि जो लक्ष्य वेध करेगा या धनुष तोड़ेगा, उसीके गलेमें वरमाला पड़ेगी । द्रौपदी और सीताकी दृष्टिमें पतिका आदर्श गुण शौर्य था, बल था और यह एक ही गुण उनकी दृष्टिमें उनके सुखी होनेके लिए काफी था । इस स्वयंवरमें भी कन्या जिस गुणको विशेषतासे पसन्द करती हो उस गुणमें जो युवक श्रेष्ठ समझा जायगा, वही वरमालाका अधिकारी होगा, इस प्रकारकी शर्त रहना चाहिए । अस्तु । हमारी समझमें हमारा लक्ष्य स्वयंवर या माता पिता द्वारा चुना हुआ वर और प्राचीन पद्धति या नवीन पद्धति न होकर यह होना चाहिए कि जिस पद्धतिसे योग्य वर और योग्य कन्याओंका दोनोंकी सम्मतिके अनुसार, सुखकर सम्बन्ध हो सके वही पद्धति सबसे अच्छी है और उसीका प्रचार होना चाहिए ।

५ थियोसोफिकल सुसाइटीका कार्य ।

इस सुसाइटीकी स्थापना सन् १८७५ में हुई थी । सारी दुनिया भरमें इसके अनुयायी मौजूद हैं यद्यपि उनकी संख्या कम है । सारी दुनियाके थियोसोफिस्टोंकी संख्या २५६९६ है और भारतवासी थियोसोफिस्टोंकी ५९३६ । इतने कम होकर भी ये लोग काम खूब कर रहे हैं। काशीका सेन्ट्रल हिन्दू कालेज थियोसोफिकल सुसाइटीके ही परिश्रमका फल था जो अब हिन्दू विश्वविद्यालयको दे दिया गया है । इसके सिवाय उसके दो कालेज और हैं,–एक लड़कोंका अडियारमें और दूसरा लड़कियोंका काशीमें । हाई स्कूलोंकी संख्या ८ है । ८ प्राइमरीस्कूल, १ मिडिल स्कूल और १ संस्कृतस्कूल भी सुसाइटी चलाती है । शिक्षाके सिवाय धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रोंमें भी सुसाइटीने आशासे अधिक कार्य किया है । हमारे जैनसमाजके शिक्षितोंको सुसाइटीके मेम्बरोंकी थोड़ीसी संख्या और उसके कामके साथ अपनी संख्या और अपने कामोंका मिलान करके देखना चाहिए ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६ आर्यसमाजके प्लेटफार्मपर जैनधर्मका व्याख्यान।

गुरुकुल कांगड़ीके गतवार्षिकोत्सवके समय आर्यसमाजके प्लेटफार्म पर स्याद्वादपाठशाला काशी-के धर्माध्यापक पण्डित उमरावसिंहजीका एक व्याख्यान हुआ था जिसमें पण्डितजीने जैन-धर्मके अनुसार ईश्वरका स्वरूप निरूपण किया था। जैनमित्रके सम्पादक महाशयने इस विषयमें पण्डितजीकी बहुत प्रशंसा की है और उनके साहसको बहुत बड़ा बतलाया है। लिखा है कि "इतना बड़ा साहसका काम कि आर्य-समाजियोंके जल्सेमें उनके विरुद्ध सिद्धान्तका विवेचन सबको सुनाया, पर अति दुःखकी बात है कि किसी भी जैनपत्रने उनके इस कार्यकी सराहना नहीं की और न उनके दिलको बढ़ाया।" पण्डितजीका व्याख्यान यदि अच्छा हुआ है, यदि उसमें ऐसी बातें कही गई हैं जो कुछ विशेषता रखती हैं तो अवश्य ही उनकी प्रशंसा होनी चाहिए; पर केवल इसी लिए कि उन्होंने आर्यसमाजके प्लेट फार्म पर व्याख्यान दिया, प्रशंसाका कार्य हो गया, यह हम नहीं मान सकते। हमारी समझमें यह बात नहीं आई कि इसमें पण्डितजीका साहस क्या हुआ। आर्य-समाज प्रतिवर्ष अपने जल्सोंपर जुदा जुदा धर्मोंके विद्वानोंको निमंत्रण देकर बुलाता है और अपने प्लेट फार्म पर शौकसे उनके व्याख्यान कराता है। वह समझता है कि इससे हमारे ज्ञानकी वृद्धि होगी। उसे यह डर नहीं रहता है कि विधर्मियोंके व्याख्यान हमें अपने धर्ममें शिथिल कर देंगे। पण्डितजी भी इसी तरह जैनधर्मकी कुछ बातें सुनानेके लिए निमंत्रित किये गये होंगे और उन्होंने अपनी बुद्धिके अनुसार अपने विषयका प्रतिपादन किया होगा। यह कोई वादविवादका या शास्त्रार्थ आदिका काम नहीं था, जिसमें उनके साहसकी प्रशंसा की जाय। हमारी समझमें तो इस समाचारको पढ़कर हमें आर्यसमाजके साहसकी और उसकी उदार नीतिकी प्रशंसा करनी चाहिए। एक तो हम लोग हैं जिनके प्लेटफार्मोंपर--दूसरे धर्मवालोंके तो क्या अपने ही धर्मके माननवालोंके--यदि वे अपनेसे जरा भी विरुद्ध विचार रखते हैं--व्याख्यान नहीं हो सकते हैं और एक वे हैं जो अपनी सभाओंमें दूसरे विद्वानोंको आदरपूर्वक बुलाते हैं और उनके विचारोंसे लाभ उठानेका प्रयत्न करते हैं।

७ एक जैनविधवाके कन्याजन्म।

बारामती (पूना) के संभवतः हूमड़जातीय शाह माणिकचन्द बालचन्दजी जैनकी भावजके--जो दशवर्षसे विधवा है--हाल ही एक लड़की उत्पन्न हुई है। जिस समय उक्त विधवा गर्भवती थी, उस समय किसी सज्जनने इसकी सूचना कोर्टको दे दी थी, इस लिए कोर्टने उससे जामिन ले ली थी कि वह किसी प्रकार गर्भपात न कर डाले। इससे बेचारी लड़कीकी जान बच गई, वह सुखपूर्वक प्रसूत हुई। सहयोगी जैनबोधक इस विषयमें बड़े ही मजेकी बात लिखता है कि बारामतीके पंच इस बातकी चिन्तामें हैं कि यदि कोई आदमी इस बातको कहे कि उक्त विधवाने अपराध किया है तो हम उस विधवाको जातिसे खारिज करें या उसे दण्ड देवें; परन्तु भयके मारे कोई तैयार ही नहीं होता है और बेचारे पंच यह सब जानते हैं कि जो दश वर्षसे विधवा है, उसके बिना पराये पतिके सहवास सम्बन्धके सन्तान नहीं हो सकती है और सन्तान प्रत्यक्ष है; पर क्या करें, बिना किसी कहनेवालेके तैयार हुए कहीं न्याय हो सकता है ? बलिहारी है ! इन्हीं पंचोंकी बुद्धि और न्यायपटुताके भरोसे हम कहा करते हैं कि हमारी 'पंचायत संस्था' बहुत अच्छी है। उसकी न्यायशीलताके कारण हमारे यहाँ पाप नहीं होते, अन्याय नहीं होते और हमारी रगोंमें विशुद्ध रक्तका प्रवाह हो रहा है। सच तो यह है कि हमारी और और संस्थाओंके समान यह पंचायत--संस्था भी बिल्कुल सड़ गई है। जब तक हम इसका नये सिरेसे फिर संस्कार नहीं करेंगे तब तक इससे कोई लाभ नहीं हो सकता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तीर्थोंके झगड़े मिटानेका आन्दोलन।

श्रीयुत सम्पादक महाशय–'जैनहितैषी,'

आपके पाठकोंको स्मरण होगा कि 'हितैषी' के गतांकमें-ठीक क्षमावनीके पवित्र दिनको-एक समग्र जैनसमाजके कल्याणकारी आन्दोलनका प्रारंभ किया गया था। उक्त अंकमें एक अपील–जिसका कि शीर्षक 'तीर्थोंके झगड़े मिटाइए' था–की गई थी और उसकी कई हजार प्रतियाँ हिन्दी और गुजराती भाषामें जगह जगह पहुँचाई गई थीं। इसके सिवाय पत्रव्यवहारद्वारा, पर्यटन द्वारा और मुलाकात आदिके द्वारा भी इस विषयमें जो कुछ प्रयत्न बन सकता था वह किया गया था, किया जा रहा है और आगे भी किया जायगा। मेरी समझमें किसी भी अपीलकी या आन्दोलनकी सफलताकी आशा तब की जानी चाहिए जब दूसरी ओरसे भी उसकी प्रतिध्वनि उठे–उससे मिलती हुई या उससे विरुद्ध आवाज सुनाई पड़े। यह जानकर मुझे बहुत सन्तोष हुआ है और मेरे उत्साहमें खूब ही वृद्धि हुई है कि मेरी उक्त अपीलकी प्रतिध्वनि एक तरफसे नहीं किन्तु दो तरफसे उठी है। एक ओरसे तो मुझे दिगम्बर–श्वेताम्बर धनिकों, लेखकों, व्याख्याताओं और साधारण पुरुषोंके सैकड़ों सहानुभूतिदर्शक पत्र और कितने ही त्यागी महात्मा और मुनियोंकी विना माँगी सहानुभूति प्राप्त हुई है और दूसरी ओरसे एक विरुद्ध पक्ष भी मेरे सम्मुख कमर कसके खड़ा हुआ है। इसकी जरूरत भी थी। क्योंकि सत्यका यथार्थस्वरूप फैलानेमें विरुद्ध पक्ष बहुत बड़ा सहायक होता है। आपको मालूम हुआ होगा कि भारतवर्षीय दिगम्बरजैनतीर्थक्षेत्रकमेटीके महामंत्री लाला प्रभुदयालजीने एक पेम्फलेट मेरी अपीलके विरुद्ध हाल ही प्रकाशित किया है। यह लेख मैंने उसीको पढ़कर लिखा है। मुझे आशा है कि आप इसे इसी अंकमें प्रकाशित करनेका प्रयत्न करेंगे।

[यद्यपि निम्नलिखित लेख दिगम्बरी भाइयों और इसके बादका दूसरा लेख * श्वेताम्बरी भाइयोंको उद्देश्य करके लिखा गया है,–तथापि दोनों ही लेख दिगम्बर-श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदायके भाइयोंके लिए एक सरीखे उपयोगी हैं। दूसरा लेख श्वेताम्बर 'जैनकान्फरेंस हेरल्ड' के खास अंकमें प्रकाशित हुआ है और हेरल्डके विद्वान् सम्पादकने एक स्वतन्त्र नोट द्वारा उसका अनुमोदन किया है।]

अज्ञानताके मायाजालसे बचो।

धर्म, सत्य, सम्यक्त्व, ये शब्द कितने मधुर हैं। पृथिवीके प्रत्येक मनुष्यको इन तत्त्वोंकी आवश्यकता है और इन्हींकी खोज तथा प्राप्तिके लिए प्रत्येक मनुष्य व्याकुल रहता है। परन्तु प्रकृतिका यह एक नियम है कि जो चीज जितनी ही अधिक कीमती होगी, उसकी प्राप्तिमें कठिनाइयाँ भी उतनी ही अधिक होंगी। कोई भी कीमती चीज अनायास ही, दुःख सहन किये बिना, प्राप्त नहीं होती। तदनुसार धर्म, सत्य और सम्यक्त्व ये सहज ही प्राप्त होनेवाली

* दूसरा लेख आगामी अंकमें प्रकाशित किया जायगा। स्थानाभावके कारण हम उसे इस अंकमें प्रकट न कर सके।—सम्पादक।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वस्तुयें नहीं हैं । अधर्म, असत्य और मिथ्यात्व नामके तत्त्व सुन्दर आकर्षकरूप धारण करके, प्रमादी मनुष्यको भुला देते हैं और उसे युक्ति-प्रयुक्तियोंसे अपने वशमें करके, अपना गुलाम बनाके, उस पर अत्याचार करते हैं । मनुष्योंका बहुत बड़ा भाग इसी अवस्थामें पड़ा हुआ है । बड़े भारी खेदकी बात यह है कि जो मनुष्य अधर्म और असत्यकी गुलामी चिरकालसे करता आ रहा है, वह चाहे जितना ही ख्वार क्यों न हो जाय, तो भी, बहुत समयके परिचयके कारण, इन 'खूबसूरत बला' ओंको ही अपनी इष्टदेवी मान लेता है और इन फँसानेवाली बलाओंको ही 'सत्यकी रानी' माननेके लिए औरोंको भी समझानेका यत्न करता है । ऐसी परिस्थितिमें, सत्यकी देवीको खोज निकालनेका काम, बहुत ही दुष्कर हो जाता है । उसको पानेका मार्ग है भी बहुत कठिन, ऐसे मनुष्य उस पर चल ही नहीं सकते हैं जो पग पग पर लुभा जाते हों या उत्तेजित हो जाते हों । सत्यदेवी अपने उम्मेदवारोंको उच्च चारित्रकी कठिन कसौटी पर कसती है, दुःख देती है और दुःख सहन करनेपर जो उम्मेदवार उच्च चारित्र (क्षमा, दया, नम्रता आदि) को सम्पूर्ण रीतिसे, हरतरहका त्याग करके, पाल सकता है उसे ही दर्शन देती है ।

धर्मका आधार चारित्र अथवा सदाचार है । कषायोंको दबाये बिना सदाचार नहीं बन सकता और जब तक कषायें मन्द नहीं हुई हैं तबतक आत्माका कल्याण नहीं हो सकता । इसलिए धर्मका प्रथम उपदेश यह है कि कषायोंको दबाओ, कषायोंको मन्द करो । परन्तु क्रोध, वैर आदि, जो कषायोंका परिवार है, वह इतना बलवान् है कि मनुष्य उससे डर जाता है और शीघ्र ही उनके वशीभूत हो जाता है । केवल वशीभूत ही नहीं हो जाता है किन्तु अपनी इस निर्बलताको छुपानेके लिए उस कषाय-परिवारको भी सुन्दर मोहक स्वरूप और प्रभावशाली नाम दे देता है और यह बतलाना चाहता है कि "मैं निर्बल नहीं हूँ, सबल हूँ, मैं कषायके वशीभूत थोडे ही हुआ हूँ किन्तु मैंने धर्मपालनके लिए कषायको केवल एक अस्त्र बना लिया है !" वह कहता है कि "यह मैं मानता हूँ कि क्रोध करना, लड़ना, फूट डालना, वैर निकालना, आदि सब बातें पाप हैं; परन्तु मैं तो सच्चे धर्मकी रक्षाके लिए, एक हथियारके तौरपर इन वृत्तियोंसे काम लेता हूँ । इस लिए इसमें कोई हानि नहीं है । इससे तो मुझे उल्टा धर्म-रक्षाका महान् पुण्य-बन्ध होगा । इस लिए हे भाइयो ! तुम भी मेरा मार्ग धर लो और कषाय-सेवनमें लग जाओ । प्यारे भोले भाइयो ! तुम्हारे आगे कुछ थोड़ेसे लोग दयाकी, शान्तिकी, समझौतेकी, क्षमाकी, उदारताकी, भलमंसाहतकी और एकताकी मीठी मीठी बातें कर रहे हैं, पर सावधान ! तुम इनसे बचे रहना, नहीं तो ये तुम्हें बिल्कुल पुरुषत्वहीन बना देंगे । ये क्षमा दया आदि सब गुण केवलज्ञानियों, तीर्थंकरों और मुनिजनोंके लिए ही हैं; हम लोग तो पंचमकालके मनुष्य हैं, इस लिए हमारे लिए तो लड़ना, झगड़ना, ईर्षा करना, भड़काना, भाई-भाईका अहित चाहना, जैसे बने तैसे सर्वोपरि बनना, धर्मके नामसे युद्ध करना, 'रक्षा' के लिए 'हिंसा' करना, झूठी गवाहियाँ तैयार करना, अपनी वैरवृत्तिको तृप्त करनेके लिए अज्ञानी जनोंको उत्तेजित करना और उनकी अज्ञानतासे लाभ उठाकर उनके रुपयोंसे युद्ध करना-'पराये पैसोंसे दिवाली' मनाना, यही धर्म पानेकी सार्थकता है ।

खेदकी बात है कि मिथ्यात्वका यह उपदेश

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अज्ञानी जनों पर बहुत ही जल्दी असर कर जाता है। क्योंकि जनसाधारणकी सदसद्विवेकबुद्धि या अच्छे बुरेको पहचान सकनेकी शक्ति मन्द होती है; वे आजकलके 'धर्मात्मा' कहलानेवाले लोगोंके मुँहमेंसे निकले हुए शब्दोंको ही सत्य मान लेते हैं। वे यह नहीं जानते कि अपना हित मनुष्य आप ही कर सकता है; जब तक अपनी हिताहित समझनेकी बुद्धिका विकाश नहीं होगा तब तक मिथ्यात्वके मोह उपजानेवाले प्रपंचोंसे उसकी रक्षा नहीं हो सकेगी।

इसी कारण शास्त्रकार कहते हैं कि पंचमकालमें सम्यग्ज्ञान या सत्यज्ञानकी प्राप्ति अतिशय कठिन है। एक तो मनुष्यमें अपना हिताहित सोच सकनेकी यों ही कमी है, पराये उपदेशों पर विश्वास रखके ठगाये जानेका स्वभाव ही विशेष है और दूसरे मिथ्यात्वरूपी शैतानका बल इतना बढ़ा चढ़ा हुआ है कि उसने अपनी लुभानेवाली—आकर्षक—जनसाधारणको मोहित कर डालनेकी—कलाका जाल लगभग सारे संसारमें फैला रक्खा है।

तो भी, जिन्हें अपने धर्मकी— अपने आत्माके रक्षणकी सचमुच ही चिन्ता है, उन्हें निराश न होना चाहिए। सत्यका कुछ लोप नहीं हो गया है; केवल उसके ऊपर स्वार्थसाधु अज्ञानी या हठी लोगोंने परदा डाल रक्खा है। इस परदेको अपनी बुद्धिरूपी पैनी छुरीसे काट डालनेकी जरूरत है। जो लोग ऐसा करेंगे उन्हें सत्यदेवीके—धर्मके—दर्शन अवश्य होंगे। 'मार्ग एक ही है,' हाँ, सचमुच एक ही है और वह यह है कि वीतराग अर्थात् रागद्वेषरहित महापुरुषोंके उपदेश किये हुए शास्त्र आप स्वयं ही बाँचिए, स्वयं ही समझिए और जो रागद्वेषका उपदेश देते हों, उनका उपदेश सुननेसे साफ इंकार कर दीजिए। वीतरागता प्राप्त करना ही प्रत्येक मनुष्यका लक्ष्यबिन्दु होना चाहिए और मनुष्य, चाहे वह संसारी हो चाहे गृहत्यागी, उसे रागद्वेष कम करते जानेका ही उद्यम करते रहना चाहिए। 'त्यागियोंको रागद्वेषसे दूर रहना चाहिए और संसारियोंको रागद्वेषके कीचड़में फँसना चाहिए,' ऐसे महा अनर्थकारी उपदेशोंसे बचिए! यदि तुम इसे सुनोगे तो याद रक्खो फँस जाओगे। इसलिए साहसी बनो, आत्मबलको स्फुरायमान करो, मिथ्यात्वसे डरो, और रागद्वेष बढ़ानेवाली तथा धर्मके नामसे झगड़ा फसाद करनेवाली फिलासफी बतलानेवालोंसे दूर रहो। यदि तुम ज्ञानका प्रकाश चाहते हो, तो वह अज्ञानके अन्धकारमें जानेसे नहीं मिलेगा। वीतरागता या मुक्ति चाहते हो, तो वह लड़ाई-झगड़ों और द्वेष-वैरोंमें कभी नहीं मिलनेकी। जो दुनियादारीमें लाचार होकर रागद्वेष करते हों, उन्हें भी धर्मके कार्योंमें तो रागद्वेषके दूर करनेका ही उद्योग करना चाहिए कि जिससे धीरे धीरे समभावका अभ्यास बढ़ता रहे और समय आने पर दुनियादारीमें भी रागद्वेषरहित आचरण हो सके। भाइयो! मुक्तिके इच्छुको! यदि तुम तत्त्वज्ञानकी गहरी बातें नहीं समझ सकते हो तो न सही; पर रागद्वेषको कम करनेका अभ्यास डालने की ओर अवश्य ध्यान रक्खो— यदि केवल इसी एक बातको स्मरण रक्खोगे तो तुममें सारे सद्गुण और सारे ज्ञान एक न एक दिन जागरित हुए बिना न रहेंगे।

जैनसमाजमें तीर्थोंके सम्बन्धमें जो झगड़े चल रहे हैं-उनको शान्त करनेके लिए गत पर्युषण पर्वके समय, कितने ही दिगम्बर—श्वेताम्बर सज्जनोंकी सहानुभूतिसे एक निर्दोष आन्दोलन इस लेखकने उठाया था, जिसका स्वरूप हितैषीके गत अंकमें विस्तारके साथ समझाया गया है और इस ढंगसे समझाया है कि उसमें किसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकारका भ्रम या सन्देह नहीं रह सकता। उक्त लेखमें यह कहीं भी नहीं लिखा गया है कि अमुक पर्वतराज पर दिगम्बर भाइयोंको अपनी पद्धत्यनुसार पूजन करनेका हक नहीं मिलना चाहिए। ऐसी सलाह भी नहीं दी गई है कि उन्हें अपना हक छोड़ देना चाहिए। सम्मेदशिखरके या अन्य किसी तीर्थके मुकद्दमे-में दिगम्बरयोंका दोष है, इस प्रकारका एक शब्द या इशारा भी लेखभरमें नहीं है। दिगम्बरसम्प्रदायको छोड़ दो, या दिगम्बर पूजाविधिको बदल डालो, इस प्रकारकी मूर्खतापूर्ण सूचना भी मैंने नहीं की है। इस प्रकारके खयालोंको मैं पसन्द भी नहीं करता हूँ। तो भी लाला प्रभुदयालजीने या उनके नामसे किसी और 'धर्मात्मा' ने एक पेम्फलेटके द्वारा दिगम्बरी भाइयोंका भड़का-नेका प्रयत्न किया है और समग्र दिगम्बर-श्वेता-म्बर समाजकी निःस्वार्थ सेवा करनेके लिए उद्यत हुए सज्जनोंपर—जिनकी मेरे लेखमें सहियाँ हैं—अनेक दोष लगाये हैं। इतना ही नहीं, लालाजीने दिगम्बर भाइयोंको यह सिखा-पन भी दिया है कि लड़नेमें ही धर्म है, अच्छी तरहसे लड़ो, खूब लड़ो, शक्ति भर धन एकट्ठा करके लड़ो और जो लोग लड़नेके बदले शान्तिके साथ न्याय करानेकी सलाह देते हैं उनके साथ भी लड़ो! पर मैं इसमें बेचारे लालाजीको दोष नहीं दूँगा। इस समय संसारभरमें युद्धकी हवा बह रही है और जहाँ तहाँ "लड़ो–मारो–काटो, बदला लो, मिट्टीमें मिला दो" यही शब्द सुन पड़ते हैं। अतः जान पड़ता है कि इसी प्रबल भावनाका प्रभाव जैन जैसी शान्त, रागद्वेषको नष्ट करनेमें ही धर्म माननेवाली और शत्रु पर क्रोध न करनेकी टेव रखनेवाली कौम पर भी पड़ गया है। इसीके प्रभावसे ही हमारे शान्तिप्रचारक आन्दोलनके सामने लालाजी या उनके लेखक कमर कसके खड़े हो गये हैं और करोड़ों पंचेन्द्रिय जीवोंकी हिंसा करनेवाले वर्तमान यूरोपीय युद्धकी स्पष्ट शब्दोंसे अनुमोदना कर रहे हैं। जब ईसाई धर्मके पादरी अपने ईश्वरसे यह प्रार्थना करते हैं कि "हे ईश्वर! दोनों पक्षोंको सुमति सूझे और शीघ्र ही इस युद्धकी शान्ति हो," तब दिगम्बर-जैनधर्मके अनुयायी लालाजी प्रचार करते हैं कि "क्या आप कह सकते हैं कि सत्यकी विज-यके लिए यह रुपया खर्च करना और मनुष्यहानि करना व्यर्थ है या अन्याय है? कभी नहीं।" देखा लालाजीका सत्यका शास्त्र? आप रागद्वेषरहित जिनदेवके भक्तोंको और सारी दुनियाको यह सिखलानेके लिए तयार हुए हैं कि लाखों मनुष्योंकी हत्या करनेसे सत्यका विजय होता है! लालाजी यदि यह भी बतला देनेकी कृपा करते कि जिस सत्यके लिए आप मनुष्योंके संहार करनेका हक माँगते हैं उस सत्यकी व्याख्या और स्वरूप क्या है, तो अच्छा होता। क्या जो कुछ आप कहते हैं वही 'सत्य' है? प्रत्येक युद्धमें लड़नेवाले दोनों ही पक्ष अपनी अपनी बातको 'सत्य' कहते हैं। यदि इस तरहके 'सत्य' के लिए अर्थात् 'स्वयं माने हुए सत्य' के लिए ही एक मनुष्यको दूसरे मनुष्यकी जान लेनेका हक मिल जाय, तो फिर समझ लेना चाहिए कि प्रत्येक राज्य, प्रत्येक समाज, प्रत्येक जाति और प्रत्येक व्यक्तिको खून करने और रुपया उड़ानेका हक मिला हुआ है; क्योंकि कभी न कभी तो इनका दूसरे राज्य, समाज, जाति और व्यक्तिके साथ किसी न किसी विषयमें झगड़ा हो ही जाता है। परन्तु यदि ऐसा हक मिल जायगा, तो दुनियामें शायद एक भी मनुष्य जीता नहीं रह सकेगा—आदमीको आदमी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खा जायगा; पर बेचारे लालाजीमें इतनी बात सोचनेकी बुद्धि कहाँ ?

तीर्थोंके मामलेमें दिगम्बरसमाजने एक पक्ष लिया है और श्वेताम्बरसमाजने दूसरा। दिगम्बर समाजका दावा है कि अमुक तीर्थ हमारा है और यही उसका 'सत्य' है, इसी प्रकार श्वेताम्बरसमाज दावा करता है कि अमुक तीर्थ हमारा है और यही उसका 'सत्य' है। पाठक देखेंगे कि यहाँ 'सत्य' का कोई एक खास स्वरूप नहीं है। अर्थात् दोनों अपने अपने दावेको सत्य बतला रहे हैं। ऐसी दशामें इस 'स्वयं माने हुए' सत्यके लिए लड़ना– भोले भक्तोंके रुपयोंको उड़ाना और वैरविरोधको पुष्ट करके समाजको निचोड़ डालना, सर्वथा अन्याय है। इसके विरुद्ध क्षमा, नम्रता, भ्रातृत्व, मैत्री आदि सार्वकालिक, सर्वसम्मत और समस्त जीवोंके लिए एक से उपयोगी 'सत्य' हैं, इसलिए इन की रक्षाके लिए–अर्थात् ऐक्य, और सुखशान्तिरूप सिद्धान्तकी रक्षाके लिए युद्ध करना 'न्याय' है; परन्तु यह युद्ध मारपीटसे नहीं किन्तु समझौतेसे, न्यायसे, लोकमत तैयार करनेरूप निर्दोष अस्त्रसे और लोगोंको अपनी निजकी बुद्धिसे विचार करनेकी सम्मति देनेरूप निरुपद्रव शस्त्रसे होना चाहिए। लालाजी ! हमारा युद्ध इसी प्रकारका है; लाखों मनुष्योंकी हत्या और करोड़ों रुपयोंका स्वाहा करनेवाला आपका युद्ध आपको ही मुबारक हो ! आपको यदि हत्यामें और रुपया बरबाद करनेमें ही धर्मलाभ दिखता हो, तो आप अपना यह सिद्धान्त अपने ही घरमें चलाइए; इसकी दूसरों पर आजमायश करनेकी आवश्यकता नहीं है ! आप घरद्वारवाले हैं, दूकानदार हैं, खुशीसे अपना घर द्वार बेच डालिए और अपना सारा रुपया तीर्थरक्षाके लिए अर्पण कर दीजिए, पश्चात् दिगम्बर बनकर जंगलमें जा बैठिए। इससे आपको बड़ेसे बड़ा धर्मलाभ होगा जिसे कि आप बिना माँगे ही समाजको देनेके लिए तैयार हो गये हैं ! समाजको आपकी सम्मति नहीं चाहिए। अपना घर खाली करके आपके समान पराई पूँजीसे बहादुर बननेकी उत्कण्ठा रखनेवालोंके हाथके खिलौने बननेके लिए लोग तैयार नहीं हैं।

लालाजी इस प्रकारका डौल बनाते हैं मानों आप सत्यकी रक्षा करनेके लिए ही कमर कसके तैयार हुए हैं; परन्तु आपका 'सत्य' स्वयं आपका ही माना हुआ सत्य है, न कि वास्तविक अथवा सार्वजनिक सत्य; और इस सत्यकी रक्षाके लिए किये जानेवाले युद्धका स्वरूप भी आपहीने अपनी ही पद्धतिसे अर्थात् हिंसक आशयसे खड़ा किया है। इस तरह लालाजीका 'लक्ष्य' दूषित है और उक्त 'लक्ष्य'तक पहुँचनेके लिए उन्होंने जो 'मार्ग' ग्रहण किया है वह भी दूषित है। जिसकी बुद्धि इतनी भ्रमित हो गई हो कि 'लक्ष्य' और 'मार्ग' दोनोंमेंसे एक भी बातका वास्तविक निर्णय नहीं कर सकती है, ऐसे मनुष्य पर हमें दया करनी चाहिए और ऐसी भावना भानी चाहिए कि उसे सुबुद्धिकी प्राप्ति हो।

अतः अब लालाजीको छोड़कर भगवान् महावीरके पुत्रों और वीतरागताके इच्छुकोंके सम्मुख मैं नीचे लिखा खुलासा करता हूँ कि जिससे लालाजीके फैलाये हुए भ्रमजालकी असत्यता आप-ही-आप समझमें आजाय और इस कुपथसे बचनेकी बुद्धि प्रत्येक जैनभाईको सूझे।

१ दिगम्बर या श्वेताम्बर भाइयोंको अपनी पूजापद्धति नहीं छोड़ना है।

देशके नेताओंसे 'न्याय' करानेकी जो सम्मति दी गई है उसमें यह कहीं भी नहीं कहा गया है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कि दोनों सम्प्रदायोंको एक ही रीतिसे पूजा करनेके लिए तैयार होना चाहिए। मेरा कहना तो यह है कि सब लोग अपनी, अपनी पूजाविधि खुशीसे बनाये रक्खें, श्रद्धापूर्वक बनाये रक्खें और अपनी अपनी पद्धतिसे पूजा करनेके कार्यमें, इस समय जो अन्तराय आड़े आते हैं, वे दूर हो जायँ और निर्विघ्नतापूर्वक अपनी अपनी रीतिसे पूजा होती रहे, इस प्रकारका मार्ग देशभक्त नेताओंके द्वारा ग्रहण करलेना चाहिए। मैं इस बातको मानता हूँ कि यदि दिगम्बर-श्वेताम्बर अगुए स्वयं ही एकत्र होकर आपसमें निबटेरा कर लें और ऐसा प्रयत्न करें जिससे किसी भी तीर्थ पर अपनी अपनी पद्धतिसे पूजा पाठ करनेमें किसी प्रकारका झगड़ा न होने पावे, तो यह सबसे अच्छा मार्ग है और इसमें दोनोंकी ही प्रतिष्ठा है; परन्तु कठिनाई यह है कि दोनोंही सम्प्रदायोंमें लालाजी जैसे मताग्रही और कलहप्रेमी महात्माओंकी कमी नहीं है। ऐसी दशामें तीसरेको बीचमें डाले बिना सफलता नहीं हो सकती और इसी कारण भारतके सबसे अधिक विश्वासपात्र, देशहितैषी और धर्मभावनायुक्त नेताओंको पंच बनाकर उनके द्वारा फैसला करानेकी सूचना की गई है।

२ 'लोभ'के वश मुकद्दमा मिटानेकी सूचना नहीं की गई।

"तुम पैसे बचा रक्खो, लोभी बनो, धर्म रक्षाके लिए धनको क्यों बरबाद करते हो?" इस तरहका इशारा भी हमारे लेखमें नहीं है। हमारे लिखनेका अभिप्राय तो यह था कि आज कल इस देशकी ऐसी दशा है कि "धनका टोटा है, उदारताकी कमी है" इसलिए जो थोड़ा बहुत धन इस देशमें बच रहा है, उसका उपयोग आपसी लड़ाई-झगड़ोंमें न करके संसारको धर्ममय पवित्र और उच्चसंस्कारसम्पन्न बनानेके काममें करो। किन कामोंमें ख़र्च करना चाहिए और किनमें नहीं, इस बातका 'विवेक' करनेके लिए कहना अधर्म कदापि नहीं हो सकता; किन्तु आँखें बन्द करके समाज और देशका बल तोड़नेमें धनकी और सो भी पराये धनकी बरबादी करना अवश्य ही अधर्म है; बल्कि कहना होगा कि इसके समान धर्मद्रोही, देशद्रोही और समाजद्रोही कार्य दूसरा नहीं है। शास्त्रोंके उद्धार और प्रचारका काम; न्यायलब्ध धनसे उदर निर्वाह करना सिखानेवाली विद्याओंके साधन खड़े करनेका काम; जबतक समाजमेंसे निरुद्यमता न निकाल दी जायगी तबतक धर्माचरणोंका होना कठिन है, इसलिए निरुद्योगिता मिटानेवाली संस्थायें खोलनेका काम; समाजकी कुरीतियाँ मिटानेके आन्दोलनका काम; जबतक देशमें शान्ति, एकता, स्वाधीनता, और धनधान्यकी पूर्णता न होगी, तबतक देशके धर्मोंकी भी रक्षा होना संभव नहीं है, इसलिए जो देशभक्त नेता देशकी स्थिति सुधारनेके लिए जी जानसे परिश्रम कर रहे हैं, उनके प्रयत्नमें तन-मन-धनसे सहायक बननेका काम; इस तरहके न जाने कितने काम करना है। इन सभी कामोंमें धनकी आवश्यकता है और यह सभी जानते हैं—देशी और विदेशी सभी अर्थशास्त्रज्ञ एक स्वरसे कहते हैं कि भारत जैसा निर्धन देश कोई भी नहीं है। अतः ऐसे निर्धन देशमें यदि किसीके पास थोड़ा बहुत धन हो तो उस धनका केवल वही अकेला मालिक नहीं है, किन्तु सारा देश मालिक है, वह तो केवल 'ट्रस्टी' है। उस धनको स्वेच्छाचरितापूर्वक आपसी युद्धोंके द्वारा देशको और भी अधिक निर्बल बनानेके काममें उड़ानेका किसी भी भारतवासीको अधिकार नहीं है। मेरा वचन किसीको सहन हो या न हो, और इसके लिए

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुझे चाहे जो उपनाम दिया जावे, परन्तु मैं इस बातको अपनी सारी शक्ति लगाकर जोरके साथ कहूँगा कि जो भारतवासी धनी बनकर उस धनका उपयोग अपने निजी मौज-शौकमें और लड़ाई-झगड़े करके देशकी दशा और भी अधिक शोचनीय बनानेमें करते हैं, उनके समान कोई मूर्ख, देशद्रोही और पापी नहीं है और जो लोग धनियोंको सर्वोपयोगी धर्मसिद्धान्तोंके प्रचारमें और देशसेवाके अनेक कामोंमें धन खर्च करनेकी सलाह देनेके बदले इस प्रकारके धर्मयुद्धोंमें तथा आपसी लड़ाई-झगड़ोंमें खर्च करनेके लिए उत्तेजित करते हैं वे मनुष्य जातिके कट्टर शत्रु हैं।

३ अमुक पक्ष न्यायका उल्लंघन कर रहा है, इस प्रकारका दोष किसीको भी नहीं लगाया गया।

हमारी अपीलमें यह कहीं भी नहीं कहा कहा गया है कि दिगम्बरोंने न्यायका उल्लंघन किया है। जो मनुष्य आपसमें फैसला करनेकी सलाह देनेके लिए निकला है वह ऐसा कभी कह भी नहीं सकता कि झगड़ा किसने खड़ा किया और अमुक तीर्थका सच्चा हकदार कौन है। किसी प्रकारका आरोप और किसी प्रकारका जजमेंट (फैसला) देना उसका काम ही नहीं है। मैंने बड़ी ही सावधानीसे–इस तरहसे कि किसी एक भी पक्ष पर कोई आरोप न आवे–किसीके साथ ग़ैर-इन्साफी न हो जाय–तटस्थ होकर अपील की थी कि छद्मस्थ होनेके कारण मनुष्य मात्र भूलका पात्र है। इस लिए एक पक्षसे भूल भी हो सकती है, तो भी दूसरे पक्षको अपने भाईके साथ लड़नेके बदले आपसमें ही समझौता कर लेना चाहिए। मेरा निजी और दृढ अभिप्राय यह है कि जिन शान्तिमय स्थानोंको अगणित आत्माओंके मोक्ष प्राप्त करनेके कारण हम पवित्र मानते हैं उन स्थानों पर, जो जन्मसे जैन हैं केवल उन्हींको नहीं किन्तु अन्य लोगोंको भी–जो वहाँ आते हैं-दर्शन-पूजन-ध्यान करनेका सुभीता होना चाहिए और यदि वे वहाँ दर्शन-पूजन करें तो इससे हमें प्रसन्न होना चाहिए। दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनोंको आपसमें सलाह करके ऐसा प्रबन्ध कर डालना चाहिए कि दोनों ही अपनी अपनी पद्धतिसे निर्विघ्नतया पूजापाठ किया करें। परन्तु पूजनकी इस आवश्यकताकी ओर और पूजनका अधिकार प्रत्येक मनुष्यको मिलना चाहिए इसकी ओर ध्यान देनेके लिए सरकारी कानूनमें गुंजायश नहीं है। कानून तो पहाड़को एक स्थावर सम्पत्ति मानकर उसका अधिकार किसी एक पक्षको दे देना, बस इतना ही मतलब रखता है। पर यदि हम देशभक्त अगुओंसे अपना न्याय करावेंगे, तो वे धर्मको बाधा न पहुँचे और सच्चे हकदारकी मालिकी भी न जाय, इन दोनों बातोंका खयाल रखकर कोई अच्छा मार्ग ढूँढ़ निकालेंगे। जिन लोगोंपर कानूनसे लड़नेकी ही धुन सवार है, उन्हें जानना चाहिए कि कानून केवल बुद्धिवादका परिणाम है, उसमें अभीतक धर्मभावनाका मेल नहीं हुआ है। मद्यपान और वेश्यागमन ये दो बहुत ही बड़े अधर्म और अनर्थ हैं, तो भी बुद्धिवादसे तैयार किया गया सरकारी कानून न वेश्याके धंधेको बन्द करता है और न शराब बेचना बन्द करता है। इसीलिए धर्म और कानून दोनोंके अनुभवी अगुओंके द्वारा इन धार्मिक युद्धोंका फैसला करा लेना हमारे लिए विशेष कल्याणकारी है। इसके सिवाय जिन्होंने सम्मेदशिखरसम्बन्धी मामलोंपर बारीकीसे विचार किया है वे जानते हैं कि यह मुकद्दमा 'प्रिवी कौन्सिल'तक जायगा, तो भी इस कलहकी समाप्ति होनेवाली नहीं है। इसके सम्बन्धमें ऐसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बहुतसी बातें मुझे मालूम हुई हैं जिन्हें मैं प्रकट नहीं कर सकता; परन्तु इतना तो निस्सन्देह होकर कहा जा सकता है कि प्रिवी कौंसिलसे फैसला मिल जानेपर भी अदालतोंके धक्के खानेका काम जैनोंके भाग्यसे टलनेका नहीं। इस तरह वर्षोंतक कष्ट भोगकर, लाखों रुपयोंका पानी बनाकर, परस्पर एक दूसरेको निर्बल बनाकर, जब दोनों पक्ष थक जायँगे तब अन्तमें आपसमें ही निबटेरा करनेको लाचार होंगे। इससे तो यही अच्छा है कि अभीसे पंचोंके द्वारा मामला तै करा लिया जाय और मेल-मिलाप बढ़ाया जाय। वणिक जैसी सयानी जाति भी यदि इस ओर ध्यान न देगी तो और कौन देगा?

४ देशके नेता जैनधर्मके गौरवकी रक्षा अवश्य करेंगे।

देशके नेता भारतवर्षके ही वातावरणमें जन्मे हैं और भारतवर्षमें ही बड़े हुए हैं; इसलिए उनमें धर्मभावना अवश्य होगी और जिनमें धर्मभावना है वे अजैन होने पर भी जैनधर्मका गौरव किस बातमें है इस बातको सुगमतासे समझ सकेंगे और उस गौरवकी रक्षाका भी वे स्वदेशप्रेम और धर्मभावनाके कारण अवश्य खयाल रक्खेंगे। इसके सिवाय आजकल जैनधर्मसम्बन्धी पत्र, पुस्तक, शास्त्रादि अँगरेजीमें भी प्रकाशित होने लगे हैं और अजैन भारतवासी जैनसभाओंमें जैनतत्त्वसम्बन्धी व्याख्यान भी देने लगे हैं, ऐसी दशामें भारतके सारे ही नेता जैनभावनाओंसे बिल्कुल ही कोरे हैं, ऐसा कहना तो अपनी अज्ञानता प्रकट करना है। पर लालाजीको अपनी अज्ञानता प्रगट होनेकी क्या परवा है, उन्होंने तो देशके नेताओंमें जो जैनधर्मसम्बन्धी अज्ञानताका दोष निकाला है, वह एक दूसरे ही आशयसे निकाला है। उन्हें केवल तीर्थोंकी मालिकी या पूजाके हकका ही निर्णय नहीं चाहिए, वे तो यह जजमेंट चाहते हैं कि दिगम्बरसम्प्रदाय ही सबसे पहला और सच्चा धर्म है और श्वेताम्बर पीछेसे निकला हुआ झूठा धर्म है और इस बातका जजमेंट देनेकी लालाजी जितनी योग्यता बेचारे देशके नेताओंमें कहाँ? जान पड़ता है लालाजीके कानमें स्वयं श्रीमहावीर स्वामी आकर कह गये हैं कि श्वेताम्बर हमारे संघमें नहीं हैं और वे मिथ्याती हैं। लालाजी कहते हैं–"क्या मिथ्यात्व सम्यक्त्व मिलनेसे महावीरकी एकता अथवा मुक्तिका मार्ग हो सकता है? कदापि नहीं .... जल अग्निकी अथवा अंधकार प्रकाशकी एकता हो सकती हो तो दिगम्बर-श्वेताम्बरकी एकताकी कल्पना भी हो सकती है, अन्यथा नहीं।" (लालाजी जोशमें आकर गये तो थे श्वेताम्बर धर्मको अन्धकार कहने, पर लिख गये अपने ही धर्मको अन्धकार!) लालाजी या उनके 'धर्मात्मा' लेखक जिस हृदयसे ये शब्द लिख रहे हैं उस हृदयको मैं बाँच सकता हूँ। आप इन झगड़ोंसे दिगम्बरधर्मकी प्राचीनता और सत्यता और श्वेताम्बरधर्मकी अर्वाचीनता तथा असत्यता कोर्टोंके द्वारा सिद्ध कराना चाहते हैं। यदि मैं भूलता नहीं होऊँ तो एक केसमें ऐसा प्रयत्न सचमुच किया भी गया है। सरकारी अदालतोंसे इस प्रकारकी आशा करना, इसे 'धर्म भोलेपन'के सिवाय और क्या कह सकते हैं! जब मैं आपसमें सुलह और शान्ति करानेके लिए खड़ा हुआ हूँ, तब एक तटस्थ पुरुषके रूपमें मैं इस बातका इशारा भी नहीं कर सकता हूँ कि कौन सम्प्रदाय पहला है और कौन पीछेका है, और तीर्थोंकी मालिकी तथा पूजनके हकके झगड़ेसे 'कौन धर्म अधिक प्राचीन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है या सच्चा है' इस प्रश्नका कोई सीधा सम्बन्ध भी तो नहीं है। इसी प्रकार यह कहनेका साहस करना भी—कि जो प्रथम जन्म पाता है वह सच्चा और जो पीछे जन्म पाता है वह झूठा—एक प्रकारसे अपनी मूर्खता प्रकट करना ही है। इतना तो मैं कहूँगा कि इतिहासज्ञोंके उपयोगके लिए तारीखोंका पता अवश्य लगाया जाना चाहिए और जगत्के तत्त्वज्ञानकी वृद्धिके लिए जुदा जुदा धर्मशास्त्रोंके सिद्धान्तोंकी जाँच–पड़ताल भी अवश्य होनी चाहिए; परन्तु 'मैं सच्चा और तू झूठा' केवल इसी कदाग्रहकी तुष्टिके लिए जो धार्मिक विवाद और शास्त्रार्थ आदि होते हैं, इस समय हमें उन्हें तिरस्कारकी दृष्टिसे देखना चाहिए और जहाँतक बन सके उन्हें दबा देना चाहिए। जनसमाजमें जिसे जो धर्म अच्छा लगे उसे वह श्रद्धापूर्वक पाले और दूसरे लोग अपनी रुचिके अनुसार जिस धर्मको पालते हों उनके प्रति सहिष्णुता रक्खे—माध्यस्थ्य वृत्ति रक्खे, यही सबसे अच्छा मार्ग है। मनुष्य जबसे समाज बना कर रहना सीखा है, तबसे समाजकी रक्षाके लिए उसे इस नीतिका अवलम्बन करना ही पड़ा है। यदि कोई मनुष्य औरोंके धर्मोंके प्रति सहिष्णुता नहीं रख सकता है, तो वह समाजके लिए एक भयंकर जन्तु है, समाजके हितके लिए उसे समाजमेंसे दूर कर देना चाहिए। आश्चर्यकी बात तो यह है कि लालाजी जिस धर्मको कोर्टके द्वारा सत्य सिद्ध कराना चाहते हैं उसी धर्मको स्वयं इतना भी नहीं जानते हैं जितना एक साधारण विद्यार्थी जानता है। इस पर भी आपका यह हौसला है! मालूम नहीं यह लेख आपका ही है या आपकी आड़में किसी दूसरे धर्मात्माकी दिखलाई हुई कारीगरी है।

५ आपसमें फूट कौन कराता है?

लालाजी कहते है कि "नहीं मित्रो, (अपील करनेवाले) असंभव एकताका लोभ दिखाकर दिगम्बरोंमें अनेकताका प्रयत्न कर रहे हैं-आपसमें फूटका बीज बो रहे हैं।" इस विषयमें मैं अब क्या कहूँ? इसका उत्तर तो लालाजीको एक बच्चा भी दे देता कि पानीसे आग बुझती है, या सुलगती है? पर इतना तो मुझे अवश्य कहना चाहिए कि एकताकी हिमायत करनेवाले दिगम्बर भाइयोंके विरुद्ध दूसरे दिगम्बरी भाइयोंको उत्तेजित करके परस्पर शत्रुता उत्पन्न करनेका काम लालाजीने शुरू कर दिया है। इतना ही नहीं किन्तु आपने 'भारतजैनमहामण्डल' जैसी संस्थाके सुशिक्षित और प्रतिष्ठित सभ्योंपर भी इस एकताकी हिमायतके अपराधके बदले निन्दाके वाण छोड़कर कलहका बीज बो दिया है।

६ पंच नियत करनेकी सम्मति देनेवाले सज्जन।

'तीर्थोंके झगड़े मिटाइए' शीर्षक अपीलमें जिन सज्जनोंके हस्ताक्षर हैं वे दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदायोंके प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित पुरुष हैं। इस कार्यमें शेठपार्टी भी शामिल है और सुशिक्षित-पार्टी भी शामिल है। अपीलमें ऐसी एक भी सही नहीं है जिसने आँखकी शर्मसे या आग्रहसे अपने हृदयके विरुद्ध सम्मति दी हो। पर इस अपीलके विरुद्ध हमारे लालाजीने जो पेम्फलेट निकाला है उसमें हृदयसे सहियाँ देनेवाले शायद दो चार सज्जन भी न होंगे। पर, सहियोंमें जिन सेठ सज्जनोंके नाम छपे हैं उन्हें, या उनकी तरफसे सही कर देनेवाले पर धर्मविषयक गहरी समझ न रखनेवाले मुनीम साहबोंको, दोष देनेके लिए मैं तैयार नहीं हूँ। क्योंकि यह सारी ही बाजी अकेले लालाजीकी खेली हुई है और आपहीने बड़े प्रयत्नसे दवाव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आदि डालकर ये सहियाँ कराई हैं । अस्तु । पंच नियत करना या नहीं करना, यह दोनों सम्प्रदायोंकी और खास करके वादी प्रतिवादियोंकी इच्छा पर निर्भर था, उनसे कोई जबर्दस्ती एकता करनेको नहीं कहता था, एकताके हिमायती भी दबाव डालकर नहीं किन्तु नम्र प्रार्थना और समझौतेके मार्गसे ही काम कर रहे थे, इसके सिवाय एकताकी हिमायत दिगम्बर—श्वेताम्बर दोनों पक्षके सेठ और बाबुओंकी ओरसे (न कि किसी एक ही सम्प्रदायकी ओरसे) होती थी, तब यह समझमें नहीं आता कि एक लालाजीको ही इसमें अपने धर्मके ध्वंस होनेका भय क्यों हुआ ? जब अभीतक श्वेताम्बरोंने ऐसी कोई कार्रवाई नहीं की है तब लालाजी जैसे धर्मोन्मत्तोंके लिखे हुए अण्डवण्ड लेख पर दिगम्बर समाजके सेठ सज्जनोंने सही देकर और अपनी शामिलगीरी बतलाकर हमारी समझमें तो श्वेताम्बरोंके सन्मुख अपनी अनुदारता ही प्रकट की है और मानों बतला दिया है कि हम सुलहको नहीं कलहको पसन्द करते हैं । मैं श्वेताम्बरसम्प्रदायके प्रसिद्ध प्रसिद्ध सेठोंसे —अगुओंसे मिला हूँ और उन्होंने इस एकताके आन्दोलनके प्रति पूरी पूरी सहानुभूति प्रकट की है । इसी प्रकार मैं दिगम्बर सम्प्रदायके भी कई सुप्रसिद्ध अगुआ-सेठोंसे मिला हूँ और उन्होंने भी इस आन्दोलनके प्रति प्रसन्नता प्रकट की है । इसलिए मुझे विश्वास है कि धीरे धीरे लोकमत तैयार हो जायगा और धर्म तथा देशकी नीवरूप एकताका शुभागमन जैनसमाजमें अवश्य होगा ।

लालाजीने हमारी अपील पर सही करनेवाले सज्जनोंपर जिस तरह कटाक्ष किया है, उनके पेम्फलेट पर सही करनेवालों पर वैसा कटाक्ष करनेकी मेरी इच्छा नहीं है; परन्तु यह मैं अवश्य कहूँगा कि पक्ष या विपक्षके लेखोंपर दश पाँच सहियाँ अधिक या कम होनेसे कोई बड़ा भारी हित या अहित होनेवाला नहीं है । सुलहकी पक्षमें सही देकर ही यदि सब लोग बैठ रहेंगे तो यह काम आगे न बढ़ सकेगा; और विपक्षमें सही देनेवाले सज्जन यदि भीतरसे सुलहके पक्षपाती होंगे तो उनसे कुछ सुलहके मिशनकी हानि नहीं हो सकेगी । उदाहरणके तौर पर इन्दौरके एक प्रतिष्ठित सेठजीने मेरे इस आन्दोलनके प्रति सहानुभूति प्रकट की थी; परन्तु उन्हींके मुनीमजीसे सेठजीके नामकी सही लालाजीने अपने निन्दात्मक पेम्फलेटमें करा ली है । मेरा विश्वास है कि एक दिन ये हमारे विरुद्ध सही देनेवाले सज्जन भी जगत्को ‘ शासनप्रेमी ’ बनानेमें हमारे साथ हाथ मिलायँगे और परस्परके वैरविरोधको भुला देंगे; बल्कि इससे भी आगे बढ़कर मैं तो यह भावना भाता हूँ कि अपने खर्चसे इस आन्दोलनको जारी रखनेके अपराधके कारण मेरा गालियोंसे सत्कार करनेवाले लालाजी और उनकी प्रेरणासे सही करनेवाले तमाम सज्जन एक दिन रागद्वेषका निःशेष क्षय करके वीतराग अवस्था प्राप्त करें ।

एक बात और लिखकर मैं इस लेखको समाप्त करूँगा । लालाजीको, मेरी एकताकी चर्चाको ‘ कूटनीति ’ कहकर और उसमें शामिल होनेवाले प्रसिद्ध दिगम्बर महाशयोंको धर्मशून्य, खाद्याखाद्यविचारहीन आदि विशेषण देकर भी सन्तोष नहीं हुआ, इसलिए उन्होंने लगे हाथ मुझपर भी पुष्पवृष्टि कर डाली है और इसे मैं सचमुच ही उनकी ‘कृपावृष्टि ’ समझता हूँ । यद्यपि जैसा कि लालाजी कहते हैं, मैं तीर्थरक्षामें पाप नहीं बतलाता हूँ, (मैं तो तीर्थरक्षाका अच्छेसे अच्छा और थोड़े खर्चवाला मार्ग बतलाता हूँ) तो भी मुझे इस बातको स्वीकार करनेमें कोई संकोच नहीं है कि मैं किसी मूर्तिकी पूजा नहीं करता (और पूजनेवालोंको रोकना भी नहीं चाहता)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परन्तु मेरे दूसरे भाई जिन महावीर भगवानकी मूर्ति पूजनेमें अपने आत्माका कल्याण समझते हैं, उन्हीं महावीरदेवके समस्त धर्म राज्यकी—समग्र जैनसमाजकी मैंने एक बड़े विस्तारवाली विशाल मूर्ति बना रक्खी है और उसकी सेवा पूजा अर्थात् उस समाज और उस धर्मकी सेवा-शुश्रूषा यथाशक्ति यथामति तन-मन-धनसे करना यही मेरी प्यारी मूर्तिपूजा है। दूसरे तमाम मनुष्योंको अपने अपने इष्ट देवकी पूजा करनेका जितना हक है उतना ही मुझे इस विशाल मूर्तिकी पूजा करनेका है। मेरी पूजापद्धति किसीका दिल दुखानेवाली या किसीको हानि पहुँचानेवाली नहीं है, इस लिए दूसरे सज्जनोंको चाहिए कि वे अपनी अपनी पूजा-पद्धतिमें श्रद्धापूर्वक लगे रहें और मेरी पूजा-विधिकी ओर माध्यस्थ्यभावना—मतसहिष्णुता रक्खें। दूसरोंकी दृष्टिमें मेरी पूजाविधि भले ही अच्छी न हो, पर मेरी पूजापात्र मूर्ति इतनी विशाल है कि उसमें दिगम्बर—श्वेताम्बर सबका समावेश हो जाता हैं, इस लिए मैं तो अपनी समझके अनुसार अपनी पूजामें इनको भी पूजाका मान देता हूँ और इनकी सेवाभक्तिके लिए शरीरद्रव्यादि सामग्री भेट करता हूँ। इसलिए मुझपर इन देवोंको (श्वेताम्बर-दिगम्बरोंको) अवकृपा नहीं करनी चाहिए और यदि कदाचित् अवकृपा हो जाय तो क्या डर है, देव तो मेरे ही हैं। इन्हें मना लेनेकी कला इनके भक्तसे छुपी नहीं रह सकती। लोकमें प्रसिद्ध है कि भक्तके सामने भगवान् भी सीधे हो जाते हैं।

समग्र जैनसमाजकी
मूर्तिका उपासक
और
अविभक्त जैनसंघका श्रावक,—
वाडीलाल मोतीलाल शाह।

भारतमें जैनसमाजकी अवस्था।

(जातिप्रबोधकसे उद्धृत।)

“ पाठको! आगेके पृष्ठकी संख्याओंको ज़रा ध्यानसे देखिए। इनसे आपकी अवस्थाका पता लगता है, जातिके ह्रासका कारण मालूम होता है। जैनजातिमें स्त्रियोंकी कुल संख्या ६०४६२९ हैं जिसमें १५३२९७ विधवाओंकी संख्या है। अर्थात् १०० पीछे २५ विधवायें हैं और स्त्रियोंकी संख्या पुरुषोंसे ३८९२४ कम है। किसी किसी पुरुषके एकसे अधिक स्त्रियाँ भी हैं। यह बात विवाहित पुरुषों और विवाहिता स्त्रियोंकी संख्यासे मालूम होती है। २६९६२७ विवाहिता स्त्रियाँ हैं और २६८९३८ विवाहित पुरुष हैं अर्थात् ६९६ स्त्रियाँ विवाहित अधिक हैं। एक तो वैसे ही स्त्रियोंकी संख्या कम, दूसरे चौथाई विधवायें, तीसरे किसी किसी पुरुषके एकसे अधिक स्त्रियाँ। तब विचार करनेकी बात है कि कितने पुरुषोंको कुँवारा रहना पड़ता है, अर्थात् कितने पुरुष सन्तान उत्पन्न करके जातिकी संख्याको नहीं बढ़ा सकते। इन कारणोंसे ही अब तक बराबर जातिका ह्रास होता रहा, वर्तमानमें हो रहा है और आगेको होगा। यह बात अविवाहित स्त्री पुरुषोंकी संख्यासे भी सिद्ध हो जाती है। ३१७१९७ पुरुष अविवाहित हैं और १८१७०५ स्त्रियाँ अविवाहित हैं, अर्थात् १३५४९२ पुरुषोंको, अवश्य कुँवारा रहना पड़ेगा। कोई कोई पुरुष कई कई स्त्रियोंसे विवाह करता है, इसके हिसाबसे कुँवारोंके और भी अधिक रहनेकी सम्भावना है। अतएव यदि जातिकी संख्या बढ़ाना अभीष्ट है तो कुँवारोंकी दशा सुधारनी चाहिए, समाजमें विधवायें कम हों इसका प्रयत्न करना चाहिए। एक पुरुषको एक पुरुषको एकसे अधिक स्त्रियोंके साथ विवाह करनेसे रोकना चाहिए तथा रंडुवोंको जिनकी इन्द्रियाँ शिथिल हो गई हैं पुनर्विवाह करनेसे मना करना चाहिए। ”

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भारतवर्षमें जैनियोंकी अवस्था।

आयु वर्ष	पुरुष	स्त्री	अविवाहित पुरुष	अविवाहित स्त्री	विवाहित पुरुष	विवाहित स्त्री	विधुर	विधवा
०—१	१९९४४	१९७१९	१९८८७	१९६२३	५२	८१	५	१५
१—२	८९६६	९५७१	८९०२	९४८५	४३	८१	२१	५
२—३	१६०९६	१६४३४	१५९७०	१६२३९	८८	१७८	३८	१७
३—४	१५६३२	१६११५	१५४७३	१५८४८	११३	२४७	४६३	२०
४—५	१४६७८	१४३७३	१४४९१	१३९७७	१२९	३६१	५८	३५
५–१०	७२०९८	७००८८	७०८५१	६५३१४	१०९४	४५१३	१५३	२६१
१०–१५	६९१२९	५६२२५	६३१६०	३४४८३	५६१६	२०८३६	३५३	९०६
१५–२०	५८९७६	४९१४९	३९५५५	३७०८	१८६०८	४२७३५	७७३	२७०६
२०–२५	६२३१०	६०२२०	२५७१८	९९४	३४४४६	५१८८२	२१४६	७३४४
२५–३०	६१०६८	५५४१२	१५२९५	५३६	४२१७५	४३५६४	३५९८	११३१२
३०–३५	५४५०९	५२६६४	९०५६	४३९	४०५४२	३६१७६	४९११	१६०८९
३५–४०	४२७७२	३६४०९	५०६९	२५१	३२६१६	२२३९७	५०८७	१३७६१
४०–४५	४२३७६	४४४७४	४७७४	२७९	३०४०९	२०९२८	७१९३	२३२६७
४५–५०	२८८००	२३५७७	२७७५	१३१	१९८८०	९८९७	६१४५	१३५४९
५०–५५	३१९३३	३३३२४	३०३१	१५९	१९७५१	८८८२	९१५१	२४२८३
५५–६०	१४५१९	११६९८	१०४८	६१	८६१८	२९६०	४८५३	८६७७
६०–६५	१६७४५	२०९५	१२६८	८४	८७६९	२६७७	६७०८	१८९९१
६५–७०	५९६९	५३३९	४११	३८	३०१९	६४९	२५३९	४६५२
७०से ऊपर	७०३३	८८८६	४२३	५६	२९७०	५८३	३६४०	८२४७
कुल	६४३५५३	६०४६२९	३१७१९७	१८१७०५	२६८६३८	२६९६२७	५७४१८	१५३२९७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नये नये जैन ग्रन्थ।

अर्थप्रकाशिका टीका।

तत्त्वार्थसूत्रकी पं० सदासुखजीकृत प्रसिद्ध भाषाटीका बहुत बढ़िया टाइप और मोटे कागजोंमें हालही छपकर तैयार हुई है। संशोधन भी बहुत ध्यानपूर्वक हुआ है। इस कागजकी महँगाईके जमानेमें भी यह केवल ३॥) साढ़े तीन रुपयामें दी जाती है। कारण शेठ हरिभाई देवकरणजीवालोंने इसे केवल ग्रन्थप्रचारकी दृष्टिसे छपाया है। प्रत्येक मन्दिरमें इसकी एक एक प्रति अवश्य रहनी चाहिए।

गोम्मटसार जीवकाण्ड भाषाटीकासहित।

लीजिए, अब पूरा गोम्मटसार भाषाटीकासहित तयार हो गया। पहले सिर्फ इसका कर्मकाण्ड भाषाटीकासहित छपा था जिसका मूल्य दो रुपया है। अब जीवकाण्डकी भी भाषाटीका तैयार हो गई। इसे पं० खूबचन्दजी शास्त्रीने लिखा है। निर्णयसागर प्रेसमें बहुत शुद्धतासे छपा है। इसका मूल्य ढाई रुपया है। दोनों भाग साढ़े चार रु० में मँगा लीजिए।

चन्द्रप्रभचरितका हिन्दी अनुवाद—महाकवि वीरनन्दिके प्रसिद्ध जैन काव्य चन्द्रप्रभचरितका यह हिन्दी अनुवाद हिन्दीके सुप्रसिद्ध लेखक प० रूपनारायणजी पाण्डेयने किया है। इसके पढ़नेमें एक स्वतंत्र ग्रन्थ जैसा आनन्द आता है। यह मालूम नहीं होता कि हम कोई अनुवादग्रन्थ पढ़ रहे हैं। जो लोग संस्कृत नहीं जानते, उन्हें इसके द्वारा मूलग्रन्थके स्वादका आनन्द लूटना चाहिए। मू० सादी जि० १) रु० पक्की जि० १।) रु०।

संस्कृत-प्रवेशिनी (प्रथमभाग)—संस्कृतके व्याकरण विद्यार्थियोंके लिए बहुत कठिन पड़ते हैं, इसलिए यह बहुत ही सुगम और नये ढंगकी पुस्तक अभी हालहीमें तैयार कराई गई है। इससे बहुत जल्दीसे संस्कृतबोध हो जाता है और सूत्र नियमादि रटनेकी झंझटमें नहीं पड़ना पड़ता है। प्रत्येक जैन पाठशालामें इसका पढ़ना शुरू करना चाहिए। पं० श्रीलालजी व्याकरण-शास्त्रीने इसे लिखा है। मूल्य एक रुपया।

उपवासचिकित्सा—जैनधर्ममें व्रत करने और उपवास करनेका बहुत महत्त्व बतलाया है। परन्तु अभी तक लोग व्रत या उपवासको केवल 'धर्म' या 'स्वर्ग जानेकी सीढ़ी' समझते हैं। इस पुस्तकमें बतलाया गया है कि उपवास करनेसे केवल धर्म ही नहीं होता है किंतु यह निरोग होनेकी सबसे अच्छी दवाई है। सारी दुनियांके भयंकर रोग उपवाससे आराम हो सकते हैं। क्यों हो सकते हैं और कैसे हो सकते हैं, इन प्रश्नोंका उत्तर इसमें विस्तारसे दिया गया है। जिन लोगोंने उपवाससे रोग अच्छे किये हैं, उनके उदाहरण और चित्र भी इसमें दिये गये हैं। हिंदीमें इस विषयका यह सबसे पहला ग्रंथ है। रोगियों, वैद्यों और निरोगों-सबको पढ़ना चाहिए। मूल्य एक रुपया दो आने।

नियमसार—आचार्य कुन्दकुन्द भगवान् कृत। यह समयसार, प्रवचनसार आदिके ही समान अध्यात्मका प्राकृत गाथाबद्ध ग्रन्थ है। इसपर निर्ग्रन्थ मुनि श्रीपद्मप्रभमलधारीकी संस्कृत टीका है जो साथ ही छपी है और ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीकी बनाई हुई भाषाटीका भी शामिल कर दी गई है। मूल्य दो रुपया और सादीका पौने दो रुपया।

परमात्मप्रकाश—यह ग्रंथ योगीन्द्रदेवरचित प्राकृत दोहोंमें है। संस्कृतटीका और उसके आधारसे सरल भा० टी० सहित निर्णयसागर प्रेसमें छपकर हाल ही तयार हुआ है। अध्यात्म ग्रंथ निश्चयमोक्षमार्गका साधक होनेसे बहुत उपयोगी है। मूल्य तीन रुपया।

आत्मानुशासन—नई भाषाटीका सहित छपकर तैयार है। भगवद्गुणभद्राचार्यका यह बहुत ही उपदेशपूर्ण ग्रन्थ है। शांतिके इच्छुकोंको इसका स्वाध्याय एक वार अवश्य करना चाहिए। बहुत सरल बोल चालकी भाषामें टीका की गई है। मूल्य २) रु०

सिद्धक्षेत्रपूजा संग्रह—इस संग्रहमें श्री सम्मेदशिखर विधान, चंपापुर, पावापुर, गिरनार, शत्रुंजय, सोनागिरि, नयनगिरि, बड़वानी आदि सम्पूर्ण सिद्धक्षेत्रोंकी पूजायें है। मूल्य आठ आना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रत्नकरण्ड-श्रावकाचार ।

हिन्दी-पद्यानुवाद ।

अनुवादक, सुकवि श्री पं० गिरिधर शर्मा ।
जो विद्यार्थी संस्कृत नहीं जानते हैं उन्हें मूल रत्नकरण्ड अर्थसहित रटा दिया जाता है। पर इससे लाभ कुछ नहीं होता है। विद्यार्थी मर्म नहीं समझते और थोड़े ही दिनोंमें भूल जाते हैं। इस लिए बहुत दिनोंसे यह आवश्यकता बतलाई जा रही थी कि बालबोध–कक्षाओंके लिए रत्नकरण्ड छन्दबद्ध बना दिया जाय। परीक्षालयमें छन्दबद्ध रत्नकरण्ड नियत भी कर दिया गया था; पर छन्दोबद्ध रत्नकरंड कोई था ही नहीं, इस कारण हमने सुकवि श्री गिरिधर शर्मासे इसे हाल ही बनवाकर प्रकाशित किया है। कविता बोलचालकी हिन्दी भाषामें है जो सहज ही समझमें आ जाती है। इस बातकी कोशिशकी गई है कि मूलका कोई भाव रह नहीं जाय और संशोधनमें इसका ध्यान रक्खा गया है कि कोई शास्त्रविरुद्ध बात न लिखी जाय। पाठशालाओंके संचालकोंको नमूनेके तौर पर एक प्रति मँगा देखना चाहिए। मूल्य तीन आने।

सुन्दर शिक्षाप्रद पुस्तकें।

राजपथका पथिक।

अमेरिकाके सुप्रसिद्ध लेखक राल्फवाल्डो ट्राइनकी 'वे फेअरर आन दि ओपेनरोड' नामक पुस्तकका अनुवाद। ट्राइन महाशयके दिव्य विचारोंकी प्रशंसा करना व्यर्थ है। उनके विचारोंसे प्रत्येक मनुष्य अपने जीवनको पवित्र बना सकता है। मूल्य चार आने।

फ्रान्सकी राजक्रान्तिका इतिहास।

पुस्तकका विषय नामहीसे स्पष्ट है। मराठीके प्रसिद्ध लेखक पं० विनायक कोंडदेव ओककी पुस्तकका अनुवाद है। हिन्दीमें इस विषयका शायद यह पहला ही ग्रन्थ है। राजनीतिके विद्यार्थियोंके लिए यह बड़े ही कामकी चीज है। हमने थोड़ीसी प्रतियाँ विक्रीके लिए मँगाई हैं। मूल्य पन्द्रह आने।

प्रायश्चित्त (नाटक)।

बेल्जियमके लेखक–जिन्हें रवीन्द्रबाबूके समान सवालाख रुपयेका नोबेल प्राइज (इनाम) मिला था–उच्च श्रेणीके नाटक और उपन्यास लिखनेमें बहुत ही प्रसिद्ध हैं। यह उन्हींके एक भावपूर्ण और हृदयको हिला देनेवाले नाटकका हिन्दी अनुवाद है। अनुवादक हैं, श्रीयुत बाबू पदुमलाल पुन्नालाल बक्षी बी. ए.। पश्चात्ताप और सद्भावोंकी अग्निमें बड़ेसे बड़े पाप–जिन्हें दुनिया अक्षम्य समझती है–भस्म हो जाते हैं और इस प्रकारसे पश्चात्ताप करनेवाली आत्मायें मनुष्यकी ही नहीं किन्तु देवोंकी दृष्टिमें भी पूज्य और पवित्र बन जाती हैं। इस नाटकमें एक कल्पित घटनाके द्वारा यही भाव प्रकट किये गये हैं। यह हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर सीरीजकी पुस्तक है। मूल्य चार आने।

मिलनमन्दिर (उपन्यास)।

बङ्गभाषाके सुप्रसिद्ध लेखक सुरेन्द्र मोहन भट्टाचार्यके 'मिलन-मन्दिर' का हिन्दी अनुवाद। इस भावपूर्ण और शिक्षाप्रद गार्हस्थ्य उपन्यासमें यह दिखलाया गया है कि घरकी फूटका क्या परिणाम होता है, आपसका विरोध क्या रंग लाता है, कुसंगमें पड़कर मनुष्यकी क्या दुर्दशा होती है और घोर विपत्ति आने पर भी सज्जन किसी प्रकार अपने मान तथा धर्मकी रक्षा करते हैं। मूल्य सवा रुपया। कपड़ेकी जिल्दका डेढ़ रुपया।

मैनेजर–जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,
गिरगाँव बम्बई।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महान् ग्रन्थ ! अपूर्व ग्रन्थ !

छपकर तैयार है ।

आदिपुराण

भाषाटीका सहित ।

यह बड़ा भारी ग्रन्थ ४–५ वर्ष-से छप रहा था । इसी महीनेमें पूरा छपकर तैयार हुआ है। जैनधर्मका इतना बड़ा ग्रन्थ अब तक कोई भी नहीं छपा । इसके सब मिलाकर लगभग १८०० पृष्ठ हैं । खुले पत्रोंपर छपा है । मन्दिरोंमें जो सब जगह भाषावचनिका मिलती है, उससे इसमें विशेषता है । वचनिकाके साथमें मूल श्लोक नहीं हैं, पर इसमें मूल श्लोक भी साथ ही साथ दिये हैं । इसकी भाषा भी सबकी समझमें आने योग्य और मूलके अनुसार है । प्रत्येक मन्दिरमें, भण्डारमें भगवज्जिन-सेनाचार्य और गुणभद्राचार्यके इस विशाल ग्रन्थकी एक एक प्रति रहना चाहिए । जो लोग ग्रन्थ मँगाना चाहें वे चिट्ठीके साथ १॥) डेड़ रुपयाका मनी-आर्डर भी पेशगी भेज देवें । क्योंकि इसका डाँक खर्च डेड़ रुपयाके करीव लगता है । लोग अक्सर वी. पी. वापस कर देते हैं । इस कारण डाँक खर्च पेश-गी आये विना हम वी. पी. न-हीं भेजेंगे । ग्रन्थकी न्योछावर डाँक खर्चके सिवाय १६) सोलह रुपया है ।

बालबोध जैनधर्म शिक्षक—बाबू दया-न्दजी गोयलीयकृत बालबोध जैनधर्म पढ़ानेकी पद्धति बड़ी सरलतासे बतलाई गई है । मूल्य डेड़ आना । दूसरे भागका ढाई आना । **देवदर्शन** सार्थ—एक आना ।

महावीरपुराण—पं० मनोहरलालजी शास्त्रिकृत हिंदीभाषा । मूल्य सादा १॥), कपड़ेकी जिल्दका १॥।)

प्रभंजनचरित—प्रभंजन नामक मुनिका चरित्र । इसकी कथा बहुतही दिलचस्प है । त्रियाचरित्र खूबही दिखलाया है । मू० चार आने

धनंजयनाममाला—भाषाटीका सहित । शब्दोंकी सूची भी दी है । मू० सात आने ।

बड़ा सूचीपत्र—हमारे यहाँ सब जगहके छपे हुए सब तरहके जैनग्रन्थ हर समय तैयार मिलते हैं । उन सबका बड़ा सूचीपत्र एक कार्ड लिख कर मँगा लीजिए । कहीं भी आप किसी ग्रन्थके छपनेका समाचार सुनें हमको पत्र लिख दें, हम शीघ्र भेज देंगे ।

हिंदीके अच्छे अच्छे ग्रन्थ उपन्यास आदि भी मँगाइए—

पत्रव्यवहार करनेका पता—

मैनेजर, **जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,**

हीराबाग पो० नं. ४.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हिन्दीकी नई पुस्तकें।

कनकरेखा–(फूलोंका गुच्छा द्वितीयभाग) बंगलाके प्रसिद्ध लेखक अर्चना–सम्पादक श्रीयुत केशवचन्द्र गुप्त एम. ए. बी. एल. के प्रसिद्ध गल्पगुच्छका अनुवाद है। इसमें बहुत ही मनोहर, भावपूर्ण और स्वाभाविक ग्यारह गल्पे हैं। हिन्दीमें ऐसी गल्पें अभीतक नहीं निकलीं। मूल्य बारह आने (यह हमारी छपाई हुई पुस्तक है)

सफल-गृहस्थ–यह पुस्तक अँगरेजीके प्रसिद्ध लेखक सर आर्थर हेल्प्सके निबन्धोंका अनुवाद है। अनुवादक बाबू खूबचन्दजी सोधिया बी. ए. एल. टी.। इसमें प्रायः उन सब विषयोंका वर्णन आगया है जिनकी प्रत्येक मनुष्यके जीवनमें बड़ीभारी आवश्यकता है और जिनके द्वारा हम सब अपने जीवनको सुखी बना सकते हैं। इसके पूर्वार्द्धमें मानसिक शान्ति प्राप्त करनेके उपाय, कार्यकुशलता, कुटुम्बशासन, हृदयकी गंभीरता, संयम, आदि और अपने कुटुम्बके सुखसे सम्बन्ध रखनेवाले व्यवसायी मनुष्यकी शिक्षा, व्यवसायसंचालन, कर्मचारियोंकी नियुक्ति, उम्मेदवारोंसे व्यवहार, आदि विषय आये हैं। थोड़ेमें यह कहा जा सकता है कि इस पुस्तककी शिक्षाके अनुसार चलनेवाले अपने जीवनको सब भाँति सुखी बनाकर पूर्णसफलता लाभ कर सकते है। बड़ी उपयोगी पुस्तक है। कीमत ग्यारह आने।

भारतीय शासन–इस पुस्तकमें भारतवर्षकी राज्यप्रणालीका बड़ी उत्तमतासे वर्णन किया गया है। अपने देशकी शासनपद्धतिसे परिचित रहना प्रत्येक नागरिकका कर्तव्य है। अतः प्रत्येक भारतवासीको यह पुस्तक अपने पास रखना चाहिए। पत्रपाठकों और सम्पादकोंके लिए तो यह बड़े ही कामकी चीज है। होमगवर्नमेंट, भारतसरकार, प्रान्तिकसरकार जिलेका, शासन, व्यवस्थापक सभा, स्थानीय स्वराज्य, सरकारी आयव्यय, देशी रियासतें, फौज और पुलिस, न्याय-विभाग तथा जेल, शिक्षाप्रचार, स्वास्थरक्षा, सार्वजनिक कार्य, भारतमें नवयुग, राजकीयघोषणा आदि १६ आध्याय इसके हैं। पुस्तकके अन्तमें भारतसचिव और बड़े लाटसे लेकर पुलिसके सिपाही तकका वेतन, जुदा जुदा राज्योंकी जनसंख्या, क्षेत्रफल, धर्म और शिक्षासम्बन्धी आँकड़े दिये हैं। पृष्ठसंख्या १७०। मूल्य सिर्फ सात आने।

जननीजीवन–आज कल स्त्रियाँ माता तो बन जाती हैं पर यह नहीं जानतीं कि माताके क्या कर्तव्य हैं और सन्तानका पालनपोषण किस तरह किया जाता है, बीमारियोंसे, सर्दी गर्मीसे उनकी कैसे रक्षाकी जाती है, उनका स्वभाव कैसे सुधारा जा सकता है, वे पढ़ाये लिखाये कैसे जा सकते हैं और स्वयं अपने शरीरकी सावधानी किस तरह रखनी चाहिए। प्रत्येक माता या माता बननेवाली जननीको यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। मूल्य नौआने।

आरोग्य दिग्दर्शन—इसके मूल लेखक देशभक्त महात्मा मोहनदास करमचन्द गाँधी हैं। अपने जीवनमें आरोग्य-सम्बन्धी जिन जिन बातोंका आपने अनुभव किया है, प्रायः वे ही बातें इसमें बड़ी सुन्दरता और सरलताके साथ लिखी गई हैं। पुस्तक प्रत्येक गृहस्थके लिए बड़ी उपयोगी है। पुस्तकमें जो विषय आये हैं उनमें कुछ विषयोंके नाम नीचे दिये जाते हैं—

आरोग्य, हमारा शरीर, हवा; पानी, खुराक, कसरत, गुह्य प्रकरण, जलचिकित्सा, मिट्टीके उपचार, कब्ज–संग्रहणी–दस्त अर्श, छूतके रोग शीतला–आदि, प्रसव, बच्चोंकी सँभाल, सर्प बिच्छू आदिका काटना, अकस्मात् डूबना या जलजाना–आदि। मूल्य ग्यारह आने।

पता—**हिन्दीग्रंथरत्नाकर कार्यालय**, हीराबाग, गिरगांव-बंबई.

Printed by Chintaman Sakharam Deole, at the Bombay Vaibhav Press, Servants of India Society's Building, Sandhurst Road, Girgaon, Bombay.

Published by Nathuram Premi, Proprietor, Jain-Granth-Ratnakar Karyalaya, Hirabag, Bombay.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीवर्द्धमानाय नमः ।

भाग १२

अंक ११-१२

जैनहितैषी

नवंबर, दिसंबर १९१६.

जैनसमाज ।

तर्थिक्षेत्रोंके झगड़े, स्त्रियोंकी अज्ञानमय–दुःखमय दशा, शास्त्रोंकी रक्षा और प्रचारके काममें लापरवाही और अगुओंकी 'भेड़ियाधसान' बुद्धिके अन्धेर; ये सब बातें देखकर शासनदेवी धनवानों, पण्डितों और बाबुओंको सम्मिलित शक्तिसे उद्योग करनेके लिए समझा रही है ।

सं०–नाथूराम प्रेमी ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय-सूची।

१ भद्रबाहु-संहिता (ग्रन्थपरीक्षा)- लेखक, श्रीयुत बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तार। ५२१
२ हिन्दी-जैनसाहित्यका इतिहास. ५४०
३ सभापतिका व्याख्यान-व्या०, श्रीयुत बाबू माणिकचन्दजी जैन बी. ए. एल एल. बी. वकील-- ५६९
४ लड़ना धर्म है या क्षमाभाव रखना-ले०, श्रीयुत वाडीलाल मोतीलाल शाह ५८९
५ स्याद्वाद महाविद्यालयकी भीतरी दशा—ले०, श्रीयुत बाबू निहालकरण सेठी एम. एस. सी. ५९५
६ उन्माद (कहानी)- ले०, श्रीयुत बाबू पदुमलाल बक्षी बी. ए. ... ५९९
७ विधवा-विवाह विचार ६०२
८ विविध प्रसङ्ग ६१०
९ अहिंसाका अर्थ (कविता)—ले० श्रीयुत प० रामचरित उपाध्याय ... ६२३
१० विश्वप्रेम (कविता) ले० श्रीयुत बाबू मोतीलाल जैन बी. ए. ६२४

नियमावली।

१. वार्षिक मूल्य उपहारसहित ३) तीन रुपया पेशगी है। वी. पी. तीन रुपया एक आनेका भेजा जाता है।

२. उपहारके बिना भी तीन रुपया मूल्य है।

३. ग्राहक वर्षके आरंभसे किये जाते हैं और बीचसे अर्थात् ७ वें अंकसे। बीचसे ग्राहक होनेवालोंको उपहार नहीं दिया जाता। आधे वर्षका मूल्य १।) रु० है।

४. प्रत्येक अंकका मूल्य पाँच आने है।

५. सब तरहका पत्रव्यवहार इस पतेसे करना चाहिए।

मैनेजर—जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय.
हीराबाग, पो० गिरगांव—बंबई।

प्रार्थनायें।

१. जैनहितैषी किसी स्वार्थबुद्धिसे प्रेरित होकर निजी लाभके लिए नहीं निकाला जाता है। इसमें जो समय और शक्तिका व्यय किया जाता है वह केवल अच्छे विचारोंके प्रचारके लिए। अतः इसकी उन्नतिमें हमारे प्रत्येक पाठकको सहायता देनी चाहिए।

२. जिन महाशयोंको इसका कोई लेख अच्छा मालूम हो उन्हें चाहिए कि उस लेखको जितने मित्रोंको वे पढ़कर सुना सकें अवश्य सुना दिया करें।

३. यदि कोई लेख अच्छा न मालूम हो अथवा विरुद्ध मालूम हो तो केवल उसीके कारण लेखक या सम्पादकसे द्वेष भाव न धारण करनेके लिए सविनय निवेदन है।

४. लेख भेजनेके लिए सभी सम्प्रदायके लेखकोंको आमंत्रण है। —सम्पादक।

हमारे हिन्दी ग्रन्थोंकी कदर।

हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकरके ग्रन्थोंके प्रेमी यह जानकर बहुत प्रसन्न होंगे कि इन्दौरकी 'महाराजा होलकर्स हिन्दीसाहित्य-समिति' ने हमारी नीचे लिखी पुस्तकोंपर प्रसन्न होकर उनके लेखकोंको नीचे लिखे अनुसार पारितोषिक प्रदान किया है:—

१ **स्वावलंबन** (हिन्दी सेल्फहेल्प)-ले०, बाबू मोतीलाल बी. ए, ... ४५)

२ **सफलता और उसकी साधनाके उपाय**-ले०, बाबू रामचन्द्र वर्मा, ... २०)

३ **युवाओंको उपदेश**-ले०, बाबू दयाचन्द बी. ए., २०)

४ **व्यापारशिक्षा**-ले०, पं० गिरिधर शर्मा, २०)

इसके सिवाय मध्यप्रदेश (सी. पी.) के शिक्षाखातेने अपने यहाँकी लायब्रेरियोंके और विद्यार्थियोंके पारितोषिकके लिए नीचे लिखी पुस्तकें मंजूर की हैं और हमें इस प्रकारके नैतिक शिक्षाप्रद ग्रन्थ प्रकाशित करनेके लिए बहुत ही उत्साहित किया है:—

१ मितव्ययता (किफायतशारी)	मू०	॥≤)
२ चरित्रगठन और मनोबल	"	≤)॥
३ अच्छी आदतें डालनेकी शिक्षा	"	।॥)
४ स्वावलम्बन (सेल्फ हेल्प)	"	≤)॥
५ पिताके उपदेश	"	।)
६ शान्ति वैभव	"	॥≤)
७ युवाओंको उपदेश		

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः ।

बारहवाँ भाग ।
अंक ११-१२

जैनहितैषी ।

नवम्बर, दिस० १९१६.
कार्तिक मार्ग० २४४२

सारे ही संघ सनेहके सूतसौं, संयुत हों, न रहै कोउ द्वेषी ।
प्रेमसौं पालैं स्वधर्म सभी, रहैं सत्यके साँचे स्वरूप-गवेषी ॥
वैर विरोध न हो मतभेदतैं, हों सबके सब बन्धु शुभैषी ।
भारतके हितको समझें सब, चाहत है यह जैनहितैषी ॥

भद्रबाहु-संहिता ।

(ग्रन्थ-परीक्षा-लेखमालाका चतुर्थ लेख ।)

(२)

[ले० श्रीयुत बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तार ।]

जिन लोगोंका अभीतक यह खयाल रहा है कि यह ग्रंथ (भद्रबाहुसंहिता) भद्रबाहु श्रुत-केवलीका बनाया हुआ है—आजसे लगभग २३०० वर्ष पहलेका बना हुआ है—उन्हें पिछला लेख पढ़नेसे मालूम होगया होगा कि यह ग्रंथ वास्तवमें भद्रबाहु श्रुतकेवलीका बनाया हुआ नहीं है, न उनके किसी शिष्य-प्रशिष्यकी रचना है और न विक्रमसंवत् १६५७ से पहलेहीका बनाहुआ है। बल्कि इसका अवतार विक्रमकी १७ वीं शताब्दिके उत्तरार्धमें—संवत् १६५७ और १६६५ के मध्यवर्ती किसी समयमें—हुआ है। अस्तु। इस ग्रंथके साहित्यकी जाँचसे मालूम होता है कि जिस किसी व्यक्तिने इस ग्रंथकी रचना की है वह निःसन्देह अपने घरकी अकल बहुत कम रखता था और उसे ग्रंथका सम्पादन करना नहीं आता था। साथ ही, जाली ग्रंथ बनानेके कारण उसका आशय भी शुद्ध नहीं था। यही वजह है कि उससे, ग्रंथकी स्वतंत्र रचनाका होना तो दूर रहा, इधर उधरसे उठाकर रक्खे हुए प्रकरणोंका संकलन भी ठीक तौरसे नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होसका और इसलिए उसका यह ग्रंथ इधरउधरके प्रकरणोंका एक बेढंगा संग्रह बन गया है। आज इस लेखमें इन्हीं सब बातोंका दिग्दर्शन कराया जाता है। इससे पाठकों पर ग्रंथका जालीपन और भी अधिकताके साथ खुल जायगा और साथ ही उन्हें इस बातका पूरा अनुभव हो जायगा कि ग्रंथकर्ता महाशय कितनी योग्यता रखते थेः—

(१) इस ग्रंथके तीसरे खंडमें तीन अध्याय—चौथा, पाँचवाँ, और सातवाँ—ऐसे हैं जिनका मूल प्राकृत भाषामें है और अर्थ संस्कृतमें दिया है। चूँकि इस संहिता पर किसी दूसरे विद्वान की कोई टीका या टिप्पणी नहीं है इस लिए उक्त अर्थ उसी दृष्टिसे देखा जाता है; जिस दृष्टिसे कि शेष सम्पूर्ण ग्रन्थ। अर्थात् वह ग्रंथकर्ता (भद्रबाहु) का ही बनाया हुआ समझा जाता है; परन्तु ग्रंथकर्ताको ऐसा करनेकी जरूरत क्यों पैदा हुई, यह कुछ समझमें नहीं आता। इसके उत्तरमें यदि यह कहा जाय कि प्राकृत होनेकी वजहसे ऐसा किया गया तो यह कोई समुचित उत्तर नहीं हो सकता। क्योंकि प्रथम तो ऐसी हालतमें, जब कि यह सारा ग्रंथ संस्कृतमें रचा गया है, इन अध्यायोंको प्राकृतमें रचकर ग्रंथकर्ताका डबल परिश्रम करना ही व्यर्थ मालूम होता है। दूसरे, बहुतसे ऐसे प्राकृत ग्रंथ भी देखनेमें आते हैं जिनके साथ उनका संस्कृत अर्थ लगाहुआ नहीं है। और न भद्रबाहुके समयमें, जब कि प्राकृत भाषा अधिक प्रचलित थी, प्राकृत ग्रंथोंके साथ उनका संस्कृत अर्थ लगानेकी कोई जरूरत थी। तीसरे इस खंडके तीसरे अध्यायमें '**उवसग्गहर**' और '**तिजयपहुत्त**' नामके दो स्तोत्र प्राकृत भाषामें दिये हैं, जिनके साथमें उनका संस्कृत अर्थ नहीं है। चौथे, पहले खंडके पहले अध्यायमें कुछ संस्कृतके श्लोक भी ऐसे पाये जाते हैं जिनके साथ संस्कृतमें ही उनकी टीका अथवा टिप्पणी लगी हुई है। ऐसी हालतमें प्राकृतकी वजहसे संस्कृत अर्थका दिया जाना कोई अर्थ नहीं रखता। यदि कठिनता और सुगमताकी दृष्टिसे ऐसा कहा जाय तो वह भी ठीक नहीं बन सकता। क्योंकि इस दृष्टिसे उक्त चारों ही अध्यायोंकी प्राकृतमें कोई विशेष भेद नहीं है। रही संस्कृत श्लोकोंकी बात, सो वे इतने सुगम हैं कि उनपर टीका-टिप्पणीका करना ही व्यर्थ है। नमूनेके तौरपर यहाँ दो श्लोक टीका-टिप्पणीसहित उद्धृत किये जाते हैंः—

१—पात्रान्संतर्प्य दानेन भक्त्या भुंजेत्स्वयं पुनः।
भोगभूमिकरः स्वर्गप्राप्तेरुत्तमकारणम्॥ ८०॥

टीका—पात्रानिति बहुवचनं मुनि आर्यिका श्रावक श्राविका इति चतुर्विधपात्रप्रीत्यर्थं। एतेष्वन्यतमं पूर्वमाहारादिदानेन संतर्प्य पुनः स्वयं भुंजेत्। पात्रदानं च भोगभूमिस्वर्गप्राप्तेरुत्तमकारणं ज्ञेयमित्यर्थः।

२—कांस्यपात्रे न भोक्तव्यमन्योन्यवर्णजैः कदा।
शूद्रस्स्वपक्कं पक्वं वा न भुंजेदन्यपंक्तिषु॥ ८४॥

टिप्पणी—पंक्तिषु इति बहुवचनाद्वर्णत्रयपंक्तावेव पक्कमपक्वं वा न भुंजेत् इत्यर्थः।

इससे पाठक समझ सकते हैं कि श्लोक कितने सुगम हैं, और उनकी टीका-टिप्पणीमें क्या विशेषता की गई है। साथ ही मुकाबलेके लिए इससे पहले लेखमें और इस लेखके अगले भागमें उद्धृत किये हुए बहुतसे कठिनसे कठिन श्लोकोंको भी देख सकते हैं जिन पर कोई टीका-टिप्पण नहीं है। और फिर उससे नतीजा निकाल सकते हैं कि कहाँ तक ऐसे श्लोकोंकी ऐसी टीका—टिप्पणी करना श्रुतकेवली जैसे विद्वानोंका काम होसकता

१–२ ये दोनों स्तोत्र श्वेताम्बरोंके 'प्रतिक्रमणसूत्र' में भी पाये जाते हैं; परन्तु यहाँ पर उक्त प्रतिक्रमण सूत्रसे पहले स्तोत्रमें तीन और दूसरेमें एक ऐसी चार गाथायें अधिक हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। सच तो यह है कि यह सब मूल और टीका-टिप्पणियाँ भिन्नभिन्न व्यक्तियोंका कार्य मालूम होता है। मूलकर्ताओंसे टीकाकार भिन्न जान पड़ते हैं। सबका ढंग और कथन-शैली प्रायः अलग है। चौथे और सातवें अध्यायोंकी टीकामें बहुतसे स्थानों पर, 'इत्यपि पाठः'—ऐसा भी पाठ है—यह लिखकर, मूलका दूसरा पाठ भी दिया हुआ है, जो मूलका उल्लेखयोग्य पाठ-भेद होजानेके बाद टीकाके बननेको सूचित करता है। यथाः—

१—'वाहिमरणं (व्याधिमरणं)'—'रायमरणं (राजमरणं) इत्यपि पाठः' ॥ ४–३० ॥

२—'मेहंतर (मेघान्तर–) '—'हेमंतर (हेमान्तर–) इत्यपि पाठः ' ॥ ४–३१ ॥

३—'अण्णेणवि (अन्येनापि)—' अण्णोण्णवि (अन्योन्यमपि-परस्परमपि) इत्यपि पाठः' ॥ ७–२१ ॥

इससे मूलकर्ता और टीकाकारकी साफ तौरसे विभिन्नता पाई जाती है। साथ ही, इन सब बातोंसे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि ग्रंथकर्ता इन दोनोंसे भिन्न कोई तीसरा ही व्यक्ति है। उसे संभवतः ये सब प्रकरण इसी रूपमें (टीका-टिप्पणीसहित या रहित) कहींसे प्राप्त हुए हैं और उसने उन्हें वहाँसे उठाकर बिना सोचे समझे यहाँ जोड़ दिया है।

(२) हिन्दुओंके यहाँ ज्योतिषियोंमें 'वराहमिहिर' नामके एक प्रसिद्ध विद्वान् आचार्य हो गये हैं। उनके बनाये हुए ग्रंथोंमें 'बृहत्संहिता' नामका एक खास ग्रंथ है, जिसको लोग 'वाराहीसंहिता' भी कहते हैं। इस ग्रंथका उल्लेख विक्रमकी ११ वीं शताब्दिमें होनेवाले 'सोमदेव' नामके जैनाचार्यने भी अपने 'यशस्तिलक' ग्रंथमें किया है। साथ ही 'जैनतत्वादर्श' आदि श्वेताम्बर ग्रंथोंमें भी इसका उल्लेख पाया जाता है। इस तरह पर दोनों संप्रदायोंके विद्वानों द्वारा यह हिन्दुओंका एक ज्योतिष ग्रंथ माना जाता है। परन्तु पाठकोंको यह जानकर आश्चर्य होगा कि इस बृहत्संहिताके अध्यायके अध्याय भद्रबाहुसंहितामें नकल किये गये हैं—ज्योंके त्यों या कहीं कहीं कुछ भद्दे और अनावश्यक परिवर्तनके साथ उठाकर रक्खे गये हैं—परन्तु यह सब कुछ होते हुए भी वराहमिहिर या उनके इस ग्रंथका कहीं नामोल्लेख तक नहीं किया। प्रत्युत, वराहमिहिरके इन सब वचनोंको भद्रबाहुके वचन प्रगट किया गया है और इस तरह पर एक अजैन विद्वानके ज्योतिषकथनको जैन ज्योतिषका ही नहीं बल्कि जैनियोंके केवलीका कथन बतलाकर सर्व साधारणको धोखा दिया गया है। इस नीचता और धूर्तताके कार्यका पाठक जो चाहे नाम रख सकते हैं और उसके उपलक्षमें ग्रंथकर्ताको चाहे जिस पदवीसे विभूषित कर सकते हैं, मुझे इस विषयमें कुछ कहनेकी जरूरत नहीं है। मैं सिर्फ यहाँ पर ग्रंथकर्ताके इस कृत्यका पूरा परिचय दे देना ही काफी समझता हूँ और वह परिचय इस प्रकार हैः—

(क) भद्रबाहुसंहिताके दूसरे खंडमें 'करण' नामका २९ वाँ अध्याय है, जिसमें कुल ९ पद्य हैं। इनमेंसे शुरूके ६ पद्य बृहत्संहिताके 'तिथि और करण' नामके ९९ वें अध्यायसे, जिसमें सिर्फ ८ पद्य हैं और पहले दो पद्य केवल 'तिथि' से सम्बंध रखते हैं, ज्योंके त्यों (उसी क्रमसे) उठाकर रक्खे गये हैं। सिर्फ पहले पद्यमें कुछ अनावश्यक उलट फेर किया है। बृहत्संहिताका वह पद्य इस प्रकार हैः—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होसका और इसलिए उसका यह ग्रंथ इधरउधरके प्रकरणोंका एक बेढंगा संग्रह बन गया है। आज इस लेखमें इन्हीं सब बातोंका दिग्दर्शन कराया जाता है। इससे पाठकों पर ग्रंथका जालीपन और भी अधिकताके साथ खुल जायगा और साथ ही उन्हें इस बातका पूरा अनुभव हो जायगा कि ग्रंथकर्ता महाशय कितनी योग्यता रखते थेः—

(१) इस ग्रंथके तीसरे खंडमें तीन अध्याय— चौथा, पाँचवाँ, और सातवाँ—ऐसे हैं जिनका मूल प्राकृत भाषामें है और अर्थ संस्कृतमें दिया है। चूँकि इस संहिता पर किसी दूसरे विद्वान की कोई टीका या टिप्पणी नहीं है इस लिए उक्त अर्थ उसी दृष्टिसे देखा जाता है; जिस दृष्टिसे कि शेष सम्पूर्ण ग्रन्थ। अर्थात् वह ग्रंथकर्ता (भद्रबाहु) का ही बनाया हुआ समझा जाता है; परन्तु ग्रंथकर्ताको ऐसा करनेकी जरूरत क्यों पैदा हुई, यह कुछ समझमें नहीं आता। इसके उत्तरमें यदि यह कहा जाय कि प्राकृत होनेकी वजहसे ऐसा किया गया तो यह कोई समुचित उत्तर नहीं हो सकता। क्योंकि प्रथम तो ऐसी हालतमें, जब कि यह सारा ग्रंथ संस्कृतमें रचा गया है, इन अध्यायोंको प्राकृतमें रचकर ग्रंथकर्ताका डबल परिश्रम करना ही व्यर्थ मालूम होता है। दूसरे, बहुतसे ऐसे प्राकृत ग्रंथ भी देखनेमें आते हैं जिनके साथ उनका संस्कृत अर्थ लगाहुआ नहीं है। और न भद्रबाहुके समयमें, जब कि प्राकृत भाषा अधिक प्रचलित थी, प्राकृत ग्रंथोंके साथ उनका संस्कृत अर्थ लगानेकी कोई जरूरत थी। तीसरे इस खंडके तीसरे अध्यायमें '**उवसग्गहर**' और '**तिजयपहुत्त**' नामके दो स्तोत्र प्राकृत भाषामें दिये हैं, जिनके साथमें उनका संस्कृत अर्थ नहीं है। चौथे, पहले खंडके पहले अध्यायमें कुछ संस्कृतके श्लोक भी ऐसे पाये जाते हैं जिनके साथ संस्कृतमें ही उनकी टीका अथवा टिप्पणी लगी हुई है। ऐसी हालतमें प्राकृतकी वजहसे संस्कृत अर्थका दिया जाना कोई अर्थ नहीं रखता। यदि कठिनता और सुगमताकी दृष्टिसे ऐसा कहा जाय तो वह भी ठीक नहीं बन सकता। क्योंकि इस दृष्टिसे उक्त चारों ही अध्यायोंकी प्राकृतमें कोई विशेष भेद नहीं है। रही संस्कृत श्लोकोंकी बात, सो वे इतने सुगम हैं कि उनपर टीका-टिप्पणीका करना ही व्यर्थ है। नमूनेके तौरपर यहाँ दो श्लोक टीका-टिप्पणीसहित उद्धृत किये जाते हैंः—

१—पात्रान्संतर्प्य दानेन भक्त्या भुंजेत्स्वयं पुनः।
भोगभूमिकरः स्वर्गप्राप्तेरुत्तमकारणम्॥ ८०॥

टीका—पात्रानिति बहुवचनं मुनि आर्यिका श्रावक श्राविका इति चतुर्विधपात्रप्रीत्यर्थं। एतेष्वन्यतमं पूर्वमाहारादिदानेन संतर्प्य पुनः स्वयं भुंजेत्। पात्रदानं च भोगभूमिस्वर्गप्राप्तेरुत्तमकारणं ज्ञेयमित्यर्थः।

२—कांस्यपात्रे न भोक्तव्यमन्योन्यवर्णजैः कदा।
शूद्रस्त्वपक्वं पक्वं वा न भुंजेदन्यपंक्तिषु॥ ८४॥

टिप्पणी—पंक्तिषु इति बहुवचनाद्वर्णत्रयपंक्तावेव पक्वमपक्वं वा न भुंजेत् इत्यर्थः।

इससे पाठक समझ सकते हैं कि श्लोक कितने सुगम हैं, और उनकी टीका-टिप्पणीमें क्या विशेषता की गई है। साथ ही मुकाबलेके लिए इससे पहले लेखमें और इस लेखके अगले भागमें उद्धृत किये हुए बहुतसे कठिनसे कठिन श्लोकोंको भी देख सकते हैं जिन पर कोई टीका-टिप्पण नहीं है। और फिर उससे नतीजा निकाल सकते हैं कि कहाँ तक ऐसे श्लोकोंकी ऐसी टीका—टिप्पणी करना श्रुतकेवली जैसे विद्वानोंका काम होसकता

१—२ ये दोनों स्तोत्र श्वेताम्बरोंके 'प्रतिक्रमणसूत्र' में भी पाये जाते हैं; परन्तु यहाँ पर उक्त प्रतिक्रमण सूत्रसे पहले स्तोत्रमें तीन और दूसरेमें एक ऐसी चार गाथायें अधिक हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। सच तो यह है कि यह सब मूल और टीका-टिप्पणियाँ भिन्नभिन्न व्यक्तियोंका कार्य मालूम होता है। मूलकर्ताओंसे टीकाकार भिन्न जान पड़ते हैं। सबका ढंग और कथन-शैली प्रायः अलग है। चौथे और सातवें अध्यायोंकी टीकामें बहुतसे स्थानों पर, 'इत्यपि पाठः'-ऐसा भी पाठ है-यह लिखकर, मूलका दूसरा पाठ भी दिया हुआ है, जो मूलका उल्लेखयोग्य पाठ-भेद होजानेके बाद टीकाके बननेको सूचित करता है। यथाः—

१-'वाहिमरणं (व्याधिमरणं)'-'रायमरणं (राजमरणं) इत्यपि पाठः' ॥ ४-३० ॥

२-'मेहंतर (मेघान्तर-)'-'हेमंतर (हेमान्तर-) इत्यपि पाठः' ॥ ४-३१ ॥

३-'अण्णेणवि (अन्येनापि)-'अण्णोण्णवि (अन्योन्यमपि-परस्परमपि) इत्यपि पाठः' ॥ ७-२१ ॥

इससे मूलकर्ता और टीकाकारकी साफ तौरसे विभिन्नता पाई जाती है। साथ ही, इन सब बातोंसे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि ग्रंथकर्ता इन दोनोंसे भिन्न कोई तीसरा ही व्यक्ति है। उसे संभवतः ये सब प्रकरण इसी रूपमें (टीका-टिप्पणीसहित या रहित) कहींसे प्राप्त हुए हैं और उसने उन्हें वहाँसे उठाकर बिना सोचे समझे यहाँ जोड़ दिया है।

(२) हिन्दुओंके यहाँ ज्योतिषियोंमें 'वराहमिहिर' नामके एक प्रसिद्ध विद्वान् आचार्य-हो गये हैं। उनके बनाये हुए ग्रंथोंमें 'बृहत्संहिता' नामका एक खास ग्रंथ है, जिसको लोग 'वाराहीसंहिता' भी कहते हैं। इस ग्रंथका उल्लेख विक्रमकी ११ वीं शताब्दिमें होनेवाले 'सोमदेव' नामके जैनाचार्यने भी अपने 'यशस्तिलक' ग्रंथमें किया है। साथ ही 'जैनतत्त्वादर्श' आदि श्वेताम्बर ग्रंथोंमें भी इसका उल्लेख पाया जाता है। इस तरह पर दोनों संप्रदायोंके विद्वानों द्वारा यह हिन्दुओंका एक ज्योतिष ग्रंथ माना जाता है। परन्तु पाठकोंको यह जानकर आश्चर्य होगा कि इस बृहत्संहिताके अध्यायके अध्याय भद्रबाहुसंहितामें नकल किये गये हैं-ज्योंके त्यों या कहीं कहीं कुछ भद्दे और अनावश्यक परिवर्तनके साथ उठाकर रक्खे गये हैं-परन्तु यह सब कुछ होते हुए भी वराहमिहिर या उनके इस ग्रंथका कहीं नामोल्लेख तक नहीं किया। प्रत्युत, वराहमिहिरके इन सब वचनोंको भद्रबाहुके वचन प्रगट किया गया है और इस तरह पर एक अजैन विद्वानके ज्योतिषकथनको जैन ज्योतिषका ही नहीं बल्कि जैनियोंके केवलीका कथन बतलाकर सर्व साधारणको धोखा दिया गया है। इस नीचता और धृष्टताके कार्यका पाठक जो चाहे नाम रख सकते हैं और उसके उपलक्षमें ग्रंथकर्ताको चाहे जिस पदवीसे विभूषित कर सकते हैं, मुझे इस विषयमें कुछ कहनेकी जरूरत नहीं है। मैं सिर्फ यहाँ पर ग्रंथकर्ताके इस कृत्यका पूरा परिचय दे देना ही काफी समझता हूँ और वह परिचय इस प्रकार हैः—

(क) भद्रबाहुसंहिताके दूसरे खंडमें 'करण' नामका २९ वाँ अध्याय है, जिसमें कुल ९ पद्य हैं। इनमेंसे शुरूके ६ पद्य बृहत्संहिताके 'तिथि और करण' नामके ९९ वें अध्यायसे, जिसमें सिर्फ ८ पद्य हैं और पहले दो पद्य केवल 'तिथि' से सम्बंध रखते हैं, ज्योंके त्यों (उसी क्रमसे) उठाकर रक्खे गये हैं। सिर्फ पहले पद्यमें कुछ अनावश्यक उलट फेर किया है। बृहत्संहिताका वह पद्य इस प्रकार हैः—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यत्कार्यं नक्षत्रे तद्दैवत्यासु तिथिषु तत्कार्यं ।
करणमुहूर्त्तेष्वपि तत्सिद्धिकरं देवतासदृशम् ॥ ३ ॥

भद्रबाहुसंहितामें इसके पूर्वार्धको उत्तरार्ध और उत्तरार्धको पूर्वार्ध बना दिया है । इससे अर्थमें कोई हेर फेर नहीं हुआ । इन छहों पद्यों-के बाद भद्रबाहुसंहितामें सातवाँ पद्य इस प्रकार दिया है:—

लाभे तृतीये च शुभैः समेते, पापैर्विहीने शुभराशिलग्ने ।
वेध्यौ तु कर्णौ त्रिदशेज्यलग्ने* तिष्येन्दुचित्राहरिरेवतीषु

यह पद्य बृहत्संहिताके 'नक्षत्र' नामके ९८ वें अध्यायसे उठाकर रक्खा गया है, जहाँ इसका नम्बर १७ है । यहाँ 'करण' के अ-ध्यायसे इसका कोई सम्बंध नहीं है । इसके बादके दोनों पद्य (नं० ८–९) भी इस करण-विषयक अध्यायसे कोई संबंध नहीं रखते । वे बृहत्संहिताके अगले अध्याय नं १०० से उठा-कर रक्खे गये हैं, जिसका नाम है 'विवाह-नक्षत्रलग्ननिर्णय' और जिसमें सिर्फ ये ही दो पद्य हैं । इन पद्योंमें से एक पद्य नमूनेके तौर पर इस प्रकार है:—

रोहिण्युत्तररेवतीमृगशिरोमूलानुराधामघा-
हस्तस्वातिषु षष्ठ तौलिमिथुनेषूद्यत्सु, पाणिग्रहः ।
सप्ताष्टान्त्यबहिः शुभैरुडुपतावेकादशद्वित्रिगे,
क्रूरैस्त्र्यायषडष्टगैर्न तु भृगौ षष्ठे कुजे चाष्टमे ॥ ८ ॥

(ख) बृहत्संहितामें 'वस्त्रच्छेद' नामका ७१ वाँ अध्याय है, जिसमें १४ श्लोक हैं । इन-मेंसे श्लोक नं० १३ को छोड़कर बाकी सब श्लोक भद्रबाहुसंहिताके 'निमित्त' नामक ३० वें अध्यायमें नं० १८३ से १९५ तक नकल किये गये हैं । परन्तु इस नकल करनेमें एक तमाशा किया है, और वह यह है कि अन्तिम श्लोक नं० १४ को तो अन्तमें ही उसके स्थानपर (नं० १९५ पर) रक्खा है । बाकी श्लोकोंमेंसे पहले पाँच श्लोकोंका एक और उसके बादके सात श्लोकोंका दूसरा ऐसे दो विभाग करके दूसरे विभागको पहले और पहले विभागको पीछे नकल किया है । ऐसा करनेसे श्लोकोंके क्रममें कुछ गड़बड़ी हो गई है । अन्तिम श्लोक नं० १९५, जो नूतन वस्त्रधारणका विधान करनेवाले दूसरे विभागके श्लोकोंसे सम्बंध रखता था, पहले वि-भागके श्लोकोंके अन्तमें रक्खे जानेसे बहुत खटक-ने लगा है और असम्बद्ध मालूम होता है । इसके सिवाय अन्तिम श्लोक और पहले विभागके चौथे श्लोकमें कुछ थोड़ासा परिवर्त्तन भी पाया जाता है । उदाहरणके तौरपर यहाँ इस प्रकरणके दो श्लोक उद्धृत किये जाते हैं:–

वस्त्रस्य कोणेषु वसन्ति देवा
नराश्च पाशान्तदशान्तमध्ये ।
शेषास्त्रयश्चात्र निशाचरांशा-
स्तथैव शय्यासनपादुकासु ॥ १ ॥

भोक्तुं नवाम्बरं शस्तमृक्षेऽपि गुणवर्जिते ।
विवाहे राजसम्माने ब्राह्मणानां च सम्मते ॥१४॥

भद्रबाहु संहितामें पहला श्लोक ज्योंका त्यों नं० १९० पर दर्ज है और दूसरे श्लोकमें, जो अन्तिम श्लोक है, सिर्फ 'ब्राह्मणानां च सम्मते' के स्थानमें 'प्रतिष्ठामुनिदर्शने' यह पद बनाया गया है ।

(ग) वराहमिहिरने अपनी बृहत्संहितामें अध्याय नं० ८६ से लेकर ९६ तक ११ अध्या-योंमें 'शकुन' का वर्णन किया है । इन अध्या-योंके पद्योंकी संख्या कुल ३१९ है । इसके सिवाय अध्याय नं० ८९ के शुरूमें कुछ थोड़ासा गद्य भी दिया है । गद्यको छोड़कर इन पद्योंमेंसे ३०१ पद्य भद्रबाहुसंहिताके 'शकुन' नामके ३१ वें अध्यायमें उठाकर रक्खे गये हैं और उन पर नम्बर भी उसी (प्रत्येक अध्यायके

* भद्रबाहुसंहितामें 'त्रिदशेज्य' की जगह 'अमरेज्य' बनाया है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अलग अलग) क्रमसे डाले गये हैं जिस प्रकार कि वे उक्त बृहत्संहितामें पाये जाते हैं । बाकीके १८ पद्योंमेंसे कुछ पद्य छूट गये और कुछ छोड़ दिये गये मालूम होते हैं । इस तरह पर ये ग्यारहके ग्यारह अध्याय भद्रबाहुसंहितामें नकल किये गये हैं और उनका एक अध्याय बनाया गया है । इतने अधिक श्लोकोंकी नकलमें सिर्फ आठ दस पद्य ही ऐसे हैं जिनमें कुछ परिवर्तन पाया जाता है । बाकी सब पद्य ज्योंके त्यों नकल किये गये हैं । अस्तु । यहाँ पाठकोंके संतोषार्थ और उन्हें इस नकलका अच्छा ज्ञान करानेके लिए कुछ परिवर्तित और अपरिवर्तित दोनों प्रकारके पद्य नमूनेके तौर पर उद्धृत किये जाते हैः—

१–वानराभिक्षुश्रवणावलोकनं नैऋतात्तृतीयांशे ।
फलकुसुमदन्तघटितागमश्च कोणाच्चतुर्थांशे ॥ २–८ ॥

इस पद्यमें नैऋत कोणके सिर्फ तृतीय और चतुर्थ अंशोंहीका कथन है । इससे पहले दो अंशोंका कथन और होना चाहिए जो भद्रबाहुसंहितामें नहीं है । इसलिए यह कथन अधूरा है । बृहत्संहिताके ८७ वें अध्यायमें इससे पहलेके एक पद्यमें वह कथन दिया है और इसलिए इस पद्यको नं० ९ पर रक्खा है । इससे स्पष्ट है कि वह पद्य यहाँ पर छूटगया है ।

२–अवाक्प्रदाने विहितार्थसिद्धिः पूर्वोक्तदिक्चक्रफलैरथान्यत् । वाच्यं फलं चोत्तममध्यनीचशाखास्थितायां वरमध्यनीचम् ॥ ३–३९ ॥

बृहत्संहितामें, जिसमें इस पद्यका नं० ४६ है, इस पद्यसे पहले सात पद्य और दिये हैं जो भद्रबाहुसंहितामें नहीं हैं और उनमें पिंगला जानवरसे शकुन लेनेका विधान किया है । लिखा है कि,–'संध्याके समय पिंगलाके निवास-वृक्षके पास जाकर ब्रह्मादिक देवताओंकी और उस वृक्षकी नये वस्त्रों तथा सुगंधित द्रव्योंसे पूजा करे । फिर अकेला अर्धरात्रिके समय उस वृक्षके अग्निकोणमें खड़ा होकर तथा पिंगलाको अनेक प्रकारकी शपथें (कसमें) देकर पद्य नं० ४२।४३।४४ में दिया हुआ मंत्र ऐसे स्वरसे पढ़े जिसे पिंगला सुन सके और उसके साथ पिंगलासे अपना मनोरथ पूछे । ऐसा कहने पर वृक्ष पर बैठी हुई वह पिंगला यदि कुछ शब्द करे तो उसके फलका विचार पद्य नं० ४५ में* दिया है और उसके कुछ शब्द न करने आदिका विचार स ऊपर उद्धृत किये हुए पद्यमें बतलाया है । इससे इस पद्यका साफ सम्बन्ध उक्त सात पद्योंसे पाया जाता है । मालूम होता है कि ग्रंथकर्ताको इसका कुछ भी स्मरण नहीं रहा और उसने उक्त सात पद्योंको छोड़कर इस पद्यको यहाँ पर असम्बद्ध बना दिया है ।

३– राजा कुमारो नेता च दूतः श्रेष्ठी चरो द्विजः ।
गजाध्यक्षश्च पूर्वाद्याः क्षत्रियाद्याश्चतुर्दिशम् ५-४

यह पद्य यहाँ 'शिवारुत' प्रकरणमें बिलकुल ही असम्बद्ध मालूम होता है । इसका यहाँ कुछ भी अर्थ नहीं हो सकता । एक बार इसका अवतरण इसी ३१ वें अध्यायके शुरूमें नं० २८ पर हो चुका है और बृहत्संहिताके ८६ वें अध्यायमें यह नं० ३४ पर दर्ज है । नहीं मालूम इसे फिरसे यहाँ रखकर ग्रंथकर्ताने क्या लाभ निकाला है । अस्तु । इसके बदलेमें इस प्रकरणका 'शान्ता...' इत्यादि पद्य नं० १३ ग्रंथकर्तासे छूट गया है और इस तरहपर लेखा बराबर हो गया–प्रकरणके १४ पद्योंकी संख्या ज्योंकी त्यों बनी रही ।

---

* यथाः—"इत्येवमुक्ते तरुमूर्ध्नगायाश्चिरिल्विरिल्वीतिरुतेऽर्थसिद्धिः ।
अत्याकुलत्वं दिशिकारशब्दे कुचाकुचेत्येवमुदाहृते वा ॥ ४५ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४– क्रूरः षष्ठे क्रूरदृष्टो विलग्नाद्यस्मिन्त्राशौ तद्गृहांगे व्रणः स्यात् ।
एवं प्रोक्तं यन्मया जन्मकाले चिह्नं रूपं तत्तदस्मिन्विचिन्त्यं ॥ ११–१३ ॥

इस पद्यके उत्तरार्धमें लिखा है कि 'इसी प्रकारसे जन्मकालीन चिह्नों और फलोंका जो कुछ वर्णन मैंने किया है उन सबका यहाँ भी विचार करना चाहिए । वराहमिहिरने 'बृहज्जातक' नामका भी एक ग्रन्थ बनाया है जिसमें जन्मकालीन चिह्नों और उनके फलोंका वर्णन है । इससे उक्त कथनके द्वारा वराहमिहिरने अपने उस ग्रंथका उल्लेख किया मालूम होता है । ग्रंथकर्ताने उसे बिना सोचे समझे यहाँ ज्योंका त्यों रख दिया है । भद्रबाहुसंहितामें इस प्रकारका कोई कथन नहीं जिससे इसका सम्बंध लगाया जाय ।

५–ओजाः प्रदक्षिण शस्ता मृगः सनकुलाण्डजाः ।
चाषः सनकुलो वामो भृगुराहापराह्वतः ॥ १–३७ ॥

यह बृहत्संहिता (अ० ८६) का ४३ वाँ पद्य है । इसमें 'भृगु' जीका नाम उनके वचन सहित दिया है । भद्रबाहुसंहितामें इसे ज्योंका त्यों रक्खा है । बदला नहीं है । संभव है कि यह पद्य परिवर्तनसे छूट गया हो । अब आगे परिवर्तित पद्योंके दो नमूने दिखलाये जाते हैं:–

६–श्रेष्ठो हयः सितः प्राच्यां शवमांसे च दक्षिणे ।
कन्यका दधिनी पश्चादुदग्साधुजिनादयः ॥ १–४० ।

बृहत्संहितामें इस पद्यका पहला चरण 'श्रेष्ठे हयसिते प्राच्यां' और चौथा चरण 'दुदग्गो विप्रसाधवः' दिया है । बाकी दोनों चरण ज्योंके त्यों हैं । इससे भद्रबाहुसंहितामें इस पद्यके इन्हीं दो चरणोंमें तबदीली पाई जाती है । पहले चरणकी तबदीली साधारण है और उससे कोई अर्थभेद नहीं हुआ । रही चौथे चरणकी तबदीली, उसमें 'गोविप्र' (गोब्राह्मण) की जगह 'जिनादि' बनाया गया है और उससे यह सूचित किया है कि यात्राके समय उत्तरदिशामें यदि साधु और जिनादिक होवें तो श्रेष्ठ फल होता है । परन्तु इस तबदीलीसे यह मालूम न हुआ कि इसे करके ग्रंथकर्ताने कौनसी बुद्धिमत्ताका कार्य किया है । क्या 'साधु' शब्दमें 'जिन' का और 'जिनादि' शब्दोंमें 'साधु' का समावेश नहीं होता था ? यदि होता था तो फिर साधु और जिनादि ये दो शब्द अलग अलग क्यों रक्खे गये ? साथ ही, जिस गौ और ब्राह्मणके नामको उड़ाया गया है उसको यदि कोई 'आदि' शब्दसे ग्रहण कर ले तो उसका ग्रंथकर्ताने इस श्लोकमें क्या प्रतीकार रक्खा है ? उत्तर इन सब बातोंका कुछ नहीं हो सकता । इसलिए ग्रंथकर्ताका यह सब परिवर्तन निरा भूल भरा और मूर्खताका द्योतक है ।

७–धीवरशाकुनिकानां सप्तमभागे भयं भवति दीप्ते भोजनविघातउक्तो निधनभयं च तत्परतः॥ २-३३॥

इस पद्यमें सिर्फ '**निर्ग्रन्थभयं**' के स्थानमें '**निधनभयं**' बनाया गया है और इसका अभिप्राय शायद ऐसा मालूम होता है कि ग्रंथकर्ताको 'निर्ग्रंथ' शब्द खटका है । उसने इसका अर्थ दिगम्बर मुनि या जैनसाधु समझा है और जैनसाधुओंसे किसीको भय नहीं होता, इसलिए उसके स्थानमें 'निधन' शब्द बनाया गया है । परन्तु वास्तवमें निर्ग्रंथका अर्थ दिगम्बर मुनि या जैनसाधु ही नहीं है बल्कि 'निर्धन' और 'मूर्ख' भी उसका अर्थ है × और यहाँ पर वह ऐसे ही अर्थमें

× यथाः–'निर्ग्रंथः क्षपणेऽधने बालिशेऽपि।' इति श्रीधरसेनः ॥ 'निर्ग्रंथो निस्वमूर्खयोः श्रमणे च।' इति हेमचन्द्रः ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्यवहृत हुआ है । अस्तु ग्रंथकर्ताका इस परिवर्तनसे कुछ ही अभिप्राय हो, परन्तु छंदकी दृष्टिसे उसका यह परिवर्तन ठीक नहीं हुआ। ऐसा करनेसे इस आर्या छंदके चौथे चरणमें दो मात्रायें कम हो गई हैं—१५ के स्थानमें १३ ही मात्रायें रह गई हैं।

यहाँ पाठकोंको यह जानकर आश्चर्य होगा कि वराहमिहिर आचार्यने तो अपना यह संपूर्ण शकुनसम्बंधी वर्णन अनेक वैदिक ऋषियों तथा विद्वानोंके आधारपर—अनेक ग्रंथोंका आशय लेकर—लिखा है और उसकी सूचना उक्त वर्णनके शुरूमें लगा दी है । परन्तु भद्रबाहु-संहिताके कर्ता इतने कृतघ्न थे कि उन्होंने जिस विद्वानके शब्दोंकी इतनी अधिक नकल कर डाली है उसका आभार तक नहीं माना। प्रत्युत अध्यायके शुरूमें मंगलाचरणके बाद यह लिखकर कि 'श्रेणिकके प्रश्नानुसार गौतमने शुभ अशुभ शकुनका जो कुछ कथन किया है वह (यहाँ मेरे द्वारा) विशेषरूपसे निरूपण किया गया है * ' इस संपूर्ण कथनको जैनका ही नहीं बल्कि जैनियोंके केवलीका बना डाला है ! पाठक सोचें और विचार करें, इसमें कितना अधिक धोखा दिया गया है।

(घ) भद्रबाहुसंहितामें, शकुनाध्यायके बाद, 'पाक' नामका ३२ वाँ अध्याय है, जिसमें १७ पद्य हैं । यह पूरा अध्याय भी बृहत्संहितासे नकल किया गया है । बृहत्संहितामें इसका नं० ९७ है और पद्योंकी संख्या वही १७ दी है। इन पद्योंमेंसे ८ पद्योंकी नकल भद्रबाहुसंहितामें ज्योंकी त्यों पाई जाती है । बाकीके पद्य कुछ परिवर्तनके साथ उठाकर रक्खे गये हैं । परिवर्तन आम तौर पर शब्दोंको प्रायः आगे पीछे कर देने या किसी किसी शब्दके स्थानमें उसका पर्यायवाचक शब्द रखदेने मात्रसे उत्पन्न किया गया है । उदाहरणके तौर पर आदि अन्तके दो पद्य उन पद्योंके साथ नीचे प्रकाशित किये जाते हैं जिनसे वे कुछ परिवर्तन करके बनाये गये हैं:—

पक्षाद्भानोः सोमस्य मासिकोऽङ्गारकस्य वक्रोक्तः ।
आदर्शनाच्च पाको बुधस्य जीवस्य वर्षेण ॥ १ ॥
(-बृहत्संहिता ।)

पाकः पक्षाद्भानोः सोमस्य च मासिकः कुजस्य वक्रोक्तः
आदर्शनाच्च पाको बुधस्य सुगुरोश्च वर्षेण ॥ १ ॥
(—भद्रबाहुसंहिता ।)

ऊपरके इस पद्यका भद्रबाहुसंहितामें जो परिवर्तन किया गया है उससे अर्थमें कोई भेद नहीं हुआ । हाँ इतना जरूर हुआ है कि आर्या छंदके दूसरे चरणमें १८ मात्राओंके स्थानमें २१ मात्रायें होगई हैं और एककी जगह दो 'पाक' शब्दोंका प्रयोग व्यर्थ हुआ है । यदि शुरूके 'पाकः' पदको किसी तरह निकाल भी दिया जाय तो भी छंद ठीक नहीं बैठता । उस वक्त दूसरे चरणमें १७ मात्रायें रह जाती हैं इसलिए ग्रंथकर्ताने यह परिवर्तन करके कोई बुद्धिमानीका काम नहीं किया ।

२—निगदितसमये न दृश्यते चेदधिकतरं द्विगुणे प्रपच्यते तत् । यदि न कनकरत्नगोप्रदानैरुपशमितं विविद्द्विजैश्च शान्त्या ॥ १७ ॥ बृहत्संहिता ।

निगदितसमये न दृश्यते चेत् अधिक (तरं) द्विगुणे विपच्यते तत् । यदि न जिनवचो गुरूपचर्या शमितं तन्महँकैश्च लोकशान्त्यै ॥ १७ ॥ भद्र० सं० ।

इस पद्यको देखनेसे मालूम होता है कि भद्रबाहुसंहितामें इसके उत्तरार्धका खास तौरसे परिवर्तन किया गया है । परिवर्तन किस दृष्टिसे किया गया और उसमें किस बातकी विशेषता

* "श्रेणिकेन यथा पृष्टं तथा गौतमभाषितम् ।
शुभाशुभं च शकुनं विशेषेण निरूपितम् ॥ २ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रक्खी गई है, इस बातको जाननेके लिए सबसे पहले बृहत्संहिताके इस पद्यका आशय मालूम होना जरूरी है और वह इस प्रकार है:—

'ग्रहों तथा उत्पातों आदिके फल पकनेका जो समय ऊपर वर्णन किया गया है उस समय पर यदि फल दिखाई न दे तो उससे दूने समयमें वह अधिकताके साथ प्राप्त होता है। परन्तु शर्त यह है कि, वह फल सुवर्ण, रत्न और गोदानादिक शांतिसे विधिपूर्वक ब्राह्मणोंके द्वारा उपशमित न हुआ हो। अर्थात् यदि वह फल इस प्रकारसे उपशांत न हुआ हो तब ही दूने समयमें उसका अधिक पाक होगा, अन्यथा नहीं। स्मरण रहे, भद्रबाहुसंहितामें इस पद्यका जो कुछ परिवर्तन किया गया है वह सिर्फ इस पद्यकी उक्त शर्तका ही परिवर्तन है। इस शर्तके स्थानमें जो शर्त रक्खी गई है वह इस प्रकार है:-

'परन्तु शर्त यह है कि वह फल लोकशांतिके लिए महत्पुरुषों द्वारा की हुई जिनवचन और गुरुकी सेवासे शांत न हुआ हो।'

इस शर्तके द्वारा इस पद्यको जैनका लिबास पहनाकर उसे जैनी बनाया गया है। साथ ही, ग्रंथकर्ताने अपने इस कृत्यसे यह सूचित किया है कि शांति सुवर्ण, रत्न, और गौआदिके दानसे नहीं होती बल्कि जिनवचन और गुरुकी सेवासे होती है। परन्तु तीसरे खंडके 'ऋषिपुत्रिका' नामक चौथे, अध्यायमें प्रतिमादिकके उत्पातकी जिसके पाकका इस पाकाध्यायमें भी वर्णन है, शांतिका विधान करते हुए लिखा है कि:—

जं किंचिवि उप्पादं अण्णं विग्घं च तत्थ णासेइ।
दक्खिणदेज्जसुवण्णं गावी भूमी उ विप्पदेवाणं ११२ *

अर्थात्—जो कोई भी उत्पात या दूसरा कोई विघ्न हो उसमें ब्राह्मण देवताओंको दक्षिणा देना चाहिए—सोना, गौ और भूमि देना चाहिए। ऐसा करनेसे उत्पातादिककी शांति होती है।

इस गाथाको पढ़कर शायद कुछ पाठक यह कह उठें कि 'यह कथन जैनधर्मके विरुद्ध है।' परन्तु विरुद्ध हो या अविरुद्ध, यहाँ उसके दिखलानेका अभिप्राय या उसपर विचार करनेका अवसर नहीं है—विरुद्ध कथनोंका अच्छा दिग्दर्शन पाठकोंको अगले लेखमें कराया जायगा—यहाँ सिर्फ यह दिखलानेकी गरज है कि ग्रंथकर्ताने एक जगह उक्त परिवर्तनके द्वारा यह सूचित किया है कि सोना तथा गौ आदिकके दानसे ब्राह्मणोंके द्वारा शांति * नहीं होती और दूसरी जगह खुले शब्दोंमें उसका विधान किया है। ऐसी हालतमें समझमें नहीं आता कि ग्रंथकर्ताके इस कृत्यको उन्मत्तचेष्टाके सिवाय और क्या कहा जाय! यहाँ पर यह भी प्रगट कर देना जरूरी है कि ग्रंथकर्ताने, अपने इस कृत्यसे छंदमें भी कुछ गड़बड़ी पैदा की है। बृहत्संहिताका उक्त पद्य 'पुष्पिताग्रा' नामक छन्दमें+ है। उसके लक्षणानुसार चतुर्थ पादमें भी गणोंका विन्यास उसी प्रकार होना चाहिए था जिस प्रकार कि वह द्वितीय चरणमें पाया जाता है। परन्तु भद्रबाहुसंहितामें ऐसा नहीं है। उसके चौथे चरणका गणविन्यास दूसरे चरणसे बिलकुल भिन्न हो गया है।

(ङ) भद्रबाहुसंहितामें 'वास्तु' नामका

---

* इसकी संस्कृतछाया इस प्रकार है:—
यत्किंचिदपि उत्पातं अन्यद्विघ्नं च तत्र नाशयति।
दक्षिणा दद्यात् सुवर्णं गौः भूमिश्च विप्रदेवेभ्यः॥

* ब्राह्मणोंके उत्कर्षकी बातको दो एक जगह और भी बदला है जिसका ऊपर उद्धृत किये हुए (ख) और (ग) भागके पद्योंमें उल्लेख आचुका है।

+ इस छंदके विषम (१-३) चरणोंमें क्रमशः नगण नगण रगण यगण और सम (२-४) चरणोंमें नगण जगण जगण रगण और एक गुरु होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३५ वाँ अध्याय है, जिसमें लगभग ६० श्लोक वसुनन्दिके 'प्रतिष्ठासारसंग्रह' ग्रंथसे उठाकर रक्खे गये हैं और जिनका पिछले लेखमें उल्लेख किया जा चुका है। इन श्लोकोंके बाद एक श्लोकमें वास्तुशास्त्रके अनुसार कथनकी प्रतिज्ञा देकर, १३ पद्य इस बृहत्संहिताके 'वास्तुविद्या' नामक ५३ वें अध्यायसे भी उठाकर रक्खे हैं। जिनमेंसे शुरूके चार पद्योंको आर्या छंदसे अनुष्टपमें बदल कर रक्खा है और बाकीको प्रायः ज्योंका त्यों उसी छंदमें रहने दिया है। इन पद्योंसे भी दो नमूने इस प्रकार हैं:—

१ षष्टिश्चतुर्विहीना वेश्मानि भवन्ति पंच साचिवस्य।
स्वाष्टांशयुता दैर्घ्यं तदर्धतो राजमहिषीणाम् ॥ ६ ॥
(–बृहत्संहिता।)

सचिवस्य पंच वेश्मानि चतुर्हीना तु षष्ठिकाः।
स्वाष्टांशयुतदैर्घ्याणि महिषीणां तदर्धतः ॥ ६८ ॥
(–भद्रबा० सं०।)

२ ऐशान्यां देवगृहं महानसं चापि कार्यमाग्नेय्याम्।
नैर्ऋत्यां भाण्डोपस्करोऽर्थ धान्यानि मारुत्याम् ॥ ७८ ॥

इन पद्योंमें दूसरे नम्बरका पद्य ज्योंका त्यों नकल किया गया है और बृहत्संहितामें नं० ११८ पर दर्ज है। पहले पद्यमें सिर्फ छंदका परिवर्तन है। शब्द प्रायः वहींके वही पाये जाते हैं। इस परिवर्तनसे पहले चरणमें एक अक्षर बढ़ गया है–८ की जगह ९ अक्षर हो गये हैं। यदि ग्रंथकर्ताजी किसी मामूली छंदोवित्से भी सलाह ले लेते तो वह कमसे कम 'सचिवस्य' के स्थानमें उन्हें 'मंत्रिणः' कर देना जरूर बतला देता, जिससे छंदका उक्त दोष सहजहीमें दूर हो जाता। अस्तु।

ऊपरके इस संपूर्ण परिचयसे–ज्योंके त्यों उठाकर रक्खे हुए, स्थानान्तर किये हुए, छूटे हुए, छोड़े हुए और परिवर्तित किये हुए पद्योंके नमूनोंसे–साफ़ जाहिर है और इसमें कोई संदेह बाकी नहीं रहता कि यह सब कथन उक्त बृहत्संहितासे उठाकर ही नहीं बल्कि चुराकर रक्खा गया है। साथ ही इससे ग्रंथकर्ताकी सारी योग्यता और धार्मिकताका अच्छा पता मालूम हो जाता है।

(३) पहले लेखमें, भद्रबाहु और राजा श्रेणिककी (ग्रंथकर्ता द्वारा गढ़ी हुई) असम्बद्ध मुलाकातको दिखलाते हुए, हिन्दुओंके 'बृहत्पाराशरी होरा' ग्रंथका उल्लेख किया जा चुका है। इस ग्रंथसे लगभग दोसौ श्लोक उठाकर भद्रबाहुसंहिताके अध्याय नं० ४१ और ४२ में रक्खे गये हैं। संहितामें इन सब श्लोकोंकी नकल प्रायः ज्योंकी त्यों पाई जाती है। सिर्फ दस पाँच श्लोक ही इनमें ऐसे नजर आते हैं जिनमें कुछ थोड़ासा परिवर्तन किया गया है। नमूने इस प्रकार हैं:—

१–भौमजीवारुणाः पापाः एक एव कविः शुभः।
शनैश्चरेण जीवस्य योगेमेषभवो यथा ॥ ४१–१६ ॥

२–स्वत्रिंशांशेऽथवा मित्रे त्रिंशांशे वा स्थितो यदि।
तस्य भुक्तिः शुभा प्रोक्ता भद्रबाहुमहर्षिभिः ४२–१८

३–एवं देहादिभावानां षड्वर्गगतिभिः फलम्।
सम्यग्विचार्य मतिमान्प्रवदेत् मागधाधिपः ४२-द्वि.१७

इनमेंसे पहला श्लोक ज्योंका त्यों है और वह उक्त पाराशरी होराके पूर्वखंड सम्बन्धी १३ वें अध्यायमें नं० १९ पर दर्ज है। दूसरे श्लोकमें 'कालविद्भिर्मनीषिभिः' के स्थानमें 'भद्रबाहुमहर्षिभिः' और तीसरे श्लोकमें 'कालवित्तमः' की जगह 'मागधाधिपः' बनाया गया है। दूसरे श्लोकमें भद्रबाहुके नामका जो

---

१ यह श्लोक बृहत्पाराशरीहोराके ३७ वें अध्यायमें नं० ३ पर दर्ज है।

२ यह श्लोक बृ० पाराशरी होराके ४६ वें, अध्यायका ११ वाँ पद्य है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिवर्तन है उस प्रकारका परिवर्तन इस अध्यायके और भी अनेक श्लोकोंमें पाया जाता है और इस परिवर्तनके द्वारा ग्रंथकर्ताने हिन्दुओंके इस होरा-कथनको भद्रबाहुका बनानेकी चेष्टा की है। रहा तीसरे श्लोकका परिवर्तन, वह बड़ा ही विलक्षण है। इसके मूलमें लिखा था कि 'इस प्रकार बुद्धिमान् ज्योतिषी (कालवित्तमः) भले प्रकार विचार करके फल कहे'। परन्तु संहिताके कर्ताने, अपने इस परिवर्तनसे, फल कहनेका वह काम मागधोंके राजाके सपुर्द कर दिया है! और इसलिए उसका यह परिवर्तन यहाँ बिलकुल असंगत मालूम होता है। यदि विसर्गको हटाकर यहाँ '*मागधाधिपः*' के स्थानमें '*मागधाधिप*' ऐसा सम्बोधन पद भी मान लिया जाय तो भी असम्बद्धता दूर नहीं होती। क्योंकि ग्रंथमें इससे पहले उक्त राजाका कोई ऐसा प्रकरण या प्रसंग नहीं है जिससे इस पदका सम्बंध हो सके।

(४) हिन्दुओंके यहाँ 'लघुपाराशरी' नामका भी एक ग्रंथ है और इस ग्रंथसे भी बहुत से श्लोक कुछ परिवर्तनके साथ उठाकर भद्रबाहुसंहिताके अध्याय नं० ४१ में रक्खे हुए मालूम होते हैं, जिनमेंसे एक श्लोक उदाहरणके तौर पर इस प्रकार है:—

योगो दशास्वपि भवेत्प्रायस्सुयोगकारिणोः।
दशायुग्मे मध्यगतस्तदयुक् शुभकारिणाम्॥ ४१॥

लघुपाराशरीमें यह श्लोक इस प्रकार दिया है:—

दशास्वपि भवेद्योगः प्रायशो योगकारिणोः।
दशाद्वयी मध्यगतस्तदयुक् शुभकारिणाम्॥ १८॥

पाठक दोनों पद्यों पर दृष्टि डालकर देखें, कितना सुगम परिवर्तन है! दो एक शब्दोंको आगे पीछे करदेने तथा किसी किसी शब्दका पर्यायवाचक शब्द रख देने मात्रसे परिवर्तन हो गया है। लघुपाराशरीके दूसरे पद्योंका भी प्रायः यही हाल है। संहितामें उनका भी इसी प्रकारका परिवर्तन पाया जाता है।

(५) भद्रबाहुसंहिताके दूसरे खंडमें 'लक्षण' नामका एक अध्याय नं० ३७ है, जिसमें प्रधानतः स्त्रीपुरुषोंके अंगों-उपांगों आदिके लक्षणोंको दिखलाते हुए उनके शुभाशुभ फलका वर्णन किया है। इस अध्यायका पहला पद्य इस प्रकार है—

जिनदेवं प्रणम्यादौ सर्वज्ञं विबुधार्चितम्।
लक्षणानि च वक्ष्येऽहं भद्रबाहुर्यथागमं॥ १॥

इस पद्यमें, मंगलाचरणके बाद, लिखा है कि 'मैं भद्रबाहु आगमके अनुसार लक्षणोंका कथन करता हूँ।' इस प्रतिज्ञावाक्यसे एक दम ऐसा मालूम होता है कि मानो भद्रबाहु स्वयं इस अध्यायका प्रणयन कर रहे हैं और ये सब शब्द उन्हींकी कलमसे अथवा उन्हींके मुखसे निकले हुए हैं; परंतु नीचेके इन दो पद्यों के पढ़नेसे, जो उक्त पद्यके अनन्तर दिये हैं, कुछ और ही मालूम होने लगता है। यथाः—

पूर्वमायुः परीक्षेत पश्चाल्लक्षणमेव च।
आयुर्हीननृनारीणां लक्षणैः किं प्रयोजनम्॥ २॥
नारीणां वामभागे तु पुरुषस्य च दक्षिणे।
यथोक्तं लक्षणं तेषां भद्रबाहुवचो यथा॥ ३॥

पद्य नं० ३ में '**भद्रबाहुवचो यथा**' ये शब्द आये हैं, जिनका अर्थ होता है 'भद्रबाहुके वचनानुसार अथवा जैसा कि भद्रबाहुने कहा है।' अर्थात् ये सब वचन खास भद्रबाहुके शब्द नहीं हैं—उन्होंने इस अध्यायका प्रणयन नहीं किया बल्कि उनके वचनानुसार (यदि यह सत्य हो) किसी दूसरे ही व्यक्तिने इसकी रचना की है। आगे भी इस अध्यायके श्लोक नं० ३२, १३१ और १९५ में यही 'भद्रबाहुव-

---

१ अन्तके २० पद्योंमें कुछ थोड़ेसे हाथी घोड़ोंके भी लक्षण दिये हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चो यथा, शब्द पाये जाते हैं, जिनसे इस पिछले कथनकी और भी अधिक पुष्टि होती है। इसके सिवाय एक स्थानपर, श्लोक नं० १३६ में, ग्राह्यकन्या कैसी होती है, इत्यादि प्रश्न देकर अगले श्लोक नं० १३७ में '**भद्रबाहुरुवाचेति**' इस पर भद्रबाहु बोले, इन शब्दोंके साथ उसका उत्तर दिया गया है। प्रश्नोत्तर रूपके ये दोनों श्लोक पहले लेखमें उद्धृत किये जा चुके हैं। इनसे बिलकुल स्पष्ट होजाता है कि यह सब कथन भले ही भद्रबाहुके वचनानुसार लिखा गया हो, परन्तु वह खास भद्रबाहुका वचन नहीं है और न उन लोगोंका वचन है जिनके प्रश्नपर भद्रबाहु उत्तररूपसे बोले थे। क्योंकि यहाँ '**उवाच**' ऐसी परोक्ष भूतकी क्रियाका प्रयोग पाया जाता है। ऐसी हालतमें कहना पड़ता है कि यह सब रचना किसी तीसरे ही व्यक्तिकी कृति है। परन्तु ऐसा होनेपर पहले श्लोकमें दिये हुए उक्त प्रतिज्ञावाक्यसे विरोध आता है और इसलिए सारे कथन पर जालीपनेका संदेह होजाता है। तीसरे नम्बरके पद्यको फिरसे जरा गौरके साथ पढ़ने पर मालूम होता है कि उसमें '**भद्रबाहुवचो यथा**' के होते हुए '**यथोक्तम्**' पद व्यर्थ पड़ा है, उसका '**तेषां**' शब्द खटकता है और चूँकि '**यथोक्तं**' पद '**लक्षणं**' पदका विशेषण है, इसलिए इस पद्यमें कोई क्रियापद नहीं है और न पिछले तथा अगले दोनों पद्योंकी क्रियाओंसे उसका कोई सम्बंध पाया जाता है। ऐसी हालतमें, इस पद्यका अर्थ होता है– 'स्त्रियोंके वाम भागमें और पुरुषके दक्षिणभागमें उनका यथोक्त लक्षण भद्रबाहुके वचनानुसार।' इस अर्थसे यह पद्य यहाँ बिलकुल असम्बद्ध मालूम होता है और किसी दूसरे पद्यपरसे परिवर्तित करके बनाये जानेका खयाल उत्पन्न करता है। शब्दकल्पद्रुम-कोशमें 'सामुद्रक' शब्दके नीचे कुछ श्लोक किसी सामुद्रकशास्त्रसे उद्धृत करके रक्खे गये हैं, जिनमेंके दो श्लोक इसप्रकार हैं:—

> वामभागे तु नारीणां दक्षिणे पुरुषस्य च।
> निर्दिष्टं लक्षणं तेषां समुद्रेण यथोदितम्॥
> पूर्वमायुः परीक्षेत पश्चाल्लक्षणमेव च।
> आयुर्हीनं नराणां चेत् लक्षणैः किं प्रयोजनम्॥

इन श्लोकोंमें पहला श्लोक उक्त तीसरे पद्यसे बहुत कुछ मिलता जुलता है। मालूम होता है कि संहिताका उक्त पद्य इसी श्लोक परसे या इसके सदृश किसी दूसरे श्लोक परसे परिवर्तित किया गया है और इस परिवर्तनके कारण ही वह कुछ दूषित और असम्बंधित बन गया है। अन्यथा, इस श्लोकमें उक्त प्रकारका कोई दोष नहीं है। इसका '**तेषां**' पद भी इससे पहले श्लोकके उत्तरार्धमें[1] आये हुए '**मनुष्याणां**' पदसे सम्बन्ध रखता है। रहा दूसरा श्लोक, उसे देखनेसे मालूम होता है कि वह और संहिताका ऊपर उद्धृत किया हुआ पद्य नं० २ दोनों एक हैं। सिर्फ तीसरे चरणमें कुछ नाममात्रका परिवर्तन है जिससे कोई अर्थभेद नहीं होता। बहुत संभव है कि संहिताका उक्त पद्य भी इस दूसरे श्लोकपरसे परिवर्तित किया गया हो। परन्तु इसे छोड़कर यहाँ एक बात और नोट की जाती है और वह यह है कि इस अध्यायमें एक स्थान पर, '**नारदस्य वचो यथा**' यह पद देकर नारदके वचनानुसार भी कथन करनेको सूचित किया है। यथाः—

> ललाटे यस्य जायेत रेखात्रयसमागमः।
> षष्टिवर्षायुरुद्दिष्टं नारदस्य वचो यथा॥१३०॥

इससे मालूम होता है कि इस अध्यायका

---

१ वह उत्तरार्ध इस प्रकार है:—'लक्षणं तु मनुष्याणां एकैकेन वदाम्यहम्।'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुछ कथन किसी ऐसे ग्रंथसे भी उठाकर रक्खा गया है जो हिन्दुओंके नारद मुनि या नारदाचार्यसे सम्बंध रखता है। 'नारदस्य वचो यथा' और 'भद्रबाहुवचो यथा' ये दोनों पद एक ही वजनके हैं। आश्चर्य नहीं कि इस अध्यायमें जहाँ 'भद्रबाहुवचो यथा' इस पदका प्रयोग पाया जाता है वह 'नारदस्य वचो यथा' इस पदको बदल कर ही बनाया गया हो और ऊपरके पद्यमें 'नारदस्य' के स्थानमें 'भद्रबाहु' का परिवर्तन करना रह गया हो। परन्तु कुछ भी हो ऊपरके इस संपूर्ण कथनसे इस विषयमें कोई संदेह नहीं रहता कि इस अध्यायका यह सब कथन, जो २२० पद्योंमें है, एक या अनेक सामुद्रकशास्त्रों– लक्षणग्रंथों–अथवा तद्विषयक अध्यायोंसे उठाकर रक्खा गया है और कदापि भद्रबाहुश्रुतकेवलीका वचन नहीं है।

(६) भद्रबाहुसंहिताके पहले खंडमें दस अध्याय हैं, जिनके नाम हैं १ चतुर्वर्णनित्यक्रिया, २ क्षत्रियनित्यकर्म, ३ क्षत्रियधर्म, ४ कृतिसंग्रह, ५ सीमानिर्णय, ६ दंडपारुष्य, ७ स्तैन्यकर्म, ८ स्त्रीसंग्रहण, ९ दायभाग और १० प्रायश्चित्त। इन सब अध्यायोंकी अधिकांश रचना प्रायः मनु आदि स्मृतियोंके आधार पर हुई है, जिनके सैंकड़ों पद्य या तो ज्योंके त्यों और या कुछ परिवर्तनके साथ जगह जगह पर इन अध्यायोंमें पाये जाते हैं। मनुके १८ व्यवहारों–विवादपदों–का भी अध्याय नं० ३ से ९ तक कथन किया गया है। परन्तु यह सब कथन पूरा और सिलसिलेवार नहीं है। इसके बीचमें कृतिसंग्रह नामका चौथा अध्याय अपनी कुछ निराली ही छटा दिखला रहा है–उसका मजमून ही दूसरा है–और उसमें कई विवादोंके कथनका दर्शन तक भी नहीं कराया गया। इन अध्यायों पर यदि विस्तारके साथ विचार किया जाय तो एक खासा अलग लेख बन जाय; परन्तु यहाँ इसकी जरूरत न समझकर सिर्फ उदाहरणके तौरपर कुछ पद्योंके नमूने दिखलाये जाते हैं:-

क—ज्योंके त्यों पद्य।

त्रैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्यां दंडनीतिं च शाश्वतीम्।
आन्वीक्षिकीं चात्मविद्यां वार्तारंभांश्च लोकतः २-१३४
तैः सार्धं चिन्तयेन्नित्यं सामान्यं संधिविग्रहम्।
स्थानं समुदयं गुप्तिं लब्धप्रशमनानि च ॥–१४५॥

ये दोनों पद्य मनुस्मृतिके सातवें अध्यायके हैं जहाँ वे क्रमशः नं० ४३ और ५६ पर दर्ज हैं।

नोपगच्छेत्प्रमत्तोऽपि स्त्रियमार्तवदर्शने।
समानशयने चैव न शयीत तया सह ॥ ४-४२ ॥

यह पद्य मनुस्मृतिके चौथे अध्यायका ४० वाँ पद्य है।

कन्यैव कन्यां या कुर्यात्तस्याः स्याद्द्विशतो दमः।
शुल्कं च द्विगुणं दद्याच्छिफाश्चैवाप्नुयाद्दश ॥ ८-१४ ॥

यह पद्य मनुस्मृतिके आठवें अध्यायमें नं० ३६९ पर दर्ज है।

ख—परिवर्तित पद्य।

मनुस्मृतिके सातवें अध्यायमें, राजधर्मका वर्णन करते हुए, राजाके कामसे उत्पन्न होनेवाले दस व्यसनोंके जो नाम दिये हैं वे इस प्रकार हैं:—

मृगयाक्षो दिवास्वप्नः परिवादः स्त्रियोमदः।
तौर्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गणः ॥ ४७ ॥

भद्रबाहुसंहितामें इस पद्यके स्थानमें निम्न लिखित डेढ़ पद्य दिया है:—

परिवादो दिवास्वप्नः मृगयाक्षो वृथाटनम्।
तौर्यत्रिकं स्त्रियो मद्यमसत्यं स्तैन्यमेव च ॥२-१३८॥
इमे दशगुणाः प्रोक्ताः कामजाः बुधनिन्दिताः।

दोनों पद्योंके मीलानसे जाहिर है कि भद्रबाहुसंहिताका यह डेढ़ पद्य मनुस्मृतिके उक्त पद्य नं० ४७ परसे, उसके शब्दोंको आगे पीछे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करके बनाया गया है। सिर्फ 'असत्य' और 'स्तैन्य' ये दो व्यसन इसमें ज्यादह बढ़ाये गये हैं, जिनकी वजहसे कामज व्यसनों या गुणोंकी संख्या दसके स्थानमें बारह हो गई है। परंतु वैसे भद्रबाहुसंहितामें भी यह संख्या दस ही लिखी है, जिससे विरोध आता है। संभव है कि ग्रंथकर्ताने 'तौर्यत्रिक' को एक गुण या एक चीज समझा हो। परन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं है। गाना, बजाना और नाचना ये तीनों चीजें अलग अलग हैं और अलग अलग गुण कहे जाते हैं, जैसा कि उक्त पद्में लगे हुए 'त्रिक' शब्दसे भी जाहिर है।

नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव।
शनैरावर्तमानस्तु कर्तुर्मूलानि कृन्तति ॥ ४-१७२ ॥
(-मनुस्मृतिः।)

नाधर्मस्त्वरितो लोके सद्यः फलति गौरिव।
शनैरावर्तमानस्तु कर्तुर्मूलानि कृन्तति ॥ ४-८५ ॥
(-भद्रबाहु सं०)

ये दोनों पद्य प्रायः एक हैं। भद्रबाहुसंहिताके पद्यमें जो कुछ थोड़ासा परिवर्तन है वह समीचीन मालूम नहीं होता। उसका 'मिश्रं' पद बहुत खटकता है और वह यहाँ पर कुछ भी अर्थ नहीं रखता। यदि उसे किसी तरह पर 'सद्यः' का पर्यायवाचक शब्द 'शीघ्र' मान लिया जाय तो ऐसी हालतमें 'स्त्वरितो' के स्थानमें 'श्चरितो' भी मानना पड़ेगा और तब पद्य भरमें सिर्फ एक शब्दका ही अनावश्यक परिवर्तन रह जायगा।

आत्मा वै जायते पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा।
तस्यामात्मनि तिष्ठन्त्यां कथमन्यो धनं हरेत् ॥९-२६॥

दायभाग प्रकरणका यह पद्य वही है जो मनुस्मृतिके ९ वें अध्यायमें नं० १३० पर दर्ज है। सिर्फ उसके '**यथैवात्मा तथा पुत्रः**' के स्थानमें '**आत्मा वै जायते पुत्रः**' यह वाक्य बनाया गया है। इस परिवर्तनसे 'पुत्र अपने ही समान हकदार है' की जगह 'आत्मा निश्चयसे पुत्ररूप होकर उत्पन्न होता है' यह अर्थ हो गया है।

कृत्वा यज्ञोपवीतं तु पृष्ठतः कंठलम्बितम्।
विण्मूत्रे तु गृही कुर्याद्वामकर्णे व्रतान्वितः ॥ १-१८॥

यह पद्य वही है जिसे विट्ठल नारायण कृत 'आह्निक' में 'अंगिराः' ऋषिका वचन लिखा है। सिर्फ '**समाहितः**' के स्थानमें यहाँपर '**व्रतान्वितः**' का परिवर्तन किया गया है।

मनुस्मृतिके आठवें अध्यायमें, लोकव्यवहारके लिए कुछ संज्ञाओंका वर्णन करते हुए, लिखा है कि झरोखेके भीतर सूर्यकी किरणोंके प्रविष्ट होनेपर जो सूक्ष्म रजःकण दिखलाई देते हैं उसको त्रसरेणु कहते हैं। आठ त्रसरेणुओंकी एक लीख, तीन लीखोंका एक राजसर्षप, तीन राजसर्षपोंका एक गौरसर्षप और छह गौरसर्षपोंका एक मध्यम यव (जौ) होता है। यथा:--

जालान्तरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः।
प्रथमं तत्प्रमाणानां त्रसरेणुं प्रचक्षते ॥ १३२ ॥
त्रसरेणवोऽष्टौ विज्ञेया लिक्षैका परिमाणतः।
ता राजसर्षपस्तिस्रस्ते त्रयो गौरसर्षपाः ॥१३३॥
सर्षपाः षट् यवो मध्यः.................।

भद्रबाहुसंहिताके कर्ताने मनुस्मृतिके इस कथनमें त्रसरेणुसे परमाणुका अभिप्राय समझकर तथा राजसर्षप और गौरसर्षपके भेदोंको उड़ाकर जो कथन किया है वह इस प्रकार है:—

+यस्य भागो पुनर्नस्यात्परमाणुः स उच्यते।
तेऽष्टौ लिक्षा त्रयस्तच्च सर्षपस्ते यवो द्वि षट् ॥३-२५२॥

+ इससे पहले श्लोकमें त्रसरेण्वादिके भेदसे ही मानसंज्ञाओंके कथनकी प्रतिज्ञा की गई है जिससे मालूम होता है कि ग्रंथकर्ताने त्रसरेणुको परमाणु समझा है। यथाः संसारव्यवहारार्थं मानसंज्ञा प्रकथ्यते। हेमरत्नादिवस्तूनां त्रसरेण्वादिभेदतः ॥ २५१ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थात्–जिसका विभाग न हो सके उसको परमाणु कहते हैं। आठ परमाणुओंकी एक लीख, तीन लीखोंका एक सर्षप (सरसोंका दाना) और छह सर्षपोंका एक जौ होता है। संहिता-का यह सब कथन जैनदृष्टिसे बिलकुल गिरा हुआ ही नहीं बल्कि नितान्त, असत्य मालूम होता है। इस कथनके अनुसार एक जौ, असंख्यात अथवा अनंत परमाणुओंकी जगह, सिर्फ १४४ परमाणुओंका पुंज ठहरता है, जब कि मनुस्मृतिका कर्ता उसे ४३२ त्रसरेणुओंके बराबर बतलाता है। एक त्रसरेणुमें बहुतसे परमाणुओंका समूह होता है। परमाणुको जैन-शास्त्रोंमें इंद्रियगोचर नहीं माना; ऐसी हालत होते हुए लौकिक व्यवहारमें परमाणुके पैमानेका प्रयोग भी समुचित प्रतीत नहीं होता। इन सब बातोंसे मालूम होता है कि ग्रंथकर्ताने संज्ञाओंका यह कथन मनस्मृति या उसके सदृश किसी दूसरे ग्रंथसे लिया तो जरूर है; परन्तु वह उसके आशयको ठीक तौरसे समझ नहीं सका और उसने परमाणुका लक्षण साथमें लगाकर जो इस कथनको जैनकी रंगत देनी चाही है उससे यह कथन उलटा जैनके विरुद्ध होगया है और इससे ग्रंथकर्ताकी साफ मूर्खता टपकती है। सत्य है 'मूर्खोंका प्रसाद भी भयंकर होता है।'

(७) इस संहितामें अनेक कथन ऐसे पाये जाते हैं जिन्हें ग्रंथकर्ताने विना किसी नूतन आवश्यकताके एकसे अधिक वार वर्णन किया है और जिनके इस वर्णनसे न सिर्फ ग्रंथकर्ताकी मूढ़ता अथवा हिमाकत ही जाहिर होती है बल्कि साथ ही यह बात और स्पष्ट हो जाती है कि यह पूरा ग्रंथ किसी एक व्यक्तिकी स्वतंत्र रचना न होकर प्रायः भिन्न भिन्न व्यक्तियोंके प्रकरणोंका एक बेढंगा संग्रह मात्र है। ऐसे कथनोंके कुछ नमूने इस प्रकार हैं:—

(क) पहले खंडके 'प्रायश्चित्त' नामक १० वें अध्यायमें, एक स्थान पर, ये तीन पद्य दिये हैं:—

पण दस बारस णियमा पण्णारस होइ तहय दिवसेहिं।
खत्तिय बंभाविस्सा सुद्दाय कमेण सुज्झंति ॥ ३७ ॥
क्षत्रियासूतकं पंच विप्राणां दश उच्यते।
वैश्यानां द्वादशाहेन मासार्धेष्वितरे जने ॥ ३८ ॥
यतिः क्षणेन शुद्धः स्यात्पंच रात्रेण पार्थिवः।
ब्राह्मणो दशरात्रेण मासार्धेनेतरो जनः ॥ ३९ ॥

इन तीनों पद्योंमेंसे कोई भी पद्य 'उक्तं च' आदि रूपसे किसी दूसरे व्यक्तिका प्रगट नहीं किया गया और न दूसरा पद्य पहले प्राकृत पद्यकी छाया है। तो भी पहले पद्यमें जिस बात-का वर्णन दिया है वही वर्णन दूसरे पद्यमें भी किया गया है। दोनों पद्योंमें क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य और शूद्रोंकी सूतकशुद्धिकी मर्यादा क्रमशः पाँच, दस, बारह और पंद्रह दिनकी बतलाई है। रहा तीसरा पद्य, उसमें क्षत्रियों और ब्राह्मणोंकी शुद्धिका तो कथन वही है जो ऊपरके दोनों पद्योंमें दिया है और इसलिए यह कथन तीसरी बार आगया है, बाकी रही वैश्यों और शूद्रोंकी शुद्धिकी मर्यादा, वह इसमें १५ दिनकी बतलाई है, जिससे वैश्योंकी शुद्धिका कथन पहले दोनों पद्योंके कथनसे विरुद्ध पड़ता है। क्योंकि उनमें १२ दिनकी मर्यादा लिखी है। इसके सिवाय ग्रंथमें इन तीनों पद्योंका ग्रंथके पहले पिछले पद्योंके साथ कुछ सम्बंध ठीक नहीं बैठता और ये तीनों ही पद्य यहाँ 'उठाऊ चूल्हा' जैसे मालूम पड़ते हैं।

(ख) दूसरे खंडमें 'तिथि' नामका २८ वाँ अध्याय है, जिसमें कुल तेरह पद्य हैं। इनमेंसे छह पद्य नं० ४, ५, ७, ८, ९, १० बिलकुल वे ही हैं जो इससे पहले 'मुहूर्त' नामके २७ वें अध्यायमें क्रमशः नं० ९, १०, १७,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१८, १९, २० पर दर्ज हैं । यहाँ पर उन्हें व्यर्थ ही दुबारा रक्खा गया है ।

(ग) दूसरे खंडमें 'विरोध' नामका एक ४३ वाँ, अध्याय भी है जिसमें कुल ६३ श्लोक हैं । इन श्लोकोंमें शुरूके साढ़े तेईस श्लोक–नं० २ से नं० २५ के पूर्वार्ध तक–बिलकुल ज्योंके त्यों वे ही हैं जो पहले इसी खंडके 'ग्रहयुद्ध' नामके २४ वें अध्यायके + शुरूमें आचुके हैं और उन्हीं नम्बरोंपर दर्ज हैं । समझमें नहीं आता कि जब दोनों अध्यायोंका विषय भिन्न भिन्न था तो फिर क्यों एक अध्यायके इतने अधिक श्लोकोंको दूसरे अध्यायमें फिजूल नकल किया गया । संभव है कि इन दोनों विषयोंमें ग्रंथकर्ताको परस्पर कोई भेद ही मालूम न हुआ हो । उसे इस 'विरोध' नामके अध्यायको रखनेकी जरूरत इस वजहसे पड़ी हो कि उसके नामकी सूचना उस विषयसूचीमें की गई है जो इस खंडके पहले अध्यायमें लगी हुई है और जो पहला अध्याय अगले २३–२४ अध्यायोंके साथ किसी दूसरे व्यक्तिका बनाया हुआ है, जैसा कि पहले लेखमें सूचित किया जा चुका है और इसलिए ग्रंथकर्ताने इस अध्यायमें कुछ श्लोकोंको 'ग्रहयुद्ध' प्रकरणसे और बाकीको एक या अनेक ताजिक ग्रंथोंसे उठाकर रख दिया हो और इस तरहपर इस अध्यायकी पूर्ति की हो । परन्तु कुछ भी हो, इसमें सन्देह नहीं कि ग्रंथकर्ताने अपने इस कृत्यद्वारा सर्व साधारण पर अपनी खासी मूर्खता और हिमाकतका इजहार किया है ।

(घ) इस ग्रंथमें 'स्वप्न' नामका एक अध्याय नं० २६ है, जिसमें केवल स्वप्नका ही वर्णन है और दूसरा 'निमित्त' नामका ३० वाँ अध्याय है, जिसमें स्वप्नका भी वर्णन दिया है । इन दोनों अध्यायोंमें स्वप्नविषयक जो कुछ कथन किया गया है उसमेंसे बहुतसा कथन एक दूसरेसे मिलता जुलता है और एकके होते दूसरा बिलकुल व्यर्थ और फिजूल मालूम होता है । नमूनेके तौरपर यहाँ दोनों अध्यायोंसे सिर्फ दो दो श्लोक उद्धृत किये जाते हैं:–

१–मधुरेचिर्विशेत्स्वप्ने दिवा वा यस्य वेश्मनि ।
तस्यार्थनाशं नियतं मृतोवाप्यभिनिर्दिशेत् ॥ ४५ ॥
—अध्याय २६ ।

मधुछत्रं विशेत्स्वप्ने दिवा वा यस्य वेश्मनि ।
अर्थनाशो भवेत्तस्य मरणं वा विनिर्दिशेत् ॥१३३॥
—अध्याय ३० ।

२–मूत्रं वा कुरुते स्वप्ने पुरीषं वा सलोहितम् ।
प्रतिबुध्येत्तथा यश्च लभते सोऽर्थनाशनम् ॥ ५२ ॥
—अ० २६ ।

पुरीषं लोहितं स्वप्ने मूत्रं वा कुरुते तथा ।
तदा जागर्ति यो मर्त्यो द्रव्यं तस्य विनश्यति ॥१२१॥
—अ० ३० ।

इनसे साफ जाहिर है कि ग्रंथकर्ताने इन दोनों अध्यायोंका स्वप्नविषयक कथन भिन्न भिन्न स्थानोंसे उठाकर रक्खा है और उसमें इतनी योग्यता नहीं थी कि वह उस कथनको छाँटकर अलग कर देता जो एक बार पहले आचुका है । इसी तरह पर इस ग्रंथमें 'उत्पात' नामका एक अध्याय नं० १४ है, जिसमें केवल उत्पातका ही वर्णन है और दूसरा 'ऋषिपुत्रिका' नामका चौथा अध्याय, तीसरे खंडमें, है जिसमें उत्पातका प्रधान प्रकरण है । इन दोनों अध्यायोंका बहुतसा उत्पातविषयक कथन भी एक दूसरेसे मिलता जुलता है । इनके भी दो दो नमूने इस प्रकार हैं:–

१-नर्तनं जलनं हास्यं उल्कालापौ निमीलनं ।
देवा यत्र प्रकुर्वन्ति तत्र विंद्यान्महद्भयम् ॥१४-१०२॥

+ इस २४ वें अध्यायमें कुल ४३ श्लोक हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवो णच्चंति जहिं पसिज्जंति तहय रोवंती ।
जइ धूमंति चलंति य हसंति वा विविहरूवेहिं ॥
लोयस्सदिंतिं मारिं दुब्भिक्खं तहय रोय पीडं वा ४-७८
२ आरण्या ग्राममायान्ति वनं गच्छंति नागराः ।
उद्रंति चाथ जल्पंति तदारण्याय कल्पते ॥१४-६॥
आरण्णेयामिग पक्खी, गामे णयरम्मि दीसदे जत्थ ।
होहदि णायरविणासो परचक्कादो न संदेहो ॥४–५६॥

इससे स्पष्ट मालूम होता है कि इन अध्यायोंका यह उत्पात विषयक कथन भी भिन्न भिन्न स्थानोंसे उठाकर रक्खा गया है और चूँकि इन दोनों अध्यायोंमें बहुतसा कथन एक दूसरेके विरुद्ध भी पाया जाता है, जिसका दिग्दर्शन अगले लेखमें कराया जायगा, इसलिए ये दोनों अध्याय किसी एक व्यक्तिके बनाये हुए भी नहीं हैं। ग्रंथकर्ताने उन्हें जहाँ तहाँसे उठाकर बिना सोचे समझे यहाँ जोड़ दिया है।

(८) यद्यपि इससे पहले लेखमें और इस लेखमें भी ऊपर, प्रसंगानुसार, असम्बद्ध कथनोंका बहुत कुछ उल्लेख किया जा चुका है तो भी यहाँ पर कुछ थोड़ेसे असम्बद्ध कथनोंको और दिखलाया जाता है, जिससे पाठकों पर ग्रंथका बेढंगापन और भी अधिकताके साथ स्पष्ट हो जायः—

(क) गणेशादिमुनीन् सर्वान् नमंति शिरसा सदा ।
निर्वाणक्षेत्रपूजादीन् भुंजंतीन्द्राश्च भो नृप ॥३६–५१॥
त्रसरेण्वादिकं चान्यत्तिलकालकसंभवं ।
इत्येवं व्यंजनानां च लक्षणं तत्त्वतो नृप ॥३८–१९॥
मनुष्येषु भवेच्चिह्नं छत्रतोरणचामरं ।
सिंहासनादिमत्स्यान्तं राज्यचिह्नं भवेन्नृप ॥ ३९–६ ॥
विदिग्गतश्चोर्ध्वगतोऽधोगतो दीप एव च ।
कदाचिद्भवति प्रायो ज्ञेयो राजन् शुभोऽशुभः३-८-१८

ये चारों पद्य क्रमशः १ दिव्येन्द्रसंपदा, २ व्यंजन, ३ चिह्न और ४ दीप नामके चार अलग अलग अध्यायोंके पद्य हैं। इनमें 'नृप' और 'राजन्' शब्दोंद्वारा किसी राजाको सम्बोधन करके कथन किया गया है; परन्तु पहले यह बतलाया जा चुका है कि इस संपूर्ण ग्रंथमें कहीं भी किसी राजाका कोई प्रकरण या प्रसंग नहीं है और न किसी राजाके प्रश्न पर इस ग्रंथकी रचना कीगई है, जिसको सम्बोधन करके ये सब वाक्य कहे जाते। इसलिए ये चारों पद्य इस ग्रंथमें बिलकुल असम्बद्ध तथा अनमेल मालूम होते हैं और साथ ही इस बातको सूचित करते हैं कि ग्रंथकर्ताने इन चारों पद्योंहीको नहीं बल्कि संभवतः उक्त चारों अध्यायोंको किसी ऐसे दूसरे ग्रंथ या ग्रंथोंसे उठाकर यहाँ रक्खा है जहाँ उक्त ग्रंथ या ग्रंथोंके कर्ताओंने उन्हें अपने अपने प्रकरणानुसार दिया होगा। मालूम होता है कि संहिताके कर्ताके ध्यानमें ही ये सम्बोधन पद नहीं आये। अथवा यों कहना चाहिए कि उसमें इनके सम्बंधविशेषको समझनेकी योग्यता ही नहीं थी। इस लिए उसने उन्हें ज्योंका त्यों नकल कर दिया है।

(ख) इस ग्रंथके तीसरे खंडमें 'नवग्रहस्तुति' नामका सबसे पहला अध्याय है। अन्तिमवक्तव्यमें भी इस अध्यायका नाम 'ग्रहस्तुति' ही लिखा है; परन्तु इस सारे अध्यायका पाठ कर जाने पर, जिसमें कुल १५ पद्य हैं, ग्रहोंकी स्तुतिका इसमें कहीं भी कुछ पता नहीं है। इसका पहला पद्य मंगलाचरण और प्रतिज्ञाका है, जिसमें 'ग्रहशान्तिं प्रवक्ष्यामि' इस वाक्यके द्वारा ग्रहोंकी स्तुति नहीं बल्कि शान्तिके कथनकी प्रतिज्ञा की गई है।

---

१ संस्कृतछायाः—"देवा नृत्यंति यदि प्रस्वेद्यंति तथा च रुदन्ति (वदन्ति)। यदि धूमंति चलंति च हसंति वा विविधरूपैः॥ लोकस्य ददति मारीं दुर्भिक्षं तथा रोगपीडां वा ॥ ७८ ॥

२ संस्कृतछायाः—
आरण्यकमृगपक्षी ग्रामे नगरे च दृश्यते यत्र ।
भविष्यति नगरविनाशः परचक्रात् न संदेहः ॥ ५६ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दूसरे पद्यमें ग्रहों (खेचरों) को 'जैनेन्द्र' बतलाया है और उनके पूजनकी प्रेरणा की है। इसके बाद चार पद्योंमें तीर्थंकरों और ग्रहोंके नामोंका मिश्रण है। ये चारों पद्य संस्कृत साहित्यकी दृष्टिसे बड़े ही विलक्षण मालूम होते हैं। इनसे किसी यथेष्ट आशयका निकालना बड़े बुद्धिमानका काम है *। सातवें पद्यमें खेचरों सहित जिनेंद्रोंके पूजनकी प्रेरणा है। आठवें पद्यमें ग्रहोंके नाम दिये हैं और उन्हें 'जिन' भगवानकी पूजा करनेवाले बतलाया है। इसके बादके दो पद्योंमें लिखा है कि "जो कोई जिनेंद्रके सन्मुख ग्रहोंको प्रसन्न करनेके लिए 'नमस्कारशत' को भक्तिपूर्वक १०५ बार जपता है (उससे क्या होता है? यह कुछ नहीं बतलाया)। पाँचवें श्रुतकेवली भद्रबाहुने यह सब कथन किया है। विद्यानुवादपूर्वकी ग्रहशांतिविधि की गई।" यथाः—

> जिनानामग्रतो योहि ग्रहाणां तुष्टिहेतवे।
> नमस्कारशतं भक्त्या जपेदष्टोत्तरं शतं ॥ ९ ॥
> भद्रबाहुरुवाचेति पंचमः श्रुतकेवली।
> विद्यानुवादपूर्वस्य ग्रहशांतिविधिः कृतः ॥ १० ॥

११ वें पद्यमें यह बतलाया है कि जो कोई नित्य प्रातःकाल उठकर विघ्नोंकी शांतिके लिए पढ़े (क्या पढ़े ? यह कुछ सूचित नहीं किया) उसकी विपदायें नाश हो जाती हैं और उसे सुख मिलता है। इसके बाद एक पद्यमें ग्रहोंकी धूपके, दूसरेमें ग्रहोंकी सामिधिके और तीसरेमें सप्त धान्योंके नाम दिये हैं और अन्तिम पद्यमें यह बतलाया है कि कैसे यज्ञके समान कोई शत्रु नहीं है। अध्यायके इस संपूर्ण परिचयसे पाठक भले प्रकार समझ सकते हैं कि इन सब कथनोंका प्रकृत विषय (ग्रहस्तुति) से कहाँ तक सम्बन्ध है और आपसमें भी ये सब कथन कितने एक दूसरेसे सम्बंधित और सुगठित मालूम होते हैं! आश्चर्य है कि ऐसे असम्बन्द्ध कथनोंको भी भद्रबाहु श्रुतकेवलीका वचन बतलाया जाता है।

(ग) तीसरे खंडमें 'शास्ति' नामके पाँचवें अध्यायका प्रारंभ करतेहुए सबसे पहले निम्न लिखित श्लोक दिया हैः—

> ग्रहस्तुतिः प्रतिष्ठा च मूलमंत्रर्षिपुत्रिके।
> शास्तिचक्रे क्रियादीपे फलशान्ती दशोत्तरे ॥ १ ॥

यह श्लोक वही है जो, उत्तर खंडके दस अध्यायोंकी सूची प्रगट करता हुआ, अन्तिम वक्तव्यमें नं० ५ पर पाया जाता है और जिसका पिछले लेखमें उल्लेख होचुका है। यहाँ पर यह श्लोक बिलकुल असम्बन्द्ध मालूम होता है और ग्रंथकर्ताकी उन्मत्तदशाको सूचित करता है। साथ ही इससे यह भी पाया जाता है कि 'आन्तिम वक्तव्य' आन्तिमखंडके अन्तमें नहीं बना बल्कि वह कुल या उसका कुछ भाग पहलेसे गढ़ा जाचुका था। तबही उसके उक्त वाक्यका यहाँ इतने पहलेसे अवतार होसका है। इस श्लोकके आगे प्राकृतके ११ पद्योंमें संस्कृतछायासहित इस अध्यायका जो कुछ वर्णन किया है वह पहले पद्यको छोड़कर जिसमें मंगलाचरण और प्रतिज्ञा है, किसी यक्षकी पूजासे उठाकर

---

* उक्त चारों पद्य इस प्रकार हैं, जिनका अर्थ पाठकोंको किसी संस्कृत जाननेवालेसे मालूम करना चाहिएः—

"पद्मप्रभस्य मार्तंडश्चंद्रश्चंद्रप्रभस्य च। वासुपूज्यस्य भूपुत्रो बुधेप्यष्टजिनेश्वराः ॥ ३ ॥ विमलानन्तधर्मोणः शांतिकुंथुर्नेमिस्तथा। वर्धमानजिनेंद्रस्य पादपद्मे बुधं न्यसेत् ॥ ४ ॥ वृषभाजितसुपार्श्वश्चाभिनंदनशीतलौ। सुमतिः संभवः स्वामीश्रेयांसश्च वृहस्पतेः ॥५॥ सुविधेः कथितः शुक्रः सुव्रतस्य शनैश्चरः। नेमिनाथो भवेद्राहोः केतुः श्रीमल्लिपार्श्वयोः ॥ ६ ॥"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रक्खा गया है और उसकी 'जयमाल' मालूम होता है।*

(घ) तीसरे खंडके ९ वें अध्यायमें ग्रहचारका वर्णन करते हुए 'शनैश्चरचार' के सम्बंधमें जो पद्य दिया है वह इस प्रकार है:—

शनैश्चरं चारमिदं च भूमिपो यो वेत्ति विद्वान्निभृतो यथावत्।
सपूजनीयो भुवि लब्धकीर्तिः सदा सहायेव हि दिव्यचक्षुः॥ ४३॥

इस पद्यमें शनैश्चरचारका कुछ भी वर्णन न देकर सिर्फ उस विद्वान् राजाकी प्रशंसा की गई जो शनैश्चरचारके 'इस कथन' को जानता है। परन्तु इससे यह मालूम न हुआ कि शनैश्चरचारका वह कथन कौनसा है जिसका यहाँ 'इदं' (इस) शब्दसे ग्रहण किया गया है। क्योंकि अध्याय भरमें इस पद्यसे पहले या पीछे इस विषयका कोई भी दूसरा पद्य नहीं है जिससे इस 'इदं' शब्दका सम्बंध हो सके। इसलिए यह पद्य यहाँपर बिलकुल असम्बद्ध और अनर्थक मालूम होता है। ग्रंथकर्ताने इसे दूसरे खंडके 'शनैश्चर-चार' नामके १९ वें अध्यायसे उठाकर रक्खा है जहाँपर यह उक्त अध्यायके अन्तमें दर्ज है। इसी तरह पर ग्रहाचारसम्बन्धी अध्यायोंके प्रायः अन्तिम पद्य हैं और वहींसे उठाकर यहाँ रक्खे गये हैं। नहीं मालूम ग्रंथकर्ताने ऐसा करके अपनी मूर्खता प्रगट करनेके सिवाय और कौनसा लाभ निकाला है।

(ङ) पहले खंडमें 'प्रायश्चित्त' नामका दसवाँ अध्याय है। इस अध्यायके शुरूमें, पहले कुछ गद्य देकर '**इदं प्रायश्चित्तप्रकरणमारभ्यते**' इस वाक्यके बाद, ये तीन पद्य दिये हैं; और इनके आगे बरतनोंकी शुद्धि आदिका कथन है:—

यथाशुद्धि व्रतं धृत्वोपासकाचारसूचितम्।
भोगोपभोगनियमं दिग्देशनियतिं तथा॥ १॥
अनर्थदंडविरतिं तथा नित्यं व्रतं क्रमात्।
अर्हदादीन्नमस्कृत्य चरणं गृहमेधिनाम्॥ २॥
कथितं मुनिनाथेन श्रुत्वा तच्छ्रावयेदमून्।
पायाद्यातिकुलं नत्वा पुनर्दर्शनमस्त्विति॥ ३॥

इन तीनों पद्योंका अध्यायके पहले पिछले कथनसे प्रायः कुछ भी सम्बंध नहीं है। तीसरे पद्यका उत्तरार्ध भी शेष पद्योंके साथ असंगत जान पड़ता है। इसलिए ये पद्य यहाँपर असंबद्ध मालूम होते हैं। इनमें लिखा है कि—'उपासकाचारमें कहे हुए भोगोपभोगपरिमाण व्रतको दिग्विरति, देशविरति तथा अनर्थदंडविरति नामके व्रतोंको और तैसे ही अन्य नित्यव्रतोंको क्रमशः यथाशक्ति धारण करके और अर्हतादिकको नमस्कार करके मुनिनाथने गृहस्थोंके चारित्रका वर्णन किया है। उसको सुनकर उन्हें सुनावे, रक्षा करे, यतिकुलको नमस्कार करके फिरदर्शन होवे, इस प्रकार।' इस कथनकी अन्य बातोंको छोड़कर, मुनिनाथने उपासकाचारमें कहे हुए श्रावकोंके व्रतोंको धारण किया, और वह भी पूरा नहीं, यथाशक्ति! तब कहीं गृहस्थोंके चरित्रका वर्णन किया, यह बात बहुत खटकती है और कुछ बनती हुई मालूम न होकर असमंजस प्रतीत होती है। जैनसिद्धान्तकी दृष्टिसे मुनीश्वरोंको श्रावकोंके व्रतोंके धारण करनेकी कोई जरूरत नहीं है। वे अपने महाव्रतोंको पालन करते हुए गृहस्थोंको उनके धर्मका सब कुछ उपदेश देसकते हैं। नहीं मालूम ग्रंथकर्ताने कहाँ कहाँके पदोंको आपसमें जोड़कर यहाँपर यह

* मंगलाचरणके बादका पद्य निम्न प्रकार है और अन्तमें 'घत्ता' के बाद 'मइ णिम्मल होउ...' इत्यादि एक पद्य दिया है:—"चारणावास कैलास सैलासिओ, किंणरीवेणुवीणाझुणीतोसिओ। सामवण्णो सउण्णो पसण्णो मुहो, आइ देवाण देवाहि पम्मो मुहो॥ ३॥"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

असमंजसता उत्पन्न की है। परन्तु इसे छोड़िए और एक नया दृश्य देखिए। वह यह है कि, इस अध्यायमें अनेक स्थानोंपर कीडी, बीडा, ताम्बूल बीडा, खटीक, चमार, मोची, डोहर, कोली, कंदी, जिमन, खाती, सोनार, ठठेरा, छीपी, तेली, नाई, डोंव, वुरुड और मनियार इत्यादि बहुतसे ऐसे शब्दोंका प्रयोग पाया जाता है जिनका हिन्दी आदि दूसरी भाषाओंके साथ सम्बंध है। संस्कृत ग्रंथमें संस्कृत वाक्योंके साथ इस प्रकारके शब्दोंका प्रयोग बहुत ही खटकता है और इनकी वजहसे यह सारा अध्याय बड़ा ही विलक्षण और बेढंगा मालूम होता है। नमूनेके तौरपर ऐसे कुछ वाक्य नीचे उद्धृत किये जाते हैं:—

१—"चाडालकलाकचमारमोचीडोहरयोगिकोलीकंदीनां गृहे जिमन इतर समाचारं करोति तस्य प्रायश्चित्त...मोकलाभिषेकाः विंशति...बीडा १००।"

२—"अष्टादशप्रकारजातिमध्ये सालिमालीतेलीतंबीसूत्रधार-खातीसोनार-ठठेराकुंभकारपरोथटछीपीनाईडोंववुरुडगणीमनी-यारचित्रकार इत्यादयःप्रकारा एतेषां गृहे भुंक्ते समाचारं करोति तस्य प्रायश्चित्तं उपवासा ३ एकभक्तानि ३ ....ताम्बूल बीडा ४००।

मालूम होता है कि ग्रंथकर्ताने यह सब कथन किसी ऐसे ही खिचड़ी ग्रंथसे उठाकर रक्खा है और उसे इसको शुद्ध संस्कृतका रूप देना नहीं आया। इससे पाठक ग्रंथकर्ताकी संस्कृतसम्बंधिनी योग्यताका भी बहुत कुछ अनुभव कर सकते हैं। इस तरह पर यह ग्रंथ इधर उधरके प्रकरणोंका एक बेढंगा संग्रह है। ग्रंथकर्ता यह सब संग्रह कर तो गया, परन्तु मालूम होता है कि बादको किसी घटनासे उसे इस बातका भय ज़रूर हुआ है कि कहीं मेरी यह सब पोल सर्वसाधारण पर खुल न जाय। और इसलिए उसने इस ग्रंथ पर, अपने अन्तिम वक्तव्यमें, यह आज्ञा चढ़ा दी है कि, 'यह संहिता (भट्टारककी गद्दीपर बैठनेवाले) आचार्यके सिवाय और किसीको भी न दी जाय। मिथ्यादृष्टि और मूढात्माको देनेसे लोप हो जायगा। आगेके लोग पक्षपाती होंगे। यह संहिता सम्यक्दृष्टि महासूरि (भट्टारक) के ही योग्य है, दूसरेके योग्य नहीं है।' यथाः—

संहितेयं तु कस्यापि न देया सूरिभिर्विना ॥ १५ ॥
मिथ्यात्विने च मूढाय दत्ता धर्मं विलुंपति।
पक्षपातयुताश्चाग्रे भविष्यंति जनाः खलु ॥ १६ ॥
एषा महामंत्रयुता सुप्रभावा च संहिता।
सम्यग्दृशो महासूरेर्योग्येयं नापरस्य च ॥ १७ ॥

पाठकगण! देखा, कैसी विलक्षणआज्ञा है! धर्मके लोप हो जानेका कैसा अद्भुत सिद्धान्त है! कैसी अनोखी भविष्यद्वाणी की गई है! और किस प्रकारसे ग्रंथकर्ताने अपने मिथ्यात्व, मूढता और पक्षपात पर परदा डालनेके लिए दूसरोंको मिथ्यादृष्टि, मूढ और पक्षपाती ठहरायाहै!! साम्प्रदायिक मोह और बेशरमीकी भी हद हो गई!!! परन्तु कुछ भी हो, इस आज्ञाका इतना परिणाम जरूर निकला है कि समाजमें इस संहिताका अधिक प्रचार नहीं हो सका। और यह अच्छा ही हुआ। अब जो लोग इस संहिताका प्रचार करना चाहते हैं, समझना चाहिए कि, वे ग्रंथकर्ताके उक्त समस्त कूट, जाल और अयुक्ताचरणके पोषक तथा अनुमोदक ही नहीं बल्कि भद्रबाहुश्रुतकेवलीकी योग्यता और उनके पवित्र नामको बट्टा लगानेवाले हैं। अगले लेखमें, विरुद्ध कथनोंका उल्लेख करते हुए, यह भी दिखलाया जायगा कि ग्रंथकर्ताने इस संहिताके द्वारा अपने किसी कुत्सित आशयको पूरा करनेके लिए लोगोंको मार्गभ्रष्ट (गुमराह) और श्रद्धानभ्रष्ट करनेका कैसा नीच प्रयत्न किया है।

१५-११-१६।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हिन्दी-जैनसाहित्यका इतिहास ।

अथवा

जैन लेखकों और कवियों द्वारा हिन्दी साहित्यकी सेवा* ।

सभापति महाशय और सभ्यवृन्द !

भारतवर्षको अपनी धार्मिक सहिष्णुताका अभिमान है। इस पुण्यभूमिमें आस्तिक, नास्तिक, वैदिक, अवैदिक, ईश्वरवादी, अनीश्वरवादी आदि सभी परस्परविरुद्ध विचार रखनेवाले एक दूसरेको कष्ट दिये विना फलते-फूलते और वृद्धि पाते रहे हैं। हजारों वर्षों तक यहाँ यह हाल रहा है कि एक ही कुटुम्बमें वैदिक, जैन, और बौद्ध धर्म एक साथ शान्तिपूर्वक पाले जाते रहे हैं। मतविभिन्नता या विचारभिन्नताके कारण यहाँके लोग किसीसे द्वेष या वैर नहीं करते थे, बल्कि दूसरोंके विचारोंको आदरकी दृष्टिसे देखते थे। यही कारण है जो यहाँ चार्वाक-दर्शनके प्रणेता 'महर्षि' के महत्त्वसूचक पदसे सत्कृत किये गये हैं और वेदविरोधी भगवान् ऋषभदेव तथा बुद्धदेव 'अवतार' माने गये हैं।

पर हमारी यह अभिमानयोग्य परमतसहिष्णुता पिछले समयमें न रही और जबसे यह कम होने लगी, तभीसे शायद भारतका अधःपतन होना शुरू हो गया। लोग मतभिन्नताके कारण एक दूसरेसे घृणा करने लगे और वह घृणा इतनी बढ़ गई कि धीरे धीरे यहाँ परमतसहिष्णुता और विचारौदार्यकी हत्या ही हो गई। 'हस्तिना पीड्यमानोऽपि न गच्छेज्जैनमन्दिरम्' जैसे वाक्य उसी समय गढ़े गये और धार्मिक द्वेषके बीज बो दिये गये।

इस असहिष्णुता या अनुदारताने देशकी बौद्धिक और राष्ट्रीय उन्नतिके मार्गमें खूब ही काँटे बिछाये। इससे हमारी मानसिक प्रगतिको लक़्बा मार गया और हमारे साहित्यकी बाढ़ अनेक छोटी बड़ी सीमाओंके भीतर अवरुद्ध हो गई। इसकी कृपासे ही हमारा बहुतसा साहित्य पड़ा पड़ा सड़ गल गया और बहुतसा नष्ट कर दिया गया। यद्यपि अब भी हमको इस बलाके पंजेसे छुट्टी नहीं मिली है—न्यूनाधिक रूपमें उसका व्यक्त अव्यक्त प्रभाव हमारे हृदयों पर अब भी बना हुआ है; तो भी सौभाग्यवश हम नये ज्ञानके प्रकाशमें आ पड़े हैं जिससे हमारी आँखें बहुत कुछ खुल गई हैं। हम धीरे धीरे अपने पुराने मार्गपर आने लगे हैं, विचारभिन्नताका आदर करने लगे हैं और अपने पराये सभी धर्मोंको उदार दृष्टिसे देखने लगे हैं।

आज हिन्दीसाहित्यसम्मेलनके इस प्लेटफार्म पर मुझे जो 'जैन लेखकों और कवियों द्वारा हिन्दी साहित्यकी सेवा' पर यह निबन्ध पढ़नेकी आज्ञा दी गई है सो मेरी समझमें इसी प्रकाशका ही परिणाम है। मुझे आशा है कि हमारी यह उदारता दिन पर दिन बढ़ती जायगी और कमसे कम हमारी साहित्यसम्बन्धी संस्थाओंसे तो धार्मिक पक्षपात सर्वथा ही हट जायगा।

प्रसंगवश ये थोड़ेसे शब्द कहकर अब मैं अपने विषयकी ओर आता हूँ।

---

* सप्तम हिन्दीसाहित्यसम्मेलन, जबलपुरमें पढ़े जानेके लिए जैनहितैषी-सम्पादक द्वारा लिखित।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१ जैनसाहित्यका महत्त्व।

हिन्दीका जैन साहित्य बहुत विशाल है और बहुत महत्त्वका है। भाषाविज्ञानकी दृष्टिसे उसमें कुछ ऐसी विशषतायें हैं जो जैनेतर साहित्यमें नहीं हैं।

१ हिन्दीकी उत्पत्ति और क्रमविकासके इतिहासमें इससे बहुत बड़ी सहायता मिलेगी। हिन्दीकी उत्पत्ति जिस प्राकृत या मागधीसे मानी जाती है, उसका सबसे अधिक परिचय जैन विद्वानोंको रहा है। अभीतक प्राकृत या मागधीका जितना साहित्य उपलब्ध हुआ है, उसका अधिकांश जैनोंका ही लिखा हुआ है। यदि यह कहा जाय कि प्राकृत और मागधी शुरूसे अबतक जैनोंकी ही सम्पत्ति रही है, तो कुछ अत्युक्ति न होगी। प्राकृतके बाद और हिन्दी-गुजराती बननेके पहले जो एक अपभ्रंश भाषा रह चुकी है उस पर भी जैनोंका विशेष अधिकार रहा है। इस भाषाके अभी अभी कई ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं, और वे सब जैन विद्वानोंके बनाये हुए हैं। प्राकृत और अपभ्रंशके इस अधिक परिचयके कारण, जैन विद्वानोंने जो हिन्दी रचना की है उसमें प्राकृत और अपभ्रंशकी प्रकृति सुस्पष्ट झलकती है; यहाँ तक कि १९ वीं और २० वीं शताब्दीके जैनग्रन्थोंकी हिन्दीमें भी औरोंकी अपेक्षा प्राकृत और अपभ्रंश शब्दोंका प्रयोग अधिक पाया जाता है। ऐसी दशामें स्पष्ट है कि हिन्दीकी उत्पत्ति और क्रमविकाशका ज्ञान प्राप्त करनेके लिए हिन्दीका जैनसाहिस्य बहुत उपयोगी होगा।

२ गुजराती साहित्यके विद्वानोंका खयाल है कि गुजराती भाषाका जो प्राचीनरूप है, वह अपभ्रंश प्राकृत है। हमारी समझमें प्राचीन हिन्दीका आदिस्वरूप भी, जैसा कि आगे दिखाया जायगा, प्राकृतके अपभ्रंशसे मिलता जुलता है। यह संभव है कि प्राचीन हिन्दीकी शरीररचनामें अन्य भाषाओंका भी थोड़ा बहुत हाथ रहा हो, पर उसकी मूल जननी तो अपभ्रंश ही है। ऐसा जान पड़ता है कि प्राकृतका जब अपभ्रंश होना आरंभ हुआ, और फिर उसमें भी विशेष परिवर्तन होने लगा, तब उसका एक रूप गुजरातीके साँचेमें ढलने लगा और एक हिन्दीके साँचेमें। यही कारण है जो हम १६ वीं शताब्दीसे जितने ही पहलेकी हिन्दी और गुजराती देखते हैं, दोनोंमें उतनी ही अधिक सदृशता दिखलाई देती है। यहाँ तक कि १३ वीं १४ वीं शताब्दीकी हिन्दी और गुजरातीमें एकताका भ्रम होने लगता है। उदयवन्त मुनिके 'गौतम-रासा'को जो वि० संवत् १४१२ में बना है विचारपूर्वक देखा जाय, तो मालूम हो कि उसकी भाषाकी गुजरातीके साथ जितनी सदृशता है, हिन्दीके साथ उससे कुछ कम नहीं है *। गुजराती और हिन्दीकी यह सदृशता कहीं कहीं और भी स्पष्टतासे दिखलाई देती है। कल्याणदेवमुनिके 'देवराज वच्छराज चउपई,' नामके ग्रंथसे—जो सं० १६४३ में बना है और जिसकी भाषा गुजरातीमिश्रित हिन्दी है—हमने कुछ पद्य आगे उद्धृत किये हैं, जिनमें बहुत कम शब्द ऐसे हैं जिन्हें प्राचीन हिन्दी जाननेवाला या प्राचीन गुजराती समझनेवाला न समझ सकता हो। गुजरातके पुस्तकालयोंमें ऐसे बीसों रासे मिलेंगे, जो गुजरातीकी अपेक्षा, हिन्दीके निकटसम्बन्धी हैं; पर वे गुजराती ही समझे जाते हैं। माल कविका 'पुरंदर-कुमर-चउपई' नामका जो ग्रन्थ है,

---

* गौतमरासाके पद्योंके कुछ नमूने आगेके पृष्ठोंमें दिये गये हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसे लोगोंने अभीतक गुजराती ही समझ रक्खा था;पर अब सुपण्डित मुनि जिनविजयजीने उसको अच्छी तरह पढ़ करके मुझको लिखा है कि वह निस्सन्देह हिन्दी ग्रन्थ है। गरज यह कि हिन्दी और गुजराती एक ही प्राकृतसे अपभ्रंश होकर बनी हैं; इस कारण उनके प्रारंभके—एक दो शताब्दियोंके—रूप मिलते-जुलते हुए हैं। हिन्दी भाषाका इतिहास विना इन मिलते—जुलते रूपोंका अध्ययन किये नहीं लिखा जा सकता, इस कारण इसके लिए हिन्दीका जैनसाहित्य खास तौरसे पढ़ा जाना चाहिए। इस कार्यमें यह बहुत उपयोगी सिद्ध होगा।

३ जिस तरह संस्कृत और प्राकृतके जैन-साहित्यने भारतके इतिहासकी रचनामें बहुत बड़ी सहायता दी है, उसी तरह हिन्दीका जैनसाहित्य भी अपने समयके इतिहास पर बहुत कुछ प्रकाश डालेगा। जैन विद्वानोंका इतिहासकी ओर सदासे ही अधिक ध्यान रहा है। प्रत्येक जैन लेखक अपनी रचनाके अन्तमें अपने समयके राजाओंका तथा गुरुपरम्पराका कछ न कुछ उल्लेख अवश्य करता है। यहाँ तक कि जिन लोगोंने ग्रन्थोंकी नकलें कराई हैं, और दान किया है उनका भी कुछ न कुछ इतिहास उन ग्रन्थोंके अन्तमें लिखा रहता है। जैन लेखकोंमें विशेष करके श्वेताम्बरोंमें पौराणिक चरित्रोंके सिवाय ऐतिहासिक पुरुषोंके चरित्र लिखनेकी भी पद्धति रही है। खोज करनेसे भोज-प्रबन्ध, कुमारपाल-चरित्र, आदिके समान और भी अनेक ग्रन्थोंके मिलनेकी संभावना है। 'मूता नेणसीकी ख्यात' जैसे ऐतिहासिक ग्रन्थ भी जैनोंके द्वारा लिखे गये हैं जो बहुतसी बातोंमें अपनी सानी नहीं रखते। श्वेताम्बर यतियोंके पुस्तकालयोंमें इतिहासकी बहुत सामग्री है और वह हिन्दी या मारवाड़ीमें ही है। कर्नल टाडको अपना ग्रन्थ 'राजस्थान' लिखनेमें जिनसे बड़ी भारी सहायता मिली थी, वे ज्ञानचन्द्रजी यति एक जैन साधु ही थे। कविवर बनारसीदासजीका आत्मचरित अपने समयकी अनेक ऐतिहासिक बातोंसे भरा हुआ है। मुसलमानी राज्यकी अंधाधुंधीका उसमें जीता जागता चित्र है। इस तरह इतिहासकी दृष्टिसे भी हिन्दीका जैनसाहित्य महत्त्वकी वस्तु है।

४ अभी तक हिन्दी साहित्यकी जो खोज हुई है उसमें पद्यग्रन्थोंकी ही प्रधानता है। गद्य ग्रन्थ बहुत ही थोड़े हैं। परन्तु जैनसाहित्यमें गद्य ग्रन्थ भी बहुतसे उपलब्ध हैं। आगे ग्रन्थ-कर्ताओंकी सूचीसे मालूम होगा कि उन्नीसवीं शताब्दीके बने हुए पचासों गद्यग्रन्थ जैनसाहित्यमें हैं। अठारहवीं शताब्दीके भी पाँच सात गद्यग्रन्थ हैं। सत्रहवीं शताब्दीमें पं० हेमराजजीने पंचास्तिकाय और प्रवचनसारकी वचनिकायें लिखी हैं। समयसारकी पांडे रायमल्लजीकृत बालावबोधटीका इनसे भी पहलेकी बनी हुई है। आश्चर्य नहीं जो वह सोलहवीं शताब्दी या उससे भी पहलेकी गद्य-रचना हो। पर्वत धर्मार्थीकी बनाई हुई 'समाधि-तंत्र' नामक ग्रन्थकी एक वचनिका है जो सोलहवीं शताब्दीके बादकी नहीं मालूम होती। गरज यह कि जैनसाहित्यमें गद्यग्रन्थ बहुत हैं, इसलिए गद्यकी भाषाका विकासक्रम समझनेके लिए भी यह साहित्य बहुत उपयोगी है।

२ जैनसाहित्यके अप्रकट रहनेके कारण।

१ ज्यों ही देशमें छापेका प्रचार हुआ, त्यों ही जैनसमाजको भय हुआ कि कहीं हमारे ग्रन्थ भी न छपने लगें। लोग सावधान हो गये और जीजानसे इस बातकी कोशिश करने लगे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कि जैनग्रन्थ छपने न पावें। इधर कुछ लोगों-पर नया प्रकाश पड़ा और उन्होंने जैनग्रन्थोंके छपानेके लिए प्रयत्न करना शुरू किया। लगातार २० वर्ष तक दोनों दलोंमें अनवरत युद्ध चला और अभी वर्ष ही दो वर्ष हुए हैं, जब इसकी कुछ कुछ शान्ति हुई है। फिर भी जैन-समाजमें ऐसे मनुष्योंकी कमी अब भी नहीं है जिन्हें पक्का विश्वास है कि ग्रन्थ छपानेवाले नरकमें जायँगे और वहाँ उन्हें असह्य यातनायें सहनी पड़ेंगी! और समाजोंमें भी थोड़ा थोड़ा छापेका विरोध शुरू शुरूमें हुआ था, पर जैनसमाज सरीखा विरोध शायद ही कहीं हुआ हो। इसने इस विषयमें सबको नीचा दिखला दिया। अभी तीन ही चार वर्ष हुए हैं जब 'जैन-रत्नमाला' और 'जैनपताका' नामके मासिक पत्र छापेका विरोध करनेके लिए ही निकलते थे और ग्रन्थ छपानेवालोंको पानी पी पीकर कोसते थे। ऐसी दशामें जब कि स्वयं जैनोंको ही हिन्दीका जैनसाहित्य सुगमतासे मिलनेका उपाय नहीं था, तब सर्वसाधारणके निकट तो वह प्रकट ही कैसे हो सकता था!

२ एक तो जैनसमाज इतना अनुदार है कि वह अपने ग्रन्थ दूसरोंके हाथमें देनेसे स्वयं हिचकता है और फिर जैनधर्मके प्रति सर्वसाधारण-के भाव भी कुछ अच्छे नहीं हैं। नास्तिक वेद-विरोधी आदि समझकर वे जैनसाहित्यके प्रति अरुचि या विरक्ति भी रखते हैं। शायद उन्हें यह भी मालूम नहीं है कि हिन्दीमें जैनधर्मका साहित्य भी है और वह कुछ महत्त्व रखता है। ऐसी दशामें यदि जैनसाहित्य अप्रकट रहा और लोग उससे अनभिज्ञ रहे, तो कुछ आश्चर्य नहीं है।

३ हिन्दीका जैनसाहित्य दो भागोंमें विभक्त है एक दिगम्बर और दूसरा श्वेताम्बर। दिगम्बर सम्प्रदायकी प्रधान भाषा हिन्दी है, और श्वेताम्बर सम्प्रदायकी गुजराती। श्वेताम्बरोंकी बस्ती यद्यपि राजपूताना, युक्तप्रान्त और पंजाबमें भी कम नहीं है; परन्तु उक्त प्रान्तोंमें शिक्षाप्राप्त जैनोंकी कमीसे और गुजरातमें शिक्षित जैनोंकी अधिकतासे इनकी धार्मिक चर्चामें गुजराती भाषाका प्राधान्य हो रहा है। श्वेताम्बर सम्प्रदायके साधुओंमें भी गुजराती जाननेवालोंकी ही संख्या अधिक है, इसलिए उनके द्वारा भी सर्वत्र गुजरातीकी ही तूती बोलती है। ऐसी दशामें यदि हिन्दीका श्वेताम्बरसाहित्य पड़ा रहे, उसकी कोई ढूँढ़ खोज न करे, तो क्या आश्चर्य है। जहाँ तक हम जानते हैं, श्वेताम्बर सम्प्रदायके बहुत ही कम लोगोंको यह मालूम है कि हिन्दीमें भी श्वेताम्बर साहित्य है। इस तरह हिन्दी-भाषाभाषी श्वेताम्बरोंकी उपेक्षा, अनभिज्ञता और गुजरातीकी प्रधानताके कारण भी हिन्दीके जैनसाहित्यका एक बड़ा भाग अप्रकट हो रहा है।

४ जैनसमाजके विद्वानोंकी अरुचि या उपेक्षा-दृष्टि भी हिन्दी जैनसाहित्यके अप्रकट रहनेमें कारण है। उच्च श्रेणीकी अँगरेजी शिक्षा पाये हुए लोगोंकी तो इस ओर रुचि ही नहीं है। उन्हें तो इस बातका विश्वास ही नहीं है कि हिन्दीमें भी उनके सोचने और विचारनेकी कोई चीज मिल सकती है। अभी तक शायद एक भी हिन्दीके जैनग्रन्थको यह सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है कि उसका सम्पादन या संशोधन किसी जैन ग्रेज्युएटने किया हो। शेष रहे संस्कृतज्ञ सज्जन, सो उनकी दृष्टिमें बेचारी हिन्दीकी—भाखाकी—औक़ात ही क्या है? वे अपनी संस्कृतकी धुनमें ही मस्त रहते हैं। हिन्दी लिखना भी उनमेंसे बहुत कम सज्जन जानते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३ खोजकी जरूरत।

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं श्वेताम्बरोंका हिन्दी साहित्य अभीतक प्रकाशित ही नहीं हुआ है। पर हमें विश्वास है कि श्वेताम्बर सम्प्रदायका भी बहुतसा साहित्य तलाश करनेसे मिल सकता है । अभी थोड़े ही दिन पहले हमने जोधपुरके प्रसिद्ध इतिहासज्ञ मुंशी देवीप्रसादजीको पत्र लिखकर हिन्दीके जैन साहित्यके विषयमें कुछ पूछताछ की थी। उसके उत्तरमें उन्होंने लिखा था कि "ओसवालोंके बहुतसे ग्रन्थ यहाँ ढूँढ़नेसे मिल सकते हैं। मैंने उनकी कविता संग्रह की है। आप छापें, तो मैं ग्रन्थाकारमें तैयार करा कर भेजूँ। हर एक कविकी कुछ कुछ जीवनी भी है।"

१ राजपूताना और मालवेके यतियोंके पुस्तकालयोंमें हिन्दीके प्राचीनग्रन्थोंके मिलनेकी आशा है। अभी हमने इन्दौरके यतिवर्य श्रीयुत माणिकचन्दजीके सेवामें एक पत्र इस विषयमें लिखा था कि उन्होंने अपनी 'जगरूप-जति-लायब्रेरी' के १०० से अधिक जैन ग्रन्थोंकी सूची तैयार करके भेज दी जिनमें उनके कथनानुसार हिन्दी या हिन्दीमिश्रित गुजराती ग्रन्थ ही अधिक हैं और उनमेंसे जिन चार ग्रन्थोंके देखनेकी हमने इच्छा प्रकट की, उन्हें भी भेज दिया। इस तरह और और यतियोंके पुस्तकालयोंमें भी सैकड़ों ग्रन्थ होंगे।

२ पाटण, जैसलमेर, ईडर, जयपुर आदिके प्राचीन पुस्तकभण्डारोंमें हिन्दी ग्रन्थोंका अन्वेषण खास तौरसे होना चाहिए। अभीतक इन भण्डारोंका अन्वेषण संस्कृतके पण्डितोंने ही किया है, जिनकी दृष्टिमें भाषाका कोई महत्त्व नहीं है। यह भी संभव है कि उक्त भण्डारोंके प्राचीन हिन्दी ग्रन्थ प्राकृत समझ लिये गये हों। अभी मुनि महोदय जिनविजयजीको पाटणके भण्डारमें मालकविके 'भोजप्रबन्ध' और 'पुरन्दर-कुमर-चउपई' नामके दो हिन्दी ग्रन्थ मिले हैं।

३ इस निबन्धमें आगे हमने जिन ग्रन्थोंका उल्लेख किया है, उनका बहुत बड़ा भाग आगरे और जयपुरके आस-पासका बना हुआ है । बुन्देलखंड आदि प्रान्तोंमें भी बहुतसे हिन्दी जैनग्रंथ मिलनेकी संभावना है। जयपुरमें कोई दोसौ तीनसौ वर्षोंसे ऐसा प्रबन्ध है कि यहाँसे ग्रन्थ लिखा लिखाकर दूर दूरके लोग ले जाते हैं अथवा लिखकर मँगवा लेते हैं। यही कारण है जो सारे दिगम्बर सम्प्रदायमें यहींके और यहाँसे निकट सम्बन्ध रखनेवाले आगरेके बने हुए ही हिन्दी-ग्रन्थोंका फैलाव हो गया है। अन्यत्र जो ग्रन्थ बने होंगे, वे प्रचारकी उक्त सुविधा न होनेके कारण वहीं पड़े रहे होंगे। यह सच है कि आगरे और जयपुरमें विद्वानोंका समूह अधिक रहा है, इतना और स्थानोंमें नहीं रहा है, तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि अन्यत्र विद्वान् थे ही नहीं और उन्होंने ग्रंथरचना सर्वथा की ही नहीं। अतः अन्यत्र खोज होनी चाहिए।

४ जहाँ जहाँ दिगम्बर सम्प्रदायके भट्टारकोंकी गद्दियाँ हैं वहाँ वहाँके सरस्वतीमन्दिरोंमें भी अनेक हिन्दीके ग्रन्थोंके प्राप्त होनेकी आशा है। हमारा अनुमान है कि भट्टारकोंके बनाये हुए हिन्दीग्रन्थ बहुत होने चाहिए, परन्तु हमारे इस निबन्धमें आप देखेंगे कि चार ही छह भट्टारकोंके ग्रन्थोंका उल्लेख है । जयपुरमें तेरह पंथका बहुत जोर रहा है, इसी कारण उसके प्रतिपक्षी भट्टारकोंके ग्रन्थोंका वहाँसे अधिक प्रचार नहीं हो सका है। भट्टारकोंका साहित्य उन्हींके भंडारोंमें पड़ा होगा।

५ दक्षिण और गुजरातमें भी खोज करनेसे हिन्दीग्रन्थ मिलेंगे। गुजराती और मराठीमें दिग-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

म्बरी साहित्य प्रायः बिल्कुल नहीं है, इस कारण इन प्रान्तोंके दिगम्बरियोंका काम हिन्दीग्रन्थोंसे ही चलता रहा है। अतएव यहाँके भण्डारोंमें भी हिन्दीके दिगम्बर ग्रन्थ मिलेंगे। दो तीन वर्ष पहले हमने बार्सी (शोलापुर) से दो ऐसे हिन्दी ग्रन्थ मँगाकर देखे थे, जो इस ओर कहीं भी नहीं मिलते हैं।

४ अपूर्ण खोज।

मेरा यह निबन्ध पूरी खोजसे तैयार नहीं हो सका है। जयपुरमें बाबा दुलीचन्दजीका हस्तलिखित भाषाग्रन्थोंका एक अच्छा पुस्तकालय है, उसकी सूचीसे, बाबू ज्ञानचन्द्रजी लाहौरवालोंकी ग्रन्थनाममालासे, छपे हुए ग्रन्थोंसे, पूज्य पं० पन्नालालजी द्वारा बनीहुई जयपुरके कुछ भण्डारोंकी सूचीसे और बम्बईके तेरहपंथी मन्दिरके पुस्तकालयके ग्रन्थोंसे मैंने यह निबन्ध तैयार किया है। जिन लेखकोंका समयादि नहीं मिला है, उनको प्रायः छोड़ दिया है। यदि लेखकके सामने सबके सब ग्रन्थ होते, तो वह इस निबन्धको और भी अच्छी तरहसे लिख सकता।

लेखकको विश्वास है कि खोज करनेसे हिन्दीके प्राचीन जैनग्रन्थ बहुत मिलेगी और उनसे यह निश्चय करनेमें सहायता मिलेंगे कि हिन्दीका लिखना कबसे शुरू हुआ।

'जैन लेखकों और कवियों द्वारा हिन्दी साहित्यकी सेवा' यह विषय ऐसा है कि इसमें सन् संवत् न दिया जाता तो भी काम चल सकता था; परन्तु जब निबन्ध लिखना शुरू किया गया, तब यह सोचा गया कि इसके साथ साथ यदि लेखकोंका इतिहास भी दे दिया जाय, तो एक और काम हो जायगा और समय भी अधिक न लगेगा। अतः इसमें कवियोंका थोड़ा थोड़ा परिचय भी शामिल कर दिया गया है। ऐसा करनेसे निबन्ध बहुत बढ़ गया है और इस कारण मुझे भय है कि इसके पढ़नेके लिए समय मिलेगा या नहीं; तो भी यह निश्चय है कि मेरा परिश्रम व्यर्थ न जायगा। हिन्दीके सेवक इससे कुछ न कुछ लाभ अवश्य उठायँगे।

५ उपलब्ध जैनसाहित्यके विषयमें विचार।

१ उपलब्ध जैनसाहित्य दो भागोंमें विभक्त हो सकता है—श्वेताम्बर और दिगम्बर। श्वेताम्बर सम्प्रदायके साहित्यमें कथाग्रन्थ ही अधिक हैं, तात्त्विक या सैद्धान्तिक ग्रन्थ प्रायः नहींके बराबर हैं, पर दिगम्बर साहित्यमें जितने कथाग्रन्थ या चरित्रग्रन्थ हैं लगभग उतने ही तात्त्विक और सैद्धान्तिक ग्रन्थ हैं। गोम्मटसार, राजवार्तिक, सर्वार्थसिद्धि, आत्मख्याति, भगवती आराधना, प्रवचनसार, समयसार, पंचास्तिकाय जैसे महत्वपूर्ण ग्रन्थोंकी वचनिकायें दिगम्बरसाहित्यमें मौजूद हैं। किसी किसी ग्रन्थके तो दो दो चार चार गद्यपद्यानुवाद मिलते हैं। देवागम, परीक्षामुख, न्यायदीपिका, आप्तमीमांसा आदि न्यायके ग्रन्थों तकके हिन्दी अनुवाद कर डाले गये हैं। ऐसा कहना चाहिए कि दिगम्बरियोंके संस्कृत और प्राकृत साहित्यमें जिन जिन विषयोंके ग्रन्थ मिलते हैं, प्रायः उन सभी विषयों पर हिन्दीमें कुछ न कुछ लिखा जा चुका है। हिन्दीके लिए यह बड़े गौरवकी बात है। यदि कोई चाहे तो वह केवल हिन्दी भाषाके द्वारा दिगम्बर जैनधर्मका ज्ञाता हो सकता है। इसका फल भी स्पष्ट हो रहा है। श्वेताम्बर सम्प्रदायमें जो लोग संस्कृत और प्राकृत नहीं जानते हैं, उनमें धार्मिक ज्ञानका प्रायः अभाव देखा जाता है—प्रायः लोग मुनिमहाराजोंके ही भरोसे रहते हैं; पर दिगम्बर सम्प्रदायमें यह बात नहीं है। यहाँ जैनधर्मकी जानकारी रखनेवाले जगह जगह मौजूद

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं, गोम्मटसार आदिकी गंभीर चर्चा करनेवाले सैकड़ों ऐसे भाई हैं, जो संस्कृतका अक्षर भी नहीं जानते हैं। गाँव गाँवमें शास्त्रसभायें होती हैं और लोग भाषा ग्रन्थोंका स्वाध्याय करते हुए नजर आते हैं।

२ हिन्दीके जैनग्रन्थोंका प्रचार केवल हिन्दी-भाषाभाषी प्रान्तोंमें ही नहीं है; गुजरात और दक्षिणमें भी है। दक्षिण और गुजरातके जैनोंके द्वारा हिन्दीके कई बड़े बड़े ग्रन्थ छपकर भी प्रकाशित हुए हैं। सुदूर कर्नाटक तकमें—जहाँ हिन्दी बहुत कम समझी जाती है—बहुतसे हिन्दी ग्रन्थ जाते हैं और पढ़े जाते हैं। एक तरहसे हिन्दी दिगम्बर सम्प्रदायकी सर्वसामान्य भाषा बन गई है। आपको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि 'जैनमित्र' आदि हिन्दी पत्रोंके एक चौथाईसे भी अधिक ग्राहक गुजरात और दक्षिणमें हैं। इस तरह दिगम्बर सम्प्रदायके हिन्दी साहित्यके द्वारा हिन्दी भाषाका दूसरे प्रान्तोंमें भी प्रचार हो रहा है।

३ जैनधर्मका एक सम्प्रदाय और है जिसे 'स्थानकवासी' या 'ढूँढ़िया' कहते हैं। हम समझते थे कि इस सम्प्रदायका भी हिन्दी साहित्य होगा। क्योंकि इस सम्प्रदायके अनुयायी ४-५ लाख समझे जाते हैं और वे राजपूताना तथा पंजाबमें अधिक हैं, परन्तु तलाश करनेसे मालूम हुआ कि इस सम्प्रदायमें हिन्दीके ग्रन्थ प्रायः नहींके बराबर हैं। स्थानकवासी सम्प्रदायके साधु श्रीयुत आत्मारामजी उपाध्यायसे इस विषयमें पूछताछ की गई तो मालूम हुआ कि स्थानकवासियोंमें पं० हरजसरायजी आदि दो तीन ही कवि हुए हैं जिनके चार पाँच ग्रन्थ मिलते हैं और थोड़ी बहुत पुस्तकें अभी अभी लिखी गई हैं। इस सम्प्रदाय पर भी गुजराती भाषाका आधिपत्य हो रहा है। संभव है कि खोज करनेसे इस सम्प्रदायके भी दश पाँच हिन्दी ग्रन्थ और मिल जावें।

४ श्वेताम्बरी और दिगम्बरी साहित्यमें एक उल्लेख योग्य बात यह नजर आती है कि सारे श्वेताम्बरसाहित्यमें दो चार ही ग्रन्थ ऐसे होंगे जिनके कर्ता गृहस्थ या श्रावक हों, इसके विरुद्ध दिगम्बर साहित्यमें दश पाँच ही हिन्दी ग्रन्थ ऐसे मिलते हैं जिनके कर्त्ता भट्टारक या साधु हों। प्रायः सारा ही दिगम्बर साहित्य गृहस्थों या श्रावकोंका रचा हुआ है। दिगम्बर सम्प्रदायमें साधु-संघका अभाव कोई ४००–५०० वर्षोंसे हो रहा है। यदि इस सम्प्रदायके अनुयायी श्वेताम्बरोंके समान केवल साधुओंका ही मुँह ताकते रहते, तो आज इस सम्प्रदायकी दुर्गति हो जाती। इस सम्प्रदायके गृहस्थोंने ही गुरुओंका भार अपने कन्धोंपर ले लिया और अपने धर्मको बचा लिया। इन्होंने गत दो सौ तीन सौ वर्षोंमें हिन्दी साहित्यको अपनी रचनाओंसे भर दिया।

५ इन दोनों सम्प्रदायोंके साहित्यमें एक भेद और भी है। श्वेताम्बर साहित्यमें अनुवादित ग्रन्थ बहुत ही कम हैं, प्रायः स्वतंत्र ही अधिक हैं, और दिगम्बर साहित्यमें स्वतंत्र ग्रन्थ बहुत कम हैं, अनुवादित ही अधिक हैं। इसका कारण यह मालूम होता है कि परम्परागत संस्कारके अनुसार गृहस्थ या श्रावक अपनेको ग्रन्थरचनाका अनधिकारी समझता है। उसे भय रहता है कि कहीं मुझसे कुछ अन्यथा न कहा जाय। इस लिए दिगम्बर साहित्यकी रचना करनेवाले गृहस्थ लेखक और कवियोंको स्वतंत्र ग्रन्थ रचनेका साहस बहुत ही कम हुआ है—सबने पूर्वरचित संस्कृत ग्रन्थोंके ही अनुवाद किये हैं। कई अनुवादक इतने अच्छे विद्वान् हुए हैं कि यदि वे चाहते, तो उनके लिए दो दो चार चार स्वतंत्र ग्रन्थोंकी रचना करना कोई बड़ी बात नहीं थी। पर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उन्होंने ऐसा नहीं किया। जब हम पं० जयचन्द्रजीके अनुवाद किये हुए ग्रन्थोंकी सूचीमें 'भक्तामरचरित्र' का नाम देखते हैं, तब इनकी 'प्राचीन-श्रद्धा' पर आश्चर्य होता है। संस्कृतमें भट्टारकोंके बनाये हुए ऐसे पचासों ग्रन्थ हैं जो रचनाकी दृष्टिसे कौड़ी कामके नहीं हैं, तो भी उनके हिन्दी अनुवाद हो गये हैं और अनुवाद करनेवालोंमें बहुतसे ऐसे हैं जो यदि चाहते तो मूलसे भी कई गुणी अच्छी रचना कर सकते थे–वे स्वयं ही मूलसे अच्छी संस्कृत लिखनेकी योग्यता रखते थे।

६ हिन्दीके जैनसाहित्यको हम चार भागोंमें विभक्त करते हैं,–एक भागमें तो तात्त्विक ग्रन्थ हैं, दूसरेमें पुराण चरित्र कथादि हैं, तीसरेमें पूजा पाठ हैं और चौथेमें पदभजन विनती आदि हैं। इनमेंसे पहले तीन प्रकारके ग्रन्थोंका परिमाण लगभग बराबर बराबर होगा। पहले दो विषय ऐसे हैं कि उन पर चाहे जितना लिखा जा सकता है, पर यह बात लोगोंकी समझमें कम आयगी कि पूजापाठके ग्रन्थ भी उक्त दोनों विषयोंके ही बराबर हैं। सचमुच ही इस विषयमें जैनोंने 'अति' कर डाली है। हमने अपने इस निबन्धमें जो जुदे जुदे कवियोंके ग्रन्थ बतलाये हैं, उनमें पूजापाठके ग्रन्थ प्रायः छोड़ दिये हैं और जिन कवियोंने केवल पूजापाठोंकी ही रचना की है, उनका तो हमने उल्लेख भी नहीं किया है। एक ही एक प्रकारके पूजा पाठ दश दश बीस बीस कवियोंने बनानेकी कृपा की है। चौबीसी पूजापाठ तो कमसे कम २०–२५ कवियोंके बनाये हुए होंगे। इनका ताँता अबतक भी लगा जा रहा है; लोगोंको अब भी संतोष नहीं है। केवलारी (सिवनी) के एक सज्जनने अभी हाल ही एक पूजापाठ रचकर प्रकाशित किया है। कुचामनके पं० जिनेश्वरदासजीने भी सुनते हैं कि एक चौबीसी पूजापाठ बना डाला है। मजा यह है कि इन सब रचनाओंमें विशेषता कुछ नहीं। सबमें एक ही बात। एक दूसरेका अनुकरण। इनका बनाना भी चूरनके लटकोंसे ज्यादा कठिन नहीं है। जिसके जीमें आता है वही एक पूजा बना डालता है। आपको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि संस्कृत और प्राकृतमें पूजापाठके ग्रन्थ बहुत ही कम उपलब्ध हैं, और जो हैं वे उच्च श्रेणीके हैं। पर हिन्दीवालोंने इसके लिए मूलग्रन्थोंका सहारा लेनेकी जरूरत नहीं समझी। बस, इसी एक विषयके ग्रन्थोंकी हिन्दी-जैनकवियोंने सबसे अधिक स्वतंत्र रचना की है! पिछले दिनोंमें जैनसम्प्रदायमें पूजा प्रतिष्ठाओंको जो विशेष प्रधानता दी गई है, उसीका यह परिणाम है। इस समयकी दृष्टिसे जैनोंका सबसे बड़ा काम पूजा-प्रतिष्ठा करना-कराना है। पद-भजन-स्तवनादि सम्बन्धी चौथे प्रकारके साहित्य पहले तीन प्रकारका साहित्यों जितना तो नहीं है, तो भी कम नहीं है। परिश्रम करनेसे कई हजार जैनपदोंका संग्रह हो सकता है। भूधर, द्यानत, दौलत, भागचन्द, बनारसी आदिके पद अच्छे समझे जाते हैं। इनका प्रचार भी खूब है। इस साहित्यसे और पूजासाहित्यसे जैनधर्ममें 'भक्तिरस' की बहुत पुष्टि हुई है। किसी किसी कविने तो इस रसके प्रवाहमें बहकर मानो इस बातको भुला ही दिया है कि 'जैनधर्म ईश्वरके कर्तापनेको स्वीकार नहीं करता, अतः उसमें भक्तिकी सीमा बहुत ही मर्यादित है।' इस विषयमें जान पड़ता है जैनधर्म पर वैष्णवधर्मके भक्तिमार्गका ही बहुत कुछ प्रभाव पड़ा है। कहीं कहीं यह प्रभाव बहुत ही स्पष्ट हो गया है। एक कवि कहता है–"नाथ मोहि जैसे बने तैसे तारो; मोरी करनी कछु न विचारो।" 'करनी' को ही ईश्वर माननेवाले

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैन कविके इन वचनोंमे देखिए ईश्वरके कर्तृभावका कितना गहरा प्रभाव है ।

७ हिन्दीके जैनसाहित्यकी प्रकृति शान्तरस है । इसके प्रत्येक ग्रन्थमें इसी रसकी प्रधानता है । शृंगारादि रसोंके ग्रंन्थोंका इसमें प्रायः अभाव है । इतने बड़े साहित्यमें एक भी अलंकार या नायिकाभेद आदिका ग्रन्थ देखनेमें नहीं आया । जयपुरके एक पुस्तकभण्डारकी सूचीमें दीवान लालमणिके 'रसप्रकाश अलंकार' नामके ग्रन्थका उल्लेख है; पर हमने उसे देखा नहीं । सुनते हैं हनुमच्चरित्र और शान्तिनाथचरित्रके कर्त्ता सेवाराम राजपूतने भी एक 'रसग्रन्थ' बनाया था; पर वह अप्राप्य है । कविवर बनारसीदासजीकी भी कुछ शृंगाररसकी रचना थी, पर उन्होंने उसे यमुनामें बहा दिया था !

संस्कृत और प्राकृतमें जैनोंके बनाये हुए शृंगारादिके ग्रन्थ बहुत मिलते हैं । उस समयके जैनविद्वानोंको तो इस विषयका परहेज नहीं था । यहाँ तक कि बड़े बड़े मुनियोंके बनाये हुए भी काव्यग्रन्थ हैं जो शृंगाररससे लबालब भरे हुए हैं । तब यह एक विचारणीय बात है कि हिन्दीके लेखकोंने इस ओर क्यों ध्यान नहीं दिया । इसका कारण यही जान पड़ता है कि जिस समय जैनोंने हिन्दीके ग्रन्थ लिखे हैं उस समय उन्हें जैनधर्मका ज्ञान फैलानेकी, और जैनधर्मकी रक्षा करनेकी ही धुन विशेष थी । उनका ध्येय धर्म था, साहित्य नहीं । इसी कारण उन्होंने इस ओर कोई खास प्रयत्न नहीं किया । पर उन्हें इस विषयसे कोई परहेज नहीं था । यही कारण है जो उन्होंने स्त्रियोंके नखशिखवर्णन और विविध शृंगारचेष्टाओंसे भरे हुए आदिपुराण आदिके अनुवाद लिखनेमें संकोच नहीं किया है । हाँ खालिस शृंगार और अलंकारादिके निरूपण करनेवाले ग्रन्थ उन्होंने नहीं लिखे ।

९ यह हमें मानना पड़ेगा कि जैन कवियोंमें उच्च श्रेणीके कवि बहुत ही थोड़े हुए हैं । बनारसीदास सर्वश्रेष्ठ जैनकवि हैं । रूपचन्द, भूधरदास, भगवतीदास, आनन्दघन, उच्चश्रेणीमें गिने जा सकते हैं । दीपचंद, द्यानतराय, माल, यशोविजय, वृन्दावन, बुलाकीदास, दौलतराम, बुधजन आदि दूसरी श्रेणीके कवि हैं । इनकी संख्या भी कम है । तीसरे दर्जेके कवि अगणित हैं । जो उच्चश्रेणीके कवि हुए हैं, उन्होंने प्रायः ऐसे विषयोंपर रचना की है जिनको साधारण बुद्धिके लोग समझ नहीं सकते हैं । चरित या कथाग्रन्थोंकी यदि ये लोग रचना करते तो बहुत लाभ होता । चरितोंमें एक पार्श्वपुराण ही ऐसा है जो एक उच्चश्रेणीके कविके द्वारा रचा गया है; फिर भी उसमें नरक, स्वर्ग, त्रैलोक्य, कर्मप्रकृति, गुणस्थानादिका विशेष वर्णन किये बना कविसे न रहा गया और इसलिए वह भी एक प्रकारसे तात्त्विक ग्रन्थ बन गया है । उसमें कथाभाग बहुत कम है । इस तरह साधारणोपयोगी प्रभावशाली चरितग्रन्थोंका जैनसाहित्यमें प्रायः अभाव है और जैनसमाज तुलसीकृत रामायण जैसे उत्कृष्ट ग्रन्थोंके आनन्दसे वंचित है । शीलकथा, दर्शनकथा, और खुशालचन्दजीके पद्मपुराण आदिकी रद्दी निःसत्व कविताको पढ़ते पढ़ते जैनसमाज यह भूल ही गया है कि अच्छी कविता कैसी होती है ।

१० गद्यलेखकोंमें तथा टीकाकारोंमें टोडरमल्ल सर्वश्रेष्ठ हैं । जयचन्द, हेमराज, आत्माराम, नेणसी मूता अच्छे लेखक हुए हैं । सदासुख, भागचन्द, दौलतराम, जगजीवन, देवीदास आदि मध्यम श्रेणीके लेखक हैं । बाकी सब साधारण हैं । गद्यमें श्वेताम्बरोंका साहित्य प्रायः है ही नहीं, मुनि आत्मारामजीके अवश्य ही कुछ ग्रन्थ हैं जो गणनीय हैं । शेष श्वेताम्बरी साहि-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्य पद्यमें है। श्वेताम्बरी साहित्य जितना उपलब्ध है, उसमें तात्त्विक चर्चा बहुत ही कम है, केवल कथाग्रन्थ हैं।

११ आधुनिक समयके जैनलेखकोंने सर्वोपयोगी और सार्वजनिक पुस्तकोंका लिखना भी शुरू कर दिया है। उन्होंने अपने प्राचीन क्षेत्रसे—केवल धार्मिक साहित्यसे—बाहर भी कदम बढ़ाया है। अभी ५—७ वर्षोंसे इस विषयमें खासी उन्नति हुई है। उच्चश्रेणीकी अँगरेजी शिक्षा पाये हुए युवकोंका ध्यान इस ओर विशेष आकर्षित हुआ है। ऐसे सज्जनोंका परिचय इस निबन्धके अन्तमें दिया गया है। आशा है कि थोड़े ही समयमें जैनसमाजमें हिन्दी लेखकोंकी एक काफी संख्या हो जायगी और उनके द्वारा हिन्दीकी अच्छी सेवा होगी।

६ सामयिक साहित्य।

जैनसमाजके कई हिन्दी पत्र भी निकलते हैं। इनकी संख्या खासी है। अधिकांश हिन्दी पत्र दिगम्बर सम्प्रदायके हैं। साप्ताहिकोंमें जैनगजट और जैनमित्र हैं। जैनमित्रकी दशा अच्छी है, पर जैनगजट तो पत्रोंका कलङ्क है। मासिकोंमें जैनहितैषी, जातिप्रबोधक, जैनप्रभात, दिगम्बर जैन, और सत्यवादी हैं। इनमेंसे पिछला पुराने विचारवालोंका मुखपत्र है। ‘दिगम्बर जैन’ केवल यहाँ वहाँके समाचारों और लेखोंको आँख बन्द करके संग्रह कर देनेवाला है। उसके कोई खास खयाल नहीं हैं। उसमे आधी गुजराती भी रहती है। ‘जातिप्रबोधक’ केवल सामाजिक सुधारका काम करता है। इसके सम्पादक एक ग्रेज्युएट हैं। ‘जैनप्रभात’ एक सेठोंकी सभाका पत्र है, इस लिए उसे बहुत कुछ दबकर लिखना पड़ता है। ‘स्थानकवासी कान्फरेंस प्रकाश’ स्थानकवासी सम्प्रदायका साप्ताहिक पत्र है। यह गुजराती और हिन्दी दो भाषाओंमें निकलता है। श्वेताम्बर सम्प्रदायके साप्ताहिक ‘जैनशासन’में भी हिन्दीके कुछ लेख रहते हैं। ‘जैनसंसार’ और ‘जैन मुनि’ क्रमसे श्वेताम्बर और स्थानकवासी सम्प्रदायके नवजात पत्र हैं।

इनके पहले हिन्दीके और भी कई पत्र निकलकर बन्द हो चुके हैं। जहाँतक हम जानते हैं, सबसे पहला हिन्दी जैनपत्र ‘जैनप्रभाकर’ था, जो अजमेरसे निकलता था। यह कई वर्ष तक चलता रहा। यह कोई २०—२२ वर्ष पहलेकी बात है। लाहौरकी ‘जैनपत्रिका’ ८—१० वर्ष तक चलकर बन्द हो गई। जैनतत्त्वप्रकाशक, जैनपताका, जैननारीहितकारी, जैनसिद्धान्तभास्कर कोई दो दो वर्ष चलकर बन्द हो गये। इनमें ‘सिद्धान्तभास्कर’ उल्लेख योग्य पत्र था। आत्मानन्द जैनपत्रिका श्वेताम्बरसम्प्रदायकी मासिक पत्रिका थी। यह ५—७ वर्ष चलकर बन्द हो गई। ‘जैनरत्नमाला’ और ‘जैनी’ एक एक वर्ष तक ही जीवित रहे। ‘स्याद्वादी’ और ‘चित्तविनोद’ का एक ही एक अंक निकला! जयपुरसे ‘जैनप्रदीप’ नामका पत्र भी कुछ महीनोंतक निकलता रहा था।

एक दो सार्वजनिक पत्र भी जैनोंके द्वारा प्रकाशित होते हैं। देहलीके साप्ताहिक ‘हिन्दी समाचार’ के स्वामी सेठ माठूमलजी और देहरादूनके ‘भारतहितैषी’ के सम्पादक और प्रकाशक लाला गुलशनरायजी जैनी हैं। हिन्दीके सुप्रसिद्ध अस्तंगत ‘समालोचक’ पत्रके स्वामी मि० जैनवैद्य भी जैनी थे।

७ जैनोंद्वारा हिन्दीकी उन्नतिकी चेष्टा।

आपको मालूम होगा कि बम्बईके हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर कार्यालयके संचालक जैनी हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बम्बईकी नवजात 'हिन्दीगौरवग्रन्थमाला' के स्वामी भी जैनी हैं। झालरापाटणकी हिन्दी साहित्य समितिका जो ११-१२ हजार रुपयोंका स्थायी फण्ड है, वह केवल जैनोंका दिया हुआ है। इसके द्वारा हिन्दीके उत्तमोत्तम ग्रन्थ लागतके मूल्यसे बेचे जायँगे। इन्दौरकी मध्यभारत हिन्दी साहित्यसमितिको भी जैनोंकी ओरसे कई हजार रुपयोंकी सहायता मिली है। खण्डवेकी हिन्दीग्रन्थप्रसारकमंडलीके संचालक बाबू माणिकचन्दजी वकील भी जैनी हैं। हमको आशा है कि भविष्यमें हिन्दीसाहित्यकी उन्नतिमें जैनसमाजका और भी अधिक हाथ रहेगा।

८ जैनग्रन्थप्रकाशक संस्थायें।

जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय, जैनसाहित्य-प्रचारक कार्यालय, और रायचन्द्रजैनशास्त्रमाला, बम्बईकी ये तीन संस्थायें हिन्दीके जैनग्रन्थ प्रकाशित करनेवाली हैं। इनमेंसे से तीसरीके स्वामी श्वेताम्बर हैं, शेष दोके दिगम्बर। लाहौरके बाबू ज्ञानचन्द्रजीने हिन्दीके बहुत ग्रन्थ छपाये हैं, पर इस समय उनका काम बन्द है। देवबन्दके बाबू सूरजभानजी वकीलने भी ग्रन्थ-प्रकाशनका कार्य बन्द कर दिया है। कलकत्तेकी सनातनजैनग्रन्थमाला अब हिन्दीके ग्रन्थ भी प्रकाशित करने लगी है। सूरतके दिगम्बर-जैनकार्यालयसे, कोल्हापुरके जैनेन्द्रप्रेससे और बम्बईके जैनमित्र कार्यालयसे भी अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। इसके सिवाय और भी कई सज्जन थोड़े बहुत हिन्दी ग्रन्थ छपाया करते हैं। श्वेताम्बरसम्प्रदायकी ओरसे हिन्दीग्रन्थप्रकाशक संस्थाओंके स्थापित होनेकी बहुत आवश्यकता है।

९ हिन्दीका इतिहास।

जैनसाहित्यका इतिहास बतलानेके पहले हमें हिन्दीसाहित्यका इतिहास देख जाना चाहिए। शिवसिंहसरोजके कर्त्ता और मिश्रबन्धुओंके विचारानुसार हिन्दीकी उत्पत्ति संवत् ७०० से मानी जाती है। सं० ७७० में किसी पुष्य नामक कविने भाषाके दोहोंमें एक अलंकारका ग्रन्थ लिखा था। सं० ८९० के लगभग किसी भाट कविने 'खुमान रासा' नामक भाषा ग्रन्थ लिखा। ये दोनों ही ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं। इनके बाद चन्द कविने वि०सं० १२२५ से १२४९ तक 'पृथ्वीराज रासा' बनाया। उसके बादके जगनिक केदार और बारदर बेणा नामक कवि हुए, पर इनकी रचनाका पता नहीं। चन्दका बेटा जल्हण हुआ उसने पृथ्वीराज रासाका शेष भाग लिखा। उसके बाद 'कुमारपालचरित' नामका ग्रन्थ सं० १३०० के लगभग बना। कुमारपाल अणहिलवाड़ेके राजा थे। इनके बाद १३५४ में भूपतिने 'भागवतका दशम स्कन्ध' बनाया। १३५४ में नरपति नाल्हने 'वीसलदेवरासा,' १३५५ में नल्लसिंहने 'विजयपालरासा,' और १३५७ में शारंगधरने 'हम्मीररासा' बनाया। १३८२ में अमीर खुसरोका देहान्त हुआ, जो उर्दू फारसीके सिवा हिन्दीके भी कवि थे। इनके बाद १४०७ से गोरखनाथका कविताकाल शुरू होता है।

हमारी समझमें इस इतिहासमें बहुतसी बातें विना किसी प्रमाणके, भ्रमवश लिखी गई हैं। असलमें सबसे पहला ग्रन्थ 'पृथ्वीराज रासो' गिना जाना चाहिए। इसके पहलेके ग्रन्थ केवल अनुमानसे या भ्रमसे समझ लिये गये हैं कि हिन्दीके हैं। पर वास्तवमें यदि वे होंगे तो प्राकृत या अपभ्रंश भाषाके होंगे। आज कल जिस प्रकार भाषा कहनेसे हिन्दीका बोध होता है उसी प्रकार एक समय 'भाषा' कहनेसे 'प्राकृत'का भी बोध होता था। पुष्य कविका 'दोहाबद्ध अलंकार' और 'खुमानरासा' ये दोनों ही ग्रन्थ प्राकृतके होने चाहिए। चन्दके बादका 'कुमारपालचरित'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी भ्रमसे हिन्दीका समझ लिया गया है। इसका दूसरा नाम 'प्राकृत द्व्याश्रय महाकाव्य' है। यह जैनाचार्य हेमचन्द्र द्वारा बनाया गया है और १३ वीं शताब्दीमें ही—कुमारपालके समयमें ही—इसकी रचना हुई है। इसे बम्बईकी गवर्नमेंटने छपाकर प्रकाशित भी कर दिया है। इसमें प्राकृत, सौरसेनी, पैशाची और अपभ्रंश भाषाओंका संग्रह है और इन सबको 'भाषा' कहते हैं। जान पड़ता है, इसी कारण यह हिन्दीका ग्रन्थ समझ लिया गया है। इसके सिवाय इसका अपभ्रंश भाग (श्रीमान् मुनि जिनविजयजीके कथनानुसार) पुराने ढंगकी हिन्दीसे १०—१२ आने भर मिलता है। इस कारण भी इसके हिन्दी समझ लिये जानेकी संभावना है। इसके बादके भूपति कविकी भाषासे यह बोध नहीं होता कि वह संवत् १३५४ के लगभगका कवि है। उसकी भाषा सोलहवीं सदीसे पहलेकी नहीं मालूम होती। नाल्ह आदिकी रचनाके विषयमें भी हमें सन्देह है। मिश्रबन्धुओंने इसके सम्बन्धमें कोई भी सन्तोषयोग्य प्रमाण नहीं दिये हैं। अतः चन्दको छोड़कर सबसे पहले निश्चित कवि महात्मा गोरखनाथ हैं जिनको समय खोजके लेखकोंमें सं० १४०७ निश्चित किया है (यद्यपि हमें इस समयमें भी सन्देह है)। अर्थात् पृथ्वीराज रासोको छोड़कर हिन्दीके उपलब्ध साहित्यका प्रारंभ विक्रमकी १५ वीं शताब्दीसे होता है।

१० हिन्दीका प्रारंभ।

हमारे विचारसे हिन्दीका प्रारंभ तेरहवीं शताब्दीके मध्यभागसे होता है। जो समय भारतके राष्ट्रीयभावोंमें बड़ा भारी परिवर्तन करता है वही उसकी भाषाओंमें भी सविशेष परिवर्तन करता है। दिल्लीश्वर पृथ्वीराज चौहानके पतनके बाद भारतके स्वातंत्र्यका जिस तरह एकदम स्वरूप बदलने लगता है वैसे ही भारतीय भाषाओंका भी रूप परिवर्तित होने लगता है। इसके पहले उत्तर और पश्चिमभारतमें वह अपभ्रंश भाषा कुछ थोड़ेसे हेर-फेरके साथ, बोली जाती थी, जिसका व्याकरण हेमचंद्रसूरिने अपने 'सिद्धहैम-शब्दानुशासन' नामक महान् व्याकरणके अष्टमाध्यायके चतुर्थपादके ३२९ वें सूत्रसे लेकर अंतिम सूत्र ४४८वें तक (१२० सूत्रोंमें) लिखा है। हेमचंद्रसूरि अपने समयके सबसे बड़े वैयाकरण थे। उन्होंने अपने व्याकरणके पहले ७ अध्यायोंमें संस्कृतका सर्वांगपूर्ण व्याकरण लिख कर आठवें अध्यायमें प्राकृत वगैरह व्यावहारिक भाषाओंका व्याकरण बनाया। अंतमें अपनी मातृभाषा—प्रचलित देशभाषा—कि जिसका नाम उन्होंनें 'अपभ्रंश' रक्खा है, उसका व्याकरण भी लिख डाला। यह काम सबसे पहले उन्होंने ही किया। उन्होंने अपभ्रंशका केवल व्याकरण ही नहीं लिखा; परंतु कोश और छन्दोनियम भी बना दिये। व्याकरण कोश और छन्दोंके उदाहरणोंमें सैकड़ों पद्य आपने उन ग्रन्थोंके दिये हैं जो उस समय, देशभाषाके सर्वोच्च और प्रतिष्ठित ग्रन्थ गिने जाते थे।

हेमचंद्र सूरिने अपनी जन्मभाषाका गुजराती हिन्दी और मराठी आदि कोई खास नाम न रखकर 'अपभ्रंश' ऐसा सामान्य नाम रक्खा है जिसका कारण यह है कि वह भाषा उस समय, उसी रूपमें बिलकुल थोड़ेसे भेदके साथ भारतके बहुतसे प्रदेशोंमें बोली जाती थी। इस लिए आचार्य हेमचंद्रने उसे खास किसी प्रदेशकी भाषा न मान कर सामान्य अपभ्रंश भाषा मानी। अच्छा तो अब यह बात उपस्थित होगी कि यह अपभ्रंश (विकृतरूप) किस भाषाका था। इस प्रश्नका उत्तर हमें केवल जैनसाहित्यसे मिलेगा और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किसीसे नहीं। इसके लिए हमें उन प्राकृत ग्रंथोंको देखना चाहिए जो हेमचंद्राचार्यके पहले क्रमसे ३–४ शताब्दियोंमें, लिखे गये हैं। यद्यपि उन सबका अवलोकन अभी तक ठीक ठीक नहीं किया गया है तो भी जितना किया गया है उससे इतना तो निःसंकोच कहा जा सकता है कि यह अपभ्रंश, शौरसेनी और महाराष्ट्री प्राकृतका था। दशवीं शताब्दीके पहलेके जितने जैन प्राकृतग्रंथ हैं उनमें इन्हीं दोनों भाषाओंकी प्रधानता है। दशवीं शताब्दीके बादके जो ग्रंथ हैं, उनमें ये भाषायें क्रमसे लुप्त होती जाती हैं और अपभ्रंशका उदय दृष्टिगोचर होता है। महाकवि धनपाल, महेश्वरसूरि और जिनेश्वरसूरि आदिके ग्रंथोंमें अपभ्रंशका आदि आकार तथा रत्नप्रभाचार्यकी उपदेशमाला की 'दोघट्टी वृत्ति' और हेमचंद्रसूरिके ग्रंथोंमें उसकी उत्तरावस्था प्रतीत होती है। ऊपर लिखा जा चुका है कि दशवीं शताब्दीके पहलेके ग्रंथोंमें शुद्ध सौरसेनी और महाराष्ट्री प्राकृत है और बादमें उनका विकृतरूप है। कालकी गतिके साथ होनेवाले उन भाषाओंके स्वरूपके भ्रंशहीको हेमचंद्रसूरिने अपभ्रंश नाम दिया और शौरसेनी तथा प्राकृतके बाद ही अपने व्याकरणमें उसका भी व्याकरण लिपिबद्ध कर दिया।

हेमचंद्रसूरिके देहान्तके बाद थोड़े ही वर्षोंमें भारतमें राज्यक्रांति हुई और राष्ट्रीय परिस्थितिमें घोर परिवर्तन होने लगा। हममें परस्पर ईर्ष्याग्नि सुलगने लगी और विदेशी विजेता उसका लाभ उठाने लगे। देशोंका पारस्परिक स्नेह-संबंध टूटा और एक राज्यके रहनेवाले दूसरे राज्यके रहनेवालोंको शत्रु मानने लगे। इसी कारण, गुजरात, राजपूताना, अवन्ती और मध्यप्रांन्तके निवासियोंका इसके पहले जितना व्यावहारिक सम्बन्ध विस्तृत था उसमें संकुचितता आई। इस संकुचितताने इन प्रदेशोंकी जो व्यापक भाषा अपभ्रंश थी उसके भावी विकाशको प्रान्तीय-भाषाओंके भिन्न भिन्न भेदोंमें विभक्त कर दिया। यहींसे, गुजराती, राजपूतानी, मालवी, और हिन्दी भाषाओंके गर्भका सूत्रपात हुआ और धीरे धीरे १५ वीं शताब्दीमें पहुँचकर इन भाषाओंने अपना स्वरूप स्पष्टतया प्रकट कर दिया।

ऐसी दशामें हेमचंद्राचार्यके अपभ्रंशको ही इन उपर्युक्त भाषाओंका मूल समझना चाहिए। इसकी पुष्टिमें अपभ्रंशके कुछ पद्य यहाँ पर उद्धृत कर देने आवश्यक हैं जो हेमचंद्रसूरिने अपने व्याकरणमें उदाहरणार्थ, उस समयके प्रचलित लोक ग्रंथोंमेंसे–रासाओंमेंसे–उद्धृत किये हैं।

ढोल्ला[1] मइं तुहुं वारिया[2]
मा कुरु दीहा[3] माणु।
निद्दए[4] गमिही रत्तडी[5]
दडवड[6] होइ विहाणु[7]॥

बिट्टीए[8] मइ भणिय तुहुं
मा कुरु वंकी[9] दिट्ठि।
पुत्ति[10] सकण्णी भल्लि जिवं
मारइ हिअइ[11] पइट्ठि॥

भल्ला[12] हुआ जु मारिआ
बहिणि महारा कन्तु।
लज्जेज्जंतु वयंसिअहु[13]
जइ भग्गा घरु एन्तु॥

---

१ रात्रिके प्रारंभमें स्त्रीपुरुषके प्रणयकलहकी समाप्तिपर किसी नवयौवनाकी अपने पतिके प्रति यह उक्ति जान पड़ती है। 'ढोला' शब्द नायकके सम्बोधनमें है। २ वारितः–रोका। ३ दीर्घ। ४ निद्रायां–नींदमें। ५ रात। ६ जल्दी। ७ प्रभात। ८ रोषातुर पुत्रीके प्रति स्नेही पिताकी उक्ति। बिट्टीए–हे बेटी। ९ वक्रदृष्टि। १० पुत्री। ११ हृदयमें पैठकर। १२ भावार्थ–हे बहिन भला हुआ जो मेरा पति मर गया। यदि भागा हुआ घर आता तो मैं स्त्रियोंमें लज्जित होती। १३ वयस्यानां मध्ये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन पद्योंके साथ 'पृथ्वीराजरासो' या उसी समयके लिखे गये किसी और ग्रंथके पद्योंका यदि मिलान किया जाय तो भाषाविषयक बहुत कुछ सादृश्य ही नहीं बिलकुल एकता दिखाई देगी। ऐसी दशामें 'पृथ्वीराजरासो' यदि हिन्दीहीका ग्रंथ गिना जाने योग्य है, तो उसके आसपासके बनेहुए जैनग्रंथ भी जिनका उल्लेख आगे किया गया है हिन्दीके ग्रंथ गिने जाने योग्य हैं।

इस उल्लेखसे, हमने जो हिन्दीका प्रारंभ १३ वीं शताब्दीके मध्यसे माना है वह भी युक्तिसंगत मालूम देगा और साथमें, जिस तरह अजैनोंके रचे हुए हिन्दी ग्रंथ, उसके प्रारंभकालके मिलते हैं वैसे जैनोंके भी मिलनेके कारण हिन्दीका इतिहास लिखनेमें उनकी उपयोगिता कितनी अधिक है यह भी भली भाँति ज्ञात हो जायगा।

हमने अगले पृष्ठों पर १३ वीं, १४ वीं और १५ वीं शताब्दीके जिन जैनग्रंथोंको हिन्दीके या उससे बहुत मिलती जुलती हुई भाषाका माना है, उनके अवलोकनसे हिन्दीके विकाशकी बहुत कुछ नई नई बातें और नये नये रूप मालूम होंगे, जो हमारी भाषाके शरीरसङ्गठनका इतिहास लिखनेमें अति आवश्यक साधन हैं। अजैन साहित्यमें, जब चंदके बाद गोरखहीका ग्रंथ हमें दृष्टिगोचर होता है—मध्यका कोई नहीं तब, जैनसाहित्यमें इस बीचके पचासों ग्रंथ खोज करने पर मिल सकते हैं। इससे सिद्ध हुआ कि हिन्दीका संपूर्ण इतिहास तैयार करनेमें जैनसाहित्यसे महत्त्वकी सामग्री मिल सकती है।

तेरहवीं शताब्दी।

१ जम्बूस्वामी रासा। बड़ोदा महाराजकी सेंट्रल लायब्रेरीकी ओरसे निकलनेवाले 'लाइब्रेरी मिसेलेनी' नामके त्रैमासिक पत्रकी अप्रैल १९१५ की संख्यामें श्रीयुत चिम्मनलाल डाह्याभाई दलाल एम. ए. का एक महत्त्वपूर्ण लेख प्रकाशित हुआ है। उसमें उन्होंने पाटणके सुप्रसिद्ध जैनपुस्तकालयोंकी खोज करनेसे प्राप्त हुए अलभ्य संस्कृत-प्राकृत—अपभ्रंश और प्राचीन गुजरातीके ग्रन्थोंका विवरण दिया है। उसमें 'जम्बूस्वामी रासा' नामका एक ग्रन्थ है। यह महेन्द्रसूरिके शिष्य धर्मसूरिने सं० १२६६ में बनाया है। लेखक इसकी भाषाको प्राचीन गुजराती बतलाते हैं और इसे उपलब्ध गुजराती साहित्यमें सबसे पहला ग्रन्थ मानते हैं; परन्तु हमारी समझमें चन्दकी भाषा आजकलके हिन्दी जाननेवालोंके लिए जितनी दुरूह है, यह उससे अधिक दुरूह नहीं है और गुजरातीके साथ इसका जितना सादृश्य है उससे कहीं अधिक हिन्दीसे है। उक्त विवरण परसे हम यहाँ उसके प्रारंभके दो पद्य उद्धृत करते हैं:—

जिण चउ-विस पयं नमेवि
गुरु चरण नमेवि॥
जंबू स्वामिहिं तणूं
चरियं भविउं निसुणेवि॥
करि सानिध सरसत्ति
देवि जीयरयं (?) कहाणउ।
जंबू स्वामिहिं (सु) गुणगहण
संखेविं वखाणउ॥
जंबुदीवि सिरि भरहखित्ति
तिहिं नयर पहाणउ॥
राजग्रह नामेण नयर
पहुवी वक्खाणउ॥
राज करइ सेणियं नरिंद
नरवरहं जु सारो।
तासु तणइ (अति) बुद्धिवंत
मतिं अभयकुमारो*॥ २॥

२ रेवंतगिरि रासा। पाटनके संघवीपाड़ाके भण्डारमें 'रेवंतगिरि रासा' नामका एक ग्रन्थ और भी विक्रमकी तेरहवीं शताब्दीका बना हुआ है। वस्तुपालमत्रीके गुरु विजयसेनसूरिने संवत् १२८८ के लगभग—जब कि वस्तुपालने गिरनारका संघ निकाला था—इसे बनाया है। इसमें गिरनारका और वहाँके जैनमन्दिरोंके जीर्णोद्धारका वर्णन

---

१ पद—चरण। २ चरित्र। ३ भविक—भव्य। ४ सुनो। ५ संक्षिप्त। ६ नगर। ७ प्रधान। ८ पृथिवीमें। ९ विख्यात। १० श्रेणिकराजा। ११ तनय पुत्र। * जिस प्रतिसे ये पद्य लिये गये हैं, वह शुद्ध नहीं है, इसलिए इनमें छन्दोभंग जान पड़ता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है । इसकी भाषाको भी दलाल महाशय प्राचीन गुजराती बतलाते हैं । प्रारंभके कुछ दोहे देखिए ।

परमेसर तित्थेसरह
पयपंकज पणमेवि ।
भणिसु रासु रेवंतगिरि–
अंबिकदिवि सुमरेवि ॥ १ ॥
गामागर-पुर-वण-गहण
सरि-सरवरि-सुपएसु ।
देवभूमि दिसि पच्छिमह
मणहरु सोरठ देसु ॥ २ ॥
जिणु तहिं मंडल-मंडणउ
मरगय-मउड-महंतु ।
निम्मल-सामल-सिहर भर,
रेहइ गिरि रेवंतु ॥ ३ ॥
तसु सिरि सामिउ सामलउ
सोहग सुंदर सारु ।
...इव निम्मल-कुल-तिलउ
निवसइ नेमिकुमारु ॥ ४ ॥
तसु मुहदंसणु दस दिसवि
देस दिसंतरु संघ ।
आवइ भाव रसालमण
उहलि (?) रंग तरंग ॥ ५ ॥
पोरवाडकुलमंडणउ
नंदणु आसाराय ।
वस्तुपाल वर मंति तहि
तेजपालु दुइ भाइ ॥ ६ ॥
गुर्जर (वर) धर धुरि धवल
वीर धवल देवराजि ।
बिउ बंधवि अवयारियउ
समऊ दूसम माझि ॥ ७ ॥

हमारी समझमें यह प्राचीन हिन्दी कही जा सकती है ।

३ नेमिनाथ चउपई । पाटणके भण्डारोंमें एक 'नेमिनाथ चतुष्पदिका' नामका ४० पद्योंका ग्रन्थ है । इसके कर्ता रत्नसिंहके शिष्य विनयचन्द्र सूरि हैं । इनका समय विक्रमकी १३ वीं शताब्दीका आन्तिम भाग है । मल्लिनाथ महाकाव्य, पार्श्वनाथचरित, कल्पनिरुक्त आदि अनेक संस्कृत-प्राकृत ग्रन्थ इनके बनाये हुए उपलब्ध हैं । इस चउपईकी मूल प्रति भी सं० १३५५-५८ की लिखी हुई है । अतः यह तेरहवीं शताब्दीके अंतकी रचना है । इसके प्रारंभकी पाँच चौपाइयाँ इस प्रकार हैं:—

सोहग सुंदरु घण लायन्नु,
सुमरवि सामिउ सामलवन्नु ।
सखि पति राजल चडि उत्तरिय,
बार मास सुणि जिम वज्जरिय ॥ १ ॥
नेमि कुमर सुमरवि गिरनारि,
सिद्धी राजल कन्न कुमारि ।
श्रावणि सरवणि कडुए मेहु,
गज्जइ विरहि रिझिज्जइ देहु ॥
विज्जु झबक्कइ रक्खसि जेव,
नेमिहि विणु सहि सहियइ केव ॥ २ ॥
सखी भणइ सामिणि मन झूरि,
दुज्जण तणा मनवंछित पूरि ।
गयउ नेमि तउ विनठउ काइ,
अछइ अनेरा वरह सयाइ ॥ ३ ॥
बोलइ राजल तउ इह वयणु,
नत्थि नेमि वर सम वर-रयणु ॥
धरइ तेजु गहगण सवि ताउ,
गयणि न उग्गइ दिणयर जाव ॥ ४ ॥
भाद्रवि भरिया सर पिक्खेवि,
सकरुण रोवइ राजल देवि ।
हा एकलडी मइ निरधार,
किम उवेखिसि करुणासार ॥ ५ ॥

१ तीर्थेश्वरके । २ पदपंकज । ३ प्रणम्य–प्रणाम करके । ४ गिरनारपर्वतकी अम्बिका देवी । ५ स्मृत्वा–स्मरण करके । ६ सुप्रदेश । ७ मनोहर । ८ मरकत मणिके मुकुटसे शोभित । ९ श्यामल । १० शिखर । ११ राजे । १२ स्वामी । १३ श्यामल । १४ शोभक–शोभायुक्त । १५ तिलक । १६ मुखदर्शन । १७ मंत्री । १८ दोनों । १९ बन्धु । २० अवतारित किया । २१ सुसमय । २२ दुःषमकालमें ।

१ सुभग । २ लावण्य । ३ श्यामल वर्ण । ४ मेघ । ५ विजली । ६ राक्षसीके समान । ७ सखि । ८ हे स्वामिनि । ९ यदि नेमि चला गया तो क्या विनष्ट (बिगड़) गया, और बहुतसे वर हैं । यह इस चरणका अभिप्राय है । १० वररत्न । ११ ग्रहगण–नक्षत्र । १२ तब तक । १३ गगन या आकाशमें । १४ दिनकर-सूर्य । १५ यावत् जब तक । १६ भादोंमें । १७ अकेली ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४ उवएसमाला कहाणय छप्पय। यह भी उपर्युक्त विनयचन्द्रसूरिहीकी रचना है। धर्मदासगणिकी बनाई हुई प्राकृत उपदेशमालाके अनुवाद रूपमें ये छप्पय बनाये गये हैं। इसमें सब मिलाकर ८१ छप्पय हैं। छप्पय छन्दोंकी तरफ विचार किया जाय तो वे प्रायः हिन्दीके ग्रंथोंहीमें अधिक देखे जाते हैं-गुजरातीमें बहुत कम। चंदका 'पृथ्वीराजरासो' प्रायः इन्हीं छप्पय छन्दोंमें बना हुआ है। अतः इस ग्रंथको हिन्दी-ग्रंथ कहनेमें कोई प्रत्यवाय नहीं है। भाषा भी चंदके रासोसे बिल्कुल मिलती जुलती है। इसके आदि-अंत छप्पय इस प्रकार हैं:—

विजयनरिंद जिणिंद-
वीरहत्थिहिं-वय-लेविणु।
धम्मदास गणि नामि
गामि नयरिहिं विहरइ पुणु।
नियपुत्तह रणसीहराय-
पडिबोहण सारिहिं।
करइ एस उवएसमाल
जिणवयणवियारिहिं।
लय पंच च्याल गाहा-रमण-
मणिकरंड महियलि सुणउ।
सुहभावि सुद्ध सिद्धंत सम,
सवि साहू सावयँ सुणउ॥ १॥

अंत:—

इणि परि सिरि उवएसँ-
माल (सु रसाल) कहाणय।
तँव-संजम-संतोस-
विणयविज्जाइ पहाणय।
सावय-संभरणत्थ
अत्थंपय छप्पय छंदिहिं।
रयणसिंह सूरीस-सीस
पभणइ आणंदिहिं।
अरिहंत आण अणुदिण उदय,
धम्ममूल मत्थइ हउं।
भो भविय भत्तिसत्तिहिं सहल
सयलॅ-लच्छिलीला लहउ॥ १॥

चौदहवीं शताब्दी।

१ सप्तक्षेत्रिरास। कर्ताका नाम अभी तक स्पष्ट ज्ञात नहीं हुआ; पर रचना-काल संवत् १३२७ है। इसमें जिनमंदिर, जिनप्रतिमा, ज्ञान, साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविकारूप (श्वेताम्बर संप्रदायमें माने हुए) सात पुण्यक्षेत्रोंकी उपासनाका वर्णन है। यद्यपि इसमें कितने ही शब्द-प्रयोग गुजरातीकी ओर झुकते हुए दिखाई देते हैं पर हिन्दीके साथ सादृश्य रखनेवाले शब्दोंकी प्रधानता अवश्य है। नमूनेके लिए कुछ अंतके पद्य देखिए:—

सातँ क्षेत्र इम बोलिया
पुण एकु कहीसिइ।
कर जोडी श्रीसंघपासि
अविणउ मागीसइ।
कांईउ ऊणं आगउं
बोलिउ उत्सूत्रु।
ते बोल्या मिच्छादुक्कय
श्रीसंघवदीतुं॥ १९६॥
मूँ मूरष (ख) तोइए
कुण मात्र पुण सुगुरुपसाओ।

---

१ जिनेन्द्रवीरके हाथसे जिन्होंने व्रत (दीक्षाव्रत) लिया था, वे धर्मदास गणि। २ निजपुत्र रणसिंहराजके प्रतिबोधनार्थ। ३ उपदेशमाला। ४ गाथारूप रत्नोंका मणिकरण्ड या पिटारा। ५ श्रावक। ६ उपदेशमाला-कथानक। ७ तप-संयम-संतोष-विनय-विद्यामें प्रधान। ८ श्रावकश्रवणार्थ। ९ अर्थपद।

१ प्रभणति—कहते हैं। २ आज्ञा। ३ भक्तिशक्तिसे। ४ सकललक्ष्मीलीला अर्थात् केवलज्ञान। ५ सात क्षेत्र इस प्रकार कह कर मैं फिर एक बात कहूँगा—हाथ जोड़कर श्रीसंघके पास अविनय माँगूगा अर्थात् क्षमा माँगूगा कि यदि कुछ 'ऊणं' न्यून 'आगउं' अधिक या 'उत्सूत्र' शास्त्रविरुद्ध कहा गया है तो श्रीसंघमें प्रसिद्ध 'मिथ्या दुष्कृत' हो। ६ मैं मूर्ख हूँ इस लिए मैं कौन मात्र हूँ—क्या चीज हूँ; परन्तु सुगुरुके प्रसादसे और त्रिभुवनस्वामी जगन्नाथ हृदयमें बसते हैं इससे यह 'रास' बना सका हूँ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनइ ज त्रिभुवनसामि
वसइ हियडइ जगनाहो।
तीणि प्रमाणिइ सातक्षेत्र
इम कीधउ रासो।
श्रीसंघु दुरियह अपहरउ
सामी जिणपासो ॥ ११७ ॥
संवत तेर सत्तावीसए
माह मसवाडइ।
गुरुवारि आवीय दसमि
पहिलइ पखवाडइ।
तहि पूरू हुउ रासु
सिवसुखनिहाणूं।
जिण चउवीसइ भवियणइ
करिसिइ कल्याणूं ॥ ११८ ॥

२ संघपतिसमरा-रास। अणहिल्लपुर पट्टनके ओसवाल शाह समरा संघपतिने सं० १३७१ में शत्रुंजय तीर्थका उद्धार अगणित धन व्यय करके किया था। इस उद्धारको लक्ष्य करके नागेन्द्र गच्छके आचार्य पासड सूरिके शिष्य अंबदेवने यह रासा बनाया है। इसमें गुजराती प्रयोगोंके स्थानमें राजस्थानी भाषाके शब्द अधिक दिखाई देते हैं इससे, इसके कर्ताका वासस्थान संभवतः राजपूतानाका कोई प्रदेश होना चाहिए। राजस्थानी भाषाओंका जितना सादृश्य गुजरातीके साथ है उससे कई गुना अधिक हिन्दीसे है और यह आज भी प्रत्यक्ष है।

पट्टनसे संघ निकाल कर समरा शाहने जब शत्रुंजयकी तरफ प्रयाण किया उस समयका कवि वर्णन करता है:—

वाजिय संख असंख नादि
काहल दुडुदुडिया।
घोड़े चड़इ सल्लारसार
राउत सींगड़िया।
तउ देवालउ जोत्रि वेगि
घाघरि रवु झमकइ।
सम विसम नवि गणइ
कोई नवि वारिउ थक्कइ ॥ १ ॥
सिजवाला धर धडहडइ
वाहिणि बहुवेगि।
धरणि धडक्कइ रजु उडए
नवि सूझइ मागो।
हय हींसह आरसइ करह
वेगि वहइ बहल्ल।
सादकिया थाहरइ
अवरु नवि देई बुल्ल ॥ २ ॥
निसि दीवी झलहलहि
जेम ऊगिउ तारायणु।
पावल पारु न पामियए
वेगि वहई सुखासणु।
आगेवाणिहि संचरए
संघपति साहु देसलु।
बुद्धिवंतु बहु पुंनिवंतु
परिकमिहि सुनिश्चलु ॥ ३ ॥

इन पद्योंकी रचना तो सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दीके राजपूतानाके चारणीय रासोंसे भी विशेष सरल और सहजमें समझमें आजानेवाली है।

२ थूलिभद्र फागु। इस नामकी एक छोटीसी पुस्तक खरतर गच्छके आचार्य जिनपद्मसूरिने विक्रमकी चौदहवीं शताब्दीके अन्तमें, चैत्र महीनेमें फाग खेलनेके लिए बनाई है। उसका प्रारंभ इस प्रकार है:—

पणमिय पास जिणंदपय,
अनु सरसई समरेवि।
थूलभद्दमुणिवइ भणिसु,
फागु बंध गुणकेवि ॥ १ ॥
अह सोहग सुंदर रूववंतु
गुणमणिभंडारो। कंचण
जिम झलकंत कंति संजम
सिरि हारो ॥ थूलिभद्र
मुणिराउ जाम महियली
बोहंतउ। नयरराय पाडलिय
मांहि पहूतउ विहरंतउ ॥

'कच्छुलिरासा' आदि और भी कई कृतियाँ इस शताब्दीकी मिलती हैं।

---

१ सं० १३२७ मसवाड़ (मार्गसिर ?), पहले पक्षकी दशमी, गुरुवार।

१ सरस्वति। २ स्थूलभद्र मुनिपति। ३ नगरराज-श्रेष्ठ नगर। ५ पाटलीपुत्रमें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३ संस्कृतमें जैनाचार्य मेरुतुङ्गकृत प्रबन्ध चिन्तामणि नामका एक ऐतिहासिक ग्रन्थ है, जो शास्त्री रामचन्द्र दीनानाथ द्वारा छपकर प्रकाशित हो गया है। यह विक्रम संवत् १३६१ में बनकर समाप्त हुआ है। इसके कई प्रबन्धोंमें यत्र तत्र कुछ दोहे दिये हुए हैं जो अपभ्रंश भाषाके हैं और हिन्दी जैसे जान पड़ते हैं। ग्रंथकर्ताके समयमें वे जनश्रुतियोंमें या प्रचलित देशभाषाके किसी जैनग्रन्थमें प्रसिद्ध होंगे, इस कारण उन्हें चौदहवीं शताब्दीके या उससे पहलेके कह सकते हैं।

जा मति पाछइ संपजइ,
सा मति पहिली होइ।
मुंजु भणइ मुणालेवइ,
विघन न बेढ़इ कोइ॥ (पृष्ठ ६२)

जइ यह रावणु जाइयो,
दह मुहु इक्कु सरीरु।
जननि वियंभी चिन्तवइ,
कवनु पियाइए खीरु॥ (पृष्ठ ७०)

कसुं करु पुत्र कलत्र धी,
कसु करु करसण बाड़ि।
आइवु जाइवु एकला
हत्थ...विन्नवि झाड़ि॥ (पृष्ठ १२१)

मुंजु भणइ मुणालवइ,
जुव्वंण्णु गयउ न झूरि।
जइ सक्कर सयखंड थिय,
तोइ स मीठी चूरि॥ (पृष्ठ ५९)

इन पद्योंमें यद्यपि अपभ्रंश शब्द अधिक हैं, तो भी इनके समझनेमें पृथ्वीराज रासोकी अपेक्षा अधिक कठिनाई नहीं पड़ती। इसलिए इनकी भाषाको प्राचीन हिन्दी कहनेमें हमें कोई संकोच नहीं होता।

१ मृणालवती। २ विजृंभित होकर–घबड़ाकर। ३ क्षीर–दूध। ४ कृश कर। ५ दोनों। ६ यौवन।

पन्द्रहवीं शताब्दी।

१ गौतमरासा। पन्द्रहवीं शताब्दीका सबसे पहला ग्रन्थ 'गौतमरासा' मिला है। इसे संवत् १४१२ में उदयवंत या विजयभद्र नामके श्वेताम्बर साधुने बनाया है। पाटनमें इसकी एक प्रति १५ वीं शताब्दीके उत्तरार्धकी लिखी हुई मिली है। यह ग्रन्थ छप गया है, पर शुद्ध नहीं छपा इसके प्रारंभके कुछ पद्य ये हैं:—

वीर जिणेसरचरणकमल-
कमलाकयवासो,
पणमवि पभणिसु सामि
साल गोयमगुरुरासो।
मणु तणु चरणु एकंतु
करवि निसुणउ भो भविया,
जिम निवसइ तुम्ह देहि
गेहि गुणगण गहगहिया॥ १॥

जंबुदीवि सिरिभरहखित्ति
खोणीतलमंडणु,
मगधदेस सेणिय नरेस
रिउ-दलबल खंडणु।
धणवर गुव्वर नाम गामु
जहिं गुणगणसज्जा,
विप्पु वसे वसुभूइ
तत्थ जसु पुहवी भज्जा॥ २॥

ताण पुत्तु सिरि इंदभूइ
भूवलयपसिद्धउ,
चउदहविज्जा विविहरूप
नारी-रस विद्धउ।
विनय विवेकि विचार सार
गुणगणह मनोहरु,

१ कमलाकृतवासः—जिनमें लक्ष्मीका निवास है। २ स्वामि। ३ गोतम। ४ सुनो। ५ जम्बूद्वीप। ६ श्रीभरतक्षेत्र। ७ क्षोणीतलमंडन। ८ श्रेणिक। ९ रिपु। १० सजी हुई। ११ विप्र। १२ वसुभूति। १३ पृथ्वी नामकी भार्या। १४ इन्द्रभूति। १५ विद्या

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सात हाथ सुप्रमाण देह
रूपिहिं रंभावरु ॥ ३ ॥
नयणवयण करचरणि
जिण वि पंकजजलि पाडिय,
तेजिंहि ताराचंद सूर
आकासि भमाडिय।
रूविहिं मयणु अनंग
करावि मेल्हिउ निद्दाडिय,
धीरिम मेरु गंभीरि
सिंधु चंगिम चय चाडिय ॥ ४ ॥

२ ज्ञानपंचमी चउपई। मगधदेशमें विहार करते समय जिनउदयगुरुके शिष्य और ठक्कर माल्हेके पुत्र विद्धणूने संवत् १४२३ में इसकी रचना की है। उदाहरणः––

जिणवर सासणि आछइ सारु,
जासु न लब्भइ अंत अपारु।
पढ़हु गुणहु पूजहु निसुनेहु,
सियपंचमिफलु कहियउ एहु ॥ १ ॥
सियपंचमि फलु जाणइ लोइ,
जो नर करइ सो दुहिउ न होइ।
संजम मन धरि जो नरु करइ,
सो नरु निश्चइ दुत्तरु तरइ ॥ २ ॥
ओंकार जिणइ (?) चउवीस,
सारद सामिनि करउ जगीस।
वाहग हंस चडी कर वीण,
सो जिण सासणि अच्छइ लीण ॥ ३ ॥
अठदल कमल ऊपनी नारि,
जेण पयासिय वेदइ चारि।
ससिहर बिंबु अमियरसु फुरइ,
नमस्कार तसु 'विद्धणु' करइ ॥ ४ ॥
चिंतासायर जावि नरु परइ,
घर धंधल सयलइ वीसरइ।
कोहु मानु माया (मद) मोहु,
जर झंपे परियिउ संदेहु ॥ ५ ॥
दान न दिन्नउ मुनिवर जोगु,
ना तप तपिउ न भोगेउ भोगु।
सावय घराहि लियउ अवतारु,
अनुदिनु मनि चिंतहु नवकारु ॥ ६ ॥

इस ग्रन्थकी प्राचीन हिन्दी और भी अधिक स्पष्ट है। यह गुजरातीकी अपेक्षा हिन्दीकी ओर बहुत अधिक झुकती हुई है।

३ धर्मदत्तचरित्र–इस ग्रन्थका उल्लेख मिश्रबन्धुओंने अपने इतिहासमें किया है। इसे संवत् १४८६ में दयासागरसूरिने बनाया था।

सोलहवीं शताब्दी।

१ ललितांगचरित्र। इसे शान्तिसूरिके शिष्य ईश्वरसूरिने मण्डपदुर्ग (मांडलगढ) के बादशाह ग्यासुद्दीनके पुत्र नासिरुद्दीनके समय (वि० सं० १५५५–१५६९) में, मलिक माफरके पट्टधर सोनाराय जीवनके पुत्र पुंज मंत्रीकी प्रार्थनासे सं० १५६१ में बनाया है। इसकी रचना बड़ी सुन्दर है। प्राकृत और अपभ्रंशका मिश्रण बहुत है। कवि स्वयं अपने काव्यकी प्रशंसा आर्या छन्दमें इस प्रकार करता है:—

सालंकारसमत्थं
सच्छंदं सरससुगुणसंजुत्तं।
ललियंगकुमरचरियं
ललणाललियव्व निसुणेह ॥

अब थोड़ेसे पद्य और देखिए:—

महिमहति मालवदेस,
धण कणयलच्छि निवेस।
तिहं नयर मंडवदुग्ग,
अहिनवउ जाण कि सग्ग ॥ ६७ ॥
तिहं अतुलबल गुणवंत,
श्रीग्याससुत जयवंत।

१ अपने नेत्रों, वचनों, हाथों और चरणोंकी शोभासे पराजित करके जिसने पंकजोंको जलमें पठा दिये। २ तेजसे चन्द्रसूर्यको आकाशमें भमाया। ३ रूपसे मदनको अनंग (विना अंगका) बनाके निर्द्धाटित कर दिया या निकाल दिया। ४ श्रुतपंचमी। ५ दुखी। ६ दुस्तर।

१ कनक–सुवर्ण। २ अभिनव। ३ स्वर्ग।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust, Gangotri

समरत्थ साहसधीर,
श्रीपातसाह निसीर ॥ ६८ ॥
तसु रंजि सकल प्रधान,
गुरु रूवरयण निधान।
हिंदुआ राय वंजीर,
श्रीपुंज मयणह वीर ॥ ६९ ॥
सिरिमाल-वंशवयंस,
मानिनीमानसहंस।
सोनाराय जीवनपुत्त,
बहुपुत्त परिवर जुत्त ॥ ७० ॥
श्रीमलिक माफर पट्टि,
हयगय सुहड बहु चट्टि।
श्रीपुंज पुंज नरिंद,
बहु कवित केलि सुछंद ॥ ७१ ॥
नवरस विलासउ लोल,
नवगाहगेयकलोल।
निज बुद्धि बहुअ विनाणि,
गुरु धम्मफल बहु जाणि ॥ ७२ ॥
इयपुण्यचरिय प्रबंध,
ललिअंग नृपसंबंध।
पहुँ पासँ चरियह चित्त,
उद्धरिय एह चरित्त ॥ ७३ ॥

२ सार–सिखामन रासा। यह ग्रन्थ इन्दौरके श्रीमान् यति माणिकचन्द्रजीके भण्डारमें है; और उक्त यति महोदयकी कृपासे हमें प्राप्त हुआ था। बड़ तपगच्छके जयसुन्दर सूरिके शिष्य संवेगसुन्दर उपाध्यायने संवत् १५४८ में इसकी रचना की है। कोई २५० पद्योंमें यह समाप्त हुआ है। रचना साधारण है। रातको न खाना, छना हुआ पानी पीना, जीवघात नहीं करना, अमुक अमुक अभक्ष्य पदार्थ नहीं खाना आदि बातोंकी शिक्षा (सिखापन) इसमें दी गई है। भाषामें गुजतीकी झलक है–कहीं कहीं अधिक है–तो भी वह हिन्दी है। कविको श्वेताम्बर सम्प्रदायकी प्रधान भाषा गुजरातीका परिचय अधिक रहा है, ऐसा जान पड़ता है।

४ यशोधर चरित्र। लाहौरके बाबू ज्ञानचन्दजीने अपनी सूचीमें फफोंदू ग्रामनिवासी गौरवदास नामके जैनविद्वान्के बनाये हुए इस ग्रन्थका उल्लेख किया है और इसके बननेका समय १५८१ बतलाया है। जयपुरके बाबा दुलीचन्दजीके सरस्वतीसदनमें इसकी एक प्रति मौजूद है। बाबाजीने अपनी जैनशास्त्रमालामें इसे लिखा है।

४ कृपणचरित्र। यह छोटासा पर बहुत ही सुन्दर और प्रसादगुणसम्पन्न काव्य बम्बई दिगम्बर जैनमन्दिरके सरस्वतीभण्डारमें एक गुटकेमें लिखा हुआ मौजूद है। इसमें कविने एक कंजूस धनीका अपनी आँखों देखा हुआ चरित्र ३५ छप्पय छन्दोंमें किया है। घेल्हके बेटे ठकुरसी नामके कवि इसके रचयिता हैं। वे १६ वीं शताब्दीके कवि हैं। पन्द्रहसौ अस्सीमें उन्होंने इसकी रचना की है, जैसा कि वे अन्तके छप्पयमें कहते हैं:—

इसौ जाणि सहु कोई,
मरम मूरिख धन संच्यो।
दान पुण्य उपगारि,
दिंत धणु किवै ण खंच्यौ ॥
मैं पंदरा सौ असइ,
पोष पांचै जागि जाण्यौ।
जिसौ कृपणु इक दीठु,
तिसौ गुणु तासु बखाण्यौ ॥
कवि कहइ ठकुरसी घेल्हतणु,
मैं परमत्थु विचारियौ।
खरचियौ त्याहं जीत्यौ जनमु
जिह सांच्यौ तिह हारियौ।

कवि अपनी कथाका प्रारंभ इस प्रकार करता है:—

---

१ राज्यमें। २ हिन्दू। ३ मंत्री। ४ श्रीमालवंशके अवतंस–मुकुट। ५ विज्ञानी। ६ प्रभु। ७ पार्श्व।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कृपणु एकु परसिद्ध,
नयरि निवसंतु निलक्खणु।
कही करम संजोग
तासु घरि, नारि विचक्खण॥
देखि दुहूकी जोड़,
सयलु जग रहिउ तमासै।
याहि पुरिषकै याहि,
दई किम दे इम भासै॥
वह रह्यौ रीति चाहै भली,
दाण पुज्ज गुण सील सति।
यह दे न खाण खरचण किवै,
दुवै कराहि दिणि कलह अति।
गुरसौं गोठि[1] न करै,
देव देहुरौ न देखै।
मांगिण भूलि न देइ,
गालि सुणि रहै अलेखै॥
सगी भतीजी भुवा बहिणि,
भाणिजी न ज्यावै॥
रहै रूसणौ माड़ि,
आप न्योतौ जब आवै॥
पाहुणौ सगौ आयौ सुणै,
रहइ छिपिउ मुहु राखि करि।
जिव जाय तवहि पाणि नीसरइ,
इम धनु संच्यौ कृपण नर॥

एक दिन कृपणकी स्त्रीने कहा कि गिरनार-जीकी यात्राके लिए बहुतसे लोग जा रहे हैं, यदि आप भी मुझे लेकर यात्रा करा लावें, तो अपना धन पाना सफल हो जाय। इस पर सेठ जी बड़े खफा हुए। दोनोंमें बहुत देर तक विवाद होता रहा। सेठानीने धनकी सफलता दान भोग आदिसे बतलाई और सेठने उसका विरोध किया। अन्तमें सेठजी तंग आकर घरसे चल दिये। मार्गमें उनका एक पुराना मित्र मिला, वह भी कंजूस था। उसने पूछा, आज तुम उन्मना और दुर्बल क्यों हो रहे हो? सेठजी उत्तर देते हैं:–

कृपणु कहै रे मीत,
मज्झु घरि नारि सतावै।
जात[1] चालि धणु खरचि,
कहै जो मोहि न भावै॥
तिहि कारण दुब्बलौ,
रयण दिन भूख न लागै।
मीत मरणु आइयौ,
गुज्झु[2] आंखौ[3] तू आगै॥
ता कृपण कहै रे कृपण सुणि,
मीत न कर मनमाहि दुखु।
पीहरि पठाइ दै पापिणी,
ज्यौं को दिण तूं होइ सुखु॥ २१॥

स्थानाभावसे अब हम और पद्य उद्धृत नहीं कर सकते। आखिर सेठजी घर आये और एक झूठी चिट्ठी घरवालीके सामने पढ़कर बोले कि तुम्हारे बड़े भाईके पुत्र उत्पन्न हुआ है, इसलिए उन्होंने तुम्हें बुलानेके लिए यह चिट्ठी देकर आदमी भेजा है। तुम्हें पीहर चली जाना चाहिए। बेचारीको जाना पड़ा। इसके बाद यात्रियोंका संघ चला गया। जब कुछ समयके बाद वह सकुशल लौट आया और उसमें सेठने देखा कि कई लोग मालामाल होकर आगये हैं, तब उसे बड़ा दुःख हुआ कि मैं क्यों न गया। मैं जाता तो खूब किफायतशारीसे रहता और इनसे भी अधिक धन कमा लाता। इस दुःखसे वह रात दिन दुःखी रहने लगा और धीरे धीरे मरणशय्यापर पड़ गया। लोगोंने बहुत समझायी कि अब तू कुछ दानधर्म कर ले, पर उसने किसीकी न सुनी। वह बोला, मैं सारे धनको साथ ले जाऊँगा। उसने लक्ष्मीसे प्रार्थना कि मैंने तुम्हारी जीवनभर एकनिष्ठतासे सेवा की है, अब तुम मेरे साथ चलो। लक्ष्मीने कहा, कि मेरे साथ ले चलनेके जो कई दानादि

---

१ गोष्ठी बातचीत।

१ यात्रा। २ गुह्य–गुप्त बात। ३ कह दिया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपाय थे उन्हें तूने किये नहीं, इसलिए मैं तेरे साथ नहीं जा सकती। कृपण मर गया और नरकमें तरह तरहके दुःख भोगने लगा। इधर उसके मरनेसे लोग बहुत खुश हुए और कुटुम्बी आदि आनन्दसे धनका उपभोग करने लगे। यही इस चरित्रका सार है। कविने कथा अच्छी चुनी है। रचना उसकी एक आँखों देखी घटना पर की गई है, इस कारण उसमें प्राण हैं। मालूम नहीं, इस कविकी और भी कोई रचना है या नहीं।

५ रामसीताचरित्र। इस ग्रन्थका उल्लेख मिश्रबन्धुओंने अपने हिन्दीके इतिहासमें किया है। इसे बालचन्द जैनने विक्रम संवत् १५७८ में बनाया है।

सत्रहवीं शताब्दी।

इस शताब्दीके बने हुए जैनग्रंथ बहुत मिलते हैं। इसमें हिन्दीकी खासी उन्नति हुई है। हिन्दीके अमर कवि तुलसीदासजी इसी शताब्दीमें हुए है।

१ बनारसीदास। इस शताब्दीके जैनकवि और लेखकोंमें हम कविवर बनारसीदासजीको सर्व श्रेष्ठ समझते हैं। यही क्यों, हमारा तो खयाल है कि जैनोंमें इनसे अच्छा कवि कोई हुआ ही नहीं। ये आगरेके रहनेवाले श्रीमाल वैश्य थे। इनका जन्म माघ सुदी ११ सं० १६४३ को जौनपुर नगरमें हुआ था। इनके पिताका नाम खरगसेन था। ये बड़े ही प्रतिभाशाली कवि थे। अपने समयके ये सुधारक थे। पहले श्वेताम्बर सम्प्रदायके अनुयायी थे, पीछे दिगम्बरसम्प्रदाय–मुक्त हो गये थे; परन्तु जान पड़ता है, इनके विचारोंसे साधारण लोगोंके विचारोंका मेल नहीं खाता था। ये अध्यात्मी या वेदान्ती थे। क्रियाकाण्डको ये बहुत महत्त्व नहीं देते थे। इसी कारण बहुतसे लोग इनके विरुद्ध हो गये थे। यहाँ तक कि उस समयके मेघविजय उपाध्याय नामके एक श्वेताम्बर साधुने उनके विरुद्ध एक 'युक्तिप्रबोध' नामका प्राकृत नाटक (स्वोपज्ञ संस्कृतटीकासहित) ही लिख डाला था, जो उपलब्ध है। उससे मालूम होता है कि इनको और इनके अनुयायियोंको उस समयके बहुतसे लोग एक जुदा ही पन्थके समझने लगे थे।

बनारसीदासजीके बनाये हुए चार ग्रन्थ–१ बनारसीविलास, २ नाटक समयसार, ३ अर्द्ध कथानक और ४ नाममाला (कोष) प्रसिद्ध हैं। इनमेंसे पहले तीन उपलब्ध हैं। दो छप चुके हैं और तीसरेका आशय पहलेके साथ प्रकाशित हो चुका है। बनारसीविलास कोई स्वतंत्र ग्रन्थ नहीं है; किन्तु उनकी कोई ६० छोटी बड़ी कविताओंका संग्रह है। यह संग्रह जगजीवन नामके एक आगरेके कविने संवत् १७०१ में किया था। सूक्तमुक्तावली, समयसारकलशा, और कल्याणमन्दिर स्तोत्र नामकी तीन कविताओंको छोड़कर इस संग्रहकी सब रचनायें स्वतंत्र हैं, और एकसे एक बढ़कर हैं। अध्यात्मके प्रेमी उनमें तन्मय हो जाते हैं। समयाभावके कारण हम दो चार दोहे सुनाकर ही संतोष करेंगे:—

एक रूप हिन्दू तुरुक,
दूजी दशा न कोइ।
मनकी दुविधा मानकर,
भये एकसों दोइ॥ ७॥
दोऊ भूले भरममें,
करें वचनकी टेक।
'राम राम' हिन्दू कहें,
तुरुक 'सलामालेक'॥ ८॥
इनकैं पुस्तक वांचिए,
वे हू पढ़ें कितेब।
एक वस्तुके नाम द्वय,
जैसैं 'शोभा' 'जेब'॥ ९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तिनकौं दुविधा-जे लखैं,
रंग विरंगी चाम।
मेरे नैनन देखिए,
घट घट अन्तर राम॥ १०॥
यहै गुप्त यह है प्रगट,
यह बाहर यह माहिं।
जब लग यह कछु ह्वै रहा,
तब लग यह कछु नाहिं॥ ११॥

दूसरा ग्रन्थ नाटक समयसार है। प्राकृत भाषामें भगवान् कुन्दकुन्दाचार्यका बनाया हुआ समयसार नामका एक ग्रन्थ है और उस पर अमृतचन्द्राचार्य कृत संस्कृत व्याख्यान है। नाटक समयसार इन्हीं दोनों ग्रन्थोंको आधार मानकर लिखा गया है। मूल और व्याख्यानके मर्मको समझ कर उसे इन्होंने अपने रंगमें रंगकर अपने शब्दोंमें अपने ढंगसे लिखा है। बड़ा ही अपूर्व ग्रन्थ है। इसका प्रचार भी खूब है। श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों ही सम्प्रदायोंमें इसका खूब ही आदर है। इस पर कई टीकायें भी बन चुकी हैं और उनमेंसे दो छप भी गई हैं। जो सज्जन वेदान्तके प्रेमी हैं, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे इस ग्रन्थको अवश्य ही पढ़ें। जैनधर्मके सिद्धान्तोंका जिन्हें परिचय है, वे इसे पढ़कर अवश्य प्रसन्न होंगे। इसका केवल एक ही सीधा साधा पद्य सुनाकर मैं आगे बढ़ूँगाः—

भैया जगवासी, तू उदासी ह्वैके जगतसौं,
एक छै महीना उपदेस मेरो मानु रे।
और संकलप विकलपके विकार तजि,
बैठिके एकंत मन एक ठौर आनु रे॥
तेरौ घट सर तामैं तू ही ह्वै कमल वाकौ,
तू ही मधुकर ह्वै सुवास पहिचानु रे।
प्रापति न ह्वै है कछू ऐसैं तू विचारतु है,
सही ह्वै है प्रापति सरूप यौंही जानु रे॥

भाषाकी दृष्टिसे भी इसकी रचना उच्चश्रेणीकी है। भाषापर कविको पूरा अधिकार है। शब्दोंको तोड़े-मरोड़े बिना उन्होंने उनका प्रयोग किया है। छन्दोभंगादि दोषोंका उनके ग्रन्थमें अभाव है।

तीसरा ग्रन्थ अर्धकथानक है। यह ग्रन्थ उन्हें जैनसाहित्यके ही नहीं, सारे हिन्दी साहित्यके बहुत ही ऊँचे स्थानपर आरूढ़ कर देता है। एक दृष्टिसे तो वे हिन्दीके बेजोड़ कवि सिद्ध होते हैं। इस ग्रन्थमें वे अपना ५५ वर्षका आत्मचरित लिखकर हिन्दीसाहित्यमें एक अपूर्व कार्य कर गये हैं और बतला गये हैं कि भारतवासी आजसे तीन सौ वर्ष पहले भी इतिहास और जीवनचरितका महत्त्व समझते थे और उनका लिखना भी जानते थे। हिन्दीमें ही क्यों, हमारी समझमें शायद सारे भारतीय साहित्यमें (मुसलमान बादशाहोंके आत्मचरितोंको छोड़कर) यही एक आत्मचरित है, जो आधुनिक समयके आत्मचरितोंकी पद्धति पर लिखा गया है। हिन्दी भाषाभाषियोंको इस ग्रन्थका अभिमान होना चाहिए।

अर्धकथानक छोटासा ग्रन्थ है। सब मिलाकर इसमें ६७३ दोहा-चौपाइयाँ हैं। इसमें कविने अपना विक्रम संवत् १६९८ तक का ५५ वर्षका जीवनचरित लिखा है। ग्रन्थके अन्तमें कविने लिखा है कि आजकलकी उत्कृष्ट आयुके हिसाबसे ५५ वर्षकी आयु आधी है। इसलिए इस ५५ वर्षके चरितका नाम 'अर्धकथानक' हुआ है। यदि जीता रहा और बन सका, तो मैं शेष आयुका चरित और भी लिख जाऊँगा। मालूम नहीं कविवर आगे कब तक जीते रहे और उन्होंने आगेका चरित लिखा या नहीं। जयपुरके बाबा दुलीचन्दजीने अपनी सूचीमें बनारसीपद्धति नामका ५०० श्लोकपरिमित एक और ग्रन्थका उल्लेख किया है। आश्चर्य नहीं, जो उसीमें उनकी शेषजीवनकी कथा सुरक्षित हो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्धकथानकमें कविवरने अपने जीवनकी तमाम छोटी मोटी दुखसुखकी बातोंका बहुत ही अच्छे ढंगसे वर्णन किया है जिनका पढ़नेवालों पर गहरा प्रभाव पड़ता है। उन्होंने अपने तमाम बुरे और भले कर्मोंका—गुणों और अवगुणोंका—इसमें चित्र खींचा है। वे जहाँ अपने गुणोंका वर्णन करते हैं वहाँ दुर्गुणोंका भी करते हैं। दुर्गुण भी ऐसे वैसे नहीं, जिन्हें साधारण लोग स्वप्नमें भी नहीं कह सकते हैं, उन्हें उन्होंने लिखा है। इससे उनकी महानुभावता प्रकट होती है—यह मालूम होता है कि उनका आत्मा कितना बहुत ही और संसारके मानापमानसे परे आकाशमें विहार करनेवाला था। अपनी जीवनकथासे सम्बन्ध रखनेवाली उस समयकी उन्होंने ऐसी अनेक बातोंका वर्णन किया है जो बहुत ही मनोरंजक और कुतूहलवर्द्धक हैं। मुगल बादशाहोंके राज्यमें वणिक महाजनोंको जो कष्ट होते थे, साधारण प्रजा जो कष्ट पाती थी, अधिकारी लोग जो अत्याचार करते थे, उनका वर्णन भी इसमें जगह जगह पर पाया जाता है। विक्रम संवत् १६७३ में आगरेमें प्लेग रोगका प्रकोप हुआ था, इस घटनाका भी कविने उल्लेख किया है:—

इस हीं समय ईति विस्तरी,
परी आगरे पहिली मरी।
जहाँ तहाँ सब भागे लोग,
परगट भया गांठका रोग॥ ५७४

निकसै गांठि मरैं छिन माहिं,
काहूकी बसाय कछु नाहिं।
चूहे मरैं वैद्य मर जाहिं,
भयसौं लोग अन्न नहिं खाहिं॥ ७५

बनारसीदासजी पर एक बार बड़ी विपत्ति आई थी। उनके पास एक पाई भी खर्च करनेके लिए नहीं थी। सात महीने तक वे एक कचौरीवालेकी दूकानसे दोनों वक्त पूरी कचौरी उधार लेकर खाते रहे। जब हिसाब किया, तो उसका दाम कुल १४ रुपया हुआ! अर्थात् उस समय आगरे जैसे शहरमें दो रुपये महीनेमें आदमी दोनों वक्त बाजारकी पूरी कचौरी खा सकता था। इससे उस समयके 'सुकाल' का पता लगता है। जिस समय बादशाह अकबरके मरनेका समाचार जौनपुर पहुँचा, उस समय वहाँके निवासियोंकी दशाका वर्णन कविने इस प्रकार किया है:—

इसही बीच नगरमैं सोर,
भयौ उदंगल चारिहु ओर।
घर घर दर दर दिये कपाट,
हटवानी नहिं बैठे हाट॥ ५२॥

भले वस्त्र अरु भूषन भले,
ते सब गाड़े धरती तले।
हंडवाई (?) गाड़ी कहुं और,
नगद माल निरभरमी ठौर॥ ५३॥

घर घर सबनि बिसाहे सस्त्र,
लोगन्ह पहिरे मोटे वस्त्र।
ठाढ़ौ कंबल अथवा खेस,
नारिन पहिरे मोटे वेस॥५४॥

ऊँच नीच कोऊ न पहिचान,
धनी दरिद्री भये समान।
चोरी धारि दिसै कहुं नाहिं,
योंही अपभय लोग डराहिं॥ ५५

इससे श्रोतागण उस समयके राजशासनकी परिस्थितियोंका बहुत कुछ अनुमान कर सकेंगे।

समय न रहनेके कारण मैं इस ग्रन्थका और अधिक परिचय नहीं दे सकता। जो महाशय अधिक जानना चाहते हों, वे मेरे द्वारा सम्पादित बनारसीविलासके प्रारंभमें इस ग्रन्थका विवरण पढ़नेका कष्ट उठावें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यद्यपि इस ग्रन्थकी रचना नाटकसमयसार जैसी नहीं है, तो भी विषयके लिहाजसे वह खासी है। कहीं कहींका वर्णन बड़ा ही स्वाभाविक और हृदयस्पर्शी है । अपने भाई घनमलकी मृत्युका शोक कविने इस प्रकार वर्णन किया है:—

घनमल घनदल उड़ि गये,
काल-पवन-संजोग ।
मात पिता तरुवर तए,
लहि आतप सुत-सोग ॥ १९

जब कविवर एक बड़ी बीमारीसे मुक्त होकर ससुरालसे घर आये तब—

आय पिताके पद गहे,
मा रोई उर ठोंकि ।
जैसे चिरी कुरीजकी,
त्यौं सुत दशा विलोकि ॥ १९४ ॥

एक बार परदेशमें कवि अपने साथियोंके साहित कहीं ठहरे कि इतनेमें मूसलधार पानी बरसने लगा । तब भागकर सरायमें गये, पर वहाँ जगह न मिली, कोई उमराव ठहरे हुए थे; बाजारमें खड़े होनेको जगह न थी, सबके किवाड़ बन्द थे । उस समयका चित्र कविवर इस तरह खींचते हैं:—

फिरत फिरत फावा भये,
बैठन कहै न कोइ ।
तलै कीचसौं पग भरें,
ऊपर वरसत तोइ ॥ ९४ ॥
अंधकार रजनी विषैं,
हिमरितु अगहन मास ।
नारि एक बैठन कह्यौ,
पुरुष उठ्यौ लै बाँस ॥ ९५ ॥

बनारसीदास अपने दूसरे पुत्रकी मृत्युका उल्लेख इन शब्दोंमें करते हैं —

बानारसिके दूसरो, भयौ और सुत-कीर ।
दिवस कैकुमैं उड़ि गयौ, ताजि पींजरा सरीर ॥

चौथा ग्रन्थ नाममाला हिन्दीका दोहाबद्ध कोश है । इसे हमने अभीतक देखा नहीं है, पर खोजनेसे यह मिल सकता है । कविवरका एक और ग्रंथ शृंगाररसकी रचनाओंका संग्रह था जिसे उन्होंने स्वयं जमुनामें बहा दिया था। उन्हें इस विषयसे घृणा होगई थी और यही कारण था जो उन्होंने उसका आस्तित्व ही न रहने दिया ।

२ कल्याणदेव। ये श्वेताम्बर साधु जिनचन्द्र सूरिके शिष्य थे। इनके बनाये हुए 'देवराज बच्छराज चउपई' नामक एक ग्रन्थकी हस्तलिखित प्रति हमें श्रीमान् यति माणिकचन्द्रजीकी कृपासे प्राप्त हुई है । संवत् १६४३ में यह ग्रन्थ विक्रम नामक नगरमें रचा गया है । इसमें एक राजाके पुत्र बच्छराज और देवराजकी कहानी है । बच्छराज बड़ा था, परन्तु मूर्ख था, इस कारण राज्य देवराजको मिला । बच्छराज्य घरसे निकल गया, पीछे अनेक कष्ट सहकर और अपनी उन्नति करके आया । भाईने बहुत सी परीक्षायें लीं । अन्तमें बच्छराज उत्तीर्ण हुआ और आधे राज्यका स्वामी हो गया । रचना साधारण है । भाषामें गुजरातीका मिश्रण है और यह बात श्वेताम्बर सम्प्रदायके हिन्दी साहित्यमें अक्सर पाई जाती है । नमूना—

जिणवर चरणकमल नमी,
सुह गुरु हीय धरेसि ।
समरयां सवि सुख संपजइ,
भाजइ सयल कलेसि ॥ १

बुद्धइ घणसुख पाइए,
बुद्धइ लहिए राज ।
बुद्धइ आति गरुअउपणउ,
बुद्धि सरइ सवि काज ॥ २

विद्याधर कुल ऊपनी,
सुरवेगा अभिधान ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राजानी अति मानिता,
वनितामाहिं प्रधान ॥ ७६ ॥
संवत सोल त्रयाला वरसिइ,
एह प्रबन्ध कियउ मन हरसिहि।
विक्रम नयरइ रिषभ जिणेसा, जसु
समरण सवि टलइ किलेसा ॥८४॥

३ मालदेव । ये बड़गच्छीय भावदेवसूरिके शिष्य थे। साधारणतः ये 'माल' के नामसे प्रसिद्ध हैं। अपने ग्रन्थोंमें भी ये 'माल कहइ' या 'माल भणइ' इस तरह अपना उल्लेख करते हैं। इनके बनाये हुए दो ग्रन्थ उपलब्ध हैं, एक 'भोज-प्रबन्ध' और दूसरा 'पुरन्दरकुमरचउपई'। 'पुरन्दरकुमरचउपई' विक्रम संवत् १६५२ का बना हुआ है। यह ग्रन्थ श्रीयुत मुनि जिनविजय-जीके पास है। इसके विषयमें आप अपने पत्रमें लिखते हैं कि "यह पुरन्दर कुमर चउपई ग्रन्थ हिन्दीमें है (गुजरातीमें नहीं)। इसे मैंने आज ही ठीक ठीक देखा है। रचना अच्छी और ललित है। जान पड़ता है 'माल' एक प्रसिद्ध कवि हो गया है। गुजरातीके प्रसिद्ध कवि ऋषभदासने अपने 'कुमारपाल रास' में जिन प्राचीन कवियोंका स्मरण किया है, उनमें मालका नाम भी है। वह 'माल' और कोई नहीं किन्तु 'भोज-प्रबन्ध' और 'पुरंदर चउपई' का कर्त्ता ही होना चाहिए। 'पुरंदर चउपई' का आदि और अन्तिमभाग यह है:—

आदिः—

वरदाई श्रुत देवता,
गुरु प्रसादि आधार।
'कुमर-पुरंदर' गाइस्यूं,
सीलवंत सुविचार ॥
नरनारी जे रसिक ते,
सुणियहु सब चितु लाइ।
ठूंठ न कब हि घुमाइयहिं,
विना सरस तरु नाइ ॥
सरस कथा जइ होई तौ,
सुणइ सविहि मन लाइ।
जिहाँ सुवास होवहि कुसुम,
सरस मधुप तिहाँ जाइ ॥

अंतः—भावदेवसूरि गुणनिलउ,
वडगछ-कमल-दिणंद।
तासु सुसीस शिष्य (?) कहइ,
मालदेव आनंद ॥"

ये लोग सिन्ध और पंजाबके मध्यमें रहा करते थे। ऐसा सुना गया है कि भावदेवसूरिके उपाश्रय अब भी बीकानेर राज्यके 'भटनेर' और 'हनुमानगढ़' नामक स्थानोंमें हैं।"

दूसरा ग्रन्थ 'भोजप्रबन्ध' उक्त मुनि महोदयने मेरे पास भेज देनेकी कृपा की है। इसकी प्रतिमें शुरूके दो पत्र, अन्तका एक पत्र और बीचके २०से २४ तकके पृष्ठ नहीं हैं। पद्यसंख्या १८०० है। इसमें तीन सम्बन्ध या अध्याय हैं। पहलेमें भोजके पूर्वजोंका, भोजके जन्मका और वररुचि धनपालादि पण्डितोंकी उत्पत्तिका वर्णन है, दूसरेमें परकायाप्रवेश, विद्याभ्यास, देवराजपुत्र-जन्म, और मदनमंजरीका विवाह तथा तीसरेमें देवराज बच्छराज विदेशगमन और भानुमतीके समागमका वर्णन है। यद्यपि यह प्रबन्ध—चिन्तामणि तथा बल्लालके भोजप्रबन्ध आदिके आधारसे बनाया गया है; तथापि इसकी रचना स्वतंत्र है। 'कविरनुहरतिच्छायां' के अनुसार उक्त ग्रन्थोंकी छाया ही ली गई है। भाषा प्रौढ है; परन्तु उसमें गुजरातीकी झलक है और अपभ्रंश शब्दोंकी अधिकता है। वह ऐसी साफ नहीं है जैसी उस समयके बनारसीदासजी आदि कवियोंकी है। कारण, कवि गुजरात और राजपूतानेकी बोलियोंसे अधिक परिचित था। वह प्रतिभाशाली जान पड़ता है। कोई कोई पद्य बड़े ही चुभते हुए हैं:—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भलउ हुअउ जइ नीसरी,
अंगुलि सप्पिं-मुहाहु।
ओछे सेती प्रीतड़ी,
जदि तुट्टइ तदि लाहु ॥ ९१ ॥

सिन्धुल लौटकर जब राजा-मुंजके समीप आया, तब मुंज कपटकी हँसी हँसकर उसके गलेसे लिपट गया। इसको लक्ष्य करके कवि कहता हैः—

धूरत राजा मुंज पणि,
मिल्लउ उठि गलि लागि।
को जाणइ घन दामिनी,
जल महिं आछइ आगि ॥ १२० ॥
घणु वरसइ सीयल सलिल,
सोई मिलि हइ विज्जु।
गरुयहँ तूसइँ जीवयइ,
रूठइँ विणसइ कज्ज ॥ १२१ ॥

तैलिपदेवकी लड़ाईमें हार कर राजा मुंज भागा और एक गाँवमें आया, उस समयका कविने बड़ा ही सजीव वर्णन किया हैः—

वनतें वन छिपतउ फिरउ,
गव्हर वनहँ निकुंज।
भूखउ भोजन माँगिवा,
गोवलि आयउ मुंज ॥ २४७ ॥
गोकुलि काई ग्वारिनी,
ऊँची बइठी खाटि।
सात पुत्र सातइ बहू,
दही बिलोवहिं माँटि ॥ ४८ ॥
काढ़हिं दूध कहुं केइ मिलि,
माखणु काढ़हिं केइ।
केइ पधारहि घीउ तहँ,
जिसु भावइ तिसु देइ ॥ ४९ ॥
गाइ वाछरू कट्टरू,
महिषी अंगणि देखि।
खाजइ पीजइ विलसियइ,
गरव करइ सुविसेखि ॥ ५० ॥

१ सर्पके मुँहसे। २ है। ३ मिट्टीके वर्तनमें।

जिस समय मृणालवतीके विश्वासघात करनेसे फिर मुंज पकड़ा गया और बड़ी दुर्दशाके साथ नगरमें घुमाया गया, उस समय मुंजके मुँहसे कविने कई बड़े मार्मिक दोहे कहलवाये हैंः—

खंडित घृतबिंदू मिसेइँ,
रे मडंका मत रोइ।
नारी कउण न खंडिया,
मुंज इलापति जोइ ॥ ७ ॥
मिसिन अन्न तूं वाफके,
अगनि आंचि मत रोइ।
अगिनि विना हउँ दाझियइँ,
भसम कियउ किन जोइ ॥ ११ ॥
सालि मुसलि तूं ताडियउ,
तुस कपडा लिय छीनि।
दासि कटाच्छहिं मारियउ,
कीयउ हउँ सबहीन ॥ १२ ॥

इस ग्रन्थकी यह बात नोट करने लायक है कि इसमें हिन्दीके दोहोंको 'प्राकृतभाषा दोहा' लिखा है। मालूम होता है उस समय हिन्दी उसी तरह प्राकृत कहलाती होगी जिस तरह बम्बईकी ओर इस समय मराठी 'प्राकृत' कहलाती है।

इस ग्रन्थमें बहुतसे श्लोक 'उक्तं च' कहकर लिखे गये हैं, जिनमें बहुतोंकी भाषा अपभ्रंशसे बहुत कुछ मिलती हुई है। यथाः—

दुज्जण जण बंबूलवण,
जइ सिंचइ अमिएण।
तोइ सु कांटा बींधणा,
जातडि तणइ गुणेण ॥

इसमें बहुतसे पदोंकी ढालें लिखी हुई हैं, जैसे 'मृगांकलेखा चउपईकी ढाल'। इन दोनों बातोंसे यह अनुमान होता है कि इस ग्रन्थसे पहले पुरानी हिन्दीके अनेक ग्रन्थ रहे होंगे जिनसे उक्त 'उक्तं च' लिये गये हैं और

१ मिषसे। २ मटका–मिट्टीका वर्तन। ३ मुझे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिनकी ढालोंका अनुकरण किया गया है। मृगांकलेखाकी कथा श्वेताम्बर सम्प्रदायमें बहुत प्रसिद्ध है। अतएव 'मृगांकलेखाकी चउपई' कोई जैनग्रन्थ ही था।

४ हेमविजय। ये अच्छे विद्वान् और कवि थे। सुप्रसिद्ध आचार्य हीरविजयसूरिके शिष्योंमेंसे थे। इन्होंने विजयप्रशस्ति महाकाव्य और कथा-रत्नाकर आदि अनेक संस्कृत ग्रथोंकी रचना की है। हिन्दीमें भी इनकी छोटी छोटी रचनायें मिलती हैं। ये आगरा और दिल्ली तरफ बहुत समय तक विचरण करते रहे थे, इस लिए इन्हें हिन्दीका परिचय होना स्वाभाविक है। इन्होंने हीरविजयसूरि और विजयसेनसूरि आदिकी स्तुतिमें छोटे छोटे बहुतसे हिन्दी पद्य बनाये हैं। तीर्थंकरोंकी स्तवनाके भी कुछ पद रचे हुए मिलते हैं। नमूनेके तौर पर नेमिनाथ तीर्थंकरके स्तुतिपद्यको देखिए।

घनघोर घटा उनयी जु नई,
इततैं उततैं चमकी बिजली।
पियुरे पियुरे पपिहा बिललाति जु,
मोर किंगार (?) करंति मिली।
बिच बिंदु परें दृग आँसु झरें,
दुनि धार अपार इसी निकली।
मुनि हेमके साहिब देखनकूं,
उग्रसेन लली सु अकेली चली।
कहि राजिमती सुमती सखियानकूं,
एक खिनेक खरी रहुरे।
सखिरी सगरी अंगुरी मुही बाहि
कराति (?) बहुत (?) इसे निहुरे।
अबही तबही कबही जबही,
यदुरायकूं जाय इसी कहुरे।
मुनि हेमके साहिब नेमजी हो,
अब तोरनतें तुम्ह क्यूं बहुरे।

५ रूपचन्द। ये कविवर बनारसीदासजीके समय आगरेमें हुए हैं। बनारसीदासजीने अपने आत्मचरितमें और नाटकसमयसारमें इनका उल्लेख किया है और इन्हें बहुत बड़ा विद्वान् बतलाया है। ये जैनधर्मके अच्छे मर्मज्ञ थे। आध्यात्मिक पाण्डित्य भी इनमें अच्छा था, यह बात इनके 'परमार्थी दोहाशतक' और पदोंके देखनेसे जान पड़ती है। परमार्थी दोहाशतकको हमने पाँच छह वर्ष पहले जैनहितैषीमें प्रकाशित किया था। बड़े ही अच्छे दोहे हैं। उदाहरणः—

चेतन चित् परिचय बिना,
जप तप सबै निरत्थ।
कन बिन तुस जिमि फटकतैं,
आवै कछू न हत्थ।
चेतनसौं परिचय नहीं,
कहा भये व्रतधारि।
सालि बिहूनैं खेतकी,
वृथा बनावत वारि॥
बिना तत्त्वपरिचय लगत,
अपरभाव अभिराम।
ताम और रस रुचत हैं,
अमृत न चाख्यौ जाम॥
भ्रमतैं भूल्यौ अपनपौ,
खोजत किन घटमाहिं।
विसरी वस्तु न कर चढ़ै,
जो देखै घर चाहिं।
घट भीतर सो आपु है,
तुमहिं नहीं कछु यादि।
वस्तु मुठीमैं भूलिकै,
इत उत देखत वादि॥

प्रत्येक दोहेके पूर्वार्धमें एक बात कही गई है और उत्तरार्धमें वह उदाहरणसे पुष्ट की गई है। सबके सब दोहे इसी प्रकारके हैं। इनमें परमार्थका या आत्माका तत्त्व बड़ी ही सुंदरतासे समझाया गया है।

'गीत परमार्थी' नामका ग्रन्थ भी आपका बना हुआ है, जो अभी तक उपलब्ध नहीं है। हमने एक 'परमार्थ जकड़ीसंग्रह' नामकी पुस्तक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छपाई है, उसमें आपके बनाये हुए छह पद संग्रहीत हैं। जान पड़ता है, ये उसी 'गीतपरमार्थी'के गीत या पद होंगे। इनमें भी परमार्थ तत्त्वका कथन है। एक गीतका पहला पद सुनिए:—

चेतन, अचरज भारी,
यह मेरे जिय आवै।
अमृतवचन हितकारी,
सदगुरु तुमहिं पढ़ावै॥
सदगुरु तुमहिं पढ़ावै चित दै,
अरु तुमहू हौ ज्ञानी।
तबहू तुमहि न क्योंहू आवै,
चेतनतत्त्वकहानी॥
विषयनिकी चतुराई कहिए,
को सरि करै तुम्हारी।
विन गुरु फुरत कुविद्या कैसै,
चेतन अचरज भारी॥

आपका एक छोटासा काव्य 'मंगलगीत-प्रबन्ध' जैनसमाजमें बहुत ही प्रचलित है। 'पंचमंगल'के नामसे यह पाँच छह बार छप चुका है। इसमें तीर्थंकर भगवानके जन्म, ज्ञान, निर्वाण आदिके समय जो उत्सवादि होते हैं उनका साम्प्रदायिक मानताओंके अनुसार वर्णन है। रचना साधारण है।

६ रायमल्ल। ये भट्टारक अनन्तकीर्तिके शिष्य थे। इनका बनाया हुआ एक 'हनुमच्चरित्र' नामका पद्यग्रन्थ है। यह विक्रम संवत् १६१६ में बनाया गया है। यह ग्रन्थ हमें मिल नहीं सका, इस लिए इसकी रचना किस दर्जे की है, यह हम नहीं कह सकते। हमारे एक मित्रने इसकी कविताको साधारण बतलाया है। कविवर बनारसीदासजीने जिन रायमल्लजीका उल्लेख किया है, मालूम नहीं वे येही थे अथवा इनसे भिन्न। बनारसीदासजीने लिखा है कि पाण्डे "रायमल्लजी 'समयसार नाटक' के मर्मज्ञ थे, उन्होंने समयसारकी बालावबोधिनी भाषा टीका बनाई जिसके कारण समयसारका बोध घर घर फैल गया।" यह बालावबोध टीका अभी तक उपलब्ध नहीं हुई है। मालूम होता है यह बनारसीदासजीके बहुत पहले बन चुकी थी। उनके समय इसका खासा प्रचार था। अवश्य ही यह पंद्रहवीं शताब्दीकी रचना होगी और भाषाकी दृष्टिसे एक महत्त्वकी वस्तु होगी।

एक और रायमल्ल ब्रह्मचारी हुए हैं जिन्होंने संवत् १६६७ में 'भक्तामरकथा' नामका संस्कृत ग्रन्थ बनाया है। ये सकलचन्द्र भट्टारकके शिष्य थे और हूमड़जातिके थे। मालूम होता है भविष्यदत्तचरित्र (छन्दोबद्ध) और सीताचरित्र (छन्दोबद्ध) नामक ग्रन्थ भी इन्हींके बनाये हुए हैं। इनमेंसे पहला ग्रन्थ सं० १६६३ में बना है, ऐसा ज्ञानचन्दजीकी सूचीसे मालूम होता है।

७ कुँवरपाल। ये बनारसीदासजीके एक मित्र थे। युक्तिप्रबोधमें लिखा है कि बनारसीदासजी अपनी सैलीका उत्तराधिकारत्व इन्हींको सोंप गये थे। प्रवचनसारकी टीकामें पाँड़े हेमराजजीने इनको अच्छा ज्ञाता बतलाया है। ये कवि भी अच्छे जान पड़ते हैं। इनका कोई स्वतंत्र ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है; परन्तु बनारसीदासकृत सूक्तमुक्तावलीमें इनके बनाये हुए कुछ पद्य मिलते हैं। लोभकी निन्दाका एक उदाहरण:—

परम धरम वन दहै,
दुरित अंबर गति धारहि।
कुयश धूम उदगरै,
भूरि भय भस्म विथारहि॥
दुख फुलिंग फुंकरै,
तरल तृष्णा कल काढ़हि॥
धन ईंधन आगम सँजोग
दिन दिन अति बाढ़हि॥
लहलहै लोभ-पावक प्रबल,
पवन मोह उद्धत वहै॥
दज्झहि उदारता आदि बहु,
गुण पतंग 'कँवरा' कहै॥ ५९॥

(अपूर्ण।)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सभापतिका व्याख्यान ।

[लखनऊमें गत २७ दिसम्बरको भारत–जैन–महामण्डलके सभापति श्रीयुत बाबू माणिक्यचन्द्र जैन बी. ए. एल एल. बी. वकील, खण्डवाका जो महत्त्वपूर्ण व्याख्यान हुआ उसका सार भाग । अवश्य पठनीय ।]

प्रिय प्रतिनिधिगण महिलाओ तथा महाशयो,

आपने मुझे इस बड़ीभारी कान्फरन्सका–ऐसी कान्फरन्सका–जो किसी जाति अथवा संप्रदायविशेषकी न होते हुए एक उस समग्र कौमकी कान्फरंस है, जो कौम संसारके इतिहासमें एक विशाल तथा प्रशस्त भाग लेनेवाले धर्मकी तथा जो मनुष्यजातिको भविष्यमें सदा सुखका देनेवाला रहेगा ऐसे धर्मकी–धारण करनेवाली है, ऐसी संपूर्ण कौमकी इस कान्फरन्सका सभापति चुनकर आपने मुझको बड़ा सम्मान प्रदान किया है, इसके लिए मैं आपको अंतःकरणसे धन्यवाद देता हूं ।

++प्रिय प्रतिनिधिगण, संसारके धार्मिक इतिहासमें हमारे धर्महीने नहीं, हमारी कौमने भी जातियोंके इतिहासमें बहुत बड़ा भाग लिया है । इतिहास हमारे पूर्व गौरवकी साक्षी दे रहा है । प्राचीनकालमें हमारी कौममें बड़े बड़े नृपति, मंत्री तथा सेनापति, विशाल संपत्तिके स्वामी, बड़े बड़े कवि, लेखक तथा धुरंधर विद्वान् होगये हैं, जिन्होंने संसारभरमें जैनधर्म तथा जैनजातिके महत्त्वको स्थापित किया था । हमको पश्चिमके विद्वानोंका कृतज्ञ होना चाहिए कि जिनके निःस्वार्थ उद्योगसे हमारा प्राचीन गौरव सिद्ध होता जाता है । कुछ समय पहले यह माना जाता था कि जैनधर्म बौद्धधर्मकी एक शाखा है तथा ईसाके बाद अनुमान छठवीं सदीमें इसकी उत्पत्ति हुई है, किन्तु जैकोबी तथा बूलरके समान पुरातत्त्वके पाश्चात्य शोधकोंके परिश्रमसे यह मत असत्य सिद्ध हो गया है । जैनधर्मकी केवल ऐतिहासिक प्राचीनता ही नहीं वरन् उसके सिद्धान्तोंकी सत्यता संसारके विचारवान् पुरुष स्वीकृत करते जा रहे हैं । जैनधर्मके लिए यह गौरवकी बात है कि यह एक ऐसा धर्म है कि जिसके सिद्धांत विज्ञानकी नईसे नई शोधोंसे मिलते जुलते हैं । वनस्पतियोंमें मनोवृत्तियां, चेतना तथा भावोंका होना जो आज अध्यापक बोस सिद्ध कर रहे हैं उसकी शोध हमारे आचार्योंने सदियों पहले कर ली थी, जब अर्वाचीन विज्ञानका जन्म भी नहीं हुआ था । यह उचित कहा गया है कि जैनधर्म ही एक ऐसा धर्म है जिसमें व्यावहारिक नीतिका दार्शनिक वितर्कोंके साथ गूढ़ सम्बन्ध किया गया है; अर्थात् जिसमें ज्ञान और चारित्रका ऐक्य किया गया है ।* स्टोइज़िज़्म (Stoicism)के विषयमें कहा जाता है कि उसकी श्रेष्ठता उसके चारित्रके नियमोंमें नहीं परन्तु विकारोंको दमन करनेके उसके सिद्धांतमें विद्यमान थी, किन्तु जैनधर्मके विषयमें हम कह सकते हैं कि उसकी श्रेष्ठता दोनोंमें विद्यमान है । इसीलिए तो देखनेमें आता है कि चारित्रमें जैनी अन्य धर्मोंकी धारक कौमोंसे प्रायः श्रेष्ठ होते हैं । जैनधर्मके लिए यह गौरवकी बात है कि यद्यपि और धर्मोंके समान उसके अनुयायियोंको भी जुल्म सहन करना पड़ा है, परन्तु और धर्मोंके समान उसके अनुयायियोंने बदला लेनेकी इच्छासे किसी अन्य धर्मकी धारक कौमके साथ जुल्म नहीं किया । यह उसके ऊँचे सिद्धान्तोंका परिणाम है और इसका उसे उचित गर्व है । एक लेखकका§ कथन

* Mrs. Sinclair Stevenson.

§ Mr. Bernard Bosanquet.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है कि, 'यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं कि मुसलमानोंके जुल्मसे जैनियोंके मंदिर बच गये, परन्तु आश्चर्य तो इस बातका है कि जिस तूफानने बौद्धधर्मको भारतवर्षसे एकदम बाहर कर दिया उस तूफानसे जैनधर्म नष्ट होनेसे कैसे बच गया।' महाशयो, यह हमारे धर्मकी दृढ़ताका प्रमाण तथा परिणाम है। जैनधर्म ईश्वरप्रणीत होनेका दावा नहीं करता, न वह आज्ञा-प्रधान धर्म है; वह बुद्धिकी प्रधानता स्वीकार करता है तथा उसके सिद्धान्तोंकी सत्यता ही उसके दावेका आधार है। जैनधर्महीने पहले पहल संसारको समस्त जीवोंके प्रति दया करने तथा विश्वबंधुत्व व सार्वभौमप्रेमका उपदेश किया था। एक प्रसिद्ध अँगरेज़का † कथन है कि विश्व-दया (Universal Humanity)का विचार अर्वाचीन है,परन्तु वास्तवमें इस धर्मका उपदेश जैनधर्मने सदियों पहले किया था। हमारे आचार्योंने उपदेश किया है कि:—

" एक्कु करे मण विण्णु करि,
मां करि वण्णविसेसु।
इक्कइं देवइं जि वसइ,
तिहुयणु एहु असेसु॥ " §

महाशयगण, प्रसिद्ध लेखक लेकीका कथन है कि प्लूटार्कहीने पहले पहल पशुओंके प्रति दया करनेका उपदेश–पाइथेगोरसके पुनर्जन्मके सिद्धांतके आधार पर नहीं, किन्तु विश्व–बन्धुत्वके विस्तृत आधारपर—किया था; परन्तु लेकीको यह विदित नहीं कि हमारे तीर्थंकरोंने प्लूटार्कसे सदियों पहले यही उपदेश मनुष्यजातिको दिया था। जैनधर्मका उद्देश ही समस्त जीवोंकी मुक्ति करानेका है। परन्तु, महाशयो, इतना होते हुए भी कुछ लोगोंका कथन है कि, " जैनधर्म अहिंसा तत्त्वकी एक हास्यरूप अतिशयोक्तिका उपदेशक है। "* कुछ लोग हमें इस बातका दोष देते हैं कि हमने " अहिंसापरमो धर्मः " के तत्त्वका दुरुपयोग करके उसकी अति कर डाली है जिसका यह परिणाम है कि हम विषयोन्मत्त (Monomaniacs) तथा डरपोक हो गये हैं, व दांभिकता (hypocrisy) अर्थात् मक्र, अपौरुषता व निर्दयताका जीवन व्यतीत करते हैं। " कुछ लोग कहते हैं कि महावीर स्वामीके जीवनकी घटनायें हमने बुद्धके चरित्रसे चुरा ली हैं। इतना ही नहीं बरन् हमहीमें कुछ लोग ऐसे विद्यमान हैं जो कहते हैं कि जैनधर्मका ध्येय भौतिक उन्नतिका बाधक है तथा जैनधर्म ही भारतकी वर्तमान अधोगतिका कारण है। महाशयो, मेरे पास समय नहीं है कि इस अवसर पर मैं इन सब आक्षेपोंका उत्तर दूं। मैं केवल इतना ही कहूंगा कि वे जैनधर्मके संबंधमें उतना ही ज्ञान रखते हैं जितना कि मेंडक कुएके बाहरकी दुनियांका रखता है, अन्यथा ऐसे विचार वे कदापि प्रकट नहीं करते। जिस लेखिकाका यह कथन है कि जैनधर्मका हृदय शून्य है तथा जिसे वह ईसाई धर्मके रक्तसे भरके उसमें जीवन लानेकी सम्मति देती है उससे मैं यही कहूंगा कि जिसे वह जैनधर्मका हृदय समझती है वह जैनधर्मका हृदय नहीं, किन्तु उसका मृतप्राय शरीर है। जैनधर्मका हृदय उसकी 'वर्तमान स्थिति तथा वर्तमान व्यवहारों' में नहीं है किन्तु वह उसकी ऊँची फिलासफी तथा नीतिमें विद्यमान है। स्वर्गवासी श्रीयुत गांधीने ठीक कहा है कि, " The abuses existing in our society are not *from* our religion but *in spite* of our religion,"— अर्थात् जैन जातिमें जो वर्तमान कालमें बुराइयां देखनेमें आती हैं उनका कारण जैनधर्म नहीं है, परन्तु वे जैनधर्मके विपरीत हैं। ईसाई धर्मके लिए वर्तमान युद्धकी ओर तथा उसके नित्य-नरकके सिद्धांतकी ओर संकेत कर देना पर्याप्त होगा।

---

§ परमात्मप्रकाश, गाथा २३४.

* Mrs. Sinclair Stevenson.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक विचार-शील लेखकने उचित कहा है कि "यदि ईसाई धर्म पूर्ण नैतिक शुद्धताका मत है तो फिर इसका क्या कारण है कि उसका अधिकता तथा गुरुताके साथ इस प्रकार मिथ्या अर्थ समझा गया है कि उसके अनुयायियोंमें उसके लिए जो उत्साह है उसीने उन नैतिक सिद्धान्तोंका जिनका वह उपदेश करता है नाश किया है। इतिहासके पढ़ते समय धार्मिक हठ तथा जुल्मका भाव जिसका आधार प्रायः शुद्धांतःकरणसे ईश्वरीय आज्ञा बताया जाता है उसे देख प्रायः उलझनमें पड़ना पड़ता है।" अतएव महाशयगण, हमारे धर्मके ऊपर जो आक्षेप किये जाते हैं वे प्रायः मिथ्या हैं, और हमें उनके प्रति अधिक ध्यान देनेकी आवश्यकता नहीं। यदि अब भी हमारे धर्मकी पच्चीस सौ वर्ष पहलेकी विद्यमानता स्वीकृत नहीं की जाती तो न सही। प्राचीन होनेसे ही कोई धर्म श्रेष्ठ नहीं होजाता। स्वामी रामतीर्थने उचित कहा है कि, "किसी धर्मको प्राचीन होनेहीके कारण ग्रहण मत करो। प्राचीनता उसकी सत्यताको कोई प्रमाण नहीं। कभी कभी पुरानेसे पुराने मकान भी गिराने पड़ते हैं तथा पुराने कपड़े बदलने ही चाहिए। नयेसे नया परिवर्तन भी यदि वह बुद्धिकी परीक्षामें सफल हो सकता है तो वह उतना ही अच्छा है जितना कि चमकते हुए ओससे सुशोभित गुलाबका फूल," अतएव, महाशयो, हमें इस प्रकारके आक्षेपोंकी ओर अधिक ध्यान न देकर हमें अपनी शक्तिको अपनी कौमके उत्थान तथा अपने धर्मके प्रचारकी ओर लगाना चाहिए। + + महाशयो, जयपूर निवासी पंडित अर्जुनलालजी सेठीने हमारी जातिकी सेवाके लिए अपना जीवन तक अर्पण कर दिया था, और उन्होंने कौमकी जो सेवा की है वह सब पर प्रकट है। उसको जानते हुए कौन कह सकेगा कि उनका संबन्ध चोरी, लूट तथा खून खराबीके समान घृणित कार्योंके साथ हो सकता है? उनका जीवन धार्मिक था, तथा शिक्षा व धर्मप्रचार उनके कार्यक्षेत्र थे। ऐसे व्यक्तिको केवल संदेहके कारण विना जाँच किये दंड देना सर्वथा अनुचित है। अनुमान ढाई तीन वर्षसे वे कारावासका दण्ड भोग रहे हैं। इस प्रकारका जो वर्ताव उनके साथमें किया गया है उसके प्रति जैन कौममें भारी क्रोध तथा तिरस्कारका भाव पैदा हो गया है और यह स्वाभाविक ही है। प्रिय प्रतिनिधिगण, इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि अर्जुनलालजीके तथा उनकी निरपराध स्त्री तथा पुत्रके दुःखको देख हमको हार्दिक दुःख हो। माना कि प्रत्येक महापुरुषको दुःख भोगना पड़ता है, और दुःख सहना ही महापुरुषका लक्षण है; माना कि सार्वजनिक जीवनके माने ही स्वार्थत्यागके हैं, अतएव हमको अधिक उदासीन न होना चाहिए; माना कि सेठीजी अपने दुःखको सहर्ष सहन कर रहे होंगे; तौ भी मैं पूछता हूं कि क्या इसलिए उनके दुखको दूर करानेका हमारा जो कर्तव्य है उसका हमें पालन न करना चाहिए? आप मुझे क्षमा कीजिए—कर्तव्यके अनुरोधसे मुझे कहना पड़ता है कि सेठीजीकी आपत्तिका मुझे इतना खेद नहीं है जितना इस बातका है कि जैनजातिने, जिसकी सेवाके लिए उन्होंने अपना जीवन अर्पण किया था, उनके दुःखको दूर करनेके लिए उचित प्रयत्न न किया। मेरे कहनेका अर्थ, महाशयो, आप यह न समझें कि जैन कौमने कुछ न किया। उद्योग तो अवश्य किया, परन्तु वह उद्योग व्यवस्थित (organised) न होनेके कारण तथा जातिके अधिकांश नेताओंके उसमें उचित भाग न लेनेके कारण सफल न हुआ। मुझे यह जानकर बहुत दुःख हुआ कि एक दिगंबर सामायिक पत्रके सेठीजीके विचारोंके प्रति विना अवसरके लेखोंने दिगंबर समाजका भाव उनके बहुत कुछ विपरीत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर दिया। इस पत्रने जान बूझकर अथवा बिना जाने अर्जुनलालजीके मतका खंडन करनेके बहाने हमारे दिगंबरी भाइयोंके मनमें उनके प्रति बहुत कुछ विष भर दिया। एक ऐसी संस्थामें शिक्षा पाये हुए—जो आदर्श शिक्षा देनेका दम भरती है—इस पत्रके संपादकको इतना विचार तक न हुआ कि ऐसे अवसरमें इस प्रकारके लेखोंका बुरा प्रभाव होगा और सेठीजीके प्रति 'करुणा भाव' केवल नामके लिए रह जायगा। परन्तु भाइयो, हमें अब यह विचार करना चाहिए कि सेठीजीको किस प्रकार न्याय मिले। जैन कौम यह नहीं कहती कि पंडित अर्जुनलालजी अपराधी हैं अथवा निरपराधी; वह यही कहती है कि किसी भी व्यक्तिको बिना जाँचके दण्ड देना अन्याय है—किसी भी व्यक्तिको अपना बचाव न्यायालयमें करनेका अवसर न देना अन्याय है। हम सेठीजीके लिए गवर्नमेंटसे दयाकी भिक्षा नहीं माँगते, हम उनके लिए न्यायका दावा करते हैं। बृटिशजातिकी न्यायबुद्धिमें भारतवासियोंका जो विश्वास है वह भारतमें बृटिश शासनका एक आधार है। कोई भी कार्य ऐसा करना कि जिससे यह आधार कमज़ोर हो जावें अथवा उपयोगिता (Expediency) के निमित्त उस विश्वासकी आहुति दे देना एक प्रकारसे बृटिशराज्यको हानि पहुँचाना है, अतएव हमारे शासकोंको उचित है कि वे शीघ्र ही सेठीजीको न्याय प्राप्त करावें। परन्तु जान पड़ता है कि हमारे शासक इन बातोंकी ओर ज़रा भी ध्यान दिया नहीं चाहते। ऐसी दशामें हमको क्या करना चाहिए? सभायें करना, विरोध-प्रदर्शक सभायें करना, तार देना, प्रार्थनापत्र भेजना—ये काम हमने थोड़े बहुत किये। हमने बड़े लाटकी सेवामें डेप्युटेशन भेजनेकी योजना की थी, पर उन्होंने डेप्युटेशनसे मिलना ही स्वीकृत न किया। तब ऐसी दशामें प्रश्न यह होता है कि हमको क्या करना चाहिए? इसका संक्षिप्त उत्तर एक ही शब्दमें यह है कि 'आन्दोलन'—नियमबद्ध आंदोलन। इस कथनकी सत्यतामें सन्देह नहीं कि—"आन्दोलन ही इंगिलस्तानके सामाजिक, राजनैतिक तथा औद्योगिक इतिहासकी आत्मा है। आन्दोलनहीके सहारे अँगरेज़ोंने अपना अभ्युदय अपनी स्वतंत्रता तथा संसारकी जातियोंमें पहला स्थान इत्यादि बड़े बड़े कार्योंका संपादन किया है।" इसलिए हमें सेठीजीके लिए न्याय दिलानेके अर्थ पुनः आंदोलन करना चाहिए। परन्तु, महाशयो, यह कहा जा सकता है कि ऐसे युद्धके समयमें एक ऐसे विषयके लिए जिसका संबन्ध गवर्नमेंट और देशी रियासतोंके रिश्तेके साथ है आंदोलन करना गवर्नमेंटको आपत्तिकारक (Embarrasing) होगा। तब क्या हमें युद्धका अंत होने तक कुछ न करना चाहिए तथा सेठीजीको कष्ट भोगते हुए अपना लाभकारी जीवन कारावासमें बिताने देना चाहिए? यह कौन कह सकता है कि युद्धका अंत कब होगा। मेरी सम्मतिमें हमको सबसे पहले समग्र जैन कौमके प्रधान प्रधान नेताओंका, यदि वे स्वीकार करें तो, एक प्रभावशाली डेप्युटेशन पुनः नियुक्त करना चाहिए जो बड़े लाटसाहबकी सेवामें तथा महाराजा जयपुरकी सेवामें उपस्थित होकर सेठीजीके लिए न्यायकी प्रार्थना करे। यदि हमें संतोषदायक उत्तर मिला तो ठीक है, नहीं तो फिर लाचार हमें आंदोलन करना होगा। तब यदि वह आंदोलन गवर्नमेंटको आपत्तिकारक (Embarrasing) हो तो उसके दोषी हम नहीं। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि वह आंदोलन मुझे विश्वास है कि नियमबद्ध होगा। सभायें करना, अप्रसन्नता प्रकट करना, तार देना, प्रार्थनापत्र भेजना इत्यादि काम यदि व्यवस्थापूर्वक तथा प्रबलताके साथ सतत किये जायँ तो मुझे विश्वास है कि सफलता अवश्य प्राप्त होगी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रिय प्रतिनिधिगण, + + पहले हमें यह निश्चित कर लेना चाहिए कि हमारे उद्योग का—हमारे कार्योंका —आदर्श क्या है। + + हमारा आदर्श यही है कि जैनधर्मको उसकी आदिम शुद्धता, उदात्तता तथा उपयोगिता प्रदान कर उसे संसारके बड़े बड़े धर्मोंके समान जीवित धर्म बनाना तथा जैनजातिको उसकी वर्तमान अवनत दशासे उठाकर संसारकी बड़ी बड़ी जातियोंकी बराबरीमें बिठलाना। + + समय नित्य पलटता जा रहा है, नित्य नई दशायें पैदा होती जाती हैं; नवीन आवश्यकताएं प्रतिदिन उत्पन्न होती जा रहीं हैं—और इन्हें रोकना हमारी शक्तिके बाहर है। हमें एक ऐसी सृष्टिमें रहना है जिसमें नाना प्रकारकी जातियां रहती हैं और जिनकी तरह तरहकी सभ्यताओंके साथ हमें मिलकर रहना पड़ता है। यदि यह कहा जाय कि ऐसी दशामें हमें चाहिए कि अपने पूर्वकालको भूलकर हमें अपनी आवश्यकताओंके अनुसार नवीन संस्थाएं स्थापितकर नये ढँगसे समाजकी रचना करनी चाहिए, तो इसका अर्थ यही होगा कि समाज उत्तर कोई मशीन नहीं है जो अपनी इच्छाके अनुसार चाहे जिस समय चाहे जैसी बना ली जाय। मनुष्य-समाज एक जीवित वस्तुके समान है, और उसीके समान विकासके नियमोंके अनुसार ही उसका परिवर्तन हो सकता है। अतएव एकदम नवीन समाजकी रचना करना असंभव है। अतएव महाशयो, हमें दोनों कार्य करने चाहिए—हमें पुनरुत्थान (Revival) भी करना चाहिए और नवीन रचना भी करनी चाहिए, अथवा, दूसरे शब्दोंमें, हमें ‘ सुधार ’—Reform के राजमार्गको ग्रहण करना चाहिए।

प्रिय प्रतिनिधिगण, इस सुधारके कार्यमें हमें दो एक बातोंका अवश्य ध्यान रखना चाहिए। + + एक तो यह कि जो कुछ पुराना है वह सब ही उत्तम तथा प्रत्येक अवस्थामें लाभदायक नहीं है। साथ ही हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि जो कुछ पुराना है वह सब ही बुरा भी नहीं है। कई पुरानी वस्तुएं भी बड़े कामकी निकलती हैं। साथ हीं हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि जो नया है वह सब ही अच्छा नहीं है। पश्चिमकी सामाजिक रीतियेंमें मेरी सम्मतिमें तो अनेकांश हानिकारक हैं। मनुष्यसमाजका सुधार तो पूर्व तथा पश्चिम दोनोंके सामाजिक सिद्धान्तोंकी योजनाहींसे उचित रीतिसे हो सकता है। हमें यह भी न भूल जाना चाहिए कि पश्चिममें अनेक बातें लाभदायक हैं तथा उन्हें ग्रहण करनेके लिए हमें तैयार रहना चाहिए। दूसरी जिस बातका हमें स्मरण रखना चाहिए वह यह है कि जैन जातिकी वर्तमान पतित दशासे निराश हो उससे पृथक् हो स्वयं अपना सुधार करनेका विचार कदापि जीमें न लाना चाहिए। यदि हमें अपनी समाजका सुधार करना है तो उसमें मिलकर ही करना चाहिए। चाहे हमें वास्तविक फल न दिखलाई पड़े तो भी यदि हम अपने भाइयोंके विचारोंमें परिवर्तन कर सकें तो समझना चाहिए कि हमारे कार्यका बड़ा हिस्सा हम संपादित कर चुके। तीसरी बात, महाशयो, जिसका, मेरी सम्मतिमें, हमें सदा ध्यान रखना चाहिए वह यह है कि जाति-उन्नतिके इस महान् कार्यमें हमें सदा ‘ एकता व उन्नति ’ इन दो शब्दोंको सन्मुख रखने चाहिए। हमें समग्र जैनसमाजकी उन्नति करनी है—हमें जैनधर्मका प्रचार करना है। मेरा विश्वास है कि पृथक् पृथक् संप्रदायोंकी उन्नति करनेसे हम समग्र जैन जातिकी उन्नति कर लेंगे, ऐसा समझना भ्रम है। जहांतक मैं जानता हूं इस ऑल इंडिया जैन एसोसिएशन, अथवा यदि यह नाम आपको प्रिय न हो तो—इस भारतजैनमहामंडल—का उद्देश पहलेहींसे सांप्रदायिक भेदको एक ओर रख समग्र जैन जातिकी उन्नति करना, सारे जैनियोंमें एकता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथा मैत्री भावका प्रचार करना, तथा जैनधर्मका प्रसार करना, रहा है। + + इसमें सन्देह नहीं कि सांप्रदायिकत्व भारतकी एकताका शत्रु है। एकता ही हमारी उन्नतिका महामंत्र है। हमारे सामने इंडियन नेशनल कॉंग्रेसका उदाहरण विद्यमान है। क्या हिन्दू तथा मुसलमानोंमें जो भेद है उससे श्वेतांबरी व दिगंबरियोंमें ज्यादा भेद है? अथवा क्या श्वेतांबरी या दिगंबरियोंमें और हिंदू अथवा मुसलमानोंमें जो भेद है उससे दिगंबरी श्वेतांबारियोंमें ज्यादा भेद है? फिर क्यों हम मिलकर कार्य नहीं कर सकते? + +

परन्तु, हमारी भिन्न भिन्न संप्रदायोंमें इस एकता व सदुद्योग स्थापित करनेके हमारे पवित्र कार्यके मार्गमें कुछ कारण ऐसे हैं जो सदा बाधाओंके रूपमें उपस्थित रहते हैं और जिनमें हमारे तीर्थक्षेत्रोंके संबन्धके झगड़े ये एक प्रधान कारण हैं। प्यारे भाइयो, क्या आप इस बातको स्वीकार नहीं केरगें कि हमारे पवित्र तीर्थक्षेत्रोंके संबन्धमें तीर्थंकर भगवानके हम सब अनुयायियोंको इस प्रकार लड़ते रहना हमारे लिए बहुत भारी लज्जाका कारण है? इन झगड़ोंको लेकर हम न्यायालयोंमें अभियोग उपस्थित कर अपने द्रव्यका तथा अपनी शक्तिका जो नाश करते हैं क्या हमारे समान शांतिप्रिय जातिके लिए यह शोभाका कारण हो सकता है? क्या इन झगड़ोंसे हमारे बीचमें परस्पर वैमनस्य बढ़कर हमारे सार्वजनिक सदाचारको हानि नहीं पहुँचती?

अभियोग या मुकद्दमा लड़नेको व्यक्तियोंका युद्ध जो कहा गया है यह बिलकुल ठीक है। इस प्रकार आपसमें लड़ना, तीर्थक्षेत्रोंके संबन्धमें कल्पित सत्त्वोंका निष्पादन अथवा उनकी रक्षाके करनेके भ्रममें अपनी शक्तिका नाश करना, यह हमारे सभ्य होनेमें निश्चयमेव सन्देह पैदा करता है। यदि हम सभ्य होनेका दावा रखते हैं तो हमें चाहिए कि हम अन्य उचित मार्गों द्वारा अपने झगड़ोंका निपटारा करें। महाशयगण, मेरे कथनका अर्थ आप यह कदापि न समझें कि वास्तविक सत्त्वोंकी रक्षा करनेके लिए भी, सच्चे हकोंका पालन करनेके लिए भी, हमें कुछ न करना चाहिए। अपने उचित सत्त्वोंकी रक्षाके लिए लड़ना मैं उचित ही नहीं बरन् आवश्यक भी समझता हूं, परन्तु साथही मेरा यह भी निवेदन है कि सत्त्वसंबन्धी झगड़ोंका निर्णय न्यायालयमें जानेकी अपेक्षा अन्य उपायसे यदि हो सके तो उस उपायसे काम न लेकर एकदम सीधे न्यायालयका मार्ग धारण करना सर्वथा अनुचित है। + + किसी भी संप्रदायका यह उद्योग करना कि दूसरी संप्रदायवाले उसकी अनुमतिसे ही तीर्थराज पर पूजा कर सकें कौमकी उन्नतिका बहुत बड़ा बाधक है, अतएव इस प्रकारके भावोंको दूर कर इस झगड़ेको हमें तय करना चाहिए। हालहीमें नीचेकी अदालतने जो फैसला कर दिया है संभव है कि उसके विपरीत दोनों ओरसे अपीलें की जाँय इसलिए इसी अवसर पर हमें प्रयत्न करना चाहिए कि ऐसा न किया जावे। + + यह जान कर संतोष होता है कि इस प्रकारके प्रयत्नका आरंभ कर दिया गया है। इस प्रयत्नके करनेवालोंको—विशेष कर हमारे प्रसिद्ध धर्मबंधु श्रीयुत वाडीलाल मोतीलाल शाहको—जितना हम धन्यवाद दें कम है, परन्तु ऐसा न करके कुछ सज्जन पुरुषोंने उनका उद्योग निष्फल करनेकी चेष्टा की है, व उन्हें बुरी इच्छासे यह उद्योग करनेका अपवाद लगाया है। श्रीयुत वाडीलालजीने इन अभियोगोंको तय करानेके लिए जो उपाय बताया है संभव है कि हमें वह उचित न जान पड़े, परन्तु अपना मत-भेद प्रकट करनेके लिए यह आवश्यक नहीं था कि उन्हें मिथ्या अपवाद लगाया जाय, तथा उन्हें व उनके सहायकोंके प्रति कुशब्दोंका प्रयोग किया जाय। उन लोगोंको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छोड़कर जिनको इन अभियोगोंसे प्रकट अथवा अप्रकट रूपसे लाभ पहुँचता हो÷+क्या कोई यह कहनेको तैयार है कि यदि अन्य किसी उपायसे इन अभियोगोंका अंत किया जासके जो दोनों पक्षवालोंको स्वीकृत हो तो वह हमारे लिए अभिनन्दनीय न होगा ? तब फिर क्या यह उचित था कि इसके लिए जो उद्योग किया गया उसका इस प्रकार विरोध किया जाय ? प्रिय प्रतिनिधिगण, क्षमा कीजिए। मेरी सम्मतिमें भी श्रीयुत वाडीलालजीने जो उपाय बताया है वह उचित नहीं जान पड़ता। मेरा अनुभव है कि अभियोग लड़नेवालोंको धर्म व नीतिका उपदेश करनेसे—Councels of perfection देनेसे—वे लड़ना नहीं छोड़ते। मैं यह माननेके लिए तैयार नहीं हूं कि प्रत्येक दशामें न्यायालयद्वारा निर्णय करानेकी अपेक्षा मध्यस्थों द्वारा निर्णय कराना उत्तम है, और मेरे विचारमें शिखरजी संबन्धी इन अभियोगोंका निर्णय न्यायालयद्वारा अथवा मध्यस्थोंद्वारा करानेमें अधिक अंतर नहीं। परन्तु इसका अर्थ आप यह न समझें कि मैं न्यायालयमें प्रिवीकौंसिल तक लड़ते रहनेकी सम्मति दे रहा हूं। मेरे विचारमें इन अभियोगोंका निर्णय करनेका सबसे उत्तम उपाय यह होगा कि इनका आपसहीमें निर्णयद्वारा— Amicable settlement द्वारा—अंत किया जाय। इस प्रकारका निर्णय दोनों बाजुओंकी सम्मतिके साथ होनेके कारण दोनोंको संतोषदायक होगा। इसके लिए यह आवश्यक है कि दोनों ओरकी सम्मतियोंका परस्परमें परिवर्तन कराया जाय। हमें चाहिए कि हम एक ऐसी प्रभावशाली कमेटी नियुक्त करें जिसके कुछ सभासद दोनों संप्रदायोंके निष्पक्ष व्यक्ति हों तथा विश्वसनीय अन्यमती भी सभासद हों। यह कमेटी दोनों पक्षोंके मुखियाओंके साथ परामर्श करके उनकी सम्मातियां जानकर तस्फियेकी शर्तें निश्चित करावे। यदि ऐसा किया जायगा तो मेरी समझसे इन झगड़ोंका निपटारा होनेकी बहुत कुछ आशा है।+×

प्रियबन्धुओ, हमारे लिए सबसे अधिक महत्त्वका प्रश्न जिसकी ओर हमें विशेष ध्यान देना चाहिए वह हमारी संख्याके ह्रासका—हमारी संख्यामें जो प्रतिदिन अधिकाधिक घटी होती जा रही है उसका—है।++ यह बहुत बड़े खेदका विषय है—दुःखकी बात है—कि गत बीस वर्षोंमें हमारी संख्यामें बहुत बड़ी कमी हुई है। मनुष्यगणनाकी रिपोर्टोंसे विदित हो चुका है कि सन् १८९१ में हमारी संख्या १४,१६,६३८ थी। बादमें यही संख्या घट कर सन् १९०१ में १३,३४,१४० हो गई और सन् १९११ में केवल १२,४८,१८२ रह गई। अर्थात् सन् १८९१ से १९११ तक हमारी संख्यामें अनुमान प्रति सैकड़ा ११ की कमी हुई है; और इस घटीका परिमाण प्रतिदिन बढ़ता ही जाता है, क्योंकि १९०१ में इस घटीका परिमाण ५·८ था, परन्तु सन् १९११ में यह बढ़कर ६·४ हो गया। प्रिय महाशयो, इस हिसाबसे यदि हमारी संख्या आगे भी घटती गई तो अनुमान आगामी एक सौ दशवर्षोंमें पृथ्वीपर हमारी कौमका नाम भी न रहने पावेगा। निःसन्देह हमारे लिए यह एक बहुत बड़े दुःखकी बात है कि भारतकी अन्य कौमोंकी संख्यामें तो वृद्धि होती जाय और हमारी संख्याका क्षय होता जाय। सन् १८९१ से १९०१ के दरमियान् बौद्धोंकी संख्यामें ३२.९, ईसाइयोंकी संख्यामें २८, सिक्खोंकी संख्यामें १५.१, मुसलमानोंकी संख्यामें ८.९, और पारसियोंकी संख्यामें ४·७, प्रति सैकड़ा वृद्धि हुई है, परन्तु हिन्दुओंमें ·३ की व हमारी कौमकी संख्यामें ५.२ प्रति सैकड़ा कमी हुई। सन् १९०१ से सन् १९११ के दरमियान् जैनियोंको छोड़कर सब कौमोंकी संख्यामें वृद्धि हुई। बौद्धोंमें १३,१,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ईसाइयोंमें ३२.६, सिक्खोंमें ६.३३, मुसलमानोंमें ६.७, पारसियोंमें ६.३ तथा हिंदुओंमें १५.०४ प्रति सैकड़ा वृद्धि हुई, परन्तु हम जैनियोंमें पुनः ६.४ की घटती हुई। सन् १८९१ में दश हजार भारतवासियोंमें ४९ जैनी थे; सन् १९०१ में ४५ और सन् १९११ में ४० ही रह गये। इससे स्पष्ट होता है कि यदि हमने अपनी संख्याके इस क्षयके वेगको रोकनेका उद्योग न किया तो शीघ्र ही हमारे अंतका समय आ जायगा। संतोषका विषय है कि इसकी चर्चा तथा इस विषयपर विचार हमारे समाचारपत्रोंमें होनेका आरंभ होगया है, परन्तु मेरी सम्मतिमें इसकी ओर और भी अधिक ध्यान देनेकी आवश्यकता है। हमको विचार करना चाहिए कि हमारे इस ह्रासका कारण क्या है। महाशयो, दो कारणोंसे कौमोंकी संख्यामें वृद्धि अथवा क्षय होता रहता है—अर्थात् एक तो निवासस्थान-परिवर्तन (Migration) और दूसरा मृत्यु और जन्मके परिमाणका मान Relation between birth and death rates)। अब इनमेंसे पहला जो कारण है वह हमारी क्षतिका मूल नहीं होसकता, क्योंकि हमारी कौममें न तो भारतवर्षसे देशान्तरगमन न अन्य देशोंसे इस देशमें आगमन कोई उल्लेखके योग्य हुआ है। दूसरे कारणको जाननेके लिए यद्यपि सरकारी रिपोर्टों (Vital Statistics) से यह नहीं पता लग सकता कि हमारी कौममें मृत्युका परिमाण क्या है तो भी अनुभवसे यह बिना संकोच कहा जा सकता है कि ऐसा अनुमान करनेके लिए कोई कारण नहीं है कि भारतकी अन्य जातियोंकी अपेक्षा जैनियोंमें मृत्युका परिमाण अधिक है, अतएव यदि हमारी क्षतिका कोई कारण हो सकता है तो वह हमारे जन्मके परिमाणकी अल्पता ही होना चाहिए और हमें इस बातका विचार करना चाहिए कि हमारी समाजमें जन्मके परिमाणकी इस अल्पताका कारण क्या है। महाशयगण, प्रत्येक जातिमें जन्मका परिमाण चार कारणों पर अवलंबित रहता है—प्रथम Racial characteristics अथवा जातीय लक्षण, दूसरा Social practices अथवा सामाजिक व्यवहार, तीसरा Material well-being अथवा भौतिक ऐश्वर्य और चौथा Public health अथवा सार्वजनिक स्वास्थ्य। अब विचार करनेसे विदित होगा कि हम जैनियोंके जातीय लक्षण, भौतिक ऐश्वर्य तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य अधिकांशमें भारतकी अन्य कौमोंके समान ही हैं—अतएव यह स्पष्ट है कि हमारे अल्पजन्म-परिमाणका कारण हमें हमारे सामाजिक व्यवहारोंहीमें ढूँढ़ना चाहिए, और हमें इस बातका उद्योग करना चाहिए कि जो सामाजिक व्यवहार हमारी संख्याका ह्रास कर रहे हैं वे दूर किये जायँ। महाशयो, जहां तक मैं जानता हूं, हमारी समाजमें इसके संबन्धमें तीन प्रकारकी सम्मतियां दृष्टिगोचर होती हैं। पहली सम्मति यह है कि बालविवाह तथा वृद्धविवाह हमारी इस क्षतिके कारण हैं और इन्हें हमें रोकने चाहिए। दूसरी सम्मति यह जान पड़ती है कि केवल बालविवाह आदिको रोकनेसे काम नहीं चलेगा, परन्तु हमारी क्षतिका कारण हमारा जातिभेद, है अतएव हमें उचित है कि साथ ही हम समग्र जैन कौममें सह-भोज तथा परस्परविवाहका प्रचार करें। तीसरी सम्मति यह जान पड़ती है—यद्यपि यह आवाज बहुत दब कर निकल रही है—कि केवल इन दो सुधारोंसे काम न चलेगा और यदि हमें अपनी क्षतिको रोकना है तो हमें हमारी कौममें विधवा-विवाहका प्रचार करना चाहिए। एक चौथी सम्मति यह भी सुनाई पड़ती है कि पहले हमें बालविवाहको रोककर देखना चाहिए, और इससे यदि यथेष्ट लाभ न हुआ तो बादमें परस्पर-विवाहका प्रचार करना चाहिए, और उससे भी यदि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वास्तविक लाभ न हो तब हमें विधवाविवाहका प्रचार करना चाहिए । प्रिय प्रतिनिधिगण, मेरी अल्प सम्मतिमें तो इन सब सम्मतियोंमें सत्यका अंश है, परन्तु सर्वथा सत्य इनमेंसे एक भी सम्मति निश्चित रूपसे नहीं कही जासकती, अतएव इन पर विचार करनेकी आवश्यकता है ।

महाशयो, इसमें सन्देह नहीं कि बालविवाह भी हमारी क्षतिका एक कारण है, परन्तु मैं समझता हूं कि केवल इसीको रोकनेका उद्योग करनेसे हमारा ह्रास न रुकेगा । मनुष्यगणनाकी रिपोर्ट इस कथनकी सत्यता सिद्ध करती है । यादि हम मान लें कि बालकोंका विवाह २० वर्षकी अवस्थाके पहले न होना चाहिए तो रिपोर्टोंसे विदित होता है कि २० वर्षसे कम आयुके विवाहित पुरुषोंकी संख्या सन् १८९१ में प्रति सैकड़ा अनुमान १३, सन् १९०१ में अनुमान १४, तथा सन् १९११ में अनुमान १० थी । इसी प्रकार यदि लड़कियोंके लिए विवाहयोग्य अवस्था १५ वर्षकी मान ली जाय तो इस अवस्थासे कमकी विवाहिता लड़कियोंकी संख्या प्रति सैकड़ा सन् १८९१ में १७½, सन् १९०१ में भी १७½ और १९११ में १३½ थी । इससे सिद्ध होता है कि गत दश पन्द्रह वर्षोंमें हमारी कौममें बाल-विवाह कम होते जा रहे हैं, परन्तु तिसपर भी हमारी संख्यामें ह्रास होता जा रहा है, अतएव केवल बालविवाह बंद कर देनेसे हमारी क्षतिका वेग न रुक सकेगा, यह स्पष्ट जान पड़ता है ।

भाइयो, दूसरा कारण जो जातिभेदका बताया जाता है उस पर भी हमें विचार करना चाहिए । हम देखते हैं कि प्रथम तो हमारी कौममें स्त्रियोंकी अपेक्षा पुरुषोंकी संख्या अधिक है, परन्तु इन संख्याओंमें अधिक अन्तर न होनेसे यदि हम उसपर अधिक ध्यान दें तो अनुचित न होगा । अब सन् ११ की मनुष्यगणनाके अनुसार हमारी कौममें ६,४३,५५३, पुरुष थे जिनमेंसे ३,१७,११७ कुआँरे थे । इसी प्रकार ६,०४, ६२९ स्त्रियोंमेंसे १,८१,७०५ स्त्रियां कुआँरी थीं । इतने कुआँरे कुआँरियोंका समाजमें विद्यमान होना निःसंन्देह हमारे जन्मके अल्पपरिमाणका एक कारण होना हम सबको स्वीकार करना पड़ेगा । कुआँरे कुआँरियोंकी इन संख्याओंमेंसे यदि हम ऐसोंकी संख्या निकाल दें जो संतान पैदा करनेके योग्य साधारणतया नहीं, अर्थात् जो पुरुष २० वर्षसे कम और ४५ वर्षसे अधिक अवस्थाके हैं तथा वे स्त्रियाँ जो १५ वर्षसे कम तथा ४० वर्षसे अधिक अवस्था की हैं, तौ भी हमें यह देखकर दुःख होना चाहिए, महान् खेद होना चाहिए, कि २० वर्षसे ४५ वर्ष तककी आयुके २,३३,०३५ पुरुषोंमेंसे ५९,९१२ कुआँरे, तथा १५ से ४० वर्षतककी आयुकी २,५३,८५४ स्त्रियोंमेंसे ५,९२८ स्त्रियाँ कुआँरी, अर्थात् प्रति सैकड़ा पुरुषोंमें २५.७ तथा स्त्रियोंमें २.३ कुआँरे कुआँरियां हमारी कौममें विद्यमान हैं । महाशयो, विचार कीजिए कि यदि इन ५,९९१२ कुआँरोंके तथा ५,९२८ कुआँरी स्त्रियोंके विवाह हो गये होते तो इनके द्वारा हमारी संख्यामें प्रतिवर्ष कितनी वृद्धि होती । इनके कुआँरे रहनेका कारण भला इसके सिवाय क्या हो सकता है कि हमारी समाजमें अल्पसंख्यक अनेक जातियाँ विद्यमान हैं ? दिगम्बर जैन डाइरेक्टरीके देखनेसे विदित होता है कि केवल दिगम्बर संप्रदायमें ४१ जातियां ऐसी हैं जिनकी मनुष्य-संख्या ५०० से कम है, १२ जातियोंमें ५०० से १००० तककी मनुष्य संख्या है, १००० से ५००० तक मनुष्यसंख्याकी जातियां केवल २० हैं, और जिनकी मनुष्यसंख्या ५००० से अधिक है ऐसी केवल १५ जातियां है । कोई कोई जातियोंकी दो, तीन, चार, आठ, सोलह, बीस आदि अल्प मनुष्यसंख्यायें रह गई हैं । मुझे स्मरण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पड़ता है कि मैंने कहीं पढ़ा था कि मनुष्यगणनाकी सरकारी रिपोर्टके अनुसार हमारी कौममें ५५ जातियोंकी मनुष्यसंख्या १०० से भी कम है, तथा १७ जातियां ऐसी हैं जिनकी मनुष्यसंख्या बराबर घट रही है। गत वर्ष मैंने अपनी जाँगड़ा पोरवाड़ जातिकी एक उपजातिकी मनुष्यगणना कराई थी तो जान पड़ा कि उसमें केवल २७७ पुरुष तथा २९२ स्त्रियां थीं। महाशयो, क्या यह बतानेकी आवश्यकता है कि हमारी कौममें इस प्रकारकी अल्पसंख्यक अनेक जातियोंका होना यह भी इसका कारण है कि हमारे यहां कुआँरे कुँआरियोंकी संख्या इस प्रकार अधिक है, और यदि हमें इनकी संख्या घटानेकी इच्छा है—यदि हम अपनेमें जन्म-परिमाणको बढ़ाया चाहते हैं—यदि हम अपनी संख्याके ह्रासको रोकना चाहते हैं—तो हमें इस अनावश्यक, कृत्रिम तथा हानिकारक जातिभेदको उठाकर परस्पर खानपान तथा परस्पर विवाहका प्रचार करनेका उद्योग करना चाहिए। प्रिय बन्धुओ, हमको यह उद्योग अवश्य करना होगा। हमारी कौममें जो जातिभेद है वह परंपरागत व्यवसाय-भेदके ऊपर हिंदुओंके जातिभेदके समान अवलंबित नहीं है, न हमारे यहां जातियोंमें ऊंच नीचका कोई अनुक्रम है। अतएव भारतमें बढ़ती हुई व्यवसाय-चुननेकी स्वतंत्रतासे जातिभेद दूर होनेका जो स्वाभाविक क्रम चल रहा है उसके ऊपर हम अपनी जातियोंको एक करनेका कार्य नहीं छोड़ सकते—हमें इसके लिए मानवी उद्योग करना होगा। महाशयो, अब हमें तीसरी सम्मति पर विचार करना चाहिए। मान लीजिए कि हमने हमारी कौममेंसे जातिभेदको उठा दिया तथा परस्पर-विवाहका प्रचार कर दिया। निःसन्देह इसका परिणाम यह होगा कि हमारी जातिमें संतान-उत्पन्न करने योग्य जो पुरुष कुआँरे हैं उनमेंसे अधिकांश विवाह कर सकेंगे—केवल अधिकांश ही, सब इसलिए नहीं कि मैंने आपको अभी बतलाया कि १५ से ४० वर्षकी आयुकी कुआँरी स्त्रियोंकी संख्या ५,९२८ है, अतएव यदि इनके साथ २० से ४५ तककी आयुके कुआँरोंका विवाह कर दिया जाय तो भी ५९,९१२ मेंसे केवल ५,९२८ कुआँरे विवाह कर सकेंगे, और ५३,९८४ पुरुष फिर भी कुआँरे रह जायँगे जो संतान उत्पन्न करनेके योग्य होते हुए भी अविवाहित रहनेके कारण ऐसा नहीं कर सकेंगे। ऐसी अवस्थामें हमें क्या करना चाहिए, इस पर विचार करनेकी कितनी आवश्यकता है उसका, महाशयगण, आप ही अनुमान करें। इस विचारके लिए हमें एक बात और भी जाननी चाहिए और वह यह है कि हमारी कौममें विधवाओंकी संख्या बहुत ही अधिक है—अन्य कौमोंसे भी अधिक है—तथा अन्य कौमोंमें वह संख्या घटती जा रही है परन्तु हमारी कौममें बढ़ती जा रही है। सन् ११ की मनुष्यगणनाके अनुसार हमारी कौममें ६,०४,६२९ स्त्रियोंमेंसे १,५३,२९७ अर्थात् प्रतिसैकड़ा २५·३ स्त्रियां विधवा हैं—दूसरे शब्दोंमें चार स्त्रियोंमें तीन स्त्रियां सधवा और एक स्त्री विधवा है। बौद्धोंमें सन् ९१ में ११·६, सन् ०१ में ११, तथा सन् ११ में १०·५ प्रति सैकड़ा स्त्रियां विधवा थीं; ईसाइयोंमें सन् ९१ में १२·६, सन् ०१ में १२·६ तथा सन् ११ में ११·८ प्रति सैकड़ा स्त्रियां विधवा थीं; पारसियोंमें सन् ९१ में १३·८, सन् ०१ में १४·२ तथा सन् ११ में १३·५ प्रति सैकड़ा स्त्रियां विधवा थीं; मुसलमानोंमें सन् ९१ में १५, सन् ०१ में १५·१ तथा सन् ११ में १४·६ प्रति सैकड़ा स्त्रियां विधवा थीं; सिक्खोंमें सन् ९१ में १५, सन् ०१ में १३·८ तथा सन् ११ में १५ प्रति सैकड़ा स्त्रियां विधवा थीं; हिन्दुओंमें सन् ९१ में १७, सन् ०१ में १९·३, तथा सन् ११ में १८·७ प्रति सैकड़ा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्त्रियां विधवा थीं; परन्तु हमारी जैन कौममें सन् ९१ में १३·२, सन् ०१ में २३·१ तथा सन् ११ में २५·३ प्रति सैकड़ा स्त्रियां विधवा थीं। सन् १९११ की हमारी विधवाओंकी संख्या जो मैंने आपको बताई उसमें से यदि हम केवल २० से ४० वर्ष तककी ही आयुकी स्त्रियोंका लेखा लगावें तो विदित होता है कि २० से ४० वर्ष तककी आयुकी २,०४,७०५ स्त्रियोंमें से ४८,४६६ अर्थात् २३$\frac{1}{3}$ प्रतिसैकड़ा स्त्रियां विधवा थीं जो यदि सधवा होतीं अथवा हों तो सन्तान उत्पादन कर सकी होतीं या कर सकें। महाशयो, इन्हीं बातोंका विचार कर यह सम्मति दी जारही है कि हमें विधवाविवाहका प्रचार कर हमारी कौमकी क्षतिके क्रमको रोकना चाहिए। मेरी सम्मातिमें इनके साथ हमें ऐसा मत निश्चित् करनेके लिए और भी अनेक बातें हैं जिनपर विचार करना होगा। माना कि यदि हम विधवा विवाहको न रोकें तो २० से ४५ वर्षकी आयुके ५३,९८४ पुरुष जो अविवाहित बच जाते हैं उनके लिए १५ से ३५ वर्षकी आयुकी ३४,४११ विधवायें मिल सकती हैं, परन्तु साथहीमें अन्य बातोंपर विचार करना भी आवश्यक होगा।

प्रिय प्रतिनिधिगण, हमें स्मरण रखना होगा कि विधवा-विवाहकी चर्चा मात्रके विरुद्ध हमारी कौममें एक प्रबल भाव विद्यमान है। जैन कौम इस विषयकी चर्चा तक करना महापाप समझती है, तथा इस विषयपर विवेचन तक करना हमारी कौमके धार्मिक भावके लिए घृणोत्पादक है। हमारे जैनी भाई इसे महा निंद्यकर्म मानते हैं तथा ऐसा जान पड़ता है कि किसी भी दशामें उन्हें इसका विचार स्वीकृत न होगा। यद्यपि महाशयो, मैं इस समय इस विषयके गुण दोषोंकी चर्चा नहीं किया चाहता, परन्तु यह कहना अपना कर्तव्य समझता हूं कि इसकी चर्चा तकको रोकनेका प्रयत्न करना कौमके लिए हानिकारक होगा। यदि विधवा-विवाह धर्म तथा नीतिके विरुद्ध और हानिकारक है तो क्या यह आवश्यक नहीं है कि इसकी चर्चा करके यह सिद्ध कर दिया जाय? क्या इसकी चर्चाको रोकनेका परिणाम यह नहीं होगा कि जिनकी सम्मतिमें यह हानिकारक नहीं है वे उसके पक्षकार रहकर उसके प्रचारका उद्योग करते रहेंगे? और यदि यह हानिकारक नहीं है न बुरा है, अथवा बुरा होकर भी आवश्यक है, तो क्या इसकी चर्चाको रोकना अपने आपको नुकसान पहुंचाना नहीं है? मैं तो समझता हूं कि इस विषयकी चर्चा अवश्य होकर हमें देखना चाहिए कि यह हमारे लिए आवश्यक है या नहीं।

महाशयो, इस विषयपर जरा दृढ़ होकर हमें विचार करना चाहिए, और केवल अपनी कोमलहृदयताहीसे काम न लेना चाहिए। इससे विवाहका उद्देश भंग होता है—प्रेमका आदर्श मारा जाता है—इत्यादि इसी प्रकारकी अपेक्षाओंसे इसका विचार करना पर्याप्त न होगा; हमें हमारी कौमकी सख्यामें बढ़ती हुई क्षतिकी अपेक्षासे भी इसपर विचार करना होगा। व्यक्ति विशेष इसे भले ही बुरा समझें—हमारी सम्मतिमें स्त्रियोंका तो क्या पुरुषोंका भी स्वेच्छापूर्वक विधवा अथवा विधुर रहना भले ही श्रेष्ठ हो—बलात् वैधव्यको कोई कोई भले ही अच्छा समझते हों—परन्तु हमको जानना होगा कि हमारा जीवन केवल हमारा नहीं है-वह केवल हमारी संपत्ति नहीं है, जिस समाजमें हमने जन्म धारण किया है उसका भी हमारे जीवनपर अधिकार है। जातियोंके जीवनमें ऐसे अवसर भी आते हैं जब उस जातिके मनुष्योंको उसके लाभके लिए—उसकी रक्षाके लिए—अपने व्यक्तिगत सिद्धान्तोंकी बलि देना पड़ती है। जिस जातिके मेंबर ऐसा करनेके लिए तत्पर रहते हैं वही जाति सदा जीवित रहती है। संसारका इतिहास यही बात बताता है कि अपनी रक्षाके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिए–अपने आपको सर्वनाशसे बचानेके लिए–जन समाजोंको अनीप्सित साधनोंका प्रयोग करना पड़ता है। स्पार्टन लोगोंका इतिहास—लाइकरगसके नियम—इस बातकी साक्षी दे रहे हैं। यदि मान लिया जाय कि हमारे लिए केवल दो ही बातें हैं–अर्थात् एक तो हमारी कौमका अंत और दूसरे विधवाविवाहके समान अनीप्सित साधनोंका प्रयोग–तो ऐसी दशामें हमारा कर्तव्य क्या है, इसका हमें अच्छी तरह विचार करना चाहिए। अतएव यह आवश्यक सिद्ध होता है कि इस विषयकी चर्चाको न रोका जाय। मिथ्यात्वका खंडन करते समय हमारे आचार्योंने मिथ्यात्वकी चर्चा की है तब हमें इसकी चर्चा मात्रमें पाप मानना उचित नहीं। × +

बालविवाह किस प्रकार हमारी जातिके मनुष्यत्वका नाश कर रहा है उससे शायद ही कोई ऐसा निकले जो परिचित न हो। + ÷ अब भी हमारी कौममें चौदह २ पंद्रह २ वर्षके भीतर ही बालकोंके तथा ग्यारह २ बारह २ वर्षके अंदर ही बालिकाओंके विवाह किये जाते हैं। सन् १९११ की मनुष्य-गणना प्रकट करती है कि हमारी कौममें २० वर्ष तककी अवस्थाके २५,७४३ पुरुष तथा १५ वर्ष तककी अवस्थाकी २७,५५६ स्त्रियोंके विवाह हो चुके थे। निःसन्देह यह दुःखकी बात है, परन्तु यह जानकर और भी हमें दुःख होना चाहिए कि १५ वर्ष तककी आयुकी १,२५९ लड़कियां हमारी कौममें विधवायें थीं जिनमेंसे ९२ विधवायें तो पांच वर्षसे भी कम अवस्था की थीं। भारतकी अन्य कौमोंमें बालविधवाओंकी इतनी संख्या देखनेमें नहीं आती। पंद्रह वर्ष तककी आयुकी प्रति १०,००० स्त्रियोंमें बौद्धोंमें एकसे भी कम, ईसाइयोंमें १२, पारसियोंमें १४, सिक्खोंमें ३०, मुसलमानोंमें ४०, जैनियोंमें ६२ तथा हिन्दुओंमें ६९ विधवायें हैं। इस परसे आप विचार कर सकते हैं कि हमारी समाजमें बालविवाहका कितना प्रचार है। महाशयो, यह बालविवाह हमारे जीवन रक्तको पीता जारहा है, हमारे युवकोंके स्वास्थ्यका नाश कर रहा है; विवाहके उद्देशपर पानी फेर रहा है; दाम्पत्य-प्रेमको हवा करता जारहा है; बालकोंके चरित्रको बिगाड़ रहा है; तथा बिना प्रेमकी संतति उत्पन्न करके समाजको अवनतिके गढ़ेमें लिये जारहा है। इसी प्रकार वृद्ध पुरुषोंके साथ अल्पवयस्क बालिकाओंका विवाह भी हमारी जातिमें बालविधवाओंकी संख्याकी वृद्धि कर रहा है, तथा समाजमें दुराचारका प्रचार किये जारहा है। विवाहके अवसरपर नाच करानेकी रीति हमारे युवकोंके चरित्रको बिगाड़ती हुई हमारी कौमकी भावी संतानको सदा अकर्मण्य बनाती जारही है। विवाह तथा मृत्यु आदि संस्कारोंके समय पंगतों आदिमें व्यर्थ व्यय करना हमारी आर्थिक दशाको खराब करता जारहा है। अनेक व्यर्थ रीतियां हमारे बहुमूल्य समयका सदा नाश करती जारही हैं। इन सब कुरीतियोंको बंद करना हमारे लिए बहुतही आवश्यक है। + + कुरीतियोंको बंद करनेकी आवश्यकता तो सब कोई स्वीकार करते हैं, परन्तु अपने मतका पालन करनेवाले व्यवहारमें बहुत कम दिखलाई पड़ते हैं–यहां तक कि जो स्वयं इन बातोंका उपदेश देते हैं वे भी कार्यका जब समय आता है तब अपने ही मतके विरुद्ध कार्य करते हैं। इसका कारण मनुष्यकी स्वाभाविक प्राचीन-प्रियताके सिवाय क्या हो सकता है? मनुष्य सामाजिक जीव होनेके कारण जिस समाजमें रहता है उसकी स्वीकृति, उसकी Sanction, के बिना वह किसी भी रीतिका पालन अथवा उल्लंघन करना नहीं चाहता। तब यह प्रश्न पैदा होता है कि क्या जाति-पंचायतों द्वारा हमें जातिसुधारका प्रचार करना चाहिए? महाशयो, मेरी सम्मतिमें इससे भी कुछ लाभ न होगा, बरन् कौममें फूट पैदा होकर लाभके पलटे हानि होगी, क्योंकि हमारी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाति-पंचायतें इतनी गिरी दशामें हैं कि उन्हें सुधारनेके उद्योगमें जो काल लगेगा तबतकसंभव है कि इनका अस्तित्व ही न रहे। तब क्या हमें निराश होकर सामाजिक-सुधारका कार्य ही छोड़ देना चाहिए, और यदि नहीं तो फिर हमारी आशाका आधार क्या होना चाहिए ? मैं तो यही कहूंगा कि हमें निराश न होना चाहिए, तथा हमारी आशाका आधार होना चाहिए हमारी भावी संतान —हमारे होनहार युवा। महाशयो, यह आशा करना कि जो पुरुष जीवनभर अफीम खाता आया हो वह अफीम खाना वृद्धावस्थामें छोड़ दे यह निरर्थक है; नवीन पौधोंको झुकाना सहज है, परन्तु एक बढ़े हुए वृक्षको झुकानेकी आशा करना व्यर्थ है। × × इसीलिए, महाशयो, सामाजिकसुधारकी आशा इन जातिमुखियाओंसे न कर मैं अपनी आगामी पीढ़ीसे करता हूं। मैं अनुमान करता हूं कि ऐसे ही विचारोंसे इस महामंडलके संस्थापकोंने इसका नाम आदिमें जैन यंगमेन्स एसोसिएशन रक्खा होगा। यदि हम अपनी संतानको—अपने बालक बालिकाओंको— उचितरीतिसे शिक्षा देवें तो मुझे विश्वास है कि ये ही लोग बड़े होनेपर समाजसुधारका प्रचार करेंगे। अतएव इस कार्यके लिए जो उद्योग हम अबतक करते आ रहे हैं उसे जारी रखते हुए अपनी आशाके भावी आधार, अपनी संतानकी उचित शिक्षाकी ओर हमें ध्यान देना चाहिए, और यह मुझे हमारी कौममें शिक्षाकी अवस्थाका स्मरण दिलाता है।

प्रिय प्रतिनिधिगण, हमारे लिए शिक्षाका प्रश्न भी बहुत बड़े महत्त्वका है × ÷ मनुष्य-गणनाकी रिपोर्टोंसे आपको ज्ञात ही होगा कि हमारी कौममें प्रति सहस्रमेंसे सन् १८९१ में ४४१, सन् १९०१ में ४७० तथा सन् १९११ में ४९५ पुरुष पढ़ना लिखना जानते थे, अर्थात् हमारी कौममें प्रतिदिन अज्ञानकी कमी होती जारही है। हिन्दुओंमें प्रति सहस्रमेंसे सन् १८९१ में ८३, सन् ०१ में ९४ तथा सन् ११ में १०१, सिक्खोंमें प्रति सहस्रमेंसे सन् ९१ में ८३, सन् ०१ में ९८ तथा सन् ११ में १०६; बौद्धोंमें प्रति सहस्र सन् ९१ में ४११, सन् ०१ में ४०२ तथा सन् ११ में ४०४; पारसियोंमें प्रति सहस्रमेंसे सन् ९१ में ५८३, सन् ०१ में ७५६ तथा सन् ११ में ७८२; मुसलमानोंमें प्रति सहस्रमेंसे सन् ९१ में ५४, सन् ०१ में ६० तथा सन् ११ में ६९; ईसाइयोंमें प्रति सहस्रमेंसे सन् ९१ में २७३, सन् ०१ में २९१ तथा सन् ११ में २९३ पुरुष पढ़ना लिखना जानते थे। इससे स्पष्ट है कि शिक्षाके क्षेत्रमें हम अन्य कौमोंके पीछे नहीं हैं, तथा पारसियोंके पश्चात् हमारा ही नंबर है। इसी प्रकार अँगरेज़ी पढ़े लिखोंकी संख्या हमारी कौममें भी अन्य कौमोंके मुकाबलेमें ठीक ही है। प्रति दशसहस्रमेंसे अँगरेज़ी पढ़ना लिखना जाननेवाले पुरुषोंकी संख्या प्रत्येक कौममें इस प्रकार थी:—

	सन् १९०१ में	सन् १९११ में
हिन्दुओंमें-	.... ६४ ...	९१
सिक्खोंमें-	... ५२ ...	६६
जैनियोंमें-	... १३४ ...	२०२
बौद्धोंमें-	.... २४	४१
पारसियोंमें-	... ४,०७५ ...	४,९५६
मुसलमानोंमें-	... ३२ ...	५१
ईसाइयोंमें-	... १,२८९ ...	१,२५६

इससे यह जान पड़ता है कि जैनियोंकी अपेक्षा हिन्दुओंमें शिक्षाका प्रचार कम है। इसका कारण यह है कि हिन्दुओंमें अनेक पिछड़ी हुई जातियां सम्मिलित हैं जो पूर्णतया अशिक्षित हैं, किन्तु आर्यसमाजियोंमें प्रति सहस्र ३९४ पुरुष पढ़े लिखे तथा प्रति दश सहस्र ७१९ पुरुष अँग्रेज़ी पढ़े लिखे और ब्रह्मसमाजियोंमें प्रति सहस्र ७३९ पुरुष पढ़े

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिखे तथा प्रति दशसहस्र ५,८१६ पुरुष अँगरेजी पढ़े लिखे हैं। पढ़ना लिखना तथा अँगरेज़ी जाननेवाली स्त्रियोंका लेखा इस प्रकार है:—

प्रति सहस्र पढ़ना लिखना जाननेवाली स्त्रियोंकी संख्याः—

	सन् १८९१	सन् १९०१	सन् १९११
हिन्दुओंमें-	३	५ ...	८
सिक्खोंमें-	३ ...	७ ...	१४
जैनियोंमें-	९ ...	१८	४०
बौद्धोंमें-	२२ ...	४२	५८
पारसियोंमें-	३९८....	५३८....	६३७
मुसलमानोंमें-	२ ...	३ ...	४
ईसाइयोंमें-	९७	१२५...	१३५

प्रति दशसहस्र अँग्रेज़ी पढ़ना लिखना जाननेवाली स्त्रियोंकी संख्याः—

	सन् १९०१	सन् १९११
हिन्दुओंमें-	१ ...	.... २
सिक्खोंमें-	० ...	... २
जैनियोंमें-	१	... ३
बौद्धोंमें-	१ ...	.... २
पारसियोंमें-	९६१...	.... १,७०४
मुसलमानोंमें-	० ...	... १
ईसाइयोंमें-	६१५...	... ६०४

महाशयो, इसपरसे हमारी कौमकी शिक्षासंबंधी दशा संतोषदायक जान पड़ती है, परन्तु हमें जानना चाहिए कि केवल पढ़लिखलेना शिक्षित होना नहीं कहा जासकता। शिक्षाका अर्थ इससे बहुत बड़ा है। खेदकी बात है कि सरकारकी शिक्षासंबंधी रिपोर्टोंमें जैनजाति हिन्दुओंमें सम्मिलित रहती है, अतएव हम यह नहीं जान सकते कि हमारी कौममें उच्च शिक्षा, अथवा माध्यमिक शिक्षा या कमसे कम प्राथमिक शिक्षाकी क्या दशा है, तौ भी अनुभवसे हम यह कह सकते हैं कि हमारी जातिमें उच्च शिक्षितोंकी अथवा माध्यमिक शिक्षाप्राप्तोंकी संख्या बहुत ही अल्प है, और स्त्रियोंमें तो इनकी संख्या और भी अल्प होगी। यदि पढ़ना लिखना जाननेवाले पुरुष तथा स्त्रियाँ दोनोंको मिलाकर देखा जावे तो प्रति सैकड़ा २७ पुरुष स्त्रियाँ लिखना पढ़ना जानते हैं, अर्थात् १०० मेंसे ७३ मनुष्य निरक्षर हैं। इंग्लेंड, जर्मनी तथा जापान आदि देशोंमें पढ़े लिखोंकी संख्या प्रति सैकड़ा ९९,९८ तथा ९७, इस प्रकारकी है। ऐसी दशामें, महाशयो, आप विचार कीजिए कि जैन जातिमें शिक्षाप्रचारकी कितनी बड़ी आवश्यकता है।

इसीके साथमें हमें यह भी विचार करना चाहिए कि हमारी शिक्षाकी पद्धति कैसी हो। ×+ प्रथम हमें बालकोंकी प्राथमिक शिक्षाको लेना चाहिए। इस बातको हम सबको मानना पड़ेगा कि सरकारी प्राथमिक पाठशालाओंमें हमारे बालकोंको जो शिक्षा मिलती है वह किसी २ अंशमें हमारे लिए अत्यंत हानिकारक है। उससे होनेवाली हानियोंको देखते हुए हम अपने बालकोंको सरकारी पाठशालाओंके भरोसे नहीं छोड़ सकते। ×÷ परंतु इसके लिए पृथक् पाठशालायें खोलना ठीक नहीं। यह हमारी शक्तिके भी बाहर है। इसके लिए हिसाबकरनेसे हमें कमसे कम ४०लाख रुपये आरंभिक व्ययके लिए तथा३० लाख रुपये वार्षिक व्ययके लिए आवश्यक होंगे। और यदि यह साध्य भी हो तौ भी मेरी सम्मतिमें तो ऐसा करना सर्वांशमें वांछनीय नहीं है। हमारे परम प्रिय सम्राट् महाराजा पंचम जॉर्जने चार वर्ष हुए तब दिल्लीदर्बारके समय अपनी यह इच्छा प्रकट की थी कि इस सारे देश भर में पाठशालाओं तथा कॉलेजोंकी जाल फैला दी जाय, यह हम भूले नहीं हैं। महाराजा जॉर्जकी इस इच्छाको किसी अंशमें पूर्ण करनेके आभिप्रायसे भारत गवर्नमेंटने वर्तमान समयमें बालकोंके लिए जो अनुमान एक लाख आरंभिक पाठशालायें हैं उनके सिवा थोड़े ही दिनोंमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुमान ९१००० पाठशालाएं और स्थापित कर प्रारंभिक शिक्षाको फैलानेका निश्चय किया है। यद्यपि युद्धके कारण इस निश्चयके अनुसार कार्य नहीं हो सका है तौ भी हमें विश्वास रखना चाहिए कि गवर्नमेंट अपने कथनके अनुसार अवसर मिलनेपर अवश्य कार्य करेगी। ऐसी दशामें महाशयो, क्या हमारे लिए यह बुद्धिमानीका कार्य होगा कि सरकारकी इन पाठशालाओंसे हम पृथक् रहकर कुछ भी लाभ न उठावें? हम लोग भी तो सरकारको टेक्स देते हैं। फिर अन्य कौमें तो सरकारकी आयसे Government revenues से शिक्षासंबन्धी लाभ लें और हम अपनेको उससे अलग रक्खें क्या यह हमारे लिए अनुचित न होगा? क्या यह श्रेष्ठ न होगा कि हम सरकारसे इस बातकी प्रार्थना करें कि जिन २ बातोंमें इन पाठशालाओंकी शिक्षा हमारे लिए हानिकारक है उन २ बातोंमें उसका सुधार कर उस शिक्षाको अपने उपयुक्त बनावें? हमारे मुसलमान भाइयोंने इसी नीतिका अवलंबन कर बहुत कुछ सफलता प्राप्त की है, और हम लोग इस नीतिका त्यागकर अपनी पृथक् पाठशालायें स्थापित करते जारहे हैं। हमें स्मरण रखना चाहिए कि अन्यको कौमोंके समान हमें भी स्वत्त्व है कि गवर्नमेंट हमारे उपयुक्त शिक्षा हमारे बालकोंको देनेका प्रबंध करे।

महाशयो, हमें इस बातका और भी स्मरण रखना चाहिए कि आजकल सरकारी पाठशालाओंमें जितना पढ़ाया जाता है उतना ही बालकोंकी शक्तिके बाहर होनेसे उसका उनके स्वास्थ्यपर बुरा असर होता है, किन्तु हम लोग धार्मिक शिक्षाके लिए पृथक् पाठशालाएं स्थापित कर बालकोंके सिरपर अभ्यासका बोझा डाल उनका स्वास्थ्य और भी खराब करनेकी मानो योजना करते हैं। क्या यह श्रेष्ठ न होगा कि हम गवर्नमेंटसे इस बातकी प्रार्थना करें कि हमारे बालकोंको धार्मिक शिक्षा सरकारी पाठशालाओंहीमें पठनकालके भीतर ही देनेका प्रबंध सरकार हमारी सहायतासे करे। यह सच है कि इस विषयमें गवर्नमेंटकी वर्तमान नीति हमारी इस इच्छाके अनुकूल नहीं है। + + धार्मिक शिक्षाके संबन्धमें गवर्नमेंट स्वयं कुछ नहीं किया चाहती, तौ भी मुझे तो आशा है कि यदि हम उचित उद्योग इस बातके लिए करें कि सरकारी पाठशालाओंमें पठन समयके अंदर ही—Within the school hours—हमारी कौमके बालकोंको धार्मिक शिक्षा देनेका प्रबंध करनेके लिए हमें अनुमति दी जाय तो हमारा उद्योग अवश्य सफल होगा। साथहीमें मेरी सम्मतिमें खास २ स्थानोंमें, जहां हमारे बालकोंकी संख्या अधिक हो वहां हमें एडेड प्रारंभिक स्कूलें खोलनी चाहिए जिनके लिए हम गवर्नमेंटसे आर्थिक सहायता भी पा सकते हैं क्यों कि ऐसा करनेकी इच्छा गवर्नमेंटने प्रकट की है। यदि हम इस नीतिका अनुसरण करेंगे तो निश्चयमेव कुव्यवस्थित पृथक् पाठशालायें स्थापित करनेकी अपेक्षा हमको अधिक लाभ होगा। सरकारी शिक्षापद्धतिमें धार्मिक शिक्षाका जो अभाव है मैं समझता हूँ कि उसे हमें इसी नीतिसे दूर करना चाहिए। नैतिक शिक्षाके अभावको दूर करनेका सरकारी प्रयत्न आरंभ है। इस प्रकार सरकारी शिक्षापद्धतिमेंसे हमें अन्यान्य दोषोंको भी दूर करनेका उद्योग करना चाहिए। परन्तु प्रियप्रतिनिधिगण, मेरे बताये हुए इस मार्गमें यह आपत्ति की जायगी कि इस प्रकारकी अल्पकालिक धार्मिक शिक्षा कदापि यथेष्ट नहीं हो सकती है, और इसलिए उससे अधिक लाभ न होगा। मैं इस प्रकारकी आपत्ति करनेवालोंसे प्रश्न करता हूं कि धार्मिक शिक्षाका अर्थ क्या है? हमारे धर्ममें तो सब ही विषय गर्भित हैं—यथा दर्शनशास्त्र, आत्मविद्या, नीतिविद्या, भूगोलविद्या, न्यायविद्या, इतिहास, नाटक, कथा इत्यादि। क्या हमारे बालकोंको आरंभ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कालहीसे इन सब विद्याओंका अध्ययन करना चाहिए ? अथवा क्या यह आवश्यक है कि प्रत्येक जैनको इन सब विषयोंमें विशारद ही होना चाहिए, और क्या यह संभव है ? क्या प्रत्येक व्यक्तिके लिए उचित विषयका निश्चय करनेमें व्यक्तिगत रुचिकी ओर बिलकुल ध्यान न देना चाहिए ? क्या हमें Jack of all—master of none विद्वान् पैदा करने चाहिए ? महाशयो, आप यह कदापि न समझें कि मैं धार्मिक शिक्षाका विरोधी हूं, किन्तु मैं यह अवश्य कहूंगा कि धार्मिकशिक्षाके केवल नाम पर ही मोहित होकर हमारे युवकोंको हमें निरर्थक नहीं बनाने चाहिए। इसमें कोई सन्देह नहीं कि लौकिक तथा उदार Secular and liberal शिक्षाने भी संसारको बहुत कुछ लाभ पहुँचाया है। उसमें एक गुण यह है कि वह हृदयको सत्य ग्रहण करनेके योग्य बनाती हुई उसे सत्यके लिए सदा खुला रखती है। स्वामी विवेकानंद तथा रामतीर्थके समान अनेक उदाहरणोंके रहते मैं यह माननेको तैयार नहीं हूं कि स्कूलों व कालेजोंकी शिक्षा हमें निरे भौतिक-वादी बनाती है। यदि जैनधर्म सत्य है तो उसे कोई भी डर नहीं है। मैंने स्कूलमें सीखा था कि, ‘ मनुष्य मकान बना सकता है, पर क्या वह पत्थर बना सकता है ? तब पत्थर किसने बनाये ? परमात्माने—परमात्मा इस सृष्टिका कर्ता है। जैनधर्म बौद्धधर्मकी शाखा है, और वह उसीके बाद छठवीं सदीमें निकला। ’ मैंने कॉलेजमें बाइबल ही पढ़ी। परन्तु न तो मैं सृष्टिकर्तावादी हूं न ईसाई होगया हूं, इसलिए इस बातका बहुत बड़ा भय रखनेकी कोई आवश्यकता नहीं कि निरी लौकिक शिक्षा बालकोंको धर्म-भ्रष्ट कर देगी। ‘ जैनधर्मसे अविरुद्ध ’ शिक्षा पर इतना जोर दिया जाता देख मैंने ये विचार प्रगट करनेकी आवश्यकता समझी।

इसी प्रकार महाशयो, माध्यमिक शिक्षाके लिए भी सरकारी माध्यमिक पाठशालाओंमें हमें अपने धर्मकी शिक्षाका प्रबंध करनेका तथा कुछ स्थानोंमें हाइ स्कूलोंके खोलनेका उद्योग हमें करना चाहिए। उच्चशिक्षाके लिए कालेजोंके साथम बोर्डिंग हाउस खोलकर हमें धार्मिक शिक्षाकी व्यवस्था करना चाहिए तथा हमारे प्रसिद्ध नेता सेठ मानकचंद हीराचंदके बताये हुए मार्गको हमें न छोड़ना चाहिए परन्तु, महाशयो, इसीके साथमें हमें एक ‘ सेंट्रल जैन कॉलेज ’ खोलनेके लिए भी उद्योग अवश्य करना चाहिए। जैन कॉलेजका प्रश्न एसोसिएशनकी ही आयुका है, परन्तु खेद इस बातका है कि इसकी चर्चा तो हम बराबर करते जाते हैं, परन्तु इसके लिए कार्य हमने अबतक कुछ भी नहीं किया। मेरी सम्मतिमें हमें उचित है कि हम एक कमेटी नियुक्त करें जो इस प्रश्नपर सलाह करके हमें इस बातकी सम्मति दे कि किस स्थानपर हमें यह कॉलेज स्थापित करना चाहिए, इसके प्रबंधके लिए क्या योजना करनी चाहिए तथा इसके लिए द्रव्य कितना तथा किस प्रकारसे हमें एकत्रित करना चाहिए और इसका संबन्ध सरकारी विश्वविद्यालयोंसे रखना चाहिए अथवा यह नवीन हिन्दू विश्वविद्यालयका गर्भित अथवा Constituent कॉलेज होना चाहिए।

भाइयो, यह जो मैंने निवेदन किया वह साधारण शिक्षाके संबन्धमें है। विशेष—शिक्षाके लिए हमें विशेष संस्थायें स्थापित करनी चाहिए। वह शिक्षा कोई शिक्षा नहीं जो कौमकी आवश्यकताओंको पूर्ण न करे। जैनधर्म जो वैश्योंका धर्म कहा जाता है यह ठीक है क्योंकि हममेंसे अधिक व्यापारी वर्गके हैं। मध्यभारत एजेंसीमें सन् ११ में जैनियोंकी संख्या ८७,४७१ थी, उनमेंसे ६३,३८९ का व्यवसाय व्यापार था। अन्य स्थानोंका हाल मुझे विदित नहीं, परन्तु मैं कह सकता हूं कि अन्य स्थानोंमें हमारे व्यापार-व्यवसायी भाइयोंका परिमाण और भी अधिक होगा। इसीसे हमें यह सम्मति दी जाती है कि हमारी पाठशालाओंमें केवल धार्मिक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथा व्यापारिक जैसे मुनीमी इत्यादिकी शिक्षा देनी चाहिए। प्रश्न यह है कि जैनधर्म क्या केवल बनियोंका—व्यापारी-मुनीमोंका—धर्म रहनेसे संतुष्ट होगा? वह कौम कौम नहीं जिसमें सब प्रकारके व्यक्ति न हों—व्यापारी, कलाकौशलके जाननेवाले, राज्यकर्ता, कानूनके जाननेवाले, लेखक, कवि, डॉक्टर, न्यायाधीश, सैनिक, धर्मप्रचारक, कृषक, परिश्रम करनेवाले, इत्यादि। क्या पृथक् पाठशालायें खोलकर हम अपनी इस बड़ी आवश्यकताको पूर्ण कर सकते हैं? महाशयो, निःसन्देह इसके लिए हमें सरकारी विद्यालयोंका सहारा लेना पड़ेगा—हमारे युवकोंको विदेशोंमें भेजना पड़ेगा। साथहीमें हमारे धर्मके प्रचारके लिए हमें अनेक व्यक्ति ऐसे तैयार करने होंगे जो हमारे धर्मके पूर्ण ज्ञाता हों तथा जिन्हें अन्य धर्मोंका—समस्त विद्याओंका—पाश्चात्य साइंस, दर्शन, न्याय, साहित्य तथा इतिहास आदिका—भी पर्याप्त ज्ञान हो। परन्तु मैं अपना यह मत पलटनेकी आवश्यकता नहीं देखता कि इस प्रकारकी अनेक छोटी छोटी संस्थाओंकी अपेक्षा एक विशाल तथा सुव्यवस्थित संस्था अधिक लाभदायक होगी। आप क्षमा करें, मेरी सम्मतिमें काशी, मथुरा तथा मुरैनाके विद्यालय हमारी इस आवश्यकताको पूर्ण नहीं कर सकते, और इसके लिए यदि इन तीनों संस्थाओंको मिलाकर एक विशाल संस्था बनाई जाय तो मैं समझता हूं कि अधिक लाभ होगा। * *

प्रिय प्रतिनिधिगण, सामाजिक सुधार तथा शिक्षाप्रचारके कार्यके लिए जिस मार्गका अवलंबन करनेकी सम्मति मैंने प्रकट की है उसको धारण करनेके लिए आपको यह स्पष्ट जान पड़ता होगा कि सबसे पहले हमें अपनी कौमको इस बातके लिए तैयार करना होगा कि वह परिवर्तन अथवा change ग्रहण करनेको तत्पर हो। यह बात हमें मानना पड़ेगी कि हमारी जैन जाति अभी परिवर्तनके लिए, भारी परिवर्तनके लिए, तत्पर नहीं है। एक प्रसिद्ध अँगरेज लेखक का यह कथन सर्वथा ठीक है कि—

"प्राकृत प्राचीन-प्रियता यह मानवी हृदयकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है। मनुष्यका स्वभाव परिवर्तनके प्रतिकूल ही होता है, और इसके दो कारण हैं—एक तो अज्ञातका अविश्वास तथा काल्पनिक विवेचनकी अपेक्षा अनुभव पर अधिक अवलंबन और दूसरा मनुष्यका वह स्वभाव जिसके कारण वह अपनी परिस्थितिके अनुकूल अपनेको बना लेता है जिससे अपरिचितकी अपेक्षा परिचित उसे अधिक स्वीकृत तथा सह्य होता है।" यद्यपि यह सत्य है तो भी हमें स्मरण रखना चाहिए कि एक जीवित वस्तुके लिए—living organism के लिए—परिवर्तन अपरित्याज्य है। "प्रत्येक वस्तु सतत परिवर्तनहीसे विद्यमान रहती है,." यह एक प्राचीन ग्रीकका कथन है। लॉर्ड रोज़बेरीके इस कथनकी सत्यता हमें माननी ही होगी कि, "The effigies and splendours of tradition are not meant to cramp the energies or the development of a rigorous and various nation." क्या यह कहना सत्य नहीं है कि, "नियम व संस्थायें मनुष्यके लिए हैं, न कि मनुष्य नियम व संस्थाओंके लिए।" 'या तो परिवर्तन या अंत' यही प्रकृतिका नियम है।

"है बदलता रहता समय उसकी सभी घातें नई,
कल काममें आती नहीं हैं आजकी बातें कई!
है सिद्धि-मूल यही कि जब जैसा प्रकृतिका रङ्ग हो—
तब ठीक वैसा ही हमारी कार्य्य-कृतिका ढङ्ग हो॥
प्राचीन हों कि नवीन छोड़ो रूढ़ियां जो हों बुरी,
बनकर विवेकी तुम दिखाओ हंस जैसी चातुरी।
प्राचीन बातें ही भली हैं यह विचार अलीक है,
जैसी अवस्था हो जहाँ वैसी व्यवस्था ठीक है॥"

अतएव महाशयो, यदि जैनधर्म व जैन कौमको जीवित रहना है, यदि जैनधर्मको हम सब देशोंमें तथा सब प्रकारके लोगोंमें प्रसारित देखना चाहते हैं, यदि हमें अपना अंत स्वीकृत नहीं है तो हमें

९-१०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

केवल अपनी सामाजिक रूढ़ियोंको ही नहीं परन्तु अपने धार्मिक व्यवहारोंमें भी परिवर्तन करनेके लिए तत्पर होना चाहिए। हमारे आचारके नियम सर्वत्र एकसे नहीं हो सकते। यह मैं नहीं कह रहा हूं कि हमें आचार्योंके सिद्धान्तोंका पालन नहीं करना चाहिए। कहनेका अर्थ यही है कि उन सिद्धान्तोंके भावका—उनके spiritका—न कि उनके अक्षरोंका—हमें पालन करना होगा। धार्मिक सुधारके नामहीसे हमारे जो मित्र घबड़ाने लगते हैं उन्हें जानना होगा कि आजकल तर्कका ज़माना है। हमें अपने सिद्धान्तोंका अर्थ समयके भावके अनुकूल करना होगा, तभी हमारा धर्म सार्वभौम धर्म हो सकेगा। हमारा सामाजिक संगठनका धार्मिक व्यवहारके साथ दृढ संबन्ध होनेके कारण दूसरेमें परिवर्तन किये बिना हम एक भी सुधार नहीं कर सकते, अतएव, महाशयो, जैसे जैसे समय पलटता जायगा तैसे तैसे हमें अपने धार्मिक व्यवहारोंकी प्रणालीमें भी परिवर्तन करते जाना पड़ेगा। नियमोंका पालन कर सिद्धांतका नाश करना उचित नहीं कहा जासकता। हमें यह न भूलना चाहिए कि धर्मका एक बड़ा उद्देश उपयोग है। वह धर्म नहीं जो मानव समाजको उपयोगी नहीं। जिस समय धर्म समाजको उपयोगी नहीं रहता उसी समय उसका अंत समझना चाहिए। इसलिए धर्मको उपयोगी बनाये रखनेके लिए यह आवश्यक है कि समय समय पर उसके आचार-नियमोंमें परिवर्तन किया जाय—कौमकी रुढ़ियोंका सुधार किया जाय। परन्तु भाइयो, इसीके साथ हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि इस परिवर्तनके कार्यमें हमें सावधानीसे काम लेना चाहिए। सामाजिक रूढ़ियोंके बनमें कई पौधे ऐसे भी हैं जिनकी यदि सम्हाल की जाय तो वे सुगंधित पुष्प पैदा कर सकते हैं; सुधारके आवेगमें हमें इन पौधोंको भी उखाड़ कर न फेंक देने चाहिए। कौममें कई रीतियां ऐसी भी हैं जो आवश्यक नहीं तो हानिकारक भी नहीं हैं। हानिरहित अल्प आमोद प्रमोदके लिए भी कुछ सामग्री हमें अपने भाइयोंके लिए छोड़ देनेमें कोई हर्ज़ नहीं। इस संबन्धमें यह जान कर किसे प्रसन्नता न होगी कि हमारी समाजमेंसे पंडित और बाबू, इत्यादि प्राचीन भेद उठते जा रहे हैं। हमारे विद्वान् पंडितोंके विचारोंमें धीरे धीरे परिवर्तन होता जा रहा है। अँगरेज़ी पढ़े लिखे युवक भी अब पश्चिमको अपनी उन्नतिका आदर्श मानना तथा पंडितोंकी ओर अनादरकी दृष्टिसे देखना छोड़ते जा रहे हैं। निःसन्देह हमारी उन्नतिके लिए ये सब सुचिह्न हैं, तौ भी, अब भी हमारा भावी कार्य बहुत बड़ा है। हमें मूढ़विश्वास तथा कुरीतियोंकी चट्टानें तोड़ना है। जैन जातिको उठानेका कार्य हमें कदापि आशारहित न मानना चाहिए। मैं नहीं समझता कि यह हमारे योग्य होगा कि हम निराश होकर जैन कौमके सुधार व उसकी उन्नतिके कार्यको छोड़ दें, तथा अन्य जनसमाजमें जैनधर्मका प्रचार कर उसीके द्वारा जैनधर्मकी उन्नति करनेका उद्योग करें। वर्तमान जैनजाति ही जैनधर्मका प्रसार कर सकेगी यह हमें अवश्य मानना होगा। कोई भी व्यक्ति जैनधर्मको ग्रहण करनेके पहले यही पूछेगा कि जैनधर्मने भारतमें एक जनसमाजका क्या उपकार किया है। कहा जा सकता है कि सुधारकी चर्चा करनेवाले पापका बंध करके अपने लिए नरकका मार्ग बनाते हैं—परन्तु क्या इसका यह उत्तर उचित न होगा कि हमें नरक जाना स्वीकार है, परन्तु कौम तथा धर्मका अंत स्वीकार नहीं? अतएव, इस सुधारके कार्यके लिए हमें परिवर्तित होनेके लिए अवश्य तत्पर होना चाहिए। हम औरोंको जैनी बनानेका उद्योग कर रहे हैं। मैं पूछता हूं कि क्या हमारी सामाजिक रीतियां तथा हमारे धार्मिक व्यवहारोंकी प्रणालीको परिवर्तित किये बिना हम इस कार्यमें सफलता पा सकते हैं? हम एक ओर तो औरोंको जैनी बनानेका उद्योग करते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं तथा दूसरी ओर कहते हैं कि दस्सोंको जिनपूजाधिकार नहीं है। महाशयो, भारतमें धर्म व समाजका घनिष्ट सम्बन्ध है। मनुष्य सामाजिक जीव होनेके कारण जनसमाजसे पृथक् नहीं रह सकता। यदि हम औरोंको जैनी बनाना चाहते हैं तो क्या यह आवश्यक नहीं है कि हम उन्हें अपनी समाजमें भी सम्मिलित करें ? क्या यह आवश्यक नहीं है कि हम उन्हें भी अपने ही समान धार्मिक अधिकार प्रदान करें ? परन्तु क्या आप बतावेंगे कि हमारी कौममें कितने ऐसे जन विद्यमान हैं जो यह कहनेको तैयार हों कि—

" जो चाहता है अपना कल्याण मित्र करना,
जगदेकबंधु जिनकी पूजा पवित्र करना।
दिल खोल करके उसको करने दो कोइ भी हो,
फलते हैं भाव सबके कुल जाति कोई भी हो॥ "

क्या हम नवीन जैनियोंके साथ परस्पर सामाजिक संबन्ध करनेके लिए तैयार हैं ? यदि नहीं, तो क्या हमारा औरोंको जैनी बनानेका उद्योग निष्फल न होगा ? महाशयो, मेरी सम्मतिमें तो हमें इन सब परिवर्तनोंको ग्रहण करनेके लिए तत्पर होना चाहिए तब ही कौमकी उन्नति व धर्मका प्रचार होगा।

अपने धर्मके प्रचारके लिए जैनशास्त्रोंका प्रकाशित करना यह हमारा एक पवित्र कर्तव्य है। यह प्रसन्नताकी बात है कि हमारा ध्यान इस ओर अधिकाधिक खिंचता जा रहा है—तौ भी कार्यके विस्तारके आगे इसके लिए हमने जो उद्योग अबतक किया है व अब कर रहे हैं वह कुछ भी नहीं है। मेरे परममित्र बाबू जगमंदरलालजीके उद्योगसे जो जैन लिटरेचर सोसायटी लंडनमें स्थापित हुई है उससे बहुत कुछ आशा है, अतएव हमें उसे उचित सहायता प्रदान करनी चाहिए। इस संबन्धमें बाबू जगमंदरलालजीके परिश्रमकी जितनी सराहना की जाय उतनी ही कम है। स्वयं उन्होंने जो ग्रन्थोंके अनुवाद इत्यादि किये हैं तथा मूल पुस्तकें व लेख लिखे हैं उनसे जिनवाणीके प्रचारमें बहुत बड़ी सहायता मिली है। अन्य सज्जन भी इसी प्रकार उद्योग कर रहे हैं जो प्रशंसनीय है, परन्तु हमें संसारकी प्रायः खास खास भाषाओंमें हमारे शास्त्र तथा जैनमत पर मूल पुस्तकें प्रकाशित करनी होंगी। आराके जैनसिद्धांतभवनको हमें एक वास्तविक सेंट्रल जैन लायब्रेरी व म्यूजियम बनाना होगा। स्कूलों व कॉलेजोंमें पढ़नेवाले हमारे विद्यार्थियोंके लिए हमें स्वतंत्र पुस्तकें लिखकर प्रकट करनी होंगीं जिससे कि वे सुगमतासे जैनसिद्धान्तोंका साधारण ज्ञान प्राप्त कर सकें। क्या ही उत्तम हो यदि हम इसके लिए एक ऐसा कोर्स बनानेका उद्योग करें जो आरंभिक पाठशालाओंसे लेकर कॉलेजों तकमें पढ़ाया जा सके।

महाशयो, धार्मिक तथा सामाजिक स्थितिहीके समान हमें अपनी राजनैतिक स्थितिका भी अवलोकन कर अपनी आवश्यकताओं पर विचार करना चाहिए। मुझे सदा यह शिकायत रहती है कि हमारे भाई सार्वजनिक कार्योंमें बहुत ही कम भाग लेते हैं; इसी कारण हम राजनैतिक क्षेत्रमें भारतकी अन्य कौमोंसे पिछड़े हुए हैं। हमारे कुछ मित्र मेरे इस कथनकी सत्यता स्वीकार नहीं करते। मैं उनसे प्रार्थना करता हूं कि कृपया वे मुझे बतावें कि इस समय हमारी प्रान्तिक कौंसिलोंमें अथवा इंपीरियल कौंसिलके सभासदोंमें जैनी कितने हैं। भारतकी अन्य जातियोंके प्रधान प्रधान नेता इस बातपर विचार कर रहे हैं कि युद्धके बाद भारतकी शासन-प्रणालीमें क्या क्या सुधार किये जावें। क्या आप बतावेंगे कि इनमें कितने जैनी सम्मिलित हैं ? इसी शहरमें आजकल भारतकी प्रधान राजनैतिक सभा, ' इंडियन नेशनल कॉंग्रेस ' का अधिवेशन हो रहा है। आप ही बताइए कि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसके प्रतिनिधियोंमें कितने जैनी हैं ? माना कि म्युनिसिपल कमेटियोंके तथा लोकलबोर्डोंके जैनी भाई सभासद हैं, परन्तु बताइए कि इनकी संख्या कितनी है, तथा इनमें उच्चशिक्षाप्राप्त कितने हैं ? और क्या हमें यहींतक जाकर ठहर जाना चाहिए ? मेरी सम्मतिमें कदापि नहीं । हमें कौंसिलोंमें प्रवेश करना चाहिए । परन्तु प्रश्न यह होता है कि किस प्रकार यह कार्य किया जाय । हमारे कतिपय भाइयोंकी सम्मति यह जान पड़ती है कि विशेष प्रतिनिधित्व अथवा Special representation के द्वारा हमें भी हमारे मुसलमान भाइयोंके समान कौंसिलोंमें प्रवेश करना चाहिए । महाशयगण, मेरी सम्मति इसके प्रतिकूल है । क्या आप कोई ऐसा उदाहरण दे सकते हैं कि कोई भी योग्य जैनी अथवा कोई भी जैनी कौंसिलोंके लिए उम्मेदवार हुआ और वह जैनी होनेके कारण न चुना गया । यदि नहीं तो फिर जनरल इलेक्टोरेटके ऊपर अविश्वास प्रकट कर विशेष प्रतिनिधित्वका सत्त्व माँगनेके लिए हमारे पास क्या कारण है ? मेरी सम्मतिमें हमें कौंसिलोंमें योग्यताके राजद्वारहीसे, न कि विशेष प्रतिनिधित्वके बगलके द्वारसे, प्रवेश करना चाहिए ।

प्यारे प्रतिनिधियों, हमें और भी दो एक कामोंको हाथमें लेना चाहिए । हमारे कुछ त्योहारों पर आम छुट्टी करानेका प्रयत्न मैं समझता हूं हमारी एसोसिएशनको करना चाहिए, क्या कि इस कार्यमें तीनों संप्रदायके सहोद्योगकी आवश्यकता है । हमारी एसोसिएशनको उपदेशकों द्वारा समाजसुधारके विचारोंका प्रचार करनेका अधिक उद्योग करना चाहिए । हमारे युवकोंको अन्य देशोंमें भेजकर उच्च औद्योगिक तथा साधारण व व्यवसायी शिक्षा दिलानेकी योजना करनी चाहिए । हमारे मंदिरोंके कोषमें बहुत धन पड़ा हुआ है, उसे निकालकर शिक्षा तथा कलाकौशलके प्रचारके लिए उसका प्रयोग करानेका प्रयत्न हमें करना चाहिए । हमारी सार्वजनिक संस्थाओंका कुप्रबन्ध दूर कराकर उनका प्रबंध सुधारनेका उद्योग भी हमें अवश्य करना चाहिए, क्यों कि सार्वजनिक संस्थाओंका प्रबंध ठीक न होना बहुत हानिकारक है । हमारी एसोसिएशनकी नियमावलीका परिवर्तन कर हमें उसका संगठन ऐसा करना चाहिए जिससे एसोसिएशन तीन दिनकी लेकचरबाज़ी छोड़कर साल भर तक वास्तविक कार्य करनेके योग्य होजाय ।

प्रिय महाशयो, आपसे, विशेष कर हमारे अँगरेज़ीदां भाइयोंसे, मैं एक प्रार्थना और करना चाहता हूं । मैं उनका ध्यान हिंदी भाषाकी ओर—हिंदी साहित्यकी ओर——खींचना चाहता हूं । मुझे यह देखकर बहुत दुःख होता है कि हमारे अँगरेज़ी पढ़े लिखे भाई हिन्दीभाषाके प्रचारके कार्यमें उतना उत्साह नहीं दिखलाते जितना कि उन्हें दिखलाना चाहिए । कतिपय सज्जनोंको छोड़कर बाकीके इस कार्यसे प्रेम प्रकट नहीं करते । हिंदी ही जैन जातिकी भाषा है । हिंदीका प्रचार अन्य प्रान्तोंके जैनी भाइयोंमें करनेसे केवल हिंदीहीकी उन्नति न होगी किन्तु हमारी जैन जातिमें एकताका भी प्रचार होगा । अतएव हमें चाहिए कि हम हिंदीसे प्रेम करें, हिंदी भाषामें लेख तथा पुस्तकें लिखें, अपने समस्त निजी तथा सार्वजनिक कार्य हिंदी भाषामें करें, और हिंदीके प्रचारके लिए उद्योग करें ।

एसोसिएशनके सभासदगण, इस भाषणको समाप्त करनेके पहले आपसे मैं यह निवेदन करनेकी आज्ञा चाहता हूं कि जैन कौमकी उन्नति करना तथा जैनधर्मका प्रचार करना यह हमारा एक परम पवित्र कर्तव्य है । जिसने मनुष्य जन्म धारण करके अपने कुल, अपनी जाति, अपने देश, अपने धर्मकी उन्नतिके लिए उद्योग नहीं किया उसने कुछ न किया । मेरे विचारमें जनसमाजकी सेवा करने—मनुष्यजातिका दुःख दूर करने——की अपेक्षा आत्मकल्याणका अच्छा साधन नहीं है । वही सबसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महापुरुष है जो पाप और दुःखसे लड़ता है, जो दरिद्रिता व अपराध पर विजय प्राप्त करता है–जो परोपकार करता हुआ आत्म कल्याण कर निर्वाण प्राप्त करता है। हमारी जाति तथा हमारे धर्मकी ओर हमारी उदासीनता हमारे लिए लज्जाकी बात है। हमें स्वतंत्रताके साथ अपने विचारोंको प्रकट करते हुए जाति तथा धर्मसेवाका कार्य करना चाहिए। यद्यपि हमारी संख्या थोड़ी है और हमारा कार्य महान् है तथापि हमें स्वर्गवासी रानड़ेके ये शब्द सदा याद रखने चाहिए–अर्थात्, यद्यपि संख्याकी शक्ति हमारे पास नहीं तथापि हमारे उद्देशके लिए हमारे सच्चे कार्यकर्त्ताओंके विश्वासका उत्साह, भक्तिकी एकाग्रता तथा स्वार्थत्याग करनेके लिए तत्परताकी शक्ति हमारे पास है कार्यकर्त्ता चाहे कम हों, परन्तु अंतमें विरोधके ऊपर उन्हें जय अवश्य प्राप्त होगी।" अतएव, महाशयो, हमें अपने उद्योगके फलकी अल्पताको देख निराश नहीं होना चाहिए। यद्यपि हम वास्तविक कार्य अधिक नहीं कर सके हैं तथापि हमारे उत्साही प्रधान–मंत्रीके शब्दोंमें एसोसिएशनके कामका अधिक भाग उन परिवर्तनोंमें है जो उसने हमारी समाजके विचारोंमें पैदा किया है। हमें अपनी कौम तथा धर्मके भाविष्यमें अटल विश्वास रखना चाहिए। यद्यपि इतिहास बताता है कि—

"संसारमें किसका समय है एकसा रहता सदा,
हैं निशि दिवासी घूमती सर्वत्र विपदा संपदा।
जो आज राजा बन रहा है रंक कल होता वही।
जो आज उत्सवमग्न है कल शोकसे रोता वही॥"

परन्तु साथहीमें इतिहास यह भी बताता है कि—

"होता समुन्नतिके अनंतर सोच अवनतिका नहीं,
हाँ सोच तो है जो किसीकी फिर न हो उन्नति कहीं।
चिन्ता नहीं जो व्योमविस्तृत चन्द्रिकाका ह्रास हो,
चिन्ता तभी है जब न उसका फिर नवीन विकास हो॥"

महाशयो इतिहासका यह उपदेश हमें स्मरण रख अपनी कौम व धर्मकी उन्नतिके लिए सतत उद्योग करना चाहिए।

लड़ना धर्म है या क्षमाभाव रखना ?

(ले॰, श्रीयुत **वाडीलाल मोतीलाल शाह**।)

सम्पादक महाशय, मुझे आशा है कि आपकी तथा आपके अन्य स्वधर्मी भाइयोंकी ओरसे शीर्षकके प्रश्नका यही उत्तर मिलेगा कि 'क्षमाभाव रखना धर्म है'। क्योंकि शास्त्र हमेशा यही उपदेश देते हैं। कि क्रोध मान माया आदिको जैसे बने तैसे कम करो। आप भी यही कहेंगे कि धर्म तो निरुपद्रवी–किसीको जरा भी चोट न पहुँचावे, किसीको भी और मनसे भी दुःख न पहुँचावे, ऐसा है। परन्तु धर्मकी यह पवित्र व्याख्या करते समय आपका हृदय तो यही कहता होगा कि 'निरुपद्रव धर्मकी रक्षाके लिए तो उपद्रवका ही हथियार आवश्यक है।" अभिप्राय यह कि जो यह मानते हैं कि 'धर्म' स्वयं निरुपद्रव है, वे लोक भी उस धर्मकी रक्षा–आस्तित्वके लिए उपद्रव (क्रोध, द्वेष, कुटिलता, आदि अनिष्ट कार्य) का उपयोग करते हैं। ऐसी दशामें या तो आपको धर्मकी व्याख्या बदलनी पड़ेगी और उसके निर्दोष निरुपद्रव स्वरूपके बदले कोई और ही प्रकारका स्वरूप मानना पड़ेगा, या अपने निरुपद्रव धर्मकी रक्षाके लिए आपलोग जिन उपद्रवी अस्त्र शस्त्रोंको काममें लाते हैं वे फेंक देना पड़ेंगे। दोमेंसे एक अवश्य ही करना पड़ेगा।

आप पूछेंगे कि हम धर्मको निरुपद्रव तो आवश्य मानते हैं; परन्तु उसकी रक्षाके लिए उपद्रवी अस्त्र शस्त्रोंका उपयोग कहाँ करते हैं ?

महाशय, मुझे माफ कीजिए और कहने दीजिए कि आप उनका उपयोग करते हैं; और केवल आपके ही विषयमें नहीं किन्तु सारे ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्मोंके अनुयायीजनोंके विषयमें भी लगभग यही बात कही जा सकती है। अपने धर्मकी सत्यता दूसरोंसे मनवानेके लिए उन दूसरोंके धर्मोंकी निन्दा करनेके प्रयत्न क्या संसारमें थोड़े हुए हैं?—इसका कारण यही है कि अपने धर्मका अस्तित्व इसके बिना रह नहीं सकेगा, ऐसा इन प्रत्येक धर्मके लोगोंका हृदय मानता है (मुँह नहीं; मुँह तो शान्तिकी, क्षमाकी दयाकी और नम्रताकी ही बातें किया करता है!)। इसी प्रकार जिस देवको शान्ति, क्षमा, दया आदि सात्विक गुणोंका भण्डार माना जाता है उस देवकी स्थापना जिन मूर्तियोंमें की जाती है उन मूर्तियोंके लिए भी क्या इस दुनियामें थोड़े लोग आपसमें लड़ते झगड़ते दिखलाई देते हैं?

अब कहिए महाशय, कहाँ तो भगवानको क्षमासागर और क्षमाके उपदेष्टा मानना और कहाँ उन भगवानके नामसे आपसमें लड़ना—झगड़ना—मुकद्दमेवाजी करना। बतलाइए तो सही कि ये दिगम्बर और श्वेताम्बरोंके बीचमें, सम्मेदशिखर आदि तीर्थस्थानोंसम्बन्धी, लाखों रुपयोंका स्वाहा करनेवाले युद्ध, कैसे और क्यों होने लगे? क्या धर्म अपनी रक्षाके लिए अपने भक्तोंकी इस प्रकारकी सहायताकी अपेक्षा रखता है? क्या हमारी—आपकी सहायताके बिना अपने पैरों आप खड़े होनेकी शक्ति हमारे धर्ममें नहीं है? क्या जब हम सब उसके लिए आपसमें कट मरेंगे और अपना बलिदान कर डालेंगे तभी धर्म टिक सकेगा, और किसी तरह नहीं?

इन झगड़ोंको देखकर इच्छा होती है कि मैं जैनसमाजकी धर्मविषयक व्याख्याओं, मानताओं और कार्योंकी जाँच करूँ और जाँचके अन्तमें खूब हसूँ—और खूब रोऊँ। मैंने देखा है कि जिस पतिपत्नीके जोड़ेमें आपसमें अनबन रहती नहीं है वे भी एक पुत्रके उत्पन्न हो जानेपर एक दूसरेके गरजू या चाहक बन जाते हैं और इस तरह वह पुत्र इन दो व्यक्तियोंको परस्पर जोड़नेवाला सूत्र बन जाता है। इसी तरह हिन्दू-मुसलमानोंके रितिरिवाज, वेषभूषा, धर्म आदि बातें भिन्न होने पर भी जबसे भारतमें 'भारतीय राष्ट्र'की भावना मूर्तिमान् होने लगी है तबसे मुसलमान भी हिन्दुओंके साथ प्रेमकी संकलसे बँधने लगे हैं—एक दूसरेसे गले मिलने लगे हैं और एक साथ एकप्राण होकर काम करने लगे हैं। मुस्लीमलीगका कांग्रेसके साथ एक मत हो जाना इस बातका प्रत्यक्ष प्रमाण है। इन दो भिन्न प्रकृतियोंको भी इतनी निकटवर्तिनी कर देनेवाली, मित्र बना देनेवाली बात और कोई नहीं, केवल 'भारतीय राष्ट्र'की भावना—हम दोनों एक माताके पुत्र हैं यह भावना—ही है; केवल इसीने यह आश्चर्यजनक शक्ति उत्पन्न की है।

परन्तु यह बात मेरी समझमें नहीं आती है कि जब परस्पर अनबन रखनेवाले दम्पतीको प्रेमसूत्रसे जोड़ देनेवाले पुत्र और भिन्नप्रकृति हिन्दू-मुसलमानोंको मित्र बनानेवाली 'भारतीयता' की भावना, इन दोनोंसे ही अधिक शक्तिशाली एकताका तत्त्व हमारे समग्र जैनसमाजमें मौजूद है, तब हमारे बीचमें इस एकता—इस प्रेम—इस मेल मिलाप—के बदले पारस्परिक द्वेष और वैर भाव कहाँसे आता है। सबके एक ही देव, सबकी एक ही कर्म फिलासफी, सबका एक ही स्याद्वाद, सबकी एक ही दयामय नीति, सबका एक ही देश, सबकी एक ही भाषा, सबके एकहीसे रीतिरिवाज और सबके एकही प्रकारके स्वार्थ—इस तरह प्रायः सभी बातोंमें समानता होने पर भी हममें पारस्परिक एकता नहीं है, इसका क्या कारण है? मैं आपसे और अन्य विद्वान् सज्जनोंसे पूछता हूँ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कि क्या मनुष्योंमें क्षमा, शान्ति आदि सात्विक गुण उत्पन्न करने और उन गुणोंको पुष्ट करनेके आशयसे ही जैनधर्ममें 'देवपूजा' नहीं मानी गई है ? यदि यह सच है तो कृपा करके इस पवित्र आशयको निर्मल निष्कलङ्क रहने दो और इन गुणोंका आरोपण जिनमें किया गया है उन मूर्तियोंके निमित्तसे क्लेश, वैर, क्रोध, आदि तामसिक भावोंको आमंत्रित करनेवाली प्रवृत्तिको रोको—कृपा करके रोको, और किसीके लिए नहीं तो इस आशयकी पवित्रता बनाये रखनेके ही लिए—रोको।

यदि धर्मकी भावना, भिन्न भिन्न स्वभावोंके एकीकरणके लिए, यत्र तत्र एक दूसरेसे डर कर अलग अलग पड़े हुए मनुष्योंको एक 'समाजके' रूपमें संगठित करनेके लिए, एक दूसरेसे डरनेके बदले एक दूसरेके सहायक बनना सिखाने और एक दूसरेके सुख दुःखमें सहानुभूति रखनेकी शिक्षा देनेके लिए आवश्यक है, तो कृपाकरके इस भावनाको, एक दूसरेके विरुद्ध चलाया जानेवाला हथियार मत बनाओ, एक दूसरेको जुदा करनेवाली खाई मत बनाओ, एक दूसरेको शत्रु मानकर असभ्यताके युगके समान अपनी अपनी दो दो बालिश्तोंकी वृक्षकोटरोंमें घुस कर रहनेकी प्रेरणा करनेवाला भयानक साधन मत बनाओ।

क्या आपने 'सब जीवोंको करूँ शासनरसिक' इस प्रकारकी भावना एक 'शासन' (किंगडम्—समाज–राज्य) स्थापित करनेकी इच्छासे नहीं की थी ? तब फिर यदि आप अपने 'शासन' से बाहरके मनुष्योंको अपने शासनके भीतर आकर्षित करके अपना राज्य बलिष्ठ और विस्तृत नहीं बना सकते हैं तो न सही; पर जो आपके 'शासन' में हैं, उनको तो बने रहने दो, उनको तो लड़ा-झगड़ाकर अलग मत कर दो, अलग करनेकी प्रवृत्तिसे तो बाज आओ, कमसे कम इस शासनके स्थापक महागुरु महावीर भगवानके पवित्र नामके लिहाजसे ही इसे छोड़ दो।

सम्पादक महाशय, शायद आप मेरे प्रश्नोंके मारे तंग आ गये होंगे; परन्तु मुझे खेद है कि मैं आपको अब भी छुट्टी नहीं दे सकता। तंग आगये ? नहीं, इस बातको मैं नहीं मान सकता कि आप मेरे प्रश्नोंके मारे तंग आगये होंगे। अपने भाइयोंके साथ तो आप वर्षों तक लड़ते रहनेपर भी तंग न आये और मेरे दो चार प्रश्नोंसे ही तंग आ गये ? यदि आप इतने भले होते कि ऐसे मौकोंपर तंग आजाते—ऊब उठते, तो सचमुच ही बहुत अच्छा होता। जो हृदय आपसी लड़ाइयोंसे कठिन पत्थर बन गये हैं वे प्रश्नोंके दो चार बाणोंसे कभी नहीं छिद सकते। इधर मुझे भी आपकी चलती हुई लड़ाइयाँ देख देखकर बाण चलानेका खब्त सवार हो गया है और इससे मैं अभी कुछ और भी प्रश्नबाण छोड़नेके लालचको नहीं रोक सकता।

मैं आपसे पूछता हूँ कि क्या आप इन मुकद्दमोंमें 'व्यवहार धर्म' की रक्षाके लिए देशहितकी बलि नहीं दे रहे हैं ? क्या आप 'व्यवहार धर्म' की रक्षाके लिए समाजबलकी हत्या नहीं कर रहे हैं ? क्या आप 'व्यवहार धर्म' की रक्षा के लिए सदाचारके गले पर छुरी नहीं चला रहे हैं ? और क्या आप "निश्चय' को लक्ष्यबिन्दु मानकर 'व्यवहार' की पालना करनी चाहिए," इस शास्त्राज्ञाका दुरुपयोग नहीं कर रहे हैं ?

क्या आप इस धर्मात्मापनके दिखानेमें ही धर्मात्मापनकी अनुपस्थितिको सिद्ध नहीं करते हैं ? क्या आप अपनी बलिष्ठता दिखलानेके लिए किये जानेवाले इन युद्धों द्वारा ही अपनी धार्मिक निर्बलताको प्रकट नहीं कर रहे हैं ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कृपाकरके थोड़ी देरके लिए इस दुखिया और अभागे भारतवर्षकी ओर देखो। आपके शास्त्रोंमें जिस आर्यदेशको अध्यात्मज्ञानका भाण्डार, लक्ष्मीदेवीका निवास, क्षात्रतेजकी जन्मभूमि, पृथ्वी जल और आकाश पर विजय प्राप्त करनेवाली विद्याओंका जनक और स्वतन्त्रता देवीका क्रीडास्थल बतलाया है, उस देश-की—उस आर्यावर्तकी—वर्तमान दशाका वर्णन क्या आपने कभी श्रीमान् दादाभाई नौरोजी या या श्रीमती एनी बीसेंटके मुखसे या कलमसे निकला हुआ सुना या बाँचा है? इसकी दिलको दहला देनेवाली भयंकर दरिद्रता, दुर्बलता, बीमारी, बुद्धिमन्दता, जड़ता, सत्वहीनता, उत्पादक शक्तियों और उत्पादक साधनोंका क्षय, आदि बातोंको क्या आप देख नहीं सकते हैं? करोड़ों मनुष्यों पर चढ़े हुए इन भयंकर भूतोंको दूर करनेके लिए देशके कितने ही 'देवों' ने जो महान् प्रयत्न करना शुरू किया है, उससे क्या आप सर्वथा ही अज्ञात हैं? भारत माताको फिरसे सुजला सुफला सुखसम्पन्ना बनानेके लिए ये 'देवगण' जी तोड़ परिश्रम कर रहे हैं, उसमें शामिल होनेके लिए आपको, मुझे और सबको पुकार रहे हैं, तो भी क्या आप उस पुकारकी ओर बहरे कान किये रहेंगे? वे पुकार पुकार कर कह रहे हैं कि अपने प्यारे देशकी दशा सुधारनेके लिए सबसे पहले ऐक्यकी आवश्यकता है और फिर इस ऐक्यबलसे हमें निरुद्योगिता और अज्ञानताको इस देशसे निकाल कर अलग कर देना है। हाय! इन देवोंकी अपील—प्रार्थना—सुननेके लिए तो आप अभी तक भी तैयार नहीं हुए हैं और पूजनविधिके एक तुच्छ भेदके कारण लड़ने झगड़नेके लिए कमर कसे हुए हैं, मिथ्यात्वकी विचित्र व्याख्याओंके अनुसार अपनेको छोड़ कर सारे देशको मिथ्याती मानकर उनसे दूर रहनेका उपदेश दे रहे हैं और समग्र देशके सुखदुखकी बातोंको जुदा रख कर रातदिन एक शाखाकी, नहीं नहीं उस शाखाकी भी शाखा—प्रशाखा—की ही बातोंमें मस्त हो रहे हैं; ऐसी दशामें बतलाइए, भारतमाताके उद्धारकी चिन्ता करनेवाले उक्त देवगण आपके विषयमें क्या सोचेंगे।

इस बातको तो आप स्वीकार करते हैं कि पूजन व्यवहार धर्म है, निश्चय धर्म नहीं है। तो भी किसी एक प्रकारकी पूजाके लिए, उससे विभिन्न प्रकारकी पूजा करनेवालोंके साथ लड़नेमें आप अपने बहुमूल्य समयका और देशको विज्ञानादिमें आगे बढ़ानेके लिए जिसकी आवश्यकता है उस लक्ष्मीका व्यय कर रहे हैं। पूजन करो, आनन्द और उत्साहसे आप अपनी ही पद्धतिके अनुसार पूजा करो और उस पूजनमेंसे पूज्य देवका बल, ज्ञान और चारित्र सम्पादन करके बलवान् बनो; परन्तु पूजापद्धतिको पारस्परिक बलका बलिदान करानेवाला तत्त्व मत बनाओ, यही मेरी प्रार्थना है। श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनोंकी पूजनपद्धति बनी रहे और दोनों अपनी अपनी पद्धतिसे अपने इष्ट देवकी पूजा कर सकें, क्या इस प्रकारका प्रबन्ध आप सारे पवित्र तीर्थक्षेत्रों पर नहीं कर सकते हैं? किसी स्थलपर दोनों एक ही मन्दिरमें पूजनपाठ करें, किसी स्थलपर दोनोंके लिए अलग अलग मन्दिरोंकी व्यवस्था कर दी जाय और किसी स्थलपर कोई और प्रबन्ध दोनों सम्प्रदायकी सलाहसे कर लिया जाय, इस तरह क्या आपसमें विश्वास प्रेम और ऐक्य उत्पन्न नहीं किया जा सकता? यदि आप इसके लिए इस प्रकारका कोई अच्छा निरुपद्रव मार्ग तजवीज नहीं कर सकते हैं तो क्या इसका अर्थ यह नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होता है कि जिस देशको, इस समय एकताकी सबसे अधिक आवश्यकता है उस देशके हितकी हत्या करके ही आपके दोनों सम्प्रदाय अपने अपने व्यवहार-धर्मकी रक्षा करना चाहते हैं ? और आपके इस वर्तावसे क्या प्रचालित नीति या सदाचारका भङ्ग नहीं होता है ? आपमेंसे बहुतोंको सच्चे झूठे प्रमाण खड़े करने पड़ते होंगे, दूसरे अनेक अन्याय करने पड़ते होंगे, धर्मके नामसे झगड़े—का काम करनेके लिए चन्दा करनेका पाप कमाना पड़ता होगा, एक दूसरेके अमंगलकी भावना करनी पड़ती होगी और उससे जैनधर्मकी नीवतुल्य चार भावनाओंकी हत्या होती होगी; ये सब बातें क्या नीति, धर्म, समाज, नेशन आदिके लिए बाधक नहीं हैं ?

जिस समय यूरोपका महायुद्ध शुरू हुआ था उस समय, मुझे स्मरण है कि आपमेंसे बहुतोंने सभायें करके भगवानसे इस प्रकारकी प्रार्थनायें की थीं कि यह युद्ध बन्द हो जाय और पुनः शान्तिका प्रसार हो। जिसके संचालक सूत्रों तक किसी तरह हमारा हाथ ही नहीं पहुँच सकता है उस दूरके युद्धकी शान्तिकी इच्छा करनेके लिए तो आप एकत्र हुए; परन्तु मुझे नहीं मालूम है कि आप लोगोंने अपने इस घरू युद्धकी आग बुझानेके लिए एक दिन भी एकत्रित होकर प्रार्थना की हो, या आपसमें मिलकर सलाह ही की हो। मालूम नहीं आपका यह कैसा व्यवहार है और कैसी आपके धर्मकी व्याख्या है। या तो यह स्वीकार कीजिए कि युद्ध अच्छा कार्य है, इससे शक्तियोंका विकास होता है और युद्ध करनेके लिए जिस बलकी आवश्यकता है उसका सम्पादन कीजिए, या युद्ध बुरा है, पाप है, यह मानकर उससे दूर रहिए। यदि आप ऐसा नहीं करते हैं, दूसरोंके युद्धको पाप मान कर अपने युद्धको पुण्य समझते हैं तो आपकी इस मानताको 'मनमानी घरजानी' के सिवाय और क्या कह सकते हैं ?

बाल्यविवाहादिसे हमारा बल घट गया है, यह बात रोज ही गला फाड़ फाड़ कर कही जाती है; परन्तु जब तक कन्या-व्यवहारका क्षेत्र विस्तृत न होगा तब तक बाल्यविवाह, बे-मेल-विवाह, कन्याविक्रय आदि अधर्म कदापि दूर नहीं हो सकते। कन्याव्यवहार-का क्षेत्र बढ़ानेमें जातियोंके सैकड़ों भेद उप-भेद सबसे बड़े बाधक हैं। जबतक समग्र जैन-समाज अपने अपने क्रियाकाण्डोंको—आचार विचारोंको पालते रहने पर भी दूसरोंके क्रिया-काण्डों तथा आचार विचारोंके प्रति सहिष्णुता रखनेवाला न बनेगा और परस्पर प्रेमभाव, ऐक्य, कन्याव्यवहार और कोआपरेशन न बढ़ायगा, तब तक सामाजिक कुरीतियाँ, निर्बलता और अज्ञानता आदि दोष कदापि दूर न हो सकेंगे। जब तक मूल बना हुआ है तब तक शाखा प्रशाखाओंके नाश होनेकी आशा रखना व्यर्थ है। समाजबलका सारा आधार एकता पर है और यह एकता दिगम्बर श्वेताम्बरके 'निश्चय' धर्मको तो सर्वथा ही बाधक नहीं है, रहा 'व्यवहार' सो उसमें भी यदि पर-मतसहिष्णुता रखना सिखाया जाय, तो एकता बाधक नहीं हो सकती।

सम्पादक महाशय, ये सारी दलीलें, प्रश्न और सूचनायें केवल आपके प्रति या श्वेताम्बर समाजके प्रति ही नहीं हैं; किन्तु समग्र जैनसमाजके प्रति हैं। इन सबका तात्पर्य केवल इतना ही है कि इस समय पवित्र जैनधर्मकी कीर्तिके लिए, जैनसमाजके बलके लिए और भारतके हितके लिए जैनोंके तमाम झगड़े मिटाकर एकताका बल बढ़ानेकी ओर सबसे अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। इस समय इस प्रार्थनाके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आग्रहपूर्वक करनेका कारण यह है कि मैंने जो दिगम्बर श्वेताम्बरोंके तीर्थक्षेत्रसम्बन्धी झगड़े आपसमें तय करनेका मिशन खड़ा किया है, उसे मैं समग्र जैनसमाजके सम्मुख रखना चाहता हूं। इसका सबसे अच्छा मार्ग तो यह है कि किसीको भी बीचमें डाले बिना वादी प्रतिवादी और उनके सधर्मीभाई स्वयं ही आपसमें मिलकर प्रयत्न करें; परन्तु ऐसा होना कठिन जान पड़ता है इस लिए मेरी सूचना यह है कि देशके माननीय और कायदे कानूनोंके ज्ञाता अगुओंमेंसे एक या इससे अधिक अगुए दोनों ओरसे पसन्द कर लिये जायँ और उनसे न्याय करा लिया जाय।

मेरे इस आन्दोलनके प्रति श्वेताम्बर दिगम्बर दोनों ही पक्षके बड़े बड़े धनवानों और उच्चश्रेणीकी शिक्षा पाये हुए विद्वानोंने सम्मतियाँ देकर, प्रसन्नता प्रकट करके और सहियाँ देकर सहानुभूति प्रकट की है जिसके लिए मैं उक्त सब सज्जनोंका आभार मानता हूँ और अन्य धनियों तथा शिक्षितोंसे प्रार्थना करता हूँ कि वे भी अपनी सम्मतियाँ भेजनेकी कृपा करें। इस प्रकारके विचारोंको फैलानेके लिए हजारों व्यक्तियोंकी सम्मतियाँ चाहिए।

केवल सहियाँ लेकर बैठ रहना मुझे पसन्द नहीं है, दोनों पक्षके अगुओं तथा मुकद्दमोंमें आर्थिक सहायता देनेवाले सज्जनोंसे प्राइवेट मिलने और उनको यह बात समझानेका प्रयत्न भी जारी है। इस काममें मुझे जो सफलतायें प्राप्त हुई हैं उनकी मुझे कल्पना भी न थी; परन्तु अभी उनके प्रकाशित करनेका समय नहीं आया है। इसका परिणाम चाहे जो हो, मुझे चिन्ता नहीं है। आन्दोलन सफल हुआ तो ठीक ही है, नहीं तो निष्फलतामें भी इतना लाभ तो हुए बिना रहेगा ही नहीं कि किसी न किसी अंशमें लोकमत तैयार होगा, एकताके विचार फैलेंगे और उनका अच्छा परिणाम कभी न कभी अवश्य होगा। यदि निष्फलता होगी तो इसका अर्थ यही होगा कि हमारे शिक्षित समुदायने इस आवश्यक देशहित और समाजहितके काममें अपना पूरापूरा बल नहीं लगाया, इसीसे सफलता नहीं हुई। इसमें 'आन्दोलन' का दोष नहीं है और 'अन्दोलन उठानेवाले' का भी अपराध नहीं है; परन्तु 'आन्दोलन' के लिए आवश्यक बल लगानेवाले लोग अपने कर्तव्यपालनसे विमुख रहे, यही दोष लोगोंकी दृष्टिके आगे आयगा और तब आगेके प्रत्येक आन्दोलनमें अधिक दूरदर्शिता और अधिक एकतासे काम करनेकी रीतिको लोग सीखेंगे।

अन्तिम प्रार्थना।

अन्य आवश्यक उपाय तो जो कुछ बन सकते हैं, किये ही जा रहे हैं, परन्तु इसके साथ लोकमत तैयार करनेकी भी अवश्यकता है, इस लिए प्रत्येक स्थानके अगुओं तथा शिक्षित सज्जनोंसे मेरा प्रार्थना है कि:

१ आप अपनी निजकी सम्मति पत्रद्वारा मुझे लिख भेजनेकी कृपा करें,

२ आप अपने अपने ग्राम और नगरोंमें अपने सम्प्रदायकी सभायें करके उनमें यह प्रस्ताव पास करें कि ये तीर्थोंके झगड़े आपसमें तय किये जायँ और उस प्रस्तावकी नकल मेरे पास भेज दें,

३ जैनपत्रोंमें तथा अन्य पत्रोंमें इस आन्दोलनको पुष्ट करनेवाले लेखादि लिखनेकी भी कृपा करें।

समस्त जैनसंघमें सहिष्णुता, भ्रातृभाव, ऐक्यबल, ज्ञानबल और शौर्य उत्पन्न हो और इन गुणोंसे सुशोभित जैनशासन सारी दुनिया पर जयवन्त हो, यही मेरी अन्तिम इच्छा है।*

---

* यह लेख 'श्वेताम्बर जैनकान्फरेंस हेरल्ड' से अनुवाद करके प्रकाशित किया जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्याद्वादमहाविद्यालयकी भीतरी दशा।

[ले० श्रीयुत प्रोफेसर निहालकरणजी सेठी एम्. एस् सी., काशी ।]

जैनहितैषीके पाठकगण ' सार्वजानिक धनकी जिम्मेवारी ' शीर्षक लेख सितम्बर अक्टूबरके अंकमें पढ़ चुके हैं । उसके पढ़नेसे उन्हें ज्ञात हो गया होगा कि जैनसमाजमें सार्वजनिक संस्थाओंके कार्यकर्ताओंको इस विषयके महत्त्वका कितना ज्ञान है और कितने संचालक अपनी इस बहुत बड़ी जिम्मेवारीको समझते हैं । कुछ साधारण रीतिसे उन्हें यह भी मालूम हो गया होगा कि ऐसी संस्थाओंके प्रबंधमें अवश्य कुछ गड़बड़ी है और अभी बहुत कुछ उन्नति करनेकी आवश्यकता भी है । किन्तु उन्हें अभी यह पता न हुआ होगा कि यह अंधेर यहाँतक बढ़ गया है कि समाज यदि वह अपना हित चाहता है और अपने गाढ़े पसीनेकी कमाईके द्रव्यका वास्तविक सदुपयोग करना अत्यन्त आवश्यक समझता है तो अब चुप नहीं बैठ सकता। अब ऐसा समय आगया है जब केवल यह सोचकर संतोष नहीं हो सकता कि अमुक संस्था तो अमुक सज्जनके हाथमें है उसमें गड़बड़ी नहीं हो सकती । संभव है कि बिना उन सज्जनके दोषके ही, उनकी अत्यधिक सज्जनताके कारण ही संस्थाकी दशा शोचनीय हो रही हो । इसके अतिरिक्त एक और बात ध्यान देने योग्य है । यह आवश्यक नहीं है कि कोई महाशय संस्थाका द्रव्य हड़प जायँ अथवा वह किसी ऊपरी टीम टामके कार्यमें ही वहुतसा द्रव्य व्यय कर दें । इन बातोंके बिना भी समाजका धन व्यर्थ जा सकता है, इनके होते हुए भी संचालकगण सार्वजनिक धनके दुरुपयोगके लिए दोषी हो सकते हैं । आज ऐसी ही एक कथा सुनानेको मैं बाध्य हुआ हूँ ।

आप बाध्य होनेका कारण पूछ सकते हैं । आप कह सकते हैं कि ऐसी कथा सुनानेमें क्या कष्ट था जो बिना बाध्य हुए सुना देनेकी आवश्यकता न समझी गई । इसका संक्षिप्त उत्तर केवल यही है कि संचालकोंको इस बातका डर था कि कहीं इस कुप्रबंधकी कथा समाजको मालूम हो जायगी तो समाज शायद इसके लिए चन्दा आदि देनेमें संकोच करने लगे । वे जानते थे कि प्रबंध उचित नहीं है, किन्तु उनका विश्वास था कि इस कुप्रबंधसे समाजकी इतनी हानि नहीं जितनी कि संस्थाके लिए द्रव्य न मिलनेसे होगी । इस कारण उनका प्रयत्न यह रहता था कि समाजके सम्मुख कोई इस रहस्यको प्रगट न करे । और मैं समझता हूँ कि यह विचार किसी अंशमें ठीक भी था । किन्तु सौभाग्यसे या दुर्भाग्यसे मुझे हालहीमें इस विद्यालयको स्वयं देखनेका अवसर मिला। बहुत दिन तक मैं इसकी दशाका यथार्थ स्वरूप जाननेका प्रयत्न करता रहा और इसके संचालकोंसे प्रार्थना भी करता रहा कि इसकी दशा शोचनीय है, इसका उचित प्रबंध होना चाहिए । किन्तु जब देखा कि वे लोग इस दशाको कुछ बुरी दशा नहीं समझते और इसके सुधारकी ओर उनका लक्ष्य भी नहीं है, तब मुझे समाजको यह सब कथा सुनानेके लिए प्रस्तुत होना पड़ा ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कदाचित् कोई मेरे आशयके समझनेमें भूल करे, इस विचारसे मैं आरम्भमें ही यह कह देना उचित समझता हूँ कि यह मैं जानता हूँ और मानता भी हूँ कि काशीके स्याद्वाद महाविद्यालयके स्थापित होनेके पहिले जैनसमाजमें जैनधर्मके अमूल्य शास्त्र-रत्नोंका अर्थ समझने और समझा सकनेवाले मनुष्योंकी बहुत ही कमी थी और इस संस्थाने इस कमीको यत्किंचित् दूर भी किया है; पर समाजको इससे अन्य भी कोई लाभ हुआ है यह अवश्य ही विवादग्रस्त बात है । किन्तु यदि यह संस्था अपना यही कार्य उचित रीतिसे करती रहे तो भी हमें बहुत हर्ष होगा । परन्तु अब इस कार्यमें भी बहुत कुछ गड़बड़ी हो रही है ।

शायद समाजको यह ज्ञात होगा कि यहाँके विद्यार्थियोंमें हड़ताल कर देनेका, पढ़ना बन्द कर देनेका, एक अपूर्व गुण है । इस गुणका प्रकाश समाजने बहुधा देखा होगा । यदि न देखा हो तो उसमें न विद्यार्थियोंका दोष है और न उनके गुणका । दोष है केवल संचालकोंका कि जिन्होंने उनके इस गुणको छुपा रखनेका प्रयत्न किया है । किन्तु जिन लोगोंको इस संस्थाके समाचार जाननेका थोड़ा बहुत शौक होगा उन्हें अवश्य ज्ञात हुआ होगा कि आज विद्यार्थियोंने अमुक अधिष्ठाताको निकलवा दिया, आज अमुक सुपरिंटेंडेंट साहबको अपना बदना बोरिया सम्हाल कर चले जाना पड़ा । यहाँतक कि यदि मुझे ठीक ज्ञात हुआ है तो अब तक इस विद्यालयमें प्रायः बीससे ऊपर सुपरिण्टेण्डेंट काम कर चुके हैं । और अधिष्ठाताओंकी संख्या भी जितनी समाजको मालूम है उससे कहीं अधिक हो चुकी है ।

प्रश्न हो सकता है कि यह गुण विद्यार्थियोंमें क्यों कर पैदा हुआ ? संस्कृत पढ़नेवाले विद्यार्थी जिनकी गुरुके प्रति बहुत ही अधिक श्रद्धा प्रसिद्ध है, जो गुरुकी चरणसेवा करना ही अपना परम कर्त्तव्य सदासे मानते चले आये हैं उनमें यह अनादरका भाव, यह स्वच्छन्दता कहाँसे उत्पन्न हो गई ? इसका वास्तविक कारण क्या है यह मैं आगे चलकर बतलाऊँगा और वह आप लोगोंको स्वयं भी जरा विचार कर लेने पर ज्ञात हो जायगा । यहाँ पर यह बात अवश्य कहूँगा कि संचालकगण भी इसके उत्तरदायित्व-से मुक्त नहीं हो सकते । क्यों कि उन्होंने अवश्य ही विद्यार्थियोंकी इच्छानुसार कार्य करके, जिसको उन्होंने निकलवाना चाहा उसे निकाल करके, जिसको नियत करना चाहा उसे नियत करके और विद्यार्थियोंकी खुशामद करके, उन्हें उत्तेजित किया है । यह लिखते समय मैंने यह अवश्य ध्यानमें रक्खा है कि विद्यार्थियोंका ऐसा व्यवहार कदापि उचित नहीं था । उन्होंने कभी ऐसी बातकी प्रार्थना नहीं की जो वास्तवमें आवश्यक थी, किन्तु द्वेषभावसे अथवा अन्य किसी कारणहीसे उन्होंने ऐसा किया था । यह जो महाशय चाहें मालूम कर सकते हैं ।

जब मैं विद्यालयमें गया (शायद ४-५ अक्टूबरको) तब देखा कि फिर वही रंग है । पाठ बंद है, सब अध्यापकोंकी रिपोर्ट है कि विद्यार्थियोंने पढ़नेसे इन्कार किया है । जब ऐसा दृश्य देखा तो स्वाभाविक था कि चित्तको कष्ट पहुँचता । किन्तु किससे क्या कहा जाता ? अधिष्ठातासे ? वे तो कभी यहाँ रहते ही नहीं । उप-अधिष्ठातासे ? उनका भी बनारसमें कोई पता नहीं । मंत्रीजीसे ? वे तो स्वयं छुट्टीका अवसर देख कर जौनपुरसे दो दिनके लिए यहाँ आये थे और खुद परेशान थे कि क्या किया किया । क्यों कि उन्होंने विद्यार्थियोंसे बहुत कुछ कहा सुना था किन्तु विद्यार्थीगण उनकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बात तो क्या सुनते उनका अनादर करनेको उद्यत थे। क्या सभापतिसे कुछ कहता? उनके विषयमें तो सुना कि वे कभी पत्रका उत्तर भी देना उचित नहीं समझते। सुपरिंटेंडेंटसे? वाह, उनहीके विरुद्ध तो सारा प्रयत्न था, उनकी कौन सुन सकता था। जब अधिष्ठाता यहाँ नहीं रहते, उपाधिष्ठाता यहाँ नहीं रहते, मंत्रीजी भी परदेशी हैं, सभापतिको पत्रका उत्तर देनेका भी अवकाश नहीं होता तब आप समझ सकते हैं, कि इस सबमें आश्चर्यकी बात ही क्या थी।

खैर, मंत्री महाशयने जिस तिस प्रकार प्रबंधकारिणी सभाके स्थानीय सभासदोंको एकत्रित किया और उनसे प्रार्थना की कि ऐसी दशा है, इसका उचित प्रबंध हो जाना चाहिए। किन्तु भला ऐसे कार्यका उत्तरदायित्व अपने सिर कौन ले? यह निश्चय हुआ कि इसके कारणोंकी जाँच की जाय और सभापति महाशय श्रीमान् सेठ हुकमचंदजीसे तार द्वारा अनुमति ली जाय। कुछ सभासदोंने जाकर पूछताछ की तो ज्ञात हुआ कि मुख्य कारण यह है कि धर्माध्यापक महाशयकी मंत्रीजी और सुपरिंटेंडेंट महाशयसे नहीं बनती। वे चाहते हैं कि उक्त दोनों महाशय पृथक् हो जायँ। यह बात सभा पहिलेसे जानती थी और मंत्रीजीका बहुत कुछ अपमान करनेके कारण धर्माध्यापक पं० उमरावसिंहजीको सभा पहले ही एक मासके लिए पृथक् कर चुकी थी। अब ज्ञात हुआ कि उक्त पंडितजीने ही विद्यार्थियोंको बहकाकर पाठ बंद करवा दिया है। विद्यार्थियोंसे पूछने पर उनका उत्तर केवल यही था कि सुपरिन्टेन्डेन्ट महाशय—जो साहित्यके अध्यापक भी हैं—साहित्य ठीक नहीं पढ़ा सकते, अतः जब तक उनके स्थान पर कोई अन्य महाशय नियत न किये जावेंगे वे पढ़ना उचित नहीं समझते। किन्तु पंडित उमरावसिंहजीने (यद्यपि सब सभासदोंके समक्ष नहीं) स्वीकार किया कि उन्हींने विद्यार्थियोंसे ऐसा करनेको कहा था और उसका कारण उन्होंने यह बतलाया कि जबसे ये मंत्री महाशय नियत हुए हैं विद्यालयकी दशा बहुत खराब हो गई है और जब तक इस प्रकार पाठ बंद न किया जायगा तब तक इसके कार्यकर्त्ता इस ओर ध्यान न देंगे। पर उन्होंने प्रबन्धकारिणी सभाकी बैठकमें कहा कि यह बात मिथ्या है और मुझपर विद्यालयको हानि पहुँचानेकी नीयतसे यह झूठा दोष लगाया गया है। यह देख मुझे गवाह पेश करना पड़े और उन्हें चुप हो जाना पड़ा।

मैं यहाँपर यह विवेचना नहीं करना चाहता कि मंत्री महाशयने विद्यालयको लाभ पहुँचाया या हानि; किन्तु मैं समाजका ध्यान केवल इस बातकी ओर आकर्षित करना चाहता हूँ कि इस बातमें उस वास्तविक कारणका पता लगता है कि जिसके कारण विद्यार्थी इतने उद्धत और स्वच्छन्द हो गये हैं।

स्थानीय सभासदोंको इतना ज्ञात हो जाने पर भी वे कुछ कर नहीं सकते थे। करते भी कैसे? उनको कोई अधिकार ही नहीं था। सभापति होता, अधिष्ठाता होता, उपाधिष्ठाता होता तो शायद कुछ करता भी। २८ अक्टूबरको सभा करना निश्चय हुआ और बाहरके सभासदोंके पास सूचना भेजी गई। उस दिन सभा हुई और बाहरसे तीन सज्जन आये भी। सौभाग्यसे अधिष्ठाता महाशय भी पधारे। सब वृत्तान्त सुनाया गया; किन्तु सबको यह विश्वास हो जाने पर भी कि धर्माध्यापक महाशयका यह कार्य विद्यालयको बहुत हानि पहुँचानेवाला हुआ है और उनको इसके लिए दंड भी मिलना चाहिए, यह उचित नहीं समझा गया कि उनसे कुछ कहा जाय। क्योंकि अन्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्माध्यापक मिलना जरा कठिन कार्य है। किन्तु यह अवश्य हो गया कि धर्माध्यापक और सुपरिन्टेन्डेन्ट महाशयके नहीं बनती है, इस लिए सुपरिन्टेन्डेन्ट महाशय १०-१५ दिनमें पृथक् कर दिये जायँ। १०-१५ दिनमें भी इस लिए कि शायद अभी ऐसा करनेसे विद्यार्थी समझेंगें कि हमारी जय हुई। अधिष्ठाता महाशयने कृपा कर दो महीने यहीं ठहर जाना स्वीकार किया।

अब देखना यह है कि प्रायः २५ दिन विद्यालयमें पढ़ाई बंद रही। छात्राश्रममें भोजन जो विद्यार्थियोंको पढ़नेके लिए मुफ्त दिया जाता है बराबर दिया गया। भोजनके व्यतिरिक्ति अन्य ख़र्च भी बराबर होता रहा। इन सबके अतिरिक्ति जो हाथख़र्चके लिए विद्यार्थियोंको मासिक मिलता है उसमें भी किसी प्रकारकी हानि नहीं हुई। विद्यार्थियोंको अपराधका इसके अतिरिक्त कुछ दंड न मिला कि एक मासके लिए उनके भोजनके घीकी मात्रा कुछ कम कर दी गई। उनको बहकानेवाले पंडितजीका भी कुछ न बिगड़ा।

विद्यालयमें माय ५००-६०० रु० मासिक व्यय होता है, जिसमें अध्यापकोंका वेतन तो केवल १५०) से कममें ही हो जाता है। मकानके लिए कोई व्यय नहीं करना पड़ता। प्रायः ४००) मासिक भोजन आदिमें व्यय होता है और केवल २७-२८ विद्यार्थी शिक्षा पाते हैं। शिक्षा कैसी मिलती है और ये विद्यार्थी यहाँसे पंडित बनकर समाजका कितना उपकार करेंगे यह उपर्युक्त कथासे प्रकट होता है। इसके अतिरिक्ति जिस विद्यालयमें यह भी ठीक ठीक नहीं मालूम कि कौन विद्यार्थी कब किस अध्यापकके पास उपस्थित था और कब नहीं, जहाँ हाजिरीके रजिस्टर भी ढूँढ़ निकालनेके लिए परिश्रम और धमकियोंकी आवश्यकता होती है, जहाँके दफ्तरसे प्रबंधकारिणी सभाकी कार्यवाहीकी पुस्तक भी गुम कर देनेमें विद्यालयमें रहनेवालोंको संकोच नहीं होता, जहाँके आचार्य बननेवाले विद्यार्थी जरा जरासे भोजनके घीके वास्ते लड़नेको प्रस्तुत हो जाते हैं और जहाँके छात्रों और अध्यापकोंको संदिग्ध आचरणके कारण दंड देनेकी भी आवश्यकता पड़ जाती है, वहाँके निकले हुए पंडितोंका चरित्र क्या उच्च होसकता है? क्या वे धर्मोपदेशके अधिकारी हो सकते हैं? क्या उनसे समाजको लाभ पहुँच सकता है? क्या उन लोगोंके लिए समाजको ५००-६०० रु० मासिक व्यय करना उचित है? क्या उनके लिए शिक्षा ही बिना फीस नहीं किन्तु भोजन, वस्त्र, मकान इत्यादि भी देना और उस पर ४०० रु०मासिक केवल २७-२८ विद्यार्थियों पर ख़र्च करना समाजके सार्वजनिक धनका सदुपयोग करना है? इस पर भी क्या उन्हें हाथ ख़र्चके लिए रुपया देना सामाजिक धनका अपव्यय नहीं है?

मैं यह नहीं कहता कि संस्था बंद कर दी जाय, अथवा समाज इसमें चंदा न दे। मैं केवल यही कहना चाहता हूँ कि समाजको अधिकार ही नहीं उसका यह कर्तव्य भी है कि वह देखे कि जो रुपया वह संस्थाको देती है उसका सदुपयोग होता भी है या नहीं। वह पूछ सकती है कि क्यों विद्यालयमें कोई अधिष्ठाता भी नहीं रहता? क्यों उपाधिष्ठाता भी विद्यालयमें रहकर विद्यार्थियोंकी दशा सुधारनेका प्रयत्न नहीं करता? क्यों प्रबंधकारिणी सभा व्यक्ति विशेषके हानिलाभ पर दृष्टि रखकर विद्यालयका उचित प्रबंध नहीं करती? क्यों धार्मिक संस्थामें भी आचरण सुधारनेका प्रयत्न नहीं होता? क्यों विद्यार्थियोंको हाथ ख़र्चके लिए रुपया देकर विलासी और उद्धत बनाया जाता है? क्यों संचालकगण समाजसे ऐसी ऐसी बातें छुपाया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करते हैं ? २५ दिन विद्यालयमें हड़ताल रहे और जैनसमाजके कान तक उसकी भनक भी न पहुँचे, क्या यही संचालकोंकी ज़िम्मेवारी है ? क्या किसीको समाजके इतने द्रव्यके अपव्यय-की कुछ चिन्ता है ?

किन्तु केवल पूछकर भी चुपचाप बैठ जाना ठीक न होगा । यदि उचित प्रबंध न हो सके तो समाजको अपनी ओरसे उचित प्रबंध करना होगा। ऐसा करनेमें किसी व्यक्ति-विशेषके हानि लाभका विचार सर्वथा दूर कर देना होगा । जबतक समाज ऐसा करनेके लिए तैयार नहीं होगी तबतक समझना होगा कि स्वयं समाज भी अपने हानि लाभको नहीं समझती । क्या ऐसे चरित्रके पंडितोंको तैय्यार करा कर समाज अपने पैरमें आप कुल्हाड़ी नहीं मारती ? क्या स्वयं अपनी उन्नतिके पथमें कंटक नहीं खड़े करती ?

अंतमें मैं यह प्रार्थना करता हूँ कि यदि कुछ कठोर शब्दोंका प्रयोग किया गया है तो संचालकगण मुझे क्षमा करें । क्योंकि मैं उन्हें विश्वास दिलाता हूँ कि जो कुछ लिखा गया है वह केवल समाजका ध्यान आकर्षित करनेके लिए सत्य सत्य लिखा गया है। मेरा किसीसे द्वेष भाव नहीं है । यह हो सकता है कि विद्यालयसंम्बंन्धी उपर्युक्त बातें उन्हें या अन्य किसी सज्जनको कुछ बुरी न जान पड़ें, उन्हें विद्यालयमें कोई दोष न दिखाई दे; किन्तु मुझे विश्वास है कि समाज अभी ऐसे मनुष्योंसे सर्वथा शून्य नहीं हो गया है जो किसी बातपर स्वतंत्रतासे विचार कर सकें । ऐसे महाशयोंको अवश्य मानना पड़ेगा कि ये सब बहुत ही बुरी बातें हैं और मुझे दृढ़ विश्वास है कि वे शीघ्र ही अपना स्वर ऊँचा करके समाजको जगा देंगे और ऐसी बड़ी संस्थाका सुधार करनेको बाध्य करेंगे ।

उन्माद ।

(ले०, श्रीयुत बाबु पदुमलाल बक्षी बी. ए.,)

हरिनाथ बाबू खूब निपुण डाक्टर थे । अपने व्यवसायमें उन्हें यथेष्ट सफलता हुई थी । लोगोंको उन पर बड़ा विश्वास होगया था । तो भी लोग उनसे संतुष्ट नहीं थे । कुछ तो उन्हें नर-पिशाच तक कहते थे । इसमें संदेह नहीं, हरिनाथ बाबूमें थोड़ी भी दया नहीं थी । चाहे कोई कैसी भी दशामें हो, विना फीस लिये डाक्टर बाबू जाते नहीं थे । कितने ही असमर्थ गृहस्थ उनके पास गये पर सबको हताश होकर लौट आना पड़ा । उनसे पहले कोई भी दवा नहीं कराता था । पर जब रोग अन्य डाक्टर और वैद्योंके लिए असाध्य हो जाता था तब हताश होकर लोग उन्हें ही बुलवाते थे । हरिनाथ बाबूके हाथमें केस आते ही असाध्य रोग भी साध्य हो जाते थे । इसलिए नर-पिशाच होकर भी हरिनाथ बाबूको कामका अभाव न था ।

एक बार मुझे भी उनके पास जाना पड़ा । मिनीका ज्वर खूब बढ़ गया था । किसीकी चिकित्सासे कुछ लाभ नहीं हुआ । तब हरिनाथ बाबू आये । न जाने उनमें ऐसी कौनसी शक्ति थी कि थोड़े ही दिनोंमें मिनी अच्छी होगई । ५००) के नोट लेकर मैं उनसे अपनी कृतज्ञता प्रगट करनेके लिए गया । कार्ड भेज देनेपर हरिनाथ बाबू स्वयं आकर मुझे अपने कमरेमें ले गये। जब हम लोग बैठ गये तब मैंने ५००) के नोट निकालकर कहा, "डाक्टर बाबू, आपने हम लोगोंको आजीवनके लिये अपने उपकार पाशसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बद्ध कर लिया है। हम लोग आपको दे क्या सकते हैं। पर हम जन्मभर आपका उपकार मानते रहेंगे। " हरिनाथ बाबू नोट लेकर कुछ देर चुप रहे। मैंने देखा, उनके नेत्रोंमें आँसू भर आये थे। मैं सोचने लगा 'आज इस नृशंसमें कोमलता कैसी ?' इतनेमें हरिनाथ-बाबूने कहाः—

" विनोदबाबू मैंने उपकार नहीं किया है। मैं उपकार करता भी नहीं हूँ। मैंने जो कुछ किया सब इन नोटोंके लिए। आपको आश्चर्य होता होगा। इतनी सम्पत्ति रहने पर भी मैं धन-संचय कर रहा हूँ। मेरी न तो कोई संतान है, न कोई बन्धु बान्धव ही है। मैं अकेला हूँ। मैं जानता हूँ यह मेरी वृद्धावस्था है। मैं जानता हूँ, मेरा मृत्युकाल सन्निकट है। धनसे मुझे कुछ लाभ नहीं है। तो भी मैं धनसंचय करूँगा, मृत्यु-काल तक संचय करता रहूँगा। "

यह कहते कहते हरिनाथ बाबू खड़े हो गये। उनका शरीर काँपने लगा। उनकी यह दशा देख मैं डर गया। उन्हें शान्त करनेके लिए मैं कुछ कहना ही चाहता था कि हरिनाथ बाबू फिर कहने लगे, "विनोदबाबू मुझे शान्ति नहीं चाहिए। हृदयकी इस विषमज्वालाको लेकर मैं हो मरूँगा। आज ३५ वर्षसे मैं यह ज्वाला हृदयमें रख रहा हूँ। बाबू मैं जानता हूँ आप लोग मुझे कैसा समझते हैं, पर मैंने जैसा कुछ अनुभव किया उसे मैं ही जानता हूँ। विनोद बाबू, आज तुम्हारी बातोंसे मुझे उस घटनाका स्मरण हो आया है जिसे इस धन-तृष्णाकी प्रबलज्वालामें पड़कर मैं भूल जाना चाहता था। मैं तुमसे अपनी जीवन-कथा कह देता हूँ। विनोद बाबू, तब तुम जान सकोगे मैं ऐसा नर-पिशाच क्यों हो गया।

"आज ४५ वर्ष हो गये मैं बी. एस सी. पास कर घर लौटा था। मेरा घर हरिपुरमें था। घरमें विधवा माता और वर्षभरकी बहिन थी। पिताकी मृत्यु बहिनके जन्म होते ही हो गई थी, इस लिए मैंने अपनी बहिनका नाम अभागिनी रक्खा था। पिताकी मृत्यु हो जानेपर हम लोग वर्षभर बड़ी तकलीफमें रहे। माताके अनुरोधसे मुझे कालेज जाना पड़ा और दासीकी वृत्ति स्वीकार कर माता गाँवमें रही। दो चार लड़कोंको पढ़ा कर मैं अपना खर्च निकाल लेता था। घरके लिए भी जो कुछ बचा करता भेज देता। इस प्रकार एक वर्ष व्यतीत कर मैं घर लौटा। उस समय माताकी दशा देखकर मुझे बड़ी वेदना हुई। गाँवमें कई लोग ऐसे थे जो यदि चाहते तो हमें सहायता दे सकते थे। पर किसीने कुछ नहीं किया। मेरे आनेपर माताको बड़ी प्रसन्नता हुई थी। मैं भी भविष्य-सुखका स्वप्न देखने लगा था। इतनेमें मेरी माताको बुखार आने लगा। वर्षा-काल आ गया था। घर खूब टूट फूट गया था। एक कमरेको छोड़ दूसरा कमरा भी नहीं था। वह भी ऐसा नहीं था कि उसमें मेरी ज्वरसे पीडित माता रह सके। मैंने पड़ोसके लोगोंसे एक कमरा देनेके लिए बड़ी प्रार्थना की। पर किसीने मेरी प्रार्थना नहीं सुनी। उन्हें विश्वास हो गया था कि मेरी माताको प्लेग हो गया है। एक दिन माताकी पीड़ा खूब बढ़ गई। मैंने पासके गाँवसे एक डाक्टर बुलानेका विचार किया। पर कोई भी जानेके लिए उद्यत नहीं हुआ। मैं स्वयं जानेके लिए प्रस्तुत हुआ, पर माता और अभागिनीको किसके आश्रयमें छोड़ूँ ? मैंने एकसे कहा, 'भाई घरमें स्थान भलेही मत दो; पर हमारे घर जाकर मेरी माताके पास दो घंटेके लिए बैठे रहो। मैं तब तक डाक्टरको बुला लेता हूँ।' पर वह प्लेगके भयसे नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आया। तब मैं जगदीश्वरका नाम ले अभागिनीको माताकी गोदमें छोड़कर दौड़ता हुआ डाक्टरके यहाँ गया। डाक्टर बाबू घरमें विश्राम कर रहे थे। अपने विश्राममें बाधा होते देख क्रुद्ध हो हो उठे। उन्होंने चिल्ला कर कहा, 'निकाल बाहर करो।' मैं हताश होकर लौट आया। घर आने पर देखा कि अभागिनी मृतमाताकी गोदमें सो रही है।"

डाक्टर हरिनाथ मित्र आगे कह नहीं सके, कुछ देरतक चुपचाप बैठे रहे। थोड़ी देरके बाद हृदयके उद्वेगको रोक कर फिर कहने लगे—"विनोद बाबू, अधिक क्या कहूँ, किसी प्रकार, माताका अंतिम संस्कार कर मैं कलकत्ते चला आया। मातृ-पितृ-हीन अभागिनीको हृदयसे लगाकर मैंने कुछ दिनोंतक उसकी ज्वाला शान्त की। ढूँढ़ने पर मुझे ५०) का एक ट्यूशन भी मिल गया। मैंने डाक्टर होना निश्चय कर कालेजमें नाम लिखा लिया। ५ वर्षके अविराम परिश्रमसे मैं डाक्टर हुआ। तब तक अभागिनी ६ वर्षकी हो गई। तब मैं कुछ निश्चिन्त हो गया।

"मुझे अपने व्यवसायमें सफलता होने लगी। संसारमें कुछ नाम कर जानेकी इच्छासे मैं खूब परिश्रम किया करता था। अपने उद्योगमें संलग्न होनेके कारण मैं कुछ ही दिनोंमें अभागिनीकी ओर कम ध्यान देने लगा। एक दिन मुझे विज्ञान-परिषद्की ओरसे निमंत्रण मिला। मुझे उक्त विद्वन्मण्डलीने क्षयरोग पर व्याख्यान देनेके लिए कहा था। नाम करनेका ऐसा सुअवसर पाकर मैं खूब आनन्दित हुआ। घर आकर मैं अपने व्याख्यानका विषय देखनेमें लग गया। देखते देखते मुझे एक नवीन बात सूझी। मैं अपने आविष्कारसे अक्षय्य कीर्ति सम्पादन करनेकी इच्छाके वशीभूत हो उसकी परीक्षा करने लगा। इतनेमें अभागिनीने आकर कहा, 'भैय्या'। मैंने रुष्ट होकर कहा, 'जा, जा, मैं अभी अपने काममें लगा हूँ।" भैय्यासे अपमानित होकर अभागिनी अपने कमरेमें चली गई। रात भर मैं अपने आविष्कारमें लगा रहा, मुझे अपनी अभागिनीकी सुधि नहीं थी।

"दूसरे दिन मैं शीघ्र भोजन कर विना अभागिनीको देखे विज्ञानपरिषद्-भवनमें अपने अपूर्व आविष्कार पर व्याख्यान देनेके लिए चला गया। कहना नहीं होगा, मेरे उक्त आविष्कारसे सर्वत्र मेरा नाम फैल गया। संसारके प्रतिष्ठित विद्वानोंमें मेरी गणना होने लगी। बड़े बड़े डाक्टरोंने आकर मुझे बधाई दी। अनेक लोगोंसे मुझे निमंत्रण मिला। मैं उल्लास-पूर्ण हृदयसे घर लौटा। घर आते ही दासीने कहा 'अभागिनीको आज दिनभरसे खूब ज्वर है।' मेरा हृदय काँप उठा। मैं शीघ्रतासे अभागिनीके कमरेमें आया। उसे सुधि नहीं थी। मैंने तुरन्त ही उसे गोदमें उठा लिया। देखा, उसका सब शरीर ज्वर-तापसे जल रहा था। मैंने विदीर्ण-हृदयसे पुकारा, 'अभागिनी!' अभागिनीने आँख खोल कर कहा, 'भैय्या, पानी।' मैंने तुरन्त ही उसे पानी दिया। पानी पीकर अभागिनी कहने लगी, 'भैय्या, मुझे छोड़कर मत जाओ। मुझे डर लगता है।' मैंने रोकर कहा 'अभागिनी बहिन, मैं अब तुझे छोड़कर कभी नहीं जाऊँगा।"

"मैं रातभर अभागिनीकी चिकित्सा करता रहा, पर कुछ लाभ नहीं हुआ। उसकी दशा खराब ही होती गई। अन्तमें उषःकालके समय, जब समस्त पृथ्वीमें आलोक फैल रहा था, अभागिनीने मुझे सदाके लिए अन्धकारमें डालकर प्राण त्याग दिये। मैं उसके मृत देहको गोदमें लिये बैठा रह गया। लोक-सेवाका फल मुझे मिल गया।

"विनोद बाबू, अब आपका अधिक समय नहीं लूँगा। अभागिनीकी मृत्यु होने पर मेरे हृदयकी प्रसुप्त ज्वाला जागृत हो उठी। संसार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुझे नर-पिशाच कहता है, कहे। मुझे लोकापवादका भय नहीं है। संसारने मुझपर कौनसा उपकार किया है कि मैं उसकी सेवा करूँ? सच तो यह है कि संसार रणभूमि है। दया-भिक्षासे प्राणोंकी रक्षा नहीं होती। उसके लिए युद्ध करना पड़ता है। दया, प्रेम, सहानुभूति, भ्रम-मात्र है। यहाँ केवल क्रूरता है। यदि जगदीश्वर है तो वह अत्यन्त क्रूर है। कदाचित् भगवती जगदम्बाके साम्हने हजारों पशुओंका बलिदान केवल इसी अभिप्रायसे किया जाता है कि निर्बल और निस्सहायका नाश हो। जिसमें शक्ति नहीं है उसकी स्थितिसे लाभ ही क्या? इस लिए ही भगवती चण्डिका पशुओंका रक्त-पान करती है। वह संसार-रणभूमिमें निर्बल मनुष्योंका भी संहार करती है। विनोद बाबू, कोई इसे माने चाहे न माने, मैं मानता हूँ।

"मैंने उपकार नहीं किया है। मैं उपकार नहीं करूँगा। मैंने संसारको खूब देख लिया है; संसारने भी मुझे देख लिया। मुझे न तो अब आशा है, न भय है, न संकोच है। भविष्य अंधकार-पूर्ण है। जो कुछ होगा मैं सह लूँगा। यदि मुझे नरककी विषम यंत्रणा सहनी पड़े, तो मैं उसके लिए प्रस्तुत हूँ।

"पर मुझे धनकी तृष्णा नहीं है। लोग समझते हैं मेरे पास अतुल सम्पत्ति है। पर सब भूलमें हैं। मैं धनकी लालसा नहीं रखता। मैं किसीको कुछ नहीं देता। पर जो कुछ पाता हूँ नष्ट कर डालता हूँ।"

डाक्टर बाबू फिर कुछ न बोले। मेरी ओर स्थिर दृष्टिसे देखने लगे। इतनेमें टन् टन् कर आठ बज गये। मैं घर जानेके लिए उनसे बिदा माँगने लगा। हरिनाथ बाबूने मुझसे हाथ मिला कर कहा, 'जाइए। मैं अब इन नोटोंसे यज्ञ करूँगा।' मैं घर लौट आया।

अमावस्याकी रात्रि थी। सर्वत्र अंधकार था। मैंने खिड़की खोलकर देखा कि अन्धकारमें पड़कर खद्योत अपनी अल्प ज्योतिको व्यर्थ नष्ट कर रहा है।

विधवा-विवाह-विचार।

(कलकत्ता हाईकोर्टके भूतपूर्व जज सर गुरुदास बनर्जीके बंगला-लेखका अनुवाद।)

दोमेंसे एकके मर जाने पर, विवाहबन्धनका तोड़ देना उचित है या नहीं, यह विवाह-सम्बन्धी अन्तिम प्रश्न है। मृत्यु हो जानेपर विवाहबन्धन टूट जाता है, यह बात प्रायः सर्वत्र ही मानी जाती है; केवल यूरोपका पोजिटिविस्ट सम्प्रदाय * और हिन्दू शास्त्र इसे नहीं मानते। यद्यपि हिन्दू शास्त्रोंके अनुसार पुरुष एक स्त्रीके मर जानेपर अन्य स्त्री ग्रहण कर सकता है; परन्तु इससे यह नहीं समझा जाता कि उसका पहली स्त्रीके साथ सम्बन्ध टूट गया। क्योंकि पहली स्त्रीके रहने पर भी हिन्दू पति दूसरी स्त्री ग्रहण कर सकता है। परन्तु पुरुषोंके लिए एकसे अधिक विवाह करना, निषिद्ध न होनेपर भी हिन्दू शास्त्रोंमें समादृत नहीं है—वह आदरकी दृष्टिसे नहीं देखा जाता ×। आगस्ट कोम्टीका यह मत बहुत ही अच्छा है और विवाहके उच्च आदर्शका अनुयायी है कि 'स्त्रीके लिए जिस तरह पतिके वियोग होने पर दूसरा पति ग्रहण करना अनुचित है, पतिके लिए भी उसी तरह स्त्रीवियोग होनेपर अन्य स्त्री ग्रहण करना अनुचित है।' परन्तु यह आशा अब भी नहीं की जाती कि इस आदर्शके अनुसार सर्व साधारण चल सकेंगे। प्रायः सभी देशोंमें इसके विपरीत रीति प्रचलित है और हिन्दूसमाजमें यह उच्चादर्शकी प्रथा जो थोड़ी बहुत प्रचलित भी है वह स्त्रीकी अपेक्षा पुरुषके लिए बहुत अनुकूल है। अतः पक्ष-

---

* कोम्टके 'सिस्टम आफ पाजिटिव पालिटी' के दूसरे वोल्यूमका अध्याय तीसरा और पृष्ठ १५७ देखो। + मनु, अध्याय ३ श्लोक १२-१३।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घातपूर्ण होनेके कारण अन्य समाजके लोगोंकी दृष्टिमें और हिन्दूसमाजसुधारकोंकी दृष्टिमें यह बुरी और अन्यायपूर्ण समझी जाती है।

परन्तु यह बात ध्यानमें रखना चाहिए कि यदि देशके आधे लोग (स्त्रियाँ) किसी उच्चादर्शानुयायी प्रथाका पालन करते हों और दूसरे आधे (पुरुष) उसका पालन न करते हों, तो इसमें उन लोगोंका (पुरुषोंका) दोष है—इससे वे लोग ही निन्दनीय समझे जायँगे—वह प्रथा निन्दित नहीं हो सकती। जब चिरवैधव्यपालन उच्च आदर्शकी प्रथा है तब केवल इसी लिए कि पुरुष पत्नीवियोग हो जाने पर अन्य स्त्री ग्रहण कर लेते हैं, उसे मिटा डालना अच्छा नहीं हो सकता—कर्तव्य नहीं बन सकता। बल्कि जिस उपायसे पुरुष भी उच्चादर्शके अनुयायी बन जावें, वही उपाय करना, समाजसुधारकोंका कर्तव्य है। अतएव मूल प्रश्न यह है कि—पुरुष कुछ भी करते हों, इससे मतलब नहीं—स्त्रियोंका चिरवैधव्य पालन जीवनका उच्चादर्श है या नहीं। इस प्रश्नका वास्तविक उत्तर पानेके लिए हमें विवाहके उद्देश्यकी ओर दृष्टि डालनी होगी।

अवश्य ही संयत भावसे इन्द्रियतृप्तिसाधन, सन्तानोत्पादन और सन्तानपालन यह विवाहका सबसे पहला उद्देश्य है; परन्तु विवाहका केवल यही एक और सबसे श्रेष्ठ उद्देश नहीं है। विवाहका द्वितीय और श्रेष्ठ उद्देश है दाम्पत्यप्रेम (पति-पत्नी-प्रेम) और सन्तानस्नेहसे धीरे धीरे चित्तकी सत्प्रवृत्तियोंका विकाश होते जाना और उनके द्वारा स्वार्थपरताका नाश, परार्थपरताकी वृद्धि तथा आध्यात्मिक उन्नतिका प्राप्त होना। यदि पहला उद्देश्य ही विवाहका एक मात्र उद्देश्य होता तो सन्तान उत्पन्न हो जानेके पहले पतिवियोग हो जाने पर दूसरे पतिके ग्रहण करनेमें कोई दोष नहीं था, और सन्तान उत्पन्न होनेपर दूसरा पति ग्रहण करनेमें उस सन्तानके पालनमें विघ्न पड़ता, अतः उस दशामें चिरवैधव्य केवल उच्चादर्श ही क्यों प्रयोजनीय होता। किन्तु विवाहके दूसरे उद्देश्यकी ओर दृष्टि रखनेसे इस विषयमें कोई सन्देह नहीं रहता कि चिरवैधव्यपालन ही उच्चादर्श है।

जो पतिप्रेमका विकाश धीरे धीरे पत्नीकी स्वार्थपरताको नाश करनेका और आध्यात्मिक उन्नति करनेका हेतु होगा, वही यदि पतिके अभावमें लुप्त हो जाय और पत्नी अपने सुखके लिए उसे अन्य पतिमें न्यस्त कर दे, तो बतलाइए इसमें स्वार्थपरताका नाश क्या हुआ? इसके उत्तरमें कभी कभी विधवाविवाहके अनुयायियों द्वारा यह कहा जाता है कि "जो लोग विधवाविवाहका निषेध करते हैं वे विवाहको केवल इन्द्रियतृप्तिके लिए ही आवश्यक समझते हैं और विवाहका उच्चादर्श भूल जाते हैं। वास्तवमें विधवाका विवाह करना इसलिए कर्तव्य है कि वह केवल इन्द्रियतृप्तिका कारण नहीं है, किन्तु पतिप्रेम सन्तानस्नेहादि समस्त उच्चवृत्तियोंको विकसित करता है।" परन्तु सुधारकोंकी यह बात कुछ विचित्र मालूम होती है। देखना चाहिए, यह कथन कहाँतक ठीक उतरता है कि विधवाविवाहका निषेध विधवाकी आध्यात्मिक उन्नतिके लिए बाधाजनक है और विधवाविवाहका विधान उस आध्यात्मिक उन्नतिके साधनका उपाय है।

पतिप्रेम एक ही साथ सुखका आकर और स्वार्थपरताके नाशका उपाय है। यदि वह केवल सुखका आकर माना जायगा, अर्थात् ऐहिक भावसे ही अधिक आदृत होगा, तो उसके द्वारा स्वार्थपरताके नाशकी अर्थात् आध्यात्मिक भावके विकाशकी संभावना बहुत ही कम रहेगी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यदि विधवा आध्यात्मिक भावसे पतिप्रेमका अनुशीलन करना चाहती है तो उसके लिए दूसरा पति ग्रहण करना निष्प्रयोजन है, साथ ही बाधाजनक भी है। क्योंकि उसने पहला पति प्राप्त करनेके समय, उसीको पतिप्रेमका पूर्ण आधार माना है और उसे ही आत्मसमर्पण किया है। अतएव उसकी मृत्युके पश्चात् उसे अपने हृदयमें धारणकीहुई उसकी मूर्तिको जीवित रखना चाहिए और उसीके प्रति अविचल प्रेम रखना चाहिए; बस यही उसके लिए निःस्वार्थ प्रेम और आध्यात्मिक उन्नतिका साधन है। अवश्य ही वह उस प्रेमका प्रतिदान या बदला नहीं पायगी;परन्तु उच्चादर्शका प्रेम बदला नहीं चाहता। यदि वह (विधवा) दूसरा पति ग्रहण कर लेगी, तो पतिप्रेमानुशीलन नहीं कर सकेगी—उसके पतिप्रेममें बड़ी भारी बाधा आ पड़ेगी। उसने जिस पहले पतिको पतिप्रेमका पूर्ण आधार मानकर आत्मसमर्पण किया था उसे उसको भूल जाना होगा, अपने हृदयमें अंकित की हुई मूर्तिको पोंछ देना होगा और जो प्रेम अर्पण किया था उसे वापस लेकर दूसरे पात्रमें अर्पण करना पड़ेगा। ये सब कार्य ऐसे हैं जो आध्यात्मिक उन्नतिके मार्गमें बड़ी भारी बाधा डालते हैं और इस कारण उसके साधक कभी नहीं हो सकते। यह ठीक है कि मृत पतिकी मूर्तिका ध्यान करते रहना और उसके प्रति प्रेम और भक्ति अचल रखना बहुत ही कठिन कार्य है; परन्तु वह सर्वथा असाध्य और असुखकर नहीं है। हिन्दूविधवाओंके पवित्र जीवनमें इसके अनेक प्रमाण मिल सकते हैं। हम यह नहीं कहते कि सब ही स्त्रियाँ चिरवैधव्य पालन करनेमें समर्थ हैं। जो असमर्थ हैं—रँड़ापा नहीं काट सकती हैं, उनके लिए हृदय अवश्य ही व्यथित होता है और यदि वे दूसरा पति ग्रहण कर लेती हैं तो उन्हें 'मानवी' ही कहना चाहिए; परन्तु जो पवित्र भावसे चिरवैधव्यपालनमें समर्थ हैं उन्हें 'देवी' कहना चाहिए और उनके जीवनको ही विधवाजीवनका उच्चादर्श मानना चाहिए।

बहुत लोग ऐसे भी हैं जो यह स्वीकार करते हैं कि चिरवैधव्यपालन उच्च आदर्श है; परन्तु कहते हैं कि यह उच्चादर्श सर्वसाधारणके लिए अनुसरण योग्य नहीं है; इसलिए सर्व साधारणके लिए विधवाविवाहका प्रचार होना उचित है। इस विषयमें जो युक्तियाँ दी जाती हैं यहाँ उनके विषयमें, आइए, थोड़ासा विचार कर लें।

उक्त युक्तियोंकी आलोचना करनेके पहले हम इसी विषयकी कुछ बातोंका खुलासा कर देना चाहते हैं। विधवाविवाहके सम्बन्धमें अभीतक जो कुछ कहा गया है वह हिन्दूशास्त्रोंका नहीं, किन्तु सामान्य युक्तियोंका कथन है, और आगे भी हम जो कुछ आलोचना करेंगे वह सब युक्तिमूलक होगी, हिन्दूशास्त्रमूलक नहीं। अतएव यहाँ यह प्रश्न नहीं है कि विधवाविवाह कभी—किसी अवस्थामें भी—होना चाहिए या नहीं। प्रश्न है उच्चादर्शके सम्बन्धमें। चिरवैधव्य उच्चादर्श होने पर भी यह नहीं समझा जाता कि उस आदर्शके अनुसार सब ही चल सकते हैं। यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि दुर्बलदेहधारिणी मानवी स्त्रीके लिए प्रथम अवस्थामें वैधव्य बहुत ही कष्टकर है। वह कष्ट कभी कभी—जैसे कि बालवैधव्यके समय—बहुत ही मर्मविदारक होता है और विधवाके कष्टमें सबका ही हृदय व्यथित होता है। जो विधवायें आध्यात्मिक बलसे उस कष्टको धीरतासे सहन करके धर्मव्रतमें जीवन उत्सर्ग कर सकती हैं उनका कार्य अवश्य ही प्रशंसनीय है; पर जो ऐसा नहीं कर सकती हैं—असमर्थ हैं, उनका कार्य प्रशंसनीय नहीं है; परन्तु साथ ही उस कार्य-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की निन्दा करना भी उचित नहीं है । क्योंकि मनुष्य अवस्थाके अधीन है, उसके दोष गुण संसर्गसे उत्पन्न होते हैं । पितामाताके द्वारा जिस प्रकारके मन और शरीरकी प्राप्ति उसे होती है, और शिक्षा दृष्टान्त और आहार व्यवहारके द्वारा उसका वह मन और शरीर जिस प्रकारसे गठित होता है, उसीके ऊपर उसका कार्य अकार्य अवलम्बित रहता है । अतएव यदि कोई चिरवैधव्य पालन करनेके लिए असमर्थ होती है तो उसकी उस असमर्थताका दायित्व (जिम्मेवारी) केवल उसी पर नहीं है; वह दायित्व उसके माता पिता पर, शिक्षादाता पर और समाज पर भी जाता है । अतः यदि वह चाहे तो अवश्य ही विवाह कर सकती है । इसमें किसीको भी बाधा डालनेका अधिकार नहीं है और वह विवाह, हिन्दूशास्त्र चाहे जो कहें, सन् १८५६ के १५ वें आईनके अनुसार जायज है । अतएव आवश्यकता होने पर–प्रयोजन होनेपर–विधवाविवाह होना उचित है या नहीं, यह प्रश्न, अन्य समाजोंकी तो बात ही क्या, हिन्दूसमाजमें भी अब उठ नहीं सकता । इस समय प्रश्न यह है कि विधवा-विवाहका प्रचलित प्रथा हो जाना और चिर वैधव्यपालनको उच्चादर्श होनेपर भी उक्त प्रथाका व्यतिक्रम (अपवाद) बनाकर रखना उचित है, अथवा चिर वैधव्यपालनका ही प्रचलित प्रथा होना और विधवाविवाहका उसके व्यतिक्रम स्वरूपमें रहना उचित है ? बस इसी प्रश्न पर यहाँ विचार होना है ।

इस समय जिन सब देशोंमें विधवाविवाहकी प्रथा प्रचलित है यह संभव नहीं कि वहाँसे वह कभी उठ जायगी । सुप्रसिद्ध पाश्चात्य पण्डित कोमटी बहुत दिन पहले चिर वैधव्यका श्रेष्ठत्व प्रतिपादन कर गये हैं; परन्तु हम देखते हैं कि उनके कथनसे पाश्चात्य प्रथामें कोई परिवर्तन नहीं हुआ । तब इस समय पाश्चात्य देशोंकी स्त्रियाँ अपनी स्वाधीनता स्थापित करनेके लिए जिस प्रकार दृढव्रता और कटिबद्धा हुई हैं, उससे जान पड़ता है कि धीरे धीरे, विधवा क्यों कुमारियाँ भी, विवाहबन्धनमें बँधनेके लिए अनिच्छुक होंगी और यदि ऐसा हुआ तो शायद उनके उस दृढव्रतका यह भी एक फल हो कि पाश्चात्य देशोंमें भी पवित्र चिरवैधव्यका उच्चादर्श स्थापित हो जाय । किन्तु ये सब बहुत दूरकी बातें हैं । इस समय समीपकी बात यह है कि हिन्दूसमाजमें जो चिरवैधव्यकी प्रथा प्रचलित है उसे उठा देना उचित है या नहीं ?

इस प्रथाके विरुद्धमें जो सब बातें कही जाती हैं उनमेंसे पहली यह है कि इस प्रथाका फल स्त्री और पुरुषोंके लिए बहुत ही असमान है । इस बातका उल्लेख और कुछ आलोचना पहले हो चुकी है । पुरुष स्त्रीवियोगके बाद फिर विवाह कर लेते हैं; इसी लिए स्त्रियोंको भी पतिवियोगके बाद फिर दूसरा पति ग्रहण करलेना चाहिए, यह बड़ी ही असंगत प्रतिहिंसा (बदला) है । प्रकृतिके नियमानुसार पुरुष और स्त्रीके अधिकारमें सदा ही विषमता रहेगी । यह अनिवार्य है । प्रकृतिने स्वयं ही सन्तानोत्पादन और सन्तानपालनका भार पुरुषकी अपेक्षा स्त्री पर अधिक डाला है । भ्रूण (बालक) का निवास माताके गर्भमें और शिशुका आहार माताके वक्षमें रक्खा गया है । यदि स्त्री गर्भवती है या उसका बच्चा शिशु है, तो ऐसी अवस्थामें उसे पतिवियोग होने पर दूसरे पतिको ग्रहण करनेमें अवश्य ही विलम्ब करना पड़ेगा । इसके बाद इन सब शारीरिक बातोंको छोड़कर यदि हम मन और आत्माकी ओर ध्यान देंगे तो मालूम होगा कि स्त्री पुरुषोंमें अधिकारकी विषमता अवश्य ही रहेगी और यह बात हम पुरुषोंका पक्ष लेकर नहीं किन्तु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्त्रियोंका पक्ष लेकर कह रहे हैं। पुरुषोंको इच्छापूर्वक या इच्छा न रहने पर भी, जीवननिर्वाहके लिए समय समय पर कठोर और निष्ठुर काम करने पड़ते हैं और इस लिए उनका हृदय तथा मन निष्ठुर हो जाता है, जिससे कि उनके आत्माका पूर्ण विकाश होनेमें बाधा पड़ती है। पर स्त्रियोंको ऐसे काम नहीं करने पड़ते। इस लिए उनके हृदय और मन कोमल रहते हैं। इसके सिवाय स्वभावसे (शायद सृष्टिरक्षाके लिए) उनकी मति स्थितिशील और निवृत्तिमार्गमुखी होती है और उनकी सहिष्णुता, स्वार्थत्याग करनेकी शक्ति और परार्थपरता या परोपकारवृत्ति पुरुषोंकी अपेक्षा बहुत अधिक होती है। ऐसी दशामें उनके लिए स्वार्थत्यागके नियम यदि पुरुषसम्बन्धी नियमोंकी अपेक्षा कठिनतर हों तो समझना चाहिए कि वे उनके पालनेमें समर्थ हैं, इसी लिए वैसे बनाये गये हैं और यह नियमोंकी विषमता उनके गौरवकी ही चीज है लाघवकी नहीं। इसी लिए हमने यहाँ पर उनकी प्रतिहिंसाको असंगत कहा है। और जो लोग उन्हें इस असंगत प्रतिहिंसाके लिए उत्तेजित करते हैं, उन्हें उनके वास्तविक हितैषी माननेमें हमें संकोच होता है।

दूसरी बात यह कही जाती है कि यह अतिशय निर्दय प्रथा, विधवाओंकी दुःसह वैधव्ययंत्रणाके प्रति आँख उठाकर भी नहीं देखती। यदि विधवाओंकी शारीरिक अवस्थाके प्रति दृष्टि दी जाय तो यह अवश्य स्वीकार करना होगा कि यह आपत्ति बहुत ही प्रबल है। ऐसे दयाहीन हृदय बहुत ही थोड़े होंगे, जो विधवाओंके दैहिक दुःखसे दुखी न हों। परन्तु हमें यह न भूल जाना चाहिए कि मनुष्य केवल 'देही' नहीं है, उसके मन और आत्मा देहकी अपेक्षा अधिक मूल्यवान् और अधिक प्रबल हैं। यह सच है कि देहरक्षाके लिए कितनी ही आवश्यकताओंकी पूर्ति अवश्य करनी चाहिए; परन्तु मन और आत्माके ऊपर देहका स्वामित्व रखनेकी अपेक्षा, देह पर मन और आत्माका स्वामित्व रखना अधिक वाञ्छनीय है और यदि देहका किञ्चित् कष्ट स्वीकार करनेसे मन और आत्माकी उन्नति होती हो, तो उस कष्टको कष्ट ही न गिनना चाहिए। पशुओंसे मनुष्यजाति इसी कारण तो श्रेष्ठ और क्रमोन्नतिप्राप्त कहलाती है कि मनुष्य देहका कष्ट स्वीकार करके बुद्धिके द्वारा प्रवृत्तियोंपर शासन करता है और भावी अधिक सुखके उद्देश्यसे वर्तमान अल्पसुखके लोभको रोक करके रखता है। पशु जब भूखा होता है तब अपने परायेका विचार न करके अपने सामने जिस खाद्य पदार्थको पाता है उसीको खा जाता है। असभ्य और बर्बर मनुष्य भी जरूरत होने पर अपने परायेका विचार न करके जिस किसी जरूरी चीजको पाता है, ग्रहण कर लेता है; परन्तु सभ्य मनुष्य चाहे जितनी जरूरत क्यों न हो, दूसरेकी चीजको नहीं लेता। इसी प्रकार विधवायें यदि कुछ दैहिक कष्ट स्वीकार करके, चिरवैधव्यव्रत-पालनेके द्वारा आत्मोन्नति करने और परहितसाधन करनेमें समर्थ हो सकती हैं तो उनके उस कष्टको कष्ट ही न समझना चाहिए और इसलिए जो लोग उन्हें उस कष्टके स्वीकार करनेका उपदेश देते हैं वे उनके मित्र ही हैं—शत्रु नहीं। चिरवैधव्यव्रतका पालन करनेके लिए विधवाओंको और और सत्कर्मोंके समान निमित्त, संयम और शिक्षाकी विशेष आवश्यकता है। विधवाका आहार व्यवहार संयत और ब्रह्मचर्योपयोगी होना चाहिए। यदि शारीरिक वृत्तियोंको उत्तेजित करनेवाले पुष्ट आहार और मानसिक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वृत्तियोंको जगानेवाले वस्त्र आभूषण विलास-विभ्रमादि व्यवहार त्याग न किये जायँगे, तो चिरवैधव्य पालन नहीं हो सकेगा। इसी लिए विधवाओंके हेतु ब्रह्मचर्यकी व्यवस्था की गई है। ब्रह्मचर्यका पालन करनेमें यह ठीक है कि थोड़ेसे इन्द्रियतृप्तिकारक आहारविहारादि दैहिक सुख-भोगोंका त्याग करना पड़ता है; परन्तु इसके बदले नीरोग, सुस्थ, सबल शरीर और तज्जनित मानसिक स्फूर्ति और सहिष्णुता, और इनके फलस्वरूप विशुद्ध स्थायी सुखकी प्राप्ति होती है। इसलिए ब्रह्मचर्य ऊपरसे कठोर जान पड़नेपर भी सच्चे स्थायी सुखका आकर है। जो अदूरदर्शी हैं, अज्ञानी हैं वे ब्रह्मचर्यकी निन्दा करते हैं। इस अदूरदर्शिता और अज्ञानताके कारण ही भारत व्यवस्थापक सभाके एक सभ्यने विधवाविवाहके कानून बननेके समय हिन्दू विधवाके ब्रह्मचर्यको भयावह बतलाया था।

चिरवैधव्यव्रतसम्बन्धी एक कठिनाई और है। विधवा कन्या या पुत्रवधूको ब्रह्मचर्य पालन करानेके लिए उसके माता-पिता या सास ससुरको भी आहार-व्यवहारमें उसीके समान ब्रह्मचर्य पालन करना पड़ता है। उनके लिए यद्यपि यह असुखकर है, तो भी परिणाममें शुभकर है और इसे हम उस कन्या या पुत्रवधूके चिरवैधव्य-पालनजनित पुण्यका फल कह सकते हैं। ब्रह्मचर्यपालनमें दीक्षित होकर विधवायें अपने सुस्थ सबल शरीरसे अनेक सत्कर्म कर सकती हैं— जैसे, परिजनोंकी शुश्रूषा, परिवारके बालबच्चोंका लालनपालन और रोगियोंकी सेवा, धर्मचर्चा, स्वयं शिक्षा प्राप्त करना और परिवारकी स्त्रियोंको शिक्षा देना, इत्यादि। इस तरहसे तीव्र किन्तु दुःखमिश्रित ऐहिक सुखमें न सही, पर प्रशान्त निर्मल आध्यात्मिक सुखमें विधवाओंका परोपकारमें लगा हुआ जीवन कट जाता है। पाठक इसे कोई काल्पनिक चित्र नहीं समझें। इस शान्तिमय ज्योतिर्मय पवित्र चित्रने इस समय भी भारतके अनेक गृहोंमें उजेला कर रक्खा है। हमारी अयोग्य लेखनी उसका प्रकृत सौन्दर्य अंकित करनेमें असमर्थ है। अतएव जिस प्रथाका फल विधवाओंके लिए और उनके परिवारके लिए, परिणाममें इतना शुभकर है उसकी ऊपरी कठोरता देखकर उसे निर्दय कहना कदापि उचित नहीं है।

चिरवैधव्य प्रथाके विरुद्ध तीसरी बात यह कही जाती है कि इस प्रथासे गुप्त व्यभिचार, भ्रूण-हत्या आदि अनेक कुफल फलते हैं; परन्तु यह अवश्य मानना होगा कि उनकी संख्या बहुत थोड़ी होती है। अतः कहीं कहीं ऐसा हो जाता है, केवल इसीसे यह प्रथा निन्दनीय नहीं होसकती। विधवाओंमें ही क्यों सधवाओंमें भी क्या व्यभिचार नहीं होता है ? परन्तु अब इस विषयमें अधिक कहनेकी कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि विधवाका विवाह अब कानूनसे जायज ठहर गया है, इस लिए जो चिरवैधव्य पालनमें असमर्थ हैं वे इच्छा होते ही विवाह कर सकती हैं। उनके लिए इस प्रथाके परिवर्तन करनेकी तो कोई अवश्यकता नहीं दीखती।

चिरवैधव्य प्रथाके विरुद्ध चौथी और सबसे पिछली बात यह कही जाती है कि यह प्रथा जबतक प्रचलित रहेगी, तबतक विधवायें इच्छानुसार विवाह करनेका और उनके मातापिता इच्छानुसार उनको ब्याह देनेका साहस नहीं कर सकेंगे। कारण, प्रचलित प्रथाके विरुद्ध काम करनेके लिए सभी संकोच करते हैं और ऐसा काम जनसाधारणकी दृष्टिमें अतिशय निन्दित और तिरस्कृत समझा जाता है। अतएव समाज-सुधारकोंका यह कर्तव्य होना चाहिए कि वे इस विषयमें आन्दोलन करें जिससे कि लोगोंके विचार बदल जायँ और यह प्रथा उठ जाय।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जान पड़ता है इसी लिए, विधवाविवाह कानूनसे जायज हो गया है तो भी, और इसे रोकनेका किसीको कोई अधिकार नहीं है तो भी, विधवाविवाहके पक्षपाती चिरवैधव्य प्रथाको उठानेके अर्थ इतने यत्नशील हो रहे हैं। यद्यपि वे अथवा उनमेंसे बहुतसे लोग यह स्वीकार करते हैं कि अपनी इच्छासे प्रेरित होकर चिरवैधव्य-पालन उच्चादर्श है, तथापि वे चाहते हैं कि यह उच्चादर्शपालन, प्रथा न होकर प्रथाके व्यतिक्रम स्वरूपमें या अपवाद रूपमें रहे और विधवाविवाह ही प्रचलित प्रथा बन जाय। परन्तु यह बात हमारी समझमें नहीं आती कि जब इच्छा होते ही विधवाओंका विवाह बेरोकटोक हो सकता है, तब वे जिसे उच्चादर्शानुयायी प्रथा मानते हैं उसे उठा देकर विधवाविवाहकी प्रथा क्यों प्रचलित करना चाहते हैं। यह कैसी विचित्र बात है कि इधर तो वे चिरकौमार व्रतकी प्रशंसा करते हैं और उधर चिरवैधव्य प्रथाको उठा देनेके लिए कटिबद्ध हो रहे हैं। यदि यह प्रथा इस विषयमें बाधक होती कि कोई विधवा प्रयोजन होने पर या इच्छा होनेपर भी विवाह नहीं कर सकती, तो इसे उठा देनेकी चेष्टा करना ठीक भी होता। पर इस समय समाजबन्धन इतने शिथिल हैं और समाजकी शक्ति इतनी थोड़ी है कि समाजकी कोई भी प्रथा किसीकी भी इच्छाको रोक नहीं सकती। तब यह अवश्य स्वीकार करना होगा कि यद्यपि उक्त प्रथा विधवाकी विवाहेच्छा होनेपर उसमें बाधा नहीं डाल सकती है, किन्तु उस इच्छाकी उत्पत्तिको अवश्य रोकती है और यही कारण है जो आज विधवाविवाहके कानूनको बने हुए आधी सदीसे अधिक समय बीत गया है, तो भी अब तक हिन्दू विधवाओंकी विवाहसम्बन्धी अनिच्छा साधारणतः पहलेके ही समान बनी हुई है—उसमें परिवर्तन नहीं हुआ है। इससे तो यह जान पड़ा कि हिन्दू विधवाओंकी विवाह-विषयक अनिच्छाको दूर करके उसके स्थानमें इच्छा या प्रवृत्तिको जन्म देना ही समाजसुधारकोंका उद्देश्य है। परन्तु इस उद्देश्यके साधनका फल भी तो बतलाना चाहिए कि क्या होगा। इससे विधवाओंको थोड़ासा क्षणभंगुर ऐहिक सुख अवश्य प्राप्त हो सकेगा; परन्तु उसके द्वारा न तो उन्हें कोई स्थायी सुख मिलेगा और न समाजका कोई विशेष कल्याण होगा। इसके विरुद्ध, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, चिर-वैधव्यसे उनको स्थायी निर्मल सुख मिलता है और समाजका बहुत कुछ कल्याण होता है। यह समझना कठिन है कि जब हम आत्मसंयम, स्वार्थत्याग, परार्थपरायणता आदि उच्च गुणोंके विकाशको और और विषयोंमें मनुष्यकी क्रमोन्नतिका लक्षण मानते हैं, तब विधवाविवाहके विषयमें उससे उलटी प्रणालीका अवलम्बन क्यों करना चाहते हैं। अर्थात् विवाह नहीं करके यदि विधवायें आत्मसंयम करती हैं तो इसे हम मनुष्यकी क्रमोन्नतिका लक्षण क्यों नहीं मानते, बुरा क्यों समझते हैं।

लोगोंका शायद यह खयाल होगा कि पाश्चात्य देशोंमें विधवाविवाहकी प्रथा प्रचलित है और उन्हीं सब देशोंकी साम्पत्तिक उन्नति बहुत अधिक हो गई है, अतएव इस देशमें भी इस प्रथाके प्रचलित होनेसे उसी प्रकारकी उन्नति हो जायगी। किन्तु इस बातमें कोई तथ्य नहीं है, कोई युक्ति नहीं है। बाल्यविवाहके साथ देशकी अवनतिका कार्य-कारण-सम्बन्ध तो हो भी सकता है, किन्तु चिरवैधव्यपालनके साथ इसका क्या सम्बन्ध है, यह समझमें नहीं आता। यदि यह बात ठीक होती कि हमारे समाजमें स्त्रियोंकी अपेक्षा पुरुषोंकी संख्या अधिक है, और विधवाविवाह प्रचलित न होगा तो बहुतसे पुरुषोंको अविवाहित रहना पड़ेगा और इससे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देशकी जनसंख्याका ह्रास होगा तो अवश्य ही देशकी अवनतिसे इसका कोई सम्बन्ध है, यह बात मान ली जाती। किन्तु वास्तवमें स्त्रियोंकी अपेक्षा पुरुषोंकी संख्या कम है, अतएव विधवा-विवाह प्रचालित होनेसे सभी कुमारियोंको पति नहीं मिल सकेंगे, बहुतोंको आजन्म कुमारी रहना पड़ेगा। ऐसी दशामें जब तक यह न मान लिया जाय कि पाश्चात्य देशोंकी सभी रीति-नीतियाँ अनुकरणीय हैं तबतक विधवाविवाह प्रचालित करनेकी चेष्टा निष्कारण है।

शीतोष्णमय जडजगतमें वही 'सबल-शरीर,' कहलाता है जो बिना कष्टके गर्मी सर्दीको सहन कर सकता है और रोगी नहीं होता। इसी तरह सुखदुःखमय संसारमें वही सबलमना कहा जाता है जो समभावसे सुखदुःख भोग सकता है; दुःखमें जो व्याकुल नहीं होता है और सुखमें विगतस्पृह (इच्छारहित) रहता है। निरवच्छिन्न (अखण्ड) सुख किसीको प्राप्त नहीं है, दुःखका भाग सभीके हिस्सेमें आता है; ऐसी दशामें वही शिक्षा शिक्षा कही जा सकती है जिसके द्वारा शरीर और मनका ऐसा गठन हो जाय कि दुःखका बोझा उठानेमें कुछ भी कष्ट न हो। सुखाभिलाषा होने पर उसी सुखकी कामना करनी चाहिए जिसका कभी ह्रास न हो और जिसमें दुःखकी कालिमा न मिली हो। एक पतिके मर जानेपर दूसरा पति तो मिल सकता है, परन्तु यदि कोई पुत्र मर गया, तो वह कहाँसे आवेगा? उसके अभावकी पूर्ति कैसे होगी? जिस मार्ग पर चलनेसे सारे अभावोंकी पूर्ति हो जाती है, अर्थात् अभावका अभावरूपमें बोध नहीं होता है, वही निवृत्तिमुखमार्ग, प्रेय (प्रिय) न होनेपर भी, श्रेय (कल्याणकारी) है। उसी मार्गपर जो चलते हैं वे वास्तवमें स्वयं भी सुखी होते हैं और अपने उज्ज्वल दृष्टांत द्वारा औरोंके दुखोंका भार भी, सर्वथा नहीं तो बहुत कुछ, हल्का कर देते हैं। हिन्दूविधवायें अपने शरीर और मनको ब्रह्मचर्य और संयमके द्वारा संशोधित करके उसी निवृत्तिमार्गका अनुसरण करती हैं। उस सुपथसे लौटाकर उन्हें विपथगामी बनानेकी चेष्टा करना, न तो उनके लिए हितकर है और न साधारण समाजके लिए। इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दू विधवाओंके दुःसह कष्टोंका विचार करनेसे हृदयमें अतिशय वेदना होती है; किन्तु उनकी लोकोत्तर कष्टसहिष्णुता और उनके असाधारण स्वार्थत्यागके प्रति दृष्टि डालनेसे मन एक ही साथ विस्मय और भक्तिसे भर जाता है। हिन्दू विधवायें ही संसारमें पतिप्रेमकी पराकाष्ठा दिखाती हैं। उनकी उज्ज्वल मूर्तियोंने इस समय नाना दुःखरूपी अन्धकारसे भरे हुए हिन्दुओंके घरोंको प्रकाशित कर रक्खा है। उनके प्रकाशमान् दृष्टान्त हिन्दूनरनारियोंकी जीवनयात्राके पथप्रदर्शक बन रहे हैं। उनका पवित्र जीवन पृथिवीका एक दुर्लभ पदार्थ है। हिन्दू विधवाओंकी चिरवैधव्य प्रथा हिन्दू समाजका देवीमन्दिर है। हिन्दू समाजमें सुधारके अनेक स्थान हैं और सुधारकोंके लिए काम की कमी नहीं है; न जाने कितने स्थानोंको वर्तमान काल और अवस्थाके अनुकूल उपयोगी बनाना है; इस लिए उनसे हमारी बहुत ही विनयके साथ प्रार्थना है कि वे विलासभवन बनानेके लिए उक्त देवीमन्दिरको तोड़ फोड़ ढालनेकी कृपा न करें।

इस लेखसे कोई सज्जन हमें समाजसुधारका विरोधी न समझ लें। हम वास्तविक सुधारको बुरा नहीं समझते। हम जानते हैं कि समाज परिवर्तनशील है, किसी समय भी वह स्थिर नहीं रह सकता। हमारा विश्वास है कि जगत् निरन्तर गतिशील है और वह गति, बीच बीचमें व्यतिक्रम होते रहने पर भी, परिणाममें उन्नतिमुखी है। हम चाहते हैं कि समाजसुधार या संस्कारका लक्ष्य वास्तविक उन्नति अर्थात् आध्यात्मिक उन्नतिकी ओर बराबर बना रहे और इसी लिए किसीको भलीं लगें या बुरीं, हमने समाजसुधारक सज्जनोंसे इतनी बातें कह डालीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विविध प्रसङ्ग ।

१ स्याद्वादविद्यालयकी दशा ।

अन्यत्र 'स्याद्वाद-महाविद्यालयकी भीतरी दशा' शीर्षकका एक लेख प्रकाशित किया जाता है। इसके लेखक श्रीयुक्त बाबू निहालकरणजी सेठी एम. एस सी. हैं। आपको नवस्थापित हिन्दू विश्वविद्यालयमें प्रोफेसरका कार्य मिला है, इसलिए अब आप काशीमें ही रहते हैं। उपर्युक्त लेख आपने विद्यालयकी भीतरी दशाका ज्ञान प्राप्त करके बहुत ही निष्पक्ष दृष्टिसे लिखा है। हम आशा करते हैं कि जैनसमाज इसे ध्यानसे पढ़ेगा और देखेगा कि जिन संस्थाओंका उसे अभिमान है, जिनके लिए वह अपनी गाढ़ी कमाईका धन खुले हाथों खर्च करता है और जिनकी सहायताके लिए उससे अपीलोंपर अपीलें की जाती हैं, उनकी भीतरी दशा कितनी खराब है। वे खास खास आदमियोंके हाथोंकी कठपुतलियाँ हैं।

यह बात केवल दिखाने भरके लिए है कि उनका प्रबन्ध समाजकी इच्छानुसार होता है। हमारा विश्वास है कि एक 'स्याद्वादविद्यालय' ही नहीं, और भी कई जैनसंस्थाओंकी यही हालत है; परन्तु दुर्भाग्यकी बात यह है कि सब जगह उक्त सेठीजी जैसे हितैषी और स्पष्टवक्ता पुरुष नहीं जो जनसाधारणको इस प्रकार निष्पक्ष होकर संस्थाओंकी भीतरी दशाका ज्ञान प्राप्त करानेकी आवश्यकता समझते हों। जहाँ देखिए वहीं संस्थाओंकी भीतरी हालत पर पर्दा डालनेके पक्षपाती ही दिखलाई देते हैं। उन्हें भय रहता है कि भीतरी दशाके प्रकाशित होनेसे संस्थाओंकी आर्थिक अवस्थाको धक्का लगेगा। यह स्वीकार करना पड़ेगा कि उनका अभिप्राय अच्छा है; परन्तु इसके साथ ही यह भी कहना पड़ेगा कि इस प्रकारकी 'चुप्पं कुरु चुप्पं कुरु' की नीतिसे कोई स्थायी लाभ नहीं होता-संस्थाओंकी दशा कभी नहीं सुधर सकती। वह तभी सुधरेगी जब लोग उनकी भीतरी दशासे समय समय पर परिचित होते रहेंगे, कार्यकर्ताओंपर उनकी जानकारीका प्रभाव पड़ता रहेगा और कार्यकर्ता इस बातकी चिन्ता रक्खेंगे कि यदि हमारा कोई प्रमाद होगा तो लोग हमसे उत्तर माँगेगे। यह कितने आश्चर्यकी बात है कि जिस संस्थामें ५०० ६०० रुपया मासिक खर्च होता है, उसके सभापति, उपसभापति, अधिष्ठाता, उपधिष्ठाता यहाँतक कि मंत्री भी बाहर रहते हैं और एक धर्माध्यापक महाशय उसके एक मात्र विधाता बन रहे हैं। चाहे जिसको नियत कराना और अलग करवाना उनके बायें हाथका खेल है। वे मंत्रीका अपमान करते हैं, इसके कारण अलग कर दिये जाते हैं; पर अपनी 'चाणक्य-नीति' से वे अपना बाल बाँका नहीं होने देते और अपने विरोधीको अलग कराके छोड़ते हैं। प्रबन्धकर्त्ता जान जाते हैं कि उनका अपराध है, पर डर जाते हैं और कुछ नहीं कर सकते हैं। उन्हें भय है कि और कोई धर्माध्यापक न मिलेगा! अच्छा होता यदि इसके साथ मंत्री महाशय भी खारिज कर दिये जाते और इस तरह धर्माध्यापक महाशयकी विजय पर एक कलश और चढ़ा दिया जाता।

२ कार्यकर्त्ताओंका चुनाव ।

हमारी संस्थाओंकी अव्यवस्थाका एक बड़ा भारी कारण यह है कि अधिकारियोंका चुनाव योग्यताके खयालसे नहीं किया जाता। यह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं सोचा जाता कि जो महाशय चुने जाते हैं वे उस कामको अच्छी तरह कर सकेंगे या नहीं, अथवा उनको काम करनेकी रुचि या अवकाश भी है या नहीं। इस विषयमें संस्थाके लाभकी अपेक्षा खुशामद और चापलूसीकी ओर अधिक दृष्टि रक्खी जाती है और ऐसे मौकोंपर खुशामदा और चापलूसोंकी ही विजय होती है; उनकी ओरसे जिनका प्रस्ताव किया जाता है, वे ही चुनलिये जाते हैं—निष्पक्ष सम्मति देनेवाले मुँह ताकते रह जाते हैं। केवल सभापतियोंके चुनावमें ही यह बात नहीं होती है, अधिष्ठाता मंत्री आदि काम करनेवाले पदोंका चुनाव भी इसी ढंग पर होता है।

सुनते हैं, आजकल विद्यालयके अधिष्ठाता पं० गणेशप्रसादजी न्यायाचार्य हैं जो काशीमें नहीं किन्तु सैकड़ों कोसकी दूरीपर सागरमें रहते हैं। हम उक्त पण्डितजीकी सज्जनता और न्याय-व्याकरणसम्बन्धी योग्यताको बहुत ही आदरकी दृष्टिसे देखते हैं, उनकी निस्वार्थ वृत्तिकी भी हम प्रशंसा करते हैं; परन्तु इस बातको माननेके लिए हम कदापि तैयार नहीं हैं कि उनमें किसी संस्थाको चलानेकी या अधिष्ठाता बननेकी भी कोई अच्छी योग्यता है। पण्डितजी इतने सीधे और सज्जन हैं कि वे स्वयं भी किसीसे अपनी प्रबन्ध-सम्बन्धी योग्यताका सर्टिफिकेट लेना पसन्द नहीं करेंगे। एक सागरकी पाठशाला ही उनके द्वारा अच्छा तरह नहीं चल रही है जिसका लगभग २५०–३०० रुपये मासिकका खर्च है, पर जिसकी ६–७ वर्षोंमें एक भी रिपोर्ट प्रकाशित नहीं हुई है। ऐसी अवस्थामें हमें विश्वास है कि उन्होंने काशी पाठशालाके 'अधिष्ठातापने' का भार अपनी इच्छानुसार कभी नहीं लिया होगा। अवश्य ही खुशामद और चापलूसी करनेवालोंने उनके सिर जबर्दस्ती यह भार मढ़ दिया होगा। फिर भी हम कहेंगे कि पण्डितजीने यह भार लेकर अच्छा नहीं किया—ऐसे स्वच्छन्द छात्रों और धर्माध्यापकोंपर शासन करके कीर्ति लाभ करना जरा टेढ़ी खीर है। या तो पण्डितजीको उनके इच्छानुवर्ती बनकर रहना पड़ेगा, या हर समय स्वयं अलग हो जानेके लिए तैयार रहना पड़ेगा। मंत्री महाशयको हम जानते नहीं हैं; पर यह अवश्य कहना पड़ेगा कि मंत्रीका काम किसी काशीनिवासीके ही हाथमें रहना चाहिए, बाहर रहकर कोई मंत्रीका काम अच्छी तरह नहीं कर सकता।

३ धर्माध्यापककी शक्ति।

पं० उमरावसिंहजीके लिए पाठशालाके कामोंमेंसे किसीको निकलवाकर अलग कर देना बायें हाथका खेल है। इस विषयमें वे सिद्धहस्त हैं। स्याद्वादविद्यालयकी प्रबन्धकारिणी सभामें ब्र० भगवानदीनजी और बाबू दयाचन्दजी गोयलीय बी. ए., ये दो सज्जन बहुत ही योग्य थे; परन्तु सुनते हैं आपने इनपर यह दोष लगाकर कि ये विधवाविवाहके पोषक हैं, सभासे अभी कुछ ही महीने पहले अलग करवा दिया है! बाबू निहालकरणजी सेठीकी भी यही दशा होनेवाली थी। ता० २८ अक्टूबरकी सभामें धर्माध्यायक महाशयने इनको भी अलग कर देनेके लिए प्रस्ताव किया था और सुबूतमें जैनहितैषीके लेख पेश किये थे; परन्तु उस समय आप स्वयं अपराधी थे इस कारण कुछ न कर सके और सभाने आपकी बात पर ध्यान न दिया। सेठीजीको डर है कि अभी नहीं तो आगे शीघ्र ही मैं अलग कर दिया जाऊँगा, इस लिए उन्होंने उपसभापति महाशयकी सेवामें एक इस्तीफा पेश कर दिया है (जिसकी नकल आगे दी गई है)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस अभिनव उपायके निकालनेके कारण हम पं० उमरावसिंहजीके कौशलकी तारीफ किये बिना नहीं रह सकते । अन्यान्य संस्थाओंके एकहत्थी शासकोंको भी इस युक्तिसे काम लेना चाहिए । ज्यों ही कोई स्वतंत्र खयालोंका आदमी दिखलाई दिया और उसने कोई बात अपनी सत्तामें हानि पहुँचानेवाली कही—और ऐसे लोग अक्सर कहते ही हैं—तो उसके ललाटपर चटसे 'विधवाविवाहके पक्ष' का तिलक लगा दिया ! बस काम बन गया । 'न रहेगा बाँस और न बजेगी बाँसुरी ।' बाबू लोगोंको भी अब इस नये यंत्रके आविष्कारकी खबर सुनकर चेत जाना चाहिए और अपने बोरिया बँधना सँभाल लेना चाहिए ।

४ संस्कृतके विद्यार्थी ।

संस्कृतके पढ़नेवाले जैनविद्यार्थी कितने उद्धत हो जाते हैं, और वे आगे समाजका क्या उपकार करेंगे, इस विषयमें सेठीजीने जो वाक्य लिखे हैं उनपर पाठकोंको खास तौरसे ध्यान देना चाहिए। संस्कृतके विद्यार्थियोंसे-जो निकटके भविष्यमें पण्डित बननेवाले हैं-जैनसमाजको बहुत बड़ी आशा है । इस समय जैनसमाज विद्याकी उन्नतिके लिए जितना धन खर्च करता है उसका अधिकांश संस्कृतके लिए ही लगता है । समाजने सबसे अधिक आवश्यकता इसीकी समझी है । यदि इसीके विद्वानोंसे हमें इतना अधिक निराश होना पड़ा तो बड़े ही दुःखकी बात होगी । हमें इन्हें विनयवान्, सहनशील, निराभिमानी और सदाचारी बनानेकी ओर सबसे अधिक ध्यान देना चाहिए। ये हमारे धर्मोपदेशक बननेवाले हैं । यदि इन्हींका चरित्र अच्छा नहीं हुआ तो फिर हम अपनी भलाईकी और क्या आशा रख सकते हैं ?

संस्कृतके विद्यार्थियोंसे अभी तक हमें जो कुछ परिचय रहा है, उससे हमें विश्वास हो गया है कि वे अच्छेसे अच्छे सदाचारी विनयशील और स्वार्थत्यागी बन सकते हैं; परन्तु प्रबन्धकर्त्ताओंका इस ओर जरा भी ध्यान नहीं रहता है। उनकी प्रबन्धप्रणाली ही ऐसी है कि वे अतिशय उच्छ्रंखल स्वार्थी और अभिमानी बन जाते हैं। प्रबन्धकर्ता उन्हें मनाकर खुशामद करके रखते हैं तब वे रहते हैं, नहीं तो अन्यत्र चले जाते हैं और वहाँ भी मजेसे छात्रवृत्ति प्राप्त कर लेते हैं। जितनी संस्थायें हैं, उनमें प्रायः परस्पर स्पर्धा रहती है, इस लिए एक संस्थाका अपराधी विद्यार्थी दूसरी संस्थामें मजेसे आदरपूर्वक ले लिया जाता है । अभिमानकी तो कुछ पूछिए ही नहीं, कोई छोटा मोटा व्याकरण या एकाध काव्य पढ़ पाया कि संस्कृतके छात्रोंका मस्तक आसमान पर पहुँच जाता है और उनकी इस अभिमानवृत्तिको उलटा उत्तेजन मिलता है, उसे दबानेकी कोशिश नहीं की जाती । यदि संस्थाका प्रबन्ध किसी संस्कृत न जाननेवालेके हाथमें रहता है, तो छात्र उससे जरा भी नहीं दबना चाहते। उन्हें पक्का विश्वास रहता है कि अँगरेजी आदिके विद्वान् विद्वान् ही नहीं हो सकते और उन्हें हम पर शासन करनेका कोई अधिकार ही नहीं है । हमने बहुत कम छात्र ऐसे देखे हैं जो छात्रवृत्ति देनेवाली संस्थाओंके या दाताओंके प्रति अपने हृदयमें कृतज्ञताका भाव रखते हैं, या उस वृत्तिके बोझेसे अपनेको कुछ दबा हुआ समझते हैं। उनकी समझमें दाताओंका कर्तव्य है कि वे उन्हें वृत्ति देवें, पर स्वयं उनका यह कर्तव्य नहीं कि अपनेको उस वृत्तिके बोझेसे हलके होनेकी भावना भी रक्खें । वे तो अपनी समझमें संस्थाओं पर एक प्रकारकी कृपा करते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं जो उनमें रहकर पढ़ते हैं ! दो तीन वर्ष पहले काशीके एक छात्रका पत्र यहाँकी एक संस्थाके सैक्रेटरीके पास आया था जिसमें स्पष्ट शब्दोंमें लिखा था कि "आपको स्कालर्शिप देना हो तो दीजिए, नहीं तो, हम कोई दूसरा प्रबन्ध कर लेंगे।" ये भाव हैं जिन्हें लेकर संस्कृतके छात्र बाहर निकलते हैं और जैनसमाजके धर्मशिक्षक बनते हैं ! हम ऐसे अनेक पण्डितोंके नाम जानते हैं जो ३०–३५ से लेकर ५०–६० रुपये मासिक तककी जीविका करते हैं; पर जिन संस्थाओंसे चार चार छह छह और इससे भी अधिक वर्षों तक छात्रवृत्तियाँ लेकर वे संस्कृतके पण्डित बने हैं, उनको कभी पाँच रुपयेकी भी सहायता करना अपना कर्तव्य नहीं समझते हैं। दो चार पण्डित ऐसे भी हैं जिन्होंने रथप्रतिष्ठाओंकी दाक्षिणाओंसे दश दश बीस बीस हजार रुपये कमा लिये हैं; पर जिनकी ओरसे कहीं किसी विद्यासंस्थामें दश बीस रुपयोंका दान दिया गया भी नहीं सुना है; यद्यपि वे स्वयं दूसरोंकी सहायतासे पढ़े हैं ! कृतघ्नता और स्वार्थसाधुताके इन भावोंको दूर करनेका जबतक हमारी संस्थायें प्रयत्न नहीं करेंगी, तबतक यही दशा रहेगी।

५ बाबू निहालकरणजीका इस्तीफा।

"बनारस
३०–१०–१६

श्रीमान् उपसभापति महोदय

श्रीस्याद्वादमहाविद्यालय काशीकी सेवामें,

निवेदन है कि निम्नलिखित कारण मुझे विवश करते हैं कि मैं विद्यालयकी प्रबंधकारिणी सभाका सभासद अब न रहूँ:—

१—ऐसा जान पड़ता है कि इस सभाको मेरी बातोंकी सत्यतापर विश्वास नहीं होता।

२—इस समयकी घोर अशांतिका ठीक कारण ज्ञात हो जाने पर भी दोषीको सभा दंड देना उचित नहीं समझती वरन् जिसका इस झगड़ेसे कोई सम्बंध नहीं उस निर्दोष व्यक्तिको पृथक् कर देनेके लिए प्रस्तुत है।

३—सभाने मुझे अशांतिका कारण जानने और उसका उचित प्रबंध करनेको नियत किया था। कारण ज्ञात हो जानेपर सभाको मैंने वह ज्यों-का त्यों बतला दिया। ऐसा करनेमें मुझे जो अपराधी था उसका दिल दुखाना पड़ा था। किन्तु जब सभा अपनेको इतनी शक्तिहीन समझती है कि अपराधीको दंड देनेमें असमर्थ है और उसहीके कहनेके अनुसार चलनेको और अपराधीहीकी 'खुशामद' करनेको प्रस्तुत है तब मैं देखता हूँ कि मैं अपने आत्मसम्मानकी रक्षा सभाका सदस्य रह कर नहीं कर सकता।

४—व्यक्तिविशेषके लाभ और हानिपर दृष्टि रखकर सभा विद्यालयके उचित प्रबंधकी ओर ध्यान नहीं देती; ऐसी दशामें समाजका ५००–६०० रु० मासिक व्यय होकर भी उसका कोई लाभ नहीं हो सकता, इस लिए सभा समाजके प्रति दोषी है—मैं इस दोषका भागी नहीं बनना चाहता।

५—मैं देखता हूँ कि विद्यालयके प्रबन्धमें इतनी गड़बड़ी है कि जिससे उसकी और समाजकी बहुत हानि होती है और यह भी जानता हूँ कि यह सभा उसका उचित प्रबंध करनेमें बहुत शिथिल है। अतः अब समय आगया है कि इसका यथार्थ चित्र समाजके सम्मुख रक्खा जाय। समाजसे इसके कुप्रबंधकी कथा छुपानेसे अब कोई लाभ नहीं हो सकता। इत्यादि।

अतः आशा है कि आप कृपा कर मेरा इस्तीफा स्वीकार करेंगे।

भवदीय

निहालकरणसेठी।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६ संचालकोंका और समाजका कर्तव्य ।

विद्यालयके संचालकोंको इस मामलेकी ओर पूरा पूरा ध्यान देना चाहिए और यह एक क्षण भरके लिए भी न भूल जाना चाहिए कि समाज विद्यालयको जो कुछ द्रव्य देता है, वह हम लोगोंके विश्वास पर देता है । समाजका भी यह कर्तव्य है कि वह तब तक शान्त न हो जब तक कि उसे भली भाँति यह न मालूम होजाय कि विद्यालयकी दशा अच्छी है, और हमारे धन-का सदुपयोग हो रहा है । अधिकारियोंका चुनाव बहुत कुछ सोच विचार कर किया जाना चाहिए । यह दशा बहुत ही असंतोषजनक है कि सभापति, उपसभापति, अधिष्ठाता और मंत्री तक संस्थासे दूर रहते हैं और उनका संस्थाके साथ साक्षात् सम्बन्ध बहुत कम रहता है । कमसे कम अधिष्ठाता और मंत्री तो स्थानीय ही रहने चाहिए । हमें आशा है कि किसी भीतरी कारणसे यह मामला दबा न दिया जायगा ।

७ लार्ड बेकनकी सलाह ।

सुप्रसिद्ध विचारक लार्ड बेकनके नीचे लिखे विचार—जो उन्होंने एक ही धर्मके अनुयायियोंके बीचकी शान्ति और क्लेशमय स्थितिके सम्बन्धमें प्रकट किये थे—जैनोंके लिए अत्यन्त उपकारक समझकर उद्धृत किये जाते हैं:—“ एक ही धर्मके माननेवालोंके बीचमें गाली गलोज या मारपटि हो तो उसका दो प्रकारका प्रभाव पड़ता हैं । एक तो उस धर्मसे बाहरके मनुष्योंपर पड़नेवाला प्रभाव और दूसरा उसी धर्मके अनुयायियों पर पड़नेवाला प्रभाव । (१) एक ही धर्मके लोगोंको एक दूसरेकी निन्दा करते और एक दूसरेकी पूजन विधियोंको असत्य ठहराते हुए देखकर, बाहरके लोगोंके विचार उस धर्मके विषयमें अच्छे नहीं रहते और (२) उस धर्मके माननेवालोंके बीचमें निन्दा, झगड़ा आदि चलनेसे उनकी शान्ति प्रगति और बलकी हानि होती है । ”

V. M. Shah.

८ विधवा-विवाहका प्रश्न ।

अन्यत्र प्रकाशित ‘विधवाविवाह-विचार’ शीर्षक लेखपर विधवाविवाहके अनुयायी और विरोधी दोनोंको ही विचार करना चाहिए । लेख बहुत ही महत्त्वका है और बहुत ही विचारपूर्वक लिखा गया है । परन्तु यह ध्यानमें रखना चाहिए कि यह मुख्यतः हिन्दूसमाजपर दृष्टि रख कर लिखा गया है । इस लिए इसकी सभी बातें जैनसमाजकी परिस्थितिके अनुकूल नहीं हो सकतीं । जैसे कि, इसमें यह माना गया है कि हिन्दुओंमें स्त्रियोंकी संख्या अधिक है और पुरुषोंकी कम है, इसलिए यदि चिरवैधव्यकी प्रथा उठा दी जायगी तो फिर विधवाओंके बदले बहुतसी कुआँरियोंको अविवाहित रहना पड़ेगा । परन्तु जैनसमाजकी परिस्थिति हिन्दुओंसे ठीक उलटी है । अन्यत्र प्रकाशित श्रीयुत बाबू माणिकचन्द्रजीके व्याख्यानमें दी हुई संख्याओंसे मालूम होगा कि जैनसमाजमें स्त्रियोंकी संख्या पुरुषोंसे बहुत ही कम है और इस कारण कुआँरोंकी संख्या बहुत ही भयंकर रूपसे बढ़ रही है । ऐसी दशामें इस बातका निर्णय होनेकी आवश्यकता है कि इस लेखमें सिद्ध किये हुए उच्च आदर्शकी रक्षा करना अच्छा है; या विधवाविवाह जारी करके जैनसमाजकी घटती हुई संख्याको रोकना अच्छा है । यदि उच्च आदर्शकी रक्षा करना है, और विधवाविवाहको जारी नहीं करना है, तो फिर कोई तीसरा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपाय बतलाना चाहिए जिससे जैनसमाज चिरजीवी बना रहे—सौ सवासौ वर्षोंमें हीं उसका निर्वाण न हो जाय। क्या जैनेतरोंकी लड़कियोंसे विवाह-सम्बन्ध करनेकी और इस तरह स्त्रियोंकी कमी पूरी कर लेनेकी समाज आज्ञा दे सकता है ?

९ पं० लक्ष्मीचन्द्रजीकी उपाधियाँ।

सुप्रसिद्ध जैन व्याख्याता पं० लक्ष्मीचन्द्रजीको 'दिगम्बरजैनमन्दिर, कूचा सेठ' देहलीकी ओरसे गत आसोज वदी १५ की रातको एक अभिनन्दनपत्र दिया गया था। इस अभिनन्दन पत्रमें उक्त मंदिरने अथवा मन्दिरके जैन भाइयोंने पण्डितजीको सिद्धान्तरत्नभूषण, व्याख्यान वाचस्पति, सुभाषितसुधासिंधु, ज्ञानसागर, कारुण्यरत्नाकर, व्याख्यानकेसरी, और मिथ्यात्वतिमिरमार्तण्ड, इन सात उपाधियोंसे सत्कृत किया है और फुटनोटमें प्रकट किया है कि ये उपाधियाँ पण्डितजीको बुन्देलखण्ड (?), कोटा, कलकत्ता, चांदखेड़ी, मन्दसौर, रतलाम, और देहली इत्यादि नगरोंसे मिली हैं। अवश्य ही यह फुटनोट पण्डितजीकी डायरीपरसे या उनकी स्मृतिसूचनासे लिखा गया होगा। हमारी समझमें उपाधियोंकी संख्या बहुत कम है। पण्डितजीको और उनके भक्तोंको कोशिश करनी चाहिए जिससे ये कमसे कम एक सौ तो हो जायँ और कलिकाल केवली, सिद्धांतसर्वज्ञ, तर्कतीर्थंकर, चातुर्यचक्रवर्ती आदि सुन्दर सुन्दर पदवियाँ तो व्यर्थ न पड़ी रहें। भारतकी राजधानी देहलीके धर्मात्माओंको तो इस विषयमें खास तौरसे प्रयत्न करना चाहिए। उनकी शोभा इसीमें है!

१० बम्बईका दीक्षामहोत्सव।

कहा जाता है कि स्थानकवासी सम्प्रदायके स्थापकोंने यह देखकर मूर्तिपूजाका निषेध किया था कि मूर्तिपूजा और मन्दिरप्रतिष्ठाओंमें जैनसमाजकी सीमासे अधिक शक्तियोंका खर्च होता है, इनसे आपसी क्लेश और लड़ाई झगड़े भी बहुत होते हैं, और इन गौणकार्योंकी ओटमें जैनधर्मके मुख्य कार्य छुप जाते हैं। उन्होंने यह विरोध इतने जोरके साथ किया कि उनका एक जुदा ही सम्प्रदाय बन गया जो मूर्तिपूजाको सर्वथा अनावश्यक समझता है। यदि इस सम्प्रदायके स्थापकोंने ईसी अभिप्रायसे मूर्तिपूजाका निषेध किया था तो कहना होगा कि उनका मतलब सिद्ध नहीं हुआ। यह संभव है कि शुरू शुरूमें इससे कुछ लाभ हुआ हो, पर इस समय तो स्थानकवासी भाइयोंने उस अभिप्रायको भुला दिया जान पड़ता है। जिस तरह मूर्तिपूजक भाई अपनी शक्तियोंको मूर्तिपूजाके रथप्रतिष्ठादि कार्योंमें लगाते हैं उसी तरह स्थानकवासी भाई साधुपूजामें लगाने लगे हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि वे मूर्तिपूजक हैं तो ये मनुष्यपूजक बन गये हैं। अभी बम्बईमें जो स्थानकवासी सम्प्रदायकी ओरसे दीक्षा महोत्सव हुआ था और जिसमें एक श्रावकको दीक्षा देकर साधु बनानेकी खुशीमें लगभग २० हजार रुपयोंका पानी बना दिया गया है, हमारे इस कथनकी पुष्टिके लिए यथेष्ट है। कई दिनोंतक बम्बईकी सड़कोंपर जुलूसोंकी वह धूम रही कि सारा शहर जैनधर्मकी प्रभावनासे चकचौंधा गया! यदि यह महोत्सव किसी महापुरुषकी— जैनधर्मके वास्तविक उद्धारककी— भक्तिसे प्रेरित होकर किया गया होता, तो भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सन्तोष होता; पर सुनते हैं कि जिस महापुरुषको दीक्षा दी गई है वह निरा मूर्ख नहीं, तो समझदार भी नहीं है! उसमें ऐसा कोई गुण नहीं है जो आगे विकसित होकर जैनधर्मकी प्रभावना करनेमें समर्थ हो। यह जानकर पाठकोंको और भी आश्चर्य होगा कि इस उत्सवके प्रेरक और अनुमोदक मुनि रत्नचन्द्रजी बतलाये जाते हैं जो कि उक्त सम्प्रदायके साधुओंमें सबसे बड़े विद्वान् समझे जाते हैं।

११ हिन्दी गौरव ग्रन्थमाला।

इस समय हिन्दीमें अच्छे अच्छे ग्रन्थ प्रकाशित करनेके लिए खासा उद्योग हो रहा है। पाठक यह जान कर प्रसन्न होंगे कि सत्यवादीके पूर्वसम्पादक पं० उदयलालजी काशलीवालने अभी थोड़े ही समयसे 'हिन्दी–गौरव ग्रन्थमाला' नामकी माला निकालनेका प्रारंभ किया है जिसमें अब तक तीन ग्रन्थ निकाल चुके हैं– **१ सफलगृहस्थ,** अँगरेजीके प्रसिद्ध लेखक हेल्प्सके निबन्धोंका अनुवाद। अनुवादक, बाबू खूबचन्दजी सोधिया बी. ए.एल. टी। **२ आरोग्य दिग्दर्शन,** महात्मा गाँधीकी गुजराती पुस्तकका अनुवाद। अनुवादक, पं० गिरिधर शर्मा। **३ कांग्रेसके पिता मि० ह्यूमकी जीवनी।** अनुवादक, बाबू दयाचन्दजी गोयलीय बी.ए. और बाबू चिरंजीलालजी माथुर बी. ए.। पहले दोका मूल्य ग्यारह ग्यारह आने और तीसरेका बारह आने है। तीनों ही ग्रन्थ अच्छे और प्रत्येक मनुष्यके पढ़ने योग्य हैं। ग्रन्थमालाके स्थायी ग्राहकोंको ये और आगे निकलनेवाले तमाम ग्रन्थ 'दो तिहाई, मूल्यसे दिये जायँगे। हम अपने हिन्दी-प्रेमी ग्राहकोंसे सिफारिश करते हैं कि वे ग्रन्थमालाके ग्राहक बनकर पण्डितजीके उत्साहको बढ़ावें और विविध विषयके ग्रन्थोंको पढ़कर अपने ज्ञानकी वृद्धि करें। पण्डितजीका ठिकाना 'चन्दावाड़ी पो० गिरगाँव, बम्बई' है।

१२ हिन्दीमें नये जैन पत्र।

हिन्दीमें नीचे लिखे तीन जैन पत्रोंने जन्म लिया है और हिन्दी भाषाभाषी जैनसमाजकी सेवा करना प्रारंभ कर दिया है:—

१ जैन मार्तण्ड—जैन बालहितैषिणी सभा हाथरसका मुखपत्र। सम्पादक, श्रीयुत मिश्रीलाल सौगानी, हाथरस (अलीगढ़)। पृष्ठ३६, डिमाई अठपेजी। वार्षिक मूल्य १॥) रु०।

२ जैनसंसार–श्वेताम्बर जैन बरार प्रान्तिक सभाका मुखपत्र। सम्पादक, श्रीयुत कृष्णलाल वर्मा, जुबिली बाग, तारदेव, बम्बई। पृष्ठ ३६ रायल बारह पेजी। मूल्य १॥=)

३ मुनि—महावीर मुनिमण्डल, बोदवड़ (खानदेश) का मुखपत्र। सम्पादक, श्रीयुत विश्वंभरदास गार्गीय, छावनी झांसी। पृष्ठ ३२ डिमाई अठपेजी, मू० २) रु०।

इनमें पहला दिगम्बर, दूसरा श्वेताम्बर और तीसरा स्थानकवासी सम्प्रदायका पत्र है। हम तीनोंका स्वागत करते हैं और चाहते हैं कि तीनों ही चिरंजीवी होकर जैनधर्म और जैनसमाजका कल्याण करनेमें समर्थ हों। तीनोंके दो दो तीन तीन अंक निकल चुके हैं। पाठकोंको एक एक नमूनेका अंक मँगाकर देख लेना चाहिए और ग्राहक बनकर सहायता करना चाहिए।

सहयोगी जैनमित्र पाक्षिकसे साप्ताहिक हो गया है और अब सूरतसे निकलने लगा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१२ लालाजीकी ललाई ।

तीर्थक्षेत्रकमेटीके महामंत्री लाला प्रभुदयालजीको हमारे पाठक अच्छी तरह जानते हैं । पिछले अंकमें हमने उस लेखको अनुचित बतलाया था जो उन्होंने बाबू दयाचन्द्रजी गोयलीयके हिसाव पूछने पर जैनमित्रमें प्रकाशित कराया था । हमने यह भी लिखा था कि जैनमित्रमें जो लेख छपा है, वह ब्रह्मचारीकी कृपासे ज्योंका त्यों नहीं छपा । उन्होंने उस लेखको बहुत ही ठंडा करके छापा है; असली लेखमें गोयलीयजी पर बहुत बुरी तरहसे आक्रमण किया गया था । इस पर ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी पर, देखिए, लालाजी किस तरह लाल हुए हैं:—

"मित्रसंपादककी कुटिलाई ।

'जैनमित्र' बंबई प्रांतिक सभाका एक मुख्य पत्र है । ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी उसके संपादक हैं । आपका हृदय ऊपरसे तो स्वच्छ और सरल मालूम पड़ता है, परंतु उसके भीतरमें न मालूम किस कषाय-पिशाचिनीके कारण कूट-नीतिने प्रवेश कर रक्खा है । यह कहना भी अनुचित न होगा कि आप भी उन भ्रष्टपंथियोंकी हांमें हां मिलानेवाले हैं जो कि विधवा-विवाह आदि ऐसे निषिद्ध कार्योंके पोषक हैं । इसीसे तो जो लेख विधवाविवाह ब्रदरहुड आदि कार्योंके विरुद्ध आपके पास जाता है उसे या तो आप छापते ही नहीं या उसमें काट छाँट कर डालते हैं । आश्विन मासमें एक लेख जातिप्रबोधक पत्रके किये हुए तीर्थक्षेत्र कमेटीके आक्षेपोंके जवाबमें आपके पास भेजा गया था । उसमें आपने कुछ काट छांट कर छापनेकी सम्मति मांगी; और इसी लिये देखनेको वह लेख भी लौटा भेजा । परंतु हमको वह काट छांट मंजूर न थी इसलिये हमने फिर वह लेख उनके पास छापनेको न भेजा । परंतु अफसोसका विषय तो यह है कि जिस लेखको हमने काट छांट कर छपाया नहीं, और उन्होंने अपने संपादकीय बलसे उसे छापा नहीं; फिर भी उस लेखकी कुछ बातको लेकर जैनहितैषीने हमारे ऊपर आक्षेप किया है, जिसमें कि लेखकका नाम छिपाया गया है । बड़े अफसोस और शरमकी बात है कि **आप सत्यव्रती ब्रह्मचारी कहलाते हुए व्यभिचारियों जैसा कार्य करें ।** अगर हमारे लेखके कुछ अंशको लेकर ही लिखना या दूसरेसे लिखाना था तो हमारा पूरा लेख छाप कर फिर उसके ऊपर जी चाहे जैसा आक्षेप करते । और फिर देखते कि कैसा मुंह तोड़ जवाव दिया जाता है । लेकिन आप ऐसा करते ही क्यों, आपको तो अपनी कूट नीतिका परिचय देना था । मालूम होता है कि इसी लिये विना छपे हुए लेखका आप नहीं तो दूसरों द्वारा प्रतिवाद कराया, सो भी मन माना, **और जैनहितैषीमें ! जिसको कि बम्बई प्रांतिक सभाके तिरस्कार करनेसे हम लोग खरीदते नहीं ।** मगर तौ भी आप याद रखिये कि वह जैसा लेख है वैसा ही मजेदार मखमली जवाव भी दिया जायगा । परंतु **कृपानिधान ब्रह्मचारी जी ! पहलेसे ही तुम्हारे ब्रह्मचर्यमें कुछ इल्ली लग रही है ।** अब ज्यादा इन अन्याय-पोषक कार्याध्यक्षोंके सम्मिलित हो अपने चारित्रमें सिंवाल और जंग न चढ़ाइये । नहीं तो इसका जो कुछ परिणाम होगा वह आपके लिये और इस भेषके लिये अत्यन्त शोचनीय और लज्जाप्रद होगा । किमधिकम् । मु० लखनऊ, ता० १७-११-१६ ।

समाजसेवक, भागमल प्रभुदयाल, महामंत्री भा० व० दि० जैन ती० क्षे० कमेटी ।"

१ इस लेखमें जो यह कहा गया है कि ब्रह्मचारीजीने दूसरों द्वारा (अर्थात् जैनहितैषी द्वारा) प्रतिवाद कराया है, सो सर्वथा असत्य है। ब्रह्मचारीजी उन दिनों बड़ौदेमें थे जब लालाजीका लेख उनके पास गया था । उन्होंने लेखको काट छाँटकर बम्बई भेज दिया था और यहीं आकस्मिक रीतिसे उसका हमको पता लग गया था। इसमें न उनका कोई दोष था और न दफ्तरके आदमियोंका । हमारे और ब्रह्मचारीजीके विचारोंमें बहुत बड़ा अन्तर है । उनकी यह नीति है कि किसीकी बुराई न की जाय, किसीपर आक्षेप न किया जाय और हमारी यह नीति है कि बात साफ साफ और सत्य कही जाय, चाहे वह किसीको बुरी लगे चाहे भली । ऐसी दशामें यह संभव नहीं कि वे हमारे द्वारा किसीकी बातका प्रतिवाद करावें ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२ लालाजी कहते हैं कि 'जैनहितैषीको हम लोग बम्बई प्रान्तिक सभाके तिरस्कार करनेसे खरीदते नहीं!' मानों प्रान्तिक सभाके प्रस्ताव करनेके पहले आप हितैषीको खरीदते थे, अथवा जैनसमाजके सारे ही पत्रोंके आप खरीददार हैं! लालाजी साहब, जैनहितैषीके खरीदनेके लिए सिर्फ रुपये ही खर्च नहीं करने पड़ते, कुछ अक्लकी भी जरूरत होती है। उसके लेखोंके समझनेके लिए बुद्धि चाहिए और उसके भावोंको धारण करनेके लिए विस्तृत हृदय चाहिए। वह न आप जैसोंके लिए निकलता है और न आपकी और आपकी प्रान्तिक सभाकी कुछ परवा ही करता है। जैन-समाजमें सब आपके ही भाईबन्द नहीं हैं। कुछ ऐसे भी सहृदय और विचारशील हैं जो हितैषीको प्यारकी दृष्टिसे देखते हैं और उसके लिए जो परिश्रम किया जाता है-जो स्वार्थत्याग किया जाता है उसकी कदर करते हैं। उन्हींके लिए यह निकलता है। आप जैसोंके सत्कार और तिरस्कार उसकी दृष्टिमें निस्सार हैं। यदि हितैषीमें कुछ 'सार' है और वह समाजसेवाकी आन्तरिक प्रेरणासे सम्पादित होता है तो उसे हजारों पढ़नेवाले मिल जायँगे।

३ हाँ, वह मजेदार और मखमली जवाब तो आपने अबतक न दिया। हम देखना चाहते हैं कि वह, ब्रह्मचारीजीको जैसा जवाब दिया गया है, वैसा ही है अथवा कुछ और ही 'मजा' रखता है। उससे पता लग जायगा कि आप 'मजेदार' किसे कहते हैं। जिस लेखमें गालियोंके सिवाय कुछ भी न हो, जान पड़ता है आप उसे ही 'मजेदार' कहते हैं। परवा नहीं, आप अपनी इच्छा पूरी कर लीजिए। तीर्थक्षेत्रकमेटीके इस महामान्य पदको पाकर कहीं ऐसा न हो कि आप किसी 'मजे' से वंचित रह जायँ।

४ चौथी बात हम तीर्थक्षेत्रकमेटीके मेम्बरोंसे कहेंगे कि आप लोग अपने इन मानीते महामंत्रीजीके मुँहमें कुछ लगाम भी लगायँगे, या इसी तरह बकते रहने देंगे। केवल एक हिसाबके पूछनेसे इन्होंने बाबू दयाचन्दजीको मनमानी गालियाँ देनेका प्रारंभ किया और उन्हें भ्रष्टपंथी अदि विशेषण दे डाले और ज्योंही उसमें रुकावट डाली गई कि ये ब्रह्मचारीजी जैसे समाजसेवकोंको सीधी गालियाँ सुनाने लगे। तुम व्यभिचारियों जैसा काम करते हो, तुम्हारे ब्रह्मचर्यमें इल्ली लग गई है, आप अपने चरित्रमें सिंवाल और जंग न चढ़ाइए, ये सब असभ्यों जैसी गालियाँ नहीं तो और क्या हैं? किसी सार्वजनिक संस्थाका-उस संस्थाका जिसमें कि गरीब और अमीर सभीने अपनी गाढ़ी कमाईका कुछ न कुछ हिस्सा दिया है-हिसाब पूछना क्या कोई अपराध है? जो संस्थाओंका काम करते हैं उन्हें तो सब तरहसे शान्त और क्षमावान् होना चाहिए। वे इस तरह बात बातमें उखड़ पड़ेंगे तो काम कैसे चलेगा। अभी तो लोग कमेटीके हिसाब प्रकाशित न करनेके ही कारण आक्षेप कर रहे हैं, यदि आगे कोई यह कह बैठे कि कमेटीके हिसाबमें भी हमें सन्देह है, अथवा कमेटीका कुछ धन उसके कार्यकर्ता अपने उपयोगमें ले आते हैं, तो मालूम नहीं, कमेटी अपने इन लाड़ले लालाजीसे लोगोंको कितनी गालियाँ दिलवावेगी और इस कामके लिए पेम्पलेट आदि छपानेमें कितने रुपये बरबाद करावेगी। इस तरहकी एक बात हमको मालूम भी है, जिसके कारण लोग कमेटी पर सन्देह कर सकते हैं और दुर्भाग्यवश वह लालाजीके ही सम्बन्धमें है। गतवर्षके कार्तिकमें जम्बूस्वामीके मेले पर तीर्थक्षेत्रकमेटीका जो अधिवेशन हुआ था, उसमें कमेटीका हिसाब सुनाया गया था और उसमें लाला प्रभुदयालजी महामंत्रीके नाम ३०००) तीन हजार रुपये निकाले गये थे। लालाजीने यह रकम कोई तीन चार महीने पहले कमेटीके खजानेसे उठा ली थी। इस तरह लगभग डेढ़ वर्षसे यह रकम लालाजीके नामें पड़ रही है। तीर्थक्षेत्र कमेटीकी रिपोर्ट कोई दो वर्षसे प्रकाशित नहीं हुई है। इसलिए हम नहीं कह सकते कि यह रकम वसूल हुई है या नहीं। पर जहाँ तक सुना गया है, लालाजी इसे दे नहीं सके हैं और शायद इसके सिवाय भी उन्होंने कुछ रकम और लेली है। यह एक ऐसी बात है जिसपर लोग आक्षेप कर सकते हैं और कमेटीसे इसका जवाब तलब कर सकते हैं। पर क्या कमेटीका यह कर्तव्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं है कि वह ऐसी बातोंका उत्तर अपने भाइयोंको शान्तिके साथ देवे ? यदि वह इनका उत्तर देनेके लिए लालाजीको ही छोड़ देगी, तब तो उनकी कृपासे ब्रह्मचारीजीके समान चाहे जिसकी इज्जत धूल फाँकती फिरेगी । कमेटीके मेम्बर महाशयोंको चाहिए कि वे लालाजीको यह समझा दें कि कमेटीके कोषमें गरीब और अमीर सभीने चन्दा दिया है, और उन सबने ही कमेटीको बनाया है, अतः कमेटी उनकी स्वामिनी नहीं हो सकती । प्रत्येक जैनी—भ्रष्ट और धर्मात्मा, तरहपंथी और बीसपंथी, पण्डितपंथी और बाबूपंथी— आपसे हिसाब पूछ सकता है और आप पर झूठा या सच्चा सन्देह भी कर सकता है। आपका काम उसका समाधान कर देना है, गालियाँ देना या उलटी सीधी बातें सुनाना नहीं । यदि लालाजी यह न समझें और थोड़ासा काम करनेके कारण अपनेको 'महापुरुष' या 'पट्टधर' समझ बैठे हों, तो कमेटीको उनका यह सुखस्वप्न शीघ्र ही भंग कर देना चाहिए । इस्तीफा माँगकर उन्हें आदरपूर्वक अलग कर देना चाहिए और किसी ऐसे सज्जनको यह काम सोंपना चाहिए जो आपको समाजका सेवक समझता हो । कमेटीकी इज्जतमें इससे बट्टा लगता है कि उसके महामंत्री इस तरह गालियाँ बकनेवाले तुच्छ हृदयके आदमी हैं ।

१४ जैनी भाइयोंका हिन्दीप्रेम ।

हिन्दी-साहित्यसम्मेलन हिन्दीकी उन्नतिके लिए स्थापित हुआ है । वह हिन्दीभाषाभाषी प्रत्येक मनुष्यकी वस्तु है, उसमें धर्मभेद नहीं है । हर्षका विषय है कि हमारे जैनी भाई भी इस बातको समझ गये हैं और उन्होंने अबके जबलपुरके सप्तम हिन्दी साहित्यसम्मेलनमें सन्तोषजनक योग दिया है । सार्वजनिक कार्योंमें अपने भाइयोंको इस तरह योग देते देखकर हमें बहुत ही सन्तोष होता है । लखनऊसे बाबू दयाचन्दजी गोयलीय बी. ए., सागरसे बाबू खूबचन्दजी सोधिया बी. ए. एल. टी., नरसिंहपुरसे बाबू माणिकचन्दजी कोचर बी. ए. एलएल, बी., खंडवेसे बाबू माणिकचन्दजी बी. ए. एलएल. बी. और सेठ तेजकरनजी, कटनीसे बाबू भैयालालजी, गोटेगाँवसे बाबू मुलायमचन्दजी, भोपालसे बाबू मोतीलालजी, बम्बईसे पं० उदयलालजी, बाबू छगनमलजी, और इन पंक्तियोंका लेखक, वर्धासे सेठ चिरंजीलालजी बड़जात्या, रहलीसे बाबू दयाचन्दजी बजाज, दमोहसे बाबू भैयालालजी चौधरी आदि अनेक सज्जन सम्मेलनमें शामिल हुए थे । खण्डवेसे और भी कई जैनी भाई आये थे जिनके नाम हम नहीं जानते । जबलपुरके वकील बाबू कन्छेदीलालजी और बाबू कस्तूरचन्दजीने सम्मेलनकी जीजानसे सेवा की थी । दिगम्बर जैन बोर्डिंग हाउसकी विशाल इमारत सम्मेलनके प्रतिनिधियोंके ठहरनेके लिए दी गई थी । हिन्दी पुस्तकोंकी प्रदर्शिनी भी जैन बोर्डिंगमें ही खोली गई थी । जबलपुरके प्रसिद्ध धनी और अगुआ सिंगई गरीबदासजी आदिका भी सम्मेलनसे हार्दिक प्रेम था । स्वागतकारिणी कमेटीके चन्देमें भी जबलपुरके जैनी भाइयोंने चन्दा देनेमें आनाकानी नहीं की । खण्डवेके बाबू माणिकचन्दजी वकील स्वागतकारिणी कमेटीके एक प्रधान कार्यकर्ता थे । उनके प्रयत्न और उत्साहसे खण्डवेके कुछ विद्यार्थियोंने 'कृष्णार्जुन युद्ध' नामका हिन्दी नाटक खेला जो बहुत ही पसन्द किया गया और जिसकी सारी आमदनी सम्मेलनको दे दी गई ।

इस सम्मेलनके पहले झाँसीमें एक प्रान्तीय हिन्दी सम्मेलन भी हुआ था। सहयोगी 'मुनि'से मालूम हुआ कि उसमें भी लखनऊके बाबू अजितप्रसादजी वकील, बाबू दयाचन्दजी, बाबू गुलाबचन्दजी, इटावेके बाबू मदनलालजी वकील, और सेठ चान्दमलजी, ब्र० विश्वंभरदास गार्गीय सेठ मिलापचन्दजी आदि झाँसी निवासियोंने विशेष योग दिया था ।

आशा है कि हमारे भाइयोंका यह हिन्दीप्रेम दिन पर दिन बढ़ता ही जायगा और वे आगामी सम्मेलनमें जो इन्दौरमें होनेवाला है इससे भी अधिक योग देंगे ।

१५ हिन्दी-साहित्यसम्मेलनकी परीक्षामें जैन विद्यार्थी ।

हिन्दी-साहित्यसम्मेलनकी ओरसे एक परीक्षालय स्थापित हुआ है जिसकी ओरसे प्रथमा, मध्यमा और उत्तमा, ये तीन परीक्षायें ली जाती हैं। कई बड़े

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बड़े शहरोंमें इसके परीक्षाकेन्द्र नियत हो गये हैं । अभी दो ही तीन वर्षोंमें परीक्षालयने कितनी लोकप्रियता प्राप्त की है, इसका अनुमान पाठक इसीसे कर लेंगे कि इस वर्ष इसकी केवल प्रथमा परीक्षामें ही १४० विद्यार्थी उत्तीर्ण हुए हैं जिनमें १२ स्त्रियाँ और लड़कियाँ भी हैं । मध्यमाके परीक्षोत्तीर्ण विद्यार्थियोंकी संख्या हमें मालूम नहीं है । इन परीक्षाओंका पठनक्रम देखकर हमारी धारणा हुई कि यदि जैनविद्यार्थी, विशेष करके संस्कृतके विद्यार्थी, इन परीक्षाओंके पाठ्यग्रन्थ पढ़ लें तो बहुत उपकार हो । संस्कृतके छात्र हिन्दी साहित्य, व्याकरण, इतिहास, गणित, भूगोल, विज्ञान, आदिसे कोरे रहते हैं और इस कारण न उनका ज्ञान ही विस्तृत और समयोपयोगी होता है और न उन्हें हिन्दी लिखना ही आता है । इससे समाजका उनके द्वारा कोई भी काम अच्छी तरह नहीं होसकता है । यदि वे केवल प्रथमाके ही ग्रन्थ पढ़ लें और परीक्षा दे लें, तो बहुत लाभ हो । यह सोचकर हमने गत वर्ष एक विज्ञापन निकाला था कि जो जैनविद्यार्थी हिन्दीकी प्रथमा परीक्षामें उत्तीर्ण होंगे, उन्हें प्रत्येकको २०) बीस रुपया पारितोषिक दिया जायगा । हर्षकी बात है कि इससे उत्साहित होकर कई जैनविद्यार्थी प्रथमापरीक्षामें बैठे और उनमेंसे मदनलाल, निर्मलप्रसाद गार्गीय, गोविन्ददास, नन्दकिशोर, मुख्त्यारसिंह, दौलतराम और नानूराम ये सात विद्यार्थी उत्तीर्ण होकर उक्त पारितोषिक प्राप्त करनेके अधिकारी हुए हैं । परन्तु इनमें संस्कृतज्ञ विद्यार्थी शायद कोई भी नहीं है, यह जान कर हमें बहुत आश्चर्य हुआ । हमारी कई संस्कृत पाठशालाओंके विद्यार्थी कलकत्ता, बनारस और पंजाबयूनीवर्सिटीकी संस्कृतपरीक्षायें दिया करते हैं । हमारी तुच्छबुद्धिमें उनकी अपेक्षा यह परीक्षा बहुत ही उपयोगी और लाभकारी होगी । यदि पाठशालाओंके संचालक चाहें, तो वे इस विषयमें अपने छात्रोंको उत्साहित भी कर सकते हैं । पठनक्रम और नियमावली आदिकी पुस्तिका सम्मेलन कार्यालय प्रयागसे तीन आनेके टिकट भेजनेसे मिल सकती है । आगामी वर्षके लिए हम फिर भी कुछ पारितोषिक नियत करेंगे, सकी सूचना कुछ समय बाद दी जायगी । यदि हमारे हिन्दीप्रेमी पाठकोंमेंसे भी कोई सज्जन जैन विद्यार्थियोंके लिए इस प्रकारके पारितोषिक देनेकी कृपा करें, तो बहुत लाभ हो । हमें आशा है कि आगामी वर्ष इससे भी अधिक जैन छात्र इस परीक्षामें बैठेंगे और उत्तीर्ण होंगे ।

१६ एक पाँच सौ रुपयेका पारितोषिक ।

सप्तम हिन्दीसाहित्यसम्मेलन जबलपुरके सभापतिको जैनहितेच्छुके सम्पादक श्रीयुत वाडीलाल मोतीलाल शाहने तारद्वारा इस प्रकारकी सूचना दी थी कि "जगत्, जीवन और वर्ताव (कांडेक्ट) इन विषयोंपर जैनफिलासफी, वेदान्त फिलासफी और जर्मन फिलासफर फ्रेडिरिक निट्शेकी फिलासफीके जो सिद्धान्त हैं उनका समन्वय (कम्प्रोमाइज) करके एक हिन्दी निबन्ध लिखनेवाले सर्वश्रेष्ठ लेखकको नकद ५०० रुपयेका पारितोषिक सम्मेलनकी मार्फत दिया जायगा । लेखपरीक्षकोंमें एक नाम मेरा भी रहेगा ।" आशा है कि हमारे जैन ग्रेज्युएटोंका ध्यान इस ओर जायगा और वे इस पारितोषिकको प्राप्त करनेका यत्न करेंगे । इस विषयमें विशेष पूछताछ करनेके लिए शाह महाशयसे 'नागदेवी स्ट्रीट बम्बई' के ठिकानेसे पत्रव्यवहार करना चाहिए ।

१७ बागड़में कन्याविक्रय और अपव्यय ।

थान्दलानिवासी श्रीयुक्त टीकमचन्दजी तलेरा लिखते हैं कि "मैं...में कार्यवश आया हुआ हूँ । यहाँ हालमें तीन चार सगाइयाँ हुई हैं । तलाश करनेसे मालूम हुआ कि लड़कियोंके मा-बाप अच्छे व्यापारी हैं, तो भी उनमेंसे एकने २२०० रु०, दूसरेने २००० रु० और तीसरेने १८०० रु० वरपक्षवालोंसे लिये हैं । यहाँ एक और सेठ हैं जो कई सभाओंके सभापतिका आसन सुशोभित कर चुके हैं । आपके पास पूँजी तो पाँच सात हजारहीकी है; परन्तु अपने दश वर्षके लड़केकी शादीमें-जो कि शीघ्र ही होनेवाली है-आप कर्ज लेकर कोई दस हजार रुपये खर्च करनेवाले हैं । खूब तैयारियाँ हो रही हैं ।" जब तक कन्याओंकी संख्या समाजमें थोड़ी है, विवाहका क्षेत्र अगणित जातियोंके कारण संकीर्ण है और एक एक पुरुषको बुढ़ापे तक कई कई शादियाँ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करनेकी स्वतंत्रता है तब तक कन्याविक्रय बन्द नहीं हो सकता। यह अर्थशास्त्रका नियम है कि जो वस्तु कम पैदा होती है और जिसके ग्राहक बहुत होते हैं वह अवश्य बहुमूल्य हो जायगी। इसमें पापका डर बतलाना, अधर्म दिखलाना और उपदेश देना प्रायः निरर्थक है। बहुत थोड़े लोग ऐसे हैं जो कन्याविक्रयको अधर्म समझकर छोड़ सकते हैं। शेष लोग तो तब छोड़ेंगे जब कन्यायें सुदुर्लभकी जगह सुलभतर हो जायँगी। अपव्यय या फिजूलखर्चीका कारण अज्ञानता है। ऐसे लोग अपनी करनीका फल भोगकर स्वयं ही सुधर जाते हैं और दूसरोंको सचेत कर देते हैं। यदि इन्हें देशकी दरिद्रताका, किसानों मजदूरों और शिल्पव्यवसायियोंकी दुर्दशाका ज्ञान कराया जाय और इनके आगे देशके प्रतिदिन आधा पेट रहकर सो जानेवाले १५ करोड़ भारतवासियोंका चित्र खड़ा किया जाय, तो संभव है कि इनकी आँखें खुल जायँ और ये अपने लड़कोंकी शादीमें नहीं किन्तु देशके दुःखियोंकी दशा सुधारनेमें अपने धनको लगाने लगें।

१८ मुकद्दमेमें जीत किसकी हुई ?

'जो कुछ होता है सब अच्छेके लिए होता है,' इस कहावतमें बहुत कुछ सत्य समाया हुआ है। मेरी प्रार्थना यदि सर्वथा स्वीकार कर ली जाती और देशके नेताओंके द्वारा शिखरजीके मुकद्दमेका फैसला कराया जाता तो संभव है कि अपने उचित अधिकारसे अधिक प्राप्त करनेकी आशा रखनेवाले दोनों ही पक्ष यह कहने लगते कि, "यदि हम सरकारी कोर्टके द्वारा और उसके ऊपरकी कोर्ट द्वारा फैसला कराते, तो अवश्य जीतते। हमने बड़ी गलती की जो आन्दोलन करनेवालोंकी बात मान ली। इसमें हम ठगाये गये।" प्रकृतिका यह नियम है कि दिनका महत्त्व रातके बिना, सुखका महत्त्व दुःखके बिना और असलीका महत्त्व नकलीके बिना नहीं मालूम होता। सौभाग्यसे इसी समय हजारीबागकी कोर्टसे शिखरजीके मुकद्दमेका फैसला हो गया। इस फैसलेने दोनोंही पक्षपर अपनी माया फैलाई है। जिससे कि दिखलानेके लिए तो दोनों ही पक्षवाले जगत्की रंगभूमि पर अपनी अपनी जीतकी प्रसन्नताका राग अलापते हुए उछल रहे हैं; पर वास्तवमें दोनोंका ही हृदय 'हार' की अश्रुधाराओंसे भीग गया है। यद्यपि दोनोंका ही हृदय कहता है कि हमारी माँगें रद कर दी गई हैं—हम जो चाहते थे वह नहीं हुआ है, तो भी बाहरसे जीतकी दुन्दुभी बजानेमें दोनोंको ही कुछ संकोच नहीं हो रहा है।

श्वेताम्बरियोंकी इच्छा यहाँ तक थी कि पर्वतकी सारी मालिकी केवल हमारे हाथमें रहे और हमारे सिवाय वहाँ कोई भी पूजन न कर सके। परन्तु कोर्टने आज्ञा दी कि २१ टोंकोंपर पूजन करनेका दिगम्बरियोंको भी स्वत्व है, और इस तरह श्वेताम्बरोंकी इच्छा पूर्ण न हुई। इधर जलमंदिरपरसे और चार टोंकोंपरसे दिगम्बरियोंका हक उड़ गया है। 'जैनप्रभात' के सम्पादकने स्पष्ट शब्दोंमें लिखा है कि "हमने स्वयं जलमन्दिरमें दिगम्बर मूर्तिकी पूजा की है और इन्दौर हाईकोर्टके जज्ज श्रीयुत जुगमंदरलालजी एम. ए. बार-एट-ला ने भी तीन बार जलमन्दिरकी दिगम्बर-मूर्तियोंकी पूजा की है। इतना ही नहीं बल्कि जिन परसे हमारा हक उठा दिया गया है उन चारों टोंकोंकी पूजा भी जज्ज साहबने श्वेताम्बरियोंकी किसी रोक टोकके बिना तीन बार की है।" इस तरह दिगम्बरसमाजने एक तो अपना पूजनका हक खो दिया और अब इस मुकद्दमेका आधा खर्च भी उसे देना पड़ेगा। इससे यह बात सहज ही समझमें आ जायगी कि वास्तवमें दोनों ही पक्षोंकी हार हुई है और दोनों ही मन-ही-मन पछता रहे हैं। तथापि इधर उधरसे दबी हुई आवाज सुन पड़ती है कि दोनोंही पक्षवाले आगेकी कोर्टमें अपील करेंगे। मुझे विश्वास नहीं है कि कोर्टके फैसलेका यह कडुआ फल चखकर, दोनों पक्षोंके अगुए—समझदार होकर भी—फिरसे इस प्रकारकी गलती करनेके लिए तैयार हो जायँगे। इसमें लाखों रुपया खर्च होनेके सिवाय अगुओंका बहुत ही बहुमूल्य समय व्यर्थ बरबाद होता है। भाई भाई लड़ते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं और उनके दिल दिनपर दिन एक दूसरेसे हटते जाते हैं जिनके कि जोड़नेके लिए न जाने कितने समय और श्रमकी जरूरत होगी। और यह सब होने पर भी कोर्टोंसे तो इस प्रकारकी आशा ही नहीं की जा सकती कि दोनों पक्षोंको सन्तुष्ट करनेवाला न्याय कभी मिल जायगा। इसलिए मैं दोनों पक्षोंके धर्मात्मा और धनी नेताओंसे एक बार फिर प्रार्थना करता हूँ कि आप लोग शिखरजी तथा अन्य तीर्थोंके झगड़ोंका फैसला या तो आपसमें ही कर लें या देशके अगुओंमेंसे एक दो सज्जनोंको चुनकर उनके द्वारा करानेकी तजवीज करें। दोनों पक्षोंके सुधी श्रावकों, धनियों और साधुओंको चाहिए कि वे मेरे इस शान्तिके आन्दोलनको नया बल प्रदान करें और जब तक यह पूर्ण रीतिसे सफल न हो जाय, तब तक चुप न बैठें। मुझे विश्वास है कि वे अपनी परोपकारिणी बुद्धि और शक्तिका इस कार्यमें अवश्य उपयोग करेंगे। अन्तमें कुछ विचारणीय बातोंकी फिरसे याद दिलाकर मैं विश्राम लेता हूँ,—

जिन्हें स्वराज्य जैसे महान् राजकीय अधिकारोंके प्राप्त करनेकी इच्छा हो उन्हें कमसे कम अपनी इतनी योग्यता और पात्रता तो अवश्य दिखलाना चाहिए कि अपने घरू झगड़े बखेड़े आपसमें ही तय कर लिये जायँ,

दोकी लड़ाईमें सदा तीसरेका ही भला होता है,

धर्मके लिए धर्मके नामसे कलह करना अधर्म है और वह सर्वथा त्याज्य है।

निवेदक,—**वाडीलाल शाह।**

१९ नये वर्षकी सूचना।

इस अंकके साथ हितैषीका १२ वाँ भाग समाप्त होता है। इसके बादका अंक तेरहवें भागका निकलेगा और वह ग्राहकोंकी सेवामें तीन रुपया एक आनेके वी. पी. से पहुँचेगा। **उपहारमें 'मणिभद्र' नामका एक सुन्दर उपन्यास दिया जायगा जो तैयार कराया जा रहा है।** यह कहनेकी जरूरत नहीं कि उपहारका ग्रन्थ सदाकी नाईं अच्छा और शिक्षाप्रद होगा तथा कमसे कम बारह आने मूल्यका होगा। यह निश्चय नहीं है कि पहले अंकके तैयार होनेतक उपहार भी तैयार हो जायगा। यदि तैयार हो सका, तो साथ ही रवाना कर दिया जायगा, नहीं तो अकेला अंक ही वी. पी. से भेजा जायगा।

वी. पी. इस वर्षके तमाम ग्राहकोंके नाम किया जायगा, किसीकी आज्ञाकी राह न देखी जायगी। जो महाशय आगामी वर्षमें ग्राहक न रहना चाहें उन्हें कृपाकरके इस अंकके पहुँचते ही हमें एक कार्डद्वारा सूचना कर देनी चाहिए।

पिछले वर्ष जो एक और उपहार देनेकी सूचना दी गई थी वह अभीतक लिखा नहीं गया है। लेखक महाशयको अभीतक अवकाश नहीं मिला है। यदि प्रयत्न करनेसे तैयार हो गया तो वह भी इस वर्षके उपहारके साथ भेज दिया जायगा।

हमारे सिरपर कामोंका बोझा इतना अधिक है कि उसके मारे हम सदा ही दबे रहते हैं और बड़ी कठिनाईसे अवकाश निकाल पाते हैं। ऐसी दशामें जैनहितैषीका समय पर निकालना हमारे लिए एक तरहसे असंभव है। अतएव जो महाशय हमारे इस दोषको क्षमा कर सकते हों, हितैषी महीने, दो महीने, और तीन महीनेमें जब निकले तभी प्रसन्नतापूर्वक पढ़नेका धैर्य रख सकते हों, वे ही ग्राहक रहनेकी कृपा करें। हम केवल इस बातका वादा कर सकते हैं कि वर्षभरमें जितने पृष्ठ निकलने चाहिए उससे दो चार फार्म अधिक ही निकाल देंगे, कम नहीं, जैसे इस वर्ष प्रतिज्ञासे ४८ पृष्ठ अधिक निकाले गये हैं। समयपर निकालनेकी प्रतिज्ञा हमसे नहीं हो सकती। आशा है कि इस स्पष्टवक्तृत्वके लिए पाठक हमें क्षमा करेंगे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आराके जैनसिद्धान्तभवनके मंत्री श्रीयुत बाबू किरोड़ीचन्दजीका ता० २२ नवम्बरके सबेरे स्वर्गवास हो गया। बाबू साहबके सुयोग्य पुत्र बाबू अनमोलचन्दजी बी. एस. सी. के इस पितृ-शोकमें हम हार्दिक सहानुभूति प्रकट करते हैं।

लाला शंकरलाल उल्फतरायजी, रोहाना (मुजफ्फरनगर) ने अपने पुत्र तिलोकचन्दके व्याह की खुशीमें ५) पाँच रुपया जैनहितैषीकी सहायतार्थ भेजे हैं जो सहर्ष स्वीकार किये जाते हैं। लालाजीने लगभग ११०) रु० और भी कई जैनसंस्थाओंको सहायतार्थ दिये हैं।

भारतहितैषीके सम्पादक लाला गुलशनरायजी (देहरादून) उस लेखकको एक 'आदिपुराण' पारितोषिकमें देंगे, जो श्रेणिक राजाके समयसे लेकर अबतकका मगध देशका इतिहास लगभग ५० पृष्ठका लिखेंगे। विशेष जाननेके लिए लालाजीसे पत्रव्यवहार करना चाहिए।

हितैषीके सुपरिचित लेखक श्रीयुत बाबू जुगलकिशोरजीके पिता नत्थूमलजी चौधरीका गत महीनेमें स्वर्गवास हो गया। आप सज्जन और धर्मात्मा थे। मृत्युके समय आप सौ रुपया दान कर गये हैं जिनमें से ५) पाँच रुपये जैनहितैषीकी सहायताके लिए भी हमारे पास आये हैं। पिताका वियोग बड़ा ही दुःखदायक होता है। बाबू साहबके इस शोकमें हम सहानुभूति प्रकट करते हैं और चौधरीजीकी आत्माकी शान्तिकामना करते हैं।

हिन्दी जैनसाहित्यका इतिहास और **भद्रबाहुसंहिता** (ग्रन्थ परीक्षा) ये दोनों विस्तृत लेख जुदा पुस्तकाकार भी छपाये जा रहे हैं। इनकी कीमत यथा संभव कम रक्खी जायगी। जो महाशय प्रचार करनेके लिए इन्हें बहुत रियायतसे दी जायँगी। दोनों पुस्तकें लगभग सौ सौ पृष्ठकी होंगी। तैयार होनेमें अभी १५-२० दिनका विलम्ब है।

अहिंसाका अर्थ।

[ले०,—श्रीयुत पं० रामचरित उपाध्याय]

मद मत्सरको मार भगाओ,
निज आत्माको सदा बचाओ।
दीन देशकी रक्षा करो,
विघ्नोंसे मनमें मत डरो॥
प्रण-पालनमें रहो समर्थ।
यही अहिंसाका है अर्थ॥ १॥

हिंसा-भयसे धोना न्हाना,
और गेहमें दीप जलाना—
कभी न छोड़ो, भ्रममें पैठ,
अलस बनो मत तममें बैठ॥
दंभाऽऽडम्बर करो न व्यर्थ।
यही अहिंसाका है अर्थ॥ २॥

जाति धर्मको उन्नत करो,
छलसे मत पर-धनको हरो।
हिंसा है परको दुख देना,
पावन है परको सुख देना॥
हठमें पड़ मत करो अनर्थ।
यही अहिंसाका है अर्थ॥ ३॥

सोकर दिनकी रात न करिए,
जग करके उत्पात न करिए।
मरिए तो पर-हितमें मरिए,
जीते जी अपयशसे डरिए॥
अघ मत करो स्वार्थके अर्थ।
यही अहिंसाका है अर्थ॥ ४॥

निरुद्यमी जो नर रहता है,
क्षीण, दीन हो दुख सहता है।
आत्म-बधिक वह नर जघन्य है,
आत्मघात सा अघ न अन्य है॥
करो न अपना जन्म निरर्थ।
यही अहिंसाका है अर्थ॥ ५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विश्व-सेवा ।

(लेखक, श्रीयुत बाबू मोतीलाल जैन बी. ए.)

(१)

प्रतिदिन उठती हैं मानवोंके मनोंमें,
पल पल कितनी ही लालसायें उमंगें ।
पर उन सबमें ही स्वार्थकी वासनायें,
अतिशय प्रबला, औ भूरि लिप्ता मिलेंगीं ॥

(२)

निश दिन सुखकी ही कामना है सभोंको,
मगन विविध भोगोंमें सभी हो रहे हैं ।
सब निजहितमें ही मत्त हो फूलते हैं,
सकल जगतमें है स्वार्थका रंग छाया ॥

(३)

जलचर-पशु-पक्षी-कीट-भृंगादि जो हैं,
निज-तन-सुखके तो ये सभी लोलुपी हैं ।
रुचिकर मनुजोंको वृत्ति जो ईदृशी हो,
नर-भव मिलनेमें कौन सी उच्चता है ॥

(४)

तनिक न थिर होता सौख्य है इन्द्रियोंका,
मन तिल-भर भी तो शान्ति पाता नहीं है ।
नहिं इस सुखकी है दूर होती पिपासा,
पग पग पर होती और है वर्धमाना ॥

(५)

पर सुख मिलता जो स्वार्थके त्यागसे है,
समुचित वह है, औ शान्तिकारी वही है ।
हितकर उसमें हैं शक्तियाँ सैकड़ों ही,
बहु गुण उसमें हैं, आत्म-उत्कर्षशाली ॥

(६)

अतुलित बलधारी मेदिनीमें वही है,
शिथिलित कर दे जो स्वार्थके बंधनोंको ।
अति सुखित वही है, आत्म-ज्ञानी वही है,
पर-हित-रत होके आपको जो भुला दे ॥

(७)

अशरण जनको जो स्नेहसे दे सहारा,
पर-दुख हरना जो चारु कर्तव्य जाने ।
व्यथितहृदयको जो शान्ति औ धीर देवे,
नर-रतन वही है, आत्म-त्यागी वही है ॥

(८)

कतिपय जन ऐसे विश्वके बीचमें हैं,
विविध दुख जिन्हें हैं चैन लेने न देते ।
मलिन हृदयवाली नारियाँ सैकड़ों हैं,
अतिशय दुखदग्धा क्लिष्टिता शोकमग्ना ॥

(९)

अगणित पशु-पक्षी हैं महाकष्ट पाते,
नित उन पर अत्याचार हैं घोर होते ।
लखकर उन दीनोंकी कड़ी वेदनायें,
अहह ! हृदय होता भग्न पाषाणका है ॥

(१०)

शरणरहित ऐसे प्राणियोंके दुखोंको,
करुणजन सदा हैं मोचते यत्न द्वारा ।
निशदिन जन जो है विश्वके प्रेम-डूबा,
सफल जगतमें है जन्म लेना उसीका ॥

जैनहितैषी ।

न हो पक्षपाती बतावे सुमार्ग,
डरे ना किसीसे कहे सत्यवाणी ।
बने है विनोदी भले आशयोंसे,
सभी जैनियोंका हितैषी 'हितैषी' ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Nariya Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्हम् ।

जैनहितैषी ।

(मासिक पत्र)

बारहवाँ भाग ।

सम्पादक, नाथूराम प्रेमी ।

प्रकाशक,
जैनग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, हीराबाग,
गिरगाँव–बम्बई ।

मुद्रक, चिंतामण सखाराम देवळे, बम्बई–वैभव प्रेस,

जनवरीसे दिसम्बर सन् १९१६ तक ।	पौष १९७२ ।	वार्षिक मूल्य तीन रुपये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुद्रकः—चिंतामण सखाराम देवळे, मुंबईवैभव प्रेस, सर्व्हंट्स् ऑफ् इंडिया सोसायटीज् बिल्डिंग, स्टँढर्स्टरोड गिरगांव—मुंबई.

प्रकाशकः—नाथूराम प्रेमी, प्रोप्रायटर, जैन-ग्रंथ-रत्नाकर कार्यालय, हिराबाग—मुंबई.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैनहितैषीके बारहवें भागकी

लेखसूची ।

गद्य लेख ।

अनमेल विवाह २७३
अप्रतिष्ठित प्रतिमा पूज्य है या नहीं ? ... १६
अहिंसा परमो धर्मः ३९४
आकांक्षा २८९
आचार्य सिद्धसेन २२
इतिहास-प्रसंग ८७-१९२
उन्माद (गल्प) ५९९
एक मराठी कविता ११२
क्या पृथ्वी गोल है ? १४७
कषाय-वासना २२०
काश्मीरका इतिहास ३४५-४६४
गांधीका सत्याग्रह-आश्रम २२३
जनरल आर्मस्ट्रांग २५४
जीवन और मृत्यु २२२
जैनकर्मवाद और तद्विषयक साहित्य ... ३७३
जैनतीर्थंकरोंका शासनभेद ३२५
जैनधर्म और जैनजातिके भविष्यपर एक दृष्टि १७७
जैनधर्म और जैनदर्शन ४५५
जैनधर्मके पालनेवाले वैश्य ही क्यों ... ४४९
जैनलेखक और पंचतंत्र ... ३०५-३३६
जैनसिद्धान्तभास्कर (समालोचना) ... ३१
जैनियोंकी राजभक्ति और देशसेवा ... १००
जैनोंकी वर्तमान दशाका चित्र ५३-१६७
त्याग (गल्प) १२७
तीर्थोंके झगड़े कैसे मिटें ३९९
तीर्थोंके झगड़े मिटानेका आन्दोलन ... ५०९
दिगम्बर और श्वेताम्बर समाजका ग्रंथ-प्रकाशनकार्य २६२
देशहित २
नेय वर्षका निवेदन ६४
नागरिकके कर्तव्य ९५
नेमिचरित काव्य २८५
प्रतिदान (गल्प)... ... ... ३८४
पात्रकेसरी स्तोत्र ९१
पुनर्जन्म (प्रहसन) ११३-११९
पुनर्विवाह विधेय नहीं है निषिद्ध है ... २६७
पुस्तक-परिचय १५५-३६२-४४२
पंडित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ३११
प्रोफेसर साहबका पत्र २८२
फुटकर लेख और सूचनायें १०९
बम्बईमें भारतजैनमहामण्डल ६७
बम्बई शहर और जैन-जनता २८०
बादशाहकी दुलहिन (गल्प) ४७
बाल विवाह ४८६
भद्रबाहु-संहिता (ग्रंथपरीक्षा) ... ४२१-५२१
भारतमें जैनसमाजकी अवस्था ५१९
भावना और सामायिकका रहस्य ... ७-८२
महाकवि वीरनन्दि २१३
मेरा दक्षिण-प्रवास १३८-२९२
यदि आनन्द प्राप्त करना चाहते हो तो... ९२
यज्ञोपवीत और जैनधर्म १७४
राजनीतिके मैदानमें आओ ४४६
राजा राममोहनराय १२१
रामनाथ (गल्प) ३१३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

लड़ना धर्म है या क्षमाभाव रखना ? ... ५८९
लुभाव या लालच ३३२
व्यास और भीष्म ४१८
वस्तु नीचे क्यों गिरती है ? ३७
वायुयानोंका इतिहास २२६
विविध-प्रसंग १६१-२३७-४०५-५०४-६१०
विधवा विवाह विचार ६०२
श्रद्धा और अनुभवज्ञान ७३
शाकटायनाचार्य ३४९
शिक्षा २०९
शिक्षितोंकी उदारता ४१७
स्त्री-संसार ४३
स्याद्वादमहाविद्यालयकी भीतरी दशा ... ५९५
स्वामी विवेकानंदके उदार उपदेश ... ३०४
सभापतिका व्याख्यान ५६९
सम्मानित (गल्प) ४९६
सहनशीलता और प्रेम २१७
सार्वजानिक धनकी जिम्मेवारी ४७९
सुखशान्तिवर्द्धक नियम ५२
सूक्तमुक्तावली और सोमप्रभाचार्य ... ४६९
हिन्दी-जैनसाहित्यका इतिहास... ... ५४०

पद्य लेख ।

अहिंसाका अर्थ ६२३
कलम कहे कानमें ४२
जिसे पीना हो पी लेवे १३८
जैनहितैषी ७२-१७६
तीन देवियोंका संवाद ४०३
पठन क्यों कर हो ? ३१३
पतितोद्धार ४६८
पराधीन तोतेके प्रति २३४
परोपकारका एक दृश्य ९४
परोपदेश-कुशल ४२०
प्रार्थना ४५४
भगवान् महावीर और स्वावलम्बन ... ४६
भारतीय छात्रोंसे नम्र निवेदन १०७
मतद्वेष ८०
महावीर भगवान् १
माताका पुत्रको जगाना ४७७
मेरा प्यारा हिंदुस्थान २८
मेरी भावना १९०
युवकोंके प्रति ४९५
वध्यभूमिको जाता हुआ बकरा ८१
वह क्यों न निराश हो ?... ... ... २१३
विधवा बहू और सधवा सास २८८
विधिका प्राबल्य और दौर्बल्य ३४४
विश्व-विजय ९९
विश्वास ३९८
विश्वप्रेम ६२४
शरदागम... ... ... ४४५
सिंहान्योक्ति २१९
सुखका उपाय ३३५
हिन्दी ३३०

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हितैषी-औषधालय-इटावहकी

पवित्र-सस्ती-औषधियां.

नमक सुलेमानी।

जगत्प्रसिद्ध असली २० वर्षका आजमूदा हाजमेकी अक्सीर दवा। की० ॥) तीन सी० १।=)

धातु संजीवन।

संपूर्ण धातु विकारको नष्ट कर नया वीर्य पैदा होकर शरीर हृष्ट-पुष्ट होजाता है। की० १)

प्रदरान्तक-चूर्ण।

स्त्रियोंके श्वेत, लाल आदि प्रदरोंको शर्तिया दूर कर ताकत बढ़ाता और गर्भस्थिति करता है की० १)

नयनामृत-सुरमा।

सम्पूर्ण विकारोंको दूरकर नेत्रोंकी ज्योति बढ़ाता और तरावट पैदा करता है। की० १)

दन्त-कुसुमाकर।

दाँतोंके सब रोग दूर होकर दांतोंकी चमक बढ़ाता और मजबूत करता है। की० ।)

दद्रु-दमन।

यह खुशबूदार मरहम विना कष्टके दादके दादाको तगादाकर भगाती है। की० ।)

केश-बिहार-तैल।

अत्यन्त सुगन्धिसे चित्त प्रसन्न कर केश और मस्तकके रोगोंको दूर करता है। की० ॥)

नारायण-तैल।

शरदी आदिसे उत्पन्न हुए दर्द, गठिया, पक्षाघात आदि सर्व वात रोगोंकी शर्तिया दवा है। की० १)

चन्द्रामृत।

दवा सफेद दागोंकी।

इससे शरीरमें जो सफेद २ दाग पड़जाते हैं वह दूर हो जाते हैं। की० १)

श्वास-कुठार।

यह स्वांस दमें की शर्तिया दवा है। की० १)

गोली दस्तबंदकी।

रक्त, आम, आदि अतिसार तथा संग्रहणी आदिको शीघ्र दूर करती है। की० ॥)

दवा खांसीकी।

सूखी या तर खांसीको और कफको दूर करने वाली आजमूदा दवा है। की० ॥)

अर्क कपूर।

हैजेकी अक्सीर दवा। की० ।)

चंद्रकला।

यह गोरे व खूबसूरतीकी दवा है। की० ॥)

नैन-सुधा-अञ्जन।

इससे आँखका जाला धुन्ध फुली माड़ा आदि सब अच्छे होते हैं। की० ॥)

दवा पेटके दर्दकी।

चाहे कैसा पेट दर्द हो फौरन दूर होता है। की० ॥)

ताम्बूल रंजन।

पानके साथ खानेका बढ़िया मसाला। की० ।)

शिरदर्द-हर तैल। की० ।)

कर्ण-रोग-हर तैल की० ।)

खुजली-नाशक तैल। की० ।)

बाल उड़ानेका साबुन। की० ।)

कोकिल-कण्ठ-बटिका। की० ।)

पता—चन्द्रसेन जैन वैद्य, चन्द्राश्रम, इटावह U. P.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नये नये जैन ग्रन्थ।

अर्थप्रकाशिका टीका।

तत्त्वार्थसूत्रकी पं० सदासुखजीकृत प्रसिद्ध भाषा-टीका बहुत बढ़िया टाइप और मोटे कागजोंमें हालही छपकर तैयार हुई है। संशोधन भी बहुत ध्यानपूर्वक हुआ है। इस कागजकी महँगाईके जमानेमें भी यह केवल ३।।) साढ़े तीन रुपयामें दी जाती है। कारण शेठ हरिभाई देवकरणजीवालोंने इसे केवल ग्रन्थप्रचारकी दृष्टिसे छपाया है। प्रत्येक मन्दिरमें इसकी एक एक प्रति अवश्य रहनी चाहिए।

गोम्मटसार जीवकाण्ड भाषाटीकासहित।

लीजिए, अब पूरा गोम्मटसार भाषाटीकासहित तयार हो गया। पहले सिर्फ इसका कर्मकाण्ड भाषाटीकासहित छपा था जिसका मूल्य दो रुपया है। अब जीवकाण्डकी भी भाषाटीका तैयार हो गई। इसे पं० खूबचन्दजी शास्त्रीने लिखा है। मूल्य ढाई रुपया। दोनों भाग साढ़े चार रु० में।

चन्द्रप्रभचरितका हिन्दी अनुवाद—महाकवि वीरनन्दिके प्रसिद्ध जैन काव्य चन्द्रप्रभ-चरितका यह हिन्दी अनुवाद हिन्दीके सुप्रसिद्ध लेखक पं० रूपनारायणजी पाण्डेयने किया है। इसके पढ़नेमें एक स्वतंत्र ग्रन्थ जैसा आनन्द आता है। मू० १।) रु०।

संस्कृत-प्रवेशिनी (प्रथमभाग)—संस्कृतके व्याकरण विद्यार्थियोंके लिए बहुत कठिन पड़ते हैं, इसलिए यह बहुत ही सुगम और नये ढंगकी पुस्तक अभी हालहीमें तैयार कराई गई है। इससे बहुत जल्दीसे संस्कृतबोध हो जाता है और सूत्र नियमादि रटनेकी झंझटमें नहीं पड़ना पड़ता है। मूल्य एक रुपया।

उपवासचिकित्सा—जैनधर्ममें व्रत करने और उपवास करनेका बहुत महत्त्व बतलाया है। परन्तु अभी तक लोग व्रत या उपवासको केवल 'धर्म' या 'स्वर्ग जानेकी सीढ़ी' समझते हैं। इस पुस्तकमें बतलाया गया है कि उपवास करनेसे केवल धर्म ही नहीं होता है किंतु यह निरोग होनेकी सबसे अच्छी दवाई है। सारी दुनियांके भयंकर रोग उपवाससे आराम हो सकते हैं। क्यों हो सकते हैं और कैसे हो सकते हैं, इन प्रश्नोंका उत्तर इसमें विस्तारसे दिया गया है। रोगियों, वैद्यों और निरोगों—सबको पढ़ना चाहिए। मूल्य एक रुपया दो आने।

नियमसार—आचार्य कुन्दकुन्द भगवान्कृत। यह समयसार, प्रवचनसार आदिके ही समान अध्यात्मका प्राकृत गाथाबद्ध ग्रन्थ है। इसपर निर्ग्रन्थ मुनि श्रीपद्मप्रभमलधारीकी संस्कृत टीका है जो साथ ही छपी है और ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीकी बनाई हुई भाषाटीका भी शामिल कर दी गई है। मूल्य दो रुपया और सादीका पौने दो रुपया।

परमात्मप्रकाश—यह ग्रंथ योगीन्द्रदेवरचित प्राकृत दोहोंमें है। संस्कृतटीका और उसके आधारसे सरल भा० टी० सहित निर्णयसागर प्रेसमें छपकर हाल ही तयार हुआ है। मूल्य तीन रुपया।

आत्मानुशासन—नई भाषाटीका सहित छपकर तैयार है। भगवद्गुणभद्राचार्यका यह बहुत ही उपदेशपूर्ण ग्रन्थ है। शांतिके इच्छुकोंको इसका स्वाध्याय एक वार अवश्य करना चाहिए। बहुत सरल बोल चालकी भाषामें टीका की गई है। मूल्य २) रु०

सिद्धक्षेत्रपूजा संग्रह—इस संग्रहमें श्री सम्मेदशिखर विधान, चंपापुर, पावापुर, गिरनार, शत्रुंजय, सोनागिरि, नयनगिरि, बड़वानी आदि सम्पूर्ण सिद्धक्षेत्रोंकी पूजायें हैं। मूल्य आठ आना।

लब्धिसार (क्षपणासारगर्भित)—प्राकृत गाथा, संस्कृत छाया और संक्षिप्त हिन्दी भाषाटीका सहित हाल ही रायचन्द्र जैन शास्त्रमालामें छपा है। इस ग्रन्थका परिचय देनेकी आवश्यकता नहीं। इसे सभी जानते हैं। मू० १।।)

पुण्यास्रव कथाकोश।

लीजिए, कई वर्षोंके बाद यह ग्रन्थ दूसरी बार छपकर तैयार हो गया। सर्वसाधारणके पढ़नेके लिए इसमें जैन कथाओंका बहुत बड़ा संग्रह है। खुले पत्रोंमें छपा है। मूल्य तीन रुपये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रत्नकरण्ड-श्रावकाचार ।

हिन्दी-पद्यानुवाद ।

अनुवादक, सुकवि श्री पं० गिरिधर शर्मा ।

जो विद्यार्थी संस्कृत नहीं जानते हैं उन्हें मूल रत्नकरण्ड अर्थसहित रटा दिया जाता है। पर इससे लाभ कुछ नहीं होता है। विद्यार्थी मर्म नहीं समझते और थोड़े ही दिनोंमें भूल जाते हैं। इस लिए बहुत दिनोंसे यह आवश्यकता बतलाई जा रही थी कि बालबोध-कक्षाओंके लिए रत्नकरण्ड छन्दबद्ध बना दिया जाय। परीक्षालयमें छन्दबद्ध रत्नकरण्ड नियत भी कर दिया गया था; पर छन्दोबद्ध रत्नकरंड कोई था ही नहीं, इस कारण हमने सुकवि श्री गिरिधर शर्मासे इसे हाल ही बनवाकर प्रकाशित किया है। कविता बोलचालकी हिन्दी भाषामें है जो सहज ही समझमें आ जाती है। इस बातकी कोशिशकी गई है कि मूलका कोई भाव रह नहीं जाय और संशोधनमें इसका ध्यान रक्खा गया है कि कोई शास्त्रविरुद्ध बात न लिखी जाय। पाठशालाओंके संचालकोंको नमूनेके तौर पर एक प्रति मँगा देखना चाहिए। मूल्य तीन आने।

सुन्दर शिक्षाप्रद पुस्तकें ।

राजपथका पथिक ।

अमेरिकाके सुप्रसिद्ध लेखक राल्फवाल्डो ट्राइनकी 'वे फेअरर आन दि ओपनरोड' नामक पुस्तकका अनुवाद। ट्राइन महाशयके दिव्य विचारोंकी प्रशंसा करना व्यर्थ है। उनके विचारोंसे प्रत्येक मनुष्य अपने जीवनको पवित्र बना सकता है। मूल्य चार आने।

फ्रान्सकी राजक्रान्तिका इतिहास ।

पुस्तकका विषय नामहीसे स्पष्ट है। मराठीके प्रसिद्ध लेखक पं० विनायक कोंडदेव ओककी पुस्तकका अनुवाद है। हिन्दीमें इस विषयका शायद यह पहला ही ग्रन्थ है। राजनीतिके विद्यार्थियोंके लिए यह बड़े ही कामकी चीज है। हमने थोड़ीसी प्रतियाँ विक्रीके लिए मँगाई हैं। मूल्य पन्द्रह आने।

प्रायश्चित्त (नाटक)।

बेल्जियमके लेखक–जिन्हें रवीन्द्रबाबूके समान सवालाख रुपयेका नोबेल प्राइज (इनाम) मिला था–उच्च श्रेणीके नाटक और उपन्यास लिखनेमें बहुत ही प्रसिद्ध हैं। यह उन्हींके एक भावपूर्ण और हृदयको हिला देनेवाले नाटकका हिन्दी अनुवाद है। अनुवादक हैं, श्रीयुत बाबू पदुमलाल पुन्नालाल बक्षी बी. ए.। पश्चात्ताप और सद्भावोंकी अग्निमें बड़ेसे बड़े पाप–जिन्हें दुनिया अक्षम्य समझती है–भस्म हो जाते हैं और इस प्रकारसे पश्चात्ताप करनेवाली आत्मायें मनुष्यकी ही नहीं किन्तु देवोंकी दृष्टिमें भी पूज्य और पवित्र बन जाती हैं। इस नाटकमें एक कल्पित घटनाके द्वारा यही भाव प्रकट किये गये हैं। यह हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर सीरीजकी पुस्तक है। मूल्य चार आने।

मिलनमन्दिर (उपन्यास)।

बङ्गभाषाके सुप्रसिद्ध लेखक सुरेन्द्र मोहन भट्टाचार्यके 'मिलन-मन्दिर' का हिन्दी अनुवाद। इस भावपूर्ण और शिक्षाप्रद गार्हस्थ्य उपन्यासमें यह दिखलाया गया है कि घरकी फूटका क्या परिणाम होता है, आपसका विरोध क्या रंग लाता है, कुसंगमें पड़कर मनुष्यकी क्या दुर्दशा होती है और घोर विपत्ति आने पर भी सज्जन किसी प्रकार अपने मान तथा धर्मकी रक्षा करते हैं। मूल्य सवा रुपया। कपड़ेकी जिल्दका डेढ़ रुपया।

मैनेजर–जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,
गिरगाँव बम्बई ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नई छपी हुई पुस्तकें।

श्राविकाधर्म—यह है तो जरासी पुस्तक, परन्तु बड़े महत्त्वकी है। इसके मूल लेखक जैनहितेच्छुके ख्यातनामा सम्पादक श्रीयुत वाडीलाल मोतीलालजी शाह हैं। छोटे छोटे वाक्योंमें श्राविकाओं या स्त्रियोंके धर्म बतलाये हैं। इसका प्रत्येक वाक्य स्त्रियोंके कण्ठ करने लायक है। गुजरातीमें इसकी कई हजार पुस्तकें खप गई हैं। हिन्दीमें यह अभी छपी है। मू० =)

पूजाविधानसंग्रह—इसमें पंचकल्याणक, पंचपरमेष्ठी, अष्टकर्मदहन, शिखरमाहात्म्य और निर्वाण इन पाँच विधानोंका संग्रह है। अन्तमें शान्तिपाठ और विसर्जन भी है। मूल्य छह आने।

जैन इतिहास—ऋषभनाथ भगवानसे लेकर वासुपूज्य तीर्थंकर तकका नई पद्धतिसे लिखा हुआ इतिहास। कई नकशे भी दिये हैं। जैनपाठशालाओंमें पढ़ाये जानेके लिए बाबू सूरजमल्लजीने लिखा है। मूल्य बारह आने।

ब्याही बहू—यह पुस्तक बाबू सुरजभानु वकीलने ब्याही बहुओंके लिए लिखी है। इसमें नई बहुओंके लिए सब प्रकारकी शिक्षाओंका समावेश किया गया है। शिक्षित लोगोंको अपने ब्याहोंमें बांटनेके लिए अवश्य मँगाना चाहिए। मूल्य तीन आने मात्र।

नेमिपुराण—पं० उदयलालजीकृत भाषाटीका सहित। मूल्य कपड़ेकी जिल्दका २।) रु०।

विवाहका उद्देश्य—इसमें विवाहका बड़ा ही मार्मिक और तात्त्विक विवेचन किया है। इस पुस्तकका प्रचार करनेके लिए इसे केवल लागतके दामोंपर बेचते हैं। मूल्य सिर्फ तीन पैसे।

जैनबालबोधक प्रथमभाग—पं० पन्नालालजी बाकलीवाल कृत। फिरसे छपा है। मू० चार आने।

पता—**जैनग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय**
हीराबाग, गिरगाँव—बम्बई.

भारतविख्यात! हजारों प्रशंसापत्र प्राप्त!

अस्सी प्रकारके बात रोगोंकी एकमात्र औषधि

महानारायण तैल।

हमारा महानारायण तैल सब प्रकारकी वायुकी पीड़ा, पक्षाघात, (लकवा, फालिज) गठिया सुन्नवात, कंपवात, हाथ पांव आदि अंगोंका [illegible]ड़ जाना, कमर और पीठकी भयानक पीड़ा, पुरानीसे पुरानी सूजन, चोट, हड्डी या रगका दबजाना, पिचजाना या टेढ़ी तिरछी होजाना और सब प्रकारकी अंगोंकी दुर्बलता आदिमें बहुत बार उपयोगी साबित होचुका है।

मूल्य २० तोलेकी शीशीका दो रुपया। डा० म० ॥) आना।

❀ वैद्य ❀

सर्वोपयोगी मासिक पत्र।

यह पत्र प्रतिमास प्रत्येक घरमें उपस्थित होकर एक वैद्य या डाक्टरका काम करता है। इसमें स्वास्थ्यरक्षाके सुलभ उपाय, आरोग्य शास्त्रके नियम, प्राचीन और अर्वाचीन वैद्यकके सिद्धान्त; भारतीय वनौषधियोंका अन्वेषण, स्त्री और बालकोंके कठिन रोगोंका इलाज आदि अच्छे २ लेख प्रकाशित होते हैं। इसकी वार्षिक फीस केवल १) रु. मात्र है।

नमूना मुफ्त मंगाकर देखिये।

पता—वैद्य शङ्करलाल हरिशङ्कर
आयुर्वेदोद्धारक-औषधालय, मुरादाबाद।

एक बार जरूर आजमाइए।

शिराजन बाम।

शरीरके हर तरहके दर्द, जैसे सिरदर्द, जोड़ोंका दर्द, संधिवायु, हाथ पैर आदिमें मोच आ जाना, आदिके लिए यह बहुत ही आश्चर्यजनक और रामबाण उपाय है। कोई भी दर्द हो, उस पर यह अपना असर करता है। कीमत एक डब्बीका छह आना।

दाद, फुन्सी, फोड़ा, खुजली आदिकी आश्चर्यजनक दवाका मूल्य एक डिब्बीका चार आना।

सब जगह एजेंटोंकी जरूरत है।

एजेण्ट—
मेसर्स टी. आर. चन्द्रावाला एण्ड कं०
प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बई नं० २।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महान् ग्रन्थ ! अपूर्व ग्रन्थ !

छपकर तैयार है।

आदिपुराण

भाषाटीका सहित ।

यह बड़ा भारी ग्रन्थ ४–५ वर्ष से छप रहा था । इसी महीनेमें पूरा छपकर तैयार हुआ है। जैनधर्मका इतना बड़ा ग्रन्थ अब तक कोई भी नहीं छपा । इसके सब मिलाकर लगभग १८०० पृष्ठ हैं। खुले पत्रोंपर छपा है। मन्दिरोंमें जो सब जगह भाषावचनिका मिलती है, उससे इसमें विशेषता है। वचनिकाके साथमें मूल श्लोक नहीं हैं, पर इसमें मूल श्लोक भी साथ ही साथ दिये हैं। इसकी भाषा भी सबकी समझमें आने योग्य और मूलके अनुसार है । प्रत्येक मन्दिरमें, भण्डारमें भगवज्जिनसेनाचार्य और गुणभद्राचार्यके इस विशाल ग्रन्थकी एक एक प्रति रहनी चाहिए । जो लोग ग्रन्थ मँगाना चाहें वे चिट्ठीके साथ १।) डेड़ रुपयाका मनीआर्डर भी पेशगी भेज देवें। क्योंकि इसका डाँक खर्च डेढ़ रुपयाके करीब लगता है। लोग अक्सर वी. पी. वापस कर देते हैं। इस कारण डाँक खर्च पेशगी आये विना हम वी. पी. नहीं भेजेंगे । ग्रन्थकी न्योछावर डाँक खर्चके सिवाय १६) सोलह रुपया है।

हरिवंश पुराण।

(नया संस्करण)

यह ग्रन्थ कलकत्तेकी हरिभाई देवकरण ग्रन्थमालामें हाल ही बढ़िया कागज और सुन्दर टाइपमें छपकर तैयार हुआ है। हिन्दी अनुवाद मूल संस्कृत परसे, फिरसे, नया कराया गया है। पहले अनुवादमें जो बहुत से दोष थे वे इसमें नहीं हैं। भाषा आज कलकी बोलचालकी कर दी गई है। बढिया कपड़ेकी जिल्द बँधी हुई है । मूल्य छह रुपया।

पत्रव्यवहार करनेका पता—

मैनेजर, **जैनग्रन्थरत्नाकरकार्यालय,**

हीराबाग पो० गिरगाँव—**बम्बई** ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हिन्दीकी नई पुस्तकें।

कनकरेखा—(फूलोंका गुच्छा द्वितीयभाग) बंगलाके प्रसिद्ध लेखक अर्चना—सम्पादक श्रीयुत केशवचन्द्र गुप्त एम. ए. बी. एल. के प्रसिद्ध गल्पगुच्छका अनुवाद है। इसमें बहुत ही मनोहर, भावपूर्ण और स्वाभाविक ग्यारह गल्पे हैं। हिन्दीमें ऐसी गल्पें अभीतक नहीं निकलीं। मूल्य बारह आने (यह हमारी छपाई हुई पुस्तक है)

सफल-गृहस्थ—यह पुस्तक अँगरेजीके प्रसिद्ध लेखक सर आर्थर हेल्प्सके निबन्धोंका अनुवाद है। अनुवादक बाबू खूबचन्दजी सोधियां बी. ए. एल. टी.। इसमें प्रायः उन सब विषयोंका वर्णन आगया है जिनकी प्रत्येक मनुष्यके जीवनमें बड़ीभारी आवश्यकता है और जिनके द्वारा हम सब अपने जीवनको सुखी बना सकते हैं। इसके पूर्वार्द्धमें मानसिक शान्ति प्राप्त करनेके उपाय, कार्यकुशलता, कुटुम्बशासन, हृदयकी गंभीरता, संयम, आदि और अपने कुटुम्बके सुखसे सम्बन्ध रखनेवाले व्यवसायी मनुष्यकी शिक्षा, व्यवसायसंचालन, कर्मचारियोंकी नियुक्ति, उम्मेदवारोंसे व्यवहार, आदि विषय आये हैं। कीमत ग्यारह आने।

भारतीय शासन—इस पुस्तकमें भारतवर्षकी राज्यप्रणालीका बड़ी उत्तमतासे वर्णन किया गया है। अपने देशकी शासनपद्धतिसे परिचित रहना प्रत्येक नागरिकका कर्तव्य है। अतः प्रत्येक भारतवासीको यह पुस्तक अपने पास रखना चाहिए। पत्रपाठकों और सम्पादकोंके लिए तो यह बड़े ही कामकी चीज है। पृष्ठसंख्या १७०। मूल्य सिर्फ सात आने।

आरोग्य दिग्दर्शन—इसके मूल लेखक देशभक्त महात्मा मोहनदास करमचन्द गाँधी हैं। अपने जीवनमें आरोग्य-सम्बन्धी जिन जिन बातोंका आपने अनुभव किया है, प्रायः वे ही बातें इसमें बड़ी सुन्दरता और सरलताके साथ लिखी गई हैं। पुस्तक प्रत्येक गृहस्थके लिए बड़ी उपयोगी है। मूल्य ग्यारह आने।

कांग्रेसके पिता मि० ह्यूम—कांग्रेसके जन्मदाता, भारतमें राष्ट्रीय भावोंके उत्पादक, मनुष्यजातिके परमहितैषी, स्वार्थत्यागी महात्मा मि. ह्यूमका यह जीवनचरित्र प्रत्येक देशभक्तके पढ़ने योग्य है। यह अनेक महत्त्वके तथ्योंसे पूर्ण मि. वेडरबर्नके लिखे हुए अँगरेजी ग्रन्थका हिन्दी अनुवाद है। यह एक प्रकारसे कांग्रेसका इतिहास भी है। क्योंकि मि० ह्यूमके जीवनसे कांग्रेस बहुत कुछ मिली हुई है। मूल्य बारह आने।

वीरोंकी कहानियाँ—इसमें बादशाहकी दुलहिन, विलुप्तमंजुषा, रक्षाबन्धान, हिम्मतसिंह, पद्मिनी और कमलावती नामकी छह ऐतिहासिक कहानियाँ है जो एक अँग्रेजी पुस्तकके आधारसे लिखी गई हैं। इनसे वीरता और स्वदेशप्रेमके भाव जाग्रत होते हैं। भाषा सरल है। मूल्य छह आने।

सच्ची स्त्रियाँ—लेखक बाबू शिवव्रतलाल एम. ए.। इसमें देवहूती, सरदारबाई, शिवादेवी, धनलक्ष्मी, सती नर्मदा, श्रीदेवी, शशिकला, सरस्वती, भारती, सरजू, महाश्वेता इन दश देवियोंका चरित्र फड़कती हुई जोरदार भाषामें लिखा है। बहुत ही अच्छी पुस्तक है। इसकी भूमिका प्रत्येक पुरुषके पढ़ने योग्य है, जिसमें स्त्री जातिका महत्त्व बतलाया है। यह एकबार छपकर बिक चुकी है, अब दूसरी बार छपी है। पृष्ठ संख्या १६०। मूल्य बारह आने।

पता—**हिन्दीग्रंथरत्नाकर कार्यालय, हीराबाग, गिरगांव—बंबई।**

Printed by Chintaman Sakharam Deole, at the Bombay Vaibhav Press, Servants of India Society's Building, Sandhurst Road, Girgaon, Bombay.

Published by Nathuram Premi, Proprietor, Jain-Granth-Ratnakar Karyalaya, Hirabag, Bombay.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः ।

तेरहवाँ भाग ।
अंक ५-६

जैनहितैषी ।

वैशाख, ज्येष्ठ, २४४३.
मई, जून, १९१७.

न हो पक्षपाती बतावे सुमार्ग, डरे ना किसीसे कहे सत्यवाणी ।
बने है विनोदी भले आशयोंसे, सभी जैनियोंका हितैषी हितैषी ॥

सुधारका मूलमंत्र ।

(ले०, श्रीयुत बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तार ।)

पाठकगण, क्या आपने कभी विचार किया है कि, एक मनुष्य जो अभी दूसरेके प्राण लेनेके लिए तैयार था शान्त क्यों हो गया ? एक बालक रोते रोते हँसने क्यों लगा ? एक आदमी जो अभी हँसी खुशीकी बातें कर रहा था, शोकमें मग्न क्यों हो गया ? सभाके सब मनुष्य बैठे बिठाये एकदम खिलखिलाकर क्यों हँस पड़े ? कल जो कायर और डरपोक बने हुए थे, वे आज वीर क्योंकर बन गये ? मूर्खता और असभ्यताकी मूर्तियाँ विज्ञान और सभ्यताकी मूर्तियोंमें कैसे परिणत हो गई ? जिस कार्यसे कल हमें घृणा थी आज उसीको हम प्रेमके साथ क्यों कर रहे हैं ? आनंद और सुखके देनेवाले पदार्थ भी कैसे किसीको दुःखदायक और अरुचिकर हो जाते हैं ? आपसमें वैरविरोध क्योंकर पैदा होता और बढ़ जाता है ? एक अच्छे कुलका भला आदमी चोर और डकैत कैसे बन जाता है ? किस प्रकार एक असदाचारी सदाचारी और सदाचारी असदाचारी हो जाता है ? कल जो भंगी या चमार था, वह आज ईसाई बनकर या फौजमें भरती होकर ब्राह्मण और क्षत्रियों जैसी बातें क्यों करने लगता है ? एक मनुष्य, जिसे अपने प्राणोंका बहुत मोह था सहर्ष प्राण देनेके लिए क्योंकर तैयार हो जाता है ? कौन हमारी शान्तिको भंग कर देता है ? कौन हमारे हृदयोंमें प्रेम तथा भयका संचार कर देता है ? और कौन किसी शान्तिमय राष्ट्रमें विप्लव खड़ा कर देता है ? उत्तर इन सबका एक है और वह है—साहित्यशक्तिका प्रभाव । जिस समय जैसे जैसे साहित्यका प्राबल्य हमारे सामने होता है, उस समय हमारा परिणमन उसी प्रकारका हो जाता है । साहित्यसे अभिप्राय यहाँ किसी भाषाविशेषसे नहीं है और न केवल भाषाका नाम ही साहित्य हो सकता है । बल्कि भाषा भी एक प्रकारका साहित्य है अथवा साहित्यके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रचारका साधन है। साहित्य कहते हैं भावोंके वातावरणको, और वह वातावरण शब्दों, भाषाओं, वार्तालापों, व्याख्यानों, चेष्टाओं, व्यवहारों, विचारों, लेखों, पुस्तकों, चित्रों, आकृतियों, मूर्तियों और इतर पदार्थोंके द्वारा उत्पन्न होता है अथवा उत्पन्न किया जाता है। इस लिए साहित्यके इन सब साधनोंको भी साहित्य कहते हैं अथवा ये सब साहित्यप्रचारके मार्ग हैं। साहित्यके सामान्यापेक्षया क्षणिक, स्थायी, चर-स्थिर, उन्नत-अवनत, सबल-निर्बल और प्रौढ-अप्रौढ ऐसे भेद किये जा सकते हैं। परन्तु विशेषापेक्षया उसके शांतिसाहित्य, शोकसाहित्य, प्रेमसाहित्य, हास्यसाहित्य, भयसा०, कामसा०, द्वेषसा०, रागसा०, वैराग्यसा०, सुखसा०, दुखसा०, धर्मसा०, अधर्मसा०, आत्मसा०, अनात्मसा०, उदारसा०, अनुदारसा०, देशसा०, समाजसा०, युद्धसा०, कलहसा०, ईर्षासा०, घृणासा० हिंसासा०, दयासा०, क्षमासा०, तुष्टिसा०, पुष्टिसा०, विद्यासा०, विज्ञानसा०, कर्मसा०, क्रोधसा०, मानसा०, मायासा०, लोभसाहित्य इत्यादि असंख्यात भेद हैं। बल्कि दूसरे शब्दोंमें यों कहना भी अनुचित न होगा कि स्थूल रूपसे भावोंके जितने भेद किये जा सकते हैं साहित्यके भी प्रायः उतने ही भेद हैं। शांतिसाहित्यके सामने आनेसे चाहे वह किसी द्वारसे आया हो, यदि वह प्रबल है तो, हम शांत हो जाते हैं—हमारा क्रोध जाता रहता है; शोकसाहित्यके प्रभावसे हम रोने लगते हैं—हमारा धैर्य छूट जाता है; प्रेमसाहित्यके प्रसादसे हम प्रेम करनेके लिए तैयार हो जाते हैं—दूसरोंके प्रति हमारा अनुराग और वात्सल्य बढ़ जाता है; हँसीका साहित्य हमें हँसने या मुसकरानेके लिए बाध्य कर देता है; भयका साहित्य हमें भीरु और डरपोक बना देता है—हम बातबातमें डरने घबराने और काँपने लग जाते हैं; कामसाहित्यके प्राबल्यमें अनेक प्रकारकी कामचेष्टायें होने लगती हैं और द्वेषसाहित्यके प्रभावसे हम लड़ने, लड़ाने, घृणा करने तथा एक दूसरेको हानि पहुँचानेके लिए आमादा और तत्पर हो जाते हैं। युद्धमें क्या होता है? युद्धसाहित्यका प्रचार। अर्थात् युद्ध-सामग्रीको एकत्रित, संचित और सुरक्षित करनेके सिवाय युद्धकी महिमा गाई जाती है; युद्ध करना कर्तव्य, और धर्म ठहराया जाता है; अपने देश धर्म और समाजकी मानरक्षाके लिए प्राणोंका बलि देना सिखलाया जाता है; अपमानित जीवनसे मरना श्रेष्ठ है, इस प्रकारकी शिक्षायें दी जाती हैं; युद्धमें मरनेवालोंकी कीर्ति अमर हो जाती है और उनके लिए हरदम स्वर्ग या वैकुंठका द्वार खुला रहता है, इस प्रकारकी शिक्षायें दी जाती हैं; शत्रुओंके असत् व्यवहारोंको दिखलाते हुए उनसे घृणा पैदा कराई जाती है और उन्हें दण्ड देनेके लिए लोगोंको उत्तेजित किया जाता है। साथही सैनिकोंको और भी अनेक प्रकारके प्रोत्साहन दिये जाते हैं, वीरोंका खूब कीर्तिगान होता है और कायरोंकी भरपेट निन्दा भी की जाती है। नतीजा इस संपूर्ण साहित्यप्रचारका यह होता है कि मुर्दोंमें भी एक बार जान पड़ जाती है, उनकी मुरझाई हुई आशालतायें फिरसे हरीभरी होकर लहलहाने लगती हैं और वे कायर भी जो अभीतक युद्धसे भाग रहे थे अथवा जिन्होंने हथियार डाल दिये थे, युद्धमें शत्रुओंपर विजय प्राप्त करनेके लिए जीजानसे लड़ने—खुशीसे अपने प्राणोंतककी आहुति देनेके लिए तैयार हो जाते हैं, पूर्ण उत्साहके साथ शत्रु पर धावा करते हैं, खूब जमकर लड़ते हैं और अन्तमें शत्रुको परास्त भी कर देते हैं। इससे पाठक समझ सकते हैं कि साहित्यप्रचारमें कितनी शक्ति है। जिन पाठकोंको इस विषयका अधिक अनुभव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राप्त करना हो उन्हें भूमंडलके इतिहासोंका अध्ययन करना चाहिए। इतिहासोंका अध्ययन उन्हें बतलायगा कि साहित्यप्रचारमें कितनी बड़ी शक्ति है और उसके द्वारा समय समयपर कैसे कैसे महान् उलट फेर हो गये हैं। सिक्ख समाज तथा उसके धर्मकी आरंभमें क्या दशा थी और फिर कैसे कैसे साहित्यके प्रभावसे उसकी कायापलट होकर वह क्षत्रियत्वमें ढल गया, ये सब बातें भी इतिहासवेत्ताओंसे छिपी नहीं हैं। वास्तवमें समस्त देशों, धर्मों और समाजोंका उत्थान और पतन साहित्यप्रचारके आधार पर ही अवलम्बित है। जिस देश, धर्म या समाजमें जिस समय जिस विषयके साहित्यका अधिक प्रचार होता है उस देश, धर्म या समाजमें उस समय उसी विषयकी तूती बोलने लगती है। विषयके उत्थानात्मक होनेसे उत्थान और पतनात्मक होनेसे पतन हो जाता है। जापान देशकी आज साठसत्तर वर्ष पहले कैसी जघन्य स्थिति थी और आज उसका कितना चकित कर देनेवाला उत्थान हो गया है, यह सब उसके उत्थानात्मक साहित्यके प्रसारहीका फल है। भारतवर्षका पतन क्यों हुआ? और वह क्यों अपनी सारी गुण-गरिमाको खो बैठा? इसी लिए कि उसके साहित्यकी अवस्था अच्छी नहीं रही। वह अपने साहित्यको स्थिर नहीं रख सका, अथवा समयके अनुकूल नया साहित्य उत्पन्न नहीं कर सका। उसका साहित्य प्रेमशून्य होकर पारस्परिक ईर्षा, द्वेष, घृणा और निन्दासे तथा निष्फल क्रियाकांडसे भर गया; उसमें अज्ञानता, अकर्मण्यता, स्वार्थान्धता, कायरता, अंधश्रद्धा, अनेकता और विलासप्रियता छा गई; और साथ ही, उसने लोकोपकार, लोकसंग्रह, विचार-स्वातंत्र्य और सहोयोगिता जैसे महत्त्वके तत्त्वोंको भुला दिया। देशके साहित्यकी ऐसी अवस्था हो जानेसे ही भारतवर्षका पतन हुआ। भिन्न भिन्न धर्मों और समाजोंके उत्थान और पतनका भी प्रायः ऐसा ही रहस्य है। उनका उत्थान और पतन भी उनके साहित्यप्रचारकी हालत पर अवलम्बित है। आप किसी देश या समाजको जैसा बनाना चाहें उसमें वैसे ही साहित्यका पूर्ण रीतिसे प्रचार कर दीजिए, वह उसी प्रकारका हो जायगा। उदाहरणके लिए, यदि आप यह चाहते हैं कि हिन्दी भाषाका भारतवर्षमें सर्वत्र प्रचार हो जाय और आप उसे राष्ट्रभाषा बनानेकी इच्छा रखते हैं तो आप हिन्दी साहित्यका जीजानसे प्रचार कीजिए-स्वयं हिन्दी लिखिए, हिन्दी बोलिए, हिन्दीमें पत्रव्यवहार, हिन्दीमें कारोबार और हिन्दीमें वार्तालाप कीजिए; हिन्दी पत्रों और पुस्तकोंको पढ़िए, उन्हें दूसरोंको पढ़नेके लिए दीजिए अथवा पढ़नेकी प्रेरणा कीजिए। हिन्दीमें लेख लिखिए, हिन्दीमें पुस्तकें निर्माण कीजिए, हिन्दीमें भाषण दीजिए और यह सब कुछ दूसरोंसे भी कराइए। ऐसा यत्न कीजिए कि हिन्दीमें सब विषयों पर उत्तमोत्तम ग्रन्थ लिखे जायँ। हिन्दी लेखकोंका उत्साह बढ़ाइए, उन्हें लेखों तथा पुस्तकोंके तय्यार करनेके लिए अनेक प्रकारकी सामग्रीकी सहायता दीजिए, और तरह तरहके लेखों, चित्रों, व्याख्यानों, वार्तालापों और व्यवहारोंके द्वारा हिन्दीका महत्त्व प्रगट करते हुए सर्व साधारणमें हिन्दीका प्रेम उत्पन्न कीजिए। साथ ही, हिन्दी ग्रन्थों तथा हिन्दी पत्रोंकी प्राप्तिका मार्ग इतना सुगम कर दीजिए कि उनके लिए किसीको भी कष्ट न उठाना पड़े-यह सब कुछ हो जाने पर आप देखेंगे कि हिन्दी राष्ट्र-भाषा बन गई। इसी तरह पर यदि आप अपने देश या समाजका उत्थान चाहते हैं और उसके सुधारकी इच्छा रखते हैं तो आप उसमें उत्थानात्मक और सुधार-विषयक साहित्यको सर्वत्र फैलाइए। अर्थात् अपने देश या समाजके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्यक्तियोंको स्वावलम्बनकी शिक्षा दीजिए, उन्हें अपने पैरों पर खड़ा होना सिखलाइए, भाग्यके भरोसे रहनेकी उनकी आदत छुड़ाइए; भीख माँगने तथा ईश्वरसे वस्तुतः याचना और प्रार्थना करनेकी पद्धतिको उठाइए, 'कोई गुप्त दैवी शक्ति हमें सहायता देगी' इस खयालको भुलाइए; अकर्मण्य और आलसी मनुष्योंको कर्मनिष्ठ और पुरुषार्थी बनाइये; पारस्परिक ईर्षा, द्वेष, घृणा, निन्दा और अदेखसका भावको हटाकर आपसमें प्रेमका संचार कीजिए; निष्फल क्रियाकांड और नुमायशी (दिखावेके) कामोंमें होनेवाले शक्तिके ह्रासको रोकिए; द्रव्य और समयका सदुपयोग करना बतलाइए; विलासप्रियताकी दलदलमें फँसने और अंधश्रद्धाके गड्ढेमें गिरनेसे बचाइए; अनेक प्रकारके कलकारखाने खोलिए; उद्योगशालायें और प्रयोगशालायें जारी कीजिए; शिल्प व्यापार और विज्ञानोन्नतिकी ओर लोगोंको पूरी तौरसे लगाइए; मिलकर काम करना, एक दूसरेको सहायता देना और देश तथा समाजके हितको अपना हित समझना सिखलाइए; बाल, वृद्ध तथा अनमेल विवाहोंका मूलोच्छेद हो सके ऐसा यत्न कीजिए; सच्चरित्रता और सत्यका व्यवहार फैलाइए; विचारस्वातंत्र्यको खूब उत्तेजन दीजिए; योग्य आहारविहारद्वारा बलाढ्य बनना सिखलाइए; वीरता, धीरता, निर्भीकता, समुदारता, गुणग्राहकता, सहनशीलता और दृढप्रतिज्ञता आदि गुणोंका संचार कीजिए; एकता और विद्यामें कितनी शक्ति है; इसका अनुभव कराइए; धर्मनीति, राजनीति और समाजनीतिका रहस्य और भेद समझाइए; समुद्रयात्राका भय हटाइए; विदेशोंमें जानेका संकोच और हिचकचाट दूर कीजिए; अनेक भाषाओंका ज्ञान कराइए; तरह तरहकी विद्यायें सिखलाइए और शिक्षाका इतना प्रचार कर दीजिए कि देश या समाजमें कोई भी स्त्री, पुरुष, बालक और बालिका अशिक्षित न रहने पावे। इन सब बातोंके सिवाय जो जो रीति-रिवाज, आचार-व्यवहार अथवा सिद्धान्त उन्नति और उत्थानके बाधक हों, जिनमें कोई वास्तविक तत्त्व न हो और जो समय समयपर किसी कारणविशेषसे देश या समाजमें प्रचलित हो गये हों उन सबकी खुले शशब्दोंमें आलोचना कीजिए और उनके गुणदोष सर्वसाधारणपर प्रगट कीजिए। सच्ची आलोचनामें कभी संकोच न होना चाहिए। विना समालोचनाके दोषोंका पृथक्करण नहीं होता। साथ ही, इस बातका भी खयाल रखिए कि इन सब कार्योंके सम्पादन करने और करानेमें अथवा यह सब साहित्य फैलानेमें आपको अनेक प्रकारकी आपत्तियाँ आवेंगी, रुकावटें पैदा होंगी, बाधायें उपस्थित होंगी और आश्चर्य नहीं कि उनके कारण कुछ हानि या कष्ट भी उठाना पड़े। परन्तु उन सबका मुकाबला बड़ी शांति और धैर्यके साथ होना चाहिए, चित्तमें कभी क्षोभ न लाना चाहिए-क्षोभमें योग्यायोग्यविचार नष्ट हो जाता है-और न कभी इस बातकी परवाह ही करनी चाहिए कि हमारे कार्योंका विरोध होता है। विरोध होना अच्छा है और वह शीघ्र सफलताका मूल है। कैसा ही अच्छेसे अच्छा काम क्यों न हो, यदि वह पूर्व संस्कारोंके प्रतिकूल होता है तो उसका विरोध जरूर हुआ करता है। अमेरिका आदि देशोंमें जब गुलामोंको गुलामीसे छुड़ानेका आन्दोलन उठा, तब खुद गुलामोंने भी उसका विरोध किया था। पागल मनुष्य अपना हित करनेवाले डाक्टर पर भी हमला किया करता है। इस लिए महत्पुरुषोंको इन सब बातोंका कुछ भी खयाल न होना चाहिए। अन्यथा, वे लक्ष्यभ्रष्ट हो जावेंगे और सफलमनोरथ न हो सकेंगे। उन्हें बराबर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपना कार्य और आन्दोलन जारी रखना चाहिए। आन्दोलनके सफल होने पर विरोधी शान्त हो जायँगे, उन्हें स्वयं अपनी भूल मालूम पड़ेगी और आगे चलकर वे तुम्हारे कार्योंके अनुमोदक और सहायक ही नहीं बल्कि अच्छे प्रचारक और तुम्हारे पूर्ण अनुयायी बन जायँगे। जैनग्रंथोंके छपानेका कितना विरोध रहा! परन्तु अब वही लोग, जो उस विरोधमें शामिल थे और जिन्होंने छपे हुए शास्त्रोंको न पढ़नेकी प्रतिज्ञाओंपर अपने हस्ताक्षर भी कर दिये थे, खुशीसे छपे हुए ग्रन्थोंको पढ़ते पढ़ाते और उनका प्रचार करते हुए देखे जाते हैं। जिधर देखो उधर छपे हुए ग्रंथोंकी महिमा और प्रशंसाके गीत गाये जाते हैं। यदि उस समय छपे ग्रन्थोंका प्रचार करनेवालोंके हृदयोंमें इस विरोधसे निर्बलता आ जाती और वे अपने कर्त्तव्यको छोड़ बैठते तो आज छपे ग्रन्थोंकी कृपासे जैनसमाजको जो असीम लाभ पहुँच रहा है उससे वह वंचित रह जाता और उसका भविष्य बहुत कुछ अंधकारमय हो जाता। इस लिए विरोधके कारण घबराकर कभी अपने हृदयमें कमजोरी न लानी चाहिए और न फलप्राप्तिके लिए जल्दी करके हताश ही हो जाना चाहिए। बल्कि बड़े धैर्य और गांभीर्यके साथ बराबर उद्योग करते रहना चाहिए और नये पुराने सभी मार्गोंसे जिस जिस प्रकार बने अपने सुधारविषयक साहित्यका सर्वत्र प्रचार करना चाहिए। सच्चे हृदयसे काम करनेवालों और सच्चे आन्दोलनकारियोंको सफलता होगी और फिर होगी। उन्हें अनेक काम करनेवाले, सहायता देनेवाले और उनके कार्योंको फैलानेवाले मिलेंगे। इस लिए घबरानेकी कोई बात नहीं है। जो लोग देश या समाजके सच्चे हितैषी होते हैं वे सब कुछ कष्ट उठाकर भी उसका हितसाधन किया करते हैं। इस तरह पर सब कुछ सहन करते हुए, यदि आप सुधारविषयक साहित्यका सर्वत्र प्रचार करके अपने देश या समाजके साहित्यको सुधारनेमें समर्थ हो जायँगे तो फिर देश या समाजके सुधरनेमें कुछ भी देर नहीं लगेगी। उसका सुधार अनिवार्य हो जायगा। यही सुधारका मूलमंत्र है। परन्तु इतना खयाल रहे कि साहित्य जितना ही उन्नत, सबल और प्रौढ होगा उतना ही उसका प्रभाव भी अधिक पड़ेगा और वह अधिक कालतक ठहर भी सकेगा। इस लिए जहाँतक बने खूब प्रबल और पुष्ट साहित्य फैलाना चाहिए।

ता० २५-४-१७।

विचित्र ब्याह।

(ले०-पं० रामचरित उपाध्याय)

तृतीय सर्ग।

शुक्ला एकादशी श्रावणी रही जिसी दिन,
रामदेव परलोकनिवासी हुए उसी दिन।
नभमें काली घटा घनोंकी उमड़ रही थी,
कुछ बाकी था दिवस, साँझ हो गई नहीं थी॥१॥

कोई कहीं मलार प्रेमपूर्वक गाता था।
कोई झूले झूल रहा था, सुख पाता था।
रामदेव भी रथी चढ़े सोते जाते थे,
उनके पीछे दुखी बन्धु रोते जाते थे॥ २॥

मरघट पहुँचा रामदेव-शव घरसे चलकर,
उसे भूमि रख सभी लगे रोने कर मलकर।
कलरव करके जहाँ जन्हु-कन्या बहती थी,
क्यों रोते हो व्यर्थ? मनो वह यों कहती थी॥३॥

जो आता है उसे कभी जाना पड़ता है,
जो नीचे है गिरा वही ऊपर चढ़ता है।
यों गंगाके कूल ऊल कर जल कहता था,
जग अस्थिर है इसी लिए अस्थिर रहता था॥४॥

मरघट! तुझमें पक्षपातका नाम नहीं है,
वश कर लेना तुझे किसीका काम नहीं है।
तूने राजा-रंक सदा देखे सम दृगसे,
तूने नाता नहीं कभी जोड़ा है जगसे॥ ५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्णाश्रमका यहाँ स्वप्नमें भेद नहीं है,
तुझे किसीके लिए तनिक भी स्नेह नहीं है।
वनिता बालक वृद्ध यहाँ सम हो जाते हैं,
धीर वीर भी यहाँ पहुँचकर खो जाते हैं ॥ ६ ॥
त्यागी हो या गृही, भीरु हो या निर्भय हो,
दुःखी हो या सुखी मलिन या सुषमालय हो।
चिता-ज्वलनमें यहाँ सभी आकर सोते हैं,
पलमें जलकर भस्म यहाँ आकर होते हैं ॥ ७ ॥
हीरेहीके भाव यहाँ कंकड़ बिकता है,
किसी भाँति भी नहीं यहाँ कोई टिकता है।
जगमें जिसने व्यर्थ अन्यको धूल मिलाया,
उसने ही क्या रज-समत्व आ यहाँ न पाया ॥ ८॥
जिसे नहीं निर्वेद वेद पढ़नेसे होगा,
उसे यहाँ निर्वेद निकल पड़नेसे होगा।
एकी रस बीभत्स यहाँ पर स्थित रहता है,
नश्वरता-जल-पूर्ण शोकका नद बहता है ॥ ९ ॥
आशाओंका काम यहाँपर मिट जाता है,
यहाँ नहीं षड्वर्ग किसीको दुख-दाता है।
सपनेमें भी लू न लगी हो जिसके तनमें,
यहाँ चिताकी आग लगेगी उसके तनमें ॥ १० ॥
कनक-भवनमें पुष्पसेजके सोनेवाले,
क्षुधा-क्षीण हो गली गलीके रोनेवाले।
आकरके वे सभी यहाँ ठोकर खाते हैं,
या जलचर ही यहाँ उन्हें धोकर खाते हैं॥ ११ ॥
जो वपु चंपक, चन्द्र, कनकसे भी बढ़कर है,
मतवाला हो गया मदन जिसपर चढ़कर है।
वही एक दिन यहाँ विवश होकर आता है,
मलके सम अस्पृश्य त्याज्य समझा जाता है॥ १२॥
सड़ी देहको स्वान खाते कहीं हैं,
अघाते नहीं हैं, घिनाते नहीं हैं।
कभी बीचमें बोलते जा रहे हैं,
मनो कालकी कीर्ति वे गा रहे हैं ॥ १३ ॥
कहीं मर्त्यकी खोपड़ी भी पड़ी है,
कहीं वायु-दुर्गन्धि आती कड़ी है।
बना था बड़ा भव्य जो भूषणोंसे,
ढका है वही हा यहाँ मृत्कणोंसे ॥ १४ ॥
विहंगावली बोलती जा रही है,—
निजावासको, त्रासको पा रही है।
हुई ज्ञात सूर्यास्त वेला इसीसे,
न था बोलता जन्तु कोई किसीसे ॥ १५ ॥
नहीं सूर्य है चन्द्रमा भी नहीं है,
हुई शान्तिवाली निराली मही है।
दिवा है न, है रात सन्ध्या नहीं है,
न प्रत्यूष ही है न तारे कहीं हैं ॥ १६ ॥
यथा पुण्यके बादमें पाप आवे,
सुखी जीव ज्यों अन्तमें दुःख पावे।
तथा लोक आलोकसे हीन होके,
हुआ है दुखी हा तमोलीन होके ॥ १७ ॥
हुआ व्योममें सूर्यका अस्त ज्यों हीं,
लगे बोलने हर्षसे स्यार त्यों हीं।
टले लोकसे लोक-सन्ताप-दाता,
किसे चित्तमें तो न आनन्द आता? ॥ १८ ॥
खल-श्री कभी स्थायिनी क्या हुई है?
कभी आगमें भी टिकी क्या रुई है?।
सुखी क्यों रहे जो सुखावे सभीको,
गिरेगा न क्यों जो गिरावे सभीको ? ॥ १९ ॥
सदा दुःख ही देखते लोकमें हैं,
कभी सौख्य भी दृष्टि आता हमें है।
शशी भी उसी भाँति है दृष्टि आता,
छिपाये हुए हैं उसे वारि-दाता ॥ २० ॥
यथा स्वप्नलोकमें आप देही,
तजे देहको देखते देखते ही।
उसी भाँति आई गई चन्द्रिका भी,
न बाँधी गई भूमिकी भूमिका भी ॥ २१ ॥
बुरी या भली वस्तु कोई नहीं है,
बुराई भलाई सभीमें नहीं है!
शशी देख जैसे चकोरी सुखी है,
उसे देख त्यों चक्रवाकी दुखी है ॥ २२ ॥
रामदेव भी चिताबीच जलते थे कैसे,
मरघटके मैदान दीप जलता हो जैसे।
विविध भोग जो भोग रही थी देह बली हो,
अकरुण कालग्रस्त वही अब खेह चली हो ॥२३॥
जगतको अपना मत जानिए,
पर उसे सपना अनुमानिए।
न परको दुख दे सुख कीजिए,
स्वकरसे अपकीर्ति न लीजिए ॥ २४ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

.CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्ण और जाति-विचार ।

(ले०-श्रीयुत बाबू सूरजभानुजी वकील ।)

हिन्दुओंमें आर्य और म्लेच्छ इस प्रकार मनुष्योंके दो भेद किये गये हैं । फिर ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र इस प्रकार आर्योंको भी चार भेदोंमें विभाजित किया है जिनको वर्ण कहते हैं । इन वर्णोंके भी फिर अनेक भेद हैं, जिनको जाति कहते हैं । जैसे गौड़, कन्नौजिया, सारस्वत, सरवरिया, सनाढ्य आदि जातियाँ ब्राह्मणोंकी; चौहान, राठौड़, हाड़ा, आदि जातियाँ क्षत्रियोंकी; अग्रवाल, ओसवाल, खंडेलवाल, परवार आदि जातियाँ वैश्योंकी और नाई, कहार, कुम्हार, धोबी आदि जातियाँ शूद्रोंकी हैं । पर यहाँ ही भेदोंका अन्त नहीं हो जाता है, किन्तु इन जातियोंके भी भेद प्रभेद होकर हिन्दुओंके हजारों टुकड़े हो गये हैं और संसारभरमें इस समय जो २० करोड़ हिन्दू गिने जाते हैं उन सबकी एक क़ौम न बनकर दस दस पाँच पाँच हज़ार मनुष्योंके अलग अलग समूह बन गये हैं और इनमें कोई कोई जातियाँ तो इतनी छोटी रह गई हैं कि उनकी मनुष्यगणना ४००, ५०० से भी अधिक नहीं है । हिन्दुओंकी ये सब जातियाँ एक दूसरेसे यहाँतक अलग हैं कि एक जाति दूसरी जातिके हाथकी रोटी नहीं खा सकती और न एक जातिकी कन्या दूसरी जातिमें ब्याही जा सकती है । इस ही कारण उन्नतिके आन्दोलनके इस समयमें यदि हिन्दुओंने उन्नति करनी शुरू भी की है, तो इस तरह कि प्रत्येक जातिने अपनी अपनी अलग अलग महासभा या कान्फ्रेंस बनाई है; जिसमें वे अपना अलग अलग राग गाकर और अपनी अलग अलग ढफली बजाकर और शेख चिल्ली जैसी बातें बनाकर ही खुश हो लेते हैं । ऐसी दशामें वास्तविक उन्नति न कुछ होती है और न हो सकती है ।

जैन जाति इस समय केवल १३ लाख है । उसमें भी दिगम्बर, श्वेताम्बर और स्थानकवासी ये तीन टुकड़े हैं । इन तीनोंका आपसमें कुछ वास्ता नहीं, यदि है भी तो सिर्फ़ इतना ही कि एक दूसरेके साथ लड़ें और मुकदमेबाजी करें । ऐसी दशामें भी जैन लोग वर्ण और जातिको बिलकुल उसही तरह मान रहे हैं जिस तरह अन्य हिंदू भाई; यहाँतक कि एक जातिका जैन अपनी जातिके ऐसे मनुष्यसे जो जैन नहीं है विवाहसम्बन्ध भी कर सकता है और उसके हाथकी रोटी भी खा सकता है; परन्तु दो जैन-जो एक ही वर्णके हैं परन्तु एक जातिके नहीं हैं-न आपसमें रोटी खा सकते हैं और न विवाहसम्बन्ध कर सकते हैं । जैनोंकी छोटीसी जातिके इस प्रकार अनेक टुकड़े होनेसे उसकी बहुतही शोचनीय दशा हो गई है । हिन्दू लोग वर्ण और जातिका भेद केवल रोटी और विवाह आदिक सांसारिक कार्योंहीमें नहीं मानते हैं; वे इस भेदको धर्मकार्योंमें भी चलाते हैं । जैसे कोई जाति वेद नहीं पढ़ सकती, कोई यज्ञ नहीं कर सकती, कोई जनेऊ नहीं पहन सकती, इस प्रकारकी अनेक बातें उनके यहाँ प्रचलित हैं । हमारे जैन भाई भी इस विषयमें हिन्दुओंसे कम नहीं हैं । उन्होंने भी नीच जाति और वर्णके सम्बंधमें अनेक प्रकारके कड़े नियम बना रक्खे हैं और उन पर बहुत जोर दे रक्खा है ।

हमारी समझमें वर्ण और जातिका प्रश्न बहुत ही महत्त्वका है । इस पर क़ौमकी लौकिक और पारलौकिक सारी ही उन्नति और अवनति अवलम्बित है । इस कारण इसकी पूरी पूरी जाँच होने और इस पर खूब वादानुवाद होनेकी अत्यन्त आवश्यकता है और यह तब ही हो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सकता है, जब कि सबको अपने स्वतंत्र विचार, बिना किसी प्रकारके संकोचके, प्रकट करनेकी पूरी पूरी आज़ादी हो और हमारे भाई उन विचारोंको बिना किसी प्रकारकी भड़क या पक्षपातके पढ़ें, सुनें और जाँचें; और यदि खंडन करनेकी जरूरत हो तो खंडन करें और जरूर खंडन करें; परंतु ठंडे और सभ्यताके शब्दोंमें। ऐसा ही खयाल करके आज मैं इस लेखके द्वारा इस विषयमें अपने विचार प्रकट करनेका साहस करता हूँ और खंडनमें हो या मंडनमें, अन्य भाईयोंके विचार जाननेकी उत्कंठा रखता हूँ, जिससे यह प्रश्न हल हो जाय और इसकी असलियत खुल जाय। मैं इस प्रश्नको चार विभागोंमें विभाजित करता हूँ—

(१) वर्ण और जातिका धर्मसे सम्बन्ध, (२) वर्ण और जातिका रोटीबेटी-व्यवहारसे सम्बन्ध, (३) वर्ण और जातिका पेशेसे सम्बन्ध, (४) वर्ण और जातिका जन्मसे और कर्मसे सम्बन्ध।

१ वर्ण और जातिका धर्मसे सम्बन्ध।

जैनधर्मका सम्पूर्ण आधार आप्तवचन और नयप्रमाण पर है। सर्वज्ञ, वीतराग, और हितोपदेशक होनेसे आप्तके वचन प्रमाण होते हैं और नयप्रमाणसे वस्तुस्वभावकी जाँच और सत्य असत्यका निर्णय होता है। सब ही धर्मवाले अपने धर्मको आप्तकथित बताते हैं और सब ही अपने परमेश्वरको सर्वज्ञ-वीतराग और हितोपदेशकी पदवी देकर आप्त सिद्ध करते हैं। इस ही कारण जैन शास्त्रोंमें परीक्षा-प्रधानी होने पर ज्यादा जोर दिया गया है और अंधश्रद्धाको मिथ्यात्वमें दाखिल किया है। इस परीक्षाकी ज्यादा जरूरत इस कारण भी हो गई है कि हमारे दिगम्बरी भाई जिन अरहंत भगवान्‌को सर्वज्ञ, वीतराग और हितोपदेशके आदि गुणोंसे आप्त बताते हैं; उनहीको उन ही गुणोंसे श्वेताम्बरी और स्थानकवासी भाई भी आप्त मानते हैं; परन्तु एक कहते हैं कि भगवानने ऐसा कहा और दूसरे कहते हैं कि नहीं, ऐसा नहीं कहा, वैसा कहा। दुनियाभरमें जैनधर्म ही एक ऐसा धर्म है जो अपने तत्त्वोंको अक्लकी कसौटी पर जाँचनेकी घोषणा डंकेकी चोटसे करता है; अन्य सब ही धर्म प्रायः आज्ञा-प्रधान हैं। किसी भी आज्ञा-प्रधान धर्मको यह अधिकार नहीं हो सकता है कि वह किसी दूसरे धर्मका खंडन करे और उसको मिथ्यामत बतावे। यह अधिकार केवल उस ही धर्मको हो सकता है, जो ऐसी किसी भी बातके माननेको तय्यार नहीं है जो बुद्धिकी कसौटी पर पूरी न उतरे। हमको वर्ण और जातिके इस अत्यावश्यक सिद्धान्तको भी परीक्षाकी कसौटी पर कसना चाहिए और सत्य बातको खोज निकालना चाहिए।

संसारके समस्त प्राणी अनादि कालसे संसाररूपी घोर दुःखसागरमें पड़े हुए अनेक कष्ट उठा रहे हैं। जो कोई इन प्राणियोंको इस घोर दुःखसे छुड़ाकर उत्तम सुख प्राप्त कराता है, वही धर्म है और वही कल्याणका मार्ग है। वस्तुस्वभावका ही नाम धर्म है। जीवका विभाव भाव दूर होकर असली स्वभाव प्राप्त हो जाना ही उसका कल्याण है। स्वभावसे सब ही जीव समान हैं, सब ही धर्म मार्ग पर चल सकते हैं और सबहीका कल्याण हो सकता है। पापियोंको धर्मात्मा बनाना, दुःखी जीवोंको सुखी करना ही धर्मका काम है। अनादि कालसे संसारके सब ही जीव मिथ्यात्वमें फँसे हुए अनेक प्रकारके घोर पाप कर रहे हैं। उनको पापसे हटाकर कल्याणमार्ग पर लगाना ही धर्मका स्वरूप है। जो धर्म अपने कल्याणके मार्गको किसी वर्ण, किसी जाति, किसी देश, किसी रंग या किसी अवस्थाके जीवके वास्ते तो खुला रखता है और दूसरोंके लिए बन्द कर-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ता है, वह धर्म नहीं है; द्वेषका बीज है। कल्याणका मार्ग नहीं है बल्कि संसारको भस्म करनेके लिए आगकी चिनगारी है। संसारभरमें एक जैनधर्म ही ऐसा धर्म है, जो अपने कल्याणके मार्गको प्राणिमात्रके वास्ते खोलता है और पुकार पुकार कर कहता है कि—हे जगतके प्राणियो, छोड़ो पापक्रियाओंको, चलो इस मार्गपर, और करो अपना कल्याण। अरहंत भगवानके समवसरणमें सिंह-सर्पादिक महाहिंसक और सूअर कुत्ता आदिक महा अपवित्र जीवोंका आना और उन सबको धर्ममार्ग बतलाया जाना, इस बातका ज्वलंत दृष्टान्त है कि यह धर्म जीवमात्रके उद्धारके वास्ते है और सूर्यके प्रकाशकी तरह बुरे भले सभी जीवोंके हृदयोंमें रोशनी पहुँचाता है। जैनधर्मकी इस बड़ाईको और भी ज्यादा खोलनेके वास्ते जैनधर्मके कथाग्रन्थोंमें ऐसी अनेक कथायें वर्णन की गई हैं कि एक सिंहको जो किसी पशुको मारकर उसका मांस खा रहा था और जिसका मुँह खूनसे भरा हुआ था, मुनिमहाराजने उपदेश दिया और उसने अपने मुखका मांस थूककर धर्म ग्रहण किया। एक चांडालकी लड़की, जिसको इतना भारी कोढ़ हो रहा था कि उसके शरीरकी दुर्गंधिसे दूरदूरतकके प्राणी दुखी हो रहे थे, जो विष्टाकी कूड़ी पर बैठी हुई थी, उसको मुनिमहाराजने समझाया और धर्मात्मा बनाया। इसी प्रकार श्रीसमन्तभद्रस्वामी रत्नकरंड श्रावकाचारमें लिखते हैं कि चांडालसे पैदा हुआ मनुष्य भी यदि सम्यक्ती हो जावे तो वह भी देवके समान पूजने योग्य है। धर्मके प्रभावसे कुत्ता भी स्वर्गका देव हो जाता है और पापके प्रभावसे स्वर्गका देव भी कुत्ता हो जाता है। यथा—

सम्यग्दर्शनसंपन्नमपि मातंगदेहजं।
देवा देवं विदुर्भस्मगूढांगारान्तरौजसम्॥ २८॥
श्वापि देवोपि देवः श्वा जायते धर्मकिल्विषात्।
कापि नाम भवेदन्या संपद्धर्माच्छरीरिणाम्॥२९॥

विचारनेकी बात है कि चाहे कोई ब्राह्मणकी संतान हो, चाहे, चांडालकी; शरीर दोनोंका ही हाड-मांस आदिक अपवित्र घिनावनी वस्तुओंका बना हुआ होगा। ब्राह्मणके शरीरके भी सब ही परमाणु अपवित्र हैं और चांडालके भी; इस लिए शरीरके कारण इनमें नीचता या उच्चता नहीं हो सकती है। हाँ इनमेंसे जिसका भी आत्मा सत्य धर्मसे पवित्र हो रहा है,- वह पवित्र है और उच्च है और जिसका आत्मा मिथ्यात्वसे अशुद्ध हो रहा है वह अपवित्र है और नीच है। इससे सिद्ध है कि वर्ण या जातिका धर्मसे कोई सम्बन्ध नहीं है।

इस समय एक वर्णकी अनेकानेक जातियाँ हो रही हैं। इनका तो किसी प्रकारका कथन किसी जैनशास्त्रमें मिलता नहीं; ये जातियाँ तो देशकालकी परिस्थितियोंके, देशभेदके, और आसपासकी खैंचतान या लड़ाई झगड़ोंके कारण बन गई हैं और बनती जाती हैं। वर्णोंकी उत्पत्तिका जो कुछ भी कथन जैनशास्त्रोंमें मिलता है उससे भी स्पष्ट तौरपर यही सिद्ध होता है कि वर्णभेदका धर्मसे कोई सम्बध नहीं है। आदिपुराणमें वर्णोंकी उत्पत्तिके विषयमें लिखा है कि जब भोगभूमि समाप्त हुई तब भगवान् आदिनाथने प्रजाजनोंको उनकी आजीविकाके वास्ते असि, मसि कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प ये छः कर्म सिखाये। क्योंकि उस समय भगवान् सरागी थे, वीतराग नहीं थे। उसही समय भगवानने तीन वर्ण प्रकट किये। जिन्होंने हथियार बाँधकर रक्षा करनेका कार्य लिया वे क्षत्री कहलाये, जो खेती व्यापार और पशुपालन करने लगे वे वैश्य हुए और सेवा करनेवाले शूद्र कहलाये।

असिर्मसिः कृषिर्विद्या वाणिज्यं शिल्पमेव च।
कर्माणीमानि षोढा स्युः प्रजाजीवनहेतवे॥ १७९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तत्र वृत्तिं प्रजानां स भगवान्मतिकौशलात् ।
उपादिशत्सरागो हि स तदासीज्जगद्गुरुः ॥ १८० ॥
उत्पादितास्त्रयो वर्णास्तदा तेनादिवेधसा ।
क्षत्रिया वणिजः शूद्राः क्षतत्राणादिभिर्गुणैः ॥ १८३॥
क्षत्रियाः शस्त्रजीवित्वमनुभूय तदाऽभवन् ।
वैश्याश्च कृषिवाणिज्यपशुपाल्योपजीविनः ॥ १८४ ॥
तेषां शुश्रूषणाच्छूद्रास्ते द्विधा कार्वकारवः ।
कारवो रजकाद्याः स्युस्ततोन्ये स्युरकारवः ॥ १८५॥

—आदिपुराण, पर्व १६ ।

इन श्लोकोंमें यह बात खास तौर पर दिखाई गई है कि तलवार चलाना आदि आजीविकाके छः कर्म भगवान् इस कारण सिखा सके और उसी समय तीन वर्ण भी इसी कारण बना सके कि भगवान् उस समय सरागी थे, वैरागी नहीं थे। क्योंकि वैराग्यावस्थामें यह काम हो ही नहीं सकता है। इससे स्पष्ट है कि भगवान् उस समय आप्त नहीं थे; क्योंकि आप्तके वास्ते वीतरागी होना जरूरी है। आप्त न होनेसे वे न तो कोई धर्ममर्यादा बाँध सकते थे और न उन्होंने केवलज्ञान होनेसे पहले कोई धर्ममर्यादा बाँधी। इससे सिद्ध है कि वर्णोंका धर्मसे कोई सम्बन्ध नहीं है।

भगवान् आदिनाथका सम्पूर्ण पुराण पढ़नेसे तो यहाँतक मालूम होता है कि धर्मविषयकी कोई मर्यादा बाँधना तो दूर रहा, उन्होंने तो केवलज्ञान प्राप्त होनेसे पहले धर्मकी साधारण ऐसी बातोंका भी उपदेश नहीं दिया जिनके उपदेशकी अत्यन्त आवश्यकता थी। जिस समय भगवानने दीक्षा ली, उस समय उनके साथ और भी चार हजार राजाओंने दीक्षा ली; परन्तु वे सब धर्मसे अनजान थे, इस कारण भ्रष्ट हो गये और उनके द्वारा अनेक मिथ्यामतोंका प्रचार हुआ। यदि दीक्षासे पहले भगवान् उनको यति-धर्मका उपदेश दे देते तो ऐसा न होता, परन्तु भगवान् उनको कुछ भी धर्मका उपदेश न देकर स्वयं छः महीनेका योग लगाकर बैठ गये और छः महीनेके पीछे योगसे उठने पर भी और उनको भ्रष्ट देखकर भी उन्होंने उनकी अवस्था पर अफसोस तो किया; परन्तु धर्मका उपदेश रंच मात्र भी न दिया। योगसे उठकर जब भगवानने आहारके वास्ते विहार किया, तो लोग धर्मसे अनजान होनेके कारण आहार न दे सके; यहाँ तक कि भगवान्को आहारके वास्ते फिरते फिरते छः महीने बीत गये; तो भी भगवानने किसीको आहारदानकी विधिका उपदेश नहीं दिया। गरज जब ऐसी ऐसी आवश्यकताओंमें भी भगवान् ऋषभदेवने केवलज्ञान प्राप्त होनेसे पहले धर्मका उपदेश नहीं दिया; तब यह बात कैसे हो सकती है कि उन्होंने वर्णव्यवस्थामें धर्मका सम्बंध रक्खा हो? ऊपर लिखे हुए श्लोक भी साफ तौर पर यही प्रकट कर रहे हैं कि प्रजाकी आजीविकाके वास्ते ही भगवानने उनको छः कर्म सिखाये और उनके पेशेके ही अनुसार उनके तीन भेद किये। इसमें धर्मका कुछ भी लगाव नहीं है।

भगवान् आदिनाथने वर्णव्यवस्था केवल लौकिक प्रबन्धके वास्ते ही की, इसका स्पष्टीकरण आदिपुराणके उस कथनसे और भी ज्यादा हो जाता है जहाँ भगवान्को राजपद मिलनेके बाद लिखा है कि कर्मभूमिकी रचना करनेवाले भगवान् वृषभदेवने अपने पितासे राज्य पाकर सबसे पहले इस प्रकार प्रजापालनका प्रयत्न किया कि प्रथम उन्होंने प्रजाकी सृष्टि की, उनकी आजीविकाके नियम बनाये और फिर वे अपनी अपनी मर्यादाका उल्लंघन न करें इसके नियम किये। इस तरह वे अपनी प्रजा पर राज्य करने लगे। भगवानने अपने दोनों हाथोंमें हथियार लेकर क्षत्रियोंकी रचना की। क्योंकि जो हथियार बाँधकर रक्षा करते हैं वे ही क्षत्री कहलाते हैं। फिर भगवानने अपनी टाँगोंसे यात्रा करना सि-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खाकर वैश्य बनाये, और नीच काम करनेवाले शूद्रोंकी रचना अपने पैरोंसे की; क्योंकि उच्च वर्णोंकी सेवा करना ही उनकी आजीविका है ।

अथाधिराज्यमासाद्य नाभिराजस्य सन्निधौ ।
प्रजानां पालने यत्नमकरोदिति विश्वसृट् ॥ २४१ ॥
कृतादितः प्रजासर्गतद्वृत्तिनियमं पुनः ।
स्वधर्मानतिवृत्त्यैव नियच्छन्नन्वशात्प्रजाः ॥ २४२ ॥
स्वदोर्भ्यां धारयन् शस्त्रं क्षत्रियानसृजद्विभुः ।
क्षतत्राणे नियुक्ता हि क्षत्रियाः शस्त्रपाणयः ॥ २४३ ॥
ऊरुभ्यां दर्शयन्यात्रामस्राक्षीद्वणिजः प्रभुः ।
जलस्थलादियात्राभिस्तद्वृत्तिर्वार्तया यतः ॥ २४४ ॥
न्यग्वृत्तिनियतान् शूद्रान् पद्भ्यामेवासृजत्सुधीः ।
वर्णोत्तमेषु शुश्रूषा तद्वृत्तिर्नैकधा स्मृता ॥ २४५ ॥

—आदिपुराण पर्व १६ ।

उपर्युक्त श्लोकोंसे साफ जाहिर है कि भगवान् आदिनाथने वर्णव्यवस्था दुनियाका व्यवहार चलानेके ही वास्ते की है और राज्यावस्थामें की है । उन्होंने राज्य पाकर उस समयके मनुष्योंको तीन टुकड़ोंमें बाँटकर किसीको हथियार चलाना, किसीको सौदागरी आदि करना, और किसीको सेवा करना सिखाया । उस समय यद्यपि भगवानने हथियार चलाना और खेती, व्यापार आदि करनेको उत्तम कर्म और सेवा करनेको नीच कर्म समझा; परन्तु सेवकोंके बिना भी दुनियाका काम नहीं चल सकता है, इस कारण भगवानने उन्हीं मनुष्योंमेंसे बहुतोंको नीच कर्म भी सिखाया और उनको सेवक बनाया । वह कर्मभूमिका नया नया समय था । उस समयके मनुष्योंमें किसी भी पेशेकी बाबत पूर्वके कोई संस्कार नहीं थे, इस कारण यह सम्भव था कि जिन लोगोंको भगवानने नीच काम सिखाकर सेवक बनाया था, वे सब लोग या उनमेंसे बहुतसे लोग यह नीच काम छोड़ देते और इससे उस समयके प्रबन्धमें गड़बड़ी पड़ जाती । इस कारण उस समय भगवानने यह भी आज्ञा जारी की कि कोई मनुष्य अपने वर्णके पेशेको छोड़कर दूसरे वर्णका पेशा न करे । यदि कोई ऐसा करेगा तो उसको राजासे दंड मिलेगा और वह वर्णसंकर हो जायगा ।

स्वामिमां वृत्तिमुत्क्रम्य यस्त्वन्यां वृत्तिमाचरेत् ।
स पार्थिवैर्नियंतव्यो वर्णसंकीर्णिरन्यथा ॥ २४८ ॥

—आदिपुराण पर्व १६ ।

भगवानने उपर्युक्त आज्ञाके द्वारा शूद्रोंको ही बाध्य नहीं किया, अर्थात् केवल उन्हींके वास्ते यह रोक पैदा नहीं की कि वे क्षत्री या वैश्यका पेशा न कर सकें, बल्कि क्षत्रियोंको भी मजबूर किया है कि वे वैश्य या शूद्रका पेशा न करने पावें और वैश्योंको भी रोका है कि वे क्षत्री या शूद्रका काम न करने लगें । क्योंकि भगवानको यह भय था कि यदि राज्यकी तरफसे ऐसा कड़ा नियम नहीं होगा, तो वर्णसंकरता हो जायगी, अर्थात् उनका यह विचार था कि इस समय जितने फौजी आदमियोंकी जरूरत है उतने क्षत्री, जितने इस समय खेती करनेवाले, पशु पालनेवाले, या व्यापार करनेवाले चाहिए उतने वैश्य, और जितने इस समय सेवक चाहिए उतने शूद्र बनाये गये हैं; परन्तु यदि इनको अपना पेशा बदलनेकी स्वतंत्रता होगी तो सम्भव है किसी पेशेके आदमी जरूरतसे ज्यादा हो जावें और किसी पेशेके बहुत कम, और यह भी सम्भव है कि किसी पेशेका कोई भी आदमी न रहे । ऐसा होनेसे कर्मभूमिका सर्व प्रबंध बिलकुल गड़बड़ हो जावेगा । इस वास्ते सबही पेशोंके वास्ते ऐसी कड़ी आज्ञा दी गई ।

यद्यपि उस समय भगवानने राज्यदृष्टिसे क्षत्रीका पेशा सबसे उत्तम समझा और स्वयं हथियार चलाना सिखाया; परन्तु इस पेशेमें सिर कटवाना पड़ता है, अनेक मनुष्योंका सिर काटकर खूनकी नदियाँ बहानी पड़ती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं और सदा ऐसे ही भाव रखने पड़ते हैं जैसे कि आदिपुराणके निम्न लिखित श्लोकोंसे विदित है—

चिरात्समरसंमर्दः स्वामिनोऽयमभूदिह ।
किं वयं स्वामिसत्कारादनृणीभवितुं क्षमाः ॥ १४२ ॥
पोषयंति महीपाला भृत्यानवसरं प्रति ।
न चेदवसरः सार्यः किमेभिस्तृणमानुषैः ॥ १४३ ॥
कलेवरमिदं त्याज्यमर्जनीयं यशोधनं ।
जयश्रीर्विजये लभ्या नाल्पोदर्को रणोत्सवः ॥ १४४ ॥
दंतिदंतार्गलप्रोतान्त्रलदंत्रस्खलद्वचाः ।
जयलक्ष्मीकटाक्षाणां कदाहंलक्ष्यतां भजे ॥ १४९ ॥

—आदिपुराण पर्व, ३५ ।

दूरपाताय नो किंतु दृढपाताय खेचरैः ।
खगाः कर्णांतमाकृष्य मुक्ता हन्युर्द्विपादिकान् ॥१४५॥
अधोमुखाः खगैर्मुक्ता रक्तपानात्पलाशनात् ।
तृपस्काः सांहसो वेयुर्नरकंवाऽवनेरधः ॥ १४६ ॥
चक्रसंघट्टसंपिष्टशवास्त्र्यांसकर्दमे ।
रथकव्याश्चरंति स्म तत्राब्धौ मंदपोतवत् ॥ १७९ ॥

—आदिपुराण, पर्व ४४ ।

पर्व ३५ के उपर्युक्त ४ श्लोक उस समयके हैं जब कि बाहुबलि और भरतमें युद्ध छिड़नेवाला था। बाहुबलिके योद्धा उस समय युद्धकी खुशीमें आपसमें बातें करते हुए कह रहे हैं कि स्वामिके यहाँ बहुत दिनों पिछे युद्ध छिड़नेका है। स्वामीने अबतक जो हमारा पालन पोषण किया है, उस ऋणसे अब हमारा छुटकारा होगा, अर्थात् उसका बदला हम अब लड़ाईमें मरने मारनेसे चुकावेंगे। इस समयके वास्ते ही राजा लोम सिपाहियोंका पालन किया करते हैं। यदि समय पर भी कोई काम न आया, तो ऐसे घास फूसके बने हुए मनुष्यसे क्या लाभ ? अब यह शरीर छूटेगा और यश मिलेगा, इस कारण यह युद्ध बहुत ही फलदायक होगा। वह दिन कब आवेगा जब हाथियोंके दाँतोंमें मेरा शरीर पिरोया हुआ होगा और मेरी सब अँतड़ियाँ बाहर निकली हुई होंगीं। इन श्लोकोंसे स्पष्ट सिद्ध है कि योद्धा लोग सदा युद्ध मनाते रहते हैं जिसमें मर कर और अनेकोंको मारकर वह अपना कर्तव्य दिखावें और यशके भागी हों। युद्धमें जो हिंसा होती है उसका कुछ नमूना पर्व ४४ के ऊपर दिये हुए ३ श्लोकोंसे मालूम हो सकता है। भगवान् आदिनाथके पोते अर्ककीर्ति और जयकुमारमें सुलोचनाके स्वयम्वरके समय जो युद्ध हुआ था उसका वर्णन करते हुए इन श्लोकोंमें लिखा है कि विद्याधरोंके बाणोंसे बहुतसे हाथी घोड़े मारे गये। उनके बाण शत्रुओंका रुधिर पीने और मांस खानेके वास्ते नीचा मुख किये इस प्रकार आ रहे थे जैसे पापी नरकमें जाते हैं। रथके पहियोंके संघट्टनसे मुर्दोंकी लाशें पिस गई थीं और उनमेंसे निकले हुए रुधिर और मांससे ऐसी कीच हो गई थी कि उसमें रथ इस प्रकार फिरते थे, जैसे समुद्रमें नावें।

क्षत्रियोंके ऐसे भाव और ऐसे कृत्य होनेसे वे लौकिक दृष्टिसे कितने ही उत्तम समझे जावें; परन्तु धर्मदृष्टिसे किसी प्रकार भी उत्तम नहीं समझे जा सकते हैं। एक दयावान् सद्गृहस्थ धर्मात्मा जो छोटेसे छोटे जीवकी हिंसासे भी बचना चाहता है, जो हिंसाको ही पाप और अहिंसाको ही धर्म समझता है, वह कभी हथियार बाँधकर फौजमें भरती होना पसन्द नहीं करेगा, चाहे वह फौजका सबसे बड़ा अफसर ही बनाया जाता हो। बल्कि इसकी अपेक्षा वह शूद्रका नीचसे नीच ऐसा काम करना अच्छा समझेगा, जिसमें हिंसा न होती हो। यदि उस समय भगवान् आदिनाथ राज्यकी तरफसे इस बातका कड़ा प्रबन्ध न करते कि किसी भी वर्णका आदमी अपना पेशा छोड़कर दूसरे वर्णका पेशा न करे, तो बहुत सम्भव है कि भगवानको केवलज्ञान प्राप्त होने पर उनकी दिव्य ध्वनिके द्वारा अहिंसा धर्मका प्रवाह बहने पर अनेक क्षत्री अपने वर्णको छोड़-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर वैश्य या शूद्र हो जाते । जैसा कि आज-कल राज्यकी तरफसे स्वतंत्रता मिलने पर कोई भी जैन क्षत्री नहीं रहा है, प्रायः सब ही वैश्य हो गये हैं या वैश्य ही जैन रह गये हैं। और वैश्य होकर भी उन्होंने प्रायः खेती आदि ऐसे पेशोंको छोड़ दिया है और छोड़ते जाते हैं जिनमें ज्यादा हिंसा होती है। परन्तु कुछ हो, भगवानको तो उस समय पूर्ण रीतिसे लौकिक प्रबन्ध करना था, इस वास्ते उन्होंने राज्यका पहरा बिठाकर उन लोगोंको जबर्दस्ती ही फौजी बनाये रक्खा, जिनको उन्होंने हथियार चलाना सिखाया था, चाहे वे लोग इस पेशेको कितना ही पापपूर्ण समझते हों; और जबर्दस्ती उन लोगोंको शूद्र ही बनाये रक्खा जिनको शूद्रका नीच काम सिखाया था, चाहे वे लोग इस पेशेसे कितनी ही घिन करते हों, और ऊँचा पेशा करनेकी योग्यता रखते हों। इस सब कथनसे दो पहरके प्रकाशके समान यह बात सिद्ध हो गई कि वर्णव्यवस्था लौकिक दृष्टिसे की गई है, धर्मका इसमें कुछ भी खयाल नहीं रक्खा गया है।

एक पेशेका आदमी यदि दूसरे पेशेका काम करने लगेगा, तो वर्णसंकर हो जायगा। इस कारण ऐसा करनेवालेको राज्यसे दण्ड मिलना चाहिए। इस कड़े नियमके साथ विवाहका नियम यहाँ तक ढीला कर दिया गया है कि ब्राह्मण चारों वर्णोंकी कन्याओंसे, क्षत्री अपने वर्णकी तथा वैश्य और शूद्रकी कन्याओंसे, और वैश्य अपने वर्णकी कन्यासे तथा शूद्रकी कन्यासे विवाह कर सकता है। यथाः—

शूद्रा शूद्रेण वोढव्या नान्या स्वां तां च नैगमः।
वहेत्स्वांते च राजन्यः स्वां द्विजन्माक्वचिच्च ताः॥२४७

—आदिपुराण, पर्व १६।

विवाहके इस नियमसे इस बातमें कुछ भी संदेह नहीं रहता है कि वर्णव्यवस्था केवल पेशेके वास्ते है; धर्मसे इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। क्यों कि यदि एक शूद्र खेती करने लगे, पशुपालनसे आजीविका करने लगे, किसी प्रकारकी दूकान करने लगे, या सिपाहीपनेकी नौकरी करने लगे, तब तो वह वर्णसंकर हो जाय और ऐसा वर्णसंकर न होने देनेके वास्ते भगवानने राज्यका दंड कायम किया; परन्तु इस बातकी स्वयं आज्ञा दे दी कि ब्राह्मण क्षत्री और वैश्य तीनों ही उच्चवर्णवाले शूद्रकी कन्यासे विवाह कर लें और ऐसा करनेसे न वर्णसंकरता हो और न कोई अन्य बिगाड़ पैदा हो। यदि चारों वर्णोंमें धर्मसम्बंधी कोई भी भेद होता, तो कदाचित् भी उच्च वर्णवालेको नीच वर्णकी कन्यासे विवाह करनेकी आज्ञा न होती; बल्कि इस बातकी पूरी पूरी रोक की जाती, ऐसा करनेवालेको राज्यसे भी दंड मिलनेका प्रबन्ध किया जाता और पेशा बदलने पर विशेष ध्यान न दिया जाता। क्यों कि यदि कोई क्षत्री वैश्यका काम करने लगे, या कोई वैश्य क्षत्रीका काम करने लगे, तो इसमें धर्मकी कोई हानि नहीं होती है; परन्तु उस समय तो भगवानको केवल लौकिक प्रबन्ध करना था, इस वास्ते उन्होंने पेशेके ही बदलनेसे वर्णसंकर होना बताया और इसहीके वास्ते राज्यका दंड नियत किया। ब्राह्मण, क्षत्री वा वैश्य यदि शूद्रासे विवाह कर लें तो वे वर्णसंकर न हों और ब्राह्मण-क्षत्री-वैश्यके द्वारा शूद्रके पेटसे पैदा हुआ बालक ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य ही हो और ऐसा होनेसे भी कोई वर्णसंकरता न हो। हाँ, यदि कोई शूद्र या क्षत्री खेती करने लगे, या और कोई पेशा बदल ले तो वर्णसंकर हो जावे और ऐसा करनेसे राज्यसे उसको दंड मिले। इससे ज्यादा इस बातका और क्या सुबूत हो सकता है कि वर्णभेद सिर्फ पेशेके वास्ते है, धर्मके वास्ते नहीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भगवानके बेटे भरत महाराजने ९६ हजार स्त्रियोंसे विवाह किया, जिनमें म्लेच्छ आदि राजाओंके द्वारा दी हुई, ३२ हजार रानियाँ अप्सराओंके समान सुंदर और राजाकी प्यारी थीं। इन ९६ हजार रानियोंके साथ भरत महाराज कामदेवके समान सब प्रकारके सुख भोगते थे। यथाः—

म्लेच्छराजादिभिर्दत्तास्तावंत्यो नृपवल्लभाः ।
अप्सरः संकथाक्षोणीं यकाभिरवतारिताः ॥ ३५ ॥

प्रकाममधुरानित्थं कामान् कामातिरेकिणः ।
स तामिर्निर्विशन् रेमे वपुष्मानिव मन्मथः ॥ ५७ ॥

ताश्च तच्चित्तहारिण्यस्तरुण्यः प्रणयोद्धुराः ।
बभूवुः प्राप्तसाम्राज्या इव रत्युत्सवे श्रियः ॥ ५८ ॥

—आदिपुराण, पर्व ३७।

इस प्रकार ३२ हजार म्लेच्छ कन्याओंसे भी विवाह करने पर न वर्णसंकरता हुई और न अन्य ही कोई बिगाड़ पैदा हुआ। भरत महाराजने ऐसा करने पर भी दीक्षा ली और वे उस ही भवसे मोक्ष गये। इससे स्पष्ट सिद्ध है कि धर्मके वास्ते मनुष्य मात्र समान हैं, इनमें कोई किसी प्रकारका भेद नहीं है। भरत महाराजने जो ३२ हजार म्लेच्छकन्याओंसे विवाह किया था, उनकी बाबत यह कहीं नहीं लिखा कि वे सबकी सब बन्धायें थीं। इस कारण ३२ हजार म्लेच्छ रानियोंसे सन्तान भी जरूर हुई होगी और यदि भरत महाराजके न हुई हो तो अन्य चक्रवर्तियों या अर्धचक्रवर्तियोंके अवश्य हुई होगी। यदि इन म्लेच्छकन्याओंकी संतान क्षत्री न मानी जाती तो साफ तौर पर ऐसा नियम शास्त्रमें जाहिर किया जाता, परन्तु किसी भी ग्रन्थमें ऐसा वर्णन नहीं है। इससे सिद्ध है कि उन म्लेच्छकन्याओंकी सन्तान क्षत्री ही हुई, जिसने और जिसकी आगामी सन्तानने अवश्य दीक्षा भी ली होगी और उनमेंसे अनेक मोक्ष भी गये होंगे।

भरतमहाराजने चौथा वर्ण ब्राह्मणका बनाया। आदिपुराण और पद्मपुराणके पढ़नेसे मालूम होता है कि क्षत्री, वैश्य और शूद्र इन तीनों ही वर्णोंसे ब्राह्मण बनाये गये; न कि किसी विशेष वर्णमेंसे। क्योंकि जब भरतको अणुव्रती श्रावकोंको दान देनेका विचार हुआ और उन्होंने इनकी परीक्षाके वास्ते लोगोंको बुलाया, तब यह नहीं लिखा कि अमुक वर्ण या जातिवालोंको बुलाया। इससे विदित है कि सब ही वर्णवालोंको बुलाया और होना भी चाहिए था ऐसा ही। क्योंकि अणुव्रती श्रावक तो सब ही हो सकते हैं, बल्कि आदिपुराणमें तो शूद्रोंके बुलानेका खास वर्णन है। उसमें लिखा है किजब भरतजीने यह विचार किया कि अणुव्रती गृहस्थोंको दान देना चाहिए, तब उन्होंने समस्त राजाओंको बुलाया और कहला भेजा कि तुम और तुम्हारे सदाचारी इष्टमित्र और नौकर चाकर सब अलग अलग आवें। यथाः—

अणुव्रतधरा धीरा धोरेया गृहमेधिनां ।
तर्पणीया हि तेऽस्माभिरीप्सितैर्वसुवाहनैः ॥८॥

इति निश्चित्य राजेंद्रःसत्कर्तुमुचितानिमान् ।
परीचिक्षिषुराह्वस्त तदा सर्वान्महीभुजः ॥ ९ ॥

सदाचारैर्निजैरिष्टैरनुजीविभिरन्विताः ।
अद्यास्मदुत्सवे यूयमायातेति पृथक् पृथक् ॥१०॥

—आदिपुराण, पर्व ३८।

उक्त श्लोकोंका यह वाक्य कि सदाचारी नौकर-चाकर भी अलग अलग आवें, इस बातको स्पष्ट बताता है कि शूद्र भी बुलाये गये थे और उनमेंसे भी ब्राह्मण बनाये गये थे। इस प्रकार बुलाये हुए लोगोंमेंसे भरत महाराजने जिनको अणुव्रती समझा उनमेंसे जो पहली प्रतिमाके योग्य थे, उनको एक, और जो दूसरी प्रतिमाके योग्य थे उनको दो, इसप्रकार ग्यारह जनेऊ तक दिये। यथाः—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तेषां कृतानि चिह्नानि सूत्रैः पद्माह्वयान्निधेः ।
उपात्तैर्ब्रह्मसूत्राह्वैरेकाद्येकादशान्तकैः ॥ २१ ॥
गुणभूमिकृताद्भेदात्कॢप्तयज्ञोपवीतिनाम् ।
सत्कारः क्रियतेस्मैषामव्रताश्च बहिःकृताः ॥ २२ ॥
आदिपुराण, पर्व ३८ ।

इन श्लोकोंके अनुसार जब भरत महाराजने पहली प्रतिमावालेको भी ब्राह्मण समझ लिया, तब यह हो नहीं सकता कि शूद्र न बुलाये गये हों और उनमेंसे भी ब्राह्मण न बनाये गये हों; क्योंकि शूद्रोंको पहली प्रतिमाके भी योग्य न समझना जैनधर्मको ही न माननेके समान है ।

ऊपर उद्धृत किये गये आदिपुराण पर्व ३८ के श्लोक ८-९ से स्पष्ट विदित है कि महाराज भरतने समस्त ही राजाओंको और उनके इष्ट मित्रोंको बुलाया था; परन्तु भगवानके श्रेयान्, अकम्पन, बाहुबलि आदि एक सौ बेटे, जयकुमार और उसके भाई, चक्रवर्तीके बेटे, तथा और भी-जिन जिन क्षत्रियोंका वर्णन आदि पुराणमें आया है और जो ऐसे ऊँचे दर्जेके धर्मात्मा थे कि उनमेंसे करीब करीब सबहीने दीक्षा ली और इनमेंसे बहुतसे उसी भवमें मोक्ष गये-ब्राह्मण नहीं हुए वे सब क्षत्री ही रहे । कारण इसका यह ही मालूम होता है कि भरतमहाराजने ब्राह्मण बनानेका यह सारा आडम्बर दान देनेके वास्ते ही किया था, जैसा कि ऊपर उद्धृत किये हुए पर्व ३८ के श्लोक ८ में लिखा है कि इनको धन सवारी आदिक देकर संतुष्ट करना चाहिए और पद्मपुराणमें लिखा है कि भरतने उनको वस्त्राभरण दिये । भरतने स्वयं ही इनको दान नहीं दिया है; बल्कि आगेके वास्ते सबहीको यह उपदेश दिया है कि इनको अवश्य दान देना चाहिए ।

प्रदानार्हत्वमस्येष्टं पात्रत्वं गुणगौरवात् ।
गुणाधिको हि लोकेऽस्मिन्पूज्यः स्याल्लोकपूजितैः॥१८५
—आदिपुराण, पर्व ४० ।

ऐसी दशामें ब्राह्मण बनना उनही लोगोंने पसन्द किया होगा, जिन्होंने उस समय भी और भविष्यतमें भी सन्तान प्रतिसन्तान दान लेना पसन्द किया होगा । अर्थात् धनी-मानी, सेठ-साहूकार और राजा-महाराजा लोग ब्राह्मण नहीं बने होंगे; बल्कि धनहीन धर्मात्मा ही ब्राह्मण बने होंगे; अर्थात् बहुत करके अणुव्रती शूद्रोंने ही ब्राह्मण बनाना स्वीकार किया होगा ।

ब्राह्मण बहुत करके शूद्रोंसे ही बनाये गये, यह बात आदिपुराणके उस कथनसे भी सिद्ध है, जहाँ भरतने अपने बनाये हुए ब्राह्मणोंको समझाया है कि "यदि कोई मनुष्य अपने उच्च वर्णके घमंडमें तुमसे कहे कि क्या तू अमुकका बेटा नहीं है, क्या तेरी मा अमुककी बेटी नहीं है, तेरी जाति वह ही है जो पहले थी और तेरा कुल वही है जो पहले था और तू भी वह ही है जो पहले था; तब फिर तू अपनेको बड़ा क्यों मानता है ?-तो" यथा—

अथ जातिमदावेशात्कश्चिदेनं द्विजब्रुवः ।
ब्रूयादेवं किमद्यैव देवभूयं गतो भवान् ॥ १०८ ॥
त्वमामुष्यायणः किं न किन्तेऽम्बाऽमुष्यपुत्रिका ।
येनैवमुन्नतो भूत्वा यास्यसत्कृत्य मद्विधान् ॥ १०९ ॥
जातिः सैव कुलं तच्च सोऽसि योऽसि प्रगेतनः ।
तथापि देवतात्मानमात्मानं मन्यते भवान् ॥ ११० ॥
—आदिपुराण; पर्व ३९ ।

इस कथनसे स्पष्ट सिद्ध है कि बहुत करके शूद्रोंमेंसे ही ब्राह्मण बनाये गये । यदि क्षत्री या वैश्य दोनों उच्च वर्णोंसे ही ब्राह्मण बनाये जाते, तो कौन ऐसा आक्षेप कर सकता था और भरत महाराज क्यों ऐसी संभावना करते । भरत महाराजने ऐसे आक्षेपकी संभावना करके जो उत्तर ब्राह्मणोंको सिखाया है उससे भी यही सिद्ध होता है कि बहुत करके शूद्रोंमेंसे ही ब्राह्मण बनाये गये हैं । क्यों कि यदि शूद्रोंमेंसे ही ब्राह्मण न बनाये गये होते, तो उपर्युक्त आक्षेपका-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सीधा जवाब यह था कि हमारा वर्ण ब्राह्मण बननेसे पहले क्षत्री या वैश्य था, इस कारण हम पहले भी उच्च वर्णके थे और अब भी हैं; हम न पहले घटिया थे, न अब हैं। परन्तु भरतने उनको यह उत्तर न बताकर यह उत्तर सिखाया है कि जिनेंद्रदेव ही हमारा पिता और ज्ञान ही हमारा निर्मल गर्भ है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्ररूपी संस्कारजन्मसे हम पैदा हुए हैं, अर्थात् हम बिना योनिके पैदा हुए हैं, इस वास्ते देव हैं। हमारे समान जो कोई भी हों उनको देव ब्राह्मण समझना चाहिए। यथा—

श्रूयतां भो द्विजंमन्य त्वयाऽस्मद्दिव्यसंभवः।
जिनो जनयितास्माकं ज्ञानं गर्भोऽतिनिर्मलः ॥ ११४॥
तत्रार्हतीं त्रिधा भिन्नां शक्तिं त्रैगुण्यसंश्रितां।
स्वसात्कृत्य समुद्भूता वयं संस्कारजन्मना ॥ ११५॥
अयोनिसंभवास्तेन देवा एव न मानुषाः।
वयं वयमिवान्येऽपि संति चेद् ब्रूहि तद्विधान् ॥११६॥

—आदिपुराण, पर्व ३९।

आदिपुराणके उपर्युक्त कथनसे केवल यह ही सिद्ध नहीं हुआ कि शूद्रोंसे ही बहुत करके ब्राह्मण बनाये गये थे, बल्कि इससे स्पष्ट शब्दोंमें यह भी मालूम होता है कि धर्मका वर्णसे या जन्मसे कोई सम्बन्ध नहीं है। कोई आदमी किसी भी वर्ण या किसी भी जातिका हो, वह यदि जिनेन्द्र भगवानका उपदेश हुआ किया जैनधर्म स्वीकार करता है, तो वह ही बड़ा है। ' हम बिना योनिके पैदा हुए हैं " ये शब्द जन्मकी बड़ाई छुटाईको बिलकुल रद्द कर देते हैं और यही शिक्षा देते हैं कि जो जैसा करेगा, वह वैसा माना जावेगा। इसहीकी पुष्टिमें भरत महाराज अपने बनाये हुए ब्राह्मणोंको समझाते हुए कहते हैं कि ' जातिवादका अभिमान दूर करनेके वास्ते उत्तम क्रियाओंको करनेवाले ब्राह्मणोंको मैं और भी समझाता हूँ कि जो ब्रह्म-की सन्तान हो उसे ब्राह्मण कहते हैं, और भगवान् जिनेंद्रदेव ही ब्रह्मा है। क्योंकि वे ही सम्यग्दर्शन आदि आत्माको गुणोंके बढ़ानेवाले हैं।

भूयोपि संप्रवक्ष्यामि ब्राह्मणान् सत्क्रियोचितान्।
जातिवादावलेपस्य निरासार्थमतःपरं ॥ १२६ ॥
ब्रह्मणोऽपत्यमित्येवं ब्राह्मणाः समुदाहृताः।
ब्रह्मा स्वयंभूर्भगवान्परमेष्ठी जिनोत्तमः ॥ १२७ ॥
सह्यादिपरमब्रह्मा जिनेंद्रो गुणबृंहणात्।
परं ब्रह्म यदायत्तमामनंति मुनीश्वराः ॥ १२८ ॥

—आदिपुराण, पर्व ३९।

इस कथनका अभिप्राय दूसरे शब्दोंमें यह है कि " जात पाँत जाने ना कोय, हरको भजे सो हरका होय। " अर्थात् चाहे कोई आर्य हो या म्लेच्छ, द्विज हो या शूद्र, जो कोई भी जिनेन्द्रदेवके धर्म पर चलता है, वही देव ब्राह्मण हो जाता है। इसी प्रकार भरत महाराज ब्राह्मणोंको समझाते हुए कहते हैं कि जिन्होंने जिनेंद्रदेवके ज्ञानरूपी गर्भसे जन्म धारण किया है, वे ही द्विज हैं और ऐसे द्विजोंको अन्तःपाती अर्थात् वर्णसे गिरा हुआ नहीं कहना चाहिए। यथा—

दिव्यमूर्तेर्जिनेंद्रस्य ज्ञानगर्भादनाविलात्।
समासादितजन्मानो द्विजन्मानस्ततो मताः ॥ १३०॥
वर्णान्तःपातिनो नैते मंतव्या द्विजसत्तमाः।
व्रतमंत्रादिसंस्कारसमारोपितगौरवाः ॥१३१॥

—आदिपुराण, पर्व ३९।

इस बातको और भी स्पष्ट करनेके वास्ते श्लोक १३२ में खोलकर ही कह दिया है कि जिसके आचरण उत्तम हैं उसहीका वर्ण उत्तम है:—

वर्णोत्तमानिमान् विद्मः क्षांतिशौचपरायणान्।
संतुष्टान् प्राप्तवैशिष्ट्यान् क्लिष्टाचारभूषणान् ॥ १३२ ॥

—आदिपुराण, पर्व ३९।

इस बातको और भी ज्यादा खोलनेके लिए कहा है कि शुद्धि और अशुद्धि न्यायरूप वृत्तिसे माननी चाहिए, अर्थात् जो न्यायरूप चलता है वह शुद्ध है और जो अन्यायरूप प्रवर्तता है वह अशुद्ध है; दयारूप कोमल वृत्तिको न्याय कहते हैं, और जीवोंकी हिंसाको अन्याय कहते हैं।—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तच्छुद्ध्यशुद्धी बोद्धव्ये न्यायान्यायप्रवृत्तितः ।
न्यायो दयार्द्रवृत्तित्वमन्यायः प्राणिमारणं ॥१४१॥
—आदिपुराण, पर्व ३९ ।

इस श्लोकसे विदित है कि जो हिंसा करता है वह अन्याय करता है और अन्याय करनेवाला ही अशुद्ध है; और जो दया करता है;वह न्यायवान् है और जो न्यायवान् है वह शुद्ध है। अर्थात् दया करनेवाला या अहिंसा धर्मको पालनेवाला ही शुद्ध है। अभिप्राय यह कि शुद्धि और अशुद्धि किसी वर्ण या जाति पर अवलम्बित नहीं है, बल्कि मनुष्यके आचरणों पर है। इस विषयको बिलकुल ही साफ खोल देनेके वास्ते अगले श्लोकमें लिखा है कि सभी जैनधर्मावलम्बी शुद्ध वृत्तिवाले होनेसे, अर्थात् अहिंसामय धर्मके पालनेसे उत्तमवर्णवाले हैं और द्विज हैं, वे किसी तरह भी वर्णान्तःपाती अर्थात् वर्णसे गिरे हुए नहीं हैं, बल्कि दया पालनेसे जगमान्य हैं।

विशुद्धवृत्तयस्तस्माज्जैना वर्णोत्तमा द्विजाः ।
वर्णान्तःपातिनो नैते जगन्मान्या इति स्थितम् १४२
—आदिपुराण, पर्व ३९ ।

जैनी वर्णान्तःपाती नहीं हैं, इसका अर्थ कोई कोई विद्वान् ऐसा भी करते हैं कि "जैनधर्ममें ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्रका भेद ही नहीं है। अहिंसा धर्म पालनेके कारण सबही जैन उत्तम और श्रेष्ठ माने जाते हैं।" कुछ भी अर्थ हो; परन्तु इससे यह बात स्पष्ट है कि धर्मका वर्णसे कोई सम्बंध नहीं है। वर्ण पेशेके वास्ते है और धर्म मनुष्य मात्रके वास्ते है। इस बातको आदिपुराणके निम्न लिखित श्लोकमें स्पष्ट शब्दों द्वारा कहा है कि—जाति नाम कर्मके उदयसे उत्पन्न हुई मनुष्यजाति एक ही है, अर्थात् समान है; परन्तु पेशेके भेदसे वह चार प्रकारकी कही जाती है:—

मनुष्यजातिरेकैव जातिनामोदयोद्भवा ।
वृत्तिभेदाहिताद्भेदाच्चातुर्विध्यमिहाश्नुते ॥ ४५ ॥
—आदिपुराण, पर्व ३८ ।

आदिपुराणमें तीन प्रकारकी क्रियाओंको वर्णन करते हुए एक दीक्षान्वय क्रियाका वर्णन किया है, जो उन लोगोंके वास्ते है, जो पहले अजैन हों और अब जैन बनते हों। इस दीक्षान्वयक्रियामें ४८ क्रियायें हैं, जिनमें सबसे पहली अवतारक्रिया है। इसके विषयमें लिखा है कि जब मिथ्यादृष्टि पुरुष श्रेष्ठ जैनधर्मको ग्रहण करनेके सन्मुख होता है, तब यह क्रिया की जाती है:—

तत्रावतारसंज्ञा स्यादाद्या दीक्षान्वयक्रिया ।
मिथ्यात्वदूषिते भव्ये सन्मार्गग्रहणोन्मुखे ॥ १ ॥
—आदिपुराण, पर्व ३८ ।

इस दीक्षान्वयक्रियामें १८ वीं क्रिया क्षुल्लक बनना है और १९ वीं क्रिया दिगम्बर मुनि बनना है—

त्यक्तागारस्य तस्यातस्तपोवनमुपेयुषः ।
एकशाटकधारित्वं प्राग्वद्दीक्षाद्यमिष्यते ॥ ७७ ॥
ततोऽस्य जिनरूपत्वमिष्यते त्यक्तवाससः ।
धारणं जातरूपस्य युक्ताचाराद्गणेशिनः ॥ ७८ ॥
—आदिपुराण, पर्व ३९ ।

इससे विदित है कि अन्यमती भी जैन धर्मको ग्रहण करके दिगम्बर मुनि तक हो सकता है। इस दीक्षान्वयक्रियामें कहीं भी यह नहीं लिखा है कि वह अन्यमती कौन वर्णका हो, जिसका अर्थ यही होता है कि वह चाहे किसी भी वर्णका हो। यदि किसी विशेष वर्णवालेको ही दीक्षान्वयक्रिया करनेका अधिकार होता, तो अवश्य इसका वर्णन स्पष्ट शब्दोंमें होता। अन्यमतवालोंमें भी वर्णव्यवस्था मानी जाय या नहीं और यदि मानी जाय तो किस प्रकार? इसके उत्तरमें यदि यह कहा जाय कि वे भी ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र इस प्रकार चार ही वर्णोंमें विभाजित हैं, इस कारण उनमें भी वर्णव्यवस्था माननी चाहिए और उत्तम या नीच जो कुछ उनका वर्ण प्रसिद्ध है उसे ही मानना चाहिए; तब तो हमारा सिद्धान्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बिलकुल ही मान्य हो जाता है । क्योंकि ऐसा माननेसे यह सिद्ध हो गया कि अधर्मका श्रद्धान रखते हुए भी, और अधर्म क्रिया करते हुए भी— यहाँ तक कि मांसादिभक्षण करते हुए भी और जैनधर्मसे पूर्ण विरोध रखते हुए भी, मनुष्य ब्राह्मण क्षत्री वैश्य अर्थात् उच्च वर्णका बना रहेगा; चाहे ऐसा आचरण करते हुए उसकी सैकड़ों पीढ़ियाँ बीत गई हों । और अहिंसाधर्मको पालता हुआ एक धर्मात्मा जैन भी नीच शूद्र ही बना रहेगा, चाहे इस उत्तम धर्मको पालते हुए उसकी सैकड़ों पीढ़ियाँ बीत गई हों । अर्थात् धर्मसे वर्णभेदका कोई सम्बन्ध नहीं है । और यदि यह कहा जावे कि विधर्मियोंका कोई वर्ण ही नहीं मानना चाहिए, या हिंसादि करने और मांसादि भक्षण करनेसे उनका नीच वर्ण मानना चाहिए, तब भी हमारा सिद्धान्त सिद्ध होता है । क्यों कि दीक्षान्वय क्रियामें विधर्मियोंको जैन बनाकर दिगम्बर मुनि तक पहुँचाया है, अर्थात् कोई नीच वर्णका हो, या उच्चका और चाहे किसीका कोई भी वर्ण न हो; परन्तु जैनधर्मका द्वार सबके वास्ते खुला हुआ है और वे इस उदार धर्मको पाल सकते हैं ।

इस दीक्षान्वयक्रियामें १३ वीं क्रिया वर्णलाभक्रिया है । उसमें लिखा है कि प्रथमकी १२ क्रियायें हो चुकने पर वह नवीन जैन मुखिया श्रावकोंको बुलाकर उनसे प्रार्थना करे कि आप लोगोंको मुझे अपने समान बनाकर मेरा उपकार करना चाहिए । मैंने जैनधर्म अंगीकार करके श्रावकके व्रत लिये हैं । गृहस्थोंके जो धर्म हैं, वे सब मैंने धारण किये हैं और चिरकालसे पालन किये हुए मिथ्यात्वको छोड़कर सम्यक्चारित्र स्वीकार किया है, अर्थात् बिना योनिसे उत्पन्न हुआ जन्म धारण किया है । व्रतोंकी सिद्धिके वास्ते मैंने यज्ञोपवीत लिया है । इस कारण अब मुझको वर्णलाभ होना चाहिए । इसके उत्तरमें वे जैन पंच उसको अपने समान कर लेवें । यथाः—

चतुरः श्रावकज्येष्ठानाहूय कृतसत्क्रियान् ।
तान्ब्रूयादस्म्यनुग्राह्यो भवद्भिः स्वसमीकृतः ॥ ६२ ॥
यूयं निस्तारका देवब्राह्मणा लोकपूजिताः ।
अहं च कृतदीक्षोऽस्मि गृहीतोपासकव्रतः ॥ ६३ ॥
मया तु चरितो धर्मः पुष्कलो गृहमेधिनां ।
दत्तान्यपि च दानानि कृतं च गुरुपूजनं ॥ ६४ ॥
अयोनिसंभवं जन्म लब्ध्वाऽहं गुर्वनुग्रहात् ।
चिरभावितमुत्सृज्य प्राप्तो वृत्तमभावितं ॥ ६५ ॥
व्रतसिद्ध्यर्थमेवाहमुपनीतोऽस्मि सांप्रतं ।
कृतविद्यश्च जातोऽस्मि स्वधीतोपासकव्रतः ॥ ६६ ॥
एवं कृतव्रतस्याद्य वर्णलाभो ममोचितः ।
सुलभः सोऽपि युष्माकमनुज्ञानात्सधर्मणां ॥ ६८ ॥
इत्युक्तैनं समाश्वास्य वर्णलाभेन युंजते ।
विधिवत्सोऽपि तं लब्ध्वा याति तत्समकक्षतां ॥ ७१ ॥
—आदिपुराण, पर्व ३९ ।

वर्णलाभके इस कथनसे प्रत्यक्ष है कि अन्यमती वर्णलाभसे पहले ही धर्मग्रहण कर सकता है, यज्ञोपवीत धारण कर सकता है, और सद्गृहस्थके योग्य पूजादि सब क्रियायें कर सकता है । अर्थात् धर्मका वर्णसे कोई सम्बन्ध नहीं है । वर्णका सम्बन्ध केवल पेशेसे या आपसके सांसारिक व्यवहारसे है ।

इस प्रकार अनेक हेतुओंसे यह बात सिद्ध हो जाने पर कि धर्म प्राणिमात्रके वास्ते है; और इसके धारण करनेमें किसीको कोई रोकटोक नहीं है; परीक्षाप्रधानीको उचित है कि वह इस उदार सिद्धान्तसे विरुद्ध जो कोई कथन या हेतु मिलें उन सबकी जाँच करे और उक्त हेतुओंसे उनकी तुलना करे; फिर जो कुछ सत्य प्रतीत हो उसका ग्रहण करे ।

वर्ण और जातिका रोटी-बेटी-व्यवहारसे सम्बन्ध ।

इससे पहले इसहीं लेखमें हमने आदिपुराणके १६ वें पर्व का एक श्लोक (२४७) उद्धृत किया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है, जिसमें लिखा है कि ब्राह्मण चारों वर्णकी कन्याओंसे विवाह कर सकता है, ब्राह्मण-कन्याके सिवाय अन्य तीन वर्णोंकी कन्याओंसे क्षत्री विवाह कर सकता है, वैश्य और शूद्रकी कन्याओंसे वैश्य विवाह कर सकता है और शूद्र शूद्रकन्यासे ही विवाह कर सकता है। भावार्थ इस-का यह है कि सभी वर्ण अपनेसे नीच वर्णकी कन्यासे तो विवाह कर लें; परन्तु अपनेसे नीच वर्णको अपनी कन्या न देवें। इस श्लोकमें जब ब्राह्मण, क्षत्री, और वैश्य इन तीनों ही उच्च वर्ण-वालोंको शूद्रकी कन्यासे भी विवाह करनेकी आज्ञा है, तब इस बातका तो प्रश्न ही नहीं उठ सकता कि इन चारों वर्णोंमें खानपानका कुछ भेद है। विवाहके इस नियमने खानपान तो चारों वर्णोंका एक कर ही दिया, और भरतमहाराजने ३२ हजार म्लेच्छकन्याओंसे विवाह करके आर्य और म्लेच्छोंके खानपानको भी एक कर दिया और आर्योंके लिए म्लेच्छकन्याओंसे विवाह करनेका भी द्वार खोल दिया। हाँ, विवाहके मामलेमें इतना प्रश्न अवश्य रह गया कि उच्च वर्णकी कन्या नीच वर्णके पुरुषसे ब्याही जानेकी मनाही क्यों? परन्तु उत्तर इसका बहुत सहज है। क्यों कि जिन भाइयोंने कथाग्रन्थोंको पढ़ा है, उनको मालूम होगा कि पहले समयमें जो राजा किसी राजाके अधीन या उस राजासे पराजित होते थे, वे भेंटस्वरूप अपनी कन्या विजयी राजाको देते थे। उस समयमें बहादुरीकी यही पहचान थी कि वह अमुक अमुक देशसे इतनी इतनी कन्या विवाह कर लाया। यही कारण है कि सार्वभौम राजाके यहाँ ९६ हजारतक रानियाँ हो जाती थीं। उस समयमें सब कोई अपनी कन्याको अपनेसे बड़ेको ही देना चाहता था। अपनेसे घटियाको कन्या देकर उसके आधीन होना कोई भी पसन्द नहीं करता था। हिन्दु-स्तानके इसी रिवाजको लेकर दिल्लीके अकबर बादशाहने राजपूतोंकी कन्याओंको लिया, परन्तु उनको अपनी कन्यायें नहीं दीं। यहाँ तक कि अकबर और उसके बेटे जहाँगीर और पोते शाह-जहाँकी सब कन्यायें सारी उमर बिना ब्याही ही रहीं। अपनी कन्या अपनेसे उच्चकुलवालेको ही देनी चाहिए, इसी खयालसे अब भी बंगालके कुलीन ब्राह्मणोंके बीसों विवाह हो जाते हैं और कन्यावाले अपना घरबार बेचकर उनको हजारों रुपया भेटस्वरूप देते हैं, जिससे वह कुलीन उनकी कन्याको स्वीकार कर ले। फल इस सब कथनका यह है कि जिस प्रकार उच्चवर्णवाला अपनेसे नीच वर्णोंकी कन्याओंको ले सकता है इसी प्रकार देनेमें भी कोई वास्तविक दोष तो है नहीं; हाँ, जबतक यह रिवाज प्रचलित है कि बेटी देनेवाला अधीन और लेनेवाला अफसर समझा जाता है उस समय तक कोई ऐसेको अपनी बेटी न दे जिसके अधीन वह न बनना चाहता हो और जब यह रिवाज न रहे और बेटी देनेवाला और लेनेवाला दोनों ही बराबर समझे जाने लगें जैसा कि आजकल होता जाता है, तो फिर किसी बातका खटका ही नहीं; जहाँ वर कन्या-की योग्यता मिली वहीं विवाह कर दिया।

हिन्दुस्तानमें जब वर्णव्यवस्था जोरों पर थी और जब राज्यकी तरफसे भी इसकी देख-भाल थी, तब घटिया वर्णवालेको उससे उच्च वर्णवालों पर अफ़सर नहीं बनाया जाता था और उच्च वर्णवाला अपनेसे घटिया वर्णवालेके अधीन रहना कभी मंजूर नहीं करता था। उस समय विवाहके वास्ते भी यह नियम उचित ही था कि उच्च वर्णवाला अपनेसे घटिया वर्णवा-लेको कन्या न दे; परन्तु आज कल तो घटिया वर्णके थानेदार, तहसीलदार, डिपुटी, आदि अनेक हाकिम हैं, जिनके अधीन ब्राह्मण क्षत्री आदिक अनेक उच्च जातिके लोग काम कर रहे हैं और जिनको अनेक उच्च जातिके लोग स-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लाभ करना अपना अहो भाग्य समझते हैं। ऐसी अवस्थामें यदि उच्च वर्णवाले अधीन पुरुषकी कन्याको घटिया वर्णवाला उसका अफ़सर स्वीकार कर ले तो कन्यावालेको अपना अहो भाग्य ही समझना चाहिए। दृष्टान्तरूप एक ब्राह्मण जो किसी करोड़पति सेठके यहाँ रोटी पकाने या पानी पिलाने आदिक किसी सेवाके कामपर नौकर है और रात दिन सेठजी और सेठानीजी और उनके बड़े नौकरोंके झिड़के खाने और उनकी अनेक प्रकारकी सेवा शुश्रूषा करनेको अपना अहो भाग्य समझ रहा है, उस ब्राह्मणकी कन्याको यदि सेठका पुत्र स्वीकार कर ले तो यह ही समझना सत्य है कि उस ब्राह्मणने अपनी कन्या अपनेसे बढ़ियाको ही दी।

विस्तारभयसे हम अपने लेखको यहीं पर समाप्त करते हैं और 'वर्ण और जातिका पेशेसे सम्बन्ध' और 'वर्ण और जातिका जन्म और कर्मसे सम्बन्ध' ये दोनों विषय एक स्वतंत्र लेखके वास्ते छोड़ते हैं, परन्तु यहाँपर इतना कह देना जरूरी समझते हैं कि चौथे कालमें बीच बीचमें बहुत बहुत दिनोंतक धर्मका बिलकुल अभाव होता रहा है। उत्तरपुराणमें लिखा है कि श्रीशीतलनाथ भगवानके जन्मके एक पूर्व कम पाव पल्य पहलेसे और श्रीश्रेयांसनाथ भगवानके जन्मके अस्सी लाख वर्ष कम आधे पल्य पहलेसे और श्रीवासुपूज्य भगवानके जन्मके ७२ लाख वर्ष कम पौन पल्य पहलेसे धर्ममार्ग बन्द हो गया था। इतने इतने लम्बे समयके वास्ते धर्ममार्ग बन्द रहनेकी अवस्थामें यह कभी सम्भव नहीं हो सकता है कि वह वर्णव्यवस्था कायम रही हो, जिसकी रक्षाके वास्ते भगवान आदिनाथको राज्यका पहरा बिठाना पड़ा था। इन अंतरालके समयोंमें तो अवश्य घोर अन्धकार और पूर्ण गड़बड़ हो गई होगी और कमसे कम जन्मसे तो वर्णव्यवस्था कदाचित् भी न रही होगी। इस कारण यह कदाचित् भी नहीं कहा जा सकता कि आदिनाथ भगवान् या भरत महाराजने जो वर्ण बनाये थे उनहीकी सन्तानसे अबतक ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र चले आते हैं। अर्थात् जो अब ब्राह्मण हैं वे उन्ही ब्राह्मणोंकी सन्तान हैं जिनको भरत महाराजने ब्राह्मण बनाया था और इस समयके क्षत्री उन्ही पुरुषोंकी औलाद हैं जिनको आदिनाथ भगवानने क्षत्री बनाया था। इस पंचम कालमें जब धर्मका सर्वथा अभाव नहीं हुआ है; फिर भी इतनी गड़बड़ अवश्य हो गई है कि ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र भी पुलिसके सिपाही बनकर या फौजमें भरती होकर क्षत्रीका काम करने लगे हैं, ब्राह्मण क्षत्री और शूद्र खेती, पशुपालन और दूकानदारीका काम करके वैश्यका पेशा करने लगे हैं, ब्राह्मण क्षत्री वैश्य शिल्पकारी और सेवा करके शूद्रका काम करने लगे हैं, और क्षत्री वैश्य और शूद्र पढ़ने पढ़ाने और उपदेश आदिकका कार्य करके ब्राह्मणका पेशा करने लगे हैं। इस कालमें राजाओंने वर्णोंकी रक्षा करनी छोड़ दी है और मनुष्यमात्रको चारों वर्णोंका पेशा करनेकी स्वतंत्रता दे दी है। इस कारण वर्तमान समयमें पूर्णरूपसे वर्णसंकरता हो गई है और केवल वर्णसंकरता ही नहीं हुई है, बल्कि वर्णपरिवर्तन भी होगया है जैसा कि अग्रवाल–जो राजा उग्रसेनकी सन्तान कहलाते हैं–अब क्षत्रीसे वैश्य होगये हैं। अतः जब कि धर्ममार्गका सर्वथा अभाव न होने पर भी और तीर्थंकर भगवानके होनेको केवल ढाई हजार वर्ष बीतने पर भी इतना उलट-पलट होगया है तब श्रीशीतलनाथ आदि तीर्थंकरोंके जन्मसे पहले अर्बों और संखों वर्षोंसे भी ज्यादा समयतक धर्मका सर्वथा अभाव रहनेकी अवस्थामें क्या कुछ उलट पलट नहीं हुआ होगा? इस कारण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस समयके ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्रोंको आदिनाथ भगवानके समयके ब्राह्मण क्षत्री वैश्य और शूद्रोंकी सन्तान समझना बिलकुल ही जबर्दस्ती और सत्यताके विरुद्ध है। श्रीआदिनाथ भगवानने भरत महाराजके स्वप्नोंका फल बतलाते हुए क्षत्रियोंकी बाबत तो स्पष्ट शब्दोंहीमें कह दिया है कि पंचमकालमें प्राचीन क्षत्रियोंके वंशका नाश हो जायगा। अर्थात् प्राचीन क्षत्रियोंकी संतानमें कोई न रहेगा। यथा—

करींद्रकंधरारूढशाखामृगविलोकनात्।
आदिक्षत्रान्वयोच्छित्तौ क्ष्मां पास्यंत्यकुलीनकाः॥६९॥
—आदिपुराण, पर्व ४१।

इससे स्पष्ट है कि इस समय जो क्षत्री हैं वे उन क्षत्रियोंकी सन्तान नहीं हैं, जिनको आदिनाथ भगवानने बनाया था। ऐसा ही अन्य वर्णोंके विषयमें भी समझ लेना चाहिए।

धर्मके सम्बन्धमें तो श्रीआदिनाथ भगवानने कहा ही है कि पञ्चम कालमें ब्राह्मणलोग धर्मके विरोधी हो जायँगे, हिंसा करने और मांस खानेको अच्छा समझेंगे, और हिंसामय धर्मका प्रचार करेंगे। यथा:—

ततः कलियुगेऽभ्यर्णे जातिवादावलेपतः।
भ्रष्टाचारः प्रपत्स्यंते सन्मार्गप्रत्यनीकताम्॥ ४७॥
सत्वोपघातनिरता मधुमांसाशनप्रियाः।
प्रवृत्तिलक्षणं धर्मं घोषयिष्यंत्यधार्मिकाः॥ ५१॥
आदिपुराण, पर्व ४१।

ब्राह्मणोंकी तो पंचम कालमें यह दशा हुई, रहे क्षत्री, सो वे आजकल लगभग सभी मांसाहारी हैं। इस प्रकार जब सबसे उत्तम वर्णोंका यह हाल है, तब धर्मका आधार घटिया लोगों पर ही रह गया। ऐसा ही श्रीआदिनाथ भगवानने भरतके स्वप्नोंका फल बताते हुए कहा है कि जैनधर्म आर्यक्षेत्रमें न रहकर म्लेच्छ आदि आसपासके देशवासियोंहीमें रहेगा। यथा—

शुष्कमध्यतडागस्य पर्यंतेऽवुस्थितीक्षणात्।
प्रच्युत्यार्यनिवासात्स्याद्धर्मः प्रत्यंतवासिषु॥ १२॥
आदिपुराण, पर्व ४१।

अतः जब श्रीभगवानका ही ऐसा वाक्य है तब धर्मकी बाबत तो इस बातके कहनेका किसीको अधिकार ही नहीं है कि जो लोग घटिया वर्णके हैं या म्लेच्छ कहे जाते हैं वे अमुक धर्म नहीं पाल सकते, या अमुक धर्मक्रिया नहीं कर सकते हैं। हाँ, यदि वे लोग आर्यक्षेत्रके उत्तम वर्णवालों पर यह आक्षेप करने लगें कि आदिनाथ भगवानके वचनानुसार तुम सर्वथा ही धर्मपालन नहीं कर सकते, या मुनि आदिका उत्कृष्ट धर्म पालन नहीं कर सकते, तो शायद कुछ ठिकानेकी बात भी हो।

अब रहा रोटी और बेटीका सवाल, सो जब कि आदिनाथ भगवानके वाक्यके अनुसार पञ्चम कालमें जो ब्राह्मण कहलायँगे वे जैनधर्मके विरोधी होंगे और जो क्षत्री कहलायँगे वे उन लोगोंकी सन्तानसे नहीं होंगे, जिनको आदिनाथ भगवानने क्षत्री बनाया था; तब वैश्य और शूद्र बेचारोंकी तो कहाँ खैर है! वे भी अनेक कारणोंसे जिनका वर्णन ऊपर किया गया है उन लोगोंकी सन्तानसे नहीं होंगे, जिनको आदिनाथ भगवानने वैश्य और शूद्र बनाया था। तब रोटी और बेटी व्यवहारके वास्ते भी प्राचीन वर्ण और जातिकी दुहाई देना व्यर्थ ही है। इस समय जब कि सभी वर्णके लोग सभी वर्णोंका पेशा करते हैं, अर्थात् जब कि पूर्णरूपसे वर्णसंकरता छा रही है और जब कि लोग पेशा कुछ करते हैं और वर्ण उनका कुछ और कहा जाता है, अर्थात् जब कि वर्णका पेशेसे कुछ सम्बन्ध नहीं रहा है, तब यह बात विचार करनी बहुत ही जरूरी है कि रोटीबेटी व्यवहार किस प्रकार रक्खा जावे। आज कल इस विषयमें जैनजातिका वर्ताव हिंदुस्तानके प्रत्येक प्रान्तमें एक ही प्रकारका नहीं है। क्यों कि इस विषयमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस समय जैन जाति अपने जैनशास्त्रोंके वचनों पर न चल कर हिन्दुओंका अनुकरण कर रही है। जिस जिस प्रान्तमें जो जो रिवाज इस विषयमें हिन्दू लोगोंमें प्रचलित हैं, उनहीं पर उस प्रान्तकी जैन जाति भी चल रही है और उसहीको भगवानकी आज्ञा मानती है। जैन शास्त्रोंमें खेती करनेवाले किसान, पशु पालनेवाले घोसी और दूकानदारी करनेवाले बनिये सब एक वैश्य वर्णमें शामिल किये गये हैं; परन्तु अब हमारे जैन भाई किसानों और घोसियोंको वैश्य वर्णमें नहीं मानते। जैन शास्त्रोंमें हजारों कथायें बड़े बड़े योग्य पुरुषोंकी ऐसी वर्णन की गई हैं जिन्होंने अपनी मामाकी बेटीसे या बुआकी बेटीसे विवाह किया है। ऐसी भी कई कथायें हैं जिनमें दो भाई-बहनोंमेंसे भाईका बेटा बहनकी बेटीसे और बहनका बेटा उसही भाईको बेटीसे व्याहा गया है। परन्तु आज कल हमारे जैन भाई ऐसा करने पर तैयार नहीं हैं। श्रीआदिनाथ भगवानकी स्पष्ट आज्ञा है कि सब कोई अपनेसे नीच वर्णोंकी कन्याओंसे विवाह कर ले; परन्तु आजकल यदि एक वर्णवाला दूसरे वर्णकी कन्यासे विवाह कर ले, तो ऐसा भारी दोष समझा जाता है; जिसका इलाज जातिसे बाहर निकाल देनेके सिवाय और कुछ है ही नहीं। बल्कि आज कल तो एक ही वर्णमें भी विवाह करनेकी इजाजत नहीं है। अग्रवाल, खंडेलवाल आदिक अनेक जातियाँ वैश्यवर्णमें गिनी जाती हैं, परन्तु इनका भी आपसमें विवाह नहीं हो सकता; यदि कोई कर ले तो वह जातिसे बाहर कर दिया जावे। इसही प्रकार ऐसी बहुत बातें हैं जो शास्त्रोंकी आज्ञाके विरुद्ध की जाती हैं और विरुद्ध करना ही धर्म समझा जाता है। रहा खानपानका व्यवहार, सो वह तो बिलकुल ही हिन्दुओंके अनुसार किया जाता है। जिस देशमें हिन्दू लोग कचौरी पूरी आदि पक्का खाना रसोई घरसे बाहर खा लेते हैं, उस देशके जैन भी ऐसा ही करते हैं और जहाँ हिन्दू ऐसा नहीं करते, वहाँ जैन भी नहीं करते। जिस देशमें हिन्दू लोग धीवर, माली, आदि ऐसे लोगोंके हाथका पानी पीते हैं, जिनके हाथकी रोटी नहीं खाते, उस देशके जैनोंको भी उनके हाथका पानी पीनेसे घृणा नहीं है; परन्तु उनके हाथकी रोटी खानेमें घृणा होती है। जिस देशमें हिन्दू लोग बाजारका सिर्फ दूधपेड़ा ही खाते हैं, लड्डू घेवर आदि ऐसी वस्तुयें—जिनमें अन्न पड़ा हो—नहीं खाते, उस देशके जैन भी ऐसा ही करते हैं और दूसरे देशके जैनोंको बाजारकी पूरी कचौरी खाते देखकर हँसते हैं। गुजरातके हिन्दुओंमें आपसमें खानपानकी ज्यादा छूत—छात और पानी या वर्तनके झूठा हो जानेका ज्यादा खयाल नहीं है, वहाँ इस विषयमें बहुत ही ढीले नियम हैं, इस वास्ते वहाँके जैन-भाई भी वैसा ही करते हैं। गरज कहाँ तक कहें, खान पानके विषयमें आज कलके जैनोंका कोई एक सिद्धान्त नहीं है; जो कुछ भी है, वह हिन्दुओंका अनुकरण है।

इस कथनसे सिद्ध हो गया कि हम विवाहके मामलेमें जैनशास्त्रोंके बिलकुल खिलाफ चल रहे हैं और खानपानके मामलेमें अपना कोई सिद्धान्त ही नहीं रखते। बल्कि हिन्दुओंका अनुकरण कर रहे हैं। ऐसी दशामें यदि हमारे सब जैन भाई द्रव्य क्षेत्र काल भावके अनुसार कोई एक सिद्धान्त स्थिर कर लें, तो किसी तरह भी अनुचित न होगा। बल्कि ऐसा करना बहुत ही आवश्यक मालूम होता है; परन्तु यह तभी हो सकता है जब कि सबको अपना अपना विचार प्रगट करनेकी स्वतंत्रता हो और शान्तिके साथ बिना किसी प्रकारकी भड़कके सबके विचारोंकी जाँच की जावे।

———

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सन्तान-सुधार ।

(ले०—बाबू दयाचन्द्रजी गोयलीय, बी. ए. ।)

१ संतानपालन ।

किसी कविने कहा है कि बाँसरीकी आवाज उन्हीं लोगोंको मीठी और सुरीली मालूम होती है, जिनके यहाँ बच्चोंका गुल-गपाड़ा नहीं होता। भला दुनियाँमें कोई भी ऐसी मा या कोई भी ऐसा बाप है कि जो उस खुशीको भूल गया हो जो उसे अपने पहले बच्चेका मुँह देखने या छातीसे लगानेसे हुई थी। बेटा हो या बेटी, उसे ईश्वरकी कृपा और अपना सौभाग्य समझना चाहिए। परन्तु माता पिताको याद रखना चाहिए कि यह नन्हाँसा बच्चा केवल इस लिए उनके हाथोंमें नहीं दिया गया है कि अवकाशके समय उनके मनोरंजनका कारण हो, उससे खेल तमाशा करके वे अपना जी बहला लिया करें और जब वह बाल्यावस्थासे निकल जाय तो उसे यों ही पशुओंकी तरह छोड़ दें, उसके पालन, पोषण और शिक्षणका कोई समुचित प्रबंध न करें। बच्चोंका पालन पोषण करना यह माता पिताकी भारी जिम्मेवारी है और इस जिम्मेवारीके वे देश और समाज दोनोंके निकट उत्तरदाता हैं।

बच्चा मनुष्यकी भिन्न भिन्न शक्तियोंका समूह है, जो वास्तवमें इस लिए उसे मिली हुई हैं कि वह संसारमें सुखपूर्वक रह सके। उन शक्तियोंका कार्य जीवन है। यदि कार्य ठीक ठीक हो तो जीवनके भी उत्तम रीतिसे व्यतीत होनेकी आशा है; परंतु यदि कार्यमें भूल हो जाय तो जानो जीवन ही नष्ट हो गया। माता पिताके यहाँ बच्चोंके पैदा होनेका गूढ रहस्य यह है कि वे उनकी शक्तियोंको सन्मार्ग पर लगा दें, जिससे वे यथेष्ट स्थान पर पहुँच सकें। उनके मार्गमें जो जो विघ्न बाधायें आवें दूर कर दें और उन्हें कठिनाइयोंसे सूचित कर दें। यही माता पिताका कर्त्तव्य है और इस कर्त्तव्यके वे सोलहों आने जिम्मेवार हैं। बच्चोंका अच्छा बुरा बनाना माता-पिताके हाथमें है, इस लिए यह जिम्मेवारी भारी और नाजुक है। इस जिम्मेवारीको ठीक ठीक निवाह ले जाना ही वास्तविक संतानपालन है।

यदि विचार करके देखा जाय तो इस जिम्मेवारीको समझनेवाले सौ पीछे दो भी न निकलेंगे। जो समझते भी हैं, उनमें भी बहुत ही कम ऐसे निकलेंगे कि जो उसके अनुसार प्रवृत्ति करते हों और संतानपालनमें उन नियमोंका प्रयोग करते हों जिन पर सच्चे जीवनका आधार है। कैसे दुःखकी बात है कि बच्चेका मन, बच्चेका मस्तिष्क और बच्चेका स्वभाव, सब कुछ माता-पिताके लाड़प्यार पर बलिदान कर दिया जाता है। उसे कपड़ा पहिराया जाता है तो ऐसा कि मौसिमकी नर्मी गर्मीका कोई विचार नहीं किया जाता। खाना खिलाया जाता है तो ऐसा कि चाहे उसे बच्चा पचा सके या नहीं। बातें सिखाई जाती हैं तो ऐसी जिनसे बच्चा माता-पिता और सगे सम्बन्धियोंके मनोरंजनका कारण हो। गालियाँ देना, मारना, मूँछे उखाड़ना, मुँह बनाना, गाल फुलाना, जानवरोंकी आवाजोंकी नकल करना, स्वाँग उतारना इत्यादि बातें बच्चोंको गोदमें ही सिखला दी जाती हैं। जो बच्चा इनमें उन्नति करता है, वह मा-बापका लाड़ला बेटा होता है। पड़ोसी उससे उन्हीं बुरी बातोंका अभ्यास कराते हैं जो माता पिताने उसे सिखला दी हैं। मित्र सम्बंधी आदि जब आते हैं तो वे भी बच्चेसे उन्हीं बातोंको कराकर खुश होते हैं। बच्चा कोई बुरा काम करता है तो उसके करनेसे उसको मना नहीं करते, यदि कोई अच्छा काम करता है तो उसकी प्रशंसा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करके उसका उत्साह नहीं बढ़ाते । प्रायः बच्चोंके बुरे कामोंको देखकर ही माता-पिता प्रसन्न होते हैं और यह नहीं सोचते कि आज तो लाड़ प्यारमें ये बातें कुछ हानिकर मालूम नहीं होतीं, परंतु कलको जब बड़ा हो जायगा तो ये ही बातें हानिकर सिद्ध होंगी । उस समय कुछ नहीं बन सकेगा । उन कामोंके करनेकी बच्चोंमें आदत पड़ जायगी और फिर आदतका छूटना कठिन है ।

जिस देश और जातिमें ऐसी असावधानीसे बच्चोंका पालन होता है, वे यदि दिनोंदिन हीनावस्थाको प्राप्त हों तो इसमें कौन आश्चर्यकी बात है ? जिस जातिको जाति कहलानेका अभिमान है, वह अपने बच्चोंको ऐसा समझती है, जैसा साहूकार सूदको। मूलमेंसे भले ही कुछ चला जाय परंतु व्याजमेंसे एक कौड़ी न जाने पावे; कारण कि यही व्याज आगे चलकर उसका मूल बननेवाला है । वह जाति बागके मालीके सदृश—जो बड़े पेड़ोंकी इतनी परवाह नहीं करता, जितनी छोटे पौधोंकी करता है—बच्चोंकी ओरसे कभी असावधान नहीं होती । उन्नतशाली जातियाँ अपने बच्चोंको अपनी आशाओंका पूरा करनेवाले, अपने नामको कायम रखनेवाले, अपनी हानियोंको मिटानेवाले, अपने देश और धर्मका मान बढ़ानेवाले, शत्रुओंसे रक्षा करनेवाले, मित्रोंको सहायता देनेवाले समझती हैं और इस तरहसे उनका पालन पोषण करती हैं कि वे बड़े होकर जातिके अंग बनकर उसकी रक्षा करें और उसे बल प्रदान करें । जिन बच्चोंकी मातायें जीवित होती हैं उनका तो कहना ही क्या है, अनाथ बच्चोंतकके पालनके लिए जीवित जातियोंने सैकड़ों सामान कर रक्खे हैं । अनेक प्रकारके अनाथालय, विद्यालय, छात्रालय और शिल्पशालायें खोल रक्खी हैं; जहाँ उनका उत्तम रीतिसे पालन पोषण किया जाता है और उन्हें शिक्षा दी जाती है। स्मरण रहे कि यह प्रबंध राजाकी ओरसे नहीं है और न किसी एक व्यक्तिकी ओरसे, किन्तु जातिके चंदेसे । जातिके लोग चंदा करके इन सब कामोंको चलाते हैं । यद्यपि वे बच्चे स्वयं उनके नहीं हैं, परन्तु हैं तो जातिके बच्चे ही । उनके अच्छे होनेसे जातिको लाभ है और बुरे होनेसे जातिको हानि है । यह दशा इँग्लैंड अमेरिका आदि देशोंकी है । यही कारण है कि वे देश दिनोंदिन उन्नति कर रहे हैं । हमारी दशा इसके विपरीत है । हमारे देशमें अनाथोंका पालन पोषण और शिक्षण होना तो दूर रहा, जिन बच्चोंके माता पिता मौजूद हैं, अच्छे खाते-पीते हैं वे भी अपने बच्चोंका ठीक तौरसे पालन पोषण नहीं करते । छोटी उमरमें लाड़ प्यार करके उनकी आदतें खराब कर देते हैं । बड़े होने पर जब वे बेजा लाड़प्यारके कारण न लिखते पढ़ते हैं और न घरका कोई काम धंधा करते हैं तो उनसे घृणा करते लगते हैं । देखिए ये वे ही बच्चे हैं, जिनको कभी माता-पिता अपनी आँखकी पुतली कहा करते थे, मा बलायें लेती लेती कभी थकती न थी और बापका देखदेख कर कभी मन नहीं भरता था । क्या कारण है ? यह कि माता पिताने अपने कर्त्तव्यको नहीं समझा, या समझकर उसके पूरा करनेमें आलस या असावधानी की । लाड़ तो जानवरोंको भी अपने बच्चोंसे होता है । गाय, घोड़ी, मुर्गी, बिल्ली हर एक अपने बच्चेसे लाड़ करती है। मनुष्य पशुओंसे श्रेष्ठ है; उसमें गाय बैल वगैरहसे अधिक बुद्धि है । अतएव उसे उचित है कि लाड़ तो अपने बच्चोंसे करे परन्तु वह लाड़ ऐसा हो कि जो बच्चोंकी भलाईका कारण हो और उनको ऐसा बना सके कि वे बड़े होकर दुनियाकी कठिनाइयोंको झेल सकें और अपने कामको सफलतापूर्वक कर सकें। भाईबंधुओंसे जो सम्बन्ध है उसे अच्छी तरह निबाह सकें । दूसरोंके प्रति जो उनके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर्त्तव्य हैं उनको पूरा कर सकें। वे गुणी और ज्ञानी हों, साहस और दृढ़तामें पक्के हों, बातके सच्चे हों, धर्म और देशके हितैषी हों, शुद्धाचारी हों, सत्यवती और दूरदर्शी हों और शील, संयम, शांति, संतोष आदि गुणोंसे विभूषित हों।

इन शक्तियोंको एक खास केंडे पर लाना मातापिताका काम है। बागमें जो पौधा होता है उसके लिए भी जरूरत होती है कि समय पर उसको पानी दिया जाय, ठीक स्थान पर उसको जमाया जाय, उचित खाद डाली जाय, उसके बढ़ावको कम करनेवाली घास बूटी उसके पाससे हटाई जाय और उसकी काट छाँट होती रहे। ऐसा करनेसे ही वह बढ़ता है और फल लाता है। हीरा जब खानिसे निकलता है, उस समय वह देखनेमें बड़ा भद्दा होता है। कारीगर अपनी मिहनतसे उसपरसे मैल उतारता है, और उसे इस योग्य बनाता है कि वह राजा महाराजाओंके मुकुटमें लगने-योग्य होता है। यही हाल मनुष्यके स्वभावका है। उसको ठीक बनानेके लिए बड़े श्रम, उत्साह, बुद्धि, ज्ञान और दृढ़ताकी आवश्यकता है। उनके बिना मनुष्यमें और पशुमें कोई अंतर नहीं रहेगा। अतएव मातापिताको उचित है कि वे बालकोंको अच्छा बनानेके लिए सदैव प्रयत्न करते रहें और शुरूसे ही करते रहें; अन्यथा वे पशुओंके सदृश जंगली और असभ्य बन जायँगे और फिर बड़े होकर उनका ठीक करना असम्भव हो जायगा।

२ संतान पर मातापिताका प्रभाव।

जब बच्चे बुरे निकलते हैं तो मूर्ख मातापिता अपने भाग्यको उलाहना दिया करते हैं; परंतु हम पूछते हैं कि यदि तुम्हारा कोई नौकर असावधानीसे तुम्हारा कोई वर्तन तोड़ दे और कहने लगे कि साहब, मैं क्या करूँ, यह तो भाग्य-की बात है, तो क्या आप उसकी बातको मान लेंगे ? कदापि नहीं। बच्चोंको जैसा मातापिता बनाते हैं वैसे ही वे बन जाते हैं। उनका रूप-रंग और उनकी आकृति मातापितासे बिलकुल मिलती जुलती होती है। बातचीतमें भी बच्चा मातापिताकी नकल करता है। फिर वह उनके गुण और स्वभाव क्यों न सीखे ? मनुष्य अच्छे कामोंको इतनी जल्दी नहीं सीखता जितनी जल्दी बुरे कामोंको सीख लेता है। इस लिए यदि तुम्हारा ही चालचलन अच्छा नहीं है तो बच्चेका क्या होगा ? तुम अपने बच्चेके लिए नमूना हो। जैसा वह तुमको करते देखेगा वैसा ही वह स्वयं करने लगेगा।

बच्चे पर पिताका भी इतना असर नहीं होता, जितना माताका होता है। जिस समयसे बच्चा गर्भमें आता है, उसी समयसे उस पर माताका असर पड़ने लगता है। जबतक बच्चा माताकी गोदमें रहता है, माताका उस पर असर रहता है और जब बच्चा बड़ा हो जाता है तब उस पर माता और पिता दोनोंका असर पड़ता है। बाल्यावस्था ही ऐसी अवस्था है कि जिसमें बच्चेका चरित्र और स्वभाव बनता है। बड़े होकर केवल उस चरित्र और स्वभावका विकास होता है, उसमें परिवर्तन नहीं होता। अतएव इस बातकी अत्यंत आवश्यकता है कि मातापिता दोनों इस योग्य हों कि संतानपालनके नियमोंसे भली भाँति परिचित हों।

एक विद्वानने कहा है कि एक विदुषी और बुद्धिमती माता सौ शिक्षकोंसे अच्छी है। जिस बच्चेका शुरूमें मूर्ख माताकी गोदमें पालन होता है उसमें ऐसे अवगुण पड़ जाते हैं कि जिनका पीछे दूर होना असम्भव हो जाता है। चाहे कितनी ही शिक्षा दो, परन्तु उसके अवगुण दूर नहीं हो सकते। जब बच्चा जरा कुछ बड़ा हो जाता है और पिताका भी उस पर असर पड़ने लगता है, तब जिम्मेवारीका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

काम माता और पिता दोनों पर होता है। उस समय दोनोंका योग्य होना आवश्यक है, अन्यथा एकका काम दूसरा बिगाड़ देगा। गाड़ीमें यदि एक घोड़ेका मुँह इस ओर हो और दूसरेका उस ओर, तो वह चल नहीं सकती। इसी तरह यदि माता मूर्खा हो और पिता बुद्धिमान् हो, अथवा पिता मूर्ख हो और माता बुद्धिमती हो, तो संतानका पालन पोषण ठीक नहीं हो सकता। उत्तम रीतिसे संतानपालन करनेके लिए दोनोंको बुद्धिमान होना चाहिए।

सबसे पहली शिक्षा जो बच्चोंके लिए आवश्यक है, यह है कि उन्हें आज्ञा पालन करना सिखलाना चाहिए और इस गुणको उनमें इतना बढ़ा देना चाहिए कि उन्हें इस बातका विश्वास हो जाय कि उनके मातापिता उनसे अधिक बुद्धिमान् हैं; परंतु यदि वे देखेंगे कि किसी विषयमें मातापितामें मतभेद हो गया है तो उनका विश्वास जाता रहेगा और अब उनको संदेह हुआ करेगा कि क्या करना चाहिए। मातापिताको उचित है कि वे कभी बच्चेके सामने एक दूसरेकी शिकायत न करें। यदि वे किसी विषयमें सहमत न हों तो उन्हें चाहिए कि बच्चेसे अलग होकर परस्परके मतभेदको दूर कर लें।

कुछ मातायें बच्चोंको बिगाड़ देती हैं और जब बिगड़े हुए बच्चे अपराध करते हैं तो वे मातायें उनको पितासे छिपाकर दण्डसे बचा लेती हैं। केवल इतना ही नहीं, वे स्वयं झूठ बोलती हैं और बच्चोंको झूठ बोलना और धोखा देना सिखलाती हैं। यदि पिता बच्चोंको उनके अवगुणोंके कारण धमकाता है अथवा दण्ड देता है, तो कोई कोई मूर्खा माता पिताको दुष्ट और अन्यायी तक कह डालती हैं और बच्चेको हटा लेती हैं। इसका क्या परिणाम होता है? यह कि बच्चा बुराईमें और भी पक्का हो जाता है। ऐसी माताके होते हुए बच्चेको और किसी शत्रुकी आवश्यकता नहीं रहती।

इसका नाम प्यार नहीं है। सच्चा प्यार यह है कि बच्चोंकी बुराइयोंको दूर किया जाय और उन्हें अच्छी अच्छी भलाईकी बातें सिखलाई जावें। जो पुरुष बुद्धिमान होते हैं वे अपनी स्त्रियोंको ऐसी बातें समझाते रहते हैं, परन्तु मूर्खा स्त्रियाँ एक नहीं सुनतीं। मातापिताके लिए आवश्यक है कि उनका व्यवहार बच्चोंके साथ एकसा हो। मूर्खा मातायें सदा इसके विपरीत करती हैं। वे स्वयं अपना कोई सिद्धांत नहीं रखतीं। अभी वे एक कामके लिए बच्चेकी सराहना करती हैं और अभी थोड़ी देरमें उसी कामके लिए उसे बुरा भाल कहने लगती हैं। अभी प्रसन्न हैं तो बच्चेकी प्रशंसा कर रही हैं चाहे उसने कुछ चुरा लिया हो और अप्रसन्न हैं तो उसे मारने लगती हैं, चाहे उसने कोई भी बुरा काम न किया हो। कहनेसे कर दिखाना अच्छा होता है। उसका असर अपने आप हो जाता है। कहावत है कि एक केंकड़ेको उसकी माने कहा कि बेटा, तुम सदा टेढ़े चलते हो, सीधे क्यों नहीं चला करते? केकड़ेने उत्तर दिया कि मा, मैंने टेढ़ा चलना तुमसे ही सीखा है। तुम भी तो टेढ़ी चलती हो। दुनियामें हर एक बच्चा चाहे वह किसीका हो, अपने मातापिताका अनुकरण करता है। वह कहनेकी उतनी परवाह नहीं करता जितनी करते देखनेकी करता है। जैसा माता पिताको करते देखता है वैसा ही आप करने लगता है। जिस माताको क्रोध अधिक आता है उसका बच्चा भी क्रोधी होता है। जो माता गालियाँ अधिक देती है उसके बच्चेको भी गालियाँ देनेकी आदत पड़ जाती है। जिस माताको झूठ बोलनेकी आदत होती है, उसका बच्चा भी झूठा और मायाचारी होता है; परन्तु इसके विपरीत जो माता सभ्य और शिक्षित होती है, सच बोलती है और धर्मानुसार आचरण करती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है उसका बच्चा भी वैसा ही होता है। परंतु आजकलकी मूर्खा स्त्रियाँ अवगुणोंको नहीं देखतीं और न दूसरोंके बतानेसे उनको मानती हैं। उलटी रुष्ट होती हैं और मुँह बनाकर आखोंमें पानी भर लाती हैं, न उन्हें अपने सुधारनेका ख्याल होता है और न बालककी भलाई बुराईका। उन्हें केवल लड़ना झगड़ना और रोना चिल्लाना आता है। एक पुरानी कहावत है कि सबसे अधिक विनय बालकोंकी करनी चाहिए। माता पिताको सदा इस बातका ख्याल रखना चाहिए कि जो काम वे बच्चोंके सामने करते हैं, वह कैसा है। जो मनुष्य बच्चेके सामने कोई बुरा काम करता है वह एक ही समय दो बुरे काम करता है, अर्थात् एक तो वह स्वयं बुरा करता है और दूसरे बच्चेको बुरा करना सिखलाता है। बच्चोंको अच्छी बातोंकी शिक्षा देना और स्वयं बुरा नमूना बनकर दिखलाना ऐसा ही है जैसा कि उनको मुँहसे तो यह बताना कि सीधा रास्ता यह है, परंतु हाथ पकड़कर बुरे रास्ते पर डाल देना। जिस बातकी शिक्षा दी जाती है यदि उसका नमूना बनकर न दिखलाया जाय तो वह शिक्षा व्यर्थ है; उससे कोई लाभ नहीं है—उलटा अपने समय और श्रमको खोना है और बच्चेको बिगड़ना है। कारण कि जब बच्चा स्वयं तुमको शिक्षाके विरुद्ध चलते देखता है तो वह कदापि शिक्षाको नहीं मान सकता और जो तुम करते हो उसे ही करने लगता है। बच्चोंमें देखने और अनुकरण करनेकी विलक्षण शक्ति होती है। वे झट ताड़ जाते हैं कि उनके माता पिता कैसे आदमी हैं और जैसे वे होते हैं वैसे ही आप बन जाते हैं। अतएव जैसा तुम बच्चोंको बनाना चाहते हो पहले वैसे स्वयं बनो, बच्चा स्वयं वैसा बन जायगा।

बच्चोंके शिक्षणसे केवल इतना ही तात्पर्य नहीं है कि उनको बता दिया जाय कि अमुक काम यों करो। जो कुछ उन्हें बताओ वह उनसे कराकर छोड़ो। जैसे कन्याओंको सिलाई-के केवल नियम बतला देना काफी नहीं; उनसे सिलाईका काम कराकर छोड़ना चाहिए। केवल नियमोंके बता देनेसे बच्चोंको कोई लाभ नहीं होता। नियमोंको वे शीघ्र भूल जाते हैं। जिस कामके नियम उनको बताये जायँ उसे बारबार उनसे कराना चाहिए, यहाँ तक कि वह उनका स्वभाव हो जाय। प्रायः माता बालकों-को यह तो बता दिया करती है कि घरकी चीजें अपनी अपनी जगह पर रक्खा करो; परंतु उससे कोई लाभ नहीं होता जबतक कि वह स्वयं उनसे चीजोंको नियत स्थान पर न रखवावे और स्वयं न रक्खे। अतएव कहनेके साथ साथ करके भी दिखाना चाहिए। माताका केवल इतना बता देना काफ़ी नहीं कि बेटा, रास्ता वह है; किंतु उसे चाहिए कि वह यह कहे कि 'बेटा, आओ मैं तुम्हें साथ ले चलती हूँ।'

असलमें जिस दिनसे बच्चा पैदा होता है उसी दिनसे उसकी शिक्षा शुरू हो जाती है। थोड़े ही दिनोंमें वह माताकी प्रेम भरी दृष्टिके उत्तरमें मुस्कराने और क्रोधभरी दृष्टिसे आखोंमें आँसू भरने लगता है। उसका ज्ञान दिनों-दिन बढ़ता जाता है। धीरे धीरे वह जिस बातको सुनता है या देखता है, करने लगता है। यही कारण है कि इँग्लैंडमें पैदा हुआ बच्चा अँगरेजी बोलता है और हिंदुस्तानमें पैदा हुआ बच्चा हिंदुस्तानी बोलता है। बच्चा जो कुछ सीखता है वह सब थोड़ी उमरमें ही सीखता है। जिस भाषाको वह छुटपनमें माता पिता और भाई बहिनोंसे सहजमें ही निःशंक होकर सीख लेता है उसीके सीखनेमें दूसरे देशके बच्चेको बड़े होकर वर्षों लगते हैं और फिर भी उसमें इतनी जल्दी और साफ नहीं बोल सकता जितनी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जल्दी और साफ़ अपनी मातृभाषामें बोलता है। इस लिए जिस किसी भी गुणकी शिक्षा बच्चेको देनी हो उसे बाल्यावस्थामें ही देनी चाहिए। उस अवस्थामें बच्चा बिलकुल अपनी माके आधीन होता है। उस समय उसको चाहे जो काम सिखाया जा सकता है।

कुछ बातें बहुत ही छोटी ख्याल की जाती हैं, परंतु उनसे भी असावधान कभी नहीं होना चाहिए। उनके परिणाम बहुत बड़े होते हैं। छोटी छोटी बातोंसे ही बच्चोंकी आदत पक्की होती है। एक माताने केवल लाड़ प्यारके कारण अपने बच्चेको शरारतसे मना नहीं किया और इस कारण उसे छोड़ दिया कि बात हल्कीसी है। एक बुद्धिमान पुरुषने उससे कहा कि निसंदेह बात छोटीसी है, परंतु छोटी छोटी बातोंसे ही आदत पड़ती है और जो आदत एक वार पड़ जाती है फिर उसका छूटना बहुत कठिन हो जाता है। इस लिए बच्चेसे जो काम कराना चाहते हो अथवा जिस प्रकारका व्यवहार उससे करते हो उसके विषयमें पहलेसे यह सोच लो कि उससे कैसी आदतके पड़नेकी सम्भावना है। जिन कामोंसे या जिन बातोंसे बुरी आदतोंके पड़नेकी सम्भावना हो, उन्हें बालकोंसे नहीं कराना चाहिए।

बच्चोंके साथ व्यवहार करनेसे पहले इस बातको देख लेना चाहिए कि उनका स्वभाव कैसा है। कुछ बच्चोंका स्वभाव नर्म होता है। उनसे काम लेना आसान होता है। ऐसे बच्चोंके साथ बड़े प्रेमसे व्यवहार करना चाहिए। कुछ बच्चोंमें हठ अधिक होती है, उनसे दृढतापूर्वक व्यवहार करना चाहिए। कुछ बच्चोंमें आलस होता है उनके लिए उत्तेजनाकी जरूरत है। यद्यपि बच्चोंका स्वभाव माता पिताके स्वभावके अनुकूल होता है तथापि माताको उचित है कि वह बच्चोंकी रुचि और प्रकृतिको देखती रहे और उन्हींके अनुसार उनके साथ व्यवहार करती रहे।

योग-चिकित्सा।

(ले०-श्रीयुत पं० माधवलाल शर्मा।)

भूमिका।

हे परमात्मस्वरूपमनुष्यतनुधारी दिव्यमूर्तियो! तुम जानते हो कि तुम सर्व शक्तिमान हो, तुम अपने केवल एक संकल्पके बलसे जो चाहो सो कर सकते हो। तुम बलवान्, स्वस्थ और तेजस्वी होनेके प्रकृत अधिकारी हो। तुम ऐसा क्यों कहते हो कि मैं वृद्ध हूं, निर्बल हूँ, दुःखी हूँ। यह निर्बलता छोड़ दो और आज ही कायरताको लात मारकर उसे हृदयसे बाहर कर दो। इसी क्षणसे अपनी कायरता और दीनताको अंतिम नमस्कार करो और ओम्कारकी गर्जना करके कह दो कि मैं सत्स्वरूप हूँ—बलवान् हूँ—अपने शरीरका स्वामी हूँ और मैं अपने शरीरको जैसा चाहूँ वैसा बनानेमें समर्थ हूँ।

हाँ, यथार्थमें ही तुम समर्थ हो। तुम कहोगे कि मैं अज्ञानी हूँ, मेरी इच्छाशक्ति निर्बल है, मेरा चित्त अस्थिर है; परंतु मैं कह सकता हूँ कि यह तुम्हारा केवल भ्रम है—केवल प्रलाप है। जागो, उठो और मोहनिद्राको त्याग दो। अपने मूल स्वरूपका विचार करो। तुम बलवान् हो, स्वतंत्र हो। अपने मनमेंसे सब तरहकी शंकाओंको निर्मूल कर डालो। 'यदि मैं ऐसा होता तो' इस वाक्यके 'यदि' और 'तो' ये शब्द ही तुम्हारे सामर्थ्यको ठंडा कर देते हैं, तुम्हें बलहीन बना देते हैं और अधिकारभ्रष्ट कर देते हैं।

अब कब तक दुःखी रहोगे? तुम कहोगे कि हम दुःखसे तो उकता गये हैं, परंतु उससे मुक्त होनेका उपाय क्या है? हम कहते हैं कि उपाय स्वयं तुम्हारे हाथहीमें है। तुम स्वाधीन हो, तुमको कोई बाँध या छोड़ नहीं सकता। यदि तुम अपनी स्वाभाविक शक्तियोंको उपयोग-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में लाना सीखोगे तो बात-की-बातमें पूर्ण स्वाधीन तथा सुखी हो जाओगे।

वह शक्ति कौनसी है ?

तुम पूछोगे कि वह शक्ति कौनसी है ? कैसी है ? हम उसे किस प्रकार पहिचान सकते हैं ? उसे किस प्रकार अधिकारमें लाकर उससे अपनी इच्छानुसार काम ले सकते हैं ? वह शक्ति स्वतः तुम्हारे शरीरमें स्थिर है और उसके द्वारा ही तुम्हारे शरीरके सब कार्य होते हैं, परंतु तुम उसे पहिचानते नहीं हो। अपने शरीरकी जाँच करो। वह किन पदार्थोंका बना हुआ है ? तुम कहोगे कि अस्थि, रुधिर त्वचा और मांसका। यह ठीक है, परंतु इससे अधिक गहरा विचार करो, अधिकाधिक बारीकीसे देखो और सूक्ष्मदर्शक यंत्रकी सहायता लो। इस यंत्र द्वारा रुधिरकी एक बिन्दुकी अथवा वीर्य्यके एक छोटेसे छोटे कणकी परीक्षा करो। तुमको दिखाई देगा कि उसमें असंख्य जीवनतत्त्व हैं। रुधिर और वीर्य्य केवल जड पदार्थ नहीं हैं, ये केवल रासायनिक पदार्थोंके संयोगसे ही नहीं बने है, वरन् इनमें चेतन भी है। प्रत्येक रुधिरके अणुमें चेतन है। इस प्रकार तुम्हारा सारा शरीर जीवनतत्त्वोंसे बना हुआ है। ये जीवन तत्त्व ये सब परमाणु पृथक् पृथक् नहीं हैं, इन असंख्य तत्त्वोंकी एकता होनेसे ही एक जीवित शरीर बनता है। इसी प्रकार प्राणी वनस्पति और जिनको हम सामान्य भाषामें जड़ पदार्थ कहते हैं उन सबमें ये जीवनतत्त्व संकलित रहते हैं। इन सब तत्त्वोंको नियममें रखनेवाली एक चमत्कारिक शक्ति प्राणी मात्र और पदार्थ मात्रमें रहती है और वह प्राण है। इसी प्राणके बलसे सब जीवनतत्त्व नियंत्रित और संगठित रहते हैं। प्राणका अर्थ आत्मा या वायु नहीं करना चाहिए। आत्मा तुम्हारा मूल स्वरूप है और वह प्राण तथा दूसरी सर्व शक्तियोंका स्वामी है। आत्मा जब देहसे जुदा हो जाता है तब देहमें प्राणकी आवश्यकता नहीं रहती और वह शीघ्र ही विश्वके सर्वव्यापी प्राणसमूहमें मिल जाता है। प्राणका अंकुश दूर होते ही शरीरके सारे जीवनतत्त्व पृथक् पृथक् हो जाते हैं और कुछ कालमें पंच महाभूतमें मिलकर नवीन शरीरकी रचना करनेमें लग जाते हैं।

अभी हम कह चुके हैं कि प्राण एक महान् शक्ति है। उसे कोई कोई विद्युत शक्ति कहते हैं। कोई कोई उसे और सुधारकर Human Electricity अर्थात् 'मानुषी विद्युत् शक्ति' कहते हैं। कितने ही विद्वान् उसे Magnetism अथवा आकर्षणशक्ति भी कहते हैं। परंतु हमारी समझमें उसका वास्तविक नाम 'क्रियाशक्ति' है। उसको चाहे जिस नामसे पुकारो या कहो, परंतु यह तो सभी स्वीकार करेंगे कि वह एक महान् शक्ति है। मनुष्य, प्राणी और पदार्थ मात्रमें वह गुप्त रीतिसे स्थित है। संक्षेपमें कहें तो वह पवन, पानी और सूर्यकिरण आदि सबमें है। सम्पूर्ण विश्व उससे व्याप्त है। विश्वमें इस शक्तिका अटूट खजाना है। यह सब शक्ति तुम्हारी निजकी है। तुम इस शक्तिको प्रकृतिसे जितनी खींच सको उतनी खींचो और अपनेको बलवान् तथा तेजस्वी बनाओ। वास्तवमें तुम सब समृद्धियोंके मालिक हो, दरिद्री तथा दुःखी तो तुम अपने हाथसे बनते हो।

सामान्य देनगियाँ।

तुम निश्चयपूर्वक मानते हो कि प्रकृति बड़ी ही दयालु है। उसने मनुष्यके यावत् आवश्यकीय पदार्थ जगतमें जहाँ तहाँ भर रक्खे हैं। जिसके विना थोड़े ही घंटोंमें मनुष्यका गला सूख जाता है और जिसके विना असह्य वेदना होती है, ऐसा परमावश्यक पदार्थ जल कहाँ नहीं मिलता ? सहाराके सूखे तथा निर्जन मरुस्थलमें भी उसने हरित भूमि (Oasis) की रचना की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है । वहाँ भी मीठे पानीका निर्मल झरना अपनी भाषामें परमेश्वरकी सिखाई हुई कविताका गान करता हुआ बहता है । धूप और गरमीसे दुःखित पथिक उस झरनेके शीतल जलको पीता और वृक्षोंकी घनी छायामें बैठकर विश्राम करता है । पानीसे भी आवश्यक वायु है । जलके विना कुछ घंटों तक मनुष्य जीवित भी रह सकता है, परंतु वायुके विना तो पलभर भी जीना कठिन है । अब आप बतलावें कि ऐसा कौन स्थान है जहाँ वायु नहीं है ? ये दोनों बातें तुम्हें क्या शिक्षा देती हैं ? यही कि मनुष्यकी आवश्यक वस्तुयें उसके निकट ही हैं । प्रकृतिने उन्हें दूर खोजने जानेकी आवश्यकता नहीं रक्खी । यदि हम विश्वके स्वाभाविक नियमोंका परिशीलन करें तो हमें विदित होगा कि यह नियम अन्धोंको भी दिखाई दे जाय, ऐसे मोटे अक्षरोंमें जहाँ तहाँ लिखा हुआ है । जब ऐसा है तो मनुष्यको व्याधियोंको निर्मूल करनेके लिए जंगलोंमें जड़ी-बूटियोंके ढूँढनेको जानेकी क्या आवश्यकता है ? वह विषके समान कड़वी औषधियाँ क्यों पिये ? किस लिए वैद्य और डाक्टरोंको मुँह माँगे दाम दे और उनकी खुशामद करे ? सच तो यह है कि प्रकृतिने मनुष्यको क्षुद्र नहीं बनाया, वह स्वयं अपनी ही अज्ञानताके कारण क्षुद्र बन रहा है और दुःख पाता है ।

कुछ स्वाभाविक उपाय ।

छोटासा बालक जब भूखा होता है तब रोने लगता है । कुत्तेको या अनजान मनुष्यको देखकर चीख मारता है या आप-ही-आप उससे दूर हटने लगता है । इसका कारण क्या है ? प्रकृतिने उसे आत्मसंरक्षण करनेकी बुद्धि दी है । अतः अपनी बुद्धिके अनुसार उसे जो कुछ भयंकर या भयप्रद प्रतीत होता है उससे वह भलीभाँति बचने और दूर रहनेका प्रयत्न करता है । जिस प्रकृतिने बालकको तथा सब प्राणियोंको आत्मसंरक्षण करनेकी बुद्धि दी है, वही प्रकृति लगभग सब प्राणियोंको नाना प्रकारकी उपाधियोंसे बचानेके उपायोंकी पूर्ति करती है । पशु जब बीमार होते हैं तब वे भूखे रहते हैं । उपवास करनेसे व्याधि स्वाभाविक रीतिसे घटती है । इस बातको हमारे भारतीय विद्वान् पहलेसे ही कहते आये हैं, परंतु अब यूरोप और अमेरिकाके विद्वान् भी इस बातको मानने लगे हैं । परंतु पशुओंको यह नियम सृष्टिके आरंभसे ही ज्ञात है । मनुष्यका उदाहरण लो । जब हमें कहीं चोट लग जाती है तब हम उस जगह पर हाथ फेरते हैं अथवा फूँक मारते हैं; पेटमें दर्द होता है तब पेट पर हाथ फेरते हैं । इस प्रकारसे हम अपने शरीरकी एक गुप्त शक्तिको काममें लाते हैं, भेद केवल इतना ही है कि हमें उस शक्तिका ज्ञान नहीं होता ।

शक्तिका आकर्षण ।

इतने विवेचनसे तुमको यह स्पष्ट रीतिसे समझमें आगया होगा कि तुम्हारा शरीर तथा उसके आसपासका सारा जगत् एक अद्भुत शक्तिसे व्याप्त है । तुम्हें यह भी मानना पड़ेगा कि इस शक्तिके द्वारा प्रत्येक व्याधिका निवारण हो सकता है । तुम कहोगे कि प्रत्यक्ष देखे विना हम नहीं मान सकते । परंतु हम कहते हैं कि तुम विना देखी हुई कई बातें मानते हो तब यह एक और मान लो । यदि कुछ समय तक 'यह बात सत्य है' ऐसा विश्वास करके तुम इसका प्रयोग करोगे तो इच्छित प्रत्यक्षानुभव भी तुम्हें प्राप्त हो जायगा । अतः अब तुम्हें यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि तुम्हारा शरीर और सम्पूर्ण जगह एक परम शक्तिसे भरपूर है और यदि तुम किसी अक्रिया द्वारा इस शक्तिको अपने शरीरमें भर सकोगे तो तुम बातकी बातमें सम्पूर्ण व्याधियोंसे मुक्त हो जाओगे । तुम्हारा रुधिर धमनियोंमें तेजीसे बहने लगेगा, तुम्हारा मंद

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पड़ा हुआ हृदय चंचल हो उठेगा, तुम्हारे निस्तेज नेत्र चमकने लगेंगे और तुम्हारी मंद जठराग्नि वैश्वानरके रूपमें प्रकट होगी। तुम एक अपूर्व बलका अनुभव करोगे और जीवनका सच्चा आनंद लूटोगे। तुम जिससे मिलोगे उसे ही अपनी शक्तिसे पराजित कर डालोगे। मैं कहता हूँ, केवल इतना ही नहीं, इससे सैकड़ों गुनी सफलतायें प्राप्त कर सकोगे। केवल विश्वास रक्खो, आत्मश्रद्धा रक्खो और इस लेखमें बताई हुई क्रियाओंको आचारमें लाओ।

तुम्हारे आसपास वायु है और तुम्हारी जीवनक्रियाको परिचलित करनेके लिए तुम्हारे फेंफड़ेमें उसकी अवश्यकता है। परंतु यदि तुम नाक बंद करके बैठे रहोगे तो क्या वह अमृत वायु तुम्हारे शरीरमें प्रवेश कर सकेगी? नहीं। तुमको इच्छाशक्तिके बलद्वारा नाकके द्वारोंको खोलना पड़ेगा और फेंफड़ोंको खाली करना पड़ेगा, जिससे वायु अपने आप ही तुम्हारे शरीरमें प्रवेश करेगी। इस विश्वमें अनंतशक्ति भरी हुई है और तुम शक्तिसमूहके बीच बैठे हो। अब तुम्हें केवल इच्छाशक्तिका उपयोग करना सीखना है। इच्छासे उस शक्तिको शरीरमें खींचना सीखो। वह तुम्हारी आज्ञाके वशमें है। तम ऐसा अनुभव करो कि वह अनंतशक्ति मेरे शरीरमें प्रवेश कर रही है—मेरे शरीरके अवयव उससे पूर्ण हो रहे हैं और उससे नये रजःकण बन रहे हैं। बस इतनी इच्छा दृढ़तापूर्वक करो और फिर क्या चमत्कार होता है उसे देखो।

मनोबलकी महिमा।

तुम मनोबलका प्रभाव जानते हो? न जानते हो तो अब जान लो। तुम्हारे हाथ पैरके स्नायुओंमें शक्ति है। तुम भारी वजन उठा सकते हो और दस मील चल सकते हो। इससे तुम यह मानते होगे कि यह बल हमारे स्नायुओंका है। नहीं, उसमें अधिकांश बल तुम्हारे मनका है। स्नायुओंका बल केवल इतना ही है कि वह तुम्हारे मनकी आज्ञाके अनुसार कार्य कर दे। एक उदाहरण लो। तुम दस मील चलकर आये हो, इस लिए कुछ थक गये हो। इसी समय यदि कोई तुम्हें ऐसा समाचार सुनावे जिससे तुम उत्तेजित हो उठो और तुमको बीस मील और चलनेकी आवश्यकता प्रतीत होने लगे तो तुम उठकर खड़े हो जाओगे और चलना प्रारंभ कर दोगे। तुम इस धुनमें बीस मील चले जाओगे और तुम्हें कुछ भी थकावट न मालूम होगी। जब तुम्हारे यहाँ किसीका विवाह होता है या जब कोई बीमार पड़ता है तब तुम मनकी उत्तेजित अवस्थामें प्रतिदिन बेशुमार चलते फिरते हो, परंतु क्या तुम्हें उस समय श्रम प्रतीत होता है? एक सिपाही ज्वरसे पीड़ित पड़ा हुआ है। ऐसी स्थितिमें युद्ध आरम्भ होता है और रणवाद्य बजने लगते हैं। उनका स्वर कानोंमें पड़ते ही उस सिपाहीमें वीरत्व आ जाता है। इस वीरत्वके आदेशसे ज्वर एकदम उतर जाता है और वह पागलके समान रणक्षेत्रकी ओर दौड़ जाता है। यह बल किसका है? मनका या शरीरका? शरीरके ऊपर मनका पूर्ण अधिकार है, इस बातको सभी मानते हैं। जब तुम क्रोधित होते हो तब तुम्हारे नेत्र लाल हो जाते हैं; जब तुम भययुक्त होते हो तब तुम्हारा मुख मलिन पड़ जाता है। तुम निद्रित अवस्थामें हो और स्वप्नमें किसीके साथ लड़ते हो, तो कभी कभी तुम बोल उठते हो और हाथ पैर फेंकने लगते हो। स्वप्नमें कामवश होनेसे वीर्य्यस्राव हो जाता है। इन सब बातोंसे यही सिद्ध होता है कि शरीर पर मनका बहुत बड़ा प्रभाव है। कसरत सिखानेवाले उस्ताद उपदेश दिया करते हैं कि शरीरको दृढ़ करनेवाली कसरत करते समय मनको भी कसरतमें लगाना चाहिए। मैं बलवान् होता जाता हूँ ऐसी भावना करना चाहिए; अन्यथा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कसरतसे कुछ लाभ नहीं होगा। इससे भी मनका शरीर पर पड़नेवाला प्रभाव सिद्ध होता है। यदि तुम्हें इस लेखमें बतलाई हुई गुप्त क्रियाओंसे लाभ उठाना हो तो तुम इन दो उपयोगी और कार्यमें लाने योग्य सिद्धान्तोंको स्वीकार कर लो,—एक तो तुम्हारा मन वहुत सामर्थ्यवान् है और दूसरा तुम्हारे मनका तुम्हारे शरीर पर पूर्ण अधिकार है। इन दोनों सिद्धान्तोंको स्वीकार करके आगे बढ़ो, इनका अनुभव करो और प्रयोग करके देखो। प्रयोग करनेमें यदि वे झूठे प्रतीत हों तो फिर अवश्य उनको फेंक देना।

मनकी क्रियाके आधार पर उसके दो विभाग।

तुम्हारे मन तो एक ही है और वह विभक्त भी नहीं हो सकता है, तो भी मानसशास्त्री मनके द्वारा होनेवाली भिन्न भिन्न क्रियाओं और व्यापारोंको लक्ष्य करके उसे Subconscious mind और Subluminal mind ये दो नाम देते हैं। महासागरका पानी तो सर्वत्र एक ही है, परंतु भिन्न भिन्न देशोंके सपीप आनेसे उसके अलग नाम पड़ जाते हैं जैसे भूमध्य समुद्र, लालसागर इत्यादि। हमें इस समय मानस शक्तियोंके द्वारा किये गये मनोव्यापारोंके सूक्ष्म पृथक्करणोंको जाननेकी आवश्यकता नहीं है। परंतु हम उसके सीधे और सरल दो विभाग करते हैं। एक आन्तरिक क्रियाओंको करनेवाला और दूसरा बाहरकी क्रियायें करनेवाला। बाहरकी क्रियायें करनेवाला मन (Objective mind) विचार करता है, तर्क करता है, अनुमान करता है, सिद्धान्त नियत करता है और उन्हें सिद्ध करता है तथा हाथ पैर आदि शरीरके सब अवयवोंके स्नायुओंको गति देता है। आंतरिक क्रियायें करनेवाला मन (Subjective mind) संस्कारको, सिद्धान्तको ग्रहण करता है, आवश्यकता पड़ने पर उन्हें अपने भंडारमेंसे बाहर निकालता है और शरीरके भीतरी अवयवोंकी गतिको नियमित करता है। तुम्हारे शरीरमें रुधिर रात दिन घूमा करता है, हृदय निरंतर धड़कता रहता है, पाचन क्रियाके अवयव भोजनमेंसे पोषकतत्त्व खींचकर शेषको मलके रूपमें बाहर निकाला करते हैं, स्वप्नमें मच्छर या कोई दूसरा जंतु काटता है तो उसका प्रतीकार करनेके लिए हाथ ऊँचा उठता है। ये और ऐसीऐसी सब ही क्रियायें मनके द्वारा होती हैं। इन क्रियाओं पर तुम्हारा अधिकार नहीं है। तुम अपनी इच्छाके अनुसार रुधिरकी गतिमें या हृदयके स्फुरणमें फेरफार नहीं कर सकते हो। परंतु इसी मन पर इस लेखमें बताई हुई क्रियाओंके द्वारा तुम्हें अधिकार प्राप्त करना है। उसे ही तुम्हारी इच्छानुसार कार्य करनेवाला बनाना है। जो तुम इतना कर सके तो समझना कि तुम्हारा कार्य्य सिद्ध हो गया।

आंतरिक मन पर विशेष प्रकाश।

कदाचित् तुम सोचते होगे कि यह कार्य्य बहुत कठिन है, परंतु यथार्थमें यह कार्य वैसा कठिन नहीं है। यदि तुम अपनी आंतरिक मनकी प्रक्रियाओंको बराबर समझ लोगे और बताई हुई रीतिके अनुसार प्रयोग करोगे, तो तुम एक सप्ताहमें अपने आरोग्यमें, अपने विचारमें, अपनी प्रकृतिमें महत्त्वपूर्ण परिवर्तनको देखोगे तुम्हें इस बातको जान लेना चाहिए कि तुम्हारा आंतरिक मन जो शरीरके अंदरकी क्रियायें करता है, बहुत कोमल और संस्कारग्राही है और बाह्य मन स्वतंत्रताप्रिय और स्वतंत्र काम करनेवाला है। वह सदैव विचार करता है, तर्क करता है, और सत्यासत्यकी परीक्षा करता है। इस लिए उसे जो आज्ञा दी जाती है उसे वह एकदम नहीं स्वीकार करता। उस पर वह नाना तरहके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तर्क करने लग जाता है। कभी कभी तो वह तुम्हारी आज्ञा स्वीकार कर लेता है और कभी कभी सामने हो जाता है। वह बहुत चपल और अस्थिर है। बंदरकी नाईं वह एक विषयसे दूसरे विषयकी ओर दौड़ता है। परंतु आन्तारिक मन छोटे बालकके समान सरल है। उसे जो आज्ञा दी जाती है उसे वह एकदम ग्रहण कर लेता है और बराबर उसी तरह, लेशमात्र भूल या हेर-फेर किये विना उसे कार्यमें परिणत करता है। वह लेशमात्र भी विचार नहीं करता; उसे भली-बुरी जो आज्ञा दो, वह तुरंत मान लेता है। यह तुम्हें मालूम ही है कि तुम्हारे शरीरके भीतरी अवयवों, तुम्हारे विचारों और तुम्हारे स्वभाव पर उसका पूरा प्रभाव है—पूरा अधिकार है। अब तुम आंतरिक प्रक्रियाद्वारा शरीरकी सम्पूर्ण व्याधियों और कुटेवोंको पराजय करनेकी गुप्त रीतियोंका कुछ भेद समझ गये होओगे। यदि न समझे होओगे तो आगे समझ जाओगे। तुम अपने शरीरके स्वामी कहलाते हो, मैं कहता हूँ कि तुम सचमुच ही उसके सम्पूर्ण स्वामी बन जाओ। मैं चाहता हूँ कि तुम बलवान् और नीरोग बनो।

आवश्यकीय सूचना।

जिन मनुष्योंने राजयोगके मार्गमें प्रवेश किया है, वे ऊपर कही हुई बातोंको सहज ही मान लेंगे, परंतु जो केवल जिज्ञासु हैं वे इन बातोंको स्वीकार करनेमें संशय करेंगे। उनका यह संशय दूर करनेके लिए पहले दो एक सरल प्रयोग बतलाऊँगा, जिनको आजमाकर देखनेसे उनका संशय-तिमिर हट जावेगा, आत्म-श्रद्धा बढ़ेगी और आवश्यकीय क्रियायें करनेके लिए उनको बल प्राप्त होगा। साधनारूपी मार्ग-पर चलनेवाले प्रत्येक शिष्यको स्मरण रखना चाहिए कि जबतक बाह्य मन चंचल है, तबतक तुम्हारी आज्ञायें और सूचनायें आन्तारिक मन तक कदापि नहीं पहुँचेंगी। इस लिए पहले बाह्य मनको स्थिर करना चाहिए, अथवा उसे सुषुप्ति अवस्थामें लाना चाहिए। जब मालूम हो कि बाह्य मन सुषुप्ति अवस्थामें है अथवा स्थिर हो गया है, तब आन्तरिक मनको जो आज्ञायें देनी हों दे डालो, जो संस्कार डालना हों, डाल दो, वे सब सफल होंगे। ये राजयोगकी गुप्त कुंजियाँ लोकहितके लिए प्रकट की जाती हैं। इनसे लाभ उठाकर बलवान् और विजयी होना अथवा लाभ न उठाकर दुर्बल और पराधीन रहना स्वयं तुम्हारे ही हाथमें है। प्रत्येक मनुष्य अपने सद्भाग्यका स्वयं कर्त्ता हर्त्ता है।

साधनाका द्वार।

अब यदि तुम बलवान् और स्वस्थ होनेके लिए उत्सुक हो, जो गुप्त रीतियाँ बताई जाती हैं उनका लगातार अभ्यास करते रहनेकी दृढ़ता रखते हो तो आगेकी पंक्तियोंको पढ़ो, नहीं तो इस लेखको एक ओर ताकमें रख दो, अथवा किसी विशेष अधिकारी मित्रके स्वाधीन कर दो। कितने ही मनुष्य छोटे बालकके समान जिज्ञासु होते हैं। वे कोई नई बात सुनकर तुरंत उसके मोहमें पड़ जाते हैं और उसके पीछे दौड़ने लगते हैं। वे एक या दो दिन उसका प्रयोग करते हैं और मनःकल्पित परिणामकी सिद्धि न दिखाई देने पर उसे छोड़ देते हैं। एक बालक जमीनमें बीज बोता है, उसके ऊपर जलसिंचन करता है, मिट्टीके द्वारा उसे ढाँक देता है; परंतु अंकुर फूटा या नहीं यह देखनेके लिए अधीर होकर दस-दस, पन्द्रह-पन्द्रह मिनिटमें मिट्टी खोदकर देखता है। अब विचारो, क्या वह बीज कभी अंकुरित होगा? यदि तुम इस बालकके समान अधीर हो—जो एक या दो दिवसके अभ्यासमें सिद्धिकी आशा रखता है—तो यह मार्ग तुम्हारे लिए नहीं है। साधनाके द्वारमें प्रवेश करनेके पहले तुममें दृढ़ता और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्मश्रद्धाके होनेकी बड़ी आवश्यकता है। यह राजयोगकी 'प्रवेशिका परीक्षा' है। इस परीक्षाके पास किये विना किसी विद्यार्थी (साधक) को साधनाके द्वारमें प्रवेश करनेका अधिकार नहीं मिलता और यदि कोई ऐसी अपरिपक्व साधक-अवस्थामें प्रवेश करता है तो वह अवश्य ही निष्फल जाता है, और वह अपनी भूलके कारण अथवा शीघ्रताके कारण निष्फल हो जानेसे योगविद्याका कट्टर शत्रु बन जाता है–उसे ढोंग या इन्द्रजाल समझने लगता है।

पहली सीढ़ी।

उपरिलिखित रीत्यनुसार यदि तुम अधिकारी हो, तो दृढता, आत्मश्रद्धा और मनोबलको अपना साथी बनाकर मेरे साथ किसी एकान्त स्थानमें चलो और कमरेका दरवाजा बंद कर लो। यदि तुम्हारे हृदयमें व्यग्रता, तर्क वितर्क आदि हों तो उन्हें बाहरके कमरेमें रख जाओ और प्रसन्न चित्तसे मेरे सम्मुख आसन पर बैठ जाओ। मनमें किसी प्रकारका संशय मत रक्खो। कहा है कि–'संशयात्मा विनश्यति'। इस क्रियामें कुछ भी कठिनाई नहीं है। यदि तुम पद्मासनसे बैठ सकते हो तो ठीक है, नहीं तो एक आराम कुर्सी पर सो जाओ। यदि आराम कुर्सी भी न हो तो दरी पर सिर और पैरके नीचे तकिया रखकर लेट जाओ। अब तुम अपने हाथों, पैरों और गर्दनकी स्नायुओंको शिथिल कर दो। शिथिल करनेकी क्रिया बहुत ही आवश्यक है। यदि तुम प्रतिदिन एक या दो बार पाँच या दस मिनिटतक शरीरको शिथिल करके निःश्चेष्ट होकर पड़े रहनेका अभ्यास कर लोगे तो तुम्हारी सारी थकावट उतर जाया करेगी और नई शक्ति आ जाया करेगी। इससे तुम्हारी आयुकी वृद्धि होगी। अतएव शिथिल होना सीखो। हाथ पैरोंको बिलकुल ढीले कर दो, कपड़ेके समान नरम हो जाओ, मानों शरीरमें बिलकुल शक्ति ही नहीं है। यह काम एकदम सिद्ध नहीं होगा। यदि आठ दस दिनतक विना उकताये अभ्यास जारी रक्खोगे तो अवश्य सफलता होगी। इस क्रियासे तुम अपनी बड़ी-से-बड़ी थकावटको चाहे जब सहज ही मिटा सकोगे। आठ घंटेकी निद्रा लेनेसे शरीरको जितनी विश्रान्ति मिलती है, उतनी ही इस शिथिल करनेकी क्रियासे कुछ मिनिटोंमें ही मिल जायगी। शिथिल हो चुकने पर अब एक लम्बी श्वास लो। फेंफड़ोंमें एक साथ सब वायु मत भरो, और ठहर ठहरकर अटक अटक कर भी श्वास मत लो; वरन् धीरेसे गहरी श्वास लो; फेंफड़े और छातीको वायुसे भर डालो और वायुको नाभिपर्यंत जाने दो। यदि तुम्हें अभ्यास न हो तो कुंभककी अर्थात् श्वासको अंदर रोकनेकी क्रिया मत करो। जैसे धीरे धीरे श्वास ली थी उसी प्रकार उसे धीरे धीरे छोड़ दो। फिर जितने क्षणतक विना श्वासके सुखपूर्वक रह सको उतने समयतक श्वास मत लो। यही उत्तम कुंभक है। इसके पश्चात् फिर धीरे धीरे गहरी श्वास लो और फिर धीरे धीरे बाहर निकालो। इस क्रियाको सुख-शान्तिपूर्वक करना चाहिए। फेंफड़े और हृदयको श्रमित मत होने दो। बीच बीचमें हो सके तो 'ओम्' का उच्चारण करो। यदि इस बतलाई हुई प्रक्रियाके अनुसार अभ्यास करोगे तो तुम्हारा बाह्य मन स्थिर हो जायगा और आन्तरिक मन तुम्हारी आज्ञायें ग्रहण करनेको सदैव तत्पर रहेगा।

सामान्य आदेश।

जब तुम इस स्थिति तक पहुँचोगे तब, तुम्हारी श्वास बहुत स्थिर हो जायगी, तुम्हारा मन विचार करना या भटकना छोड़ देगा और तुमको ऐसा भासने लगेगा कि सारे संसारमें मेरे सिवा और कोई नहीं है। ऐसी स्थिति प्राप्त करनेके लिए तुम्हें धैर्य्यके साथ प्रयत्न करना चाहिए। चाहे थोड़े दिन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लगे चाहे अधिक; परंतु इस स्थिति तक पहुँच सब सकते हैं। जब तुम ऐसी स्थितिमें प्रवेश करोगे तब तुम्हें समझना चाहिए कि तुम्हारा आंतरिक मन तुम्हारा आदेश ग्रहण करनेके योग्य हो गया है। इतना हो चुकने पर निम्न लिखित महा-मंत्रको मनन करते हुए उच्चार करो। याद रखना चाहिए कि इस मंत्रके शब्दोंको केवल मुँहसे जपने या कह जानेसे कुछ लाभ नहीं होता। इसके अर्थको समझकर और स्थिरताके साथ विचार करके उसके भावको हृदयङ्गम करना चाहिए। प्रत्येक वाक्य कहते समय उसका जो भाव हो, तुम यथार्थमें वैसे ही हो ऐसी दृढ़ धारणा करनी चाहिए। कल्पना मिथ्या नहीं होती है। स्मरण रक्खो, तुम जैसी कल्पना करोगे वैसे ही हो जाओगे। जब तुम श्रद्धापूर्वक यह मान लेते हो कि मैं बलवान् हूँ तब तुम सचमुचमें ही बलवान् हो। अत एव तुम ऐसी कल्पना करो कि हमारे हाथ, पाँव, पीठ, छाती आदि सब स्नायु बद्ध और रुधिरसे परिपूर्ण हैं। थोड़े समयके बाद तुम्हें इस क्रियाका चमत्कार दिखाई देगा।

महामंत्र—"ॐ मैं अपने शरीरका स्वामी हूँ। मैं सुखरूप हूँ। मैं बलवान् हूँ। मेरा रुधिर सब नाड़ियोंमें निरामय वेगसे भ्रमण करता है। मेरे फेंफड़े और हृदय अपना कार्य्य नियमित रीतिसे करते हैं। मेरी जठराग्नि उत्तम रीतिसे अन्नको पचाती है। उससे शुद्ध रुधिर उत्पन्न होता है। आँतें निरुपयोगी मलको बाहर निकालती हैं।"

मैं फिर कहे देता हूँ कि इसका प्रत्येक वाक्य उच्चारण करते समय ऐसी दृढ़ कल्पना करना चाहिए कि मैं जो कह रहा हूँ उसके अनुसार शरीरमें क्रियायें हो रही हैं, अथवा उन क्रियाओंकी मूर्तिको अपने हृदयमें बनाना चाहिए। तुम्हारी कल्पना जितनी दृढ़, श्रद्धायुक्त और सतेज होगी उतना ही अधिक तुमको लाभ होगा। आरम्भमें पूरा मंत्र उच्चारण करनेके लिए तुम्हें पाँचसे दस मिनिट लगेंगे, बादमें जब तुम्हारा अभ्यास बढ़ जायगा, तब तुम अधिक समयतक एक ही विचारमें मग्न रहना सीखोगे और वैसे ही अधिकाधिक बल और आरोग्यता प्राप्त करोगे।

प्रातःकालकी क्रिया।

ऊपर बतलाई हुई क्रियाका उपयोग दिनमें जब कभी दस दस पाँच पाँच मिनिटका अवकाश मिले तभी करने लगना चाहिए और इसका अभ्यास बढ़ाना चाहिए। पहले थोड़े दिन-तक मनको याद दिलानी पड़ेगी, परंतु कुछ दिनोंके बाद अभ्यास बढ़ जाने पर मन आप-ही-आप स्वाभाविक रीतिसे ध्यानस्थ हो जायगा। परंतु जो साधक पूर्ण आरोग्य और बल प्राप्त करनेकी इच्छा रखते हों, उन्हें प्रतिदिन प्रातःकाल मनको स्थिर करके एक क्रिया करनी चाहिए। पहले तो ऊपर कहे अनुसार शिथिल होकर बाह्य मनको स्थिर करो, फिर अपने सामने हनुमान्, भीम, राममूर्ति अथवा और किसी महाबलवान् पुरुषका चित्र रक्खो। उसके शरीरके प्रत्येक अंगको प्रेमपूर्वक देखो और फिर नेत्र बंद करके नीचे लिखे अनुसार कल्पना करो—"मेरा शरीर वज्रके समान दृढ़ और शक्तिमान् है। मेरे हाथ पैर और सब शरीरके स्नायु कठिन, मोटे और सशक्त हैं। शरीरके किसी भागमें भी रोग नहीं है। सम्पूर्ण शरीर अलौकिक चेतन शक्तिसे परिपूर्ण है।" इस विचारको मनमें खूब स्थिर करो। ऐसी कल्पना करके कि हम स्वतः वैसे हैं अपने हाथ, पाँव और छाती पर हाथ फेरो। बारंबार नाभिपर्यंत दीर्घ श्वास लो। इस क्रियाको प्रतिदिन १० से १५ मिनिटतक करो।

उपयोगी व्यायाम।

सदैव बिस्तरोंसे उठकर छत पर जाओ। यदि छत न हो तो कमरेकी सब खिड़कियाँ खोलकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक खिड़कीके सामने खड़े हो जाओ । फिर अमृतमय वायुसे फेफड़ोंको भरो और तुरंत ही खाली करो। इस प्रकार दीर्घश्वास-प्रश्वासकी क्रिया जबतक बन सके, करो । जब फेंफड़े श्रमित हुए मालूम पड़ने लगें, हृदय जोरसे धड़कने लगे और रक्त खूब दौड़ने लगे तब इस क्रियाको बंद कर दो और आराम करो । इस प्रकार नित्य सबेरे और शामके समय खुली हवामें दीर्घ श्वास-प्रश्वास लेनेकी कसरत किया करो ।

दूसरी कसरत ।

सीधे खड़े हो जाओ। पैर और जंघाओंके स्नायुओंको कड़े कर दो। एक दीर्घ श्वास लो और वायुको फेंफड़ेमें रोक रक्खो । एड़ियोंको ऊँची उठाकर अँगूठे और उँगलियों पर शरीरका सारा भार रखकर खड़े हो जाओ । फिर धीरे धीरे पैरोंको नीचे आने दो और साथ-ही-साथ फेंफड़ेमें रोकी हुई श्वासको धीरे धीरे नाकके नथनों द्वारा बाहर निकालते जाओ। फिर एक शोधक प्राणायाम करो। शोधक प्राणायामकी क्रिया इस प्रकार है—धीरे धीरे नाकके नथनों-द्वारा एक श्वास लो और जबतक सरलतापूर्वक उसे फेंफड़ेमें रोक सको रोको। फिर जैसे सीटी बजाते हैं इस प्रकार जोरसे मुखद्वारा श्वासको बाहर निकाल दो। * ये कसरतें और क्रियायें यथाशक्ति करना चाहिए।

तीसरी कसरत।

बिलकुल सीधे खड़े हो जाओ, छाती आगे निकालो, गर्दन जरा पीछे करो और कंधोंको भी कुछ पीछेकी ओर हटाओ। मतलब यह कि बिलकुल फौजी ढंगसे खड़े हो जाओ। फिर एक दीर्घ श्वास लो । साथ ही दोनों हाथ आगे ले जाओ और मुट्ठी बाँधकर जोरसे कंधोंके पास ले आओ। इस प्रकार कई बार करो। ऐसा करते समय हाथोंमें खूब ताकत रक्खो, यहाँ तक कि वे सहज ही काँपते हुए मालूम पड़ें । फिर हाथोंको जैसे थे वैसे करके बिलकुल ढीले कर दो। फिर फेंफड़ेमें रोकी हुई हवाको मुखद्वारा जोरसे बाहर निकाल दो और एक शोधक प्राणायाम करो । ये कसरतें शरीरके ज्ञान-तंतुओंको बहुत बलवान् बनाती हैं । ये तीनों कसरतें बहुत ही आवश्यक और महत्त्वकी हैं। बाह्यदृष्टिसे देखनेवालेको शायद मालूम हो कि ये कसरतें मामूली हैं, परंतु अनुभव करने पर ये बहुत लाभकारी सिद्ध होती हैं। कसरत, प्राणायाम और इच्छाशक्ति इन तीनोंका एकत्र उपयोग करके जो बल उत्पन्न होता है वह अन्य किसी तरहकी कसरतसे प्राप्त नहीं हो सकता ।

अमृत ।

अब मैं तुम्हें एक अद्भुत चमत्कारिक और बलवर्द्धक प्रयोग सिखाता हूँ। सैकड़ों वर्षोंसे जिस अमृतको खोजनेके लिए लोग प्रयत्नशील थे और उसे प्राप्त नहीं कर सके थे, उसे मैं आज तुम्हें बतलाता हूँ। यह सच्चा अमृत कोई पेटेंट दवा या पौष्टिक वस्तु नहीं है, यह मंत्रित ताबीज या डोरा भी नहीं है, परंतु यह योगकी एक क्रिया है । यह क्रिया इतनी सरल है कि इसे हर कोई कर सकता है । तुम इसे आज ही प्रयोगमें लाओ । तुम अपने कमरेमें प्रवेश करो और अपने मनकी व्यग्रता, चिन्ता, तर्क वितर्क आदि सबको दूर कर डालो । फिर प्रसन्न चित्तसे एक आसन या आराम-कुर्सी पर बैठ जाओ और कुछ समयतक दीर्घ श्वास प्रश्वास लो। दश पाँच बार जोरसे ओंकारका उच्चारण करो और फिर ऊपर बतलाई हुई रीतिके

* अनेक पाश्चात्य लोगोंने श्वासको मुखके द्वारा निकालनेकी क्रिया कर देखी है, परंतु उससे किसी प्रकारका नुकसान नहीं हुआ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुसार शिथिल हो जाओ। मैं पहले भी कई बार कह चुका हूँ कि शिथिल होनेकी क्रिया बहुत ही आवश्यक और महत्त्वपूर्ण है। इस प्रवृत्तिके समय साधकके ज्ञानतंतुओंको इतना श्रम पड़ता है कि यदि दिवसमें १० मिनिट भी शिथिल होनेका अभ्यास न रक्खा जाय तो उसका जीवनतत्त्व अल्प समयमें ही क्षीण हो जाय। वर्तमान समयमें आयुष्यके घट जानेका यह भी एक कारण है। अच्छा, शिथिल हो जाने पर तुम अपने मन और शरीरकी परीक्षा करो। नेत्र बंद करके ऐसी कल्पना करो कि "मेरे आसपासका समस्त वातावरण एक परम चेतन शक्ति (energy) से भरपूर है। यह चेतन विश्वव्यापी है। इस अनन्त चेतन समुद्रके मध्य हम अकेले बैठे हुए हैं। सारे संसारमें हम और चेतन शक्तिके सिवा और कुछ नहीं है।" तुम अन्य सब मनुष्योंको—सब पदार्थोंको थोड़ी देरके लिए भूल जाओ। फिर कल्पना करो कि "मैं इस चेतन-सागरमें गोता लगा रहा हूँ—चेतनसे व्याप्त हो रहा हूँ।" इस समय तुम अपने शरीर और मनको कपड़ेके समान ढीला कर दो। कल्पनाको खूब सतेज करो। तुम अपने नेत्रोंके सन्मुख इस क्रियाको जितनी उत्तमताके साथ चित्रित करोगे, उसी परिमाणमें तुम इस चेतन-रूपी अमृतको प्राप्त कर सकोगे। अब कल्पना करो कि चेतनकी लहरें एकके बाद एक चारों ओरसे तुम्हारे शरीरमें प्रवेश कर रही हैं, वे तुम्हारे शरीरकी प्रत्येक रग और परमाणुको नया बनाती हैं। इस समय ऐसा विचार करो कि तुम प्रत्येक श्वासद्वारा जगतमेंसे शक्तिका आकर्षण करते हो और उसके द्वारा तुम्हारा शरीर बलवान् और तेजस्वी बनता है। यह सच्चा अमृत है। इसके द्वारा ऋषिलोग दीर्घजीवी होते थे और तुम भी हो सकते हो। यह क्रिया देखनेमें बहुत सरल मालूम होती है। इससे इसका मूल्य कम मत समझना। देखो, गुरुत्वाकर्षणका नियम कितना सरल है, परंतु उसका प्रभाव विश्वव्यापी है। संसारके सब बड़े बड़े नियम ऐसे ही हैं। उनका महत्त्व उनके उपयोगसे प्रगट होता है।

सूर्यकिरणोंका आकर्षण।

ऊपर बताई हुई रीतिसे ही सूर्य-किरणोंमें व्याप्त, प्राणोंको पोषण करनेवाली महान् शक्तिका आकर्षण किया जा सकता है। प्राचीन ऋषि लोग सूर्यका पूजन करते थे, सूर्यको अर्घ देते थे, सूर्यका आवाहन करते थे, सूर्यकवच पढ़ते थे और सूर्यके प्रकाशमें बैठकर संध्या वंदन करते थे। इसका मतलब यह है कि वे उपलिखित क्रियाओं द्वारा सूर्यमेंसे 'रेडियम' और ऐसे दूसरे आयुष्यवर्धक तत्त्वोंको शरीरमें खींचते थे। यदि तुम चाहो, संकल्प करो तो तुम भी वैसा करनेमें समर्थ हो सकते हो। प्रातःकालके पहले प्रहरमें जब सूर्यकी धूप तेज नहीं होती, एक वस्त्र पहनकर और बाकी शरीर खुला रखकर और यदि आवश्यकता जान पड़े तो एक कपड़े द्वारा सिर ढँककर सूर्य्यके प्रकाशमें बैठ जाओ और नेत्र बंद करके ऐसी कल्पना करो कि "जो सूर्य्य-किरणें हमारे शरीर पर पड़ रही हैं और जो हमारे चारों ओर फैल रही हैं, उन सबमें रहनेवाली शक्ति (Energy) हमारे शरीरमें प्रवेश कर रही है।" थोड़ी देर बाद तुम्हारा सारा शरीर किसी अलौकिक बिजलीके समान शक्तिसे चमक उठेगा और तुमको नवजीवन प्राप्त होगा। तुम जीवनके सच्चे आनन्दका अनुभव करने लगोगे। इस नुसखेको आजमाओ और इस नवविज्ञानके पक्षपाती बनो।

सोनेके पहले क्या करना चाहिए?

सोनेके पहले निम्नलिखित क्रियाको करनेका अभ्यास डालो। बिस्तरों पर चित्त लेट जाओ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पैरोंके नीचे भी एक तकिया रक्खो, अर्थात् सिरके समान पैरोंको भी कुछ ऊँचाई पर रक्खो। कुछ दीर्घ श्वास लो और शिथिल हो जाओ, फिर सिर नेत्र, गर्दन, छाती, पैर आदि एकके बाद एक अवयव पर जहाँ तक तुम्हारा हाथ पहुँचे थोड़ी देरतक हाथ रखकर ऐसी दृढ भावना करो कि प्रत्येक अवयव अपना कार्य नियमित रूपसे कर रहा है। यदि तुम्हारे किसी अवयवमें कोई व्याधि है तो उस अवयव पर अधिक समय तक हाथ रक्खो और ऐसी भावना करो कि वह व्याधि निर्मूल हो रही है। तुम अपनी भावना शक्तिको कम मत समझो। तुम्हारी भावनाके द्वारा केवल तुम्हारे शरीरका ही नहीं, वरन् सारे संसारका परिवर्तन हो सकता है। ईसा मसीहने एक प्रसंग पर कहा था—"यदि तुम आज्ञा करोगे तो ये पहाड़ लुढ़क कर समुद्रमें जा गिरेंगे।" मनुष्यकी भावनाका बल बहुत जबर्दस्त है। तुम मनुष्य हो; मनुष्य होनेका सत्त्व क्यों अपने हाथों द्वारा खोते हो? अपने हाथोंसे क्यों दरिद्र और निर्बल बनते हो?

जब निद्रादेवी तुम्हारी आँखों पर अपना अधिकार जमाने लगे तब एक अंतिम भावना करके उस देवीके आधीन हो जाओ। तुम ऐसी भावना करो कि प्रातःकाल जब मैं सोकर उठूँ तब मेरा शरीर पूर्णरूपसे स्वस्थ और ताजा हो, मस्तक हलका और प्रफुल्लित हो। बस, ऐसी भावना करके सो जाओ। जब तुम प्रातःकाल सोकर उठोगे तब तुम्हें मालूम होगा कि तुम्हारा शरीर स्वस्थ और निरोगी है। तुम्हारा शरीर तो यंत्र है, उसे तुम जैसा बनाना चाहोगे वैसा ही बन जायगा।

किसी खास व्याधिका निवारण।

ऊपर लिखी हुई सब क्रियायें स्वास्थ्य और बल प्राप्त करनेके लिए बताई गई हैं, परंतु यदि शरीरमें कोई खास व्याधि हो तो उसका निवारण करनेके हेतु ऊपर लिखी हुई क्रियाओंके सिवा एक दूसरी क्रिया और करनी चाहिए। शरीरके जिस भागमें दर्द होता हो अथवा जिस अंगमें व्याधि हो उस पर अपना हाथ रक्खो। (अब यह कहने की आवश्यकता नहीं रही कि कोई भी क्रिया करनेके पहले दीर्घश्वास लेने और शरीरको शिथिल करनेकी नितान्त अवश्यकता है। तुमको यह भी मालूम होगा कि हिन्दू-धर्मानुसार किसी भी धार्मिक क्रियाके आरंभमें आचमन और प्राणायाम करनेका विधान है और वह सकारण है।) फिर तुम अपने चित्तकी वृत्तिको व्याधि-स्थान पर स्थिर करो। यह क्रिया कुछ कठिन तो है, परंतु थोड़े दिनके अभ्याससे सुगम हो जाती है। मान लो कि तुम्हारी छातीमें शूलका दर्द है, तो उस समय शरीरके और किसी अवयवकी ओर मन न लेजाकर केवल छातीकी ओर मन लगाओ—मानो कि उसके सिवा तुम्हारे और कोई अवयव है ही नहीं। ऐसा करनेसे वह अवयव तुम्हारी चित्त-वृत्तिका केन्द्र बन जायगा और उस जगह पर तुम अधिक आत्मबल डाल सकोगे। जैसे सामान्य काँचके द्वारा आग पैदा नहीं होती, परंतु बहिर्गोल (Concave) काँचको सूर्यकी धूपमें रक्खो तो उस काच पर पड़नेवाली सूर्य्यकी समस्त किरणें उसके एक मध्य बिन्दु पर इकट्ठी हो जाती हैं और उसके नीचेवाले पदार्थमें आग पैदा कर देती हैं। उसी प्रकार तुम्हारी भटकती हुई वृत्तियों द्वारा रोग दूर नहीं हो सकता, परंतु उन सब वृत्तियोंको किसी एक अवयव पर स्थिर करनेसे अद्भुत परिणाम दिखाई देता है। जिस अंगमें व्याधि हो उस पर मनकी वृत्तियोंको स्थिर करनेके पश्चात् ऐसी कल्पना करो कि उस जगहसे व्याधि हटकर श्वासद्वारा बाहर निकलती जाती है और जो श्वास तुम भीतर खींचते हो उसके द्वारा तुम्हारे शरीरमें बल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और जीवनका संचार होता है। इसके बाद एक प्रबल आज्ञा करो कि व्याधि मात्र मेरे शरीरसे बाहर निकल जाय। फिर तुम उसी क्षण किसी प्रकारकी शंका किये विना ऐसी कल्पना करो कि हमारे शरीरसे एक मलिन श्वास द्वारा वह बाहर निकल रही है। तुम विश्वास रक्खो कि वह अवश्य निकल जायगी। तुम इस तरह एक बार आज्ञाका कैसा प्रभाव पड़ता है, सो देखो। मैं तुम्हें झूठमूठ नहीं चढ़ाता हूँ, वरन् मैंने ये सब क्रियायें स्वतः अनुभव करके देखी हैं। इस तरह मैंने अपनी व्याधियोंको स्वतः निर्मूल किया है। इसमें आश्चर्य करने योग्य कुछ नहीं है। जो जानता है और जिसे अनुभव प्राप्त हो गया है उसे ये क्रियायें एक खेलके समान सरल हैं। विज्ञानके आश्चर्यजनक प्रयोग अज्ञानियोंको विस्मित करते है, परंतु जो उनके ज्ञाता हैं उनको वे बहुत साधारण प्रतीत होते हैं। विज्ञान दो प्रकारका है। एक आधिभौतिक विज्ञान (Physical science) और दूसरा आध्यात्मिक विज्ञान (Spiritual science)। मान लो कि तुम्हें कब्जियतकी बीमारी है। अब तुम सोते समय पेट पर हाथ रखकर आज्ञा करो कि सब मल प्रातःकाल निकलनेके लिए तैयार हो जाय। फिर कल्पना करो कि जठराग्नि, तिल्ली, आँतें इत्यादि सब कर्म कर रहे हैं और मल पृथक् हो रहा है। दो चार दिन ऐसा करो और फिर देखो कि उसका क्या परिणाम होता है। हम समझते हैं कि कदाचित् दूसरे दिन ही तुमको लाभ दिखाई देगा, परंतु यदि तत्काल लाभ न दिखाई दे तो भी उसे सहसा मत छोड़ो। क्यों कि फलप्राप्तिमें विलम्ब होनेका एक मात्र कारण क्रियामें शिथिलता होना है। क्रियाओंमें दृढ़ श्रद्धा और पूर्णता होते ही फल अवश्य मिलता है—यह आध्यात्मिक तत्त्वका अटल नियम है। इस रीतिके द्वारा तुम हर तरहकी व्यधियोंको दूर कर सकते हो।

सामान्य सूचनायें।

जब तुम जल पिओ, तब एकदम शीघ्रतासे मत पी जाओ, जिसप्रकार गरम चाय या दूध पीते हो उसी प्रकार धीरे धीरे एक एक घूँट करके पिओ। पानी पीते समय ऐसी भावना करो कि पानीमें जीवन तत्त्व है और वह हमारे भीतर प्रवेश कर रहा है। प्रत्येक घूँट लेते समय मनमें 'ओम्' का उच्चरण करो। भोजन करते समय भी तुम ऐसी ही कल्पना करो कि मैं प्रत्येक चीजमेंसे पोषक तत्त्वका ग्रहण कर रहा हूँ। वारंवार ओंकारका उच्चारण करो। हमेशा प्रसन्न रहो। चिन्ता और व्यग्रताको कभी मनमें न आने दो। बीमारीकी बातें न कभी करो और न कभी सुनो। तुम्हारे शरीर और मन पर तुम्हारा ही पूरा अधिकार है और किसीका नहीं। इसको कभी मत भूलो। तुम्हारी इस भावनामें परमात्मबल है, इसको स्मरण रक्खो। सर्वे सन्तु निरामयाः। *

चन्द्रगुप्तके स्वप्नोंकी जाँच।

(लेखक—श्रीयुत बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तार।)

कहा जाता है कि मौर्यवंशी महाराज चंद्रगुप्तको एक समय कुछ स्वप्न आये थे जिनकी संख्या १६ है और जिनके फलको सुनकर उन्होंने, संसार-देह-भोगोंसे विरक्त होते हुए, जैनमुनिदीक्षा धारण की थी। भद्रबाहुचरित्रमें, रत्ननन्दि नामके आचार्यने इन स्वप्नोंके नाम इस प्रकार दिये हैं:—

१ कल्पवृक्षकी शाखाका टूटना; २ सूर्यका अस्त होना; ३ छलनीके समान छिद्रोंवाले चंद्रमाका उदय; ४ बारह फणका सर्प; ५ पीछा लौटता

---

* एक गुजराती निबन्धका अनुवाद।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हुआ सुंदर स्वर्गीय विमान; ६ कूड़े कर्कटमें उत्पन्न हुआ कमल; ७ नृत्य करता हुआ भूतोंका समूह; ८ खद्योतका (जुगनूका) प्रकाश; ९ मध्यमें सूखा और प्रान्तमें थोड़े जलको लिये हुए सरोवर; १०सुवर्णके पात्रमें कुत्तेका खीर खाना; ११ हाथी पर चढ़ा हुआ बन्दर; १२ समुद्रका मर्यादा छोड़ना; १३ बहुभारयुक्त रथका बछड़ों द्वारा चलाया जाना; १४ ऊँट पर चढ़ा हुआ राजपुत्र; ५१ देदीप्यमान रत्नराशिका धूलिसे आच्छादित होना; १६ काले हाथियोंका युद्ध । '*

कर्नाटकी विद्वान् देवचन्द्रने भी अपने 'राजावलीकथे। '× नामक कन्नड ग्रंथमें सम्राट् चंद्रगुप्तके १६ स्वप्नोंका उल्लेख किया है। परन्तु इस उल्लेखमें स्वप्नोंके जो नाम दिये हैं उनसे मालूम होता है कि राजावली कथेमें भद्रबाहुचरित्रके स्वप्नोंमेंसे ६, ७, ११, १२, १४, और १५ नम्बरके छह स्वप्न नहीं हैं। इनके स्थानमें वहाँ दूसरे ही प्रकारके स्वप्न दिये हैं, जिनके नाम ये हैं:—

१ 'समस्त वायुमंडलमें व्याप्त होता हुआ धुआँ; २ सिंहासन पर बैठा हुआ एक बन्दर; ३ गर्दभों पर चढ़े हुए क्षत्रियपुत्र; ४ बन्दरोंका राजहंसोंको भय दिखाकर भगाना; ५ गोवत्सोंका समुद्रको उल्लंघन करना; ६ लोमड़ियोंद्वारा वृद्ध बैलोंका पीछा किया जाना ।'

इन छहों स्वप्नोंका फल क्रमशः इस प्रकार दिया है:—

'१ पापका प्रचार और पुण्यका लोप होगा; २ नीच, दुष्कुलीन और दुराचारी मनुष्य अधिकार प्राप्त करेंगे; ३ उच्चकुलीन राजा लोग नीचोंके साथ संसर्ग करेंगे; ४ नीच जातिके मनुष्य सत्कुलीनोंको कष्ट देंगे और उन्हें उसी समस्थलीकी ओर नीचा (अर्थात् अपने जैसा) करनेका प्रयत्न करेंगे; ५ राजालोग व्यवहार कर (चुंगी) और अन्य अनुचित टैक्स लगाकर प्रजापीडनमें सहायक बनेंगे; ६ नीच पुरुष झूठी प्रशंसाओं तथा नम्रताओंसे उच्चकुलीन, सत्पुरुष और बुद्धिमानोंको ठगेंगे ।'

यह फल भद्रबाहुचरित्रके उक्त छहों स्वप्नोंके फलसे प्रायः एकदम विलक्षण है। जैसा कि उक्त चरित्रमें दिये हुए उनके निम्नफलोंसे प्रगट है:—

'६ प्रायः हीन जातिके लोग जैनधर्मको धारण करेंगे, क्षत्रियादिक उसे धारण नहीं करेंगे; ७ मनुष्य नीच देवताओंमें अधिक श्रद्धा और भक्तिके रखनेवाले होंगे; ११ दुष्कुलमें उत्पन्न हुए नीच जातिके मनुष्य राज्य करेंगे, क्षत्रियलोग राजा नहीं होंगे; १२ राजालोग प्रजाकी संपूर्ण लक्ष्मी ग्रहण करेंगे और न्यायमार्गका उल्लंघन करनेवाले होंगे; १४ राजालोग निर्मल धर्मको

* यथाः—"इमान् षोडशदुःस्वप्नान् ददर्शाश्चर्यकारकान्। कल्पपादपशाखाया भंगोऽस्तमनं रवेः॥११॥ तृतीयं तितउप्रक्षमुद्यन्तं विधुमंडलम्। तुरीयं फणिनं स्वप्ने फणद्वादशमंडितम् ॥ १२ ॥ विमानं नाकिनां व्याघुटन्तं विभासुरं। कमलं तु कचारस्थं नृत्यन्तं भूतवृन्दकम् ॥ १३ ॥ खद्योतोद्योतमद्राक्षीत्प्रान्ते तुच्छजलं सरः। मध्ये शुष्कं हेमपात्रे शुनः क्षीरान्नभक्षणम् ॥ १४ ॥ शाखामृगं गजारूढमब्धिं कूलप्रलोपनम् । वाह्यमानं तथा वत्सैर्भूरिभारभृतं रथम् ॥ १५ ॥ राजपुत्रं मयारूढं रजसा पिहितं पुनः। रत्नराशिं कनत्कान्ति युद्धं चासितदन्तिनोः ॥ १६ ॥"

×इस लेखमें राजावलीकथेका जो कुछ उल्लेख किया गया है, वह सब मिस्टर बी. लेविस राइस साहबकी 'इन्स्क्रिप्शन्स ऐट् श्रवणबेल्गोल' नामक अँगरेजी पुस्तकके आधार पर किया गया है।

१ कचारेऽम्बुजमुत्पन्नं दृष्टं प्रायेण तेन वै। जिनधर्मं विधास्यन्ति हीना न क्षत्रियादयः॥ २ भूतानां नर्तनं राजन्नद्राक्षीरद्भुतं ततः। नीचदेवरता मूढा भविष्यन्तीह मानवाः॥ ३ तुंगमातंगमासीनशाखामृगनिरीक्षणात्। राज्यं हीना विधास्यन्ति कुकुला न च बाहुजाः॥४ सीमोल्लंघनतः सिन्धोर्लास्यन्ति सकलां श्रियम्। जनानां च भविष्यन्ति भूमिपा न्यायलंघकाः॥ ५ क्रमेलकसमारूढराजपुत्रस्य वीक्षणात्। हिंसाविधिं विधास्यन्ति धर्मं हित्वामलं नृपाः॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छोड़कर हिंसामार्गमें प्रवृत्त होंगे; १५ निर्ग्रंथ मुनि आपसमें विवाद और एक दूसरेकी निन्दा करनेवाले होंगे।'

दोनों ग्रंथोंमें इन छह स्वप्नोंके भेदको छोड़कर शेष स्वप्नोंमें जो प्रायः मिलते जुलते हैं। अनेक स्वप्न ऐसे भी पाये जाते हैं, जिनके फलोंमें परस्पर भेद है । यथाः—

१—भद्रबाहुचरित्रमें ९ वें स्वप्न (मध्यमें सूखा और प्रान्तमें थोड़ा जल लिये हुए सरोवर) का फल यह बतलाया है कि ' जहाँ जिनेंद्र भगवानके जन्मादिक कल्याणक हुए हैं, ऐसे तीर्थ-क्षेत्रोंमें जिनधर्मका नाश हो जायगा और वह कहीं दक्षिणादि प्रान्त देशोंमें स्थित रहेगा;' परन्तु राजावली कथेमें इस स्वप्नका नाम केवल ' सूखा सरोवर ' देकर फलोल्लेखमें लिखा है कि ' आर्य-खंड जैनमतसे रहित हो जायगा और असत्य-की वृद्धि होगी।'

२—राजावली कथेमें, दूसरे स्वप्न (कल्प-वृक्षकी शाखा टूटना) का उल्लेख करते हुए, देवचंदजी लिखते हैं कि ' जैनधर्मका पतन होगा और चंद्रगुप्तके सिंहासनके उत्तराधिकारी दीक्षा-धारण नहीं करेंगे '। परन्तु भद्रबाहुचरित्रमें इसी स्वप्नका फल यह बतलाया है कि ' अब आगेको कोई भी राजा जिनभाषित संयमको ग्रहण नहीं करेगा।'

३—सुवर्णके पात्रमें कुत्तेका खीर खाना, इस १० वें स्वप्नका फल भद्रबाहुचरित्रमें यह लिखा है कि ' लक्ष्मी नीचोंके लिए सुलभ और उत्त-मोंके लिए दुष्प्राप्य होगी।' परन्तु राजावली कथेमें यह बतलाया है कि ' राजालोग, छठे भागसे संतुष्ट न होकर, भूमिकरका प्रचार करेंगे और द्विगुण तथा त्रिगुण कर मँगकर अपनी प्रजाओंको सताएँगे।'

रामचंद्र मुमुक्षुके बनाए हुए ' पुण्यास्रव ' नामके कथाकोशमें भी चंद्रगुप्तके १६ स्वप्नोंका उल्लेख पाया जाता है। परन्तु भद्रबाहुचरित्रमें जिनका उल्लेख है, उन स्वप्नोंमेंसे इस ग्रंथमें १ नृत्य करता हुआ भूतोंका समूह (नं० ७), २ ऊँटपर चढ़ा हुआ राजपुत्र (नं० १४) और धूलिसे आच्छादित रत्नराशि (नं० १५) इन तीन स्वप्नोंका अभाव है । इनके स्थानमें यहाँ १ धूम्र, २ सिंहासन पर बैठा हुआ बन्दर और ३ तरुण बैलों पर चढे हुए क्षत्रिय, ये तीन स्वप्न अधिक हैं; जिनमेंसे पहले दो राजावली कथेके स्वप्नोंसे मिलते हैं और तीसरा भद्रबाहुचरित्रके स्वप्न-का रूपान्तर जान पड़ता है । उक्त कथाकोशमें इन तीनों स्वप्नोंका फल क्रमशः १ धूर्तोंका आधिक्य, २ अकुलीनोंका राज्य और ३ क्षत्रि-योंका कुधर्ममें रत होना बतलाया है । रहा भद्रबाहुचरित्रके उक्त तीनों स्वप्नों (नं० ७-१४-१५) का फल, वह ऊपर प्रकाशित किया जा चुका है। दोनोंके मीलानसे इन स्वप्नों-का फलभेद भी भले प्रकार समझमें आ जाता है। परन्तु इतना ही नहीं, जिन स्वप्नोंके नाम परस्पर मिलते जुलते हैं, उनमें भी अनेक स्वप्न ऐसे हैं, जिनके फलोंमें भेद पाया जाता है। जैसे

---

१ रजसाच्छादितसद्रत्नराशेरीक्षणतो भृशम् करिष्यन्ति नपाःस्तेयां निर्ग्रंथमुनयो मिथः ॥ २ सरसा पयसा रिक्तेनातितुच्छजलेन च । जिनाजिन्मादि-कल्याणक्षेत्रे तीर्थत्वमाश्रिते ॥ नाशमेष्यति सद्धर्मो मार-वीरमदच्छिदः । स्थास्यतीह क्वचित्प्रान्ते विषये दक्षिणादिके ॥

३ सुरद्रुमलताभंगदर्शनाद्भूप भूपतिः ।
नातोग्रे संयमं कोपि ग्रहीष्यति जिनोदितम् ॥

१ कलधौतमये पात्रे भषकक्षीरभक्षणात् ।
प्राप्स्यन्ति प्राकृताः पद्मामुत्तमानां दुरासदा ॥
२ धूमो दुर्जनाधिक्यं भणति ।
३ सिंहासनस्थो मर्कटोऽकुलीनस्य राज्यं प्रकाशयति ।
४ तरुणवृषभारूढाः क्षत्रियाः
क्षत्रियाणांकुधर्मरतिं प्रख्यापयन्ति ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'सुवर्णके पात्रमें कुत्तेका खीर खाना' नामक स्वप्नका फल लिखा है कि 'आगे राजसभाओंमें कुलिंगियोंकी पूजा होगी।' यह फल ऊपर उद्धृत किये हुए भद्रबाहुचरित्र और राजावली कथे दोनोंहीके फलोंसे स्पष्ट भिन्न तथा विलक्षण जान पड़ता है। इसी प्रकार और भी स्वप्नोंका फल जानना।

पाठकोंको यह जानकर जरूर आश्चर्य होगा कि उक्त तीनों ग्रंथोंमें स्वप्नोंका यह सब फल श्रीभद्रबाहु श्रुतकेवलीका बतलाया हुआ कहा जाता है! परन्तु तीनों ग्रन्थोंका कथन परस्पर एक दूसरेके विरुद्ध होनेसे कोई भी बुद्धिमान् यह स्वीकार करनेके लिए तय्यार नहीं हो सकता कि स्वप्नोंका यह सब फल श्रीभद्रबाहु श्रुतकेवलीका कहा हुआ है। अवश्य ही इस कथनमें ग्रंथकर्ताओंका मतिकौशल शामिल है। उन्होंने देश, काल तथा समाजकी परिस्थितियोंके प्रभावसे प्रभावित होकर और किसी खास उद्देश्यको अपने हृदयमें रखकर ही वास्तविक घटनाओंमें कुछ फेरफार किया है। अथवा यों कहना चाहिए कि उन्हें इस विषयका सत्य इतिहास नहीं मिला; यह सब रचना, प्रमादवश, दन्तकथाओं आदिके आधारपर की गई है। और इसीसे यह सब गोलमाल हुआ है। परन्तु कुछ भी हो, इसमें सन्देह नहीं कि जो लोग चरित्रग्रंथों पर पूर्ण श्रद्धा रखते हैं, उनके अक्षर-अक्षरको सत्य मानते हैं और उन्हें साक्षात् जिनवाणी समझते हैं—कहते हैं कि 'आचार्योंने अपनी तरफसे एक शब्द भी नहीं मिलाया'— उनके लिए तीनों ग्रंथोंका यह सब कथन अवश्य ही चिन्ताजनक होगा और उनके हृदयोंमें यह शंका उत्पन्न किये बिना नहीं रहेगा कि वास्तवमें महाराजा चंद्रगुप्तको इस प्रकारके भविष्य-सूचक कोई स्वप्न आयेथे या कि नहीं, यदि आये तो वे कौन कौनसे स्वप्न थे और उनका क्या क्या फल किसके द्वारा कहा गया है। श्वेताम्बर जैनोंके यहाँ भी चंद्रगुप्तके १६ स्वप्न माने जाते हैं, ऐसा 'जैन सज्झायमाला' आदि दो गुजराती पुस्तकों पर से जाना जाता है। परन्तु अभीतक इस सम्बधमें मुझे उनका कोई मूल प्रामाणिक ग्रंथ उपलब्ध नहीं हुआ। इस लिए यहाँपर श्वेताम्बर–स्वप्नोंका उल्लेख छोड़ा जाता है; तो भी इतना जरूर सूचित कर देना होगा कि उक्त दोनों गुजराती पुस्तकोंका फलकथन भी, परस्पर समान न होकर, बहुत कुछ अंशोंमें एक दूसरेसे भिन्न है; और तिसपर भी तुर्रा यह है कि दोनोंके ही रचयिता अपने अपने कथनको भद्रबाहु श्रुतकेवलीका कहा हुआ बतलाते हैं। अस्तु।

अब यहाँ पाठकोंपर एक बात और प्रगट की जाती है और वह भरतचक्रवर्तीके स्वप्नोंकी बात है। श्रीजिनसेनाचार्यप्रणीत आदिपुराणमें भरत चक्रवर्तीको भी १६ स्वप्नोंका आना लिखा है, जिनमेंसे १ हाथीके कन्धेपर बैठा हुआ बन्दर, २ भूतोंका नृत्य, ३ मध्यमें सूखा और किनारोंपर प्रचुर जलसे भरा हुआ सरोवर, ४ धूलिसे धूसरित रत्नराशि और ५ आदर सत्कारसे पूजित कुत्तेका नैवेद्य भक्षण, ये पांच स्वप्न प्रायः वही हैं जिनका उल्लेख भद्रबाहुचरित्रमें पाया जाता है। आदिपुराणके ४१ वें पर्वमें इन पाँचों स्वप्नोंका फल क्रमशः इस प्रकार वर्णन किया है:—

---

१ सुवर्णभाजने पायसं भुंजानः श्वानः
राजसभायां कुलिंगपूजां द्योतयन्ति।

१ इस पुस्तकके द्वितीय भागमें नयविजयका बनाया हुआ 'सोल सुपननी सज्झाय' नामका विवक्षित पाठ है। दूसरी पुस्तक या पाठका नाम 'चंद्रगुप्त राजाने सोल सुपन' है, जिसे जयमल नामके किसी कविने बनाया है। यह पुस्तक हमें हस्तलिखित प्राप्त हुई है। पुस्तकके अन्तमें कवि लिखता है कि मैंने इसे 'व्यवहार सूत्रकी चूलिका' के अनुसार बनाया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'१ आदि क्षत्रिय वंशका नाश होकर नीच कुलके मनुष्य पृथ्वीका पालन करेंगे; २ प्रजाके लोग व्यन्तरोंको देवता मानकर उनकी पूजा-सेवा करेंगे; ३ जैनधर्म आर्यक्षेत्रमें न रहकर म्लेच्छ देशोंके निवासियोंमें रहेगा; ४ पंचम कालमें ऋद्धिधारी उत्तम मुनि नहीं होंगे; ५ अव्रती ब्राह्मण गुणी पात्रोंके समान आदरसत्कार पायँगे।'

इस फलकथनमें चौथे स्वप्नका फल भद्रबाहु-चरित्रके कथनसे, तीसरेका फल भद्रबाहुचरित्र और पुण्यास्रवके कथनसे और पाँचवें स्वप्नका फल 'राजावलीकथे' को मिलाकर तीनों ही ग्रंथोंके कथनसे विलक्षण और विभिन्न है। आदि-पुराणमें इन स्वप्नोंके फलका सम्बंध पंचमकाल (वर्तमान युग) के ही साथ बतलाया गया है। अर्थात् भरत चक्रवर्तीको सुदूरवर्ती पंचमकालका भविष्य संसूचित करनेके लिए ही ये सब स्वप्न आये थे। यथाः—

"स्वप्नानेवं फलानेतान्विद्धि दूरविपाकिनः।
नाद्यदोषस्ततः कोपि फलमेषां युगान्तरे॥ ८०॥

यह श्लोक श्री जिनसेनाचार्यने भगवान् ऋषभदेवके मुखसे कहलाया है। भगवान् ऋषभदेव और उनके पुत्र भरत चक्रवर्तीको हुए—आज अर्बों और खर्बों वर्ष ही नहीं, बल्कि कुछ हजार वर्ष कम एक कोडाकोडी सागरका लम्बा चौड़ा समय कहा जाता है। किसी स्वप्न और उसके फलमें इतने लम्बे चौडे अन्तरालका होना स्वप्न-शास्त्रकी दृष्टिसे कहाँतक सत्य और युक्तियुक्त है, इसे तो बड़े बड़े स्वप्नशास्त्री या केवली भगवान् ही जानें; परन्तु जहाँतक मैंने इस विषयका अध्ययन किया है, उसके आधार पर इतना जरूर कह सकता हूँ कि स्वप्नों और स्वप्न-फलोंमें इतने अधिक अन्तरालकी व्याप्तिका कोई कथन या नियम किसी भी दूसरी जगह देखनेमें नहीं आता। श्री दुर्गदेव नामके जैनाचार्य, ११ वीं शताब्दीमें बने हुए अपने 'रिष्टसमुच्चय' नामक ग्रंथमें रात्रिके प्रथम द्वितीयादि प्रहरोंमें आनेवाले स्वप्नोंके फलका मर्यादित समय क्रमशः १० वर्ष, ५ वर्ष, ६ महीने और १० दिन बतलाते हैं। यथाः—

"दहवरिसाणि तयद्धं, छम्मासं तं मुणेह दहदियहा।
जहकमसो णायव्वं सुवणत्थं रयणिपहरेहिं॥ ११४॥"

इसी प्रकार स्वप्नशास्त्रसम्बधी और भी बहुतसे कथन हैं, जिनसे आदिपुराणके इस कथनकी असंगतता पाई जाती है। आश्चर्य नहीं कि श्रीजिनसेनाचार्यने अपने समयकी परिस्थिति-योंको लक्ष्य करके और अपने कुछ सदुद्देश्योंकी पूर्तिके लिए ही भविष्यकथनका यह सब ढंग निकाला हो और उन्हींकी देखादेखी पीछेसे रत्न-नन्दि आदि ग्रंथकारोंने चंद्रगुप्तके सम्बंधमें उसका प्रयोग किया हो। परन्तु कुछ भी हो, इतना जरूर कहना होगा कि जिन स्वप्नोंके आधार पर इतनी बड़ी भविष्यद्वाणी की गई हो, जिसका देश और समाजकी प्रगति तथा जीवनीशक्तिसे बहुत कुछ सम्बंध है, जो अपने संस्कारोंसे जैनसमाजमें अकर्मण्यता-शिथिलता-का संचार ही नहीं करती बल्कि उसके भविष्यको अंधकारमय बनानेके लिए उतारू है, उन स्वप्नोंका विषय कुछ कम महत्त्वकी वस्तु नहीं है। उनके सम्बंधमें इस प्रकारका गोलमाल होना कुछ अर्थ रखता है, और वह उपेक्षा

१ करीन्द्रकन्धरारूढशाखामृगविलोकनात्। आदि-क्षत्रान्वयोच्छित्तौ क्ष्मां पास्यन्त्यकुलीनकाः॥ २ प्रनृत्यतां प्रभूतानां भूतानामीक्षणात्प्रजाः। भजेयुर्नाम-कर्माद्यै र्व्यंतरान्देवतास्थया॥ ३ शुष्कमध्यतडागस्य पर्यन्तेऽम्बुस्थितीक्षणात्। प्रच्युत्यार्यनिवासात्स्याद्धर्मः प्रत्यन्तवासिषु॥ ४ पांसुधूसररत्नौघनिध्यानादृद्धिसत्तमाः नैव प्रादुर्भविष्यन्ति मुनयः पंचमे युगे॥ ५ शुनोऽर्चित-स्य सत्कारैश्चरुभोजनदर्शनात्। गुणवत्पात्रसत्कारमा-प्स्यन्त्यव्रतिनो द्विजाः॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किये जानेके योग्य नहीं है। जहाँतक मुझे मालूम है, चंद्रगुप्तके समयका जो इतिहास मेगास्थनीज आदि प्राचीन विद्वानोंका लिखा हुआ इस समय उपलब्ध है, उसमें चंद्रगुप्तके स्वप्नोंका कोई उल्लेख नहीं है। प्राचीन दिगम्बर जैनग्रंथ और शिलालेख भी इस विषयमें मौन पाये जाते हैं। भारतके प्राचीन इतिहासमें चंद्रगुप्तके स्वप्नों जैसी एक ऐसी बड़ी और महत्त्वकी घटनाका जिसने चंद्रगुप्तको विरक्त करके जैनमुनिदीक्षातक धारण करनेके लिए वाध्य किया हो, उल्लेख न होना संदेहसे खाली नहीं है। इस लिए जैन विद्वानोंको इस विषयके सत्यकी जाँच करनी चाहिए और स्वपरसाहित्यका मथन करके, ऐतिहासिक दृष्टिसे इस बातका निर्णय करना चाहिए कि वास्तवमें सम्राट् चंद्रगुप्तको इस प्रकारके भविष्यसूचक कोई स्वप्न आये या कि नहीं, यदि आये तो वे कौन कौन स्वप्न थे, उनका क्या क्या फल किसके द्वारा कहा गया, और वह फल स्वप्नशास्त्रकी दृष्टिसे कहाँतक सत्य हो सकता है। आशा है कि विद्वान् लोग इस विषयपर अपने अपने विचारों और अनुसंधानोंको प्रगट करके सर्व साधारणका भ्रम दूर करनेकी कृपा करेंगे।

बम्बई
ता. १५-७-१७

जैनधर्म और हिन्दूधर्म।

[लेखक—श्रीयुत लाला कन्नोमलजी एम. ए.]

जैनधर्म और हिन्दूधर्ममें कौन कौन सिद्धान्त मिलते हैं और कौन कौन नहीं-यही बताना इस लेखका उद्देश्य है। इस आलोचनाके लिए जैनधर्मके सिद्धान्त चार भागोंमें विभक्त किये गिये हैं-१ दार्शनिक विषय, २ तीर्थंकर विषय, ३ गृहस्थ धर्म और ४ साधु धर्म।

पहले दार्शनिक बातोंका विचार कीजिए। जैनशास्त्रने समस्त दार्शनिक विषयोंको नव तत्त्वोंमें विभक्त किया है। यही शैली हिन्दू दर्शनशास्त्रोंकी भी है। सांख्यदर्शनने २५ तत्त्व, न्यायदर्शनने १६ पदार्थ, और वैशेषिकदर्शनने ७ पदार्थ माने हैं। वेदान्तदर्शनने केवल एक तत्त्व 'ब्रह्म'ही माना है। समस्त वस्तुओंको तत्त्वोंमें बाँटकर निर्णय करना बड़ी प्राचीन शैली है और यह जैनधर्म और हिन्दूधर्म—दोनोंमें ही है।

यद्यपि जैनधर्ममें नव तत्त्व कहे हैं, तथापि मुख्य तत्त्व दो ही हैं, एक जीव और दूसरा अजीव। ये ही दोनों द्रव्य हैं। सांख्यदर्शनमें इन्हीं दोनोंको पुरुष और प्रकृति कहा है और न्याय और वैशेषिक दर्शनोंमें जीव और प्रकृति। जैसे सांख्य, न्याय और वैशेषिक मत द्वैतवाद हैं वैसे ही जैनमत भी द्वैतवाद है, अर्थात् यह जीव और अजीव दो वस्तुओंको मानता है। वेदान्त मत सर्वथा अद्वैतवाद है। वह केवल जीवहीको नित्य सत्य मानता है—अजीवको नहीं। इसीको उसने ब्रह्म कहा है। उसने अजीवकी व्यावहारिक सत्यता मानी है—वास्तविक सत्यता नहीं। उसके मतानुसार अजीव ही माया है।

जैसे जैनशास्त्र जीवको चेतन और ज्ञानविशिष्ट मानता है; वैसे ही वेदान्त और सांख्य शास्त्र भी मानते हैं।

न्याय और वैशेषिक शास्त्रोंकी जीवसम्बन्धी परिभाषा अवश्य कुछ भिन्न है। वह यह है:—

इच्छा-द्वेष-प्रयत्न-सुख-दुःखज्ञानानि आत्मनो लिङ्गमिति।
प्राणापाननिमेषोन्मेषमनोगतीन्द्रियान्तरविकाराः।
सुखदुःखेच्छाद्वेषौ प्रयत्नश्चात्मनो लिङ्गानि ॥

जैनमतकी जीव-परिभाषा, सांख्यमतकी परिभाषासे अधिकतम मिलती है। जैसे जैनशास्त्र कहता है कि, जीव अनेक हैं—सब जीव एक नहीं, वैसे ही सांख्य न्याय और वैशेषिक शास्त्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी कहते हैं। वेदान्त, जीवको एक ही मानता है—अलग अलग नहीं।

जैसे जैनशास्त्रने माना है कि वास्तवमें जीव शुद्ध ज्ञानस्वरूप है, पर कर्मोंका आवरण पड़नेसे छिप जाता है- और जब यह आवरण हट जाता है तो उसे कैवल्यज्ञान प्राप्त हो जाता है, वैसे ही वेदान्त और सांख्यशास्त्रोंने भी माना है। वे कहते हैं जब सूर्यके सामने बादल आ जाते हैं तो सूर्य छिप जाता है और उसका प्रकाश मलिन हो जाता है, इसी प्रकार जब जीव अथवा आत्माके सामने कर्मोंका आवरण आ जाता है, तो वह मलिन और बन्धयुक्त दिखाई देता है। यदि यह आवरण हट जाय तो उसकी वास्तविक अवस्था रह जायगी, और यह शुद्धज्ञान अवस्था है। जैसे जैनमत जीवको अनादि, अज, अमर, अव्यय और नित्य मानता है वैसे ही हिन्दूशास्त्र भी मानते हैं। गीतामें कहा है:—

न जायते म्रियते वा कदाचिन्
नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्ते हन्यमाने शरीरे ॥
नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्तापो न शोषयति मारुतः॥
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः॥

जैनधर्मने जीवका आवागमन माना है। इसे हिन्दू धर्म भी वैसे ही मानता है। वेदान्त और सांख्यशास्त्रोंका कथन है कि आवागमन, मनुष्यके लिङ्ग अथवा सूक्ष्म शरीरको होता है—पुरुष अथवा आत्माको नहीं। न्याय और वैशेषिक शास्त्र जीवका ही आवागमन मानते हैं। जैनमत प्रतिपादित आवागमन, न्याय और वैशेषिक शास्त्रके सिद्धान्तोंसे सर्वथा मिलता है। गीतामें इस तरह कहा है:—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥

जैनधर्ममें संसारी जीवोंके मुख्य भेद दो हैं; स्थावर और त्रस। पृथिवीकाय, जलकाय, वायुकाय, अग्निकाय और वनस्पतिकाय ये पाँच भेद स्थावर या एकेन्द्रिय जीवोंके हैं। त्रस जीवोंके द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय ये चार भेद हैं। इन सब प्रकारके जीवोंका जन्म तीन प्रकारसे माना है—गर्भ, सम्मूर्च्छन, और उपपाद। गर्भजन्म तीन प्रकारका है—जरायुज, अण्डज और पोत। पोत जन्म वह है, जो जीव माके गर्भसे विना जरायुके उत्पन्न होता है; जैसे सिंह या बिल्ली। जो जीव आप ही आप उत्पन्न हो जाते हैं जैसे वनस्पति आदि, वे सम्मूर्च्छन हैं। देवोंका जन्म उपपाद जन्म है। हिन्दूधर्ममें जैनधर्मके इन्हीं जन्मभेदोंके समान जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज, ऐसी चार प्रकारकी सृष्टि मानी है। स्वेदज और उद्भिज सम्मूर्च्छनके ही अन्तर्गत हैं। इस सम्बन्धमें यह कहना भी आवश्यक है कि हिन्दू धर्ममें पृथिवी, जल, वायु, अग्नि और आकाश ये पंच तत्त्व माने गये हैं, परंतु ये तत्त्व प्रकृतिके विकार हैं—पुरुषके नहीं हैं। आकाश तत्त्वको तो जैनमतमें भी प्रकृति या अजीवका भेद जड़ माना है; परन्तु पृथिवी, जल, वायु और अग्निको जैनधर्ममें स्थावर जीव भी माना है। यह विलक्षणता है। अर्थात् जैनधर्मके अनुसार ये चारों जीव भी हैं और जड़ भी हैं। ये चारों उस हालतमें जब कि इनमेंसे जीवनशक्ति नष्ट कर दी जाती है जड़ रह जाते हैं; जैसे प्राकृतिक जल सजीव है। यदि यह औंटा लिया जाय—गर्म कर लिया जाय तो जड मात्र रह जाय। जैनधर्म वनस्पतिमें भी जीव मानता है, जो विज्ञानसिद्ध बात है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैनमतमें जो एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय आदि भेद हैं, वे हिन्दू धर्ममें नहीं माने गये हैं; परन्तु कुछ कुछ इसी ढँगसे उसमें अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोशवाले जीव बतलाये हैं, पर इनके लक्षण नहीं मिलते। जैनधर्ममें अजीवके पाँच भाग हैं—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और काल। धर्मास्तिकाय जीव और पुद्गलोंकी गतिमें और अधर्मास्तिकाय स्थितिमें सहायक होता है। धर्म और अधर्म-ये दोनों द्रव्यें जैन मतमें विलक्षण हैं। शेष अजीवके तीन भाग हिन्दू मतमें भी प्रकृतिके विकार कहे हैं। इस विषयको न्याय और वैशेषिक शास्त्रोंने अच्छी तरह बताया है। पुद्गलको न्याय और वैशेषिक शास्त्रोंमें परमाणु कहा है। परमाणुकी यह परिभाषा है:—

जालान्तरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः।
भागस्तस्य च षष्ठो यः परमाणुः स उच्यते॥

जिस तरह दो दो तीन तीन अथवा अधिक पुद्गल मिलकर प्राकृतिक वस्तुओंके रूपमें आते हैं और संसारकी रचना करते हैं, वैसे ही न्यायमतानुसार परमाणु भी करते हैं। समस्त संसार परमाणुओंके मिलनेसे ही बना है। न्याय और वैशेषिक शास्त्रका यही मत है। और यही मत जैन शास्त्रका है*। वेदान्त और सांख्य शास्त्रोंका यह मत नहीं है। सांख्यशास्त्र विकासवादी है, और वेदान्तशास्त्र मायावादी। आजकल पाश्चात्य विद्वान् विकासवादको ही ठीक मानते हैं—परमाणु अथवा पुद्गलवादको नहीं। मायावाद और विकासवादमें कुछ अन्तर नहीं है, अर्थात् सृष्टिकी उत्पत्ति दोनोंमें ही एकसी है—सिर्फ प्रकृति और मायाके रूपमें कुछ अन्तर है।

जिस तरह जैनमतमें कालके दो रूप कहे हैं अर्थात् उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी, वैसे ही सांख्यशास्त्रमें कालके संक्रम और प्रतिसंक्रम ये दो रूप कहे हैं। उत्सर्पिणी अथवा संक्रमकालमें सब वस्तुयें अच्छी होती हैं और अवसर्पिणी अथवा प्रतिसंक्रमकालमें सब वस्तुयें बुरी होती जाती हैं। हिन्दू शास्त्रमें समयके सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग ये चार भाग भी कहे हैं। ये चारों भाग उत्सर्पिणी अथवा संक्रमकाल और अवसर्पिणी अथवा प्रतिसंक्रमकालमें आ जाते हैं।

वास्तवमें जैनमतके अनुसार दो ही द्रव्य हैं जीव और अजीव। ऐसे ही हिन्दूधर्ममें न्याय, वैशेषिक और सांख्यमतके अनुसार ये ही दोनों वस्तुयें द्रव्य मानी गई हैं। सांख्यमत, पुरुष और प्रकृतिको द्रव्य मानता है, न्याय और वैशेषिक शास्त्र जीव और प्रकृतिको द्रव्य मानते हुए ईश्वरको भी द्रव्य मानते हैं। इस विषयमें सांख्यमत और जैन मतकी सहमत्ता है।

जैनधर्ममें कहा है कि आस्रव तत्त्वके द्वारा जीव—अजीवका सम्बन्ध होता है, अर्थात् आस्रव वह क्रिया है, जिसके द्वारा मनुष्यको पुण्यपाप लगता है। पुण्यपापोंहीसे अजीवका बन्धन होता है। कल्पना करो कि जीव एक जलाशय है और कर्म जलप्रवाह। जिस मार्गसे यह प्रवाह बहकर जलाशयमें आवेगा, वही आस्रव कहा जायगा। आस्रव दो प्रकारका है—शुभ और अशुभ। शुभ आस्रव पुण्यजनक है, और अशुभ पापजनक। इन दोनों ही कर्मोंसे जीवका बन्धन होता है। अब इसी बातको हिन्दूशास्त्रकी दृष्टिसे देखो तो जिसे आस्रव कहा है, वह हिन्दू शास्त्रोंमें प्रवृत्ति मार्ग है। मन, वचन, कायसे अच्छे बुरे कर्म

* परन्तु जैनमतमें पुद्गलके उस छोटेसे छोटे हिस्सेको परमाणु कहते हैं जिसका कोई भाग न हो सके। असंख्य अनन्त परमाणुओंके समूहसे दृष्टिगोचर होनेवाला पुद्गल बनता है। जालान्तर्गत रजका छठा हिस्सा जैनधर्मके अनुसार परमाणु नहीं, किन्तु असंख्य परमाणुओंका समूह है—सम्पादक।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करना प्रवृत्ति है। इन्हीं शुभ अशुभ कर्मोंसे आत्माका बन्धन होता है। यदि आश्रवकी जगह प्रवृत्ति, पुण्यपापकी जगह शुभ और अशुभ कर्म, और बन्धकी जगह बन्धन शब्दोंका प्रयोग किया जाय तो हिन्दूमतविचार हो जायगा। जैनशास्त्रज्ञ तो कहेंगे कि पुण्य और पापकर्मोंके आस्रवसे जीवका बन्ध होता है, और हिन्दू शास्त्रज्ञ इसी बातको कहेंगे कि शुभ अशुभ कर्मकी प्रकृतिसे आत्माका बन्धन होता है। बात एक ही है—चाहे पुण्यपापरूप कर्मोंके आस्रवसे जीवका बन्ध कहो, चाहे शुभ अशुभ कर्मद्वारा प्रवृत्तिसे आत्माका बन्धन कहो।

इस बन्धनके तोड़नेके लिए जैनमतमें दो उपाय कहे हैं—संवर और निर्जरा। आस्रवकी धाराको रोकनेका नाम संवर है। इस धारासे पहले आये हुए कर्मोंको विध्वंस करना निर्जरा है। आस्रवको संवरसे रोककर कर्मोंको निर्जराद्वारा विध्वंस करना चाहिए। इसी बातको हिन्दू धर्मवाले कहेंगे कि संसार-प्रवृत्तिको वैराग्यद्वारा रोककर संन्यासादिसे कर्मोंका क्षय करना चाहिए।

जब निर्जरा अथवा संन्यासादिक द्वारा जीवका बन्धन कट जाता है तब जीवको मोक्षकी प्राप्ति होती है। मोक्षका अर्थ बन्धनसे छुटकारा पाकर अपनी असली अवस्थाको फिर प्राप्त करना है। जैनमतके अनुसार मुक्त जीवमें व्यक्तिता रहती है। न्यायशास्त्रवालोंका भी यही मत है। वेदान्त और सांख्यशास्त्रके अनुसार मुक्त जीवमें व्यक्तिता नहीं रहती है। मोक्षविषयमें जैनमत, न्याय और वैशेषिक शास्त्र सहमत हैं। जैनधर्ममें ईश्वरको संसारकर्त्ता नहीं माना है। ईश्वर शब्दका प्रयोग उन मुक्त जीवोंके लिए किया है, जिन्हें संसारमें तीर्थंकर कहते हैं और मुक्त हो जानेके पश्चात् सिद्ध। जैनधर्म, संसारको अनादि मानता है और कहता है कि कोई समय ऐसा नहीं था कि जब संसारकी उत्पत्ति हुई हो।

संसारकी वस्तुओंका नाश अवश्य होता है, परन्तु समष्टिरूपमें संसार अनादिकालसे वैसा ही चला आता है। इस कथनका यह आशय है कि जैसे मनुष्य मरा करते हैं, परन्तु मनुष्य-जाति सर्वदासे वैसी ही चली आती है, वैसे ही संसारकी वस्तुओंका नाश तो होता रहता है परन्तु संसारका नाश कभी नहीं होता है। इस विचारसे यह सिद्ध होता है कि संसारोत्पत्ति करनेवालेकी कोई आवश्यकता नहीं है। इसलिए ईश्वरको संसारकर्त्ता नहीं कहा है। हिन्दूधर्ममें ईश्वरके विषयमें कई मत हैं। वेदान्त, निर्गुण ईश्वरको मानता है, जिसका नाम ब्रह्म है। न्याय और वैशेषिक शास्त्र, सगुण ईश्वरको मानते हैं, और इसे संसारका कर्त्ता भी समझते हैं। ऐसा समझनेका कारण यह है कि वे संसारको उस रूपमें अनादि नहीं मानते, जिसमें जैनशास्त्र मानते हैं। न्याय और वैशेषिक शास्त्रोंके अनुसार संसार केवल परमाणुरूपसे अनादि है—व्यक्त रूपसे नहीं।

प्रलयके समय समस्त व्यक्त संसार परमाणुरूपमें हो जाता है। प्रलयके पश्चात् उन परमाणुओंको व्यक्त संसारके रूपमें लाना ईश्वरका काम है। क्योंकि ये परमाणु अपने आप किसी दैवी शक्तिकी सहायताके विना, संसार रूपमें नहीं आ सकते हैं। यदि जैनमत भी संसारको केवल परमाणुरूपमें ही अनादि मानता और प्रलयको भी मानता तो उसे भी संसारकर्त्ता ईश्वरकी आवश्यकता पड़ती। उसने संसारको व्यक्त रूपसे अनादि माना है और उसका सार्वदेशिक प्रलय नहीं माना है; इस लिए उसे संसारकर्त्ता ईश्वरके माननेकी आवश्यकता नहीं पड़ी है। सांख्यशास्त्र सगुण ईश्वरको नहीं मानता है, परन्तु वह संसारविषयमें परमाणुवादी नहीं है,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैसा कि जैनमत है। वह विकासवादी है। जहाँतक सगुणईश्वर नहीं माननेका सम्बन्ध है, वहाँतक जैनमत और सांख्यमतकी एक सम्मति है। यदि सूक्ष्म विचारसे देखा जाय तो जैन और सांख्यमत दोनोंमें ही निर्गुण ब्रह्मको मानता है, यद्यपि यह मानता स्पष्ट शब्दोंमें नहीं कही गई है। जब जैनधर्म जीवको अजर, अमर और अव्यय मानता है और मुक्त जीवको सर्वज्ञ और अमर बताता है; तो जैनमतको अनीश्वरवादी नहीं कह सकते हैं। क्योंकि वेदान्त सांख्य आदि शास्त्रोंमें ईश्वरका निर्गुण रूप ही माना है। ईश्वरको संसारकर्त्ता स्पष्ट शब्दोंमें नहीं कहा है। जैनमतको नास्तिक मत भी नहीं कह सकते हैं; क्योंकि नास्तिक तो न जीवको मानता है और न ईश्वरको। जिस मतमें जीवको अजर, अमर और अनादि मानकर, उसकी सिद्ध अवस्थातक मानी है, जो ईश्वर अवस्थाके बराबर ही है, तो वह मत अनीश्वरवादी अथवा नास्तिक मत कैसे हो सकता है? इतना अवश्य कह सकते हैं कि जो ईश्वरकी परिभाषा हिन्दू धर्ममें है, वह जैन धर्ममें नहीं है। यदि शकरको एक मनुष्य शकर कहे और दूसरा उसे किसी और नामसे कहे तो शकर पदार्थमें कोई भेद नहीं हो जाता है—केवल नामोंकी भिन्नता रहती है। इसी तरह यदि एक ही वस्तुको हिन्दूधर्मवाले ब्रह्म अथवा ईश्वर कहें और जैनमतवाले सिद्ध अथवा शुद्ध जीव कहें, तो उसमें कोई अन्तर नहीं आता है। यदि जैनमतवाले इस वस्तुको ही नहीं मानते होते तो अवश्य मतभेद होता। यदि जैनमतवालोंका यही कहना है कि ईश्वर जगतका कर्ता नहीं है, और न कर्मोंका फलदाता है, तो ऐसा तो वेदान्त और सांख्यशास्त्रका भी मत मालूम होता है। इतना ही कह सकते हैं कि ईश्वर विषयमें जैनमतवालोंकी न्याय और वैशेषिक मत वालोंसे मतभिन्नता है—हिन्दू धर्मके अन्य दार्शनिक विचारोंवालोंसे नहीं। इस सम्बन्धमें यह कहना भी आवश्यक है कि आधुनिक पाश्चात्य विद्वानोंने संसारकी उत्पत्ति विकासवाद द्वारा मानी है—परमाणुवादद्वारा नहीं। संसारकी प्रलय भी मानी है। संसारको व्यक्त रूपसे अनादि नहीं माना है। संसारकी रचनामें किसी चेतनशक्तिका होना माना है। किसीने इस शक्तिको अज्ञेय कहा है, और किसीने इसे किसी दूसरे नामसे पुकारा है। वेदान्तने इस शक्तिको ब्रह्म कहा है और संसारोत्पत्तिको माया विकासद्वारा माना है। इस मायानिर्मित संसारकी प्रलय भी मानी है। इन अंशोंमें पाश्चात्योंके दार्शनिक विचार वेदान्तमतविचारोंसे बहुत कुछ मिलते हैं। जैनधर्मके तीन साधन अर्थात् ज्ञान, दर्शन और चारित्र हिन्दूधर्मके ज्ञान, भक्ति और कर्म मार्गोंसे मिलते हैं। दार्शनिक विषयोंकी विवेचना करते समय यह भी कहना आवश्यक है कि जैनधर्मका सप्तभङ्गीनय हिन्दू शास्त्रोंके मतसे नहीं मिलता है। यह जैनशास्त्रोंका विलक्षण नय है।

जैनमतके तीर्थंकर वे महान् पुरुष हैं, जो अनेकानेक जन्मोंमें मुक्तिप्राप्तिकी चेष्टा करते रहे हैं, और जिन जन्मोंमें वे तीर्थंकर पदवीको पहुँचे हैं उनमें उन्होंने शरीरके रहते ही मुक्त अवस्था प्राप्त कर ली है, अर्थात् जिनके कर्म नष्ट हो गये हैं और जिन्हें आगेके लिए भी कर्मचक्र नहीं रहा है। ऐसी अवस्थामें ये सभी जीवोंको सम दृष्टिसे देखते हैं। उनके लिए शत्रु, मित्र, ब्राह्मण, चांडाल, स्त्री, पुरुष, सब एक ही हैं। वे संसारमें तो अवश्य रहते हैं; परन्तु कोई कर्म उन्हें नहीं लगता है। जब तीर्थंकर देहत्याग कर देते हैं तो वे सिद्ध हो जाते हैं; अर्थात् ईश्वरावस्थाको पहुँच जाते हैं। तीर्थंकरोंके ही समान सामान्यकेवली भी होते हैं; जिनके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गर्भ, जन्म, तप आदिके 'कल्याणक' नामक उत्सवविशेष नहीं होते हैं। ऐसी अवस्थावालोंको हिन्दूमतमें जीवन्मुक्त कहा है। राजा जनक, जड़भरत, दत्तात्रेय, शुकदेव आदि जीवन्मुक्त थे। ये महान् पुरुष सब चराचर संसारको एक दृष्टिसे ही देखते थे। इनके विषयमें निम्न लिखित श्लोक सत्य कह सकते हैं:—

मातृवत्परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पश्यति॥

अथवा

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयते चास्य कर्म्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥

पूर्वोक्त विचारसे हम यह कह सकते हैं कि जिनको जैनधर्म, तीर्थंकर और सामान्य केवली मानता है उन्हें हिन्दूधर्म जीवन्मुक्त कहता है। हिन्दुओंमें जिस तरह जीवन्मुक्तोंकी कोई संख्या नहीं, उसी तरह जैनधर्ममें भी नहीं है। हाँ, जिस तरह हिन्दुओंमें अवतारोंकी संख्या २४ मानी है, उसी तरह जैनधर्ममें भी प्रत्येक चतुर्थकालमें तीर्थंकरोंकी संख्या २४ मानी है।

अवतार और जीवन्मुक्तमें यह अन्तर है कि अवतार तो जन्मसे ही सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ आदि विशेषणोंसे युक्त होता है। वह वास्तवमें ईश्वरका अवतार किसी विशेष कार्य करनेके लिए होता है; पर जीवन्मुक्त मनुष्य ही होते हैं। ये अनेकानेक जन्मोंसे मुक्ति प्राप्त करनेकी चेष्टा करते रहते हैं और अपने तप और परिश्रमसे किसी जन्ममें जीवन्मुक्त हो जाते हैं। जैनधर्मके तीर्थंकरोंकी और सन्मान्य केवलियोंकी तुलना हिन्दूधर्मके जीवन्मुक्त पुरुषोंसे हो सकती है। तीर्थंकरों और अवतारोंकी तुलना उचित नहीं मालूम होती है। इन दोनोंमें केवल संख्यामात्रका ही सादृश्य है। तीर्थंकरों और जीवन्मुक्तोंमें बहुतसी बातें मिलती हैं, जिनमें मुख्य ये हैं—ये दोनों मनुष्ययोनिसे अपने ही तप और ज्ञानद्वारा, ईश्वरपदवीको पहुँचते हैं। यह कह सकते हैं कि जैनमतके तीर्थंकरोंकी संख्या तो हिन्दूधर्मके अवतारोंकी संख्यासे मिलती है, और उनका मनुष्ययोनिसे ईश्वर पदवी पर पहुँचना, जीवन्मुक्तोंसे।

हिन्दूधर्ममें जीवन्मुक्त पुरुषोंकी मूर्तियाँ मन्दिरोंमें नहीं स्थापित की गई हैं। अवतारोंकी मूर्तियाँ ही मन्दिरोंमें स्थापित हुई हैं। इन्हींकी पूजा होती है और समय समय पर इन्हींके उत्सव भी बड़े समारोहसे होते हैं। सभी सामान्य हिन्दू इन्हींको ईश्वर मानकर पूजते हैं और इन्हींकी भक्ति करते हैं। हिन्दू धर्मके ख्यालसे अवतारोंकी महिमा जीवन्मुक्त पुरुषोंकी अपेक्षा अधिक है; इसलिए अवतारोंके ही मन्दिर बनाये गये हैं—जीवन्मुक्तोंके नहीं। जैनधर्ममें हिन्दूधर्मके समान अवतार और जीवन्मुक्त दो पृथक्-पृथक्रूप नहीं हैं—केवलजीवन्मुक्त ही हैं, जिन्हें तीर्थंकर कहते हैं। इन तीर्थंकरोंकी मूर्तियाँ मन्दिरोंमें स्थापित कर पूजी जाती हैं और समय समय पर उनके उत्सव होते हैं। सभी सामान्य जैन इन्हें ही ईश्वरसमान मानकर पूजते हैं और उन्हींकी भक्ति करते हैं।

जैनधर्ममें साधुओंके मुख्य धर्म पाँच हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य्य और अपरिग्रह। इन्हींको पाँच महाव्रत कहते हैं। इनका पालन करना साधुओंका मुख्य धर्म है। इन्हीं पाँच व्रतोंको हिन्दूधर्ममें यम कहा है। देखिए:—

'अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्य्यापरिग्रहौ।'

अहिंसा धर्मको इस तरह कहा है:—

कर्मणा मनसा वाचा सर्वभूतेषु सर्वदा।
अक्लेशजननं प्रोक्ता त्वहिंसा परमर्षिभिः॥

अर्थ—कर्म्मसे, वचनसे, मनसे, सब प्राणियोंमें कभी भी क्लेश नहीं पहुँचाना, अहिंसा है। इसी तरह सत्यके लिए कहा है:—

सत्येन सर्वमाप्नोति सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितम्।
यथार्थकथनाचारः सत्यं प्रोक्तं द्विजातिनाम्॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—सत्यसे सभी चीजोंकी प्राप्ति होती है; सत्यमें ही सबकी प्रतिष्ठा है। जैसा हो वैसा ही कहना और आचरण करना सत्य है। अस्तेय धर्मको देखो; उसकी यह परिभाषा है:—

परद्रव्यापहरणं चौर्यादथ बलेन वा।
स्तेयं तस्यानाचरणादस्तेयं धर्मसाधनम्॥

अर्थ—दूसरेकी द्रव्यको चोरी अथवा बलसे ले लेना स्तेय कहलाता है, और स्तेयका नहीं करना अस्तेय धर्म है। ब्रह्मचर्यको इस तरह कहा है:—

कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा।
सर्वत्र मैथुनत्यागं ब्रह्मचर्य्यं प्रचक्षते॥

अर्थ—कर्मसे मनसे और वचनसे सब अवस्थाओंमें हमेशा और सब जगह मैथुन त्याग करना ब्रह्मचर्य है। परिग्रहकी यह परिभाषा है:—

द्रव्याणामप्यनादानमापद्यपि तथेच्छया।
अपरिग्रहमित्याहुस्तं प्रयत्नेन पालयेत्॥

अर्थ—द्रव्योंका आपत्तिमें भी इच्छासे नहीं ग्रहण करना अपरिग्रह है। इन पाँचों धर्मोंका विस्तारपूर्वक वर्णन हिन्दूशास्त्रोंमें भी है और जैनशास्त्रोंमें भी। जैनसाधुके मूलधर्म ये ही हैं। मनवचनकाय तीनोंसे इनका पालन करना दोनों ही धर्मोंमें बताया है। इन महाव्रतोंके सिवा और जो कुछ साधन कहे हैं, उनमें भी बहुत कुछ सादृश्य है। अतः साधु धर्म विषयमें भी जैनमतके मूल नियम हिन्दू धर्मके मूल नियमोंसे मिलते हैं।

गृहस्थधर्मके भी ये ही पाँच मूलाधार नियम हैं। इनमें नीचे लिखे ७ व्रत और जोड़कर १२ व्रत माने हैं:— ६ दिग्व्रत, ७ भोगोपभोगपरिमाण, ८ अनर्थदंडत्याग, ९ सामायिक, १० देशव्रत, ११ प्रोषधोपवास और १२ अतिथिसत्कार। यदि हिन्दूधर्मके पूर्वोक्त ५ यमोंके सिवा, उसके पाँच नियमों पर भी ध्यान दिया जाय तो मालूम होगा कि जो गृहस्थके धर्म बताये हैं वे सब उनमें गर्भित हो जाते हैं। नियम ये हैं:—

तपः स्वाध्याय सन्तोषौ शौचमीश्वरपूजनम्।

अर्थ—तप, स्वाध्याय, सन्तोष, शौच और ईश्वरपूजा। × उपवासादिसे शरीर शोषण करना तप है। जितना मिल जाय उसी पर प्रसन्न रहना संतोष है। शौच दो तरहका है—भीतरी और बाहरी। बाहरी शौच मट्टी और जलसे होता है और भीतरी शौच मनकी शुद्धिसे। मनकी शुद्धि सत्यसे होती है, बुद्धिकी ज्ञानसे और आत्माकी तप और विद्यासे। मन, वचन, काय और कर्म्म, इन चारोंके द्वारा स्तुति करना, स्मरण करना और पूजा करना, ईश्वरपूजन कहलाता है। यम और नियम मिलकर दस धर्म होते हैं। इनके अन्तर्गत और सब धर्म आजाते हैं।

इस लेखमें मैंने अपनी बुद्धिके अनुसार, जैन और हिन्दू धर्मोंकी समानता दिखानेकी चेष्टा की है। यदि इसमें कोई त्रुटि या भूल हो, तो आशा है कि दोनों धर्मावलम्बी ही क्षमा करेंगे। मेरा अभिप्राय किसी मत पर आक्षेप करना नहीं है—केवल उनके तात्त्विक अंशोंकी समानता दिखाना है जिससे परस्पर प्रेम और श्रद्धाकी वृद्धि हो।

सम्पादकीय वक्तव्य—लेखक महाशयने इस लेखमें बहुत मोटी मोटी और बाहरी बातोंको लेकर दोनों धर्मोंकी समानता दिखलाई है—सूक्ष्म और भीतरी बातों पर विचार करनेकी कृपा नहीं

× हमारी समझमें इन पाँच नियमोंका मिलाना जैनधर्मके षट्कर्मोंसे किया जाय तो अच्छा हो। देवपूजा, गुरूपास्ति, स्वाध्याय, संयम, तप और और दान ये षट्कर्म हैं। नियमोंका मिलान सात व्रतोंके साथ नहीं हो सकता। उनमेंसे दिग्व्रत, देशव्रत और अनर्थदण्डविरति ये तीन तो किसी भी नियमके अन्तर्गत नहीं आसकते।—सम्पादक।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की। हिन्दू, बौद्ध, जैन आदि जितने धर्म भारतवर्षकी मिट्टी पर जमाये गये हैं और यहाँके जलवायुसे वर्द्धित तथा विकसित हुए हैं उन सबमें इस प्रकारकी समानताओंका रहना अनिवार्य है–वे अवश्य रहेंगी। पर इससे उनकी विशेषतायें नहीं मिट सकतीं। मूल बातें तीनोंमें एकसी हो सकती हैं, पर उनके स्वरूपमें तीनोंके पृथक्त्वके अनुसार अन्तर अवश्य होगा। हिन्दू धर्मका अपरिग्रह और जैनधर्मका अपरिग्रह शब्दसादृश्य रखने पर भी विशेषता रखता है। जैनसाधु तिलतुषमात्र परिग्रह नहीं रखता, यहाँ तक कि वस्त्र तक छोड़ देता है। पर हिन्दूधर्मके साधुके लिए इतना त्याग आवश्यक नहीं है। जैनसाधुकी अहिंसा चरमसीमाको पहुँची हुई होती है। वे अपने निमित्त बनाये हुए भोजनका लेना भी दूषित समझते हैं। पर हिन्दू साधु कन्दमूलको अपने हाथसे पकाकर खा सकता है। हिन्दू धर्म भले ही कर्मसिद्धान्तकी कुछ बातोंको मानता हो; पर कर्मसिद्धान्तको एक सम्पूर्ण सुघटित रूपमें जैनधर्मने ही खड़ा करके दिखलाया है। और जैनधर्ममें जब सारा ही कर्तृत्व कर्मोंको दे रक्खा है, तब उसके लिए यह अनिवार्य भी था कि वह इस विषयको अन्तिम सीमा तक पहुँचा दे। हिन्दुओंके यहाँ यह विषय अच्छी तरह पल्लवित नहीं हुआ। क्योंकि वहाँ ईश्वरके कारण कर्म पर अधिक निर्भर रहनेकी आवश्यकता नहीं। इसी तरह और और बातोंके विषयमें भी समझना चाहिए। गरज यह कि एक देशमें उत्पन्न हुए धर्मोंमें बाहरी सादृश्य अवश्य होते हैं; पर इससे यह न समझ लेना चाहिए कि उनमें भीतरी अन्तर भी कम होगा। प्रत्येक धर्म जिस मूल उद्देश्य या सिद्धान्तको लेकर जन्म लेता है, उसका भीतरी झुकाव उसी ओरको सविशेष रहता है और उसका यह झुकाव ही उसकी वस्तु है।

चोर।

(ले०—श्रीयुत पं० शिवनारायण द्विवेदी।)

चाहे जैसे हो जानकीको बचाना ही होगा। वह मुझे संसारमें अकेला छोड़ जायगी, प्रेम-रहित कर जायगी तो फिर मेरे जीवनमें रह ही क्या जायगा? फिर तो मैं केवल कंगाल, केवल दीन बन जाऊँगा। नहीं, जैसे होगा उसे बचाऊँगा।

अब तक मेरे साथ, केवल मेरा मुँह देख-कर उसने संसारके सब दुःख चुपचाप सहे। दरिद्रतासे हताश होकर मुझे जब चारों ओर केवल अन्धकार ही अन्धकार दिखाई देता था; तब वह धीरे धीरे हँसती हुई मानों मुझे प्रकाश और आशा देती थी। वह अपने स्नेह, यत्न और प्रेमसे मेरे मृत शरीरमें नई संजीवनी शक्ति ढाल देती थी। सचमुच, जो कहीं वह न होती तो मैं निराश होकर अब तक कभीका आत्महत्या कर डालता!

इतने दिन ठोकरें खानेके बाद आशाकी एक किरण दिखाई दी है, पर तकदीरका यह कैसा खेल है। मेरे दुःखमें जिसने अपना कलेजा बिछा दिया था, परमात्मा! क्या मेरे सुखसे प्रसन्नताके साथ एक बार हँसना भी उसके भाग्यमें नहीं है? हाय क्या वह दुख-ही-दुखमें मुझसे सदा सर्वदाके लिए विदा हो जायगी? और मैं अपनी चिर प्रसन्नता खोकर कलेजे पर पत्थर रक्खे हुए देखूँगा? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। नहीं—

पर करूँ क्या? जानकीको बचानेके लिए अच्छे डाक्टरकी जरूरत है–और डाक्टरके लिए रुपयोंकी जरूरत है। रुपये कौन देगा? दो दो चार चार करके ही इतना कर्ज हो रहा है कि सब कुछ देने पर भी उद्धार नहीं हो सकता। स्त्रीके लिए दवा नहीं, छोटे पुत्रके लिए भोजन नहीं। रुपयोंके बिना, जीते हुए भी मौतसे अधिक कष्ट होता है। मेरी ओर नजर करनेवाला को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी तो नहीं दिखाई देता। विश्वास करके कोई एक रुपया भी उधार नहीं देता। भिखारीकी तरह दिनभर मारा मारा फिरता हूँ, पर कोई बात नहीं पूछता।

बुखारसे जानकी बेहोश हो रही है, दवा न मिलनेके कारण उसकी अवस्था और भी बिगड़ती जाती है। इस कड़ाकेकी सर्दीमें भी उसको एक फटा और मैला सूती चादरा उढ़ा रक्खा है। बेहोशीमें भी उसके दाँतसे दाँत लगे हैं। पति होकर अपनी सती स्त्रीकी इतनी दारुण व्यथा कैसे देखूँ ? छाती फटी जाती है। यह असह्य है।

कोटकी जेबमें हाथ डालकर देखा, केवल चार पाँच आने पैसे और एक दरख्वास्तके उत्तरमें आई हुई चिट्ठी है। चिट्ठी निकाल कर एक बार पढ़ी। कितने दुःख और निराशाके बाद अम्बालेके एक दफ्तरमें मेरी दरख्वास्त मंजूर हुई है। साहबने लिखा है कि तुम्हें दो हफ्तेके भीतर भीतर अम्बाले पहुँचकर काम सँभालना होगा।

इस चिट्ठीसे मेरी अपेक्षा जानकीको कई गुणा अधिक आनन्द होता, पर हाय वह आज इस संसारसे विदा होनेके किनारे पर है। इतने दिनसे जो चाह रहा था वह मिला, पर जो वह मुझे सदा सर्वदाके लिए छोड़कर चली गई तो मैं किसका मुँह देखकर दूसरेकी नौकरी करूँगा ?

मैं धीरे धीरे उसके सिरहाने जाकर खड़ा हुआ। उसकी भीतर घुसी हुई दोनों आँखें मुँदी हुई हैं। शरीर थरथर काँप रहा है। चिरागका मैला प्रकाश उसके मुख पर पड़कर उसे कितना भयानक कर रहा है। उसके सिरपर हाथ लगानेसे हाथ मानों जल गया—मनमें हो आया कि इसी ज्वालामें उसका हृदय जल रहा है। दुःख और उद्वेगसे मेरा कलेजा धड़कने लगा।

क्या करूँ—क्या करूँ ! इसका जीवन प्रतिपल क्षीण हो रहा है—किस प्रकार इसकी रक्षा करूँ ?

मैं उसी जगह बैठकर कपाल पर हाथ रक्खे हुए सोचने लगा। यह सोच कितना भयानक था सो भगवान् ही जानते हैं। जब किसी ओर किनारा न दीखा और हृदय बाणविद्ध कुरंगकी तरह छटपटाकर जड़ बनने लगा, तब धीरे धीरे किसीने कानमें आकर कहा—" तू चोरी कर ! "

चोरी ? हाँ चोरी ! सिवाय इसके अब कोई उपाय नहीं है। धनके लोभमें आकर संसारमें न मालूम कितने लोग कितने बड़े बड़े पाप, कितनी नरहत्या करते हैं; पर मैं तो एक सती सदाचारिणीको जान बचानेके लिए केवल एक दिन चोरी करता हूँ, इसमें दोष ही क्या है ?

मन-ही-मन इसीकी आलोचना करने लगा। जितना ही सोचने लगा उतना ही मनमें आने लगा कि इससे अधिक सरल उपाय और कोई नहीं है। न किसीको खबर होगी, न कोई देखेगा, न सुनेगा। चोरी करके मैं जानकीके प्राण बचा सकूँगा—मैं यहीं करूँगा।

सोच विचारमें आधी रात बीत गई। जाड़ेमें लिहाफ लपेटे सब लोग आनन्दसे सो रहे हैं। महानगरी दिल्लीके सब रास्ते सूने पड़े हैं। किवाड़ खोल कर देखा, चारों ओर शान्ति है। म्यूनिसिपैलिटीकी धुँधली लालटेनें कुहरेको भलीभाँति नहीं हटा सकतीं। फिर भी मानों स्थान स्थानपर वे जागकर सब कुछ देख रही हैं।

मैं पागलोंकी तरह घरसे निकल पड़ा।—

क्या इसी प्रकार निराश होकर लोग चोर बना करते हैं ?

[२]

उस अँधेरी गलीमें दूसरेके मकानकी दीवारपर खड़े हुए मेरा कलेजा धड़कने लगा। यदि कहीं मैं पकड़ा गया तो ? गरीब होने पर भी लोग मुझे इज्जतदार मानते हैं। यदि मैं चोरी करता हुआ पकड़ा गया तो मेरी क्या दशा होगी ?

दूर गलीके किनारे पर पहरेवाला जोरसे पुकार उठा—' जागते रहो '। उसी दीवार पर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में सिर पकड़कर बैठ गया। डरके मारे मामों नाड़ियोंका रक्त बर्फ बननेके किनारे पर आगया।

इस दशामें मैं कितनी देर बैठा रहा सो नहीं कह सकता। जिस कामको करनेके लिए पागलकी तरह घरसे निकल पड़ा था, वह न किया गया। मनमें होने लगा मानों इधर उधर सैकड़ों मनुष्य छिपे हुए मेरी ओर तीखी नजरसे घूर रहे हैं;—एक क्षणभरमें ही जैसे वे सब एक स्वरसे पुकार उठेंगे—"चोर, चोर चोर।"

मैं झटपट दीवारसे नीचे उतरने लगा। बिजलीकी चमकके समान शीघ्रतासे जानकीका रोगसे पीला पड़ा हुआ मुख मेरे सामने उदय हुआ। आह, वह कुम्हलाया हुआ, जाड़ेका मारा, मलीन मुख देख कर हृदय फटने लगा। उस मुखके चारों ओर मृत्युकी काली छाया घिरी हुई है। मानों वह श्मशानमें बैठी है और चारों ओर हाहाकार करती हुई अनेक चितायें जल रही हैं। अब अधिक विलम्ब नहीं है। बिना दवाके मेरा घर श्मशान बन जायगा।

क्षणमात्रमें सब भय चला गया। मैं प्राणपनसे चेष्टा करके दीवारके ऊपरवाली छत पर चला गया।

[३]

उस कमरेमें किसीकी आहट न मिली। बड़ा गहरा अँधेरा है, कुछ नहीं सूझता—जेबसे पेटी निकालकर एक दियासलाई जलाई। जिस कमरेमें मैं खड़ा हूँ, उसके बीचमें लकड़ीकी दीवार खींचकर वह दो हिस्सोंमें बाँटा गया है। बीचमें एक पर्दा पड़ा हुआ है, शायद इसी दरवाजेसे दूसरे कमरेमें जाते होंगे।

दीवारके सहारे दो आलमारियाँ हैं। बीचमें मेजके नीचे एक दराज है। खूँटी पर कुछ स्त्रियोंके पहननेके कपड़े लटक रहे हैं। मेज पर एक बड़ा आईना लगा है। उसके पास ही विलायती रबरकी कंघियाँ, ब्रुश, पियर्स सोप, काचके अतरदानमें जर्मन हेको और देशी ओटो मोहिनीकी शीशियाँ, रोज पाउडर, हैजलाइनकी शीशी आदि सजाई हुई हैं। नीचे चमकदार बिलायती फर्श बिछा है। यह सब देखकर समझा कि यह कमरा किसी रमणीका शृंगारघर है। वह अवश्य ही धनवाली होगी, इसमें भी सन्देह नहीं।

मेजकी एक एक दराजको खींच खींच कर देखा, पर वे सब बंद थीं। दोनों आलमारियोंमें भी ताला लगा था। हताश होकर मैं सोचने लगा कि इतनी दूर आकर भी खाली हाथ ही लौटना पड़ेगा? एक दियासलाई और जलाकर इधर उधर देखने लगा। आलमारीके ऊपरवाले आले पर नजर पड़ते ही मेरे हृदयमें फिरसे आशा लौट आई। आलेमें चाबियोंका गुच्छा रक्खा था। इस नीच और निन्दित कामको करते हुए भी मैं यह सोचे बिना न रह सका कि, 'भगवान् ही आज मेरा सहायक है।'

गुच्छेमेंसे चाबी खोजकर मैंने ऊपरवाली दराज खोली। दराज खींचते समय 'कचकच' शब्द हुआ। उस समय एक और दियासलाई जलाकर मैंने देखा। एक हार, कई जोड़े चूड़ियाँ, करनफूल—सब जड़ाऊ हैं। पर इतने गहनोंकी तो मुझे आवश्यकता नहीं है। मैं चोरी करनेके लिए तो चोरी नहीं करता। मैं तो विवश होकर उसके प्राण बचानेके लिए कुछ दवाके लिए लेने आया हूँ।

यह सोचकर मैंने निश्चय किया कि एक चूड़ीसे ही मेरा काम चल जायगा। चूड़ी भी भारी कीमतकी है, पर मैं इसे बेचूँगा नहीं। किसीके यहाँ चार पाँच रुपयेमें गिरवी रख दूँगा। उन्हीं रुपयोंसे स्त्रीकी दवा करूँगा। फिर रुपये आने पर इसे गिरवीसे छुड़ाकर जैसे बनेगा वैसे इसके मालिकको दे दूँगा।

काँपते हुए हाथसे मैंने एक चूड़ी बाहर निकाल ली। मन-ही-मन कहा—हे परमात्मा! मुझे क्षमा कर। बस मेरा यही सबसे पहला और सबसे अन्तिम पाप है। फिर जन्ममें कभी इस मार्ग पर न चलूँगा।

दराज बंद करके जैसे ही पीछे सरकाई वैसे ही न मालूम, क्या चीज जोरसे नीचे गिर पड़ी। अन्धेरेमें सकपकाकर मैं काठकी तरह खड़ा रह गया। यदि किसीने यह शब्द सुना हो तो?

मुझे किसीके कपड़ोंके सड़सड़ानेकी आवाज आई। मानों एक एक पैर उठाता हुआ कोई घर-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में आया। डरके मारे मेरा श्वास रुकनेके किनारे पर आ गया। 'पट' से एक बटन दबानेकी आवाज हुई और कमरेमें बिजलीकी रोशनी फैल गई। एकदम उजाला होनेके कारण मेरी आँखें चकचोंधा गईं।

जब थोड़ी देरमें आँखें खुलीं तब मैंने देखा कि मेरे सामने ही एक स्त्री सकपकाई हुई खड़ी है। आश्चर्य और भयसे निश्चेष्ट होकर रमणी मेरी ओर देख रही है। मेरा सिर घूमने लगा, मानों पैरोंके नीचेकी जमीन खिसकती जा रही है। दीवारका सहारा लेकर मैंने अपने आपको गिरनेसे बचाया। मानों अपने भीतर मैं नहीं रहा।

आश्चर्यका वेग बीत जानेपर रमणीकी नजर दराज पर पड़ी। वह दरवाजेकी ओर बढ़ी। अब मुझे भी होश हुआ। समझा कि वह और किसीको पुकारने जा रही है। पागलकी तरह मैं दरवाजेकी ओर लपककर उसके पैरों पर लोट गया। वह हलकीसी चींख मारकर दो पैर पीछे हट गई। मैंने कातर और दीन भावसे कहा—"माता, मुझे क्षमा करो, मेरा सर्वनाश मत करो, किसीको बुलाओ मत।"

पत्थरकी मूर्तिके समान चुपचाप खड़ी हुई वह मेरी ओर सन्देहकी दृष्टिसे देखने लगी। मैं फिर कहने लगा—"मा, मैं भले घरका हूँ, विवश होकर आज एक दिनके लिए चोर बना हूँ, इसके सिवाय मेरे लिए और कोई उपाय न था, मेरा विश्वास करो—मेरा विश्वास करो।"

उस रमणीने कुछ भी न कहा। वह वैसे ही पत्थरकी मूर्तिके समान खड़ी रही। मैंने नजर उठाकर उसे देखा। मेरी दीनता देखकर ही हो, या माता कहनेसे ही हो—चाहे जैसे हो पर उसके मुखसे डरका भाव चला गया। मानों वह समझ चुकी कि मेरे द्वारा उसकी कोई हानि न होगी। नहीं तो अबतक वह अवश्य ही किसीको पुकारती।

मैंने दबे हुए स्वरमें, संक्षेपसे अपनी सब अवस्था उससे कह दी। अब उसके पास दयाके सिवाय मेरे लिए और उपाय ही क्या था?

रमणीकी दृष्टि कोमल हो आई, मानों उसने मेरी बातका विश्वास किया। पर तब भी उसने एक शब्द भी न निकाला। मैंने कहा—"मैंने चोरी की है पर मैं, चोर नहीं हूँ। आप दराज खोलकर देख लीजिए, मैंने और कोई गहना नहीं लिया। सोचा था कि इस चूड़ीको गिरवी रखकर अपनी स्त्रीका इलाज करूँगा, पर मालूम होता है कि भगवानकी यह मरजी नहीं है। लो मा, यह अपना गहना लो। मैं चोर भी बना और अपनी स्त्रीके प्राण फिर भी न बचा सका!" यह कहकर मैंने वह चूड़ी उसके पैरोंके पास रख दी। मेरी आँखोंसे दो बूँद आँसू टपक पड़े।

उस रमणीने एक बार अपने गहनेकी ओर और एक बार मेरे मुँहकी ओर देखा। फिर गर्दन टेढ़ी करके थोड़ी देर खड़ी रहनेके बाद वह अत्यन्त कोमल स्वरमें बोली—"इस चूड़ीको तुम ले जाओ।"

मैं आश्चर्यमें डूबकर उसके मुँहकी ओर देखता रह गया। फिर गद्गद कंठसे मैंने कहा—मा, तुम साक्षात् देवी हो। आपकी दयासे आज मेरी स्त्रीके प्राण बचेंगे। यह उपकार मैं इस जन्ममें न भूलूँगा। जैसे होगा वैसे इसे गिरवीसे छुड़ाकर मैं वापिस लौटा दूँगा।"

—"लौटानेकी कोई जरूरत नहीं है। तुम जल्दीसे यहाँसे चले जाओ।" यह कहकर स्त्रीने उँगलीसे दरवाजा दिखा दिया।

[४]

धीरे धीरे घरसे बाहर निकल आया। उस समय मनमें नाना प्रकारके भाव आ रहे थे। मैं छतकी ओर बढ़ रहा था कि इतनेमें अकस्मात् न मालूम कौन पुकार उठा—"चोर, चोर"। मेरा सब शरीर पत्थर हो गया। मानों आकाशके सब तारे मुझे नजर गड़ाकर देख रहे हैं और कह रहे हैं—"चोर चोर।"

नीचेसे कोई जल्दी जल्दी ऊपर चढ़ता चला आ रहा था। और भी कई तरफ़से कई मनुष्योंकी आवाज सुनाई दी। हतज्ञान होकर मैं फिर उसी रमणीके घरमें आगया। उसने भी "चोर, चोर"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की पुकार सुनी थी । उदासी और चिन्तासे वह जड़ बनकर घरके बीचमें खड़ी थी ।

बच्चोंकी तरह उसके पैरों पर गिरकर मैंने कहा—" मा, मेरी रक्षा करो । "

एक पल भरमें उस स्त्रीने बिजलीकी बत्ती बुझा दी । फिर झटपट मेरा हाथ पकड़कर मुझे दूसरे घरमें ले गई ।

पीछेसे जो आदमी आ रहे थे वे कमरेके दरवाजे पर ही खड़े होकर शोर गुल करने लगे । अन्धेरा देखकर भीतर जानेकी उनकी हिम्मत न पड़ी । उस स्त्रीने धीरे धीरे मेरे कानमें कहा—" जल्दीसे मेरे साथ बिछौने पर सो जाओ । "

मैंने आश्चर्यसे कहा—" आपके बिछौनेमें ?"

उसने कहा—" हाँ, देर मत करो । तुमने मुझे माता कहा है । इसके सिवाय तुम्हारी रक्षा नहीं है । "

मैंने कहा—" यदि मैं पकड़ा गया तो आपका क्या होगा ? "

—" वे आते ही घर खोजेंगे, अब इसके सिवाय कोई उपाय नहीं है । जो तुम बचना चाहो और अपनी स्त्रीको बचाना चाहो तो जल्दीसे सो जाओ । "

इस पर मैं कुछ भी न कह सका । छोटा बालक जैसे अपनी माताके पास सो जाता है, वैसे ही मैं उस दयामयी देवीके साथ सो गया ।

दो एक मिनिटमें ही कई आदमी लालटेन लिये आ पहुँचे । एकने व्यग्र स्वरमें कहा—" भाभी, भाभी, देखो तो तुम्हारे घरमें चोर तो नहीं आया ? "

रमणीने संयत भाषामें कहा—" क्या, मेरे घरमें चोर ? कहाँ है ? यहाँ क्यों बेफायदे नींदके समय हल्ला मचा रहे हो ! "

—" नहीं, तुम्हारी कसम मैंने उसे इधर आते देखा है । फिर किधर गया ? "

—" घर पड़ा है, देख लो । आया था तो गया कहाँ ? "

" मैं यही तो सोच रहा हूँ, गया किधर ?"

" सपनेमें चोर देखा होगा । कहीं सपनेके चोर भी जागने पर हाथ आये हैं ? "

" भाई भाभी, तेरे सिरकी कसम मैंने चोरको इधर आते देखा है । ये क्या भाईजी सो रहे हैं ? "

" जियादा शोर मत करो, उनकी नींद खराब होगी । "

" आओ बाबू, चोर कहीं दूसरी ही तरफ आँख बचा कर छिप रहा है । "

सब जल्दी जल्दी घरसे बाहर चले गये । मैं भी एक शान्तिका श्वास त्यागकर खाटसे नीचे उतरकर बैठ गया ।

उस देवीके पैरों पर अपना सिर रखकर मैंने कहा—" मा, आज तुमने अपने प्राणोंकी बाजी लगाकर मेरी रक्षा की । अब बताओ, मैं किधरसे जाऊँ ? "

देवीने कहा—" थोड़ी देर ठहरो, सबको सो जाने दो । "

" पर जो आपके स्वामी आ जायँ तो ? "

नीची दृष्टि किये हुए करुण स्वरमें उसने कहा—" वे रातमें घर नहीं आते ! "

आश्चर्य है ! ऐसी दयामयी देवीके भाग्यमें भी इतना दुःख है । उस समय वह विचारमें लीन थी । बहुत धीरेसे अनजानमें उसके मुँहसे निकल गया—" स्त्रीके लिए स्वामी चोरतक बनता है और मेरा स्वामी—मेरा स्वामी—"

[५]

थोड़ी देरमें सब सो गये । मैंने उसके चरणोंपर फिर सिर रखकर कहा—" मा, मैं तुम्हारे इस उपकारको इस जन्ममें कभी न भूलूँगा । "

वह मुझे सदर दरवाजेतक छोड़ने आई । रास्तेमें चलते हुए मैं सोचने लगा कि विश्वमें जिन्हें देवता कहते हैं वे इनसे बढ़कर और कैसे होंगे ? कोमलतामें जिसका हृदय गुलाबकी कलियोंसे भी अधिक कोमल दयामय है, पवित्रतामें जो यज्ञकी धूमके समान है, कर्तव्यमें जो वज्रकी तरह कठोर है—वही विश्वजननी है ।*

* बंगला ' भारती ' से ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीदेवसेनाचार्य संकलित

दर्शनसार ।

पणमिय वीरजिणिंदं सुरसेणणमंसियं विमलणाणं ।
वोच्छं दंसणसारं जह कहियं पुव्वसूरीहिं ॥ १ ॥

प्रणम्य वीरजिनेन्द्रं सुरसेननमस्कृतं विमलज्ञानम् ।
वक्ष्ये दर्शनसारं यथा कथितं पूर्वसूरिभिः ॥ १ ॥

अर्थ—जिनका ज्ञान निर्मल है और देवसमूह जिन्हें नमस्कार करते हैं, उन महावीर भगवानको प्रणाम करके, मैं पूर्वाचार्योंके कथनानुसार 'दर्शनसार' अर्थात् दर्शनों या जुदा जुदा मतोंका सार कहता हूँ।

भरहे तित्थयराणं पणमियदेविंदणागगरुडानाम् ।
समएसु होंति केई मिच्छत्तपवट्टगा जीवा ॥ २ ॥

भरते तीर्थकराणां प्रणमितदेवन्द्रनागगरुडानाम् ।
समयेषु भवन्ति केचित् मिथ्यात्वप्रवर्तका जीवाः ॥ २ ॥

अर्थ—इस भारतवर्षमें, इन्द्र-नागेन्द्र-गरुडेन्द्र द्वारा पूजित तीर्थकरोंके समयोंमें (धर्मतीर्थोंमें) कितने ही मनुष्य मिथ्यामतोंके प्रवर्तक होते हैं।

मतप्रवर्तकोंके मुखियाकी उत्पत्ति ।

उसहजिणपुत्तपुत्तो मिच्छत्तकलंकिदो महामोहो ।
सव्वेसिं भट्टाणं धुरि गणिओ पुव्वसूरीहिं ॥ ३ ॥

ऋषभजिनपुत्रपुत्रो मिथ्यात्वकलङ्कितो महामोहः ।
सर्वेषां भट्टानां धुरि गणितः पूर्वसूरिभिः ॥ ३ ॥

अर्थ—पूर्वाचार्योंके द्वारा, भगवान् ऋषभदेवका महामोही और मिथ्याती पोता 'मरीचि' तमाम दार्शनिकों या मतप्रवर्तकोंका अगुआ गिना गया है।

तेण य कयं विचित्तं दंसणरूवं संजुत्तिसंकलियं ।
तम्हा इयराणं पुण समए तं हाणिविड्ढिगयं ॥ ४ ॥

तेन च कृतं विचित्रं दर्शनरूपं सयुक्तिसंकलितम्[1] ।
तस्मादितराणां पुनः समये तद्धानिवृद्धिगतम् ॥ ४ ॥

१ क पुस्तकमें 'समुत्तिसंकलियं' पाठ है, परन्तु इन दोनोंही पाठोंका वास्तविक अर्थ स्पष्ट नहीं हुआ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—उसने एक विचित्र दर्शन या मत ऐसे ढँगसे बनाया कि वह आगे चलकर उससे भिन्न भिन्न मतप्रवर्तकोंके समयोंमें हानिवृद्धिको प्राप्त होता रहा। अर्थात् उसीके सिद्धान्त थोड़े बहुत परिवर्तित होकर आगेके अनेक मतोंके रूपमें प्रकट होते रहे।

एयंतं संसइयं विवरीयं विणयजं महामोहं।
अण्णाणं मिच्छत्तं णिद्दिट्ठं सव्वदरसीहिं॥ ५॥

एकान्तं सांशयिकं विपरीतं विनयजं महामोहम्।
अज्ञानं मिथ्यात्वं निर्दिष्टं सर्वदर्शिभिः॥ ५॥

अर्थ—सर्वदर्शी ज्ञानियोंने मिथ्यात्वके पाँच भेद बतलाये हैं-एकान्त, संशय, विपरीत, विनय और अज्ञान।

सिरिपासणाहतित्थे सरयूतीरे पलासणयरत्थो।
पिहियासवस्स सिस्सो महासुदो बुड्ढकित्तिमुणी॥ ६॥

श्रीपार्श्वनाथतीर्थे सरयूतीरे पलाशनगरस्थः।
पिहितास्रवस्य शिष्यो महाश्रुतो बुद्धकीर्तिमुनिः॥ ६॥

अर्थ—श्रीपार्श्वनाथ भगवानके तीर्थमें सरयू नदीके तटवर्ती पलाश नामक नगरमें पिहितास्रव साधुका शिष्य बुद्धकीर्ति मुनि हुआ जो महाश्रुत या बड़ा भारी शास्त्रज्ञ था।

तिमिपूरणासणेहिं अहिगयपवज्जाओ परिब्भट्ठो।
रत्तंबरं धरित्ता पवट्टियं तेण एयंतं॥ ७॥

तिमिपूर्णाशनैः अधिगतप्रवज्यातः परिभ्रष्टः।
रक्ताम्बरं धृत्वा प्रवर्तितं तेन एकान्तम्॥ ७॥

अर्थ—मछलियोंके आहार करनेसे वह ग्रहण की हुई दीक्षासे भ्रष्ट हो गया और रक्ताम्बर (लाल वस्त्र) धारण करके उसने एकान्त मतकी प्रवृत्ति की।

मंसस्स णत्थि जीवो जहा फले दहिय-दुद्ध-सक्करए।
तम्हा तं वंछित्ता तं भक्खंतो ण पाविट्ठो॥ ८॥

मांसस्य नास्ति जीवो यथा फले दधिदुग्धशर्करायां च।
तस्मात्तं वाञ्छन् तं भक्षन् न पापिष्ठः॥ ८॥

---

१ क पुस्तकमें 'महालुद्धो' और गमें 'महालुंदो' पाठ है, जिनका अर्थ महालुब्ध होता है।

२ क पुस्तकमें 'अगणिय पावज्ज जाउ परिभट्ठो' है जिसका अर्थ होता है-अगणित पापका उपार्जन करके भ्रष्ट हो गया। ख पुस्तकमें 'अगहिय पवज्जाओ परिब्भट्ठो' पाठ है, परन्तु उसमें अगहिय (अगृहीत) का अर्थ ठीक नहीं बैठता है। संभव है 'आहिगय' (अधिगत) ही भूलसे 'अगहिय' लिखा गया हो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—फल, दही, दूध, शक्कर, आदिके समान मांसमें भी जीव नहीं है, अतएव उसकी इच्छा करने और भक्षण करनेमें कोई पाप नहीं है।

मज्जं ण वज्जणिज्जं दवदव्वं जहजलं तहा एदं।
इदि लोए घोसित्ता पवट्टियं सव्वसावज्जं ॥ ९ ॥

मद्यं न वर्जनीयं द्रवद्रव्यं यथा जलं तथा एतत्।
इति लोके घोषयित्वा प्रवर्तितं सर्वसावद्यं ॥ ९ ॥

अर्थ—जिस प्रकार जल एक द्रव द्रव्य अर्थात् तरल या बहनेवाला पदार्थ है उसी प्रकार शराब है, वह त्याज्य नहीं है। इस प्रकारकी घोषणा करके उसने संसारमें सम्पूर्ण पापकर्मकी परिपाटी चलाई।

अण्णो करेदि कम्मं अण्णो तं भुंजदीदि सिद्धंतं।
परि कप्पिऊण णूणं वसिकिच्चा णिरयमुववण्णो ॥ १० ॥

अन्यः करोति कर्म अन्यस्तद्भुनक्तीति सिद्धान्तम्।
परिकल्पयित्वा नूनं वशीकृत्य नरकमुपपन्नः ॥ १० ॥

अर्थ—एक पाप करता है और दूसरा उसका फल भोगता है, इस तरहके सिद्धान्तकी कल्पना करके और उससे लोगोंको वशमें करके या अपने अनुयायी बनाकर वह मरा और नरकमें गया। (इसमें बौद्धके क्षणिकवादकी ओर इशारा किया गया है। जब संसारकी सभी वस्तुयें क्षणस्थायी हैं, तब जीव भी क्षणस्थायी ठहरेगा और ऐसी अवस्थामें एक मनुष्यके शरीरमें रहनेवाला जीव जो पाप करेगा उसका फल वही जीव नहीं, किन्तु उसके स्थान पर आनेवाला दूसरा जीव भोगेगा।)

श्वेताम्बरमतकी उत्पत्ति।

छत्तीसे वरिस सए विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स।
सोरट्ठे वलहीए उप्पण्णो सेवडो संघो ॥ ११ ॥

षट्त्रिंशत्सु वर्षशते विक्रमराजस्य मरणप्राप्तस्य।
सौराष्ट्रे वल्लभ्यां उत्पन्नः सितपटः संघः ॥ ११ ॥

अर्थ—विक्रमादित्यकी मृत्युके १३६ वर्ष बाद सौराष्ट्र देशके वल्लभीपुरमें श्वेताम्बर संघ उत्पन्न हुआ।

---

१ गुजरातके पूर्वमें भागा नगरके निकट यह प्राचीन शहर बसा हुआ था। बहुत समृद्धशाली था। ईस्वी सन् ६४० में चीनी यात्री हुएनसंगने इसका उल्लेख किया है। उस समयतक यह आबाद था। काठियावाड़का 'वला' नामक ग्राम जहाँ है, कोई कोई कहते हैं कि वहीं पर यह बसा हुआ था। श्वेताम्बर सूत्रोंका सम्पादन भी यहीं हुआ था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिरिभद्दबाहुगणिणो सीसो णामेण संति आइरिओ।
तस्स य सीसो दुट्ठो जिणचंदो मंदचारित्तो ॥ १२॥

श्रीभद्रबाहुगणिनः शिष्यो नाम्ना शान्ति आचार्यः।
तस्य च शिष्यो दुष्टो जिनचन्द्रो मन्दचारित्रः ॥ १२॥

अर्थ—श्रीभद्रबाहुगणिके शिष्य शान्ति नामके आचार्य थे। उनका 'जिनचन्द्र' नामका एक शिथिलाचारी और दुष्ट शिष्य था।

तेण कियं मयमेयं इत्थीणं अत्थि तब्भवे मोक्खो।
केवलणाणीण पुणो अद्दक्खाणं तहा रोओ ॥ १३॥

तेन कृतं मतमेतत् स्त्रीणां अस्ति तद्भवे मोक्षः।
केवलज्ञानिनां पुनः अद्दक्खाणं (?) तथा रोगः ॥ १३॥

अर्थ—उसने यह मत चलाया कि स्त्रियोंको उसी भवमें स्त्रीपर्यायहीसे मोक्ष प्राप्त हो सकता है और केवलज्ञानी भोजन करते हैं तथा उन्हें रोग भी होता है।

अंबरसहिओ वि जई सिज्झइ वीरस्स गब्भचारत्तं।
पर लिंगे वि य मुत्ती फासुयभोजं च सव्वत्थ ॥ १४॥

अम्बरसहितः अपि यतिः सिद्ध्यति वीरस्य गर्भचारत्वम्।
परलिङ्गेपि च मुक्तिः प्राशुकभोज्यं च सर्वत्र ॥ १४॥

अर्थ—वस्त्र धारण करनेवाला भी मुनि मोक्ष प्राप्त करता है, महावीर भगवान्के गर्भका संचार हुआ था, अर्थात् वे पहले ब्राह्मणीके गर्भमें आये, पीछे क्षत्रियाणीके गर्भमें चले गये, जैन-मुद्राके अतिरिक्त अन्य मुद्राओं या वेषोंसे भी मुक्ति हो सकती है और प्राशुक भोजन सर्वत्र हर किसीके यहाँ कर लेना चाहिए।

अण्णं च एवमाइ आगमदुट्ठाइं मिच्छसत्थाइं।
विरइत्ता अप्पाणं परिठवियं पढमए णरए ॥ १५॥

अन्यं च एवमादिः आगमदुष्टानि मिथ्याशास्त्राणि।
विरच्य आत्मानं परिस्थापितं प्रथमे नरके ॥ १५॥

अर्थ—इसी प्रकार और भी आगमविरुद्ध बातोंसे दूषित मिथ्या शास्त्र रचकर वह पहले नरकको गया।

विपरीतमतकी उत्पत्ति।

सुव्वयतित्थे उज्झो खीरकदंबुत्ति सुद्धसम्मत्तो।
सीसो तस्स य दुट्ठो पुत्तो वि य पव्वओ वक्को ॥ १६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुव्रततीर्थे उपाध्यायः क्षीरकदम्ब इति शुद्धसम्यक्त्वः ।
शिष्यः तस्य च दुष्टः पुत्रोपि च पर्वतः वक्रः ॥ १६ ॥

अर्थ—बावीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रत स्वामीके समयमें एक क्षीरकदम्ब नामका उपाध्याय था। वह शुद्ध सम्यग्दृष्टि था। उसका (राजा वसु नामका) शिष्य दुष्ट था और पर्वत नामका पुत्र वक्र था।

विवरीयमयं किच्चा विणासियं सच्चसंजमं लोए ।
तत्तो पत्ता सव्वे सत्तमणरयं महाघोरं ॥ १७ ॥

विपरीतमतं कृत्वा विनाशितः सत्यसंयमो लोके ।
ततः प्राप्ताः सर्वे सप्तमनरकं महाघोरम् ॥ १७ ॥

अर्थ—उन्होंने विपरीत मत बनाकर संसारमें जो सच्चा संयम (जीवदया) था, उसको नष्ट कर दिया और इसके फलसे वे सब (पर्वतकी माता आदि भी) घोर सातवें नरकमें जा पड़े।

वैनयिकोंकी उत्पत्ति।

सव्वेसु य तित्थेसु य वेणइयाणं समुब्भवो अत्थि ।
सजडा मुंडियसीसा सिहिणो णंगा य केई य ॥ १८ ॥

सर्वेषु च तीर्थेषु च वैनयिकानां समुद्भवः अस्ति ।
सजटा मुण्डितशीर्षाः शिखिनो नग्नाश्च कियन्तश्च ॥ १८ ॥

अर्थ—सारे ही तीर्थोंमें अर्थात् सभी तीर्थंकरोंके वारेमें वैनयिकोंका उद्भव होता रहा है। उनमें कोई जटाधारी, कोई मुंडे, काई शिखाधारी और कोई नग्न रहे हैं।

दुट्ठे गुणवंते वि य समया भत्तीय सव्वदेवाणं ।
णमणं दंडुव्व जणे परिकलियं तेहि मूढेहिं ॥ १९ ॥

दुष्टे गुणवति अपि च समया भक्तिश्च सर्वदेवेभ्यः ।
नमनं दण्ड इव जने परिकलितं तैर्मूढैः ॥ १९ ॥

अर्थ—चाहे दुष्ट हो चाहे गुणवान् हो, दोनोंमें समानतासे भक्ति करना और सारे ही देवोंको दण्डके समान आड़े पड़कर (साष्टांग) नमन करना, इस प्रकारके सिद्धान्तको उन मूर्खोंने लोगोंमें चलाया। *

अज्ञानमतकी उत्पत्ति।

सिरिवीरणाहतित्थे बहुस्सुदो पाससंघगणिसीसो ।
मक्कडिपूरणसाहू अण्णाणं भासए लोए ॥ २० ॥

---

* विनय करनेसे या भक्ति करनेसे मुक्ति होती है, यही इस मतका सिद्धान्त जान पड़ता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीवीरनाथतीर्थे बहुश्रुतः पार्श्वसंघगणिशिष्यः ।
मस्करि-पूरनसाधुः अज्ञानं भाषते लोके ॥ २० ॥

अर्थ—महावीर भगवान्के तीर्थमें पार्श्वनाथ तीर्थंकरके संघके किसी गणीका शिष्य मस्करी पूरन नामका साधु था । उसने लोकमें अज्ञान मिथ्यात्वका उपदेश दिया ।

अण्णाणादो मोक्खो णाणं णत्थीति मुत्तजीवाणं ॥
पुणरागमनं भमणं भवे भवे णत्थि जीवस्स ॥ २१ ॥

अज्ञानतो मोक्षो ज्ञानं नास्तीति मुक्तजीवानाम् ।
पुनरागमनं भ्रमणं भवे भवे नास्ति जीवस्य ॥ २१ ॥

अर्थ—अज्ञानसे मोक्ष होता है । मुक्त जीवोंको ज्ञान नहीं होता । जीवोंका पुनरागमन नहीं होता, अर्थात् वे मरकर फिर जन्म नहीं लेते और उन्हें भवभवमें भ्रमण नहीं करना पड़ता ।

एक्को सुद्धो बुद्धो कत्ता सव्वस्स जीवलोयस्स ।
सुण्णज्झाणं वण्णावरणं परिसिक्खियं तेण ॥ २२ ॥

एकः शुद्धो बुद्धः कर्त्ता सर्वस्य जीवलोकस्य ।
शून्यध्यानं वर्णावरणं परिशिक्षितं तेन ॥ २२ ॥

अर्थ—सारे जीवलोकका एक शुद्ध बुद्ध परमात्माकर्ता है शून्य या अमूर्तिक रूप ध्यान करना चाहिए, और वर्णभेद नहीं मानना चाहिए, इस प्रकारका उसने उपदेश दिया ।

जिणमग्गबाहिरं जं तच्चं संदरसिऊण पावमणो ।
णिच्चणिगोयं पत्तो सत्तो मज्जेसु विविहेसु ॥ २३ ॥

जिनमार्गबाह्यं यत् तत्त्वं संदर्श्य पापमनाः ।
नित्यनिगोदं प्राप्तः सक्तो मद्येषु विविधेषु ॥ २३ ॥

अर्थ—और भी बहुतसा जैनधर्मसे बहिर्भूत उपदेश देकर और तरह तरहकी शराबोंमें आसक्त रहकर वह पापी नित्यनिगोदको प्राप्त हुआ ।

द्राविडसंघकी उत्पत्ति ।

सिरिपुज्जपादसीसो दाविडसंघस्स कारगो दुट्ठो ।
णामेण वज्जणंदी पाहुडवेदी महासत्तो ॥ २४ ॥
अप्पासुयचणयाणं भक्खणदो वज्जिदो मुणिंदेहिं ।
परिरइयं विवरीयं विसेसियं वग्गणं चोज्जं ॥ २५ ॥ जुम्मं ।

श्रीपूज्यपादशिष्यो द्राविडसंघस्य कारको दुष्टः ।
नाम्ना वज्रनन्दिः प्राभृतवेदी महासत्त्वः ॥ २४ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अप्राशुकचणकाणां भक्षणतः वर्जितः मुनीन्द्रैः ।
परिरचितं विपरीतं विशेषितं वर्गणं चोद्यम् ॥ २५ ॥ (युग्मम् ।)

अर्थ—श्रीपूज्यपाद या देवनन्दि आचार्यका शिष्य वज्रनन्दि द्रविड संघका उत्पन्न करनेवाला हुआ। यह प्राभृत ग्रन्थों (समयसार, प्रवचनसार आदि) का ज्ञाता और महान् पराक्रमी था। मुनिराजोंने उसे अप्रासुक या सचित्त चनोंके खानेसे रोका; क्योंकि इसमें दोष होता है—पर उसने न माना और बिगड़कर विपरीतरूप प्रायश्चित्तादि शास्त्रोंकी रचना की।

बीएसु णत्थि जीवो उब्भसणं णत्थि फासुगं णत्थि ।
सावज्जं ण हु मण्णइ ण गणइ गिहकप्पियं अट्ठं॥ २६ ॥

बीजेषु नास्ति जीवः उद्भक्षणं नास्ति प्राशुकं नास्ति ।
सावद्यं न खलु मन्यते न गणाति गृहकल्पितं अर्थम् ॥ २६ ॥

अर्थ—उसके विचारानुसार बीजोंमें जीव नहीं हैं, मुनियोंको खड़े खड़े भोजन करनेकी विधि नहीं है, कोई वस्तु प्रासुक नहीं है। वह सावद्य भी नहीं मानता और गृहकल्पित अर्थको नहीं गिनता।

कच्छं खेत्तं वसहिं वाणिज्जं कारिऊण जीवंतो ।
ण्हंतो सीयलणीरे पावं पउरं स संजेदि ॥ २७ ॥

कच्छं क्षेत्रं वसतिं वाणिज्यं कारायित्वा जीवन् ।
स्नात्वा शीतलनीरे पापं प्रचुरं स संचयति ॥ २७ ॥

अर्थ—कछार, खेत, वसतिका, और वाणिज्य आदि कराके जीवननिर्वाह करते हुए और शीतल जलमें स्नान करते हुए उसने प्रचुर पापका संग्रह किया। अर्थात् उसने ऐसा उपदेश दिया कि मुनिजन यदि खेती करावें, रोजगार करावें, बसतिका बनवावें और अप्रासुक जलमें स्नान करें तो कोई दोष नहीं है।

पंचसए छव्वीसे विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स ।
दक्खिणमहुराजादो दाविडसंघो महामोहो ॥ २८ ॥

पञ्चशते षड्विंशति विक्रमराजस्य मरणप्राप्तस्य ।
दक्षिणमथुराजातः द्राविडसंघो महाघोरः ॥ २८ ॥

अर्थ—विक्रमराजाकी मृत्युके ५२६ वर्ष बीतनेपर दक्षिण मथुरा (मदुरा) नगरमें यह महामोहरूप द्राविडसंघ उत्पन्न हुआ।

---

१ 'विशेषितं वर्गणं चोद्यं' पर क पुस्तकमें जो टिप्पणी दी है उसका अर्थ यह है कि उसने प्रायश्चित्त शास्त्र बनाये। उसीके अनुसार हमने यह अर्थ लिखा है; परन्तु इसका अर्थ स्पष्टतः समझमें नहीं आया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यापनीय संघकी उत्पत्ति ।

कल्लाणे वरणयरे सत्तसए पंच उत्तरे जादे।
जावणियसंघभावो सिरिकलसादो हु सेवडदो ॥ २९ ॥

कल्याणे वरनगरे सप्तशते पञ्चोत्तरे जाते ।
यापनीयसंघभावः श्रीकलशातः खलु सितपटतः ॥ २९ ॥

अर्थ—कल्याण नामके नगरमें विक्रम मृत्युके ७०५ वर्ष बीतने पर (दूसरी प्रतिके अनुसार २०५ वर्ष बीतने पर) श्रीकलशनाम श्वेताम्बर साधुसे यापनीय संघका सद्भाव हुआ।

काष्ठासंघकी उत्पत्ति ।

सिरिवीरसेणसीसो जिणसेणो सयलसत्थविण्णाणी ।
सिरिपउमनंदिपच्छा चउसंघसमुद्धरणधीरो ॥ ३० ॥

श्रीवीरसेनशिष्यो जिनसेनः सकलशास्त्रविज्ञानी ।
श्रीपद्मनन्दिपश्चात् चतुःसंघसमुद्धरणधीरः ॥ ३० ॥

अर्थ—श्रीवीरसेनके शिष्य जिनसेन स्वामी सकल शास्त्रोंके ज्ञाता हुए। श्रीपद्मनन्दि या कुन्दकुन्दाचार्यके बाद ये ही चारों संघोंके उद्धार करनेमें समर्थ हुए।

तस्स य सीसो गुणवं गुणभद्दो दिव्वणाणपरिपुण्णो ।
पक्खुववासुद्धमदी महातवो भावलिंगो य ॥ ३१ ॥

तस्य च शिष्यो गुणवान् गुणभद्रो दिव्यज्ञानपरिपूर्णः ।
पक्षोपवासः सुष्ठुमतिः महातपः भावलिङ्गश्च ॥ ३१ ॥

अर्थ—उनके शिष्य गुणभद्र हुए, जो गुणवान्, दिव्यज्ञानपरिपूर्ण, पक्षोपवासी, शुद्धमति, महातपस्वी और भावलिंगके धारक थे।

तेण पुणो वि य मिच्चुं णाऊण मुणिस्स [2]विणयसेणस्स ।
सिद्धंतं घोसित्ता सयं गयं सग्गलोयस्स ॥ ३२ ॥

तेन पुनः अपि च मृत्युं ज्ञात्वा मुनेः विनयसेनस्य ।
सिद्धान्तं घोषयित्वा स्वयं गतः स्वर्गलोकस्य ॥ ३२ ॥

अर्थ—विनयसेन मुनिकी मृत्युके पश्चात् उन्होंने सिद्धान्तोंका उपदेश दिया, और फिर वे स्वयं भी स्वर्गलोकको चले गये। अर्थात् जिनसेन मुनिके पश्चात् विनयसेन आचार्य हुए और फिर उनके बाद गुणभद्र स्वामी हुए।

---

१ ग प्रतिमें 'दुण्णि सए पंच उत्तरे' ऐसा पाठ है जिसका अर्थ होता है, २०५ वर्ष।

२ 'तेणप्पणो वि मिच्चुं' अर्थात् 'उन्होंने अपनी भी मृत्यु जानकर' इस प्रकारका भी पाठ ख और ग प्रतियोंमें है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आसी कुमारसेणो णंदियडे विणयसेणदिक्खियओ ।
सण्णासभंजणेण य अगहियपुणदिक्खओ जादो ॥ ३३ ॥

आसीत्कुमारसेनो नन्दितटे विनयसेनदीक्षितः ।
संन्यासभञ्जनेन च अगृहीतपुनर्दीक्षो जातः ॥ ३३ ॥

अर्थ—नन्दीतट नगरमें विनयसेन मुनिके द्वारा दीक्षित हुआ कुमारसेन नामका मुनि था । उसने सन्याससे भ्रष्ट होकर फिरसे दीक्षा नहीं ली और

परिवज्जिऊण पिच्छं चमरं घित्तूण मोहकलिएण ।
उम्मग्गं संकलियं बागडविसएसु सव्वेसु ॥ ३४ ॥

परिवर्ज्य पिच्छं चमरं गृहीत्वा मोहकलितेन ।
उन्मार्गः संकलितः बागड़विषयेषु सर्वेषु ॥ ३४ ॥

अर्थ—मयूरपिच्छिको त्यागकर तथा चँवर (गौके बालोंकी पिच्छी) ग्रहण करके उस अज्ञानीने सारे बागड़ प्रान्तमें उन्मार्गका प्रचार किया ।

इत्थीणं पुणदिक्खा खुल्लयलोयस्स वीरचरियत्तं ।
कक्कसकेसग्गहणं छट्ठं च गुणव्वदं नाम ॥ ३५ ॥

स्त्रीणां पुनर्दीक्षा क्षुल्लकलोकस्य वीरचर्यत्वम् ।
कर्कशकेशग्रहणं षष्ठं च गुणव्रतं नाम ॥ ३५ ॥

आयमसत्थपुराणं पायच्छित्तं च अण्णहा किंपि ।
विरइत्ता मिच्छत्तं पवट्टियं मूढलोएसु ॥ ३६ ॥

आगमशास्त्रपुराणं प्रायश्चित्तं च अन्यथा किमपि ।
विरच्य मिथ्यात्वं प्रवर्तितं मूढलोकेषु ॥ ३६ ॥

अर्थ—उसने स्त्रियोंको दीक्षा देनेका, क्षुल्लकोंको वीरचर्याका, मुनियोंको कड़े बालोंकी पिच्छी रखनेका, और (रात्रिभोजनत्याग नामक) छट्ठे गुणव्रतका विधान किया । इसके सिवाय उसने अपने आगम, शास्त्र, पुराण और प्रायश्चित ग्रन्थोंको कुछ और ही प्रकारके रचकर मूर्ख लोगोंमें मिथ्यात्वका प्रचार किया ।

सो समणसंघवज्जो कुमारसेणो हु समयमिच्छत्तो ।
चत्तोवसमो रुद्दो कट्ठं संघं परूवेदि ॥ ३७ ॥

स श्रमणसंघवर्ज्यः कुमारसेनः खलु समयमिथ्यात्वी ।
त्यक्तोपशमो रुद्रः काष्ठासंघं प्ररूपयति ॥ ३७ ॥

अर्थ—इस तरह उस मुनिसंघसे बहिष्कृत, समयमिथ्यादृष्टि, उपशमको छोड़ देनेवाले और रौद्र परिणामवाले कुमारसेनने काष्ठासंघका प्ररूपण किया ।

Shri Sanmati Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सत्तसए तेवण्णे विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स ।
णंदियडे वरगामे कट्ठो संघो मुणेयव्वो ॥ ३८ ॥

सप्तशते त्रिपञ्चाशति विक्रमराजस्य मरणप्राप्तस्य ।
नन्दितटे वरग्रामे काष्ठासंघो ज्ञातव्यः ॥ ३८ ॥

णंदियडे वरगामे कुमारसेणो य सत्थविण्णाणी ।
कट्ठो दंसणभट्ठो जादो सल्लेहणाकाले ॥ ३९ ॥

नन्दितटे वरग्रामे कुमारसेनश्च शास्त्रविज्ञानी ।
काष्ठः दर्शनभ्रष्टो जातः सल्लेखनाकाले ॥ ३९ ॥

अर्थ—विक्रमराजाकी मृत्युके ७५३ वर्ष बाद नन्दीतट ग्राममें काष्ठासंघ हुआ । इस नन्दीतट ग्राममें कुमारसेन नामका शास्त्रज्ञ संलेखनाके समय दर्शनसे भ्रष्ट होकर काष्ठासंघी हुआ ।

माथुरसंघकी उत्पत्ति ।

तत्तो दुसएतीदे महुराए माहुराण गुरुणाहो ।
णामेण रामसेणो णिप्पिच्छं वण्णियं तेण ॥ ४० ॥

ततो द्विशतेऽतीते मथुरायां माथुराणां गुरुनाथः ।
नाम्ना रामसेनः निष्पिच्छिं वर्णितं तेन ॥ ४० ॥

अर्थ—इसके २०० वर्ष बाद अर्थात् विक्रमकी मृत्युके ९५३ वर्ष बाद मथुरा नगरीमें माथुर संघका प्रधान गुरु रामसेन हुआ । उसने निःपिच्छिक रहनेका वर्णन किया । अर्थात् यह उपदेश दिया कि मुनियोंको न मोरके पंखोंकी पिच्छी रखनेकी आवश्यकता है और न बालोंकी । उसने पिच्छीका सर्वथा ही निषेध कर दिया ।

सम्मत्तपयडिमिच्छंतं कहियं जं जिणिंदबिंबेसु ।
अप्पपरणिट्ठिएसु य ममत्तबुद्धीए परिवसणं ॥ ४१ ॥

सम्यक्त्वप्रकृतिमिथ्यात्वं कथितं यत् जिनेन्द्रबिम्बेषु ।
आत्मपरनिष्ठितेषु च ममत्वबुद्ध्या परिवसनम् ॥ ४१ ॥

एसो मम होउ गुरू अवरो णत्थित्ति चित्तपरियरणं ।
सगगुरुकुलाहिमाणो इयरेसु वि भंगकरणं च ॥ ४२ ॥

एष मम भवतु गुरुः अपरो नास्तीति चित्तपरिचलनम् ।
स्वकगुरुकुलाभिमान इतरेषु अपि भङ्गकरणं च ॥ ४२ ॥

अर्थ—उसने अपने और पराये प्रतिष्ठित किये हुए जिनबिम्बोंकी ममत्व बुद्धिद्वारा न्यूनाधिक भावसे पूजा-वन्दना करने; मेरा गुरु यह है, दूसरा नहीं है, इस प्रकारके भाव रखने;

१ ' कुमारसेणो हि णाम पव्वइओ ' यह पाठ ख-ग पुस्तकोंमें मिलता है । ' पव्वइओ ' की छाया ' प्रवर्तकः ' होती है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपने गुरुकुल (संघ) का अभिमान करने और दूसरे गुरुकुलोंका मानभंग करनेरूप सम्यक्त्व-प्रकृतिमिथ्यात्वका उपदेश दिया।

जइ पउमणंदिणाहो सीमंधरसामिदिव्वणाणेण।
ण विवोहइ तो समणा कहं सुमग्गं पयाणंति ॥ ४३ ॥

यदि पद्मनन्दिनाथः सीमन्धरस्वामिदिव्यज्ञानेन।
न विबोधति तर्हि श्रमणाः कथं सुमार्गं प्रजानन्ति ॥ ४३ ॥

अर्थ—विदेहक्षेत्रके वर्तमान तीर्थंकर सीमन्धर स्वामीके समवसरणमें जाकर श्रीपद्मनन्दि-नाथ या कुन्दकुन्द स्वामीने जो दिव्य ज्ञान प्राप्त किया था, उसके द्वारा यदि वे बोध न देते, तो मुनिजन सच्चे मार्गको कैसे जानते ?

भूयबलिपुप्फयंता दक्खिणदेसे तहोत्तरे धम्मं।
जं भासंति मुणिंदा तं तच्चं णिव्वियप्पेण ॥ ४४ ॥

भूतबलिपुष्पदन्तौ दक्षिणदेशे तथोत्तरे धर्मम्।
यं भाषेते मुनीन्द्रौ तत्तत्त्वं निर्विकल्पेन ॥ ४४ ॥

अर्थ—भूतबलि और पुष्पदन्त इन दो मुनियोंने दक्षिण देशमें और उत्तरमें जो धर्म बतलाया, वही बिना किसी विकल्पके तत्त्व है, अर्थात् धर्मका सच्चा स्वरूप है।

भिल्लकसंघकी उत्पत्ति।

दक्खिणदेसे विंझे पुक्कलए वीरचंदमुणिणाहो।
अट्ठारसएतीदे भिल्लयसंघं परूवेदि ॥ ४५ ॥

दक्षिणदेशे विन्ध्ये पुष्करे वीरचन्द्रमुनिनाथः।
अष्टादशशतेऽतीते भिल्लकसंघं प्ररूपयति ॥ ४५ ॥

सो णियगच्छं किच्चा पडिकमणं तह य भिण्णकिरियाओ।
वण्णाचारविवाई जिणमग्गं सुट्ठु णिहणेदि ॥ ४६ ॥

स निजगच्छं कृत्वा प्रतिक्रमणं तथा च भिन्नक्रियाः।
वर्णाचारविवादी जिनमार्गं सुष्ठु निहनिष्यति ॥ ४६ ॥

अर्थ—दक्षिणदेशमें विन्ध्यपर्वतके[1] समीप पुष्कर नामके ग्राममें वीरचन्द्र नामका मुनिपति विक्रमराजाकी मृत्युके १८०० वर्ष बीतने बाद भिल्लक संघको चलायगा। वह अपना एक जुदा गच्छ बनाकर जुदा ही प्रतिक्रमणविधि बनायगा, भिन्न क्रियाओंका उपदेश देगा, और वर्णाचारका विवाद खड़ा करेगा। इस तरह वह सच्चे जैनधर्मका नाश करेगा।

---

१ श्रवणबेलगुलमें विंध्यगिरि और चन्द्रगिरि नामके दो पर्वत हैं। विन्ध्यसे ग्रन्थकर्त्ताका अभिप्राय वहींके विन्ध्यपर्वतसे है। दक्षिणमें और कोई विन्ध्यपर्वत नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तत्तो ण कोवि भणिओ गुरुगणहरपुंगवेहिं मिच्छत्तो।
पंचमकालवसाणे सिच्छंताणं विणासो हि ॥ ४७ ॥

ततो न कोपि भणितो गुरुगणधरपुङ्गवैः मिथ्यात्वः।
पञ्चमकालावसाने शिक्षकानां विनाशो हि ॥ ४७ ॥

अर्थ—इसके बाद गणधर गुरुने और किसी मिथ्यात्वका या मतका वर्णन नहीं किया पंचमकालके अन्तमें सच्चे शिक्षक मुनियोंका नाश हो जायगा।

एक्को वि य मूलगुणो वीरंगजणामओ जई होई।
सो अप्पसुदो वि परं वीरोव्व जणं पबोहेई ॥ ४८ ॥

एक अपि च मूलगुणः वीराङ्गजनामकः यतिः भविष्यति।
स अल्पश्रुतोऽपि परं वीर इव जनं प्रबोधयिष्यति ॥ ४८ ॥

अर्थ—केवल एक ही वीरांगज नामका यति या साधु मूलगुणोंका धारी होगा, जो अल्पश्रुत (शास्त्रोंका थोड़ा ज्ञान रखनेवाला) होकर भी वीर भगवानके समान लोगोंको उपदेश देगा।

ग्रन्थकर्त्ताका अन्तिम वक्तव्य।

पुव्वायरियकयाइं गाहाइं संचि ऊण एयत्थ।
सिरिदेवसेणगणिणा धाराए संवसंतेण ॥ ४९ ॥
रइओ दंसणसारो हारो भव्वाण णवसए णवए।
सिरि पासणाहगेहे सुविसुद्धे माहसुद्धदसमीए ॥ ५० ॥

पूर्वाचार्यकृता गाथाः संचयित्वा एकत्र।
श्रीदेवसेनगणिना धारायां संवसता ॥ ४९ ॥
रचितो दर्शनसारो हारो भव्यानां नवशते नवके।
श्रीपार्श्वनाथगेहे सुविशुद्धे माघशुद्धदशम्याम् ॥ ५० ॥

अर्थ—श्री देवसेन गणिने माघ सुदी १० वि० संवत् ९०९ को धारानगरीमें निवास करते समय पार्श्वनाथ भगवानके मन्दिरमें पूर्वाचार्योंकी बनाई हुई गाथाओंको एकत्र करके यह दर्शनसार नामका ग्रन्थ बनाया, जो भव्यजीवोंके हृदयमें हारके समान शोभा देगा।

रूसउ तूसउ लोओ सच्चं अक्खंतयस्स साहुस्स।
किं जूयभए साडी विवज्जियव्वा णरिंदेण ॥ ५१ ॥

रुष्यतु तुष्यतु लोकः सत्यमाख्यातकस्य साधोः।
किं यूकाभयेन शाटी विवर्जितव्या नरेन्द्रेण ॥ ५१ ॥

अर्थ—सत्य कहनेवाले साधुसे चाहे कोई रुष्ट हो और चाहे सन्तुष्ट हो। उसे इसकी परवा नहीं। क्या राजाको जूँओंके भयसे वस्त्र पहनना छोड़ देना चाहिए? कभी नहीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दर्शनसार-विवेचना ।

१ इस ग्रन्थके रचयिता या संग्रहकर्त्ता श्रीमान् देवसेनसूरि हैं । भावसंग्रह नामका एक प्राकृत ग्रन्थ है,जो ९६० श्लोकोंमें पूर्ण हुआ है,जिसके मंगलाचरण और प्रशस्तिसे पता लगता है कि वह भी इन्हीं देवसेनसूरिका बनाया हुआ है और वे विमलसेन गणिके शिष्य थे। यथा:—

आ०—पणमिय सुरसेणथुयं मुणिगणहरवंदियं महावीरं ।
वोच्छामि भावसंगहमिणमो भव्वपबोहट्ठं ॥ १ ॥
अन्त—सिरिविमलसेणगणहरसिस्सो णामेण देवसेणुत्ति ।
अबुहजणबोहणत्थं तेणेयं विरइयं सुत्तं ॥ ६७ ॥

इसके सिवाय इनके विषयमें और कुछ मालूम नहीं हुआ। इनका संघ संभवतः मूलसंघ ही होगा। क्योंकि अन्य सब संघोंको इन्होंने जैनाभास बतलाया है। इनका बनाया हुआ 'आराधनासार' नामका एक ग्रन्थ माणिकचन्द्र ग्रन्थमालामें छप गया है। 'तत्वसार' नामका एक और छोटासा ग्रन्थ है, जिसके छपानेका प्रबन्ध हो रहा है। इनके सिवाय ज्ञानसार, आदि और भी कई ग्रन्थ देवसेनके बतलाये जाते हैं; पर मालूम नहीं वे इन्हीं देवसेनके हैं, या अन्य किसीके। इनकी सब रचना प्राकृतमें ही है। इस ग्रन्थका सम्पादन इन्होंने विक्रम संवत् ९०९ की माघ शुक्ला दशमीको किया है। उस समय ये धारानगरीके पार्श्वनाथके मन्दिरमें निवास करते थे।

२ इस ग्रन्थकी पहली गाथाके 'जह कहियं पुव्वसूरीहिं' (जैसा पूर्वाचार्योंने कहा है) पदसे और ४९ वीं गाथाके 'पुव्वायरियकयाइं गाहाइं संचिऊण एयत्थ' (पूर्वाचार्योंकी बनाई हुई गाथाओंको एकत्र संचित करके बनाया) आदि पदसे मालूम होता है कि इस ग्रन्थकी अधिकांश गाथायें पहलेकी बनी हुई होंगीं और वे अन्य ग्रन्थोंसे ले ली गई होंगीं। खासकर मतोंकी उत्पत्ति आदिके सम्बन्धकी जो गाथायें हैं वे ऐसी ही जान पड़ती हैं। काष्ठासंघकी उत्पत्तिके सम्बन्धकी जो गाथायें हैं उन्हें यदि ध्यानसे पढ़ा जाय तो मालूम होता है कि वे सिलासिलेवार नहीं हैं, उनमें पुनरुक्तियाँ बहुत हैं। अवश्य ही वे एकाधिक स्थानोंसे संग्रह की गई हैं।

३ ग्रन्थकर्त्ताने दर्शनोंकी उत्पत्तिके क्रम पर भी ध्यान नहीं रक्खा है। यदि समयके अनुसार यह क्रम रक्खा गया होता तो वैनायिकोंकी उत्पत्ति बौद्धोंसे पहले, और मस्करीकी उत्पत्ति श्वेताम्बरोंसे पहले लिखी जानी चाहिए थी। मालूम नहीं, श्वेताम्बरोंको उन्होंने मस्करीसे पहले और वैनायिकोंको बौद्धोंके बाद क्यों लिखा है। संभव है, 'एयंतं विवरीयं' आदि गाथाके क्रमको ठीक रखनेके लिए ऐसा किया गया हो।

४ इस पुस्तकका पाठ तीन प्रतियोंके आधारसे मुद्रित किया गया है। क प्रति श्रीमान् सेठ माणिकचन्द पानाचन्दजीके भण्डारकी है, जिस पर लिपिसमय नहीं लिखा है। इस पर कुछ टिप्पणियाँ भी दी हुई हैं। यह अधिक शुद्ध नहीं है। ख प्रति बम्बईके तेरहपंथी मन्दिरके कमसे कम ५०० वर्ष पहलेके लिखे हुए एक गुटके पर लिखी हुई है, जो प्रायः बहुत ही शुद्ध है। अवश्य ही इसमें कई जगह काष्ठासंघकी जगह हड़ताल लगा-लगाकर मूलसंघ या मयूरसंघ लिख दिया है और यह करतूत काष्ठासंघी भट्टारक श्रीमान् श्रीभूषणजीकी है जो वि० संवत् १६३६ में अहमदाबादकी गद्दी पर विराजमान थे। इस विषयमें हम एक लेख जैनहितैषीके ५ वें भागके ८ वें अंकमें प्रकाशित कर चुके हैं। तीसरी ग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रति रायल एशियाटिक सुसाइटी (बाम्बे ब्रेंच) जरनलके नं. १५ जिल्द १८ में छपी हुई है। यह बहुत ही अशुद्ध है। फिर भी इससे संशोधनमें सहायता मिली है।

५ इसमें सब मिलाकर १० मतोंकी उत्पत्ति बतलाई गई है। वे मत ये हैं—१ बौद्ध, २ श्वेताम्बर, ३ ब्राह्मणमत, ४ वैनयिक मत, ५ मंखलि-पूरणका मत, ६ द्राविडसंघ, ७ यापनीय संघ, ८ काष्ठासंघ, ९ माथुरसंघ, और १० भिल्लक संघ। इनमेंसे पहले पाँच तो क्रमसे एकान्त, संशय, विपरीत, विनयज, और अज्ञान इन पाँच मिथ्यात्वोंके भीतर बतलाये गये हैं, पर शेष पाँचको इन पाँच मिथ्यात्वोंमेंसे किसमें गिना जाय, सो नहीं मालूम होता। ३८ वीं गाथामें काष्ठासंघके प्रवर्तक कुमारसेनको 'समयमिच्छत्तो' या समयमिथ्याती विशेषण दिया है; संभव है कि काष्ठासंघके समान शेष चार मत भी समयमिथ्यातियोंके ही भीतर गिने गये हों। पर यदि ये समयमिथ्याती हैं, तो श्वेताम्बर सम्प्रदाय भी क्यों न समयमिथ्याती गिना जाय ? अन्य लेखकोंने काष्ठासंघ आदिको 'जैनाभास' बतलाया है; पर उन्होंने इनके साथ ही श्वेताम्बरोंको भी शामिल कर लिया है। यथाः—

गोपुच्छकः श्वेतवासो द्राविडो यापनीयकः।
निःपिच्छिकश्चेति पञ्चैते जैनाभासाः प्रकीर्तिताः॥

—नीतिसार।

देवसेनके ही समान गोम्मटसारके कर्ता नेमिचन्द्रने भी श्वेताम्बर सम्प्रदायको सांशयिक माना है; परन्तु यह बात समझमें नहीं आती कि श्वेताम्बर मत सांशयिक क्यों है। विरुद्धानेककोटिस्पर्शी ज्ञानको संशय माना है। अतएव संशयीका सिद्धान्त इस प्रकारका होना चाहिए कि—न मालूम आत्मा है या नहीं, स्त्रियाँ मोक्ष प्राप्त कर सकती हैं या नहीं, इत्यादि। परन्तु श्वेताम्बर सम्प्रदायका तो ऐसा कोई सिद्धान्त मालूम नहीं होता। दिगम्बर सम्प्रदायकी दृष्टिसे उसके वस्त्रसहित मोक्ष मानना, स्त्रियोंको मोक्ष मानना, चाहे जिसके घर प्रासुक भोजन करना, आदि सिद्धान्त 'विपरीत' हो सकते हैं न कि 'संशयमिथ्यात्व'। इसके सिवाय 'स्त्रीमुक्ति' और 'केवलिभुक्ति' ये दो बातें तो श्वेताम्बरोंके समान यापनीय सम्प्रदाय भी मानता है; पर वह 'सांशयिक' नहीं, समयमिथ्याती ही बतलाया गया है।

६ तीसरी और चौथी गाथामें बतलाया है कि ऋषभदेवका पोता तमाम मिथ्यामतप्रवर्तकोंमें प्रधान हुआ और उसने एक विचित्र मत रचा, जो आगे हानिवृद्धिरूप होता रहा। भगवज्जिनसेनके आदिपुराणसे मालूम होता है कि इस पोतेका नाम मरीचि था, जिसके विषयमें लिखा है:—

मरीचिश्च गुरोर्नप्ता परिव्राड्भूयमास्थितः।
मिथ्यात्ववृद्धिमकरोदपसिद्धान्तभाषितैः॥ ६१॥
तदुपज्ञमभूद्योगशास्त्रं तंत्रं च कापिलम्।
येनायं मोहितो लोकः सम्यग्ज्ञानपराङ्मुखः॥ ६२॥

अर्थात् भगवानका पोता मरीचि भी (अन्यान्य लोगोंके साथ) परिव्राजक हो गया था। उसने असत्सिद्धान्तोंके उपदेशसे मिथ्यात्वकी वृद्धि की। योगशास्त्र (पतञ्जलिका दर्शन) और कापिल तंत्र (सांख्यशास्त्र) को उसीने रचा, जिनसे मोहित होकर यह लोक सम्यग्ज्ञानसे विमुख हुआ। आदिपुराणके इन श्लोकोंसे मालूम होता है कि सांख्य और योगका प्रणेता मरीचि है; परन्तु वास्तवमें सांख्यदर्शनके प्रणेता कपिल और योगशास्त्रके कर्ता पतञ्जलि हैं। दर्शनसारकी चौथी गाथासे इसका समाधान हो जाता है कि मरीचि इन दर्शनोंका साक्षात् प्रणेता नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसने अपना विचित्र मत बनाया था, उसीमें रद्दोबदल होता रहा और फिर वही सांख्य और योगके रूपमें एक बार व्यक्त हो गया । अर्थात् इनके सिद्धान्तोंके बीज मरीचिके मतमें मौजूद थे । सांख्य और योग दर्शनोंके प्रणेता लगभग ढाई हजार वर्ष पहले हुए हैं; पर ऋषभदेवको हुए जैनशास्त्रोंके अनुसार करोड़ों ही नहीं किन्तु अर्बों खर्बोंसे भी अधिक वर्ष बीत गये हैं । उनके समयमें सांख्य आदिका मानना इतिहासकी दृष्टिसे नहीं बन सकता । श्वेताम्बर सम्प्रदायके ग्रन्थोंमें भी मरीचिको सांख्य और योगका प्ररूपक माना है ।

७ पाँचवी गाथामें जो पाँच मिथ्यात्व बतलाये हैं, वे ही गोम्मटसारके जीवकाण्डमें भी दिये हैं:—

एयंतं विवरीयं विणयं संसयिदमण्णाणं ।

वहाँपर इन पाँचोंके उदाहरण भी दिये हैं:—

एयंत बुद्धदरसी विवरीओ बंभ तावसो विणओ ।
इंदो वि य संसइओ मक्काडिओ चेव अण्णाणी ॥

इसमें बौद्धको एकान्तवादी, ब्रह्म या ब्राह्मणोंको विपरीतमति, तापसोंको वैनयिक, इन्द्रको सांशयिक, और मंखलि या मस्करीको अज्ञानी बतलाया है । टीकाकार लोग इन्द्रका अर्थ इन्द्र नामक श्वेताम्बराचार्य करते हैं, पर इसके ठीक होनेमें सन्देह है । आश्चर्य नहीं, जो गोम्मटसारके कर्ताका इस इन्द्रसे और ही किसी आचार्यका अभिप्राय हो जो किसी संशयरूप मतका प्रवर्तक हो । क्यों कि एक तो श्वेताम्बर सम्प्रदायमें इस नामका कोई आचार्य प्रसिद्ध नहीं है और दूसरे इस दर्शनसारमें भद्रबाहुके शिष्य शान्ताचार्यका शिष्य जिनचन्द्र नामका साधु श्वेताम्बरसम्प्रदायका प्रवर्तक बतलाया गया है ।

८ छही और सातवीं गाथासे मालूम होता है कि बुद्धकीर्ति मुनिने बौद्धधर्मकी स्थापना की। बुद्धकीर्ति शायद बुद्धदेवका ही नामान्तर है । इसने दीक्षासे भ्रष्ट होकर अपना नया मत चलाया, इसका अभिप्राय यह है कि यह पहले जैनसाधु था । बुद्धकीर्ति नाम जैनसाधुओं जैसा ही है । बुद्धकीर्तिको पिहितास्रव नामक साधुका शिष्य बतलाया है । स्वामी आत्मारामजीने लिखा है कि पिहितास्रव पार्श्वनाथकी शिष्यपरम्परामें था । श्वेताम्बर ग्रन्थोंसे पता लगता है कि महावीर भगवानके समयमें पार्श्वनाथकी शिष्यपरम्परा मौजूद थी । बौद्धधर्मकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें माथुरसंघके सुप्रसिद्ध आचार्य अमितगति लिखते हैं कि:—

रुष्टः श्रीवीरनाथस्य तपस्वी मौडिलायनः ।
शिष्यः श्रीपार्श्वनाथस्य विदधे बुद्धदर्शनम् ॥ ६ ॥
शुद्धोदनसुतं बुद्धं परमात्मानमब्रवीत् ।

अर्थात् पार्श्वनाथकी शिष्यपरम्परामें मौडिलायन नामका तपस्वी था । उसने महावीर भगवान्से रुष्ट होकर बुद्धदर्शनको चलाया और शुद्धोदनके पुत्र बुद्धको परमात्मा कहा । दर्शनसार और धर्मपरीक्षाकी बतलाई हुई बातोंमें विरोध मालूम होता है । पर एक तरहसे दोनोंकी संगति बैठ जाती है । महावग्ग आदि बौद्ध ग्रन्थोंसे मालूम होता है कि मौडिलायन और सारीपुत्त दोनों बुद्धदेवके प्रधान शिष्य थे । ये जब बुद्धदेवके शिष्य होनेको जा रहे थे, तब इनके साथी संजय परिव्राजकने इन्हें रोका था । इससे मालूम होता है कि ये पहले जैन रहे होंगे और मौडिलायनका गुरु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अवश्य ही पार्श्वनाथकी परम्पराका कोई साधु होगा। मौडिलायन बौद्धधर्मके प्रधान प्रचारकोंमें था, इस कारण ही शायद वह बौद्धधर्मका प्रवर्तक कह दिया गया है; परन्तु वास्तवमें वह शुद्धोदनसुत बुद्धका शिष्य और उन्हींके सिद्धान्तोंका प्रचारक था। अब उक्त दोनों ग्रन्थोंका सम्मिलित अभिप्राय यह निकला कि पार्श्वनाथके धर्मतीर्थमें पिहितास्रव नामक जैनसाधुके शिष्य बुद्धदेव हुए और बुद्धदेवका शिष्य मौडिलायन हुआ, जो स्वयं भी पहले जैन था।

९ आठवींसे १० वीं गाथातक बौद्धधर्मके कुछ सिद्धान्त बतलाये गये हैं। पहला यह है कि मांसमें जीव नहीं है। बौद्धधर्ममें 'प्राणिवध' का तो तीव्र निषेध है; परन्तु यह आश्चर्य है कि वह मरे हुए प्राणीके मांसमें ज़ीव नहीं मानता। मद्यके पीनेमें दोष नहीं है ऐसा जो कहा गया है, सो ठीक नहीं मालूम होता। क्योंकि बौद्ध साधुओंको 'विनयपिटक' आदि ग्रंथोंके अनुसार जो दशशील ग्रहण करना पड़ते हैं और जिन्हें बौद्धधर्मके मूल गुण कहना चाहिए उनमेंसे पाँचवाँ शील इन शब्दोंमें ग्रहण करना पड़ता है—'मैं मद्य या किसी भी मादक द्रव्यका सेवन नहीं करूँगा।' ऐसी दशामें शराब पीनेकी आज्ञा बुद्धदेवने दी, यह नहीं कहा जा सकता।

१० ग्यारहवीं और बारहवीं गाथामें श्वेताम्बर सम्प्रदायकी उत्पत्तिका समय और उसने उत्पादकका नाम बतलाया गया है। श्वेताम्बरके समान और और संप्रदायोंकी उत्पत्तिका समय भी इसमें बतलाया है। इस विषयमें यह बात विचारणीय है कि क्या किसी सम्प्रदायकी उत्पत्ति किसी एक नियत समयमें हुई, ऐसा कहा जा सकता है? हमारी समझमें प्रत्येक सम्प्रदायकी उत्पत्ति लोगोंके मानसक्षेत्रोंमें बहुत पहलेसे हुआ करती है और वही धीरे धीरे बढ़ती बढ़ती जब खूब विस्तार पा लेती है तब किसी एक नेताके द्वारा प्रकट रूप धारण कर लेती है। अत एव किसी सम्प्रदायकी उत्पत्तिका जो समय बतलाया गया हो, समझना चाहिए कि उसके लगभग उस सम्प्रदायके विचार फैल रहे थे। ठीक उसी वर्षमें यह संभव हो सकता है कि उस सम्प्रदायके प्रधान पुरुषने कोई खास आदेश या उपदेश दिया हो, अथवा वह अपने अनुयायियोंको लेकर जुदा हो गया हो।

११ दर्शनसारमें श्वेताम्बरोंकी उत्पत्तिका जो समय (वि० संवत् १३६) बतलाया गया है, उससे बिलकुल मिलता हुआ समय श्वेताम्बरग्रन्थोंमें दिगम्बरोंकी उत्पत्तिका बतलाया है। यथाः—

छव्वाससहस्सेहिं नवुत्तरेहिं सिद्धिं गयस्स वीरस्स।
तो बोडियाण दिट्ठी रहवीरपुरे समुप्पन्ना॥

अर्थात् वीर भगवानके मुक्त होनेके ६०९ वर्ष बाद बोट्टिकों (दिगम्बरों) का प्रवर्तक रथवीरपुरमें उत्पन्न हुआ। इसके अनुसार विक्रम संवत् १३९ में दिगम्बर सम्प्रदायकी उत्पत्ति हुई। दोनोंमें केवल ३ वर्षका अन्तर है। पर यह समय प्रामाणिक नहीं जान पड़ता। क्योंकि भद्रबाहु श्रुतकेवलीका समय श्रुतावतारादि अनेक ग्रन्थोंके अनुसार वीरनिर्वाणसंवत् १६२ के लगभग निश्चित है। १६२ में उनका स्वर्गवास हो चुका था। श्वेताम्बर गुर्वावलियोंमें बतलाया हुआ समय भी इसीके समीप है। उनके अनुसार वीर नि० संवत् १७० में भद्रबाहुका स्वर्गवास हुआ है। अर्थात् दोनोंके मतसे भद्रबाहुका समय मिल जाता है। भद्रबाहुके समयमें जो १२ वर्षका दुर्भिक्ष पड़ा था, उसका उल्लेख भी श्वेताम्बर ग्रन्थोंमें है, जिसे दिगम्बर ग्रन्थोंमें श्वेताम्बर सम्प्रदायके होनेका एक मुख्य कारण माना है। अब यदि भद्रबाहुके शिष्य शान्त्याचार्य और उनके शिष्य जिनचन्द्र इन दोनोंके होनेमें ४० वर्ष मान लिये जायँ तो दर्शनसारके अनुसार वीर नि० संवत् २०० (वि० सं० ६७०) में जिनचन्द्राचार्यने श्वेताम्बर सम्प्रदायकी स्थापना की, ऐसा मानना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चाहिए। परन्तु नं० ११ की गाथामें श्वेताम्बर सम्प्रदायकी उत्पत्तिका समय विक्रम संवत् १३६ बतलाया गया है । अर्थात् दोनोंमें कोई ४५० वर्षका अन्तर है । यदि यह कहा जाय कि ये भद्रबाहु पंचम श्रुतकेवली नहीं, किन्तु कोई दूसरे ही थे, तो भी बात नहीं बनती। क्योंकि भद्रबाहुचरित्र आदि ग्रन्थोंमें लिखा है कि भद्रबाहु श्रुतकेवली ही दक्षिणकी ओर गये थे और राजा चन्द्रगुप्त उन्हींके शिष्य थे । श्रवणबेलगुलके लेखोंमें भी इस बातका उल्लेख है । दुर्भिक्ष भी इन्हींके समयमें पड़ा था जिसके कारण मुनियोंके आचरणमें शिथिलता आई थी । अतएव भद्रबाहुके साथ विक्रम संवत् १३६ की संगति नहीं बैठती । भद्रबाहुचरित्रके कर्त्ता रत्ननन्दिने भद्रबाहुके और संवत् १३६ के बीचके अन्तरालको भर देनेके लिए श्वेताम्बरसम्प्रदायके 'अर्ध फालक' और श्वेताम्बर इन दो भेदोंकी कल्पना की है, अर्थात् भद्रबाहुके समयमें तो 'अर्धफालक' या आधावस्त्र पहननेवाला सम्प्रदाय हुआ और फिर वही सम्प्रदाय कुछ समयके बाद वल्लभीपुरके राजा प्रजापालकी रानीके कहनेसे पूरा वस्त्र पहननेवाला श्वेताम्बर सम्प्रदाय बन गया । परन्तु इस कल्पनामें कोई तथ्य नहीं है । साफ मालूम होता है कि यह एक भद्दी गढ़ंत है ।

१२ श्वेताम्बर सम्प्रदायके ग्रन्थोंमें शान्त्याचार्यके शिष्य जिनचन्द्रका कोई उल्लेख नहीं मिलता, जो कि दर्शनसारके कथानुसार इस सम्प्रदायका प्रवर्तक था । इसके सिवाय यदि गोम्मटसारकी 'इंदो वि य संसइयो' आदि गाथाका अर्थ वही माना जाय, जो टीकाकारोंने किया है, तो श्वेताम्बर सम्प्रदायका प्रवर्तक 'इन्द्र' नामके आचार्यको समझना चाहिए । भद्रबाहुचरित्रके कर्त्ता इन दोनोंको न बतलाकर रामल्य स्थूलभद्रादिको इसका प्रवर्तक बतलाते हैं । उधर श्वेताम्बर सम्प्रदायके ग्रन्थोंमें दिगम्बर सम्प्रदायका प्रवर्तक 'सहस्रमल्ल' अथवा किसीके मतसे 'शिवभूति' नामक साधु बतलाया गया है । पर दिगम्बर ग्रन्थोंमें न सहस्रमल्लका पता लगता है और न शिवभूतिका । क्या इसपरसे हम यह अनुमान नहीं कर सकते कि इन दोनों सम्प्रदायोंकी उत्पत्तिका मूल किसीको भी मालूम न था । सबने पीछेसे 'कुछ लिखना चाहिए' इसी लिए कुछ न कुछ लिख दिया है ।

१३ दिगम्बर और श्वेताम्बर ये दो भेद कब हुए, इसका इतिहास बहुत ही गहरे अँधेरेमें छुपा हुआ है—इसका पता लगाना बहुत ही आवश्यक है । अभीतक इस विषय पर बहुत ही कम प्रकाश पड़ा है । ज्यों ही इसके भीतर प्रवेश किया जाता है, त्यों ही तरह तरहकी शंकायें आकर मार्ग रोक लेती हैं । हमारे एक मित्र कहते हैं कि जहाँसे दिगम्बर और श्वेताम्बर गुर्वावलीमें भेद पड़ता है, वास्तवमें वहींसे इन दोनों संघोंका जुदा जुदा होना मानना चाहिए। भगवानके निर्वाणके बाद गोतमस्वामी, सुधर्मास्वामी और जम्बूस्वामी बस इन्हीं तीन केवलज्ञानियोंतक दोनों सम्प्रदायोंकी एकता है । इसके आगे जो श्रुतकेवली हुए हैं, वे दिगम्बर सम्प्रदायमें दूसरे हैं और श्वेताम्बरमें दूसरे । आगे भद्रबाहुको अवश्य ही दोनों मानते हैं । अर्थात् जम्बूस्वामीके बाद ही दोनों जुदा जुदा हो गये हैं । यदि ऐसा न होता तो भद्रबाहुके शिष्यतक, अथवा आगे चलकर वि० संवत् १३६ तक दोनोंकी गुरुपरम्परा एकसी होती । पर एक सी नहीं है । अतएव ये दोनों ही समय सशंकित हैं । एक बात और है । श्वेताम्बरसम्प्रदायके आगम या सूत्रग्रन्थ वीरनिर्वाण संवत् ९८० (विक्रम संवत् ५१०) के लगभग वल्लभीपुरमें देवर्धिगणि क्षमाश्रमणकी अध्यक्षतामें संगृहीत होकर लिखे गये हैं और जितने दिगम्बर-श्वेताम्बर ग्रन्थ उपलब्ध हैं और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो निश्चयपूर्वक साम्प्रदायिक कहे जा सकते हैं वे प्रायः इस समयसे बहुत पहलेके नहीं हैं। अत एव यदि यह मान लिया जाय कि विक्रम संवत् ४१० के सौ पचास वर्ष पहले ही ये दोनों भेद सुनिश्चित और सुनियमित हुए होंगे तो हमारी समझमें असंगत न होगा। इसके पहले भी भेद रहा होगा; परन्तु वह स्पष्ट और सुशृंखलित न हुआ होगा। श्वेताम्बर जिन बातोंको मानते होंगे उनके लिए प्रमाण माँगे जाते होंगे और तब उन्हें आगमोंको साधुओंकी अस्पष्ट यादगारी परसे संग्रह करके लिपिबद्ध करनेकी आवश्यकता प्रतीत हुई होगी। इधर उक्त संग्रहमें सुश्रृंखलता प्रौढता आदिकी कमी, पूर्वापरविरोध और अपने विचारोंसे विरुद्ध कथन पाकर दिगम्बरोंने उनको माननेसे इनकार कर दिया होगा और अपने सिद्धान्तोंको स्वतंत्ररूपसे लिपिबद्ध करना निश्चित किया होगा। आशा है कि विद्वानोंका ध्यान इस ओर जायगा और वे निष्पक्ष दृष्टिसे इस श्वेताम्बर-दिगम्बरसम्बन्धी प्रश्नका निर्णय करेंगे।

१४ सोलहवीं और सत्रहवीं गाथामें जिस विपरीत मतकी उत्पत्ति बतलाई है, उसकी पद्मपुराणोक्त* कथासे मालूम होता है कि वह ब्राह्मणोंका वैदिक मत है, जो यज्ञमें पशुहिंसा करनेमें धर्म समझता है। गोम्मटसारमें 'एयंत बुद्धदरसी' आदि गाथामें विपरीत मतके उदाहरणमें जो 'ब्रह्म' शब्द दिया है, उसका भी अर्थ 'ब्राह्मणमत' है। पद्मपुराणके अनुसार मुनिसुव्रत तीर्थंकरके और पर्वत आदिके समयको लाखों वर्ष हो गये। अत एव यह कथा यदि सच मानी जाय तो वैदिक धर्म जितना पुराना माना जाता है उससे भी बहुत पुराना सिद्ध हो जायगा। हमारी समझमें तो स्वयं वेदानुयायी ही अपने धर्मको इतना पुराना नहीं मानते हैं। जैन विद्वानोंके लिए यह सोचने विचारनेकी बात है।

१५ बीसवींसे तेईसवींतक चार गाथाओंमें अज्ञान मतका वर्णन है। इसके कर्त्ताका नाम 'मस्करिपूरन' नामक साधु बतलाया गया है; परन्तु बौद्ध ग्रन्थोंसे मालूम होता है कि मस्करि-गोशाल और पूरन कश्यप ये दो भिन्न भिन्न व्यक्ति थे और दो जुदा जुदा मतोंके प्रवर्तक थे। महापरिनिर्वाणसूत्र, महावग्ग, और दिव्यावदान आदि कई बौद्धग्रन्थोंमें बुद्ध देवके समसामयिक जिन छह तीर्थंकरोंका या मतप्रवर्तकोंका वर्णन मिलता है, ये दोनों भी उन्हींके अन्तर्गत हैं।

---

* क्षीरकदम्ब उपाध्यायके पास राजपुत्र वसु, नारद और उनका पुत्र पर्वत ये तीनों पढ़ते थे। क्षीरकदम्ब मुनि होकर तपस्या करने लगे। वसु राजा हो गया और राज कार्य करने लगा। पर्वत और नारदमें एक दिन 'अजैर्यष्टव्यं' इस वाक्य पर विवाद हुआ। नारद इसका अर्थ करता था कि पुराने यवोंसे यजन करना चाहिए और पर्वत कहता था कि बकरोंसे। अर्थात् यज्ञमें पशुओंका आलमन करना चाहिए। दोनों अपने अपने अर्थको क्षीरकदम्बका बतलाया हुआ कहते थे। राजा वसु प्रसिद्ध सत्यवादी था। दोनोंने यह शर्त लगाई कि राजा वसु जिसके अर्थको सत्य अर्थात् क्षीरकदम्बके कथनानुसार बतलावे उसीकी जीत समझी जाय और जो हारे उसकी जिह्वा छेदी जाय। दूसरे दिन इसका निर्णय होनेवाला था कि पहली रातको पर्वतकी माताने अपने पुत्रका पक्ष असत्य समझकर उसकी जिह्वा काटी जानेके डरसे राजा वसु पर अनुचित दबाव डाला और उसे झूठ बोलने पर राजी कर लिया। दूसरे दिन सभामें राजा वसुने पर्वतके ही पक्षको सत्य बतलाया और इसका फल यह हुआ कि उसका सिंहासन लोगोंके देखते देखते जमीनके नीचे धँस गया। इसके बाद पर्वत अपने पक्षका समर्थन करता हुआ और यज्ञमें हिंसा करनेका उपदेश देता हुआ फिरने लगा। 'यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयंभुवा,' आदि श्लोकका वह प्रचारक हुआ। आगे उसने राजा मरुतके द्वारा एक बड़ा भारी यज्ञ कराया जिसका विध्वंस रावणने आकर किया।

Sanmati Vani Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूरन कश्यपके विषयमें लिखा है कि यह एक म्लेच्छ स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न हुआ था। कश्यप इसका नाम था। इस जन्मसे पहले यह ९९ जन्म धारण कर चुका था। वर्तमान जन्ममें इसने शतजन्म पूर्ण किये थे, इस कारण इसको लोग 'पूरण-कश्यप' कहने लगे थे। इसके स्वामीने इसे द्वारपालका काम सोंपा था; परन्तु इसे वह पसन्द न आया और यह नगरसे भागकर एक वनमें रहने लगा। एक बार कुछ चोरोंने आकर इसके कपड़ेलत्ते छीन लिये, पर इसने कपड़ोंकी परवा न की, यह नग्न ही रहने लगा। उसके बाद यह अपनेको पूरण कश्यप बुद्धके नामसे प्रकट करने लगा और कहने लगा कि मैं सर्वज्ञ हूँ। एक दिन जब यह नगरमें गया, तो लोग इसे वस्त्र देने लगे; परन्तु इसने इंकार कर दिया और कहा-"वस्त्र लज्जानिवारणके लिए पहने जाते हैं और लज्जा पापका फल है। मैं अर्हत् हूँ, मैं समस्त पापोंसे मुक्त हूँ, अतएव मैं लज्जासे अतीत हूँ।" लोगोंने कश्यपकी उक्तिको ठीक मान ली और उन्होंने उसकी यथाविधि पूजा की। उनमेंसे ५०० मनुष्य उसके शिष्य हो गये। सारे जम्बूद्वीपमें यह घोषित हो गया कि वह बुद्ध है और उसके बहुतसे शिष्य हैं; परन्तु बौद्ध कहते हैं कि वह 'अवीचि' नामक नरकका निवासी हुआ। सुत्तपिटकके दीर्घनिकाय नामक भागके अन्तर्गत 'सामञ्ञओ फलसुत्त' में लिखा है कि पूरण कश्यप कहता था-'असत्कर्म करनेसे कोई पाप नहीं होता और सत्कर्म करनेसे कोई पुण्य नहीं होता। किये हुए कर्मोंका फल भविष्यत्कालमें मिलता है, इसका कोई प्रमाण नहीं है।' मस्करि गोशालका वर्णन श्वेताम्बर ग्रन्थोंमें विस्तारसे मिलता है। वे इसे मंखलि गोशाल कहते हैं। श्वेताम्बरसूत्र 'उवासकदसांग' के मतसे वह श्रावस्तीके अन्तर्गत शरवणके समीप उत्पन्न हुआ था। उसके पिताको लोग 'मंखलि' कहा करते थे। पिता अपने हाथके चित्र दिखलाकर अपनी जीविका चलाता था। माताका नाम 'भद्रा' था। एक दिन ये दोनों भ्रमण करते करते शरवणके निकट आये और कोई स्थान न मिलनेसे वर्षाके कारण एक ब्राह्मणकी गोशालामें जाकर ठहर गये। वहाँ भद्राने एक पुत्रको जन्म दिया और उसका नाम स्थानके नामके अनुसार गोशाला रक्खा गया। प्राप्तवयस्क होनेपर गोशाला भिक्षावृत्तिसे अपना निर्वाह करने लगा। इसी समय भगवान् महावीरने भी ३० वर्षकी अवस्थामें जिन-दीक्षा धारण की। 'मलिन्द-प्रश्न' नामक बौद्ध ग्रन्थमें लिखा है-"सम्राट् मलिन्दने गोशालासे पूछा-"अच्छे बुरे कर्म हैं या नहीं? अच्छे बुरे कर्मोंका फल भी मिलता है या नहीं?" गोशालाने उत्तर दिया-"हे सम्राट्, अच्छे बुरे कर्म भी नहीं हैं और उनके फल भी कुछ नहीं हैं।" बौद्ध कथाओंके अनुसार मंखलि गोशाल पर उसका मालिक एक गलतीके कारण बहुत ही अप्रसन्न हुआ था। जब उसने भागनेकी चेष्टा की तब मालिकने जोरसे उसके वस्त्र खींच लिये और वह नंगा ही भाग गया। इसके बाद वह साधु हो गया और अपनेको 'बुद्ध' कहके प्रसिद्ध करने लगा। उसके हजारों शिष्य हो गये। बौद्ध कहते हैं कि वह मरकर अवीचि नगरमें गया। उसके मतसे समस्त प्राणी विनाकारण ही अच्छे बुरे होते हैं। संसारमें शक्तिसामर्थ्य आदि पदार्थ नहीं हैं। जीव अपने अदृष्टके प्रभावसे यहाँ वहाँ संचार करते हैं। उन्हें जो सुखःदुख भोगना पड़ते हैं, वे सब उनके अदृष्ट पर निर्भर हैं। १४ लाख प्रधान जन्म, ५०० प्रकारके सम्पूर्ण और असम्पूर्ण कर्म, ६२ प्रकारके जीवनपथ, ८ प्रकारकी जन्मकी तहें, ४९०० प्रकारके कर्म, ४९०० भ्रमण करनेवाले संन्यासी, ३ हजार नरक और ८४ लाख काल हैं। इन कालोंके भीतर पण्डित और मूर्ख सबके कष्टोंका अन्त हो जाता है। ज्ञानी और पण्डित कर्मके हाथसे छुटकारा नहीं पा सकते।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जन्मकी गतिसे सुख और दुःखका परिवर्तन होता है। उनमें ह्रास और वृद्धि होती है। सिंहली भाषाके बौद्ध ग्रन्थोंके अनुसार इन दोनोंके अस्सी अस्सी हजार शिष्य थे। मंखलि गोशालके मतका नाम 'आजीवक' था। इस आजीवक मतका उल्लेख अशोकके शिलालेखोंमें भी है। उपर्युक्त उल्लेखोंसे मस्करि और पूरण ये दो जुदे जुदे मतप्रवर्तक ही मालूम होते हैं। मालूम नहीं, दर्शनसारके कर्त्ताने इन दोनोंको एक क्यों मान लिया। इनके जो सिद्धान्त बतलाये हैं उनका भी मेल बौद्धादि ग्रन्थोंसे नहीं खाता है। अनेक जन्मोंका धारण करना ये दोनों ही मतवाले मानते हैं; परन्तु दर्शनसारमें इनका सिद्धान्त बतलाया है—पुनरागमनं भ्रमणं भवे भवे नास्ति जीवस्य।

१६ आगे २४ वीं गाथासे ४३ वीं तक द्राविड, यापनीय, काष्ठासंघ और माथुरसंघ इन चार संघोंकी उत्पत्ति बतलाई है।

चारोंकी उत्पत्तिका समय इस प्रकार दिया है:—

द्राविड संघ	५२६ विक्रममृत्युसंवत्।
यापनीय संघ...	७०५ " "
काष्ठासंघ	७५३ " "
माथुर संघ	९५३ " "

अब यह देखना है कि उक्त समय कहाँतक ठीक हैं। सबसे पहले यह निश्चय करना चाहिए कि यह संवत् कौनसा है। बहुतोंका खयाल है कि वर्तमानमें जो विक्रम संवत् प्रचलित है, वह विक्रमके जन्मसे या राज्याभिषेकसे शुरू हुआ है; परन्तु हमारी समझमें यह मृत्युका ही संवत् है। इसके लिए एक प्रमाण लीजिए। सुभाषित-रत्नसंदोहकी प्रशस्तिमें अमितगतिने लिखा है:—

> समारूढे पूतत्रिदशवसतिं विक्रम नृपे,
> सहस्रे वर्षाणां प्रभवति हि पञ्चाशदधिके।
> समाप्तं पञ्चम्यामवति धरिणीं मुञ्जनृपतौ
> सिते पक्षे पौषे बुधहितमिदं शास्त्रमनघम् ॥

इसका अर्थ यह है कि विक्रमराजाके स्वर्गवास होनेके १०५० वर्ष बीतने पर राजा मुञ्जके राज्यमें यह शास्त्र समाप्त किया गया। इन्हीं अमितगतिने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ धर्मपरीक्षाके बननेका समय इस प्रकार लिखा है:—

> संवत्सराणां विगते सहस्रे ससप्ततौ विक्रम पार्थिवस्य।
> इदं निषिध्यान्यमतं समाप्तं जैनेन्द्रधर्मामितयुक्तिशास्त्रम् ॥

अर्थात् विक्रमराजाके संवतके १०७० वर्ष बीतने पर यह ग्रन्थ बनाया गया। इन दोनों श्लोकोंमें विक्रम संवत् ही बतलाया है, परन्तु पहलेमें 'विक्रमके स्वर्गवासका संवत्' और दूसरेमें 'विक्रमराजाका संवत्' इस तरह लिखा है और यह संभव नहीं कि एक ही ग्रन्थकर्त्ता अपने एक ग्रन्थमें तो मृत्युका संवत् लिखे और दूसरेमें जन्मका या राज्यका। और जब ये दोनों संवत् एक हैं, तब यह कहा जा सकता है कि विक्रमका संवत् या विक्रमसंवत् लिखनेसे भी उस समय विक्रमकी मृत्युके संवतका बोध होता था। अब रहा प्रश्न यह कि यदि उस समय जन्मका ही या राज्यका ही संवत् लिखा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाता रहा हो, केवल अमितगतिने ही मृत्युका संवत् लिखा हो, तो इसके विरुद्ध क्या प्रमाण है ? प्रमाण यह है कि राजा मुञ्जका समय सुनिश्चित है। अनेक शिलालेखोंसे और दानपत्रोंसे यह बात निश्चित हो चुकी है कि वे विक्रम संवत् १०३६ से १०७८ तक मालवदेशके राजा रहे हैं। १०३६ का उनका एक दानपत्र मिला है । उसके पहले भी वे कितने दिनोंतक राजा रहे, यह मालूम नहीं । १०७८ में कल्याणके राजा तैलिपदेवके द्वारा उनकी मृत्यु हुई थी और इसी वर्ष भोजका राज्याभिषेक हुआ था । अमितगतिने सुभाषितरत्नसंदोहके बननेका समय १०५० दिया है और उस समय मुञ्ज राज्य कर रहे थे, ऐसा लिखा है । अब यदि इस १०५० संवतको हम जन्मका संवत् बनावें, तो इसमें विक्रमकी उम्र जो ८० वर्ष कही जाती है जोड़नी चाहिए । अर्थात् ११३० संवतक लगभग यह समय पहुँच जायगा; अथवा राज्याभिषेकका संवत् बनावें और अनुमानतः अभिषेकके समयकी अवस्था २० वर्ष मान लें, और इसलिए (८०–२०=६०) साठ वर्ष जोड़ें तो १११० के लगभग पहुँच जायगा । परन्तु इस समयतक मुञ्जके रहनेका कोई प्रमाण नहीं है । मुंजके उत्तराधिकारी भोजकी मृत्यु सं० १११२ के पूर्व हो चुकी थी और १११५ में उदयादित्यको सिंहासन मिल चुका था । इससे सिद्ध है कि विक्रमका वर्तमान संवत् उसकी मृत्युका ही संवत् है और दर्शनसारमें जो संवत् दिया गया है उसको और प्रचलित विक्रम संवतको एक ही समझना चाहिए ।

इस विषयमें यह बात भी ध्यानमें रखने योग्य है कि संवत् एक स्मृतिका चिह्न या यादगार है । इसका चलना मृत्युके बाद ही संभव है । जो बहुत प्रतापी और महान् होता है उसको ही साधारण जनता इस प्रकारके उपायोंसे अमर बनाती है । सर्व साधारणके द्वारा राज्याभिषेकका संवत् नहीं चल सकता । क्योंकि सिंहासन पर बैठते ही यह नहीं मालूम हो सकता कि यह राजा अच्छा होगा । कोई कोई राजा लोग अवश्य ही अपने दानपत्रादिमें अपने राज्यका संवत् लिखा करते थे; परन्तु वह उन्हींके जीवन तक चलता था । इसी तरह जन्मका संवत् भी नहीं चल सकता । भगवान् महावीर, ईसा, मुहम्मद आदि सबके संवत् मृत्युके ही हैं ।

अब सब संघोंके समयकी जाँच की जानी चाहिए । सबसे पहले द्राविड संघको लीजिए । इसकी उत्पत्तिका समय है वि० संवत् ५२६ । इसका उत्पादक बतलाया गया है आचार्य पूज्यपादका शिष्य वज्रनन्दि । दक्षिण और कर्नाटकके प्रसिद्ध इतिहासज्ञ प्रो० के. बी. पाठकने किसी कनड़ी ग्रन्थके आधारसे मालूम किया है कि पूज्यपाद स्वामी दुर्विनीत नामके राजाके समयमें हुए हैं । दुर्विनीत उनका शिष्य था । दुर्विनीतने विक्रम संवत् ५३५ से ५७० तक राज्य किया है । वज्रनन्दि यद्यपि पूज्यपादका शिष्य था; फिर भी संभव है कि उसने उन्हींके समयमें अपना संघ स्थापित कर लिया हो । ऐसी दशामें ५२६ के लगभग उसके द्वारा द्राविडसंघकी उत्पत्ति होना ठीक जान पड़ता है ।

इसके बाद यापनीय संघके समयका विचार कीजिए । हमारे पास जो तीन प्रतियाँ हैं, उनमेंसे दोके पाठोंसे तो इसकी उत्पत्तिका समय वि० सं० ७०५ मालूम होता है और तीसरी ग प्रतिके पाठसे वि० सं० २०५ ठहरता है । यद्यपि यह तीसरी प्रति बहुत ही अशुद्ध है, परन्तु ७०५ से बहुत पहले यापनीय संघ हो चुका था, इस कारण इसके पाठको ठीक मान लेनेको जी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चाहता है। श्वेताम्बर सम्प्रदायमें हरिभद्र नामके एक बहुत प्रसिद्ध आचार्य हो गये हैं। विक्रम संवत् ५८५ में उनका स्वर्गवास हुआ है और उन्होंने अपनी 'ललितविस्तरा टीका' में यापनीय तंत्रका स्पष्ट उल्लेख किया है। इससे मालूम होता है कि ५८५ से बहुत पहले यापनीय संघका प्रादुर्भाव हो चुका था। इसके सिवाय रायल एशियाटिक सुसाइटी बाम्बे ब्रेंचके जरनल की जिल्द १२(सन् १८७६)में कदम्बवंशी राजाओंके तीन दानपत्र प्रकाशित हुए हैं, जिनमेंसे तीसरेमें अश्वमेध यज्ञके करानेवाले महाराज कृष्णवर्माके पुत्र देववर्माके द्वारा यापनीय संघके अधिपतिको मन्दिरके लिए कुछ जमीन वगैरह दान की जानेका उल्लेख है। चेरा--दानपत्रोंमें भी इसी कृष्णवर्माका उल्लेख है और उसका समय वि० संवत् ५२३ के पहले है। अतएव ऐसी दशामें यापनीय संघकी उत्पत्तिका समय आठवीं नहीं किन्तु छट्ठी शताब्दिके पहले समझना चाहिए। आश्चर्य नहीं जो ग प्रतिका २०५ संवत् ही ठीक हो। दर्शनसारकी अन्य दो चार प्रतियोंके पाठ देखनेसे इसका निश्चय हो जायगा।

काष्ठासंघका समय विक्रम संवत् ७५३ बतलाया है; परन्तु यदि काष्ठासंघका स्थापक जिनसेनके सतीर्थ विनयसेनका शिष्य कुमारसेन ही है, जैसा कि ३०-३३ गाथाओंमें बतलाया है, तो अवश्य ही यह समय ठीक नहीं है। गुणभद्रस्वामीकी मृत्युके पश्चात् कुमारसेनने काष्ठासंघको स्थापित किया है और गुणभद्रस्वामीने महापुराण शक संवत् ८२० अर्थात् विक्रम संवत् ९५५ में समाप्त किया है। यदि इसी समय उनकी मृत्यु मान ली जाय, तो भी काष्ठासंघकी उत्पत्ति विक्रम संवत् ९५५ के लगभग माननी चाहिए; पर दर्शनसारके कर्त्ता ७५३ बतलाते हैं। ऐसी दशामें या तो यह मानना चाहिए कि गुणभद्रस्वामीके समसामयिक कुमारसेनके सिवाय कोई दूसरे ही कुमार सेन रहे होंगे, जिनका समय ७५३ के लगभग होगा, और जिनके नामसाम्यके कारण विनयसेनके शिष्य कुमारसेनको दर्शनसारके कर्त्ताने काष्ठासंघका स्थापक समझ लिया होगा, और या काष्ठासंघकी उत्पत्तिका यह समय ही ठीक नहीं है।

अब रहा माथुरसंघ; सो इसे काष्ठासंघसे २०० वर्ष पीछे अर्थात् विक्रम संवत् ९५३ में हुआ बतलाया है; परन्तु इसमें सबसे बड़ा सन्देह तो यह है कि जब दर्शनसार संवत् ९०९ में बना है, जैसा कि इसकी ५० वीं गाथासे मालूम होता है तब उसमें आगे ४४ वर्ष बाद होनेवाले संघका उल्लेख कैसे किया गया। यदि यह कहा जाय कि दर्शनसारके बननेका जो संवत् है वह शक संवत् होगा, अर्थात् वह विक्रम संवत् १०४४ में बना होगा; परन्तु इसके विरुद्ध दो बातें कहीं जा सकती हैं। एक तो यह कि जब सारे ग्रन्थमें विक्रम संवत्का उल्लेख किया गया है, तब केवल अन्तकी गाथामें शक संवत् लिखा होगा, इस बातको माननेकी ओर प्रवृत्ति नहीं होती, दूसरी यह कि धारानगरी मालवेमें है। मालवेका प्रधान संवत् विक्रम है। उस ओर शक संवतके लिखनेकी पद्धति नहीं है। इसके सिवाय ऐसा मालूम होता है कि माथुरसंघ सं० ९५३ से पहले ही स्थापित हो गया होगा। आचार्य अमितगति माथुर संघमें ही हुए हैं। उन्होंने विक्रम संवत् १०५० में 'सुभाषित-रत्नसन्दोह ग्रन्थ रचा है। उन्होंने अपनी जो गुरुपरम्परा दी है, वह इस प्रकार है -- १ वीरसेन, २ देवसेन, ३ अमितगति (प्रथम), ४ नेमिषेण, ५ माधवसेन और ६ अमितगति। यदि यह माना जाय कि अमितगति १०५० के लगभग आचार्य हुए होंगे और उनसे पहलेके पाँच आचार्योंका समय केवल बीस ही बीस वर्ष मान लिया जाय, तो वीरसेन आचार्यका समय वि० संवत् ९५०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के लगभग प्रारंभ होगा। परन्तु वीरसेन माथुरसंघके पहले आचार्य नहीं थे। उसके पहले और भी कुछ आचार्य हुए होंगे। यदि रामसेन इनसे दो तीन पीढ़ी ही पहले हुए हों तो उनका समय विक्रमकी नवीं शताब्दिका उत्तरार्ध ठहरेगा। गरज यह कि काष्ठासंघ और माथुरसंघ इन दोनों ही संघोंकी उत्पत्तिके समयमें भूल है। इन सब संघोंकी उत्पतिके समयकी संगति बिठानेका हमने बहुत ही प्रयत्न किया है, परिश्रम भी इस विषयमें खूब किया है; परन्तु सफलता नहीं हुई।

१८ इन चार संघोंमेंसे इस समय केवल काष्ठासंघका ही नाम मात्रको आस्तित्व रह गया है—क्योंकि इस समय भी एक दो भट्टारक ऐसे हैं जो चमरकी पिच्छी रखते हैं और अपनेको काष्ठासंघी प्रकट करते हैं, शेष तीन संघोंका सर्वथा लोप समझना चाहिए। माथुरसंघको इस-ग्रन्थमें जुदा बतलाया है; परन्तु कई जगह इसे काष्ठासंघकी ही एक शाखा माना है। इस संघकी चार शाखाओंमेंसे—जो नगरों या प्रान्तोंके नामसे हैं—यह भी एक है। यथा:—

> काष्ठासंघो भुवि ख्यातो जानन्ति नृसुरासुराः।
> तत्र गच्छाश्च चत्वारो राजन्ते विश्रुताः क्षितौ ॥ १
> श्रीनन्दितटसंज्ञश्च माथुरो बागड़ाभिधः।
> लाड़बागड़ इत्येते विख्याताः क्षितिमण्डले ॥ २
>
> —सुरेन्द्रकीर्तिः।

अलग बतलानेका कारण यह मालूम होता है कि माथुरसंघमें साधुके लिए पिच्छि रखनेका विधान नहीं है और काष्ठासंघमें गोपुच्छकी पिच्छि रखते हैं। इसी कारण काष्ठासंघको 'गोपुच्छक' और माथुरसंघको 'निःपिच्छिक' भी कहते हैं। इन दोनोंमें और भी दो एक बातोंमें भेद होगा। काष्ठासंघका कोई भी यत्याचार या श्रावकाचार उपलब्ध नहीं है, इसलिए उसमें मूलसंघसे क्या अन्तर है, इसका निर्णय नहीं हो सकता; परन्तु माथुरसंघका अमितगति श्रावकाचार मिलता है। उससे तो मूलसंघके श्रावकाचारोंसे कोई ऐसा मतभेद नहीं है जिससे वह जैनाभास कहा जाय। जान पड़ता है केवल निःपिच्छिक होनेसे ही वह जैनाभास समझा गया है। काष्ठासंघके विशेष सिद्धान्त ३५ वीं गाथामें बतलाये गये हैं; परन्तु उनमेंसे केवल दो ही स्पष्ट होते हैं—एक तो कड़े बालोंकी या गायकी पूछके बालोंकी पिच्छी रखना और दूसरा क्षुल्लक लोगोंको वीरचर्या अर्थात् स्वयं भ्रामरी वृत्तिसे भोजन करना। पं० आशाधरने क्षुल्लकोंके लिए इसका निषेध किया है। शेष दो बातें अस्पष्ट हैं, उनका अभिप्राय समझमें नहीं आता। एक तो 'इत्थीणं पुणदिक्खा' अर्थात् स्त्रियोंको पुनः दीक्षा देना और दूसरी यह कि 'छट्ठा गुणव्रत' मानना। गुणव्रत तो तीन ही माने गये हैं, यदि यह कहा जाता कि चौथा गुणव्रत उसने और माना, तो ठीक भी होता, पर इसमें छट्ठा गुणव्रत माननेको कहा है। क प्रतिकी टिप्पणीमें लिखा है कि रात्रिभोजनत्याग नामक छट्ठे व्रतका विधान किया, पर यह भी अस्पष्ट है। इसके सिवाय यह भी लिखा है कि कुमारसेनने आगम, शास्त्र, पुराण प्रायश्चित्तादि ग्रन्थ जुदे बनाये और अन्यथा बनाये।

द्राविड़ संघको 'द्रमिल संघ' भी कहते हैं। पुन्नाट संघ भी शायद इसीका नामान्तर है। हरिवंशपुराणके कर्त्ता जिनसेन इसी पुन्नाट संघमें हुए हैं। नाट शब्दका अर्थ कर्णाट देश है,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute,,Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस लिए 'पुनाट' का अर्थ द्रविड़ देश होगा, ऐसा जान पड़ता है। हरिवंशपुराणके प्रारंभमें पूज्यपादस्वामीके बाद वज्रनन्दिकी भी इस प्रकार स्तुति की गई है:—

वज्रसूरेर्विचारण्यः सहेत्वोर्बन्धमोक्षयोः।
प्रमाणां धर्मशास्त्राणां प्रवक्तृणामिवोक्तयः॥ ३२॥

इसमें आचार्य वज्रनन्दिके किसी ग्रन्थको जिसमें बन्धमोक्षका सहेतुक वर्णन है, धर्मशास्त्रोंके वक्ता गणधरोंकी वाणीके समान प्रमाणभूत माना है। ये वज्रनन्दि पूज्यपादके शिष्य ही हैं जिन्हें देवसेनसूरिने द्राविड संघका उत्पादक बतलाया है। हरिवंशके कर्ता उन्हें गणधरके समान प्रमाणभूत मानते हैं, इसीसे मालूम होता है कि वे स्वयं द्राविड संघी थे। त्रैविद्यविश्वेश्वर श्रीपालदेव, वैयाकरण दयापाल, मतिसागर, स्याद्वादविद्यापति वादिराजसूरि आदि बड़े बड़े विद्वान् इस संघमें हुए है। हरिवंशपुराणके कर्ताने अपने पूर्वके आचार्योंकी एक लम्बी नामावली दी है जिसमें कई बड़े बड़े विद्वान् जान पड़ते हैं। इस संघमें भी कई गण और गच्छ हैं। 'नन्दि' नामक अन्वयका, 'अरुङ्गल,' 'एरेगित्तर' इन दो गणोंका और 'मूलितल्' नामक गच्छका यत्र तत्र उल्लेख मिलता है। मूलसंघके साथ इसका किन किन बातोंमें विरोध है, इसका उल्लेख २७--२८ गाथाओंमें किया गया है। परन्तु इस संघके आचारसम्बन्धी ग्रन्थोंका परिचय न होनेसे कई बातोंका अर्थ स्पष्ट समझमें नहीं आता। ग्रन्थकर्ताने उन्हें कहा भी बहुत अस्पष्ट शब्दोंमें है। लिखा है वह बीजोंमें जीव नहीं मानता और यह भी लिखा है कि वह प्रासुक नहीं मानता। बीजोंमें जीव नहीं मानता, इसका अर्थ ही यह है कि वह बीजोंको प्रासुक मानता है। वह सावद्य भी नहीं मानता। सावद्यका अर्थ पाप होता है, पर 'पाप' कुछ होता ही नहीं है, ऐसा कोई जैनसंघ नहीं मान सकता। गृहकल्पित अर्थको नहीं गिनता, इसका अभिप्राय बहुत ही अस्पष्ट है।

२५ वीं गाथामें यापनीय संघका उल्लेख मात्र है, परन्तु उसके सिद्धान्त वगैरह बिलकुल नहीं बतलाये हैं। जान पड़ता है कि ग्रन्थकर्ताको इस संघके सिद्धान्तोंका परिचय नहीं था। श्वेताम्बरसम्प्रदायमें श्रीकलश नामके आचार्य कोई हुए हैं या नहीं, जिन्होंने यापनीय संघकी स्थापना की, पता नहीं लगा। अन्य ग्रन्थोंसे पता चलता है कि इस संघके साधु नग्न रहते थे; परन्तु दिगम्बर सम्प्रदायको जो दो बातें मान्य नहीं हैं एक तो स्त्रीमुक्ति और दूसरी केवलिभुक्ति, उन्हें यह मानता था। श्वेताम्बर सम्प्रदायके आवश्यक, छेदसूत्र, निर्युक्ति, आदि ग्रन्थोंको भी शायद वह मानता था, ऐसा शाकटायनकी अमोघ वृत्तिके कुछ उदाहरणोंसे मालूम होता है। आचार्य शाकटायन या पाल्यकीर्ति इसी संघके आचार्य थे। उन्होंने 'स्त्रीमुक्ति-केवलिभुक्तिसिद्धि' नामका एक ग्रन्थ बनाया था, जो अभी पाटणके एक भाण्डारमें उपलब्ध हुआ है। यापनीयको 'गोप्य' संघ भी कहते हैं। आचार्य हरिभद्रकृत षट्दर्शनसमुच्चयकी गुणरत्नकृत टीकाके चौथे अध्यायकी प्रस्तावनामें दिगम्बर सम्प्रदायके (द्रविड संघको छोड़कर) संघोंका इस प्रकार परिचय दिया है:—

"दिगम्बराः पुनर्नाग्न्यलिङ्गाः पाणिपात्राश्च। ते चतुर्धा, काष्ठासंघ-मूलसंघ-माथुरसंघ-गोप्यसंघभेदात्। काष्ठासंघे चमरीवालैः पिच्छिका, मूलसंघे मायूरपिच्छैः पिच्छिका, माथुरसंघे मूलतोऽपि पिच्छिका नादृताः, गोप्या मयूरपिच्छिकाः। आद्या-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्त्रयोऽपि संघा वन्द्यमाना धर्मवृद्धिं भणन्ति। स्त्रीणां मुक्तिं केवलिनां भुक्तिं सद्व्रतस्यापि सचीवरस्य मुक्तिं च न मन्वते। गोप्यास्तु वन्द्यमाना धर्मलाभं भणन्ति। स्त्रीणां मुक्तिं केवलिनां भुक्तिं च मन्यन्ते। गोप्या यापनीय इत्यप्युच्यन्ते। सर्वेषां च भिक्षाटने भोजने च द्वात्रिंशदन्तराया मलाश्च चतुर्दश वर्जनीयाः। शेषमाचारे गुरौ च देवे च सर्वं श्वेताम्बरैस्तुल्यम्। नास्ति तेषां मिथः शास्त्रेषु तर्केषु परो भेदः।"

अर्थात् "दिगम्बर नग्न रहते हैं और हाथमें भोजन करते हैं। इनके चार भेद हैं। काष्ठासंघ, मूलसंघ, माथुर, गोप्य। इनमेंसे काष्ठासंघके साधु चमरीके बालोंकी और मूलसंघ तथा यापनीय संघके साधु मोरके पंखोंकी पिच्छिका रखते हैं; पर माथुरसंघके साधु पिच्छिका बिलकुल ही नहीं रखते हैं। पहले तीन बन्दना करनेवालेको 'धर्मवृद्धि' देते हैं और स्त्रीमुक्ति, केवलिभुक्ति, तथा वस्त्रसहित मुनिको मुक्ति नहीं मानते हैं। गोप्यसंघवाले 'धर्मलाभ' कहते हैं और स्त्रीमुक्ति केवलिभुक्तिको मानते हैं। गोप्य संघको यापनीय भी कहते हैं। चारों ही संघके साधु भिक्षाटनमें और भोजनमें ३२ अन्तराय और १४ मलोंको टालते हैं। इसके सिवाय शेष आचारमें तथा देवगुरुके विषयमें ये सब श्वेताम्बरोंके ही तुल्य हैं। उनमें शास्त्रमें और तर्कमें परस्पर और कोई भेद नहीं है।" इस उल्लेखसे यापनीय संघके विषयमें कई बातें मालूम हो जाती हैं और दूसरे संघोंमें भी जो भेद हैं उनका पता लग जाता है।

इस विषयमें हम इतना और कह देना चाहते हैं कि यापनीयको छोड़कर शेष तीन संघोंका मूल संघसे इतना पार्थक्य नहीं है कि वे जैनाभास बतला दिये जायँ, अथवा उनके प्रवर्तकोंको दुष्ट, महामोह, जैसे विशेषण दिये जायँ। ग्रन्थकर्त्ताने इस विषयमें बहुत ही अनुदारता प्रकट की है।

१८ गाथा ४३ वीं से मालूम होता है कि कुंदकुंदस्वामीके विषयमें जो यह किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि वे विदेहक्षेत्रको गये थे और वहाँके वर्तमान तीर्थंकर सीमंधर स्वामीके समवसरणमें जाकर उन्होंने अपनी शंकाओंका समाधान किया था सो विक्रमकी नौवीं दशवीं शताब्दिमें भी सत्य मानी जाती थी। अर्थात् यह किंवदन्ती बहुत पुरानी है। इसीकी देखादेखी लोगोंने पूज्यपादके विषयमें भी एक ऐसी ही कथा गढ़ली है।

१९ गाथा ४५-४६ में ग्रन्थकर्ताने एक भविष्यद्वाणी की है। कहा है कि विक्रमके १८०० वर्ष बीतने पर श्रवणबेलगुलके पासके एक गाँवमें वीरचन्द्र नामका मुनि भिल्लक नामके संघको चलायगा। मालूम नहीं, इस भविष्यद्वाणीका आधार क्या है। कमसे भगवानकी कही हुई तो यह मालूम नहीं होती। क्योंकि इस घटनाके समयको बीते १७४ वर्ष बीत चुके; पर न तो कोई इस प्रकारका वीरचन्द नामका साधु हुआ और न उसने कोई संघ ही चलाया। ग्रंथकर्त्ताकी यह खुदकी ही 'ईजाद' मालूम होती है। हमारी समझमें इसमें कोई तथ्य नहीं है। इस प्रकारकी भविष्यद्वाणियों पर विश्वास करनेके अब दिन नहीं रहे। अन्य किसी प्रामाणिक ग्रंथमें भी इस संघके होनेका उल्लेख नहीं पाया जाता।

२० आगे ४८ वीं गाथामें भी एक भविष्यद्वाणी कही है। पंचमकालके अंतमें वीरांगज नामका एक मूलगुणोंका धारण करनेवाला मुनि होगा जो भगवान् महावीरके समान लोगोंको उपदेश देगा। त्रैलोक्यसारमें भी इस बातका उल्लेख किया है। यथाः—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इदि पडिसहस्सवस्सं वीसे कक्कीण दिक्कमे चरिमो ।
जलमंथणो भविस्सदि कक्की सम्मगमंथणओ ॥ ८४७ ॥
इह इंदरायसिस्सो वीरंगदसाहु चरिम सव्वसिरी ।
अज्जा अग्गिल सावय वर साविय पंगुसेणावि ॥ ८४८ ॥
पंचमचरिमे पक्खउ मास तिवासावसेसए तेण ।
मुणि पढमपिंडगहणे संणसणं करिय दिवस तियं ॥ ८४९ ॥
सोहम्मे जायंते कत्तिय अमावासि सादि पुव्वण्हे ।
इगि जलहि ठिदी मुणिणो सेसतिये साहियं पल्लं ॥ ८५० ॥
तव्वासरस्स आदी मज्झंते धम्म-राय-अग्गीणं ।
णासो तत्तो मणुसा णग्गा मच्छादिआहारा ॥ ८५१ ॥

अर्थ—" इस तरह प्रत्येक सहस्र वर्षमें एक एकके हिसावसे बीस कल्कि होंगे । १९ कल्कि हो चुकने पर (पंचमकालके अन्तमें) ' जलमंथन ' नामका अन्तिम कल्कि सन्मार्गको मंथन करनेवाला होगा । उस समय इन्द्रराजके शिष्य वीरांगज नामके मुनि, सर्वश्री नामकी अर्जिका, अर्गल नामका श्रावक और पंगुसेना नामकी श्राविका ये चार जीव जैनधर्मके धारण करनेवाले बचेंगे । पंचमकालके अन्तिम महीनेके अन्तिम पक्षमें जब तीन दिन बाकी रह जायँगे, तब मुनि श्रावकके यहाँ भोजन करने जायँगे और ज्यों ही पहला कौर लेंगे, त्योंही कल्कि उसको छीन लेगा । इससे वे तीन दिनका संन्यास धारण करके कार्तिककी अमावास्याके पहले प्रहरके प्रारंभमें मृत्युको प्राप्त होकर सौधर्म स्वर्गमें एक सागर आयुवाले देव होंगे । आर्यिका, श्राविका और श्रावक भी सौधर्म स्वर्गमें कुछ अधिक एक पल्यकी आयु पावेंगे । इसके बाद उसी दिनके आदिमें, मध्यमें और अन्तमें क्रमसे धर्मका, राजाका और अग्निका नाश हो जायगा और लोग नंगे तथा कच्ची मछली आदिके खानेवाले हो जायँगे । " मालूम नहीं, इस भविष्यद्वाणीमें सत्यका अंश कितना है । आजकलकी श्रद्धाहीन बुद्धिमें ऐसी बातें नहीं आ सकतीं कि अग्नि जैसे पदार्थका भी संसारमेंसे या किसी क्षेत्रमेंसे अभाव हो सकता है । पर इन बातों पर विचार करनेका यह स्थल नहीं है ।

इस ग्रन्थके सम्पादनमें और विवेचन लिखनेमें शक्तिभर परिश्रम किया गया है; फिर भी साधनोंके अभावसे इसमें अनेक त्रुटियाँ रह गई हैं । प्रमादवश भी इसमें अनेक दोष रह गये होंगे । उन सबके लिए मैं पाठकोंसे क्षमा चाहता हुआ इस विवेचनाको समाप्त करता हूँ । यदि कोई सज्जन इसकी त्रुटियोंके सम्बन्धमें सूचनायें भेजेंगे, तो मैं उनका बहुत ही कृतज्ञ होऊँगा ।

चन्दावाडी, बम्बई.
श्रावण शुक्ल ४ सं० १९७४ वि०

नाथूराम प्रेमी ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रद्धा उठ गई !

(ले०–ब्र० भगवानदीनजी ।)

श्रद्धा उठ गईकी गूँज इतनी मुद्दतसे और इस जोरशोरसे होती आ रही है कि सुनते सुनते तबीयत ऊब गई है और कानकी झिल्लियाँ कमजोर हुई जाती हैं। पर जान पड़ता है कि यह कभी बन्द होनेवाली नहीं। जबतक संसार है और मनुष्योंमें समझनेकी शक्ति है, तबतक यह गूँज जारी ही रहेगी। इतिहासके पृष्ठके पृष्ठ इस 'श्रद्धा उठ गई' की कथाओंसे भरे हुए हैं। लोग यह चिल्लाते ही रहेंगे कि उठ गई; परन्तु वह बैठी ही रहेगी। यदि उठ गई होती तो शोर बन्द हो गया होता; परन्तु ऐसा न कभी हुआ और न होगा। यह आवाज अकेले जैन धर्मावलम्बियोंमें ही नहीं प्रत्येक धर्मके लोगोंमें सदासे सुनी जाती रही है और आगे भी सुनी जाती रहेगी। यति, मुनि, पण्डित, मुल्ला, गुरुसाहब और पादरी सबको ही यह शोर मचाते रहना होगा। जब यह बात है तब सम्भव है यही उन्नतिका मंत्र हो। इसहीमें आपके पास क्या प्रमाण है, कि मुर्गेके विना बाँग दिये भी सूर्य निकल सकता है? आप सर्वज्ञ तो हैं ही नहीं। इस बातकी नियमानुसार खोज भी कब की गई है। कभी समवसरणसभामें भी तो यह प्रश्न उपस्थित नहीं किया गया। वास्तवमें यह प्रश्न बड़े महत्त्वका है। इसे आप फुर्सतके वक्त विचारिए। यदि यह उन्नतिका मंत्र न होता तो बड़े बड़े विद्वान् इसमें कदापि सम्मिलित न होते। कुछ भी हो, समय युक्तियोंका है, गहरी खोजोंके करनेका है, इस लिए हमको अपने लेखमें इन दोनों बातोंको एकत्र करना होगा, तभी लोग हमारी बातको मानेंगे।

समाज इस आवाजको सुनकर बहुत ही विकल हो रहा है। इसलिए पहले हम यह तो देख लें कि यह विकल होना भी कुछ महत्त्व रखता है या नहीं। विचार करनेसे इस भयानक आवाजको उतना भी महत्त्व नहीं दिया जा सकता, जितना एक बड़े प्रेमी पतिकी अपनी प्यारी पत्नीके विधवा हो जानेकी खबर सुनकर विकल होनेकी बातपर दिया जाता है। यद्यपि समाज उठकर चली जानेवाली श्रद्धाके पीछे सिर पर पैर रख कर दौड़ा जा रहा है; परन्तु जब आदमी कान न टटोलकर कान ले जानेवाले कौएके पीछे दौड़ सकता है, तब समाजकी दौड़ धूपसे हमें क्यों आश्चर्ययुक्त होना चाहिए? इस दौड़नवाले और शोर मचानेवाले समाजको यह भी तो मालूम नहीं है कि हम कहाँ दौड़े जा रहे हैं, क्यों दौड़े जा रहे हैं और यह शोर क्यों मच रहा है। यह कोई कल्पना, गढ़न्त या दिल्लगी नहीं है कि इस समाजके अधिकांश लोगोंने समझ रक्खा है कि श्रद्धा एक गठरी है, वह किसी श्रावककी थी; उसको कोई चोर ले गया है और हम उसीकी खोजमें भागे जा रहे हैं। कुछ लोग कहते हैं, नहीं जी, श्रद्धा छानको कहते हैं और वह उठाकर छत पर रख दी गई है। यह शोर उसीके लिए है। जब धर्मकी सभी बातें अचरजोंसे भरी होती हैं, तब यह भी साधारण क्यों हो!

एक समय था, जब मुसलमान लोग काफिरोंके पीछे इसी प्रकार दौड़ा करते थे। जहाँ यह खबर उड़ी कि काफिर आ गया, बस फिर क्या था, लोग लाठी ले लेकर घरोंमेंसे निकल पड़ते थे और जिस पर उनके नेताने हाथ उठा दिया उसी पर उनकी लाठियाँ चलने लगती थीं। काफिरका पीछा करते समय यदि कोई उनसे पूछ बैठता था कि भाई काफिर क्या बला है, तो अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार कोई उसको भूत बतलाकर, कोई शेर, शैतान आदि कहकर प्रश्नकर्ताका समाधान कर देते थे। काफिरका साक्षात् हो जाने पर भी वे अपने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सहधर्मियोंके सामने उसका बड़ा भयंकर स्वरूप उपस्थित करते थे। क्या अचरज, जो पक्षपातपूर्ण मनुष्योंको वास्तवमें ऐसा ही दीख पड़ता हो। साधारण गतानुगतिक जनता इसके सिवाय धर्मकी गाढ़ श्रद्धाका और परिचय ही क्या दे सकती है, और परमनिःस्वार्थी भगवान् तीर्थंकरोंके गाढे भक्त बननेवाले समाजके अदूरदर्शी नेताओंने उन बेचारोंके हाथमें झाँझ मँजीरा पकड़ाकर रातभर 'मोहे तारो साँवलिया तारो, मेरे गुण अवगुण न विचारो' की धुनमें बिता देनेके सिवाय और सिखया ही क्या है? सोच समझकर कोई धर्मका काम करनेकी तो मानों प्रतिज्ञा दिला रक्खी है। ऐसी दशामें क्या वे यह पूछकर कि श्रद्धा क्या चीज है, अपनी प्रतिज्ञा तोड़ डालें और आखड़ी-भंगके पापसे करे कराये पुण्यकार्यों पर पानी फेर दें।

परन्तु पढ़ी-लिखी जनताको तो इस हुल्लड़का साथ नहीं देना था, वह तो कुछ बुद्धि रखती है, उसे तो कुछ पूछताछ करनी थी—किसकी श्रद्धा उठ गई, कैसे उठ गई, वह पागल तो नहीं हो गया, आदि; परन्तु पढ़ी—लिखी जनता तो मूर्ख जनतासे भी शायद पीछे है, वह न हुल्लड़के इधर है और उधर।

अब रह गये, हम जैसे झक्की और पीछे ही पड़ गये कि पण्डितजी, बताइए तो सही कि किसकी श्रद्धा उठ गई?

पण्डितजी—देवदत्तकी।

हम—किस चीजसे?

पं०—धर्मसे।

हम—किस धर्मसे?

पं०—जैनधर्मसे।

हम—किस जैनधर्मसे?

पं०—दिगम्बरजैनधर्मसे।

हम—कौनसे दि० जैनधर्मसे।

पं०—तेरहपंथसे।

हम—शुद्ध तेरहपंथसे या विशुद्धसे?

पं०—शुद्ध विशुद्ध क्या होता है?

हम—शुद्ध तो वह, जिसमें भगवानकी प्रतिमाका ही अभिषेक करनेकी आज्ञा है।

पं०—और विशुद्ध?

हम—विशुद्ध वह, कि जिसमें प्रतिमाका स्नान न कराके एक दूसरे पात्रमें जलधारा छोड़नेकी विधि है।

पं०—अजी इससे क्या मतलब? श्रद्धा उठ गई धर्मसे! धर्मसे! धर्मसे!

हम—पं० जी, क्षमा कीजिए, आपकी बातका मतलब समझमें नहीं आया।

पं०—अजी क्यों चालें चलते हो। मैं तुम्हें पहचानता हूँ। तुम उन्हींके साथी हो। तुम धर्मको डुबाकर रहोगे, विधवाविवाह चलाकर रहोगे, जाति पाँति मिटाकर रहोगे, जाओ मेरे सामनेसे हट जाओ। तुम सर्वज्ञवचनोंके सामने मुँह खोलनेके योग्य हो गये? जो भगवान् तुम्हें खाना देते रहे हैं, उन्हींका धर्म बिगाड़ोगे? यदि कोई होता जैन राजा तो तुम्हारी जीभ निकलवा ली जाती।

हमने ऊपर जो कुछ लिखा है, उसमें जरा भी अत्युक्ति नहीं है। लोगोंने जराजरासी विचारस्वाधीनता, क्रियास्वाधीनता और प्रश्नस्वाधीनताका नाम नास्तिकता और श्रद्धान उठ जाना रख छोड़ा है और उसीका यह शोर-शराबा मचा हुआ है। यद्यपि शोर मचानेवाले स्वयं ही वैसे विचार करते, क्रिया करते, और प्रश्न भी करते हैं; परन्तु उन्होंने अपनी रक्षाका एक और ही उपाय सोच रक्खा है। वे स्वयं भी उसी शोरमें शामिल हो जाते हैं। उदाहरण लीजिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुछ पण्डित महाशयोंने यह चर्चा उपस्थित की थी कि–हरी काटने, छेदने, उबालने, पीसने आदिसे अचित्त हो जाती है । अतएव भुने या उबले हुए आलू, सूखी सोंठ और हल्दी आदिके खानेमें कोई दोष नहीं है । यद्यपि यह चर्चा शास्त्रानुसार की गई थी, बड़े बड़े ग्रन्थोंके प्रमाण दिये गये थे और कोई इस बातका खण्डन भी नहीं कर सका था; फिर भी लोगोंने हुल्लड़ मचाया था । यह हुल्लड़ बहुत बड़ा । एक सुप्रसिद्ध पण्डितजी–जो इस चर्चाके अगुओंमें थे–कुछ सोच समझकर और अपनेको मुकाबलेके योग्य न पाकर स्वयं ही इस हुल्लड़में शामिल हो गये । उन्होंने अपनी संरक्षकतामें चलनेवाली संस्थामें तुरन्त ही एक नियम बना दिया कि उसके रसोईघरमें (बाहर कोई हर्ज नहीं और नदीके किनारे तो बिलकुल हर्ज नहीं) आलू न बनने पावें । विषस्य विषमौषधम् । शोरकी दवा शोर । यह शोर शान्त हो गया और इस तरह एक संस्थासे श्रद्धा उठती उठती रह गई । इस तरहके बीसों उदाहरण दिये जा सकते हैं; परन्तु उनके लिए इस लेखमें स्थान नहीं ।

आओ, अब खोज करें कि वास्तवमें यह 'श्रद्धा उठ गई' का हुल्लड़ उठता कहाँसे है । भोले भाले अपढ़ लोग तो केवल अनुकरण करना जानते हैं । वे बुरीसे बुरी बातको भी धर्म समझ बैठते हैं । आप शास्त्रकी गद्दी पर बैठकर उन्हें चाहे जो समझा दीजिए । हाँ, रूढ़ियोंके विरुद्ध कहनेके लिए सर्वज्ञ भगवान् भी आ जावें, तो भी वे उनकी बात न मानेंगे । साथ ही जिन पर उनकी श्रद्धा है और जो समाजमें बड़े आदमी समझे जाते हैं, यदि वे किसी रूढीको तोड़ डालें तो फिर वे उन्हें रोक भी नहीं सकते । अर्थात् वे तो केवल मेशीन हैं । उनकी कल साधारणतः उनके तंग करनेवालोंके ही हाथमें है । अतः सोतेका स्थान यहाँ नहीं, उसकी खोज किसी दूसरी ओर ही करनी होगी ।

नदी, तालाव, कुएँ आदिमें इसका पता नहीं चलेगा । इन पहाड़ोंको देखिए । इन्होंने कितने बड़े बड़े पत्थर अपने चारों ओर इकट्ठे कर रक्खे हैं जिनके बीचमें इतना अन्तर है कि पानीकी तो बात ही क्या हम लोग भी घुस सकते हैं । वर्षाका पानी भी ये हजम कर जाते हैं । बस, हुल्लड़का सोता आपको यहीं मिलेगा । अच्छा तो अब पता लगाओ कि बड़े बड़े ग्रन्थोंको उनका भाव समझे विना रट जानेवाले और समाजकी शिक्षाका कार्य अपने हाथमें ले रखनेवाले कौन कौन हैं । उनकी भी खोज करो जो अयोग्य होते हुए भी बड़े बड़े पद पा चुके हैं और शायद इसी लिए समाजकी बागडोर उनको पकड़ा दी गई है । बस, वहीं हुल्लड़का सोता मिलेगा । यह देखो, वहींसे पानीका प्रवाह बह रहा है । लो सुनो, उस आवाजको '१४ वर्षकी और कुमारी !' एक और लो–'जैन जातियोंमें परस्पर रोटी–बेटी व्यवहार ! सब एकाकार !' इधरकी भी सुनिए—'पूजामें सचित्त फल फूल !' अररर 'श्रुतकेवलियोंके ग्रन्थोंकी समालोचना !' हाय हाय ! 'म्लेच्छ भाषामें जैन ग्रन्थ !' कान फूटे, भागो !

ऐसा ही समुदाय समाजसुधारकोंके पीछे खुफिया पुलिसकी तरह लगा रहता है । धर्म-वृद्धि और प्रभावना समाजसुधार पर ही निर्भर है । एक दुखियाको क्या, यदि तुमने मन्दिरमें भगवानकी मूर्तिके आगे एक गिन्नी चढ़ा दी ? उसको तो तुम दुःखमें तड़फता ही छोड़ गये । और इससे भी तुमको क्या सरोकार कि वह गिन्नी कितने गरीबोंका पेट काटकर लाई गई है ! तुम्हारी असूर्यम्पश्या कुलीन महिलायें भ्रूणहत्यायें करें और इससे दूसरे लोग तुम्हारे ब्रह्मचारि-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

योंको, नेताओंको व्यभिचारी कहें, तो हम किस मुँहसे उन्हें उत्तर दें ? यह सब धर्मकी अप्रभावना नहीं तो और क्या है ? चारित्रको आपने ऊपरी क्रियाकाण्ड या खानपान ही समझ रक्खा है। हृदयकी स्वच्छता, जो उसका प्राण है उससे आपका मानों कोई सरोकार ही नहीं है।

अच्छा, तो फिर ये लोग सुधार क्यों नहीं होने देते ? सुधारोंमें बहुतसे शास्त्रानुकूल हैं, उन्हें भी नहीं होने देते और जिनके लिए शास्त्रोंमें आज्ञा नहीं है उनके लिए तो मालूम नहीं ये कितनी उछल कूद मचावेंगे। परन्तु सुधार सब ही होंगे, रुक नहीं सकते। शास्त्रोंमें केवल ढंग मिलेगा, नाम नहीं मिल सकते। तुम तो जलेबी बनानेकी रीति और सुपारी तराशनेकी तरकीब भी शास्त्रोंमेंसे खोजना चाहते हो। पर यह तो कहो कि रेलमें बैठते समय भी किसीने शास्त्र खोलकर देखे थे ? और म्लेच्छ साहबोंसे हाथ मिलानेकी आज्ञा भी किसी वर्णाचारके ग्रन्थसे ले ली थी ? यदि भगवान् अकलंक भट्ट इन हुल्लड़ मचानेवालोंकी परवा करते, तो क्या वे बौद्ध गुरुओंके पास जाकर पढ़ सकते या जिनप्रतिमाके ऊपर होकर कूद जाते ? लोग देवदर्शनके लिए ही हाय हाय मचा रहे हैं। सुधारकोंको प्रतिमायें लाँघनी पड़ेंगी यदि धर्म कायम रखना है तो। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावका भी शास्त्रोंमें वर्णन है। इसीसे सुधारकोंकी छाती डेढ़ डेढ़ गजकी हो रही है। सुधार तो कोई रुकता नहीं। क्यों कि वह समयकी पुकार है। उसको रोकना मानों ऋतुपरिवर्तनके सिद्धान्तको लात मारकर अपनी हँसी कराना है। चारपाईको भीगनेसे बचानेके लिए मेहको रोकनेकी कोशिश मत करो। चारपाईको ही उठाकर अन्दर क्यों नहीं रख देते ? मेहके बन्द हो जाने पर उसे फिर बाहर ले आना और आरामसे हवामें सोना। सुधार होने दो। यदि रोकोगे तो देर लगेगी और तुमहीको नीचा देखना पड़ेगा। समाजमें जो प्रतिष्ठित और पूज्य समझे जाते हैं, वे सुधारमें रोड़ा अटकावेंगे ही; क्यों कि परिवर्तनके पश्चात् निश्चय नहीं कि किसको उच्चासन मिलेगा। वे अपनी प्रतिष्ठा स्थिर रखना चाहते हैं, और इसी कारण विरोध करते हैं। यही कारण है कि सुधारको विरोधके दाँतोंमेंसे होकर निकलना पड़ता है।

सुधारसे साधारण जनताको बहुत लाभ होता है। जिस धर्ममें साधारण जनता सुखी रहती है वही धर्म फूलता फलता है और सब लोग उसीको सच्चा समझते हैं। धर्म चीज ही ऐसी है कि जो उसको धारण करे उसीका दुःख दूर हो जाय। परन्तु धर्मके पास धरा ही क्या है। उसके अस्त्र-शस्त्र, रुपया-पैसा, फौज-फाँटा सब धार्मिक ही तो हैं। उन्हींको चाहिए कि उस धर्मके धारण करनेवाले किसी भी व्यक्तिको किसी प्रकारका दुःख न होने दें। उनकी वासनाओंको केवल दबाना ही न चाहिए, किन्तु उनको एक उचित सीमाके भीतर चरितार्थ होने देनेका भी प्रबन्ध करना चाहिए। यही बुद्धिमत्ता है। मनुष्य पशु नहीं, जो लाठीसे हाँके जावें। उनकी इच्छाओंका भी ध्यान रखना होगा। भूखेको यह कह देनेसे ही काम न चलेगा कि सब्र करो, या अभी रात है। उसको पहले खाना देना होगा, पीछे धर्मका उपदेश। मैं उसको सच्चा साधु समझता हूँ, जो एक मनुष्यको करोड़पती बननेकी विद्या सिखलाकर और उसे वैसा ही बनाकर फिर त्यागी बननेका उपदेश देता है। भुखमरों और नंगोंको त्यागी बनाना या त्याग करनेका उपदेश देना मूर्खता ही नहीं, अन्याय है। एक करोड़पतीके त्यागी बननेसे समाजकी दरिद्रता, मूर्खता, स्वार्थान्धता, आदि अनेक आपत्तियाँ दूर हो सकती हैं। परन्तु भुक्कड़ोंको त्यागी बनानेसे धर्मको लजानेके सिवा और कोई लाभ नहीं हो सकता, जैसा कि प्रत्यक्ष देखनेमें आ रहा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब हम कहते हैं कि श्रद्धा नहीं उठी। तुम धड़ाधड़ समाजसुधारका काम करो। पण्डित, त्यागी, प्रतिष्ठाप्राप्त लोग अभी तुम्हारा साथ नहीं देंगे। इनकी चाल ही सुस्त है। ये चलेंगे जरूर, परन्तु तुम्हारे पीछे पीछे। इनके भरोसे न रहो। ये सदासे ठण्डे लोहेमें हथौड़ा मारते रहे हैं और इसी कारण असफल होते रहे हैं। तुम गर्म लोहे पर चोट मारो और अपने कामकी चीज बना डालो। मिनिट मिनिटकी देरी मुसाफिरको रेल न मिलने देगी। तुम पहले ही बहुत पीछे उठे हो। अब भागकर चलनेसे काम चलेगा। आज एक सुधार तो कल दूसरा। इसमें तुम्हारा लाभ तो है ही, पर साथ ही इन पण्डितोंको भी लाभ होगा। जैसे इस समय ये बगलमें छपी हुई पोथियाँ दबाने लगे हैं और उन्हींको प्रमाणमें पेश करने लगे हैं, उसी प्रकार एक दिन होगा कि ये ही पण्डित लोग होंगे और इनका उपदेश हो रहा होगा कि अपनी जातिमें विवाह करना महापाप है जैसे कि आजकल एक गोतमें करना। जो सदा पीछे चलते रहे हैं, यदि उन्हें आगे करके चलनेके भरोसे रहे, तो कभी एक पग भी आगे न बढ़ा सकोगे। ये अपनी प्रतिष्ठाके लिए सारे ग्रन्थों पर पानी फेर देंगे, रूढ़ियोंको ही ग्रन्थ मानते रहेंगे, कभी तुमको सच्चे साफ रास्ते पर नहीं चलने देंगे। तुम इनके साथकी परवा मत करो। न तुमको नरक जाना पड़ेगा और न निगोदमें। क्योंकि तुम्हारा आशय दूसरोंको पापसे बचाना है और उनकी बेलगाम वासनाओंको एक सीमाके भीतर नियंत्रित करना। छुपकर एकबार हुक्का पीनेवालेको खुल्लमखुल्ला पाँच बार पीने दो। हुक्का पीना छुड़ानेका यही उपाय है। छुपकर पाप करना एक पाप नहीं रहता, वह १०० गुना हो जाता है। बीजके दबनेसे या छुपनेसे ही उसमें अंकुर फूटते हैं, खुले पड़े रहनेसे नहीं। अभी पापका पेड़ छोटा है। उसको उखाड़कर फेंक दो, नहीं तो फिर कुछ न होगा। काम किये जाओ और कहनेवालोंको कहे जाने दो कि, श्रद्धा उठ गई—श्रद्धा उठ गई।

दादा भाई नौरोजी।

(लेखक—पं० ज्वालादत्त शर्मा।)

भारतके आदि उपकारक, राजनीतिके प्रथम प्रचारक, वर्तमान आन्दोलनके दीक्षागुरु ऋषिकल्प दादाभाई अब इस संसारमें नहीं हैं। गत जूनके अन्तिम दिनकी शामको इस महापुरुषने इह-लोक-त्याग किया। मृत्युके समय दादाभाईकी अवस्था ९२ वर्ष ९ मास और २६ दिन थी। इस समय अप्राप्य इस लंबी आयुमें आपने देश-हितसे सम्बन्ध रखनेवाले अनेक काम किये। जिस बीजको आपने अपने अदम्य उत्साह और अनथक परिश्रमसे भारतके विस्तृत क्षेत्रमें सबसे पहले बोया था, उसे अपनी आँखोंसे उगा, बढ़ा, फूला और किसी किसी अंशमें फला देखकर भारतके पितामह नौरोजीने शान्त चित्तसे इहलोक-लीला समाप्त की।

बाल्यकालमें ही पिताका देहान्त हो जानेसे बालक नौरोजीकी शिक्षाका दायित्व उनकी स्वनामधन्या माताके ऊपर आ पड़ा था। स्नेहमयी पर बुद्धिमती माताने पुत्र नौरोजीको शिक्षा दिलानेमें—और उस समय जब कि बम्बईमें शिक्षाप्राप्तिका मार्ग कण्टकाकीर्ण था—सच्ची माताकी तरह 'यत्परो नास्ति' प्रयत्न किया। संसारके प्रायः सभी महापुरुषोंकी तरह नौरोजीके हृदयमें भी देशोपकार और जातिसुधारका अंकुर माताके सुकोमल उपदेशोंसे ही जमा। विवेकानन्दकी तरह नौरोजी भी अपनी उन्नतिका कारण अपनी माताको ही समझते थे। पिताकी मृत्यु न होने पर बहुत सम्भव था कि नौरोजी भारतके पितामह बननेकी बजाय केवल पारसियोंके बड़े पुरोहित बन जाते; किन्तु प्रकृतिने भारतकी उन्नतिके सूत्रपातके लिए आपको जन्म दिया था—उसका अबाध विधान दूसरा ही था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो किसी देशके उन्नति-विधानके लिए जन्म लेते हैं वे प्रायः गरीबी, दुःख और निराशाके झुण्डमें ही पैदा होते हैं । इन तापोंमें तपकर ही कोई मनुष्य देशोपकार जैसी कठिन तपश्चर्य्या करनेका अधिकारी होता है । महामना नौरोजीको भी इन परीक्षाओंमें किन्तु सफलतापूर्वक निकलना पड़ा था । स्वयं गरीबीमें विद्याभ्यास करके उन्होंने शिक्षाप्राप्तिके समय गरबिोंके मार्गमें जो अनेक अन्तराय उपस्थित होते हैं उनका अच्छी तरह अनुभव कर लिया था । देशवासियोंकी दयनीय दशाको देखकर उन्होंने उसी समय देशसेवाका पवित्र सङ्कल्प किया था । उनकी देशसेवा शौक या 'दिसम्बरके अन्तिम सप्ताह' की चीज न थी; वह उनके मनकी चीज़ थी, आत्माकी चीज़ थी, और इसीलिए जीवनकी चीज़ थी ।

उनका कार्यक्षेत्र भारतसे अधिक इँग्लैंडमें रहा, भारतकी भलाईके लिए प्रयत्न करनेमें उन्होंने घर और बाहर जैसा अनथक और अनेक युगव्यापी परिश्रम किया, वैसा अनेक कारणोंसे और विशेषतः स्वास्थ्याभावके कारण और किसी नेतासे अबतक न बन पड़ा ।

नौरोजी आदर्श नेता थे । वे सदाचारकी तो मानो मूर्ति ही थे । लंदनमें व्यवसाय करते समय जब उन्हें कई लाखका घाटा हुआ था, उस समय वे जरा भी विचलित नहीं हुए थे । आपकी ईमानदारी और सज्जनता पर विश्वास करके इँग्लैंडके सबसे बड़े बैंकने आपका सब 'देना' चुका दिया था । नौरोजी महाशयने कई वर्ष घोर परिश्रम करके बैंकका कुल रुपया सूद सहित देकर प्रत्यागमन किया था । इस घटनासे इँग्लैंडके व्यवसायि-मण्डलमें उनकी बड़ी साख हो गई थी ।

पितामह नौरोजी पहले प्रोफ़ेसर नौरोजीके नामसे प्रसिद्ध थे । देशके धनसे पहले शिक्षा प्राप्त करके उन्होंने विद्यादानद्वारा उस ऋणको ही पहले चुकाया था । शिक्षा प्राप्त करके सन् १८५० ई० में २५ वर्षकी अवस्थामें आप ऐलफ़िंस्टन कालेजमें पहले असिस्टेण्ट और फिर प्रोफ़ेसर नियुक्त हुए थे । वहाँ आपने गणित और प्राकृतिक विज्ञान जैसे गम्भीर विषयोंकी कई वर्षोंतक शिक्षा दी । अर्थशास्त्रके भी आप प्रकाण्ड पण्डित थे । आपके लिखे हुए प्रायः सभी ग्रन्थोंसे इस बातका पता चलता है । बम्बईके सुप्रसिद्ध वयोवृद्ध विद्वान् सर रामकृष्ण भाण्डारकर आपके शिष्योंमेंसे ईशकृपासे आज भी अवशिष्ट हैं । चन्दावरकर, मुधोलकर और गोखले भाण्डारकरके शिष्य होनेकी हैसियतसे आपके प्रशिष्य हैं । शिक्षा विषयको छोड़कर राजनीतिमें तो भारतके सभी नेता आपको अपना गुरु ही नहीं, परात्पर गुरु समझते थे और समझते हैं । आपहीके उद्भावित सूत्रों पर आज कल राजनीतिकी चर्चा की जा रही है । आप पहले भारतीय थे, जिन्होंने भारतकी भलाईके लिए अनेक विषयोंको आन्दोलनके लिए चुना था । इसके लिए आपको जितना अध्ययन, मनन और अनुशीलन करना पड़ा था, वह आपहीके लिए सम्भव था । क्योंकि प्रकृतिने सूक्ष्म बुद्धि और प्रखर प्रतिभाके साथ ही आपको काम करनेके लिए स्वास्थ्य और समय भी अच्छे परिमाणमें प्रदान किया था ।

यों तो आपने अनेक संस्थायें स्थापित कीं; किन्तु भारतकी जातीय महासभा—जिसका विदेशी नाम 'इंडियन नेशनल कांग्रेस' देशके पढ़े लिखे हर एक युवकके जिह्वाग्र पर है—आप और आपके कुछ सहयोगियोंके ही परिश्रमका फल है । इस महती सभाके सभापतिके पद पर—जिसकी प्राप्ति नेता बननेका पूरा सर्टीफ़िकेट है—आप एक दो बार नहीं, तीन बार देशवासियोंकी प्रबल इच्छासे प्रतिष्ठित हुए । लाहोरकी कांग्रे-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सभामें सभापति बननेके लिए जब आप आये थे, तब उपकृत देशवसियोंने आपका बड़ा भारी स्वागत किया था। कहा जाता है कि उस-यात्रामें ही स्टेशन पर भारी भीड़ होनेके कारण रात भर आपको सोना नसीब न हुआ। कलकत्ते-में भी तीसरी बार कांग्रेसके सभापतिकी हैसियतसे सन् १९०६ ई० में आपका ऐतिहासिक स्वागत हुआ था। वहाँ जिस शानसे आपकी सवारी निकली थी, वह बाबू सुरेन्द्रनाथ बनर्जीके कथनानुसार बादशाहोंके लिए भी इर्ष्या करनेवाली तो जरूर थी, किन्तु सम्भव न थी! इसी कांग्रेसमें स्वराज्यका मूल मंत्र सबसे पहले आपने ही देशवासियोंके कानमें फूँका था।

इंग्लैंडकी महती सभा पार्लमेंटमें प्रवेशकी प्रतिष्ठा भी सबसे पहले आपहीको प्राप्त हुई। एकबार चेष्टा करने पर आप विफल हुए थे, किन्तु किसी कार्य्यमें विफल मनोरथ होकर चुप बैठना तो आप जानते ही न थे। दूसरी बार सन् १८९२ ई० में आपने पार्लमेंटमें प्रविष्ट होकर ही कल ली। वहाँ आपने दीन भारतकी बहुत ही अमूल्य सेवा की। पार्लमेंटके प्रथम भाषणमें ही आपने नीचे लिखे गम्भीर अर्थयुक्त शब्द कहे थे।

The glory and credit of this great event—by which India is thrilled from one end to the other—of the new life, the joy, the ecstasy of India at the present moment, are all your own; it is the spirit of British institutions and the love of justice and freedom in British instincts which has produced this extraordinary result, and I stand here in the name of India to thank the British people that they have made it all possible for an Indian to occupy this posision, and to speak freely in the English language of any grievance which India may be suffering under, with the conviction that though he stands alone, with only one vote, whenever he is able to bring forward any aspiration, and is supported by just and proper reasous, he will find a large number of other members from both sides of the House ready to support him and give him the justice he asks. This is the conviction which permeates the whole thinking and educated classes of India. It is that conviction that enables us to work on, day after day, without dismay for the removal of a grievance.

कुछ समय तक आप बड़ोदेके दीवान भी रहे थे। वहाँ रहकर आपने अनेक सुधारके काम किये। वर्तमान बड़ोदा-नरेशके पितासे-जो उस समय सिंहासनाधिरूढ थे-सुधारसम्बन्धी किसी बात-पर आपकी अनबन हो गई। एक लाख रुपये सालकी तनख्वाहका आपने जरा भी लोभ न किया और तत्काल आप वहाँसे चले आये। तत्कालीन भारत सचिव लार्ड सैलिसबरीने उस समय आपके प्रबन्ध-आदिकी बड़ी प्रशंसा की थी। वर्तमान बड़ोदानरेश पिछले दश वर्षोंसे आपको ३००) मासिक पेंशनके तौर पर दे रहे थे। इसी आयसे आपका खर्च चलता था।

आपने आधी शताब्दीसे अधिक देशहितके लिए अनवरत प्रयत्न किया। सिविल सर्विसमें भारतियोंको स्थान दिलानेसे लेकर स्त्री-शिक्षा-पर्य्यन्त राजनैतिक सामाजिक और (अपनी जातिमें) धार्मिक अनेक महत्त्वपूर्ण कार्योंके लिए आपने चेष्टायें कीं। यद्यपि देशके दुर्भाग्यसे उनका जैसा चाहिए वैसा फल नहीं हुआ, फिर भी अनेक अंशोंमें अनेक सुधारोंका सूत्रपात उन्हींके अदम्य उत्साहद्वारा अनुष्ठित अनेक कार्योंसे हुआ।

दादाभाईने सर फीरोजशाह मेहता, सर वाचा और सरकी उपाधिको त्यागनेवाले स्वनामधन्य मिस्टर गोखलेका बचपन, जवानी और बुढ़ापा देखा। उन्हें राजनीतिकी दीक्ष

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दी । समय समय पर अपनी सम्मति देकर कृतार्थ किया । प्रयागके यथार्थनामा दैनिक पत्र 'लीडर' के सम्पादक 'मालूमातकी चलती फिरती इंसाइक्लोपेडिया' माननीय सी० वाई० चिन्तामणि महोदय सन् १९१५ ई० में बम्बईकी कांग्रेस देखकर यथानियम दादाभाईके दर्शनार्थ वर्सोवा-जहाँ दादाभाई १०-११ वर्षोंसे एकान्त और शान्त जीवन व्यतीत कर रहे थे-गये थे । यद्यपि उस समय उनकी अवस्था ८० वर्षसे ऊपर थी; किन्तु अपने संयमयुक्त सरल जीवनके कारण वे खूब स्वस्थ थे । आप घंटों कांग्रेस और लीग-संक्रान्त विषयों पर चिन्तामणिजीसे बातचीत करते रहे। समुद्रतट पर बसे हुए वर्सोवा नगरको दादाभाईके कारण तीर्थकी पदवी प्राप्त हो गई थी । बम्बईके अनेक गवर्नरोंकी अनेक भेटोंके सिवा भारतके भूतपूर्व प्रजाप्रिय और नीतिज्ञ वाइसराय लार्ड हार्डिंजने भी दादाभाईके शान्तिनिकेतन पर उपस्थित होकर अपनी गुणज्ञताका परिचय दिया था ।

साठ वर्षसे अधिक कर्मठ जीवन व्यतीत करके दादाभाई पिछले १०-११ वर्षोंसे एकान्त जीवन व्यतीत कर रहे थे । कोई दो वर्ष हुए बम्बई यूनिवर्सिटीने आपको एल एल० डी० की उपाधि देकर अपनेको गौरवान्वित किया था । उससमय आप इस डिग्रीको ग्रहण करनेके लिए बम्बई गये थे । बम्बईवासियोंने आपका जुलूस निकाला था। जिन्होंने वह जुलूस देखा है, वे कहते हैं कि सात दिनमें आठ जुलूस निकलनेकी भूमि बम्बईमें वैसा जुलूस अबतक नहीं निकला ।

दादाभाई देशके सच्चे दादा (पितामह) और भाई थे । आपका जीवन बड़ा सादा था। शुरू जवानीमें आप रातको सोते समय थोड़ी सी शराब पिया करते थे । एकदिन घरमें शराब न थी, आप कलवारकी दूकान पर शराब लेनेके लिए गये । पर वहाँका जघन्य दृश्य देखकर आपको शराबसे ऐसी घिन हुई कि फिर जीवनभर शराबको न छुआ । भोजन भी आप बहुत सादा करते थे । एकबार आपने पूछने पर अपने दीर्घजीवन और स्वस्थ जीवनका कारण मद्यरहित सादे भोजन और नियमित प्रवृत्तियोंको ही बतलाया था ।

दादाभाईने अनेक पुस्तकें लिखी हैं । अनेक कमीशनोंके सामने दी हुई देशभक्तिपूर्ण आपकी अनेक गवाहियाँ भी राजानीतिके हिसाबसे स्थायी साहित्यसे किसी अंशमें कम नहीं हैं । आपकी सबसे प्रसिद्ध पुस्तक Poverty and Un Britiah rule in India है ।

दादा भाईमें सभी अवगुणोंकी तरह लोभ भी नामको न था । जब आप विलायतसे लौटे थे, तब आपकी आर्थिक अवस्था बहुत शोचनीय थी । भारतमें आते ही यहाँके कुछ सज्जनोंने ३००००) की एक थैली भेंट की थी । उस आवश्यकताके समयमें भी आपने इस रकममेंसे एक पैसा भी अपने खर्चमें नहीं उठाया । वह रुपया देशहित-सम्बन्धी कामोंमें खर्च किया गया ।

भारतीय राजनीतिके प्रथम प्रचारक, कांग्रेसके मूलस्तम्भ दादाभाई नौरोजीने पार्लमेण्टकी मेम्बरी, बड़ोदेकी दीवानी, बम्बईकी लेजिस्लेटिव और कारपोरेशनकी मेम्बरी और वेल्बी कमीशनकी अन्यतम सभासदी आदि अनेक प्रतिष्ठित पदों-पर अपनी योग्यता, सज्जनता, सरलता, और सत्यप्रियतासे प्रेरित होकर जो असाधारण कार्य किये हैं, वे भारतके इतिहासमें जहाँ स्वर्णाक्षरोंमें लिखे रहेंगे वहाँ भारतीयोंकी बड़े आदर और गौरवकी चीज होंगे ।

यही कारण है कि दादा भाईकी मृत्यु पर आज भारतमें शोककी गहरी घटा छाई हुई है । उनकी अर्थीके साथ बम्बईमें ७५००० से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अधिक मनुष्य थे। गोखलेके शोककी तरह उनकी शवक्रिया भी भारतमें अनुपम हुई। गोखलेके उद्गारोंके साथही अब इस अल्प लेखको यहीं समाप्त किया जाता है,—

Mr. Naoroji has attained in the hearts of millions of his countrymen, without distinction of race or creed, a place which rulers of men might envy, and which in its character is more like the influence which great teachers of humanity have exercised on those whose thoughts and hopes and lives they have lifted to a higher plane. The life of such a man, is one of the most perfect examples of the highest type of patriotism that any country has ever produced.

स्त्रियोंकी पराधीनता।

(लेखक-श्रीयुत ठाकुर सूर्यकुमार वर्मा)

आजसे नहीं, अनेक वर्षोंसे, इस प्रश्न पर संसारके सभी देशोंमें वादविवाद चल रहा है कि स्त्रियोंका स्थान मानव समाजमें ठीक तौर पर स्थिर कर दिया जावे। परन्तु यह प्रश्न इतना कठिन है कि इसे सुलझानेके लिए जितना अधिक प्रयत्न किया जाता है उतना ही अधिक उलझता जाता है। आज हम यहाँ भारतीय स्त्रियोंकी बात न कहकर उस सभ्य देशकी चर्चा करना चाहते हैं, जहाँपर स्त्रियोंको पुरुषोंने अपने समान अनेक अधिकार दे दिये हैं। आज यूरोपमें करीब तीन चारसौ वर्षसे, या यों कहिए जबसे यूरोपमें आधुनिक उन्नतिने लहरें मारनी आरम्भ की हैं तब से, स्त्री-पुरुषोंके सम्बन्धमें, बराबर वादविवाद होता आ रहा है; और बहुत से उदारहृदय महात्माओंके प्रयत्नसे स्त्रियोंकी पराधीनताकी बेड़ी कुछ हलकी हुई है। वहाँकी स्त्रियोंकी यदि हम अपनी स्त्रियोंसे तुलना करें और यह विचारें कि उनकी योग्यता तक पहुँचनेके लिए कितना समय लगेगा तो यह प्रश्न हमारे समाजमें उपहासके योग्य समझा जायगा। इसी लिए यह प्रश्न न उठाकर यूरोपकी दशापरसे हम विचार करेंगे कि वहाँ स्त्रियोंके सम्बन्धमें पहले क्या विचार थे और अब उनके परिवर्तन होकर क्या दशा हुई है और अब भी उनकी पराधीनता यदि बनी है तो कितनी और किन कारणोंसे ?

यूरोपनिवासी भी स्त्रियोंको हमारे देशकी तरह अपने भोग विलासकी एक सामग्री समझते थे। अतएव बाल्यावस्थासे ही कन्याओंकी शिक्षा और रहन सहनका प्रबंध बालकोंकी अपेक्षा भिन्न प्रकारका हुआ करता था। स्त्रियोंकी रहनसहन अथवा चालचलन या कार्यप्रणाली पुरुषोंसे भिन्न रहे, ऐसा प्रबंध आरम्भसे ही वहाँ किया जाता था। इसका परिणाम यह होता था कि बाल्यावस्यासे ही स्त्रियोंके मत और विचार ऐसे संकुचित हो जाते थे कि उनको यह सोचनेका अवसर हीं नहीं मिलता था कि ईश्वरीय नियमानुसार प्राकृतिक रूपसे पुरुष और स्त्रियोंमें क्या अन्तर है। स्त्रियोंकी यह मानसिक पराधीनता आजकी नहीं है। पुरुषोंने यह पराधीनताकी बेड़ी आज हजारों वर्षोंसे उनके पैरोंमें डाल रक्खी है। स्वेच्छापूर्वक कार्य, आत्मसंयम और स्वावलम्बन इन गुणोंका विकाश होना तो दूर रहा, ये हैं क्या और इन गुणविशेषोंसे स्त्रियोंको भी कुछ प्रयोजन है या नहीं, यह बात भी वंशपरम्पराकी प्रवृत्तिके कारण उनमें इतनी मन्द हो गई कि वहाँतक उनके विचार ही नहीं उठने पाते थे।

जिस मनुष्यको अपने स्वतः उठनेका कोई मार्ग सूझ ही नहीं पड़ता वह जानता ही नहीं कि हमें किस मार्गसे कहाँ जाना चाहिए अब वह उस प्रयत्नकी ओर ही नहीं झुकता। पुरुषोंकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शिक्षा और परस्पर व्यवहारके साँचेमें ढलकर स्त्रियोंकी दशा यहाँतक शोचनीय हो गई कि पुरुषोंके आधीन रहना ही उनका मुख्य कर्तव्य है, यह विश्वास उनके हृदयमें इतना दृढ़ होगया कि अब इस पर विचार करनेके लिए यदि कोई उनसे विचार करनेके लिए कहे या आग्रह करे तो भी वे तैयार नहीं हैं। इस परिपाटीके अनुसार ही धर्मशास्त्र, लोकव्यवहार, लोकविचार आदि सबकी भव्य इमारत इतनी मजबूत बना डाली गई कि जिससे स्त्रियोंको पराधीनताके पंजेसे छुड़ानेमें कोई भी समर्थ न हो। और इन सब बातोंका यह परिणाम निकला कि स्त्रियोंको सदा पुरुषोंके अधीन रहना चाहिए।

इस प्रकार स्त्रियोंको पराधीनताकी जंजीरमें जकड़कर उनके राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक सब अधिकारों पर पुरुषोंने अधिकार जमा लिया। और फिर कहा जाने लगा कि स्त्रियाँ स्वाभाविक तौरसे ही पुरुषोंके आधीन हैं। पतिके ऊपर ही स्त्रीका सारा दारोमदार है। उसका सुख-दुःख, मानापमान इत्यादि सब कुछ पतिकी इच्छा पर ही छोड़ दिया गया। अपने जन्मको सफल करने, संसारमें अपने मानापमानकी रक्षा और वृद्धि करने, संसारमें अपने लिए यश सम्पादन करने, ये सब बातें उन्हें अकेले प्राप्त कर लेनेका कोई अधिकार नहीं। यदि वे उपर्युक्त बातोंको प्राप्त करना चाहें तो पतिकी सहायता बिना यह साध्य नहीं। यदि पति अनुकूल मिल गया और उसकी प्रसन्नता सम्पादन कर पाई तो 'येन केन प्रकारेण' वह अपना जीवन सुखपूर्वक व्यतीत कर सकती है। यदि ऐसा न हुआ तो उसे अपने जीवनको सुखी बनानेके लिए मुँहसे एक भी शब्द कहनेका अधिकार नहीं।

इस व्यवस्थाके प्रभावसे स्त्रियोंका जीवन पुरुषोंके स्वाधीन होगया। वह जैसा चाहें उनके साथ व्यवहार करें, कोई रोक टोक नहीं। इस पराधीनताने स्त्रियोंको विवश किया कि वे विवाह-बंधनमें बँधकर पुरुषोंके अधीन रहकर अपना जीवन व्यतीत करें। संस्कृतके किसी कविने इसी कारण शायद यह कह डाला कि "विना-ऽऽश्रयाः न तिष्ठन्ति पण्डिता वनिता लताः" अर्थात् विना आश्रयके पंडित, स्त्री और लता-वेल ठहर नहीं सकती। यद्यपि स्त्रीपुरुषकी उत्पत्ति, लय, स्वरूप, गुण, कर्म, स्वभावमें नाम मात्रका भेद है; परन्तु तो भी समानताके होते हुए भी उनके अधिकार समान नहीं रक्खे गये। इसका परिणाम यह हुआ कि स्त्रीजाति बिलकुल पराधीन होगई और उसकी भलाई बुराईके रक्षक पुरुष बन बैठे। परन्तु यदि इतना ही होता तो भी कुछ ठीक था, उन्हें दूषणोंकी खान समझा गया, गुसांई तुलसीदासजीने-जो परमभक्त और मनुष्यमात्रके साथ सहानुभूति और प्रेम रखते थे उन्होंने भी-स्पष्ट कहा है कि:—

"ताहि स्वभाव सत्य कवि कहहीं।
अवगुण आठ सदा उर रहहीं॥"

अर्थात स्त्रियोंमें तो आठ अवगुण सदा रहा करते हैं। परन्तु पुरुष सदा गुणयुक्त होते हैं! महात्मा कवियोंने भी पुरुष जातिके अन्याय-युक्त वंशपरम्परागत विचारों पर विचार करना उचित न समझा, जो प्रथा प्रचलित हो गई थी, जो रूढ़ी पड़ गई थी, उसीको वे भी दुहराते गये। परिणाम यह निकला कि अब यदि कोई यह कहे कि स्त्रियोंको भी स्वाधीनता चाहिए, उन्हें भी मानव समाजमें पुरुषोंके समान अधिकार मिलना चाहिए, उनकी पराधीनता नष्ट होनी चाहिए, तो लोग उसे या तो 'बहका हुआ' कहते हैं या 'पागल' समझते हैं। और हमारे यहाँ हिन्दूसमाजमें तो इसकी चर्चा होना लोग धर्मविरुद्ध कार्य समझते हैं, धर्मकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दुहाई देते हुए, उसे बुरा भला कहनेमें भी किसी प्रकारका संकोच नहीं करते।

इस प्रकार पराधीनताकी बेड़ी पहनकर स्त्रियाँ पुरुषोंकी आज्ञानुसार अपना जीवन व्यतीत करने लगीं। परन्तु जब यूरोपमें स्वाधीनताकी लहरें हिलोरें मारने लगीं तब वहाँ पुरुषोंने अपने राजनैतिक अधिकार प्राप्त करनेके लिए आन्दोलन आरम्भ किया। यूरोपके मध्यम कालका इतिहास बिना पढ़े न तो इँग्लैंड निवासियोंकी राजनैतिक अधिकारप्राप्ति की कथा जानी जा सकती है और न फ्रांसकी राज्यक्रान्तिका पता चल सकता है और न जर्मन-साम्राज्यके संगठनसे ही परिचय कराया जा सकता है। यह बात केवल एक बात कहनेसे समझाई जा सकती है कि यूरोपनिवासियोंने जहाँ अपने राजनैतिक अधिकार प्राप्त करके अपनी भौतिक उन्नतिके साधनोंको इकट्ठा करना आरम्भ किया वहाँ उन्हें यह भी मालूम हुआ कि यह उन्नति तबतक अधूरी रहेगी जबतक स्त्रियोंका भी समाजमें कोई स्थान न होगा। जिन महात्माओंने यह सोचा उन्होंने अनेक प्रकारकी उन्नतियोंके साथ साथ अपनेसे निकट सहयोगी, स्त्रीजातिकी उन्नतिका भी प्रयत्न आरम्भ किया। परन्तु उन्होंने भी स्त्रियोंकी सहयोगिता और अपनेसे बराबरीका विचार तो किया, परन्तु पराधीनताकी जंजीरसे छुड़ानेके लिए वे प्रयत्नवान् न हुए। स्त्रियोंकी मानसिक और नैतिक उन्नतिके लिए उन्होंने जो प्रयत्न किये वे बहुत कुछ फलीभूत हुए। वहाँ स्त्रियोंने अच्छी उन्नति की। शिक्षा, विचार, विज्ञान, धर्म आदि कर्मोंमें उन्होंने जो उन्नति की उससे यूरोपको एक नया स्वरूप प्राप्त होगया। यदि स्त्रियोंकी सहयोगिता न होती तो आज यूरोपका जो उत्कर्ष हो रहा है शायद वह दिखाई न पड़ता। जिन महात्माओंने यूरोपकी स्त्रियोंको कुछ स्वतंत्रता प्रदान की उन्होंने स्त्रियोंको ही उन्नत नहीं किया है, सारे यूरोपकी उन्नतिका भी यही कारण हुआ। शिक्षाकी स्वतंत्रता पाकर स्त्रियोंने पुरुषोंको संसारोपयोगी शिक्षासम्बन्धी कार्मों में सहायता दी। धार्मिक स्वतंत्रता पाकर उन्होंने पुरुषोंके धर्मविश्वासको दृढ़ किया, विचार-स्वातंत्र्यसे उच्च विचारोंके कर्मोंमें उन्हें सहायता पहुँचाई। इस प्रकार जितना पुरुषोंने उन्हें दिया उससे कई गुणा अधिक उन्होंने वापस भी कर दिया। परन्तु यह सब कुछ होने पर भी जो आनुवंशिक विचारक्रमका अंग-मैल जमा हुआ था वह दूर न हुआ और स्त्रियोंको पुरुषोंके समान अधिकार दिलाने चाहिए, यह कहते हुए भी बराबरीका वर्ताव करनेमें लोग हिचकिचाते ही रहे। और यह बात मान ली गई कि ईश्वरीय नियमके अनुसार उनमें भिन्नता है और प्राकृतिक भिन्नता हमारे बराबरीके अधिकार दे देने पर भी बनी ही रहेगी। अर्थात् स्त्रियाँ पराधीन हैं और सदा पराधीन बनी रहेंगी। यह विचार अब भी हृदयसे हटाये नहीं जासके। स्त्रियाँ पुरुषोंके समान युद्ध कर सकती हैं, परन्तु उन्हें सेनापति बनानेका किसीको साहस नहीं होता। स्त्रियाँ उच्च राजनैतिक विचार प्रगट कर सकती हैं, परन्तु वे प्रधान सचिव नहीं बनाई जा सकतीं। स्त्रियाँ घरमें अच्छी सलाह देकर अच्छी शिक्षा देकर पुरुषोंको प्रधान सचिव बना देनेकी एक योग्य मशीन समझी जाती हैं, परन्तु वे स्वयं उस पद पानेके योग्य नहीं। इतना ही नहीं, वे राजकार्यमें राय देनेका भी अधिकार नहीं पा सकतीं। यह अन्याय, यह विचारस्वातंत्र्यकी भिन्नता अब भी यूरोपमें बनी हुई है और स्त्रियोंकी पराधीनता कम हो जाने पर भी नष्ट नहीं की जा सकी।

यूरोपमें स्त्रियोंको बहुत कुछ स्वतंत्रता प्रदान की गई है, पुरुष उनका बहुत कुछ आदर मान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करते हैं, उनके विचारोंसे लाभ भी उठाते हैं; परन्तु उन्हें अपने समान अधिकार देनेके पक्षपाती नहीं हैं। उन्हें अभी वहाँके विज्ञ लोग भी पराधीनता की जंजीरसे जकड़े रखना चाहते हैं। सामाजिक अधिकार तो बहुत कुछ दिये जा चुके हैं, परन्तु राजनैतिक अधिकार देनेकी ओर अभी विचार कम पहुँचा है। हाँ, यह अवश्य है कि इस ओरसे न तो वहाँकी स्त्रियाँको बेफिकरी है और न पुरुष ही ऐसे हैं जिन्हें इसकी चिन्ता न हो। उदार दलके कई नेता पहले भी इसके पक्षपाती थे और अब भी हैं। वहाँकी स्त्रियाँ अब इस योग्य बना दी गई हैं अथवा विद्या पाकरके ऐसी बन गई है कि वे स्वयं अपना अधिकारप्राप्तिका आन्दोलन करती रहती हैं। यूरोपके वर्तमान युद्धके आरम्भ होनेसे पहले वोट प्राप्तिके लिए इँग्लैण्ड की स्त्रियोंने बड़ा आन्दोलन मचाया था। परन्तु अबतक उन्हें सफलता नहीं मिली।* सफलता न प्राप्त होनेसे वे हतोत्साह नहीं हुई हैं। उन्हें अवसर भी अच्छा प्राप्त हो गया है। वर्तमान युद्धमें स्त्रियों द्वारा जो सहायता युद्धकार्यमें मिल रही है, यह इस बातका एक प्रत्यक्ष प्रमाण है कि यूरोपनिवासिनी महिलायें, इस योग्य हो गई हैं कि उनकी पराधीनताकी बेड़ी बिलकुल काट दी जावे। स्त्रियोंकी योग्यता उनका परिश्रम और अध्यवसाय, उनकी कार्यदक्षता, अब इतनी अधिक बढ़ी हुई है कि यूरोपनिवासी पुरुष अब बहुत कुछ नम्र दिखाई पड़ते हैं और जो भाव वे व्यक्त करते हैं, उनसे स्त्रियोंका भविष्यत् बहुत कुछ उज्ज्वल दिखाई पड़ रहा है। परन्तु हमारी स्त्रियोंकी दशा ? अभी दिल्ली बहुत दूर है ! हम किसी अगले अंकमें भारतीय स्त्रियोंकी पराधीनताका इतिहास अपने पाठक और पाठिकाओंके सामने उपस्थित करनेका उद्योग करेंगे। (चान्दसे उद्धृत।)

* नहीं, सफलता मिलगई। इँग्लैंडकी ३० वर्षसे अधिक उम्रकी स्त्रियोंको 'वोट' देनेका अधिकार मिल चुका ! यह लेख इससे बहुत पहलेका लिखा हुआ है।

—सम्पादक।

प्राचीन कालमें जिन-मूर्तियाँ कैसी थीं ?

(लेखक—श्रीयुत J. S.)

यह तो अब प्रायः निश्चित हो गया है कि जैनधर्ममें प्रारम्भ हीसे मूर्ति-पूजाको स्वीकार किया गया है। बहुतसे विद्वानोंका यह भी खयाल है कि वैदिक और बौद्ध धर्ममें भी जो मूर्ति-पूजाको स्वीकार किया गया है वह जैनधर्महीका अनुकरण है। इस पिछले कथनमें कहाँतक सत्यता है इसकी मीमांसा करनेका यह स्थल नहीं है, इस लिए चाहे यह कथन कैसा ही हो; परंतु इतना तो सिद्ध है कि भारतके उपर्युक्त दोनों ही जैनेतर महान् धर्मोंकी अपेक्षा जैनधर्मकी मूर्तिपूजा कुछ प्राचीन अवश्य है।

जैनधर्म बहुत समयसे श्वेताम्बर और दिगम्बर ऐसे दो विशिष्ट विभागोंमें विभक्त है। यद्यपि तत्त्वज्ञान और मूल मन्तव्योंमें ये दोनों संप्रदाय प्रायः समानता ही धारण करते हैं तो भी क्रियाकाण्ड और तद्विषयक विचारोंमें कुछ भिन्नता अवश्य दिखाई देती है और इसी कारण, मूर्तिपूजाका स्वीकार दोनों संप्रदायोंमें एकसा होने पर भी मूर्तियोंके आकारमें और उनकी पूजन-विधिमें भी कुछ अन्तर है। वर्त्तमान समयमें श्वेताम्बर संप्रदायकी जितनी जिनमूर्तियाँ कही जाती या मानी जाती हैं उन पर यथास्थान वस्त्रका आकार बना हुआ होकर गुह्य-प्रदेश अदृश्य होता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है; परन्तु दिगम्बर-संप्रदायमें इससे विपरीत प्रकार देखा जाता है। दिगम्बर मूर्तियाँ संप्रदायके नामानुसार सर्वथा दिगम्बर-नग्न ही होती हैं। इस भिन्नताका कारण स्पष्ट और सुप्रसिद्ध ही है। इन दोनों संप्रदायोंका परस्पर सबसे बड़ा मन्तव्य-विरोध है वही इन प्रतिमाओंकी भी भिन्नताका कारण है। श्वेताम्बरोंकी माननतानुसार तीर्थंकर और उनके स्थविर-श्रमण सदा वस्त्र धारण किये रहते हैं और दिगम्बरोंके कथनानुसार वे दीक्षा-कालसे लेकर आजीवन केवल दिशारूप वस्त्रके सिवा और कोई दूसरा वस्त्र नहीं रखते, अर्थात् वे सदैव नग्न ही रहते हैं। यही मत-भेद इन दोनों संप्रदायोंके भिन्नत्वका मूल और मुख्य कारण है और इसी कारण दोनों संप्रदायोंकी जिनमूर्तियोंमें भी भेद-भाव है।

श्रमण भगवान् महावीरोपदिष्ट अविभक्त जैनधर्ममें इस प्रकारका द्वैधीभाव कब उत्पन्न हुआ और इस द्वैधीभावके उत्पन्न होनेके पूर्वमें उस अविभक्त जैनदर्शनका स्वरूप, इन दोनों संप्रदायोंमेंसे किसके साथ विशेष मेल रखता था, इस गहन ग्रन्थिके खोलनेका मार्ग आधुनिक ऐतिहासिकोंको अद्यापि ठीक ठीक नहीं मिला है। यद्यपि दोनों संप्रदायोंके साहित्यमें इस विषयका जिकर और निर्णय अपने अपने पक्षानुकूल बहुत कुछ किया गया है, परंतु इस समयके तत्त्वमीमांसकों और इतिहासान्वेषकोंको उससे सन्तोष नहीं होता है। और इसी लिए वे प्रश्न करते हैं कि—"प्राचीन कालमें जिनमूर्तियाँ कैसी थीं?" अर्थात् पूर्वकालमें—जब कि जैनधर्म अविभक्त रूपमें था, या भेदकी मात्राने जबतक उग्र रूप नहीं धारण किया था तब—जो जिनप्रतिमायें होती थीं वे श्वेताम्बरोंके मतानुकूल वस्त्राकारसहित गुह्यप्रदेशावच्छन्न होती थीं या दिगम्बरोंके वक्तव्यानुसार प्रकट नग्न ही होती थीं?

श्वेताम्बरसम्प्रदायके तपागच्छ नामक मुख्य समुदायमें, धर्मसागर उपाध्याय नामके एक प्रसिद्ध विद्वान् विक्रमकी सत्रहवीं शताब्दीके पूर्वभागमें हो गये हैं। ये उन सुप्रसिद्ध आचार्य हीरविजयसूरिके गुरुभ्राता और सहाध्यायी थे जिनको मुगल सम्राट् अकबर बादशाहने 'जगद्गुरु' की उपाधि समर्पित की थी; जिनके शुभ प्रयत्नसे अकबर जैसे मुसलमान बादशाहके उतने बड़े साम्राज्यमें महीनोंतक जीवहिंसा-प्राणिवध-करनेके लिए मनाईके हुक्म जारी किये गये थे। उपाध्याय धर्मसागरजी बड़े प्रतिभाशाली ग्रन्थकार थे, परंतु स्वभाव आपका बड़ा उग्र और स्वसंप्रदायका असीम पक्षपाती था। दूसरे संप्रदायोंके साथ झगड़नेमें और कठोर-शब्दप्रयुक्त खण्डन-मण्डन विषयक ग्रंथ लिखनेमें आपकी उत्कट अभिरुचि थी। आपने अपनी इस अभिरुचिको जैनसाहित्यमें 'यावच्चन्द्र-दिवाकरौ' प्रकट रखनेके लिए कई बड़े बड़े ग्रंथ लिखे हैं, जिनमें आपके भावका अच्छा प्रतिबिम्ब प्रतिबिम्बित है।

आपकी ग्रन्थसन्ततिमेंसे एक बड़ा और प्रतिष्ठित ग्रंथ है, जिसका नाम 'कुपक्षकौशिक-सहस्रकिरण' अथवा 'प्रवचनपरीक्षा' है। ग्रंथका मूल प्राकृत गाथाबद्ध है और उसे विस्तृत स्वोपज्ञ वृत्तिसे विभूषित किया गया है। सारा ग्रंथ कोई १५,००० श्लोक प्रमाण है! इस ग्रन्थमें उपाध्यायजीने अपने संप्रदायको छोड़कर बाकीके सब ही जैनधर्मके प्रसिद्ध प्रसिद्ध संप्रदायोंके सिद्धान्तों-मन्तव्योंकी समालोचना की है। (यहाँ पर समालोचनासे मतलब सिर्फ खण्डन-हीका समझिए—मुझे 'खण्डन' शब्दसे प्रेम नहीं है इस कारण मैंने यह आधुनिक सभ्य शब्द प्रयुक्त किया है।) समालोचित संप्रदायोंकी संख्या १० है जिनमें एक तो समुच्चय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिगंबर संप्रदाय है और बाकी ९ श्वेताम्बरसंप्रदायके अंतर्गत गच्छ--समुदाय हैं। इन दशोंका नामोल्लेख ग्रन्थारम्भमें इस एक 'गाथा' द्वारा किया गया है—

+ खवणयं-पुण्णिमं-खरयरं-पल्लंचिया-सड्ढपुण्णिमा-गमिआ। पँडिमा-मुंणिअरि-चेज्झा पाँसो पुणसंपइ दसमो ॥

इन दशों मतों या संप्रदायोंकी एक एक प्रकरण द्वारा क्रमशः समालोचना की गई है और इस तरह यह सारा ग्रंथ १० प्रकरणोंमें समाप्त किया गया है। पहले प्रकरणमें दिगम्बर संप्रदायके सिद्धान्तों या विचारोंकी समालोचना है और उसमें स्त्रीमुक्ति केवलीमुक्ति आदि सुप्रसिद्ध मतभेदोंकी मीमांसा की गई है। यह मीमांसा कैसी है?--इस विषयका उत्तर देनेकी यहाँ आवश्यकता नहीं। उपाध्यायजीने इस मीमांसाके अंतमें 'श्वेताम्बर प्राचीन है या दिगम्बर?--' यह एक नया ही प्रश्न खड़ा करके उसका विचित्र ढंगसे समाधान करनेका प्रयत्न किया है। यह बात पूर्वके किसी ग्रंथमें उपलब्ध नहीं होती, इस लिए इसके आविष्कारका मान इन्हींको मिलना चाहिए।

दिगम्बरसम्प्रदायको आप 'तीर्थबाह्य' ठहराते हुए कहते हैं कि 'अथ प्रकारान्तरेणापि तथा दर्शयितुं युक्तिमाह;'--'अब और प्रकारसे भी दिगम्बर संप्रदायको तीर्थबाह्य दिखानेके लिए युक्ति कही जाती है।' इस प्रकार अवतरण देकर आपने निम्न लिखित गाथायें दी हैं:—

अहवा सव्वपसिद्धं सित्तुंजय-उज्जयंत-तित्थदुगं।
जस्स्य तं आयत्तं सो संघो वीरजिणतित्थं ॥ १ ॥
उज्जितगिरिविवाए सासणसुरि कहणमित्थसंजायं।
जो भण्णइ नारीणं मुत्तिं तस्सेव तित्थमिणं ॥ २ ॥
तत्तो विसन्नचित्ता खमणा पासंडिआ विगयआसा।
निय निय ठाणं पत्ता पब्भट्ठा दाणमाणेहिं ॥ ३ ॥
मा पडिमाणविवाओ होहीत्ति विचिंतिऊण सिरि संघो।
कासी पल्लवचिंधं नवाण पडिमाणपयमूले ॥ ४ ॥
तं सोऊणं रुट्ठो छुद्धो खमणोवि कासि नगिणत्तं।
निअपडिमाणं जिणवर विगोविणं सोवि गयसत्तो ॥५॥
तेणं संपइ-पमुहपडिमाणं पल्लवंकणं नत्थि।
अत्थि पुण संपईणप्पडिमाणं विवायकालाओ ॥ ६ ॥
पुव्विं जिणपडिमाणं नगिणत्तं नेव नवि अ पल्लवओ।
तेणं नागाटेणं भेओ उभएसि संभूओ ॥ ७ ॥

इन गाथाओंका तात्पर्यार्थ यह है कि—"सर्वप्रसिद्ध ऐसे जो शत्रुंजय और उज्जयंत (गिरनार) नामक तीर्थ हैं वे जिस संप्रदायके आधीन हों वही संप्रदाय-संघ वीरजिनका यथार्थ अनुगामी हो सकता है—दूसरा नहीं। पहले (कब?—इसका पता नहीं) जब उज्जयंत गिरिके बारेमें दिगम्बर और श्वेताम्बरोंमें परस्पर झगड़ा हुआ तब शासन देवताने आकर कहा कि 'जो संप्रदाय स्त्रीको (उसी भवमें) मुक्ति मानता है, उसीका यह तीर्थ है।' इस वचनको सुनकर दिगम्बर पाखंडी खिन्न चित्त हो गये और विगताशा होकर अपने अपने स्थान पर चले गये और उस समय श्रीसंघ (श्वेताम्बर संप्रदाय) ने सोचा कि भविष्यमें प्रतिमाओंके बारेमें कोई झगड़ा न होने पावे, इस लिए अब जो कोई नई जिनप्रतिमायें बनाई जायँ उनके पादमूलमें वस्त्रका चिह्न बना दिया जाय। इस बातको सुनकर दिगम्बरोंको क्रोध आ गया और उन्होंने अपनी प्रतिमाओंको स्पष्ट नग्न बनाना शुरू कर दिया। यही कारण है कि संप्रति (अशोकका पौत्र) आदिकी बनाई हुई प्र[illegible]ओं पर वस्त्रलांछन नहीं

× अर्थात्--१ क्षपणक, (दिगम्बर), २ पौर्णिमीयक, ३ खरतर, ४ आंचलिक, ५ सार्ध पौर्णमीयक, ६ आगमिक, ७ प्रतिमाअरि (लुंपाक), मुनि अरि (कटुक), ९ बन्ध्य (बीजामति) और १० पार्श्वचन्द्रीय।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है और आधुनिक प्रतिमाओं पर है। पूर्वकालीन प्रतिमाओं पर वस्त्रलांछन भी नहीं है और स्पष्ट नग्नत्व भी नहीं है।"

सांप्रदायिक दृष्टिसे यह कथन कितना युक्ति-सङ्गत या असङ्गत है, इसका यहाँ पर मैं नाम भी नहीं लेना चाहता हूँ। क्योंकि यहाँ पर मुझे केवल ऐतिहासिक विचार करना है। उपाध्यायजीके इस कथनमें, लेखनिर्दिष्ट मुख्य बातके सिवा नीचे लिखी बातों पर प्रकाश पड़ता है।

१—दोनों संप्रदायोंमें जिस तरह आज कल तीर्थोंके अधिकारके बारेमें झगड़े हो रहे हैं, वैसे पहले भी होते थे। परंतु उनके फैसले आजकलकी तरह अदालतों द्वारा न होकर किसी और ही प्रकारसे किये जाते थे।

२—उज्जयंत (गिरिनार) के बारेमें विवाद होनेका उल्लेख और भी एक दो श्वेताम्बर ग्रंथोंमें मिलता है दिगम्बर ग्रन्थोंमें भी इस बातका जिक्र है, इसलिए इस कथनमें कुछ ऐतिहासिक सत्यका होना अवश्य पाया जाता है—जो अभी तक हमें अज्ञात है।

३ श्वेताम्बरोंमें कई स्थानोंकी प्रतिमाओंको संप्रति राजाकी बनवाई हुई मानते हैं। यह मानता तीन सौ चार सौ वर्ष पहले भी इसी तरह प्रचलित थी और अच्छे अच्छे विद्वान् भी इस पर श्रद्धा रखते थे।

अब मूल और मुख्य बातकी तरफ ध्यान देना चाहिए। उपाध्यायजीके कथनका रहस्यार्थ यह निकलता है, कि दोनों सम्प्रदायोंमें जब तक अधिक मतभेद या विशेष विरोध न होने पाया था तब तक दोनोंमें एक ही आकारवाली प्रतिमायें पूजी जाती थीं। मतभेदकी मात्राके बढ़ जानेसे और आपसमें वैर-विरोधकी भावनाके प्रज्वलित हो जानेसे वर्तमान समयमें दिखाई देनेवाले चिह्नभेदोंकी सृष्टि हुई है। मेरी समझमें उपाध्यायजीके इस कथनमें कुछ न कुछ तथ्य अवश्य संगृहीत है। यह कथन कुछ तो उन्होंने स्वयं अन्वेषण और विचार करके लिखा होगा और कुछ परंपरागत श्रवण करके।

अब इसमें विचारनेकी बात यह है कि—"पुव्विं जिणपडिमानं नगिणत्तं नेव नवि अ पल्लवओ;—पहले जिनप्रतिमायें न नग्न हीं थीं और न वस्त्रचिह्नयुक्त।" यह जो कथन है सो किस प्रकारकी प्रतिमाओंको उद्दिष्ट कर के है? जैन मूर्तियाँ दो प्रकारकी होतीं हैं—एक तो पद्मासनस्थ—बैठी हुई और दूसरी ऊर्ध्वदेहाकार कायोत्सर्गस्थ—खड़ी हुई। तो क्या उपाध्यायजीका जो कथन है वह पद्मासनस्थ प्रतिमाओंके लिए हैं या ऊर्ध्वदेहस्थ प्रतिमाओंके लिए? अथवा दोनोंहीके लिए? जहाँ तक मैंने सोचा और विचारा है उससे पद्मासनस्थ प्रतिमाके बारेमें तो यह कथन सङ्गत हो सकता है। क्यों कि पलथी मार कर बैठनेवाला मनुष्य जिस तरह वस्त्रके न रखने पर भी उचित प्रयत्नसे खुल्लमखुल्ला नग्न नहीं दिखाई दे सकता है, वैसे ही पद्मासनस्थ प्रतिमाओंके विषयमें भी शिल्पीके चातुर्यसे नग्नत्वके दर्शनका अभाव हो जानेपर भी मूर्तिके यथोचित आकार दर्शनमें और भव्यत्वमें किसी प्रकारकी क्षति नहीं आ सकती। मैंने स्वयं ऐसी बहुत सी मूर्तियाँ देखी हैं जिनके पादमूलमें उपाध्यायजीके कथनानुसार न पल्लवका चिन्ह है और न स्पष्ट नग्नत्व है। परंतु ऊर्ध्वदेहाकार प्रतिमाओंके बारेमें यह कथन असंदिग्ध नहीं मालूम देता कि वे भी इस प्रकार—न नग्न और न सवस्त्र—होती थीं। शंका होती है कि जब इन दोनों प्रकारोंका उनमें अभाव था तो फिर वे थीं किस प्रकारकी? और इस प्रकार स्पष्ट रूपसे आकारके दर्शनाभावमें वे आकृतिसे रमणीय भी कैसे लगती होंगी? अभी तक कहीं पर भी ऐसी विलक्षण मूर्ति देखने सुननेमें नहीं आई है। इससे तो यह अनु-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मान होता है कि धर्मसागरजीका यह कथन मुख्यतः पद्मासनस्थ प्रतिमाओंके बारेमें ही ठीक है। ऊर्ध्वदेहस्थ प्रतिमाओंके लिए या तो उन्होंने जाँच नहीं की, या पद्मासनस्थकी अपेक्षा उनकी बहुत ही अल्पता होनेसे उपेक्षा कर दी, अथवा उनका निर्माण विवादकालसे अर्वाचीन माना हो।

यहाँ तक तो सब कथन एकदृष्टिसे हुआ है, अर्थात् उपाध्यायजीके कथनमें कुछ सत्यांशका स्वीकार करके यह विचार किया गया है। परंतु इसमें हेतु और परीक्षाकी दृष्टिसे भी विचार करनेकी आवश्यकता है। उपाध्यायजीके कथनमें इतना तो सत्यांश सभी दृष्टिसे सिद्ध होता है कि मूर्तियोंमें जो साम्प्रदायिक भेदके चिह्न दिखाई देते हैं उनकी उत्पत्ति दिगम्बरश्वेताम्बरगत मतभेदके प्रबल हो जाने बाद किसी न किसी एक खास निमित्तसे हुई है। क्यों कि यह तो सर्वानुभवसिद्ध ही है कि जब तक संप्रदायभेद नहीं होने पाया था तब तक मूर्तिगत भेदका अभाव स्वतःसिद्ध था। परंतु इस प्रकार भेद होनेमें जो कारण ऊपर दी गई गाथाओंमें,—उज्जयंतपर्वतपरका विवाद—बताया गया है, उसकी सत्यताके स्वीकारनेमें कोई पुष्ट प्रमाण या ऐतिहासिक अनुसन्धान उपाध्यायजीके वाक्योंमें नहीं मिलता। उज्जयंतगिरिवाले वृत्तांतकी टीकामें उन्होंने लिखा है कि यह बात संप्रदायगत चली आती है। परंतु संप्रदायगत चली आनेवाली तो हजारों ही बातें आज अनैतिहासिक और निर्मूल सिद्ध होती चली जा रही हैं! सिवाय किस समय यह विवाद हुआ और किन आचार्योंने इस भेदसूचक पल्लवचिह्नका प्रादुर्भाव किया, इसका कोई नामोल्लेख ही नहीं किया गया है—जिससे कुछ थोड़ा बहुत भी इस कथनको विचारार्ह समझा जाय।

एक बात और है—'पूर्वकालीन जिनप्रतिमायें न नग्न थीं और न वस्त्रचिह्नांकित' इस प्रकार अव्यक्त रूपके होनेमें कोई हेतु या मनुष्य स्वभाव नहीं प्रतीत होता। बल्कि हेतु और युक्तिसे तो, इन दो प्रकारोंमेंसे किसी एक प्रकारके होनेकी अत्यावश्यकता सिद्ध होती है। क्यों कि प्रकृतिके नियमानुसार मनुष्यकी केवल ये दो ही अवस्थायें हो सकती हैं। या तो वस्त्रावस्था होगी (वल्कल और चर्म भी उपलक्षणसे इसीमें आ जाते हैं)—या नग्नावस्था होगी। इनके व्यतिरिक्त कोई तीसरी अवस्था नहीं हो सकती। ऐसी दशामें मनुष्य जब कभी किसी देहधारीकी मूर्ति या चित्र निर्माण करेगा, तब इन अवस्थाओंहीमेंसे किसी एक अवस्थासे युक्त करेगा। अभीतक क्या भारतवर्षमें और क्या अन्यत्र, जितनी मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं अथवा मंदिर और विहारादि स्थानोंमें स्थित हैं, वे सब इन दो ही अवस्थाओंमेंसे किसी एक अवस्थावाली हैं। उपाध्यायजीके कथनानुसार 'न नागी और न ढँकी' तो कहीं दृष्टिगोचार नहीं होतीं!

दिगम्बर संप्रदायमें तीर्थकरोंको सर्वथा निर्ग्रंथ-निर्वस्त्र होना माना है, इस लिए उस विचारसे, उनकी मूर्तियाँ भी वैसी ही निर्वस्त्र होनी चाहिएँ, और श्वेताम्बर संप्रदायमें तीर्थकरोंको सर्वथा निर्वस्त्र नहीं माना है—निर्वस्त्रावस्थामें भी वे अपने अतिशयसे सर्वसाधारणको सवस्त्र ही दृष्टिगोचर होते थे, इस कारण इस विचारानुसार उनकी प्रतिमायें सवस्त्रांकित होनी चाहिए। यह हेतु युक्तियुक्त और बुद्धिग्राह्य है। इस लिए यदि तीर्थंकर दिगम्बर सिद्धान्तानुसार निर्वस्त्र—नग्न ही रहते होंगे तो उनकी मूर्तियाँ भी उसी कालसे नग्न ही बनती चली आनी चाहिए और श्वेताम्बर मन्तव्यके अनुसार 'चीवरधारी होत्था' अर्थात् सवस्त्र रहते होंगे, तो मूर्ति भी यथान्याय वस्त्रचिह्नांकित बनती हुई चली आनी चाहिए। उपपत्तिसे तो यही कथन सिद्ध होता है। "पुव्विं जिणपरिमाणं नागिणत्तं नेव नवि अ पल्लवओ" वाले अव्यक्त कथनमें तो कोई भी हेतु नहीं प्रतीत होता।

इतना होने पर भी उपाध्यायजीके इस कथनका एक प्रमाण अवश्य उपलब्ध होता है और जो ऊपर लिखा भी चुका है कि पद्मासनस्थ प्रतिमाओंमें कितनी एक ऐसी भी प्राचीन प्रतिमायें दृष्टिगोचर होती हैं जिनका पादमूलमें, जैसा कि उपाध्यायजीने लिखा है, पल्लव-चिह्न भी नहीं है, और स्पष्ट नग्नपना भी नहीं है। अर्वाचीन मूर्तियोंमें वह बात नहीं है। श्वेताम्बर मूर्तियोंके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पैरोंके नीचे प्रत्यक्ष वस्त्राकार खुदा हुआ रहता है और दिगम्बर मूर्तियोंमें दिगम्बरत्व। इस लिए इस भिन्नता और निर्लांछनताका कारण जो उपाध्यायजी लिखते हैं, वास्तवमें वही है या और कोई, इसकी निष्पक्षभावसे मीमांसा कर ऐतिहासिक तत्त्वज्ञोंको, वस्तुस्थितिके स्वरूपको उद्घाटित करना चाहिए।

जिन सज्जनोंको इस विषयमें विशेष खोज करनेकी या जाननेकी जिज्ञासा हो उनके लिए, प्राचीन और विश्वस्त साधनोंमेंसे, मथुराके कंकाली टीलेमेंसे, गवर्नमेण्टके ऑर्कीओलॉजिकल सर्वे डिपार्टमेण्टकी तरफसे खुदाई करनेपर जो जैनमूर्तियाँ निकलीं हैं और जो बहुत करके लखनऊके अजायबघरमें रक्खी हुई हैं बहुत कामकी हैं। इस विषयका विचार करनेमें उनसे बहुत अच्छी सहायता मिल सकेगी। उनकी प्राचीनता असन्दिग्ध है। उनमेंसे कई पर ब्राह्मी लिपिमें लेख भी खुदे हुए हैं। The jain stupa and other Antiquities of mathura नामकी एक पुस्तक सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ Vincent A. Smith ने प्रकट की है, जिसमें मथुरावाली इन सब प्रतिमाओंके तथा अन्याय शिल्पकामवाले पाषाणखण्डोंके चित्र प्रकट किये गये हैं। कुछ लेख और उन पर साहबने अपनी टीका भी साथमें प्रकट की है। एपिग्राफिया इंडिकाके प्रथम दो भागोंमें तथा और भी कुछ पुस्तकोंमें इस विषयकी सामग्री संपादित की हुई है। इन साधनोंद्वारा, इस विषय पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ सकता है। विन्सेण्ट ए. स्मिथ साहबवाली रिपोर्टमें बहुतसी जिनप्रतिमाओंके भी चित्र दिये हुए हैं; जिनमें कुछ बैठी मूर्तियाँ हैं और कुछ खड़ी हैं। बैठी हुई मूर्तियों पर वस्त्र या नग्नताका कोई चिह्न नजर नहीं आता; परन्तु खड़ी मूर्तियाँ स्पष्ट नग्नाकृतिवाली हैं। परंतु आश्चर्य यह है कि इन पर जो लेख खुदे हुए हैं, और उनमें जिन गण, शाखा, कुल और संभोगादिके नाम हैं वे श्वेताम्बरोंके सुप्रसिद्ध ग्रंथ कल्पसूत्रकी स्थविरावलीमें दिये हुए नामोंमेंसे हैं। इस लिए डा० बुल्हर इन प्रतिमाओंको श्वेताम्बरसंप्रदायकी बतलाते हैं–दिगम्बर संप्रदायकी नहीं! इसी पुस्तकके पृष्ठ ४१ पर एक और विलक्षण मूर्त्तिचित्र है, जो आजतक मिली हुई सभी मूर्तियोंसे विचित्र है। यह पद्मासनस्थ या बैठी हुई प्रतिमा है। आसपास दो मनुष्य हाथ जोडे खड़े हैं। प्रतिमाके नीचे भी तीन स्त्रियाँ और शायद दो पुरुष इसी तरह हाथ जोड़कर खड़े हैं। मध्यकी जो पद्मासनस्थ मूर्ति है वह अन्यान्य जैनमूर्तियोंके ही समान है; परंतु विलक्षणता उसमें यह है कि उसके सर्वांग पर वस्त्र पहराये गये हैं। वस्त्र साफ साफ उत्कीर्ण किये गये हैं; मस्तक पर भी कुछ मुकुट जैसी वस्तु है। डा० फुहरर इसे वर्धमान स्वामीकी मूर्ति बतलाते हैं। मि० मुकरजी, इसे जैनप्रतिमा न मानकर विष्णु–कृष्णकी प्रतिमा बतलाते हैं। क्योंकि अभीतक ऐसी कोई भी जैनप्रतिमा या बौद्धप्रतिमा नहीं मिली है; परंतु साथ ही यह शंका वहाँ पर भी आ खड़ी होती है कि कृष्णकी मूर्ति भी तो ऐसी कहीं नहीं मिली! बल्कि जैनप्रतिमाओंके साथ तो इसका थोड़ा बहुत सादृश्य है; कृष्णकी प्रतिमाके साथ तो किंचित् मात्र भी मेल नहीं खाता। कृष्णकी प्रतिमा जैन या बौद्ध प्रतिमाके सदृश पलथी मारकर और दोनों हाथ खोलेमें रखकर ध्यानारूढ हुई कहीं भी नहीं देखी सुनी गई। 'कर्मण्येवाधिकारः' वाले कर्मयोगीय उद्गारोंके निकालनेवाले कृष्णकी मूर्ति इस प्रकार उदासीनता कब धारण कर सकती है? संसारके सन्तापोंसे संतप्त होकर, उसके संसर्गका सर्वथा ही त्यागकर गिरिगुहाओंमें प्रविष्ट होकर महीनोंतक आँखकी पलक न मारनेवाले बुद्ध या महावीर जैसे परम निर्विण्ण पुरुषोंहीकी ऐसी मूर्तियाँ हो सकती हैं।

यह लिखनेका तात्पर्य केवल इतना ही है कि 'प्राचीन कालमें जिनमूर्तियाँ कैसी थीं?' इस शंकाके समाधानार्थ प्रयत्न करनेवाले मनुष्यको पहले इसी दिशामें प्रयाण करनेकी जरूरत है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः ।

तेरहवाँ भाग । अंक ७

जैनहितैषी ।

जुलाई, १९१७. आषाढ़, २४४३.

न हो पक्षपाती बतावे सुमार्ग, डरे ना किसीसे कहे सत्यवाणी ।
बने है विनोदी भले आशयोंसे, सभी जैनियोंका हितैषी हितैषी ॥

राजा हरदौल ।

(ले०—श्रीयुत प्रेमचन्दजी ।)

बुन्देलखण्डमें ‘ओरछा’ पुराना राज्य है। इसके राजा बुन्देले हैं। इन बुन्देलोंने पहाड़ोंकी घाटियोंमें अपना जीवन विताया है । एक समय ओरछेके राजा जुझारसिंह थे । ये बड़े साहसी और बुद्धिमान् थे । शाहजहाँ उस समय दिल्लीके बादशाह थे । जब खानजहाँ लोदीने बलवा किया और वह शाही मुल्कको लूटता पाटता ओरछेकी ओर आ निकला, तब राजा जुझारसिंहने उससे मोरचा लिया । राजाके इस कामसे शाहजहाँ बहुत प्रसन्न हुए । क्योंकि वे मनुष्यके गुणोंकी परख करनेवाले थे । उन्होंने तुरन्त ही राजाको दक्खिनके काम सौंपे । उस दिन ओरछेमें बड़ा आनन्द मनाया गया । शाही सफीर, खिलत और सनद लेकर राजाके पास आया । जुझारसिंहको बड़े बड़े काम करनेका अवसर मिला । सफरकी तैयारियाँ होने लगीं । तब राजाने अपने छोटे भाई हरदौलसिंहको बुलाकर कहा—“ भैया मैं तो जाता हूँ । अब यह राजपाट तुम्हारे सुपुर्द है । तुम भी जीसे उसे प्यार करना । न्याय ही राजाका सबसे बड़ा सहायक है । न्यायकी गढ़ीमें कोई शत्रु नहीं घुस सकता, चाहे वह रावणकी सेना या इन्द्रका बल लेकर आवे । पर न्याय वही सच्चा है, जिसे प्रजा भी न्याय समझे । तुम्हारा काम केवल न्याय करना न होगा, बल्कि प्रजाको अपने न्यायका विश्वास भी दिलाना होगा । और मैं तुम्हें क्या समझाऊँ तुम स्वयं समझदार हो ।” यह कहकर उन्होंने अपनी पगड़ी उतारी और हरदौलसिंहके सिरपर रख दी । हरदौल रोता हुआ उनके पैरोंसे लिपट गया ।

इसके बाद राजा अपनी रानीसे बिदा होनेके लिए रनवास आये । रानी दरवाज़े पर खड़ी रो रही थी । उन्हें देखते ही पैरों पर गिर पड़ी । जुझारसिंहने उठाकर उसे छातीसे लगाया और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहा–“ प्यारी! यह रोनेका समय नहीं है। बुन्देलोंकी स्त्रियाँ ऐसे अवसरों पर रोया नहीं करतीं। ईश्वरने चाहा, तो हम तुम जल्द मिलेंगे। मुझ पर ऐसी ही प्रीति रखना। मैंने राजपाट हरदौलको सौंपा है; वह अभी लड़का है। उसने अभी दुनिया नहीं देखी है। अपनी सलाहोंसे उसकी मदद करती रहना।” रानीकी जबान बन्द हो गई। वह अपने मनमें कहने लगी– “हाय यह कहते हैं, बुन्देलोंकी स्त्रियाँ ऐसे अवसरों पर रोया नहीं करतीं। शायद उनके हृदय नहीं होता, या अगर होता है तो उसमें प्रेम न होगा।” रानी कलेजे पर पत्थर रखकर आँसू पी गई और हाथ जोड़कर राजाकी ओर मुसकुराती हुए देखने लगी; पर क्या वह मुसकुराहट थी? जिस तरह घुप्प अन्धेरे मैदानमें मशालकी रोशनी अन्धेरेको और भी अथाह कर देती है उसी तरह रानीकी मुसकुराहट उसके मनके अथाह दुःखको और भी प्रकट कर रही थी।

जुझारसिंहके चले जानेके बाद हरदौलसिंह राज करने लगे। थोड़े ही दिनोंमें उनके न्याय और प्रजावात्सल्यने प्रजाका मन हर लिया। लोग जुझारसिंहको भूल गये। जुझारसिंहके शत्रु भी थे और मित्र भी। पर हरदौलसिंहका कोई शत्रु न था। सब मित्र ही थे। वह ऐसा हँसमुख और मधुरभाषी था कि उससे जो ही दो बातें कर लेता, वही जीवनभर उसका भक्त बना रहता। राजभरमें ऐसा कोई नहीं था, जो उसके पासतक न पहुँच सकता हो। रात दिन उसके दरबारका फाटक सबके लिए खुला रहता था। ओरछेको कभी ऐसा सर्वप्रिय राजा नसीब न हुआ था। वह उदार था, न्यायी था, विद्या और गुणका ग्राहक था। पर सबसे बड़ा गुण जो उसमें था वह उसकी वीरता थी। उसका यह गुण हद दर्जेको पहुँच गया था। जिस जातिके जीवनका अवलम्ब तलवार पर है, वह अपने राजाके किसी गुण पर इतना नहीं रीझती जितना उसकी वीरता पर। हरदौल अपने गुणोंसे अपनी प्रजाके मनका भी राजा हो गया, जो मुल्क और माल पर राज करनेसे भी कठिन है। इस प्रकार एक वर्ष बीत गया। उधर दक्खिनमें जुझारसिंहने अपने प्रबन्धसे चारों ओर शाही दबदबा जमा दिया। इधर ओरछेमें हरदौल ने प्रजापर मोहनी मंत्र फूँक दिया।

फागुनका महीना था, अबीर और गुलालसे जमीन लाल हो रही थी। कामदेवका प्रभाव लोगोंको भड़का रहा था, रबीने खेतोंमें सुनहला फर्श बिछा रखा था और खलिहानोंमें सुनहले महल उठा दिये थे। सन्तोष इस सुनहले फर्श पर अठलाता फिरता था और निश्चिन्तता इस सुनहले महलमें तानें अलाप रही थी। इन्हीं दिनोंमें दिल्लीका नामवर फेकैत कादिरखाँ ओरछे आया। बड़े बड़े पहेलवान उसका लोहा मान गये थे। दिल्लीसे ओरछे तक मर्दानगीके मदसे मतवाले उसके सामने आये, पर कोई उससे जीत न सका। उससे लड़ना भागसे नहीं, बल्कि मौतसे लड़ना था। वह किसी इनामका भूखा न था; जैसा ही दिलका दिलेर था, वैसा ही मनका राजा था। ठीक होलीके दिन उसने धूम धामसे ओरछेमें सूचना दी कि “खुदाका शेर, दिल्लीका कादिरखाँ ओरछे आ पहुँचा है। जिसे अपनी जान भारी हो आकर अपने भागका निपटेरा करले।” ओरछेके बड़े बड़े बुन्देले सूरमा यह घमण्डभरी वाणी सुनकर गरम हो उठे। फाग और डफकी तानके बदले ढोलकी वीरध्वनि सुनाई देने लगी। हरदौलका अखाड़ा ओरछेके पहलवानों और फेकैतोंका सबसे बड़ा अड्डा था। सन्ध्याको यहाँ सारे शहरके सूरमा जमा हुए। कालदेव और भालदेव बुन्देलोंकी नाक थे। सैकड़ों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria,,Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मैदान मारे हुए, यही दोनों पहलवान कादिरखाँका घमण्ड चूर करनेके लिए चुने गये।

दूसरे दिन किलेके सामने तालाबके किनारे बड़े मैदानमें ओरछेके छोटे बड़े जमा हुए। कैसे कैसे सजीले अलबेले जवान थे—सिरपर खुशरंग बाँकी पगड़ी, माथे पर चन्दनका तिलक, आँखोंमें मर्दानगीका सरूर, कमरोंमें तलवार। और कैसे कैसे बूढ़े थे—तनी हुई मूँछें, सादी पर तिरछी पगड़ी, कानोंसे बँधी हुई दाढ़ियाँ, देखनेमें तो बूढ़े पर काममें जवान, किसीको कुछ न समझनेवाले। उनकी मर्दाना चालढाल नौजवानोंको लजाती थी। हरएकके मुँहसे वीरताकी बातें निकल रही थीं। नौजवान कहते थे देखें आज ओरछेकी लाज रहती है या नहीं। पर बूढ़े कहते थे कि ओरछेकी हार कभी नहीं हुई और न होगी। वीरोंका यह जोश देखकर राजा हरदौलने बड़े ज़ोरसे कह दिया था, "खबरदार, बुन्देलोंकी लाज रहे या न रहे, पर उनकी प्रतिष्ठामें बल न पड़ने पावे। यदि किसीने औरोंको यह कहनेका अवसर दिया कि ओरछेवाले तलवारसे न जीते, तो धाँधली कर बैठे, वह अपनेको जातिका शत्रु समझे।"

सूर्य निकल आये थे। एकाएक नगाड़े पर चोब पड़ी और आशा तथा भयने लोगोंके मनको उछालकर मुँहतक पहुँचा दिया। कालदेव और कादिरखाँ दोनों लंगोट कसे शेरोंकी तरह अखाड़ेमें उतरे और गले मिल गये। तब दोनों तरफसे तलवारें निकलीं और दोनोंके बगलोंमें चली गईं। फिर बादलके दो टुकड़ोंसे बिजलियाँ निकलने लगीं। पूरे तीन घण्टेतक यही मालूम होता था कि दो अँगारे हैं। हज़ारों आदमी खड़े तमाशा देख रहे थे और मैदानमें आधीरातका सा सन्नाटा छाया था। हाँ, जब कभी कालदेव कोई गिरहदार हाथ चलाता या कोई पेचदार वार बचा जाता, तो लोगोंकी गर्दनें आप ही आप उठ जातीं, पर किसीके मुँहसे एक शब्द भी नहीं निकलता था। अखाड़ेके अन्दर तलवारोंकी खींचतान थी; पर देखनेवालोंके लिए अखाड़ेके बाहर मैदानमें इससे भी बढ़ कर तमाशा था, बार बार जातीय प्रतिष्ठाके विचारसे मनके भावोंको रोकना और प्रसन्नता या दुःखका शब्द मुँहसे बाहर न निकलने देना तलवारोंकी वार बचानेसे अधिक कठिन काम था। एकाएक कादिरखाँ 'अल्लाहो अकबर' चिल्लाया, मानों बादल गरजा उठा और उसके गरजते ही कालदेवके सिर पर बिजली गिर पड़ी।

कालदेवके गिरते ही बुन्देलोंको सब्र न रहा, हर एक चेहरे पर निर्बल क्रोध और कुचले हुए घमण्डकी तसबीर खिंच गई। हजारों आदमी जोशमें आकर अखाड़े पर दौड़े, पर हरदौलने कहा 'खबरदार! अब कोई आगे न बढ़े।' इस आवाजने पैरोंके साथ जंजीरका काम किया। दर्शकोंको रोककर जब वे अखाड़ेमें गये और कालदेवको देखा, तो आँखोंमें आँसू भर आये। जख़मी शेर जमीन पर पड़ा तड़प रहा था। उसके जीवनकी तरह उसके तलवारके दो टुकड़े हो गये थे। आजका दिन बीता। रात आई। पर बुन्देलोंकी आँखोंमें नींद कहाँ? लोगोंने करवटें बदलकर रात काटी। जैसे दुःखित मनुष्य विकलतासे सुबहकी बाट जोहता है, उसी तरह बुन्देले रह-रहकर आकाशकी तरफ देखते और उसकी धीमी चाल पर झुँझलाते थे। उनके जातीय घमण्ड पर गहरा घाव लगा था। दूसरे दिन ज्योंही सूर्य्य निकला, तीन लाख बुन्देले तालाबके किनारे पहुँचे। जिस समय भालदेव शेरकी तरह अखाडेकी तरफ़ चला, दिलोंमें धड़कनसी होने लगी। कल जब कालदेव अखाड़ेमें उतरा था बुन्देलोंके हौसले बढ़े हुए थे, पर आज वह बात न थी। हृदयोंमें आशाकी जगह डर घुसा हुआ था। जब कादिरखाँ कोई चुटीला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वार करता तो लोगोंके दिल उछल कर होठोंतक आ जाते थे। सूर्य्य सिरपर चढ़ा आता था और लोगोंके दिल बैठे जाते थे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि भालदेव अपने भाईसे फुर्तीला और तेज था। उसने कई बार कादिरखाँको नीचा दिखलाया, पर दिल्लीका निपुण पहलवान हर वार सम्हल जाता था। पूरे तीन घंटेतक दोनों बहादुरोंमें तलवारें चलती रहीं। एकाएक खट्टाकेकी आवाज़ हुई और भालदेवकी तलवारके दो टुकड़े हो गये। राजा हरदौल अखाड़ेके सामने खड़े थे। उन्होंने भालदेवकी तरफ़ तेजीसे अपनी तलवार फेंकी। भालदेव तलवार लेनेके लिए झुका ही था कि कादिरखाँकी तलवार उसकी गर्दनपर आ पड़ी। घाव गहरा न था, केवल एक 'चरका' था, पर उसने लड़ाईका फैसला कर दिया।

हताश बुन्देले अपने अपने घरोंको लौटे। यद्यपि भालदेव अब भी लड़नेको तैयार थे, पर हरदौलने समझाकर कहा कि, "भाइयो! हमारी हार उसी समय हो गई, जब हमारी तलवारने जवाब दे दिया। यदि हम कादिरखाँकी जगह होते तो निहत्थे आदमी पर वार न करते। और जबतक हमारे शत्रुके हाथमें तलवार न आ जाती हम उस पर हाथ न उठाते; पर कादिरखामें यह उदारता कहाँ? बलवान् शत्रुका सामना करनेमें उदारताको ताक पर रख देना पड़ता है। तो भी हमने दिखा दिया है कि तलवारकी लड़ाईमें हम उसके बराबर हैं और अब हमको यह दिखाना रहा है कि हमारी तलवारमें भी वैसा ही जौहर है।" इसी तरह लोगोंको तसल्ली देकर राजा हरदौल रनवासको गये।

कुलीनाने पूछा—"लाला! आज दङ्गलका क्या रंग रहा?"

हरदौलने सिर झुकाकर जवाब दिया—"आज भी वही कलकासा हाल रहा।"

कुलीना—"क्या भालदेव मारा गया?"

हरदौल—"नहीं, जानसे तो नहीं, पर हार हो गई।"

कुलीना—"तो अब क्या करना होगा?"

हरदौल—"मैं स्वयं इसी सोचमें हूँ। आजतक ओरछेको कभी नीचा न देखना पड़ा था। हमारे पास धन न था, पर अपनी वीरताके सामने हम राज और धनको कोई चीज नहीं समझते थे। अब हम किस मुँहसे अपनी वीरताका घमण्ड करेंगे—ओरछेकी और बुन्देलोंकी लाज अब जाती है!"

कुलीना—"क्या अब कोई आस नहीं है?"

हरदौल—"हमारे पहलवानोंमें वैसा कोई नहीं है, जो उससे बाजी ले जाय। भालदेवकी हारने बुन्देलोंकी हिम्मत तोड़ दी है। आज सारे शहरमें शोक छाया हुआ है। सैकड़ों घरोंमें आग नहीं जली। चिराग रोशन नहीं हुआ। हमारे देश और जातिकी वह चीज अब अन्तिम स्वाँस ले रही है, जिससे हमारा मान था। भालदेव हमारा उस्ताद था। उसके हार चुकनेके बाद मेरा मैदानमें आना धृष्टता है, पर बुन्देलोंकी साख जाती है तो मेरा सिर भी उसके साथ जायगा। कादिरखाँ बेशक अपने हुनरमें एक ही है, पर हमारा भालदेव कभी उससे कम नहीं। उसकी तलवार यदि भालदेवके हाथमें होती तो मैदान ज़रूर उसके हाथ रहता। ओरछेमें केवल एक तलवार है, जो कादिरखाँकी तलवारका मुँह मोड़ सकती है। वह भैय्याकी तलवार है। अगर तुम ओरछेकी नाक रखना चाहती हो तो उसे मुझे दे दो। यह हमारी अन्तिम चेष्टा होगी; यदि अबके भी हार हुई तो ओरछेका नाम सदैवके लिए डूब जायगा।"

कुलीना सोचने लगी। तलवार इनको दूँ या न दूँ। राजा रोक गये हैं। उनकी आज्ञा थी कि किसी दूसरेकी परछाहीं भी उस पर न पड़ने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पावे । क्या ऐसी दशामें मैं उनकी आज्ञाका उल्लंघन करूँ तो वे नाराज होंगे ? कभी नहीं । जब वे सुनेंगे कि मैंने कैसे कठिन समयमें तलवार निकाली है, तो उन्हें सच्ची प्रसन्नता होगी । बुन्देलोंकी आन किसको इतनी प्यारी है ? उनसे ज्यादा ओरछेकी भलाई चाहनेवाला कौन होगा ? इस समय उनकी आज्ञाका उल्लंघन करना ही आज्ञा मानना है । यह सोचकर कुलीनाने तलवार हरदौलको दे दी ।

सबेरा होते ही यह खबर फैल गई कि राजा हरदौल कादिरखाँसे लड़नेके लिए जा रहे हैं । इतना सुनते ही लोगोंमें सनसनी सी फैल गई और वे चौंक उठे । पागलोंकी तरह लोग अखाड़ेकी ओर दौड़े । हरएक आदमी कहता था कि, जबतक हम जीते हैं हम महाराजको लड़ने नहीं देंगे । पर जब लोग अखाड़ेके पास पहुँचे तो देखा कि अखाडेमें बिजलियाँ सी चमक रही हैं । बुन्देलोंके दिलों पर उस समय जैसी बीत रही थी, उसका अनुमान करना कठिन है । उस समय उस लम्बे चौड़े मैदानमें जहाँतक निगाह जाती थी आदमी ही आदमी नजर आते थे । पर चारों तरफ सन्नाटा था । हर एक आँख अखाड़ेकी तरफ लगी हुई थी और हर एकका दिल हरदौलकी मङ्गलकामनाके लिए ईश्वरका प्रार्थी था । कादिरखाँका एक एक वार हजारों दिलोंके टुकड़े कर देता था और हरदौलकी एकएक काटसे मनोंमें आनन्दकी लहरें उठती थीं । अखाड़ेमें दो पहलवानोंका सामना था और अखाड़ेके बाहर ' आशा और निराशा ' का । आखिर घड़ियालने पहला पहर बजाया और हरदौलकी तलवार बिजली बनकर कादिरके सिर पर गिरी । यह देखते ही बुन्देले मारे आनन्दके उन्मत्त हो गये । किसीको किसीकी सुधि न रही । कोई किसीसे गले मिलता, कोई उछलता और कोई छलाँगे भरता था । हजारों आदमियों पर वीरताका नशा छा गया । तलवारें स्वयं म्यानसे निकल पड़ीं, भाले चमकने लगे । जीतकी खुशीमें सैकड़ों जानें भेंट हो गईं । पर जब हरदौल अखाड़ेसे बाहर आये और उन्होंने बुन्देलोंकी ओर तेज निगाहोंसे देखा तो आनकी आनमें लोग सम्हल गये । तलवारें म्यानोंमें जा छिपीं । खयाल आ गया । यह खुशी क्यों ? यह उमङ्ग क्यों और यह पागलपन किस लिए ? बुन्देलोंके लिए यह कोई नई बात नहीं हुई । इस विचारने लोगोंका दिल ठंडा कर दिया । हरदौलकी इस वीरताने उसे हरएक बुन्देलेके दिलमें मान-प्रतिष्ठाकी उस ऊँची जगह पर जा बिठाया जहाँ न्याय और उदारता भी उसे न पहुँचा सकती थी । वह पहलेहीसे सर्वप्रिय था; और अब वह अपनी जातिका वीरवर और बुन्देला दिलावरीका सिरमौर बन गया ।

राजा जुझारसिंहने भी दक्षिणमें अपनी योग्यताका परिचय दिया । वे केवल लड़ाईमें ही वीर न थे, बल्कि राज्यशासनमें भी अद्वितीय थे । उन्होंने अपने सुप्रबन्धसे दक्षिण प्रान्तको बलवान् राज्य बना दिया और वर्षभरके बाद बादशाहसे आज्ञा लेकर वे ओरछेकी तरफ चले । ओरछेकी याद उन्हें सदैव बेचैन करती रही । आह ओरछा ! वह दिन कब आवेगा कि फिर तेरे दर्शन होंगे ! राजा मंजिलें मारते चले आते थे । न भूख थी, न प्यास, ओरछेवालोंकी मुहब्बत खींचे लिये आती थी । यहाँतक कि ओरछेके जंगलोंमें आ पहुँचे । साथके आदमी पीछे छूट गये । दो पहरका समय था । धूप तेज थी । वे घोड़ेसे उतरे और एक पेड़की छाँहमें जा बैठे । भाग्यवश आज हरदौल भी जीतकी खुशीमें शिकार खेलने निकले थे । सैकड़ों बुन्देला सरदार उनके साथ थे । सब अभिमानके नशेमें चूर थे । उन्होंने राजा जुझारसिंहको अकेले

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बैठे देखा, पर वे अपने घमण्डमें इतने डूबे हुए थे कि इनके पासतक न आये। समझे कोई यात्री होगा। हरदौलकी आँखोंने भी धोखा खाया। वे घोड़े पर सवार अकड़ते हुए जुझारसिंहके सामने आये और पूछना चाहते थे कि तुम कौन हो कि भाईसे आँख मिल गई। पहचानते ही घोड़ेसे कूद पड़े और उनको प्रणाम किया। राजाने भी उठकर हरदौलको छातीसे लगाया। पर उस छातीमें अब भाईकी मुहब्बत न थी। मुहब्बतकी जगह ईर्षाने घेर ली थी, और केवल इसी लिए कि हरदौल दूरसे नँगे पैर उनकी तरफ न दौड़ा। उसके सवारोंने दूरहीसे उनकी अभ्यर्थना न की। सन्ध्या होते होते दोनों भाई ओरछे पहुँचे। राजाके लौटनेका समाचार पाते ही नगरमें प्रसन्नताकी दुंदभी बजने लगी। हर जगह आनन्दोत्सव होने लगा और तुरताफुरती सारा शहर जगमगा उठा। आज रानी कुलीनाने अपने हाथोंसे भोजन बनाया। नौ बजे होंगे। लौंड़ीने आकर कहा–महाराज, भोजन तैयार है। दोनों भाई भोजन करने गये। सोनेके थालमें राजाके लिए भोजन परोसा गया और चाँदीके थालमें हरदौलके लिए। कुलीनाने स्वयं भोजन बनाया था, स्वयं थाल परोसे थे, और स्वयं ही सामने लाई थी, पर दिनों का चक्र कहो, या भाग्यके दुर्दिन, उसने भूलसे सोनेका थाल हरदौलके आगे रख दिया और चाँदीका राजाके सामने। हरदौलने कुछ ध्यान न दिया। वह वर्षभरसे सोनेके थालमें खाते खाते उसका आदी हो गया था, पर जुझारसिंह तलमला गये। जबानसे कुछ न बोले, पर तीवर बदल गये और मुँह लाल हो गया। रानीकी तरफ घूर कर देखा और भोजन करने लगे, पर ग्रास विष मालूम होता था। दो चार ग्रास खाकर उठ आये। रानी उनके तीवर देखकर डर गई। आज कैसे प्रेमसे उसने भोजन बनाया था, कितनी प्रतीक्षाके बाद यह शुभ दिन आया था, उसके उल्लासका कोई पारावार न था। पर राजाके तीवर देखकर उसके प्राण सूख गये। जब राजा उठ गये और उसने थालको देखा तो कलेजा धकसे हो गया और पैरतलेसे मिट्टी निकल गई। उसने सिर पीट लिया। ईश्वर! आज रात कुशलपूर्वक कटे, मुझे शकुन अच्छे दिखाई नहीं देते।

राजा जुझारसिंह शीशमहलमें लेटे। चतुर नाइनने रानीका शृंगार किया और मुसकुराकर बोली, कल महाराजसे इसका इनाम लूँगी। यह कहकर वह चली गई। परंतु कुलीना वहाँसे न उठी। वह गहरे सोचमें पड़ी हुई थी। उनके सामने कौनसा मुँह लेकर जाऊँ। नाइनने नाहक मेरा शृंगार कर दिया। मेरा शृंगार देखकर वे खुश भी होंगे? मुझसे इस समय अपराध हुआ है, मैं अपराधिनी हूँ, मेरा उनके पास इस समय बनाव शृंगार करके जाना उचित नहीं। नहीं, नहीं!! आज मुझे उनके पास भिखारीनीके भेषमें जाना चाहिए। मैं उनसे क्षमादान माँगूगी। इस समय मेरे लिए यही उचित है। यह सोच कर रानी बड़े शीशेके सामने खड़ी हो गई। वह अप्सरा मालूम होती थी। सुन्दरताकी कितनी ही तसवीरें उसने देखी थीं; पर उसे इस समय शीशेकी तसवीर सबसे ज्यादा खूबसूरत मालूम होती थी।

सुन्दरता और आत्मरुचिका साथ है। हल्दी बिना रंगके नहीं रह सकती। थोड़ी देरके लिए कुलीना सुन्दरताके मदसे फूल उठी। वह तन कर खड़ी हो गई। लोग कहते हैं कि सुन्दरतामें जादू है और वह जादू जिसका कोई उतार नहीं। धर्म्म और कर्म्म, तन और मन, सब सुन्दरता पर न्यौछावर हैं। मैं सुन्दर न सही, ऐसी कुरूपा भी नहीं हूँ। क्या मेरी सुन्दरतामें इतनी भी शक्ति नहीं है कि म-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हाराजसे मेरा अपराध क्षमा करा सके। ये बाहुलतायें जिस समय उनके गलेका हार होंगी, ये आँखें जिस समय प्रेमके मदसे लाल होकर देखेंगीं, तब क्या मेरे सौन्दर्यकी शीतलता उनकी क्रोधाग्निको ठंडा न कर देगी ? पर थोड़ी देरमें रानीको ज्ञान हुआ ! आह ! यह मैं क्या स्वप्न देख रही हूँ ! मेरे मनमें ऐसी बातें क्यों आती हैं ? मैं अच्छी हूँ, या बुरी हूँ उनकी चेरी हूँ ! मुझसे अपराध हुआ है, मुझे उनसे क्षमा माँगनी चाहिए। यह शृंगार और बनाव इस समय उपयुक्त नहीं है। यह सोचकर रानीने सब गहने उतार दिये। इतरमें बसी हुई हरे रेशमकी साड़ी अलग कर दी। मोतियोंसे भरी माँग खोल दी और खूब फूट फूटकर रोई। हाय ! यह मिलापकी रात बिछुड़नकी रातसे भी विशेष दुःखदाई है। भिखारिनीका भेष बनाकर रानी शीशमहलकी ओर चली। पैर आगे बढ़ते थे, पर मन पीछे हटा जाता था। दरवाजेतक आई; पर भीतर पैर न रख सकी। दिल धड़कने लगा, ऐसा जान पड़ा मानों उसके पैर थर्रा रहे हैं। राजा जुझारसिंहं बोले—" कौन है ?—कुलीना ? भीतर क्यों नहीं आ जातीं ? "

कुलीनाने जी कड़ा करके कहा—" महाराज ! कैसे आऊँ ? मैं अपनी जगह क्रोधको बैठा हुआ पाती हूँ। "

राजा—" यह क्यों नहीं कहतीं कि मन दोषी है, इस लिए आँखे नहीं मिलाने देता। "

कुलीना—" निस्सन्देह मुझसे अपराध हुआ है, पर एक अबला आपसे क्षमाका दान माँगती है। "

राजा—" इसका प्रायश्चित्त करना होगा। "

कुलीना—" क्योंकर ? "

राजा—" हरदौलके खूनसे ! "

कुलीना सिरसे पैरतक काँप गई। बोली—" क्या इस लिए कि आज मेरी भूलसे ज्योनारके थालोंमें उलट फेर हो गया ? "

राजा—" नहीं ! इस लिए कि हरदौलने तुम्हारे प्रेममें उलट फेर कर दिया। "

जैसे आगकी आँचसे लोहा लाल हो जाता है, वैसे ही रानीका मुँह लाल हो गया। क्रोधकी अग्नि सद्भावोंको भस्म कर देती है, प्रेम और प्रतिष्ठा, दया और न्याय, सब जलके राख हो जाते हैं। एक मिनिटतक रानीको ऐसा मालूम हुआ, मानों दिल और दिमाग दोनों खौल रहे हैं। पर उसने आत्मदमनकी अन्तिम चेष्टासे अपनेको सम्हाला, केवल इतना बोली—" हरदौलको मैं अपना लड़का और भाई समझती हूँ। "

राजा उठ बैठे और कुछ नर्म स्वरसे बोले—" नहीं—हरदौल लड़का नहीं है, लड़का मैं हूँ, जिसने तुम्हारे ऊपर विश्वास किया। कुलीना ! मुझे तुमसे ऐसी आशा न थी। मुझे तुम्हारे ऊपर घमंड था, मैं समझता था चाँद सूर्य टल सकते हैं, पर तुम्हारा दिल नहीं टल सकता। पर आज मुझे मालूम हुआ कि, यह मेरा लड़कपन था। बड़ोंने सच कहा है कि, स्त्रीका प्रेम पानीकी धार है, जिस ओर ढाल पाता है उधर ही बह जाता है।—सोना ज्यादा गर्म होकर पिघल जाता है। "

कुलीना रोने लगी। क्रोधकी आग पानी बनकर आँखोंसे निकल पड़ी। जब आवाज वशमें हुई, तो बोली—" मैं आपके इस सन्देहको कैसे दूर करूँ ? "

राजा—" हरदौलके खूनसे। "

रानी—" मेरे खूनसे दाग न मिटेगा ? "

राजा—" तुम्हारे खूनसे और पक्का हो जायगा ! "

रानी—" और कोई उपाय नहीं है ? "

राजा—" नहीं। "

रानी—" यह आपका अन्तिम विचार है ? "

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राजा—"हाँ; यह मेरा अन्तिम विचार है। देखो, इस पानदानमें पानका बीड़ा रखा है। तुम्हारे सतीत्वकी परीक्षा यही है कि तुम हरदौलको इसे अपने हाथसे खिला दो। मेरे मनका भ्रम उसी समय निकलेगा, जब इस घरसे हरदौलकी लाश निकलेगी।"

रानीने घृणाकी दृष्टिसे पानके बीड़ेको देखा और वह उलटे पैर लौट आई।

रानी सोचने लगी, क्या हरदौलके प्राण लूँ? निर्दोष, सच्चरित्र, वीर हरदौलकी जानसे अपने सतीत्वकी परीक्षा दूँ? उस हरदौलके खूनसे अपना हाथ काला करूँ जो मुझे बहन समझता है? यह पाप किसके सिर पड़ेगा? क्या एक निर्दोषका खून रंग न लायेगा। आह! अभागी कुलीना! तुझे आज अपनी सतीत्वकी परीक्षा देनेकी आवश्यकता पड़ी है और वह ऐसी कठिन। नहीं, यह पाप मुझसे न होगा। यदि राजा मुझे कुलटा समझते है तो समझें, उन्हें मुझपर सन्देह है तो हो। मुझसे यह पाप न होगा। राजाको ऐसा सन्देह क्यों हुआ? क्या केवल थालोंके बदल जानेसे? नहीं, अवश्य कोई और बात है। आज हरदौल उन्हें जंगलमें मिल गया था। राजाने उसकी कमरमें तलवार देखी होगी। क्या आश्चर्य है, हरदौलसे कोई अपमान भी हो गया हो। मेरा अपराध क्या है? मुझ पर इतना बड़ा दोष क्यों लगाया जाता है? केवल थालोंके बदल जानेसे। हे ईश्वर! मैं किससे अपना दुःख कहूँ? तूही मेरा साक्षी है। जो चाहे सो हो, पर मुझसे यह पाप न होगा।

रानीने फिर सोचा, राजा, क्या तुम्हारा हृदय ऐसा ओछा और नीच है? तुम मुझसे हरदौलकी जान लेनेको कहते हो? यदि तुमसे उसका अधिकार और मान नहीं देखा जाता तो क्यों साफ साफ ऐसा नहीं कहते? क्यों मरदोंकी लड़ाई नहीं लड़ते? क्यों स्वयं अपने हाथसे उसका सिर नहीं काटते? मुझसे वह काम करनेको कहते हो। तुम खूब जानते हो मैं नहीं कर सकती। यदि मुझसे तुम्हारा जी उकता गया है, यदि मैं तुम्हारी जानकी जंजाल हो गई हूँ तो मुझे काशी या मथुरा भेज दो। मैं बेखटके चली जाऊँगी। पर ईश्वरके लिए मेरे सिर इतना बड़ा कलंक न लगने दो। पर मैं जीवित ही क्यों रहूँ? मेरे लिए अब जीवनमें कोई सुख नहीं है। अब मेरा मरना ही अच्छा है। मैं स्वयं प्राण दे दूँगी, पर यह महापाप मुझसे न होगा। विचारोंने फिर पलटा खाया। तुमको यह पाप करना ही होगा। इससे बड़ा पाप शायद आजतक संसार में न हुआ हो। पर यह पाप तुमको करना होगा। तुम्हारे पातिव्रत पर सन्देह किया जा रहा है और तुम्हें इस सन्देहको मिटाना होगा। यदि तुम्हारी जान जोखिममें होती, तो कुछ हर्ज न था। अपनी जान देकर हरदौलको बचा लेतीं। पर इस समय तुम्हारे पातिव्रत पर आँच आ रही है। इस लिए तुम्हें यह पाप करना ही होगा। और पाप करनेके बाद हँसना और प्रसन्न रहना होगा। यदि तुम्हारा चित्त तानिक भी विचलित हुआ, यदि तुम्हारा मुखड़ा जरा भी मध्यम हुआ, तो इतना बड़ा पाप करने पर भी तुम सन्देह मिटानेमें सफल न होगी। तुम्हारे जी पर चाहे जो बीते, पर तुम्हें यह पाप करना ही पड़ेगा। परंतु कैसे होगा? क्या मैं हरदौलका सिर उतारूँगी? यह सोचकर रानीके शरीरमें कँपकँपी आ गई। नहीं; मेरा हाथ उस पर कभी नहीं उठ सकता। प्यारे हरदौल! मैं तुम्हें विष नहीं खिला सकती। मैं जानती हूँ, तुम मेरे लिए आनन्दसे विषका बीड़ा खा लोगे। हाँ, मैं जानती हूँ, तुम नाहीं न करोगे। पर मुझसे यह महापाप नहीं हो सकता। एक बार नहीं, हजार बार नहीं हो सकता।

हरदौलको इन बातोंकी कुछ भी खबर न

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

थी। आधीरातको एक दासी रोती हुई उसके पास गई और उससे सब समाचार अक्षर अक्षर कह सुनाया। वह दासी पानदान लेकर रानीके पीछे पीछे सेजमहलके दरवाजेतक गई थी और सब बातें सुनकर आई थी। हरदौल राजाका ढंग देखकर पहले ही ताड़ गया था कि राजाके मनमें कोई न कोई काँटा अवश्य खटक रहा है। दासीकी बातोंने उसके सन्देहको और भी पक्का कर दिया। उसने दासीसे कड़ी मनाही कर दी कि सावधान! किसी दूसरेके कानोंमें इन बातोंकी भनक न पड़े और वह स्वयं मरनेके लिए तैयार हो गया।

हरदौल बुन्देलोंकी वीरताका सूरज था। उसके भौंहेंके तनिक इशारेसे तीन लाख बुन्देले मरने और मारनेके लिए इकट्ठे हो सकते थे। ओरछा उस पर न्यौछावर था। यदि जुझारसिंह खुले मैदान उसका सामना करता, तो अवश्य मुँहकी खाता। क्योंकि हरदौल भी बुन्देला था और बुन्देला अपने शत्रुके साथ किसी प्रकारकी मुहँदेखी नहीं करते, मरना मारना उनके जीवनका एक अच्छा दिल वहलाव है। उन्हें सदा इसकी लालसा रहती है कि कोई हमें चुनौती दे, कोई हमें छेड़े। उन्हें सदा खूनकी प्यास रहती है और वह प्यास कभी नहीं बुझती। परंतु उस समय एक स्त्रीको उसके खूनकी जरूरत थी और उसका साहस उसके कानोंमें कहता था कि एक निर्दोष और सती अबलाके लिए अपने शरीरका खून देनेमें मुँह न मोड़ो। यदि भैयाको यह सन्देह होता कि—"मैं उनके खूनका प्यासा हूँ और उन्हें मारकर राज पर अधिकार करना चाहता हूँ" तो कुछ हर्ज न था। राजके लिए कतल और खून, दगा और फरेब सब उचित समझा गया है। परंतु उनके इस सन्देहका निपटेरा मेरे मरनेके सिवा और किसी तरह नहीं हो सकता। इस समय मेरा धर्म है कि, अपना प्राण देकर उनके इस सन्देहको दूर कर दूँ। उनके मनमें यह दुखानेवाला सन्देह उत्पन्न करके यदि मैं जीता ही रहूँ और अपने मनकी पवित्रता जनाऊँ तो मेरी ढिठाई है। नहीं, इस भले काममें अधिक आगा पीछा करना अच्छा नहीं। मैं खुशीसे विषका बीड़ा खाऊँगा। इससे बढ़कर शूरवीरकी मृत्यु और क्या हो सकती है? क्रोधमें आकर, मारूके मन बढ़ानेवाले शब्द सुनकर रणक्षेत्रमें अपनी जानको तुच्छ समझना इतना कठिन नहीं है। आज सच्चा वीर हरदौल अपने हृदयके बड़प्पन पर अपनी सारी वीरता और साहस न्यौछावर करनेको उद्यत है।

दूसरे दिन हरदौलने खूब तड़के स्नान किया। बदन पर अस्त्रशस्त्र साजे और मुसकुराता हुआ राजाके पास गया। राजा भी सोकर तुरंत ही उठे थे, उनकी अलसाई हुई आँखें हरदौलकी मूर्तिकी ओर लगी हुई थीं। सामने सङ्गमर्मरकी चौकीपर विष मिला पान सोनेकी तश्तरीमें रक्खा हुआ था। राजा कभी पानकी ओर ताकते और कभी मूर्तिकी ओर, शायद उनके विचारने इस विषकी गाँठ और उस मूर्तिमें एक सम्बन्ध पैदा कर दिया था। उससमय जो हरदौल एकाएक घरमें पहुँचे, तो राजा चौंक पड़े और सम्हल कर पूछा, "इस समय कहाँ चले?"

हरदौलका मुखड़ा प्रफुल्लित था। वह हँसकर बोला,—"कल आप यहाँ पधारे हैं, इसी खुशीमें मैं आज शिकार खेलने जाता हूँ। आपको ईश्वरने अजीत बनाया है, मुझे अपने हाथसे विजयका बीड़ा दीजिए।"

यह कहकर हरदौलने चौकीपरसे पानदान उठा लिया और उसे राजाके सामने रखकर बीड़ा लेने लिए हाथ बढ़ाया। हरदौलका खिला मुखड़ा देखकर राजाकी ईर्षाकी आग और भी भड़क उठी। दुष्ट! मेरे घाव पर नमक छिड़-कने आया है? मेरे मान और विश्वासको मिट्टी-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में मिलाने पर भी तेरा जी न भरा ? मुझसे विजयका बीड़ा माँगता है ? हाँ, यह विजयका बीड़ा है । पर तेरी विजयका नहीं, मेरी विजयका ।

इतना मनमें कहकर जुझारसिंहने बीड़ेको हाथमें उठाया । एक क्षणतक कुछ सोचता रहा, फिर मुसकुराकर हरदौलको बीड़ा दे दिया । हरदौलने सिर झुकाकर बीड़ा लिया, उसे माथे पर चढ़ाया । एक बार बड़ी ही करुणाके साथ चारों ओर देखा और बीड़ेको मुँहमें रख लिया । एक सच्चे राजपूतने अपना पुरुषत्व दिखा दिया । विष हालाहल था; कंठके नीचे उतरते ही हरदौलके मुखड़ेपर मुर्दनी छा गई और आँखें बुझ गईं । उसने एक ठण्डी साँस ली और दोनों हाथ जोड़कर जुझारसिंहको प्रणाम किया और जमीन पर बैठ गया । उसके ललाट पर पसीनेकी ठण्ढी ठण्ढी बूँदें दिखाई दे रही थीं और साँस तेजीसे चलने लगी थी । पर चेहरे पर प्रसन्नता और सन्तोषकी झलक दिखाई देती थी ।

जुझारसिंह अपनी जगहसे जरा भी न हिला । उसके चेहरे पर वीर-ईर्षासे भरी हुई मुसकुराहट छाई हुई थी, पर आँखोंमें आँसू भर आये थे । उजेले और अँधेरेका मिलाप हो गया था ।

गोलमालकारिणी सभा ।

जैनसमाज इस समय बड़ी उलझनोंमें पड़ा हुआ है । बेचारा एक उलझनमेंसे निकल नहीं पाता है कि दूसरीमें गड़प ! यह देखकर समाजके कुछ शुभचिंतकोंने एक नई सभा स्थापित की है । स्थापकोंका सिद्धान्त है कि कोई उलझन कभी सुलझती नहीं । लोग व्यर्थ ही सिरखप्पी किया करते और रागद्वेष बढ़ाया करते हैं । इन उलझनोंको सुलझानेमें जितना वक्त और बल लगाया जाता है उसका सौवाँ हजारवाँ हिस्सा भी यदि गोलमाल करनेमें लगाया जाय तो समाज उलझनोंके दुःखको एकदम भूल जाय । उलझनोंके विषदन्त उखड़ जायँ, वे किसीको सता ही न सकें । अतएव गोलमाल करना इस सभाका मुख्य उद्देश्य है और इसी कारण इसका अन्वर्थक नाम भी गोलमालकारिणी सभा रक्खा गया है । मैं श्रीगड़बड़ानन्द शास्त्री बहुसम्मतिसे इस सभाका आनरेरी सैक्रेटरी बनाया गया हूँ । केवल परोपकारके लिए ही मैं इस सभाकी रिपोर्ट जैनहितैषीके द्वारा प्रकाशित किया करूँगा । हितैषीके सम्पादकने मेरा चित्र और चरित्र प्रकाशित करनेका वादा करके मुझे रिपोर्ट भेजते रहनेके लिए राजी कर लिया है ।

सभाका पहला जल्सा बड़ी धूमधामसे हुआ । सभासदोंका उत्साह उमड़ा आता था । एक सज्जनने ब्रह्मचारी गोलमालानन्दजीको सभापति बनानेका प्रस्ताव उपस्थित किया और कहा कि गोलमाल करनेमें जितने सिद्धहस्त आप हैं, उतना इस समय कोई भी नजर नहीं आता । आप अपनी इस विद्याके बलसे पण्डित और बाबू, तेरहपंथी और बीसपंथी, छापिया और गैर छापिया, सबको ही वशमें रख सकते हैं । एक ही साथ आप सबके शुभचिन्तक हैं । सारी संस्थाओंकी पोलोंको आप अपने विस्तृत पर फैलाकर उसी तरह ढँके रहते हैं जिस तरह मुर्गी अपने अण्डोंको । क्या मजाल जो उन्हें हवा लग जाय । यदि कोई जरा भी उनके विरुद्ध चूँ चरा करे, तो आप उस पर दो चार चोंचें जमा देनेको भी तैयार रहते हैं । दूसरे सज्जनने इस प्रस्तावका अनुमोदन करते हुए कहा कि सबसे बड़ी बात यह है कि गोलमालानन्दजी अपने श्रद्धानको दिनों दिन शुद्ध करते जाते हैं और कुछ लोगोंने आपको जो 'सुधारक' के नामसे प्रसिद्ध कर रक्खा था उसे धोकर साफ करते जाते हैं । अब

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आप जैनधर्मकी प्रत्येक बातपर अगाध श्रद्धा प्रकट करते हैं । भगवान् कुन्दकुन्दाचार्यके ग्रन्थोंको आप जिस पूज्य दृष्टिसे देखते हैं, उससे भी तिलभर अधिक दृष्टिसे भद्रबाहुसंहिताके कर्ताको देखते हैं । विधवाविवाहके पक्षपाती भी अब आप नहीं हैं । आपने तमाम जैन पण्डितोंसे इसके विरोधमें लेख लिखनेका आग्रह किया है । एक और सेठजीने इसका समर्थन करते हुए कहा कि आप इतिहासके भी अच्छे जानकार हैं । आप तमाम पट्टावलियों, कथाओं और किंवदान्तियोंको सोलह आना सच समझते हैं। जिस प्रतिमापर कोई सन् संवत् न हो, उसे आप चौथे कालकी बनी हुई समझते हैं । यह आपकी खास खोज है । आपने अपने किसी सहधर्मीकी लिखी हुई एक यात्रापुस्तकको किसी भण्डारमेंसे खोज निकाली है और उसे छपाकर प्रकाशित भी कर दिया है । और और लोग तो उसे किसी अफीमचीकी लिखी हुई गहरी गप्प समझते हैं, परन्तु आपने उसे बिलकुल सच समझा है और उसके अनुसार आप एक बड़े संघके साथ एक दुर्गम तीर्थकी यात्राके लिए जाना चाहते हैं । आपने एक बार प्रकट किया था कि जर्मन आदि देशोंने जो विज्ञानके बड़े बड़े आविष्कार किये हैं, वे सब हमारे ग्रन्थोंको ही पढ़कर किये हैं । भला ऐसी ऊँची समझ रखनेवाला सभापति आपको और कौन मिलेगा ?

तालियोंकी प्रचण्ड गड़गड़ाटके बीच श्रीगोलमालानन्दजीने सभापतिका आसन स्वीकार किया और अपना विस्तृत व्याख्यान पढ़ना शुरू किया । उसे सुनकर कुछ श्रोता कानाफूसी करने लगे कि यह आपका लिखा हुआ नहीं है । यह देखकर आपने कहा कि यद्यपि जैनोंके सभापतियोंको अपना व्याख्यान दूसरोंसे लिखवानेका बहुत पुराना अधिकार है; परन्तु मैं उसे काममें नहीं लाया हूँ । यह मेरा खुदका लिखा हुआ है और इसके लिए मैंने सामायिकके बादके पूरे दो घण्टे खर्च किये हैं । क्या आप मेरे गहरे आत्मानन्दको छलका देनेवाले 'अहः' 'ओह' आदि शब्दोंसे भी नहीं समझ सकते कि यह मेरी ही चीज है ? चक्रवर्तियोंकी एक हजार रानियोंवाली कथा पर विश्वास न करनेवालोंका मुँह बन्द करनेके लिए मैंने जो सैकड़ों गायोंका स्वामी बनकर रहनेवाले साँड़का बेजोड़ दृष्टान्त ढूँढ़ निकाला है, वह भी तो इस व्याख्यानमें मौजूद है; जिससे आपको इसके मेरे लिखे होनेमें कोई शंका न होनी चाहिए ।

आपके व्याख्यानसे लोग तन्मय हो गये और सभामें बैठे बैठे ही झुकझुककर अनुभवानन्द करने लगे । जब एक बड़ी तोंद और विस्तृत पगड़ीवाले सज्जनने भीमगर्जनसे बोलना शुरू किया, तब उन्हें मालूम हुआ कि रातकी सब्जैक्ट कमेटीमें तय किये हुए प्रस्ताव पेश किये जा रहे हैं और तब बिचारोंको आँखें खोल देनी पड़ी । नीचे लिखे प्रस्ताव यथा नियम उपस्थित किये गये और अनुमोदनादिके बाद पास किये गये ।

१ त्रिवर्णाचार, भद्रबाहुसंहिता आदिके परीक्षकोंकी बुद्धि पर सभा शोक प्रकाशित करती है जो जरूरतसे ज्यादा सत्यवक्ता बन रहे हैं और जैनविद्वानोंसे प्रार्थना करती है कि वे उन्हें जिनवाणीनिन्दाके महान् पापसे बचानेके लिए जीजानसे उद्योग करें ।

१ जैनमित्र संपादक महाशयको सभा इस लिए धन्यवाद देती है कि उन्होंने भद्रबाहुसंहिताकी परीक्षाको जैनमित्रमें उद्धृत नहीं किया और न उसके अनुकूल अपनी सम्मति प्रकाशित की। इस प्रशंसनीय कार्यसे सभा आपका वह अपराध क्षमा कर देती है जो आपने उमास्वामी श्रावकाचारादिकी परीक्षाको जैनमित्रमें उद्धृत करके किया था ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३ दिगम्बरजैनशास्त्रीयपरिषत्का काम बड़े जोरशोरसे चल रहा है। थोड़े ही समयमें यह अनुभव होने लगा है कि शास्त्रीगण लोगोंके प्रश्नोंका उत्तर समय पर नहीं देते। दे भी नहीं सकते। क्योंकि काम दिनपर दिन बढ़ता जाता है। ऐसी दशामें परिषत्को चाहिए कि जो प्रश्न उनके पास निर्णयके लिए भेजे जायँ उनके साथ प्रति प्रश्न पाँच रुपयाके हिसाबसे दक्षिणा भेजी जाय और डाँकखर्च जुदा। यदि काम थोड़ा हो, तो भी दक्षिणा अवश्य दी जानी चाहिए। इस समय धर्मकार्यमें भी दक्षिणा लेना जायज है। वकील लोग जब धर्मके मुकद्दमोंमें फीस लेते हैं, तब पण्डित लोगोंको दक्षिणा क्यों न दी जाय? इस दक्षिणाके कार्यमें जो कुछ खर्च होगा, उसका प्रबन्ध गोलमालकारिणी सभा करेगी।

४ तीर्थक्षेत्रकमेटीके महामंत्री लाला प्रभुदयालजीका स्तीफा मंजूर हो गया, यह जानकर सभा कमेटीको प्रेरणा करती है कि वह उनको उनके कामका एक सर्टिफिकेट देवे और उन पर कमेटीका जो लगभग चार हजार रुपया निकलता है उसे प्रसन्नतापूर्वक माफ कर देवे।

५ श्रीयुक्त पं० पन्नालालजी वाकलीवालको उनके नित्य प्रतिके नियम परिवर्तन करने, ग्रन्थोंका मूल्य बराबर बदलते रहने और नये नये विभाग तथा मण्डलियाँ स्थापित करनेके उपलक्ष्यमें सभा धन्यवाद देती है। इस प्रकारके कार्य गोलमालकारिणी सभाके उद्देश्योंके पोषक हैं।

६ जैनहितैषीमें प्रकाशित हुई जैनसिद्धान्तभास्करकी समालोचनासे सेठ पद्मराजजी रानीवालेको जो दुःख हुआ है, उसके प्रति सभा समवेदना प्रकट करती है और सम्मति देती है कि वे समालोचकको और उसके साथियोंको विधवाविवाहका प्रचारक बतलाकर इस बहानेसे उन्हें खूब गालियाँ दे लें और इस तरह अपने दिलके फफोड़ोंको फोड़ लें। जैनसमाजके पत्र आपके गालिदाता लेखोंको जुदा जुदा नामोंसे बड़ी प्रतिष्ठाके साथ छापनेको तैयार हैं।

७ इन्दौरके धनकुबेर सेठ हुकुमचन्दजीने प्रकट किया है कि यदि मेरी धर्मपत्नी डेढ़ वर्षके भीतर नीरोग हो जायँगी तो मैं एक लाख रुपये भरकी चाँदीकी तीन प्रतिमायें बनवाकर विराजमान कराऊँगा। मालूम नहीं, जिनेन्द्रदेवके दरबारमें इस बड़ी भारी रिश्वत पर कुछ खयाल किया जायगा या नहीं। वहाँ जिस तरहका अँधेर और लापरवाही सुनी जाती है, यदि वह सच हो तो इस समयकी 'धर्मप्रभावना' की गाड़ी अधिक दिनोंतक न चल सकेगी। इस लिए गोलमालकारिणी सभाकी राय है कि इस विषयमें किसी शासनरक्षक देवकी मार्फत एक 'मेमोरियल' भेजा जाना चाहिए, जो भगवान्के चित्तको इस ओर आकर्षित करे। उसमें लिखा जाय कि यह रकम मामूली नहीं है। डेढ़ वर्षकी मोहलत भी काफी है। सेठजी करोड़पति हैं। उन्होंने एक करोड़ रुपया युद्धऋणमें दिया है। यदि उनका भी खयाल न किया जायगा तो फिर काहेको कोई आपकी सेवा करेगा? यदि आप इस समय सेठजीका काम कर देंगे, तो आगे सेठजी भी आपके बड़े काम आयँगे। आश्चर्य नहीं, जो वे अबकी वार आपके लिए एक चाँदीका एक मन्दिर ही बनवा दें। आपकी इन चाँदीकी प्रतिमाओंकी सच्ची शोभा तो तभी होगी। इत्यादि।

८ पं० उदयलालजी काशलीवालने एक वर्षसे अधिक हुआ, लेखादि लिखना बन्द कर दिया है। इसके लिए गोलमालकारिणी सभा उन्हें धन्यवाद देती है। आशा है कि अब आगे उनके द्वारा 'मेरी दक्षिणकी यात्रा' 'अप्रतिष्ठित प्रतिमायें पूज्य है या नहीं' जैसे गोलमालविरोधी लेख नहीं लिखे जायँगे।

ये सब प्रस्ताव सर्वसम्मतिसे पास किये गये। सभापतिको धन्यवाद देकर सभा विसर्जित हुई। दूसरा अधिवेशन शीघ्र ही होनेवाला है। उसकी रिपोर्ट भी शीघ्र भेजी जायगी।

श्रीगड़बड़ानन्द शास्त्री।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विविध प्रसङ्ग ।

१ संयुक्त जैनपुस्तकालयका विरोध ।

इन्दौरकी गत 'महावीर जयन्ती' पर एक महावीरजैनपुस्तकालयके स्थापित करनेका प्रस्ताव हुआ था, और उसमें वहाँके धनकुबेर सेठ हुकमचन्दजीने तथा अन्यान्य धनिकोंने सहायता देनेका वचन दिया था। महावीर पुस्तकालयमें तीनों सम्प्रदायोंके ग्रन्थोंका बड़ा भारी संग्रह रहेगा, जिससे जैनधर्मके जिज्ञासुओं-को—जैनों और अजैनों दोनोंको लाभ होगा। इस प्रकारके एक नहीं अनेक पुस्तकालयोंके स्थापित करनेकी आवश्यकता है और इन पुस्तकाल-योंकी उपयोगिताको इस समयका धर्मान्धसे भी धर्मान्ध पुरुष स्वीकार करता है। परन्तु जैन-गजटके धर्ममर्मज्ञ सम्पादक इसका घोर विरोध करते हैं और सेठजीको शिक्षा देते हैं कि आप महासभाके सभापति हैं, शुद्ध तेरहपंथी हैं, आपको ऐसी उदारता नहीं दिखलानी चाहिए थी। आप भारतजैनमहामण्डलके भक्तोंकी बातोंमें आ गये हैं। तीनों सम्प्रदायके ग्रन्थ संग्रह करनेके कार्यमें अमूढदृष्टि अंगका पालन नहीं होगा। दिगम्बरजैनग्रन्थोंके अतिरिक्त और सब ग्रन्थ दुःश्रुति हैं। उनका संग्रह कर-नेमें मिथ्यात्वके अनुमोदनका दोष लगेगा। सेठजीको इसका विचार कर लेना चाहिए। इत्यादि। जिस तरह आषाढ़के अन्धेको हरा ही हरा सूझा करता है, उसी तरह इन धर्ममर्म-ज्ञोंको इस समयका प्रत्येक कार्य मिथ्यात्वके गहरे रंगसे रँगा हुआ दिखलाई देता है। इनके हृदय इतने छोटे हैं कि उनमें दूसरोंके लिए जरा भी स्थान नहीं। ये इसका विचार भी नहीं कर सकते कि हम दूसरे मतों या सम्प्रदाय-वालोंके साथमें बैठकर भी अपने धर्मको 'बर-करार' बनाये रख सकते हैं। इनका सुकुमार धर्म ऐसा छुईमुईका झाड़ है कि दूसरोंका स्पर्श होते ही कुम्हला जायगा। इसी लिए ये उसे दूसरोंकी छायासे बचाये रखना चाहते हैं। पर धर्म इस तरह डिब्बीमें बन्द करके रखनेकी चीज नहीं है। उसे विशाल विश्वमें अपने सह-योगियोंके साथ निःसंकोच भावसे खड़ा होने देना चाहिए। इसके लिए विशाल हृदय चाहिए। ये सार्वजनिक पुस्तकालयकी स्थापनाके कार्य ज्ञानवृद्धिकी विश्वव्यापिनी भावनाके वशवर्ती होकर किये जाते हैं। किसी मतकी निन्दा या प्रशंसाके तुच्छ विचार उनके स्थापकोंके हृदयमें स्थान नहीं पाते। हमारे मन्दिरों और मठोंमें जो बड़े बड़े प्राचीन भण्डार हैं, उनमें हजारों जैनेतर ग्रन्थोंका संग्रह पाया जाता है और अजैनोंके पुस्तकालयोंमें सैकड़ों जैनग्रन्थ पाये जाते हैं। यदि हमारे प्राचीन आचार्योंके भी ऐसे ही तुच्छ विचार होते, तो वे अपने ग्रन्थोंमें दूसरे मतोंकी उत्कृष्ट आलोचना कैसे कर पाते? हमारे कई आचार्य 'स्वसमयपरसमयवेदी' कहलाते थे, सो वे क्या दूसरोंके ग्रन्थोंको अपने भण्डारोंमें रक्खे विना ही 'परसमयवेदी' हो गये थे? और महावीर पुस्तकालयमें सेठजीके धनसे जो ग्रन्थ रक्खे जायँगे, सो आपने यह कैसे जान लिया कि वे उन्हें परमाराध्य और प्रमाणभूत मानकर ही रक्खेंगे जिससे कि जैना-भासोंके प्रशंसक कहलायँगे? इसके सिवाय क्या उनकी और कोई मानता ही नहीं हो सकती है? 'तीनों सम्प्रदायोंके ग्रन्थोंको लोग पढ़ें, मनन करें और देखें कि उनमें कौनसा सत्य है, मुझे अपने सम्प्रदाय पर पूरा विश्वास है, अवश्य ही उन्हें मेरा ही सम्प्रदाय सत्य मालूम होगा,' इस तरहकी भावनासे भी तो वे तीनों सम्प्रदा-योंके ग्रन्थोंके लिए धन दे सकते हैं। इसके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिवाय यह पुस्तकालय केवल जैनोंके ही लिए तो खुलता नहीं है, प्रो० जौहरी जैसे अन्यधर्मी विद्वानोंकी जिज्ञासाको शान्त करनेके मुख्य उद्देश्यसे ही इसकी स्थापनाका विचार हुआ है और ऐसे लोगोंको जैनधर्मका तुलनात्मक पद्धतिसे अध्ययन करनेके लिए, उसके स्याद्वाद, कर्मवाद, अहिंसावाद, अनीश्वरवाद आदि सिद्धान्तोंका रहस्य समझनेके लिए तीनों सम्प्रदायोंके ग्रन्थ उपयोगी हो सकते हैं और इस दृष्टिसे जैनधर्मके तीनों सम्प्रदायोंमें सामान्यतः एकरूपसे मानी हुई उक्त बातोंका बोध अन्यधर्मियोंको हो सकता है और यह जैनधर्मका साधारण उपकार नहीं है। अवश्य ही इससे सेठजी मिथ्यात्वके पोषक नहीं किन्तु निषेधक बन सकते हैं। और इस पुस्तकालयमें सेठजीके सिवाय अन्य सम्प्रदायके लोग भी तो सहायता देंगे। आपने यह कैसे समझ लिया कि केवल सेठजीका ही धन लगेगा जिस पर कि आपने अपने तेरहपंथका एकाधिपत्य स्थिर कर रक्खा है? और महाराज, यह भी तो सोचिए कि जिन सेठोंको आप इस ज्ञानवृद्धिके कामसे रोकते हैं, उनका धन क्या केवल सम्यक्त्वकी ही वृद्धिमें खर्च होता रहा है? जिस समय आपके इन्हीं तेरापंथी सेठोंने इन्दौरके किंग एडवर्ड हास्पिटलको लगभग दो लाख रुपयोंका दान किया था, उस समय आप कहाँ गये थे? सेठ कल्याणमलजीने (आपकी दृष्टिसे) मिथ्यात्ववर्द्धक अँगरेजीका हाईस्कूल खोला, खुर्जावाले सेठोंने एक ईसाईके द्वारा चलनेवाला अनाथालय खोला, न जाने कितने रायबहादुरसेठोंने अपने गौरांग प्रभुओंकी आज्ञानुसार पब्लिकके अनेक कामोंमें लाखों रुपये दिये, उद्यानभोज कराये और डालियाँ लगवाई, आपके लाला जम्बूप्रसादजी जैसे धर्ममूर्तियोंने मुकद्दमे जीतनेकी खुशियोंमें तथा दूसरी खुशियोंमें गौहरजान और उसकी बहनोंके सुदूरविश्रुत नृत्य कराये और कोट्यावधि जनसंहारक युद्धके चन्देमें जैनोंने लाखों रुपये सहायतार्थ दे दिये। ऐसी दशामें यदि सेठ हुकमचन्दजी और उनके भाई तीनों सम्प्रदायके एक पुस्तकालयके लिए दशपच्चीस हजार रुपये दे देंगे, तो कौनसा बड़ा अनर्थ हो जायगा? पर इसमें हम आपका दोष नहीं समझते। जिनके मनोंमें रातदिन तीनों सम्प्रदायोंको आपसमें लड़ानेकी भावनायें उठा करती हैं और जो इसी कार्यके लिए लोगोंको दान करनेकी प्रेरणा करते हैं, वे तीनों सम्प्रदायोंमें सौहार्द बढ़ानेवाले ऐसे पुण्यकार्योंमें धन कैसे लगने देंगे?

२ आत्मघातसे सोलहवें स्वर्गकी प्राप्ति।

ज्येष्ठ सुदी १ के जैनगजटमें पद्मिनीजीके नाम एक 'खुली चिट्ठी' प्रकाशित हुई है और उसमें राजपूतरानी पद्मिनीको 'सोलहवाँ स्वर्गनिवासी अच्युतेन्द्र' प्रकट किया है। चिट्ठीके लेखकने अपना नाम प्रकट नहीं किया है, इस लिए क्या हम जैनगजटके धर्ममर्मज्ञ सम्पादक महाशयसे पूछ सकते हैं कि आप तो बिना शास्त्रप्रमाणके कोई बात ही नहीं करते हैं, अपने प्रत्येक ही लेखमें मौके बेमौके जरूरत-गैरजरूरत गोम्मटसार आदिकी दुहाई दिया करते हैं; फिर यह पद्मिनीके सोलहवें स्वर्गकी बातको आपने किस शास्त्रके आधारसे ठीक समझा है? पद्मिनी मेवाड़के राणा भीमसिंहकी रानी थी, वह वीरपत्नी अवश्य थी; परन्तु जैनधर्मकी धारण करनेवाली नहीं थी। उसका विश्वास उस धर्म पर था जिसे आप 'मिथ्यात्व' के नामसे पुकारते हैं। उसके सिवाय वह तीव्र मोहके वशीभूत होकर आगमें जल गई थी— दूसरे शब्दोंमें उसने आत्महत्या की थी और 'गिरिपातोऽग्निपातश्च लोकमूढं निगद्यते' के अनुसार लोकमूढ़ताका अनुसरण किया था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्या उसके ये कार्य सोलहवें स्वर्गके अच्युतेन्द्र होनेके योग्य हो सकते हैं ? जैनधर्म हिन्दुओंकी सतीदाहप्रथाका सदासे विरोधी रहा है; पर यह खुली चिट्ठी उसको उलटी उत्तेजना देती है—आत्महत्याको पुण्य बतलाती है। इस बातको तो हम मान सकते हैं कि पद्मिनी आदि स्त्रियाँ श्रेष्ठ पतिव्रता थीं; उनकी वह एकनिष्ठता और पतिभक्ति साधारण नहीं थी, जिसके वश होकर उन्होंने अपने प्राणोंको भी तुच्छ समझा था, परन्तु आगमें जलकर वे 'अच्युतेन्द्र' हो गई होंगी और अब वहाँसे चयकर शायद आगामी कालमें तीर्थंकर पद पालेंगी, इस बातको आप और आपके धर्मसे अविरुद्ध लिखनेवाले लेखक ही सत्य बतला सकते हैं।

३ सम्पादकोंका अपमान।

गत २४ जूनको 'जैनसिद्धान्तविद्यालय' के सम्बन्धमें इंदौरमें जो सभा हुई थी, उसकी कुछ ऐसी बातोंको जैनपत्रोंने दबा दिया है जिन पर चर्चा होनेकी बहुत बड़ी आवश्यकता थी। इन्दौरके सहयोगी 'मल्लारिमार्तण्डविजय' ने उन पर प्रकाश डालनेकी कृपा की है। वह लिखता है—"जैनसमाज कितना पिछड़ा हुआ है और उसके कुछ लोग सभ्यतासे कितनी दूर रहते हैं यह बात बड़े दुःखके साथ उस दिन देखी गई। समाजसुधारकी चर्चा अभी कुछ ही दिनोंसे जैनोंमें होने लगी है। इस समाजके कुछ सुशिक्षित नवयुवक अन्तर्जातीय विवाह और विधवाविवाह आदि पर अपने स्वतंत्र विचार प्रकाशित करने हैं और परम्परागत कुरीतियोंके खिलाफ जोरोंसे आवाज उठाने लगे हैं। जातीय उत्थानके ये शुभ चिह्न हैं। जैनसमाज धनमें अग्रसर होने पर भी विद्यामें पिछड़ी हुई है। उसमें रूढियोंके ही भक्त विशेषतासे मिलेंगे। सुधारकोंका अपमान करनेमें—उनके पथमें काँटे बिछानेमें ये 'बाबा वाक्यं प्रमाणं' माननेवाले लोग कोई कसर नहीं उठा रखते। उस दिन जैनमित्रके सम्पादक श्रीयुत शीतलप्रसादजी ब्रह्मचारीका भर सभामें ऐसे ऐसे कुशब्दों द्वारा अपमान किया गया कि जिस मनुष्यमें जरा भी मनुष्यत्व है, वह ऐसे शब्दोंको अपनी जबान पर नहीं ला सकता। ब्रह्मचारीजीका अपराध जहाँतक हम समझते हैं, केवल यही था कि उन्होंने एक दफा जैनोंके अन्दर अन्तर्जातीय विवाह पर अपनी अनुकूल सम्मति प्रकाशित की थी। जैनप्रभातके सम्पादक बाबू सूरजमलजीका भी ऐसा ही हाल हुआ। वृद्धविवाहके विरुद्ध जोशीले लेख लिखनेके बदले और एक वृद्धविवाह पर कड़ी टीका करनेके बदले दो एक मनुष्य-नामधारियोंने अपने मुँहसे ऐसे ऐसे जौहर निकाले जो उन्हींके लिए शोभास्पद कहे जा सकते हैं। सभ्य मनुष्यकी ताकत नहीं कि वे ऐसे शब्दोंको काममें लावें।" इसके बाद उक्त पत्र लिखता है कि "इस सभाके सभापति दानवीर सेठ हुकमचन्दजीने इन लोगोंको समझानेकी चेष्टा करते हुए कहा कि हमें अपनी कमजोरियोंको सुननेके लिए हमेशा तैयार रहना चाहिए। अगर कोई अखबार हमें अपने दुर्गुण बतलावे तो हमें इसके लिए उनपर नाराज होनेके बदले अपने दुर्गुण निकालनेका प्रयत्न करना चाहिए। मैंने अपने पुत्रके विवाहमें वेश्यानृत्य कराया था। इस पर समाचारपत्रोंने मुझ पर कड़ी टीका की। मैं इस पर कुछ नाराज नहीं हुआ। आज मैं इस सभामें सबके सामने वेश्यानृत्य न करानेकी कसम खाता हूँ। इन बातोंके साथ साथ सेठ हुकमचन्दजीने एक ऐसी बात कह डाली—जो उन जैसे जवाबदार और बुद्धिमान् सज्जनके लिए योग्य नहीं कही जा सकती। आपने कहा कि अखबारवालोंका क्या ? जो आदमी उन्हें पाँच दस रुपया दे देता है, उसीके पक्षमें वे लिख देते हैं।....सेठ-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीने जैनपत्रोंके जिन सम्पादकोंको लक्ष्य कर यह बात कही है जहाँ तक हम जानते हैं वे पत्र बड़ी निर्भीकतासे चलाये जाते हैं और जो संपादक रिश्वत लेते हैं वे उतनी निर्भीकतासे नहीं लिख सकते। हमें आशा है कि सेठ साहब अपने इन वचनोंको वापस लेंगे।" हमने जब इस समाचार-पर विचार किया तो हमें मालूम हुआ कि उक्त सभामें ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीका और बाबू सूरजमलजीका जो अपमान हुआ था, वह सेठजी-को यथेष्ट नहीं मालूम हुआ–इस लिए उन्होंने सारे ही सम्पादकोंका अपमान करके उसकी पूर्ति कर डाली। ऊपराऊपरी विचार करनेवाले यही समझेंगे कि उन्होंने अपमान करनेवालोंको समझाया; परन्तु वास्तवमें वे समझनेके लिए नहीं समझाये गये, किन्तु इसलिए समझाये गये कि उस समझानेके भीतर उन्हींकी बात प्रकारान्तरसे पुष्ट कर दी जाय। जैसा कि उक्त सहयोगी लिखता है और जैसा कि हमने उक्त सभाके दर्शकोंके मुँहसे सुना है, ब्रह्मचारीजीका अपमान इतना असह्य था कि यदि उसे सेठजी सचमुच ही अपमान समझते, तो वे उसका यह इलाज न करते; केवल समझा ही न देते, अपमान करनेवालोंको धक्के देकर सभासे अलग करवा देते; परन्तु ऐसा तो तब किया जाता जब सेठजीकी नजरमें ब्रह्म-चारीजीका या दूसरे सम्पादकोंका कुछ मूल्य होता। उनके हृदयमें तो उलटी एक अस्पष्ट आनन्दकी लहर उठ रही होगी; क्योंकि इसी वृद्धविवाहके सम्बन्धमें जिसके कि कारण ब्रह्मचारीजी और सूरजमलजीका अपमान किया गया है, स्वयं सेठ-जी पर भी तो सख्त टीका की गई थी। इस वृद्धविवाहके सौदेके १५००) रुपये सेठजीकी दूकान पर ही जमा कराये गये थे और इस कारण जातिप्रबोधक आदि पत्रोंने सेठजीको खूब आड़े हाथों लिया था। ऐसी दशामें यदि सेठजीने दो सम्पादकोंका प्रत्यक्ष अपमान होने दिया और शेष सब पत्रोंको दश दश पाँच पाँच रुपयेंके लोभमें चाहे जिसके पक्षमें लिख देनेवाला बना दिया, तो हमें आश्चर्य न मानना चाहिए।

पत्रसम्पादकोंका यह घोर अपमान है। उनका इससे और अधिक अपमान नहीं हो सकता। मालूम होता है कि सेठजी इस समय धनके मदसे उन्मत्त हो रहे हैं, इसी कारण उनके मुँहसे इस तरह बेलगाम बातें निकल जाती हैं, और इधर अधिकांश समाचारपत्र–विशेष करके हमारे जैनपत्र दुर्बल, निःसत्व और धनियोंकी कृपाके आधारसे चल रहे हैं। यदि ऐसा न होता तो इस समय सेठजीको मालूम हो गया होता। वे जान जाते कि पत्रोंकी शक्ति कितनी होती है। जैनपत्रोंकी इससे अधिक दुर्बलता और स्वात्मगौरवशून्यता क्या हो सकती है कि वे इस घोर अपमानको पानीके घूँट पी गये। दो महीनेसे अधिक होनेको आये, पर उनमेंसे किसीने भी चूँ न की, बल्कि इसी बीचमें एक पत्रने तो उनका दर्शनीय चित्र भी प्रकाशित कर डाला! पत्रोंकी प्रतिष्ठाका श्राद्ध कर डाला!!

पर सेठजीके कथनमें सत्यताका भी कुछ अंश है, इस बातको हमें अवश्य स्वीकार करना होगा। जैनसमाजमें अधिकांश पत्र ऐसे ही हैं, जो धनियोंके इशारों पर नाचा करते हैं। इन्हें न अपनी प्रतिष्ठाका खयाल है, न अपने कर्त-व्यका ज्ञान है, और न समाजकी भलाई बुरा-ईका। बड़े आदमियोंको तो इन्होंने उनकी प्रशंसा कर-करके बहुत ही बिगाड़ दिया है। ये लोग ऐसे ऐसे धनियोंके भी चित्र और चरित्र प्रकाशित करनेमें संकोच नहीं करते, जिनकी प्रशंसा करना तो दूर रहा, जिनकी निन्दा न करना पाप है! पर इससे इन्हें क्या सरोकार। चित्र बनवाने और छपानेका खर्च भर इन्हें मिल जाना चाहिए। चित्र जिसका है, वह नरकका कीड़ा हो तो क्या और स्वर्गका देव हो तो क्या?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऐसी दशामें यदि सेठजीने यह कह दिया कि—"दश पाँच रुपये जो कोई इन्हें दे देता है, ये उसीके पक्षमें लिख देते हैं" तो हमारी समझमें सर्वथा असत्य तो नहीं हुआ। हमको मालूम है कि स्वयं सेठजीके चित्र कई पत्रोंमें इसी तरह प्रकाशित हुए हैं और उनका खर्च सेठजीकी दूकानसे दिया गया है।

पर सेठजी साहब, सभी पत्र ऐसे नहीं हैं। यदि सभी ऐसे होते तो वेश्यानृत्य करानेके उपलक्ष्यमें आप पर बेशुमार धिक्कार और तिरस्कारोंकी वृष्टि न होती और न आपको इस सभामें उसके त्यागकी प्रतिज्ञा करनी पड़ती। ऐसे भी कई पत्र मौजूद हैं, जिन पर न किसी धनी मानीकी कृपा है और न जिनकी आर्थिक अवस्था अच्छी है; फिर भी वे धनियोंके अन्यायों और अत्याचारोंको निःशंक होकर प्रगट करनेके लिए सदा सन्नद्ध रहते हैं और आपके दश पाँच नहीं, दश पाँच लाख-रुपयोंको भी उसी दृष्टिसे देखते हैं, जिस दृष्टिसे आप पत्रसम्पादकोंको देखते हैं।

हम नहीं चाहते कि आप अपने शब्दोंको वापस लौटावें। नहीं, आप पत्रसम्पादकोंका इससे भी अधिक अपमान करें, जिसकी लज्जासे ये अपने आत्मगौरवकी रक्षा करनेमें और अपना कर्तव्य समझनेमें कुछ तो सावधान हो जायँ।

४ विरोधी लेखों पर विचार।

इधर कई महीनोंसे कुछ जैनपत्रोंमें—विशेष करके जैनगजटमें ऐसे लेखोंकी बाढ़ आ रही है, जिनमें हम पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपसे आक्रमण किये जा रहे हैं और हम पानी पी-पीकर कोसे जा रहे हैं। चाहे जिस लेखको आप उठा लीजिए, उसका प्रधान भाग यही 'गालिप्रदान' होगा। गाली भी कैसी, जिनका सहन करना सबका काम नहीं। दाहोदकी सभामें यह प्रस्ताव पास हुआ था कि विधवाविवाहके विरोधमें लेख लिखे जावें। हम समझते थे कि इस प्रस्तावसे कमसे कम यह लाभ अवश्य होगा कि विधवाविवाहके विरुद्धमें कुछ नई युक्तियाँ पढ़नेको मिलेंगी; परन्तु देखते हैं कि लोग लेख तो लिखते हैं, पर युक्तियोंके खोजनेकी झंझटमें नहीं पड़ना चाहते। वे युक्तियोंका स्थान गालियोंसे भर देनेमें ही अपनेको सिद्धहस्त सिद्ध कर रहे हैं। सुगमता भी इसीमें है। आप अबतकके निकले हुए उक्त सब लेखोंको पढ़ जाइए, उनमें आपको युक्तियोंके स्थानमें क्या मिलेगा—हाय हाय! बड़ा गजब हो रहा है। जो देश ऐसा पवित्र था, जहाँकी स्त्रियाँ ऐसी सती थीं, जहाँकी स्त्रियाँ पतियोंके साथ जलकर मर जाती थीं, उसी देशमें अब विधवाविवाहकी चर्चा करनेवाले कुपूत पैदा हो गये हैं! हे पृथ्वी, तू धँस क्यों नहीं जाती! इन पापियोंकी जीभ निकलकर बाहर क्यों नहीं गिर पड़ती! न हुआ कोई जैनराजा, नहीं तो इनको मालूम हो जाता। जो इस विषयकी चर्चा करते हैं, वे व्यभिचारी हैं, अपनी विषयवासनायें इससे चरितार्थ करना चाहते हैं और स्वार्थान्ध हैं। कुछ बातें युक्तियाँ कहकर पेश की जाती हैं, पर उनमें सार कुछ नहीं होता जैसे—'विधवा-विवाह' यह शब्द ही नहीं बन सकता। क्योंकि विवाह कन्याका होता है और विधवा कन्या नहीं। मानों शब्दशास्त्रमें कोई ऐसी बड़ी शक्ति है जो विधवाको किसीकी पत्नीही न बनने देगी। अरे भाई, 'विधवाविवाह' मत कहो, इसे 'धरेजा' आदि और ही कुछ कहलो जिसमें आपके व्याकरणके नियमका भंग न हो जाय। स्त्रियोंको अधिकार नहीं है, आदि बातें भी ऐसी ही कही जाती हैं। हितैषीमें कुछ लेख, ग्रन्थोंकी परीक्षा आदिके सम्बन्धमें निकले हैं और कुछमें यह लिखा गया है कि अमुक ग्रन्थके कर्ता दिगम्बर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं श्वेताम्बर हैं, अथवा जैनोंमें अमुक बातें अमुक समयमें दाखिल हुई हैं । इनको लक्ष्य करके भी कुछ आक्षेपयुक्त लेख लिखे गये हैं । इस विषयमें उनकी युक्तियाँ इस ढँगकी हैं:— ये धर्मको डुबा देनेके लिए तैयार हुए हैं । इन्हें धर्मशास्त्रों पर श्रद्धा नहीं है । ये अपनेको अवतार समझते हैं । ये श्वेताम्बरी हो गये हैं । इन्हें दिगम्बर धर्म पर श्रद्धा नहीं है । बस, इसी तरहके लेखोंसे हमारे समाजके वे लोग भड़काये जा रहे हैं, जिनमें स्वयं कुछ सोचने-विचारनेकी शक्ति नहीं है—जो केवल दूसरोंके इशारों पर चलते हैं और दुर्भाग्यसे समाजमें ऐसे ही लोगोंकी संख्या अधिक है। पर हमें इसकी परवा नहीं। हम जो कुछ कर रहे हैं, वह जनसाधारणकी सच्ची कल्याण कामनासे कर रहे हैं । सत्यको छुपानेको हम अधर्म समझते हैं और सत्यको प्रकाशित करना—चाहे वह अप्रिय ही क्यों न हो—परम धर्म । ऐसी गालियोंसे हम डरनेवाले होते, तो इस मार्गमें पैर ही नहीं रखते । ग्रन्थ छपानेके काममें हमने जो गालियाँ और जो अपमान सहे हैं, वे इनसे किसी कदर कम नहीं थे । जब उन्हें हम सहन कर चुके हैं, तब इन्हें भी विजयके साथ सहन कर लेंगे, इसमें हमें जरा भी सन्देह नहीं है । कोई कितना ही समाजको भड़कावे, पर उससे हमारा सदभिप्राय छुप नहीं सकता । विधवाविवाहके विषयमें हम पहले भी कई बार लिख चुके हैं और अब भी लिखते हैं कि हमने इस विषयको केवल विचार करनेके लिए—इसकी भली और बुरी दोनों बाजुओंको प्रकाशमें लानेके लिए—उठाया है । हम इसे कोई धर्म भी नहीं समझते । पातिव्रतकी अपेक्षा यह सदैव नीचा समझा जायगा, नीचा है भी; पर गुप्त पापों भ्रूणहत्याओं और रातदिनके मानसिक व्यभिचारोंसे हजार दर्जे अच्छा है । जो विधवायें अपने शीलकी रक्षा नहीं कर सकती हैं, वासनाओं पर विजय प्राप्त नहीं कर सकती हैं, उन्हें जबर्दस्ती रोकना और गुप्त व्यभिचार करनेके लिए मजबूर करना सामाजिक पवित्रताका मूल्य नहीं समझना है । हमारे विरोधी इन सब बातोंको भूल जाते हैं और पुरानी पवित्रताकी गाथायें गा-गाकर जिनका मूल प्रश्नसे कोई सम्बन्ध ही नहीं है, हमें व्यभिचारके प्रचारक बतलाते हैं । ग्रन्थ-परीक्षादि लेखोंके द्वारा हम अपने समाजमें सद्-सद्विवेक बुद्धि उत्पन्न करना चाहते हैं जिसका कि इस समय सर्वथा अभाव हो रहा है । ग्रन्थोंके नामसे इस समय शिथिलाचारी, स्वार्थी और धूर्तोंके भी ग्रन्थ पुज रहे हैं और उन्हें लोग भगवान् जिनेन्द्रदेवकी वाणी समझ रहे हैं । इनके विरुद्ध कुछ सोचने विचारने और धर्मका सच्चा स्वरूप समझनेकी ओर उनकी प्रवृत्ति ही नहीं होती है । ग्रन्थपरीक्षा जैसे लेखोंको पढ़कर लोग यह समझने लगेंगे कि किसी दिगम्बर जैनाचार्य या विद्वान्की छाप लगी हुई होनेसे ही किसी ग्रन्थको मस्तक पर चढ़ा लेना जोखिमका काम है । हमारा यह काम नया भी नहीं है । जयपुरके तेरहपंथी विद्वानोंने इस ओर बहुत कुछ प्रयत्न किया था । उन्हें अच्छी तरह विश्वास हो गया था कि बहुतसे भट्टारक नामधारी धूर्तोंने जैनधर्मको गँदला कर दिया है, इसलिए किसी ग्रन्थको बुद्धिकी कसौटी पर चढ़ाये विना नहीं मानना चाहिए । विद्वज्जनबोधक आदि ग्रन्थ इसके साक्षी हैं । तेरहपंथकी उत्पत्ति ही इसी कारणसे हुई थी और हमें यह न भूल जाना चाहिए कि यदि तेरहपंथकी महान् ज्योतिका प्रकाश न हुआ होता, तो दिगम्बर सम्प्रदायका अब तक गला ही घुट गया होता—भट्टारक नामधारी साधुओंने इसे अभी तक न जाने किस 'किम्भूतकिमाकार' रूपमें खड़ा कर दिया होता । यहाँ हम यह भी कह देना चाहते हैं कि जिन आचार्योंको लोग अभी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तक २८ मूल गुणोंके धारी परम दिगम्बर मुनि समझ रहे हैं, उनमेंसे भी बहुतसे भट्टारक नहीं तो भट्टारकोंसे मिलते जुलते अवश्य थे और उन्होंने भी बहुतसे गोलमाल किये हैं। इन सब कारणोंसे हम जैनधर्मको इस समयमें जिस स्वरूपमें देख रहे हैं उसमें उसका असली रूप छुप गया है–उसपर भट्टारकों और उनके भाइयोंका गहरा रंग चढ़ा हुआ है । अत एव तुलनात्मक पद्धतिसे तमाम ग्रन्थोंकी छानबीन की जायगी और इन सब छानबीनोंसे धीरे धीरे हम उस वास्तविक जैनधर्मके स्वरूपको प्रत्यक्ष कर सकेंगे, जिसका निरूपण भगवान् कुन्दकुन्द आदि आचार्योंने किया है।

अब रहा यह कि हम किसी दिगम्बर ग्रन्थको श्वेताम्बर बतलाते हैं, सो इसे तो हम कोई सम्प्रदायका प्रश्न नहीं समझते हैं। यह तो 'सत्य' का प्रश्न है। यदि किसी श्वेताम्बर ग्रन्थको जबर्दस्ती दिगम्बर कहते जाना ही 'दिगम्बरत्व' है, तो ऐसे दिगम्बरत्वको नमस्कार ! हम ऐसे मूर्खतापूर्ण अन्धविश्वाससे आक्रान्त नहीं हैं, जो यह कहता है कि दिगम्बर विद्वानोंमें कोई चोर हुए ही नहीं हैं। हमारा सीधा सादा विश्वास यह है कि बुरे और भले सर्वत्र होते हैं।

इन सब बातोंको लेकर हमें कोई कितना ही बदनाम क्यों न करे, पर हम अपना प्रयत्न न छोड़ेंगे और हमें विश्वास है कि इस कार्यमें हमें और हमारे मित्रोंको सफलता मिले बिना नहीं रहेगी।

यहाँ हम यह भी प्रकट कर देना चाहते हैं कि हमारा कोई 'दल' नहीं है। हम यह चाहते भी नहीं है कि जैनसमाजमें कोई स्वतंत्र 'दल' खड़ा किया जाय। इस तरहके भाव रखनेवालेको हम समाजका घोर अशुभचिन्तक समझते हैं। हम केवल यह चाहते हैं कि लोग अपना हिताहित समझने लगें और वे और और बातोंके समान बुद्धिके विषयमें भी दूसरोंके गुलाम न रहें।

५ श्रीकुन्दकुन्दाचार्यकी चरणपादुका।

रायचूरके पं० चोलप्पा जैनब्राह्मणका एक पत्र हमारे पास आया है। उससे मालूम हुआ कि रायचूर (निजाम स्टेट) स्टेशनसे पश्चिमकी ओर और रायचूर नगरसे ईशानकी ओर श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यकी तपोभूमि है। फ़ाम रोडसे नगरमें जानेके समय पूर्व दिशामें एक तालाब दिखलाई देगा, जिसका नाम आम्र सरोवर है। इस तालाबसे लगे हुए दो तीन छोटे छोटे पहाड़ हैं। इनमेंसे आग्नेय दिशाकी ओरके पहाड़ पर यह स्थान है। वहाँ पर उक्त आचार्यके चरण प्रतिष्ठित हैं। उन पर कनड़ी लिपि और कनड़ी भाषामें लिखा हुआ एक शिलालेख है। वह इस प्रकार है–

" श्रीश्रुतयो भव्याजीवं...दानाततं श्रीकोंडकुंदमुनिपदयुग्मं स्तुति गैर्दर्चि सलरीद श्रुतकीर्ति यतीश नेसगि सुकृतमनातं श्रीकोंडकुंदमुनिपं भूकांति य नंदु नालवेरल नितं सोंक दे धरि यो ल रसीयनेकांतमतके कडे य चारणनादं श्री..."

इसका तात्पर्य उक्त चोलप्पाजीने इस प्रकार लिखकर भेजा है–

" शास्त्रप्रधान श्रीकुन्दकुन्दाचार्यके चरणकमलोंकी स्तुति, वन्दन और पूजन करके श्रीश्रुतकीर्ति यतीश कहते हैं कि मैं सुकृत करनेका अधिकारी हुआ हूँ। कुन्दकुन्दाचार्य भूमिसे चार अंगुल ऊपर अधर रहते थे।...... ये अन्तिम चारण परमेष्ठी थे।" मालूम नहीं, लेखकी कापी कहाँतक ठीक हुई है और उसका यह अर्थ वास्तविक है या नहीं। श्रुतकीर्ति नामके किसी आचार्यने उक्त चरणोंकी स्थापना की होगी, ऐसा मालूम होता है। श्रुतकीर्ति नामके एक आचार्यकी मृत्यु शक संवत् १३६५ (वि०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संवत् १५००) में हुई थी और उनकी उसी समय एक निषिद्या मनाई गई थी। मंगराज नामक कविका रचा हुआ एक शिलालेख उक्त निषद्या पर लगा है। आश्चर्य नहीं जो वे ही श्रुतकीर्ति कुन्दकुन्दाचार्यकी चरणपादुकाओंके स्थापक हों।

६ एक और चोरी पकड़ी गई।

अन्यत्र श्रीयुत बाबू जुगलकिशोरजीके लिखे हुए ‘ धर्मपरीक्षा ’ शीर्षक लेखको पाठक पढ़ेंगे। उससे मालूम होगा कि यदि कुछ दिगम्बर विद्वानोंने विवेकविलासादि श्वेताम्बर ग्रन्थोंको अपना बना लिया तो श्वेताम्बर विद्वान् भी इस कर्ममें दिगम्बरोंसे पीछे नहीं रहे। उन्होंने भी अमितगतिकृत धर्मपरीक्षाके समान और न जाने कितने ग्रन्थोंको छील छालकर अपना बना लिया है। पर हमारा श्वेतांबर ग्रंथोंसे अधिक परिचय नहीं है, इस कारण हमें ऐसी चोरियाँ पकड़नेका सुभीता कम रहा है और इसी लिए हम अभीतक केवल एक ही चोरीका माल ‘ बरामद ’ कर पाये हैं। पर हमारा विश्वास है कि इस ओर प्रयत्न किया जायगा, तो ऐसी बहुतसी चीजें मिलेंगी। बात यह है कि पिछले कई सौ वर्षोंमें हमारे यहाँ–दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायोंमें-वास्तविक विद्वान् बहुत ही कम हुए हैं। जिन्हें हम मुनि और आचार्य जैसी परमपूज्य पदवियोंसे विभूषित हुए मान रहे हैं, उनमेंसे अधिकांश जन कषायोंके पुञ्ज झूठी प्रशंसाके अभिलाषी, अतिशय अनुदार, अपनेसे अन्य सम्प्रदायोंकी निन्दा करनेमें मग्न रहनेवाले और वास्तविक जैनधर्मका श्राद्ध करनेवाले हुए हैं। ऐसी दशामें उनसे इससे अधिक आशा और क्या रक्खी जा सकती है? उन्होंने अपनी रचनामें एक चोरी ही क्यों, जो अन्याय न किये हों सो थोड़े हैं। सूक्ष्मदृष्टिसे अध्ययन करने पर उन सब अन्यायोंका हमें इसी तरह धीरे धीरे पता लगता जायगा और एक दिन आयगा, जब हम मालूम कर लेंगे कि हमारे यहाँ वास्तविक विद्वान् कितने हुए हैं। दोनों ही सम्प्रदायके विद्वानोंको अंधविश्वासको भगाते हुए निर्भय होकर इस दिशामें प्रयत्न करना चाहिए।

७ दर्शनसार–विवेचनाका शेषांश।

दर्शनसारके सम्बन्धमें नीचे लिखा अंश छपनेको रह गया है—

“ तेईसवीं गाथामें ‘ णिच्चणिगोयंपत्ता ’ इस वाक्यसे यह प्रकट किया गया है कि आजीवक मतका प्रवर्तक मस्करि-पूरण साधु नित्य-निगोदको प्राप्त हुआ। परन्तु यह सिद्धान्तविरुद्ध कथन है। तीनों प्रतियोंमें एकसा पाठ है, इस कारण इसका कोई दूसरा अर्थ भी नहीं हो सकता। नित्य निगोद उस पर्यायका नाम है, जिसे छोड़कर किसी जीवने अनादि कालसे कोई भी दूसरी पर्याय न पाई हो, अर्थात् जो–व्यवहारराशि पर कभी चढ़ा ही न हो। इस लिए जो जीव एकबार नित्य निगोदसे निकलकर मनुष्यादि पर्याय धारण कर लेते हैं वे ‘ इतर निगोद ’ में जाते हैं; नित्य निगोदमें नहीं जाते। जान पड़ता है ‘ मस्करी ’ को महान् पापी बतलानेकी धुनमें ग्रन्थकर्ता इस सिद्धान्तका खयाल ही नहीं रख सके। ”

८ चार साँकोंका विवाह।

हमें समाचार मिला है कि सागरके श्रीयुत भूरेलालजी सिंगईका ब्याह नरावलीमें नन्दलाल मोदीकी लड़कीके साथ चार साँकोंमें हुआ है और इस विवाहमें श्रीयुत मोदी धर्मचन्दजी, सिंगई रजीलालजी, बड़कुर जगन्नाथजी आदि परवार जातिके कई मुखिया सज्जन भी शामिल हुए थे। हम मुखियोंके इस सत्साहसकी प्रशंसा करते हैं और आशा करते हैं कि अब वे अपनी जातिमें चार साँकोंके ब्याहको जायज ठहरा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देंगे। आठ साँकोंके मारे लोग बहुत ही तंग हैं। जब खण्डेलवाल, अग्रवाल आदि किसी भी जातिमें चारसे ज्यादा साँकें नहीं मिलाई जाती हैं और फिर भी वे जातियाँ छोटी नहीं कहलातीं, तब परवार जातिको इससे अपने छोटे हो जानेके डरको चित्तसे निकाल ही देना चाहिए।

९ समैया और परवारोंका सम्बन्ध।

परवार जातिके कुछ भाई तारनस्वामीके पंथको मानते हैं, इस कारण वे 'समैया' कहलाते हैं। इनमें और परवारोंमें कोई भेद नहीं है। मूर गोत आदि सब दोनोंके एकसे हैं। दोनोंका भोजनव्यवहार भी होता है। बहुतसे समैया भाई ऐसे भी हैं, जो परवारोंके मन्दिरोंमें जाते और पूरा दिगम्बर सम्प्रदाय पालते हैं और इस पर भी उनका जो समैया भाइयोंसे बेटीव्यवहार है, उसमें अन्तर नहीं आता। समैया भाइयोंके घर बहुत थोड़े हैं, इसलिए अब उनका विवाहसम्बन्ध होना बहुत ही कठिन हो गया है, उन्हें लड़कियाँ नहीं मिलती हैं। ऐसी दशामें अब वे चाहते हैं कि हमारा परवार भाइयोंसे बेटीव्यवहार होने लगे। इसके लिए कोई कोई भाई तो अपना पन्थ छोड़ने तकको तैयार हैं। अन्यत्र छपे हुए 'कन्याकी आवश्यकता' शीर्षक विज्ञापनमें पाठकोंको इस बातकी साक्षी मिलेगी। हमारी समझमें परवार भाइयोंको इस संकटके समयमें अपने इन बिछुड़े भाइयोंको सहायता देनी चाहिए। चाहिए तो यह कि समैया भाई जबर्दस्ती अपने पंथको छोड़नेके लिए लाचार न किये जायँ; परन्तु यदि इतनी उदारता न दिखलाई जा सके, तो उन्हें अपना सम्प्रदाय स्वीकार कराके ही उनके साथ बेटीव्यवहार शुरू कर देना चाहिए। जहाँतक हम जानते हैं, परवार जातिके मुखियोंको भी इसमें कोई आपत्ति न होगी। गत वर्ष महाराजपुर (सागर) के सिंगई हजारीलालजीने, जो देवरी इलाकेके मुखिया समझे जाते हैं—हमसे कहा था कि हम समैयोंसे सम्बन्ध करनेके लिए राजी हैं, यदि वे अपना पंथ छोड़ देवें तो। हमको आशा है कि हमारे और और परवार भाई भी इस ओर ध्यान देंगे और चार साँकोंके सम्बन्धके समान इस सम्बन्धको भी शीघ्र ही जायज ठहरा देंगे।

१० कठनेरा जातिकी दुर्दशा।

होशंगाबाद, भोपाल, मूँगावलीकी ओर 'कठनेरा' नामकी एक दिगम्बर जैन जाति है। इसके सब मिलाकर कोई २०० घर होंगे। इस जातिके एक सज्जनके पत्रसे मालूम हुआ कि उन्होंने कुछ गाँवोंके अपनी जातिके लोगोंकी गणना सर्वत्र घूमकर की थी, जिसके अनुसार इस समय विवाहयोग्य कुमारोंकी संख्या ७८ और कुमारियोंकी ४६ है, अर्थात् कुमारियोंकी संख्या कुमारोंसे ३२ कम है; इतने पर भी १४ पुरुष ऐसे हैं जिनकी एक एक दो दो शादियाँ हो चुकी हैं और स्त्रियोंके मरजानेके कारण फिर शादी करनेके लिए तैयार हैं। नई उम्रकी विधवाओंकी संख्या—जो दो चार छह वर्षके भीतर ही विधवा हुई हैं और व्यभिचारमें प्रवृत्त हैं—१० है। इनमेंसे ६ विधवायें इसी वर्षमें जातिसे च्युत कर दी गई हैं। शेष जो हैं, वे भी बहुत समयतक कुशलतापूर्वक नहीं रह सकतीं। जो लोग जैनोंकी अन्तर्गत जातियोंमें परस्पर विवाह नहीं होने देना चाहते और जो विधवाविवाहके नामसे भड़क उठते हैं, उन्हें ऐसी जातियोंकी अवस्था पर विचार करना चाहिए। ९२ पुरुष तो विवाह करनेके लिए उत्सुक हैं, पर कन्यायें कुल ४६ ही हैं। अर्थात् आधे पुरुषोंको सदा अविवाहित रहना पड़ेगा और संयमहीन पापपूर्ण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीवन व्यतीत करना होगा । उधर विधवायें पाप करेंगी और धीरे धीरे जातिसे च्युत होती जायँगी । इस तरह ऐसी जातियोंका क्षय अवश्यंभावी है ।

धन्यवाद ।

गत अंकमें हमने इशारा किया था कि जैनहितैषीमें पिछले वर्ष लगभग २००) का घाटा रहा है । उसे पढ़कर जैनहितैषीके सच्चे शुभचिन्तक और विशेष लेखक श्रीयुत बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तारने २५) पच्चीस रुपये मनी-आर्डर द्वारा सहायतार्थ भेजे हैं, जो उनके अतिशय आग्रहके कारण धन्यवादपूर्वक स्वीकार किये जाते हैं ।

ग्रन्थपरीक्षा-लेखमाला ।

जैनहितैषीमें प्रकाशित हुए ग्रन्थपरीक्षा-विषयक लेखोंको हम पुस्तकाकार छपवा रहे हैं । इनका एक भाग भद्रबाहु-संहिताकी परीक्षा छप चुका है । दूसरा भाग छप रहा है, जिसमें उमास्वामि-श्रावकाचार, कुन्दकुन्द श्रावकाचार और जिनसेन त्रिवर्णाचार इन तीन ग्रन्थोंके परीक्षा-लेख रहेंगे । मूल्य लागत मात्र रक्खा जायगा । सिर्फ ५०० कापियाँ छपवाई जा रही हैं । जो धर्मात्मा सज्जन भट्टारकी साहित्यकी पोल खोलना चाहते हैं, भट्टारकोंके शिथिलाचारपोषक ग्रन्थोंसे समाजकी रक्षा करना चाहते हैं, उन्हें इन दोनों पुस्तकोंकी दश दश बीस बीस कापियाँ बाँटनेके लिए अवश्य मँगा लेना चाहिए । दशलक्षणपर्वमें ये पुस्तकें प्रत्येक मन्दिरमें पढ़ी जानी चाहिएँ ।

धर्मपरीक्षा ।

(ग्रंथ-परीक्षा-लेखमालाका पाँचवा लेख ।)

[लेखक-श्रीयुत बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तार ।]

कृत्वा कृतीः पूर्वकृताः पुरस्तात्प्रत्यादरं ताः पुनरीक्षमाणः
तथैव जल्पेदथयोन्यथा वा स काव्यचोरोस्तु स पातकी च।

—सोमदेवः ।

श्वेताम्बर जैनसम्प्रदायमें, श्रीधर्मसागर महोपाध्यायके शिष्य पद्मसागर गणीका बनाया हुआ 'धर्मपरीक्षा' नामका एक संस्कृत ग्रंथ है, जिसे कुछ समय हुआ, सेठ देवचन्दलालभाईके जैन-पुस्तकोद्धार फंड बम्बईने छपाकर प्रकाशित भी किया है । यह ग्रंथ संवत् १६४५ का बना हुआ है । जैसा कि इसके अन्तमें दिये हुए निम्नपद्यसे प्रगट है:—

तद्राज्ये विजयिन्यनन्यमतयः श्रीवाचकाग्रेसरा
द्योतन्ते भुवि धर्मसागरमहोपाध्यायशुद्धा धिया ।
तेषां शिष्यकणेन पंचयुगषट्चंद्रांकिते (१६४५) वत्सरे
वेलाकूलपुरे स्थितेन रचितो ग्रन्थोऽयमानन्दतः॥ १४८३

दिगम्बर जैनसम्प्रदायमें भी 'धर्मपरीक्षा' नामका एक ग्रंथ है जिसे श्री माधवसेनाचार्यके शिष्य 'अमितगति' नामके आचार्यने विक्रमसंवत् १०७० में बनाकर समाप्त किया है । यह ग्रंथ भी छपकर प्रकाशित हो चुका है । इस ग्रंथका रचना-संवत्-सूचक, अन्तिम पद्य इसप्रकार है:—

संवत्सराणां विगते सहस्रे,
ससप्ततौ १०७० विक्रमपार्थिवस्य ।
इदं निषिध्यान्यमतं समाप्तं,
जिनेन्द्रधर्मामितयुक्तिशास्त्रम् ॥ २० ॥

इन दोनों ग्रंथोंका प्रतिपाद्य विषय प्रायः एक है । दोनोंमें 'मनोवेग' और 'पवनवेग' की प्रधान कथा और उसके अंतर्गत अन्य अनेक उपकथाओंका समान रूपसे वर्णन पाया जाता है; बल्कि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एकका साहित्य दूसरेके साहित्यसे यहाँतक मिलता जुलता है कि एकको दूसरेकी नकल कहना कुछ भी अनुचित न होगा। श्वेतांबर 'धर्मपरीक्षा' जो इस लेखका परीक्षाविषय है, दिगम्बर 'धर्मपरीक्षा' से ५७५ वर्ष बादकी बनी हुई है। इस लिए यह कहनेमें कुछ भी संकोच नहीं हो सकता कि पद्मसागर गणीने अपनी धर्मपरीक्षा अमितगतिकी 'धर्मपरीक्षा' परसे ही बनाई है और वह प्रायः उसकी नकल मात्र है। इस नकलमें पद्मसागर गणीने अमितगतिके आशय, ढंग (शैली) और भावोंकी ही नकल नहीं की, बल्कि उसके अधिकांश पद्योंकी प्रायः अक्षरशः नकल कर डाली है और उस सबको अपनी कृति बनाया है, जिसका खुलासा इस प्रकार है—पद्मसागर गणीकी धर्मपरीक्षामें पद्योंकी संख्या कुल १४८४ है। इनमेंसे चार पद्य प्रशस्तिके और छह पद्य मंगलाचरण तथा प्रतिज्ञाके निकालकर शेष १४७४ पद्योंमेंसे १२६० पद्य ऐसे हैं, जो अमितगतिकी धर्मपरीक्षासे ज्योंके त्यों उठाकर रक्खे गये हैं। बाकी रहे २१४ पद्य, वे सब अमितगतिके पद्यों परसे कुछ परिवर्तन करके बनाये गये हैं। परिवर्तन प्रायः छंदोभेदकी विशेषताको लिये हुए है। अमितगतिकी धर्मपरीक्षाका पहला परिच्छेद और शेष १९ परिच्छेदोंके अन्तके कुछ कुछ पद्य अनुष्टुप् छन्दमें न होकर दूसरेही छंदोंमें रचे गये हैं। पद्मसागर गणीने उनमेंसे जिन जिन पद्योंको लेना उचित समझा है, उन्हें अनुष्टुप् छन्दमें बदलकर रख दिया है, और इस तरहपर अपने ग्रंथमें अनुष्टुप् छंदोंकी एक लम्बी धारा बहाई है। इस धारामें आपने परिच्छेद भेदको भी बहा दिया है; अर्थात् अपने ग्रन्थको परिच्छेदों या अध्यायोंमें विभक्त न करके उसे बिना हालटिंग स्टेशन वाली एक लम्बी और सीधी सड़कके रूपमें बना दिया है। परन्तु अन्तमें पाँच पद्योंको, उनकी रचनापर मोहित होकर अथवा उन्हें सहजमें अनुष्टुप् छंदका रूप न दे सकने आदि किसी कारणविशेषसे, ज्योंका त्यों भिन्न भिन्न छंदोंमें भी रहने दिया है; जिससे अन्तमें जाकर ग्रंथका अनुष्टुप्छंदी नियम भंग हो गया है। अस्तु; इन पाँचों पद्योंमेंसे पहला पद्य नमूनेके तौरपर इस प्रकार है:—

'इदं व्रतं द्वादशभेदभिन्नं,
यः श्रावकीयं जिननाथदृष्टम्।
करोति संसारनिपातभीतः
प्रयाति कल्याणमसौ समस्तम्॥ १४७६॥

यह पद्य अमितगति-धर्मपरीक्षाके १९ वें परिच्छेदमें नं० ९७ पर दर्ज है। इस पद्यके बाद एक पद्य और इसी परिच्छेदका देकर तीन पद्य २० वें परिच्छेदसे उठाकर रक्खे गये हैं, जिनके नम्बर उक्त परिच्छेदमें क्रमशः ८७, ८८ और ८९ दिये हैं। इस २० वें परिच्छेदके शेष सम्पूर्ण पद्योंको, जिनमें धर्मके अनेक नियमोंका निरूपण था, ग्रंथकर्ताने छोड़ दिया है। इसी प्रकार दूसरे परिच्छेदोंसे भी कुछ कुछ पद्य छोड़े गये हैं, जिनमें किसी किसी विषयका विशेष वर्णन था। अमितगति-धर्मपरीक्षाकी पद्यसंख्या कुल १९४१ है जिसमें २० पद्योंकी प्रशस्ति भी शामिल है, और पद्मसागर-धर्मपरीक्षाकी पद्यसंख्या प्रशस्तिसे अलग १४८० है; जैसा कि ऊपर जाहिर किया जाचुका है। इसलिए संपूर्ण छोड़े हुए पद्योंकी संख्या लगभग ४४० समझनी चाहिए। इस तरह लगभग ४४० पद्योंको निकालकर, २१४ पद्योंमें कुछ छंदादिकका परिवर्तन करके और शेष १२६० पद्योंकी ज्योंकी त्यों नकल उतारकर ग्रंथकर्त्ता श्रीपद्मसागर गणीने इस 'धर्मपरीक्षा' को अपनी कृति बनानेका पुण्य संपादन किया है। जो लोग दूसरोंकी कृतिको अपनी कृति बनाने रूप पुण्य संपादन करते हैं उनसे यह आशा रखना तो व्यर्थ है कि वे उस कृतिके मूल कर्ताका आदर-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूर्वक स्मरण करेंगे, प्रत्युत उनसे जहाँतक बन पड़ता है, वे उस कृतिके मूलकर्ताका नाम छिपाने या मिटानेकी ही चेष्टा किया करते हैं। ऐसा ही यहाँपर पद्मसागर गणीने भी किया है। अमितगतिका कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करना तो दूर रहा, आपने अपनी शक्तिभर यहाँ तक चेष्टा की है कि ग्रंथभरमें अमितगतिका नाम तक न रहने पावे और न दूसरा कोई ऐसा शब्द ही रहने पावे जिससे यह ग्रंथ स्पष्ट रूपसे किसी दिगम्बर जैनकी कृति समझ लिया जाय। उदाहरणके तौरपर यहाँ इसके कुछ नमूने दिखलाये जाते हैं:—

१–श्रुत्वा वाचमशेषकल्मषमुषां साधोर्गुणाशंसिनीं।
नत्वा केवलिपादपंकजयुगं मर्त्यामरेन्द्रार्चितम्॥
आत्मानं व्रतरत्नभूषितमसौ चक्रे विशुद्धाशयो।
भव्यःप्राप्य यतेर्गिरोऽमितगतेर्व्यर्थाः कथं कुर्वते॥१०१॥

यह पद्य अमितगतिकी धर्मपरीक्षाके १९ वें परिच्छेदका अन्तिम पद्य है। इसमें मुनिमहाराजका उपदेश सुनकर पवनवेगके श्रावक व्रत धारण करनेका उल्लेख करते हुए, चौथे चरणमें लिखा है कि 'भव्यपुरुष अपरिमित ज्ञानके धारक मुनिके उपदेशको पाकर उसे व्यर्थ कैसे कर सकते हैं।' साथ ही इस चरणमें अमितगतिने अन्यपरिच्छेदोंके आन्तिम पद्योंके समान युक्तिपूर्वक गुप्तरीतिसे अपना नाम भी दिया है। पद्मसागर गणीको अमितगतिका यह गुप्त नाम भी असह्य हुआ और इस लिए उन्होंने अपनी धर्मपरीक्षामें, इस पद्यको नं० १४७७ पर, ज्योंका त्यों उद्धृत करते हुए, इसके अन्तिम चरणको निम्न प्रकारसे बदल दिया है:—

"मित्रादुत्तमतो न किं भुवि नरः प्राप्नोति सद्वस्त्वहो।"

इस तबदीलीसे प्रगट है कि यह केवल अमितगतिका नाम अलग करनेकी गरज़से ही की गई है, अन्यथा इस परिवर्तनकी यहाँपर कुछ भी जरूरत न थी।

२–त्यक्तबाह्यान्तरग्रंथो निःकषायो जितेंद्रियः।
परीषहसहः साधुर्जातरूपधरो मतः॥१८-७६॥

इस पद्यमें अमितगतिने साधुका लक्षण 'जातरूपधरः' अर्थात् नग्नदिगम्बर बतलाया है। साधुका लक्षण नग्नदिगम्बर प्रतिपादन करनेसे कहीं दिगम्बर जैनधर्मको प्रधानता प्राप्त न हो जाय, अथवा यह ग्रंथ किसी दिगम्बर जैनकी कृति न समझ लिया जाय, इस भयसे गणीजी महाराजने इस पद्यकी जो कायापलट की है वह इस प्रकार है:—

त्यक्तबाह्यान्तरो ग्रंथो निष्क्रियो विजितेंद्रियः।
परीषहसहः साधुर्भवाम्भोनिधितारकः॥१३-७६॥

यहाँ 'जातरूपधरो मतः' के स्थानमें 'भवाम्भोनिधितारकः' (संसारसमुद्रसे पार करनेवाला) ऐसा परिवर्तन किया गया है। साथ ही, 'निःकषायः' की जगह 'निष्क्रियः' भी बनाया गया है जिसका कोई दूसरा ही रहस्य होगा।

३–कन्ये नन्दासुनन्दाख्ये कच्छस्य नृपतेर्वृषा।
जिनेन योजयामास नीतिकीर्ती इवामले॥१८-२४॥

दिगम्बर सम्प्रदायमें, ऋषभ देवका विवाह राजा कच्छकी नन्दा और सुनन्दा नामकी दो कन्याओंके साथ होना माना जाता है। इसी बातको लेकर अमितगतिने उसका ऊपरके पद्यमें उल्लेख किया है। परन्तु श्वेताम्बर सम्प्रदायमें, ऋषभदेवकी स्त्रियोंके नामोंमें कुछ भेद करते हुए, दोनों ही स्त्रियोंको राजा कच्छकी पुत्रियें नहीं माना है। बल्कि सुमंगलाको स्वयं ऋषभदेवके साथ उत्पन्न हुई उनकी सगी बहन बतलाया है और सुनन्दाको एक दूसरे युगलियेकी बहन बयान किया है जो अपनी बहनके साथ खेलता हुआ अचानक बाल्यावस्थामें ही मरगया था। इसलिए पद्मसागरजीने अमितगतिके उक्त पद्यको बदलकर उसे नीचेका रूप दे दिया है, जिससे यह ग्रंथ दिगम्बर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रंथ न समझा जाकर श्वेताम्बर समझ लिया जाय:—

"सुमंगलसुनन्दाख्ये कन्ये सह पुरंदरः।
जिनेन योजयामास नीतिकीर्ती इवामले॥ १३४७

इन प्रकार, यद्यपि ग्रंथकर्ता महाशयने अमितगतिकी कृतिपर अपना कर्तृत्व और स्वामित्व स्थापित करने और उसे एक श्वेताम्बर ग्रंथ बनानेके लिए बहुत कुछ अनुचित चेष्टाएँ की हैं परन्तु तो भी वे इस (धर्मपरीक्षा) ग्रंथको पूर्णतया श्वेताम्बर ग्रंथ नहीं बना सके। बल्कि अनेक पद्योंको निकाल डालने, परिवर्तित कर देने तथा ज्योंका त्यों कायम रखनेकी वजहसे उनकी यह रचना कुछ ऐसी विलक्षण और दोषपूर्ण हो गई है, जिससे ग्रंथकी चोरीका सारा भेद खुल जाता है। साथ ही, ग्रंथकर्ताकी योग्यता और उनके दिगम्बर तथा श्वेताम्बर धर्मसम्बंधी परिज्ञान आदिका भी अच्छा परिचय मिल जाता है। पाठकोंके संतोषार्थ यहाँ इन्हीं सब बातोंका कुछ दिग्दर्शन कराया जाता है:—

(१) अमितगति—धर्मपरीक्षाके पाँचवें परिच्छेदमें 'वक्र' नामके द्विष्ट पुरुषकी कथाका वर्णन करते हुए एक स्थान पर लिखा है कि—जिस समय 'वक्र' मरणासन्न हुआ तब उसने अपने 'स्कंद' नामक शत्रुका समूल नाश करनेके लिए, पुत्रपर अपनी आन्तरिक इच्छा प्रगट की और उसे यह उपाय बतलाया कि 'जिस समय मैं मर जाऊं उस समय तुम मुझे मेरे शत्रुके खेतमें ले जाकर लकड़ीके सहारे खड़ा कर देना। साथ ही अपने समस्त गाय, भैंस तथा घोड़ोंके समूहको उसके खेतमें छोड़ देना, जिससे वे उसके समस्त धान्यका नाश कर देवें। और तुम किसी वृक्ष या घासकी ओटमें मेरे पास बैठकर स्कंदके आगमनकी प्रतीक्षा करते रहना। जिस वक्त वह क्रोधमें आकर मुझ पर प्रहार करे तब तुम सब लोगोंको सुनानेके लिए जोरसे चिल्ला उठना और कहना कि स्कंदने मेरे पिताको मार डाला है। ऐसा करनेपर राजा स्कंदद्वारा मुझे मरा जानकर स्कंदको दंड देगा; जिससे वह पुत्रसहित मरजायगा। इत्यादि। इस प्रकरणके तीन पद्य इस प्रकार हैं:—

एष यथा क्षयमेति समूलं कंचन कर्म तथा कुरु वत्स। येन वसामि चिरं सुरलोके हृष्टमनाः कमनीयशरीरः॥८८॥
क्षेत्रममुष्य विनीय मृतं मां यष्टि निषण्णतनुं सुत कृत्वा।
गौमहिषीहयवृन्दमशेषं सस्य समूहविनाशि विमुंच॥८९॥
वृक्षतृणान्तरितो मम तीरे तिष्ठ निरीक्षितुमागतिमस्य।
कोपपरेण कृते मम घाते पूत्कुरु सर्वजनश्रवणाय॥ ९०॥

इन तीनों पद्योंके स्थानमें पद्मसागर गणीने अपनी धर्मपरीक्षामें निम्नलिखित दो पद्य अनुष्टुप् छंदमें दिये हैं:—

समूलं क्षयमेत्येष यथा कर्म तथा कुरु।
वसामि यत्स्फुरद्देहः स्वर्गे हृष्टमनाः सुखम्॥ २८३॥
वृक्षाद्यन्तरितस्तिष्ठ त्वमस्यागतिमीक्षितुम्।
आयातेऽस्मिन्मृतं हत्वा मां पूत्कुरु जनश्रुतेः॥ २८४॥

इन पद्योंका अमितगतिके पद्योंके साथ मिलान करनेपर पाठकोंको सहजहीमें यह मालूम हो जायगा कि दोनों पद्य क्रमशः अमितगतिके पद्य नं० ८८ और ९० परसे कुछ छील छालकर बनाये गये हैं; इनमें अमितगतिके शब्दोंकी प्रायः नकल पाई जाती है। परन्तु साथही उन्हें यह जाननेमें भी विलम्ब न होगा कि अमितगतिके पद्य नं० ८९ को पद्मसागरजीने बिलकुल ही छोड़ दिया है—उसके स्थानमें कोई दूसरा पद्य भी बनाकर नहीं रक्खा। इसलिए उनका पद्य नं० २८४ बड़ा ही विचित्र मालूम होता है। उसमें उस उपायके सिर्फ उत्तरार्धका कथन है, जो वक्रने मरते समय अपने पुत्रको बतलाया था। उपायका पूर्वार्ध न होनेसे यह पद्य इतना असम्बद्ध और बेढंगा हो गया है कि प्रकृत कथनसे उसकी कुछ भी संगति नहीं बैठती। इसी प्रकारके पद्य और भी अनेक स्थानों पर पाये जाते हैं; जिनके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पहलेके कुछ पद्य छोड़ दिये गये हैं और इस लिए वे पर कटे हुए कबूतरकी समान लँडूरे मालूम होते हैं ।

(२) अमितगतिने अपनी धर्मपरीक्षाके १५ वें परिच्छेदमें, 'युक्तितो घटते यन्न' इत्यादि पद्य नं० ४७ के बाद, जिसे पद्मसागरजीने भी अपने ग्रंथमें नं० १०८९ पर ज्योंका त्यों उध्दृत किया है, नीचे लिखे दो पद्योंद्वारा एक स्त्रीके पंच भर्त्तार होनेको अति निंद्य कर्म ठहराया है; और इस तरहपर द्रौपदीके पंचपति होनेका निषेध किया है। वे दोनों पद्य इस प्रकार हैं:—

सम्बंधा भुवि विद्यन्ते सर्वे सर्वस्य भूरिशः ।
भर्तृणां क्वापि पंचानां नैकया भार्यया पुनः ॥ ४८ ॥
सर्वे सर्वेषु कुर्वन्ति संविभागं महाधियः ।
महिलासंविभागस्तु निन्द्यानामपि निन्दितः॥४९॥

पद्मसागरजीने यद्यपि इन पद्योंसे पहले और पीछेके बहुतसे पद्योंकी एकदम ज्योंकी त्यों नकल कर डाली है, तो भी आपने इन दोनों पद्योंको अपनी धर्मपरीक्षामें स्थान नहीं दिया। क्योंकि श्वेताम्बर सम्प्रदायमें, हिन्दुओंकी तरह, द्रौपदीके पंचभर्त्तार ही माने जाते हैं। पाँचों पाँडवोंके गलेमें द्रौपदीने वरमाला डाली थी और उन्हें, अपना पति बनाया था; ऐसा कथन श्वेताम्बरोंके 'त्रिशष्टिशलाकापुरुषचरित' आदि अनेक ग्रंथोंमें पाया जाता है। उक्त दोनों पद्योंको स्थान देनेसे यह ग्रंथ कहीं श्वेताम्बर धर्मके अहातेसे बाहर न निकल जाय, इसी भयसे शायद गणीजी महाराजने उन्हें स्थान देनेका साहस नहीं किया। परन्तु पाठकोंको यह जानकर आश्चर्य होगा कि गणीजीने अपने ग्रंथमें उस श्लोकको ज्योंका त्यों रहने दिया जो आक्षेपके रूपमें ब्राह्मणोंके सम्मुख उपस्थित किया गया था और जिसका प्रतिवाद करनेके लिए ही अमितगति आचार्यको उक्त दोनों पद्योंके लिखनेकी जरूरत पड़ी थी। वह श्लोक यह है:—

" द्रौपद्याः पंच भर्तारः कथ्यन्ते यत्र पाण्डवाः ।
जनन्यास्तव को दोषस्तत्र भर्तृद्वयेसति ॥ ९७९ ॥

इस श्लोकमें द्रौपदीके पंचभर्त्तार होनेकी बात कटाक्ष रूपसे कही गई है। जिसका आगे प्रतिवाद होनेकी जरूरत थी और जिसे गणीजीने नहीं किया। यदि गणीजीको एक स्त्रीके अनेक पति होना अनिष्ट न था तब आपको अपने ग्रंथमें यह श्लोक भी रखना उचित न था और न इस विषयकी कोई चर्चा ही चलानेकी जरूरत थी। परन्तु आपने ऐसा न करके अपनी धर्मपरीक्षामें उक्त श्लोक और उसके सम्बंधकी दूसरी चर्चाको, विना किसी प्रतिवादके, ज्योंका त्यों स्थिर रक्खा है, इस लिए कहना पड़ता है कि आपने ऐसा करके निःसन्देह भारी भूल की है। और इससे आपकी योग्यता तथा विचारशीलताका भी बहुत कुछ परिचय मिल जाता है।

(३) श्वेताम्बर धर्मपरीक्षामें, एक स्थानपर, ये तीन पद्य दिये हैं:—

' विलोक्य वेगतः खर्या क्रमस्योपरिमे क्रमः ।
भग्नो मुशलमादाय दत्तनिष्ठुरघातया ॥ ५१५ ॥
अथैतयोर्महारादिः प्रवृत्ता दुर्निवारणा ।
लोकानां प्रेक्षणी भूता राक्षस्योरिव रुष्टयोः ॥५१६॥
अरे! रक्षतु ते पादं त्वदीया जननी स्वयम् ।
रुष्टखर्या निगद्येति पादो भग्नो द्वितीयकः ॥५१७॥

इन पद्योंमेंसे पहला पद्य ज्योंका त्यों वही है जो दिगम्बरी धर्मपरीक्षाके ९ वें परिच्छेदमें नं० २७ पर दर्ज है। दूसरे पद्यमें सिर्फ 'इत्थं तयोः' के स्थानमें 'अथैतयोः' का और तीसरे पद्यमें 'बोडे' के स्थानमें 'अरे' और 'रुष्टयक्ष्या' के स्थानमें 'रुष्टखर्या' का परिवर्तन किया गया है। पिछले दोनों पद्य दिगम्बरी धर्मपरीक्षाके उक्त परिच्छेदमें क्रमशः नं० ३२ और ३३ पर दर्ज हैं। इन दोनों पद्योंसे पहले अमितगतिने जो चार पद्य और दिये थे और जिनमें ऋक्षी तथा खरी नामकी दोनों स्त्रियोंके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वाग्युद्धका वर्णन था उन्हें पद्मसागरजीने अपनी धर्मपरीक्षासे निकाल दिया है। अस्तु; और सब बातोंको छोड़कर यहाँ पाठकोंका ध्यान उस परिवर्तनकी ओर आकर्षित किया जाता है, जो 'रुष्टयक्ष्या' के स्थानमें 'रुष्टखर्या' बनाकर किया गया है। यह परिवर्तन वास्तवमें बड़ा ही विलक्षण है। इसके द्वारा यह विचित्र अर्थ घटित किया गया है कि जिस खरी नामकी स्त्रीने पहले ऋक्षीके उपास्य चरणको तोड़ डाला था उसीने ऋक्षीको यह चैलेंज देते हुए कि 'ले! अब तू और तेरी मा अपने चरणकी रक्षा कर' स्वयं अपने उपास्य दूसरे चरणको भी तोड़ डाला! परन्तु खरीको अपने उपास्य चरण पर क्रोध आने और उसे तोड़ डालनेकी कोई वजह न थी। यदि ऐसा मान भी लिया जाय तो उक्त चैलेंजमें जो कुछ कहा गया है वह सब व्यर्थ पड़ता है। क्योंकि जब खरी ऋक्षीके उपास्य चरणको पहले ही तोड़ चुकी थी, तब उसका ऋक्षीसे यह कहना कि, ले! अब तू अपने चरणकी रक्षा कर, मैं उस पर आक्रमण करती हूँ, बिलकुल ही भद्दा और असमंजस मालूम होता है। वास्तवमें दूसरा चरण ऋक्षीके द्वारा, अपना बदला चुकानेके लिए तोड़ा गया था और उसीने खरीको ललकार कर उपर्युक्त वाक्य कहा था। ग्रंथकर्तानि इसपर कुछ भी ध्यान न देकर विना सोचे समझे वैसे ही परिवर्तन कर डाला है, जो बहुत ही भद्दा मालूम होता है।

(४) अमितगति-धर्मपरीक्षाके छठे परिच्छेदमें, 'यज्ञा' ब्राह्मणी और उसके जारपति 'बटुक' का उल्लेख करते हुए, एक पद्य इस प्रकारसे दिया है—

> प्रपेदे स वचस्तस्या निःशेषं हृष्टमानसः।
> जायन्ते नेदृशे कार्ये दुष्प्रबोधा हि कामिनः ॥४४॥

इस पद्यमें लिखा है कि 'उस कामी बटुकने यज्ञाकी आज्ञाको (जो अपने निकल भागनेका उपाय करनेके लिए दो मुर्दे लानेके विषयमें थी) बड़ी प्रसन्नताके साथ पालन किया, सच है कामी पुरुष ऐसे कार्योंमें दुष्प्रबोध नहीं होते। अर्थात् वे अपने कामकी बातको कठिनतासे समझनेवाले न होकर शीघ्र समझ लेते हैं। पद्मसागरजीने यही पद्य अपनी धर्मपरीक्षामें नं० ३१५ पर दिया है परन्तु साथ ही इसके उत्तरार्धको निम्न प्रकारसे बदलकर रक्खा है:—

> "न जाता तस्य शंकापि दुष्प्रबोधा हि कामिनः॥"

इस परिवर्तनके द्वारा यह सूचित किया गया है कि 'उस बटुकको उक्त आज्ञाके पालनमें शंका भी नहीं हुई, सच है कामी लोग कठिनतासे समझनेवाले होते हैं'। परन्तु बटुकने तो यज्ञाकी आज्ञाको पूरी तौरसे समझकर उसे विना किसी शंकाके प्रसन्नताके साथ तुरन्त पालन किया है तब वह कठिनतासे समझनेवाला 'दुष्प्रबोध' क्यों? यह बात बहुत ही खटकनेवाली है; और इस लिए ऊपरका परिवर्तन बड़ा ही बेढंगा मालूम होता है। नहीं मालूम ग्रंथकर्तानि इस परिवर्तनको करके पद्यमें कौनसी खूबी पैदा की और क्या लाभ उठाया। इस प्रकारके व्यर्थ परिवर्तन और भी अनेक स्थानों पर पाये जाते हैं जिनसे ग्रंथकर्ताकी योग्यता और व्यर्थाचरणका अच्छा परिचय मिलता है।

श्वेताम्बर-शास्त्र-विरुद्ध कथन।

(५) पद्मसागर गणीने, अमितगतिके पद्योंकी ज्योंकी त्यों नकल करते हुए, एक स्थान पर ये दो पद्य दिये हैं।

> "क्षुधा तृष्णा भयद्वेषौ रागो मोहो मदो गदः।
> चिन्ता जन्म जरा मृत्युर्विषादो विस्मयो रतिः॥८९२॥
> खेदः स्वेदस्तथा निद्रा दोषाः साधारणा इमे।
> अष्टादशापि विद्यन्ते सर्वेषां दुःखहेतवः ॥ ८९३ ॥"

इन पद्योंमें उन १८ दोषोंका नामोल्लेख है, जिनसे दिगम्बर लोग अर्हन्त देवोंको रहित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मानते हैं। उक्त दोषोंका, २१ पद्योंमें, कुछ विवरण देकर फिर ये दो पद्य और दिये हैंः—

एतैर्ये पीडिता दोषैस्तैर्मुच्यन्ते कथं परे।
सिंहानां हतनागानां न खेदोस्ति मृगक्षये ॥ ९१५ ॥
सर्वे रागिणि विद्यन्ते दोषा नात्रास्ति संशयः।
रूपिणीव सदा द्रव्ये गन्धस्पर्शरसादयः ॥ ९१६ ॥

इन पद्योंमें लिखा है कि 'जो देव इन क्षुधादिक दोषोंसे पीडित हैं, वे दूसरोंको दुःखोंसे मुक्त कैसे कर सकते हैं ? क्योंकि हाथियोंको मारनेवाले सिंहोंको मृगोंके मारनेमें कुछ भी कष्ट नहीं होता। जिस प्रकार पुद्गल द्रव्यमें स्पर्श, रस और गंधादिक गुण हमेशा पाये जाते हैं, उसी प्रकार ये सब दोष भी रागी देवोंमें पाये जाते हैं।' इसके बाद एक पद्यमें ब्रह्मादिक देवताओं पर कुछ आक्षेप करके गणीजी लिखते हैं कि 'सूर्यसे अंधकारके समूहकी तरह जिस देवतासे ये संपूर्ण दोष नष्ट हो गये हैं, वही सब देवोंका अधिपति अर्थात् देवाधिदेव है और संसारी जीवोंके पापोंका नाश करनेमें समर्थ है, यथाः—

एते नष्टा यतो दोषा भानोरिव तमश्चयाः।
स स्वामी सर्वदेवानां पापनिर्दलनक्षमः ॥ ९१८ ॥

इस प्रकार गणीजी महाराजने देवाधिदेव अर्हन्त भगवान्का १८ दोषोंसे रहित वह स्वरूप प्रतिपादन किया है, जो दिगम्बरसम्प्रदायमें माना जाता है। परंतु यह स्वरूप श्वेताम्बर सम्प्रदायके स्वरूपसे विलक्षण मालूम होता है; क्योंकि श्वेताम्बरोंके यहाँ प्रायः दूसरे ही प्रकारके १८ दोष माने गये हैं। जैसा कि मुनि आत्मारामजीके 'तत्त्वादर्शमें' उल्लिखित नीचे लिखे दो पद्योंसे प्रगट हैः—

अंतरायदानलाभवीर्यभोगोपभोगगाः।
हासो रत्यरती भीतिर्जुगुप्साशोक एव च ॥ १ ॥
कामो मिथ्यात्वमज्ञानं निद्रा च विरतिस्तथा।
रागो द्वेषश्च नो दोषास्तेषामष्टादशाऽप्यमी ॥ २ ॥

इन पद्योंमें दिये हुए १८ दोषोंके नामोंमेंसे रति, भीति (भय), निद्रा, राग और द्वेष ये पाँच दोष तो ऐसे हैं जो दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायोंमें समान रूपसे माने गये हैं। शेष दानान्तराय, लाभान्तराय, वीर्यान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय, हास्य, अरति, जुगुप्सा, शोक, काम, मिथ्यात्व, अज्ञान और विरति नामके १३ दोष दिगम्बरोंके माने हुए क्षुधा, तृषा, मोह, मद, रोग, चिन्ता, जन्म, जरा, मृत्यु, विषाद, विस्मय, खेद और स्वेद नामके दोषोंसे भिन्न हैं। इस लिए गणीजीका उपर्युक्त कथन श्वेताम्बर शास्त्रोंके विरुद्ध है। मालूम होता है कि अमितगतिधर्मपरीक्षाके १३ वें परिच्छेदसे इन सब पद्योंको ज्योंका त्यों उठाकर रखनेकी धुनमें आपको इस विरुद्धताका कुछ भी भान नहीं हुआ।

(६) एक स्थान पर, पद्मसागरजी लिखते हैं कि 'कुन्तीसे उत्पन्न हुए पुत्र तपश्चरण करके मोक्ष गये और मद्रीके दोनों पुत्र मोक्षमें न जाकर सर्वार्थसिद्धिको गये'। यथाः—

"कुन्तीशरीरजाः कृत्वा तपो जग्मुः शिवास्पदम्।
मद्रीशरीरजौ भव्यौ सर्वार्थसिद्धिमीयतुः ॥ १०९५ ॥

यह कथन यद्यपि दिगम्बरसम्प्रदायकी दृष्टिसे सत्य है और इसी लिए अमितगतिने अपने ग्रंथके १५ वें परिच्छेदमें इसे नं० ५५ पर दिया है। परन्तु श्वेताम्बरसम्प्रदायकी दृष्टिसे यह कथन भी विरुद्ध है। श्वेताम्बरोंके 'पांडवचरित्र' आदि ग्रंथोंमें 'मद्री' के पुत्रोंका भी मोक्ष जाना लिखा है और इस तरह पर पाँचोंही पाण्डवोंके लिए मुक्तिका विधान किया है।

(७) पद्मसागरजीने, अपनी धर्मपरीक्षामें, एक स्थान पर यह पद्य दिया हैः—

चार्वाकदर्शनं कृत्वा भूपौ शुक्रबृहस्पती।
प्रवृत्तौ स्वेच्छया कर्तुं स्वकीयेन्द्रियपोषणम् ॥१३६५॥

इसमें शुक्र और बृहस्पति नामके दो राजाओंको 'चार्वाक' दर्शनका चलानेवाला लिखा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। परन्तु मुनि आत्मारामजीने अपने 'तत्त्वादर्श' ग्रंथके ४ थे परिच्छेदमें 'शील-तरंगिणी' नामक किसी श्वेताम्बरशास्त्रके आधार पर, चार्वाक मतकी उत्पत्तिविषयक जो कथा दी है, उससे यह मालूम होता है कि चार्वाक मत किसी राजा या क्षत्रिय पुरुषके द्वारा न चलाया जाकर केवल बृहस्पति नामके एक ब्राह्मणद्वारा प्रवर्तित हुआ है; जो अपनी बालविधवा बहनसे भोग करना चाहता था! और इस लिए बहनके हृदयसे पाप तथा लोकलज्जाका भय निकालकर अपनी इच्छा पूर्तिकी गरजसे ही उसने इस मतके सिद्धान्तोंकी रचना की थी। इस कथनसे पद्मसागरजीका उपर्युक्त कथन भी श्वेताम्बर शास्त्रोंके विरुद्ध पड़ता है।

(८) इस श्वेताम्बर 'धर्मपरीक्षा' में, पद्य नं० ७८२ से ७९९ तक, गधेके शिरच्छेदका इतिहास बतलाते हुए, लिखा है कि—

"ज्येष्ठाके गर्भसे उत्पन्न हुआ शंभु (महादेव) सात्यकिका बेटा था। घोर तपश्चरण करके उसने बहुतसी विद्याओंका स्वामित्व प्राप्त किया था। विद्याओंके वैभवको देखकर वह दसवें वर्षमें भ्रष्ट हो गया। उसने चारित्र (मुनिधर्म) को छोड़कर विद्याधरोंकी आठ कन्याओंसे, विवाह किया। परन्तु वे विद्याधरोंकी आठों ही पुत्रियाँ महादेवके साथ रतिकर्म करनेमें असमर्थ होकर मर गईं। तब महादेवने पार्वतीको रतिकर्ममें समर्थ समझकर उसकी याचना की और उसके साथ विवाह किया। एक दिन पार्वतीके साथ भोग करते हुए उसकी 'त्रिशूल' विद्या नष्ट हो गई। उसके नष्ट होनेपर वह 'ब्राह्मणी' नामकी दूसरी विद्याको सिद्ध करने लगा। जब वह 'ब्राह्मणी' विद्याकी प्रतिमाको सामने रखकर जप कर रहा था, तब उस विद्याने अनेक प्रकारकी विक्रिया करनी शुरू की। उस विक्रियाके समय जब महादेवने एक बार उस प्रतिमा पर दृष्टि डाली तो उसे प्रतिमाके स्थान पर एक चतुर्मुखी मनुष्य दिखलाई पड़ा, जिसके मस्तक पर गधेका सिर था। उस गधेके सिरको बढ़ता हुआ देखकर उसने शीघ्रताके साथ उसे काट डाला। परन्तु वह सिर महादेवके हाथको चिपट गया, नीचे नहीं गिरा। तब ब्राह्मणी विद्या महादेवको साधनाको व्यर्थ करके चली गई। इसके बाद रात्रिको, महादेवने श्री वर्धनमानस्वामीको श्मशानभूमिमें ध्यानारूढ देखकर और उन्हें विद्यारूपी मनुष्य समझकर उन पर उपद्रव किया। प्रातःकाल जब उसे यह मालूम हुआ कि वे श्रीवर्धमानजिनेंद्र थे; तब उसे अपनी कृति पर बहुत पश्चात्ताप हुआ। उसने भगवान्की स्तुति की और उनके चरण छूए। चरणोंको छूते ही उसके हाथसे चिपटा हुआ वह गधेका सिर गिर पड़ा।"

यह सब कथन श्वेताम्बर शास्त्रोंके बिलकुल विरुद्ध है। श्वेताम्बरोंके 'आवश्यक' सूत्रमें महादेवकी जो कथा लिखी है और जिसको मुनि आत्मारामजीने अपने 'तत्वादर्श' नामक ग्रंथके १२ वे परिच्छेदमें उद्धृत किया है, उससे यह सब कथन बिलकुल ही विलक्षण मालूम होता है। उसमें महादेव (महेश्वर) के पिताका नाम 'सात्यकि' न बतलाकर स्वयं महादेवका ही असली नाम 'सात्यकि' प्रगट किया है और पिताका नाम 'पेढाल' परिव्राजक बतलाया है। लिखा है कि, पेढालने अपनी विद्याओंका दान करनेके लिए किसी ब्रह्मचारिणीसे एक पुत्र उत्पन्न करनेकी जरूरत समझकर 'ज्येष्ठा' नामकी साध्वीसे व्यभिचार किया और उससे सात्यकि नामके महादेव पुत्रको उत्पन्न करके उसे अपनी संपूर्ण विद्याओंका दान कर दिया। साथ ही यह भी लिखा है कि, वह सात्यकि नामका महेश्वर महावीर भगवान्का अविरत सम्यग्दृष्टि श्रावक था। इस लिए उसने किसी चारित्रका पालन किया, मुनिदीक्षा ली, घोर तपश्चरण किया और उससे भ्रष्ट हुआ, इत्यादि बातोंका उसके साथ कोई सम्बंध नहीं है। महादेवने विद्याधरोंकी आठकन्याओंसे विवाह किया, वे मर गईं, तब पार्वतीसे विवाह किया। पार्वतीसे भोग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करते समय त्रिशूल विद्या नष्ट हो गई, उसके स्थानमें ब्राह्मणी विद्याको सिद्ध करनेकी चेष्टा की गई, विद्याकी विक्रिया, गधेका सिर हाथके चिपट जाना और फिर उसका वर्धमान स्वामीके चरण छूने पर छूटना, इन सब बातोंका भी वहाँ कोई उल्लेख नहीं है। इनके स्थानमें लिखा है कि महादेव बड़ा कामी और व्यभिचारी था, वह अपनी विद्याके बलसे जिस किसीकी कन्या या स्त्रीसे चाहता था विषय सेवन कर लेता था; लोग उसकी विद्याके भयसे कुछ बोल नहीं सकते थे। जो कोई बोलता था उसे वह मार डालता था, इत्यादि। अन्तमें यह भी लिखा है कि उमा (पार्वती) एक वेश्या थी, महादेव उस पर मोहित होकर उसीके घर रहने लगा था। और 'चंद्रप्रद्योत' नामके राजाने, उमासे मिलकर और उसके द्वारा यह भेद मालूम करके कि भोग करते समय महादेवकी समस्त विद्याएँ उससे अलग हो जाती हैं, महादेवको उमासहित भोगमग्नावस्थामें अपने सुभटों द्वारा मरवा डाला था और इस तरह पर नगरका उपद्रव दूर किया था। इसके बाद महादेवकी उसी भोगावस्थाकी पूजा प्रचलित होनेका कारण बतलाया है। इससे पाठक भले प्रकार समझ सकते हैं कि पद्मसागरजी गणीका उपर्युक्त कथन श्वेताम्बर शास्त्रोंके इस कथनसे कितना विलक्षण और विभिन्न है और वे कहाँ-तक इस धर्मपरीक्षाको श्वेताम्बरत्वका रूप देनेमें समर्थ हो सके हैं। गणीजीने विना सोचे समझे ही यह सब प्रकरण दिगम्बर धर्मपरीक्षाके १२ वें परिच्छेदसे ज्योंका त्यों नकल कर डाला है। सिर्फ एक पद्य नं० ७८४ में 'पूर्व' के स्थानमें 'वर्ष' का परिवर्तन किया है। अमितगतिने 'दशमे पूर्वे' इस पदके द्वारा महादेवको दशपूर्वका पाठी सूचित किया था। परन्तु गणीजीको अमितगतिके इस प्रकरणकी सिर्फ इतनी ही बात पसंद नहीं आई और इसलिए उन्होंने उसे बदल डाला है।

(९) पद्मसागरजी अपनी धर्मपरीक्षामें जैनशास्त्रानुसार 'कर्णराज' की उत्पत्तिका वर्णन करते हुए लिखते हैं कि—

"एक दिन व्यास राजाके पुत्र पाण्डुको वनमें क्रीडा करते हुए किसी विद्याधरकी 'काममुद्रिका' नामकी एक अंगूठी मिली। थोड़ी देरमें उस अंगूठीका स्वामी चित्रांगद नामका विद्याधर अपनी अंगूठीको ढूँढ़ता हुआ वहाँ आ गया। पांडुने उसे उसकी वह अंगूठी दे दी। विद्याधर पांडुकी इसप्रकार निःस्पृहता देखकर बन्धुत्वभावको प्राप्त हो गया और पाण्डुको कुछ विषण्णचित्त जानकर उसका कारण पूछने लगा। इसपर पांडुने कुन्तीसे विवाह करनेकी अपनी उत्कट इच्छा और उसके न मिलनेको अपने विषादका कारण बतलाया। यह सुनकर उस विद्याधरने पांडुको अपनी वह काममुद्रिका देकर कहा कि इसके द्वारा तुम कामदेवका रूप बनाकर कुन्तीका सेवन करो, पीछे गर्भ रह जाने पर कुन्तीका पिता तुम्हारे ही साथ उसका विवाह कर देगा। पाण्डु काम मुद्रिकाको लेकर कुन्तीके घर गया और बराबर सात दिनतक कुंतीके साथ विषयसेवन करके उसने उसे गर्भवती कर दिया। कुंतीकी माताको जब गर्भका हाल मालूम हुआ तब उसने गुप्त रूपसे प्रसूति कराई और प्रसव हो जाने पर बालकको एक मंजूषामें बन्द करके गंगामें बहा दिया। गंगामें बहता हुआ वह मंजूषा चंपापुरके राजा 'आदित्य' को मिला, जिसने उस मंजूषामेंसे उक्त बालकको निकालकर उसका नाम 'कर्ण' रक्खा, और अपने कोई पुत्र न होनेके कारण बड़े ही हर्ष और प्रेमके साथ उसका पालन पोषण किया। आदित्यके मरने पर वह बालक चम्पापुरका राजा हुआ। चूंकि 'आदित्य' नामके राजाने कर्णको पालनपोषण करके वृद्धिको प्राप्त किया था इस लिए कर्ण 'आदित्यज' कहलाता है, वह ज्योतिष्क जातिके सूर्यका पुत्र कदापि नहीं है।" *

पद्मसागरजीका यह कथन भी श्वेताम्बर

---

* यह सब कथन नं० १०५९ से १०९० तकके पद्योंमें वर्णित है और अमितगति धर्मपरीक्षाके १५ वें उठाकर परिच्छेदसे रक्खा गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शास्त्रोंके प्रतिकूल है। श्वेताम्बरोंके श्रीदेवविजयगणिविरचित 'पांडवचरित्र'में पांडुको राजा विचित्रवीर्यका पुत्र लिखा है और उसे 'मुद्रिका' देनेवाले विद्याधरका नाम 'विशालाक्ष' बतलाया है। साथ ही यह भी लिखा है कि 'वह विद्याधर अपने किसी शत्रुके द्वारा एक वृक्षके नितम्बमें लोहेकी कीलोंसे कीलित था। पांडुने उसे देखकर उसके शरीरसे वे लोहेकी कीलें खींचकर निकालीं; चंदनादिकके लेपसे उसे सचेत किया और उसके घावोंको अपनी मुद्रिकाके रत्नजलसे धोकर अच्छा किया। इस उपकारके बदलेमें विद्याधरने पांडुको उसकी चिन्ता मालूम करके, अपनी एक अंगूठी दी और कहा कि, यह अंगूठी स्मरण मात्रसे सब मनोवांछित कार्योंको सिद्ध करनेवाली है; इसमें अदृश्यीकरण आदि अनेक महान् गुण हैं। पाण्डुने घरपर आकर उस अंगूठीसे प्रार्थना की कि 'हे अंगूठी, मुझे कुन्तिके पास ले चल,' अंगूठीने उसे कुन्तीके पास पहुँचा दिया। उस समय कुन्ती, यह मालूम करके कि उसका विवाह पाण्डुके साथ नहीं होता है, गलेमें फाँसी डालकर मरनेके लिए अपने उपवनमें एक अशोक वृक्षके नीचे लटक रही थी। पांडुने वहाँ पहुँचते ही गलेसे उसकी फाँसी काट डाली और कुंतीके सचेत तथा परिचित हो जानेपर उसके साथ भोग किया। उस एक ही दिनके भोगसे कुन्तीको गर्भ रह गया। बालकका जन्म होने पर धात्रीकी सम्मतिसे कुन्तीने उसे मंजूषामें रखकर गंगामें बहा दिया। कुन्तीकी माताको कुन्तीकी आकृति आदि देखकर पूछनेपर पीछेसे इस कृत्यकी खबर हुई। वह मंजूषा 'अतिरथि' नामके एक सारथिको मिला जिसने बालकको उसमेंसे निकालकर उसका नाम 'कर्ण' रक्खा। चूंकि उस सारथिकी स्त्रीको, मंजूषा मिलेनेके उसी दिन प्रातः काल, स्वप्नमें आकर सूर्यने यह कहा था कि हे वत्स आज तुझे एक उत्तम पुत्रकी प्राप्ति होगी। इस लिए सूर्यका दिया, हुआ होनेसे बालकका दूसरा नाम सूर्यपुत्र भी रक्खा गया।

श्वेताम्बरीय पांडवचरित्रके इस संपूर्ण कथनसे पद्मसागरजीके पूर्वोक्त कथनका कहाँतक मेल है और वह कितना सिरसे पैर तक विलक्षण है, इसे पाठकोंको बतलानेकी जरूरत नहीं है। वे एक नजर डालते ही दोनोंकी विभिन्नता मालूम कर सकते हैं। अस्तु; इसी प्रकारके और भी अनेक कथन इस धर्मपरीक्षामें पाये जाते हैं जो दिगम्बरशास्त्रोंके अनुकूल तथा श्वेताम्बर-शास्त्रोंके प्रतिकूल हैं और जिनसे ग्रंथकर्ताकी साफ चोरी पकड़ी जाती है। ऊपरके इन सब विरुद्ध कथनोंसे पाठकोंके हृदयोंमें आश्चर्यके साथ यह प्रश्न उत्पन्न हुए विना नहीं रहेगा कि 'जब गणीजी महाराज एक दिगम्बरग्रंथको श्वेताम्बरग्रंथ बनानेके लिए प्रस्तुत हुए थे तब आपने श्वेतांबरशास्त्रोंके विरुद्ध इतने अधिक कथनोंको उसमें क्यों रहने दिया? क्यों उन्हें दूसरे कथनोंकी समान, जिनका दिग्दर्शन इस लेखके शुरूमें कराया गया है, नहीं निकाल दिया या नहीं बदल दिया। उत्तर इस प्रश्नका सीधा सादा यही हो सकता है कि या तो गणीजीको श्वेताम्बरसम्प्रदायके ग्रंथों पर पूरी आस्था (श्रद्धा) नहीं थी, अथवा उन्हें उक्त सम्प्रदायके ग्रंथोंका अच्छा ज्ञान नहीं था। इन दोनों बातोंमेंसे पहली बात बहुत कुछ संदिग्ध मालूम होती है और उसपर प्रायः विश्वास नहीं किया जासकता। क्योंकि गणीजीकी यह कृति ही उनकी श्वेताम्बर-सम्प्रदाय-भक्ति और साम्प्रदायिक मोहमुग्धताका एक अच्छा नमूना जान पड़ती है; और इससे आपकी श्रद्धाका बहुत कुछ पता लगजाता है। इस लिये दूसरी बात ही प्रायः सत्य मालूम होती है। श्वेताम्बर ग्रंथोंसे अच्छी जानकारी न होनेके कारण ही आपको यह मालूम नहीं हो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सका कि उपर्युक्त कथन तथा इन्हींके सदृश और दूसरे अनेक कथन श्वेताम्बर सम्प्रदायके विरुद्ध हैं; और इस लिए आप उनको निकाल नहीं सके। जहाँ तक मैं समझता हूँ पद्मसागरजीकी योग्यता और उनका शास्त्रीय ज्ञान बहुत साधारण था। वे श्वेताम्बर सम्प्रदायमें अपने आपको विद्वान् प्रसिद्ध करना चाहते थे; और इस लिए उन्होंने एक दूसरे विद्वान्की कृतिको अपनी कृति बनाकर उसे भोले समाजमें प्रचलित किया है। नहीं तो, एक अच्छे विद्वान्की ऐसे जघन्याचरणमें कभी प्रवृत्ति नहीं हो सकती। उसके लिए ऐसा करना बड़े ही कलंक और शर्मकी बात होता है। पद्मसागरजीने यद्यपि यह पूरा ही ग्रंथ चुरानेका साहस किया है और इस लिए आप पर कविकी यह उक्ति बहुत ठीक घटित होती है कि 'अखिलप्रबंधं हर्त्रे साहसकर्त्रे नमस्तुभ्यं;' परन्तु तो भी आप शर्मको उतारकर अपने मुँह पर हाथ फेरते हुए बड़े अभिमानके साथ लिखते हैं कि:—

गणेशनिर्मितां धर्मपरीक्षां कर्तुमिच्छति।
मादृशोऽपि जनस्तन्न चित्रं तत्कुलसंभवात्॥ ४॥
यस्तरुर्भज्यते हस्तिवरेण स कथं पुनः।
कलभेनेति नाशंक्यं तत्कुलीनत्वशक्तितः॥ ५॥
चक्रे श्रीमत्प्रवचनपरीक्षा धर्मसागरैः।
वाचकेन्द्रैस्ततस्तेषां शिष्येणैषा विधीयते॥ ६॥

अर्थात्–गणधरदेवकी निर्माण की हुई धर्मपरीक्षाको मुझ जैसा मनुष्य भी यदि बनानेकी इच्छा करता है तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि मैं भी उसी कुलमें उत्पन्न हुआ हूँ। जिस वृक्षको एक गजराज तोड़ डालता है, उसे हाथीका बच्चा कैसे तोड़ डालेगा, यह आशंका नहीं करनी चाहिए। क्योंकि स्वकीय कुलशक्तिसे वह भी उसे तोड़ डाल सकता है। मेरे गुरु धर्मसागरजी वाचकेन्द्रने 'प्रवचनपरीक्षा' नामका ग्रंथ बनाया है और मैं उनका शिष्य यह 'धर्मपरीक्षा' नामका ग्रंथ रचता हूँ। इस प्रकार पद्मसागरजीने बड़े अहंकारके साथ अपना ग्रंथकर्तृत्व प्रगट किया है। परन्तु आपकी इस कृतिको देखते हुए कहना पड़ता है कि आपका यह कोरा और थोथा अहंकार विद्वानोंकी दृष्टिमें केवल हास्यास्पद होनेके सिवाय और कुछ भी नहीं है। यहां पाठकोंपर अमितगतिका वह पद्य भी प्रगट किया जाता है, जिसको बदलकर ही गणीजीने ऊपरके दो श्लोक (नं० ४–५) बनाये हैं:—

धर्मो गणेशेन परीक्षितो यः,
कथं परीक्षे तमहं जडात्मा।
शक्तो हि यं भंक्तुमिभाधिराजः,
स भज्यते किं शशकेन वृक्षः॥ १५॥

इस पद्यमें अमितगति आचार्य अपनी लघुता प्रगट करते हुए लिखते हैं कि–'जो धर्म गणधर देवके द्वारा परीक्षा किया गया है, वह मुझ जडात्मासे कैसे परीक्षा किया जा सकता है? जिस वृक्षको गजराज तोड डालनेमें समर्थ है क्या उसे शशक भंग कर सकता है?' इसके बाद दूसरे पद्यमें लिखा है–'परन्तु विद्वान् मुनीश्वरोंने जिस धर्ममें प्रवेश करके उसके प्रवेशमार्गको सरल कर दिया है उसमें मुझे जैसे मूर्खका प्रवेश हो सकता है; क्योंकि वज्रसूचीसे छिद्र किये जाने पर मुक्तामणीमें सूतका नरम डोरा भी प्रवेश करते देखा जाता है। पाठकगण, देखा, कैसी अच्छी उक्ति और कितना नम्रतामय भाव है। कहाँ मूलकर्ताका यह भाव, और कहाँ उसको चुराकर अपना बनानेवालेका उपर्युक्त अंहकार! मैं समझता हूँ यदि पद्मसागरजी इसी प्रकारका कोई नम्र भाव प्रकट करते तो उनकी शानमें कुछ भी फर्क न आता। परन्तु मालूम होता है कि आपमें इतनी भी उदारता नहीं थी और तभी आपने, साधु होते हुए भी, दूसरोंकी कृतिको अपनी कृति बनानेरूप यह असाधु कार्य किया है। इत्यलम्।

बम्बई—ता० ८–८–१७।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हमारे छपाये हुए नये ग्रन्थ ।

वृन्दावन कृत चौवीसी पाठ बम्बईका छपा हुआ ।

यह ग्रन्थ बम्बईके सुन्दर टाइपमें अच्छे कागजों पर फिरसे छपाया गया है। छपा भी शुद्धतापूर्वक है। जिन्हें और कहींकी छपाई पसन्द नहीं उन्हें अब इस बम्बईके छपे हुए विधानको या पूजा पाठको अवश्य मँगा लेना चाहिए। मूल्य १~)

जैनपदसंग्रह ।

कविवर दौलतराम कृत पहला भाग और भागचन्दजी कृत दूसरा भाग पद-संग्रह फिरसे छपाये गये हैं। बहुत दिनोंसे ये मिलते नहीं थे। मूल्य पहले भागका ।≈) दूसरेका ।) ।

बुधजन सतसई ।

अर्थात् बुधजनजीके उपदेश, नीति, सुभाषित आदि सम्बन्धी ७०० दोहे। यह पुस्तक दुबारा छपाई जा रही है। १५-२० दिनमें तैयार हो जायगी।

जैनबालबोधकके दोनों भाग ।

श्रीयुत पं० पन्नालालजीके ये दोनों भाग जैनपाठशालाओंमें बहुत ही प्रचलित रहे हैं। बहुत दिनोंसे समाप्त हो गये थे, अब फिरसे छपाये गये हैं। पहले भागसे असंयुक्त और संयुक्त अक्षरोंके शब्दोंका शुद्ध शुद्ध लिखना पढ़ना अच्छी तरह आ जाता है। दूसरे भागमें धार्मिक कथाओंके और धर्मतत्त्वोंके अच्छे अच्छे पाठ हैं। मूल्य पहले भागका ।) और दूसरे भागका ।।) ।

दर्शनसार ।

आचार्य देवसेनसूरिका यह एतिहासिक ग्रन्थ मूल, संस्कृतच्छाया, हिन्दी अर्थ और विस्तृत विवेचन सहित हाल ही छपकर हुआ तैयार है। इसका सम्पादन जैनहितैषीके सम्पादकने किया है। इसमें बौद्ध, आजीवक, श्वेताम्बर, काष्ठासंघ, द्राविडसंघ, यापनीयसंघ, माथुरसंघ आदि अनेक धर्मसम्प्रदायोंका इतिहास और उनकी मानतायें बतलाई हैं। विवेचन बहुत ही परिश्रमसे लिखा गया है। प्रत्येक इतिहासप्रेमीको यह पुस्तक मँगाकर पढ़ना चाहिए। मूल्य ।)

रत्नकरण्डश्रावकाचार पद्यानुवाद ।

पं० गिरिधर शर्माकृत । खड़ी बोलीके सुन्दर पद्योंमें रत्नकरण्डका सुन्दर सरल अनुवाद। जैनपाठशालाओंमें पढ़ाये जाने योग्य। मूल्य ≈)

माणिकचन्द ग्रन्थमालाके ग्रन्थ ।

सब ग्रन्थ ठीक लागतके मूल्य पर बेचे जाते हैं। सबसे सस्ते हैं। प्रत्येक मंदिरमें इनकी एक एक प्रति अवश्य रखना चाहिए और संस्कृतके पण्डितोंको वितरण करना चाहिएः—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१ सागारधर्मामृत सटीक आशाधर कृत ।≈)
२ लघीयस्त्रयादिसंग्रह अकलंकभट्टकृत ।=)
३ पार्श्वनाथचरित वादिराजसूरि कृत ॥)
४ विक्रान्त कौरवीय नाटक हस्तिमल्ल कृत ।=)
५ मैथिलीपरिणय नाटक ,, ।)
६ प्रद्युम्नचरित महासेनाचार्यकृत ॥)
७ आराधनासार सटीक देवसेनाचार्य कृत ।)॥
८ जिनदत्तचरित्र, गुणभद्र कृत ।)॥
९ चारित्रसार चामुण्डराय कृत ।-)
१० प्रमाणनिर्णय वादिराजसूरि कृत (छप रहा है)

बच्चोंके सुधारनेके उपाय ।

इसमें बच्चोंकी आदतें सुधारने, उन्हें सदाचारी और विनयशील बनाने, बुरेसे बुरे स्वभावके लड़कोंको अच्छे बनाने, उपद्रवियों और चिड़चिड़ोंको शान्त शिष्ट बनानेके अमोघ उपाय बतलाये गये हैं । प्रत्येक माता पिताको इसे पढ़ डालना चाहिए । इसके अनुसार चलतेसे उनका घर स्वर्ग बन जायगा । मू० ॥)

कोलम्बस ।

अमेरिका खण्डका पता लगानेवाले असम साहसी कर्मवीर कोलम्बसका आश्चर्यजनक और शिक्षाप्रद जीवनचरित । अभी हाल ही छपकर तैयार हुआ है । नवयुवाओंका अवश्य पढ़ना चाहिए । मूल्य ।॥)

मानवजीवन ।

सदाचार और चरित्रसम्बन्धी अनेक अँगरेजी, मराठी, गुजराती, बंगला पुस्तकोंके आधारसे यह ग्रन्थ रचा गया है । सदाचारकी शिक्षा देनेके लिए और सच्चे मनुष्योंकी सृष्टि करनेके लिए यह ग्रन्थ बहुत अच्छा है । इस ग्रन्थके बिना कोई घर, कोई पुस्तकालय, और कोई मन्दिर न रहना चाहिए । भाषा बहुत ही सरल और स्पष्ट है । मूल्य १।=) कपड़ेकी जिल्दका १।॥)।

मैनेजर, जैनग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, गिरगांव–बम्बई.

उदासीके समय मन प्रसन्न करना हो; और घर बैठे बिठाये मनोरंजक; चित्ताकर्षक, हास्योत्पादक चित्र व लेख देखने व पढ़नेकी इच्छा हो तो ' जैन संसार ' मँगवाइए ।

जातीय कुरीतियाँ समझनी हों; उनसे छूटनेका प्रयत्न करना हो; और अपने देशके, समाजके और धर्मके पूज्य पुरुषोंके दर्शन करने हों तो तत्काल ही २) रु. का मनिआर्डर भेज दीजिए अथवा २≈) की वी. पी. भेजनेकी सूचना दीजिए.

जैनसंसारका खास अंक ।

लगभग डेढ सौ पेजका होगा । अंदर आठ दस जैन समाजके मुख्य २ महात्माओंके और नेताओंके चित्र होंगे । साथ ही हास्योत्पादक और मनमोहक चित्र भी होंगे । एक प्रतिका मूल्य ॥।=) होगा; परन्तु जो संसारके ग्राहक होंगे उनको यह अंक मुफ्तमें मिलेगा । ग्राहकोंको एक सुभीता यह भी होगा, कि निम्नलिखित पुस्तकें हरेक ग्राहकको आधे मूल्य में मिलेंगी । पूरा मूल्य इस प्रकार है ।

१ महेन्द्रकुमार; ।=) २ दलजीतसिंह; ॥-) ३ राजपथका पाथिक; ।) ४ चम्पा; ।≈)

मैनेजर, जैनसंसार, ज़ुबिलीबाग ताड़देव, बम्बई ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर-सीरीज ।

हमारे यहाँसे उक्त नामकी एक ग्रन्थमाला निकालती है जिसमें बहुत उच्च श्रेणीके उत्तमोत्तम ग्रन्थ निकलते हैं । स्थायी ग्राहकोंको सीरीजके तमाम ग्रन्थ पौनी कीमतमें दिये जाते हैं । स्थायी ग्राहक बननेकी प्रवेश फीस आठ आने हैं । अबतक नीचे लिखे ग्रन्थ निकल चुके हैं:—

१–२ स्वाधीनता २)
३ प्रतिभा उपन्यास) १)
४ फूलोंका गुच्छा (गल्पें) ॥–)
५ आँखकी किरकिरी (उपन्यास) १॥)
६ चौबेका चिट्ठा ॥।)
७ मितव्ययता ॥।≈)
८ स्वदेश ॥≈)
९ चरित्रगठन और मनोबल ।≈)॥
१० आत्मोद्धार १)
११ शान्तिकुटीर (उपन्यास) ॥।)
१२ सफलता और उसकी साधनाके उपाय ॥≈)
१३ अन्नपूर्णाका मन्दिर (उपन्यास) ॥।)
१४ स्वावलम्बन १।)
१५ उपवासचिकित्सा ॥।≈)
१६ सूमके घर धूम (प्रहसन) ≡)
१७ दुर्गादास (नाटक) ॥।≈)
१८ बंकिम निबंधावली ॥।)
१९ छत्रसाल (उपन्यास) १॥)
२० प्रायश्चित्त (नाटक) ।)
२१ अब्राहिम लिंकन ॥≈)
२२ मेवाड पतन (नाटक) ॥।≈)
२३ शाहजहाँ (नाटक) ॥।≈)
२४ मानवजीवन १।≈)

हमारी अन्यान्य पुस्तकें ।

१ बूढेका ब्याह ।≈)
२ ब्याही बहू ≡)
३ कनकरेखा (गल्पसंग्रह) ॥।)
४ व्यापारशिक्षा ॥)
५ युवाओंका उपदेश ॥≈)
६ शान्तिवैभव ।≈)
७ पिताके उपदेश ≈)
८ वीरोंकी कहानियाँ ।≈)
९ दियातले अँधेरा –)॥
१० मणिभद्र (उपन्यास) ॥≈)
११ अच्छी आदतें डालनेकी शिक्षा ≈)॥।
१२ लन्दनके पत्र ≡)
१३ विद्यार्थिजीवनका उद्देश्य –)
१४ संतानकल्पद्रुम ॥।)
१५ भाग्यचक्र –)
१६ बच्चोंको सुधारनेके उपाय ॥)
१७ कोलम्बस ॥।)

औरोंकी पुस्तकें ।

१ गल्पपंचदशी ॥।)
२ सप्तसरोज (गल्पें) ॥।)
३ स्त्रियोंकी पराधीनता ॥≈)
४ विवेकानन्द नाटक १)
५ स्वदेशाभिमान ।)
६ गृहिणीकर्तव्य १॥)
७ आरोग्यदिग्दर्शन ॥≡)
८ मि० ह्यूम ॥≡)

नोट:—बाहरकी और भी अच्छी अच्छी पुस्तकें हम रखते हैं । सूचीपत्र मँगाकर देखिये ।

मैनेजर—**हिन्दीग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,**
हीराबाग पो. गिरगांव–**बम्बई ।**

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आरंभसिद्धि सटीक ।

(जैन ज्योतिषनो अपूर्व ग्रन्थ ।)

आ ग्रन्थना कर्ता उदयप्रभदेवसूरि वस्तुपाळ मंत्रीसमयमां थएला छे आ ग्रन्थमां–तिथि १, वार २, नक्षत्र ३, योग ४, राशि ५, गोचर ६, कार्य ७, गमन (प्रयाण) ८, वास्तु ९, विवाह १० अने मिश्र ११. आ अग्यार द्वार (वियोग) लीधा छे. दरेक विषय सांगोपांग कहेला होवाथी कोइपण विषय माटे ग्रन्थान्तरना अवलोकननी जरूर रहेती नथी. आ ग्रन्थ ऊपर वाचनाचार्य श्रीहेमहंसगणीए टीका करेली छे. तेमां मूळ ग्रन्थनुं स्पष्ट स्पष्टीकरण करवा उपरांत ते ते स्थळे स्वमत तथा अन्य मतना प्राचीन ज्योतिष ग्रन्थनी साक्षी आपी दरेक विषयो सुदृढ कर्या छे. तेमज मूळ ग्रन्थनी अपूर्णता पण स्वपर ग्रन्थोंना पाठो लखीने पूर्ण करी छे. अर्थात् आ एकज ग्रन्थ ऐहिक तथा पारलौकिक सर्व शुभ कार्यो माटे अति उपयोगी छे. कीमत रु. पांच. (टपाल खर्च भिन्न.)

श्रीसिद्धर्षिगणि रचित

उपमितिभवप्रपञ्चाकथा ।

[वीश हजार श्लोकनो साहित्यसागर ।]

आ ग्रन्थनी प्रशंसा करवी ते कस्तुरीनी सुगंध अने सुवर्णनी कान्तिनां प्रशंसापत्रो मेळववा श्रम सेववा सरखूं छे. अद्भुत कल्पना करवानी प्रतिभा शक्तिवाळा आ ग्रन्थमां विद्वान् कर्त्तानी शैली अने कथाना रूपमां अद्भुत कल्पना योजवाना सामर्थ्यथी वक्ता अने श्रोताओने अपूर्व आनंद प्रकट थाय छे. आ ग्रन्थ त्रण भागमां वहेंची नाखवामां आव्यो छे. पहेला भागमां त्रण प्रस्ताव, बीजा भागमां चारथी छ प्रस्ताव अने त्रीजा भागमां सातथी आठ प्रस्ताव समाववामां आव्या छे. छुटक भागो खरीद करनार पासेथी पहेला, बीजा अने त्रीजा भागना रु. ६–०–०, ६–०–० अने रु. ४–०–० लेवामां आवशे, अने संपूर्ण ग्रन्थ एकी साथे लेनार पासेथी रु० १२–०–० लेवामां आवे छे. ग्राहकनी इच्छा संपूर्ण ग्रन्थ लेवानी हशे तो प्रथम भाग साथेज त्रणे भागनुं मुल्य लेवामां आवशे. प्रथम भाग बहार पड़ी चुक्यो छे ।

पंडित श्रीहंसरत्नगणी विरचित (गद्यात्मक)

श्रीशत्रुंजयमाहात्म्यम्.

आ महान् ग्रंथ पंदर अधिकारमां वहेंचायेलो छे. तेमां दस हजार श्लोको आपेला छे, आ ग्रंथना कर्तानी शैली अद्भुत घणी प्रशंसनीय छे. तीर्थराजनी अद्भुत शोभा तथा तेमनां दर्शन अने श्रवणनुं महद् पुन्य, निवृतिना समयमां प्राप्त करवा सरखुं छे. पंडितश्रीए प्रत्येक अधिकारमां सृष्टि अने प्रकृतिना सौंदर्यनुं अप्रतिम वर्णन करेलुं छे. संस्कृत शुद्ध अने सरल भाषा शरुआतना अभ्यासीओने बहु उपयोगी छे; सुंदर जाडा एन्टीक पेपर उपर छपायेलो छे. कीमत रु० १०–०–० टपाल खर्च जुदुं.

शाह पुरुषोत्तम गीगाभाई.
' जैनशासन ' पत्रना मालेक, भावनगर ।

कन्याकी जरूरत ।

हमें अपने लड़केका विवाह करना है । हम समैया परवार (तारनपंथी) हैं; परन्तु हमारे यहाँ लड़कियोंका अभाव हो रहा है । थोड़े घर होनेसे हमारी बिरादरीमें बीसों जवान लड़के कुँआरे मारे मारे फिर रहे हैं, उन्हें लड़कियाँ नहीं मिलती । इस लिए हम परवारोंमें सम्बन्ध करना चाहते हैं । इसके लिए यदि हमें अपना तारनपंथ छोड़ देना पड़े तो हम उसे छोड़नेके लिए भी तैयार हैं । कन्यावाले जिस तरह राजी हों हम उसी तरह अपनी व्यवस्था कर सकते हैं । लड़केकी उम्र २७ वर्षकी है । कुँआर वदी १२ सं० ४६ का जन्म है । राशिका नाम ' डिगम्बर ' है । सांके नीचे लिखे अनुसार हैं । चार सांकें सुलझाकर अथवा आठ सांके सुलझाकर दोनों तरहसे हम सम्बन्ध करनेके लिए राजी हैं:—

१ प्रथम मूर गोलाडिम फरस्या गोत ।
२ लड़काके मामा लूटा ।
३ बापके मामा पाटे ।
४ मतारीके मामा रकिया ।
५ आजेके मामा उजिया ।
६ आजीके मामा बहुरिया ।
७ नानाके मामा खोना ।
८ नानीके मामा बैशाखिया ।

नीचे लिखे ठिकानेसे पत्र व्यवहार करना चाहिए। हमारे यहाँ बजाजी और लेन देनका धंदा होता है । हम मध्यम स्थितिके गृहस्थ हैं ।

नन्हेंलाल मन्नूलाल परवार बजाज ।
इटारसी (होशंगाबाद) ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैनभ्रातृ–समाज कार्य्यालय, इटावा ।

श्रीमान् ! जुहारु ।

अब आपको इस बातके बतानेकी आवश्यकता नहीं रही है कि जैनशास्त्रोंके अनुसार जैनोंकी सब जातियोंमें पारस्पारिक रोटी बेटीका व्यवहार होना जैनसमाजकी उन्नतिका इस समय एक मुख्य कारण है। इसमें जैनसमाजके सब नेता और विद्वान् सहमत समाजमें अब हमको इसकी आवश्यकता भी प्रतीत होती है । बिना इसके हैं। जैन अब हमारे समाजकी रक्षा होना असम्भव है। अतः इसके प्रचारार्थ "जैन भ्रातृसमाज" नामकी एक संस्था स्थापित की गई है और इसमें सबसे प्रथम आप लोगोंकी सम्मति एकत्रित करना निश्चित हुआ है। अतः आपकी सेवामें इस पत्रके साथ जो कागजका अंश है उसको भर कर हमारे पास भेजनेकी कृपा कीजिये। आशा है कि आप शीघ्र ही इस कार्य्यको करके इस समाजोत्थानके कार्य्यमें सहायक होकर पुण्यके भागी होंगे।

प्रार्थी—

चन्द्रसेन जैन वैद्य, मंत्री

जैनभ्रातृसमाज—चन्द्राश्रम, इटावा ।

(इतने अंशको फाड़कर और अपने नाम आदि भरकर भेज दीजिए ।)

श्रीयुत मंत्री जैन भ्रातृसमाज, जुहारु ।

आपका पत्र आया। मैं आपके उद्देश्य से सर्वथा सहमत हूं। और सहर्ष सम्मति देता हूं कि जैनों में पारस्परिक रोटी बेटीका व्यवहार अवश्य होना चाहिये।

नाम … …. …. … … …. … …. …

जाति … …. … … …ग्राम… … … …

पोष्ट …. .. … … …जिला … … …

हस्ताक्षर … … … … ….

तारीख । । १९१ .

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देशी, पवित्र, स्वादिष्ट, पाचक दवाइयोंका अपूर्व संग्रह

दिलबहार चूरन

(खाना शीघ्र हजम करने व भूख बढ़ाने वाला)

किसी भी उत्तम चूर्णमें तीन गुण होना आवश्यक है (१) स्वादिष्ट यानी जायकेदार (२) पाचन करनेवाला और (३) भूख बढ़ानेवाला। हर्ष है कि इस चूर्णमें ये तीनों गुण भरपूर हैं। बहुतसे लोगोंको रोज़ चूरन खानेकी आदत होती है उनके लिये भी यह बड़े कामकी चीज है। इसकी खुराक १॥ माशे की है, परन्तु जायकेदार होनेसे अगर थोड़ा ज्यादा भी खा लिया जावे तो गर्मी वगैरह कोई हानि नहीं करता है। क्योंकि चूर्ण होनेपर भी हमने इसमें किसी तीक्ष्ण चीजका प्रयोग नहीं किया है। सब दवाइयां माद्दिल गुणवाली हैं, इसलिये वीमार आदमी भी खुशीसे खा सकते हैं। पवित्र औषधियोंके सम्मेलनके कारण सभी सम्प्रदायवाले बेखटके खा सकते हैं। हम बहुत बढ़कर बात नहीं कहना चाहते हैं। इसमें स्वादिष्ट खाना जल्द हजम करना, भूख बढ़ाना तीन विशेष गुण हैं, उनके लिये हम दावेके साथ कहते हैं कि इन बातोंमें आपको कभी धोखा नहीं होगा तिसपर भी—

आपके विश्वासके लिये—

हमने इसके एक २ तोलेके नमूनेके पैकेट बनाकर रक्खे हैं। यदि आप इस चूर्णकी परीक्षा करना और इससे लाभ उठाना चाहते हैं तो एक कार्ड भेजकर बिना डांक खर्चके एक पैकेट मंगाकर परीक्षा कर लीजिये, फिर आपका मन भरे तो पूरी शीशी मंगाकर लाभ उठाइये। बस इस से अधिक हम और कुछ भी नहीं कह सकते हैं। फी शीशी चार औंस (करीव आध पाव) वाली की कीमत १) डांक खर्च ।), तीन शीशी २॥≈ डांक खर्च ।≈) आना।

मिलने का पताः—

चन्द्रसेन जैन वैद्य,

चन्द्राश्रम इटावह यू. पी.।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुगंधी धूप।

इस धूपको नित्य व्यवहार कीजिये। हरेक पूजा अनुष्ठान आदि पवित्र अवसरोंपर इसे व्यवहार करके देखिये। इसकी सुगंधी मनको मोहित करती है। सब तरहकी खराब हवाको दूर कर स्वास्थ्यप्रद वायु प्रदान करती है। एक वार व्यवहार करनेसे फिर आप बाजारी धूप कभी नहीं खरीदेंगे। यह धूप ज्यादह दिन पड़ी रहनेसे खराब नहीं होती है।

२५ तोलेका बक्स मूल्य सिर्फ १) डाँकमहसूल ≡)। छोटी डिब्बीका =), नमूना मुफ्त।

मिलनेका पता—कपूरचन्द जैन, किनारी बाजार आगरा।

आढ़तका काम।

बंबईसे हरकिस्मका माल मँगानेका सुभीता।

हमारे यहांसे बंबईका हरकिस्मका माल किफायतके साथ भेजा जाता है। तांबे व पीतलकी चद्दरें, सब तरहकी मशीनें, हारमोनियम, ग्रामोफोन, टोपी, बनियान, मोजे, छत्री, जर्मनसिलवर और अलूमिनियमके बर्तन, सब तरहका साबुन, हरप्रकारके इत्र व सुगन्धी तेल, छोटी बड़ी घड़ियाँ, कटलरी का सब प्रकारका सामान, पेन्सिल कागज, स्याही, हेण्डल, कोरी कापी, स्लेट, स्याहीसोख, ड्राइंगका सामान, हरप्रकारकी देशी और विलायती दवाइयाँ, काँचकी छोटी बड़ी शीशियोंकी पेटियाँ, हरप्रका·का देशी विलायती रेशमी कपड़ा, सुपारी, इलायची, मेवा, कपूर आदि सब तरहका किराना, बंबईकी और बाहरकी हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी पुस्तकें, जैन पुस्तकें, अगरबत्ती, दशांगधूप, केशर, चंदन आदि मंदिरोपयोगी चीजें, तरह तरहकी छोटी बड़ी रंगीन तसवीरें, अपने कामकी अथवा अपनी दूकानके नामकी मुहरें कार्ड, चिट्ठी, नोटपेपर, मुहूर्त्तकी चिट्ठीयाँ (कंकुपत्रिका) आदि। हरकिस्मका माल होशयारीके साथ वी. पी. से रवाना किया जाता है। एक बार व्यवहार करके देखिये। आपको किसी तरहका धोका न होगा। **हमारा सुरमा और नमकसुलेमानी** अवश्य मँगाइहुए। बहुत बढ़िया हैं।

पता—पूरणचंद नन्हेंलाल जैन।

c/o जैन-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, हीराबाग, पो० गिरगांव, बम्बई।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रार्थनायें ।

१. जैनहितैषी किसी स्वार्थबुद्धिसे प्रेरित होकर निजी लाभके लिए नहीं निकाला जाता है। इसमें जो समय और शक्तिका व्यय किया जाता है वह केवल अच्छे विचारोंके प्रचारके लिए । अतः इसकी उन्नतिमें हमारे प्रत्येक पाठकको सहायता देनी चाहिए ।

२. जिन महाशयोंको इसका कोई लेख अच्छा मालूम हो उन्हें चाहिए कि उस लेखको जितने मित्रोंको वे पढ़कर सुना सकें अवश्य सुना दिया करें ।

३. यदि कोई लेख अच्छा न मालूम हो अथवा विरुद्ध मालूम हो तो केवल उसीके कारण लेखक या सम्पादकसे द्वेष भाव न धारण करनेके लिए सविनय निवेदन है ।

४. लेख भेजनेके लिए सभी सम्प्रदायके लेखकोंको आमंत्रण है । —सम्पादक ।

जैनबोधक मासिकपत्र.

वर्षारंभ श्रावण शुद्ध ५ पासून सुरु. जैनांतील सर्वांत जुने मराठी मासिक पत्र. जुन्या व नव्या ग्राहकांस जैनधर्मादर्श एक रुपया किंमतीचें पुस्तक भेट दिलें जाईल. वार्षिक वर्गणी १॥ रुपया. भेटीच्या पुस्तकास २ आणे फक्त टपाल खर्च घेऊं. ग्राहकांनीं नांवें नोंदवावीं.

जीवराज गौतमचंद दोशी
संपादक जैनबोधक, सोलापूर.

भारतविख्यात ! हजारों प्रशंसापत्र प्राप्त !

अस्सी प्रकारके बात रोगोंकी एकमात्र औषधि

महानारायण तैल ।

हमारा महानारायण तैल सब प्रकारकी वायुकी पीड़ा, पक्षाघात, (लकवा, फालिज) गठिया सुन्नवात, कंपवात, हाथ पांव आदि अंगोंका जकड़ जाना, कमर और पीठकी भयानक पीड़ा, पुरानीसे पुरानी सूजन, चोट, हड्डी या रगका दबजाना, पिचजाना या टेढ़ी तिरछी होजाना और सब प्रकारकी अंगोंकी दुर्बलता आदिमें बहुत बार उपयोगी साबित होचुका है ।

मूल्य २० तोलेकी शीशीका दो रुपया । डा० म० ॥) आना ।

❀ वैद्य ❀

सर्वोपयोगी मासिक पत्र ।

यह पत्र प्रतिमास प्रत्येक घरमें उपस्थित होकर एक वैद्य या डाक्टरका काम करता है। इसमें स्वास्थ्य-रक्षाके सुलभ उपाय, आरोग्य शास्त्रके नियम, प्राचीन और अर्वाचीन वैद्यकके सिद्धान्त, भारतीय वनौषधियोंका अन्वेषण, स्त्री और बालकोंके कठिन रोगोंका इलाज आदि अच्छे २ लेख प्रकाशित होते हैं । इसकी वार्षिक फीस केवल १) रु० मात्र है ।

नमूना मुफ्त मंगाकर देखिये ।

पता—वैद्य शङ्करलाल हरिशङ्कर
आयुर्वेदोद्धारक-औषधालय, मुरादाबाद ।

शीघ्र ग्राहक हो जाइये ।

आगामी आक्टोबरकी १ तारीखसे, जैनसाहित्य, इतिहास, धर्म और प्राचीन शोध खोजसे संबन्ध रखनेवाले, एतद्देशीय और पाश्चात्य विद्वानोंके लिखे हुए हिन्दी, गुजराती और अँगरेजी भाषाके लेखोंसे सुसज्जित

' धर्म्माभ्युदय '

नामका मासिक पत्र प्रकाशित होगा । शीघ्र ग्राहकोंकी लिस्टमें नाम लिखवाइए । विज्ञापन देनेवाले पत्रव्यवहार करें । वार्षिक मूल्य सिर्फ २ रुपये ।

पताः—मैनेजर ' धर्मभ्युदय '
C/o सेठ लक्ष्मीचंद्रजी जैनलायब्रेरी, बेलनगंज आगरा-सिटी.

Printed by Chintaman Sakharam Deole, at the Bombay Vaibhav Press, Servants of India Society's Building, Sandhurst Road, Girgaon, Bombay.

Published by Nathuram Premi, Proprietor, Jain-Granth-Ratnakar Karyalaya, Hirabag, Bombay.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीवर्द्धमानाय नमः ।

भाग १३ ।

जैनहितैषी ।

अंक ८ ।

अगस्त १९१७ ।

विषय सूची ।

१ पुस्तकालय और इतिहास ३२५
२ अर्थूणाका शिलालेख—ले०, बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तार ३३२
३ गोम्मटस्वामीकी सम्पत्तिका गिरवी रक्खाजाना ,, ३३७
४ कुछ इधर उधरकीं—ले०, श्रीगड़बड़ानन्दशास्त्री ... ३३९
५ रानीसारन्धा (गल्प)—ले०, श्रीयुत प्रेमचन्दजी ... ३४१
६ पुस्तक-परिचय ३५३
७ आदिपुराणका अवलोकन—ले०, श्री. बाबू सूरजभानजी वकील ३६२
८ विविधप्रसङ्ग ३६६

सूचना ।

जैनहितैषीका प्रत्येक लेख पढ़ने और विचार करनेके योग्य होता है । इसमें उन्हीं लेखोंको स्थान मिलता है, जिनमें कोई नूतनता, विशेषता और नया प्रकाश होता है । पाठकोंसे प्रार्थना है कि वे इसके प्रत्येक लेखसे लाभ उठावें ।

—सम्पादक ।

संपादक—नाथूराम प्रेमी ।

मुंबईवैभव प्रेस.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रार्थनायें ।

१. जैनहितैषी किसी स्वार्थबुद्धिसे प्रेरित होकर निजी लाभके लिए नहीं निकाला जाता है। इसमें जो समय और शक्तिका व्यय किया जाता है वह केवल अच्छे विचारोंके प्रचारके लिए। अतः इसकी उन्नतिमें हमारे प्रत्येक पाठकको सहायता देनी चाहिए।

२. जिन महाशयोंको इसका कोई लेख अच्छा मालूम हो उन्हें चाहिए कि उस लेखको जितने मित्रोंको वे पढ़कर सुना सकें अवश्य सुना दिया करें।

३. यदि कोई लेख अच्छा न मालूम हो अथवा विरुद्ध मालूम हो तो केवल उसीके कारण लेखक या सम्पादकसे द्वेष भाव न धारण करनेके लिए सविनय निवेदन है।

४. लेख भेजनेके लिए सभी सम्प्रदायके लेखकोंको आमंत्रण है। —सम्पादक।

भारतविख्यात ! हजारों प्रंशसापत्र प्राप्त !

अस्सी प्रकारके बात रोगोंकी एकमात्र औषधि

महानारायण तैल।

हमारा महानारायण तैल सब प्रकारकी वायुकी पीड़ा, पक्षाघात, (लकवा, फालिज) गठिया सुन्नवात, कंपवात, हाथ पांव आदि अंगोंका जकड़ जाना, कमर और पीठकी भयानक पीड़ा, पुरानीसे पुरानी सूजन, चोट, हड्डी या रगका दबजाना, पिचजाना या टेढ़ी तिरछी होजाना और सब प्रकारकी अंगोंकी दुर्बलता आदिमें बहुत बार उपयोगी साबित होचुका है।

मूल्य २० तोलेकी शीशीका दो रुपया। डा० म० ॥) आना।

❀ वैद्य ❀

सर्वोपयोगी मासिक पत्र।

यह पत्र प्रतिमास प्रत्येक घरमें उपस्थित होकर एक वैद्य या डाक्टरका काम करता है। इसमें स्वास्थ्यरक्षाके सुलभ उपाय, आरोग्य शास्त्रके नियम, प्राचीन और अर्वाचीन वैद्यकके सिद्धन्त, भारतीय वनौषधियोंका अन्वेषण, स्त्री और बालकोंके कठिन रोगोंका इलाज आदि अच्छे २ लेख प्रकाशित होते हैं। इसकी वार्षिक फीस केवल १) रु० मात्र है।

नमूना मुफ्त मंगाकर देखिये।

पता—वैद्य शङ्करलाल हरिशङ्कर

आयुर्वेदोद्धारक—औषधालय, मुरादाबाद।

आढ़तका काम।

बंबईसे हरकिस्मक माल मँगानेका सुभीता।

हमारे यहांसे बंबईका हरकिस्मका माल किफायतके साथ भेजा जाता है। तांबे व पीतलकी चद्दरें, सब तरहकी मशीनें, हारमोनियम, ग्रामोफोन, टोपी, बनियान, मोजे, छत्री, जर्मनसिलवर और अलूमिनियमके बर्तन, सब तरहका साबुन, हरप्रकारके इत्र व सुगन्धी तेल, छोटी बड़ी घड़ियाँ, कटलरी का सब प्रकारका सामान, पेन्सिल कागज, स्याही, हेण्डल, कोरी कापी स्लेट, स्याहीसोख, ड्राइंगका सामान, हरप्रकारकी देशी और विलायती दवाइयाँ, काँचकी छोटी बड़ी शीशियोंकी पेटियाँ, हरप्रका का देशी विलायती रेशमी कपड़ा, सुपारी, इलायची, मेवा, कपूर आदि सब तरहका किराना, बंबईकी और बाहरकी हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी पुस्तकें, जैन पुस्तकें, अगरबत्ती, दशांगधूप, केशर, चंदन आदि मंदिरोपयोगी चीजें, तरह तरहकी छोटी बड़ी रंगीन तसबीरें, अपने नामकी अथवा अपनी दूकानके नामकी मुहरें कार्ड, चिट्ठी, नोटपेपर, मुहूर्त्तकी चिट्ठीयाँ (कंकुपत्रिका) आदि, हरकिस्मका माल होशयारीके साथ वी. पी. से रवाना किया जाता है। एक बार व्यवहार करके देखिये। आपको किसी तरहका धोका न होगा।

हमारा सुरमा और नमकसुलेमानी अवश्य मँगाइए। बहुत बढ़िया हैं।

पता—पूरणचंद नन्हेंलाल जैन।

c/o जैन-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, हीराबाग,

पो० गिरगांव, बम्बई।

Printed by Chintaman Sakharam Deole, at the Bombay Vaibhav Press, Servants of India Society's Building, Sandhurst Road, Girgaon, Bombay.

Published by Nathuram Premi, Proprietor, Jain-Granth-Ratnakar Karyalaya, Hirabag, Bombay.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः ।

तेरहवाँ भाग। अंक ८

जैनहितैषी

अगस्त, १९१७. श्रावण, २४४३.

न हो पक्षपाती बतावे सुमार्ग, डरे ना किसीसे कहे सत्यवाणी ।
बने है विनोदी भले आशयोंसे, सभी जैनियोंका हितैषी हितैषी ॥

पुस्तकालय और इतिहास ।

जैनसमाजका ध्यान अब भी पुस्तकालयोंकी ओर नहीं है । जान पड़ता है, वह इसके महत्त्वको ही अभीतक नहीं समझा है । यही कारण है, जो न तो धनी लोगोंका धन ही इस ओर लगता है और न विद्वानोंकी विद्याका ही इस ओर आकर्षण होता है । आठ दस वर्ष पहले स्वर्गीय बाबू देवकुमारजीका ध्यान इस ओर गया था और उन्होंने एक बड़ा भारी पुस्तकालय खोलनेकी इच्छा भी प्रकट की थी । उनकी इच्छानुसार जब जैनसिद्धान्तभवनकी नीव पड़ी थी, तब आशा हुई थी कि यह जैनधर्मका अध्ययन करनेवालोंके लिए एक अच्छा साधन बन जायगा । शुरू शुरूमें इस आशालताके मनोरम फल भी दृष्टिगोचर होने लगे थे; परन्तु आगे यह लता मुरझाने लगी । भविष्यके विषयमें कुछ कहा नहीं जा सकता; पर इस समय तो जैनसिद्धान्त भवनकी दशा विशेष आशाजनक नहीं है । अर्थात् इस समय तक जैनधर्मके अध्ययन और अन्वेषणके लिए कोई भी उल्लेखयोग्य संस्था नहीं है ।

गत महावीर-जयन्तीके समय इन्दौरके धनकुबेर सेठ हुकमचन्दजीने जो व्याख्यान दिया था उससे मालूम हुआ था कि सेठजी और उनके भ्राताओंकी सहायतासे इन्दौरमें ' महावीर पुस्तकालय ' नामका एक अच्छा पुस्तकालय खुलेगा । अवश्य ही इस प्रकारका पुस्तकालय केवल उक्त सेठोंकी ही नहीं सारे जैनसमाजकी प्रतिष्ठा और शोभाका निदर्शन होगा; परन्तु देखते हैं कि अभी तक उसकी कुछ भी चर्चा नहीं है । यदि सेठजी चाहें और वे जैनगजटके सम्पादक जैसे धर्मात्माओंके बहकानेमें न आ जावें, तो उनके लिए यह बहुत ही मामूली कार्य है । जो केवल भगवान्‌की प्रतिमाओंके बनावानेमें ही लाख लाख रुपये खर्च कर देते हैं उनके लिए भगवान्‌की वाणीकी प्रतिष्ठामें लाख पचास हजार रुपया लगा देना कोई बड़ी बात नहीं है । सेठजीने प्रायः सभी प्रकारकी समयोपयोगी संस्थायें खोल रक्खी हैं, एक पुस्तकालयकी ही कमी है, इससे भी आशा होती है कि वे अपने वचनकी पूर्ति अवश्य करेंगे ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हम चाहते हैं कि सेठजी इन्दौरमें एक विशाल पुस्तकालय अवश्य खोलें। यह बड़े ही पुण्यका और जैनधर्मकी प्रभावनाका कार्य है। जो धर्मात्मा और पण्डितगण यह नहीं चाहते हैं कि वह तीनों सम्प्रदायके ग्रन्थोंका संयुक्त पुस्तकालय हो, उनसे हमारी सविनय प्रार्थना है कि वे केवल दिगम्बरसम्प्रदायके पुस्तकालयके रूपमें ही उसकी स्थापना करावें। उसकी भी कम अवश्यकता नहीं है; बिलकुल न होनेसे तो एक ही सम्प्रदायका होना अच्छा है। पर ऐसी कृपा न करें, जिससे पुस्तकालय खुले ही नहीं।

साहित्यकी उन्नतिके लिए, इतिहासकी खोजोंके लिए और पदार्थका स्वरूप समझनेके लिए पुस्तकालय कितनी आवश्यक संस्था है इसको साधारण लोग नहीं समझ सकते। जिनकी ज्ञानपिपासाकी सीमा नहीं है, जिन्हें विविध ग्रंथकारोंके विचारोंको तुलनात्मक पद्धतिसे अध्ययन करनेका महत्त्व मालूम है, जो प्रत्येक बातको स्पष्ट रूपमें समझना चाहते हैं और जो मतभेदोंके मूलको खोज निकालना चाहते हैं, वे ही विद्वान् पुस्तकालयोंकी महिमाको समझते हैं। अनेक अंशोंमें यह कहना बहुत ही सत्य है कि जिस देशमें या जिस स्थानमें पुस्तकालय नहीं है वहाँ विशाल बुद्धिशाली विद्वान् उत्पन्न नहीं हो सकते। जिस समय जैनसमाजमें बड़े बड़े विशाल पुस्तकालय थे और वे सर्व साधारणके उपयोगमें आते थे उस समय जैनधर्मके जाननेवाले सैकड़ों प्रतिभाशाली विद्वानोंका अस्तित्व था। इस समय पुस्तकालयोंका अभाव है, अतएव अच्छे विद्वानोंका भी अभाव है। दो चार ग्रन्थोंको पढ़ लेनेसे या परीक्षायें पास कर लेनेसे कोई विद्वान् नहीं हो सकता। बहुदर्शी विद्वानोंके बनानेके साधन पुस्तकालय ही हैं, विद्यालय नहीं। संसारमें विद्यालयोंकी अपेक्षा पुस्तकालयोंने ही अधिक विद्वान् तैयार किये हैं। जैनसमाजमें विद्यालय कई हो चुके हैं, पर पुस्तकालय एक भी नहीं है, अतएव इस महान् पुण्यकार्यकी ओर समाजके लक्ष्मीपुत्रोंका ध्यान शीघ्र ही आकर्षित होना चाहिए।

जैनधर्मके विद्यार्थी एक अच्छे पुस्तकालयके अभावको निरन्तर अनुभव करते हैं। कभी कभी उन्हें बड़ा कष्ट होता है। जिस ग्रन्थको वे आज चाहते हैं वह शक्तिभर प्रयत्न करने पर भी महीनोंतक नहीं मिलता है। कभी कभी तो मिलता ही नहीं। इससे बहुतसे लोग निराश हो जाते हैं और अन्य किसी धर्मके विद्यार्थी बन जाते हैं। यह तो हुई समर्थोंकी बात; और जो निर्धन हैं, उनकी ज्ञानपिपासाके शान्त होनेका तो कोई उपाय ही नहीं है। जैनसिद्धान्तप्रकाशिनी संस्था, माणिकचन्द ग्रन्थमाला आदिके संचालकोंसे पूछिए कि उन्हें किसी एक ग्रन्थके प्राप्त करनेके लिए कितना परिश्रम करना पड़ता है और कितना समय खोना पड़ता है। ग्रन्थोंकी प्राप्तिका साधन न होनेसे कोई कोई ग्रन्थ तो हमें केवल एक ही प्रतिके आधारसे प्रकाशित करना पड़ते हैं और इस कारण उनका संशोधन जैसा चाहिए वैसा नहीं होने पाता।

इस समय यदि कोई चाहे तो बहुत थोड़े खर्चसे एक बहुत अच्छा पुस्तकालय बन सकता है। कोई प्रयत्न करनेवाला हो तो इस समय हजारों हस्तलिखित ग्रन्थ इतने सस्ते मूल्यमें संग्रह किये जा सकते हैं, जितनेसे दूने मूल्यमें भी वे लिखाये नहीं जा सकते। ऐसे कई भण्डार मौजूद हैं, जिनके मालिक चुपचाप उन्हें बेच देनेके लिए तैयार हैं और वे इस समय मिट्टीके मूल्यमें मिल सकते हैं। जयपुर आदि शहरोंमें और उनकी देहातोंमें ऐसे अनेक निर्धन लोग हैं, जो अपने घरोंमें निरर्थक पड़े हुए दो दो चार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चार संस्कृत प्राकृतके प्राचीन ग्रन्थोंको बहुत थोड़े दामोंमें, पर चुप चाप, दे सकते हैं। गवर्नमेंटकी लायब्रेरियोंके लिए इस तरह हजारों ग्रन्थ खरीदे जा चुके हैं। कर्नाटक प्रान्तके भी ताड़पत्रों पर लिखे हुए ग्रन्थ इसी तरीकेसे घूम फिर कर संग्रह किये जा सकते हैं। इसके सिवाय यदि कोई अच्छा पुस्तकालय स्थापित होगा और उस पर सारे समाजका विश्वास जम जायगा, सारे समाजके उपयोगके लिए उसका संग्रह होगा तो उसे सैकड़ों हस्तलिखित ग्रन्थ दानस्वरूप भी मिल जायँगे। ऐसे सैकड़ों स्थान हैं, जहाँ दश दश पाँच पाँच संस्कृत प्राकृतके ग्रन्थ मौजूद हैं; परन्तु उनका कोई पढ़ने-समझनेवाला नहीं है। प्रयत्न करनेसे और सर्व साधारणका विश्वास सम्पादन करनेसे वे सब ग्रन्थ मुफ्तमें मिल सकते हैं। गरज यह कि इस समय एक विशाल पुस्तकालय बहुत ही सुगमतासे स्थापित हो सकता है।

इस समयतक जितने ग्रन्थ बन चुके हैं और उपलब्ध हो सकते हैं उन सबकी कमसे कम एक एक प्रति इस पुस्तकालयमें अवश्य संग्रह की जानी चाहिए। संस्कृत, प्राकृत, ढूँढारी, ब्रजभाषा, मराठी, गुजराती, कनड़ी आदि कोई भी भाषा और लिपि ऐसी न रहे; जिसके जैन-ग्रन्थ इस भण्डारमें न हों। कुछ समयके बाद इस पुस्तककालयके विषयमें यह उक्ति चरितार्थ हो जानी चाहिए कि 'यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्'—जो इसमें नहीं है, वह कहीं भी नहीं है। प्रत्येक ग्रन्थकी प्राचीन प्रतियोंके संग्रह करनेकी ओर अधिक लक्ष्य दिया जाना चाहिए। जो प्रति जितनी ही पुरानी होती है वह उतने ही महत्त्वकी होती है। पुस्तकालयमें एक भाग छपे हुए ग्रन्थोंका भी होना चाहिए। उसमें अब तकके छपे हुए तमाम मुद्रित ग्रन्थोंकी एक एक प्रति अवश्य रहे। इसी विभागमें इंडियन एण्टिक्वेरी, एपिग्राफिआ इंडिका, एपीग्राफिआ कर्नाटिका, मुख्य मुख्य ग्येजेटियर, भाण्डारकर, पिटर्सन, आदिकी रिपोर्टें आदि भी रहें जिनमें अबतक उपलब्ध हुए जैनशिलालेखों, दानपत्रों और जैनग्रन्थोंकी प्रशस्तियों आदिका समस्त संग्रह हो। गरज यह कि जैनधर्म और जैन इतिहासके अध्ययन करनेकी समस्त सामग्री इस पुस्तकालयमें प्रस्तुत रहनी चाहिए।

बहुत ही अच्छा हो, यदि यह संस्था किसी एक ही धनी धर्मात्माकी ओरसे स्थापित हो और इसके द्वारा किसी पुण्यात्माका नाम सदाके लिए अजर अमर हो जाय। पर यदि यह संभव न हो, धनियोंके भाग्यमें यह सुयश कमाना न लिखा हो, तो किसी सभा सुसायटीकी ओरसे ही इसके लिए उद्योग होना चाहिए। बम्बई प्रान्तिक सभाके कार्यकर्ता यदि चाहें तो—उन्हें इस कार्यमें अच्छी सफलता प्राप्त हो सकती है। बम्बई स्थान भी इसके लिए बहुत उपयुक्त है। यहाँके तेरहपंथी मंदिर-में पहलेहीसे अच्छा ग्रंथसंग्रह है। इसके सिवाय स्वर्गीय सेठ माणिकचन्द्रजीके संग्रहके लगभग २०० ग्रंथ और बीसपंथी मन्दिरके भी कुछ ग्रन्थ पुस्तकालयके लिए मिल सकते हैं। इतने ग्रन्थोंसे पुस्तकालयका प्रारंभ हो सकता है। इसके बाद चन्दा किया जाय और नियमित रूपसे ग्रंथ एकत्र होते रहें। यदि इस कार्यमें प्रतिवर्ष चार पाँच हजार रुपये ही खर्च किये जायँ तो कुछ वर्षोंमें बहुत बड़ा संग्रह हो सकता है। जैन महासभासे यद्यपि हमें कोई आशा नहीं है—क्योंकि इसके कार्यकर्ता कुछ हैं ही नहीं, और वास्तवमें वे कुछ करना ही नहीं चाहते हैं; परन्तु जब वे ग्रंथोंके छपानेके कट्टर विरोधी हैं और उन्हें ग्रन्थोंके छपानेमें भयंकर पाप दिखता है तब उन्हें चाहिए

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कि वे अपनी मुद्रणविरोधी 'बात' को रखनेके लिए हस्तलिखित ग्रंथोंका एक ऐसा पुस्तकालय खोल दें और उसके साथ ही ग्रन्थोंके लिखानेका एक ऐसा कार्यालय खोल दें, जिससे इस समय जितने छापेके विरोधी हैं और समर्थ हैं, कमसे कम वे तो सदा हस्तलिखित ग्रन्थोंके उपासक बन रहें। यदि वे ऐसा नहीं कर सकते तो उनका विरोध व्यर्थ बकवादके सिवाय और कुछ नहीं है।

यदि कोई उत्साही और कार्यपटु पुरुष इस महान् कार्यके लिए अपना जीवन दे दे, एक विशाल पुस्तकालयकी स्थापनाको अपने जीवनका व्रत बना ले और निरन्तर इसीके लिए उद्योग करे, तो उसे अवश्य सफलता होगी और वह अमर हो जायगा। हम देखते हैं कि शिक्षाप्रचार आदिके कार्योंमें जब कई सज्जन लगे हुए हैं, तब इस कार्यमें लगनेके लिए यह बात नहीं है कि कोई निकलेगा ही नहीं। बात यह है कि अभीतक इसकी आवश्यकताकी ओर लोगोंका ध्यान ही आकर्षित नहीं किया गया है—इस विषयकी चर्चा ही नहीं है।

इस एक ही पुस्तकालयसे हमें सन्तोष न होगा। प्रत्येक बड़े नगरमें और तीर्थक्षेत्रोंमें भी पुस्तकालय स्थापित होने चाहिएँ। यह बड़े दुःखकी बात है कि हमारी शिक्षासंस्थाओंमें—काशी, मोरेना, इन्दौर, मथुरा आदिके विद्यालयोंमें—एक भी अच्छा पुस्तकालय नहीं है। इनमें शिक्षा प्राप्त करनेवाले विद्यार्थियोंको और ग्रन्थ तो मिलेंगे ही कहाँसे, जो पाठ्यग्रन्थ हैं, यदि छपे हुए नहीं हैं तो वे भी उन्हें कठिनाईसे मिलते हैं। ऐसी दशामें यदि इन विद्यालयोंसे निकले हुए छात्रोंका ज्ञान बहुत ही परिमित और संकुचित रहे तो आश्चर्य ही क्या है? हमारी समझमें इन सब संस्थाओंमें एक एक मध्यमश्रेणीका पुस्तकालय होना चाहिए, जिसमें कमसे कम प्रसिद्ध ग्रन्थोंकी एक एक प्रति अवश्य रहे। ये संस्थायें जब हजार हजार रुपया मासिक अपने निर्वाहके लिए खर्च करती हैं तब पाँचसौ रुपया वार्षिक ग्रन्थसंग्रहके लिए भी खर्च कर सकती हैं।

अब हमें अपने प्राचीन पुस्तकालयोंके उद्धारकी ओर भी लक्ष्य देना चाहिए। इस समय भी हमारे कई ऐसे पुस्तकालय बचे हुए हैं कि यदि हम उनका उद्धार कर दें, उनकी व्यवस्था ठीक कर दें तो बहुत बड़ा काम हो जाय। नागौर, कारंजा, ईडर, आमेर, कोल्हापुर, आदिके भण्डारोंमें बहुत बड़ा ग्रन्थसमूह सुना जाता है। मूडबिद्री, श्रवणबेलगुल, सोनागिर, महुआ, सोजित्रा, प्रतापगढ़, लातूर, मलखेड़, दिल्ली, आदि स्थानोंमें भी छोटे मोटे पुस्तकभण्डार हैं। यदि इन सब स्थानोंके पंच तथा अधिकारी चाहें तो अपने भण्डारोंके ग्रंथोंकी सूची बनाकर उन्हें हिफाजतसे रख सकते हैं और यदि कहींसे कोई किसी ग्रन्थको मँगाना चाहे तो उसके लिए उस ग्रन्थकी नकल कराके भेज सकते हैं। उनमें इस प्रकारकी चाह उत्पन्न होने लगे, इसके लिए सभा सुसाइटियोंको, उपदेशकोंको और धनियोंको प्रयत्न करना चाहिए। इस विषयके प्रस्ताव हमारी सभाओंमें प्रतिवर्ष किये जाने चाहिए। बल्कि हमारी किसी प्रधान सभाको इसके लिए निरन्तर अमली कार्रवाई करते रहनेके लिए भी कोई व्यवस्था कर देनी चाहिए। इस उद्योगसे हमारे कई पुराने पुस्तकालय फिर खड़े हो सकते हैं और सर्वसाधारणको उनसे बहुत कुछ लाभ पहुँच सकता है।

इतिहासकी ओर भी जैनसमाजका ध्यान बहुत ही कम गया है। इस विषयके विद्यार्थियोंका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हमारे यहाँ प्रायः अभाव है। संस्कृतके पण्डित और अँगरेजीके ग्रेज्युएट दोनों ही इस विषयमें निश्चेष्ट हैं। संस्कृतके पाण्डित तो इस विषयको कोई कामकी चीज ही नहीं समझते हैं; बल्कि कोई कोई तो अपनी बढ़ी हुई मूर्खताका प्रदर्शन करनेके लिए इतिहासका मखौल उड़ाया करते हैं। रहे बाबू लोग, सो जैनसमाजके दुर्भाग्यसे शिक्षा-प्रचार, समाजसुधार आदिके कार्योंमें भी जब वे आगे नहीं बढ़ रहे हैं और 'खाने पीने चैन उड़ाने' के लिए ही जब उनका जन्म हुआ है तब इस सिरपच्चीके काममें भला वे क्यों जान लड़ाने लगे? इस समय अकेले दिगम्बर जैनसमाजमें ही कई सौ ग्रेज्युएट मौजूद हैं; परन्तु देखते हैं कि इतिहासके क्षेत्रमें उनमेंसे अब तक एक भी आकर खड़ा नहीं हुआ है। जिस अँगरेजी शिक्षाने इस देशमें इतिहासके ज्ञानका पुनरुद्धार किया है, उसी शिक्षाको पाकर जैनसमाजके बाबुओंने इतिहासकी ओर आँख उठाकर देखनेकी भी कसम ले रक्खी है। इसे हम अपना दुर्भाग्य न कहें तो और क्या कहें?

कोई दो ढाई वर्ष पहले सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ विन्सेंट स्मिथ साहबने 'पुरातत्त्वकी खोज करना जैनोंका कर्तव्य है,' नामका एक लेख प्रकाशित कराया था और उसमें जैनसमाजके धनिकों और शिक्षितोंका ध्यान इस ओर आकर्षित किया था। इस लेखको जैनहितैषीके ग्यारहवें भागके ऐतिहासिक अंकमें हमारे पाठक भी पढ़ चुके हैं। लेख बड़ा ही महत्त्वका था और उसमें जैनोंके कर्तव्यका बड़ी मार्मिकतासे स्मरण कराया गया था। परन्तु हम देखते हैं कि जैनोंकी निश्चेष्टताकी सुदृढ़ दीवाल पर उस लेखके शब्दोंने पानीकी एक छोटीसी बौछारसे अधिक काम नहीं किया। न कोई धनिक ही इस काममें धन खर्च करनेके लिए तैयार हुआ और न हमारे शिक्षित ही टससे मस हुए। यह कितने दुःखकी बात है कि हमारे कर्तव्यको दूसरे लोग स्मरण कराते हैं और फिर भी हम कार्यतत्पर नहीं होते हैं!

इस विषयमें हम धनिकोंको उतना अधिक दोषी नहीं समझते हैं, जितना कि शिक्षितोंको समझते हैं। क्योंकि सर्वसाधारणके समान धनिक भी, इतिहासका वास्तविक महत्त्व क्या है, उसे अभी तक नहीं समझ सके हैं। दोषी तो वे हैं, जो इतिहासकी महिमाको अच्छी तरह जानते हैं और फिर भी इस दिशामें कुछ भी प्रयत्न नहीं कर रहे हैं। इस तरह चुप बैठे हैं, मानों करनेके लिए अब कुछ बाकी ही नहीं है! हमें विश्वास है कि ये लोग यदि कुछ हाथ पैर हिलायँगे, तो धनिकोंकी ओरसे इस कार्यमें आर्थिक सहायता मिलना कुछ कठिन नहीं है। उन्हें इस विषयका महत्त्व समझाया जायगा, तो यह संभव नहीं कि उनकी थैलीके बन्धन ढीले न पड़ें।

जहाँतक हम जानते हैं, जैनसमाजमें अधिक नहीं तो २०-२५ नये ग्रेज्युएट प्रतिवर्ष ही होते होंगे और इनमेंसे पाँच सात युवक अवश्य ऐसे होते होंगे जिनकी दूसरी भाषा संस्कृत है। यह क्रम कई वर्षोंसे जारी है। यदि हम आशा करें कि इनमेंसे अधिक नहीं, पर दो चार नवयुवक ही ऐसे निकल आवेंगे जो अध्यापकी, वकालत आदि निर्वाहपयोगी कार्य करते हुए अवकाशके समय इस विषयकी ओर ध्यान देंगे और धीरे धीरे अपने अध्ययन और अन्वेषण-बलको बढ़ाकर जैनधर्मका उपकार करेंगे तो कुछ अनुचित न होगा। इस समय हमारे कई छात्राश्रम (बोर्डिंग) ऐसे चल रहे हैं, जिनमें जैनधर्मकी शिक्षा दी जाती है, और कमसे कम उनका चित्त जैनधर्मकी ओर तो अवश्य आक-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

र्षित किया जाता है। इतने वर्षोंके प्रयत्नसे उनमेंसे निकले हुए विद्यार्थियोंमेंसे यदि दो चार पर भी इतना संस्कार न हुआ कि वे जैनधर्मके और उसके इतिहासके अध्ययनकी ओर प्रवृत्त हों; तो इन बोर्डिंगोंसे और विद्यार्थियोंसे हम और क्या आशा कर सकते हैं ?

यदि यह संभव न हो–अपनी हार्दिक रुचिसे स्वार्थत्यागपूर्वक कोई इस विषयका अध्ययन करनेवाला न निकले, तो समाजको चाहिए कि वह कमसे कम पाँच ग्रेज्युएटों या अंडर ग्रेज्युएटोंको–जिनकी संस्कृतमें अच्छी योग्यता हो और जिन्होंने कालेजोंमें इतिहासको मुख्यतासे पढ़ा हो,–छात्रवृत्तियाँ देवे और उन्हें इस विषयका खास तौरसे अध्ययन करावे; फिर योग्यता प्राप्त कर लेने पर मि० विन्सेंट स्मिथकी सम्मतिके अनुसार उन्हें सरकारी पुरातत्त्वविभागके अधिकारियोंके हाथके नीचे काम करनेके लिए रख देवे। इस पद्धतिसे कुछ ही वर्षोंमें जैन इतिहासकी खास तौरसे चर्चा करनेवाले विद्वान् तैयार हो जायँगे और उनके द्वारा जैनधर्मकी प्राचीन कीर्तिकी ऐसी ऐसी बातें प्रकट होंगी जिनकी हमने कभी स्वप्नमें भी कल्पना न की होगी।

संस्कृतके विद्वानोंकी संख्या भी अब हमारे यहाँ सन्तोष योग्य होती जाती है। उनमेंसे भी यदि दो चार सज्जनोंका ध्यान इस ओर आकर्षित हो तो बहुत काम हो सकता है। वे मन्दिरों और प्रतिमाओंके शिलालेखों, दानपत्रों, पट्टावलियों, ग्रन्थोंकी प्रशस्तियों, ग्रन्थोंके भीतरी वर्णनों और कथाग्रन्थोंके आधारसे जैनधर्मके इतिहासके बहुत बड़े अभावोंकी पूर्ति कर सकते हैं। यदि वे करना चाहें तो उनके लिए यह कार्य कोई कठिन नहीं है। अवश्य ही इस कार्यमें परिश्रम बहुत होता है और वह बिना हार्दिक रुचि और सत्यप्रेमके नहीं हो सकता है।

सबसे पहले हमें अपना इतिहास तैयार करनेके साधन एकत्रित करने चाहिए। साधनोंके न होनेसे ही इस विषयकी ओर लोगोंकी कम प्रवृत्ति होती है। इस विषयके सबसे बड़े साधन पुस्तकालय हैं, जिनके विषयमें पहले बहुत कुछ लिखा जा चुका है। दूसरे साधन शिलालेख आदिके संग्रह-ग्रन्थ हैं। इनकी बडी भारी आवश्यकता है। हमारी समझमें ये संग्रह नीचे लिखे अनुसार होने चाहिए।

प्राचीनलेखसंग्रह। अबतक जितने जैन शिलालेख, दानपत्र, स्मारक–लेख आदि मिल चुके हैं, उन सबका संग्रह इसमें रहना चाहिए। इंडियन एण्टिक्वेरी, एपीग्राफिआ इंडिका, एपीग्राफिआ कर्नाटिका, इन्स्क्रप्शन एट् श्रवणबेलगोल, आदि ग्रन्थोंसे यह बहुत कम परिश्रमसे ही तैयार कराया जा सकता है। यह कई भागोंमें निकलना चाहिए और यदि बन सके तो इसके प्रत्येक लेखके सम्बन्धमें कुछ नोट भी लगाये जाने चाहिए।

प्रतिमालेखसंग्रह। हमारे मन्दिरों और तीर्थोंमें जितनी प्रतिमायें मिलती हैं, प्रायः उन सबकी ही आसनमें कुछ न कुछ लिखा रहता है। इतिहासके तैयार करनेमें इस प्रकारके लेख भी बड़ी सहायता देते हैं। अतएव इन लेखोंका संग्रह भी कई भागोंमें निकलना चाहिए। यदि हमारे पढ़े लिखे भाई अपने अपने ग्रामों और और नगरोंके मन्दिरोंकी प्रतिमाओंके लेख सावधानीके साथ नकल करके हमारे पास भेज दें, तो एक बहुत बड़ा संग्रह तो सकता है और वह ऐतिहासिक नोटोंके साथ प्रकाशित किया जा सकता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रन्थप्रशस्तिसंग्रह । प्रायः सभी जैन-ग्रन्थोंके अन्तमें ग्रन्थकर्ताका, उसकी गुरुपरम्पराका और ग्रन्थ लिखने-लिखानेवालों आदिका परिचय दिया हुआ रहता है। ये परिचय भी इतिहासके बहुत बड़े साधन हैं। अतएव इनका संग्रह भी कई भागोंमें तैयार कराया जाना चाहिए। डा० भाण्डारकर, पिटर्सन, आदिकी रिपोर्टोंसे इस कार्यमें बहुत कुछ सहायता मिल सकती है।

यह बड़ी प्रसन्नताकी बात है कि हमारे श्वेताम्बरी भाइयोंकी ओरसे इस प्रकारका उद्योग होने लगा है। हमारे पाठकोंके परिचित श्रीयुत मुनि जिनविजयजी इस समय 'प्राचीन-जैनलेखसंग्रह' नामक ग्रन्थका सम्पादन कर रहे हैं। उसके दो भाग हैं, एक प्राकृतभाग और दूसरा संस्कृतभाग। पहले प्राकृत भागके भी दो हिस्से हैं जिनमेंसे एक हिस्सा प्रकाशित हो चुका है। इसमें खण्डगिरि उदयगिरिके महाराजा खारवेलके लेख और उनका विस्तृत विवेचन है। दूसरे हिस्सेमें मथुराके शिलालेखों तथा प्रतिमालेखोंका संग्रह और विवरण रहेगा। यह भाग भी लगभग तैयार हो गया है। संस्कृत लेखोंका भाग बहुत बड़ा है और वह कई हिस्सोंमें प्रकाशित होगा। गुजराती भाषामें श्वेताम्बर सम्प्रदायके साधुओंके बनाये हुए सैकड़ों ग्रन्थ हैं, जो रासा कहलाते हैं। इन रासाओंकी प्रशस्तियोंका एक विशाल संग्रह श्वेतांबर जैन कान्फरेंसकी ओरसे प्रकाशित होगा। इसका सम्पादन हेरल्ड-सम्पादक श्रीयुत मोहनलाल दलीचन्दजी देसाई बी. ए., एल एल. बी. कर रहे हैं। कलकत्तेके श्रीयुत बाबू पूर्णचन्द्रजी नाहर एम. ए., एल एल. बी. नामके सज्जन श्वेताम्बर प्रतिमाओंके लेखोंका संग्रह कर रहे हैं। उसके कई छपे हुए फार्म हमने स्वयं देखे हैं। हमारे दिगम्बरी भाइयोंको भी इस दिशामें प्रयत्न करना चाहिए। इस प्रयत्नसे ऐतिहासिक क्षेत्रमें बड़ा काम होगा।

प्रतिमाओंके लेखोंका संग्रह यदि दिगम्बर जैनतीर्थक्षेत्रकमेटीकी ओरसे कराया जाय, तो बहुत सुगमतासे हो सकता है। ये लेख उसके काममें भी आ सकते हैं, इस लिए यह उसका काम भी है। हमें आशा नहीं है कि उसके मुकद्दमेवाज़ कार्यकर्ता इस अच्छे कार्यको सम्पादन कराना आवश्यक समझेंगे; परन्तु वे करें या न करें, हम अपने सूचना करनेरूप कर्तव्यका पालन किये देते हैं।

जैन इतिहासके हम दो भाग करते हैं। एक बाह्य और दूसरा अन्तरंग। पहले भागमें महावीर भगवान्से लेकर अबतकका शृंखलाबद्ध इतिहास रहेगा। जैनधर्मका कब कब किन किन देशोंमें प्रचार हुआ, उसमें हानि और वृद्धि कब कब हुई, इसके पालनेवाले कौन कौन राजा हुए, राजाओंका धर्म यह कब तक रहा और कबसे केवल प्रजाका धर्म बन गया, किन किन राजाओंने इसकी उन्नति की और किन किनने इसे हानि पहुँचाई, इसमें कौन कौन भेद कब कब हुए, प्रत्येक भेदकी शुरूसे अबतककी गुरुपरम्परा, जुदी जुदी भाषाओंमें जैनधर्मके साहित्यकी उत्पत्ति वृद्धि और पुष्टि, बिहार-बंगाल-उड़ीसा आदि प्रान्तोंमेंसे जैनधर्मके लुप्त हो जानेके बाहरी कारण, आदि सब बातोंका समावेश इस भागमें होगा। शिलालेख, दानपत्र, प्रशस्तियाँ, विदेशी पर्यटकोंके ग्रन्थ, जैनेतर ग्रन्थोंके उल्लेख आदि साधनोंसे यह बाह्य इतिहास तैयार हो जायगा। दूसरे भागमें जैनधर्मके अन्तरंगका—उसके हृदयका—इतिहास रहेगा। इसका तैयार करना बहुत बड़े परिश्रमका काम है और यही सबसे अधिक महत्त्वका है। यह सैकड़ों विद्वानोंके अनवरत अध्ययन और अध्यवसायसे बन सकेगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसके लिए जैनधर्मके समस्त सम्प्रदायोंके ग्रन्थोंका, उनमें घुसकर-पैठकर अध्ययन करना होगा और सबका तुलनात्मक पद्धतिसे विचार करना होगा। इससे मालूम होगा कि भगवान् महावीरने और उनके पहले भगवान् पार्श्वनाथने जिस जैनधर्मका प्रतिपादन किया था, वह ज्योंका त्यों चला आ रहा है, या उसमें कुछ परिवर्तन भी हुए हैं। देशकालकी परिस्थितियोंका, पड़ौसी धर्मोंका, राज्योंके उत्थान-पतनोंका, धर्मगुरुओं-या आचार्योंके पारस्परिक द्वेषों या हठाग्रहोंका और उसके अनुयायियोंकी मूर्खताका उस पर कब कब, कितना कितना और किन किन रूपोंमें प्रभाव पड़ा है। इसमें दिगम्बर और श्वेताम्बरादि भेद कब कब और किन किन कारणोंसे हुए, गण-गच्छादि भेदोंके होनेकी आवश्यकता क्यों हुई, भट्टारक कैसे बन गये और दिगम्बर गुरुओंकी जगह उनकी पूजा कैसे होने लगी, क्षेत्रपाल आदि देवोंकी पूजा क्यों और कब चली, तेरहपंथ और बीसपंथ नामक भेद क्यों हुए, आदि सब प्रश्नोंका समाधान इतिहासके इसी मागसे होगा। इस भागके सबसे बड़े साधन जैनग्रन्थ हैं। ये जितनी ही सुगमतासे प्राप्त हो सकेंगे, इस भागकी तैयारी भी उतनीही सुगमतासे होगी।

ग्रन्थोंके छपानेके विषयमें हमारा दिगम्बर सम्प्रदाय बहुत ही सुस्त है, जब कि श्वेताम्बर सम्प्रदाय इस विषयमें बहुतही आगे बढ़ रहा है। उसके ग्रन्थमुद्रणकार्यको देखकर आश्चर्य होता है। भारतवर्षका कोई भी धर्म या सम्प्रदाय इस विषयमें उसकी बराबरी नहीं कर सकता। कोई महीना ऐसा नहीं जाता है, जिसमें दश पाँच श्वेताम्बर ग्रन्थ प्रकाशित न होते हों। बेचे भी वे बहुत ही सस्ते जाते हैं। सैकड़ों ग्रन्थ तो केवल दान करनेके लिए ही छपाये जाते हैं। दिगम्बर सम्प्रदायके अबतक जितने ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं उनसे अधिक नहीं तो पच्चीस तीस गुने ग्रन्थ अवश्य ही श्वेताम्बर सम्प्रदायके छप चुके होंगे। हमारे दिगम्बरी भाइयोंको भी अब इस ओर ध्यान देना चाहिए और संस्कृत प्राकृतके तमाम उपलब्ध साहित्यको प्रकाशित करानेका यत्न करना चाहिए।

अर्थूणाका शिलालेख।

[ले०-श्रीयुत बाबू जुगलकिशोर मुख्तार।]

डूँगरपुरके अंतर्गत अर्थूणा (उच्छूणक) नामका एक स्थान है, जो एक समय विशाल नगर था; और परमारवंशी राजाओंकी राजधानी रह चुका है। इस समय यह स्थान एक छोटेसे गाँवके रूपमें आबाद है और इसके पासही सैकड़ों मंदिरों तथा मकानों आदिके खंडहर भग्नावशेषके रूपमें पाये जाते हैं। यहाँसे एक जैनशिलालेख मिला है जो आजकल अजमेरके म्यूजियममें मौजूद है। यह शिलालेख वैशाख सुदि ३ विक्रम संवत् ११६६ का लिखा हुआ है और उस वक्त लिखा गया है जब कि परमारवंशी मंडलीक (मंडनदेव) नामके राजाका पौत्र और चामुंडराजका पुत्र 'विजयराज' स्थलि देशमें राज्य करता था। उच्छूणक नगरमें, उस समय 'भूषण' नामके एक नागरवंशी जैनने श्रीवृषभदेवका मनोहर जिनभवन बनवाकर उसमें वृषभनाथ भगवान्की प्रतिमाको स्थापित किया था, उसीके सम्बन्धका यह शिलालेख है। इसमें भूषणके कुटुम्बका परिचय देनेके सिवाय माथुरान्वयी श्रीछत्रसेन नामके एक आचार्यका भी उल्लेख किया है, जो अपने व्याख्यानों द्वारा समस्त सभाजनोंको संतुष्ट किया करते थे और भूषणका पिता 'आलोक' जिनका परमभक्त था। माथुरसंघी इन आचार्यका, अभीतक कोई पता नहीं था। माथुरान्वयसे सम्बंध रखनेवाली काष्ठासंघकी उपलब्ध गुर्वावलीमें भी छत्रसेन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुरुका कोई उल्लेख नहीं है *। इस शिलालेखसे माथुरसंघके एक आचार्यका नया नाम मालूम हुआ है। इस शिलालेखमें भूषणके वंश और कुटुम्बका जो परिचय दिया है उसका संक्षिप्त सार इस प्रकार है:—

'तलपाटक' नामके पत्तनमें + नागर वंशके मुख्य रत्न श्रीमान् 'अम्बट' नामके एक प्रधान वैद्य हुए, जो सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञाता होनेके सिवाय जैनागमकी वासनासे इतने अनुवासित थे कि उनकी रगरगमें (अस्थि और मज्जामें) जैनधर्म समाया हुआ था। वैद्यजी कलियुगके प्रभावसे बहिर्भूत, गृहस्थावस्थामें भी इंद्रियोंके प्रसारको रोकनेवाले और देशव्रतसे अलंकृत थे। जिस समय आप वनमें जाकर (सामायिकादि) आवश्यककर्ममें लीन होते थे उस समय अच्छे अच्छे श्रेष्ठ मनुष्य आपके सन्मुख शिष्योंके सदृश हाथ जोड़ते और प्रातःकाल आपकी उपासना करते थे। आपके असाधारण दर्शनगुणोंसे चमत्कृत होकर चक्रेश्वरी देवी भी हमेशा पुत्रीके समान आपकी सेवा किया करती थी। वैद्यजीके 'पापाक' नामका एक पुत्र हुआ, जो निर्मल बुद्धिका धारक और शास्त्रोंका पारगामी होनेके सिवाय सम्पूर्ण आयुर्वेदका ज्ञाता था। उसने सम्पूर्ण दोषोंकी प्रकृतिको अच्छी तरहसे निर्णय कर लिया था और वह उनकी चिकित्सामें प्रवीण था। साथ ही रोगाक्रान्त सभी मनुष्योंके प्रति उसकी दया अतिशय प्रसिद्ध थी। पापाकके अनेक शास्त्रोंमें निपुण १ आलोक, २ साहस और ३ लल्लुक नामके तीन पुत्र हुए। इनमेंसे पहला आलोक नामका पुत्र स्वभावसे ही बड़ा बुद्धिमान् था; उसके हृदयदर्पणमें संपूर्ण ऐतिह्य (ऐतिहासिक?) तत्त्व स्फुरायमान था। वह संवेगादि गुणोंका धारक, सम्यग्दृष्टि, दानी, शीलवान्, रूपवान्, श्रुतपात्र, लक्ष्मीपात्र और स्वकुलसमिति तथा साधुवर्गका आधारभूत था; साथ ही वह आनंदसे रहनेवाले भोगियों और योगियों दोनोंमें ही प्रधान था, और एकचित्त होकर श्रीछत्रसेन गुरुके चरणकमलकी, जिन्हें माथुरान्वयरूपी आकाशका सूर्य बतलाया है, सेवा किया करता था। आलोककी धर्मपत्नीका नाम 'हेला' था। उससे तीन पुत्ररत्न उत्पन्न हुए, जो सभी विवेकी और नयाढ्य थे। पहले पुत्रका नाम 'पाहुक' दूसरेका 'भूषण' और तीसरेका 'लल्लाक' था। पाहुक निर्मल ज्ञानका धारक, गुरुजनभक्त और बड़ा ही कुशाग्रबुद्धि था। उसकी इस कुशाग्रबुद्धिको दिखलाते हुए लिखा है कि जिनप्रवचनके सम्बधमें उसका ऐसा विशाल प्रश्नजाल होता था जिसमें गणधर भी चकरा जायँ; दूसरोंकी तो बात ही क्या। वह करणचरणानुयोगरूप अनेक शास्त्रोंमें प्रवीण, विषयोंसे विरक्त, दानतीर्थमें प्रवृत्त, शान्तचित्त और निर्मल श्रावकीय व्रतसे युक्त था। दूसरे पुत्र भूषणकी प्रशंसामें लिखा है कि वह लक्ष्मीका पात्र, कान्तिका कुलगृह, कीर्तिका मंदिर, सरस्वतीका क्रीडापर्वत, निर्मलबुद्धिका रतिवन, क्षमावल्लीका कंद और विस्तृत कृपाका निवासस्थान था। साथ ही, वह रूपसे कामदेवके, सुभगतासे गणधरके, संपत्तिसे कुबेरके, बढ़े हुए विवेकसे बृहस्पतिके, महोन्नतिसे मेरुके, हृदयकी गंभीरतासे समुद्रके और ऊँचे दर्जेकी चतुराईसे श्रेष्ठ विद्याधरके समान था। उसे जिनेंद्र भगवान्के शासनसरोवरका राजहंस, मुनीन्द्रोंके चरणकमलका भ्रमर, संपूर्णशास्त्रसमुद्रका मगर, स्त्रियोंके नेत्रसमुद्रोंके लिए चंद्रमा और विद्वज्जनोंका वल्लभ समझना चाहिए। वह ऐसा शृंगार किया करता था, जो सरस और साररूप हो। उसका

* देखो जैनसिद्धान्तभास्कर, किरण ४, पृ० १०३।

+ इससे मालूम होता है कि पहले नागर जातिके लोग भी जैनधर्मको पालन करते थे, परतु आज कल उनमें जैनधर्मका अभाव है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चरित उदार तथा मूर्ति, सुभग और सौम्य थी। विलासिनीयें (वेश्यायें ?) उसके चरणोंमें आकर नम्रीभूत हुआ करती थीं। बड़े भाईका स्वर्गवास हो जानेके कारण कुलरथका संपूर्ण भार अकेले इस भूषणके सिर पर पड़ा। भूषणने उसे बड़ी शांति और धैर्यके साथ उठाया। अपनी स्थिरमति और महा दृढताके बलसे उसने अपने कुलरथको गुरुतर विपत्तिके गढ़ेसे निकाला, जिसमें वह उस समय फँसा हुआ था, और उसे विभूतिगिरिके शिखर पर पहुँचाया। भूषणके लक्ष्मी और सीली नामकी दो स्त्रियाँ थीं और वे दोनों ही पतिव्रता तथा चारित्रगुणसे युक्त थीं। सीली नामकी स्त्रीसे भूषणके शांति आदि पुत्र उत्पन्न हुए। भूषणका छोटाभाई अर्थात् आलोकका तीसरा पुत्र 'लल्लाक' हमेशा देवपूजामें तत्पर और अपने भाई भूषणकी आज्ञाका पालन करनेमें प्रवृत्त रहता था। भूषणके बड़े भाई पाहुकके 'सीउका' नामकी स्त्रीसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ था, जिसका नाम 'अम्बर' था।

२२ वें पद्यमें लिखा है कि भूषणने, आयुको तप्त लोहे पर पड़े हुए छोटेसे जलबिन्दुके समान नश्वर विचारकर, लक्ष्मीकी स्थितिको हाथीके कान समान अति चंचल देखकर और शास्त्रानुसार यश तथा श्रेय (धर्म) को स्थिरतर जानकर पृथ्वीका भूषण यह मनोहर जिन-मंदिर बनवाया है। इसी जिनमंदिरसे सम्बन्ध रखनेवाला प्रकृत शिलालेख है। इस शिलालेखमें कुल ३० पद्य हैं, जिनमेंसे पहला मंगलाचरण-का पद्य और चौथे पद्यसे प्रारंभ करके १९ वें पद्यतक १६ पद्य अर्थात् कुल १७ पद्य 'कटुक' नामके किसी पंडितके बनाये हुए हैं। शेष पद्योंकी रचना 'भादुक' नामके किसी ब्राह्मण द्वारा हुई है जो भाइल्लका पौत्र और श्रीसावड नामके द्विजका पुत्र था। उत्कीर्ण होनेके लिए इस लेखकी कापी बालभवंशी एक कायस्थने लिखी थी जिसका नाम 'वासव' और जिसके पिताका नाम राजपाल था। वासव उक्त विजय-राज नामक राजाका सान्धिविग्रहिक अर्थात् फॉरेन सैक्रेटरी था। शिलालेखके अन्तिम पद्यमें इस कीर्ति (मंदिर) के चिर स्थिर रहनेका आशीर्वाद देकर उसके बाद, गद्यमें, 'सूमाक' नामके विज्ञानिक (शिल्पी) द्वारा इस शिला-लेखके उत्कीर्ण होनेका उल्लेख किया है।

इसके बाद 'मंगलं महाश्रीः' लिखकर लेखकी समाप्तिका एक चिह्न बनाया गया है। और फिर २७ वीं पंक्तिसे प्रारंभ करके ३१ वीं पंक्ति तक आत्मानुशासन ग्रंथके कुछ पद्य उत्कीर्ण किये गये हैं। इन पद्योंमेंसे 'लक्ष्मीनिवास-निलयं' इत्यादि चार पद्य आत्मानुशासनके प्रारंभिक पद्य हैं और उनपर नम्बर भी उसी क्रमसे डाले गये हैं। शेष पद्यों पर क्रमशः ६५, ६८, ६९ और ७० नम्बर पड़े हुए हैं। ७१ वें पद्यके दो तीन अक्षर कम हैं और शिला टूट गई मालूम होती है। ये पिछले पाँचों पद्य वे हैं जो सनातनजैनग्रंथमालामें छपे हुए आत्मानुशासनमें क्रमशः नं० ६६,६९,७०,७१, और ७२ पर दर्ज हैं। नहीं मालूम आत्मानुशासनके ये सब पद्य उसी समय उत्कीर्ण हुए हैं या पीछेसे खोदे गये हैं। क्योंकि मूल शिलालेखसे इनका कोई सम्बंध नहीं है। शिलालेखको प्रत्यक्ष देखने अथवा उसका फोटू आदि प्राप्त होने पर इस विषयका निर्णय किया जा सकता है। अस्तु। आत्मानुशासनके इन पद्योंको छोड़कर शेष पूरा शिलालेख, पाठकोंके अवलोकनार्थ, नीचे दिया जाता है। जहाँ तक मुझे मालूम है यह शिलालेख, अभीतक प्रकाशित नहीं हुआ। भारतीय पुरातत्त्वविभाग (पश्चिमी सर्किल) के सुपरिंटेंडेंट श्रीयुत डी. आर. भांडारकर महोदयने इस शिलालेखको, प्रकाशित करनेके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिए, श्वे० साधु श्रीयुत मुनि जिनविजयजीको दिया था। और मुनि जिनविजयजीके पाससे मुझे इसकी प्राप्ति हुई है। अतः मैं इस कृपाके लिए उक्त दोनों महानुभावोंका हृदयसे आभार मानता हूँ।

मूल लेख।

१–द०॥ ॐनमो वीतरागाय। स जयतु जिनभानुर्भव्यराजीवराजीजनितवरविकाशो दत्तलोकप्रकाशः। परसमयतमोभिर्न स्थितं यत्पुरस्तात्क्षणमपि चपलासद्वादिखद्योतकैश्च ॥ १ ॥ छ॥

२–आसीच्छ्रीपरमारवंशजनितः श्रीमंडलीकाभिधः कन्हस्य ध्वजिनीपतेर्निधनकृच्छ्रीसिंधराजस्य च। जज्ञे कीर्तिलतालबालक इतश्चामुंडराजो नृपो योऽवंतिप्रभुसाधनानि बहुशो हंतिस्म

३–देशे स्थलौ ॥ २ ॥ श्रीविजयराजनामा तस्य सुतो जयति भति (जगति) विततयशाः। सुभगो जितारिवर्गो गुण[रत्नपयोनिधिः] शूरः ॥ ३ ॥ देशेऽस्य पत्तनवरं तलपाटकाख्यं पण्याङ्गनाजनजिता–

४–मरसुंदरीकम् । अस्ति प्रशस्तसुरमंदिरवैजयन्तीविस्ताररुद्धदिननाथकरप्रचारं ॥ ४ ॥ तस्मिन्नागरवंशशेखरमणिर्निःशेषशास्त्राम्बुधिर्जैनेन्द्रागमवासनारससुधाविद्धास्थिमज्जाभवत्।

५–श्रीमानंबरसंज्ञकः कलिबहिर्भूतो भिषग्या (ग्वा) मणीर्गार्हस्थे (स्थ्ये) पि निकुंचिताक्षप्रसरो देशव्रतालंकृतः ॥ ५ ॥ यस्याव [श्य] क [क]र्म्मनिष्ठितमतेः श्रेष्ठा वनांते भवत्संतेवासिवदाहितांजलिपुटा (॥)

६–श्शोसः (षः) कृतोपासनाः। यस्यानन्यसमानदर्शनगुणैरन्तश्चमत्कारिता शुश्रूषां विदधे सुतेव सततं देवी च चक्रेश्वरी ॥ ६ ॥ पापाकस्तस्य सूनुः समजनि जनितानेकभव्यप्रमोदः प्रादुर्भू–

७–तप्रभूतप्रविमलधिषणः पारदृश्वा श्रुतानां [।] सर्वायुर्वेदवेदी विदितसकलरुक्कान्तलोकानुकंपो निर्णीताशेषदोषप्रकृतिरपगदस्तत्प्रतीकारसारः ॥ ७ ॥ तस्य पुत्रास्त्रयोऽभूवन्भूरिशा–

८–स्त्रविशारदाः। आलोकः साहसाख्यश्चलल्लुकाख्यः परोनुजः ॥ ८ ॥ यस्तत्राद्यः सहजविशदप्रज्ञया भासमानः स्वांतादर्शस्फुरितसकलैतिह्यतत्त्वार्थसारः। संवेगादिस्फुटतरगुणव्य–

९–क्त सम्यक्प्रभावः तैस्तैर्ज्ञानप्रभृतिभिरपि स्वोपयोगी कृतश्रीः ॥ ९ ॥ आधा [रो] यः स्वकुलसमितेः साधुवर्ग्गस्य चाभूद्दध्रे शीलं सकलजनताह्लादिरूपं च काये। पात्रीभूतः कृतयतिभृतीनां

१०–श्रुतानां श्रियां च सानंदानां धुरमुद[वहद्भोगिनां] योगिनां च ॥ १० ॥ यो माथुरान्वयनभस्तलतिग्मभानोर्व्याख्यानरंजितसमस्तसभाजनस्य। श्रीच्छत्रसेनसुगुरोश्चरणारविंदसे–

११–वापरो भवदनन्यमनाः सदैव ॥ ११ ॥ तस्य प्रशस्तामलशीलवत्यां हेलाभिधायां वर धर्मपत्न्यां। त्रयो बभूवुस्तनया नयाढ्या विवेकवंतो भुवि रत्नभूताः ॥ १२ ॥ अभवदमल—

१२–बोधः पाहुकस्तत्र पूर्वः कृतगुरुजनभक्तिः सत्कुशाग्रीयबुद्धिः। जिनवचसि यदीयप्रश्नजाले विशाले गणभृदपि विमुह्येत्कैव वार्ता परस्य ॥ १३ ॥ करणचरणरूपानेक—

१३–शास्त्रप्रवीणः परिहृतविषयार्थो दानतीर्थप्र[वृत्तः] । ग(श)मनियमित–

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चित्तो जातवैराग्यभावः कलिकलिलवि-मुक्तोपासकीयम्(त्र)ताढ्यः ॥ १४ ॥ कनिष्ठस्तस्याभूद्भुवनविदितो भूषण इति श्रियः पात्रं—

१४-कांतेः कुलगृहमुमायाश्च वसतिः । सरस्वत्याः क्रीडागिरिरमलबुद्धेरतिवनं क्ष-मावल्याः कंदः प्रविततकृपायाश्च निलयः ॥ १५ ॥ स्मरः (रो) सौ रूपेण प्रबलसु [भ] गत्वेन गणभृत् कुबेरः संप (॥)

१५ त्या समधिकाविवेकेन धिषणः । महो-न्नत्या मेरुर्जलनिधिरगाधेन मनसा विदग्ध-त्वेनोच्चैर्य इह वरविद्याधर इव ॥ १६ ॥ जैनेन्द्रशासनसरोवरराजहंसो मौनींद्रपाद-कमलद्वय—

१६ चंचरीकः । निःशेषशास्त्रनिवहोदक-नाथनक्रः । सींमंतिनीनयनकैरवचारुचंद्रः॥ ॥ १७ ॥ विदग्धजनवल्लभः सरससार-शृंगारवानुदारचरितश्च यः सुभगसौम्य-मूर्तिः सुधीः । प्रसाद—

१७-नपरा नमद्वरविलासिनीकुन्तलव्य-पस्तपदपंकजद्वितयरेणुरत्युन्नतः ॥ १८॥ प्रथमधवलप्राये मेघे गतेपि दिवं पुनः । कुलरथभरो येनैकेनाप्यसंभ्रममुद्धृतः । गुरुतरविप—

१८-द्वर्त्तग्रावप्रहादुदनादिव (तारि च) स्थिरमतिमहास्थाम्ना नीतो विभूतिगिरेः शिरः ॥ १८ ॥ द्वे भार्ये भूषणस्य स्तः लक्ष्मी सलीति विश्रुते । पतिव्रतत्वसंयुक्ते चारित्र-गुणभूषिते ॥ २० ॥ स सी—

१९-लिकायामुदपादि पुत्रान्सन्तानयो-ग्यान् गुरुदेवभक्तः । आलोकसाधारण-शांतिमुख्यान्स्वबंधुचित्ताब्जविकाशभानून ॥ २१ ॥ आयुस्तत्तमहींद्रसारनिहितस्तो-काम्बुवन्नश्वरं

२०-संचिंत्यद्विपकर्णचंचलतरां लक्ष्म्या-श्च दृष्ट्वा स्थितिं । ज्ञात्वा शास्त्रसुनिश्च-यात् स्थिरतरे नूनं यशः श्रेयसी तेनाकारि मनोहरं जिनगृहं भूमेरिदं भूषणम् ॥ २२ ॥ भूषणस्य क—

२१-निष्ठो यो लल्लाक इति विश्रुतः । देव-पूजापरो नित्यं भ्रातुरादेशकृत्सदा ॥ २३ ॥ ज्येष्ठो वाहुकनामा यः सीउकायामजी-जनत् शुभलक्षणसंयुक्तं पुत्रमस्वटसं-ज्ञकम् ॥ २४ ॥

२२-वर्षसहस्रे याते षट्षष्ट्युत्तरशतेन संयुक्ते । विक्रमभानोः काले स्थलिविषय-मवति सति विजयराजे ॥ २५ ॥ विक्रम संवत् ११६६ वैशाखसुदि ३ सोमे वृषभ-नाथस्य प्रतिष्ठा

२३-श्रीवृषभनाथधाम्नः प्रतिष्ठितं भूष-णेन बिम्बमिदं । उच्छूणकनगरेस्मिन्निह जगतौ वृषभनाथस्य ॥ २६ ॥ युगलं ॥ ० ॥ तुर्यवृत्तात्समारभ्य वृत्तान्येतानि

२४-षोडश । आद्यवृत्तेन युक्तानि कृत-वान्कडुको बुधः ॥ २७ ॥ भाइल्लोवंशे-भूतज्ज्ञः श्रीसावडो द्विजः । तत्सूनोर्भादुक-स्येयं निःशेषाथ परा कृतिः ॥ २५ ॥ वाल-भान्वयकायस्थराजपालस्य

२५-सूनुना । संधिवि[illegible]संस्थेन लिखि-ता वासवेन वै ॥ २९ ॥ यावद्रावणरामयोः सुचरितं भूमौ जनैर्गीयते [।] यावद्विष्णुप-दीजलं प्रवहति व्योम्न्यस्ति यावच्छशी । अर्हं—

२६-द्वक्त्रविनिर्गतं श्रवणकैः यावस्तु[च्छ्रु] तं श्रूयते तावत्कीर्तिरियं चिराय जयतात्सं-स्तूयमाना जनैः ॥ ३० ॥ उत्कीर्णा विज्ञा-निकसूमाकेन ॥ ० ॥ मंगलं महाश्रीः ॥ ० ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गोम्मटस्वामीकी संपत्तिका गिरवी रक्खा जाना ।

[ले०—श्रीयुत बाबू जुगलकिशोर मुख्तार ।]

जो लोग भगवान्की पूजा करके आजीविका करते हैं—पूजनके उपलक्षमें वेतन लेते अथवा दक्षिणा, चढ़ावा या उपहार ग्रहण करते हैं—उनमें प्रायः धर्मका भाव बहुत ही कम पाया जाता है। यही वजह है कि समय समय पर उनके द्वारा तीर्थादिकों पर अनेक अत्याचार भी हुआ करते हैं। वे लोग जाहिरमें अपने अंगोंको चटका मटका कर बहुत कुछ भक्तिका भाव दिखलाते हैं और यात्रियों पर उस देव तथा तीर्थके गुणोंका जरूरतसे अधिक बखान भी किया करते हैं; परन्तु वास्तवमें उनके हृदय देवभक्ति तथा तीर्थभक्तिके भावसे प्रायः शून्य होते हैं। उनका असली देव और तीर्थ टका होता है। वे उसीकी उपासना और उसीकी प्राप्तिके लिए सब कुछ करते हैं। यदि उनको अवसर मिले तो वे उस देवतीर्थकी सम्पत्तिको भी हड़प जानेमें आनाकानी नहीं करते! ऐसे लोगोंके हृदयके क्षुद्र भावों और दीनताभरी याचनाओंको देखकर चित्तको बहुत ही दुःख होता है और समाजकी धार्मिक रुचिपर दो आँसू बहाये विना नहीं रहा जाता। यह दशा केवल हिन्दू तीर्थोंके पंडे पुजारियोंहीकी नहीं; बल्कि जैनियोंके बहुतसे तीर्थोंके पंडे पुजारियोंकी भी प्रायः ऐसी ही अवस्था देखनेमें आती है। पिछली श्रवणबेल्गोलसम्बन्धी मेरी तीन महीनेकी यात्रामें मुझे इस विषयका बहुत कुछ अनुभव प्राप्त हुआ है। उस समय तारंगा तीर्थका पुजारी अपने फटे पुराने कपड़ोंको दिखलाकर यात्रियोंसे भीख माँगता था! श्रवणबेल्गोलमें, जिसे जैनबद्री भी कहते हैं, ३६ घर पुजारियोंके हैं। परंतु यदि वहाँके मंदिरोंकी हालतको देखा जाय तो दाँतोंतले अंगुली दबानी पड़ती है। जगह जगह कूड़ा कर्कटका ढेर लगा हुआ है। बहुतसे मंदिरोंके गर्भगृहोंमेंसे इतनी दुर्गंधि आती है कि वहाँ ठहरा नहीं जाता। नगरमें और पर्वतों पर अधिकांश मंदिर ऐसे हैं जिनमें नित्य क्या, महिनों और वर्षोंमें भी प्रतिमाओंका प्रक्षालन नहीं होता। आठ दिन ठहरने पर भी, पुजारियोंकी कृपासे, नगरके दो तीन मंदिर दर्शनोंके लिए खुल नहीं सके। इतने पर भी "पूजन कब कराओगे, गोम्मटस्वामीका खास पुजारी मैं हूँ, दान या इनाम मुझे ही देना, हम आपकी आशा लगाये हुए हैं," इत्यादि दीन वचन पुजारियोंके मुखसे बराबर सुननेमें आते थे। इससे पंडे पुजारियोंकी धर्मनिष्ठाका बहुत कुछ अनुभव हो सकता है। यह धर्मनिष्ठा आजकलके पंडेपुजारियोंहीकी नहीं बल्कि इससे कई शताब्दियों पहलेके पंडे पुजारियोंकी भी प्रायः ऐसी ही धर्मनिष्ठा पाई जाती है, जिसका अनुभव पाठकोंको सिर्फ इतने परसे ही हो जायगा कि इन पुजारियोंके पूर्वजोंने श्रवणबेल्गोलके गोम्मटस्वामीकी सम्पत्तिको एक समय महाजनोंके पास गिरवी अर्थात् रहन (Mortgage) रख दिया था! लगभग तीनसौ वर्ष हुए जब शक संवत् १५५६ आषाढ सुदी १३ शनिवारके दिन मैसूरपट्टनाधीश महाराज चामराज वोडेयर अप्पके सदुद्योगसे ये सब रहन छूटे हैं। श्रवणबेल्गोलमें इस विषयके दो लेख हैं, एक नं० १४० जो ताम्रपत्रोंपर लिखा हुआ मठमें मौजूद है और दूसरा नं० ८४ जो एक मंडपमें शिलापर उत्कीर्ण है। वे दोनों लेख कनडी भाषामें हैं। पाठकोंके ज्ञानार्थ उनका भावार्थ * नीचे प्रकाशित किया जाता है:—

* यह भावार्थ मिस्टर बी. लेविस राइस साहबके अँगरेजी अनुवाद परसे लिखा गया है। कहीं कहीं चामराजके विशेषणादि सम्बंधमें मूलसे भी सहायता ली गई है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नं० १४०।

श्रीस्वस्ति। शालिवाहन शक १५५६, भाव संवत्सरमें, आषाढ सुदी १३ को, शनिवारके दिन, ब्रह्मयोगमें—

श्रीमन्हाराजाधिराज, राजपरमेश्वर, अरिरायमस्तकशूल, शरणागतवज्रपंजर, परनारीसहोदर, सत्त्यागपराक्रममुद्रामुदित, भुवनवल्लभ, सुवर्णकलशस्थापनाचार्य, धर्मचक्रेश्वर, मैसूरपट्टनाधीश्वर चामराज वोडेयर अप्प—

पुजारियोंने, अपनी अनेक आपत्तियोंके कारण, बेल्गुलके गोम्मटनाथ स्वामीकी पूजाके लिये दिये हुए उपहारों (दानकी हुई ग्रामादिक संपत्ति) को वणिग्गृहस्थोंके पास रहन (बंधक) कर दिया था,– और रहनदार लोग (बंधकग्राही–Mortgagees) उन्हें हस्तगत किये हुए बहुत कालसे उनका उपभोग करते आरहे थे–

चामराज वोडेयर अप्पने, इस बातको मालूम करके, उन वणिग्गृहस्थोंको बुलाया जिनके पास रहन थे और जो संपत्तिका उपभोग कर रहे थे और कहा कि– "जो क़र्ज़ेजात (ऋण) तुमने पुजारियोंको दिये हैं उन्हें हम दे देवेंगे और ऋणमुक्तता कर देवेंगे।"

इसपर उन वणिग्गृहस्थोंने ये शब्द कहे– "हम उन ऋणोंका, जो कि हमने पुजारियोंको दिये हैं, अपने पिताओं और माताओंके कल्याणार्थ, जलधारा ढालते हुए दान करेंगे।"

उन सबके इस प्रकार कह चुकने पर,– वणिग्गृहस्थोंके हाथोंसे, गोम्मटनाथ स्वामीके सम्मुख, देव और गुरुकी साक्षीपूर्वक, यह. कहते हुए कि–" जबतक सूर्य और चंद्रमा स्थित हैं तुम देवकी पूजा करो और सुखसे रहो–" यह धर्मशासन पुजारियोंको, ऋणमुक्तताके तौरपर, दिया गया।

बेलगोलके पुजारियोंमें अगामी जो कोई उपहारोंको रहन रक्खेगा, या जो कोई उन पर रहन करना स्वीकार करेगा, वह धर्मबाह्य किया जायगा और उसका जमीन तथा जायदाद पर कुछ अधिकार नहीं होगा।

यदि कोई मनुष्य, इस विज्ञप्तिका उल्लंघन करके, रहन रक्खेगा या रहन स्वीकार करेगा, तो वे राजा जो इस राष्ट्र पर राज्य करेंगे इस देवके स्वत्वोंको पूर्वरीत्यानुसार सुरक्षित रक्खेंगे।

जो कोई राजा इस कर्त्तव्यसे अनभिज्ञ रहकर उपेक्षा धारण करेगा उसे वाराणसीमें एक हजार गौओं और ब्राह्मणोंके वध करनेका पाप लगेगा।

इस प्रकार धर्मशासन लिखा गया और दिया गया। मंगलमहाश्री। श्री॥ श्री॥

नं० ८४।

श्रीशालिवाहन शक वर्ष १५५६, भाव संवत्सरमें, आषाढ सुदी १३ को, शनिवारके दिन ब्रह्म योगमें; श्रीमन्महाराजाधिराज, राजपरमेश्वर, मैसूरपट्टनाधीश्वर, षट्दर्शनधर्मस्थापनाचार्य, चामराज बोडेयर अप्प,–बेलगोलके मंदिरकी जमीनें बहुत दिनोंसे रहन थीं,–उक्त चामराज बोडेयर अप्पने होसवोललुकेम्पप्पके पुत्र चन्नण्ण बेल्गुलपायि सेट्टिके पुत्रों चिक्कण्ण और जिगपायि सेट्टि नामके रहनदारों तथा दूसरे रहनदारोंको बुलाकर, कहा कि "मैं तुम्हारे रहनका रुपया अदा कर दूँगा।"

इसपर चन्नण्ण, चिक्कण्ण, जिगपायि-सेट्टि मुद्दण्ण, अज्जण्णन-पदुमप्पन्नका पुत्र पण्डेण्ण, पदुमरसप्प दोड्डण्ण, पंचवाण कविका पुत्र बोम्मप्प, बोम्मणकवि, विजयण्ण, गुम्मण्ण, चारुकीर्तिनागप्प, बेडदय्य, बोम्मि-सेट्टि, होसहल्लिय रायण्ण, परियण्ण गौड, वैरसेट्टि, बैरण्ण, वीरप्प, नामके इन सब वणिकों और क्षेत्रपतियोंने, अपने पिताओं और माताओंके कल्याणार्थ, गोम्मट स्वामीकी मौजूदगीमें और अपने गुरु चारुकीर्ति पंडित देवके सन्मुख, जलधारा डालते हुए बंधकग्राहियोंके (?) मंदिरनिरीक्षकोंको रहननामे (Motgage bonds) दे दिये और यह शिलाशासन रहनोंके छूटनेका लिख दिया। (शाप–काशी रामेश्वरमें एक हजार गोओं और ब्राह्मणोंके मारनेका पाप)। श्री श्री।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुछ इधर उधरकीं।

पिछले अंकमें मैंने लिखा था कि गोलमाल-कारिणी सभाकी दूसरी बैठककी रिपोर्ट शीघ्र ही भेजूँगा; परन्तु कार्यवश दूसरी बैठक अबतक नहीं हुई और इस कारण रिपोर्ट भी तैयार न हो सकी। सोचा था कि चलो छुट्टी हुई, अबकी बार कुछ न लिखना पड़ेगा और 'आराममें खलल' न पड़ेगा; परंतु बीचमें ही हितैषीसम्पादकका पत्र आ पहुँचा जिसमें लिखा था कि इस अंकके लिए कुछ न कुछ अवश्य भेजिए। आपके लेखोंको पढ़नेके लिए लोग बहुत ही उत्कण्ठित हो रहे हैं। यदि आपके लेख न आयँगे तो जैनहितैषीकी ग्राहक-संख्या एकदम घट जायगी। मेरे लेखोंकी इतनी कदर! मैं फूलकर कुप्पा हो गया। साथ ही हितैषीके प्रति करुणाका भी उद्रेक हो आया। प्रान्तिक सभाने उसके ग्राहक घटानेकी कोशिश की ही है; यदि मैं भी लेख न भेजूँगा, तो बेचारा मर जायगा! यह सोचकर मैंने अपनी सुकोमल कलमको सँभाला। क्या लिखूँ? हृदयने उत्तर दिया, अरे तुम तो जो भी कुछ लिखोगे, उस पर लोग लट्टू हो जायँगे। तुम्हारी लेखनीसे अमृत और विनोद एक साथ झरते हैं। फिर यह चिन्ता क्यों करते हो? मैंने कलम चलाना शुरू कर दिया।

१

मैं कल रातको लेटे लेटे 'जैनमित्र' का पाठ कर रहा था। उसमें यह दुःसंवाद पढ़कर कि 'कलकत्तेके जौहरी राय बद्रीदास बहादुर-का स्वर्गवास हो गया' मैं चौंक पड़ा। साधारण लोगोंके लिए यह कोई चौंकनेकी बात न थी; परन्तु मैं शास्त्री ठहरा, तर्कशास्त्रका पण्डित ठहरा; मेरे मस्तकमें इसके साथ ही अनेक बातें एक साथ चक्कर लगा गईं! मैंने प्रश्न किया कि तीर्थक्षेत्रोंके कई मुकद्दमोंमें वे श्वेताम्बरोंकी ओरसे अगुआ रह चुके हैं, कहीं इसी लिए तो इनका स्वर्गवास नहीं हुआ है? जिस समय सेठ परमेष्ठीदासजी और बाबू धन्नूलालजी अटर्नीकी मृत्यु हुई थी, उस समय भी मेरे तार्किक मस्तकमें यही प्रश्न उठा था। इस समय दोनों प्रश्नोंका मिलान हो गया; साथ ही इसीके सम्बन्धकी और भी कई मृत्युओंका स्मरण हो आया। मैं आँखें बन्द करके विचार करने लगा। थोड़ी ही देरमें मैंने एक नई बातका अविष्कार कर डाला। मुझे निश्चय हो गया कि दिगम्बर-श्वेताम्बरोंकी लड़ाईसे इन्द्र महाराजका आसन डोल गया है! भाई-भाई-के इस भयंकर द्वेषसे इन्द्रका आसन अभी तक न डोला था यही आश्चर्यकी बात थी! देवराजने पहले सोचा था कि दोनों सम्प्रदायोंमें शिक्षाका प्रचार हो रहा है इस लिए ये मामले स्वयं ही ठंडे हो जायँगे; परन्तु जब उन्होंने देखा कि 'मरज बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की' तब स्वयं बीचमें पड़कर निबटेरा कर देनेका निश्चय किया। उनके प्राइवेट सेक्रेटरीने राय दी कि, इस काममें जल्दी करना ठीक नहीं। दोनों सम्प्रदायोंके मुखियोंसे धीरे धीरे सब हाल मालूम कर लो और तब बीचमें पड़कर सन्धि करानेका यत्न करो। पहले दिगम्बर सम्प्रदायके अगुए बुलाये गये। इसके लिए तीर्थक्षेत्र कमेटीके कार्यकर्त्ता खास तौरसे पसन्द किये गये; क्यों कि वे ही इन मामलोंके अधिक जानकार थे। अबतक स्वर्गीय सेठ चुन्नीलाल जवेरचन्द, दानवीर सेठ माणिकचंदजी, सेठ परमेष्ठीदासजी और बाबू धन्नूलालजी अटर्नी आदि कई दिगम्बरी अगुओंकी मुलाकात देवराज ले चुके हैं। उनके बाद श्वेताम्बरी अगुओंका नम्बर आया है। सबसे पहले शायद बाबू बद्रीदासजी ही बुलाये गये हैं। श्वेताम्बर समाजसे मैं अधिक परिचित नहीं, संभव है उनके यहाँसे और भी दो चार आदमी जा चुके हों।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कितनेही गये हों, पर यह निश्चय है कि देवराज इस झगड़ेकी जाँच कर रहे हैं और अभी यह जाँच और भी कुछ समयतक जारी रहेगी। आगे और कौन कौन सज्जन कब कब बुलाये जावेंगे यह निश्चय नहीं; पर बुलाये अवश्य जावेंगे। यह भी निश्चय है कि अब देवराज इन भाई-भाईयोंके युद्धको बहुत समयतक न चलने देंगे। यूरोपके महायुद्धको शीघ्र समाप्त करनेके लिए जिस तरह इटलीके पोप प्रयत्न कर रहे हैं, उसी तरह जैनोंके इस युद्धको मिटानेके लिए सौधर्म स्वर्गके इन्द्रदेव यत्न कर रहे हैं। मेरा खयाल है कि पोपका प्रयत्न भले ही निष्फल चला जाय, पर इन्द्रका यत्न सफल हुए बिना न रहेगा। क्योंकि यूरोपके राष्ट्रोंने धर्मको छोड़ दिया है। पर जैन समाजके मुखियोंमें अभीतक धर्म बना हुआ है। वे इन्द्रकी बातको कभी न टालेंगे।

यदि मेरा यह अनुमान सच हो कि देवराज मुखियोंको बुला बुलाकर उनसे तीर्थोंके झगड़ोंके विषयमें पूछ ताछ कर रहे हैं और सच होनेमें कमसे कम मुझे तो कोई सन्देह नहीं है, क्यों कि मेरा कोई अनुमान झूठ नहीं होता, तो फिर अब आगे जो लोग जावें उन्हें सब तरहसे तैयार होकर जाना चाहिए। अपनी अपनी प्राचीनता सिद्ध करनेके लिए नये पुराने ग्रन्थोंका और पण्डितों तथा वकीलोंको अवश्य ही साथमें लिये जाना चाहिए। क्यों कि न वहाँ मर्त्यलोकके ग्रन्थोंका संग्रह है और न यहाँ जैसे पण्डित और वकील हैं।

२

पिछले सप्ताह मुझे एक पण्डितजीसे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। आपसे मिलकर मेरी तबीयत बहुत प्रसन्न हुई। क्योंकि आपने अपनी भीतरी बाहरी सभी बातें जी खोलकर कह दीं। अपने जो कुछ कहा वह आपके ही शब्दोंमें इस प्रकार है:—

"मेरे विचारोंमें सदा परिवर्तन होता है। आजसे १० वर्ष पहले मैं कैसा था, इसको सोचकर स्वयं मुझे ही आश्चर्य होता है। मालूम नहीं आगे इन वर्तमानके विचारोंमें भी कितना परिवर्तन हो जायगा। जब कभी मैं हिन्दी जैनगजटके वृद्ध सम्पादककी कूटस्थनित्यतापर विचार करता हूँ तब अवाक् हो जाता हूँ। वे इस बीसवीं सदीमें भी सोलहवीं सदीके स्वप्न देखा करते हैं और चाहते हैं कि मेरे ही समान सारी दुनिया हो जाय। किसीके विचारोंमें जरासा परिवर्तन देखा कि चटसे पुराने पत्रोंकी फाइलोंमेंसे कुछ टटोलकर पूर्वापराविरोध सिद्ध कर दिया! गरज यह कि मैं परिवर्तनशील संसारका परिवर्तनशील मनुष्य हूँ। वर्तमानमें कुछ समयसे मैं इस सिद्धान्तका माननेवाला बन गया हूँ:—

किस किसकी याद कीजिए,
किस किसको रोइए।
आराम बड़ी चीज है,
मुँह ढँकके सोइए॥

पहले मैं जैनसमाजके लिए बहुत कुछ रोया गाया हूँ। बीसों लेख लिखे हैं और व्याख्यानादि दिये हैं; पर अब मुझे अपनी उस मूर्खता पर हँसी आती है और पश्चात्ताप इस बातका होता है कि हाय मैंने आरामसे सोनेका वह अमूल्य समय व्यर्थ क्यों खो दिया! जैनसमाज जहन्नुममें चला जाय, कल मरता था सो आज मर जाय, मुझे उससे मतलब? वह हमारी क्या चिन्ता करता है जो हम उसकी करें? उसकी चिन्ता करनेवालोंको उसकी ओरसे जो कुछ मिलता है, सो किसीसे छुपा नहीं है। जहाँ कृतघ्नताकी गिनती पापमें नहीं है, उस समाजमें रहना भी पाप है। मेरा यह 'आराम बड़ी चीज है' का सिद्धान्त यह मत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समझिए कि मेरे जैसे दश पाँच आदमियोंमें ही माना जाता है। नहीं, इसका प्रचार खूब तेजीसे हो रहा है। यह बात दूसरी है कि जिन परिस्थितियोंके कारण हताश होकर मैं इसका अनुयायी बना हूँ, और लोग उनके कारण नहीं बने होंगे। वे आरामके लिए ही, आरामके भक्त हुए हैं और इस लिए इसके सच्चे उपासक उन्हींको समझना चाहिए। बाबू लोगोंका सम्प्रदाय इस सिद्धान्तका खास भक्त है। जैनसमाजमें ग्रेज्युएटोंकी संख्या कई सौ है, पर देखते हैं कि उनमें प्रतिशत ९९ 'येन केन प्रकारेण' रुपया कमाकर दुनियाके मजे लूटनेवाले ही हैं। वे तत्त्वज्ञ हैं, जानते हैं कि इस जड समाजके लिए रोना-कलपना किसी प्राचीन पर्वत या पाषाणसमूहके लिए रोना-झींकना है। इसलिए मजेसे पैर पसार कर सोते हैं। इधर मेरे भाई पण्डित जन भी इसके कम भक्त नहीं है। वे जैनपाठशालाओं और विद्यालयोंमें रहकर ही इस तत्त्वसे परिचित हो जाते हैं। वे बाहरसे चाहे जितने 'बगुलाभगत' बनें, पर अन्तरंगमें उनके यही तत्त्व रम रहा है। उनमें शायद ही दो चार अभागे ऐसे होंगे जो दिनमें कमसे कम दो घण्टे न सोते हों। विद्यालयोंसे निकलते ही वे पेन्शनके हकदार हो जाते हैं। अपनी अपनी श्रीमतियोंकी सेवा करना और दो तीन घंटे तर्जन गर्जनके साथ लड़कोंको कुछ रटा देना, या भोले भक्तोंको शास्त्र सुना देना, बस इससे अधिक परिश्रम वे नहीं कर सकते। यदि कहीं काम अधिक हुआ, तो चटसे वह जगह छोड़ कर दूसरी कोई पाठशाला तलाश कर ली। उनका पठन पाठन तो पण्डित होनेके साथ ही समाप्त हो जाता है। मैं खुश हूँ कि मेरा यह सिद्धान्त सर्वमान्य बनता जाता है। आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। मुझे आशा है कि आप भी कुछ समयमें मेरे साथी बन जायँगे और इन लिखने पढ़नेकी झंझटोंसे छुट्टी पा जायँगे।"

(३)

रूसमें बड़ी भारी अव्यवस्था हो रही है। सेनापति, मंत्रि मण्डळ, प्रजावर्ग आदिमें घोर मतभेद हो रहा है। कोई किसीकी नहीं सुनता। सब अपने अपने अधिकारोंको बढ़ानेकी फिक्रमें हैं। शत्रुको यह खासा मौका मिल गया है। वह आपनी सारी शक्तिको लगाकर भीतरी भागमें घुसता जा रहा है। हिन्दी जैनगजटके स्टाफमें भी इसी तरहकी अव्यवस्थाके समाचार मिले हैं। सम्पादक और प्रकाशकमें मनमोटाव हो गया है। प्रकाशकने अपने शत्रुओंपर ऐसे वार किये हैं, जिन्हें सम्पादक अपने युद्धशास्त्रके नियमोंसे विरुद्ध समझते हैं। उधर महासभाके मंत्री भी उनसे टेढ़ी चाल चल रहे हैं। इससे तंग आकर पुराने पक्षके वृद्ध सेनापति पं० रघुनाथदासजीने अपना इस्तीफा पेश कर दिया है। इतनी खैर है कि वे महासभाके अधिवेशन तक अपना काम करते रहेंगे, पर उनकी इच्छाके विरुद्ध शत्रुपर जो वार किये जायँगे, उनके ठीक निशाने पर लगने न लगनेके वे जिम्मेवार न होंगे। इस आपसकी फूटसे भय है कि कहीं नया दल या शत्रु पक्ष कुछ अधिक लाभ न उठा लेवे। यदि इस समय वह अपनी 'तरो ताजा' ताकतको काममें लायगा, तो आश्चर्य नहीं जो वह मैदान मार ले जाय। सावधान!

—श्रीगड़बड़ानन्द शास्त्री।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रानी सारन्धा।

(लेखक,-श्रीयुत प्रेमचन्दजी ।)

[१]

अँधेरी रातके सन्नाटेमें धसान नदी चटानोंसे टकराती हुई ऐसी सुहावनी मालूम होती थी जैसे घुमुर घुमर करती हुई चक्कियाँ। नदीके दाहिने तट पर एक टीला है। उस पर एक पुराना दुर्ग बना हुआ है जिसको जंगली वृक्षोंने घेर रक्खा है। टीलेके पूर्वकी ओर एक छोटासा गाँव है। यह गढ़ी और गाँव दोनों एक बुंदेला सरदारके कीर्तिचिह्न हैं। शताब्दियाँ व्यतीत हो गई, बुन्देलखण्डमें कितने ही राज्योंका उदय और अस्त हुआ, मुसलमान आये और गये, बुंदेला राजे उठे और गिरे, कोई गाँव, कोई इलाका, ऐसा न था जो इन दुर्व्यवस्थाओंसे पीड़ित न हो, मगर इस दुर्ग पर किसी शत्रुकी विजय-पताका न लहराई, और इस गाँवमें किसी विद्रोहका पदार्पण न हुआ। यह उसका सौभाग्य था।

अनिरुद्धसिंह वीर राजपूत था। वह जमाना ही ऐसा था जब प्राणीमात्रको अपने बाहुबल और पराक्रमहीका भरोसा था। एक ओर मुसलमान सेनायें पैर जमाये खड़ी रहती थीं, दूसरी ओर बलवान् राजे अपने निर्बल भाइयोंके गले घोटने पर तत्पर रहते थे। अनिरुद्धसिंहके पास सवारों और पियादोंका एक छोटासा, मगर सजीव, दल था। इसीसे वह अपने कुलकी और मर्य्यादाकी रक्षा किया करता था। उसे कभी चैनसे बैठना नसीब न होता था। तीन वर्ष पहले उसका विवाह शीतलादेवीसे हुआ, मगर अनिरुद्ध विहारके दिन और विलासकी रातें पहाड़ोंमें काटता था और शीतला उसके जानकी खैर मनानेमें। वह कितनी वार पतिसे अनुरोध कर चुकी थी, कितनी वार उसके पैरों पर गिर कर रोई थी, कि तुम मेरी आँखोंसे दूर न हो, मुझे हरिद्वार ले चलो, मुझे तुम्हारे साथ वनवास अच्छा है, यह वियोग अब नहीं सहा जाता। उसने प्यारसे कहा, जिद्दसे कहा, विनय की, मगर अनिरुद्ध बुंदेला था। शीतला अपने किसी हथियारसे उसे परास्त न कर सकी।

[२]

अँधेरी रात थी। सारी दुनिया सोती थी, मगर तारे आकाश पर जागते थे। शीतला देवी पलङ्ग पर पड़ी करवटें बदल रही थी और उसकी नन्द सारंधा फर्श पर बैठी हुई मधुर स्वरसे गाती थीः—

बिन रघुवीर कटत नहिं रैन।

शीतलाने कहा—जी न जलाओ। क्या तुम्हें भी नींद नहीं आती?

सारन्धा—तुम्हें लोरी सुना रही हूँ।

शीतला—मेरी आँखोंसे तो नींद लोप हो गई।

सारन्धा—किसीको ढूँढ़ने गई होगी।

इतनेमें द्वार खुला और एक गठे हुए बदनके रूपवान् पुरुषने भीतर प्रवेश किया। यह अनिरुद्ध था। उसके कपड़े भीगे हुए थे, और बदन पर कोई हथियार न था। शीतला चारपाईसे उतर कर जमीन पर बैठ गई।

सारन्धाने पूछा—भैया, यह कपड़े भीगे क्यों हैं?

अनिरुद्ध—नदी पैर कर आया हूँ।

सारन्धा—हथियार क्या हुए?

अनिरुद्ध—छिन गये।

सारन्धा—और साथके आदमी?

अनिरुद्ध—सबने वीरगति पाई।

शीतलाने दबी जबानसे कहा—"ईश्वरने ही कुशल किया—" मगर सारन्धाके तीवरों पर बल पड़ गये और मुखमण्डल गर्वसे सतेज हो गया। बोली—"भैया! तुमने कुलकी मर्यादा खो दी। ऐसा कभी न हुआ था।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सारन्धा भाई पर जान देती थी। उसके मुँहसे यह धिक्कार सुनकर अनिरुद्ध लज्जा और खेदसे विकल हो गया। वह वीराग्नि जिसे क्षण भरके लिये अनुरागने दबा दिया था, फिर ज्वलन्त हो गई। वह उल्टे पाँव लौटा और यह कहकर चला गया कि "सारन्धा! तुमने मुझे सदैवके लिए सचेत कर दिया। ये बातें मुझे कभी न भूलेंगी।"

अँधेरी रात थी। आकाशमण्डलमें तारोंका प्रकाश बहुत धुँधला था। अनिरुद्ध किलेसे बाहर निकला। पलभरमें नदीके उस पार जा पहुँचा, और फिर अन्धकारमें लुप्त हो गया। शीतला उसके पीछे पीछे किलेकी दीवारों तक आई, मगर जब अनिरुद्ध छलाँग मारकर बाहर कूद पड़ा तो वह विरहिणी एक चटान पर बैठकर रोने लगी।

इतनेमें सारन्धा भी वहीं आ पहुँची। शीतलाने नागिनकी तरह बल खाकर कहा—मर्य्यादा इतनी प्यारी है!

सारन्धा—हाँ।

शीतला—अपना पति होता तो हृदयमें छिपा लेतीं।

सारन्धा—न—छातीमें छुरी चुभा देती।

शीतलाने ऐंठ कर कहा—डोलीमें छिपाती फिरोगी—मेरी बात गिरहमें बाँध लो।

सारन्धा—जिस दिन ऐसा होगा, मैं भी अपना वचन पूरा कर दिखाऊँगी।

इस घटनाके तीन महीने पीछे अनिरुद्ध महरौनाको विजय करके लौटा। साल भर पीछे सारन्धाका विवाह ओरछाके राजा चम्पतरायसे हो गया। मगर उस दिनकी बातें दोनों महिलाओंके हृदय-स्थलमें काँटेकी तरह खटकती रहीं।

[३]

राजा चम्पतराय बड़े प्रतिभाशाली पुरुष थे। सारी बुंदेला जाति उनके नाम पर जान देती थी और उनके प्रभुत्वको मानती थी। गद्दी पर बैठते ही उसने मुगल बादशाहोंको कर देना बन्द कर दिया और वह अपने बाहुबलसे राज्यविस्तार करने लगा। मुसलमानोंकी सेनायें वार वार उस पर हमले करती थीं और हार कर लौट जाती थीं।

यही समय था जब अनिरुद्धने सारन्धाका चम्पतरायसे विवाह कर दिया। सारन्धाने मुँहमाँगी मुराद पाई। उसकी यह अभिलाषा कि मेरा पति बुंदेला जातिका कुलतिलक हो, पूरी हुई। यद्यपि राजाके रनिवासमें पाँच रानियाँ थीं, मगर उन्हें शीघ्र ही मालूम हो गया कि वह देवी जो हृदयमें मेरी पूजा करती है सारन्धा है।

परन्तु कुछ ऐसी घटनायें हुईं कि चम्पतरायको मुगल बादशाहका आश्रित होना पड़ा। उसने अपना राज्य अपने भाई पहाड़सिंहको सौंपा और आप देहलीको चला गया। यह शाहजहाँके शासनकालका अन्तिम भाग था। शाहजादा दारा शिकोह राजकीय कार्य्योंको सँभालते थे। युवराजकी आँखोंमें शील थी, और चित्तमें उदारता। उन्होंने चम्पतरायकी वीरताकी कथायें सुनी थीं, इसलिए उसका बहुत आदर सम्मान किया, और कालपीकी बहुमूल्य जागीर उसके भेंट की, जिसकी आमदनी नौ लाख थी। यह पहला अवसर था कि चम्पतरायको आये दिनकी लड़ाई झगड़ेसे निवृत्ति हुई और उसके साथ ही भोगविलासका प्राबल्य हुआ। रात दिन आमोदप्रमोदके चर्चे रहने लगे। राजा विलासमें डूबे, रानियाँ जड़ाऊ गहनों पर रीझीं। मगर सारन्धा इन दिनों बहुत उदास और संकुचित रहती। वह इन रहस्योंसे दूर दूर रहती, ये नृत्य और गानकी सभायें उसे सूनी प्रतीत होतीं।

एक दिन चम्पतरायने सारन्धासे कहा—सारन! तुम उदास क्यों रहती हो? मैं तुम्हें कभी हँसते नहीं देखता। क्या मुझसे नाराज हो?

सारन्धाकी आँखोंमें जल भर आये। बोली—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वामीजी ! आप क्यों ऐसा विचार करते हैं। जहाँ आप प्रसन्न हैं वहाँ मैं भी खुश हूँ।

चम्पतराय—मैं जबसे यहाँ आया हूँ, मैंने तुम्हारे मुखकमल पर कभी मनोहारिणी मुसकिराहट नहीं देखी। तुमने कभी अपने हाथोंसे मुझे बीड़ा नहीं खिलाया। कभी मेरी पाग नहीं सँवारी। कभी मेरे शरीर पर शस्त्र नहीं सजाये। कहीं प्रेम-लता मुरझाने तो नहीं लगी ?

सारन्धा—प्राणनाथ ! आप मुझसे ऐसी बात पूछते हैं जिसका उत्तर मेरे पास नहीं है। यथार्थमें इन दिनों मेरा चित्त कुछ उदास रहता है। मैं बहुत चाहती हूँ कि खुश रहूँ, मगर एक बोझासा हृदय पर धरा रहता है।

चम्पतराय स्वयं आनन्दमें मग्न थे। इसलिए सारन्धाको उनके विचारमें असन्तुष्ट रहनेका कोई उचित कारण नहीं हो सकता था। वे भौंहें सिकौड़ कर बोले—मुझे तुम्हारे उदास रहनेका कोई विशेष कारण नहीं मालूम होता। ओरछामें कौनसा सुख था जो यहाँ नहीं है ?

सारन्धाका चेहरा लाल हो गया। बोली—मैं कुछ कहूँ, आप नाराज तो न होंगे ?

चम्पतराय—नहीं। शौकसे कहो।

सारन्धा—ओरछामें मैं एक राजाकी रानी थी। यहाँ मैं एक जागीरदारकी चेरी हूँ। ओरछामें मैं वह थी, जो अवधमें कौशल्या थीं। परंतु यहाँ मैं बादशाहके एक सेवककी स्त्री हूँ। जिस बादशाहके सामने आज आप आदरसे शीश झुकाते हैं वह कल आपके नामसे काँपता था। रानीसे चेरी होकर भी प्रसन्नचित्त होना मेरे वशमें नहीं है। आपने यह पद और ये विलासकी सामग्रियाँ बड़े महँगे दामों मोल ली हैं।

चम्पतरायके नेत्रोंसे एक पर्दासा हट गया। वे अब तक सारंधाकी आत्मिक उच्चताको न जानते थे। जैसे बे-माँबापका बालक माँकी चर्चा सुनकर रोने लगता है, उसी तरह ओरछाकी यादसे चम्पतरायकी आँखें सजल हो गई। उन्होंने आदरयुक्त अनुरागसे सारन्धाको हृदयसे लगा लिया।

आजसे उन्हें फिर उसी उजड़ी बस्तीकी फिक्र हुई जहाँसे धन और कीर्तिकी अभिलाषायें खींच लाई थीं।

[२]

माँ अपने खोये हुए बालकको पाकर निहाल हो जाती है। चम्पतरायके आनेसे बुन्देलखण्ड निहाल हो गया। ओरछाके भाग जागे। नौबतें झड़ने लगीं, और फिर सारन्धाके जातीय अभिमानका आभास दिखलाई देने लगा।

यहाँ रहते कही महीने बीत गये। इसी बीचमें शाहजहाँ बीमार पड़ा। शाहजादाओंमें पहलेसे ईर्षाकी अग्नि दहक रही थी। यह खबर सुनते ही ज्वाला प्रचण्ड हुई। संग्रामकी तैयारियाँ होने लगीं। शाहजादा मुराद और मुहीउद्दीन अपने अपने दल सजा कर दक्खिनसे चले। वर्षाके दिन थे, नदी नाले उमड़े हुए थे, पर्वत और वन हरी हरी घाससे लहरा रहे थे। उर्बरा रंगबिरंगके रूप भर कर अपने सौन्दर्यको दिखाती थी।

मुराद और मुहीउद्दीन उमंगोंसे भरे हुए एकदम बढ़ते चले आते थे। यहाँ तक कि वे धौलपुरके निकट चम्बलके तट पर आ पहुँचे। परंतु यहाँ उन्होंने बादशाही सेनाको अपने शुभागमनके निमित्त तैयार पाया।

शहजादे अब बड़ी चिन्तामें पड़े। सामने अगम नदी लहरें मार रही थी, लोभसे भी अधिक विस्तारवाली। घाट पर लोहेकी दीवार खड़ी थी किसी योगीके त्यागके सदृश सुदृढ। विवश होकर चम्पतरायके पास सँदेसा भेजा कि खुदाके लिए आकर हमारी डूबती हुई नावको पार लगाइए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राजाने भवनमें जाकर सारन्धासे पूछा—इसका क्या उत्तर दूँ?

सारन्धा—आपको मदद करनी होगी।

चम्पतराय—उनकी मदद करना दारा शिकोहसे वैर लेना है।

सारन्धा—यह सत्य है परन्तु हाथ फैलानेकी मर्य्यादा भी तो निभानी चाहिए।

चम्पतराय—प्रिये! तुमने सोचकर जवाब नहीं दिया।

सारन्धा—प्राणनाथ, मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि यह मार्ग कठिन है और हमें अपने योद्धाओंका रक्त पानीके समान बहाना पड़ेगा। परन्तु हम अपना रक्त बहायेंगे, और चम्बलकी लहरोंको लाल कर देंगे। विश्वास रखिए कि जब तक नदीकी धारा बहती रहेगी, वह हमारे वीरोंकी कीर्ति गान करती रहेगी। जबतक बुन्देलोंका एक भी नाम-लेवा रहेगा, यह रक्तबिन्दु उसके माथे पर केशरका तिलक बनकर चमकेगा।

वायुमण्डलमें मेघराजकी सेनायें उमड़ रही थीं। ओरछेके किलेसे बुन्देलोंकी एक काली घटा उठी और वेगके साथ चम्बलकी तरफ चली। प्रत्येक सिपाही वीररससे झूम रहा था। सारन्धाने दोनों राजकुमारोंको गलेसे लगा लिया और राजाको पानका बीड़ा देकर कहा—बुन्देलोंकी लाज अब तुम्हारे हाथ है।

आज उसका एक एक अंग मुसकिरा रहा है और हृदय हुलसित है। बुन्देलोंकी यह सेना देखकर शाहज़ादे फूले न समाये। राजा वहाँकी अंगुल अंगुल भूमिसे परिचित थे। उन्होंने बुन्देलोंको तो एक आड़में छिपा दिया और वे शाहज़ादोंकी फ़ौजको सजा कर नदीके किनारे किनारे पच्छिमकी ओर चले। दारा शिकोहको भ्रम हुआ कि शत्रु किसी अन्य घाटसे नदी उतरना चाहता है। उन्होंने घाटपरसे मोर्चे हटा लिये। घाटमें बैठे हुए बुन्देले इसी ताकमें थे। बाहर निकल पड़े और उन्होंने तुरत ही नदीमें घोड़े डाल दिये। चम्पतरायने शाहज़ादा दारा शिकोहको भुलावा देकर अपनी फ़ौज घुमा दी और वह बुन्देलोंके पीछे चलता हुआ उसे पार उतार लाया। इस कठिन चालमें सात घण्टोंका विलम्ब हुआ, परन्तु जाकर देखा तो सात सौ बुन्देला योद्धाओंकी लाशें फड़क रही थीं।

राजाको देखते ही बुन्देलोंकी हिम्मत बँध गई। शाहज़ादोंकी सेनाने भी 'अल्लाहो अकबर' की ध्वनिके साथ धावा किया। बादशाही सेनामें हलचल पड़ गई। उनकी पंक्तियाँ छिन्न भिन्न हो गईं। हाथोंहाथ लड़ाई होने लगी, यहाँ तक कि शाम हो गई। रणभूमि रुधिरसे लाल हो गई और आकाश अँधेरा हो गया। घमसानकी मार हो रही थी। बादशाही सेना शाहज़ादोंको दबाये आती थी। अकस्मात् पच्छिमसे फिर बुंदेलोंकी एक लहर उठी और इस वेगसे बादशाही सेनाकी पुश्त पर टकराई कि उसके कदम उखड़ गये। जीता हुआ मैदान हाथसे निकल गया। लोगोंको कौतूहल था कि यह दैवी सहायता कहाँसे आई। सरल स्वभावके लोगोंकी धारणा थी कि यह फतहके फ़िरिश्ते हैं। परन्तु जब राजा चम्पतराय निकट गये तो सारन्धाने घोड़ेसे उतर कर उनके पद पर शीश झुका दिया। राजाको असीम आनन्द हुआ। यह सारन्धा थी!

समरभूमिका दृश्य इस समय अत्यन्त दुःखमय था। थोड़ी देर पहले जहाँ सजे हुए बीरोंके दल थे वहाँ अब बेजान लाशें फड़क रही थीं। मनुष्यने अपने स्वार्थके लिए आदिसे ही भाइयोंकी हत्या की है।

अब विजयी सेना लूट पर टूटी। पहले मर्द मर्दोंसे लड़ते थे, अब वे मुर्दोंसे लड़ रहे थे। वह वीरता और पराक्रमका चित्र था, यह नीचता और दुर्बलताकी ग्लानिप्रद तसवीर थी। उस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समय मनुष्य पशु बना हुआ था, अब वह पशुसे भी बढ़ गया था।

इस नोच खसोटमें लोगोंको बादशाही सेनाके सेनापति वलीबहादुर खाँकी लाश दिखाई दी। उसके निकट उसका घोड़ा खड़ा हुआ अपनी दुमसे मक्खियाँ उड़ा रहा था। राजाको घोड़ोंका शौक था। देखते ही वह उस पर मोहित हो गया। यह एराकी जातिका अति सुन्दर घोड़ा था। एक एक अंग साँचेमें ढला हुआ, सिंहकी सी छाती, चीतेकी सी कमर, उसका यह प्रेम और स्वामिभक्ति देखकर लोगोंको बड़ा कौतूहल हुआ। राजाने हुक्म दिया—"खबरदार! इस प्रेमी पर कोई हथियार न चलाये, इसे जीता पकड़ ले, यह मेरे अस्तबलकी शोभाको बढ़ावेगा। जो इसे मेरे पास लावेगा—उसे धनसे निहाल कर दूँगा।"

योद्धागण चारों ओरसे लपके, परन्तु किसीको साहस न होता था कि उसके निकट जा सके। कोई चुम्कारता था, कोई फन्देसे फँसानेकी फिक्रमें था। पर कोई उपाय सफल न होता था। वहाँ सिपाहियोंका एक मेला सा लगा हुआ था।

तब सारन्धा अपने खेमेंसे निकली और निर्भय होकर घोड़ेके पास चली गई। उसकी आँखोंमें प्रेमका प्रकाश था, छलका नहीं। घोड़ेने सिर झुका दिया। रानीने उसकी गर्दन पर हाथ रक्खा, और वह उसकी पीठ सुहलाने लगी। घोड़ेने उसके अञ्चलमें मुँह छिपा लिया। रानी उसकी रास पकड़ कर खेमेकी ओर चली। घोड़ा इस तरह चुपचाप उसके पीछे चला, मानों सदैवसे उसका सेवक है।

पर बहुत अच्छा होता कि घोड़ेने सारन्धासे भी निष्ठुरता की होती। यह सुन्दर घोड़ा आगे चलकर इस राजपरिवारके निमित्त रत्नजटित मृग प्रतीत हुआ।

[५]

संसार एक रणक्षेत्र है। इस मैदानमें उसी सेनापतिको विजयलाभ होता है जो अवसरको पहचानता है। वह अवसर देखकर जितने उत्साहसे आगे बढ़ता है, उतने ही उत्साहसे आपत्तिके समय पर पीछे हट जाता है। वह वीर पुरुष राष्ट्रका निर्माता होता है, और इतिहास उसके नाम पर यशके फूलोंकी वर्षा करता है।

पर इस मैदानमें कभी कभी ऐसे सिपाही भी आ जाते हैं जो अवसर पर कदम बढ़ाना जानते हैं, लेकिन संकटमें पीछे हटना नहीं जानते। यह रणधीर पुरुष विजयको नातक भेंट कर देता है। वह अपनी सेनाका नाम मिटा देगा, किन्तु जहाँ एक बार पहुँच गया है, वहाँसे कदम पीछे न हटायेगा। उनमें कोई विरला ही संसारक्षेत्रमें विजय प्राप्त करता है, किन्तु प्रायः उसकी हार विजयसे भी गौरवात्मक होती है। अगर वह अनुभवशील सेनापति राष्ट्रोंकी नीव डालता है, तो यह आन पर जान देनेवाला, यह मुँह न मोड़नेवाला सिपाही, राष्ट्रके भावोंको उच्च करता है, और उसके हृदय पर नैतिक गौरवको अंकित कर देता है। उसे इस कार्यक्षेत्रमें चाहे सफलता न हो, किन्तु जब किसी वाक्य या सभामें उसका नाम जबान पर आ जाता है, तो श्रोतागण एक स्वरसे उसके कीर्तिगौरवको प्रतिध्वनित कर देते हैं। सारन्धा इन्हीं 'आन पर जान देनेवालों' में थी।

शहजादा मुहीउद्दीन चम्बलके किनारेसे आगरेकी ओर चला तो सौभाग्य उसके सिर पर मोर्छल हिलाता था। जब वह आगरे पहुँचा तो विजयदेवीने उसके लिए सिंहासन सजा दिया।

औरंगजेब गुणज्ञ था। उसने बादशाही सरदारोंके अपराध क्षमा कर दिये, उनके राज्यपद लौटा दिये और राजा चम्पतरायको उसके बहु-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मूल्य कृत्योंके उपलक्षमें बारह हजारी मन्सब प्रदान किया। ओरछासे बनारस और बनारससे यमुना तक उसकी जागीर नियत की गई। बुंदेला राजा फिर राज्यसेवक बना, वह फिर सुखविलासमें डूबा, और रानी सारन्धा फिर पराधीनताके शोकसे घुलने लगी।

वली बहादुरखाँ बड़ा वाक्यचतुर मनुष्य था। उसकी मृदुलताने शीघ्र ही उसे बादशाह आलमगीरका विश्वासपात्र बना दिया। उस पर राजा-सभामें सम्मानकी दृष्टि पड़ने लगी।

खाँसाहबके मनमें अपने घोड़ेके हाथसे निकल जानेका बड़ा शोक था। एक दिन कुँवर छत्रसाल उसी घोड़े पर सवार होकर सैरको गया था। वह खाँ साहबके महलकी तरफ जा निकला। वली बहादुर ऐसे ही अवसरकी ताकमें था। उसने तुरत अपने सेवकोंको इशारा किया। राज-कुमार अकेला क्या करता! पाँव पाँव घर आया, और उसने सारन्धासे सब समाचार बयान किया। रानीका चेहरा तमतमा गया। बोली—मुझे इसका शोक नहीं कि घोड़ा गया, शोक इसका है कि तू उसे खोकर जीता क्यों लौटा। क्या तेरे शरीरमें बुंदेलोंका रक्त नहीं है? घोड़ा न मिलता न सही, किन्तु तुझे दिखा देना चाहिए था कि एक बुंदेला बालकसे उसका घोड़ा छीन लेना हँसी नहीं है।

यह कहकर उसने अपने पच्चीस योद्धाओंको तैयार होनेकी आज्ञा दी, स्वयं अस्त्र धारण किये और वह योद्धाओंके साथ वली बहादुरखाँके निवासस्थान पर जा पहुँची। खाँसाहब उसी घोड़े पर सवार होकर दरबार चले गये थे। सारन्धा दरबारकी तरफ चली, और एक क्षणमें किसी वेगवती नदीके सदृश बादशाही दरबारके सामने जा पहुँची। यह कैफियत देखते ही दरबारमें हलचल मच गई। अधिकारीवर्ग इधर उधरसे आकर जमा हो गये। आलमगीर भी सहनमें निकल आये। लोग अपनी अपनी तलवारें सँभालने लगे और चारों तरफ शोर मच गया। कितने ही नेत्रोंने इसी दरबारमें अमरसिंहकी तलवारकी चमक देखी थी। उन्हें वही घटना फिर याद आ गई।

सारन्धाने उच्च स्वरसे कहा—खाँसाहब! बड़ी लज्जाकी बात है कि आपने वह वीरता जो चम्बलके तट पर दिखानी चाहिए थी, आज एक अबोध बालकके सम्मुख दिखाई है। क्या यह उचित था कि आप उससे घोड़ा छीन लेते?

वली बहादुरखाँकी आँखोंसे अग्निज्वाला निकल रही थी। वे कड़ी आवाजसे बोले—किसी गैरको क्या मजाज है कि मेरी चीज अपने काममें लाये?

रानी—वह आपकी चीज नहीं, मेरी है। मैंने उसे रणभूमिमें पाया है और उस पर मेरा अधिकार है! क्या रणनीतिकी इतनी मोटी बात भी आप नहीं जानते?

खाँसाहब—वह घोड़ा मैं नहीं दे सकता, उसके बदलेमें सारा अस्तबल आपको नजर है।

रानी—मैं अपना घोड़ा लूँगी।

खाँसाहब—मैं उसके बराबर जवाहरात दे सकता हूँ, परन्तु घोड़ा नहीं दे सकता।

रानी—तो फिर इसका निश्चय तलवारोंसे होगा। बुंदेला योद्धाओंने तलवारें सौंत लीं और करीब था कि दरबारकी भूमि रक्तसे प्लावित हो जाय कि बादशाह आलमगीरने बीचमें आकर कहा—रानी साहबा! आप सिपाहियोंको रोकें। घोड़ा आपको मिल जायगा। परन्तु उसका मूल्य बहुत देना पड़ेगा।

रानी—मैं उसके लिए अपना सर्वस्व त्यागने पर तैयार हूँ।

बादशाह—जागीर और मन्सब भी?

रानी—जागीर और मन्सब कोई चीज नहीं।

बादशाह—अपना राज्य भी?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रानी—हाँ राज्य भी।

बादशाह—एक घोड़ेके लिए ?

रानी—नहीं–उस पदार्थके लिए जो संसारमें सबसे अधिक मूल्यवान् है।

बादशाह—वह क्या है ?

रानी—अपनी आन।

इस भाँति रानीने एक घोड़ेके लिए अपनी विस्तृत जागीर, उच्च राज्यपद और राजसम्मान सब हाथसे खोया और केवल इतना ही नहीं, भविष्यके लिए काँटे बोये। इस घड़ीसे अन्त दशा तक चम्पतरायको शान्ति न मिली।

[६]

राजा चम्पतरायने फिर ओरछेके किलेमें पदार्पण किया। उन्हें मन्सब और जागीरके हाथसे निकल जानेका अत्यन्त शोक हुआ, किन्तु उन्होंने अपने मुँहसे शिकायतका एक शब्द भी नहीं निकाला। वे सारन्धाके स्वभावको भली भाँति जानते थे। शिकायत इस समय पर कुठारका काम करती। कुछ दिन यहाँ शान्तिपूर्वक व्यतीत हुए। लेकिन बादशाह सारन्धाकी कठोर बातें भूला न था। वह क्षमा करना जानता ही न था। ज्यों ही भाइयोंकी ओरसे निश्चिन्त हुआ, उसने एक बड़ी सेना चम्पतरायका गर्व चूर्ण करनेके निमित्त भेजी और बाईस अनुभवशील सरदार इस मुहीम पर नियुक्त किये। शुभकरण बुंदेला बादशाहका सूबेदार था। वह चम्पतरायका बचपनका मित्र और सहपाठी था। उसने चम्पतरायको परास्त करनेका बीड़ा उठाया। और भी कितने ही बुंदेला सरदार राजासे विमुख होकर बादशाही सूबेदारसे आ मिले। एक घोर संग्राम हुआ। भाइयोंकी तलवारें भाइयोंहीके रक्तसे लाल हुईं। यद्यपि इस समरमें राजाको विजय प्राप्त हुआ, लेकिन उनकी शक्ति सदाके लिए क्षीण हो गई। निकटवर्ती बुंदेला राजे जो चम्पतरायके बाहुबल थे, बादशाहके कृपाकांक्षी बन बैठे। साथियोंमें कुछ तो काम आये, कुछ दगा कर गये। यहाँ तक कि निज सम्बन्धियोंने भी आँखें चुरा लीं। परन्तु इन कठिनाइयोंमें भी चम्पतरायने हिम्मत नहीं हारी। धीरजको न छोड़ा। उसने ओरछा छोड़ दिया, और वह तीन वर्ष तक बुंदेलखण्डके सघन पर्वतों पर छिपा फिरता रहा। बादशाही सेनायें शिकारी जानवरोंकी भाँति सारे देशमें मँडरा रही थीं। आये दिन राजाका किसी न किसीसे सामना हो जाता था। सारन्धा सदैव उसके साथ रहती, और उसका साहस बढ़ाया करती। बड़ी बड़ी आपत्तियोंमें भी जब कि धैर्य्य लुप्त हो जाता—और आशा साथ छोड़ देती, आत्मरक्षाका धर्म्म उसे सम्हाले रहता था। तीन सालके बाद अन्तमें बादशाहके सूबेदारोंने आलमगीरको सूचना दी कि इस शेरका शिकार आपके सिवाय और किसीसे न होगा। उत्तर आया कि सेनाको हटा लो, और घेरा उठा लो। राजाने समझा, संकटसे निवृत्ति हुई, पर यह बात शीघ्र ही भ्रमात्मक सिद्ध हो गई।

[७]

तीन सप्ताहसे बादशाही सेनाने ओरछाको घेर रक्खा है। जिस तरह कठोर वचन हृदयको छेद डालते हैं, उसी तरह तोपके गोलोंने दीवारोंको छेद डाला है। किलेमें २० हजार आदमी घिरे हुए हैं, लेकिन उनमें आधेसे अधिक स्त्रियाँ और उनसे कुछ ही कम बालक हैं। मर्दोंकी संख्या दिनों दिन न्यून होती जाती है। आने-जानेके मार्ग चारों तरफसे बन्द हैं। हवाका भी गुज़र नहीं। रसदका सामान बहुत कम रह गया है। स्त्रियाँ पुरुषों और बालकोंको जीवित रखनेके लिए आप उपवास करती हैं। लोग बहुत हताश हो रहे हैं। औरतें सूर्य्यनारायणकी ओर हाथ उठा उठा कर शत्रुको कोसती हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बालकवृन्द मारे क्रोधके दीवारोंकी आड़से उन पर पत्थर फेंकते हैं, जो मुश्किलसे दीवारके उस पार जाते हैं। राजा चम्पतराय स्वयम् ज्वरसे पीड़ित हैं। उन्होंने कई दिनसे चारपाई नहीं छोड़ी। उन्हें देखकर लोगोंको कुछ ढारस होता था, लेकिन उनकी बीमारीसे सारे किलेमें नैराश्य छाया हुआ है।

राजाने सारन्धासे कहा—आज शत्रु जरूर किलेमें घुस आयेंगे।

सारन्धा—ईश्वर न करे कि इन आँखोंसे वह दिन देखना पड़े।

राजा—मुझे बड़ी चिन्ता इन अनाथ स्त्रियों और बालकोंकी है। गेहूँके साथ यह घुन भी पिस जायँगे।

सारन्धा—हम लोग यहाँसे निकल जायँ तो कैसा?

राजा—इन अनाथोंको छोड़ कर?

सारन्धा—इस समय इन्हें छोड़ देनेहीमें कुशल है। हम न होंगे तो शत्रु इन पर कुछ दया अवश्य ही करेंगे।

राजा—नहीं, ये लोग मुझसे न छोड़े जायँगे। जिन मर्दोंने अपनी जान सेवामें अर्पण कर दी है, उनकी स्त्रियों और बच्चोंको मैं यों कदापि नहीं छोड़ सकता।

सारन्धा—लेकिन यहाँ रहकर हम उनकी कुछ मदद भी तो नहीं कर सकते।

राजा उनके साथ प्राण तो दे सकते हैं। मैं उनकी रक्षामें अपनी जान लड़ा दूँगा। उनके लिए बादशाही सेनाकी खुशामद करूँगा। कारावासकी कठिनाइयाँ सहूँगा, किन्तु इस संकटमें उन्हें छोड़ नहीं सकता।

सारन्धाने लज्जित होकर सिर झुका लिया और वह सोचने लगी, निस्संदेह अपने प्रिय साथियोंको आगकी आँचमें छोड़कर अपनी जान बचाना घोर नीचता है। मैं ऐसी स्वार्थांध क्यों हो गई हूँ? लेकिन फिर एकाएक विचार उत्पन्न हुआ। बोली—यदि आपको विश्वास हो जाय कि इन आदमियोंके साथ कोई अन्याय न किया जायगा तब तो आपको चलनेमें कोई बाधा न होगी?

राजा—(सोचकर) कौन विश्वास दिलायेगा?

सारन्धा—बादशाहके सेनापतिका प्रतिज्ञापत्र।

राजा—हाँ तब मैं सानन्द चलूँगा।

सारन्धा विचारसागरमें डूबी। बादशाहके सेनापतिसे क्यों कर वह प्रतिज्ञा कराऊँ? कौन यह प्रस्ताव लेकर जायगा? और वे निर्दयी ऐसी प्रतिज्ञा करने ही क्यों लगे? उन्हें तो अपने विजयकी पूरी आशा है। मेरे यहाँ ऐसा नीतिकुशल, वाक्पटु, चतुर कौन है, जो इस दुस्तर कार्य्यको सिद्ध करे। छत्रसाल चाहे तो कर सकता है। उसमें ये सब गुण मौजूद हैं।

इस तरह मनमें निश्चय करके रानीने छत्रसालको बुलाया। यह उसके चारों पुत्रोंमें सबसे बुद्धिमान् और साहसी था। रानी उसे सबसे अधिक प्यार करती थी। जब छत्रसालने आकर रानीको प्रणाम किया तो उसके कमलनेत्र सजल हो गये और हृदयसे दीर्घ निश्वास निकल आया।

छत्रसाल—माता मेरे लिए क्या आज्ञा है।

रानी—आज लड़ाईका क्या ढंग है?

छत्रसाल—हमारे पचास योद्धा अब तक काम आ चुके हैं।

रानी—बुंदेलोंकी लाज अब ईश्वरके हाथ है।

छत्रसाल—हम आज रातको छापा मारेंगे।

रानीने संक्षेपसे अपना प्रस्ताव छत्रसालके सामने उपस्थित किया और कहा—यह काम किसको सौंपा जाय?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छत्रसाल—मुझको।

" तुम इसे पूरा कर दिखओगे ? "

" हाँ, मुझे पूर्ण विश्वास है। "

" अच्छा जाओ, परमात्मा तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करे। "

छत्रसाल जब चला तो रानीने उसे हृदयसे लगा लिया और तब आकाशकी ओर दोनों हाथ उठाकर कहा—दयानिधि, मैंने अपना तरुण और होनहार पुत्र बुंदेलोंकी आनके भेट कर दिया। अब इस आनको निभाना तुम्हारा काम है। मैंने बड़ी मूल्यवान् वस्तु अर्पित की है। इसे स्वीकार करो।

[८]

दूसरे दिन प्रातःकाल सारन्धा स्नान करके थालमें पूजाकी सामग्री लिये मन्दिरको चली। उसका चेहरा पीला पड़ गया था, और आँखों तले अँधेरा छाया जाता था। वह मन्दिरके द्वार पर पहुँची थी, कि उसके थालमें बाहरसे आकर एक तीर गिरा। तीरकी नोक पर एक कागजका पुर्जा लिपटा हुआ था। सारन्धाने थाल मन्दिरके चबूतरे पर रख दिया, और पुर्जेको खोलकर देखा तो आनन्दसे चेहरा खिल गया। लेकिन यह आनन्द क्षणभरका मेहमान था। हाय! इस पुर्जेके लिए मैंने अपना प्रिय पुत्र हाथसे खो दिया है। कागजके टुकड़ेको इतने महँगे दामों किसने लिया होगा?

मंदिरसे लौटकर सारन्धा राजा चम्पतरायके पास गई और बोली–" प्राणनाथ! आपने जो वचन दिया था, उसे पूरा कीजिए।" राजाने चौंक कर पूछा–" तुमने अपना वादा पूरा कर लिया ? " रानीने वह प्रतिज्ञापत्र राजाको दे दिया। चम्पतरायने उसे गौरसे देखा फिर बोले- " अब मैं चलूँगा और ईश्वरने चाहा तो एक बेर फिर शत्रुओंकी खबर लूँगा। लेकिन सारन! सच बताओ इस पत्रके लिए क्या देना पड़ा ? "

रानीने कुण्ठित स्वरसे कहा—बहुत कुछ।

राजा—सुनूँ ?

रानी—एक जवान पुत्र।

राजाको बाण सा लगा। पूछा—कौन ? अंगदराय ?

रानी—नहीं।

राजा—रतनसाह ?

रानी—नहीं।

राजा—छत्रसाल ?

रानी—हाँ।

जैसे कोई पक्षी गोली खाकर परोंको फड़फड़ाता है और तब बेदम होकर गिर पड़ता है, उसी भाँति चम्पतराय पलँगसे उछले और फिर अचेत होकर गिर पड़े। छत्रसाल उनका परम प्रिय पुत्र था। उनके भविष्यकी सारी कामनायें उसी पर अवलम्बित थीं। जब चेत हुआ तो बोले–" सारन, तुमने बुरा किया। अगर छत्रसाल मारा गया तो बुंदेला वंशका नाश हो जायगा।"

अँधेरी रात थी। रानी सारन्धा घोड़े पर सवार चम्पतरायको पालकीमें बैठाये किलेके गुप्त मार्गसे निकली जाती थी। आजसे बहुत काल पहले एक दिन ऐसी ही अँधेरी, दुःखमय रात्रि थी। तब सारन्धाने शीतलादेवीको कुछ कठोर वचन कहे थे। शीतलादेवीने उस समय जो भविष्यद्वाणी की थी वह आज पूरी हुई। क्या सारन्धाने उसका जो उत्तर दिया था वह भी पूरा होकर रहेगा ?

[८]

मध्याह्नकाल था। सूर्य्यनारायण सिर पर आकर अग्निकी वर्षा कर रहे थे। शरीरको झुलसानेवाली प्रचण्ड प्रखर वायु वन और पर्वतोंमे आग लगाती फिरती थी। ऐसा विदित होता था मानों अग्निदेवकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समस्त सेना गरजती हुई चली आ रही है। गगनमण्डल इस भयसे काँप रहा था। रानी सारन्धा घोड़े पर सवार, चम्पतरायको लिए, पच्छिमकी तरफ चली जाती थी। ओरछा दस कोस पीछे छूट चुका था, और प्रतिक्षण यह अनुमान स्थिर होता जाता था कि अब हम भयके क्षेत्रसे बाहर निकल आये। राजा पालकीमें अचेत पड़े हुए थे और कहार पसीनेमें शराबोर थे। पालकीके पीछे पाँच सवार घोड़ा बढ़ाये चले आते थे। प्यासके मारे सबका बुरा हाल था। तालू सूखा जा रहा था। किसी वृक्षकी छाँह और कुएँकी तलाशमें आँखें चारों ओर दौड़ रही थीं।

अचानक सारन्धाने पीछेकी तरफ फिर कर देखा तो उसे सवारोंका एक दल आता हुआ दिखाई दिया। उसका माथा ठनका कि अब कुशल नहीं है। ये लोग अवश्य हमारे शत्रु हैं। फिर विचार हुआ कि शायद मेरे राजकुमार अपने आदमियोंको लिए हमारी सहायताको आ रहे हैं। नैराश्यमें भी आशा साथ नहीं छोड़ती। कई मिनिट तक वह इसी आशा और भयकी अवस्थामें रही। यहाँ तक कि वह दल निकट आ गया और सिपाहियोंके वस्त्र साफ नजर आने लगे। रानीने एक ठण्डी साँस ली, उसका शरीर तृणवत् काँपने लगा। ये बादशाही सेनाके लोग थे।

सारन्धाने कहारोंसे कहा—डोली रोक लो। बुंदेला सिपाहियोंने भी तलवारें खींच लीं। राजाकी अवस्था बहुत शोचनीय थी; किन्तु जैसे दबी हुई आग हवा लगते ही प्रदीप्त हो जाती है, उसी प्रकार इस संकटका ज्ञान होते ही उनके जर्जर शरीरमें वीरात्मा चमक उठी। वे पालकीका पर्दा उठा कर बाहर निकल आये। धनुषबाण हाथमें ले लिया। किन्तु वह धनुष जो उनके हाथमें इन्द्रका वज्र बन जाता था, इस समय जरा भी न झुका। सिरमें चक्कर आया, पैर थर्राये, और वे धरतीपर गिर पड़े। भावी अमंगलकी सूचना मिल गई। उस पंखरहित पक्षीके सदृश जो साँपको अपनी तरफ आते देखकर ऊपरको उचकता और फिर गिर पड़ता है, राजा चम्पतराय फिर सँभलकर उठे और फिर गिर पड़े। सारन्धाने उन्हें सँभालकर बैठाया, और रोकर बोलनेकी चेष्टा की। परन्तु मुँहसे केवल इतना निकला—"प्राणनाथ!" इसके आगे उसके मुँहसे एक शब्द भी न निकल सका। आनपर मरनेवाली सारन्धा इस समय साधारण स्त्रियोंकी भाँति शक्तिहीन हो गई। लेकिन एक अंश तक यह निर्बलता स्त्रीजातिकी शोभा है।

चम्पतराय बोले—"सारन! देखो हमारा एक और वीर जमीन पर गिरा। शोक! जिस आपत्तिसे यावज्जीवन डरता रहा उसने इस अन्तिम समय आ घेरा। मेरी आँखोंके सामने शत्रु तुम्हारे कोमल शरीरमें हाथ लगायेंगे, और मैं जगहसे हिल भी न सकूँगा। हाय! मृत्यु, तू कब आयेगी! यह कहते कहते उन्हें एक विचार आया। तलवारकी तरफ हाथ बढ़ाया, मगर हाथोंमें दम न था! तब सारन्धासे बोले—"प्रिये! तुमने कितने ही अवसरों पर मेरी आन निभाई है।"

इतना सुनते ही सारन्धाके मुरझाये हुए मुख पर लाली दौड़ गई। आँसू सूख गये। इस आशाने कि मैं अब भी पतिके कुछ काम आ सकती हूँ, उसके हृदयमें बलका संचार कर दिया। वह राजाकी ओर विश्वासोत्पादकभावसे देखकर बोली—ईश्वरने चाहा तो मरते दमतक निबाहूँगी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रानीने समझा राजा मुझे प्राण दे देनेका संकेत कर रहे हैं।

चम्पतराय—तुमने मेरी बात कभी नहीं टाली।

सारन्धा—मरते दमतक न टालूँगी।

राजा—यह मेरी अन्तिम याचना है। इसे अस्वीकार न करना।

सारन्धाने तलवारको निकालकर अपने वक्ष-स्थल पर रख लिया और कहा—यह आपकी आज्ञा नहीं है मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि मरूँ तो यह मस्तक आपके पदकमलों पर हो।

चम्पतराय—तुमने मेरा मतलब नहीं समझा। क्या तुम मुझे इसलिए शत्रुओंके हाथमें छोड़ जाओगी कि मैं बेड़ियाँ पहने हुए दिल्लीकी गलि-योंमें निन्दाका पात्र बनूँ ?

रानीने जिज्ञासादृष्टिसे राजाको देखा। वह उनका मतलब न समझी।

राजा—मैं तुमसे एक वरदान माँगता हूँ।

रानी—सहर्ष माँगिए।

राजा—यह मेरी अन्तिम प्रार्थना है। जो कुछ कहूँगा, करोगी ?

रानी—सिरके बल करूँगी।

राजा—देखो-तुमने वचन दिया है। इन-कार न करना।

रानी—(काँपकर) आपके कहनेकी देर है।

राजा—अपनी तलवार मेरी छातीमें चुभा दो।

रानीके हृदय पर वज्रपात सा हो गया। बोली—जीवननाथ !—। इसके आगे वह और कुछ न बोल सकी-आँखोंमें नैराश्य छा गया।

राजा—मैं बेड़ियाँ पहननेके लिए जीवित रहना नहीं चाहता।

रानी—हाय मुझसे यह कैसे होगा !

पाँचवाँ और अन्तिम सिपाही धरती पर गिरा। राजाने झुँझलाकर कहा—इसी जीवट पर आन निभानेका गर्व था ?

बादशाहके सिपाही राजाकी तरफ लपके। राजाने नैराश्यपूर्णभावसे रानीकी ओर देखा। रानी क्षणभर अनिश्चित रूपसे खड़ी रही। लेकिन संकटमें हमारी निश्चयात्मक शक्ति बलवान् हो जाती है। निकट था कि सिपाही लोग राजाको पकड़ लें कि सारन्धाने दामिनीकी भाँति लपक कर अपनी तलवार राजाके हृदयमें चुभा दी।

प्रेमकी नाव प्रेमके सागरमें डूब गई। राजाके हृदयसे रुधिरकी धारा निकल रही थी, पर चेहरे पर शांति छाई हुई थी।

कैसा करुण दृश्य है ! वह स्त्री जो अपने पति पर प्राण देती थी, आज उसकी प्राणघा-तिका है। जिस हृदयसे आलिङ्गित होकर उसने यौवन सुख लूटा, जो हृदय उसकी अभिलाषा-ओंका केन्द्र था, जो हृदय उसके अभिमानका पोषक था, उसी हृदयको आज सारन्धाकी तल-वार छेद रही है। किस स्त्रीकी तलवारसे ऐसा काम हुआ है !

आह ! आत्माभिमानका कैसा विशादमय अन्त है। उदयपुर और मारवाड़के इतिहासमें भी आत्मगौरवकी ऐसी घटनायें नहीं मिलतीं।

बादशाही सिपाही सारन्धाका यह साहस और धैर्य्य देखकर दंग रह गये। सरदारने आगे बढ़कर कहा—रानी साहबा ! खुदा गवाह है; हम सब आपके गुलाम हैं। आपका जो हुक्म हो उसे ब सरो चश्म बजा लायेंगे।

सारन्धाने कहा—अगर हमारे पुत्रोंमेंसे कोई जीवित हो तो ये दोनों लाशें उसे सौंप देना।

यह कह कर उसने वही तलवार अपने हृदयमें चुभा ली। जब वह अचेत होकर धरती पर गिरी तो उसका सिर राजा चम्पत-रायकी छाती पर था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुस्तक-परिचय।

जैनसमाज। मासिक पत्र। आकार डबल-क्राउन सोलह पेजी। पृष्ठ ४८। वार्षिक मूल्य एक रुपया। सम्पादक और प्रकाशक श्रीयुत बाबू टेकचन्दजी संघी बी. ए., कालबादेवी, बम्बई। अप्रैलसे इस मासिकपत्रका निकलना शुरू हुआ है। चार अंक निकल चुके हैं। श्वेताम्बर समाजमें गुजराती भाषाके कोई एक दर्जन पत्र निकलते हैं; परन्तु गत वर्षतक हिन्दीका एक भी पत्र नहीं था। हर्षका विषय है कि इस ओर कुछ हिन्दीप्रेमियोंका ध्यान आकर्षित हुआ है और अभी अभी कई हिन्दी पत्र निकलने लगे हैं। जैनसमाज उन सबमें अच्छा है। जान पड़ता है, आगे इसकी अवस्था और भी सुधर जायगी और यह स्थायीरूपसे चलेगा। अब तक इसे लगभग आठ सौ रुपयोंकी सहायता मिल चुकी है। हमारे सामने मई, जून और जुलाईके अंक हैं। इनमें कई लेख पढ़ने योग्य हैं। सम्पादक महाशय कट्टर श्वेताम्बर नहीं हैं। उनके हृदयमें दिगम्बरोंके लिए भी स्थान है, अतएव इस पत्रसे हमारे दिगम्बरभाई भी लाभ उठा सकते हैं। श्वेताम्बर सम्प्रदायमें साधुओंका प्रभाव सीमासे अधिक है। उनकी संख्या भी अधिक है और श्रावकोंमें धार्मिक ज्ञानका प्रायः अभाव है। इस कारण साधुओंकी नादिरशाही खूब ही चलती है। उनके विरुद्धमें आवाज उठानेवाला कोई नहीं। हमें आशा है कि समाजके सम्पादकका ध्यान इस ओर जायगा। उसके पिछले अंकके एक लेखमें साधुओंकी दुर्दशा पर कुछ पंक्तियाँ लिखी भी गई हैं। "साधुओंकी दशा वर्तमान कालमें इतनी गर्हणीय हो रही है कि उनमें पिछले आचार्योंके नियमोंका लेश भी नजर नहीं आता।......एक पदस्थ दूसरेके शिष्यके लिए अपने शिष्योंको दूर करता है और शिष्य अपने गुरु पर नोटिस प्रकट करता है!....एक धर्माचार्य दूसरे धर्माचार्यको (एक ही गुरुके शिष्य गुरुभाई होकर) धर्मसे एवं कर्मसे पतित बतलाता है, तो दूसरा उसे भ्रष्टाचारी बतलाता है।...गुरु शिष्यके लिए वकीलकी राय लेने अदालतका आश्रय देखता है। कितने शर्मकी बात है!" इस अवस्थाको सुधारनेका निर्भयताके साथ आन्दोलन होना चाहिए। सामाजिक कुरीतियों पर कुछ गहराईके साथ चर्चा होनी चाहिए। अब यह सब जानने लगे हैं कि वृद्ध-विवाह, कन्याविक्रय आदि बुरे हैं, उनकी बुराइयोंको बतलानेके लिए अब कलम घिसनेकी आवश्यकता नहीं है; पर वे दूर नहीं हो रहे हैं, इसकी कारणभूत जो दूसरी परिस्थितियाँ हैं, उन पर विचार होना चाहिए।

२ मुनि। यह भी हिन्दीका एक मासिक पत्र है। बोदवड़ (खानदेश) के महावीर मुनिमण्डलकी ओरसे यह डिमाई अठपेजीके ३२ पृष्ठोंमें निकलता है। वार्षिक मूल्य दो रुपया है। श्रावणसे इसका दूसरा वर्ष प्रारंभ हुआ है। पहले वर्षमें इसके सम्पादक श्रीयुत ब्र० विश्वंभरदासजी गार्गीय थे, और इस वर्ष मुरारके बाबू श्यामलालजी गुप्त हैं। पत्र स्थानकवासी सम्प्रदायका है और इसके पूर्व तथा वर्तमान सम्पादक दिगम्बर सम्प्रदायके हैं। 'मुनि' नामसे यह आशा की जाती थी कि इसमें मुनियों या साधुओंके सम्बन्धमें कुछ चर्चा रहा करेगी; परन्तु देखते हैं कि इसके सारे ही पृष्ठ अन्यान्य पत्रोंके समान सामाजिक उन्नति आदिके सम्बन्धमें ही भरे रहते हैं। मालूम नहीं, इसके प्रकाशकोंने इस नामकी सार्थकता किस तरह करनी सोची है। इसके विविध विषयसम्बन्धी लेख साधारणतः अच्छे रहते हैं। उनमें कोई साम्प्रदायिकता भी नहीं रहती है। दिगम्बरी और दूसरे भाई भी इससे लाभ उठा सकते हैं। सम्पादक महाशय सूचित करते हैं कि दशलक्षण-पर्वमें मुनिका एक विशेष अंक निकलेगा, जिसमें अनेक चित्र और पुष्कल लेख रहेंगे। जो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्राहक नहीं हैं उन्हें यह अंक ॥=) में मिलेगा। स्थानकवासी सम्प्रदायमें तो दशलक्षणपर्व माना नहीं जाता, फिर मुनिका खास अंक इस पर्वके उपलक्ष्यमें क्यों निकलता है ?

कच्छी जैनमित्र । सम्पादक, दामजी त्रिकमजी सायला और प्रकाशक, जेठाभाई देवजी नागड़ा, काथाबाजार मांडवी, बम्बई । गुजराती भाषाका मासिक पत्र है । जूनसे निकलना शुरू हुआ है । चार अंक निकल चुके हैं । जैनहितैषीके आकारके लगभग ३६ पृष्ठों पर निकलता है । बड़ी ही सजधजसे निकला है । प्रत्येक अंकमें दश दश बारह बारह चित्र रहते हैं । कवरपेज पर एक सुन्दर स्त्रीका चित्र है । यह इस लिए कि अब मनोमोहिनियोंके चित्रके बिना लोग पत्रों पर नहीं रीझते ! लेखकोंको रिझानेका भी प्रयत्न किया गया है । जिस लेखकका लेख रहता है, उसका उस लेखके प्रारंभमें एक चित्र भी रहता है। यहाँ तक कि कई साधु महाशयोंने भी अपने लेखोंमें अपने चित्रोंका प्रकाशित कराना उचित समझा है। हम देखते हैं कि श्वेताम्बर साधुओंमें चित्र प्रकाशित करानेका रोग बेतरह बढ़ रहा है । इन दिनों श्वेताम्बर सम्प्रदायकी ऐसी बहुत थोड़ी पुस्तकें छपती हैं; यहाँतक कि दश बीस पन्नेके ट्रेक्ट भी—जिनमें कोई मुनि महाशय विराजमान न हों । पत्रका मूल्य तीन रुपया है, जो इस समयकी महँगीमें एक तरहसे कम ही है । बम्बईमें कच्छनिवासी जैनोंकी संख्या बहुत है और उनमें धनिक व्यापारी भी बहुत हैं । यह पत्र उन्हींकी सहायतासे निकला है । लेख साधारणतया अच्छे रहते हैं; यद्यपि उनमें जैनदृष्टिकी कमी रहती है । कई लेख और कई चित्र पठनीय और दर्शनीय निकले हैं । हम इस पत्रकी हृदयसे उन्नति चाहते हैं ।

३ **शारदा** । सम्पादक और प्रकाशक, पं० चंद्रशेखर शर्मा, दारागंज प्रयाग । यह संस्कृत भाषाकी मासिकपत्रिका है । सरस्वतीके आकारमें ४० पृष्ठों पर निकलती है । इसका वार्षिक मूल्य तीन रुपया है । इसके सम्पादक महाशय संस्कृतके सुलेखक और बहुश्रुत विद्वान् हैं । संस्कृतके नामी नामी पण्डितोंके लेख इसमें रहते हैं । चैत्र १९७४ की प्रथम संख्या हमारे सामने है । इसमें सम्पादकीय टिप्पणियाँ, मीमांसादर्शन, मन, हरि और हरमें अभेद, आल्हा, पद्मावतीपरिणिय चम्पू, पालिभाषाके जातकोंका अनुवाद, आयुर्वेदका महत्त्व, आदि अनेक विषयोंके लेख हैं । साहित्यप्रचारशीर्षक टिप्पणीमें सम्पादकने पाली और प्राकृत भाषाके बौद्ध जैनग्रन्थोंको भारतीय साहित्यमें स्थान देनेके लिए और उनका अध्ययन करनेके लिए अपने पाठकोंका ध्यान आकर्षित किया है । उसका सारांश यह है—" धर्मभेदसे साहित्यका भेद करना ठीक नहीं । जब इस समय शेक्सपियर और मिल्टन आदि ईसाई कवियोंके ग्रन्थ सब लोग पढ़ते हैं, तब बौद्ध जैन साहित्यने क्या अपराध किया है ? पूर्वसमयमें धर्मग्रन्थोंका अध्ययन ही प्रचुर ज्ञानका कारण माना जाता था; पर अब वह बात नहीं है । व्यावहारिक विषय भी इस समय अध्ययनकोटिमें प्रविष्ट हो गये हैं । धार्मिक ग्रन्थोंके अध्ययनसे लौकिक फल नहीं मिलता है । इस कारण लोग उन्हें नहीं पढ़ना चाहते । जो धार्मिक हैं और धर्मलब्ध धनसे जिनका निर्वाह होता है वे भी अपने लड़कोंको व्यवहारज्ञानकी वृद्धिके लिए अँगरेजी स्कूलोंमें भेजते हैं और धार्मिक ग्रन्थ नहीं पढ़ाते; व्यावहारिक ज्ञानकी स्वयं निन्दा करते हुए भी बच्चोंको उस ओर उत्साहित करते हैं । ऐसी दशामें बौद्ध जैनसाहित्यका अध्ययन और प्रचार हानिकारक नहीं माना जा सकता । बौद्ध—जैन—साहित्यमें धर्मभेद भले ही हो, पर हृदयभेद नहीं है । भारतीय हृदयसे बौद्ध जैनसाहित्य भी लिखे गये हैं । उनमें भी भारतीय भाव ही मिलते हैं, अतएव भारतवासियोंको इन दोनों साहित्योंका प्रचार करना चाहिए । ......धर्मशास्त्र और ज्योतिः-शास्त्रमें विरोध नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है, क्योंकि धर्मशास्त्रमें जो विषय कहा गया है वह ज्योतिःशास्त्रमें नहीं है और जो ज्योतिःशास्त्रमें है वह धर्मशास्त्रमें नहीं, तब दोनोंमें क्यों विरोध हो ? यही बात बौद्ध जैन साहित्यके विषयमें भी समझनी चाहिए। हमारे ऋषियोंने अन्य विषयोंका वर्णन किया है और बौद्ध जैनोंने अन्यका। जिस तरह कोई धर्मशास्त्र पढ़ता है, कोई ज्योतिःशास्त्र पढ़ता है, पर ये एक दूसरे पर कटाक्ष नहीं करते। इसी प्रकार किसीका अनुराग आर्ष साहित्यमें है, किसीका बौद्धमें और किसीका जैनमें। इस विषयमें लोग स्वतंत्र हैं।" शारदामें जैनसाहित्यसम्बन्धी भी कई लेख निकल गये हैं। जैनसाहित्यसम्बन्धी लेखोंको प्रकाशित करनेके लिए वे उत्सुक भी रहते हैं। क्या हम अपने समाजके संस्कृतज्ञ पण्डितोंसे आशा करें कि वे शारदाको मँगाकर पढ़ा करें और उसके द्वारा समय समय पर जैनसाहित्यका सन्देशा जैनेतर विद्वानों तक पहुँचाया करें। हमारी समझमें शास्त्रार्थोंकी अपेक्षा इस मार्गसे जैनधर्मकी अधिक प्रभावना होगी। शारदाका प्रचार हम हृदयसे चाहते हैं।

४ मल्लारि-मार्तंड-विजयका नागपंचमी-का अंक। इन्दौर दरबारकी ओरसे यह साप्ताहिक पत्र हिन्दी और मराठीमें प्रकाशित हुआ करता है। इसके मराठी विभागके सम्पादक श्रीयुत वी. सी. सर्वटे बी. ए. एल एल. बी. और हिन्दी विभागके श्रीयुत सुखसम्पत्तिराय भण्डारी (जैन) हैं। इन्दौरमें नाग-पंचमीका त्योहार बड़े ठाटबाटसे मनाया जाता है। यह अंक भी उसीके उपलक्ष्यमें निकला है। इसमें मराठीके १७ और हिन्दीके ९ लेख हैं और यह विशेषता है कि उन सबके लेखक इन्दौरके ही निवासी हैं। मराठीके लेखोंमें संस्कृत भाषाका अभ्यास, सुखदुःखमीमांसा आदि लेख महत्त्वके हैं और हिन्दीमें सवाजसेवा, मद्यपान, आदि। प्रायः सभी लेख उच्चश्रेणीके हैं। साधारण लोगोंके उपयोगमें आ सकनेवाले लेखोंका इसमें एक तरहसे अभाव है। अंक संग्रहणीय है। पत्रका वार्षिक मूल्य तीन रुपया है। इस अंकका मूल्य लिखा नहीं।

५ जैननित्यपाठसंग्रह। कलकत्तेकी जैनमित्र मंडलीने इस पाठसंग्रहको छपाया है। इसमें सब मिलाकर ३५ पाठ हैं। भक्तामर और तत्त्वार्थ सूत्र ये दो पाठ संस्कृतके हैं, शेष सब भाषाके। बम्बईमें जो भाषा नित्यपाठसंग्रह छपा था, उससे इसमें कई पाठ ज्यादा हैं। पाण्डे हीरानन्दकृत एकीभाव और पं० शान्तिदासकृत विषापहार, ये दो पाठ ऐसे हैं जो अभीतक कहीं भी प्रकाशित नहीं हुए थे। छपाई अच्छी और कागज बढ़िया है, तिसपर भी डबल क्राउन सोलह पेजी साइजके १९२ पृष्ठकी पुस्तकका मूल्य बारह आने कम है। पुट्ठेवाली पुस्तकका मूल्य चौदह आने है। मित्रमण्डलीका ठिकाना 'नं० ९ विश्वकोश लेन, बाग बाजार' है।

६-शत्रुंजय तीर्थोद्धारप्रबन्ध। सम्पादक, मुनि जिनविजयजी। प्रकाशक, जैन आत्मानन्द-सभा, भावनगर। डिमाई अठपेजी आकारके ११२ पृष्ठ। कपड़ेकी जिल्द, मूल्य दश आने। श्वेताम्बर सम्प्रदायमें शत्रुंजय तीर्थका बड़ा माहात्म्य है। इस तीर्थके अनेक पुरुषोंने अनेक बार उद्धार किये हैं और उनका वर्णन श्वेताम्बर ग्रन्थोंमें मिलता है। सबसे अन्तिम सातवाँ उद्धार विक्रम संवत् १५५७ को कर्मासाह नामके श्रावकने कराया था। यह धर्मात्मा श्रावक चित्तौड़का रहनेवाला था और ओसवालज्ञातीय था। कपड़ेका बहुत बड़ा व्यापारी और धनी था। इसने शत्रुंजयके मुख्य मंदिरका उद्धार कराके मुसलमानों द्वारा खण्डित हुई सारी प्रतिमाओंके स्थानमें नवीन प्रतिमायें बनवाकर स्थापित करवाईं और बड़ी धूमधामके साथ तीर्थप्रतिष्ठा कराई। इस कार्यमें उसने अगणित धन खर्च किया। यह प्रतिष्ठा विद्यामण्डन नामक आचार्यके द्वारा हुई। इन्हीं विद्यामण्डनके शिष्य विवेकधीर गणि नामके विद्वानने 'शत्रुंजय-तीर्थोद्धारप्रबन्ध' नामका संस्कृत ग्रन्थ लिखा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। जिस दिन प्रतिष्ठा हुई है, उसके ठीक दूसरे दिन यह प्रबन्ध बनकर समाप्त हुआ है। लेखक इस उत्सवमें केवल मौजूद ही नहीं थे बल्कि उन्होंने इस उद्धारकार्यमें शिल्पशास्त्रीय (इंजीनियर) का काम भी किया था। वे शिल्पशास्त्रके अच्छे ज्ञाता थे, इस कारण उन्हींकी देखरेखमें कारीगरोंका काम होता था। प्रबन्धमें सब मिलाकर २६२ पद्य हैं। रचना सुन्दर है और इतिहासकी दृष्टिसे बहुत महत्त्वकी है। इसमें कर्मासाहके उद्धारका विस्तृत विवरण दिया है और उस समयके गुजरात तथा मेवाड़के राजाओंके और दिल्ली तथा गुजरातके बादशाहोंके नाम और उनकी वंशावलियाँ भी दी हैं। यद्यपि वे निश्चित इतिहास-के अनुसार सर्वथा शुद्ध नहीं हैं; परन्तु फिर भी कामकी हैं। यह मूल प्रबन्ध केवल ३२ पृष्ठोंमें आ गया है। शेष भाग सम्पादक महाशयका लिखा हुआ है और उसके लिखनेमें खूब परिश्रम किया गया है। प्रारंभके ३८ पृष्ठोंमें उपोद्घात है जिसमें शत्रुंजयतीर्थका परिचय, उसकी वर्तमान अवस्था, उसका महत्त्व, आज तक उसके जितने उद्धार हुए हैं उन सबका संक्षिप्त इतिहास और ग्रन्थकर्त्ता आदिके विषयमें अनेक ज्ञातव्य बातें लिखी हैं। इसके बाद लगभग ३० पृष्ठोंमें मूल ग्रन्थका संक्षिप्त सार लिख दिया है जिससे केवल हिन्दी जाननेवाले पाठक भी मूल ग्रन्थका मर्म समझ सकते हैं। परिशिष्टमें मुख्य मन्दिरकी प्रशस्ति, और दो प्रतिमाओंके नीचेके लेख दे दिये हैं। इस तरह यह ग्रन्थ सुचारुरूपसे सम्पादित किया गया है। इस ग्रन्थके पढ़नेसे कई ऐसी बातें मालूम होती हैं जो जैनधर्मकी समय समयकी अवस्थाका अध्ययन करनेवालोंके लिए उपयोगी होंगी। उस समय जैनसाधुओंके आचरणमें इतनी शिथिलता आगई थी कि वे शिल्पशास्त्रियोंका तथा मन्दिरोंके बनवाने आदिका काम भी करते थे और इसमें जो 'आरंभज-नित' दोष लगते हैं उनकी ओरसे लापरवा होगये थे। जान पड़ता है प्रतिष्ठा आदि कराना तो इससे भी कई सौ वर्ष पहलेसे श्वेताम्बर साधुओंके लिए जायज हो गया था और शायद उन्हींकी देखादेखी हमारे यहाँके भट्टारक भी—जो अपनेको मुनि कहते हैं—प्रतिष्ठायें कराने लगे थे। पर हमारी समझमें यह कार्य दोनों ही सम्प्रदायके महाव्रती साधुओंके लिए निषिद्ध होगा। साधुओंमें मंत्रा-दिकी आराधना करना और ज्योतिःशास्त्रसे फलित निकालना आदि कार्य भी प्रचलित थे। जिस समय यह उद्धार हुआ उस समय अनेक गच्छोंके आचार्य इकट्ठे हुए थे और उन सबने मिलकर एक प्रतिज्ञालेख लिखा था कि "शत्रुंजयके ऊपरका मूल गढ़, और आदिनाथका मुख्य मंदिर समस्त जैनोंके लिए है और बाकी सब देवकुलिकायें भिन्न भिन्न गच्छवालोंकी सम-झनी चाहिए। यह तीर्थ सब जैनोंके लिए एक समान है। एक व्यक्ति इस पर अपना अधिकार नहीं जमा सकता। इत्यादि।" इस लेख पर बहुतसे आचार्योंकी सही है। इससे मालूम होता है कि उस समयसे पहले जुदा जुदा गच्छके श्वेताम्बर साधुओंमें तीर्थके स्वामित्वके सम्बन्धमें झगड़े होते होंगे और आजकलके श्रावकोंके समान वे महाव्रती होकर भी आपसमें द्वेषभाव रखते होंगे। श्रावकोंके विषयमें इतना ही मालूम होता है कि उनके धर्म-ज्ञानकी सीमा गुरुकी भक्ति करना या उसकी आज्ञा पालन करना, इससे आगे न थी। गुरुओंकी प्रेरणासे वे मन्दिरादि बनवाने और संघ निकालनेमें लाखों करोड़ों रुपया खर्च कर देते थे। ये सब ऐसी बातें हैं, जिनपर विचार करनेकी आवश्यकता है। श्रीमान् मुनि जिनविजयजी ऐसे ऐसे ऐतिहासिक ग्रन्थ प्रकाशित करके जैनसाहित्यका बहुत बड़ा उपकार कर रहे हैं। ग्रन्थका मूल्य लागतसे कम ही होगा, अधिक नहीं।

७–शत्रुंजयतीर्थरास। आनन्दकाव्यमहो-दधिका चौथा मौक्तिक। जैनग्रन्थोंको छपाछपाकर मिट्टीके मोल बेचनेवाले बम्बईके 'सेठ देवचन्द

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लालचन्द पुस्तकोद्धार फण्ड' की ओरसे यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। क्राउन सोलह पेजी साइजके ७५० पृष्ठके इस कपड़ेकी पक्की जिल्दवाले ग्रन्थका मूल्य केवल बारह आने है। इतने सस्ते दामोंमें शायद ही कोई संस्था पुस्तकप्रचार करती होगी। इसके लिए संस्थाके संचालकोंको जितना धन्यवाद दिया जाय उतना थोड़ा है। विक्रम संवत् १७५५ में जिनहर्षगणि नामके एक श्वेताम्बरसाधुने इस रासकी रचना की है। ग्रन्थकी भाषा गुजराती है। इसका सम्पादन 'शास्त्रविशारद जैनाचार्य योगनिष्ठ श्रीबुद्धिसागरसूरि' ने किया है। आपने पुस्तकके प्रारंभमें कोई ६४ पृष्ठकी विस्तृत प्रस्तावना लिखी है। सूरि महाशयकी पदवियोंने हमें प्रस्तावनाको पढ़नेके लिए विवश किया; परन्तु पढ़कर हमें निराश होना पड़ा। हम उसमें कोई बात ऐसी न पा सके जिसमें उनकी सदसद्विवेचनाशक्तिका या सत्यान्वेषणशीलताका परिचय मिलता। ग्रन्थकर्त्ताकी प्रत्येक बातको आपने निर्भ्रान्त समझा है; इतना ही नहीं बल्कि उसकी भ्रान्तिको सत्य सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है। यह गुजराती रासा धनेश्वरसूरिके संस्कृत 'शत्रुंजयमाहात्म्य' नामक विशाल संस्कृत ग्रन्थका प्रायः अनुवाद है। इसमें और मूल ग्रन्थमें शत्रुंजयकी अमर्यादित प्रशंसा की है और उसके माहात्म्यको बढ़ानेके लिए बहुतसी झूठी सच्ची कथायें भी गढ़ डाली हैं; परन्तु सम्पादक महाशयकी दृष्टिमें वे सोलह आने सच्ची जँची हैं। धनेश्वरसूरिके विषयमें कहा गया है कि उन्होंने विक्रम संवत् ४७७ में वल्लभीपुरके राजा शिलादित्यकी प्रार्थनासे यह ग्रन्थ बनाया था; परन्तु यह निरी गप्प है। मूल शत्रुंजय महात्म्यमें कुमारपाल, बाहडमंत्री, वस्तुपालमंत्री और समराशाहके उद्धारों तकका वर्णन किया है। इनमेंसे सबसे पिछले समराशाहका किया हुआ उद्धार विविधतीर्थकल्प आदि अनेक ग्रन्थोंके कथनानुसार वि० सं० १३७१ में हुआ है, अत एव शत्रुंजयमाहात्म्यके कर्त्ता धनेश्वरसूरि इसके बाद ही किसी समय हुए होंगे, यह सुनिश्चित है। उन्हें वि० सं० ४७७ में प्रथम शिलादित्यके समयमें सिद्ध करनेके लिए भूमिकाके लेखक महाशयको बड़ी बड़ी उलझनोंमें पड़ना पड़ा है और उनसे सुलझनेके लिए अनेक औंधी-सीधी सच्ची-झूठ बातें लिखनी पड़ी हैं। धनेश्वर सूरिने शिलादित्यको प्रतिबोधित करके जैन बनाया और बौद्धोंको हराकर उन्हें सौराष्ट्र देशसे निकाल दिया; लेखक इस बातको भी सच मानते हैं और चन्द्रप्रभसूरिकृत प्रभावकचरितमें लिखा है कि मल्लवादि नामके आचार्यने शिलादित्यकी सभामें बौद्धोंको हराया और उसे जैन बनाया, सो इसमें भी कोई सन्देह नहीं करते! जान पड़ता है, मल्लवादिकी कथाको ही किसीने धनेश्वर सूरिका माहात्म्य बढ़ानेके लिए उनके साथ जोड़ दिया है। धनेश्वर सूरिका शत्रुंजयमाहात्म्य बड़ा ही विचित्र है। इसको पढ़ते समय ऐसा नहीं मालूम होता कि हम कोई जैनग्रन्थ पढ़ रहे हैं। यह ब्राह्मणोंके बद्री, केदार, प्रभास आदि तीर्थोंके माहात्म्यका बिलकुल अनुकरण मालूम होता है। शत्रुंजयकी खूब अनाप-शनाप महिमा गाई गई है। कुछ श्लोक देखिए:—

नास्त्यतः परमं तीर्थं सुरराज जगत्त्रये।
यस्यैकवेलं नाम्नापि श्रुतेनांहः क्षयो भवेत् ॥ ५६
कथं भ्रमासि मूढात्मन् धर्मो धर्म इति स्मरन्।
एकं शत्रुंजयं शैलमेकवेलं निरीक्षय ॥ ६१
बाल्येऽपि यौवने वार्ध्ये तिर्यक्जातौ च यत्कृतम्।
तत्पापं विलयं याति सिद्धाद्रेः स्पर्शनादपि ॥ ८१
तावद्गर्जन्ति हत्यादिपातकानीह सर्वतः।
यावच्छत्रुंजयेत्याख्या श्रूयते न गुरोर्मुखात् ॥ ९४
न भेतव्यं न भेतव्यं पातकेभ्यः प्रमादिभिः।
श्रूयतामेकवेलं श्रीसिद्धक्षेत्रगिरेः कथा ॥ ९५
एकैकस्मिन् पदे दत्ते पुण्डरीकगिरिं प्रति।
भवकोटिकृतेभ्योऽपि पातकेभ्यः स मुच्यते ॥ ७८

अर्थात् शत्रुंजयके समान श्रेष्ठ तीर्थ तीनों जगतमें कोई नहीं है जिसके एक बार नाम सुनने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मात्रसे पापोंका क्षय हो जाता है । अरे मूर्खो, धर्मधर्मका स्मरण करके क्यों भटक रहे हो? शत्रुंजय तीर्थके केवल एक बार दर्शन कर डालो, बस । बचपन, जवानी, बुढ़ापा और पशुपर्यायमें किये हुए पाप इस तीर्थके स्पर्शमात्रसे नष्ट हो जाते हैं । हत्यादि पाप तभी तक छोड़े जाते हैं, जब तक गुरुके मुँहसे 'शत्रुंजय' इतना शब्द नहीं सुन पाया है । अरे प्रमादियो, पापोंसे मत डरो, मत डरो, केवल एक बार शत्रुंजयकी कथा सुन लो । शत्रुंजयकी यात्राके लिए एक एक पैर बढ़ानेसे करोड़ों भवोंके पापोंसे प्राणी मुक्त होता चला जाता है !

एक जगह लिखा है कि "चार हत्याके करनेवाले परस्त्रीगामी और अपनी बहिनके साथ व्यभिचार करनेवाले चन्द्रशेखर राजाका भी इस तीर्थसे उद्धार हुआ है !"

पाठक देखें कि इस प्रकारकी महिमा जैनधर्मकी कर्मफिलासफीसे कितना सम्बन्ध रखती है; और यह भी सोचें कि इस तरहके उपदेश लोगोंके हृदयमें पापोंकी ग्लानि कितनी कम कर देंगे । जब शत्रुंजयके नाम मात्रसे बड़े बड़े पाप कट जाते हैं, तब फिर पापोंसे डरनेकी आवश्यकता ही क्या है ?

नीचेके श्लोकोंमें शिथिलाचारी गुरुओंकी पूजाका उपदेश दिया है, जिससे साफ मालूम होता है कि ग्रन्थकर्त्ता महाराज पाँचवीं सदीके नहीं किन्तु चौदहवीं शताब्दिके लगभगके कोई जती हैं, जो अपनी और अपने भाइयोंकी—गुणहीन शिथिलाचारी होने पर भी—पूजा करानेके लिए व्याकुल थे ।

सहस्रलक्षसंख्यातैर्विशुद्धैः श्रावकैरिह ।
यद्भोजितैर्भवेत्पुण्यं मुनिदानात् ततोऽधिकम् ॥
यादृशस्तादृशो वापि लिङ्गी लिङ्गेन भूषितः ।
श्रीगोतम इवाराध्यो बुधैर्बोधसमन्वितैः ॥
वर्तमानोऽपि वेषेण यादृशस्तादृशोऽपि सन् ।
यतिः सम्यक्त्वकलितैः पूज्यः श्रेणिकवत् सदा ॥
गुरोराधानात्स्वर्गो नरकश्च विराधनात् ।
द्वे गती गुरुतो लभ्ये गृह्णीतैकां निजेच्छया ॥

अर्थात् हजारों लाखों विशुद्ध श्रावकोंके भोजन करानेसे जो पुण्य होता है, उससे अधिक एक मुनिको दान देनेसे होता है । चाहे जैसा मुनि हो, यदि वह मुनिका वेष धारण कर रहा है, तो ज्ञानी श्रावकोंको चाहिए कि उसकी भगवान् गौतम गणधरके समान आराधना करें । यति जैसा तैसा भी हो; परन्तु यदि वह अपने वेषमें वर्तमान है अर्थात् उसने साधुओंके कपड़े पहन रक्खे हैं तो वह सम्यक्त्वसहित पुरुषोंके द्वारा राजा श्रेणिकके समान सर्वदा पूज्य है ! गुरुकी आराधनासे स्वर्ग मिलता है और विराधनासे नरक; इस तरह ये दो गति गुरुओंसे प्राप्त होती हैं । इनमेंसे इच्छानुसार किसी एकको गृहण कर लो । बुद्धिमान् पाठकोंको यह समझनेमें विलम्ब न होगा कि गुरुओंकी यह महिमा बतलानेमें ग्रन्थकारका क्या अभिप्राय है ।

इस ग्रन्थकी कथाओंके तथा भविष्य प्राणियों आदिके सम्बन्धमें भी बहुत सी बातें लिखी जा सकती हैं; परन्तु इस छोटीसी आलोचनामें उनके लिए स्थान नहीं है । श्वेताम्बर सम्प्रदायके विद्वान् सज्जनोंसे हमारी प्रार्थना है कि वे अपने यहाँके इस प्रकारके साहित्यकी परीक्षा करें और समयके अनुकूल अब लोगोंमें वचनप्रधानताकी जगह परीक्षा प्रधानताके भावोंका प्रचार करें । इस प्रकारके साहित्यके जैनधर्मने मूल सिद्धान्तोंको ढँक रक्खा है !

८ तीस चौवीसी पूजा । सम्पादक, पं० मुन्नालालजी काव्यतीर्थ और प्र०, बाबू दुलीचन्द जैन, जिनवाणीप्रचारक कार्यालय, ६२।२—१ वीडनस्ट्रीट कलकत्ता । पृष्ठसंख्या ३७२। मूल्य २।) रु० । काशीनिवासी बाबू वृन्दावनजीके नामसे जैनसमाज सुपरिचित है । आपका वर्तमान चौवीसी पाठ प्रकाशित हो चुका है । अब यह तीस चौवीसी पाठ प्रकाशित हुआ है । इसमें भूत-भविष्यत्-वर्तमानकाल-सम्बन्धी भरत ऐरावत विदेह आदिके ७२० तीर्थ-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करोंकी पूजायें हैं। इसके एक पद्यसे मालूम होता है कि यह संस्कृतके किसी पूजापाठके आधारसे बनाया गया है। यों तो वृन्दावनजीकी कविता अच्छी समझी जाती है, पर वे अपनी कवितामें शब्दोंको खूब ही तोड़ते-मरोड़ते थे। इस पाठमें हम देखते हैं कि उक्त दोष और भी अधिक बढ़ा-चढ़ा हुआ है। यह प्रति कविजीकी खुदकी लिखी हुई प्रति-परसे शुद्ध की गई है। फिर भी थोड़ी बहुत अशुद्धियाँ रह गई हैं। एक कमी यह भी रह गई है कि इसमें जो कमलबद्ध, धनुर्बद्ध आदि चित्र-काव्य थे, उनके चित्र नहीं बनवाये गये।

९ **हरिवंशपुराण**। लेखक, जीवराज गोतमचन्द दोसी। प्र०, नाथारंगजी जैनोन्नति फण्ड, शोलापुर। डिमाई अठपेजीके ४५० पृष्ठ। मूल्य २॥)। पुन्नाटसंघीय श्रीजिनसेनाचार्यकृत हरिवंशपुराणके आधारसे यह ग्रन्थ मराठी भाषामें लिखा गया है। इसमें मूलका आलंकारिक वर्णन छोड़कर केवल कथाभाग लिया गया है।

बहुतसे लोग इस प्रकृतिके होते हैं कि वे आलंकारिक और शृंगारपूर्ण-वर्णनसे शीघ्र ही ऊब जाते हैं और इस समयमें ऐसे लोगोंकी संख्या बढ़ती जाती है। उनके लिए बृहद्ग्रन्थोंके इस प्रकारके संक्षिप्त या संशोधित संस्करणोंकी आवश्यकता है। केवल इतिहासकी और तथ्यसंग्रहकी रुचि रखनेवालोंके लिए भी ऐसे संस्करण बहुत उपयोगी होते हैं। अवश्य ही इनका सम्पादन बहुत सावधानीसे होना चाहिए। मूलकी कोई महत्त्वकी बात छोड़ी नहीं जानी चाहिए और मूलके भावोंका कोई परिवर्तन भी न किया जाना चाहिए। इस संस्करणको अच्छी तरह पढ़ सकनेका हमें अवकाश नहीं मिल सका, तो भी हम लेखक महाशयसे परिचित हैं, उनके प्रयत्नमें प्रमादोंकी बहुत कम संभावना है। इसमें यदुवंशकी उत्पत्तिका वर्णन हमने पढ़ा तो मालूम हुआ कि यदुराजके शूर और सुवीर नामके दो पुत्र थे। शूरके अन्धकवृष्टि आदि दश पुत्र हुए और सुवीरके भोजकवृष्टि आदि अनेक पुत्र हुए। अन्धकवृष्टिके पुत्र समुद्रविजय, वसुदेव आदि हुए और भोजकवृष्टिके उग्रसेन, महासेन आदि हुए। आगे उग्रसेनकी कन्या राजीमतीके साथ समुद्रविजयके पुत्र नेमिनाथ भगवानका विवाह होना निश्चित हुआ। अर्थात् शूर और सुवीर इन दोनों सगे भाइयोंके पौत्रोंके पुत्र और कन्या उस समयकी नीतिके अनुसार परस्पर विवाहसम्बन्धमें बद्ध हो सकते थे! इस तरहका सम्बन्ध होना उस समय जायज था। मामाकी लड़कीके साथ सम्बन्ध होनेके तो हरिवंशपुराणमें कई उदाहरण हैं। ये ऐसी बातें हैं जिनपर विचार होनेकी आवश्यकता है। अब पुराणग्रंथोंको केवल पुण्यलाभकी दृष्टिसे ही नहीं पढ़ना चाहिए। उनमेंसे कुछ तथ्योंका आविष्कार भी करना चाहिए। जो लोग इन विवाहादिसंबंधी रूढ़ियोंको धर्मके स्थायी सिद्धान्त मानते हैं, और आठ आठ सोलह सोलह गोत्रोंको टालकर ब्याह करनेमें ही परमधर्म मानते हैं, वे इन पुराणपुरुषोंके दृष्टान्तों पर एक दृष्टि डालनेकी कृपा करें। ग्रन्थका मूल्य कम है। मराठी जाननेवालोंको अवश्य मँगाना चाहिए।

१० **महाराणा राजसिंह**। ले०, पं० रामप्रसाद मिश्र और प्रकाशक, नाट्यग्रन्थप्रसारक मण्डल, ए. बी. रोड कानपुर। मूल्य दश आने। इसकी भूमिकामें लिखा है कि 'इस ग्रन्थका कथासूत्र नितान्त ऐतिहासिक आधार पर है;' परन्तु जान पड़ता है लेखक महाशय उपन्यासोंको भी 'नितान्त इतिहास' समझते हैं। यही कारण है जो स्वर्गीय बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्यायके उपन्यासके आधार पर लिखे हुए इस नाटकको भी वे नितान्त ऐतिहासिक मानते हैं। बंकिम बाबूके 'राजसिंह' में यद्यपि इतिहास है; परन्तु वह नितान्त इतिहास नहीं है। उसमें अनेक पात्र और अधिकांश घटनायें बिलकुल कल्पित हैं और वे उपन्यासको मनोरम तथा सुन्दर बनानेके लिए लिखी गई हैं। लेखक महाशयने यह भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिखनेकी कृपा नहीं की कि इस नाटकका मूल आधार बंकिम बाबूका राजसिंह है। नाटकके लगभग ५० पृष्ठ हमने पढ़े। उत्तेजना और अन्ध अभिमान बढ़ानेवाले भावोंके सिवाय नाटकमें और कोई विशेषता नहीं। स्वाभाविकताका अभाव है। मनोगत भावोंके चित्रण करनेमें कवि नितान्त असमर्थ है। युवती चञ्चलकुमारी वृद्ध राजसिंहके चित्रको देखकर उन पर मुग्ध हो जाती है और थोड़े ही समयमें वह विरहिणियोंके समान 'सर्द आहें' खींचने लगती है, यह बात किसी रंगमंच पर तो नहीं, रासधारियोंके तमाशोंमें अवश्य अच्छी मालूम हो सकती है। मुसलमानोंके प्रति नाटककारके हृदयमें जरा भी सहानुभूति नहीं है और इस कारण वह किसी भी मुसलमान पात्रको अच्छे रूपमें खड़ा नहीं कर सका है।

११ **श्रीवर्धमानचरित्र।** लेखक, जैन मुनि पं० ज्ञानचन्द्रजी और प्रकाशक मेहरचन्द लक्ष्मणदास संस्कृत पुस्तकालय, लाहौर। आकार क्राउन सोलहपेजी, पृष्ठ संख्या १३६। कपड़ेकी जिल्द। मूल्य बारह आने। चरित्र हिन्दीमें लिखा गया है और निर्णय-सागर प्रेसमें सुन्दरताके साथ छपा है। लेखक स्थानकवासी सम्प्रदायके साधु हैं, अतएव उनका इसे श्वेताम्बर सूत्रोंके अनुसार लिखना स्वाभाविक है; परन्तु फिर भी इसमें ऐसी बातें नहीं लिखी गई हैं जो दूसरे सम्प्रदायके लोगोंको खटकनेवाली हैं। लिखते समय उन्होंने संभवता असंभवताका भी ख्याल रक्खा है। श्वेताम्बरसूत्रोंके अनुसार महावीर भगवान् पहले एक ब्राह्मणीके गर्भमें आये थे और फिर वहांसे एक देवके द्वारा स्थानान्तरित होकर महाराणी त्रिशलाके गर्भमें पहुँचाये गये थे। गर्भापहरणकी यह बात श्वेताम्बर-स्थानकवासी सम्प्रदायोंमें बहुत ही प्रसिद्ध है; परन्तु इस चरित्रमें इसे असंभव समझकर छोड़ दिया गया है। यही लिखा गया है कि भगवान् त्रिशलाके गर्भमें आये और ९ मास ७॥ दिनरात व्यतीत होने पर अवतरित हुए। गर्भावस्थामें माताको कष्ट न होनेके लिए भगवानने जो विचारादि किये थे और तदनुरूप क्रियायें की थीं, उनका भी इसमें उल्लेख नहीं है। लेखकने इस बातको भी स्पष्ट शब्दोंमें स्वीकार किया है कि 'भगवानके पास चीरमात्र भी वस्त्र न था। यह दूसरी बात है कि वे लोगोंको ऐसे मालूम होते थे कि वस्त्र पहने हुए हैं।' इन सब बातोंसे मालूम होता है कि लेखक स्वाधीन-चेता हैं। पुस्तकका आधेसे अधिक भाग बारह व्रतोंके, भावनाओंके तथा दूसरे धार्मिक सिद्धान्तोंके वर्णनमें घिरा हुआ है, जो स्वाध्यायप्रेमियोंके कामका है, और इसका कारण यह है कि चरित्र ऐतिहासिक नहीं किन्तु धार्मिक दृष्टिसे लिखा गया है और अभीतक लिखे गये हिन्दी महावीरचरित्रोंसे बहुत कुछ अच्छा है। जैनोंके तीनों सम्प्रदायके लोग इससे लाभ उठा सकते हैं। इसमें सम्प्रदायभेदकी बातें बहुत ही कम हैं। भूमिकासे मालूम हुआ कि लेखक इसको अपूर्ण छोड़कर ही स्वर्गवास कर गये और इसका शेष भाग उनके गुरु उपाध्याय आत्मारामजीने पूर्ण किया।

१२ **प्राचीन कीर्ति वा सप्ताश्चर्य।** ले, पं० शिवनारायण द्विवेदी और प्र०, हरिदास एण्ड कम्पनी, कलकत्ता। पृष्ठसंख्या ८०। मूल्य आठ आने। इसमें मिसरके पिरामिड, बाबिलनका उद्यान, अलम्पसका जुपिटर, डायनाका मन्दिर, मासोलियमकी समाधि, सिकन्दरियाका दीपस्तम्भ, और रोडस द्वीपकी अपोलोकी मूर्ति, पृथ्वीके इन सात प्रधान आश्चर्योंका और चीनका शीशमहल, चीनकी बड़ी दीवार, आगरेका ताजमहल और टेम्स नदीकी सुरंग इन चार उपाश्चर्योंका सचित्र वर्णन है। पृथ्वीमें कैसी कैसी विलक्षण चीजें हैं, यह जाननेकी इच्छा रखनेवालोंको यह पुस्तक अवश्य पढ़ना चाहिए। वर्णन साधारण है। उसमें कहीं कहीं लेखक महाशयने जो अपनी सम्मतियाँ शामिल की हैं उनमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

न गंभीरता है और न कोई विशेषत्व। भूमिकाके एक पैरेमें आप कुछ कह रहे हैं और दूसरेमें कुछ। पुस्तकमें यह लिखना आपने आवश्यक न समझा कि ये विवरण कौनसी पुस्तकके आधारसे लिखे गये हैं।

१३-१४ हिन्दी साहित्य प्रचारक ग्रन्थ-मालाकी पुस्तकें। नरसिंहपुर (सी. पी.) के श्रीयुत सेठ नाथूरामजी रेजाने उक्त नामकी ग्रन्थमालाके निकालनेका प्रयत्न किया है। मालाके पहले दो पुष्प हमें समालोचनार्थ प्राप्त हुए हैं। पहला है, **गुरु शिष्यसंवाद**। इसमें स्वामी विवेकानन्द और उनके कुछ शिष्योंका वार्तालाप है। पृष्ठ संख्या ५४। मूल्य चार आने। दूसरा पुष्प है **आर्थिक सफलता**। यह अँगरेजीकी 'फाय नानशियल सकसेस' नामक पुस्तकके गुजराती अनुवादके आधारसे लिखी गई है। पृष्ठसंख्या ९८। मूल्य छह आने। दोनों पुस्तकोंके अनुवाद कर्ता श्रीयुत शिवसहाय चतुर्वेदी हैं। दोनों पुस्तकोंकी छपाई उत्तम है। कागज भी अच्छा लगा है।

१५-१६ हिन्दी-गौरव ग्रन्थमालाकी पुस्तकें। हम अपने मित्र पं० उदयलालजी काशलीवालकी इस ग्रन्थमालाका परिचय अपने पाठकोंको पहले दे चुके हैं। इसके पाँचवें और छठे पुष्प हाल ही प्रकाशित हुए हैं। पाँचवेंका नाम **विवेकानन्द नाटक है**। यह मराठीके प्रसिद्ध लेखक ए. बी. कोल्हटकरके ग्रन्थका अनुवाद है। अमेरिकामें जाकर हिन्दूधर्मका शंखनाद करनेवाले स्वामी विवेकानन्दको मुख्य पात्र मानकर इस नाटकका कथानक तैयार किया गया है। कल्पना सुन्दर है। हास्य-विनोद और मनोरंजनकी इसमें यथेष्ट सामग्री है। लेखक हास्यरसके सिद्धहस्त लेखक जान पड़ते हैं। यह नाटक मराठी रंगमंचपर खेला जा चुका है। पृष्ठसंख्या १५२ और ५ चित्र। मूल्य एक रुपया। छठे पुष्पका नाम है, **स्वदेशाभिमान**। यह एक छोटी सी पुस्तक है, पर बड़ी अच्छी है। एक मराठी पुस्तकका अनुवाद है। इसमें विदेशोंके ऐसे २०–२५ स्त्री पुरुषोंका संक्षिप्त परिचय दिया गया है, जिन्होंने अपनी जन्मभूमिकी रक्षाके लिए अपने सर्वस्वका अर्पण कर दिया था। ऐसी पुस्तकोंका घर घर प्रचार होना चाहिए। मूल्य चार आने।

१७ सर्वियाका इतिहास। लेखक, झालरापाटननरेश राजराना श्रीमान् भवानीसिंहजी बहादुर। प्र०, राजपूताना हिन्दीसाहित्य सभा, झालरापाटन। पृष्ठसंख्या ८०। मूल्य पाँच आने। हमारे पाठक जानते हैं कि गतवर्ष जैनहितेच्छुके सम्पादक श्रीयुत वाडीलालजी, सेठ विनोदीरामजी बालचन्दजी और रायबहादुर सेठ कस्तूरचन्दजी आदिने हिन्दीके ग्रन्थोंको सुलभ मूल्यमें प्रकाशित करनेके लिए लगभग १० हजार रुपयेका चन्दा करके यह सभा स्थापित की थी। यह पुस्तक उसीकी ओरसे प्रकाशित हुई है। सभाके लिए यह बड़े गौरवकी बात है कि उसे एक नरेशकी लिखी हुई सुन्दर पुस्तकको प्रकाशित करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। पुस्तक छोटी है, पर सर्वियाका स्थूल इतिहास जाननेके लिए बहुत अच्छी है। युद्धकी हालतपर विचार करनेके लिए सर्वियाकी भीतरी बातोंको समझनेमें इससे बहुत सहायता मिलेगी।

१८ लोकमान्य तिलकके स्वराज्य पर १२ व्याख्यान और जमानतका मुकद्दमा। प्रकाशक, गंगाधर हरि खानवलकर, ग्रन्थप्रकाशक समिति बनारस। पृष्ठसंख्या २५०। मूल्य एक रुपया। विषय नामहीसे स्पष्ट है। देशभक्त तिलक महाशयके विचार प्रत्येक भारतवासीको पढ़ने चाहिए और स्वराज्यके स्वरूपको समझ लेना चाहिए। पुस्तक अच्छे समयमें प्रकाशित की गई है।

नीचे लिखी पुस्तकें धन्यवादपूर्वक स्वीकार की जाती हैं:—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१ जैनगजल गुलचमन बहार प्र०, भेरूलाल नौ रतनलाल बोहरा, लाखन कोटड़ी अजमेर।

२ पाँचवीं रिपोर्ट, पद्मावती परिषत्। प्र०, पं० वंशीधरजी शास्त्री, शोलापुर।

३ साचा सुखनो उपाय। ले०, ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी और प्र०, जैनविजयप्रेस, सूरत।

४ सुमतिकुमतिमोहअन्धकार नाटक। प्र०, बाबू फूलचन्द जैन, शिकोहाबाद, मैनपुरी।

५ बारहमासा तथा स्तवनसंग्रह। प्र०, आत्मानन्द जैनसभा, अम्बाला शहर।

६. जैन इतिहास अंक २। प्र०, आत्मानन्द ट्रेक्ट सुसाइटी, अम्बाला शहर।

७ श्राविकाधर्मदर्पण, ८ जैनशिक्षण पाठमाला, ९ जम्बूगुणरत्नमाला। प्र०, कुँवर मोतीलाल रांका, जैनपुस्तकप्रचारक कार्यालय, व्यावर (अजमेर)।

१० सदाचाररक्षा, प्रथमभाग। ले०, सेठ जवाहरलालजी जैनी। प्र०, आत्मानन्द जैनपुस्तक प्रकाशक मण्डल, नौधरा, देहली।

११ वेदमीमांसा। ले०, पं० पुत्तूलाल जैन। प्र०, जैनमित्रकार्यालय, सूरत।

१२ मिथ्यातमोध्वंसार्क। जैनमित्रमंडली देहलीका ट्रेक्ट नं० १। प्र०, लालाश्यामलालजी कागजी, चावड़ी बाजार, देहली।

१३ वार्षिक विवरण, जैनशिक्षाप्रचारक सोसाइटी, पहाड़ी धीरज, देहली। प्रकाशक, मंत्री, बनारसीदासजी जैन।

आदिपुराणका अवलोकन।

(लेखक—श्रीयुत बाबू सूरजभानजी वकील।)

पाठकोंको भगवज्जिनसेन और गुणभद्राचार्यकृत आदिपुराणका अधिक परिचय देनेकी आवश्यकता नहीं। यह बहुत ही प्रसिद्ध ग्रन्थ है और जैनधर्मके पुराणग्रन्थोंमें यही सबसे अधिक महत्त्वकी दृष्टिसे देखा जाता है। यह 'महापुराण' नामक ग्रन्थका पूर्वभाग है। इसके ४२ पर्व जिनसेन स्वामीके और शेष पाँच पर्व गुणभद्र स्वामीके बनाये हुए हैं। उपलब्ध पुराणग्रन्थोंमें पद्मपुराण और हरिवंशपुराण ये दो ही पुराण ऐसे हैं, जो इससे पहलेके बने हुए हैं; परन्तु केवल आदिनाथ भगवान्के चरित्रको विस्तारसे बतलानेवाला तो यही सबसे पहला पुराण है। सुप्रसिद्ध मंत्री और सेनापति चामुण्डरायका बनाया हुआ 'त्रिषष्ठिलक्षणमहापुराण' नामका एक कनड़ी भाषाका ग्रन्थ है। उसमें चौवीसों तीर्थकरोंके चरित्र लिखे गये हैं। उसके प्रारंभमें लिखा है कि "इस पुराणको पहले कूचि भट्टारक, फिर नन्दि मुनीश्वर, फिर कविपरमेश्वर और तत्पश्चात् जिनसेन-गुणभद्रस्वामी, इस प्रकार परम्परासे कहते आये हैं और उन्हींके अनुसार मैं भी कहता हूँ।" इससे मालूम होता है कि आदिपुराणसे पहले कूचि, नन्दि और कविपरमेश्वरके बनाये हुए इसी विषयके ग्रन्थ थे। कवि परमेश्वर या कवि परमेष्ठीका उल्लेख तो स्वयं जिनसेन स्वामीने भी किया है। गुणभद्रस्वामीने भी उत्तरपुराणकी प्रशस्तिमें स्वीकार किया है कि कविपरमेश्वरकी बनाई हुई 'गद्यकथा' इस आदिपुराणकी माता है—'कविपरमेश्वरनिगदितगद्यकथामातृकं पुरोश्चरितम्।' अर्थात् इस आदिपुराणके पहले कविपरमेश्वरका बनाया हुआ कोई ग्रन्थ था, जिसके आधारसे यह पल्लवित करके बनाया गया है; परन्तु अब उक्त ग्रन्थोंमेंसे कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है, इसलिए यह निश्चय नहीं हो सकता है कि आदिपुराणमें उनकी अपेक्षा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्या विशेषता है—इसमें परम्परासे चला आया हुआ अंश तो कितना है और कवियोंके द्वारा पल्लवित—परिवर्धित किया हुआ अंश कितना है।

गुणभद्रस्वामीने उत्तरपुराणकी समाप्ति शक संवत् ८२० (विक्रम संवत् ९५५) में की है। अतएव आदिपुराण इसके कुछ पहले बन चुका था।

मैं इन दिनोंमें इसी प्रसिद्ध ग्रंथका स्वाध्याय कर रहा हूँ। यह स्वाध्याय बहुत बारीकीसे गहरी दृष्टि डालकर, किया जा रहा है। स्वाध्याय करते समय जो जो बातें मुझे सोचने-विचारनेकी, चर्चा करनेकी मालूम होती हैं उनका नोट भी मैं करता जाता हूँ। इन नोटोंका मेरे पास एक अच्छा संग्रह हो गया है। अब मैं चाहता हूँ कि इस संग्रहमेंसे कुछ महत्त्वके नोटोंको समाजके विद्वानोंके समक्ष उपस्थित करूँ, जिससे उन पर अनेक दृष्टियोंसे विचार होवे, और जनताकी प्रवृत्ति सत्यान्वेषणकी ओर अधिकाधिक बढ़े।

१

सर्वसाधारणका यह विश्वास है कि पुराणादि कथाग्रंथोंमें जो कुछ लिखा गया है, उसका अक्षर अक्षर केवलीकथित है। ये सबके सब ग्रंथ भगवान्‌की दिव्यध्वनिके द्वारा ही प्रकट हुए हैं। परन्तु इस पुराणका स्वाध्याय करनेसे यह बात ठीक नहीं मालूम होती, किन्तु यह प्रकट होता है कि ग्रन्थरचनामें ग्रन्थकर्ताओंको बहुत कुछ स्वाधीनता रहती है। वे गुरुपरम्परासे या शास्त्रपरम्परासे चले आये हुए कथासूत्रोंसे केवल नीवका काम लेते हैं, शेष सारी इमारतकी रचना करनेमें वे स्वतंत्र रहते हैं। इस इमारतके स्रष्टा स्वयं वे ही होते हैं। उसको सुन्दर, सरस, प्रभावोत्पादक बनाना यह उनकी प्रतिभाका काम है। जिसकी प्रतिभा जितनी अधिक उज्ज्वल होती है, वह अपनी इमारतको उतनी ही सुन्दर बनाकर दिखला सकता है। यही कारण है जो एक ही कथाको मूलभूत मानकर बनाये हुए दो कवियोंके ग्रन्थोंमें आकाश-पातालका अन्तर हुआ करता है।

कवि या ग्रन्थकर्ताको इतनी भी स्वाधीनता न हो, तो उसका कवित्व या ग्रन्थकर्तृत्व ही क्या रहे? फिर तो उसमें और एक फोनोग्राफमें कोई फर्क ही नहीं समझना चाहिए,—जैसा सुना वैसा ही कह दिया। कवि अपनी इस स्वाधीनताके कारण ही कवि कहलाता है। इस स्वाधीनताका उपयोग करके वह अपने कथापात्रोंके मुँहसे वेही बातें कहलाता है, जिनका कहलाना उसे अभीष्ट मालूम होता है—जिससे वह अपने ग्रन्थरचनाके उद्देशकी सिद्धि समझता है और जो उसके देशकालके अनुकूल होती हैं। नगर, पर्वत, नदी, स्त्री, पुरुष, बालक, साधु आदिके उन्हीं स्वरूपोंको वह चित्रित करता है जिनका उसके कल्पनाजगतमें संग्रह रहता है, और जिस रूपमें वे उसके नेत्रोंके सामने आया करते हैं। यही कारण है जो दाक्षिणात्यकवियोंके द्वारा बनाये हुए काव्योंमें हम जिस पौराणिक स्त्रीके सुन्दर केशपाशोंको पुष्पोंसे सजा हुआ पाते हैं उसीको उत्तर प्रान्तके कवियोंके काव्योंमें उत्तरीय वस्त्रके भीतर छिपा हुआ देखते हैं। दक्षिणका कवि अपनी नायिकाको साड़ी पहनाता है और उत्तरका घाँघरा।

आदिपुराणके कर्ता जिनसेनस्वामीका ही बनाया हुआ पार्श्वाभ्युदय नामका एक प्रसिद्ध काव्य है। उसको देखनेसे तो यह मालूम होता है कि ग्रन्थकर्ताको मूल कथामें भी परिवर्तन करनेका अधिकार रहता है। इस काव्यमें कमठके जीव शम्बरको —जो कि ज्योतिष्क देव हुआ था—यक्ष, ज्योतिर्भवनको अलकापुरी और यक्षकी वर्षशापको शम्बरकी वर्षशाप मान लिया है। इसके सिवाय शम्बरके पूर्व और वर्तमानके अनेकभावोंको वर्तमानभवके ही रूपमें चित्रित कर दिया है। गरज यह कि कवियों और ग्रन्थकारोंको जो रचनास्वातंत्र्य मिला हुआ है, उससे वे मूल कथामात्रकी रक्षा करके अपनी ओरसे बहुत कुछ लिख सकते हैं। हम अपनी इस बातको पुष्ट करनेके लिए आदिपुराणमेंसे कुछ उदाहरण देंगे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चौथे कालके प्रारंभमें, जब भगवान् आदिनाथको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था तब, समवसरणसभामें उपस्थित होकर सौधर्मस्वर्गके इन्द्रने भगवानकी स्तुति करते हुए कहा था:—

न भुक्तिः क्षीणमोहस्य तवात्यन्तसुखोदयात् ।
क्षुत्क्लेशबाधितो जन्तुः कवलाहारभुग्भवेत् ॥ ३९
असद्वेद्योदयाद्भुक्तिं त्वयि यो योजयेदधीः ।
मोहानिलप्रतीकारे तस्यान्वेष्यं जरद्घृतम् ॥ ४०॥
असद्वेद्यविषं घाति विध्वंसध्वस्तशक्तिकम् ।
त्वय्यकिंचित्करं मंत्रशक्त्येवापबलं विषम् ॥ ४१ ॥
असद्वेद्योदयो घातिसहकारिव्यपायतः ।
त्वय्यकिंचित्करो नाथ सामग्र्या हि फलोदयः ॥४२

—आदिपुराणपर्व, २५ ।

भावार्थ—हे भगवन्, मोहनीय कर्मके नष्ट हो जानेसे आपके अनन्त सुखका उदय हो गया है, इस कारण आप भोजन नहीं करते हैं। जो जीव भूखके दुःखसे दुखी हैं, वे ही कवलाहार या भोजन किया करते हैं। जो मूर्ख यह कहते हैं कि आपके असातावेदनीयका उदय है, इस कारण आप भोजन भी करते हैं, उन्हें अपनी मिथ्यात्वरूपी अग्निको शान्त करनेके लिए पुराना घी ढूँढ़ना चाहिए। घातिया कर्मोंके नष्ट हो जानेसे जिसकी शक्ति नष्ट हो गई है, ऐसा असातावेदनीरूप विष आपका कुछ नहीं बिगाड़ सकता। जिस तरह मंत्रकी शक्तिसे जिसका बल नष्ट हो गया है, ऐसा विष किसीको कोई हानि नहीं पहुँचा सकता। घातिया कर्मोंकी सहायता नहीं रहनेसे हे नाथ, असातावेदनीका उदय भी आपके लिए आकिंचित्कर है—कुछ प्रभाव डालनेवाला नहीं है। क्योंकि सब सामग्रियोंके एकत्र होनेसे ही फलका उदय होता है।

ये श्लोक स्पष्टतासे बतला रहे हैं कि इनमें जो आक्षेप किया गया है वह श्वेताम्बर सम्प्रदायको लक्ष्य करके किया गया है और उन्हींको इसमें मूर्ख बतलाकर कहा है कि उन्हें मिथ्यात्वकी अग्निको शान्त करनेके लिए पुराना घी ढूँढ़ना चाहिए। परन्तु दूसरे ग्रन्थोंसे यह सिद्ध है कि श्वेताम्बरसम्प्रदायकी उत्पत्ति महावीर भगवान्के निर्वाणके ६—७ सौ वर्ष बाद हुई है। और यह चौथे कालकी आदिनाथ भगवानके समयकी बात है जिसको बीते जैनग्रन्थोंके अनुसार आज करोड़ों वर्ष हो चुके हैं। तब उस समय श्वेताम्बर सम्प्रदाय कहाँसे आया?

यदि यह कहा जाय कि इन्द्रने अपनी स्तुतिमें जिन पर आक्षेप किया है वे श्वेताम्बर नहीं थे, तो इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि वे केवली भगवानको तो मानते थे; परन्तु उन्हें भोजन करनेवाला समझते थे। अर्थात् वे अन्यमती नहीं, किन्तु एक प्रकारके जैन ही थे और जैनधर्मके सिद्धान्तोंको, केवली भगवानके घातिया कर्मोंके नाश हो जानेको, असाता वेदनीयके उदयको और मोहनीयके नष्ट हो जानेसे अनन्त सुखकी प्राप्तिको मानते थे। इन लोगोंने अवश्य ही श्रीतीर्थंकर भगवानके उपदेशसे ही उक्त कर्मसिद्धान्तों पर विश्वास किया होगा; क्योंकि उस समय चतुर्थ कालकी आदिमें इन बातोंका जाननेवाला और कोई नहीं था। तब यह कैसे सम्भव हो सकता है कि भगवानके उपस्थित होते हुए भी उन्हींके अनुयायियोंमेंसे कुछ ऐसे हों तो यह कहें कि भगवान् भोजन करते हैं और कुछ ऐसे हों जो यह कहें कि नहीं, वे कदापि भोजन नहीं करते हैं और अपने इस विवादको निबटानेके वास्ते भगवानसे पूछें ही नहीं कि आप भोजन करते हैं या नहीं। विना पूछे भी तो वे यह जान सकते थे कि ये कभी भोजन करते हैं या नहीं। इस बातका निर्णय हेतुवादसे करनेकी तो उस समय जरूरत ही नहीं थी। गरज यह कि भगवानके समक्षमें देवराजने इस प्रकारकी स्तुति की हो जिसमें कि इस प्रकारका कवलाहारसम्बन्धी विवाद हो, यह संभव नहीं। यह सब ग्रन्थकर्त्ताकी रचना है। उस समय दिगम्बरों और श्वेताम्बरोंके बीचमें जो विवाद चल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रहा था, उसीको ग्रन्थकर्ताने इन्द्रके मुँहसे व्यक्त कराया है और जान पड़ता है कि इस प्रकारका अधिकार ग्रन्थकर्ताओंको बहुत समयसे प्राप्त है।

पण्डितवर टोडरमल्लजीने अपने मोक्षमार्ग-प्रकाशक ग्रन्थमें प्रथमानुयोगके स्वरूपका विचार करते हुए हमारे इन्हीं भावोंको इस प्रकार प्रकट किया है:-

"प्रथमानुयोग विषै जे मूलकथा हैं, ते तो जैसी हैं तैसी ही निरूपित हैं। अर तिन विषै प्रसंग पाय व्याख्यान हो है सो कोई तौ जैसाका तैसा हो है, कोई ग्रन्थकर्ताका विचार अनुसार होय, परन्तु प्रयोजन अन्यथा न हो है। ताका उदाहरण—जैसें तीर्थंकर देवनिके कल्याणनि विषै इन्द्र आया, यह कथा तो सत्य है। बहुरि इन्द्र स्तुति करी ताका व्याख्यान किया, सो इन्द्र तौ और ही प्रकार स्तुति लिखी थी, और यहाँ ग्रन्थकर्त्ता और ही प्रकार स्तुति कीनी लिखी। परन्तु स्तुतिरूप प्रयोजन अन्यथा न भया।" —पृष्ठ ३८३।

इससे अच्छी तरह सिद्ध हो गया कि इन्द्रके द्वारा भगवानकी जो स्तुति कराई गई है, उसका सारा व्याख्यान ग्रन्थकर्ताकी निजकी चीज है। आदिनाथ भगवानके समवसरणमें उसने ये ही शब्द नहीं कहे थे। उस समय श्वेताम्बर धर्मके अस्तित्वकी कल्पना निर्मूल है।

इसी तरहका एक दूसरा प्रसंग आदिपुराणके १८ वें पर्वमें भी है। आदिनाथ भगवानके दीक्षा ले लेने पर उनके साथी चार हजार राजाओंने भी दीक्षा ले ली। परन्तु वे लोग दीक्षाके अभिप्रायको कुछ नहीं समझे थे, इस लिए भगवान् तो ६ महीनेका उपवास धारण करके ध्यानस्थ हो गये, पर ये भूखके मारे दोही तीन महीनेमें व्याकुल हो गये। जब भूख प्यास नहीं सही गई, तब कन्द-मूल-फल आदि खानेके लिए वनमें जाने लगे और प्यास बुझानेके लिए तालावोंकी ओर दौड़ने लगे; परन्तु वनदेवताने उन्हें रोका और कहा कि तुमको इस दिगम्बररूपमें ऐसा करना उचित नहीं है। यह सुनकर वे डर गये और उन लोगोंने तरह तरहके वेष धारण कर लिये। किसीने पेड़ोंकी छालें पहन लीं, किसीने लँगोटी लगा ली, किसीने भस्म रमा ली, कोई जटाधारी, दंडी त्रिदण्डी आदि बन गये। भरतमहाराजके डरके मारे वे अपने अपने घरोंको भी नहीं जा सके और वहीं झोपड़ी बनाकर रहने लगे। ये ही आगे पाखंडियोंके मुखिया बन गये। भगवान्का पोता मरीचि भी इनमें था। उसने अनेक अपसिद्धान्तोंका उपदेश देकर मिथ्यात्वकी वृद्धि की। योगशास्त्र (पतञ्जलिका दर्शन) और कापिल तंत्र (सांख्यशास्त्र) को उसीने रचा, जिनसे मोहित होकर संसार सम्यग्ज्ञानसे पराङ्मुख हुआ। यथाः—

मरीचिश्च गुरोर्नप्ता परिव्राड्भूयमास्थितः।
मिथ्यात्ववृद्धिमकरोदपसिद्धान्तभाषितैः ॥ ६१ ॥
तदुपज्ञमभूद्योगशास्त्रं तंत्रं च कापिलम्।
येनायं मोहितो लोकः सम्यग्ज्ञानपराङ्मुखः ॥ ६२॥
—पर्व १८।

इसमें सांख्यशास्त्र और योगशास्त्रके कर्ताको भगवान् ऋषभदेवके समयमें बतलाना, जान पड़ता है, ग्रंथकर्ताकी निजकी कल्पना है। क्योंकि इन दोनोंके कर्ता अधिकसे अधिक २२००—२३०० वर्ष पहलेके हो सकते हैं, परन्तु ऋषभदेव जैन-ग्रन्थोंके अनुसार अबसे अर्बों खर्बों वर्ष पहले हुए हैं। मूल कथा इतनी है कि, भगवान् ऋषभदेवके समयमें बहुतसे राजा भ्रष्ट हो गये थे और उन्होंने तरह तरहके मिथ्यात्व फैला दिये थे। इसीको कवियोंने अपनी अपनी कल्पनाके अनुसार पल्लवित किया है और मतोंके नाम अपनी तरफसे मिला दिये हैं।

सबसे पहले 'पउमचरिय' नामक प्राकृत ग्रन्थमें हमने इस कथाको देखा। यह ग्रन्थ वीर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नि० संवत् ५३० का बना हुआ है। उसमें सिर्फ इतना लिखा है कि 'वे पेड़ोंकी छाल, लँगोटी, आदि पहनवाले, फलाहारी, स्वच्छन्दमतविकल्पी, अनेक तरहके तापसी हो गये।' उसके बादका ग्रन्थ पद्मपुराण है। उसमें आदिपुराणकी ही कथाको कुछ संक्षेपमें लिखा है और अन्तमें कहा है कि 'इन सबमें महामानी मरीचि (भगवान्का पोता) था। उसने भगवें वस्त्र पहरकर परिव्राजकका मत प्रकट किया।' इसके बाद पुन्नाटसंघीय जिनसेनका हरिवंशपुराण बना है। उन्होंने इस कथाके मतसम्बन्धी अंशको सबसे अधिक पल्लवित किया है और (कलकत्तेमें प्रकाशित हुए हिन्दी अनुवादके अनुसार) नैयायिक, वैशेषिक, शब्दाद्वैतवादी, चार्वाक, सांख्य और बौद्धधर्म तकको भी उन भ्रष्ट हुए राजाओंके द्वारा चला हुआ बतलाया है। इनमेंसे कमसे कम बौद्धधर्मको तो हमारे सभी पाठक जानते हैं कि, वह महावीर भगवान्के ही समयमें स्थापित हुआ है और इससे पहले उसका अस्तित्व नहीं था। यह सर्वसम्मत बात है।

ऐसा मालूम होता है कि मूल बात केवल यह थी कि उस समय उन लोगोंने तरह तरहके तपस्वियोंके वेष धारण कर लिये। इसी बातको जुदा जुदा ग्रन्थकारोंने पल्लवित करके, इतिहासके सामञ्जस्यका ख्याल न रखकर, जुदा जुदा रूपमें वर्णन कर दिया है। मूल बात सबमें एक ढंगसे कही गई है, पर बढाई हुई बातोंमें भिन्नता आ गई है। आशा है कि पाठकगण उक्त कथनसे हमारे आशयको अच्छी तरह समझ गये होंगे।

आगामी अंकमें हम इसी विषयमें और भी कुछ लिखनेका प्रयत्न करेंगे। यदि कोई सज्जन इसके प्रतिवादमें कुछ लिखना चाहें तो सप्रमाण और संयत भाषामें लिखनेकी कृपा करें।

विविध प्रसङ्ग।

१ क्या श्वेताम्बर सांशयिक हैं?

पिछले अंकमें दर्शनसारविवेचनामें हमने लिखा था कि दर्शनसारके कर्त्ताने और गोम्मटसारके टीकाकारोंने श्वेताम्बर सम्प्रदायको सांशयिक कैसे माना है सो समझमें नहीं आता। क्योंकि विरुद्धानेककोटिस्पर्शि ज्ञानको संशय कहते हैं और श्वेताम्बर सम्प्रदायका इस प्रकारका कोई सिद्धान्त नहीं है। वे यह नहीं मानते हैं कि न मालूम स्त्रियाँ मोक्ष प्राप्त करती हैं या नहीं, केवली कवलाहार करते हैं या नहीं। ये बातें उनके यहाँ निश्चयरूपसे मानी हुई हैं। वे दिगम्बर सम्प्रदायकी दृष्टिसे विपरीतमति हो सकते हैं; न कि सांशयिक। उक्त विवेचनाके छप जाने पर हमने भट्टाकलङ्कदेवकृत राजवार्तिकको देखा तो मालूम हुआ कि हमारी शंका यथार्थ थी। उसमें श्वेताम्बर सम्प्रदायको 'विपरीत' ही माना है, सांशयिक नहीं। आठवें अध्यायके पहले सूत्रके व्याख्यानमें देखिए, इस प्रकार लिखा है:—

" अथवा पञ्चविधं मिथ्यादर्शनमवगन्तव्यं—एकान्तमिथ्यादर्शनं, विपरीतमिथ्यादर्शनं, संशयमिथ्यादर्शनं, वैनयिकमिथ्यादर्शनं, आज्ञानिकमिथ्यादर्शनं चेति। तत्रेदमेवेत्थमेवेति धर्मिधर्मयोरभिनिवेश एकान्तः। पुरुष एवेदं सर्वं इति वा, नित्य एव वा अनित्य एवेति। सग्रन्थो निर्ग्रन्थः केवली कवलाहारी स्त्री सिद्ध्यतीत्येवमादिर्विपर्ययः। सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः किं स्याद्वा नवेति मतिद्वैतं संशयः। सर्वदेवतानां सर्वसमयानां च समदर्शनं वैनयिकत्वं। हिताहितपरीक्षाविरह आज्ञानिकत्वम्।"

अर्थात् एकान्त, विपरीत, संशय, वैनयिक और आज्ञानिक ये पांच मिथ्यादर्शन हैं। यही है, ऐसा ही है, इस प्रकार धर्मी और धर्ममें आग्रहबुद्धि रख-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ना 'एकान्त' है। जैसे सृष्टिकी ये सब वस्तुयें पुरुषहीके रूप हैं, ये सब नित्य ही हैं अथवा अनित्य ही हैं। वस्त्रधारी साधु निर्ग्रन्थ हैं, केवली कवलाहार करते हैं, स्त्रीको मोक्ष होता है, इत्यादि बातें मानना 'विपरीत' है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग है या नहीं, इस प्रकार द्विकोटिगत बुद्धि रखना 'संशय' है। सारे देवों और सारे धर्मोंको समान देखना 'वैनयिक' है। हित और अहितकी परीक्षाका अभाव 'आज्ञानिक' है। पूज्यपाद स्वामीने सर्वार्थसिद्धिटीकामें भी बिलकुल यहीके यही वाक्य दिये हैं। इससे सिद्ध है कि, दिगम्बर-दृष्टिसे श्वेतांबर सांशयिक नहीं, किन्तु विपरीत मिथ्यादृष्टि हैं। विद्वानोंको इस विषयमें अपने विचार प्रकट करना चाहिए।

२ भट्टारकोंके साहित्यमें शिथिलाचार।

पण्डितोंके मुँहसे अकसर यह बात सुनी जाती है कि भट्टारक स्वयं भले ही शिथिल हो गये हों; परन्तु उन्होंने जितने ग्रन्थ आदि बनाये हैं, उनमें कोई बात ऐसी नहीं लिखी है, जो मूल दिगम्बर संप्रदायसे विरुद्ध हो—उन्होंने कोई उत्सूत्र कथन नहीं किया। पहले हमारा भी यही खयाल था; परन्तु अब भट्टारकोंके साहित्यका अधिकाधिक परिचय होनेसे यह निश्चय होता जाता है कि इस बातमें कोई तथ्य नहीं है। भट्टारकोंने अवश्य ही गोलमाल किया है और अपने चरित्रको किसी न किसी प्रकारसे अच्छा बतलानेका प्रयत्न किया है। और यदि उन्होंने ऐसा किया है, तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। आश्चर्य तो तब होता, जब वे अपने शिथिल चरित्रको शिथिल ही बतलाते जाते। हाँ, यह अवश्य है कि उन्होंने जो शिथिलाचारका पोषण किया है, वह उतना ही किया है, जितना कि किसी तरह खींच खाँचकर सिद्ध किया जा सके। पर जितने अंशोंमें नहीं किया है, सो इस लिए नहीं कि वह उन्हें पसन्द नहीं था; किन्तु इस लिए कि दिगम्बरसम्प्रदायके परम्परागत प्रचलित भावोंमें उससे अधिक शिथिलताका प्रवेश हो नहीं सकता था—वहाँ इससे अधिक गुंजाइश नहीं थी।

भद्रबाहुसंहिताकी परीक्षाके तीसरे लेख (अंक १, पृष्ठ ६९–७०) में पाठक पढ़ चुके हैं कि संहिताके कर्त्ताने पंचम कालमें दिगम्बर मुनियोंका निषेध किया है। लिखा है—"इस पंचम कालमें जो कोई मुनि दिगम्बर हुआ भ्रमण करता है, वह मूढ़ है और उसे संघसे बाहर समझना चाहिए। वह यति भी अवन्दनीय है जो पांच प्रकारके वस्त्रोंसे रहित है, अर्थात् वह दिगम्बर मुनि भी अपूज्य है जो कपास, ऊन, रेशम आदिके वस्त्र नहीं पहनता है।" यह कहनकी आवश्यकता नहीं कि इस संहिताके लेखक एक वस्त्रधारी भट्टारक थे, और वे अपने वस्त्रयुक्त मार्गको श्रेष्ठ सिद्ध करना चाहते थे। आज हम अपने पाठकोंको एक और भट्टारक महाराजके वाक्य सुनाते हैं, जिनमें इस शिथिलाचारका खुले शब्दोंमें प्रतिपादन किया गया है।

तत्वार्थसूत्रकी श्रुतसागरी टीका, यशस्तिलक चम्पूटीका, सहस्रनामटीका, आदि अनेक ग्रंथोंके कर्त्ता श्रुतसागरसूरि विक्रमकी सोलहवीं शताब्दिमें हुए हैं। आप विद्यानन्द भट्टारकके शिष्य थे। आपने अपने नामके साथ उभयभाषाकविचक्रवर्ती, कलिकालसर्वज्ञ जैसे बड़े बड़े पद लगा रक्खे हैं, जिससे मालूम होता है कि आप एक प्रसिद्ध विद्वान् थे। भगवत्कुंदकुन्दाचार्यके षट्पाहुड़ ग्रंथ पर भी आपने एक संस्कृत टीका लिखी है। इस टीकाके विषयमें हम एक स्वतंत्र लेख लिखना चाहते हैं, जिससे पाठकोंको मालूम होगा कि यह कैसी टीका हे। यहाँ हम उसमेंसे केवल दर्शनपाहुडकी २४ वीं गाथाकी टीकाको उद्धृत करते हैं। मूल गाथा यह है:—

सहजुप्पण्णं रूवं दिट्ठं जो मण्णए ण मच्छरिओ। सो संजमपडिवण्णो मिच्छाइट्ठी हवइ एसो॥ २४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसका सीधा सादा अर्थ यह है—' जो सहजोत्पन्न रूप अर्थात् दिगम्बररूपको देखकर मत्सर भावसे नहीं मानता है—दिगम्बर मुनिकी अवहेलना करता है, वह संयमी हो, तो भी मिथ्यादृष्टि है। अब इसकी श्रुतसागरी टीकाको देखिए:—

"सहजुप्पण्णं रूवं सहजोत्पन्नं स्वभावोत्पन्नं रूपं नग्नं रूपं। दिट्ठं दृष्ट्वा विलोक्य। जो मण्णए ण मच्छरिओ, यः पुमान् न मन्यते, नग्नत्वे अरुचिं करोति, नग्नत्वे किं प्रयोजनं पशवः किं नग्ना न भवन्ति, इति ब्रूते, मत्सरतः परेषां शुभकर्माणि द्वेषी। सो संयमपडिवण्णो स पुमान् संयमप्रतिपन्नः दीक्षां प्राप्तोऽपि मिच्छाइट्ठी हवइ एसो, मिथ्यादृष्टिर्भवत्येषः। अपवादवेषं धरन्नपि मिथ्यादृष्टिः ज्ञातव्य इत्यर्थः। कोऽपवादवेषः, कलौ किल म्लेच्छादयो नग्नं दृष्ट्वा उपद्रवं यतीनां कुर्वन्ति, तेन मण्डपदुर्गे श्रीवसन्तकीर्तिना स्वामिना चर्यादिवेलायां तट्टीसादरादिकेन शरीरमाच्छाद्य चर्यादिकं कृत्वा पुनस्तन्मुंचति इत्युपदेशः कृतः संयमिनां, इत्यपवादवेषः। तथा नृपादिवर्गोत्पन्नः परमवैराग्यवान् लिङ्गशुद्धिरहितः उत्पन्नमेहनपुटदोषः लज्जावान् वा शीताद्यसहिष्णुर्वा तथा करोति सोप्यपवादलिङ्गः प्रोच्यते। उत्सर्गवेषस्तु नग्न एवेति ज्ञातव्यं। सामान्योक्तिविधिरुत्सर्गः विशेषोक्ति विधिरपवाद इति परभाषणात्।"

अर्थात् स्वभावोत्पन्न नग्न रूपको देखकर जो पुरुष उसे मत्सरभावसे नहीं मानता है, नग्नपनामें अरुचि करता है, कहता है—नग्नपनेमें क्या रक्खा है, पशु क्या नग्न नहीं रहते, (दूसरोंके शुभकर्मसे द्वेष करनेको मत्सर कहते हैं।) वह संयमप्रतिपन्न या दीक्षित होने पर भी मिथ्यादृष्टि है, अर्थात् वह अपवादवेष धारण करता हुआ भी मिथ्यादृष्टि है। अपवाद किसे कहते हैं ? कलिकालमें म्लेच्छ (मुसलमान) आदि यतियोंको नग्न देखकर उपद्रव करते हैं, इस कारण मण्डपदुर्ग (माण्डलगढ़—मेवाड़) में श्रीवसन्तकीर्तिस्वामी (भट्टारक) ने ऐसा उपदेश दिया कि चर्या आदिके समय (आहारको जाते समय) मुनिको चटाई, टाट आदिसे शरीर ढक लेना चाहिए, और फिर चटाई आदि छोड़ देना चाहिए। संयमी या मुनियोंका यह अपवाद वेष है। इसी प्रकार यदि कोई राजवंशादिमें उत्पन्न हुआ पुरुष बहुत वैराग्यवान् होकर मुनि होना चाहे, परन्तु वह लिङ्गशुद्धिरहित हो; अर्थात् उसके लिङ्गके अग्रभागमें कोई दोष हो, अथवा वह लज्जावान् हो, या शीत आदि सहन नहीं कर सकता हो, और इस कारण चटाई वगैरहसे शरीर ढँक लिया करे, तो उसे अपवादलिङ्गधारी कहते हैं। उत्सर्गवेष तो नग्न ही है। सामान्योक्ति विधिको उत्सर्ग और विशेष विधिको अपवाद कहते हैं।

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि मूल गाथासे इस अर्थका कोई सम्बन्ध नहीं है; यह अभिप्राय बहुत ही बड़ी धृष्टतासे खींच खाँचकर निकाला गया है। उत्सर्ग और अपवादका यह मतलब ही नहीं है। यदि इसीको अपवाद कहने लगें तो फिर भ्रष्टता कुछ रहेगी ही नहीं। श्रुतसागर महाराजका सबसे बड़ा अन्याय तो यह है कि उन्होंने अपने समयके शिथिलाचारको पोषण करनेके लिए भगवान् कुन्दकुन्दाचार्यके उस ग्रन्थको अपना हथियार बनाया है जो तिलतुष मात्र परिग्रहका भी विरोधी है और जगह जगह शिथिलताका प्रतिवाद करता है। सूत्रपाहुड़की ये गाथायें देखिए:—

णिच्चेल पाणिपत्तं उवइट्ठं परमजिणवरिंदेहिं। एक्को वि मोक्खमग्गो सेसाय अमग्गया सव्वे॥ १० ॥

अर्थात् वस्त्ररहितता और पाणिपात्रताका भगवानने उपदेश दिया है। यही एक मोक्षमार्ग है, शेष सब अमार्ग हैं।

बालग्गकोडिमत्तं परिगहगहणो ण होइ साहूणं। भुंजेइ पाणिपत्ते दिण्णंण्णं एक्कठाणंमि॥ १७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थात् बालके आगेकी नोकके भी बराबर परिग्रह साधु ग्रहण नहीं करता। वह अपने हाथरूपी पात्रमें अन्यका दिया हुआ भोजन एक स्थानमें खड़े होकर करता है। अब मिलान कीजिए कि, कहाँ तो यह कठिन आज्ञा और कहाँ वह शिथिलता कि यदि शीत आदि सहन नहीं किया जाय, लज्जा नहीं जीती जा सके तो कपड़े पहनकर अपवाद-लिङ्गधारण कर लो। मूल ग्रंथकर्ता जिसे अमार्ग या धर्मसे बाहर बतलाते हैं उसे आप अपवाद लिङ्ग कहनेकी धृष्टता कर रहे हैं। अपनी कायरता और कमजोरीको मुनियोंकी सिंहवृत्तिकी चादरके नीचे छुपाना चाहते हैं।

इस टीकासे एक बात यह भी मालूम हुई कि, कोई वसन्तकीर्ति स्वामीने इस मार्गको चलाया था। चित्तौरकी गद्दीके भट्टारकोंकी नामावलीमें वसन्तकीर्तिका नाम आता है, और उनका समय १२६४ बतलाया जाता है। मालूम नहीं, यह समय कहाँ तक ठीक है और ये श्रुतसागर सूरिके उल्लेख किये हुए ही वसन्तकीर्ति हैं या और कोई। यदि ये ही हों, तो इस मार्गका पता १३ वीं शताब्दितक तो लगता है, यद्यपि हमारा विश्वास है कि यह शिथिलाचार और भी कई शताब्दियोंसे चला आ रहा था।

आशा है, इससे हमारे पाठक समझ जावेंगे कि भट्टारकोंने अपनी रचनाओंमें अपनी शिथिलताका भी पोषण किया है और खूब किया है। अवकाशके अनुसार हम इस प्रकारके और भी प्रमाण उपस्थित करेंगे।

३ माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला।

स्वर्गीय दानवीर सेठ माणिकचन्द्जीकी इस यादगारीका काम धीरे धीरे पर सुव्यवस्थित रूपसे चल रहा है। धीरे धीरे चलनेका कारण यह है कि अभी तक इसकी ओर समाजका चित्त जितना आकर्षित होना चाहिए, उतना नहीं हुआ है और ग्रन्थमालाके फण्डमें इतनी थोड़ी रकम है कि उसके भरोसे जल्दी जल्दी और बड़े बड़े ग्रन्थोंके छपानेका प्रबन्ध नहीं किया जा सकता है। संस्कृत ग्रन्थोंकी खप भी बहुत थोड़ी होती है। जबतक धनियों और धर्मात्माओंका इसे सहारा न हो, तबतक इस कार्यमें उन्नति नहीं हो सकती। इस समय प्रत्येक ग्रन्थकी केवल ५०० प्रतियाँ छपाई जाती हैं। यदि प्रत्येक ग्रन्थकी दशदश प्रतियाँ खरीदनेवाले २० और पाँच पाँच प्रतियाँ खरीदनेवाले ४० स्थायी ग्राहक ही हमें मिल जायँ, जो यह कार्य बड़ी अच्छी तरह चलता रहे—और इसके द्वारा सैकड़ों ग्रन्थोंका उद्धार हो जाय। इसके लिए हमने कई बार प्रार्थनायें कीं; परन्तु अभी तक बहुत ही थोड़े सज्जनोंने इस ओर ध्यान दिया है। आशा है कि दशलक्षण पर्वके दिनोंमें हमारे पाठक इस विषयमें अवश्य ही कुछ न कुछ प्रयत्न करेंगे। यह कहनेकी तो आवश्यकता ही नहीं है कि इस मालाके तमाम ग्रंथ केवल लागतके मूल्य पर बेचे जाते हैं।

लघीयस्त्रयादिसंग्रह, सागरधर्मामृत सटीक, विक्रान्तकौरवनाटक, पार्श्वनाथचरितकाव्य, मैथिलीकल्याण नाटक, आराधनासार सटीक और जिनदत्तचरित्र ये सात ग्रन्थ तो पहले छप चुके थे। नीचे लिखे चार ग्रंथ अभी हाल ही छपकर तैयार हुए हैं।

८ प्रद्युम्नचरित। यह बिलकुल अप्रसिद्ध ग्रन्थ है। सुप्रसिद्ध राजा भोजके पिता सिन्धुराजके दरबारके सभ्य और महामहत्तम 'पप्पट' नामके कोई धनिक थे। उनके गुरु श्रीमहासेन नामक कवि इसके रचयिता हैं। उपलब्ध प्रद्युम्नचरितोंमेंसे यह सबसे प्रौढ और सुन्दर है। यह केवल चरित ही नहीं उच्चश्रेणीका एक काव्य है। इसमें चौदहसर्ग है। २३० पृष्ठोंमें यह समाप्त हुआ है। मूल्य इसका केवल आठ आने है।

९ चारित्रसार। गंगवंशीय राजा राचमल्लके सुप्रसिद्ध मंत्री और सेनापति चामुण्डरायने इस ग्रन्थकी रचना की है। ये वही चामुण्डराय हैं जिन्होंने बाहुबलि स्वामीकी सुप्रसिद्ध मूर्तिकी प्रतिष्ठा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कराई थी और गोम्मटसारके कर्ताने जिनकी जगह जगह प्रशंसा की है। इस ग्रन्थमें श्रावकोंके और मुनियोंके दोनोंके आचारका वर्णन है। ग्रन्थ गद्यमें है। पृष्ठसंख्या १०० । मूल्य छह आने।

१० प्रमाणनिर्णय । एकीभावस्तोत्रके कर्ता प्रसिद्ध नैयायिक वादिराजसूरि इस ग्रन्थके कर्ता हैं। यह ग्रन्थ अभीतक दुर्लभ और अप्रसिद्ध था। न्यायशास्त्रका प्रारंभिक ग्रन्थ है। पाठ्यग्रन्थ होनेके योग्य है। पृष्ठ संख्या ७० । मूल्य पाँच आने।

११ त्रैलोक्यसार सटीक । आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीका यह ग्रन्थ मूल, संस्कृतछाया और आचार्य माधवचन्द्रकी संस्कृत-टीकासहित छप रहा है। इस ग्रन्थका अधिक परिचय देना व्यर्थ है। करणानुयोगका यह बहुत ही प्रसिद्ध ग्रन्थ है। पृष्ठसंख्या लगभग ४०० होगी और मूल्य लगभग सवा रुपया।

नीचे लिखे ग्रन्थोंके छपानेका प्रबन्ध हो रहा है:-

१२ आचारसार । यह यत्याचारका ग्रन्थ है। इसके कर्ता वीरनन्दि नामके आचार्य हैं, जो १२ वीं शताब्दिके लगभग हुए हैं। चन्द्रप्रभचरितके कर्तासे ये पृथक् हैं। यह ग्रन्थ अतिशय दुर्लभ और अप्रसिद्ध है। चरित्रसारके ही बराबर होगा।

१३ नयचक्र । यह देवसेन नामक आचार्यका बनाया हुआ प्राकृत ग्रन्थ है, संस्कृत छाया और उत्थानिकाके सहित छपेगा। यह बहुत प्राचीन ग्रन्थ है। विद्यानन्दिस्वामीने अपने श्लोकवार्तिकालंकारमें इसकी गाथायें उद्धृत की हैं और इनका उल्लेख किया है। नयोंका स्वरूप समझनेके लिए यह बहुत ही महत्त्वकी चीज है।

१४ तत्त्वानुशासनादिसंग्रह । इसमें नीचे लिखे कई छोटे छोटे ग्रन्थोंका संग्रह रहेगा। प्रायः सभी ग्रन्थ अपूर्व और दुर्लभ रहेंगे। पहले ४ ग्रन्थ संस्कृत और शेष सब प्राकृत हैं।

१ तत्वानुशासन—आचार्य नागसेनकृत। बहुत ही महत्त्वका ग्रन्थ है।

२ इष्टोपदेश—आचार्य पूज्यपादस्वामीकृत। मूल और पण्डितप्रवर आशाधरकृत संस्कृत टीका।

३ पात्रकेसरीस्तोत्र—आचार्य विद्यानन्दिकृत।

४ नीतिसार (समयभूषण)—आचार्य इन्द्रनन्दिकृत।

५ योगसार—योगचन्द्राचार्यकृत।

६ तत्त्वसार—आचार्य देवसेनकृत।

७ ज्ञानसार— " "

८ नवति प्रायश्चित्त—अज्ञातनामाकृत।

९ मोक्षपञ्चाशिका— " "

जो ग्रन्थ छप रहे हैं, उनमें सहायताकी आवश्यकता है। जो महाशय सहायता देंगे उनका नाम ग्रन्थोंके ऊपर छपाया जायगा। प्रत्येक ग्रन्थकी कमसे कम १२५ प्रति धर्मार्थ दान करनेके लिए जो महाशय लेंगे उनका चित्र पुस्तकके साथमें लगवा दिया जायगा। पर्वके दिनोंमें पुस्तकदान करनेके समान कोई दान नहीं है।

४ महात्मा गाँधीकी पोशाक।

इस समय देशभक्त महात्मा मोहनदास करमचन्द गाँधीका नाम देशव्यापी हो रहा है, अतएव हमारे पाठक भी उन्हें अवश्य जानते होंगे। जबसे चम्पारनकी प्रजाके कष्टोंको—जो उसे वहाँके नीलव्यवसायी गोरोंके द्वारा सहने पड़ते हैं—दूर करनेके लिए वे कार्यक्षेत्रमें उपस्थित हुए हैं तबसे गोरोंकी ओरसे उनपर तरह तरहके आक्षेप किये जा रहे हैं। अभी थोड़े दिन पहले मि० अरविनने पायनियरमें एक लेख प्रकाशित कराया था और उसमें गाँधीजीकी बहुतही सादी, कम कीमती, और उनके प्रान्तकी परंपरागत पोशाककी—जिसे देखकर कोई यह अनुमान नहीं कर सकता कि वे देशके एक बड़े भारी नेता हैं—दिल्लगी उड़ाई थी। महात्मा गाँधीने उक्त लेखका जो उत्तर दिया है, उसके कुछ अंशोंको हम यहाँ इस लिए उद्धृत करते हैं कि उनसे हमारे समाजके विदेशी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वेषभूषाभक्त भाई कुछ शिक्षा ग्रहण करेंगे। "पश्चिमीय सभ्यताके सब प्रकारके सौन्दर्य पर अच्छी तरह विचार करनेके बाद मैं अपने जातीय लिबासका ओर पोशाकका पक्षपाती बना हूँ। मैं इस समय चम्पारनमें जिस पोशाकको पहन रहा हूँ, भारतमें रहते समय मैं सदा यही पोशाक पहनता रहा हूं। काठियावाड़के बाहरकी अदालतोंमें तथा अन्यत्र जानेके समय अवश्य ही मैंने दो चार बार (सो भी बहुत समय पहले) मैंने सर्वसाधारणकी भाँति अधसाहवी पोशाक पहनी थी। आजसे २१ वर्ष पहले ठीक इसी पोशाकमें मैं काठियावाडकी अदालतोंमें हाज़िर होता था। अब तक मैंने केवल एक परिवर्तन किया है। वह यह कि अब मैं स्वयं कपड़े बुनता और खेती करता हूँ। मैंने स्वदेशीका व्रत ग्रहण किया है। अपने कपड़ोंको मैं स्वयं सीं लेता हूँ या मेरे साथी सीं देते हैं। मि० अरविन कहते हैं कि मैं केवल एक विलक्षणता दिखलानेके लिए चम्पारन प्रजाके सामने समयोपयोगी सादी पोशाकमें निकलता हूँ परन्तु यह ठीक नहीं है। असल बात यह है कि मैं भारतवासियोंकी प्रकृतिके अनुसार जातीय पोशाक पहनता हूँ। मेरी रायमें **विलायती पोशाककी नकल करना हमारी अवनतिका, हीनताका और दुर्बलताका परिचायक है**। हमारे समान सीधी सादी, कौशलसम्पन्न और सस्ती पोशाक पृथिवीकी और किसी भी जातिकी नहीं। इससे स्वास्थ्य-विज्ञानका उद्देश्य सिद्ध होता है। अँगरेज लोग यदि व्यर्थके अहंकार और अमूलक 'प्रेष्टिज' की माया परित्याग कर सकते, तो उन्होंने बहुत दिन पहले ही भारतीय पहनाव ओढ़ावका व्यवहार करना शुरू कर दिया होता। इस विषयमें मैं इतना और कहना चाहता हूँ कि मैं चम्पारनमें सब जगह नंगे पैर नहीं घूमता। मैंने पवित्रताके खयालसे जूता पहनना छोड़ दिया है तथा उससे अनुभव किया है कि यदि हो सके तो जूता न पहनना ही उचित है। क्योंकि यही मनुष्यप्रकृतिके लिए सहज और स्वास्थ्यप्रद है।" जिस समय सारा देश विलायती चालढाल, वेश-भूषाके आदिकी प्रबल बहियामें बहा जा रहा है, उस समय क्या महात्मा गाँधीके उक्त विचार कुछ प्रभाव डालनेमें समर्थ होंगे ?

५ दिगम्बरोंके मन्दिरमें श्वेताम्बर और श्वेताम्बरोंके मन्दिरमें दिगम्बर प्रतिमायें।

गवालियर राज्यके शिवपुरकलाँ नामक स्थानसे हमारे पास श्रीयुत गंभीरमलजी अजमेरानें एक पत्र भेजा है जिसका सारांश यह है—" यहाँ दिगम्वर सम्प्रदायके दो मन्दिर है—एक तेरापंथी और दूसरा बीसपंथी। श्वेतांबर सम्प्रदायके भी दो मन्दिर हैं जिनमेंसे एक किलेमें है। इस किलेके श्वेताम्बरी मन्दिरमें दिगम्वरियोंकी भी ७–८ प्रतिमायें है जिनके पूजन प्रक्षाल आदिका प्रबन्ध श्वेताम्बरोंके अधिकारमें है। दिगम्बरी भाई वहाँ दर्शन पूजन आदिके लिए नहीं जाते। इसी प्रकार दिगम्बरी बीसपंथी मन्दिरमें श्वेताम्बरोंकी भी ७–८ प्रतिमायें है और उनके पूजन प्रक्षालको श्वेताम्बरी-भी नहीं आते। हाँ, श्वेताम्बरी भाई भादों सुदी १० को तेरापंथी और बीसपंथी दोनों मंदिरोंमें धूप खेनेके लिए आया करते हैं। ये प्रतिमायें दोनोंके मंदिरोंमें कोई सौ डेड़ सौ वर्षसे इसी तरह चली आई हैं। इन प्रतिमाओंको बदल लेनेके विषयमें एकबार भट्टारकजी और जतीजीके बीचमें चर्चा हुई थी। उस समय यह तय हुआ था कि तुम्हारी तुम ले लो और हमारी हमको दे दो। परन्तु एक पक्ष कहने लगा कि पहले तुम हमारी प्रतिमा हमारे मन्दिरमें रख जाओ और फिर अपनी ले जाओ। दूसरा पक्ष भी इसीका अनुवाद करने लगा। इस तरह मैं पहले और मैं पहलेमें ही यह बात रह गई। इसके बाद यह तय हुआ कि तुम यहाँसे उठाओ और हम वहाँसे उठावें; परन्तु फिर भी इसी बात पर झगड़ा हुआ कि पहले तुम रख जाओ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पीछे हम रक्खेंगे। इस पिछली बातको हुए भी १५–२० वर्ष हो गये। अभी तक प्रतिमायें जहाँकी तहाँ हैं। पहले दिगम्बरी प्रतिवर्ष कुँआरके महीनेमें गाजेबाजेके साथ सरे बाजार होते हुए किलेके मन्दिरमें पूजन करनेको जाते थे; परन्तु अब दो वर्षसे उनका यह पूजनको जाना बन्द हो गया है। क्यों कि श्वेताम्बरी भाईयोंने कहा कि जिस तरह तुम हमारे यहाँके मन्दिरमें प्रति वर्ष पूजन करने आते हो उसी तरह हमको भी एक दिन आने दिया करो। यदि हमको न आने दोगे तो हम भी न मन्दिरकी चाबी देंगे ओर न पूजन करने देंगे। यह बात दिगम्बरियोंको पसन्द नहीं आई। अब वे न पूजन करने जाते हैं और न उन्हें आने देते हैं। हमारी समझमें दोनों तरफवालोंको मिलकर यह झगड़ा तय कर डालना चाहिए और अपनी अपनी प्रतिमायें अपने अपने मन्दिरोंमें रख लेना चाहिए। यदि ऐसा न किया जायगा तो आगे मन्दिरोंकी आमदनी और सम्पत्ति आदिके सम्बन्धमें झगड़ा हो सकता है।" उक्त भाई साहब एक बातकी ओर और भी ध्यान दिलाते हैं। शिवपुरसे १४ मीलपर दातारदा नामका गाँव है। वहाँ एक मन्दिर है जिसकी देखरेख करनेवाला या पूजन प्रक्षाल करनेवाला कोई नहीं है। वहाँके जमींदार कहते हैं कि इस मन्दिरकी प्रतिमायें सरकारमें सूचना करके ले जाओ। परन्तु यहाँके (शिवपुरके) भाई इस बात पर ध्यान नहीं देते।"

शिवपुरके समान और भी कई स्थानोंमें यह बात देखी गई है कि दिगम्बरी मन्दिरोंमें श्वेताम्बरी प्रतिमायें और श्वेताम्बरी मन्दिरोंमें दिगम्बरी प्रतिमायें रहती थीं। कई स्थानोंमें तो अब भी हैं। इससे यह अनुमान होता है कि दिगम्बरी और श्वेताम्बरी भाइयोंमें इस समय–इस शिक्षा और सभ्यताके दिनोंमें–जितना वैर विरोध बढ़ गया है, उतना सौ डेढ़ सौ वर्ष पहले नहीं था। उस समय दोनों हिल मिलकर रहते थे और धार्मिक बातोंमें भी एक दूसरेके बाधक नहीं होते थे।

६ भट्टारकोंकी लीला।

तेरहपन्थके साहित्यने भट्टारकोंके शासनकी जड़को हिला दिया है। पढ़े लिखे लोगोंमें और जैनधर्मका थोड़ासा भी स्वरूप समझनेवालोंमें अब उनकी कोई 'पूछ' नहीं है; फिर भी जिन प्रान्तोंमें धार्मिक ज्ञानकी कमी है और भाषाकी भिन्नताके कारण तेरहपंथी भाषासहित्यका प्रचार नहीं हुआ है, ये लोग खूब पुजते हैं और लोगोंके भोलेपनका लाभ उठाकर मनमाना अत्याचार करते हैं। गुजरात, बरार, महाराष्ट्र और कर्नाटक प्रान्त इनके अड्डे हैं। इन लोगोंके पास लाखों रुपयोंकी सम्पत्ति है, घोड़ा–गाड़ी, रथ–पालकी, नौकर चाकर, चोपदार छड़ीदार, आदि सारे सजधजके सामान हैं। रेशम और जरीके वस्त्र, सोने चाँदीके पात्र, इत्र, फुलेल, आदि सभी भोगोपभोगके पदार्थ इनके सामने उपस्थित रहते हैं। दश पन्द्रह रुपया रोजसे कमका खर्च शायद ही किसी भट्टारकका होगा। ये एक तरहके राजा हैं। अपनी रियासतके प्रत्येक श्रावकसे ये वार्षिक कर लेते हैं और भोजनके समय 'गहरी' दक्षिणा लेते हैं। जो नहीं देता है उसके सिर हो जाते हैं, भोजन नहीं करते हैं, और स्थानादिकी अनुकूलता हुई तो उससे डंडे मारकर भी वसूल कर लेते हैं! इनके नौकर चाकर और छड़ीदार पुलिसके सिपाहियोंसे किसी बातमें कम नहीं। इनके कर भी कई तरहके हैं। दक्षिणके कई भट्टारक श्रावकोंको विधवाओंके साथ व्याह करनेकी और विवाहसम्बन्ध रद्द करनेकी (तलाककी) आज्ञा दिया करते हैं और इस कार्यके लिए जो टैक्स मुकर्रर है उससे हजारों रुपयोंकी प्राप्ति करते हैं। पंचायती कामकाजोंमें भी इनका दखल रहता है। उनके बड़े बड़े फरमान निकला करते है और उनके मारे श्रावकगण थर थर काँपते हैं। ये प्रतिवर्ष किसी चुने हुए स्थानमें चातुर्मास किया करते हैं और इस समय इनके खूब गहरे हो जाते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ये अपनेको परम निर्ग्रन्थगुरुओंके उत्तराधिकारी समझते हैं और अपनी पूजा राजाओं और ऋषियोंके तुल्य कराते हैं। जब ये भोजन करनेके लिए पूरे साज–सरंजामके साथ श्रावकके घर जाते हैं तब आगे आगे बारोठ दुहाई देता चलता है—'दिल्ली-गाद्दी, जैनके राजा श्री १००८ भट्टारक विजयकीर्तिजी महाराज' आदि। भोजनशालाके द्वारपर पहुँचकर दूध, दही, इत्रमिश्रित जल आदिसे ये अपने चरण धुलवाते हैं, और फिर भीतर जाकर कुर्सी पर विराजमान हो जाते हैं। इसी समय इनके शिष्योंमेंसे कोई पण्डित—'ओंह्रीं श्रीभट्टारक' विजयकीर्तिदेवाय जलं निर्विपामीति स्वाहा' आदि पाठ बोलकर श्राविकाओंसे अष्ट द्रव्योंद्वारा पूजा करवाता है।

भट्टारकोंकी ये और इस तरहकी और भी अगणित लीलायें हैं, जिन्हें सुनकर और देखकर बड़ा ही दुःख होता है। जिस सम्प्रदायमें तिल-तुष मात्र परिग्रह रखनेको भी अक्षम्य अपराध बतलाया था, उसीके गुरु आज इस अवस्थाको पहुँच गये हैं और फिर भी पूजे जाते हैं, जैन-धर्मकी इससे अधिक दुर्दशा और क्या हो सकती है? हम देखते हैं कि जैनसमाजके विद्वानोंका, धनियोंका और धर्म धर्मकी पुकार मचानेवालोंका इस ओर जरा भी ध्यान नहीं है। उन्हें अपने इन गुजरात, विहार आदि प्रान्तोंके भोले भाइयोंकी अन्धश्रद्धा और मूर्खता पर जरा भी तरस नहीं आता है। उन्होंने तेरहपन्थके उस 'मिशन' के कार्यको स्थगित कर दिया है जिसने सारे हिन्दी-भाषाभाषी प्रान्तोंको भट्टारकोंकी चुंगलमेंसे सदाके लिए मुक्त कर दिया है। उस 'मिशन'को अब फिरसे सचेत करना चाहिए और इन प्रान्तोंमें शिक्षाप्रचारके द्वारा, उपदेशोंके द्वारा, धर्मके सच्चे स्वरूपको प्रतिपादन करनेवाले ग्रन्थोंके द्वारा, तथा और भी जो जो उपाय योग्य हों उनके द्वारा लोगोंकी अन्धश्रद्धाको दूर करना चाहिए। हमारी समझमें दूसरे धर्मवालोंको शास्त्रार्थ आदिके द्वारा जैन बनानेका यत्न करना उतना लाभकारी नहीं जितना अपने इन भाइयोंको सच्चे देवगुरुका श्रद्धानी बनाना लाभकारी है। ये बेचारे नाम मात्रके 'जैन' हैं; ये नहीं जानते कि जैनधर्ममें देव और गुरुका स्वरूप कैसा माना है। इसी कारण ये भट्टारकोंकी शिकार बन रहे हैं। भट्टारकोंकी वर्तमान अवस्था भी दिगम्बर जैनधर्मके लिए बड़े भारी कलंककी बात है। परन्तु जब तक श्रावकोंकी अवस्था नहीं सुधरी है, तब तक इनके सुधरनेकी आशा करना व्यर्थ है।

७ जैन भ्रातृसमाज।

इटावेके बाबू चन्द्रसेनजी वैद्य और उनके कुछ मित्रोंने 'जैनभ्रातृसमाज' नामकी एक एक नूतन संस्था स्थापित की है। जैनधर्मको पालनेवाली तमाम जातियोंमें परस्पर रोटी-बेटीव्यवहार होना उचित है, इस विषयका आन्दोलन करनेके लिए उक्त संस्थाने जन्म लिया है। जहाँ तक हम जानते हैं, इस विषयमें जैनसमाजके प्रायः सभी विद्वान्–पुराने और नये दोनों दलके–सहमत हैं। आदिपुराण आदि पुराण-ग्रंथोंका मत भी–जो इस विषयके प्रधान प्रतिपादक हैं–इसके प्रतिकूल नहीं हैं। इस समय जैनोंकी जितनी जातियाँ है, वे सब प्रायः वैश्यवर्णकी हैं। एक दो जातियाँ ऐसी हैं जिनके विषयमें अनुमान होता है कि वे जैनधर्म धारण करनेके पहले शूद्र रही होंगी, परन्तु इस समय उनके आचरण और व्यापार आदि वैश्योंके ही समान हैं, अतएव उन्हें वैश्य ही गिनना चाहिए। ऐसी दशामें आदिपुराण इन सबके पारस्परिक विवाहादि-व्यवहारका कभी विरोधी नहीं हो सकता। क्योंकि वह तो आज्ञा देता है कि ब्राह्मण चारों वर्णकी कन्याओंके साथ, क्षत्रिय क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र कन्याओंके साथ, और वैश्य वैश्य-शूद्रकन्याओंके साथ विवाह कर सकता है। कमसे कम इस बातका विरोधी तो कोई भी पुराना नया जैन शास्त्र नहीं है कि खण्डेलवाल अग्रवालके साथ या परवार पद्मावती पुरवारके साथ विवाहसम्बन्ध न करे। गरज यह कि हमारी धार्मिक आज्ञायें तो इस प्रथाके अनुकूल हैं; यदि कोई प्रतिकूलता है तो गतानुगतिकताकी है। संस्थाको इसीके ऊपर विजय प्राप्त करनी होगी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और इसका सबसे अच्छा उपाय आन्दोलन है। इस विषयके लेख लिखवाना, उन्हें समाचारपत्रोंमें प्रकाशित कराना, छोटे छोटे ट्रेक्टोंके रूपमें बहुलताके साथ बाँटना, जगह जगह सभा सुसाइटियोंमें व्याख्यान दिलवाना, पंचायतियोंको और उनके मुखियोंको समझाकर अपनी ओर करना, सम्मतियोंका संग्रह करना, और कमसे कम पाँच हजार सम्मतियोंके एकत्रित हो जाने पर इस तरहके दश बीस विवाहोंको उदाहरणके लिए करा देना, यही अथवा इसीसे मिलती जुलती पद्धति आन्दोलनकी होनी चाहिए। बाबू चन्द्रसेनजी बड़े उद्योगी और परिश्रमी पुरुष हैं। हमें आशा है कि वे अपनी इस नूतन संस्थाको एक काम करनेवाली संस्थाके रूपमें चलावेंगे, नाम करनेवाली अन्यसंस्थाओंके रूपमें नहीं। जैनसमाजके नवयुवकोंको—जिनके रक्तमें काम करनेका उत्साह है—इस कार्यमें योग देना चाहिए और इसके उद्देश्योंका घर घर प्रचार करना चाहिए।

८ पं० अर्जुनलालजी सेठीका कष्ट।

अपना सर्वस्व लगाकर जैनसमाजकी सेवा करनेवाले पं० अर्जुनलालजी सेठी बी. ए. के दुःखोंका अन्त अब तक नहीं आया। तीन वर्ष होनेको आये वे अभीतक बिना किसी अपराधके जयपुरकी जेलमें पड़े हुए अपने बहुमूल्य जीवनको व्यर्थ व्यतीत कर रहे हैं। सुना है, कुछ समयसे उनके कष्ट और भी अधिक बढ़ गये हैं। राजकर्मचारियोंकी वक्रदृष्टिके कारण उन्हें जो थोड़े बहुत सुभीते मिले थे, वे भी अब नहीं रहे हैं। उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया है और यदि वे शीघ्र न छोड़े जायँगे तो डर है कि उनका मस्तक भी न बिगड़ जाय! उनकी मानसिक अवस्था पहलेकी अपेक्षा बहुत ही खराब है। मालूम नहीं सरकारको इन बातोंकी कुछ खबर है या नहीं।

हमें यह कहनेमें कुछ भी संकोच नहीं है कि श्रीयुत सेठीजीके मामलेका उत्तरदायित्व यद्यपि जयपुर राज्यपर है, परन्तु यह कह देनेसे भारत गवर्नमेंट निर्दोष नहीं ठहर सकती। यद्यपि इसमें उसका कोई प्रत्यक्ष हाथ नहीं है; परन्तु वास्तवमें परोक्ष रूपसे वही इसकी विधाता है। यह कितना बड़ा अन्याय है कि एक व्यक्तिकी स्वाधीनता हरण कर ली जाती है, वह वर्षोंतक जेलमें सड़ाया जाता है, परन्तु उसे यह नहीं बतलाया जाता कि उसका अपराध क्या है। यदि सेठीजी दोषी हैं, उन्होंने कोई अपराध किया है, तो क्यों नहीं उन पर मुकद्दमा चलाया जाता और क्यों वे दोषी सिद्ध नहीं किये जाते। क्या इन तीन वर्षोंमें भी सरकार उनके विरुद्ध प्रमाणोंको संग्रह न कर सकी? हमारा विश्वास है कि सेठीजी निर्दोष हैं, उन्होंने कोई अपराध नहीं किया, वे राजकर्मचारियोंके किसी बहुत बड़े भ्रमके कारण ही संकट भोग रहे हैं।

जैनसमाजको चाहिए कि वह अपने इस निःस्वार्थ सेवकको भूल न जाय। भारतमंत्री लार्ड मांटेगू भारतमें आ रहे हैं। श्रीमती एनी बीसेण्ट, उनके साथी और मि० शौकत अली आदि राजनीतिक नजरबन्द लोग छोड़े जा रहे हैं, और भी बहुतसे राजनीतिक कैदी छोड़े जायँगे, ऐसी खबरें सुन पड़ रही हैं। ऐसे समयमें जैनसमाजको सेठीजीके विषयमें फिर आन्दोलन करना चाहिए और एक डेप्यूटेशन लेकर लार्ड मांटेगूसे मिलना चाहिए। वे उदार राजनीतिज्ञ सुने जाते हैं। कोई कारण नहीं कि वे हमारी उचित प्रार्थना पर ध्यान न दें, और सेठीजीको इस अन्यायसे मुक्त करनेके लिए भारत सरकारसे सिफारिश न करें।

हम अपने समस्त देशभक्त नेताओंका ध्यान भी इस ओर आकर्षित करते हैं। उन्हें श्रीमती बीसेण्ट और उनके साथियोंको ही बन्धमुक्त कराके निश्चिन्त न हो जाना चाहिए। क्या सेठीजी और उन्हींके समान और भी जो सैकड़ों देशसेवक बिना किसी अपराधके कैद हैं उनकी स्वाधीनताका कुछ मूल्य ही नहीं है? क्या हमारे आन्दोलनोंमें भी गोरे रंगको ही अधिक प्रतिष्ठा दी जायगी? देशके प्रत्येक व्यक्तिकी—छोटे बड़ेकी स्वाधीनताकी रक्षा करना हमारा धर्म होना चाहिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्वार्थसिद्धि अर्थात् तत्वार्थसूत्रकी आचार्य पूज्यपाद कृत संस्कृत टीका बहुत दिनोंसे मिलती नहीं थी। अब यह फिरसे छपाई गई है। अबकी बार कपड़ेकी जिल्द बँधाई गई है। मूल्य दो रुपया। आत्मप्रबोध–श्रीकुमारनामक कविका बनाया हुआ एक अप्रसिद्ध ग्रन्थ भाषाटीका सहित छपाया गया है। आध्यात्मिक ग्रन्थ है। मूल्य बारह आने।

मैनेजर, जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय, हीराबाग, बम्बई।

साहित्य पत्रिका

प्रतिभा।

(संपादक, श्रीयुत पं० ज्वालादत्त शर्मा)

प्रतिभाका छट्ठा अङ्क शीघ्र प्रकाशित होनेवाला है। यह प्रति अँगरेजी मासके पहले सप्ताहमें प्रकाशित होती है। यदि आप साहित्यसंबन्धी लेख पढ़ना चाहते हैं, तो प्रतिभाके ग्राहक बनिये। प्रतिभामें रसमयी कवितायें और शिक्षाप्रद पर चुभती हुई गल्पें भी प्रकाशित होती हैं। वार्षिक मूल्य २) है। हम इसके विषयमें अधिक न कहकर हिन्दीकी सर्वश्रेष्ठ पत्रिका सरस्वती-की सम्मति नीचे उद्धृत किये देते हैं:—

"प्रतिभा—यह एक नई मासिक पत्रिका है। मुरादाबादके लक्ष्मी-नारायण प्रेससे निकली है। हिन्दीके प्रसिद्ध लेखक पं० ज्वालादत्तजी शर्मा इसके संपादक हैं। सरस्वतीके पाठक आपसे खूब परिचित हैं। वे जानते होंगे कि शर्माजी सरस, बामुहाविरा और साथ ही प्रौढ भाषा लिखनेमें कितने पटु हैं। ऐसे सुयोग्य संपादकके तत्वावधानमें आशा है प्रतिभाका उत्तरोत्तर विकास होगा।

इसका पहला अङ्क अप्रैल १९१० में प्रकाशित हुआ है। उसमें छोटे बड़े १० लेख और ६ कवितायें हैं। साहित्य, शिक्षा, उद्योग धन्धा, विज्ञान, जीवनचरित और आख्यायिका इतने विषयों पर इसमें लेख प्रकाशित हुए हैं। लेखोंके संबन्धमें सामयिकता और रोचकताका बहुत ध्यान रक्खा गया है।"

पत्रव्यवहार करनेका पता—

मैनेजर 'प्रतिभा' लक्ष्मीनारायण प्रेस,

मुरादाबाद।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देशी, पवित्र, स्वादिष्ट, पाचक दवाइयोंका अपूर्व संग्रह

दिलबहार चूरन

(खाना शीघ्र हजम करने व भूख बढ़ाने वाला)

किसी भी उत्तम चूर्णमें तीन गुण होना आवश्यक है (१) स्वादिष्ट यानी जायकेदार (२) पाचन करनेवाला और (३) भूख बढ़ानेवाला। हर्ष है कि इस चूर्णमें ये तीनों गुण भरपूर हैं। बहुतसे लोगोंको रोज़ चूरन खानेकी आदत होती है उनके लिये भी यह बड़े कामकी चीज है। इसकी खुराक १॥ माशेकी है, परन्तु जायकेदार होनेसे अगर थोड़ा ज्यादा भी खा लिया जावे तो गर्मी वगैरह कोई हानि नहीं करता है। क्योंकि चूर्ण होनेपर भी हमने इसमें किसी तीक्ष्ण चीजका प्रयोग नहीं किया है। सब दवाइयां मादिल गुणवाली हैं, इसलिये बीमार आदमी भी खुशीसे खा सकते हैं। पवित्र औषधियोंके सम्मेलनके कारण सभी सम्प्रदायवाले बेखटके खा सकते हैं। हम बहुत बढ़कर बात नहीं कहना चाहते हैं। इसमें स्वादिष्ट, खाना जल्द हजम करना, भूख बढ़ाना तीन विशेष गुण हैं, उनके लिये हम दावेके साथ कहते हैं कि इन बातोंमें आपको कभी धोखा नहीं होगा तिसपर भी—

आपके विश्वासके लिये—

हमने इसके एक २ तोलेके नमूनेके पैकेट बनाकर रक्खे हैं। यदि आप इस चूर्णकी परीक्षा करना और इससे लाभ उठाना चाहते हैं तो एक कार्ड भेजकर बिना डांक खर्चके एक पैकेट मंगाकर परीक्षा कर लीजिये, फिर आपका मन भरे तो पूरी शीशी मंगाकर लाभ उठाइये। बस इस से अधिक हम और कुछ भी नहीं कह सकते हैं। फी शीशी चार औंस (करीब आध पाव) वाली की कीमत १) डांक खर्च ।), तीन शीशी २।। डाक खर्च ।) आना।

मिलने का पता:—

चन्द्रसेन जैन वैद्य,

चन्द्राश्रम, इटावह यू. पी.।

[इस अङ्कके रवाना होनेकी तारीख—२८-९-१७ ई०]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हमारे छपाये हुए नये ग्रन्थ ।

वृन्दावन कृत चौबीसी पाठ ।

यह ग्रन्थ बम्बईके सुन्दर टाइपमें अच्छे कागजों पर फिरसे छपाया गया है। छपा भी शुद्धतापूर्वक है। जिन्हें और कहींकी छपाई पसन्द नहीं उन्हें अब इस बम्बईके छपे हुए विधानको या पूजा पाठको अवश्य मँगा लेना चाहिए। मूल्य १=)

जैनपदसंग्रह ।

कविवर दौलतराम कृत पहला भाग और भागचन्दजी कृत दूसरा भाग पद-संग्रह फिरसे छपाये गये हैं। बहुत दिनोंसे ये मिलते नहीं थे। मूल्य पहले भागका ।≈) दूसरेका ।)।

बुधजन सतसई ।

अर्थात् बुधजनजीके उपदेश, नीति, सुभाषित आदि सम्बन्धी ७०० दोहे। यह पुस्तक दुबारा छपाई गई है। मूल्य छह आने।

जैनबालबोधकके दोनों भाग ।

श्रीयुत पं० पन्नालालजीके ये दोनों भाग जैनपाठशालाओंमें बहुत ही प्रचलित रहे हैं। बहुत दिनोंसे समाप्त हो गये थे, अब फिरसे छपाये गये हैं। पहले भागसे असंयुक्त और संयुक्त अक्षरोंके शब्दोंका शुद्ध शुद्ध लिखना पढ़ना अच्छी तरह आ जाता है। दूसरे भागमें धार्मिक कथाओंके और धर्मतत्त्वोंके अच्छे अच्छे पाठ हैं। मूल्य पहले भागका ।) और दूसरे भागका ।।)।

दर्शनसार ।

आचार्य देवसेनसूरिका यह ऐतिहासिक ग्रन्थ मूल, संस्कृतच्छाया, हिन्दी अर्थ और विस्तृत विवेचन सहित हाल ही छपकर हुआ तैयार है। इसका सम्पादन जैनहितैषीके सम्पादकने किया है। इसमें बौद्ध, आजीवक, श्वेताम्बर, काष्ठासंघ, द्राविडसंघ, यापनीयसंघ, माथुरसंघ आदि अनेक धर्मसम्प्रदायोंका इतिहास और उनकी मानतायें बतलाई हैं। विवेचन बहुत ही परिश्रमसे लिखा गया है। प्रत्येक इतिहासप्रेमीको यह पुस्तक मँगाकर पढ़ना चाहिए। मूल्य ।)

रत्नकरण्डश्रावकाचार पद्यानुवाद ।

पं० गिरिधर शर्माकृत। खड़ी बोलीके सुन्दर पद्योंमें रत्नकरण्डका सुन्दर सरल अनुवाद। जैनपाठशालाओंमें पढ़ाये जाने योग्य। मूल्य =)

माणिकचन्द ग्रन्थमालाके ग्रन्थ ।

सब ग्रन्थ ठीक लागतके मूल्य पर बेचे जाते हैं। सबसे सस्ते हैं। प्रत्येक मंदिरमें इनकी एक एक प्रति अवश्य रखना चाहिए और संस्कृतके पण्डितोंको वितरण करना चाहिए:—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१ सागारधर्मामृत सटीक आशाधर कृत ।≡)
२ लघीयस्त्रयादिसंग्रह अकलंकभट्टकृत ।=)
३ पार्श्वनाथचरित वादिराजसूरि कृत ॥)
४ विक्रान्त कौरवीय नाटक हस्तिमल्ल कृत ।=)
५ मैथिल परिणय नाटक „ ।)
६ प्रद्युम्नचरित महासेनाचार्यकृत ॥)
७ आराधनासार सटीक देवसेनाचार्य कृत ।)॥
८ जिनदत्तचरित्र, गुणभद्र कृत ।)॥
९ चारित्रसार चामुण्डराय कृत ।=)
१० प्रमाणनिर्णय वादिराजसूरि कृत ।-)

बच्चोंके सुधारनेके उपाय ।

इसमें बच्चोंकी आदतें सुधारने, उन्हें सदाचारी और विनयशील बनाने, बुरेसे बुरे स्वभावके लड़कोंको अच्छे बनाने, उपद्रवियों और चिड़चिड़ोंको शान्त शिष्ट बनानेके अमोघ उपाय बतलाये गये हैं । प्रत्येक माता पिताको इसे पढ़ डालना चाहिए । इसके अनुसार चलनेसे उनका घर स्वर्ग बन जायगा । मू० ॥)

कोलम्बस ।

अमेरिका खण्डका पता लगानेवाले असम साहसी कर्मवीर कोलम्बसका आश्चर्यजनक और शिक्षाप्रद जीवनचरित । अभी हाल ही छपकर तैयार हुआ है । नवयुवाओंको अवश्य पढ़ना चाहिए । मूल्य ।॥)

मानवजीवन ।

सदाचार और चरित्रसम्बन्धी अनेक अँगरेजी, मराठी, गुजराती, बंगला पुस्तकोंके आधारसे यह ग्रन्थ रचा गया है । सदाचारकी शिक्षा देनेके लिए और सच्चे मनुष्योंकी सृष्टि करनेके लिए यह ग्रन्थ बहुत अच्छा है । इस ग्रन्थके विना कोई घर, कोई पुस्तकालय, और कोई मन्दिर न रहना चाहिए । भाषा बहुत ही सरल और स्पष्ट है । मूल्य १।=) कपड़ेकी जिल्दका १॥।)।

उस पार । प्रसिद्ध नाटककार द्विजेन्द्रलालरायके एक सामाजिक नाटकका अनुवाद । स्टेजपर खेलनेलायक अपूर्व नाटक है । हिन्दीमें इसकी जोड़का एक भी नाटक नहीं है । प्रारंभमें एक विस्तृत भूमिकाके द्वारा इस नाटकके प्रत्येक पात्रके चरित्रकी खूबियां दिखलाई गई हैं । मूल्य सवा रुपया ।

ग्रन्थपरीक्षा प्रथम भाग और द्वितीय भाग । लेखक, श्रीयुत बाबू जुगल किशोरजी मुख्तार । पहले भागमें जिनसेनत्रिवर्णाचार, उमास्वामीश्रावकाचार और कुन्दकुन्दश्रावकाचार इन तीन ग्रन्थोंकी और दूसरे भागमें भद्रबाहुसंहिताकी समालोचना प्रकाशित की गई है । ये सब लेख जैनहितैषीमें निकल चुके हैं । इनका खूब प्रचार होना चाहिए । मूल्य लागत मात्र रक्खा गया है । पहले भागका ।≈ और दूसरे भागका ।)

मोक्षमार्गकी कहानियां । रत्नकरण्डश्रावकाचारमें जिन जिन स्त्री पुरुषोंके उदाहरण आये हैं, उन सबकी २३ कथाओंका संग्रह । यह हाल ही छपी है । मूल्य सात आने ।

जैननित्यपाठसंग्रह । इसमें नित्यके उपयोगमें होनेवाले ३३ भाषाके पाठोंका और तत्त्वार्थ तथा भक्तामर, इन दो संस्कृत पाठोंका संग्रह है । कागज अच्छा, छपाई अच्छी । पहले जो संग्रह बम्बईमें छपा था, उससे इसमें कई पाठ अधिक हैं । मूल्य बारह आने ।

मैनेजर, जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय, गिरगांव-बम्बई.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीवर्द्धमानाय नमः ।

भाग १३ । अंक ९-१० ।

जैनहितैषी ।

सितम्बर, अक्टूबर १९१७ ।

विषय सूची ।

१ ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति—ले० बाबू सूरजभान वकील ... ३७५
२ परामर्श (कविता)—ले०, पं० रामचरित उपाध्याय ... ३८७
३ समाजसुधारमें सबसे अधिक डर किन लोगोंसे है?—ले०—बाबू निहालकरणजी सेठी एम. एस. सी. ... ३८८
४ विचित्र व्याह (काव्य)—ले०, पं० रामचरित उपाध्याय ... ३९१
५ दर्शनसार-विवेचनाका परिशिष्ट ३९४
६ हमारे देशका व्यभिचार (उद्धृत)—ले०, ठाकुर शिवनन्दन सिंह बी. ए. ४०२
७ आदिपुराणका अवलोकन—ले०, बाबू सूरजभान वकील ४१०
८ प्रमा लक्षण—ले०, मुनि जिनविजयजी ४१७
९ जैनजातियोंके पारस्परिक बेटी व्यवहारमें हानिकी कल्पना ४२४
१० पुस्तक-परिचय ४२८
११ पछतावा (गल्प)—ले०, श्रीयुत प्रेमचन्दजी ४३२
१२ जैनजातिके क्षयरोग पर एक दृष्टि—लेखक—बाबू रतनलाल जैन बी. ए. एल. एल. बी. ४४१
१३ गोलमालकारिणी सभाके समाचार—ले० श्रीयुत गड़बड़ानन्द शास्त्री. ४५२
१४ शास्त्रप्रामाण्य ४६०
१५ विविध प्रसङ्ग ४६१

संपादक—नाथूराम प्रेमी ।

मुंबईवैभव प्रेस.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रार्थनायें ।

१. जैनहितैषी किसी स्वार्थबुद्धिसे प्रेरित होकर निजी लाभके लिए नहीं निकाला जाता है। इसमें जो समय और शक्तिका व्यय किया जाता है वह केवल अच्छे विचारोंके प्रचारके लिए। अतः इसकी उन्नतिमें हमारे प्रत्येक पाठकको सहायता देनी चाहिए।

२. जिन महाशयोंको इसका कोई लेख अच्छा मालूम हो उन्हें चाहिए कि उस लेखको जितने मित्रोंको वे पढ़कर सुना सकें अवश्य सुना दिया करें।

३. यदि कोई लेख अच्छा न मालूम हो अथवा विरुद्ध मालूम हो तो केवल उसीके कारण लेखक या सम्पादकसे द्वेष भाव न धारण करनेके लिए सविनय निवेदन है।

४. लेख भेजनेके लिए सभी सम्प्रदायके लेखकोंको आमंत्रण है। —सम्पादक।

भारतविख्यात ! हजारों प्रंशसापत्र प्राप्त !

अस्सी प्रकारके वात रोगोंकी एकमात्र औषधि

महानारायण तैल।

हमारा महानारायण तैल सब प्रकारकी वायुकी पीड़ा, पक्षाघात, (लकवा, फालिज) गठिया सुन्नवात, कंपवात, हाथ पांव आदि अंगोंका जकड़ जाना, कमर और पीठकी भयानक पीड़ा, पुरानीसे पुरानी सूजन, चोट, हड्डी या रगका दबजाना, पिचजाना या टेढ़ी तिरछी होजाना और सब प्रकारकी अंगोंकी दुर्बलता आदिमें बहुत बार उपयोगी साबित होचुका है।

मूल्य २० तोलेकी शीशीका दो रुपया। डा० म० ॥) आना।

❀ वैद्य ❀

सर्वोपयोगी मासिक पत्र।

यह पत्र प्रतिमास प्रत्येक घरमें उपस्थित होकर एक वैद्य या डाक्टरका काम करता है। इसमें स्वास्थ्यरक्षाके सुलभ उपाय, आरोग्य शास्त्रके नियम, प्राचीन और अर्वाचीन वैद्यकके सिद्धान्त, भारतीय वनौषधियोंका अन्वेषण, स्त्री और बालकोंके नकीठ रोगोंका इलाज आदि अच्छे २ लेख प्रकाशित होते हैं। इसकी वार्षिक फीस केवल १) रु० मात्र है।

नमूना मुफ्त मंगाकर देखिये।

पता—वैद्य शङ्करलाल हरिशङ्कर
आयुर्वेदोद्धारक-औषधालय, मुरादाबाद।

आढ़तका काम।

बंबईसे हरकिस्मका माल मँगानेका सुभीता।

हमारे यहांसे बंबईका हरकिस्मका माल किफायतके साथ भेजा जाता है। तांबे व पीतलकी चद्दरें, सब तरहकी मशीनें, हारमोनियम, ग्रामोफोन, टोपी, बनियान, मोजे, छत्री, जर्मन-सिलवर और अलूमिनियमके बर्तन, सब तरहका साबुन, हरप्रकारके इत्र व सुगन्धी तेल, छोटी बड़ी घड़ियाँ, कटलरीका सब प्रकारका सामान, पेन्सिल कागज़, स्याही, हेण्डल, कोरी कापी, स्लेट, स्याहीसोख, ड्राइंगका सामान, हरप्रकारकी देशी और विलायती दवाइयाँ, काँचकी छोटी बड़ी शीशियोंकी पेटियाँ, हरप्रकारका देशी विलायती रेशमी कपड़ा, सुपारी, इलायची, मेवा, कपूर आदि सब तरहका किराना, बंबईकी और बाहरकी हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी पुस्तकें, जैन पुस्तकें, अगरबत्ती, दशांगधूप, केशर, चंदन आदि मंदिरोपयोगी चीजें, तरह तरहकी छोटी बड़ी रंगीन तसवीरें, अपने नामकी अथवा अपनी दूकानके नामकी मुहरें, कार्ड, चिट्ठी, नोटपेपर, मुहूर्त्तकी चिट्ठीयाँ (कंकुपत्रिका) आदि, हरकिस्मका माल होशयारीके साथ वी. पी. से रवाना किया जाता है। एक बार व्यवहार करके देखिये। आपको किसी तरहका धोका न होगा।

हमारा सुरमा और नमक[...] गर्मे अवश्य मँगाइए। बहुत बढ़िया हैं। खूब

पता—पूरणचंद नन्हेंलाल जै[...]
C/O जैन-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, ह[...]
पो० गिरगांव, ब[...]

Printed by Chintaman Sakharam Deole, at the Bombay Vaibhav Press, Servants of India Society's Building, Sandhurst Road, Girgaon, Bombay.

Published by Nathuram Premi, Proprietor, Jain-Granth-Ratnakar Karyalaya, Hirabag, Bombay.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परामर्श ।

[ले०—श्रीयुत पं० रामचरित उपाध्याय]

देश-प्रेम ही सिद्ध मन्त्र है, और सुखोंका मूल सपूतो ।
भारतके आगे त्रिभुवनको, समझो पगकी धूल सपूतो ॥ १ ॥
भिक्षुक बननेसे भिक्षा भी मिल सकती है नहीं सपूतो ।
निर्जल भूतल पर क्या नलिनी, खिल सकती है कहीं सपूतो ॥ २ ॥
दुखड़ा रोनेसे क्या कोई पाता है सुख-भोग सपूतो ।
निज उन्नतिके लिए निरन्तर, करो उचित उद्योग सपूतो ॥ ३ ॥
साहस-धैर्य-प्रताप-पराक्रम-बुद्धि-एकता-पूर्ण सपूतो-
जब होजाओगे, तब जगमें सभ्य बनोगे तूर्ण सपूतो ॥ ४ ॥
कर्मवीर बनना है यदि तो छोड़ो विषय-विलास सपूतो ।
पहले अपनी चाल सुधारो, क्यों सहते उपहास सपूतो ॥ ५ ॥
आर्यवंश हो, दस्यु-वंशके लगे बनाने ठाट सपूतो ।
गौरव मिले तुम्हें फिर कैसे ? खोलो नेत्र-कपाट सपूतो ॥ ६ ॥
अपनेको अपना तुम समझो और अन्यको अन्य सपूतो ।
नागर थे, पर कायर होकर, क्यों बनते हो वन्य सपूतो ॥ ७ ॥
विद्या बल वैभवके जो तुम, पहले थे आधार सपूतो ।
हा ! वे ही तुम आज बने हो क्यों जगमें भू-भार सपूतो ॥ ८ ॥
अब भी अवसर है दिखला दो, मानवताके कर्म सपूतो ।
कुछ भी लाज नहीं लगती क्यों, सोचो दैशिक धर्म सपूतो ॥ ९ ॥
क्यों न प्रकट करते हो तुम भी नूतन कला-कलाप सपूतो ।
क्यों प्रलाप करते हो ? सीखो, करना मेल मिलाप सपूतो ॥ १० ॥
सोच समझकर करो प्रेमसे, पुण्य पुरुषके काम सपूतो ।
जिससे नहीं तनिक भी डूबे, आत्म-वंशका नाम सपूतो ॥ ११ ॥
हिन्दीको जननी सम मानो, या जानो निज प्राण सपूतो ।
यदि सचमुच तुम चाह रहे हो, भारतका कल्याण सपूतो ॥ १२ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समाजसुधारमें सबसे अधिक डर किन लोगोंसे है ?

(लेखक, श्रीयुत बाबू निहालकरणजी सेठी एम. एस. सी. ।)

जैनसमाजमें सामाजिक सुधारका कार्य बहुत दिनोंसे प्रारम्भ हो चुका है और उस कार्यमें सफलता भी बहुत हुई है; किन्तु प्रायः जनसाधारण यह समझता है कि इतना सब प्रयत्न सर्वथा निष्फल हुआ है। कारण इसका वे यह बतलाते हैं कि न तो अमीतक कोई विवाह ऐसे प्रचालित हुए कि जिनमें वर और कन्याका वयस बाल्यकालसे परे समझा जावे, न वृद्ध विवाह रुके हैं, न विधवाओंकी दशा कुछ सुधरी है, न मृत्युके उपलक्ष्यमें आनन्दभोजोंकी कमी हुई है, न भिन्न भिन्न जैन जातियोंमें पारस्परिक विवाहसम्बंधका सूत्रपात हुआ है, न व्यर्थ व्ययहीकी ओर समाजकी दृष्टि गई है और न धार्मिक समझे जानेवाले मेलोंहीका कुछ सुधार हुआ है। यह सब सच है परन्तु इसके सत्य होने पर भी यह कहना उचित नहीं कि इतने दिनोंका प्रयत्न सर्वथा निष्फल हुआ।

मनुष्यका स्वभाव है कि वह सदा नई बातके करनेसे डरता है; इस पर यदि कोई कह दे कि इस नई बातमें अमुक दोष है, अमुक कमी है तब तो यह डर और भी अधिक हो जाता है। विशेष कर इस धर्मप्रधान भारतवर्षमें यदि कोई उनसे कह दे कि इसमें तो धर्मका घात होता है तब उससे इतना डर लगने लगता है कि उसका नाम सुनकर ही कानपर हाथ रखनेको जी चाहता है। उस समय यह भी देखनेका ध्यान नही करता कि दोष दिखानेवाला और अधार्मिक बतलानेवाला कौन है, उसकी योग्यता कितनी है, वह किस नीयतसे ऐसा कहता है और जो कुछ वह कहता है वह युक्तिसंगत भी है या नहीं।

नई बातकी सफलताके लिए सबसे कठिन और सबसे अधिक आवश्यक कार्य यही है कि मनुष्यके इस डरको किसी न किसी प्रकार मिटाया जावे और ऐसा प्रयत्न किया जावे कि कमसे कम वह नई बातको सुनने तो लगे। यदि सुनकर उस पर विचार करना भी प्रारम्भ कर दे तब तो बहुत ही अच्छी बात हो।

यही दशा समाजसुधारके कार्यकी है। एक समय था जब इन बातोंको सुनकर लोग केवल हँसते थे। फिर हँसते हँसते गाली गलौज करनेका अवसर आया। ऐसे भी अनेक महात्मा प्रगट हुए जो धर्मकी दुहाई देकर उनका विरोध करने लगे। अब ऐसा समय है कि इन सब बातोंको छोड़कर समाज यह प्रयत्न करने लगा है कि युक्तिद्वारा इन सुधारोंका खंडन किया जाय। गाली गलौज सर्वथा बन्द नहीं हुए हैं और न कभी हो ही सकते हैं; किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि अब उन प्रश्नों पर विचार करना प्रारम्भ हो गया है। चाहे विचार किसी भी बुद्धिसे किया जावे, किन्तु जब कोई युक्तिद्वारा दोष निकालनेका प्रयत्न करेगा तब यह अनिवार्य है कि उसे उसकी उत्तमताका भी ज्ञान हो जायगा। फिर चाहे वह दिखलानेको विरोध करता ही रहे, किन्तु आन्तरिक विश्वासके विरुद्ध कोई भी मनुष्य बलपूर्वक कोई बात नहीं कह सकता। अशिक्षित समाजको प्रसन्न रखनेके लिए वह कितना ही अधिक विरोध करनेका प्रयत्न करे, किन्तु उसके विरोधमें स्वाभाविकता, और सत्य न होनेसे उसका प्रभाव किसी पर पड़ नहीं सकता और पड़ भी जाय तो ठहर नहीं सकता।

यदि इस दशा पर समाजसुधार पहुँच चुका है तब यह कैसे कहा जा सकता है कि सफलता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं हुई ? जब हिन्दी जैनगजटने भी विधवा-विवाहके विरुद्ध हटवादसे नहीं किन्तु युक्तिसे काम लेनेकी भी चेष्टाका प्रारम्भ कर दिया है तब आन्दोलनकी निष्फलता कैसी ? यही तो सबसे कठिन कार्य था और यदि इसहीमें सफलताके चिह्न दिखलाई देते हैं तब निराशा क्यों ?

जो लोग इस सुधारके कार्यमें लगे हैं उन्हें इस बातको अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि यह निराशा उत्पन्न करनेवाले वे ही लोग है जो सुधारके विरोधी हैं। उनका यह भी एक अस्त्र है। क्योंकि यदि सुधारकोंमें निराशाको स्थान मिल गया तो यह निश्चय है कि सब बातें युक्ति-संगत, लाभदायक और सत्य होने पर भी उनका कार्य ढीला हो जायगा और सम्भवतः निर्बल होने पर भी विरोधियोंकी जीत हो जायगी। पूजनीय पं० मदनमोहन मालवीयने हालहीमें हिन्दूविश्वविद्यालयमें एक व्याख्यानमें कहा था कि "निराशासे और मुझसे वैर है।" उनका भाव यह भी था कि यदि सफलताके चिह्न न भी दिखलाई दें तब भी आशाको छोड़ देना कायरता है। अतः विरोधियोंके इस अस्त्रका मुकाबला सावधानीसे करना चाहिए।

किन्तु इस लेखमें मेरी इच्छा एक और ही बातकी ओर सुधारकोंका ध्यान आकृष्ट करनेकी है। युद्धमें सेनापतियोंको सबसे पहले यह विचार लेना पड़ता है कि शत्रुका बल किस तरफ अधिक है, वह कौन कौन शस्त्र काममें ला रहा है और उनसे बचनेके क्या क्या उपाय हैं। किन्तु इनसे भी अधिक ध्यान उन्हें इस बातका रखना पड़ता है कि कहीं अपनी ही सेनामें तो कोई शत्रुका पक्षपाती नहीं है। क्योंकि शत्रु जो वार करता है वह प्रकट रूपसे करता है और उससे बचनेका उपाय भी आसानीसे हो जाता है। किन्तु जो मित्र बनकर शत्रुका पक्ष ग्रहण करता है उससे बहुत डरना चाहिए; क्योंकि न जाने कब किस दशामें वह वार कर बैठे। और उसका वार भी बहुधा ऐसा होता है कि ज्ञात नहीं होता कि वह भलाई करता है या बुराई।

ठीक इसही प्रकार समाज-सुधारको उनलोगोंसे कुछ अधिक भय नहीं है जो प्रकट रूपसे उसके विरोधी है। क्योंकि जैसा ऊपर लिखा जा चुका है हम उन पर धीरे धीरे विजय प्राप्त कर रहे हैं। वे हमारी सेनाओंद्वारा घिर चुके हैं, और कुछ समयके बाद अवश्य ही उन्हें सन्धि करनी पड़ेगी; क्योंकि उन्हें ज्ञात हो जायगा कि वास्तवमें उनका पक्ष असत्य था।

किन्तु प्रत्येक समाजमें ऐसे लोग बहुत होते हैं जो कहते हैं कि सुधार तो होना चाहिए, किन्तु सहसा नहीं। पहले तो धीरे धीरे समस्त समाजको इस ओर आकृष्ट करना चाहिए और जब मतभेद न रह जाय तब समाजकी ओरहीसे एक नियमद्वारा सुधार कर लिया जायगा। मत-भेद रहते भी यदि दो चार मनुष्य ही सुधारके कार्यको कर डालेंगे तो बड़ी हानि होगी। सारा समाज उनके विरुद्ध हो जायगा और फिर उनकी कोई भी न सुनेगा। सुधार भी रक्खा रह जायगा।

यह मत देखनेमें बड़ा सुन्दर जान पड़ता है। सुधारके हितके लिए ऐसी सलाह देनेवालोंको सुधारका विरोधी कहनेकी भी इच्छा नहीं होती और सुधारकोंका काम रोकनेका प्रयत्न करनेके कारण विरोधी लोग भी इनसे प्रसन्न रहते हैं। फल यह होता है कि इन लोगोंका समाजमें बहुत आदर हो जाता है। इनके दोनों हाथों लड्डू रहते हैं। सुधारकने यदि कोई साहसका कार्य किया तो ये उसकी निन्दा करने लगते हैं और धैर्यसे कार्य करनेकी सलाह देते हैं। विरोधी लोग कहने लगते हैं—"देखो साहब,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अमुक महाशय भी तो सुधारके पक्षपाती हैं। वे भी कहते हैं कि कार्य अनुचित हुआ।"

अतः सुधारके पक्षपातियोंको सोच रखना चाहिए कि ये ही लोग उनके कार्यमें सबसे अधिक विघ्न डालनेवाले हैं। ये मित्र बनकर भी शत्रुकी सहायता करते हैं। इन्हींसे सदा सचेत रहनेकी आवश्यकता है। इससे यह मतलब नहीं कि इनसे भी हम विरोध कर लें; किन्तु इनकी सलाह मानना अवश्य ही भयंकर है। यदि हम यह निश्चय कर लें कि इनकी सलाह न मानेंगे तब इनसे अधिक हानिकी सम्भावना नहीं, क्योंकि इनके लिए प्रकट रूपसे विरोधियोंमें मिल जाना भी अब असम्भव होगया है।

ऊपर लिखा जा चुका है कि ये लोग ऐसा कार्य समाजमें आदर पानेकी इच्छासे करते हैं। किन्तु इससे ऐसा न समझना चाहिए कि ये हृदयसे भी सुधारके विरोधी होते हैं। मेरा अनुमान है कि अंतरंग इच्छा इनकी भी सुधारके पक्षमें होती है; किन्तु कमी इस बातकी है कि इनमें साहस नहीं होता। अपने अभीष्टकी सिद्धिके लिए जो कष्ट सहना पड़ता है उसके लिए ये लोग तैयार नहीं हैं। इनकी दशा प्रायः उस अफीमची जैसी है जो बेर खानेकी इच्छा रहने पर भी पास पड़ा हुआ बेर अपने हाथसे उठाकर मुँहमें रखनेका कष्ट नहीं उठाना चाहता था और उधरसे जानेवाले पथिकसे कहता था कि कृपा कर इस बेरको मेरे मुँहमें डाल दीजिए।

इसही प्रकार सुधारकके इच्छुक होने पर भी इनकी आत्मा ऐसे पथिककी खोजमें रहती है जो कष्ट स्वयं सह ले और सफलताका आनन्द इन्हें मनाने दे। यदि इतना ही होता तो हमें इनकी शिकायत करनेकी आवश्यकता न होती; किन्तु ये लोग अपनी अकर्मण्यता और बोदेपनको छुपानेके लिए जिस मार्गका अवलम्बन करते हैं उससे अवश्य ही नवयुवक साहसी सुधारकोंका उत्साह कम हो जाता है और उनके कार्यमें बाधा पड़ती है।

यहाँ प्रश्न हो सकता है कि इन लोगोंसे इतना भय करनेकी तो कोई आवश्यकता नहीं देख पड़ती। सुधार ये भी चाहते हैं। केवल धीरे धीरे करना चाहते हैं। इसमें बुराई क्या है? क्यों कि कहा है कि खरहे और कछुएकी दौढमें धीरे धीरे चलनेवाला कछुआ ही अन्तमें जीतता है।

किन्तु यह समझनेमें अधिक कठिनाई नहीं होगी कि इन लोगोंकी कछुएसे तुलना नहीं की जा सकती। कछुआ तो चलनेका काम स्वयं ही करता है। वह इसमें किसीका मुँह नहीं ताकता। किन्तु ये लोग उस अफीमचीकी भाँति खुद तो कुछ करना नहीं चाहते; पथिककी राह देखते हैं। और अपनी सुस्तीको उचित दिखानेके लिए दूसरोंको भी काम न करनेका उपदेश देते हैं। जो लोग वास्तवमें काम करते हैं उनके लिए कछुएका उदाहरण वास्तवमें लाभदायक है। उन्हें यह अवश्य ही उचित है कि चाहे कार्य धीरे धीरे करें, किन्तु मन लगाकर जब तक समाप्त न हो जाय करते ही रहें। खरहेकी भाँति कभी बहुत जल्दबाजी करके कभी सर्वथा शिथिल हो बैठना किसी दशामें भी उचित नहीं कहा जा सकता। हाँ, यदि कोई समाप्ति तक अविश्रान्त परिश्रम करते रहनेकी भी शक्ति रखता हो और कछुएसे अधिक वेगसे चल भी सके तो उसकी हमें प्रशंसा ही करनी पड़ेगी।

इसके अतिरिक्त यह भी न भूल जाना चाहिए कि इतिहास इसमें हमें क्या शिक्षा देता है। क्या आजतक कभी कोई नई बात मनुष्यने ग्रहण की है जिसे किसी न किसी महापुरुषने कष्ट सह कर, विरोधकी पर्वाह न करके स्वयं न कर डाला हो! बड़ी बातोंको जाने दीजिए

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कारखानोंमें मशीनोंका प्रयोग करनेमें भी कितना विरोध हुआ था ! पृथ्वीके भ्रमणका सिद्धान्त स्थिर करनेवाले वैज्ञानिकोंको कितना कष्ट सहना पड़ा था ! चेचकका टीका कितने विरोधके बाद प्रचलित हुआ है !

जब इन साधारण बातोंका यह हाल है तब जो बातें मनुष्यके जीवनसे निकट सम्बन्ध रखती हैं उनकी क्या कथा ! क्या तीर्थंकर, बुद्धदेव, ईसा मसीह या 'मुहम्मद साहिब' इस बातका इंतजार करते रहे थे कि लोग उनके मतको पहले अच्छा समझने लगें तब उसका खुल्लम खुल्ला प्रचार करें और क्या ऐसा न करनेसे उनमेंसे अनेकोंको दुःसह कष्ट नहीं सहने पड़े ? और क्या उन्ही कष्टोंका परिणाम यह नहीं है कि आज लाखों करोड़ों मनुष्य उनके उपदेशोंसे लाभ उठा रहे हैं ? आधुनिक बातोंको लीजिए। पारसियोंमें जब पर्दा दूर किया गया तब क्या कोई पंचायत बैठकर ऐसा एक नियम बना था ? या किसी साहसी पुरुषने ही उपने उदाहरणसे इस सुधारकी नीव रक्खी ? विदेशयात्रा काश्मीरी पंडितोंमें क्या सर्व सम्मतिसे स्वीकार हो गई तब ही किसीने विलायत जानेका साहस किया अथवा विपरीत इसके पहले किसी साहसी पुरुषके वहाँसे लौट आने ही पर यह मत स्वीकार किया गया ?

इन सब बातोंमें इतिहास स्पष्ट कहता है कि साधारण मनुष्य केवल अनुकरण कर सकते हैं। नवीन बातका आरंभ सदा कोई एक साहसी व्यक्ति ही करता है । समाज सर्व सम्मतिसे कभी कोई नया नियम नहीं बनाता। उसे तो ऐसा जबर्दस्ती करना पड़ता है । अतः यदि सुधार अभीष्ट है तो जिन लोगोंमें ऐसे नये कार्य करनेका साहस है उन्हें जो बातें रोकती हैं, जो जो लोग उनका उत्साह घटाना चाहते हैं वे अवश्य ही हानिकर हैं । उनसे सचेत रहना अवश्य ही बुद्धिमानी है ।

विचित्र ब्याह ।

[ले०, श्रीयुत पं० रामचरित उपाध्याय ।]

चतुर्थ सर्ग ।

जैसे तैसे रामदेव की, क्रिया सुशीलाने कर दी,
कुछी दिनोंमें उसके मनमें, स्वस्थिति आशाने कर दी ।
विस्मृतिने भी दिया सहारा, रामदेव कुछ भूल गये,
हरिसेवकने उसके उरमें, उपजाये सुख-मूल नये ॥ १ ॥

आशाका है अजब तमासा, मृतमें जीवन भरती है,
विस्मृति उसके पूर्व दुखोंको झटपट आकर हरती है।
दोनों ही हैं मनो सहेली, दोनों ही रहती हैं साथ।
दुखी जन्तुके सँगमें दुखको; दोनों ही सहती हैं साथ ॥ २ ॥

कहा सुशीलासे आशाने, हरिसेवक पण्डित होगा,
उससे फिर सुख तुझे मिलेगा, देश मान मण्डित होगा ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विस्मृतिने भी कहा उसी क्षण, निजपतिका मत ध्यान धरो,
आगे मुख हो चलो निरन्तर, पीछेको मत कान करो ॥ ३ ॥

हरिसेवकका शास्त्र-रीतिसे, कर्णवेध-संस्कार हुआ,
शिष्टाचार हुआ पूज्योंका, और मंगलाचार हुआ।
जगमें नहीं किसीकी भी स्थिति, एक रंग रह जाती है,
जो रोती थी प्रथम सुशीला, आज वही हँस गाती है ॥ ४ ॥

सुदिन सुलग्न सोध कर उसका विद्यारम्भ हुआ सुखसे,
तुरत उसे वह आ जाता था, सुनता था जो गुरु-मुखसे।
विद्याध्ययन देखकर सुतका, सुखी सुशीला हुई बड़ी,
यद्यपि उसे अर्थकी चिन्ता—मनमें थी हरघड़ी कड़ी ॥ ५ ॥

रामदेवके रहने पर भी, यदपि सुशीला धनी न थी,
किन्तु आजसी वस्तु अपावन, कभी जातिमें बनी न थी।
जो जन उसका कहलाता था, हुआ पराया आज वही,
जिस पर रहा भरोसा; उसके—काम न आया आज वही ॥ ६ ॥

जहाँ सुशीला जा पड़ती थी, भूमि-भार हो जाती थी,
सीधे मुख वह था न बोलता, जब वह जिसे बुलाती थी।
यदि विचार कर देखा जावे, तो स्थिर होगी बात यही,
दीन बराबर कभी दुखी हैं, नारकीय भी जीव नहीं ॥ ७ ॥

नीचोंसे भी नीच वही है जिसके पास न हो कलदार,
गुण-सागर भी हो जाता है जग में निर्धन जन बेकार।
चाहे वह रूठे या रीझे, हानि, लाभकी बात नहीं,
ऊसर भूपर गरल-कुसुम या, खिल सकता है कमल कहीं ? ॥ ८ ॥

निर्धन जन हो निर्बल होता, निर्बल हो अधिकार-विहीन,
अनधिकारसे परिभव सहता, अपमानित हो शोकविलीन।
शोकातुर हो वह मर जावे, यदि आशाका मिले न संग,
आशा डोरी बँधा विश्व है, उड़ती नभमें यथा पतंग ॥ ९ ॥

यदि न सहारा आशा देती, कभी सुशीला मर जाती,
या उस हतहृदया अबलाकी, सुधिबुधि बरबस हर जाती।
होनहार पर लख निज सुतको, उसके सब दुख दूर गये,
और हृदय-मन्दिरमें सुन्दर, जगे मनोरथ नये नये ॥ १० ॥

सुत मिला जिसको गुरु-भक्त हो, स्वजनमें अनुरक्त सशक्त हो।
अति सुखी उसको अनुमानिए, सुकृतका उसके फल जानिए ॥ ११ ॥

यदि गुणी विनयी वर विज्ञ हो, तनय, और नयज्ञ कृतज्ञ हो।
तब भला जननी दुख क्यों सहे ? हतमनोरथ होकर क्यों रहे ? ॥ १२ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो कुछ हो उद्योगशील थी बड़ी सुशीला, लिखना पढ़ना हरिसेवकका पड़ा न ढीला
दुख वह सहती स्वयं किन्तु सुतको सुख देती, सुतको विद्यादान दिला यशको थी लेती १३
ज्ञान-दानके तुल्य अन्यका दान नहीं है, क्योंकि विज्ञके तुल्य अन्यका मान नहीं है।
रजत-कनक-भू-रत्न सदा क्या रह सकते हैं? क्या विद्याको नाशवान भी कह सकते हैं? ॥
खो जाती है कभी हाथमें संपति आकर, पर देती है साथ सदा विद्या जीवन भर।
कंचन पाकर मनुज पाप भी कर सकता है, किन्तु विज्ञ क्या पाप-गर्तमें गिर सकता है? ॥१५॥
बुधजन अपने नाम अमिट चाहें तो कर दें, निर्बलमें भी महाशक्ति चाहें तो भर दें।
कठिन समस्या-पूर्ति विज्ञ ही कर सकता है, दुःख-भार क्या अज्ञ देशका हर सकता है? १६
कल्पवृक्ष है काठ उपल चिन्तामणि भी है, विद्याके वे तुल्य इसीसे नहीं कभी हैं।
पारसमणि निजतुल्य किसीको क्या करता है? पर अज्ञोंको विज्ञ, विज्ञजन कर सकता है॥
इसी लिए जो ज्ञान-दान देते दिलवाते, वे प्राणी हैं धन्य पुण्य अक्षय हैं पाते।
उनके यशको सदा जगतमें बुध गाते हैं, उनके दोनों लोक जगतमें बन जाते हैं ॥ १८ ॥
इसी बातको ठीक सुशीला भी कहती थी, भले काममें सदा सती तत्पर रहती थी।
रक्तनीरको एक किया दृढ़तासे उसने, तनय पढ़ाना ठान लिया स्थिरतासे उसने ॥१९॥
हरिसेवक भी खेल तमाशोंमें न लगा था, केवल विद्याध्ययन रंगमें खूब रँगा था।
उससे कोई द्रोह नहीं कुछ भी करता था, दुर्जनसे रह दूर, सुजनसे वह डरता था ॥ २०॥
उसका भाषण बड़ा मधुर था बड़ा सरल था, दुर्व्यसनोंको मान रहा वह महा गरल था।
परकी निन्दा कभी नहीं करनेवाला था, गुरुकी आज्ञा शीस सदा धरनेवाला था ॥२१॥
सत्य वचनका मिला हुआ था, उसे सहारा, परको करना दुखी न उसने कभी विचारा।
कभी स्वप्नमें भी न मांसको उसने देखा, मद उत्पादक वस्तु पापमय उसने लेखा ॥ २२॥
हिन्दीमें सत्प्रेम सदा उसका रहता था, मुक्तकण्ठसे उसे राष्ट्रभाषा कहता था।
हिन्दू, हिन्दी, हिन्द, जपा करता था मनमें, देशोन्नतिका ध्यान उसे रहता था मनमें॥२३॥
विद्यालयको नित्य चला जाता था घरसे, मगमें रुकता कहीं नहीं था, गुरुके डरसे ।
उसको आलस-छूत तनिक भी नहीं लगी थी, उसके मनमें पठन-प्रीति निःसीम जगी थी॥
होता था हर साल परीक्षोत्तीर्ण नेमसे, उसे इसीसे सभी देखते रहे प्रेमसे।
छुट्टीमें भी कभी न सोता था वह दिनमें, विलासिताका लेश नहीं था उसके मनमें ॥

इस प्रकार अठारह वर्षका, नव युवा हरिसेवक हो गया।
पर विवाह हुआ उसका नहीं, पड़ गई जननी अति शोकमें ॥ २६ ॥

बहुत सोच किया पर अन्तमें, स्थिर किया मनमें उसने यही—
अब विवाह करूँ जिस भाँति हो, मम कुमार कुमार रहे नहीं ॥ २७ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दर्शनसार-विवेचनाका परिशिष्ट।

दर्शनसारका लेख छप चुकनेके बाद इसके सम्बन्धमें हमें और भी कुछ बातें ऐसी मालूम हुई हैं, जिनका प्रकाशित कर देना उचित जान पड़ता है।

१ राजवार्तिक अध्याय ८, सूत्र १, वार्तिक १२ में वसिष्ठ, पराशर, जतुकर्ण, वाल्मीकि, व्यास, रोमहर्षि, सत्यदत्त आदिको वैनयिक बतलाया है। लक्षण दिया है—'**सर्वदेवतानां सर्वसमयानां च समदर्शनं वैनयिकत्वम्।**' अर्थात् सब देवोंको और सब मतोंको समान दृष्टिसे देखना वैनायिक मिथ्यात्व है। इस वैनयिक मिथ्यात्वका स्वरूप * भावसंग्रहमें इस प्रकार बतलाया है:—

वेणइयमिच्छदिट्ठी,
हवइ फुडं तावसो हु अण्णाणी।
निग्गुणजणं पि विणओ,
पउज्जमाणो हु गयविवेओ॥ ८८॥
विणयादो इह मोक्खं,
किज्जइ पुणु तेण गद्दहाईणं।
अमुणिय गुणागुणेण य,
विणयं मिच्छत्तनडिएण॥ ८९॥

अभिप्राय यह है कि इस मतके अनुयायी विनय करनेसे मोक्ष मानते हैं। गुण और अवगुणसे उन्हें कोई मतलब नहीं। सबके प्रति—यहाँ तक कि गधे जैसे नीच जीवके प्रति—भी प्रणाम नमस्कार करना उनका धर्म है। यह विवेकरहित तपस्वियोंका मत है।

२ भावसंग्रहमें मस्करिपूरणका कुछ अधिक परिचय दिया है। परिचयकी गाथायें ये हैं:—

मसयरि-पूरणरिसिणो,
उप्पण्णो पासणाहतित्थम्मि।
सिरिवीरसमवसरणे,
अगहियझुणिणा नियत्तेण॥ १७६॥
बहिणिग्गएण उत्तं,
मज्झं एयारसांगधारिस्स।
णिग्गइ झुणी ण, अरुहो,
णिग्गय विस्सास सीसस्स॥ १७७॥
ण मुणइ जिणकहियसुयं,
संपइ दिक्खाय गहिय गोयमओ।
विप्पो वेयब्भासी,
तम्हा मोक्खं ण णाणाओ॥ १७८॥
अण्णाणाओ मोक्खं
एवं लोयाण पयडमाणो हु।
देवो अ णत्थि कोई,
सुण्णं झाएह इच्छाए॥ १७९॥

इनमेंसे १७८ वीं गाथाका अर्थ ठीक नहीं बैठता। ऐसा मालूम होता है कि, बीचमें एकाध गाथा छूट गई है। भावार्थ यह है कि, पार्श्वनाथके तीर्थमें मस्करि-पूरण ऋषि उत्पन्न हुआ। वीर भगवान्की समवसरणसभासे जब वह उनकी दिव्य ध्वनिको ग्रहण किये विना ही लौट आया, वाणीको धारण करनेवाले योग्यपात्रके अभावसे जब भगवान्की वाणी नहीं खिरी, तब उसने बाहर निकल कर कहा कि मैं ग्यारह अंगका ज्ञाता हूँ, तो भी दिव्य ध्वनि नहीं हुई। पर जो जिनकथित श्रुतको ही नहीं मानता है, जिसने अभी हाल ही दीक्षा ग्रहण की है और वेदोंका अभ्यास करनेवाला ब्राह्मण है, वह गोतम (इन्द्रभूति) इसके लिए योग्य समझा गया। अतः जान पड़ता है कि ज्ञानसे

*यह ग्रन्थ हमें हालहीमें जयपुरके एक सज्जनकी कृपासे प्राप्त हुआ है। इसकी एक प्रति दक्खन कालेज पूनाके पुस्तकालयमें भी यह है। छोटासा प्राकृत गाथाबद्ध ग्रन्थ है। इसकी श्लोकसंख्या ७७० है। जयपुरकी प्रतिके लिखे जानेका समय पुस्तकके अन्तमें 'ज्येष्ठ सुदि १२ शुक्र संवत् १५५८' दिया हुआ है। इसके रचयिता विमलसेन गणिके शिष्य देवसेन हैं। दर्शनसारके कर्त्ता देवसेन और ये एक ही हैं, ऐसा इस ग्रन्थकी रचनाशैलीसे और इसके भीतर जो श्वेताम्बरादि मतोंका स्वरूप दिया है, उससे मालूम होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मोक्ष नहीं होता है। वह लोगों पर यह प्रकट करने लगा कि अज्ञानसे ही मोक्ष होता है। देव या ईश्वर कोई है ही नहीं। अतः स्वेच्छा-पूर्वक शून्यका ध्यान करना चाहिए।

भट्टारक लक्ष्मीचन्द्रके शिष्य पं० वामदेवके बनाये हुए संस्कृत भावसंग्रहके भी हमें इसी समय दर्शन हुए*। यद्यपि पं० वामदेवने इस बातका कहीं उल्लेख नहीं किया है; परन्तु मिलान करनेसे मालूम हुआ कि उन्होंने प्राकृत भावसंग्रहका ही न्यूनाधिकरूपमें अनुवाद करके अपना यह ग्रन्थ बनाया है। मस्करिपूरणके सम्बन्धमें उन्होंने नीचे लिखे ५ श्लोक लिखे हैं। इनसे पूर्वोक्त गाथाओंका अभिप्राय अच्छी तरह स्पष्ट हो जाता है।

....

वीरनाथस्य संसदि ॥ १८५ ॥
जिनेन्द्रस्य ध्वनिग्राहि-
भाजनाभावतस्ततः।
शक्रेणात्र समानीतो
ब्राह्मणो गोतमाभिधः ॥ १८६ ॥
सद्यः स दीक्षितस्तत्र
सध्वनेः पात्रतां ययौ।
ततः देवसभां त्यक्त्वा
निर्ययौ मस्करीमुनिः ॥ १८७ ॥
सन्त्यस्मदादयोऽप्यत्र
मुनयः श्रुतधारिणः।
तांस्त्यक्त्वा सध्वनेः पात्र-
मज्ञानी गोतमोऽभवत् ॥ १८८ ॥
संचिन्त्यैवं क्रुधा तेन
दुर्विदग्धेन जल्पितम्।
मिथ्यात्वकर्मणः पाका-
दज्ञानत्वं हि देहिनाम् ॥ १८९ ॥
हेयोपादेयविज्ञानं
देहिनां नास्ति जातुचित्।
तस्मादज्ञानतो मोक्ष
इति शास्त्रस्य निश्चयः ॥ १९० ॥

अर्थात्—वीरनाथ भगवान्के समवसरणमें जब योग्य पात्रके अभावमें दिव्यध्वनि निर्गत नहीं हुई, तब इन्द्र गोतम नामक ब्राह्मणको ले आये। वह उसी समय दीक्षित हुआ और दिव्यध्वनिको धारण करनेकी उसी समय उसमें पात्रता आ गई। इससे मस्करिपूरण मुनि सभाको छोड़कर बाहर चला आया। यहाँ मेरे जैसे अनेक श्रुतधारी मुनि हैं, उन्हें छोड़कर दिव्य-ध्वनिका पात्र अज्ञानी गोतम हो गया, यह सोचकर उसे क्रोध आगया। मिथ्यात्वकर्मके उदयसे जीवधारियोंको अज्ञान होता है। उसने कहा देहियोंको हेयोपादेयका विज्ञान कभी हो ही नहीं सकता। अत एव शास्त्रका निश्चय है कि अज्ञानसे मोक्ष होता है।

दर्शनसारकी वचनिकामें + मस्करिपूरणके

---

* इसकी एक हस्तलिखित प्रति श्रीयुत पं० उदयलालजी काशलीवालके पास मौजूद है। ग्रन्थकर्त्ताने अपनी गुरुपरम्परा इस प्रकार दी है—विनयचन्द्र-त्रैलोक्यकीर्ति-लक्ष्मीचन्द्र और वामदेव। ग्रन्थके रचनेका समय नहीं दिया।

+ बाम्बे रायल एशियाटिक सुसाइटीकी रिपोर्टमें डा० पिटर्सनने 'दर्शन-सार वचनिका' का एक जगह हवाला दिया है और लिखा है कि यह ग्रन्थ जयपुरमें है। तदनुसार हमने इसकी खोज करनी शुरू की और हमें जयपुरसे तो नहीं; परन्तु देवबन्दसे श्रीयुत बाबू जुगलकिशोरजीके द्वारा इसकी एक प्रति प्राप्त हो गई। इसके कर्त्ता पं० शिवजीलालजी हैं। माघ सुदी १० सं० १९२३ को सवाई जयपुरमें यह बनकर समाप्त हुई है। इसकी श्लोकसंख्या लगभग ३५०० और पत्र १६२ हैं। इसमें गाथाओंका अर्थ तो बहुत ही संक्षेपमें लिखा है, संस्कृत छाया भी नहीं दी है; परन्तु प्रत्येक धर्मका सिद्धान्त और उसका खण्डन खूब विस्तारसे दिया है। मूल गाथाओंमें जिन मतोंका उल्लेख है, उनके सिवाय मुसलमान और ईसाई मतोंके विषयमें भी बहुत कुछ लिखा है। बहुतसे मतोंके विषयमें आपने बड़ी गहरी भूलें की हैं। जैसे मस्करि-पूरणको मुसलमान धर्मका मूल मान लेना और यापनीय संघको मूर्तिपूजा-विरोधी लोंकागच्छ समझ लेना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्बन्धमें नीचे लिखे दो श्लोक उद्धृत किये गये हैं; पर यह नहीं लिखा कि ये किस ग्रन्थसे लिये गये हैं। कुछ अशुद्ध और अस्पष्ट भी जान पड़ते हैं:--

पूर्वस्यां वामनेनैव
मदनेन च दक्षिणे।
पश्चिमस्यां मुसंडेन
कुलकेनोत्तरेऽपि तत् ॥
मस्कपूरणमासाद्य
चत्वारोऽपि दिवानिशम्।
अज्ञानमतमासाद्य (?)
लोकाञ्जुभ्रशतामय (?) ॥

अर्थात् पूर्वदिशामें वामनने, दक्षिणमें मदनने, पश्चिममें मुसण्डने और उत्तरमें कुलकने मस्क-पूरणके अज्ञान मतका प्रचार किया और लोगोंको भ्रष्ट किया। वचनिकाकारका कथन है कि ये चारों राजा थे।

२ द्राविड़ संघके विषयमें दर्शनसारकी वचनिकाके कर्ता एक जगह जिनसंहिताका प्रमाण देते हुए कहते हैं कि 'सभूषणं सवस्त्रं स्यात् बिम्बं द्राविडसंघजम्'--द्रविड़ संघकी प्रतिमायें वस्त्र और आभूषणसहित होती हैं। लिखा है--"जो बिम्ब गहणां पहरयो होय तथा अर्ध पल्यंकासन निर्ग्रन्थ हो है सो द्राविड़ संघका है।" आगे किसी ग्रन्थसे नीचे लिखे दोहे उद्धृत किये हैं:--

तैल पान प्रासुक कहैं,
लवण खान है निन्द्य।
भातनको यह (?) धौतजल,
सदा पान अनवद्य ॥ १ ॥
सिंहासन छत्रत्रयी,
आसन अर्ध पल्यंक।
पंचफणी प्रतिमा जहाँ,
द्राविड संघ सवंक ॥ २ ॥
उत्तरीय अरु अंशु अध,
उज्ज्वलदोय पुनीत।
कमलमाल पद्मासनी,
द्राविडजती सुमीत ॥ ३ ॥
रुद्राक्षस्त्रक्कण्ठधर,
मानस्तंभविशेष।
दक्षिण द्राविड जानिये,
धर्मचक्र भुजशेष ॥ ४ ॥
पंच द्राविड मान ये,
तिलक मान (?) रुद्राक्ष।
माल भस्म मालै जपै,
त्रिकसूत्री कोपीन (?) ॥ ५ ॥
उत्तर द्राविड जानिये,
काल चतुर्थज भेक।
पंचमके दो भेद जुत,
कल्प अकल्प अनेक ॥ ६ ॥

दूसरे दोहेमें द्राविड संघकी प्रतिमाका स्वरूप यह बतलाया है कि, वह अर्धपल्यंकासन होती है, उसके मस्तक पर सर्पके पाँच फण होते हैं, वह सिंहासन पर स्थित होती है और तीन छत्र उसके ऊपर रहते हैं। इसमें यह नहीं कहा है कि, वह वस्त्र और आभूषणोंसे युक्त होती है। पर जिनसंहिताका उक्त श्लोकार्ध द्राविड प्रतिमाको वस्त्राभूषणसहित बतलाता है। मालूम नहीं, यह जिनसंहिता किसकी बनाई हुई है और कहाँ तक प्रामाणिक है। अभी तक हमें इस विषयमें बहुत सन्देह है कि, द्राविड संघ सग्रन्थ प्रतिमाओंका पूजक होगा।

उक्त छह दोहे भी मालूम नहीं किस ग्रन्थके हैं। वचनिकाकारने इन्हें कहींसे उठाकर रख दिया है, पर यह नहीं लिखा कि इनका रचयिता कौन है। अन्तके चार श्लोकोंमें द्राविड़ संघके यतियोंका वेश बतलाया है और उनके कई भेद किये हैं; परन्तु दोहोंकी रचना इतनी अस्पष्ट है, और प्रतिके लेखकने भी उन्हें कुछ ऐसा अस्पष्ट कर दिया है, कि उनका पूरा पूरा अभिप्राय समझमें नहीं आता। इतना मालूम होता है कि इस संघके यति वस्त्र पहनते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

थे, माला आदि धारण करते थे और तिलक भी लगाते थे।

वचनिकाके कर्त्ताने लिखा है कि १ पंचोपाख्यान, २ सप्ताशीति, और ३ सिद्धान्तशिरोमणि ये तीन ग्रन्थ द्राविड संघके हैं। संभव है कि इन ग्रन्थोंकी प्राप्ति जयपुरके किसी भण्डारसे हो जाय। यदि ये मिल जायँ, तो इस संघके विषयमें हमारी जो गाढ़ अज्ञानता है, वह अनेक अंशोंमें विरल हो सकती है।

४ श्वेताम्बर सम्प्रदायकी उत्पत्तिका इतिहास देवसेनसूरिकृत भावसंग्रहमें इस प्रकार दिया है:—

छत्तीसे वरिस सए
विक्कमरायस्समरणपत्तस्स।
सोरट्ठे उप्पण्णो
सेवडसंघो हु वलहीए॥ ५२॥
आसि उज्जेणिणयरे,
आयरिओ भद्दबाहुणामेण।
जाणिय सुणिमित्तधरो,
भणिओ संघो णिओ तेण॥ ५३॥
होहइ इह दुब्भिक्खं,
बारह वरसाणि जाव पुण्णाणि।
देसंतराय गच्छह,
णियणियसंघेण संजुत्ता॥ ५४॥
सोऊण इयं वयणं,
णाणादेसेहिं गणहरा सव्वे।
णियणियसंघपउत्ता,
विहरीआ जच्छ सुब्भिक्खं॥५५॥
एक्क पुण संति णामो,
संपत्तो वलहि णाम णयरीए।
बहुसीससंपउत्तो,
विसए सोरट्ठए रम्मे॥ ५६॥
तत्थ विगयस्स जायं,
दुब्भिक्खं दारुणं महाघोरं।
जत्थ वियारिय उयरं,
खद्धो रंकेहि कूरुत्ति॥ ५७॥
तं लहिऊण णिमित्तं,
गहियं सव्वेहिं कंबलीदंडं।
दुद्धिय पत्तं च तहा,
पावरणं सेयवत्थं च॥ ५८॥
चत्तं रिसिआयरणं,
गहिया भिक्खाय दीणवित्तीए।
उवविसिय जाइऊणं,
भुत्तं वसहीसु इच्छाए॥ ५९॥
एवं वट्टंताणं कित्तिय
कालम्मि चावि परियलिए।
संजायं सुब्भिक्खं,
जंपइ ता संति आइरिओ॥ ६०॥
आवाहिऊण संघं,
भणियं छंडेह कुत्थियायरणं।
णिंदिय गरहिय गिण्हह,
पुणरविचरियं मुणिंदाणं॥ ६१॥
तं वयणं सोऊणं
उत्तं सीसेण तत्थ पढमेण।
को सक्कइ धारेउं,
एयं अइ दुद्धरायरणं॥ ६२॥
उववासो य अलाभो,
अण्णे दुसहाइ अंतरायाइं।
एक्कट्ठाणमचेलं,
अज्जायणं बंभचेरं च॥ ६३॥
भूमीसयणं लोचो
वे वे मासेहिं असहिणिज्जो हु।
बावीस परिसहाइं
असहिणिज्जाइं णिच्चंपि॥ ६४॥
जं पुण संपइ गहियं,
एयं अम्हेहि किंपि आयरणं।
इह लोयसुक्खयरणं,
ण छंडिमोहु दुस्समे काले॥ ६५॥
ता संतिणा पउत्तं,
चरियपभट्ठेहिं जीवियं लोए।
एयं ण हु सुंदरयं,
दूसणयं जइणमग्गस्स॥ ६६॥
णिग्गंथं पव्वयणं,
जिणवराहेण अक्खियं परमं।
तं छंडिऊण अण्णं,
पवत्तमाणेण मिच्छत्तं॥ ६७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ता रूसिऊण पहओ,
सीसे सीसेण दीहदंडेण।
थविरो घाएण मुओ,
ज़ाओ सो विंतरो देवो ॥ ६८ ॥
इयरो संघाहिवई,
पयडिय पासंड सेवडो जाओ।
अक्खइ लोए धम्मं,
सग्गंथे अत्थि णिव्वाणं ॥ ६९ ॥
सच्छाइ विरइयाइं
णियणिय पासंड गहियसरिसाइं।
वक्खाणिऊण लोए,
पवत्तियो तारिसायरणे ॥ ७० ॥
णिग्गंथं दूसित्ता,
णिंदित्ता अप्पणं पसंसित्ता।
जीवे मूढयलोए,
कयमाय (?) गेहियं बहुं दव्वं ॥७१॥
इयरो विंतर देवो,
संती लग्गो उवद्दवं काउं।
जंपइ मा मिच्छत्तं,
गच्छह लहिऊण जिणधम्मं ॥७२॥
भीएहि तस्स पूआ,
अट्ठविहा सयलदव्वसंपुण्णा।
जा जिणचंदे रइया,
सा अज्जवि दिण्णिया तस्स ॥ ७३ ॥
अज्जवि सा वलिपूया,
पढमयरं दिंति तस्स णामेण।
सो कुलदेवो उत्तो,
सेवडसंघस्स पुज्जो सो ॥ ७४ ॥
इय उप्पत्ती कहिया,
सेवडयाणं च मग्गभट्ठाणं।
एत्तो उड्ढं वोच्छं,
णिसुणह अण्णाणमिच्छत्तं ॥ ७५ ॥

अर्थ—विक्रमराजाकी मृत्युके १३६ वर्ष बाद सोरठ देशकी वल्लभी नगरीमें श्वेताम्बर संघ उत्पन्न हुआ। ५२। (उसकी कथा इस प्रकार है) उज्जयनी नगरीमें भद्रबाहु नामके आचार्य थे। वे निमित्त ज्ञानके जाननेवाले थे, इस लिए उन्होंने संघको बुलाकर कहा कि एक बड़ा भारी बारह वर्षोंमें समाप्त होनेवाला दुर्भिक्ष होगा। इस लिए सबको अपने अपने संघके साथ और और देशोंको चले जाना चाहिए। ५३–५४। यह सुनकर समस्त गणधर अपने अपने संघको लेकर वहाँसे उन उन देशोंकी ओर विहार कर गये, जहाँ सुभिक्ष था। ५५। उनमें एक शान्ति नामके आचार्य भी थे, जो अपने अनेक शिष्योंके सहित चलकर सोरठ देशकी वल्लभी नगरीमें पहुँचे। ५६। परन्तु उनके पहुँचनेके कुछ ही समय बाद वहाँ पर भी बड़ा भारी अकाल पड़ गया। भुखमरे लोग दूसरोंका पेट फाड़ फाड़कर और उनका खाया हुआ भात निकाल निकाल कर खा जाने लगे। ५७। इस निमित्तको पाकर–दुर्भिक्षकी परिस्थितिके कारण–सबने कम्बल, दण्ड, तूम्बा, पात्र, आवरण (संथारा) और सफेद वस्त्र धारण कर लिये। ५८। ऋषियोंका (सिंहवृत्तिरूप) आचरण छोड़ दिया और दीनवृत्तिसे भिक्षा ग्रहण करना, बैठ करके, याचना करके और स्वेच्छापूर्वक बस्तीमें जाकर भोजन करना शुरू कर दिया। ५९। उन्हें इस प्रकार आचरण करते हुए कितना ही समय बीत गया। जब सुभिक्ष हो गया, अन्नका कष्ट मिट गया, तब शान्ति आचार्यने संघको बुलाकर कहा, कि अब इस कुत्सित आचरणको छोड़ दो, और अपनी निन्दा, गर्हा करके फिरसे मुनियोंका श्रेष्ठ आचरण ग्रहण कर लो ॥ ६०–६१। इन वचनोंको सुनकर उनके एक प्रधान शिष्यने कहा कि अब उस अतिशय दुर्धर आचरणको कौन धारण कर सकता है? उपवास, भोजनका न मिलना, तरह तरहके दुस्सह अन्तराय, एक स्थान, वस्त्रोंका अभाव, मौन, ब्रह्मचर्य, भूमि पर सोना, हर दो महीनेमें केशोंका लोच करना, और असहनीय बाईस परीषह, आदि बड़े ही कठिन आचरण हैं। ६२–६४। इस समय हम लोगोंने जो कुछ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचरण ग्रहण कर रक्खा है, वह इस लोकमें भी सुखका कर्ता है। इस दुःषम कालमें हम उसे नहीं छोड़ सकते। ६५। तब शान्त्याचार्यने कहा कि यह चारित्रसे भ्रष्ट जीवन अच्छा नहीं। यह जैनमार्गको दूषित करना है। ६६। जिनेन्द्र भगवान्ने निर्ग्रन्थ प्रवचनको ही श्रेष्ठ कहा है। उसे छोड़कर अन्यकी प्रवृत्ति करना मिथ्यात्व है। ६७। इस पर उस शिष्यने रुष्ट होकर अपने बड़े डंडेसे गुरुके सिरमें आघात किया, जिससे शान्त्याचार्यकी मृत्यु हो गई और वे मर करके व्यन्तर देव हुए। ६८। इसके बाद वह शिष्य संघका स्वामी बन गया और प्रकट रूपमें सेवड़ा या श्वेताम्बर हो गया। वह लोगोंको धर्मका उपदेश देने लगा और कहने लगा कि सग्रन्थ या सपरिग्रह अवस्थामें निर्वाणकी प्राप्ति हो सकती है। ६९। अपने अपने ग्रहण किये हुए पाषण्डोंके सदृश उसने और उसके अनुयायियोंने शास्त्रोंकी रचना की, उनका व्याख्यान किया और लोगोंमें उसी प्रकारके आचरणकी प्रवृत्ति चला दी। ७०। वे निर्ग्रन्थ मार्गको दूषित बतलाकर उसकी निन्दा और अपनी प्रशंसा करने लगे...। ७१। अब वह जो शान्ति आचार्यका जीव व्यन्तरदेव हुआ था, सो उपद्रव करने लगा और कहने लगा कि, तुम लोग जैनधर्मको पाकर मिथ्यात्व मार्ग पर मत चलो। ७२। इससे उन सबको बड़ा भय हुआ और वे उसकी सम्पूर्ण द्रव्योंसे संयुक्त अष्ट प्रकारकी पूजा करने लगे। वह जिनचन्द्रकी रची हुई या चलाई हुई उस व्यन्तरकी पूजा आज भी की जाती है। ७३। आज भी वह बलिपूजा सबसे पहले उसके नामसे दी जाती है। वह श्वेताम्बर संघका पूज्य कुलदेव कहा जाता है। ७४। यह मार्गभ्रष्ट श्वेताम्बरोंकी उत्पत्ति कही। इससे आगे अज्ञान मिथ्यात्वका स्वरूप कहा जायगा। ७५।

भावसंग्रह विक्रमकी दशवीं शताब्दिका बना हुआ ग्रन्थ है, प्राचीन है, अतएव हमने उस परसे श्वेताम्बर सम्प्रदायकी उत्पत्तिकी इस कथाको यहाँ उद्धृत कर देना उचित समझा।

भट्टारक रत्ननन्दिने अपने भद्रबाहुचरित्रका अधिकांश इसी कथाको पल्लवित करके लिखा है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनकी कथाका मूल यही है; परन्तु उन्होंने अपने ग्रन्थमें इस कथामें जो परिवर्तन किया है, वह बड़ा ही विलक्षण है। उनके परिवर्तन किये हुए कथा-भागका संक्षिप्त स्वरूप यह है— "भद्रबाहु स्वामीकी भविष्यद्वाणी होने पर १२ हजार साधु उनके साथ दक्षिणकी ओर विहार कर गये, परन्तु रामल्य, स्थूलाचार्य और स्थूलभद्र आदि मुनि श्रावकोंके आग्रहसे उज्जयिनीमें ही रह गये। कुछ ही समयमें घोर दुर्भिक्ष पड़ा और वे सब शिथिलाचारी हो गये। उधर दक्षिणमें भद्रबाहु स्वामीका शरीरान्त हो गया। सुभिक्ष होनेपर उनके शिष्य विशाखाचार्य आदि लौटकर उज्जयिनीमें आये। उस समय स्थूलाचार्यने अपने साथियोंको एकत्र करके कहा कि शिथिलाचार छोड़ दो; पर अन्य साधुओंने उनके उपदेशको न माना और क्रोधित होकर उन्हें मार डाला। स्थूलाचार्य व्यन्तर हुए। उपद्रव करने पर वे कुलदेव मानकर पूजे गये। इन शिथिलाचारियोंसे 'अर्द्ध फालक' (आधे कपड़ोंवाले) सम्प्रदायका जन्म हुआ। इसके बहुत समय बाद उज्जयिनीमें चन्द्रकीर्ति राजा हुआ। उसकी कन्या वल्लभीपुरके राजाको ब्याही गई। चन्द्रलेखाने अर्धफालक साधुओंके पास विद्याध्ययन किया था, इस लिए वह उनकी भक्त थी। एक बार उसने अपने पतिसे उक्त साधुओंको अपने यहाँ बुलानेके लिए कहा। राजाने बुलानेकी आज्ञा दे दी। वे आये और उनका खूब धूम धामसे स्वागत किया गया। पर राजाको उनका वेष अच्छा न मालूम हुआ। ने रहते तो थे नग्न, पर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऊपर वस्त्र रखते थे। रानीने अपने पतिके हृदयका भाव ताड़कर साधुओंके पास श्वेत वस्त्र पहननेके लिए भेज दिये। साधुओंने भी उन्हें स्वीकार कर लिया। उस दिनसे वे सब साधु श्वेताम्बर कहलाने लगे। इनमें जो साधु प्रधान था, उसका नाम जिनचन्द्र था।"

अब इस बातका विचार करना चाहिए कि भावसंग्रहकी कथामें इतना परिवर्तन क्यों किया गया। हमारी समझमें इसका कारण भद्रबाहुका और श्वेताम्बर सम्प्रदायकी उत्पत्तिका समय है। भावसंग्रहके कर्त्ताने भद्रबाहुको केवल निमित्तज्ञानी लिखा है, पर रत्ननन्दि उन्हें पंचम श्रुतकेवली लिखते हैं। दिगम्बर ग्रन्थोंके अनुसार भद्रबाहु श्रुतकेवलीका शरीरान्त वीरनिर्वाणसंवत् १६२ में हुआ है और श्वेताम्बरोंकी उत्पत्ति वीर नि० सं० ६०३ (विक्रमसंवत् १३६) में हुई है। दोनोंके बीचमें कोई साढ़े चारसौ वर्षका अन्तर है। रत्ननन्दिजीको इसे पूरा करनेकी चिन्ता हुई। पर और कोई उपाय न था, इस कारण उन्होंने भद्रबाहुके समयमें दुर्भिक्षके कारण जो मत चला था, उसको श्वेताम्बर न कहकर 'अर्ध फालक' कह दिया और उसके बहुत वर्षों बाद (साढ़े चारसौ वर्षके बाद) इसी अर्धफालक सम्प्रदायके साधु जिनचन्द्रके सम्बन्धकी एक कथा और गढ़ दी और उसके द्वारा श्वेताम्बर मतको चला हुआ बतला दिया। श्वेताम्बरमत जिनचन्द्रके द्वारा वल्लभीमें प्रकट हुआ था, अतएव यह आवश्यक हुआ कि दुर्भिक्षके समय जो मत चला, उसका स्थान कोई दूसरा बतलाया जाय और उसके चलानेवाले भी कोई और करार दिये जायँ। इसी कारण अर्धफालककी उत्पत्ति उज्जयिनीमें बतलाई गई और उसके प्रवर्तकोंके लिए स्थूलभद्र आदि नाम चुन लिये गये। स्थूलभद्रकी श्वेताम्बर सम्प्रदायमें उतनी ही प्रसिद्धि है जितनी दिगम्बर सम्प्रदायमें भगवान् कुन्दकुन्दकी। इस कारण यह नाम ज्योंका त्यों उठा लिया गया और दूसरे दो नाम नये गढ़ डाले गये। वास्तवमें 'अर्धफालक' नामका कोई भी सम्प्रदाय नहीं हुआ। भद्रबाहुचरित्रसे पहलेके किसी भी ग्रन्थमें इसका उल्लेख नहीं मिलता। यह भट्टारक रत्ननन्दिकी खुदकी 'ईजाद' है।

श्वेताम्बराचार्य जिनेश्वरसूरिने अपने 'प्रमालक्षण' नामक तर्कग्रन्थके अन्तमें श्वेताम्बरोंको आधुनिक बतलानेवाले दिगम्बरोंकी ओरसे उपस्थित की जानेवाली इस गाथाका उल्लेख किया है:–

छव्वास सएहिं नउत्तरेहिं
तइया सिद्धिंगयस्स वीरस्स।
कंवलियाणं दिट्ठी
वलहीपुरिए समुप्पण्णा॥

अर्थात् वीर भगवानके मुक्त होनेके ६०९ वर्ष बाद (विक्रमसंवत् १४० में) वल्लभीपुरमें काम्बलिकोंका या श्वेताम्बरोंका मत उत्पन्न हुआ। मालूम नहीं, यह गाथा किस दिगम्बरी ग्रन्थकी है। इसमें और दर्शनसारमें बतलाये हुए समयमें चार वर्षका अन्तर है। यह गाथा उस गाथासे बिलकुल मिलती जुलती हुई है जो श्वेताम्बरोंकी ओरसे दिगम्बरोंकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें कही जाती है। और जो पृष्ठ २६५ में उद्धृत की जा चुकी है।

७ श्रीश्रुतसागरसूरिने षट्पाहुड़की टीकामें जैनाभासोंका उल्लेख इस प्रकार किया है:—

"गोपुच्छिकानां मतं यथा–इत्थीणं पुण दिक्खा०। श्वेतवाससः सर्वत्र भोजनं प्रासुकं मांसभक्षिणां गृहे दोषा नास्तीति वर्णलोपः कृतः।......द्राविडा सावद्यं प्रासुकं च न मन्यन्ति। उद्भोजनं निरासं कुर्वन्ति। [illegible]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इव उभयं मन्यन्ते । रत्नत्रयं पूजयन्ति, कल्पं च वाचयन्ति, स्त्रीणां तद्भवे मोक्ष केवलिजिनानां कवलाहारं-परशासने सग्रन्थानां मोक्षं च कथयन्ति । निः पिच्छिकाः मयूरपिच्छादिकं न मन्यन्ते । उक्तं च ढाढसीगाथासुः-

पिच्छेण हु सम्मत्तं
करगहिए मोरचमरडंबरए ।
अप्पा तारइ अप्पा
तम्हा अप्पा वि झायव्वो ॥ "

भावार्थः-गोपुच्छक या काष्ठासंघी स्त्रियोंके लिए छेदोपस्थापनाकी आज्ञा देते हैं । श्वेताम्बर सर्वत्र भोजन करना उचित मानते हैं । उनकी समझमें मांसभक्षकोंके यहाँ भी प्रासुक भोजन करनेमें दोष नहीं है । इस तरह उन्होंने वर्णाश्रमका लोप किया है । यापनीय दोनोंको मानते हैं । रत्नत्रयको पूजते हैं, कल्पसूत्रको बाँचते हैं, स्त्रियोंको उसी भवमें मोक्ष, केवलियोंको कवलाहार, दूसरे मतवालोंको और परिग्रहधारियोंको मोक्ष मानते हैं । निःपिच्छिक या माथुरसंघी मोरकी पिच्छी रखना आवश्यक नहीं समझते हैं । जैसा कि 'ढाढसी' नामक ग्रंथमें कहा है कि मोर और चमर (गोपुच्छ) की पिच्छिके आडम्बरमें सम्यक्त्व नहीं है । आत्मा ही आत्माको तारता है । इस लिए आत्माका ही ध्यान करना चाहिए ।

८ दर्शनसार वचनिकाके कर्ता लिखते हैं- "या आचार्यके किये भावसंग्रह प्राकृत, तत्त्वसार प्राकृत, आराधनासार प्राकृत, नयचक्र संस्कृत, आलापपद्धति संस्कृत, धर्मसंग्रह संस्कृत-प्राकृत, इत्यादि केई ग्रन्थ हैं । देवसेन नामके केई आचार्य हो गये हैं । " इसलिए इन सब ग्रन्थोंको अच्छी तरह देखे विना यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि ये सब ग्रन्थ दर्शनसारके कर्ताके ही हैं । 'नयचक्र' नामके ग्रन्थ दो हैं, एक संस्कृत और दूसरा प्राकृत । प्राकृत नयचक्र माणिकचन्द ग्रन्थमालाके द्वारा शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाला है । यह भी देवसेनकृत समझा जाता है । एक नयचक्रका उल्लेख विद्यानन्दस्वामी अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ श्लोकवार्तिकमें करते हैं:-

संक्षेपेण नयास्तावद्-
व्याख्यातास्तत्र सूचिताः ।
तद्विशेषाः प्रपञ्चेन
संचिन्त्या नयचक्रतः ॥

—अ० १, सूत्र ३३ ।

परन्तु श्लोकवार्तिक वि० सं० ८०० के लगभग बना हुआ है, अतएव यह नयचक्र दर्शनसारके कर्त्ता देवसेनसे बहुत पहलेका है ।

९ पैंतीसवीं गाथाके 'इत्थीणं पुण दिक्खा' इस पदका अभिप्राय वचनिकाकारने यह लिखा है कि मूलसंघमें स्त्रियोंको 'छेदोपस्थापना' नहीं कही है; पर काष्ठासंघके प्रवर्तकने उन्हें छेदोपस्थापना की, या फिरसे दीक्षा देनेकी आज्ञा दी है । इसके लिए कुन्दकुन्द स्वामीके किसी पाहुड़की यह गाथा दी है:—

इत्थीणं सुणपभवे (?)
अज्जाए छेओपठवणं ।
दिक्खा पुण संगहणं
णत्थीति निरूवियं मुणिहिं ॥

इसी काष्ठासंघके प्रकरणमें देवेन्द्रसेन-नरेन्द्रसेनविरचित सिद्धान्तसार दीपकका उल्लेख किया है और लिखा है कि यह काष्ठासंघका ग्रन्थ है । आश्विन सुदी ५ सं० १९७४ वि० ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हमारे देशका व्यभिचार।

(लेखक, श्रीयुत ठाकुर शिवनन्दनसिंह बी. ए.)

हम भारतवासी यह माने बैठे हैं कि पहले तो भारतमें सदाचार छोड़ व्यभिचारका लेश भी नहीं है और यदि किसी अंशमें है भी, तो नाममात्रको। कमसे कम विलायतवालोंके मुकाबले तो इस देशके स्त्रीपुरुष अत्यंत सच्चरित्र हैं। सुबूतमें कहा जाता है कि विलायतमें तो व्यभिचारके ऐसे घर बने हैं जहाँ स्त्रियाँ छिप कर बच्चे जन आती हैं और उन बच्चोंको दाइयाँ जिलाती हैं *। उनके यहाँ परदा न होनेसे जो जिसे चाहता है, अपना लेता है। पराई स्त्रियाँ पराये पुरुषोंके साथ घूमती हैं और मनमाना आनन्द करती हैं; वे रोकी तक नहीं जातीं। असलमें, उनके यहाँ व्यभिचारका विचार ही नहीं है।

यह बात कहाँ तक सत्य है इसका निश्चय करना अत्यन्त कठिन ही नहीं, असम्भव है। हमारे यहाँका रिवाज और रहनेका ढँग उनके रहनसहनसे ऐसा विरुद्ध है कि हम खामखाह उनके चरित्रमें धब्बा लगाते हैं और उनका जीवन यदि पवित्र भी हो तो भी हम उन्हें कलंक लगाते और पापाचारी कहा करते हैं। समाजमें, हर तरहके लोग होते हैं। यद्यपि आगरेके सिविल सर्जन मिस्टर क्लार्क और मिसेस फुलहम + आदिके सदृश कुचरित्र लोग भी इस समाजमें हैं, पर एकदम सारे समाजको अनाचारी मान लेना अन्याय है। कुछ दिनोंके लिये एक स्कूलमें मैं अवैतनिक असिस्टेन्ट हेडमास्तर था। स्कूलके प्रिंसपलसे मुझसे बहुत मेल बढ़ गया था। मैं प्रायः नित्य ही अपना सन्ध्याका समय उनके बँगले पर बिताता था। ये सपरिवार बड़े ही सज्जन थे और सबका बर्ताव मेरे साथ बहुत ही भला था। हम सब एक साथ 'बैड मिन्टन,' 'टेनिस' या 'चेस' आदि खेल खेला करते थे। इसमें मेमसाहिबा और उनकी युवा पुत्रियाँ भी शामिल रहती थीं। वे हारमोनियम या पियानो बजाकर बड़ी आजादीसे गाकर सुनाती थीं, खूब अच्छी तरह दिल खोल कर बातें करती थीं, बहस मुबाहिसा करती थीं, और सभ्यतापूर्ण हँसी दिल्लगी भी करती थीं। अर्थात् जिस आजादीसे दो सभ्य पुरुषमित्र आपसमें व्यवहार रखते हैं उसी तरह प्रिंसपलसाहबके घरकी स्त्री और पुरुष दोनोंके साथ मेरा व्यवहार था।

मेरे इस मेलजोलकी खबर धीरे धीरे स्कूलमें पहुँची। फिर क्या था, हर तरफसे मास्टर लोग कटाक्ष करने लगे। फुरसतके घण्टेमें सब लोग एक साथ बैठकर मेरी मीठी मीठी चुटकियाँ लेने लगे।

दैव-संयोगसे वहाँ एक नये कलेक्टर बदलकर आये। ये अकसर प्रिंसपल साहबके बँगले पर आने लगे। कभी कभी खाना भी यहीं खायँ और रातको भी रह जायँ। मेम साहिबाने तो अपना और कलेक्टरका बंगला एक कर रक्खा था। जब देखिए, वे कलेक्टरसाहबकी जोड़ी पर नजर आती थीं। हवा खाने दोनों एक साथ, नदीकी सैर एक साथ, जहाँ देखिए प्रिंसपलकी मेम और कलेक्टर साहब एक ही साथ दिखाई देते थे। दुर्भाग्यवश एक दिन प्रिंसपल साहब मले चंगे स्कूलसे आये और एकाएक बेहोश हो

* छिप कर बच्चे जने जानेका ब्योराः—

सन्	इँग्लैण्ड	फ्रांस	जर्मनी
१९०४	३८,४१२	७१,७३५	१,७४,७९४
१९०५	३६,८१४	७१,५००	१,७७,०६०
१९०६	३९,३१५	७१,४६६	१,७९,१७८
१९०७	३६,१८९	७१,३०५	१,८०,५८७
१९०८	३७,५३१	७१,००९	१,८४,११२
१९०९	३७,५०९	७१,२०३	१,८३,७००

+ Vide the pioneer and the Leader Etc. for March 1913 in which the shameful cose was published.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गये। उनका हृदय बन्द हो गया और वे कुछ ही घण्टोंमें परलोक सिधार गये।

लाश दफना कर मेम साहिबा अपने बँगले पर न आकर साहब कलेक्टरके साथ उन्हींकी मोटर पर सीधी उनके बँगले पर गईं और वहाँ कुल दो सप्ताह रह कर विलायत चली गईं।

इधर स्कूल क्या, सारे शहरके लोग, कलेक्टर और प्रिंसपलकी विधवाको व्यभिचारी–व्यभिचारिणी कहकर गालियाँ देते थे। कोई कोई तो यहाँ तक कह बैठते थे कि प्रिंसपल साहबको इन्हीं दोनोंने विषसे मार डाला है। पर बात यह थी कि स्वर्गीय प्रिंसपल साहब कलेक्टरके बहनोई थे। मेम साहिबा कलेक्टरकी सगी बहिन थीं। रंजका यह हाल था कि कुल दो सप्ताहोंमें वे २४ पौंड अर्थात् १२ सेर घट गईं थीं!

भारतके सुप्रसिद्ध मित्र और कांग्रेसके जन्मदाता, मिस्टर ह्यूम लिखते हैं कि—"भारत और विलायतके लाखों परिवारोंका एक साथ मुकाबला करके देखनेसे यह निश्चय करना, या कहना कठिन है कि भारतमें अधिक व्यभिचार है या विलायतमें। समाजमें कमजोर स्त्रियाँ और क्रूर पुरुष सदैव रहते हैं, जिनका चरित्र किसी प्रकारकी उच्च शिक्षासे नहीं सुधर सकता। पर, साथ ही समाजकी दशा सुधारने, स्त्रीपुरुषोंको सदाचारी और सच्चरित्र बनानेका एक मात्र उपाय उचित शिक्षा ही है।" अस्तु, यह किसी तरह नहीं कहा जा सकता कि विलायतके शिक्षित स्त्री या पुरुष व्यभिचारी हैं।

रेनाल्डके झूठे उपन्यास, मिस्ट्रीज आफ कोर्ट आफ लण्डन, स्त्रीत्याग या तलाकके मुकद्दमें, अथवा इधर उधरकी उड़ती हुई खबरें सुन कर किसी राष्ट्रको, या एक दो आदमियोंके कुचरित्र होनेसे सारे समाजको चरित्रभ्रष्ट समझ लेना ठीक नहीं। इन किस्सोंको पढ़ कर, और यह देखकर कि इनके यहाँ परदा नहीं है, स्त्रियों तकका विवाह बहुत देरमें होता है, बहुतसे स्त्रीपुरुष आयुपर्यन्त अविवाहित रहते हैं, हम पक्षपातके रंगीन चश्मेसे उन पर दृष्टि डालते हैं और उनमें सर्वथा पाप ही पाप देखते हैं।

खैर, जो हो; मुझे इस लेखमें यह दिखाना अभीष्ट नहीं है कि भारतमें विलायतसे, अथवा विलायतमें भारतसे अधिक व्यभिचार है। मेरे इस कथनका अभिप्राय केवल इतना ही है कि दूसरोंकी फूली देखना और अपना ढेंढर न देखना अच्छा नहीं। अर्थात् हम दूसरोंका दोष देखकर उन पर हँसते हैं, परन्तु अपने दोष पर आँखें बन्द कर लेते हैं। इस बातकी जाँचके लिए मैं आपको ब्रिटिश राज्यके–जहाँ कि चौबीसों घण्टे सूर्य अस्त नहीं होते–दूसरे नम्बरके शहरमें, भूमण्डलके प्रधान बारहवें नम्बरके शहरमें और भारतके सबसे बड़े शहर कलकत्तेमें, जो जनसंख्या (आबादी) के हिसाबसे बम्बई, दिल्ली, लाहौर आदि सब शहरोंसे बड़ा है, ले चलता हूँ। आइए पहले इस शहरकी जाँच घूमकर करें। घबराइए नहीं। लोगोंको उँगली उठाने दीजिए, हँसने दीजिए। शरमकी बात तो उस समय होती जब हम तमाशबीनी करने या ऐशो अशरत करने जाते होते। हम लोग तो मर्दुमशुमारीके अफसरोंकी तरह देशकी सच्ची दशाकी जाँच करने चल रहे हैं।

मछुआ बाजार।

मीलों तक सड़कके दोनों तरफ मकानोंके ऊपरके खण्डोंमें वेश्यायें खचाखच भरी हैं। ये बहुधा मारवाड़िन और एतद्देशीय हैं। जैसे दरबेमें कबूतर कसे रहते हैं, वैसे ही मकानका किराया अधिक होनेसे एक एक कमरेमें चार चार पाँच पाँच वेश्यायें सड़ा करती हैं। सड़ककी पटरियों पर जगह जगह आठ आठ दश दश बंगाली लड़कियाँ एक कतारमें नाके नाके पर खड़ी हैं। इनका स्थान उसी नाकेके ठीक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सामनेवाली गलीमें है। खुले आम, बीच सड़कमें लोग इन अनाथा लड़कियोंसे हँसी मजाक करते हैं। उस झुण्ड या कतारमेंसे जिसकी तरफ इशारा हो जाता है उसे पुरुषके साथ अपने स्थानको प्रस्थान करना पड़ता है–क्या अनोखी सभ्यता है!

लोअर चीतपुर रोडके पीछे कोई महल्ला।

इस महल्लेका नाम स्मरण नहीं आता। यहाँकी दुर्दशा देख कर कलेजा फट जाता है, खून पानी हो जाता है। कई सौ घर बंगाली वेश्याओंके हैं। गलियोंसे भीतरका कोई कोई हिस्सा दिखाई देता है। आनन्दपूर्वक निडर होकर लोग तख्तों-पर मसनद लगाये ताश खेल रहे हैं और लज्जा त्याग कर खुलेआम हर तरहका मजाक कर रहे हैं। सबसे घृणित बात यह है कि, इन वेश्याओंमें बहुतोंकी आयु १० वर्षसे अधिक न होगी। पर हाय पेट, और दरिद्रता और उन्हें गहरी कन्द-रामें गिरानेवाले पुरुषोंकी सभ्यता! हम, तुम तीनोंको नमस्कार करते हैं।

सोना गाछी।

यहाँ भी वही हृदयविदारक दृश्य है। रास्ता चलना मुश्किल है। कामकाजी लोग इस रास्तेसे होकर नहीं जाते, रास्ता बचा कर किसी दूसरी तरफसे निकल जाते हैं। यहाँ वेश्यायें राह चलते हाथ पकड़ लेती हैं। टोपी या दुपट्टा ले भागती हैं। समाजसे गिरी हुई लड़कियोंकी अत्यन्त दीनदशा, बेहयाईकी आखिरी हद, और भारतकी सभ्यताकी तीसरी झलक, यहाँ दीखती है।

इनके अतिरिक्त एक महल्ला गोरी (यूरोपियन) वेश्याओंसे भरा है। यहाँ अँगरेज तो बिरले ही देख पड़ते हैं, हाँ मन चले भारतवासी ठोकरें खानेके लिए अवश्य आया करते हैं। एक नव-युवक अग्रवाल ग्रेजुएट डिप्टी कलेक्टर (शायद हमीं लोगोंकी तरह जाँच करते हुए!) एक मित्रके साथ इन्हीं गोरी वेश्याओंमेंसे एकके यहाँ पहुँच गये। एक तुच्छ बात पर मतभेद होनेसे उस अभिमानिनी वेश्याने डिप्टी साहब पर गुस्सेसे हाथ चला दिया। डिप्टी साहब अपने मुँहसे कहते थे कि दोनों मित्र यदि जूता हाथमें ले दौड़ कर भाग न जाते, तो खूब ही पिटते, और पुलिसके हवाले कर दिये जाते ऊपरसे!

वे कहने लगे—"इस दुर्घटनासे मेरे मित्र, जिनका मैं मेहमान था बहुत दुःखी हुए। अपनी और मेरी झेप मिटानेके लिए मुझसे कुछ न कह कर वे मुझे एक मनोहर बेल, लता और पुष्पोंसे सुशोभित सुन्दर बंगलेमें ले गये। यह सुनकर कि यह एक वेश्याका बंगला है, मैं धक्कसे रह गया। डरा कि कदाचित् यहाँ भी न ठुक जायँ, पर यहाँका बर्ताव देशी वेश्याओंसे भी अच्छा ठहरा! यह एक यहूदिन वेश्याका बंगला था। ऐसे बहुत से बंगले कलकत्तेमें हैं। मैं १५ दिन तक कलकत्तेमें रहा और अकसर शामको किसी ऐसे ही बंगलेमें आनन्दपूर्वक समय व्यतीत करता रहा।"–गिनते जाइए, यह सभ्यताका चौथा नमूना है!

एडेन गार्डन।

मैं—(चौंक कर) क्यों जी, यह अनोखी विक्टोरिया सब्जा पेयर तो मोती बाबूकी है न?

मेरे मित्र—(मुसकराकर) खूब, गाड़ी और जोड़ी तो पहचान गये, पर उसके मालिक सवारों पर आँख नहीं ठहरती।

मैं—अरे! यह तो स्वयं मोती बाबू हैं, पर उनके बगलमें यह कौन है?

मेरे मित्र—उन्हींकी घरवाली।

मैं—अजी जाओ भी, क्या मैंने उनकी बीबीको नहीं देखा है! यह तो रंग ढंगसे कोई वेश्या मालूम पड़ती है; लेकिन...।

मित्र—वेश्या बीबी नहीं तो और क्या है? लेकिनके बाद चुप क्यों हो गये? तुम्हें आश्चर्य है कि मोती बाबू गौहरजानके साथ बैठ कर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हवा खाने निकले हैं। अरे यह कलकत्ता है। वह देखो, जौहरी जी मलकाको लिये उड़े जा रहे हैं।

मैं—और सामने बच्चा किसका बैठा है ?

मित्र—जौहरी महाशयका। अभीसे सीखेगा नहीं तो आगे बापका नाम कैसे रक्खेगा !

मैं—छिः ! क्या बेहयाई है, कैसी बेशरमी है।

मित्र—बस, तुम तो गँवार ही रहे। कैसी बेशरमी ? वह देखो गाड़ियोंकी तीसरी कतार—एक, दो, तीन (कोई २० तक गिनाकर) जानते हो उनमें कौन हैं ? पहचानते हो ? सबकी सब वेश्यायें हैं। वे देखो सुशील बाबू उसे गुलदस्ता दे रहे हैं। डाक्टर बाबू फूलोंका बटन उसकी साड़ीमें लगा रहे हैं। जरा आँख खोल कर देखो—प्रमथ बाबू किसके गलेमें हाथ दिये घूम रहे हैं ? यहाँ दिन भर लोग कस कर काम करते हैं, शामको यदि थोड़ा दिलबहलाव न करें तो मर ही जायँ। रहीं घरकी स्त्रियाँ; सो अव्वल तो उनसे यदि आजादीसे बातचीत करें, तो माँ-बाप तानोंसे बेध डालें, और दूसरे उन्हें अपनी गृहस्थी और बालबच्चोंके रोने-धोनेसे कहाँ फुरसत है, जो दिनभरके थके माँदे पतिका दिल बहलाकर उनकी थकावट दूर करें। तुम विलायतमें तो रहते नहीं कि हम भारतवासियोंके गृहसौख्यका हाल न जानते हो। हम लोगोंका घर तो नरककुंड समझो। यह सभ्यता और बेशरमी नहीं; कलकत्तेमें इसकी परम आवश्यकता है।

थियेटर।

यहाँ भी वही बात। आरचेष्ट्राकी कोच पर दो सीटें हुआ करती हैं। प्रायः सभी कोचों पर बाईजी (वेश्यायें) और सेठजी साथ साथ बैठे हैं। किसी भी अमीरजादेकी बगल इन शरीफजादियोंसे खाली नजर नहीं आती। तमाशा खतम होने पर सेठ साहूकार तो अपनी अपनी चिड़ियोंके साथ हवागाड़ियों पर हवा हो गये, रहे किरायेकी गाड़ी करनेवाले; सो जिसे देखिए वही गाड़ीवालेसे किसी 'जान' के मकानका किराया तै कर रहा है। यदि मण्डलीका कोई आदमी घर जानेका नाम लेता है तो दूसरे उसे समझा बुझा कर ठीक कर लेते हैं। कहते हैं कि अरे यार, यह गोल्डेन नाईट (शनिश्चरकी रात) बड़ी मुशकिलोंसे सात दिनकी कड़ी मेहनतके बाद प्राप्त होती है, इसे घरकी बेहंगम स्त्री और कलहमें नहीं खोनी चाहिए।

ग्रीन पार्टी।

रविवारको अकसर दोपहरके बाद लोग शहरके बाहर बागबगीचोंमें, दस दस पाँच पाँचकी गोल बाँध कर निकल जाते हैं। कहीं ग्रीन सिरप (भंग) उड़ता है और कहीं हाट वाटर पेग पर पेग चढ़ाया जाता है। हर पार्टीमें पार्टीकी जान, एकाद वेश्या अवश्य रहती है।

यह रिपोर्ट हम लोगोंके भ्रमण करनेकी है। अब सरकारी कागजोंसे देखिए कि इस शहरकी क्या दशा है।

सन् १९११ की मर्दुमशुमारीकी रिपोर्टसे ज्ञात होता है कि कलकत्ते शहरमें १४,२७१ (चौदह हजार ! !) वेश्यायें हैं। कलकत्तेकी कुल स्त्रियोंमेंसे जिनकी उमर २० से ४० वर्षकी है, प्रत्येक बारह स्त्री पीछे एक वेश्या है ! १२ से २० तककी आयुकी स्त्रियोंमें प्रति सैकड़ा ६ वेश्यायें हैं ! और १०९६ वेश्या-लड़कियोंकी आयु १० वर्षसे भी कम है ! ९० फी सदी वेश्यायें हिन्दू हैं !

भगवन् ! बारह, दस या इससे भी कम आयुकी वेश्यायें ! भारतमें जैसे बाल-विवाहकी कुरीति चल निकली है वैसे ही बाल-वेश्याओंका भी बुरा रिवाज जारी हो गया है। इस अन्धेरके विषयमें डाक्टर एस. सी. मैकेंजी एक स्थान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर और खाँबहादुर मौलवी तमीजखाँ दूसरे स्थान पर लिखते हैं कि—"बेचारी दीन लड़कियाँ पानीमें फूलनेवाली लकड़ीके साथ पानीके टबमें बैठाली जाती हैं जिससे कि वे पुरुषोंके समागमके लिए तैयार हो जायँ। कहीं कहीं यह काम केलेसे लिया जाता है।"

Dr. Chevers 'Means are commonly employed even by *parents* to render the immature girl *ople Viris* by mechanical means'—बस, यहाँ तो सभ्यताका अन्त हो गया!

सन् १८५२ ईसवीमें कलकत्तेमें १२,४१९ वेश्यायें थीं और उनमेंसे १०,४६१ हिन्दू थीं। सन् १८७० ई० में इस शहरमें ७,९३९ हिन्दू, १,१६२ मुसलमान, ५६ यूरेशियन, ५ यूरोपियन और ३५ यहूदिन आदि वेश्यायें थीं।

यह दशा केवल कलकत्ता शहरकी ही नहीं है। इस खुले व्यभिचारका साइनबोर्ड भारतके प्रत्येक शहरके खास बाजार या चौकमें दिखाई देगा। बम्बईका व्हाइट मारकेट (सफेद गली), लाहौरकी अनार कली, दिल्लीका चावड़ी बाजार, और लखनऊका खास चौक वेश्याओंसे भरा पड़ा है। तीर्थराज, पापनाशक, पवित्र काशीनगरमें, संयुक्त प्रान्तके सब शहरोंसे अधिक वेश्याओंकी संख्या है। डाक्टर और वैद्य भी यहाँ युक्तप्रान्तके सारे शहरोंसे अधिक हैं। (वेश्याओंकी अधिकताके साथ डाक्टरोंकी ज्यादती होनी ही चाहिए।) प्रयाग, मथुरा, वृन्दावन और हरद्वार तक इनका डेरा जमा रहता है। पवित्र भूमि 'कनखल' में भी आप इन्हें देख लीजिए। नैनीताल आदि पहाड़ोंके ऊपर लोग कुछ ही महीनोंके लिए जाते हैं। बाबू साहबोंके साथ साथ बाईजीयों (वेश्याओं) का डेरा भी बदाऊँ, मुरादाबाद क्या बरेली तकसे वहाँ पहुँच जाता है। अँगरेज तो शामके वक्त बोटिंग करते हैं, नीचे क्लबमें फुटबाल आदि अनेक खेल खेलते हैं और बाबूसाहबान किसी प्रेमिकाके सड़े डेरेमें अपने स्वास्थ्यका सर्वनाश करते हैं। पहाड़से लौटे हुए एक अँगरेज और हिन्दुस्तानीका स्वास्थ्य उनके आचारकी गवाही देने लगता है!

भारतके कुल शहरोंकी वेश्याओंकी संख्या—जो मर्दुमशुमारीके समय अपना यही पेशा बताती हैं—४,७२,९९६ है। बहुतेरी वेश्यायें डरसे अथवा लाजसे अपना पेशा कुछ और बता देती हैं, इसलिए उनकी संख्या इसमें शामिल नहीं है। इन पौने पाँच लाखके लगभग वेश्याओंकी वार्षिक आमदनी ६२,४६,००,००० (बासठ करोड़!) रुपया है।

शोक यह है कि इस प्रकारका खुला व्यभिचार भारतमें दिनों दिन कम होनेके बदले बढ़ता जाता है, और वेश्याओंकी संख्यामें अधिकता होती जाती है। पञ्जाबकी हिन्दू सभा लिखती है कि "इस प्रान्तके प्रत्येक मुख्य मुख्य शहरमें व्यभिचारके लिए लड़कियोंकी खरीद और फरोख्त बढ़ रही है। सन् १९११ में प्रान्तीय लाट महोदयने, इस बातकी तसदीक की है।"

अस्पतालोंके रजिस्टर, दवा बेचनेवालोंके इश्तिहार और कोढ़ियोंकी संख्यासे भी इस देशके व्यभिचारकी झलक मालूम पड़ती है। कोढ़का रोग चाहे पैतृक भी हो, पर इस रोगके पीछे सिफ़लिस (गर्मी) अवश्य हुआ करती है। प्रोफेसर हिगिन बाटम—जिन्होंने कोढ़ियोंमें बहुत काम किया है—कहते हैं कि आजतक उन्हें कोई कोढ़ी ऐसा न मिला—जिसे खुद अथवा जिसकी छूतसे उसे यह रोग हुआ—सिफ़लिस न निकल चुकी हो। कोढ़की जड़ गर्मी है। यह तो खुले हुए व्यभिचारकी कथा हुई। इससे तो कोई इनकार ही नहीं कर सकता। अब रहा गुप्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्यभिचार, सो उसका जाँचना मनुष्यकी शक्तिसे बाहर है। ईश्वर ही उसकी सच्ची जाँच कर सकता है।

इस देशमें समाजका ऐसा कड़ा नियम है, इसके लिए ऐसी कड़ी सामाजिक सजायें रक्खी गई हैं कि ऐसे लोगोंका प्रत्यक्ष पता लगाना कठिन ही नहीं, असम्भव है। पर अनुभव अवश्य किया जा सकता है।

पहले घरकी मजदूरिनोंको ले लीजिए। ये विवाहिता तो अवश्य होती हैं, पर युवावस्थामें अपने मालिकके घर, किसी न किसी नवयुवक सरदारकी शिकार होनेसे शायद ही बचती हैं। हाँ अवस्था ढल जाने पर चुपचाप अपने पतिके साथ पतिव्रता बन कर बैठ रहती हैं। सेन्ससके सुपरिन्टेन्डन्टने लिखा है कि,—"मजदूरिनोंमेंसे बहुत सी तो सचमुच ही वेश्यायें हैं।"

इसी तरह दूकानों पर बैठनेवाली स्त्रियोंको अर्ध वेश्या समझना चाहिए; कमसे कम कुच-रित्र स्त्रियोंमें तो इनकी गिनती अवश्य होनी चाहिए।

दक्षिणभारत (मद्रास आदि) में बालिका-ओंको मंदिरमें देवसेवा निमित्त चढ़ा देनेकी चाल है। वहाँ उन्हें 'विभूतिन' कहते हैं। वे तीर्थयात्रा करती हुई, इस प्रान्त तक आ जाती हैं और अपनी सच्चरित्रताका परिचय दे जाती हैं।

उन विवाहित पुरुषोंकी स्त्रियाँ—जो अत्यन्त निर्बल हैं, रोगी हैं, वृद्ध या शक्तिहीन हैं, और जिन्होंने जान बूझ कर व्याह करके स्त्रियोंके गले पर छुरियाँ चलाई हैं—कबतक पातिव्रत धर्म निबाह सकती हैं? अथवा उन अनाचारी अत्याचारियोंकी स्त्रियाँ, जो अपना घर छोड़ कर बाजारकी हवा खाते हैं, कबतक और कहाँ तक निरादरता सहती हुई पतिव्रता रहेंगी? जो पुरुष स्त्रीभक्त नहीं, वेश्यागामी है, उसे अपनी स्त्रीसे पतिव्रता रहनेकी आशा करना व्यर्थ है। सम्भव है कि उसे अपने घरका हाल कभी न मालूम हो; पर बगलका पड़ोसी उसका कच्चा चिट्ठा कह सकता है।

सबके ऊपर भारतमें २ करोड़ ६५ लाखसे अधिक विधवायें हैं। मैं इनके आचरण पर आक्षेप नहीं करता। पर विचार करनेकी बात है कि इनमेंसे प्रायः सभी मूर्खा हैं, देव, शास्त्र, धर्म और ज्ञानसे सर्वथा अनभिज्ञ हैं। केवल यह जानती हैं कि उनके कुलमें विधवाविवाह नहीं होता। उन्हींका हृदय प्रश्न करता है कि क्यों नहीं होता? इसका वे कुछ उत्तर नहीं दे सकतीं। केवल भाग्यमें लिखा है, कर्म फूट गया है, आदि कह कह कर मनकी तरंगोंको शान्त करती हैं। पर इन स्त्रियोंकी शैतान पण्डों, पुरोहितों या ऐसे ही अन्य पाखण्डियोंसे भेट हो जाने पर, और मौका मिलने पर, भाग्यके बलसे ये कबतक कामदेवसे लड़ सकती हैं? आखिर तो मूर्खा स्त्री ही ठहरीं न, उनकी कमजोरी उन्हें यह समझा कर सन्तोष कर लेनेके लिए लाचार कर देती है कि—" यह दुराचार भी विधाताने उनके भाग्यमें लिख रक्खा हो। गावे स्वयं धर्म्मच्युत नहीं हो रही हैं, बल्कि यह उनके दुर्भाग्यका परिणाम है–जिस दुर्भाग्यने, उन्हें जर्जर पतिकी पत्नी बनाया, और उसे भी न रहने दिया, वही भाग्य पिशाच उन्हें आज इस गढ़ेमें झोंक रहा है। चलो, यह भी सही 'विधिका लिखा को मेटनहारा'—" बस खतम। हाँ, यह बहुत जरूरी बात अवश्य है कि कहीं बात खुल न जाय, नहीं तो जन्म जन्मान्तर, पुश्त दरपुश्तके लिए खानदान भरको जातिच्युत होना पड़ेगा। सो, इसके लिए जबतक तीर्थया-त्राके लिए द्रव्य, पापोंको धोनेवाली बड़ी बड़ी नदियाँ, घरकी पुरानी चालकी संडासें, या अन्धे कुएँ मौजूद हैं, इससे भी भय नहीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भगवन् ! क्या ही दीन दशा है । विश्वबन्धुके मकानके पास ही एक कुलीन ब्राह्मण महाशयका घर था । उनके यहाँ एक परम रूपवती युवती विधवा थी । उनके घर परदेका कड़ा नियम था । तो भी विश्वबन्धु उनके यहाँ बेरोकटोक जाया करते थे । कुछ दिनोंके बाद जब न ज़ाने क्यों ब्राह्मण महाशयने मकान छोड़ देनेका निश्चय किया, तब विश्वबन्धुने अपनी माँसे कह सुन कर उस मकानको खरिदवा लिया । ब्राह्मण महाशय सपरिवार अपने देश (कन्नौज) चले गये और उस मकानकी मरम्मत शुरू हुई । एक कोठरी, जिसे पण्डिताइन ठाकुरजीकी कोठरी कहा करती थीं, और जो सालमें केवल कुलदेवकी पूजाके समय खोली जाती थीं, बड़ी सड़ी नम और बदबूदार थी । उसे पक्की करा देना निश्चय हुआ । नम मिट्टीको खोद कर फेंक देनेके लिए मजदूर खोदने लगे । सुना जाता है कि उसमेंसे एक ही उमरके कई बच्चोंके पंजर निकले ! एक तो बिलकुल हालहीका दफनाया जान पड़ता था ! प्रभो ! भारतको ऐसे भयंकर पापोंसे बचाइए । हमें बल और निर्मल बुद्धि प्रदान कीजिए, जिससे हम इन कुरीतियोंका अन्त कर सकें ।

सिविल सर्जन साहब जेल और अस्पताल आदिसे लौटकर लगभग एक बजे बंगले पर आये । टेबुलपर एक तार मिला, जिसका आशय यह था कि "रोगी सख्त बीमार है । जल्दी आनेकी कृपा कीजिए । देवदत्त ।" साहब बड़े ही दयालु हैं । उसी समय घोड़े पर सवार होकर रवाना हो गये । उन्होंने देवदत्तके घर पहुँच कर पूछा कि रोगी कहाँ है ? देवदत्त हाँफते हाँफते आये और बोले हुजूर, बड़ी गलती हुई, माफ कीजिए । साहबने डपटकर पूछा कि बतलाओ रोगी कहाँ है । देवदत्त गिड़गिडाते हुए साहबके हाथमें फीस रखकर पैरों पर लोट गये और ए- बारशनकी (गर्भपात करनेकी) दवा पूछने लगे । साहब लाल हो गये । जमीन पर जोरसे पैर पटककर और 'छिः' कहकर लौट गये । बंगले पर पहुँचकर उन्होंने इस बातकी सूचना पुलिस कप्तानके पास भेज दी ।

उसी दिन रातको देवदत्तकी चचेरी बहिन अकस्मात् मर गई और रातोंरात चिता पर भस्म कर दी गई । यह विधवा थी । कई दिनके बाद देवदत्तकी तलबी कोतवालीमें हुई । सुना जाता है कि वहाँके देवताने अपनी पूजा पाई और रिपोर्टमें लिख दिया कि देवदत्त प्रतिष्ठित रईस हैं । उस दिन, उनकी बहिनको हैजा हो गया था, इसीलिए साहबको बुलाया था । वे एबारशन नहीं बल्कि रेस्ट्रिक्टिव चेक (restrictive heckc) की या बन्धेजकी दवा पूछना चाहते थे, और यह कानूनन कोई जुर्म नहीं है ।

यह दोहरे खूनका नमूना है । यहाँ तो समाजमें जबतक बात छिपी है, तबतक सब ठीक, और यदि खुलनेकी नौबत आई तो बस 'विष' या 'त्याग'। ले जाकर कहीं दूरके शहरमें या तीर्थस्थानमें छोड़ आये । कुछ दिनों तक मुहब्बतके मारे कुछ खर्च भेजा और फिर बन्द कर दिया । ऐसी अनाथा स्त्रियोंकी क्या दशा होती होगी उसे पाठक स्वयं विचार सकते हैं ।

भारतकी ऊपर बतलाई हुई कई लाख वेश्यायें कौन हैं ? हम भारतवासियोंके घरकी विधवायें, हमारी ही बहिनें और बेटियाँ, या उनकी सन्तति । हमारी ही असावधानी, निर्दयता और निष्ठुरताके कारण उनकी यह दशा हुई है ।

१ रामकली, विन्ध्याचल–"मैं क्षत्रानी हूँ । बालविधवा हूँ । मेरे भाई दर्शन करानेके हीलेसे मुझे यहाँ छोड़ गये । उनके इस तरह त्याग करदेनेका कारण मैं समझ गई, इस लिए मैंने कभी पत्र नहीं भेजा और न लौटनेकी चेष्टा की । अब भीख माँगकर अपना गुजर करती हूँ ।

Jangamwadi Math Collection, Digambar Jain Mandir, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मैं सर्वथा असहाय हूँ। और कोई जरिया पेट पालनेका नहीं है। उमर २०-२१ वर्षकी है। यहाँ मुझसी ही अभागिनें ८-९ स्त्रियाँ और हैं। उनका चरित्र ठीक नहीं है।

२ लछमी, वृन्दावन—" मैं ब्राह्मणी हूँ। मेरी सास आदि कई स्त्रियाँ मुझे यहाँ छोड़कर चल दीं। पत्र भेजने पर उत्तर मिला कि अपना कर्तव्य स्मरण करो, यहाँ लौटकर क्या मुँह दिखाओगी, वहीं जमुनामें डूब मरो। मेरी माँ नहीं है। पिताने मेरे पत्रका कभी उत्तर नहीं दिया।"

३ श्यामा, हरद्वार—" मेरे पिता मुझे यहाँ छोड़ गये हैं।"

४ राजदुलारी, गया— " मेरे ससुरालके लोग बड़े धनी हैं। यहाँ मुझे पुरोहितजी छोड़ गये हैं। कुछ दिनों तक पाँच रुपया मासिक आता रहा, पर अब कोई खबर नहीं लेता। पत्रोत्तर भी नहीं आता।"

५ नलिनी और सरोजिनी, काशी—"हम दोनों अभागिनें बंगालकी रहनेवाली हैं। हम दोनोंका एक ही घरमें विवाह हुआ था। नलिनी विधवा हो गई। मेरे पति मुझे एक लड़की होने पर वैराग्य लेकर चल दिये। मेरे ससुरजी पन्द्रह रु० मासिक पेन्शन पाते थे। काशीवास करने यहाँ आये और हम दोनोंको साथ लेते आये। तीन महीनेके बाद मर गये। एक परिचित बंगाली महाशय सहायता देनेके बहानेसे मिले और एक दिन हम दोनोंका कुल जेवर चुरा ले गये। फिर इसीसे लगी हुई पुलिसकी एक घटनासे बलपूर्वक हम अनाथाओंका सर्वनाश किया गया और इस दीन हीन दशाको पहुँचाई गई। एक सौ और बीस रुपया कर्ज होगया है। इस पुत्रीके सयानी होने पर इसीको बेचकर, अथवा वेश्या बना कर कर्ज अदा करूँगी।"

क्या अन्धेर है! स्त्रियों पर कैसा अत्याचार किया जा रहा है! स्त्रियाँ चाहे कितनी ही गई गुजरी क्यों न हों, पर बिना बेईमान शैतान पुरुषोंके बहकाये वे अपने धर्मसे कभी नहीं डिगतीं। स्त्रियोंका चरित्र बिगाड़ना पुरुष जातिका काम है। बाज हरामजादोंने तो सैकड़ों स्त्रियोंकी मिट्टी पलीद कर दी है। यह ठीक है कि ताली दोनों हाथसे बजती है; पर समाज केवल स्त्रियोंको ही क्यों दण्ड देता है? अनाथा स्त्रियाँ ही क्यों घरसे निकाली जाती हैं? कुचरित्र पुरुष जिनका व्यभिचार स्त्रियोंके मुकाबले सौ पचास गुना अधिक होता है क्या सजा पाते हैं? इन पापोंकी जड़, पाखण्डी कुचाली पुरुषोंका, समाज क्यों नहीं तिरस्कार करता? ऐसा न करना इन पापियोंको स्त्रियोंका सर्वनाश करनेके लिए सहारा देना और अनाथ, असहाय अबलाओं पर घोर अत्याचार करना है।

हमारा समाज, जिसे हम मूर्खतावश अति उत्तम समझ बैठे हैं और जिसकी पवित्रता पर फूले नहीं समाते, बिलकुल निर्जीव, निर्बल और सर्वदा अशिक्षित मनुष्योंका समूह है। इस समाजको सच्चरित्र स्त्रियोंकी आह और कुचरित्र स्त्रियोंका पाप भस्मीभूत कर रहा है और यदि इस पर लोगोंने ध्यान न दिया तो यह आह कुछ ही कालमें समाजको जलाकर राख कर देगी—सावधान! *

* हिन्दी ग्रन्थरत्नाकर सीरीजमें शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाले 'देशदर्शन' नामक ग्रन्थका एक अध्याय।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आदिपुराणका अवलोकन।

[ले०—श्रीयुत बाबू सूरजभानजी वकील ।]

२

वेश्याओंका सत्कार।

आदिपुराणका अध्ययन करनेसे मालूम होता है कि पहले—कमसे कम ग्रन्थकर्ताके समयमें—वेश्याओंका आजकलके समान निरादर नहीं था। उस समय उनके साथ जैसा व्यवहार किया जाता है, वह आज कलकी दृष्टिसे एक प्रकारका प्रतिष्ठाका व्यवहार था। नीचे लिखे उदाहरणोंसे यह बात स्पष्ट हो जायगी।

आदिनाथ भगवान्‌का जीव जिस समय विदेहमें—उस विदेहमें जहाँ कि सदैव चौथा काल रहता है—राजा महाबल था, उस समय उस पर अनेक वेश्यायें चँवर ढोरा करती थीं:—

सिंहासने तमासीनं तदानीं खचराधिपं।
दुधुवुश्चामरैर्वारनार्यः क्षीरोदपाण्डुरैः ॥ २ ॥
मदनद्रुमसञ्जर्यो लावण्यांभोधिवीचयः।
सौन्दर्यकलिका रेजुस्तरुण्यस्तत्समीपगाः ॥ ३ ॥
—पर्व ५।

अर्थात् सिंहासन पर विराजमान हुए उस विद्याधरनरेश महाबल पर वेश्या स्त्रियाँ क्षीरजलके समान उजले चमर ढोरती थीं। उसके समीप वे तरुणी स्त्रियाँ कामदेवरूप वृक्षकी कोंपलें, लावण्यरूप समुद्रकी तरंगों और सौन्दर्यकी कलियोंके समान जान पड़ती थीं।

इसी प्रकारका वर्णन आदिनाथके जीव राजा वज्रनाभके सम्बन्धमें भी किया गया है:—

नृपासनस्थमेनं च वीजयन्ति स्म चामरैः।
गंगातरंगसच्छायैर्भंगिभिर्ललिताङ्गनाः ॥ ४० ॥
—पर्व ११।

अर्थात् सिंहासन पर बैठे हुए उस राजा पर सुन्दर स्त्रियाँ गंगाकी लहरोंके समान उजले और कुछ कुछ तिरछे होकर ऊपर नीचेकी ओर जाते हुए चँवर ढुला रही थीं।

पर्व २६ में भरतचक्रवर्ती जब दिग्विजयको निकले हैं उस समय उन पर भी वेश्याओंके चँवर ढुर रहे थे।

स्वर्धुनीकरस्पर्द्धिचामराणां कदम्बकं।
दुधुवुर्वारनार्योऽस्य दिक्कन्या इव संसृताः ॥ ६५ ॥

अर्थात् जब वेश्यायें उस चक्रवर्ती पर गंगाके जलकणोंकी समानता करनेवाले चँवरोंको ढोरती थीं, तब ऐसा मालूम होता था कि दिक्कन्यायें ही उतर आई हैं।

भरे दरबारमें सिंहासन पर बैठे हुए राजाओंके ऊपर वेश्याओंके द्वारा चँवर ढुराये जानेके दृष्टान्त ही इस ग्रन्थमें नहीं मिलते हैं; किन्तु ऐसा किये जानेकी आज्ञा भी स्पष्टरूपसे दी गई है। श्रावकोंकी ५३ क्रियाओंमें एक 'साम्राज्य' नामकी भी क्रिया है। इस क्रियाका स्वरूप ३८ वें पर्वमें इस प्रकार लिखा हुआ है:—

चक्राभिषेक इत्येकः समाख्यातः क्रियाविधिः।
तदनन्तरमस्य स्यात् साम्राज्याख्यं क्रियान्तरं २५३
अपरे द्युर्दिनारंभे धृतपुण्यप्रसाधनः।
मध्ये महानृपसभं नृपासीनमधिष्ठितः ॥ २५४ ॥
दीप्तैः प्रकीर्णकव्रातैः स्वर्धुनीसीकरोज्ज्वलैः।
वारनारीकराधूतैर्वीज्यमानः समन्ततः ॥ २५५ ॥

भावार्थ—चक्राभिषेक क्रियाके अनन्तर 'साम्राज्य' नामकी क्रिया होती है। दूसरे दिन प्रातःकाल पवित्र अलंकार धारण करनेवाले महाराज, बड़े बड़े राजाओंकी सभाओंके बीचमें सिंहासन पर विराजमान हों और वेश्यायें उनके ऊपर गंगाके जलकणोंके समान उज्ज्वल चँवर ढुलावें।

वेश्याओंका नृत्य भी उससमय बुरा नहीं समझा जाता था। वह उत्सवोंका बहुत ही प्रिय और आवश्यक साधन था। विदेह क्षेत्रमें राजा वज्रजंघ (आदिनाथका जीव) और श्रीमतीके विवाहमें वेश्याओंका नृत्य हुआ था:—

वर्द्धमानलयैर्नृत्यमारेभे ललितं तदा।
वाराङ्गनाभिरुद्भूमीरणन्नूपुरमेखलम् ॥ २४४ ॥
—पर्व ७।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थात् इसके बाद वेश्याओं या गणिकाओंने बढ़ती हुई लयोंके साथ सुन्दर नृत्य करना आरंभ किया। उस समय उनके पैरोंके नूपुर और करधनीके घुँघरू बजते थे।

इसी प्रकार जब आदिनाथ भगवान्का राज्याभिषेक हुआ उस समय राजमहलमें वेश्यायें गा रही थीं और देवांगनायें नाच रही थीं:—

तदानन्दमहाभेर्यः प्रणेदुर्नृपमन्दिरे।
मंगलानि जगुर्वारनार्यो नेटुः सुराङ्गनाः॥ १९७॥
—पर्व १६।

भगवान् आदिनाथके राज्याभिषेकके समय वेश्याओंका नृत्य होना वेश्यानृत्य करानेकी आज्ञाके ही समान समझा जाना चाहिए। आगे जब भगवान्को वैराग्य हुआ और उनके पुत्रोंका राज्याभिषेक हुआ, उस समय भी यह परम आवश्यक कार्य किया गया—

एकतोऽप्सरसां नृत्यमस्पृष्टधरणीतलं।
सलीलपदविन्यासमन्यतो वारयोषिताम्॥ ८६॥
—पर्व १७।

अर्थात् एक ओर तो अप्सराओंका जमीनको न छूनेवाला (अधर) नृत्य हो रहा था और दूसरी ओर वेश्याओंका नृत्य होता था, जिसमें वे बड़ी सुन्दरतासे पैर रखती थीं।

वेश्याओंको साथ रखना और उनसे हँसी मजाक करना भी उस समय बुरा नहीं समझा जाता था। और तो क्या युद्धके समय भी वेश्यायें आवश्यक समझी जाती थीं। जब भरत महाराज अपनी दिग्विजययात्रामें वरतनु नामक समुद्रस्थ देवताको जीतकर अपने डेरेपर आये, तब कहा है कि:—

तत्रोद्घोषितमंगलैर्जयजयेत्यानन्दतो बन्दिभि-
र्गत्वान्तःशिविरं नृपालयमहाद्वारं समासादयन्।
अन्तर्वेशिक लोकवारवनितादत्ताक्षताशासनः,
प्राविक्षन्निजकेतनं विधिपतिर्वातोल्लसत्केतनम्॥
—पर्व २८।

अर्थात् वहाँ पर ‘जय जय’ ऐसे मंगल शब्द करनेवाले वन्दीजनोंके साथ महाराज भरत शिबिर या छावनीके भीतर जाकर राजभवनके महाद्वारपर पहुँचे। वहाँ अन्तःपुरके रक्षकोंने और वेश्याओंने उन्हें मंगलाक्षत और आशीर्वाद दिये। इसके बाद वे अपने भवनके भीतर पहुँचे जिसके ऊपर ध्वजायें फहरा रही थीं।

आगे पर्व २९ के नीचे लिखे श्लोक पढ़नेसे मालूम होता है कि ये वेश्यायें दिग्विजय यात्रामें भरतमहाराजके लश्करके साथ साथ चलती रही हैं:—

वित्रस्तैरपथमुपाहृतस्तुरंगैः
पर्यस्तो रथ इह भग्नधूर्निरक्षः।
एतास्ता द्रुतमुपयांत्यपेत्य मार्गाद्-
वारस्त्रीवहनपराश्च वेगसर्यः।
वित्रस्तः करभनिरीक्षणाद्गजोऽयं
भीरुत्वं प्रकटयति प्रधावमानः।
उत्त्रस्थात्पतति च वेसरादमुष्माद्-
विस्रस्तस्तनजघनांशुका पुरंध्री॥

अर्थात् घोड़ोंने (हाथियोंसे) डरकर इस रथको कुमार्गमें ले जाकर पटक दिया है, इसका धुरा जुआ आदि टूट गया है और वेश्याओंको ले जानेवाली ये खच्चरियाँ अपना मार्ग छोड़कर बहुत शीघ्र दौड़ी जा रही हैं। यह हाथी भी ऊँटको देखकर डर गया है और भागता हुआ अपना डरपोंकपना प्रकट कर रहा है। इधर इस अतिशय डरी हुई खच्चरीपरसे यह स्त्री नीचे गिर गई है और इस कारण उसके स्तनों और जघनोंपरका कपड़ा खिसक गया है।

४२ वें पर्वमें ग्रन्थकर्ताने महाराज भरतकी दिनचर्याका विस्तारसे वर्णन किया है। वहाँ भोजनके पश्चात् दो पहरका कुछ समय वे किस तरह व्यतीत करते थे, इसके विषयमें लिखा है:—

तत्र वारविलासिन्यो नृपवल्लभिकाश्च तं।
परिवव्रुरुपारूढतारुण्यमदकर्कशाः। १३१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तासामालापसंलापपरिहासकथादिभिः ।
सुखासिकमसौ भेजे भोगांगैश्च मुहूर्तकम् ॥ १३२

अर्थात् उस समय जवानीके मदसे उन्मत्त हुई वेश्यायें और राजवल्लभायें उनके चारों ओर आकर बैठ जाती थीं । उनके आलाप–संलाप, हँसी, मजाककी बातोंके द्वारा वे (महाराज भरत) घड़ी भर सुखसे निवास करते थे ।

इससे मालूम होता है कि, उस समय वेश्यायें राजाओंकी एक आवश्यक सामग्री थीं और उनके साथ हँसी खुशीमें घड़ी–दो घड़ी व्यतीत करना वे अपना एक नित्य–कर्म समझते थे ।

आगे पर्व ४५ के कुछ श्लोकोंसे यह भी मालूम होता है कि, उस समय वेश्यायें भेटमें या तोहफेमें भी दी जाती थीं । देखिए:—

हेमांगदं ससोदर्यमुपचर्य ससंभ्रमं ।
पुरो भूय स्वयं सर्वैर्भोग्यैः प्राघूर्णकोचितैः ॥१८२॥
नृत्यगीतसुखालापैर्वारणारोहणादिभिः ।
वनवापीसरःक्रीडाकन्दुकादिविनोदनैः ॥ १८३ ॥
अहानि स्थापयित्वैवं सुखेन कतिचित्कृती ।
तदीप्सितगजाश्वास्त्रगणिकाभूषणादिकं ॥ १८३ ॥
प्रदाय परिवारं च तोषयित्वा यथोचितं ।
चतुर्विधेन कोशेन तत्पुरीं तमजीगमत् ॥ १८५ ॥

इनका भावार्थ यह है कि, जयकुमारने अपने साले हेमांगद और उसके भाइयोंका सब प्रकारके भोगोपभोगोंसे, नाच तमाशोंसे, हाथी घोड़े आदिकी सवारियोंसे, सरोवर आदिकी सैरों और तरह तरहके खेलोंसे सत्कार किया और जब वे जाने लगे तब उन्हें उनके दिलपसन्द हाथी, घोड़े, अस्त्र, वेश्यायें, और आभूषण आदि पदार्थ भेट किये ।

अभीतक जो कुछ कहा गया, उससे यह मालूम होता है कि, चौथे कालमें वेश्याओंका पूरा पूरा आदर सत्कार था । राजदरबारोंमें वे राजाओंके मस्तकों पर चँवर ढोरती थीं; राज्याभिषेक आदि उत्सवोंमें उनका नृत्य कराया जाता था, युद्धके समय वे सेनाके साथ चलती थीं और राजाओंके डेरों पर उनके रणवासोंके पास ही रहती थीं, जीत आदिके खुशीके मौकों पर मंगल अक्षत और आशीर्वाद देनेका महान् काम उन्हें ही सौंपा जाता था, दो पहरको राजालोग उनके साथ हँसी-मजाक करते थे और वे भेटके तौर पर भी दूसरोंको दी जाती थीं । अब प्रश्न यह है कि जब वेश्यायें ऐसे आदरकी सामग्री हैं, तब आजकल जैनसमाजके नेता, उपदेशक, व्याख्याता, पत्र-सम्पादक आदि इनके नृत्यादि बन्द करानेके लिए क्यों जमीन असमान एक कर रहे हैं ? जब आदिपुराण जैसे मान्य ग्रन्थमें ‘ साम्राज्य ’ क्रिया ऐसी महान् क्रियामें वेश्याओंद्वारा चँवर ढुरानेकी स्पष्ट आज्ञा है, तब विवाहादि उत्स-वोंमे वेश्यानृत्य करानेका निषेध क्यों किया जा रहा है ?

हमारी समझमें वेश्याओंके सम्बधका उक्त वर्णन ग्रन्थकर्त्ताकी निजकी कल्पना है । काव्यके सौन्दर्यको बढ़ानेकी दृष्टिसे और अपने समयके राजाओंमें वेश्याओंकी विशेष प्रतिपत्ति देखनेसे ही उन्होंने इस प्रकारका वर्णन करना उचित समझा होगा । उनके समयमें वेश्यायें इस दृष्टिसे नहीं देखी जाती होंगी, जिससे कि आजकल देखी जाती हैं ।

३

मद्यपान ।

जिस समय आदिनाथ भगवान् छह महीनेका उपवास ग्रहण करके ध्यानस्थ हुए, उस समय नमि और विनमि नामके राजकुआरोंने आकर उनसे प्रार्थना करना शुरू की कि आपने जिस-प्रकार अपने पुत्रोंको राज्य दिया है उसी प्रकार हमको भी दीजिए । इस पर धरणेन्द्रने आकर उन्हें समझाया और उन दोनोंको विजयार्ध पर्वत-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर ले जाकर वहाँका राज्य दे दिया और इस तरह उन्हें सन्तुष्ट कर दिया । राज्य देनेसे पहले धरणेन्द्रने यहाँ निवास करनेवाली विद्याधरियोंके रूपादिका वर्णन किया था, जिसको आदिपुराणके कर्ताने बहुत विस्तारके साथ लिखा है । इस प्रसङ्गका एक श्लोक देखिए:—

नेत्रैर्मधुमदाताम्रैरिन्दीवरदलायतैः ।
मदनस्येव जैत्रास्त्रैः सालसापाङ्गवीक्षितैः + ॥१९१॥
—पर्व ८ ।

अर्थात् उनके नेत्र शराबके नशेसे कुछ कुछ लाल हो रहे थे, कमलपत्रोंके समान विशाल थे, आलसके साथ कटाक्ष फेंकते थे और ऐसे जान पड़ते थे मानों कामदेवके विजयी शस्त्र हों ।

इस श्लोकमें नेत्रोंको 'मधुमदाताम्र' विशेषण दिया है, जिसका अर्थ होता है, शराबके नशेसे लाल हुए नेत्र । मालूम नहीं, कर्मभूमिकी आदिमें उन विद्याधरियोंको यह शराब कहाँसे मिलती थी, कौन इसे बनाता था, उन्होंने किससे इसका बनाना सीखा था और क्यों वे इसका पीना अनुचित नहीं समझती थीं ।

आगे चलकर एक स्थानमें धर्णेन्द्र उन राजकुमारोंसे कहता है:—

इह मृणालनियोजितबन्धनैरिहवतंससरोरुहताडनैः ।
इह मुखासवसेचनकैः प्रियान्विमुखयन्तिरतेः कुपिताः स्त्रियाः ॥ —पर्व १९ ।

अर्थात् कुपित हुई स्त्रियोंमेंसे कोई कोई कमलनाल तन्तुओंके बन्धनोंसे, कोई कोई सिरमें पहने हुए कमलोंकी चोटोंसे और कोई कोई अपने मुँहमें भरी हुई शराबके कुरलोंसे अपने अपने पतियोंको रतिक्रीडासे हटा रही हैं ।

इस श्लोकमें मदिराके वास्ते आसव शब्द आया है ।

भरतमहाराज जब दिग्विजय करते हुए दक्षिणकी ओर गये, तब वहाँ उनकी सेनाके विषयमें लिखा है:—

निपपे नालिकेराणां तरुणानां स्रतो रसः ।
सरस्तीरतरुच्छायाविश्रान्तैरस्य सैनिकैः ॥ १४ ॥
—पर्व ३० ।

अर्थात् सरोवरके किनारे लगे हुए वृक्षोंकी छायामें आराम करनेवाले सैनिकोंने नारियलके तरुण वृक्षोंसे बहते हुए रसको पीया ।

नारियलके वृक्षोंका रस एक प्रकारकी शराब ही है । इस बातकी पुष्टि इसी पर्वके नीचे लिखे श्लोकसे होती है:—

नालिकेरासवैर्मत्ताः किंचिदाघूर्णितेक्षणाः ।
यशोऽस्य जगुरामन्द्रकुहरं सिंहलांगनाः ॥ २५ ॥

अर्थात् सिंहलद्वीपकी तरुण स्त्रियाँ—जो नारियलकी शराब पीकर उन्मत्त हो रही थीं और इस कारण जिनके नेत्र कुछ कुछ घूम रहे थे, भरतका यशोगान कर रही थीं ।

भरतकी सेनाके लोग क्षत्रिय वर्णके थे, जो उस समयका सबसे उत्तम वर्ण गिना जाता था । मालूम नहीं उन्होंने इस उन्मादक रसका पीना क्यों स्वीकार किया और सिंहलद्वीपकी स्त्रियाँ कौन थीं जो शराब पीकर उन्मत्त हो जाया करती थीं ।

जब भरतमहाराजका दूत बाहुबलिकी राजधानीमें यह सन्देशा लेकर पहुँचा कि या तो अधीनता स्वीकार कर लो, या युद्धके वास्ते तैयार हो जाओ, तब ग्रन्थकर्ताने वहाँकी स्त्रियोंकी रात्रिक्रीडा आदिका वर्णन करते हुए लिखा है:—

नास्वादि मदिरा स्वैरं नाजघ्रे न करेऽर्पिता ।
केवलं मदनावेशात्तरुण्यो भेजुरुत्कता ॥ १८७ ॥
उत्संगसंगिनी भर्तुः काचिन्मदविघूर्णिता ।
कामिनी मोहनास्त्रेण वतानंगेन तर्जिता ॥ १८८ ॥
—पर्व ३५ ।

अर्थात् वहाँकी जवान स्त्रियाँ शराबको इच्छापूर्वक पिये विना, सूँघे विना और हाथमें लिये विना ही केवल कामदेवके आवेशसे उन्मत्त हो गई थीं ।

+ इस श्लोकका अन्वय आगेके अनेक श्लोकोंके साथ है । इसी कारण इसमें 'क्रिया' नहीं है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपने पतिकी गोदमें बैठी हुई और मस्तीसे घूमती हुई कोई कामवती स्त्री कामदेवके मोहन अस्त्रसे घायल हो रही थी।

१८७ वें श्लोकका यह वाक्य कि वे स्त्रियाँ शराबके पीये विना ही उन्मत हो गई थीं यदि भारतवर्षकी आजकलकी भले घरोंकी स्त्रियोंके लिए कहा जाय, तो मेरी समझमें बहुत ही अनुचित और असभ्यताका सूचक समझा जाय। हाँ, यदि यूरोपकी मेमोंके वास्ते ऐसा कहा जाय, तो शायद बुरा न समझा जाय। क्योंकि उनमेंसे कोई कोई शराब पीती हैं और उनके पुरुष तो अवश्य ही पीते हैं। यह विचार करके बड़ा आश्चर्य होता है कि आदिपुराणके कर्त्ताने सतयुगके प्रारंभकी आर्यस्त्रियोंके लिए ऐसा कथन क्यों कर दिया।

अच्छा अब जरा आगे और भी चलिए।

मधौ मधुमदारक्तलोचनामास्खलद्गतिम्।
बहु मेने प्रियः कान्तां मूर्तामिव मदश्रियम्॥११९॥
–पर्व ३७।

अर्थात् भरत महाराज वसन्त ऋतुमें अपनी उस पटरानीको–जिसके नेत्र मदिराके मदसे लाल हो रहे थे और जिसकी चाल डगमगा रही थी–मूर्तमान मदकी शोभाके समान बहुत मानते थे–बहुत ही प्यार करते थे।

इस श्लोकमें 'मधुमद' शब्द आया है जिसका अर्थ 'शराबका नशा' होता है। आँखोंका लाल होना और चालका डगमगाना ये दो बातें इस शराबके पीनेको और भी स्पष्ट कर देती हैं। परन्तु भरत महाराजकी पटरानीके विषयमें इस प्रकारकी कल्पना करनेको भी जी नहीं चाहता है। कहीं ग्रन्थकर्त्ताने ऐसी बातें अपने कवित्वका उत्कर्ष दिखालनेके लिए ही तो नहीं लिख दी हैं?

आगे जयकुमार और अर्ककीर्ति (भरतपुत्र) के युद्धके समय पर्व ४४ में ग्रन्थकर्त्ताने फिर रात्रिक्रीड़ाका वर्णन किया है:—

खण्डनादेव कान्तानां ज्वलितो मदनानलः।
जाज्वलीत्ययमेतेनेत्यत्यजन्मधु काश्चन॥२८८॥
वृथाभिमानविध्वंसी नापरं मधुना विना।
कलहान्तरिताः काश्चित्सखीभिरिति पायिताः॥२८९॥
प्रेम नः कृत्रिमः नैतत्किमनेनेति काश्चन।
दूरादेव त्यजन् स्निग्धाः श्राविकेवासवादिकं॥२९०॥
मधु द्विगुणितं स्वादु पीतं कान्तकरार्पितं।
कान्ताभिः कामदुर्वारमातङ्गमदवर्द्धनम्॥२९१॥

अर्थात्–कामकी आग तो जली थी, पतिके वियोगसे; परन्तु उस वियोगिनीने शराबका पीना छोड़ दिया, उसने समझा कि यह आग इस शराबसे ही प्रज्वलित हुई है। कितनी ही कलहान्तरिता स्त्रियोंको–जिन्होंने पतिके साथ कलह की थी और इस कारण जिनके पति चले गये थे–उनकी सखियोंने खूब शराब पिला दी; कारण व्यर्थके अभिमानको नष्ट करनेके लिए शराबसे अच्छी कोई चीज नहीं है। जब हमारा प्रेम बनावटी नहीं है, तब हमें शराब पीनेकी क्या आवश्यकता है, इस खयालसे बहुतही स्त्रियोंने शराबको श्राविकाओंके समान, दूरहीसे छोड़ दिया था। कितनी ही स्त्रियाँ दुर्निवार कामरूपी हाथीके मदको बढ़ानेवाले और अपने पतिके हाथसे दिये हुए स्वादिष्ट मद्यको दूना पी गई थीं।

इन श्लोकोंमेंसे पहले, दूसरे और चौथे श्लोकमें शराबके लिए 'मधु' शब्द आया है और तीसरे श्लोकमें 'आसव' शब्द आया है। इससे इनके पूर्वमें आये हुए श्लोकोंके मधु और आसव आदि शब्दोंका अर्थ और भी अच्छी तरहसे स्पष्ट हो जाता है। यह सन्देह नहीं रहता कि, इनके कुछ और ही अर्थ होंगे।

२९० नम्बरके श्लोकसे यह मालूम होता है कि जिन स्त्रियोंके सम्बन्धमें यह कथन किया गया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है वे श्राविकायें नहीं थीं; परन्तु जब ये सब बातें तीर्थंकर भगवानकी दिव्य ध्वानिके अनुसार लिखी गई हैं, तब प्रश्न यह है कि तीर्थंकर भगवान्को क्या आवश्यकता थी कि वे उस नगरकी स्त्रियोंके गुप्तसम्भोगादिका खुल्लमखुल्ला वर्णन करते? दूसरा प्रश्न यह है कि वे स्त्रियाँ कौन थीं? —आर्या या म्लेच्छा? यदि आर्या थीं तो किस वर्णकी थीं और उनके वर्णमें क्या यह शराब पीनेकी रीति प्रचालित थी अथवा अपने वर्णके प्रतिकूल ही वे ये सब क्रियायें कर रही थीं? तीसरा प्रश्न यह है कि, जब उस समय आदिनाथ भगवान्के समवसरणमें उनकी दिव्यध्वनि संसारके जीवोंको सूर्यके समान सन्मार्ग दिखला रही थी, तब स्त्रियोंमें इस तरहकी बढ़ी चढ़ी शराबखोरी कहाँसे आ घुसी? चौथा प्रश्न यह है कि उस कर्मभूमिके प्रारंभिक कालमें ही क्या लोग शराब बनाना और उसका पीना सीख गये थे?

मद्यपानलीलाके इन और इन्हींके सामान अन्य प्रकरणोंमें इस बातकी ओर विशेष लक्ष्य जाता है कि—यह मद्यपान जहाँ तहाँ स्त्रियोंको ही कराया गया है, पुरुषोंको नहीं। एकाध प्रसंगको छोड़कर (जैसे कि भरतकी सेनाके सिपाहियोंका नारियलका रस पीना) पुरुष इस व्यसनसे बरी ही रक्खे गये हैं। पर्व ४६ में एक दरिद्रीकी कथा लिखी गई है। दरिद्रीने मुनि महाराजके उपदेशसे आठ प्रकारके पापोंका त्याग कर दिया था। यह त्याग उसके पिताको पसन्द नहीं आया, इस लिए वह अपने लड़केको मुनि महाराजके पास उक्त त्यागको वापस करनेके लिए लेकर चला। मार्गमें उसे आठों पापोंके अपराधी घोर दण्ड पाते हुए मिले, जिनमें मदिरा पीनेका अपराध करनेवाली एक स्त्री ही थी। (देखो श्लोक २८१–८२।)

हमारी समझमें सतयुगमें या चौथे कालके प्रारंभमें स्त्रियोंका इस प्रकार मद्यपायी होना विश्वासके योग्य नहीं। या तो ग्रन्थकर्त्ताने अपने समयकी सर्व साधारण जनोंकी प्रवृत्तिके अनुसार ये सब बातें लिखी हैं, या काव्यों महाकाव्योंके नियमोंकी पालना करनेके लिए उन्हें यह सब वर्णन करना पड़ा है। काव्यों और महाकाव्योंमें कितने कितने सर्ग रहने चाहिए और उन सर्गोंमें किन किन विषयोंका वर्णन रहना चाहिए, संस्कृत साहित्यमें इस प्रकारके अनेक नियम निर्धारित हैं। पीछे पीछे ये नियम कवियोंके लिए प्रायः अनुल्लंघनीय बन गये थे, ऐसा जान पड़ता है। यही कारण है जो पिछले महाकाव्योंमें रात्रिक्रीड़ा वर्णन और मधुपान वर्णनके कमसे कम एक एक सर्ग अवश्य रचे गये हैं। जान पड़ता है, अन्य कवियोंके समान जैन कवियोंने भी इन नियमोंको सिर झुकाकर मान लिया था। यही कारण है जो चन्द्रप्रभ और धर्मशर्माभ्युदय आदि जैनकाव्योंमें भी इस विषयके एक एक दो दो सर्ग मौजूद हैं। आदिपुराणको भी इसके कर्त्ताने एक महाकाव्यके रूपमें रचा है और इसी कारण इसकी रचनामें उन्हें संस्कृत काव्योंके नियमोंको मानकर चलना पड़ा है। उन्होंने संस्कृत कवियोंके इस नियमको भी माना है कि सुन्दर स्त्रियोंके पैरोंके लगनेसे, उनके पैरोंके घुँघरुओंके शब्दसे, और उनके मुखकी मदिराके कुरलोंसे बहुतसे वृक्ष फूल उठते हैं।

> योषितां मदगण्डूषैर्नूपुरारावरंजितैः।
> कुर्वन् वामाङ्घ्रिभिश्चालमंघ्रिपानपि कामुकान्। २७३।
>
> —पर्व ४३।

इसके सिवाय जब शृंगाररसका वर्णन करना ग्रन्थकर्ताको अभीष्ट था, तब यह संभव नहीं कि वह ऐसी बातोंको न लिखता। क्योंकि स्त्रियोंकी उन्मत्तता और मदविह्वलताको प्रकट किये विना शृंगाररसका चरम उत्कर्ष नहीं दिखलाया जा सकता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गरज यह कि कविशिरोमणि जिनसेनाचार्यने इस नियमके वशवर्ती होकर कि काव्यमें मधुपानका वर्णन रहना चाहिए और यह खयाल करके कि स्त्रियोंकी शोभा और सुन्दरताका मधुपानसे विशेष सम्बन्ध है, अपने ग्रन्थमें चौथे कालकी आदिकी स्त्रियोंको भी मद्य पीनेवाली वर्णन किया है, ऐसा जान पड़ता है।

यदि वास्तवमें ऐसा ही है, तो ये कविताके ग्रन्थ बड़ी सावधानीसे पढ़े जाने चाहिए। इनके प्रत्येक शब्दको जिनवाणी समझ लिया जायगा तो सत्यश्रद्धानमें बाधा आनेकी बड़ी भारी संभावना है। और यदि ऐसा नहीं है तो मदिरा पीनेका उक्त कथन क्या अर्थ रखता है, इसके साफ तौर तौरपर खुल जानेकी बहुत बड़ी आवश्यकता है। विद्वानोंको इस ओर ध्यान देना चाहिए।

(क्रमशः)

नोट–लेखक महाशयने जो यह लिखा है कि उस समय वेश्यायें इतनी बुरी दृष्टिसे नहीं देखी जाती थीं, जितनी कि आजकल देखी जाती हैं, सो इसकी पुष्टि हमारे श्रावकाचारोंके ग्रन्थोंसे होती है। सबसे पहले आचार्य सोमदेवके यशस्तिलकका यह श्लोक देखिए:—

वधूवित्तस्त्रियौ मुक्त्वा सर्वत्रान्यत्र तज्जने।
मातास्वसा तनूजेति मतिर्ब्रह्म गृहाश्रमे॥

अर्थात् अपनी स्त्री और वित्तस्त्री (वेश्या) को छोड़कर अन्य सब स्त्रियोंको माता, बहिन और पुत्रीके समान समझना, यह गृहस्थाश्रमका ब्रह्मचर्य है। इससे मालूम होता है कि, सोमदेवके मतसे वेश्याका सम्बन्ध रखने पर भी जो गृहस्थ पराई स्त्रियोंका त्यागी है, वह एक प्रकारका ब्रह्मचारी है।

इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धि और राजवार्तिक आदि ग्रन्थोंमें वेश्यासंभोगको स्वदारसन्तोषव्रतका अतीचार वतलाया है, अनाचार नहीं। रत्नकरण्डश्रावकाचारमें भी इत्वरिकागमन या वेश्यागमनको स्वदारसन्तोषव्रतका–जिसका दूसरा नाम परदारनिवृत्ति भी है—अतीचार बतलाया है। राजवार्तिककारने इत्वरिकाका लक्षण किया है–

"ज्ञानावरणक्षयोपशमापादितकलागुणज्ञतया चारित्रमोहस्त्रीवेदोदयप्रकर्षादंगोपांगनामोदयावष्टंभाच्च परपुरुषानेति गच्छतीत्येवं शीला इत्वरी, ततः कुत्सायां कः, इत्वरिका।" अर्थात् ज्ञानावरणी कर्मके क्षयोपशमसे प्राप्त हुई नृत्य गान आदि कलाओंकी जानकारीसे, चारित्रमोह रूप स्त्रीवेद और अंगोपांग नामक नाम कर्मके उदयसे जो परपुरुषोंसे समागम करती है उसे इत्वरी कहते हैं। इसमें निन्दावाचक 'क' मिलकर 'इत्वरिका' शब्द बनता है। वेश्याकी गणना परस्त्रीमें नहीं हो सकती है, इसी कारण सप्त व्यसनोंमें 'परस्त्रीसेवनसे' 'वेश्यासेवन' व्यसन जुदा बतलाया गया है। यदि इन दोनों व्यसनोंमें कुछ तारतम्य न होता, तो ये जुदे जुदे नहीं बतलाये जाते।

उक्त सब प्रमाणोंसे हम यह नहीं सिद्ध कर रहे हैं कि वेश्यागमन पाप नहीं है; नहीं, पाप तो वह है ही; किन्तु परस्त्रीसेवनके बराबर नहीं है। और इसी कारण आचार्योंने उसे स्वदारसन्तोषियोंके लिए अनाचार नहीं, किन्तु अतीचार माना है।

अब रहा, वेश्याओंको घृणाकी और आदरकी दृष्टिसे देखना, सो इसका सम्बन्ध देशकालके अनुसार जनसाधारणके झुकाव पर है। संभव है श्रीजिनसेन स्वामीके समयमें उस प्रान्तमें जहाँ कि वे रहते थे वेश्यायें घृणित न समझी जाती रही हों। आज भी हम देखते हैं कि मालवा, मध्यप्रदेश और यू. पी. के कुछ जिलोंमें वेश्याका व्यसन जितना बुरा समझा जाता है, उतना बिहार और बंगालमें नहीं समझा जाता। कर्नाटक प्रान्तमें इस समय भी जिनेन्द्र भगवान्के अभिषेकके लिए जो जलयात्रोत्सव होता है, उसमें वेश्याओंका नृत्य कराया जाता है। वहाँ तो कहीं कहीं मन्दिरोंमें भी वेश्यानृत्य होता है; परन्तु हमारे यहाँ अब पुरुषोंका नृत्य भी समझदारोंकी आँखोंमें खटकने लगा है।—सम्पादक।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रमालक्षण।

श्वेताम्बर संप्रदायका सबसे पहला तर्कलक्षण ग्रंथ।

(लेखक—श्रीयुत मुनि जिनविजयजी।)

विक्रमकी ११ वीं शताब्दीके उत्तरार्धमें जिनेश्वर और बुद्धिसागर नामके दो प्रसिद्ध श्वेताम्बराचार्य हो गये हैं। ये दोनों सगे भाई और गुरुभ्राता थे। विद्वान् तो ये थे ही, साथ ही चरित्रवान् और प्रभावशाली भी थे। इन्होंने अपने समयमें बहुतसे यतियोंकी शिथिल प्रवृत्ति देखकर उसका तीव्र विरोध किया था और अपने उदाहरणके द्वारा लोगोंको शुद्धाचारकी शिक्षा दी थी। इनके समयमें श्वेताम्बर-साहित्यने विकासके एक नवीन मार्गमें प्रवेश किया। यदि श्वेताम्बर साहित्यके प्राचीन और अर्वाचीन इस प्रकार दो विभाग कल्पना कर लिये जायँ, तो ये दोनों बन्धु अर्वाचीन साहित्यके कर्णधार या आदि प्रवर्तक कहे जा सकते हैं। इनके पहलेका जो श्वेताम्बर साहित्य है, वह केवल आगम ग्रन्थोंके साथ ही संबंध रखनेवाला है। हरिभद्र, सिद्धसेन, सिद्धर्षि और अभयदेवके इनेगिने ग्रंथोंके सिवा और कोई भी प्रकीर्णक साहित्य इनसे पहलेका उपलब्ध नहीं हुआ। परंतु इन बन्धुओंके आविर्भावके बाद श्वेताम्बर साहित्यस्रोत सहस्रधाराओंसे बहने लगा और आगेकी ३–४ शताब्दियोंमें वर्षाकालीन जलकी तरह न्याय, व्याकरण, काव्य, अलंकार आदि सब ही क्षेत्रोंमें विपुलताके साथ व्याप्त हो गया। इन ३–४ शतकोंमेंसे प्रत्येक शतकमें शतशः ग्रंथ भिन्न भिन्न विषयोंके लिखे गये और वे जैन-साहित्यकी शोभाको चिरकालतक आश्चर्यान्वित दृष्टिसे देखने लायक बना गये। इन बन्धुओंके अवतारके पहले श्वेताम्बरोंके तर्क, शब्द और काव्य आदिके स्वनिर्मित लक्षण ग्रंथ नहीं थे। उस समयके विद्वान् ब्राह्मण और बौद्धोंके बनाये हुए न्याय, व्याकरण और अलंकारविषयक ग्रंथोंका अध्ययन करके ही पाण्डित्य प्राप्त करते थे और उन्हींके आधार पर वे अपने सिद्धान्तोंका मण्डन और विपक्षियोंका खण्डन किया करते थे। यद्यपि उस समय सिद्धसेन दिवाकर, मल्लवादी, हरिभद्र और अभयदेव आदि बड़े बड़े तार्किकोंके बनाये हुए न्यायावतार, नयचक्र, अनेकान्त जयपताका और वादमहार्णव (सम्मतिटीका) आदि अच्छे अच्छे प्रभावशाली तर्कग्रंथ मौजूद थे और वे ऐसे थे कि उनकी युक्तियोंके आगे परवादियोंको युक्तियाँ नहीं सूझती थीं; फिर भी प्रथमाभ्यासी जैनको न्यायशास्त्रके सिद्धान्तोंका प्राथमिक क्रमबद्ध ज्ञान प्राप्त करनेके लिए अजैन ग्रन्थोंहीकी शरण लेनी पड़ती थी और इसी कारण इस प्रकारके कितने ही अजैन ग्रंथों पर जैन विद्वानोंको टीका-टिप्पण लिखने पड़े थे। सुप्रसिद्ध बौद्ध तार्किक धर्मकीर्तिरचित न्यायबिन्दुकी धर्मोत्तरवाली व्याख्या पर मल्लवादीका टिप्पण और दिङ्नागके न्यायप्रवेश-पर हरिभद्रकी टीका इस कथनके प्रकट प्रमाण हैं। जिनेश्वरसूरि और बुद्धिसागराचार्यको इस प्रकार परकीय साधनसंपत्ति पर अवलम्बित रहकर अपना उत्कर्ष बढ़ाना अच्छा नहीं मालूम हुआ, इस लिए उन्होंने इस बड़ी भारी न्यूनताको पूर्ण करनेका वर्णनीय प्रयत्न करके अपने साहित्यको समुन्नत करनेका सूत्रपात किया।

श्वेताम्बर साहित्यका इतिहास देखनेसे पता लगता है, कि इन भ्राताओंके पूर्वके यतियोंका अधिकांश भाग तो धर्मशास्त्रोंके पठनपाठनके सिवाय और किसी प्रकारके ग्रन्थोंका परिचय भी नहीं रखता था। न्याय, व्याकरण, काव्य आदि लौकिकी विद्याओंका ज्ञाता तो उस समय कोई विरला ही होता था। यही कारण है कि विक्रमकी पहली दश शताब्दियोंमें—इतने बड़े हजार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्षके कालमें केवल पाँच ही सात श्वेताम्बर ग्रंथ-कर्ता उत्पन्न हुए हैं। जिस समय देश पर विदेशियोंके लगातार आक्रमण होते रहे और सर्वत्र अशांति फैली रही, उससमय भी जब श्वेताम्बर विद्वानोंने हजारों ग्रंथ लिख डाले, तब उस शांतिके समयमें इस बातका कैसे अभाव हो सकता था? उस समयके यतियों–मुनियोंमें लौकिक विद्याओंका अधिक प्रचार न होनेमें मुझे यह कारण प्रतीत होता है कि प्रारंभके शतकोंमें जो मुनि होते थे, वे बहुधा विशेष विरक्त और उदासीन होते थे। सिद्धसेन दिवाकर जैसे तेजस्वी और पराक्रमी क्वचित् ही प्रकट होते थे। जो आत्म-स्वरूपावलोकनमें मग्न रहनेवाले हैं, वे तत्त्वचिंतनमें शिथिलता लानेवाले इन बखेड़ोंमें क्यों पड़ने लगे? वे तो परमात्म दशाका स्मरण और मनन करनेहीमें अधिकतर लगे रहते थे। उनको वही विषय प्रिय लगता था, जिसमें आत्मा परमात्माका शुद्धस्वरूप शांतिप्रदायक शब्दों और विचारोंमें प्रदर्शित किया गया हो। तर्कके कर्कश कटाक्षोंका, व्याकरणके अटपटे सूत्रों और शब्दप्रयोगोंका तथा शृंगारादि नाना रसोंसे चित्तकी निश्चलताको क्षुब्ध कर देनेवाले आलंकारिक भावोंका रटन करनेमें उन्हें रति प्राप्त हो, यह असंभव था। इस लिए उस समयके आत्मदर्शी श्रमण इस विषयकी प्रवृत्तिका बहुत कम सेवन कर सके। परन्तु पिछले शतकोंमें देशकी परिस्थिति बदल गई, धार्मिक विचारोंमें जडता आ गई, और वैमनस्यकी मात्रा बढ़ गई, इस कारण उस प्रकारकी उच्चदशावाली मुनिवृत्तिका तो लोप होता गया और उसके स्थानमें संयमशैथिल्य और प्रमादाचरणका प्रवेश हुआ। साधु लोग एक ही जगह बहुत समय तक निवास करने लगे, और चैत्यों–मंदिरोंकी व्यवस्था देखने–संभालने लगे और गृहस्थोंका संपर्क अधिक रखने लगे। इस प्रकार अनेक निषिद्धाचरणोंका सेवन करनेसे वे प्रमत्त हो गये। अपने अनुरक्त श्रावकोंको साधारण धर्म-कथा सुना दे सकनेवाले ज्ञानके सिवा अधिक विद्याध्ययन करनेमें वे आलस्यवान् बन गये। ऐसी स्थितिमें साहित्यके विकसित होनेकी संभावना कहाँतक की जा सकती है? इसी समयमें कुछ बौद्धादि विधर्मियोंका भी उपद्रव अधिक रहा, जिससे जो इस कार्यके लिए समर्थ थे वे मुनि भी शांतिके अभावमें साहित्यका विकास विशेष नहीं कर सके।

पश्चिम भारतकी प्राचीन राजधानी वल्लभी नगरीके विध्वंसके साथ बौद्धोंका भी विस्तार संकुचित होने लगा। विक्रमकी ९ वीं शताब्दिके प्रारंभमें गुजरातके मध्यकालीन गौरवके केन्द्रभूत स्थान अणहिल्लपुरके राज्यतंत्रमें प्रारंभहीसे जैनोंका सर्वाधिक हस्तक्षेप रहा। अणहिल्लपुरका जो बड़ा भारी उत्कर्ष हुआ था, वह जैनजनताहीके कारण था, यह कहनेमें जरा भी आतिशयोक्ति नहीं है। यह बात इतिहाससिद्ध है। अणहिल्लपुरकी उन्नतिके साथ पश्चिम भारतमें प्रचलित रहनेवाले जैनधर्मकी उन्नतिका अभेद संबंध है। ज्यों ज्यों गुजरातका राज्य सुसंगठित होता गया और शक्तिमें बढ़ता गया, त्यों त्यों जैनसमाज भी पिछली कई शताब्दियोंकी जमी हुई जडताको दूर करता गया। साधु-समुदायमें जाग्रति आने लगी और धर्मप्रचारकी ओर उसका उत्साह बढ़ने लगा। यही समय जिनेश्वरसूरि और बुद्धिसागराचार्यके प्रादुर्भावका है। इसके पहले वादिवेताल शान्त्याचार्य, महेन्द्रसूरि, महाकवि धनपाल और उनके बन्धु शोभन मुनि आदि कई विद्वानोंके बुद्धिप्रभावने साधुसमूहमें जो विद्योन्नतिके बीज बो दिये थे, उन्हें इन दोनों बन्धुओंने जलसिञ्चन करके अंकुरित कर दिया। इन्होंने अपने विशाल शिष्यसमुदायमें केवल धर्म-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शास्त्रोंके ही नहीं, न्याय, व्याकरण, काव्य, कोष, नाटक, छन्द, अलंकार आदि सभी विषयोंके अध्ययनके प्रचारको बढ़ाया।* इनका अनुकरण और और साधुमण्डलोंने भी उत्साहके साथ किया, जिसके कारण ३०-४० वर्षहींमें सैकड़ों प्रौढ पण्डित तैयार हो गये और उन्होंने अपने पाण्डित्यसे जैनधर्मको और उसके साहित्यको उत्तम रीतिसे विभूषित करना शुरू कर दिया। इन्होंने शिथिलाचारका बड़े जोरशोरसे निषेध करना प्रारंभ किया और अणाहिल्लपुरकी राजसभामें कई शिथिलाचारपोषक यतियोंके साथ वाद करके उनको निरुत्तर किया, जिससे यतिसमूहमें फिर शुद्धाचरणकी प्रवृत्ति बढ़ने लगी।

पहले कहा जा चुका है कि जिनेश्वरसूरि और बुद्धिसागरसूरिके पहले श्वेताम्बरोंके न्याय, व्याकरण आदिके लक्षणग्रंथ नहीं थे और यह न्यूनता उन्हें बहुत खटकी। इसकी पूर्ति करनेके लिए जिनेश्वरसूरिने एक उत्तम तर्कलक्षण ग्रंथ और बुद्धिसागराचार्यने एक सर्वांगपूर्ण शब्दलक्षणशास्त्र बनाया। तर्कलक्षण ग्रंथका नाम है-'प्रमालक्षण' और शब्दशास्त्रका नाम है-'बुद्धिसागर-व्याकरण'+। श्वेताम्बर संप्रदायके यही दोनों तर्क और शब्दविषयके सबसे पहले लक्षण ग्रंथ हैं। यद्यपि श्वेताम्बर साहित्यमें इस समय इनसे भी बड़े बड़े न्याय और व्याकरणके अनेक ग्रंथ मौजूद हैं और उनकी उत्तमता और अनुपमता अच्छे अच्छे अजैन विद्वानोंने भी प्रमाणित की है; परन्तु वे सब इनके पीछे बने हैं।

यह ग्रंथ सूत्रात्मक नहीं, किन्तु धर्मकीर्तिके न्यायवार्तिकके सदृश वार्तिकरूप है। महामति सिद्धसेन दिवाकरके प्रसिद्ध ग्रंथ न्यायावतारके

"प्रमाणं स्वपराबभासि,
ज्ञानं बाधविवर्जितम्।
प्रत्यक्षं च परोक्षं च,
द्विधा मेयविनिश्चयात्॥"

इस आदि श्लोकको मूल मानकर इसीके व्याख्यानके रूपमें ४०५ कारिकायें बनाई गई हैं और फिर उनको अपनी ही बनाई हुई विस्तृत वृत्तिसे स्पष्ट और पल्लवित किया है। इस ग्रन्थमें प्रमाण और प्रमेयके साथ सम्बन्ध रखनेवाले सभी विषयोंके लक्षण बहुत अच्छी तरहसे प्रतिपादित किये गये हैं। दिङ्नाग, धर्मकीर्ति, शान्तिरक्षित, कुमारिल आदि प्रख्यात नैयायिकोंके विचारोंकी भी जगह जगह आलोचना-प्रत्यालोचना की गई है। ग्रंथ रोचक और प्रतिपादक पद्धतिसे लिखा गया है। इसमें कहीं कहीं कोमल कटाक्षयुक्त वाक्योंका भी प्रयोग किया है; परंतु असभ्यताके साथ नहीं। एक उदाहरण लीजिए—

महान् मीमांसक कुमारिल भट्टने अपने श्लोकवार्तिकमें वेदोंकी आप्तता सिद्ध करते हुए मौजमें आकर एक जगह वेदोंको अनाप्त माननेवाले जैन और बौद्धोंके लिए लिखा है कि—

धारणाध्ययनव्याख्या-
नित्यकर्माभियोगिभिः।
मिथ्यात्वहेतुरज्ञातो
दूरस्थैर्ज्ञायते कथम्॥

* इस बातका उल्लेख जिनेश्वरसूरिके प्रशिष्य वर्द्धमानाचार्यने अपने बनाये हुए 'आदिनाथ चरियम्' नामक प्राकृत ग्रंथकी प्रशस्तिमें जो संवत् ११६० में पूर्ण हुआ है—किया है।

सूरिजिणेसर सिरि बुद्धिसागरा सागरो व्व गंभीरा।
सुर-गुरु-सुक्क-सरिच्छा सहोयरा तस्स दो सीसा॥
वायरण-च्छन्द-निघण्टु-कव्व-नाडय-पमाणसमयेसु।
अणिवारियप्पचारा जाणमइ सयलसत्थेसु॥

+ इसकी समाप्ति संवत् १०८० में, मारवाड़के जाबालिपुर (जालौर) में हुई है। इसी वर्षमें जिनेश्वरसूरिने हरिभद्रके अष्टकसंग्रहकी भी टीका की है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ये तु ब्रह्मद्विषः पापा
वेदादरं बहिष्कृताः ।
ते वेदगुणदोषोक्तिं
कथं जल्पन्त्यलज्जिताः ॥

अर्थात्–जो ब्राह्मण निरंतर वेदोंका धारण, अध्ययन, व्याख्यान और पूजन आदि करते हैं वे तो उनका मिथ्यात्व अभीतक जान नहीं सके; तब जो ब्रह्मद्वेषी हैं, वेदधर्मसे बहिष्कृत हैं और वेदोंके पास तक नहीं जाते वे पापी (जैन और बौद्ध) लोग निर्लज्ज होकर वेदोंके गुण-दोषोंको कैसे कह सकते हैं ? भट्टजीके इन आवेश और आक्रोशयुक्त वचनोंका देखिए सूरिजीने संक्षेपमें, परंतु कैसे मीठे और मार्मिक शब्दोंमें जवाब दिया है ।

धारणाध्ययनेत्यादि नाक्रोशः फलवानिह ।
अज्ञैरज्ञाततत्त्वोऽपि पण्डितैरवसीयते ॥

अर्थात्–धारणाध्ययन इत्यादि श्लोकोंमें, 'ब्रह्मद्विषः' और 'पापा' आदि शब्दोंद्वारा भट्टजीने जो अपना आक्रोश प्रकट किया है वह निष्फल है–उससे कुछ फलकी प्राप्ति नहीं होती। जहाँपर युक्तायुक्तविषयक तात्त्विक विचार किया जाता हो वहाँपर आक्रोश करनेसे अपनेको या दूसरेको–किसीको भी तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती । और जो यह कहा कि तुमने-वेदोंका अस्वीकार करनेवाले जैनोंने–वेदोंसे दूर रहनेवालोंने–वेदोंका मिथ्यात्व कैसे जान लिया, सो इसका तो उत्तर यह है कि, जो बात अज्ञ युक्तायुक्तविचारशून्य मनुष्य दीर्घकालके संसर्गसे भी नहीं जान सकते, उसे विद्वान् मनुष्य तत्काल जान लेता है ।

महर्षि गौतमने अपने न्यायसूत्रमें, परपक्षका निरसन करनेके लिए वादके सिवा जल्प, वितण्डा, छल, जातिप्रयोग आदि करनेकी भी अनुज्ञा दी है; परंतु जैन तार्किकोंने केवल एक वादहीका उत्तम माना है, जल्प और वितण्डाको हेय कहा है + । उन्होंने अपने ग्रंथोंमें साधनाभासोंका प्रयोग नहीं किया; केवल विपक्षियोंके साधनोंमें दूषण बताकर ही अपने सिद्धान्तोंका समर्थन किया है । यही बात प्रमालक्षणके अन्तमें इन दो कारिकाओंके द्वारा कही गई है—

प्रमाणवादिनां तस्माद्वाद एव विचारणा ।
साधनाभासमन्यैस्तु वादिभिरभियुज्यते ॥
तेनावधीरणाप्यत्र महता लक्ष्मशासने ।
परपक्षनिरासो हि साधनाभासतोऽप्यसौ ॥

पिछली कारिकाकी टीकामें यह भी सूचित किया गया है कि–प्रमाणके लक्षण प्रतिपादन करनेमें, प्रयासकी निष्फलता समझकर पूर्वके जैनाचार्योंने उस तरफ उपेक्षाकी दृष्टिसे देखा है और इसी लिए हरिभद्रसूरिने अनेकान्त-जयपताकामें और अभयदेवसूरिने सम्मति–टीकामें परपक्षका निरसन करने मात्रके उद्देशसे प्रयत्न किया है । मल्लवादिसरीखे महान् आचार्यने परपक्षका निर्मूलन करनेमें अद्वितीय शक्तिशाली होकर भी नयचक्रकी स्थापना सिद्ध करनेके सिवा प्रमाणके लक्षण कहनेका काम नहीं किया । क्योंकि उन्होंने यही ठीक समझा था कि, परपक्षका निरसन करनेहीसे स्वपक्षकी स्वतः सिद्धि हो सकती है । वह टीकाका पाठ यह है:—

—“अत्र प्रमाणलक्षणे, निष्फलत्वादायासस्य । अत एव श्रीहरिभद्रसूरिपादैः श्रीमदभयदेवसूरिपादैश्च परपक्षनिरासे तैर्यतितमनेकान्तजयपताकायां तथा सम्मति-टीकायामिति । अत एव श्रीमन्महामल्लवादिपादैरपि नयचक्र एवादरो विहित इति न तैरपि प्रमाणलक्षणमाख्यातं परपक्ष-

---

+ हेमचन्द्राचार्यने भी अपनी 'प्रमाणमीमांसा' में ऐसा करना अन्याय बताया है । लिखा है कि—असदुत्तरैः परप्रतिक्षेपस्य कर्तुमयुक्तत्वात्, न ह्यन्यायेन जयं यशो धनं वा महात्मानः समीहन्ते । (पृष्ठ ३८)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निर्मथनसमर्थैरपि परपक्षनिरासादपि स्वपक्षस्य पारिशेष्यात्सिद्धिरिति । "

पूर्वाचार्योंके द्वारा प्रमाणलक्षणके विषयमें इस प्रकार सार्थक उपेक्षाकी जाने पर भी जिनेश्वरजीने जो यह प्रयत्न किया है, उसका कारण इसके बादकी दो कारिकाओंमें इस प्रकार बतलाया गया है:—

> तैरवधीरिते यत्तु प्रवृतिरावयोरिह ।
> तत्र दुर्जनवाक्यानि प्रवृत्तेः सन्निबन्धनम् ॥१॥
> शब्दलक्ष्मप्रमालक्ष्म यदेतेषां न विद्यते ।
> नादिमन्तस्ततो ह्येते परलक्ष्मोपजीविनः ॥ २ ॥

टीका—शब्दलक्ष्मव्याकरणम्, श्वेतभिक्षूणां स्वीयं न विद्यते तथा प्रमालक्ष्मापि प्रमाणलक्षणमपि, येषां स्वीयं न विद्यते । नादिमन्तो नैवादावेव एते संभूताः, किन्तु कुतोऽपि निमित्तादर्वाचीना एते जाता । ततो ह्येते, तस्मादित्युपसंहारः। हिर्हेतुपदसूचकः । किम्भूतास्ते इत्याह—परलक्ष्मोपजीविनः बौद्धादिप्रणीतलक्षणमुपजीवितुं शीलाः, एतदिति हेतुपदम् । उक्तं च

> छव्वास सएहिं णउत्तरेहिं
> तइया सिद्धिं गयस्स वीरस्स ।
> कंवलियाणं दिट्ठी
> वलहीपुरिए समुप्पण्णा ॥

अर्थात् इस विषयकी ओर पूर्वाचार्योंद्वारा उपेक्षा किये जाने पर भी जो हम दोनोंकी प्रवृत्ति हुई है, सो इसमें दुर्जनोंके ये वाक्य कारण हैं कि इनके—श्वेताम्बरोंके—शब्दलक्षण (व्याकरण) और प्रमाणलक्षणविषयक स्वकीय ग्रन्थ नहीं हैं, ये परलक्षणोपजीवी—बौद्धादि ग्रन्थोंसे अपना निर्वाह करनेवाले हैं, अतः ये आदिसे नहीं हैं, किन्तु किसी निमित्तविशेषसे नये ही पैदा हो गये हैं । जैसा कि किसीने (दिगम्बर ग्रन्थकर्त्ताने) कहा भी है—महावीर भगवान्के निर्वाणके ६०९ वर्ष बाद वल्लभीपुरमें श्वेताम्बरदर्शन उत्पन्न हुआ । अतएव

> श्रीबुद्धिसागराचार्यैर्वृत्तैर्व्याकरणं कृतम् ।
> अस्माभिस्तु प्रमालक्ष्म वृद्धिमायातु साम्प्रतम् ॥

टीका—श्रीबुद्धिसागराचार्यैः पाणिनि-चन्द्र-जैनेन्द्र-विश्रान्त-दुर्गटीकामवलोक्य वृत्तबन्धैः—धातुसूत्रगणोणादिवृत्तबन्धैः कृतं व्याकरणं संस्कृत-प्राकृतशब्दसिद्धये । अस्माभिस्तु प्रमालक्ष्म प्रमाणलक्षणम्, अतएव पूर्वाचार्यगौरवदर्शनार्थं वार्तिकरूपेण तत्रापि स्वाभिप्रायनिवेदनार्थं वृत्तिकरणेन च ।

अर्थात् श्रीबुद्धिसागर आचार्यने तो पाणिनि, चन्द्र, जैनेन्द्र, विश्रान्त और दुर्गटीका आदि व्याकरण ग्रन्थोंका अवलोकन करके संस्कृत और प्राकृत शब्दोंकी सिद्धिके लिए व्याकरण ग्रन्थ बनाया और मैंने पूर्वाचार्योंका गौरव दिखानेके लिए वार्तिकरूपमें और स्वाभिप्राय प्रकट करनेके लिए अपनी वृत्तिसे भूषित करके यह प्रमालक्षण गन्थ बनाया है ।

प्रमालक्षणके बननेकी यह बात विशेष ध्यान खींचती है कि, उस पुराने जमानेमें जब जैनोंके—श्वेताम्बर जैनोंके—स्वकीय लक्षणिक ग्रंथ नहीं थे और दूसरोंके बनाये हुए ग्रन्थों पर वे अपने ज्ञानके विकासका आधार रखते थे, तब ब्राह्मणों और बौद्धोंके समान स्वयं उनके स्वयूथ्यों दिगम्बरोंकी ओरसे भी उनपर इस बातका आक्षेप हुआ करता था, कि "तुम्हारे स्वकीय लक्षणग्रंथ नहीं हैं, तुम परलक्ष्मोपजीवी हो, इस लिए तुम्हारा संप्रदाय, नया चला हुआ है । तुम्हारा मत प्राचीन नहीं है । " उस समय दिगम्बर संप्रदायमें जैनेन्द्रादि व्याकरण और परीक्षामुखादि प्रमाणप्रतिपादक ग्रंथ बन चुके थे, इस लिए उनको अपने साहित्यका अभिमान रखनेका स्वाभाविक कारण उत्पन्न हो गया था और श्वेताम्बरोंमें ये बने नहीं थे, इस लिए उन पर कटाक्ष करनेका प्रसंग दिगम्बरोंको मिल रहा था । जिनेश्वरसूरि और उनके भ्राताको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ये कटाक्ष असह्य मालूम दिये, इस लिए उन्होंने अपने संप्रदायके तद्विषयक साहित्य-स्थानको भी अशून्य बना देनेका यह काम कर दिखाया और अपने अर्वाचीनत्वको तिरोहित कर दिया! परन्तु यह बात समझमें नहीं आती कि इस प्रकारके एक दो ग्रंथोंके बन जानेसे आक्षेपक लोग कैसे शान्त हो गये होंगे और श्वेताम्बरोंकी प्राचीनताका कैसे स्वीकार करने लग गये होंगे। इसके सिवाय यह बात भी विचारणीय है कि जो दिगम्बर लोग श्वेताम्बरों पर कटाक्ष करते थे वे, अपने साहित्यमें भी पूज्यपाद और माणिक्य-नन्दि आदिके प्रादुर्भावके पहले इस प्रकारके ग्रंथोंका अभाव होने पर अपनी आदिमत्ता या प्राचीनताको कैसे प्रमाणित करते होंगे?

कहा जाता है कि, हेमचंद्राचार्यको अपना सुप्रसिद्ध व्याकरण सिद्धहेमशब्दानुशासन भी इसी प्रकारका एक कारण उपस्थित होनेसे बनाना पड़ा था। प्रवन्धचिन्तामणिमें लिखा है, कि हेमचन्द्राचार्य सिद्धराज जयसिंहकी सभामें एकदिन किसी एक काव्य पर अपना अपूर्व अर्थचातुर्य प्रकट कर रहे थे। उसे सुनकर राजा बहुत खुश हुआ और उनके पाण्डित्यकी प्रशंसा करने लगा। एक ब्राह्मण विद्वान्को यह बात सहन न हुई। वह बोला—महाराज, इसमें इनकी क्या शोभा है? हमारे ही व्याकरणादि शास्त्रोंके प्रभावसे ये इतनी विद्वत्ता प्राप्त कर सके हैं। राजाने आचार्यजीके सामने देखा, तब वे बोले कि, पहले हमने तुम्हारा नहीं, किन्तु वह व्याकरण पढ़ा है; जिसे महावीर जिनने अपनी बाल्यावस्थामें इन्द्रके सामने प्रकट किया था। ब्राह्मणने कहा—इन पौराणिक बातोंको छोड़ दीजिए और यदि कोई आधुनिक व्याकरणकर्ता आपमें हो तो हमें बतलाइए। हेमचंद्राचार्यने उत्तर दिया कि यदि महाराज सिद्धराज साहाय्य करें, तो मैं स्वयं ही महान् व्याकरण बनानेमें समर्थ हूँ। राजाने साहाय्य देना स्वीकार किया; जिससे एक वर्ष भरहीमें आचार्यजीने सवालक्ष श्लोक-प्रमाण सर्वांगपूर्ण सिद्धहेमशब्दानुशासन नामक व्याकरण बना दिया *।

अस्तु। यदि ये दूसरोंके द्वारा किये जाने-वाले कटाक्षोंकी बातें सच हों तो श्वेताम्बर सम्प्रदायके अनुयायियोंको कटाक्षकर्त्ताओंका उपकार ही मानना चाहिए, जिनके कारण उनके साहित्यका बहुत ही विकास हुआ और उससे समूचे भारतीय साहित्यकी शोभामें भी अपरिमित वृद्धि हुई। १२-९-१९१७। बम्बई।

नोट—प्रमालक्षणके कर्ता जिनेश्वरसूरि बड़े भारी तार्किक समझे जाते हैं, तब मालूम नहीं कि उनकी तर्कप्रवण बुद्धिमें यह बात कैसे जँच गई कि तर्कलक्षणग्रन्थ बना देनेसे श्वेताम्बरसम्प्रदाय परसे अर्वाचीनत्वका आरोप उठा दिया जायगा। एक तो इस बात पर विश्वास ही नहीं होता है कि किसी विचारशील विद्वानके द्वारा श्वेताम्बरसम्प्रदाय पर इस प्रकारके आक्षेप किये जाते होंगे। क्योंकि लक्षणग्रन्थोंका होना न होना प्राचीनता या अर्वाचीनताका हेतु नहीं हो सकता। दूसरे यदि साधारण लोगोंके द्वारा ऐसे आक्षेप किये

* अस्मिन् काव्ये निःप्रपञ्चे प्रपञ्च्यमाने तद्वचनचातुरीचमत्कृतचेता नृपस्तं प्रशंसन् कैश्चिदसहिष्णुभिरस्मच्छात्राध्ययनबलादेतेषां विद्वत्तेत्यभिहिते राज्ञा पृष्टाः श्रीहेमचन्द्राचार्याः। पुरा श्रीजिनेन श्रीमन्महावीरेणेन्द्रस्य पुरतः शैशवे यद्व्याख्यातं तज्जैनव्याकरणमधीयामहे वयमिति। तद्वाक्यानन्तरमिमां पुराणवार्तामपहायास्माकमेव सन्निहितं नृपं व्याकरणकर्तारं कमपि ब्रूतेति तत्पिशुनवाक्यादनु ते प्राहुः—यदि श्रीसिद्धराजः सहायीभवति तदा कतिपयैरेव दिनैः पञ्चाङ्गमपि नूतनं व्याकरणं रचयामः।......श्रीहेमाचार्यैः श्रीसिद्धहेमाभिधानं पञ्चाङ्गमपि व्याकरणं सपादलक्षग्रन्थप्रमाणं संवत्सरेण रचयांचक्रे। (प्रवन्धचिन्तामणिः पृ० १४६-७)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी जाते रहे हों, तो उनका निराकरण इन ग्रन्थोंके बन जानेसे हो गया होगा, यह बात नहीं मानी जा सकती । इनके बन जाने पर भी तो यह कहनेकी गुँजाइश बनी ही रही होगी कि इनके लक्षणग्रन्थ अभी हालहीके, अर्थात् ग्यारहवीं शताब्दिके बने हुए हैं, अतएव इनका सम्प्रदाय प्राचीन नहीं, अर्वाचीन ही है। इन ग्रन्थोंके बन जानेसे केवल इस आक्षेपको अवश्य ही स्थान नहीं रहा होगा कि श्वेताम्बर सम्प्रदायमें शब्द और न्यायके लक्षणग्रन्थ नहीं हैं। इससे अधिक और किसी आक्षेपके निवारणकी आशा इनसे नहीं की जा सकती ।

'छव्वास सएहि' आदि गाथा किसी दिगम्बरी ग्रन्थपरसे उद्धृत की गई है, ऐसा जान पड़ता है; परन्तु उसमें यह हेतु देकर श्वेताम्बरदर्शनकी अर्वाचीनता सिद्ध नहीं की गई है कि श्वेताम्बरोंमें लक्षणग्रन्थ नहीं हैं, इस कारण वे अर्वाचीन हैं। यह तो परम्परासे चली आई केवल एक कथा है । इस तरह विचार करनेसे मालूम होता है कि ग्रन्थकर्त्ताने जो अपने ग्रन्थके रचे जानेका कारण बतलाया है, वह सर्वांशमें ठीक नहीं है। वास्तवमें इस कारणका इतना ही अंश ठीक जान पड़ता है कि ग्रन्थकर्ताको अपने यहाँकी यह कमी—लक्षण-ग्रन्थ नहीं हैं, यह त्रुटि—खटक गई, इससे उन्होंने अपने सम्प्रदायका अगौरव समझा और अन्तमें इस दिशामें प्रयत्न किया।

श्रीजिनेश्वरसूरिके वाक्योंसे विक्रमकी ग्यारहवीं शताब्दिके लगभगके और उसके आगेकी शताब्दियोंके जैनविद्वानोंके उन भावोंका आभास मिलता है जिनके वशवर्ती होकर उन्होंने सैकड़ों अनुकरणमूलक ग्रन्थोंकी रचना की है। व्याकरण, छन्द, काव्य, कोश, अलंकार आदि विषय ऐसे हैं कि इनसे किसी धर्मका कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है; परन्तु वह समय ऐसा था, जैनों और जैनतरोंका पारस्परिक सम्बन्ध इतना विच्छिन्न हो रहा था, और असहिष्णुता इतनी बढ़ रही थी कि जैनोंको इन विषयोंके भी स्वतन्त्र ग्रन्थ रचनेकी आवश्यकता प्रतीत हुई । उन्हें यह असह्य हो गया कि हमारे धर्मके अनुयायी दूसरोंके बनाये हुए ग्रन्थ पढ़ें। अपने यहाँ भी सब विषयोंके ग्रन्थ बनने चाहिए, यह भावना उनमें बराबर बढ़ती गई और इसने उन्हें जैनतरोंसे सर्वथा पृथक् कर दिया। हमारी समझमें जैनविद्वानोंका यह पृथक् पृथक् विषयों पर ग्रन्थ लिखनेका प्रयत्न यदि उक्त भावनाके वशवर्ती होकर नहीं, किन्तु समूचे भारतीय साहित्यको उन्नत बनानेकी दृष्टिसे होता तो बहुत अच्छा होता, उसकी कमनीयता और महनीयता कुछ और ही होती और वह केवल जैनोंके लिए ही नहीं, किन्तु जैनतरोंके लिए भी अभिमानकी वस्तु होती।

—सम्पादक ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैनजातियोंके पारस्परिक बेटी-व्यवहारमें हानिकी कल्पना।

कुछ समय पहले सूरतके ' दिगम्बर जैन ' में श्रीयुत पण्डित पन्नालालजी वाकलीवालने एक छोटासा लेख प्रकाशित कराया था और उसमें यह प्रतिपादन किया था कि, जब एक जाति दूसरीसे सम्बन्ध करने लगेगी तब निर्धन जातिकी पुत्रियोंको दूसरी जातिके धनिक ब्याह ले जायँगे, वृद्धविवाहकी वृद्धि होगी और कंगालोंके लड़के अधिक अविवाहित रहेंगे। यह लेख पारस्परिक बेटी-व्यवहारके विरोधियोंको इतना पसन्द आया कि उन्होंने उसे कई पत्रोंमें उध्दृत करके प्रकाशित किया। इच्छा हुई कि उक्त लेखके विरुद्धमें हम भी कुछ लिखें, परन्तु उसके कुछ ही समय पहले जैनहितैषी भाग ११ पृष्ठ ६२८ में हमारा एक ' जैन जातियोंमें पारस्परिक विवाह ' शीर्षक विस्तृत लेख प्रकाशित हो चुका था और उसमें उक्त लेखकी प्रायः सभी बातोंका उत्तर दिया जा चुका था, इस लिए हमने उस समय इस विषयमें मौन रहना ही उचित समझा; पर देखते हैं कि वह लेख हाईकोर्टकी ' नजीर ' बन रहा है। जैनगजटके सम्पादकने ता. १७ सितम्बरके गजटमें उसे फिर पेश किया है, इस लिए आवश्यक हुआ कि उसकी भ्रामकता प्रकट कर दी जाय। पहले हम अपने पूर्वोल्लिखित लेखका ही वह अंश उध्दृत कर देते हैं, जिसमें इस विषयकी चर्चा की गई है:—

" यह शंका की जाती है कि पारस्परिक विवाहसम्बन्ध जारी होनेसे पहले पहल उन जातियोंको बहुत हानि उठानी पड़ेगी, जिनकी संख्या थोड़ी है और जो निर्धन हैं। क्योंकि उन धनिक जातियोंके लोग जिनमें कन्यायें कम हैं छोटी जातियों पर टूट पड़ेंगे और उनकी सारी कन्याओंको हथया लेंगे। इसका फल यह होगा कि छोटी जातियोंके लड़के कुँआरे रह जायँगे और निर्धन होनेके कारण अन्य जातिके लोग उन्हें कन्या देंगे नहीं। परन्तु वास्तवमें यह शंका निरर्थक है। कारण एक तो ऐसी जाति शायद ही कोई हो जिसमें निर्धन ही निर्धन हों, धनी कोई न हो। सभी जातियोंमें धनी और निर्धन पाये जाते हैं और जिन जातियोंमें धनी अधिक हैं, उनमें निर्धन भी बहुत हैं जो दूसरी जातिके निर्धनोंको अपनी लड़कियाँ खुशीसे देनेको तैयार हो जायँगे। तीसरे धनी प्रायः धनियोंके ही साथ सम्बन्ध करते हैं; गरीबोंके साथ तो उस समय करते हैं जब उनकी उम्र बहुत अधिक हो जाती है। सो ऐसे लोगोंको तो रुपयोंके जोरसे कहीं न कहीं लड़कियाँ मिल ही जायँगी; चाहे वे जातिमें मिलें या दूसरी जातियोंमें। यदि वे दूसरी जातिकी कन्यायें ले आयँगे तो उनकी जातिकी कन्यायें औरोंके लिए बची रहेंगी। बात यह है कि इस प्रश्नका विचार समग्र जैन समाजके हानिलाभ पर दृष्टि रखकर करना चाहिए। तमाम जैन जातियोंमें जितनी कन्यायें हैं, यदि उन सबका यथोचित सम्बन्ध हो जाय, किसीको कुँआरी न रहना पड़े और विवाहका क्षेत्र बढ़ जानेसे यह निस्सन्देह है कि लड़कियाँ कुँआरी न रहेंगी तो समझना होगा कि पारस्परिक विवाहसम्बन्ध लाभकारी है। यदि इससे किसी एक जातिको कुछ हानि भी हो और आरंभमें ऐसा होना कई अंशोंमें संभव भी है, तो सारे जैनसमाजके लाभके खयालसे उसको दर गुजर करना होगा।

कुछ लोगोंका यह खयाल है कि सब जातियोंमें बेटीव्यवहार होने लगनेसे कन्याविक्रय बढ़ जायगा। ऐसे लोग अपने विचारोंकी पुष्टिमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह युक्ति देते हैं कि, जो लोग अपनी लड़कियोंको बेचते हैं उनके लिए बिक्रीका क्षेत्र बढ़ जायगा और इस कारण वे जिस जातिमें अधिक धन देनेवाले मिलेंगे उसी जातिमें अपना काम बनानेकी कोशिश करेंगे, परन्तु यह युक्ति इस प्रश्नके एक ही ओर दृष्टि डालकर की जाती है; यह नहीं सोचा जाता कि जब बेचनेवालेके लिए बिक्रीका क्षेत्र बढ़ जाता है तब खरीददारोंके लिए भी तो खरीद करनेका क्षेत्र छोटा नहीं रहता है। जो रुपये देकर ब्याह करना चाहेंगे उनके लिए फिर लड़कियाँ भी तो बहुत मिलने लगेंगी; वे बेचनेवालोंके बढ़ते हुए लोभमें सहायक क्यों होंगे ?"

श्रीयुत पं० पन्नालालजीने अपने लेखमें मुरादाबाद जिलेके खण्डेलवालोंका एक दृष्टान्त दिया है जिसका सार यह है कि "उक्त जिलेके खण्डेवालोंके साथ देहली, अलीगढ़ आदिके खण्डेलवालोंका बेटीव्यवहार नहीं होता था। क्योंकि मुरादाबादवाले दो या तीन गोत टालकर ही सम्बन्ध कर लेते थे, पर देहली अलीगढ़वालोंमें चार गोत्र टालकर विवाह होते थे। कुछ लोगोंके प्रयत्नसे मुरादाबादवालोंने अपने यहाँ चार गोतोंका टालना स्वीकार कर लिया और तब उनका देहली आदिके लोगोंसे विवाहसम्बन्ध होने लगा। इसका फल यह हुआ कि, मुरादाबादके रईसोंकी जितनी लड़कियाँ थीं वे तो देहली अलीगढ़ आदिके रईसोंके यहाँ पहुँच गईं और इधरके निर्धनोंके लड़के कोरे रह गये। उनके पास इतना धन नहीं कि वे अलीगढ़ आदिसे लड़कियाँ ला सकें। बस, यही एक मात्र कारण है कि मुरादाबाद जिलेके लड़के कुँआरे रह जाते हैं।" हमारी समझमें यह दृष्टान्त तब तक प्रमाणके रूपमें ग्रहण नहीं किया जा सकता, जबतक वहाँके खंडेलवालोंकी संख्याके अंक उपस्थित करके यह न समझा दिया जाय कि कुँआरोंकी संख्यामें इतनी कमी हुई है। यह देखा जाय कि जिस समयकी बात कही गई है उस समय मुरादाबाद जिलेमें ब्याहे, कुँआरे और रँडुए पुरुषोंकी तथा ब्याही, कुँआरी और विधवा स्त्रियोंकी संख्या कितनी थी और उसके बाद पाँच दश वर्षमें उस संख्यामें कितना अन्तर पड़ गया। इसका हिसाब भी प्रकट किया जाय कि यह नया सम्बन्ध जारी होनेपर मुरादाबादकी कितनी लड़कियाँ बाहर गईं और बाहरसे कितनी वहाँ आईं। इस तरह पूरी जाँच किये बिना ऐसी बातों पर विश्वास नहीं किया जा सकता। यह बहुत संभव है कि कुँआरोंकी संख्या और ही किन्हीं कारणोंसे बढ़ गई हो और समझ यह लिया गया हो कि इस नये सम्बन्धसे ऐसा हुआ है। एक तो ऐसा हो नहीं सकता कि मुरादाबादकी लड़कियाँ बाहरवालोंने ले तो ली हों, पर दीं बिलकुल ही न हों। क्योंकि मुरादाबाद जिलेमें भी तो रईसों और धनियोंका अभाव नहीं है। उन्होंने जब बाहरके रईसोंको अपने लड़कियाँ दी होंगी तब ली भी तो होंगी। इसी प्रकार मुरादाबाद जिलेमें जिस प्रकार निर्धन लोग हैं, उसी प्रकार अलीगढ़ आदिमें भी उनका अभाव नहीं है। अलीगढ़ आदिवाले धनियोंने कुछ यह प्रतिज्ञा तो की ही न होगी कि हम मुरादाबादके ही गरीबोंकी लड़कियाँ लायेंगे, अपने आसपासके गरीबोंकी नहीं लेंगे; जिससे कि यह समझ लिया जाय कि मुरादाबादके गरीबोंकी सारी लड़कियाँ अलीगढ़ आदिमें चली गईं। और थोड़ी देरके लिए यदि यह भी मान लिया जाय कि मुरादाबाद जिलेमें कुँआरोंकी संख्या बढ़ गई, तो इसके साथ यह भी मानना पड़ेगा कि, अलीगढ़ आदिके खण्डेलवालोंमें कुँआरोंकी संख्या कम हो गई होगी। क्योंकि यह तो निश्चय है कि खण्डेलवाल जातिमें अधिक उम्रतक या जीवनभर कुमारी रहनेवाली लड़कियाँ नहीं हैं। अर्थात् लड़कियाँ तो मुरादाबाद और अलीगढ़

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आदिकी ब्याही ही गई होंगी, और कुँआरोंकी संख्या भी उतनी ही होगी जितनी कि लड़कियोंकी कमीके हिसाबसे रहनी चाहिए; अन्तर सिर्फ यह पड़ा होगा कि, अलीगढ़ आदिकी ओर जो अधिक कुँआरे रहते थे, सो उनके बदले यहाँ मुरादाबाद जिलेमें अधिक हो गये होंगे। अभिप्राय यह कि समग्र खण्डेलवाल जातिके लाभकी दृष्टिसे मुरादाबाद और अलीगढ़-दिल्लीवालोंका बेटी-व्यवहार बुरा नहीं कहा जा सकता।

यदि इस प्रकारका सम्बन्ध बुरा समझा जायगा, तब तो फिर जातियोंकी जो वर्तमान संख्या है उसमें और भी वृद्धि करनेकी आवश्यकता होगी। ब्याहका क्षेत्र इससे भी अधिक संकीर्ण कर देना लाभदायक सिद्ध होगा। फिर तो मारवाड़के जो लोग अन्य प्रान्तोंमें बस गये हैं और धनी होगये है उनके साथ मारवाड़में रहनेवालोंको अपना भी ब्याह-सम्बन्ध बन्द कर देना चाहिए। क्योंकि वे लोग मारवाड़में आकर लड़कियाँ ले तो जाते हैं, पर देते अपने आसपास रहनेवाले धनियोंको है। और इस युक्तिके अनुयायी बननेके लिए तो इतना ही क्यों, प्रत्येक नगर और ग्रामवालोंको भी यह नियम बना लेना चाहिए कि वे दूसरे नगर और ग्रामवालोंको अपनी लड़कियाँ न दें!

दिगम्बर जैनमें गुरुजीके उक्त लेख पर एक सम्पादकीय नोट भी था। उसमें कहा गया था कि निर्धन और ग्रामनिवासिनी जैन जातियोंके लिए यह पारस्परिक बेटीव्यवहार विषतुल्य सिद्ध होगा और इसके लिए पद्मावती पुरवार जातिका दृष्टान्त दिया था। लिखा था कि इस जातिके अधिकांश लोग ग्रामोंमें रहते हैं और निर्धन हैं। उनसे शहरवाले दूसरी जातिके लोग लड़कियाँ ले तो जायँगे; पर देंगे नहीं। क्यों कि कोई भी नगरनिवासी अपनी लड़कीको ग्राममें और निर्धनके यहाँ नहीं देना चाहता। यह उदाहरण भी लगभग खंडेलवालोंके पूर्वोक्त दृष्टान्तके ही समान है। सम्पादक महाशयको शायद यह ध्यान ही नहीं रहा है, कि पद्मावती पुरवारोंके सिवाय और और जातियोंके लोग भी निर्धन और ग्रामोंमें रहनेवाले हैं, इस लिए वे पद्मावती पुरवारोंके साथ सम्बन्ध कर सकते हैं। नगर-निवासियों और धनियोंके यहाँ इतने अधिक लड़के नहीं होते हैं कि वे सारे ग्रामवासियोंकी लड़कियोंको चट कर जायँगे और ग्रामवासी लड़कोंके लिए लड़कियाँ बचेंगी ही नहीं। इसके सिवाय नगरनिवासियोंके यहाँ लड़कियाँ भी तो होती हैं। उनके लिए भी तो लड़के चाहिएँ। यदि यह कहा जाय कि वे अपनी लड़कियाँ धनियोंको देंगे, तो फिर जितने धनियोंके यहाँ धनियोंकी लड़कियाँ जायँगी, उतनी गरीबोंकी लड़कियाँ भी तो धनियोंके यहाँ जानेसे बची रहेंगी। इसके सिवाय पद्मावती पुरवारोंके ही पड़ौसमें रहनेवाली एक अग्रवाल जाति है। सुनते हैं इस जातिमें कन्याओंको वर नहीं मिलते। बीसों लड़कियाँ जीवनभर कुमारी रहती हैं। यदि पारस्परिक सम्बन्ध जारी हो जायगा, तो ये लड़कियाँ पद्मावती पुरवारोंको ब्याही जायँगी। इसके सिवाय यदि यह डर अनिवार्य ही हो, कि गरीब ग्रामवासियोंकी सारी लड़कियाँ छिन जायँगी और वे कुँआरे रह जायँगे तो इसके लिए और उपाय भी तो किये जा सकते हैं। अहमदाबादके श्वेताम्बर जैनोंकी एक धनिक जाति काठियावाड़के ग्रामोंसे लड़कियाँ ले तो आती थीं; परन्तु देती नहीं थी। इस पर एक सज्जनने काठियावाड़ियोंको चेताया और तब उन्होंने यह नियम कर दिया कि अहमदाबाद-वालोंको उतनी ही लड़कियाँ दी जायँ, जितनी कि उनकी अपने गाँवोंमें ब्याह कर लाई जायँ। पद्मावती पुरवार भी चाहें तो इसी प्रकारका एक नियम बना सकते हैं, जिससे वे इस डरसे बचे रहें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तमाम जैन जातियोंमें बेटीव्यवहार होने लगेगा, तो यह स्थिर और निश्चित है कि कुँआरे पुरुषोंकी संख्या घटेगी। विवाहका क्षेत्र बढ़ जानेसे वर्तमानमें जितने पुरुषोंका विवाह हो सकता है, उतनेसे अधिक पुरुष ब्याहे जा सकेंगे। इस बातको अच्छी तरह समझनेके लिए कल्पना कीजिए कि तमाम जैन जातिके विवाहयोग्य स्त्रीपुरुषोंकी संख्या दश हजार है और वह नीचे लिखी पाँच जातियोंमें विभक्त है:—

	पुरुष	कन्या
खण्डेलवाल	१४००	११००
परवार	१०६०	९४०
अग्रवाल	१४५०	१५५०
पद्मावती पुरवार	८००	७००
हूमड़	६००	४००
	५३१०	४६९०

अब यदि इन सब जातियोंमें अपनी अपनी जातिके ही भीतर विवाह होगा तो खंडेलवालोंमें ३००, परवारोंमें १२०, पद्मावतीपुरवारोंमें १०० और हूमड़ोंमें २०० पुरुष नियमसे अविवाहित रहेंगे। अर्थात् चाहे जो उपाय किया जाय, इतने लोग कुँआरे रहेंगे ही। क्योंकि प्रत्येक जातिमें लड़कियोंकी संख्या कम है। और अग्रवालोंमें पुरुषोंकी संख्या कम है, इसलिए उनमें १०० लड़कियाँ कुँआरी रहेंगी। इस तरह सब जातियोंमें ७२० पुरुष और १०० लड़कियाँ कुँआरी रहेंगी, परन्तु यदि सब जातियोंका परस्पर विवाह होने लगेगा तो ५३१०-४६९०=६२० पुरुष ही कुँआरे रहेंगे और लड़की एक भी न रहेंगी, अर्थात् पारस्परिक विवाहसे २०० पुरुष और १०० लड़कियाँ अधिक ब्याही जा सकेंगी। इसके सिवाय अनमेलविवाह कम होंगे, पारस्परिक प्रीतिकी वृद्धि होगी, कन्याविक्रय कम होगा, और इसी तरहके और भी बहुतसे लाभ होंगे, जिनका विचार हम जैनहितैषी भाग ११ पृष्ठ ६२८ के लेखमें विस्तारके साथ कर चुके हैं।

छोटी छोटी जातियोंके बचानेके लिए—जिनकी जनसंख्या बहुत ही थोड़ी रह गई है—इससे अच्छा और कोई भी उपाय नजर नहीं आता। गत आसौज सुदी १० के जैनमित्रमें 'बुढ़ेले' नामक जैन जातिकी जनसंख्याका एक कोष्टक प्रकाशित किया गया है। उससे मालूम होता है कि इस जातिमें पुरुषोंकी संख्या ४५४ और स्त्रियोंकी ३७२ है। इनमेंसे १७७ पुरुष और १७८ स्त्रियाँ विवाहित हैं। विधवाओंकी संख्या ९४ है। ४५ बर्षकी उमरसे कमके ७३ पुरुष और १३१ बालक इस तरह कुल २०४ पुरुष विवाहयोग्य हैं, परन्तु कन्याओंकी संख्या कुल १०० ही है। अर्थात् इस जातिके १०४ पुरुषोंके भाग्यमें जीवन भर विना स्त्रीके रहना लिखा है। पाठक सोचें कि ऐसी दशामें यह जाति कितने समयतक अपना अस्तित्व बनाये रह सकती है। यदि इसे अन्य जातिवालोंके साथ ब्याह करनेकी आज्ञा मिल जायगी, तो इनमेंसे बहुतसे पुरुष ब्याहे जा सकेंगे। क्योंकि अन्य बड़ी बड़ी जातियोंमें कन्याओंकी संख्या इतनी कम नहीं है। इसमें तो आधेसे भी अधिक कम है।

यह संभव है कि दो चार जातियोंकी परिस्थिति ऐसी हो कि उन्हें इस पारस्परिक व्यवहारसे कुछ हानि होनेकी संभावना हो, पर वह हानि ऐसी नहीं हो सकती कि उसका कोई प्रतीकार ही न हो और उसके कारण सारे जैनसमाजकी भलाईके इस व्यवहारको रोक रक्खा जाय। किसीएक जातिकी रक्षाके लिए, जैसा कि ऊपर पद्मावतीपुरवारोंके सम्बन्धमें कहा गया है, खास नियम भी बनाये जा सकते हैं और उससे वह हानिसे बचा ली जा सकती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सारे जैनसमाजमें एकाध जाति ऐसी भी निकल सकती है जिसमें विवाहयोग्य पुरुषों और कन्याओंकी संख्या बराबर हो और सबके साथ सम्बन्ध करनेसे उसे यह हानि हो कि उसकी कन्यायें दूसरी जातियोंमें अधिक चली जायँ और उसके यहाँके कुछ पुरुष कुँआरे रह जायँ। अवश्य ही यह उस एक जातिके लिए हानिका कार्य है, परन्तु जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है हमें इस विषयमें समग्र जैनसमाजके लाभपर अधिक दृष्टि रखनी चाहिए। समाजके कार्यमें व्यक्तियोंको अपने स्वार्थोंका बलि देना ही पड़ता है। उन्हें यह सोचकर सन्तोष करना पड़ता है कि समाजका जो लाभ है, उसमें हमारा भी हिस्सा है।

जो सज्जन इस विषयके विरोधी हैं, उन्हें अपने और और विरोधोंको भी उपस्थित करना चाहिए जिससे उन पर विचार किया जा सके और यह विषय अच्छी तरहसे निर्णीत हो जाय।

पुस्तक-परिचय।

१ प्राचीनजैनलेखसंग्रह (प्रथम भाग)। सम्पादक, श्रीयुत मुनि जिनविजयजी और प्रकाशक, आत्मानन्द जैनसभा, भावनगर। डिमाई आठ पेजी साइज। पृष्ठसंख्या १००। मूल्य आठ आना। उड़ीसा प्रान्तमें कटकके समीप भुवनेश्वर नामका एक प्रसिद्ध स्थान है। वहाँसे कोई ४-५ मीलके अन्तर पर खण्डगिरि और उदयगिरि नामकी दो पहाड़ियाँ हैं। इन दोनों पहाड़ियोंके शिखरों पर कई छोटी बड़ी गुफायें हैं। इन गुफाओंमेंसे हाथी गुहाका प्रसिद्ध शिलालेख और दूसरे तीन छोटे छोटे लेख अनेक टीकाओं और टिप्पणियों सहित इस पुस्तकमें प्रकाशित किये गये हैं। हमने जैनहितैषी भाग ९ अंक ११ में 'खण्डगिरि और कलिंगाधिपति खारवेल' नामका एक लेख प्रकाशित किया था। हितैषीके नियमित पाठकोंको उसका स्मरण होगा। उस लेखका मूल इन्हीं लेखोंमें है। इन लेखोंने-विशेष करके हाथी गुफावाले लेखने-जैनधर्मके इतिहास पर एक अपूर्व प्रकाश डाला है। ईसवी सन्से कोई २०० वर्ष पहले कलिंगदेशमें महामेघवाहन खारवेल नामका एक बहुत ही प्रतापी राजा होगया है। भिक्षुराज भी इसका नाम था। इसे राजा नहीं, महाराजा अथवा सम्राट् कहना चाहिए। क्योंकि इसने प्रबलप्रतापान्वित मगध देश पर चढ़ाईकी थी और उसे जीत लिया था। लेखमें खारवेलका जन्मसे लेकर ३८ वर्षकी अवस्थातकका जीवन वृत्तान्त दिया है। यद्यपि लेखके अनेक अंश खंडित हो गये हैं; फिर भी वह बतलाता है कि उस समय उड़ीसाका प्रधान धर्म जैन था। खारवेल जैनधर्मका परम श्रद्धालु और प्रचारक था। उसने सिंहासन पर बैठनेके दूसरे वर्षमें विदर्भ (बरार) और महाराष्ट्रमें जैनधर्मके प्रचारका प्रयत्न किया, १२ वें वर्षमें मगध पर चढ़ाई की और उसमें विजय प्राप्त करके वह आदिनाथ भगवान्की उस प्रतिमाको वापस लेकर-लौटा जिसे कि नन्द राजा कलिंगसे ले गया था। इस प्रतिमाको खारवेलने एक बड़ा भारी मन्दिर बनवाकर उसमें स्थापित कराई। राज्यके तेरहवें वर्षमें उसने कुमारी (खण्डगिरि) पर्वत पर देश देशके महाविद्वानों और जैनसाधुओंको बुलाकर एक बड़ी भारी सभा की। उसकी पट्टराणीने जैनसाधुओंके रहनेके लिए गुफायें बनवाई। ये सब लेख प्राकृत भाषामें है और इनकी लिपि अशोकके समयकी लिपिसे मिलती जुलती हुई है। सबसे पहले एक साहबको सन् १८३० में इन लेखोंका पता लगा था। तबसे अबतक इनके विषयमें विद्वानोंमें जो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुछ चर्चा हुई है और इनके मुश्किलसे पढ़े जाने आदिके सम्बन्धमें जितनी घटनायें हुई हैं उन सबका इतिहास भी इस पुस्तकमें दिया गया है । कोई ५० वर्ष तक तो यह लेख अच्छी तरहसे पढ़ा ही नहीं गया था और इसके सिवाय कि यह बौद्धोंका है, किसीने इसके जैन होनेके विषयमें तो कल्पना भी नहीं की थी। सबसे पहले गुजरातके सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ पं० भगवान्लाल इन्द्रजीने इन लेखोंको अच्छी तरह पढ़ा और इनके एक एक शब्द पर टीका टिप्पणी करके इनके सम्पूर्ण अभिप्रायको प्रकाशित किया। पुस्तकमें पं० भगवान्लालजीके लेखका पूरा अनुवाद दिया गया है। साथ ही श्रीयुत पं० केशवलाल ध्रुव महाशयका लेख भी अन्तमें जोड़ दिया गया है, जिसमें खारवेलके इतिहास-पर कुछ और भी नया प्रकाश डाला गया है। कलिंगदेशके इतिहासादिके सम्बन्धमें और भी जो जो जानने योग्य बातें मिल सकी हैं, सम्पादक महाशयने उन सबका इस पुस्तकमें यथास्थान संग्रह कर दिया है। गरज यह कि उक्त लेखोंके मर्मको समझनेके लिए जो कुछ साधनसामग्री चाहिए वह सब इस सुसम्पादित पुस्तकमें संग्रह कर दी गई है । पुस्तककी भाषा गुजराती है । अच्छा होता, यदि यह हिन्दीमें भी प्रकाशित हो जाती । जैन विद्वानोंको इसकी एक एक प्रति अवश्य मँगा लेना चाहिए । यह श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदायके अनुयायियोंके कामकी चीज है। क्यों कि ये लेख उस समयके हैं, जब शायद दिगम्बर और श्वेताम्बर ये दो भेद ही जैन-धर्ममें नहीं हुए थे । इससे इस बातका पता लगानेके भी साधन मिलेंगे कि आजसे २१०० वर्ष पहले जैनधर्मका स्वरूप वर्तमान दिगम्बर सम्प्रदायसे अधिक समानता रखता था या श्वेताम्बर सम्प्रदायसे । मुनि महोदयको ऐसी अच्छी उपयोगी पुस्तक लिखनेके लिए हम हार्दिक धन्यवाद देते हैं ।

२ हर्षचरित भाषा। लेखक, पं० प्यारेलाल शर्मा दीक्षित, प्रकाशक, मनोरमा कार्यालय, मंडी धनौरा (यू.पी.)। आकार डबल क्राउन सोलह पेजी । पृष्ठ संख्या ८० । मूल्य आठ आने । संस्कृत कादम्बरीके कर्ता 'बाणभट्ट' संस्कृतके सुप्रसिद्ध कवि हो गये हैं । गद्यकाव्यकी रचनामें तो वे बेजोड़ समझे जाते हैं । उन्होंने अपने आश्रयदाता राजा हर्षवर्द्धनके नामको अमर बना देनेके लिए 'हर्षचारित' नामका भी एक काव्य लिखा था । संस्कृतमें जो थोड़ेसे ऐतिहासिक काव्य हैं, हर्षचरित भी उनमेंसे एक है। इसमें कविने अपने वंशका, अपना, महाराज हर्षवर्द्धनके वंशका और उनके यशका विस्तारसे परिचय दिया है । 'हर्ष' भारतवर्षका सुप्रसिद्ध सम्राट् हो गया है । उसके समान प्रबलप्रतापी और आदर्श राजा बहुत ही कम हुए हैं । चीनका प्रसिद्ध यात्री हुएनसंग इसीके समयमें यहाँ आया था। उसने अपने यात्राविवरणमें जिन बातोंका जिक्र किया है, उनमेंसे अनेक बातें हर्षचरितसे मिलती हैं । इस पुस्तकमें उसी संस्कृत 'हर्षचरित' का सारांश लिखा गया है। मूलमें जो लम्बे लम्बे समास और विशेषण हैं, उन्हें छोड़कर केवल कथाभागका ही यह अनुवाद है। अच्छा होता, यदि इसमें मूलका कुछ रस-भाग भी लाया जाता। ऐसा करनेसे लोग इसे उत्कण्ठाके साथ पढ़ते । भूमिकामें महाराजा हर्ष और बाणका कुछ ऐतिहासिक परिचय अवश्य ही दिया जाना चाहिए था। इसके बिना साधारण पाठक नहीं समझ सकेंगे कि यह ग्रन्थ कितने महत्त्वका है।

३ वेदान्तका विजयमंत्र—लेखक और प्रकाशक, स्वामी सत्यदेव परिव्राजक, जानसेनगंज, प्रयाग । पृष्ठसंख्या २८ । मूल्य डेढ़ आना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसके प्रारंभके १६ पृष्ठोंमें स्वामीजीका एक व्याख्यान है, जिसमें वेदान्तके—आत्मा अजर अमर है, सदा सत्यपथ पर आरूढ रहना और एक आत्माका अन्यान्य आत्माओंके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है,—इन तीन सिद्धान्तों पर विचार किया है और बतलाया है कि, ये सिद्धान्त ही भारतवासियोंकी विजयके मंत्र हैं । इनके अनुसार चलनेसे वे जीवनयात्रामें कभी नहीं हार सकते । आत्मवादी पौर्वात्य और प्रकृतिवादी पाश्चात्य लोगोंका इस शताब्दिमें एक बड़ा भीषण संग्राम होनेवाला है । उसमें हमारी जीत अवश्य होगी, यदि हम वेदान्तके असली सिद्धान्तोंके पथ पर चलने लगें । स्वार्थी लोगोंने वेदान्तके असली सिद्धान्तोंको बिगाड़ डाला है । आदि । व्याख्यानके आगेके पृष्ठोंमें आत्मवशी या संयमी योद्धाके लक्षण भगवद्गीताके कुछ श्लोक उद्धृत करके और उनका स्पष्टीकरण करके बतलाये हैं। पुस्तक अच्छी है । यदि वेदान्तके बिगड़े हुए रूपका और असली रूपका अन्तर भी शास्त्रीय पद्धतिसे बतला दिया गया होता, तो यह और भी कामकी चीज होती और इसका प्रभाव भी कुछ अधिक गहरा पड़ता।

४ **मनुष्यजीवनके कर्तव्य**। लेखक और प्रकाशक, बाबू सूरजमलजी जैन, मल्हार गंज, इन्दौर । पृष्ठसंख्या ६४ । मूल्य पाँच आने । इसमें सच्चरित्रता, आचरण और आदतोंका सम्बन्ध, मितव्ययिता, स्वच्छता, परोपकार, उदारता, कठिनाई और विद्याभ्यास आदि १६ विषयों पर छोटे छोटे पाठ हैं और वे लेखकने अपने विचारोंके अनुसार स्वतन्त्र लिखे हैं। जैसा कि ‘ वक्तव्य ’ में स्वीकार किया गया है, पुस्तकमें शृंखलाबद्ध विचार नहीं हैं, फिर भी वे उपयोगी और शिक्षाप्रद हैं । विद्यार्थियों और युवकोंको इनसे बहुत लाभ हो सकता है ।

५ **स्वराज्यकी पात्रता और इँग्लैण्डके स्वराज्यका इतिहास** । अनुवादक, पं० रामेश्वर पाठक और प्रकाशक, ‘ ग्रन्थप्रकाशक समिति ’ काशी। डबल काउन सोलहपेजी साइज। पृष्ठसंख्या ५४ । मूल्य पाँच आने । पुस्तकमें दो लेख हैं । पहला ४४ पृष्ठका है । कलकत्तेके सुप्रसिद्ध अँगरेजी पत्र ‘ माडर्न रिव्यू ’के सम्पादक श्रीयुक्त रामानन्द चट्टोपाध्यायने एक Towards Home Rule नामकी पुस्तक लिखी है । यह उसीके पहले लेखका अनुवाद है । इसमें यह अच्छी तरहसे सिद्ध कर दिया गया है कि भारतमें स्वराज्यको प्राप्त करनेकी यथेष्ट पात्रता है । हमारे हितशत्रुओंकी ओरसे जो थोथी और अविचारितरम्य दलीलें यह सिद्ध करनेके लिए दी जाती हैं कि भारतवासी स्वराज्य पानेके योग्य नहीं हैं, उनके युक्तियुक्त और मुँहतोड़ उत्तर देनेमें लेखकने कोई बात उठा नहीं रक्खी । जो लोग स्वराज्यसम्बन्धी आन्दोलनके विरुद्धमें हैं, अथवा जो यह समझते हैं कि भारत इसके योग्य नहीं है, उन्हें इस लेखको अवश्य पढ़ जाना चाहिए । मूल पुस्तकके अन्यान्य लेख भी शीघ्र प्रकाशित होने चाहिएँ । अनुवाद मजेका हुआ है । भाव समझनेमें कोई दिक्कत नहीं पड़ती । दूसरा १० पेजका लेख केसरीके सम्पादक श्रीयुत नरसिंह चिन्तामणि केलकरके लिखे हुए मराठी निबन्धका अनुवाद है । यह अनुवाद अच्छा नहीं हुआ । भाषामें मराठीपन मौजूद है । कहीं कहीं मूल लेखकका अभिप्राय मुश्किलसे समझमें आता है । पुस्तकके टाइटिलपेज पर तो पाठकजी अनुवादकर्ता प्रकट किये गये हैं, परन्तु पहले लेखके ऊपर अमरावतीके वकील श्रीयुत जयराम केसव असनारेका नाम है । मालूम नहीं, इसका कारण क्या है ।

६ **राष्ट्रीय शिक्षा** । प्रकाशक, ‘ग्रन्थप्रकाशक समिति ’ काशी । श्रीमती बीसेण्टके साथी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मि० जार्ज एस. आरंडेलने मद्रासके वैश्य छात्र-सम्मेलनके समक्ष एक शिक्षासम्बन्धी व्याख्यान दिया था। यह उसीका हिन्दी अनुवाद है। इसके अनुवादकर्ता हैं, श्रीयुत नारायण राजाराम सोमण । पृष्ठसंख्या ४४। मूल्य चार आने। व्याख्याता महाशय विदेशी हैं; परन्तु भारत वर्ष पर उनका प्रेम है और यहाँकी प्राचीन सभ्यता पर उनकी भक्ति है, इस कारण उन्होंने जो कुछ कहा है एक सच्चे भारतवासीके समान कहा है। यहाँकी प्राचीन शिक्षापद्धति बहुत अच्छी थी, वह धर्मसूलक थी, धर्म उसका प्राण था; उससे शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियोंका विकास होता था, वर्तमान शिक्षाप्रणालीमें धर्मको कोई स्थान नहीं है, इस समय छात्रोंकी शारीरिक उन्नति पर ध्यान नहीं दिया जाता, छात्र देशहितसम्बन्धी कामोंसे दूर रक्खे जाते हैं; उनके लिए देशभक्ति अपराध है, सरकारकी शिक्षानीति अच्छी नहीं है, शिक्षाखातेके सारे सूत्र देशवासियोंके हाथमें होने चाहिएँ, आदि अनेक बातों पर इसमें विचार किया गया है और राष्ट्रीय शिक्षाके प्रचारपर जोर दिया गया है। अनुवाद मजेका है।

७ ऐतिहासिक राससंग्रह–भाग १ लो अने २ जो। संशोधक और सम्पादक, शास्त्रविशारद जैनाचार्य श्रीविजयधर्मसूरि ए. एम. ए. एस. बी.। प्रकाशक, अभयचन्द भगवानदास गाँधी, प्रबन्धक, श्रीयशोविजयजैनग्रन्थमाला । इसके पहले भागमें डिमाई आठ पेजी आकारके १५० और दूसरे भागमें ११० पृष्ठ हैं। मूल्य प्रत्येकका आठ आना। गुजराती भाषामें जैनकवियोंने सैकड़ों 'रासा' ग्रन्थ बनाये हैं, इस बातकी चर्चा हितैषीमें कई बारकी जा चुकी है। इन रासाओंमें बहुतसे रासा ऐसे हैं, जिनके कथानायक स्वयं ग्रन्थकर्ताओंके समयमें या उनसे कुछ पहले हो गये हैं और इसलिए इतिहासकी दृष्टिसे उनका बहुत कुछ मूल्य है। इसी प्रकारके छह रासाओंका संग्रह पहले भागमें और तीनका दूसरे भागमें है। प्रारंभमें प्रत्येक रासेका संक्षिप्त सार, तत्सम्बन्धी ऐतिहासिक टिप्पण और ग्रन्थकर्त्ताका परिचय भी लगा दिया गया है। इसके लिए सम्पादक महाशयने यथेष्ट परिश्रम किया है। इन सब रासाओंमेंसे चार विक्रमकी १६ वीं शताब्दिके, तीन १७वींके और दो १८वीं शताब्दिके बने हुए हैं। काव्यकी दृष्टिसे इनकी रचना बहुत ही साधारण श्रेणीकी है। इस प्रकारके और भी कई रासे इस पुस्तकमालाके आगे निकलनेवाले भागोंमें प्रकाशित किये जायँगे। सूरि महोदयका यह प्रयत्न प्रशंसनीय है।

८ जेनरल जार्ज वाशिंगटनका जीवन-चरित्र। लेखक, श्रीयुत पं० रामप्रसाद त्रिपाठी एम. ए.। प्रकाशक, बाबू मनोहरदास, शारदा बुकडिपो, काशी। डबल क्राउन सोलह पेजी साइजके १८० पृष्ठ। कपड़ेकी जिल्दसहित पुस्तकका मूल्य एक रुपया। अमेरिकाका संयुक्त राज्य पहले इंग्लैण्डका उपनिवेश था। उसका शासन इंग्लैण्डकी पार्लमेंण्टके द्वारा होता था। अमेरिकामें जो फरासीसी बसते थे, उन्होंने एक बार वहाँके इँग्लैंडवासियोंके साथ जमीनके सम्बन्धमें झगड़ा किया। झगड़ा बहुत बढ़ गया और वह युद्धसे शान्त हुआ। इस फरासीसी युद्धमें इंग्लैण्डका धन बहुत खर्च हुआ था, इसलिए पार्लमेण्टने इस युक्तिको उपस्थित करके उक्त खर्चको नये टेक्सोंके द्वारा अमेरिकावालोंसे वसूल करनेका निश्चय किया कि इस युद्धसे अमेरिकावालोंका ही बहुत लाभ हुआ है। पर यह बात अमेरिकावालोंको असह्य हुई। उन्होंने टैक्स देनेका विरोध करना शुरू किया। झगड़ा बहुत बढ़ गया। पार्लमेंटका पित्त ऊँचा हो गया। उसने कठोर नीतिका अवलम्बन किया और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसका परिणाम स्वभावतः अमेरिकावालोंको अपने हठ पर दृढतासे आरूढ रहनेमें हुआ। अन्तमें युद्धकी भेरी बज उठी, इंग्लैण्डसे सेनायें आने लगीं। लगातार कई वर्षोंतक यह युद्ध होता रहा और अमेरिकावालोंने अपना सर्वस्व लगाकर वह 'स्वाधीनता' प्राप्त की, जिसे वे आज ऊँचा मस्तक किये हुए भोग रहे हैं। इस युद्धके प्रधान नेता जार्ज वाशिंगटन थे। उन्हींके अश्रान्त परिश्रम, देशभक्ति, उत्साह, सच्चरित्रता आदि गुणोंके कारण यह विजय प्राप्त हुई थी। इस ग्रन्थमें इसी महात्माका—अमेरिकाकी स्वाधीनताके पिताका—जीवनचरित्र लिखा गया है। प्रत्येक देशभक्तके पढ़नेकी चीज है। चरित्रके साथ ही साथ अमेरिकाके संक्षिप्त इतिहास-का भी इससे परिचय प्राप्त हो जायगा। भाषा साधारणतः अच्छी है। प्रूफसंशोधन सावधानीसे नहीं किया गया।

नीचे लिखी हुई पुस्तकें धन्यवादपूर्वक स्वीकार की जाती हैं:—

१ कृपण (प्रहसन)। ले० और प्र०--बाबू फूलचन्द जैन, शिकोहाबाद (यू. पी.)।

२ चार सालकी सम्मिलित रिपोर्ट, बुंदेलखण्ड जैन संस्कृत एंग्लो वर्नाक्यूलर स्कूल, बांदा। प्र०—नायक राजारामजी मंत्री।

३ जैनोंका धर्म, ४ पर्युषणपर्वमें क्या करना, ५ इन्दौरका जैनसमाज और फूटका राज्य। प्रकाशक, जैनसमाज सेवक मण्डल, गोराकुंड, इन्दौर सिटी।

६ वार्षिक रिपोर्ट १२–१३ वें वर्षकी, श्री-स्याद्वाद महाविद्यालय, काशी।

७ चन्द्रकला नाटक। ले०, पं० मुन्नालाल शर्मा और प्रकाशक, लाला माँगीलालजी गुप्त, छावनी नीमच।

८ बारहवाँ वार्षिक विवरण—तीर्थक्षेत्र कमेटी बम्बई। प्र०, लाला भागमल प्रभुदयालजी।

९ दो वर्षोंकी रिपोर्ट, दि० जैन श्राविकाश्रम, मुरादाबाद। प्रका०, गंगादेवी।

१० सप्तभंगीनय। ले०, लाला कन्नोमल एम. ए.। प्र०, आत्मानन्द जैन ट्रेक्ट सुसाइटी, अम्बाला शहर।

११ शिशु-लोरी। संग्रहकर्त्ता और प्रकाशक, श्रीयुत बनवारीलाल गुप्त, कासगंज, एटा।

१२ जैनभजनतरंगिणी। ले०, कविवर हीरालालजी महाराज। प्रकाशक, नौरतनमल बोहरा, जैनपुस्तकप्रचारक मंडल, अजमेर।

१३ माधुर्यलता। लेखक, कुमुद। प्रकाशक, धन्नालाल कठरया, माणिक ग्रन्थमाला कार्यालय, बीना इटावा, (सागर) सी. पी.।

१४ जैनसिद्धान्त विद्यालयकी सातवीं वार्षिक रिपोर्ट। प्र०, पं० बंशीधर जैन, मोरेना (ग्वालियर)।

पछतावा।

(लेखक—श्रीयुत प्रेमचन्दजी।)

[१]

पंडित दुर्गानाथ जब कालेजसे निकले तो उन्हें जीवननिर्वाहकी चिंता उपस्थित हुई। वे दयालु और धार्मिक पुरुष थे। इच्छा थी कि ऐसा काम करना चाहिए जिससे अपना जीवन भी साधारणतः सुखपूर्वक व्यतीत हो और दूसरोंके साथ भलाई और सदाचरणका भी अवसर मिले। वे सोचने लगे—यदि किसी कार्यालयमें क्लर्क बन जाऊँ तो अपना निर्वाह तो हो सकता है किन्तु सर्व साधारणसे कुछ भी सम्बन्ध न रहेगा। वकालतमें प्रविष्ट हो जाऊँ तो दोनों बातें सम्भव हैं, किन्तु अनेकानेक यत्न करने पर भी अपनेको पवित्र रखना कठिन होगा। पुलिस विभागमें दीनपालन और परोपकारके लिए बहुतसे अव-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर मिलते रहते हैं; किन्तु एक स्वतन्त्र और सद्विचार-प्रिय मनुष्यके लिए वहाँकी हवा हानिप्रद है। शासनविभागमें नियम और नीतियोंकी भर-मार रहती है। कितना ही चाहो पर वहाँ कड़ाई और डाँट डपटसे बचे रहना असम्भव है। इसी प्रकार बहुत सोचविचारके पश्चात् उन्होंनें निश्चय किया कि किसी जमींदारके यहाँ 'मुख्तार आम' बन जाना चाहिए। वेतन तो अवश्य कम मिलेगा किन्तु दीन खेतिहरोंसे रात दिन सम्बन्ध रहेगा— उनके साथ सद्व्यवहारका अवसर मिलेगा। साधारण जीवन निर्वाह होगा और विचार दृढ होंगे।

कुँवर विशालसिंहजी एक सम्पत्तिशाली जमींदार थे। पं० दुर्गानाथने उनके पास जाकर प्रार्थना की कि मुझे भी अपनी सेवामें रखकर कृतार्थ कीजिए। कुँवर साहबने इन्हें सिरसे पैर तक देखा और कहा--पण्डितजी, आपको अपने यहाँ रखनेमें मुझे बड़ी प्रसन्नता होती किन्तु आपके योग्य मेरे यहाँ कोई स्थान नहीं देख पडता।

दुर्गानाथने कहा-मेरे लिये किसी विशेष स्थानकी आवश्यकता नहीं है। मैं हरएक काम कर सकता हूँ। वेतन आप जो कुछ प्रसन्नता-पूर्वक देंगे मैं स्वीकार करूँगा। मैंने तो यह संकल्प कर लिया है कि सिवा किसी रईसके और किसीकी नौकरी न करूँगा। कुँवर विशालसिंहने अभिमानसे कहा-रईसकी नौकरी नहीं राज्य है। मैं अपने चपरासियोंको दो रुपया माहवार देता हूँ और वे तंजेबके अँगरखे पहनकर निकलते हैं। उनके दरवाजों पर घोड़े बँधे हुए हैं। मेरे कारिन्दे पाँच रुपयेसे अधिक नहीं पाते किन्तु शादी विवाह वकीलोंके यहाँ करते हैं। न जाने उनकी कमाईमें क्या बरकत होती है। बरसों तन-ख्वाहका हिसाब नहीं करते। कितने ऐसे हैं जो विना तनख्वाहके कारिन्दगी या चपरासगरी-को तैयार बैठे हैं। परन्तु अपना यह नियम नहीं। समझ लीजिए, मुख्तार आम अपने इलाके-में एक बड़े जमींदारसे भी अधिक रौब रखता है। उसका ठाट बाट उसकी हुकूमत छोटे छोटे राजाओंसे कम नहीं। जिसे इस नौकरीका चसका लग गया है उसके सामने तहसीलदारी झूठी है।

पण्डित दुर्गानाथने कुँवर साहबकी बातोंका समर्थन न किया जैसा कि करना उनको सभ्यतानुसार उचित था। वे दुनियादारीमें अभी कच्चे थे, बोले—मुझे अबतक किसी रईसकी नौकरीका चसका नहीं लगा है। मैं तो अभी कालेजसे निकला आता हूँ। और न मैं इन कारणोंसे नौकरी करना चाहता हूँ जिन्हें आपने वर्णन किये। किन्तु इतने कम वेतनमें मेरा निर्वाह न होगा। आपके और नौकर असामियोंका गला दबाते होंगे। मुझसे मरते समय तक ऐसे कार्य्य न होंगे। यदि सच्चे नौकरका सन्मान होना निश्चय है तो मुझे विश्वास है कि बहुत शीघ्र आप मुझसे प्रसन्न होजायँगे।

कुँवर साहबने बड़ी दृढतासे कहा—हाँ यह तो निश्चय है कि सत्यवादी मनुष्यका आदर सब कहीं होता है। किन्तु मेरे यहाँ तनख्वाह अधिक नहीं दी जाती।

जमींदारके इस प्रतिष्ठा-शून्य उत्तरको सुन-कर पण्डितजी कुछ खिन्नहृदयसे बोले--तो फिर मजबूरी है। मेरे द्वारा इस समय कुछ कष्ट आपको पहुँचा हो तो क्षमा कीजिएगा। किन्तु मैं यह आपसे कह सकता हूँ कि ईमान-दार आदमी आपको इतना सस्ता न मिलेगा।

कुँवरसाहबने मनमें सोचा कि मेरे यहाँ सदा अदालत कचहरी लगी ही रहती है। सैकड़ों रुपये तो डिगरी और तजवीजों तथा और और अँगरेजी कागजोंके अनुवादमें लग जाते हैं। एक अँगरेजीका पूर्ण पण्डित सहजहीमें मुझे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In.Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिल रहा है। सो भी अधिक तनख्वाह नहीं देनी पड़ेगी, इसे रख लेना ही उचित है। लेकिन पण्डितजीकी बातका उत्तर देना आवश्यक था, अतः कहा—महाशय, सत्यवादी मनुष्यको कितना ही कम वेतन दिया जावे किन्तु वह सत्यको न छोड़ेगा। और न अधिक वेतन पानेसे बेईमान सच्चा बन सकता है। सच्चाईका रुपयेसे कुछ सम्बन्ध नहीं। मैंने ईमानदार कुली देखे हैं और बेईमान बड़े बड़े धनाढ्य पुरुष। परन्तु अच्छा; आप एक सज्जन पुरुष हैं। आप मेरे यहाँ प्रसन्नतापूर्वक रहिए। मैं आपको एक इलाकेका अधिकारी बना दूँगा और आपका काम देखकर तरक्की भी कर दूँगा।

दुर्गानाथजीने २०) मासिक पर रहना स्वीकार कर लिया। यहाँसे कोई ढाई मीलपर कई गाँवोंका एक इलाका चाँदपारके नामसे विख्यात था। पण्डितजी इसी इलाकेके कारिन्दे नियत हुए।

[२]

पण्डित दुर्गानाथ चाँदपारके इलाकेमें पहुँचे और अपने निवासस्थानको देखा, तो उन्होंने कुँवरसाहबके कथनको बिलकुल सत्य पाया। यथार्थमें रियासतकी नौकरी सुख सम्पत्तिका घर है। रहनेके लिए सुन्दर बंगला है। जिसमें बहुमूल्य बिछौना बिछा हुआ था, सैकड़ों बीघेकी सीर, कई नौकर चाकर, कितने ही चपरासी, सवारीके लिए एक सुन्दर टाँगन, सुख और ठाट वाटके सामान उपस्थित। किन्तु इस प्रकारकी सजावट और विलास-युक्त सामग्री देखकर उन्हें उतनी प्रसन्नता न हुई। क्यों कि इसी सजे हुए बंगलेके चारों ओर किसानोंके झोंपड़े थे। फूसके घरोंमें मिट्टीके वर्तनोंके सिवा और सामान ही क्या था। वहाँके लोगोंमें वह बंगला कोटके नामसे विख्यात था। लड़के उसे भयकी दृष्टिसे देखते। उसके चबूतरे पर पैर रखनेका उन्हें साहस न पड़ता। इस दीनताके बीचमें इतना बड़ा ऐश्वर्य्ययुक्त दृश्य उनके लिए अत्यंत हृदयविदारक था। किसानोंकी यह दशा थी कि सामने आते हुए थरथर काँपते थे। चपरासी लोग उनसे ऐसा बर्ताव करते कि पशुओंके साथ भी वैसा नहीं होता है।

पहले ही दिन कई सौ किसानोंने पण्डितजीको अनेक प्रकारके पदार्थ भेंटके रूपमें उपस्थित किये, किन्तु जब वे सब लौटा दिये गये तो उन्हें बहुत ही आश्चर्य हुआ। किसान प्रसन्न हुए किन्तु चपरासियोंका रक्त उबलने लगा। नाई व कहार खिदमतको आये, किन्तु लौटा दिये गये। अहीरोंके घरोंसे दूधसे भरा हुआ एक मटका आया। वह भी वापस हुआ। तमोली एक डोली पान लाया, किन्तु वे भी स्वीकार न हुए। असामी आपसमें कहने लगे कि कोई धर्मात्मापुरुष आये हैं। परन्तु चपरासियोंको तो ये नई बातें असह्य हो गईं। उन्होंने कहा—हुजूर, अगर आपको ये चीजें पसन्द न हों तो न लें मगर रस्मको तो न मिटावें। अगर कोई दूसरा आदमी यहाँ आवेगा तो उसे नये सिरेसे यह रस्म बाँधनेमें कितनी दिक्कत होगी। यह सब सुनकर पंडितजीने केवल यही उत्तर दिया—जिसके सिर पर पड़ेगा वह भुगत लेगा। मुझे इसकी चिन्ता करनेकी क्या आवश्यकता? एक चपरासीने साहस बाँधकर कहा—इन असामियोंको आप जितना गरीब समझते हैं उतने गरीब ये नहीं हैं। इनका ढंग ही ऐसा है। भेस बनाये रहते हैं। देखनेमें ऐसे सीधे सादे मानों बेसींगकी गाय हैं, लेकिन सच मानिए इनमेंका एक एक आदमी हाईकोरटका वकील है।

चपरासियोंके इस वादविवादका प्रभाव पंडितजी पर कुछ न हुआ। उन्होंने प्रत्येक गृहस्थसे दयालुता और भाईचारेका आचरण करना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आरम्भ किया। सबेरेसे ८ बजे तक वे गरीबोंको विना दाम ओषधियाँ देते, फिर हिसाब किताबका काम देखते। उनके सदाचरणने असामियोंको मोह लिया। मालगुजारीका रुपया जिसके लिये प्रतिवर्ष कुरकी तथा नीलामकी आवश्यकता होती थी इस वर्ष एक इशारे पर वसूल हो गया। किसानोंने अपने भाग सराहे और वे मनाने लगे कि हमारे सरकारकी दिनोंदिन बढ़ती हो।

[३]

कुँवर विशालसिंह अपनी प्रजाके पालन पोषण पर बहुत ध्यान रखते थे। वे बीजके लिए अनाज देते और मजूरी और बैलोंके लिए रुपये। फस्ल कटने पर एकका डेढ़ वसूल कर लेते। चाँदपारके कितने ही असामी इनके ऋणी थे। चैतका महीना था। फ़स्ल कट कट कर खलियानमें आरही थी। खलियानमेंसे कुछ नाज घरमें भी आने लगा था। इसी अवसर पर कुँवर साहबने चाँदपारवालोंको बुलाया और कहा—हमारा नाज और रुपया बेबाक कर दो। यह चैतका महीना है। जब तक कड़ाई न की जाय तुम लोग डकार नहीं लेते। इस तरह काम नहीं चलेगा। बूढ़े मलूकाने कहा—सरकार, भला असामी कभी अपने मालिकसे बेबाक हो सकता है। कुछ अभी ले लिया जाय, कुछ फिर दे देंगे। हमारी गर्दन तो सरकारकी मुट्ठीमें है।

कुँवरसाहब—आज कौड़ी कौड़ी चुका कर यहाँसे उठने पाओगे। तुम लोग हमेशा इसी तरह हीला हवाला किया करते हो।

मलूका (विनयके साथ)—हमारा पेट है सरकारकी रोटियाँ हैं, हमको और क्या चाहिए। जो कुछ उपज है वह सब सरकारहीकी है।

कुँवर साहबसे मलूकाकी यह वाचालता सही न गई। उन्हें इस पर क्रोध आगया। राजा, रईस ठहरे। बहुत कुछ खरी खोटी सुनाई और बोले—कोई है! जरा इस बुढ्ढेका कान तो गरम करे, यह बहुत बढ़ बढ़ कर बातें करता है। उन्होंने तो कदाचित् धमकानेकी इच्छासे कहा, किन्तु चपरासियोंकी आँखोंमें चाँदपार खटक रहा था। एक तेज़ चपरासी कादिर खाँने लपक कर बूढ़ेकी गर्दन पकड़ी और ऐसा धक्का दिया कि बेचारा ज़मीन पर जा गिरा। मलूकाके दो जवान बेटे वहाँ चुप चाप खड़े थे। बापकी ऐसी दशा देखकर उनका रक्त गर्म हो उठा। वे दोनों झपटे और कादिरखाँ पर टूट पड़े। धमाधम शब्द सुनाई पड़ने लगा। खाँ साहबका पानी उतर गया। साफ़ा अलग जा गिरा। अचकनके टुकड़े टुकड़े होगये। किन्तु ज़बान चलती ही रही।

मलूकाने देखा, बात बिगड़ गई। वह उठा और क़ादिरखांको छुड़ाकर अपने लड़कोंको गालियाँ देने लगा। जब लड़कोंने उसीको डाँटा, तब दौड़कर कुँवरसाहबके चरणों पर गिर पड़ा। पर बात यथार्थमें बिगड़ गई थी। बूढ़ेके इस विनीत भावका कुछ प्रभाव न हुआ। कुँवरसाहबकी आँखोंसे मानों आगके अङ्गारे निकल रहे थे। वे बोले—बेईमान, आँखोंके सामनेसे दूर हो जा। नहीं तेरा खून पी जाऊँगा।

बूढ़ेके शरीरमें रक्त तो अब वैसा न रहा था किन्तु कुछ गर्मी अवश्य थी। वह समझा था कि ये कुछ न्याय करेंगे, परन्तु यह फटकार सुनकर बोला—सरकार बुढ़ापेमें आपके दरवाज़े पर पानी उतर गया और तिसपर सरकार हमीको डाँटते हैं। कुँवरसाहबने कहा—तुम्हारी इज्जत अभी क्या उतरी है, अब उतरेगी।

दोनों लड़के सरोष बोले—सरकार अपना रुपया लेंगे कि किसीकी इज्जत लेंगे।

कुँवरसाहब (ऐंठकर)—रुपया पीछे लेंगे। पहले देखेंगे कि तुम्हारी इज्जत कितनी है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[४]

चाँदपारके किसान अपने गाँव पर पहुँचकर पण्डित दुर्गानाथसे अपनी रामकहानी कह ही रहे थे कि कुँवरसाहबका दूत पहुँचा और खबर दी कि सरकारने आपको अभी बुलाया है।

दुर्गानाथने असामियोंको परितोष दिया और आप घोड़ेपर सवार होकर दरबारमें हाजिर हुए।

कुँवरसाहबकी आँखें लाल थीं। मुखकी आकृति भयंकर हो रही थी। कई मुख्तार और चपरासी बैठे हुए आग पर तेल डाल रहे थे। पंडितजीको देखते ही कुँवरसाहब बोले—चाँदपार वालोंकी हरकत आपने देखी ?

पंडितजीने नम्रभावसे कहा—जी हाँ सुनकर बहुत शोक हुआ। यह तो ऐसे सरकश न थे।

कुँवरसाहब—यह सब आपहीके आगमनका फल है। आप अभी स्कूलके लड़के हैं। आप क्या जानें कि संसारमें कैसे रहना होता है। यदि आपका बर्ताव असामियोंके साथ ऐसा ही रहा तो फिर मैं जमींदारी कर चुका। यह सब आपकी करनी है। मैंने इसी दरवाजे पर असामियोंको बाँध बाँध कर उलटे लटका दिया है और किसीने चूँतक न की। आज उनका यह साहस कि मेरे ही आदमी पर हाथ चलायें।

दुर्गानाथ (कुछ दबते हुए)—महाशय, इसमें मेरा क्या अपराध ? मैंने तो जबसे सुना है तभीसे स्वयं सोचमें पड़ा हूँ।

कुँवरसाहब—आपका अपराध नहीं तो किसका है ? आपहीने तो इनको सर चढ़ाया। बेगार बन्द कर दी, आपही उनके साथ भाईचारेका बर्ताव करते हैं, उनके साथ हँसी मजाक करते हैं। ये छोटे आदमी इस बर्तावकी कदर क्या जानें। किताबी बातें स्कूलोंहीके लिए हैं। दुनियाके व्यवहारका कानून दूसरा है। अच्छा जो हुआ सो हुआ। अब मैं चाहता हूँ कि इन बदमाशोंको इस सरकशीका मजा चखाया जाय। असामियोंको आपने मालगुजारीकी रसीद तो नहीं दी है ?

दुर्गानाथ (कुछ डरते हुए)—जी नहीं, रसीदें तैयार हैं, केवल आपके हस्ताक्षरोंकी देर है।

कुँवरसाहब (कुछ संतुष्ट होकर)—यह बहुत अच्छा हुआ। शकुन अच्छे हैं। अब आप इन रसीदोंको चिरागअलीके सिपुर्द कीजिए। इन लोगों पर बकाया लगानकी नालिश की जायँगी, फस्ल नीलाम करा लूँगा। जब भूखों मरेंगे तब सूझेगी। जो रुपया अबतक वसूल हो चुका है, वह बीज और ऋणके खातेमें चढ़ा लीजिए। आपको केवल यही गवाही देनी होगी कि यह रुपया मालगुजारीके मदमें नहीं कर्जके मदसे वसूल हुआ है। बस।

दुर्गानाथ चिन्तित हो गये। सोचने लगे कि क्या यहाँ भी उसी आपत्तिका सामना करना पड़ेगा, जिससे बचनेके लिए, इतने सोच विचारके बाद, यह शान्तिकुटीर ग्रहण किया था। क्या जान बूझ कर इन गरीबोंकी गर्दन पर छुरी फेरूँ, इस लिए कि मेरी नौकरी बनी रहे। नहीं, यह मुझसे न होगा। बोले—क्या मेरी शहादत बिना काम न चलेगा ?

कुँवर साहब (क्रोधसे)—क्या इतना कहनेमें भी आपको कोई उज्र है ?

दुर्गानाथ (द्विविधामें पड़े हुए)—जी यों तो मैंने आपका नमक खाया है। आपकी प्रत्येक आज्ञाका पालन करना मुझे उचित है, किन्तु न्यायालयमें मैंने गवाही कभी नहीं दी है। सम्भव है कि यह कार्य्य मुझसे न हो सके। अतः मुझे तो क्षमा ही कर दिया जाय।

कुँवर साहब (शासनके ढंगसे)—यह काम आपको करना पड़ेगा। इसमें हाँ—नहींकी आवश्यकता नहीं। आग आपने लगाई है, बुझावेगा कौन ?

दुर्गानाथ (दृढ़ताके साथ)—मैं झूठ कदापि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं बोल सकता। और न इस प्रकार शहादत दे सकता हूँ।

कुँवर साहब (कोमल शब्दोंमें)—कृपानिधान, यह झूठ नहीं है। मैंने झूठका व्यापार नहीं किया है। मैं यह नहीं कहता कि आप रुपयेका वसूल होना अस्वीकार कर दीजिए। जब असामी मेरे ऋणी हैं तो मुझे अधिकार है कि चाहे रुपया ऋणके मदमें वसूल करूँ या मालगुजारीके मदमें। यदि इतनी सी बातको आप झूठ समझते हैं तो आपकी ज़बरदस्ती है। अभी आपने संसार देखा नहीं। ऐसी सच्चाईके लिए संसारमें स्थान नहीं। आप मेरे यहाँ नौकरी कर रहे हैं। इस सेवकधर्म पर विचार कीजिए। आप शिक्षित और होनहार पुरुष हैं। अभी आपको संसारमें बहुत दिन तक रहना है और बहुत काम करना है। अभीसे आप यह धर्म और सत्यता धारण करेंगे तो अपने जीवनमें आपको आपत्ति और निराशाके सिवा और कुछ प्राप्त न होगा। सत्यप्रियता अवश्य उत्तम वस्तु है किन्तु उसकी भी सीमा है। 'अति सर्वत्र वर्जयेत्'। अब अधिक सोचविचारकी आवश्यकता नहीं। यह अवसर ऐसा ही है।

कुँवर साहब पुराने खुर्राट थे। इस फेंकैनतसे युवक खिलाड़ी हार गया।

[५]

इन घटनाके तीसरे दिन चाँदपारके असामियों पर बक़ायालगानकी नालिश हुई। समन आये। घर घर उदासी छा गई। समन क्या थे, यमके दूत थे। देवी देवताओंकी मन्नतें होने लगीं। स्त्रियाँ अपने घरवालोंको कोसने लगीं, और पुरुष अपने भाग्यको। नियत तारीखके दिन गाँवके गँवार कन्धे पर सोंटा डोर रक्खे और अँगोछेमें चबेना बाँधे कचहरीको चले। सैकड़ों स्त्रियाँ और बालक रोते हुए उनके पीछे पीछे जाते थे। मानों अब वे फिर उनसे न मिलेंगे।

पंडित दुर्गानाथके लिए ये तीन दिन कठिन परीक्षाके थे। एक ओर कुँवर साहबकी प्रभावशालिनी बातें, दूसरी ओर किसानोंकी हाय हाय। परन्तु विचारसागरमें तीन दिन तक निमग्न रहनेके पश्चात् इन्हें धरतीका सहारा मिल गया। उनकी आत्माने कहा— यह पहली परीक्षा है। यदि इसमें अनुत्तीर्ण रहे तो फिर आत्मिक दुर्बलता ही हाथ रह जायगी। निदान निश्चय हो गया कि मैं अपने लाभके लिए इतने गरीबोंको हानि न पहुँचाऊँगा।

दसबजे दिनका समय था। न्यायालयके सामने मेला सा लगा हुआ था। जहाँ तहाँ श्याम वस्त्राच्छादित देवताओंकी पूजा हो रही थी। चाँदपारके किसान झुंडके झुंड एक पेड़के नीचे आकर बैठे। उनसे कुछ दूर पर कुँवरसाहबके मुख्तार आम, सिपाहियों और गवाहोंकी भीड़ थी। ये लोग अत्यंत विनोदमें थे। जिस प्रकार मछलियाँ पानीमें पहुँचकर किलोलें करती हैं, उसी भाँति ये लोग भी आनन्दमें चूर थे। कोई पान खा रहा था, कोई हलवाईकी दूकानसे पूरियोंके पत्तल लिये चला आता था। उधर बेचारे किसान पेड़के नीचे चुप चाप उदास बैठे थे कि आज न जाने क्या होगा, कौन आफत आयेगी, भगवानका भरोसा है। मुकदमेकी पेशी हुई। कुँवर साहबकी ओरके गवाह गवाही देने लगे कि ये असामी बड़े सरकश हैं। जब लगान माँगा जाता है तो लड़ाई झगड़े पर तैयार हो जाते हैं। अबकी इन्होंने एक कौड़ी भी नहीं दी।

कादिर खाँने रोकर अपने सिरकी चोट दिखाई। सबके पीछे पंडित दुर्गानाथकी पुकार हुई। उन्हींके बयान पर निपटारा था। वकील साहबने उन्हें खूब तोतेकी भाँति पढ़ा रक्खा था,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किन्तु उनके मुखसे पहला वाक्य निकला था कि मजिस्ट्रेटने उनकी ओर तीव्र दृष्टिसे देखा। वकील साहब बगलें झाँकने लगे। मुख्तार आमने उनकी ओर घूर कर देखा। अहलमद, पेशकार आदि सबके सब उनकी ओर आश्चर्य्यकी दृष्टिसे देखने लगे।

न्यायाधीशने तीव्र स्वरमें कहा—तुम जानते हो कि मजिस्ट्रेटके सामने खड़े हो?

दुर्गानाथ (दृढ़तापूर्वक)—जी हाँ भली भाँति जानता हूँ।

न्याया०—तुम्हारे ऊपर असत्य भाषणका अभियोग लगाया जाता है।

दुर्गानाथ—अवश्य। यदि मेरा कथन झूठा हो।

वकीलने कहा—जान पड़ता है किसानोंके दूध घी और भेंट आदिने यह कायापलट कर दी है। और न्यायाधीशकी ओर सार्थक दृष्टिसे देखा।

दुर्गानाथ—आपको इन वस्तुओंका अधिक तजरुवा होगा। मुझे तो अपनी रूखी रोटियाँ ही अधिक प्यारी हैं।

न्यायाधीश—तो इन असामियोंने सब रुपया बेबाक कर दिया है?

दुर्गानाथ—जी हाँ, इनके जिम्मे लगानकी एक कौड़ी भी बाकी नहीं है।

न्यायालय—रसीदें क्यों नहीं दीं?

दुर्गानाथ—मेरे मालिककी आज्ञा।

[६]

मजिस्ट्रेटने नालिशें डिसमिस कर दीं। कुँवर साहबको ज्यों ही इस पराजयकी खबर मिली, उनके कोपकी मात्रा सीमासे बाहर हो गई। उन्होंने पंडित दुर्गानाथको सैकड़ों कुवाक्य कहे—नमकहराम, विश्वासघाती, दुष्ट। ओह मैंने उसका कितना आदर किया, किन्तु कुत्तेकी पूँछ कहीं सीधी हो सकती है! अन्तमें विश्वासघात कर ही गया। यह अच्छा हुआ कि पं० दुर्गानाथ मजिस्ट्रेटका फैसला सुनते ही मुख्तार आमको कुंजियाँ और कागज पत्र सुपुर्द कर चलते हुए। नहीं तो उन्हें इस कार्य्यके फलमें कुछ दिन हल्दी और गुड़ पीनेकी आवश्यकता पड़ती!

कुँवरसाहबका लेन देन विशेष अधिक था। चाँदपार बहुत बड़ा इलाका था। वहाँके असामियोंपर कई सौ रुपये बाकी थे। उन्हें विश्वास हो गया कि अब रुपया डूब जायगा। वसूल होनेकी कोई आशा नहीं। इस पंडितने असामियोंको बिल्कुल बिगाड़ दिया। अब उन्हें मेरा क्या डर। अपने कारिन्दों और मंत्रियोंसे सम्मति ली। उन्होंने भी यही कहा—अब वसूल होनेकी कोई सूरत नहीं। कागजात न्यायालयमें पेश किये जायँ तो इनकम टैक्स लग जायगा। किन्तु रुपया वसूल होना कठिन है। उजरदारियाँ होंगी। कहीं हिसाबमें कोई भूल निकल आई तो रही सही साख भी जाती रहेगी और दूसरे इलाकोंका रुपया भी मारा जायगा।

दूसरे दिन कुँवरसाहब पूजा पाठसे निश्चिन्त हो अपने चौपालमें बैठे, तो क्या देखते हैं कि चाँदपारके असामी झुंडके झुंड चले आ रहे हैं। उन्हें यह देखकर भय हुआ कि कहीं ये सब कुछ उपद्रव तो न करें, किन्तु किसीके हाथमें एक छड़ीतक न थी। मलूका आगे आगे आता था। उसने दूरहीसे झुककर वन्दना की। ठाकुर साहबको ऐसा आश्चर्य्य हुआ, मानों कोई स्वप्न देख रहे हों।

[७]

मलूकाने सामने आकर विनयपूर्वक कहा—सरकार, हम लोगोंसे जो कुछ भूलचूक हुई उसे क्षमा किया जाय। हम लोग सब हजूरके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चाकर हैं; सरकारने हमको पाला-पोसा है। अब भी हमारे ऊपर ही निगाह रहे।

कुँवरसाहबका उत्साह बढ़ा। समझे कि पंडितके चले जानेसे इन सबोंके होश ठिकाने हुए हैं। अब किसका सहारा लेंगे। उसी खुर्राटने इन सबोंको बहका दिया था। कड़ककर बोले—वे तुम्हारे सहायक पंडित कहाँ गये? वे आ जाते तो जरा उनकी खबर ली जाती।

यह सुनकर मलूकाकी आँखोंमें आँसू भर आये। बोला—सरकार उनको कुछ न कहें। वे आदमी नहीं, देवता थे। जवानीकी सौगन्ध है, जो उन्होंने आपकी कोई निन्दा की हो। वे बेचारे तो हम लोगोंको बार बार समझाते थे कि देखो, मालिकसे बिगाड़ करना अच्छी बात नहीं। हमसे कभी एक लोटा पानीके खादार नहीं हुए। चलते चलते हम लोगोंसे कह गये कि मालिकका जो कुछ तुम्हारे जिम्मे निकले, चुका देना। आप हमारे मालिक हैं। हमने आपका बहुत खाया पिया है। अब हमारी यही विनती सरकारसे है कि हमारा हिसाब किताब देखकर जो कुछ हमारे ऊपर निकले बताया जाय। हम एक एक कौड़ी चुका देंगे तब पानी पियेंगे।

कुँवरसाहब सन्न हो गये। इन्हीं रुपयोंके लिए कई बार खेत कटवाने पड़े थे। कितनी बार घरोंमें आग लगवाई। अनेक बार मारपीट की। कैसे कैसे दंड दिये। और आज ये सब आपसे आप सारा हिसाब किताब साफ करने आये हैं! यह क्या जादू है!

मुख्तार आमसाहबने कागजात खोले और असामियोंने अपनी अपनी पोटलियाँ। जिसके जिम्मे जितना निकला, बे-कान पूछ हिलाये उसने द्रव्य सामने रख दिया। देखते देखते सामने रुपयोंका ढेर लग गया। ६०० रुपया बातकी बातमें वसूल होगये। किसीके जिम्मे कुछ बाकी न रहा। यह सत्यता और न्यायकी विजय थी। कठोरता और निर्दयतासे जो काम कभी न हुआ वह धर्म और न्यायने पूरा कर दिखाया।

जबसे ये लोग मुकद्दमा जीत कर आये तभीसे उनको रुपया चुकानेकी धुनि सवार थी। पंडितजीको वे यथार्थमें देवता समझते थे। उनकी रुपया चुका देनेके लिए विशेष आज्ञा थी। किसीने अन्न बेचा, किसीने बैल, किसीने गहने बन्धक रक्खे। यह सब कुछ सहन किया, परन्तु पंडितजीकी बात न टाली। कुँवरसाहबके मनमें पंडितजीके प्रति जो बुरे विचार थे वे सब मिट गये। लेकिन उन्होंने सदासे कठोरतासे काम लेना सीखा था। उन्हीं नियमों पर वे चलते थे। न्याय तथा सत्यता पर उनका विश्वास न था। किन्तु आज उन्हें प्रत्यक्ष देख पड़ा कि सत्यता और कोमलतामें बहुत बढ़ी शक्ति है।

ये असामी मेरे हाथसे निकल गये थे। मैं इनका क्या बिगाड़ सकता था? अवश्य यह पंडित सच्चा और धर्मात्मा पुरुष था। उसमें दूरदर्शिता न हो, कालज्ञान न हो, किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह निस्पृह और सच्चा पुरुष था।

[८]

कैसी ही अच्छी वस्तु क्यों न हो, जब तक हमको उसकी आवश्यकता नहीं होती तब तक हमारी दृष्टिमें उसका गौरव नहीं होता। हरी दूब भी किसी समय अशर्फियोंके मोल बिक जाती है। कुँवरसाहबका काम एक निस्पृह मनुष्यके विना रुक नहीं सकता था। अतएव पंडितजीके इस सर्वोत्तम कार्य्यकी प्रशंसा किसी कविकी कवितासे अधिक न हुई। चाँदपारके असामियोंने तो अपने मालिकको कभी किसी प्रकारका कष्ट न पहुँचाया, किन्तु अन्य इलाकोंवाले असामी उसी पुराने ही ढंगसे चलते थे। उन इलाकोंमें रगड़-झगड़ सदैव मची रहती थी। अदालत, मारपीट, डाँट-डपट सदा लगी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रहती थी। किन्तु ये सब तो ज़मींदारीके सिंगार हैं। विना इन सब बातोंके जमींदारी कैसी ? क्या दिन भर बैठे बैठे वे मक्खियाँ मारें ?

कुँवरसाहब इसी प्रकार पुराने ढँगसे अपना प्रबन्ध सँभालते जाते थे। कई वर्ष व्यतीत हो गये। कुँवरसाहबका कारवार दिनों दिन चमकता ही गया। यद्यपि उन्होंने ५ लड़कियोंके विवाह बड़ी धूमधामके साथ किये, परन्तु तिस पर भी उनकी बढ़तीमें किसी प्रकारकी कमी न हुई। हाँ, शारीरिक शक्तियाँ अवश्य कुछ कुछ ढीली पड़ती गईं। बड़ी भारी चिन्ता यही थी कि इस बड़ी सम्पत्ति और ऐश्वर्यका भोगनेवाला कोई उत्पन्न न हुआ। भानजे भतीजे और नवासे, इस रियासत पर दाँत लगाये हुए थे।

कुँवरसाहबका मन अब इन सांसारिक झगड़ोंसे फिरता जाता था। आख़िर यह रोना धोना किसके लिए। अब उनके जीवन-नियममें एक परिवर्तन हुआ। द्वार पर कभी कभी साधू सन्त धूनी रमाये हुए देख पड़ते। स्वयं भगवद्गीता और विष्णुपुराण पढ़ते। पारलौकिक चिन्ता अब नित्य रहने लगी। परमात्माकी कृपा ! साधू सन्तोंके आशीर्वादसे बुढ़ापेमें उनके एक लड़का पैदा हुआ। जीवनकी आशायें सफल हुईं। दुर्भाग्यवश पुत्रके जन्महीसे कुँवरसाहब शारीरिक व्याधियोंमें ग्रस्त रहने लगे। सदा वैद्यों और डाक्टरोंका ताँता लगा रहता था। लेकिन दवाओंका उलटा प्रभाव पड़ता। ज्यों त्यों करके उन्होंने ढाई वर्ष विताये। अन्तमें उनकी शक्तियोंने जवाब दे दिया। उन्हें मालूम हो गया कि अब संसारसे नाता टूट जायगा। अब चिन्ताने और घर दबाया—यह सारा माल असबाब, इतनी बड़ी सम्पत्ति किस पर छोड़ जाऊँ ? मनकी इच्छायें मनहीमें रह गईं। लड़केका विवाह भी न देख सका। उसकी तोतली बातें सुननेका भी सौभाग्य न हुआ। हाय अब इस कलेजेके टुकड़ेको किसे सौंपूँ, जो उसे अपना पुत्र समझे। लड़केकी माँ स्त्रीजाति न कुछ जाने न समझे। उससे कारवार सँभलना कठिन है। मुख्तार आम, गुमाश्ते, कारिन्दे कितने हैं परन्तु सबके सब स्वार्थी, विश्वासघाती। एक भी ऐसा पुरुष नहीं जिस पर मेरा विश्वास जमे। कोर्ट आव वार्ड्सके सुपुर्द करूँ तो वहाँ भी ये ही सब आपत्तियाँ। कोई इधर दबायेगा कोई उधर। अनाथ बालकको कौन पूछेगा ? हाय, मैंने आदमी नहीं पहिचाना ! मुझे हीरा मिल गया था, मैंने उसे ठीकरा समझा ! कैसा सच्चा, कैसा वीर, दृढ़प्रतिज्ञ पुरुष था। यदि वह कहीं मिल जावे तो इस अनाथ बालकके दिन फिर जायँ। उसके हृदयमें करुणा है, दया है। वह एक अनाथ बालक पर तरस खायगा। हा ! क्या मुझे उसके दर्शन मिलेंगे। मैं उस देवताके चरण धोकर माथे पर चढ़ाता। आँसुओंसे उसके चरण धोता। वही यदि हाथ लगाये तो यह मेरी डूबती हुई नाव पार लगे।

[८]

ठाकुर साहबकी दशा दिन पर दिन बिगड़ती गई। अब अन्तकाल आ पहुँचा। उन्हें पंडित दुर्गानाथकी रट लगी हुई थी। बच्चेका मुँह देखते और कलेजेसे एक आह निकल जाती। बार बार पछताते और हाथ मलते। हाय ! उस देवताको कहाँ पाऊँ। जो कोई उसके दर्शन करा दे आधी जायदाद उसके न्योछावर कर दूँ। प्यारे पंडित ! मेरे अपराध क्षमा करो। मैं अन्धा था, अज्ञान था। अब मेरी बाँह पकड़ो। मुझे डूबनेसे बचाओ। इस अनाथ बालक पर तरस खाओ। हितार्थी और सम्बन्धियोंका समूह सामने खड़ा था। कुँवर साहबने उनकी ओर अधखुली आँखोंसे देखा। सच्चा हितैषी कहीं देख न पड़ा। सबके चेहरे पर स्वार्थकी झलक थी। निराशासे आँखें मूँद लीं। उनकी स्त्री फूट

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

फूट कर रो रही थी। निदान उसे लज्जा त्यागनी पड़ी। वह रोती हुई पास जाकर बोली—प्राणनाथ, मुझे और इस असहाय बालकको किस पर छोड़े जाते हो? कुँवर साहबने धीरेसे कहा—पंढित दुर्गानाथ पर। वे जल्द आवेंगे। उनसे कह देना कि मैंने सब कुछ उनके भेट कर दिया। यह मेरी आन्तिम वसीयत है।

जैनसमाजके क्षयरोग पर एक दृष्टि।

(लेखक, श्रीयुत बाबू रतनलाल जैन बी. ए. एल एल. बी.)

हम लोग कहते आते हैं कि जैनधर्म अनादि कालसे है और यह धर्म एक समय भारतवर्षका मुख्य धर्म रहा है। इस धर्मको सेवन करके अनन्त जीव मुक्त होकर सच्चिदानन्द पदको प्राप्त हुए हैं। ऐतिहासिक प्रमाणोंसे भी यह सिद्ध है कि जैनधर्म भारतवर्षका एक बहुत बड़ा धर्म रहा है। इस धर्मने सम्राट् चन्द्रगुप्त और खारवेल आदिके आश्रित रहकर केवल भारतवर्षका ही नहीं संसार भरके जीवोंका कल्याण किया है। प्राचीन जैन साहित्य पर दृष्टि डालनेसे विदित होता है कि इस धर्मके अनुयायी बड़े बड़े दिग्गज और जगद्विजयी विद्वान् रहे हैं, और वे गणनामें भी कम न थे।

पर आज जैनियोंकी संख्या तथा उसके विद्वानों पर दृष्टि डालते ही मालूम पड़ जाता है कि अब यह धर्म नामका ही धर्म रह गया है। संसारके जीवोंकी उन्नति करनेसे इसने मुँह मोढ़ लिया है और अब यह इस लोकसे लुप्त होना चाहता है। इसकी जनसंख्याको देखिए कि यह कितनी तेजीसे नाश हो रहा है:—

सन् १८९१—१४, १६, ६३८.
सन् १९०१—१३, ३४, १४०.
सन् १९११—१२, ४८, १८२.

अर्थात् १८९१ से लगाकर १९११ ई० तकके २० वर्षोंमें ११ प्रतिशत कम हो गई। यदि यह घटोतरी इसी तरह जारी रही तो दोसौ या तीनसौ वर्षोंमें यह जैनधर्म भारतसे उठ जावेगा। अब तनिक भारतवर्षके अन्य धर्मावलम्बियोंके बढ़ने और घटनेको देखिए:—

धर्म	सन् १८९१ से १९०१ तक जनसंख्यामें प्रतिशत बढ़ना या घटना।	सन् १९०१ से १९११ तक जनसंख्यामें प्रतिशत घटना तथा बढ़ना।
बौद्ध	+ ३२.९ बढ़ना	+ १३.१ बढ़ना
ईसाई	+ २८ „	+ ३२.६ „
सिक्ख	+ १५.१ „	+ ६.३३ „
मुसलमान	+ ८.९ „	+ ६.७ „
पारसी	+ ४.७ „	+ ६.३ „
हिन्दू	– .३ घटन	+ १५.०४ „
जैनी	– ५.२ „	– ६.४ घटना

ऊपरके कोष्टकसे पता लग जायगा कि भारतकी सब जातियोंके लोग बढ़े परन्तु अभागे जैनी घटे। १९०१ ई० से १९११ तकके दस वर्षोंमें कुल भारतवासी ११.८ प्रति सैकड़ा और कुल हिन्दू १५.०४ प्रति सैकड़ा बढ़े, किन्तु जैनी ६.४ प्रति सैकड़ा कम हुए। जैनी लोग भी अन्य भारतवासियोंकी तरह ११.८ प्रति सैकड़ा बढने चाहिए थे, परन्तु वे घटे हैं उलटे ६.४ प्रति सैकड़ा। जैनियोंकी वास्तविक घटोतरी १८.३ प्रति सैकड़ा हुई है। भला इस घटीका कोई हिसाब है! जिस जातिमें मनुष्य-संख्या इस तेजीके साथ घटे क्या वह जाति—चाहे उसकी संख्या करोड़ोंकी क्यों न हो—जीवित रह सकती है!

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैनीलोग तो केवल साढ़े बारह लाख ही रह गये हैं।

हे जैनधर्मावलिम्बयो, यदि तुम जैनधर्मको भारत-वर्षमें स्थित रखना चाहते हो, तो मोह-निद्रा छोड़ो और उन कीड़ोंको पहचानो जिन्होंने जैनजातिके मूलमें लगकर उसे खोखला कर डाला है। यह जैनधर्म और जैनजातिके जीवन मरणका प्रश्न है। इसको अच्छी तरह मनन कर निर्णय करो और इसके मूलमें लगे हुए कीड़ोंको पहचानकर दूर कर दो। तुम्हारा सम्यक्त्वका स्थितिकरण अंग कहाँ गया जो तुम अपने भाइयोंका नाश होते हुए देखते हो और उनके बचानेका कोई प्रयत्न नहीं करते। यदि आपके हृदयमें धर्मका कुछ भी अंश शेष है तो कटिबद्ध होकर खड़े हो जाओ और जैन-जातिके क्षयको रोको।

यद्यपि भारतवर्ष एक बहुत ही बड़ा देश है, उसमें बहुतसे प्रान्त हैं और भिन्न भिन्न प्रान्तोंके रीति-रिवाजोंमें कुछ अन्तर भी है, तो भी वे-रीतीरिवाज जिनसे जैनधर्मानुयायियोंकी संख्यामें दिनपर दिन ह्रास होरहा है, साधारणतः एकसे हैं। यह हो सकता है कि एक प्रान्तमें एक कारणसे जैनियोंकी संख्यामें अधिक हानि हुई हो और दूसरे प्रांतमें किसी दूसरे ही कारणसे हुई हो। इस लेखमें जैनियोंका नाश और उसके कारण बतलानेके लिए युक्तप्रान्तके जैनियोंकी संख्या दी गई है। जो कारण जैन जातियोंके नाशके युक्तप्रान्तमें हैं, लगभग वे ही कारण अन्य प्रान्तों पर भी लागू होते हैं।

जो मनुष्य-संख्या इस लेखमें दी है वह मनुष्य-गणनाकी सरकारी रिपोर्टसे है और वह दिग-म्बर जैन डायरेक्टरीमें दी हुई दिगम्बर जैनि-योंकी संख्यासे भी मिलती है। सरकारी रिपोर्टमें जो जैनियोंकी संख्या दी गई है, वह करीब करीब ठीक है। उसकी सत्यताका पता इससे भी लगता है कि बिजनौर जिलेमें जैनियोंकी ओरसे बिजनौरके जैनियोंकी जो गणना सन् १९१२ के लगभग की गई थी वह १९११ ई० की सरकारी रिपोर्टमें दी हुई गणनासे मिलती है।

इस लेखके साथमें चार कोष्टक प्रकाशित किये जाते हैं। उनमेंसे पहले कोष्टकमें युक्त-प्रान्तके प्रत्येक जिलेकी जैन जनसंख्या दी हुई है, जिससे यह ज्ञान हो जायगा कि किस किस जिलेमें १८९१ ई० से १९११ ई० तक के दस वर्षोंमें और १९०१ ई० से १९११ ई० के तकके दस वर्षोंमें कितनी घटोतरी या बढ़ोतरी हुई है। सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, अलीगढ़, मथुरा, आगरा, फर्रुखाबाद, मैनपुरी, एटा, कान-पुर और इलाहाबादके जिलों पर अधिक ध्यान देनेकी आवश्यकता है।*

दूसरे कोष्टकमें मुख्य मुख्य नगरोंकी जैन और हिन्दू जनसंख्या सन् १९०१ और सन् १९११ की दी हुई है। इससे ज्ञात हो जायगा कि सन् १९०१ ई० से १९११ ई० तकके दस वर्षोंमें किस किस नगरमें जैनसं-ख्याकी कितनी घटोतरी या बढ़ोतरी हुई है और साथमें यह भी मालूम हो जावेगा कि उन नग-रोंमें उन्हीं दस वर्षोंमें कितने हिन्दू भाई घटे हैं या बढ़े हैं।

अलीगढ़, आगरा, फिरोजाबाद, कोसी, एटा, कानपुर, इलाहाबाद और रामपुर रियासतकी जनसंख्याओं पर अधिक ध्यान देना चाहिए।

---

* सन् १८९१ ई० की सरकारी रिपोर्टके अन्दर बहुत त्रुटियाँ रहगई थीं। एक तो बहुतसे जैनी जैनियोंमें गिने जानेसे रह गये थे, इसलिए कई स्थानोंपर जैनी १८९१ से १९०१ ई० तकके दस वर्षोंमें बढ़े मालूम होते हैं, दूसरे युक्तप्रान्तके हिन्दू और मुसलमानोंकी संख्या १८९१ से १९०१ ई० के अन्दर दस वर्षोंमें बहुत बढ़ी थी, इसलिए उक्त दस वर्षोंमें जैन जनसंख्या भी बढ़नी चाहिए थी, वह बढ़ी न थी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तीसरे कोष्टकसे यह ज्ञात हो जायगा कि संयुक्त प्रान्तके जुदा जुदा भागोंमें सन् १९११, १९०१, १८९१ व १८८१ ई० में कुल दस सहस्र जनसंख्यामें जैनी कितने थे, और वे कुल जनसंख्याकी अपेक्षा कितने घटे बढ़े हैं। इससे मालूम हो जायगा कि अन्यमतावलम्बी कितने बढ़ गये और उनकी अपेक्षा हम कितने घट गये।

चौथे कोष्टकसे यह ज्ञात हो जावेगा कि सन् १९११ ई० में जैनी किस किस आयुके कितने थे और वे विवाहित, अविवाहित या रँडुवे, कैसे थे। इससे यह भी ज्ञात हो जायगा कि सन् १९११ में कितनी विधवायें किस किस अवस्था की थीं।

सन् १९०२ ई० में युक्तप्रान्तकी जो जैन-जनसंख्या ८४,५८२ थी वह १९११ ई० में ७५,७९५ रह गई। अर्थात् १० प्रतिशत कम हो गई। इन वर्षोंमें हिन्दू प्रति सैकड़े १.४ और मुसलमान १.१ घटे। ईसाई ७३.७ बढ़े और आर्यसमाजी दूने हो गये।

यद्यपि जैनी आर्यसमाजियों और ईसाइयों-के समान बढ़ने न चाहिए थे; क्योंकि ये आर्य-समाजियों और ईसाइयोंके समान अन्यधर्मा-वलम्बियोंको जैनी नहीं वनाते, तो भी ये हिन्दुओं और मुसलमानोंकी अपेक्षा अधिक कदापि न घटने चाहिए थे। यदि ये घटते तो हिन्दुओं और मुसलमानोंकी भाँति प्रति सैकड़े १.४ और १.१ ही घटते; परन्तु ये घटे हैं १० प्रति सैकड़े। युक्तप्रान्तकी जनसंख्याके ह्रासका मुख्य कारण प्लेग है। जैन जाति अन्य जातियोंकी अपेक्षा अधिक धनवान् है, इस लिए यह जाति अपनी इस कालरूप प्लेगके मुँहसे अन्य जातियोंकी अपेक्षा अधिक रक्षा कर सकती थी, इस हेतुसे जैनी मुसलमान और हिन्दुओंकी भाँति १.१ और १.४ प्रतिशत कम न होने चाहिए थे, या यह कहना चाहिए कि जैन-जातिको घटना ही न चाहिए था।

मनुष्यगणनाकी रिपोर्टके देखनेसे और समीपवर्त्ती हिन्दूसमाजकी नगरवासी अग्रवाल, खंडेलवाल, पल्लीवाल आदि वैश्य जातियों, गौड, सनाढ्य आदि ब्राह्मण जातियों, और अन्य उच्च जातियोंकी स्थिति पर दृष्टि डालनेसे मालूम होता है कि, इन उच्च जातियोंका ह्रास हो रहा है और इनका क्षय जैनजातियोंसे भी अधिक है। यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि जब ये उच्च जातियाँ कम हो रही हैं तो हिन्दू जातिकी कमी प्रतिशत १.४ ही क्यों? जैन जातिकी भाँति १० प्रतिशत या उससे भी अधिक क्यों नहीं? यह प्रतिशत १.४ की कमी इस लिए है कि हिन्दू जातिमें ग्रामवासी जाट, धीवर, चमार, भंगी आदि नीच जातियाँ भी सम्मिलित हैं जिनकी संख्या सदैव बढ़ा करती है और उनके सम्मिलित होनेके कारण हिन्दू जातिमें अधिक कमी नहीं मालूम होती।

सम्पत्तिशास्त्रके वेत्ताओं और बड़े बड़े विद्वानों-का कथन है कि जीवित, निरोगी और धनवान् जातिकी जनसंख्या ३० वर्षमें दुगुनी हो जाती है, अर्थात् प्रति दस वर्षमें २५ प्रतिशत बढ़ जाती है। पर हमारे इस युक्तप्रान्तकी जैन-जातिकी वृद्धिकी तो बात ही क्या यह तो उलटी दस वर्षोंमें १० प्रति शत घट गई, अर्थात् इसकी २५ प्रतिशतकी स्वाभाविक वृद्धि रुकी और १० प्रति शत घटोतरी हुई, इस तरह इसका कुल ह्रास ३५ प्रतिशत हुआ।

उक्त बातोंसे पता लगता है कि, जैनजाति अनेक रोगोंसे पीड़ित है। जबतक रोगोंका अनुसंधान न किया जावेगा, तबतक न ये रोग दूर किये जा सकते हैं और न रोगोंसे बचनेके उपाय सोचे जा सकते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैनसमाजके नाश होनेके मुख्य मुख्य कारण ये हैं:—

१ प्लेग आदि रोग,

२ निर्धनता, या दरिद्रता,

३ स्वास्थ्य (तन्दुरुस्ती) की ओरसे उदासीनता,

४ बाल्यविवाह,

५ वृद्धविवाह,

६ व्यभिचार,

७ पुरुषोंका अविवाहित रह जाना,

८ छोटी छोटी जातियोंका होना और अपनी जातिके अतिरिक्त अन्य जातिमें विवाह न करना,

९ विवाहके समय बहुतसे गोत्रोंका टालना

१० एक ही जातिमें ऊँच नीच घर और

११ आर्यसमाजी हो जाना तथा हिन्दूओंमें मिल जाना।

१ प्लेग आदि रोग । जितनी क्षति युक्तप्रान्तमें जैन और अजैन संख्याकी सन १९०१ ई० से १९११ ई० तकके दस वर्षोंमें इस स्पर्श और वायुके द्वारा बढ़नेवाले प्लेगसे हुई है, उतनी किसी और कारणसे नहीं हुई। कितने ही घरोंका तो नाम तक नहीं रहा। इस भयानक रोगके पंजेमें बूढ़े अधिक नहीं फँसे; इसने अधिकतर उन युवा पुरुषों और स्त्रियों पर हाथ साफ किया है जिनसे सन्तान उत्पन्न होती है और जनसंख्या बढ़ती है। युवक और युवतियोंमें भी इसने युवतियोंको अधिक सताया है। सैकड़े पीछे ४५ पुरुष और ५५ स्त्रियाँ मृत्युको प्राप्त हुई हैं। एक तो स्त्रियाँ पुरुषोंसे यों ही कम थीं; फिर प्लेगने और अधिक कम कर दीं। चेचक (शीतला) रोगमें बहुतसे बच्चे पीडित हुए और उनमेंसे बहुतसे मर गये। इनके अतिरिक्त अन्य रोगोंसे भी समाजको हानि पहुँची है।

२ निर्धनता । इससे युक्तप्रान्तके जैनी ही क्या सारे भारतवासी पीडित हैं। यहाँके भूखोंके हाहाकारसे आकाश भी गूँज उठा है। निर्धनताके होनेसे समाजको पुष्टकारी भोजन नहीं मिलता। दूध और घी जिन पर कि पूर्वकालमें भारतवासियोंका जीवन निर्भर था, आजकल भारतवर्षसे बिदा हो रहे हैं। इनके न मिलनेसे स्त्री पुरुष दुर्बल हो गये है और दुर्बलताके कारण ये शीघ्र रोगोंके पंजोंमें पड़ जाते हैं। निर्धन होनेसे रोगोंका इलाज नहीं किया जा सकता, अपनेको मृत्युके हाथमें तत्काल ही सौंप देना पड़ता है। यही कारण है कि भारतवासी यूरोप आदि देशोंकी तरह संख्यामें नहीं बढ़ते। जैनी हिन्दुओं और मुसलमानोंकी अपेक्षा अधिक धनवान् हैं, इससे निर्धनताका प्रभाव जैनियों पर कुछ कम पड़ा होगा। अब रहा यह कि, फिर हमारी हिन्दू मुसलमानोंकी अपेक्षा अधिक घटी क्यों हुई, सो इसका उत्तर यह है कि, अधिक घटीके कारण दूसरे ही हैं।

जैनजाति किसी समय धनवान् थी, पर अब नहीं है। अब तो यह दिन पर दिन निर्धन होती जाती है। इस निर्धनतासे बचनेके लिए आवश्यक है कि इसे ब्याह शादियोंकी, ज्योनारोंकी, नुक्तोंकी तथा और भी तरह तरहकी फिजूल खर्चियोंको एकदम उठा देना चाहिए। इन दुःखके दिनोंमें ये बातें शोभा नहीं देतीं। निर्धनताका दूसरा कारण व्यापारकी दुर्दशा है। सो इसके लिए नये नये व्यापारोंकी ओर नजर डालना चाहिए। नये ढंगके व्यापार पुराने व्यापारोंको मिटाते जा रहे हैं। इसके लिए देशोंविदेशोंमें घूमकर और अनुभव प्राप्त करके नये व्यापारोंको हस्तगत करना चाहिए। जातिके धनियोंको ऐसी संस्थायें खोलनी चाहिएँ जिनमें निर्धनों और निरुद्योगियोंको तरह तरहके शिल्प, व्यापार, कृषि आदिके कार्य सिखलाये जायँ और उन्हें जीविकाके मार्ग सुगम कर दिये जायँ।

३ स्वास्थ्यकी ओरसे उदासीनता ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मनुष्यगणनाकी रिपोर्टसे मालूम होता है कि हिन्दूसमाजकी गौड, कान्यकुब्ज, अग्रवाल, पल्लीवाल, राजवंशी, लोहिये आदि उच्च जातियाँ जिनका कि खान-पान, रहन-सहन, जीविका आदि जैनजातियोंके ही समान है—१९०१ से १९११ तकके दश वर्षोंमें जैनियोंसे भी अधिक घटी है। नगरोंमें रहनेवाले उच्च जातिके हिन्दुओंको ध्यानपूर्वक देखनेसे भी मालूम होता है कि ग्रामीण–परिश्रमशील किसानोंकी अपेक्षा उनमें सन्तानोत्पति कम होती है और नई उमरके स्त्री-पुरुषोंकी मृत्यु अधिक होती है। इसका कारण उनका व्यवसाय है।

हिन्दुओंमें सैकड़े पीछे ७५.६ खेती करनेवाले, १० खेतोंमें मजदूरी करनेवाले और शेष सब और और काम करनेवाले हैं। मुसलमानोंमें ५० खेती करनेवाले, २५ मजदूरी करनेवाले और २५ शिल्प तथा व्यापारादि करनेवाले हैं। इधर जैनियोंमें २२ खेती करनेवाले, ६६ वाणिज्य करनेवाले और शेष १२ दीगर काम करनेवाले हैं। जैनियोंमें ये जो २२ खेती करनेवाले हैं उनमें वे लोग नहीं हैं, जो खेतोंमें खड़े होकर हल चलाते हैं या स्वयं खेती करते हैं। इनमें अधिकांश जमींदार हैं, जो खेतोंद्वारा उत्पन्न हुए धनके द्वारा जीवित रहते हैं। कृषिजीवी हिन्दुओं और मुसलमानोंमें इस प्रकारके जमींदार अधिकसे अधिक ५ प्रति सैकड़ा ही होंगे, शेष परिश्रमी किसान और मजदूर ही होंगे। हिन्दू और मुसलमानोंमें वाणिज्य और जमींदारी करनेवालोंकी औसत थोड़ी है, पर जो है उसकी दशा जैनियोंकी सी ही है।

उच्च जातिके हिन्दू और जैनी प्रातःकालसे लेकर सायंकाल तक या तो दूकान पर बैठे रहते हैं, या घरोंके मुलायम गद्दोंपर आरामसे पड़े रहते हैं, या एक स्थान पर बैठे हुए लिखा-पढ़ीका काम किया करते हैं। इन्हें स्वच्छ हवा नहीं मिलती और इनके शरीरका व्यायाम नहीं होता। यही दशा इनके घरकी स्त्रियोंकी रहती है। ये सदैव ही घरके अन्दर बन्द रहती हैं। स्वच्छ वायु तो इनके भाग्यमें ही नहीं लिखी। या तो ये रसोई बनाने, बर्तन मलने और बच्चोंके पालन पोषणमें लगी रहती हैं, या पलंगपर बैठी हुई दूसरों पर आज्ञा चलाया करती हैं। पहले प्रकारकी स्त्रियाँ कुछ परिश्रम करती हैं, इस कारण वे तो किसी कदर अच्छी भी रहती हैं; परन्तु दूसरे प्रकारकी अमीरोंकी बहू-बेटियाँ तो सदा ही बीमार रहती हैं। प्रसवकाल तो इनके लिए बहुत ही भयानक होता है। इससे यदि ये बच गईं, तो समझो कि इनका दूसरा जन्म हुआ। आजकल घरू कामकाज करना भी बुरा समझा जाने लगा है। परिश्रमसे घृणा होना बहुत ही बुरी बात है।

ग्रामवासी किसानों और उनकी स्त्रियोंकी दशा इनसे ठीक उलटी है। ये बड़े परिश्रमी होते हैं और खेतोंकी स्वच्छ वायुका सेवन करते रहते हैं। इसी कारण ये कम पुष्ट भोजन पाने पर भी उच्च श्रेणीके लोगोंकी अपेक्षा अधिक बलवान् और हृष्ट पुष्ट होते हैं। इनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा रहता है। इनकी स्त्रियाँ घरका सारा कामकाज करती हैं, पानी भरकर लाती हैं, आटा पीसती हैं, भोजन बनाती हैं, खेतों पर जाती हैं, और इस तरह परिश्रम करते रहनेसे खूब हट्टी कट्टी रहती हैं। न ये स्वयं बीमार रहती हैं और इनकी सन्तान नगरवासियोंकी तरह दुर्बल, पीली और अल्पायु होती है।

प्राचीन कालमें नागरिकोंकी ऐसी दशा न थी। उन्हें परिश्रमसे इतनी घृणा न थी। तीस चालीस वर्ष पहले इस देशमें हर जगह सैकड़ों अखाड़े थे। दूकानों पर बैठनेवाले वैश्य लोग रातके समय इन अखाड़ोंमें जाकर दंड लगाते, बैठकें करते, मुद्गर घुमाते और कुश्ती खेलते थे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Narja, Varanasi.

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उन लोगोंके लिए सेर दो सेर दूध एक साँसमें पी जाना कोई बात ही न थी। उस समयकी स्त्रियाँ भी ऐसी ही थीं। वे घरके सारे कामकाज करती थीं। आज कलकी तरह नाजुक न थीं। इस समय भी उस समयके उत्पन्न हुए ६०–७० वर्षके बूढे वह शक्ति रखते हैं, जो आजकलके नौ जवानोंमें भी नहीं होती।

जैनसमाजको नाशसे बचानेके लिए सबसे पहले परिश्रम करने और व्यायाम करनेकी शिक्षा मिलनी चाहिए। इन कामोंको छोटा या असम्मानका सूचक न समझना चाहिए। आरोग्यता होनेसे–स्वस्थता होनेसे ही धर्मसाधन हो सकता है। अतएव इस विषयकी शिक्षा खास तौरसे प्रचलित की जानी चाहिए। स्वास्थ्य-रक्षाके मोटे मोटे नियमोंका ज्ञान सबको करा देना चाहिए। कोई रोग ऐसा नहीं, जो उचित उपाय करनेसे रोका न जा सके। यूरोपवासियोंने प्लेग, हैजा, चेचक आदि रोगोंको अपने देशसे सर्वथा निकाल दिया है। निर्बलता तरह तरहके रोगोंको बुलानेकी निमंत्रणपत्रिका है। डाक्टर लोग कहते हैं कि क्षयरोग (तपेदिक) के कीड़े सभी मनुष्योंके शरीरमें प्रवेश कर जाते हैं, परन्तु वे तबतक हानि नहीं पहुँचा सकते, जबतक शरीर बलवान् रहता है। मनुष्य दुर्बल हुआ कि, इन्होंने उसे यमलोकको भेज देनेका प्रयत्न किया। अन्य रोगोंके कीड़ोंका भी यही हाल है। बाल्यविवाह कादि कुप्रथायें भी निर्बल मनुष्यों पर अधिक हानिकारक प्रभाव डालती हैं। यही कारण है, जो १९०१ से १९११ तक दश वर्षोंमें बाल्य-विवाहोंके कुछ कम हो जाने पर भी जैनियोंका क्षय पहलेसे भी अधिक हुआ है। क्योंकि इन दश वर्षोंमें लोग पहलेसे अधिक दुर्बल और वीर्यहीन हो गये हैं। लेखकको विश्वास है कि यदि लोग अपने स्वास्थ्यकी ओर ध्यान देना आरंभ कर दें, व्यायाम करें, और तरह तरह के परिश्रमके काम करें, तो जैनियोंका क्षय बहुत कुछ रुक जावेगा। बलवान् दीर्घायु सन्तान होगी, मृत्युयें कम होंगी, रोग कम सतावेंगे और स्त्रियोंकी संख्या पुरुषोंसे कम न रहेगी।

जैसा कि आगे बतलाया जायगा जैनसमाजमें स्त्रियोंकी संख्या कम है और इसका कारण यह है कि, हमारे यहाँ लड़कियाँ और स्त्रियाँ लड़कों और पुरुषोंकी अपेक्षा अधिक मरती हैं। मरें क्यों नहीं? उनके स्वास्थ्यकी ओर ध्यान ही कहाँ दिया जाता है। उनके साथ बुरा वर्ताव किया जाता है, वे स्वास्थ्यनाशक पर्देमें रक्खी जाती हैं, बचपनमें माता बना दी जाती हैं और बीमार होने पर उनकी दवादारूका यथेष्ट प्रयत्न नहीं किया जाता। मनुष्य जातिके लिए यह बहुत ही लज्जाकी बात है कि वह अपने एक अंगको इतना तुच्छ समझता है और दूसरे अंग पर अपना सर्वस्व न्योछावर करके भी सन्तुष्ट नहीं होता।

४ बाल्य-विवाह। प्राचीन समयमें इस देशमें विवाह उस समय होता था, जब वर कन्या दोनों यौवनावस्थाको प्राप्त हो जाते थे और विवाहके उद्देश्यको समझने लगते थे। इधर देशकी परिस्थितियोंमें बड़े बड़े परिवर्तन होनेसे कोई ४००–५०० वर्षसे यह बाल्य-विवाहकी प्रथा चल पड़ी है। इस प्रथाने देशको बड़ी भारी हानि पहुँचाई है। यदि यह न होती तो आज युक्त प्रान्तमें पन्द्रह वर्षसे कम उम्रकी १,२५९ जैनविधवाओंकी हृदयविदारिणी संख्या सुननेका दिन न आता।

चौथे कोष्टकको देखनेसे मालूम होगा कि युक्तप्रान्तमें सन् १९११ में ५ वर्षसे कम उम्रकी विवाहिता जैन लड़कियाँ २८, पाँचसे १० वर्ष तककी २५२ और १० से १५ तक की १३९३ थीं। इसी तरहसे ५ वर्षसे कमके विवाहित लड़के १५, पाँचसे १० तकके १८१,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दशसे १५ तकके ७६२ और १५ से २० तकके १७०५ थे।

इस बाल्यविवाहसे जो हानि होती है, उसका पता इलाहाबाद, कानपुर, बनारस आदि नगरोंकी जैनजनसंख्याकी घटीसे–जो १९०१ से १९११ तक दश वर्षोंमें हुई है–लगेगा। जैनियोंकी संख्या कम हो जानेका कारण प्लेग भी है, परन्तु प्लेगने जैनियोंको हिन्दुओं और मुसलमानोंकी अपेक्षा अधिक सताया होगा, यह बात ध्यानमें नहीं आ सकती। क्योंकि जैनी अन्य लोगोंकी अपेक्षा अधिक धनी हैं, इस कारण ये अपनी रक्षा भी अधिक कर सकते हैं। जैनी और लोगोंकी अपेक्षा बहुत ही घटे हैं। इसके कारण अवश्य ही कुछ और हैं। इन नगरोंके जैनियोंमें विवाहके समय कन्याकी आयु दश ग्यारह वर्षकी और वरकी तेरह चौदह वर्षकी होती है। विवाहके पश्चात् प्रायः एक ही वर्षके भीतर दोनोंका संयोग होने लगता है। मेरठ कमिश्नरीकी हालत कुछ अच्छी है। वहाँ साधारणतः विवाहके समय कन्याकी आयु १२ वर्षकी और वरकी १५–१६ वर्षकी होती है। विवाहके २–३ वर्ष बाद गोना होता है और तब दोनोंका संयोग होता है। इससे वहाँ बाल्यविवाहने कम हानि पहुँचाई है।

बाल्यविवाहसे स्त्री-पुरुष दुर्बल, शक्तिहीन, निस्तेज, रोगी और सुखहीन हो जाते हैं। इनको बहुत ही थोड़ी आयु प्राप्त होती है। ३५–४० वर्षकी उम्रमें ही ये बूढ़े हो जाते हैं। इस देशमें क्षय रोगकी वृद्धि इसी कारणसे हो रही है। लड़कियोंको बाल्यविवाहसे बहुत ही हानि होती है। वे थोड़ी ही उम्रमें गर्भ धारण कर लेती हैं और प्रसवके समय या तो मर जाती हैं, या कठिनाईसे बचकर जीवन भर दुख भोगती हैं।

बाल्यविवाह शिक्षाप्रचारके मार्गमें भी बड़ी रुकावट डालता है। लड़कियोंका विवाह हुआ कि उनका पढ़ना लिखना समाप्त हो गया। इधर घरमें बहू आई कि लड़केका मन पढ़नेसे हटने लगा। दोनोंका ही ज्ञान अधूरा रह जाता है। न वह संसार चलानेके योग्य होती है और न यही अपनी यथेष्ट उन्नति कर सकता है।

सन् १९११ की गणनाके अनुसार सारी जैनविधवाओंकी संख्या १,५३,२९७ और युक्तप्रान्तकी विधवाओंकी ८,०१२ है। ये सब उम्रकी विधवायें हैं। इनमेंसे १५ वर्षसे कम उम्रकी सारे देशमें १,२५९ और युक्त प्रान्तमें ६४ हैं। यह उन विधवाओंकी संख्या है, जिनकी उम्र मनुष्यगणनाके समय १५ वर्षसे कम थी; पर १५ वर्षसे कम उम्रमें विधवा होनेवाली स्त्रियोंकी संख्या इससे बहुत अधिक होगी। हमारी समझमें सारी विधवाओंका सातवाँ हिस्सा ऐसा होगा, जिसे इस उम्रके पहले वैधव्य प्राप्त हो गया है। अर्थात् सारे भारतमें २० हजारसे अधिक और युक्त प्रान्तमें एक हजारसे अधिक जैन विधवायें ऐसी हैं, जो १५ वर्षसे पहले विधवा हो गई हैं।

साधारणतः कन्याओंका विवाह १०–१२ वर्षके भीतर हो जाता है। इस वयमें और १५ वर्षमें लगभग ४ वर्षका अन्तर होगा। भारतवर्षकी आयुका परिमाण साधारणतः (औसत दर्जा) २२ वर्ष है। इसमें छोटे छोटे बच्चोंकी आयु भी शामिल है। यदि हम ११ वर्षसे अधिक उम्रके मनुष्योंकी उम्रका हिसाब लगाकर औसत उम्र निकालें तो वह २७ या २८ वर्ष आवेगी। इस लिए १५ वर्षसे कम उम्रमें विधवा होनेवाली स्त्रियोंकी संख्या समस्त भारतकी जैन विधवाओंकी संख्याका $\frac{1}{7}$ अर्थात् सातवाँ भाग होगी और इसी लिए हमने ऊपरके पैरेमें यह बात कही है।

यह संख्या बड़ी ही भयानक है। इन बालविधवाओंकी दशाका विचार करके हमें जैसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बने तैसे बाल्यविवाह बन्द कर देना चाहिए । यदि कन्याओंका विवाह १५ वर्षसे कमकी आयुमें न होता तो जैनियोंमें २० हजार विधवायें न होतीं । वे सधवा रहकर कमसे कम ४० हजार मनुष्य उत्पन्न करतीं, जिससे जैनियोंका नाश बहुत कुछ रुक जाता। लड़कियोंका विवाह १५ वर्षसे पहले और लड़कोंका २० वर्षसे पहले कभी मत करो । इसके पहले दोनोंमें ही उत्तम सन्तान उत्पन्न करनेकी योग्यता नहीं आती ।

५ वृद्धविवाह । जैनसमाजमें कन्याओंकी संख्या बहुत ही कम है । इससे हजारों नवयुवकोंको यों ही कुँआरा रहना पड़ता है । उस पर ये बूढ़े लोग अपनी कई कई शादियाँ करके और भी उनका हक मार देते हैं । जो कन्या किसी युवकसे शादी करके सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करती, और अनेक पुत्र कन्याओंकी माता होती, वही एक बूढ़े खूसटके पंजेमें फँसकर दुःखोंके पाले पड़ती है, सन्तानहीन या रोगी सन्तानकी माता होती है और शीघ्र ही विधवा बनकर समाजमें दुराचारोंकी वृद्धि करती है । इस लिए वृद्धविवाहकी दुष्प्रथाको शीघ्र ही बन्द करना चाहिए । इसके लिए पंचायतियोंको यत्न करना चाहिए । पंचायतियोंकी शक्तिको बढ़ाना हम लोगोंके हाथमें है ।

६ व्यभिचार । युक्तप्रान्तके अन्य समाजोंकी तरह जैनसमाजमें भी व्यभिचारका बेशुमार प्रचार हो रहा है । ज्ञात होता है कि शीलव्रत इस समाजसे बिदा ले चुका है और जैनधर्मका प्रभाव इसके हृदयसे बिलकुल उठ गया है । यह समाज केवल ऊपरसे जैनधर्मका अंगा पहने हुए है; जिसके भीतर इसका हृदय छुपा हुआ है । इसकी भीतरी हालत बड़ी ही गंदी है । इस व्यभिचारके रोगमें यहाँके युवा ही ग्रसित नहीं हैं, बालक और बूढ़े भी इसके पंजेसे बाहर नहीं हैं । यहाँके बालक ७-८ वर्षके होते ही अश्लील शब्दोंको सुन सुनकर उनके उच्चारण करनेमें पटु हो जाते हैं । पहले तो वे उनका भाव समझे विना ही उच्चारण करते रहते हैं, पीछे १२-१३ वर्षके लगभग पहुँचने पर उन अश्लील शब्दोंके द्वारा उत्पन्न हुए भावोंको प्रयोगमें लानेकी चेष्टा करने लग जाते हैं । उनकी यह चेष्टा अनंगक्रीड़ा, हस्त-मैथुन आदि दुष्ट दोषोंके रूपमें प्रकट होती है । व्यभिचारकी यह पहली सीढ़ी है । बाल्यावस्थामें ये भाव अनंगक्रीड़ा आदिके रूपमें और युवावस्थामें परस्त्रीसेवन, वेश्यागमन आदिके रूपमें प्रकट होते हैं । जहाँ ये भाव हृदयमें अंकित हो पाये कि फिर निकाले नहीं निकलते । ये उन्हें सदाके लिए व्यभिचारी बना देते हैं । स्त्रियाँ भी जब अपने पुरुषोंको परस्त्रीगामी या वेश्यागामी बना हुआ देखती हैं, अपने पातिव्रत्यसे शिथिल होने लगती हैं और अन्तमें दुराचारिणी बन जाती हैं ।

यह व्यभिचार भी हमारी संख्याके क्षयका बड़ा भारी कारण है । इलाहाबाद, अलीगढ़, सहारनपुर, आदि नगरोंकी संख्या १९०१ से १९११ तकके दश वर्षोंमें बहुत कम गई है । वास्तवमें इनकी संख्या बढ़नी चाहिए थी । क्योंकि लोगोंकी प्रवृत्ति गाँवों और कस्बोंको छोड़ छोड़कर शहरोंमें जा बसनेकी ओर बढ़ रही है । व्यापारादिके निमित्तसे जैनी लोग शहरोंमें ही अधिक बसते जाते हैं । परन्तु व्यभिचारने संख्याको बढ़ानेके बदले घटाया है । यह सभी जानते हैं कि, व्यभिचारी स्त्रीपुरुषोंके एक तो संतान ही नहीं होती और यदि होती है तो निर्बल, रोगी और अल्पायु होती है । व्यभिचारी पुरुष स्वयं भी निर्बल, निस्तेज, साहसहीन, रोगी और अल्पायु हो जाते हैं । मूत्र रोग तो उन्हें घेर ही रहते हैं । स्त्रियोंकी भी यही दशा होती है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस बढ़े हुए व्यभिचारको रोकनेकी ओर शीघ्र ही ध्यान देना चाहिए। बच्चोंके चरित्र पर छुटपनसे ही बल्कि उनके गर्भमें आनेके समयसे ही दृष्टि रखनी चाहिए। बच्चे जब माताके गर्भमें आते हैं, तभीसे उनपर माताके बुरे भले विचारोंका प्रभाव पड़ता है। यदि माताके विचार अच्छे होंगे तो बच्चे उन्हें अपनी प्रकृति बनाकर जन्म लेंगे। इसके बाद उन पर अच्छे संस्कार डाले जायँगे, उनके कानोंमें सदैव अच्छे विचार पड़ते रहेंगे, उनकी दृष्टिपथमें सदैव अच्छे कार्य पड़ते रहेंगे और वे अच्छे आदर्शोंकी ओर झुकाये जायँगे, तो उनके सदाचारी होनेमें कोई सन्देह नहीं। आगे उन्हें विद्याध्ययन कराया जाय, नैतिक शिक्षा दी जाय, और कर्तव्यशील बनाया जाय, तो उनका जीवन बड़ी उत्तमतासे व्यतीत होगा।

व्यभिचारी स्त्रीपुरुषोंको सदाचारी बनानेके लिए सुशिक्षाका प्रचार, अच्छा उपदेश, अच्छे अच्छे ग्रन्थोंका अध्ययन, अच्छी संगति, सामाजिक शासन आदि अनेक उपाय हैं, जिनका वर्णन इस छोटेसे लेखमें नहीं हो सकता। उनकी ओर भी ध्यान देना चाहिए।

७ पुरुषोंका अविवाहित रह जाना और कन्याओंकी कमी। चौथे कोष्टकको देखनेसे मालूम होगा कि सन् १९११ में युक्तप्रान्तमें २५ वर्षसे अधिक उम्रके पुरुषोंकी संख्या १९,१०८ थी और उनमें ३,५३६ पुरुष ऐसे थे, जो अविवाहित थे। जैनसमाजमें पुरुषोंका ब्याह २५ वर्षसे कमकी ही उम्रमें हो जाता है; अतएव २५ वर्षसे अधिक उम्रके कुँआरे पुरुष वे ही होते हैं, जिनके ब्याहे जानेकी बहुत ही कम आशा होती है। इन अविवाहित पुरुषोंकी औसत प्रति सैकड़े १८.५ पड़ती है। लगभग यही औसत २५ वर्षसे कम उम्रके पुरुषोंमें भी अविवाहितोंकी होगी। २५वर्षसे कम उम्रके पुरुषोंकी संख्या २१,७०० है, अतः इनमें भी प्रति शत १८.५ के हिसाबसे कोई चार हजार पुरुष अविवाहित रह जायँगे। इस तरह कुल ४०,८९५ पुरुषोंमेंसे ७,५०० पुरुष ऐसे हैं, जिनका विवाह नहीं हुआ और न होनेकी आशा है। ये वे पुरुष नहीं हैं जिन्होंने ब्रह्मचर्यव्रत धारण करके अविवाहित रहना स्वीकार किया है; किन्तु ये वे हैं, जिनके विवाह हो नहीं सकते। इस तरह जैनसमाजके पुरुषोंका पाँचवाँ हिस्सा अविवाहित रह जाता है। यदि इनका विवाह हो गया होता और इनके सन्तान उत्पन्न होती तो युक्त प्रान्तके जैनियोंमें सन् १९११ में जो ९ हजार मनुष्योंकी कमी हुई है वह न होती; उलटी कुछ वृद्धि ही होती।

जैनसमाजके एक पंचमांश पुरुषोंके अविवाहित रहनेके नीचे लिखे कारण हैं:—

१ स्त्रियोंकी कमी। युक्त प्रान्तमें सन् १९११ की गणनाके अनुसार पुरुषोंकी संख्या ४०,८९५ और स्त्रियोंकी ३४,५९२ थी। अर्थात् स्त्रियाँ पुरुषोंसे ६३०० कम थीं। इनमें कुछ अजैन स्त्रियाँ भी सम्मिलित हैं। क्यों कि बहुतसे स्थानोंमें अग्रवाल आदि जातियोंके लोग अजैन लड़कियोंको ब्याह तो लाते हैं; पर अपनी लड़कियोंको अजैनोंमें नहीं देते। यदि ये अजैन स्त्रियाँ जैनोंमें सम्मिलित न होतीं तो यह स्त्रियोंकी कमी ७००० के लगभग हो जाती। अब प्रश्न होता है कि स्त्रियाँ पुरुषोंसे कम क्यों हैं? क्या लड़कियाँ लड़कोंसे कम उत्पन्न होती हैं, या लड़कोंसे अधिक मर जाती हैं? और यदि अधिक मरती हैं तो क्यों?

चीन, जापान, भारतवर्ष, अमेरिका आदि पूर्वीय देशोंमें लड़कियाँ लड़कोंकी अपेक्षा कुछ कम उत्पन्न होती हैं; (इँग्लैण्ड, फ्रान्स, जर्मनी आदि पश्चिमीय देशोंमें अधिक उत्पन्न होती हैं।) परन्तु यह कमी हजार पीछे १५ के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लगभग ही होती है। इस हिसाबसे जब युक्त प्रान्तमें ४०,९०० पुरुष हैं, तब स्त्रियोंकी संख्या ४०,३०० होनी चाहिए थी; परन्तु वह है ३४,५९५, अर्थात् पूर्वीय देशोंकी प्रकृतिके लिहाजसे भी यहाँ ५,७०० स्त्रिया कम हैं, जिसके कि कारण कुछ और ही हैं।

यहाँ पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियाँ मरती अधिक हैं। मनुष्यगणनाकी रिपोर्टमें लिखा है कि, पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंकी अधिक मृत्युके कारण उनसे बुरा वर्ताव करना, अधिक काम लेना, उनका अनादर, उनमें स्वास्थ्यनाशक पर्देका होना, उनका बालकपनमें विवाह होना और बचपनमें ही गर्भवती हो जाना, आदि हैं। विचार करके देखा जाय, तो ये कारण बहुत अंशोंमें सच हैं। स्थानसंकोचके कारण इन सब कारणों पर विस्तारसे नहीं लिखा जा सकता।

२ पुरुषोंका बारबार बिबाह करना और विधवाविवाहका न होना। चौथे कोष्टकको देखनेसे मालूम होगा कि, सन् १९११ में युक्त-प्रान्तमें ४,७६९ रँडुए और ८,०१२ विधवायें थीं। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि, विधवाओंसे रँडुए इतने कम क्यों? दोनोंकी संख्या बराबर होनी चाहिए थी। इसके दो कारण हो सकते हैं—एक तो यह कि पुरुष स्त्रियोंकी अपेक्षा अधिक मरते हों। ऐसा होनेसे परलोवासी पुरुषोंकी स्त्रियाँ (विधवायें) परलोकवासिनी स्त्रियोंके पतियों (रँडुओं) से अधिक होंगी। दूसरा यह कि रँडुए दोबारा विवाह कर लेते हों और रँडुओंकी श्रेणीमेंसे निकलकर विवाहितोंकी श्रेणीमें आ जाते हों और इस तरह रँडुओंकी संख्या कम हो जाती हो। सरकारी रिपोर्टमें यह अच्छी तरहसे दिखा दिया गया है कि, इस प्रान्तमें स्त्रियाँ ही अधिक मरती हैं, अतएव विधवाओंकी अपेक्षा रँडुओंकी कमीका उक्त पहला कारण नहीं माना जा सकता, दूसरा ही होगा। अर्थात् रँडुए दोबारा शादी कर लेते हैं। और विवाहितोंमें गिन लिये जाते हैं।

इस प्रान्तमें रँडुए ४,७६९ और विधवायें ८,०१२ हैं, अर्थात् रँडुए विधवाओंसे ३,२४३ कम हैं। रँडुए विधवाओंसे अधिक होने चाहिए थे, क्योंकि स्त्रियाँ पुरुषोंसे अधिक मरती हैं, अतएव यह कमी वास्तवमें ३,५०० के लगभग होगी। अर्थात् यहाँके ३,५०० रँडुओंने दोबारा ब्याह कर लिया है और वे विवाहित गिने जाते हैं।

यदि ये ३,५०० रँडुए दूसरी बार ब्याह न करते तो ३,५०० कन्यायें बचजातीं और इनका ब्याह ३,५०० अविवाहित पुरुषोंके साथ होता। दोबारा विवाह करनेवाले अधिक-तर धनवान् पुरुष ही होते हैं। निर्धनोंका एक ही विवाह कठिनतासे होता है, फिर दूसरे ब्याहकी तो आशा ही क्या की जा सकती है। इन दो-बारा ब्याह करनेवाले धनवानोंमें बहुतसे पुरुष ऐसे होंगे जिन्हें विवाहके सर्वथा अयोग्य समझना चाहिए। उनसे संतानोत्पत्तिकी आशा कदापि नहीं की जा सकती। इस तरह इन्हें जनसंख्याके घटानेके बहुत बड़े कारण गिनना चाहिए।

युक्तप्रान्तमें ८,०१२ विधवायें हैं। यदि इनमेंसे वे विधवायें जो विवाह करनेके योग्य हैं, पुनर्विवाह कर लें तो इतने अधिक पुरुष अवि-वाहित न रहें और जनसंख्याका ह्रास अनेक अंशोंमें रुक जावे। पर प्रश्न यह है कि, क्या जैनसमाजके लिए विधवाविवाहका प्रचार करना श्रेयस्कर होगा? भय है कि इसके जारी होनेसे स्त्रीसमाजके सामनेसे एक उच्च आदर्श जाता रहेगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वृद्धविवाह, कन्याविक्रय और धनका दासत्व भी अधिक पुरुषोंके अविवाहित रहनेके कारण हैं। इनके कारण अयोग्यों और धनियोंके तो अनेक विवाह हो जाते हैं, पर बहुतसे सुयोग्यों और निर्धनोंका एक भी नहीं होने पाता। धनके लोभसे लोग स्त्रियोंके असली सुख 'सुयोग्य पति' के महत्त्वको भूल गये हैं।

८ जैनसमाजमें छोटी छोटी जातियोंका होना और अपनी जातिके अतिरिक्त अन्य जातियोंके साथ ब्याह न करना। जैनसमाजमें ऐसी बहुत सी जातियाँ हैं, जिनकी जनसंख्या ५०० से भी कम है। नीचे लिखे कोष्टकको देखिए। यह 'दिगम्बर जैन डिरेक्टरी' से उद्धृत किया गया है:—

जाति	युक्त-प्रान्त	सी. पी.	राज-पूताना मालवा	पंजाब	बम्बई	बंगाल विहार	मद्रास मैसूर	कुल
खंडेलवाल	३५६२	१२९३	५३१३२	६१६	४८१४	१३०८	१	६४७२६
अग्रवाल	२७६५२	३९३	१३५०३	२३३४६	५९६	१७३१	०	६७१२१
जैसवार	३३००	८६	५९१२	२०३	१०५८	३२१	११५	११०८९
परवार	९५४५	२३५१९	९६८१	१०	१८८	१३४	५९	४१९९६
पद्मावती परवार	८७४४	१४६	२२९७	३५३	१२	३०	९	११५९१
पल्लिवाल	३७५२	५७	४२२	०	०	११	०	४२७२
गोलालारे	२०९५	१९००	१५६२	०	२	२०	०	५५८२
विनैकया	६	३२२५	४२२	०	२	०	०	३६०५
ओसवाल	१८	०	१२२	१७९	३८३	०	०	७०२
गंगेरवाल	१३६	६३६	०	०	०	०	०	७७२
बडेले	१६	०	०	०	०	०	०	१६
वैरैया	५९	०	१५१२	०	०	१३	०	१५८४
फतहपुरिया	१३५	०	०	०	०	०	०	१३५
पोरवाड	१२५	०	०	०	०	०	०	१२५
बुढ़ेले	५५८	०	०	८	०	०	०	५६६
लोहिया	५५०	०	५२	०	०	०	०	६०२
गोलसिंघारे	३२९	२४	२५८	०	०	१८	०	६२९
खरौआ	९८०	०	७२०	०	०	५०	०	१७५०
लमेचू	१६२२	२१८	१००	०	८	२९	०	१९७७
गोलापूरब	७१	९४७६	३७६	०	७०	०	०	१०६४०

इस कोष्टकमें पाठक देखेंगे कि, युक्त प्रान्तमें गंगेरवाल, बड़ेले, बरैया, पारवाल आदि कितनी ही जैन जातियाँ ऐसी हैं जिनकी संख्या ५०० से कम है और जो समग्र भारतमें भी १००० से कम हैं। दिगम्बर जैन डायरेक्टरीसे विदित होता है कि, केवल दिगम्बर सम्प्रदायमें ४१ जातियाँ ऐसी हैं; जिनकी जनसंख्या ५०० से कम है; १२ ऐसी हैं, जिनकी संख्या ५०० से १००० तक है; २० ऐसी हैं, जिनकी १००० से ५००० तक है और १२ जातियाँ ऐसी हैं, जिनकी संख्या ५००० से अधिक है। इनके अतिरिक्त ऐसी भी कई जातियाँ हैं, जिनकी संख्या २० से लेकर २०० तकके बीचमें है। ऐसी जातियाँ बड़े वेगसे कम हो रही हैं। ये दश वर्षमें आधी या एकतिहाई हो जाती हैं। कुछ जातियोंका पता सरकारी रिपोर्टसे उद्धृत किये हुए नीचे लिखे कोष्टकसे लगेगा:—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाति	सन् १८९१		सन् १९११	
	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री
खंडेलवाल	१०४८	९३७	४७३	६३
ओसवाल	६८३	५४४	२२४	२०
अग्रवाल	२११९६	१७४००	१८६५०	१५१४

इससे मालूम होगा कि २० वर्षमें खंडेलवाल आधे हो गये, ओसवाल और भी कम हो और अग्रवाल प्रति शत १२ कम हो गये। अग्रवाल जातिकी जनसंख्या अधिक है, इस कारण उसकी कमी सैकड़ा पीछे केवल १२ हुई जब कि ओसवालों और खंडेलवालोंकी क्षति बहुत अधिक हुई है। क्योंकि इनकी संख्या युक्तप्रान्तमें बहुत कम है।

इन जातियोंकी अधिक क्षतिका कारण यह है कि इनमें विवाह बड़ी कठिनाईसे होते हैं। विवाहका क्षेत्र छोटा होनेसे और गोत्र आदिकी अधिक झंझटोंसे प्रायः बेमेल विवाह करना पड़ते हैं और इस प्रकारके विवाहोंसे जनसंख्याकी वृद्धिमें कितनी रुकावट पड़ती है, यह बतलानेकी जरूरत नहीं है।

बड़ी जातियाँ धीरे धीरे घटती जाती हैं और घटते घटते छोटी हो जाती हैं। इसके बाद उनका क्षय होना शुरू होता है और अन्तमें वे नामशेष हो जाती हैं। जो जाति जितनी छोटी है, विवाहसंबन्ध करनेमें वह उतना ही अधिक कष्ट भोगती है और नाशके सन्मुख भी उतने ही शीघ्र जाती है।

हमारी समझमें इधरकी तमाम जैनजातियोंमें पारस्परिक विवाह होने लगना बहुत कल्याणकर होगा। इसमें न तो धार्मिक दृष्टिसे कोई हानि है और न सामाजिक दृष्टिसे। जैनशास्त्र इसका निषेध नहीं करते, वरन् उनमें तो ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य जैसे जुदा जुदा वर्णोंमें भी बेटीव्यवहार करनेकी आज्ञा है। इधर जितनी जैन जातियाँ हैं, वे सब वैश्य वर्णकी हैं। उनमें पहले भले ही कोई क्षत्रिय रही हों, परन्तु इस समय तो व्यवसायके कारण वे सभी वैश्य हैं। इन एक वर्णकी जातियोंके पारस्परिक सम्बधको कोई भी धर्मशास्त्र बुरा नहीं बतला सकता। जिन जातियोंमें एकसा व्यवसाय होता है, जिनका खानापीना रहनसहन एकसा है और जिनके धार्मिक सांसारिक विचार एकसे हैं, उनके पारस्परिक सम्बन्धमें सामाजिक दृष्टिसे भी कोई हानि संभव नहीं हो सकती। लाभ अवश्य ही अगणित होंगे। विवाह करना बहुत सुगम हो जायगा, कन्याओंके लिए योग्य वर मिलने लगेंगे, किसीको अपनी कन्यायें लाचार होकर रोगी, दुर्बल, बूढ़े पुरुषोंको न देनी पड़ेंगी, अनमेल और अनुचित विवाहोंसे होनेवाली मौतें न होंगी, आरोग्य और दीर्घजीवी सन्तान अधिक उत्पन्न होगी और छोटी छोटी जातियाँ नाशसे बचकर फिर अपने समूहको बढ़ानेमें समर्थ होंगी।

कुछ समय पहले मलकापुरके पोरवाड़ोंने मालवा और नीमाड़के पोरवाड़ोंको एक पत्र लिखा था। ये दोनों एक ही पोरवाड़ जातिकी शाखायें हैं, जिनका विवाहसम्बन्ध देशभेदके कारण किसी समयमें बन्द हो गया है। पत्रका सारांश यह है कि हमारी संख्या इतनी कम हो गई है कि, अब हमको अपनी पुत्रियोंको ठिकाने लगाना कठिन हो गया है। अब या तो हमारी कन्यायें कुँआरी रहेंगी, या उनका सम्बन्ध हमें अपने समीपके रिश्तेदारोंके साथ अनुचित रीतिसे करना होगा और या उन्हें अजैनोंको देना होगा। यदि आप लोग हमारे साथ विवाहसम्बन्ध शुरू कर दें तो हमारा उद्धार हो जाय। यही दशा हमारी और भी अनेक जातियोंकी हो रही है। उन्हें नाशसे बचानेके लिए इस पारस्परिक विवाहसे बढ़कर और कोई उपाय नहीं है।

(शेष आगे।)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संयुक्तप्रान्तकी जिलेवार जैन-संख्या।

		१८९१ पुरुष	१८९१ स्त्रियाँ	१९०१ पुरुष	१९०१ स्त्रियाँ	१९११ पुरुष	१९११ स्त्रियाँ
संयुक्त प्रान्त		४४३३४	३७८००	४४२२७	३७९९०	३९९५०	३३७६०
मेरठ कमिश्नरी		१९७२२	१६१६३	२०५७८	१७३६३	१८६५३	१५३८८
१ देहरादून	ज़िला	१६१	७३	१९०	११३	१८८	१३२
२ सहारनपुर	,,	३३२५	२७५९	३०८९	२५९९	२३८८	२०६३
३ मुजफ्फरनगर	,,	५२५५	४१४१	५६१७	४५१७	४४६९	३६९४
४ मेरठ	,,	८९९३	७३८७	९११८	७८१२	९३३०	७६०५
५ बुलन्दशहर	,,	६७१	६१३	७८३	७५८	७१४	६३७
६ अलीगढ़	,,	१३१७	११९०	१७८१	१५४८	१५६४	१२६७
आगरा कमिश्नरी		१[illegible]१६५	१३५७०	१५३३८	१२८६७	१३१२२	१०८७५
७ मथुरा	ज़िला	१२९२	११११	१३७१	११४७	७९६	६६१
८ आगरा	,,	७३०६	६१५६	७०१९	५९३४	६१००	५११०
९ फर्रुखाबाद	,,	५३७	५११	३७९	३६२	२७२	२२८
१० मैनपुरी	,,	३१८८	२५७२	२९५८	२३६०	२५६९	२०३६
११ इटावा	,,	११७८	८३९	१२५६	१०८१	१०६४	८६९
१२ एटा	,,	२६६४	२२८१	२३५५	१९८९	२३२१	१९७१
रूहेलखंड कमिश्नरी		१२१३	१०६७	१०९६	९२०	१०२८	९१२
१३ बरेली	ज़िला	२	२	६७	३१	३	०
१४ बिजनौर	,,	५२६	४७२	५६१	४६८	४७६	४४९
१५ बदायूँ	,,	१२९	१००	४४	७३	१२१	७६
१६ मुरादाबाद	,,	५३२	४७०	३६१	३३२	४१०	३७५
१७ शहाजहाँपुर	,,	२०	१६	१७	१४	१५	१२
१८ पीलीभीत	,,	४	७	२	२	३	४
इलाहाबाद कमिश्नरी		६९४०	६७५२	६७७८	६४६२	६८२८	६३३३
१९ कानपुर	ज़िला	२४५	१७०	३८९	२२९	२६०	१६३
२० फतेहपुर	,,	४५	३८	३२	४२	४१	४०
२१ बाँदा	,,	१३४	१५०	१७७	१८५	१४१	१५९
२२ हमीरपुर	,,	५५	५२	३५	२४	४१	४४
२३ इलाहाबाद	,,	२७२	२९६	५९३	६७१	३२१	३१६
२४ झाँसी	,,	१३३४	११८७	५५०४	५२५६	५८८१	५४८८
व ललितपुर	,,	४७६५	४७८१				
२५ जालौन	,,	९०	७८	७८	५५	१४३	१२३
बनारस कमिश्नरी		२४१	२११	३२०	२९५	२४८	१९७
२६ बनारस	ज़िला	८६	५२	१९८	१८२	१७०	१३१
२७ मिर्जापुर	,,	१३४	१४७	११६	१०९	७०	६९
२८ जौनपुर	,,	४	२	०	०	७	५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

	१८९१		१९०१		१९११	
	पुरुष	स्त्रियाँ	पुरुष	स्त्रियाँ	पुरुष	स्त्रियाँ
२९ गाज़ीपुर ,,	१७	१०	३	३	१	०
३० बलिया ,,	०	०	३	१	०	०
गोरखपुर कमिश्नरी	२६	१८	५५	६८	३२	२७
३१ गोरखपुर ज़िला	२६	१८	४७	५८	३०	२७
३२ बस्ती ,,	०	०	४	३	२	०
३३ आजमगढ़ ,,	०	०	४	७	०	०
कमायूं कमिश्नरी	२७	१९	६२	१५	३९	१८
३४ नैनीताल ज़िला	४	१	२२	१८	१४	६
३५ अल्मोड़ा ,,	१	१	१	१	०	०
३६ गढ़वाल ,,	२२	१७	३४	२६	२५	१२
अवध प्रान्त	१२९०	११७७	११२३	१०३१	९४५	७७२
लखनऊ कमिश्नरी	५७५	५१०	५३४	४८५	४८५	३७१
३७ लखनऊ ज़िला	४१९	३७८	३३७	३३१	२९३	२४३
३८ उन्नाव ,,	४	४	६	२	६	१
३९ रायबरेली ,,	१०	१३	२८	१८	२१	११
४० सीतापुर ,,	१२६	१०८	१४६	११५	१४९	१०५
४१ हरदोई ,,	८	५	८	७	९	७
४२ खेरी ,,	८	२	९	१२	७	४
फैज़ाबाद कमिश्नरी	७१५	६६७	५८९	६४६	४६०	४०२
४३ फैजाबाद ज़िला ,,	७७	८४	३१	३२	२३	२२
४४ गौंडा ,,	०	०	४	४	२	०
४५ बहरायच ,,	३३	१५	४५	३७	६६	५१
४६ सुलतानपुर ,,	०	०	०	२	९	५
४७ परताबगढ़ ,,	६६	६४	५	३	४२	३९
४८ बाराबंकी ,,	५३९	५०४	५०४	४६८	३१८	२८४
देशी रियासतें	९९	१०३	९३	८८	२७८	१३०
रामपुर रियासत	८७	९५	८९	८६	१४९	११०
टेहरी ,,	१२	६	४	२	२९	२०
संयुक्त देश आगरा व अवध व देशीय रियासतें	४५७२३	३९०८०	४५४४३	३९१३९	४१०७३	३४७२२
संयुक्त प्रान्त (अंग्रेज़ी राज्य) हिन्दू	२,०९,५४,९२३	१,९४,२५,२४५	२,१०,२६,२४३	१,९६,६५,५७५	२,०९,४९,६४१	१,९१,७२,५३७
मुसलमान	३२,४३,९२२	३१,०२,७२९	३४,३९,८३७	३२,९१,१३७	३४,६६,२८७	३१,९२,०५८
ईसाई	३७,२९४	२१,१४७	५१,५५५	४२,९१४	१,००,८१८	७७,१३१
आर्यसमाजी	१२,१६४	९,८८९	३६,१५५	२९,१३७	७३,२०२	५७,९५२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कोष्टक दूसरा।

		१९०१ जैन		१९११		१९०१ हिन्दू		१९११	
जिला	नगर	पुरुष	स्त्रियाँ	पुरुष	स्त्रियाँ	पुरुष	स्त्रियाँ	पुरुष	स्त्रियाँ
देहरादून	देहरादून	१०३	७१	७६	५८	८५९०	५८५७	११६०६	७४१२
सहारनपुर	सहारनपुर	७९२	७४०	७५९	६७३	१४६८९	११६८९	१४८१८	१०२३२
,,	देववन्द	१८९	१८३	१६५	१५१	४२६९	३६८९	३८३१	३१०३
,,	रुडकी	६७	३०	६९	३२	४४९६	३५४२	४४१२	३०९०
मेरठ	मेरठ	४१२	३१९	४३६	३३७	२१९५९	१७६८०	२०८९३	१६३५०
,,	सरधना	४५८	३९७	४०६	३३०	२७८९	२५६१	२०९९	१७४५
,,	वड़ौत	५३३	४९९	६८०	४९८	२४८०	१९६२	२४८१	१७७२
	वागपत	१८९	१३३	२२४	१८७	२०३०	१५६३	१८१९	१३१५
मुजफ्फरनगर	मुजफ्फरनगर	४५०	२९४	४२१	३०६	७५९९	५२४८	७६०३	५१९२
,,	कैरना	२४६	१८९	२३८	२२१	३९०६	३६८५	३५०३	२७५५
,,	कांधला	३२५	२९९	१४६	१३१	२८३१	२५६९	२०३६	१७५३
वुलंदशहर	खुर्जा	१६२	१४५	१०६	१११	८४१६	७४६२	७८१६	६६६९
,,	सिकन्दरावाद	२१४	२०३	२४४	२१५	५५०५	५०९५	५८०४	४९०३
अलीगढ़	कोयल (अलीगढ)	३२४	२९५	२२८	१५०	२२५५४	१८५२२	१९७५५	१५२५६
,,	हाथरस	३१६	२९४	३१६	२५०	१९५५०	१६५८३	१७५६३	१३६२७
आगरा	आगरा	१९५२	१५३८	१५१५	१२३९	५६६५७	५०७७२	५६७७२	५६७६९
,,	फिरोजावाद	४०६	३९८	३३६	२९५	५२१०	४६८७	४००६	३४८६
मथुरा	मथुरा	१२२	७४	११३	५८	२३६४०	२०७३४	२३०४५	१९१८८
	कोसी	२५२	२१८	१६७	१३१	२९८१	२५१५	२२९७	१९०४
फर्रुखावाद	फर्रुखावाद (फतहगढ)	७१	४८	१०७	९८	२०७५९	१७५७०	२२८९५	२१०५६
मेनपुरी	मेनपुरी	२६५	२०२	२००	१५५	७५८०	६३६५	६५३१	५१५५
इटावा	इटावा	४७६	४०६	५२८	४४८	१५४५८	१३०९५	१५३८२	१३१६२
एटा	जलेसर	१४०	१२१	१२८	९५	४३०८	३५६८	३९६९	३३२९
	एटा	२९४	२२९	१२६	१०५	२८०२	२०३९	२२९६	१६६५
विजनौर	नजीवावाद	९९	१०८	६७	६४	४६७०	४६६५	४१५४	३५३८
	विजनौर	२८	१७	३६	३२	४२३९	३५३९	४३२८	३५५८
वदायूँ	बिलसी	८८	७०	७६	६२	२४१७	२१०४	२२४१	१७०३
मुरादावाद	मुरादावाद	१२५	११७	१४६	११७	१६५१४	१४४७२	१६७२४	१३२१६
कानपुर	कानपुर	३२८	२१७	२१२	१३८	७२४२६	५६१३१	६४२१६	४७१४३
बाँदा	बाँदा	१२३	१२७	९९	११०	८००१	८१२७	७५९३	७३२७
इलाहावाद	इलाहाबाद	२५०	३०४	१५३	१४६	५५७७२	५०५३९	५८६१८	४७२१६
झाँसी	झाँसी	१०९	९८	१५१	१२०	[illegible]१२२	१८०३५	२२४९९	२०९८८
	मानरासपुर	१४६	१६२	५०	४७	७५१९	७७३८	५७८५	५७०९
	ललितपुर	६०५	६०१	६८८	६७७	४२०१	४१०५	४६५४	४१८०
जालौन	कालपी	३६	२०	२६	१३	३५३३	३५६२	३६८०	३६१०
बनारस	वनारस	१७७	१६६	१७५	१३७	७८१५४	७३३३४	१११६१५	१०२२८१
मिर्जापुर	मिर्जापुर	७१	७२	३०	३२	३२६८६	३३३२८	१२९५६	१२०५६
गोरखपुर	गोरखपुर	४०	५१	२५	२७	२१०१८	१९९४२	२०३९५	१७१९७
लखनऊ	लखनऊ	२८०	२७३	२७८	२३२	७४९१७	६५२६०	७५५५५	५८८२६
बहरायच	वहरायच	३२	२३	४९	४१	६९७३	५८६०	६८०२	५४०३
सीतापुर	सीतापुर	२८	७४	२५	५	६५८२	४३६०	७७५७	५०९२
बारावंकी	बारावंकी	१७८	२२४	७४	६१	४४३८	३६६३	४५०६	३३४३
रामपुर स्टेट	रामपुर	५७	५०	७२	६१	९१३९	८२३२	७६६७	६७५७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

युक्तप्रान्तमें प्रति दश हजार मनुष्योंमें जैनी कितने थे और उनमें प्रति सैकड़ा कितनी हानिवृद्धि हुई।

विभाग	वर्तमान संख्या सन् १९११ ई.	प्रति दस हजार मनुष्योंमें जैनी कितने हैं				प्रति सैकड़ा हानिवृद्धि कितनी हुई			
		सन् १८८१	१८९१	१९०१	१९११	१८८१ से १८९१ तक	१८९१–१९०१	१९०१–१९११	१८८१ से १९११ तक
पश्चिमी हिमालय। देहरादून, अल्मोडा नैनीताल, गढ़वाल।	३७७	२	२	३	२	+१३.९	+४६.४	–८.०	+५९.०
हिमालयकी पश्चिमी तराई। सहारनपुर, बरेली, बिजनौर, पीलीभीत, खेरी।	५३९३	१८	१७	१६	१२	–१.९	–३.७	–२१.१	–२७.१
गंगाका पश्चिमी मैदान। मुजफ्फरनगर, मेरठ, बुलन्दशहर, अलीगढ़, मथुरा, आगरा, फर्रुखाबाद, मैनपुरी, एटा, इटावा, बदायूँ, मुरादाबाद, शाहजहाँपुर	५४२८६	४९	५२	४६	४२	+५.८	–८.०	–४.०	–५.२
गंगाका मध्य मैदान। कानपुर, फतहपुर, इलाहाबाद, लखनऊ, उन्नाव, रायबरेली, सीतापुर, हरदोई, फैजाबाद, सुल्तानपुर, प्रतावगढ़, बाराबंकी।	२७२८	२	३	३	२	+६५.९	+१४.२	–३१.३	+३०.२
मध्य भारत। बाँदा, झाँसी, हमीरपुर, जालौन।	१२०२०	५८	५५	५४	५४	–.७	–१०.४	+६.२	–५.५
पूर्वीय सतपुरा मिर्जापुर।	१३१	२	२	२	१	+२०.५	–१९.९	–४१.७	–३४.५
हिमालयकी पूर्वीय तराई। गोरखपुर, बस्ती, गोंडा, बहरायच	१७८	०	१	३	२	+१४८.७	+१२०.४	–११.९	+३८१.१
गंगाका पूर्वीय मैदान। बनारस, जौनपुर, गाजीपुर, बालिया, आजमगढ़	३१४	०	३	१	१	+२३४२.८	+१३३.५	–२१.४	+४३८५.७
टेहरी गढ़वाल रियासत।	४९	०	८	२	१	०	–७०	+७८३१३	+१४५
रामपुर रियासत।	२४५	०	३	३	५	०	–३.८	+४८	+४०
हिन्दू	४०१२३२३८	८६२७	८६१०	८५३२	८५०४	+६१	+.७७	–१.४	+५.४
मुसलमान	६६५८३७३	१३४३	१४५३	१४११	१४११	+७.२	+६.५	–१.१	+१२.३
ईसाई	१७७९४८	११	१२	२१	३८	+२२.६	+७५.३	+७३.७	+२७३.३
आर्य	१३११५४	०	५	१४	२८	०	+१९.६	+१००.९	+४१४.७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आयु	जनसंख्या			अविवाहित		विवाहित			
	जन	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	विधुर	विधवायें
सम्पूर्ण.	७५,४२७	४०,८९५	३४,५९२	१९,९९९	१०,४७३	१६,१२७	१६,०४७	४,७६९	८,०१२
०-१ वर्ष	२,२२८	१,१५९	१,०६९	१,१५७	१,०६७	२	२	०	०
१-२ ,,	८३८	४१४	४२४	४१३	४२३	१	१	०	०
२-३ ,,	१,६९७	९५३	७४४	९५२	७४२	१	२	०	०
३-४ ,,	१,६१६	८४५	७७१	८३९	७६१	६	७	०	३
४-५ ,,	१,६२६	८९७	७२९	८९१	७११	५	१६	१	१
०-५ ,,	८,००५	४,२६८	३,७३७	४,२५२	३,७०५	१५	२८	१	४
५-१०,,	८,५९१	४,४०७	४,१८४	४,२१७	३,९१४	१८१	२५२	९	१८
१०-१५,,	८,७३३	५,०१७	३,७१६	४,२२४	२,२७७	७६२	१,३८३	३१	४६
१५-२०,,	७,१५९	४,०५९	३,१००	२,२६९	३२६	१,७०५	२,५९२	८५	१८२
२०-२५,,	७,४९८	४,०३६	३,४६२	१,५०१	९५	२,३३४	२,९४२	२०१	४३५
२५-३०,,	६,४५१	३,५९२	२,८०६	१,०८९	४९	२,१९६	२,३०७	३०७	५०३
३०-३५,,	६,०३१	३,७६३	२,८६६	६४५	४०	२१३	२,०३८	४०५	७९०
३५-४०,,	४,३७९	२,४३९	१,९४०	४११	१४	१,६१४	१,३३९	४१४	५८७
४०-४५,,	५,२८३	२,७४०	२,५४३	४८०	२०	१,६८३	१,३५०	५७७	१,१७३
४५-५०,,	३,२०३	१,८८८	१,३१५	३१४	१	१,०९३	६३४	४८१	६८०
५०-५५,,	४,०६०	२,११८	१,९४२	२६६	१३	१,०७५	६१८	७७७	१,३११
५५-६०,,	१,७४५	९९१	७४५	११३	२	४९७	१७६	३८१	५७६
६०-६५,,	२,४९२	१,२१२	१,२८०	१२५	१०	५१०	२२३	५७७	१,०४७
६५-७०,,	७२३	४४४	२७७	५५	१	१७६	४५	२१३	२३९
७० वर्षसे अधिक आयुवाले	११,०७४	५२१	५५३	३८	०	१७२	५४	३११	४९९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गोलमालकारिणी सभाके समाचार।

१

गोलमालकारिणी सभाके अधिवेशन होनेकी अभी तक कोई उम्मीद नहीं। कारण? नकद नारायणोंकी अकृपा। इनकी कृपाके बिना कोई काम नहीं होता। वे दिन चले गये, जब सभाओंके प्लेटफार्म पर अपील हुई कि रुपयोंकी झड़ी लग गई। अब तो अधिवेशनके खर्चके रुपये भी मुश्किलसे वसूल होते हैं। एक तो अब कोई समझदार सभापति बननेको तैयार नहीं होता। क्योंकि कुछ लोगोंने इस पदकी प्रतिष्ठा बहुत बढ़ा दी है। अमुक सेठजी अमुक जैन सभाके सभापति हुए, इसका अर्थ ही लोग यह करने लगे हैं कि अमुक 'भोला शिकार' अमुक प्रान्तवालोंके पंजेमें जा फँसा। दूसरे, सभापतियोंसे रुपये माँगे जाते हैं। उनके स्वागत आदिमें जो रुपया खर्च होता है, कमसे कम उतना पानेकी आशा तो उनसे लोग करते ही हैं। यदि कोई कंजूस हुआ और कुछ न दे गया, अथवा कम दे गया तो फिर उसकी मिट्टी पलीद्ध की जाती है। ऐसी एक दो घटनायें तो अभी हालहीमें हो गई हैं। एक सभापति महाशयके स्वागतमें लगभग ५०० रुपये खर्च किये गये; परन्तु वे चन्दा लिख गये कुल १०१ रुपये! इस पर लोगोंने उन्हें खूब ही कोसा। ऐसी दशामें अधिवेशनके होनेकी आशा कोसों तक नजर नहीं आती। फिर भी फन्दे लगा रक्खे हैं। यदि कोई चंडूल फँस गया तो देखा जायगा।

२

अधिवेशनका तो अभीतक कोई प्रबन्ध नहीं हुआ, पर यह सुनकर लोग खुश होंगे कि सभाके आफिसका काम जोरों पर है। कामके मारे क्लर्कोंका नाकों दम है। पत्रोंके उत्तर भी बड़ी मुश्किलसे दिये जा सकते हैं। मध्यप्रदेशके एक धनी मानी सिंगईजीका अभी हालहीमें एक पत्र आया था। उसका सारांश यह है कि "मैं वृद्ध हो गया हूँ। मेरी जिन्दगीका सबसे बड़ा तजरुबा यह है कि मन्दिर बनवाने और रथप्रतिष्ठायें करानेसे ही जैनधर्मकी वास्तविक उन्नति होती है। मैंने इसी प्रकारके ही पुण्य-कार्य करवाके परवार जातिको उन्नतिके शिखर-पर चढ़ा दिया है। मेरे द्वारा बीसों परवार 'सिंगई' और 'सवाई सिंगई' पदसे विभूषित किये गये हैं। ये पदवियाँ 'राय साहब' तथा 'रायबहादुर' के खिताबोंसे जरा भी कम नहीं। मैं चाहता था कि परवारोंमें एक भी कुटुम्ब ऐसा न बचे जो सिंगईके पदसे विभूषित न हो। पर अब अपने वृद्ध शरीरकी तरफ देखनेसे यह विश्वास नहीं होता कि, मेरी यह इच्छा पूरी होगी। क्या आप कोई ऐसी तरकीब बतला सकते हैं, जिससे मेरी उक्त साध पूरी हो जाय?" यह पत्र बहुत ही महत्त्वका समझा गया; इस कारण इसका उत्तर स्वयं गोलमालानन्दजी सभापतिने अपनी कलम शरीफसे लिखा है। उसका सारांश यह है कि, "जबलपुरमें एक बड़ी भारी रथप्रतिष्ठा कीजिए और पत्रोंद्वारा सूचना कर दीजिए कि, जो लोग सिंगई बनना चाहें वे यह अवसर न चूकें। यह गजरथ परवार-मण्डलीकी ओरसे चलनेवाला है। इसके फण्डमें जो भाई कमसे कम पचास रुपये देंगे, वे सिंगई बना दिये जायँगे। रथकी धुरी बहुत ही बड़ी बनवाई गई है जिसको सब लोग पकड़ सकेंगे। जो लोग पहलेके सिंगई और सवाई सिंगई हैं उन्हें धुरी पकड़नेका अधिकार नहीं होगा। इस तरहसे आप एकही वर्षमें हजारों सिंगई बना सकेंगे। आशा है कि आपको यह युक्ति पसन्द आयगी।" सुनते हैं,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिंगईजी इस उत्तरसे बहुत ही खुश हुए हैं। उन्होंने सूचना भी निकाल दी है। सूचनासे परवार समाजमें बड़ी खलबली मची है। जो सिंगई, सवाई सिंगई आदि हैं, उनकी बदहवासीका तो कुछ ठिकाना नहीं है। सुनते हैं, वे इसका प्रतिवाद करेंगे। कोई कोई तो अदालततककी शरण लेना चाहते हैं।

३

एक बिलकुल ही प्राइवेट समाचार है। ऐसे समाचारोंको सर्वसाधारणमें प्रकट करना सभ्यताके खिलाफ है। इसलिए मैं जैनहितैषीके पाठकोंको अच्छी तरह और बारबार सावधान किये देता हूँ कि वे इस खबरको बिलकुल ही गुप्त रक्खें--यहाँ तक कि कोई गैर आदमी पढ़कर सुनानेके लिए भी कहे, तो न सुनावें। सभापति महाशय शास्त्रीय परिषत्के साथ इन दिनों एक बहुत जरूरी मामलेमें पत्रव्यवहार कर रहे हैं। एक पत्रमें लिखा गया है--"आप लोग बहुत ही सुस्त हैं। सालभर होनेको आया, पर आपकी परिषत्ने कोई भी काम नहीं किया। शत्रुदल दिन पर दिन प्रबल होता जा रहा है; पर आपको इसकी जरा भी चिन्ता नहीं है। एक मुख्तार साहबके लेख ही गजब ढा रहे थे कि अब एक वकील साहब और मैदानमें आ डटे हैं। रूसके अजेय किलों पर जर्मनी और आस्ट्रियाकी भयंकर तोपोंने जो काम किया था, वही इनके लेख कर रहे हैं। यदि आपकी दशा रूसके ही समान रही, तो इन अन्धश्रद्धाकी दीवालोंका पता भी नहीं लगेगा कि कहाँ गईं। एक तो रूसकी प्रजा जिस तरह ज़ारके शासनसे असन्तुष्ट थी, उसी तरह आप लोगोंकी इस कुंभकरण जैसी छह छह महीनेकी नींद और आराम तलबीसे लोग प्रसन्न नहीं हैं; दूसरे आपके मेम्बरोंमें भी मतभेद होने लगा है। कई मेम्बर तो खुल्लमखुल्ला शत्रुके गोलोंकी सराहना कर रहे हैं। मैंने स्वयं कई पण्डितोंके मुँहसे सुना है कि, भद्रबाहुसंहिता जाली ग्रन्थ है, उसकी समालोचना उचित ही की गई है और त्रिवर्णाचारादि धूर्त भट्टारकोंके बनाये हुए हैं। इससे जान पड़ता है कि शत्रुकी भेदनीति काम कर गई। अब वह दिन दूर नहीं है, जब आप लोगोंमें भी रूस सरीखी फूट फूट निकलेगी और यह सुकोमल अन्धश्रद्धाका राज्य कठोर 'परीक्षा' के पंजेमें जा फँसेगा।" इसका उत्तर क्या आया है, सो मुझे पढ़नेको नहीं मिला। इतना सुना है कि शास्त्रीय परिषत् अपनी 'सारे दिनमें ढाई कोस' वाली रफ्तारको कुछ तेज़ करनेवाली है।

४

विलायतमें जो योग्यता वृद्ध सेनापति लार्ड-किचनरकी समझी जाती थी, वही जैनियोंके पुराने दलमें सरनौवाले पं० रघुनाथदासजीकी है। यदि युद्धके प्रारंभमें लार्ड किचनर न होते तो इस समय फ्रान्सका नकशा ही बदल गया होता। पं०रघुनाथदासजी भी यदि जैनगटके सम्पादक न होते तो आज बाबू लोगोंने जैनसमाजको नेस्त नाबूद कर दिया होता। आपने अपने पुराने जमानेके भद्दे, बेढंगे, बेसिलसिले, पर भयंकर लेखोंकी मारसे अपने प्रतिपक्षियोंके छक्के छुड़ा दिये। आपके रौबीले चेहरे और प्रज्वलित नेत्रोंने भी बड़ा काम किया। किसीको आपके सामने खड़े रहनेका भी साहस न हुआ। इसी समय लोगोंने सुना कि, आपने अपने पदसे इस्तीफा पेश किया है! इससे वे घबड़ाये और लगे महासभाके मंत्री और जैनगजटके प्रकाशकके विरुद्ध आन्दोलन करने। यह ठहरा आन्दोलनका जमाना; इससे इन्द्रका सिंहासन डोल उठा। गोलमालकारिणी सभाके सभापतिने उसी समय महासभाके मंत्रीको एक पत्र लिखा कि लार्ड किचनरके अतल जलमें डूब जानेसे जो हानि ब्रिटिश

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एम्पायरकी हुई है, वही इस महावीरके इस्तीफा देनेसे आपकी होगी। दुनियाको आश्चर्यमें डुबानेवाले इनके पुराने हथखण्डे फिर किस्से कहानियोंमें ही रह जायँगे। समय पर चेत जाइए, नहीं तो आपको पछताना होगा। और आश्चर्य नहीं जो आप भी इस 'अनारी' पदसे अलग कर दिये जायँ। मंत्री महाशय सटपटाये और लगे खुशामद करने। सम्पादक महाशय आखिर बूढ़े ही तो ठहरे, खुशामदकी जरा सी गर्मीसे पिघलकर पानी हो गये। चटसे लिख बैठे—मैं अपना इस्तीफा बड़ी खुशीसे वापस लेता हूँ। नौजवान प्रकाशकको हँसी आ गई। उसने तत्काल ही इस अनोखे इस्तीफेको प्रकाशित कर दिया। झगड़ा तै हो गया। पुराने दलमें खुशियाँ मनाई जाने लगीं और बाबू लोगोंकी नानी मर गई।

—श्रीगड़बड़ानन्द शास्त्री।

शास्त्र-प्रामाण्य।

परोक्ष प्रमाणके पाँच भेदोंमें आगम या शास्त्र भी एक प्रमाण है। यह भी वस्तुके सच्चे स्वरूपको जाननेका एक साधन है। परन्तु इसको एक मर्यादाके भीतर ही प्रमाणता है। शास्त्रप्रामाण्यका यह मतलब नहीं है कि, इसके माननेवाले अपनी सदसद्विवेकबुद्धिको—खरा-खोटा पहचाननेकी शक्तिको सर्वथा ही तिलाञ्जुलि दे देवें और शास्त्रके नामसे वे चाहे जिसकी आज्ञाको सिर-पर चढ़ाने लगें। शास्त्रोंके आगे मस्तक झुकानेके लिए हम सदा प्रस्तुत हैं, परन्तु पहले हमें यह जान लेना होगा, इस बातकी परीक्षा कर लेनी होगी कि वे वास्तवमें शास्त्र हैं—शास्त्रोंके आप्तप्रणीत आदि लक्षणोंसे युक्त हैं; कहीं शास्त्रोंके नामसे अन्धश्रद्धालुओंके बाजारमें चलनेवाले नकली सिक्के तो नहीं हैं। शास्त्रोंके प्रति जनसाधारणकी जो भक्ति और श्रद्धा है, वह इतनी बहुमूल्य और लुभानेवाली है कि उसको प्राप्त करनेको चाहे जिसका मन मचल सकता है—चाहे जिसकी इच्छा हो सकती है कि हम इनके द्वारा लोगोंकी श्रद्धा और भक्तिका उपभोग करें और अपना स्वार्थ साधन करें। अतएव हमें इस विषयमें बहुत ही सावधान रहनेकी आवश्यकता है। हमें स्मरण रखना चाहिए कि इस समय इस प्रकारके न जाने कितने पोथे शास्त्रोंका नाम धारण करके हमारे यहाँके सरस्वती-भण्डारोंके बहुमूल्य वेष्टनोंके परदोंमेंसे हमारी विवेकबुद्धि पर तीव्र कटाक्षपात कर रहे हैं—व्यंग्यकी हँसी हँस रहे हैं।

जब तक हममें श्रद्धा और भक्तिके साथ साथ विवेकबुद्धि भी रही, तबतक इस आगमप्रमाणतासे हमें यथेष्ट लाभ होता रहा; परन्तु ज्यों ही हमारी श्रद्धा और भक्तिने विवेकका साथ छोड़ा—वह अन्धश्रद्धा या अन्धभक्तिके रूपमें परिणत हो गई, त्यों ही इससे हमारी दुर्दशा होना शुरू हुई। जहाँ हम पहले ज्ञानके उपासक थे, सत्यके अनुयायी थे, वहाँ शास्त्रनामधारी जड़ वाक्योंके भक्त बन गये। अमुक पदार्थका स्वरूप वास्तवमें क्या है, इसके स्थानमें अमुक शास्त्रमें वह कैसा बतलाया गया है, हम इसकी चिन्तामें रहने लगे। शास्त्रोंको वह अधिकार प्राप्त हो गया, जो थोड़े समय पहले रूस-सम्राट् ज़ारको प्राप्त था। उनके वाक्य ही सर्वोपरि शासक बन गये। इधर अच्छे ज्ञानियों और अधिकारियोंकी कमी हो रही थी। फिर क्या था, अन्धाधुन्धी शुरू हो गई। शासनका लोभ साधारण नहीं होता। जो अपात्र और अयोग्य थे उन्होंने भी इस लोभके फेरमें पड़कर शास्त्रोंकी रचना करनी शुरू कर दी और उन्हें बहुमूल्य वेष्टनोंसे वेष्टित करके सरस्वतीमन्दिरोंमें स्थापित कर दिया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऐसी दशामें हमें केवल शास्त्र या आगमका नाम सुनते ही हथियार न फेंक देना चाहिए। यदि ऐसा करोगे तो याद रक्खो, मिथ्यात्वकी चुंगलमें फँसे विना न रहोगे। तुम अपनेको समझते भले ही सम्यग्दृष्टियोंके शिरोमणि रहो, पर वास्तवमें घोर मिथ्यादृष्टि हो जाओगे। जिसने विवेकबुद्धिको आलेमें रख दिया है, खरे और खोटेकी पहिचान भुला दी है और जो जड वाक्योंका गुलाम बन गया है वही यदि सम्यग्दृष्टि है, तो फिर सम्यग्दृष्टित्वकी महिमा ही क्या रही ? ऐसा सम्यग्दर्शन क्या कोई बड़ा भारी प्रार्थनीय गुण हो सकता है ? शास्त्रोंको मानो, मस्तक पर चढ़ाओ, पूजो; इसके बिना आत्मकल्याण नहीं हो सकता, सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिके लिए ये बहुत ही अच्छे साधन हैं; परन्तु यह ध्यानमें रक्खो कि कागज या ताडपत्र पर लिखा हुआ सब ही कुछ शास्त्र नहीं है। भगवान् समन्तभद्रने शास्त्रका लक्षण यह किया है:—

आप्तोपज्ञमनुल्लङ्घ्यमदृष्टेष्टविरोधकम्।
तत्त्वोपदेशकृत् सार्वं शास्त्रं कापथघट्टनम्॥

विविध प्रसंग।

१ विद्वानोंकी कदर।

'दिगम्बर जैन' के गतांक नं० ११ में, 'श्रीआत्मानंद जैन ट्रैक्ट सोसायटी अम्बाला' की ओरसे, एक नोटिस प्रकाशित हुआ है, जिसका शीर्षक है 'विद्वानोंको इनामकी सूचना' और वह नोटिस इस प्रकार है—

'जो सज्जन "जैनसंध्या (प्रतिक्रमण) का रहस्य" इस विषय पर हिन्दी भाषामें लेख लिखकर भेजेंगे उनमेंसे जिसका लेख उत्तम होगा उसको यह सोसायटी १०) इनाम देगी। लेख फुलस्केप कागजके २० पृष्ठसे कम न हो और ३१ (?) नवंबरतक सभापति श्री आत्मानन्द जैन ट्रैक्ट सोसायटी अम्बाला शहरको भेजना चाहिए। सर्वोत्तम लेखको छपवाने और स्वाधीन रखनेका सर्व हक सोसायटीको होगा।'

इस नोटिसको पढ़कर शायद कुछ भोले भाईयोंने यह समझा हो कि उक्त सोसायटीने विद्वानोंकी कदर करना प्रारंभ किया है और वह जरूर उत्तमोत्तम लेखकोंद्वारा अच्छे अच्छे निबन्ध तय्यार कराकर उन्हें प्रकाशित करनेमें शीघ्र समर्थ होगी। परन्तु यह निरी भूल और कोरा ख्वाब खयाल है। सोसायटीके इस आचरणसे उससे ऐसी आशा रखना बिलकुल फिजूल और निर्मूल है। उसके इस आचरणको कदर नहीं, विद्या और विद्वानोंका, एक प्रकारसे अपमान कहना चाहिए। परन्तु अपमान हो या सम्मान, इसमें संदेह नहीं कि, सोसायटीने यह नोटिस निकालकर अपनी योग्यताका खासा परिचय दिया है। उसकी दृष्टि कितनी संकीर्ण और कितनी अनुभवशून्य है, इसका पता भी इस नोटिससे भले प्रकार लग जाता है। जान पड़ता है कि, सोसायटीको अभीतक यह भी मालूम नहीं कि 'रहस्य' कहते किसे हैं; और वह कितने गहरे अध्ययन, मनन, अनुभव और परिश्रमसे सम्बन्ध रखता है। शायद उसने कहींसे रहस्यका सिर्फ नाम सुन लिया है और इस लिए वह उसे बच्चोंका एक खेल समझती है। तभी उसने किसी विद्वानसे विनय, अनुनय, और प्रार्थना आदि करनेकी जरूरत न समझकर, उत्तमसे उत्तम निबंधके लिए एकदम दस रुपयेकी भारी रकमका इनाम निकाल दिया है! हमारी समझमें यदि सोसायटी मूल्य देकर पाँचसौ रुपयेमें भी ऐसा एक सांगोपांग रहस्य तय्यार करा सके, जिसे वास्तवमें जैनसंध्यावंदनका रहस्य कहना चाहिए, तो उसे अपनेको भाग्यशालिनी समझना चाहिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परन्तु पाँचसौ रुपयेकी बला तो बहुत दूर है, सोसायटीकी संकुचित दृष्टिमें, ऐसे निबन्धके लिए, यह दस रुपयेका इनाम भी अधिक जान पड़ता है; और इस लिए वह इन दस रुपयोंमें यहाँतक हक प्राप्त करना चाहती है कि स्वयं लेखकको उस निबन्धके छपवाने या छपवानेके लिए किसी दूसरेको इजाजत देनेका भी अधिकार न रहेगा ! ! ऐसी हालतमें कहना न होगा कि सोसायटीकी विवेकदृष्टिमें लेख लेख सब समान हैं—एक कहानी और तात्विक-विवेचनमें परस्पर कोई भेद नहीं—जैसा पहाड़ खोदकर नहर निकालना वैसा ही एक राजवाहेमेंसे कूल (नाली) निकाल देना दोनों बराबर हैं ! ! !

जिस समाजकी सभा सोसायटियाँ भी ऐसी ऐसी कदरदान और गुणग्राहक हों उसके उद्धारमें फिर भला विलम्बका क्या काम ! हमारी रायमें अच्छा हो यदि उक्त सोसायटी अपनी ऐसी उदारता और कदरदानीकी विचार-तरंगोंको गुप्त ही रक्खा करे, जिससे उन्हें पेपरोंमें प्रकाशित करके, उसे व्यर्थ ही विद्वत्समाजके सम्मुख हँसी और लज्जाका पात्र तो न बनाना पड़े । इसमें संदेह नहीं कि आजकल रहस्य, मीमांसा, परीक्षा और तात्विक विवेचनात्मक निबंधोंके लिखे जानेकी बहुत बड़ी जरूरत है । ऐसे निबंधोंसे न सिर्फ जैनसमाज बल्कि समूचा भारतदेश प्रायः शून्य है । जिस समय देशमें आज्ञाप्रधानताका युग प्रवर्तित था, उस समय विना ऐसे निबंधोंके भी काम चल जाता था । परन्तु अब इस परीक्षाप्रधानी युगमें ऐसा होना एक प्रकारसे असंभव है । इस लिए ऐसे निबंधोंके लिखाये जानेकी बहुत बड़ी जरूरत है । परन्तु उनके लिखानेका यह मार्ग नहीं है । इतने भारी काम ऐसे ऐसे क्षुद्र नोटिसों द्वारा कभी साध्य नहीं हो सकते । उनके लिए बडे बड़े आयोजनोंकी जरूरत हैं । खास खास विद्वानोंसे मिलकर पत्रव्यवहार करके और सर्व प्रकारकी सामग्रीकी सहायताका पूर्ण प्रबंध करके उन्हें उन कामोंमें लगाना चाहिए और इस बातका खास खयाल रखना चाहिए कि वे विद्वान् निराकुलतापूर्वक अपने कार्योंका संपादन करते रहें । ऐसा प्रयत्न होने पर यथेच्छ निबंध लिखे जा सकते हैं, और समाज तथा देशमें एक प्रकारसे ठोस कामोंकी नीव पड़ सकती है । आशा है कि, उक्त सोसायटी तथा इस प्रकारकी दूसरी जैनसंस्थायें भी इस नोटसे कुछ शिक्षा ग्रहण करेंगी और अपने कामोंका मार्ग मालूम करेंगी ।

—जुगलकिशोर मुख्तार ।

२ खाद्य पदार्थोंमें मिलावट ।

संसारके सभी देशोंमें खाद्य पदार्थोंकी रक्षाके लिए बड़े कड़े नियम हैं । हिन्दू धर्मशास्त्रोंमें खाद्याखाद्यविचार पर बहुत कुछ लिखा गया है और बहुत अच्छा लिखा गया है । कुछ समय पहले अँगरेजी पढ़े लिखे लोग अपने धर्मग्रन्थोंकी उन सारपूर्ण बातोंका मजाक उड़ाया करते थे । किन्तु भला हो योरपके विज्ञानाचार्य्योंका कि जिन्होंने नित्य नये सिद्धान्त निकाल कर कीटाणुवाद आदि अनेक तथ्यपूर्ण सिद्धान्तोंका आविष्कार कर दिया । बाज़ारकी चीजें खाना, जूते और कपड़े पहने भोजन करना अब विज्ञानद्वारा भी अनुचित ठहरा दिया गया है । बेचारे स्मृतिकारों और आचार्य्योंकी इज्जत रह गई । चौकेकी नष्टप्राय प्रथा अब फिर अपने असली रूपमें प्रकट होने लगी है ।

किन्तु अब तक खानेके उन पदार्थोंके विषयमें जिनमें धूर्त्त और स्वार्थान्ध व्यवसायी अन्य अनावश्यक ही नहीं स्वास्थ्यनाशक पदार्थों की मिलावट करके देशके स्वास्थ्यका नाश कर रहे थे हमारा ध्यान आकृष्ट नहीं हुआ था ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हमारी गवर्नमेन्ट ने भी उस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया था। किन्तु हर्षकी बात है कि हमारे देशके कुछ समझदार लोगोंने इस अत्यन्त आवश्यक आन्दोलनको उठाया है और यथानियम गवर्नमेन्टने उनका साथ दिया है। जो लोग समाचारपत्र पढ़ना पाप नहीं समझते उन्हें यह विदित ही होगा कि कलकत्तेमें मिश्रित घीके विषयमें कैसा आन्दोलन हुआ है। हम चाहते हैं कि इस तरहका आन्दोलन हर प्रान्त, हर शहर, हर गाँव और हर घरमें हो। जिन चीजों पर हमारा स्वास्थ्य निर्भर है, जो हमारे रक्तको बनाती हैं, उनमें यदि कोई मिलावट करता है—नहीं, विष मिलाता है तो हमें उसके इस आचरण पर जितना क्रोध आये थोड़ा है। हमें उसके प्रतीकारके लिए कोई बात उठा न रखनी चाहिए। यदि अच्छी तरह आन्दोलन किया जाय, हिन्दू मुसलमानोंको बता दिया जाय कि घीमें चर्बी मिलती है, गाय भैंसकी ही नहीं सुअर और साँप तककी चर्बीका उसमें सपिण्डन होता है तो कोई कारण नहीं कि भारतकी ये धर्मप्राण प्रधान जातियाँ इस तरहके घी या किसी अन्य पदार्थको न छोड़ें। पर इसके लिए कुछ स्वार्थत्यागकी आवश्यकता है। उससे भी अधिक स्वादत्यागकी है। जो लोग बाजारकी मिठाइयाँ खाते हैं उन्हें चाहिए कि अपनी इस बुरी आदतको ठीक करें तभी तो ऊँची दूकानधारी हलवाइयोंको फीकी मिठाइयाँ बनानेकी धूर्त्तता छोड़नी पड़ेगी। हमें चाहिए कि उत्सव या त्यौहारोंको खूब सादगीसे सम्पन्न कर लें। वृथा आडम्बरके चक्रमें पड़ कर धर्म्मकी हानि न करें। देशके वैज्ञानिकोंका कर्त्तव्य है कि वे घीके जोड़की कोई चीज बतावें। जिन्हें शुद्ध घी मिलता है वे आनन्दसे उसे खायें, किन्तु जो उसे नहीं खरीद सकते हैं वे "अभावे शालिचूर्णं वा" की तरह उस शुद्ध चीजसे अपना काम निकाल लें; तभी इन धूर्त व्यवसायियोंका मुँह काला और पेट पतला होगा।

घी ही नहीं, और भी खानेकी जिन जिन चीजोंमें मिलावट होती है उसके प्रतीकारके लिए हमें सचेष्ट होना चाहिए। तभी अल्पायु भारतवासियोंकी रक्षा होगी। —ज्वालादत्त शर्मा। (वैद्यसे)

---

३ घृतके बदले दूसरे पदार्थ।

इस समय जब कि शुद्ध घृतका मिलना बड़ा दुष्प्राप्य हो गया है और अनेक प्रकारके हानिकारक और अभक्ष्य पदार्थोंके द्वारा बनाया हुआ घृत नामक विषाक्त पदार्थ सर्वत्र प्रचलित हो रहा है, ऐसी अवस्थामें घृतका सर्वथा त्याग कर देना ही उचित जान पड़ता है। घृतके बदले दूसरे पदार्थों से भी काम चल सकता है। तिलीका तेल, मूँगफलीका तेल, नारियलका तेल, आदि कई तेल घृतके बदले काममें लाये जा सकते हैं। यद्यपि मिलावटी घृतमें भी ये पदार्थ मिलाये जाते हैं, परंतु उसमें कई पदार्थोंका विरुद्ध संयोग होनेसे वह विषके समान हो जाता है। उपर्युक्त तेल पृथक् पृथक् रूपमें ही अच्छा गुण करते हैं। तिलीका तेल घृतकी अपेक्षा अधिक बलकारक है। इस लिए लोग इस तेलका व्यवहार अधिकतासे करते हैं। तथापि तेल अधिक उष्ण और उग्रवीर्य्य होनेके कारण सब प्रकृतिके मनुष्योंके अनुकूल नहीं पड़ता। सरसोंका तेल भी खानेमें अच्छा है, पर यह तिलके तेलसे भी अधिक तीक्ष्ण और उष्ण है; इस कारण सब लोग इसका उपयोग नहीं कर सकते। धुले तिलोंका तेल साधारण तिलोंके तेलकी अपेक्षा अधिक सौम्य है। इस लिए यह वैसी उष्णता, दाह आदि विकार पैदा नहीं करता। बहुत लोग तेलको नमक, क्षार, हलदी आदि पदार्थोंके द्वारा फाड़-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर घृतकी समान स्वच्छ बनाते हैं। फटे हुए तेलमें तेलकी गंध नहीं रहती और सामान्य तेलकी अपेक्षा यह कुछ हलका भी हो जाता है, इस लिए घृतके बदलेमें व्यवहार किया जा सकता है। घृतके अभावमें मूँगफलीका तेल भी व्यवहार किया जा सकता है। मूँगफली-का तेल पौष्टिक है और इसमें वैसी तीक्ष्णता या उष्णता भी नहीं है। मूँगफलीका तेल, खस-खस और खरबूजोंकी गिरीके तेलसे अतिशय श्रेष्ठ है। बिनौलेका तेल अत्यंत पुष्टिकारक और जठराग्निके बलकी वृद्धि करता है। बिनौले-के तेलमें भी मूँगफलीके तेलकी समान पौष्टिक तत्त्व अधिक है और यह मूँगफलीकी समान सस्ता पड़ता है। नारियलका तेल अत्यंत बल वीर्य्यवर्द्धक और पुष्टिकारक है। यह अन्य तेलों-की अपेक्षा निर्दोष है और उग्रवीर्य भी नहीं है। इस लिए इसका सब लोग मजेमें व्यवहार कर सकते हैं। कितने ही डाक्टर इसको कार्ड लिवर आयलके समान पौष्टिक और बलवर्द्धक मानते हैं। दाल, शाकादि व्यंजन और सब प्रकारके पकवान, मिठाई वगैरह पदार्थ इसके द्वारा अच्छे प्रकार तयार किये जा सकते हैं। यद्यपि नारि-यलके तेलमें एक प्रकारकी नारियलकी कुछ गंध आती है, परन्तु वह उसके ताजे तयार किये हुए पदार्थोंमें नहीं आती। दुःख है कि यह तेल रोटीके साथ या दालमें डाल कर नहीं खाया जा सकता। (वैद्यसे उद्धृत।)

४ ब्रह्मचारीजी और पुनर्जन्मका सिद्धान्त।

जैनमित्रमें ता० ८ अगस्तके जयाजी प्रता-पसे एक पुनर्जन्मकी विस्तृत कथा उद्धृत की गई है जिसका संक्षिप्त सार यह है—“भिण्ड (ग्वालियर) से ७ मीलकी दूरी पर नुनहटा एक छोटासा गाँव है। वहाँके काशीराम पट-वारीकी छोटेलाल ठाकुरसे शत्रुता हो गई। काशीरामने जमींदारीके कागजोंमें कुछ ऐसी लिखा पढ़ी कर दी थी जिससे छोटेलालको बहुत हानि पहुँची थी। एक दिन मौका पाकर छोटेलालने काशीरामका काम तमाम कर दिया और वह भाग गया। काशीराम घोड़ी पर सवार होकर कहींको जा रहा था। एक पपिलके पेड़के पास पहुँचने पर छोटेलालने उसे गोली मारी, और जब वह नीचे गिर पड़ा, तब उसकी दाहिने हाथकी उँगलियाँ काट डालीं जिनकी सहाय-तासे लिखकर उसने उसे हानि पहुँचाई थी। ६ नवम्बर १९०८ को काशीराम मारा गया। इसके दो महीने और २५ दिनके बाद बीसल-पुरामें—जो नुनहटासे ६–७ कोस दूर है—मिहीलाल ब्राह्मणके सुखलाल नामका एक लड़का पैदा हुआ। इसके दाहिने हाथकी छोटी उँगली आधी, अँगूठा एक चौथाई और बाकी उँगलियाँ बिलकुल नहीं हैं। छातीमें एक गोली जैसा निशान है और वहाँकी कुछ हड्डियाँ भीतरकी ओरको मुँड़ी हुई हैं। जब यह लड़का तीन वर्षका हुआ और बोलने लगा, तब उसके बापने एक दिन पूछा कि विधाता क्या तेरी उँगलियोंको बनाना भूल गये? उसने कहा कि नुनहटाके छोटेलाल ठाकुरने मेरी उँगलियाँ काटी थीं। मैं पहले जन्ममें कायस्थ था और काशीराम मेरा नाम था। मैं घोड़ी पर सवार था, तब मुझे बन्दूक मारी थी और फिर मेरा हाथ काटा था। पीपलके पेड़के पास मेरी जान ली गई थी। इस समय यह लड़का ८–९ वर्षका है। ग्वालियर स्टेटके किसी राजकर्मचारीने इस मामलेकी जाँच करके ये सब बातें प्रकाशित कराई हैं। उन्होंने लड़केके मा-बापके तथा दूसरे कई आदमियोंके बयान लिये हैं और उन सबसे यह नतीजा निकाला है कि यह मामला बनावटी नहीं है। क्योंकि इस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तरह झूठा किस्सा गढ़ लेनेका कोई कारण नहीं मालूम होता। जो लोग पुनर्जन्मके सिद्धान्तका अध्ययन करनेवाले हैं, उनके लिए यह विचार करने योग्य घटना है।"

इस उद्धृत लेखके नीचे ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीका एक नोट लगा हुआ है। उसको हम यहाँ अक्षरशः उद्धृत करते हैं–"ऊपरका बयान असत्य नहीं मालूम होता; यह संभव है कि २ महीने २५ रोज तक इसके जीवने कोई पशुपर्याय धारण कर ली हो। जैनसिद्धान्तसे ऐसा होना व जातिस्मरणद्वारा पूर्व बात याद आना प्रमाणित है।"

इस नोटके पढ़ चुकने पर पाठकोंको विचार करना चाहिए कि जैनधर्मके पुनर्जन्मके सिद्धान्तसे उक्त घटना कहाँ तक मेल खाती है। सुखलालका जन्म ३१ जनवरी सन् १९०९ को हुआ है और जैसा कि उसकी माँने कहा है, वह ९ महीने पूरे होने पर १० वें महीनेमें पैदा हुआ है। अर्थात् १ मई सन् १९०८ के लगभग वह अपनी माताके गर्भमें आया होगा। जैनसिद्धान्तके अनुसार गर्भाधान होनेके साथ ही माताके गर्भस्थानमें जीवकी स्थिति हो जाती है। चरक, सुश्रुत आदि आयुर्वेदके ग्रन्थोंका भी यही सिद्धान्त है। अब देखिए कि काशीरामकी हत्या कब हुई थी? वह ६ नवम्बर १९०८ को अर्थात् सुखलालके गर्भमें आनेके कोई ६ महीनेके बाद मारा गया है। तब क्या वह मरनेके पहले ही गर्भमें आ गया था? ब्रह्मचारीजी जैनमित्रका सम्पादन इतनी जल्दी करते हैं, और उन्हें जैनसिद्धान्त पर चलता-मालिनता-अगाढ़तारहित ऐसा 'भयंकर' विश्वास है कि उन्हें किसी विषय पर अधिक विचार करनेकी आवश्यकता ही नहीं मालूम होती। विषयके भीतर प्रवेश करना–कुछ गहरे पैठना–उनकी समझमें व्यर्थ है। वे पं० आशाधरके 'कुतः श्रेयोऽतिचर्चिनाम्' सिद्धान्तके माननेवाले हैं। ऊपरका नोट इस बातका बहुत बड़ा प्रमाण है। आपने उठाई कलम और लिख दिया कि काशीरामके जीवने २५ रोज तक कोई पशु-पर्याय धारण कर ली होगी। यह नहीं सोचा कि मनुष्यों और पशुओंको कुछ समयतक गर्भमें भी रहना पड़ता है। जिस समय किसीका जन्म होता है, ठीक उसी समय वह दूसरे स्थानसे च्युत होकर आया हुआ नहीं होता; किन्तु उसके कुछ महीनों पहलेसे वह गर्भमें आ गया होता है। और पशुपर्यायकी तो एक ही कही। एक ही पर्यायको धारण करनेके लिए तो दिन पूरे नहीं हैं, पर आप बीचमें एक पशुपर्याय और भी धारण करा देते हैं। हम यह नहीं कहते हैं कि ब्रह्मचारीजी पुनर्जन्म-सम्बन्धी इन मोटी मोटी बातोंको जानते नहीं हैं; नहीं वे जैनधर्मके इस सिद्धान्तसे अच्छी तरह परिचित होंगे; परन्तु एक तो उन्हें अधिक विचार करनेका अभ्यास नहीं है, दूसरे वे इस प्रकारके प्रमाणोंसे—जिनपर वर्तमानकी जनता कुछ अधिक विश्वास करती है—भरपूर लाभ उठा लेना चाहते हैं और इस लाभके लोभमें वे किसी 'ढीले-ढाले' ठीक न बैठते हुए प्रमाणको भी व्यर्थ नहीं जाने देना चाहते। जैनमित्रमें इस प्रकारके नोट अकसर निकला करते हैं और आशा है कि आगे भी निकलते रहेंगे।

---

५ रीति-रवाजोंकी गुलामगिरी।

मनुष्य धर्मकी उतनी परवा नहीं करता, जितनी कि रीति-रवाजोंकी करता है। वह धर्मका नहीं किन्तु रीति-रवाजोंका गुलाम है। संसारमें धर्मके नामसे जितने काम हुए हैं, या होते हैं, मत समझो कि वे सब धर्मके ही लिए हुए हैं। नहीं, यदि विवेकदृष्टिसे देखोगे, तो उनमेंसे अधिकांशके भीतर यह रीति-रवाजोंकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुलामगीरी ही दिखलाई देगी । क्या आप इस समय जितने जैनियोंको देखते हैं, उन सबको जैनधर्मके अनुयायी समझते हैं ? यदि आप ऐसा समझते हैं तो कहना होगा कि आप रीति-रवाजोंके अनुसरणको ही धर्म समझते हैं । वास्तवमें ये लोग जैनधर्मके नहीं; किन्तु उन रीति-रवाजोंका अनुसरण कर रहे हैं, जो जैनी कहलानेवालोंकी जातिमें बहुत समयसे चले आ रहे हैं । वे यह नहीं सोचते और सोचना पसन्द भी नहीं करते कि ये सब रीति-रवाज जैनधर्मके अनुकूल हैं या नहीं । यही कारण है जो उनमें ऐसे बीसों रीति-रवाज चल रहे हैं, जो जैनधर्मसे सर्वथा प्रतिकूल हैं; पर ऐसे नये रीति-रवाज नहीं चल सकते जो जैनधर्मके अनुकूल हैं और सब तरहसे आवश्यक हैं । रीति-रवाजोंका यह चलाना और बन्द करना जीवित समाजोंमें होता है; पर हमारे समाजकी जीवनी शक्ति मूर्छित हो रही है । वह एक कुँभारके चक्रके समान पूर्व प्रेरित शक्तिसे केवल एक ही दिशाको चला जा रहा है । उसमें अपनी दिशा बदलनेकी शक्ति नहीं है । समाजके शुभचिंतकोंको अपने प्रयत्नोंका चरम उद्देश्य 'इसी शक्तिको प्राप्त करा देना' बनाना चाहिए ।

बम्बईमें अभी थोड़े ही दिन पहले अजमेरके स्वर्गवासी धानिक राय बहादुर सेठ नेमीचन्दजीका नुक्ता (तेरहीं) हुआ था । सेठजीकी बम्बईमें भी एक दूकान है, इस कारण यहाँ भी इस 'काज' का करना आवश्यक समझा गया । शायद कलकत्ता, आगरा आदिस्थानोंमें भी—जहाँ जहाँ सेठजीकी बड़ी दूकानें हैं—इसी तरहके नुक्ते किये गये होंगे । पर इनके विषयमें हम कुछ नहीं कहना चाहते । देशकी वर्तमान दरिद्रतासे सर्वथा अपरिचित और धनकी उपयोगिताको न समझनेवाले इन धनियोंसे हमें अभी आशा भी नहीं है कि, ये इस प्रकारकी फिजूलखर्चियाँ बन्द कर देंगे । हम एक ऐसी बातका ओर पाठकोंका ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं जिसका उस धर्मसे सम्बन्ध है जिस धर्मके ये लोग अपनेको स्वाभाविक 'रक्षक' समझते हैं । स्वर्गीय सेठजी दिगम्बर सम्प्रदायके शुद्धाम्नायी तेरहपंथी जैनी थे और जहाँ तक हम जानते हैं उनके उत्तराधिकारी पुत्र सेठ टीकमचन्दजी भी इसी आम्नायके माननेवाले हैं । यह वह आम्नाय है, जिसको बात बातमें मिथ्यात्वके अनुमोदनका और धर्मके जानेका डर लगा रहता है और जिसे केवल जैनेतरोंकी ही नहीं श्वेताम्बरादि जैनियोंकी शिक्षा संस्थाओंमें भी कुछ देनेमें आगा पीछा सोचना पड़ती है । इसी आम्नायके अगुए सेठजीके इस नुक्तेमें ब्राह्मणोंको भोजन कराया गया और उन्हें लगभग पाँच हजार रुपया दक्षिणामें दिया गया । ब्राह्मणोंके सहस्रावधि आशीर्वादोंसे आशा है कि सेठजीकी परलोकगत आत्माको बहुत शान्ति मिलेगी ! सुनते हैं, खंडेलवाल समाजके और भी कई धनियोंने इस प्रकारके आशीर्वाद सम्पादन किये हैं । उनमें यह रीति परम्परासे चली आ रही है ।

रीति-रवाजोंकी-गुलामगीरीका यह एक नोट करने लायक उदाहरण है ।

---

६ उपवासोंका मूल्य ।

बम्बईमें जयपुरकी तरफके एक ब्रह्मचारी प्रतिवर्ष आया करते हैं । आपका नाम पं० मूलचन्दजी है । आप किसी भट्टारकके शिष्य हैं, शायद इसी लिए 'पण्डित' कहलाते हैं । भट्टारकोंके शिष्योंका यह एक मौरूसी 'पद' है। यों 'पंडिताई' से आपका जरा भी सम्बन्ध नहीं है। आप यहाँके गुलालबाड़ीके बीसपंथी मन्दिरमें ठहरा करते हैं और सोलह कारणके ३२ उपवास किया करते हैं । पर इन उपवासोंके फलको आप अपने पास नहीं रखते, उदारतापूर्वक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किसी धनी श्रावकके लिए उत्सर्ग कर दिया करते हैं। इस फलके लेनेवालेको पारणेके दिन थोड़ी सी चाँदी भेट करनी पड़ती है। पहले वर्ष सेठ चुन्नीलाल हेमचन्द जरीवालेने १००१) देकर और दूसरे वर्ष स्वर्गीय सेठ माणिकचन्दजीके परिवारवालोंने ५०१) रु० देकर यह पुण्यसम्पादन किया था। गतवर्ष जब कोई तैयार न हुआ तो सेठ चुन्नीलालजीने ही फिर ५०१) रु० भेट किये। इस वर्ष उनके भाई सेठ प्रभुदासजीने १०१) रु० देकर महाराजको पारणा कराया है। इसके सिवाय पंचायतकी ओरसे भी कुछ चन्दा करा दिया गया है। विना कुछ भेट लिये आप 'पारणा' नहीं करते। करना भी न चाहिए; नहीं तो फिर इतने बड़े तपका महत्त्व ही क्या रहे! सुनते हैं, आप अपने निवासस्थानके पास एक मन्दिर बनवा रहे हैं और ये रुपये उसीके लिए संग्रह कर रहे हैं। यद्यपि इस बात पर विश्वास करनेका कोई कारण नहीं है; अभीतक किसीने भी यह तलाश नहीं किया है कि मन्दिर बन रहा है या नहीं, और यदि मन्दिर बन रहा है, तो उसमें कितने रुपये लगे हैं और पंडितजीके उदर-मन्दिरमें कितने समा गये हैं, फिर भी यदि मान लिया जाय कि सब रुपया मंदिरमें ही लगेंगे, तो प्रश्न यह है कि मन्दिरके निमित्त भी इस तरह 'मुँड़चिरियों' के समान जबर्दस्ती रुपया वसूल करनेमें कौनसा धर्म है? इसका अनुमोदन तो हमारी समझमें कोई भी धर्मज्ञ नहीं कर सकता। यह कोई श्रेष्ठ आचार नहीं, किन्तु अत्याचार है। पर इसमें हम पण्डितजीका कोई दोष नहीं देखते। उन्हें प्राप्ति होती है, इसलिए वे ऐसा करते हैं। दोष है हमारे भोले भाइयोंका—श्रद्धालु श्रावकोंका, जो इस तरहके दानमें पुण्य समझते हैं और ऐसे लोगोंको इस तरहके अत्याचार करनेके लिए और भी अधिक उत्साहित करते हैं।

७ महात्मा गाँधीका हिन्दी पुस्तकालय।

हमारे पाठक महात्मा गाँधी और उनके अहमदाबादके 'सत्याग्रहाश्रम' से परिचित हैं। गाँधीजी इस समय हिन्दीको राष्ट्रभाषा बनाने और उसका प्रचार करनेका आन्दोलन कर रहे हैं। गुजरातके भिन्न भिन्न स्थानोंमें वे हिन्दीकी पाठशालायें खोलना चाहते हैं, जिनके द्वारा सर्वसाधारणको हिन्दीकी शिक्षा दी जायगी। आपने अपने आश्रमके प्रत्येक विद्यार्थीके लिए हिन्दीका पढ़ना आवश्यक कर दिया है। आपकी इच्छा है कि, आश्रममें हिन्दीका एक अच्छा पुस्तकालय भी स्थापित किया जाय। इस पुस्तकालयसे अन्य प्रान्तवासियोंका ध्यान हिन्दीकी ओर विशेष रूपसे आकर्षित होगा और वे हिन्दीकी अच्छी अच्छी पुस्तकोंसे थोड़े बहुत परिचित अवश्य हो जाया करेंगे। दूसरे प्रान्तोंके लोग गाँधीजीसे मिलनेके लिए निरन्तर ही आया करते हैं। उनके कारण इस समय आश्रम एक तीर्थस्थान बन रहा है। हम अपने हिन्दीप्रेमी पाठकों और पुस्तकप्रकाशकोंका ध्यान इस ओर आकर्षित करते हैं। आशा है कि, वे उक्त पुस्तकालयके लिए हिन्दीकी अच्छी अच्छी पुस्तकें भेजनेकी उदारता दिखलावेंगे और इस हिन्दीप्रचारके कार्यमें अवश्य सहायक होंगे।

८ दर्शनसारकी रचनाका समय।

दर्शनसारकी ५० वीं गाथाके अर्थमें हमने उसके बननेका समय विक्रम संवत् ९०९ लिखा है; परन्तु उसकी वचनिकाके कर्त्ता पं० शिवजीलालने संवत ९९० लिखा है। गाथाके 'णवसए णवए' पदकी छाया 'नवशते नवके' न करके 'नवशते नवतौ' करने से यह अर्थ ठीक बैठ जाता है। वास्तवमें होना भी यही चाहिए। संवत् ९९० मान लेनेसे माथुर संघकी उत्पत्ति आदिके सम्बन्धमें जो शंकायें की गई हैं उनका भी समाधान हो जाता है। माथुर संघकी उत्पत्ति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विक्रम संवत् ९५३ में बतलाई गई है। संवत् ९०९ के बनेहुए ग्रन्थमें उसकी उत्पत्तिका लिखा जाना असंगत मालूम होता था, परन्तु जब दर्शनसार ९९० में बना है, तब इस शंकाके लिए कोई स्थान नहीं रहता। वचनिकामें एक बात और भी लिखी है। वह यह कि देवसेन मुनि वि० संवत् ९५१ में हुए हैं। मालूम नहीं यह समय देवसेनके जन्मका है या उनके मुनि होनेका, और इसके लिए आधार क्या है।

९ बैरिस्टर साहबका पत्र।

हरदोई, ता. १९–८–१७

प्यारे प्रेमीजी, जैनहितैषीके वर्तमान अंककी बाबत मैं आपका आभारी हूँ, और उसके लिए आपको धन्यवाद देता हूँ। 'दर्शनसारविवेचना' नामका आपका लेख बड़ा ही चित्ताकर्षक है। इस लेखके अंतमें आपने उस भविष्यद्वाणी पर अश्रद्धा प्रगट की है जो पंचमकालके अंतमें अग्निका नाश हो जानेके सम्बंधमें है। कुछ समय बीता जब मैंने कहीं पर इस भविष्यद्वाणीको पढ़ा था, तब मुझे भी आश्चर्य हुआ था; परन्तु अब मैं इस नतीजे पर पहुँच गया हूँ कि इस कथनमें कोई भी बात बेहूदा या असंभव नहीं है। संभवतः इस कथनका जो कुछ अभिप्राय है वह यह है कि कोई ईंधन या लकड़ी नहीं बचेगी, इस वास्ते अग्नि जलाना असंभव हो जायगा। ऐसा मालूम होता है कि इस कालके अंतमें वनस्पतिके अभावमें मनुष्योंको और जो कुछ मिलेगा वह खाना पड़ेगा, और इस लिए सब लोग मांसाहारी हो जायँगे। उनको कपास भी नहीं मिलेगा और इस वास्ते वे नंगे ही रहेंगे। और जहाँ तक धर्म और राजासे सम्बंध है उनका ह्रास अभीसे होता जाता है। मेरे खयालमें हम अब भी यह बात स्पष्टरूपसे देख सकते हैं कि दुनिया निकृष्टतम अवस्थाकी ओर तेजीसे जारही है और अब कुछ थोड़ीसी ही और ऐसी दावानलोंकी जरूरत रह गई है, जैसा कि योरुपका वर्त्तमान युद्ध, जिससे हम रसातलको पहुँच जायँ।

यदि आप मेरी इस रायको छापना पसंद करें तो आप इसका समुचित हिन्दी शब्दोंमें अनुवाद करके उसे हितैषीके आगामी अँकमें प्रकाशित कर देवें।

मैं आशा करता हूँ कि आप त्रिलोकसारका हिन्दी अनुवाद शीघ्र ही प्रकाशित करेंगे। मैं उसके दर्शनोंके लिए बड़ा ही उत्कंठित हूँ।

आपका—चम्पतराय जैन,
बैरिष्टर–एट–ला।

बैरिस्टर साहबकी आज्ञानुसार उनके पत्रका हिन्दी अनुवाद प्रकाशित कर दिया जाता है। यह बात समझमें नहीं आती कि इस कालके अन्तमें वनस्पतिका सर्वथा नाश कैसे हो जायगा। इसका अर्थ यह होगा कि वनस्पतिजीवोंकी सृष्टिका ही अभाव हो जायगा। पर यह संभव नहीं। इसके सिवाय त्रैलोक्यसारकी उद्धृतकी हुई गाथाओंमें अग्निका नाश हो जाना लिखा है, वनस्पतिका नहीं। आशा है कि बैरिस्टर साहब इस विषयमें कुछ विस्तारसे और सप्रमाण लिखनेकी कृपा करेंगे।

जरूरत।

एक ऐसे चतुर विद्यार्थीकी जरूरत है जो श्रीयुत बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तार देवबन्द जि०-सहारनपुरके पास रहकर उनसे जैनधर्मके ग्रंथोंको पढ़नेकी इच्छा रखता हो और साथ ही पबलिक सेवा करनेका जिसका भाव हो। ऐसे विद्यार्थीको सात रुपये मासिक वजीफा (स्कालर्शिप) दिया जायगा। धर्मग्रंथोंका अध्ययन करानेके साथ साथ उससे लिखने पढ़नेसम्बन्धी कुछ पबलिक सेवाका काम भी लिया जायगा। जो विद्यार्थी जाना चाहे उसे अपनी योग्यता आदिका परिचय देते हुए उक्त बाबू साहबसे पत्रव्यवहार करना चाहिए।

—सम्पादक।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हमारे छपाये हुए नये ग्रन्थ ।

वृन्दावन कृत चौवीसी पाठ ।

यह ग्रन्थ बम्बईके सुन्दर टाइपमें अच्छे कागजों पर फिरसे छपाया गया है। छपा भी शुद्धतापूर्वक है। जिन्हें और कहींकी छपाई पसन्द नहीं उन्हें अब इस बम्बईके छपे हुए विधानको या पूजा पाठको अवश्य मँगा लेना चाहिए। मूल्य १≈)

जैनपदसंग्रह ।

कविवर दौलतराम कृत पहला भाग और भागचन्दजी कृत दूसरा भाग पद-संग्रह फिरसे छपाये गये हैं। बहुत दिनोंसे ये मिलते नहीं थे। मूल्य पहले भागका ।≈) दूसरेका ।)।

बुधजन सतसई ।

अर्थात् बुधजनजीके उपदेश, नीति, सुभाषित आदि सम्बन्धी ७०० दोहे। यह पुस्तक दुबारा छपाई गई है। मूल्य छह आने।

जैनबालबोधकके दोनों भाग ।

श्रीयुत पं० पन्नालालजीके ये दोनों भाग जैनपाठशालाओंमें बहुत ही प्रचलित रहे हैं। बहुत दिनोंसे समाप्त हो गये थे, अब फिरसे छपाये गये हैं। पहले भागसे असंयुक्त और संयुक्त अक्षरोंके शब्दोंका शुद्ध शुद्ध लिखना पढ़ना अच्छी तरह आ जाता है। दूसरे भागमें धार्मिक कथाओंके और धर्मतत्त्वोंके अच्छे अच्छे पाठ हैं। मूल्य पहले भागका ।) और दूसरे भागका ॥)।

मनोरंजन कहानियाँ ।

इसमें छोटे छोटे बच्चोंको हँसाने और खुश करनेवाली १३ कहानियोंका संग्रह है। जो बच्चा पढ़ेगा या सुनेगा वही खुश होगा। किसी किसी कहानीको सुनकर तो बच्चे लोटपोट हो जाते हैं। मूल्य =)

रत्नकरण्डश्रावकाचार पद्यानुवाद ।

पं० गिरिधर शर्माकृत। खड़ी बोलीके सुन्दर पद्योंमें रत्नकरण्डका सुन्दर सरल अनुवाद। जैनपाठशालाओंमें पढ़ाये जाने योग्य। मूल्य ≡)

माणिकचन्द ग्रन्थमालाके ग्रन्थ ।

सब ग्रन्थ ठीक लागतके मूल्य पर बेचे जाते हैं। सबसे सस्ते हैं। प्रत्येक मंदिरमें इनकी एक एक प्रति अवश्य रखना चाहिए और संस्कृतके पण्डितोंको वितरण करना चाहिए:—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१ सागारधर्मामृत सटीक आशाधर कृत ।≡)
२ लघीयस्त्रयादिसंग्रह अकलंभट्टकृत ।=)
३ पार्श्वनाथचरित वादिराजसूरि कृत ॥)
४ विक्रान्त कौरवीय नाटक हस्तिमल्ल कृत ।=)
५ मैथिली परिणय नाटक ,, ।)
६ प्रद्युम्नचरित महासेनाचार्यकृत ॥)
७ आराधनासार सटीक देवसेनाचार्य कृत ।)॥
८ जिनदत्तचरित्र, गुणभद्र कृत ।)॥
९ चारित्रसार चामुण्डराय कृत ।=)
१० प्रमाणनिर्णय वादिराजसूरि कृत ।-)

बच्चोंके सुधारनेके उपाय ।

इसमें बच्चोंकी आदतें सुधारने, उन्हें सदाचारी और विनयशील बनाने, बुरेसे बुरे स्वभावके लड़कोंको अच्छे बनाने, उपद्रवियों और चिड़चिड़ोंको शान्त शिष्ट बनानेके अमोघ उपाय बतलाये गये हैं । प्रत्येक माता पिताको इसे पढ़ डालना चाहिए । इसके अनुसार चलनेसे उनका घर स्वर्ग बन जायगा । मू० ॥)

कोलम्बस ।

अमेरिका खण्डका पता लगानेवाले असम साहसी कर्मवीर कोलम्बसका आश्चर्यजनक और शिक्षाप्रद जीवनचरित । अभी हाल ही छपकर तैयार हुआ है । नवयुवाओंको अवश्य पढ़ना चाहिए । मूल्य ॥)

मानवजीवन ।

सदाचार और चरित्रसम्बन्धी अनेक अँगरेजी, मराठी, गुजराती, बंगला पुस्तकोंके आधारसे यह ग्रन्थ रचा गया है । सदाचारकी शिक्षा देनेके लिए और सच्चे मनुष्योंकी सृष्टि करनेके लिए यह ग्रन्थ बहुत अच्छा है । इस ग्रन्थके बिना कोई घर, कोई पुस्तकालय, और कोई मन्दिर न रहना चाहिए । भाषा बहुत ही सरल और स्पष्ट है । मूल्य १।=) कपड़ेकी जिल्दका १॥)।

उस पार । प्रसिद्ध नाटककार द्विजेन्द्रलालरायके एक सामाजिक नाटकका अनुवाद । स्टेजपर खेलनेलायक अपूर्व नाटक है । हिन्दीमें इसकी जोड़का एक भी नाटक नहीं है । प्रारंभमें एक विस्तृत भूमिकाके द्वारा इस नाटकके प्रत्येक पात्रके चरित्रकी खूबियां दिखलाई गई हैं । मूल्य सवा रुपया ।

ग्रन्थपरीक्षा प्रथम भाग और द्वितीय भाग । लेखक, श्रीयुत बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तार । पहले भागमें जिनसनत्रिवर्णाचार, उमास्वामिश्रावकाचार और कुन्दकुन्दश्रावकाचार इन तीन ग्रन्थोंकी और दूसरे भागमें भद्रबाहुसंहिताकी समालोचना प्रकाशित की गई है । ये सब लेख जैनहितैषीमें निकल चुके हैं । इनका खूब प्रचार होना चाहिए । मूल्य लागत मात्र रक्खा गया है । पहले भागका ।=, और दूसरे भागका ।)

मोक्षमार्गकी कहानियां । रत्नकरण्डश्रावकाचारमें जिन जिन स्त्री पुरुषोंके उदाहरण आये हैं, उन सबकी २३ कथाओंका संग्रह । यह हाल ही छपी है । मूल्य सात आने ।

मैनेजर, जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय, गिरगांव–बम्बई.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीवर्द्धमानाय नमः ।

भाग १३ ।

जैनहितैषी ।

अंक ११ ।

नवम्बर १९१७ ।

विषय सूची ।

१ ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति । ले० बाबू सूरजभान वकील ... ४६९
४ विचित्र ब्याह (काव्य)। ले०, पं० रामचरित उपाध्याय ... ४८७
३ विद्वज्जन खोज करें । ले०—बाबू जुगलकिशोर मुख्तार ... ४९१
४ नौकरोंसे पूजन कराना । ले०—बाबू जुगलकिशोर मुख्तार ४९५
५ जैनसमाजके क्षयरोग पर एक दृष्टि । ले०—बाबू रतनलाल जैन बी. ए. एल. एल. बी. ४९८
६ आदिपुराणका अवलोकन । ले०—बाबू सूरजभान वकील ५०३
७ सतयुगकी वेश्यायें । ५०७
८ अलंकारोंसे देवी-देवताओंकी उत्पत्ति । ले०—बाबू सूरजभान वकील ५०९
९ पुस्तक-परिचय ५१४

नई जैन पुस्तकें ।

ग्रन्थपरीक्षा प्रथम भाग मूल्य ।), द्वितियभाग मू० ।=), दर्शनसार विवेचनासहित मू० ।-), मोक्षमार्गकी कहानियाँ मू० ।≈), बच्चोंके सुधारनेके उपाय मू० ।।), सन्तानपालन -)।, सर्वार्थसिद्धि मूल संस्कृत ?), बुधजन सतसई ।≈), आचारसार (आचार्य वीरनन्दिकृत) माणिकचन्द्र जैनग्रन्थमालाका ग्यारहवाँ ग्रन्थ, मूल्य ।=)

मैनेजर, जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई ।

संपादक—नाथूराम प्रेमी ।

मुंबईवैभव प्रेस.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करते हैं और इतना और सूचित कर देना चाहते हैं कि हमने इस लेखमें आदिपुराणके उस कथन पर बहस नहीं की है जिसमें ब्राह्मण वर्णकी उत्पत्तिकी विधि लिखी है । उस कथन पर तो इतनी अधिक शंकायें उत्पन्न होती हैं कि यदि उन सब पर विचार किया जाय तो इससे भी अधिक लिखना पड़े । परन्तु हमें आशा है कि अब हमें उन बातोंको लिखना न पड़ेगा, इस लेखको पढ़नेके बाद हमारे भाई स्वयं ही उन पर विचार कर लेंगे ।

विचित्र व्याह ।

(लेखक, श्रीयुत पं० रामचरित उपा० ।)

पञ्चम सर्ग ।

मेरे सुतको कोई सज्जन,
दे देता जो कन्या,
तो मैं पुत्रवधूको पाकर,
जगमें होती धन्या ।
इसी सोचमें पड़ी सुशीला,
तनिक नहीं सोती थी,
विकल हुई रहती थी हरदम,
मन-ही-मन रोती थी ॥ १ ॥
रत्नाकरसे पंगु रत्नको,
कैसे पा सकता है ?
पुण्य-हीन जन पुण्य-लोकमें,
कैसे जा सकता है ?
भला मनोरथ क्यों पूरा हो,
धन-विहीनका जगमें,
कल्पवृक्ष क्या उग सकता है,
कभी मरुस्थल-मगमें ? ॥ २ ॥
पर उद्यमके बल उद्योगी,
सब कुछ कर सकते हैं,
वे न विघ्नबाधाओंसे कुछ,
मनमें डर सकते हैं !
चाहें तो वे चन्द्र सूर्यको,
गेंद बना दें करका,
अपनेकी तो बात अलग है,
खेद मिटादें परका ॥ ३ ॥
अबलाको भी प्रबला करता,
समय विलक्षण क्षणमें,
चन्दन-कण भी मिल जाता है,
कभी अग्निके कणमें ।
किसी बातको कभी असंभव,
कहना नहीं भला है,
पलमें निबल सबल हो जाते,
चल जाती अचला है ॥ ४ ॥
प्रथम चाहती रही सुशीला,
धर्म-व्याह सुतका हो ।
जिस कारणसे हँसी न हो या,
पाप धर्मच्युतका हो ।
हरिसेवकको किन्तु देखने,
कोई कभी न आया ।
हा ! निर्धन बुधको भी जगमें,
किसने कब अपनाया ? ॥ ५ ॥
धनहीना थी यद्यपि वह पर,
उसने मनमें ठाना,
घर बेचूँगी व्याह करूँगी,
सुतका निज मन माना ।
निर्धनकी कन्याका उसने,
झट पट पता लगाया,
रूपचन्दको किसी युक्तिसे,
अपने पास बुलाया ॥ ६ ॥
निकट सुशीलाके निज घरसे,
रूपचन्द तब आया,
और सुताका उसने आकर,
लक्ष्मी नाम बताया ।
अति लोभी बनिया था उसका,
लोभ नगरमें घर था,
उभय लोकमें पाप, अयशका,
उसे न कुछ भी डर था ॥ ७ ॥
कहा सुशीलाने उससे तब,
अपना हाल विनयसे,
फिर हरिसेवकके गुणको भी,
कथन किया अति नयसे ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर लक्ष्मीको सेंत मेंतमें,
देने कहा न उसने,
हाय ! धर्मको नहीं गवाँया,
लोभ-विवश हो किसने ? ॥ ८ ॥

कहा सुशीलाने तब दृढ हो,
क्या लोगे कन्याका दाम,
जो माँगोगे मैं देऊँगी,
चाहे विक जावे मम धाम ।
किन्तु साहजी ! मेरी आर्थिक,
दशा देख करके कहना,
केवल लोभ-विवश मत होना,
दयाविवश भी हो रहना ॥ ९ ॥

जो कुछ मेरे घर है उसको,
सुता आपकी पावेगी,
और उसीसे जैसे तैसे,
अपने काम चलावेगी ।
इसी लिए तुम खूब समझकर,
वर कन्या पर देना ध्यान,
अपने स्वार्थसहित मेरे भी,
कार्य पूर्ण करना मतिमान ॥ १० ॥

रूपचन्द बोला तब यों,
भला पिघलता वह कब यों ।
चाहे तुम बेंचो निज धाम,
मुझको है रुपयेसे काम ॥ ११ ॥

भूखों कन्या मर जावे,
जली भाड़में वर जावे ।
चाहे मैं होऊँ बदनाम,
मुझको है रुपयेसे काम ॥ १२ ॥

मुझे पाँच सौ दे देना,
लक्ष्मीको तुम ले लेना ।
छोड़ूँगा मैं नहीं छदाम,
मुझको है रुपयेसे काम ॥ १३ ॥

चाहे वर गुणवाला हो,
गोरा हो, या काला हो ।
बूढ़ा हो, या युवक ललाम,
मुझको है रुपयेसे काम ॥ १४ ॥

ऊँच नीचका भेद नहीं,
किसी बातका खेद नहीं ।
सबके जनक एक हैं राम,
मुझको है रुपयेसे काम ॥ १५ ॥

मेरा जीवन है कलदार,
मेरा तन मन है कलदार ।
जपूँ उसे ही आठों याम,
मुझको है रुपयेसे काम ॥ १६ ॥

रुपयेवाले मानव हैं,
धन-विहीन जन दानव हैं ।
इसमें कुछ भी नहीं कलाम,
मुझको है रुपयेसे काम ॥ १७ ॥

रुपये जब मेरे होंगे,
पर भी तब मेरे होंगे ।
तब मैं पाऊँगा विश्राम,
मुझको है रुपयेसे काम ॥ १८ ॥

रुपया जब मिल जावेगा,
हृदय-कमल खिल जावेगा ।
उसके विना हुआ हूँ क्षाम,
मुझको है रुपयेसे काम ॥ १९ ॥

मुझे काम क्या झगड़ेसे ?
पुण्य, पापके रगड़ेसे ।
जगमें कुछ भी है न हराम,
मुझको है रुपयेसे काम ॥ २० ॥

कहा सुशीलाने सुनिए,
रुपयोंमें कुछ कम करिए ।
मुझमें उतनी शक्ति नहीं,
मेरी है बस विनय यही ॥ २१ ॥

मेरे मनके दुःख हरो,
वर कन्या पर दया करो ।
फिरसे कहिए बूझ विचार,
जिसमें होवे बेड़ा पार ॥ २२ ॥

रूपचन्द तब तनक गया,
उसने बदला रंग नया ।
यदि सुतका करना है ब्याह,
पूर्ण करो तब मेरी चाह ॥ २३ ॥

जो मैं मुखसे कहता हूँ,
उस पर दृढ़ हो रहता हूँ ।
झूठ बोलना ठीक नहीं,
मैं जाता हूँ और कहीं ॥ २४ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मम कन्या गुण-मंडी है
मनो दर्शनी हुंडी है ।
उसको कहीं भँजा लूँगा,
किन्तु नहीं तुमको दूँगा ॥ २५ ॥
जैसी लक्ष्मी सुन्दर है,
हरिसेवक वैसा वर है ।
तदपि पाँच सौ मैं लूँगा,
तभी सुताको मैं दूँगा ॥ २६ ॥
बोला, अब मैं जाता हूँ,
सत्य शपथ मैं खाता हूँ ।
कम न करूँगा कौड़ी एक,
अपनी ही रक्खूँगा टेक ॥ २७ ॥
बिक जावेगी सुता कहीं,
ग्राहककी है कमी नहीं ।
जो कहना हो साफ कहो;
मत सोचो, मत मौन रहो ॥ २८ ॥
कहा सुशीलाने कर जोड़,
जो न आप कुछ सकते छोड़ ।
तो फिर क्यों होते हैं रुष्ट,
द्रव्य लीजिए रहिए तुष्ट ॥ २९ ॥
हरिसेवकका करिए ब्याह,
अपनी पूरी करिए चाह ।
बात आपकी है मंजूर,
चिन्ता आप कीजिए दूर ॥ ३० ॥
यदि तुमको करना है काज,
रोक रुपैया दो सौ आज—
देकर मुझे बयाने दो,
खाली हाथ न जाने दो ॥ ३१ ॥
हुई व्यग्र वह बेचारी,
क्योंकि अनाथा थी नारी ।
बोली बड़ी विनय करके,
आँखोंमें आँसू भरके ॥ ३२ ॥
रुपये दूँगी दो दिनमें,
चिन्ता मत करिए मनमें ।
आज कहाँ मैं पाऊँगी,
कर्ज कहींसे लाऊँगी ॥ ३३ ॥
दो दिनमें फिर आवें आप,
दो सौ ले जावें चुपचाप ।
करिए मेरे पर विश्वास,
तनिक न होवें आप उदास ॥ ३४ ॥
रूपचंद तब खड़ा हुआ,
झिड़क झिड़क कर कड़ा हुआ ।
फिर 'अच्छा' कह लौटा गेह,
दिखा लोभके झूठे स्नेह ॥ ३५ ॥
दो दिवसोंके बाद वहाँ पर फिर वह आया,
उसने पाकर द्रव्य चित्तमें अति सुख पाया ।
रूपचन्द था बड़ा मतलबी और सयाना,
उसने पलमें किया ब्याहका ठीक ठिकाना ।
वह रुपये लेकर घर गया,
सुचित सुशीला हो गई ।
मानो हरिसेवक-ब्याहकी,
चिन्ता उरसे खो गई ॥ ३६ ॥

षष्ठ सर्ग ।

रुपये लेकर रूपचन्द जब घर पर आया,
उसने प्रेमसमेत त्रियाको निकट बुलाया ।
रुपये देने लगा उसे तो वह हँस बोली,
कहिए किसने आज आपकी भर दी झोली ।
किसभाँति आपको एकदम, इतने रुपये मिल गये
क्यों अहो अचानक व्योममें,
अमित कमल-दल खिल गये ॥ १ ॥
बिना मेघकी वृष्टि हुई है आज कहाँसे ?
महा दीनको आज मिला है राज कहाँसे ?
गरल-सिन्धुसे सुधा-कुण्ड कैसे निकला है ?
दुर्विधिका हृद्वज्र आज कैसे पिघला है ?
सच कहिए कैसे द्रव्य ये आज मिले हैं आपको ।
सुरलोक ओक कैसे अहो आज मिला है पापको ? २
दावानलसे शीत समीरण कैसे आया ?
नेत्रहीनने दिव्य दृष्टिको कैसे पाया ?
पानीमें उत्पन्न हुआ है मक्खन कैसे ?
स्नेह-ढेरमें प्रकट हुआ है कञ्चन कैसे ?
दिननाथ नाथ ! कैसे उगा, आज प्रतीची गोदमें ?
किस विधसे किंशुक-कुसुम भी, आज सना आमोदमें ? ३
हँसकर बोला रूपचन्द्र तब गर्वसहित हो,
वही काम है ठीक जिसे करनेसे हित हो ।
जिसकी घरनी रमा और लक्ष्मी कन्या हो,
उसकी जीवन-वृत्ति नहीं कैसे धन्या हो ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किस अचरजमें तुम हो पड़ी, रमा तुम्हारा नाम है।
सुख-भोग करो तुम आजसे, सबका दाता राम है ॥४॥

प्रिये! एकसे दिवस किसीके कभी न बीते,
सर सूखेंगे भरे, भरे फिर होंगे रीते।
सदा अँधेरी रात कभी क्या हो सकती है?
पति-वियुक्त हो सदा न चकई रो सकती है।
है हारावादी लग रही (?) सदा पतन उत्थानका।
अपमानित भी होगा कभी, मनुज पात्र सम्मानका ५

वही मनुज है निपुण धनी जो मानी होवे,
वही कूप है जहाँ सुशीतल पानी होवे।
वही वृक्ष है श्लाघ्य जहाँ फल फूल लगे हों,
वही काव्य है जहाँ पद्य नवरसों पगे हों।
है धन्य वसुमती भी वही देश-भक्त रहते जहाँ,
है वही सभा भी धर्मकी सभ्य सत्य कहते जहाँ ॥६॥

धन विलोक कर लोट पोट मुनिमन होता है,
सबके दुर्गुण शीघ्र एक धन ही खोता है।
सब कामोंमें सदा द्रव्य है बड़ा सहायक,
सब लायक भी दीन कहा जाता नालायक।
चाहे कैसा ही मनुज हो, धन पर जिसके पास है।
है धन्य वही भी, है हुआ-त्रिभुवन उसका दास है ७

धनी मनुजके पास धर्म दौड़ा आता है,
धनी मनुजके द्वार गुणी धक्के खाता है।
निर्बल भी धनवान भीमके सम होता है,
निर्धन जन क्या कभी मृतकसे कम होता है?
इस हेतु किसी विध द्रव्यका संग्रह करना चाहिए।
मनमें जगके अपवादसे कभी न डरना चाहिए ॥ ८ ॥

इतने रुपये मिले और भी शीघ्र मिलेंगे,
मुझे देखकर रमे, शत्रुके पैर हिलेंगे।
गहने पहने रहो चैनसे दिवस बिताओ,
सूतो लंबी तान खूब खाओ खिलवाओ।
अब कभी किसीके पास जा, कर फैलाना है नहीं।
सुख कर लो, नश्वर देहका तनिक ठिकाना है नहीं ॥९॥

क्या पाओगी पूछ हाल रुपयोंके प्यारी,
मेरी गति है गुप्त रीति है जगसे न्यारी।
कभी न मनकी बात विज्ञ सबसे कहते हैं,
करते हैं निज काम मौन होकर रहते हैं।
चुप चाप रहो लो यत्नसे रुपये रक्खो पासमें।
अबसे भी अपने समयको खरचो हास विलासमें॥१०॥

किन्तु हठीली रमा तुरत मचला कर बोली,
उसने मानो स्नेह कपटकी झोली खोली।
मुझसे तो तुम बात कभी भी न थे छिपाते,
कहते थे वृत्तान्त सभी जब घर थे आते।
प्रिय! आज तुम्हें क्या हो गया, क्यों धन पा बौरा गये
गिरगिटसे मेरे साथ क्यों, रंग बदलते हो नये ॥ ११॥

रुपये पाये कहाँ आपने, मुझसे कहिए,
बिना बताये आप मौन होकर मत रहिए।
बहलावा दे मुझे रिझाना उचित नहीं है,
भला कपटकी बात छिपी क्या कभी कहीं है।
मुझसे सब कच्चे हालको, कहिए देर न कीजिए।
अब वृथा बिछा छल-जालको, मुझको जेर न कीजिए ॥

कहिए सच्ची बात किसीसे मैं न कहूँगी,
जो न कहोगे आप, न जीती कभी रहूँगी।
मुझसे छिप यदि काम करोगे दुख पाओगे,
होकर मुझसे हीन कभी क्या सुख पाओगे?
यदि कुछ भी मुझमें स्नेह है, तो सच बात बताइए।
यह द्रव्य कहाँ कैसे मिला, वृथा न बात बढ़ाइए ॥

रूपचन्दको ज्ञात रही महिमा स्त्री-हठकी,
इसी लिए कुछ और चलाकी चली न शठकी।
बोला वह हो विवश बात सुन रमे, ध्यानसे,
पर सुन कर तू उसे न होना हीन ज्ञानसे।
यदि जगमें मेरी बात वह, किसी भाँति खुल जायगी।
तो जीवनभर मम साथमें, विविध भाँति दुख पायगी॥

लक्ष्मीका मैं व्याह शीघ्र ही कहीं करूँगा,
सुता व्याहके साथ गेहका दैन्य हरूँगा।
पर उसको कुछ कष्ट नहीं होने पावेगा,
और स्वकुलका नाम नहीं धुलने पावेगा।
जो चतुरोंका सदुपाय है मैंने भी सोचा वही।
मर जाय साँप जिसमें प्रिये, लाठी भी टूटे नहीं ॥१५॥

हरिसेवक है नाम एक सुन्दर बालकका,
मानो वह अवतार हुआ है रति-पालकका।
उसका है अभिराम धाम बेनाम नगरमें,
जननी उसकी एक सुशीला है उस घरमें।
लक्ष्मीका पति होगा वही, मैंने यह स्थिर कर लिया।
उसकी ही माताने मुझे, इन रुपयोंको है दिया ॥ १६ ॥

अभी तीन सौ और वही देनेवाली है,
सुतका सज धज साथ व्याह करनेवाली है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हुआ है तभीसे उन्हें पुजारियोंके नौकर रखनेकी जरूर पड़ी है। अन्यथा जिनेंद्र भगवान्की सच्ची और प्राकृतिक पूजाके लिए किरायेके आदमियोंकी कुछ भी जरूरत नहीं है। जैनियोंके प्राचीन साहित्यकी जहाँतक खोज की जाती है, उससे भी यही मालूम होता है, कि पुराने जमानेमें जैनियोंमें वर्तमान जैसा बहु-आडम्बरयुक्त पूजन प्रचलित नहीं था। उस समय अर्हंतभक्ति, सिद्धभक्ति, आचार्यभक्ति और प्रवचनभक्ति आदि अनेक प्रकारकी भक्तियों द्वारा, जिनके संस्कृत और प्राकृतके कुछ प्राचीन पाठ अब भी पाये जाते हैं, पूज्यकी पूजा और उपासना की जाती थी। श्रावक लोग मंदिरोंमें जाकर प्रायः जिनेंद्रप्रतिमाके सम्मुख, खड़े होकर अथवा बैठकर, अनेक प्रकारके समझमें आने योग्य स्तोत्र पढ़ते तथा भक्तिपाठोंका उच्चारण करते थे और परमात्माके गुणोंका स्मरण करते हुए उनमें तल्लीन हो जाते थे। कभी कभी वे ध्यानमुद्रासे बैठकर परमात्माकी मूर्तिको अपने हृदयमंदिरमें विराजमान करके निःशब्द रूपसे गुणोंका चिन्तवन करते हुए परमात्माकी उपासना किया करते थे। प्रायः यही सब उनका द्रव्य-पूजन था और यही भावपूजन। उस समयके जैनाचार्य वचन और शरीरको अन्य व्यापारोंसे हटाकर उन्हें अपने पूज्यके प्रति, स्तुतिपाठ करने और अंजुलि जोड़ने आदि रूपसे, एकाग्र करनेको द्रव्यपूजा और उसी प्रकारसे मनके एकाग्र करनेको भावपूजा मानते थे, जैसा कि श्रीअमितगति आचार्यके निम्नलिखित वाक्यसे प्रगट है:—

वचोविग्रहसंकोचो द्रव्यपूजा निगद्यते।
तत्र मानससंकोचो भावपूजा पुरातनैः ॥१२-१२॥
—उपासकाचार।

जबसे हिन्दुओंके प्राबल्यद्वारा जैनियों पर हिन्दूधर्मका प्रभाव पड़ा है और उन्होंने हिन्दुओंकी देखादेखी उनकी बहुतसी ऐसी बातोंको अपनेमें स्थान दिया है, जिनका जैनसिद्धान्तोंसे प्रायः कुछ भी सम्बंध नहीं है तभीसे जैनसमाजमें बहुआडम्बरयुक्त पूजनका प्रवेश प्रारंभ हुआ है और उसने बढ़ते बढ़ते वर्तमानका रूप धारण किया है कि जिसमें बिना पुजारियोंके नौकर रक्खे नहीं बीतती। आजकल इस पूजनमें मुक्तिको प्राप्त हुए जिनेंद्र भगवान्का आवाहन और विसर्जन भी किया जाता है। उन्हें कुछ मंत्र पढ़कर बुलाया, बिठलाया, ठहराया और फिर नैवेद्यादिक अर्पण करनेके बाद रुखसत किया जाता है—कहा जाता है कि महाराज, अब आप अपने स्थान पर तशरीफ़ ले जाइए और हमारा अपराध क्षमा कीजिए; क्यों कि हमलोग ठीक तौरसे आवाहन, पूजन और विसर्जन करना नहीं जानते। ज़रा सोचनेकी बात है कि, जैनधर्मसे इन सब क्रियाओंका क्या सम्बंध है? जैनसिद्धान्तके अनुसार मुक्त तीर्थंकर अथवा जिनेंद्र भगवान् किसीके बुलानेसे नहीं आते; न किसीके कहनेसे कहीं बैठते, ठहरते या नैवेद्यादिक ग्रहण करते हैं; और न किसीके रुख़सती (विसर्जनात्मक) शब्द उच्चारण करने पर वापिस ही चले जाते हैं। ऐसी हालतमें जैनधर्मसे इन आवाहन और विसर्जनसम्बंधी क्रियाओंका कोई मेल नहीं है। वास्तवमें ये सब क्रियायें हिन्दूधर्मकी क्रियायें हैं। हिन्दुओंके यहाँ वेदांतकमें देवताओंका आवाहन और विसर्जन पाया जाता है। वे लोग ऐसा मानते हैं कि देवता लोग बुलानेसे आते, बैठते, ठहरते और अपना यज्ञभाग ग्रहण करके, रुख़सत करने पर, वापिस चले जाते हैं। इससे हिन्दुओंके यहाँ आवाहन और विसर्जनका यह सब कथन ठीक बन जाता है। परंतु जैनियोंकी ऐसी मान्यता नहीं है। इसी लिए जैनधर्मसे इनका मेल नहीं मिलता और ये सब

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्रियायें बिलकुल बेजोड़ मालूम होती हैं। इसी प्रकारकी, पूजन सम्बंधमें और भी बहुतसी क्रियायें हैं, जो हिन्दुओंसे उधार लेकर रक्खी गई अथवा उनके संस्कारोंसे संस्कारित होकर पीछेसे बना ली गई हैं और जिन सबका जैनसिद्धान्तोंसे प्राय: कुछ भी मेल नहीं है। यहाँ इस छोटेसे नोटमें उन सब पर विचार नहीं किया जा सकता और न इस समय उनके विचारका अवसर ही प्राप्त है। अवसर मिलने पर उन पर फिर कभी प्रकाश डाला जायगा। परन्तु इतना जरूर कहना होगा कि वर्तमानका पूजन इन्हीं सब क्रियाओंके कारण बिलकुल अप्राकृतिक और आडम्बरयुक्त बन गया है और उससे जैनियोंकी आत्मीय प्रगति, एक प्रकारसे, रुक गई है। यदि सचमुच ही हमारे जैनी भाई अपने पूज्य परमात्माकी पूजा, भक्ति और उपासना करना चाहते हैं तो उन्हें सब आडम्बरोंको छोड़कर पूजनकी अपनी वही पुरानी, प्राकृतिक और सीधीसादी पद्धति जारी करनी चाहिए; जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है। ऐसा करने पर पुजारियोंके नौकर रखनेकी भी फिर कुछ जरूरत नहीं रहेगी और आत्मोन्नतिसम्बन्धी वह सब लाभ अपनेको प्राप्त होने लगेगा, जिसको लक्ष्य करके ही मूर्तिपूजाका विधान किया गया है और जिसका परिचय पाठकोंको, 'जिनपूजाधिकारमीमांसा'के 'पूजनसिद्धान्त' प्रकरणको पढ़नेसे भले प्रकार मिल सकता है। विपरीत इसके यदि जैनी लोग अपनी वर्तमान पूजनपद्धतिको न बदलनेके कारण नौकरोंसे पूजन कराना जारी रक्खेंगे तो इसमें संदेह नहीं कि वह समय भी शीघ्र निकट आ जायगा जब उन्हें दर्शन, सामायिक, स्वाध्याय, तप, जप, शील, संयम, व्रत, नियम और उपवासादिक सभी धार्मिक कामोंके लिए नौकर रखने या उन्हें सर्वथा छोड़ देनेकी जरूरत पड़ने लगेगी। और तब उनका धर्मसे बिलकुल ही पतन हो जायगा। इस लिए जैनियोंको शीघ्र ही सावधान होकर अपनी वर्तमान पूजनपद्धतिमें आवश्यक सुधार करके उसे सिद्धान्तसम्मत बना लेना चाहिए। और नौकरोंके द्वारा पूजनकी प्रथाको एकदम उठा देना चाहिए। आशा है कि, समाजके नेता और विद्वान् लोग इस विषयकी ओर खास तौरसे ध्यान देगें।

देवबन्द। ता० २९–१०–१७

जैनसमाजके क्षयरोग पर एक दृष्टि।

[लेखक, श्रीयुत बाबू रतनलाल जैन, बी. ए., एल एल. बी.]

(शेषांश।)

९ बहुतसे गोत्रोंको टालकर विवाह सम्बन्ध करना। जैनसमाजमें जितनी जातियाँ हैं, उन सभीमें इस बातका विचार किया जाता है कि कन्या वरसे भिन्न गोत्रकी हो। पर इस गोत्रभिन्नताका परिमाण सबमें एकसा नहीं है किसीमें कम है और किसीमें अधिक है। अग्रवाल आदि जातियोंमें केवल यह देखा जाता है कि कन्या वरके गोत्रसे किसी भिन्न गोत्रकी हो। कुछ जातियाँ ऐसी हैं जिनमें यह नियम है कि कन्या वरके गोत्रकी और वरके मामाके गोत्रकी न होनी चाहिए, इनसे अतिरिक्त चाहे जिस गोत्रकी हो। कई जातियोंमें यह देखा जाता है कि कन्या वरके गोत्रकी, वरके मामाके गोत्रकी, वरके पिताके मामाके गोत्रकी और वरकी माताके मामाक गोत्रकी न हो, इनके सिवाय और चाहे जिस गोत्रकी हो। किसी किसी जातिमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वरके ४ की जगह ६ गोत्र टाले जाते हैं और उनके अतिरिक्त किसी गोत्रकी कन्यासे सम्बन्ध किया जाता है। कोई कोई जातिवालोंने इनका भी नम्बर ले लिया है। वे यह देखते हैं कि वर पक्षके उपर्युक्त चार गोत्र कन्या पक्षके भी इन्ही चार गोत्रोंमेंसे न होना चाहिए। पर इस विचारकी चरमसीमा यहीं न समझनी चाहिए, कई जातियोंमें दोनों पक्षके आठ आठ, इस तरह १६ गोत्र बचानेका भी रवाज है।

अपनी ही जातिके अतिरिक्त अन्य किसी जातिमें विवाह न करनेके नियमसे विवाहका क्षेत्र पहलेहीसे सीमाबद्ध हो रहा था, उस पर इन गोत्रोंके विचारने उसे और भी अधिक संकुचित कर दिया है। इससे कन्याओंके लिए सुयोग्य वरोंका मिलना और सुयोग्य वरोंके लिए अच्छी कन्याओंका मिलना बहुत ही कठिन हो गया है। विवाहमें इस तरहकी रुकावटोंके कारण अनमेल विवाह बहुत होते हैं, विधवाओंकी संख्या बढ़ती है और अविवाहित पुरुष भी बढ़ जाते हैं। इन सब बातोंका फल यह होता है कि ऐसी जातियोंको क्षयरोग लग जाता है और धीरेधीरे उनका इस संसारसे कूच हो जाता है।

अब समय आ गया है कि हम लोग अपनी इन रीतियों पर विचार करें। हम अब नन्हें नादान नहीं हैं, अपने हानिलाभको समझने लगे हैं। इतने गोत्रोंके टालनेकी न तो शास्त्रमें ही कोई आज्ञा है और न शरीर शास्त्रकी दृष्टिसे ही इसमें कोई लाभ है। पुराण और कथाग्रन्थोंके देखनेसे मालूम होता है कि पहले समयमें मामाकी लड़कीके साथ सम्बन्ध करना तो एक बहुत ही मामूली बात थी। मामाकी लड़की पर तो भानजेका खास हक होता था। कर्नाटककी कई जातियोंमें अब भी यह रीति प्रचलित है। हरिवंशपुराणमें लिखा है कि राजा यदुके शूर और सुवीर नामके दो पुत्र थे। शूरके अन्धकवृष्टि आदि और सुवीरके भोजकवृष्टि आदि पुत्र हुए। फिर अन्धकवृष्टिके पुत्र समुद्रविजय, वसुदेव आदि और भोजक वृष्टिके उग्रसेन महासेन आदि हुए। इस हिसाबसे उग्रसेन और समुद्रविजय बहुत ही निकटके भाई थे, फिर भी एककी पुत्री राजीमतीका दूसरेके पुत्र अरिष्टनेमिके साथ विवाहसम्बन्ध होना स्थिर हो गया था! अब कहिए कहाँ तो उस समयके आदर्श पुरुषोंमें इतने निकटके सम्बन्ध करनेकी पद्धति और कहाँ हमारी पंचमकालके लोगोंकी सोलह सोलह गोत्रोंके बचानेकी चाले! हम नहीं कहते हैं कि आप लोग इतने निकटका सम्बन्ध करने लगो, हम केवल यह चाहते हैं कि इन कथाओं पर विचार करके अपनी गोत्र टालनेकी जो अमर्यादित सख्ती है उसको अपने सुभीतेके अनुसार ढीली कर दो।

वैद्यक ग्रन्थोंसे तथा शरीरशास्त्रके नये नये अनुसन्धानोंसे यह निश्चय हुआ है कि कन्या और वर एक ही वीर्य या रुधिरसे उत्पन्न हुए न होना चाहिए। यदि पति-पत्नी एक ही रुधिरवीर्यजात हों तो उनके सन्तान नहीं होती और यदि होती है तो बहुत कमजोर होती है। इस लिए एक ही कुटुम्बमें उत्पन्न हुए लड़के लड़कियोंका परस्पर विवाहसम्बन्ध न होना चाहिए और इसी तरह मामा, फुफा और मौसाकी लड़कीसे भी विवाह वर्जित है; परन्तु पाँच सात पीढ़ियोंके बाद वीर्य और रुधिर इतना बदल जाता है कि फिर उसके संयोगमें सन्तानके न होनेकी या दुर्बल होनेकी संभावना नहीं रहती। इन सब बातों पर विचार करके अधिक गोत्र टालनेकी प्रथाको बदल डालना चाहिए। कमसे कम दो दो, चार चार, आठ आठ और सोलह सोलह गोत्रोंके टालनेकी लोकोत्तर मूर्खताको तो अवश्य छोड़ देना चाहिए। इससे न तो किसी धार्मिक आज्ञाका उल्लंघन होगा और न कोई सामाजिक हानि होगी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१० एक ही जातिके भीतर ऊँचता मानना। जैनसमाजमें जो बहुतसे अनोखे विचार फैले हुए हैं, यह विचार भी उनमेंसे एक है। इसको समझनेके लिए एक उदाहरण लीजिए। मोहनका एक कुटुंब है जो बहुत बड़ा है और जिसमें अनेक स्त्री पुरुष और बच्चे हैं। उसमें कितने ही लोग ऐसे हैं जो एक दूसरेसे आठ दस पीढ़ीकी दूरी पर हैं, अर्थात् आठदस पीढ़ियोंके पहले उनका एक पुरुषा था। इतना ही बड़ा एक कुटुम्ब रामलालका उसी स्थानमें या अन्य किसी नगर ग्राममें है। यदि कभी इन दोनों कुटुम्बोंके बीच सम्बन्ध हुआ और मोहनके कुटुम्बका कोई लड़का रामलालके कुटुम्बकी किसी लड़कीके साथ ब्याहा गया, तो बस उसी समयसे रामलालका कुटुम्ब नीचा हो गया। इसका फल यह होगा कि मोहनके कुटुम्बके पुरुष रामलालके कुटुम्बकी कन्याओंके साथ तो विवाह कर लेंगे; परन्तु रामलालके कुटुम्बके पुरुष मोहनके कुटुम्बकी कन्याओंके साथ विवाह नहीं कर सकेंगे। अर्थात् रामलालके कुटुम्बकी लड़कियाँ मोहनके कुटुम्बमें तो जा सकती हैं; परन्तु मोहनके कुटुम्बकी कोई लड़की रामलालके कुटुम्बमें नहीं जा सकती। यह रवाज उस हानिकारक और कठोर विचारसे उत्पन्न हुआ है जिसमें स्त्रीजाति पुरुषजातिकी अपेक्षा तुच्छ और नीच गिनी जाती है। जब कन्या वरसे नीची समझी गई, तब कन्याका कुटुम्ब वरके कुटुम्बसे नीचा हो गया और यह ऊँच नीच माननेका रवाज पड़ गया। इस रवाजसे विवाहका संकुचित क्षेत्र और भी अधिक संकुचित हो गया है। कहावत है कि जब चींटीके मरनेके दिन आते हैं तो उसके पर निकल आते हैं। यह कहावत जैनसमाजके ऊपर अच्छी तरह लागू होती है। अनेक जातियोंका होना, अनेक गोत्रोंका टालना और एकही जातिके भीतर उपर्युक्त ऊँचा-नीचापन मानना ये ही सब पंखे हैं जो इस समाजके मरनेकी सूचना देते हैं।

जिन जातियोंमें उपर्युक्त ऊँचता नीचता माननेका रवाज है, उन्हें चाहिए कि इसको मिटा दें। यह बिलकुल अस्वाभाविक है। कन्याके देनेसे कोई कुटुम्ब नीचा नहीं हो जाता और लेनेसे कोई ऊँचा नहीं हो जाता। मनुष्य अच्छे बुरे आचरणोंसे ही बड़ा छोटा बनता है।

११ जलवायुका प्रभाव। यह बात स्वास्थ्यसम्बंधी प्रकरणमें लिखनेसे रह गई है कि जन संख्या पर जलवायुका भी बहुत कुछ प्रभाव पड़ता है। कुछ दिन पहले मैं सहारनपुर जिलेके कस्बे 'नानोता' में गया, तो मुझे वहाँ इस बातका खूब अनुभव हुआ। इस जिलेकी अधिकांश पृथिवीमें नमी बहुत है। जमीन खोदने पर पानी बहुत ही पास निकल आता है। इसके कारण वायुमें भाप मिली रहती है, खुश्की नहीं होती, पानी बादी करता है और भारी होता है। इससे यहाँके लोगोंका स्वास्थ्य खराब रहता है और मौतें अधिक होती हैं। सहारनपुर जिलेकी जैनसंख्याके घटनेका यह भी एक कारण है। व्यायामके अधिक प्रचारसे और आरोग्यताके नियमों पर चलनेसे इस प्रभावसे बचा जा सकता है।

१२ जैनोंका आर्यसमाजी हो जाना या अन्य हिन्दुओंमें मिल जाना। जैनसमाजमें बड़ी अज्ञानता फैली हुई है। विद्वानोंकी इस समाजमें बहुत ही अधिक कमी है। ऐसे सैकड़ों स्थान हैं जहाँके जैनी यह नहीं जानते कि हम मन्दिरजीमें जाकर किसके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूजते हैं, नमोकार मंत्र क्या है, सात तत्त्व कौन कौन हैं, आदि। ऐसे स्थानोंका कोई जैनी जब आर्यसमाजी भाइयोंकी संगतिमें आता है, उनकी सभाओंमें उपदेश सुनता है, उनके धार्मिक काम देखता है तो धीरे धीरे उसका झुकाव उसी ओर होने लगता है और कुछ ही समयमें वह पक्का आर्यसमाजी हो जाता है। बहुतसे जैनी युवक—जिनके चित्तमें समाजसेवाका तीव्र उत्साह होता है—जैनसमाजमें कोई ऐसा कार्य-क्षेत्र न पाकर जिसमें कि वे उत्साहपूर्वक काम कर सकें, आर्यसमाजोंमें काम करने लगते हैं, उनकी सहायता करते हैं, और समय बीतने पर उनके प्रभावसे प्रभावान्वित होकर आर्यसमाजी हो जाते हैं।

बहुतसे स्थान ऐसे हैं जहाँ जैनी नाममात्रके जैनी हैं-जैनधर्मसे शून्य हैं। न उनमें कोई विद्वान् है जो जैनधर्मका उपदेश दिया करे और न वहाँ उपदेशक लोग ही पहुँचते हैं। ऐसे स्थानोंके लोग जैनी इसलिए कहलाते हैं कि उनमें जैनधर्मके कुछ चिह्न रहते हैं—जैसे प्रतिदिन मन्दिरमें जाकर दर्शन करना, रात्रिभोजन नहीं करना, आदि। इस तरहके लोगोंमेंसे जब कोई प्रमादसे अथवा अन्य किसी कारणसे देवदर्शन छोड़ देता है और रात्रिभोजन आदि करने लगता है, तब उसमें जैनत्वका कोई चिह्न नहीं रह जाता और वह अपनी जातिके साधारण हिन्दुओंकी तरह हो जाता है और यदि उस जातिके हिन्दुओं और जैनियोंमें परस्पर रोटी-बेटीका व्यवहार हुआ जैसा कि अग्रवालोंमें है, तो उक्त जैनी और हिन्दुओंमें कोई अन्तर नहीं रहता। ऐसी दशामें वह पुरुष और उसकी सन्तान कुछ समयतक तो जैनधर्मावलम्बी कहलाती है, परन्तु फिर एकाध पीढ़ी बीतने पर उसे यह भी याद नहीं रहता कि हमारे यहाँ कभी जैनधर्म भी पाला जाता था। इस तरह बहुतसे जैन कुटुम्ब हिन्दूसमाजमें मिल गये और मिलते जाते हैं।

इस कारणसे भी जैनसमाजकी जनसंख्यामें हानि हुई है। परन्तु यह हानि उतनी अधिक नहीं हुई है जितनी कि ऊपर लिखे अन्य दस कारणोंसे हुई है। फिर भी यह हानि हानि ही है और इससे बचनेका उपाय करना चाहिए।

इसके लिए सबसे अच्छा उपाय विद्वान् उपदेशकोंका प्रत्येक छोटे बड़े स्थानमें घूमना और उपदेश देना है। उन्हें प्रत्येक मनुष्यको जैनधर्मका रहस्य और उसका महत्त्व समझाना चाहिए, और जैनधर्मके ग्रन्थोंको निरन्तर पढ़नेकी प्रेरणा करनी चाहिए। इससे वे समझ जावेंगे कि भगवान् महावीरका उपदेश क्या है, उनके उपदेशमें महत्त्वकी बातें क्या क्या हैं और उनके धर्ममें दूसरे धर्मोंसे क्या क्या विशेषतायें हैं।

जैनविद्वानोंके भ्रमणसे केवल यही लाभ नहीं होगा कि जैनी जैनधर्मसे च्युत होनेसे बच जावेंगे, बल्कि बहुतसे अजैन भी जैन बन जावेंगे। भगवान् महावीरका उपदेश इतना उत्तम है कि जिन हृदयक्षेत्रों पर यह पड़ेगा वहीं जैनधर्मके अंकुर उत्पन्न होने लगेंगे।

उपदेशक जितने ही विद्वान्, निःस्पृह, निरभिमानी, शान्त और सच्चरित्र होंगे, उतना ही अधिक उनका लोगों पर प्रभाव पड़ेगा। क्योंकि जनतापर उपदेशकी अपेक्षा चरित्रका प्रभाव अधिक पड़ता है।

जैनधर्मको संसारका सर्वमान्य धर्म बनानेके लिए ऐसे कर्मवीरोंकी आवश्यकता है, जिनके मुख पर जैनधर्मकी झलक हो, जिनके प्रत्येक कार्य पर जैनधर्मकी छाप हो और जिनका हृदय जैनधर्मके उदार सिद्धान्तोंका क्रीडास्थल हो। जिनमें जैनधर्मके प्रचार करनेका दुर्दमनीय उत्साह हो, जिनका अपनी कषायों पर और इन्द्रियों पर अधिकार हो, जो द्रव्य-क्षेत्र-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

काल-भावके अनुसार काम करनेवाले हों, किन्तु अपने मूल सिद्धान्तसे जरा भी न हटनेवाले हों, अहिंसा धर्म जिनकी जिह्वा पर ही न हो किन्तु उनके हर एक कार्यसे टपकता हो, जिनके दयासमुद्रमें किसी एक खास जाति, देश या धर्मके ही मनुष्य नहीं, किन्तु समस्त संसारके केवल मनुष्य ही नहीं वरन् जीवमात्र गोता लगा सकते हों, उन्हीं कर्मवीरोंकी हमें जरूरत है।

जिस समाजमें और धर्ममें ऐसे कर्मवीर होते हैं, वह समाज और वह धर्म दिन पर दिन उन्नति करता है; कार्य करनेवाले और सहायता देनेवाले उसे स्वयं ही मिल जाते हैं, उसमें आकर्षण शक्ति बढ़ जाती है और उसके समीप बलाढ्यसे बलाढ्य आत्मायें खिंची हुई चली आती हैं।

जब जब किसी धर्मने उन्नति की है, तब तब उसमें कर्मवीर मनुष्योंने जन्म लिया है। दो हजार वर्ष पहले बौद्ध धर्म सारे भारतमें अग्निकी तरह फैल गया था। इसका कारण क्या था? यही कि उसमें ऐसे सैकड़ों स्वार्थत्यागी और कर्मवीर भिक्षुक हो गये थे जिनका काम था जनताको लाभ पहुँचना, दुखियोंका दुःख दूर करना, रोगियोंकी सेवा करना और उनकी दवा-दारू करना, बुरा कहनेवालों और मारनेवालोंपर भी प्यार करना, और ब्राह्मण हो चाहे मेहतर, सबके साथ एकसा वर्ताव करना। इत्यादि। ईसाई धर्म भी ऐसे ही कर्मवीरोंके द्वारा फैला। उनमें सैकड़ों वीर ऐसे हो गये, जो अपने सिद्धान्तोंके ऊपर जीवित जला दिये गये, पर उन्होंने कायरता धारण नहीं की। फल यह हुआ कि सारा यूरोप ईसाईधर्मका अनुयायी हो गया। हालके थियासोफी सम्प्रदायकी ओर ही देखिए। इसके कर्मवीर कितना काम कर रहे हैं। यद्यपि इनकी संख्या इस देशमें बहुत थोड़ी है, तो भी इनके द्वारा अनेक हाई-स्कूल और कालेज आदि चल रहे हैं, देश-सेवाके बीसों काम हो रहे हैं और इस समय तो इसके नेता भारतको स्वराज्य प्राप्त करानेके बड़ेसे बड़े पुण्य कार्यके अनुष्ठानमें लगे हुए हैं। ऐसे कार्योंका जनता पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। यही कारण है जो इस सम्प्रदायकी उन्नति होती जाती है और सैकड़ों विद्वान् इस सम्प्रदायके अनुयायी होते जाते हैं।

जैनसमाजकी उन्नतिके लिए भी ऐसे ही कर्मवीरोकी आवश्यकता है। जैनाचार्योंने चार प्रकारका दान करना गृहस्थोंका नित्य कर्म बतलाया है—भोजनदान, ज्ञानदान, औषधदान और अभयदान। संसारमें जितने परोपकारके कार्य हैं, वे सभी इनमें गर्भित हो जाते हैं। कर्मवीर इन्हीं कामोंको करेंगे। वे भूखोंको भोजन देंगे, अकाल पीड़ितोंकी सहायता करेंगे, अनाथोंका पालनपोषण करेंगे, विद्यालय, पुस्तकालय, स्कूल, कालेज खोलेंगे, छात्रवृत्तियाँ देकर ज्ञानलाभ करनेका मार्ग सुगम कर देंगे, औषधालय खोलेंगे, दवाइयाँ मुफ्त बाँटेंगे, रोगियोंकी परिचर्या करेंगे और उनका इलाज करायँगे, दुखियोंके दुःख दूर करेंगे, कोई किसीको सता रहा हो तो उसकी रक्षा करेंगे, किसी देशकी प्रजा पर कोई आपत्ति आई होगी तो उसे हटावेंगे, और उसके स्वत्वोंकी रक्षाके लिए घोर आन्दोलन करेंगे।

जैनसमाजमें जब ऐसे कर्मवीर हो जायँगे और वे अपना कार्य शुरू कर देंगे, तब उन्हें सहायता करनेवालोंकी कमी न रहेगी। जो बी. ए. एम्. ए. आदि समाजकी भलाईके लिए कोई काम नहीं करते हैं उन पर भी इनका प्रभाव पड़ेगा और वे बड़ी प्रसन्नतासे सेवाकार्योंमें लग जायँगे। केवल इतना ही नहीं, सैकड़ों उत्साही अजैन सज्जन भी इनके आत्मबलसे आकर्षित होकर काम करने लगेंगे। इस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तरह यह जैनसमाज स्वयमेव ही उन्नति करने लगेगा और इसकी संख्यामें वृद्धि होने लगेगी।

जैन जनसंख्याकी घटीके कारण बतलाये जा चुके और उन सबके दूर करनेके उपाय भी साथ ही साथ बतला दिये गये; अब केवल एक महान् उपायकी ओर पाठकोंका ध्यान आकर्षित किया जाता है जो सब कारणोंको दूर करनेका एक और अद्वितीय उपाय है, और वह है अज्ञानताको समाजसे हटाना। अज्ञानता ही सारे पापोंकी, सारे अवनतिके कारणोंकी और सारे दुःखोंकी जड़ है। इसीके कारण हमारे आन्दोलन सफल नहीं होते, कुरीतियाँ दूर नहीं होतीं, स्वास्थ्यरक्षा नहीं होती और हमारी संख्या बराबर घटती जाती है। अतएव हमें इसके दूर करनेके लिए हर तरहसे उद्योग करना चाहिए। पुरुषों और स्त्रियों दोनोंमें शिक्षाके और ज्ञानके प्रचारकी आवश्यकता है। यह प्रचार किन किन उपायोंसे होगा, यह बतलानेके लिए इस लेखमें उपयुक्त स्थान नहीं है और हम समझते हैं कि अब इसके बतलानेकी आवश्यकता भी नहीं रही है। विद्यालय, छात्रालय, पुस्तकालय, आदि खोलने, उपदेशादि देनेके उपायोंको सभी जानने लगे हैं।

आदिपुराणका अवलोकन।

(लेखक, श्रीयुत बाबू सूरजभानजी वकील।)

(४)

वेश-भूषा।

इस समय लोगोंको जितनी पृथिवी मालूम है वह जम्बूद्वीपका एक बहुत ही छोटा टुकड़ा है, यहाँतक कि कोई कोई तो इसे भरतखण्डकेही अन्तर्गत मानते हैं; परन्तु इस छोटेसे खण्डमें भी सैकड़ों और हजारों प्रकारके वेष दिखलाई दे रहे हैं और आभूषणोंके विषयमें तो यहाँ तक विभिन्नता हो रही है कि किसी किसी देशमें तो स्त्रियाँ भी आभूषण नहीं पहनती हैं और किसी किसी देशमें पुरुष भी इनका पहनना जरूरी समझते हैं। दूर क्यों जाइए, अपने इस हिन्दुस्तानमें ही पंजाबी, बंगाली, हिन्दुस्तानी, पारसी, गुजराती, मराठी और मद्रासियोंका पहनावा और आभूषण भिन्न भिन्न रूपका है। इसके अतिरिक्त जब हम अबसे सौ दो सौ वर्ष पहलेका हाल मालूम करते हैं तो अबसे भिन्न ही प्रकारके आभूषण पाते हैं और उससे भी सौ दो सौ वर्ष पहले उनसे भी भिन्न तरहके। गरज यह कि इस विचित्र संसारमें स्थान और समयके परिवर्तनके साथ मनुष्योंके वेश भी परिवर्तित हुआ करते हैं।

परन्तु आदिपुराणमें हम इस परिवर्तनका कोई चिह्न नहीं पाते, यह बड़े आश्चर्यकी बात है। उसमें लाखों करोड़ों अर्बों और खर्बों वर्षोंके मध्यवर्ती सुदीर्घ समयोंमें और भरत क्षेत्र, विदेह क्षेत्र तथा स्वर्ग आदिके विभिन्न स्थानोंमें भी वस्त्राभूषणोंकी समानता बराबर दिखलाई देती है।

आभूषण।

कर्मभूमिके आरंभका वर्णन (पर्व ३) पढ़नेसे मालूम होता है कि उस समय नाभिरायने लोगोंको वृक्षोंके फलोंसे जीवननिर्वाह करना बतलाया, मिट्टीके वर्तन बनाकर दिये और उनका बनाना भी सिखलाया। उस समय आभूषण तो क्या बनेंगे, कपड़ोंका भी आविष्कार न हुआ होगा। परन्तु हम देखते हैं कि उस समय भी आदिपुराणमें आभूषणोंका कथन किया गया है और उन्हीं आभूषणोंका जिनका कि प्रत्येक समयके लोगोंके विषयमें किया गया है। जिस समय नाभिरायको मिट्टीके वर्तन बनानेके वास्ते दण्ड चक्र आदि मामूली औजार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी प्राप्त नहीं हुए थे और इस कारण उन्होंने हाथीके कुम्भ-स्थल पर मिट्टी रखकर जैसे तैसे वर्तन बना लिये थे, उस समय सोनेके मुकुट, कुण्डल, हार, बाजूबन्द, घुँघरू, नूपुर, आदि आभूषण बनानेके औजार कहाँसे आये होंगे यह समझमें नहीं आता।

गजकुम्भस्थले तेन मृदा निर्वर्तितानि च।
पात्राणि विविधान्येषा स्थालादीनि दयालुना ॥२०४॥
—पर्व ३।

आदिनाथ भगवानके जन्मके दिन ही इन्द्राणीने भगवानके कानोंमें कुण्डल, गलेमें हार, भुजाओंमें बाजूबन्द, कटक (कड़े), अंगद (अनन्त), कमरमें घुँघरुओंकी तागड़ी, और पैरोंमें बजता हुआ आभूषण (पैंजना) पहनाया (पर्व १४ श्लोक १०–१४)। इसमें जन्मके ही दिन कुण्डल पहनानेकी बात बड़ी विलक्षण है और इससे भी अधिक विलक्षण बात यह है कि भगवान् गर्भसे ही कान छिदे हुए पैदा हुए थे! ग्रन्थकर्त्ताको कुण्डल पहनाना इतना जरूरी मालूम हुआ कि इसके लिए उन्होंने गर्भमें ही कान छिद जानेकी असंभव कल्पनाको कर डाला, पर विना कुण्डल पहनाये उनसे न रहा गया। हम इस बातको बिलकुल असंभव समझते हैं और हमारी इस समझको प्रथम जिनसेनाचार्यकृत हरिवंशपुराण पुष्ट करता है। इस ग्रन्थके आठवें सर्गके श्लोक १७५–७६ में लिखा है कि भगवान्के वज्रके समान कठोर कानोंका इन्द्र वज्रमयी सूची द्वारा बड़ी कठिनतासे छेदन कर सका। कर्णवेधके बाद इन्द्रने भगवान्के कानोंमें कुण्डल पहनाये। आगे चलकर जब भगवान् कुछ बड़े हुए तब वे गलेमें हार और कमरमें घुँघरू पहनते थे (पर्व १४ श्लो० २१३)। इसके बाद उनकी कुमारावस्थाके आभूषण मुकुट, मणिमय कुण्डल, विशालमणिसे शोभित एक हजार आठ लड़ोंका मोतियोंका हार, बाजूबन्द और कमरके घूँघरू थे। (पर्व १५ श्लो० ५–२०।) इसी प्रकार भगवान्की स्त्रियोंके आभूषण मुक्ताहार और बाजने नूपुर वर्णन किये गये हैं। भगवान्के भरत, बाहुबलि और अन्यान्य पुत्रों तथा पुत्रियोंके आभूषण भी लगभग यही बतलाये गये हैं।

आगे चलकर भगवान्के राज्याभिषेकका वर्णन है। उस समय भी उन्हें वे ही आभूषण पहनाये गये हैं, जिनका वर्णन पहले किया जा चुका है (पर्व १६, श्लो० २३४–३७)। फिर दीक्षा कल्याणकके समय इन्द्र आया है और उसने उन्हें दिव्य आभूषण पहनाये हैं; परन्तु पूर्वोक्त आभूषणोंके सिवाय हम देखते हैं कि उसके पास भी और कोई आभूषण न निकले (पर्व १७, श्लो० ११८–२४)।

इससे आगे २६ वें पर्वमें भरत महाराजके उस समयके आभूषणोंका वर्णन है जब वे दिग्वजय करनेको निकले हैं; परन्तु वे भी उन्हीं आभूषणोंमेंसे हैं जिनका वर्णन ऊपर आचुका है, अर्थात् मुकुट, कुण्डल और मणिका हार। दिग्विजयके पश्चात् भरतकी ९६ हजार रानियोंका वर्णन करते हुए उनके हारों और पैरोंके बजनेवाले नूपुरोंकी शोभा बतलाई है (पर्व ३७, श्लोक ९३–९८)। इसी बीचमें कुछ साधारण स्त्रियोंके आभूषणोंका भी जिकर आया है; परन्तु उनके भी कोई जुदा तरहके आभूषण नहीं हैं। विजयार्धकी विद्याधरियोंके (पर्व ४, श्लोक १०० और पर्व १८, श्लोक १९६–२००), नगरकी स्त्रियोंके (पर्व ४३, श्लोक २४८–५१), वनकी स्त्रियोंके (पर्व १९, श्लोक १२९) और गाँवकी स्त्रियोंके (पर्व २६, श्लोक १२६); इस तरह प्रायः सभी स्त्रियोंके प्रायः एकहीसे आभूषण वर्णन किये गये हैं। हार, नूपुर, कड़े, कमरकी तागड़ी, कुण्डल, बस ये ही आभूषण हैं;

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिन्हें ग्रन्थकर्ता सब स्त्रियोंके लिए उपयोगमें लाते हैं।

यह तो हुई भगवान् आदिनाथके समयकी बात; अब आइए, उनके पहले भवोंके समयके भी आभूषण मालूम कर लें। तीर्थंकर भवसे पहले भगवान् सर्वार्थसिद्धिके अहमिन्द्र थे, जहाँ वे सागरों वर्षों तक रहे हैं और उससे भी पहले विदेह क्षेत्रमें राजा वज्रनाभ थे। देखते हैं, कि ग्रन्थकर्त्ता इन वज्रनाभको भी—जो भगवानसे अर्बों पद्मों संखों वर्षोंसे भी बहुत पहले हुए हैं और एक बहुत दूरके भिन्न ही क्षेत्रमें हुए हैं—कुण्डल, हार, बाजूबन्द, और कमरके घुँघरू ही पहनाते हैं (पर्व ११, श्लोक १७–४४)। वज्रनाभसे पहले भगवान्का जीव सोलहवें स्वर्गका इन्द्र था, जहाँ वह सागरों तक रहा और इससे भी पहले राजा सुविधि था, परन्तु वहाँ भी वह कुण्डल, हार, और कटिकिंकिणी पहनता था (पर्व १० श्लो० १२७–३६)। इससे भी कई भवोंके पहले राजा वज्रजंघ और महाबल आदिकी पर्यायोंमें वह लगभग इन्हीं आभूषणोंसे सजाया गया है। स्त्रियोंके विषयमें भी लगभग यही बात है, अर्थात् वे भी प्रायः प्रत्येक समय और देशमें एकहीसे आभूषणोंसे भूषित की गई हैं।

आगे जब हम स्वर्गके देवों और भोग भूमियोंके शृंगारको देखते हैं, तब हमें और भी अधिक आश्चर्य होता है, अर्थात् हमें वहाँ भी इन्हीं आभूषणोंके नाम मिलते हैं। ग्रन्थकर्ता महाराजने सबको एक ही साँचेमें ढालनेका प्रयत्न किया है। यहाँ तक कि उनकी दृष्टिमें कुण्डल पहने बिना देव भी अच्छे न मालूम होते थे, इस कारण उनका कान छिदे हुए ही पैदा होना बतलाया है! उधर भोगभूमियोंको पूर्वोक्त आभूषणोंके साथ 'जनेऊ' का भी सदा पहने रहना बतलाया है! भोगभूमियाँ अव्रती होते हैं, तब मालूम नहीं उनके लिए यज्ञोपवीतका पहनना कैसे ठीक हो सकता है। इसके सिवाय उनके कर्णछेदनसंस्कार नहीं होता है, फिर भी उनके कानोंमें कुण्डल पहना दिये गये हैं।

हमारे देशके लोगोंको यह जानकर आश्चर्य होगा कि आचार्य महाराजने स्त्रियोंके मुख्य आभूषण नथ या बेसरका—जो नाकमें पहना जाता है और स्त्रियोंके सुहागका मुख्य चिन्ह है—तथा काँच, लाख, या हाथीदाँतकी चूड़ियोंका—जिन्हें सौभाग्यवती स्त्रियाँ अवश्य पहनती हैं—क्यों वर्णन नहीं किया। परन्तु हमारी समझमें इसमें आश्चर्यकी बात कोई नहीं है। अवतकके कथन पर अच्छी तरह विचार करनेसे मालूम होता है कि ग्रन्थकर्त्ताने आभूषणोंका जो कुछ वर्णन किया है वह अपने ही समयके और देशके अनुसार किया है। अर्थात् उनके समयमें, उनकी जन्मभूमिमें और उनके परिचित प्रान्तमें स्त्रीपुरुषोंके जो कुछ आभूषण थे, उन्हें ही उन्होंने सब समयों और सब देशोंके लोगोंको पहनाया है। इस बातका विचार ही नहीं किया है कि समय और देशादिके भेदसे पहनाव-ओढ़ावमें परिवर्तन हुआ करता है।

दक्षिण प्रान्तकी स्त्रियाँ अपने बालोंमें फूलोंकी माला गुँधवाती हैं। यह उनका बहुत ही प्यारा शृंगार है। उनके घूँघटरहित खुले सिरमें यह फूलोंका शृंगार मालूम भी बहुत भला होता है। आदिपुराणमें भी हम देखते हैं कि प्रत्येक समय और प्रत्येक देशकी स्त्रियाँ फूल-मालाओंसे सिर गुँधवाये हुए हैं। भगवान्की स्त्रियोंके विषयमें पर्व १५ श्लोक १५ में लिखा है कि उनके सिरके बाल फूलमालाओंसे गुँधे हुए थे, जिनके बंधन ढीले हो गये थे और इस कारण उनमेंसे फूल गिरते थे। भगवान्की माता जब चलती थीं तो उनकी फूलोंसे गुँधी हुई चोटी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ढीली हो जाती थी और उससे फूल झड़ते थे (पर्व १२, श्लोक ५३)। विजयार्धकी विद्याधरियों (पर्व १८, श्लोक १९२) के और स्वर्गकी देवांगनाओं (पर्व ३४, श्लोक, १०६) के विषयमें भी यही लिखा है। यह इस बातका अच्छा सुबूत है कि ग्रन्थकर्त्ताने अपने देशके प्रचलित रीति-रवाजोंका ही वर्णन किया है। दाक्षिणात्य स्त्रियोंमें यह फूल गूँधवानेकी चाल बहुत पुराने समयसे चली आती है। प्रायः सभी समयोंके दाक्षिणात्य कवियोंकी रचनामें इसका उल्लेख मिलता है।

वस्त्र।

वस्त्रोंके विषयमें भी यही बात है। सब देशों और सब समयोंके लिए ग्रन्थकर्त्ताने एक ही प्रकारके वस्त्रोंका वर्णन किया है। पुराने समयकी खोजोंसे मालूम होता है कि, पहले वस्त्रोंमें प्रायः अन्तरीय और उत्तरीय अर्थात् धोती और दुपट्टा ये ही दो वस्त्र पहने जाते थे। ग्रन्थकर्त्ता महाराजके प्रान्तमें तो अब भी बहुतसे लोग इन्हीं दो वस्त्रोंको पहनते हैं और यही कारण है जो आदिपुराणमें वस्त्रोंका नामोल्लेख बहुत ही कम है और जहाँ कहीं है वहाँ इन्हीं दो वस्त्रोंका।

वस्त्रांग जातिके कल्पवृक्षोंके विषयमें लिखा है कि वे कोमल, चिकने और बहुमूल्य रेशमके प्रावार और परिधान देते हैं:—

चीनपट्टदुकूलानि प्रावारपरिधानकं।
मृदुश्लक्ष्णमहार्घाणि वस्त्रांगा दधति द्रुमाः॥ ४८॥
—पर्व ९।

प्रावारका अर्थ ओढ़नेकी चादर और परिधानका अर्थ अधोवस्त्र या धोती है। इससे मालूम होता है कि, भोगभूमियाँ इन्हीं दो वस्त्रोंका उपयोग करते थे।

आगे जब भरतमहाराज दिग्विजयको चले हैं, उस समय लिखा है कि वे सफेद, कोमल और बारीक दो वस्त्र पहने हुए थे (पर्व २६, श्लोक ६२)। सोलहवें स्वर्गके इन्द्रका वर्णन करते हुए उसके कटिवस्त्रका ही उल्लेख किया गया है (पर्व १० श्लोक १८१)। राजा वज्रनाभके वर्णनमें भी कटिवस्त्रकी ही प्रशंसा की गई है (पर्व ११ श्लोक ४४)। इसके सिवाय ग्रन्थमें यदि दृष्टान्तके तौर पर भी कहीं वस्त्रोंका नाम आया है, तो धोती और चादरका ही।

स्त्रियोंके वर्णनमें इतनी विशेषता है कि चादरके स्थानमें उनके स्तनवस्त्रका जगह जगह उल्लेख हुआ है। मालूम नहीं है, इससे ग्रन्थकर्त्ताका अभिप्राय चोलीसे है या साड़ीसे। पर यह वस्त्र भी स्वर्ग और मर्त्यलोकमें सर्वत्र एकसा है। आठवें पर्वके २४–२५ वें श्लोकमें लिखा है–जलक्रीड़ाके समय श्रीमती श्री वज्रजंघ पर पानी फेंकना चाहती थी; परन्तु ऐसा करते समय स्तनवस्त्रके खिसक जानेसे वह लज्जित होकर रह जाती थी और उसका स्तनवस्त्र पानीसे भीगकर स्तनोंसे चिपककर अपूर्व शोभा देता था। आगे पर्व १२ श्लोक ३४ में माता मरुदेवीका स्वरूप वर्णन करते हुए लिखा है कि कुंकुम लगे हुए और वस्त्रसे ढके हुए उसके दोनों स्तन ऐसे मालूम होते थे, मानों आकाशगंगामें लहरोंसे रुके हुए दो चक्रवाक ही हैं। इसी प्रकार अन्य स्त्रियोंके भी स्तनवस्त्रका कथन आया है और स्वर्गके देवियोंके भी स्तनवस्त्रोंकी शोभाका वर्णन किया गया है। गरज यह कि, स्त्रियोंके वस्त्र भी सर्वत्र और सब समयोंमें एकसे बतलाये गये हैं।

विलेपन।

आजकल कोई कोई ब्राह्मण अपने सारे शरीरको विशेष कर छातीको चन्दनसे लीपते हैं। मालूम होता है कि ग्रन्थकर्त्ताके समयमें इसका बहुत अधिक प्रचार था। क्योंकि आदिपुराणमें स्वर्गोंके देवों, भोगभूमियों, सारे क्षेत्रों और सारे ही समयोंके कर्मभूमियोंके शृंगारमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उनकी छाती पर लगे हुए चन्दनकी शोभाका वर्णन किया गया है । (देखो पर्व ३ श्लो० ७८, पर्व ६ श्लो० ३६, पर्व २६ श्लोक ६१, पर्व ३१ श्लो० ३९।) स्त्रियोंकी छातियों पर भी चन्दनके लेपका जगह जगह उल्लेख है। (देखो पर्व १८ श्लो० १४, पर्व ९ श्लो० ११ आदि।)

मालूम होता है, उस समय स्त्रियोंमें स्तनों पर और स्तनोंके चूचुकोंपर भी केसर लगानेकी रीति थी । यह बहुत ही शोभाकी बात समझी जाती थी। अप्सराओं और देवांगनाओंके विषयमें भी इसका कथन किया है, यहाँ तक कि भगवान्‌के समवसरणमें जो बावड़ियाँ बनी हुई थीं, उनमें देवांगनाओंके नहाने और उनके स्तनों पर लगी हुई केसरके धुल जानेसे उनका पानी पीला हो जाता था (पर्व २२, श्लो० १७४)।

स्त्रियोंके तलवोंको लाक्षारस (महावर) से रँगने और कपोलों पर चित्र बनानेका भी प्रायः सर्वत्र ही वर्णन है और इन रीतियोंको भी नारियों और देवांगनाओंमें सबमें एकसा चलाया है।

सारांश इन सब बातोंका यह है कि ग्रन्थकर्ताने वेष भूषादिके सम्बन्धमें जो कुछ वर्णन किया है, उससे इस बातका पता नहीं लग सकता कि जिन जिन प्राचीन कालोंकी और जिन जिन स्थानोंकी कथायें लिखी गई हैं, उन सब कालों और स्थानोंके रीति रवाज और पहननेओढ़ने आदिके ढंग क्या थे। अधिकसे अधिक ग्रन्थकर्त्ताके समयकी और परिचयकी ही वेषाभूषासम्बन्धी बातें इस ग्रन्थसे मालूम हो सकती हैं। उन्हें दिव्यध्वनिके अनुसार 'बावन तोला पाव रत्ती' समझ लेना, या उन परसे प्राचीन ऐतिहासिक खोज करनेकी आशा रखना मूर्खता नहीं तो भोलापन अवश्य है। *

सतयुगकी वेश्यायें।

जैनहितैषीके गत अंकमें श्रीयुत बाबू सूरजभानजी वकीलने अपने 'आदिपुराणका अवलोकन' शीर्षक लेखमें यह दिखलाया था कि सतयुगमें वेश्याओंका बहुत अधिक आदर था। इस पर जैनमित्रके श्रद्धालु सम्पादक ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीने लिखा है कि चौथे कालमें ऐसी व्यभिचारिणी वेश्यायें नहीं हो सकती हैं जैसी कि आजकल होती हैं। वे तो नाच-गाकर ही लोगोंका चित्त प्रसन्न करती थीं। यह एक ऐसी बात है कि, जिसे साधारण बुद्धिका आदमी भी नहीं मान सकता है कि जो बड़ी बड़ी सभाओंमें, दरबारोंमें अपने रूपको और हावभावविलासोंको दिखाकर लोगोंको रिझाती हैं, वे शीलवती या पतिव्रता होती होंगी। हमारी समझमें ब्रह्मचारीजीका हृदय भी इस बातको न मानता होगा, परन्तु उन्हें लोगोंकी श्रद्धा घट जानेका बड़ा डर है, और श्रद्धालु समाजमें अपनी श्रद्धा बनाये रखनेका बड़ा चाव है, इस लिए हृदयसे विरुद्ध भी उन्हें ऐसी ऐसी बेसिरपैरकी बातें लिखनेके लिए विवश होना पड़ता है।

आदिपुराणके जो श्लोक उस लेखमें दिये गये थे उनमें वारनारी, वारयोषा, वेश्या, गणिका आदि शब्दोंका प्रयोग किया गया है। इन शब्दोंका वह अर्थ किसी भी जैन अजैन कोशमें नहीं मिलता है, जो ब्रह्मचारीजी करना चाहते हैं। 'वारस्य

---

* यह लेख बहुत बड़ा था—इससे लगभग ढाई गुना होगा; परन्तु स्थानकी कमीसे संक्षिप्त कर दिया गया है। संक्षिप्त करनेमें यदि कोई गलती हो गई हो, तो उसका उत्तरदायित्व सम्पादक पर है—लेखक पर नहीं। —सम्पादक।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जनसमूहस्य योषा साधाणत्वात् वारयोषा।' अर्थात् जो जनसमूहकी स्त्री हो, उसे वारयोषा या वार-नारी कहते हैं। और 'गणः समूहोऽस्यस्याः भर्तृत्वेन गणिका।' अर्थात् जिसका पुरुष-समूह पति हो, उसे गणिका कहते हैं। प्रायः सर्वत्र ही इन शब्दोंकी व्युत्पत्ति इसी रूपमें की गई है। अतः इन शब्दोंका और कोई अर्थ बतलाना जबर्दस्ती है।

और ब्रह्मचारीजीने आदिपुराणको भी तो अच्छी तरह देखनेकी कृपा नहीं की। उसमें ही ऐसे कई प्रसङ्ग इन सतयुगकी वेश्याओंके सम्बन्धमें आये हैं, जिनसे उनका व्यभिचारिणी होना ही सिद्ध होता है, ब्रह्मचारिणी नहीं।

१. आदिपुराणके पर्व ४६ में एक कथा लिखी है कि पुष्कलावती देशकी पुण्डरीकिनी नगरीका राजा गुणपाल था। एक दिन उसके सामने नाट्यमाला नामकी एक नटपुत्रीने बहुत ही बढ़िया नृत्य किया। उसे देखकर राजाको बहुत ही विस्मय हुआ। तब उत्पलमाला नामकी वेश्या बोली—महाराज, नटिनीके इस नृत्यमें कौनसा आश्चर्य है? आश्चर्यकी बात तो यह है कि इस नगरके सेठ कुबेरप्रियका मन डिगानेके वास्ते मैंने एक दिन बहुत प्रयत्न किया, परन्तु न डिगा सकी। इस पर राजा प्रसन्न हुआ और बोला कि वर माँग। वेश्याने शील पालनेका वर माँगा; कहा कि मुझे शील ही प्यारा है। राजाने वर दे दिया और उसने शीलव्रत धारण कर लिया। दूसरे दिन रातको सर्वरक्षित नामका कोतवाल उसके पास आया। वेश्या बोली, मैं तो रजस्वला हूँ। इतनेमें ही राजाका साला प्रथुधी-जो मंत्रीका पुत्र था—वहाँ आ पहुँचा। यह देख वेश्याने कोतवालको तो सन्दूकमें छुपा दिया और प्रथुधीसे कहा, तुमने जो मेरे सारे आभूषण अपनी बहनको दे दिये थे, उन्हें वापस ले आओ। वह बोला—हाँ, अभी लाता हूँ। पीछे उसने सुना कि वैश्याने शीलव्रत ले लिया है, इस लिए वह प्रतिकूल हो गया और आभूषण नहीं लाया। दूसरे दिन वेश्याने कोतवालको गवाह बनाकर अपना मामला दरबारमें पेश किया। परन्तु पृथुधी आभूषणोंकी बातसे इंकार कर गया। तब राजाने अपनी रानीसे इस विषयमें पूछा। उसने सारे आभूषण सामने लाकर रख दिये। इस पर राजा अपने साले पर बहुत कुपित हुआ और बोला—इसे मार डालो।

यह कथा उक्त पर्वके २८९ वें से लेकर ३१० वें तकके श्लोकोंमें लिखी गई है। जिन पाठकोंको कुछ सन्देह हो वे वहाँ देख सकते हैं। उत्पल मालाके लिए वहाँ गणिका शब्दका ही प्रयोग किया गया है। कथासे साफ साफ मालूम होता है कि वह व्यभिचारिणी थी और सर्वरक्षित, पृथुधी आदि व्यभिचारके लिए ही उसके यहाँ आया करते थे। कमसे कम कुबेरप्रिय सेठके साथ तो वह व्यभिचार ही करना चाहती थी। मैं शीलव्रत ग्रहण करती हूँ, इसका अर्थ ही यह है कि मैं पहले व्यभिचारिणी थी।

२. इसी पर्वमें भीम नामक दरिद्रीकी कथाका वर्णन करते हुए लिखा है कि मुनिराजने उसे आठ व्रत दिये थे, जिन्हें उसके पिताने नापसन्द किया और वह भीमको उन्हें वापस करानेके लिए मुनिके पास लेकर चला। मार्गमें भीमने इन आठों व्रतोंसे विपरीत चलनेवाले आठ मनुष्योंको देखा, जिन्हें घोर दण्ड मिल रहा था। उनमें एक ऐसे अपराधीको भी देखा जिसने सेठके घरसे एक बहुमूल्य हार चुराकर वेश्याको दे दिया था। इससे भी मालूम होता है कि वह वेश्या व्यभिचारिणी थी और धनके बदलेमें अपना शरीर वेचती थी। मूल श्लोकमें यहाँ भी गणिका शब्दका ही प्रयोग हुआ है—'चौर्येण गणिकायै समर्पणात्।' (पर्व ४६, श्लो० २७५।)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३. पर्व ८ में एक पुरुषके विषयमें लिखा है कि, उसने एक दिन राजाके कुठारियोंसे जबर्दस्ती घी चावल आदि छीनकर वेश्याओंको दे दिये–" बलादादाय वेश्याभ्यः संप्रायच्छत दुर्मदी ' (श्लो० २२५)। यहाँ वेश्या शब्दका प्रयोग हुआ है।

४. पर्व ६, श्लोक १८१ में महापूत चैत्यालयकी दीवारोंको वेश्याओंकी उपमा दी गई है:—

वर्णसांकर्यसम्भूतचित्रकर्मान्विता अपि।
यद्भित्तयो जगच्चित्तहारिण्यो गणिका इव ॥

अर्थात् उस मन्दिरकी दीवालें ठीक वेश्याओंके समान थीं। जिस तरह वेश्यायें वर्णसंकरतासे उत्पन्न हुए विचित्र पापकर्मोंकी करनेवाली होकर भी संसारकी चित्त हरण करती हैं, उसी प्रकार वे दीवालें भी अनेक वर्णोंसे बनाये हुए चित्रोंसे जगत्का चित्त हरण करती थीं। इसमें वेश्याओंको जो ' वर्णसांकर्यसंभूताचित्रकर्मान्विता ' विशेषण दिया है, वह बतलाता है कि, वेश्यायें अनेक वर्णके लोगोंसे सम्बन्ध रखती थीं।

५. पर्व ४ के ७२ वें श्लोकमें गन्धला देशकी नदियोंको वेश्याओंकी उपमा दी है और उसमें उन्हें वेश्याओंके समान सर्वभोग्या (सबके द्वारा भोगी जानेवालीं) बतलाया है:—

विपंका ग्राह्यवात्यश्च स्वच्छाः कुटिलवृत्तयः।
अलंघ्याः सर्वभोग्याश्च विचित्रा यत्र निम्नगाः ॥

इन प्रमाणोंसे अच्छी तरह सिद्ध होता है कि आदिपुराणके कर्त्ता वेश्याओं या गणिकाओंको ब्रह्मचारिणी या शीलवती नहीं समझते थे, जैसा कि ब्रह्मचारीजी समझते हैं। अतएव अब ब्रह्मचारीजीको लोगोंकी श्रद्धा बनाये रखनेके लिए और अपनी श्रद्धालुता प्रकट करनेके लिए कोई दूसरा प्रयत्न करना चाहिए।

हमें भय है कि ब्रह्मचारीजी अब कहीं सतयुगके मद्यको भी पवित्र और जीवराशिरहित सिद्ध करनेका प्रयत्न न करने लगें।

अलंकारोंसे उत्पन्न हुए देवी-देवता।

(ले०, श्रीयुत बाबू सूरजभानजी वकील।)

इस देशके साहित्यमें अलङ्कारोंकी भरमार है। यहाँके कवि और आचार्य सदासे ही अलङ्कार शास्त्रके भक्त रहे हैं। उन्होंने साधारणसे साधारण बात कहनेमें भी अलंकारोंका प्रयोग किया है। इन अलंकारोंने जहाँ यहाँके साहित्यकी शोभाको बढ़ाया, वहाँ एक हानि भी पहुँचाई है। इनकी कृपासे प्रकृतिके अनेक दृश्य वास्तविक देवी देवता बन गये हैं और सर्व साधारणमें माने पूजे जाने लगे हैं। भारतकी सभ्यता और साहित्यका प्राचीन इतिहास लिखनेवाले विद्वानोंने इस बातको भली भाँति सिद्ध कर दिया है कि हिन्दू पुराणोंके अनेक देवी देवता और उनकी कथायें वेदोंके आलंकारिक वर्णनोंसे गढ़ी गई हैं, जैसा कि ऋग्वेदके सूर्य और उषाके आलंकारिक वर्णनसे सूर्य देवता और उसकी पुत्री उषाकी अद्भुत कथाका गढ़ा जाना प्रसिद्ध है।

हम देखते हैं कि जैनधर्मके कथाग्रन्थोंमें भी अलङ्कारोंने वास्तविकताका रूप धारण कर लिया है और बहुतसे देवी देवताओंके अस्तित्वको जैनधर्मके श्रद्धालुओंके हृदयमें स्थापित कर दिया है।

श्री (शोभा), ह्री (लज्जा), धृति (धीरज), कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी (विभूति) ये छः बातें मनुष्यकी बड़ाईकी हैं और ये बड़े मनु-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ष्योंकी प्रशंसा करनेके व्यवहारमें लाई जाती हैं। ये छहों शब्द स्त्रीलिंग हैं, इस कारण आलंकारिक वर्णनोंमें इन्हें स्त्रीका रूप दिया गया है। पृथक् पृथक् छः स्त्री मानकर ही इनका कथन किया जाता है। जैसा कि आदिनाथ भगवानकी माताके विषयमें लिखा है कि श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि, और लक्ष्मी ये छः देवियाँ अपने अपने गुणोंसे माताकी सेवा करने लगीं। श्रीने शोभा बढ़ाई, ह्रीने लज्जा बढ़ाई, धृतिने धीरज बढ़ाया, कीर्तिने यश फैलाया बुद्धिने बोध दिया, और लक्ष्मीने विभूति बढ़ाई। इस सेवाके संस्कारसे माता ऐसी सुशोभित होने लगी जैसे अग्निके संस्कारसे मणि:—

श्रीह्रीधृतिश्च कीर्तिश्च बुद्धिलक्ष्म्यौ च देवताः ।
श्रियं लज्जां च धैर्यं च स्तुतिं बोधं च वैभवम् ॥
तस्यामादधुरभ्यर्णवर्तिन्यः स्वानिमान् गुणान् ।
तत्संस्काराच्च सा रेजे संस्कृतेवाग्निना मणिः ॥१७१॥

—आदिपुराण पर्व १२ ।

आदिपुराणमें इसी प्रकार और भी अनेक महान् पुरुषोंके वैभव, ज्ञान और यशकी प्रशंसा इन तीनों विशेषणोंको तीन स्त्री मानकर और उनका लक्ष्मी, सरस्वती और कीर्ति नाम रखकर ही की गई है। वज्रदन्त चक्रवर्तीके विषयमें पर्व ६ में लिखा है कि वह लक्ष्मीको तो छाती पर धारण करता था और सरस्वतीको मुखकमलमें, परन्तु अतिशय प्यारी कीर्तिको उसने अकेली ही लोकके अन्ततक भेज दिया था:—

स बिभ्रद्वक्षसा लक्ष्मीं वक्त्राब्जेन च वाग्वधूं ।
प्राणप्रियामिव लोकान्तं प्राहिणोत्कीर्तिमेकिकां २००

आगे पर्व ११ में वज्रनाभिके विषयमें लिखा है कि लक्ष्मी और सरस्वती उससे बहुत ही ज्यादा प्रेम करती थीं, यह देखकर उसकी कीर्ति ईर्षावश चली गई थी—दिगन्तव्यापिनी हो गई थी:—

तस्मिंल्लक्ष्मीसरस्वत्योरतिवाल्लभ्यमाश्रिते ।
ईर्षयेवाभजत्कीर्तिर्दिगंतान्विधुनिर्मला ॥ ३४ ॥

आगे पर्व १५ में लिखा है कि भगवान् आदिनाथकी बुद्धि और कल्पान्त कालतक रहनेवाली कीर्ति, ये दो ही प्यारी स्त्रियाँ थीं; लक्ष्मीपर उनका बहुत कम प्रेम था। क्योंकि वह बिजलीके समान चंचल होती है:—

सरस्वती प्रियास्यासीत्कीर्तिश्चाकल्पवर्तिनी ।
लक्ष्मीं तडिल्लतालोलां मन्दप्रेम्णैव सोवहत् ॥ ४८ ॥

इसी प्रकार पर्व ३१ में भरतजीकी स्तुति करते हुए लिखा है कि आपकी कीर्ति निरंकुश होकर सारे लोकमें अकेली फिरा करती है और सरस्वती वाचाल है, न जाने स्वामिन्, आपको ये दोनो स्त्रियाँ क्यों प्यारी हो रही हैं:—

भ्रमत्येकाकिनी लोकं शश्वत्कीर्तिरनर्गला ।
सरस्वती च वाचाला कथं ते ते प्रिये प्रभो १०६

यद्यपि श्रीका अर्थ शोभा और लक्ष्मीका अर्थ विभूति होता है; परंतु श्रीका अर्थ भी लक्ष्मी होता है, इस कारण इन दोनों शब्दोंको एकार्थवाची मानकर आदिपुराणमें लक्ष्मीको भी प्रायः शोभा या सुन्दरताके अर्थमें व्यवहृत किया है और उसे स्त्री मानकर उसके अनेक रूपक बनाये हैं। जैसे राज्यलक्ष्मी, स्वर्गलक्ष्मी, वनलक्ष्मी, तपोलक्ष्मी, वीरलक्ष्मी, शरल्लक्ष्मी आदि।

राज्यलक्ष्मी । राजपुत्र वज्रजंघकी प्रशंसामें लिखा है कि वह राज्यलक्ष्मीके कटाक्षोंका निशाना बन गया था:—'राज्यलक्ष्मीकटाक्षाणां लक्ष्यतामगमत्कृती ।' (पर्व ६, श्लो० ४५)। आगे वज्रनाभिकी प्रशंसामें लिखा है कि वे राज्यलक्ष्मीके समागमसे सन्तुष्ट थे—'राज्यलक्ष्मीपरिष्वंगाद्वज्रनाभिस्तुतोष सः ।' (पर्व ११, श्लो० ५०)।

स्वर्गलक्ष्मी । ललितांग देवकी देवी स्वयंप्रभा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपने पतिकी गोदमें ऐसी मालूम होती थी मानों स्वर्ग-लक्ष्मी ही रूप धारण करके बैठी है—'पत्युरंकगता रेजे कल्पश्रीरिव रूपिणी ।' (पर्व ५, श्लो० २९०) । यहाँ लक्ष्मीके वास्ते श्री शब्द आया है और स्वर्गलक्ष्मीका अर्थ स्वर्गकी समस्त शोभा है । भगवानके जन्माभिषेकके समय स्वर्गसे छोटी छोटी बूँदोंके साथ जो पुष्पवृष्टि हो रही थी वह ऐसी मालूम होती थी, मानों स्वर्गलक्ष्मीके आनन्दके आँसू पड़ रहे हों—'मुक्तानन्दाश्रुबिन्दूनां श्रेणीवत्रिदिवश्रिया ।' (पर्व १३, श्लो० २०४) । पर्व ६ में यशोधर तीर्थंकरका कथन करते हुए लिखा है कि उस समय चारों तरफ पुष्पवृष्टि हो रही थी और उन पुष्पों पर बैठे हुए भ्रमर ऐसे मालूम होते थे, मानों भगवानके दर्शनके लिए स्वर्गलक्ष्मीने अपने नेत्र भेजे हों—'स्वर्गलक्ष्म्येव तं द्रष्टुं प्रहिता नयनावली ।' (श्लो०८७)।

वनलक्ष्मी । राजा वज्रजंघने जब वनमें डेरा डाला तब वहाँ कपड़ोंके बने हुए तम्बू ऐसे जान पड़ते थे मानों वनलक्ष्मीने आगामी होनेवाले तीर्थंकरके लिए मन्दिर ही तैयार किये हों—'क्लृप्ता वत्स्र्यज्जिनस्यास्य वनश्रीभिरिवालयाः ।' (पर्व ८, श्लो० १६१) । पर्व २७ में लिखा है कि अपनी पूँछका भार धारण करता हुआ यह मोर इस प्रकार धीरे धीरे चल रहा है, मानों अपनी पूँछके द्वारा वनलक्ष्मीके केशपाशकी ही शोभाको बढ़ा रहा है—'कलापी बर्हभारेण मन्दं मन्दं व्रजत्यसौ । केशपासश्रियं तन्वन्वनलक्ष्म्यास्तनूरुहैः । (श्लोक ७५) । इसी वनकी शोभामें लिखा है कि वनके घने वृक्ष ऐसे जान पड़ते थे, मानों वनलक्ष्मीने मण्डप बनाये हों और छोटे छोटे सरोवर ऐसे जान पड़ते थे, मानों वनलक्ष्मीने प्रपा या प्याऊ ही बिठाई हों—'त्वद्भक्त्यै वनलक्ष्म्येव मंडपा विनिवेशिताः ।' (८१) । स्थापिता वनलक्ष्म्येव प्रपा भ्रांतिमक्लृच्छिदः ।' (८२) ।

तपोलक्ष्मी । महाराज वज्रसेन तपोलक्ष्मीके समागमसे बहुत सन्तुष्ट थे—'तपोलक्ष्मीसमासंगाद्गुरुरस्याति पिप्रिये ।' (पर्व ११-५०) धरणेन्द्रने भगवान्के शरीरको तपोलक्ष्मीसे आलिंगित देखकर आश्चर्य किया—'विसिष्मिये तपोलक्ष्म्या परिरब्धमधीद्धया ।' (प०१८,१०५)

मोक्षलक्ष्मी । महाराज वज्रसेनने दीक्षा लेकर मोक्षलक्ष्मीको प्रसन्न किया-'परिनिष्क्रम्य चक्रेसौ मुक्तिलक्ष्मीं प्रमोदिनीं ।' (११-४७) । भगवन्, मुक्तिलक्ष्मी बहुत ही उत्सुक होकर आपमें प्रेम रखती है—'त्वयि प्रणयमाधत्ते मुक्तिलक्ष्मीः समुत्सुका ।' (१३-४६) ।

जयलक्ष्मी । वक्षःस्थल पर रहनेवाली लक्ष्मीके गृह तक ऊँचे पहुँचे हुए भगवान्के दोनों कन्धे ऐसे सुशोभित होते थे, मानों जयलक्ष्मीके निवास करने योग्य दो ऊँची अटारी हों—'जयलक्ष्मीकृतावासौ तुंगावट्टालिकाविव ।' (१५-१९) । जयलक्ष्मीने बड़े प्रेमसे भरतकी भुजाओंकी अधीनता स्वीकार की थी ।—'जयश्री भुजयोरस्य बबन्ध प्रेमनिघ्नतां ।' (१५-१९५)। भगवान्के पुत्रोंकी छाती लक्ष्मी द्वारा आलिंगित थी और उनके कंधे विजयलक्ष्मीसे आलिंगन किये हुए थे ।—'वक्षो लक्ष्म्या परिष्वक्तमंसौ च विजयश्रिया ।' (१६-२९) ।

शरल्लक्ष्मी । शरतऋतुरूपी लक्ष्मी बड़ी भली मालूम होती थी; नीलकमल उसके नेत्र और सफेद कमल उसका मुख था ।—'नीलोत्पलेक्षणा रेजे शरच्छ्री पंकजानना ।' (२६-१२) ।

वीरलक्ष्मी । इन्द्रकी भुजाओं पर नाचती हुई देवांगनायें वीरलक्ष्मियोंके समान जान पड़ती थीं ।—'अध्यासीना भुजानस्य वीरलक्ष्म्य इवापराः । (१४-१४०) ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस प्रकार अनेक विशेषणोंको स्त्रीका या लक्ष्मीका रूप देते हुए संसारकी सारी ही शोभाओंको समुच्चयरूप लक्ष्मीका रूप दे दिया गया है और होते होते वह सुन्दरताकी एक आलंकारिक देवी बन गई है।

१. पर्व १४ वें में लिखा है कि इन्द्रकी भुजाओं पर नाचती हुई देवांगनायें ऐसी मालूम होती थीं मानों अनेक शरीर धारण कर मूर्तिमान लक्ष्मी ही नृत्य कर रही हो।–'रेजिरे परिनृत्यन्तो मूर्तिमन्ता इव श्रियः। (३९)। इसमें शोभाको ही लक्ष्मी बनाया है।

२. उसके पैरोंमें शंख चक्र आदि शुभ लक्षण ऐसे सोहते थे, मानों लक्ष्मीने ही ये सब लक्षण अंकित किये हों–' शंखचक्रांकुशादीनि लक्षणान्यस्य पादयोः। बभुरालिखितानीव लक्ष्म्या लक्ष्माणि चक्रिणः।' (६–१९८)। इसमें लक्ष्मी शोभाकी एक अधिकारिणी देवी बन गई है।

३. भगवानकी दोनों जंघायें ऐसी कान्तियुक्त थीं मानों स्वयं लक्ष्मीने ही उनको उबटन मलकर उज्ज्वल किया हो–' लक्ष्म्येवोद्वर्तिते भर्तुः परां कान्तिमवापतां।' (१५–२५)।

४. बाहूबलिके दोनों उरु ऐसे मालूम होते थे, मानों वे लक्ष्मीकी हथेलीके बार बार स्पर्श होनेसे ही बहुत उज्ज्वल हो गये हों–।–' लक्ष्मीतलाजस्रस्पर्शादिव समुज्ज्वलौ।' (२६–२०)।

इस प्रकार शोभा या सुन्दरताको एक स्त्रीका रूपक देकर और उसका नाम श्री या लक्ष्मी रखते रखते मनुष्योंकी सुन्दरताके वर्णनमें उसकी उपमा भी दी जाने लगी। यथा–पर्व ६ श्लोक ५९ में वज्रदन्तकी रानीको लक्ष्मीके समान सुन्दर बतलाया है।–' लक्ष्मीरिवास्यकान्तांगी लक्ष्मीमतिरभूत्प्रिया।' वज्रदन्तकी कन्याको भी लक्ष्मीके समान कान्तियुक्त लिखा है–' सत्प्रसूतिरियं सूता यया लक्ष्मीसमद्युतिः। (७–२५९)। नाभिराजा मरुदेवीको रूप और लावण्यमें लक्ष्मीके समान मानते थे।–' रूपलावण्यसम्पत्या पत्या श्रीरिव सा मता।' (१२–६३)। भगवानके समीप बैठी हुई उनकी स्त्री ऐसी शोभती थी मानों साक्षात् लक्ष्मी ही हो। 'लक्ष्मीरिव रुचिं भेजे भर्तुरभ्यर्णवर्तिनी। (१५–१२१)

इस प्रकार शोभा या सुन्दरता एक देवी मान ली गई। इसके बाद अब उसके लिए और और भी तैयारियाँ हुई। उसके स्नानघर, खेलनेके स्थान आदि भी कल्पित किये गये।

उसकी विशाल छाती हारकी किरणोंके जलसे भरी हुई ऐसी मालूम होती थी, मानों लक्ष्मीके स्नान करनेका धारागृह ही हो। 'पृथुवक्षो बभारासौ हाररोचिर्जलप्लवं, धारागृहमिवोदारं लक्ष्म्या निर्वापणं परं।' (४–१८०)। राजा महाबलका ऊँचा और विस्तीर्ण ललाट ऐसा मालूम होता था, मानों लक्ष्मीके विश्रामके लिए सुवर्णमय शिलातल ही हो। 'लक्ष्म्या विश्रान्तये क्लृप्तमिव हैमं शिलातलं।' (४–१७४)। उसके दोनों कन्धे लक्ष्मीके विहार करनेके क्रीडापर्वत सरीखे मालूम होते थे। 'क्रीडाद्रिरुचिरौ लक्ष्म्या विहारायेव निर्मितौ।' (४–१४१)। उसकी छाती पर लटकती हुई हारवल्लरी लक्ष्मीदेवीके झूलनेकी रस्सी जैसी मालूम होती थी। 'लक्ष्मीदेव्या इवान्दोलनवल्लरी हारवल्लरी।' (१५–१९४)। इसमें लक्ष्मीके साथ देवी विशेषण भी स्पष्ट रूपसे लगा दिया गया है। भगवानके उरु लक्ष्मीदेवीके झूलेके खंभोंके समान मालूम होते थे।—' लक्ष्मीदेव्या इवान्दोलस्तंभयुग्मकमुच्चैकैः।' (१५–२४)। भरतका ऊँचा और गोल सिर विधाताके बनाये हुए लक्ष्मीके दिव्य छत्रके समान जान पड़ता था।—' धात्रा निवेशितं दिव्यमातपत्रमिव श्रियः।' (१५–१७४)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन उदाहरणोंसे पाठकोंने जान लिया होगा कि एक ही अलंकार अधिक काममें आनेसे किस प्रकार आहिस्ता आहिस्ता देवी देवताका स्वरूप धारण करने लगता है।

आदिपुराण जैसे संस्कृत काव्यग्रन्थोंको पढ़नेसे मालूम होता है कि संस्कृतके कवि संसार भरकी सब वस्तुओंमें कमलको ही सबसे अधिक सुन्दर और शोभायमान मानते हैं। इसी कारण वे स्त्री-पुरुषोंके आँख, मुख, हाथ, पैर और स्तन आदि अंगोंको प्रायः कमलोंकी ही उपमा दिया करते हैं। इसीसे हिन्दीके एक प्रसिद्ध लेखकने एक बार लिखा था कि संस्कृत कवियोंने तो सुन्दर मनुष्यको मानो कमलोंका ही एक ढेर बना दिया है।

जब कमल इतने सुन्दर माने गये हैं, तब सुन्दरताकी आलंकारिक देवी लक्ष्मीका निवास कमलोंको छोड़कर भला और कहाँ हो सकता था? पर्व २२ में ध्वजाओंकी शोभा वर्णन करते हुए लिखा है कि उन ध्वजाओंमें जो कमल बने हुए थे उनकी शोभा अद्वितीय थी। इसी कारण लक्ष्मी सारे कमलोंको छोड़कर उनमें ही जा बसी थी।—'कंजान्युत्सृज्य कार्त्स्न्येन लक्ष्मीस्तेषु पदं दधे।' (पर्व २२–२२७)।

इस तरह कमलोंमें ही लक्ष्मी अर्थात् शोभाको मानते मानते और सुन्दर स्त्री-पुरुषोंके चरणोंको कमलोंकी उपमा देते देते उनके चरणोंमें ही लक्ष्मीका निवास बतलाया जाने लगा। यथा—मरुदेवीके चरण कमलके समान थे और उनमें साक्षात् लक्ष्मी निवास करती थी। उन चरणोंकी अंगुलियाँ कमलकी पँखुरियों और नखोंकी कान्ति कमलकी केसरके समान थी।—'मृद्वंगुलिदले तस्याः पादाब्जे श्रियमूहतुः। नखदीधितसन्तानलसत्केसरशोभिनी। (१२–१९)। पर्व ४ के श्लोक १८७, १५ के २०६ और १६ के श्लो० २२ में भी इसी तरह चरणोंको कमल और लक्ष्मीका निवास वर्णन किया है।

इस प्रकार लक्ष्मी अर्थात् शोभाका वास कमलमें माननेसे और लक्ष्मीको स्त्रीका रूपक देकर आलंकारिक वर्णनोंमें उसका अति व्यवहार करनेसे उसको सुन्दरताकी एक विशेष देवी मान लिया है और फिर धीरे धीरे कमलोंको लक्ष्मी देवीका ही निवासस्थान मान लिया है। अब जरा आगे चालिए।

अनेक रत्नोंकी किरणोंसे अत्यन्त मनोहर राजा सुविधका विशाल वक्षःस्थल ऐसा मालूम होता था, मानों कमलनिवासिनी लक्ष्मीका अनेक जलते हुए दीपकोंसे शोभायमान निवासस्थान ही हो।—'ज्वलद्दीपमिवांभोजवासिन्या वासगेहकं।' (१०–१३१)। मरुदेवीने चौथे स्वप्नमें अपनी ही शोभाके समान लक्ष्मी देखी। लक्ष्मी कमलमय ऊँचे सिंहासन पर बैठी हुई थी और दो देव-हाथी अपनी सूँड़में दबाये हुए स्वर्ण घड़ोंसे उसका अभिषेक कर रहे थे।—'पद्मां पद्ममयोत्तुंगविष्टरे सुरवारणैः। स्नाप्या हिरण्मयैः कुंभैरदर्शत्स्वमिव श्रियं।'(१२–१०७)।

इस प्रकार अलंकारोंसे ही सचमुचकी एक देवी बनकर उसका निवासस्थान भी हिमवान् पर्वत पर कायम कर दिया है। पर्व ३२ के १२१ वें श्लोकमें लिखा है कि इस पर्वतके मस्तक पर पद्मनामका सरोवर है जिसमें श्रीदेवीका निवास है। यह सरोवर स्वच्छ जल और कमलोंसे सुशोभित है:—

'मूर्ध्निपद्महदोऽस्यास्ति धृतश्रीर्बहुवर्णनः।
प्रसन्नवारिरुत्फुल्लहेमपंकजमण्डनः॥

फिर इसी प्रकार छः कुलाचलोंमेंसे एक एक पर क्रमसे छहों देवियोंका निवास स्थापन कर दिया है और उन्हें जिनमाताकी सेवा करनेवाली बतलाया है:—

कुलाद्रिनिलया देव्यः श्रीह्रीधीधृतिकीर्तयः।
समं लक्ष्म्या षडेताश्च संमता जिनमातृकाः ३८–१२६

इस प्रकार इन देवियोंके निवासस्थान कुलपर्वत स्थिर हो गये और फिर ये निवासस्थान भी अलंकाररूपसे उपयोगमें लाये जाने लगे। देखिए:—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भरतके भुजदण्ड बहुत ही लम्बे थे और उन पर निवास करनेवाली लक्ष्मी उन्हें कुलपर्वत समझकर बहुत सन्तुष्ट रहती थी ।–' बाहुदंण्डस्य...। कुलशैलास्थया नूनं तेने लक्ष्मीः परां धृतिं । ' (१५–१९५)। बाहुबलिकी गहरी नाभि लक्ष्मीके कुलाचलपर्वतस्थ तालावके समान जान पड़ती थी ।–' कुलाद्रिरिव पद्मायाः सेवनीयं महत्सरः ।' (१६–१८)।

इस प्रकार सचमुचकी देवियाँ और उनका निवासस्थान स्थापित होकर फिर उनके कामोंका भी वर्णन होने लगा । जैसे कि भगवान्के अभिषेकके समय श्रीआदि देवियाँ पद्मादि सरोवरोंका जल लाई थीं–' श्रीदेवीभिर्यदानीतं पद्मादिसरसां पयः । ' (१६–२१२) चक्राभिषेक क्रियाके वर्णनमें भी लिखा है कि श्रीआदि देवियाँ अपने अपने नियोगके अनुसार आकर उनकी सेवा करती हैं । इन्हीं छः देवियोंने स्वर्ग लोकसे लाये हुए पवित्र पदार्थोंद्वारा पहले जिन माताका गर्भशोधन किया और फिर वे अनेक प्रकारसे उनकी सेवा करने लगीं ।

इस प्रकार न जाने कितने देवी देवताओंका प्रादुर्भाव संस्कृत-साहित्यमें इन अलंकारोंकी ही बदौलत हो गया है और जैनविद्वानोंके काव्य-ग्रन्थोंके द्वारा वे सब देवी-देवता जैनधर्ममें भी आघुसे हैं, तथा माने पूजे जाने लगे हैं । इस कारण वस्तुस्वभावानुसार सत्य जैनधर्मके ढूँढ़नेवालोंको विचारशक्तिसे काम लेने और परीक्षा-प्रधानी बननेकी बहुत बड़ी आवश्यकता है ।

पुस्तक-परिचय ।

स्वराज्यकी योग्यता । मूल लेखक, बाबू रामानन्द चट्टोपाध्याय एम. ए., अनुवादक, पं० नन्दकिशोर द्विवेदी बी. ए. और प्रकाशक, पं० उदयलाल काशलीवाल, व्यवस्थापक हिन्दी गौरव ग्रन्थमाला, हीराबाग, बम्बई । पृष्ठ २२०। मूल्य सवा रुपया । इस समय सारे देशको स्वराज्यके अभूतपूर्व आन्दोलनसे व्याप्त देखकर कुछ लोगोंने यह कहना शुरू किया है कि भारत अभी स्वराज्यके योग्य ही नहीं है । उसे स्वराज्य दिया जायगा तो अनर्थ हो जायगा । इस अपूर्व पुस्तकमें ऐसे लोगोंकी सारी दलीलोंका बड़ी योग्यतासे खण्डन किया है और भारतकी स्वराज्यकी योग्यताको सिद्ध किया है । मूल पुस्तककी विद्वानोंने एक स्वरसे प्रशंसा की है । पं० उदयलालजीने बड़ा अच्छा किया, जो इस समय हिन्दी भाषाभाषियोंके लिए भी इसे सुलभ कर दिया । इस विषयके प्रेमियोंको इसे अवश्य पढ़ना चाहिए ।

२ सद्विचार-पुस्तकमाला । जैनहितैषीके पाठकोंके सुपरिचित लेखक बाबू दयाचन्दजी गोयलीय बी. ए. ने उक्त नामकी पुस्तकमाला निकालनेका प्रारंभ किया है । इसमें आत्मोन्नति करनेवाले विचारोंकी छोटी छोटी पुस्तकें निकलती हैं । स्थायी ग्राहकोंको सब पुस्तकें पौनी कीमत पर दी जाती हैं । स्थायी ग्राहक बननेकी फीस चार आने है । अब तक पाँच पुस्तकें निकल चुकी हैं:—

१ शान्तिमार्ग	... ... मूल्य	≡)
२ आत्मरहस्य	... ... ,,	≡)
३ जैसे चाहो वैसे बन जाओ	,,	≡)॥
४ सुख और सफलताके मूल सिद्धांत	,,	=)॥
५ सुखकी प्राप्तिका मार्ग	... ,,	।=)

ये पाँचों पुस्तकें अँगरेजांके सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक लेखक जेम्स एलनकी जुदी जुदी पाँच पुस्तकोंका अनुवाद है । अँगरेजीमें इन सब पुस्तकोंकी बड़ी ख्याति और खप है । मूलकी अपेक्षा इनका मूल्य बहुत ही कम है । विचारशील सज्जनोंको इन्हें अवश्य पढ़ना चाहिए और बाबू साहबका उत्साह बढ़ाना चाहिए । मिलनेका पता—मैनेजर, हिन्दी साहित्यभण्डार, लखनऊ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मेहरवान साहब, वम्बईका हर किस्मका माल—स्टेशनरी, हेर आइल, इत्र, लवंडर, कोलनवाटर, सब तरहके साबुन, कांच, किताबें, तसवीरें, ग्यास, दवाइयाँ, मोमबत्ती, सोनेचांदीके बटन, घड़ियाँ, मोजा, बुनयाइन, रूमाल, सब तरहका कपड़ा आदि—सस्ता और फायदेसे आर्डर मिलतेही वी. पी. से भेजते हैं। एक वार मँगाकर खातरी कीजिए। मेसर्स जॉली सीन्ड्रेला एण्ड को० केमिस्ट और कमीशन एजेंट तबावाला बिल्डिंग, प्रिंसेस स्ट्रीट, बम्बई.

साहित्य पत्रिका

प्रतिभा।

(संपादक, श्रीयुत पं० ज्वालादत्त शर्मा)

प्रतिभाका दसवाँ अङ्क शीघ्र प्रकाशित होनेवाला है। यह प्रति अँगरेजी मासके पहले सप्ताहमें प्रकाशित होती है। यदि आप साहित्यसंबन्धी लेख पढ़ना चाहते हैं, तो प्रतिभाके ग्राहक बनिये। प्रतिभामें रसमयी कवितायें और शिक्षाप्रद पर चुभती हुई गल्पें भी प्रकाशित होती हैं। वार्षिक मूल्य २) है। हम इसके विषयमें अधिक न कहकर हिन्दीकी सर्वश्रेष्ठ पत्रिका सरस्वती-की सम्मति नीचे उद्धृत किये देते हैं:—

"प्रतिभा—यह एक नई मासिक पत्रिका है। मुरादाबादके लक्ष्मी-नारायण प्रेससे निकली है। हिन्दीके प्रसिद्ध लेखक पं० ज्वालादत्तजी शर्मा इसके संपादक हैं। सरस्वतीके पाठक आपसे खूब परिचित हैं। वे जानते होंगे कि शर्माजी सरस, बामुहाविरा और साथ ही प्रौढ भाषा लिखनेमें कितने पटु हैं। ऐसे सुयोग्य संपादकके तत्वावधानमें आशा है प्रतिभाका उत्तरोत्तर विकास होगा।

इसका पहला अङ्क अप्रैल १९१० में प्रकाशित हुआ है। उसमें छोटे बड़े १० लेख और ६ कवितायें हैं। साहित्य, शिक्षा, उद्योग धन्धा, विज्ञान, जीवनचरित और आख्यायिका इतने विषयों पर इसमें लेख प्रकाशित हुए हैं। लेखोंके संबन्धमें सामयिकता और रोचकताका बहुत ध्यान रक्खा गया है।"

पत्रव्यवहार करनेका पता—

मैनेजर 'प्रतिभा' लक्ष्मीनारायण प्रेस,

मुरादाबाद।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हितैषी–औषधालय–इटावहकी

पवित्र-सस्ती-औषधियाँ ।

नमक सुलेमानी ।

जगत्प्रसिद्ध असली २० वर्षका आजमूदा हाजमेकी अक्सीर दवा । की० ॥) तीन सी० १।≈)

धातु संजीवन ।

संपूर्ण धातु विकारको नष्ट कर नया वीर्य पैदा होकर शरीर हृष्ट–पुष्ट होजाता है । की० १)

प्रदरान्तक–चूर्ण ।

स्त्रियोंके श्वेत, लाल आदि प्रदरोंको शर्तिया दूर कर ताकत बढ़ाता और गर्भस्थिति करता है की० १)

नयनामृत–सुरमा ।

सम्पूर्ण विकारोंको दूरकर नेत्रोंकी ज्योति बढ़ाता और तरावट पैदा करता है । की० १)

दन्त–कुसुमाकर ।

दाँतोंके सब रोग दूर होकर दांतोंकी चमक बढ़ाता और मजबूत करता है । की० ।)

दद्रु–दमन ।

यह खुशबूदार मरहम विना कष्टके दादके दादाको तगादा कर भगाती है । की० ।)

केश-बिहार–तैल ।

अत्यन्त सुगन्धिसे चित्त प्रसन्न कर केश और मस्तकके रोगोंको दूर करता है । की० ॥)

नारायण–तैल ।

शरदी आदिसे उत्पन्न हुए दर्द, गठिया, पक्षाघात आदि सर्व वात रोगोंकी शर्तिया दवा है । की० १)

दवा सफेद दागोंकी ।

इससे शरीरमें जो सफेद २ दाग पड़जाते हैं वह दूर हो जाते हैं । की० १)

श्वास–कुठार ।

यह स्वास दमें की शर्तिया दवा है । की० १)

गोली दस्तबंदकी ।

रक्त, आम, आदि अतिसार तथा संग्रहणी आदिको शीघ्र दूर करती है । की० ॥)

दवा खांसीकी ।

सूखी या तर खांसीको और कफको दूर करने वाली आजमूदा दवा है । की० ॥)

अर्क कपूर ।

हैजेकी अक्सीर दवा । की० ।)

चंद्रकला ।

यह गोरे व खूबसूरतीकी दवा है । की० ॥)

नैन-सुधा-अञ्जन ।

इससे आँखका जाला धुन्ध फुली माड़ा आदि सब अच्छे होते हैं । की० ॥)

दवा पेटके दर्दकी ।

चाहे कैसा पेट दर्द हो फौरन दूर होता है । की० ॥)

ताम्बूल रंजन ।

पानके साथ खानेका बढ़िया मसाला । की० ।)

शिरदर्द-हर तैल । की० ।)

कर्ण-रोग-हर तैल । की० ।)

खुजली–नाशक तैल । की० ।)

बाल उड़ानेका साबुन । की० ।)

कोकिल–कण्ठ–वटिका । की० ।)

पता—चन्द्रसेन जैन वैद्य, चन्द्राश्रम, इटावह U. P.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हमारी ग्रन्थमालाकी नई पुस्तकें ।

तारावाई । यह आपके पूर्वपरिचित स्वर्गीय द्विजेन्द्रलाल रायके बंगला नाटकका अनुवाद है। अभी तक आपने इनके जितने नाटक पढ़े हैं, वे सब गद्यमें थे; पर यह पद्यमें है । अनुवाद भी खड़ी बोलीके तुकान्तहीन पद्योंमें कराया गया है । अनुवादक हैं—सुकवि पं० रूपनारायण पाण्डेय । हिन्दीमें यह बिलकुल नई चीज है । ऐतिहासिक नाटक है । यह बढ़िया 'इमिटेशन आर्ट' कागज पर छपाया गया है। मूल्य एक रुपया छह आने ।

देश-दर्शन । इसके तैयार होनेकी सूचना वर्षोंसे निकल रही है। बड़ी मुश्किलसे यह अब तैयार हुआ है। इसके लेखक ठाकुर शिवनन्दनसिंहजी बी. ए. हैं। अँगरेजीके पचासों ग्रन्थोंके आधारसे यह लिखा गया है। इसमें देशकी भीतरी दशाओंका आपको दर्शन होगा। यहाँकी घोर दरिद्रताका, आयुकी भयंकर घटीका, मृत्युसंख्याकी बढ़ती हुई भीषणताका, अल्पजीवी बच्चोंकी अधिक जन्मसंख्याका और इनके साथ बढ़े हुए व्यभिचारका, नशेबाजीका, चरित्रहीनताका वर्णन पढ़कर आप अवाक् हो जायँगे । शिक्षाकी कमी, व्यापारकी दुर्दशा, विदेशियोंकी सत्ता, किसानोंकी बुरी हालत, बालविवाह, वृद्धविवाह, अयोग्यविवाह, विवाहका इतिहास, उत्तम संतान उत्पन्न करनेके सिद्धान्त, सन्तान कम उत्पन्न करनेकी आवश्यकता आदि और भी अनेक विषयोंके सम्बन्धमें आपको इसमें सैकड़ों नई बातें मालूम होंगी। कई चित्र और नकशे भी इसमें दिये गये हैं । पृष्ठसंख्या पौने पाँचसौके लगभग । मूल्य तीन रुपया ।

हृदयकी परख । जो लोग इस बातकी शिकायत करते हैं, कि हिन्दीमें स्वतंत्र उपन्यास नहीं हैं उन्हें इस भावपूर्ण उपन्यासको पढ़कर बहुत सन्तोष होगा। इसके लेखक आयुर्वेदाचार्य पं० चतुरसेन शास्त्री हैं। इस पुस्तकमें हमने एक नामी चित्रकारसे पाँच नवीन चित्र बनवाकर छपवाये हैं, जिससे पुस्तक और भी सुन्दर हो गई है। मूल्य एक रुपया दो आने ।

नवनिधि । इस ग्रन्थको उर्दूके प्रसिद्ध गल्पलेखक श्रीयुत प्रेमचन्द्रजीने स्वयं अपनी कलमसे हिन्दीमें लिखा है। इसमें एकसे एक बढ़कर सुन्दर और भावपूर्ण ९ गल्पें हैं। इनके जोड़की गल्पें आपने शायद ही कभी पढ़ी हों। मूल्य एक रुपया दो आने ।

नूरजहाँ । स्वर्गीय द्विजेन्द्रलाल रायके प्रसिद्ध नाटकका अनुवाद । इसके विषयमें अधिक लिखनेकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती । शाहजहां और नूरजहाँ उनके सर्वश्रेष्ठ नाटक गिने जाते हैं। मूल्य एक रुपया दो आने । इसमें कपड़ेकी जिल्द न रहेगी ।

राष्ट्रीय ग्रन्थ ।

स्वराज्य । गुरुकुल काँगड़ीके अर्थशास्त्रके प्रोफेसर श्रीयुत बालकृष्ण एम. ए. इसके लेखक हैं। इस विषयका अपने ढंगका यह निराला ही ग्रन्थ है। पृष्ठसंख्या ३०० । मूल्य सवा रुपया ।

अर्थशास्त्र । अर्थात् धनकी उत्पत्ति तथा वृद्धि । लेखक, उपर्युक्त प्रो० बालकृष्ण एम. ए. पृष्ठसंख्या ५५० । मू० १॥) ।

पार्लमेण्ट । लेखक, श्रीयुत बाबू सुपार्श्वदास गुप्त बी. ए. । हिन्दीमें यह इस विषयकी सबसे पहली पुस्तक है । जिस ब्रिटिश पार्लमेण्टके शासनमें हम रहते हैं उसका शुरूसे लेकर अब तकका इतिहास, उसका क्रमविकाश, उसकी शासनपद्धति और उसके गुणदोष आदि बातोंका खूब विस्तारके साथ इसमें निरूपण किया गया है । पृष्ठसंख्या २७५ । मूल्य एक रुपया दो आने । सादीका चौदह आने ।

महादेव गोविंद रानड़े । लेखक, श्रीयुत भारतीय । बम्बई हाईकोर्टके भूतपूर्व जज, प्रसिद्ध सुधारक और देशभक्त महात्माका जीवनचरित । यह अनेक ग्रन्थोंके आधारसे बहुत अच्छे ढंगसे लिखा गया है। पृष्ठसंख्या २०० । मूल्य ॥=)

देवी जौन अर्थात् स्वतंत्रताकी मूर्ति । अपने जीवनका बलि देकर फ्रान्सको पराधीनतासे मुक्त करनेवाली 'जौन आफ आर्क' नामक प्रसिद्ध वीरांगनाका देशभक्तिपूर्ण अपूर्व जीवनचरित ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लेखिका, श्रीमती बालाजी। पृष्ठसंख्या १०० से ऊपर। मूल्य आठ आने।

स्वराज्यकी योग्यता। 'माडर्न रिव्यू' के सम्पादक श्रीयुत बाबू रामानन्द चट्टोपाध्यायके लिखे हुए सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'टूवर्ड्स होमरूल' का हिन्दी अनुवाद। (प्रथम भाग।) इस विषयका यह अद्वितीय ग्रन्थ है। बड़ी ही अकाट्य युक्तियोंसे 'भारत स्वराज्यके योग्य नहीं है' इस प्रवादका खण्डन किया गया है। प्रत्येक देशभक्तके पढ़नेकी चीज है। पृष्ठसंख्या २२०। मूल्य सवा रुपया।

स्वराज्यकी पात्रता। मूल्य पाँच आने।

राष्ट्रीय शिक्षा। मि० अरण्डेलके व्याख्यानका अनुवाद। मू०।)

स्वराज्यकी पात्रताके प्रमाण और मेरे कार्य। मूल्य –)॥

देवी वसन्तका संदेशा –)॥
राष्ट्रनिर्माण –)॥
स्थानिक स्वराज्य –)॥
धर्म और राजनीति –)॥
स्वराज्य क्यों चाहिए –)॥
स्वराज्यविचार ≈)
हिन्दुस्थानकी माँग –)
राष्ट्रीय स्वराज्य –)॥

हमारा भीषण ह्रास, लेखक-पं० मन्नन द्विवेदी बी. ए. मू० ≈)

अन्यान्य विषयोंके ग्रन्थ।

सदाचार-सोपान। प्रतिभा, शान्तिकुटीर आदिके लेखक, श्रीयुत बाबू अविनाशचन्द्रदास एम. ए. बी.एल. की बंगला पुस्तकका अनुवाद। बहुत ही अच्छी शिक्षाप्रद पुस्तक है। मूल्य।)

राजा और रानी। इसमें सम्राट् पंचम जार्ज और महाराणी मेरीके चरित्रसे मिलनेवाली शिक्षाओंपर विचार किया गया है। विद्यार्थियोंके लिए बहुत ही उपयोगी है। यह गुजरातीके प्रसिद्ध लेखक श्रीयुत अमृतलाल पढ़ियारकी पुस्तकका अनुवाद है। मूल्य छह आने।

शाही लकड़हारा। उर्दूके सुप्रसिद्ध लेखक लाला शिवव्रतलाल वर्मा एम. ए. की दिलचस्प पुस्तकका हिन्दी अनुवाद। मूल्य एक रुपया।

सुख और सफलताके मूल सिद्धान्त। सुप्रसिद्ध अँगरेजी लेखक जेम्स एलनकी 'फौन्डेशन स्टोन्स टू हेप्पीनेस एण्ड सक्सेस' नामक पुस्तकका अनुवाद। मूल्य ढाई आना।

सुखकी प्राप्तिका मार्ग। जेम्स एलनकी 'पाथ आफ प्रोसपेरिटी' का अनुवाद। अनुवादक, बाबू दयाचन्द्र गोयलीय बी. ए. पृष्ठसंख्या ८०। मूल्य ।≈)

किशोरावस्था। लेखक, श्रीयुत गोपाल शरणसिंह बी. ए.। जिन्होंने युवावस्थामें प्रवेश किया है, उन्हें अवश्य पढ़ना चाहिए। बड़ी अच्छी पुस्तक है। मूल्य ॥≈)

ज्योतिष शास्त्र। लेखक, श्रीयुत बाबू दुर्गाप्रसाद खतान एम. ए. कृत। अनेक चित्रोंसे युक्त। मूल्य दश आने।

कर्मक्षेत्र। श्रीशशिभूषणसेनकृत बंगला पुस्तकका हिन्दी अनुवाद। इसमें निरुद्यमी, उत्साहहीन और हतभाग्य भारतवासियोंको उत्साहित करके कर्मवीर बनानेका प्रयत्न किया गया है। भारतवर्षके अनेक महापुरुषोंके चरित्र देकर इन बातोंको पुष्ट किया है। पृष्ठसंख्या २००। मू० सादीका चौदह आने। साजिल्दका १≈)

मिलनेका पता—

व्यवस्थापक–हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई।

(इस अंकके निकलनेकी ता० ...)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीवर्द्धमानाय नमः ।

भाग १३ । अंक १२ ।

जैनहितैषी ।

दिसम्बर १९१७ ।

विषय-सूची ।

१ प्रभातोदय (कविता)। ले० पं० रामचरित उपाध्याय ... ५१५
२ कल्कि अवतारकी ऐतिहासिकता (अनुवाद)। ... ५१६
३ गुप्तराजाओंका काल, मिहिरकुल और कल्कि। ... ५२२
४ लोकविभाग और त्रिलोकप्रज्ञप्ति। ५२५
५ बाबाजीका स्वप्न (कविता)। ले० बाबू ठाकुरदास जैन ... ५३५
६ श्वेताम्बर-ग्रन्थोंमें कल्किका वर्णन। ले० मुनिजिनविजयजी ५३५
७ स्वराज्य-सोपान (कविता)। ले० पं० रामचरित उपाध्याय ५३९
८ द्रव्यसंग्रह (समालोचना)। ले०, बाबू जुगलकिशोर मुख्तार ५४१
९ विचित्र व्याह (काव्य)। ले०, पं० रामचरित उपाध्याय ... ५५०
१० जैनधर्मका भूगोल और खगोल। ले० श्रीयुत जिज्ञासु ५५४
११ पुस्तक-परिचय ५५९

नई जैन पुस्तकें ।

ग्रन्थपरीक्षा प्रथम भाग मूल्य ।), द्वितीयभाग मू० ।=), दर्शनसार विवेचनासहित मू० ।-), मोक्षमार्गकी कहानियाँ मू० ।=), बच्चोंके सुधारनेके उपाय मू० ।), सन्तानपालन -)॥, सर्वार्थसिद्धि मूल संस्कृत २), बुधजनसतसई ।=), आचारसार (आचार्य वीरनन्दिकृत) माणिकचन्द जैनग्रन्थमालाका ग्यारहवाँ ग्रन्थ, मूल्य० ।=)

मैनेजर, जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई ।

संपादक—नाथूराम प्रेमी ।

मुंबईवैभव प्रेस.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रार्थनायें ।

१. जैनहितैषी किसी स्वार्थबुद्धिसे प्रेरित होकर निजी लाभके लिए नहीं निकाला जाता है। इसमें जो समय और शक्तिका व्यय किया जाता है वह केवल अच्छे विचारोंके प्रचारके लिए। अतः इसकी उन्नतिमें हमारे प्रत्येक पाठकको सहायता देनी चाहिए।

२. जिन महाशयोंको इसका कोई लेख अच्छा मालूम हो उन्हें चाहिए कि उस लेखको जितने मित्रोंको वे पढ़कर सुना सकें अवश्य सुना दिया करें।

३. यदि कोई लेख अच्छा न मालूम हो अथवा विरुद्ध मालूम हो तो केवल उसीके कारण लेखक या सम्पादकसे द्वेष भाव न धारण करनेके लिए सविनय निवेदन है।

४. लेख भेजनेके लिए सभी सम्प्रदायके लेखकोंको आमंत्रण है। —सम्पादक।

भारतविख्यात ! हजारों प्रंशसापत्र प्राप्त !

अस्सी प्रकारके वात रोगोंकी एकमात्र औषधि

महानारायण तैल ।

हमारा महानारायण तैल सब प्रकारकी वायुकी पीड़ा, पक्षाघात, (लकवा, फालिज) गठिया सुन्नवात, कंपवात, हाथ पांव आदि अंगोंका जकड़ जाना, कमर और पीठकी भयानक पीड़ा, पुरानीसे पुरानी सूजन, चोट, हड्डी या रगका दबजाना, पिचजाना या टेढ़ी तिरछी होजाना और सब प्रकारकी अंगोंकी दुर्बलता आदिमें बहुत बार उपयोगी साबित होचुका है।

मूल्य २० तोलेकी शीशीका दो रुपया।
डा० म० ॥) आना।

वैद्य ।

सर्वोपयोगी मासिक पत्र ।

यह पत्र प्रतिमास प्रत्येक घरमें उपस्थित होकर एक वैद्य या डाक्टरका काम करता है। इसमें स्वास्थ्य-रक्षाके सुलभ उपाय, आरोग्य शास्त्रके नियम, प्राचीन और अर्वाचीन वैद्यकके सिद्धान्त, भारतीय वनौषधियोंका अन्वेषण, स्त्री और बालकोंके कठिन रोगोंका इलाज आदि अच्छे २ लेख प्रकाशित होते हैं। इसकी वार्षिक फीस केवल १) रु० मात्र है।

नमूना मुफ्त मंगाकर देखिये।

पता—वैद्य शङ्करलाल हरिशङ्कर
आयुर्वेदोद्धारक–औषधालय, मुरादाबाद।

आढ़तका काम ।

बंबईसे हरकिस्मका माल मँगानेका सुभीता

हमारे यहांसे बंबईका हरकिस्मका माल किफायतके साथ भेजा जाता है। तांबे व पीतलकी चद्दरें, सब तरहकी मशीनें, हारमोनियम, ग्रामोफोन, टोपी, बनियान, मोजे, छत्री, जर्मन-सिलवर और अलूमिनियमके बर्तन, सब तरहका साबुन, हरप्रकारके इत्र व सुगन्धी तेल, छोटी बड़ी घड़ियाँ, कटलरीका सब प्रकारका सामान, पेन्सिल कागज़, स्याही, हेण्डल, कोरी कापी, स्लेट, स्याहीसोख, ड्राइंगका सामान, हरप्रकारकी देशी और विलायती दवाइयाँ, काँचकी छोटी बड़ी शीशियोंकी पेटियाँ, हरप्रकारका देशी विलायती रेशमी कपड़ा, सुपारी, इलायची, मेवा, कपूर आदि सब तरहका किराना, बंबईकी और बाहरकी हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी पुस्तकें, जैन पुस्तकें, अगरबत्ती, दशांगधूप, केशर, चंदन आदि मंदिरोपयोगी चीजें, तरह तरहकी छोटी बड़ी रंगीन तसवीरें, अपने नामकी अथवा अपनी दूकानके नामकी मुहरें, कार्ड, चिट्ठी, नोटपेपर, मुहूर्त्तकी चिट्ठियाँ (कंकुपत्रिका) आदि, हरकिस्मका माल होशयारीके साथ वी. पी. से रवाना किया जाता है। एक बार व्यवहार करके देखिये। आपको किसी तरहका धोका न होगा।

हमारा सुरमा और नमकसुलेमानी अवश्य मँगाइए। बहुत बढ़िया है।

पता–पूरणचंद नन्हेंलाल जैन।
c/o जैन-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, हीराबाग,
पो० गिरगांव, बम्बई

Printed by Chintaman Sakharam Deole, at the Bombay Vaibhav Press, Servants of India Society's Building, Sandhurst Road, Girgaon, Bombay.

Published by Nathuram Premi, Proprietor, Jain-Granth-Ratnakar Karyalaya, Hirabag, Bombay.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बाधा नहीं आती। राजवंशोंके वर्णनके समय अन्यान्य राजाओंके समान कल्किके भी कीर्तिकलापोंका वर्णन किया गया है। उसके प्रति देवत्वका आरोप नहीं किया गया, किन्तु वह एक साधारण व्यक्तिके रूपमें ही उल्लिखित किया गया है। इसके सिवाय कल्किकी ऐतिहासिकता सिद्ध करनेके लिए केवल साधारण भविष्यत्कालके वर्णन पर ही निर्भर नहीं रहना पड़ता। पुराणोंमें, अनेक जगह कल्किके सम्बन्धमें सुस्पष्ट भूतकालकी क्रियाओंके भी प्रयोग पाये जाते हैं। वायुपुराण कहता है कि पराशरवंशीय विष्णुयशा नामक कल्किने (' कल्किर्विष्णुयशा नाम पाराशर्य्यः प्रतापवान् '—वायु ३,१०४) साधारण मनुष्यके रूपमें जन्म [illegible]ण किया था ('मानवः स तु संजज्ञे पारा[illegible]: प्रतापवान्—' वायु ३६,११०) और वे [illegible]लयुगके पूर्ण होनेपर उत्पन्न हुए थे ('पूर्णे कलि[illegible]गे भवत् '-वायु ३६, १११)। ब्रह्माण्डपुराण [illegible] ठीक इसी प्रकार कहता है कि पराशर[illegible]ीय विष्णुयशा नामक कल्किने ('कल्कि[illegible]र्विष्णुयशा नाम पाराशर्य्यः प्रतापवान्'—ब्र० ७३, १०४) मनुष्य होकर बुद्धिवान् देवसेनके पुत्रके रूपमें जन्मग्रहण किया था ('मानवः सतु संजज्ञे देवसेनस्य धीमतः'—ब्र० ७३, ११०) और कलियुगके पूर्ण होने पर अवतार लिया था ('पूर्णे कलियुगेऽभवत्'—ब्र० ७३, १११)। मत्स्यपुराण कहता है—बुद्धने नवें अवतारके रूपमें जन्म [illegible]ण किया था ('बुद्धो नवमको जज्ञे'—मत्स्य [illegible], २४७) और कल्कि विष्णुयशा (विष्णु[illegible]ः?) पराशरवंशवालोंका नेता दशवाँ [illegible]ार होगा ('...... भविष्यति। कल्की तु [illegible]ुयशसः पाराशर्य्यपुरःसरः ॥ दशमः' [illegible]दि—मत्स्य ४७, २४८)। इसके बाद उक्त [illegible] छः श्लोकोंमें कल्किके दिग्विजयका वर्णन कहता है कि कितने ही काल बीतने पर वह देव अन्तर्धान हो गया था ('ततः काले व्यतीते तु स देवोऽन्तरधीयत'—मत्स्य ४७ २५५)।

इस तरह भविष्यत्कालके साथ भूतकी क्रियाओंका मिश्रण रहनेसे साफ साफ समझमें आ जाता है कि, पुराणोंके लेखक कल्किसम्बन्धी घटनाओंको जानते तो थे भूतकालकी ही घटनाओंके रूपमें; परन्तु पुराणोंके साधारण नियमके अनुसार उन्हें भविष्यत्कालकी घटनाओंके रूपमें लिखनेके लिए लाचार होना पड़ा था। कल्किके जन्मस्थान और वंश आदिका परिचय एवं उसकी की हुई दिग्विजयका सिलसिलेवार वर्णन आदि बातें ऐसी नहीं मालूम होतीं, जो बिलकुल कल्पनाप्रसूत कही जा सकें। और फिर जब पुराणोंमें जगह जगह कल्किके वर्णनमें भूतकालकी क्रियाओंका प्रयोग हुआ है, तब तो यह अच्छी तरह सिद्ध हो जाता है कि उसकी ऐतिहासिकता अन्य व्यक्तियोंकी अपेक्षा सुदृढ भित्ति पर प्रतिष्ठित है।

इस बातके भी प्रमाण मिलते हैं कि, कल्किके कीर्तिकलापोंका वर्णन अभिनव है और वह पीछेसे जोड़ा गया है। ४९८ ईस्वी सन्के बाद जिन सब पुराणोंके अन्तिम संस्करण हुए हैं उन्हींमें यह कल्किका विवरण पाया जाता है। गार्गीसंहिताके अन्तर्गत युगपुराणमें लिखा है कि यवन अर्थात् ग्रीक लोगोंके ध्वंसकालके (ईस्वी सन्से लगभग १८८ वर्ष पूर्व) साथ ही कलिकालकी समाप्ति हो गई। उसमें कलियुगके वर्णनमें कल्किका उल्लेख नहीं है।

मनुसंहिता (अध्याय १, श्लो० ६९–७०), विष्णुपुराण (अंश ४, श्लो० २४–२६) और भागवतपुराण (स्कं० १२, श्लो० २–२९) के अनुसार कलियुग १२०० वर्षका होता है। जिस दिन श्रीकृष्णका देहान्त हुआ, उसी दिनसे (पुराणानुसार) कलियुगकी गणना आरंभ होती है और वह समय ईस्वी सन्से १३८८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्ष पहले है, यह हम अपने अन्य लेखमें प्रमाणित कर चुके हैं। अतएव मनुसंहिता और पुराणमें पहले कलियुगका जो परिमाण दिया था उसके अनुसार ईस्वी सन्से १८८ वर्ष पहले कलियुगका अन्त होता है। इसी समय सुङ्गवंशीय पुष्यमित्रके द्वारा यवन राजाओंका ध्वंस और सनातनधर्मका अभ्युत्थान हुआ। यह देखकर उस समयके पुराणकारोंने समझ लिया कि कलियुग समाप्त हो गया। इसीसे उन्होंने प्रकाशित कर दिया कि, कलियुगका अन्त हो गया* और युगपुराणके समान जो जो पुराण इसके बाद फिरसे संस्कृत तथा परिवर्धित नहीं हुए, उनमें वही वर्णन रह गया, उनमें कल्किकी और कोई भी बात नहीं जोड़ी गई। किन्तु पीछेके पौराणिकोंने जब देखा कि यवनोंके नाश हो जाने पर भी प्रजा पहलेके ही समान दुर्दशाग्रस्त हो रही है तब उन्होंने कलियुगका परिमाण बढ़ा दिया और वे पञ्चम शताब्दिके प्रारंभमें कल्किका अभ्युदयकाल ले गये। कल्किके द्वारा म्लेच्छवंशका ध्वंस हो जाने पर कलियुग पूरा हो गया और सारे दुःखोंका अन्त आ गया, इस प्रकारकी आशा उनके हृदयोंमें उठी; परन्तु उन्होंने देखा कि, दुःखोंका अन्त नहीं हुआ। युगपुराणमें यवनोंके नष्ट होनेके समय कल्किके अन्तमें प्रजाकी जिस प्रकारकी दुर्दशा बतलाई गई है + ठीक उसी प्रकारकी भाषामें कल्किकृत म्लेच्छध्वंसके बाद भी प्रजाकी शोचनीय अवस्था वर्णित हुई है— "ततो व्यतीत कल्कौ तु......परस्परहताश्च निराक्रन्दा सुदुःखिताः" * इत्यादि भाषामें पौराणिकोंने प्रजाओंके दुःखकी कहानीका वर्णन किया और कलियुगका स्थितिकाल एक अनिर्दिष्ट भविष्यत् तक बढ़ा दिया। कलियुगके स्थितिकालके सम्बन्धमें हमने अन्य लेखमें पुराण और ज्योतिषशास्त्रके आधारसे विस्तृत आलोचना की है।

अभीतक जो कुछ कहा गया उससे प्रमाणित हो गया कि, पुराणोक्त कल्कि एक ऐतिहासिक व्यक्ति है; और वह पञ्चम शताब्दिके अन्तिम भागमें उत्पन्न हुआ था। अब यह बतलाया जाता है कि वह कौन था।

पुराणोंमें कल्किके विषयमें जो विवरण मिलता है वह यह है:—

१ कल्किका परिचित नाम विष्णुयशस् अथवा विष्णुयशस है– ('कल्किर्विष्णुयशा नाम'–वायु ३६,१०४ और ब्रह्माण्ड ७३, १०४। 'कल्कि तु विष्णुयशसः'–मत्स्य ४७,२४८।)

२ उनका जन्म सम्भल ग्राममें हुआ था— (भागवत १२ स्कन्द, २ अध्याय, १८ श्लोक; विष्णुपुराण चतुर्थांश, २४ अ०, २६ श्लो०)।

---

* भविष्यन्तीह यवना धर्मतः कामतोऽर्थतः।
भोक्ष्यन्ति कलिशेषे तु वसुधाम्॥ इत्यादि

\+ युगपुराणमें यवनोंके सम्बन्धमें इस प्रकार लिखा है:—

भविष्यन्तीह यवना धर्मतः कामतोऽर्थतः।
नैव मूर्द्धाभिषिक्तास्ते भविष्यन्ति नराधिपाः।

युगदोषदुराचाराः भविष्यन्ति नृपास्तु ते।
स्त्रीणां बालवधेनैव हत्वा चैव परस्परम्॥

भोक्ष्यन्ति कलिशेषे तु वसुधाम्।

\+ \+ \+

शूद्रा कलियुगस्यान्ते भविष्यंति न संशयः।
यवनाः क्षयपयिष्यन्ति न शचेयं (?) च पार्थिवः।

मध्यदेशे न स्थास्यन्ति यवना युद्धदुर्मदाः।
तेषामन्योन्यसंभावाः भविष्यन्ति न संशयः॥

आत्मचक्रोत्थितं घोरं युद्धं परमदारुणम्।
ततो युगवशात्तेषां यवनानां परिक्षयम्॥

\+ \+ \+

* वायुपुराण ३६ अ०, ११७ श्लो०, और ब्रह्माण्ड ७३ अ०, श्लो० ११८।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह संभल ग्राम राजपूतानेकी शाकम्भरी नगरी है, ऐसा अनेक शिलालेखों तथा पृथ्वीराजविजय आदि ग्रन्थोंसे निश्चय होता है ।

३ उन्होंने एक साधारण मनुष्यके रूपमें जन्म लिया था, और वे देवसेन नामक एक पराशरगोत्रीय अथवा याज्ञवल्क्यगोत्रीय ब्राह्मणके पुत्र थे ।

४ उनके शरीरकी कान्ति चन्द्रमाके समान थी–('गात्रेण वै चन्द्रसमः' –वायु, ३६ अ० १११ श्लो० ।)

५ वे बड़े भारी वीर थे और उन्होंने दिग्विजय किया था–(भागवत १२ स्कं० २ अ० १९ श्लो० और भविष्यपुराण ३ अंश २६ अ०, १ श्लो० ।)

६ उन्होंने बहुत जल्दी चतुरंग-सेनायुक्त होकर समग्र भारतवर्षको जीत लिया था । वायुपुराणके ३६ वें अध्यायमें उन देशोंके नाम दिये हैं जिन्हें कल्किने जीता था:—

उदीच्यान् मध्यदेशांश्च तथा विन्ध्यापरान्तिकान् १०६
तथैव दाक्षिणात्यांश्च द्रविडान् सिंहलैः सह ।
गान्धारान्पारदांश्चैव पह्लवान्यवनान्शकान् ॥ १०७ ॥
तुषारान्बर्बरांश्चैव पुलिन्दान्दरदान्खसान् ।
लम्पकानन्धकान् रुद्रान्किरातांश्चैव स प्रभुः १०८ ।
\+ \+ \+ \+ \+
प्रवृत्तचक्रो बलवान् म्लेच्छानामन्तकृद्बली १०९॥

इनमेंसे ब्रह्माण्ड-पुराणमें रुद्रोंके बदले पौण्ड्र और बर्बरोंके बदले शबर आदि कई पाठभेद हैं । इन समस्त देशोंको जीतकर कल्किने साम्राज्यकी प्रतिष्ठा की ।

७ यह दिग्विजय केवल राज्यविजय ही नहीं थी, धर्मविजय भी थी । पुराणोंमें लिखा है कि, कल्किने नृपनामधारी म्लेच्छराजाओंको नष्ट किया था, धर्मद्वेषी पाषण्डोंको शस्त्रधारी ब्राह्मणोंद्वारा परिवृत होकर मारा था, प्रायः अधार्मिक वृषलोंको नष्ट किया था और म्लेच्छों तथा दस्युओंको मारकर नष्टप्राय आर्यधर्मका उद्धार किया था * ।

८ उनका यह दिग्विजय क्रूरकर्म ('क्रूरेण कर्मणा '–वायु० ३६,११४) होने पर भी धर्मकी रक्षा और लोकके हितके लिए किया गया था ('धर्मत्राणाय लोकाहितार्थाय— ' वायु ३६,१०३ ।)

९ अपना कार्य समाप्त करके उन्होंने गंगा-यमुनाके मध्यवर्ती भागमें देहत्याग किया । यथा, वायुपुराण अ० ३६:—

ततः स वै तदा कल्किश्चरितार्थः ससैनिकः । ११५
\+ \+ \+ \+ \+
गङ्गायमुनयोर्मध्ये निष्ठां प्राप्स्यति सानुगः । ११७

१० उन्हें इस दिग्विजयकार्यमें २५ वर्ष लगे थे । यथा:—

पञ्चविंशोत्थिते कल्पे पञ्चविंशति वै समाः ।
विनिघ्नन् सर्वभूतानि मानुषानेव सर्वशः ॥ ११३
—वायु, अ० ३६ ।

अब यह प्रश्न होता है कि ये स्वदेशरक्षक, स्वधर्मपालक, और लोकहितैषी महात्मा कौन थे । पुराणवर्णित युगके शेष अंशमें कल्किके समान और कोई भी राजा इतना यशस्वी नहीं हो सका । उनकी महिमा सबसे अधिक गाई गई है ।

उनके सम्बन्धमें हम जानते हैं कि उनका नाम विष्णुयशस् था, उनका जन्म राजपूतानेमें संभवतः पाँचवीं शताब्दिके शेष भागमें हुआ था, और उनकी दिग्विजय दक्षिणमें द्रविड देशसे लेकर उत्तरापथ पर्यन्त और पश्चिमसमुद्रसे खसोंके देश आसाम तक हुई थी ।

* मत्स्य ४७, २४९–५० । वायुपुराण ३६, १०५–६ । भागवत १२ स्कन्द, २ अ०, २० श्लोक ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन सब विषयोंकी आलोचना करके हम विद्वानोंके सामने इस सिद्धान्तको निःसन्देह होकर रखते हैं कि ये पुराणोक्त विष्णुयशाः और मालवाधिपति विष्णुवर्द्धन यशोधर्मन् एक ही व्यक्ति हैं। 'विष्णुवर्द्धन' और 'यशोधर्मन्' इन दोनों नामोंके आद्य अंश 'विष्णु' और 'यशस्' मिलाकर पुराणकारोंने 'विष्णुयशस्' नाम बनाया है। 'विष्णुवर्द्धन' का 'वर्द्धन' शब्द नाम नहीं है; यह सम्राटोंकी वीरत्वज्ञापक उपाधिमात्र है। जैसे अशोकका नाम अशोकवर्द्धन, हर्षका हर्षवर्द्धन, आदि। * संभवतः दिग्विजयके बाद राज्यविजय और धर्मविजय इन दो प्रकारके कार्योंके परिचायक विष्णुवर्द्धन और यशोधर्मन् ये दो नाम ग्रहण किये गये थे।

विष्णुयशोधर्मन्ने अपने शिलालेखमें प्रकट किया है कि, उन्होंने उस युगके निन्द्य आचारवाले राजाओंके हाथसे देशका उद्धार किया है। उन्होंने लोकके हितके लिए दिग्विजयकार्य आरंभ किया था-(लोकोपकारव्रतः)। वे अपने समसामयिक राजाओंके साथ सम्बन्ध नहीं रखते थे और उन्होंने मनु, भरत, अलर्क, मान्धाता आदि राजाओंका काल उपस्थित कर दिया था। वे अपने जीवितकालमें ही अधर्मध्वंसकर्त्ता और धर्मके निकेतन गिने जाने लगे थे+। उनके ब्राह्मण प्रतिनिधि भी इस बातके लिए प्रसिद्ध हैं कि, उन्होंने राज्यमें 'सतयुग' ला दिया है×।

ये सब बातें पुराणवर्णित विष्णुयशाके कार्योंके साथ मिल जाती हैं। बल्कि हमारी समझमें तो इस राजाकी 'विष्णु' आख्या और अपरिमित वीरकीर्तिका विचार करके ही संभवतः पुराणकारोंने उसे भगवान् विष्णुका अंशसंभूत मान लिया था।

विष्णुयशोधर्मन् और विष्णुयशस् इन दोनोंका जन्मस्थान एक ही है। मन्दसोर ग्राममें यशोधर्मदेवका जो जयस्तम्भ मिला है, उसमें इस दिग्विजयी राजाके जन्मस्थानका उल्लेख है।

दोनोंके जीते हुए देशोंके वर्णनमें भी बहुत एकता है। विष्णुयशोधर्माने लोहित्य अर्थात् ब्रह्मपुत्रनदके उपकण्ठसे लेकर महेन्द्रगिरिके नीचेतक और हिमालयसे लेकर पश्चिमसागरतककी भूमिको जीता था। यह वर्णन विष्णुयशाके जीते हुए देशोंके वर्णनके साथ मिलता है।

दोनोंका अभ्युदयकाल भी मिलता है। विष्णुयशोधर्माने हूणराजा मिहिरकुलको परास्त किया था। मिहिरकुलके पिता तोरमाणका राज्यकाल बुधगुप्तके कुछ ही पीछे है और बुधगुप्तका समय ईस्वी सन् ४८४-८५ है।* मिहिरकुल यशोधर्माके द्वारा काश्मीर देशमें पराजित हुआ था। काश्मीर जानेके पहले मिहिरकुलने लगभग पन्द्रह वर्ष भारतमें बिताये थे, यह बात, ग्वालियरके शिलालेखसे मालूम होती है×। अतः यशोधर्माके द्वारा मिहिरकुलका पराजय ईस्वी सन् ४९९ के बाद और ५३३-३४ में मन्दसोरके विजयस्तंभ स्थापित होनेके पूर्व हुआ था। इसके साथ पुराणवर्णित कल्किके अभ्युदयकाल (४९९ ईस्वी) की एकता है।

---

* कितने ही सिक्कोंमें 'विष्णु' नाम खुदा हुआ है। डा० हार्नलीके मतसे ये सब सिक्के यशोधर्मा विष्णुवर्द्धनके हैं। Hoernle J. R. A. S. 1903 p. 552; Ibid, p.p. 133-134.

+ Fleet, gupta Inscriptions. p.p. 146-147.

× Ibid, p. 154. 'कृत इव कृतमेतद् येन राज्यं निराधि।'

* Fleet, G. I., p. 159.

× Gwalior Stone Inscription, F. G. I. p. 161.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शिलालेखोंसे मालूम होता है कि, विष्णुयशोधर्माने किसी सुविख्यात राजकुलमें जन्म नहीं लिया था और पुराणोंमें विष्णुयशा भी एक साधारण आदमीके पुत्र बतलाये गये हैं। दोनोंने ही बड़े भारी साम्राज्यकी स्थापना की थी।

इस तरह दोनोंमें सब बातोंमें इतनी एकता देखी जाती है कि फिर इन दोनोंके एक होनेमें कोई भी सन्देह बाकी नहीं रह जाता है।

इस विषयमें कुछ और भी प्रमाण मिले हैं जिनसे कल्किकी ऐतिहासिकता अच्छी तरह सिद्ध हो जाती है:—

१ बंगाली कवि चण्डीदासके समयतक (चौदहवीं शताब्दि) इस तरहका विश्वास जम रहा था कि, बुद्ध और अन्यान्य अवतारोंके समान कल्कि भी भूतकालमें हो चुके हैं। यथा—"कल्किरूपे तोक्षे दलिले दुष्टजन"—(बंगीय साहित्य-परिषत् पुस्तकालयके चण्डीदासकृत हस्तलिखित 'कृष्णकीर्तन' ग्रन्थसे।) इससे जान पड़ता है कि कल्कि भविष्यतमें होनेवाले हैं, यह विश्वास बहुत प्राचीन नहीं है।

२ तेरहवीं शताब्दिके जयदेवने भी कल्किको भूतकालका अवतार माना है। यथा—"केशवधृतकल्किशरीर।"

३ कल्किपुराणके पाठसे मालूम होता है कि, उसमें कल्किकी जीवनकी सारी ही घटनायें भूतकालके रूपमें वर्णन की गई हैं। जैसे कि कल्किके जन्मसम्बन्धमें कहा है—

द्वादश्यां शुक्लपक्षस्य माधवे मासि माधवम्।
जातं ददृशतुः पुत्रं पितरौ हृष्टमानसौ॥

—अ० २ श्लो० १५।

ततः स ववृधे तत्र सुमत्या परिपालितः।

—अ० ३, श्लो० ३०।

४ इस चौथे प्रमाणके द्वारा कल्किकी ऐतिहासिकता और उनका आविर्भावकाल निःसन्दिग्धरूपसे स्थापित होता है। जिनसेन नामके जैनाचार्यने शक संवत् ७०६ में 'हरिवंश' नामक ग्रन्थ बनाया है। उसमें राजाओंके कालपरिमाणके समयमें जो कुछ कहा है वह भारतवर्षके इतिहासमें बहुत ही मूल्यवान् है:—

वीरनिर्वाणकाले च पालकोऽत्राभिषिक्ष्यते।
लोकेऽवन्तिसुतो राजा प्रजानां प्रतिपालकः॥
षष्टिवर्षाणि तद्राज्यं ततो विजयभूभुजाम्।
शतं च पञ्च पञ्चाशद्वर्षाणि तदुदीरितम्॥
चत्वारिंशन्मुरुण्डानां भूमण्डलमखण्डितम्।
त्रिंशत्तु पुष्यमित्राणां षष्टिर्वस्वग्निमित्रयोः॥
शतं रासभराजानां नरवाहनमप्यतः।
चत्वारिंशत्ततो द्वाभ्यां चत्वारिंशच्छतद्वयम्॥
भद्रवाणस्य तद्राज्यं गुप्तानां च शतद्वयम्।
एकत्रिंशच्च वर्षाणि कालविद्भिरुदाहृतम्॥
द्विचत्वारिंशदेवातः कल्किराजस्य राजता।
ततोऽजितंजयो राजा स्यादिन्द्रपुरसंस्थितः॥४८८-९३

—अध्याय ६०

एक जगह जिनसेनने शकाब्दकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें कहा है:—

वर्षाणां षट्शतीं त्यक्त्वा पञ्चाग्रां मासपञ्चकम्।
मुक्तिं गते महावीरे शकराजस्ततोऽभवत्॥

इन सब श्लोकोंसे मालूम होगा कि जिनसेनने कल्किराजाको गुप्त राजाओंके चालीस वर्ष बाद और महावीर स्वामीसे ९९० वर्ष बाद स्थापित किया है; अर्थात् उनकी गणनाके अनुसार कल्किका राज्यकाल शक संवत् ३८५ (ई० सन् ४६३) से आरंभ होता है। इससे मेरा निश्चित किया हुआ पाँचवीं शताब्दीका शेष भाग ही कल्किका अभ्युदयकाल पाया जाता है और उक्त समयसे केवल २०० वर्ष बादके एक ग्रन्थमें यह वर्णन मिलता है। गुप्त राजाओंके बाद ही कल्किका समय बतलानेसे जान पड़ता है कि ईस्वी सन ४६० के लगभग गुप्तसाम्राज्यके नष्ट होजाने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर उनका अभ्युदय हुआ। पुराणोंके उल्लेखोंकी मैंने जैसी व्याख्या की है, उसके साथ यह बात मिल जाती है।

जिनसेनने कल्किको जैनोंके प्रबल शत्रुके रूपमें वर्णन किया है। कल्किपुराणमें भी इसी प्रकार लिखा है।

इस लेखमें हमने दो बातोंको सिद्ध किया है— एक तो यह कि पुराणवर्णित कल्कि एक ऐतिहासिक व्यक्ति है और दूसरी यह कि वह संभवतः विष्णुवर्द्धन यशोधर्मा है। दूसरी बातके सम्बन्धमें सन्देह रह सकता है; परन्तु पहली बातमें कोई भी सन्देह नहीं है। हम समझते हैं, भारतके इतिहासमें कल्किका स्थान चन्द्रगुप्तकी अपेक्षा नीचा नहीं है। धर्म और समाजकी दृष्टिसे कल्किका स्थान बहुत ही ऊँचा है। गुप्त-साम्राज्यके नष्ट होने पर जब अनेक प्रकारके विदेशी म्लेच्छ राजा भारतकी सभ्यता और धर्मको उच्छेद करनेके लिए उद्यत हो गये, उस समय कल्कि नष्टप्राय जातीय सम्यताका पुनरुद्धार करनेके लिए उठा और भारतके अनेक राजाओंको एकतासूत्रमें बाँधकर (कल्किपुराण अध्याय २ का तीसरा अंश) उसने धर्मद्रोहियोंका नाश किया। वह एक तरफसे मेजिनी था और दूसरी ओरसे नेपोलियन। अबतक भारतवर्षका छठी शताब्दिका इतिहास जिस अन्धकारमें निमग्न था, वह कल्किके इतिहासके द्वारा बहुत कुछ दूर हो जायगा और कल्किके अभ्युदयके परवर्ती कालके राष्ट्र, धर्म और समाजका स्वरूप कल्किके इतिहासके द्वारा अधिक स्पष्टतासे समझा जा सकेगा।

नोट। कल्किके सम्बन्धमें हरिवंशपुराणके जो श्लोक उद्धृत किये गये हैं उनसे भी पुरानी गाथायें 'त्रिलोकप्रज्ञप्ति' नामक ग्रन्थकी हैं जो हमने 'लोक-विभाग और त्रिलोकप्रज्ञप्ति' शीर्षक लेखमें उद्धृत की हैं। यह ग्रन्थ हमारी समझमें हरिवंशपुराणसे प्राचीन है और इसलिए ऐतिहासिक दृष्टिसे इसकी गाथाओंकी प्रामाणिकता और भी अधिक है। जैनग्रन्थोंमें कल्किका नाम चतुर्मुख, उसके पिताका नाम इन्द्र और पुत्रका नाम अजितंजय मिलता है। इस विषयमें सभी जैनग्रन्थ एकमत हैं; परन्तु हिन्दुओंके पुराणग्रन्थोंमें उसका नाम विष्णुयशः और उसके पिताका नाम देवसेन मिलता है। पुत्रका उल्लेख नहीं है। मृत्युसम्बन्धी घटनाके विषयमें भी मतभेद है। इधर प्रो० पाठकने मिहिरकुलको कल्कि सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है। पाठक महाशयके लेखका सारांश आगे दिया जाता है। श्वेताम्बर ग्रन्थोंमें कल्किके सम्बन्धमें कुछ और ही लिखा है। वह भी उपस्थित है। आशा है कि श्रीयुत जायसवाल महाशय और दूसरे पुरातत्त्वज्ञ इन सब बातोंपर विचार करनेका कष्ट उठायँगे। सम्पादक।

गुप्त राजाओंका काल, मिहिरकुल और कल्कि।

अभी कुछ समय पहले भाण्डारकर इन्स्टिट्यूटकी स्थापनाके समय डा० भाण्डारकरको एक ऐतिहासिक ग्रन्थ अर्पण किया गया था, उसमें श्रीयुत पं० काशीनाथ बापूजी पाठक बी. ए. का एक महत्त्वका लेख प्रकाशित हुआ है, जिसका सारांश 'हिन्दी चित्रमयजगत्' परसे नीचे उद्धृत किया जाता है:—

प्राचीन कालमें उत्तर भारतमें गुप्तवंशके बड़े शक्तिशाली राजा हो गये हैं। उन्होंने लगभग दो सौ वर्ष राज्य किया था। राज्य करनेकी उनकी शैली बहुत उत्तम थी, इस कारण उस समय भारत देश बड़े वैभवके शिखर पर चढ़ा था। धनधान्यकी खूब समृद्धि थी, अतएव देशकी खूब उन्नति हुई थी। उस समय प्रचलित धर्मोंमें हिन्दूधर्म, बौद्धधर्म और जैनधर्म मुख्य थे। देशमें शान्ति छाई हुई थी, इस कारण लोग खूब

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्पन्न और सद्गुणी थे। उस समय चूँकि बौद्ध धर्मका उत्कर्ष हो रहा था, इस कारण चीन देशसे अनेक यात्री बौद्धधर्मके तत्त्व समझनेके लिए, संस्कृत भाषाका अध्ययन करनेके लिए और बौद्धोंके पवित्र स्थानोंका दर्शन करनेके लिए इस देशमें आया करते थे। इसी समय कालिदासके समान प्रख्यात कवि और दिङ्नागके समान प्रख्यात तत्त्ववेत्ता हो गये। गुप्त राजाओंके अनेक ताम्रपट और शिलालेख मिले हैं। उनमें उन राजाओंने अपना कालनिर्देश भी किया है। परन्तु उन्होंने जो अपना संवत् दिया है उसका आरम्भ कहाँसे समझा जावे, इस विषयमें विद्वान् लोगोंमें अनेक वर्षोंसे चर्चा हो रही है। लेकिन उसका विश्वासयोग्य निर्णय नहीं हुआ। इस विषयमें अनेक विद्वानोंने बड़े बड़े निबन्ध लिखे हैं। जिन विद्वानोंने इसका निर्णय करनेके लिए प्रयत्न किया है वे बड़े बड़े प्रसिद्ध विद्वान् थे और हैं। कुछ विद्वानोंने इस विषयका विवेचन करते हुए अल्बरूनीके ग्रन्थका आधार लिया है। गजनीके महमूद बादशाहने ईस्वी सन्की ग्यारहवीं सदीमें भारतवर्ष पर चढ़ाई की, तब उसके साथ अल्बरूनी नामक विख्यात अरब जातिका पंडित आया था। उसने अपने ग्रन्थमें गुप्त राजाओं और वल्लभी राजाओंका वृत्तान्त दिया है। उसका कथन है कि शक संवत् दो सौ एकतासलीसवें वर्षमें गुप्तकाल शुरू हुआ और गुप्तकालको ही वल्लभी काल कहते थे। गुप्तकाल, गुप्तराजाओंका विस्तृत राज्य लय हो जाने पर प्रारम्भ हुआ। परन्तु कई कारणोंसे उसका यह कथन विद्वानोंको मान्य नहीं हुआ। अन्तमें भारतसरकारने इस बातका निर्णय करनेके लिए सन् १८८४ के लगभग डा० फ्लीटकी नियुक्ति की। डा० फ्लीटने उस समय तक उपलब्ध होनेवाले सारे शिलालेखों और ताम्रपटोंको एकत्र करके एक बड़ी भारी पुस्तक छपाई। यह पुस्तक लिखते समय ग्वालियर राज्यके मन्दसौर नामक स्थान पर डा० फ्लीटको एक बड़ा भारी शिलालेख मिला। उस शिलालेखसे जान पड़ता है कि मालवसंवत् ४९३ में कुछ कोष्टी (कोरी) लोगोंने वहाँ एक सूर्यका मन्दिर बनवायाथा। उस समय कुमारगुप्त नामक गुप्तवंशीय राजा राज्य करता था। इसके ३६ वर्ष बाद जब कि उसी मन्दिरका जीर्णोद्धार किया गया, उस समय मालवसंवत् ५२९ था। इस शिलालेखके विषयमें फ्लीट साहबने अपना यह मत दिया कि मालवसंवत् विक्रमसंवत् ही है। और यह प्रतिपादन किया कि गुप्तशक और शालिवाहन शकमें दो सौ बयालीस वर्षका अन्तर है। अन्य विद्वान् लोगोंको यह मत पसन्द नहीं आया। इसका परिणाम यह हुआ कि फ्लीट साहबका ग्रन्थ निकल जाने पर भी गुप्तकालके विषयमें वादविवाद जारी ही रहा।

इतनेमें जैन ग्रन्थोंमें इस विषयमें बहुत अच्छा वृत्तान्त मिल गया है।

इन जैनग्रन्थोंमें पहला ग्रन्थ जिनसेन आचार्यकृत हरिवंश है। यह ग्रन्थ शक संवत् ७०५ में लिखा गया है। दूसरा ग्रन्थ उक्त जिनसेन आचार्यके * शिष्य गुणभद्राचार्यका रचा हुआ उत्तरपुराण है। तीसरा ग्रन्थ नेमिचन्द्राचार्यकृत त्रिलोकसार है। ये ग्रन्थकार कहते हैं कि महावीर स्वामीके निर्वाणके ६०५ वर्ष ५ महीने बाद शक राजा उत्पन्न हुआ। शक राजाके ३९४ वर्ष सात महीने बाद चतुर्मुख कल्कि नामक दुष्ट राजा हुआ। अर्थात् महावीर स्वामीके

---

* श्रीयुत पाठक महाशय अभीतक हरिवंशपुराणके कर्त्ता जिनसेनको और आदिपुराणके कर्त्ता (गुणभद्रके गुरु) को शायद एक ही समझ रहे हैं। पर यह भ्रम है। विद्वद्रत्नमालामें हम इस बातको अच्छी तरह सिद्ध कर चुके हैं।
—सम्पादक।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निर्वाणके ठीक १००० वर्ष बाद कल्कि राजाका जन्म हुआ। उस वर्ष माघ संवत्सर था।

इससे ऐसा जान पड़ता है कि, शकराजाके बाद ३९४ वें वर्षमें माघ संवत्वर था। इसके तीन वर्ष बाद वैशाख संवत्सर प्राप्त हुआ। वैशाख संवत्सरके रहते हुए १५६ वाँ गुप्तवर्ष था। उस समय परिव्राजक महाराज हस्ती नामक मांडलिक राजा राज्य करता था। चूंकि यह राजा गुप्त राजाओंका मांडलिक था, इस कारण गुप्त राजाओंका वर्चस्व इसने अपने ताम्रपटमें स्वीकार किया है। इसके समयमें गुप्त राजा राज्य करते थे; और उस समय गुप्त वर्ष १५६ वाँ था। शक ३९४ में तीन वर्ष जोड़नेसे ३९७ होते हैं। इस लिए वैशाख संवत्सर रहते हुए ३९७ शकवर्ष था; और १५६ गुप्त वर्ष था। इससे जान पड़ता है कि गुप्त वर्षमें २४१ वर्ष मिलानेसे शकवर्ष आता है; अथवा शकवर्ष और गुप्तवर्षमें ठीक २४१ वर्षका अन्तर होता है। इस लिए जब कि यह कहा है कि कल्कि राजाका जन्म ३९४ वें शकवर्षमें हुआ तब फिर उसमेंसे २४१ वर्ष घटा देनेसे यह सिद्ध होता है कि १५३ वें गुप्त वर्षमें कल्कि राजा उत्पन्न हुआ। अब शक संवत् ३९४ में यदि १३५ मिलाये जायँ तो ५२९ मालवसंवत् आता है। अर्थात् मालवसे तात्पर्य विक्रम सिद्ध होता है। क्योंकि किसी भी शकवर्षमें १३५ जोड़नेसे विक्रमसंवत् आता है। यह बात सुप्रसिद्ध है। मन्दसौर-शिलालेखमें ५२९ मालव वर्ष आनेका उल्लेख ऊपर हो चुका है। यह वर्ष मन्दिरके जीर्णोद्धार करनेका है। ऊपर यह भी कहा जा चुका है कि, मालव संवत् ४९३ में कोष्टी लोगोंके द्वारा इस मन्दिरके बनाये जानेका उक्त शिलालेखमें उल्लेख है। इससे यह सिद्ध होता है कि कुमारगुप्त राजा विक्रमसंवत् ४९३, गुप्तसंवत् ११७ और शक ३५८ में राज्य करता था।

इससे यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि, गुप्तसंवत् और विक्रमसंवत्में ३७६ वर्ष का अन्तर है। बिरावलमें एक शिलालेख मिला है उसमें विक्रम संवत् १३२० और वल्लभीसंवत् ९४५ आषाढ़ कृष्ण त्रयोदशी रविवारका कालनिर्देश किया गया है। गणित करनेसे ऐसा जान पड़ता है कि, इस शिलालेखमें दिया हुआ संवत् कार्तिकादि है। इससे ऐसा सिद्ध होता है कि, उस समय चैत्रादि विक्रमसंवत् १३२१ था। अर्थात् शक संवत् ११८६, चैत्रादि विक्रम १३२१ और वल्लभी वर्ष ९४५ बराबर होते हैं।

शक		विक्रम		वल्लभी
११८६	=	१३२१	=	९४५
३५८	=	४९३	=	११७
८२८		८२८		८२८

अर्थात् पहले अंकोंसे दूसरे अंकोंको घटा देनेसे ८२८ बाकी बचते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि, वल्लभी नाम गुप्तशकका ही है और मालव नाम चैत्रादि विक्रमसंवत्का है। और इसी लिए ९४५ वल्लभी वर्षमें २४१ मिलानेसे ११८६ आते हैं। इसकी सिद्धि दो रीतियोंसे होती है। पहले माघ संवत्सरका हमने उल्लेख किया है; और फिर बिरावलके शिलालेखके अंकोंका उपयोग किया है। इस तरह जैन लोगोंके दिये हुए वृत्तान्तसे आज लगभग ७८ वर्षके वादविवादका निर्णय हुआ है।

यहाँ, इस समय एक बातका और भी उल्लेख करना चाहिए कि, इस समय जिस प्रकार प्रभव-विभवादि साठ संवत्सर जारी हैं, उसी प्रकार ईस्वी सन्की पाँचवीं शताब्दिमें माघ वैशाखादि द्वादश संवत्सर जारी थे।

जैनग्रन्थकार यह भी कहते हैं कि, कल्कि राजाने शक ४३५ में गुप्तोंका विस्तृत राज्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विध्वंस किया। यह राजा बड़ा दुष्ट था, इसने जैनियोंके निर्ग्रन्थ साधुओंको बहुत ही सताया। शिलालेखोंसे मालूम होता है कि गुप्तोंके राज्यका लय करनेवाला मिहिरकुल नामक बलाढ्य राजा-हो गया है। इस मिहिरकुल राजाका सविस्तर वर्णन हुएनसंग नामक प्रख्यात चीनी यात्रीने अपने प्रवासवर्णनमें दिया है। इसके सिवाय, इस राजाकी दुष्ट कृतिके विषयमें राजतरंगिणी नामक संस्कृत ग्रन्थमें भी विशेष वृत्तान्त आया है। यह दुष्ट राजा गुप्तोंके बाद उनका राज्य अधिकृत करके चालीस वर्ष राज्य करता रहा; और ७० वर्षकी अवस्थामें मरा। यह स्पष्ट है कि, इसीका नाम चतुर्मुख कल्कि था।

लोकविभाग और त्रिलोक-प्रज्ञप्ति।

[दो प्राचीन ग्रन्थ।]

लोकविभाग नामक ग्रन्थके विषयमें हम बहुत दिनोंसे सुन रहे थे कि यह बहुत प्राचीन ग्रन्थ है। श्रीयुत विन्सेंट ए. स्मिथने अपने सुप्रसिद्ध इतिहास (अर्ली हिस्ट्री आफ इंडिया) के पृष्ठ ४७१ में इसका उल्लेख किया है और इसे शककी चौथी शताब्दिका बतलाया है। खोज करने पर हमें इसकी एक प्रति स्वर्गीय विद्याप्रेमी सेठ माणिकचन्दजीके सरस्वतीभण्डारसे प्राप्त हो गई। इसकी श्लोकसंख्या २२३० और पत्रसंख्या ७१ है। भट्टारक भुवनकीर्तिके शिष्य ज्ञानभूषण भट्टारकके उपदेशसे 'नागद्रा साहवाग्र' नामके किसी लेखकने इसे लिखा है। अतएव यह विक्रमकी सोलहवीं शताब्दिकी लिखी हुई है। ज्ञानभूषण इसी शताब्दिमें हुए हैं।

ग्रन्थकी भाषा संस्कृत और छन्द अनुष्टुप् है। इसमें जम्बूद्वीप, लवणसमुद्र, मानुषक्षेत्र, द्वीपसमुद्र, काल, तिर्यग्लोक, भवनवासिलोक, गति, मध्यलोक, व्यन्तरलोक, स्वर्ग और मोक्ष विभाग नामके ११ अधिकार या अध्याय हैं। संक्षेपमें यह त्रैलोक्यसारके ढंगका ग्रन्थ है। इसका मंगलाचरण यह है:—

लोकालोकविभागज्ञान् भक्त्या स्तुत्वा जिनेश्वरान्।
व्याख्यास्यामि समासेन लोकतत्त्वमनेकधा ॥ १॥

आन्तिम प्रशस्तिके श्लोक ये हैं:—

भवे (व्ये) भ्यः सुरमानुषोरुसदसि श्रीवर्द्धमानार्हता
यत्प्रोक्तं जगतो विधानमखिलं ज्ञातं सुधर्मादिभिः।
आचार्यावलिकागतं विरचितं तत्सिंहसूरर्षिणा
भाषायाः परिवर्तनेन निपुणैः सम्मानिता (तं)
साधुभिः ॥ १

वैश्वे स्थिते रविसुते वृषभे च जीवे,
राजोत्तरेषु सितपक्षमुपेत्य चन्द्रे।
ग्रामे च पाटलि (क) नामनि पाणराष्ट्रे,
शास्त्रं पुरा लिखितवान् मुनिसर्वनन्दिः ॥ २ ॥

संवत्सरे तु द्वाविंशे कांचीशसिंहवर्मणः।
अशीत्यग्रे शकाब्दानां सिद्धमेतच्छतत्रये ॥ ३ ॥
पञ्चादशशतानि षट्त्रिंशत्यधिकानि वै।
शास्त्रस्य संग्रहस्त्विदं छन्दसानुष्टुभेन च ॥ ४ ॥

इति लोकविभागे मोक्षविभागो नाम एकादश प्रकरणं समाप्तं।

प्रशस्तिके उक्त श्लोकोंका अर्थ इस प्रकार होता है—

"देवों और मनुष्योंकी सभामें भगवान् वर्द्धमान अरहंतने भव्य जनोंके लिए जो जगत्का सारा स्वरूप कहा था और जिसे सुधर्मा स्वामी आदि गणधरोंने जाना था, वह आचार्योंकी परम्पराद्वारा चला आया और उसे सिंहसूरिने भाषाका परिवर्तन करके रचा। निपुण साधुओंने इसका सम्मान किया ॥ १ ॥

"जिस समय उत्तराषाढ़ नक्षत्रमें शनिश्चर, वृषराशिमें बृहस्पति और उत्तरा फाल्गुनीमें चन्द्रमा था, तथा शुक्लपक्ष था (अर्थात फाल्गुन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शुक्ला पूर्णिमा थी) उस समय पाणराष्ट्रके पाटलि (पटना ?) ग्राममें इस शास्त्रको पहले सर्वनन्दि नामक मुनिने लिखा ॥ २ ॥

" कांचीके राजा सिंहवर्माके २२ संवत्सरमें और शकके ३८० वें वर्षमें यह ग्रन्थ समाप्त हुआ ॥ ३ ॥

" यह शास्त्रका संग्रह १५२६ अनुष्टुप् छन्दोंमें समाप्त हुआ है । "

प्रशस्तिके इन श्लोकोंको पढ़कर हमें इस ग्रन्थकी प्राचीनताके विषयमें बड़ा कुतूहल हुआ । क्योंकि शक संवत्का इससे पुराना उल्लेख अबतक कहीं भी नहीं मिला है । यद्यपि ग्रन्थकी प्राचीनताके विषयमें सन्देह करनेका कोई कारण नहीं था, फिर भी हमें ग्रन्थको एक बार अच्छी तरह देख जानेकी आवश्यकता मालूम हुई । हमने देखा कि, इसमें ग्रन्थान्तरोंसे भी कुछ श्लोक उद्धृत किये गये हैं । सबसे पहले हमारी दृष्टि त्रिलोकप्रज्ञप्ति पर पड़ी । इस ग्रन्थकी पचासों गाथायें लोकविभागमें उद्धृत हैं । हम अकलंकसरस्वतीभवन काशीके मंत्री पं० उमरावसिंहजीके और पं० इन्द्रलालजी साहित्यशास्त्रीके बहुत ही कृतज्ञ हैं, कि हमारे लिखनेसे उक्त महाशयोंने त्रैलोक्यप्रज्ञप्तिकी दो हस्तलिखित प्रतियाँ हमारे पास तत्काल ही भेज दीं । जब लोकविभागकी ' उक्तं च ' गाथायें त्रिलोकप्रज्ञप्तिमें मिल गईं, तब हमें इस बातसे और भी अधिक प्रसन्नता हुई कि त्रिलोकप्रज्ञप्ति लोकविभागसे भी पुराना ग्रन्थ है ।

परन्तु इसके बाद ही मालूम हुआ कि लोकविभागमें त्रैलोक्यसारकी भी गाथायें मौजूद हैं, तब हमारी उक्त प्रसन्नता हवा हो गई । क्योंकि त्रैलोक्यसार विक्रमकी ११ वीं शताब्दिका बना हुआ ग्रन्थ है, और यह सुनिश्चित है । क्योंकि त्रैलोक्यसारकी संस्कृतटीकामें पं० माधवचन्द्र त्रैविद्यदेव-जो त्रैलोक्यसारके कर्त्ता नेमिचन्द्रके शिष्य थे-स्पष्ट शब्दोंमें लिखते हैं कि यह ग्रन्थ मंत्रिवर चामुण्डरायके प्रतिबोधके लिए बनाया गया है और चामुण्डरायके बनाये हुए त्रिषष्टिलक्षण-महापुराणमें उसके बननेका समय शक संवत् ९०० (वि० सं० १०३५) लिखा हुआ है । कनड़ीके और भी कई ग्रन्थोंसे चामुण्डराय और नेमिचन्द्रका समय यही निश्चित होता है ।

लोकविभागमें त्रैलोक्यसारकी गाथा देते समय स्पष्ट शब्दोंमें ' उक्तं च त्रैलोक्यसारे ' इस प्रकार लिखा है । इस कारण यह सन्देह भी नहीं हो सकता कि, वे गाथायें किसी अन्य प्राचीन ग्रन्थकी होंगी और उससे लोकविभागके समान त्रैलोक्यसारमें भी ले ली गई होंगी, क्योंकि त्रैलोक्यसार संग्रहग्रन्थ है । अतः सिद्ध हुआ कि लोकविभाग त्रैलोक्यसारसे पीछेका, ग्यारहवीं शताब्दिके बादका, ग्रन्थ है ।

लोकविभागमें त्रैलोक्यसारकी जो गाथायें उद्धृत की गई हैं, उनमेंसे दो ये हैं:-

वेलंधरभुजगविमाणाण सहस्साणि बाहिरे सिहरे ।
अंते बावत्तरि अडवीसं बादालयं लवणे ॥

दुतडादो सत्तसयं दुकोसअहियं च होइ सिहरादो ।
णयराणिहु गयणतले जोयण दसगुणसहस्स वासाणि ।

ये त्रैलोक्यसारकी ८९८-९९ नम्बरकी गाथायें हैं और लोकविभागमें ४२२ वें नम्बरके श्लोकके बाद उद्धृत की गई हैं । इसी प्रकारकी और भी चार पाँच गाथायें हैं ।

त्रैलोक्यसंग्रह नामके एक और ग्रन्थकी भी कुछ गाथायें लोकविभागमें उद्धृत की गई हैं, परन्तु यह ग्रन्थ हमें कहींसे प्राप्त नहीं हो सका ।

१ त्रिलोकप्रज्ञप्तिमें पाण, शबर, पुलिंद आदिको नीच जातियोंके भेदोंमें गिनाया है । क्या पाणराष्ट्र, इन्हीं नीचोंमेंकी किसी जातिके राज्यको कहा होगा ?

२ पाटलिपुत्र पटनाका पुराना नाम है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Nana, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अत एव उसके विषयमें कुछ नहीं कहा जा सकता।

जब लोकविभागके निर्माणसमयमें सन्देह हो गया, तब और अधिक छान-बीनकी आवश्यकता मालूम हुई और अन्तमें यह निश्चय हो गया कि, वह अपेक्षाकृत आधुनिक ही है--पुराना नहीं है। इसके पाँचवे अध्यायके ४२ वें श्लोकके बाद 'उक्तं चार्षे' लिखकर तीन श्लोक उद्धृत किये गये हैं। हम जानते हैं कि बहुतसे ग्रन्थकार जिनसेनस्वामीके आदिपुराण-का 'आर्ष' शब्दसे उल्लेख करते हैं। अतएव हमें आशा हुई कि ये श्लोक आदिपुराणमें मिल जायँगे और अन्तमें हमारी आशा सफल भी हुई। आदिपुराणके तीसरे पर्वमें हमें ये श्लोक मिल गये:—

ततस्तृतीयकालेऽस्मिन्व्यतिक्रामत्यनुक्रमात्।
पल्योपमाष्टभागस्तु यदास्मिन्परिशिष्यते॥
कल्पानोकहवीर्याणां क्रमादेव परिच्युतौ।
ज्योतिरंगास्तदा वृक्षा गता मन्दप्रकाशतां॥
पुष्पदन्तावथाषाढ्यां पौर्णमास्यां स्फुरत्प्रभो।
सायाह्ने प्रादुरास्तां तौ गगनोभयभागयोः॥

आदिपुराणमें इनका नम्बर ५५-५६-५७ है। आदिपुराण विक्रमकी नौवीं शताब्दिके अन्तमें बना है, अतएव यह कहना होगा कि लोगविभाग उससे पीछेका है, शक संवत् ३८० का नहीं। तब ग्रन्थके अन्तमें जो समय लिखा है वह क्या जाली है? लोगोंको धोखा देनेके लिए लिखा गया है?

प्रशस्तिके श्लोकोंको बहुत बारीकीके साथ समझनेसे इस प्रश्नका उत्तर मिल जाता है। पहले श्लोकके 'भाषायाः परिवर्तनेन सिंहसूरर्षिणा विरचितं' पदसे और दूसरे श्लोकके 'शास्त्रं पुरा लिखितवान् मुनि सर्वनन्दिः' पदसे मालूम होता है कि इस ग्रन्थको पहले प्राकृत भाषामें सर्वनन्दि नामक मुनिने बनाया था, पीछे उसे भाषाका परिवर्तन करके सिंहसूरिने संस्कृतमें बनाया है। अतः शक संवत् ३८० (वि० सं० ५१२) पहले प्राकृत ग्रन्थके बननेका समय है, इस संस्कृत ग्रन्थके बननेका नहीं है। इसके बननेका समय या तो लिखा ही नहीं गया है, या लेखकोंकी गलतीसे छूट गया है।

गरज यह कि उपलब्ध 'लोकविभाग' जो कि संस्कृतमें है, बहुत प्राचीन ग्रन्थ नहीं है। प्राचीनतासे उसका इतना ही सम्बन्ध है कि वह एक बहुत पुराने--शक संवत् ३८० के बने हुए--ग्रन्थसे अनुवाद किया गया है। इस बातका निश्चय नहीं हो सका कि यह त्रैलोक्यसारसे कितने समय पीछे बना है। यदि इसके कर्त्ता सिंहसूरिके बनाये हुए किसी अन्य ग्रन्थका पता लगता, तो उससे शायद इसका निश्चय हो जाता।

अब त्रिलोकप्रज्ञप्तिको लीजिए। इसका प्राकृत नाम 'तिलोयपण्णत्ति' है। बहुत बड़ा ग्रन्थ है। इसकी श्लोकसंख्या आठ हजार है। ग्रन्थका अधिकांश प्राकृत गाथाबद्ध है। कुछ अंश गद्यमें भी है। संस्कृतच्छाया या टीका कुछ भी साथ नहीं है। इस कारण इसका अभिप्राय समझनेमें बड़ी कठिनाईका सामना करना पड़ता है। अप्रचलित और दुर्लभ होनेके कारण अभीतक इसकी कोई भाषाटीका या वचनिका भी नहीं हुई है। इसका विषय इसके नामसे ही प्रकट है। त्रैलोक्यसारसे इसमें यह विशेषता है कि जो बात उसमें दश गाथाओंमें कही है, वह इसमें पंचीस पचास गाथाओंमें लिखी गई है। सैकड़ों बातें ऐसी भी हैं, जो त्रैलोक्यसारमें बिलकुल ही नहीं हैं। त्रैलोक्यसारकी गाथासंख्या एक हजार है, अतएव यह उससे अठगुणा बड़ा ग्रन्थ है। ऐसा मालूम होता है कि त्रैलोक्यसार इसी ग्रन्थका सार है और आश्चर्य नहीं जो वह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसे ही सामने रख कर लिखा गया हो । इसमें सामान्य जगत्स्वरूप, नारकलोकस्वरूप, भवनवासी, मनुष्यलोक, तिर्यक्लोक, व्यन्तरलोक, ज्योतिर्लोक, सुरलोक और सिद्धलोक नामके ९ महा अधिकार या अध्याय हैं। प्रत्येक अध्यायके भीतर छोटे छोटे और भी अनेक अध्याय हैं।

इस ग्रन्थकी प्रारंभिक गाथा यह है—

अट्ठविहकम्मवियला णिट्ठियकज्जा पणट्ठसंसारा ।
दिट्ठसयलट्ठसारा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥ १ ॥

इसके बाद चार गाथाओंमें अरहंत, आचार्य, उपाध्याय और साधुओंको नमस्कार किया है। फिर एक बड़ी लम्बी पीठिकादी है, जिसमें मंगल, कारण, हेतु, आदि बातों पर खूब विस्तारसे विचार किया है। उसके अन्तमें लिखा है:—

सासदपदमावण्णं पवाहरूवत्तणेण दोसेहिं ।
णिस्सेसेहिं विमुक्कं आइरियअणुक्कमाआदं ॥ ८६ ॥
भव्वजणाणंदयरं वोच्छामि अहं तिलोयपण्णत्ती ।
णिज्जरभत्तिपसादिदवरगुणचरणाणुभावेण ॥ ८७ ॥

इसमें त्रिलोकप्रज्ञप्तिको, भव्यजनानन्दकारिणी, प्रवाहरूपसे शाश्वती, निःशेषदोषरहित और आचार्योंकी परम्पराद्वारा चली आई, ये विशेषण दिये हैं और कहा है कि इसे मैं देवपूज्य श्रेष्ठ गुरुओंके चरणोंके प्रभावसे कहता हूँ।

आगे ग्रन्थान्तमें कुन्थुनाथसे लेकर वर्द्धमान तक आठ * तीर्थंकरोंको, पंचपरमेष्ठीको, और फिर चौवीस तीर्थंकरोंको नमस्कार करके नीचे लिखी गाथायें देकर ग्रन्थ समाप्त किया है:—

* पणमह जिणवरवसहं, गणहरवसहं तहेव गुणवसहं ।
दट्ठूण परिसवसहं जदिवसहं धम्मसुत्तपाढए वसहं ॥ ८० ॥
चुण्णिसरूव छक्करणसरूवपमाण होदि किं जत्तं ।
अट्ठसहस्सपमाणं तिलोयपण्णत्तिणामाए ॥ ८१ ॥

एवं आइरियपरंपरागय तिलोयपण्णत्तिए सिद्धोलोयसरूवनिरूवणपण्णत्तीणाम णवमो महाहियारो सम्मत्तं ।

मग्गप्पभावणट्ठं पवयणभत्तिप्पवोधिदेण मया ।
भणिदं गंथं पवरं सोहंतु बहुस्सुदाइरिया ॥

तिलोयपण्णत्ती सम्मत्ता ।

इनमेंसे पहली गाथासे हमें यह मालूम होता है कि यह ग्रन्थ यतिवृषभाचार्यका बनाया हुआ है। ये यतिवृषभ आचार्य वही हैं, जिनका उल्लेख इन्द्रनन्दिकृत श्रुतावतारमें किया गया है और जिन्हें कषायप्राभृतनामक द्वितीय श्रुतस्कन्धके चूर्णिसूत्रोंका कर्त्ता बतलाया है—

पार्श्वे तयोर्द्वयोरप्यधीत्य सूत्राणि तानि यतिवृषभः ।
यतिवृषभनामधेयो बभूव शास्त्रार्थनिपुणमतिः ॥ १५५ ॥
तेन ततो यतिपतिना तद्गाथावृत्तिसूत्ररूपेण ।
रचितानि षट्सहस्रग्रन्थान्यथ चूर्णिसूत्राणि ॥ १५६ ॥

अर्थात् "गुणधर आचार्यने कषायप्राभृत सूत्रके व्याख्यानको जिन नागहस्ति और आर्यमंक्षु मुनियोंके लिए लिखा था, उन दोनोंके पास यतिवृषभ नामके श्रेष्ठ यतिने उसे पढ़ा और फिर उसपर छह हजार श्लोकप्रमाण चूर्णिसूत्र लिखे।" पूर्वोक्त गाथामें यतिवृषभको जो 'धर्मसूत्रपाठकवृषभं' (धर्मसूत्रोंके श्रेष्ठ पाठक) विशेषण दिया है, उससे भी इस बातकी पुष्टि

---

* प्रारम्भके १६ तीर्थंकरोंका स्तवन पहले आठ अधिकारोंके प्रारंभ और अन्तमें क्रमानुसार किया गया है।

* संस्कृतछाया—
प्रणमत जिनवरवृषभं गणधरवृषभं तथैव गुणवृषभं ।
दृष्ट्वा परिषद्वृषभं यतिवृषभं धर्मसूत्रपाठकवृषभं ॥ ८० ॥
चूर्णिस्वरूपं षट्करणस्वरूपप्रमाणं भवति किं यत् तत् ।
अष्टसहस्रप्रमाणं त्रिलोकप्रज्ञप्तिनाम्न्यः ॥ ८१ ॥
मार्गप्रभावनार्थं प्रवचनभक्तिप्रवोधितेन मया ।
भणितं ग्रन्थप्रवरं शोधयन्तु बहुश्रुताचार्याः ॥ ८२ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होती है कि वे धर्मसूत्र या सिद्धान्त-ग्रन्थके कर्त्ता यतिवृषभ ही हैं । इसके सिवाय आगेकी गाथाका अर्थ यदि यह हो कि "चूर्णिस्वरूप और षट्करणस्वरूपके श्लोकोंका जो (संयुक्त) प्रमाण है, वही आठ हजार श्लोके इस त्रिलोकप्रज्ञप्तिका प्रमाण है।"—तो यह बात और भी अधिक स्पष्ट हो जाती है। यतिवृषभकी जो चूर्णिसूत्र नामक छः हजार श्लोक परिमित टीका है, उक्त गाथाका 'चूर्णिस्वरूप' शब्द उसीके लिए आया जान पड़ता है। 'षट्करणस्वरूप' नामका और भी कोई ग्रन्थ इन्हीं आचार्यका बनाया हुआ होगा और उसकी श्लोकसंख्या दो हजार होगी। वह ग्रन्थ बहुत करके गणितका होगा। करणसूत्र गणितके सूत्रोंको कहते हैं। उक्त दोनों ग्रन्थोंके बनानेके बाद श्रीयतिवृषभने त्रिलोकप्रज्ञप्तिको बनाया होगा, इस लिए इसमें उनका यह लिखना आश्चर्यजनक नहीं कि हमारे पहले दो ग्रन्थोंकी एकत्रित श्लोकसंख्या जितनी है, उतनी इस ग्रन्थकी है। पाठक शंका करेंगे कि, पहली गाथामें जो 'यतिवृषभं' शब्द है, वह श्रेष्ठ आचार्योंका वाचक भी तो हो सकता है। हम इस बातको मानते हैं; परन्तु साथ ही यह भी कहते हैं कि, ग्रन्थकर्त्ताने इसमें अपना नाम भी ध्वनित किया है। इस तरहके नमस्कारात्मक गाथा—श्लोक आदि और भी अनेक ग्रन्थोंमें मिलते हैं; जिनमें किसी तीर्थंकर आदिको नमस्कार किया है और साथ ही अपना नाम भी ग्रन्थकर्त्ताओंने ध्वनित कर दिया है। नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तीका यह गाथार्ध सभीको याद होगा—'विमलवरणेमिचंदं तिहुवणचंदं णमस्सामि।' इसी तरह सोमदेव आचार्यने नीतिवाक्यामृतके प्रारंभमें लिखा है—'सोमं सोमसमाकारं सोमाभं सोमसंभवं। सोमदेवमुनिं नत्वा नीतिवाक्यामृतं ब्रुवे।' इसकी टीकामें यह बात स्पष्ट शब्दोंमें कह दी गई है कि ग्रन्थकर्त्ताने इसमें सोम अर्थात् चन्द्रप्रभका स्तवन किया है और साथ ही अपना नाम भी ध्वनित कर दिया है। गरज यह कि 'यतिवृषभं' विशेषणमें ग्रन्थकर्त्ताने अपना नाम भी ध्वनित किया है।

तीसरी गाथामें कहा है कि "मैंने यह ग्रन्थ प्रवचनशक्तिसे प्रबुद्ध होकर धर्मकी प्रभावनाके लिए बनाया है। इसे बहुश्रुत आचार्य शुद्ध करें।" अपना नाम प्रकट न किया होता तो इस गाथामें यह न कहा जाता कि 'मैंने' इस ग्रन्थको बनाया है। इससे मालूम होता है कि इसके पहले ग्रन्थकर्त्ता अपना नाम प्रकट कर चुके हैं और वह नाम 'यतिवृषभ' ही हो सकता है।

अब यह देखना चाहिए कि, यतिवृषभाचार्यका समय क्या है। इन्द्रनन्द्रिके ग्रन्थसे तो इसका कुछ निश्चय हो नहीं सकता है। क्योंकि यतिवृषभने जिन गुणधर आचार्यके शिष्योंसे पढ़ा था, उनका समयादि इन्द्रनन्द्रिको मालूम ही नहीं था। वे इस बातको स्पष्ट शब्दोंमें स्वीकार करते हैं:—

गुणधरधरसेनान्वयगुर्वोः पूर्वापरक्रमोऽस्माभिः।
न ज्ञायते तदन्वयकथकागममुनिजनाभावात्॥

ऐसी दशामें यतिवृषभका निश्चित समय मालूम करना बहुत कठिन है। साधारण दृष्टिसे देखनेसे इसमें अन्य किसी ग्रन्थके 'उक्तं च' श्लोकादि भी नहीं मिले, जिससे समयनिर्णयमें कुछ सहायता मिलती। हाँ यह बात अवश्य कही जा सकती है कि त्रिलोकप्रज्ञप्ति ग्रन्थ संस्कृत लोकविभागसे पहलेका बना हुआ है। क्यों कि उसमें इसकी पचासों गाथायें उद्धृत की गई हैं। पर प्राकृत लोकविभागसे पहलेका, अर्थात् शक संवत् ३८० के पूर्वका, यह ग्रन्थ कदापि नहीं हो सकता। क्योंकि इसमें जिस कल्किराजाका वर्णन है, वह इसी ग्रन्थके समयनिरू-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पणके अनुसार शक संवत् ३८० के बाद हुआ है।

इस ग्रन्थके अनुसार कल्किकी मृत्यु वीर-निर्वाणके एक हजार वर्ष बाद हुई है और शकके ४६१ वर्ष पहले अथवा ६०५ वर्ष पहले वीरनिर्वाण हुआ है। यदि इन दो मतोंमेंसे हम दूसरे मतको ठीक समझें, तो शक संवत् ३९५ में कल्किकी मृत्यु माननी पड़ेगी। ऐसी दशामें इस ग्रन्थको प्राकृत लोकविभागके पहलेका बना हुआ नहीं मान सकते। क्यों कि वह शक ३८० में बना है।

कितने पीछे बना है, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता, पर ऐसा मालूम होता है कि कल्किके दश बीस वर्षोंके बाद ही यह बना होगा। क्योंकि एक तो इसमें कल्किके बादके बहुत थोड़े ही समयका वर्णन है, और उसमें भी कल्किके पुत्र अजितंजयके दो वर्षतक धर्म-राज्य करनेका उल्लेख है। यदि यह दो वर्षतक धर्मराज्य करनेकी बात बहुत पुरानी होती, तो उसे लोग भूल ही गये होते—ग्रन्थकर्त्ताको भी उसका पता न चलता। दूसरे अजितंजयके बहुत पीछे यदि यह ग्रन्थ बना होता तो यह संभव नहीं जान पड़ता कि, इतने बड़े भारी ग्रन्थमें उसके बादके अन्य राजाओंका थोड़ा बहुत उल्लेख न किया जाता।

इन्द्रनन्दिने यद्यपि यतिवृषभका समय नहीं बतलाया है, तथापि उन्होंने जिस क्रमसे वर्णन किया है, उससे कल्किके दश पाँच वर्ष पीछे यतिवृषभका समय होना, असंभव नहीं जान पड़ता। उनके कथनानुसार वीरनिर्वाण संवत् ६८३ तक अंगज्ञानकी प्रवृत्ति रही है। उसके बाद अर्हद्बलि आचार्य हुए। उनके कुछ समय बाद (तत्काल ही नहीं) माघनन्दि हुए। उनके स्वर्गवासी होने पर कुछ समय बाद धरसेन आचार्य हुए। इन्होंने भूतबलि पुष्पदन्त-को पढ़ाया। भूतबलिने जिनपालितको पढ़ाया। फिर एक गुणधर नामके आचार्य हुए। उनके शिष्य नागहस्ति आर्यमंक्षुसे यति-वृषभने पढ़ा। यदि इन सबके होनेमें ३२५ वर्ष लगभग मान लिये जाएँ तो (६८३+३२५=) १००८ वीरनिर्वाणके लगभग यति-वृषभका समय ठीक हो सकता है। इन्द्रनन्दि-को गुणधर और धरसेन आचार्यका पूर्वक्रम मालूम नहीं था, इसलिए ये आचार्य असंभव नहीं जो अंगज्ञानके नष्ट होनेके और अर्हद्बलि, माघनन्दि आदिके बहुत बाद—लगभग ३०० वर्ष बाद—हुए हों।

यदि यह न भी माना जाय—यद्यपि न माननेका कोई प्रबल कारण नहीं दिखलाई देता—तो भी इसमें तो सन्देह नहीं कि यह ग्रन्थ प्राचीन है। इसकी रचनाशैली ही निराली है। पिछले समयके ग्रन्थोंकी रचनाशैलीसे वह नहीं मिलती। हमें आशा है कि यदि इस ग्रन्थका बारीकीसे अध्ययन किया जायगा, जिसके लिए अभी हमारे पास समय नहीं है, तो इसके भीतरसे ही ऐसे प्रमाण उपलब्ध हो सकेंगे, जिनसे इसकी प्राचीनता और भी स्पष्ट हो जायगी। आश्चर्य नहीं जो इसके बननेका ठीक समय भी निर्णीत हो जाय।

इस ग्रन्थके अन्तमें जो कुन्थुनाथादि तीर्थ-करोंका स्तवन किया गया है, उसमें वीरभगवा-न्के स्तवनकी गाथा यह है:—

एस सुरासुरमणुसिंदवंदियं धोदघादिकम्ममलं।
पणमामि वड्ढमाणं तित्थं धम्मस्स कत्तारं ॥ ७७ ॥

पाठक यह जानकर आश्चर्य करेंगे कि यही गाथा श्रीकुन्दकुन्दाचार्यके सुप्रसिद्ध ग्रन्थ प्रवचन-सारकी प्रारंभिक मंगलाचरणगाथा है। यदि त्रिलोकप्रज्ञप्तिके कर्ता यतिवृषभ ही हैं, तो यह मानना पड़ेगा कि, प्रवचनसारमें यह गाथा इसी ग्रन्थपरसे ले ली गई है। क्यों कि इन्द्रनन्दिके

CC-0. Jain Vishva Bharati Jain Institute, Noria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कथनानुसार कुन्दकुन्दाचार्य यतिवृषभसे पीछे हुए हैं। यतिवृषभके बाद ही उन्होंने सिद्धान्त-ग्रन्थोंकी टीका लिखी है। कुन्दकुन्दका समय जो विक्रमकी पहली शताब्दिमें माना जा रहा है, वह हमारी समझमें भ्रम है। इस मानताकी सत्यताके विषयमें भट्टारकोंकी बे-सिरपैरकी पट्टावलियोंके सिवाय और कोई प्रमाण नहीं दिया जा सकता। त्रिलोकप्रज्ञप्तिमें यह गाथा 'उद्धृत' नहीं जान पड़ती। क्योंकि वहाँ यह तीर्थंकरोंके क्रमागत स्तवनमें कही गई है। परन्तु इस विषयमें अधिक जोर देकर कोई भी बात नहीं कही जा सकती। क्योंकि प्रवचनसार और त्रिलोकप्रज्ञप्ति दोनोंकी ही रचनाका समय सन्दिग्ध है।

हरिवंशपुराणमें पालक आदि राजाओंका जो इतिहास दिया है, हमारी समझमें वह त्रिलोकप्रज्ञप्तिपरसे ही लिया गया है। त्रिलोकप्रज्ञप्तिकी वे गाथायें जिनसे पालक आदि राजाओंका इतिहास मालूम होता है, यहाँ उद्धृत की जाती हैं और उनका भावार्थ भी लिख दिया जाता है। प्राचीन इतिहासके अन्वेषकोंके लिए ये गाथायें बहुत उपयोगिनी सिद्ध होंगी।

इन गाथाओंका सिलसिला महावीर भगवान्के निर्वाणके बादसे शुरू होता है।

जादो सिद्धो वीरो तद्दिवसे गोदमो परमणाणी ।
जादो तस्सिं सिद्धे सुधम्मसामी तदो जादो ॥६६॥

तंमि कदकम्मणासे जंबूसामित्ति केवली जादो ।
तत्थ वि सिद्धपवण्णे, केवलिणो णत्थि अणुबद्धा ६७

वासट्ठी वासाणि गोदमपहुदीण णाणवंताणं ।
धम्मपयट्टणकाले परिमाणं पिण्डरूवेण ॥ ६८ ॥

अर्थ—जिस दिन श्रीवीर भगवान्का मोक्ष हुआ, उसी दिन गोतम गणधरको परम ज्ञान या केवलज्ञान हुआ और उनके सिद्ध होने पर सुधर्मा स्वामी केवली हुए। उनके कृत-कर्मोंके नाश कर चुकने पर जम्बू केवली हुए। उनके बाद फिर कोई केवली नहीं हुआ। इन गोतम आदि केवलियोंके धर्मप्रवर्तनका एकत्रित समय ६२ वर्ष है ॥ ६६–६८।

कुण्डलगिरिम्मि चरिमो केवलणाणीसु सिरिधरो सिद्धो।
चरणरिसीसु चरिमो सुपासचंदाभिधाणो य ॥ ६९ ॥
पंणसमणेसु चरिमो वइरजसो णाम ओहिणाणिस्स ।
चरिमो सिरि णामो सुदविणयसुसीलादिसंपन्नो ॥७०॥
मउडधरेसुं चरिमो जिणदिक्खं धरदि चंदगुत्तो य ।
तत्तो मउडधरादो पव्वज्जं णेव गेण्हंति ॥ ७१ ॥

अर्थ—केवलज्ञानियोंमें सबसे अन्तिम श्रीधर हुए जो कुण्डलगिरिसे मुक्त हुए, और चारण ऋद्धिके धारक ऋषियोंमें सबसे अन्तिम सुपार्श्वचन्द्र हुए। इसी तरह पाँच श्रमणोंमें सबसे अतिम वज्रयश हुए और अवधिज्ञानियोंमें श्रुतविनयशीलादिसम्पन्न श्रीनामके मुनि। मुकुटधर राजाओंमें सबसे अन्तिम चन्द्रगुप्तने जिनदीक्षा धारण की। इसके बाद किसी राजाने प्रव्रज्या या दीक्षा नहीं ग्रहण की ॥६९–७१॥

णंदी य णंदिमित्तो विदिओ अवराजिदं तइं जाइं ।
गोवद्धणो चउत्थो पंचमओ भद्दबाहुत्ति ॥ ७२ ॥
पंच इमे पुरिसवरा चउदसपुव्वी जगंमि विक्खादा ।
ते बारसअंगधरा तित्थे सिरिवड्ढमाणस्स ॥ ७३ ॥
पंचाणमेलिदाणं कालपमाणं हवेदि वाससदं ।
वीरंमिय पंचमए भरहे सुदकेवली णत्थि ॥ ७४ ॥

अर्थ—नन्दि, नन्दिमित्र, अपराजित, गोवर्धन

१ भगवान् महावीरके बाद केवल तीन ही केवलज्ञानी हुए हैं, जिनमें जम्बूस्वामी अन्तिम थे। ऐसी दशामें यह समझमें नहीं आता कि यहाँ श्रीधरको क्यों अन्तिम केवली बतलाया, और ये कौन थे तथा कब हुए हैं। शायद ये अन्तःकृत केवली हों। २ मूलमें 'पंण समण' शब्द है। मालूम नहीं, इसका क्या अर्थ है? ये कोई विशेष प्रकारके मुनि जान पड़ते हैं। ३ यदि यह ग्रन्थ छठी शताब्दिका बना हुआ हो, तो कहना होगा कि सम्राट् चन्द्रगुप्तके जैन होनेके जो प्रमाण उपलब्ध हैं उनमें यह सबसे पुराना है। ४ श्रुतावतारमें नन्दिके स्थानमें विष्णु नाम लिखा है।

३-४ Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और भद्रबाहु ये पाँच पुरुषश्रेष्ठ चतुर्दशपूर्वधारी कहलाये। ये द्वादशांगके ज्ञाता थे। इन पाँचोंका एकत्रित समय एक सौ वर्ष होता है। इनके बाद भरतक्षेत्रमें इस पंचम कालमें और कोई श्रुतकेवली नहीं हुआ ॥ ७२–७४ ॥

पढमो विसाहणामो पुट्ठिल्लो खत्तिओ जओ णागो ।
सिद्धत्थो धिदिसेणो विजओ बुद्धिल्ल गंगदेवा य॥७५॥
एक्करसो य सुधम्मो दसपुव्वधरा इमे सुविक्खादा ।
पारंपरिउवगमदो तेसीदिसदं च ताणवासाणि ॥ ७६॥
सव्वे सु वि कालवसा तेसु अदीदेसु भरहखेत्तंमि ।
वियसंतभव्वकमला ण संति दसपुव्विदिवसयरा ॥७७॥

अर्थ—विशाख, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जय, नाग, सिद्धार्थ, धृतिसेन, विजय, बुद्धिल्ल, गंगदेव और सुधर्म ये ग्यारह आचार्य दशपूर्वके धारी विख्यात हुए। ये सब एकके बाद एक १८३ वर्षमें हुए। इन सबके कालवश होनेपर भरतक्षेत्रमें भव्यरूपी कमलोंको प्रफुल्लित करनेवाले दशपूर्वके धारक सूर्य फिर नहीं हुए ॥ ७५–७७ ॥

णक्खत्तो जयपालो पंडुअ धुवसेण कंस आइरिया ।
एक्कारसंगधारी पंच इमे वीरतित्थम्मि ॥ ७८ ॥
दोण्णिसया वीसजुदा वासाणं ताण पिंडपरिमाणं ।
तेसु अतीदे णत्थि हु भरहे एक्कारसंगधरा ॥ ७९ ॥

अर्थ—नक्षत्र, जयपाल, पाण्डु, ध्रुवसेन, और कंस ये पाँच आचार्य ग्यारह अंगोंके धारक हुए। इनके समयका एकत्र परिमाण २२० वर्ष होता है। इनके बाद ग्यारह अंगका धारक और कोई नहीं हुआ।

पढमो सुभद्दणामो जसभद्दो तह य होदि जसबाहू ।
तुरियो य लोयणामो एदे आयारअंगधरा ॥ ८० ॥
सेसेक्करसंगाणि चोद्दस पुव्वाणमेक्कदेसधरा ।
एक्कसयं अट्ठारस वासजुदं ताण परिमाणं ॥ ८१ ॥
तेसु अदीदेसु तदा आचारधरा ण होंति भरहंमि ।
गोदममुणि पहुदीणं वासाणं छस्सदाणि तेसीदी ॥८२॥

अर्थ—सुभद्र, यशोभद्र, यशोबाहु, और लोह ये चार आचार्य आचारांगके धारक हुए। शेष कुछ आचार्य ग्यारह अंग चौदह पूर्वके एक अंशके ज्ञाता थे। ये सब ११८ वर्षमें हुए। * इनके बाद भरतक्षेत्रमें कोई आचारांगधारी नहीं हुआ। गोतमगणधरके बाद यहाँ तक ६८३ वर्ष हुए। यथाः—

६२ वर्षमें		३ केवलज्ञानी
१०० ”	”	५ श्रुतकेवली
१८३ ”	”	११ ग्यारह अंग और दशपूर्वधारी
२२० ”	”	५ ग्यारह अंगके धारी
११८ ”	”	४ आचारांगके धारी

६८३ छः सौ तिरासी वर्ष।

वीस सहस्सं ति सदा सत्तारस वच्छराणि सुदतित्थं ।
धम्मपयट्टणहेदू वेच्छिस्सदि कालदोसेण ॥ ८३ ॥
तेत्तियमेत्ते काले जंमिस्सदि चाउरण्णसंघाओ ।
अविणीदुम्मेधाविय असूयको तहय पाएण ॥ ८४ ॥
सत्तभयअट्ठमदेहिं संजुत्ता सल्लगारववरेएहिं ।
कलहपिओ रागट्ठो कूरो कोहादुओ लोहो ॥ ८५ ॥

अर्थ—(पंचमकाल २१००० वर्षका है। इसमें ६८३ वर्ष तक श्रुतज्ञान रहा, अतएव शेषके) २०३१७ वर्ष तक धर्मप्रवृत्तिका हेतुभूत श्रुततीर्थ कालदोषसे विच्छिन्न रहेगा। इतने समय तक चातुर्वर्ण संघ (मुनिसमूह) में प्रायः अविनीत, दुर्बुद्धि, ईर्षालु, सात भय आठ मदों और शल्यादिसे युक्त, कलहप्रिय, रागी, क्रूर, क्रोधी और लोभी मुनि उत्पन्न होंगे ॥ ८३–८५ ॥

* श्रुतावतार (इन्द्रनन्दिकृत) में सुभद्रादि चारों आचार्योंका ही समय ११८ वर्ष बतलाया है, उसमें अंग-पूर्वांशज्ञानियोंका समय शामिल नहीं मालूम होता। पर यहाँ उनका समय शामिल बतलाया है। श्रुतावतारमें अंशज्ञानियोंके विनयंधर, श्रीधर, शिवदत्त, अर्हद्दत्त ये चार नाम भी बतलाये हैं। पर इनका समय जुदा नहीं दिया है। इससे जान पड़ता है कि इनका समय उन ११८ वर्षोंमें ही शामिल है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वीरजिणं सिद्धिगदे चउसद इगिसट्ठि वास परिमाणो ।
कालंमि अदिक्कंते उप्पणो एत्थ सगराओ ॥ ८६ ॥
अहवा वीरेसिद्धे सहस्सणवक्कंमि सगसयब्भहिये ।
पणसीदिंमि यतीदे पणमासे सगणिओ जादा ॥८७॥
(पाठान्तरं)

चोद्दस सहस्स सग सय ते णउदी वासकालविच्छेदे ।
वीरेसरसिद्धीदो उप्पण्णो सगणिओ अहवा ॥ ८८ ॥
(पाठान्तरं)

णिव्वाणे वीरजिणे छव्वास सदेसु पंचवरिसेसु ।
पणमासेसु गदेसुं संजादो सगणिओ अहवा ॥ ८९ ॥

अर्थ—वीर भगवानके मोक्षके बाद जब ४६१ वर्ष बीत गये, तब यहाँ पर शक नामका राजा उत्पन्न हुआ। अथवा भगवानके मुक्त होनेके बाद ९७८५ वर्ष ५ महीने बीतने पर शक राजा हुआ। (यह पाठान्तर है।) अथवा वीरेश्वरके सिद्ध होनेके १४७९३ वर्ष बाद शक राजा हुआ। (यह पाठान्तर है।) अथवा वीर भगवानके निर्वाणके ६०५ वर्ष और ५ महीने बाद शक राजा हुआ ॥ ८६–८९ ॥

णिव्वाणगदे वीरे चउसद इगिसट्ठि वासविच्छेदे ।
जादो च सगणरिंदो रज्जं वस्सस्स दुसय बादाला ९३

दोण्णिसदा पणवण्णा गुत्ताणं चउमुहस्स बादालं ।
वस्सं होदि सहस्सं केई एवं परूवंति ॥ ९४ ॥

अर्थ—वीरनिर्वाणके ४६१ वर्ष बीतने पर शक राजा हुआ और इस वंशके राजाओंने २४२ वर्ष राज्य किया। उनके बाद गुप्तवंशके राजाओंका राज्य २५५ वर्षतक रहा और फिर चतुर्मुख (कल्कि) ने ४२ वर्ष राज्य किया। कोई कोई लोग इस तरह (४६१+२४२+२५५+४२=१०००) एक हजार वर्ष बतलाते हैं।

जं काले वीर जिणो णिस्सेयससंपयं समावण्णो ।
तक्काले अभिसित्तो पालयणामो अवंतिसुदो ॥९५॥

पालकरज्जं सट्ठिं इगिसय पणवण्ण विजयवंसभवा ।
चालं मुरुदयवंसा तीसं वंसा सु पुस्समित्तंमि ॥९६॥

वसुमित्त अग्गिमित्ता सट्ठी गंधव्वया विसयमेक्कं ।
णरवाहणो य चालं तत्तो भच्छट्ठणा जादा ॥ ९७ ॥

भच्छट्ठणाण कालो दोण्णि सयाइं हवंति बादाला ।
तत्तो गुत्ता ताणं रज्जे दोण्णियसयाणि इगितीसा ॥९८

तत्तो कक्की जादो इंदसुदो तस्स चउमुहो णामो ।
सत्तरि वरिसा आऊ विगुणिय-इगिवीस रज्जत्तो ॥ ९९

अर्थ—जिस समय वीर भगवानका मोक्ष हुआ, ठीक उसी समय अवन्ति (चण्डप्रद्योत)-का पुत्र पालक नामक राजा अभिषिक्त हुआ उसने या उसके वंशने ६० वर्ष तक राज्य किया, उसके बाद १५५ वर्षतक विजयवंशके राजाओंने,

---

* इन गाथाओंसे मालूम होगा कि इस समयसे लगभग १२०० वर्ष पहले भी महावीर भगवानके निर्वाणकालके विषयमें सन्देह था। एक मत था कि उनका निर्वाण शकसे ४६१ वर्ष पहले हुआ है और दूसरा था कि नहीं ६०५ वर्ष पहले हुआ है। (त्रैलोक्यसार और हरिवंशपुराण आदिमें यह दूसरा मत ही माना गया है।) इनके सिवाय तीसरे और चौथे मत भी थे जो बहुत ही विलक्षण थे। उनके विषयमें तो कुछ कल्पना ही नहीं की जा सकती। उनके अनुसार शकसे हजार पाँचसौ नहीं, किन्तु नौ हजार और चौदह हजार वर्ष पहले भगवानका निर्वाण हुआ था! और बड़े आश्चर्यकी बात तो यह है कि यह बात उस समय एक बड़े भारी ग्रन्थमें भी उल्लेख करने योग्य समझी जाती थी। जो लोग उपलब्ध जैनग्रन्थोंको भगवानकी साक्षात् दिव्यध्वनिकी निर्भ्रान्त 'कापी' समझते हैं और उनमें जरासा भी सन्देह करनेको स्थान नहीं पाते हैं, उन्हें इस मतभेद पर खास तौरसे ध्यान देना चाहिए।

कल्कि राजा जैनधर्मका बहुत बड़ा शत्रु था। यह बात हिन्दुओंके पुराणोंसे और जैनग्रन्थोंसे सिद्ध होती है। आश्चर्य नहीं जो उसीकी कृपासे जैन-साहित्य नष्ट किया गया हो और जैनधर्मके मुख्य प्रदेशोंमेंसे जैनधर्म निर्वासित कर दिया गया हो। इसीसे तो जैनधर्मका छठी शताब्दिसे पहलेका साहित्य बहुत ही कम नाम मात्रको मिलता है। विद्वानोंको इस विषयमें कुछ अधिक प्रकाश डालना चाहिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४० वर्ष तक मुरुदंय (मौर्य ?) वंशने और ३० वर्ष तक पुष्यमित्रने राज्य किया। फिर ६० वर्ष तक वसुमित्र अग्निमित्रने, १०९ वर्ष तक गन्धर्व राजाओंने और ४० वर्ष तक नरवाहन या नहपान राजाने राज्य किया। इसके बाद भ्रत्यान्ध्रराजा हुए। इन भ्रत्यों-का राज्य २४२ वर्ष तक रहा। इनके बाद गुप्तोंका राज्य २३१ वर्ष तक रहा और तब कल्कि उत्पन्न हुआ। यह इन्द्रका पुत्र था और चतुर्मुख इसका नाम था। वह ७० वर्ष तक जिया और ४२ वर्ष तक उसने राज्य किया। इस तरह भी सब मिलाकर (६०+१५५+४०+३०+६०+१००+४०+२४२+२३१+४२= १०००) एक हजार वर्ष होते हैं।

आचारंगधरादो पणहत्तरिजुत्तदुसयवासेसुं।
वोलीणेसुं बद्धो पट्टो कक्कीस णरवइणो ॥ १०० ॥

अर्थ—आचरांगधारीके बाद २७५ वर्ष बीतने पर कल्कि राजा पट्ट पर बैठा। आचारांगधारीका अस्तित्व वीर नि० संवत् ६८३ तक था। उसमें २७५ जोड़नेसे ९५८ हुए। इसमें ४२ वर्ष कल्किके राज्यके मिलानेसे पूरे १००० हो जाते हैं।

अह साहियाण कक्की णियजोग्गो जणपदे पयत्तेण।
सुक्कं जाचदि लुद्धो पिंकं जावताव समणाओ ॥ १०१ ॥
दाऊणं पिंडग्गं समणा कालोय अंतराणं पि।
गच्छंति ओहिणाणं उप्पज्जइ तेसु एक्कंपि ॥ १०२ ॥
अह कोवि असुरदेवा ओहीदो मुणिगणाण उवसग्गं।
णादूणं तक्की मारेदिहु धम्मदोहिति ॥ १०३ ॥
कक्किसुतो अजिदंजय णामो रक्खंति णमदि तच्चरणे।
तं रक्खदि असुरदेओ धम्मे रज्जं करेज्जंति ॥ १०४ ॥
तत्तो दोवे वासो सम्मं धम्मो पयट्टदि जणाणं।
कमसो दिवसे दिवसे कालमहप्पेण हाएदे ॥ १०५ ॥
एवं वस्स सहस्से पुहकक्की हवेइ इक्केक्को।
पंचसयवच्छरेसुं एक्केको तहय उवकक्की ॥ १०६ ॥

अर्थ—जब कल्किने अपने योग्य देशोंको यत्नपूर्वक जीत लिया, तब वह अतिशय लुब्ध बनकर जिस तिस श्रमण (जैनमुनि) से शुल्क या कर माँगने लगा। इस पर श्रमण अपना पहला ग्रास दे देकर भोजनमें अन्तराय हो जानेसे जाने लगे। उन मुनियोंमेंसे किसी एकको अवधिज्ञान हो गया। उधर कोई असुर—अवधिज्ञानसे यह जानकर कि मुनियोंको उपसर्ग हो रहा है—आया और उसने धर्मद्रोही कल्किको मार डाला। कल्किका अजितंजय नामका पुत्र था, उसको असुरने बचा दिया और उससे धर्मराज्य कराया। इसके बाद दो वर्ष तक लोगोंमें धर्मकी प्रवृत्ति अच्छी तरह होती रही; परन्तु फिर दिनों दिन कालके माहात्म्यसे उसकी हीनता होने लगी। आगे इसी तरह प्रत्येक एक एक हजार वर्षमें एक एक कल्कि और प्रत्येक पाँच पाँच सौ वर्षमें एक एक उपकल्कि होगा ॥ १०१–१०६ ॥

क्या ही अच्छा हो यदि यह प्राचीन ग्रन्थ छपकर प्रकाशित हो जाय। यदि कोई धर्मात्मा सज्जन सहायता करें तो यह 'माणिकचन्द्र-ग्रन्थ-माला' में निकाला जा सकता है। लगभग डेढ़ हजार रुपयेमें इस ग्रन्थका उद्धार हो सकता है।

---

१ ग्रन्थकर्त्ताको जान पड़ता है, यही मत मान्य है कि शकसे ४६१ वर्ष पहले भगवान्‌का निर्वाण हुआ था। २ हरिवंशपुराणमें जो इसी अभिप्रायके श्लोक हैं और जो हमारा विश्वास है कि, इसी ग्रन्थसे अनुवाद किये गये हैं, मुरुदयका अनुवाद मुरुण्ड किया गया है। ३ मूलमें 'गन्धव्व' शब्द है जिसकी छाया 'गन्धर्व' होती है, पर हरिवंशपुराणके कर्त्ताने 'गर्दभ' मानकर इसके पर्यायवाची शब्द 'रासभ' को इन राजाओंके लिए प्रयुक्त किया है।

१ हरिवंशपुराणमें 'भच्छट्ठाणं' का अनुवाद 'भट्वाणस्य' किया है; परन्तु वह ठीक नहीं मालूम होता। इस शब्दसे ग्रन्थकर्त्ताका मतलब आन्ध्रभृत्य राजाओंसे जान पड़ता है। ये बहुत प्रसिद्ध राजा हुए हैं। 'भच्छट्ठाणं' शब्द माननेसे उसका अनुवाद 'भृत्यान्ध्राणां' किया जा सकता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बाबाजीका स्वप्न।

(लेखक, श्रीयुत ठाकुरदासजी विद्यार्थी।)

(१)

सन्ध्यासमय एक बाबाजी, सायं-कृत्य समापन कर;
लुढ़क रहे निद्राभिभूत हो, एक कूपके तट ऊपर।
लगे देखने स्वप्न-हो गया व्याह एक युवतीके संग;
हुए व्यतीत बहुत दिन इस विधि, रहे रँगे रमणीके रंग।

(२)

वर्द्धमान इस प्रणाय-वृक्षका, एक मधुर फल पुत्र हुआ;
इस सुतसे विभक्त भी उनमें, प्रणय-वेग नित वृद्ध हुआ।
शिशु जब दबने लगा बीचमें, लेटे थे वे दोनों ओर;
कहने लगी कान्तसे कान्ता-"जरा खिसक जाओ उस ओर"।

(३)

लेटे लेटे लगे खिसकने, वहाँ कूपमें पतित हुए;
अस्थि-योग व्युच्छिन्न हुए सब, क्षणमें जीवनरहित हुए।
प्रबल वासनायें मानवकी, सोतेमें भी पास रहें।
करें अनिष्ट अनन्त, अन्तमें, उसका सत्यानाश करें॥

श्वेताम्बरसम्प्रदायके ग्रन्थोंमें कल्किका वर्णन।

[लेखक, श्रीयुत मुनि जिनविजयजी।]

कल्कि राजाके विषयमें दिगम्बर जैनग्रंथोंमें जो कुछ लिखा हुआ है, उसका परिचय, पाठकोंको इसी अंकमें प्रकाशित हुए श्रीयुत काशीप्रसादजी जायसवालके लेखसे और 'लोकविभाग तथा त्रिलोकप्रज्ञप्ति' शीर्षक संपादकीय लेखसे हो जायगा। प्रेमीजीकी इच्छा हुई कि श्वेताम्बरसंप्रदायके ग्रन्थोंमें इस विषयमें क्या लिखा गया है, सो भी पाठकोंका मालूम हो जाना चाहिए, अतएव इस लेखके लिखनेकी आवश्यकता हुई।

कल्किके वर्णनवाले जितने श्वेताम्बरीय ग्रंथ हमारे देखनेमें आये हैं, उनमें सबसे पुराना ग्रन्थ 'महावीरचरियं' विक्रमसंवत् ११४१ का बना हुआ है। यह प्राकृत भाषामें है और इसके रचयिता अम्बदेव उपाध्यायके शिष्य नेमिचन्द्र आचार्य हैं। इसके अंतभागमें, गौतम गणधरके पूछने पर श्रमण भगवान् महावीरदेव पंचमकालका स्वरूप वर्णन करते हुए कहते हैं:-

छहिं वासाणसएहिं पंचहिं वासेहिं पंचमासेहिं।
मम निव्वणगयस्स उ उप्पज्जिस्सइ सगो राया॥
तेरसवाससहिएहिं नवुत्तरेहिं सगाउ कुसुमपुरे।
होही कक्की पन्ते कुलम्मि केउव्व दुट्टप्पा॥

अर्थात्-"हे गौतम, मेरे निर्वाणकालके बाद ६०५ वर्ष और ५ महीने बीतने पर शक राजा उत्पन्न होगा और उसके १३०९ वर्ष

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बाद (महावीर निर्वाणसे १९१४ वर्ष बाद) कुसुमपुर (पाटलीपुत्र-पटना) में, प्रान्त (नीच) कुलमें कल्कि नामका एक दुष्टात्मा जन्म लेगा। " इसके बाद कल्किका बहुतसा वर्णन दिया है जिसका सार यह है कि कल्कि जन्मसे ही अतिशय क्रूर, निर्दय, घातक और लोभी होगा। उसके जन्मसमयमें, मथुरामें राम और कृष्णके मंदिर सहसा गिर पड़ेंगे! देशमें सर्वत्र ही चोर, राजविरोध, राज्यभय, दुर्भिक्ष और अनावृष्टि आदि भयंकर उपद्रव मचेंगे। वह १८ वर्ष तक कुमारावस्थामें रहेगा और उतने ही समयतक जनतामें महामारी प्रचलित रहेगी। फिर वह प्रचण्ड राजा बनेगा। एक दिन वह शहरमें घूमता हुआ पाँचस्तूपोंको देखेगा और लोगोंसे उनका हाल पूछेगा। लोग कहेंगे कि, पूर्वमें यहाँपर नन्द नामका एक अत्यंत समृद्धिशाली राजा हो गया है। उसके पास अनन्त सुवर्णराशि थी। ये स्तूप उसीके बनवाये हुए हैं। इनके भीतर उसीकी गाढ़ी हुई सुवर्णराशि संरक्षित है। उसे कोई निकाल नहीं सकता। यह सुनकर वह उन स्तूपोंको खुदवा डालेगा और उनमेंसे उस सुवर्णराशिको निकाल लेगा। इसके बाद लोभके वशीभूत होकर वह और भी अनेक स्थानोंको खुदवायगा। अभिमानसे अन्धा होकर वह अन्य सब नृपतियोंको तृणवत् समझने लगेगा। कुछ दिनोंके बाद जब वह अपने नगरकी जमीनको खुदवाने लगेगा, तब उसमेंसे एक पाषाणकी गऊ निकलेगी और वह भिक्षाके लिए जाते हुए जैन साधुओंको अपने सींगों द्वारा मारनेको दौड़ेगी! यह देखकर जो स्थविर साधु होंगे वे सोचेंगे कि भविष्यमें यहाँ पर बड़ा भारी जलोपसर्ग होगा, इस लिए इस प्रदेशको छोड़कर कहीं अन्यत्र चले जाना चाहिए। ऐसा विचार कर कितने ही साधु तो अन्य प्रदेशोंमें चले जायँगे और कितने ही आहार, वसति और वस्त्रादिके लोभसे वहीं रह जायँगे और कहेंगे कि, कालके स्वभावसे और कर्मके प्रभावसे जो कुछ शुभ-अशुभ होना होगा, वह अवश्य ही होगा, उसे कौन रोक सकता है? इसके बाद कल्कि तमाम धर्मोंके साधु-संन्यासियोंसे कर वसूल करेगा और अंतमें जैनसाधुओंसे भी कर माँगेगा। इस पर वे कहेंगे कि हे राजन्! हम तो केवल भिक्षावृत्तिसे अपना जीवननिर्वाह करते हैं। हमारे पास 'धर्मलाभ' के सिवाय और क्या चीज है, जो आपको दी जाय? इस पर भी जब वह कुछ ध्यान न देगा और उलटा क्रुद्ध होगा, तब नगर-देवता प्रकट होकर कहेगी, कि क्या तू मरना चाहता है, जो मुनियोंको इस प्रकार सता रहा है? इससे वह बहुत भय-भीत होगा और मुनियोंके चरणोंमें पड़कर स्वकृत अपराधकी क्षमा माँगेगा। इसके बाद १७ दिनतक लगातार मूसल-धार जलवृष्टि होगी, जिससे गंगा और शोणनदके पूर आ जायँगे और उनमें सारा ही नगर बह जावेगा। एक प्रातिपद नामके आचार्य, कल्कि राजा, और थोड़ेसे नगर-निवासी लकड़ियोंके सहारे तैरकर बच जायँगे। इसके बाद नन्द राजाके स्तूपोंमेंसे मिले हुए धनके द्वारा कल्कि फिर एक नया नगर बसायगा और शान्तिके साथ नीतिपूर्वक राज्य करने लगेगा, अनेक जैनमंदिर बन जायँगे और साधु पूर्वकी ही तरह सर्वत्र सुखपूर्वक विचरने लगेंगे। धान्यका बहुत सुकाल हो जायगा। इस प्रकार वह ५० वर्ष तक सुराज्य करेगा। परन्तु जब उसकी मृत्यु निकट आ जायगी तब उसकी बुद्धि फिर बिगड़ेगी। पूर्वकी तरह फिर भी वह सारे भिक्षुकोंसे कर माँगेगा। जैनमुनियोंसे भी वह उनकी भिक्षाका षष्ठांश या छट्ठा हिस्सा करके रूपमें लेना चाहेगा। जब मुनि कर देनेसे इन्कार करेंगे, तब वह उन्हें एक बाड़ेमें पशुओंकी तरह बन्द कर देगा। मुनिजन इस,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संकटको देखकर शक्रेन्द्रका स्मरण करेंगे। तब शक्रका सिंहासन कंपित होगा, और इससे वह श्रमणसंघका संकट जानकर एक वृद्ध ब्राह्मणके वेषमें कल्किके पास पहुँचेगा, और उसे श्रमणोंको छोड़ देनेके लिए तथा उनसे भिक्षाका षष्ठांश न माँगनेके लिए बहुत समझायगा। परन्तु अंतमें जब वह कुछ भी न सुनेगा, उलटा उसका ही तिरस्कार करनेके लिए उद्यत हो जायगा, तब शक्र उसे सिंहासन परसे नीचे पटक देगा और लातों तथा मुक्कोंसे मार मार कर मार डालेगा। इस प्रकार ८६ वर्षकी आयु पूरी करके वह नरकको प्रयाण करेगा। इसके बाद इन्द्र उसके दत्त नामक पुत्रको राजा बनाकर और जैनधर्मकी शिक्षा देकर स्वर्गलोकको चला जायगा। यह दत्त राजा नीतिपूर्वक राज्य करेगा; जैनधर्मकी प्रभावना करेगा और पृथ्वीको जैनमन्दिरोंसे मण्डित कर देगा। इसके बाद पाँचवें कालके अंततक धर्मकी निरंतर प्रवृत्ति रहेगी।

हेमचन्द्राचार्यकृत महावीरचरित्रमें भी अक्षरशः इसी तरहका वर्णन है। इसमें भी कल्किका जन्मकाल महावीर-निर्वाणसे १९१४ वर्षबाद बतलाया है। विशेषमें उसके जन्मका महीना भी लिखा है, जो चैत्र है। इसके सिवाय उसके कल्कि, रुद्र और चतुर्मुख ये तीन नाम भी बतलाये हैं:—

मन्निर्वाणाद्गतेष्वब्दशतेष्वेकोनविंशतौ।
चतुर्दशाब्दां च म्लेच्छकुले चैत्राष्टमीदिने॥
विष्टौ भावी नृपः कल्की स रुद्रोऽथ चतुर्मुखः।
नामत्रयेण विख्यातः पाटलीपुत्रपत्तने॥

जिनप्रभसूरिने अपने 'विविध तीर्थकल्प' के 'अपापा-कल्प' नामक प्रकरणमें भी कल्किका वर्णन लिखा है। इसमें ऊपरके दोनों चरित्रोंसे कहीं कहीं कुछ विशेषता है, पर जन्मकालमें कोई फर्क नहीं है। लिखा है, कि—

"एगूणवीसाएसु सएसुं चउद्दसाहिएसु वरिसेसु वइक्कंतेसु चउदससयबायाले विक्कमकाले पाडलिपुत्ते नयरे चित्तसुद्धट्ठमीए अद्धरत्ते विट्ठिकरणे मयरलग्गे वट्टमाणेसु मगहसेणाभिहाणस्स गिहे जसदेवीए उयरे चंडालकुले कक्किरायस्स जम्मो भविस्सइ। एगे एव माहंसु-

वीराओ इगुणवीसं सएहिं वरिसाण अट्ठावीसाए।
पंचमासेहिं होही चंडालकुलंमि कक्कि निवो॥"

इस अवतरणमें महावीरनिर्वाणके १९१४ वर्षके साथ विक्रमकाल १४४२ * का भी स्पष्ट उल्लेख किया गया गया है, तथा कल्किके माता-पिताका नाम भी क्रमसे जसदेवी और मगहसेण लिखा है, जो पूर्वोक्त चरित्रोंमें नहीं है। इस कल्पमें यह भी लिखा है कि कल्कि अपने राज्यके ३६ वें वर्षमें भरतक्षेत्रके तीन खण्डोंका स्वामी बनेगा। (इनका स्वामी, जैनग्रन्थोंके अनुसार, वासुदेव और प्रतिवासुदेवके सिवाय, और कोई नहीं हो सकता।) कल्किके खजानेके धनका और सैन्यका परिमाण भी इसमें विशेष दिया हुआ है। यथा—

"तस्स य भंडारे नवनवइ सुवण्ण कोडाकोडीओ, चउदससहस्सा गयाणं, सत्तासीइं लक्खा अस्साणं, पंचकोडीओ पाइक्काणं हिंदु-तुरुक्क-काफराणं।"

अर्थात्—कल्किके पास ९९ कोटाकोटी मुहरें, १४ हजार हाथी, ८७ लाख घोड़े तथा हिंदू, तुरुष्क और काफिरों(?)की ५ करोड़ पैदल सेना थी!

१ महावीरचरित्र वि० संवत् १२२० में बना है।

२ इसका रचना-समय विक्रम संवत् १३८७ है। यह दक्षिणके देवगिरि (दौलताबाद) नगरमें बनाया गया था।

* प्रचलित मतसे महावीरनिर्वाण संवत् १९१४ में विक्रम संवत् १४४४ होते हैं, पर यहाँ पर १४४२ लिखे हैं। मालूम नहीं यह २ वर्षका अंतर क्यों पड़ता है।—लेखक।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कल्किके बादके वर्णनमें लिखा है कि—

"दत्तो य राया बावत्तरि वरिसाउ पडिदिणं जिणचेइयमंदियं महीं काही लोगं च सुहियं काहि त्ति । दत्तस्स पुत्तो जियसत्तू तस्स वि मेहघोसो । कक्कि अणंतरं महानिसीहं न वट्टिस्सइ । दोवाससहस्सट्ठिइणो भासरासीगहस्स पीडाए नियत्ताए य देवावि दंसणं दाहिंति । विज्जामंता य अप्पेणवि जावाइणा पहावं दसिस्संति, ओहिणाणं जाइसरणाइ भावाय किंचि पयट्टिस्संति।"

अर्थात्—कल्किका पुत्र दत्त ७२ वर्षतक लगातार जैनमंदिर बनवाता रहेगा और लोगोंको सुखी करेगा। उसका पुत्र जितशत्रु होगा और उसका मेघघोष । कल्किके बाद 'महानिशीथसूत्र' लुप्त हो जायगा। महावीरके निर्वाणकाल पर दो हजार वर्षकी स्थितिवाला 'भस्मरासी' नामका ग्रह है । उसके उतर जाने पर देव भी मनुष्योंको दर्शन देंगे, विद्या-मंत्र आदि भी अपना प्रभाव दिखावेंगे, और अवधिज्ञान तथा जातिस्मरण आदि ज्ञानके भाव भी कुछ कुछ मालूम पड़ेंगे ।

इसी प्रकारका कथन और और ग्रंथोंमें भी है । दिगम्बरीय कथन और श्वेताम्बरीय कथनमें वर्ण्यवस्तुमें अधिक अन्तर न होने पर भी समय-कथनमें बहुत अन्तर है । दिगम्बरग्रंथकार जब कल्किका आविर्भावमहावीर निर्वाणसे एक हजार वर्ष पीछे बताते हैं, तब श्वेताम्बर वीर-निर्वाणकी २० वीं शताब्दीमें । जिन जिन दिगम्बर ग्रन्थोंमें यह वर्णन है वे प्रायः महावीर-निर्वाणसे १००० वर्ष बादहीके बने हुए हैं, अतः उनके कर्ताओंका विश्वास था कि कल्कि हो चुका । परंतु जिन श्वेताम्बरीय ग्रंथोंका ऊपर उल्लेख किया है, वे ग्रंथ महावीरकी २० वीं शताब्दिके पूर्वके बने हुए हैं, अतः उनके रचयिताओंका विश्वास भविष्यत्के ऊपर अवलंबित था । यह बात खास तौरसे ध्यान देने योग्य है।

पर साथ ही हम देखते हैं कि जब दिगम्बरीय कथनमें बहुत कुछ ऐतिहासिक तत्त्व मौजूद है—जैसा कि श्रीयुत जायसवालजीने और प्रो० के. बी. पाठकने अपने लेखोंमें सिद्ध किया है—तब श्वेताम्बरीय कथनमें कोई तत्त्व नजर नहीं आता । महावीरकी १० वीं शताब्दिकी अपेक्षा २० वीं शताब्दि हमारे बहुत निकट है । उसके ऊपर केवल ५ ही शताब्दियोंकी तहें जमी हुई हैं और इन तहोंका हाल हमें बहुत कुछ ज्ञात है, अतः इनके नीचे दबी हुई चीजोंको हम सुलभताके साथ देख सकते हैं, अथवा यों कहें तो भी चल सकता है कि इनके नीचे ऐसी कोई मोटी चीज नहीं दबी हुई है जो हमसे अज्ञात हो। ऐसी दशामें, यह कहना पड़ेगा कि श्वेताम्बरीय ग्रंथोंका भविष्यकथन सत्य नहीं निकला । और इसी प्रकार दिगम्बरीय कथनके भी एक भागका वही हाल है। क्यों कि दिगम्बरग्रन्थोंके अनुसार पाँचवें कालके प्रत्येक १००० वर्षोंके अंतमें एक एक कल्कि और प्रत्येक ५०० वर्षोंके अंतमें एक एक उपकल्कि होगा । पर यह भविष्यद्वाणी ठीक नहीं उतरी । श्वेताम्बरीय ग्रन्थोंमें कल्किका जो समय दिया है वह दिगम्बरीय ग्रंथोंके हिसाबसे दूसरे कल्किका समय है। अतः दिगम्बरीय कथनके अनुसार भी महावीरकी २० वीं शताब्दिमें एक कल्कि होना चाहिए।

दिगम्बरग्रंथकारोंने महावीरकी १० वीं शताब्दिवाले जिस कल्किका वर्णन किया है, उसका जिक्र श्वेताम्बरोंने क्यों नहीं किया, यह बात भी खास तौरसे विचारने लायक है। कल्किका वर्णन करनेवाले, त्रिलोकप्रज्ञप्ति, हरिवंश-पुराण और उत्तरपुराण आदि दिगम्बरीय ग्रंथ, महावीरचरित्र और तीर्थकल्प आदि श्वेताम्बरीय ग्रंथोंसे निश्चय ही पूर्वमें बने हैं, तब क्या हेमचन्द्राचार्य और जिनप्रभसूरिको उन दिग-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

म्बरीय ग्रंथोंका पता न होगा, जो इस तरह उन्होंने महावीर-निर्वाणकी १० वीं शताब्दिके भूतपूर्व कल्किको २० वीं शताब्दिवाले भविष्य-कालमें ले जानेका प्रयत्न किया? इस विषयमें हमने दो बातें सोची हैं; एक तो यह कि या तो दिगम्बरीय कथनका हाल श्वेताम्बरोंको मालूम ही नहीं था, और दूसरी यह कि मालूम होने पर भी उन्होंने ऐसा लिखा हो तो, इसमें यह कारण हो सकता है कि वह १० वीं शताब्दि-वाला काल उन आचार्योंके उतने ही निकट था जितना कि हमें २० वीं शताब्दिवाला है। जिस तरह हमें २० वीं शताब्दिके कल्किका कोई पता नहीं लगता और इस कारण उक्त कथन पर विश्वास नहीं आता, उसी तरह उन आचार्योंको भी १० वीं शताब्दिके कल्किका पता न लगा होगा और इस कारण उन्होंने उक्त दिगम्बरीय कथनको अविश्वस्त समझ कर कल्किके जन्मकी मर्यादाको १००० वर्ष और आगे बढ़ा कर उसे भविष्यके लिए रख छोड़ा होगा। मैंने एक ग्रन्थ ऐसा भी देखा है जिसमें कल्किके जन्मको वीरानिर्वाण १९१४ से उठाकर विक्रम संवत् १९१४ में फेंक दिया गया है! और इस समय यदि यह 'क्यों' और 'क्या' का युग न उपस्थित हो जाता, तो उसकी मर्यादा और भी हजार पाँचसौ वर्ष बढ़ा दी जाती; परंतु अब तो लोग या तो कल्किका पता ही लगा लेना चाहते हैं, या उसके अस्तित्वको आकाशकुसुम ही बना देना चाहते हैं।

स्वराज्य-सोपान।

(लेखक, पं० रामचरित उपाध्याय।)

क्या स्वराज्य है खेल तमाशा? उसको समझो टेढ़ी खीर,
पर तो भी वह मिल जावेगा, मनमें होना नहीं अधीर।
उसका पूरा मूल्य आपने, क्योंकि अभी तक दिया नहीं,
या कि आपने समुचित उसका, यत्न अभी तक किया नहीं॥ १॥

करके पूर्ण विचार-पर्वको, अब उद्योग-पर्व पढ़िए,
कच्छप-गतिको छोड़ सिंहकी गतिसे झट आगे बढ़िए।
क्षुद्र विघ्न-पशु तुरत मार्गसे देख तुम्हें हट जावेंगे,
सुखके साधन सभी तुम्हारे, सम्मुख दौड़े आवेंगे॥ २॥

जो भारतको योग्य न कहते, वे करते हैं भारी भूल,
या उनकी मति पर बैठी है, गाढ़ स्वार्थकी गन्दी धूल।
राज-काजका सूत्र कभी क्या, हाथ हमारे रहा नहीं?
क्या आर्योंका रक्त, पसीना देश-विदेशों बहा नहीं?॥ ३॥

मोह-विवश जो मतिके अन्धे, करते हैं भारत-उपहास
मनो उन्होंने नहीं पढ़ा है, कभी हमारा कुछ इतिहास।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विविध विदेशोंके रक्षक थे, शिक्षक भी सबके थे हम,
दुखी दीन या पराधीन भी, कहिए तो कबके थे हम? ॥ ४ ॥
सब कहते हैं हाथ उठाकर, अपने प्रिय स्वराज्यके हेतु
जो कुछ हो पर नहीं हटेंगे, नभमें भी बाँधेंगे सेतु।
कभी प्रकृतिकी धारा चलकर, बीच मार्गमें रुकी नहीं,
कभी आगकी लपट प्रकट हो, नीचे मुखका झुकी नहीं ॥ ५ ॥
दृढ़ आशा है बहुत शीघ्र ही, हम सबकी पूजेगी चाह,
पा स्वराज्यको भारत-मनकी, तुरत दूर होवेगी दाह।
काली घटा उठी विघ्नोंकी, तितर बितर हो जावेगी,
देश-विनाशक अज्ञोंकी भी, विकृति बुद्धि खो जावेगी ॥ ६ ॥
न्याय-तुला पर तुल जावेगा, भारत भी सन्देह नहीं,
किसी भाँति निःसीम निरन्तर रहती है अन्धेर कहीं?।
जलमें अनल, उपल पर कैरव, कालचक्र उपजाता है,
अचला चलती है, मारुतका चलना भी रुक जाता है ॥ ७ ॥
यदि स्वराज्यका रिपु स्वराज्य ही, हो जावे परवाह नहीं,
जो चाहे सो मोह-नींदमें, सो जावे परवाह नहीं।
ग्रीष्म दिवाकर उदित हुआ है, तारे नहीं रहे तो क्या?
सिंह-समूह बना है यदि, मृग-सारे नहीं रहे तो क्या? ॥ ८ ॥
अपनी वस्तु चाहते हम हैं कौन टोकनेवाला है?
जैसे होगा उसको लेंगे, कौन रोकनेवाला है?।
भिक्षा नहीं माँगते हम हैं जा कर कभी किसीके पास,
न्याय चाहते हैं हम दृढ़ हो, हो सकते हैं नहीं हताश ॥ ९ ॥
हम भी मानव हैं मानवता हममें भी है भरी हुई,
इसी लिए ही चाह हमारी अभी नहीं है मरी हुई,
क्यों स्वराज्य या राज्य प्राप्त कर, सभी मनुज आनन्द करें?
विफलमनोरथ हो हम ही क्यों, जलती जलती आह भरें?॥१०॥
क्यों अनीतिको करें कभी हम अन्यायी क्यों कहलावें?
धर्म-नीतिके लिए भले ही सुख पावें या मर जावें।
क्यों स्वराज्य हमको न मिलेगा, क्यों न सत्य विजयी होगा?
स्वाधीना देवीका जगमें कौन नहीं प्रणयी होगा? ॥ ११ ॥
स्वावलम्बके रंग-मञ्च पर ताण्डवनृत्य दिखावेंगे,
हम भारतको स्वर्ग बनाना सीखेंगे सिखलावेंगे।
फिर स्वराज्य तो स्वयं हमारे चरणों पर गिर जावेगा,
सत्साहस कर कौन जगतमें अपनी वस्तु न पावेगा?॥ १२ ॥
जननी जन्मभूमिमें किसको प्रेम नहीं है अपरम्पार?
कर्मवीरके लिए कौनसा कर्म हुआ है अगम अपार?
सोते थे पर जग बैठे हम अब फिर कभी न सोवेंगे,
चाहे कुछ हो, निज स्वत्वोंको जीते कभी न खोवेंगे ॥ १३ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विद्यासे, बलसे, वैभवसे, विमल बुद्धिसे सहितविवेक,
कर्मयोगको सिद्ध करेंगे, मनमें नहीं डरेंगे नेक ।
आ स्वतन्त्रते मिल जा हमसे, सभी भाँति अब हैं तैयार,
चाहे प्रथम परीक्षा कर ले, हम न हटेंगे किसी प्रकार ॥ १४ ॥

जिससे दैन्य दूर होता है वही हमें मिल गई जड़ी,
जो मृतको जीवित करती है, निकट खड़ी है वही घड़ी ।
क्यों मुख मोड़ें ? हम स्वराज्यको-प्राप्त करेंगे जैसे हो,
तन मनसे हम जिसे करें वह, काम नहीं फिर कैसे हो ? ॥ १५ ॥

द्रव्यसंग्रह ।

(समालोचना ।)

(ले०--श्रीयुत बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तार।)

आरासे श्रीयुत कुमार देवेंद्रप्रसादजीके आधिपत्यमें 'दि सैकेंड बुक्स आफ दि जैन्स' अर्थात् 'जैनियोंके पवित्र ग्रंथ' नामकी एक ग्रंथमाला निकलनी आरंभ हुई है, जिसके जनरल एडीटर या प्रधान संपादक श्रीयुत प्रोफेसर शरच्चन्द्र घोशाल एम. ए. बी. एल., सरस्वती, काव्यतीर्थ, विद्याभूषण, भारती नामके एक बंगाली विद्वान् हैं । इस ग्रंथमालाका पहला ग्रंथ 'द्रव्यसंग्रह' जो अभी हालमें प्रकाशित हुआ है, हमारे सामने उपस्थित है । द्रव्यसंग्रह, श्रीनेमिचंद्राचार्यका बनाया हुआ जैनियोंका एक प्रसिद्ध ग्रंथ है, जिसमें कुल ५८ पद्य हैं और जिस पर ब्रह्मदेवकी बनाई हुई एक विस्तृत संस्कृतटीका भी पाई जाती है। अनेक वार यह मूलग्रंथ हिन्दी तथा मराठी अनुवादसहित और एकबार उक्त संस्कृतटीका और उसके हिन्दीअनुवादसहित छपकर प्रकाशित हो चुका है । इस तरह पर इस ग्रंथके कई संस्करण निकल चुके हैं । परंतु अभीतक अँगरेजी संसारके लिए इस ग्रंथका दरवाजा बंद था--वह प्रायः इसके लाभोंसे वंचित ही था । उक्त ग्रंथमालाके उत्साही कार्यकर्ताओंकी कृपासे अब वह दरवाजा उक्त संसारके लिए भी खुल गया है, यह बड़े ही संतोष और हर्षकी बात है । ग्रंथके उपोद्घात (preface) में, उक्त ग्रंथमालाके प्रकाशित करनेका उद्देश्य और अभिप्राय प्रगट करते हुए, लिखा है कि इस "ग्रंथमालामें जैनियोंके उन संपूर्ण पवित्र ग्रंथोंको प्रकाशित करनेका विचार है जिन्हें जैनियोंके सभी सम्प्रदाय स्वीकार करते हैं और उन्हें भी जो जैनियोंके किसी खास सम्प्रदाय द्वारा प्रमाण माने गये हैं ।" साथ ही यह भी सूचित किया गया है कि "इस ग्रंथमालामें सभी जैनसम्प्रदायोंके पवित्र ग्रंथ विना किसी तरफदारी या पक्षपातके समान आदरके पात्र बनेंगे ।" इस तरह पर, इस ग्रंथमालाके द्वारा जैनियोंके संपूर्ण उत्तम और प्रामाणिक ग्रंथोंको (प्राचीन संस्कृतटीकाओं तथा अँगरेजी अनुवादादि सहित प्रकाशित करके जैन अजैन सभीके लिए पक्षपातरहित अनुसंधान करनेके वास्ते, एक विशाल क्षेत्र तैयार करनेका अनुष्ठान किया गया है; जिससे अजैन लोक जैनियोंके तत्त्वोंका यथार्थ स्वरूप जानकर और जैनी भाई अपने अपने संप्रदायके वास्तविक भेदों तथा उनके कारणोंको पहचानकर परस्परका अज्ञानजन्य मनोमालिन्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दूर कर सकें। ग्रंथमालाके संस्थापकों और संचालकोंके ये सब आशय और विचार बड़े ही स्तुत्य और अभिनंदनीय हैं। हम हृदयसे इसका समर्थन करते हुए इसके शीघ्र सफल होनेकी भावना करते हैं।

उक्त ग्रंथमालाका यह आलोच्य ग्रंथ, द्रव्यसंग्रह, बड़ी सुन्दरताके साथ बढ़िया कागज पर छपाया गया है। सुवर्णाक्षरोंसे अंकित मनोहर जिल्द बंधी हुई है; और छपाई सफाई सब उत्तम हुई है। ग्रंथमें, मूलग्रंथका प्रत्येक प्राकृत पद्य पहले देवनागरी अक्षरोंमें, फिर अँगरेजी अक्षरोंमें छापा गया है और उसकी संस्कृत छाया दोनों प्रकारके अक्षरोंमें, नीचे फुटनोटके तौर पर दी गई है। प्रत्येक मूल पद्यको उभयाक्षरोंमें छापनेके बाद सबसे पहले उसका 'पदपाठ' दोनों प्रकारके अक्षरोंमें अँगरेजी अनुवादसहित, भिन्न टाइपमें, दिया गया है और फिर, कुछ मोटे टाइपमें उसका क्रमबद्ध अँगरेजी अनुवाद साथमें लगाया गया है। अनुवादमें जीव अजीवादि पारिभाषिक शब्दोंको प्रायः ज्योंका त्यों रखकर ब्रैकटों आदिमें उनका स्पष्टीकरण किया गया है और इस तरहपर पाठकोंको समझनेकी गड़बड़ीसे बचाया गया है। इसके बाद अँगरेजी टीका (Commentary) रक्खी गई है। यह टीका ब्रह्मदेवकी संस्कृत टीकाका अनुवाद नहीं है। संस्कृतकी उक्त टीका, आध्यात्मिक दृष्टिसे निश्चय और व्यवहारका पृथक्करण करते हुए, कुछ विस्तारके साथ लिखी गई है; परंतु यह अँगरेजी टीका उक्त दृष्टिको छोड़कर एक दूसरे ही ढंग पर, संक्षेपके साथ, तैयार की गई है। इसके तैयार करनेमें दूसरे ग्रंथोंके जिन वाक्योंसे सहायता ली गई है, अथवा जिनका आशय तथा अनुवाद इस टीकामें शामिल किया गया है, उन सबका उल्लेख भी मयपतेके फुट नोट्स आदिमें कर दिया गया है। यही इस टीकामें एक खास खूबी है और इससे एक विषय पर अनेक विद्वानोंके मतोंका एक साथ बोध हो जाता है। परंतु यह कार्य कुछ अधिक विस्तार और खोजके साथ होता तो और भी अच्छा रहता। अस्तु। टीकामें अनेक बातें ऐसी भी लिखी गई हैं, जिनका कोई प्रमाण नहीं दिया गया और जिनका दिग्दर्शन पाठकोंको, आगे चलकर कराया जायगा। इस टीकाके सिवाय ब्रह्मदेवकी उक्त संस्कृतटीका भी, अलग पृष्ठसंख्या डालकर, ग्रंथके साथ शामिल की गई है, परन्तु उसका कोई अनुवाद नहीं दिया गया। ग्रंथमें ५ पृष्ठके उपोद्घातके अतिरिक्त, ३० पेजकी एक प्रस्तावना (Introduction) भी लगाई गई है, जिसमें चामुंडरायके द्वारा गोमटेश्वरकी मूर्ति बनने तथा नेमिचंद्रके समयादिका विचार किया गया है। इस प्रस्तावनाका अधिकांश शरीर मिस्टर लेविस राइस आदि दूसरे विद्वानोंके शब्दोंसे बना हुआ है, जिन्हें लेखक महाशयने उक्त विद्वानोंके ग्रंथोंसे ज्योंका त्यों उद्धृत करके रक्खा है और स्थान स्थान पर इस विषयकी सूचना देकर अपनी उदारताका परिचय दिया है। प्रस्तावनासे सम्बंध रखनेवाले गोमटेश्वरकी मूर्ति, मंदिर, पहाड़ और शिलालेख आदिके ९ फोटो-चित्र भी साथमें लगे हुए हैं, जिनमेंसे अधिकांश चित्र पहले जैनसिद्धान्तभास्करादिकमें निकल चुके हैं। 'नेमिचंद्र सिद्धान्तचक्रवर्तीका चामुंडरायको शास्त्रोपदेश करना' नामका एक चित्र किसी स्त्रीके सौजन्यसे प्राप्त हुआ है, जिसका नाम नहीं दिया गया। इस चित्रके सम्बंधमें लिखा है कि, वह त्रिलोकसारकी एक अत्यंत प्राचीन, सुन्दरचित्रमय, हस्तलिखित प्रतिपरसे लिया गया है; परन्तु वह प्रति कहाँपर मौजूद है और किस सन्-संवत्की लिखी हुई है, इन सब बातोंको सूचित करनेकी शायद जरूरत नहीं समझी गई!

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चित्रको देखनेसे मालूम होता है कि, वह किसी ग्रंथके एक पत्रका फोटो है। उसके ऊपरके भागमें ' श्रीजिनदेवजी ' के बाद ' बलगोविंद-सिहामणि ' इत्यादि त्रिलोकसारकी पहली गाथा लिखी हुई है और बांई ओरके हाशिये पर उसकी संस्कृतटीका अंकित की गई है। नीचेके भागमें एक ओर भगवान् नेमिनाथकी मूर्तिसहित सुन्दर मंदिर बनाया गया है, जिसके दोनों तरफ़ क्रमशः बलभद्र और नारायण बैठे हुए, भक्तिसे नम्रचित्त होकर हाथ जोड़े भगवान् नेमिनाथका स्तवन कर रहे हैं, और दूसरी ओर श्रीनेमिचंद्र सिद्धान्तचक्रवर्ती एक ऊँचे आसन पर बैठे तथा सिद्धान्तपुस्तक सामने रक्खे हुए चामुंड राजा और इतर सभ्य लोगोंके अर्थ शास्त्रका व्याख्यान कर रहे हैं, ऐसा भाव दिखलाया गया है। चित्र अनेक दृष्टियोंसे अच्छा बना है और त्रिलोकसारकी उक्त गाथाको लेकर ही बनाया गया है। इन ९ चित्रोंसे अलग दो चित्र अँगरेजी टीकाके साथ भी लगाये गये हैं, जिनमें एक अलोकाकाशका सूचक और दूसरा पंचपरमेष्ठीके ध्यानका व्यंजक है। अन्तिम चित्र रंगीन और देखनेमें मनोहर मालूम होता है। इस प्रकार इस ग्रंथमें ११ चित्र हैं, जो जिल्दके साथ बँधे हुए हैं और उनकी सूचना भी, ग्रंथमें एक सूचीद्वारा दी गई है। ये सब चित्र बहुत बढ़िया कागज पर छपाये गये हैं और इनकी रक्षाके लिए साथमें एक एक बारीक कागज भी लगाया गया है। इन सब चित्रोंके सिवाय ग्रंथमें तीन चित्र और भी रक्खे हुए हैं, जो ग्रंथके सब प्रकारसे तैयार हो जानेके बाद पीछेसे शामिल किये गये हैं और इस लिए उनका बाइंडिंग भी नहीं हो सका। इनमेंसे पहला चित्र श्रीनेमिचंद्र-सिद्धान्तचक्रवर्तीका किसी प्राचीन मूर्तिपरसे उतारा हुआ फोटो है। परन्तु वह मूर्ति कहाँपर मौजूद है और उस पर नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीका सूचक क्या चिह्न पाया गया है, यह सब उक्त चित्रमें कुछ भी नहीं बतलाया गया, जो बतलाना चाहिए था। दूसरा चित्र द्रव्यसंग्रहके अँगरेजी अनुवाद, टीका, उपोद्घात, प्रस्तावना और नोट्स आदिके प्रधानसंपादक तथा लेखक प्रोफेसर शरच्चंद्रजी घोशालका है। ये दोनों चित्र भी जिल्दके साथ बँधने चाहिए थे। रहा तीसरा चित्र, सो वह जैनियोंके कुछ चिह्नोंका द्योतक है और उसका इस ग्रंथसे प्रायः कुछ भी सम्बंध नहीं है। दूसरे, यह चित्र ' बुकमार्कर ' नामके एक अलग पत्रखंड पर भी अंकित है जो ग्रंथमें, रेशमी फीतेसे अलग, पठित पाठको सूचित करनेके लिए रक्खा गया है। इस लिए इसको छपाकर रखनेमें फिजूल ही अर्थव्यय किया गया है। चित्रोंको छोड़कर ग्रंथमें, अनेक प्रकारकी सूचियाँ भी लगाई गई हैं। जैसे १ साधारण विषयसूची, २ उन पुस्तकों तथा पत्रोंकी नाम-सूची जिनसे इस ग्रंथके तय्यार करनेमें सहायता ली गई अथवा परामर्श किया गया, ३ स्वर-व्यंजनोंको अँगरेजी अक्षरोंमें किस प्रकारसे लिखा गया उसकी निदर्शक सूची, ४ मूल ग्रंथकी विषय-सूची, ५ गाथासूची, ६ छायासूची, ७ प्रस्तावनामें उल्लिखित खास खास शब्दों तथा नामोंकी सूची और ८ संपूर्ण ग्रंथमें आये हुए खास खास शब्दों तथा नामोंकी बृहत् सूची (General Index)। पहली और चौथे नम्बरकी दोनों विषय-सूचियोंको छोड़कर शेष सब सूचियाँ अकारादि क्रमसे लिखी गई हैं। अन्तिम बृहत्सूचीके अन्तमें हमें यह देखकर बहुत प्रसन्नता हुई कि वह सूची कुमार देवेंद्र-प्रसादजीकी धर्मपत्नी श्रीमती ' श्रीकान्त कुमारी देवी ' के द्वारा तैयार हुई है। भारतकी स्त्रियाँ यदि योग्यता प्राप्त करके अपने पुरुषोंको उनके कार्योंमें इस प्रकार सहायता देकर वास्त-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घोशालने अपने एक पत्रमें; जो सन् १९१६ के जैनहितैषीके छठे अंकमें मुदित हुआ है, चामुंडराय और नेमिचंद्रका समय ईसाकी ११ वीं शताब्दि प्रगट किया था, और गोम्मटेश्वरकी मूर्तिके प्रतिष्ठित होनेका समय ईस्वी सन् १०७४ बतलाया था। इसके प्रत्युत्तरमें हमने कुछ प्रमाणोंके साथ उक्त समयको ईसाकी १० वीं शताब्दि सूचित करते हुए प्रोफ़ेसर साहबसे यह निवेदन किया था कि वे उस पर फिरसे विचार करें। यद्यपि प्रोफ़ेसर साहबने उक्त लेखका कोई उत्तर नहीं दिया, परन्तु इस ग्रंथकी प्रस्तावनासे मालूम होता है कि उन्होंने उस पर विचार ज़रूर किया है। और इसी लिए उन्होंने अपने पूर्वविचारको बदल कर हमारी उस सूचनाके अनुसार चामुंडरायका समय वही ईसाकी १० वीं शताब्दि, इस प्रस्तावनामें, स्थिर किया है। साथ ही इतना विशेष और लिखा है कि गोम्मटेश्वरकी मूर्ति ईस्वी सन् ९८० में, २ री अप्रैलको प्रतिष्ठित हुई है। आपके लेखानुसार इस तारीख (२ अप्रैल ९८०) में ज्योतिषशास्त्रानुसार वे सब योग पूरी तौरसे घटित होते हैं जो बाहुबलिचरित्रके 'कल्क्यब्दे षट्शताख्ये...' इत्यादि पद्यमें वर्णित हैं। अर्थात् दूसरी अप्रैल सन् ९८० को 'विभव' संवत्सर, 'चैत्र शुक्ल पंचमी' तिथि, रविवारका दिन, सौभाग्य योग और मृगशिरा नक्षत्र था। उसी दिन कुंभ लग्नमें यह प्रतिष्ठा हुई है। रही कल्कि संवत् ६०० की बात, सो उसके संबंधमें आपने यह कल्पना उपस्थित की है कि 'कल्क्यब्दे षट्शताख्ये' का अर्थ कल्कि संवत् ६०० के स्थानमें 'कल्किकी छठी शताब्दी' किया जाय, जिसके अनुसार कल्कि संवत् ५०८ उक्त ईस्वी सन् ९८० के बराबर होता है। कल्पना अच्छी की गई है और इसके माननेमें कोई हानि नहीं, यदि अन्य प्रकारसे सब योग पूर्णतया घटित होते हों। परन्तु ईस्वी सन् ९८० शक संवत् ९०२ के बराबर है। ज्योतिषशास्त्रानुसार शक संवत्में १२ जोड़कर ६० का भाग देनेसे जो शेष रहता है उससे प्रभव विभवादि संवतोंका क्रमशः नाम मालूम किया जाता है। यथा:—

> "शकेन्द्रकालोऽर्कयुतः कृत्वा शून्यरसैः हृतः।
> शेषाः संवत्सरा ज्ञेयाः प्रभवाद्या बुधैः क्रमात्॥"

इस हिसाबसे, शक संवत् ९०२ में १२ जोड़कर ६० का भाग देनेसे अवशेष १४ रहते हैं; और १४ वाँ संवत् 'विक्रम' है, जिससे शक संवत् ९०२ का नाम 'विक्रम' होता है, 'विभव' नहीं। 'विभव' संवत् दूसरे नम्बरपर है जैसा कि, ज्योतिषशास्त्रोंमें कहे हुए, 'प्रभवो विभवः शुक्लः' इत्यादि संवतोंके नामसूचक पद्योंसे पाया जाता है। ऐसी हालतमें, जब ईस्वी सन् ९८० में 'विभव' संवत्सर ही नहीं बनता, तब गणित करके अन्य योगोंके जाँच करनेकी जरूरत नहीं है। और इस लिए जबतक ज्योतिषशास्त्रके वे खास नियम प्रकट न किये जायँ जिनके आधार पर शक सं० ९०२ का नाम 'विभव' बन सके तथा अन्य योग भी घटित हो सकें, तब तक मिस्टर लेविस राइस आदि विद्वानोंके कथनानुसार यही मानना ठीक होगा कि गोमटेश्वरकी मूर्ति ईस्वी सन् ९७८ और ९८४ के मध्यवर्ती किसी समयमें प्रतिष्ठित हुई है।

७ प्रस्तावनामें, ब्रह्मदेवकी संस्कृतटीकाका परिचय देते हुए, लिखा है कि, यह टीका द्रव्यसंग्रहके कर्ता नेमिचंद्रसे कई शताब्दी बादकी बनी हुई है। परन्तु इसका कोई प्रमाण नहीं दिया गया। सिर्फ, विक्रमकी १७ वीं शताब्दिमें बनी हुई स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षाकी टीकामें इस टीकाके कुछ अंश उद्धृत किये गये हैं, इतने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परसे ही उक्त निश्चय दृढ़ किया गया है, जो ठीक नहीं है। ऐसा करना तर्कपद्धतिसे बिलकुल गिरा हुआ है। इसके लिए कुछ विशेष अनुसंधानोंकी जरूरत है। अस्तु। ब्रह्मदेवने अपनी इस टीकाकी प्रस्तावनामें लिखा है कि, "यह द्रव्यसंग्रह नेमिचंद्रसिद्धान्तिदेवके द्वारा, भाण्डागारादि अनेक नियोगोंके अधिकारी सोम नामके राजश्रेष्ठिके निमित्त, आश्रमनाम नगरके मुनिसुव्रत चैत्यालयमें रचा गया है, और वह नगर उस समय धाराधीश महाराज भोजदेव कलिकालचक्रवर्तिसंबंधी श्रीपाल मंडलेश्वरके अधिकारमें था।" साथ ही यह भी सूचित किया है कि "पहले २६ गाथा प्रमाण लघु द्रव्यसंग्रहकी रचना की गई थी, पीछेसे, विशेष तत्त्वपरिज्ञानार्थ, उसे बढ़ाकर यह बृहद्द्रव्यसंग्रह बनाया गया है। प्रोफेसर साहबने ब्रह्मदेवके इस कथनको अस्वीकार किया है और उसके दो कारण बतलाये हैं—एक यह कि, खुद द्रव्यसंग्रहमें इस विषयका कोई उल्लेख नहीं है, तथा ग्रंथके अन्तिम पद्यमें ग्रंथका नाम 'बृहद्द्रव्यसंग्रह' न देकर 'द्रव्यसंग्रह' दिया है। और दूसरा यह कि, यदि इस कथनके अनुसार नेमिचन्द्रका अस्तित्व मालवाके राजा भोजके राजत्वकालमें माना जाय तो नेमिचंद्रका समय उस समयसे पीछे हो जाता है जो कि शिलालेखों और दूसरे प्रमाणोंके आधार पर इससे पहले सिद्ध किया जा चुका है (अर्थात् ईसाकी १० वीं शताब्दिके स्थानमें ११ वीं शताब्दि हो जाता है)। इन दोनों कारणोंमेंसे पहला कारण बहुत साधारण है और उससे कुछ भी साध्यकी सिद्धि नहीं हो सकती। ग्रंथकर्ताके लिए ग्रंथमें इस प्रकारका उल्लेख करना कोई जरूरी नहीं है, खासकर ऐसे ग्रंथमें जो सूत्ररूपसे लिखा गया हो। लघु और बृहत् ये संज्ञायें एक नामके दो ग्रंथोंमें परस्पर अपेक्षासे होती हैं, परन्तु जब एक ग्रंथकार अपनी उसी कृतिमें कुछ वृद्धि करता है तो उसे उसका नाम बदलने या उसमें बृहत् शब्द लगानेकी जरूरत नहीं है। हाँ, ब्रह्मदेवकी तरह दूसरा व्यक्ति उसकी सूचना कर सकता है। रहा दूसरा कारण, वह तभी उपस्थित किया जा सकता है, जब पहले यह सिद्ध हो जाय कि यह द्रव्यसंग्रह ग्रंथ उन्हीं नेमिचंद्र सिद्धान्तचक्रवर्तीका बनाया हुआ है जो गोम्मटसार ग्रंथके कर्ता हैं। प्रोफेसर साहबने द्रव्यसंग्रहको उक्त नेमिचंद्र सिद्धान्तचक्रवर्तीकी कृति मानकर ही यह दूसरा कारण उपस्थित किया है। परंतु ग्रंथभरमें इस बातके सिद्ध करनेकी कोई चेष्टा नहीं की गई (जिसकी बहुत बड़ी जरूरत थी) कि यह ग्रंथ वास्तवमें उक्त सिद्धान्तचक्रवर्तीका ही बनाया हुआ है। कोई भी ऐसा प्राचीन ग्रंथप्रमाण नहीं दिया गया, जिसमें यह ग्रंथ गोम्मटसारके कर्ताकी कृतिरूपसे स्वीकृत हुआ हो, और न यह बतलाया गया कि द्रव्यसंग्रहके कर्ताका समय कुछ पीछे मान लेनेसे कौनसी बाधा उपस्थित होती है। ऐसी हालतमें ब्रह्मदेवके उक्त कथनको सहसा अप्रमाण या असत्य नहीं ठहराया जा सकता। ब्रह्मदेवका वह कथन ऐसे ढंगसे और ऐसी तफ़सीलके साथ लिखा गया है कि, उसे पढ़ते समय यह खयाल आये बिना नहीं रहता कि या तो ब्रह्मदेवजी उस समय मैजूद थे; जब कि द्रव्यसंग्रह बनकर तयार हुआ था, अथवा उन्हें दूसरे किसी ख़ास मार्गसे इन सब बातोंका ज्ञान प्राप्त हुआ है। द्रव्यसंग्रहकी गाथाओंपरसे भी उसके पहले लघु और फिर बृहत् बननेकी कुछ कल्पना जरूर उत्पन्न होती है। इसके सिवाय संस्कृतटीकामें अनेक स्थानों पर नेमिचंद्रका सिद्धान्तिदेव नामसे उल्लेख किया गया है, 'सिद्धान्तचक्रवर्ती' नामसे नहीं, और गोम्मटसारके कर्ता नेमिचंद्र 'सिद्धान्तचक्रवर्ती' कहलाते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उन्होंने कर्मकांडकी एक गाथा (नंबर ३९७) में स्वयं अपनेको चक्रवर्ती प्रगट भी किया है। साथ ही, एक बात और भी नोट किये जानेके योग्य है और वह यह है कि द्रव्यसंग्रहके कर्ताने भावास्रवके भेदोंमें 'प्रमाद' को भी वर्णन किया है और अविरतके पाँच तथा कषायके चार भेद ग्रहण किये हैं। परंतु गोम्मटसारके कर्ताने 'प्रमाद' को भावास्रवके भेदोंमें नहीं माना और अविरतके (दूसरे ही प्रकारके) बारह तथा कषायके पच्चीस भेद स्वीकार किये हैं, जैसा कि दोनों ग्रंथोंके निम्न वाक्योंसे प्रगट है:—

मिच्छताविरदिपमादजोगकोहादओ थ विण्णेया ।
पण पण पणदह तिय चदु कमसो भेदा दु पुव्वस्स ॥
—द्रव्यसंग्रह, पद्य ३० ।

मिच्छत्तमविरमणं कसायजोगा य आसवा होंति ।
पण वारस पणवीसं पण्णरसा होंति तब्भेया ॥
—गोम्मटसार, कर्मकांड पद्य ॥ ७८६ ॥

एक ही विषय पर, दोनों ग्रंथोंके इन विभिन्न कथनोंसे ग्रंथकर्ताओंकी विभिन्नताका बहुत कुछ बोध होता है। इन सब बातोंके मौजूद होते हुए कोई आश्चर्य नहीं कि द्रव्यसंग्रहके कर्ता गोम्मटसारके कर्तासे भिन्न कोई दूसरे ही नेमिचंद्र हों। जैनसमाजमें नेमिचंद्र नामके धारक अनेक विद्वान् आचार्य हो गये हैं। एक नेमिचंद्र ईसाकी ग्यारहवीं शताब्दिमें भी हुए हैं जो वसुनंदि-सैद्धान्तिकके गुरु थे और जिन्हें वसुनंदि श्रावकाचारमें 'जिनागमरूपी समुद्रकी वेला-तरंगोंसे धूयमान और संपूर्ण जगत्में विख्यात' लिखा है। बहुत संभव है कि, यही नेमिचन्द्र द्रव्यसंग्रहके कर्ता हों। परंतु हमारी रायमें अभीतक यह असिद्ध है कि, द्रव्यसंग्रह कौनसे नेमिचंद्राचार्यका बनाया हुआ है, और जबतक यह सिद्ध न हो जाय कि द्रव्यसंग्रह तथा गोम्मटसारके कर्ता दोनों एक ही व्यक्ति थे उस समय तक प्रोफेसर साहबकी उक्त ३० पेजकी सारी प्रस्तावना प्रायः व्यर्थ और असंबंधित ही रहेगी। क्योंकि वह बहुधा गोम्मटसारके कर्ता नेमिचंद्र और उनके शिष्य चामुंडरायको लक्ष्य करके ही लिखी गई है।

८ ग्रंथभरमें, यद्यपि, अनुवादकार्य आमतौरसे अच्छा हुआ है, परंतु कहीं कहीं उसमें भूलें भी की गई हैं; जिनके कुछ नमूने इस प्रकार हैं:—

(क) सम्यग्दर्शनादिकका अनुवाद करते हुए 'सम्यक्' शब्दका अनुवाद Right आदि की जगह Perfect अर्थात् 'पूर्ण' किया है, और इस तरह पर पूर्ण श्रद्धान, *पूर्णज्ञान, (केवलज्ञान) और पूर्णचारित्रहीको मोक्षकी प्राप्तिका उपाय बतलाया है। परन्तु श्रद्धानादिककी यह पूर्णता कौनसे गुणस्थानमें जाकर होती है और उससे पहलेके गुणस्थानोंमें सम्यग्दर्शनादिकका अस्तित्व माना गया है या कि नहीं, साथ ही, इसी ग्रंथकी मूल गाथाओंमें रत्नत्रयका जो स्वरूप दिया है उससे उक्त कथनका कितना विरोध आता है, इन सब बातों पर अनुवादक महाशयने कुछ भी ध्यान नहीं दिया। इस लिए यह अनुवाद ठीक नहीं हुआ।

(ख) पृष्ठ ११४ पर, दर्शनावरणी कर्मके क्षयसे उत्पन्न होनेवाले अनंत दर्शनका अनुवाद Perfect faith अर्थात् 'पूर्ण श्रद्धान' अथवा सम्यक् श्रद्धान किया है, जो जैनदृष्टिसे बिलकुल गिरा हुआ है। इस अनुवादके द्वारा मोहनीय कर्मके उपशमादिकसे सम्बंध रखनेवाले सम्यग्दर्शनको और दर्शनावरणीय कर्मके क्षयोपशमादिकसे उत्पन्न होनेवाले दर्शनको एक कर दिया गया है!!

* देखो इसी ग्रंथका पृ० ११४, जहां Perfect Knowledge (पूर्ण ज्ञान) उस ज्ञानको बतलाया है जो ज्ञानावरणी कर्मके क्षयसे उत्पन्न होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(ग) पृष्ठ ५ पर 'माण्डलिक ग्रंथकार' का अर्थ 'अन्य समस्त ग्रंथकार' (all other writers) किया है जो ठीक नहीं है। मांडलिकसे अभिप्राय वहाँ मतविशेषसे है।

(घ) प्रस्तावनामें एक स्थान पर, 'सुयोगे सौभाग्ये मस्तनाम्नि प्रकटित भगणे' का अ[illegible] दिया है—When the auspicious Mrigsira star was visible है—अर्थात्, जिस समय शुभ मृगशिरा नक्षत्र प्रकाशित था। इस अनुवादमें 'सुयोगे सौभाग्ये' का कोई ठीक अर्थ नहीं किया गया। मालूम होता है कि इन पदोंमें ज्योतिषशास्त्रविहित 'सौभाग्य' नामके जिस योगका उल्लेख था, उसे अनुवादक महाशयने नहीं समझा और इसी लिए 'सौभाग्य' का ansplions (शुभ) अर्थ करके उसे मृगशिराका विशेषण बना दिया है। इस प्रकारकी भूलोंके सिवाय अनुवादकी तरतीब (रचना) में भी कुछ भूलें हुई हैं, जिनसे मूल आशयमें कुछ गड़बड़ी पड़ गई है। जैसे कि गाथा नं० ४५ का अनुवाद। इस अनुवादमें दूसरा वाक्य इस ढंगसे रक्खा गया है, जिससे यह मालूम होता है कि पहले वाक्यमें चारित्रका जो स्वरूप कहा गया है, वह व्यवहारनयको छोड़कर किसी दूसरी ही नयविवक्षासे कथन किया गया है। परंतु वास्तवमें मूलका ऐसा अभिप्राय नहीं है। इसी तरह २१ वें नम्बरकी गाथाका अनुवाद करते हुए निश्चय और व्यवहार कालके स्वरूपमें परस्पर गड़बड़ी की गई है। ४४ वीं गाथाके अनुवादकी भी ऐसी ही दशा है।

अब ग्रंथकी अँगरेजी टीकामें जो दूसरे शास्त्रविरुद्ध कथन पाये जाते हैं, उनके भी दो चार नमूने दिखलाकर यह समालोचना पूरी की जाती है:—

(क) पृष्ठ १२ पर गणधरोंको केवलज्ञानी लिखा है, जो ठीक नहीं। गणधर अपनी उस अवस्थामें सिर्फ चार ज्ञानके धारक होते हैं।

(ख) पृष्ठ १५ पर 'प्रत्यभिज्ञान' और हिन्दूफिलासोफीके 'उपमान प्रमाण' को एक बतलाया है। परंतु स्वरूपसे ऐसा नहीं है। प्रत्यभिज्ञानका सिर्फ एक भेद, जिसे सादृश्य प्रत्यभिज्ञान कहते हैं, उपमान प्रमाणके बराबर हो सकता है।

(ग) पृष्ठ ३६ पर यह सूचित किया है कि, जो जीव एक बार निगोदसे निकल जाता है—उन्नति करना प्रारंभ कर देता है—वह फिर कभी उस निगोददशाको प्राप्त नहीं होता; उसके पतनका फिर कोई अवसर नहीं रहता। परंतु यह कथन जैनशासनके विरुद्ध है। जैनधर्मकी शिक्षाके अनुसार निगोदसे निकला हुआ जीव फिर भी निगोदमें जा सकता है और उन्नतिकी चरम सीमाको पहुँचनेके पहले जो उत्थान होता है उसका पतन भी कथंचित् हो सकता है।

(घ) गाथा नं० ३० की टीकामें पंचप्रकारके मिथ्यात्वोंका जो स्वरूप लिखा है वह प्रायः शास्त्र सम्मत मालूम नहीं होता। जैसे विपरीत मिथ्यात्व उसे बतलाया है "जिसमें यह खयाल किया जाता है कि यह या वे दोनों सत्य हो सकते हैं" और अज्ञान मिथ्यात्व उसे, "जिसमें श्रद्धानका सर्वथा अभाव होता है अर्थात् किसी प्रकारका कोई श्रद्धान नहीं होता।" इस प्रकारके स्वरूपका तत्त्वार्थसार और तत्त्वार्थ राजवार्तिकादि ग्रंथोंसे मेल नहीं मिलता।

(५) गाथा नं० ४४ की टीकामें ज्ञानावरणीय कर्मके उपशमसे 'ज्ञान' और दर्शनावरणीय कर्मके उपशमसे 'दर्शनका' उत्पन्न होना लिखा है; और इस तरह पर ज्ञान तथा दर्शनको 'औपशमिक' भी प्रगट किया है, जो जैन-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिद्धान्तकी दृष्टिसे बिलकुल गिरा हुआ है। क्योंकि ज्ञान तथा दर्शन 'क्षायिक' और 'क्षायोपशमिक' इस तरह दो प्रकारका होता है। इसी प्रकार, ग्रंथके परिशिष्टमें, जो यह लिखा है कि केवलज्ञानीको कर्मोंका कोई आस्रव नहीं होता, वह भी जैनसिद्धान्तकी दृष्टिसे ठीक नहीं है। क्योंकि सयोगकेवलीके योग विद्यमान होनेसे कर्मोंका आस्रव जरूर होता है।

अन्तमें हम अपने मित्र श्रीयुत कुमार देवेन्द्रप्रसादजीको हृदयसे धन्यवाद देते हैं, जिन्होंने प्राचीन जैनग्रंथोंको इस प्रकार टीका-टिप्पणादिसहित, उत्तमताके साथ प्रकाशित करनेका यह महान् बीड़ा उठाया है। साथ ही, उनसे यह प्रार्थना भी करते हैं कि, वे भविष्यमें इस बातका पूरा खयाल रक्खें कि उनके यहाँसे प्रकाशित हुए ग्रंथोंमें इस प्रकारकी भूलें न रहने पायँ; और इस तरह पर उनकी ग्रंथमाला एक आदर्श ग्रंथमाला बनकर अपने उस उद्देश्यको पूरा करे जिसको लेकर वह अवतरित हुई है। *

ता० ३-१-१८

---

* यह समालोचना संपादक जैनहितैषीकी प्रेरणा तथा कुमार देवेन्द्रप्रसादजीके भी इच्छा प्रकट करने पर जैनहितैषीके लिए लिखी गई। —लेखक।

विचित्र ब्याह।

(लेखक, पं० रामचरित उपाध्याय।)

[गतांकसे आगे]

सप्तम सर्ग।

एक दिवस माताने सुतसे सकल ब्याह-वृत्तान्त कहा,
ध्यानसहित सुनकर उसको वह, बहुत देर तक मौन रहा।
फिर सतर्क बोला अति दृढ़ हो, माता, मैं न करूँगा ब्याह,
गृह-बन्धनमें फँसनेकी है, मुझमें नहीं तनिक भी चाह॥ १॥
सत्याग्रहसे रह कर मुझको, करना है भारत-उद्धार,
मेरे सिर पर लाद न माता, पराधीनताका दुख-भार।
यदि अबलाके लिए न चिन्ता, प्रबला होने पावेगी,
जन्मभूमि फिर मेरे रहते, कैसे रोने पावेगी॥ २॥
यदि वनिता, सुत, सुता न होवें, तो फिर दुःख सहेगा कौन?
'हाँ हुजूर' भी अपने मुखसे, खलको हाय कहेगा कौन?।
देवराजसे बढ़कर वह है, पराधीनता जिसे न हो,
देश, जातिका गर्व चित्तमें, मानव होते किसे न हो?॥ ३॥
सफल जन्म है उसी मनुजका, जिसने किया देशउपकार,
स्वार्थ-लीन ही रहा सदा जो, उसके जीवनको धिक्कार।
सदा स्वतंत्र रहूँगा जगमें, जननी, मैं बस इसी लिए,
सत्य मान तू नहीं करूँगा, ब्याह कभी भी किसी लिए॥ ४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देश मात्रका मैं हूँ, मेरा-देश मात्र है मन्त्र यही
मैंने स्थिर कर लिया अम्बिके, इसमें है भ्रम-लेश नहीं।
कोटि अनाथा स्त्रियाँ पड़ी हैं, भारतमें अति दीन मलीन,
जीवन भर तन मनसे उनकी, सेवामें होऊँगा लीन ॥ ५ ॥

निःसहाय बहु बालक भी हैं, शिक्षा उन्हें दिलाऊँगा,
सोते हुए देशको अपने, करके यत्न जगाऊँगा।
वह क्यों अच्छा हो सकता है, जिसने किया न अच्छा काम,
और कीर्तिकारक अवनी पर, जिसने किया न अपना नाम ॥ ६ ॥

विना दुःख भोगे कैसे दुख, जन्मभूमिका होगा दूर,
प्रतिपल हाय, हिन्दका शोणित, चूस रहे हैं मानव क्रूर।
इसी लिए मैं प्राणप्रणसे दैशिक व्रतको पालूँगा,
करके यत्न अविद्या-तमको शीघ्र यहाँसे टालूँगा ॥ ७ ॥

विषय-वासनासे सुन जननी, मिलता है सुख-लेश नहीं,
कभी भोगनेसे इच्छायें, हो सकतीं निःशेष नहीं।
इसी लिए कौमार-व्रत भी करना मैंने ठाना है,
जगमें मैंने सबसे अच्छा परोपकृतिको माना है ॥ ८ ॥

प्रतिदिन हा अवनति-खन्दकमें, गिरता जाता है यह देश,
प्रथम सुखी था यथा आज त्यों, मोह-विवश पाता है क्लेश।
ऐसे समय विषयमें फँसना, बुद्धिमानका काम नहीं,
सुनकर जन्मभूमि-क्रन्दनको, मिल सकता आराम नहीं ॥ ९ ॥

देश-निवासी दुखसे रोवें, मैं कैसे सुख सोऊँगा,
जान बूझकर अपना जीवन, नहीं अकारथ खोऊँगा।
निज-समाजके दैन्य देख भी, जिनमें उगती दया नहीं,
उनका जीना मरना सम है, जिनमें कुछ भी हया नहीं ॥ १० ॥

क्षमा करो माताजी, मुझको, प्रेमसहित दे दो वरदान,
देष-हितैषीके संकटमें, स्वयं सहायक हैं भगवान।
शपथसहित सच कहता हूँ, यदि तेरी आज्ञा पाऊँगा,
तो फिर धर्म-मर्म मानवके, करके कर्म दिखाऊँगा ॥ ११ ॥

भाग्यमती है जगमें नारी, जननी, है सुतवती वही,
सती वही, मतिमती वही है, और सुखी गुणवती वही।
जिसका तनय विनयसे नयसे, देश-वृद्धिके लिए सदा-
उद्यत रहता तन, मन, धनसे, स्वत्व-सिद्धिके लिए सदा ॥ १२ ॥

जीते रहो सत्य कहते हो, हरिसेवक, मेरे प्यारे,
देशभक्ति हो अटल तुम्हारी, मेरे नयनोंके तारे।
पर मेरी बातोंको मानो, परम पूज्य मुझको मानो,
मेरे कहनेको निज-मनमें, शिशुका खेल नहीं जानो ॥ १३ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राणीका कर्तव्य प्रथम है, निजकुलको विस्तृत करना,
कभी स्वप्नमें भी विघ्नोंसे, नहीं चाहिए सुत, डरना ।
अपने संकल्पित कामोंको, जो करते हैं बूझ विचार,
सभी अवस्थाओंमें उनके, हो जाते हैं बेड़े पार ॥ १४ ॥

जलमें जलज बना रहता है, पर रखता संपर्क नहीं,
वैसे सुधी गृही बनते हैं, व्यर्थ करो तुम तर्क नहीं ।
अपने कार्य किसे सौंपोगे, यदि होगी सन्तान नहीं,
विना व्याहके किये तुम्हारा, सुत, होगा कल्याण नहीं ॥ १५ ॥

जैसे होगा व्याह तुम्हारा, अपनी आँखों देखूँगी,
पुत्रवधू पाकर अपनेको, पुत्रवती मैं लेखूँगी ।
जीते होते पिता तुम्हारे, तब होता यदि व्याह नहीं,
हरिसेवक, तो मेरे मनमें, कुछ भी होती दाह नहीं ॥ १६ ॥

सभी कहेंगे पितृ-हीनका, क्यों कर हो सकता है व्याह,
ऐसी बातें सुन कर बेटा, प्रतिपल भरा करूँगी आह ।
इसी लिए मेरे कहनेसे, हर्षित हो निज व्याह करो,
देशभक्तिमें नहीं रुकावट-होगी, मनमें नहीं डरो ॥ १७ ॥

नहीं नहीं मा, भूल रही हो, मेरी बात जाइए मान,
धर्म-विरुद्ध कार्य मत करिए, कहिए कहाँ गया है ज्ञान ?
धन देकर यदि कन्या लोगी, तो वह दासी होवेगी,
फिर उससे जो सन्तति होगी, दोनों कुलको खोवेगी ॥ १८ ॥

दासीसे या दासी-सुतसे, माता, क्या होगा उपकार ?
अपने कुलको स्वयं कलंकित, नहीं कीजिए बूझ विचार ।
क्वाँरे रहे भीष्म पर तो भी, 'बाबा' बोले जाते थे ।
सबसे बढ़कर सबसे पहले, जगमें आदर पाते थे ॥ १९ ॥

रुपये मत फेंको, मुझको दो, उनसे करूँ विविध व्यापार,
द्रव्य बढ़ाकर सुख भी भोगूँ, और करूँ जगका उपकार ।
धन दे करके पाप कमाना, बुद्धिमानका काम नहीं,
विद्या-विभव व्यर्थ हैं उसके, जिसका भू पर नाम नहीं ॥२०॥

पशुओंसा नरका भी जगमें, जन्म गवाँना ठीक नहीं,
विषय-लीन हो, पराधीन हो, दुःख उठाना ठीक नहीं ।
कार्य-दक्ष जो विपुलवक्ष हो, देश-पक्षमें रहे खड़ा,
वही तनुज है, वही मनुज है, वही विबुध है वही बड़ा ॥ २१ ॥

ब्रह्मचर्यका पालन जिसने-किया, किया उसने कुछ काम,
जो नर हो सुख-दायक जगको, हुआ उसीका जन्म ललाम ।
बालब्रह्मचारी मैं रहकर, भारत-दुःख मिटाऊँगा,
दीन भारतीयोंके कारण, मैं भी मर मिट जाऊँगा ॥ २२ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मेरी बातोंसे तुम जननी, मनमें तनिक न होना रुष्ट,
केवल स्त्री-धन, अशन, वसनमें, पामर नर रहते हैं तुष्ट।
पर-हितमें नित रत रहते हैं, जिनका उर है उच्च उदार,
अपने सुखसे सुखी रहे जो, वही मनुज है भूका भार ॥ २३ ॥

कृपा करो मा, इसी लिए मैं, ब्याह करूँगा अभी नहीं,
जन्मभूमि-हित जीवन दूँगा, व्यर्थ मरूँगा कभी नहीं।
नश्वर है यह देह खेहकी, अजर अमर है पर-उपकार,
जैसे तैसे प्राणप्रणसे, क्यों न करूँ फिर देशोद्धार ॥ २४ ॥

कहा सुशीलाने फिर सुतसे, बेटा, तूने ठीक कहा,
पर ऐसा करनेसे मेरे, मनमें होगा दुःख महा।
इसी लिए तुम मेरा कहना-मानो, आना कानी छोड़,
कभी लड़कपनके वश होकर, मुझसे करो न नातातोड़ ॥ २५ ॥

किस कठिनाईसे सुत, तुमको, पोसा पाला है मैंने,
क्या न तुम्हारे लिए जगतमें, सहा कसाला है मैंने।
मेरी बात मौन हो मानो, उससे करो नहीं इन्कार,
मातृ-भक्ति सबसे बढ़कर है, रख लो मेरा प्यार दुलार ॥ २६ ॥

जिसने माता और पिताका, कहना माना नहीं कभी,
उसने धर्मयुक्त हो जगमें, रहना जाना नहीं कभी।
निज करनीसे मेरे मनको, साहस करके मत तोड़ो,
अविनयमय हो, तनय, नहीं तुम, मुझे बुढ़ापेमें छोड़ो ॥ २७ ॥

यदि मा मुझको मान रहे हो, तो तुम मानो मेरी बात,
ब्याह करो मेरे कहनेसे, वाद करो मत, मेरे तात।
जो करती हूँ प्रेम-दृष्टिसे, उसको तुम देखो चुपचाप,
यदि बोलोगे तो जीवन भर, मुझको होवेगा सन्ताप ॥ २८ ॥

कुछ नहीं हरिसेवकने कहा,
वह नितान्त निरुत्तर हो रहा।
पग गई जननी अति मोदमें,
तनयको भरके निज गोदमें ॥ २९ ॥

[असमाप्त ।]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैनधर्मका भूगोल और खगोल ।

[लेखक,-श्रीयुक्त जिज्ञासु ।]

यों तो पृथ्वीके प्रायः सभी धर्मोंके साहित्यमें भूगोल और खगोलके विषयमें कुछ न कुछ लिखा हुआ है; पर उनमें हिन्दू और जैनधर्मका साहित्य खास तौरसे उल्लेखयोग्य है । हिन्दुओंके पुराणों और ज्योतिषग्रन्थोंमें, इस विषयमें बहुत कुछ लिखा गया है; परंतु जैनसाहित्यमें जिस क्रमसे और सूक्ष्मताके साथ यह विषय लिखा गया है, वैसा हिन्दूसाहित्यमें नहीं। हिन्दू ग्रन्थकार इस विषयमें एकमत भी नहीं हैं—उनमेंसे कोई कुछ लिखता है और कोई कुछ; परंतु जैनसाहित्यमें वह बात नहीं । जैनधर्मकी दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों शाखाओंका साहित्य इस बारेमें पूरी पूरी एकता रखता है ।

परंतु, जबसे आधुनिक वैज्ञानिक युगका आरंभ हुआ है, तबसे इन प्राचीन धर्मग्रन्थोंमें लिखी हुइ बातोंकी प्रामाणिकताके ऊपर बहुत ही भयानक उपद्रव होना शुरू हुआ है । प्राचीन कालमें भूगोल और खगोलविषयक पदार्थोंके परीक्षण या निरीक्षण करनेके लिए उपयुक्त साधन न थे, इस कारण उस समय प्रत्येक धर्मावलम्बीको अपने अपने धर्मग्रंथोंमें लिखी हुई बातोंको केवल श्रद्धाके सामर्थ्यसे ही सत्य मानना पड़ता था । एक तो उन कथनोंमें शंका करनेके कारण ही कम थे, और कदाचित् शंकायें होती भी थीं, तो उनके निवारण करनेके विशेष साधन नहीं थे । परंतु इस वैज्ञानिक युगमें—जब कि आकाश पाताल एक किया जा रहा है और मनुष्य प्रकृतिके गूढ़से गूढ़ पटलोंको अपनी शक्तिद्वारा बाहर लाकर सर्वप्रत्यक्ष कर रहा है—वह बात नहीं रही । अब श्रद्धाका साम्राज्य नष्ट हो रहा है और उसके स्थानमें बुद्धिकी प्रतिष्ठा हो रही है । अब पुराने शास्त्रोंमें कही हुई वे ही बातें श्रद्धाके सहारे 'येन केन प्रकारेण' स्वीकृत की जा सकती हैं जो सर्वथा परोक्ष हैं और जिनका ज्ञान करानेके लिए सिवा धर्मशास्त्रके और कोई साधन नहीं है । प्रत्यक्ष पदार्थोंके बारेमें अब धर्मशास्त्रोंके कथनका जैसा चाहिए वैसा आदर नहीं किया जाता । कारण यह है कि ऐसी अनेक बातें वैज्ञानिक परीक्षाओंके सामने निर्मूल ठहर चुकी हैं जिनका वर्णन पुराने ग्रंथोंमें बड़े विस्तारके साथ और बड़े उत्साहके साथ लिखा गया है । भूगोल और खगोल विषयक बातें भी उन्हींमेंसे हैं ।

ऊपर लिखा जा चुका है कि, जैनधर्मकी पुस्तकोंमें इन दोनों विषयोंका बहुत ही सूक्ष्म और बहुत विस्तारयुक्त वर्णन किया है और इस सूक्ष्मता और विस्तृतताके कारण ही अभी तक जैन विद्वान् अपने धर्मशास्त्रोंको अभिमानके साथ सर्वज्ञप्रणीत अतएव सर्वथा सत्यप्रतिपादित करते आये हैं । परंतु अब वह समय नहीं रहा कि केवल बुद्धिको चक्करा देनेवाले बड़े बड़े लम्बे चौड़े वर्णनोंको देखकर ही लोग उनकी सत्यताका स्वीकार कर लें । अब तो मनुष्यकी बुद्धि प्रत्येक कथनका मूल और क्रमविकास सप्रमाण पूछना चाहती है । प्रत्यक्षके साथ संबंध रखनेवाले प्रायः सब ही पदार्थोंके कार्यकारण भावोंका सांगोपांग निरीक्षण करनेके बाद ही लोग उनकी सत्यासत्यता स्वीकार करते हैं । केवल सर्वज्ञकथित कह देनेसे ही अब काम नहीं चलता प्रमाणोंद्वारा युक्तियुक्त या बुद्धिगम्य करने-कराने पर ही अब कार्यसिद्धि अवलम्बित है ।

जिस समय हम अपने साहित्योक्त भूगोल-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खगोलविषयक वर्णनको—जो हमारे साहित्यका एक मुख्य अंग होकर उसके बहुत बड़े भागको रोके हुए हैं—पढते सुनते हैं, उस समय हमारे हृदयमें अनेक प्रकारकी शंकातरंगें उच्छ्वसित होने लगती हैं। हमारे ग्रंथोंमें इस विषयमें जितनी बातें कही गई हैं, उनमेंसे एक भी बात ऐसी नहीं है, जो अनेकानेक प्रमाणों और साधनोंद्वारा निश्चित किये गये आधुनिक भौगोलिक और खगोलिक विचारोंसे—जिनमेंकी मोटी मोटी बातोंसे हमारा प्रत्येक बालक बचपनहीसे स्कूलोंमें परिचित हो जाता है—मेल रखती हो। जो विद्यार्थी स्कूलोंको छोड़ कर कालेजोंके कमरोंमें भी कुछ काल तक बैठ आते हैं, वे तो हमारे ग्रंथोंकी इन बातोंको सुनकर आदरान्वित आश्चर्यके बदले वैसा ही आश्चर्य करते हैं जैसा कि हमारे श्रद्धालु और विचारशील जैन हिन्दुओंके पुराणोंकी अमानुषिक बातोंको सुनकर करते हैं। बहुतसे विद्यार्थी तो यहाँतक विश्वास कर लेते हैं—चाहे वे फिर किसी भय या शंकाके कारण उसे स्पष्ट भले ही प्रकट न कर सकें—कि जैनग्रन्थकार इन बातोंकी निर्मूल कल्पनायें करनेमें पुराणकारोंसे भी बढ़े चढ़े हैं! जैनधर्मके पण्डितों और जानकारोंके सामने भी अब इस विषयकी चर्चा उपस्थित होने लगी है; परन्तु उनके पास इसका केवल एक उत्तर है और वह यह कि ऐसे लोगोंके विचार या विश्वास अज्ञानजन्य हैं, अथवा नास्तिकताके फल हैं; परंतु इस अज्ञानता या नास्तिकताके निवारण करनेका उनकी ओरसे कोई भी प्रयत्न नहीं किया जाता; उलटा इस प्रकारके निर्बलतासूचक उद्गारोंद्वारा शंकितोंको अपने विचारोंमें और भी दृढ बननेका कारण उपस्थित किया जाता है।

इन पंक्तियोंके जिज्ञासु लेखकने अपनी बुद्धिके अनुसार जैनधर्मके भूगोल-खगोलका—जो कि तत्त्वार्थसूत्रकी सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक आदि टीकाओंमें और त्रैलोक्यप्रज्ञप्ति त्रैलोक्यसार, आदि ग्रंथोंमें लिखा है-और साथ ही आधुनिक विज्ञानद्वारा संशोधित भूगोल-खगोलका, इस तरह दोनोंका ही थोड़ासा अध्ययन किया है और दोनोंका परस्पर मिलान करके देखा है कि किसी तरहसे भी इनकी संगति मिल सकती है या नहीं। परन्तु इसे (लेखकको) संगतिके बदले विरोध ही एकान्तरूपसे नजर आया है। विरोधके होनेमें कोई आश्चर्य नहीं है; परंतु विरोध विरोधमें अन्तर होता है। एक विरोधका परिहार किया जा सकता है और दूसरा अपरिहार्य होता है। यह विरोध मुझे अपरिहार्य ही मालूम हुआ और सो भी प्रत्यक्ष प्रमाणोंसे। जैनशास्त्रोंमें पृथ्वीको कुम्हारके चक्ककी तरह या झल्लरीके समान चिपटी और गोल बतलाया है। उसपर असंख्यात द्वीप और असंख्यात समुद्र हैं। वे एक दूसरेसे दूने दूने विस्तारवाले हैं और बलयके आकार एक दूसरेको घेरे हुए हैं। उन सबमें मध्यवर्ती एक लक्ष योजनका लंबा चौड़ा जंबूद्वीप है। इस द्वीपके दक्षिण भागान्तमें भरतखण्ड नामका क्षेत्र है, जिसमें हम रहते हैं। स्वर्गीय स्याद्वाद-वारिधि पण्डित गोपालदासजी बरैयाने अपने 'जैन जागरफी' नामक निबन्धके अंतमें लिखा है—

"आज कल हम लोगोंका निवास मध्यलोकके जम्बूद्वीपसंबंधी दक्षिणदिशावर्ती भरतक्षेत्रके आर्यखण्डमें हैं। इस आर्यखण्डके उत्तरमें विजयार्द्ध पर्वत है। दक्षिणमें लवणसमुद्र, पूर्वमें महागंगा और उत्तरमें महासिन्धु नदी है। भरतक्षेत्रकी चौड़ाई ५२६$\frac{6}{19}$ योजन है। इसके बिलकुल बीचमें विजयार्द्ध पर्वत पड़ा हुआ है, जिससे भरतक्षेत्रके दो खण्ड हो गये हैं। तथा महागंगा और महासिन्धु हिमवत् पर्वत-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से निकलकर विजयार्द्धकी गुफ़ाओंमें होती हुई पूर्व और पश्चिम समुद्रमें जा मिली हैं, जिनसे भरतक्षेत्रके छह खण्ड हो गये हैं।

"यह सब कथन प्रमाण योजनसे है। एक प्रमाण योजन वर्तमानके २००० (दो हजार) कोशके बराबर है। इससे पाठक समझ सकते हैं कि, आर्य खण्ड बहुत लम्बा चौड़ा है। चतुर्थ कालकी आदिमें इस आर्यखण्डमें उपसागरकी उत्पत्ति होती है, जो क्रमसे चारों तरफको फैलकर आर्यखण्डके बहुत भागको रोक लेता है। वर्तमानके एशिया, योरोप, आफ्रिका, अमेरिका और आस्ट्रेलिया ये पाँचों महाद्वीप इसी आर्यखण्डमें हैं। उपसागरने चारों ओर फैलकर ही इनको द्वीपाकार बना दिया है। केवल हिन्दुस्तानको ही आर्यखण्ड नहीं समझना चाहिए। वर्तमान गंगा सिन्धु महागंगा या महासिन्धु नहीं है।"

यदि श्रद्धादेवीको सन्तुष्ट रखनेके लिए यह सब कथन किसी तरह सत्य भी मान लिया जाय, तो भी काम नहीं चल सकता। इस कथनसे सम्बंध रखनेवाले जो और और कथन हैं, वे इस मानतासे तत्काल ही रुष्ट हो जाते हैं और मूलकोही नाश करनेके लिए उद्यत हो जाते हैं। जैनधर्मका खगोल ज्ञान कहता है, कि इस लक्षयोजनप्रमाण जम्बूद्वीपमें दो चन्द्र और दो सूर्य अविश्रान्त रूपसे निरंतर परिभ्रमण करते रहते हैं। जम्बूद्वीपके मध्यभागमें जो लक्ष योजन ऊँचा मेरु पर्वत है, उसीके चारों ओर ये चंद्र सूर्य परिक्रमण किया करते हैं। जब एक सूर्य मेरुपर्वतकी दक्षिण ओरको प्रकाशित करता है तब दूसरा उत्तरकी ओरको, और दोनों चंद्र क्रमशः पूर्व और पश्चिम भागमें रहते हैं। अर्थात् प्रत्येक चन्द्र और सूर्य मेरु पर्वतके एक ओरका सारा भूभाग प्रकाशित करता है। जो सूर्य या चन्द्र मेरुके दक्षिणकी तरफ परिक्रमण करता है, वह अकेले भरतको ही नहीं, किन्तु उसके समान विस्तारवाले जम्बूद्वीपके अन्य ६२ भूखण्डोंको भी आलोकित करता है। ऐसी दशामें वर्तमानमें जो एशिया, यूरोप, अमेरिका और आस्ट्रेलियादिक भूभागोंमें (जो जैनधर्मशास्त्रोंके अनुसार भरतखण्डके ही अन्तर्गत हैं) भिन्न भिन्न काल प्रतीत होता है वह कभी घटित नहीं हो सकता। यह तो सर्वप्रत्यक्ष और सर्वथा असंदिग्ध बात है कि जब भारतके बम्बई शहरमें दिनके बारह बजते हैं, तब अमेरिकाके न्यूयार्क नगरमें रातके बारह बजनेकी तैयारी होती है! न्यूज़ीलेंडमें जब शामके ६ बजते हैं और रात होने लगती है, तब इंग्लेंडमें प्रातःकालके ६ बजते हैं और सूर्योदयका समय होता है! अकेले भरतक्षेत्रहीमें यह दिन रातोंका महान् अंतर जैनशास्त्रानुसार कैसे प्रमाणित किया जा सकता है? उत्तरीय ध्रुवका समीपवर्ती प्रदेश जब ग्रीष्म ऋतुमें लगातार ६ महीने तक सूर्यसे आलोकित रहता है, तब दक्षिणीय ध्रुव उसी तरह अन्धकारनिमग्न रहता है—इन दोनों स्थानों पर क्रमशः ६ महीनेकी रात और ६ महीनेका दिन होता है! यह बात जैनशास्त्रोंसे कदापि सिद्ध नहीं हो सकती। पृथ्वीको गेंदकी तरह गोल माने बिना इस शंकाका समाधान नहीं हो सकता। शीतकालमें भारतमें रात १३॥ घंटेकी और दिन १०॥ घंटेका हो जाता है। इससे अधिक फर्क कभी नहीं पड़ता। किन्तु इंग्लेण्डमें रात १८ घंटेकी और दिन केवल ६ ही घंटेका रह जाता है! इस विषमताका कारण कोई जैनग्रंथ नहीं बतला सकता। दूरकी बात जाने दीजिए, हमारे हिन्दुस्थानहीकी एक बात ले लीजिए। यह तो सभी जानते हैं कि, जिस समय मदरासमें सूर्योदय होता है, उसके ३९ मिनिट बाद बम्बईमें सूर्योदय होता है (कलकत्ता,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कराँची आदि नगरोंके बीचमें भी इसी प्रकारका फर्क है)। अब बतलाइए, कि इस विलम्बका क्या कारण है? जैनग्रंथोंके देखनेसे तो मालूम होता है कि सूर्यकी कमसे कम गति एक मुहूर्तमें (४८ मिनिटमें) लगभग ५२५१ योजनकी बतलाई गई है। (देखो, तत्त्वार्थराजवार्तिक, पृष्ठ १५७।) इस हिसाबसे सूर्यका प्रकाश एक मुहूर्तमें सब ही भूखण्डोंमें व्याप्त हो जाना चाहिए, पर हम देखते हैं कि मदरास और बम्बईके बीचके केवल पाव योजनके ही लगभग अन्तरमें उसे फैलते ३९ मिनट लग जाते हैं! बिना पृथ्वीके गोल और गतिमती माने, संसारका कोई भी भौगोलिक इसका उत्तर नहीं दे सकता।

हिन्दुओंके पुराणग्रंथोंमें भी भूगोल-खगोलका वर्णन उसी ढंगसे लिखा है जैसा जैनग्रंथोंमें है, परंतु ज्योतिषशास्त्रके प्रतिष्ठित ग्रंथोंमें, जिनमें आर्यप्रजाकी अलौकिक बुद्धिका जाज्वल्यमान प्रकाश प्रदीप्त है, ठीक वैसा ही कथन मिलता है जैसा आधुनिक पाश्चात्य भौगोलिकोंने प्रयोगों द्वारा निश्चित किया है। यद्यपि श्रीपति, लल्ल और भास्कराचार्य आदि पिछले समर्थ ज्योतिषियोंने पृथ्वीका भ्रमण स्वीकार नहीं किया है, तो भी आर्यभट्ट नामके सुप्रसिद्ध विद्वानने आजसे १५०० वर्ष पहले ही इस सिद्धान्तका प्रतिपादन कर दिया था। सर रमेशचन्द्र दत्त अपने सुप्रसिद्ध भारतीय इतिहासमें लिखते हैं–"आर्यभट्ट कहता है कि, जिस प्रकार किसी नौकामें बैठा हुआ मनुष्य आगे बढ़ता हुआ स्थिर वस्तुओंको पीछेकी ओर चलती हुई देखता है, उसी प्रकार तारे भी यद्यपि वे अचल हैं तथापि नित्य चलते हुए दिखाई पड़ते हैं।"

श्वेताम्बरसम्प्रदायके आचाराङ्गसूत्रकी टीकामें भी आर्यभट्टके इस पृथ्वीभ्रमण सिद्धान्तका उल्लेख मिलता है। यथा–

"भूगोलः केषाञ्चिन्मतेन नित्यं चलन्नेवास्ते, आदित्यस्तु व्यवस्थित एव। तत्रादित्यमण्डलं दूरत्वाद्ये पूर्वतः पश्यन्ति तेषामादित्योदयः। आदित्यमण्डलाधोव्यवस्थितानां मध्याह्नः। ये तु दूरातिक्रान्तत्वान्न पश्यन्ति तेषामस्तमित इति।"

पृथ्वीका गोलाकार होना तो प्रायः सभी प्रसिद्ध विद्वानोंने स्वीकृत किया है और चपटी माननेवालोंका अनेक युक्तियों द्वारा खण्डन किया है। लल्लसिद्धान्तमें लिखा है कि—

समता यदि विद्यते भुवस्तरवस्तालनिभा बहुच्छ्रयाः।
कथमेव न दृष्टिगोचरं नुरहो यान्ति सुदूरसंस्थिताः॥

भास्कराचार्यने भी यही सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। पाठक प्रश्न कर सकते हैं कि जब हिन्दुओंके प्रसिद्ध ज्योतिर्विदोंने पृथ्वीको गेंदकी तरह गोल माना है, तो फिर हिन्दू पुराणकारोंने और उनकी ही तरह जैनग्रन्थकारोंने उसे कुम्भकारके चक्रकी तरह चिपटी क्यों माना है? इसके समाधानमें बहुतसे विद्वान् कहते हैं कि साधारण दृष्टिसे देखने पर पृथ्वी हमको सर्वत्र सम (चपटी) ही दिखाई देती है–गोलाकार नहीं प्रतीत होती। इसी कारण पुराणकारोंने, जिनका उद्देश्य केवल कल्पित बातों द्वारा सामान्य जनताको यत्किञ्चित् ज्ञान करानेका था, लोगोंकी समझमें आने योग्य सीधा सादा वर्णन लिखा है। पर ज्योतिषियोंका उद्देश्य कुछ और ही था; उन्हें भूगोल और खगोलके रहस्योंका पता लगाना था, गणितके सिद्धान्तों द्वारा सृष्टिकी मुख्य मुख्य घटनाओंका कार्यकारणभाव जानना था, इस लिए उन्हें पृथ्वी और उसके ग्रहों-उपग्रहोंका खूब तीक्ष्ण दृष्टिसे निरीक्षण करके अपने विचार निश्चित करने पड़े थे। अब रही जैनग्रन्थकारों-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की बात, सो उन्होंने अनेक बातोंमें हिन्दू पुराणोंहीका अनुकरण किया है। हिन्दू पुराणोंमें जो कुछ लिखा हुआ था, उसीको इन्होंने चतुराईसे अच्छी तरह काटछाँटकर, उनकी परस्पर विरोधिता और असंगतताको निकाल कर सुसंकलित रूपमें अपने ग्रंथोंमें उल्लिखित कर दिया। हमारा विद्यमान साहित्य लगभग ४ थी ५ वीं शताब्दिके बादका बना हुआ है और वह समय हिन्दुओंके पुराणोंकी लोकप्रियताका था। हिन्दू जनतामें पुराणोंका अत्यधिक आदर देखकर जैन विद्वानोंने भी उन्हींका अनुकरण किया। हिन्दुओंके और जैनोंके पुराणग्रन्थोंका तुलनात्मक दृष्टिसे परस्पर मिलान करनेसे इस कथनकी सत्यता विदित हो जायगी। हमें यह भी न भूल जाना चाहिए कि, विद्यमान जैनधर्मका ढाँचा ठीक वैसा ही नहीं है जैसा भगवान् महावीरदेवने अपने जीवनकालमें स्थिर किया था। इस इतने लम्बे और विपत्तिसंकुल ढाई हजार वर्ष परिमित कालमें किसी भी धर्म, राष्ट्र और समाजके स्वरूपमें परिवर्तन न हो, यह प्रकृतिके नियमसे सर्वथा असम्भव है। जैनधर्मके मूलस्वरूपका जो धुँधला चित्र वर्तमान जैनसाहित्यसमुद्रमें गहरा गोता लगानेसे दिखाई देता है, उसमें हम इन विचारोंका आभास पा सकते हैं। इन कारणोंसे हमारा अनुमान होता है कि, जो भौगोलिक सिद्धान्त जैनग्रंथोंमें लिखे हैं, वे सर्वज्ञप्रणीत न होकर पुराणकल्पित हैं। क्यों कि यह सुनिश्चित है कि, सर्वानुभूत प्रत्यक्ष प्रमाणसे सर्वज्ञका वचन कभी बाधित नहीं हो सकता। डा० हरमन जेकोबी जो कुछ समय पहले 'जैनदर्शनदिवाकर' की महती उपाधिसे विभूषित हो चुके हैं—जैनग्रन्थोक्त ज्योतिषके बारेमें अपनी क्या सम्मति देते हैं उसे जैनविद्वानोंको 'प्राच्यदेशीय पवित्र ग्रंथमाला' द्वारा प्रकाशित जैनसूत्रोंकी प्रस्तावनाओंमें देखना चाहिए। जैनदर्शनके दिवाकर भी जिस साहित्यके विषयमें बहुत ही बुरी सम्मति देते हैं, वह साहित्य सर्वज्ञोक्त नहीं हो सकता। उसे सर्वज्ञकथित कह कर सर्वज्ञको कलंकित करना है। सर्वज्ञकथित वह स्याद्वाद सिद्धान्त है, जिसका कुछ कुछ दर्शन हमें भगवान् कुन्दकुन्द और समन्तभद्रके ग्रन्थोंमें मिलता है। और यों तो धृष्ट ग्रन्थकारोंने भद्रबाहुसंहिता जैसे ग्रन्थोंको भी सर्वज्ञके सिर पर मढ़ देनेमें कोई कसर नहीं रक्खी है। अब वह समय आ गया है कि साहित्यके प्रत्येक अंगकी और प्रत्येक विचारकी अच्छी तरहसे आलोचना होनी चाहिए। नहीं तो काचके टुकड़ोंके साथ बहुमूल्य मणि भी फेंक दिये जायँगे और जगत्की एक सर्वोत्तम विचारश्रेणी अयुक्तकी संगतिसे उपेक्षित हो जायगी।

हम कभी पाठकोंको, जैनग्रन्थोंहीके कुछ अवतरणोंसे यह दिखायँगे कि भरतखण्ड उतना ही है जितनेको कि हम आजकल हिन्दुस्थान या भारतवर्ष कहते हैं। पृथ्वीके यूरोप, अमेरिकादि दृश्यमान खण्डोंकी गणना भरतखण्डमें नहीं की जा सकती। विद्यमान गंगा सिन्धु नदियोंके सिवा और कोई महागंगा महासिन्धु नदियाँ नहीं हैं, जैसा कि ऊपर दिये गये स्वर्गीय बरैयाजीके लेखमें लिखा हुआ है। भारतीय समुद्र ही लवणसमुद्र है और हिमालय पर्वत ही हिमवान् है। इनके अतिरिक्त और कोई नदी, समुद्र पर्वतादि नहीं हैं। योजनोंके परिमाणमें और संख्याकी गणनामें भ्रम हो जानेसे ये सब अनाप-शनाप कल्पनायें पैदा हुई हैं। यह भ्रम पुरातनकालके विद्वानोंको भी विदित हो चुका था; परंतु किसी कारणवश वे इस भ्रमका निराकरण न कर पाये। पर अब इस बीसवीं शताब्दिके विज्ञान-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रस्थापित साम्राज्यमें यह भ्रम बहुत दिनोंतक नहीं टिक सकेगा।

हमारे बहुतसे पुराणप्रिय पण्डितवर्य्य और धर्ममूर्ति पत्रसम्पादकगण कहा तो करते हैं कि हमारे पास आधुनिक भूगोलसिद्धान्तोंके खण्डनार्थ और जैनभूगोलके मण्डनार्थ अनेकानेक अकाट्य युक्तियाँ मौजूद हैं; परंतु उन्हें प्रकट आजतक किसीने नहीं किया। हमारी उन महाशयोंसे सविनय प्रार्थना है कि वे अब कृपाकर अपनी उन युक्तियोंके भाण्डागारको जैनत्व और जनताके हितार्थ उदार भावसे खोल दें। पर युक्तियोंके नामसे अपने ऊटपटाँग विचारोंको प्रकट करनेकी कृपा न करें। उन्हें शास्त्रीय प्रमाणोंके साथ वर्तमानिक परिस्थितिकी सब ही अवस्थाओंका यथायोग्य विचार करना चाहिए। यह विषय उपेक्षा करनेके लायक नहीं है। जैनधर्मकी प्रमाणिकताका इसके ऊपर बड़ा भारी आधार रहा हुआ है। इस एक अवयवके निर्मूल सिद्ध होनेसे सारा ही विद्यमान जैनसाहित्य भयंकर स्थितिमें जा पड़ता है। उसकी ऐसी विचित्र रचना है कि उसमेंका एक भी विचार निकाल देनेसे समग्र शृंखला टूट जाती है। जैनतत्त्वज्ञानका एक दूसरे विचारके साथ 'व्याप्तिज्ञान' के समान अविनाभावि सम्बन्ध है। इसकी जो विशेषता है वह यही है और यही विशेषता आजतक इसे जीवित रख रही है।

पुस्तक-परिचय।

इस अङ्कमें अब तककी समालोचनार्थ आई हुई तमाम पुस्तकोंका संक्षिप्त परिचय दे दिया जाता है। इनमेंसे बहुतसी पुस्तकें ऐसी हैं, जो हमारे पास वर्षोंसे रक्खी हुई हैं और जिनके विषयमें हम अपनी विस्तृत सम्मति देना चाहते थे; परन्तु समयके अभावसे ऐसा नहीं किया जा सका। इसके लिए हम लेखक और प्रकाशक महाशयोंसे क्षमा चाहते हैं।

१ **मोहिनी** अर्थात् बिगड़ेका सुधार और पतितका उद्धार। श्रीयुत दत्तात्रय भीमाजी रणदिवेके लिखे हुए 'रूपसुन्दरी' नामक मराठी उपन्यासके गुजराती अनुवादका हिन्दी अनुवाद। अनुवादक बाबू भैयालाल जैन। आकार डबल क्राउन १६ पेजी। पृष्ठसंख्या ९०। मूल्य आठ आने।

२ **सच्चा विश्वास**। (त्रिलोकमोहिनी मालाका चौथा पुष्प।) बंगालके सुप्रसिद्ध महात्मा केशवचन्द्रसेनके एक छोटेसे लेखका अनुवाद। अनुवादक बाबू श्यामसुन्दरलाल गुप्त। आकार डबल क्राऊन ३२ पेजी। पृष्ठसंख्या ४८। मूल्य दो आने।

३ **बालिका विनय**। (त्रिलोकमोहिनी मालाका तीसरा पुष्प।) सम्पादिका एक जैन महिला। आकार, पृष्ठसंख्या और मूल्य पूर्वपुस्तकके समान।

४ **रत्नकरण्डश्रावकाचार**, Or the House halder's Dharma। समन्तभद्रस्वामीकृत रत्नकरण्डका अगरेजी अनुवाद, लगभग ४२ पेजके इन्ट्रोडक्शनके सहित। अनुवादक, बाबू चम्पतरायजी बैरिष्टर एट. ला. हरदोई। डबल क्राऊन सोलह पेजी आकारके १२० पृष्ठ। मूल्य बारह आने।

इन चारों पुस्तककोंके प्रकाशक श्रीयुत कुमारदेवेन्द्रप्रसाद जैन, आरा हैं। इनकी छपाई, सफाई आदि सभी बातें दर्शनीय हैं।

५ The Study of Jainism. श्वेताम्बराचार्य आत्मानन्दजीके 'जैनतत्त्वादर्श' कर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अँगरेजी अनुवाद । पृष्ठसंख्या १०२ । मूल्य बारह आने ।

६ Saptbhangi naya (सप्तभंगीनय)। जैनहितैषीके भाग १३ अंक १ में प्रकाशित हुए लेखका अँगरेजी रूप । इसकें प्रारंभमें श्रीयुत मुनि जिनविजयजीकी लिखी हुई एक छोटीसी भूमिका भी दी हुई है। पृष्ठ ३०। मूल्य छह आने।

७ Lord Krishna's message । पृष्ठ-संख्या २४ । मूल्य चार आने ।

८ व्याकरणबोध । हिन्दी भाषाका सुगम और संक्षिप्त व्याकरण । पृष्ठसंख्या २८ । मूल्य ढाई आना ।

९ साहित्य-संगीत-निरूपण । पृष्ठसंख्या १३० । मूल्य दश आने ।

१० उपनिषद्-रहस्य । नौ मुख्य मुख्य उपनिषदोंके चुने हुए वाक्योंका संग्रह, उनका हिन्दी अनुवाद और अँगरेजी अर्थ । आकार डिमाई अठपेजी । पृष्ठसंख्या ४८ । मूल्य ढाई आने ।

उपर्युक्त छहों पुस्तकोंके लेखक धौलपुर स्टेटके सेशनजज श्रीयुत लाला कन्नोमलजी एम. ए. और प्रकाशक 'आत्मानन्द जैनपुस्तकप्रचारक मण्डल, रोशन मोहल्ला, आगरा' हैं ।

११ अहिंसा परमोधर्मः । इसमें महात्मा गाँधीका लिखा हुआ 'अहिंसा' और किसी अहिंसिस्ट' नामधारी महाशयका 'जैन अहिंसा', इस तरह दो अँगरेजी लेख हैं । ये दोनों लेख सुप्रसिद्ध अँगरेजी पत्र 'माडर्नरिव्यू' में प्रकाशित हुए थे । डबल क्राउन ३२ पेजी साइजके ३२ पृष्ठ । मूल्य एक आना । भारतजैनम हामण्डलके जीवदयाविभागके मंत्री बाबू दयाचन्दजी गोयलीय बी. ए. लखनऊ इसके प्रकाशक हैं ।

१२ जैनसाहित्यसम्मेलनका कार्य विवरण । सन् १९१४ के मार्च महीनेमें डा० सतीशचन्द्र विद्याभूषणके सभापतित्वमें जोधपुरमें जो जैनसाहित्यसम्मेलन हुआ था, उसका यह कार्यविवरण अभी थोड़े ही दिन पहले प्रकाशित हुआ है । इसके एक भागमें सम्मेलनकी रिपोर्ट है और दूसरे भागमें सम्मेलनमें उपस्थित हुए गुजराती, हिन्दी और अँगरेजी लेखोंका संग्रह है । आकार रायल अठपेजी । पृष्ठसंख्या लगभग २६० । मूल्य एक रुपया ।

१३ देहली शास्त्रार्थ ! (ईश्वरकर्तृत्व-तीर्थंकरसर्वज्ञत्वखण्डनमण्डनविषयक ।) न्यायालङ्कार पं० मक्खनलाल शास्त्री (जैन) और पं० नरसिंहदेव शास्त्री दर्शनाचार्य (आर्यसमाजी) के शास्त्रार्थका विवरण । पृष्ठसंख्या ६८ । मूल्य चार आने । प्रकाशक, मंत्री जैनमित्रमण्डल, धरमपुरा देहली ।

१४ सोऽहं तत्त्व । श्रीयुत 'सोहं स्वामी' की बंगला पुस्तकका हिन्दी अनुवाद । अनुवादक और प्रकाशक पं० ज्वालादत्त शर्मा, किसरोल, मुरादाबाद । पृष्ठसंख्या १०४ । मूल्य आठ आने ।

१५ विवाहप्रबन्ध । लेखक, श्रीयुत मुकुन्दीलाल, प्रकाशक, गढ़वाली प्रेस, देहरादून । डिमाई अठपेजी साइजके ३२ पृष्ठ । मूल्य तीन आने ।

१६ शाही लकड़हारा । महात्मा शिवव्रतलाल वर्मा एम. ए. की उर्दू पुस्तकका अनुवाद । अनुवादक, बाबू गौरीशंकरलाल अख्तर । प्रकाशक, बाबू दयाचन्द गोयलीय बी. ए., हिन्दीसाहित्यभण्डार, लखनऊ । आकार डबल क्राउन सोलहपेजी । पृष्ठसंख्या १५२ । मूल्य एक रुपया ।

१७ सदाचार-सोपान । प्रतिभा आदि उपन्यासोंके लेखक बाबू अविनाशचन्द्र दास एम. ए. बी. एल. की सुकथा नामक बंगला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुस्तकका अनुवाद । अनुवादक और प्रकाशक, दशरथ बलवन्त जादव, देवरी (सागर,) सी. पी. । पृष्ठसंख्या ४४, मूल्य चार आने ।

१८ महादेव गोविन्द रानडे । लेखक, श्रीयुत भारतीय । प्रकाशक, दीक्षित और द्विवेदी, दारागंज प्रयाग । पृष्ठसंख्या २०० । मूल्य दश आने ।

१९ जीवरक्षादर्पण । लेखक और प्रकाशक, लाला पारसदासजी खजांची, देहली । पृष्ठसंख्या डिमाई अठपेजी साइजकी ८० । मूल्य चार आने ।

२० दिव्य जीवन । डा. स्विट् मार्सडनकी एक अँगरेजी पुस्तकका अनुवाद । अनुवादक, बाबू सुखसम्पत्तिराय भण्डारी । प्रकाशक, जीतमल लुणिया, इन्दौर । पृष्ठसंख्या १३६ । मूल्य तेरह आने ।

२१ आत्मावबोध । राजशेखरसूरिके संस्कृत ग्रन्थके पं० लालनकृत गुजराती अनुवाद और विस्तृत विवेचनका हिन्दी अनुवाद । अनुवादक, पं० उदयलालजी काशलीवाल । प्रकाशक, मुकुन्ददास मोतीलाल मुणोत और आनन्दराम केसरचन्द बाँठिया, पनवेल (बम्बईके नजदीक) पृष्ठसंख्या १४८ । मूल्य आत्मलीनता ।

२२ सदाचारिणी । सामाजिक उपन्यास । लेखिका ' जननी '-सम्पादिका श्रीमती कुमुदबाला देवी । प्रकाशक, हरिश्चन्द्र भट्ट, जननी आफिस, तनसुखलाइन, शिवठाकुर गली । डिमाई अठपेजी आकारके ८० पृष्ठ । मूल्य दश आने ।

२३ महाकवि गालिब और उनका काव्य । **२४ उस्ताद जौक और उनका काव्य** । उर्दूके प्रसिद्ध कवियोंका और उनकी रचनाका परिचय । दोनों पुस्तकोंके लेखक, पं० ज्वालादत्त शर्मा और प्रकाशक, हरिदास एण्ड कम्पनी नं० २०१ हरिसन रोड, कलकत्ता । मूल्य छह छह आने ।

सम्पादकीय कार्यसे एक वर्षकी छुट्टी ।

अवकाशकी कमी, लगातार अत्यधिक परिश्रमसे उत्पन्न हुई शारीरिक और मानसिक अस्वस्थता, आदि अनेक कारणोंसे मैं जैनहितैषीके कार्यसे एक वर्षके लिए छुट्टी लेता हूँ । मैं चाहता हूँ कि मेरे काम न करने पर भी जैनहितैषी जारी रहे; इसके लिए मैं प्रयत्न भी कर रहा हूँ और आशा है कि मेरे मित्रोंमेंसे एक सज्जन इसके सम्पादन कार्यको स्वीकार कर लेंगे । उनसे पत्रव्यवहार हो रहा है । यदि उन्होंने स्वीकार कर लिया तो इसकी सूचना यथासमय प्रकाशित कर दी जायगी । इस नये प्रबन्धमें कुछ विलम्ब होगा और इस कारण अब हितैषीका नया वर्ष चैत्र सुदी १ से शुरू किया जायगा । सम्पादक ।

नई पुस्तकें नीचे लिखी पुस्तकें हालही बिक्रीके लिए आई हैं । इन्हें मँगाइए और पढिए:—

१ लड़ाईकी लहर, ठाकुर गदाधरसिंह कृत, मूल्य ।), **संसारसुखसाधन**, पं० गंगाप्रसाद अग्निहोत्रीकृत, मूल्य ।-), **कथा-कहानी** बाबू नारायणप्रसाद बी. ए. कृत, मूल्य ।), **महाराष्ट्र केसरी शिवाजी**, पं० ताराचन्द अग्निहोत्री बी. ए. कृत, मू० ॥≈), **भारतीय राष्ट्रनिर्माता**, लाल, बाल, पाल, बीसेंट, गोखले आदि देशभक्तोंके जीवनचरित, मूल्य दश आने । **रा. ब. जस्टिस महादेव गोविन्द रानडे**, लेखक बाबू रामचन्द्र वर्मा । मू० ॥)

मैनेजर, **हिन्दीग्रन्थरत्नाकर कार्यालय**, हीराबाग पो० गिरगाव, बम्बई ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हितैषी–औषधालय–इटावहकी

पवित्र-सस्ती-औषधियाँ ।

नमक सुलेमानी ।

जगत्प्रसिद्ध असली २० वर्षका आजमूदा हाजमेकी अक्सीर दवा । की० ॥) तीन सी० १।≈)

धातु संजीवन ।

संपूर्ण धातु विकारको नष्ट कर नया वीर्य पैदा होकर शरीर हृष्ट–पुष्ट होजाता है । की० १)

प्रदरान्तक–चूर्ण ।

स्त्रियोंके श्वेत, लाल आदि प्रदरोंको शर्तिया दूर कर ताकत बढ़ाता और गर्भस्थिति करता है की० १)

नयनामृत–सुरमा ।

सम्पूर्ण विकारोंको दूरकर नेत्रोंकी ज्योति बढ़ाता और तरावट पैदा करता है । की० १)

दन्त–कुसुमाकर ।

दाँतोंके सब रोग दूर होकर दांतोंकी चमक बढ़ाता और मजबूत करता है । की० ।)

दद्रु–दमन ।

यह खुशबूदार मरहम विना कष्टके दादके दादाको तगादा कर भगाती है । की० ।)

केश-बिहार–तैल ।

अत्यन्त सुगन्धिसे चित्त प्रसन्न कर केश और मस्तकके रोगोंको दूर करता है । की० ॥)

नारायण–तैल ।

शरदी आदिसे उत्पन्न हुए दर्द, गठिया, पक्षाघात आदि सर्व वात रोगोंकी शर्तिया दवा है । की० १)

दवा सफेद दागोंकी ।

इससे शरीरमें जो सफेद २ दाग पड़जाते हैं वह दूर हो जाते हैं । की० १)

श्वास–कुठार ।

यह स्वास दमें की शर्तिया दवा है । की० १)

गोली दस्तबंदकी ।

रक्त, आम, आदि अतिसार तथा संग्रहणी आदिको शीघ्र दूर करती है । की० ॥)

दवा खांसीकी ।

सूखी या तर खांसीको और कफको दूर करने वाली आजमूदा दवा है । की० ॥)

अर्क कपूर ।

हैजेकी अक्सीर दवा । की० ।)

चंद्रकला ।

यह गोरे व खूबसूरतीकी दवा है । की० ॥)

नैन-सुधा-अञ्जन ।

इससे आँखका जाला धुन्ध फुली माड़ा आदि सब अच्छे होते हैं । की० ॥)

दवा पेटके दर्दकी ।

चाहे कैसा पेट दर्द हो फौरन दूर होता है । की० ॥)

ताम्बूल रंजन ।

पानके साथ खानेका बढ़िया मसाला । की० ।)

शिरदर्द-हर तैल । की० ।)

कर्ण-रोग-हर तैल । की० ।)

खुजली–नाशक तैल । की० ।)

बाल उड़ानेका साबुन । की० ।)

कोकिल–कण्ठ–वटिका । की० ।)

पता—चन्द्रसेन जैन वैद्य, चन्द्राश्रम, इटावह U. P.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाश चंद्र जी शास्त्री
प्रधानाचार्य, श्री स्याद्वाद महाविद्यालय, वाराणसी
द्वारा भेंट

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi